आधुनिक चिकित्सा शास्त्र

(A text book of Modern Medicine
Comprising Notes on Āyurvedic Medicine)

धर्मदत्त वैद्य

भूतपूर्व अध्यक्ष गुरुकुल कागडी आयुर्वेद महाविद्यालय, विद्यालङ्कार सिद्धान्तालंकार (गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय १९१७) आयुर्वेद भूषण (मद्रास आयुर्वेदिक कालेज मद्रास १९२१) आयुर्वेद महोपाध्याय (आयुर्वेद एकादमी हैदराबाद १९६७) आयुर्वेद वारिधि (हरियाणा प्रान्तीय आयुर्वेद शिक्षा समिति १९७४) विद्यामार्तण्ड (गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय १९७५) आयुर्वेद महामहोपाध्याय (उत्तरप्रदेशीय वैद्यसम्मेलन १९७६)

द्वितीय संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली · वाराणसी · पटना

© मोतीलाल बनारसीदास

भारतीय सस्कृति ग्रन्थमाला के प्रमुख प्रकाशक एव पुस्तक-विक्रेता

प्रधान कार्यालय : अ उल्लाह् मार्ग, जवाहर नगर, दिल्ली-७

शाखाएं १. चौक, वाराणसी-१ (उ० प्र०)

२ अशोक राजपथ, पटना-४ (बिहार)

प्रथम सस्करण दिल्ली, १९६६

द्वतीय सशोधित एव परिवर्द्धित सस्करण दिल्ली, १९७६

मूल्य : रु० १०० ०० ([redacted])

रु० [illegible].०० ([redacted])

होता है। ऐसी अवस्था मे जब शरीर मे पित्तवृद्धि होती है तब ज्वर, दाह, पिपासा, स्वेद, रक्तक्षय आदि लक्षण हो जाते हैं जिन्हें पित्तवृद्धि का लक्षण कहते हैं। यह पित्तवृद्धि जीवाणुओ के विनाशार्थ उनके Antibodies को उत्पन्न करने के लिये होती है। रोग के कारणभूत जीवाणु जब नष्ट हो जाते है तब पित्तवृद्धि शान्त हो जाती है। इस प्रकार वस्तुत ज्वर या पित्तवृद्धि शरीर की रक्षा के लिये होती है।

पित्तवृद्धि की चिकित्सा.— पित्तवृद्धि के रोगी की शक्ति को बढाने के लिये उसे पूर्ण विश्राम देवे। उसे सुपच पौष्टिक आहार मिलना चाहिये, ताकि उसकी जीवाणु निवारक शक्ति बढे। औषध भी उसे शक्तिवर्धक ही मिलनी चाहिये। ऐसी औषध भी उसे मिलनी चाहिये जो पित्तवृद्धि द्वारा संचित हुए मलो को स्वेद, मल, मूत्र आदि द्वारा बाहर करे। पित्त वृद्धि के दूर करने के लिये विरेचन विशेष हितकर होता है। पित्त-शामक औषधियो मे से कुछ एक का उल्लेख किया जाता है, जैसे उशीरादिक्वाथ, दूर्वादिघृत, उशीरासव, चन्दनासव, सितोपलादिचूर्ण, चन्दनादिचूर्ण, सूतशेखर, कामदुघा, मुरब्बा-आवला, स्वर्णगैरिक, मुक्तापिष्टी, वासावलेह, वसन्तकुसुमाकर आदि।

शरीर का तीसरा मूलतत्त्व —कफ तत्त्व— शरीर का तीसरा मूलतत्त्व कफतत्त्व है। इस वृद्धितत्त्व के कारण शरीर के अवयवो मे वृद्धि, रोहण, रोपण, रक्षण आदि कर्म होते है। शरीर मे किसी क्षत के होते ही तुरन्त उसका रोहण आरभ हो जाता है। यदि किसी अवयव मे जीवाणु आक्रमण करता है तो वहा रक्षण कर्म (Antibodies, Opsonin, Lysozyme आदि की उत्पत्ति के रूप मे) आरभ हो जाता है।

इस तत्त्व के कारण शरीर और मस्तिष्क मे उचित विकास होता है। शरीर परिपुष्ट होता है। मस्तिष्क मे बुद्धि का विकास होता है। मन मे उत्साह का उदय होता है। ज्ञान-शक्ति, सहन-शक्ति और धीरता के गुण उत्पन्न होते है। शरीर मे जो स्थिरता, दृढता, श्लिष्टता, स्निग्धता के गुण हैं वे कफ तत्त्व के कारण हैं। (१) मुख तथा जिह्वा मे जिस कफतत्त्व के कारण रस का बोध होता है उसे रसबोधक श्लेष्मा कहा है, (२) आमाशय मे जो श्लेष्मा, अन्न का क्लेदन करता है उसे क्लेदक श्लेष्मा कहा है, (३) पुप्फुस मे जो क्लेदन का कारण है उसे अवलम्बक श्लेष्मा कहा है, (४) सधियो, कण्डराओ, और सधियो की थैलियो (Bursa) मे जो चिकना द्रव रहता है उसे सधिश्लेषक श्लेष्मा कहा है, (५) मस्तिष्क के अन्दर विद्यमान स्नेहन, रक्षण आदि कार्य करने वाले द्रव (Cerebrospinal fluid) को इन्द्रियतर्पक श्लेष्मा कहा है।

इस कफतत्त्व का पोषण, पोषक आहार, विश्राम, निद्रा, निश्चिन्तता, प्रसन्नता, वीर्य रक्षा आदि के द्वारा होता है।

कफ और पित्त के संतुलन पर स्वास्थ्य निर्भर है.— कफतत्त्व, आहार के द्वारा प्राप्त 'कैलोरीज' से शरीर के अवयवों का निर्माण करता है। पित्ततत्त्व आहार के द्वारा प्राप्त 'कैलोरीज' को खर्च करता है। इस प्रकार कफ और पित्त एक दूसरे के विपरीत कार्य करते है। एक वृद्धि करता है, दूसरा खर्च करता है। इन दोनो के सन्तुलित रूप मे कार्य करने मे शरीर स्वस्थ रहता है। यदि शरीर मे व्यय अधिक और आय कम हो जाये तो उसे पित्तवृद्धि या पित्त प्रकोप की अवस्था कहते हैं। ज्वर मे ऐसा ही होता है। इसके विपरीत यदि शरीर मे आय अधिक और व्यय कम हो अर्थात् कफ-कर्म अधिक और पित्तकर्म मन्द हो तो उसे कफवृद्धि, कफप्रकोप या कफरोग की अवस्था कहते हैं। दूसरे शब्दो मे इस अवस्था को अग्नि या पित्त की मन्दता भी कहते हैं। इस प्रकार जितने कफरोग हैं उनका कारण अग्नि की मन्दता है।

यदि आहार तो गुरुतर हो, दूसरी ओर शारीरिक श्रम या व्यायाम न किया जाये तो आहार का जो अश शरीर मे खर्च नही होता वह आमद्रव्य के रूप मे शरीर मे सचित हो जाता है। अर्थात् शरीर मे वसा या चर्बी अधिक जमा हो जाती है। रक्त मे भी Free fatty acids, Triglycerides, Cholesterol, Phospholipids आदि वसासम्बन्धी द्रव्य अधिक सचित हो जाते है। इसे कफवृद्धि या कफदोषवृद्धि की अवस्था कहते हैं। इस आम दोष सचय को आयुर्वेद मे बहुत सी व्याधियो का मूल कारण कहा है। जैसे कहा है "व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसज्ञोऽतिदारुण"। यह बात सत्य ही है क्योकि ५०-६० प्र श के लगभग रोग अग्नि की मन्दता अर्थात् कफवृद्धि के कारण होते है। चरक ने भी कहा है "अग्नि-दोषान्मनुष्याणा रोगसघा पृथग् विधा"। वाग्भट ने भी कहा है "वाग्भटस्य प्रतिज्ञेय न मन्दाग्नि विना रुज"। चिकित्सा का उद्देश्य क्या होना चाहिये इस विषय मे आयुर्वेद मे कहा है "सारमेतच्चिकित्साया परमग्नेश्च पालनम्।" इस प्रकार बहुत से रोग जैसे मेदोवृद्धि, मधुमेह, हृदयशूल, हार्टअटैक, आमवात, गठिया, अश्मरी, ब्लडप्रेशर, अलर्जी, त्वग्रोग, रसौली आदि अग्नि की मन्दता के परिणामरूप होते हैं। शेष ४० प्र श रोगो मे २५-३० प्र श रोग वायुतत्त्व या प्राणतत्त्व की मन्दता से तथा १०-१५% रोग पित्ततत्त्व की प्रबलता (पित्तप्रकोप) से होते है।

कफवृद्धि की चिकित्सा —अग्नि की मन्दता से होने वाले रोगो के लिये लघन, अर्धलघन, परिमित आहार, लघु रूक्ष उष्णगुण आहार, शारीरिक श्रम, स्वेदन, वमन, विरेचन, कटु, तिक्त, कषाय रसप्रधान औषधो का सेवन उपयोगी है। औषधो मे से आर्द्रक, मधु, गोमूत्र या उससे बने औषध, त्रिकटु, पञ्चकोल, त्रिफला, लवण भास्कर, हिंग्वष्टक, व्योषादिचूर्ण, व्योषादिवटी, सजीवनीवटी, कफकेतु, लवगचतु समचूर्ण, वैश्वानर चूर्ण, निम्बादिचूर्ण, रामबाणरस, आरोग्यवर्धनी वटी, चित्रकहरीतकी, मञ्जिष्ठादिक्वाथ, रास्नादि क्वाथ, चातुर्भद्रचूर्ण आदि उपयोगी हैं।

प्रकृति भी आयुर्वेद मे तीन प्रकार की कही है जिसमे जन्म से ही प्राणतत्त्व या जीवनीयतत्त्व की निर्बलता है उसे वातिक (Asthenic) प्रकृति का कहा है। जिसमे जन्म से अग्नितत्त्व की प्रबलता है उसे पित्तप्रकृति (Sanguine) का कहा है। जिसमे जन्म से अग्नितत्त्व की निर्बलता है उसे श्लैष्मिक प्रकृति (Sthenic या Phlegmatic) प्रकृति का कहा है। उस उस प्रकृति वाले मे उस उस दोष के रोग होने की प्रवृत्ति रहती है।

AN INTRODUCTION TO ĀYURVEDA

From times immemorial, there has been a quest for a workable formula which could explain physiological and pathological phenomena connected with the living body In this context the founders of Āyurveda postulated a theory called *Tridhātu*-theory or three-life-factor-theory Since it explains the working of the living tissue and since it has survived over centuries it is still considered to be the base on which the edifice of Āyurveda stands

The theory means that there are three basic elements of life which carry out metabolism of the body As long as they remain in normal state and in mutual harmony the body continues to be healthy It is some disorder in them that leads to disease Āyurvedic treatment consists in restoring harmony among them

As physical entities or as primal substances (like Sattva, Rajas and Tamas) they can not be demonstrated, they are postulated and are considered to be immanently present in every cell of the body

A—*The Growth Factor*

The first characteristic of a living tissue that attracts attention of an observer is its spontaneous growth In fact, every tissue of the body is growing, multiplying, reproducing and renewing itself Cells secrete chemicals from their bodies and form surrounding ground in which they lie This process of controlled growth continues as long as the tissue lasts Besides this, the tissue repairs itself, whenever it is injured It manages to defend itself by producing such defensive substances as antibodies, properdin, opsonin, lysozyme etc In Āyurveda all these formative and defensive activities are considered to be the work of growth factor Apart from Physical growth such mental qualities as courage, insight, endurance, resistance to diseases, steadfastness, the signs of good growth are also the results of this factor

This in Āyurveda is called 'Kapha' or 'Kaphadhātu' which literally means the water of life It is also called 'Ślesmā' which means something that adds new matter to the tissues The word Kapha can be translated as formative, proliferative or anabolic element of the body

This growth factor is sustained in its normal state by balanced food, containing all essential ingredients in it, and by proper rest and sleep Cheerful state of mind also sustains it In fact exhilaration promotes growth and retards the process of decay

B—*The Consuming Factor of life*

The second factor of life is called the consuming or combustive, or catabolic or autoeytic factor of life In Āyurveda it is called 'Agni' that is ignis or 'Pittam' which means the fire of life

This consuming factor is responsible for the production of multitude of cellular enzymes which break down food materials into such simple compounds as can be utilised for the synthesis of complex structure of the tissues and which oxidise the waste materials arising within the tissues to such products as can easily be eliminated through excretory organs Heat resulting from this biochemical activity keeps the body warm and at the same time chemical energy released from it contributes to the energy of the body

Besides, keeping the body warm it keeps the skin, the vision and the intellect clear and produces such mental qualities as that of cheerfulness, and bravery.

This factor of life is sustained mainly by physical activity and by such foods and drinks

as are stimulating to metabolism During the period of fasting and during the interval between meals it remains more active

Harmony between these two factors — Now, the aforesaid two factors though they work in opposition to each other, function in coordination, and in their balanced state keep metabolism normal Thus it is harmonious state of these two factors that keeps one healthy In case, however, the growth factor becomes ascendant the process of metabolism grows slow On the other hand, when the consuming factor assumes predominance the rate of metabolism becomes more active Both these conditions predispose one to some sort of disease

It is lack of agni or the enzymatic system or in other words predominance of the growth factor that is more common cause of disease, especially, in upper classes It may safely be stated that it is lack of Agni that results in three-fourths of all diseases So Āyurveda lays more stress on keeping 'Agni' intact Charaka says (Chi 13) that a larger number of diseases arise from lack of Agni (Agnidosāt manusyānām rogasanghāh prthakvidhāh) Vāgbhata also reasserts the same statement that 'unless Agni is weak no disease can arise' (Vāgbhaṭasya pratijñeyam na mandāgnim vinā rujah) In the treatment of diseases Āyurveda lays more emphasis on the preservation of the Agni of the patient Āyurveda lays down 'objective of the treatment should he preservation of the Agni of the patient' (Sārametat cikitsāyāh Paramagnesca pālanam) Again Āyurveda says that 'he who preserves the Agni saves the life of the patient' (Kāyāgnim matimān raksan रुजो raksati jīvitam)

Kapharogas or diseases arising from lack of Agni

In a normal person the intake of calories is more or less equal to the output of energy, that is, ingestion of calories corresponds to the consumption of calories, but in case the constitutional Agni is deficient and the intake of calories exceeds the output of energy, some products of incomplete combustion are liable to accumulate in the fluids and tissues of the body For instance, the quantity of lactic acid, pyruvic acid, free-fatty acids, cholesterol, phospholipids, triglycerides etc more or less increase in the body Accumulation of such malproducts in Āyurveda is called 'Kaphadosa' or 'Āmadosasañcaya' and it is said to be the cause of host of diseases (Vyādhīnāmāśrayo hyesa āmasañjyotidārunah) all of which come under the category of kapharogas or diseases caused by lack of Agni Such diseases as Angina, Myocardial infarction, Atherosclerosis, Thrombosis, Obesity, Diabetes, Rheumatic pains, Lithiasis, Allergies etc come under the category of 'Kapharogas' Besides them all overgrowths such as benign tumours, cysts, hypertrophies and catarrhal inflammations also come under the category of 'Kapharogas'

Treatment for the 'Kapharogas' consists in total or partial fasting, dieting or taking of fatfree, sugarfree or even saltfree food for some time For chronic kapharogas physical exercise or walking is a good therapeutic measure Such drugs and measures as activate Agni or enhance the rate of metabolism cure kapharogas Excretion of waste matter through purging, emesis or perspiration etc also is considered helpful

भूमिका

आयुर्वेद की रूपरेखा

भारतीय दर्शन सत्त्व, रजस्, तमस् को जगत् का मूल कारण मानता है, आयुर्वेद वायु, पित्त, कफ, इन तीन को शरीर का मूल कारण मानता है। शरीर मे होने वाले सर्व भौतिक और रासायनिक परिवर्तनो अर्थात् 'मेटाबोलिज्म' का कारण इन्हीं तीन को कहता है। मूलरूप मे वह इनको अप्रत्यक्ष मानता है यद्यपि इनके प्राकृतिक और वैकृतिक परिणामो को जो प्रत्यक्ष हैं वह वायु, पित्त, कफ इन नामो से पुकारता है। स्वास्थ्य का कारण होने से वह इन्हे 'धातु' कहता है और रोगो का कारण होने से वह इन्हे 'दोष' कहता है।

वायुतत्त्व — उस तत्त्व को जो शरीर की ऐच्छिक अनैच्छिक सर्व चेष्टाओ का कारण है 'वा गतौ' धातु से वायु कहा गया है। चरक ने कहा है "सर्वा हि चेष्टा वातेन"। इस तत्त्व को आयु का प्रत्यायक कहा है। 'वायुरायु' तथा 'आयु-षोऽनुवृत्तिप्रत्ययभूतो वायु' ऐसा चरक ने कहा है। लैटिन भाषा के विटा 'vita' शब्द का अर्थ आयु या Life होता है। यह शब्द वात का ही अपभ्रंश प्रतीत होता है। वायु के पर्यायवाचक शब्दो मे 'विद्युत्' शब्द का प्रयोग भी हुआ है। चरक ने भी कहा है 'वायुस्तन्त्र-यन्त्रधर' अर्थात् शरीर रूपी यन्त्र की सचालक शक्ति वायु है।

प्राणवायु — मस्तिष्कान्तर्गत वायु तत्त्व को जो इन्द्रियो द्वारा रूप, रस, स्पर्श, शब्द, गध आदि को ग्रहण करता है, चिन्तन, मनन, ऊहापोह, निर्धारण आदि का कार्य करता है, आहारपान को (Vagus द्वारा) निगलने का कार्य करता है, (श्वास केन्द्र द्वारा) श्वास लेने का कार्य करता है, प्राणवायु कहते है। कहा भी है 'प्राणोऽत्र मूर्धनि' (वाग्भट) तथा 'हृदि (मस्तिष्के) प्राण' (शा ध)।

उदानवायु:— पुपफुस तथा कठ की उस (Vagus स्थित) वायु को, जो भाषण (Speech) और यत्न (Effort) के समय काम करता है, उदानवायु कहते है।

समानवायु:— पाचनस्थान मे विद्यमान (Vagus स्थित) वायु को, जो पाचक रसो को प्रवृत्त करने का काम करता है, समानवायु कहते हैं।

अपानवायु:— वस्तिस्थान (Pelvis) मे स्थित उस वायु को जो मलमूत्र को प्रवृत्त करता है, अर्थात् Cerebropudendal Nerve path मे स्थित है, अपानवायु कहते हैं।

व्यानवायु:— अनैच्छिक नाडी मण्डल-Autonomic N System के केन्द्रस्थान मस्तिष्कगत Hypothalamus मे विद्यमान उस वायु को जो रक्त लसीका (Lymph) के सचार को तथा मासपेशियो मे होने वाली ऐच्छिक, अनैच्छिक चेष्टाओ को उत्पन्न करने का कार्य करता है, व्यानवायु कहा है।

वैसे तो प्रत्येक सेल मे जो कार्य हो रहा है वह वायुतत्त्व के कारण सचालित हो रहा है तथापि नाडी मण्डल (N System) को उसका प्रधान स्थान कहा है।

शरीर का यह वायुतत्त्व वल-प्रद, आहार, विश्राम, निद्रा, मानसिक शान्ति, प्रसन्नता आदि भावो से प्रवल रहता है। फलो, कच्ची सब्जियो मे विद्यमान विटामिनो से भी उसे वल मिलता है। पित्त का पचनकर्म, कफ का वृद्धिकर्म ठीक रहे तो भी वायुतत्त्व को वल मिलता हैं। वायुतत्त्व के सम अवस्था मे रहने से शरीर स्वस्थ रहता है, आयु दीर्घ होती है।

वायुरोग — अव यदि शरीर को पोपक आहार न मिले, किसी रोग के कारण शरीर निर्वल हो जाये, शरीर या मन पर कोई भारी आघात आ पडे, या क्रोध, भारी कलह, भय, शोक, चिन्ता आदि मानसिक भावो से ग्रस्त हो जाये, या किसी विप द्रव्य जैसे तमाखू, मद्य, 'कैफीन', भाग आदि का चिरकाल तक सेवन किया जाये, या शरीर मे मधुमेह, यूरिक एसिड, यूरिया आदि का या किसी रोगजीवाणु का विष चिरकाल वना रहे, तो शरीर का वायुतत्त्व (प्राणतत्त्व) निर्वल हो जाता है। शरीर और मन की क्षमता और सामर्थ्य कम हो जाते है।

इस प्रकार शरीर की जीवनी शक्ति के निर्बल हो जाने से जो लक्षण हो जाते है, उन्हें वायुरोग या वायु-प्रकोप कहते है। इस अवस्था का प्रधान लक्षण शारीरिक या मानसिक चलता या विक्षोभशीलता है अर्थात् जब किसी अग को रक्त, आक्सिजन या आहार द्रव्य कम मिलते है तो उसमे चलता, वेदना, चमचमाहट, सुप्ति आदि लक्षण होने लगते है। इन लक्षणो से वायु रोग का अनुमान हो जाता है।

जिस अग या शरीर मे वायुतत्त्व (प्राणतत्त्व या जीवनीय तत्त्व) का ह्रास होता है उसमे क्षीणता (Degeneration) के सूचक लक्षण होने लगते है। अर्थात् उस अग मे रूक्षता (Fibrosis), खरता (Calcification) की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। उस अग के सेलो मे न्यूनता होने लगती है अर्थात् वहा लघुता (Atrophy) की विकृति भी होने लगती है। उस अग मे तापमान की न्यूनता भी हो सकती है अर्थात् कुछ शीतता का लक्षण हो सकता है। उस अग मे कुछ सूक्ष्म से लक्षण जैसे चीटियो के चलने की सी प्रतीति, चमचमाहट (Paraesthesia) आदि लक्षण होने लगते है। इसीलिये वायु के विषय मे कहा है 'तत्र रूक्षो, लघु, शीत, खर, सूक्ष्मश्चलोऽनिल' (वाग्भट)। ये लक्षण वायु विकृति के सूचक होते है।

वायुरोग चिकित्सा — मृदु स्निग्ध विरेचन या वस्ति चिकित्सा के बाद रोगी के शरीर के पोषण को बढाने के लिये मधुर, स्निग्ध, उष्ण गुण आहार उचित मात्रा मे दिये जाये। फल और कच्ची सब्जियो के रस का सेवन कराया जाये। पूर्ण विश्राम के अतिरिक्त निद्राजनक या शामक-औषधियो का प्रयोग किया जाये। तमाखू, मद्य आदि का त्याग किया जाये। मधुमेह आदि कोई रोग हो या शरीर मे कोई चिरस्थायी जीवाणु विष हो तो उसे दूर किया जाये। बलप्रद औषधियो का जैसे महालक्ष्मीविलास, चिन्तामणिचतुर्मुखरस, बृहद्वातचिन्तामणि, वसन्तकुसुमाकर, चन्द्रप्रभावटी, महायोगराज, अजमोदादि चूर्ण, एरण्डबीज, शुण्ठीचूर्ण, शतावरीघृत, दशमूलारिष्ट, अश्वगन्धारिष्ट, द्राक्षारिष्ट, अर्जुनघृत आदि किसी का प्रयोग कराये।

देहाग्नि-पित्ततत्त्व — शरीर का दूसरा मूलतत्त्व देहाग्नि या पित्ततत्त्व है। आहारपाक, धातुपाक और मलपाक का मूल प्रवर्तक यही है। इसी के कारण शरीर के सेलो मे सैकडो पाचकरस 'Enzymes' उत्पन्न होते हैं जो शरीर-व्यापी पचनप्रक्रिया अर्थात् Metabolism का सचालन करते है। इन पाचक रसो द्वारा आहार द्रव्य साधारण द्रव्यो मे परिवर्तित हो जाते है। फिर इन साधारण (Simple) द्रव्यो के मिलने से शरीर के मास आदि धातु उत्पन्न होते हैं। फिर मास आदि धातुओ का पाचकरसो द्वारा पाक होता है जिससे मल उत्पन्न होते है। फिर इन मलो का पाचक रसो द्वारा पाक होता है जिससे वे साधारण द्रव्यो मे परिवर्तित होकर श्वास, स्वेद, मल, मूत्र आदि द्वारा शरीर से बाहिर फेंक दिये जाते है। इस प्रकार देहाग्नि शरीर को स्वच्छ, सुन्दर और निर्मल बनाये रखती है।

देहाग्नि के इस पचनकर्म से उत्पन्न ऊष्मा के कारण शरीर गर्म रहता है तथा इस पचनकर्म के रासायनिक परिवर्तन से उत्पन्न शक्ति (Energy) के द्वारा वायुतत्त्व को बल मिलता है।

शरीर का यह पित्ततत्त्व सम अवस्था मे रहे तो शरीर की ऊष्मा ठीक रहती है, भूख-प्यास ठीक लगती है, त्वचा की कान्ति ठीक बनी रहती है, नेत्रो की दृष्टि ठीक रहती है, रक्त स्वच्छ रहता है, मस्तिष्क मे हर्ष, प्रसाद और शूरता के भाव रहते है, बुद्धि निर्मल रहती है।

कोष्ठस्थ अग्नि को पाचकाग्नि कहते है। यकृत प्लीहा मे रक्त के रजन करने वाली (Haemoglobin के निर्माण करने वाली) अग्नि को रञ्जक अग्नि कहा है। नेत्र के Retina मे रूपदर्शनसम्बन्धी रासायनिक परिवर्तनो (अर्थात् Photochemical reactions) के करने वाली अग्नि को आलोचक पित्त कहा है। मस्तिष्क मे जिस रासायनिक प्रक्रिया के कारण अर्थात् नाना Enzymes के द्वारा Serotonin, Adrenalin, Noradrenalin आदि 'हार्मोन्स' उत्पन्न होते है और उनका विचारो पर प्रभाव पडता है उसे विचार साधक अग्नि कहा है। त्वचा मे विद्यमान जिस रासायनिक प्रक्रिया के द्वारा त्वचा की कान्ति, भ्राजकता बनी रहती है उसे भ्राजक अग्नि कहा है।

शरीर की पित्ताग्नि को ठीक रखने के लिये आवश्यक है कि आहार सुपच हो, मात्रा मे थोडा हो, अतिशीत, अति-रूक्ष, अति-स्निग्ध न हो, नियत समय पर लिया जाये। व्यायाम तथा शारीरिक श्रम से पित्ताग्नि प्रबल रहती है। दो भोजन-कालो के बीच मे कोई आहार द्रव्य न लिया जाये और मानसिक आवेगो से बचते हुए प्रसन्न चित्त रहा जाये।

पित्तरोग — शरीर का कोई अवयव क्षत हो जाता है तो उस क्षत प्रदेश के पाचन (Liquefaction) के लिये स्वभावत देहाग्नि प्रबल होती है। शरीर के अवयवो मे क्षत सबसे अधिक जीवाणुओ या Viruses के कारण

excess of Agni serves the body by disposing of the dead tissue and by giving rise to the defensive substances

All such diseases as are attended with acute or suppurative inflammation, rise of temperature and some destruction of blood come under the category of Pittarogas

As to the treatment of Pittarogas Āyurveda suggests giving of complete rest, administering of such foods and drinks as are light but nourishing and prescribing of such medicines as are supportive, the objective being to enable the body to fight against the invading organisms and destroy them by producing the natural defences Besides them, Catharsis or promoting the detoxicating function of the liver also is considered to be helpful in the treatment of Pittarogas

F—The Motive factor of life

The third outstanding feature of the living tissue is its physical or dynamic activity The cause of this in Āyurveda is called 'Vāyu' or 'Vāta' the word closely allied to 'Vita' meaning life Charaka (Su 17) says "the Vāyu is the very life of the living beings" (Sa prānah prāninām smrtah) The same author says, 'the Vāyu is the very strength of the body and on it depends the life, (Vāyurāyur balam Vāyuh, Chi 28)

The word Vāyu may be translated as the motive factor, dynamic factor, bioelectricity or electrical potential It is present in every cell though nervous system is called its special seat

As to its functions Āyurveda states that all types of sensation, motion voluntary or involuntary such as circulation, respiration, electrical waves of the heart and brain, secretory and excretory movements, such functions of the brain as thinking, memory, intelligence, speech, sleep, courage etc are based on the proper working of Vāyu

This motive factor of life is sustained by nourishing food, relaxation, rest, sleep, cheerfulness and peacefulness of mind The above-mentioned two factors also in their normal state add to its strength Fresh fruits and vegetables and cereals made soft and sprouted by putting in water for sometime and taken uncooked also promote this element

Vāyurogas or diseases arising from the deficiency in Motive Factor

Malnutrition, lack of rest and sleep, stresses, strains, tensions frustrations, fits of emotion such as anger, grief, fear, worry, anxiety, bereavement, deprivation and excess of heat and cold etc undermine this factor They do so perhaps by producing a certain toxin or a hormone in excess, which in its turn affects the Vāyu adversely All sorts of poisonous substances have a deleterious effect on it The organ of the body which is weak and vulnerable is particularly affected and becomes excitable Excitability in general is the prominent sign of deficiency in the motive factor Excitability in any organ is called its Vāyuroga

Consequently the diseases attended with such signs of excitability (or Vāyu Vrddhi) as pain, hyperaesthesia, paraesthesia, muscular spasm-or-tension, rigidity, tremors, convulsions, syncopes, depression, excitement, restlessness delusion, insomnia etc are listed as Vāyurogas Besides excitability, degenerative changes occurring in the organs belong to the same class In short, all asthenic and degenerative diseases are considered as 'Vāyurogas'

Regarding treatment of the Vāyurogas, all the foods, drugs and measures that strengthen, tone-up or vitalise the body and mind and the means that are sedative, restorative or exhilarative to them may well be prescribed At the same time all the poisonous foods or drinks should be abstained from

General contention of Āyurveda is, that it is some 'Dosa' or excess of waste matter or some toxin in the body that brings about disease, therefore, its elimination also should be a part of our treatment In Vātarogas simple douching of the bowels or light laxatives may be enough to purge the body of its toxins or waste matter

Temperament — A particular temperament also predisposes one to disease In case the constructive side of metabolism is more pronounced in a person, he is said to be of Kapha Prakrti or of sthenic or phlegmatic temperament Such a person is physically stout, but slow in movements, mentally is of calm and quiet nature and less excitable He, however, is considered to be more predisposed to Kapharogas

In case the destructive side of metabolism is more distinct the person is said to have the temperament of 'Agni' or Pittam and is called of Sanguine temperament Physically he is neither stout nor thin, but of intermediate type Mentally he is active and alert He is more sensitive to heat Such a person is thought to be more susceptible to Pittarogas

If a person by birth is of asthenic nature i e is of low vitality, is easily provoked, or is more or less introvert he is said to be of Vāyu prakrti or of neurotic temperament Physically he is lean and emaciated and mentally more excitable He is more vulnerable to Vāyu-rogas

Now, as first thing, it is clear from the above that every organ of the body is subject to three or four types of pathological changes Hypertrophic or catarrhal type of inflammation in an organ is called 'Kapharoga' of it If inflammation is acute or of suppurative type the organ is called to be afflicted with 'Pittaroga' If an organ has become excitable or has developed signs of degeneration, the organ is said to be afflicted with Vāyuroga, and if an organ has developed all these signs in combination, the organ is said to be afflicted with Tridosaroga

The second thing that stands out from the above is that lack of 'Agni' or the consuming factor and deficiency in the Vāyu or motive factor these two are the chief predisposing causes of most of the diseases Hence, instead of pruning the symptoms of the disease, Āyurveda tries to remove the predisposition of the body To that end it employs means to strengthen the 'Agni or Vāyu' whichever of them is deficient So Āyurveda is not a symptomatic but a constitutional treatment It tries to set right the entire constitution which is chiefly governed by 'Agni' and 'Vāyu' and with their restoration to their normal state, symptoms of the disease subside automatically

In the end it may be stated that Āyurveda is not an exclusive system of medicine Āyurveda may be defined as a system of medicine with the outlook of three life-factor theory or 'tridosic' outlook The main characteristic of Āyurveda is that it studies or interprets all medical phenomena in terms of three-life factor theory which is the rock bottom on which the edifice of Āyurveda stands and it is this concept that differentiates it from other systems of medicine

आधुनिक चिकित्साविज्ञान का दृष्टिकोण

आधुनिक चिकित्साविज्ञान का दृष्टिकोण परीक्षणात्मक है। वह परीक्षणो द्वारा इस वात का पता लगाता है कि अमुक रोग किस Biochemical पदार्थ या Metabolite के या किस रासायनिक द्रव्य के उत्पन्न हो जाने से होता है तथा उसका प्रतिकार किस प्रकार किया जा सकता है। उदाहरणत परीक्षक को जव कुछ लोगो से पता चलता है कि उन्हे अर्धावभेदक शिर शूल या Migraine का शिरदर्द पनीर के सेवन के वाद होता है तो वह चिरकाल तक परीक्षण करने के वाद इस परिणाम पर पहुचता है कि पनीर के Caseine मे जो Tyrosine नामक Amino acid है उससे शरीर के अन्दर Tyramine उत्पन्न हो जाता है और उसमे से Noradrenaline उत्पन्न हो जाता है। साधारणत Tyramine के Amino group (NH_2) का Monoamine oxidase के द्वारा पाचन हो जाता है अर्थात् उसका Oxidative deamination हो जाता है जिससे Noradrenaline मुक्त नही होता। पर यदि इस Oxidase की क्रिया मन्द हो तो रक्त मे Noradrenaline की मात्रा वढ जाती है और उसके Cerebral तथा Cranial arteries (Internal, External Carotid arteries) की दीवार मे विद्यमान Nerves पर दुष्प्रभाव होकर उनकी मासमय दीवार मे प्रवल सकोच या Vasoconstriction हो जाता है जिससे रोगी का चेहरा फीका पड जाता, उसे शिरोभ्रम (Vertigo) होता तथा उसकी आखो के आगे अन्धेरे के विन्दु (Scotoma) दीखते है। अव इस धमनीसकोच के वाद फिर धमनीप्रसार Vasodilatation की प्रतिक्रिया होती है। इसके कारण जव कपाल की धमनियो (External Carotid arteries) की मासमय दीवार फूल जाती है अर्थात् उसमे Oedema हो जाता है तव पहले तो Throbbing pain होती है और फिर वह Steady pain या निरन्तर वनी रहने वाली दर्द मे वदल जाती है। इस प्रकार परीक्षक इस परिणाम पर पहुचता है कि Monoamine oxidase नामक पाचकरस की मन्दता मे यह सिरदर्द का रोग होता है। वह यह भी वताता है कि हो सकता है कि Tyramine के स्थान कोई दूसरा पदार्थ जैसे किसी दूसरे प्रोटीन भोजन से उत्पन्न होने वाला Phenylethylamine भी इस रोग का कारण वन सकता है।

यहा यह कथन अप्रासगिक न होगा कि आयुर्वेद मे Migraine रोग को मन्दाग्नि या कफवृद्धि के कारण होने वाला वायुरोग कहा है (अनिल केवल सकफो वार्धं गृहीत्वा शिरसो वली—निदान) तथा उसकी चिकित्सा मे भी स्नेहन स्वेदन तथा स्निग्धोष्ण उपचार का विधान किया है (अर्धावभेदके पूर्वं स्नेह स्वेदो हि भेषजम्। विरेक कायशुद्धिश्च धूप स्निग्धोष्णभोजनम्—यो० र०)। स्पष्ट है इस अग्नि दीपक चिकित्सा से शरीर की Metabolic activity वढती है और इससे उपर्युक्त Oxidase की प्रक्रिया तीव्र होती है।

इसी प्रकार ससार के सर्वाधिक घातक रोग Coronary Thrombosis या हार्टअटैक रोग के कारण के विपय मे भी परीक्षक लोग चिर परीक्षण के वाद इस परिणाम मे पहुचे है कि रक्त मे Cholesterol नामक वसा की मात्रा अधिक वढ जाये तो यह रोग होता है। यह द्रव्य आहार से उत्पन्न होकर रक्त मे आता है और वहा से यकृत मे जाकर Bile acids (Cholic, Choleice, Glycocolic, Taurocholic आदि) मे परिवर्तित हो जाता है। ये Acids फिर आत मे आकर भोजनगत फैट के पाचन मे काम आते हैं तथा फिर विलीन होकर यकृत मे पहुच जाते है (Entero-hepatic circulation) परन्तु वडी आयु के कुछ व्यक्तियो मे Cholesterol की मात्रा रक्त मे अधिक ऊची हो जाती है। ऐसी अवस्था देर तक रहे तो हृदय आदि की सूक्ष्म रक्तवाहनियो Arterioles की दीवार मे Cholesterol बैठने लगता है जिससे उनमे स्रोतोरोध—Occlusion—होने की प्रवृत्ति वढ जाती है। यह स्रोतोरोध की प्रक्रिया हृदय पोपक धमनियो मे होने लगे तो हार्ट अटैक के दौरे होते है। परीक्षक लोग वताते है कि Cholesterol को Bile acids मे परिवर्तित करने वाले Enzymes या पाचकरस मन्द हो जाये तभी यह Thrombosis की प्रक्रिया हो सकती है। वे ये भी परीक्षण से वताते हैं कि विटामिन 'सी' इन पाचकरसो को तीव्र करने का काम करता है अर्थात् वह इनके लिये Coenzyme है। इस प्रकार परीक्षण से पता लगता है कि Thrombosis का रोग Enzymes की निर्वलता और विटामिन 'सी' की न्यूनता से उत्पन्न होता है। स्पष्ट है कि फलो के सेवन से तथा शारीरिक श्रम के करते रहने से Thrombosis रोग की प्रगति को रोका जा सकता है।

Coronary Thrombosis रोग के विषय मे परीक्षको ने परीक्षा के वाद यह परिणाम भी निकाला है कि इस रोग का प्रधान कारण Stress है या दूसरे शब्दो मे तनावपूर्ण जीवन है। यह वात सव जानते है कि जव किसी व्यक्ति मे किसी के साथ लडने या किसी पर क्रोध का प्रवल आवेश आता है तो उसकी शक्ति वढ जाती है। प्रवल आवेश के समय Adrenaline की मात्रा रक्त मे वढ जाती है। उसके कारण रक्त मे ग्लूकोज और Fatty acids की मात्रा भी अधिक वढती हे। इन्ही के ज्वलन से शरीर की शक्ति अधिक वढ जाती है। हर्ष या प्रसन्नता के प्रवल आवेश के समय भी जव आदमी नाचने लगता या उच्च स्वर से गाने लगता हे तव भी ऐसा ही होता है अर्थात् उसके रक्त मे Adrenaline की मात्रा के वढने से उसमे अधिक शक्ति आजाती है। पर शारीरिक आयास से रक्त मे वढे हुए ये Fatty acids तथा ग्लूकोज खर्च हो जाते है। अव यदि किसी व्यक्ति मे परिवार सम्वन्धी, या व्यापार सम्वन्धी या धन हानि, जन हानि सम्वन्धी कोई उलझन या कष्ट हर समय बना ही रहे जिससे वह निरन्तर चिन्तित, व्याकुल या उद्विग्न रहे और इन आवेगो के कारण उसके रक्त मे Adrenaline, ग्लूकोज तथा Fatty acids की मात्रा अधिक वनी रहे और शारीरिक श्रम द्वारा खर्च न हो तो उसके रक्त मे जमने, Coagulation करने या Clot करने की प्रवृत्ति भी वढी रहती है। परीक्षक लोग वताते है कि इस अवस्था मे Coronary Thrombosis के रोग होने की आशका वहुत रहती है। यहा उपर्युक्त उदाहरणो के देने का अभिप्राय यह है कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का दृष्टिकोण परीक्षणात्मक रहता है अर्थात् वह यह पता लगाता है कि अमुकरोग किस Metabolite की अधिकता से होता है।

The Vow of a Doctor—

I Solemnly swear to devote all my knowledge and strength to the preservation and improvement of the health of man, to the treatment and prevention of illness and thus promote human happiness

I shall be ever ready to give medical assistance and display an attentive and solicitous attitude to my patients

To me medical science will not be an abstract pursuit of cold truth or a mere means of my livelihood, but a living and loving form of service I shall avoid all that is unfair in my medical practice

I shall constantly improve my medical knowledge and skill and by my work shall try to promote the development of medical theory and practice

न त्वह कामये राज्य न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दु खतप्ताना प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥

न मुझे राज्य चाहिये न स्वर्ग सुख, न ही मैं जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति मागता हू। मेरी एक मात्र कामना है कि मै रोग-पीडित रोगियो के दु ख को दूर कर सकू।

I do not desire lordship over others Nor do I aspire for heavenly pleasures Nor do I pray to be released from the bondage of birth and death, my only ambition is to become an instrument of relievings the sufferings of those who are groaning under the scourge of disease

विषयसूची (Contents)

खण्ड 1 Section

महास्रोतस के रोग (Diseases of the Alimentary-System)

खण्ड 2 Section

श्वास सम्बन्धी रोग Respiratory Diseases

खण्ड 3 Section

रक्त सम्बन्धी रोग Diseases of the Blood

खण्ड 4 Section

हृदय रोग Diseases of the Heart

खण्ड 5 Section

मूत्ररोग—Diseases of the Kidney

खण्ड 6 Section

त्वग्रोग—Diseases of the Skin

खण्ड 7 Section

नाडीरोग—Diseases of the Nervous System

खण्ड 8 Section

मानसरोग—Mental Diseases

खण्ड 9 Section

अभाव रोग Deficiency Diseases

खण्ड 10 Section

संक्रामक रोग—Infectious Diseases

खण्ड 11 Section

क्षयरोग—Tuberculosis

खण्ड 12 Section
सर्सगिक रोग Venereal Diseases

खण्ड 13 Section
दशरोग Bites, Stings

खण्ड 14 Section
नि स्रोतस ग्रन्थियो के रोग—Diseases of the Ductless glands

खण्ड 15 Section
बालरोग Diseases of Children

खण्ड 16 Section
वृद्ध रोग विज्ञान Geriatrics

खण्ड 17 Section
नेत्र रोग Ocular Diseases

खण्ड 18 Section
कर्णरोग Diseases of the Ear

खण्ड 19 Section
गलरोग Diseases of the Pharynx

खण्ड 20 Section
कण्ठ रोग Diseases of the Larynx

खण्ड 21 Section
भोजन प्रणाली के रोग Diseases of the Oesophagus

खण्ड 22 Section
नासा रोग Diseases of the Nose

खण्ड 23 Section

सकट कालिक चिकित्सा Medical Emergencies

खण्ड 24 Section

रोग परीक्षा विधि Clinical Method

खण्ड 25 Section

महास्रोतस् के रोग

(Diseases of the Alimentary System)

दन्त-रोग :–

दन्त-रचना —प्रत्येक दात, दन्तास्थि (Dentine) से जो Calcium Phos+carb के collagen सूत्रो द्वारा बधने से बनी है, जिसके मध्य मे मज्जा (Pulp) होती है जो स्नायुतन्तु व जैलाटीन सदृश पदार्थ से बनी होती है तथा जिसमे रक्तवाहिनिया, लसीकावाहिनिया व नाडिया दन्तमूल मे से प्रवेश करके फैली होती हैं। ऊपर के दातो मे रक्तवाहिनियां Maxillary धमनी की Posterior Superior dental शाखाओ से तथा निचले दातो मे उसी धमनी की Inferior dental शाखा से आती हैं। ऊपर के दातो मे नाडियाँ Maxillary nerve की Posterior superior dental शाखाओ से तथा निचले दातो मे Mendibular nerve की Inferior dental शाखा से आती है।

प्रत्येक दन्तास्थि का उसकी ग्रीवा तक का ऊपर का भाग एक कठोरतम Enamel नामक पदार्थ से जो Calcium Phos+carb के स्फटिको के keratin द्वारा मिलने से बना है और शेष नीचे तक का भाग Cement नामक पदार्थ से ढका रहता है तथा दन्तगुहास्थि (Alveolar bone) के साथ जिसमे कि वह पडा हुआ है, एक आवरणकला (Periodontal membrane या Dental periostium) के द्वारा बधा हुआ रहता है। दन्तमूल दात की ग्रीवा तक दन्तमास Gingiva से ढका हुआ रहता है। यह दात के साथ दृढता से लगा होता है और गुलाबी रग का होता है। स्पष्ट है कि बालको के आहार मे Calcium, Phosphate और विटामिन 'डी' की मात्रा पर्याप्त होनी चाहिये।

दन्तपूय-रोग :—

भोजन पदार्थो के अश दात के आसपास दन्तमास पर लगे रहें और विदग्ध हो जायें तो वहा पूय जीवाणुओ (Streptococci Viridans) का सक्रमण हो जाता है, जिससे पहले तो दन्तमांस शोथ (Gingivitis) का रोग हो जाता है अर्थात् दन्तमास लाल और कुछ फूला हुआ दीखता है, फिर इनके विष के दुष्प्रभाव से दात की आवरणकला (Periodontal membrane) के ऊपर के भाग मे शोथ और उसके बाद पूयस्राव की प्रक्रिया आरम्भ होकर नीचे दन्तमूल की ओर प्रसरण करने लगती है। इस प्रकार दात और दन्तगुहा के बीच की आवरणकला के खाये जाने से वहा अवकाश Periodontal Pocket उत्पन्न हो जाता है, दन्तमास मे Fibrosis होकर वह मोटा हो जाता है।

लक्षण —दन्तमास शोथ की अवस्था मे स्वल्पाघात से ही उनमे से रक्तस्राव होने लगता है तथा दन्तमास फूले हुए रक्तवर्ण और कुछ पीछे हटे हुए दीखते है। फिर दात के आसपास के अवयव मे पूयस्राव प्रारम्भ हो जाने पर लालास्राव, मुखवैरस्य, मुखदौर्गन्ध्य, गलशोथ (Pharyngitis), आमाशय शोथ के लक्षण हो सकते हैं। इस रोग के कारण आमवातिक शूल जैसे मास शूल (Fibrositis), लघुसधिशोथ (Rheumatoid-arthritis) तथा त्वक्शोथ (Eczema) के लक्षण भी हो सकते है। रोग बढता जाए तो दात हिलने लगते है।

कृमिदन्त (Dental caries)—

भोजन मे खाण्ड के अधिक प्रयोग से तथा सभवतः गले व मुख मे किसी सक्रमण के कारण (Bacteria) के उपस्थित रहने से दातो पर वह खाण्ड विदग्ध होकर (Lactic) अम्ल मे परिवर्तित हो जाती है और उससे दाँत पर का खोल (Enamel) खाया जाता है अर्थात् उसका कैल्सियम या उसका Organic matrix घुल जाता है अथवा वहा कृमियो मे से निकले Proteolytic enzyme से उसका प्रोटीन खाया जाता है अर्थात् प्रोटीन के द्वारा बना दात का Matrix घुल जाता है। दोनो का कारण जीवाणु होते है। परिणामत जहा पर इस अम्ल की उत्पत्ति विशेष होती है वहा एक गढा-सा पड जाता है जिसमे भोजन के अश के रुक जाने से और उसके विदग्ध होने से अम्ल की उत्पत्ति और होती है एव यह गढा अधिक बडा एव गहरा होता जाता है। ऐसे दात मे प्रधान लक्षण देखने

मे श्यामता का व दन्तशूल का होता है। यह शूल नाडी-जनित (Nervous) होता है।

दन्तमूल विद्रधि (Apical infection).—

दात मे कृमिदन्त के छिद्र या किसी अन्य प्रकार से जीवाणु सक्रमण (Strepto Viridans का) होकर अन्दर की मज्जा (Pulp) मे पहुच जाए तो दन्तमूल मे विद्रधि हो जाती है जो पहले Gumboil के रूप मे दीखती है। यदि वह तीव्र रूप मे हो तो (Alveolar) विद्रधि के लक्षण स्पष्ट होते है। यदि यह विद्रधि प्रच्छन्न रूप मे ही रहे तो इसके विष के रक्त मे जाते रहने से व्यापी लक्षण जैसे मासशूल (Fibromyositis) सधिशोथ (Arthritis) आदि हो सकते है। X-Ray से इस रोग का निश्चय हो जाता है।

दन्तरोग चिकित्सा :—

इन दन्तरोगो से बचने के लिए भोजन मे खाण्ड तथा मैदे से बने आहारो का सेवन कम करना चाहिये। कैल्सियम तथा विटामिन 'डी' तथा 'सी' का प्रयोग करना चाहिये। दन्तपूय रोग के लिये ३ प्र० श० Hydrogen perox को बराबर गर्म जल मे मिलाकर कुल्ले करने चाहिये। Tincture myrrh, Tincture Catechue, हलका Tincture Iodine (जल अथवा Spirit Rectif मे बना) १-१ ड्राम Menthol 3 ग्रेन Glycerin ४ ड्राम मिलाकर बनाया Gum paint या Mercurochrome Solu दन्तमास पर २-३ बार दिन मे लगाना चाहिये।

कृमिदन्त के लिए दात मे हुए गढे को शीघ्र ही दन्त-चिकित्सक से भरवा लेना चाहिये। दात मे हुए छिद्र को स्वच्छ या कृमिनाशक औषधि से युक्त रुई आदि से भरे विना नही रखना चाहिए। Acid carbolic के या Clove oil के लगाने से दर्द मे आराम पड जाता है। इस रोग की रोकथाम के लिये खाण्ड के भोजन कम लेने चाहिये। अनछने आटे, दूध तथा सन्तरे का प्रयोग हितकर है। Sod Flouride solution २% सप्ताह मे एक बार दातो पर लगाने से कृमिदन्त को रोक सकते है। दन्तमूल विद्रधि को खोलकर कृमिनाशक औषधि को लगाना चाहिये। Gum boil को तो Antibiotics से ही लाभ हो जाता है। जल मे उसके १ मिलियन मे १ भाग के लगभग Fluorine मिला देने अर्थात् Sodium Fluoride, या Sodium Fluosilicate, या Hydrofluoric acid के मिला देने से दन्तकृमि-रोग रोका जा सकता है। सभवत इसके द्वारा दातो पर पडे जीवाणुओ का विष निष्क्रिय हो जाता है। इसीलिये शहरो के पानी को Flourinate कर दिया जाता है।

मुखशोथ (Stomatitis):—

(१) जीवाणु-जनित मुखपाक Thrush, candidiasis या Parasitic Stomatitis —बोतल से दूध पीने वाले निर्बल शिशुओ तथा किसी चिरस्थायी रोग से पीडित बडे व्यक्तियो मे, जिनके मुख को स्वच्छ नही रखा जाता उनके मुख की श्लेष्म कला पर पहले विदग्ध भोजन के दुष्प्रभाव से कुछ शोथ (Catarrh) हो जाता है और फिर उसमे Candida Albicans नामक फुई के सचार कर जाने से छोटे-छोटे उभरे हुए क्षतो पर पूय (Slough) की तह छाई हुई दीखती है। ये पूय युक्त क्षत पहले जीभ और फिर ओठ, गाल, तालु आदि पर हो जाते हैं। देखने मे मुख अन्दर से शुष्क होता है।

ये पूय युक्त क्षत Gentian Violet के जल मे १ प्र०श० सोल्युशन के दिन मे २ बार ४ दिन लगाने से ठीक हो जाते हैं। Nystatin (Mycostatin) को एक लाख यूनिट्स मात्रा मे दिन मे ३ बार मुख द्वारा ४-५ दिन देने से या एक मिलि लि मे १० लाख यूनिट्स के इसके सोल्यूशन के दिन मे ४ बार लगाने से ये ठीक हो जाते है। सोडा बाई कार्ब के गाढे सोल्यूशन के द्वारा धोने से भी ठीक हो जाते हैं। रोगी की कृशता व निर्बलता को विटामिन युक्त औषधियो द्वारा दूर करने का यत्न भी करना चाहिये तथा प्रत्येक खाने के बाद मुख को साफ कर लेना चाहिये।

(२) मुख विस्फोट Vesicular या Aphthous Stomatitis —ऐसे बालको के मुख मे, जिनके आमाशय या आत मे कोई अजीर्ण सम्बधी रोग होता है, वेदनायुक्त छाले या विस्फोट ओष्ठो के अन्दर के पृष्ठ या गाल पर या जीभ पर हो जाते हैं जो फटकर २४ घटे मे ही व्रण का रूप ले लेते है। यह व्रण एक या इससे अधिक भी होते हैं और कुछ २ समय बाद होते रहते है। इनमे वेदना के अतिरिक्त मुख से लाला-स्राव भी विशेष होता है। ये एक Filtrable virus के कारण होते है, ऐसा समझा जाता है।

Hydrogen Peroxide मे वरावर जल मिला कर उसके लगाने या Iodine या Silver Nit Soultion (20%) के लगाने या Hydrocortisone Hemisuccinate Sodium (Corlan pellets) 2 5 मिलि० के मुख मे तीन बार रखने या चेप वाले पदार्थ मे मिले Hydrocortisone (orabase) या Triamcinolone acetonide १ प्र०श० मलहम के लगाने से ठीक हो जाते है। पर इनका प्रयोग देर तक न करे।

आयुर्वेदानुसार—दन्तवेष्ट रोग में कफ के प्रकुपित होने से दन्तवेष्ट शोथ होता तथा कफ-पित्त दोनों के प्रकुपित होने मे दन्तवेष्ट पाक का रोग होता है। दात में वायु का कफ के साथ प्रकोप होने से कृमिदन्त रोग होता है। इसकी निवृत्ति के लिये वमन, विरेचन लेना चाहिए, लघन करना चाहिये तथा खाण्ड और शीतपेयो का प्रयोग वन्द कर देना चाहिये। किसी रक्त शोधक जैसे मञ्जिष्ठादि, आरोग्यवर्धनी या त्रिफला का सेवन करना चहिये। कुछ काल मूग की दाल, फुलके, पुराने चावल परही निर्भर रहना चाहिये। दन्तवेष्ट शोथ और पाक (Gingivitis) के लिये निम्नलिखित किसी योग का प्रयोग करना चाहिये।

(१) तेजोह्वादि दन्तधावनचूर्ण (व. से.) वचा, पिप्पली मूल, कटुकी, मोथा, पाठा, मालकंगनी, लोध्र, दारुहल्दी, कुष्ठ, लज्जालु समान २ का चूर्ण-मञ्जनार्थ।

(२) जातिपत्रादि चूर्ण (यो र) चमेली के पत्ते, कुष्ठ, वचा, सोठ, अजवायन, हरड, तिल, पुनर्नवामूल, का चूर्ण मलें।

(३) तिक्तकचूर्ण (ग नि) मुस्ता, त्रिकटु, दालचीनी, इन्द्रजौ, निम्बत्वक्, पटोल, कटुकी, हल्दी, धमासा, चमेलीपत्र, मुलैठी, रसौत, त्रायमाण, गिलोय, त्रिफला, चिरायता, पाठा समान २ का चूर्ण बना कर मञ्जन करें। यह योग गलरोग में भी हितकर है।

(४) पाठादि चूर्ण (वा भ. उत्तर. २२) पाठा, दारुहल्दी, कुष्ठ, मुस्ता, मंजीठ, कुटकी, हल्दी, लोध्र, मालकंगनी, समान २ का चूर्ण मधु से मसूडो पर लगावें। पायोरिया शान्त होता है।

(५) दशन सस्कार चूर्ण (भै. र) सोठ, हरड, मुस्ता, कत्था, कर्पूर, सुपारी की भस्म, मरिच, लोग, दालचीनी समान २ खड़िया सर्व तुल्य। इसका मजन करें।

(६) कणादिचूर्ण (यो र.) पिप्पली, सैधव, जीरा समान २ का चूर्ण।

(७) कृष्णजीरकादि (भा. प्र.) काला जीरा, कुष्ठ, इन्द्रयव समान २ का चूर्ण मसूडो पर लगाए।

(८) वकुल प्रयोग (वै. जी.) मौलसरी की छाल या बीज का चूर्ण मलने से हिलते हुए दांत स्थिर होते हैं

(९) भद्रमुस्तादिवटी (भा. प्र) मोथा, हरड, त्रिकटु, विडंग १-१ भाग नीम के ताजे पत्ते पिसे हुए २ भाग। गोमूत्र से गोलिया बनाए। एक-एक गोली मुख में रखने से हिलते दात जम जाते हैं।

(१०) मुस्तादिवटी (ग. नि.) मुस्ता, एलवालुक, मुलैठी, कुष्ठ, धनिया, छोटी इलायची समान २ की पानी से गोलियां बना ले। एक-एक गोली मुख में रखने से पायोरिया शान्त होता है। दुर्गन्ध दूर होती है।

(११) जात्यादिगुटी (भै. र.)। जातिफल, कर्पूर, सुपारी, ककोल की जल से गोली बनावें। दन्तरोग के अतिरिक्त गल रोग में भी हितकर है।

(१२) वकुलादि तैल (भै. र) मौलसरी के फल, लोध्र, वज्रवल्ली, नील झिण्टीमूल, अमलतास की छाल, बब्बूल की छाल, साल, इरिमेद, असन काष्ट, समान समान मिलित ४ सेर जल ३२ सेर में पका कर शेष ८ सेर रखें। २ सेर तेल। ½ सेर ऊपर के द्रव्यो का कल्क। तैल साधन करें। यह हिलते दात को जमाता है।

(१३) लाक्षादि तैल (भै र) लाक्षारस २, दूध २, तिल तैल २ सेर। विट्खदिर का क्वाथ ८ सेर। लोध्र, कट्फल, मञ्जिष्ठा, कमल केसर, पद्माक, लाल चन्दन, नीलोफर मुलैठी प्रत्येक १½–१½ छटांक तैल साधन करे। इसके लगाने से दात दृढ होते है।

(१४) मालत्यादि तैल (भै र) चमेली पत्र का रस, द्रोणपुष्पी का रस, निम्बपत्र रस, बब्बूलपत्र रस सहचरपत्र रस १-१ सेर साल का क्वाथ १ सेर। घृत १ सेर। सफेद चन्दन, खस, लाल चन्दन, चम्पा फूल, पीपल छाल, वड छाल, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु, कुष्ठ, पिप्पली, नीलीमूल, सोठ, सैन्धव, समान २ प्रत्येक १½-१½ तोला। तैल साधन करें। दन्त तथा समस्त मुख रोगो मे लगाए।

(१५) सहचर तैल (भै र) नील सहचर (नीलझिण्टी या कटसरैया) ६¼ सेर जल १६ सेर पकाए। शेष ४ सेर रखें। १ सेर तेल। अनन्त मूल, खदिरसार, इरिमेद, जामुन की छाल, मुलैठी, नीलोफर २½-२½ तो तैल साधन करें। मसूडो पर लगावे।

(१६) प्रपौण्डरीकादितैल (व से) प्रपौण्डरीक, मुलैठी, त्रिफला, नीलोफर मिलित एक सेर। जल ८ सेर

क्वाथ करें। २ सेर शेष रखे। तेल १ सेर। इन द्रव्यों का कल्कमिलित २० तोला। तैल साधन करें। मसूडो पर मलें।

(१७) तैलादिलेप(वृ नि र.)तिल तेल, घी, राल, मोम, सेंधा, गैरिक, गुड समान २ मिला कर मन्दाग्नि पर पकाए। सबके मिल जाने पर इसे मसूडो पर मलें।

(१८) त्रिफला क्वाथ (भा प्र) त्रिफला के क्वाथ के कुल्ले करें।

(१९) सहचरादिक्वाथ (वृ यो त.) सहचर (झिण्टीमूल) के क्वाथ में कत्था और शहद मिला के कुल्ला करने से दन्तमास शोथ दूर होता है।

कृमिदन्त रोग में .—

(१) हिंग्वादिघृत (भा. भै. र) हींग १ अजवायन ३ माशा, मरिच तथा लौंग १०-१० दाने। घृत १ छटाक में डाल पकाकर, छानकर, उसमें कर्पूर २ माशे डालकर बनायें। घृत का भीगा फोया रखें।

(२) हिंग्वादियोग (व से) हींग, कायफल, कासीस, सज्जीखार, कुष्ठ, मरिच समान २ का चूर्ण मलें।

(३) दन्तरोगाशनि-चूर्ण (भै र) चमेलीपत्र, पुनर्नवा तिल, पिप्पली, झिण्टी पत्र, वचा, सोठ, अजवायन, हरड, मोथा, के चूर्ण को थोडे घृत में मिलाकर लगाए।

(४) दन्तमसी (यो चि) कासीस, त्रिफला, माजूफल, जगहरड, कपूर, कत्था, अनार की छाल, लोध्र, फटकी, मस्तेगी, वोलगोद, सुपारी मजीठ समान २ का चूर्ण मलें।

दात की खोड में आक या सेहुण्ड का दूध लगाए।

(५) मुण्डयादि गुटी (र र) गोरखमुण्डी, सोठ, वच, कुष्ठ, पाठा समान २ के चूर्ण की शहद से गोली वना के मुख में रखें।

(६) हिंगु योग (व से) गर्म हींग को दन्तकृमि के खोड़ में रखें।

दन्तनाडी रोग में—

(१) जात्यादितैल (भा प्र) जातिपत्री, मदनफल, कटैली, गोखरु, मजीठ, लोध्र, खदिर, मुलैठी प्रत्येक १० तोले, जल ८ सेर, पकाए, शेष २ सेर रखकर तैल आधा सेर डालकर तैल साधन करें। नाडी व्रण पर लगाएं।

(२) लोध्रादितैल (वृ यो त) लोध्र, खैरसार, मजीठ, मुलैठी २½-२½ तोला का कल्क। इनके २०-२० तोला को ८ सेर जल में पका कर २ सेर शेष रखे क्वाथ में १ सेर तिल तैल पकाए। इसे दन्तनाडीव्रण पर लगाए।

(३) रसाञ्जन लेप—दन्तनाडी व्रण पर रसौत मधु मिलाकर लगाए।

मुख रोगो मे अपथ्य—दातुन, दही, दूध, गुड, माष, अम्लरस, गुरु, शीत, अभिष्यन्दी कठिन भोजन, अपथ्य हैं।

मुखशोथ तथा मुखपाक के लिए निम्नलिखित मे से किसी का प्रयोग करना चाहिए।

(१) सप्तच्छदादिक्वाथ (भा प्र.) सप्तपर्ण, उशीर, पटोल, मोथा, हरड़, कटुकी, मुलैठी, अमलतास छाल, लालचन्दन समान २ के क्वाथ के कुल्ले करें।

(२) जातिपत्रादिक्वाथ (भा प्र) चमेलीपत्र, गिलोय, मुनक्का, धमासा, दारुहल्दी त्रिफला समान २ के क्वाथ मे शहद मिला के कुल्ले करे।

(३) त्रिफलादिक्वाथ (भै र.) त्रिफला, पाठा, मुनक्का, जातिपत्री क्वाथ के कवल धारण कराए।

(४) द्राक्षादिक्वाथ (ग नि) द्राक्षा, गिलोय, चमेली पत्र, दारु हल्दी, जवासा, त्रिफला समान २ के क्वाथ में शहद मिला के कवल धारण कराए।

(५) पञ्चपल्लवक्वाथ (भा प्र) निम्बपत्र, जामुनपत्र, आम्रपत्र, चमेलीपत्र, पटोलपत्र समान २ के क्वाथ के कुल्ले कराए।

(६) पञ्चवल्कलादिक्वाथ(भा प्र) बड, गूलर, पीपल, पिलखन, वेतस की छालें, त्रिफला समान २ के क्वाथ मे शहद मिलाकर कवल धारण करें।

(७) दार्वीरसक्रिया (भा प्र) दारु हल्दी के क्वाथ में शहद मिलाके कुल्ले करें।

(८) पिप्पल्यादिकवल (च. स चि २६) पिप्पली, अगर, दारु हल्दी, दालचीनी, रसौंत, पाठा, मालकगनी हरड के चूर्ण को शहद से मिला इसका कवल धारण कराए।

(९) खदिरादि गुटी(यो र.) जातिफल, कपूर, सुपारी, कंकोल समान २ कत्था सबके बराबर गोली बना के मुख में रखें।

(१०) हरिद्रादि तैल(भा प्र) हल्दी, नीम के पत्ते, मुलैठी, नीलोफर २½-२½ तो। तेल १ सेर। इन्हीं द्रव्यो को २०-२० तोला की मात्रा में जल ८ सेर में पका

२ सेर शेष रखें। १ सेर तेल। तेल बनाएं। मुख में लगाएं।

मुख केन्सर (Oropharyngeal Carcinoma)—हमारे देश के उन लोगो मे जो तमाखू, सुपारी, चूना, आदि दिनरात खाते रहते हैं, ५० वर्ष की आयु मे पहुच कर मुख की अर्थात् गालो की या तालु, जिह्वा, दन्तमास, गले आदि की श्लेष्मकला मे चिरस्थायी उठाव या व्रण के रूप मे केन्सर होता हुआ देखा जाता है, अर्थात् इन स्थानो पर श्वेत या काले रग का स्नायु भाव—Fibrosis—हो जाता हे जो श्वेत या काले से रग का उभार अर्थात् Leukoplakia Melanoplakia होता है। इनके सेल चपटे Squamous–होते हैं, इनको छेडने से रक्तस्राव होता है, इनमे वेदना भी होती है। इनके लिए Radiation therapy तथा Radium therapy की जाती है।

वातिक निगरण काठिन्य

Functional Dysphagia

भोजन द्रव्य के गले मे पहुचने पर गले की सकोचक (Constrictor) मास पेशिया इसे नीचे भोजन नाली मे धकेल देती हैं। साथ ही ऊपर का पश्चिम नासा द्वारा तथा आगे का श्वास मार्ग (Larynx) दोनो स्वत. बन्द हो जाते हैं ताकि इनमे उसका कोई अश न जा सके। भोजन नाली का ऊपर का द्वार (Pharyngo-oesophageal Sphincter) जो सदा बन्द रहता है, भोजन द्रव्य के गले मे पहुचने पर खुल जाता हे। फिर जब भोजन नाली की प्रेरक गति से भोजन-द्रव्य नीचे खिसकता हुआ भोजन नाली के निम्न द्वार (Cardiac Sphincter) पर जो कि Diaphragm के लेवल पर होता है पहुचता है तो वह भी जो सदा बन्द रहता है खुल जाता है जिसमे भोजन-द्रव्य आमाशय मे प्रवेश कर जाता है। भोजन नाली के ये दोनो द्वार Vagus नाडी के सूत्रो के द्वारा खुलते हैं तथा Sympathetic नाडी सूत्रो के द्वारा बन्द रहते हैं। वातिक निगरण काठिन्य का रोग इन दोनो द्वारो की नाडियो व मास पेशियो के विक्षोभ से उत्पन्न होता है। Globus Hystericus या अपतन्त्रक-गलावरोध का रोग कभी-कभी युवती स्त्रियो मे होता देखा जाता है। गले की मास पेशियो मे सज्ञाशीलता (Sensitivity) के और चेष्टाशीलता (Irritability) के वढ जाने से स्त्री को अपने गले मे अवरोध होता है।

Plummer Vinson Syndrome

या

भोजन नाली के ऊर्ध्व द्वार में अवरोध

लोहे की न्यूनता से उत्पन्न होने वाले स्त्री सुलभ पाण्डु रोग या Microcytic Hypochromic Anaemia of Women रोग मे कभी-कभी जिह्वा व गले की श्लेष्मकला मे क्षीणता के हो जाने से गले की सज्ञाशीलता पर ही भोजन नाली के ऊर्ध्व द्वार की मास पेशियो मे होने वाली निगरण चेष्टा (Reflex) निर्भर है। इसीलिए रुग्णा मे निगरण मे कठिनता प्रतीत होने लगती है। जिससे एक ४०-५० वर्ष की पाण्डुर स्त्री को ठोस भोजन लेते समय गले मे रुकावट की शिकायत होने लगती है। रुग्णा के गले, जिह्वा व ओष्ठो की श्लेष्मकला फीके रग की पतली और रूक्ष दीखती है। नख भी पाण्डु के कारण पतले और भगुर हुए दीखते है। रुग्णा को Ferri et Ammon Cit २० ग्रेन मात्रा मे भोजन वाद ३ वार देते रहने पर यह रोग अच्छा हो जाता है।

Cardiospasm-Achalasia of the cardia (chalasis-शिथिलता)—भोजन नाली का निम्न द्वार १ इच के लगभग दीर्घ होता हे। २०-४० वर्ष की आयु के व्यक्तियो मे अधिकतर स्त्रियो मे कभी-कभी पुरुपो मे इसमे वातिक स्तम्भ (Spasm) के हो जाने से भोजन करने पर जैसे यह शिथिल हो जाना चाहिये वैसे नही होता जिससे रोगी को भोजन उरोस्थि Sternum के निचले सिरे (xiphoid) पर रुकता हुआ प्रतीत होता है जिससे छाती मे कुछ भारीपन या भरा हुआ प्रतीत होता है। पहले तो यह प्रतीतिया कभी-कभी होती हैं। वाद मे ये अवरोध वेग जल्दी-जल्दी होने लगते है। इस प्रकार यह अवरोध वर्षों तक रोगी को रहता है। भोजन नाली मे भोजन के कुछ एकत्र हो जाने पर अपने बोझ से वह नीचे खिसक जाता है। जिससे पहले छाती मे कुछ भारीपन के अतिरिक्त और कोई दुर्लक्षण नही होता। ऐसा रोगी खडा हो के भोजन लेना पसन्द करता है क्योकि ऐसा करने से रुकावट कम होती है। पतले भोजन की अपेक्षा ठोस भोजन अधिक रुकता है। अत वह पतला भोजन लेता है स्वभावतः द्वार से ऊपर भोजन नाली चौड़ी हो जाती है कभी-कभी भोजन का कुछ अश वापिस लौट आता है। उसकी माँसमय दीवार मोटी हो जाती है। Sympathetic नाडी सूत्रो को उत्तेजित करने वाले मानसिक भावो से यह स्तम्भ होता प्रतीत होता है क्रोध आदि भावो से यह स्तम्भ वढ जाता है। इस रोग से रोगी के भोजन

की मात्रा कम हो जाती है अन्यथा यह रोग मारक नही है। रोगी ४० वर्ष तक जीता रह सकता है। इस रोग मे रोगी को मृदु तथा द्रव्य भोजन जो पर्याप्त पोषक हो लेना चाहिए। X-Ray से इसका निश्चय हो जाता है। स्तम्भ शामक औषधियो से कोई विशेष लाभ नही होता। Dilator से इस प्रदेश का Dilatation करने मे कुछ लाभ होता है।

भोजन नाली का कैन्सर —बहुधा Epithelioma भोजन नाली के मध्यम तथा निम्न भाग मे और कभी-कभी Adenocarcinoma बडी आयु के पुरुषो मे पाया जाता है इसमे निगरण काठिन्य का लक्षण क्रमश बढता जाता है दो मास के अन्दर २ पहले ठोस और ७-८ महीने के अन्दर २ फिर द्रव पदार्थ भी रुकने लगते है और मुख मे लौटने लगते है। अवरोध के आरभ होने के १-२ मास के अन्दर २ अवरोध के स्थान पर वेदना का लक्षण भी होने लगता है जो निगलते समय होता है। X-Ray तथा Biopsy से इस रोग का निश्चय हो जाता है। ८ मास तक ही Bronchopneumonia या निर्बलता के कारण रोग घातक हो जाता है। इस रोग मे ग्रीवा मे Hard Metasta ticllymphglands होते है।

आमाशय के रोग

(Diseases of the Stomach)

आमाशय की स्थिति —

भोजन प्रणाली (Oesophagus) के तथा ग्रहण्याशय (Duodenum) के बीच के विस्तृत एक फुट लम्बे, ४ इच चौडे भाग को, जो देखने में "J" अक्षर की आकृति का होता है, आमाशय कहते है। इस आशय के ऊपर के छिद्र को Cardiac Orifice कहते है। यह सातवी पसली के अग्रभाग अर्थात् Costal cartilage के ३॥ इच पीछे उरोअस्थि (Sternum) के बाहर के किनारे से १ इच या मध्य रेखा से २॥ इच हटकर Diaphragm के निम्नपृष्ट से लगा हुआ होता है। आमाशय का विस्तृत भाग (Fundus) ऊपर की ओर Midclavicular line मे लगभग ५वी पसली तक जाता है, अर्थात् हृदय के निचले सिरे (Apex) के पीछे उससे कुछ ऊचाई पर तथा यकृत के वामखण्ड के पीछे होता है। आमाशय का Greator curvature लेटी हुई अवस्था मे बाई ओर की पसलियो के किनारे के साथ-साथ रहता है। जब पेट भरा होता है तब यह कुछ नीचे नाभि की ओर खिसक जाता है। आमाशय का पश्चिम पृष्ट डायाफ्राम, वृक्क, Pancreas, colon के बायें flexure और Mesentery पर टिका होता है। आमाशय का निम्न छिद्र (Pyloric Orifice) उरोअस्थि के निचले सिरे तथा नाभि के मध्य से दाई ओर Lateral Sternal line के ठीक बाहर की ओर होता है तथा आगे यकृत् द्वारा ढका रहता है।

आमाशय की रचना —

आमाशय की दीवार चार स्तरो से बनी है। बाह्य स्तर (Serous coat) तो Peritoneum मे बना है जो लसीका (Lymph) के द्वारा चिकना रहता है।

दूसरी (Smooth muscle fibres से बनी) मासमय दीवार बाहर की ओर दीर्घाकृति माम सूत्रो (Longitudinal fibres) से तथा अन्दर की ओर वृत्ताकृति मास सूत्रो (Circular Fibres) से बनी है। निम्न छिद्र की दीवार मे ये वृत्ताकृति मास सूत्र मात्रा मे बहुत अधिक हो गये है जिससे इनके कारण वहा निम्न द्वार (Pyloric Sphincter) बन गया है। मासमय स्तर के नीचे एक स्नायु ततु (Conn tiss) से बना स्तर (Submucous coat) होता है जिसमे रक्तवाहिनिया रहती है जो अन्दर की ओर की श्लेष्मकला को शाखाये देती है। श्लेष्मकला मे विद्यमान पाचक ग्रथियो को भी इन्ही से रक्त मिलता है तथा उनसे लौटा हुआ रक्त (Venous Blood) भी इन्हीं रक्तवाहिनियो द्वारा वापिस लौटता है।

सबसे अन्दर के स्तर को श्लेष्मकला (Mucous Membrane) कहते है। लैंस के द्वारा इसे अन्दर से देखने पर इसमे मधुमक्खी के छत्ते के समान छिद्र दीखते है जो वस्तुतः आमाशय ग्रथियो (Gastric Glands) के छिद्र (Ducts) होते है। श्लेष्मकला का अन्दर का आवरण (Epithelium) Columnar सेलो से बना होता है। श्लेष्मकला मे सर्वत्र आमाशय ग्रन्थिया छाई हुई हैं। ये ग्रन्थिया प्रणालिकाकृति (Tubular) होती है जिनकी दीवार बहुभुजी "Polyhedral" सेलो से बनी होती है। इन सेलो को Central Cells कहते है। इनमे से पेप्सीन को बनाने वाला पदार्थ Pepsinogen उत्पन्न होता है। इन सेलो मे से Rennin नामक पाचक रस या Enzyme भी उत्पन्न होता है। इन सेलो के बीच-बीच मे श्लेष्म द्रव उत्पन्न करने वाले Mucoid Cells भी अधिक सख्या मे होते है। इन सेलो तथा ग्रन्थियो की Basement Membrane के बीच मे एक-दूसरे गोलाकृति या अडाकृति सेल भी होते है जो हाइड्रोक्लोरिक एसिड को

उत्पन्न करने के कारण Oxyntic Cells (Oxys—अम्ल) कहलाते हैं। श्लेष्मकला मे छाई हुई इन ग्रन्थियो को गति देने तथा इनसे रस को निकालने के लिये थोडा मास भी होता है जिसे Mucous muscle कहते है। आमाशय के विस्तृत भाग का स्राव अम्लीय होता है पर निम्न द्वार के समीप का स्राव क्षारीय होता है। दोनो के बीच की रेखा को Acid line कहते हैं।

आमाशय की वात नाडियां (NERVES)

आमाशय की Para sympathetic शाखाये दोनो Vagus Nerves से आती हैं। Left Vagus इसके ऊपर के तथा अगले पृष्ठ को शाखायें देती है। Right Vagus इसके पिछले तथा निचले पृष्ठो को शाखायें देती है। Vagus की उत्तेजना से अर्थात् शान्ति, सतोष, प्रसन्नता आदि भावो तथा मृदु व्यायाम से आमाशय को रक्त अधिक पहुचता है तथा आमाशय रस अधिक उत्पन्न होता है Parietal Cells के पास Acetylcholine की उत्पत्ति के कारण ऐसा होता है। Parasympatholytic औषधियो जैसे Atropine के देने तथा Hexamathonium Probanthine तथा Banthine के देने से Vagus का प्रभाव मद हो जाता है जिससे आमाशय रस की उत्पत्ति वन्द हो जाती है। Vagotomy से भी ऐसा ही होता है। Vagus मे आमाशय रस-स्रावक सूत्र होते है। अतः उसकी उत्तेजना से आमाशय की मास शक्ति (Tone) भी वढती है, अर्थात् भोजन के वाद आमाशय शीघ्र खाली हो जाता है, क्रोध और कलह के भावो का आमाशय पर यही प्रभाव होता है अर्थात इनसे अग्नि तीव्र हो जाती है। Vagus की उत्तेजना से Pylorus तथा अन्य द्वार भी खुलते हैं। सक्षेप मे Vagus नाडी आमाशय की ग्रन्थियो तथा मास के लिए Motor है तो भी Vagotomy के वाद आमाशय का काम ठीक से चलने लगता है।

आमाशय की Sympathetic शाखाये Caeliac Plexus से आती है। इनकी उत्तेजना से आमाशय को रक्त कम पहुचता है। आमाशय रस का स्राव कम हो जाता है तथा आमाशय मास की शक्ति भी घट जाती है तथा Pylorus, Iliocaecal Valve तथा अन्दर का गुद द्वार सव वन्द हो जाते हैं अर्थात् यह आमाशय के लिए Inhibitory है। देखा गया है कि चिन्ता, भय और विषाद के भावो का आमाशय पर यही प्रभाव होता है अर्थात् इनसे अग्नि मन्द हो जाती है।

आमाशय को रक्त Coeliacplexus से आता है। इसमें से रक्त Portal Vein द्वारा वापिस जाता है। इसमे से Lymph, Caeliac glands मे से होकर thoracic duct में जाती है।

आमाशय कार्यः—

आमाशय में आमाशयरस (Gastric Juice) दिनरात मे २॥ सेर के लगभग उत्पन्न होता है जिसका PH ९ से १ ५ तक होता है। इसमे श्लेष्म-द्रव (Mucus) जो एक Glucoprotein है, पर्याप्त मात्रा मे होता है। इसके कारण विक्षोमक गुण भोजन की विक्षोमकता नष्ट हो जाती है, क्योकि यह भोजन-द्रव्यो को मृदु तथा चिकना करने का काम करता है। अधिक गर्म द्रव्यो की गरमी तथा शीतल द्रव्यो की शीतलता भी इस कारण कम हो जाती है। जव विक्षोमक आहार अधिक मात्रा मे लिया जाता है तो श्लेष्म-द्रव भी अधिक उत्पन्न होता है। जब श्लेष्म-द्रव अधिक उत्पन्न होता है तव दूसरे पाचक द्रव (Enzymes) कम उत्पन्न होते हैं। अतएव विक्षोमक गुण द्रव्यो के अति सेवन से पाचक अग्नि मद होने का भय रहता है। इस श्लेष्म-द्रव मे मुख से आये जीवाणुओ को नष्ट कर देने का भी गुण होता है। यह अम्लो की अम्लता, क्षारो की क्षारीयता को भी हल्का कर देता है, क्योकि यह सारी भोजन-प्रणाली को ढके रहता है, जिससे पाचक रसो के प्रभाव को भोजन नाली पर नहीं होने देता।

श्लेष्म-द्रव के अतिरिक्त रस मे Pepsin तथा Rennin ये दो पाचक रस (Enzymes) लगभग ३ प्र० श० तथा Free हाईड्रोक्लोरिक एसिड ४-५ प्रतिशत होता है। भोजन के वाद Pylorus के antrum मे से उत्पन्न gastrin नामक हार्मोन के रक्त द्वारा आमाशय की दीवार मे पहुचने से उत्पन्न एसिड की मात्रा २ घटे तक क्रमश वढती है तथा तीसरे घटे मे फिर क्रमशः घटकर साधारण हो जाती है। इस एसिड की उपस्थिति मे पेप्सीन, भोजनगत (High molecular weight के) प्रोटीन को पचाकर Peptones तथा Proteoses मे वदल देता हे, जोकि Aminoacids के योग होते हैं। एसिड, भोजन के Collagen को घोलता तथा जीवाणुओ को भी नष्ट कर देता है। यह भोजन मे विद्यमान लोह को विलयन योग्य वनाता है। आमाशय रस का Rennin दूव के घुलनशील Caseinogen को Casein की फुट्टियो मे वदल देता है। फिर पेप्सीन इन फुट्टियो को Peptone मे वदलता हे। आमाशय रस मे स्वल्प Lipase भी होता है जो भोजन के फैट को कुछ हद तक Glycerol तथा Fatty acids मे वदल देता है। मुख से आये लाला (Saliva के Ptyalin) के द्वारा भोजन मे लिये गये स्टार्च

की मात्रा कम हो जाती है अन्यथा यह रोग मारक नहीं है। रोगी ४० वर्ष तक जीता रह सकता है। इस रोग मे रोगी को मृदु तथा द्रव्य भोजन जो पर्याप्त पोषक ही लेना चाहिए। X-Ray से इसका निश्चय हो जाता है। स्तम्भ शामक औषधियो मे कोई विशेष लाभ नही होता। Dilator से इस प्रदेश का Dilatation करने से कुछ लाभ होता है।

भोजन नाली का कैंसर —बहुधा Epithelioma भोजन नाली के मध्यम तथा निम्न भाग में और कभी-कभी Adenocarcinoma बडी आयु के पुरुषो मे पाया जाता है इसमे निगरण काठिन्य का लक्षण क्रमश बढता जाता है दो मास के अन्दर २ पहले ठोस और ७-८ महीने के अन्दर २ फिर द्रव पदार्थ भी रुकने लगते हैं और मुख मे लौटने लगते हैं। अवरोध के आरंभ होने के १-२ मास के अन्दर २ अवरोध के स्थान पर वेदना का लक्षण भी होने लगता है जो निगलते समय होता है। X-Ray तथा Biopsy से इस रोग का निश्चय हो जाता है। ८ मास तक ही Bronchopneumonia या निर्बलता के कारण रोग घातक हो जाता है। इस रोग मे ग्रीवा मे Hard Metasta ticllymphglands होते है।

आमाशय के रोग

(Diseases of the Stomach)

आमाशय की स्थिति :—

भोजन प्रणाली (Oesophagus) के तथा ग्रहण्याशय (Duodenum) के बीच के विस्तृत एक फुट लम्बे, ४ इच चौडे भाग को, जो देखने मे "J" अक्षर की आकृति का होता है, आमाशय कहते हैं। इस आशय के ऊपर के छिद्र को Cardiac Orifice कहते है। यह सातवी पसली के अग्रभाग अर्थात् Costal cartilage के ३॥ इच पीछे उरोअस्थि (Sternum) के बाहर के किनारे से १ इच या मध्य रेखा से २॥ इच हटकर Diaphragm के निम्नपृष्ट से लगा हुआ होता है। आमाशय का विस्तृत भाग (Fundus) ऊपर की ओर Midclavicular line मे लगभग ५वी पसली तक जाता है, अर्थात् हृदय के निचले सिरे (Apex) के पीछे उससे कुछ ऊचाई पर तथा यकृत के वामखण्ड के पीछे होता है। आमाशय का Greator curvature लेटी हुई अवस्था मे बाईं ओर की पसलियो के किनारे के साथ-साथ रहता है। जब पेट भरा होता है तब यह कुछ नीचे नाभि की ओर खिसक जाता है। आमाशय का पश्चिम पृष्ट डायाफ्राम, वृक्क, Pancreas, colon के बायें flexure और Mesentery, पर टिका होता है। आमाशय का निम्न छिद्र (Pyloric Orifice) उरोऽस्थि के निचले सिरे तथा नाभि के मध्य मे दाईं ओर Lateral Sternal line से ठीक बाहर की ओर होता है तथा आगे यकृत् द्वारा ढका रहता है।

आमाशय की रचना —

आमाशय की दीवार चार स्तरों से बनी है। बाह्य स्तर (Serous coat) जो Peritoneum से बना है जो लसीका (Lymph) के द्वारा चिकना रहता है।

दूसरी (Smooth muscle fibre से बनी) मांसमय दीवार बाहर की ओर दीर्घाकृति मांस सूत्रों (Longitudinal fibres) से तथा अन्दर की ओर वृत्ताकृति मांस सूत्रों (Circular Fibres) से बनी है। निम्न छिद्र की दीवार में ये वृत्ताकृति मांस सूत्र मात्रा में बहुत अधिक हो गये हैं जिससे इनके कारण वहां निम्न द्वार (Pyloric Sphincter) बन गया है। मांसमय स्तर के नीचे एक स्नायु तन्तु (Connective tissue) से बना स्तर (Submucous coat) होता है जिसमें रक्तवाहिनियां रहती हैं जो अन्दर की ओर की श्लेष्मकला को आहार देती है। श्लेष्मकला मे विद्यमान पाचक ग्रन्थियों को भी इन्ही से रक्त मिलता है तथा उनसे लौटा हुआ रक्त (Venous Blood) भी इन्ही रक्तवाहिनियों द्वारा वापिस लौटता है।

सबसे अन्दर के स्तर को श्लेष्मकला (Mucous Membrane) कहते है। लैंस के द्वारा इसे अन्दर से देखने पर इसमे मधुमक्खी के छत्ते के समान छिद्र दीखते है जो वस्तुत. आमाशय ग्रथियो (Gastric Glands) के छिद्र (Ducts) होते है। श्लेष्मकला का अन्दर का आवरण (Epithelium) Columnar सेलों से बना होता है। श्लेष्मकला मे सर्वत्र आमाशय ग्रन्थिया छाई हुई हैं। ये ग्रन्थिया प्रणालिकाकृति (Tubular) होती हैं जिनकी दीवार बहुभुजी "Polyhedral" सेलो से बनी होती है। इन सेलो को Central Cells कहते हैं। इनमे से पेप्सीन को बनाने वाला पदार्थ Pepsinogen उत्पन्न होता है। इन सेलो में से Rennin नामक पाचक रस या Enzyme भी उत्पन्न होता है। इन सेलो के बीच-बीच मे श्लेष्म द्रव उत्पन्न करने वाले Mucoid Cells भी अधिक सख्या मे होते है। इन सेलों तथा ग्रन्थियो की Basement Membrane के बीच मे एक-दूसरे गोलाकृति या अडाकृति सेल भी होते है जो हाइड्रोक्लोरिक एसिड को

उत्पन्न करने के कारण Oxyntic Cells (Oxys—अम्ल) कहलाते हैं। श्लेष्मकला में छाई हुई इन ग्रन्थियों को गति देने तथा इनसे रस को निकालने के लिये थोडा मास भी होता है जिसे Mucous muscle कहते है। आमाशय के विस्तृत भाग का स्राव अम्लीय होता है पर निम्न द्वार के समीप का स्राव क्षारीय होता है। दोनो के बीच की रेखा को Acid line कहते हैं।

आमाशय की वात नाडियां (NERVES)

आमाशय की Para sympathetic शाखायें दोनों Vagus Nerves से आती है। Left Vagus इसके ऊपर के तथा अगले पृष्ठ को शाखायें देती है। Right Vagus इसके पिछले तथा निचले पृष्ठो को शाखायें देती है। Vagus की उत्तेजना से अर्थात् शान्ति, सतोष, प्रसन्नता आदि भावो तथा मृदु व्यायाम से आमाशय को रक्त अधिक पहुचता है तथा आमाशय रस अधिक उत्पन्न होता है Parietal Cells के पास Acetylcholine की उत्पत्ति के कारण ऐसा होता है। Parasympatholytic औषधियो जैसे Atropine के देने तथा Hexamathonium Probanthine तथा Banthine के देने मे Vagus का प्रभाव मद हो जाता है जिससे आमाशय रस की उत्पत्ति वन्द हो जाती है। Vagotomy मे भी ऐसा ही होता है। Vagus मे आमाशय रस-स्रावक सूत्र होते है। अत उसकी उत्तेजना से आमाशय की मास शक्ति (Tone) भी बढती है, अर्थात् भोजन के बाद आमाशय शीघ्र खाली हो जाता है; क्रोध और कलह के भावो का आमाशय पर यही प्रभाव होता है अर्थात इनमे अग्नि तीव्र हो जाती है। Vagus की उत्तेजना से Pylorus तथा अन्य द्वार भी खुलते हैं। सक्षेप मे Vagus नाडी आमाशय की ग्रन्थियो तथा मास के लिए Motor है तो भी Vagotomy के बाद आमाशय का काम ठीक से चलने लगता है।

आमाशय की Sympathetic शाखायें Caeliac Plexus से आती हैं। इनकी उत्तेजना मे आमाशय को रक्त कम पहुचता है। आमाशय रस का स्राव कम हो जाता है तथा आमाशय मास की शक्ति भी घट जाती है तथा Pylorus, Iliocaecal Valve तथा अन्दर का गुद द्वार सब बन्द हो जाते हैं अर्थात् यह आमाशय के लिए Inhibitory है। देखा गया है कि चिन्ता, भय और विषाद के भावो का आमाशय पर यही प्रभाव होता है अर्थात् इनसे अग्नि मन्द हो जाती है।

आमाशय को रक्त Coeliacplexus से आता है। इसमे से रक्त Portal Vein द्वारा वापिस जाता है। इसमे से Lymph, Caeliac glands मे से होकर thoracic duct मे जाती है।

आमाशय कार्य.—

आमाशय मे आमाशयरस (Gastric Juice) दिनरात मे २॥ सेर के लगभग उत्पन्न होता है जिसका PH ९ से १ ५ तक होता है। इसमे श्लेष्म-द्रव (Mucus) जो एक Glucoprotein है, पर्याप्त मात्रा मे होता है। इसके कारण विक्षोमक गुण भोजन की विक्षोमकता नष्ट हो जाती है, क्योकि यह भोजन-द्रव्यो को मृदु तथा चिकना करने का काम करता है। अधिक गर्म द्रव्यो की गरमी तथा शीतल द्रव्यो की शीतलता भी इस कारण कम हो जाती है। जब विक्षोमक आहार अधिक मात्रा मे लिया जाता है तो श्लेष्म-द्रव भी अधिक उत्पन्न होता है। जब श्लेष्म-द्रव अधिक उत्पन्न होता है तब दूसरे पाचक द्रव (Enzymes) कम उत्पन्न होते है। अतएव विक्षोमक गुण द्रव्यों के अति सेवन से पाचक अग्नि मद होने का भय रहता है। इस श्लेष्म-द्रव मे मुख से आये जीवाणुओ को नष्ट कर देने का भी गुण होता है। यह अम्लो की अम्लता, क्षारो की क्षारीयता को भी हल्का कर देता है, क्योकि यह सारी भोजन-प्रणाली को ढके रहता है, जिससे पाचक रसो के प्रभाव को भोजन नाली पर नही होने देता।

श्लेष्म-द्रव के अतिरिक्त रस मे Pepsin तथा Rennin ये दो पाचक रस (Enzymes) लगभग ३ प्र० श० तथा Free हाईड्रोक्लोरिक एसिड ४-५ प्रतिशत होता है। भोजन के बाद Pylorus के antrum मे से उत्पन्न gastrin नामक हार्मोन के रक्त द्वारा आमाशय की दीवार मे पहुचने से उत्पन्न एसिड की मात्रा २ घटे तक क्रमश बढती हे तथा तीसरे घटे मे फिर क्रमश. घटकर साधारण हो जाती है। इस एसिड की उपस्थिति मे पेप्सीन, भोजनगत (High molecular weight के) प्रोटीन को पचाकर Peptones तथा Proteoses मे बदल देता है, जोकि Aminoacids के योग होते है। एसिड, भोजन के Collagen को घोलता तथा जीवाणुओ को भी नष्ट कर देता है। यह भोजन मे विद्यमान लोह को विलयन योग्य बनाता है। आमाशय रस का Rennin दूध के घुलनशील Caseinogen को Casein की फुट्टियो मे बदल देता है। फिर पेप्सीन इन फुट्टियो को Peptone मे बदलता है। आमाशय रस मे स्वल्प Lipase भी होता है जो भोजन के फैट को कुछ हद तक Glycerol तथा Fatty acids मे बदल देता है। मुख से आये लाला (Saliva के Ptyalin) के द्वारा भोजन मे लिये गये स्टार्च

का भी पचन आमाशय के ऊर्ध्व भाग मे होता रहता है अर्थात् ४०-५०% स्टार्च, मुख मे तथा आमाशय के प्रथम भाग मे घुलनशील Dextrin के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। स्टार्च प्राय. घी के साथ लिया जाता है। घृत से आमाशय रस का स्राव घटता है अतः पेट मे भी लाला का पाचन-कर्म जारी रहता है। आमाशय रस में विद्य-मान Castle का Intrinsic फैक्टर भोजन मे विद्यमान 'बी' १२ को लेकर शरीर मे विलीन करता है। बहुत से व्यक्तियो मे यह आमाशयरस सम अवस्था मे ही रहता है परन्तु कुछएक मे लगभग १० प्रतिशत मे स्वभावत. हाईड्रोक्लोरिक एसिड अधिक मात्रा मे उत्पन्न होता है। ऐसे व्यक्तियो की अग्नि तीव्र होती है। उन्हें तीक्ष्णाग्नि (Hyperchlorhydric, या Hypersthenic, या Energetic Temp) प्रकृति के व्यक्ति कहते हैं, इनमें श्लेष्म-द्रव की मात्रा कम होती है। भोजन के बाद इनके आमाशय रस मे एसिड की वृद्धि नार्मल से अधिक हो जाती है तथा ३ घंटे बाद भी नार्मल से अधिक रहती है। इसके विपरीत कुछएक व्यक्तियो (लगभग १० प्रतिशत) मे स्वभावत हाइड्रोक्लोरिक एसिड की मात्रा बहुत कम होती है तथा श्लेष्म-द्रव की मात्रा अधिक होती है। इन्हें मदाग्नि (Hypochlorhydric, Phlegmatic) प्रकृति के व्यक्ति कहते हैं। अजीर्ण रोग प्रायः इन दो प्रकार के व्यक्तियो मे होता है।

पहले जब भोजन अन्दर आता है आमाशय की दीवार शिथिल होती जाती है, जिससे पर्याप्त भोजन उसमे समा जाता है (Gastric feeding reflex) उसमें Saliva के द्वारा पाचनकर्म भी जारी रहता है। परन्तु कुछ काल जब आमाशय मे पाचन हो लेता है, इसकी दीवारो मे सकोचभाव आरभ होता है। Cardiac Sphincter बन्द हो जाता है, Pylorus मे नीचे की ओर Contractions या सकोच आरभ हो जाते है, जिनसे पहले तो सारे भोजन मे मथन सा होता है बाद मे Pylorus का निम्न द्वार कभी-कभी बीच-बीच मे खुलने भी लगता है और भोजन क्रमशः आगे जाने लगता है।

मन का वातनाडियो द्वारा आमाशय पर भारी प्रभाव पडता है। प्रसन्न और शात प्रकृति के व्यक्तियो मे आमाशय की आमाशयरस-स्रावक शक्ति तथा अन्न-प्रेरक शक्ति दोनो ठीक रहती है। जिससे अन्न का पाक ठीक-ठीक होता है तथा भोजन के तीन घटे बाद भोजन द्रव आमाशय से आगे निकल जाता है, साथ ही भोजन का विलयन भी ठीक होता है।

परन्तु क्रोध, चिन्ता, विग्रह आदि तीव्र मानसिक उत्तेजनाओं से आमाशय की ये दोनो शक्तियाँ, आमाशय रस-स्रावक शक्ति तथा अन्न-प्रेरक शक्ति तीव्र हो जाती है। आमाशय शोथ की इस अवस्था मे भोजनगत किसी विक्षोभक द्रव्य से आमाशय व्रण हो सकता है। शोक, भय, दुःख आदि अवसादक भावो से आमाशय की ये दोनो शक्तियाँ मद पड जाती हैं तथा क्षुधा नष्ट हो जाती है। इसीलिये तीव्र मानसिक भाव भी अजीर्ण रोग के कारण होते हैं। तीव्र आवेगो से Hypothalamus उत्तेजित होता है उससे Ant Pituitary (A.C.T.H) उससे Adrenal cortex की उत्तेजना होकर Adrenal corticoids उत्पन्न होते हैं। उनसे आमाशय मे अम्ल तथा पेप्सीन की उत्पत्ति तीव्रता से होती है। Insulin के देने से एक ओर रक्त मे शर्करा की मात्रा गिर जाती है दूसरी ओर आमाशय से रसस्राव और आमाशय गति दोनो तीव्र हो जाते हैं। इसके विपरीत रक्त मे शर्करा के डालने से इन दोनो मे ह्रास होता है। गर्म जल, मद्य, मिर्च आदि उत्तेजक पदार्थों से आमाशय की दोनो शक्तियाँ बढती हैं। Histamine के इन्जेक्शन से या मद्यपान से हाईड्रोक्लोरिक एसिड अधिक मात्रा मे उत्पन्न होता है। भोजन से पहले कुछ घृत या तैल के पी लेने से या भोजन मे अति शीतल जल पीने से आमाशय की ये दोनो शक्तियां घट जाती हैं।

आमाशय मे भोजन का विलयन नही होता तथापि मद्य, ग्लूकोज तथा जल का स्वल्प विलयन अवश्य होता है Corticosteroids, Phenylbutazone, Reserpine आदि से आमाशय मे mucus घटता है, acid बढ जाता है।

आमाशय की दीवार मे जो प्रेरक शक्ति या प्राण-शक्ति रहती है वह अति मानसिक श्रम, श्रान्ति, बेचैनी और उन्निद्रता से घट जाती है। आमाशय मे शोथ हो, कैंसर हो, व्रण हो तो यह घट जाती है। शरीर मे उत्पन्न हुए विषद्रव्यो के बढ जाने या दीर्घ रोगो मे उत्पन्न विष-सचार (Toxaemia) से भी यह घट जाती है। वातिक प्रकृति (Nervous Temperament) के व्यक्तियो मे स्व-भावत. आमाशय की दीवार कुछ निर्बल होती है। ऊपर Hypothalamus मे Appetite या क्षुधा केन्द्र के विकृत होने से भी क्षुधा कम होती है। जब यह शक्ति कम होती है तो थोडा आहार लेने पर भी आमाशय मे विष्टम्भ या भारीपन लगता है। इस प्रकार के आमाशय को वातिक (Hypotonic Stomach) कहते है। इस अवस्था मे किया हुआ भोजन लेने के चार-पाँच घण्टे बाद भी कुछ-कुछ आमाशय मे रहता है। पाच-छ. घण्टे बाद भी आमाशय मे द्रव छलके अर्थात् परीक्षा करने पर छलकन (Splash-

ing) प्रतीत हो तो आमाशय की निर्बलता का अनुमान करना चाहिये ।

शरीर मे कही तीव्र वेदना हो अर्थात् हृदय, वृक्क, पित्ताशय आन्त्रपुच्छ किसी मे वेदना हो तो आमाशय निम्न द्वार मे स्तम्भ हो जाता है । आमाशय गति वन्द या उलटी हो जाती है ।

क्षुधा तथा तृप्ति —ऐसा प्रतीत होता है कि रक्त मे ग्लूकोज की मात्रा के कम हो जाने, Hypoglycaemia के होने पर 'थैलेमस' की नीचे विद्यमान केन्द्र पर उसका प्रभाव होने से भूख लगने लगती है तथा भोजन करने पर रक्त मे ग्लूकोज की मात्रा के बढ जाने पर भूख शान्त हो जाती है । पेट के खाली हो जाने पर उसमे रह-रहकर सकोच होने लगते है । उससे भी भूख सताने लगती है । अथवा जब भोजन से पेट तनता है तो उसकी यह प्रतीति ऊपर Satiety centre मे Vagus के Afferent सूत्रो द्वारा पहुचती है जिससे तृप्ति हो जाती है । क्रोध चिन्ता आदि मे आमाशय की दीवार मे स्तम्भ होकर क्षुधा नष्ट हो जाती है ।

Radiology :—Barium meal देकर X-Ray परीक्षा करने से परिणाम शूल मे व्रण का पता चलता है । कैंसर मे filling की अपूर्णता का पता लगता तथा आमाशय के खाली होने की गति का पता चलता है ।

तीव्र अजीर्ण, तीव्र श्लैष्मिक अजीर्ण, तीव्र श्लैष्मिक आमाशय शोथ, तीव्र श्लैष्मिक अम्लपित्त, तीव्र श्लैष्मिक छर्दि

Acute Catarrhal Gastritis, Acute Catarrhal Dyspepsia

(Dys=hard), pepsin=digest)

(१) भोजन-तथा औषधजनित तीव्राजीर्ण (Acute catarrhal gastritis) —

सहसा मद्य के अति पान से या किसी तीक्ष्ण ऊष्ण द्रव के पीने से या कुछ औषधियो जैसे केफीन एस्पिरिन, सैलिसिलेट्स, सल्फा ड्रग्स, एमिनोफाइलीन, फिनाइल वटाजोन, कौर्टिकोस्टिरोएड्स, या ऐसे भोजन के जिस मे बैक्टीरिया उत्पन्न हो गए हो, लेने से यह रोग होता है । तीव्र मानस भावो मे भी यह रोग होता है जिससे इन अवस्थाओ मे आमाशय श्लेष्मकला देखने मे रक्तवर्ण फूली हुई रक्त मे भरी हुई दीखती है । Polymorphs, lymphocytes, Plasmacells एकत्रित हो जाते हैं । उसकी Epithelium स्थान २ पर मर जाती है ।

लक्षण :—पेट मे विक्षोभ के कारण जी मचलाने तथा वमन होने की प्रवृति होती है । वमन होने पर पहले तो आहार-द्रव्य और फिर श्लेष्म द्रव ही निकलता है जो खट्टा- कडवा, कुछ दुर्गन्ध युक्त होता है । इस अम्लीय विदग्ध द्रव मे भोजन प्रणाली मे जलन-सी होती है । इस लिए इसे लोगो ने अम्लपित्त का नाम दे दिया । वस्तुतः श्लेष्मा (Mucus) की वृद्धि, पित्ताग्नि की न्यूनता ही इसमे होती है । वमन द्वारा जल के अधिक मात्रा मे निकल जाने से रोगी को भारी पिपासा प्रतीत होती है । मद-सा विष-सचार (Toxaemia) होने से रोगी शिथिल-सा हो जाता है, उसे शीत स्वेद आ जाता है तथा सिर मे दर्द होता है । आमाशय श्लेष्मकला मे शोथ के कारण पेट पर स्पर्शा क्षमता का लक्षण भी होता है । जल के अधिक मात्रा मे निकल जाने से नाडी निर्बल तथा तीव्र हो जाती है । तापमान कुछ गिरा हुआ होता है ।

तीव्र ज्वरो के दौरान मे रक्त के अन्दर विद्यमान Toxins के कारण भी आमाशय शोथ का लक्षण हो जाया करता है ।

वमन के द्वारा पेट से विक्षोभक द्रव्य के निकल जाने पर यदि सिवाय स्वल्प-स्वल्प जल के कोई भी आहार ४८ घण्टे तक न दिया जाए तो रोगी का कष्ट स्वयमेव शान्त हो जाता है ।

तीव्र आमाशय शोथ की चिकित्सा:—

क्षार, Belladonna, Probanthine, Antrenyl फिनोवार्विटोन आदि के देने पर पेट को आराम देने से आमाशय शोथ शान्त हो जाता है ।

चिरस्थायी अजीर्ण, चिरस्थायी श्लैष्मिक अजीर्ण, चिर० श्लै० अम्लपित्त, चिरस्थायी श्लैष्मिक आमाशय शोथ

Chronic Dyspepsia, Chronic Catarrhal Gastritis,

चिरस्थायी आमाशय शोथ के विषय मे नवीन विचार यह है कि Hypertrophic रूप मे यह रोग आमाशय व्रण के कारण होता है तथा क्रोध, चिन्ता आदि भावो की अधिकता से होता है । इस रूप के लक्षण तथा चिकित्सा भी तदनुसार ही है । तथा चि. आमाशय शोथ का Atrophic भेद भी आमाशय व्रण या आमाशय कैन्सर के कारण होता है । विषाद और दुःख की अधिकता से भी यह होता है । इस के लक्षण तथा चिकित्सा तदनुसार ही है । इस प्रकार नवीन विचार के लोग चि आमाशय शोथ को ऐसा व्यापक रोग नहीं मानते जैसे कि पुराने लेखक मानते थे ।

आयुर्वेद मे आमाशय रोग

अग्नि —

आयुर्वेद में अग्नि के विषय में कहा गया है कि हमारी आयु, बल, वर्ण, स्वास्थ्य, उत्साह, वृद्धि, कान्ति, ओज, तेज, धातु-पाचक अग्निया, प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान आदि प्राण शक्तिया ये सब पाचकाग्नि पर निर्भर है। अर्थात् वायु कफ दोनो अग्नि पर निर्भर है। जब तक शरीर में पाचकाग्नि है मनुष्य जीता है, इसके शान्त होने पर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। अग्नि के विकृत होने पर ही नाना रोग उत्पन्न होते है।

(चरक चि०—१५।३।४)

इसीलिये वाग्भट्ट ने कहा है .—

तस्मादग्नि पालयेत्सर्वयत्नैस्तस्मिन्नष्टे याति ना नाशमेव,
दोषैर्ग्रस्ते ग्रस्यते रोगसघैर्युक्ते तु स्यान्नीरुजो दीर्घजीवी

॥ चि० अ०—१०॥

प्राण वायु जो श्वास-प्रश्वास के समान अन्न के ग्रहण करने का कार्य करता है। अन्न को आमाशय में लाता है, जहा पर विद्यमान श्लेपक श्लेष्मा (Mucus) उसका एक मृदु-सा घोल बना देता है। फिर आमाशय में विद्यमान समान वायु पाचकाग्नि को प्रवृत्त करता है जो भुक्त अन्न का भली प्रकार से पाक करती है अर्थात् उसे रस और मल में परिवर्तित कर देती है। (चि० चि०–१५)

आयुर्वेद में मन्द, तीक्ष्ण, विषम तथा सम चार प्रकार की अग्नि कही गई है। बहुत-से व्यक्तियो की अग्नि सम होती है। कुछएक की अग्नि मन्द होती है अर्थात् जो स्वभावत कफ प्रकृति के है या जिनमें कफ की वृद्धि होती है (Hypochlorhydria होता है)। कुछएक की अग्नि तीक्ष्ण होती है अर्थात् पित्त प्रकृति के व्यक्तियो में पित्तवर्धक कारणो से Hyperchlorhydria हो जाता है। कुछएक की अग्नि विषम होती है अर्थात् वात प्रकृति (Hyposthenic Temperament) के व्यक्तियो में वातवर्धक कारणो से आमाशय में निर्बलता (Hypotonia) हो जाती है, जिससे स्वल्प से विक्षोभक कारण से भी आमाशय स्राव कम हो जाता है तथा प्रसन्नता आदि के भावो से अग्नि ठीक हो जाती है। (मा०नि०)

श्लैष्मिक अजीर्ण, या आमाजीर्ण

नाना कफवर्धक, गुरु, स्निग्ध, शीत गुण भोजनो के अति मात्रा में सेवन से होने वाले अजीर्ण को आमाजीर्ण कहते है। इसमें जी मचली, मुखप्रसेक, अगसाद आदि के साथ पेट में हलका-हलका भारीपन या बेचैनी सी रहती है जो भोजन लेने के बाद ही प्रतीत होने लगती है।

(सु०उ०।४६। श्लो०/८)

श्लैष्मिक अजीर्ण या आमाजीर्ण जनित मन्दाग्नि वमन, शूल, क्षुधानाश आदि के लिए निम्नलिखित योगो में से किसी का प्रयोग दिन में २–३ बार करना चाहिए।

(१) हिंग्वष्टक चूर्ण (यो र) हिंगु, त्रिकटु, अजवायन, दो जीरे, सैन्धव समान २
(२) भास्कर लवण (यो. र) पिप्पली, पिप्पलीमूल, धनिया, काला जीरा, सैन्धव, बिडलवण, तालीसपत्र, नागकेसर प्रत्येक ८-८ तोला, सौवर्चलनमक २० तोला, मरिच, श्वेत जीरा, सोठ ४-४ तोला, दालचीनी, इलायची बडी २-२ तोला, सामुद्रलवण ३२ तो अनारदाना १६ तोला, अम्लवेतस ८ तोला।
(३) लशुनाष्टक—(वृ नि र.) लशुन, जीरा, सैन्धव, सौवर्चल, त्रिकटु, हींग समान २।
(४) वैश्वानरचूर्ण (ग नि) सैंधव १, अजवायन २, चित्रमूल ३, पिप्पली ४, सोठ ५, हरीतकी १५ भाग।
(५) लोलिम्बराज चूर्ण—सोठ ५ पिप्पली ४, अजवायन ३, हरीतकी २, सैन्धव १ भाग।
(६) वडवानल चूर्ण (शा स) सैन्धव १, पिप्पलीमूल २, पिप्पली ३, चव्य ४, चित्रमूल ५, सोठ ६, हरड ७ भाग।
(७) चतु समचूर्ण (भै र) अजवायन, सोठ, हरड, सैन्धव समान २।
(९) यवान्यादि (भै र) अजवायन, हींग, सैन्धा, यवक्षार, काला नमक, हरड समान २।
(१०) अग्निमुखचूर्ण (यो र) हींग १, वचा २, पिप्पली ३, सोठ ४, अजवायन ५, हरड ६, चित्रमूल ७, कुष्ठ ८ भाग।
(११) ज्वालामुखीचूर्ण (व से) हींग, अम्लवेतस, त्रिकटु, त्रिफला, यवक्षार, अनार दाना, पुष्करमूल समान २।
(१२) अग्नितुण्डीवटी (भै र) पारद, गधक, विष, अजवायन, त्रिफला, दोक्षार, त्रिलवण, चित्रक, जीरा, विडग, सुहागा १-१ भाग कुचला सर्वतुल्य, निम्बु रस से गोली।
(१३) हिगु आदि गुटी (भै र)—हींग, काला नमक, दो क्षार, सैन्धव समान २ की लशुन रस से गोली।
(१४) वह्निरस (वृ नि र) जावित्री जायफल ३-३, मरिच ४, पारा, गधक, लौंग, वत्सनाभ आधा आधा तोला इमली के जल से मर्दन कर गोली बनाए।

विदग्धाजीर्ण (Hyperchlorhydria :—

ताजे उत्पन्न आमाशय रस मे एसिड अथवा प्रतिशतक होता है, पर पेट मे आने पर वह हलका हो जाने से १-. २ प्र०श० रह जाता है। कुछ व्यक्तियो मे एसिड की यह प्रतिशतक मात्रा नार्मल से अधिक रहती हे। ऐसा कोई व्यक्ति यदि विक्षोभशील स्वभाव का हो जिससे आमाशय का Vagus नाडी मण्डल विक्षुब्ध हो जाता हो और वह मदिरा, ममाले, सिरके, तले हुए भोजनो या उष्ण, तीक्ष्ण, गुण आहारो का सेवन करे तो भोजन के १ से ३ घण्टे वाद उसमे कुछ लक्षण होने लगते हैं जिन्हे विदग्धाजीर्ण कहते हैं। अर्थात् उसके पेट मे दर्द होने लगता है या दाह होने लगता है। कुछ खा लेने या उलटी कर देने से यह शान्त हो जाता है। खट्टे डकार आते है और मुख मे खट्टा पानी भी आ जाता है जिससे छाती जलती है (Pyrosis या अम्ल पित्त) उलटी से खट्टे द्रव के निकल जाने पर शान्ति पड जाती हे। यह रोग वर्षो तक रहता है। अपथ्याहार से कष्ट वढ जाता है, पथ्याहार मे शान्त रहता है। रोगी को मलवन्ध भी रहता है पर उसे भूख अच्छी लगती हे तथा उसका शरीर भी कृश नही होता। पेट पर दवाने मे स्पर्शाक्षमता का लक्षण भी नही होता।

चिकित्सा :—

रोगी को उचित हे कि वह अविक्षोभक मृदु गुण आहार स्वल्प मात्रा मे दिन मे ४ वार खूब चवा-चवाकर ले। आहारो के वीच मे एक-दो प्याला दूध भी लिया जा सकता है। भोजन के पहले Tincture Bella १०-१५ बूद ले लेने से एसिड की निकासी कम हो जाती हे तथा भोजन के एक-डेढ घण्टे वाद Magnesium Trisilicate ३०-४० ग्रेन के थोडे जल मे लेने से उपर्युक्त कष्ट शान्त हो जाते हैं।

आयुर्वेद में—विदग्धाजीर्ण या तीक्ष्णाग्निजनित शूल उसे कहा जाता है जव भोजन के वाद पेट में पित्तशूल, पित्तछर्दि, पैत्तिक अम्लोद्गार, दाह, पिपासा के लक्षण हो। इसकी चिकित्सा परिणाम शूल रोग में देखें।

परिणाम शूल—आमाशय व्रण-ग्रहण्याशय व्रण

(Peptic ulcer, Postprandial Pain)

कारण :—

यह एक व्यापक रोग है रोगियो मे ३-४ प्र०श० मे यह रोग पाया जाता है। आमाशय की अपेक्षा ग्रहण्याशय मे ४-६ गुणा यह रोग अधिक होता है। उन १० प्रतिशतक व्यक्तियो मे जो स्वभावतः तीक्ष्णाग्नि (Hyperchlorhydric) प्रकृति के होते हैं, अर्थात् जिनके आमाशय मे स्वभावत श्लेष्म-द्रव या Mucus की जो कि Mucopoly saccharides तथा Mucoproteins का मिश्रण है Mucus की मात्रा कम और एसिड तथा पेप्सीन की मात्रा अधिक उत्पन्न होती है, यह रोग होता है। इस प्रकृति के व्यक्तियो का आमाशय भोजन करने के वाद शीघ्र खाली हो जाता है, क्योकि इनमे आमाशय स्राव की अधिकता के साथ-साथ आमाशय गति भी अधिक होती है, अतः इनके आमाशय की श्लेष्मकला पर आमाशय रस एसिड तथा पेप्सीन का पाचक प्रभाव होकर क्षत या व्रण होने का भय रहता है। पेप्सीन के द्वारा उत्पन्न होने के कारण इस व्रण को (Peptic ulcer) कहा जाता है। इस प्रकार जन्म से या पितृ परम्परा से ही तीक्ष्णाग्नि प्रकृति का होना इस रोग का एक कारण प्रतीत होता है। साधारणत आमाशय मे H ion concentration या PH १-२ का रहता है यदि वह ३-४ तक भी हो तव भी हानि नही पर इससे अधिक हो तो इस रोग के होने की आशका रहती हे।

परन्तु एसिड या पेप्सीन कितनी अधिक मात्रा मे भी हो तथा श्लेष्म-द्रव की मात्रा कम भी हो तो भी जव तक आमाशय श्लेष्मकला स्वस्थ रहती है तव तक वह पच नही सकती। कई वार acid के कम होने पर भी यह रोग होता देखा जाता है। अत ऐसा प्रतीत होता है कि जव आमाशय श्लेष्मकला रुग्ण हो जाती है, जव उसका पोषण न्यून हो जाता हे, जव उसकी प्राणशक्ति हीन (वह Necrosed) हो जाती है, तभी उसका कोई अंग Pepsin (पेप्सीन) के द्वारा पचता हे, अत पहले आमाशय श्लेष्मकला शोथ का होना भी इस रोग का एक कारण है। अर्थात् तीक्ष्णाग्नि प्रकृति का व्यक्ति यदि विक्षोभक गुण आहार करता रहे, जैसे वह अति मात्रा मे आहार करे, या शीघ्रता मे विना चवाये भोजन ले जिससे भोजन मे Saliva का मिश्रण भली प्रकार न हो या तीक्ष्ण उष्ण गुण अचार, चटनी, मद्य, सिरका, मसाले, तेज चाय, पान सुपारी, काफी (Caffeine आमाशय रस प्रवर्तक है) आदि का अधिक सेवन करे या तम्वाखू (Nicotine vagus का उत्तेजक प्रतीत होता है) अधिक पिये या उसे यकृद्रोग Cirrhosis हो जिससे यकृत् मे अशुद्धरक्त रुका रहे। तो चिरस्थायी आमाशय शोथ हो जाता हे। उपर्युक्त आहार आमाशय स्राव तथा गति के वर्धक होते हैं। ये

भोजन Para sympathetic नाडी मण्डल के उत्तेजक होते हैं। जबकि मृदु Bland भोजन Sympathetic नाडी मण्डल के उत्तेजक होते है। इस प्रकार आमाशय की उस सूजी हुई श्लेष्मकला पर एसिड का पाचक प्रभाव होकर व्रण या क्षत हो सकता है। इसी प्रकार दातो, नासिका या गले मे चिरस्थायी शोथ रहता हो तथा वहा से पूयद्रव पेट मे जाता रहे तो उसके विक्षोभक प्रभाव से भी आमाशय शोथ हो सकता है। आमाशय रस खाली पेट मे भी उत्पन्न होता रहता है। अत रात के समय जब पेट खाली हो जाता है तब इसके दुष्प्रभाव होने की अधिक सभावना रहती है।

यह भी देखा जाता है कि तीक्ष्णाग्नि प्रकृति के जो व्यक्ति व्यवहार मे शीघ्र ही चिन्तित, क्रुद्ध या व्याकुल हो जाते है उनमे यह रोग अधिकत होता है। अथवा यह रोग मन्दरूप मे हो तो मानसिक आवेगो के दुष्प्रभाव से तीव्र रूप धारण कर लेता है। ऐसा प्रतीत होता है कि या तो मानसिक विक्षोभ की अवस्था मे आमाशय श्लेष्मकला का पोषण कम हो जाता है, उसको रक्त की मात्रा कम मिलती है (Arterioles मे Spasm के हो जाने से) जिससे उसकी प्राणशक्ति हीन हो जाती है, पर बहुत अधिक सभव है कि Vagus की Postganglionic सूत्रो से Acetylcholine तथा Histamine के उत्पन्न होने के कारण आमाशय रस का स्राव तथा आमाशय की गति दोनो बढ जाते है। Vagus की उत्तेजना से Pylorus से gastrin जो आमाशय रस का उत्तेजक है उसकी उत्पत्ति अधिक होती है। ऐसे व्यक्ति मे मानसिक आवेगो का दुष्प्रभाव आमाशय की Vagus नाडी पर ही विशेष पडता है जिससे आमाशय व्रण के लिए अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। तीव्र मानसिक आवेगो से, जैसे क्रोध से (Aggressive emotion मे) चेहरा लाल हो जाता है, वैसे आमाशय भी लाल हो जाता है अर्थात् Hypertrophic Gastritis हो जाता है। भय, विषाद, आत्मग्लानि आदि (Depressive emotions) से Splanchnic Nerves के द्वारा Vasoconstriction होकर आमाशय स्राव तथा गति घट जाते है। परन्तु चित्त-शामक Phenobarbitone आदि के प्रयोग से Pepticulcer पर कोई विशेष अच्छा प्रभाव नही पडता यद्यपि इन औषधियो का प्रयोग इस रोग के लिए होता है।

यह भी कहा जाता है कि O bloodgroup के व्यक्तियो मे यह रोग अधिक पाया जाता है, उससे कम B ग्रुप मे, उससे कम A ग्रुप मे उससे कम AB ग्रुप मे। इन पिछले ग्रुप्स मे Achlorhydria अधिक पाया गया है। उनकी लाला व आमाशय रस मे blood group antigen नही होता है। सभव है विटामिन 'ए' तथा 'सी' की न्यूनता के कारण आमाशय की झिल्ली मे कोई निर्बलता रहती है जिससे उस मे व्रण हो जाता है।

आमाशय व्रण या ग्रहण्याशय व्रण का यह रोग स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो मे ८-१० गुना अधिक होता है। इसका कारण भी यही प्रतीत होता है कि व्यवसायिक सामाजिक व्यवहारो के कारण उन्हे मानसिक अशान्ति या व्याकुलता अधिक रहती है। सभवत इसीलिए देहातो की अपेक्षा नगरो मे यह रोग अधिक पाया जाता है। व्याकुलता मे आमाशय मे अम्ल की उत्पत्ति अधिक होती है। शरीर मे Histamine की उत्पत्ति होने से जैसे अग्निदाह (Burn) मे होता है आमाशय मे अम्ल की उत्पत्ति अधिक होती है। व्याकुलता (Stress) के कारण Adrenal cortex के सूक्ष्म रस की अधिकता से भी अम्ल की उत्पत्ति बढती है और व्रण की उत्पत्ति हो जाती है।

इस प्रकार जन्म से तीक्ष्णाग्नि प्रकृति का होना जिससे चिरकालिक आमाशय शोथ, या आमाशय श्लेष्म कला की निर्बलता रहती है और मानसिक उद्विग्नता (Nervous strain)—ये दो कारण इस रोग के प्रतीत होते है। इनमे से प्रथम कारण का हटाना प्राय. कठिन होता है। परन्तु पथ्याहार-विहार से और मानसिक शान्ति से आमाशय शोथ को दूर किया जा सकता है। अर्थात् यदि पित्ताजीर्ण (एसिड डिसपेप्सिया) के कारणो का निवारण किया जा सके तो इस रोग से बचा जा सकता है। Nervous strain से बचने के लिए Vagotomy एक उत्तम उपाय है। मानसिक विक्षोभो से आमाशय रस स्राव अधिक न हो उसके लिये anti cholinergic औषधिया उपयोगी हैं। औषधियो मे से Cortisone परिवार की औषधियो मे से पेट मे Acid तथा Pepsin की उत्पत्ति अधिक होती है। Butazolidin से भी Acid की मात्रा बढती है। Cincophen तथा Salicylates Aspirin, caffiene का भी प्रभाव ऐसा ही होता है। Reserpine के अति प्रयोग से भी ऐसा ही प्रभाव होता है। हवा मे नमी के बढने से भी इस रोग मे वृद्धि होती है।

आमाशय के जिस क्षेत्र मे एसिड के उत्पादक सेल है उसकी श्लेष्म कला मे व्रण नही होता। अर्थात् उसके विस्तृत भाग (Fundus) मे नही होता, परन्तु आमाशय निम्न द्वार के समीप के २-४ इच के प्रदेश मे आमाशय के Lesser curvature पर पिछली दीवार मे तथा ग्रहण्याशय (Duodenum) के प्रथम एक इच भाग मे

उसकी अगली या पिछली दीवार मे क्षारीय क्षेत्र मे जिसे Duodenum का Bulb या Pylorus का Cap कहते हैं। व्रण विशेषत. होता है अर्थात् जो प्रदेश एसिड के लिये अधिक अभ्यस्त नहीं है उन पर एसिड की अधिकता आती रहे तो उनमे व्रण हो जाता है। ग्रहण्याशय मे यह व्रण आमाशय की अपेक्षा ४-६ गुणा पाया जाता है। आमाशय व्रण या ग्रहण्याशय व्रण बहुधा एक ही होता है तथा वह लगभग ५-१० मिलीमीटर विस्तार का और १०-२० मिलीमीटर गहराई का होता है अर्थात् श्लेष्म कला के निम्न तल तक होता है या उससे नीचे Mucous Muscle के तले तक भी जाता है। इसके किनारे फूले हुए लाल रग के होने तथा व्रण के ऊपर उठे हुए दीखते हैं। इनका तला कठोर होता है। वहा का बाह्यावरण Peritoneum स्पर्श मे कठोर होता है। श्लेष्मकला की अपेक्षा नीचे मासमय स्तर मे व्रणभाव अधिक फैला हुआ होता है। व्रण मे सबसे ऊपर पूयमय स्तर होता है उसके नीचे Fibrin की एक मृत तह होती है। उसके नीचे Granulation tissue होता है जो व्रण को भरने के लिए बनता है, उसके नीचे Scar tissue होता है।

लक्षण :—

यह पित्ताजीर्ण या पैत्तिक अम्ल-पित्त (Acid Dyspepsia) का रोग तथा उसके उपद्रव रूप मे होने वाला परिणाम शूल (Peptic ulcer) का रोग मध्यमायु के व्यक्तियो मे विशेषत. पुरुषो मे (पुरुषो तथा स्त्रियो मे अनुपात लगभग १०:१ का होता है) २५ से ५० वर्ष तक की आयु मे धीरे-धीरे अज्ञात रूप मे आरम्भ होता है तथा चिरस्थायी अजीर्ण के रूप मे रहता है जिससे छाती मे जलन या दाह प्रतीत होती है। आमाशय में व्रण हो तो भोजन करने के बाद, विशेषतः अधिक भोजन करने के, आधा-एक-डेढ घण्टे बाद और यदि ग्रहण्याशय मे व्रण हो तो भोजन करने के २-३ घण्टे बाद पेट मे शूल होने लगता है और लगभग एक घण्टे तक रहकर स्वयमेव शान्त हो जाता है। अर्थात् भोजन करने के एक-दो घण्टे बाद जब पेट मे भोजन-द्रव आगे निकल जाता है और एक मात्रा मे सचित हुए स्वतत्र एसिड का सपर्क सीधा व्रण से होता है, तो व्रण के तल मे विद्यमान मास-सूत्रो मे स्तम्भ (Spasm या Tension) उत्पन्न होने लगता है अर्थात् उसके या शोथ के Splanchnic नाड़ियो पर दुष्प्रभाव पडने से यह शूल मस्तिष्क को अनुभव होता है। प्रातःकाल के नाश्ते से पहले प्राय यह नही होता। यह शूल आमाशय प्रदेश (Epigastrium) मे मध्यरेखा के समीप कुछ बाई ओर होता है। ग्रहण्याशय व्रण के कारण हो तो मध्यरेखा के कुछ दाईं ओर होता है तथा एक निश्चित स्थान पर होता है। इस शूल मे रोगी को पेट मे दाह की या काटने की सी प्रतीति अथवा भूख की चोट Hunger pain लगने की सी प्रतीति होती है। कभी-कभी यह शूल पीछे पीठ की ओर जाता प्रतीत होता है। रात के भोजन के दो-तीन घण्टे बाद सोते-सोते मध्यरात्रि मे १२ से २ बजे के बीच यह शूल प्रतीत हो सकता है। ग्रहण्याशय व्रण के कारण रात्रि मे शूल विशेष हुआ करता है जिसके कारण नीद टूट जाती है। एक तो कुछ खा लेने से यह शूल मन्द पड जाता है; किसी क्षार के सेवन से भी सर्वथा शात हो जाता है। मद्य, मसालो के सेवन से यह बढ जाता है। इस प्रकार आमाशय शूल Acid से होता है या आमाशय के सकोच Contraction के कारण उठता है या व्रण आसपास के शोथयुक्त प्रदेश की सज्ञावाही नाडियो Nerves मे शोथ के तनाव Tension के कारण होता है इस विषय मे निश्चय से नही कहा जा सकता। कभी-कभी जब शूल अधिक होता है अर्थात् आमाशय निम्न द्वार मे स्तम्भ प्रबलता से होता है (Pylorospasm होता है) तो वमन हो जाता है जिससे थोडा अम्ल द्रव निकल जाता है। जिसके निकलते ही शूल शान्त हो जाता है। इस पित्त वमन मे जो थोडा अन्न निकलता है वह पूर्ण पक्व होता है, अपक्व नही होता। इसमे श्लेष्म-द्रव भी नही होता तथा वमन मे जी मिचलाने या अरुचि का लक्षण भी विशेष नही होता। अर्थात् पित्त वमन के लक्षण श्लैष्मिक वमन से भिन्न होते है। जब एक बार वमन होकर शूल शान्त हो जाता है तो दुबारा शूल होने पर रोगी स्वय वमन को प्रवृत्त करके शान्ति प्राप्त कर लेता है। कुछ एक रोगियो मे शूल का लक्षण नही होता दूसरे लक्षण होते हैं अर्थात् कुछ भोजन का मुह मे आ जाना (Regurgitation) अति निष्ठीवन Ptyalism का लक्षण होता है जो आमाशयव्रण या ग्रहण्याशय व्रण के विक्षोभ के कारण लाला-ग्रन्थियो के विक्षोभ (Reflex-salivation) मे हो सकता है। इसी प्रकार मुख मे पानी भर-भर के आने (Water-brash) का लक्षण भी इस रोग के कारण होता है।

रोगी को यह शूल नित्यप्रति हो तथा प्रत्येक ऋतु मे हो ऐसा नही है। जब-जब वह अधिक मात्रा मे भोजन लेता है या गरिष्ठ एवं विक्षोभक आहार करता है या कभी-कभी ऋतु-परिवर्तनकाल मे जैसे शरत् तथा वसन्त मे साधारण मात्रा मे भोजन करने पर भी शूल उठ जाता है। जिन अवस्थाओ मे आमाशय शोथ होता है उन्ही मे

शूल होने की अधिक आशंका रहती है। कुछ महीने शूल उठकर फिर कुछ महीने शान्त रहता है, परन्तु क्रमशः शूल-शान्ति का यह समय घटता जाता है। हृद्दाह (Heart burn), अम्लोद्गार (Acid eructations) के लक्षण भी बहुधा होते है। अम्लीय आमाशय रस के भोजन-नाली मे आने से हृद्दाह होता है।

इस पैत्तिक आमाशय शोथ मे साधारणत रोगी को भूख अच्छी लगती है। श्लेष्माजीर्ण के समान उसे अन्नारुचि का लक्षण नही होता, परन्तु क्योकि अधिक आहार करने से शूल का कष्ट हो जाता है, इसीलिये रोगी बचकर भोजन करता है। मलबन्ध की शिकायत प्राय रहती है। इस प्रकार इस शूल के दौरे समय-समय पर वर्षो तक होते रहते है। बीच-बीच मे महीनो तक शूलशान्त भी रहता है। सर्दी के बाद गर्मी के शुरू मे या गर्मी के बाद सर्दी के शुरू मे या वर्षा काल मे इसका दौरा आरभ होकर महीनो तक चलता है।

परीक्षा —

आमाशय प्रदेश पर मध्यरेखा के कुछ दाई ओर दबाने से एक सीमित स्थान पर स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है। रोग वेगकाल मे इस स्थान को दबाने पर पेट की मासपेशिया स्तब्ध हो जाती है। रोगी की जिह्वा साफ होती है। इस स्पर्शाक्षमता के अतिरिक्त समय समय पर शूल होने का लक्षण हो तो इस रोग का निश्चय हो जाता है। आमाशय से निकले स्राव की परीक्षा करने पर एक तो उसकी दैनिक मात्रा एक-डेढ लिटर से ज्यादा होती है दूसरे उसमे स्वतन्त्र एसिड अधिक मिलता है। अर्थात् १०० सी०मी० मे अम्ल, ८० सी०सी० $\frac{N}{10}$HCL होता है। जितने $\frac{N}{10}$ Na OH मिलि लि० से Gastric acid उदासीन हो जाता है उतने Clinical units (c u.) की acidity कही जा सकती है। स्वस्थ व्यक्ति मे खाली पेट Free तथा Total acidity=१९/२९ c u के आसपास होती है। Testmeal के बाद Free तथा Total acidity=४२/५१ c u के आसपास होती है। Gastric pepsin (Hunt method) नार्मल व्यक्ति मे ८४ units प्रति मिलि लि० के आसपास होता है। मूत्र मे पाये जाने वाले Uropepsinogen की निकासी २८ Units प्र० घ० होती है। Duodenal तथा Gastric Ulcer मे Acid, Pepsin तथा मूत्र मे Uropepsinogen की मात्रा तीनो बढे हुए पाये जाते है।

Histamine acid phosphate test करने पर स्वस्थ व्यक्ति मे Basal secretion (Free acidity) लगभग १ या दो milliequivalent per hour होता है तथा Maximum acid out put २ से १६ m equ. per hour होता है। इस रोग मे Basal Secretion लगभग २ से १५ तक तथा Maximum acid out put १५ से ३० Milliequivalent per hour होता है। (एसिड, पेप्सीन तथा मूत्र मे Uropepsinogen की कमी तथा अभाव Gastritis व कैन्सर के द्योतक होते हैं) X-Ray परीक्षा करने पर Barium का घोल Lesser curvature के १ MM से १ CM प्रदेश मे आमाशय की दीवार के अन्दर बसा हुआ दीखता है जिसे Niche निश या Crater कहते है। यह छाया, व्रण के गड्ढे (Crater) मे बेरियम के बस जाने से उत्पन्न होती है। Duodenum मे व्रण हो तो उसका प्रथम भाग या Cap deformed एव अस्पष्ट सा दीखता है, उसमे Ulcer crater दीखता है। Lesser curvature मे व्रण हो तो Gastroscopy इसके लिये सहायक हो सकती है। Duodenum के व्रण को नही देखा जा सकता। पुरीष मे Occult Blood को (Haema test के द्वारा) देखकर भी इसका सन्देह करना चाहिये। इस रोग मे व्रण के पास शोथ विशेष हो तो E S R बढा हुआ होता है। कई बार आमाशय या ग्रहण्याशय मे व्रण होता है पर X-Ray मे नही आता।

भेदक लक्षण :—

पित्ताशय शूल ४० वर्ष की आयु के बाद होता, तीव्रतर होता तथा उसमे वमन का लक्षण अधिक स्पष्ट होता है। उसमे Antacids से लाभ नही होता। आमाशय कैन्सर बडी आयु मे होता है, शूल हर समय रहता है, भोजन लेने से बढता है, पेट पर दबाने से विशेष दर्द होता है। उसमे अन्नारुचि, चेहरे के फीकेपन तथा यकृत्-वृद्धि का लक्षण भी होता है। वह Lesser मे बहुत कम, Greater curvature मे अधिकतर होता है।

उपद्रव —

आमाशय व्रण के कैंसर मे परिवर्तित होने का उपद्रव बहुत कम पाया जाता है। इस रोग का प्रधान उपद्रव रक्त स्राव है। अर्थात् आमाशय व्रण मे कभी-कभी व्रण के गहरे हो जाने पर उसके तल मे विद्यमान किसी रक्तवाहिनी या Granulation के क्षत हो जाने से रक्त-स्राव होकर रक्त-वमन (Haematemesis) तथा रक्ता-

तिसार Melaena का उपद्रव हो जाता है। Duodenal व्रण मे Gastric व्रण की अपेक्षा ये उपद्रव अधिक होते हैं। वृद्ध मे युवा की अपेक्षा अधिक होते है। लगभग २०-२५ प्र०श० रोगियो मे यह उपद्रव होता है। मानस-विक्षोभ या विक्षोभक आहार या औषधि के लेने से यह होता है। वस्तुतः खून की उलटी ७५% अवस्थाओ मे इसी रोग के कारण होती है। यह रक्त रग मे कॉफी की तरह काला, कुछ अश मे जमा हुआ और भोजन-द्रव्य तथा Acid से मिश्रित होता है। इस वमन के कारण निकला कुछ रक्त मल मे मिश्रित होकर भी रक्त-मिश्रित मल के रूप मे निकलता है। मल मे रक्त आये तो मल काला, कोलटार की तरह का होता है। इसके कारण नाडी निर्बल तथा तीव्र हो जाती है। वमन अथवा मल के द्वारा कुछ अधिक रक्त निकलने पर शिरोभ्रम एव निर्बलता के लक्षण होते है। Heamatocrit तथा Haemoglobin की प्रतिशतकता गिर जाती है। रक्तवमन घातक नही होता पर यदि रक्तवाहिनियो मे Sclerosis के कारण यह बार-बार हो तो यह रोग घातक हो सकता है, विशेषत. यदि रोगी की आयु बडी हो (५ प्र०श० व्यक्तियो मे यह घातक है)। Capillaries से रक्तस्राव हो तो वह स्वय बन्द हो जाता है। यकृत्-वृद्धि के कारण होने वाले रक्त-वमन की मात्रा कम होती है।

छाती मे से आने वाले उर.क्षय-जनित रक्तष्ठीवन (Haemoptysis) से इसका सदेह हो सकता है। परन्तु उस अवस्था मे इसका रग लाल होता है। वायु से मिश्रित होने के कारण वह झागदार होता है तथा थोडा-थोडा कई दिन तक आता रहता है। आमाशय व्रण जनित रक्त एक ही बार आता है। कई दिन तक नही आता रहता। रक्तवमन के द्वारा रक्त अधिक मात्रा मे नही निकलता, पर यदि अधिक निकल जाय तो मूर्छा तथा श्वासकृच्छ्रता के लक्षण भी हो सकते है। जितनी नाडी-सख्या अधिक हो और रक्त-भार गिर गया हो, चेहरे का रग अधिक फीका पड गया हो, रोगी बडी आयु का हो उतना ही रक्तवमन अधिक भयकर समझना चाहिये। ५-१५% मे यह घातक होता है। Perforation या व्रण के Peritoneum के अन्दर खुल जाने का उपद्रव भी १-२% रोगियो मे होता है जो सहसा होता है। तीव्र वेदना, कोष्ठ की कठोरता और श्वास इसके प्रधान लक्षण होते हैं तथा Tension, वमन और आघात के कारण होता है।

यह शूल का रोग, जो ठीक हो-होकर फिर भी हो जाता है, चिकित्सा से ठीक हो सकता है, यदि रोगी पथ्यापथ्य का ध्यान सदा रखे। आमाशय व्रण ग्रहण्याशय व्रण से अधिक सुख-साध्य है। हा, चिन्ताशील तथा वृद्ध व्यक्ति मे यह रोग ठीक नही होता। २५% मे उपद्रव होने का भय रहता है तथा १०% तो Duodenal ulcer तथा ८०% Gastric ulcer केवल शल्यकर्म से ठीक हो सकते है।

साध्यासाध्य—चिकित्सा करने पर भी शूल बार-बार हो जाता है तो Gastric resection की शल्य-चिकित्सा करानी आवश्यक हो जाती है।

परिणामशूल (Peptic ulcer) की चिकित्सा

विश्राम चिकित्सा —

दो-तीन सप्ताह या एक मास के लिये शैयाशायी होकर पूर्ण विश्राम कर लेने तथा व्यापार सम्बन्धी व्याकुल-ताओ से मुक्त होकर निश्चिन्त रहने या किसी घरेलू खेल मे व्यस्त हो जाने से परिणामशूल का कष्ट सर्वथा शान्त हो जाता है। सभवत Cholinergic Vagus के विक्षोभ के दूर हो जाने से इस रोग मे आराम आता है। शैया-विश्राम के दौरान मे रोगी को स्नान, शौच आदि के लिये ही उठने की छूट होनी चाहिये, अन्यथा उसे पडे रहना चाहिये। शारीरिक विश्राम की अपेक्षा मानसिक विश्राम अधिक आवश्यक होता है। इसके लिये औषधि का प्रयोग हो तो Eskazine ५ मिलि० की मात्रा मे या Chlordiazep-oxide १०मिलि० या Phenobarbitone का प्रयोग ३०मिलि० या आधा ग्रेन की मात्रा मे दिनमे दो-तीन बार करना चाहिये। परन्तु क्रोध आदि तीव्र मानसिक आवेशो को इस रोग का वर्धक समझते हुए उनसे बचना चाहिये तथा हर हालत मे भोजन के समय विशेषत शान्त रहने का यत्न करना चाहिये। रोग के शान्त हो जाने पर भी थकावट से बचना चाहिए। रात को ६-८ घण्टे की नीद लेनी चाहिए। तथा हर प्रकार के Nervous tension अर्थात् मानसिक आवेश से बचना चाहिए।

भोजन चिकित्सा :—

इस पित्ताजीर्ण या पैत्तिक अम्लपित्त रोग या पैत्तिक आमाशय शोथ के रोग मे रोगी को थोडा-थोडा आहार थोडी-थोडी देर बाद मिलना चाहिये, क्योकि अधिक मात्रा मे बिना भली प्रकार चबाये भोजन लेने से आमाशय-शोथ बढता है। अधिक मात्रा मे भोजन लेने से पेट के फूलने के साथ व्रण भी चौडा होता है। तथा दो आहारो के बीच काल के दीर्घ होने मे पाचकाग्नि को जब अन्न नही

मिलता तो वह धातुओ का अर्थात् आमाशय की श्लेष्मकला का ही पाक करने लगती है। प्रोटीन आहार आमाशय के एसिड तथा पेप्सीन को शीघ्र उदासीन कर देता है तथा स्निग्ध आहार अर्थात् घृत का प्रयोग आमाशय-रस के स्राव तथा आमाशय की गति को मन्द करता है। इसलिये दूध तथा घृत या क्रीम या मक्खन, इन दोनो का स्वल्प मात्रा मे थोडी-थोडी देर बाद प्रयोग करने से इस रोग मे बडा लाभ होता है। प्रात सबसे पहले तो घूट-घूट करके गर्म जल पीना चाहिये, फिर Sippy के भोजन के अनुसार रोगी को प्रात ७ बजे से साय ७ बजे या १० बजे तक प्रत्येक घण्टे के बाद एक औंस दूध, एक औस क्रीम के साथ मिलाकर पीने के लिये दिया जाता रहा है। क्रीम न हो तो दूध २-३ औंस एक-एक घण्टे बाद पिलाते है। १ औस दूध मे दो ग्रेन Sodium Citrate पाचन मे सहायक के तौर पर मिला सकते हे। दूध मे खाण्ड मिलाना चाहे तो थोडा मिला सकते है। पर एक-एक घण्टे बाद दूध देना प्राय क्रियात्मक नही होता। इसलिये ढाई औस दूध तथा ढाई औंस क्रीम (२० प्रतिशत) अर्थात् दूध और क्रीम के मिश्रण का एक-एक कप प्रति दो घण्टे के बाद देना ठीक रहता है। क्रीम न हो तो ५ औस दूध दो-दो घण्टे पर देना चाहिये। इस प्रकार दिन मे छ से आठ बार दूध कत देना चाहिये। दिन मे दो बार एक-एक कप सतरे-टिमाटर आदि का रस ग्लूकोज के साथ देने से भी रोगी का चित्त दूध से नही ऊबता तथा उसे Ascorbic Acid भी प्राप्त हो जाता है। किसी एक दूध के कप के स्थान पर दिन मे एक बार एक हलका-सा उबला हुआ अडा भी दिया जा सकता है। रात्रि के समय रोगी के पास दूध रहना चाहिये ताकि जब वह जागे तब एक-एक कप दूध वह रात मे भी एक-दो बार पी सके। इससे रोगी को १२०० कैलोरीज मिल जाती है। दूध से अरुचि न हो इसके लिये एक बार Custard मिश्रित और एक बार खाली दूध दे सकते है। दूध न अधिक गर्म न अधिक ठण्डा हो। हलका-सा गर्म होना चाहिये। १० औस दूध मे १ अण्डा डालकर Custard बना लेना चाहिये। पीने से पहले गर्म करके गाढा कर लेना चाहिये।

एक सप्ताह तक दूध, क्रीम, अडे तथा फलरस पर रहने के बाद दूसरे सप्ताह मे प्रति दो घण्टे बाद एक कप दूध का प्रयोग तो जारी रखना ही चाहिये, परन्तु दिन मे तीन बार अर्थात् प्रातराश तथा दोनो भोजनो के समय तीन औस टोस्ट तथा मक्खन का प्रयोग और बढा देना चाहिये तथा जहा पहले दिन मे एक बार एक अडा दिया जा रहा था, दूसरे सप्ताह मे दिन मे तीन बार दूध के साथ एक-एक हलका उबला हुआ अडा दे देना चाहिये।

तीसरे सप्ताह मे दूसरे सप्ताह के भोजन के अतिरिक्त दोनो भोजनो के समय किसी सब्जी का घृतमिश्रित सूप या घृतमिश्रित कोई-सी पिसी हुई मुलायम सब्जी भी और दे देनी चाहिये।

चतुर्थ सप्ताह मे प्रति दो घण्टे के बाद दिये जाने वाले दूध-क्रीम के एक-एक कप के अतिरिक्त प्रातराश तथा दो भोजनो के समय आहार की मात्रा बढा देनी चाहिये। अर्थात् मुलायम रोटी, पिसी हुई सब्जी, खीर, उबले चावल, कस्टर्ड, चावलो का आटा आदि दे देना चाहिये। चौथे सप्ताह के बाद भी इस भोजन को जारी रखना चाहिये अर्थात् प्रातराश और भोजन के बीच के समय मे प्रति दो घण्टे बाद एक कप दूध लेते रहना चाहिये। अथवा व्रण-रोहण के लिये विटामिन सी १०० मिलि० लेना या एक कप किसी फल का रस भी पी लेना आवश्यक समझना चाहिये। दूध गर्म या शीतल, जैसे रुचि हो, लिया जा सकता है परन्तु बर्फ का प्रयोग नही करना चाहिये। दिन मे १-२ बार दूध के साथ हलकी चाय ली जा सकती है। अथवा Casein hydrolysate ३००, Malt ४०० ग्राम, को गर्म जल १ लिटर मे मिला इसकी ८ खुराक करके २-२ घण्टे पर १ खुराक दे सकते है। इस प्रकार बिना किसी औषधि के प्रयोग के भी केवल विश्राम और आहार सम्बन्धी चिकित्सा के ६ सप्ताह जारी रखने से रोगी का शूल शान्त हो जाता है। व्रण भर जाता है तथा यदि वह आयु भर इसी प्रकार के आहार को अर्थात् मात्रा मे स्वल्प एव स्निग्ध आहार को दो-ढाई घण्टे के अन्तर से लेता रहे तो इस रोग के पुनराक्रमण का भय भी नही रहता। रोगी को यह मृदु, स्निग्ध, प्रोटीन प्रधान, आहार अर्थात् दूध, टोस्ट, सादे बिस्कुट, मक्खन, क्रीम, कस्टर्ड, अण्डे का आहार स्वल्प मात्रा मे धीरे-धीरे बहुत चबाकर लेना चाहिये। भोजन के बाद आध घण्टा लेट जाना चाहिए। भोजन के समय किसी प्रकार के वाद-विवाद मे मग्न या चिन्ता मे नही रहना चाहिये। शान्त और निश्चिन्त तथा प्रसन्नता की अवस्था मे किया हुआ भोजन आमाशय-शोथ का वर्धक नही होता। सब तले हुये भोजनो, कच्ची सब्जियो, फलो, सलाद, अचार, चटनी, मसाले, तेज कॉफी, चाय, सिरका, सोडा वाटर, बादाम-अखरोट आदि गर्म मेवो, तिल-मूगफली-तेल, खट्टी दही, तमाखू, बीजो तथा छिलको वाली सब्जियो, छिलके वाली दालो, अधिक गर्म अधिक शीतल पेयो का सदा के लिये परित्याग कर देना चाहिये तथा दिन के प्रधान भोजनो के लेने के आध घण्टे पहले दो चम्मच जैतून का तेल या मूगफली का तेल या बादाम रोगन पी लेना चाहिए। भोजन से पहले स्नेहपान कर लेने से पित्त जीर्ण या परिणामशूल मे लाभ रहता है। रोगी को सर्व तीक्ष्णगुण औषधियो, गोलियो

आदि का विशेषत Corticotropin, Adrenal ste oids, Rauwolfia, Phenylbutazone, एस्पिरिन का भी परित्याग कर देना चाहिये। जल भी एक समय मे १ कप से अधिक नहीं लेना चाहिये। भोजन के सम्बन्ध मे वहुतो का मत यह है कि दैनिक ४ भोजनो के अतिरिक्त बीच मे १ कप दूध ले लिया जाय तो भी आराम रहता है, हा, भोजन मात्रा मे स्वल्प ही रहना चाहिये, रोगी का पेट साफ रखना चाहिये। इसके लिये Liquid Paraffin या Mag Carb या Milk of magnesia को दो बार लिया जा सकता है। किसी स्नेह, जैसे घृत, जैतून के तेल या साधारण क्रीम का सेवन करने मे और इनके आत मे जाने पर आमाशय से पाचक रस की निकासी कम हो जाती है।

रोगी को चाहिए वह दात-गले आदि से पेट मे इन-फैक्शन को न जाने दे। हर प्रकार की चिन्ता-क्रोध-कलह आदि से बचे। निद्रा कम हो तो Phenobarbitone ३० मि० या Amylobarbitone ९० मिलि० को दिनमे २-३ बार ले। उसे कोई ज्वर हो तो वह कुछ दिन पूर्ण विश्राम करे। उसे जब स्वल्प सा भी शूल हो तो वह शीघ्र ही Mag. tricilicate या Aluminiumhydroxide का एक चमच ले लें, किसी गोली को साबित न लेकर चूर्ण करके लें। किसी कठोर वस्तु को पेट मे न जाने दे। खाण्ड को भी परीक्षक इस रोग के लिए हानिकारक बताते है अत चीनी का प्रयोग भी इस रोग मे, नही करना चाहिए, दूध में सेकरीन डाल सकते हैं। चिकित्सा के वाद तीसरे, छठे, नौवें, बारहवें महीने रोगी की Barium भोजन द्वारा परीक्षा होनी चाहिये। इसके बाद १-१ वर्ष के अन्तर से रोगी की यही परीक्षा करते रहना चाहिये।

भोजन के विषय मे कुछ अन्वेषको का कथन है कि भोजन का परिणाम अधिक एसिड की उत्पत्ति है अत बार-बार भोजन लेने से एसिड की उत्पत्ति बढती है। भोजन दिन मे २-३ बार ही लिया जाए पर वह एक तो मृदु हो दूसरे देर तक चबा कर उसमे Saliva को मिला लिया जाए तो उससे एसिड की उत्पत्ति कम होती है और रोगी को अधिक आराम प्रतीत होता है।

क्षार-चिकित्सा (Antacids)—इस रोग मे क्षार-प्रयोग चिरकाल से होता आ रहा है। परन्तु क्षारचिकित्सा केवल लक्षणशामक या शूलशामक ही है, रोगशामक नही है। पित्ताजीर्ण तथा आमाशयव्रण के दूर करने की शक्ति इस चिकित्सा मे नही है। अत जब तक कष्ट अधिक हो तब तक इस चिकित्सा का सहारा लेना चाहिये। उसके बाद भोजन-चिकित्सा के द्वारा ही इस रोग को शान्त करने का यत्न करना चाहिये। वृक्क रुग्ण हो, क्षार को न निकाल सके तो इनका प्रयोग कम ही करना चाहिए। इस रोग मे प्रयुक्त होने वाले प्रधान क्षारो का यहा उल्लेख किया जाता है। दिन के प्रधान ५-६ बार लिये आहारो या उपर्युक्त विधि से दूध या आहार के लेने के एक घण्टे या आधे घंण्टे बाद दिन-रात मे पहले प्रत्येक १-२ घटे के अन्तर से, बाद मे दिन भर ६ बार, १-२ ग्राम मात्रा मे इनका प्रयोग किया जाता है। इनके प्रयोग से आमाशय का एसिड उदासीन हो जाता है अर्थात् आमाशय का P H ४ से अधिक रहता है, जिससे वह शूल का कारण नही बनता। इन्हे साधारणत १० बजे, ११ बजे और फिर २ बजे, ४ बजे और रात को ८ बजे तथा सोते समय देना चाहिये।

(१) Sodium bicarbonate ३० ग्रेन की मात्रा मे तुरन्त शूल को शान्त करता है। इसकी १ ग्राम मात्रा १ N HCL के १२० मिलि लि० को उदासीन कर देती है। परन्तु एक तो यह पेट के एसिड के लिये उत्तेजक होता है तथा दूसरे यह घुलनशील होने के कारण रक्त मे पहुचकर यदि यह वृक्को की निर्बलतावश बाहर नही निकल पाता हो तो कुछ काल के निरन्तर प्रयोग के बाद क्षारीयता (Alkalosis) उत्पन्न कर देता है, तीसरे यह आमाशय मे होने वाले पाचन (Peptic digestion) को मन्द करता है, अत इसका प्रयोग नही किया जाता।

(२) Magnesium oxide, Magnesium carbonate (१०, ६० ग्रेन) Magnesium Hydroxide Mixture (milk of Magnesia या Chemomag (Chemopharma) Milkomag (Smith Stan) (१, २ ड्राम) ये सब उत्तम शूलशामक क्षार है परन्तु कुछ-कुछ रेचक गुण वाले है जिससे कइयो को सहन नही होते। १ ग्राम Oxide. १ N Hcl के ४३२ मिलि लि० को, १० मिलि लि० Milk of mag १ N Hcl के २७० मिलि लि० को, १ ग्राम Magcarb, १ N-HCl के २०० मिलि लि को उदासीन कर देता है।

(३) Magnesium Trisilicate (Gastomag, Magsil, Neutrasil Gelusil, Carbo kaolin, Alemb गोली) ६० ग्रेन की मात्रा मे ४-५ औस जल के साथ भोजन के एक घण्टे बाद दिया जाता है। इसका १ ग्राम १ N HCl के १४० मिलि लि० को उदासीन करता

है। यह एक उत्तम क्षारीय औषधि है जिसमे कोई दोष नही है पर HCl के साथ मिलने से पहले Mag chloride फिर Carbonate बनता है जो हलका स्रंसक होता है। इसकी तथा Alum Hydrox की, जो हलका मलवन्धक है बनी हुई गोलिया (Allujel unichem, Gelusil) एक या दो की मात्रा मे दिन मे कई बार चबा लेने से भी आराम रहता है। इससे पेट के अन्दर जो Colloidal silica बनता है वह व्रण पर लेपक प्रभाव करता है।

(४) फिटकरी से बनी हुई Aluminium Hydroxide Gel *(Aludrox wyeth, Sebella* wyeth, or Sedonal Tab Allujel, Catoxyl tab Alumina B I) जो कि इस साल्ट का ३,४ प्रतिशत घोल है, न तो रक्त मे क्षारीयता (Alkalosis) करता है, न ही पेट मे एसिड के साथ मिलकर Co_2 को उत्पन्न करता है। इस साल्ट का १ ग्राम चूर्ण १N H Cl के २५० मिलि लि० को उदासीन करके पेट के PH को ४ तक कर देता है । भोजन के आधे या एक घण्टे बाद तथा रात को २ चम्मच की मात्रा मे ४-६ औंस जल मे मिलाकर दिया जाता है। यह कुछ मलवन्धकारक होता है, इसलिए इसे Magnesium Trisilicate के साथ मिलाकर देते है (जैसे Gastrona) Aluminium Sodium Silicate (Neutrelon तथा Sodexol जिनमे कुछ बेलाडोना भी होता है भी इसी प्रकार प्रयुक्त होता है। इसका Mag peroxide के साथ Syntrogel tab Roche के रूप मे तथा Mag. trisilicate के साथ Gelusil, Warner के रूप मे भी प्रयोग किया जा सकता है। इनकी १-२ गोली चबाकर जल पी लिया जाता है। पेट मे जो Aluminium chloride बनता है वह विलीन नही होता, मल से निकल जाता है।

(५) Calcium carbonate या Prepared chalk (३० ग्रेन मात्रा) भी एक अति प्राचीन काल से इस रोग मे प्रयुक्त होने वाला उत्तम क्षार है, पर विशेष मलवन्धकारक हो जाता है, क्योकि इसके पहले Cal chloride और फिर Carbonate बनता है, जो ग्राही है। १ ग्रा० .१ N HCl के २१० मिलि लि० को उदासीन करता है। इस दोष की निवृत्ति के लिये इसे Mag Carb १ ग्राम के साथ मिलाकर देना चाहिए। Alkazyme (B I) मे कैलसि विस्मथ, मैग के Carbonates होते है। Silomag (Alembic) मे ये तथा Alum glycinate होते है। निम्नलिखित क्षारीय मिश्रण भी इस रोग मे प्रयुक्त होते है—

Pulv Magnesium Trisilicate co (B P C) Magnesium trisilicate, heavy magnesium carbonate, Chawk, Sodium bicarbonate, बराबर-बराबर ३० ग्रेन मात्रा मे इस चूर्ण का प्रयोग ४-४ घण्टे पर किया जाता है। रोग अधिक हो तो १-१ घण्टे पर जल मे मिलाकर दे।

Magnesium Oxide २ औंस, Calcium carbonate ४ औंस मिलाकर इस मिश्रण मे से आधा-आधा या एक चम्मच ४-६ औंस जल के साथ दिन मे चार से आठ बार दे सकते है।

Mag Ox ¾–२ औस, Bismuth Sub carbonate ¾ औंस Calc carb ४ औंस मिलाकर ½–१ चम्मच गिलास जल मे दिन मे ४-८ बार दे सकते है।

Magnesium Carbonate Co Tablets तथा Aluminium–Hydroxide Gel तथा Magnesium Trisilicate की मिलाकर बनायी गोलिया (Gelusil) मिलती है। २-३ गोली चूसकर ऊपर से जल पी लिया जाता है। विटामिन 'सी' भी ५० मिलि० मात्रा मे दिन मे २-३ बार दे देना चाहिये।

आमाशय शामक औषधिया या Parasympathetic depressants या Anticholinergic drugs के द्वारा चिकित्सा —

(१) Belladonna आमाशय मे विद्यमान Vagus को अवसन्न करके वहा होनेवाले आमाशय-स्राव तथा आमाशय-गति को कम करता है, जिससे एसिड का अतिस्राव तथा आमाशय मे होने वाला स्तम्भजनित शूल दोनो शान्त होते है। Barbiturates का भी Vagus के द्वारा आमाशय-रस पर शामक प्रभाव होता है। Balladonna की १५-२० बूद (६ सी सी इसका = २ मिलि० Atropine) तथा Phenobarbital elixir १ ड्राम की मात्रा मे भोजन से पहले, या रात को दर्द हो तो सोने से पहले दिया जाता है, परन्तु इसकी मात्रा

बढानी पडती है, जिससे इस औषधि के द्वारा विषैले दुष्प्रभाव भी होने लगते है अत यह औषधि भी निर्दोष नही है। Extract Belladonna ⅙ से ¼ ग्रेन (१५ मिलि० = २ मिलि० Atrop) तथा Phenobarbitone ¼ ग्रेन की मात्रा मे बनी गोलिया या Neutradonna Powder या गोली भी दिन मे तीन बार भोजन से १ घटे या सोने से पहले दी जाती है। Atropine Sulphate (Neurotropic, Antispasmodic) ५ मिलि० दिन मे दो-तीन बार दिया जा सकता है। या Gastrindon (Indopharma) दे सकते हैं। रात को दर्द हो तो एक मात्रा १० बजे के भोजन से पहले दे दें । शामक (Sedative) औषधियो से इस रोग मे अवश्य लाभ होता है । निद्रा कम होती हो उनकी निद्राजनक मात्रा रात को देनी चाहिए। रात को Amylobarbitone (Amytal) या Butobarbitone (Soneryl) १॥ ग्रेन दें।

(२) Trasentin (Neurotropic Antispasmodic) भी इस रोग मे १। ग्रेन की मात्रा मे ३ बार देने से स्तम्भ शामक होता है। स्तम्भ शामक तथा क्षारौषधियो को मिलाकर बनायी औषधिया (Pyrapen B I Tab Sebella, Sodexol) भी दी जाती है । Bellad तथा Phenobarb से बनी Bellergal (Sandoz) Belonal (E I Pharma) दिन मे ३-४ गोली देने से भी स्तम्भ शान्त होता है। Suavitil १-३ मिलि० दिन मे ३ बार इसी प्रकार स्तम्भ शामक होता है।

अन्य Anticholinergic औषधे अर्थात् Synthetic Atropine substitutes जैसे Propantheline (Probanthine bromide Searle, तथा Sedalcer) १५ मिलि० तथा Oxyphenonium bromide (Antrenyl Ciba) ५ मिलि० मात्रा मे Poldinemethyl sulphate (Nacton) ४ मिलि० Glycopyrrolate (Robanul) ४ मिलि० Vagus के लिये शामक (या Neurotropic antispasmodic) होने से Acid की उत्पत्ति तथा Smooth muscles के स्तम्भ को शान्त करती हैं। ऐसे Bromide जैसे Methscopolamine (Pamine) १० मिलि०, Penthienate (monodial) ५ मिलि० भी ठीक है। इन्हे भोजन से आधा घण्टा पूर्व दिन मे तीन बार दे सकते है। इनमे Belladonna का दोष नही, परन्तु इनसे आमाशय-गति के मन्द हो जाने से एसिड-स्राव अधिक होने का दोष तो होता है। Glaucoma, प्रोस्टेट वृद्धि, हृदय की असमर्थता मे इनका प्रयोग नही करना चाहए। ५ मिलि० Stilboestrol के दिन मे २ बार कुछ मास तक देने से पुरुषो मे Duodenal Ulcer ठीक हो जाता है। Carbenoxolone (Biogastrone) के १ ग्राम मात्रा मे दिन मे ३ बार देने तथा फिर ५० मिलि० मात्रा करके जारी रखने से आमाव्रण ठीक होता है ऐसा कहा जा रहा है। Milkdrip-method :—नाक से Ryle's tube पेट मे प्रविष्ट कर निरन्तर बूंद-बूंद करके २ सप्ताह दूध देते रहने से तथा दो समय मुख द्वारा मृदु भोजन देने से बहुधा रोगी को लाभ प्रतीत होता है, पर स्थायी नही भी होता। विटामिन्स मे से विटामिन 'सी' एव विटामिन 'बी' कम्प्लैक्स के प्रयोग से भी इस रोग मे कुछ लाभ प्रतीत होता है।

आमाशयव्रण-जनित रक्तवमन की चिकित्सा

रक्त वमन होने पर रोगी को बिस्तर पर लिटाये रखना चाहिये तथा उसकी चारपाई के पायते को कुछ ऊचा उठा देना चाहिये । बरफ चूसने के लिये देनी चाहिये तथा बर्फ वाला दूध घूट-घूट देना चाहिये तथा आमाशय प्रदेश पर बरफ की टोपी रखनी चाहिये । सारे शरीर को गर्म रखने का यत्न करना चाहिये । रक्त वमन को देखकर रोगी व्याकुल होता है इसलिये उसके मस्तिष्क को अवसन्न करने के लिये Codeine Phosphate ½—१ ग्रेन त्वचा द्वारा या मुख द्वारा देना चाहिए या Sodium Phenobarbitone ½—३ ग्रेन त्वचा द्वारा दे देना चाहिये । इसके बाद कुछ दिन तक Phenobarbitone का मुख से प्रयोग करते रहना चाहिये । रोग की तीव्रता मे Dihydromorphinone (Dilaudid) ४ मिलि० ६-६ घटे पर त्वचा द्वारा देना चाहिये या Morphine hydr ¼ ग्रेन तथा Atropine Sulph $\frac{1}{100}$ ग्रेन का सूचीवेध दे देना चाहिये । ४-६ घटे बाद फिर इन्हे दुहरा सकते है। रक्त के Transfusion से विशेष लाभ होता है विशेषत यदि रजक द्रव्य ५० प्रतिशत से कम हो तथा रक्तकण २ ५ मिलि० से कम हो, रक्तभार ८० Systolic से कम हो, नाडी १०० से अधिक हो । रोगी की नाडी प्रति घण्टा बाद तथा रक्तभार चार-चार घण्टे पर देखते रहना चाहिये। मल को भी देखते रहना चाहिये उसमे छुपा हुआ रक्त तो नही है । यदि नाडी-गति तीव्र हो, उसका मुख पाण्डुर हो, स्वेदयुक्त हो, रक्तभार गिर गया हो, रोगी वृद्ध हो, पहले भी रक्तस्राव हो चुका हो, रक्तस्राव अधिक

हो, शरीर शीतल हो जाये तो Shock के सूचक ये लक्षण दु खसाध्यता के सूचक होते है। ऐसी अवस्था मे रक्तदान के १-२ पाइण्ट मात्रा मे देने से लाभ हो सकता है। नाडी अति तीव्र हो या गिनी न जा सकती हो, रक्तभार भी गिरा हुआ हो तब भी रक्तदान से लाभ हो जाता है। वृद्ध मे रक्तदान अत्यावश्यक है। तुरन्त रक्त न मिले तो ६% Dextran Solu या ५% Dextrose in N Saline १ लिटर दे देना चाहिये। इसके कुछ घटे बाद ५% Dextrose in water दे देना चाहिये, Oxygen भी देनी चाहिये।

रोगी को दो दिन ४-४ औंस घूट-घूट बरफ से हलका किया दूध कई बार देना चाहिये। एक-एक औंस जल मुख से देते रहे या चार-चार घटे बाद ४-६ औंस नार्मल सेलाइन ५ प्रतिशतक ग्लूकोज मिलाकर धीरे-धीरे गुदा द्वारा दे अथवा शिरा द्वारा दिन भर मे दो पाइण्ट नार्मल सेलाइन दे देना चाहिये। एक-दो दिन बाद चार-चार औंस दूध और क्रीम का मिश्रण एक-एक घण्टे के अन्तर से दिन-रात मे १२ बार दिया जा सकता है। रात को भी एक-दो बार इतना दूध दे सकते है। ऐसे निर्बल रोगी को निराहार रखने से बडी हानि हो सकती है, इस बात का ध्यान रखना चाहिये। सब्जियो के रसे भी इतनी मात्रा मे दिए जा सकते है। १-२ ग्रामCalcium carbonate दूध के साथ तीन-चार बार देने से या Aluminium Hydroxide Gel १, २ ड्राम पाच-छ बार देने से रक्तवमन का भय नही रहता, पर ये औषधिया मलबन्धक हैं। इसलिये दिन मे ३-४ बार Magnesium carbonate भी दे देना ठीक है। उत्तम तो यह है कि Alum Hydrox. तथा Mag trisilicate मिश्रण (Gelusil) या Aludrox ½ औंस दूध के समय के बीच-बीच मे देवे। मलबन्ध के दूर करने के लिए किसी विरेचक औषधि का प्रयोग करना ठीक नही। दो-तीन दिन बाद वस्ति द्वारा आतो को साफ कर सकते है। रक्त की कमी को देखते हुए Ferrous Sulphate, Gluconate या Succinate ३ ग्रेन मात्रा मे ३ बार तथा vita C २०० मिलि० मात्रा मे ३ बार ५ दिन तक दे देने चाहिये। प्राय एक या दो सप्ताह बाद मल मे से रक्त लुप्त हो जाता है। रक्तस्राव बार-बार हो तो शल्यकर्म (Vagotomy with Antrectomy) आवश्यक हो जाता है।

Perforation के लिए १०० मिलि० मॉर्फीन का इन्जेक्शन तथा Rile's tube पेट मे लगाकर निरन्तर Suction करके पेट को ऊपर से साफ करे तथा अस्पताल मे चिकित्सा करायें।

आयुर्वेद में परिणामशूल

तीक्ष्णाग्नि प्रकृति के व्यक्तियो में अत्युष्ण, तीक्ष्ण, विदाही भोजनो के लेते रहने से तथा क्रोधादि तीक्ष्ण मानसिक भावो से ग्रस्त रहने से भोजन के जीर्ण हो जाने के बाद दोपहर के समय या मध्य रात्रि के समय नाभि पर जो तीव्र शूल होता है उसे परिणामशूल या पैत्तिक शूल कहा गया है। तथा उसके कारण होने वाली उष्ण और छाती को जलाने वाली छर्दि को पित्त छर्दि कहा गया है।

(सु० उ० ४२, श्लो० ८२)

चरक ने कहा है कि यदि आमाशय में कफ धातु स्वभावत. क्षीण हो अर्थात् कफस्राव कम होता हो तथा उष्ण-तीक्ष्णगुण आहारो से आमाशय में पित्त की वृद्धि हो अर्थात् पाचकाग्नि तीव्र हो और साथ ही आमाशय में वायु के प्रकोप के कारण वह विक्षोभशील भी हो और उसमें से भोजन द्रव शीघ्र आगे चला जाता हो तो वहा की बढी हुई पाचकाग्नि को जब वहा पचाने के लिये आहार नहीं मिलता तो वह आमाशयगत धातुओ को पचाने लगती है। ऐसी अवस्था में रोगी को भोजन करने पर तो शान्ति पड जाती है पर भोजन के पचने के बाद ही शूल का लक्षण आरम्भ हो जाता है। इसे तीक्ष्णाग्नि या अत्यग्नि रोग कहा जाता है।

(च० चि० १५, श्लो० ६५।६६ तथा श्लो० २१८।२२८)

विदग्धाजीर्ण तथा परिणामशूल के वमन, शूल, अजीर्ण आदि लक्षणो की शान्ति के लिए निम्नलिखित योगो में से किसी का प्रयोग दिन में २-३ बार करना चाहिए।

(१) एलादिचूर्ण (यो र)–इलायची छोटी, दालचीनी, तेजपत्र, वशलोचन, हरड, आवला, चन्दन श्वेत, धनिया, पिप्पलीमूल १-१ भाग, खाण्ड सर्वतुल्य।

(२) भूनिम्बादि चूर्ण (वैद्यजीवन)–चिरायता, नीमपत्र, त्रिफला, पटोल, वासा, गिलोय, पित्तपापडा, भृंग-राज समान भाग का चूर्ण मधु से।

(३) पञ्चनिम्बादिचूर्ण (भै र)–निम्ब पचाग १, विधारा २, सत्तू १० भाग, मधु से चाटने या खाण्ड मिलाकर पीने से लाभ होता है।

(४) धान्यकादि चूर्ण (र. र.)–धनिया, चन्दनश्वेत, मोथा, इन्द्रयव समान भाग शहद से।

(५) अविपत्तिकर चूर्ण (भै र)-त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विडलवण, विडग, छोटी इलायची, तेजपत्र, १-१ तोला, लौंग चूर्ण ११ तो त्रिवृत ४४ तो खाण्ड ६६ तोला। मात्रा ३ माशा।

(६) धात्री लौह (च. द.)–आवला ८, लोहभस्म ४,

मुलहठी २ भाग मिलाकर गिलोय के क्वाथ की ७ भावना दें। मधुघृत से लें।

(७) छिन्नोद्भवादि क्वाथ (भै. र.)—गिलोय, नीमपत्र, पटोल, त्रिफला का क्वाथ शहद से।

(८) वासादि क्वाथ (भै र.)- वासा, गिलोय, पित्तपापड़ा, नीम छाल, चिरायता, भांगरा, त्रिफला, पटोल क्वाथ मधु से।

(९) त्रिफलादिक्वाथ (ग. नि)—त्रिफला, पटोल, कटुकी, मुलहठी क्वाथ, मधु से।

(१०) त्रिफलामण्डूर (भै. र.)—त्रिफला, मण्डूर चारो समान भाग मिलाके आधा माशा मात्रा में मधुघृत मे लें।

(११) लीलाविलास रस (यो. र.)—पारा, गंधक, ताम्र, अभ्रक, अनारदाना सम भाग मिलाके लघु पुट दें। फिर बहेडा १, आवला २, हरड ३ भाग को आठ गुणा जल में पका कर अष्टमांश शेष रखकर उसकी २५ बार भावना दें। फिर २५ भावना भागरे के रस की दें। मात्रा आधा माशा, दिन में २ बार।

(१२) सूतशेखर रस (भा. भै. र.)—पारा, गंधक, स्वर्ण, टकण, वत्सनाभ, त्रिकटु, धतूरबीज, ताम्र, चतुर्जातक, शख, बिल्व, कचूर, समान भाग को भृंगराज रस की कुछ भावनाएं दें, एक-एक रत्ती की गोलियां दिन में ३ बार दें।

(१३) अम्लपित्तान्तकरस (भै.र.)—रससिन्दूर, ताम्रभस्म लोहभस्म १-१ भाग, हरीतकी ३ भाग। एक रत्ती की गोली।

(१४) भास्करामृताभ्र (भै. र.)—अभ्रकभस्म को वासा, गिलोय, पित्तपापडा, नीम, भांगरा, मुस्ता, शतावरी के रस से पहले एक-एक भावना दें, फिर उसे शतावरी-स्वरस की १२ भावना दें।

(१५) खण्डामलकी (ग नि.)—पेठारस ३ सेर, आवला रस २ सेर, खाण्ड ३ सेर। पका, गाढ़ा करके, उसमें पिप्पली, जीरा, १०-१० तोला, धनिया, मुस्ता, चतुर्जातक १-१ तोला मिलाय। शहद से इसे १-१ तोला लें।

(१६) एरण्डादि भस्म (यो र.)—एरण्डमूल-शम्बूक-गोखरू, पुनर्नवा समान भाग को हाडी में बन्द कर भस्म करें। छान कर २ माशा की मात्रा में दिन में २ बार गर्म जल से लें।

(१७) त्रिनेत्ररस (र. र.समुच्चय)—पारा१ भाग, ताम्रभस्म ३, गंधक ९ भाग मिला निम्बु से मर्दन कर लघु पुट दें। इसे १ रत्ती मात्रा में सुहागे की खील के साथ घृत-मधु मे लें।

(१८) पर्पटादिक्वाथ (ग. नि.)—पित्तपापड़ा, चन्दनश्वेत, मोथा, सोठ, खस, नेत्रवाला समान भाग का क्वाथ।

(१९) द्राक्षादिघृत (भै. र.)—द्राक्षा, गिलोय, इन्द्रजौ, पटोलपत्र, खस, आवला, मोथा, चन्दन, त्रायमाण, पद्माख, चिरायता, धनिया के कल्क मे साधित घृत ½ तोला की मात्रा में भोजन के साथ लें।

(२०) शतावरीघृत (भै. र)—शतावरी के कल्क से बराबर दूध के साथ साधित घृत ½ तोला की मात्रा में।

(२१) प्रवालपञ्चामृत (यो. र.)—प्रवालभस्म २, मुक्ता, शंख, शुक्ति, कपर्द-भस्म १-१—भाग। ४ रत्ती।

पथ्यापथ्य—विदग्धाजीर्ण तथा परिणाम शूल में मृदु तथा अविक्षोभक आहार लेना चाहिए। जौ, गेंहू, मूंग, पुराना चावल, सत्तू, मधु आदि पित्तशामक आहार लेने चाहिए। तिल, माष, कुलथी, सिरका, खटाई, कटु आहार, तले हुए गुरु आहार, दही, मद्य अपथ्य हैं।

आमाशय का कंसर

Carcinoma of the Stomach

कैंसर का रोग शरीर के अन्यान्य अंगों की अपेक्षा महास्रोतस् मे अधिकतर होता है। कैंसर रोगियों मे आधे 'महास्रोतस् कैंसर' के होते हैं। वह भी आमाशय मे और ५५-६५ वर्ष की आयु के नागरिक पुरुषो में अधिक होता है। जिससे पता चलता है कि कृत्रिम आहार के लेने वाले मिथ्या आहारी पुरुषो मे जब उनके आमाशय की स्वाभाविक शक्ति क्षीण हो जाती है तब होता है। स्वस्थ आमाशय मे यह कभी नहीं होता। Kennaway अधिक गर्म और चरपरी चीजो मे Carcinogenic tars की उत्पत्ति हो जाती है ऐसा मानता है। बडी आयु मे भी आमाशय की श्लेष्मकला स्वस्थ हो तो यह रोग नहीं होता। [illegible] आमाशय मे [illegible] की अधिक न्यूनता मे ही यह रोग होता है। रोग होने से पहले बहुधा Atrophic Gastritis या Achlorhydria का लक्षण पाया जाता है। स्पष्ट है, [illegible] पाण्डु (Pernicious anaemia) मे इसके होने की [illegible]।

कैंसर की सम्प्राप्ति—

यदि शरीर के किसी [illegible] प्रदेश को [illegible] तो तुरन्त [illegible] हो जाती है [illegible] शान्त हो जाती है।

परन्तु किसी ऐसे अस्वस्थ प्रदेश मे कि जिसके सेलो की शक्ति चिरकालिक विक्षोभ से क्षीण हो गई हो, क्षत किया जाय, तो वहा सेलो की अपनी कार्यकारक शक्ति तो नष्ट हो जाती है पर रोपण करने या विभक्त होकर अपनी क्षतिपूर्ति कर लेने (Mitosis) की जो प्रक्रिया उनमे आरम्भ होती है वह फिर बन्द ही नही होती, जारी रहती है, जिससे वहा पर एक अतिवृद्धि हो जाती है। इस अनियन्त्रित वृद्धि को कैसर कहते है।

सेलो की मीगियो के अन्दर विद्यमान Chromosomes तथा उनके भी अन्दर विद्यमान Genes मे, जो Nucleoproteins के बने हुए है, वृद्धि (Reproduction) का एक सहज गुण रहता है अर्थात् ये ही क्षत प्रदेशो मे होने वाले रोपण (Mitosis) का कारण होते है। इनमे ही इस वृद्धि को नियन्त्रित करने (Growth regulatory mechanism) का भी गुण रहता है। सम्भव है कि चिरकाल तक किसी विक्षोभक कारण के रहने से तथा किसी कैन्सर जनक विष (Carsinogen) से जैसे Coaltar, petroleum से निकले द्रव्यो से या किसी Virus से जब किसी प्रदेश के सेलो की वृद्धि को नियन्त्रित रखने की यह शक्ति विकृत हो जाती है तब वहा एक बार आरम्भ हुई वृद्धि की प्रक्रिया बराबर जारी ही रहती है जिससे इससे उत्पन्न अर्बुद (ट्यूमर) को कैन्सर कहा जाता है। कला (Industry) की वृद्धि के साथ-साथ इस रोग की वृद्धि होने से कला से सम्बन्धित कोई द्रव्य ही इस रोग का कारण प्रतीत होता है।

बहुधा कैन्सर रोग आमाशय के निम्न द्वार के एक इच के अन्दर के भाग मे होता है तथा निम्नलिखित रूप का होता है। इसके साथ आमाशय-शोथ ((Hyperplastic या Atrophic) का लक्षण भी होता है जिससे रसस्रावी सेल क्षीण हुए होते है।

(१) ½–१ इच व्यास के उठे हुए कठोर किनारो के व्रण के रूप मे (Ulcerative या Excavating form) का होता है जो अधिक सुलभ है।

(२) कुकुरमुत्ते (Fungus) का एक गोलाकार मृदु समूह श्लेष्मकला पर उत्पन्न हो जाता है जिसे Polypoid या Papillary form का कैन्सर कहते है। इसके पृष्ठ के क्षत हो जाने से उसमे जीवाणु-सक्रमण तथा रक्तस्राव हो जाता है। यह कम सुलभ है।

(३) आमाशय के निम्न छिद्र की दीवार मोटी तथा कठोर (Sclerotic) हो जाती है जिससे यह छिद्र कुछ तग हो जाता है अथवा आमाशय की सारी दीवार ही मोटी तथा कठोर हो जाती है। इस अवस्था मे कोई व्रण या अर्बुद नही होता, केवल दीवार की मृदुता के स्थान मे कठोरता आ जाती है। जब आमाशय की सारी दीवार चमड़े की तरह कठोर हो जाती है उसे Leather bottle Stomach कहते है। आमाशय की दीवार मोटी होने पर उसकी समाई बहुत कम रह जाती है। यह रूप सबसे कम सुलभ है।

रोग-प्रसरण (Metastasis)

आमाशय मे विद्यमान कैन्सर से उसके सेल Portal vein या रक्त (Hepatic artery) के द्वारा या लसीका-वाहिनियो द्वारा यकृत् मे प्रसरण कर जाते है जिससे यकृत् के पृष्ठ के समीप-समीप के प्रदेश मे छोटी-छोटी ग्रन्थिया या Secondary Cancer हो जाता है, इनसे वह आकार मे बडा हो जाता है। उसके पृष्ठ पर ये कठोर ग्रन्थिया (Nodules) अनुभव भी होती है। यकृत् पर दबाने से स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है। यकृत् मे इस रोग के हो जाने के कारण कभी-कभी रोगी को पीठ पर दर्द प्रतीत होता है या जलोदर भी हो जाता है। यकृत् मे Porta hepatis के प्रदेश मे जहा Portal vein उसमे प्रवेश करती है लसीका ग्रन्थिया सूज जाती है। रक्त के द्वारा इसके सेल फुफ्फुस मे भी जा सकते है।

आमाशय के कैन्सर से उसके सेल आमाशय के बाह्यावरण (Serous Coat) मे Lymphatics द्वारा और फिर वहा से सारे Peritoneum मे फैल सकते है। फिर उसके विक्षुब्ध रहने से उसमे जलोदर का रोग भी हो जाता है। आमाशय के आस-पास मे इसके सेल Caeliac, Lumber, Mesenteric, Mediastinal आदि गाठो या Glands मे फैल सकते है। आमाशय मे से सीधा व्रण भोजन-प्रणाली (Oesophagus) मे भी प्रसरण कर सकता है तथा आमाशय से लौटने वाली लसीका Lymph के द्वारा इसके सेलो के फुफ्फुसगत Lymph Glands मे चले जाने से Left Supraclavicular कोई लसीका-ग्रन्थि भी सूजकर फूल जाती है। उसे देखकर इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिये। परन्तु यह लक्षण इस रोग की पिछली अवस्था मे होता है।

आमाशय-कैंसर के लक्षण

क्योकि कैंसर का रोग बहुत धीरे-धीरे अज्ञात रूप से उत्पन्न होता है अत वर्ष मे जब यह कुछ बढ जाता है तब

इसका पता लगता है। सबसे प्रथम रोगी की भूख नष्ट होने लगती है। थोडा भोजन विशेषत ठोस भोजन लेने से ही पेट भर जाता तथा क्षुधा नष्ट हो जाती है। क्षुधा-नाश के साथ कभी-कभी भोजन के लिये भारी अरुचि रहने का लक्षण प्रधान होता है। अतएव यदि ५५-६५ वर्ष की आयु के एक व्यक्ति को जिसे आयु भर पहले अजीर्ण का कोई कष्ट न हुआ हो अब दो-चार मास से अजीर्ण और अरुचि का कष्ट रहने लगे जो औषधियो के सेवन से भी ठीक न होता हो तो कैन्सर रोग का सन्देह करना चाहिए। इस रोग के सेलो के मास में फैल जाने के कारण आमाशय के मास की शक्ति नष्ट हो जाती है, जिसकी शक्ति (Tone) पर क्षुधा निर्भर है, इसी कारण भूख मर जाती है। इस रोग के साथ क्योंकि आमाशय-शोथ भी रहता है उसके कारण या मास की शक्ति के क्षीण हो जाने से भोजन करते ही पेट मे भारीपन या बेचैनी बढ जाती है और डकार आते हैं। जब भोजन से पेट मे दर्द हो जाय जो भोजन न करने से ही ठीक हो तो इस रोग का सन्देह करें।

व्यापक लक्षण—अजीर्ण के अतिरिक्त इस रोग के रोगी का शरीर शीघ्र कृश होता जाता है, ५-७ सेर भार घट जाता है। त्वचा के नीचे विद्यमान चर्बी सूखती जाती है, त्वचा शुष्क होती जाती है। रोगी के कार्य करने की शक्ति शीघ्र-शीघ्र न्यून होती जाती है, शीघ्र थकावट हो जाती है, पाण्डुता बढती जाती है जिसका एक प्रधान कारण उसमे Intrinsic factor of castle की हीनता या न्यूनता है जिसमे Haemopoietic तत्त्व नही बन पाता, दूसरे कैन्सर द्वारा रक्त के निकलते रहने से भी लोह की कमी हो जाती है। रोगी का बल इस रोग के कारण शीघ्र न्यून होता जाता है।

इस रोग का प्रसरण यकृत् मे हो जाने पर निरन्तर मन्द ज्वर भी रहने लगता है। उसके अन्दर या उसके बाहर इस रोग की ग्रन्थियो के हो जाने से पित्तवाहिनियो मे अवरोध पैदा हो कर कामला का लक्षण हो जाता है। यकृत् मे पोर्टल शिराओं मे अवरोध होकर या Peritoneum मे इस रोग का आक्रमण होने से उसमे शोथ हो जाता है, एव जलोदर उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार कामला और जलोदर इस रोग के सूचक लक्षण होते है।

इन लक्षणो के बाद या कभी-कभी प्रारम्भ से ही आमाशय प्रदेश पर मन्द-मन्द दर्द रहने लगता है जो यद्यपि भोजन खाने से कुछ बढ जाता है, तथापि हर समय ही रहता है। आमाशय मे उत्पन्न यह दर्द भी-कभी पीठ पर होता प्रतीत होता है। जब व्रणयुक्त कैन्सर (Ulcerocarcinoma) निम्न द्वार (Pylorus) पर होता है तो वहा के मासमय स्तर के विक्षुब्ध होने एव उसमे स्तम्भ के उत्पन्न होने से यह दर्द उत्पन्न होता है। साधारण आमाशय व्रण के समान क्षारौषधि के सेवन से यह सर्वथा शान्त नही होता। जितना यह रोग निम्न द्वार के पास होता है उतना ही दर्द जल्दी आरभ होता है, जितना Cardia की तरफ होता है उतना ही इस रोग के दर्द आदि लक्षण देर से होते है, अर्थात् उस अवस्था मे इस रोग के पर्याप्त बढ जाने के बाद लक्षण प्रकट होते है, तब पहले तो भूख मर जाती है और फिर निगरण-काठिन्य (Dysphagia) का भी लक्षण प्रकार होने लगता है।

वमन भी इस रोग का एक लक्षण होता है। क्योकि आमाशय निम्न छिद्र मे इस रोग के कारण कुछ अवरोध (Stenosis) दो-तिहाई रोगियो मे उत्पन्न हो जाता है जिससे आमाशय मे रुका हुआ अन्नद्रव वमन के द्वारा बाहर निकल जाता है। पहले पेट मे कुछ दर्द उठता है और फिर अरुचि होकर वमन हो जाती है, जिससे कुछ देर के लिये दर्द शान्त हो जाता है। वमन से आये अन्नद्रव मे रक्त का अश हो तो वह काले-से रग का होता है। अव्यक्त (Occult) रूप मे तो उसमे रक्त रहता ही है। उसमे एसिड नही होता, क्योकि आमाशय की श्लेष्मकला के क्षीण हो जाने से उसके एसिडस्रावी (Oxyntic) सेल नष्ट हो जाते है। कभी-कभी वमन इस रोग का प्रधान लक्षण होता है। वह पहलेपहल सायकाल ही होती है, बाद मे जब आमाशय अधिक शिथिल होकर फैल जाता है तब वमन अधिक मात्रा मे तथा दिन मे कई बार होती है। कई घण्टे पहले लिया भोजन भी उसमे निकलता है। वमन दुर्गन्धयुक्त भी होती है। उद्गारो मे भी कुछ दुर्गन्ध आ जाती है। रक्तवमन इस रोग मे बहुत कम पाया जाती है। रक्तवमन अधिकत तो Peptic ulcer से कभी-कभी Cirrhosis और Oesophageal Varices के कारण और बहुत कम इस रोग से होता है। आमाशय कैन्सर व्रणयुक्त हो तो मल मे भी अव्यक्त रक्त (Occult blood) मिलता है। २५% रोगियो के आमाशय प्रदेश मे ग्रन्थि को अनुभव किया जा सकता है। Testmeal पर Achlorhydria का लक्षण मिले तो भी इस रोग का निश्चय हो जाता है, इसके कारण यकृत् मे भी Metastases का लक्षण हो सकता है।

एक्स-रे परीक्षा से रोगग्रस्त प्रदेश मे Polypoid growth के होने से उस उभरे प्रदेश मे Barium के न जा सकने से Filling defect होता है। या Gastroscopy से इस रोग का निश्चय किया जा सकता है। आमाशय की श्लेष्मकला के रोग-ग्रस्त भाग मे आमाशय-गति (Peristalsis) नही होती अथवा आमाशय श्लेष्म-

कला विषम आकृति की दीखती है। आमाशय-निम्नद्वार Pyloric antrum तग हुआ दीखता है। अथवा Greater curvature पर व्रण का चिह्न (Crater) प्रतीत होता है। Gastric aspirate की Exfoliative Cytology से Malignant cell देखकर भी इस रोग का पता जल्दी लगाया जा सकता है। Test meal परीक्षा करने पर Hcl का अभाव हो, Organic acids तथा रक्त और पूय सेल्स से युक्त दुर्गन्धित द्रव निकले, मल की परीक्षा करने पर उसमे छिपा हुआ रक्त मिले या Hypochromic Mycrocytic पाण्डु हो, तो भी इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिए। B S R भी बढा हुआ होता है। यह एक घातक रोग है। रोग का पता लग जाने के वाद १-१॥ वर्ष तक प्राय बढती हुई अशक्ति और निर्वलता के कारण रोगी की मृत्यु हो जाती है। इसलिए यदि वडी आयु मे आकर पहली बार किसी को अजीर्ण का रोग हो जाए जिस मे भूख मर जाए, पेट मे दर्द रहने लगे जो दवाई से ठीक न हो तो इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिए और शीघ्र ही पेट को खोल कर उसकी परीक्षा करानी चाहिए।

चिकित्सा —

इसका पता देर से लगता है अत यह एक असाध्य रोग है। Total Gastrectomy तथा Oesophagojejunostomy का शल्य कर्म जितना शीघ्र किया जाय उतना ही इसकी असाध्यता को कम किया जा सकता है। जब तक शल्यकर्म न हो तव तक रोगी को अर्ध द्रवभोजन, जैसाकि ऊपर आमाशय व्रण के लिये कहा है, देना चाहिये। Predigested दूध का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिये ५ औंस कोसे जल मे दो Peptonising tablets (Pancreatin ढाई ग्रेन, सोडा वाईकार्व १० ग्रेन, Sucrose २॥ ग्रेन की वनी गोलिया मिलती है) मिला कर उसे १ पाइंट दूध मे मिश्रित कर हलकी गर्मी (१०८ फारनहाइट) मे १०-१५ मिनट रखकर और उसके वाद दूध को उवाल कर उसका प्रयोग करना चाहिये। ग्लूकोज २५ प्र०श० तथा विटामिन 'सी' २०० मिलि० के ५० सी० सी० के शिरा द्वारा देने से रोगी की शक्ति वनी रहती है। अवरोध के कारण आमाशय मे द्रव सचित होकर वमन हो जाती हो तो Stomach Tube द्वारा क्षारीय जल से (१ पाइंट मे ६० ग्रेन सोडा वाईकार्व) पेट को प्रतिदिन धो देना चाहिए। दर्द के लिये Aspirin १० ग्रेन दिन मे ३ वार दे सकते है। या Morphine hyd ½ ग्रेन Cocaine hyd ⅛ ग्रेन मधु १, ड्राम ब्राण्डी १ ड्राम, जल १ औंस दर्द के लिए दे सकते है।

आयुर्वेद में आमाशयिक कैंसर

आमाशय कैन्सर के कारण जो शूल उत्पन्न होता है उसे आयुर्वेद ग्रन्थो में 'अन्नद्रव शूल' कहा गया प्रतीत होता है तथा कहा गया है कि यह पेट में होने वाला ऐसा शूल है जो रातदिन रहता है, भोजन से पहले भी रहता है, वाद में भी रहता है, पथ्य सेवन से भी शान्त नहीं होता। (मा० नि०)

आमाशय कैन्सर से होने वाली वमन का वर्णन चरक ने त्रिदोषजछर्दि में किया है। उसने कहा है कि जो शूल और अपचन के लक्षणो से युक्त काले रग की रक्तयुक्त वमन बनी हो रहती है अच्छी नही होती, वह त्रिदोषजछर्दि कहाती है। (च०।चि०।२०।१४-१५ श्लो०)

त्रिदोषज गुल्म के नाम से चरक ने कैंसर का वर्णन किया है तथा कहा है कि कोष्ठ में पत्थर की तरह कठोर, बडा दर्द करने वाली, शीघ्र पक जाने वाली एव शारीरिक वल, अग्नि-बल और मनोबल तीनो का अपहरण करने वाली ग्रन्थि होती है, उसे त्रिदोषज गुल्म कहते है।

(च०चि०।५।१७ श्लो०)

सुश्रुत ने त्रिदोषज शूल का जो वर्णन किया है वह कैंसर-जनित शूल प्रतीत होता है। (उ०।४२।८५ श्लो०)

इसकी चिकित्सा का वर्णन आयुर्वेद ग्रन्थो में उपलब्ध नहीं होता।

वातिक अजीर्ण

Nervous, Emotional या Asthenic Dyspepsia

जिस प्रकार कुछ-एक क्रोध तथा विग्रहशील व्यक्तियो मे Vagus के विक्षुब्ध रहने से आमाशय की श्लेष्मकला रक्तवर्ण रहती है तथा उससे रस अधिक उत्पन्न होता तथा आमाशय का वल भी बढा हुआ रहता है (Hypertonia) जिसके परिणामस्वरूप उन्हे पित्ताजीर्ण (एसिडडिस-पेप्सिया) तथा परिणामशूल हो जाते है वैसे ही कुछ-एक व्यक्तियो मे दुख, शोक, भय, निराशा आदि अवसादक भावो से Sympathetic नाडिया शीघ्र उत्तेजित हो जाती है, जिनकी उत्तेजना से आमाशय की श्लेष्मकला फीकी रहती तथा उससे रस की मात्रा तथा आमाशय वल दोनो क्षीण (Hypochlorhydria तथा Hypotonia) हो जाते है, इस प्रकार से उत्पन्न अजीर्ण को वाताजीर्ण (Nervous

Dyspepsia) कहते है। यह १५-२० वर्ष के व्यक्तियो मे होता है।

आमाशय को आने वाली Sympathetic नाडियो का उदय Hypothelamus मे होता है। अत दुख, शोक, भय, निराशा आदि भावो का प्रभाव आमाशय पर पडना स्वाभाविक है। परन्तु स्वस्थ मनुष्य मे मस्तिष्क के निम्न केन्द्र ऊर्ध्व मस्तिष्क (Cortex) के, जो बुद्धि या विवेक का स्थान है, नियन्त्रण मे रहते है। इसलिये शोक, दुख, भय आदि के भाव देर तक नही रहते तथा इनके कारण उत्पन्न अजीर्ण भी देर तक नही रहता। परन्तु जिस व्यक्ति मे ऊर्ध्वमस्तिष्क निर्बल होता है अर्थात् जिस व्यक्ति मे आवेगो के ऊपर बुद्धि का नियन्त्रण शिथिल होता है उसमे किसी मानसिक विक्षोभ (Stress) के कारण वाताजीर्ण चिरस्थायी रूप मे रह जाता है। उदाहरणत, जब किसी व्यक्ति का अपनी अतिप्रिय और वाछित वस्तु से सदा के लिये वियोग हो जाता है या उसकी चिर परिपालित आशा पर तुषारपात हो जाता है अथवा उसे उस अवस्था मे जिसमे वह क्षण भर भी जीना पसन्द नही करता, रहना पडता है तो वह व्याकुल हो उठता है, परन्तु कुछ काल बाद विवेक या बुद्धि का उदय होता है जो धीरे-धीरे दुख या निराशा के भाव पर विजय पा लेती है, एव व्याकुलता जाती रहती है। परन्तु जब ऊर्ध्व मस्तिष्क की प्राणशक्ति हीन हुई होती है अर्थात् मानसिक शक्ति कम होती है तो दुख का भाव न्यूनाधिक रूप मे बना ही रहता है और उसके कारण उत्पन्न वाताजीर्ण या मानसिक अजीर्ण भी जारी रहता है।

इसी प्रकार अतिश्रम से या किसी रोगजनित निर्बलता से या पाण्डुरोग के कारण भी आमाशय के निर्बल हो जाने मे जो अजीर्ण उत्पन्न होता है उसे भी वातिक अजीर्ण कहा जाता है।

इन दोनो अवस्थाओ मे आमाशय रस कम उत्पन्न होता है। आमाशय का बल कम हो जाता है, चेष्टा कम हो जाती है। जिससे एक तो भूख घट जाती है, दूसरे खाया हुआ अन्न जीर्ण नही होता एव भोजन के बाद पेट मे भारीपन या विष्टम्भ (Flatulence) का लक्षण रहता है, डकार आते है। यह भारीपन हवा के कारण से नही, पर आमाशय का बल घट जाने से होने लगता है। इस बेचैनी के भय से रोगी भोजन बहुत कम लेता है। मन मे दुख या निराशा के छिपे हुए भाव के कारण रोगी मे विषाद और न्यूनाधिक उन्निद्रता के लक्षण भी रहते है। भोजन की न्यूनता मे रोगी कृश तथा रग मे फीका-सा हो जाता है। मलबन्ध, हृत्कप (Palpitation) तथा आतक नाश के लक्षण भी रहते हैं। X-RAY परीक्षा करने पर Sphincter Spasm या Pylorospasm अर्थात् आमाशय द्वारा अवरोध तथा आमाशय चेष्टा के कम हो जाने का लक्षण मिलता है। इस आमाशय-स्तम्भ की अवस्था मे आमाशय मे पचनकर्म मन्द हो जाता या बन्द हो जाता है।

मानसिक कारण मे होने वाले क्षुधा-नाश को Anorexia Nervosa कहते है। मन मे छिपा हुआ दुख या निराशा का भाव इस अजीर्ण का कारण होता है और उसका निकालना सुगम नही होता। इससे रोगी अवसन्न (Depression मे) रहता हैं। यह रोग सुख-साध्य नही है। तथापि रोगी को निश्चय दिला देना चाहिये कि पेट मे या हृदय आदि मे उसे कोई विकार नही है। मानसिक दुख की निवृत्ति के लिये किसी कार्य मे उसे लगाने का यत्न करना चाहिये। उसे ग्लूकोज पर्याप्त मात्रा मे लेना चाहिये। भोजन से १-२ घण्टे पहले Insulin का सूचीवेध देने से भूख बढ जाती है। पर्याप्त मात्रा मे भोजन अन्दर जाने पर रोग स्वय शान्त होने लगता है। अत क्रमश उसके भोजन की मात्रा बढाते जाना चाहिये तथा मानसरोग (Depression) की चिकित्सा करनी चाहिये। Phenobarbitone ३०-६० मिलि० ($\frac{1}{4}$-$\frac{1}{2}$ ग्रेन) के २ बार देने तथा रात को निद्रा के लिये इसी के १॥-३ ग्रेन मात्रा मे देने से लाभ होने लगता है। अथवा इसे भोजन से पहले Antispasmodic तथा शामक Sedative औषधि जैसे Tr Belladonna २-४ ड्राम Elixir Phenoborbitone ४ औंस मिलाकर इसकी १ ड्राम मात्रा दिन मे ३ बार दे देनी चाहिये। ऐसी १ मात्रा रात को सोने से पहले भी दे देनी चाहिए।

आयुर्वेद में वातिक अजीर्ण

आमाशय की प्राणशक्ति के कम हो जाने से जो अजीर्ण उत्पन्न होता है उसे आयुर्वेद मे वाताजीर्ण कहते है। आमाशय की दीवार की शक्ति कम हो तो थोडी मात्रा में भोजन लेने से भी पेट में भारीपन, दबाव या अफारा-सा लगने लगता है, जिससे इसे आयुर्वेद में विष्टम्भाजीर्ण भी कहा है। निर्बल आमाशय में विक्षोभ पड़ने पर स्तम्भ (Spasm) उत्पन्न होकर वेदना भी हो सकती है। रोगी वातिक प्रकृति का होता है, इसलिए शरीर में स्वल्प विक्षोभ से भी शिर, शाखाओ आदि में दर्द की प्रतीति होती है। मस्तिष्क सम्बन्धी निर्बलता के कारण उसे मानसिक व्यामोह का लक्षण भी रहता है।

इसी प्रकार शारीरिक निर्बलता से उत्पन्न वाताजीर्ण में

विष्टम्भ आदि लक्षण भी होते हैं। इसकी चिकित्सा के लिये आमाशयस्तम्भ-शामक हींग तथा लहसुन के योग जैसे हिंग्वष्टक, लहसुनाष्टक आदि दिये जाते हैं। आमाशय पर अभ्यग-स्वेदन आदि दिये जाते हैं। मानसिक तथा शारीरिक प्राणशक्ति के बढाने के लिये रोगी को अधिक मात्रा में पोषक आहार दिया जाता है तथा स्वर्ण-लोह आदि के योग चतुर्मुखचिन्तामणि आदि दिये जाते हैं। चरक ने वाताजीर्ण में घृत के साथ दीपन गुण औषधियो के देने का विधान किया है। (चि० १५)

मानस दु ख-शान्ति के लिये सर्पगन्धा आधा माशा दिन में तीन वार देना लाभदायक हो सकता है।

क्षुद्रान्त्र के रोग

Diseases of the Small Intestine

क्षुद्रान्त्र का रचनाविज्ञान तथा क्रियाविज्ञान

रचना :—

आमागय निम्न छिद्र से वृहदन्त्र के प्रारम्भिक भाग (Caecum के Ileocolic Valve) तक की ६½ मीटर लवी भोजन-नाली को 'क्षुद्रान्त्र' कहते हैं। इसका स्रोत ऊपर अधिक चौडा होता है तथा क्रमग नीचे की ओर तेडा होता है। क्षुद्रान्त्र नाभि प्रदेश (Umbilical region) मे रहता है। इसके प्रथम चौडे भाग को आमागय से अन्न-रस के ग्रहण करने के कारण ग्रहणी या ग्रहण्यागय कहते है। क्योकि यह १२ अगुल या १२ इच लम्बा (२५ सेण्टीमीटर) होता है, इसे Duodenum कहते है। आत का यह भाग Mesentery के विना होता तथा अपूर्णवृत्त के आकार का होता है और नाभि के ऊपर कोष्ठ के मध्य प्रदेश मे रहता है। आमाशय-निम्न छिद्र से लगभग तीन-चार इच नीचे ग्रहण्यागय की श्लेष्मकला मे Bile Duct तथा Pancreatic Duct दोनो मिलकर एक स्थान पर खुलती हैं अर्थात् आमागय के समान ग्रहण्यागय भी अन्न के पचने का स्थान है। आमागय तथा ग्रहण्यागय को रुधिर Caeliac मे उत्पन्न Hepatic artery तथा Superior mesenteric artery से आता है तथा इनमे रक्त Portal Vein द्वारा वापस लौटता है। इसकी नाडिया भी Caeliac Plexus से आती है। अर्थात् आमाशय तथा ग्रहण्यागय दोनो को Caeliac Artery से रक्त मिलता है। क्षुद्रान्त्र को तथा दाहिनी ओर की वृहदन्त्र को रक्त Sup mesent artery से आता है।

ग्रहण्यागय से नीचे क्षुद्रान्त्र का जो भाग Mesentery के द्वारा कोष्ठ की पिछली दीवार से वधा है, उसके प्रथम ८ फुट लवे भाग को Jejunum (खाली) कहते है तथा इसके नीचे के शेष आत के भाग को जो १२ फुट लम्बा होता है और जो Hypogastric region मे रहता है, Ileum (twist) कहते है।

क्षुद्रान्त्र की दीवार मे सवसे वाहर Serous layer होती है जो Peritoneum से वनी हुई है। उसमे अन्दर मासमय स्तर (Muscular Layer) है जो वाहर-वाहर दीर्घसूत्रो (Longitudinal fibres) तथा अन्दर की ओर गोल सूत्रो (Circular fibres) मे वनी है। दीर्घसूत्रो के सकोच से वीच का स्रोत चौडा होता, गोल सूत्रो के सकोच से वीच का स्रोत तग हो जाता है। इन दोनो के बीच Auerback का नाडीजाल तथा लसीकावाहिनिया रहती है। इससे अन्दर की ओर स्नायु तन्तु (Connective Tissue) का वना स्तर होता है जिसे Submucous Layer कहते है। इसमे रक्तवाहिनिया तथा लसीकावाहिनिया (Lymph Vessels) रहती है। इसमे Meissner का नाडी जाल Vagal Pleus रहता है। इसके अन्दर चौथा श्लेष्मकला का स्तर (Mucous Membrane) होता है। क्षुद्रान्त्र के प्रारम्भिक भाग मे यह अधिक स्थूल तथा अत्यधिक रक्त-वाहिनियो से युक्त होता है। नीचे की ओर क्रमग यह स्तर पतला होता जाता है। इस स्तर, मे भी वाहर की ओर एक मासमय स्तर जिसे Muscularis Mucosae कहते है, होता है जो श्लेष्मकला मे होने वाली गति का प्रवर्तक है। इसके अन्दर की ओर एक जालाकार स्तर (Retiform Layer) है जिसमे Lymph corpuscles या Nodules तथा रक्तवाहिनियो और वातनाडियो की शाखाये विछी हुई रहती है। इसके अन्दर की ओर एक Basement Membrane या आधार-स्तर होता है जिस पर स्तम्भाकृति सेलो (Columnar Cells) का स्तर रहता है जिसे अन्त -स्तर (Epithelium) कहते है।

Circular Folds —क्षुद्रान्त्र के अन्दर की तरफ श्लेष्मकला की उभरी हुई तहो को Circular folds कहते हैं। आत के ऊपर के भाग मे ये वहुत अधिक तथा नीचे की ओर क्रमग कम होते जाते है। ये भोजन-द्रव को रोक कर पचाने तथा शरीर मे विलीन करने मे सहायक होते है।

Villi —Lacteals तथा रक्तवाहिनियो के वाहर को उभरे हुए अकुरो को Villi कहते है। आत के अन्दर की तह पर ये छाये हुए होते है। इनकी सख्या लगभग ५० लाख कही जाती है। ये भोजन-रस अर्थात् ग्लूकोज Amino-acids, fatty acids, Glycerol को विलीन करने का

कार्य करते हैं। क्षुद्रान्त्र के प्रारम्भिक भाग मे अधिक होते हैं। खाली पेट ये निष्क्रिय, पर भोजन आने पर ये सक्रिय हो जाते हैं।

आंत्र ग्रन्थिया —आत की पाचन-ग्रन्थिया प्रणालिकाकार (Tubular) होती हैं। आत का पाचक रस (Succus entericus) इन्हीं से उत्पन्न होता है।

लसीका ग्रन्थिया (Lymphatic Nodules solitary तथा Aggregated Peyer's patches) — Retiform tissue, Lymphocytes और सूक्ष्म रक्त वाहिनियों की बनी हुई छोटी-छोटी ग्रन्थिया Sub-Mucous Layer या श्लेष्मकला के निचले भाग मे छाई हुई हैं। इनके चारो ओर लसीका (Lymph) रहती है जो Lacteals के साथ सम्बन्धित होती है। क्षुद्रान्त्र के निचले भाग (Ileum) मे ये विशेषत पाई जाती हैं तथा कृमियो या बेक्टीरिया को नष्ट करने का कार्य करती है।

क्षुद्रान्त्र की दीवार मे आने वाली रक्तवाहिनिया एक Serous तथा Muscular तहो के बीच मे तथा दूसरे Submucous Tissue मे जाल बनाती है। फिर इनमे से सूक्ष्म शाखाए श्लेष्मकला, Villi तथा आत्र ग्रन्थियो मे रक्त पहुचाती हैं। वहा से शिराए आरम्भ होकर वापस रक्त लाती हैं। Lacteals भी श्लेष्मकला मे आरम्भ होती है। Mucous तथा Submucous Tissue मे इनका जाल-सा बना होता है जहा से ये Mesentery की बड़ी Lacteals मे आ मिलती है।

क्षुद्रान्त्र मे नाडिया —Parasympathetic अर्थात् Vagus तथा Sympathetic अर्थात् Splanchnic Nerves से Caeliac Ganglion के द्वारा Superior Mesenteric artery के साथ-साथ आती है। ये मासमय स्तर के बीच मे एक जाल बनाती हैं जिसे Myenteric (Auerbach's Plexus) कहते हैं। दूसरा जाल ये Sub mucous Layer मे बनाती है जिसे Sub Mucous (Meissner's) Plexus कहते हैं। इनसे श्लेष्मकला को सूत्र जाते है।

Sympathetic नाडियो की उत्तेजना से क्षुद्रान्त्र की गतिया अवसन्न हो जाती हैं तथा उसके द्वार (Sphincters) अवरुद्ध (Constrict) हो जाते है। उसकी रक्तवाहिनिया भी सकुचित (Constrict) हो जाती हैं। मानसिक आवेग तथा श्रम मे ये नाडिया उत्तेजित होती है। Parasympathetic नाडिया व्यायाम के बाद आराम के समय उत्तेजित होती है। इनकी उत्तेजना से आत्र मास की गतिया भली प्रकार होती है तथा आत्रिक पाचक रस ठीक-ठीक निकलता है।

क्रोध और आवेग से आन्त्र गति तीव्र हो जाती है; भय मे यह गति मन्द (Inhibition) हो जाती है।

क्रिया :—

ग्रहण्याशय मे उसकी ग्रन्थियों (Brunner s Glands) मे एक पाचक रस निकलता है जिसे Duodenal juice कहते है। आमाशय निम्नद्वार के रस के समान यह क्षारीय प्रतिक्रिया का होता है तथा इसमे श्लेष्म-द्रव (Mucus) बहुत होता हे। Vagus की उत्तेजना से यह अधिक उत्पन्न होता है। यह वहा अम्ल से झिल्ली की रक्षा करता है।

क्षुद्रान्त्र मे आमाशय से अम्ल के प्रवेश करने पर Duodenum की झिल्ली मे से Secretin तथा Pancreozymin दो हार्मोन्स उत्पन्न होजाते है तथा उनके रक्त के द्वारा अग्न्याशय मे जाने से वह उत्तेजित होजाता है। क्षुद्रान्त्र मे भोजन का पाचन (Digestion) तथा विलयन (Absorption) दोनो कार्य होते है। अग्न्याशय (Pancreas) की उत्तेजना से आया हुआ Pancreatic Juice जो प्रतिदिन ७०० मिलि लि० मात्रा मे उत्पन्न होता है तथा आत की दीवार मे विद्यमान आत्रिक ग्रन्थियो मे उत्पन्न Succus Entericus जो ३L मात्रा मे प्रतिदिन उत्पन्न होता है अन्न के पाचन का कार्य करते है। अग्न्याशय-रस मे Sodabicarb भी होता है जिससे अग्न्याशय से आया अम्ल उदासीन हो जाता हे। जब ऐसा नही होता तब ग्रहण्याशय के ऊपर के भाग मे Pepsin के द्वारा झिल्ली के खाये जाने से Duodenal ulcer हो सकता है।

भोजन मे लिये प्रोटीन, आमाशय के Pepsin, अग्न्याशय रस के Trypsinogen से आत के Enterokinase के द्वारा उत्पन्न Trypsin से Polypeptides बन जाते हे फिर आत्रिक-रस के Peptidases से या Erepsin नामक पाचक रस से Amino Acids (Aminoradical= NH_2 Acid radical=COOH) के रूप मे बदल कर विलीन हो जाते है और इनका एक बडा भाग यकृत् के सेलो मे जमा हो जाता हे और शरीर के किसी भाग मे इनकी आवश्यकता पडने पर Adrenocortical Hormones की प्रेरणा से ये वहा पहुच जाते है।

भोजन मे लिये स्टार्च, खाण्ड तथा Dextrin आदि (Disaccharides) आत मे पचकर Monosaccharides मे बदल कर विलीन होते है अर्थात् अग्न्याशय रस के Amylase से Maltose मे, जो फिर आत्रिक रस के Maltase से ग्लूकोज मे परिवर्तित हो जाता है। आत्रिक रस के Sucrase से गन्ने की खाण्ड (Sucrose) तथा

Lactase से दूध की खाण्ड (Lactose) पचकर ग्लूकोज के रूप मे विलीन होती हैं। दूध की खाण्ड कुछ Galactose मे तथा Sucrose का कुछ अश Fructose मे भी बदलता हे। (१०, १० प्र०श०) यकृत् के सेल उन को ग्लूकोज मे बदल देते है आत मे ग्लूकोज के कुछ अश के विदाह् से Methane गैस भी उत्पन्न होती है साथ ही CO_2 गैस भी बनती है।

इसी प्रकार भोजन मे लिये स्नेह पदार्थ अग्न्याशय रस के Lipase (Steapsin) के द्वारा Glycerol, Glycerides तथा Fatty Acids मे बदल जाते है। ये Fatty Acids, Alkalis के साथ मिलकर 'सोप' बन जाते है एव शीघ्र ही विलयन योग्य बन जाते हैं। यकृत् से आया पित्त (Bile) जो आत मे आये स्नेह पदार्थ के द्वारा वहा उत्पन्न एक Hormone के पित्ताशय मे जाने मे उत्पन्न होता है इन Fatty Acids के सोप बनने की प्रक्रिया मे सहायक होता है। अत बाइल ठीक-ठीक न निकले अथवा उसमे Bile Salts की न्यूनता हो, जैसा कि यकृद्रोग मे होता है, (Bile Salts, फैट का Emulsion बनाकर उसे Steapsin की क्रिया के लिये तैयार करते है) तो फैट का विलयन ठीक नही होता, वह मल मे बाहर निकल जाता है। Glycerol तथा Fatty acids पृथक्-पृथक् आत मे विलीन होते हे। पर वहा Lymphatics मे मिलकर फिर Neutral fat बन जाते है। रक्त मे फैट Neutral Fat, Fathy acids तथा Cholesterolester और Phospholypids के रूप मे रहता हे। भोजन बाद, उपवास, गर्भावस्था, मधुमेह, Nephrosis मे Lipaemia रहता हे।

क्षुद्रान्त्र के ऊर्ध्व भाग मे पचन तथा विलयन का कार्य विशेषता से होता है। Ileum के निम्नभाग तक पहुचते-पहुचते भोजन का बहुत-सा भोजन-रस विलीन हो लेता है। आतो के सेलो मे स्टार्च को actively विलीन कर लेने का एक सहज गुण है, Phosphorylation के द्वारा वे उसे विलीन कर लेते है। जितनी ही आत की श्लेष्मकला के सेल स्वस्थ होते है उतना ही भोजन-रस का विलयन ठीक होता है अर्थात् जितना उनकी सहज प्राणशक्ति (समान वायु) सम अवस्था मे रहती हे उतना ही पूर्णता से वे भोजन रस को ग्रहण करते हे आतो मे शोथ हो तो कार्बोज आहार का विलयन ठीक नही होता। उनकी प्राणशक्ति को कायम रखने के लिए उनको विक्षोभक द्रव्यो से बचाना चाहिये, तथा रक्त के द्वारा उन्हे आक्सीजन, कैल्सियम, विटामिन बी कम्पलेक्स आदि मिलते रहने चाहिये। भोजन से प्राप्त ग्लूकोज तथा Amino Acids तो रक्त वाहिनियो और Portal Vein से होकर सम्पूर्ण शरीर मे पहुचते हे। भोजन से प्राप्त स्निग्धतत्त्व अधिक मात्रा मे (८० प्र०श०) Lacteals तथा Thoracic Duct के द्वारा शरीर मे पहुचता है। शेष Portal Vein द्वारा यकृत् मे आता है। आतो की मासपेशियो मे सकोच और प्रसार का क्रम अर्थात् जहा भोजन-द्रव्य आता है उसके पिछले भाग मे सकोचन तथा अगले भाग मे प्रसार का क्रम जिसे आन्त्र प्रेरक गति (Peristalsis) कहते है चलता रहता है। आत मे कोई विक्षोभक द्रव्य पहुच जाय तो यह प्रेरक गति तीव्र हो जाती है। भोजन रस को पाचक रसो से साथ मिलाने के लिए Segmentation अर्थात् खण्डाकार-मांसपेशियों मे सकोच क्रम भी होता रहता है।

ग्रहणी रोग, ग्रहणी शोथ चिरस्थायी आमातिसार
Tropical Sprue, Malabsorption syndrome

कारण —ग्रहणी रोग उसे कहते है जब क्षुद्रान्त्र मे स्नेह, ग्लूकोज तथा सम्भवत विटामिनो का शरीर मे विलयन घट जाता है जिससे प्रात दो-एक, मात्रा मे बड़े, ढीले, झागदार बदबूदार दस्त आ जाते है।

दूसरे शब्दो मे नमीवाले गर्म प्रदेशो मे पाया जाने वाला यह एक चिरस्थायी आमातिसार है जिसमे विशेषत स्नेह तथा कार्बोहाइड्रेट्स का विलयन कम हो जाता है। इस रोग के कारण के विषय मे कोई एक निश्चित मत नही है। कुछ एक इसे अजीर्ण मे उत्पन्न होने वाला रोग मानते हैं। नमी वाले गर्म प्रदेश मे मदाग्नि प्रकृति (Achlorhydric) के व्यक्तियों मे, जो प्रोटीन भोजन तो नही लेते पर कार्बोहाइड्रेट और स्निग्ध तत्त्व अधिक मात्रा मे लेते रहते हैं उनमे इन भोजनो मे उत्पन्न हुए Fatty Acids पचन और विलयन की अपूर्णता के कारण, क्षुद्रान्त्र के प्रारम्भिक भाग मे विदग्ध (Ferment) होते रहते हैं। इस अजीर्णजनित विदाह के परिणामस्वरूप क्षुद्रान्त्र की श्लेष्मकला मे वहा Bacteria के प्रभूत मात्रा मे उत्पन्न हो जाने से चिरस्थायी श्लैष्मिक (Catarrhal) शोथ हो जाता है जिससे ग्रहण्याशय की श्लेष्मकला से श्लेष्म-द्रव का स्राव अधिक होता है एव क्षुद्रान्त्र मे भली प्रकार न पचा हुआ आहार द्रव्य आमातिसार के रूप मे निकलने लगता है। इस प्रकार कुछ एक इस रोग को कार्बोहाइड्रेट तथा फैट के चि अजीर्ण के कारण तथा जीवाणु-सक्रमण से उत्पन्न हुआ मानते है। (Manson Bahr १९६०) तथा क्षुद्रान्त्र की श्लेष्मकला के सूज जाने अथवा क्षीण हो जाने के कारण ग्लूकोज, फैट, केल्सियम, लोह, विटामिन 'बी' काम्पलेक्स, Antianaemic Factor आदि के विलीन न हो सकने से इस रोग के लक्षणो

की उत्पत्ति मानते हैं। इस प्रकार उनका कथन है कि भोजन मे विटामिन B_2 की कमी मे नही, पर उसके शरीर मे विलीन न हो सकने से Avitaminosis इस रोग का गौण (Secondary) कारण हो जाता है। इस प्रकार Primary या Secondary Avitaminosis को इस रोग का कारण कहा जाता है।

दूसरे लोग, भोजन मे किसी आवश्यक तत्व की न्यूनता से यह रोग उत्पन्न होता है—ऐसा कहते है। उनका कहना है कि यह रोग दूध, तक्र, मास आदि प्रोटीन भोजनो के सेवन या यीस्ट तथा लिवर के सेवन मे ठीक हो जाता है। अत इन भोजनो मे विद्यमान किसी तत्व, विशेषत Vitamin B_{12} की—जिसे Extrinsic Haematinic Principle कहते है—न्यूनता से उत्पन्न होता है इसलिये वे इसे अभाव रोग या Deficiency Disease कहते है। भोजन मे इसी तत्व की न्यूनता के कारण क्षुद्रात्र की श्लेष्मकला क्षीण (Atrophied) हो जाती है तथा अस्थि मज्जा मे रक्त के कणो की यथावत् वृद्धि न होने से Macrocytic Anaemia (वातिक-पाण्डु) हो जाता है। Castle (१९३५) ने इस बात की ओर पहले ध्यान खीचा। Verzar तथा Mc Dougall (१९३६) का कहना है कि विटामिन 'बी' के कारण स्नेह तथा ग्लूकोज की फास्फोरिक एसिड से मिलकर आत की दीवार मे शीघ्र विलीन होने (Phosphorylation) की जो प्रक्रिया होती है वह B^{12} के अभाव मे ठीक-ठीक नही होती।

कुछ लोग ऐसा मानते है कि आमाशय की श्लेष्मकला से उत्पन्न होने वाले एक रस (Enzyme) Intrinsic Hoematinic Principle की न्यूनता के कारण भोजन द्वारा आने वाला Extrinsic Haematinic Principle (Vit B_{12}) शरीर मे विलीन नही हो पाता जिससे रक्त की यथावत् उत्पत्ति नही होती और फिर उससे मन्दाग्नि होकर यह रोग हो जाता है। इसलिए इसे Deficiency Disease ही मानना चाहिये ऐसा उनका मत है। जो लोग इसे आमाशय की निर्बलता या अजीर्ण से उत्पन्न होने वाला रोग मानते हे, उनके साथ यह मत मेल खाता है।

बहुत से विद्वानो का यही मन्तव्य हे कि Vit B_{12} अथवा Vitamin B Complex के अन्दर विद्यमान Folic Acid या Riboflavin या Nicotinic Acid या Pyridoxin मे मे किसी की न्यूनता के कारण क्षुद्रात्र की दीवार मे विद्यमान-नाडी जालो, अर्थात् मास मे विद्यमान Myenteric Plexus तथा Sub mucous Tissue मे विद्यमान Sub mucosal Plexus के सेलो मे क्षीणता (Degen) हो जाती हे, Muscularis Mucosea क्षीण हो जाता है। जिससे श्लेष्मकला मे से Villi द्वारा भोजन-रस का विलयन ठीक-ठीक नही हो पाता। वे कहते हैं कि यदि क्षुद्रात्र की श्लेष्मकला तथा Muscularis Mucosea का पोषण ठीक-ठीक न हो तो X-Ray द्वारा परीक्षा करने पर क्षुद्रात्र का चित्र जैसा स्वस्थावस्था मे रहता है वेसा न रहकर निर्बल एव शिथिल आत्र का सा हो जाता हे। अर्थात् उसमे Barium के विषम आकृति के ढेर से दीखते है जिसे Flocculation या Segmentation of barium कहते हैं। यह चित्र क्षुद्रात्र की निर्बलता या शिथिलता का सूचक हे जो भोजन मे विद्यमान किसी तत्व के अभाव के कारण उत्पन्न होती हे, अत बहुत सभवत यह एक अभाव रोग हे यद्यपि Leishman आदि का कथन हे कि यह रोग एक Virus के जिसका अभी पता नही लगा सक्रमण से फैलता है। वे कहते है कि Antibiotic औषधियो से इसमे लाभ होता हे। साराश यह हे कि इस रोग के कारण का ठीक पता नही चला। अजीर्ण, किसी वस्तु का अभाव या कोई जीवाणु इस रोग का कारण नही हे। वसा तथा ग्लूकोज के आत मे ठीक विलयन का न होना (Malabsorption) इस रोग की विशेषता है। बची हुई वसा के पचने से उत्पन्न Fatty acids विशेषत Saturated acids आत की झिल्ली के लिए विक्षोभक होते हे जिससे Mucus की उत्पत्ति अधिक होती हे। ये Acids साबुन के रूप मे परिवर्तित होकर भोजन के कैलसियम को पकड कर मल के साथ बाहर निकल जाते है। कार्बोहाइड्रेट्स भी पचकर ग्लूकोज बनते है पर विलीन नही हो पाते। आत मे बचे हुए Fatty acids तथा ग्लूकोज मे जीवाणु रोहण कर जाते है जिससे आत मे गैस उत्पन्न हो जाती है।

सम्प्राप्ति :—

रोगी के आमाशय और क्षुद्रात्र की श्लेष्मकला मे पहले शोथ और रक्तसचय रहता हे। जिह्वा की श्लेष्मकला भी शोथयुक्त रक्तवर्ण होती है। रोग के जीर्ण हो जाने पर इन सब श्लेष्मकलाओ मे क्षीणता (Atrophy) हो जाती है अर्थात् आत की दीवार पतली हो जाती हे, ग्रहण्याशय मे Bacteria भी हो जाते हैं। Villi (अकुर) क्षीण हो जाते हैं। Editor (१९१५) ने बताया है कि Villi मे जो १ मि० मीटर ऊचे, वर्ग मिलीमीटर प्रदेश मे १० के लगभग होते हैं, क्षीणता के चिह्न पाये जाते हैं जिससे फैट,

प्रोटीन, विटामिन्स का विलयन कम होता है। Pancreas के रस के ठीक-ठीक आने से भोजन का स्नेह तथा कार्बोहाइड्रेट पचते तो हैं अर्थात् Fatty acids बनते हैं पर विलीन न होने से विदग्ध हो जाते है अथवा मल द्वारा निकल जाते है। फैट के विलीन न होने से 'ए' 'के' तथा 'डी' विटामिन भी विलीन नहीं होते। ग्लूकोज भी विलीन नही होता, विदग्ध होकर गैस उत्पन्न करता है जिससे पेट भारी रहता है। अस्थिमज्जा मे Magaloblastic Hypoplasia की विकृति होती है।

लक्षण :—

ग्रहणी रोग अज्ञात रूप मे धीरे-धीरे आरम्भ होता है तथा युवको, मध्यमायु के व्यक्तियो मे अधिकतर देखा जाता है। ग्लूकोज तथा फैट के विलीन न होने से अथवा उनके विदग्ध होने से रोगी को विष्टम्भाजीर्ण (Flatulent Dyspepasia) रहता है। खाने के बाद पेट भारी हो जाता है तथा साथ ही अपक्व मल के तीन-चार या पाच-छ बार प्रातःकालीन (Matutinal) दस्त हो जाते है अर्थात् रात भर पेट कुछ भारी रहता है और प्रातःकाल मात्रा मे बड़ा अर्थात् साधारण से ३-४ गुणा (साधारण ३-४ छटाक) ढीला-सा, फीके रग का झागदार खट्टी-सी बदबू वाला बहुत चिकना मलहम जैसा एक दस्त बिना किसी दर्द के हो जाता है, जिसके वेग को रोकना रोगी के लिये कठिन होता है। इसके बाद दोपहर तक दो या तीन या कभी-कभी इससे अधिक बार इसी प्रकार के वेग हो जाते है। क्योकि एक तो इनमे फैट का अश अधिक होता है दूसरे इनमे पित्त (Bile) परिवर्तित होते समय Stercobilin के स्थान पर Leucobilin मे परिवर्तित होता है, अत इनका रग सफेदी मायल होता है। ग्लूकोज के अति मात्रा मे विदग्ध होने तथा इनमे भोजन के अपक्व अश के होने से ये एसिड प्रतिक्रिया के तथा झागदार होते हैं। साधारणत न्यूट्रल फैट (Triglycerides-Unsplit) से Split Fat (Fatty acids तथा Soaps) दुगनी मात्रा मे हुआ करती है पर ग्रहणी रोगी के मल मे यह अनुपात १ ३ का होता है। अर्थात् फैट पचती तो है परन्तु उसका विलयन घट जाता है। साधारण व्यक्ति मे भोजन बाद रक्त की Chylo micrography से पता चलता है कि उसमे फैट बढ जाता है। इस रोग मे Phospholipoid तथा Cholesterol के कम विलयन से उसमे फैट कम होता है। आहार रस का विलयन घट जाने से भी शरीर मे वसा की मात्रा घटती जाती है। शरीर कृश एव निर्बल होता जाता है (Plasma cholesterol तथा Prothrombin घटे हुए होते है)। त्वचा तथा नख खुश्क से दीखते है। मज्जा का पोषण न होने से रक्त का निर्माण कम होता है जिससे वातज पाण्डुता (Megaloblastic Anaemia) का लक्षण उत्पन्न हो जाता है। ५० वर्ष की आयु के बाद यह लक्षण प्रबल रूप मे होता है। इस प्रकार प्रातःकालीन अतिसार प्रात तक रात भर रहने वाला विष्टम्भाजीर्ण या हवा का भारीपन, जीभ का आ जाना, न्यूनाधिक पाण्डुता, जल तथा लवण के अधिक निकलते रहने से उत्पन्न त्वचा की रूक्षता, शरीर की कृशता इस रोग के प्रधान लक्षण होते है। सर्वप्रथम रोग की प्रथमावस्था मे बड़े अतिसार का होना, द्वितीयावस्था मे भार के घटने और तृतीयावस्था मे पाण्डुता के होने के प्रधान लक्षण होते है।

परीक्षा :—

परीक्षा करने पर रोगी मे तापमान, नाड़ीगति, श्वासगति आदि नार्मल ही होते हैं, जिह्वा आई हुई होती है, उसके किनारे लाल होते हैं, उस पर लाल-लाल चकत्ते होते या छोटे-छोटे छाले होते हैं जिससे भोजन के मसाले मुह मे लगते है, रोग पुराना हो तो उसके Papillae क्षीण हुए होते हैं, जिससे वह सफाचट दिखती है। जीभ का आना इस रोग का एक प्रधान लक्षण है। आमाशय द्रव की परीक्षा करने से उसमे एसिड बहुत कम (Hypochlorhydria) मिलता है। रक्त की परीक्षा करने से उसमे Macrocytic Hyperchromic श्रेणी का पाण्डु (वातिक पाण्डु) मिलता है। Colour Index एक या इससे कुछ ऊपर होता है। श्वेत कण कुछ घटे हुए होते है। उनमे Lymphocytes की आपेक्षिक वृद्धि होती है। रक्त मे Calcium की मात्रा घटी हुई होती है (साधारणत १० मिलीग्राम प्रतिशतक होती है, इस रोग मे ८ ८ के लगभग हो जाती है)। साधारणत जब-जब मल मे वसा की मात्रा बढती है वह भोजन के कैल्सियम को निक्षिप्त करके विलीन नही होने देती जिससे रक्त मे उसकी मात्रा घट जाती है। रक्त मे प्रोटीन विशेषत अल्ब्यूमिन की मात्रा घटी हुई होती है, Prothrombin की मात्रा भी कम होती है। रक्त मे रक्तकणो की मात्रा भी घटी हुई होती है। आमाशय रस की परीक्षा करने से Hypochlorhydria का लक्षण मिलता है। Pancreas के पाचक रस नार्मल होते है।

रोगी को ग्लूकोज खिलाकर रक्त की परीक्षा की जाय तो इसके विलयन के मन्द होने के कारण Glucose Tolerance curve अधिक नीचा हुआ या Flat दीखता है। X-Ray परीक्षा करने पर क्षुद्रान्त्र मे Barium के विषम आकृति के ढेर दीखते हैं जिसे Barium का Flocculation

कहते है या Segmentation of the small Intestine कहते है। अर्थात् स्वस्थ आत की Feathery छाया के स्थान पर Flocculation (रुई के ढेर) की-सी छाया दीखती है तथा फैली हुई आत मे वायु भी मिलती है जो आत मे उत्पन्न निर्बलता की द्योतक होती है। Crosby तथा Kugler के तरीके से Intestinal biopsy करने पर (Jejunal mucosa के देखने पर) पता लगता है कि इस रोग मे वहा की श्लेष्म कला (M M) पतली पड जाती है, Villi छोटे तथा चपटे से हो जाते है, Epithelium के मेल्म स्तम्भाकृति न रह कर चपटे से हो जाते है, श्वेत कण विशेषत Lymphocytes, Plasmacells Eosinophils, Epithelium पर तथा Lamina propria मे सचित हुए मिलते है, तथा mucosa के अन्दर श्वयथु Oedema भी मिलता है (R N Chaudhuri)। साधारणत मल मे प्रतिदिन ५ ग्राम से अधिक फैट नही निकलता, इस रोग मे उसकी मात्रा अधिक मिलती है। Prothropmbin time लम्बा हो तो समझना चाहिये कि Vit K का विलयन कम हो रहा है।

भेदक परीक्षा

(१) Pernicious Anaemia —मे रोगी का भार नही घटता।

(२) आन्त्रिक क्षय, (Intestinal T B) मे Blood Glucose Curve Flat नही होता तथा पाडु भी Hypochromic होता अर्थात् रजक द्रव्य की कमी के कारण होता है। अत उन रोगो से इसका भेद करना कठिन नही।

साध्यासाध्यता—

यह रोग बढने-घटने वाला है, बहुत दिन रहता है, और अन्त मे घातक होता है। यद्यपि यह रोग शीघ्र मारक नही होता, युवावस्था मे शीघ्र अच्छा हो जाता है। मध्यमायु मे जब तक आतो को अधिक क्षति नही पहुचती यह याप्य होता है अर्थात् आयुभर इसकी चिकित्सा करनी पडती है। ३ वर्ष इसका पुनराक्रमण न हो तो समझना चाहिए अब नही होगा। वृद्धावस्था मे जब आतो की अन्न को विलीन करने वाली झिल्ली नष्ट हो चुकती है यह ठीक नही होता। ठीक चिकित्सा किये जाने पर पहले अतिसार ठीक होता, जिह्वा की अवस्था सुधर जाती है उसके, बाद अजीर्ण और आध्मान के लक्षण हटते है, उसके बाद पाण्डुता और उसके बाद स्नेह के न विलीन होने का लक्षण शान्त होता है। रोग बार-बार होता रहे, अर्थात् प्रत्येक ग्रीष्म ऋतु मे हो जाए तो रोगी क्रमश कृश हो जाता है। फिर अतिसार प्रात काल ही नही दिन मे भी होते है। फिर पावो मे श्वयथु हो जाता है तथा रग श्यामवर्ण हो जाता है।

उपद्रव —पाण्डुता, नाडीशूल Neuritis, पादश्वयथु, आर्तवनाश आदि इसके प्रमुख उपद्रव होते है।

ग्रहणी रोग की दुग्ध-चिकित्सा (Manson's Milk Treatment) :—

ग्रहणी रोग की प्रधान चिकित्सा भोजन चिकित्सा है। इसके बिना केवल औषध चिकित्सा से लाभ नही हो सकता। इसके साथ औषध चिकित्सा शीघ्र लाभ दिखाती है। क्योकि रोगी की प्राणशक्ति हीन होती है। इसके बढाने के लिये रोगी को शैय्याशायी करके किसी जान्तव प्रोटीन पर, जो सुगमता से शरीर मे विलीन हो सके, रखना चाहिये। इसके लिये चिकनाई से रहित दूध विशेष उपयोगी है (Skimmed—प्रोटीन ८ ९, फैट ५, कार्बो० १२। Whole-प्रो० ७ ९, फैट ९ ६, कार्बो० १२ प्र०श०)। यदि स्नेहरहित दूध १-१ पाव की मात्रा मे दिन मे छ -सात बार दिया जाय अर्थात् दिन भर मे कुल डेढ-दो सेर प्रारम्भ करके तीन सेर तक दे दिया जाय तो रोगी शीघ्र अच्छा होने लगता है। कुछ दिन बाद गाय का दूध बिना चिकनाई निकाले भी दिया जा सकता है। ताजा दूध न मिले तो डिब्बो मे बन्द स्नेह-रहित दूध का पाउडर भी क्रमश बढती मात्रा मे पानी मे मिला कर दिया जा सकता है। Spiulac (Cow & Gate) एक दूध का पाउडर है जिसमे १० ५ प्र० श० फैट, ३४ प्र० श० प्रोटीन, ४५ प्र०श० लैक्टोज होता है, १ औंस पाउडर ८ औंस जल मे मिलाकर २½ घण्टा के अन्तर से दिन मे ६ बार दिया जा सकता है। १ औंस दूध-चूर्ण मे शरीर को १२५ कैलोरी मिलती है। इसी प्रकार Casilan (Glaxo milk protein) या Lactodex (Raptakos) Threptin granules जैसे प्रोटीन भोजन भी दिये जा सकते है। दूध अधिक उबला हुआ न हो तो सबसे सुपच भोजन है साथ ही अनुत्तेजक या शामक (Sedative) है, शरीरस्थ विषो को भी शान्त करता है, हृदय तथा रक्तवाहिनियो के विक्षोभ को दूर करता तथा उत्तम मूत्रल है। गर्म लेने मे निद्राजनक भी होता है। कम उबला मलप्रवर्तक अधिक, उबला मलबन्धक होता है। दूध मे विटामिन 'ए', Thiamine, Riboflavin, Niacin भी होते है। दूध के पाच-छ सप्ताह के प्रयोग से प्राय रोगी की अवस्था सुधर जाती है, फिर उसे दूध के अतिरिक्त किसी

मौसमी फल का रस जैसे आम, सन्तरा, टमाटर आदि का रस भी दिन मे दो-तीन बार दे सकते है। इसके कुछ दिन बाद दूध के साथ एक-एक हलका उबला हुआ अण्डा (५० ग्राम प्रोटीन ६ ७ ग्राम फैट, ५ २ प्र०ग्र०कै०, पो०, सोडि०, सल्फर, और विटामिन 'ए' तथा 'डी' स्वल्प) भी दिन मे कभी-कभी दिया जा सकता है। वह भी हज्म हो जाय तो फिर रोटी का सिका हुआ टोस्ट पहले खुश्क और फिर चुपडा हुआ दूध के साथ दिया जा सकता है। इस प्रकार क्रमश रोगी को ऐसे साधारण भोजन पर ले आना चाहिये जिसमे प्रोटीन आहार अधिक, कार्बोहाइड्रेट तथा फैट कम हो। खाण्ड, गर्म मसाले, मद्य तथा घृत मे तलकर बनाये आहार पदार्थों का सदा के लिये त्याग कर देना चाहिये। सलाद तथा कच्चे खाये जाने वाले कठोर फल भी त्याग देने चाहियें।

औषध चिकित्सा —

(Vitamin B_{12} इसके लिये उत्तम औषध है। इससे ग्रहणी रोग शान्त हो जाता है तथा पाण्डुता भी ठीक हो जाती है। ५००-१००० Microgram की मात्रा मे सप्ताह मे दो बार मास द्वारा कुछ काल देने से सब लक्षण शान्त हो जाते है। फिर सप्ताह मे एक बार और फिर दो या तीन सप्ताह मे एक बार इसकी यह मात्रा देनी चाहिये। भोजन चिकित्सा के साथ यह औषध लाभदायक होती है।

Castle ने पहले-पहल Liver Extract को इस रोग के लिये लाभदायक बताया। Crude Liver Extract ४ सी० सी० की मात्रा मे एक सप्ताह तक प्रतिदिन मास द्वारा दिया जाता है। इसी मात्रा मे कुछ मास तक सप्ताह मे दो बार दिया जाता है।

Spies ने पहले-पहल Folic Acid को इस रोग के लिये उपयोगी बताया।, Folic Acid (Folvite Lederle, Folinate Alembic, Folicindon) भी उपर्युक्त दोनो औषधियो के समान एक ग्रहणी रोग शामक औषधि है। इसके १५, मिलिग्राम दैनिक मात्रा मे देने से रोग के लक्षण शान्त होने लगते है। एक सप्ताह बाद इसकी मात्रा पहले १० फिर ५ मिलिग्राम दैनिक कर देनी चाहिये। पाण्डुता के लिये यदि वह Hypochromic microcytic हो तो Fersolate २ गोली प्रतिदिन २-३ बार दी जा सकती है। Corticosteroids (Prednisolone) ५ मिलि० ३ बार प्रतिदिन २ सप्ताह) के प्रयोग से पाण्डुता मे बडा लाभ होता है। इनके द्वारा आतो मे पोषक द्रव्यो अर्थात् Nitrogen, fats आदि का विलयन बढ जाता है। कैल्सियम की न्यूनता के लिये Cal Lactate या Gluconate को १५ ग्रेन से ३० ग्रेन तक दिन मे ३ बार दिया जा सकता है या Cal. Chocolate tab Sandoz को या Ostocalcium या Calciostelin को दिया जा सकता है। विटामिन 'डी' ५-२० हजार यूनिट भी देना चाहिये। इस रोग मे विटामिन 'बी' काम्प्लैक्स की भी शरीर मे न्यूनता होती है अत Thiamine १० मिलि०, Riboflavin ५ मिलि०, Nicotinamide ५० मिलि० की मात्रा मे दिन मे २ बार दे देने चाहिये। जिह्वा के कष्ट को Nicotinic Acid से तथा Angular Stomatitis और ओष्ठ शोथ (Cheilitis) को Riboflavin से लाभ हो जाता है। French का कथन है कि Antibiotic औषधियाँ जैसे Tetracycline या Chloramphenicol १ ग्राम दैनिक तथा न घुलने वाली Sulpha औषधियो से इससे शीघ्र लाभ होता है। उनसे आतों मे भोजन को विलीन करने की शक्ति फिर आ जाती है। अत जीवाणु भी इस रोग का कारण प्रतीत होते है। रोगी के अच्छा हो जाने पर भी उसे Folic acid तथा विटा बी का प्रयोग स्वल्प मात्रा मे करते रहना चाहिए।

आयुर्वेद में ग्रहणी रोग :—

प्रधानत वातिक अजीर्ण, या प्राणशक्ति की हीनता के कारण उत्पन्न अजीर्ण (Asthenic Dyspepsia) के परिणाम रूप में हुए ग्रहणी रोग को वातिक ग्रहणी कहा जाता है। इसमें अग्नि बल, शरीर-बल तथा मानसिक बल सभी मन्द होते हैं तथा रोगी कृश होता है।

प्रधानत श्लैष्मिक अजीर्ण (Hypochlorhydric) के उपद्रव रूप में उत्पन्न ग्रहणी रोग को श्लैष्मिक ग्रहणी रोग कहा जाता है। इसमें रोगी कृश नहीं होता पर दुर्बल होता है। प्रथम आयु में यह रोग पाया जाता है। आमातिसार के वेग दोनो में ही होते हैं।

चरक ने कहा है कि अग्नि की दुर्बलता के परिणामरूप में ग्रहणी अपक्व अन्न को जब आगे फेंकने लगती है तो इससे होने वाले अपक्व या आम अतिसार को ग्रहणी कहते हैं।

(च०।चि०।१५। तथा सु०।उ०४०।श्लो० १६०।१७०)

ग्रहणी रोग की चिकित्सा आयुर्वेद में अजीर्ण की तरह की जाती है अर्थात् आमपाचक औषधियो द्वारा दस्तो को बन्द किया जाता है तथा लौह का प्रयोग किया जाता है। एक मास या १५ दिन के लिये रोगी को केवल तक्र या चिकनाई निकले गाढे मट्ठे पर रक्खा जाता है अथवा चिकनाई निकले तक्र को कपडे में लटकाकर उससे बने गाढे पनीर का सेवन उचित मात्रा मे कराया जाता है। श्लेष्म प्रधान ग्रहणीरोग मे तक्र के सेवन के साथ पाचन-दीपन औषधियो जैसे लशुनाष्टक, हिग्वष्टक, लवगादिचूर्ण, जातीफलादिचूर्ण,

पिप्पली चूर्ण आदि का तीन-तीन माशा मात्रा में दिन में तीन बार सेवन कराया जाता है। शंखवटी, नृपतिवल्लभ रस, आदि दीपन-पाचन गुण-युक्त रस भी दो-दो रत्ती मात्रा में इस रोग के लिये बड़े उपयोगी हैं।

वातप्रधान ग्रहणी रोग में लोह, गोमूत्र तथा ताम्र, अभ्रक आदि के योग से बने पचामृत लौह मण्डूर, पचामृत पर्पटी, नृपतिवल्लभ आदि का दो-दो रत्ती मात्रा में दिन में तीन बार प्रयोग किया जाता है। पर्पटी को शंखभस्म दो रत्ती तथा जीरा चार रत्ती के साथ मिलाकर देना चाहिए या तीसरे-चौथे दिन पर्पटी की १ रत्ती दैनिक मात्रा बढाके इसे १ माशे तक लाकर एक सप्ताह बाद घटाते जाते हैं। तक्र या गोक्षीर के पथ्य के साथ इस प्रकार इन औषधियो का एक डेढ मास प्रयोग करने से ग्रहणीरोग प्राय: अच्छा हो जाता है। आयुर्वेद में तक्र को इस रोग के लिए विशेष उपयोगी कहा है। (च०।चि०।१५) (सु०उ०।४०)

ग्रहणी रोग के लिये निम्नलिखित किसी योग का प्रयोग करने से लाभ हो जाता है—

(१) लौहपर्पटी (भै.र.)—पारा २, गन्धक २, लोह भस्म २ की पर्पटी बनाई जाती है। २-३ रत्ती की मात्रा में घृत-मधु से दिन में १ बार।

(२) पञ्चामृतपर्पटी (भै र)—गन्धक ८, पारा ४ लोहभस्म २, अभ्रकभस्म १, ताम्रभस्म ½ तोला की पर्पटी बनायें। ३-४ रत्ती घृत-मधु से।

(३) पञ्चामृतलौहमण्डूर (भै र)—लौह, ताम्र, अभ्रक, गंधक, पारा, त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विडग, चित्रक, पिप्पली, चिरायता, दोनो हल्दी, पुष्करमूल, अजवायन, दोनो जीरे, कचूर, धनिया, चव्य १-१ तोला, मण्डूर १३ तोला। पहले मडूर को चार गुणा गोमूत्र में तथा ८ गुणा पुनर्नवा क्वाथ में पकाना चाहिए। तब उसमें अन्य औषधिया मिलायें। मात्रा ४ रत्ती।

(४) नृपतिवल्लभ रस (भै.र.)—जायफल, लौंग, मोथा, दालचीनी, छोटी इलायची, सुहागा, जीरा, तेजपत्र, हींग, अजवायन, सोंठ, सैंधव, लोह, अभ्रक, ताम्र, पारा, गधक प्रत्येक ८ तोला, मरिच १६ तोला। आमलकी स्वरस से मर्दन करके २ रत्ती की गोलिया बनायें। दिन में २-३ बार दें।

(५) कणादिलौह (र मा स.)—पिप्पली शुण्ठी, त्रिफला, त्रिजातक, विल्व, चन्दन, सुगधवाला १-१ भाग, लोहसर्वतुल्य, मात्रा २-३ रत्ती।

पथ्यापथ्य—मूंग-अरहर की दाल, चावल, दूध, दही, तक्र तथा जागल मांस पथ्य है। गुरु, कठोर तथा पिच्छिल आहार अपथ्य है।

अतिसार (Diarrhoea-Enteritis, Enteros-Intestine)

भुक्तान्न जब आत मे से अति वेग या Hyper-peristalsis के साथ 'सरण' करने लगे जिससे खाया हुआ द्रव्य छ-सात घण्टो मे ही मल के रूप मे बाहर निकलने लग जाय तो उसे 'अतिसार' कहते है। इसमे आत की भोजनद्रव को ग्रहण करने की शक्ति बहुत घट जाती है। ऐसी सूजी हुई आत फैट को सर्वथा सहन नही करती। कार्बोहाइड्रेट को ग्रहण नही करती, केवल प्रोटीन को लेने की शक्ति रखती है।

(१) श्लैष्मिक अतिसार, आमातिसार (Catarrhal enteritis or Dyspeptic or Dietetic Diarrhoea)—

ग्रीष्म ऋतु मे आमाशय मे एसिड की मात्रा स्वभावत कम होती है। उस समय यदि अधिक मात्रा मे दुष्पच आहार लिया जाय और वह अनपच ही क्षुद्रान्त्र मे पहुच जाय तो वह उसकी श्लेष्मकला के लिये विक्षोभक हो जाता है। भोजन मे लिया स्निग्ध तत्व तथा कार्बोहाइड्रेट अनपच अवस्था मे क्षुद्रान्त्र के लिये विशेष विक्षोभक होते है। अर्थात् इनके Fatty Acids तथा ग्लूकोज विदग्ध होकर श्लेष्मकला पर ऐसा दुष्प्रभाव करते है कि वह फूल जाती है, उस पर चिकना स्राव छा जाता है। उसकी पाचक ग्रन्थियो के स्राव तो सूख जाते है, श्लेष्म ग्रन्थियो के स्राव की मात्रा बढ जाती है। इसके बढ जाने से भुक्तान्न शीघ्र-शीघ्र आगे सरक जाता है। श्लेष्मकला कही-कही पर क्षत हो जाती है (Follicular ulcers हो जाते है)।

अजीर्ण जनित अतिसार बडो मे भी होता है। पर दो वर्ष से छोटे, गाय-भैंस का दूध पीने वाले, विशेषत खाण्ड मिलाकर दूध पीने वाले बच्चो मे तथा शीघ्र ही अन्नाहार प्रारम्भ कर देने वाले बच्चो मे तो बहुत पाया जाता है। Fatty Acids के मल मे अधिक होने से वह चिकना, मात्रा मे बडा, खट्टी बू वाला होता है। यकृत् से आये पित्त (Bile) के शीघ्र-शीघ्र बह जाने से उसमे स्वाभाविक परिवर्तन के न होने से मल मे हरापन रहता है, कार्बोहाइड्रेट भोजन या खाड के अति विदाह से गैस बहुत उत्पन्न होती है जिससे मल झागदार होता है तथा पेट मे अफारा-सा भी होता है। मल मे आर्गेनिक एसिड्स के निकलने के कारण गुदा के आसपास की त्वचा भी रक्तवर्ण हो जाती है। बालक को दूध हजम न हो तो मल मे Casein की मोटी-मोटी फुट्टिया निकलती है। इस अजीर्णातिसार मे मल अधिक पतला नही होता, न ही विशेष ज्वर होता है।

तीव्र अतिसार, ज्वरातिसार

Infective Diarrhoea, Summer-Diarrhoea, Febrile Diarrhoea

ग्रीष्म ऋतु मे ३ वर्ष से छोटे, गाय-भैंस का दूध पीनेवाले बालको मे, बिगडे हुए दूध द्वारा Spigella तथा Salmonella श्रेणी के किसी जीवाणु के किसी रोगवाहक (Carrier) के द्वारा आ जाने से या Proteus Morgani B Coli, Pseudomonas aeruginosa, B Flexner, आदि किसी के सक्रमण से अथवा किसी विशेष Virus के आमाशय मे जाने से आमाशय-शोथ होकर वमन होने लगती है। वैसे ही आत मे जाकर इनके रोहण कर जाने से क्षुद्रान्त्र की श्लेष्म-कला भी सूज जाती है, Lymph Follicles भी सूज जाते है। श्लेष्मकला तथा उससे नीचे की Submucous Coat मे Round Cells भर जाते है। आन्त्र की श्लेष्मकला से न केवल श्लेष्मस्राव ही अधिक मात्रा मे होता है अपितु जीवाणु-विष का रक्त मे सचार भी विशेष होता है। Portal Vein द्वारा इस जीवाणु-विष के यकृत् मे जाने से उसमे क्षीणता या Fatty अथवा Parenchymatous Degeneration भी थोडा हो जाता है, वृक्को मे भी क्षीणता का लक्षण हो सकता है। रक्त द्वारा शरीर मे इस विष का सचार कर जाने से रोग केवल अतिसार ही नही रहता पर इसमे ज्वर भी अधिक हो जाता तथा इस विष का जो २२ फुट लबी आतो मे से प्रसार कर रहा है, नाडी-मण्डल पर (N System) पर ऐसा विषैला प्रभाव होता है जिससे शिशु अतिशिथिल (Prostrated) हो जाता है। उसके हृदय तथा नाडी पर भी विष का निर्बलताजनक प्रभाव होता है। तापमान के हृदय-केन्द्र तथा Sinoauricular Node पर प्रभाव से तथा Anoxia से नाडी तीव्र होती है। श्वास की तीव्रता तापमान की वृद्धि से या Shock के कारण हुई आक्सीजन की कमी (Anoxia) से या अति-मात्रा मे जल के निकल जाने से हुई अम्लीयता (Acidosis) के कारण से होती है। इस जीवाणुजनित अतिसार मे वमन के साथ अतिसार आरम्भ होते है जो पहले हरे चिकने होते और शीघ्र ही श्वेत तथा पतले हो जाते है। अजीर्णजनित अतिसार इतने पतले कभी नही होते तथा वे तो दूध के बन्द कर देने पर बन्द हो जाते है। ये अतिसार दूध के बन्द कर देने पर भी जारी रहते है। तापमान भी, जो अजीर्णजनित अतिसार मे नार्मल होता या बहुत हलका-सा ही होता है, इसमे १०२-१०३ डिग्री तक पहुच जाता है। दिन-भर मे ५-६ पतले अतिसार हो जाने से बालक मे जल का भाग कम (Dehydration) हो जाता है।, जिससे बालक का भार प्रति पौण्ड के पीछे १ औस के हिसाब मे घट जाता है। यदि बालक की आखे कुछ-कुछ अन्दर धस जाये, उसकी त्वचा मे रूक्षता लगे अर्थात् चुटकी भरने मे वह वैसी ही झुर्रीदार बनी रहे, उसकी जिह्वा शुष्क हो, पिपासा बहुत हो, पेट पटका हुआ तथा उसकी त्वचा फीकी कुछ ढीली-सी दीखे, नाडी-गति और श्वास-गति तीव्र हो, नाडी की Volume कम हो, हृदय के शब्द मृदु (Soft) हो, रक्त भार गिर गया हो, ब्रह्म रध्र (Fontanelle) मे गढा पड जाय, मूत्र की मात्रा घटी हुई हो तो Dehydration या जलशोष के होने का निश्चय कर लेना चाहिये। मस्तिष्क मे ऐसा होने से चिडचिडापन तथा मूर्छा के लक्षण होते है। जल के साथ रक्त मे से साल्ट, प्रोटीन तथा विटामिन भी बाहर निकल जाते है। मल के द्वारा सेलो के बाहर के द्रव मे रहने वाला Sodium तथा सेलो के अन्दर रहने वाला Potassium दोनो अधिक मात्रा मे निकल जाते है। मल द्वारा पोटासियम के अधिक निकल जाने से मूर्छा, तथा प्रोटीन के अधिक निकल जाने से पैरो आदि मे श्वयथु (oedema) का लक्षण हो जाता है।

पतले दस्तो के द्वारा शरीर के बहुत-से द्रव के निकल जाने मे वृक्क फेल होने लगते है। उनके Tubules के सेलो मे Cloudy शोथ हो जाता है। वे मूत्र कम बनाते है जिससे मूत्र द्वारा शरीर के एसिड्स की जो निकासी होती रहती है वह घट जाती है। वे Hydrogen को उत्पन्न करके रक्त के Sodium को Bicarbonate के रूप मे विलीन नही कर पाते जिसमे रक्त मे Base तो घट जाता है तथा Acid की मात्रा बढ जाती है। मल-मूत्र दोनो से Base की निकासी अधिक हो जाती है। अर्थात् अम्लवृद्धि (Acidosis) का रोग हो जाता है (अर्थात् रक्त का PH नार्मल ७ ३-७ ५ मे ७-७ ३ हो जाता है)। रक्त मे Urea की मात्रा बढ जाती है। ऐसी अवस्था मे बालक गहरे परन्तु तीव्र गति के श्वास लेने लगता है। जिसे श्वासकृच्छता (Air hunger) कहा जाता है।

यह रोग दो-तीन दिन मे अच्छा हो जाता है, न हो तो विशेषत १-१½ वर्ष के शिशु के लिये घातक हो जाता है। उसकी मृत्यु अन्दर आये हुए जीवाणु या Virus के शरीर मे सचार कर जाने (Toxaemia) और उसका हृदय पर दुष्प्रभाव पडने से होती है। तापमान बढता जाय, बालक की होश कम होती जाय, नाडीगति तीव्रतर व निर्बल होती जाय जिसका गिनना कठिन हो, रक्त-सचार की निर्बलता मे हाथ-पाव ठडे होने लगे तो जीवाणु-विष के सचार (Toxaemia) का सन्देह कर लेना चाहिए।

बडे व्यक्तियो मे बिगडे हुए भोजन के द्वारा किसी

जीवाणु के विशेषत Bacillus Shigella या Salmonella के आंत में संक्रमण कर जाने से भी या Staphylococci-pygenes के किसी रोगी के स्पर्श द्वारा दूध-मावे-मास आदि में प्रवेश कर जाने तथा बाहर की गर्मी के कारण उसके वहां बढ जाने और उक्त पदार्थों में एक Enterotoxin के उत्पन्न हो जाने से, जो कि फिर उसके उबालने से भी नष्ट नहीं होता, ८-२४ घ० के अन्दर-अन्दर नाभि प्रदेश पर दर्द होकर वमन के साथ-साथ पतले दुर्गन्धित अतिसार होने लगते हैं, तापमान भी १०१ के लगभग हो जाता है। विषमचार (Toxaemia) तथा अनेक अतिसार हो जाने के कारण रोगी शिथिल हो जाता है, उसके हाथ-पांव ठंडे हो जाते हैं अत ग्रीष्म ऋतु में देर तक पड़े रहे दूध-मावे-मास का सेवन नहीं करना चाहिए। कुछ-एक संक्रामक ज्वरों में भी जैसे Septicaemia में तथा Uraemia में भी अतिसार (Enteritis) हो जाता है।

उपद्रव रूप अतिसार Parenteral Infective Diarrhoea —विषम ज्वर (Malaria या Intermittent diarrhoea) तथा Septicaemia के उपद्रव रूप में भी अतिसार रोग होता है।

वातातिसार
(Nervous Diarrhoea)

क्षुद्रांत्र की श्लेष्मकला में किसी प्रकार के शोथ के बिना ही उसके नाड़ी-मण्डल (Neuromuscular Mechanism) के विक्षोभ के कारण ही भुक्तान्न आगे की ओर शीघ्र सरण कर जाय जैसे कि किसी व्यक्ति में भोजन-पान करने के बाद अर्थात् आमाशय में भोजन या जल आदि के पहुंचने के साथ ही बृहदन्त्र में अन्तप्रेरक चेष्टा होकर मल-त्याग का वेग हो जाया करता है, अर्थात् Gastrocolic Reflex असाधारण रूप में तीव्र होता है, इसे वातातिसार कहते हैं। इसी प्रकार कभी-कभी मन के व्याकुल होने पर या किसी भय की आशंका होने पर Parasympathetics की उत्तेजना से मल-मूत्र शीघ्र-शीघ्र आने लग जाते हैं। तब भी मन के विक्षोभ के कारण आंत की नाड़ियां विक्षुब्ध हो उठती हैं। इस प्रकार के अतिसार में मल बहुत पतला नहीं होता। कुछ-कुछ बंधा हुआ मल ही शीघ्र-शीघ्र करके दो-तीन बार आ जाता है।

अतिसार की चिकित्सा
अजीर्णजनित अतिसार (Dyspeptic Diarrhoea) की चिकित्सा

बालक को लगभग १२-२४ घण्टे के लिये निराहार तथा जल के आधार पर रक्खा जाय, अर्थात् केवल पकाकर ठंडा किया जल २½ औंस प्रति पौंड भार के पीछे ५-१० औंस जल दस्तों द्वारा बाहर निकले जल के बदले में दिया जाय तो दस्त अच्छे होने लग जाते हैं। साधारण जल के स्थान पर आधी ताकत का नार्मल सेलाइन भी दिया जा सकता है। इस प्रकार एक वर्ष की आयु के बालक को, जिसका भार लगभग २० पौण्ड होता है, १½ सेर के लगभग जल दिनभर में देना चाहिए।

क्षुद्रांत्र के शोधन के लिये ६ मास के बालक को आधा ड्राम एरण्डतेल या Soda Sulph २-५ ग्रेन किसी अर्क में डालकर अथवा Calomel $\frac{1}{10}$ ग्रेन Chloretone $\frac{1}{2}$ ग्रेन में या Lactose में मिलाकर या Milk of Magnesia १-१ ड्राम एक-एक घण्टे बाद दो-तीन या चार बार दे देना चाहिये। क्षुद्रांत्र के शुद्ध हो जाने पर दस्त स्वयमेव शान्त हो जाते हैं।

१२-२४ घण्टे के इस उपवास के बाद पहले दूध का पानी दें, फिर चिकनाई तथा मीठे से रहित दूध स्वल्प मात्रा में देवें।

इस प्रकार पथ्य करने पर भी दस्त शान्त न हों तो Bismuth Subcarbonate १० ग्रेन दैनिक मात्रा में या Bismuth Carb २ ग्रेन, Tincture Catechue ३ बूंद, Glycerine ५ बूंद से १० बूंद, जल ६० बूंद मिलाकर ऐसी मात्रा तीन-तीन घण्टे बाद दे सकते हैं। Lime water भी बच्चों में दस्त बन्द करता है।

बड़े व्यक्ति में अजीर्णजनित अतिसार हो तो एक दिन के उपवास के साथ Caster Oil ४ ड्राम, Mucilage Acacia ४ ड्राम, Syrup Zingiberis २ ड्राम, Aqua menthae Pip $\frac{1}{2}$ औंस मिलाकर इसी को एक-एक घण्टे के अन्तर से चार बार बांटकर देवे या १ ड्राम Mag Sulph १ औंस अर्क के साथ एक-एक घण्टे बाद तीन-चार बार देवें। या पाचन-दीपन के लिये Garlic और Charcoal की गोली (Allisatin, Sandoz T.C F Garlicyl) देवें।

तीव्र अतिसार (Infective Diarrhoea) की चिकित्सा

इस रोग के रोकने के लिये शिशु को माता का दूध ही पिलाना चाहिये, वह न हो तो डब्बे का दूध स्वच्छता के साथ देना चाहिए। तीव्र वमन और अतिसार की अवस्था में शिशु का दूध एक दिन बन्द करके उसे केवल उबाल कर ठंडे किये जल या निम्नलिखित किसी द्रव्य (Solution) पर रखना चाहिये जिससे जलशोष (Dehydration) तथा अम्लवृद्धि (Acidosis) के लक्षण शान्त हों। यह द्रव वमन

के कारण मुख से नही दिये जा सकते हों तो त्वचा द्वारा या गिरा द्वारा देने चाहिये। प्रधान द्रव जो दिये जाते हे ये है—

(१) Isotonic Sodium Chloride Solution-यह लवण का ८५ प्रतिशतक घोल है अर्थात् इसे एक लिटर जल मे ८५ ग्राम लवण डाल कर बनाया जाता है। इसके देने से शरीर मे जल, Sodium Base तथा Chloride की कमी पूर्ण होती है। शिशु को यह द्रव आधी ताकत का करके उसके प्रति पौड भार के पीछे ३ औंस की दैनिक मात्रा मे पीने के लिये २-२ घटे पर देना चाहिये। मोटे तौर से १ सेर जल मे १ छोटा चम्मच लवण डालकर, उबालकर, ठडा करके वह जल शिशु को दिया जा सकता है। आधा सेर जल मे १ बडा चम्मच ग्लूकोज डाले या ५ प्र० श० ग्लूकोज जल बनाकर बीच-बीच मे शिशु को मिलना चाहिए। १ वर्ष से छोटे शिशु को १ लिटर तथा ४-५ वर्ष आयु वाले को १॥-२ लिटर कुल जल एक दिन मे देना चाहिये। मुख से इतना जल नही जा सके तो शिरा द्वारा निम्नलिखित कोई द्रव देना चाहिये। मूत्र की मात्रा बहुत कम हो तो ५०० सी० सी० पहले ६ घण्टे मे, २५० सी० सी० अगले २-३ घण्टो मे, शेष अगले १४-१५ घण्टे मे देना चाहिये। बालक अचेत (Collapsed) हो तो इस द्रव मे Hydrocortisone २०-२५ मिलि मिलाकर बूद-बूद करके शरीर मे जाने देना चाहिये या Coramine १ सी० सी० २-२ घण्टे पर मास द्वारा देना चाहिये।

(२) Ringer's Solution (Isotonic Solution of Sodium Chloride)—यह शरीर मे Sodium, Potassium, Calcium तथा जल सबकी कमी को पूर्ण करता है। १ लिटर जल मे Sodium Chloride ८.६ ग्राम, Potassium Chloride ३ ग्राम, Hydrated Calcium Chloride ४८ ग्राम मिलाकर तैयार किया जाता है। इसे भी आधी ताकत का करके उपर्युक्त मात्रा मे मुख द्वारा दिया जाता है।

(३) Hartmann's Solution—१००० सी०मी० जल मे Sod Chlor ६, Pot Chlor ४ ग्राम, Cal Chlor. ४ ग्राम Lactic acid २४ मी० मी० मिलाकर या इन दोनो के स्थान पर ११% Lactate Solutn ५० सी० मी० मिलाकर बनाया जाता है। इसे भी आधी ताकत का करके देवे।

(४) छठा भाग या Sixth Molar Sodium Lactate Solution —क्योंकि Sodium Lactate का Anion तो Oxidize होकर CO_3 बन जाता है, Sodium रक्त मे रह जाता है। अत अम्ल-वृद्धि (Acidosis) के लिये यह Solution उत्तम है। Concentrated Sodium Lactate Solution को One molar solution कहते है जो १ लिटर जल मे ११२ ग्राम Sodium Lactate मिलाने से बनता है। यह बाजार मे ४० मी० सी० Ampoules मे मिलता है। इसमे ⅙ अर्थात् छठा भाग Sodium Lactate Solution (Isotonic) बनाया जा सकता है। जिसमे १ लिटर जल मे १८ ७ ग्राम Sodium Lactate होता है। अर्थात् १ ८७ प्र० श० होता है।

(५) दूध का पानी, या स्नेह-रहित दूध व जल मिला कर तथा ५ प्र० श० ग्लूकोज मिला कर, या नार्मल सेलाइन और १० प्रतिशतक ग्लूकोज जल बराबर-बराबर मिलाकर भी उपर्युक्त मात्रा मे मुख द्वारा दिया जाता है। जब वमन की अधिकता के कारण मुख मे द्रव न दिया जा सके तब त्वचा या शिरा द्वारा छोटे बालक मे उसके प्रति पौण्ड भार के पीछे ३०-६० सी० सी० दैनिक मात्रा मे ३-४ वर्ष के बालक मे १½ लिटर दैनिक तथा बडो मे ३-४ पाइट अथवा १½ या २ हजार सी० सी० मात्रा मे कुछ-एक द्रव दिये जाते हैं। इस प्रयोजन से निम्नलिखित द्रव दिये जा सकते हैं।

१ Normal Saline, २ Ringer's Solution, ३ Sixth Molar Sodium Lactate Solution, ४ Ringer's Lactate Solution (One Sixth Molar Sodium Lactate Solution, ६० सी०सी०, Ringer's Solution ४०० सी०सी०), ५ ५% Dextrose Solution, ६ Protein Hydrolysate का Distilled Water के ५% ग्लूकोज के Solution मे बना Solution जब रक्त मे प्रोटीन की कमी हो तो शिरा द्वारा धीरे-धीरे (१० बूद प्रति मि०) दिया जाता है।

बालक मे शिरा द्वारा Solution न दिया जा सकता

हो तो त्वचा को काटकर सिरा को स्पष्ट करके उसके द्वारा द्रव देना चाहिए। या Isotonic Saline अथवा आधी ताकत के Normal Saline Solution को कालेग अपेरेटस की सहायता से त्वचा मे डाल देना चाहिये। द्रव के शीघ्र विलयन के लिये उसके प्रति हजार सी० सी० के पीछे उसमे २५०-५०० Viscosity Units Hyaluronidase (Hyalase Benger's १ सी०सी० Amp of 1500 Units या Rondase १००० Units Vials, या Wydase १ सी० सी० 150 units) के मिला देने चाहिये। या १ सी० सी० मे मिला कर उसी प्रदेश मे प्रविष्ट कर देने चाहियें इसकी सहायता से १ मिनट मे १ सी०सी० जल त्वचा द्वारा विलीन हो जाता है। मुख द्वारा, त्वचा द्वारा अथवा सिरा द्वारा इन द्रवो का प्रयोग तब तक जारी रखना चाहिये जब तक अतिसार, वमन, तथा Dehydration के लक्षण रहे तथा मूत्र खुल कर न आने लगे। मूत्र, नाडी, तापमान, श्वास आदि का ब्यौरा रखने से रोगी मे सुधार का पता लगता है। दो दिन मे जब रोगी की अवस्था ठीक होने लगे तब दूध का पानी या स्नेह से रहित दूध या Half Cream Dried Mill पहले दिन आधा औंस, दूसरे दिन एक औंस, तीसरे दिन डेढ औंस की मात्रा मे तीन-तीन घण्टे के अन्तर मे देना आरम्भ करे। दूध के अतिरिक्त जल भी बीच मे देते रहना चाहिये। तीन-चार दिन बाद फिर जल को बन्द कर Half cream दूध ही देने लगें। खाण्ड भी तीन औंस मे एक छोटा चम्मच भर डालना आरम्भ कर दे। यह भोजन अनुकूल हो जाय तो फिर गाय का ताजा दूध या full cream दूध २-३ औंस की मात्रा मे देना आरम्भ कर दे। रोगी बालक मे विटामिन 'बी', 'सी' तथा 'के' भी बहुत कम हो जाते है, अत इनका प्रयोग मास द्वारा करना चाहिये। विटामिन 'ए' तथा 'डी' का प्रयोग भी करना चाहिये।

औषध चिकित्सा :—

प्रारम्भ मे जब कुछ मल आ रहा हो तो Castor Oil का घोल या Milk of Magnesia थोडा थोडा देना चाहिये। फिर अतिसार के लिये एक औंस दालचीनी के अर्क मे Colloidal Kaolin १-२ ड्राम मिलाकर इसका १ चम्मच छोटा २-२ घण्टे बाद देते जाना चाहिये। Kaolin Pectin का मिश्रण Pectokab (Chemopharma) दिया जा सकता है। Sulphasuccidine, Sulphaguanidine प्रति पौण्ड भार के पीछे ३ ग्रेन दैनिक मात्रा मे दे, फिर वेग के कम होने पर १½ ग्रेन प्रति पौण्ड मात्रा मे दे। Sulphadiazine १-२ ग्रेन प्रति पौण्ड भार के पीछे प्रति दिन दिया जा सकता है। Phthalylsulphathiazole (Thalazole M B) भी इसी मात्रा मे इसी प्रकार लाभदायक है। Sulphadimethoxine (Madribon) १ ग्राम दैनिक मात्रा मे २-४ दिन देने से लाभ करता है या Elkosin १०० मिलि० प्रति पौण्ड भार के पीछे प्रतिदिन देने मे लाभदायक होता है। Sulphonamides के साथ Kaolin के प्रयोग से अर्थात् Choloropectidin (Cal Chemical) Cremosuccidine (Merck sharp Dohme) के देने से भी लाभ होता है। मुख मे इनका देना वमन के कारण सम्भव न हो तो Soluthiazole को मास द्वारा दे देना चाहिए। Tetracycline को प्रति किलो भार के पीछे २० मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन देवे या Chloramphenicol .२५ ग्राम की एक गोली को २४ घण्टे मे ३-४ बार करके (प्रति पौण्ड भार के पीछे २० मिलि० प्रतिदिन) किसी शर्बत के साथ दिया जाय तो भी बडा लाभ होता है या Streptomycin १ ग्राम को २०० सी०सी० नार्मल सेलाइन मे मिला १० सी०सी० मात्रा मे मुख से ४-४ घण्टे पर देवे। Streptomycin के साथ Sulphonamide या Chloramphenicol को मिलाकर बनाई गोलिया जैसे Guanimycin (Sulphaguanidin के साथ) Chlorostrep (कैप० तथा Suspension) Enteromycetin Sulfa tab Sulphamycetin Syrup तथा Tab Enteromycetin sulfa palmitate (Dey) Enterostrep cap Suspe आदि भी ½ गोली या १ चम्मच की मात्रा मे दिन मे चार बार देने से तीव्र अतिसार के लिये शामक होते है। Salmonella जीवाणु के लिये Furoxone १०० मिलि० मात्रा मे ४ बार रोज देना भी ठीक है। Escherichia Coli के लिये Neomycin, Sulfasuccidine, Kaolin, Pectin से बना Cremomycin (Merck Sharp Dohme) Streptomycin की सहायता से बनी Streptomagma (Wyeth) Diarzine (Chemopharma) आदि का प्रयोग किया जा सकता है। Polymyxin B को प्रति किलो भार के पीछे १ लाख यूनिट दैनिक मात्रा मे या Colimycin को १½ लाख यूनिट मात्रा मे ४ मात्रा मे विभक्त करके ६-६ घटे पर दे। हृदय की निर्बलता के लिये Coramine ३ बूद मात्रा मे या ब्राण्डी १० बूद, मात्रा मे दी जा सकती है। वमन के रोकने के लिए Chlorpromazine प्रति किलो भार के पीछे २ मिलि० मात्रा मे त्वचा द्वारा दे या Siquil दें। Parenteral Diarrhoea के लिए Penicillin तथा Streptomycin उपयोगी औषधिया है। बड़ों मे होने वाले Acute Diarrhoea

के लिये Strepotomycin Chloromycetin या Neomycin की गोलिया या Tetracycline २५० मिलि० दिन मे ३-४ बार मुख से दे। या Pecto-Kaolin २-२ चम्मच दिन मे ३ बार दे। वमन के लिए Stemetil ५ मिलि० ३ बार दे।

Nervous Diarrhoea की चिकित्सा

आन्त्रगत नाडी-मण्डल (N System) की निर्बलता एव विक्षोभशीलता के कारण दिन मे ३-४ बार वेग से होते हो तो विक्षोभक गुण आहारो—जैसे गर्म चाय, काफी, मसाले, कच्ची सब्जियो—का परित्याग करके दूध, खीर, घृत, मक्खन, रोटी आदि मुलायम पौष्टिक भोजनो का सेवन करना चाहिये। Nux vomica के Tincture ५ बूद, Liquor Arsenicalis २ बूद को आधे औस जल मे मिला कर भोजन के बाद लेना चाहिये। पेट पर सेक तथा मालिश भी करनी चाहिये। इस प्रकार की पौष्टिक औषधियो तथा उपायो मे नाडियो की दुर्बलता को दूर करना चाहिये।

भोजन करते ही मल-त्याग होने की प्रवृत्ति को रोकने के लिए भोजन के पहले Tincture Belladonna १० बूद, Sodium Bromide ५ ग्रेन, Spirit Chloroform ५ बूद, Aqua आधा औस मिलाकर ऐसी मात्रा दिन मे दो बार ले लेनी चाहिये। अथवा Belladonna Extract $\frac{1}{8}$ ग्रेन या उसके स्थान पर Atropine Suplhate १/३०० ग्रेन और Phenobarbital $\frac{1}{8}$ ग्रेन मिलाकर बनाई गोली दिन मे २-३ बार ले लेनी चाहिये। अथवा भोजन से पहले केवल Phenoborbital $\frac{1}{2}$ ग्रेन की मात्रा लेने से अथवा Codeine चौथाई ग्रेन भोजन के बाद तथा रात को लेने मे भी मलत्याग का वेग बन्द हो जाता है। धीरे-धीरे इन औषधियो की मात्रा कम करते हुए फिर इनका सेवन बद कर देने पर भी रोग प्रकट नही होता।

आयुर्वेद मे अतिसार

क्षुद्रान्त्र में विक्षोभकगुण आहार-द्रव्य के पहुचने पर वहा अग्नि शान्त हो जाती है, कफ-स्राव बढ जाता है। आहार के विक्षोभक होने से वायु भी प्रकुपित हो जाता है। आत का विक्षुब्ध हुआ यह वायु जब मलयुक्त बढे हुए इस श्लेष्म-स्राव को नीचे की ओर फेंकने लगता है तो उसे अतिसार कहते हैं।

(सु०।उ०।४०)

श्लैष्मिक अतिसार या आमातिसार

अति मात्रा में गुरु, शीत, स्निग्धगुण भोजन के सेवन से अग्नि के मन्द हो जाने के कारण उत्पन्न हुए अतिसार को श्लैष्मिक अतिसार (Dyspeptic Diarrhoea) कहते हैं। इसमें मल चिकना, गाढा, पानी में डूबने वाला, श्वेत वर्ण, श्लेष्म-द्रवयुक्त, दुर्गन्धित होता है। रोगी में क्षुधा-नाश, अरुचि, वमन, तन्द्रा, आलस्य, मदना आदि मदाग्निसूचक लक्षण होते हैं। (सु०।उ०।४०)

पित्तातिसार (Toxic Diarrhoea)

किसी उष्ण-तीक्ष्ण गुण विषद्रव्य के क्षुद्रान्त्र में पहुचने पर उसकी श्लेष्मकला में तीव्र पैत्तिक शोथ होकर जो हरे-पीले रग के दुर्गन्धयुक्त पतले दस्त होने लगते है, जिस अवस्था म रोगी, में ज्वर, सन्ताप, पिपासा, मूर्छा, पाक आदि पित्त प्रकोपसूचक लक्षण होते है, उसे पित्तातिसार कहते हैं।

(सु०उ०।४०)

वातातिसार

आन्त्रगत वायु के विक्षोभ से जो अतिसार अल्प-अल्प मात्रा में बार-बार होता है उसे वातातिसार (Irritable colon) कहते हैं। जिसकी चिकित्सा प्रवाहिका के समान है। (च०।चि०।१९)

भय-शोक आदि मानस भावो से उत्पन्न होने वाले अतिसार को मानस अतिसार कहते हैं।

श्लैष्मिक अतिसार की चिकित्सा

श्लैष्मिक अतिसार या आमातिसार में लघन तथा मन्दाग्नि हर, दीपन, पाचन तथा स्वल्प मात्रा में सग्राही औषधियो का प्रयोग करना चाहिए। निम्नलिखित में से किन्हीं एक-दो योगो का प्रयोग किया जा सकता है।

(१) हरीतकीचूर्ण—३-४ माशे के साथ १-२ माशे पिप्पली या सौफ या सोठ को मिला कर ३-४ बार दें।

(२) दाडिमाष्टकचूर्ण (यो र)—वशलोचन १ तोला, चतुर्जातक १-१ तोला, अजवायन, धनिया, जीरा, पिप्पलीमूल, त्रिकटु प्रत्येक ५ तो०, अनार दाना तथा खाण्ड ३२-३२ तोला।

(३) लवगचतु.समचूर्ण (भै र)—लवग, जातिफल, जीरा, सुहागा, समान भाग, शहद के साथ।

(४) अभयादि चूर्ण (वृ नि र)—हरड, अतीस, हींग, त्रिकटु, काला नमक सब समान भाग।

(५) अजमोदादिचूर्ण (शा.ध)—अजवायन, सोंठ, मोचरस, धातकी समान भाग, चूर्ण ।

(६) अभयादि चतुःसमवटी (वृ यो त.)—हरड, सोंठ, मोथा तथा गुड समान समान की वटी बनाएं ।

(७) चित्रकादि चूर्ण (यो. र)—चित्रक, पिप्पलीमूल, वचा, कटुकी, इन्द्रजौ, हरड़, पाठा, सोंठ समान भाग का चूर्ण करें ।

(८) त्र्यूषणादिचूर्ण (यो.र)—त्रिकटु, अतीस, हींग, वचा, सौवर्चल लवण, हरीतकी समान भाग का चूर्ण ।

(९) सौवर्चलादिचूर्ण (हा. सं.)—कालानमक, अतीस, हींग, हरड, इन्द्रजौ, सोंठ समान भाग ।

(१०) हरीतक्यादिचूर्ण (शा. ध.)—हरड, अतीस, सैन्धव, कालानमक, वचा, हींग, समान भाग ।

(११) वचादिचूर्ण (यो र)—वचा, अतीस, मुस्ता, इन्द्रजौ समान भाग का चूर्ण ।

(१२) शतपुष्पादिचूर्ण (वृ नि र.)—सौंफ, सोंठ, जीरा, हरड़, पोस्तडोडा समान भाग का चूर्ण ।

(१३) देवदार्वादि (सु.स उ)—देवदार, वचा, मुस्ता, सोंठ, अतीस, हरड समान भाग का चूर्ण ।

(१४) धान्यपञ्चक क्वाथ (भै र)—धनिया सोंठ, मुस्ता, नेत्रवाला बिल्व समान भाग ।

(१५) नागरादिक्वाथ (व से)—सोंठ, अतीस, मुस्ता समान २ ।

(१६) पथ्यादिक्वाथ (भा. प्र.)—हरड, वचा, मुस्ता, सोंठ, अतीस समान भाग ।

(१७) मुस्तकादि क्वाथ (भा. प्र.)—मुस्ता, अतीस, वचा, इन्द्रजौ, मूर्वा समान भाग ।

(१८) वत्सकादि क्वाथ (भा प्र.)—इन्द्रजौ, अतीस, सोंठ, बिल्व, मुस्ता, समान भाग का क्वाथ ।

(१९) विश्वादिकषाय (यो.र.)—सोंठ, हरड, मुस्ता, वचा, अतीस, देवदार, समान भाग ।

(२०) वचादिक्वाथ (व से.)—वचा, अतीस, मुस्ता, इन्द्रजौ समान भाग ।

(२१) यवान्यादिदीपनक्वाथ (यो र.)—अजवायन, सोंठ, खस, धनिया, अतीस, मुस्ता, बिल्व, दोनो पर्णी, समान भाग ।

(२२) मुस्तकादिक्वाथ (२) (भै. र)—मुस्ता, अतीस, सोंठ, सुगन्धवाला, इन्द्रजौ इनका क्वाथ बालकों के लिए विशेष उपयोगी । हैं

पैत्तिक अतिसार अर्थात् तीव्रातिसार में जिसमें ज्वर, दाह और अतिसार अधिक मात्रा में होते हैं, निम्नलिखित योगो में से किसी का प्रयोग करना चाहिए ।

(१) गुडूच्यादिकषाय (यो र.)— गिलोय, अतीस, धनिया, सोंठ, बिल्व, मुस्ता, सुगन्धवाला, पाठा, कुडा की छाल, चिरायता, चन्दन, खस, पित्तपापडा समान भाग ।

(२) ह्रीवेरादि क्वाथ (शा. ध.)— सुगन्धवाला, धातकी, लोध्र, पाठा, लज्जालु, इन्द्रजौ, धनिया, अतीस, मुस्ता, बिल्व, गिलोय समान भाग ।

(३) बिल्वादि क्वाथ (ग. नि)— बिल्व, इन्द्रजौ, मोथा, सुगधवाला, अतीस समान भाग ।

(४) बिल्वादि क्वाथ (२) (यो. र.)—बिल्व, सुगन्धवाला, कुटज, मुस्ता, धनिया, सोंठ, समान भाग

(५) धातक्यादिक्वाथ (शा. ध)—धातकी, बिल्व, लोध, सुगधवाला, समान भाग ।

(६) नागरादिक्वाथ (व से)—सोंठ, अतीस, मुस्ता, इन्द्रजौ, गिलोय, समान भाग ।

(७) पाठासप्तक क्वाथ (ग. नि)—पाठा, इन्द्रजौ, चिरायता, मोथा, पित्तपापडा, गिलोय, सोंठ, समान भाग ।

(८) धान्यकादिक्वाथ (यो र)—धनिया, अतीस, मुस्ता, गिलोय, बिल्व, सोंठ ।

(९) धात्त्यादि चूर्ण (भै र)—धातकी, बिल्व, धनिया, लोध्र, इन्द्रजौ, सुगन्धवाला सम भाग । विशेषत बालको के लिए ।

(१०) रसाञ्जनादिचूर्ण (भा प्र)—रसौत, अतीस, कुटज, इन्द्रजौ, धातकी, सोंठ समान भाग का चूर्ण ।

(११) लोध्रादिचूर्ण (भा प्र)—लोध्र, धातकी, बिल्व, मुस्ता, इन्द्रजौ, आम की गुठली समान भाग ।

(१२) नागरादिचूर्ण (रसेन्द्रसारसग्रह)—सोंठ, अतीस, मुस्ता, सुगंधवाला, धनिया, धातकी, मोचरस, इन्द्रजौ, बिल्व, वचा, अजवायन समान भाग ।

(१३) शुण्ठ्यादि चूर्ण (वैद्यजीवन)—सोंठ, धातकी, मोचरस, अजवायन सम भाग ।

(१४) बालचातुर्भद्रचूर्ण (भै र)—मोथा, पिप्पली, अतीस, काकडासिगी का चूर्ण, मधु के साथ आधा माशा मात्रा में । बालको के लिए विशेष उपयोगी ।

(१५) मधुकादियोग (वृ नि र)—मुलहठी, कायफल, लोध्र, अनार का छिलका तथा बीज सम भाग ।

(१६) अतिसारवारणरस (रसेन्द्रसार स)—हिंगुल, कपूर, मुस्ता, इन्द्रजौ समान भाग को पोस्त डोडो के क्वाथ की ७ भावना देकर १-१ रत्ती की गोली बनाए।

(१७) आनन्दभैरव रस (भै र)–हिंगुल मरिच टकण, वत्सनाभ, पिप्पली समान भाग की एक रत्ती की गोली, ऊपर से इन्द्रजौ—कुटज का क्वाथ दें।

(१८) कर्पूर रस (भै र)—हिंगुल, अहिफेन, मुस्ता, इन्द्रजौ, कपूर, जायफल, समान भाग की रत्ती की गोली दें।

(१९) गगाधर रस—पारा, गधक, अभ्रक , कुटज अतीस, लोध्र, बिल्व, धातकी समान भाग मिलाकर पोस्त डोडो के क्वाथ से गोली बनाए। ४-४ रत्ती मात्रा।

(२०) जातिफलादि वटी (रसेन्द्रसारसंग्रह)–जायफल लौंग, पिप्पली, सैन्धव, सोठ, धत्तूरावीज, हिंगुल, सुहागा। निम्बु रस से मर्दन कर २ रत्ती की गोली।

(२१) लोकनाथ रस (यो चि)–कपर्द भस्म २, शखभस्म २, पारा, गधक, मरिच १-१ भाग को निम्बु स्वरस से मर्दन कर ४ रत्ती की मात्रा।

(२२) नृसिंहपोटली रस (बृ. नि. र)–पारा, गधक समान भाग को पीली कौडियो के भीतर भर कर उन्हे शराव सम्पुट में बन्द करके इतना पुट दें कि कौडिया भस्म हो जाए। मात्रा २ रत्ती घृत के साथ ।

बृहदंत्र का रचनाविज्ञान तथा क्रियाविज्ञान

रचना :—

Ileum के निचले छिद्र (Ileocolic Iliocaecal Valve) जो वृहदन्त्र के द्रव्य को लौटने से रोकता है गुदा तक की ४-६ फीट लम्बी भोजन-नाली को वृहदत्र (Colon) कहते हैं। इसके प्रथम २ इच लवे, २ इच चौडे भाग को Caecum कहते हैं। यह Iliac-fossa मे Inguinal ligament के बाहर के आधे भाग के ऊपर स्थित है। इसके ऊपर के भाग मे ही पीछे की ओर Ileum का निम्न द्वार खुलता हे। इस छिद्र के कुछ नीचे ही आत्रपुच्छ Vermiform appendix का छिद्र रहता है। यह आत्र पुच्छ ३-४ इच लवा होता हे तथा बहुधा Caecum के पीछे की ओर रहता है। आत के समान इसकी दीवार भी चार स्तरो मे बनी हुई है। Anterior Superior Spine से नाभि तक खीची रेखा के तीन भाग किये जाये तो मध्यम और बाहर के भागो की सन्धि पर उस (Appendix) का Base होता है (Mc Burney's Point) इस Caecum से अगले ऊपर यकृत् के निम्न पृष्ठ तक चढते वृहदत्र को Ascending colon कहते है, जो ६ इच लवा होता हे, यह Right Lumber region मे रहता हे। इसके मोड को Hepatic flexure कहते है तथा इससे अगले वृहदत्र को Transverse Colon या लेटा हुआ भाग कहते है जो प्लीहा तक जाता है तथा २० इच लम्बा होता है तथा नाभि प्रदेश (Umbilical-region) मे रहता है। इसके मोड को Splenic flexure कहते तथा अगले Left Hypochondriac तथा Left-Lumber region मे नीचे उतरने वाले Pelvis तक के भाग को Descending Colon कहते है जो १० इच लम्बा होता है। इससे अगले Pelvis मे Sacrum के आगे रहने वाले १६ इच लम्बे भाग को Pelvic Colon कहते है। S अक्षर की तरह मुडे हुए होने से इसे Sigmoid Colon भी कहते है, यह Hypogastric Region मे रहता है। इससे निचले ५½ इच के लगभग लम्बे भाग को मलाशय (Rectum) और उससे निचले १ इच भाग को गुदाग्रीवा (Anal Canal) कहते है। इस प्रकार वृहदत्र लगभग ५ फुट (डेढ मीटर) लम्बा होता है।

रक्तवाहिनिया :—

वृहदत्र को रक्त Superior तथा Inferior-mesenteric arteries की शाखाओ से आता तथा इन्ही नाम की Veins के द्वारा वापस Portal Vein मे, और वहा से यकृत् मे जाता है।

मलाशय को रक्त एक ओर तो Inferior mesenteric artery के निचले सिरे से जिसे Superior Hoemorrhoidal Artery कहते है, मिलता है। दूसरी ओर Aorta के निचले सिरे अर्थात् Common Iliac Artery से निकली Internal Iliac Aartery की मलाशय को जाने वाली Middle Haemorrhoidal Artery से भी मिलता है। इसी प्रकार मलाशय मे से रक्त एक तो Superior Haemorrhoidal Vein द्वारा जिस से Inferior mesenteric Vein आरम्भ होती है, वापस Portal Vein मे जाता है दूसरी ओर Middle Haemorrhoidal Vein द्वारा Internal Iliac Vein मे तथा Inferior Haemorrhoidal

Veins के द्वारा Internal Pudendal Vein मे होता हुआ Internal Iliac Vein मे ही चला जाता है। गुदग्रीवा या Anal Canal मे शिराओं (Veins) का एक जाल (Plexus) होता है जिसमे चौडे प्रदेश (Sacculations) भी होते है।

लसीकाग्रन्थियां :–

Ascending तथा Transverse Colon से आई हुई लसीका वाहिनियो (Superior Mesenteric Lymph Glands) मे तथा Descending और Pelvic colon की लसीका वाहिनिया Inferior Mesenteric Artery के उद्भव स्थान पर पडी Lymph Glands मे समाप्त होती है। मलाशय के ऊपर के भाग की लसीका वाहिनिया भी इन्ही मे समाप्त होती है। निचले भाग की लसीका-वाहिनिया Internal Iliac Lymph Glands मे समाप्त होती है।

नाडिया :—

वृहदत्र के Transverse भाग तक तो Sympathetic नाडिया Caeliac तथा Superior Mesenteric Ganglia से आती है तथा Parasympathetic नाडिया Vagus से Superior Mesenteric Artery के साथ-साथ आती है। शेष भाग मे Sympathetc नाडिया Hypogastric Plexus से Inferior Mesenteric Artery के साथ आती है। Parasympathetic नाडिया Pelvic Splanchnic Nerves (Nerves Erigentes) से आती है।

कार्य :—

वृहदत्र पुरीष वनाकर उसे वाहर करने का कार्य करता है। खाया हुआ भोजन ३ घण्टे वाद आमाशय मे निकल कर २२ फुट लम्बे क्षुद्रात्र मे से २ घण्टे मे निकल जाता है। Caecum मे पहुचने तक उसका सार-भाग विलीन हो चुकता है, परन्तु वह वहुत अधिक पतला होता है, एक दिन मे डेढ लिटर के लगभग भोजन द्रव छोटी आत से वडी आत मे जाता है। वृहदत्र मे उसका वहुत-सा जलाश विलीन हो जाता है। नाना लवण या Electrolytes भी विलीन हो जाते है। एव Caecum मे पहुचने के १३-१४ घण्टे वाद जव यह Pelvic colon मे पहुचता है तो कुछ गाढा या कठोर होकर साधारण पुरीष का रूप ले लेता है। इस प्रकार जो वहुत-सा जल मल के साथ चला जाता है उसे शरीर फिर से वापस ले लेता है (Conservation of Fluid) वृहदत्र की श्लेष्मकला मे श्लेष्म-स्रावक ग्रन्थिया (Mucous Glands) भी वहुत है ताकि भोजन के वचे हुए फोक से वृहदत्र को किसी प्रकार की हानि न हो। निम्न भाग मे ये कुछ कम होती है जिससे आन्त्र पाचक रसो का वहा कभी-कभी दुष्प्रभाव भी हो जाता है। मलाशय (Rectum) मे मल जमा नही होता प्रत्युत उसमे जव मल प्रवेश करता है तव मल त्याग का Reflex उत्पन्न हो जाता है जिसके होते ही व्यक्ति मल-त्याग करता है। गर्म जल, चाय, आदि के पीने या पेट मे भोजन के पहुचने से Colon मे एक Gastro-colic Reflex होता है जिससे कोलन मे Mass peristalsis होकर मलत्याग की प्रवृत्ति हो जाती है। वृहदत्र पर मानसिक अवस्थाओ का प्रभाव पडता है, भय से वार-वार मल-त्याग होने लगता है तथा आवेग-प्रधान व्यक्तियो मे त्रिदोषातिसार Ulcerative Colitis हो जाता है। चिन्ता से मलवन्ध हो जाता है।

क्षुद्रात्र मे भोजन का पाचन तथा विलयन ठीक-ठीक हो अर्थात् पाचक अग्नि तथा क्षुद्रात्र की प्राणशक्ति स्वस्थ हो, तो वृहदत्र भी स्वस्थ रहता है। इसके विपरीत यदि ऊपर भोजन का पाचन ठीक-ठीक न हो जिससे कार्वोहाइड्रेट अपक्व ही वृहदत्र मे पहुच जाय तो वहा Bacteria के द्वारा उसका विदाह (Fermentation) होने से कार्वोनिक एसिड गैस, Lactic acid तथा Methane गैस उत्पन्न हो जाती हैं। फैट अनपच रूप मे वहा पहुच जाय तो Bacteria के द्वारा उसमे से Fatty Acids तथा Butyric, Valeric acids आदि उत्पन्न हो जाते है, जिससे मल अधिक अम्लीय होता तथा उसमे से खट्टी वू आती है। यदि प्रोटीन भोजन अनपच रूप मे वहा पहुच जाय तो Bacteria के कारण उसमे से Ammonia तथा Histamine आदि कुछ विषैले Amines उत्पन्न हो जाते हैं जिनके कारण शरीर की रक्त वाहिनियो मे यदि सकोच (Constriction) की प्रवृत्ति वढ जाती है, तो रक्तभार वढ जाता है, पर यदि शरीर की रक्त-वाहिनियो मे फैलने (Dilatation) की प्रवृत्ति वढ जाय तो Allergy का रोग हो जाता है।

भोजन मे विद्यमान Cellulose पर पुरीष की मात्रा निर्भर है। साधारणत २४ घटे मे इसकी मात्रा २०० ग्राम के लगभग होती है। शाकाहारियो मे इसकी मात्रा ५०० ग्राम तक हो जाती है। स्वस्थ पुरीष नर्म पर वधा हुआ होता है। स्वस्थ व्यक्ति मे या दूध लेने वाले वालको मे निर्गन्ध होता है, अजीर्ण मे दुर्गन्धयुक्त होता है।

प्रवाहिका, संक्रामक प्रवाहिका

Bacillary Dysentery
Shigellosis

कारण :—

जब आव या रक्त से मिश्रित मरोडे के साथ अनेकानेक छोटे छोटे दस्त आने लगते है, उसे प्रवाहिका कहते है । इस रोग मे रोगी के मल के साथ Shigella जाति (Genus) के जीवाणु बहुत बडी मात्रा मे बाहर आते हैं । रोग से अच्छे हो जाने पर भी कइयो मे आन्त्र व्रण रह जाते है जिसमे रोगी के मल मे ये जीवाणु, जिन्हे प्रवाहिका जीवाणु (Dysentery bacilli) कहते है, महीनो तक बाहर आते रहते है और बाहर किसी जलाशय के जल मे महीनो तक जीवित रहते है । वहा से ये जीवाणु दूसरो के भोजन मे प्रवेश करके उन्हे भी यह रोग कर सकता है । इसलिये इन्हे प्रवाहिका-वाहक (Dysentery carrier) कहते है । गर्मी तथा वर्षा ऋतु मे जहा-जहा लोग बडी सख्या मे इकट्ठे होते हैं मेलो मे, तीर्थ यात्रा मे, तथा कैम्पो मे वहा-वहा यह रोग इन्ही वाहको के मल के, भोजन मे तथा जल मे सक्रमण कर जाने से फैलता है । यदि ऐसा 'केरियर' भोजन बनाने आदि का कार्य करता हो तो सीधे उसके द्वारा अथवा मक्खियो के द्वारा इस रोग का जीवाणु दूसरो के भोजन मे प्रवेश करके इस रोग का कारण बन जाता है । मक्खियो के पेट तथा टागो के द्वारा भी यह जीवाणु दूसरो के भोजन तक पहुचता प्रतीत होता है। लक्षणहीन रोगियो के हाथो तथा बर्तनो से भी यह दूसरो मे फैलता हे ।

प्रवाहिका-जीवाणु :–

प्रवाहिका-कृमि जो रक्त मिश्रित आव मे रहते है (Dysentery Bacilli) अगतिशील (non-mobile) बिना कैपसूल के (Non-capsulated) Gram negative पतले, शलाकाकृति (Rod Shape) होते है । ये ग्लूकोज को विदग्ध (Ferment) करके एसिड उत्पन्न करते हे, गैस उत्पन्न नही करते । ये Lactose को Ferment नही करते । इनमे से एक तो ऐसे कृमि हे जो Mannitol (एक Ferment न होने वाला Alcohol) को Ferment नही करते जैसे Shiga Bacillus तथा Schmitz Bacillus । दूसरे ऐसे कृमि है जो Mannitol को Ferment करते है जैसे—Flexner Bacillus तथा Sonne Bacillus,

(१) Shiga Baccillus (Shigella Shigae, Bacterium Shigae अथवा Shigella Dysenteriae) का पता १८९८ मे जापान के Shiga ने लगाया। यह एक प्रबल प्रवाहिका जनक जीवाणु है तथा यह एक प्रबल Exotoxin को जो प्रोटीन किस्म का होता है, उत्पन्न करता है जिसका दुष्प्रभाव केवल आतो पर ही नही अपितु Central Nervous System या नाडी मण्डल पर भी होता है । इसीलिए किसी-किसी रोगी मे इस रोग के अच्छे होने पर पक्षाघात या अगाघात (Paralysis) उपद्रव हो जाता है । दूसरे जीवाणुओ के समान यह आत्त मे ही सीमित नही रहता, इसका विष घुलनशील होने से रक्त मे भी जाता है ।

(२) इस रोग का दूसरा कृमि Schmitz Bacillus, Shigella Schmitzi है जिसका पता Schmitz ने १९१७ मे लगाया—यह भी ग्लूकोज को Ferment करता है यह कभी-कभी इस रोग का कारण होता है ।

(३) Mannitol को Ferment करने वाले प्रवाहिका जीवाणु (Shigellae) ग्लूकोज तथा Mannitol दोनो को Ferment करते तथा एसिड पैदा करते है (गैस नही) । इनमे से Flexner Bacillus (Shigella Flexneri, Shigella Paradysenteriae) का पता Flexner न १९०० मे लगाया । यह प्राय मृदु प्रवाहिका का कारण होता है । रोगियो के मल मे अधिकत यही होता है ।

(४) Mannitol तथा ग्लूकोज को Ferment करने वाले जीवाणु समूह मे एक Shigella Boydi या Boyd Bacillus है । यह भी मृदु प्रवाहिका (Mild Catarrhal Dysentery) का कारण होता है । Boyd ने १९३६-१९३८ मे इसका पता लगाया । रोगियो मे यह अधिकत पाया जाता है ।

(५) Sonne Bacillus या Shigella Sonnei भी ग्लूकोज, Mannitol, Maltose, Saccharose सबको Ferment करके एसिड पैदा करता है (गैस नही) । यह भी मृदु प्रवाहिका के मल मे प्राय पाया जाता है। Sonnei ने १९१५ मे इसका पता लगाया । इसके कारण अधिकत अतिसार (Gastro

enteritis) होता है प्रवाहिका (Colitis) नही ।

इन जीवाणुओ के सेल के अन्दर रहने वाला एक Endotoxin होता है जो इस रोग का प्रधान कारण प्रतीत होता है। वृहदन्त्र म पहुचने पर जब इन जीवाणुओ का पचन (Autolysis) होने लगता है तो इनके अन्दर से निकले इस द्रव्य (जो एक Phospholipid-Carbohydrate-Polypeptide का मिश्रण प्रतीत होता है) के दुष्प्रभाव से वृहदन्त्र शोथ का लक्षण उत्पन्न होता है। शीत देशो तथा शीत ऋतु मे भी ये जीवाणु दूसरो के अन्दर भोजन द्वारा प्रवेश करते हैं, परन्तु गर्म देश तथा ग्रीष्म ऋतु व वर्षा ऋतु मे ये विशेषत रोगजनक हो जाते है। इसी प्रकार ऐसे व्यक्ति मे जो पहले से ही थका हुआ, हारा हुआ एव किसी रोग से निर्बल हुआ हो, उसमे ये विशेषत रोगजनक हो जाते है। जिससे प्रतीत होता है कि यह जीवाणु तो इस रोग का व्यजक कारण है, इस रोग का उत्पादक कारण आत की प्राणशक्ति (Vitality) की हीनता तथा उसमे पहले से ही अजीर्ण-जनित शोथ का होना है। ये जीवाणु तथा इनका विष वहुधा आत पर ही दुष्प्रभाव करते है, रक्त मे प्रवेश नही करते ।

विकृति-विज्ञान :—

इस जीवाणु के वृहदन्त्र मे बढने मे उससे उत्पन्न Exotoxin के स्थानिक दुष्प्रभाव से वृहदन्त्र की विशेषत उसके Sigmoid Flexure मे गुदा तक के भाग की श्लेष्मकला मे रक्त-सचय (Hyperaemia) तथा उभार (Oedema) के लक्षण हो जाते है अर्थात् वृहदन्त्र शोथ (Catarrhal Colitis) हो जाता है। यदि शोथ प्रवल रूप मे हो तो स्थान-स्थान पर वह झिल्ली मृत (Necrosed) होकर श्वेत-सी हो जाती है जिससे वहा-वहा पूयखण्ड (Slough) के चकत्ते बन जाते है। फिर इन पूयखण्डो के झड़कर पृथक् हो जाने से वहा-वहा व्रण बन जाते है और वहा से रक्त वहने लगता है। ये व्रण श्लेष्मकला की उठती हुई झुर्रियो (Folds) पर होते है जो वहुत उथले होते एव Muscularis-Mucosae के नीचे कभी नही जाते। इन व्रणो के नग्न पृष्ठ पर निकला हुआ स्राव जमा रहता है अर्थात् Fibrin और Polymorphonuclear Leucocytes छाये रहते है। इनके तथा मृत झिल्ली के मिलने से एक श्वेत-सी झिल्ली (Diphtheritic membrane) वहा छाई हुई दीखती है। इन व्रणो के तल प्रदेश मे इस रोग के जीवाणु पर्याप्त मात्रा मे पड़े हुए मिलते हैं। Submucous अवयव मे भी शोथ होता है। रोग के अच्छा होने पर भी कुछ काल ये बाहर आते रहते हैं। फिर क्रमश स्वस्थ श्लेष्मकला मे से झडी हुई श्लेष्मकला का रोहण हो जाता है। इस रोग के विष के कारण Toxic Myocarditis भी हो सकता है।

लक्षण —

प्रवाहिका रोग युवको मे विशेषत होता है। इसका प्रारम्भ सहसा होता है। जीवाणु के सक्रमण करने के दो-चार दिन के अन्दर-अन्दर ही वृहदन्त्र शोथ (Colitis) के कारण पेट मे मरोड का शूल (Griping) होकर दस्त होने लगते है जो पहले गाढे फिर पतले हो जाते हैं तथा दिन मे ४-५ वार या इससे अधिक वार होते है। शीघ्र ही शूल का लक्षण कम होता जाता तथा प्रवाहण (Tenesmus) या गुदा मे बोझ पडकर थोडी-थोडी देर मे मल-त्याग होने लगता है। मल मे केवल थोडी-सी चमकीली श्वेत रग की आव निकलती है जो शीघ्र ही रक्त से मिश्रित हो जाती है जो व्रणभाव का सूचक होती है। वृहदन्त्र मे उत्पन्न इस शोथ तथा व्रणो के कारण १००-१०२ डिग्री तक का ज्वर भी होता है। यह रोग मृदु रूप मे हो तो ऐसे आव के दस्त दिनरात मे लगभग ८-१० बार आते है। रोग के इस मृदु रूप को Catarrhal Bacillary Dysentery कहते है। इसका कारण वहुधा Flexner, Schmitz तथा Sonne Bacilli होते हैं, Shigella Sonnei के कारण हो तो Gastro enteritis के रूप मे यह शुरु होता है। दो-चार दिन मे जब यह रोग अच्छा होने लगता है तो दस्तो की सख्या घट जाती है, आव मे से रक्त लुप्त हो जाता है, आव कम होती जाती है, पीले रग का मल आने लगता है पर उसमे जीवाणु कुछ दिन तक आते रह सकते है। आत मे हुए व्रणो का Granulation Tissue के द्वारा रोहण हो जाता है। वहा Epithelial सेल भी छा जाते है परन्तु आन्त्र ग्रन्थिया (Glands) फिर नही बनती।

जब यह रोग कुछ तीव्र रूप मे होता है तब मल दिन मे २०-३० या इससे भी अधिक वार आता है। मरोड के साथ निकलने वाली आव मे रक्त और पूय की मात्रा अधिक होती है। ज्वर भी कुछ अधिक होता है। शैथिल्य तथा विष सचार का लक्षण भी अधिक स्पष्ट होता है। इसे Acute Bacillary Dysentery कहते है तथा वहुधा यह Shiga Bacillus के कारण होता है। वमन के साथ तीव्र अतिसार हो तो वे Salmonella के सक्रमण के कारण होते है। वमन के बिना तीव्र अतिसार होने लगे तो तीव्र प्रवाहिका रोग का ही सदेह करना चाहिये। अतिसार चिरस्थायी हो तो इस रोग का सन्देह न करे। थोडी-थोड़ी देर मे केवल आव और

रक्त के दस्त मरोड के साथ होते हो तो इसी रोग का निश्चय करना चाहिए।

साधारणत तीव्र प्रवाहिका रोग भी ५-७ दिन से अधिक नही रहता। यह भी स्मरणीय है कि कभी कभी आव और रक्त इस रोग मे नही आते, केवल अतिसार ही होते है। ऐसे रोगी से यह रोग दूसरो मे फैल सकता है।

परीक्षा —

परीक्षा करने पर वाये कोष्ठ के निम्न Left Iliac Fossa या Sigmoid Flexure पर दवाने से स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है। जिह्वा मलिन होती मन्द ज्वर होता है। मूत्र की मात्रा कम होती है। आव की परीक्षा करने से उसमे ९० प्रतिशत सेल Polymorphonuclear होते है। उसमे Shigella Strains भी होते है। कुछ एक Macrophage सेल होते है। नाडी तीव्र व निर्वल होती है। रक्त-परीक्षा करने से Polymorphonuclear Leucocytosis पाया जाता है।

चिकित्सा —

मरोड आरम्भ होते ही रोगी को शैयाशायी हो जाना चाहिए।

प्रवाहिका जीवाणु के लिये उत्तम Antibiotic औषधिया Tetracycline Drugs है। उदाहरणत Oxytetracycline या Terramycin आधा ग्राम की मात्रा मे छ-छ घंटे के वाद चार वार ३-४ दिन देने मे लाभ हो जाता है। वालक की प्रति किलोग्राम के पीछे इसकी १०-२० मिलि० की दैनिक मात्रा है। (Penicillin, Erythromycin का कोई प्रभाव नही होता) Polymixin ५ लाख यूनिट मुख द्वारा ३ वार देने मे लाभ होता है। इसी प्रकार Chloramphenicol के भी चौथाई ग्राम की मात्रा मे चार-चार घण्टे के अन्तर मे मुख द्वारा चार-पाच वार देने से रोग शान्त हो जाता है। वालक के लिये प्रति किलोग्राम के पीछे ५० मिलि० की इसकी दैनिक मात्रा होती है। इसी प्रकार स्थानिक प्रभाव करने वाली तथा अघुलनशील Succinylsulphathiazole, (Sulpha succidine) Sulpha-guanidine, Phthalyl sulphathiazole (Sulphathalidine) औषधिया भी २ से ३ ग्राम की मात्रा मे चार-चार घण्टे से और फिर रोग के कुछ ठीक होने पर एक ग्राम की मात्रा मे चार-चार घण्टे पर दी जाती रही है। वालक को आधा ग्राम ४-४ घंटे पर ६ वार देते है। अधिक घुलनशील Sulphadiazine या Sulphadimidine १ ग्राम के ४-४ घण्टे पर देने मे भी इस रोग मे वहुत लाभ होता है। इस समय ये ही दोनो विशेषत दी जाती है। तो भी इनकी अपेक्षा अनघुलनशील सल्फा योग अधिक अच्छे है। Gantrisin या Sulphafurazole १ ग्राम के ४-४ घंटे पर देने मे भी इसी प्रकार लाभ होता है। इन औषधियो से भी एक-दो दिन मे ही लाभ हो जाता है तो भी रोगी को पूर्ण विश्राम की दशा मे रखना चाहिए। रोग तीव्र हो तो Sodium Sulphadiazine या Sod Sulphadimidine १ ग्राम शिरा द्वारा इञ्जेक्शन देना चाहिए। Furazolidine (Furoxone) १०० मिलि० मात्रा मे ४-४ घण्टे वाद दिन मे ४-५ वार ४-५ दिन देने मे भी लाभदायक पाई गई है। Streptomycin के २५ ग्राम मात्रा मे मुख द्वारा ४-४ घण्टे वाद देने मे, वालक को यही मात्रा ६-८ घण्टे वाद मुख द्वारा देने से लाभ होता है। इसके लिये Guanimycin (Streptom २५ ग्राम Sulphaguan, २ ग्राम १ औस मे) का प्रयोग कर सकते है या Streptomycin की १ मात्रा के साथ Bacitracin ५ हजार युनिट मिलाकर ६-६ घंटे पर देने मे या इसी प्रकार Neomycin १००-१५० मिलि० को Sulpha-suxidine की १ मात्रा के साथ मिलाकर ४-४ घण्टे पर देने से भी वडा लाभ होता है। एक ग्राम Streptomycin को उपर्युक्त किसी Sulphonamide के साथ इस दैनिक मात्रा मे मिलाकर दिन मे चार वार करके देने Streptotriad (Sulphatriad २६५, Streptomycin ६५ मिलि० गोली ६-६ घ पर २ गोली) या १ ग्राम Streptomycin को Chloramphericol २ ग्राम मे मिलाकर (Chlorostrep) दिन मे चार वार वाटकर देने से भी वडा लाभ होता है। Streptomycin की वालक के लिए मौखिक दैनिक मात्रा एक ग्राम है, वडो के लिए दैनिक मात्रा २ ग्राम की है।

प्रथम २४ घण्टे रोगी को केवल जल, चावलो के पानी या ग्लूकोज मिश्रित जल पर ही रखना चाहिये। फिर दूध, चाय अथवा Barley Water, Horlicks या Benger का दूध देना चाहिये। उसके वाद पहले अरारूट, सावूदाना आदि जल मे वनाकर और फिर दूध मे वनाकर देने चाहिये और फिर खालिस दूध या कार्नफ्लोर के साथ दूध देना चाहिये। फिर चावल और दूध, फल, रस, कस्टर्ड आदि दिये जा सकते है। साधारण भोजन एक मास के वाद आरम्भ करना चाहिये।

उदरशूल के लिये पेट पर गर्म वोतल द्वारा सेक देने से मुख द्वारा Codeine Phosphate चौथाई से आधा ग्रेन की मात्रा मे देने से या Phenobarbitone चौथाई से आधा

ग्रेन की मात्रा मे देने से या Morphine ग्रेन, Atropine १/१०० ग्रेन, के देने से आराम आ जाता है। मरोड असह्य हो तो २-३ औंसस टार्च के मोल्यूगन मे ४०-५० बूद Tincture opium मिलाकर उसे गुदा मे डाले। १ पाइण्ट गर्म जल मे थोडा Boric Acid मिलाकर नस्ति देने मे भी मरोड मे आराम आता है।

दस्तो द्वारा जल की मात्रा शरीर से अधिक निकल जाती है। अत रोगी को जल दैनिक ३-४ लिटर मात्रा मे पीने के लिए देते रहना चाहिये।

संक्रामक जीर्ण प्रवाहिका या संक्रामक जीर्ण अतिसार

(Amoebic Dysentery, Amoebiasis, Intestinal amoebiasis

कारण —

विषमज्वर के जीवाणु Malarial Parasite के समान ही एक और प्राणी जीवाणु Protozoon हमारे शरीर मे रह सकता है जिसे Entamoeba Histolytica कहते है। इसका पहले-पहल पता १८७५ मे लगा परन्तु यह रोग सैकडो वर्षो से चला आता प्रतीत होता है। जैसे बहुत बार विषम ज्वर जीवाणु हमारे शरीर मे रहता है पर हमे ज्वर नही होता वैसे ही यह प्राणी जीवाणु भी बहुत से व्यक्तियो की बृहदन्त्र मे निरुपद्रव रूप मे रहता हुआ तथा बढता हुआ (Multiply) पाया जाता है। इस (Commensal निरुपद्रव) रूप मे यह जीवाणु आत के अन्दर Bacteria आदि मलो पर अपना निर्वाह करता है। परन्तु जब यह जीवाणु आत की दीवार पर हमला करके उसके अन्दर प्रविष्ट हो जाता है और वहा के मैलो, रक्त-कणो और श्वेत-कणो को खाकर अपनी वृद्धि करने लगता है, तब यह चिर प्रवाहिका (Chronic Dysentery) का कारण बन जाता है। अर्थात् कइयो मे निरुपद्रव रूप मे रहने वाला यह जीवाणु दूसरो मे उपद्रवकारी हो जाता है। बृहदन्त्र मे उत्पन्न हुआ कौन-सा दोष इस जीवाणु को उपद्रवकारी कर देता है इस विषय मे अभी तक निश्चय से कुछ नहीं कहा जा सकता। सभवत जिन कारणो से आंत की झिल्ली को क्षति पहुचती है उनसे यह आक्रमणकारी बन जाता है। यह भी जानना चाहिए क यह रोग बहुत अधिक व्यापक है। कइयों का कहना है कि १० प्र० श० लोगो मे यह रोग फैला हुआ है। इस रोग के पुरातन और व्यापक होने पर भी आश्चर्य है इसकी दवा Emetine का पता १९१२ मे लगा। फिर १९४८ मे क्लोरोक्वीन का प्रयोग शुरू हुआ। उससे यकृत्-विद्रधि की चिकित्सा होने लगी। फिर १९६० मे Metronidazole या फ्लेजिल का पता लगा। Giardiasis मे उसका प्रयोग हुआ इस रोग मे नही। १९६६ मे Powell ने घोषणा की कि यह प्रवाहिका तथा यकृत् विद्रधि के लिए उपयोगी है। अब इसे इस रोग की श्रेष्ठ औषधि माना जाता है।

इस रोग मे रुग्ण व्यक्ति के मल द्वारा उसकी आत के अदर हुए व्रणो मे वृद्धि करने वाले ये जीवाणु Amaebae या Trophazoites बहुत सख्या मे बाहर आते रहते है। बाहर आकर कुछ घण्टे जीवित रहने के बाद ये मर जाते है। पेट मे चले भी जाये तो एसिड के द्वारा मर जाते है। इसलिये ये रोग-सक्रमण का कारण नही बनते। रोगी को इस रोग के आरम्भ मे जब पतले दस्त आते है तब ताजे दस्त से तैयार की स्लाइड पर माइक्रोस्कोप की सहायता से इसे देखा जा सकता है। इस प्रकार देखने मे यह २०-३० माईक्रोन व्यास का, रक्तकण से तीन-चार गुणा बडा, बराबर गति करता हुआ और अपना आकार बदलता हुआ एक कृमि दिखाई पडता है। एक सेल वाले इस जीवाणु का बाहर-बाहर का भाग शीशे की तरह पारदर्शक होता है। जिसे Hyaline ectoplasm कहते है। इसके अन्दर के प्रोटोप्लाज्म को जो दानेदार दीखता है, Granular endoplasm कहते है। इस जीवाणु मे केन्द्र से हटा हुआ एक Nucleus होता है तथा इसके अन्दर इसके द्वारा खाया हुआ कोई रक्तकण भी बहुधा देखा जा सकता है। पहले-पहल Schaudinn ने १९०३ मे इनका पता लगाया और E Coli से इसका भेद किया।

जब यह रोग पुराना हो जाता है या जब इसके तीव्र लक्षण शान्त हो जाते है अर्थात् मल कुछ गाढा आने लगता है तब उसमे यह जीवाणु एक थैली मे बन्द हुए (Encysted) रूप मे आने लगता है। सम्भवत जब इस जीवाणु की वृद्धि विभजन (Mitosis) के द्वारा होनी बन्द हो जाती है तब यह Cysts का रूप ले लेता है। Amoebea तो व्रणो मे रहते है परन्तु ये Cysts आत की श्लेष्मकला पर रहते है। मल की स्लाइड बनाकर Gramiodine से रगने पर यह Cyst १० से १५ माईक्रोन व्यास का गोलाकार एक से चार Nuclei वाला दृष्टिगत होता है। Entamaeba coli से जो आत मे रहने वाला एक सर्वथा निरुपद्रव प्राणी जीवाणु है इसका भ्रम हो सकता है परन्तु उसमे Nuclei चार से अधिक आठ तक होते है जिससे इसका सुगमता से भेद हो जाता है। क्योंकि इन Cysts पर एक कठोर गिलाफ

चढा होता है, ये मल द्वारा वाहर निकल कर गीले स्थान पर ८-१० दिन तक भी जीवित रह सकते है। ये जीवित अण्डे (Cysts) जल द्वारा, मक्खियो द्वारा या कच्ची खायी जाने वाली सब्जियो द्वारा अथवा यदि इस रोग का रोगी भोजन देने का कार्य करता हो तो उसके हाथ के द्वारा दूसरो के पेट मे चले जाते है। इस प्रकार अपूर्ण तौर से इस रोग से मुक्त हुए व्यक्तियो (Carriers) के द्वारा यह रोग दूसरो मे सक्रमण करता है। रोगी के सहवासियो (Contacts) के द्वारा भी, जिनमे प्रकट रूप मे रोग नही होता, यह रोग दूसरो मे फैल सकता है। अर्थात् यह प्रवाहिका, परिवार मे या होटल मे एक व्यक्ति से दूसरे (Endemic रूप मे) इक्के-दुक्के लोगो मे फैलने वाला रोग है। दूसरे शब्दो मे यह परिवार मे फैलने वाला रोग है अर्थात् घर मे एक को हो तो क्रमश यह दूसरो मे भी फैलता जाता है। मध्यमायु के व्यक्तियो मे फैलता है, वालको को वहुत कम होता है।

Serological test—इस जीवाणु की विभिन्न जातियो के विपरीत सीरम मे Immune bodies या Antibodies उत्पन्न हो जाते है। यदि हमारे पास विभिन्न जातियो के Antigens हो तो किससे रोग हुआ है इसका पता इस टेस्ट से लग जाता है।

विकृति-विज्ञान —

इन अण्डो के क्षुद्रान्त्र मे पहुचने पर Pancreatic Juice के द्वारा इनके गिलाफ पचकर फट जाते है और उसमे से ४ Nuclei वाला Amaebae निकलकर स्वतन्त्र होजाता है। ये चार Nuclei फिर विभजन (Mitosis) के द्वारा ८ छोटे-छोटे Amaebulae वन जाते है जो Lieberkuhn Follicles के अर्थात् वृहदन्त्र ग्रन्थियो के मुख द्वारा उनमे प्रविष्ट हो जाते है। वहा-वहा Submucous प्रदेश मे इनके विभजन द्वारा वृद्धि कर जाने से इनकी कालोनिया वस जाती है तथा इनके अन्दर मे निकले एक द्रव के द्वारा जिसे Toxin नही पर Trypsin या Proteolytic-Enzyme (Cytolysins) कहते हैं, आन्त्र ग्रन्थिया तथा उनके आसपास का स्नायुतंतु गल जाता (Autolysed या liquefied हो जाता) है अर्थात् इनके वढने के स्थान मे Colliquative Necrosis हो जाता है, क्योकि इनसे कोई फैलने वाला विष (Toxin) उत्पन्न नही होता। इस रोग मे वृहदन्त्र की श्लेष्मकला पर कोई विशेष विकार या प्रतिक्रिया नही होती, परन्तु पहले तो श्लेष्मकला के नीचे के मास Muscularis mucosae के ऊपर ऊपर और फिर उसके नीचे Submucous Tissue मे इन जीवाणुओ की जहा-जहा वस्तिया वसती है, वहा-वहा के प्रदेश के गल जाने से विद्रधिया (Abscesses) वन जाती है जो पिन के नक्के से लेकर एक इच तक की होती है। इन विद्रधियो के मुख जो छोटे-छोटे होते है श्लेष्मकला मे खुलते है। इस प्रकार तग मुख वाले तथा वडे, पेट वाले (Flask Shape) व्रण वृहदन्त्र मे हो जाते है। Caecum, ascending मे विशेषत तथा Descending colon, Sigmoid colon मे जहा मल देर तक रुकता है वहा भी ये जीवाणु Trophozoite आत की दीवार मे रोहण करते है। श्लेष्मकला पर विषमाकृति व्रण दिखाई पडते हैं, जो वस्तुत इन विद्रधियो के मुख होते है, तथा इन व्रणो के वीच-वीच की श्लेष्मकला नार्मल होती है या शोथयुक्त (Congested) होती है अर्थात् Bacillary प्रवाहिका के व्रण तो श्लेष्मकला के ऊपर-ऊपर होते है, गहरे नही होते, इस चिर प्रवाहिका के व्रण श्लेष्कला मे गहरे होते हैं। यद्यपि इनके मुखो पर दूसरे जीवाणु आकर रोहण करने लग जाते हैं पर उनके तल आत की मासमय स्तर या वाहर की स्तर (Peritoneum) से वने होते है। इन व्रणो के गहरे होने के कारण रक्तवाहिनियो मे से रक्तस्राव होता रहता है, जिसमे काले रग का रक्त मल मे मिला हुआ वाहर आता है। व्रणो मे से निकला पूय भी मल के साथ वाहर निकलता है। कभी-कभी Submucous Tissue मे किसी क्षत हुई शिरा (Portal Venule) के द्वारा अमीवी Mesenteric Vein मे और वहा से Portal Vein मे पहुच जाते, तथा वहा से यकृत् मे पहुचकर उसके सेलो मे अपनी वस्तिया वसा लेते है, जिसमे उसमे Colliquative Necrosis की प्रक्रिया होने लगती है, इसे ही यकृत्-विद्रधि (Liver abscess) कहा जाता है। इसमे यकृत् का एक भाग मर जाता या गल जाता है पर उसमे वाहर से कोई जीवाणु-सक्रमण नही होता अर्थात् वह Sterile होता है। इसमे E histolitica पाए जाते है। कभी-कभी ये फुफ्फुस मे भी चले जाते है।

लक्षण —

गर्म देशो मे, युवको तथा मध्यमायु (२० से ४० वर्ष) के व्यक्तियो मे, अज्ञात रूप से बहुत धीरे-धीरे आरम्भ होने वाला तथा एक साथ वहुत-सो मे न होकर कही-कही इक्के-दुक्के व्यक्ति को होनेवाला यह प्रवाहिका रोग है। (यह वालको मे भी होता है ऐसा भी कइयो का मत है) Entamoeba Histolytica आत को खाने वाले अमीवा के आत मे प्रवेश करने के आधे मास से लेकर दो मास के लगभग समय तक इस रोग के लक्षण प्रकट होने लगते है। कइयो की आत के अन्दर ये जीवाणु वर्षो तक रहते है पर उन्हे प्रकट रूप मे रोग नही होता, इस प्रकार यह निष्क्रिय

रूप मे चिरकाल आंत मे रह सकता है। जिन्हे यह रोग होता है उन्हे अज्ञात रूप मे मन्द अतिसार के रूप मे होता है, तीव्र रूप मे प्राय नही होता। यह तीव्र रूप मे हो या मृदु रूप मे, इसमे शूल और मरोड उठने के लक्षण कभी नही होते।

इस रोग का प्रधान लक्षण अतिसार अर्थात् २४ घण्टे मे तीन-चार मे लेकर आठ-दस दस्तो तक आ जाना है। साधारणत रोगी का दस्त मात्रा मे बडा, शीघ्रकारी तथा ढीला-सा होता है जिसमे आव मिली हुई होती है अथवा खून और आव दोनो दस्त के साथ मिश्रित रूप मे आते है। खून के दूर से आने के कारण वह काला होता है तथा मल के साथ अच्छी तरह मिश्रित हुआ होता है। रक्त के कारण दस्त मे बू भी रहती है। जब कभी कुछ भोजनसबधी अपथ्य हो जाता है अर्थात् दूध या दूध से बना भोजन या तीक्ष्णाहार लेते हैं तो दस्त और भी ढीला हो जाता है। कुछ एक रोगियो मे तो इसके वेगो के बीच-बीच मलबन्ध की शिकायत रहती है। कुछ एक मे रक्तातिसार (Melaena) का ही लक्षण विशेष होता है तथापि इसमे रक्त तथा पूय दिखाई नही पडते। कुछ एक मे कभी मल ढीला हो जाता है और फिर कभी मलबन्ध हो जाता है। वर्षो तक रोगी को दस्तो के वेग होते रहते हैं जिनके बीच मे रोगी अच्छा रहता है।

दस्त की शिकायत के अतिरिक्त इस रोग मे अन्नारुचि, अफारा तथा विशेषत पेट मे दर्द या प्राय बेचैनी-सी रहने का लक्षण विशेषत रहता है। बदपरहेजी हो जाने पर यह लक्षण और अधिक बढ जाता है, उसकी भूख कम हो जाती है। Caecum प्रदेश या यकृत् प्रदेश पर स्पर्शाक्षमता का लक्षण भी होता है। कभी-कभी Sigmoid Colon पर दबाने से भी दर्द होता है। इस रोग मे पेट के इन लक्षणो के अतिरिक्त शुष्क कास अथवा श्वासरोग के लक्षण भी होते है तथा कभी-कभी कुछ शरीर-व्यापी लक्षण जैसे शारीरिक श्रम करने से शीघ्र थक जाने या मानसिक श्रम करने से सिर मे चक्कर आ जाने या मन मे विक्षोभशीलता (Nervousness) बढ जाने के लक्षण भी रहते है। Haemolytic Streptococci या इस रोग की विष का नाडियो पर भी विषैला (Neurotoxic) प्रभाव होता देखा जाता है। इसीलिए नाडी शोथ (Neuritis) नाडीशूल (Neuralgia), वातनाडी-नैर्बल्य (Neurasthenia) के उपद्रव भी होते है। नाडी रोग के कारण ही सम्भवत मासशूल (Myalgia), सन्धिशूल, कटिशूल, मांसोद्वेष्टन (Cramps) के लक्षण भी होते देखे जाते है। जब इस रोग का वेग बढता है तब कुछ ज्वर भी हो सकता है।

इस रोग की विष की असात्म्यता (Allergy) के कारण जैसे श्वासरोग होता है वैसे ही पामा (Eczema) का रोग भी हो सकता है। अत यदि पामा हो, शीतपित्त हो, तो पता करना चाहिए कि यह रोग तो नही। इस रोग के कारण पाण्डुता का लक्षण तो प्राय पाया जाता है। इस प्रकार इस रोग का निश्चय करना सुगम नही होता।

परीक्षा —

रोगी के मल की प्रतिक्रिया अम्लीय होती है, उसमे Pus Cells होते हैं, Cysts भी होते हैं जो Prednisolone के ५ मिलि० मात्रा मे दिन मे २ बार देने Hydrocortisone का जल गुदा मे डालने से अधिक आने लगते है। देखने मे रक्त का मिश्रण होने से दस्त भूरे रंग का चटनी की तरह का तथा कुछ दुर्गन्धयुक्त होता है। मल मे निकली रक्तमिश्रित आव की परीक्षा करने से उसमे Amaebae तथा Trichomonas intestinalis देखे जा सकते है। पुराने रोगी मे Saline देकर दूसरे दस्त मे से नमूना लेकर उसकी परीक्षा की जाती है। रक्त की परीक्षा करने पर उसमे १० हजार के लगभग Leucocytosis भी मिलता है। Eosinophils भी ८ प्र० श० से ऊपर होते है। E S R कुछ बढा हुआ होता है। बेरियम की वस्ति देकर X-Ray परीक्षा करने पर Caecum अथवा Colon, शोथ अथवा स्तम्भ (Spasm) के कारण विषम आकृति के अथवा सकुचित (Stenosed) दिखाई पडते है। बृहदन्त्र के निचले भाग मे पाया जाने वाला Haustration या Sacculation लुप्त हुआ दीखता है। मल की सेल सम्बन्धी (Cytological) परीक्षा करने पर साधारण प्रवाहिका मे ९० प्र० श० सेल Polymorphs होते है। चिर प्रवाहिका मे सेल थोडे पाये जाते हैं पर प्रधानत Mononuclears होते है तथा इस रोग मे Charcot Leydencrystals भी पाये जाते हैं।

चिकित्सा —

Chronic Amaebic Dysentery की चिकित्सा

संक्रामक चिर प्रवाहिका रोग, मद रूप मे एव चिर स्थायीरूप मे अधिक पाया जाता है। इसके लिये अमीबानाशक (Amaebicide) औषधियो को Antibiotic औषधियो के साथ-साथ देने मे विशेष लाभ होता हुआ देखा जाता है। उदाहरणत पहले Oxytetracycline (Terramycin) को .२५ से ५ ग्राम की मात्रा मे ६-६ घण्टे बाद ५ से ७ दिन तक दिया जाता है। Streptomyces से

बने Aminosidine Sulphate के एक ग्राम मात्रा मे मास द्वारा दिन मे एक बार ५ दिन देने से भी इस रोग मे बडा लाभ होता है। यकृत् मे रोग हुआ हो तो भी इसमे लाभ होता है। इन Antibiotic औषधियो से अमीबी तथा अडे —दोनो ३-४ दिन मे लुप्त हो जाते है। परन्तु कुछ काल बाद फिर प्रकट हो सकते है। वस्तुत ये सहायक Bacilli के सक्रमण को दूर करती है। ये Amoebicidal नहीं। अत इनके कोर्स के समाप्त होने पर किसी Hydroxy quinoline से बनी Antiamaebic औषधि का कोर्स आरम्भ किया जाता है। उदाहरणत मृदु रोग मे Iodochlor-hydroxy quinoline (Vioform-Enteroviofoim ciba, Entero quinol, (East India Pharma) Enterochin - Quinambicide - Quiniodochlorum Alchloquin Alemb) आदि का जिसमे ४० प्रतिशतक के लगभग Iodine होता है या Di iodohy-droxyquinoline, (Diodoquin Alidoquin, Amoebindon, Davoquin, Nivembin, Embequin) का जिसमे ६० प्र० श० के लगभग Iodine होता, है ६०० मिलि मात्रा मे दिन मे तीन बार २० दिन तक प्रयोग किया जाता है। ये औषधिया आत मे पहुच कर न तो घुलती है, न ही विलीन होती है अत इनका स्थानिक प्रभाव आत के Amaebae पर विशेष होता है। यदि इस रोग के साथ-साथ यकृत् मे भी दर्द हो तो Chloroquine Phosphate (Avloclor I C I Uniquin) ७५ मिलिग्राम, Enteroviofoim २५ ग्राम तथा आत्र जीवाणुओ के लिये घातक Sulphamezathine ५ ग्राम की मिलाकर बनाई गोलियो जैसे Unichem laboratory's Unidyscompound के Dinochlor (B I) Viodochlor (therapeutic) मे से किसी के दिन मे ४ बार दस दिन तक देने से लाभ हो जाता है। Bismuth Glycolylarsanilate (Milibis Dey, viasept, (Hoechst) Neoviasept) जो Arsenic का समास है पर अघुलनशील है के ५ ग्राम दिन मे ३ बार ७ दिन तक देने से अमीबी नष्ट हो जाते है। इसी का Chloroquine तथा Di-iodohydroxy quinoline के साथ बना Chlorambin योग भी दिया जा सकता है। Fumagillin (Fumidil) भी एक उत्तम Amaebicide Antibiotic औषधि है जो २० मिलिग्राम मात्रा मे तीन बार १० दिन तक देने से Amaebae तथा Cysts को नष्ट कर देने वाली तथा उपर्युक्त औषधियो से ठीक न होने वाले रोगी को ठीक करती है पर कुछ विषैली है। Phenanthroline Quinone (Entobex, Ciba या उसके और Antienyl से बने Mexaform, Ciba) २०० मिलि० दैनिक मात्रा मे तीन बार करके भोजन बाद ८ दिन देने से नयी, पुरानी दोनो चिरप्रवाहिकाओ मे लाभदायक है तथा A Hepatitis के लिये भी ठीक है। Intestopan कम्पाउण्ड गोली के दिन मे ३ बार देने मे भी इसी प्रकार १० दिन देने मे लाभ हो जाता है। Paromomycin (Humatin) २५० मिलि० Capseals के जो कि एक न घुलनेवाला Antibiotic है दिन मे ४ बार ५ दिन देने से यह रोग ठीक हो जाता है। इसी प्रकार Diloxanide Furoate (Furamide-Boots) ५ ग्राम के दिन मे ३ बार भोजन के बाद ५-१० दिन तक देने से या Diethy-laminocresal (Camofoim) २५-५ ग्राम मात्रा मे दिन मे३ बार १० दिन देने मे इस रोग के अन्तर्गत सब लक्षण शान्त हो जाते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त कोर्सो को समाप्त करने के बाद एक-दो सप्ताह के लिये औषधि-प्रयोग बन्द करके ३ दिन लगातार मल की परीक्षा करनी चाहिये। यदि परीक्षा पॉजिटिव हो तो एक सप्ताह के बाद फिर औषधियो का उपर्युक्त कोर्स आरम्भ कर देना चाहिए। परन्तु यदि परिणाम 'नैगेटिव' हो तो १ मास ठहर कर फिर मल की परीक्षा करनी चाहिये। इस प्रकार एक-एक मास बाद १२ बार या ३-३ मास बाद मल की परीक्षा करने मे परिणाम नैगेटिव मिले तो रोगी को अच्छा हुआ घोषित कर देना चाहिये।

चि त्सा अमीबिक प्रवाहिका की सक्षिप्त चिकित्सा यह है कि Chlortetracycline ५ ग्राम दिन मे ३ बार या Paromomycin ५ ग्राम दिन मे ४ बार या Erythromycin २५ ग्राम दिन मे ४ बार ५ दिन दे। बाद मे furamide ५ ग्राम दिन मे ३ बार १० दिन दे। इसके बाद Hydroxyquinoline २५ ग्राम दिन मे ४ बार १० दिन तक दे। इस अन्तिम औषधि को २-३ सप्ताहो के अन्तर से फिर २ दुहराना चाहिए। Metronidazole (Flagyl)) के ४०० मिलि मात्रा मे दिन मे ३ बार ५ दिन देने से यह रोग बहुत शीघ्र शान्त हो जाता है। इस समय इसीको सर्वोत्तम औषधि माना जाता है।

तीव्र रोग की चिकित्सा —

तीव्र रूप मे यह चिर प्रवाहिका का रोग हो, अर्थात् दस्तो की सख्या अधिक हो या Acute Primary Attack हो, जिसमे हलका-सा ज्वर भी हो सकता है, तो Emetine Hydrochloride १ ग्रे० या ६०मिलि के १ सी० सी० जल मे घुले घोल के प्रतिदिन ६ दिन तक त्वचा के नीचे देने से तीन

दिन के अन्दर-अन्दर लाभ होने लगता है । यह औषधि हृदय को निर्बल करती है, अत इस चिकित्सा के दौरान रोगी को विस्तर पर पडे रहना चाहिये। Dehydroemetine इसमे कम विषैली है। Emetine इस रोग के Trophozoites को नष्ट करती है, Cysts पर इसका विशेष कोई प्रभाव नही होता। इसके बाद (Diloxanide furoate (Furamide, Entamide,) ५ ग्राम दिन मे ३ बार १० दिन तक दे देना चाहिये। यदि Emetine न दिया जा सकता हो तो Camoform २५ ग्राम की १-२ गोलिया दिन मे ३ बार भोजन के बाद ५ दिन तक देने से अमीबी तथा Cysts दोनो लुप्त हो जाते है। किसी उपर्युक्त Antibiotic (Terramycin १-२ ग्राम दैनिक या Bacitracin ८० हजार यूनिट दैनिक) का प्रयोग किया जा सकता है इस रोग मे रोगी की शारीरिक शक्ति को कम नही होने देना चाहिये तथा दूध, दही आदि मृदु प्रोटीन भोजन विशेष देने चाहिये। सब्जी, फल, चटनी, अचार, मद्य, अधिक गर्म तथा अतिशीत पेय तथा भारी भोजन सर्वथा नही देने चाहिये। तीव्र रोग की सक्षिप्त चिकित्सा यह है कि Emetine इन्जे ६ दिन देकर Furamide ५ ग्राम दिन मे ३ बार १० दिन दे। या इसके स्थान पर Milibis ५ ग्राम दिन मे ३ बार १० दिन या Camoform इतनी मात्रा मे ५ दिन दें। इनके साथ-साथ Chloroquine २५ ग्राम २ बार दे।

इस रोग से बचने के लिये उचित है कि बाहर यात्रा पर जाते हुए क्लोरिनेटेड जल या उबले हुए जल का एव अग्निपक्व भोजन या Pot Permang से धोये फलो का ही प्रयोग किया जाय।

प्रवाहिकाजनित यकृच्छोथ Hepatitis तथा प्रवाहिकाजनित यकृद्विद्रधि (Liver Abscess)

जिन व्यक्तियो को चिरस्थायी रूप मे यह चिर प्रवाहिका का रोग होता है उनमे मे कुछ एक लगभग ५-६ प्रतिशतक मे आत्र व्रणो मे से Emboli के शिरा द्वारा यकृत् में पहुच जाने मे यकृच्छोथ तथा यकृद्विद्रधि के रोग हो जाया करते हैं। चिर प्रवाहिका का रोगी मद्य-मसाले आदि तीक्ष्ण-उष्ण गुण आहार-द्रव्यो का अति मात्रा मे प्रयोग करे या आहार अधिक मात्रा मे लेवे तो यकृत् मे रक्त-सचय के हो जाने से इन रोगो के होने मे सहायता मिलती है।

यकृच्छोथ (Amaebic Hepatitis)

जब बृहदन्त्र मे से Amaebae एक बडी मात्रा मे यकृत् मे सचार कर जाते है तो, यदि रोगी मद्यपी नही है, प्रोटीन भोजन लेता है स्वस्थ है तो स्वल्प से लक्षणो अर्थात् यकृत् पर स्पर्शाक्षमता, मन्द ज्वर, मन्द वेदना के बाद इनके विपरीत वहा पर एक प्रबल प्रतिक्रिया होती है अर्थात् यकृत् मे रक्त-सचय प्रबल रूप मे होता है जिससे ये जीवाणु नष्ट हो जाते है रोगी अच्छा हो जाता है। पर यदि रोगी की प्रतिरोधक शक्ति निर्बल हो तो तीव्र या चिरस्थायी यकृच्छोथ हो जाता है। इस अवस्था मे रक्त के भर जाने मे यकृत् आकार मे कुछ बडा हो जाता है, दाई छाती के नीचे भारीपन प्रतीत होता है, छूने या दबाने से उसमे दर्द होता है, थोडा-बहुत ज्वर (१०१-१०२ डिग्री तक) भी होता है, तथा विषसचार के कारण क्षुधानाश, अशक्ति तथा पाण्डुता के लक्षण भी होते है। रक्त की परीक्षा करने से Leucocytosis का लक्षण भी मिलता है। उचित चिकित्सा से यह तीव्र शोथ भी शान्त हो जाता है। अरुचि-आध्मान-यकृत्-परस्पर्शाक्षमता, Leucocytosis आदि लक्षण भी शान्त हो जाते है।

यकृद्विद्रधि

(Liver Abscess)

जब यकृत् मे होने वाली प्रतिक्रिया के द्वारा जीवाणु नष्ट न हो पाये, यकृत् की प्राणशक्ति कुछ क्षीण हो, जैसी मद्यपी मे होती है, एव जीवाणु या अमीबी किसी एक स्थान पर रोहण करने लग जाये तो उनमे से उत्पन्न होने वाले Proteolytic Enzyme के द्वारा उसके आसपास के यकृत् के सेलो मे विनाशक प्रक्रिया (Cytolitic Activity) आरम्भ हो जाती है। बहुधा यकृत् के दक्षिण खण्ड (Right Lobe) के पिछले ऊपर के भाग मे आधे से एक इच के लगभग व्यास का भूरे रग का चकत्ता बन जाता है, जिसके सेल क्षीण अवस्था मे होते है, अर्थात् यह एक Necrotic Patch होता है। इस चकत्ते का केन्द्र भाग धीरे-धीरे द्रवरूप मे परिणत होने लगता है एव यह विद्रधि धीरे-धीरे आकार मे बढती जाती है। अन्त मे १-२ या इससे भी अधिक इन व्यास की एक विद्रधि बन जाती है। जब इस विद्रधि का प्रसार यकृत् के पृष्ठ तक हो जाता है तब वह अपने समीपस्थ अग के साथ चिपक जाता है। यकृत् मे ऊपर के भाग मे विद्रधि हो तो वह दक्षिण फुप्फुस के साथ चिपक जाता है। अनेक छोटी-छोटी विद्रधिया भी यकृत् मे हो सकती हैं। पशुओं मे Intraportal विधि से Amaebae को प्रविष्ट करके यकृद्विद्रधि उत्पन्न नही की जा सकी, अत आतो मे से कोई दूसरा तत्त्व आता है जो यकृत् मे पहले इस जीवाणु के लिये अनुशयिता उत्पन्न कर देता है। उसके बाद उस जीवाणु से यह विद्रधि होती है ऐसा लगता है। यथ इस विद्रधि का

एक प्रमुख कारण है। कइयों को प्रवाहिका विशेष नही होती पर वे मद्यसेवी होते है, इसी कारण उन्हे यह रोग होता है।

लक्षण :—

यकृद्विद्रधि होने पर वेदना का लक्षण होता है; अर्थात् यकृत् पर भेदन या चुभोने (स्टिच) की-सी वेदना होती है। यकृच्छोथ की अवस्था मे यह वेदना भार की-सी प्रतीति या मन्द-मन्द बेचैनी (Dull aching) के रूप मे होती है। कुछ एक व्यक्तियो (६ प्र० श० के लगभग) मे वेदना कन्धे के आसपास, अर्थात् Acromion के प्रदेश के आसपास होती है। दक्षिण Diaphragm मे से यह दर्द Phrenic Nerve के द्वारा Cervical Plexus के चौथे root मे और वहा से निकलने वाले Supra clavicular तथा Supra acromial Nerves के द्वारा कन्धे की त्वचा मे प्रतिक्षिप्त (Reflex) होता है। वेदना के लक्षण के अतिरिक्त यकृत् पसलियो के नीचे (Sub costal-region मे) कुछ-कुछ बढा हुआ होता है तथा दबाने से दुखता है।

वेदना और यकृद्विद्रधि के स्थानिक लक्षणो के अतिरिक्त सायकालिक ज्वर होने का लक्षण भी होता है। प्रात काल तापमान नार्मल होता है परसायकाल १०१, १०२ डिग्री तक हो जाता है। ज्वर सरदी लगकर चढता है तथा रात को पसीना देकर उतरता है। अथवा ज्वर प्रात काल नार्मल से कुछ ऊपर तथा सायकाल १०२, १०३ डिग्री तक हो जाता है। इसे देखकर स्वभावत विषम ज्वर का सन्देह होता है। परन्तु इस रोग मे Polymorpho nuclear Leucocytosis होता है जबकि उस रोग मे Mononuclear Leucopenia पाया जाता है। वह क्विनीन से उतर जाता है, यह नही उतरता। ज्वर के साथ यकृत् पर दर्द का लक्षण भी हो तो इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिये। ज्वर के अतिरिक्त रोगी का रग कुछ मटियाला-सा होता जाता है। भार घटता जाता है, शैथिल्य और अशक्ति के लक्षण बढ जाते है, अन्न के लिये अरुचि रहती है। विद्रधि के कारण Common Bile Duct या Portal Fissure पर दबाव पड जाय तो हलका-हलका कामला का लक्षण भी होता है अर्थात् आखो मे कुछ पीलापन दीखता है। रोग के बढने के साथ-साथ सर्दी लगकर ज्वर के बढने और रात को अति स्वेद के आने लक्षण और स्पष्ट हो जाते है।

परीक्षा —

रोगी की जिह्वा मैली तथा पेट मे आध्मान और अतिसार होने के लक्षण होते है। उसके मल मे Cysts भी बहुधा पाये जाते हैं।

यकृत् के 'दक्षिण गण्ड' के ऊपर के भाग मे विद्रधि हो तो यकृत् ऊपर की तरफ बढता है। इस अवस्था मे यकृत् की ऊपर की सीमा जो Mid Clavicular Line मे छठी, Mid axillary Line मे ८वी तथा Scapular line मे १०वी पसली पर होती है—एक इच के लगभग ऊपर की ओर बढी हुई मिलती है अर्थात् टकोरने से यकृत् की मद टकोर ऊपर बढी हुई होती है, श्वास-प्रश्वास ध्वनिया (Breath sounds) भी मन्दरूप मे या नहीं सुनती है। वाचिक कम्पन (Vocal Fremitus) भी घटी हुई होती है। दक्षिण फुफ्फुस का यह प्रदेश (Base) श्वास-प्रश्वास के साथ जितना हिलना चाहिये उतना नहीं हिलता, गहरा श्वास लेने मे रोगी को दर्द होता है अत उसका श्वास भी उथला ही होता है रोगी की स्थिति से भी इस रोग का पता चलता है अर्थात् रोगी पीठ के भार दाहिने पार्श्व पर लेटना पसन्द करता है, क्योकि बाये पार्श्व पर लेटने से यकृत् के उदर खिसकने पर दर्द प्रतीत होने लगता है। यकृत् प्रदेश पर पसलियों के बीच उभार-सा भी कभी-कभी दीखता है। यकृत् के निम्न भाग मे विद्रधि हो तो उभार नीचे की ओर को होता है और स्पर्श द्वारा अनुभव किया जा सकता है। यकृत् मे विद्रधि कही भी हो, यकृत् पर दबाने से दर्द होता है। X-Ray द्वारा परीक्षा करने मे दाये Diaphragm मे गतिशीलता कम हुई दीखती है। वह स्थिर तथा कुछ ऊचा उठा हुआ दीखता है। रक्त परीक्षा करने पर Leucocytosis विशेषत Polymorphs की श्वेतकण-वृद्धि (१५-३५ हजार) का लक्षण मिलता है। Van den Bergh परीक्षा Direct positive होती है, Thymol turbidity ४ यूनिट्स तक होती है।

इस रोग की उचित चिकित्सा न हो, विद्रधि फैलती जाय तो विष-सचार के बढने मे रोगी अशक्त, हीनबल, कृश होता हुआ मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, अथवा विद्रधि अपने समीपस्थ किसी आशय मे खुल जाती है। ऊपर दक्षिण फुफ्फुस मे खुल जाय तो Pulmonary Abscess होकर रक्तयुक्त पूय मुख से निकलने लगती है। जिसे देखकर Pulmonary टी०बी० का सन्देह हो जाता है, परतु यकृत् की पूय चाकलेट के रग की भूरी-सी होती है, अत इस रोग का उर क्षय से भेद करना सुगम है। फुफ्फुस मे विद्रधि खुल जाए तो Prognosis अच्छा है। विद्रधि Pleura मे खुल जाय तो Pleurisy with Effusion या Empyema का रोग हो जाता है तथा Aspiration से ही इस उपद्रव का निश्चय होता है। Aspiration से रोगी ठीक भी हो जाता है। कभी-कभी इस विद्रधि के आमाशय मे खुलने मे पूय वमन, आत मे खुलने से मल मे पूय आने के लक्षण हो सकते है। Peritoneum मे इसका खुल जाना अधिक भयकर

उपद्रव है। कोष्ठ की अगली दीवार के साथ इसके चिपक जाने से यह विद्रधि आमाशयप्रदेश (Epigastrium) मे मुख बना सकती है। X-Ray परीक्षा द्वारा यकृत् तथा दक्षिण Diaphragm ऊपर की ओर बढा हुआ (Upward displacement) दीखता है। Screening से उदर का Diaphragm श्वास के साथ भी नही हिलता दीखता है। Serum alkaline Phosphatase test पाजिटिव होता है। यकृत् मे पूय होने पर शीघ्र उसे Aspiration से निकाल देना चाहिए ताकि उसके Pleura या Pericardium मे खुलने का भय न रहे। पेट या पीठ पर दाई ओर कोई उभार निकल आवे और रोगी प्रवाहिका का रोगी हो तथा मद्यपी हो, तो विद्रधि का ही सन्देह करे।

चिकित्सा :—

यकृच्छोथ की अवस्था मे या प्रारम्भिक यकृद्विद्रधि की अवस्था मे Emetine ६० मिलि या १ ग्रेन के त्वचा द्वारा प्रतिदिन ६ दिन तक देने और बाद मे Chloroquine Diphosphate (Avlochlor, Resochin, Nivaquine) जो इस रोग की निरुपद्रव उत्तम औषधि है, देने से यह उपद्रव ठीक हो जाता है। सभवत आत मे विलीन होकर यह औषधि यकृत् मे सचित होती है। पहले तीन दिन इसकी ३०० मिलि की एक मात्रा प्रतिदिन दो बार दी जाती है। फिर १५-२० दिन तक इसकी १५० मिलि की मात्रा २-३ बार प्रतिदिन दी जाती है। यह औषधि Amaebicide है तथा यकृत् मे पहुचकर अपना यही प्रभाव करती है। उपर्युक्त दोनो औषधियो को साथ-साथ भी दिया जा सकता है। इनके साथ या बाद मे आत मे विद्यमान रोग की शान्ति के लिये किसी Tetracycline का २५ ग्राम मात्रा मे या Erythromycin २०० मिलि. का दिन मे ३ बार प्रयोग भी करना चाहिये।

यकृद्विद्रधि के लिये भी उपयोगी औषधि Emetine Hydrochloride है जो एक ग्रेन अर्थात् ६० मिलि० ग्राम की मात्रा मे १० दिन तक प्रतिदिन मास द्वारा दी जाती है। इस चिकित्सा के दौरान मे रोगी को दो सप्ताह शय्याशायी रहना चाहिये तथा दूध, फल-रस आदि द्रव भोजन पर रहना चाहिये। Dehydro emetine इसकी अपेक्षा अधिक निरुपद्रव औषधि है जिसे ६० मिलि० दैनिक मात्रा मे मास द्वारा १० दिन दिया जाता है। दूसरे जीवाणुओ के निराकरण के लिए Terramycin का ५ ग्राम की मात्रा मे दिन मे तीन बार सात दिन प्रयोग करना चाहिये। इस चिकित्सा के बाद रोगी को दो सप्ताह तक उपर्युक्त किसी अमीबानाशक औषधि (Enterovioform या Embequin) का ३½ ग्रेन मात्रा मे दिन मे ३ बार सेवन कराना चाहिये। Diodoquin या di iodohydroxyquinoline तथा Chloroquine Phosphate (Avlochlor, Resochin) को २५० तथा ७५ मिलि० की मात्रा मे मिला कर बनाई गोलिया भी दिन मे तीन बार दी जाती है। Chloroquine Phosphate के १० दिन देने के बाद २ सप्ताह ठहरकर फिर इसका और Erythromycin का एक कोर्स दे देना चाहिये, परन्तु अब तो Metronidazole (Flagyl) को ४०० मिलि मात्रा मे दिन मे ३ बार ५ दिन देने से प्रवाहिका तथा यकृतवि-द्रधि दोनो को एक साथ लाभ हो जाता है। यही औषधि इस समय सर्वोत्तम पाई गई है। कोई लोग तो २ ग्राम मात्रा मे इसकी १ मात्रा को २ दिन दे देते है जिससे विशेष लाभ होता है। विद्रधि बडी हो, Emetine तथा Chlorcquine Phosphate अथवा Flagyl २००-४०० मिलि दिन मे ३ बार ७ दिन तक देने की चिकित्सा से शान्त न हो, तो उसमे से Aspiration द्वारा पूय को निकालना चाहिये। पसलियो के बीच मे जहा उभार अधिक प्रतीत होता हो या जहा स्पर्शाक्षमता का लक्षण विशेष हो उस स्थान पर अथवा कही विद्रधि का बाह्य लक्षण न हो तो Mid axillary Line या Ant axill line मे ९वे Inter space मे पूय का पता (Exploration) करना चाहिये। १०, २० सी० सी० सीरिज के द्वारा इस प्रदेश मे पहले यकृत् के बाहर के खोल तक Anaesthetic औषधि डाल देनी चाहिये और फिर एक चौडी नीडल को तीन इच गहराई तक अन्दर और ऊपर की ओर प्रविष्ट करके पिस्टन को ऊपर खीचते हुए पूय का पता करना चाहिये (Infer Venacava ४ इच से अधिक दूर होता है,) अत सुई को ३ इच से अधिक प्रविष्ट न करे। एक स्थान पर पूय न मिले तो नीडल को त्वचा तक बाहर वापिस करके दूसरी दिशा मे डालकर देखना चाहिये। या Posterior axillary Line मे विद्रधि को ढूढना चाहिये। विद्रधि का पता लगने पर फिर और भी चौडी नीडल प्रविष्ट करके उसका सम्बन्ध Potain's aspirator के साथ कर दिया जाता है और पूय को बाहर खीच लिया जाता है। पूय की मात्रा कुछ औस से लेकर कई पौण्ड तक हो सकती है। जितनी निकाली जा सके निकाल देनी चाहिये, अन्दर छोडना नही चाहिये। इसके बाद Flagyl ६००-१२०० मिलि० दैनिक मात्रा मे देना चाहिये ताकि आत मे से फिर Amaebae का सक्रमण न हो।

इस रोग मे रोगी को प्रोटीन भोजन बहुत कम देना चाहिये, भोजन स्टार्चप्रधान ही होना चाहिये ताकि Ammonia विष का शरीर मे सचार न हो, प्रोटीन के ठीक-

ठीक न पचने से ऐसा हो सकता है।

फुफ्फुसगत अमीबा रोग (Pulmonary Amoebiasis)- आंत मे से E histolytica के शिरा द्वारा फुफ्पुस की शिराओ मे चले जाने से वहा के एक क्षेत्र मे Broncho-pneumonia हो सकता है जिससे खासी का लक्षण होता है।

रक्तातिसार या त्रिदोषातिसार या रक्तपूयातिसार

(Ulcerative colitis, Non-specific colitis या C Idiopathic colitis)

सक्रामक प्रवाहिका मे तथा वृद्धो मे होने वाले चिर-स्थायी वृक्क रोग (Chronic Nephritis) के कारण रक्त मे मूत्र-विष (Urea) की वृद्धि हो जाती है तथा क्षय-जनित Enterocolitis से भी बृहदत्र की श्लेष्मकला मे शोथ होकर बृहदत्र शोथ, तथा व्रण (अर्थात् Ulcerative Colitis) का रोग हो जाया करता है और उसके कारण रक्त और आव से मिश्रित पतले दस्त होते रहते है। परन्तु इनसे सर्वथा भिन्न एक इस प्रकार का बृहदत्र शोथ है जो किसी विशेष जीवाणु या शरीर मे उत्पन्न हुए विष (Metabolite) के द्वारा नही होता प्रत्युत बृहदत्र श्लेष्मकला की किसी अपनी निर्बलता या विक्षोभशीलता (Devitalisation) के कारण होता है। इसलिए इसे Non-Specific या Idiopathic colitis कहते है। इस रोग के बढने पर बृहदत्र श्लेष्मकला मे उथले व्रण भी हो जाते है। इसीलिये इसे व्रण युक्त बृहदत्र शोथ Ulcerative Colitis भी कहते है। यह एक दीर्घ रोग है जो ठीक होकर फिर-फिर हो जाता है या हलके-हलके रूप मे वर्षो रहता है, या सहसा तीव्र Fulminating रूप मे प्रकट होकर अतिरक्तस्राव और Toxaemia के द्वारा घातक हो सकता है।

कारण :—

Mental stress—कुछ लोग Parasympathetic नाडीमण्डल की सक्रियता को इस रोग का कारण मानते है। बृहदत्र के प्रारम्भिक चढते हुए तथा लेटे हुए आधे भाग मे Parasympathetic नाडिया Vagus से और इसके शेष निम्न भाग मे यही नाडिया Sacral Nerves से आती है तथा बृहदत्र की मासपेशियो मे होने वाली गति को उत्तेजित करने का कार्य करती है। उन मनुष्यो मे, जो स्वभावत विक्षोभशील प्रकृति के होते है या क्रोधी और विग्रही स्वभाव के होते है पर अपने विक्षोभ को वचन या कर्म के द्वारा बाहर नही करते, उनके बृहदत्र के निम्न भाग मे जाने वाली ये नाडिया विशेषत विक्षुब्ध होती रहती है, जिससे उनका बृहदत्र अधिक गतिशील रहता है ठीक जैसे Peptic ulcer के रोगी मे आमाशय को जाने वाला Vagus नाडी-समूह ही विशेषत विक्षुब्ध रहता है। विक्षोभशील व्यक्तियो मे उनका बृहदत्र अधिक गतिशील ही नही बल्कि उसमें रक्त सचय (Hyperaemia) भी अधिक होता है। इस प्रकार समझा जा सकता है कि चिन्ता, क्रोध, शोक आदि मानस भावो से शीघ्र अभिभूत हो जाने से यह रोग होता है। उसमे स्वभावत स्वल्प मात्रा मे उत्पन्न होने वाले एक पाचक रस Mucinase या Lysozyme की उत्पत्ति भी इन मानस-विक्षोभो के कारण अधिक बढ जाती है। वह इतनी बढ जाती है कि उसके द्वारा श्लेष्मकला के ऊपर छाया श्लेष्म-द्रव Mucus भी पच जाता या Hydrolised हो जाता है। (यह Mucolytic तथा Bacteriolytic होता है)। यह श्लेष्म-द्रव वस्तुत विक्षोभक द्रव्यो मे श्लेष्मकला की रक्षा करता है, जब यह पच जाता है तो ऊपर मे आये विक्षोभक, गुण भोजनो या Trypsin आदि Enzymes अथवा बृहदत्र मे पाये जाने वाले E histolitica या B coli, या Diplostreptococcus, या Staph aureus आदि जीवाणुओ का दुष्प्रभाव श्लेष्मकला पर सुगमता मे हो जाता है। इस प्रकार Hypothalamus के विक्षोभ या मानसिक विक्षोभशीलता को इस रोग का प्रधान कारण कहा जाता है। Portis ने पहले-पहल इस रोग को इस प्रकार मानसिक कारण से उत्पन्न होने वाला तथा कहा बताया कि इस रोग के वेग के समय रोगी के मल मे Lysozyme की मात्रा अधिक पाई जाती है। जब भी कोई मानसिक विक्षोभ आ पडता है, रोग मे वृद्धि या Relapse हो जाता है। पर हो सकता है यह द्रव्य इस रोग का परिणाम या लक्षण (या Concomitent) हो, कारण न हो (इसे Lysozyme theory कहते है)।

इस रोग के रोगियो की अग्नि पहले से ही मन्द या तीक्ष्ण होती है अर्थात् ये Hyper या Hypochlorhydric प्रकृति के होते है। इसलिये यदि ये भारी मात्रा भोजन मे करे या विक्षोभक भोजन विशेष लेवे तो वह भी बृहदत्र की श्लेष्मकला मे शोथ का कारण बन जाता है। जब यह रोग एक बार हो जाता है अर्थात् बृहदत्र शोथ-उत्पन्न हो जाता है तब जीवाणु Diplobacillus या Streptococcus या B Coli आदि इस रोग के सहायक कारण बन जाते है परन्तु उन्हे इस रोग का प्रधान कारण नही माना जाता (इसे Infetion theory कहते है)।

कुछ लोग इस रोग का कारण Auto-immunity को कहते है। उनका कथन है कि जीवाणु या उनसे उत्पन्न विष

के द्वारा Colon के Proteins का Molecular pattern ही बदल जाता है, जिससे ये प्रोटीन अपने न रह कर पराई किस्म के हो जाते हैं, जिससे स्वभावत इन Complex proteins के विपरीत वहां Antibodies उत्पन्न हो जाते हैं। अर्थात् इस रोग में Autoantigens और Antibodies में सघर्ष से Colon क्षत हो जाता है। रोगी के Mucosal Smears में Eosinophils भी अधिक पाये जाते हैं। कभी-कभी तो दूध को इस Allergy का कारण पाया गया है अर्थात् दूध की असहनशीलता कारण है और दूध छोडने से रोगी को आराम होता देखा गया है। परन्तु सभी रोगियों में भोजन सम्बन्धी कोई Allergen इस रोग का कारण है ऐसा माना नही जाता।

विकृति :—

पहले मलाशय (Rectum) में तथा फिर Pelvic colon की श्लेष्मकला अर्थात् Mucous तथा Submucous तह में पामारोग (Eczema) के समान लालिमा युक्त शोथ हो जाता है, इसमें श्लेष्मकला कुछ मोटी भी हो जाती है। इस शोथ युक्त प्रदेश में से मल का स्पर्श होने पर रक्तस्राव हो जाता है, इसीलिये इस रोग में मल के साथ लाल-सा रक्त भी थोडा-बहुत आता है। वहां से यह शोथ क्रमश बडी आत की श्लेष्मकला में ऊपर की तरफ बढता जाता है। Lieberkuhn के गढों या Crypts में यह शोथ विशेष होता है। रोग के पुराने हो जाने पर इस शोथ युक्त प्रदेश की झिल्ली (Epithelium) स्थान-स्थान पर मृत (Necrosed) होकर झड जाती है जिससे बृहदन्त्र में छोटे-छोटे उथले व्रण हो जाते है। रोग बढे तो श्लेष्मकला के मास Muscularis mucosae में नीचे Submucous tissue तक भी गडा हो जाता है, साधारण रोग में मास या Muscular तह तक नही जाते। व्रणों के बीच-बीच की श्लेष्मकला सूजी हुई होती है (Congestion तथा Oedema होता है)। रोग के और पुराने हो जाने पर श्लेष्मकला के नीचे का अवयव (Submucous tissue) कुछ मोटा एव कठोर होने लगता है अर्थात् उसमें Fibrosis की प्रतिक्रिया होने लगती है जिससे आत की दीवार नलके की तरह कठोर तथा आत के बीच का मार्ग कुछ तग हो जाता है अर्थात् Fibrous Stricture हो जाता है एव आत का आकार बदल जाता है, अर्थात् इसके अदर दीखने वाले थैलाकार प्रदेश Haustra लुप्त हो जाते हैं। इस अवस्था में शोथ के बाद आत क्षीण होने लगती है और उसकी लचक जाती रहती है। वह मल का शोषण नही कर सकती है तथा विक्षुब्ध होने के कारण उसे शीघ्र-शीघ्र आगे फेंकने लगती है जिससे अतिसार रोग हो जाता है। सक्षेपत इस रोग में बडी आत की श्लेष्मकला में शोथ तथा व्रण भाव रहता है, Necrosis के साथ-साथ Fibrosis भी रहता है जिसके कारण अतिसार के साथ आव तथा लाल रग का रक्त भी आता रहता है। आत में Stenosis भी हो जाता है। आत की गहरी तह में यह रोग बहुत कम प्रसरण करता है। इस रोग में पोषण की कमी के कारण यकृत् के सेलों पर दुष्प्रभाव होकर उनमें क्षीणता व मृत्यु की प्रक्रिया हो जाती है। रक्त-परीक्षा करने पर Potassium, Sodium, Calcium, Albumen तथा Vitamins की मात्रा नार्मल से कम होती है। मल की परीक्षा करने पर उसमें Amaebae तथा रोगजनक जीवाणु कोई नही मिलता। पोटासियम की कमी से शरीर के मास मात्र में निर्बलता, अरोचक तथा हृदयदौर्बल्य के लक्षण होते है।

लक्षण :—

२५-३० वर्ष की आयु के बैठकर कार्य करने वाले स्त्री-पुरुषों में पाया जाने वाला यह एक पुराना रोग है जो धीरे-धीरे अज्ञात रूप से आरम्भ होता है पहले बिना अतिसार के ही मल में रक्त और पूय आने लगता है यह अवस्था महीनों तक रह सकती है, इसके बाद अतिसार का लक्षण होता है जो महीनों-वर्षों तक रहता है, कभी कम हो जाता है, कभी बढ जाता है। अतिसार इस रोग का प्रधान लक्षण है जो अर्धद्रव होता, मात्रा में बडा नही होता तथा दिन में उसके २-३ या ५-१० तक वेग होते हैं। जब दस्त अधिक होते हैं तब रात को भी १-२ बार जाना पडता है। शोथ Colon के निम्न भाग में हो तो रक्त और आव पतले मल में पृथक् दिखाई पडते है। बहुधा रोगी इस खून को अर्श के कारण आया समझता है। इस रोग में दस्त पीले-से रग का होता है आव और रक्त पृथक् नही मल के साथ आते हैं तथा विशेष मरोड और दर्द के साथ नही आते और बहुत दिनों तक जारी रहते हैं। इसलिये इसका Bacillary Dysentery से सदेह नही होता। इसमें कभी-कभी दस्त के साथ मिला हुआ रक्त अधिक मात्रा में आता है। रोग पुराना हो बृहदन्त्र के निचले भाग से ऊपर एक बडे भाग में फैल गया हो तो इसमें ज्वर भी न्यूनाधिक रहता है तथा रक्त और आव मल के साथ एक हुए होते है। उतरती हुई आत पर विशेषत बायें Iliac fossa पर दबाने से स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है। इस प्रकार रक्तातिसार और ज्वर के अतिरिक्त रक्तक्षयजनित पाण्डुता, निर्बलता और कृशता अर्थात् भार के घट जाने के लक्षण भी होते है। पाण्डुता Iron या लोह की कमी से होती है। अतिसार के रहने पर

भी इस रोग मे पेट अफरा हुआ नही होता प्रत्युत कुछ पिचका हुआ होता है। क्षुधानाश या अन्न के लिये अरुचि का लक्षण नही रहता है। इस रोग मे वसा के अधिक सचित होने से यकृत् कुछ बढ जाता है एव रुग्ण होता है तथा उसमे दर्द भी हो जाता है। आत से आने वाली किसी Toxin से अथवा पोषणहीनता Malnutrition से यकृत् रुग्ण प्रतीत होता है। आत मे से अतिसारो द्वारा रक्त के अलब्यूमिन के निरन्तर निकलते रहने (Hypoproteinaemia) से Nephritis के समान इस रोग मे भी शोथ (Oedema) का लक्षण हो सकता है कभी-कभी अतिरक्त स्राव होने का उपद्रव हो सकता है तथा कभी-कभी दायें Colon मे कैसर या Malignant growth होने का उपद्रव भी होता है। पुराने रोग मे Barium का Enema देने पर X-Ray द्वारा देखने पर वृहदन्त्र अधिक सक्रिय दीखता हे, श्लेष्मकला तथा उसके Muscularis muscosae के मृत (Paralysed) हो जाने के कारण आत मे पाये जाने वाले Haustra दिखाई नही पडते। आत पाइप की तरह तथा कुछ अधिक सकुचित हुई दीखती है तथा उसमे व्रणो के अनेकानेक गड्ढे (Craters) दिखाई पडते है। Leucocytosis तथा B S R के बढ जाने के लक्षण भी होते हैं। मलाशय के ऊपर के भाग मे Fibrous Stricture का होना तथा वहा किसी व्रण से रक्त-स्राव का हाना इसके उपद्रव हो सकते हैं। Entamaeba histolytica मे उत्पन्न रोग तथा Mucous colitis से इसका भेद करना चाहिये। इस रोग का रोगी कोई ही ठीक होता है, अधिकतर चिर रोगी रहते है।

भेद—कभी-कभी यह रोग तीव्र रूप से आरम्भ होता है। मल के साथ अति रक्तस्राव होता हे, ज्वर रहता हे, तथा Toxaemia या विष-सचार का लक्षण होता है। अतिरक्तस्राव, स्रोत सकोच—Stricture—कैन्सर इसके स्थानिक उपद्रव हैं। Hepatitis इसका दूसरा उपद्रव हे। उपद्रव होने पर यह रोग असाध्य है, अन्यथा यह याप्य हे।

त्रिदोषातिसार की चिकित्सा :—

इस रोग के कारणो का ठीक-ठीक पता न होने से इसकी प्रामाणिक चिकित्सा नही है। यदि रोगी की प्राणशक्ति को कायम रखा जाय एव उसे बढाया जाय तो रोग के लक्षण शान्त होने लगते हैं। इसलिये रोगी की विश्राम चिकित्सा करनी चाहिये। शारीरिक विश्राम या शय्याशायी होकर रहने मे भी मानसिक विश्राम देना अधिक सहायक होता हे। इसके लिये Phenobarbitone आधा ग्रेन की मात्रा मे प्रात -साय दे सकते है।

रोगी की शारीरिक और मानसिक शक्ति को बढाने के लिये उसे पौष्टिक आहार, जो मृदु, रेशो से रहित, सुपच, प्रोटीन तथा विटामिन प्रधान हो, देना चाहिये। दिन मे तीन-चार या इससे अधिक वार अतिसार हो जाने मे शरीर मे से जल, सोडियम, पोटासियम, कैल्सियम आदि अधिक मात्रा मे निकलते रहते है। आतो मे से होने वाले स्राव केद्वारा दिन-रात मे ४०-५० ग्राम के लगभग प्रोटीन भी निकल जाता है रोगी के शरीर मे Infection रहने के कारण भी बहुत-सा प्रोटीन नष्ट होता है। इसलिये भोजन इतना और इस प्रकार का होना चाहिये जो इस कमी को पूरा करे। कइयो को दूध मे रोग बढता है यदि वह अनुकूल हो तो दूध या मट्ठा (१ सेर मट्ठे से ३०० के० गर्मी की प्राप्त होती है) इस दृष्टि से इस रोग के लिये उत्तम आहार है। एक सेर या एक लिटर दूध से लगभग ३३ ग्राम प्रोटीन ३९ ग्राम फैट तथा छ-सात सौ केलोरी ऊष्मा की शरीर को मिलती है। इसलिये दिन-भर मे यदि तीन सेर दूध रोगी ले सके तो यह उसके लिये पूर्ण भोजन होजाता है। Casilan एक बडा चम्मच, दूध के साथ दिन मे ३ बार दे सकते हैं। दूध, दही (३० ग्राम से २४ ग्रा० प्रोटीन तथा १०० कै० गर्मी की मिलती हे) के अतिरिक्त प्रोटीन हाई-ड्रोलाइसेट्स (Hepovite Evans) को दूध मे डालकर तथा रोटी (४० ग्राम से ३ ८ ग्रा० प्रो०, १०० कै० गर्मी की मिलती है), उबला चावल, पतली मूग की दाल, परवल, लौकी, तोरी, टीडा, उबले हुए आलू, पिसे हुए मृदु शाक, आधा उबला अण्डा, कीमा किया हुआ मास, फलो के बिना गुठली वाले गूदे, फलरस आदि सभी मृदु (Bland) भोजन रोगी को दिये जा सकते है। ऐसे प्रोटीन भोजन जैसे Protemex (Pfizer) Proteinules (Alemb) भी दिये जा सकते हैं। अनेक अतिसारो के कारण शरीर मे जल की मात्रा कम हो जाती हे अत जल अधिक देना चाहिए। दूध देकर देखना चाहिए, रोगी को अनुकूल न हो तो नही देना चाहिये। तीव्र रोग की अवस्था मे फलरस, ग्लूकोज, साबूदाना ही देना चाहिये। Allergy का सन्देह हो तो दूध, अन्न आदि मे से एक-एक का परित्याग करके देखना चाहिये।

यह भोजन प्रारम्भ मे इतना होना चाहिये कि उसमे रोगी को प्रोटीन ९० ग्राम, फैट इससे ड्योढा, अर्थात् १२० ग्राम तथा कार्बोहाइड्रेट प्रोटीन से दुगना अर्थात् १८० ग्राम (४० ग्रा० रोटी से २० ग्रा० कार्बो०, चावल २७ ८ ग्रा० से २२ ग्राम कार्बो० तथा १०० कै० गर्मी की मिलती है) प्रतिदिन मिल जाय। इन भोजन-तत्त्वो के अतिरिक्त उसे Vitamin 'A' ५३०० इटरनेशनल यूनिट्स, Thiamine १५ मिलीग्राम, Riboflavin २ मिलिग्राम, Nicotinic

Acid १०० मिलिग्राम तथा Vitamin 'C' ५० मिलि० मिल जाय। यदि ये विटामिन भोजन से पूरे नही मिल सकते हो तो Beplex (२ केप्सूल) प्रतिदिन Marmite, yeast आदि कृत्रिम विटामिन औषधियो का प्रयोग करना चाहिये। विटामिन 'बी' १२ या Crude Liver के साथ-साथ विटामिन 'सी' का प्रयोग करने से व्रणो के रोहण मे सहायता मिलती है। रक्तस्राव के लिये Vit. 'K' भी उपयोगी हो सकता है। कोई कहते है कि सेव के ५-६ सेर गूदे पर रोगी दिनभर कुछ काल रहे तो भी इस रोग मे लाभ होता है।

रोगी की अवस्था के सुधरने पर आहार की मात्रा इतनी बढा देनी चाहिये कि फिर उसे प्रोटीन १६० ग्राम, फैट २०० ग्राम, कार्बोहाइड्रेट २०० ग्राम, प्रतिदिन मिल जाय तथा विटामिन 'ए' की मात्रा भी ८३०० यूनिट्स Thiamine २५ मिलिग्राम, Riboflavin ४ मिलिग्राम, Nicotinic Acid १५० मिलिग्राम, विटामिन 'सी' १४० मिलिग्राम मिल जाय।

विटामिनो के अतिरिक्त रोगी को भोजन के द्वारा या औषध द्वारा १५-२० मिलिग्राम लोहा तथा ५०० मिलिग्राम Calcium भी प्रतिदिन मिलना चाहिये। इतनी मात्रा मे आहार मिलने पर रोगी की अवस्था सुधर जाती है। छिलको या रेशो वाले रूक्ष भोजन, बीजो वाली सब्जी, फल, पत्तो के शाक, मिरच-मसाले, खटाई आदि तीखे भोजन, तले हुए भोजन, मीठे वाले भोजन, गर्म चाय, कॉफी अधिक मात्रा में गर्म दूध, मद्य, सूखे मेवे, नाना मिठाइया, तमाखू, अति शीतल पेय आदि रोगी को कभी नही देने चाहिये। रोगी को मन्दाग्नि का रोग (Hypochlorhydria) हो तो भोजन के साथ Acid Hydrochloric dilute १५-३० बून्द आधे गिलास जल के साथ मिलाकर प्रत्येक भोजन मे दे देना चाहिये। प्रथम वर्ष मे रोगी की अवस्था सुधर जाय तो यह रोग वर्षो तक भी घातक नही होता। यह रोग प्रबल हो-होकर फिर अच्छा भी हो जाता है। इसलिए इस रोग को भयकर नही समझना चाहिये।

औषधि चिकित्सा :—

Parasympathetic नाडियो के विक्षोभ को शान्त करने (Spasmolysis) के लिये Phenobarbitone आधा ग्रेन या Tincture Belladonna १५ बूंद दिन मे तीन बार भोजन मे पहले या Atropine Sulphate ग्रेन रात को एक बार त्वचा द्वारा या Extract Belladonna ग्रेन, Phenobabritone आधा ग्रेन, की गोली दिन मे ३ वार देने से या इन्ही से बने Belladenal (Sandos), Belonal (E I Pharma) या Codein Phos, आधा ग्रेन दिन मे दो बार भोजन मे पहले देने से तथा रात को एक मात्रा देने से या Antrenyl (Oxyphenonium bromide) ५ मिलि० दिन मे ३ बार देने से या Propantheline bromide (Probanthine) के १५ मिलि मात्रा मे दिन मे ३ बार देने से अतिसार होना बन्द हो जाता है। या Atropine, Phenobarbitone, Codeine, Papaverine आदि से बने योग Neospasmindon (Indopharma) Spasmodal (Chemopharma), Unispasmin आदि का प्रयोग किया जा सकता है।

तीव्र वेग मे Prednisolone (Delta efcorlin Glaxo, Delta Cortril Phizer, Delta Stab) को पहले १ हफ्ता ४० मिलि० फिर क्रमश कम करके ५-१० मिलि० दैनिक मात्रा मे कुल ४-५ सप्ताह तक देने से ज्वर शान्त हो जाता है तथा भूख लगने लगती है। परन्तु बहुधा यह लाभ जब स्थायी नही रहता। यह रोग फिर हो तो पुन इस औषध का इसी प्रकार प्रयोग करे। उपर्युक्त औषधि के साथ A C T H gel को ६० यूनिट मात्रा मे मास द्वारा २ बार दिन मे देने से तीव्र रोग मे भी लाभ हो जाता है या ५०० सी सी ग्लूकोज सोल्यूशन मे २० या ४० मिलि शिरा द्वारा दे। रोगी मे Potassium की कमी हो जाना स्वाभाविक है अत उसे Pot Chlor १ ग्राम ३ बार मिलना चाहिए। Sulphasalazine (Salazopyrin) जो एक Sulphapyridine और Salicylic acid का योग है उसकी ५ ग्राम की गोलिया पहले तो दिन मे ८-१२ गोलिया ३ सप्ताह देनी चाहिये, फिर कुछ लाभ होने पर दिन मे ६ गोली देनी चाहिये।

Cortisone enema — १००-१२० मिलि लिटर नार्मल सेलाइन मे १०० मिलि० Hydrocortisone hemisuccinate Sodium या Prednisolone (Predsol) २० मिलि मिला इसे Infusion bottle मे डाल १० न० Catheter के द्वारा बूंद-बूंद करके रात्रि को २ घंटे के समय मे मलाशय मे डाल दिया जाता है तथा रोगी को कहा जाता है कि वह इसे रात अन्दर रोके, चारपाई के पायते को ऊचा करे, ऐसा करने से सुविधा होती है। इस वस्ति विधि मे इस औषधि का प्रयोग १५ दिन किया जाता है। फिर भी रोग ठीक न हो तो Colectomy का शल्य-कर्म करना आवश्यक हो जाता है।

वातिक प्रवाहिका

(Irritable Colon, Functional Colitis, Mucous Colitis, colon spasm, Spastic Colon, Intestinal Neurosis)

कभी-कभी ३०-४० वर्ष की आयु के वात-प्राकृतिक (Neurotic) चिन्ताशील या विषादप्रधान व्यक्तियों के बृहदन्त्र की मांसपेशियों व नाडियों में गतिशीलता या विक्षोभशीलता बढ जाती है अर्थात् वे अधिक भावाशील (Hypisensitive) हो जाती हैं जिससे किञ्चित् विक्षोभक भोजन से तथा क्रोध और आवेग से भी वे विक्षुब्ध हो जाती है। उनके अति विक्षोभशील होने से वहा की श्लेष्मग्रन्थियो से श्लेष्म Mucus स्राव अधिक होता है। इसमें मल के साथ शुष्क कठोर आव अधिक मात्रा में निकलती रहती है। मल शुष्क गोलियों के रूप में आता है। रोगी को आव तथा मलबन्ध इन दोनों की शिकायत रहती है। किसी को दस्तों के साथ आव आने की शिकायत रहती है। आंत में उद्वेष्टन या मरोड में मलत्याग होता है। मलत्याग कष्ट में होता है, मलत्याग के बाद बायें भाग में शूल विशेष प्रतीत होता है इसलिये प्राय रोगी प्रतिदिन किसी विरेचक औषधि का सेवन करता रहता है। परन्तु विरेचक औषधियों के विक्षोभक गुण होने से उद्वेष्टन या मरोड का कष्ट या बृहदन्त्र की विक्षोभशीलता बढती जाती है विरेचन से पतले दस्तों में बहुत अधिक आव निकलती है। रोगी में थक जाने शिथिल हो जाने और उन्निद्र रहने की शिकायत रहती है। किसी युवक या युवती को वर्षों तक मलबन्ध, मल के कष्ट तथा आव के साथ आते रहने, पेट के निचले भाग में विशेषत बाई ओर दर्द या बेचैनी या उद्वेष्टन के रहने, स्पर्शाक्षमता के होने, मलत्याग या हवा के निकल जाने के बाद चैन पड जाने तथा आव में Cysts आदि Dysentery के होने के लक्षण न मिलें तो इसी रोग का निश्चय करना चाहिये। Ulcerative Colitis के समान इसमें रक्तातिसार नहीं होते इसीलिये वैसी पाण्डुता और निर्बलता नहीं होती। Cholecystitis तथा Cirrhosis में दर्द या बेचैनी पेट के ऊपरले भाग में रहती है। इसकी चिकित्सा के लिये रोगी को सब विक्षोभक आहारों, बीज तथा छिलके वाली सब्जियों तथा विक्षोभक विरेचक औषधियों का प्रयोग बन्द कर देना चाहिये। मन को विक्षुब्ध करनेवाले और शरीर को अधिक थकाने वाले भावों से बचना चाहिये। प्रात गर्म नार्मल ग्लाइन की वस्ति लेनी चाहिये। भोजन के बाद दिन में ३ बार Liquid Paraffin १-४ चम्मच लेना चाहिये, या Agar का प्रयोग करे। बृहदन्त्र के विष्टम्भ या विक्षोभ को शान्त करने के लिये Tincture Belladonna १० बूंद या Elixir Phenobarbitone १ ड्राम, Sod Bicarb १० ग्रेन, Spt Chloroform ७ बून्द जल आधा औंस ३ बार प्रतिदिन देना चाहिये, या Probanthine १५ मिलि० तीन बार दें। या Atropine methonitrate (Eumydrin) का २ मिलि० लि मात्रा में Elixir Phenobarbitone के साथ ३ बार दें। विटामिन 'बी' के योग भी देने चाहिए। पेट में हवा हो तो स्टार्च तथा खाण्ड कम दें तथा Diastace दें।

आयुर्वेद में प्रवाहिका :—

रूक्ष आहार के या अजीर्णजनित विक्षोभक द्रव्य के बृहदन्त्र में अधिक मात्रा में पहुच जाने पर उसकी प्रतिक्रिया के रूप में श्लैष्मिक बृहदन्त्र शोथ हो जाता है। ऐसी अवस्था में यदि बृहदन्त्र की प्राणशक्ति भी कारणवश न्यून हो तो उसका वायु भी प्रकुपित हो उठता है। वायु प्रकुपित होकर जब बृहदन्त्र के श्लेष्मद्रव को नीचे फेंकने लगता है तब शीघ्र प्रवाहण होने लगते है। इन प्रवाहणों के कारण इस रोग को प्रवाहिका रोग कहते है। बृहदंत्र की प्राणशक्ति की निर्बलता के कारण रोग हो तो इसे वात प्रवाहिका कहते हैं। बृहदन्त्र में तीव्र शोथ और पाक के कारण रोग हो तो पित्त प्रवाहिका कहते हैं। बृहदन्त्र में प्रधानत मृदु श्लैष्मिक शोथ Catarrh के कारण प्रवाहण हो तो उसे श्लैष्मिक प्रवाहिका कहते हैं। व्रणभाव के कारण ही यह रोग हो तो इसे रक्तज प्रवाहिका कहते हैं। वातज प्रवाहिका में ऐंठन या शूल का लक्षण विशेष होता है। पित्तज प्रवाहिका में ज्वर विशेष होता है। कफज प्रवाहिका में आव की मात्रा विशेष आती है। रक्तज प्रवाहिका में रक्त की मात्रा अधिक होती है। यदि स्राव, पाक के साथ शीत व्रण (Gangrene) भी हो जाय तो त्रिदोषज प्रवाहिका कहते है, अर्थात् चिरस्थायी रक्तातिसार त्रिदोषज होता है।

(सु०उ०४०।१३२ श्लो०)

यकृद्विद्रधि का वर्णन सुश्रुत ने (निदान अ ९) करते हुए कहा है कि यकृत् में विद्रधि होने पर श्वास कृच्छता का लक्षण प्रमुख होता है, पकने पर यह असाध्य होती है। वह ऊपर फटे और मुख से पूय निकले तो मृत्यु हो जाती है।

प्रवाहिका चिकित्सा —

तीव्र प्रवाहिका रोग में जब आव या रक्तमिश्रित आव ही बार-बार आती हो तो निम्नलिखित औषधियों में से किसी का प्रयोग करे।

(१) उपर्युक्त हरीतकी पिप्पली, या हरीतकी शुण्ठी

या हरीतकी और सौंफ के चूर्ण का बार-बार प्रयोग करें।

(२) उपर्युक्त अभयाचतुसम का प्रयोग करें।

(३) बिल्व चूर्ण को गुड़ के साथ या बिल्व के क्वाथ को गुड़ से मीठा करके पिलाएं।

(४) बिल्व के क्वाथ का मीठा करके उसके साथ मोचरस और इन्द्रजौ के चूर्ण दें या इन तीनों के चूर्ण को दें।

(५) उपर्युक्त वत्सकादि क्वाथ।

(६) उपर्युक्त रसाञ्जनादि चूर्ण।

(७) बिल्वादि चूर्ण (भै र)—बिल्व, मोया, धातकी, पाठा, मोचरस, सोंठ समान भाग का चूर्ण ४-६ माशा मात्रा में।

(८) कलिङ्गादिषट्कम् (ग नि)—हरड, अतीस, गोवर्चल, वचा, हींग, इन्द्रयव का चूर्ण।

(९) कुटजादिचूर्ण (वैद्यजीवन)—इन्द्रजौ, मुस्ता, धातकी, बिल्व, लोध्र, मोचरस, समान भाग गुड़ के साथ।

(१०) यवान्यादि चूर्ण (वृ. नि. र)—अजवायन, इन्द्रयव, बिल्व, सौंठ, पाठा, रसौंत, समान भाग का चूर्ण। मात्रा ३-४ माशा।

(११) बिल्व तथा ईसबगोल सम भाग का चूर्ण कई बार दें।

(१२) व्योषादिचूर्ण (भै. र)—त्रिकटु, इन्द्रजौ, निम्बत्वक्, चिरायता, भांगरा, चीता, कुटकी, पाठा, दारुहल्दी, अतीस, १-१ भाग, कुडे की छाल १२ भाग चूर्ण बनाएं। शहद से ३ माशा दें।

(१३) नागरादिचूर्ण (र सा. स)—सोंठ, अतीस, मुस्ता, सुगन्धवाला, धनिया, कुडेकीछाल, हरड, धातकी, इन्द्रजौ, बिल्व, पाठा, मोचरस, वचा, देवदारु, पिप्पली, अजवायन, समान भाग का चूर्ण, ३ माशा मधु से।

(१४) समङ्गादि चूर्ण (व. से)—लज्जालुमूल, धातकी, नागकेसर, नीलोफर, समान भाग का चूर्ण। तण्डुलोदक से।

(१५) उशीरादिक्वाथ (भै. र)—उशीर, वालक, मुस्ता, धनिया, सोंठ, लज्जालु, धातकी, लोध्र, बिल्व समान भाग का कषाय।

(१६) गुडूच्यादिक्वाथ (ग नि.)—गिलोय, अतीस, धनिया, सोंठ, बिल्व, मुस्ता, नेत्रवाला, पाठा, चिरायता, कुडेकी छाल, चन्दन लाल, खस, पद्माक समान भाग का शीतकषाय, एक-एक औंस पिलाए।

(१७) गुडूच्यादिक्वाथ (२) (वृ मा.)—गिलोय, बिल्व, मुस्ता, वालक, इन्द्रजौ, चित्रक, लाल चन्दन समान भाग का क्वाथ।

(१८) घनसप्तक क्वाथ (यो.र)—मुस्ता, गिलोय, चिरायता, सोंठ, नेत्रवाला, अतीस, कुडे की छाल, समान भाग का क्वाथ।

(१९) दाडिमावलेह (यो.र.)—अनार के फल का छिल्का १ सेर, जल ४ सेर में पकाए। चतुर्थांश शेष रखें। १ सेर घी १ सेर खाड डालकर पकाएं। गाढा होने पर उसमें त्रिकटु, धनिया, जातिफल, जावित्री, जीरा, वंशलोचन, लज्जालु, अतीस, पाठा, मोचरस, लवंग ५-५ तोला और मधु १ सेर मिलाए। १ तोला मात्रा में दें।

चिरप्रवृत्त अतिसार या चिरप्रवाहिका रोग जिसमें रक्त नहीं आता, मल पतला आता है तथा दिन में एक दो बार से अधिक आता है, निम्नलिखित योगों में से किसी का प्रयोग करना चाहिए।

(१) कुटजाष्टक वटी (च. द)—कुटजत्वक् ६ सेर, जल ३२ सेर में पकाकर, चतुर्थांश रखकर उसमें मोचरस, अतीस, मुस्ता, बिल्व, धातकी, पाठा, लज्जालु ५-५ तोला मिलाकर गोलिया बना लें। मात्रा दो-दो गोली, दिन में ३ बार।

(२) कुटजादिचूर्ण (वृ नि.र)—कुटजत्वक्, अतीस समान भाग का चूर्ण, मात्रा ४-६ माशा।

(३) चव्यादि क्वाथ (भा. प्र.)—चव्य, अतीस, बिल्व, शुंठी, कुटजत्वक्, इन्द्रजौ, कुष्ठ, हरड समान भाग का क्वाथ।

(४) समङ्गादिक्वाथ (वृ नि र)—लज्जालुमूल, धातकी, बिल्व, लोध्र, मोचरस, कुटजत्वक्, इन्द्रजौ, कमलकेसर, आम की गुठली। समान भाग का क्वाथ।

(५) चित्रकादि क्वाथ (व से)—चित्रमूल, अतीस, मोया, बिल्व, सौंठ, कुटजत्वक्, इन्द्रजौ, हरीतकी समान भाग का क्वाथ।

(६) दाडिमादिचूर्ण (ग. नि.)—अनार का छिलका, धातकी, कुटजत्वक, लोध्र। सम भाग का चूर्ण।

(७) वत्सकादिगुटी (गदनिग्रह)—कुटजत्वक्, गिलोय १०-१० तो, जल २ सेर, चतुर्थांश रखकर उसमें इन्द्रजौ ४० तो मिलाकर गोली बनावें। एक माशा की मात्रा करे।

(८) उपर्युक्त रसाञ्जनादि चूर्ण ३-४ माशा की मात्रा में दे।

(९) कटुकादिक्वाथ (ग नि)—कटुकी, इन्द्रजौ, कुटजत्वक्, रसौत, धातकी, अतिविषा, सोंठ, मुस्ता, पाठा का क्वाथ या चूर्ण मधु से दें।

(१०) तिक्तानवक क्वाथ (भा भै.र.)—कटुकी, इन्द्रजौ, कुटजत्वक्, अतीस, रसौत, सोंठ, धातकी, हरीतकी, मोथा का क्वाथ सब प्रकार की प्रवाहिका में हितकर है।

(११) कुटजारिष्ट (भै र)—कुटजत्वक् ६। सेर, मुनक्का ३ सेर, महुआ, गम्भारी ५०-५० तोला, जल १२८ सेर, ३२ सेर शेष रखें। धातकी १। सेर, गुड ६। सेर डालके आसव बनाए।

(१२) शतपुष्पादि चूर्ण—सौंफ, बिल्व, जीरा, इन्द्रजौ १-१ भाग, ईसबगोल ४ भाग ६ माशा मात्रा में दें।

अतिसार तथा प्रवाहिका में पथ्य—मृदु लघन, पुराने चावल, मूग, मसूर, अरहर, दूध, दही, तक्र आदि लघु आहार पथ्य हैं।

तथा गुरु, स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण तीक्ष्ण गुण आहार, माष, जौ, पत्रशाक, मटर, चना, गुड, खाण्ड, अम्लरस आदि अपथ्य हैं।

आयुर्वेद मे—त्रिदोषातिसार या रक्तातिसार (Ulcerative Colitis)

चरक ने कहा है कि किसी रोग से निर्बल हुआ व्यक्ति भोजन के सम्बन्ध में अत्यधिक अपथ्य करे और भय, शोक, आदि चित्तोद्वेगो से अधिक ग्रस्त रहे, तो उसकी पाचक अग्नि नष्ट हो जाती है जिससे शरीर में तीनो दोष प्रकुपित हो उठते हैं अर्थात् प्राणशक्ति घट जाती है, तथा पित्त और कफ अर्थात् पाचन कर्म और श्लेष्म स्राव बढ जाते हैं। इस अवस्था में बृहदन्त्र में तीनो दोषो का प्रकोप विशेष हो जाय अर्थात् एक तो उसकी प्राणशक्ति हीन हो जाय, दूसरे उसमें तीव्र शोथ हो जाय तथा तीसरे उससे श्लेष्म स्राव भी अधिक हो तो जो अतिसार होता है उसे त्रिदोषातिसार कहते हैं। क्योंकि इसमे रक्त रहता है अत इसे रक्तातिसार भी कह देते हैं।

चरक ने कहा है कि इस रोग में बृहदन्त्र के अवयव अति दूषित हो जाते हैं। इसीलिये इसमें पीले, हरे, नीले, लाल या मास धोवन के समान रग के या लाल रग के खून से युक्त दस्त होते हैं जिनमें आव भी होती है। कभी ये कुछ वेदना के साथ आते हैं और कभी बिना किसी प्रकार के दर्द के आते हैं। कभी ये पक्व और कभी अपक्व होते हैं। रोगी की अग्नि मन्द होती है। उसके मास, रक्त और बल ये क्रमश क्षीण तो हो जाते हैं पर सहसा अधिक क्षीण नहीं होते। यह रोग कृच्छ्रसाध्य है। (च०चि० १९)

चिकित्सा

त्रिदोषातिसार या चिर रक्तातिसार के लिये निम्नलिखित शीत सग्राही बल्य गुण औषधियो का प्रयोग करना चाहिए तथा रोगी को शीत बल्य मृदु श्लक्ष्ण गुण भोजन पर्याप्त मात्रा में देना चाहिए।

(१) लोध्रादियोग (व से)—लोध्र, मुलैठी, नीलोफर, सारिवा समान भाग का क्वाथ दूध में मिलाके दें।

(२) न्यग्रोधादि घृत (ज चि)—बड, गूलर, पीपल त्वक् के क्वाथ और इनकी कोपलो के कल्क से बना घृत दें।

(३) शाल्मलीघृत (सु उत्तर)—सेमल के फूलों के क्वाथ से बना घृत दें।

(४) दार्व्यादि चूर्ण (सु उत्तर)—दारुहल्दी, पिप्पली, शुण्ठी, लाक्षा, इन्द्रयव समान भाग का चूर्ण दें।

विषूचिका—हैजा (Cholera) (Flow of Bile)

कारण :—

१९वी शताब्दी से पहले यह रोग केवल हमारे देश मे था, अन्यत्र नही। १९वी मे यह यूरोप मे भी चला गया। २०वी शताब्दी मे अब यह रोग यूरोप मे नही केवल हमारे देश मे ही पाया जाता है।

इस सक्रामक रोग के सक्रमण के कारणभूत जीवाणु को विषूचिका जीवाणु, Cholera Bacillus अथवा कौमा के चिह्न के आकार का होने से Comma Bacillus, Spirillum Cholerae या Cholera Vibrio कहते है। पहले-पहल इसका पता Koch ने १८८३ मे लगाया था। इस रोग के रोगी के पेट से आने वाले मल तथा वमन मे यह प्रभूत मात्रा मे बाहर निकलता है। सूक्ष्मवीक्षक द्वारा देखने पर यह कृमि कामा की तरह मुडा हुआ, गतिशील ग्राम नैगेटिव, डेढ से २ माइक्रोन लबा होता है। बाहर निकलने के बाद नदी, तालाब, कुए, आदि के जल मे प्रवेश कर जाय तो वहा लगभग एक-दो सप्ताह तक जीवित रह जाता है। इस दूषित जल के, या उससे धोये गये फल और कच्ची खायी जाने वाली सब्जियो के द्वारा यह जीवाणु दूसरो के पेट मे

प्रवेश कर जाता है। बर्फ मे भी यह जीवित रह सकता है परन्तु शुष्क प्रदेश मे, जहा इसे जल न मिले, यह तुरन्त मर जाता है। इसीलिये गर्मी और नमी वाले मौसम मे अर्थात् अप्रैल से सितम्बर तक तीर्थ आदि जनीय प्रदेशो मे जब सहस्रो लोग किसी एक छोटे से स्थान पर एकत्रित होते हैं, किसी रोगी के मल के द्वारा या किसी Carrier के मल के पीने के जल मे प्रविष्ट हो जाने से यह रोग अनेकानिक व्यक्तियो मे फैल जाता है। नलो के सुरक्षित जल को पीने वालो मे यह नहीं होता। रोगी के साथ रहने वाले कुछ एक व्यक्तियो के मल मे यह कृमि पाया जाता है, यद्यपि उनमे इस रोग के चिन्ह नही होते। अर्थात् रोगी से इसके फैलने का इतना भय नहीं जितना कैरियर से है। १ प्र० श० रोगियो मे ठीक हो जाने के एक मास बाद तक भी उनके मल मे Vibrios पाये गये हैं।

स्वस्थ दीखने वाले रोगी-शुश्रूषको (Contact Carriers) के मल मे भी ये जीवाणु पाये जाते हैं। इससे अनुमान होता है कि आमाशय और क्षुद्रआत्र मे किसी प्रकार का दोष उपस्थित हो तो इस जीवाणु को वहा पर वृद्धि करने का अवसर मिल जाता है तथा वृद्धि करने पर ही यह रोग का कारण बनता है। क्षुद्र पशुओ मे भी पहले सोडा बाई कार्ब के द्वारा उनके पेट मे ऐसिड को उदासीन कर देने के बाद इन जीवाणुओ को मुख द्वारा प्रविष्ट करके रोग उत्पन्न किया जा सका है। अत बहुत सम्भव है कि अपथ्याहार के द्वारा आमाशय और आत के क्षुब्ध होने तथा उसमे Acid के नष्ट हो जाने पर इस जीवाणु का वहा बढना सुगम हो जाता है। जिनमे रोग होना होता है, उनमे जीवाणु के प्रवेश करने के १-२ दिन मे ही रोग प्रारम्भ हो जाता है, तो भी इसका Incubation period १-५ दिन के लगभग कहा जाता है।

सम्प्राप्ति

क्षुद्र आत्र की, प्रधानत उसके ऊपर के भाग की श्लेष्मकला पर, विशेषत: Luberkuhn की ग्रथियो मे यह जीवाणु अत्यधिक मात्रा मे वृद्धि करता है अर्थात् इसकी झिल्ली (Epithelium) के सेलो के बीच-बीच मे तथा उनके नीचे बस कर वहा वृद्धि करने लगता है। इसके विपरीत रक्तवाहिनियो मे अति रक्त-सचय हो जाता है। Mucus cells मे अति वृद्धि हो जाती है। आत की सारी झिल्ली लाल हो जाती है, जिससे रक्त का द्रव भाग (Serum) वहा से अधिक मात्रा मे निकलता है, जिसका इन जीवाणुओ पर विनाशक प्रभाव होता है अर्थात् जीवाणुओ मे Bacteriolysis या Autolysis की प्रक्रिया होने लगती है। इन जीवाणुओ के विनष्ट होने से इनमे से एक आभ्यन्तर विष (Endotoxin) निकलता है जो बडा जहरीला होता है। वह एक तरफ तो इस श्लेष्मकला की झिल्ली की मृत्यु का कारण होता है जिसमे इस झिल्ली के सेल ढेर-के-ढेर झड़ते हैं तथा छिलको (Flakes) के रूप मे दस्तो के द्वारा बाहर आते हैं। (अथवा इस जीवाणु के Mucolytic Enzyme Mucinase से श्लेष्मकला की झिल्ली झड जाती है और मल द्वारा बाहर निकलती है) दूसरी ओर यही विष शरीर मे फैलकर अर्थात् विष-सचार (Toxaemia) के द्वारा रक्त-सचार को फेल करके इस रोग मे पाये जाने वाले लक्षणो का कारण बनता है। इन जीवाणुओ की विष के झिल्ली पर दुष्प्रभाव के कारण ही आत की रक्त-वाहिनियो मे Permeability बढती है, इससे अत्यधिक द्रव की मात्रा आंत मे आने लगती है, जिससे शरीर का बहुत-सा जल तथा लवण (Sodium Chloride) तथा कैल्सियम शरीर मे से निकल जाते हैं (*Dehydration*)। इस रोग मे आत के अन्दर कोई क्षत-व्रण आदि विकार सर्वथा नहीं होते। रक्त के *Plasma* मे क्षार की मात्रा भी घट जाती है। शरीर के रक्त मे से द्रव भाग के अत्यधिक मात्रा मे बाहर निकल जाने से वह गाढा तथा चिपचिपा (Collapse) हो जाता है। उसकी Specific Gravity जो साधारण अवस्था मे १०५६ होती है, बढ जाती है। प्राय. १ पाइंट जल के निकल जाने पर यह १०६१ हो जाती है। ५ पाइंट तक जल शरीर मे से निकल जाय तो यह १०६५ तक बढ जाती है। रक्त के एक क्यूबिक मिलीमीटर मे रक्त-कणो की सख्या, जो साधारणत ५ मिलियन होती है, बढकर ६-७ मिलियन हो जाती है, अर्थात् Polycythemia हो जाता है। श्वेत कणो की सख्या भी बढ कर १५-३० हजार प्रति क्यूबिक मिलीमीटर हो जाती है। Lymphocytes (२५% नॉर्मल) घटे हुए तथा Large mononuclears (५% नार्मल) बढे हुए होते हैं। Haemoglobin भी १०० सी० सी० मे १४-१६ ग्राम से बढ कर २० ग्राम तक हो जाता है। साधारणत रक्त को Defibrinate करके मापे तो उसमे ४५% रक्त-कण और ५५% सीरम होता है। पर इस रोग मे रक्त मे Serum की मात्रा ३५ से ६४ प्रतिशतक तक कम हो जाती है। शरीर के सब अगो मे जलाश की मात्रा न्यून हो जाती है। इस प्रकार हृदय का पोषण न होने से तथा विष-सचार के कारण

वह निर्बल हो जाता है । उसके प्रति कम्पन मे आगे रक्त कम जाता है। शाखाओ के सिरो को रक्त कम मात्रा मे पहुचता है जिसमे शाखाओ की शिराए शिथिल (Collapsed) हो जाती हैं। वृक्को को भी रक्त कम पहुचता है, अर्थात् उनमे Ischaemia होकर उनकी मूत्र स्राविणियो (Tubules) को ऑक्सीजन की उचित मात्रा नही मिल पाती जिससे उनके सेलो मे Hyaline Degeneration की प्रक्रिया हो जाती है। मूत्र की मात्रा बहुत थोडी बनती है। सम्भव है Vasospasm या रक्त-वाहिनियो मे स्तम्भ होने से मूत्र कम बनता है। उसकी स्पेसिफिक ग्रेविटी बढ जाती है तथा उसमे अलव्यूमिन भी आने लगता है। मूत्र के कम होने तथा क्षार के बाहर निकल जाने से रक्त मे ऐसिड्स रुक जाते हे एव रक्त मे अम्लीयता बढ जाती हे (अर्थात् Acidaemia हो जाता है), अत इस रोग मे शुरू से ही क्षार का प्रयोग अत्यावश्यक हो जाता है। इस रोग मे यकृत् मे से पित्त का आँत मे आना बद हो जाता है। पित्ताशय तथा पित्तस्राविणियो (Ducts) मे गाढी पित्त होती है जिसमे से द्रवाश निकल गया होता है। जब रोग अच्छा होने लगता है तब पित्त आत मे फिर आने लग जाता है। Sir Rogers के अनुसार सीरम मे ३५% की कमी हो जाए तो रोगी मे Collapse का लक्षण नही होता। ४९% की कमी हो जाय तो शिरा द्वारा सेलाइन के देने से लाभ हो जाता है। ६४% तक की सीरम मे कमी हो जाय तो सेलाइन से भी लाभ नहीं होता। जल से भी ज्यादा लवण की कमी रक्त मे होती हे और Benjamin moore का कहना है कि रक्त का नमक विषो को लेकर वृक्को द्वारा उन्ह बाहर कर देता है इसलिये नमक का प्रयोग इस रोग मे आवश्यक हो जाता है। इस रोग मे रक्त के अन्दर Urea की मात्रा भी बढ जाती है। मूत्राव-रोध मे इसकी मात्रा और बढ जाती है। अच्छा हो जाने पर भी वृक्को को जो क्षति पहुची होनी है वह कुछ काल बनी रहती है।

लक्षण

अविकृत होने वाले इसके तीव्र विपूचिका (Cholera Gravis) नामक भेद मे प्रथम अतिसारावस्था (Evacuation Stage) होती हे, जो ५-१० घण्टे तक रहती है। इसमे सहसा ही एक व्यक्ति को वेग के साथ दस्त आने आरम्भ हो जाते ह जो पतले, मात्रा मे बडे, एक के बाद एक करके अनेक हो जाते हैं। इनको निकालने मे रोगी को बल नही लगाना पडता। इनमे पहले तो कुछ मलाश होता है बाद मे केवल चावल के धोवन के समान जलाश या Mucus होता है तथा उसमे श्लेष्मकला की झिल्ली (Epithelium से झडे छिलके होते है। इनके आते समय किसी प्रकार की वेदना या मरोड होने का लक्षण नहीं होता। दस्तो की मात्रा १०-१५ लिटर तक हो जाती है। इन दस्तो के द्वारा विपूचिका-जीवाणु भारी मात्रा मे, लगभग १ सी० सी० मे एक हजार मिलियन की सख्या मे, बाहर आते हैं। दस्तो के आरम्भ होने के कुछ काल बाद अनायास होने वाले वमन के वेग होने लगते हैं जिनमे रोगी को सर्वथा बल नहीं लगाना पडता, ना ही अरुचि का लक्षण होता हे जिनमे पहले खाया हुआ अन्न और बाद मे केवल चावलो के धोने के सदृश जल ही भारी मात्रा में निकलने लगता है। इस प्रकार नीचे तथा ऊपर मे २४ घटे के अन्दर कई पाइट, कभी कभी १५-२० लिटर तक, जल शरीर मे से निकल जाता है। इतने जल के निकल जाने से अत्यधिक पिपासा लगती है शरीर अतिशिथिल (Collapsed) हो जाता है, जल के साथ-बहुत सा लवण (कभी कभी ३० ग्राम तक) कैल्सियम तथा क्षार भी शरीर मे से बाहर हो जाते हैं। सम्भव है, इनके निकल जाने के कारण ही नाडियो (Nerves) पर कोई ऐसा दुष्प्रभाव पडता हे कि पिंडलियो तथा हाथ-पाँव और पेट की मास-पेशियो मे स्तम्भ (Cramps) होने लगता है।

इस अवस्था मे ५-१० घटे रहने के बाद फिर इस रोग की द्वितीय अवस्था शीत-अवस्था (Algid Stage) या Collapse Stage आरम्भ होने लगती है। इसमे अतिसार और वमन के वेग कम हो जाते हैं, या बन्द हो जाते है। परन्तु इस जीवाणु से उत्पन्न विप के सर्व शरीर मे फैल जाने से शरीरव्यापी विप-सचार-जनित लक्षण (Toxaemic Symptoms) होने लगते हे, इस अवस्था का प्रधान लक्षण रक्तसचार के फेल हो जाने (Collapse) का है। इसलिये इस अवस्था मे नाडी तीव्र तथा निर्बल हो जाती है, श्वास-गति तीव्र होती है। हृदय-शब्द मन्द हो जाते हे, रक्त-भार गिरकर ७० MM of Mercury के लगभग हो जाता है। शरीर की त्वचा शीतल हो जाती है। उस पर ठडा-सा पसीना आ जाता है। अगुलियो पर ऐसी झुर्रियाँ पड जाती है जैसे उन्हे देर तक ठडे जल मे रक्खा गया हो। ओष्ठ, नाक, कान आदि के सिरे नीले पड जाते है। दस्तो तथा वमन के द्वारा बहुत-सा जल निकल जाने से शरीर के सारे अग ही सूखकर पिचक-से जाते है। इसीलिये रोगी का चेहरा कुम्हला जाता है। गाल पिचक जाते है।

आँखें अन्दर धँस जातीं, नाक पतली-सी पड़ जाती तथा आवाज बहुत दुर्बल हो जाती है। यद्यपि त्वचा ठण्डी होती है परन्तु रोगी को अन्दर भारी गर्मी लगती है। मुख और जीभ सूख जाते हैं, पिपासा अत्यधिक होती है। बगल में तापमान ९५° डिग्री होता है पर गुदा में १०२° डिग्री के लगभग पाया जाता है। अतिसार और वमन इन दो लक्षणों के अतिरिक्त गुदा के अन्दर के तापमान में वृद्धि का होना भी इस रोग का लक्षण है। जितना यह तापमान अधिक हो जाता है उतना ही रोग को अधिक उग्रतर समझना चाहिये। इस शीत की अवस्था में रक्त-संचारक शक्ति के क्षीण हो जाने (अर्थात् Anoxia) से रक्त-भार गिर जाने से तथा रक्त में से बहुत से जलांश के निकल जाने तथा रक्त में पोटासियम की कमी से वृक्कों में मूत्र बनना बन्द हो जाता है जिससे मूत्राघात (Anuria) का लक्षण भी हो जाता है। रक्त में Urea की मात्रा ३५० मिलि० प्र०श० तक हो जाती है (स्वाभा० १५-३५ मिलि०) इस अवस्था में रोगी का जो रूप होता है उसे Cholera-Facies का नाम दिया गया है।

यह अवस्था ५ घण्टे से लेकर २४ घण्टे तक रह सकती है। यदि उसका प्रत्युपाय न किया जाय तो हृदय और रक्तवाहिनियों का बल क्षीण हो जाने से तथा गुर्दों के फेल होने के कारण शरीर में Acidosis तथा Uraemia के हो जाने से मृत्यु हो जाती है। रक्त की न्यूनता से मरने पर शरीर अधिक अकड़ जाता (Rigor mortis) है। रोगी को इस रोग में होश अन्त तक बना रहता है। पर जब Uraemia की प्रबलता होती है तब उसमें मूर्छा (Stupor) का लक्षण उत्पन्न हो जाता है।

शीतावस्था के बाद जब रोगी की अवस्था सुधरने लगती है तो उसे Reaction की Stage कहते हैं। इसमें क्रमश नाड़ी प्रकट होने लगती, त्वचा गर्म होने लगती है, रक्त-भार बढ़ने लगता है, मूत्र आने लगता है तथा उसकी मात्रा बढ़ने लगती है। मल में पित्तांश आने लगता है।

शुष्क विषूचिका (Cholera sicca)— अतिसारों के बिना ही सर्वांग शैत्य (Collapse) हो जाय तो इसका यह रूप बड़ा भयंकर होता है।

साध्यासाध्यता

जब रोगी रोग आरम्भ होने के २४ घण्टे बाद, मूत्राघात होने के बाद, चिकित्सा में आता है, जब इस रोग में रक्तभार या तापमान अधिक गिर जाता है, अर्थात् ७० से नीचे हो जाता है, या मूत्राघात शीघ्र हो जाता है, या श्वास-गति ४० प्र० मि० से ऊपर हो, अथवा रोगी गर्भिणी हो, निर्बल, वृद्ध या बालक हो तो यह रोग असाध्य समझना चाहिये। उचित चिकित्सा न मिले तो ९०% शीतावस्था के रोगी मर जाते हैं। चिकित्सा पर मृत्यु ३०% ही होती है। विषैले भोजन के खाये जाने के बाद होने वाले तीव्र अतिसार या Salmonella-Poisoning से इस रोग का भ्रम हो सकता है। परन्तु उस रोग में वमन तथा अग्नि के लक्षण प्रबल होते हैं। मल विवर्ण नहीं होता, पिण्डलियों में Cramps नहीं होते। उसमें पेट में दर्द तथा सिर में दर्द होने के लक्षण भी होते हैं तथा उसमें मूत्राघात होने का लक्षण नहीं होता। विषम-ज्वरीय अतिसार (Malarial Diarrhoea या Algid Malaria) में भी इसका भ्रम हो सकता है। परन्तु उस रोग में मल के अन्दर पीलापन न्यूनाधिक रूप में अवश्य रहता है। वमन में भी पीलापन होता है अत भेद करना कठिन नहीं। संखिया (Arsenic) की विषैली मात्रा खाये जाने के बाद भी अतिसार होते हैं। परन्तु उसमें अतिसारों की अपेक्षा वमन का कष्ट अधिक होता है।

चिकित्सा

जब यह रोग फैला हो तो उबला हुआ या Chlorine मिश्रित जल तथा पका हुआ भोजन ही लेना चाहिये। टट्टियों में Chlorinated lime तथा कुओं में Pot permang डाल देना चाहिये तथा Cholera Vaccine आधा सी० सी० त्वचा द्वारा ले लेना चाहिये। ७-१० दिन बाद फिर १ सी० सी० त्वचा द्वारा ले लेना चाहिये। (४-८ हजार मिलियन जीवाणु)

इस रोग की प्रधान चिकित्सा Replacement-Therapy है। अर्थात् शरीर से निकले जल और लवण की शरीर में फिर से पूर्ति करने का यत्न करना चाहिये। इसके लिये बाहु की किसी शिरा पर की त्वचा को काटकर शिरा को नग्न करके उसके द्वारा Normal-Saline जो १ लिटर Distilled Water में ८.५ ग्राम या .८५% Sodium Chloride मिलाकर या १ पाइण्ट में ८०-९० ग्रेन साल्ट मिलाकर उबाल कर तैयार किया जाता है। प्राय २ लिटर की मात्रा में एक घण्टे के अन्दर शरीर में प्रविष्ट कर दिया जाता है। लवण-जल न केवल क्षति पूर्ति करता है अपितु Chloride सम्भवत. विष (Toxin) को पकड़ लेता है और फिर उसके बाहर निकल जाने से वह भी शरीर से बाहर हो जाता है। सेलाइन के लिये Pyrogen free जल लेना चाहिये, वह न मिल सके तो नॉर्मल सेलाइन को उबालकर ठंडा करके दें।

इसके देने से रक्तवाहिनियों में से रक्त-द्रव की आन्त की ओर जाने की गति बन्द हो जाती है। आवश्यकता हो तो दूसरे घण्टे तथा तीसरे घण्टे में भी एक लिटर फिर Normal Saline दिया जाता है। इस चिकित्सा से रोगी पहले ही घण्टे मे अच्छा होने लगता है। रोगी में Uraemia के लक्षण होने लगें या उनके होने की सम्भावना हो तो आधा या एक लिटर Alkaline Solution (जो एक लिटर Distilled तथा उबाले हुए जल में १८.२५ ग्राम Sodium Bi-Carbonate तथा ५.७५ ग्राम Sodium-Chloride मिला कर बनाया जाता है) शिरा द्वारा दे देना चाहिये। रक्त की Specific Gravity के अनुसार Saline की मात्रा दी जाती है अर्थात् यदि यह १०६३ या १०६४ के लगभग हो तो एक लिटर Saline की मात्रा पर्याप्त होती है। जब तक स्पेसिफिक ग्रेविटी १०६० से नीचे न आ जाय तथा मूत्र आने लग जाय, Saline का प्रयोग जारी रखा जाता है। मूत्र में नमक आने लगे तब बाद में Isotonic Saline Solution में ५ प्रतिशत ग्लूकोज मिलाकर बनाया जल भी दिया जाता है। Alkaline Solution बनाने के लिये Saline Solution जब उबलने के बाद ठंडा होकर ८० सेंटीग्रेड हो जाय तब उसमें Autoclave में रखा हुआ Soda-Bicarb मिलाना चाहिये। इसे मिलाने के बाद फिर जल को कभी नहीं उबालना चाहिये। Alkaline Solu १ पाइंट मात्रा में देना पर्याप्त होता है। जब मूत्र में नमक आने लग जाय तब आधा Saline Solution और आधा ग्लूकोज ५% Solution मिलाकर देना चाहिये। जब रोगी के पेट में ग्लूकोज का जल हजम होने लग जाय फिर इंजेक्शन अनावश्यक है। ⅙th Molar Sodium Lactate Solution (१.८७%) भी शिरा द्वारा देने से Acidosis को दूर करता है। २ भाग Saline में १ भाग यह द्रव मिलाकर दे देना चाहिये। Dextran को Saline Salution में ६ प्र०श० मात्रा में मिलाकर Dextraven (Benger) Intradex (glaxo) Macrodex (Evans), आदि के रूप में भी इस रोग मे रक्त की क्षतिपूर्ति के लिये दिया जाता है। इस Replacement Therapy से शीतावस्था (Collapse) में बड़ा लाभ होता है। इससे त्वचा में गर्मी, कलाई में नाडी तथा रक्त में भार आ जाता है। Shock तथा Toxaemia के लक्षण दूर होते हैं। Saline Solution चाहे कितनी सावधानी से दिया जाय, इनके देने से रोगी को सर्दी लगकर ज्वर चढ जाता है। ऐसी अवस्था में Saline का वेग कम कर दिया जाता है या उसका प्रयोग बन्द कर दिया जाता है।

नाली पर [illegible] जाता है। [illegible] मी० मी० Adrenaline [illegible] प्रयोग भी [illegible] Percaine [illegible] Saline [illegible] Collapsed हो [illegible] Med. Basilic Vein [illegible] [illegible] मिनट में [illegible] (18 B W G) [illegible]

[illegible] Isotonic Saline [illegible] हो रहे हों तो [illegible] अन्दर में गुदा द्वारा [illegible] Acidosis के लक्षण [illegible] Alkaline Solution १० औंस या ५ औंस की मात्रा में [illegible] गुदा द्वारा देने से भी [illegible] होता है। इस प्रकार [illegible] रोग में तो शिरा द्वारा Saline Solution का प्रयोग आवश्यक होता है। परन्तु [illegible] अर्थात् रक्त की स्पेसिफिक ग्रेविटी १०६० से [illegible] वमन-रोधक Avomine Tablets (जो २५ मिलीग्राम की मिलती है तथा जिनमें १४ मिलिग्राम Promethazine Base तथा ११ मिलिग्राम 8-Chlorotheophylline होता है) या Siquil या Stemetil 10 mg के १-२ गोली के देने से वमन शान्त हो जाता है। तब आधी ताकत का सीरम Saline Solution (Sodium Chloride ८ ग्राम, ग्लूकोज २५ ग्राम, गुलाबजल १० सी० सी०, जल १००० सी० सी०) उचित मात्रा में थोड़ा-थोड़ा करके मुख से दे दिया जाता है। दस्त न आ रहे हों तो गुदा द्वारा भी उपरोक्त विधि से Saline Solution दिया जाता है। रक्त में भार की न्यूनता के कारण मूत्राघात होता है अतः इस उपद्रव के प्रकट होते ही एक पाइंट Alkal Saline Solu या तो शिरा द्वारा या गुदा द्वारा १० औंस मात्रा में प्रति ४ घण्टे पर देना चाहिये। वृक्कों पर Dry Cup प्रातःसायं लगाने से भी लाभ होता है।

औषध-चिकित्सा

इस रोग की गौण चिकित्सा है, Tetracycline

औषधियां जैसे Terramycin (Phizer), achromycin (Lederle), Hostacycline (Hoechst), Aureomycin ५०० मिलि० मात्रा मे ६-६ घटे पर देने मे इस जीवाणु पर कुछ घातक प्रभाव पड़ता है। प्रारभ मे Tetracycline को १०० मिलि मात्रा मे शिरा द्वारा ६-६ घटे पर ३-४ बार देना चाहिए, बाद मे मुख से देना चाहिए। एक लिटर सेलाइन मे १०० मिलि० मात्रा मे इसे प्रारभ में ही दे देना चाहिए।

आयुर्वेद में विषूचिका रोग

चरक तथा सुश्रुत में विषूचिका रोग का विशेष वर्णन नहीं हुआ। सुश्रुत (उ०।५६।२-४) तथा माधवनिदान में इसे अजीर्ण से उत्पन्न होने वाला वातप्रधान रोग कहा है। अर्थात् अजीर्णजनित विष से आमाशय तथा क्षुद्रांत्र की प्राणशक्ति क्षीण हो जाती है जिससे इनकी दीवार की रक्तवाहिनियां शिथिल (Dilated) हो जाती हैं, एवं उनसे रक्त का द्रव भाग प्रभूत मात्रा में बाहर निकलने लगता है। इस रोग की चिकित्सा के लिए रोगी को गर्म रखते हुए उसे उष्ण-दीपन-पाचनगुण औषधिया दी जाती है। उदाहरणत अग्नि की वृद्धि के लिये संजीवनी वटी (विडग, शुण्ठी, पिप्पली, त्रिफला, वचा, गुडूची, भल्लातक, मीठा विष, समान-समान मात्रा में मिला गोमूत्र से १५-१६ दिन मर्दन करके १-१ रत्ती की गोलिया बनाई जाती है) पोदीने के अर्क या प्याज के रस या आर्द्रक रस के अनुपान से १५-१५ मिनट के बाद दो-दो गोली की मात्रा में १२ गोलिया तक दी जाती है।

लहसुन का भी इस रोग में प्रयोग किया जाता है। लशुनाष्टक चूर्ण या लशुनवटी (लहशुन ८ भाग, मरिच ४ भाग, हींग २ भाग, कपूर १ भाग। निम्ब के स्वरस में पीसकर चने के बराबर गोली बना ली जाती है) आधे-आधे घण्टे बाद दी जाती है।

लाल मिरच तथा अहिफेन का भी इस रोग में प्रयोग लाभदायक पाया जाता है। इसके लिए लाल मिरच, जातीफल, हींग, प्रत्येक दो तोला, कपूर २ माशा, चन्द्रोदय २ माशा, अहिफेन १ माशा मिलाकर प्याज के रस से मूग-बराबर गोली बनाकर आधे-आधे घण्टे के बाद इसकी दो-दो गोलिया अर्क पोदीने के अनुपान से दी जाती है। कर्पूरासव को १५-१५ बूद की मात्रा में आधा-आधा घटे के बाद देने से भी लाभ हो जाता है। कर्पूरादि वटी को लौंग, सूखा पोदीना १-१ माशा को पीस थोडा गर्म जल मिला छानकर उससे देते हैं। Essential Oils के प्रयोग से जैसे Cajuput, juniper, Aniseed Oils समान-समान २८%, Aromatic Sulph. ac. २२% Sp ether ५०% की १०-१२ बूंद आधा-आधा घण्टे बाद देने से या अमृतधारा को पाच-पांच बूद की मात्रा में आधे-आधे घण्टे बाद प्रयोग करने से भी बहुधा लाभ हो जाता है। इस रोग में अफीम-युक्त औषधि का प्रयोग प्रारम्भ में नहीं करना चाहिये। दस्त बन्द हो जाने पर रोगी को तण्डुलोदक या यवोदक देना चाहिये। इस रोग में पर्णयवानी (Coleus Amboinicus) के रस के प्रयोग से भी लाभ होता पाया गया है। इसकी प्रथममात्रा ४ ड्राम की देकर १ घंटे बाद २-२ ड्राम की मात्रा १-१ घंटे पर दी जाती है।

आंत्र गुल्म—Appendicitis

इतिहास

यूरोप मे पहले-पहल १८८६ मे इस रोग का पता Fitz ने दिया। १८८९ मे Macburney ने यह बताया कि Anterior Superior Spine से नाभि तक खींची रेखा के अदर के दो-तिहाई तथा बाहर के एक-तिहाई भाग की सन्धि पर आत्र-पुच्छ (Appendix) रहता है। इस लिये इस बिन्दु को Mc Burney's Point कहते है। १८९४ मे इसी विद्वान् ने इस रोग के शल्यकर्म का वर्णन किया था। यही कारण है कि आज तक त्वचा पर इस रोग के लिये दिये जाने वाले चीरे को Mc Burney's incision कहते है। १९०० मे डाक्टर फाउलर ने इस रोग के रोगी के पडने की उचित स्थिति का वर्णन किया। इस स्थिति को आज तक हम Fowler's Position कहते है। यद्यपि दुःख के साथ कहना पडता है कि यह महान् सर्जन अन्त मे इसी रोग से ग्रस्त हुआ और बच नहीं सका।

कारण

आन्त्रपुच्छ Caecum का ही एक भाग है। उसके स्रोत के साथ इसका स्रोत मिला हुआ है। यह दाये Lower quadrant में रहता है।

Appendix का रोग बालको और युवको मे अधिकतर होता है। इसे पेट का Tonsil या Abdominal Tonsil कहते हैं। गले का Tonsil भी इसी आयु मे सूजता है, अत प्रतीत होता है कि जैसे वह Lymphoid Tissue जीवाणु-सक्रमण की प्रबलता तथा शरीर की प्रतिरोधक शक्ति की हीनता से सूज जाता है, वैसे Appendix भी आत मे जीवाणुओं की प्रबलता तथा

शरीर की प्रतिरोधक शक्ति की हीनता से सूजता होगा। इन दोनो बातो अर्थात् जीवाणुओ की प्रबलता और शरीर की निर्बलता का कारण भोजन-दोष ही प्रतीत होता है। जिसका सबूत यह है कि प्राकृतिक या Cellulose वाले आहार लेने वालो की अपेक्षा कृत्रिम आहार लेने वालो मे (अर्थात् नगरो मे रहने वाले उच्च वर्ग के लोगो मे ही) यह अधिकत होता है। इनके भोजन मे Cellulose की मात्रा तथा Vitamins की मात्रा कम होती है जिससे एक ओर मलबन्ध रोग हो जाता है, दूसरी ओर आत की प्रतिरोधक शक्ति गिर जाती है। बृहदन्त्र तथा विशेषत Caecum मे मलावरोध के कारण शोथ अर्थात् Typhlitis हो जाता है और उसके कारण Appendix की श्लेष्मकला मे भी शोथ का प्रसरण हो जाता है। अब यदि आन्त्र पुच्छ का मुख Sphincter सूज जाने से बन्द हो जाय और इसके अदर होने वाला श्लेष्म-स्राव (Mucus) इसके अन्दर रुक जाय तो उसमे प्रधानतया Streptococci तथा गौण रूप से B Coli की वृद्धि के कारण यह श्लेष्म-स्राव और अधिक बढता है। इस बढे हुए तथा बन्द हुए (Obstructed) स्राव का दबाव पडने से आन्त्र पुच्छ की दीवार मे विद्यमान Veins तथा Lymphatics अवरुद्ध हो जाती है एव फट जाती है, जिससे ऑक्सीजन के उचित मात्रा मे न मिलने से आन्त्र पुच्छ की प्रतिरोधक शक्ति हीन हो जाती है एव उस पर इन जीवाणुओ का आक्रमण सुगम हो जाता है। यह रोग तीव्र (Gangrenous) रूप मे मासाहारियो मे ही पाया जाता है।

विकृति

आन्त्र पुच्छ के अन्दर जीवाणुओ के अति मात्रा मे रोहण कर जाने से पहले उसकी श्लेष्मकला मे श्लैष्मिक शोथ (Catarrhal) हो जाता है। फिर उसके अन्यान्य स्तरो से भी रक्तसचय होकर शोथ हो जाता है, जिसमे आन्त्र पुच्छ रक्त वर्ण का तथा मोटा हो जाता है। इसे Catarrhal Appendicitis या श्लैष्मिक आन्त्र गुल्म कहते है। बहुधा यह शोथ दर्द होने के दूसरे या तीसरे दिन शात होने लगता है तथा एक सप्ताह तक पूर्णतया शान्त हो जाता है। इसके जो अवयव अर्थात् श्लेष्मकला या उससे नीचे का अवयव (Submucos Tissue) नष्ट हुआ होता है उसके स्थान पर नया स्नायु-तन्तु आ जाता है।

परन्तु यदि यह शोथ दूसरे-तीसरे दिन शान्त न हो तो इसके अन्दर पूयभाव के होने की आशका करनी चाहिये। पहले तो आन्त्र पुच्छ की श्लेष्मकला के किसी एक Lymph Follicle मे पूयभाव आरम्भ होता है जहां से रोग-जीवाणु Submucous Layer मे फैलते है और फिर वहा से Muscularis मे से होकर रक्तवाहिनियो के साथ-साथ ये Subserous Layer मे भी फैल जाते है। इस प्रकार क्रमश मासमय स्तर तथा बाहर की Peritoneum के स्तर मे भी फैल जाते है। इस प्रकार क्रमश मासमय स्तर तथा बाहर की Peritoneum के स्तर मे पूयभाव फैल जाता है। इसे Suppurative Appendicitis या पैत्तिक आन्त्र गुल्म कहते है। Peritoneum मे पूयभाव होते ही Omentum, समीपस्थ आन्त्र (Loops of intestine) तथा Caecum ये सब इस सूजे हुए चपकीले आन्त्र पुच्छ से चिपक जाते हैं तथा विद्यमान पूयभाव को Peritoneal Cavity मे फैलने से रोक देते हैं। आन्त्रपुच्छ (Appendix) के इन समीपस्थ अवयवो के साथ जुड जाने (Adhesion) से जो एक गोला या गुल्म-सा बनता है उसे Appendicular Mass कहते है। आन्त्र पुच्छ मे पूयभाव हुआ हो तो दर्द होने के तीसरे-चौथे दिन यह गुल्म अनुभव किया जा सकता है। यदि पूयभाव मन्द रूप मे हो तो यह गुल्म भी कुछ-एक सप्ताहो मे पूर्णतया लुप्त हो जाता है और इस रोग के लक्षण भी सर्वथा शान्त हो जाते है। यदि इसके बाद फिर कभी दोबारा इस रोग के दर्द आदि के लक्षण प्रकट हो तो जान लेना चाहिये कि रोग शान्त नही हुआ, केवल दबा हुआ है। तब शल्यकर्म कराना आवश्यक हो जाता है। जब इस रोग के आरम्भ होने के एक सप्ताह बाद भी ज्वर आदि लक्षण जारी रहे तो समझना चाहिये कि एक स्थानिक विद्रधि (Localized Intraperitoneal Abscess) बन चुकी है जो Caecum के पीछे नीचे की तरफ होती है तथा साधारण चिकित्सा से ठीक नही होती। जब आन्त्र पुच्छ के सिरे का रक्त-सचार बन्द हो जाता है तब वह मरकर कुछ काला-सा पड जाता है। इसे वातिक आन्त्र-गुल्म-शोथ या Gangrenous Appendicitis कहते है। इसके फट जाने से वहा बहुधा स्थानिक विद्रधि (Local Appendicular abscess) बन जाती है।

लक्षण

सहसा पेट मे दर्द हो जाना इस रोग का प्रधान लक्षण है। दर्द जो बहुधा प्रात काल आरम्भ होता है और रोगी को जगा देता है शूल चुभने का-सा होता है तथा

नाभिप्रदेश पर होता प्रतीत होता है तथा पुच्छ मे स्तम्भ (Contraction) के कारण होता है। परन्तु २४ घण्टे के अंदर-अदर यह दर्द Right Iliac Fossa मे केन्द्रित हो जाता है, तब यह दर्द Parietal peritoneum के विक्षोभ के कारण तथा सिम्पेथेटिक नाडीजाल पर बोझ पडने से होता है। ९९ या १०० डिग्री के लगभग ज्वर का होना भी, जो जीवाणुओं के सक्रमण से होता है, इसका दूसरा लक्षण है। पूर्ण मलबन्ध का होना इसका तीसरा लक्षण है जो Peritonitis तथा उसके कारण आन्त्रगतियो के नष्ट होने का परिणाम होता है। अरुचि अथवा वमन का लक्षण भी बहुधा होता है जिससे आत मे अवरोध का सन्देह होता है। पर वमन का लक्षण देर तक नही रहता। आत्र पुच्छ मे Gangrene होने पर सिम्पेथेटिक नाडीजाल के मर जाने से दर्द तथा अरुचि के लक्षण मध्यम होते हैं, पर विपसचार (Toxicity) तथा श्वेतकण-वृद्धि के लक्षण बढ जाते हैं। दर्द का लक्षण दूसरे दिन ठीक होने लगता है और रोगी एक सप्ताह मे ठीक हो जाता है। यदि ठीक न हो तो पुच्छ मे विद्रधि या पूयभाव हुआ समझना चाहिए।

परीक्षा :—

देखने पर रोगी दाहिनी टाग को पेट पर सिकोड कर सीधा पडा हुआ दीखता है। यदि टाग को फैलाता है तो पेट की मासपेशियो पर खिंचाव पडने से उसे दुखन होती है। उसके पेट की दीवार विशेषत Right Rectus Abdominis अकडी हुई दीखती है, श्वास-प्रश्वास के साथ भी हिलती नही है। रोगी की जीभ भी देखने मे मैली तथा खुश्क दीखती है। Mc Burney's Point पर स्पर्शन करने से स्पर्शाक्षमता का लक्षण मिलता है तथा स्पर्शन करने पर रोगी अपने पेट को ऐसा तान लेता है कि गहरा स्पर्शन करना कठिन होता है। अदर Peritoneum मे शोथ के प्रसरण कर जाने मे आत्र पुच्छ प्रदेश या पेट की मध्य रेखा, Poupart's Ligament तथा नाभि से बाहर की ओर सीधी खीची रेखा से बने त्रिकोण प्रदेश (Sherring-Triangle) की त्वचा मे भी स्पर्शाक्षमता (Hyper aesthesia) का लक्षण होता है। मध्यम आयु से नीचे के व्यक्ति मे यदि यह चिह्न हो तो इस रोग का निश्चय हो जाता है।

नाडी की परीक्षा करने पर उसकी गति कुछ तीव्र अर्थात् ८०-९० तक होती है, उसका बल कम होता है। जितनी ही गति अधिक अधिक होती जाय उतना ही रोग को बढता हुआ समझना चाहिये। यदि तापमान के बढने के बिना भी नाडी की गति बढ जाय तो इसे हृदय पर विष के प्रभाव या Toxic Myocarditis के कारण बढता हुआ समझना चाहिये। आत्रपुच्छ मे मृत्यु की प्रक्रिया या Gangrene आरम्भ हो जाय तो ज्वर तो कम होता जाता है, नाडी-गति तीव्र होती जाती है तथा रोगी की अवस्था गिरती जाती है।

रक्त-परीक्षा करने पर श्वेत कणो (Leucocytes) की वृद्धि १५-२० हजार प्रति क्यूबिक मिलीमीटर तक होती है। जब यह २० हजार से ऊपर हो और दो-तीन दिन तक ऐसी ही बनी रहे तो आत्रपुच्छ मे पूयभाव की आशका कर लेनी चाहिये। एक बालक के पेट मे समय-समय पर दर्द होता रहता हो तो इस रोग का सन्देह करना चाहिये। Ileocaecal Adenitis रोग मे दर्द के साथ वमन नही होता। स्त्री मे Salpingitis हो तो दर्द का आरम्भ नाभि से कभी नही होता। दाहिने Ureter मे Bacilluria या Calculus के कारण दर्द होता हो तो मूत्र की परीक्षा करने पर उसका निश्चय हो जाता है।

यदि इस रोग का वेग पहला हो तो दूसरे या तीसरे दिन लक्षण शान्त होने लगते हैं और रोगी एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर ठीक हो जाता है। परन्तु आत्र पुच्छ मे दुबारा इस दर्द के होने की प्रवृत्ति रह जाती है। परन्तु यदि शोथ शान्त न हो, आत्र पुच्छ मे व्रणभाव या पूय-भाव हो जाए तो रोग एक सप्ताह के बाद भी बना रहता है। सरदी से ज्वर चढता है तथा आत्र पुच्छ के प्रदेश पर एक गुल्म-सा अनुभव होने लगता है। रोगी कृश हो जाता है, अन्तर्विद्रधि के लक्षण प्रकट हो जाते है। आत्र पुच्छ मे पूयभाव के होने पर शल्य-कर्म आवश्यक हो जाता है। आत्र पुच्छ प्रदेश पर स्पर्शाक्षमता का होना इस रोग का प्रधान चिन्ह है। वृक्कशूल तथा पित्ताशयशूल से इस रोग का भेद करना चाहिए।

आत्र गुल्म की चिकित्सा

इस रोग की प्रधान चिकित्सा शल्य-चिकित्सा है, तथापि रोग मृदु हो, नाडी-सख्या प्रति मिनट बढ न रही हो, लक्षण भी क्रमश शान्त हो रहे हो तो जब तक रोगी का तापमान तथा नाडी सख्या नॉर्मल न हो जाय उसे निराहार रखना चाहिये और गुदा अथवा शिरा द्वारा जल देना चाहिये। जल मे Lactose भी मिला दे। रोगी को Fowler's Position मे शान्तभाव से लिटाये रखना भी

लाभदायक है। दर्द के लिये पेट पर गर्म सेंकना या Antiphlogistine के पलस्तर का प्रयोग करना चाहिये। मलबन्ध की निवृत्ति के लिये ग्लिसरीन का गुदा मे प्रयोग करना चाहिये। रात को Paraffin २ ड्राम की मात्रा मे प्रतिदिन दे सकते है। Calomel ½ ग्रेन Menthol ⅛ ग्रेन, Extract Belladonna ⅛ ग्रेन, Extract Hyoscyamus ⅛ ग्रेन तथा Extract Gention की पर्याप्त मात्रा मे बनी गोली दो-दो घण्टे बाद देने से दर्द मे आराम प्रतीत होता है। या ¼ ग्रेन मार्फिया त्वचा द्वारा दे दें। यो तो Antibiotic औषधिया शल्यकर्म की सहायक मात्र होती हैं परन्तु रोग मृदु हो, Streptococci व Bacterium Coli मे हो तो Tatracyclines का प्रयोग करना चाहिये अथवा Penicillin तथा Streptomycin के सम्मिलित इंजेक्शन (Dicrysticin Squibb, Streptopenicillin Pfizer, Omnamycin Hocchst, Crystamycin glaxo) के देने से भी सक्रमण शान्त होता है। मृदु रोग मे इस साधारण चिकित्सा के बाद बहुधा शल्यकर्म की आवश्यकता नही रहती। परन्तु रोग कुछ तीव्र रूप मे हो, Adhesions हो गये हो तो तुरन्त या उपर्युक्त चिकित्सा से रोगी के ठीक हो जाने के ३ मास बाद शल्यकर्म करने का आदेश देना चाहिये। इस रोग मे मृत्यु व्यापक Peritonitis के कारण होती है। बालको और वृद्धो मे इसके होने की आशका अधिक है। इस रोग के शल्यकर्म मे मृत्यु की आशका आधा प्रतिशत ही है।

आयुर्वेद मे गुल्म रोग

आन्त्रपुच्छ शोथ (Appendicitis) तथा पित्ताशय-शोथ (Cholecystitis)

वातिकगुल्म (Intestinal colic) वायुप्रकोपक कारणो से आत में स्तम्भ (Spasm) होकर जो शूल नाभिप्रदेश पर होता है उसे वातिक गुल्म कहते हैं।

श्लैष्मिक गुल्म—पित्ताशय तथा आन्त्रपुच्छ में श्लेष्म-प्रकोपक कारणो से श्लैष्मिक शोथ (Catarrhal inflammation) होकर जो अरुचि, वमन, शूल और मन्द ज्वर के लक्षण होते हैं उसे श्लैष्मिक गुल्म कहते हैं।

पैत्तिक गुल्म—पित्ताशय तथा आन्त्रपुच्छ में पित्तप्रकोपक कारणो से पित्तजनित शोथ (Suppurative Inflammation) होकर जो तीव्र शूल और ज्वर के लक्षण होते हैं उसे पैत्तिक गुल्म कहते हैं।

त्रिदोषज गुल्म—आत मे तथा पित्ताशय मे जो कैन्सर होता है उन्हें त्रिदोषज गुल्म कहते हैं।

वातज और कफज गुल्म की चिकित्सा के लिए निम्नलिखित औषधियो में से किसी का प्रयोग करना चाहिए—

(१) हिंगुत्रिगुणतैल (या.भ, गुल्मे)—हींग १, सैन्धव ३, एरण्डतैल ९, रसोन-रस २७ भाग मिलाकर तैल बनाए। एक चम्मच, २ बार।

(२) हिंग्वादिघृत (च स., गुल्मे)—हींग, सौवर्चल, जीरा, विडलवण, अनारदाना, अजवायन, पुष्करमूल, त्रिकटु, धनिया, अम्लवेतस, यवक्षार, चित्रक, कचूर, वचा, इलायची, तुलसी, सब २० तोला, दही २ सेर, घृत एक सेर। मात्रा एक चम्मच, ३ बार।

(३) रसोनादिघृत (च द, गुल्मे)—त्रिकटु, अजवायन, अनारदाना, चव्य, सैंधव, हींग, अम्लवेत, जीरा, यवक्षार ५-५ तो, रसोनरस ६ सेर, दशमूल-क्वाथ ६ सेर, मूली-स्वरस ६ सेर दही का पानी ६ सेर, घृत ३ सेर। पाक करें।

(४) त्रिवृतादिमिश्रस्नेह (च स, गुल्मे)—त्रिवृत, त्रिफला, दन्तीमूल, दशमूल, ५-५ तोला को ४ गुणा जल में पकाकर एकचौथाई शेष रखें। इसके बराबर दूध तथा दूध का एक चौथाई घृत तथा उतना ही एरण्ड तैल मिलाकर घृत-पाक करें।

(५) भारगीषट्पल घृत (च द)—पञ्चकोल, यवक्षार ५-५ तोला का कल्क बनायें। दशमूल, एरण्डमूल, भारंगी १-१ सेर का क्वाथ बनायें। फिर इस क्वाथ में १ सेर घृत, ऊपर का कल्क और २ सेर दूध मिलाकर घृतपाक करें।

(६) दशमूलादितैल (वृ नि र)—दशमूल, पिप्पली द्राक्षा, आमला, त्रिवृत १-१ छटाँक का कल्क, दूध ६ सेर, जल ४ सेर, एरण्ड तैल १ सेर मिलाकर तैलपाक करें। पिलायें।

(७) दाधिकघृत (सु स)—बिड, अनारदाना, सैन्धव, काला नमक, त्रिकटु, जीरा, हींग, यवक्षार, इमली, अम्लवेत, चित्रक सब मिलाकर २० तोला। घृत १ सेर। दही ४ सेर बिजौरे का रस २ सेर। जल ४ सेर। घृतपाक करें।

(८) व्योषादिघृत (ग नि)—त्रिकटु, यवक्षार, हींग, विडलवण, सैन्धव, अनारदाना ११-१ तोला। दशमूल का क्वाथ ४ सेर, घृत १ सेर। घृतपाक करें।

(९) एरण्डतेल को दूध के साथ दें ।
(१०) लशुनाष्टकचूर्ण को योग्य अनुपान से दें ।
(११) हिंगुनवक चूर्ण (यो.र)—हिंगु, पुष्करमूल, तुम्बुरु, हरड़, त्रिवृत, विडलवण, सेंधव, यवक्षार, सोंठ सब समान, चूर्ण बनावे ।
(१२) हिंग्वादिचूर्ण (भै र)—हींग १, वच २, विड ३, सोंठ ४, जीरा ५, हरड ६, पुष्करमूल ७, कुष्ठ ८ भाग । चूर्ण करें ।
(१३) गुल्महरचूर्ण (योगतरगिणी)—दोनो क्षार, पाचो लवण त्रिकटु समान भाग घृत से दें ।
(१४) गुल्मशार्दूलरस (र. ना. स.)—पारा, गंधक, लोहा, गूगल पिप्पली, त्रिवृत, सोंठ, कचूर, धनिया, जीरा ५-५ तोला; धतूरबीज २½ तोला को मिलाकर, २-२ रत्ती की गोली बनायें । २-२ गोली मात्रा ।
(१५) हिंग्वादिचूर्ण तथा वटी (च. म.)—हिंगु, त्रिकटु, पाठा, हाउबेर, हरड, शठी, अजवायन, इमली, अम्लवेत, अनारदाना, पुष्करमूल, धनिया, जीरा, चित्रक, वच, दो क्षार, दो लवण, चव्य । समान भाग लेकर चूर्ण करें या बिजौरे के रस में इसकी गोलिया बनाकर उनका प्रयोग करें ।
(१६) शंखवटी (भै र.)—शखभस्म, पाच लवण, इमलीक्षार त्रिकटु, हींग, वत्सनाभ, गवक, पारा सम भाग । अपामार्ग, चित्र मूल, निम्बुमे १-१ भावना दें । फिर निम्बु, बिजौरा, इमली आदि की भावना दें । मात्रा—१ गोली। प्रातःकाल दें ।
(१७) क्षारद्वयादिचूर्ण (यो. र.) दोक्षार, चित्रक, त्रिकटु, पाचलवण, नीली, सब सम-भाग घृत के साथ दें ।
(१८) प्रवालपञ्चामृत (यो. र.)—प्रवाल २ भाग, मुक्ता, शख, शुक्ति, कपर्द भस्म १-१ भाग से अर्कदुग्ध से भावना देकर एक पुट दें । मात्रा २ से ३ रत्ती तक ।
(१९) काङ्कायनगुटी (च. द., गुल्मे)—अर्शप्रकरण में देखें ।
(२०) कुमार्यासव (ग नि.)—अर्श-प्रकरण में देखें ।
(२१) योगराजगुग्गुलु—अर्शस्-प्रकरण में देखे । मात्रा—२-२ गोली दो बार ।

पित्तगुल्म के लिये उपयोगी प्रयोग

(१) आमलक्यादिघृत (वृ. नि. र.)—आनले का रस, इक्षुरस, हरीतकी क्वाथ, सम भाग । इनका ¼ घृत । घृतपाक करें ।
(२) द्राक्षादिघृत (च. स)—द्राक्षा, मुलैठी, खजूर, विदारी-कद, शतावरी, फालसा, त्रिफला ५-५ तोला; ८ सेर जल में क्वाथकर एकचौथाई शेष करें । हरड का कल्क २० तोला । घृत १ सेर । घृतबनाएइसे मिश्री तथा मधु के साथ देना चाहिए ।
(३) त्रायमाणादिघृत (च. सं.)—त्रायमाण २० तो० आठ गुणा जल में ¼ कषाय रखें । कटुरोहिणी, मुस्ता, त्रायमाण, धमासा, मुनक्का, भुई आवले खस, जीवन्ती, चन्दन, नीलोफर सवा सवा तोला । आवले का रस और दूध ३५-३५ तोला, घृत आधा सेर । घृतपाक करें ।
(४) पथ्या घृत (च० स०, पाण्डुरोगे) हरड ६½ सेर, जल ३२ सेर । ¼ कषाय करें । हरड का कल्क १ पाव । घृत १ सेर । घृतपाक करें ।
(५) द्राक्षादियोग (वा. भ.)—द्राक्षा, मुलैठी, चन्दन श्वेत, पद्माक समभाग चूर्ण करें मात्रा ३ माशे तण्डुलोदक से ।
(६) त्रिफला चूर्ण में खाण्ड मिलाकर शहद से चटाए ।
(७) त्रायमाणाक्वाथ (वा. भ)—त्रायमाणा १० तो को २ सेर जल में पकाकर चतुर्थांश शेष रखकर थोडा-थोडा दें ।
(८) द्राक्षादिक्वाथ (वृ० नि० र०)—द्राक्षा और हरड के क्वाथ में गुड मिलाकर पिलायें ।

गुल्मरोग में पथ्यापथ्य—पुराने चावल, कुलत्थयूष, गोक्षीर, द्राक्षा, तक्र, लहसन, एरण्डतैल, हरड, खाण्ड, बिजौरा निम्बु ये सब पथ्य हैं । तथा माष आदि दालें, गुरु-स्निग्धाहार, फल, कच्चे आहार अपथ्य हैं ।

सिरावरोधजनित उदरशूल

Mesenteric Thrombosis—mesenteric vascular occlusion, Intestinal Ischaemia

बडी आयु के ऐसे पुरुषो मे जिन्हे Arteriosclerosis का रोग होता है, Superior mesenteric artery Coeliac या Inferior mesenteric artery या उसकी शाखाओं मे बहुधा तो सहसा कभी कभी धीरे धीरे भी कही अवरोध होकर, ग्रस्त आत, लाल होकर फूल जाती और फिर काम करना बन्द कर देती है अर्थात् वहा आन्त्र बन्ध (Obstruction) हो जाता है। जब देर तक आत के

उस भाग को रक्त नही मिलता वहा Necrosis की प्रक्रिया हो जाती है। उपर्युक्त धमनियो मे Atheroma के कारण चिरस्थायी अवरोध हो तो आत का ठीक पोषण न होने से भोजन के बाद २-३ घटे दर्द रहता है, कम खाने से कम, अधिक खाने से अधिक होता है। अरुचि, वमन, अतिसार के लक्षण होते है, रोगी का भार घटता जाता है, उसकी टागो, हृदय या मस्तिष्क मे Atheroma होने के लक्षण भी होते है। तीव्र रुप मे हुएइस रोग मे सहसा रोगी को सारे पेट पर दर्द लगने लगता है जो बहुधा तो बना ही रहता है, कभी कभी ठहर-ठहर कर भी उठता है, भोजन के लिए अरुचि रहती तथा वमन होती, है पेट पर अफारा दीखता हे वह अकडा हुआ होता है। स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है, रोगी मे Shock के लक्षण जैसे शैथिल्य (Prostration) स्वेद, चिन्ता आदि के लक्षण होते है। मल मे रक्त होता है, रक्त मे श्वेत कणो की वृद्धि होती है, भोजन के बाद कष्ट बढता है, निराहार रहने पर रोगी आराम मे रहता है। Aortography से इसका निश्चय होता है। शल्यकर्म द्वारा रोगग्रस्त आत के भाग को निकालने से ही यह रोग ठीक हो सकता है तथा Shock के समान ही इसकी चिकित्सा होनी चाहिये, अर्थात् मृत आत को काट कर Resection करने से ही रोगी को बचाया जा सकता है। चिरस्थायी सिरावरोध मे भी Endarterectomy का शल्यकर्म ही इसकी चिकित्सा है।

चिरस्थायी मलबन्ध (Constipation)

मल-विसर्जन क्रिया

भोजन मे लिया हुआ आहार द्रव्य लगभग तीन घण्टे मे आमाशय मे निकल कर २, २॥ घण्टे मे Ileum के निचले सिरे पर पहुँच जाता है और वहा पर कुछ काल रुका रहता है। फिर किसी आहार, पान के करने से क्षुद्रान्त्र के इस निम्न भाग मे एक प्रेरक गति उठती है, जिसे आमाशय की चेष्टा के कारण उत्पन्न होने से, Gastrocaecal reflex कहते है। इसके उत्पन्न होने पर क्षुद्रान्त्र और बृहदन्त्र के बीच का द्वार (Ileocaecal Valve) जो हर समय बन्द रहता है, खुल जाता है और क्षुद्रान्त्र के निम्न भाग मे एकत्रित हुआ यह अन्न-द्रव आगे Ceacum मे खिसक जाता है। इस प्रकार एकत्रित १-१॥ लिटर भोजन-द्रव, जिसमे ९० प्र० श० जल तथा बहुत थोडी मात्रा खाण्ड, फैट, प्रोटीन और माल्ट्स की होती है, क्षुद्रान्त्र से बृहदन्त्र मे जाता है। बृहदन्त्र मे पहुचने पर इस अन्न-द्रव की गति मन्द हो जाती है, वहा यह एक ही स्थान पर घण्टो तक रुका रहता है। चढते हुए बृहदन्त्र मे तथा आवे लेटे हुए बृहदन्त्र मे इस भोजन द्रव का जल तथा भोजन के घुलनशील भाग विलीन हो जाते हैं। Pelvic colon मे केवल भोजन द्रव-का मलाश ही रह जाता है। दिन-रात मे ३-४ बार के लगभग बृहदन्त्र मे प्रेरक गति (Peristalsis) उत्पन्न होती है जो कुछएक सेकण्ड के लिये रहती है। इनमे चढती हुई आत का मल लेटी हुई आत मे और लेटी हुई आत का मल उतरती हुई आत मे एक समूह मे गति कर जाता है, अर्थात् बृहदन्त्र मे Mass Peristalisis होता है। इस प्रकार खाया हुआ भोजन लगभग १६ घण्टे के बाद Pelvic Colon के निचले सिरे तक पहुच जाता है और वहा पहुचकर ५-६ घण्टे रुका रहता है। अर्थात् सवेरे प्रातराश तथा १२ बजे दोपहर का लिया हुआ आहार द्रव्य १६ घण्टे के समय के बाद अगले दिन सवेरे ४ बजे तक Pelvic Colon मे पहुच जाता है।

प्रातःकाल ५ या ६ बजे उठने पर जब एक व्यक्ति साधारण या गर्म किया हुआ जल पीता है या गर्म चाय आदि पीता है, या केवल मल-त्याग का सकल्प ही करता है तो आमाशय की गति के द्वारा, या मानसिक प्रेरणावश Pelvic Colon मे एक प्रेरक गति उत्पन्न होने लगती है जिससे विद्यमान मल आगे खिसक कर मलाशय मे प्रवेश करने लगता है। उस समय यदि व्यक्ति निश्चिन्त हो, किसी कार्य या चिन्ता मे व्याप्त न हो अर्थात् यदि Sympathetic नाडिया उत्तेजित न हो तो मलाशय मे आये मल-त्याग की सवेदना या मल-विसर्जन की हाजत होने लगती है। इसके पेट की गति के साथ सम्बन्धित होने से इसे Gastro Colic reflex कहते हैं। इस प्रकार जब मल के प्रवेश के कारण मलाशय की सज्ञावाहिनियो मे एक सवेदना सी प्रतीत होती है तो इसकी प्रतीति Spinal Cord के २-४ Sacral Segments मे विद्यमान मल-विसर्जन केन्द्र (Defaecation Centre) मे पहुचती है जहा से एक मलप्रेरक चेष्टा (Efferent Impulse) Sacral parasympathetics के द्वारा आती है, जिससे मलाशय मे ही नही, वरन् लेटे हुए तथा Colon के सम्पूर्ण निम्न भाग के मास मे प्रेरक गति उत्पन्न हो जाती है। इसी नाडी-समूह की उत्तेजना के कारण इस समय मे गुदा का अन्दर का द्वार (Anal Sphincter) खुल जाता है एव बृहदन्त्र के सारे निम्न भाग मे सकोच होकर Descending Colon तथा Pelvic Colon का सम्पूर्ण मल एक वेग मे शरीर से बाहर हो जाता है। इसके साथ-साथ

चढती हुई आंत का भोजनद्रव लेटी हुई बडी आंत मे और लेटी हुई आंत का भोजनद्रव Pelvic colon मे खिसक जाता है। इस प्रकार मलत्याग एक Reflex act है। यह Reflex विचार या Condition पर भी निर्भर है। मलत्याग का समय होने से या उस का विचार करने से या चाय आदि किसी वस्तु के पीने से यह Reflex उत्पन्न हो जाता है। मल-विसर्जन के समय व्यक्ति अपने कोष्ठ की दीवार की मासपेशियो तथा श्वास महापेशी (Diaphragm) का दवाव भी डालता है, अर्थात् ये ऐच्छिक मासपेशिया भी Colon की अनैच्छिक मासपेशियो की उस समय सहायता करती है। इस प्रकार मलाशय (Rectum) जो मल-विसर्जन कर्म से पहले भी खाली था, इसके वाद भी खाली हो जाता है। यह मलविसर्जन कर्म या Reflex २४ या ४८ घण्टो मे नियमित रूप से एक बार न हो तो उसे मलवन्ध कहा जाता है।

मलवन्ध का कारण

परन्तु जव आलस्यवश या कार्यवश, या लज्जावश या मलत्याग के स्थान के अभाववश मलाशय मे होने वाली उस सवेदना या हाजत या Reflex की अवहेलना की जाती है तव मलत्याग का वेग स्वयमेव शान्त हो जाता है। इसके वाद फिर भोजन के वाद या चाय आदि स्वल्पाहार के वाद यह Gastrocolic Reflex उत्पन्न हो जाता है, एव मलत्याग हो जाता है। अथवा अगले दिन सवेरे अपने निश्चित समय पर मलत्याग का वेग होकर मलाशय मे स्थित यह मल बाहर हो जाता है, एव मलाशय फिर स्वच्छ हो जाता है। परन्तु यदि अन्य कार्यो को प्रधानता देते हुए वारम्वार इस हाजत या Reflex की परवाह न की जाय, अर्थात् मलाशय मे मल के आ जाने पर भी मलत्याग के लिये न जाया जाय-तो धीरे-धीरे मलाशय मे मल के प्रवेश से उत्पन्न होने वाली यह सवेदना या बेचैनी की प्रतीति उत्तरोत्तर हलकी पडती जाती है, अर्थात् मल-प्रवेश मे मलाशय की नाडियो मे उत्पन्न होने वाली उत्तेजना (Nervous Stimulation) कुठित एव मद्धम पडती जाती है (Colic Reflex घट जाता है)। मलाशय मे मल जमा होकर खुश्क हो जाता है और मलाशय के लिये उसके शिथिल हो जाने से भी उसे बाहर फेकना कुछ कठिन हो जाता है। इसलिये इस रोग को Dyshezia या कष्ट से मलत्याग का रोग कहना ठीक है जो मलाशय की वातिक निर्बलता (Nervous Weakness) के कारण उत्पन्न होता है। स्पष्ट है बालको और युवको को सिखाना चाहिए कि वे मलत्याग की प्रेरणा (Reflex) की अवहेलना कभी न करें।

भोजन सम्वन्धी

Colonic Constipation या वृहदन्त्र की गति मे निर्वलता से उत्पन्न मलवन्ध —आंत की दीवार मे होने वाली अन्नप्रेरक गति Peristalsis दीवार मे छाई हुई Auerbach's Plexus की नाडियो के द्वारा उत्पन्न होती है। Sympathetic तथा Parasympathetic नाडिया इस गति का नियमन करती हैं। अन्न मे विद्यमान विक्षोभक द्रव्य के द्वारा यह प्रेरक गति वढती है। इसीलिये यदि आहार अति मृदु हो जैसे विना चोकर का पतला आटा, मैदा, या मशीन का साफ किया हुआ चावल, दूध, दही आदि का ही आहार किया जाय तो भी प्रेरक गति के मन्द होने मे मलवन्ध (Intestinal Stasis) का लक्षण रहता है। चोकर मे Vitamin B होता है जो शरीर की नाडियो के लिये वलवर्धक होता है। इस Vitamin की न्यूनता बनी रहे तो आंत की प्रेरक शक्ति भी मन्द हो जाती है जिससे मलवन्ध हो जाता है। भोजन से यह हमे प्रतिदिन १ मिलिग्राम मात्रा मे प्राप्त होता है। अत पालिश किये हुये अनाज भी मलवन्ध का कारण हो जाते हैं। वनस्पति, शाक, फल आदि मे फोक (Cellulose) का अंश अधिक होता है अत उनका सेवन सर्वथा न किया जाय तो भी मलवन्ध रहता है। यकृत् से निकलने वाला पित्त भी आंत मे होने वाली प्रेरक गति (Peristalsis) का उत्तेजक होता है अत. यकृद्रोग मे भी मलवन्ध हो जाता है। जो व्यक्ति आसनशील होते है, व्यायाम-भ्रमण नही करते, उनके अन्य मासो के समान वडी आंत का मांस भी निर्वल हो जाता है जिससे मलवन्ध रहता है। शरीर मे मेद-वृद्धि हो जाने पर या पाण्डु रोग होने पर या किसी तीव्र ज्वर के वाद या क्षयरोग मे या मधुमेह मे तथा वृद्धावस्था के कारण भी वडी आंतो का निर्बल हो जाना (आंत मे Atony हो जाना) स्वाभाविक है जिससे मलवन्ध रहता है (इसे Atonic या Colonic Constipation कहते है)।

वृहदन्त्र मे विष्टम्भ (Spasm) के हो जाने से उत्पन्न मलवन्ध या Spastic Constipation:—अजीर्ण के विशेषत कार्वोहाइड्रेट्स के अजीर्ण के कारण आंत मे उत्पन्न Organic acids तथा गैस की उत्पत्ति अधिक हो तो आंत की दीवार पर गैस का दबाव तथा Acids का दुष्प्रभाव पडकर उसमे विष्टम्भ होने से उसकी अन्नप्रेरक अथवा मल-

प्रेरक शक्ति मन्द हो जाती है। इसी प्रकार वात प्रकृति के व्यक्तियो मे जो प्रसन्न न रहकर विपण्ण, विक्षुब्ध एव चिन्तित रहते है (जैसे Neurasthenia, Hysteria आदि प्रकृति के व्यक्तियो मे) Sympathetic नाडी-मण्डल के विक्षुब्ध रहने से भी आत मे विष्टम्भ रहता है तथा Parasympathetic नाडी-मण्डल द्वारा होने वाली वृहदन्त्र गति (Peristalis) मन्द हो जाती है। पित्ताशय-आन्त्रपुच्छ-गुदा-गर्भाशय मे शोथ होने से भी वृहदन्त्र मे स्तम्भ (Spasm) होकर मलवन्ध (Spastic Constipation) हो जाता है। विरेचक औषधियो व तमाखू के अति सेवन से या मानसिक कारणो से भी आत मे स्तम्भ होता है। बवासीर के मस्सो के सूज जाने पर तथा प्रोस्टेट ग्रन्थि मे शोथ होने पर भी वृहदन्त्र मे स्तम्भ होकर मलवन्ध हो जाता है। आत मे कैन्सर हो तो वार-वार जाने का वेग होता है पर मल-त्याग अपूर्ण होता है।

मलवन्ध के साथ मूत्राघात भी हो, आयु वडी हो, तो सुषुम्ना काण्ड मे विद्यमान मलत्याग केन्द्र (Defaecation केन्द्र) मे Myelitis का प्रभाव हुआ समझना चाहिये। पथरीली चट्टानो या पथरीले मैदानो के, जिनमे चूने का पत्थर रहता है, जल के पीने से आतो मे Calcium Carbonate अधिक मात्रा मे पहुच जाता है, इसके शोषक होने से भी मलवन्ध रहता है। इसी प्रकार कुछएक स्थानो का जल भारी होने के कारण मलवन्धक होता है। व्यायाम के बाद बहुत पसीना आ जाने से भी या जल के कम पीने से मल सूख जाता है एव मलवन्ध हो जाता है। शहरो मे जहा जीवन मे चिन्ता ने और भोजन मे कृत्रिमता ने अधिक प्रवेश कर लिया है, यह रोग ग्रामो की अपेक्षा अधिक होता है।

लक्षण

पुराने विचार के लोग तो मलवन्ध को तीन-चौथाई रोगो का कारण बताते हैं। उनका यह विचार है कि वृहदन्त्र तथा मलाशय मे मल द्रव्य के चिरकाल तक रुके रहने से वहा पर जीवाणुजनित विषद्रव्य अधिक मात्रा मे उत्पन्न हो जाते है जिनके श्लेष्मकला द्वारा शरीर मे विलीन होते रहने से शरीर मे विषद्रव्यो की मात्रा वढ जाती है अर्थात् Auto intoxication होता रहता है जिसके कारण मस्तिष्क तथा नाडी-मण्डल मे अवसाद (Depression, Lassitude) रहता है। मानसिक तथा शारीरिक कार्यशक्ति कम हो जाती है अर्थात् इनमे स्वाभाविक स्फूर्ति नही रहती। रक्त पर इनका दुष्प्रभाव होने से रक्त-वाहिनिया रुग्ण हो जाती है अर्थात् रक्त-भार वढ जाता है। पाण्डुता हो जाती है जिससे त्वचा का वर्ण फीका पड जाता है। आत मे गैस के वढ जाने से निद्रा टूट-टूटकर आती है। जननेन्द्रिय-सम्बन्धी अवयवो पर गैस का दवाव पडने से स्वप्नदोष हो जाता है। आत मे मल के देर तक रुके रहने से अर्शरोग भी होता है।

वस्तुत इनमे से वहुत से विचार गलत हैं। मलवन्ध मे होने वाले जो उपर्युक्त लक्षण कहे जाते हैं उनका कोई वैज्ञानिक आधार नही है। क्योंकि बडी आत की श्लेष्मकला रुग्ण न हो तो वहा विद्यमान ठोस मल मे से किसी चीज का विलयन नही होता। सत्य तो यह है कि विरेचन-गुण औषधियो का नित्यप्रति प्रयोग करने वालो मे बडी आत मे मल तरल हो जाने से उसमे से Auto intoxication का भय अधिक है क्योंकि विरेचक औषधि लेने से खाया हुआ द्रव्य शीघ्र-शीघ्र अपक्वावस्था मे ही वृहदन्त्र मे पहुच जाता है, जिससे उसमे विषो के उत्पन्न होने की अधिक सम्भावना रहती है। वैज्ञानिक लोग कहते है कि मलवन्ध के उपर्युक्त अवसाद आदि लक्षण मलाशय के अन्दर दबाव (Distension) के वढ जाने से होते है, Toxaemia से नही। सत्य तो यह है कि आम लोगो के मन मे मलवन्ध का जो भय है वह स्वार्थी विज्ञापन-बाजो के झूठे प्रचार के कारण उत्पन्न हुआ है।

मलबन्ध की चिकित्सा

प्रात काल अथवा प्रात साय, दोनो समय, मलत्याग के लिये एक समय निश्चित होना चाहिए। घडी को देखकर उस समय अन्य सर्व कार्यो को त्यागकर मलत्याग के लिये जाना चाहिये। उस समय पर मलत्याग का सकल्प करने मात्र से मलविसर्जन सवेदना (Defaecation Reflex) होने लगती है। उस समय अन्य सर्व चिन्ताओ से मुक्त होना आवश्यक होता है। इस शिथिलता (Relaxation) को प्राप्त करने के लिए अखबार या कोई पुस्तक पढी जा सकती है अथवा एक गिलास जल या आधा गिलास गर्म जल या एक प्याला गर्म चाय इसी उद्देश्य से पी लिया जाय, मस्तिष्क व नाडीमण्डल को शान्त कर लिया जाय और मलत्याग का सकल्प किया जाय तो मलत्याग की सवेदना उठने लगती है। शिशु को जैसे दूध लेने के वाद मल का वेग होता है वैसे प्रात १ प्याला चाय या दूध लेकर मलत्याग के लिये जाना चाहिए। इस मलत्याग के निश्चित समय की टाल कभी नही करनी चाहिए। बालकपन से ही निश्चित समय मलत्याग की

सवेदना न भी हो तो भी मलत्याग के लिये जाकर मल-विसर्जन का यत्न करना चाहिये। निश्चित समय पर मल विसर्जन न हो तो ग्लिसरीन की बत्ती लेकर ८-१० मिनट बाद फिर जाना चाहिये। अथवा चार ड्राम ग्लिसरीन को बराबर जल मे मिला ग्लिसरीन सिरिंज से उसे गुदा मे प्रविष्ट करके १० मिनट बाद फिर मलत्याग का यत्न करना चाहिये। ग्लिसरीन न लिया जा सकता हो तो एक शीर्षासन या सर्वांगासन कर लेना चाहिये। उससे Pelvic Colon मे हरकत होकर मलत्याग की सवेदना हो जाती है। इस प्रकार फिर से मलाशय मे होने वाले Reflex को चालू करना चाहिये।

मलबन्ध रोगी को कम चिकनाई वाला आहार जैसे गाय का दूध, चिकनाई-निकला पनीर, सूखा फुलका लेना चाहिये। चोकर वाले आटे तथा घर मे कुटे चावलो का सेवन करना चाहिये प्रात-साय किसी मौसमी फल का सेवन नित्य करना चाहिये। तथा भोजन मे दाल की अपेक्षा सब्जियो, बथुआ आदि पत्रशाको का सेवन अधिक करना चाहिये। अर्थात् भोजन ऐसा हो जो आत्रगति (Peristalsis) का उत्तेजक हो। विटामिन बी$_1$, १० मिलि० मात्रा मे दिन मे दो बार लेने मे भी इसमे सहायता मिलती है। आत मे खुश्की न रहने पाए, इसके लिए जल की मात्रा पर्याप्त लेनी चाहिये। भोजन के अतिरिक्त दैनिक ३-४ सेर जल ले लेना चाहिये।

दूध के और मैदा के बने पकवानो का, घी-तेल मे तले गये आहारो, का, जमीन के अदर होने वाले कन्दो का जो हवा भी करते हैं, बादाम, काजू, अखरोट आदि सूखे मेवो का मलबन्धक होने से परित्याग करना चाहिये। खाण्ड का सेवन भी कम करना चाहिये। उसके स्थान पर मधु अथवा Lactose का सेवन करना चाहिये। दूध का अधिक मात्रा मे सेवन या भारी जल (Hard water) का प्रयोग नही करना चाहिये। चाय, कॉफी, मास व स्टार्च भोजन अधिक नही लेना चाहिये।

ऐसे व्यायाम जिनसे पेट तथा Perineum के प्रदेशो की मासपेशियो पर जोर पडता हो, मलबन्ध रोग के लिये हितकर होते हैं। इनके अतिरिक्त, पेट पर घडी की सुई की दिशा मे मर्दन करने या मालिश करने या तीन सेर के लगभग भार के चिकने पत्थर के फिराने से भी आत की मासपेशियो की प्राणशक्ति बढती है। प्रात-साय दो समय नियम से व्यायाम करने वालो को भी मलबन्ध नही होता। रात मे सोने से पहले २-८ औस जैतून तेल गुदा मे प्रविष्ट करके पट्टी बाध कर उसे अन्दर ही रोका जाय और ऐसा कुछ काल नित्य किया जाय तो बडी आत की निर्बलता दूर होकर यह रोग शात हो सकता है। प्रात साबुन के जल की बस्ति १-२ पाइन्ट मात्रा मे लेनी चाहिये।

औषधि-चिकित्सा

इस रोग की चिकित्सा मे औषधियो से कुछ काल के लिये ही सहायता लेनी चाहिये, औषधियो पर निर्भर नही हो जाना चाहिये, क्योकि कुछ काल बाद वही औषधि निष्फल हो जाती है। औषधियो मे से जो आत का स्नेहन करती है, मलबन्ध के लिये विशेष उपयोगी होती है। अर्थात् ऐसा स्नेह जिसका आत मे Saponification न हो, उसका प्रयोग स्नेहन के लिये विशेष उपयोगी होता है। उदाहरणत Paraffin Liquid को ४-६ ड्राम की मात्रा मे सोने से पहले लेने या दोनो समय भोजन के बाद कुछ काल लेने से वृहदत्र तथा मलाशय का स्नेहन होकर मलबन्ध दूर हो जाता है। Liquid Paraffin के Magnesium Hydroxide Mixture के साथ बने Emulsion के प्रयोग से या Petrolagar या Agarol से (जिनमे Phenolphthalein भी होता है) यही लाभ होता है (१-१ ड्राम, दिन मे ३ बार)। इसी प्रकार जैतून तेल (Olive Oil) के २-६ ड्राम या बादाम रोगन के इतनी मात्रा मे प्रात नाश्ते के बाद तथा रात को सोने से पहले लेने से भी आतो का स्नेहन हो जाता है एव मलबन्ध दूर होता है।

इसी प्रकार ईसबगोल के बीजो या छिलके (अथवा Isogel glaxo) को एक बडे चम्मच की मात्रा मे दिन मे दो बार एक पान जल या दूध के साथ लेने से भी आत की मलप्रवर्तक गति उत्तेजित होती है। ये बीज या छिलके Hydrophilic या पानी को लेकर फूल जाने वाले होने से आत पर दबाव डाल कर उसकी Peristalsis को उत्तेजित करते है। दिन मे १-२ बार Metamucil (Vegetable mucilage) के १-२ चम्मच एक गिलास जल मे ले सकते हैं। Agar का भी १-४ ड्राम की मात्रा मे इसी उद्देश्य से प्रयोग किया जा सकता है। इन स्नेहन, श्लेपण (Lubricant) औषधियो से ही मलबन्ध को दूर करना चाहिए। निम्नलिखित मृदु रेचक (Laxative) औषधियो मे से किसी औषधि का विशेष अवस्था मे ही प्रयोग करना चाहिये

(१) Senna Leaves or pods सनाय के पत्तों को ३० ग्रेन की मात्रा मे या ५–६ फलियों को थोडे जल मे पका छानकर चाय या दूध के साथ दिन मे एक बार पी लेने से मल खुल कर आने लगता है। अथवा फलियों को जल मे दिन-रात भिगोकर छानकर पी लेने से भी लाभ होता है। इसमे Phenolphthalien मिलाकर बनाई Carbindon (Indopharma) की गोलिया भी देने के लिये उत्तम है।

(२) Liquid Extract of Cascara sagrada के १-२ ड्राम की मात्रा मे रात मे सोने से पहले लेने से भी मल ढीला हो जाता है। Solid Extract of Cascara sagrada की ३ ग्रेन और Aloes के २ ग्रेन को मिलाकर बनाई गई गोली के या Cscara, Aloes, Rhubarb, Podophyllum से बनी Lativa wander गोली के रात को देने से भी मल ढीला होता है। Elixir of Cascara Sagrada या Cascara–evacuant १ ड्राम आदि भी लिये जाते है।

(३) Magnesium Hydroxide Mixture (Milk of Magnesia) के ४-८ ड्राम की मात्रा मे रात सोने से पहले लेने से भी मलबन्ध दूर होता है।

(४) Sodium Phosphate (Sodium Diphosphate) को १-२ ड्राम (४-८ ग्राम) की मात्रा मे एक प्याला गर्म जल मे प्रात प्रातराश से पहले लेते रहने से भी मलबन्ध दूर हो जाता है।

(५) Acid Potassium Tartrate (Cream of Tartar) के ३० ग्रेन की मात्रा मे अथवा Sodium and Potassium Tartrate के जो Acid Potassium Tartrate को पूर्णतया Sodium bi carbonate के द्वारा उदासीन करने से बनता है, २-४ ड्राम की मात्रा मे प्रात काल आधे गिलास जल मे मिलाकर देने से मलबध ठीक हो जाता है। Seidlitz Powder के द्वारा भी, जिसकी दो पुडियो के एक गिलास जल मे मिलाने मे यही साल्ट बन जाता है, मलबन्ध ठीक होता है।

(६) Sodium Sulphate, Sodium Citrate, Sodium bi carbonate तीनों को समान-समान मिलाकर बनाये पाउडर मे से एक छोटा चम्मच एक प्याले मे प्रात कुछ दिन पी लेने से भी मलबन्ध दूर होता है। छोटे बालक को Liquid Extract of Cascara ५ बूद को Syrup of Fig ३० बूद के साथ मिलाकर अथवा Pulv Rhei ३-१० ग्रेन, या Extract Glycyrrhizae Liquid १० बूद, Extract Cascara Aromatic १० बूद, Syrup Fig ३० बूद मिलाकर, या Milk of Magnesia १ ड्राम की मात्रा में दिन में २-३ बार या २-४ गोली रात को दे सकते हैं।

(७) Phenolphthalein (Alophen) $\frac{1}{2}$-३ ग्रेन की मात्रा मे उत्तम मल-प्रवर्तक है। इससे बने Brook lax आदि योग हैं जो प्रयुक्त होते है।

(८) Dioctyl Sodium Sulfosuccinate (Colvac, Doxinate) ५०-४८० मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन।

(९) Bisacodyl (Dulcolax) १०-३० मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन मलप्रवर्तक होता है।

(१०) Bile के Glycocolic, Taurocholic, glycodesoxycholic acids के Sodium Salts भी मृदु मल-प्रवर्तक होते हैं। इनकी Cascara, Phenolphthalein के साथ बनी गोलिया Bicolates (Martin Harris) Veracolate warner, Bichol (B I) आदि भी मृदु रेचक होती है।

(११) Senokot (सनाय का glucoside) २ गोली रात मे लेने से उत्तम मलबन्धहर है।

बस्ति-चिकित्सा

हलके गर्म Normal Saline की १$\frac{1}{2}$-२ पाइट की मात्रा मे या १५ मिलिलि जल मे १५मिलिलि ग्लिसरीन मिला उस की बस्ति लेने से और फिर ग्लिसरीन को कम करते हुए केवल जल की बस्ति लेने से ठीक-ठीक मल-विसर्जन होने लगता है। ४-६ औंस Mineral या Vegetable oil को रात को मलाशय मे डालकर रातभर उसे अन्दर रोककर प्रात साबुन के जल की बस्ति लेने

से भी मलाशय की निर्बलता दूर होती है। वस्ति का प्रयोग बहुत दिन नहीं करना चाहिए।

आयुर्वेद में मलावरोध या मलबन्ध रोग

आयुर्वेद में कहा गया है कि पुरीष-वेग का अवरोध करते रहने से मलाशय तथा बृहदन्त्र का वायु विकृत या असमर्थ हो जाता है, जिससे वह मल को यथावत् नहीं फेंकता अर्थात् यह अपानवायु की विकृति से उत्पन्न होने वाला रोग है। इस वात-जनित मलावरोध से श्वास, कास, प्रतिश्याय, शिरोरोग, मनोविभ्रम आदि वातरोग हो सकते हैं। (सु०।उ०।५५।श्लो० ३५–३८)

इसके लिये वायुशामक, अर्थात् स्नेहन चिकित्सा की जाती है। प्रातः-सायं थोड़े दूध के साथ या भोजन के प्रारम्भ में और अंत में एक एक तोला घृत थोड़े दूध के साथ या दो चार ग्रास रोटी के साथ कुछ दिन तक ले लिया जाय या ½–१ छटांक किश मिश प्रातः दूध के साथ रोज ले ली जाय तो मलबन्ध रोग शान्त हो जाता है। भोजन में अन्न को कम करके सब्जी तथा फलों की मात्रा बढ़ा देने से भी यह रोग शान्त होता है। अथवा ६-६ माशे बादाम रोगन प्रातः तथा रात को दो बार कुछ दिन तक लेने से भी आंत का स्नेहन होकर मलबंध दूर हो जाता है। इसी प्रकार डेढ़ तोला उत्तम साबुन को ढाई तोला एरण्ड तेल में मिलाकर उसमें से स्वल्प मात्रा को गुदा में प्रविष्ट कर दें तो मल का वेग होने लगता है। प्रातः सायं २ बार गीली पट्टी को पेड़ू पर आधा-आधा घण्टा रखने भी मलप्रेरक शक्ति बढ़ जाती है।

मृदु रेचक के लिये गुलाब के फूलों और खाण्ड से बना गुलकंद दिन में दो बार ले लिया जाय या गुलकंद और बीज-रहित मुनक्कों की चटनी और सनाय के बारीक पत्तों के चूर्ण को मिलाकर बनाई बेर के बराबर गोलियां दो तीन की मात्रा में रात को ले ली जायें तो प्रातः मल का वेग हो जाता है। अथवा मधुयष्ट्यादि चूर्ण (मुलहठी, या गुलाब के फूल १६ भाग, सनाय के पत्र १६ भाग, गंधक तथा सोंफ ८,८ भाग, खाण्ड ५२ भाग) के १, १½ ड्राम की मात्रा में रात को लेने से प्रातः मल साफ हो जाता है। केवल त्रिफला का या रेवंद चीनी, छोटी इलायची १-१, त्रिफला मिलित, गुलाब फूल प्रत्येक २-२ तोला सनाय ४ तोला का चूर्ण ३-४ माशे की मात्रा में रात को लेने से मृदु रेचक होता है। उसारा रेवन्द और शुद्ध एलुआ समान भाग की २-३ रत्ती की गोलियों के लेने से भी मलबन्ध शान्त हो जाता है। शिशु के मलबन्ध के लिये गुलकन्द छः माशा को १ औंस जल में घोलकर छानकर इसका एक-एक चम्मच दो-दो घण्टे बाद पिलाया जाय तो मल साफ हो जाता है। इसी प्रकार हरड को घिसकर देने से या हरीतकी चूर्ण ३ माशा, मुनक्का ६ माशा को २ औंस जल, २ औंस दूध में मिला पकाकर फिर इसे छानकर १-१ चम्मच पिलाने से भी मल साफ होता है।

मलाशय गुल्म, मलाशय त्रिदोष गुल्म
(Carcinoma of the Rectum)

क्षुद्रान्त्र में लगभग कैन्सर का रोग नहीं होता परन्तु बृहदन्त्र में, जहां मल पतला न रहकर कुछ कठोर होता है, बहुधा कैन्सर होता है। उसके भी निम्न भाग में अर्थात् मलाशय में विशेषतः यह रोग होता है। मलाशय से उतरकर दूसरे नम्बर में यह Pelvic Colon में होता है। इससे उतरकर तीसरे नम्बर में यह बृहदन्त्र के शेष भागों में पाया जाता है। मलाशय में यह रोग उसके ऊपर के भाग में, जहां मलाशय और Pelvic Colon की सन्धि होती है, अर्थात् Rectosigmoid junction है वहां यह रोग विशेष होता है। इससे उतरकर दूसरे नम्बर पर यह मलाशय के ऊपर के चौड़े भाग Ampulla में होता है। बहुत कम अवस्थाओं में यह गुद-ग्रीवा में होता है। यह रोग ५५-६५ वर्ष की आयु के पुरुषों में स्त्रियों की अपेक्षा अधिक होता है। सम्भवतः वह किसी चिर विक्षोभक कारण से होता होगा, परन्तु किस कारण से यह होता है, इस विषय में प्रामाणिक रूप से अभी तक कुछ कहा नहीं जा सकता। अधिकतः तो यह रोग मलाशय की श्लेष्म-कला पर गोभी के फूल की तरह उभरे हुए कठोर से व्रण के रूप में अर्थात् Papillomatous Cancer (Papilla-उभार) के रूप में होता तथा परीक्षा करने पर Adenocarcinoma अर्थात् लसीकाग्रन्थियों वाला कैन्सर पाया जाता है अर्थात् कठोर किनारों वाले व्रण के रूप का होता है। पहले यह कैन्सर श्लेष्म-कला तथा उसके नीचे के स्तर अर्थात् Submucous coat में होता है तथा इन स्तरों में दूर तक ऊपर और नीचे की ओर प्रसरण कर जाता है। फिर, सम्भवतः मल-स्पर्श से इसके पृष्ठ पर व्रणभाव होने लगता है, जिससे इसका आंत के अन्दर का पृष्ठ कुछ प्यालाकार हो जाता है परन्तु इसके किनारे उभरे हुए एवं कठोर होते हैं। यह व्रण रूप कैन्सर मलाशय के रोगग्रस्त भाग के चारों ओर या उसके १ अंश में होता है। ¼ अंश में फैलने में इसे ६ मास लगते हैं तथा वृत्ताकार चारों ओर

फैलने मे डेढ वर्ष लग जाता है। इसके बाद यह आस-पास के अगो मे फैलता है। यदि यह आत के चारो ओर भी फैला हुआ हो तो भी क्योकि इसमे स्नायु तन्तु की वृद्धि (Fibrosis) विशेष नही होती, अत मार्गावरोध (Stenosis) का लक्षण शीघ्र उत्पन्न नही होता। श्लेष्म-कला तथा Submucous Coat मे से फिर यह क्रमश मलाशय की दीवार के मासमय स्तर मे प्रसरण कर जाता है। इस अवस्था तक अर्थात् इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे यह रोग शल्यकर्म द्वारा ठीक किया जा सकता है। परन्तु जब यह मास के बाहर बाह्यावरण Subserous Tissue या Peritoneum मे प्रसार कर जाता है (वहा के Lymph Glands मे आ जाता है) अथवा जब यह Superior Haemorrhoidal Artery के साथ-साथ पडे हुए Glands मे और वहा से Lumber Glands मे सक्रमण कर जाता है तब शल्यकर्म द्वारा भी इसका ठीक हो सकना असम्भव हो जाता है। लसीकावाहिनियो मे फैलने के अतिरिक्त इस रोग के सेल Portal Vein द्वारा यकृत् मे भी पहुच जाते और वहा वृद्धि करने लगते है। ऐसा होने के बाद यह रोग असाध्य ही हो जाता है।

मलाशय के ऊपर के भाग मे एक दूसरी प्रकार का कैन्सर भी बहुत अधिक होता है जिस मे दीवार के अन्दर-अन्दर यह रोग फैलता है जिससे मलाशय की दीवार कठोर हो जाती है तथा बीच का रास्ता तग हो जाता है। इसमे व्रणभाव इतना नही होता जितना कठोरता का लक्षण होता है। दीवार मे मुद्राकार फैलने से यह मलाशय या Colon को तग कर देता है। इसलिये इसे Annular Cancer या क्योकि इसमे स्नायुभाव-Fibrosis-विशेष होता है इसलिये Cirrhous type of Cancer (कठोर कैन्सर) कहते है। इसके कारण मलाशय के ऊपर के भाग मे मार्गावरोध (Stenosis) का लक्षण विशेष होता है।

लक्षण

मलाशय मे कैन्सर बडे अज्ञात रूप मे आरम्भ होता है। प्रारम्भ मे इसके कोई लक्षण ही नही होते, जिससे इसे जाना जा सके, इसी अवस्था मे यह साध्य है। जब तक लक्षण उत्पन्न होते हैं तब तक यह इतना दूर तक फैल चुका होता है कि शल्यकर्म से साध्य ही नही रहता। यह बडे दुर्भाग्य की बात है। इसलिये चिकित्सक का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह इस रोग का निदान करने मे निपुण हो। इसीलिये जब कभी किसी बडी आयु के या ५० से ऊपर आयु के पुरुष मे पहली बार मलाशय सम्बन्धी कोई लक्षण लगातार रहने लगे, अर्थात् मलावरोध होने लगे या दिन मे कई बार मल-विसर्जन होने लगे या बाई ओर नीचे पेट मे मरोड का सा दर्द होने लगे जो हवा के निकल जाने से ठीक हो जाय तो इसका सन्देह करना चाहिये। ऐसा प्राय Cirrhous या कठोरतायुक्त कैन्सर मे विशेष होता है। कैन्सर मे व्रणभाव के कारण मल मे कुछ आव या रक्त का अश भी आता है, इसलिये मल की परीक्षा करनी चाहिये। उसमे अव्यक्त रक्त (Occult Blood) मिल जाय तो इस रोग की आशका और दृढ हो जाती है। Papillomatous कैन्सर मे ऐसा होता है। रोगी को बायें पार्श्व पर लिटाकर दोनो टागो को पेट की तरफ सकुचित करके अगुली द्वारा गुदा की स्पर्श-परीक्षा की जाय तो सम्भव है कि अगुली के सिरे से कैन्सर के कठोर उठे हुए किनारो को और बीच के व्रण को अनुभव किया जा सके। व्रणभाव के कारण तथा मल के साथ थोडा-थोडा रक्तस्राव होते रहने तथा विष-प्रचार (Toxaemia) के रहने से कैन्सर रोगी निर्बल, कृश एव पाण्डुर होता जाता है, उसकी भूख कम हो जाती है, एव उसे मन्द-सा सायकालिक ज्वर भी हो जाता है। इन लक्षणो से तथा रोगी के रक्त की परीक्षा करने से Blood Sedimentation Rate बढा हुआ हो तो इस रोग की आशका हो जानी चाहिये। यदि बडी आयु के व्यक्ति मे मल के साथ कुछ रक्त आये या गुदा से Mucus आता रहता हो तो अर्श का सन्देह न करके इसका सन्देह करना चाहिये। मल त्याग के बाद भी मल-त्याग की इच्छा बनी रहे और जाने पर केवल हवा या आव ही आए तो भी इस का सन्देह करे। Sigmoidoscopy से इस रोग का निश्चय हो जाता है।

यदि मलाशय या उसके ऊपर के Pelvic Colon, मे कठोर Cirrhous Annular Cancer हो तो प्रारम्भ से ही मलावरोध तथा बाएँ पेट के निचले भाग मे मरोड होने का लक्षण बडा स्पष्ट होता है। इसलिये यदि विरेचक औषधि के या बस्ति के बिना मल-त्याग का होना कठिन हो रहा हो तो भी इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिये। इस प्रकार के कैन्सर मे व्रणभाव बाद मे होता है, अतः रक्तस्राव या मल मे रक्त की उपस्थिति का लक्षण इसमे नही होता। कभी-कभी मलाशय का कैन्सर से ग्रस्त यह भाग लटकता-लटकता गुदा मे से योनि-मुख (Cervix Uteri) के समान निकलता दीखता है, तथा इस Neoplasm और Internal Sphincter के बीच का प्रदेश अगुली द्वारा देखने से Vaginal Fornix के समान ही प्रतीत होता है। कभी-कभी स्थानिक लक्षणो के प्रकट होने से पहले ही यह रोग यकृत् मे

प्रसरण कर जाता है (Metastases के द्वारा) जिसमें यकृत् वृद्धि के लिये रोगी चिकित्सक के पास आता है। अतः यदि किसी बड़ी आयु के व्यक्ति में यकृत् वृद्धि का रोग हो जाय या जलोदर हो जाय या कामला रोग प्रारम्भ हो जाय तो भी इस रोग का सन्देह करना चाहिये। क्योंकि Sup. haemorr Vien द्वारा कैन्सर के कण के यकृत् में आने से Secondary कैन्सर होकर उसके यकृत् के Transverse Fissure पर दबाव पड जाने एवं Portal Vein या Bile Duct के दब जाने मे ये दोनो रोग हो सकते हैं। Barium की वस्ति देकर X-Ray परीक्षा करने पर मलाशय का यह रोगग्रस्त भाग तंग हुआ या विषम आकृति का दीखता है (Filling defect का चिन्ह होता है)। यदि यह गुल्म Sigmoid Colon में हो तो बायें पेट के निचले भाग मे स्पर्शन द्वारा अनुभव हो सकता है। Sigmoidoscope के द्वारा देखने से श्लेष्मकला पर उठा हुआ लाल रंग का उभार दीखता है जिसका मध्य भाग क्षत होता है। जब इस रोग का पूर्वावस्था में पता नहीं चलता तब व्रणभाव की वृद्धि होते जाने से विषसंचार (Toxaemia) बढता जाता है, नाडी तथा श्वास तीव्र हो जाते हैं। रक्त-स्राव के जारी रहने से पाण्डुता बढती जाती है। तीव्र वेदना के कैन्सर का प्रधान लक्षण होने से रोगी में चैन और निद्रा दोनो विलुप्त हो जाते हैं। शिथिल एवं निर्बल होता हुआ रोगी प्रायः इन लक्षणों के प्रारम्भ होने के डेढ-दो वर्ष बाद मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। Colostomy से कुछ समय रोगी को जीवित रखा जा सकता है।

अर्शांकुर, गुदांकुर (Piles, Haemorrhoids)

गुद-ग्रीवा में श्लेष्मकला तथा कुछ मांस के मुड जाने से ऊपर-नीचे की दिशा में ६-७ स्तम्भ (Rectal Columns of morgagni) बन जाते हैं जिनमें से प्रत्येक में एक धमनी, एक शिरा होती है। गुद-ग्रीवा (Anal Canal) की इन शिराओं का कोई एक गुच्छा रक्त के भर जाने से फूल जाय अर्थात् Varicose हो जाय तो उस उभार या अंकुर को अर्शांकुर (Piles) कहते हैं। आभ्यन्तर और बाह्य भेद से ये अंकुर दो प्रकार के होते हैं। गुद-ग्रीवा के Dentate margin के ऊपर के भाग की शिराओं के फूलने से जो अंकुर बनते हैं और जो केवल मृदु श्लेष्म कला से ही ढके है, आभ्यन्तर अंकुर (Internal Piles) कहाते हैं। गुद-ग्रीवा के इससे निचले भाग में विद्यमान शिराओं से बने अंकुर जो श्लेष्मकला से कम और त्वचा से अधिक ढके होते हैं, बाह्य अंकुर (External Piles) कहाते हैं। आभ्यन्तर अंकुर प्रधानतः तीन स्थानों पर होते हैं—(१) गुद-चक्र के वाम भाग पर ३ बजे के स्थान पर होने वाले मस्से को Left Lateral pile कहते हैं। (२) गुद-चक्र के आगे दाहिनी ओर ११ बजे के स्थान पर होने वाले को Right Anterior Pile कहते हैं। (३) गुद-चक्र के पीछे की ओर ७ बजे के स्थान पर होने वाले मस्से को Right Posterior Pile कहते हैं। इनके अतिरिक्त आगे की तरफ बाईं ओर को एक, तथा पीछे की तरफ बाईं ओर को एक गौण मस्सा हो सकता है।

कारण

गुद-ग्रीवा के ऊपर के भाग की शिराओं का रक्त Superior Haemorrhoidal Vein के द्वारा Portal Vein में जाता है। इससे स्पष्ट है कि यदि यकृत् में रक्त-संचय हो जाय जैसे अति भोजन या अति मद्यप्रयोग से होता है अर्थात् यकृद्रोग (Hep Cirrhosis) हो, अथवा यदि आमाशय, आंत आदि में कहीं पर शोथ और रक्तसंचय विशेष हो अर्थात् अजीर्णरोग हो तो इसका दुष्प्रभाव गुद-ग्रीवा की शिराओं पर भी पडता है। इसी प्रकार गुद ग्रीवा के निचले भाग का रक्त Middle तथा Inferior Haemorrhoidal Vein के द्वारा Hypogastric Vein में जाता है, इसलिये यदि हृदय रोग हो तो भी गुद-ग्रीवा में रक्त का संचय बढने लगता है। इन दूरवर्ती कारणों के अतिरिक्त यदि मलावरोध का रोग रहता हो, जोकि व्यायाम न करने वाले परन्तु गरिष्ठ और कृत्रिम भोजन करने वालों में होता है, तो कठोर मल के संघर्ष से भी तथा मलत्याग के समय बलपूर्वक प्रवाहण करने से भी गुद-ग्रीवा की शिराओं में अधिक अधिक रक्त भरने लगता है। गर्भ के कारण (Sup Haemorrhoidal Veins पर भार पड जाने) से भी उन में रक्त के भरने से गुदांकुर उत्पन्न होते हैं। पैतृक परम्परा से भी इस रोग की प्रवृत्ति आती है। यह रोग बहुधा २० वर्ष की आयु के लगभग आरम्भ होता है, तथा पुरुषों में अधिक होता है। एक अर्शांकुर की परीक्षा करें तो उसके अन्दर रक्त से भरा हुआ एक शिरा-गुच्छ होता है जिस पर Fibrous Tissue चढा होता है तथा जिस पर श्लेष्मकला (Columnar epithelium) या त्वचा की एक पतली तह छाई होती है। मलत्याग के समय जब कठोर मल का इस गुच्छ पर दबाव पडता है तो बहुधा इस श्लेष्मकला के फट जाने से रक्त स्राव हो जाता है। इस प्रकार इस रोग की प्रथम अवस्था में अंकुर से रक्त-

स्राव होता रहता है। कभी-कभी इस अङ्कुर की क्षत हुई श्लेष्मकला में में जीवाणु-सङ्क्रमण हो जाने से शिरागुच्छ मे शोथ (Phlebitis) का रोग हो जाता है जिससे शिरा मे रक्त जमकर छिछडा या Thrombus वन जाता है, इसे ववासीर का दौरा (Attack) कहते हे, जिसमे गुदा के अन्दर विशेष वेदना रहती है। यदि शिरा के अन्दर के छिछडे मे स्नायुभाव (Metaplasia) हो जाय तो दर्द शान्त हो जाता हे। शिरागुच्छ में शोथ देर तक रहे तो फिर उसके विक्षोभ से इस शिरा-गुच्छ पर चढी हुई श्लेष्मकला तथा त्वचा मे अतिवृद्धि (Metaplasia) हो जाती है, जिससे ये मोटी हो जाती है, श्लेष्मकला के Columnar सेल Squamous सेलो मे परिवर्तित हो जाते हे। ऐसी अवस्था मे फिर कठोर मल के सघर्ष से भी रक्तस्राव नही होता।

Anal Haematoma (External Pile) मे वलपूर्वक मलत्याग करने से गुदा की एक शिरा फट जाय तो उससे निकला रक्त त्वचा के नीचे Clot कर जाता है और गुदा के पास आधे इच व्यास का दर्द करने वाला एक उभार उत्पन्न होजाता हे, इसे Haematoma कहते है। इसे खोला न जाय तो यह Clot, Fibrous Tissue वन जाता है।

लक्षण

गुदाङ्कुर का रोग युवावस्था मे आरम्भ होता हे तथा प्रथमावस्था मे मलत्याग के समय बूद-बूद या धारारूप मे रक्तस्राव होने का लक्षण होता है। कुछ काल वाद विशेषत बाह्याङ्कुर मे जब स्नायुतन्तु वृद्धि (Fibrosis) की प्रक्रिया विशेष हो जाती है तव समय-समय पर उसके सूख जाने से दर्द होने का लक्षण विशेष होता है। कठोर मल के द्वारा मलत्याग के समय इसके भिच जाने मे कभी-कभी जो रक्त स्राव होता है वह स्वल्प मात्रा मे ही होता है। यह कुछ पुराना मस्सा (Second degree Pile) स्वल्पस्रावी होने के साथ-साथ वाहर आने लगता है, पर स्वयमेव अन्दर चला भी जाता है। तीसरे दर्जे का मस्सा (Third degree pile) स्रावी नही होता, पर वाहर आने के वाद अगुली से धकेलकर अन्दर करना पडता है, स्वय अन्दर नही जाता। इसके कारण विना मलत्याग के भी गुदा कुछ कुछ वाहर होने लगती है।

अर्श की चिकित्सा

तीक्ष्ण-उष्ण-गुण आहार-द्रव्य, जैसे लाल मिरच, मद्य, तेज मसाले गुदा के लिये विक्षोभक होते है। खाण्ड तथा घृत, तेल आदि के बने आहार-द्रव्य भी अजीर्ण तथा मलबन्धकारक होते है। इनका प्रयोग करते हुए वैठे रहने से यकृत् तथा Portal Veins मे रक्त का सचय अधिक होता है, इसलिये इनका भी परित्याग करना चाहिये। मलाशय मे कठोर मल के रुके रहने से या गुदा की ठीक-ठीक-सफाई न होने से भी गुदाके अंकुर सूजते हैं। अत फलो तथा सब्जियो का सेवन करना चाहिये और किसी मृदु रेचन गुण औषधि का सेवन करना चाहिये। Paraffin या उसके Emulsion आधा औस का दिन मे एक या दो बार प्रयोग किया जा सकता है, या ३-४ औस Olive Oil गुदा मे डाला जा सकता है, अथवा एरण्ड तैल और Zinc Ox बरावर-बरावर की वनी क्रीम अगुली द्वारा गुदा मे देनी चाहिये या Pulv Glycerrhiza co का १-२ ड्राम की मात्रा मे प्रयोग करना उचित है। अर्शस् के दर्द के लिये रोगी को गर्म जल मे आधा घण्टे वैठा देने (Sitz Bath) से या गर्म वोतल से सेकने से लाभ होता है।

रक्तस्राव अधिक हो तो मुलायम Lint को Hamamelis या Liquid Hazeline मे भिगोकर गुदा मे प्रविष्ट कर देना चाहिये या Ung hamamelis को या Ung hydrocortisone १ प्र श को लगाना चाहिये। Calamine Powder से भरी हुई Lint गुदा मे डाली जा सकती है। अथवा Bismuth Subgallate Suppository (५, ७॥ ग्रेन) या Hamamelis (१ से ३ ग्रेन) Suppository या Tannic Acid Suppository (३, ५ ग्रेन) गुदा मे रखनी चाहिये। या Bismuth Subgallate, Tannic Acid, Benzocaine, Prednisolone से वनी Predsolan-glaxo लगाये। गुदा मे दाह तथा कण्डू हो तो सज्ञानाशक प्रलेप जैसे Nupercainal Ointment ciba ५-१०% प्रलेप या Anusol Ointment warner जो Bismuth, Zinc, Boric Acid से वनती है या Proctosone E I Pharma लगाये। Haematoma का दर्द हटाने के लिये उसके नीचे (Base मे) तथा वाजुओ मे वाहर की ओर से सिरिंज द्वारा २, ३ सी० सी० २% नोवोकेन सोल्यू० डालकर उसे वाहर से अन्दर की ओर खोल देना चाहिये और Antiseptic गॉज रखकर उसके अन्दर के सिरे को गुदा मे धकेल कर ऊपर रुई रख पट्टी ६-७ दिन करनी चाहिये।

गुदाविपादिका—Fissure in ano—कठोर मल के कारण गुदग्रीवा-मुख आगे या पीछे की ओर फट जाने पर Paraffin के द्वारा मल को मुलायम करना चाहिये।

१-२% Silver Nit. Solu के लगाने या १% Gentian Violet Solu के लगाने मे आराम पड जाता है। Sitz bath गर्म लेने Anusol के २ बार लगाने मे भी आराम आ जाता है।

आयुर्वेद मे अर्शरोग

आयुर्वेद में कहा गया है कि पाचक अग्नि के मन्द हो जाने पर गुदा के अन्दर कोई विक्षोभक कारण पडता रहे अर्थात् कठिन आसन पर बैठा जाय, या कठोर सवारी का प्रयोग किया जाय, मल के आये वेग को रोका जाय, या बलपूर्वक मल का विसर्जन किया जाय, तो वहा पर रक्त का विशेष सचय हो जाता है। इस प्रकार रक्त का सचय होने से गुदाकुर उत्पन्न हो जाते हैं। गुदा में रक्त का यह संचय जब विशेषतया हृदय और शरीर के निर्बल करने वाले कारणो से हो तो इसे वातिक अर्श (Asthenic Piles) कहते हैं। इसमें गुदा में दर्द, बेचैनी के लक्षण तथा शरीर में निर्बलता के सूचक लक्षण होते हैं। जब तीक्ष्ण-उष्ण-गुण आहार-विहार के करने के कारण गुदा में तीव्र रक्त-संचय होकर गुदाकुर उत्पन्न होते हैं तब इसे पित्तार्श (Inflammatory या Bleeding Piles) कहते हैं। इसमें गुदा से रक्तस्राव, गुदा में तीव्र शोथ तथा पाक के लक्षण तथा शरीर में अग्नि कर्म या पित्त-वृद्धि के सूचक लक्षण होते हैं। जब अग्नि के मन्द होने, व्यायाम के न करने तथा गुरु-गुण आहार के अति मात्रा में खाने से यकृत्, आत, गुदा आदि में रक्त का सचय विशेष होता है तब इसे श्लैष्मिक अर्श (Proliferative या Hypertrophic Piles) कहते है। इसमें कण्डू-प्रधान स्थूल मस्से होते हैं। शरीर में अग्नि-कर्म की न्यूनता के सूचक लक्षण होते हैं।

(च०,चि०,१४)

अर्श की चिकित्सा

वातकफार्श या शुष्कार्श की उष्ण-तीक्ष्ण-गुण, दीपन-पाचन तथा स्रंसन औषधियो से चिकित्सा करनी चाहिए तथा गुदा पर उष्ण-स्निग्धोपनाहन करने चाहिए। निम्न-लिखित योगो में से किसी का प्रयोग करना चाहिए।

(१) हुताशनचूर्ण—सैन्धव १, जीरा २, अजवायन ३, पिप्पली ४, सोठ, ५, हरड १५ भाग मिलायें। मात्रा ३-६ माशे।

(२) तिलसप्तकचूर्ण (यो र.)—तिल, चित्रकमूल, त्रिकटु, विडंग, हरड़ समान-समान; गुड सर्व-तुल्य।

(३) घृतभर्जित हरीतकी (वं से.)—घृत में भर्जित हरड़, पिप्पली, गुड़ समान-समान का चूर्ण मात्रा—४ माशा।

(४) मरिचादि चूर्ण (भै. र.) त्रिकटु, कुष्ठ, सैन्धव, जीरा, वचा, हींग, विडंग, हरड, चित्रक, अजवायन समान-समान, गुड इन सब से दो गुणा। मात्रा—३-६ माशा।

(५) व्योषादि चूर्ण (यो. र.)—त्रिकटु, चित्रक, शुद्ध भिलावा, विडग, तिल, हरड समान-समान गुड सर्व तुल्य। मात्रा—३-६ माशे।

(६) लवणोत्तमादि चूर्ण (भै. र)—सैन्धव, चित्रक, इन्द्रजौ, बकायन के बीज, करञ्ज की गिरि, जौ समान-समान।

(७) भल्लातकादि चूर्ण (ग नि.)—शुद्ध भिलावा, तिल, हरड, गुड समान भाग का चूर्ण। मात्रा—३ माशा।

(८) लघुसूरणमोदक (यो र.)—पिप्पली १, मरिच २, सोठ ४, चित्रक ८, सूरण १६, गुड ३२ भाग। मात्रा—३-६ माशे।

(९) अगस्त्यमोदक (यो र)—हरड़ १५, त्रिकटु मिलित १५, दालचीनी, तेजपत्र २½-२½ तोला। गुड ४० तोला।

(१०) काकायनमोदक(भै र.)—कालाजीरा, मरिच, पिप्पली १-१, पिप्पलीमूल २, चव्य ३, चित्रक ४, सोठ ५, जवाखार २, भिलावा शुद्ध ८, हरड ५, जमीकन्द १६ भाग। गुड सब से दो गुणा। ३–४ माशा।

(११) अजाज्यादिगुटी (बृ. नि. र)—जीरा, पुष्कर-मूल, पाठा, त्रिकटु चित्रक, हरड, समान समान का गुड के साथ गोली बनाए।

(१२) पथ्यादिमोदक (वृ नि. र) हरड, सोठ, पिप्पली, चित्रक ५-५ तो, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र १¼-१¼ तो.। गुड सबसे दो गुणा।

(१३) प्राणदागुटी (भै र)—हरड १५, मरिच २०, पिप्पली १०, चव्य ५, तालीसपत्र ५, नागकेसर २½, पिप्पलीमूल १०, तेजपत्र ½, छोटी इलायची १½, दालचीनी ½ तोला। गुड १५० तोला।

(१४) मरिचादिमोदक (यो र)—मरिच १, सोंठ २, चित्रक ४, जमीकन्द ८, गुड १५, भाग। ६-६ माशे।

(१५) पथ्यादि गुटी (वै जी)—हरड, तिल, भिलावा शुद्ध, समान भाग। गुड सबसे दो गुणा।

(१६) वृद्धदारुमोदक (शा म०) विधारा, शुद्ध भिलावा, सोंठ समान भाग। गुड सबसे दो गुणा। मात्रा—३-६ माशा।

(१७) गुग्गुल्वादिवटी (वृ नि र)—गूगल, लशुन, निमौली, हींग, सोंठ समान भाग की गोली। मात्रा—२ गोली।

(१८) चन्द्रप्रभावटी (भै र)—विडंग, चित्रक, त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, चिरायता, पिप्पलीमूल, मुस्ता, कचूर, वचा, सैन्धव, सौवर्चल, दो क्षार, दोहल्दी, धनिया अतीस १$\frac{1}{4}$-१$\frac{1}{4}$ तोला; शिलाजीत ४० तोला, गूगल १० तोला, लोह-भस्म १० तोला, खाण्ड २० तोला, वंशलोचन, त्रिवृत, दालचीनी, तेजपत्र, छोटी इलायची ५-५ तोला। गोली बनायें। मात्रा—२ गो।

(१९) योगराजगुग्गुलु (ग नि)—पञ्चकोल, त्रिकटु, चीता, चव्य, विडंग, हींग, इन्द्रयव, भारंगी, वचा, अतीस, जीरे दो, रेणुका, अजवायन, गजपिप्पली, १-१ भाग। त्रिफला इन सबसे दो गुणा। गुग्गुलु सबके बराबर। २ गोली की मात्रा।

(२०) रसाञ्जनादिवटी—रसोत, मुसब्बर, गूगल समान भाग। मूली-रस से गोली बनायें।

(२१) बाहुशालगुड (व मे)—इन्द्रायणमूल, मुस्ता, सोंठ, हरड, त्रिवृत, कचूर, विडंग, गोखरू, चीतामूल, माजूफलबीज, दन्तीमूल १०-१० तोला। सूरण ६०, विधारामूल ३० तोला। शुद्ध भिलावा २० तोला। ४२ सेर जल में पकावें। $\frac{1}{4}$ भाग शेष रखकर उसमें ६ सेर गुड डाल कर पकावें। फिर उसमें त्रिवृत, चित्रक, तोया, मरिच, चतुर्जातक प्रत्येक का १०-१० तोला मिला दें।

(२२) अभयारिष्ट (ग नि)—हरड १ सेर, आवला १ सेर, इन्द्रायण-कपित्थ-पाठा चित्रमूल १०-१० तो, जल ३२ सेर, $\frac{1}{4}$ शेष रख कर गुड ६। सेर डालकर बनाएं।

(२३) कुमार्यासव (ग नि)—कुमारीरस ६$\frac{1}{4}$ सेर, गुड १$\frac{1}{2}$ सेर, चातुर्जात, लौंग, दो हल्दी, पिप्पली, मरिच, अकरकरा, वचा, जावित्री, विडंग, धातकी पुष्प ५-५ तोला, हरड १० तोला डालकर बनाएं।

(२४) दशमूलारिष्ट (सु स चि अ ६)—दशमूल, दन्तीमूल, चीतामूल, हरीतकी प्रत्येक ६$\frac{1}{4}$ सेर। जल ६४ सेर। पकाकर $\frac{1}{4}$ शेष रखें। गुड ६$\frac{1}{4}$ सेर डालें।

पित्तार्श या रक्तार्श के लिये निम्नलिखित योगो में से किसी का प्रयोग करना चाहिए :

(१) समंगादिचूर्ण—(भा प्र) लज्जालु की जड, नीलोफर, लोध्र, मोचरस, लालचन्दन, तिल समान २ का चूर्ण, ४ माशा मात्रा दूध के साथ।

(२) नवनीतादि योग (वृ नि र)—मक्खन, तिल, नाग केसर और खाण्ड समान २ मिलाकर ६ माशा की मात्रा लें।

(३) लाक्षादियोग (ग नि)—लाख, हल्दी, मजीठ, मुलैठी, नीलोफर समान भाग का चूर्ण दूध से।

(४) मण्डूरयोग (र का धे—पाण्डु) मण्डूर ४, त्रिफला, कटुकी १-१ भाग, खाण्डु ६ भाग। १ माशा मात्रा।

(५) त्रपुषादियोग (ग नि)—खीरे के बीज, ककडी के बीज, दो हल्दी, सम भाग का चूर्ण करे।

(६) दार्व्यादिक्वाथ (यो र)—दारुहल्दी, खस, नीम समान भाग का क्वाथ।

(७) द्राक्षादियोग (वृ नि र)—द्राक्षा, हल्दी, मुलैठी, मजीठ, नीलोफर का क्वाथ दूध के साथ दें।

(८) पत्रकादि क्वाथ (हा स ३)—तेजपत्र, नाग-केसर, सोंठ, छोटी इलायची, तुम्बुरु, धनिया, तिल, हरड, विडंग, समान भाग का क्वाथ घृत और गुड डालकर पिलायें।

(९) दार्व्यादिक्वाथ (२) (च स)—दारुहल्दी, चिरायता, मुस्ता, धमासा, समान भाग का क्वाथ करें।

(१०) चन्दनादिक्वाथ (भै र)—चन्दन, चिरायता, धमासा, सोंठ, दारुहल्दी, खस, निम्बत्वक् समान भाग। २$\frac{1}{2}$ तोला का क्वाथ करें।

(११) रसाञ्जनादिवटी (वृ नि र)—रसौंत, कुडायन की गिरी, इन्द्रजौ, कुडे की छाल, छोटी हरड समान-समान की भागरे के रस में गोली बनाये। १ माशा मात्रा।

(१२) ह्रीवेरादिघृत—(च स)सुगन्धवाला, नीलोफर, लोध्र, मजीठ, चव्य, सफेदचन्दन, पाठा, अतीस, बिल्व, धातकी फूल, दारुहल्दी, दालचीनी, सोंठ, जटामासी, मुस्ता, यवक्षार, चीतामूल, मुलैठी, देवदारु, मिलित २० तोला। घृत १ सेर चांगेरीस्वरस ४ सेर घृत बनायें। मात्रा १ तोला।

(१३) माजूफलप्रलेप—माजूफल चूर्ण १ तोला, फिटकरी खील २ माशा, कर्पूर ½ माशा। घृत ८ तोला मिलाकर गुदा में लगाएं।

पथ्यापथ्य—अर्श के लिये गेहू, जौ, चावल, कुलथी, सूरण, तक्र, मक्खन, परवल, मरिच काली, बैंगन, दूध पथ्य है। तीक्ष्ण मसाले, गुरु भोजन और मैथुन अपथ्य है।

आन्त्रिक कृमि
(Intestinal Worms, Helminths)

(१) गण्डूपद कृमि (Ascaris Lumbricoides या Round Worms, Ascariasis—बालको तथा नवयुवको की छोटी आत मे विचरने वाला और वहा विद्यमान आहार द्रव्य पर रहने वाला गण्डूपद आकृति का पारदर्शक श्वेत भूरे रग का, दोनो सिरो पर नोकीला कृमि होता है, जिसमे मे नर-कृमि ६-७ इच, मादा-कृमि ८-१० इच लम्बा होता है। नर कृमि अपनी मुडी हुई पूछ से पहचाना जाता है, मादा कृमि के Ova या अडे दैनिक २ लाख संख्या मे, जिनमे Embryo होते हैं, मल के साथ बाहर आते हैं, और बाहर गर्मी तथा खुश्की मे भी चिरकाल तक जीवित रह सकते हे और धूल जल आदि द्वारा जहा ये Embryo बन जाते है दूसरो के पेट मे पहुचते है। Duodenum में इनसे Larvae निकल कर श्लेष्मकला को छेदकर Mesenteric Veins के रक्त मे जाते और उसके द्वारा यकृत्-हृदय आदि भिन्न शरीर के अगो मे पहुच कर बढते है और Pulmonary Artery द्वारा फुफ्फुस मे बढकर जो पहले Alveoli मे जाते और फिर श्वासनालियो द्वारा Trachea और वहा से मुह मे आ जाते है। वे फिर आत मे दुबारा आकर युवा कृमि के रूप मे बढने लग जाते है। इस प्रकार Ova या अण्डो के पेट मे जाने के ८-१० दिन मे यह छोटा कृमि Larva फिर आत मे आ जाता है तथा अण्डो के पेट मे आने के २ मास मे वहा एक पूर्णाकार Adult कृमि बन जाता है।

इस कृमि के गुच्छे क्षुद्र आत्र के प्रथम भाग Jejunum मे रहते हैं तथा आत मे विद्यमान भोजन पर पलते है जिससे बालक का पोषण कम हो जाता है। इनके वहा रहने पर भी कभी कोई विशेष लक्षण नही होता तो भी कुछ अजीर्ण-सम्बन्धी लक्षण जैसे क्षुधानाश या अति-क्षुधा, पेट मे दर्द आदि लक्षण होते है, पाण्डुता का लक्षण भी होता है। इस कृमि से उत्पन्न Ascaron के कारण, जो Albumosis तथा Peptones का एक मिश्रण है, रोगी मे Allergy के शीतपित्त, उदर्द या Oedema, श्वास-कास आदि लक्षण हो सकते हे। इस कृमि के फुफ्फुस मे वृद्धि करने के कारण खासी आदि फुफ्फुस सम्बन्धी उपद्रव भी शुरू हो सकते है। ऐसे वात-प्रधान (Nervous) लक्षण जैसे रात को दात किट-किटाना, उन्निद्रता, चिडचिडापन, आक्षेप कृशता आदि लक्षण भी हो सकते हे। इनके कारण ज्वर भी हो सकता है जो मन्थर ज्वर, क्षय ज्वर या विषम ज्वर जैसा प्रतीत होता है। इसके कारण यकृत् भी आकार मे बडा हो सकता है। अण्डो के पेट मे जाने के २-४ दिन बाद ही फुफ्फुस सम्बन्धी लक्षण आरम्भ हो सकते हैं।

इस कृमि के मल मे निकलने, या वमन द्वारा या नाक द्वारा बाहर आने मे, अथवा Eosinophilia (१०%) मे या Barium के भोजन के देन के ६ घण्टे बाद X-Ray लेने मे आत मे धुधले से कृमियो को देखकर इस रोग का निश्चय हो सकता हे। Eosinophilia इनकी शरीर मे Larval stage को सूचित करता है। मल मे इसके अण्डो को देखकर इस रोग का निश्चय हो जाता है।

चिकित्सा —

इनको आत मे से निकालने के लिये —

(१) Piperazine hexa hydrate, Piperazine Citrate (Antepar Elixir तथा Tablets २५०-५०० मिलि० B W) उत्तम औषधि हे। इस साल्ट की ३ ग्राम मात्रा या Elixir की १ औंस या ३० मिलिलि मात्रा (१ सी० सी० मे १०० मिलि०) युवक को तथा २ ग्राम मात्रा या ४ ड्राम अर्थात् २० मिलिलि Elixir की १० वर्ष से छोटे बालक को रात के भोजन से पहले देने तथा प्रात Sodium या Mag के Sulphate

की ३-४ ड्राम की मात्रा के देने से कृमि-अर्वमृत-अवस्था मे वाहर आ जाते है। यह ओपधि ये कृमियो को मारती नही, बेहोश कर देती है, (यद्यपि इस औषधि के बाद विरेचन आवश्यक नही) अर्थात् भार ३०-५० पौण्ड हो तो २ ग्राम की मात्रा, भार ५०-१०० पौण्ड हो तो ३ ग्राम मात्रा इस आपधि की देनी चाहिये। Piperazine Adepate (Entacyl Tablet या Elixir B D H) की ३ ग्राम की गोलिया भी मिलती है या ५ मिलि-लि मे ५५० मिलि का Elixir मिलता है। एक दिन दवा देनी हो तो युवक को इसकी ४ या ४॥ ग्राम की एक मात्रा को चार वार करके, भोजन के वाद, तथा वालक को इसकी ३ ग्राम की एक मात्रा, उसी तरह चार वार करके एक दिन दे दी जाती है और अगले दिन प्रात रेचन औपवियो के देने की आवश्यकता नही। एक सप्ताह वाद आवश्यकता हो तो फिर इस औषधि की तीन ग्राम मात्रा दे देने से गण्डूपद कृमि सर्वथा लुप्त हो जाता है। Citrate adepate के समान Phosphate भी यही लाभ करता है।

(२) Santonin (Artemisia से निकला Crystalline पदार्थ) भी गण्डूपद कृमि को उदर मे निकालने के लिये दिया जाता रहा है। युवक को ३ ग्रेन की, वालक को आयु के प्रति वर्ष के पीछे ½ ग्रेन के हिसाव से १-१॥ ग्रेन की मात्रा रात को ¼-½ या १।-१॥ ग्रेन Calomel, ग्लूकोज ५ ग्रेन के साथ दे दी जाती है, प्रात ६० ग्रेन Saline पिला दिया जाता है। एक-एक दिन छोटकर २-२ वार इसका प्रयोग किया जा सकता है। Santonin मे Phenolphthalein तथा Calomel मिला कर वनी Bitter pill (E I Pharm) मिलती है। यकृत् के लिये विषैली होने से इसका प्रयोग वार वार नही किया जा सकता।

(३) Hexyl resorcinol (Caprokol) या Crystoids pills (Merck sharp Doh) जैलाटीन कैपसूल वाजार मे मिलते हैं (यह औपवि Resorcinol का योग है एव Antiseptic है)। पहली सायकाल ½ ड्राम सल्फ देकर पेट साफ कर देना चाहिये। फिर प्रात युवक को एक ग्राम मात्रा मे या ५ कैपसूल (२ ग्राम की १ गो०) तथा वालक को २-८ ग्राम मात्रा मे अर्थात् ९ से १२ वर्ष तक ४ गो०, ६-८ वर्ष तक ३ गोली, ६ से नीचे २ गोली, यह औपधि निगलवा देनी चाहिये। इसके ४ घण्टे वाद सोडा सल्फ की दूसरी मात्रा दे दी जाती है। इस वीच मे भोजन नही देना चाहिये।

(४) Diethyl carbamazine citrate (Hetrazan Lederle Banocide B W Herogen B D H Unicarbazan गोलिया तथा शर्वत) प्रति किलोग्राम भार के पीछे ५ मिलिग्राम के हिसाव से दिन मे ३ वार करके सात दिन देने से ये कृमि निकल जाते है। इसकी गोली ५० मिलि की होती है। ४००-६०० मिलि दिन मे देने के लिये इसकी ९-१२ गोली दिन भर मे देनी चहिये।

(५) Dithiazanine (Telmid) की खाण्ड मे लिपटी गोलिया ५००-६०० मिलि दैनिक मात्रा मे दिन मे तीन वार करके ४-५ दिन तक देने से ये कृमि मर जाते है। मल का रग हरा-सा हो जाता है।

(६) Bephenium hydroxynaphthoate (Alcopar granules B W) ५ ग्राम की मात्रा मे प्रात खाली पेट ५ दिन तक देने से इन कृमियो को नष्ट कर देता है।

(७) Diethyl carbamazine citrate तथा Piperazine को मिलाकर वने Divermin syrup को, जिसके एक ड्राम मे ५० मिलि प्रथम औषधि, ३ ग्राम दूसरी औषधि होती है, इस रोग मे प्रयोग किया जा सकता है।

तथापि Piperayin elixir इस कृमि के लिए सर्वोत्तम औपधि है।

गुदकृमि, सूत्रकृमि

Oxyurisvermicularis, Enterobius-vermicularis, Thread Worms, Pinworms, Oxyuriasis, Enterobiasis

यह वहुत अधिक व्यापक है, वडो एव छोटो सभी के मल मे तथा गुदा पर एक छोटा-सा श्वेतवर्ण सूत्राकार कृमि पाया जा सकता है जिसे सूत्रकृमि कहते है। नर कृमि वाहर नही आता वह देखने को कम मिलता है। वह

लगभग ३ मिलिमीटर लम्बा होता है। मादा कृमि प्राय गुदा पर आता है वह लगभग १० मिलिमीटर लम्बा होता है। नर कृमि की पूछ मुडी हुई होती है, मादा कृमि की पूछ लम्बी व नोकीली होती है। गुदा की समीप की त्वचा पर इसके सहस्रो अण्डे पाये जाते है जो आकार मे गण्डूपद कृमि के अण्डो से छोटे होते है। जहाँ से ये अगुली द्वारा अपने व दूसरो के मुह मे व पेट मे पहुच जाते हैं (यह कृमि आत मे अण्डे नही देता), वहा Duodenum मे अण्डो का खोल आत के पाचक रसो से फट जाता है और अदर मे Larvae निकल कर नीचे वडी आत (Colon) की, विशेषत caecum की ग्रन्थियो मे उनके मुखो (Crypts) के द्वारा पहुच जाते और वहा पडे रहते हे अर्थात् वहा श्लेष्मकला के नीचे या उस पर रहते है और आत मे विद्यमान आहार पर जीते है। इनकी आयु १ से ३ महीने के लगभग की होती है। मादा कृमि गर्भित हो जाने पर शिथिल हो जाता है और आत की दीवार को छोड देता है और मल के प्रवाह के साथ नीचे गुदा मे आकर पास की त्वचा मे अण्डे दे देता है और स्वय मर जाता है। इसके कारण गुदा पर रात को भारी कण्डू होने का लक्षण होता है, Eosinophilia का लक्षण भी होता है। गुदा पर विजली के वल्व का प्रकाश डालने से ये कृमि खिचकर वाहर आने लगते है। इस कृमि के अण्डे रोगी से कमरे की धूल मे भी चले जाते है जहा से ये दूसरो मे प्रवेश कर जाते है। स्पष्ट है यह रोग वहुत अधिक व्यापक क्यो है। Grahm Scotch Celloyaphne Tape दो इच लम्बा लेकर लकडी से उसे रात को गुदापर चिपका कर प्रात इसे अलग कर उसमे इस कृमि के अण्डो को सूक्ष्म वीक्षक द्वार देखकर इस रोग का निश्चय हो जाता है।

इनको नष्ट करने के लिए लवणोदक की वस्ति (Salt Water Enema) देनी चाहिए। अर्थात् ३ प्र० श० लवणोदक की ४-८ औस मात्रा गुदा मे कुछ दिन तक डालनी चाहिये। अथवा Quassia की ४० मे १ के हिसाव मे पकाये जल की वस्ति देकर उसे अन्दर कुछ देर रोकना चाहिये। अर्थात् १॥ पाइण्ट जल मे १ औस के लगभग Quassia डालकर जल को पकाकर १ पाइट शेष रखकर उसे धीरे-धीरे गुदा मे डालकर पायते को ऊचा करके जल को अन्दर रोकना चाहिये। या ८ औस शीतल जल मे १ ड्राम Quassia को २-३ घटे रखकर छानकर जल को गुदा मे डाल दे।

Hexyl resorcinol (Caprokol) की २००० जल मे १ या १% की वस्ति २ पाइट की मात्रा मे वडो को तथा ½-१ पाइट की मात्रा छोटो को देनी चाहिये। पहले साबुन के जल की वस्ति देकर वाद मे यह वस्ति देनी चाहिये। हर ३ सप्ताह वाद ऐसी एक वस्ति दी जा सकती है।

Piperazine Adipate (Entacyl B D H) Piperazine Hydrate (Antepar elixir B W.) Piperazine Citrate (Antepar) Piperazine Phosphate —

१½ वर्ष की आयु तक Antepar Elixir १ ड्राम (५०० मिलिलि०), ४ वर्ष की आयु तक १½ ड्राम, ६ वर्ष तक २ ड्राम (१ ग्राम), १२ वर्ष तक ३ ड्राम या Entacyl की ६ गोली, १२ वर्ष से ऊपर Entacyl की ८ गोली प्रातराश और शाम की चाय से पहले २ वार करके ७ दिन तक देने से सूत्रकृमि नष्ट हो जाते है। अर्थात् वालक को १-१½ ग्राम, वडो को २ ग्राम इसकी दैनिक मात्रा (५० मिलि० प्रति किलो दैनिक मात्रा) दो वार करके सात दिन तक दी जाती हे। गोली देनी हो तो एक वर्ष की आयु मे एक गोली, दो वर्ष की आयु मे २, तीन वर्ष की आयु मे ३, चार वर्ष की आयु मे ४, पाच वर्ष की आयु मे ५ गोली दिन मे दो वार करके देनी चाहिए। इसके ऊपर ६-८ गोली प्रतिदिन की मात्रा पर्याप्त है। दूसरे शब्दो मे वालक का भार १५-३० पौण्ड हो तो २५० मिलि दिन मे दो वार, भार ३०-६० पौण्ड हो तो ५०० मिलि० दो वार, भार ६० पौण्ड से ऊपर हो तो १ ग्राम दिन मे दो वार इसे देना चाहिए। परन्तु उत्तम विधि यही है कि इस औषधि को २-३ ग्राम की मात्रा मे रात को भोजन से पहले दे दे। इसकी एक मात्रा से ये कृमि नष्ट हो जाते है।

(२) Diphenan Iodide (Butolan, Oxylan) ५ ग्राम गोली एक दिन मे तीन वार, ७ दिन तक देने से भी ये कृमि मर जाते हे। १½ वर्ष तक ¼, १० वर्ष तक ½ गोली, १२ वर्ष तक १ गोली, दिन मे तीन वार एक सप्ताह तक देनी चाहिये।

(३) Dithiazanine (Telmid Elililly, Delvex, Abminthic) २०० मिलि की १-१ गोली दिन मे तीन वार भोजन के वाद पाच दिन देने से भी ये कृमि मर जाते है। वालको के लिए प्रति किलोग्राम के पीछे इसकी १० मिलि दैनिक मात्रा होती हे या युवक की मात्रा से आधी मात्रा मे—अर्थात् ५०-१०० मिलि० मात्रा मे—दिन मे तीन वार, ५ दिन तक देवे।

(४) Gentian Violet —(Meroxylan, Warner) १ वर्ष के वालक को ३ मिलि०, २ वर्ष के वालक को

६, ३ वर्ष के बालक को १३, ५ वर्ष के बालक को १६, ६ वर्ष के बालक को २० मिलि० मात्रा मे (Enteric coated गोलिया मिलती है)। दिन मे तीन बार भोजन के साथ या कुछ पहले सात दिन तक दिया जाता है। बड़ो को ३०-६० मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ बार ७ दिन तक दिया जाता है।

(५) Pyrvinium Embonate (Vanquin) ५ मिलि० मात्रा मे प्रति किलोग्राम के पीछे Syrup के रूप मे एक बार दिया जाता है। उसी से यह कृमि नष्ट हो जाता है।

(६) Terramycin बड़ो को १ ग्राम दैनिक मात्रा मे १-२ सप्ताह के लगभग देने मे भी ये कृमि नष्ट हो जाते है।

कद्दूदाने (Tape Worm, Taenia Solium, Taeniasis, Cestodiasis)

Taenia Solium सूअर के अपूर्ण पक्व मास के खाने वालो मे क्षुद्रान्त्र के प्रथम भाग मे कद्दूदाने जैसा यह कृमि पाया जाता है। अर्थात् कद्दूदानो-जैसे शतश खण्डो के मिलने से ६-१० फुट के लगभग लम्बा यह कृमि होता है जिसमे उपर्युक्त कृमियो की तरह भोजन-प्रणाली नही होती। यह अपना आहार त्वचा से लेता है तथा इसके परिणत खण्ड रोगी के मल मे टूट-टूट कर निकलते रहते है। जब तक इसका सिर Scolex, जिसमे खून चूसने वाले चार Suckers होते है तथा जो पिन के नोक जितना होता है नही निकल जाता, यह कृमि बढता ही रहता है। इसके पूर्ण परिणत खण्डो (Proglottids) मे, जिसमे से प्रत्येक उभयलिंगी होता है, विद्यमान इसके अण्डे मल के द्वारा सूअर के पेट मे चले जाते और larvae बनकर आत की श्लेष्मकला मे से निकलकर रक्त मे जाकर उसके मास मे सचित हो जाते है। वहा मास मे ये एक छोटे मे कद्दूदाने (Cysticercus या Cysticerci) के रूप मे पडे होते है जो फिर मास के खाने वाले की आत मे बढकर ३-४ मास मे बडे कृमि (Adult worm) का रूप ले लेते है। मास को पूर्णतया न पकाया जाय तो ये आत मे वृद्धि करते है। आत मे यह कृमि बहुत से भोजनरस को ले लेता है जिससे रोगी को अति क्षुधा, पेट मे दर्द तथा कृशता की शिकायत रहती है। कद्दूदानो (Proglottids) को, जो थोडी देर निकलने के बाद भी हिलते रहते है, मल मे देखकर इस कृमि का निश्चय हो जाता है। इनमे से निकले हुए अण्डे Ova सप्ताहो जीवित रहते है और सूअर के पेट मे पहुच सकते है।

चिकित्सा

इस कृमि के निकालने के लिए रोगी को मृदु विरेचन देकर एक दिन दूध मे रहित चाय, शर्बत, ग्लूकोज, लेमोनेड आदि द्रवाहार मात्र पर रखकर दूसरे दिन प्रात (१) २ ग्राम मेपाक्रीन Mepacrine Hydrochloride Quinacrine) १० ग्रेन सोडा बाई कार्ब के साथ एक गिलास जल मे ५ मिनट के अन्दर मे चार बार दे देनी चाहिये अर्थात् कुल मात्रा १ ग्राम व देनी चाहिये, तथा रोगी को लिटा देना चाहिये। अन्तिम मात्रा के ३-४ घटे बाद Soda Sulph या Mag sulph ८ ग्राम मात्रा मे दे देना चाहिये या ५ सी सी Pituitary मार्ग द्वारा देना चाहिये। इससे पीछे से रग का कृमि बाहर निकल जाता है। बालक के लिए मात्रा उससे आधी है। उसके उलट जाने का भय हो तो उससे १ घटे पहले Phenobarbitone ३० मिलि या Chlorpromazine २५ मिलि की मात्रा दे दे। उत्तम विधि तो यह है कि रोगी को २४ घटे निराहार रख कर पहले उसे Phenobarbitone की एक मात्रा रात को देकर उसके पेट मे स्टमक ट्यूब डाल दे जिसका निचला सिरा Duodenum तक पहुच जाए। अगले दिन प्रात १ ग्राम मेपाक्रीन को १०० मिलि लि गर्म जल मे मिला सिरिंज से पेट मे डाल दे। इसके प्रविष्ट करने के आधे घण्टे बाद २ औंस मेगसल्फ गर्म जल मे मिला उसी तरह प्रविष्ट कर दे। फिर ट्यूब को निकालकर रोगी को गर्म जल पीने को दे। एक-दो घटे के अन्दर यह पीला सा सकुचित हुआ सारा कृमि बाहर आ जाता है। (२) अथवा दो दिन के उपर्युक्त द्रवाहार के बाद दूसरे दिन शाम को Mag Sulph ½ औंस देकर तीसरे दिन प्रात Extractum Filicis Liquidum (Filix mas or male fern or aspidium) ३८ बूद मात्रा मे जैलाटीन कैपसूल मे बन्द करके १५-१५ मिनट पर ३ बार तथा बालक को १५ बूद की मात्रा मे इसी प्रकार देकर २ घटे बाद दोपहर को ४ ड्राम Mag Sulph की एक मात्रा दे देनी चाहिये। विरेचन हो जाने के बाद १ पाइट गर्म जल की वस्ति देने से सिर भी निकल जाता है। इससे भी कृमि मरकर निकल जाता है। विरेचन हो जाने पर आहार देना आरभ कर देना चाहिये। (३) Dichlorophen (Anthiphen) ६ ग्राम मात्रा मे प्रातराश मे पहले देने से २ घटे बाद कृमि मरकर निकल जाते है या इसी मात्रा को दिन मे ३ बार करके दे। (४) Niclosamide (Yomesan) पिछली रात खाना न दे। प्रात १ ग्राम पानी से चूस लेवे १ घटे बाद १ ग्राम

फिर पानी से चूस लेवे । खाना २ घटे वाद लेवें । कृमि मर कर निकल जाता हे ।

Giardiasis—Giardia lamblia—Protozoa जाति का flagella या सूत्रयुक्त कृमि है जिसका आकार नामपाती-जैसा होता है । इसमे दो Nuclei होते तथा ४ जोडे flagella के होते है । ये कृमि Duodenum तथा jejunum मे रहते है । और वहाँ की श्लेष्मकला के सेलो से चिपके रहते हैं । इनके अण्डे या Cysts मल के साथ वर्षो तक वाहर निकलते रहते हैं। क्षुद्रान्त्र मे रहने से इसे Giardia Intestinalis कहते है। प्रोफेसर Giard ने १८२२ मे पहले इसे देखा था, इसलिए इसे Giardia कहते हैं।

कृमि थोडे ही हो तो कोई लक्षण नही होता । यदि इनकी सख्या वढ जाये तो दुर्लक्षण होने लगते है, अर्थात् इनसे उत्पन्न विक्षोभ के कारण होते है । प्रधान लक्षण चिरस्थायी अतिसार हे जिसमे फैट की मात्रा, उसके आत मे विलीन न होने के कारण, विशेप होती है । जव वेग प्रवल होता हे तो दिन मे कई पतले दस्त आ जाते हैं। साधारणत प्रात काल एक ही पतला दस्त, मात्रा मे अधिक मल वाला, आता है। अतिसार के अतिरिक्त पेट मे दर्द का–जो नाभि के आस-पास या दाये (Hypochondrium मे) होता है, लक्षण होता हं । तीसरा लक्षण पेट मे गैस के रहने का होता है। गुदा से दुर्गन्धित हवा निकलती है । खाने के वाद गैस के कारण २-३ घटे पेट मे भारीपन रहता है। अरुचि और वमन के लक्षण भी होते हैं । कृमियो के रस पी लेने के कारण रक्त मे हीमोग्लोविन की कमी हो जाती है, अर्थात् Hypochromic anaemia होता हे । मल मे Trophozoits या Cysts मिलते हैं। इस कृमि के साथ-साथ रोगी मे वहुधा Round worms या Entamoeba histolitica भी मिलते हैं। यह रोग जनता मे अधिक व्यापक हे। ५ मे २५% लोगों मे यह रोग है, ऐसा परीक्षक लोग वताते है ।

Metronidazole (Flagyl) की गोलियो के २०० मिलि० मात्रा मे दिन मे भोजन के वाद ३ वार ७ दिन तक देने से यह रोग ठीक हो जाता है । १० दिन वाद इसका दूसरा कोर्स दिया जा सकता है।

Ancylostomiasis या Hookworm, Ankylostomaduodenale या हुकवर्म के अण्डे रोगी के मल के द्वारा वहुत अधिक सख्या मे वाहर आते है और गर्म आर्द्र प्रदेश मे रहने से इनके अन्दर से Larva निकलकर घास पर पलते हे । ये जल, भोजन या नगे पैर चलने वाले व्यक्तियो के पैरो की त्वचा के द्वारा दूसरो के शरीर मे प्रवेश कर जाते है । फिर त्वचा मे प्रवेश करके रक्त द्वारा फुफ्फुस मे पहुच जाते है जहा मे ये कण्ठ नाली मे और वहाँ से शरीर मे प्रवेश करने के एक महीने के अन्दर-अन्दर मुख द्वारा आत मे पहु च जाते हैं। क्षुद्रान्त्र के प्रथम भाग की श्लेष्मकला मे चिपके हुए पडे रहते हैं और रोगी के रक्त पर पलते हैं। ये १-१३ मिलि मी लम्बे होते हैं । स्पप्ट हे कि यदि ये वहुत अधिक मात्रा मे हो तो रोगी मे रक्त की न्यूनता हो जाती है जिससे रोगी कोतीव्र पाण्डु रोग (Hypochromic microcytic) हो जाता है । हृत्कम्प, निर्वलता, Eosinophilia के लक्षण भी होते हैं। रोगी के मल मे इसके अण्डो को तथा तीव्र पाण्डु के लक्षणो को देख कर रोग का निश्चय हो जाता है । मल के एक ग्राम मे प्राय ५ हजार के लगभग Ova मिलते है (Mc Master counting chamber) ।

चिकित्सा

Bephenium hydroxynaphthoate (Alcopar) की ५ ग्राम (२ ५ ग्राम Base) की मात्रा किसी आधे गिलास मीठे द्रव मे मिलाकर प्रात काल खाली पेट देने से एक ही मात्रा मे ये कृमि नष्ट हो जाते है। दो वर्ष से ऊपर के वालको के लिए भी यही मात्रा ठीक रहती है। इसके वाद किसी विरेचक औपधि की आवश्यकता नही रहती । यह कुछ महँगी औपधि है।

Tetrachloroethylene के ४ मिलिलि० की एक मात्रा जेलाटीन कैपसूल मे डालकर जल से प्रात खाली पेट दे दी जाती हे। ४ घटे तक कोई भोजन नही दिया जाता। एक मात्रा से ही ये कृमि नष्ट हो जाते है। २० किलो भार वाले वालक के लिए इसकी दो मिलि लि० मात्रा है । Hookworm के साथ गण्डूपद कृमि (Round worm) भी आत मे हो तो इसका प्रयोग नही करना चाहिए । इसके कारण उन कृमियो का ढेर सा वन जाता है जो आत के स्रोत को अवरुद्ध कर सकता है। ऐसी अवस्था मे Bephenium ५ ग्राम प्रात देना ही ठीक रहता है या ऐसी अवस्था मे पहले Piperozine का प्रयोग करके तीन दिन वाद Tetrachloroethylene का प्रयोग करना चाहिए। Thiabendazole (Mintezol) १ २५ ग्राम मात्रा मे दिन मे २ वार २ दिन तक देने से भी ऐसा ही लाभ होता है।

आयुर्वेद मे कृमि रोग

आयुर्वेद अनुसार अजीर्ण तथा वाहर से जीवाणुबीज-सक्रमण, ये दो इस रोग के कारण कहे गये

हैं। कद्दूदाने के सदृश कृमि को आंत से बाहर निकालने के लिए लालफूल के कद्दू के एक छटाक बीजो की गिरी, १ छटाक मिश्री के साथ मिलाकर १ पाव जल में रगडकर पिला दी जाती है और इनके १-२ घटे बाद दो औंस एरण्ड तेल दूध में मिला कर पिला दिया जाता है। इससे यह कृमि बाहर आ जाता है। दाडिममूलत्वक् १–२ छ० को ५ पाव जल में पका कर इसकी ३ मात्रा करके १–१ घटा पर देकर १ घटा बाद विरेचन देने से ये कृमि निकल जाते हैं।

कमीला और विडग भी इस कृमि को बाहर निकलते हैं। कमीला १ माशा, विडग २–३ माशा की मात्रा में मिलाकर एक बार एक सप्ताह तक शहद के साथ देने से यह कृमि बाहर हो जाता है अथवा कमीला ३ माशा, १ तोला गुड के साथ मिलाकर तीन दिन तक रात को एक बार लेने से भी यह कृमि निकल जाता है। गण्डूपद कृमि, पलाशबीज चूर्ण १ माशा की मात्रा में दिन में तीन बार, तीन दिन तक लेने और फिर किसी विरेचन औषधि के लेने से बाहर हो जाते हैं। पारसीयय वानी बालक को १० से १५ ग्रेन दिन में एक बार देने से भी यह कृमि मर जाता है। सूत्रकृमियो में निंब की छाल या पत्र के १ पाव क्वाथ में १ तोला लवण मिलाकर दो–तीन दिन तक वस्ती लेने तथा गुदा को साबुन से धोकर स्वच्छ रखने से बहुत-कुछ लाभ रहता है तथा निबौलियों से बनी गोली से, जैसे निबौली डेढ तोला, विडग एक तोला तथा खुरासानी अजवायन और पलाशबीज आधा-आधा तोला से बनी गोलियो के या सेके हुए पलाशबीज, विडग, अजवायन, कमीला समान–समान के चूर्ण की आधा माशा मात्रा को कुछ दिन तक दिन में ३-४ बार लेने से सर्व कृमि आत में से निकल जाते है कृमियो के निकालने के लिए सामान्य प्रयोग निम्नलिखित हैं—

कृमिघ्न चूर्ण (रसा सा)—पलाशबीज, कुटजत्वक्, १-१ छटाक, विडग २ छटाक। मिलाकर चूर्ण करें। मात्रा ४ माशा।

छुहारादिचूर्ण (ग नि.)—छुहारा, विडग, पलाशबीज, त्रिकटु, अजवायन, सब समान भाग, त्रिवृत सबसे दोगुणा। चूर्ण करें। मात्रा ३ माशे।

वचादिचूर्ण (हा सं)—वचा अजवायन, विडग, पलाशबीज, हीग, कचूर, त्रिवृत, सब समान भाग। चूर्ण बनावें। मात्रा–४ माशा।

कृमिमुद्गर रस (र० रा० सु०)—पारा १ भाग, गधक २ भाग, अजवायन ३ भाग, विडग ४ भाग, कुचला ५ भाग, पलाशबीज ६ भाग। चूर्ण करे। ३ रत्ती की गोली बनावें। मात्रा २ गोली।

कृमिनाशनरस (र रा सु)—रससिन्दूर, पलाश के बीज, निमोली समान भाग मिलाकर १-२ रत्ती की गोली बनावें।

फाइलेरिया (FILARIA, FILARIASIS)
श्लीपद

फाइलेरिया एक सूत्राकार कृमि है जिसका नर कृमि ३०-३५ मिलिमीटर लम्बा, [illegible] मिलिमीटर मोटा होता है और मादा कृमि इससे दो गुना लम्बा तथा इसकी अपेक्षा कुछ अधिक मोटा होता है। ये दोनों एक साथ लसीका-वाहिनियों में तथा लसीका-ग्रन्थियों में रहते हैं। इनको लसीकामेह या Chyluria के मूत्र में सर्वप्रथम Wucherer ने (१८६६ में) देखा था तथा इनके नर-मादा के भेद का पता Bancroft ने (१८७६ में) लगाया था अतः इन कृमियों को Wuchereria bancrofti कहते हैं।

इनमें से मादा कृमि असंख्य क्षुद्र फिलेरिया को जन्म देते हैं जिन्हें Embryo या [illegible] कहते हैं। ये क्षुद्र कृमि लसीकावाहिनियों से रक्तवाहिनियों में भी चले जाते हैं। विशेषतः फुफ्फुस की तथा स्वल्प मात्रा में हृदय, यकृत् तथा प्लीहा की रक्तवाहिनियों में भी ये पाये जाते हैं। रात्रि को १० बजे से २ बजे तक के समय में ये शाखाओं की रक्तवाहिनियों में भी आ जाते हैं। इस समय अगुली में से रक्त को लेकर उसकी परीक्षा करने से ये रक्त-कणों के बीच-बीच में रेंगते हुए देखे जा सकते हैं। फिलेरिया के कृमि की आयु ५ वर्ष तक की होती है। मरने के बाद उनके शरीर कठोर (या Calcified) होकर लसीकावाहिनियों में पडे रहते हैं। साधारणतया लसीकावाहिनियों में रहने या इनके Embryos या Microfilariae का रक्तवाहिनियों में चले जाने से भी कोई उपद्रव नही होता।

इस रोग के प्रसरण के विषय में Manson (१८७८) ने पहले-पहल बताया कि Culex fatigans नामक मच्छर जब रोगी का रक्त चूसता है तो उस रक्त के द्वारा इस कृमि के क्षुद्र कृमि Microfilariae उसके पेट में चले जाते है जहा इनके ऊपर का खोल पतला हो जाता है और यह कृमि स्वतंत्र होकर मच्छर की छाती के मांस में पहुंच कर १०-१२ दिन तक बढता है और Larva बन जाता है और यह मच्छर के डक Proboscis में पहुंच जाता है। अब जब यह मच्छर दूसरे व्यक्ति को काटता है तो वह इस Larva को उसकी त्वचा में प्रविष्ट कर देता है। वहा से यह लसीका-

वाहिनी मे पहुचकर ८-१२ महीने में पूर्ण कृमि का रूप ले लेता है ।

सम्प्राप्ति (Pathology)

जैसा ऊपर कहा है, कृमि तथा उनसे उत्पन्न क्षुद्रकृमि निरुपद्रव होते है , परन्तु जब कृमि मरते हैं या किसी प्रकार से क्षत होते हैं या इनसे लसीकावाहिनियो मे अवरोध उत्पन्न होता है तब लसीकावाहिनियो तथा लसीकाग्रन्थियो मे शोथ हो जाता है । इस रोग की इस प्रथम अवस्था को शोथावस्था (Inflammatory stage) कहते है। सभवत. कृमियो से उत्पन्न किसी द्रव्य के प्रति Allergy होने मे यह शोथ उत्पन्न होता है । ऐसी लसीकावाहिनियो के समीप के अवयव मे Lymphocytes तथा Eosinophils सचित हो जाते हैं । लसीकावहिनियो के अवयव मे क्षुद्र मासमय उभार (Granular tumours) उत्पन्न हो जाते हैं जिन्हे Granuloma कहते हैं । इनके साथ-साथ उत्पन्न लसीकावाहिनी-शोथ को Granulomatous lymphangitis कहते हैं । अर्थात् जैसे और रोगो मे जीवाणुओ के विक्षोभ मे Epithelioid cells तथा giant cells जमा हो जाया करते हैं, वैसे इस रोग मे भी लसीकावाहिनियो तथा लसीका-ग्रथियो मे छोटी- छोटी मास-ग्रन्थिया (Granuloma) उत्पन्न हो जाती है । इन ग्रन्थियो या Nodules के द्वारा लसीकावाहिनियो का स्रोत तग हो जाता है, साथ ही लसीकावाहिनियो के अन्दर का स्तर (Endothelium) मोटा हो जाता है । ऐसी अवस्था बनी रहे तो अवरुद्ध हुई लसीकावाहिनी मे तथा Granuloma से युक्त अवयव मे स्नायुभाव (Fibrosis) की प्रक्रिया हो जाती है ।

फाइलेरिया की इसशोथावस्था के बाद स्रोतोरोधावस्था (Obstructive stage) आरभ होती है । लसीकावाहिनियां के अवरुद्ध हो जाने से उनके निम्न भाग फैल कर चौडे हो जाते हैं अर्थात् जघा के निम्न भाग मे शिरा-प्रसार या Varices (varix का बहुवचन) का लक्षण उत्पन्न हो जाता है। इन शिराओ के फैल जाने मे तथा वहा बने हुए Granuloma से उत्पन्न ग्रन्थियो के कारण त्वचा ग्रन्थियुक्त विषमाकृति हो जाती है। लसीकाग्रन्थियो मे भी इसी प्रकार की प्रक्रिया होकर उनमे भी लसीका-मार्ग अवरुद्ध हो जाता है जिससे नीचे के सारे अवयव मे श्वयथु (Oedema) हो जाता है जो प्रारम्भ मे मृदु परन्तु बाद मे कठोर हो जाता है । इस प्रकार क्रमश जाघ के निचले भाग मे हस्तिपद या श्लीपद की अवस्था उत्पन्न हो जाती है ।

इस रोग की तीसरी अवस्था को श्लीपदावस्था (Eliphantiasis) कहते हैं । लसीका-वाहिनियो मे लसीकावरोध के साथ-साथ शिराओ के रक्त-मार्ग मे भी कुछ अवरोध उत्पन्न हो जाता है जिससे जघा के निम्न भाग की त्वचा तथा उसके नीचे का अवयव (Subcutaneoustissue) दोनो मोटे हो जाते हैं अर्थात् उनमे स्थूलता और कठोरता (Hypertrophy तथा hyperkeratosis) दोनो भाव उत्पन्न हो जाते हैं । इन दोनो मे पहले तो शोथ होता है और कालान्तर मे वहा स्नायु-भाव अर्थात् Fibrosis हो जाता है । जाघो की इस स्थूलता और कठोरता को ही श्लीपद कहते है । इस रोग-ग्रस्त भाग मे जीवित कृमि नही मिलते, हा X-Ray के द्वारा मृत कृमियो के कठोर (Calcified) शरीर देखे जा सकते है ।

लक्षण

शोथावस्था (Inflammatory phase, acute stage)—प्रारंभ मे फाइलेरिया के रोगी को २-३ वर्ष तक समय-समय पर, अर्थात् कुछ सप्ताहो या महीनो के अन्तर से, फाइलेरिया ज्वर (Filarial fever) के दौरे होते रहते हैं । यह ज्वर रात को सर्दी लगकर चढता है। प्रात स्वेद के साथ कुछ कम हो जाता है । इस प्रकार ३-४ दिन तक ज्वर का एक सा वेग रहता है । इस ज्वर के साथ-साथ लसीकावाहिनियो तथा लसीकाग्रन्थियो मे शोथ (Lymphangitis, Lymphadenitis) के लक्षण भी होते है विशेषत जघा,अण्ड या वीर्यवाहिनी (Spermatic cord) की लसीकावाहिनियो मे यह शोथ होता है । Femoral, Inguinal तथा कोहनी के अन्दर की (Epitrochlear) ग्रन्थिया विशेषत सूज जाया करती है । ज्वर का वेग शात होने पर लसीकावाहिनियो और लसीकाग्रन्थियो का शोथ भी शात हो जाता है ; परन्तु इस तरह के ज्वरो के वेग बार बार होते रहे तो रोग-ग्रस्त भाग की त्वचा मे स्थूलता उत्पन्न हो जाती है ।

अवरोधात्मक अवस्था (Obstructive phase)—सक्रमण के लगभग १० वर्ष बाद यह अवस्था आरंभ होती है अर्थात् रोगग्रस्त भाग मे लसीकावाहनियो मे स्रोतविरोध के हो जाने पर जाँघ आदि की लसीकावाहिनियाँ तथा शिराएँ फैल जाती (Varices) हैं । अण्ड के आवरण-कोष (Tunica vaginalis की गुफा)मे लसीका के स्रवित होने से अण्डवृद्धि (Hydrocele) का लक्षण (एक ओर या दोनो ओर) हो जाता है । ऐसे रोगी मे पहले अण्डशोथ (Orchitis) या वीर्यवाहिनी-शोथ (Funiculitis) के हो चुकने का इतिवृत्त होता है । उसकी Inguinal ग्रन्थिया

सूजी हुई होती है। यदि लसीका या Chyle की नालिका मूत्र-मार्ग में फट जाये तो मूत्र में लसीका आने लगती है जिसे लसीकामेह (Chyluria) कहते हैं। उस मूत्र में Microfilariae भी पाये जा सकते हैं।

श्लीपदावस्था— Stage of Elephantiasis रोग आरम्भ होने के कई वर्ष बाद अर्थात् लसीकावाहिनियों एवं लसीकाग्रन्थियों में शोथ और ज्वर के बार-बार होते रहने और लसीकावाहिनियों में स्रोतोरोध होकर बार-बार रोगग्रस्त अंग की त्वचा और त्वचा के नीचे के अवयव में पहले मृदु और फिर कठोर श्वयथु (Oedema) के हो जाने एवं त्वचा के स्थूल तथा ग्रन्थियो Granuloma से युक्त विषमाकार हो जाने पर और इन प्रदेशों में स्नायु-भाव (Fibrosis) तथा Myxoma (Mucous tissue के अर्बुद) के होने के कारण श्लीपद (Elephantiasis) हो जाता है। अण्डकोष में ऐसे अर्बुदों के हो जाने से वह आकार में बड़ा हो जाता है जिससे शिश्नेन्द्रिय उसमें छिप जाती है और रोगी के लिए मूत्र-विसर्जन करना कठिन हो जाता है। श्लीपद का यह रोग टांगों में नीचे जांघ में, अण्डकोष में, स्त्री-पुरुषों की जननेंद्रिय (Penis तथा Labia) में तथा स्तनग्रन्थियों में हुआ करता है। श्लीपद रोग के आरम्भ हो जाने पर फिर किसी औषधि से भी उस रोग को रोका नहीं जा सकता, क्योंकि जो स्रोतोरोध हो गया है उस पर किसी औषधि का प्रभाव नहीं होता। रात में लिये रक्त में Microfilariae मिल जाए तथा Eosinophilia भी हो तो इस रोग का निश्चय कर लेना चाहिए।

चिकित्सा

फाइलेरिया रोग की प्रथम अवस्था में अर्थात् जब तक स्रोतोरोधजनक लक्षण न हों, Diethylcarbamazine (Hetrazan, Banocide) औषधि के १०० मिलि० (अर्थात् २ गोली) मात्रा में भोजन के बाद तीन बार २१ दिन तक देने से पूर्ण लाभ होता है। इस औषधि के देने से इन कृमियों पर Reticuloendothelial Tissue का Phagocytosis का प्रभाव सुगम हो जाता है। फाइलेरिया के क्षुद्र कृमियों (Microfilariae) पर इस औषधि का विशेष घातक प्रभाव होता है। बड़े कृमियों पर भी प्रभाव होता है, पर उतना प्रबल नहीं होता। इन कृमियों के बड़ी संख्या में मरने से उनसे निकले प्रोटीन्स से एक Allergy के उत्पन्न होने का भय रहता है, अर्थात् रोगी में ज्वर, सिरदर्द, कण्डू, अरुचि आदि उपद्रवों के होने की आशंका रहती है। अतः यदि पहले दिन दो गोली की एक मात्रा दी जाये तो दूसरे दिन दो गोली की २ मात्राएं दी जायें तथा तीसरे दिन से फिर २ गोली को ३ मात्राएं कर दी जाएं तो Allergy की सम्भावना नहीं रहती। अथवा Diethylcarbamazine के साथ-साथ ही Mepyramine औषधि जैसे Phenergan तथा Cortico-steroid औषधि का पहले ५ दिन प्रयोग कर देना चाहिए।

लसीकावाहिनियों के सामान्य होने के बाद उत्पन्न हुए मृदु श्वयथु (Soft Oedema) के लिए इस औषधि से लाभ नहीं होता, तब इस पर दबाव पट्टी बांधने से, मालिश से, अंग को ऊंचा रखने से, गर्म सेंक से, Infrared ray या Short wave diathermy से लाभ हो सकता है।

आयुर्वेद में श्लीपद रोग

आयुर्वेद में इसके कारण के विषय में इतना कहा है कि यह रोग देश-विशेष में होता है, सर्वत्र नहीं, अतः इसका कोई स्थानिक कारण है। निम्नलिखित औषधियों में से किसी के प्रयोग से इसमें लाभ हो जाता है।

(१) लघुवृद्धदारुकादि चूर्ण या पिप्पल्यादि चूर्ण (यो० र०) पिप्पली, त्रिफला, देवदारु, सोंठ, पुनर्नवा १०-१० तोला, विधारामूल सर्वतुल्य, चूर्ण करें। मात्रा ३ माशा। काञ्जी से लें।

(२) बृहत् वृद्धदारुकम चूर्ण (र० नि०)—पिप्पली, सोंठ, मरिच, त्रिफला, चव्य, दारुहल्दी, वरुणत्वक्, गोखरू, मुण्डी गिलोय, समान भाग। विधारामूल सर्वतुल्य। चूर्ण करें। मात्रा—६ माशा। कांजी से दें।

(३) वृद्धदारु घृत (वं० से०)—त्रिकटु, विधारामूल १-१ छटांक। घृत १ सेर। काञ्जी ४ सेर मिलाकर घृत बनायें। मात्रा—१ तोला।

(४) वृद्धदारुकादि घृत (र० र०)—विधारामूल १० तो०, सोंठ ५ तो०, पिप्पली, त्रिफला, दारुहल्दी, चित्रक, पुनर्नवा २½-२½ तो०। घृत १ सेर। जल ४ सेर। घृत पाक करें। मात्रा—१ तोला।

(५) कणादि वटी (रसेन्द्रचिन्तामणि)— पिप्पली, वचा, देवदारु, पुनर्नवा, बिल्व १-१ भाग, विधारामूल सर्वतुल्य। ३-३ रत्ती की गोली बनावें। कांजी से दें।

(६) ऐरण्डतैलहरीतकी (वृ० नि० र०)—ऐरण्डतैल में भुनी हरड़ का चूर्ण ४-६ माशे लें। अनुपान गोमूत्र। ७ दिन तक लें।

(७) गुडूचीक्वाथ (व० से०)—गुडूचीक्वाथ में सरसों का तेल डालकर लें।

(८) ताम्बूलपत्रयोग (व. मे)—५ ताम्बूलपत्र लवण के साथ पीसकर गर्म जल से लें।

(९) पथ्यादिगुग्गुलु (वृ मा)—हरड, देवदारु, सोठ, १-१ भाग; गुग्गुलु सर्वतुल्य। १ माशा की गोली। अनुपान गोमूत्र।

(१०) रजनी चूर्ण (व से)—हल्दी का चूर्ण गुड से मिलाकर ३ माशा लें। अनुपान गोमूत्र।

(११) पूतिकरञ्जरसयोग (व से)—पूतिकरञ्जपत्र-रस में सरसो का तेल मिलाकर कुछ दिन लें।

(१२) नित्यानन्द रस (भै र)—पारा, गधक, ताम्र, कांस्य, वंग, ताल, तुत्थ, शंख, विदारी, त्रिकटु, त्रिफला, लौह, विडग, पांचो लवण, चव्य, पिप्पलीमूल, हाऊवेर, वच, कचूर, पाठा देवदारु, इलायची, विधारा, त्रिवृत, चित्रक, दन्ती सब समानभाग लेकर चूर्ण करें। हरड के काढ़े से मर्दन कर ४-४ रत्ती की गोली बनायें। दैनिक मात्रा १२ रत्ती। अनुपान शीतल जल।

(१३) चित्रकादि लेप (वृ नि र)—चित्रकमूल और देवदारु को गोमूत्र में पीसकर लेप करें।

यकृत रोग (Diseases of the Liver)

यकृत् की रचना

छाती पर दाहिनी ओर ऊपर से नीचे की ओर Midclavicular लाइन मे टकोरे तो यकृत् ५वे Interspace मे शुरू होता है। Midaxillary लाइन मे ७वे Interspace मे शुरू होता है।

यकृत्, शरीर की सबसे बड़ी ग्रन्थि (Gland) है जिसका भार पुरुषो मे १५०० तथा स्त्रियो मे १३०० ग्राम होता है। इसका रग चाकलेट का-सा होता है। इसमे शरीर का एक-चौथाई रक्त रहता है तथा एक मि– ३ पाइट (१५०० मिलिलि) रक्त इसमे से बह जाता है जिसमे से ३०० मिलिलि Hepatic art से एव १२०० मिलिलि Portal vein मे आता है। दाहिनी पसलियो के पीछे Right Hypochondrium तथा Epigastrium इसका स्थान है। इसका निचला पृष्ठ नतोदर होता हुआ आमाशय, ग्रहण्याशय, बृहदन्त्र के दाहिने मोड, वृक्क तथा Suprarenal capsule पर रहता है। यह अनगिनत छोटी-छोटी खण्डिकाओ (Lobules) और उनको परस्पर जोडने वाले स्नायु-तन्तुओ से, जिन्हे Portal Canals कहते हैं, बना है। यह स्नायुतन्तु इसके चारो तरफ चढे हुए Glisson's capsule में से निकलकर इसमे छाया हुआ है। प्रत्येक खण्डिका (Lobule) जो षट्पार्श्वीय (Hexagonal) है, अनगिनत छोटे-छोटे सेलो से बनी हुई है जो गोल होते है, पर परस्पर दब जाने से बहुपार्श्वीय (Polygonal) दीखते है, इन्हे Liver Cells कहते है। इनमे Glycogen, लौह तथा वसा का कुछ अश रहता है। ये सेल पित्त (बाइल) के निर्माण का कार्य करते है।

यकृत् मे रक्त एक तो Hepatic Portal Vein के द्वारा, दूसरे Hepatic Artery (Caeliac की शाखा) के द्वारा आता है जो इसके निचले पृष्ठ पर विद्यमान Fissure मे से Hepatic Duct के साथ प्रवेश करती है। Portal Vein का रक्त दो धाराओ मे आता लगता है। आमाशय, प्लीहा और उतरते बृहदन्त्र से आया रक्त बायें खण्ड मे तथा छोटी आत और चढते हुए बृहदन्त्र से आया रक्त दक्षिण खण्ड मे आता है। इसीलिये प्राणिज प्रोटीन की न्यूनता से होने वाला Necrosis का रोग बाये खण्ड मे और चढती आत मे से आये विषो के कारण होने वाला विद्रधि (Abscess) का रोग दक्षिण खण्ड मे हुआ करता है। यकृत् मे प्रवेश करके ये तीनो प्रत्येक Lobule के चारो ओर के स्नायु-तन्तुओ (Portal Canals) मे फैल जाती हैं। अर्थात् एक Lobule की परीक्षा करे तो उसके चारो ओर के सूक्ष्म स्नायु-तन्तुओ मे इन तीनो अर्थात् Portal triad की एक-एक प्रशाखा मिलती है। इन तीनो में से Hepatic Artery तो यकृत् के अन्दर विद्यमान स्नायु-तन्तुओ को, तथा Portal Vein और Bile Ducts के स्नायु-तन्तुओ को रक्त पहुचाती है। Portal Vein यकृत् के सेलो को रक्त पहुचाती है। इस प्रकार यकृत् को मिलने वाला रक्त ८० प्र० श० तो शिरा-रक्त और २० प्र० श० धमनी-रक्त होता है। स्पष्ट है कि ऑक्सिजन की कमी या Anoxia की अवस्था मे यकृत् को ऑक्सीजन नही मिलती। यदि एक Lobule की परीक्षा करे तो इसके चारो ओर के स्नायु-तन्तु मे एक सूक्ष्म Vein पाई जाती है जिसे Inter lobular vein कहते है। इसमे से छोटी छोटी Veins निकलकर लिवर सेलो की पक्तियो के बीच-बीच मे से बहती हुई Lobule के केन्द्र तक जाती हैं। इन छोटी-छोटी रक्त की प्रणालिकाओ को Intralobular Sinusoids (यकृत्खण्डिका शिराएँ) कहा जाता है। Lobule के केन्द्र मे इन छोटी-छोटी शिराओ के मिलने से जो एक शिरा बन जाती है उसे Interalobular vein या Central vein कहते है। फिर इन शिराओ के भी मिलने से Sublobular veins

बनती है और उनके मिलने से Hepatic veins बन जाती है जो रक्त को वापस Inferior vena cava में ले जाती है। Lobule के चारो ओर की Hepatic Artery की प्रशाखाएँ भी निकलकर इन्ही Intralobular Sinusoids मे मिल जाती है अर्थात् इनमे धमनी तथा शिरा दोनो का रक्त मिश्रित होता है, एव यकृत के सेलो को Portal vein तथा Hepatic artery दोनो का सम्मिलित रक्त मिलता है। Lobule के सेलो की सूक्ष्म परीक्षा करे तो पता चलता है कि ये सेल Portal Canal से Central vein तक पंक्तियो मे पडे होते है। जिनमे से प्रति दो पंक्तियो के बाहर दोनो ओर तो Sinusoids होती है और दोनो के बीच मे एक सूक्ष्म-सी पित्तप्रणालिका (Bile Capillary) होती है, अर्थात् सेलो की प्रत्येक पंक्ति के एक ओर तो रक्त-वाहिनी होती है, दूसरी ओर पित्तवाहिनी होती है। स्पष्ट है कि यकृत् के ये सेल रक्त या सीरम मे रहने वाले Blood Bilirubin को (जो १०० सी० मी० मे ४-१ मिलि० होता है) लेकर उसे Bile Bilirubin मे परिवर्तित करते रहते है एव पित्त या बाइल का निर्माण करते रहते हैं। फिर यह पित्त Lobule के अन्दर विद्यमान इन Bile Canaliculi या पित्त-प्रणालिकाओ के द्वारा वापस पित्त-प्रणाली (Bile Duct) मे जाता रहता है। Lobule के अन्दर की सूक्ष्म शिराओ (Sinusoids) की दीवारे चपटे (Endothelial) सेलो के अतिरिक्त शाखाओ वाले सेलो से, जिन्हे Kupffer Cells कहते हैं, बनी है। ये शाखाओ वाले सेल Reticulo endothelial सेल होते है जोकि प्लीहा-मज्जा आदि के अदर की रक्त-वाहिनियो मे विद्यमान Reticulo endothelial सेलो की तरह रक्त के अदर बहते टूटे हुए रक्तकणो के Haemoglobin को तोडकर उससे Blood Bilirubin, Globin और लौह को पृथक् करने का कार्य करते है, साथ ही वे Phagocyte होने से रक्त मे विद्यमान बाह्य द्रव्यो को पकड लेते है। इस प्रकार आत मे से आने वाले जीवाणु वहा पकडकर नष्ट कर दिये जाते है, साथ ही ये सेल्स रक्त मे से ग्लूकोज, अमीनो ऐसिड तथा विटामिनो को लेकर अपने अन्दर रख लेते हैं। तो भी यकृत् के इन सेलो का प्रधान कार्य यह होता है कि वे रक्त के मलभूत Blood Bilirubin को पृथक् करके पित्त या बाइल के रूप मे अर्थात् Bile Bilirubin के रूप मे आत द्वारा शरीर से बाहर कर दे। दाये-बाये Vagus Nerves (Parasympathetic) की तथा Sympathetic Nerves की शाखाएँ जो Caeliac Plexus से आती है और Portal Vein, Hepatic Artery एव Bile-Duct के साथ-साथ सारे यकृत् मे फैली हुई है और अन्त मे लिवर के सेलो मे समाप्त होती है। Vagus पित्त को प्रवृत्त करता है। यकृत् मे धमनी-रक्त की न्यूनता के कारण बहुत सम्भवत शरीरस्थ विषो का दुष्प्रभाव उसके सेलो पर विशेष होता है।

यकृत की क्रिया

प्रधानत यकृत् एक बडी पित्तस्रावक ग्रन्थि है जो रात-दिन निरन्तर यह कार्य करती तथा न्यूनाधिक १ लिटर पित्त प्रतिदिन बनाती है। यह पित्त आत मे जाकर फैट को एक दूध-जैसे पदार्थ मे परिवर्तित करता है। यह काम Bile Salts करते हैं, जो २०-३० ग्राम दैनिक मात्रा मे पित्त मे निकलते तथा फिर आत मे विलीन हो जाते है। यद्यपि मृत हुए रक्तकणो के Hb को पकडकर उसमे प्लीहा आदि के Reticulo Endothelial Macrophage सेल रक्त-बिलिरुबिन (Blood Bilirubin या Hemobilirubin या Bilirubinic Acid) बना देते है तो भी यकृत् के पित्त मे पाया जाने वाला पित्त-बिलरुबिन (Bile Bilirubin या Cholebilirubin या Bilirubin II) उससे भिन्न होता है। Albumen-Blood Bilirubin या Bilirubin I प्रोटीन से जुडा होने से शरीर की Membranes मे से आरपार नही हो सकता, (अर्थात् Dialysable नही होता), अतएव वह वृक्को के Glomeruli की झिल्ली मे से निकलकर मूत्र मे नही जा सकता। यकृत्-सेलो के द्वारा कुछ Enzymes की सहायता से तैयार हुआ Bile Bilirubin या Conjugated bilirubin Dialysable या Membranes मे से छनने-योग्य होता है एव मूत्र मे बाहर निकल जाता है। क्योकि यकृत् के सेलो मे Glucuronyl Transferase नामक Enzyme के द्वारा उसका प्रोटीन तो उससे अलग हो जाता है तथा Glucuronic Acid उसमे मिलकर उसे (Bilirubin-mono glucuronide तथा Bilirubin diglucuronide को) जल मे घुलने-योग्य बना देता है। उसके अधिक घुलनशील होने से ही vanden Bergh Solution को यदि Bile-Bilirubin मे मिलाया जाय तो तुरन्त Blue Violet रग (Direct vanden Bergh reaction) आ जाता है, परन्तु यदि इसी Solution को Blood-Bilirubin मे मिलाया जाय तो उसके कम घुलनशील होने से, उसके बाद जब तक ९६ प्रतिशत Alcohol न मिलाया जाय, Violet रग (Indirect vanden Bergh reaction) नही आता। जैसा ऊपर कहा है, यकृत् मे से

६००-१२०० सी०सी० के लगभग पित्त (Bile) प्रतिदिन उत्पन्न होता है, यह आत मे पहुचकर वसा के पाचन मे Lipase की सहायता करता, आत की गति (Peristalsis) को उत्तेजित करके मलावरोध नही होने देता तथा आत के अन्दर जीवाणुओ की वृद्धि को रोकता है। इस बाइल के निकलने के साथ रक्त का मल (Blood Bilirubin) ही नही, Choleterol भी निकलता है। यद्यपि रक्त के Cholesterol तथा पित्त मे निकलने वाले Cholesterol मे भिन्नता होती है, क्योकि जब यकृत् रुग्ण होता है तब Blood Cholesterol मे उचित परिवर्तन न हो सकने से वह पित्ताशय (Gall Bladder) मे जमकर बैठ जाता है जिससे पित्ताश्मरी (Gall Stone) बन जाने का भय रहता है। यकृत् के सेलो मे Bile Bilirubin के साथ-साथ Bile Salts भी, जो यकृत् के सेलो मे Cholesterol से उत्पन्न Cholic Acids या Bile Acids के Sodium Salts होते हैं, उत्पन्न होते है, अर्थात् Cholicacid दो Aminoacids glycine तथा taurine से मिलकर Glycocolic तथा Taurocholic acid बनते हैं। ये Acids बाइल मे Sodium glycocholate तथा Sod taurocholate के रूप मे होते हैं (इन साल्टस के कारण ही आत मे फैट्स विलीन हो पाते हैं।) इसीलिये यकृत् रोग मे फैट्स आत मे भली प्रकार विलीन नही होते। इन्ही के कारण बाइल मे Cholesterol घुला रहता प्रतीत होता है। यकृत् से Bile-Ducts के द्वारा यह पित्त (Bilirubin glucuronide) क्षुद्रात्र मे पहुंचता है (आत की झिल्ली मे यह फिर विलीन नही होता, जैसा कि Unconjugated बाइल विलीन हो जाता है), वहा आत्रगत जीवाणु इस (Bile Bilirubin) को एक कुछ विवर्ण-से पदार्थ (Stercobilinogen) मे परिवर्तित कर देते है। Oxigen के मिलने से यही पदार्थ Stercobilin बन जाता है और मल के साथ लगभग ३०० मिलि० दैनिक मात्रा मे बाहर निकल जाता है। इसके भूरे रग का होने के कारण ही मल का रग भूरा सा होता है। आत मे विद्यमान Stercobilinogen का कुछ भाग विलीन होकर फिर Hepatic Portal vein द्वारा यकृत् मे पहुच जाता है तथा यकृत् मे से इसका कुछ अश तो सेलो द्वारा बाइल मे बाहर निकाल दिया जाता है, शेष अश Hepatic vein के द्वारा वापस रक्त मे भी पहुचता है और वहा से वह निर्वर्ण Urobilinogen के रूप मे २-४ मिलि० दैनिक मात्रा मे मूत्र मे निकल जाता है। मूत्र को हवा लगने से अर्थात् ऑक्सिजन के मिलने से यही फिर पीतवर्ण Urobilin बन जाता है। इस प्रकार स्वस्थ व्यक्ति मे भी उसके मूत्र मे Urobilinogen की स्वल्प-सी मात्रा होती है, अर्थात् स्वस्थ यकृत् के लिए भी इसे पूर्णतया निकालना कठिन है। जब यकृत् के सेल रुग्ण होते है तब वे Urobilinogen को निकाल नही सकते है। तब रक्त मे Blood Bilirubin और Urobilinogen दोनो की मात्रा बढने से कामला होता है। पहले के कारण vanden Bergh Test अलकोहल मिलाने पर या देर मे आता है। दूसरे के कारण तुरन्त आता है अर्थात् Biphasic होता है। यदि यकृत् के सेल तो स्वस्थ हो, साथ ही Haemolysis की अधिकता हो, तब रक्त मे केवल Blood Bilirubin की वृद्धि के कारण कामला होता है। तब एक तो वह वृक्को की झिल्ली मे से मूत्र मे नही जाता, दूसरे उसका vanden Bergh Test अलकोहल मिलाने पर आता है। परन्तु मल मे Urobilinogen की मात्रा बढ जाती है। स्पष्ट है कि यकृत् के सेल रुग्ण हो तो मूत्र मे Urobilinogen या Urobilin की मात्रा बढ जाती है। पर यदि Bile duct के अवरुद्ध होने से कामला हुआ हो तो (क्योकि Bile आत मे जा नही पाती इसलिये) मूत्र मे Urobilinogen नही पाई जाती। या इससे उत्पन्न Urobilin के कारण मूत्र का रग लाल हो जाता है। पित्त या Bile बनाने के अतिरिक्त यकृत् के सेल निम्नलिखित कार्य भी करते हैं :

(१) वह आत मे से आये फ्रक्टोज, गैलेक्टोज तथा ग्लूकोज को Glycogen के रूप मे बदलकर अपने अन्दर सेलो मे सचित रखता है। उसके सेलो मे जाने के लिए Insulin सहायक होता है। आवश्यकता पडने पर वह फैट तथा प्रोटीन आहार-द्रव्यो से भी ग्लूकोज बना सकता है। इस प्रकार भोजन से आया $\frac{2}{3}$ ग्लूकोज यकृत् मे जमा कर लिया जाता है। भोजन से आये लगभग $\frac{1}{2}$ प्रोटीन्स को भी वह अपने मे रोक (Storage) लेता है।

(२) अपने सेलो मे Fat को सचित रखता है, जिसकी सहायता से इसमे विटामिन A और D, जिनके अभाव मे रात्र्यन्धता तथा अस्थियो मे कैल्सियम की कमी के रोग हो जाते है, सचित रहते हैं (Carotene यहा आकर A मे बदल जाता है) तथा फिर यह फैट वहा Lecithin मे परिवर्तित होकर (अर्थात् इसके एक Fatty Acid ग्रुप के स्थान पर Phosphoric Acid के आ जाने या Phosporylated हो जाने या Phospolipid बन जाने से एव इसके अधिक घुलनशील हो जाने से)

यह प्लाज्मा द्वारा अवयवो (Fatstisue) तक पहुचता है। यह फैट Unsaturated होने से शरीर के ज्वलन (Oxidation या Combustion) मे काम आता है। Phospholipid के वनने के लिये Labile methyl groups की आवश्यकता पडती है जो भोजन के Methionine और Choline से मिलते हैं।

(३) रक्त के प्रोटीन, जैसे Fibrinogen, globulins तथा Albumin भी Enzymes के द्वारा यकृत् के सेलो मे ही वनते हैं। Gamma globulin, जो Immune bodies उत्पन्न करने का कारण है, यकृत् आदि के Raticuloendothelial System मे उत्पन्न होता है। यकृत मे वने प्रोटीनो के द्वारा शरीर के अवयवो को लोहा, विटामिन, बी१२, होरमोन्स, हीमोग्लोविन, विलिरुवीन आदि पहुचते हैं। यकृत् के सेल Vitamin K की सहायता से Prothrombin को भी तैयार करते हैं। साथ ही ये Factor V तथा VII को भी तैयार करते हैं। स्पष्ट है, इसके सेल रुग्ण हो तो सीरम मे Albumin घट जाता है। विटामिन 'के' की न्यूनता से रक्तस्राव का भय रहता है। Fibrinogen की कमी (Hypoprothrombinemia) से भी रक्त का Coagulation कम हो जाता है। a, b globulins यकृत् के अतिरिक्त दूसरे अवयवो के Reticuloendothelial सेलो (Plasma-cells, Large lymphocytes) मे भी वनते हैं।

(४) यकृत् के सेलो मे लौह का अश भी होता है जो Haemoglobin के वनने मे काम आता है।

(५) यकृत् के अन्दर एक रक्त वनाने वाला तत्त्व (Blood Forming Factor) सचित रहता है जो अस्थि तथा मज्जा के अन्दर रक्तकणो की उत्पत्ति मे सहायक होता है, अर्थात् विटामिन बी१२ भी यकृत् मे सचित होता रहता है।

(६) रक्त मे विद्यमान एक Enzyme, जिसे Alkaline Phosphatase कहते हैं तथा जो Osteoblasts के द्वारा शरीर मे उत्पन्न होता है, यकृत् मे से निकलने वाले पित्त मे निकलता है।

(७) शरीर मे काम न आने वाले प्रोटीन से उसके Amino भाग (N H) को पृथक् करके उससे पहले Ammonia और फिर यूरिया वनाने की प्रक्रिया भी यकृत् मे होती है।

(८) रक्त को जमने से रोकने वाला पदार्थ Heparin भी यकृत् के Connective Tissue मे विद्यमान Mast Cells से पैदा होता है। यह तथा विटामिन 'के' दोनो सतुलित अवस्था मे रहते हुए रक्त को द्रव-अवस्था मे रखते है।

(९) आत मे से जो विषैले पदार्थ, जैसे Indole और Skatole, जो प्रोटीनो से उत्पन्न होते है तथा शरीर मे रक्त द्वारा प्रवेश कर जाते है, यकृत् मे वाइल के द्वारा पकडे जाते एव वाहर कर दिये जाते हैं। इसे यकृत् का Detoxicating function कहते हैं। Hepatic Artery के द्वारा अर्थात् सक्रामक रोगो तथा Injection द्वारा और मुख द्वारा शरीर मे प्रविष्ट विषैले द्रव्य (मौर्फीन, एट्रोपीन, स्ट्रिक्नीन, निकोटीन आदि) भी नष्ट हो जाते हैं। जैसा ऊपर कहा है कि अमोनिया, यूरिया मे बदल जाता है, Barbiturates oxidised हो जाते है, परन्तु यदि विष-द्रव्य तीव्र हो तथा यकृत् की प्राणशक्ति या प्रतिरोधशक्ति हीन हो तो उनके कारण यकृत् के सेल क्षीण (Degen) होने लगते हैं। प्रतीत होता है कि Oestrogens तथा दूसरे Steroid hormones यकृत् द्वारा Glucuronic acid के साथ मिलाकर निरुपद्रव कर दिये जाते हैं तथा मूत्र से निकाल दिये जाते है। इसी प्रकार Aldosterone अर्थात् सोडियम को अन्दर रोकने वाला हारमोन तथा Antidiuretic hormone भी यकृत् मे निष्क्रिय कर दिये जाते हैं।

(१०) यकृत् शरीर को ऊष्मा प्रदान करने का प्रधान स्थान है।

यकृत्-परीक्षा (प्रयोगशाला-सम्बन्धी)

(१) Vanden Bergh Test—कामला रोग यकृद्रोग के कारण है अथवा पित्त-मार्ग मे अवरोध के कारण है या पाण्डु की अधिकता

के कारण (Haemolytic) है, इसके जानने के लिए यह परीक्षा उत्तम है। साधारणत १०० सी०सी० रक्त मे Plasma Bilirubin आधे मिलिग्राम मात्रा मे होता है; अधिक हो तो यकृत् रोग का सन्देह करे। दूसरे शब्दो मे, ढाई लाख मे एक के हिसाब से होता है। जब यह इसका ४ गुणा हो जाता है अर्थात् १०० सी० सी० रक्त मे Conjugated तथा Unconjugated दोनो का समुदाय २ मिलिग्राम अथवा ५० हजार मे १ तक बढ जाता है, तब मूत्र तथा त्वचा मे पीलापन आ जाता है, इसी को कामला कहते हैं। यदि यह यकृद्रोग के कारण हो (अर्थात् Infective Hepatitis या Cirrhosis के कारण हो) तो Blood Serum मे बराबर Vanden Bergh Solution या Diazotized sulfanilic acid मिलने से तुरन्त नीला-सा या Blue Violet रग आ जाता है तथा थोडी देर मे और गहरा हो जाता है। इसे Prompt तथा Delayed direct reaction कहते है। इसे Biphasic भी कहते है। इससे पता लगता है कि Serum मे Bile Bilirubin और Blood Bilirubin दोनो हैं। यदि रोगी को कामला तो हो परन्तु इस परीक्षा के करने पर यह रग न आये या ९६ प्रतिशत अलकोहल के मिलाने पर ही आये, तो उसमे Blood Bilirubin की अधिकता एव पाण्डुजनित Haemolytic कामला ही समझना चाहिये। इसे Indirect Vanden Bergh reaction कहते हैं। यदि रग तुरन्त ही आ जाय तो कामला पित्त-मार्गावरोध (Biliary Obstruction) के कारण या Bile Bilirubin के फिर रक्त मे विलीन हो जाने के कारण है, ऐसा समझना चाहिये। मूत्र मे Bilirubin मिले (Fouchet's test) तो समझना चाहिए कि यकृद्रोग है अथवा पित्तमार्गावरोध है।

(२) Icterus Index दस हजार मे एक Standard Potassium Dichromate Solution के साथ Serum की तुलना करके उसके पीलेपन को मापा जाता है। स्वस्थावस्था मे यह माप ४-६ यूनिट्स होता है (साधारणत १०० मिलि लि सीरम मे ·२५-१ मिलि Bilirubin होता है। २ मिलि से ऊपर हो जाय तो कामला रोग कहा जाता है) यकृत्-सेलो के रुग्ण हो जाने पर या Obstructive कामला मे यह माप बढ जाता है।

(३) Urobilinogen Test—Ehrlich reagent के बराबर मूत्र मे मिलाने से चमकीला गुलाबी रग आ जाय तो समझना चाहिए कि या तो यकृद्रोग के कारण या Haemolytic Jaundice के कारण मूत्र मे Urobilinogen आ रहा है। मूत्र मे इसके Urobilin बन जाने से वह चमकीला पीले रग का दीखता है। पित्तमार्गावरोध से उत्पन्न (Obstructive) कामला मे जब पित्त आत मे जाता ही नही, तब मूत्र मे इसका सर्वथा अभाव होता है। मल मे भी तब यह नही मिलता। साधारणत मूत्र मे २ मिलि २४ घटे मे यह निकलता है। अधिक निकासी यकृतरोग की सूचक है।

(४) Plasma Protein Test या Albumin Globulin Ratio-Test—ऊपर कहा गया है, यकृत् मे अलब्यूमिन की उत्पत्ति होती है। उसके साथ Alpha और Beta globulins की भी उत्पत्ति वही होती है। परन्तु Gammaglobulin की उत्पत्ति वहा नही होती। इसलिए जब यकृत् के सेल रुग्ण होते है तो प्लाज्मा मे टोटल प्रोटीन की मात्रा घट जाती है। कुल Plasma Proteins १०० सी० सी० मे ७ या ८ ग्राम के लगभग होते हैं जो घटकर ५ ग्राम या इससे भी कम हो जाते है। दूसरी ओर Gamma Globulin की, जिसकी उत्पत्ति Reticulo endothelial सेलो मे होती है, वृद्धि हो जाती है। साधारणत प्लाज्मा के १०० सी०सी० मे Albumin ४ ग्राम, Globulins २ ग्राम होता है। अर्थात् इनका अनुपात २ १ का होता है। यकृद्रोग मे अलब्यूमिन २-४ और ग्लोब्यूलिन ३ ५–४ ग्राम के लगभग हो जाते हैं अर्थात् इनका अनुपात उलटकर १ २ का हो जाता है। इस प्रकार यकृत् के रुग्ण होने या सूज जाने पर रक्त मे Gamma Globulin की वृद्धि अधिक मात्रा मे होने लगती है (Obstructive कामला मे ऐसा नही होता)। Electrophoresis की विधि से रक्त-द्रव के अन्दर विद्यमान प्रोटीन्स की

ठीक मात्रा का पता लगाया जाता है। Thymol turbidity test से भी इस बात का पता चलता है। साथ ही देखा जाता है कि Protein bound Iodine भी, जो साधारणत ५ ७ माइक्रोग्राम प्र०श० होता है, यकृत् रोग मे घटकर ३ माइक्रोग्राम रह जाता है।

(५) Thymol Turbidity Test—इस बढे हुए Gamma Globulin के जानने के लिए Thymol के Saturated Solution का प्रयोग किया जाता है। Thymol रक्त के Serum मे विद्यमान Gamma Globulin को नीचे बैठा देता है जिससे Serum धुँधला हो जाता है। जितना ही धुँधलापन अधिक होता है उतना ही यकृद्रोग अधिक समझा जाता है। नॉर्मल Thymol Turbidity ०-४ यूनिट तक होती है। यकृद्रोग-जनित कामला मे इससे अधिक होती है। Obstructive कामला मे ४ यूनिट से ऊपर नही होती।

(६) Serum Alkaline Phosphatase Test—रक्त के Serum के १०० सी०सी० मे Alkaline Phosphatase नामक Enzyme, जो Osteoblasts के द्वारा अस्थियो के टूटते रहने तथा बनते रहने से उत्पन्न होता है, साधारणत ३-१३ King Armstrong Units की मात्रा मे होता है। क्योंकि यह Enzyme Phosphate के पचनकर्म को Alkali के माध्यम से करता है अत इसे Alkaline Phosphatase कहते है। यकृत् इसे बाहर करने का काम करता है। यदि यकृत् के सेलो के रुग्ण होने के कारण यह बाइल द्वारा बाहर न निकल सके तो रक्त मे इसकी मात्रा बढ जाती है। अत यकृत्-वृद्धि और कामला के लक्षण के साथ-साथ यदि यह बढकर २०-३० Units हो जाय तो समझना चाहिये कि यकृत् रुग्ण है। यदि कामला Haemolytic Type का हो तो इसकी मात्रा साधारण ही रहती है। अवरोध-जनित (Obstructive) कामला मे यह ५० यूनिट तक बढ जाता है। स्पष्ट है सक्रामक कामला यकृत्वृद्धि, प्रवाहिकाजनित यकृच्छोथ—Liver Abscess, यकृत्कैन्सर, मद्यजनित यकृच्छोथ इन सब रोगो की परीक्षा की जाय, तो इसकी मात्रा बढी हुई मिलती है।

(७) Serum Glutamic Oxaloacetic Transaminase (S G O T) Amino-acids के पचाने वाले Enzymes मे से एक Enzyme जो Amino Acids के Amino Group (NH_2) से Gultamic तथा Oxaloacetic Acids के बनाने का कार्य करता है तथा जो हृदय के मास और यकृत् मे विशेषत मिलता है, साधारणत रक्त मे ४-१० यूनिट प्रति मिलिलिटर होता है। सक्रामक कामला मे यकृत के सेलो के रुग्ण हो जाने एव नष्ट होने पर उनमे से निकल कर रक्त मे फैल जाता है एव इससे १०० गुणा तक बढ जाता है। Cirrhosis मे २५-१५० यू, कैन्सर मे १५० यूनिट लिटर होता है। हृदय मे Infraction (क्षत) होने पर भी बढता है। एक और Transaminase है जो उपर्युक्त Amino radicle को Glutamic acid से और pyruvic acid से जोडता है, उसका वर्णन आगे हुआ है।

(८) Serum Cholesterol test in jaundice—Cholesterol — का भी यकृत् के साथ विशेष सम्बन्ध है। रक्त मे इसकी मात्रा यकृत् के द्वारा मर्यादा मे रहती है। यह बाइल का एक भाग होता है। कामला (Infective Hepatitis) मे जब यकृत् के सेल रुग्ण होते है तब रक्त के Serum मे इसकी स्वाभाविक मात्रा जो १०० सी० सी० मे १२५ से २५० मिलिग्राम होती है, घट जाती है। यदि बाइल बनती तो हो किंतु केवल पित्तवाहिनियो (Bile Ducts) मे अवरोध (Obstruction) के कारण कामला हो तो रक्त मे Cholesterol की मात्रा बढ जाती है। Cephalin flocculation भी पॉजिटिव हो जाता है, प्रथमावस्था मे ++ से ++++ तक होता है।

(९) Bromsulphthalein Test— इस टैस्ट मे शिरा द्वारा यह रग (एक किलो भार के पीछे ५मिलि शरीर मे डाल दिया जाता है। साधारणत यकृत् इसे ¾ से १ घंटे तक पृथक् कर देता है। इसके बाद भी यह मिले तो Cirrhosis का सन्देह करना चाहिए। यकृद्रोग-जनित

कामला तथा Obstructive कामला मे भी यह पॉजिटिव होता है ।

(१०) Plasma Prothrombin Time—साधारणत. १२ सैकण्ड है । यकृद्रोग मे तथा यकृत् मे विटामिन 'के' से Prothrombin की उत्पत्ति कम हो जाने से या आत मे वाइल के कम जाने और 'के' के कम विलीन होने से Prothrombin Time तथा index वढ जाता है । विटामिन 'के' देने मे यह ठीक हो जाय तो अवरोध (Obstruction) को, न ठीक हो तो यकृद्रोग को कारण समझें ।

(११) Levulose या Galactose Tolerance—इन दोनो मे से किसी को ५० ग्राम मात्रा मे १०० मिलिलिटर जल मे मिलाकर पिलावे । इसके पहले, तथा १ घण्टा तथा २ घण्टे वाद, रक्त तथा मूत्र लेकर उसमे इसकी परीक्षा की जाती है । नॉर्मल व्यक्ति मे इसकी वृद्धि नही हुआ करती, क्योंकि ये ग्लाईकोजेन के रूप मे यकृत् मे सचित हो जाते हैं । यदि ये २० मिलि० प्रतिशत से ऊपर मिले तो यकृत्-रोग समझना चाहिए ।

(१२) यकृद्रोग मे Serum amylase भी घटा हुआ होता है(नार्मल ११६ Units ± २९ Units)

(१३) Serum glutamo pyruvic transaminase (S G P T) जो Aminoacids का एक पाचक Enzyme है, स्वस्थ यकृत्-सेलो मे पाया जाता है । Plasma मे भी अधिक-से-अधिक यह उसके प्रत्येक मिलिलि मे ३५ Units तक पाया जाता है । यकृद्रोग मे सेलो मे से निकलकर रक्त मे इसकी मात्रा अधिक वढकर ४००-५०० तक हो सकती है । Obstructive jaundice मे यह वृद्धि नही होती या स्वल्प मात्रा मे ही होती है ।

यकृद्रोगजनित कामला, संक्रामक कामला

Hepatic Jaundice, Acute Infective Hepatitis, Infectious Jaundice, Viral Hepatitis, Catarrhal Jaundice, Hepatocellular Jaundice Icterus

यकृत् के सेलो के रुग्ण होने के कारण जो कामला रोग होता है उसका यहाँ वर्णन किया जाता है । यकृत् के सेल भी नाना जीवाणुओ या नाना तीव्र रासायनिक विषो से रुग्ण होकर कामलारोग का कारण होते है । उदाहरणत. Largactil, Sparine, Slelazine आदि शामक औषधियो के प्रयोग से कुछ एक के यकृत् के सेलो तथा Bile canaliculi पर दुष्प्रभाव होकर उनमे पित्त अवरुद्ध हो जाता है । इस तरह Intrahepatic Cholestasis होकर कामला हो जाता है । औषधि के बन्द कर देने पर यह कामला धीरे-धीरे ठीक हो जाता है । यहाँ पर तो केवल कामलाजनक सूक्ष्म विष Icterogenic Virus के यकृत् के सेलो पर दुष्प्रभाव से जो कामला रोग होता है, उसीका उल्लेख किया जाता है ।

कारण

यकृद्रोग-जनित कामला रोगी के रक्त मे व्याप्त होने वाला तथा मल मे निकलने वाला एक सूक्ष्म विष (Virus) रहता है जिसे अब तक पृथक् नही किया जा सका है । जो दूसरो के पीने के पानी या कच्ची खाई जाने वाली सब्जियो के रोगी के मल के सम्पर्क मे आ जाने से दूसरो मे सक्रमण कर जाता है । कई लोग रोगी नही, पर इस रोग के वाहक होते हैं । उनके मल मे से यह विष दूसरो मे जाता है । पेट से यह यकृत् मे तथा वहाँ से सम्पूर्ण रक्त मे फैल जाता है । जहा लोग भारी सख्या मे एकत्रित हो जाते हैं परन्तु उनके पीने के पानी को मल-स्पर्श से बचाने का पूर्ण प्रबध नही होता, वहाँ यह रोग सक्रामक रूप मे फैलता है । वैसे यह रोग इक्के-दुक्के व्यक्तियो मे भी (Sporadic रूप मे) होता है । वह भी अवश्य गन्दे जल मे से Virus के सक्रमण द्वारा ही हुआ समझना चाहिए । प्राय यह रोग युवको या मध्यमायु या ३०-३५ वर्ष से नीचे के व्यक्तियो मे होता है । विशेषत. शरत्-काल मे होता हुआ देखा जाता है, तथा बहुधा एक वार होकर फिर दोबारा नही होता । वडी आयु के लोगो मे इसके लिए Immunity उत्पन्न हो जाने के कारण यह नही होता । यह Virus दो रूपो मे देखा जाता है । एक को Icterogenic Virus 'A' या Infectious Hepatitis Virus 'A' कहते हैं । दूसरा, जो एक कामला Carrier के Serum के इजेक्शन या transfusion के द्वारा दूसरे मे सक्रमण कर जाने से होता है, उसे Icterogenic Virus 'B' या Serum Hepatitis Virus कहते हैं । यह वाइरस एक व्यक्ति के Serum के या रक्त के दूसरे शरीर मे डाल देने से या इस Virus से युक्त रोगी के रक्त से दूषित हुई सुई के द्वारा इन्जेक्शन देने से दो-चार मास बाद कामला रोग उत्पन्न करने का कारण बनता है । इससे उत्पन्न हुए कामला को Serum Hepatitis कहते है तथा यह रोग अधिक तीव्र होता है । इन दोनो मे विभिन्नताएँ ये हैं— Virus 'A'

का Incubation Period १ मास के लगभग होता है जबकि Virus 'B' मे यही २-४ मास के लगभग होता है। 'A' Virus दूसरो के भोजन या जल मे मल के प्रविष्ट होने के द्वारा फैलता है, 'B' 'Virus इजेक्शन के द्वारा फैलता हे तथा 'A' Virus के सक्रमण से, इसीके लिए Immunity उत्पन्न होती है, 'B' Virus के सक्रमण से, 'B' के प्रति ही Immunity उत्पन्न होती है। यह Virus मल के द्वारा बाहर नही आता, साधारणत रोग के ठीक हो जाने के साथ मल मे लुप्त हो जाता है। परन्तु कभी-कभी रोग के ठीक हो जाने के बाद भी महीनो तक मल मे Virus निकलता रहता है। जिनमे यह रोग पूर्णरूप मे नही हुआ जो (Subclinical या Abortive होते है), उनसे भी यह रोग दूसरो मे फैलता है।

विकृति

यो तो यह Virus सारे रक्त मे फैल जाता है पर. यकृत् पर इसका विशेष दुष्प्रभाव होता है। सम्भवत उसके सेल इसे नष्ट करने का यत्न करते है—विशेषत Lobules के केन्द्रीय (Centrilobular) सेलो मे यह शोथ होता है, जिससे इनमे न्यूनाधिक शोथ हो जाता है तथा पित्त-प्रणालियो (Bile Ducts) मे भी शोथ (Cholangitis) या अवरोध हो जाता हे जो विशेषत Intrahepatic bile ducts मे होता है। इस रोग मे Lobules के चारो ओर के Portal Canals मे Oedema तथा शोथ होता है तथा रक्त के श्वेत कणो (Mononuclear Leucocytes) का विशेष सचय होता हे । परन्तु जो लोग मद्य, तीक्ष्ण मसालो या सखिया आदि तीक्ष्ण ओषधियो का प्रयोग करते रहे हो, उनके यकृत् के सेलो मे क्षीणता या मृत्यु (Centrilobular Necrosis) की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है अर्थात् इस रोग मे पहले Catarrhal और अन्त मे Necrotic Hepatitis हो जाता है, इस अवस्था मे यकृत के सेलो मे से Glycogen लुप्त हो जाता है। इस प्रकार जब यकृत के सेल शोथयुक्त होते है तो वे अपने अन्दर Blood Bilirubin को Glucuronyl transferas के द्वारा उसमे Glucuronic acid के मोलिक्यूल मिलाकर उसे घुलनशील बनाकर पृथक् नही कर पाते जिसमे वह (Unconjugated bilirubin) रक्त मे अधिक बढ जाता है (Retention) । वृक्को मे से न निकल सकने के कारण यह मूत्र मे भी नही निकलता । आँत मे से लौटकर आये Urobilinogen के भी यकृत्-सेलो मे से न निकल सकने से वह रक्त मे अधिक बढ जाता है, परन्तु अधिक घुलनशील होने से वह मूत्र मे निकलता है, जिससे मूत्र मे इसकी मात्रा बढ जाती है। (Urobilinogenuria) जो Blood-Bilirubin यकृत् के सेलो मे से निकल Bile Bilirubin के रूप मे पित्तवाहिनियो मे चला भी जाता है वह भी रोग के बढने पर जब सूजे हुए यकृत्-सेलो के कारण पित्तवाहिनिया (Intrahepatic canaliculi) अवरुद्ध (Obstructed) हो जाती है तो आगे न जा सकने से फिर विलीन होकर वापस रक्त मे चला जाता है तथा थूक और पसीने से भी निकलने लगता है। पित्त वाहिनियो की दीवार बनाने वाले सेलो के सूज जाने से ही इसे पहले Catarrhal Jaundice या Intrahepatic Obstructive Jaundice भी कह दिया जाता था। इस रोग मे सूक्ष्म पित्तप्रणालियो (Conaliculi) मे ही अवरोध होता है। दो-दो Lobules के बीच की तथा बडी पित्त नालियो (Ducts) मे कोई अवरोध नही होता। इन्ही छोटी-छोटी नालियो मे शोथ अधिक हो तो Bile Bilirubin आत मे पहुचती ही नही, जिससे रोगी का मल सर्वथा श्वेतवर्ण हो जाता है। आँत मे उसके न पहुचने से Urobilinogen की उत्पत्ति धीरे-धीरे कम हो जाती है जिससे मूत्र मे भी उसकी मात्रा उत्तरोत्तर घटती जाती है। इस प्रकार इस रोग मे रक्त के अन्दर Blood Bilirubin तथा Bile Bilirubin दोनो बढ जाते है। इस रोग से जो मर जाते है उनके यकृत् के सेलो मे Necrosis की प्रक्रिया अधिक मात्रा मे हुई मिलती है। स्वस्थ होने पर यकृत् के सेल फिर पूर्ण स्वस्थ हो जाते है।

लक्षण

Virus के प्रवेश करने के लगभग एक मास बाद इस रोग के लक्षण (Inc period) आरम्भ होते हैं। लक्षणो के प्रारम्भ होने से एक सप्ताह पहले ही उसके मल मे यह Virus निकलने लग जाता है। इसकी पूर्वावस्था (Prodromal or Pre-Icteric Stage) बहुधा तो अज्ञात रूप मे धीरे-धीरे आरम्भ होती है। यकृत्-सेलो के रुग्ण हो जाने एव Portal Congestion हो जाने से आमाशय-शोथ होकर क्षुधा नष्ट हो जाती है। भोजन मे अत्यधिक अरुचि हो जाती है, जी मिचलाता है और वमन के लक्षण भी हो जाते है। भोजन के लिए प्रबल अनिच्छा तथा भोजन के नाम से भी अरुचि के लक्षण का होना इस रोग का एक प्रधान लक्षण है। यकृत् मे शोथ होने से आमाशय-प्रदेश मे या दाइनी पसलियो के नीचे भारीपन या हलका-सा दर्द रहने का लक्षण भी होता है।

शरीर मे विष-सचार (Infection) के कारण सिर-दर्द रहता है । शरीर थका-थका और असमर्थ लगने लगता है । सायकाल के समय तबियत अधिक गिरी गिरी—Malaise—रहती है । एव अन्न पर अरुचि तथा तबियत का गिरना इसके प्रधान चिह्न होते हैं । Infection के कारण ज्वर भी १००-१०२ तक तीन-चार दिन रहता है । पित्त के रक्त मे जाने से मूत्र गहरे रग का हो जाता है तथा रोग के बढने पर आत मे पित्त के कम जाने से मल का रग फीका-सा हो जाता है । बाइल के बिना आत में Fatty-Acids के विलीन न होने से भी मल मे सफेदी रहती है । मल मात्रा मे अधिक तथा दुर्गन्धित होता है । इस रोग मे Coagulation (रक्तजमने) का समय बढ जाता है जिससे रक्तपित्त का उपद्रव हो सकता है । इस अवस्था मे इस रोग का सन्देह प्राय विषमज्वर से हो जाता है । (सम्भवत बहुधा यह रोग इस Pre-Icteric अवस्था से नही बढता, यहीं पर ठीक हो जाता है । यदि ऐसा होता है तो बहुधा रोगियो मे अजीर्ण तथा क्षुधा-नाश के साथ होने वाले पेट-दर्द की शिकायत इसी कारण होती प्रतीत होती है (तथा प्रतीत होता है कि ऐसे रोगियो के मल से ही यह रोग औरो मे प्रसरण करता है ।)

-इन प्रारम्भिक लक्षणो के आरम्भ होने के एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर ही इस रोग की कामलावस्था (Icteric Stage) सूक्ष्म पित्त-प्रणालियो के अवरुद्ध हो जाने से आरम्भ हो जाती है तथा कामला के प्रगट हो जाने पर क्रमश एक सप्ताह तक वह गहरी हो जाती है । इसके होने के साथ-साथ अन्न पर अरुचि और आमाशय-प्रदेश पर भारीपन या वेदना होने आदि के उपर्युक्त लक्षण अधिक स्पष्ट हो जाते हैं । मल का रग फीका पडता जाता है । हाँ, कामला (नेत्रो तथा मूत्र मे पीलापन) प्रगट होने पर ताप-मान का लक्षण जाता रहता है । एक सप्ताह बाद कामला के कम होने के साथ-साथ सब लक्षण धीरे धीरे कम होने लगते हैं । मल मे पीला रग आने लगता है एव यह रोग लगभग एक-डेढ मास तक ठीक हो जाता है । जब भूख लगने लगे तथा शरीर मे हलकापन और चलने-फिरने की सामर्थ्य लगने लगे, तब इस रोग को उतरता हुआ (Convalescent stage) समझना चाहिये । चार-छ सप्ताह मे रोगी के अच्छा हो जाने पर भी यकृत् कुछ-कुछ बढा रहता है तथा दुखता भी है, अर्थात् उसमे थोडा-थोडा शोथ रहता है । परन्तु अधिक श्रम न किया जाय तो धीरे-धीरे यह भी ठीक हो जाता है । जो लोग प्राणिज प्रोटीन नही लेते, उनमे कभी-कभी चिरस्थायी यकृत्-वृद्धि (Nodular Cirrhosis) का लक्षण रोगी मे रह जाता है ।

मलाशय मे या अग्न्याशय के शीर्ष भाग मे कैन्सर होने पर Portal Fissure पर की लसीका-ग्रन्थियो के सूजकर कठोर हो जाने से यकृत् से निकलने वाली पित्तवाहिनी दब जाती है । इसके कारण भी कामलारोग होता है, पर यह रोग ४० वर्ष की आयु से बाद होता है, कामला का रग गहरा होता है, रोग दीर्घ होता तथा रोगी विशेष कृश होता है । कैंसर या Bile Duct मे Stone के कारण Bile Bilirubin आत मे न जाकर फिर रक्त मे चला जाता हो तो भी कामला (Obstructive) रोग होता है । इस अवस्था मे फैट के न पचने से मल श्वेत-वर्ण होता है, आत मे पित्त के न जाने से Urobilinogen बनता ही नही, अत मूत्र मे वह बहुत कम मिलता है या नही मिलता । सीरम मे Alkaline Phosphatase तथा Cholesterol की मात्रा बढ जाती है । यकृत् मे कैन्सर के कारण कामला हो तो यकृत् आकार मे बडा तथा कठोर होता है, जलोदर भी होता है । कैन्सर के कारण यकृत् के अन्दर की पित्तवाहिनियो मे अवरोध होता है साथ ही यकृत् के सेल्स भी रुग्ण हो जाते हैं । अत इस कामला मे दोनो के लक्षण होते हैं । पाण्डु रोग, या रक्त मे किसी विष-द्रव्य की उपस्थिति या अनमेल Transfusion से कामला हो तो मल गहरे पीले रग का होता है । मूत्र मे Urobilin नही होता, पर Urobilinogen होताहै , रक्त मे Reticulocytosis का लक्षण होता है तथा सीरम मे Bilirubin 1 की वृद्धि होती है ।

परीक्षा

परीक्षा करने पर जब तक ज्वर रहता है नाडी तीव्र रहती है तथा इस अवस्था मे भी Transaminase Test पाजिटिव होता है यद्यपि रक्त के सीरम मे Bilirubin बढा हुआ नही होता । जब ज्वर कम हो जाता या शान्त हो जाता है, तब नाडी कुछ मन्द होती है । यकृत् कुछ-कुछ बढा हुआ तथा पर्शुकाओं से एक-दो अगुल या अधिक नीचे स्पर्श होता है, पर कठोर नहीं होता, दबाने से दर्द करता है अर्थात् स्पर्शाक्षम होता है । रोगी मे कामला होता है, पर पाण्डुता का लक्षण नही होता । मूत्र-परीक्षा करने से वह गहरे रग का होता है उसमे Bilirubin (Bilirubin-uria) होता है । उसके हिलाने से उसकी झाग बेरग होती है । इसके लिए Harrison या Fouchet', Test या Diaz-odyl की गोली का Test उपयोगी है । मूत्र मे Bile Salts भी पाये जाते हैं (Haemolytic jaundice मे मूत्र मे Bilirubin नही होता) । Blood Serum मे Bile Bilirubin होने के कारण Vanden Bergh Test

Direct (तुरन्त) होता है, साथ ही Blood Bilirubin के कारण वह Delayed भी होता है एव वह Biphasic होता है। Colorimeter की सहायता से इसका Quantitative Test करने पर Serum Bilirubin एक Unit से अधिक बढकर ४० मिलि० प्रति १०० मिलिलि तक या इस से भी अधिक पाया जाता है। Serum Albumin के कम हो जाने तथा Globulin के, जो यकृत् के सेलो मे नहीं वरन् Reticuloendothelial सेलो मे उत्पन्न होता है, वढ जाने से Thymol Turbidity Test, Positive होता है। यकृत् के सेलो के रुग्ण होने के कारण Serum Alkaline Phosphatase 25 King-Armstrong Units तक बढ जाता है, Serum amylase घटा हुआ होता है। रोगी के Serum मे Cholesterol बढा हुआ होता है, Cephalin flocculation पॉजिटिव (++—+++ +) होता है। श्वेतकणो की गिनती करने पर उसमे Leucocytosis नही, प्रत्युत कुछ Leucopaenia ही मिलता है। इस रोग मे S G.O T तथा S G P T भी यकृत्-सेलो के रुग्ण होने से बढे हुए पाये जाते है। रक्त मे वाइल के साथ वाइल-साल्ट्स के अधिक बढ जाने तथा शिराओ पर उसके दुष्प्रभाव से और Prothrombin की कमी से भी इस रोग मे वमन अथवा मल के साथ रक्त आने लगे, वाइल-साल्ट्स की अधिकता से त्वचा मे कण्डू के अतिरिक्त नाडी-मण्डल-सबधी दुर्लक्षण—जैसे तन्द्रालुता, निद्रानाश, मास मे कम्प या Twitchings, Tremors, स्तम्भ (Spasms), हिक्का, प्रलाप, मूर्च्छा, पुतलियो मे चेष्टा-मन्दता आदि—हो तो रोग कष्टसाध्य समझना चाहिये। गर्भिणी मे भी यह रोग कष्टसाध्य होता है। मृत्यु यकृत् के फेल हो जाने (Necrosis या Cholaemia) से होती है। मूर्छा से पहले रोगी के श्वास मे एक गन्ध, जिसे Fetor hepaticus कहते है, आने लगती है जो आत से आये Amino Acid के Amino Group को यकृत् के सेलो के द्वारा विश्लिष्ट न करने (अर्थात् Deaminate न कर सकने) से किसी उडनशील Amine के उत्पन्न हो जाने से होती है।

लगभग २०% रोगियो मे या तो यह रोग मारक हो जाता है या अतिदीर्घ हो जाता है या Ch Hepatitis मे परिवर्तित हो जाता है। शेष बहुत-से रोगी तो ठीक हो जाते हैं, इसमे उन्हे १ से ४ महीने तक का समय लगता है और रोगी का भार ४-५ किलो कम हो जाता है।

चिकित्सा

क्योकि चलते-फिरते रहने से Virus का दुष्प्रभाव यकृत् पर अधिक पडता है इसलिए रोगी को न्यून -से-न्यून दो-तीन सप्ताह के लिए तथा जब तक मूत्र Bile pigment से बिल्कुल मुक्त न हो जाय, शैयाशायी होकर पडे रहना चाहिए, जब तक भूख लौट न आये, यकृत् की स्पर्शाक्षमता न हटे, रक्त मे Bilirubin १½ मिलि० प्र०श०मे कम न हो तब तक लेटे रहना चाहिये। यकृत् के सेलो मे ग्लाईकोजन तथा रक्त मे प्रोटीन की मात्रा घट जाती है। इसलिए कोई हलका प्रोटीन-भोजन जैसे, मलाईरहित दूध या Casilan Milk protein glaxo, Protenuics या Laclodex-Protcinex या Threptin granules या कार्वोहाइड्रेट—का भोजन उसे पर्याप्त मात्रा मे देना चाहिये। ग्लूकोज भी दिनभर मे ४-६ औस किसी फलरस जैसे मौसबी-सतरा आदि के रस मे मिलाकर उसे पिलाना चाहिये। उसे मीठे पेय तथा मीठे फल देने चाहिये। मीठे विस्कुट भी ठीक हैं। भोजन के पाचन के लिए Enzymes की गोली भी देनी चाहिए। विटामिन 'बी' कम्प्लेक्स तथा विटामिन 'सी' ५०० मिलि दैनिक भी देना चाहिये। ऐसा प्रोटीन-कार्वोज-प्रधान भोजन जिससे २½, ३ हजार कैलोरीज मिले, देना चाहिए। उपवास करना ठीक नही। शरीर मे से मल (Metabolic Waste Matter) को पूर्णतया निकालने के लिए रोगी को जल की पर्याप्त मात्रा, अर्थात् तीन लिटर तक, प्रतिदिन पिलानी चाहिये। यदि वह इतना जल न पी सकता हो अथवा वमन द्वारा जल निकल जाता हो तो एक लिटर जल प्रतिदिन ५-१० प्रतिशतक Glucose infusion के रूप मे २ वार शिरा द्वारा दे देना चाहिए (ग्लूकोज की शरीर मे खपत के बढाने के लिए त्वचा द्वारा Insulin भी दे सकते हैं)। इस Solution के प्रत्येक लिटर मे आधा ग्राम Sodium Chloride तथा १ ग्राम Potassium Chloride मिलाना चाहिए। इतने ग्लूकोज से शरीर को १ हजार के लगभग कैलोरी मिल जाती हैं। इससे शरीर को प्रोटीन का खर्च कम हो जाता है। वमन रोकने के लिए Avomine २५ मिलि० भोजन से पहले दे सकते हैं। इस रोग की अभी तक कोई प्रभावकारी औषध-चिकित्सा नहीं है, तो भी Steroid therapy से कुछ लाभ होता है। अर्थात् Prednisolone ४० मिलि० दैनिक मात्रा मे ४-५ दिन देना चाहिए। इसके बाद इसे स्वल्प मात्रा मे जब तक रोग रहे देते रहे। या ग्लूकोजड्रिप मे Hydrocortisone १०० मिलि मिलाकर दे या इसे ५० मिलि मात्रा मे मास द्वारा दिन मे ३ बार दे या Betamthazone ५ मिलि दिन मे २ बार देते रहे। Liv ५२ की २-२ गोलिया दिन मे ३ बार देने से भी कुछ लाभ होता है। त्वचा द्वारा Vitamin B Complex के प्रयोग से या विटामिन B_{12} के मुख या मास द्वारा देने से रोगी का

पोषण कुछ ठीक रहता है। Antibiotic द्रव्यो का इस पर कोई प्रभाव नही होता। ठीक हो जाने के वाद ६ मास तक मद्य-आदि तीक्ष्ण आहारो से तथा अधिक श्रम से वचना चाहिये। तीव्र रोगी या पुराने रोगी को भी Cholaemia से वचाने के लिये जैसा ऊपर कहा है ग्लूकोज का १० प्र० श० घोल, जो आधी ताकत के नॉर्मल सैलाइन मे वना हो, जिसमे B1 100, Nicotinamide 100, Riboflavin 10 मि० ग्रा० हो, २ लिटर मात्रा मे शिरा द्वारा देना चाहिये। वमन से युक्त तीव्र रोगी को Cholaemia के लक्षण हो तो १०-२०% Fructose Solu शिरा द्वारा पर्याप्त मात्रा मे देना चाहिये।

नवजात शिशु का कामला (Icterus Neonatorum, Hyperbilirubinemia of the Newborn) नवजात शिशु मे तीसरे दिन के लगभग आरम्भ होकर कामला का रोग १-२ सप्ताह मे ठीक हो जाता है अर्थात् यकृत के सेलो मे Glucuronic dehydrogenase तथा Glucuronic transferase नामक Enzymes की कमी के कारण वहा glucuronic acid की ठीक-ठीक उत्पत्ति नही होती जिससे रक्त मे Haemobilirubin वढ जाता है। यदि किसी शिशु मे इसके वाद भी यह रोग वना रहे तो शका करनी चाहिए कि Common Bile duct मे सहज अवरोध (atresia) इसका कारण है। इसे Icterus gravis कहते है। लडकियो की अपेक्षा छोटे शिशुओ मे यह रोग अधिक होता है। यह रोग जारी रहे तो कुछ महीनो वाद घातक हो जाता है। Serum Bilirubin ६ मिलि० प्र० श० से ऊपर जितना अधिक होता जाय, उतना ही केन्द्रीय नाडी-मण्डल (C N System) पर अधिक दुष्प्रभाव पडने का भय रहता है। क्योकि वह फैट मे घुलता है अत मस्तिष्क के अवयवो पर अपना दुष्प्रभाव दिखाता है।

आयुर्वेद में · यकृदाश्रित कामला, श्लैष्मिक कामला

चरक (चि०, अ०, १६, श्लोक १२५) में कहा गया है कि पित्त (Bile) के मार्ग में कफ और वायु दोनो का प्रकोप होता है अर्थात् उनमें श्लैष्मिक शोथ (Catarrh) और वायु का प्रकोप अर्थात् क्षीणता (Degeneration) दोनो हो जाते हैं तो पित्त अपने स्थान से भ्रष्ट होकर रक्त द्वारा वापस शाखाओ में फैल जाता है जिससे आंत में उसके अभाव से मल श्वेतवर्ण हो जाता है। दूसरी ओर त्वचा, नेत्र, मूत्र आदि पीतवर्ण हो जाते हैं। आंत में पित्त के न जाने से अफारा-सा रहता है। हृदय-प्रदेश या आमाशय-प्रदेश में भारीपन रहता है। अन्न पर अरुचि, यकृत् वाले पार्श्व में दर्द, शरीर-व्यापी दुर्बलता तथा ज्वर के लक्षण रहते हैं। चरक के ये शब्द Infective Hepatitis का ही वर्णन करते हुए प्रतीत होते हैं

कामलारोग में निम्नलिखित योगो में से किसी का प्रयोग करना चाहिए :—

(१) लोहभस्मयोग (यो र)— लोहभस्म, हल्दी, दासहल्दी, त्रिफला, कुटकी, समान भाग का चूर्ण करें। घृत-मधु से ३ माशा की मात्रा में दें।

(२) अयोरजादिचूर्ण (यो र)—लोहभस्म, हरड़, हल्दी तीनो समान भाग। मात्रा—१ माशा, घृत-—मधु से दें।

(३) हरीतकीचूर्णयोग (यो र) —केवल हरीतकी चूर्ण को २ माशा मात्रा में गुड तथा मधु के साथ चटावें।

(४) दार्व्यादिचूर्ण (यो र.)—दारुहल्दी, त्रिफला, त्रिकटु, विडंग, लोह सव समान भाग के चूर्ण को ३ माशा मात्रा में मधु-घृत से दें।

(५) खण्डसमचूर्ण (ग नि)—त्रिकटु, त्रिफला, मुस्ता, पिप्पलीमूल, चित्रक, त्रिजातक, चव्य, इमली, अम्लवेंत १—१ भाग, सुवर्णमासिक भस्म सर्वतुल्य। मात्रा—३ माशा। ३ माशा खाण्ड मिलाकर मधु में चाटें।

(६) पुनर्नवामण्डूर (भा प्र)—पुनर्नवा, त्रिकटु, त्रिवृत, विडंग, देवदारू, चित्रक-मूल, कुष्ठ, हल्दी, त्रिफला, चव्य, कुटकी, पिप्पलीमूल, मुस्ता, काकडासिंगी, अजवायन, कायफल, दारुहल्दी १—१ भाग लें। मण्डूर इन सव से दो गुणा लें। इन सबको ८ गुने गोमूत्र में पकावें, गाढा—सा होने पर गुड सर्वतुल्य डालकर गोलिया बनावें। मात्रा—१ माशा।

(७) मण्डूर गुटी (व से)—विडग, मुस्ता, त्रिफला, त्रिकटु, देवदारु, पिप्पलीमूल, चव्य १—१ भाग। गोमूत्र—शोधित मण्डूर १२ भाग, लोहभस्म २४ भाग। सवको ८ गुने गोमूत्र में पका कर गाढा करके ४—४ रत्ती की गोली वना लें। दिन में २—३ गोली।

(८) लोहचूर्ण वटक (हा स)—त्रिकटु, त्रिफला, मुस्ता, विडंग, चित्रक, लौहभस्म सव समान भाग। ७ दिन इक्षुरस की भावना दे। मात्रा—२ माशा। मधु—घृत मे दें।

(९) आमलक्यवलेह (यो र)—आवले का रस १६ सेर, पिप्पलीचूर्ण १ सेर, मुलैठी १० तोला द्राक्षाकल्क १ सेर, सोंठ १० तोला, वंशलोचन १० तोला, खाड १५० तोला। मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। ठडा होने पर उसमें १ सेर शहद मिलावें। मात्रा २½ तोला, दिन में दो वार चाटें।

(१०) धात्र्यरिष्ट (च सं चि)—२ हजार आवलो का रस निकालें। आठवा भाग शहद, पिप्पली-चूर्ण १० तोला, खाण्ड २५० तो। सबको अग्नि पर एक जोश देकर आसव बनायें। मात्रा २ तोला।

(११) कामलाहर क्वाथ—त्रिफलाक्वाथ या गुडूची-क्वाथ या दारुहल्दी-क्वाथ या निम्बक्वाथ में मधु डालकर प्रात: १ वार ही पिलायें।

(१२) विशालादियोग (यो र)—इन्द्रायणमूल या इन्द्रायणके पत्तो का रस आधा तोला। दूधमें डालकर प्रात काल ३ दिन दें।

(१३) कटुतुम्बीस्वरसयोग—कटुतुम्बीस्वरस ½ तोला २-३ दिन शहद में मिलाकर दें।

(१४) मण्डूकीरसयोग—केवल मण्डूकपर्णी के स्वरस को अथवा उसमें हरिद्राचूर्ण मिलाकर उसे शहद से चटावें।

पथ्यापथ्य—गेहू या चावल को मू ग, अरहर, मसूर, कुलथी के यूष या दूध या जांगल मास-रस से लेना चाहिए। चिकनाई रहित दूध, फलरस पथ्य हैं।

यकृद्-वृद्धि

Portal cirrhosis, Cirrhosis of the Liver, Diffuse Hepatic Fibrosis, Interstitial Hepatitis, Laennec's Cirrhosis, Multilobular Cirrhosis (Cirrhos भूरा-पीला)। Laenec (१८२६) ने पहले-पहल इस रोग मे यकृत् का पीला-भूरा रग देखकर इस रोग को Cirrhosis का नाम दिया, यद्यपि अव हम इस रोग को यकृत् का Fibrosis समझते है।

कारण

क्योंकि यकृत् के सेलो को अधिकत शिराओ का रक्त मिलता है, अ त उनकी प्रतिरोधक शक्ति स्वभावत कम है। इसलिये जब कोई विक्षोभक द्रव्य यकृत् मे प्रवेश कर जाता है तब यकृत् के कुछेक सेल मर जाते हैं। परन्तु यदि यह द्रव्य मृदु विक्षोभक हो तो, यह अस्थायी तौर पर ही यकृत् मे आया हो तो, ये मृत सेल फिर हटा दिये जाते है और इनके स्थान पर नये सेल आ जाते हैं, क्योंकि यकृत् मे अपने अन्दर हुई क्षति को पूर्ण कर देने की शक्ति भी विशेष रहती है। परन्तु जब कोई अति तीव्र विक्षोभक द्रव्य यकृत् मे प्रवेश कर जाता है या एक मृदु विक्षोभक द्रव्य लगातार कुछ मास तक यकृत् मे प्रवेश करता रहे, तब यकृत् के सेल मृत हो जाते हैं और उनके स्थान पर स्नायुतन्तु (Fibrous-Tissue) आ जाता है। इस प्रकार जब संखिया पारा, Chloroform Phosphorus आदि कोई तीक्ष्ण औषधि अधिक मात्रा मे ले ली जाती है, या कभी-कभी गर्भावस्था मे शरीर मे उत्पन्न होने वाला विष-द्रव्य अधिक मात्रा मे अन्दर उत्पन्न हो जाता है, या कभी-कभी तीव्र कामला (Infective hepatitis) होता है, तब यकृत् के बहुत से सेल मर जाते है और उनके स्थान पर स्नायुतन्तु आ जाता है। इसे Toxic Hepatitis, Massive Necrosis या Acute Cirrhosis of the Liver या Acute Yellow Atrophy of the Liver कहते हैं। इसमें यकृत् कठोर तथा आकार मे छोटा हो जाता है। ज्वर, कामला, यकृत्-प्रदेश पर दर्द, अन्न पर अरुचि, वमन, अतिनिर्बल्य, Foetor hepaticus तथा रक्त-पित्त की प्रवृत्ति के लक्षण (यकृत् के कार्यों के मन्द हो जाने के कारण) होते हैं। आतो मे से प्रोटीन-भोजन से उत्पन्न विषो के रक्त मे चले जाने से, उनके दुष्प्रभाव से मृत्यु होती है। यह एक घातक रोग है। परन्तु जब कोई बाह्य या आभ्यन्तर विष-द्रव्य थोडी-थोडी मात्रा मे लगातार यकृत् मे प्रवेश करता रहे तो कुछएक मृत हुए सेलो के स्थान पर नये सेल अति मात्रा मे उत्पन्न हो जाते है और कुछ-एक मृत हुए सेलो के स्थान पर नया स्नायुतन्तु आ जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि यकृत् आकार मे बडा तथा कठोर हो जाता है। इसे चिरस्थायी यकृद्-वृद्धि (Chronic Cirrhosis या Necrosis of the Liver) कहते हैं। यहा इस रोग का ही वर्णन किया जाता है। यह निश्चित नही है कि यह रोग किस विषैले द्रव्य के द्वारा होता है, अर्थात् Hepato toxic पदार्थ कौन सा है, तथापि प्रतीत होता है कि तीव्र विक्षोभक आहार-द्रव्यो जैसे मद्य, सिरका, लाल मिरच, तीव्र मसाले Unsaturated Fats आदि का या संखिया, पारा, Phosphorus, स्वर्ण आदि का लगातार प्रयोग करने या Colitis या Amoebiasis रोग के विष के कारण यह रोग होता

है, इन्हे इस रोग का व्यंजक (Exciting) कारण कह सकते हैं। तथापि मद्य और Amaebic Dysentery इस रोग के प्रमुख कारण होते हैं।

उत्पादक कारण

चिरस्थायी अजीर्ण या अतिसार के कारण जब यकृत् के सेलो को उचित मात्रा मे आहार नही मिलता अथवा आहार ही असतुलित हो जिसमे कार्बोहाइड्रेट तथा फैट वाले भोजन ही हो, प्रोटीन-भोजन बहुत कम या सर्वथा न हो, विटामिन 'बी' कम्प्लेक्स न हो, तो भी यकृत् के सेलो की प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है। प्राणियो पर परीक्षण करके देखा गया है कि यदि उन्हे दूध, दही, अण्डे आदि का आहार दिया जाय, अर्थात् इनके द्वारा उन्हे Sulphur वाले Amino Acids (जैसे Methionine, Choline, Cystine आदि) मिलते रहे तो उनके यकृत् के सेलो मे विष-द्रव्यो को सहन करने की शक्ति बढ जाती है तथा Lecithin की उत्पत्ति के लिए भी, जो यकृत् के सेलो मे से फैट को अवयवो तक पहुचाने के लिये आवश्यक पदार्थ है, Methionine या Choline की आवश्यकता होती है। Methionine के अभाव मे तथा कार्बोहाइड्रेट और फैट का अधिक प्रयोग करने से, या शरीर मे किसी Infection के रहने से, या उपर्युक्त Amino acids के विलीन न होने से यकृत् के सेलो मे फैट की मात्रा बढ जाती है, अर्थात् Unsaturated Fat के स्थान पर उनमे Saturated या Neutral Fat की मात्रा बढ जाती है (Fatty Infiltration of the liver)। ऐसे फैट से युक्त सेलो पर Portal Vein अथवा Hepatic Artery से आये विषैले द्रव्यो का दुष्प्रभाव प्रबलता से होता है। इसका कारण या तो उनमे प्राण-शक्ति की कमी है या वहा विद्यमान फैट मे इन विषो को घोल लेने का जो विशेष गुण है, वह है। अभिप्राय यह है कि यकृत् मे Neutral fat से Phosphatide या Lacithin बनने के लिये Choline आवश्यक द्रव्य है, उसके अभाव मे यकृत् मे N fat की मात्रा बढ जाती है। इसीलिये Choline को Lipotropic अर्थात् फैट की ओर खिंचने वाला द्रव्य कहा जाता है। Methionine को जो Choline की उत्पत्ति में सहायक है, उसे भी इसी श्रेणी का द्रव्य कहते हैं। यदि कामला का आक्रमण पहले हुआ हो या बार-बार होता रहे, या हृदयदौर्बल्य के कारण यकृत् के Lobules के केन्द्रीय सेलो को ऑक्सीजन ठीक-ठीक न मिले, तो भी उनमे मृत्यु (Necrosis) की प्रक्रिया शुरू हो जाती है।

विकृति

विक्षोभक द्रव्य के द्वारा यकृत् के सेलो के मृत होने के साथ-साथ पहले Portal Spaces मे स्नायुतन्तु की वृद्धि होती है फिर Lobules के किनारे-किनारे के मरे हुए सेलो के बीच-बीच मे Fibroblasts बढने लगते हैं। इस प्रकार रोग बढता जाय तो फिर भिन्न-भिन्न आकार के सेल-समूहो के—जिनमे से कुछ Lobule से बडे होते हैं अथवा अनेक Lobules से मिलकर बने होते हैं—चारो ओर स्नायुतन्तु के फीते-से छा जाते है। क्योकि स्नायुतन्तु बढकर यकृत् को अनेक कृत्रिम खण्डो (Nodules) मे विभक्त कर देता है, अत इस रोग को Multilobular Cirrhosis भी कहा जाता है। ये Nodules या सेल-समूह Lobules से सर्वथा भिन्न होते है। इनके सेल विभिन्न आकृतियो के होते हैं, एव सेलो की अतिवृद्धि (Hyperplasia) के कारण नये उत्पन्न हुए होते है, अत इन्हे Pseudolobule कहते है। इनके बीच-बीच मे Portal Sinusoids भी नही बनते हैं अर्थात् इन सेलो को रक्त Portal Vein से नही, Hypatic Artery से मिलता है। इन सेलसमूहो या Nodules के केन्द्र मे Central Vein भी नही होती या एक किनारे की तरफ होती है। इन नये बने बडे-बडे Lobules तथा नये बने स्नायुतन्तु के द्वारा Hepatic Veins दब जाती है और बन्द हो जाती है। इस प्रकार यकृत् मे स्नायुतन्तु व नये उत्पन्न सेलो के अधिक मात्रा मे बढ जाने (Hyperplasia) के कारण पहले यकृत् आकार मे बडा तथा कुछ कठोर-सा हो जाता है। जब बाद मे सेलो मे वृद्धि (Regeneration) की प्रक्रिया बन्द हो जाती है और जब केवल स्नायुतन्तु की वृद्धि Fibrosis ही हो, तब यकृत् आकार मे छोटा (Atrophied) हो जाता है। जब यकृत् के सेल मृत हो जाते है तब उनके बीच के Sinusoids भी लुप्त हो जाते है, फिर Portal Veins की सूक्ष्म शाखाए भी सुकड जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि Portal System मे रक्त अधिक मात्रा मे भर जाता है। सम्भव है, स्नायुतन्तु के सकुचित होने से भी यकृत् के अन्दर Portal Vein की शाखाएँ भिंच (Stenosed हो) जाती है। यकृत् के सेलो के बीच बीच मे Bile Canaliculi बहुत-कुछ बनी रहती है, एव Bile के मार्ग मे अवरोध विशेष नही होता, इसीलिये कामला का लक्षण इस रोग मे बहुत कम होता है। हा, जब कभी Bile ducts मे Esch Coli तथा Streptococci के कारण

शोथ (Cholangitis) हो जाता है एवं Lobulas के बीच-बीच मे स्नायुभाव Fibrosis के बढ जाने से यकृत् आकार मे बडा हो जाता है और कामला का लक्षण स्पष्ट होता है तो इसे Biliary cirrhosis कहते हैं। सक्षेपत इस रोग मे यकृत् का Interstitial tissue सूज जाता है, कठोर हो जाता है जिससे यकृत् का आवश्यक अवयव भिच जाता एव मृत हो जाता है।

लक्षण

मध्यम आयु से ऊपर तथा वृद्धावस्था से पहले (४०-५० वर्ष) यह रोग होता है तथा स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो मे अधिक पाया जाता है। इसका आरम्भ धीरे-धीरे वर्षो तक अज्ञात रूप मे होता है। प्रारम्भ मे रोग के होने पर भी कोई कष्ट नही होता क्योकि यकृत् का थोडा सा स्वस्थ अवयव भी Metabolism चला लेता है। क्योकि यह रोग विक्षोभक भोजनो के अति मात्रा मे लेने से होता है, इसलिए प्रारम्भ मे इस रोग के निम्न लक्षण होते हैं—

(१) यकृत् के सेलो मे फैट के बैठ जाने से तथा चिरकारी आमाशय-शोथ के हो जाने के कारण होते हैं अर्थात् रोगी को भूख न लगने तथा अन्न के लिए अरुचि रहने के लक्षण होते हैं। दिनो तक भूख न लगने से एव शरीर का पोषण कम हो जाने से शरीर कृश तथा कुछ पाण्डुर दीखता है। रोगी को शरीर मे अशक्ति की शिकायत रहती है। इस प्रकार कृशता और अशक्ति इसके प्रारम्भिक लक्षण होते हैं। प्रजनन-शक्ति क्षीण हो जाती है।

(२) इसके बाद जब आमाशय या आत आदि की शिराओ मे उचित मात्रा से अधिक रक्त रुकने लगता है (अर्थात् रोगी की Portal शिराओ मे रक्त-भार १०० Millimeters of Water से ३००-४०० तक बढ जाता है), तब आमाशय-आत आदि के अन्दर श्लैष्मिक शोथ (Catarrh) के लक्षण हो जाते है, अर्थात्, इनमे पाचक रस की उत्पत्ति तो कम होती है परन्तु श्लेष्मद्रव की उत्पत्ति अधिक हो जाती है जिससे कफाजीर्ण (Hypochlorhydric Gastritis) के लक्षण रहते है। साधारणत आँत मे उत्पन्न होने वाली गैस बहुत-कुछ विलीन हो जाया करती है, पर शोथ की अवस्था मे उसके कम विलीन होने से पेट मे विष्टम्भ या अफारा रहता है। थोडा भोजन लेने के बाद भी पेट भारी हो जाता है। क्षुद्रान्त्र मे शोथ रहने से मल पतला आता है अर्थात् अतिसार का लक्षण हो जाता है, अथवा मलावरोध की शिकायत रहती है। बहुत बार पेट मे दक्षिण की ओर दर्द का लक्षण भी रहता है जो वायु के कारण या यकृत् के बढ जाने के कारण होता है। शरीर का पोषण कम होते जाने से शरीर कृश तथा त्वचा शुष्क दीखती है। यकृत् से ऊपर के शरीर की त्वचा मे कही Spider Angioma (फैली हुई शिराओ का जाल) या शिराजाल या खुली त्वचा पर Telangiectasis शिरा-जाल, अर्थात् फैली हुई सूक्ष्म धमनियो का जाल, दिखाई पड सकता है। त्वचा तथा नखो मे पाण्डुता भी झलकती है जो रोग के आरम्भ मे लोह, विटामिन 'सी' के कम मिलने (Hypochromic) से होती प्रतीत होती है।

(३) यकृत् तथा प्लीहा दोनो मे फैट के बैठने तथा सेलो मे अतिवृद्धि हो जाने से वृद्धि का लक्षण होता है। यद्यपि यकृत् की अपेक्षा प्लीहावृद्धि कम मात्रा मे होती है। यकृत् न भी बढा हो तो भी उसका किनारा स्पर्श मे आता है अर्थात् कुछ कठोर होता है। जितना-जितना वह अधिक कठोर होता है, उतना-उतना उसकी स्पर्शाक्षमता कम होती जाती है। यकृत् मे एक-दो सेण्टीमीटर व्यास के Nodules के कारण उसका पृष्ठ समतल न होकर कुछ-कुछ विषम होता है। जिस विष के कारण इस रोग मे यकृत् के सेलो मे अति वृद्धि होती है, उसीसे सम्भवत प्लीहा के Reticular cells मे भी अतिवृद्धि होती प्रतीत होती है, जिससे वह बडी हो जाती है। बहुत सम्भव है कि उसकी शिराओ मे रक्त के रुक जाने से भी वह कुछ बढती हो। रोगी को दाए पार्श्व पर लिटाकर Axillary लाइन मे बाई ओर ९-१० Intercostal spacees पर टकोर की आवाज मन्द हो तो प्लीहा-वृद्धि का निश्चय हो जाता है। यकृत् के सेलो के रुग्ण होने से उनमे Haemopoietic Principle का सचय ठीक नही हो पाता जिससे Hyperchromic Macrocytic Anaemia (वातिक पाण्डु) का लक्षण भी होता है अर्थात् इसमे पाण्डुता Hypochromic और Macrocytic दोनो प्रकार की होती है।

(४) आमाशय-आंत आदि का रक्त जब यकृत् मे से स्नायुभाव की अधिकता के कारण वापस नही जा पाता तो वह दूसरी कुछ-एक गौण शिराओ के द्वारा शारीरिक शिराओ या Systamic Veins मे जाने लगता है जिनमे से कुछ-एक ये हैं —

(क) Falciform Ligament—इसमे, जो यकृत् को पेट की अगली दीवार तथा Diaphragm के साथ जोडता है, एक Para Umbilical Vein नाभि पर आकर अगली दीवार की शिराओ के साथ सम्बन्ध करती है। इसके द्वारा कोष्ठ की अगली दीवार की शिराओ मे रक्त के लौटनेसे नाभि पर तथा उसके ऊपर की शिराए फैली हुई दीखती हैं। नाभि के आसपास कभी-कभी एक शिरागुच्छ भी बन जाता है जिसे नाभिशिरा-जाल (Caput Medusae) कहते है।

(ख) भोजन-प्रणाली (Oesophagus) के निचले भाग की शिराए, आमाशय की शिराओ मे सचित हुए रक्त को वापस Azygos Veins मे पहुचाने लगती हैं जिस मे वे फूलकर मोटी (Varicose) हो जाती हैं। इनके फट जाने से समय-समय पर इस रोग मे रक्तवमन (Haemorrhage from Oesophageal or gastric varices का लक्षण होता रहता है जो भयङ्कर तो होता है पर घातक नही होता। रक्तवमन १०% अवस्थाओ मे इसी रोग के कारण होता है। भोजन नाली मे से रक्त निकलकर आमाशय मे जमा हो जाता है। उसके फैलने पर वमन हो जाती है।

(ग) गुदा की दीवार मे विद्यमान Inferior Haemorrhoidal vein क्योकि अपने ऊपर Superior Haemorrhoidal vein, तथा उसके भी ऊपर Inferior Mesenteric Vein मे सचित हुए रक्त को वापस Internal Iliac Vein मे पहुचाने लगती है, इसलिए वह फूल जाती है। इसके फूल जाने से कभी-कभी इस रोग मे गुदा से रक्तस्राव होने लगता है। अत गुदा से रक्तस्राव विशेष हो तो भी Portal Cirrhosis रोग का सन्देह करना चाहिए। इस प्रकार के Collateral Circulation से यदि कोष्ठ का रक्त वापस जाता रहे तथा यकृत् के सेलो मे अतिवृद्धि बनी रहे, तो इस रोग के वर्षो तक रहने पर भी जलोदर, कामला आदि भयकर लक्षण नही होते।

(५) परन्तु यदि यह रोग बढता ही जाये जिससे उदरशिराओ या Portal Tributaries मे रक्त अधिक-अधिक भरता जाये, और उनमे प्रेशर, जो Vena cava के अन्दर के भार से सदा अधिक रहता है, ६०-११० मिलि० मीटर आफ वाटर से बढ जाये, तो कोष्ठ की रक्तवाहिनियो मे से रिस-रिसकर (Transudation के द्वारा) रक्त का द्रव भाग आंतो की दीवारो मे ही नही, उदरगुहा (Peritoneal Cavity) मे भी भरने लगता है। यह द्रव पतला होता है। इसमे प्रोटीन ३ प्र० श० से कम होता है जिससे इसकी स्पेसिफिक ग्रेविटी कम (१ ००८ के लगभग) होती है। रक्तवाहिनियो मे दबाव के बढ जाने के अतिरिक्त यकृत् मे प्रोटीन्स की उत्पत्ति के कम होने मे एव रक्त मे उनके कम हो जाने से भी शोथ होता है। जब यह द्रव Peritoneum के शोथ के कारण उत्पन्न होता है तब इसमे प्रोटीन ४ प्र०श० से अधिक होता है। और इसकी ग्रेविटी १०१५ से अधिक होती है तथा उसमे Polymorphs भी होते है। T B के कारण जल भरे तो Lymphocytes विशेष पाये जाते है। इस रोग मे जलोदर के लक्षण होने या छाती मे जल भर जाने (Hydrothorax) या पादश्वयथु (Oedema) के उत्पन्न होने पर यह रोग कष्टसाध्य या असाध्य हो जाता है। रक्तस्राव तथा कामला भी असाध्यता सूचक लक्षण हैं। इस प्रकार जलोदर का कारण (क) Portal Hypertension है, (ख) रक्त मे Hypoalbuminuria अर्थात् यकृत् के रुग्ण होने के कारण शरीर मे प्रोटीन के निर्माण का कम हो जाना या कुछ प्रोटीन

का Peritoneum मे जाना भी है, (ग) सचित सोडियम के कारण Osmotic Pressure के बढने एव Hypothalamus के Osmoreceptor की उत्तेजना से Posterior Pituitary ग्रन्थि की उत्तेजना होती है, उससे Antidiuretic Hormones की अधिकता हो जाती है, तथा (घ) वृक्को के Glomeruli मे छनने की प्रक्रिया की मन्दता है।

जलोदर के साथ-साथ गिट्टो, पैरो तथा जाघो पर हलके शोथ का लक्षण भी हो जाता है। रक्त मे प्रोटीन के कम हो जाने (Colloidal Osmotic Pressure के कम हो जाने) से या रक्त की Capillaries पर ऑक्सीजन की कमी (Anoxia) का दुष्प्रभाव होने से और उनकी स्रवणशीलता (Permeability) के बढने से यह शोथ होता प्रतीत होता है। यकृत् के रुग्ण सेलो के द्वारा Adrenal Cortex के Salt-retaining Hormone (Aldosterone) तथा Post Pituitary के Antidiuretic Hormones का निराकरण न कर सकने से उनका विषैला प्रभाव वृक्क की मूत्रस्राविणियो पर होता है। इसी कारण उनमे लवण का पुनर्विलयन बढ जाता है एव मूत्र मे सोडियम व क्लोराइड की निकासी घट जाती है (Hyperaldosteronism)। यद्यपि Antidiuretic hormone की अधिकता से, जब शरीर के अवयवो मे जलभाग अधिक रुक जाता है, तब रोगी के Serum मे Sodium तथा Chloride की मात्रा नॉर्मल से कम होती है (नॉर्मल सोडियम १४०-१५२ m eq-L Chloride ९६-१०६ m eq-L)। जलोदर का जल स्थायी नही होता, विलीन होता रहता है तथा नया बनता रहता है।

(६) यकृत् के सेलो के नष्ट हो जाने से जब उनमे फैट का परिपचन (Metabolism) ठीक-ठीक नही होता तब शरीर के अवयवो को फैट नही मिलता, जिससे इस रोग मे शरीर कृश हो जाता है। कृशता तथा पाण्डुता, ये इस रोग के सूचक लक्षण होते है। हृदय की निर्बलता और उसके पोषण के न होने से नाडी तीव्र तथा कम भार (Tension) की होती है।

(७) रोग के बढने के साथ-साथ ४० प्र० श० रोगियो मे सायकालिक मन्द ज्वर ९९° से १०१° डिग्री तक के लगभग होने लगता है जिसका कारण क्या है, यह ठीक ठीक नही कहा जा सकता। ज्वरो के समान इनमे रोगी का मूत्र मात्रा मे कम (Oliguria), गहरे रग का, कुछ अलब्यूमिन से युक्त, अधिक स्पेसिफिक ग्रेविटी का, अम्लीय तथा Urates से युक्त होता है। उनमे Urobilin की मात्रा अधिक होती है।

(८) ५०% रोगियो मे यकृत् के सेलो के रुग्ण होने के कारण नाइल के मार्गों के खिच जाने से एव रक्त मे Bilirubin के बढ जाने से हलके से कामला का लक्षण भी होता है। इसलिए रोगी के Serum मे Vanden Bergh Test Direct या Delayed पॉजिटिव होता है। बहुतो मे यह Indirect Positive होता है।

(९) यकृत् के सेलो के रुग्ण होने से Prothrombin तथा Factor VII की उत्पत्ति कम हो जाती है तब शरीर मे रक्तपित्त या रक्तस्राव होने की प्रवृत्ति हो जाती है। बहुधा नासा से रक्त स्राव हो जाता है। दतमास से भी रक्त आ सकता है।

(१०) Tyrosine नामक Aminoacid का, अन्य प्रोटीन्स के समान, ठीक-ठीक परिपचन न हो सकने से त्वचा मे Melanin की वृद्धि हो जाती है जिससे शरीर का रग कुछ श्यामवर्ण हो जाता है।

(११) जब यकृत् अधिक रुग्ण हो जाता है, तो वह अपना कार्य बन्द कर देता है, तब विष-सचार या Cholaemia होकर तद्रा, कम्प (Tremors Twitchings), मूर्छा (Coma) आदि मृत्यु-सूचक लक्षण होने लगते है। अर्थात् जब आँत मे विद्यमान प्रोटीन-भोजन मे से बैक्टीरिया के द्वारा अमोनिया की उत्पत्ति बढ जाती है और यकृत् के सेल इसे यूरिया मे परिवर्तन करने का कार्य बन्द कर देते है, तब यह अमोनिया मस्तिष्क मे पहुच कर उसके सेलो पर विषैला प्रभाव करता है जिससे ये लक्षण होने लगते है।

पित्तविष-सचार (Cholaemia) या घोर कामला (Icterus Gravis) या यकृद्रोगजनित मूर्छा (Hepatic

Coma), —यकृद्रोगजनित कामला तथा यकृद्वृद्धि (Cirrhosis) के उपद्रव रूप मे, तथा Lipotropic तत्त्वो की न्यूनता से भी यकृत् के सेलो मे मृत्यु या क्षीणता (Necrosis) होकर तथा पित्त-नालियो मे पित्त के रुकने से भी यकृत् का कार्य अतिमद पड जाता है। उसके Loubles के केन्द्रीय सेलो मे यह प्रक्रिया विशेषत होती है। प्रारम्भ मे स्नायुभाव (Fibrosis) के कारण यकृत् आकार मे कुछ बडा होता है परन्तु जब उसके फेल होने के लक्षण होने लगते है तो वह आकार मे बहुधा सकुचित हुआ होता है। आत मे विद्यमान प्रोटीन भोजन पर जीवाणुओ का प्रभाव होकर जो नाइट्रोजन वाले विषपदार्थ बनते है उनके यकृत् मे नष्ट न होने के कारण जब वे मस्तिष्क मे पहुचते है तो उनमे यह मूर्छा होती है। रक्त-वमन होने पर तथा प्रोटीन-भोजन से यह मूर्छा बढती है।

प्रारम्भ मे कामला हलका होता है पर क्रमश वह गहरा होता जाता है, फिर वमन भी होने लगती है। इनके साथ मस्तिष्क पर अमोनिया के दुष्प्रभाव से होने वाले Hepatic coma सम्बन्धी लक्षण — जैसे तन्द्रालुता बढना, दिमाग फेल होना, रोगी का बेचैन रहना इन मानस लक्षणो के साथ मास-कम्प, प्रलाप, आक्षेप, कण्डराओ मे प्रतिक्षेप (Tendon Reflex) Deep Reflexes मे तीव्रता के लक्षण होते है। श्वास गहरे तथा Cheyne Stokes किस्म के हो जाते हैं। नाडी तीव्र निर्बल होती, मूत्र मे पित्त, अल्ब्यूमिन, Casts होते है। उसमे नाइट्रोजन की अमोनिया के रूप मे निकासी अधिक होती है। श्लेष्मकलाओ तथा वृक्को मे से रक्तस्राव (Purpura) होने का लक्षणभी होता है जो रक्त मे Prothrombin की न्यूनतावश होता है। Serum Bilirubin २० मिलि० प्रतिशत के लगभग होजाता है सीरम Transaminase २०००यूनिट मे अधिक होता है। रक्त मे Infection तथा शरीर मे Potassium की न्यूनता भी इस Coma या मूर्छा के वर्धक होते है। Oesophagus या भोजन-नाली के अन्दर Varices के कारण रक्तस्राव हो तो यह मूर्छा और बढती है। जिह्वा खुश्क, तापमान सब-नार्मल होता है।

भेदक लक्षण

रोगी मे अजीर्ण, अरुचि, आध्मान तथा शरीर मे कृशता, निर्बलता, हलका-सा पीलापन, यकृद्वृद्धि तथा पेट पर और पैरो मे भारीपन को देखकर इस रोग का सन्देह हो जाता है। हलके-हलके रक्त-वमन से इस रोग का और निश्चय हो जाता है। परीक्षा करने से सीरम मे Bilirubin कुछ बढा हुआ (नॉर्मल ३ से ८ मिलि० प्रति १०० मिलीलिटर), B S R कुछ बढा हुआ, मूत्र मे Urobilinogen कुछ बढा हुआ होता है Bromsulphthalein test तथा Thymol flocculation positive होता है।

कैन्सर (Carcinoma of the Liver) से जो आमाशय अथवा मलाशय मे कैन्सर हो जाने पर उपद्रव के रूप मे होता है, इस रोग का सन्देह हो सकता है। परन्तु उस रोग मे रोगी को दाये कन्धे पर कभी-न-कभी वेदना होने सर्वथा प्लीहा-वृद्धि के न होने, यकृत् मे कठोरता और विषमता के अधिक होने, शरीर मे कृशता और अशक्ति के लक्षणो के अधिक होने तथा कामला के लक्षण होते हैं। यद्यपि यकृत् मे कैंसर का रोग आमाशय अथवा मलाशय मे कैन्सर के कारण होता है, परन्तु यकृत् मे कष्ट का लक्षण उन अगो मे लक्षणो के होने से पहले होता है। यकृत् मे कैन्सर के कारण Portal Vein का अवरोध हो जाना है जिससे जलोदर का लक्षण होता है। Peritoneum मे कैन्सर के सक्रमण से भी यह जलोदर होता है। सक्रामक कामला रोग प्रथम आयु मे तथा कैन्सरजनित कामला बडी आयु मे हुआ करता हैं तथा एक बार होकर बढता ही जाता है, उसका रग भी गहरा हरा पीला होता है।

Biliary cirrhosis Intrahepetic cholestasis या पित्तप्रणाली–शोथजनित यकृत्वृद्धि मे यकृत् के अन्दर की सूक्ष्म पित्त-प्रणालियो मे शोथ के कारण चिरकालिक ज्वर, बढने वाली कामला, अरुचि, आध्मान, कण्डू, श्वेतवर्चस्, गहरे रग के मूत्र आने के लक्षण होते है। इसमे Portal hypertension के कारण होने वाले जलोदर आदि लक्षण नही होते। ४–५ वर्ष तक कामला रहने के बाद यह रोग यकृत् के फेल होने या रक्तस्राव या infection से घातक हो जाता है। यकृत् के बाहर पित्तप्रणालियो मे अश्मरी (Calculus) या Pancreas के कैन्सर के कारण भी पित्तप्रणालियो मे पित्त का अवरोध हो जाता है एव उनमे शोथ या Cholangitis हो जाता है। यकृत् आकार मे बडा तथा कठोर होता, मल श्वेतवर्ण फैटयुक्त पतला होता, मूत्र Bile से युक्त काला होता है। सीरम मे Ackaline Phosphatase, Serum Cholesterol बढे हुए होते है। Bilirubin भी बढा हुआ होता है।

साध्यासाध्यता

रोग के होते ही रोगी यदि मद्य एव तीव्र आहारो का

सेवन बन्द कर दे तो रोग शान्त हो जाता है। ज्वर हो तो समझना चाहिए कि रोग का रूप भयानक है। कामला या जलोदर होने से भी यह रोग कष्टसाध्य हो जाता है। मुंह से रक्तस्राव हो तो भी ५०% रोगियो की मृत्यु हो जाती है। यकृद्रोग-जनित मूर्छा प्राय घातक होती है। जलोदर की चिकित्सा करने पर भी तथा प्रोटीन-आहार देते रहने पर भी और लवण का सेवन बन्द कर देने पर भी यह ठीक न हो तो इसे असाध्य समझें।

चिकित्सा

प्रारम्भ मे ही यकृद्वृद्धि रोग का पता लग जाय तो यह ठीक हो सकता है। जलोदर का लक्षण आरम्भ हो जाने पर यह कष्टसाध्य हो जाता है। इसी प्रकार मुख से रक्तवमन (Gastric Varices) या मूर्छा (Hepatic Coma) इस रोग के भयकर लक्षण समझने चाहिए।

भोजन-चिकित्सा

मद्य, लाल मिर्च, अचार, सिरके, तीक्ष्ण मसाले तथा घी-तेल मे तले हुए आहारो का परित्याग करना चाहिए। मद्य का एक घूंट भी इस रोग मे विष का कार्य करता है। Phenobarbitone १ ग्रेन या Promazine Hydr (Sparine) २५-१०० मिलि० दिन मे ३ बार देने से रोगी मे मद्यावरोध के दुर्लक्षण नही होते।

प्रोटीन-भोजनो का विशेष प्रयोग करना चाहिए क्योकि वे यकृत् के रक्षक होते हैं तथा रक्त मे अलब्यूमिन की कमी पूरा करते हैं। रोगी के प्रति सेर या किलोग्राम भार के पीछे १ या २ ग्राम प्रोटीन, अर्थात् दिन भर मे १००-१५० ग्राम प्रोटीन तक उसे मिलनी चाहिए। प्रोटीन-भोजनो मे गाय का दूध, मलाई हटाया हुआ दूध या लस्सी, और क्रीम निकला हुआ दूध (या Casilan या Lactodex Milk protein २०-४० ग्राम जल मे) सर्वोत्तम भोजन हैं। Casilan या Edosol मे नमक के न होने से जलोदर तथा शोथ मे ये बडे उपयोगी भोजन हैं। Casilan उत्तम Lipotropic है। दूसरे नम्बर पर उसे कार्बोहाइड्रेट (४०० ग्राम के लगभग तक) आवश्यक है, ताकि यकृत् को ग्लूकोज मिलता रहे। इसके लिए ४ औस के लगभग ग्लूकोज तथा ६-८ औस किसी फल का रस तथा १०-१५ Units Insulin का देना सर्वोत्तम है। इनके अतिरिक्त नर्म बनी सब्जिया, फल तथा अच्छी सिकी हुई रोटी स्वल्प मात्रा मे ठीक है। तीसरे नम्बर पर फैट बहुत थोडी मात्रा मे (आधी छटाक घी या मक्खन के रूप मे) देना चाहिए। इस रोग मे आंत्र मे कुछ [illegible] से विटामिन 'ए' तथा विटामिन 'के' का भी निर्माण शरीर मे कम होता है। इन अंगो की कमी से भी शरीर को ये विटामिन कम मिलते हैं। अत रोगी को विटामिन 'ए' ५ हजार यूनिट तथा विटामिन 'डी' [illegible] हजार यूनिट की मात्रा मे दिन मे एक बार तथा B-plexforte की एक दो गोली रोज मिलनी चाहिए। यकृद्रोगो के रोगी पर्याप्त आराम करें तो रोग अधिक बढने नही पाता। आराम मे भी उन्हें २५०० कैलोरी का भोजन प्रतिदिन देना चाहिए। Choline तथा Methionine के १-२ ग्राम की मात्रा मे प्रतिदिन १ मास तक देने से यकृत् मे संचित हुए फैट का यथावत् पाचन हो सकता है। पर [illegible] निर-नाट के ३ पाव दूध मे भी १ ग्राम Methionine मिल जाता है अत दूध के मिलने पर इन कीमती दवाओं के देने का विशेष लाभ नही रहता। रोगी को शिरा द्वारा ग्लूकोज ५ प्र०श० (जिसमे विटामिन 'सी' ५०० मिली-ग्राम हो) प्रतिदिन देना चाहिए। विटामिन 'बी[12]' भी Lipotropic प्रभाव रखता है अत ५०० माइक्रोग्राम मे वह भी दिया जाता है। Mag Sulph चूर्ण तोला १ ड्राम या Sodium Phosphate या Mag Citrate किसी Saline को १ ड्राम की मात्रा मे प्रतिदिन प्रात काल देना चाहिये। मूत्रल इजेक्शन तथा मूत्रल औषधियो के मुख द्वारा प्रयोग से वृक्को मे सोडियम का विलयन कम होता है। मूत्रल औषधि के साथ Prednisolone १०-१५ मिलि दैनिक भी देने से मूत्र अधिक आता है। Spironolactone (Aldactone A) २५ मिलि० दिन मे ४ बार देने से भी मूत्र बहुत खुलकर आता है क्योंकि यह सोडियम को अन्दर रोकने वाले Aldosterone harmone का विरोधी है। इससे मूत्र द्वारा पोटाशियम की निकासी बढती है अत रोगी को फलरस या किसी सब्जी का रस देते रहना चाहिए।

रोग अधिक बढा हुआ हो, यकृत् के सेल अधिक मात्रा मे क्षत और क्षीण हो चुके हो, वे अमोनिया को Urea मे न बदल सकते हो तो प्रोटीन-भोजन बहुत कम देना चाहिए। क्योकि बडी आंत मे जीवाणुओ के प्रभाव से उनमे से जो अमोनिया-जैसे विषैले पदार्थ उत्पन्न होते हैं उनके यकृत् के सेलो के द्वारा निराकरण न कर सकने तथा Portal शिराओ मे अवरोध के होने से Collatreal Anastomotic शिराओ द्वारा भी उनके रक्त मे व्याप्त हो जाने से शारीरिक एव मानसिक दुर्बलता के लक्षण (Ammonia Intoxication) उत्पन्न हो जाते हैं। साधरणत रक्त मे १०० मे ४० से ७० माइक्रोग्राम

अमोनिया होता है। यकृत् रोग में रक्त मे इसकी तथा Indoles और Phenols की मात्रा बढ जाने से एव पोटासियम की कमी से Hepatic coma का रोग होता है। उस अवस्था मे ग्लूकोज़, फलरस, चाय, कॉफी, सब्जियो के रसे आदि पर ही रोगी को रखना चाहिये उसे जल २-३ लिटर तक प्रतिदिन देना चाहिए अथवा पेट मे ट्यूब डालकर उसके द्वारा २० प्र०श० ग्लूकोज-जल दिन मे २ लिटर तक बूंद-बूंद करके देते रहना चाहिए। नमक या सोडियमयुक्त औषध नही देनी चाहिए। आत की स्वच्छता के लिए प्रात: Saline या Milk of Magnesia की एक मात्रा देनी चाहिए। आत्रस्थित जीवाणुओ की प्रोटीनो पर हुई क्रिया से उत्पन्न विषो के कारण न्यूनाधिक मूर्छा या मानसिक अशक्ति का लक्षण हो तो जीवाणु-निराकरण के लिए नेज़ोगैस्ट्रिक ट्यूब द्वारा Neomycin Sulphate या स्ट्रेप्टोमाइसीन दिन मे १-२ ग्राम, दिन मे ४ वार (२ से ५ दिन तक देने से) लाभ हो सकता है (यह औषधि आत मे विशेष विलीन नही होती, अत आठवी मस्तिष्क-नाडी पर इसका दुष्प्रभाव नही होता) Prednisolone १० मिलि. दिन मे ३ वार नेज़ोगैस्ट्रिक ट्यूब द्वारा भी देना चाहिए। इसी प्रकार यकृत् रोग मे Prothrombin की न्यूनता होने से रक्तपित्त रोग की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक है। कोष्ठ मे रक्तभार (Portal Hypertension) के कारण आमाशय या आत से रक्तस्राव होकर मूर्छा के होने का भय रहता है। अत २ सी०सी० विटामिन 'के' (Menadione Sodium bisulphate) के मास द्वारा प्रतिदिन कुछ दिन देने और फिर मुख द्वारा १ मिलिग्राम की Menadione की गोली के दिन मे ३ वार देने से इस उपद्रव को रोका जा सकता है। रक्त मे विद्यमान infection से भी मूर्छा बढती है, अत. तदनुसार किसी Antibiotic का या Tetracyclines का प्रयोग करना चाहिए। रक्त मे विद्यमान Ammonia को नष्ट करने के लिए २५ ग्राम Arginine glutamate (Modumate) को १०% Dextrose के Solution मे ५% मात्रा मे मिलाकर शिरा द्वारा देना चाहिए। इसे १२ घटे वाद फिर दुहरा सकते हैं।

जलोदर होने पर उस रोग मे कही गई चिकित्सा करनी चाहिए अर्थात् Aldosterone Hormone के द्वारा शरीर मे Sodium को रोके रखने वाले प्रभाव को दूर करने के लिए Spironolactone (Aldactone-A) को १०० मिलि० दैनिक मात्रा मे ४ दिन तक, दिन मे 3 वार वाटकर, देना चाहिए। तथा उसके वाद फिर कोई Thiazide औषधि या Mersalyl (२ मिलि०) एक-एक दिन छोडकर मास द्वारा या Thiomerin (२ मिलि०) त्वचा द्वारा देना चाहिए। Chlorothiazide (Diuril) या Hygroton ५०० मिलि० मात्रा मे (दिन मे २ वार) या Hydrochlorothiazide (Hydrodiuril या Esidrex) ५० मिलि० मात्रा मे (दिन मे २ वार) मुख से देने से सोडियम तथा क्लोराइड पर्याप्त मात्रा मे शरीर से निकल जाते है। कुछएक का कथन है कि Prednisolone (३० मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन) १ मास देकर उसके वाद उसे २ महीने १५-२० मिलि० दैनिक मात्रा मे देने से मूत्र खुलकर आता है और आराम प्रतीत होता है। कुछएक का कहना है कि इसके साथ Testosterone Propionate के १०० मिलि० मात्रा मे १ सप्ताह देने से तथा फिर उसके एक-एक दिन छोडकर २-३ सप्ताह देने से भी लाभ होता है। मूत्रल औषधियो से पोटासियम की निकासी अधिक होती है, अत: Pot. Chloride (५ ग्राम) की ४ गोलिया दिन में ३-४ वार देनी चाहिए। सीरम मे Transaminase की मात्रा को देखते हुए Prednisolone की मात्रा का निश्चय किया जा सकता है। Mag. Sulph का Saturated Solution १ औंस ४-४ दिन वाद दे सकते हैं।

Prothrombin की कमी के कारण रक्तपित्त का भय हो और यकृत् के सेल अधिक रुग्ण न हो तो विटामिन 'के' के प्रयोग से उसे रोका जा सकता है। Menaphthone १-३ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार मुख से दे सकते है। Biliary-cirrhosis की उचित चिकित्सा कोई नही है तो भी विटामिन ए, डी तथा के उसे मिलने चाहिए।

यकृद्रोगजनित रक्तस्राव

Haemarrhage from Oesophageal and Gastric Varices

यह एक भयकर उपद्रव है। ५० प्रतिशत के लगभग रोगियो मे घातक होता है इसलिए इसकी चिकित्सा अस्पताल मे ही हो सकती है, जहा रोगी के सिर को नीचा करके लिटाया जाता तथा उसे गर्म रखा जाता है, उसके रक्तभार व नाडी की जाच रखी जाती है। घवराहट को कम करने के लिए उसे Morphine Sulphate ($\frac{1}{6}$ ग्रेन) या Sodium Phenobarbitone ($1\frac{1}{2}$ ग्रेन) का इजेक्शन दे दिया जाता है। रक्तस्राव या तो यकृत्वृद्धि के कारण

आमाशय या भोजन-नाली की शिराओं में से होता है या Peptic Ulcer होने पर उसके तल में विद्यमान किसी Artery में से होता है। दोनों में से किससे हुआ है इस का निर्णय करना कठिन होता है, क्योंकि रक्तस्राव के कारण यकृत् तथा प्लीहा दोनों आकार में छोटे हो जाते है। इसलिए इस रक्तस्राव में पहले सेलाइन देना चाहिए और रक्त मिलने पर रक्तदान (Transfusion) देना चाहिए। इन दोनों चिकित्साओं से रक्तस्राव बन्द हो जाता है। Oesophageal varices का निश्चय Oesophagoscopy से हो जाता है। यदि फिर भी मुख से रक्तस्राव हो तो Pitressin जो कोष्ठगत धमनियों का सकोचक है उसके २० Units को २०० मि०लि० नॉर्मल सेलाइन में मिला बूँद-बूँद करके शिरा द्वारा देना चाहिए। Gastric Cooling से भी लाभ हो सकता है। रक्तस्राव से निकले रक्त-कणों के पचने से उत्पन्न विषों तथा Protein Toxic Products के शिराओं के द्वारा मस्तिष्क में जाने से मूर्छा (Coma) का उपद्रव २४ घण्टे के अन्दर हो सकता है। अत आमाशय में हुए रक्तस्राव को Aspiration द्वारा निकाल लेना चाहिये और आंत में हुए रक्तस्राव को निकालने के लिये Magnesium Sulphate Mixture (४ ड्राम) रोगी को नेज़ोगैस्ट्रिक नली द्वारा देना या पिलाना चाहिए। आंत में विद्यमान रक्त के प्रोटीनों में से बैक्टीरिया-जन्य विषोत्पत्ति रोकने के लिए १ ग्राम Neomycin (४-४ घण्टे पर) Stomach tube द्वारा देना चाहिए।

यकृद्रोगजनित मानसरोग—Hepatic Encephalitis व Coma के लिए प्रोटीन-भोजन व Ammonia का प्रयोग सर्वथा बन्द करके, ५ प्र०श० ग्लूकोज-मिश्रित जल में १ प्र०श० Potassium Chloride Solution मिलाकर, शिरा द्वारा देना चाहिए। या Ryl's tube द्वारा पेट में प्रतिदिन २ लिटर २० प्र०श० ग्लूकोज सोल्यूशन डालना चाहिए। कोई फलरस पर्याप्त मात्रा में देने से भी Potassium की न्यूनता पूर्ण हो जाती है। आक्षेपों तथा स्तम्भ की शान्ति के लिए Phenobarbitone के योग मुख या त्वचा द्वारा देने चाहिए।

बाल-यकृद्वृद्धि

Infantile Cirrhosis of the Liver, Tropical Cirrhosis Intercellular Hepatic Cirrhosis

फैट-पाचक तत्त्व (Lipotropic Factors)

जैसा ऊपर कहा गया है, दूध, अण्डा, मांस आदि जांतव प्रोटीनों के पचन (Hydrolysis) से Cystine तथा Methionine नामक गन्धकयुक्त Amino Acids उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार दूध के Casein नामक प्रोटीन से Choline, (विटामिन बी का एक अंश) उत्पन्न होता है। ये सब द्रव्य यकृत् के सेलों में विद्यमान फैट के पाचन में, अर्थात् उनसे Phospholipid बनाने में, सहायक होते हैं। इनके अतिरिक्त विटामिन बी$_{१२}$ और लिवर एक्सट्रैक्ट तथा यीस्ट भी यकृत् के सेलों में स्थित फैट के पाचन में सहायक होते हैं। इन्हें 'फैटपाचक' या 'Lipotropic Factor' कहते हैं। जान्तव आहारों के अतिरिक्त अन्न के प्रोटीनों में भी ये द्रव्य उत्पन्न होते हैं परन्तु कम मात्रा में। दालों के प्रोटीनों से इनकी उत्पत्ति अन्न की अपेक्षा भी कम होती है, इसीलिए जब किसी व्यक्ति को कार्बोहाइड्रेट या फैट ४०-५० प्रतिशतक से अधिक तथा प्रोटीन १० प्रतिशतक से कम मिलता हो तो उसके यकृत् के सेलों में फैट की मात्रा बढ़ जाती है (Fatty Infiltration की प्रक्रिया होने लगती है)।

कारण

६ मास से २ वर्ष तक की आयु के शिशुओं में कभी-कभी यकृत् आकार में बड़ा तथा कुछ कठोर हो जाता है, इसे बाल-यकृद्वृद्धि का रोग कहते हैं। यह रोग शहरों में होता है तथा मध्यम वर्ग के शाकाहारी परिवारों में अधिकतर पाया जाता है। जब शाकाहारी माता का दूध पीनेवाले बालक को माता का दूध कम मिले, गाय-भैंस का ही दूध अधिक मिले, तो उनमें इस रोग के होने का भय रहता है। क्योंकि यह दूध प्राय जल के द्वारा हलका करके खाँड मिलाकर पिलाया जाता है, अत बालक के आहार में प्रोटीन की मात्रा कम हो जाती है तथा कार्बोहाइड्रेट एवं फैट की मात्रा बढ़ जाती है जिससे उसके यकृत् के सेलों में फैट अधिकाधिक मात्रा में निक्षिप्त हो जाता है [माता के दूध में प्रोटीन २/३ भाग Lactalbumen है जो घुलनशील होता है। १/३ भाग अघुलनशील Caseinogen होता है इसकी फुट्टियां सुपच होती हैं। गाय के दूध के प्रोटीन में १/४ भाग Lactalbumen, ३/४ भाग Caseinogen होता है, उसकी फुट्टियां दुष्पच होती हैं। माता के दूध के फैट के दाने (globules) बहुत छोटे होते हैं, गाय के दूध के ये globules बड़े होते हैं]। इसी प्रकार जिन बालकों को ६ मास की आयु हो जाने पर शीघ्र ही अन्न, खाँड, मसाले आदि अधिक मात्रा में दिये जाते हैं, उनमें भी यकृत् के अन्दर फैट का सचय अधिक मात्रा में होने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यकृत् के सेलों में फैट के भर जाने से वे फूलकर फैल जाते है। जिससे सेलों के

बीच के Sinusoids के तंग हो जाने से सेलो को ऑक्सीजन और पोषक द्रव्य कम मिलते हैं। परिणामत. उनमें क्षीणता या मृत्यु की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। ऐसी अवस्था मे, जब यकृत् के सेलो मे फैट की मात्रा अधिक हो जाती है, यदि बालक को अजीर्ण, अतिसार मलबन्ध के रोग रहे तो वहा पर उत्पन्न किसी विष के या आंत मे विद्यमान किसी जीवाणु-विष (B Coli Infection) के यकृत् मे जाते रहने से उसके सेलो मे मृत्यु की प्रक्रिया और अधिक प्रबलता से होती है। किस विष से यह रोग होता है, इसका निश्चय अभी तक नही हुआ।

विकृति

इस प्रकार इस रोग मे यकृत् के सेलो मे पहले फैट की वृद्धि होती है और फिर उनमें मृत्यु (Necrosis) की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। सेलो के क्षीण होने के साथ-साथ नये सेलो और Lobules का निर्माण भी होने लगता है (Pseudolobulation की प्रक्रिया भी होने लगती है) फिर इन नये बने सेलो मे भी मृत्यु प्रक्रिया होने लगती है। इस प्रकार सेलो के क्षीण होते जाने से सेलो के चारो ओर तथा Lobules के चारो ओर के स्नायुतन्तुओं (Connective Tissue) में वृद्धि हो जाती है (Pericellular एव Perilobular Fibrosis की प्रक्रिया होने लगती है)। बढे हुए सेलो तथा बढे हुए स्नायुतन्तुओं, दोनो मे Lymphocytes भी अधिक मात्रा मे सचित हो जाते हैं। बढे हुए स्नायुतन्तुओ से यकृत् की शिराए (Hepatic Veins) कुछ पूर्ण तथा कुछ अपूर्णतया भिच जाती हैं एव अवरुद्ध हो जाती हैं। इस प्रकार यह रोग भी बडो मे होने वाले Cirrhosis जैसा रोग है। या इसमे Fibrosis की विकृति (Pericellular) भी हो जाती है।

लक्षण

इस रोग की **प्रथम अवस्था** को अर्थात् यकृत्वृद्धि से पहले की अजीर्ण रोग की अवस्था को आन्त्र शोथ (Intestinal Catarh) की अवस्था कहते हैं। यह अवस्था बहुत धीरे-धीरे अज्ञात रूप मे आरम्भ होती है। इस अवस्था मे बालक प्राय भोजन अधिक मात्रा मे लेने लगता है, या उसकी भूख कम हो जाती है। भोजन के भली प्रकार हजम न होने से उसके पेट मे हवा रहती है जिससे उसका पेट अफरा हुआ, या उभरा हुआ दीखता है। उसे प्राय मलबन्ध रहता है अथवा कभी-कभी अतिसार हो जाता है। भोजन के जीर्ण न होने से उसका रग मटियाला सा हो जाता है तथा शरीर कुछ कृश दीखने लगता है। देखने मे बालक मन्द एव उदासीन-सा होता जाता है तथा कभी-कभी उसे हल्का-सा ज्वर भी प्रतीत होता है। परीक्षा करने पर उसका यकृत् अगुलियो को स्पर्श होने लगता है परन्तु मृदु होता है।

इस रोग की **द्वितीय अवस्था** को यकृद्वृद्धि की अवस्था कहते हैं। इस अवस्था मे यकृत् आकार मे पर्याप्त बडा हो जाता है तथा स्पर्श मे कठोर प्रतीत होता है। Portal रक्तवाहिनियो मे रक्तभार बढने से प्लीहा भी कुछ बढ जाती है। बालक का पेट विशेष उभर जाता है। उसे मलबन्ध या अतिसार मे से कोई-सा लक्षण होता है। उसे ज्वर भी रहता है जो विषम होता है। उसकी आखो मे कुछ-कुछ पीलापन झलकता है। Serum की परीक्षा करने पर Vanden Bergh Test Direct अथवा Delayed Positive होता है। मूत्र मात्रा मे कम, अम्लीय तथा पीला (Urobilin से युक्त) होता है। रक्तपरीक्षा करने पर Leucocytosis का लक्षण मिलता है।

इस रोग की **तृतीय अवस्था** को कामलावस्था या जलोदरावस्था या यकृत् के कुछ छोटे एव कठोर हो जाने के कारण यकृत् की कठोरावस्था (Contraction Stage) कहते हैं। इस अवस्था मे कुछ-कुछ जलोदर प्रारम्भ हो जाता है तथा आखो मे कामला का लक्षण हो जाता है। बालक का पेट अधिक उभर जाता है। उस पर की शिराए अधिक स्पष्ट हो जाती है। यकृत् आकार मे कुछ छोटा पर कठोरतर हो जाता है। मल मटियाले रग का तथा दुर्गन्धित होता है। ज्वर लगातार रहने लगता है। इस अवस्था मे बालक कुछ बेसुध-सा होकर (Hepatic Coma मे) पडा रहता है। इस प्रकार तीन-चार मास से लेकर दो वर्ष तक रोग रह सकता है तथा अत मे Cholaemia होकर या किसी उपद्रव के हो जाने से मृत्यु हो जाती है। प्रथम अवस्था तथा द्वितीय अवस्था के प्रारम्भ मे यह रोग अच्छा हो सकता है। तृतीयावस्था मे ठीक नही होता।

चिकित्सा

यदि गर्भावस्था मे माता को यकृत्-रक्षक Amino Acids तथा विटामिन 'बी' दिये जाये तथा यदि शिशु को माता के दूध पर ही पाला जाय तो यकृत्वृद्धि रोग के होने का भय विशेष नही रहता। माता को दूध कम उतरता हो तो डब्बे का Half Cream Milk बिना खाँड के, बालक को पिलाना चाहिए। बालक को अन्नप्राशन कराते समय भी अन्न, खाँड, घृत तथा साधारण आहार-द्रव्यो का प्रयोग

बहुत ही धीरे-धीरे क्रमश. कराना चाहिए, क्योकि कार्बोहाइड्रेट भोजनो व फैट के विदग्ध होते रहने से यह रोग होता है। इस समय बालक को विटामिन 'सी' तथा 'बी' का प्रयोग कराने से इस रोग के होने का भय नही रहता।

यकृत्वृद्धि रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे, अर्थात् अजीर्णावस्था मे, बालक का दूध बन्द करके उसे कुछ दिन दूध के पानी पर रखना चाहिए, इसके साथ जल तथा फलरस भी उचित मात्रा मे देने चाहिए। अतिसार के शान्त हो जाने पर फिर स्नेहरहित दूध के चूर्ण (Glaxo, Cow and Gate, Oster milk या Toned milk) का आहार देना चाहिए तथा Casein Hydrolysate (२-४ छोटे चम्मच) प्रतिदिन देना चाहिए। मलबन्ध के नाश अर्थात् आत कुछ साफ रखने के लिए बालक को प्रात Milk of Magnesia या Alba mixture १ ड्राम देवे Felamine या Cholectin ⅓ गोली के दिन मे तीन बार देने से भी पित्त का प्रवाह बढता है।

इस रोग मे Lipotropes तथा विटामिन बी$_{12}$ के इजेक्शन से भी लाभ होता है। Crude Liver Ex मास द्वारा (सप्ताह मे २ दिन) १ वर्ष तक देते रहना चाहिए। ज्वर तीव्र हो तो Terramycin या Neomycin आधे ग्राम दैनिक का प्रयोग कुछएक दिन तक करने से वह शान्त हो जाता है। श्वास-सम्बन्धी उपद्रवो मे Penicillin का प्रयोग करना चाहिए। अरुचि तथा कामला के लिए Steroid चिकित्सा लाभदायक हो सकती है। जलोदर तथा श्वयथु के लिए मूत्रल औषधियो का प्रयोग करना चाहिए।

पित्ताशय (Gall Bladder) के रोग

पित्ताशय

पित्ताशय ४ इच लम्बा होता है तथा बाहर Serous स्तर या Peritoneum से, मध्य मे Fibrous स्तर, और अन्दर Mucous स्तर से बना है, जिसमे ४५ सी०सी० के लगभग पित्त (बाइल) जमा रहता है। यह यकृत् के दाये खण्ड के निचले पृष्ठ पर ९वी Costal Cartilage के अगले सिरे पर Mammary Line पर होता है। यकृत् मे प्रतिदिन २००० सी०सी० के लगभग बाइल बनकर Hepatic Duct के द्वारा बाहर आता है फिर इसके और (Gall Bladder से निकली नाली) Cystic Duct के मिलने से Common-Bile Duct बन जाती है जो यकृत् मे से आये हुए अथवा Gall Bladder, मे सचित पित्त को ग्रहण्याशय (Duodenum) मे ले जाती है। जब भोजन नही किया जाता तब पित्त पित्ताशय मे सचित होता रहता है जहाँ उसका बहुत-सा जलांश फिर से शरीर मे विलीन हो जाता है जिनसे वह ५-१० गुणा गाढा हो जाता है। जब भोजन विशेषत स्निग्धभोजन आमाशय—निम्न द्वार से आगे बढता है तब इसके विक्षोभ से ग्रहण्याशय की श्लेष्मकला से Cholecystokinin Hormone उत्पन्न होकर रक्त द्वारा पित्ताशय मे पहुँचता है, पित्ताशय मे इसके कारण सकोच उत्पन्न हो जाता है जिससे गाढा हुआ पित्त वहा से ग्रहण्याशय मे आ जाता है। Cystic Artery से, जो दाईं Hepatic Art की एक शाखा है, इसे रक्त आता है। इसकी शिराएँ दाईं Portal Vein मे जा मिलती हैं। इसकी लसीकावाहिनिया Cystic Gland मे आती है जो Cystic तथा Hepatic Ducts के सन्धिस्थान पर है। इसकी Sympathetic तथा Vagus की नाडियाँ Caeliac Plexus से आती हैं तथा Sympathetic नाडियाँ निचले Segments से सम्बन्धित रहती है जिससे Gall Bladder का दर्द पीछे निचली Thoracic Nerves के प्रदेश मे प्रतीत होता है। Vagus की उत्तेजना से इसमे सकोच होता है Sympathetic की उत्तेजना से इसमे से पित्त की निकासी बन्द हो जाती है।

पित्त (Bile)—Bile मुख्यतया Bilirubin, Bile Salts और Cholesterol से बनी है। Bile Salts इसके क्रियाशील तत्त्व है जो उसमे १-२% होते हैं। Cholesterol से Bile acids (Taurocholic, Glycocholic, Desoxycholic) की उत्पत्ति होती और Sodium के साथ मिलकर यकृत् के सेलो मे Sod taurocholate, Sod glycocholate के साल्ट्स की उत्पत्ति होती है। ये ही आत मे पहुँच कर फैट के पाचन मे Steapsin के सहायक होते हैं। आत की झिल्ली के सेलो का Metabolism इन्ही के द्वारा ठीक रहता है। Bile के कारण ही आतो में जीवाणु प्रसरण नही कर सकते। Bile मल प्रवर्तक या रेचक भी होती है। Bile Salts के कारण पित्त अधिक निकलता है। पित्ताशय मे से पित्त तब प्रवृत्त होता है जब फैट का भोजन ग्रहण्याशय मे पहुँचता है और वहाँ से Cholecystokinin नामक एक Hormone निकलकर रक्त द्वारा पित्ताशय मे पहुँचता है।

पित्ताश्मरी

Choledocholithiasis, Gallstones, Biliary Calculus

कारण

पित्ताश्मरी रोग पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे अधिक होता

है। उनमे भी ४०-४५ वर्ष की स्थूल शरीर की 30 प्र०श० के लगभग स्त्रियो मे जो कार्बोहाइड्रेट तथा फैट का भोजन अधिक मात्रा मे लेती हैं तथा जिन्हे वाल वच्चे भी हो चुके होते हैं, अधिक होता है(अर्थात् fat, fertile females, of forty मे होता है) १५ प्र०श० के लगभग इस आयु के पुरुषो मे भी होता है। इनके पित्ताशय मे पित्ताश्मरिया क्यो उत्पन्न हो जाती हैं इसके ठीक-ठीक कारण का अव तक पता नही चला, पर इतना कहा जा सकता है कि जव पित्ताशय मे पित्त अधिक देर तक रुका रहे तथा वहाँ थोडा गाढा होने के स्थान पर अर्थात् केवल ५-१० गुणा गाढ़ा होने के स्थान पर और भी अधिक गाढा हो जाए तथा उसमे जीवाणु सक्रमण हो जाए तव पथरी वनने की गुजायश रहती है। वैठे रहने मे, व्यायाम न करने मे, स्थूल व्यक्तियो मे भी तथा स्त्रियो मे गर्भ स्थिति के काल मे पित्ताशय मे पित्त अधिक रुका रहता है एव अधिक गाढा हो जाया करता है। अधिक गाढा हुआ पित्त पित्ताशय की श्लेष्मकला के लिए विक्षोभक एव पित्ताशय शोथ का कारण हो जाता है, जिसमे उसके अन्दर मे श्लेष्मस्राव (Exudation) अधिक मात्रा मे निकलने लगता है। इस श्लेष्मस्राव के Leucocytes, Fibrin तथा झडे हुए Epithelium के सेलो के साथ मिलने से छोटे-छोटे श्लेष्म कण (Masses of Exudation) वन जाते हैं जो पथरियो के लिये न्यूक्लियस का काम करते हैं। अव यदि यकृत् के रुग्ण होने के कारण उसमे पित्त का निर्माण ठीक-ठीक न हो अर्थात् उसमे Bile Acids या Bile Salts (९%) तथा Fatty Acids (१२%) की कि जिनके कारण Cholesterol (·०६%) उसमे घुला रहता है, कम उत्पत्ति हो या Cholesterol की मात्रा ही ज्यादा हो तो पित्ताशय मे Cholesterol नीचे वैठने लगता है, इन श्लेष्म कणो के चारो ओर इसकी तह वैठ जाती है। इसके ऊपर फिर कैल्सियम के Bilirubin (५%) के साथ मिलने से वने Calcium Bilirubinate की तह वैठ जाती है। Cal. Carbonate का भी इनमे मिश्रण होता है। इस प्रकार वारी-वारी से इन दोनो द्रव्यो की तह के वैठ जाने से छोटी-छोटी पीले रग की मिश्रित पित्ताश्मरियाँ (Mixed gallstones) वन जाती है। यदि पित्ताशय की श्लेष्म-कला मे सक्रमण जनित शोथ हो जो आत मे से आये Eschirichia Coli, Salmonilla Typhi Streptococci, Staphylococci के कारण होता है अर्थात् पित्ताशय शोथ (Cholecystitis) रोग हो जिससे उसमे श्लेष्म स्राव की मात्रा अधिक उत्पन्न हो और वह Bile Salts को विलीन करले तो भी Cholesterol के वैठ जाने से पित्ताश्मरियाँ वन जाती है। इस प्रकार पित्ताश्मरियाँ, यकृत् और पित्ताशय के रुग्ण होने के कारण होती प्रतीत होती है। सम्भव है रक्त मे Cholesterol की अधिकता इस रोग का कारण है और ऐसी अवस्था मे Bile मे भी उसकी वृद्धि हो जाती है। गर्भिणी मे रक्त के अन्दर Cholesterol की वृद्धि होना स्वाभाविक है। मधुमेह मे तथा Hypercholesterolaemia मे भी उसकी वृद्धि होती है इन अवस्थाओ मे पित्ताश्मरी हो सकती है। पित्त मे Bilerubin की मात्रा अधिक हो अर्थात् शरीर मे रक्त-कण अधिक टूट रहे हो तव भी पित्ताश्मरी वन सकती है। Cholesterol प्रधान अश्मरिया भी कभी-कभी होती हैं (Soft stones)

पित्ताश्मरी के लक्षण

जव तक पित्ताश्मरिया पित्ताशय मे रुकी रहती है तव तक इन्हे शान्त अश्मरिया या Silent stones कहते है, पर क्योकि इनके कारण पित्ताशय मे विक्षोभ रहता है तथा विक्षोभ के कारण न्यूनाधिक शोथ रहता है, इसलिये पित्ताशय शोथ के कारण उत्पन्न होने वाले लक्षण रहते हैं। इस पित्ताशय शोथ मे प्राय करके आमाशय सम्वन्धी लक्षण अर्थात् अजीर्ण के लक्षण रहते है, इन्हे पित्ताशय सम्वन्धी अजीर्ण (Gall Bladder Dyspepsia) कहते हैं। क्योकि इन दोनो आशयो को ही Vagus से तथा ८वे, ९वे Segment से निकली Sympathetic नाडिया (Great Splanchnic तथा Caeliac ganglion के द्वारा) आती हैं, इसलिये पित्ताशय का कष्ट आमाशय मे प्रक्षिप्त (Reflex) हुआ प्रतीत होता है। इस प्रकार भोजन करने के कुछ काल वाद पेट मे भारीपन तथा आध्मान या अफारे (Flatulence) के लक्षण हो जाते हैं। आमाशय प्रदेश (Epigastrium) मे या उसके दाई ओर पेट के ऊपर के भाग मे हलका-हलका दर्द उठने लगता है, खट्टे डकार आते हैं। भोजन के वाद जव पित्ताशय मे सकोच कर्म (कन्ट्रेक्शन) होकर उसमे से पित्त निकलने लगता है तव यह दर्द तथा अन्य लक्षण विशेष होते हैं, विशेषत अधिक भोजन करने या घी, तेल आदि के पक्वान लेने के वाद यह दर्द होता है।

जव कोई पित्ताश्मरी पित्ताशय ग्रीवा (Cystic Duct) मे फस जाती है, तव पित्ताश्मरी शूल (Biliary Colic) का लक्षण उत्पन्न होता है। यदि मार्ग-रोध चिरस्थायी हो तो पित्ताशय, श्लेष्म द्रव के भर जाने से फूलकर वडा हो जाता है, जिसे Hydrops कहते है।

जव पित्ताश्मरी Common Bile Duct मे प्रवेश करके रुक जाती है तो उस नाली पर इसका दवाव पडने से

अश्मरी शूल (Biliary Colic) का दौरा आरम्भ होता है जिसमे शूल आमाशय प्रदेश मे प्रतीत होता है। जब यह लचकीली नाली फैल जाती है तब यह शूल का वेग समाप्त हो जाता है। इसमे अश्मरी के रुकने से इसके अन्दर श्लैष्मिक शोथ (Catarrhal Cholangitis) हो जाने के कारण न्यूनाधिक रूप मे कामला का लक्षण भी हो जाता है। शूल के १-२ दिन के अन्दर कामला प्रकट हो तो इसी का सन्देह करना चाहिये। यह पित्ताश्मरी नीचे उतरकर इस नाली के निचले सिरे (अर्थात् Ampulla of Vater) मे, जो एक तग स्थान होता है, रुक सकती है, तब भी Cholangitis के कारण कामला के होने का लक्षण होता है। पर यह कामला पित्त श्मरी शूल के वेग के होने के वाद आरम्भ हुई होती है। Common Bile-duct मे अश्मरी के कारण होने वाली कामला को अवरोध जनिता (Obstructive) कामला कहते है। पित्ताश्मरी का पता Plain X-Ray से भी १०-१५% मे लग जाता है जिसमे हलकी गोलाकृति धुधली सी छाया दीखती है। Renal stone की छाया घनी होती हे तथा विषमाकृति होती है।

पित्ताश्मरी शूल

Biliary Colic, Gallstone Colic, Chronic Calculus Cholecystitis

अधिक मात्रा मे भोजन लेने या भारी भोजन लेने से कुछ घण्टे वाद या किसी सवारी मे जाने के वाद सायकाल या रात्रि के समय पित्ताश्मरी का शूल सहसा आरम्भ हुआ करता है। तथा अश्मरी के गाल ब्लैडर की ग्रीवा मे रुक जाने या Cystic या Common Bile duct या Ampulla मे रुक जाने पर होता है या तो पित्ताशय मे उत्पन्न सकोच (Spasm) के कारण होता है या Fibro Elastic Ducts के तन जाने से होता हे तथा Ampulla मे उसके अन्दर विद्यमान Smooth-Muscle के स्तम्भ (कन्ट्रेकशन) से उत्पन्न होता है। यह शूल या चुभने वाला दर्द ठहर-ठहर के या Intermittent नही निरन्तर Constant रहता है पेट के ऊपर के दाये भाग मे मध्य रेखा के पास के प्रदेश मे होता है तथा इतने तीव्र रूप का होता हे कि कष्ट मे रोगी अत्यधिक व्याकुल और बेचैन दीखता है। वह दर्द से दोहरा हो-हो जाता हे, चीखता है, और वेहाल होकर इधर-उधर फिरता है (Appendicitis की दर्द मे रोगी निश्चल पडा रहता है) पित्ताशय तथा तत्सम्बन्धी पित्तवाहिनियो से निकली सज्ञावाही नाडियाँ Splanchnic Nerves के द्वारा ७-१० Thoracic segments के Posterior roots मे जाती हैं। इन Segments से निकली सज्ञावाही नाडियाँ त्वचा के जिस प्रदेश मे जाती हैं वहाँ भी यह दर्द प्रक्षिप्त हो जाता है। इसी कारण पित्ताशय का दर्द Scapula के प्रदेश से ऊपर कधे तक जाता प्रतीत होता है। रोगी के चेहरे पर पसीना आ जाता है। उसका तापमान नॉर्मल से कम होता है, कभी-कभी शीत सा कप भी होता है। नाडी तीव्र तथा निर्बल होती हे। पित्ताशय शूल के कारण रोगी को वमन होती हे जिसमे लेसदार पानी तथा कुछ बाइल आती है तथा वमन से दर्द मे कुछ-कुछ कमी भी प्रतीत होती है वमन से अनुमान हो जाता हे कि पथरी Cystic या Common Bile Duct मे पहुँच गई है। यह दर्द बहुत देर तक नही रहता एक दो घटा रहकर जिस प्रकार सहसा आरम्भ हुआ था, उसी प्रकार सहसा शान्त हो जाता हे। इस प्रकार यह दर्द Cystic duct मे अश्मरी के अवरोध को सूचित करता है। इसके वाद कुछएक मे यह दर्द फिर कुछ-कुछ घटो वाद उठता है, अथवा महीनो और वर्षो के अन्तर के वाद भी उठ जाता है। इस वेग के वाद यदि हलकी कामला हो जाए, मूत्र भी Bilirubin के कारण गहरे रग का आने लगे तो समझना चाहिए कि Common Bile duct मे अश्मरी के कारण शोथ हो गया हे। वृक्क शूल (Renal Colic) पीछे पीठ पर से शुरू होकर नीचे जननेन्द्रिय अथवा उसके अन्दर की ओर जाता है। उसमे वार-वार आने वाले मूत्र मे रक्त के होने का लक्षण भी होता हे। आन्त्र शूल नाभि प्रदेश पर होता हे। तथा उसमे पेट मे आध्मान होता है हृदय शूल (Coronary Thrombosis) stermun के पीछे होता है, ऊपर ग्रीवा या वाहु की दिशा मे जाता है। तथा उसमे श्वास कृच्छ्रता (Dyspnoea) का लक्षण भी होता है तथा ६० वर्ष की आयु के पुरुषो मे ही होता है। आमाशय या मलाशय के कैन्सर के कारण Metastatic कैन्सर हो तो भी कामला का लक्षण होता है। ऐसे ही Ampulla, Common duct या Pancreas मे कैन्सर हो तो भी कामला का रोग होता है इसे अवरोधजनित कामला (Obstructive Jaundice) कहते है। इस अवस्था मे Serum Alkaline Phosphatase बढा हुआ होता है। Bromsulphthalein-retension का लक्षण होता है तथा Prothrombin time दीर्घ होता है, Common Bile duct मे अवरोध बना ही रहे तो स्पष्ट है कि Biliary Cirrhosis का रोग भी हो जाता है और यकृत् फेल होने लगता है। पित्त प्रणालियो मे शोथ के रहने से तथा उसमे Escherichiacoli, Aerobacter Aerogenes, Proteous Vulgaris, Streptococcus Faecalis के सक्रमण के कारण Cholangitis या पित्त प्रणाली शोथ का

रोग भी हो जाता है, पित्ताश्मरी के उपद्रव रूप मे ५-१०% रोगियो मे कैन्सर का उपद्रव हो सकता है ।

पित्ताशय शोथ, पित्ताशय शूल (Cholecystitis)

जैसा ऊपर कहा गया है अधिक भारी भोजन करने वाली आधी उमर से ऊपर की स्थूल शरीर की, बैठे रहने वाली स्त्रियों मे पित्ताशयगत पित्त का प्रवाह कम होने मे वह अधिक गाढा हो जाता है । जिससे वह पित्ताशय की श्लेष्मकला के लिए विक्षोभक हो जाता है । इस विक्षोभ से इसमे न्यूनाधिक-सा शोथ बना रहता है अर्थात् Oedema और Congestion के लक्षण होते हैं । ऐसी अवस्था मे यदि तीव्र अजीर्ण (Acute Gastritis) होकर जैसे किसी विषैले या भारी भोजन खाये जाने पर या तीव्र ज्वरो में होता है, आमाशय मे एसिड या पाचकरस सर्वथा क्षीण हो जाए तो क्षुद्रान्त्र के निचले भाग मे विद्यमान Escherichia Coli ऊपर ग्रहण्याशय (Duodenum) तक आकर वहा से पित्त मार्ग या Lymphatics द्वारा पित्ताशय मे भी संक्रमण कर जाते है। इस प्रकार पित्ताशय मे उनका सक्रमण होकर पित्ताशय शोथ का रोग हो जाता है । सम्भव है कि गले, दात आदि मे से रक्त के द्वारा विशेषत. Non-Haemolytic Streptococci और कभी-कभी Staphylococcus आदि का सक्रमण भी वहा पर हो जाता है । Typhoid मे भी पित्ताशय मे सक्रमण हो सकता है, तो भी बाइल का गाढा हो जाना इस रोग का प्रधान कारण है। पित्ताशय प्रणाली (Cystic duct) का स्रोत तग होता है, दीवार मोटी होती है, उसमे स्वल्पसा भी शोथ हो जाए तो उसका स्रोत न्यूनाधिक बन्द हो जाता है । Appendix के समान इसके भी मुख के तग हो जाने पर इसमे शोथ होता है। ऐसी अवस्था मे इसके अन्दर विद्यमान Bile अधिक गाढा हो तो उसके Bile Salts तथा Bile acids के विक्षोभक होने से पित्ताशय सूज जाता है। जीवाणु इसमे गौण कारण प्रतीत होते हैं । चिरस्थायी पित्ताश्मरी का होना इस रोग का प्रधान कारण प्रतीत होता है ।

तीव्र पित्ताशय शोथ

इस प्रकार चिरस्थायी पित्ताशय शोथ के रहने पर कभी-कभी जीवाणु सक्रमण के द्वारा यह रोग जब तीव्र रूप मे होता है, जैसाकि ४०-५० वर्ष की स्त्रियो मे विशेषत होता है, इसे तीव्र पित्ताशय शोथ (Acute-cholecystitis) कहते हैं। जब यह तीव्र रूप भी मृदु रूप मे हो अर्थात् पित्ताशय शोथ मृदु हो तो इसे तीव्र श्लैष्मिक पित्ताशय शोथ (Acute Catarrhal Cholecystitis) कहा जाता है, जो Duct मे अश्मरी के अड जाने से होता है तथा जिसमे इसकी दीवार में तीव्र शोथ होता हे । इसमे पित्ताशय प्रदेश मे दर्द के साथ अरुचि और वमन के लक्षण होते हैं । पित्ताशय मे शोथ तीव्र रूप मे हो तो पैत्तिक (Suppurative) तथा वातप्रधान (Gangrenous) पित्ताशय शोथ (Cholecystitis) का रोग भी हो जाता है । इन अवस्थाओ मे, जैसे ऊपर कहा गया है, बहुधा पित्ताशय मे अश्मरी भी होती है । पित्ताशय प्रदेश पर विशेषत रात को तीव्रशूल होता है जिसमे अरुचि (९०%), वमन (५०-७५%) अफारे के लक्षणो के अतिरिक्त शीत से आरम्भ होने वाला ज्वर तथा नाडी की तीव्रता तथा Polymorph Leucocytosis के लक्षण भी होते हैं । दर्द पीछे Scapula के निचले कोण तक जाता लगता है । Serum bilirubin २ ५ मिलि० प्र०श० से ऊपर हो जाय जैसाकि Bile passage मे विस्तृत शोथ होने पर होता है तो इसमे हलकी सी कामला भी रहती है; और पित्ताशय पर स्पर्शाक्षमता का लक्षण विशेष होता है । रोगी जो उथले सास ले रहा होता है शिथिल सा होकर पडा रहता है । पूयभाव न हो अर्थात् Leucocytosis २० हजार से कम हो तो यह रोग शीघ्र ठीक हो जाता है, यद्यपि दुबारा इसके होने या Chronic हो जाने का भय रहता है। इस रोग का Appendicitis से भेद करना चाहिए । X-Ray से इसमे ⅓ रोगियो मे Gall Stone मिलता है । I V Cholecystography से भी इसका निश्चय हो जाता है । इसमे Serum transaminases भी बढे होते हैं विशेषत. S G P T बढा हुआ होता है ।

जीर्ण पित्ताशय शोथ (Chronic Cholecystitis) जो प्रारम्भ से ही जीर्ण रूप मे आरम्भ होता है या तीव्र शोथ के उपद्रव के रूप मे होता है, अधिक सुलभ रोग है । इस अवस्था मे शोथ के चिरकाल तक रहने से श्लेष्मकला तथा मासमय स्तर मे Fibrosis या स्नायु तन्तु वृद्धि की प्रक्रिया हो जाती है, जिससे पित्ताशय कठोर और कुछ स्थूल हो जाता है, उसमे पित्ताश्मरिया भी प्राय होती हैं। Gall Stone तथा B Typhosus और Salmonella paratyphi इसके कारण कहे जाते है ।

लक्षण

चिरस्थायी पित्ताशय शोथ मे चिरस्थायी अजीर्ण (Gallbladder Dyspepsia) के लक्षण समय-समय पर होते रहते है, जैसे स्निग्ध तथा भारी भोजन लिये जाने के कुछ घटो बाद आमाशय प्रदेश (Epigastrium) तथा

दाईं पसलियों के नीचे के प्रदेश मे, ऊपर तथा पीछे की तरफ जाने वाली दर्द के होने, आमाशय प्रदेश पर आध्मान (Flatulence) के रहने और अरुचि (Nausea) कभी-कभी वमन, सादे डकारो या अम्लोद्गार (Heartburn) आदि के लक्षण होते है। Pepticulcer से इसका भेद करना चाहिए। इस रोग का शूल भोजन लेने या क्षारौषधि लेने से शान्त नहीं होता। इस रोग की वेदना पीछे Scapula के कोण तक जाती लगती है। तथा वमन हो जाने पर भी इस रोग का शूल शान्त नही होता। इस रोग का शूल स्निग्ध आहार द्रव्यो के वन्द करने से वन्द हो जाता है। यह शूल ४५ वर्ष की आयु के बाद आरम्भ होता है जबकि Ulcer का शूल छोटी आयु मे शुरू हो जाता है पित्ताशय पर स्पर्शाक्षमता का लक्षण भी होता है अर्थात् दाईं पसलियो के नीचे अन्त श्वास के अन्त मे दवाने से रोगी को तीव्र वेदना होती है। X-Ray परीक्षा से अश्मरी का चिह्न भी मिलता है। पित्ताशय के रोग मे कष्ट आमाशय मे प्रतीत होता है क्योंकि दोनो की नाडिया एक ही स्थान से आती है (९वी Dorsal Segment) साधारणतया ज्वर नही होता पर कभी-कभी जब शूल का वेग होता है तब ९९–१०० फा० के लगभग सायंकालिक तापमान भी होता है। यदि पित्ताश्मरी भी हो या मृदु यकृच्छोथ Hepatitis हो तो कामला भी हो सकती है। पित्ताशय कैन्सर से इस रोग का भेद करना चाहिए। Cholic acid के विक्षोभक होने से जीर्ण पित्ताशय शोथ मे पित्ताशय के अन्दर Adeno Carcinoma भी कभी-कभी साठ वर्ष से ऊपर की आयु मे हो जाता है परन्तु वह रोग असाध्य है। उसमे पित्ताशय स्पर्श मे मृदु न रहकर विषम तथा कुछ कठोर प्रतीत होता है। उसमे क्षुधानाश-कृशता-निर्बलता-कामला-वेदना आदि लक्षण होते है।

पित्ताशय परीक्षा (Cholecystography)

रात को चिकनाई से रहित हलके खाने के बाद telepaque (एक Iodine वाले कम्पौण्ड) दे दिया जाता है जो Bile के साथ पित्ताशय मे चला जाता है। इसके देने के १४ घ० बाद सवेरे Radiology करने पर पित्ताशय की छाया फिल्म मे आ जाती है। तब रोगी को Fat वाला भोजन जैसे ½ औस मक्खन टोस्ट तथा कुछ दूध दिया जाता है और इसके १ घन्टे बाद जब पित्ताशय मे से कुछ बाइल निकल जाता है फिर उसकी फिल्म ली जाती है। पित्ताशय की जाच करने से अर्थात् Gall stones की छाया को देखकर पित्ताशय शोथ का पता चल जाता है।

तीव्र पित्ताशय शोथ की चिकित्सा

तीव्र पित्ताशय शोथ मे रोगी को शैय्याशायी रखकर दर्द वाले प्रदेश पर गीला तथा गर्म सेक देना चाहिए या Kaolin की पुल्टिस बाध देना चाहिए, या Dry Cups लगा देने मे लाभ होता है। रोगी को केवल घूट-घूट जल पर ही रखना चाहिए या शिरा द्वारा ग्लूकोज़ सेलाइन दें। वमन होती हो तो भी सेलाइन मे ५ प्र०श० ग्लूकोज मिला शिरा द्वारा देना चाहिए। वमन और अफारे के लिये नाक से Nasogastric नली डालकर Suction का कर्म करना चाहिये। दर्द के कम हो जाने पर स्वल्प मात्रा मे दूध (Skimmed) आरम्भ करके क्रमश. आहार बढाना चाहिए। शोथ के लिए Sulphadiazine की २ ग्राम की प्रथम मात्रा देकर फिर उसे १-१ ग्राम की मात्रा मे ६-६ घटे पर ५-७ दिन देना चाहिए। परन्तु Sulpha औषधि पित्त द्वारा मुख्यतया वहाँ तक पहुंचती है और यदि यकृत् रुग्ण हो या Cytic duct मे अवरोध हो तो यह वहा कम पहुच पाती है। ऐसी अवस्था मे Penicillin ४-६ लाख Units की मात्रा दिन मे दो बार तथा Streptomycin ½ ग्राम प्रतिदिन दो बार ४ दिन दें। ये औषधिया भी पित्ताशय मे रक्त द्वारा न जाकर पित्त द्वारा ही पहुचती हैं तो भी इनसे कुछ लाभ तो होता है। Pyrrolidinomethyl Tetracycline (Reverin Hoechst) १ अम्पूल को १० सी०सी० जल मे शिरा द्वारा देने से भी लाभ होता है। Terramycin १०० से २०० मिलि० मात्रा मे ६-६ घटे बाद मास द्वारा देने से विशेष लाभ होता है। Ampicillin के कैप्सूल के १ ग्राम दैनिक मात्रा मे देने से भी लाभ होता है। Tetracycline १ ग्राम के प्रतिदिन मुख द्वारा देने से Bile मे का Infection नष्ट हो जाता है। इस उद्देश्य से Achromycin Cap या Hostacycline Cap या Tetracycline Cap दिये जा सकते हैं वमन के लिए ग्लूकोज़ सेलाइन शिरा द्वारा दे। Hexamine भी पित्ताशय मे विद्यमान जीवाणु सक्रमण को शान्त करता है। इसकी ६० से १०० ग्रेन की दैनिक मात्रा समान Sodium Bicarbonate के साथ प्रात, दोपहर तथा रात को बाटकर दे देनी चाहिए। इसके दे देने से पहले दूध दे दिया जाय और बाद मे कुछ घण्टो तक दूध या आहार न दिया जाए तो क्योंकि यह भी पित्त के द्वारा पित्ताशय पर प्रभाव करता है, पित्त के शीघ्र न निकलने से औषधि का प्रभाव पित्ताशय पर देर तक रहता है। कुछएक सप्ताह तक इसका प्रयोग करने से पूर्ण लाभ होता है। इस चिकित्सा के दौरान मे देखते रहना चाहिए कि मूत्र अम्लीय न हो जाए। तीव्र शूल को शान्त करने के लिए

Pethidine (Meperidine या Demerol) ५०-१०० मिलि का प्रयोग करना चाहिए। यह Sphincter of oddi या Common bileduct के निचले सिरे का सकोचक न हो अत Atropine २५ मिलि० भी इसके साथ दें अथवा Phenobarbitone Sodium डेढ ग्रेन की मात्रा मे त्वचा द्वारा ६-६ घटे पर दे सकते हैं। या Anticholinergic औषधि Belladonna मुख से देवें या केवल Atropine १ मिलि० त्वचा द्वारा दे। तीव्र रूप मे रोग हो तो Cholecystectomy से ठीक हो जाता है अश्मरी विशेष न हो तो Antibiotic चिकित्सा से यह रोग ठीक हो जाता है जितना रोग पुराना हो तथा जितनी आयु वड़ी हो उतना ही यह रोग कष्ट साध्य होता है।

अवरोध जनित कामला Obstructive Jaundice अश्मरी के कारण हो तो वार वार पित्तशूल के वेग होते हो, पित्त प्रणालियो में शोथ Cholangitis भी हो तो Cholecystectomy का शल्य कर्म करना आवश्यक हो जाता है। उससे पहले Vit K देकर Prothrombin Time ठीक कर लेना चाहिए। Glycogen तथा Protein की कमी को तथा विटामिन्स की कमी को भी हटाना चाहिए तथा Cholangitis के लिए Antibiotics का प्रयोग करना चाहिए। अग्न्याशय (Pancreas) के शिर पर कैंसर होने पर भी अवरोध जनित कामला का लक्षण होता है तब आमाशय प्रदेश पर शूल भी होता है जो पीठ की ओर जाने लगता है तथा लेटने से वढता है आगे झुकने से कम हो जाता है, भार घटता जाता है। भारी अन्नारुचि का लक्षण रहता है, यकृत् आकार मे वढा हुआ होता है।

चिरस्थायी पित्ताशय शोथ (Ch Cholecystitis) की चिकित्सा

यह रोग विना पित्ताश्मरी के हो तो औषधि-चिकित्सा से ठीक हो सकता है। अश्मरिया भी हो तो केवल औषधियो के प्रयोग से ठीक नही होता, तथापि यदि रोगी शल्य कर्म के योग्य न हो तो निम्नलिखित चिकित्सा से कुछ लाभ अवश्य होता है।

व्यायाम चिकित्सा

पित्ताशय मे विद्यमान पित्त की स्थिरता (Stasis) को दूर करने के लिए मृदुव्यायाम तथा पेट सम्वन्धी आसन लाभदायक होते हैं।

भोजन चिकित्सा—

इस वात मे कितनी सच्चाई है, यह तो निश्चय से नही कहा जा सकता, परन्तु वहुधा स्नेहहीन (Cholesterol-Free) भोजन से पित्ताशय के रोगी को लाभ प्रतीत होता है। घी, तेल मे तैयार किये गये भोजनो का परित्याग कर देने से तो अवश्य ही लाभ प्रतीत होता हैं। मास, अण्डे, चौक लेट आदि के स्नेह भी उसके लिए ठीक नही होते। भोजन स्वल्प मात्रा मे ही लेना चाहिये जैतून तेल, वादाम रोगन तथा स्वल्प मात्रा मे घृत, भोजन से एक आधा घन्टे पहले चौथाई या आधा औस की मात्रा मे दिन मे दो तीन वार लेने से तो विशेष लाभ प्रतीत होता है। ये पित्ताशयगत पित्त को वाहर निकालने का कार्य करते है। परन्तु भोजन मे स्नेह का प्रयोग करने से वह दुष्पच हो जाता हे एव पेट मे हवा करने का कारण वन जाता है। भोजन दिन मे चार-पाच वार लिया जा सकता है। परन्तु हर वार उसकी मात्रा कम कर देनी चाहिए। क्योकि वहुधा इस रोगी मे मन्दाग्नि (Hypochlorhydria) या तीक्ष्णाग्नि (Hyperchlorhydria) का लक्षण होता है। इसीलिए इस रोग मे मद्य, तीक्ष्ण मसाले, सिरके आदि भी हानिकारक होते हैं, जो कन्द जमीन के अन्दर उत्पन्न होते है वे भी हवा करने वाले होने से इस रोग मे हानिकारक हो जाते हैं। प्रारम्भ मे तो इस रोग मे चिकनाई रहित दूध, दही, अर्थात् मट्ठा अधिक उपयुक्त रहते हैं। ६०-८० ग्रा० प्रोटीन प्रतिदिन रोगी को मिलना चाहिए, क्योकि कार्वोहाइड्रेट भोजन की अपेक्षा प्रोटीन भोजन से Bile Salts की उत्पत्ति अधिक होती है जो कि पित्तप्रवर्तक (Choleretic) होते हैं फिर धीरे-धीरे उवली हुई सब्जियां, फलरस, आदि और खुष्क रोटी किसी उवली हुई सब्जी के साथ देनी चाहिए कार्वोहाइड्रेट भोजन रोगी को ३०० से ४०० ग्राम प्रतिदिन मिलना चाहिए। धीरे-धीरे घृत या मक्खन भी थोडी-थोडी मात्रा मे भोजन मे मिलाया जा सकता है।

औषध चिकित्सा

Ox bile या Bile acids पित्तप्रवर्तक (Hydrocholeretic) होते है। एतदर्थ सुखाया वाइल या Dehydrated ox bile या Bile Extract का ५ ग्रेन की मात्रा मे कैपमूल के अन्दर वन्द करके दिन मे तीन वार प्रयोग किया जाता है। परन्तु Bile Salts इस रोग के लिए विशेष उपयोगी पाये गए हैं जिनकी उत्पत्ति के लिए प्रोटीन भोजन अधिक उपयोगी होते है। Felamine की गोली जोकि Hexamine Glycocholate है (Cholicacid तथा Hexamine) ५ ग्रेन की मात्रा मे दिन मे तीन वार दी जाती है।

स्तम्भ शामक चिकित्सा

Antispasmodic औपधियो जैसे Tr Belladonna १० वूद के भोजन से पहले दिन मे ३ वार देने से

या इसके और Phenobarbitone की हलकी मात्रा से बनी १ गोली के भोजन से पहले देने से या Atropine के १/१५० ग्रेन मात्रा में मुख या त्वचा द्वारा लेने से भी इस दर्द में आराम रहता है।

कुछ एक रेचक औषधियां जैसे Alba Mist १ औंस या Magnesium Sulph १-२ ड्राम की मात्रा में अथवा Sodium Phosphate (Disodium-Phosphate) १-२ ड्राम की मात्रा में १-२ औंस जल में प्रातःकाल खाली पेट देने से तथा थोड़ी देर दायें पार्श्व पर लेट जाने से पित्ताशय से पित्त का प्रवाह विशेष रूप से होने लगता है। Potassium के Salts जैसे Bicarbonate या Citrate भी जल के साथ प्रातः सायं देने से पित्त के प्रवर्तक होते हैं। Sodium Salicylate अथवा Hexamine १० से १५ ग्रेन की मात्रा में बराबर या दो गुना Sodium-Bicarbonate के साथ दिन में दो तीन बार देने से न केवल पित्ताशय में जीवाणु नाश (Antisepsis) ही होता है अपितु उसमें से पित्त का प्रवाह भी अधिक मात्रा में होता है। जैतून तैल ½ औंस प्रातः तथा सायं भोजन से ½ घण्टा पहले देने से भी पित्त प्रवाह बढ़ता है। Bile Salts, Cascara, Phenolphthalein (Veracolate Warner, Bicholate Martin-Harris) से बनी १ गोली सायंकाल देने से भी यह लाभ होता है।

जब Biliary Colic पित्ताश्मरी शूल के होने पर रोगी को एक पाइंट गर्म जल में १ ड्राम Sodium Bicarbonate डालकर थोड़ा-थोड़ा पिलाने, गर्म पानी के टब में बिठाने या Tr. Belladonna २०-३० बून्द के पिलाने या हो तो यह रोग औषध से ठीक नहीं होता तब यह शस्त्र साध्य (Cholecystectomy) हो जाता है। यह शस्त्रकर्म बहुत कम घातक है।

आयुर्वेद में यकृदुदर—यकृद्दाल्युदर—यकृद्वृद्धि

चरक के मत में अतिविक्षोभक गुण भोजनों के दुष्प्रभाव से या शरीर को कृश करने वाले भावों से यकृत् में वृद्धि हो जाती है। सुश्रुत का कहना है कि विदाही अर्थात् पित्त प्रकोप के अत्युष्ण गुण तथा अतिकफ वर्धक या अभिष्यन्दि भोजनों के सेवन से रुधिर और कफ (Lymph) दूषित हो जाते हैं। इन दूषित हुए रुधिर और कफ के कारण यकृत् के अन्दर वायु का प्रकोप होने से उसके सेलों में रूक्षता, खरता, लघुता आदि होकर क्षीणता के लक्षण होते हैं। कफ के प्रकोप के कारण यकृत् के सेलों तथा स्नायु तन्तु में गुरुता, स्थिरता आदि अति वृद्धि के लक्षण होते हैं। इस प्रकार यकृत् आकार में बडा तथा कुछ कठोर हो जाता है। शरीर में मन्द-मन्द पित्त प्रकोप के कारण मृदु ज्वर भी हो जाता है।

(सु०।नि०।७। १३-१४ श्लो० तथा च०।चि०।१३। श्लो० ३५-३८)

चरक तथा सुश्रुत दोनों में इस रोग का वर्णन करते हुए दुर्बलता, कृशता, पाण्डुता, अग्निनाश, अन्नारुचि, अपचन, वमन, पेट पर नील शिराओं के प्रादुर्भाव, मन्दज्वर आदि लक्षणों का उल्लेख किया है।

(सु०।नि०।७। तथा च०। चि०।१३)

यकृद्वृद्धि चिकित्सा के लिए गोमूत्र साधित हरीतकी का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणतः सवा सेर हरीतकी को पाच सेर गोमूत्र में पकाकर जलभाग के लगभग उड जाने पर उन्हें गुठली रहित करके पीसकर उसमें तीन लवण, त्रिकटु, यवक्षार, अपामार्ग, और टङ्कण के क्षार, अजवायन २-२ तो०, हींग १ तो० मिलाकर निबूरस से अनेक बार मर्दन करके बडी-बडी गोलियां बना ली जाएं और ऐसी-ऐसी गोलियां दिन में तीन बार ली जाए जो लाभ होता है। गोमूत्र साधित 'पंचामृत लोह मण्डूर' या 'पुनर्नवादि मण्डूर' भी दो-दो गोलियों की मात्रा में दिन में तीन बार दिए जाते हैं। हरीतकी चूर्ण को दुगुने गुड में मिलाकर सेवन करने या अभयारिष्ट का सेवन करने से भी यकृद्-वृद्धि में लाभ होता है। त्रिफला को कटुकी, दारू हल्दी, गुडूची के साथ क्वाथ के रूप में भी दिया जाता है। बकरे के जिगर के रस का प्रयोग भी इस रोग के लिए उपयोगी पाया गया है। अर्थात् लोह भस्म ६ माशे, ताम्र भस्म ३ माशे, रस सिंदूर ३ माशे को मिलाकर बकरे के जिगर

के रस की १०-१५ भावना देकर सुखाकर १-२ रत्ती की मात्रा दिन में तीन वार देने से भी लाभ होता है।

वाल यकृद्वृद्धि के लिए यही लोह का योग १ रत्ती की मात्रा में एक वार प्रतिदिन अथवा कालमेघ, कटुकी चूर्ण २-५ रत्ती, गोमूत्र-मण्डूर, पिप्पली १-१ रत्ती का चूर्ण दिन में ३-४ वार तथा गोमूत्र १ तोला दिन में छना हुआ २ वार दिया जाता है। भोजन में विना चिकनाई का दूध तथा फलरस विशेष दिया जाना चाहिए। (पृ० १२५ में देखें)

आयुर्वेद में पित्ताशय शोथ तथा पित्ताश्मरी अर्थात् पित्ताशय शोथ, यकृच्छूल, कफगुल्म, कफशूल

आन्त्र पुच्छ में श्लैष्मिक शोथ के समान ही पित्ताशय में श्लैष्मिक शोथ होता है। चरक ने कहा है, शीत, गुरु, स्निग्ध गुण आहार के अधिक मात्रा मे लेने से; दिन रात आराम में पड़े रहने तथा व्यायाम न करने वालो में दक्षिण पार्श्व में कफ गुल्म हो जाता है। इसमें होने वाले शूल को कफ शूल कहा गया है। पित्ताशय में शोथ तथा शूल होने पर जी मिचली, वमन और दर्द होने तथा एक कठोर से उभार के प्रतीत होने के लक्षण होते है तथा यह रोग वहुत दिन तक चलता है। (च०।चि०।५।श्लो० १४-१५)

इसकी चिकित्सा के लिए वमन विधि, लंघन विधि तथा स्वेदन विधि का प्रयोग किया जाता है। इनके साथ उपर्युक्त गोमूत्र साधित हरीतकी या क्षारौषधिया दी जाती है। उदाहरणत शंखवटी, क्षारगुटी, कांकायनवटी या यवक्षार, सैन्धव, त्रिकटु, हीग, कुष्ठ, समान-समान की विजौरे के रस के द्वारा बनाई गोली या चूर्ण की एक माशा की मात्रा दिन में तीन वार देनी चाहिए। इस चूर्ण को या गोलियो को उपर्युक्त त्रिफलादि क्वाथ के साथ देने से पित्ताशय शोथ या यकृच्छूल शान्त होता है। या हिंग्वादि चूर्ण (हींग १, काला नमक २, शुण्ठी ४, हरड ८ भाग) दो माशा प्रतिदिन तीन वार दें। भोजन में पुराने चावल, जौ, तक्र, जागल, मांस, कुलथी आदि का विधान किया गया है। (पृ०१२५ में देखे)

उदररोग—उदरावरण शोथ
(Peritonitis)

उदरावरणकला अन्दर की ओर तो आमाशय, प्लीहा, यकृत्, आतो पर न्यूनाधिक गिलाफ के समान चढी हुई रहती है। मलाशय, गर्भाशय, डिम्ब ग्रन्थियो (Ovaries) पर अधूरे गिलाफ की तरह चढी हुई रहती है, और वाहर की ओर कोष्ठ की दीवार के अन्दर स्तर को वनाती है। इस प्रकार यह कोष्ठस्थ अगो को घेरे हुए उन्हे अपने स्थान पर टिकाए रखती है। आशयो पर चढे हुए इसके अन्दरुनी भाग को Visceral तथा कोष्ठ की दीवार पर चढे हुए इसके भाग को Parietal उदरावरणकला (Peritoneum) कहते है। इन दोनो के वीच की चारो ओर से वन्द गुहा को उदरगुहा या उदरावरण गुहा (Peritoneal Cavity) कहते हैं। इसके ऊपर के भाग को कोष्ठगुहा (Abdominal Cavity) और निम्न भाग को वस्तिगुहा (Pelvic Cavity) कहते है। यह विस्तार मे इतनी वडी है कि यदि इसके मोडो को खोल दिया जाय तो यह सारे शरीर की त्वचा के वरावर विस्तृत हो जाती है।

इसकी Splanchnic रक्तवाहिनियो से रक्त वापिस Inferior Venacava या Portal शिराओ मे लौटता है तथा इसकी लसिका भी पश्चिम लसिका ग्रन्थियो Retroperitoneal Glands में से होती हुई वापिस Cisterna chyli तथा Thoracic duct मे जाती है। इसीलिए कोष्ठ के किसी आशय मे कैन्सर हो तो ये सभी ग्रन्थिया उस रोग से ग्रस्त हो जाती है। इस उदरावरणकला को थोडासा भी विक्षुब्ध किया जाए तो इसमे से वहुत-सा द्रव निकलने लगता है जो प्रारम्भ मे पतला होता है पर विक्षोभ अधिकाधिक होता जाय तो यह अधिकाधिक धु धला होता जाता और अन्त मे पूयमिश्रित भी हो जाता है, जिसमे Fibrin की मात्रा विशेष होती है, जिसके कारण यह चमकीला होता है। रोगी की प्रतिरोधक शक्ति क्षीण न हुई हो तो इस उदरावरणकला मे अपने अन्दर हुई क्षति को पूर्ण कर लेने तथा आगत जीवाणु का प्रतिरोध कर लेने का गुण विशेष रूप मे पाया जाता है।

उदरावरण शोथ या उदररोग
(Peritonitis)

अपने अन्दर विद्यमान किसी आशय मे से जीवाणु के इसके अन्दर सक्रमण कर जाने से वहुधा इसमे शोथ आरम्भ होता है। प्रधानत आन्त्रपुच्छ (Appendix) मे से इसके रोगग्रस्त होने पर उसके अन्दर से Escherichia coli के इसमे सक्रमण कर जाने से प्रारम्भ होता है। या पित्ताशय मे से इस जीवाणु या Streptococci के सक्रमण कर जाने से होता है। या गर्भपात या प्रसव के वाद गर्भाशय या उसकी प्रणालियो मे तीव्रशोथ (Metritis, Salpingitis) हो जाने पर उनमे से Lymphatics के द्वारा Streptococci के सक्रमण से हो सकता है। कभी-कभी आमाशय-व्रण या आन्त्रज्वर मे आन्त्रिकव्रण के वढ जाने से उनमे जीवाणु सक्रमण से इसमे शोथ हो सकता है। आत्रवन्ध या Ileus के कारण भी इसमे शोथ हो सकता है। आत्रवृद्धि रोग मे आत्र के उतरकर वद्ध हो जाने या Strangulated हो जाने से उसके उपद्रव रूप मे भी उदरावरणकला शोथ हो सकता है।

इनमे उत्पन्न विद्रधि के उदर गुहा मे फट जाने पर तो व्यापक उदर शोथ (General Peritonitis) हो जाता है जो एक तीव्रधातक रोग है। परन्तु वहुधा तो इनके कारण इनके आसपास की उदरावरणकला मे स्थानिक शोथ होता हे। जिससे वहा से निकले स्राव तथा Fibrin के द्वारा रुग्णाशय पर चढी हुई उदरावरणकला आसपास की आत के एक गुच्छे (Coil) के साथ तथा कोष्ठ के दीवार की आवरणकला के साथ चिपक जाती है। इस प्रकार इनके परस्पर चिपक जाने से जीवाणु का प्रसार वहा पर सीमित हो जाता है तथा वहा पर एक उभार या गुल्म (Mass) सा अनुभव होता है। इस प्रकार उत्पन्न हुए इस शोथ को स्थानिक उदरशोथ (Localised Peritonitis) कहते है।

रोग आरम्भ होने के तीसरे चौथे दिन यह गुल्म हाथ को पता लगने लगता है। इसके वाद रोग मृदु हो तो एक सप्ताह तक यह लुप्त हो जाता है और वहा की स्पर्शाक्षमता भी घट जाती है। रोग तीव्र हो तो वहा पर पूयभाव होकर एक स्थानिक विद्रधि (Localised Abscess) वन जाती है, तथा ज्वर और स्पर्शाक्षमता आदि के लक्षण भी वढ जाते है। आत के किमी प्रदेश मे पोपण के रुक जाने से अर्थात् धमनीरोध या Arte Thrombosis से उत्पन्न Necrosis से भी Peritonitis या उदरशूल होता है।

लक्षण

उदरावरणकला मे शोथ होने पर कोष्ठ शूल (Colic) का लक्षण पहले होता है। आशय के ऊपर चढी कला मे शोथ हो तो यह कुछ कम रहता है पर जव कोष्ठ (Abdomen) की दीवार की अन्दर की कला मे भी यह शोथ प्रसरण जाता है तव यह शूल तीव्रतर हो जाता है, थोडा हिलने या खासने से भी शूल वढ जाता है। पेट को हिलने से वचाने के लिए रोगी टागो को सकोडकर पीठ पर पडा रहता है तथा श्वास प्रश्वास भी उथले-उथले लेता है।

स्पर्शाक्षमता—इस रोग का दूसरा लक्षण हे। कोष्ठ की दीवार की मासपेशियो की स्तव्धता या कठोरता इस रोग का तीसरा लक्षण है। उदरावरणकला मे विक्षोभ होने पर वमन और जी-मचली के लक्षण भी (Reflex रूप मे) होते हैं। इसमे कुछ स्राव भर जाने पर ज्वर भी होता है। अत इसमें कुछ तापमान भी वढा हुआ होता है। उदरावरणकला मे शोथ होने पर आतें निश्चेष्ट (Paralytic Ileus) भी हो जाती हैं, उनकी गतिशीलता मन्द पड जाती है, जिससे घोर मलवन्ध रहता हे। उनके अन्दर आतो मे होने वाले स्रावो व मल के रुके रहने से वमन और अरुचि के लक्षण भी होते है। वाद मे इसी कारण रुके मल के विदग्ध होने से आत मे गैस वन जाती तथा रुक जाती है जिससे आध्मान का लक्षण हो जाता है। आत मे से होने वाले विप सचार (Toxaemia) के कारण तथा शीतल स्वेद और वमन के द्वारा वहुत से द्रव के निकल जाने से तथा उदरगुहा मे होते हुए स्राव के कारण रक्त मे जलाभाव (Dehydration) हो जाने से भी हृदय निर्वल हो जाता है। प्रति नाडी स्पन्दन मे उसमे से वहुत स्वल्प रक्त ही आगे जाता हे। इस प्रकार नाडी गति अति तीव्र तथा नाडी अति निर्वल हो जाती और रक्तभार गिर जाता है। रोगी के हाथ पाव शीतल से होते हैं (Collapse) रक्त मे श्वेत कणो की सख्या वढी हुई होती है (Polymorphonuclear Leucocytosis २५ हजार के लगभग) उदरावरणकला मे शोथ व्यापक रूप मे हो तो ये लक्षण तीव्र रूप मे होते हैं तथा Toxaemia के कारण रोग असाध्य होता है। स्थानिक रूप मे शोथ हो तो वह औषधि चिकित्सा अथवा शल्यकर्म से ठीक हो जाता है, तथा लक्षण भी तीव्र नही होते। रोगी मे विष सचार के लक्षण (Toxaemia) हो अर्थात् नाडी तीव्र हो, तापमान गिर गया हो, आतो की चेष्टा नष्ट हो गई हो तो भी वह ठीक नही होता।

Diffuse Peritonitis—तीव्र व्यापक उदर शोथ —सारे पेट पर दर्द रहता है जो खासने से वढता है। तीव्र वमन का लक्षण होता है जिससे Dehydration हो जाता है। तीव्र मलवन्ध रहता है। आतो मे गैस के कारण पेट सारा उभरा होता है। कोष्ठ की दीवार मे स्तम्भ का लक्षण होता है। स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है। नाडी तीव्र, रक्तभार घटा हुआ, श्वास प्रश्वास उथला, तापमान १०२-१०३ डिग्री, Leucocytosis वढा हुआ होता है।

चिरस्थायी उदररोग या उदरावरण शोथ (Chronic Peritonitis)

प्रधानत. ३ वर्ष से ऊपर के वालको २० वर्ष तक के नवयुवको मे उदरावरणकला के अन्दर अनेकानेक क्षयाकुरो के उत्पन्न हो जाने से होता है। उसमे क्षयजीवाणु का सक्रमण वहुत सम्भवत. फुफ्फुस मे से लसिका वाहिनियो व रक्त के द्वारा होता है जो पहले Mesenteric glands मे होता है वाद मे Peritoneum मे होता है। इन क्षयाकुरो के उत्पन्न हो जाने पर इस कला मे से वहुतसा द्रव निकलता है जिसके कारण वालक मे जलोदर हो जाता है। जलोदर के अतिरिक्त कृशता और सायकालिक ज्वर के लक्षण होते हैं। इसे Ascitic Variety of Peritonitis कहते है।

यदि आतो और Omentum मे निकले हुए क्षयाकुरो के Fibrin युक्त चिपचिपे स्राव से वे परस्पर चिपक जाए जिससे कोष्ठ के अन्दर गुल्म से प्रतीत हो और इनके कारण इस कला से निकला स्राव स्वल्प भागो मे विभक्त हो गया हो तो इसे क्षयोदर का Loculated या Encysted type कहते है। इस प्रकार आतो के चिपक जाने से ज्वर तथा कृशता के अतिरिक्त कोष्ठशूल और मलवध के लक्षण भी होते हैं।

यदि Peritoneum मे उत्पन्न क्षयाकुरो Tubercular granulations के कारण आतो के Loops परस्पर जुड जाए या चिपक जाए, द्रव विशेष उत्पन्न न हो तो उसे Adhesive form of tuberculous Peritonitis कहते है।

कभी-कभी इस कला मे विद्यमान लसीका ग्रन्थियो Mesenteric glands मे शोथ तथा पनीर भाव (Caseation) ही विशेष होता है जिससे कोष्ठ मे छोटे-छोटे गुल्म अनुभव किए जा सकते है। इस अवस्था मे जलोदर तथा ज्वर के लक्षण हो सकते है। सायकालिक ज्वर, कोष्ठशूल और स्पर्शाक्षमता के लक्षण इस रोग के सब भेदो मे पाये जाते हैं।

इस रोग के पूर्वरूप :—वालक या युवक का भार घटता जाता है, अशक्ति वढती जाती है, भूख मर जाती है, रात को हलका सा ज्वर हो जाता है, वाद मे मलवन्ध या अतिसार अर्थात् मल के वडी मात्रा मे आने का लक्षण होता है, पेट पर कुछ वेचैनी रहती है, पाण्डुता का लक्षण भी होता है। सारे पेट पर स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है। वच्चो मे जलोदर का लक्षण इसी रोग का सूचक होता है।

४५ से वडी आयु के व्यक्तियो मे चिरस्थायी उदर-रोग, उदरावरणकला मे कैन्सर के अकुरो, ग्रन्थियो या गुल्मो (Nodes and Masses) के हो जाने से होता है। Omentum Mesentery तथा वस्तिगुहा Pelvis मे ये कैन्सर जनित अकुर Cancerous tubercles विशेषरूप मे होते हैं। इनसे निकले चिपचिपे स्राव के कारण इस कला के उपर्युक्त भाग तुडमुड से जाते है। इस कला मे से इस रोग का सक्रमण प्राय आमाशय, वृहदन्त्र, मलाशय या Ovary मे विद्यमान कैन्सर मे से Lymphatics या रक्तवाहिनियो के द्वारा होता है। इस रोग मे नाभि के आस-पास कैन्सर की ग्रन्थिया कभी-कभी अनुभव की जा सकती है। कैन्सर जनित शोथ के कारण उदरावरणकला से स्राव अधिक उत्पन्न होता है, जिससे जलोदर हो जाता है। इस जल मे प्रोटीन अधिक होता है, रक्त भी होता है, पेट उभरा हुआ होता है। निर्वलता एव कृशता के लक्षण भी होते है। पेट की ग्रन्थियो के अतिरिक्त वक्षण-सधि व ग्रीवा की ग्रन्थिया भी सूजी हुई हो सकती है। इस रोग के होने पर रोगी ६ मास से अधिक जीवित नही रहता।

उदररोग की चिकित्सा :—

उदरावरण-कला मे शोथ होने पर जव तक सक्रामक जीवाणु का निश्चय न हो पाए Terramycin ५०० मिलि० मात्रा मे ४-४ घन्टे पर जव तक ज्वर Normal न हो, देना चाहिए। फिर इसे २५० मिलि० मात्रा मे इसी प्रकार एक सप्ताह तक जारी रखना चाहिए। अधिक बेहतर यही है कि इतनी मात्रा मे इसे ५०० मिलीलिटर जल मे मिला २ दिन १२-१२ घण्टे पर शिरा द्वारा दे देना चाहिए, वाद मे दिन मे तीन बार इसे इसी प्रकार १०० मिलि० मात्रा मे शिरा द्वारा देना जारी रखना चाहिए। या Sulphadiazine को पहले ४ ग्राम मात्रा मे, देकर फिर १½ ग्राम मात्रा मे प्रति चार घण्टे पर देने से या Sodium Sulphadiazine के इसी प्रकार ग्लुकोज के जल के साथ शिरा द्वारा देने से भी लाभ हो सकता है। Streptomycin १-२ ग्राम मात्रा मे प्रतिदिन देने से भी लाभ होता है। Chloromycetin के प्रतिदिन ४ ग्राम मात्रा मे देने से भी इसी प्रकार लाभ होता है। स्थानिक उदर रोगो मे इन उपायो द्वारा शल्यकर्म के विना भी लाभ हो सकता है। तीव्र रोग मे जव इनसे लाभ होता न दीखे शल्यकर्म तुरन्त करना चाहिए। Peritonitis का कारण आत के एक भाग मे छिद्र (Perforation) हो या मृत्यु (Necrosis) हो या पूययुक्त Appendix हो तो तुरन्त शल्यकर्म करके इनका प्रतिकार करना चाहिए। ऐसे रोगी को मुख से कुछ नही देना चाहिए। जल तथा Electrolytes का शिरा द्वारा प्रयोग करते रहना चाहिए। दर्द के लिए शामक इञ्जेक्शन्स देने चाहिए। रक्त के Transfusion से रोगी की शक्ति वनी रहती है। अफारे के लिए Gastric-tube लगाकर Suction द्वारा गैस को खीचना चाहिए। रोगी को सदा Fowler की स्थिति मे रखना चाहिए। क्षयज उदररोग के लिए Streptomycin १-२ ग्राम दैनिक मात्रा मे ६ मास तक देना चाहिए। PAS को ८-१२ ग्राम दैनिक मात्रा मे या Isoniacid को २०० मिलि० मात्रा मे इतने काल तक प्रतिदिन देना चाहिए।

जलोदर
(Ascites)

उदरावरण कोष (Peritoneal Cavity) मे जल भरने लग जाय तो इस रोग को जलोदर कहते हैं।

उदरावरणकला के रोग के कारण जल भरे तो उस द्रव को स्राव (Exudation) कहते है। यदि हृदय रोग, वृक्करोग आदि के कारण जल भरे तो उसे परिस्राव (Transudate) कहते है। इनमे से पहला स्राव धु धला सा, १०१५ से अधिक स्पैसिफिक ग्रैविटी का, अधिक प्रोटीन से युक्त होता है। दूसरा परिस्राव देखने मे स्वच्छ, १०१५ स्पैसिफिक ग्रैविटी से कम का तथा स्वल्प प्रोटीन से युक्त होता है। परीक्षा करने पर पहले कहे गए स्राव मे प्रोटीन २½% से अधिक होता है तथा उसके प्रति क्युबिक मि०मी० मे सेल ५००० से अधिक होते है। दूसरे कहे गए परिस्राव मे प्रोटीन २½% से कम तथा सेल प्रति क्युबिक मि०मी० मे ५००० से कम होते है।

१ यकृद्वृद्धि जनित जलोदर
(Ascites due to Hepatic Cirrhosis or Portal Obstruction)

यकृद्रोग के कारण यकृत् के अन्दर की Portal Venules या Portal Capillaries मे रक्त सचय और रक्तभार के बढ जाने एव Portal System या कोष्ठगत आशयो की शिराओ की दीवारो मे से जल भाग के इस कोष मे रिस-रिस कर बाहर निकलने से यह जलोदर होता है जिसे Hydroperitoneum कह सकते है। मध्यम आयु के व्यक्तियो मे चिरकाल या वर्षो तक यकृद्रोग से ग्रस्त रहने के बाद उसके उपद्रव के रूप मे यह रोग होता है। इस अवस्था मे Portal Hypertension के कारण प्लीहा का लक्षण भी थोडा बहुत होता है। यकृत् भी बडा तथा कठोर होता है। यद्यपि कभी-कभी वह सकुचित हुआ होता है। जलोदर से पेट तो उभरा होता है पर शाखाए कृश दीखती है। Portal Hypertension के कारण होने वाला यह जलोदर सबसे अधिक सुलभ है। कोष्ठ की शिराओ मे जल का दबाव बढने से यह होता है।

२ वृक्क रोग जनित जलोदर
(Ascites due to acute or Sub acute Nephritis)

वृक्क रोग (Acute या Sub Acute Nephritis) के कारण जब मूत्र के द्वारा बहुत-सा अलब्युमिन निकल जाता है एव रक्त मे, प्रोटीन्स की मात्रा ५% से कम या २ ग्राम प्रतिशत से कम हो जाती है (Hypoproteinaemia हो जाता है) तो सर्वाङ्ग श्वयथु का रोग हो जाया करता है। क्योकि जब तक शिराओ के रक्त मे पर्याप्त Colloid osmotic pressure रहता है, वे अवयवो मे विद्यमान जल को अपनी ओर खीचती रहती हैं। अल्ब्युमीन के कम होने से जब उनका यह भार कम हो जाता है तो उनकी जल को अपनी ओर खीचने की शक्ति नही रहती, जिससे अवयवो मे जल तथा लवण अधिकाधिक सचित होते जाते हैं। जिस प्रकार त्वचा के नीचे के अवयव (Sub-cutaneous tissue) मे जल एकत्रित हो जाता है वैसे ही वह उदरावरण कोष या Peritoneum मे भी भरने लग जाता है, अर्थात् इस अवस्था मे जलोदर रोग सर्वाङ्ग श्वयथु का एक भाग होता हे तथा इस अवस्था मे चेहरे, पाव आदि के शोथ के साथ या बाद मे हलके जलोदर का लक्षण होता है। मूत्र मे अल्ब्युमीन व Casts को तथा रक्त मे Cholesterol की वृद्धि को तथा रोगी के श्वेत वर्ण फूले हुए शरीर को देखकर इस रोग का निश्चय हो जाता है।

३ हृदय रोग जनित जलोदर
(Ascites due to Cardiac Failure)

हृदय शैथिल्य (Cardiac Dilatation) के रोग मे जब चिरस्थायीकास, श्वास (Emphysema) के कारण दक्षिण हृदय मे निर्बलता आ जाती है तब शरीर की शिराओ मे रक्तभार बढ जाता है तथा उनकी दीवारो को ऑक्सीजन कम मिलती है एव वे निर्बल हो जाती है जिससे उनमे से जल भाग अधिक मात्रा मे बाहर निकलने लगता हे। जल के साथ लवण भी अधिक मात्रा मे अवयवो मे सचित हो जाता है। Portal Capillaries मे भी इस प्रकार रक्तभार के बढ जाने से जलोदर हो जाता है। इस जलोदर मे क्योकि पहले वाम हृदय निर्बल होता है। अत श्वास कृच्छ्रता तथा खासी का लक्षण पहले होता है और उसके कुछ काल बाद दक्षिण हृदय के निर्बल हो जाने पर फिर पैरो मे श्वयथु होता है और उसके बाद जलोदर का लक्षण होता है। ग्रीवा की Jugular शिराए इस रोग मे फूली हुई दिखाई देती है। यकृत् मे भी वृद्धि तथा स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है।

४ उदररोग जनित जलोदर
(Ascites due to Peritonitis)

उदरावरणकला (Peritoneum) मे शोथ हो जाने के कारण इस कला मे से स्राव (Exudation) होकर जलोदर हो जाया करता है जिसे Seroperitoneum कह सकते है। ५-१० वर्ष की आयु के बालको मे जलोदर हो तो, जैसे ऊपर कहा गया है, वह बहुधा उदरगुहा या Peritoneum मे क्षय जीवाणुओ के सक्रमण कर जाने से होता है, इसे क्षयोदर कहते हे। इस अवस्था मे बालक का पेट उभरा हुआ स्थूल होता है पर उसके हाथ पाव आदि

अङ्ग कृश होते है। उसे सायकालिक ज्वर भी रहता है। निम्न कोष्ठ पर स्पर्शन से गुथे आटे या मास खण्डो की सी प्रतीति होती है। पेट से निकले जल की Spe Gıavıty १०१८ के लगभग होती है।

५. कैन्सर जनित जलोदर
(Ascites due to Carcinoma)

५५ से ऊपर, वडी आयु के व्यक्तियो मे जलोदर हो तो वह वहुवा कॅन्सर रोग जनित होता है। पहले आमाशय या गुदा मे कैन्सर प्रारम्भ होता है। वहा से उमके सेल लसिका वाहिनियो (Lymph Vessels) के द्वारा Perıtoneum मे प्रसरण कर जाते हे अथवा वहा से यह रोग लसिका वाहिनियो के द्वारा Portal Fıssure मे विद्यमान Lymph Glands मे सक्रमण करता है और उन बढी हुई ग्रन्थियो के दवाव के कारण Portal Veın के दव जाने से उदरावरण कोष मे जल भरने लगता है। इस अवस्था मे यकृत् वडा कठोर तथा आकार मे वडा होता हे। उदर गुहा मे भरे जल मे रक्त का मिश्रण होता है। उसे निकाल भी देवे तो तुरन्त भर जाता है। इसकी Sp Gravıty भी १०१५ से अधिक होती है। इस अवस्था मे प्राय यकृत् प्रदेश पर व दाये कन्धे पर या उधर की पीठ पर दर्द होने का लक्षण होता है। यकृत् आकार मे वडा हो, कठोर हो तो ऐसे जलोदर को कैन्सर जनित ही समझना चाहिए। Portal Fıssure मे विद्यमान Bıle duct पर इन ग्रन्थियो का दवाव पड जाने से कामला का लक्षण भी हो जाता हे। कैन्सर जनित जलोदर की अवस्था मे रोगी मे थोडे ज्वर होने तथा स्पर्शाक्षमता के लक्षण भी होते हैं तथा रोगी अतिकृश होता है।

स्त्रियो मे Ovarıan cyst से इसका भेद करना होता हे। सिस्ट हो तो पार्श्वो पर टकोर की आवाज ऊची (Resonant) होती है तथा सामने के प्रदेश पर टकोर मन्द होती है। पेट की मोटाई सवसे अधिक नाभि के नीचे के प्रदेश मे होती है। जलोदर रोग मे पेट की सवसे अधिक मोटाई नाभि पर होती है।

जलोदर चिकित्सा

जिस कारण से जलोदर हो उसे दूर करना चाहिए। यकृद्रोग जनित जलोदर मे रक्त मे प्रोटीन (Hypoproteınaemıa) कम होता है तथा अवयवो मे Sodıum Chlorıde का सचय अधिक होता है। अत प्रोटीन प्रधान तथा लवण रहित भोजन का प्रयोग करना चाहिए जो दिन मे २०० मिलि० से अधिक अन्दर नही जाना चाहिए। बिना चिकनाई का दूध २० छ०, तक्र २ पाव, सब्जी १ छटाक, अण्डा तथा फल उसे प्रतिदिन देना चाहिए। Sodıum से रहित मिल्क पाऊडर (Edosol) मिलता है तथा Casılan उत्तम दूध है। उदर के अन्दर विद्यमान जल के एक लिटर मे ८ ग्राम लवण होता है। यदि नमक की दैनिक मात्रा ८ ग्राम के स्थान पर ८ ग्राम कर दी जाय तो जितनी देर मे पहले Perıtoneum के अन्दर १ लिटर जल भरता था उतनी देर मे फिर १०० सी०सी० से भी कम जल भरता है। Meralluride (Mercuhydrın), Mersalyl (Salyrgan) Neptal आदि किसी Mercurıal dıuretıc १० प्र० श० solutıon के २ सी० सी० की मात्रा मे सप्ताह मे दो बार मास द्वारा देने से पर्याप्त जल मूत्र द्वारा निकल जाता है, इससे Sodıum तथा Potassıum की निकासी भी अधिक होती है, अत सप्ताह मे दो बार से अधिक नही देना चाहिए। इसके एक दो दिन पहले तथा उस दिन Ammonıum Chlorıde का १ ग्राम (कैपसूल मे) की मात्रा से दिन मे तीन बार प्रयोग करने से (Acıdosıs हो जाने से) मूत्र और खुलकर आता है। Steroıds की न्यूनता की पूर्ति के लिए इन औषधियो के साथ साथ Prednısolone को २०-४० मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन २-३ वार करके देना चाहिए। इसके देने से विशेष लाभ होता है। इसी प्रकार Hydrochloro thıazıde (Dıchlortrıde M S D Esıdrex, Cıba) के ५० मिलि० दैनिक मात्रा मे देने से या Lasıx की १ गोली (४० मिलि०) के एक बार प्रात दे देने से विशेषतः मूत्र खुलकर आता है। इनसे सोडियम, पोटासियम की निकासी वढती हे एव इससे रक्त मे पोटसियम की मात्रा कम हो सकती है। एतदर्थ पोटा० क्लोराइड २ ग्राम दैनिक देना चाहिए।

प्रात काल Magnesıum Sulphate (कैप्सूल मे) का एक ड्राम की मात्रा के द्वारा मृदु रेचन भी देते रहना चाहिए। तीक्ष्ण विरेचनो का अधिक प्रयोग करने से आत मे शोथ होने का भय रहता है। Mersalyl देने के वाद ही मूत्रल औपधियो के देने से कुछ लाभ हो सकता है। Sproinolactones (Aldactone-A) गोलियो के जो Adrenal ग्रन्थि के सोडियम की निकासी को रोकने वाले Aldosterone (जिसके कारण वृक्को मे सोडिअम क्लोराइड का पुनर्विलयन वढ जाता है और पोटासियम की निकासी वढती है) नामक Hormone के विरोधी है १००-२०० मिलि० दैनिक मात्रा मे ४ वार वाटकर उपर्युक्त मूत्रल औपधियो के साथ देने से सोडियम तथा क्लोराइड की मूत्र द्वारा निकासी वढती है पर पोटासियम की निकासी नही वढ़ती। (पर

यह औषधि महगी है, इसका प्रयोग विशेप अवस्था मे ही करना ठीक है।) रोगी की जल की मात्रा भी दिन भर मे ३-४ पाव तक सीमित रखनी चाहिए। हृदय रोग जनित जलोदर मे पूर्ण विश्राम तथा Digoxine २५ ग्राम के दिन मे दो बार तथा किसी मूत्रल औपधि के देते रहने से लाभ हो जाता है। वृक्क रोग जनित जलोदर मे प्रोटीन और लवण का त्याग कर देने, दैनिक जल की मात्रा के एक पाइट तक कर देने, रोगी को केवल कार्वोहाइड्रेट, फलरस आदि पर रखने से लाभ हो सकता है। Acute Nephritis मे मूत्रल औपधि का प्रयोग नही करना चाहिये। Subacute रोग मे मर्करी युक्त मूत्रल औषधियो का प्रयोग उचित नही पर Thiazide की मूत्रल औपधियो जैसे Esidrex का तथा Lasix आदि-आदि प्रयोग करने से लाभ होता है।

Paracentasis —बेचैनी हो अथवा चिकित्सा के आरम्भ मे, मूत्र कराकर, वैठाकर, नाभि तथा Pubis के मध्य मे Novocain से स्थानिक शून्यता उत्पन्न करके चाकू से त्वचा को काटकर Peritoneum की गुहा मे Trocar तथा Cannula मे लगी हुई ट्यूब से धीरे-धीरे जल निकाले (तीन घन्टे मे १ लिटर) शीघ्रता मे द्रवहरण करने से मूर्छा (Vosovagai) लवण की न्यूनता (Hyponatraemia) आदि उपद्रव हो सकते है। एक आध वार यह शल्य कर्म करना उचित हो सकता है। बार-बार ऐसा करने से शरीर मे से प्रोटीन के अति विनाश होने का भय रहता है।

आयुर्वेद में उदर रोग

चरक ने (चि० ।१३।९ श्लो) कहा है कि अग्नि की मन्दता से उत्पन्न होने वाले मल ही शरीर के किसी अग में सचित होकर उसमें रोगोत्पत्ति का कारण होते है। इसी प्रकार उदरावरणकला से ढके हुए आत आदि किसी आशय में मल के सचित हो जाने से ही उदररोग या उदरावरण-कला शोथ का रोग होता है।

वातोदर :—

शरीर को कृश, दुर्वल और अशक्त करने वाले कारणो मे अग्नि दुर्वल हो जाय और उसके परिणामस्वरूप मे मल सचय होकर उदरावरणकला मे शोथ हो तो उस (Asthenic या Malnutrition से होने वाले) उदर रोग को वातोदर कहते है। इसमे उदरावरणकला के अन्दर रुक्षता, लघुता, खरता, कठोरता, क्षीणता आदि (Degeneration) लक्षण होते है तथा उदर मे शूल, तोद, भेद का कष्ट विशेप होता है। आत की प्राणशक्ति या चेष्टा शक्तिहीन हो जाने से मलवन्ध व वातिक वमन के लक्षण भी होते है। निर्वलता, रोग प्रतिरोधक शक्ति की न्यूनता से होने वाले उदर रोग (Peritonitis) को वातोदर कहा गया प्रतीत होता है।

पित्तोदर

यदि उष्ण, तीक्ष्ण गुण तथा शरीर मे अग्निकर्म या टैम्परेचर को वढाने वाले भावो से अग्निमन्द होकर उदर मे दोप सचय हुआ हो और उसके कारण पाक प्रधान (Suppurative) शोथ हो गया हो तो पित्तोदर कहते हैं। इसमे ज्वर, दाह, पूयभाव, पिपासा, मूर्च्छा आदि पित्तकर्म की अधिकता के सूचक लक्षण होते है। इस प्रकार जीवाणु सक्रमण (Infection) के परिणामरूप मे होने वाले उदर रोग को पित्तोदर कहा गया प्रतीत होता है।

कफोदर

अति शीत, स्निग्ध, गुरु गुण आहारो के करने तथा शारीरिक व्यायाम के सर्वथा न करने से अग्निमन्द होकर उसके परिणामस्वरूप मे उदर के अन्दर दोष के अति मात्रा मे सचित हो जाने से उदर मे शोथ हो जो गुरु, स्निग्ध, स्थिर, मन्द, कठिन गुण (Hyperplastic) हो तो उसे कफोदर कहते हैं। इसके कास श्वास पाण्डुता अग्निमाद्य आदि लक्षण कहे है सभवत इससे Chronic Peritonitis या Tubercular Peritonitis का अभिप्राय प्रतीत होता है।

त्रिदोषोदर

जब उदर के किसी प्रदेश मे अग्निमदता जनित मल के अति सचय से क्षयात्मक, पचनात्मक तथा रक्षणात्मक तीनो प्रकार का शोथ हो जाय और शूल, पाक तथा वृद्धि तीनो लक्षण उपस्थित हो तो उसे त्रिदोषोदर कहते है। पाण्डुता कृशता, शोष आदि इसके लक्षण कहे गये है जिससे Cancerous Peritonitis का अभिप्राय प्रतीत होता है।

जलोदर

उदरावरणकला मे शोथ चिरकाल रहे या उसकी रक्त-वाहिनियो मे रक्त का सचय अधिकाधिक होता जाय तो उनको ऑक्सीजन के यथावत् मात्रा मे न मिलने से अर्थात् Anoxia से इसकी दीवारो की प्राणशक्ति कम हो जाती है जिससे उनकी परिस्रवणशीलता (Permeability) वढ जाती है। यकृत् के सेलो के रुग्ण होने से रक्त के सीरम मे अल्व्युमिन की मात्रा घट जाती है जिससे रक्त मे अवयवो से जल भाग को खीच लेने की शक्ति भी घट

जाती है इसी कारण जलोदर मे दूध के—जो अल्व्युमिन प्रधान द्रव है—देने का विधान आयुर्वेद मे है। सुश्रुत ने कहा है कि वायु से प्रेरित हुआ जल रक्त मे से बाहर आकर कोष्ठ गुहा मे भरने लगता है (नि० अ० ४) अर्थात् रक्तवाहिनियो की निर्बलता तथा रक्त के अन्दर किसी कमी के होने से उनमे से जल भाग बाहर आता है। वात प्रधान होने पर भी अन्य उदर रोगो के समान जलोदर रोग भी त्रिदोपज होता है (च० चि० १३।९५) प्रथम आयु मे होने वाला क्षयज जलोदर मध्यम आयु मे होने वाला यकृद्रोग जनित जलोदर तथा वडी आयु मे होने वाला कैंसर जनित जलोदर सभी त्रिदोष प्रकोप के कारण होते है तथापि इनमे वायु और कफ की वृद्धि विशेष रहती है।

उदररोग की चिकित्सा

आयुर्वेदानुसार सर्वरोग अग्नि की मन्दता (कफज) या प्राणशक्ति की हीनता (वातज) के परिणामस्वरूप मे उत्पन्न मलो के किसी अग मे बढ जाने के कारण होते है। अत. उनकी चिकित्सा भी शोधन प्रधान तथा अग्नि को बढाने वाली होनी चाहिए। उदररोग विशेषत मल वृद्धि से होते है अत. उनकी चिकित्सा विशेषत शोधन प्रधान तथा अग्नि दीपक होनी चाहिए।

वातोदर रोगी की शमन प्रधान बल्य चिकित्सा होनी चाहिए। निरुह वस्तियो व अनुवासन वस्तियो या एरण्ड तेल से शोधन करते हुए उसे आर्द्रक स्वरस से मिश्रित दूध या पिप्पली से पकाये दूध पर रखना चाहिए तथा दशमूल कषाय के साथ उसे शिलाजीत देवे या दशमूल कषाय के साथ त्रिफला चूर्ण देवे या दशमूल कषाय के साथ गोमूत्र मिलाकर दे। या गोमूत्र के साथ त्रिफला चूर्ण देवे। या दालो के यूप के साथ चावल दे।

पित्तोदर रोग मे पहले स्नेह वस्ति, या अनुवासन वस्ति देकर फिर दूध युक्त वस्ति द्वारा शोधन करना चाहिए। इस क्रम के बाद रोगी निर्बल न हो तो त्रिवृत् चूर्ण के साथ या आरग्वध या मुनक्के, गुलाब आदि डालकर पकाये दूध के द्वारा उसे विरेचन देना चाहिए या दूध मे एरण्ड तेल डालकर दे। तथा द्राक्षा पृश्निपर्णी-बला शतावरी लाक्षाक्वाथ मिश्रित दूध दे। ठहर-ठहर कर वस्ति द्वारा तथा मृदु विरेचन द्वारा उसका शोधन करना चाहिए। न्यग्रोधादि वर्ग अर्थात् वड, गूलर, पीपल, पिलखन, मुलहटी, जामुन लोध्र आदि किन्ही दो चार द्रव्यो के कषाय मे थोडा नमक, मधु तथा घृत डालकर उसकी वस्ति देनी चाहिए। पेट पर घृत से बनाई पुल्टीस बाधनी चाहिए तथा पटोल त्रिफला, कुटकी, इन्द्रायणमूल के क्वाथ मे शिलाजीत मिलाकर दें।

कफोदर रोग मे पचकोल मिश्रित घृत द्वारा आभ्यन्तर तथा तेल द्वारा बहि स्नेहन करवाकर रोगी का स्वेदन कराना चाहिए। तथा पेट पर अलसी, मूली के बीज आदि से बनी स्निग्ध पुल्टीस बाधनी चाहिए। त्रिफला व त्रिवृत् चूर्ण द्वारा उसे विरेचन कराना चाहिए। विरेचन न दिया जा सकता हो तो त्रिफला कषाय मे लवण, गोमूत्र तथा तेल डालकर उसकी वस्ति देनी चाहिए तथा अनुवासन वस्ति का प्रयोग भी करना चाहिए। उसे त्रिकटु चूर्ण या पिप्पली चूर्ण के साथ दूध दें या त्रिकटु मिश्रित कुलथी का रसा देना चाहिए या दूध मे गोमूत्र मिलाकर उसे देना चाहिए या वैसे ही गोमूत्र पान कराना चाहिए। इस प्रकार वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक तीनो प्रकार के उदररोगो मे स्नेहन, स्वेदन, उपनाहन, मृदु विरेचन, निरुहण, अनुवासन तथा क्षीर प्रधान भोजन की उपर्युक्त विधि को बराबर कुछ काल जारी रखने से लाभ हो सकता है।

उदररोग मे दूध या तक्र का आहार दोप शामक औषधियो के साथ लेना चाहिए। जागल मास रस के साथ या दूध के साथ चावल भी दिए जा सकते है।

जलोदर मे रोगी की शक्ति की रक्षा करते हुए अर्थात् वायु वृद्धि न होने पाए इस प्रकार उसकी विरेचन चिकित्सा की जाती है। मूत्र विरेचक औषधिया भी दी जाती है। इन दोनो से तथा लघन से कफ दोप का शोधन व शमन किया जाता है। उदाहरणत बाह्याभ्यन्तर स्नेहन करके तथा मृदु स्वेदन करके अगले दिन प्रात काल नाराचरस (पारा, सुहागा, मरिच १-१, गधक, पिप्पली, सोठ २-२ भाग, दन्ती बीज सर्वतुल्य) की दो-दो रत्ती की बनी गोलिया शीतल जल से दी जाती है या जलोदरारि रस (पिप्पली, मरिच, ताम्र भस्म, हल्दी समान-समान मे समान भाग दन्त बीज मिलाए) २ रत्ती की मात्रा प्रात काल दी जाती है। इस प्रकार सप्ताह मे एक दिन प्रात विरेचन औषधि दी जाती है। विरेचन हो जाने पर उस दिन तथा शेष दिन पिप्पली के साथ दूध दिया जाता है या स्वल्प मात्रा मे उबले चावल दिए जाते है। अथवा विरेचनार्थ कोई चूर्ण जैसे त्रिवृत् चूर्ण या हरीतकी चूर्ण ६ माशा मात्रा मे सप्ताह मे एक दिन प्रात शर्बत के साथ व गर्म जल से देकर विरेचन कराए जाते है।

विरेचन चिकित्सा के अतिरिक्त गोमूत्र का सेवन भी कराया जाता है। पुनर्नवाष्टक क्वाथ (पुनर्नवा, दारु हल्दी, कुटकी, पटोल, हरड, नीम, सोठ, गिलोय) मे गोमूत्र २-२½

तोला मिलाकर उसे प्रातःकाल पिलाया जाता है या १ सेर हरीतकी को १½ सेर गोमूत्र में मन्द-मन्द अग्नि पर सुखाकर उनमें बनाए चूर्ण के ६ माशा की मात्रा में देकर विरेचन कराया जाता है। इसी प्रकार गोमूत्र से पक्व या भावित किये मण्डूर का २-४ रत्ती की मात्रा में प्रतिदिन प्रयोग कराया जाता है।

रोगी में मूत्र-प्रवर्तनार्थ पुनर्नवा मूल तथा कासनी को बराबर-बराबर मिला २-२½ तोला की मात्रा में लेकर उसका क्वाथ, शोरा १ माशा, यवक्षार १ माशा मिलाकर प्रतिदिन दिया जाता है।

इस प्रकार रोगी की विरेचन व मूत्रल चिकित्सा १-२ महिने जारी रखी जाती है। आहारार्थ दिन भर में पिप्पली के साथ १½, २ सेर तक दूध दिया जाता है। जल तथा लवण नही दिये जाते। इस प्रकार छः मास तक दूध, जांगल मांसरस, चावल, जौ मिश्रित गेहू पर ही रहने से इस रोग में स्थायी लाभ हो सकता है।

श्वास-सम्बन्धी रोग
(Respiratory Diseases)

नासारोग (Diseases of the Nose)

नासा श्लेष्मकला की रचना :—नासामार्ग में विद्यमान श्लेष्मकला की बहिःस्तर (Epithelium) Ciliated—Columnar cells से बनी हुई है। इन स्तम्भाकृति या Columnar सेलो के बीच-बीच में श्लेष्म सेल या Mucous cells या Goblet Cells बिखरे हुए रहते है। इस बहिःस्तर और इसके आधार स्तर या Basement membrane के नीचे Mucous तथा Serous glands की एक तह बिछी हुई है जिनकी प्रणालिया श्लेष्मकला के पृष्ठ पर खुलती हैं। इन ग्रन्थियों तथा पृष्ठ पर विद्यमान Goblet Cells दोनो के श्लेष्म द्रव (Mucous) से नासामार्ग तर रहता है। इसीलिए बाहर से आने वाली हवा मे विद्यमान धूल, धूम, Pollen आदि के कण श्लेष्मकला में पकडे जाते है और इस प्रकार छनी हुई हवा फुफ्फुस मे प्रवेश करती है। श्लेष्मकला के बहिःस्तर मे विद्यमान रोगटे (Cilia) तथा श्लेष्म द्रव (Mucus) इन कणो की तह को धकेल कर, पीछे नासा पश्चिम प्रदेश (Nasopharynx) मे फेंक देते हैं। जहाँ से धूल कण पेट मे चले जाते है और वहाँ से बाहर निकल जाते हैं।

नासिका की श्लेष्मकला के नीचे स्नायुतन्तु (Connective-tissue) से बना एक जाल है जो स्पंज के सदृश होता है। जिसके खाली स्थानो मे रक्त भरा होता है इसे Erectile tissue of the Nose कहते है। इस जाल मे रक्तवाहिनिया भी अधिक सख्या मे होती हैं जो Sympathetic नाडियो के द्वारा नियन्त्रित होती है, Inferior turbinate के अगले पिछले सिरो तथा इसके निचले किनारे पर तथा Middle Turbinate के अगले सिरे पर जहाँ हवा का सम्पर्क विशेष होता है, यह Erectile Tissue मोटा होता है अर्थात् वहाँ रक्त विशेष होता है। इसका लाभ यह होता है कि बाहर से आने वाली शीतल हवा नाक मे से गुजरते समय गर्म हो जाती है तथा यदि अधिक शुष्क हो तो वह कुछ तर भी हो जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि हमारा उद्देश्य नासा मार्ग मे विद्यमान Cilia, Mucus तथा Erectile tissue को स्वस्थावस्था मे रखना है या यदि ये रुग्ण हो गये हो तो इनको फिर स्वस्थ कर देना है। Sup turbinate पर चढी श्लेष्मकला गंध लेने का तथा नासिका की शेष सारी श्लेष्मकला श्वास प्रश्वास का काम करती है। नासिका को रक्त, External Maxillary से जो Ex -Carotid की शाखा है, आता है। Ethmoidal Artery से भी, जो Int Carotid की शाखा है, इसमे रक्त आता है। नाडियाँ इसमे Facial Maxillary तथा Opthalmic Nerves से आती है।

नासा पश्चिमगल—Nosopharynx —नासिका के पीछे के गले को कहते है। इसके दोनो तरफ बाहर की दीवार मे Auditory या Eustachian tube का गले की तरफ का द्वार खुलता है। इसकी छत तथा पिछली दीवार की श्लेष्मकला के अन्दर एक फैला हुआ Lymph tissue है जिसे Pharyngeal tonsil कहते है। बालक मे यह बडा होता है। यह फूल जाये तो इसे Adenoids कहते है।

मुख पश्चिमगल–Oropharynx —गले मे दोनो ओर बादाम के आकार का एक Lymphoid tissue का ढेर रहता है जिसे टान्सिल कहते है। यह दो Arches के बीच मे पडा है। अगले को Palatoglossal, पिछले को Palatopharyngeal arch कहते है। टान्सिल के पृष्ठ पर छिद्र होते है जिन्हे Crypts कहते है।

कण्ठ—Larynx —गले से नीचे रहता है यह स्वरोत्पादक यन्त्र है। स्वरोत्पादक मासपेशियो को Recurrent Laryngeal Nerve से शाखाये आती है।

तीव्र प्रतिश्याय
(Common Cold, Acute Coryza, Cold in the head)

जिस रोग मे नासिका की श्लेष्मकला मे विशेषतः, और कुछ-कुछ गले और कण्ठ मे भी शोथ होकर नाक बहने

लगे, छींके आवें, ज्वर आदि शरीर व्यापी लक्षण विशेष न हों उसे प्रतिश्याय रोग कहते हैं।

कारण

सर्व रोगो मे यह अति सुलभ रोग है जो विशेषत छोटे वालको को और २५-३० वर्ष की आयु के युवको को वर्ष भर मे ग्रीष्म को छोडकर शेष ऋतुओ मे क्रमश ५-६ वार तथा दो तीन वार होता है तथा प्रतिश्याय प्रकृति के व्यक्तियो को अनेक वार होता है। शीतकाल मे लगभग ५०% व्यक्तियो को यह रोग होता है। इस रोग के सक्रमण के कारण अनेक Filterable Viruses लगभग ३० मिलिमाइक्रोन्स (माइक्रोन का हजारवा भाग एक मिलि मा०) के गोला कृतिपिण्ड है, जो रोगी के रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे, छीकने, खासने तथा थूकने से उत्पन्न छीटो के द्वारा दूसरे स्वस्थ व्यक्तियो की नासिका तथा गले की श्लेष्मकला तक पहुँचते हैं तथा वहाँ से श्लेष्मकला के नीचे की Submucous Lymphatics के द्वारा आसपास के अवयवो मे संक्रमण कर जाते हैं। रोगी से ही नही पर कैरियर व्यक्तियो से जिन्हे यह रोग नहीं उनसे भी ये Viruses दूसरो मे फैलते है जिसे रोग होने वाला हे उससे भी यह दूसरो मे फैल सकता है। परीक्षको ने वढते हुए पक्षीभ्रूण (Chicken Embrayo) अथवा Allantois (भ्रूण के एक अग) के द्रव मे इनकी खेती करके मनुष्य सदृश (Anthropoid) वन्दरो मे उसे प्रविष्ट करके इनके द्वारा प्रतिश्याय रोग उत्पन्न भी किया है। इसके अतिरिक्त निर्वल (Susceptible) व्यक्तियो मे इन्हे प्रविष्ट करने पर इनसे प्रतिश्याय रोग उत्पन्न होते हुए भी देखा है। यह वात सत्य ही है कि वस्तियो मे प्रसरण करने वाले प्रतिश्याय रोग का कारण अनेक Filterable Viruses ही हे। इनकी खेती अव मनुष्य या वन्दर के Embrayonic गुर्दे पर की जाती है। ये कितने प्रकार के हैं, कितने दिन तक ये रोगी मे रहते है, इनसे उत्पन्न प्रतिरोधक शक्ति, जो इसी किस्म के Virus के विपरीत होती है, जिसके विपरीत वह उत्पन्न हुई हे, कितने दिन तक रहती है, इन विषयो मे निश्चित रूप से अभी तक कुछ कहा नही जा सकता। इतना तो कहा जा सकता है कि १–Adeno Viruses २–Echo Viruses ३–Coxsackie Viruses, ४–Respiratory Syncytial Viruses, ५–Para influenza Viruses, ६–Rhino Viruses तो इसके कारण हैं दूसरो का अभी तक ठीक पता नही तथापि ८०-१०० के लगभग Viruses का तो पता लगाया जा चुका हे जो इस रोग के कारण होते है। प्रतिश्याय रोग प्रारम्भिक अवस्था मे अधिक सक्रामक होता है कुछ दिनो वाद रोगी से इसका संक्रमण वन्द हो जाता है तथा इस रोग के Viruses के कारण उत्पन्न प्रतिरोधक शक्ति थोडे समय तक ही सम्भवत: ४-६ मास रहती है। इस रोग के वेग भिन्न-भिन्न Viruses से होते हैं इसलिए साल मे इसके २-३ वेग हो सकते हे। इसके सक्रामक होने के कारण प्रतिश्याय रोग भीड-भाड मे या मेले आदि मे सम्मिलित होने वाले व्यक्तियो मे अधिक होता है। वाहर से आये ये Viruses भी तभी तक श्लेष्मकला मे रोहण कर सकते है, जव वहा उनके रोहण के लिए अनुकूल भूमि (Susceptibility) हो अर्थात् जव पहले से अजीर्ण हो, मलवन्ध हो या शरीर की जीवाणु प्रतिरोधक क्षमता किसी कारण से घटी हुई हो, सहसा शीत लग गया हो या नासिका की श्लेष्मकला पहले से धूल, धूम आदि से विक्षुब्ध हो या Tonsillitis, Adenoids, Sinusitis हो, या नासा मार्ग मे रचना सम्वन्धी कोई विकृति हो या शरीर मे श्रमजनित निर्वलता हो गई हो या युवक अथवा युवती मे क्षय रोग के होने की प्रकृति हो तो इन Viruses का रोहण सुगमता से हो जाता है। इसी प्रकार जव कोई व्यक्ति गर्मी से सहसा सर्दी मे प्रवेश करता है अर्थात् गर्म जल से स्नान करके या गर्म वन्द कमरे मे से खुली, शीत हवा मे आता है या गर्मी के वाद सहसा शीत ऋतु का आगमन होता है तो सहसा शीत का स्पर्श होने से नासा की श्लेष्मलकला की रक्तवाहिनिया सकुचित हो जाती हे जिससे श्लेष्मकला की जीवाणु प्रतिरोधक शक्ति क्षीण हो जाती है। ऐसी अवस्था मे इसके किसी Virus को, जो एक कैरियर मे तो वहा ही पडा होता है तथा दूसरो मे वाहर से आता है, वहा पर रोहण करने का अवसर मिल जाता है। इसीलिए सर्दी लग जाने को भी इस रोग का कारण कहा जाता है। सहसा अतिशीत के स्पर्श से जव रक्तवाहिनिया सकुचित हो जाती हैं और वहा के सैलो को ऑक्सीजन कम मिलने लगती है तो उनमे न्यूनाधिक मृत्यु के हो जाने से Histamine उत्पन्न होता है जो वहा के शोथ का कारण हो सकता है। इस प्रकार Allergy के कारण भी तीव्र प्रतिश्याय हो सकता है। यद्यपि इस रोग मे नासिका तथा नासा पश्चिम भाग से होने वाले स्राव मे कुछएक जीवाणु पाए जाते हैं जैसे Neisseria Catarrhalis, Streptococcus Viridans, Pneumococcus, Diphtheroids पर इन्हे रोग का कारण नही कहा जा सकता क्योंकि ये स्वस्थावस्था मे भी पाये जाते हैं। इस रोग मे होने वाले स्राव मे ऐसे रोग जनक जीवाणु जैसे Haemophylus Influenzae, Streptococcus Pyogenes, Staphylococcus Pyogenes भी कभी-कभी पाए जाते है। पर इन्हे

भी इस रोग का कारण नही माना जाता। Viruses के कारण इस रोग के हो जाने पर स्थानिक श्लेष्मकला की रोग रोधक शक्ति के कम हो जाने पर इनमे से किसी जीवाणु को वहा रोहण कर जाने का अवसर मिल जाता है जिससे ये जीवाणु प्रतिश्याय के उपद्रवो का कारण हो जाते हैं। प्रतिश्याय रोग मे Chemotherapy से जो लाभ नही होता इससे भी पता चलता है कि यह रोग इन जीवाणुओ के कारण नही होता Rhino Viruses आदि मे से किसी Virus के सक्रमण के कारण होता है। जैसे ऊपर कहा है, प्रत्येक Virus एक सूक्ष्मतर जीवित कण है जो ३० से ३०० मिलि माइक्रोन व्यास का होता है। इसका केन्द्र Nucleic acid (या तो Ribonucleic या desoxyribonucleic) का तथा इसका बाहर का खोल प्रोटीन का बना होता है। इसका विष इसके केन्द्र या Nucleic acid मे रहता है। Virus केवल जीवित सेल के अन्दर ही बढता है। बाहर यह निष्क्रिय रहता है। जीवित सेल के अन्दर प्रवेश करने पर उसमे इसके विपरीत एक प्रोटीन द्रव्य (Interferon) उत्पन्न हो जाता है जिसे एक प्रकार का Antibody कह सकते है। इसीलिए यदि किसी भी Virus को इतनी मात्रा मे कि जिसमे वह रोगजनक न हो, शरीर मे प्रविष्ट कर दे तो शरीर मे उसके विपरीत स्थायी प्रतिरोधक शक्ति (Immunity) उत्पन्न की जा सकती है। अज्ञात रूप मे या स्वल्पसी मात्रा मे Viruses का प्रवेश हजारो मे होता है पर उनमे रोग नही होता क्योकि स्वल्प मात्रा मे इसका प्रवेश होने मे इनमे Immunity उत्पन्न हो जाती है।

सप्राप्ति

Virus का सक्रमण होने पर पहले तो गले और फिर नासिका के Submucous Tissue मे विद्यमान रक्त-वाहिनिया शिथिल हो जाती है (उनमे रक्त भर जाता है या Vasodilatation हो जाता है) तथा वहा शोथ Oedema हो जाता है Mucousmembrane मे Mononuclear सेल भी अति मात्रा मे जमा हो जाते है। जिसमे नासा मार्ग मे विशेषतया Turbinates पर श्लेष्मकला फूल जाती है और रक्तवर्ण की हो जाती है। उसमे से श्लैष्मिक द्रव या म्यूकस का स्राव (Exudation) बहुत अधिक होने लगता है, जिसमे नाक की अन्दर की झिल्ली के Cilia वाले Cell भी होते है, जीवाणु नही होते, जो फिर शीघ्र ही गाढा हो जाता अर्थात् Mucopurulent हो जाता है। इस अवस्था मे इसमे Pneumo-Strepto-Staphylococci हो सकते है। नासिका की श्लेष्मकला के सूज जाने से नासा मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। नासिका की अन्दर की स्तर Cilia युक्त Columnar सेलो से बनी है जिसमे Goblet सेल भी होते हैं, इसके नीचे शोथ हो जाने से यह सारी नष्ट हो जाती है और फिर नई बनती है। नासामार्ग से यह शोथ नासास्रोतो या Paranasal Sinuses मे तथा Eustachian Tube मे भी प्रसरण कर सकता है। इन भागो के द्वार के बन्द हो जाने से तथा बन्द द्वार के पीछे विद्यमान वायु के विलीन हो जाने पर वहा वायु रिक्त प्रदेश या अवकाश (Vaccum) के बन जाने से सिर दर्द होता है जिसे अवकाश (Vaccum) सिरदर्द कह सकते हैं। इसी प्रकार शोथ युक्त Sinus के द्वार बन्द हो जाने पर उसमे उत्पन्न स्राव के वहा सतत भर जाने से भी सिरदर्द होता है जिसे दबाव के कारण होने वाला या (Distension) सिरदर्द कह सकते हैं। श्लेष्मकला के नीचे की लसिका वाहिनियो के द्वारा सीधे यह शोथ गले मे भी फैल जाता है तथा कण्ठ नाली मे भी हो जाता है (Tracheitis)।

लक्षण

इस रोग के Virus का सक्रमण होने के १२ से ४८ घण्टो के अन्दर यह रोग आरम्भ हो जाता है। यह रोग सहसा ही आरम्भ हुआ करता है। प्रारम्भ मे रोगी को अपनी नाक का स्रोत कुछ बन्द हुआ दाह युक्त लगता (१००% मे) तथा गला कुछ शुष्क सा तथा दुखता सा (९५% मे) प्रतीत होता है जिसमे श्वास मुख से लेना पडता है। नाक मे खुजली सी लगती है तथा छीके आने लगती है, सिर मे दर्द रहता है (७५% मे) इनके साथ ही पतला स्राव होने लगता है (१००% मे) जो जल की तरह का मात्रा मे बहुत होता है कुछ घन्टो मे ही गाढा (Mucopurulent) हो जाता है। नाक से स्राव जारी होने के बाद छीकें आनी बन्द हो जाती हैं। इन स्थानिक लक्षणो के साथ शरीर मे सर्दी (Chilliness) तथा भारीपन (Malaise) भी प्रतीत होने लगता है। शाखाओ, कटि आदि के मास मे भी वेदना (Aching) सी लगने लगती है, ज्वर जैसा लगता है, पर ज्वर प्राय नही होता या अति मृदु या गौण लक्षण के रूप मे होता है। इन प्रारम्भिक लक्षणो के बाद दूसरे दिन तक नाक मे से निकलने वाले गाढे स्राव की मात्रा पर्याप्त बढ जाती है। नासिका से श्वास लेना कठिन हो जाता है। गन्ध और श्वास की सज्ञा मन्द हो जाती है। गले (Pharynx) तथा कन्ठ (Larynx) मे शोथ के होने के कारण क्रमश शुष्क खासी तथा आवाज बैठने के लक्षण हो जाते हैं। खासी क्रमश बढती है और लगभग १ सप्ताह रहती है। बालको मे Tonsils भी सूज जाते है। इस प्रकार युवको मे यह रोग प्राय स्थानिक रूप मे ही होता है। ज्वर, शैथिल्य आदि लक्षण प्राय इस रोग

मे नही होते वे तो इन्फ्लुएन्जा मे पाये जाते हैं। जैसे यह छीको से आरम्भ होता है वह इस लक्षण के साथ आरम्भ नही होता। यह रोग तीन चार दिन मे ठीक हो जाता है और लगभग सात दिन तक खासी का लक्षण भी शान्त हो जाता है तो भी आधे से अधिक लोगो मे खासी, गलशोथ आदि उपद्रव हो जाते है। जुकाम के बाद खासी का लक्षण सम्भवत सक्रमण (Infection) को नीचे फैलने से रोकने के लिए होता है। परीक्षा करने पर नाक अन्दर से लाल सूजी हुई मिलती है, गला भी लाल रग का बिना सूजा हुआ होता है। इस रोग मे Maxillary Sinus मे शोथ प्रसरण कर जाया करता है जिससे भोहो और चेहरे पर दर्द हुआ करता है। नासास्रोत शोथ, Tonsillitis, Otitis, Laryngitis, Tracheitis जुकाम के प्रधान, प्रधान उपद्रव होते हैं। Eustachian tube मे शोथ हो जाए तो बाधिर्य का लक्षण, मध्यकर्ण मे शोथ हो जाए तो कर्णशूल होने लगता है।

नासास्रोतः शोथ
(Paranasal Sinusitis)

यह रोग तीव्र प्रतिश्याय तथा इन्फ्लुएन्जा के उपद्रव के रूप मे हुआ करता है। इन रोगो के दौरान मे किसी Sinus मे सक्रमण (Infection) के हो जाने से यह उपद्रव होता है। किसी Sinus मे शोथ हो तो एक ओर की नासिका से अतिस्राव का लक्षण होता है, दूसरे शिर दर्द विशेष होता है जो अग्रकपालास्थि मे प्रतीत होता है। तथा आगे नीचे झुकने से या किसी प्रकार का जोर लगाने से बढता है। Frontal Sinus मस्तक मे मध्य रेखा के दोनो ओर भौहो के पीछे होती है उसका द्वार नासा के ऊपर के भाग मे नासा-मध्य मार्ग (Middle-meatus) के अग्रभाग मे, नासिका के अन्दर खुलता है। इस Sinus की श्लेष्मकला मे शोथ के प्रसरण कर जाने पर तथा इसके द्वार के बन्द हो जाने पर आँख के पीछे माथे मे तीव्र वेदना प्रतीत होती है। Maxillary Sinus का छिद्र भी नासा मध्य मार्ग मे खुलता है। एक तरफ की इस Sinus की श्लेष्मकला मे शोथ प्रसरण कर जाए तथा इसका द्वार बन्द हो जाए अर्थात् Antrum मे Infection हो जाए तो तीव्र वेदना उपर की ओर आँख के नीचे गाल मे तथा उपर के ऊपर के दाँतो मे प्रतीत होती है। Ethmoidal Sinuses अग्रिम, मध्यम तथा पश्चिम (Anterior, Middle तथा Posterior) तीन समूहो मे नासा गुहा के ऊपर के भाग तथा नेत्र गुहा (Orbit) दोनो के बीच के प्रदेश मे होती है। इनमे से अग्रिम तथा मध्यम Sinuses तो Middle-meatus मे खुलती है तथा पश्चिम Sinus, Suderior meatus के अगले भाग मे, नाक मे खुलती है। इनकी श्लेष्मकला मे शोथ के प्रसरण कर जाने से, इनके द्वार के बन्द हो जाने पर Frontal Sinusitis के समान नेत्रो के पीछे तथा बीच के प्रदेश मे वेदना प्रतीत होती है। Sphenoidal Sinus नासिका के ऊपर के भाग मे Superior turbinate के भी पीछे खुलती है। उसकी श्लेष्मकला मे शोथ के प्रसरण कर जाने से तथा उसके द्वार के बन्द हो जाने से दर्द अग्र मस्तक मे या सिर के पिछले भाग मे या Temporal प्रदेश मे सिर की गहराई मे प्रतीत होता है। Maxillary Sinus मे यह शोथ अधिक हुआ करता है। इससे दूसरे नम्बर पर यह शोथ Ethmoidal Sinus मे होता है जो बालको मे विशेष होता है। अनेक Sinuses मे शोथ होने का रोग (Pan Sinusitis) किसी एक के ग्रस्त होने की अपेक्षा अधिक पाया जाता है। Sinuses मे चिरस्थायी शोथ के रहने से एक नासिका के अगले या पिछले भाग से पूययुक्त स्राव होता रहता है शिर मे भारीपन प्रतीत होता है। जुकाम जल्दी-जल्दी लग जाता है और देर तक रहता है। Tonsillitis Pharyngitis, या Laryngitis के उपद्रव भी हो जाते है। X-Ray मे इस रोग का निश्चय हो जाता है। परीक्षा करने पर W B C बढे हुए होते है तथा स्राव मे पूयजनक जीवाणु मिलते है। इस रोग के चिरकाल रहने से श्वास, कास (Bronchitis) Bronchiectasis के उपद्रव हो सकते है।

(नोट—यह विषय यकृत रोग के अन्त मे चाहिए था गलती मे यहा आ गया है)

यकृत् वृद्धि के लिये उपयोगी कुछ प्रयोग —

(१) क्षार पिप्पली योग (यो. र) पिप्पली चूर्ण को यवक्षार की कुछ भावनायें दें। मात्रा १ माशा।

(२) पिप्पलीघृत (वृ मा) पिप्पली कल्क २० तोला घृत १ सेर दूध ४ सेर। घृत साधन करें।

(३) गुडूच्यादिचूर्ण (भै र) गिलोय, अतीस, सोठ, चिरायता, यवतिक्ता, मोथा, पिप्पली, यवक्षार, कासीस, चमेली सम भाग मात्रा १ माशा।

(४) रोहीतकादिचूर्ण (भै र) रोहीडाछाल, यवक्षार, चिरायता, कुटकी, मोथा, अतीस, सोठ, नवसादर सम भाग का चूर्ण मात्रा १ माशा।

(५) गुडपिप्पली (भ र.) यवक्षार, सर्जक्षार, टकण की खील, पेठे की बेल का क्षार, अपामार्ग क्षार, इमली की छाल का क्षार, पाच नमक, कूठ, हींग, विडग, त्रिकटु, चीतामूल, सौंफ, समुद्रफेन

सम भाग। पिप्पली सर्व तुल्य। सबसे ४ गुणा गुड। इसकी गोली पर्याप्त बडी बनती है।

(६) यकृदरिलोहवृहत् (भै र) पारा, गधक, अभ्रक, त्रिकटु, कुटकी, त्रायमाण, अतीस, पाठा, नीमछाल, हरीतकी, चित्रक, पित्तपापडा, मुस्ता सम भाग। लोहभस्म सबसे आधा। गिलोय स्वरस से मर्दन करके ३-४ रत्ती की गोली। अनुपान आर्द्रक स्वरस।

(७) महामृत्युञ्जयलोह (भै र) पारा, गधक, अभ्रक, प्रत्येक आधा तोला। लोहा १, ताम्रभस्म २ तोला। यवक्षार, सर्जक्षार, अपामार्गक्षार, इमलीछाल क्षार, वराट, शख भस्म, सेंधव, विडलवण, चित्रक, हींग, कुटकी, इन्द्रजौ दो हल्दी, रसौ त, इन्द्रजौ, हरड, रोहीडाछाल, इन्द्रायण, अजवायन आधा-आधा तोला। गिलोय तथा अदरक रसो की कुछ भावनायें दें। २ रत्ती गोली दिन में ३ बार दें।

(८) कुमार्यासव (ग नि) घीकवाररस ६ सेर। गुड डेढ सेर। चतुर्जातक लवग, २, हल्दी वचा, जावित्री, विडग, मरिच, अकरकरा, पिप्पली प्रत्येक ५ तो, हरीतकी १० तोला। आसव बनायें।

पित्ताशय शूल के लिये उपयोगी प्रयोग :—

(१) कुमार्यासव—(यकृद्रोग में)

(२) त्रिफलाचूर्ण (वृ नि र) खाण्ड के साथ ३ माशा मात्रा मे दे।

(३) शिवादिचूर्ण (यो त) हरड, वचा, हींग, अतीस, इन्द्रजौ, सौवर्चल, सम भाग २ माशा मात्रा।

(४) गोमूत्र साधित हरीतकी योग (यो र शूले) गोमूत्र भावित या गोमूत्रपक्व हरीतकी को सुखाकर उसमें कुटकी चूर्ण मिलाकर या उसमें स्वल्प लोहभस्म मिलाकर दें।

(५) पटोलादिक्वाथ (यो र शूले) पटोल, त्रिफला, नीम छाल, सम भाग का क्वाथ दें

वातिक प्रतिश्याय

(Allergic Rhinitis, Nervous Rhinitis, Hay Fever तथा Vaso Motor Rhinitis)

जब कोई प्रोटीन त्वचा या श्लेष्मकला द्वारा शरीर मे प्रवेश करता है तब वहा के सैल उसे पचाने के लिये Antibodies बना लेते हैं। जिससे वह Amino acids में बदल जाता है तथा ये Antibodies रक्त मे रह जाते हैं फिर दुबारा जब वह प्रोटीन आता है तो वह उनके द्वारा पच जाता है। उदाहरणत पहले-पहल दूध या अण्डे का जो अंश बिना पूर्ण तौर से पचे रक्त में चला जाता है उसके विपरीत वहा Antibodies बन जाते हैं। इसी प्रकार श्वास-मार्ग से जाने वाले प्रोटीन भी जब रक्त में जाते हैं उनके विपरीत वहा Antibodies बन जाते हैं। इसी प्रकार रोगों के जीवाणुओं व उनकी विषों के विपरीत भी ये उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार युवा होने तक बालक बहुत-से बाह्य प्रोटीन्स के लिये Immune हो जाता है। इस प्रकार शरीर में सब प्रोटीनों के लिए Immunity होती जाती है जो उत्पन्न हुए Antibodies के द्वारा शरीर में आये प्रोटीन या जीवाणु को हजम कर जाने का सूचक होती है। कुछ एक व्यक्तियों मे विशेषत बालकों और नवयुवकों, लडके-लडकियों की नासिका की श्लेष्मकला मे किसी एक विशेष प्रकार के प्रोटीन पदार्थ के लिये, जो सर्वसाधारण व्यक्तियों के लिये सर्वथा निरुपद्रव होता है, उपर्युक्त Immunity के होने के स्थान पर न्यूनाधिक अक्षमता या असात्म्यता (Hypersensitivity या Allergy, Allas = न, Ergia = शक्ति = अशक्ति) होती है। यह प्रोटीन पदार्थ जब उनकी नासिका में प्रवेश करता है तब उन्हें सहसा प्रतिश्याय का वेग हो जाता है अर्थात् ऐसे व्यक्ति में Antibodies अपूर्ण रूप में होते हैं अर्थात् उनमें निर्बल-सी Immunity उत्पन्न होती है। सम्भव है कि सहसा सर्दी लगने से नाक में हिस्टामीन जो जीवित अवयव के क्षत हो जाने पर उत्पन्न होने वाला एक विषैला पदार्थ है उत्पन्न हो जाता है जिससे वहा की रक्त-वाहिनियो की दीवार आहत होकर फैल जाती है और उनसे द्रव की मात्रा बहुत निकलने लगती है। ऐसी अवस्था मे वहा पहले से पडा या बाहर से आया Virus जो प्रोटीन और Antigen है, सैलों में प्रविष्ट हो जाता है। कुछएक प्रोटीन पदार्थों के लिए इस प्रकार की अक्षमता की प्रवृत्ति जन्म से ही आती प्रतीत होती है। क्योंकि जिस परिवार मे यह रोग पाया जाता है उसके अनेक व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न रूप मे यह निर्बलता देखने में आती है। इन लोगो का नाडी मण्डल (Nervous System) अधिक विक्षोभशील होता है। भिन्न-भिन्न घासों तथा Fungi से उडने वाले पराग (Pollen) मे विद्यमान प्रोटीन के लिये Allergy होने का रोग अधिक पाया जाता है। घर के अन्दर झाडने बुहारने से उत्पन्न होने वाली धूल (House-dust) मे भी कोई प्रोटीन पदार्थ होता है, उसके लिये भी कुछएक व्यक्तियों की नासिका मे अक्षमता होती है। इसी

प्रकार सिर या त्वचा पर से उड़कर आये छिलको, ऊन के उडकर आये खण्डो के लिये अक्षमता भी होती है। सर्दी की ऋतु के बाद अप्रैल के महीने मे तथा सर्दी की ऋतु के पहले अक्तूबर के महीने मे जब प्रवल हवाये चलने लगती हैं तो उनके द्वारा घासो तथा Fungi की पराग उडकर हम सबकी नासिका मे प्रवेश करती है। असहनशील (Allergic) प्रकृति के व्यक्तियो की नासिका की श्लेष्मकला मे नि क्षिप्त हुए ये प्रोटीन कण विपरीत गुण होने के कारण उन पर विप का-सा प्रभाव करते हैं अर्थात् उनके लिये ये Antigen या Allergen हो जाते है। जिससे इनकी नासिका की श्लेष्मकला मे प्रवेश करने पर उसके सैलो मे इनके विपरीत Antibodies उत्पन्न हो जाते हे और उन्ही सैलो मे पडे रह जाते हैं, रक्त मे नही जाते जिन्हे Sensitizing Antibodies कहते हैं। Antigen molecules हमारे किसी अग के सैलो मे प्रवेश करके उनके Enzymes मे ऐसा परिवर्तन करते है कि उनमे कुछ ऐसे प्रोटीन्स उत्पन्न हो जाते हैं जिनका Electrical charge इनसे सर्वथा विपरीत होता है। नासिका की श्लेष्मकला के अतिरिक्त ये नेत्रों की श्लेष्मकला रक्त के Plasma तथा त्वचा मे भी उत्पन्न हो सकते है और वही सैलो मे पडे रहते हैं। अगले मौसम मे जब यही पराग हवा के साथ उडकर फिर नासिका की श्लेष्मकला मे प्रवेश करता है अर्थात् फिर जब Antigen वाहर से रक्त के द्वारा वहा आता है तो वहा सैलो मे विद्यमान Sensitizing Antibodies के साथ इलेक्ट्रिकल चार्ज की विपरीतता के कारण इसका सघर्ष होता है जिससे उस स्थान पर ऐसी विनाशक प्रतिक्रिया होती है कि वहा के आहत या क्षत हुये सैलो या Protein Tissue मे से एक विषैला प्रोटीन पदार्थ जो Histamine जो अवयवो के प्रोटीन्स के पचन (Hydrolysis) से उत्पन्न Histidine नामक Amino Acid के पचन से उत्पन्न होने वाला पदार्थ है या तत्सदृश द्रव्य होता है, उत्पन्न हो जाता है जिससे नासा श्लेष्मकला की रक्तवाहिनिया (उनकी Smooth muscles) शिथिल हो जाती है अर्थात् नासिका की सिराओ (Capillaries) मे शैथिल्य (Vasodilatation या Paralysis) हो जाता है। उनमे से द्रव के रिसने की प्रवृत्ति या उनके सैलो की Permeability बढ जाती है जिससे नासा श्लेष्मकला मे हलकी लालिमा और श्वयथु (Oedema) हो जाते हैं। नासिका, तालु, गले आदि मे खुजली होकर छींके आने लग जाती है और नाक से पतला-सा श्लेष्म द्रव (Mucus) बहुत मात्रा मे निकलने लगता है (Hypersecretion)। छीकों का यह दौरा प्राय प्रात काल के समय होता है। नाक की परीक्षा करने पर उसकी श्लेष्मकला पानी से भरी हुई तथा फूली हुई पाई जाती है (कभी-कभी Polypoid भी बन जाते है)। पर वह अधिक रक्तवर्ण न होकर कुछ श्वेतवर्ण ही होती है। उस पर सूखा हुआ स्राव लगा हो, जैसा जुकाम मे होता है ऐसा कभी नही होता। नासिका से निकले स्राव की परीक्षा करने पर उसमे Eosinophil Leucocytes भी मिलते हे (अन्य infections मे Neutrophils प्रधानता से होते है)। इनके वहा नष्ट होने से इनमे से भी हिस्टामीन निकलता है और सिराओ मे से द्रव और निकलता है। रोगी के रक्त मे भी ५-१०% ये श्वेतकण होते हे। रोगी की आखो मे से भी पानी वहता हे, आखो मे दाह और खुजली भी होती है। रोगी को ज्वर नही होता। जब-जब हवा के द्वारा घास जैसे पौधो का पराग (Pollen) उडकर नाक मे प्रवेश करता हे तभी-तभी इस प्रतिश्याय का दौरा हो जाता है, अन्यथा प्रतिश्याय नही होता, इसीलिए इसे Hay (घास) Fever भी कहते हैं। दौरा सहसा प्रारम्भ होता हे और सहसा ही समाप्त हो जाता हे। वर्षा हो जाने पर या किसी कारण से जब हवा मे पराग नही रहता रोग नही होता। जब रोगी मे अक्षमता (Allergy) अधिक होती है अथवा विरोधी प्रोटीन द्रव्य (Antigen) अधिक मात्रा मे शरीर मे प्रविष्ट हो जाता है तो श्वास नालियो के मास मे Spasm होकर तथा रक्तवाहिनियो से स्राव होकर कास तथा श्वास (Asthma) के भी वेग हो जाते हैं। यह भी बहुत सम्भव है कि प्रतिश्याय मात्र Allergy के कारण ही होता है और यह सब प्रतिक्रिया आगन्तु विष या Antigen के निवारण के लिये होती हे। भोज्य पदार्थो मे से कुछ पदार्थ जैसे दूध, गेहूँ, सन्तरा, टमाटर, चौकोलेट भी कभी-कभी किसी व्यक्ति मे Allergens का काम करते हैं। Allergy की निर्बलता माता-पिता से आती है जो शिशु मे पामा Eczema के रूप मे, वालक मे प्रतिश्याय तथा युवक मे श्वास रूप मे प्रकट होती है।

जीर्ण प्रतिश्याय
(Chronic Rhinitis)

यदि वाहर मे धूल या धूम अधिकता से नाक मे प्रवेश करता हो, या Adenoids, Tonsillitis हो या नासामार्ग की रचना मे किसी प्रकार की विषमता हो या किसी Sinus मे शोथ रहता हो, या उरःक्षत रोग की प्रवृत्ति हो तो नासिका की श्लेष्मकला मे शोथ चिरस्थायी रूप मे रहता है या प्रतिश्याय शीघ्र-शीघ्र होता रहता है। चिरस्थायी प्रतिश्याय के कारण जब Inferior Turbinate के अगले सिरे तथा पिछले सिरे पर की श्लेष्मकला मे अति वृद्धि (Hyperplasia) हो जाती है तब उसे Chronic Hyper–

trophic Rhinitis कहते हैं। जीर्ण प्रतिश्याय रोग में नासामार्ग कुछ-कुछ बन्द-सा रहता है तथा उसमें से पतला या गाढा श्लैष्मिक या श्लेष्म पूययुक्त (Mucous or Muco-purulent) स्राव लगातार बना रहता है। बालक में Eustachian Tube के द्वारा शोथ कान में सक्रमण कर जाता है जिससे कर्णशोथ (Otitis Media) का रोग हो जाता है। एक नाक में पूययुक्त (Purulent) स्राव होता रहे तो उधर नासा स्रोत शोथ (Sinusitis) का सन्देह हो जाना चाहिए। ऐसी अवस्था में रोगी को कुछ गन्ध सी भी प्रतीत होती है।

शुष्क वातिक प्रतिश्याय (Atrophic Rhinitis)

कुछएक निवल प्रकृति की युवक-युवतियों को जिन्हें सदा प्रतिश्याय रहता हो, नासिका में प्रतिरोधक शक्ति की न्यूनता के कारण श्लेष्मकला स्थूल न होकर क्षीण हो जाती है, अर्थात् उसका रोगटो वाला बहिस्तर (Epithelium) जिसके द्वारा नासिकागत मल बाहर कर दिया जाता है, नष्ट होने लग जाती है। उसके स्थान पर चपटे (Squamous) सैल आ जाते हैं। श्लेष्मकला की धमनियों में Peri तथा Endarteritis का लक्षण होता जाता है, आस पास Fibrosis होता है। इसी क्षीणता का कारण नासा के अन्दर Vasoconstriction का रहना है या विटामिन 'ए' तथा 'डी' की कमी है इस विषय में निश्चय नहीं हुआ। इस क्षीणता (Atrophic Degenration) की प्रक्रिया के कारण इस प्रकार के जीर्ण प्रतिश्याय को Atrophic Rhinitis कहते हैं। नासिका की श्लेष्मकला दोनो ओर देखने में सिकुडी हुई, पतली, रक्तविहीन, फीके रग की होती है। जिससे नाक का मार्ग वडा, खुला और पीछे ऊपर तक स्पष्ट दीखता है। श्लेष्मकला शुष्क तथा मल की परतो (Crusts) से छाई होती है जिनमे जीवाणु (Saprophytes) जनित विदाह (Decomposition) के परिणाम रूप मे दुर्गंध उत्पन्न हो जाती है जो परीक्षक को ही प्रतीत होती है, रोगी को नहीं। क्योंकि नासा की श्लेष्मकला की क्षीणता के साथ उनकी गन्ध सज्ञाहीन हो जाती है। इस जीर्ण प्रतिश्याय के दुर्गन्धजनक होने के कारण इसे पूति प्रतिश्याय (Ozaena) भी कहते है।

नासारक्तस्राव (Epistaxis) —धमनी काठिन्य रोग, रक्तभारवृद्धि, जीर्ण वृक्करोग, हृदयरोग तथा तीव्र ज्वरो तथा रक्त पित्त Purpura तथा Anaemia और Leukaemia के कारण नासारक्तस्राव हुआ करता है। कपाल के तल (Base) मे अस्थिभग होने पर भी नाक से खून निकलता है। रक्तस्राव शीघ्र ही रुक जाता है। इसका अन्दर नासा पट से है इसके ऊपर श्लेष्मकला के से या Inf turbinate के अग्र सिरे में से होता है। नासाग्र को अंगूठे और तर्जनी से ५ मिनट तक भींचने से Hydrogen Peroxide या Phenylephrine ½% या Epinephrine १०००-१ के घोल में भीगी रुई के द्वारा रखने से यह बन्द हो जाता है। Ephedrine २% नासागत में भी यही काम होता है। उसे ४-५ मिनट में अधिक न रखें। इससे न रुके तो Silver Nitrate १०% द्रव लगाया जाता है। बारबार आता हो तो रक्तस्राव का रोकना उचित नहीं।

तीव्र प्रतिश्याय की चिकित्सा

जब इस रोग के भिन्न-भिन्न Viruses के Vaccine बन जावेंगे तब इस रोग की प्रतिरोधक (Preventive) चिकित्सा सुगम हो जायेगी। अभी तो भीड़-भाड़ से दूर छोटी बस्तियों में रहने से ही इस रोग से बचा जा सकता है। तो भी प्रतिश्याय रोग के होते ही रोगी २४ या ४८ घण्टों के लिये शय्याशायी हो जाय और पूर्ण विश्राम कर ले तो रोग न तो तीव्र रूप लेता है और न ही कोई उपद्रव होता है, न ही यह दूसरों में फैलता है, यह विश्राम चिकित्सा इस रोग की उत्तम चिकित्सा है। यदि शरीर में क्षय रोग की प्रवृत्ति हो या आयु बड़ी हो या शरीर की किसी प्रकार की निर्बलता के कारण प्रतिश्याय रोग बार-बार होता हो तो तीन-चार दिन तक विश्राम को जारी रखना चाहिये। विश्राम के दौरान में किसी उष्ण पेय, या गर्म जल, उष्ण, लघु, रूक्ष, गुरु, सुपाच्य आहार के सेवन से लाभ रहता है। गर्म जल में निम्बू शहद तथा ३-४ ड्राम ब्राण्डी मिलाकर पीने से भी आराम प्रतीत होता है। किसी-किसी का १-१ चम्मच सोडा गर्म जल से ३-३ घण्टे बाद लेने से आराम रहता है परन्तु प्रतिश्याय निवारक कोई औषधि नहीं है। रोगी के कष्ट को कम करने के लिए वेदना शामक (Analgesic) औषधियों का प्रयोग किया जाता है। Aspirin ५-१० ग्रेन की मात्रा मे देने से रोगी को बडा आराम लगता है। इसे दिन मे ३-४ बार दूध, चाय, जल आदि से देना चाहिए। Aspirin, Phenacetin प्रत्येक चार ग्रेन, Codeine Phosphate ८ मिलि० या ⅛ ग्रेन की १-२ गोलियाँ अकेले या Papaverine २ ग्रेन के साथ या Aspirin ३½ और Phenacetin २½ ग्रेन की बनी गोलिया या Aspirin तथा Dover's Powder समान-समान की बनी गोलिया ५ ग्रेन की मात्रा मे दिन मे तीन-चार बार या Aspirin ४ ग्रेन, कपूर १ ग्रेन तथा Atropine $\frac{1}{200}$ ग्रेन की पुडिया ६-६ घण्टे पर दी जाती हैं। Pot. Acet

Pot Cit १४-१५ ग्रेन, Liqu Ammon Acit Dil ६० वून्द तथा कर्पूर जल १ औस मिलाकर ६-६ घण्टे पर देने से भी आराम प्रतीत होता है। नार्मल सेलाइन या ५-२० प्र०श० ग्लूकोज जल के द्वारा कुल्ले करने से भी आराम प्रतीत होता है। नासिका और गले की शोथ युक्त श्लेष्म-कला को सकुचित करने के लिये सकोचक (Vosoconstrictor) औषधियां नाक मे डाली जाती हे जैसे १ प्रतिशतक Ephedrine Sulphate नार्मल सेलाइन मे मिलाकर या ½ या ¼ प्रतिशतक Neosynephrine (Phenylephrine) नार्मल सेलाइन मे मिलाकर नाक मे डालने या छिडकने से नासामार्ग खुल जाता है। Amphetamine (Benzedrine) inhalent के सूघने से भी यही लाभ (Vasoconstriction) होता है पर Ephedrine से इन औषधियो मे कोई विशेषता नही। हल्के गर्म नार्मल सेलाइन द्वारा कभी-कभी नासिका को धो लेने से भी आराम प्रतीत होता है। सोडा वाई कार्व तथा Borax १५-१५ ग्राम लवण ६० ग्राम मिला इसके 1 ड्राम को १ पाइट जल मे मिलाकर उससे नाक को धोना चाहिए। १ पाइट उवलते हुये जल को ५-७ मिनट रखकर उसमे एक छोटा चम्मच Tincture Benzoin Co तथा युकेलिप्टस तेल के २ वून्द डालकर उसकी वाष्प के नाक मे लेने या नाक पर सिकाई करने से भी नासिका का शोथ शान्त होता है। वर्तन के ऊपर तौलिया लपेटकर फनल-सी वनाकर उसकी वाष्प ली जा सकती है। १ पाइट उवले हुये तथा कुछ ठण्डे किए जल मे Menthol Spirit (२५ प्रतिशत) की १० वून्द डालकर भी वाष्प ले सकते है। Liquid Paraffin मे आधा प्रतिशत की मात्रा मे Chloretone, Menthol तथा Lemon Oil मिलाकर नाक मे डालने से या Endrine या Privine १ प्र०श० (Naphalozine Hydrochloride Solu) के नाक मे डालने से या Rhinox (Crookes) के छिडकने से नासा शोथ शान्त होता है। इन सवका Virus पर कोई प्रभाव नही होता तथा चिकने द्रवो को डालना ठीक नहीं। ये Vasoconstrictor हैं तथा इनका केवल वाह्य सक्रमण (Secondary Infection) पर कुछ प्रभाव होता है। Neosynephrine १० मिलि० के ४ ४ घन्टे पर मुख द्वारा देने से या १ से ५ मिलि० के इजेक्शन द्वारा देने से या Ephedrine के २५ मिलि० मात्रा मे देने से भी लाभ होता है। इसे किसी Barbiturate से मिलाकर भी दे सकते हैं। Vasoconstrictor औषधियो का प्रयोग कभी-कभी ही करना ठीक है। अति प्रयोग से यह रोग वढता है। Antihistamine औषधि से भी इस रोग मे कोई लाभ नहीं।

प्रतिषेधक चिकित्सा :—

जव यह रोग फैला हुआ हो तो भीड-भाड मे नही जाना चाहिये। जाना पडे तो मुख वन्द रखना चाहिये। तथा वहा से आते ही नार्मल सेलाइन से नाक को धो लेना चहिये। इस रोग के रोगी के सम्पर्क से वचना चाहिये। जिन्हे जुकाम शीघ्र-शीघ्र हो जाता हो, उन्हे सदा नाक से श्वास-प्रश्वास लेना चाहिये। गर्मी के वाद सहसा सर्दी मे जाने से वचना चाहिये। कुछ-कुछ शीत जल द्वारा स्नान करके त्वचा को शीत सहने योग्य वनाने का यत्न करना चाहिये। विटामिनो का सेवन करना चाहिये। खुली हवा मे सोना व रहना चाहिये और उचित व्यायाम, विश्राम, आहार आदि के द्वारा शरीर को स्वस्थ वनाना चाहिये। तथा Stock अथवा Autogenous Catarrhal Vaccine के स्वल्प मात्रा मे सप्ताह के अन्तर से शीतकाल मे कुछ इजेक्शन ले लेने चाहिये। १ मिलीलिटर से १ मिलिलिटर तक १-१ सप्ताह के अन्तर से ले लेने चाहियें। इस मात्रा के वाद १५-१५ दिन वाद लेने चाहिये। नासास्रोतोरोग या Sinusitis मे जीवाणुओ का सक्रमण होने से Procaine Penicillin का दिन मे १-२ वार प्रयोग करना चाहिये। नाक पर सिकाई करनी चाहिये।

Allergic Rhinitis की चिकित्सा :—

Airconditioned कमरे मे रहने या उस ऋतु मे मकान के दरवाजे खिडकी वन्द कर देने से आदमी Pollen से वच जाता और इस रोग से भी वचा रहता है। रोगी के नाडी मण्डल (Nervous System) की निर्वलता या विक्षोभ-शीलता को जो कि इस रोग का एक कारण है हटाने के लिये यत्न करना चाहिये। इस उद्देश्य से Vitamin A D Calci Ostelin तथा मक्खन, घृत आदि दिये जा सकते है। नासिका की श्लेष्मकला के विक्षोभशील प्रदेश की विक्षोभ-शीलता को हटाने के लिए Argyrol १० प्रतिशतक लगा सकते है। Adrenaline in Paraffin (५०००-१) के नाक मे डालने से भी लाभ होता है। आखो पर काला चश्मा लगाये रखना चाहिये। सर्दी के अन्त मे चलने वाली हवा मे विद्यमान पराग से वचने के लिये समुद्र के किनारे या पर्वत प्रदेश पर जा सकते है अथवा इस मौसम के जिसमे कि इस रोग का वेग प्रतिवर्ष होता है, ३ मास पहले से ही वाजार मे मिलने वाले Dilute Extrart of Pollen (Pollaccine या Bronchagen या Haygen) के इजेक्शन त्वचा द्वारा अति स्वल्प मात्रा मे आरम्भ करके क्रमश वढती हुई मात्रा मे एक-एक सप्ताह वाद ले लेने चाहियें। इसके ४०-१०० Units की मात्रा से आरम्भ करके

१०-१५ इजेक्शन एक-एक सप्ताह के अतर से लेने से ऐसे Blocking Antibody उत्पन्न हो जाते हैं जो श्लेष्मकला तथा शरीर मे उत्पन्न हुए Sensitizing Antibody के विपरीत कार्य करते हैं। इस प्रकार ४०-६०-८०-१००-२०० -४००-६००-८००-१०००-२०००-४०००-६०००-८०००-१०००० आदि यूनिट्स दे सकते है। इस इजेक्शन के लेने से १ घण्टे पहले Cal Lact १० ग्रे० की मात्रा मे लेने से इसका स्थानिक दुष्प्रभाव कोई नही होता। इजेक्शन से प्रतिक्रिया हो तो Adrenaline दे तथा इजेक्शन की मात्रा कम कर दे। मार्च मे इस इजेक्शन के प्रारम्भ करने से पहले फरवरी मे ही रोगी की अग्रबाहु पर एक बून्द नार्मल सेलाइन की तथा समीप ही १ बून्द Pollaccine(१ मि लि मे २० हजार यूनिट)की रख के दोनो मे पृथक्-पृथक् हाईपोडर्मिक नीडल से त्वचा मे एक छेद सा कर दिया जाता है। बाद मे रुई से दोनो बून्दों को पोछ दिया जाता है। १५ मिनट बाद Pollaccine या Bronchagen के बून्द के स्थान पर एक लाल चकत्ता दीखने लगता है। इसे Positive Reaction कहते हैं। जब इस रोग का दौरा हो जाय तो उसके शान्त करने के लिये Prednisolone के जोकि Anti allergic inflammatory औषधि है ५ मिलि की मात्रा मे छ-छ घण्टे पर देने से या Corticotropin (ACT H) के ४० Units की मात्रा मे प्रतिदिन मास द्वारा देने से तुरन्त लाभ हो जाता है। लाभ हो जाने पर मात्रा आधी या चौथाई कर दी जाती है तथा औषधि—मात्रा को कम करते हुए—एक सप्ताह तक ही दी जाती है या Prednisolone Phosph (१ सी०सी० मे १ मिलि०) या Hydrocortisone Snuff या Hydrocortisone Nasaldrop, (१ सी सी ना० सेला० मे २ मिलि०) के नस्य के रूप में नाक मे लेने से तुरत लाभ हो जाता है। आख के कष्ट के लिये Adrenaline (८०००-१)को Zinc Sulph $\frac{1}{4}$% के साथ आख मे डाले। ३ बून्द Adrenaline तथा १०० Units of Pollen Toxin के त्वचा द्वारा प्रतिदिन लेने से भी यह रोग शान्त हो जाता है। Antihistamine Drugs के जो Histamine की उत्पत्ति को नही पर उसे रक्तवाहिनियो, श्वासनालियो आदि पर दुष्प्रभाव करने से रोकती हैं यह रोग तुरन्त शात तो हो जाता है, नष्ट नही होता (Palliative)। इस प्रयोजन से Chlorpheniramine Maleate (Piriton) ४ मिलि० के दिन में ३ वार या Meclozine hydrochlor (Ancolan) २५ मिलि० के प्रातः १ वार लेने से उस रोग मे आराम आ जाता है। Benadryl (Diphenhydramine) २५-५० मिलि० (Elixir १ चम्मच मे १० मिलि० वालको मे) या Promethazine (Phenergan) १० मे २५ मिलिग्राम की (दिन मे १० मिलि० रात के समय २५ मिलि०) या Antistine (Antazoline) १$\frac{1}{2}$ ग्रेन की गोली या Anthisan ५० मिलि० या Tripelemanine (Pyribenzamine)५० मिलि० दिन मे दो-तीन वार दे सकते है। या Histryl Spansule ५ मिलि० १२-१२ घण्टे पर दे। या Phenindamine tartrate (Thephorin) २५ मिलि० दे या Fenostil retard २-५ मिलि. दें। रक्तवाहिनी सकोच —Vasoconstriction के लिये Privine की बून्दो के अतिरिक्त Normal Saline मे $\frac{1}{2}$-२% Ephedrine Sulphate या Neosynephrine या Neophryn $\frac{1}{2}$ प्र श. मिलाकर इन्हे नाक मे प्रति ४-६ घ० बाद ३-६ दिन तक डालना चाहिये। Hydrocortisone Snuff (Lactose ८५ मिलि० Hydrocort acetate १५ मिलि०)भी नाक मे ली जाय तो तुरन्त पर अस्थायी लाभ हो सकता है (दिन में ३ वार)। शुष्क कास के हटाने के लिये Codeine Phosphate $\frac{1}{2}$-$\frac{1}{4}$ ग्रेन ३-३ घ० पर दे सकते हैं।

चिरस्थायी प्रतिश्याय (Chronic Rhinitis) की चिकित्सा :—

जीर्ण प्रतिश्याय रोगी की जीवाणु प्रतिरोधक शक्ति को वढाने के लिए उसे खाण्ड तथा कार्वोहाइड्रेट की मात्रा कम कर देनी चाहिए। Vitamin A D तथा कैल्सियम (Calci-ostelin) लेने चाहिये तथा उसे आप्य देश से हटकर शुष्क प्रदेश मे रहना चाहिये। यदि नासामार्ग मे कोई विक्षोभक कारण हो, Adenoids हो Tonsillitis हो तो इनकी चिकित्सा करनी चाहिये। वाहर से आने वाले धूल, धूम आदि विक्षोभो से वचना चाहिये। नासिका मार्ग के शोथ के हटाने के लिये Menthol या Eucalyptus Oil से युक्त गर्म वाष्प का नासिका मे सेक पहुचाना चाहिये। नासामार्ग को नार्मल सेलाइन से या उसमे सोडा वाईकार्व तथा Chloretone $\frac{1}{2}$ प्रतिशतक और ग्लिसरीन १० प्रतिशतक मात्रा मे मिलाकर उससे धोना चाहिये। अथवा Menthol, Eucalyptus Oil, Chloretone प्रत्येक $\frac{1}{2}$ प्रतिशतक मात्रा मे Liquid Paraffin मे मिला, इसका आश्च्योतन नासिका मे लेना चाहिये। Sinusitis भी इसी चिकित्सा से ठीक हो सकता है। पूति प्रतिश्याय (Ozaena)के लिये Borax १५ ग्राम, Sodium Chloride ६० ग्राम, Sodabicarb १५ ग्राम मिलाकर इसकी १ ड्राम मात्रा को १ पाइट हलके गर्म जल मे मिला, उससे या Borax, Sodabicarb ६-६ ग्रेन, Acid Carbolic २ बूद, खाण्ड १० ग्रेन, शुद्ध जल १ औस मिलाकर इससे नाक को

धोना चाहिये या Pot Permeng (२ पा० मे १ ग्रेन) से धोना चाहिये। उसके बाद नासा छिद्र मे सुगन्ध युक्त तेल की या Liquid Paraffin की एक-दो बून्द डाल देनी चाहिये। या Iodine Glycerine की भीगी रुई भरनी चाहिये या ग्लिसरीन मिश्रित २५ प्रतिशतक ग्लूकोज़ के जलीय घोल को नाक मे डालना चाहिये या नार्मल सेलाइन मे ५% स्पिरिट, ३% ग्लिसरीन मिलाके उसे नाक मे दिन मे ३ बार डालना चाहिए। Acetylcholine को जो Vasodilator है Lactic Acid के साथ मिलाकर नाक मे डालने से Vasoconstriction दूर होता है। Cod Liver Oil डालने से विटामिन 'ए' की पूर्ति होती है तथा मल्टि विटामिन्स का मुख द्वारा प्रयोग करना चाहिये।

Nasal Sinusitis के लिये रोगी को आराम से लिटाकर उसे शामक औषधियां देनी चाहियें तथा द्रवाहार पर रखना चाहिये तथा इफेड्रीन सदृश Phenylpropanolamine (Prothricin) को २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ बार दें तथा किसी Antibiotic का प्रयोग कुछ काल तक करे। नाक मे Ephedrine का नार्मल सेलाइन मे आधा प्र०श० बना सोल्यूशन चार-चार घण्टे बाद डालना चाहिए तथा साथ ही गर्म भाप नाक मे देनी चाहिए। किसी वेदना शामक औषधि का प्रयोग करना चाहिए, या Phenylephrine. २५ प्र०श० सोल्यूशन डालना चाहिये। रोग पुराना हो तो शल्य-कर्म आवश्यक हो जाता है।

आयुर्वेद में प्रतिश्याय रोग :—

बाह्य विक्षोभक द्रव्य के "प्रति" जब नासिका चलने (श्यैङगतौ) लगती है तब उस रोग को प्रतिश्याय कहा है।

कारण :—

साधारणतः तो नासिकागत वायु (प्राणतत्त्व) पित्त, (पाचकतत्त्व) कफ (वर्धकतत्त्व) बाहर से आये विषैले या विक्षोभक द्रव्य को बिना प्रकुपित हुए ही नष्ट कर देते है। परन्तु जब ये दूषित (Defective, disordered) होते है, तब ये प्रकुपित होकर आगन्तु विक्षोभक द्रव्य को नष्ट कर पाते है। देहाग्नि के मन्द हो जाने से शरीर में आम दोष (Metabolic mal products) बढ जाता है। इस प्रकार दोषो की अधिकता से क्रमशः कफ प्रतिश्याय (Catarrhal Rhinitis) पित्त प्रतिश्याय (Suppurative Rhinitis) वात प्रतिश्याय (Nervous Rhinitis) मुख्यतः तीन प्रकार का प्रतिश्याय होता है।

(च०।चि०।२६।तथा सु।०उ०।२४)

जीर्ण प्रतिश्याय या पीनस :—

देहाग्नि की मन्दता, अथवा तीव्रता, अथवा शरीर के प्राणतत्त्व की हीनता चिरस्थायी रूप में रहे और ऐसा व्यक्ति सदा धूल, धूम या वाष्पमय या आर्द्र प्रदेश मे रहता हो तो प्रतिश्याय रोग जीर्ण रूप में रहता है। नासिका मे कफ की प्रतिक्रिया या प्रकोप विशेष हो तो नासारोध तथा नासास्राव के लक्षण रहते हैं, इसे श्लेष्माधिक जीर्ण प्रतिश्याय (Hypertrophic Rhinitis) कहते है। नासिका में पाक सूचक प्रतिक्रिया हो अर्थात् किसी नासा संबधी स्रोतस् में पूय भाव हो, नाक से पूय मिश्रित स्राव होता हो तो इसे जीर्ण पित्त प्रतिश्याय (Chronic Suppurative Rhinitis) कहते हैं। इनमे कफ तथा पित्त के प्रकोप के साथ वायु का प्रकोप अर्थात् दैहिक प्राणतत्त्व की हीनता भी होती है। कभी-कभी नासिका की श्लेष्मकला शुष्क हो जाती हैं, उसकी श्लेष्म ग्रन्थियो से स्राव कम हो जाता है तब इसे जीर्ण वातिक प्रतिश्याय (Rhinitis Sicca) कहते है। वायु की वृद्धि इस रोग का प्रधान कारण है।

दुष्ट प्रतिश्याय (Ozaena, Atrophic rhinitis) —

जीर्ण प्रतिश्याय में कुछ काल बाद नासिका की श्लेष्मकला मे वातिक क्षीणता हो जाती है। उसके पतले हो जाने से नासा मार्ग चौडा एव खुला हो जाता है। श्लेष्म स्राव के वहा सूख जाने एवं विदग्ध हो जाने से नासा मे से दुर्गन्ध आने लगती है, जो रोगी को घ्राण शक्ति के नष्ट हो जाने से उसे नहीं लगती।

(सु०।उ०।२४)

उपद्रव :—

नासामार्ग से शोथ नासाकर्ण स्रोत मे और वहा से मध्य कर्ण मे चला जाय तो बाधिर्य रोग, नासा नेत्र स्रोत मे से नेत्र में चला जाय तो नेत्र रोग, नासा से नीचे गले कण्ठ तथा श्वासमार्ग मे फैल जाय तो कास रोग हो जाता है।

(सु०।उ०।२४)

प्रतिश्याय चिकित्सा :—

कफ प्रतिश्याय में रोगी को लघु लंघन तथा उष्ण दीपन चिकित्सा से अर्थात् सिर पर गर्म कपडा लपेटकर एक-दो दिन निर्वात गृह मे आराम से लेटे रहने से और गर्म जल या मूग, अरहर, कुलथी, बैंगन, परवल आदि किसी के यूष या तुलसी पत्र ३ पाव, सौंफ १ पाव, बनफ्शा, गाजबां, सोठ, उन्नाव एक-एक छटांक, मरिच, इलायची आधा-आधा छटांक मिलाकर बनाई चाय पर रहने से आराम आ जाता है। द्राक्षा, गुलाब, उन्नाव, रेशाखतमी, खुब्बाजी, श्वेत चन्दन, ½-½ तो० गुलबनफशा, मुलहटी, सोफ १-१ तोला, सोठ २ तो० को १½ सेर जल में भिगो, पकाकर ½ सेर रखकर १ सेर मिश्री डालकर बनाया शर्बत १-२ तो० दिन मे कई बार चाटने से भी आराम आता है।

प्रारम्भ मे कर्पूर, वचा, जीरा, युकलिप्टस तेल आदि के सूघने से तथा जब कफ गाढा हो जाय तो कट्फल, मरिच, पिप्ली, वायविडग आदि का नस्य लेने से सिर हलका होता है।

नव प्रतिश्याय मे निम्नलिखित योगो में से किसी का प्रयोग करना चाहिए :—

(१) व्योषादि चूर्ण (यो र.) त्रिकटु, चित्रक, तालीस, इमली, अम्लवेतस, चव्य, जीरा ४-४ भाग, त्रिजातक १-१ भाग, गुड सर्वतुल्य, मात्रा ३ माशा।

(२) कट्फलादि चूर्ण (यो र) कट्फल, पुष्कर-मूल, काकडा सिंगी, त्रिकटु, धन्वयास, काला-जीरा समान-समान का चूर्ण, २ माशा मात्रा में अदरक रस तथा शहद से।

(३) त्र्यूषणादि (व से) केवल त्रिकटु चूर्ण को गुड के साथ दें या केवल मरिच चूर्ण को गुड के साथ दें।

(४) पञ्चमूली कषाय (यो र) लघु पञ्चमूल कषाय को दूध के साथ दें।

(५) वचादि कषाय (हा स) वचा, अजवायन, सोंठ, त्रिफला समान-समान का कषाय रात को दें।

(६) प्रतिश्यायहर रस (भा भै. र) पारा, गधक, तुलसी बीज समान-समान को पिप्पली तथा शुण्ठी क्वाथ से ३ ४ दिन मर्दन कर। ३ रत्ती की गोली।

(७) पिप्पल्यादिनस्य (भा प्र.) पिप्पली, सुहाजने के बीज, विडग, मरिच समान-समान के चूर्ण को जल से पीस कपडे में से छानकर उस जल का नस्य लें।

(८) वचादियोग (यो. र) वचा और काला जीरे को पोटली मे बाध उसे सूघना चाहिए।

(९) चतुर्जातक धूम्र (भा प्र) चतुर्जातक का धुंआ दें।

(१०) पिप्पल्यादि नस्य (भै र.) पिप्पली, सुहाजने के बीज, विडग, मरिच समान-समान के चूर्ण का नस्य लें।

जीर्ण प्रतिश्याय में निम्नलिखित औषधियो मे से किसी का प्रयोग करना चाहिए।

(१) चित्रक हरीतकी (भै र) चित्रक, दशमूल, गिलोय, आवला इनमे से प्रत्येक का रस या कषाय ६$\frac{1}{4}$ सेर, हरीतकी चूर्ण ४ सेर। गुड ६$\frac{1}{4}$ सेर। पका के गाढा करे। उसमे त्रिकटु, त्रिजातक प्रत्येक १० तोला मिलाएं। शहद ४० तोला मिलाएं। २ तोला मात्रा।

(२) चित्रकादि गुटी (वृ यो. त.) चित्रक, त्रिकटु, तालीस, चव्य, जीरा, इमली, अम्लवेतस, १-१ भाग, गुड ९ भाग की चासनी बना मिलाए। इलायची, दालचीनी चूर्ण $\frac{1}{2}$-$\frac{1}{2}$ भाग मिलाए। मात्रा १ तोला।

(३) षड्बिन्दुघृत (यो. र.) भागरा, लौंग, मुलैठी, कुष्ठ सोठ समान-समान के सूक्ष्म चूर्ण को गोघृत के साथ मर्दन करें। उसे कपड़े में से छान लें। इसका नस्य दें।

(४) अगस्त्य हरीतकी १ तोला दिन में दो बार दें। (श्वास रोग में देखे)।

दुष्ट प्रतिश्याय मे निम्नलिखित योगो में से किसी का प्रयोग करना चाहिए :—

(१) व्याघ्री तेल (भै. र.) कटैली, दन्तीमूल, वचा, सुहाजने की छाल, तुलसी, त्रिकटु, सैन्धव मिलित २० तोला। तेल १ सेर। जल ४ सेर तैल साधन करें। इसका नस्य दें।

(२) त्रिकटुकादि तैल (ग. नि.) उपर्युक्त व्याघ्री तैल में जल के स्थान पर गोमूत्र डालकर इस तेल को बनाएं। नस्यार्थ।

(३) कलिंगादि तैल तथा अवपीड (ग. नि.) इन्द्र-यव, हींग, मरिच, लाक्षा, तुलसीबीज, कायफल, त्रिकटु, वचा, सुहाजने के बीज, विडग के कल्क १ भाग तैल ४, गोमूत्र १६ भाग मिलाकर बनाया तेल। इसका नस्य लें। या कल्क भाग को कपडे में से निचोड़कर उसका नस्य दें।

(४) सुरसादि तैल (ग. नि.) तुलसी, त्रिकटु, कुष्ठ, लाक्षा, कायफल, विडग समान-समान २० तोला। जल ४ सेर। तेल १ सेर। तैल साधन करें। नस्य दें।

(५) शिग्रु आदि तेल (भा. प्र.) सुहाजने के बीज, कटैली बीज, त्रिकटु, सैन्धव १-१ तो., विल्वपत्ररस २ सेर। तेल $\frac{1}{2}$ सेर। तेल बनाकर नस्य दें।

नासार्श रोग में :—गृहधूमादि तैल (भा. प्र.) गृहधूम, पिप्पली, देवदार, यवक्षार, करजबीज, चिरचिटा बीज, सेंधव समान-समान के कल्क से साधित तेल का नस्य।

छिक्का प्रधान प्रतिश्याय में निम्नलिखित योगो का प्रयोग करना चाहिए :—

(१) शुंठी तैल (भा. प्र.) सोठ, कुष्ठ, पिप्पली, बिल्वत्वक्, द्राक्षा प्रत्येक २ तोला लेकर उसका कल्क करें। प्रत्येक ३२ तो. लेकर ८ सेर जल में $\frac{1}{4}$ कषाय करें। तेल १ सेर। तैल साधन करें। इसका नस्य दें।

(२) घृतादि धूम (भा. प्र.) गुग्गुलु, मोम, घृत समान-समान मिला उसका धुआं दें।

नासा कृमि रोग में:—

विडगादि तैल (यो र.) विडंग, सज्जी खार, हींग, दन्तीमूल ५-५ तोला। तेल १ सेर। गोमूत्र ४ सेर। तेल बना के नस्य दें।

नासा रक्तस्राव में :—दूर्वास्वरस या लाक्षारस या अनार के फूल के रस या हरीतकी को जल में पीस कपडे में छान उसका नस्य, या धातकी पुष्प को दूध में पीस-छान कर या मुलैठी को दूध में पीस छानकर या गेरू को दूध में पीस छानकर उसका नस्य देना चाहिए।

नासावरोध अथवा Adenoids
(Aden=ग्रन्थि=gland)

नासा पश्चिम द्वार पर, गले की छत तथा पिछली दीवार पर लसीका ग्रन्थियो का एक छोटा-सा ढेर होता है जो वाल्यावस्था तक तो स्पष्ट होता है वाद मे लुप्त हो जाता है। इसे Adenoid या Nasopharynx का टान्सिल या नासा पश्चिम ग्रन्थि कहते है। शिशुओ तथा वालको मे नासिका या गले मे से जीवाणु सक्रमण होकर कभी-कभी यह ग्रन्थि सूज जाती है तव इसे Adenoids कहते है। इसके कारण नासा पश्चिम द्वार वन्द हो जाता है और वालक नाक से सास न लेकर मु ह से सास लेने लगता है। नाक से सास न लेने से नासा अग्रिम छिद्र तग हुए-हुए दिखाई पडते है। ऐसे वालक को जुकाम जल्दी-जल्दी लगता है। उसकी नासिका से स्राव अधिक मात्रा मे होता रहता है। नासा पश्चिम द्वार के बन्द होने से उसके लिए नाक साफ करना कठिन होता है। रात को निद्रा मे वह घुर्राटे लेता है तथा उसे खासी के उठते रहने से उसकी नीद टूटती रहती है। वालक के बोलने मे आनुनासिक ध्वनि रहती है।

इसके उपद्रव रूप मे शोथ Eustacian प्रणाली मे तथा वहा से मध्यकर्ण मे प्रसरण कर जाता है वहा द्रव भर जाने से वाधिर्य तथा कर्णशूल होने के लक्षण हो जाते है। स्पष्ट है ऐसा वालक जिसे ठीक से नींद नही आती जिसे ठीक-ठीक सुनता नही वह पढाई-लिखाई मे दूसरो से पिछड जाता है। ऐसे वलक को बलवर्धक आहार और औषध मिलनी चाहिए तथा उसे नाक से सास लेने का अभ्यास कराना चाहिए। Ephedrine के सेलाइन मे आधे प्रतिशतक सोल्यूशन की ३-३ बून्द उसकी नाक मे २-४ बार डालने से नासा द्वार के खुलने मे सहायता मिलती है।

गलशोथ (Pharyngitis)

नासिका पश्चिम द्वार से नासिका द्रव के गले मे सम्पर्क होने से वहा भी शोथ हो जाता है इस प्रकार यह प्रतिश्याय का ही एक भाग होता है। परन्तु जीर्ण प्रतिश्याय या नासा स्रोत शोथ मे गलशोथ चिरस्थायी रूप मे रहता है। गले की श्लेष्मकला मोटी हो जाए उसमे अति वृद्धि की प्रक्रिया हो तो उसे अति वृद्धियुक्त Hypertrophic गलशोथ कहते है। यदि उसकी श्लेष्म ग्रन्थियो Mucous glands के खुलने वाले मुखो के आसपास Lymphoid सैल्स अधिक वढ जाए तो शोथयुक्त गले मे दाने-दाने दीखते है इसे दानेदार Granular गलशोथ कहते है। यदि श्लेष्म ग्रन्थियो की इन नालियो के खुलने वाले मुख चौडे हो जाए और उनमे श्वेत पनीर जैसा पदार्थ दीखने लगे तो उसे Follicular गलशोथ कहते हैं।

चिकित्सा

गलशोथ मे धूम्रपान तथा तीक्ष्ण गुण भोजन पान से वचना चाहिए। किसी वल्य औषधि का प्रयोग करना चाहिए। Mondle's Paint या Resorcin Glycerin (५ प्र०श०) २-३ बार लगाना चाहिए। Pot Chlorate १० ग्रेन को एक औंस जल मे मिला उसके गरारे करने चाहिए। रोग पुराना हो तो Silver Nitrate २ प्र०श० सोल्यूशन गले मे लगाए। रात को होने वाली खांसी के लिये कोई Codein की गोली दें।

गलग्रन्थिशोथ (Tonsillitis)

गलग्रन्थि Lymphoid अवयव का एक ढेर है जिसमे Lymphocytes उत्पन्न होते है।

पाच वर्ष से ऊपर के वालको मे अधिकत. और कभी-कभी १०-१५ वर्ष के युवको मे गलग्रन्थि सूज जाती है। दूसरे रोगी से Haemolytic Strepto coccus के सक्रमण हो जाने से यह शोथ होता है। सारी ग्रन्थि सूजकर मोटी हो जाए तो उसे Parenchymatous गलग्रन्थिशोथ कहते है। यदि इस ग्रन्थि मे से निकलने वाली प्रणालियो (Crypts या Follicles या गढो) मे ही शोथ हो अर्थात् उनमे पूय उत्पन्न होती हो जिससे गलग्रन्थि के पृष्ठ पर पीले रग के दाने-दाने दिखाई पडते हो तो इसे Follicular

गलग्रन्थिशोथ कहते हैं। नासिका मे Chronic Sinusitis का रोग हो तो नासा पश्चिम द्वार से दूषित स्राव के होते रहने से भी गलग्रन्थि सूज जाती है।

इस ग्रन्थि के सूजने पर वालक को गले मे दुखन रहती है जो दर्द भोजन के निगलते समय वढता है। सिर मे तथा शरीर मे भी दर्द रहता है। शोथ अधिक हो तो ज्वर भी १०२ डिग्री तक रहता है।

परीक्षा करने पर एक ओर या दोनो ओर की गल-ग्रन्थि सूजी हुई रक्तवर्ण दीखती है। जिह्वा मैली होती है।

चिरस्थायी गलग्रन्थिशोथ (Ch. Tonsillitis)

वालको मे यह रोग Adenoids के कारण होता है एक वर्ष मे दो-तीन वार यह रोग हो जाय तो इस ग्रन्थि मे Fibrosis होकर चिरस्थायी शोथ हो जाता है। यह रोग भी उपर्युक्त दो रूपो मे होता है अर्थात् वालको मे तो इस ग्रन्थि के अन्दर Hyperplasia या अति वृद्धि होती है और युवको मे इस ग्रन्थि के Follicles या प्रणालियो मे पूयभाव होता है। इस रोग से ग्रस्त वालक को जुकाम जल्दी-जल्दी लग जाता है उसे खासी रहती है। तथा वह नाक के स्थान पर मुख से सास लेता है। या उसके दोनो कानो मे से स्राव होता रहता है।

युवक मे यह रोग हो तो उसे गले मे खर-खरी लगी रहती है। इस ग्रन्थि मे पूय के वने रहने से युवक मे Toxaemia या विषसचार का लक्षण होता है जिससे उसे अपने मे अशक्ति प्रतीत होती है तथा हो सकता है कि इसी कारण उसे सधिशूल या मासशूल का लक्षण हो या इस विष के कारण उसे अजीर्ण या Dyspepsia रहता हो। इस रोग के कारण अधोहन्वस्थि के नीचे ग्रीवा मे लसीका ग्रन्थिया भी सूज जाती है।

चिकित्सा

तीव्र रूप मे रोग हो तो Sulphadiazine या Sulphadimidine की २ गोलिया दिन मे ३ वार दें। या Procain Penicillin १ ग्राम दैनिक ३-४ दिन दें। गर्म लवणोदक के गरारे कराये और फिर Mandle's paint दिन मे कई वार लगाये।

चिरस्थायी गलग्रन्थिशोथ के लिये विटामिन 'ए' विटामिन 'सी' आदि के योग (Ferradol) देने चाहिए। Mandle's paint [Iodine ६ ग्रेन, Pot Iod १२ ग्रेन, डिस्टिल्ड वाटर १२ वून्द, अलकोहल (१०%) १८ वून्द, Peppermint oil ३ वून्द, ग्लिसरीन १ औं०] दिन मे ३ वार लगाए। तो भी युवको मे इस रोग को नष्ट करना कठिन होना है। उनमे Tonsillectomy वहुधा आवश्यक हो जाती है।

आयुर्वेद में गलशोथ तथा कण्ठशोथ

गलशोथ तथा कण्ठशोथ में खांसी स्वर भंग आदि लक्षण हों तो निम्नलिखित किसी योग का प्रयोग करना चाहिए।

(१) कटुकादि क्वाथ (च. पा.) कटुकी, अतीस, देवदारु, पाठा, मुस्ता और इन्द्रयव समान-समान का क्वाथ वनाकर पिलाएं।

(२) वचादि क्वाथ (वृ. मा.) वचा, अतीस, पाठा, रास्ना, कटुकी समान-समान का क्वाथ पिलाएं।

(३) दशमूल क्वाथ—पिलाए।

(४) निम्ब क्वाथ—पिलाए।

(५) विडगादि चूर्ण (ग. नि.) विडंड, चित्रक, मुस्ता, पिप्पली मूल, दालचीनी, चव्य, जीरा, त्रिकटु, वहेडा, खदिर सार, भारंगी, सौंफ, कचूर, काकडासिगी, मेढासिगी समान-समान का चूर्ण ३ माशा मात्रा में मधु के साथ दें।

(६) व्योषादि चूर्ण (ग. नि.) त्रिकटु, हरड, यव-क्षार, चव्य, भारगी, चित्रमूल, समान-समान का चूर्ण ३ माशा मात्रा में मधु से दें।

(७) मृग नाभ्यादिलेह (भा. प्र) कस्तूरी, छोटी इलायची, लौंग, वंशलोचन समान-समान मिला के २ रत्ती शहद से चटाएं।

(८) द्राक्षादि चूर्ण (वं. से.) मुनक्का, त्रिकटु, कुटकी, त्रिफला, दारु हल्दी, मुस्ता रसौंत, वचा, पाठा समान-समान का चूर्ण मधु से मिलाकर मुख में रखें।

(९) स्वल्पखदिर वटी (भै. र) खदिर काष्ट ६$\frac{1}{4}$ सेर। जल ३२ सेर। पकाकर $\frac{1}{8}$ शेष रखें। इसे छानकर इसे गाढ़ा करें। गाढा हो जाने पर उसमें जावित्री, कपूर, सुपारी, जायफल, शीतलचीनी ८-८ तोला मिलाकर गोली बनाएं। मुख में रखने के लिये।

(१०) कालक चूर्ण (भै. र.) गृह धूम, यवक्षार, त्रिकटु, पाठा, रसौंत, मालकगनी, अगर, चित्रक, त्रिफला समान-समान के चूर्ण को मधु में मिला मुख में धारण कराएं। इससे दात के रोग भी ठीक होते है।

(११) यवक्षारादि गुटी (भै. र) यवक्षार, वचा, पाठा, रसौंत, दारु हल्दी, पिप्पली समान-समान की मधु के साथ गोली बना मुख में रखें।

(१२) पञ्चकोलादि गुटी या क्षार गुटी (भै. र.) पञ्चकोल, तालीश, चित्रक, सोठ, छोटी

इलायची, मरिच, दालचीनी, पलाशक्षार, मुष्ककक्षार, यवक्षार समान-समान को दो गुणा गुड़ में मिलाकर गोलिया बना मुख में रखें।

(१३) लवंगादि वटी (वै जी) लौग, मरिच, वहेडा समान-समान, कत्था सबके बराबर लेकर बब्बूल की छाल के रस में गोलिया बना लें। मुख में रखें।

(१४) जातिफलादि गुटी (ग. नि.) जायफल, पिप्पली, विजौरे के पत्ते, इलायची छोटी समान-समान की शहद में बनी गोली मुख में रखने से स्वर सुधर जाती है।

(१५) पीतक चूर्ण (ग नि) पटोल, दारु हल्दी, मुलैठी, फूलप्रियंग, अतीस, मुस्ता, नाग केसर, त्रायमाण, चिरायता, कुटकी, वहेडा, अनार के फल की छाल, हरताल मनसिल १-१ भाग, छार छरीला ३, रसौत ३ भाग चूर्ण बनाकर इसे मधु से मिलाकर लगाएं। मसूडो पर लगाने से उनकी सूजन हटती है।

(१६) स्वल्पपीतक चूर्ण (च द) मनसिल हरताल, सैंधव, दारु हल्दी समान-समान मधु घृत से मिलाकर मुख मे धारण करें।

(१७) व्याघ्री घृत (ग नि) कटैली २ सेर, जल १६ सेर मे पकाकर ४ सेर शेष रखें। घृत १ सेर। रास्ना, खरैंटी, गोखरु, त्रिकटु १½-१½ तो. सवका घृतपाक करें। १ तोला पिलाएं।

(१८) गुडूच्यादि घृत (व से) गिलोय, विडग, शखाहुली, वचा, शतावरी, अपामार्ग, हरड, सोठ के कल्क से ४ गुणा घृत बरावर जल में वना घृत। १ तोला मात्रा मे हकलाहट के लिए उत्तम है।

श्वास-स्थान की रचना—कण्ठनाली (Trachea)

कण्ठनाली १०-११ सेन्टीमीटर लम्वी २ सेन्टीमीटर के लगभग चौडी नाली, एक लचकीली स्नायुतन्तु की झिल्ली से,—जिसमे तरुणास्थियो के छल्ले जो पीछे की तरफ अपूर्ण होते हैं, पड़े हुए है—वनी है। कण्ठनाली के पिछली ओर इस झिल्ली के अन्दर अनैच्छिक मासपेशी (Tracheal Muscle) भी रहती है। इस झिल्ली के अन्दर की ओर Sub mucous स्तर जिसमे रक्तवाहिनिया, नाडिया व श्लेष्म-ग्रन्थिया (Mucous Glands) होती है, रहती है, तथा उसके भी अन्दर श्लेष्मकला (Mucous Membrane) रहती है जिसके सवसे अन्दर के स्तम्भाकृति सेलो पर रोगटे या Cilia रहते हैं। यह ऊपर Cricoid cartilage (६ C vertebra) से आरभ हो नीचे Sternum के angle (५-D vertebra) तक आती है।

श्वासनालिया (Bronchi)—३ दाहिनी तथा २ वाम Lobar bronchi शाखाओ मे विभक्त होती हुई अन्त मे सूक्ष्म श्वास-प्रणालिकाओ (Bronchioles) का रूप ले लेती हैं। इनकी रचना भी कण्ठनाली की तरह ही होती है अर्थात् वाहर तरुणास्थियो से युक्त स्नायुतन्तु का स्तर होता है जिसमे श्लैष्मिक ग्रन्थिया रहती हैं। इसके अन्दर गोलाकृति, अनैच्छिक मास (Bronchial Muscle) का स्तर होता है और अन्दर Basement Membrane के ऊपर श्लेष्मकला का स्तर होता है जिसके सवसे अन्दर की झिल्ली (Epithelium) स्तम्भाकृति, Cilia से युक्त सेलो से वनी होती है। इस झिल्ली पर श्लेष्मस्रावी ग्रन्थियो (Mucous Glands) की नालियो के मुख खुलते हैं। Cilia इस श्लेष्म द्रव के स्राव को वाहर की ओर फेकते रहते हैं। इस प्रकार बाहर से आये धूल आदि के कणो को ये दोनो मिलकर वाहर कर देते हैं। श्वास-नालियो मे शोथ होने पर यह स्राव वढ जाता है तव इसे वलगम कहते हैं। Cilia वाले सैलो मे कोई Nerve नही होती, इनमे होने वाली गति एक स्वय गति होती है।

सूक्ष्म श्वास-प्रणालिकाओ की दीवारे प्रधानत. लचकीले स्नायुतन्तु तथा गोलाकृति मासपेशी से वनी होती हैं उनमे तरुणास्थिया नही होती। वे अन्दर श्लेष्मकला से ढकी होती है।

श्वास-प्रणालिकाये विभक्त होती हुई पतली होती जाती हैं। इनकी दीवार लचकीले पतले स्नायुतन्तु (Areolar and Elastic Tissue) और मास तन्तु से बनी होती हैं जिसके अन्दर Cilia तथा श्लेष्मस्रावी ग्रन्थियो से रहित चपटे सैलो से वनी झिल्ली (Epithelium) होती है। प्रत्येक सूक्ष्म प्रणाली—Respiratory bronchiole—अन्त मे छोटी-छोटी वायु से भरी थैलियो से वने एक गुच्छे मे समाप्त हो जाती है। इस वडे गुच्छे की थैलियो को वायु कोष्ठक (Alveoli) कहते है। अन्वेषक लोग वताते हैं कि पुफ्फुसो मे इनकी सख्या ३० करोड की है तथा इनके अन्दर के पृष्ठ का विस्तार मिलकर ७५ वर्ग मीटर के लगभग होता है। इनसे वने गुच्छो Bronchopulmonary-lobules से फुफ्फुस वना है। इनके वनाने वाले वायु

कोष्ठको की दीवारे एक स्नायुतन्तु की सूक्ष्म झिल्ली से वनी होती है जिसमे मास का अवयव (Muscular Tissue) नही रहता । इनके अन्दर चपटे सैलो से वना सूक्ष्म अन्तस्तर (Epithelium) होता हे जिसमे Cilia नही होते । इन वायुकोष्ठको तथा इनसे वने गुच्छो को सूक्ष्म प्रणालिकाओ Bronchioles से जोडने वाली Alveolar ducts और उनके सिरो Atria की दीवारो मे, ऊपर श्वासनालियो के साथ-साथ आई Pulmonary धमनी की सूक्ष्म शाखाये (Capillaries) छाई हुई रहती हैं। जिससे उनका रक्त दोनो ओर कोष्ठान्तर्गत वायु के सम्पर्क मे आ जाता हे। ये वायुकोष्ठक सूक्ष्म छिद्रो (Pores of Kohn) के द्वारा परस्पर एक-दूसरे से सम्वन्धित रहते है। अभिप्राय यह है कि Bronchiole, alveolar duct, atrium तथा इसके अन्त मे विद्यमान alveoli की झिल्ली जिसे Pulmonary membrane कहते हैं वहुत पतली १-४ माइक्रोन मोटाई की होती है और पुफुस मे इसका विस्तार ६० वर्ग मीटर के लगभग होता हे इसके अन्दर की Pulmonary Capillaries मे सव मिलाकर एक समय मे ६० सी सी. रक्त रहता है । स्पष्ट हे, इस विधि से वायु और रक्त की गैसो मे अदला-वदली पूरी तरह मे हो जाती है।

Pulmonary शिराये इन उपर्युक्त Pulmonary धमनी की सूक्ष्म शाखाओ मे से उत्पन्न होकर पुफुसमूल (Hilum) मे से वडी श्वासनाली व धमनी के साथ आकर वामग्राहक कोष्ठ मे शुद्ध हुए रक्त को लाती है।

पुफुस की श्वासनालियो आदि के स्नायुतन्तु तथा ग्रन्थियो और रक्तवाहिनियो को रक्त Aorta से Bronchial धमनी artery के द्वारा पहुचता है जिसकी शाखाये श्वासनालियो के साथ-साथ चलती है। इस धमनी की सिराओ (Capillaries) मे से उत्पन्न हुई सूक्ष्म शिराओ के मिलने से वनी Bronchial Veins के द्वारा यह रक्त वापिस Azygos तथा Superior Hemiazygos Vein मे और वहा से दक्षिण हृदय मे आ जाता है। यह रक्त २ प्रतिशतक के लगभग Pulmonary Veins के द्वारा वाम हृदय मे भी जाता है।

पुफुस के अन्दर लसीका वाहिनिया एक तो श्वासनालियो की श्लेष्मकला के नीचे और दूसरे इन नालियो के चारो ओर जाल वनाती हुई पुफुसमूल मे, Pulmonary रक्तवाहिनियो तथा श्वासनालियो के साथ-साथ वाहर आकर Tracheobronchial lymph Glands मे समाप्त होती हैं।

पुफुस की नाडिया, Pulmonary Plexus से, जोकि Vagus तथा Sympathetic नाडी सूत्रो मे वना जाल हे, निकलकर श्वासनालियो के साथ-साथ Bronchial Muscle को (Efferent) तथा श्लेष्मकला मे (Afferent) जाती हैं। Vagus नाडी श्वासनालियो के लिये संकोचक हे तथा Sympathetic नाडी सूत्र श्वासनालियो को शिथिल करने का कार्य करती है। Diaphragm मे चेष्टावाही सूत्र Phrenic नाडी के द्वारा आते हैं। इसमे से सज्ञावाही सूत्र Vagus तथा Phrenic नाडी के द्वारा ऊपर जाते हे । दोनो पुफुसो मे से वाया दो खण्डो, दाहिना ३ खण्डो से वना है। ये भी वस्तुत अनेक उपखण्डो, जिन्हे Bronchopulmonary Segments या Primary Lobules कहते हैं, वने हैं। इनमे से प्रत्येक की अपनी श्वास प्रणाली (Bronchiole) अपनी ही Pulmonary Artery, Vein तथा Bronchial Artery होती है अर्थात् एक उपखण्ड की श्वासनालियो व रक्तवाहिनियो का समीप के उपखण्ड की रक्तवाहिनियो आदि से कोई सम्वन्ध नही होता। वस्तुत इन Segments को पुफुस की इकाई (Units) समझना चाहिये। रोग भी इन उपखण्डो से सीमित रहते हैं।

श्वास-स्थान का कार्य—छाती की धौंकनी

लोहार की धौकनी के समान छाती की दीवार मे फैलने और सुकडने की क्रिया के क्रमिक रूप मे जारी रहने से श्वास-प्रश्वास का चक्र चलता रहता है। अन्त-श्वास प्रवर्तक मासपेशियो अर्थात् Diaphragm व External Intercostals मे सकोच होने पर पहली पेशी तो नीचे को झुक जाती तथा पसलिया ऊपर और आगे को उठ जाती है, अर्थात् छाती की दीवार फैल जाती है। इससे पुफुसो के अन्दर अवकाश हो जाने से वाहर की हवा अन्दर खिचकर आती है जिसे अन्त श्वास कहते है। Medulla मे स्थित श्वासप्रवर्तक Inspiratory केन्द्र से सूत्र—Neurones—इन पेशियो मे आते हैं और इनकी चेष्टा के प्रवर्तक होते है। श्वास के अन्त मे उपर्युक्त मासपेशियो के स्वभावत. शिथिल हो जाने के कारण छाती की दीवार फिर सुकड जाती हे और पुफुस के लचकीले होने के कारण अन्दर अवकाश कम हो जाने से अन्दर आई हुई हवा फिर वाहर निकल जाती है इसे वहि श्वास कहते है। इसमे Internal Intercostals, Abdominal मासपेशियो मे सकोच होता है जिससे पसलिया नीचे को ढलकती हैं, पुफुस से हवा निकल जाती है। Pleura की गुहा मे हवा के या किसी प्रैशर के न होने से छाती की धौकनी की यह प्रक्रिया ठीक-ठीक चलती रहती है। यह भी स्मरणीय है कि अन्त.श्वास के आरभ

मे पसलियो के उठने पर श्वासनालियो के अन्दर का भार –३ mm Hg होता है जिससे हवा अन्दर आती है। वहि-श्वास के समय जब पसलिया आगे को ढलकती है श्वास-नालियो के अन्दर का भार+३ mm Hg हो जाता है जिससे हवा बाहर निकलने लगती है।

पुफुस में हवा की समाई

(१) Tidal Air Volume :—साधारण श्वास प्रश्वास मे जितनी हवा पुफुसो मे अन्दर बाहर जाती है उस तरगित हवा को Tidal Air कहते है। उसकी मात्रा ४००-५०० सी०सी० के लगभग होती है। वायु कोष्ठको मे तो इसके २ भाग ही पहुचते है। तिहाई भाग तो श्वासनालियो मे ही समा जाता है (जिसे Dead Space कहते है)। जो ३५० मिलि लि० के लगभग पुफुस मे पहुचती है वह वहा पिछले वहिश्वास के बाद बची हुई हवा से मिलकर Functional residual capacity कहाता है जो २५०० मिलि लि० होती है।

(२) Inspiratory Reserve Volume (I.R V).—साधारण अन्तश्वास के बाद ही और अधिकतम जितनी हवा अन्दर ली जा सकती है उस अतिरिक्त अन्त.श्वास को Inspiratory Reserve कहते हैं जिसकी मात्रा १६००-२००० सी०सी० के लगभग होती है।

(३) Expiratory Reserve Volume (E R V.):—साधारण वहिश्वास के बाद और जितनी अधिक-से-अधिक हवा बाहर फेंकी जा सकती है उसे अतिरिक्त वहिश्वास Expiratory Reserve कहते है। इसकी मात्रा १०००-१६०० सी०सी० होती है।

(४) Residual Air Volume (R V.):—साधारण वहिश्वास के बाद भी जो हवा पुफुसो मे रह जाती है उस स्थायी वायु को Residual Air कहते है। उसकी मात्रा १८०० सी०सी० के लगभग होती है। अर्थात् यह Total Lung Capacity के ३० प्रतिशत के लगभग होती है। प्र०श० मात्रा आयु के बढने के साथ बढती जाती है धूम्रपान मे और बढती है। इसके कारण O_2 तथा CO_2 का आदान-प्रदान दो श्वासो के बीच मे भी चलता रहता है।

(५) Vital Capacity (V C):—प्रबल अत श्वास के बाद जितनी हवा बाहर फेकी जा सकती है उस पुफुस की भरपूर हवा को Vital Capacity कहते है। उसकी मात्रा ४००० सी०सी० के लगभग होती है। अर्थात् यह Total Capacity की ५५-५६ प्र०श० के लगभग होती है। पुरुष की अपेक्षा स्त्री मे कम होती है। वाम हृदय फेल हो रहा हो तो यह घट जाती है। बलपूर्वक अधिक-से-अधिक जो हवा बाहर फेकी जा सकती है उसे Forced Vital Capacity (F V C) कहते है। स्वस्थ मे ये दोनो कुछ-कुछ एक-जैसे ही होते है पर पुफुस रोगो मे जैसे, श्वास रोग तथा Emphysema मे F V C मे विशेष न्यूनता आ जाती है। एक सेकेण्ड मे जो वहिश्वास फेका जा सकता है Forced Expiratory Volume जिसका पता Spirogram से लगता है वह इन दोनो रोगो मे तथा पुफुस के Fibrosis मे घट जाता है। आयु ज्यो-ज्यो बढती है इनकी मात्रा घटती जाती है। तमाखू पीने वालो मे भी इनकी मात्रा कम होती है।

(६) Total Lung Capacity (T.L C)—प्रबल अन्त श्वास लेने पर पुफुस मे जो कुल हवा की समाई होती है (RV+VC) उसे Total Lung Capacity कहते है। उसकी मात्रा ५५००-६००० सी०सी० के लगभग होती है पुरुषो मे स्त्रियो से अधिक होती तथा आयु के साथ घटती जाती है।

(७) Maximum Breathing Capacity (M B C) Maximum Minute Ventilation'—एक मिनट के समय मे जितनी अधिक-से-अधिक हवा श्वास-प्रश्वास मे ली जा सकती है इसे अर्थात् अधिकतम श्वास योग्यता को Maximum Breathing Capacity कहते हैं। इससे पुफुसो की सामर्थ्य का पूरा-पूरा पता चलता है। साधारणत पुरुषो मे इसकी मात्रा १२५-१५० लिटर तथा स्त्रियो मे १०० लिटर होती है। आयु के बढने के साथ यह घटती जाती है।

(८) Breathing Reserve —एक मिनट के समय मे अधिक श्वास योग्यता अर्थात् Maximum Breathing Capacity (M B C) मे से उस सख्या को जितनी कि वह सामान्य अवस्था मे या रोग के दौरान एक मिनट मे ले रहा है घटा दिया जाय तो शेष सख्या उसके Breathing Reserve का मापक होती है। जब यह Breathing Reserve उपर्युक्त Maximum Breathing Capacity की मात्रा के ७० फीसदी के लगभग उतर आती है तब

पहले-पहल श्वासकृच्छ्छ्ता का लक्षण प्रकट होने लगता है।

(९) Resting Breathing Capacity —आराम के समय एक मिनट मे जितनी हवा श्वास-प्रश्वास मे ली जाती या छोडी जाती है उसे Resting Breathing Capacity कहते हैं। इसकी मात्रा ५-८ लिटर होती है।

(१०) Index of Mixing या Pulmonary Emptying Rate —७ मिनट शुद्ध आक्सिजन के श्वास प्रश्वास लेने के वाद, एक प्रवल वहि श्वास मे निकली हुई हवा मे नाइट्रोजन २½ प्र०श० से कम हुआ करती है। यदि नाइट्रोजन की मात्रा फिर भी ४-८ प्र०श० हो तो समझा जाता हे कि वाहर की हवा का श्वास कोष्ठको की हवा मे मिश्रण ठीक नही हो रहा है अर्थात् Emphysema है।

(११) Peak Expiratory Flow (P E F) या उच्चतम वहि श्वासवेग :—Peak flow मीटर के द्वारा जाना जाता है जिसमे रोगी वडे अन्त श्वास के वाद एक तीव्र वहि श्वास लेता है। दो-तीन वहि श्वासो मे जो उच्चतम या प्रवलतम वहि श्वास होता है उसका माप ले लिया जाता हे। नवजवान मे ५०० लिटर प्रति मि०, नवयुवती मे ४०० लिटर प्र० मि० होता है जो आयु के साथ उत्तरोत्तर घटता जाता है। श्वासरोग Emphysema, जीर्ण कास मे यह घट जाता है। Bronchodilator औषध देने से कुछ वढ जाता हे।

पुफुसो मे वाहर की हवा तथा रक्त के बीच गैसो का आदान प्रदान —

हमारी शिराओ के रक्त मे कार्वोनिक एसिड गैस का दवाव ४६ मिलिमीटर आफ मर्करी का होता है। यही Pulmonary धमनी के रक्त मे होता है। यह रक्त जव वायु कोष्ठको की हवा के जिसमे इस गैस का दवाव ४० मिलिमीटर आफ मर्करी का होता है, सम्पर्क मे आता है तो उसमे से यह गैस तव तक वाहर वायु कोष्ठ की ओर निकलता रहता है जव तक यह वहा ४० मिलिमीटर आफ मर्करी के दवाव पर नही आ जाता। वायु कोष्ठको मे से यह CO_2 फिर वहि श्वास द्वारा वाहर निकल जाती हे। इस प्रकार शरीर की धमनियो के रक्त मे भी इस गैस का दवाव ४० मिलिमीटर आफ मर्करी होता है।

दूसरी ओर जव शरीर की शिराओ का रक्त जिसमे आक्सिजन का दवाव ५० मिलिमीटर आफ मर्करी होता है, Pulmonary धमनी के द्वारा वायु कोष्ठको की हवा के कि जिसमे आक्सिजन का दवाव १०३ ५ मिलिमीटर आफ मर्करी का होता है (अर्थात् Diffusion gradient ५३ ५ होता है) सम्पर्क मे आता है तो वायु कोष्ठको की आक्सिजन उनकी दीवार मे विद्यमान रक्त की ओर तव तक आती रहती है जव तक उसमे भी उसका दवाव लगभग इतना ही न हो जाय। परन्तु Pulmonary धमनियो के रक्त मे आक्सिजन का दवाव ९४ २ मिलिमीटर आफ मर्करी ही पाया जाता है। इस कमी का कारण एक तो Bronchial Veins मे से कुछ रक्त का आ जाना, दूसरा कुछएक वायु कोष्ठको मे वायु का न प्रवेश करना है। इस दवाव मे रक्त के Haemoglobin मे ९८ प्र०श० आक्सिजन हो जाती है। अर्थात् रक्त मे ९८ प्र०श० Oxyhaemoglobin तथा २ प्र०श० Reduced Haemoglobin रहता है। हाँ, यदि वायु कोष्ठको की हवा मे आक्सिजन का दवाव १४०-१५० मिलिमीटर आफ मर्करी हो जाय तो रक्त का Haemoglobin भी १०० प्र०श० Oxyhaemoglobin हो जाय। पुफुस रोगो मे CO_2 तथा O_2 की यह आदान प्रदान प्रक्रिया घट जाती हे। साधारण व्यक्ति के अन्दर व्यायाम के समय यह आदान-प्रदान की प्रक्रिया २-२½ गुणा हो जाती है।

Campbell और Howell की विधि के अनुसार यदि कोई व्यक्ति ½—२ लिटर आक्सिजन के वैग मे १½ मिनट तक श्वास-प्रश्वास ले और उसके वाद ३ मिनट तक विश्राम करके उसी वैग मे २० सैकण्ड्स तक फिर श्वास-प्रश्वास ले तो उस वैग की हवा मे CO_2 का प्रेशर उतना ही होगा जितना कि व्यक्ति के शिराओ के रक्त मे है। धमनी रक्त मे CO_2 का प्रेशर इससे लगभग ६ मि० मी० Hg कम होता है। इस प्रकार इस विधि से रोगी के शिरागत तथा धमनीगत रक्त के अन्दर CO_2 का प्रेशर जाना जा सकता है।

श्रम के समय पुफुसो की अतिरिक्त शक्ति

व्यायाम या शारीरिक श्रम के समय मे जव शरीर को आक्सिजन की मात्रा साधारणत आवश्यक मात्रा (३०० सी०सी) की अपेक्षा १०-१५ गुणा अधिक अपेक्षित होती है तव पुफुस भी हवा को १०-१५ गुणा मात्रा मे अपने अन्दर समा लेते है जिससे मनुष्य को आक्सिजन की कोई कमी नही रहती। हाँ, पुफुस मे दक्षिण हृदय से प्रति मिनट आने वाली रक्त की मात्रा (जो ५ ४ लिटर होती है) १०-१५ गुणा नही वढ सकती, वह सम्भवत ६ गुणा तक हो सकती है। व्यायाम के समय शरीर के अवयव आवश्यकतानुसार धमनियो के रक्त मे से अधिक आक्सि-

जन ले लेते हैं जिससे पुफुस मे रक्त के १२ गुणा न होने पर भी अवयवो को कोई कमी नही रहती। यद्यपि पुफुसो मे वापिस आने वाले Pulmonary धमनी के रक्त मे आक्सिजन की कमी अधिक-अधिक होती जाती है (वह अधिक Unsaturated होता जाता है)। ऊपर कहा गया है कि पुफुसो की हवा मे तथा धमनियो के रक्त के अन्दर आक्सिजन के दवाव मे लगभग ९.३ मिलिमीटर आफ मर्करी का अन्तर रहता है। व्यायाम काल मे यह अन्तर और वढकर १६ मिलिमीटर आफ मर्करी के लगभग हो जाता है। इसे (१०३ ५—९४ २=९.३ मि० मी० आफ मर्करी) Alveolar-Arterial Oxygen Gradient कहते हैं। आशय यह है कि पुफुसो मे श्रम के लिए पर्याप्त अतिरिक्त अवयव (Reserved Tissue) रहता है। यहा तक कि एक पुफुस के खराव हो जाने या निकल जाने पर भी दूसरे पुफुस से कोई व्यक्ति अपना सारा कार्य भली प्रकार चला सकता है।

श्वास की तीव्रता

Medulla के निम्न जालाकार से प्रदेश मे चतुर्थ Ventricle के फर्श के नीचे आगे श्वास (Inspiration) और पीछे प्रश्वास (Expiratory) का केन्द्र (centre) है। इनमे से प्रत्येक की उत्तेजना अर्थात् श्वास और प्रश्वास की सहायक मास पेशियो के सकोच से क्रमश श्वास तथा प्रश्वास का चक्र चलता रहता है। श्वास केन्द्र की उत्तेजना से उत्पन्न अन्त श्वास के दौरान मे पुफुस मे से श्वास के दवाव की सज्ञाये Vagus नाडी सूत्रो द्वारा ऊपर Pons के ऊपर के भाग मे स्थित श्वास केन्द्र (Pneumotaxic centre) मे जाती हैं जिससे अन्त श्वास की क्रिया अर्थात् तत्सम्बन्धी पेशियो के सकोच का शमन (Inhibition) हो जाता है और वहि श्वास की क्रिया अर्थात् तत्सम्बन्धी पेशियो के सकोच का आरम्भ हो जाता है। फिर इसी प्रकार वहि श्वास के दौरान मे उसकी निरोधक सज्ञाओ के ऊपर केन्द्र मे जाने से उसमे शमन हो जाता और अन्त श्वास की क्रिया आरम्भ हो जाती है। इस प्रकार पुफुस मे होने वाले श्वास-प्रश्वास चक्र के शामक और प्रवर्तक इस Reflex को Hering-Breuer Reflex कहते है जोकि Vagus नाडी के द्वारा कार्य करता है। इसके कारण अन्त श्वास लम्वा नही होता और पुफुस पर उसका हानिकारक प्रभाव नही होता।

धमनियो के रक्त मे कार्वोनिक एसिड गैस का जो दवाव होता है प्रधानत वह श्वास केन्द्र पर श्वासोत्तेजक या श्वास शामक प्रभाव डालता है। जैसे ऊपर कहा गया है श्वास कोष्ठको की वायु मे व धमनियो के रक्त मे इस गैस का दवाव ३८ मिलिमीटर आफ मर्करी होता है (अर्थात् इनमे यह गैस ५ प्र०श० होती है) इस अवस्था मे साधारण श्वास-प्रश्वास गति रहती है। इसमे वृद्धि होने से श्वास केन्द्र उत्तेजित हो जाता है जिससे श्वास-प्रश्वास गति तीव्र हो जाती तथा इसमे कमी हो जाने से श्वास-प्रश्वास गति मद हो जाती है। रक्त आदि द्रवो का pH घट जाय अर्थात् Hydrogen-ion की अधिकता हो जाय तो भी श्वास गति तीव्र हो जाती है।

इसके अतिरिक्त पुफुस मे तथा धमनियो के रक्त मे आक्सिजन के दवाव के कम हो जाने से जैसे ऊचाई पर चढ जाने से होता है या Pneumonia आदि से होता है श्वासगति तीव्र हो जाती है। उसकी कमी के कारण ग्रीवा मे Carotid arteries पर के Carotid Bodies तथा छाती मे Aorta पर के Aortic Bodies (Chemoreceptors) मे विद्यमान सज्ञासूत्र उत्तेजित हो जाते हैं और इनकी उत्तेजना ग्रीवा से Glossopharyngeal, और छाती से Vagus द्वारा ऊपर Medulla मे श्वास केन्द्र मे जाती है इससे श्वास-प्रश्वास गति तीव्र हो जाती है। इसी प्रकार रक्त मे अम्लीयता की वृद्धि हो जाने से भी श्वास-प्रश्वास गति तीव्र हो जाती है। ऐसी ही धमनी रक्त मे Pco_2 ४४ मि० मि० से ऊपर हो जाय तो Respiratory acidosis हो जाता है। धातुओ मे होने वाले पाचनकर्म (Metabolism) के मन्द होने से श्वास-प्रश्वास गति मन्द हो जाती है, उसके तीव्र हो जाने से तीव्र हो जाती है।

श्वासनिरोध—(१) मस्तिष्क मे Medulla पर इतना दवाव पड जाय कि उसके श्वास के केन्द्र को रक्त देने वाली रक्तवाहिनिया दव जायें तो श्वासरोध हो जाता है। (२) Poliomyelitis से केन्द्र के सैलो के मर जाने से तथा निद्राजनक गोलियो के अधिक मात्रा मे लेने से श्वास-सम्वन्धी Neurones के निस्सज्ञ हो जाने से श्वास-प्रश्वास चक्र वन्द हो जाता है।

श्वास रोग
(Asthma, Bronchial Asthma)

श्वासनालियो के नाडीसूत्र (Nerves)

श्वास प्रणालियो तथा प्रणालिकाओ (Bronchi तथा Bronchioles) मे जैसे ऊपर कहा गया है दो प्रकार के नाडीसूत्र आते हे। एक तो Medulla मे स्थित Dorsal Nucleus of the Vagus से निकले गतिवाही सूत्र हैं जिन्हे Para Sympathetic कहते है तथा उत्तेजित होने पर इनके सिरो (Post Ganglionic Fibres) से Acetylcholine की उत्पत्ति होती है। इसलिए इन्हे Cholinergic भी कहते है। इनके उत्तेजित होने पर एक तो श्वास-

प्रणालियो के वृत्ताकार मास (Circular Muscles) मे सकोच (Constriction) उत्पन्न हो जाता है। दूसरे उनकी श्लेष्मकला की रक्तवाहिनिया शिथिल होकर फैल जाती है जिससे श्लेष्मकला फूल जाती है। तीसरे श्लेष्मकला की श्लेष्म ग्रन्थियो (Mucous Glands) से होने वाले स्राव की मात्रा वढ जाती है। यह इतनी वढती है कि श्वास-नालियो के अन्दर के मार्ग के तग हो जाने से सास घुट जाता हे । इस प्रकार ये सूत्र श्वासप्रणालिकाओ के मार्ग को तग कर देने (Broncho constriction या Broncho spasm) का कार्य करते हे । Pilocarpine, Physostygmine, Acetylcholine, Histamine आदि इनके उत्तेजक होते हे एव श्वासनालियो के सकोचक होते है । वाहर से आई शीतल वायु भी नालियो के लिये सकोचक होती है ।

इन नाडीसूत्रो के अतिरिक्त Sympathetic नाडीसूत्र भी तीसरे, चौथे Thoracic Spinal Roots से निकलकर श्वासप्रणालियो मे फैले हुए है । इनके उत्तेजित होने पर श्वासप्रणालियो का मास शिथिल हो जाता है जिससे ये फैल जाती हैं। इनकी श्लेष्मकला मे विद्यमान रक्तवाहिनिया सकुचित हो जाती है। इसलिये इन सूत्रो को Bronchodilators या Bronchorelaxant कहते हैं। इनके उत्तेजित होने पर इनके सिरो (Post Ganglionic Fibres) से Adrenaline की उत्पत्ति होती है अत इन्हे Adrenergic भी कहते है। Adrenaline, Ephedrine, Atropine आदि द्रव्य इन सूत्रो के उत्तेजक होते एव श्वासनालियो को फैलाने का कार्य करते हैं। जव किसी व्यक्ति मे श्वासप्रणालियो का मार्ग विशेषत Bronchopulmonary Segments के मुख सहसा तग हो जाते हैं तथा इसके कारण श्वासकोष्ठको (Air Vesicles) मे थोडी देर के लिये हवा अधिक मात्रा मे भर जाती है तव श्वास रोग होता है। क्योकि श्वासनालियो के तग हो जाने से तथा श्वास-कोष्ठको मे हवा भर जाने से श्वास लेने तथा वाहर फेकने, दोनो मे कृच्छ्रता (Dyspnoea) का लक्षण हो जाता है इसे कृच्छ्रश्वास कहते हैं। इस रोग के वेग के समय मृत हुए व्यक्ति की परीक्षा करने से पता लगता है कि इस रोग मे श्वासनालियो की श्लेष्मकला फूल जाती है। इसके अन्दर के अवयवो मे Eosinophils, Lymphocytes तथा Plasma सैल भर जाते है। उसकी Basement Membrane तथा Submucous Layer भी फूल जाती है, श्लेष्म ग्रन्थिया (Mucous Glands) सूज जाती हैं तथा उनमे से निकलने वाले स्राव की मात्रा बहुत वढ जाती है तथा श्वासनालियो का मास भी स्थूल (Hypertrophied) होता तथा वीच का मार्ग सकुचित हो जाता है। इस प्रकार Parasympathetic नाडियो के विक्षोभ Vagotonicity का लक्षण अर्थात् श्वास प्रणालिकाओ के वीच के स्रोत का (१) वलगम के द्वारा वन्द हो जाना, (२) उनकी झिल्ली का सूज जाना तथा उसका भिचकर तग हो जाना अर्थात् श्वासनालियो मे, (३) स्तम्भ हो जाना इस रोग मे पाया जाता है। पुराने रोग मे तो श्वासनालियो की झिल्ली मे स्थायी रूप से अति वृद्धि Hypertrophy हो जाती है।

कारण

क्योकि यह रोग वश-परम्परा से चलता है इसलिये श्वासनालियो की मासपेशियो की या उनके उपर्युक्त केन्द्र Broncho Constrictor या Bronchomotor Centre की निर्वलता या विक्षोभशीलता जन्म से ही आती प्रतीत होती है जिन परिवारो मे नाडी मण्डल की निर्वलता (Neuropathic Diathesis) पायी जाती है उनमे किसी मे शीत पित्त (Urticaria), किसी व्यक्ति मे Hysteria, किसी मे अपस्मार (Epilepsy) और किसी मे श्वासरोग होता है, अर्थात् नाडी मण्डल या मस्तिष्क सम्वन्धी सहज निर्वलता इस रोग का प्रधान कारण है। नाडी मण्डल की इस सहज अक्षमता (Nervous Instability) के कारण ही यह रोग वालपन या प्रारम्भिक युवावस्था मे प्रकट हो जाता है। इसीलिए किसी भी निर्वलताजनक कारण से इसका दौरा हो सकता है। ऐसे व्यक्तियो मे यदि जुकाम वारम्वार होता रहे Rhinitis, Sinusitis आदि कोई हो, Adenoids या Tonsillitis चिरस्थायी रूप मे रहे, या उसे खासी होती रहे तो इनके कारण श्वासनालियो या Bronchoconstrictor केन्द्र की विक्षोभशीलता के वढ जाने से श्वास रोग प्रकट हो जाता है। इस प्रकार मेडुल्ला मे विद्यमान Vagus के Nucleus के जन्म से विक्षोभशील होने के कारण वे विक्षोभ जो अन्य साधारण जनो के लिये हानिकारक नही होते, श्वास रोगी के लिये श्वासजनक हो जाते हे ।

उदाहरणात —

(१) मानसिक विक्षोभ से जैसे किसी तीव्र गन्ध से या किसी प्रकार की चिन्ता, व्याकुलता या असमर्थता (Frustration, Fatigue) से Vagus Nucleus विक्षुब्ध हो उठता है। बहुधा वालक या युवक के मन मे कोई स्पष्ट या अस्पष्ट विक्षोभ होता है जो इस Nucleus को विक्षुब्ध कर देने का कारण बन जाता है। मानसिक विक्षोभ या तो ऊपर मस्तिष्क के किसी केन्द्र से आता है या

(२) दूसरा नीचे से आये विक्षोभ Peripheral Irritation से भी Vagus का Nucleus जो पहले से निर्बल हो, विक्षुब्ध हो सकता है। Vagus के सज्ञावाही सूत्रों (Afferent Fibres) के द्वारा प्रबल विक्षोभ नासिका से, श्वासनालियों से तथा आन्त्र आदि से जाकर इस Nucleus को विक्षुब्ध कर सकते हैं। उदाहरणत नासिका तथा श्वासमार्ग में बाहर से आये विक्षोभक धूल, धूम, शीत, हवा आदि के कारण या इनसे उत्पन्न जीवाणुजनित शोथ के कारण या बाहर से आये किसी विरोधी प्रोटीन जैसे घासों के पराग या घर की धूल में विद्यमान प्रोटीन से वहा विक्षोभ उत्पन्न होकर वह ऊपर प्रक्षिप्त (Reflex) हो जाता है और इसे विक्षुब्ध कर देता है। इसी प्रकार आन्त्र में विद्यमान नाना प्रकार के विक्षोभ भी Vagus से सज्ञावाही सूत्रो (Afferent Fibres) द्वारा इसे विक्षुब्ध कर सकते हैं। अर्थात आत मे अजीर्णजनित विक्षोभ से या कृमियो के होने से भी यह रोग हो सकता है। रक्त के द्वारा श्वासनालियों मे आये विक्षोभक द्रव्यो से भी श्वास हो सकता है। जैसे Acetylcholine, Histamine का इजेक्शन देने पर हो जाता है।

Allergy के कारण श्वास रोग

कभी-कभी श्वासमार्ग की श्लेष्मकला मे किसी एक प्रोटीन के लिये सहज असात्म्यता या अक्षमता (Allergy) इतनी प्रबल होती है कि वह उस विरोधी द्रव्य को स्वल्प मात्रा मे भी सहन नही कर सकती। यदि किसी परिवार में शीतपित्त (Urticaria) अर्धावभेदक (Migraine) आदि रोग हो तो उसमे हुए श्वास रोग को भी Allergy के कारण से उत्पन्न होने वाला समझना चाहिये। इस प्रकार की Allergy को उत्पन्न करने वाले द्रव्य को जोकि रोगी मे विष का-सा कार्य करता है Allergen कहते हैं। हवा में उडकर आने वाले घास के पराग, घरेलू पशुओ की त्वचा से झडने वाले छिलके तथा घर की धूल मे पाये जाने वाला प्रोटीन, मशीनो मे उडने वाले आटे की धूल, तथा श्वासनालियो मे विद्यमान किसी Bacteria का विष, ये सब नासिका तथा श्वासनालियों की श्लेष्मकला मे प्रविष्ट होकर Allergen या विरोधी प्रोटीन का कार्य करते हैं। कभी-कभी गेहू, अण्डे, दूध, दालो, Nuts आदि के अजीर्ण से उत्पन्न कोई प्रोटीन (सम्भवत पेप्टोन, या पेप्टाइड प्रकृति के) पदार्थ भी रक्त के द्वारा श्वासनालियो मे या मेडुल्ला मे पहुचकर विपरीत द्रव्य या विषैले द्रव्य का-सा कार्य करते है। श्वास रोगियो मे बाह्य प्रोटीन्स की अक्षमता बहुत अधिक होती है इसीलिए Antitoxic Serum को सर्वथा सहन नहीं कर सकते। Aspirin आदि किसी औषधि से या शरीर मे विद्यमान किसी जीवाणु से विशेषत Gram Negative जीवाणु से उत्पन्न एक द्रव्य के रक्त द्वारा श्वासनालियों मे जाने से यह रोग हो सकता है, अर्थात् कभी-कभी Allergen रक्त के द्वारा श्वासस्थान मे पहुचता है। मानसिक आवेग, वायुमण्डल की आर्द्रता, सहसा ऋतु-परिवर्तन, धूल, धुआं, तीव्र गन्ध, थकावट आदि Allergy के व्यजक कारण हो जाते है। श्वासनालियों के लिये Allergens के विरोधी द्रव्य होने के कारण उनमे Anaphylactic Antibody या Precipitin उत्पन्न हो जाता है। श्लेष्मकला मे ही नही, पर Serum और त्वचा मे और अनैच्छिक मासपेशियो मे भी यह Antibody उत्पन्न हो जाता है। फिर जब वह Allergen (Antigen) जिसके विपरीत यह Antibody उत्पन्न हुआ है, दुबारा श्वासनालियो मे पहुचता है तो उसके तथा इस Antibody की परस्पर प्रबल प्रतिक्रिया (Reaction या Precipitation) से श्लेष्मकला के अवयव टूटते हैं और उन टूटे (Necrosed) हुए अवयवो मे विद्यमान Histidine नामक Amino acid उसमे से CO_2 के निकल जाने पर, Histamine नामक द्रव्य मे परिवर्तित हो जाता है अथवा वहा की Nerves और Ganglia मे विद्यमान Choline नामक द्रव्य Acetylcholine मे परिवर्तित हो जाता है। ये दोनो द्रव्य Mucosa मे शोथ तथा मास मे स्तभ करके श्वासनालियो के मार्ग को तग कर देने वाले (Vagotonic या Broncho constrictor) होते है जिससे रोगी को श्वास का दौरा आरम्भ हो जाता है। श्वास रोगी को हिस्टामीन का इजेक्शन देने से भी श्वास का वेग हो जाता है। बाजार मे ऐसे प्रोटीन Allergens के जोकि इस रोग के करने वाले कहे जाते है Solutions मिलते है। उनकी अति स्वल्प मात्रा या ·०१ सी०सी० की मात्रा अग्रबाहु के अग्रिम पृष्ठ की त्वचा मे डालकर देखा जाता है कि उनमे से कौन-सा प्रोटीन रोगी के लिये Positive है। जिसके इजेक्शन से १०-१५ मिनट के अन्दर ५ मिलिमीटर व्यास का मण्डल वहा उत्पन्न हो जाता है, उसे रोगी के लिये Allergen समझा जाता है। दूसरो का कथन है कि Allergy के कारण श्वासनालियो की श्लेष्मकलागत ग्रन्थियो के स्राव के अत्यधिक मात्रा मे निकलने से श्वासनालियो मे अवरोध होकर अन्त श्वास तथा बहि श्वास दोनो मे श्वास काठिन्य होता है। अन्तर्गत हवा के भली प्रकार बाहर न निकलने से इस रोग मे फुफुस हवा से फैल जाते हैं। श्वासनालियो की दीवार मे तथा रक्त मे Eosinophils की वृद्धि, श्वास-

नालियो की सिराओ की शिथिलता होकर उनसे अधिक परिस्रवण (Exudation) के कारण उत्पन्न श्लेष्मकला का श्वयथु (Oedema) और श्वासनालियो के स्रोत की चपकीले स्राव से परिपूर्णता इन सबके कारण श्वास काठिन्य होता है। सक्षेपत श्वासनालियो मे स्तम्भ श्वासनालियो की श्लेष्मकला मे श्वयथु Oedema तथा उनमे श्लेष्म द्रव के भर जाने से यह वेग होता है। कभी-कभी श्वासनालियो मे जीवाणुजनित शोथ से भी यह रोग होता है। बालको और युवको मे इसका वेग कभी-कभी होता है बीच मे वे ठीक रहते हैं (Episodic) कुछ बडी आयु मे यह चिरस्थायी Chronic रूप मे रहता है। Allergy, Infection तथा Psychic ये तीन इसके कारण कहे जाते है।

लक्षण

श्वास रोग वेगो मे होता है। वेग के प्रारम्भ होने से पहले कभी-कभी कोई पूर्वरूप नहीं होता। कभी-कभी मानसिक विक्षोभशीलता या नाक मे कुछ खुजली-सी होने, छीको के आने या पेट मे कुछ अफारे या अजीर्ण के होने का पूर्वरूप होता है। इस रोग का वेग प्राय रात के पिछले भाग मे सोते हुए जबकि Sympathetic System स्वभावत अति मन्द (Depressed) हुआ करता है, होता है। सहसा श्वासप्रणालियो मे सकोच हो जाने से श्वास वायु के आने-जाने मे अवरोध उत्पन्न हो जाता है। रोगी को अपना दम घुटता प्रतीत होता है, लेटे-लेटे सास नही आता, अत वह उठकर बैठ जाता है। बैठने से भी आराम नही आता तो दोनो हाथो को टेककर आगे की ओर झुककर श्वास सहायक मासपेशियो (Accessory Muscles of Respiration जैसे Sternomastoid, Scalenes, Pectorals) की सहायता से बलपूर्वक श्वास लेने का यत्न करता है। श्वास लेने मे भी उसे कठिनता होती है पर क्योकि अन्त - श्वास एक बलशाली (Active) कर्म है इसमे उसे उतनी कठिनता नही होती, जितनी श्वास वायु को बाहर फेकने मे होनी है क्योकि यह एक निर्बल (Passive) कर्म होता है, इसलिये इसमे उसे विशेष बल लगाना पडता है। देखने वाले को उसका श्वास छोटा बहि श्वास लम्बा दीखता है। यत्न करने पर भी वह बहि श्वास के द्वारा जितनी हवा बाहर फेकनी चाहिये, नही फेक पाता। इतनी थोडी हवा बाहर जाती है कि बहि श्वास के बाद भी छाती फूली ही रहती है और अन्त श्वास के समय इतनी थोडी हवा अन्दर आती है कि छाती फूलती हुई प्रतीत नही होती प्रत्युत सास लेने पर Clavicle से ऊपर तथा निचली पसलियो के बीच के प्रदेश मे गढे पड जाते है जिससे स्पष्ट है कि छाती फूलती नही। इसका अभिप्राय यह है कि उस हवा की मात्रा जो श्वास-प्रश्वास द्वारा अन्दर-बाहर होती है, बहुत कम हो जाती है। अर्थात् छाती की Vital Capacity दूसरे शब्दो मे गहरे श्वास के बाद बहि श्वास द्वारा हवा फेंक देने की शक्ति जो ३५ सौ सी०सी० की होती है, घट जाती है और जो हवा अन्त तथा बहि श्वास दोनो के समय छाती मे बनी ही रहती है (Residual air) जोकि १८०० सी० सी० के लगभग होती है, उसकी मात्रा बहुत बढ जाती है। यही कारण है कि एक ओर तो रोगी श्वास लेने और फेकने के लिये व्याकुल रहता एव थक जाता है, दूसरी ओर आक्सिजन के कम मिलने से उसका चेहरा कुछ फीका-सा पड जाता है। बलपूर्वक श्वास लेने से अन्त तथा बहि श्वास दोनो के साथ आवाज Wheezing उत्पन्न होती है जो समीप खडे व्यक्ति को भी सुनाई पडती है अर्थात् अन्त श्वास तथा बहि श्वास दोनो मे अवरोध होता है। इस प्रकार इस Dyspnoea का कारण आक्सिजन की कमी (Anoxia) तथा CO_2 का अदर रुक जाना प्रतीत होता है। देखने मे ग्रीवा की शिराए Jugular Veins फूली हुई दीखती हैं। Sternomostoids, Scalenes तथा Pectoral मासपेशिया अधिक हिलती हुई दीखती है। यह श्वास रोग का वेग आधे, एक या दो घण्टे तक रहकर स्वय शान्त हो जाया करता है। यह रोग श्वासकृच्छ्रता के साथ आरम्भ होता है और खासी के साथ समाप्त होता है। वेग के आरम्भ होने के कुछ काल बाद खासी आरम्भ होती है जिसमे पहले थोडी तथा कुछ पतली बलगम निकलती है। उत्तरोत्तर खासी बढती जाती है और बलगम भी मात्रा मे अधिक तथा गाढी होती जाती है। खासी द्वारा श्वासनालियो मे सचित हुये बलगम के निकल जाने के साथ-साथ श्वास का वेग कम होते-होते शान्त हो जाता है। रोगी की परीक्षा करने पर उसकी श्वासगति या श्वास-प्रश्वास की प्रति मिनट सख्या कम ही होती है। श्रवण यत्र द्वारा सुनने से अन्त श्वास तथा बहि श्वास के साथ सीटियो (Rhonchi) की ऊँची आवाज (Sonorous तथा Sibilent) सुनाई पडता है। बहि श्वास, अन्त श्वास की अपेक्षा दीर्घतर सुनाई पडती है। Vocal resonance घटी हुई सुनती है। फुफ्फुसो मे हवा के अधिक मात्रा मे भरे होने के कारण छाती पर टकोर की आवाज ऊँची होती है। नाडी छोटी तथा गति मे तीव्र होती है। रक्त भार कम होता है। रक्त मे Eosinophils ५ या १० प्रतिशतक होते है। थूक मे भी ये पाये जाते है। थूक चपकीला होता है तथा उसमे Plugs तथा Spirals होते है। श्वासकृच्छ्रता की अवस्था लगातार बनी रहे तो इसे Status Asthmaticus कहते है। श्वासनालियो मे सचित कफ स्राव को खासकर

निकाल देने की जो क्षमता आदमी मे है उसके अभाव मे यह अवस्था उत्पन्न होती है। इस अवस्था मे श्वास-नालियों मे कफ रुका रहता है।

भेदक लक्षण

हृदयजनित श्वास (Cardiac Asthma) का दौरा जो रात को होता है, उससे इस रोग का सन्देह हो सकता है। परन्तु वह रोग पहली रात मे होता है। ४५-५० वर्ष की आयु के बाद होता है। जबकि श्वास रोग बडी आयु में आरम्भ नही होता, उसके वेग मे श्वासकृच्छ्रता तथा खासी के लक्षण प्रारम्भ से ही साथ-साथ रहते हैं। श्वास मे कृच्छ्रता कम पर तीव्रता विशेष होती है। उसमे बलगम भी पतली निकलती है तथा पुफुस के निम्न भाग मे द्रव के भर जाने (Oedema) के कारण उसमे Rales या Crepitations सुनाई पड़ते हैं, Rhonchi नही। उसमे रक्तभार भी बढा हुआ होता है। नाडी भरी हुई, दीर्घ (Bounding) होती है। छाती मे हवा न भरे होने से वह फूली हुई (Emphysematous) नही होती प्रत्युत दबी हुई होती है, बहि श्वास भी अन्त श्वास की अपेक्षा लम्बा नही होता।

साध्यासाध्य तथा उपद्रव

२० वर्ष से पहले बाल्यावस्था मे आरम्भ हुआ श्वास रोग बहुधा स्वयमेव अच्छा हो जाता है परन्तु २५ वर्ष की आयु के बाद आरम्भ हुआ ठीक नहीं होता। रोग के वास्तविक कारण के निवारण करने पर उसे भी ठीक किया जा सकता है। जब श्वास रोग चिरस्थायी रूप मे रहता है तब यह जन्म-भर रहता है। पुफुस मे अधिकाधिक हवा के भरे रहने (Emphysema) के कारण पुफुस धमनियो या Pulmonary Arteries के सामने रुकावट बढ जाती है जिससे दक्षिण हृदय मे अधिक रक्त रुका रहता एव उस पर अधिक कार्यभार आ पडता है। इसके कारण पहले उसमे अति वृद्धि (Hypertrophy) हो जाती है और आयु के बढने के साथ-साथ या शरीर की प्राणशक्ति के घट जाने पर फिर उसमे शिथिलता (Dilatation या Failure) का उपद्रव होकर मृत्यु हो सकती है। पुफुस कोष्ठको मे अधिक हवा के भरे रहने से पुराना Emphysema का रोग भी इसके उपद्रव रूप मे होता है। रोगी की परीक्षा मे नासिका, गले, दात, आत, मूत्र मार्ग मे पूय भाव Sepsis की जाच करनी चाहिये। पुफुस की Vital Capacity देखनी चाहिये, थूक की परीक्षा करनी चाहिये। भिन्न-भिन्न प्रोटीन्स की त्वचा मे होने वाली प्रतिक्रिया देखनी चाहिये। श्वास मार्ग मे किसी Infection या सक्रमण से यह रोग होता हो तो शीतकाल मे इसके वेग होते हैं। Pollens के कारण रोग का दौरा होता हो तो ग्रीष्म ऋतु के आरभ मे इनका वेग होता है।

श्वास रोग की चिकित्सा

रोग प्रतिरोधक चिकित्सा

प्रथम तो सामान्य शारीरिक तथा नाडी सबधी दुर्बलता को दूर करने के लिये रोगी को खुली हवा मे दोनो समय मृदु व्यायाम, मालिश अथवा भ्रमण करना चाहिये। घृत, मक्खन, बादाम रोगन, फल, सब्जी तथा Vitamin A और D, Adexolin Cap or Liq का सेवन करना चाहिये। प्रतिदिन आधा या एक औंस ग्लूकोज या मधु तथा कैल्सियम (गोली-शर्बत-इजेक्शन आदि) भी लेना चाहिये। मस्तिष्क तथा नाड़ी मण्डल की निर्बलता के लिये Caffeine Citrate २ ग्रेन दिन मे दो बार दी जा सकती है। दूसरा यदि कोई पारिवारिक, आर्थिक या परीक्षा सम्बन्धी किसी प्रकार की चिन्ता हो या कोई मानसिक समस्या या कठिनता रोगी के मस्तिष्क पटल पर छिपी हुई हो तो उसका पता लगाकर उसे दूर करने का यत्न करना चाहिये। रोगी के मन पर पडे हुये बोझ को दूर करने से Bronchoconstrictor Centre भी शान्त हो जाता है। मन को बहलाने वाले सर्वभाव इस रोग को शान्त करने मे सहायक होते हैं। Phenobarbitone $\frac{1}{2}$ ग्रेन की मात्रा मे दिन मे दो बार लेने से मानसिक विक्षोभ शात रहता है।

नासिका तथा श्वासमार्ग मे शोथ रहे अथवा नासामार्ग के विक्षुब्ध रहने से श्वास रोग होना हो तो धुए, धूल आदि से सदा बचना चाहिये। जब घर मे सफाई का समय हो, घर से बाहर निकल जाना चाहिये। इसी प्रकार शरीर को गर्म होने के बाद सर्द होने से बचाना चाहिये अर्थात् धूप मे जाने, गर्म जल से स्नान करने तथा व्यायाम के बाद शीत वायु, शीत जलपान आदि से बचना चाहिये। नमी वाले तथा शीत प्रदेश मे रहने से नासामार्ग तथा श्वासमार्ग मे शोथ हो सकता है। शुष्क तथा उष्ण प्रदेश तथा ऋतु मे नासामार्ग तथा श्वासमार्ग का शोथ शान्त हो जाता है। नासिका को विक्षोभो से बचाने के लिये नार्मल सेलाइन से अथवा नार्मल सेलाइन १ औस मे १२ ग्रेन ग्लूकोज तथा ४ ग्रेन Ephedrine मिलाकर उसमे नाक को प्रतिदिन एक-दो बार धोते रहना चाहिये। अथवा Liquid Paraffin मे १ आधा प्रतिशतक Menthol, Eucalyptus Oil तथा Chloretone मिला इसे नाक मे डालते रहना चाहिये। आतो मे अजीर्ण, मलबन्ध, अमीबिक प्रवाहिका के कारण विक्षोभ रहता हो तो पाचक दीपक तथा लघु स्रसक औष-

धियो का प्रयोग करना चाहिये। श्वासमार्ग मे कही पर चिरस्थायी शोथ रहता हो तो उसके दूर करने के लिये Tetracycline का प्रयोग करना चाहिये। रोगी के फुफ्फुस के अन्दर हवा अधिक मात्रा मे भरी रहती है (उसे Emphysema रहता है) इसके दूर करने के लिये उसे खुली हवा मे प्रात -साय दो वार १५ मिनट प्राणायाम करनी चाहिये। जिसमे गहरा श्वास लेने पर वल न देकर, बहि श्वास के समय, वलपूर्वक या छाती के निम्न भाग को हाथो से दवाकर भी हवा को वाहर फेकने पर बल देना चाहिये। फुफ्फुस को अधिक-से-अधिक शुद्ध हवा मिलती रहे इस वात का ध्यान रखना चाहिये। भीड-भाड मे तथा वन्द कमरो मे जैसे सिनेमाघरो मे जाने से वचना चाहिये। रात को भी कमरे की खिडकिया खोलकर सोना चाहिये। तथा दूसरो की चारपाई से सात-आठ फुट की दूरी पर सोना चाहिये। सोते समय जव श्वासगति मन्द हो जाती है और फुफ्फुसो को मिलने वाली शुद्ध हवा की मात्रा कम हो जाती है तभी यह रोग प्रारम्भ होता है। अत फुफ्फुसो को अधिक-से-अधिक शुद्ध हवा मिलती रहे इस वात का ध्यान रखना चाहिये। सीधा वैठने तथा कसी हुई चारपाई या तख्त पर सोने से भी फुफ्फुसो मे हवा का आवागमन ठीक होता रहता है। यदि कोई Allergen नाक के द्वारा प्रविष्ट होकर इस रोग को उत्पन्न करता हो अर्थात् ऋतु-परिवर्तन के समय हवा से आया पराग इस रोग का कारण हो या गृह धूल से इस रोग का वेग होता हो या किसी कारखाने मे अनाज आदि की उडने वाली धूल से यह रोग होता हो तो उससे वचना चाहिये। बहुत से Allergens वाजार मे मिलते हैं। उनकी एक बूद त्वचा पर टालकर उसमे सूई से त्वचा मे एकक्षत कर दे और फिर देखे उस क्षत के आसपास एक गोल लाल चकत्ता वनता है या नही। जिससे यह चकत्ता वने उससे वने हुए Solutions के अति स्वल्प मात्रा मे Intradermal Injections दे देने चाहिये। पहले इनके हलके सोल्यूशन की १ मिलि लि० मात्रा रोग आरभ होने की ऋतु से पहले सप्ताह मे दो वार देनी चाहिये। क्रमश १ मिलि लि० मात्रा हर वार वढाई जाती है। ५ या ९ मात्रा के वाद Higher Concentration की मात्रा सप्ताह मे १ वार ४-५ सप्ताह तक फिर उसे १५ दिन मे १ वार, फिर मास मे १ वार दिया जाता है। इस प्रकार इनका प्रयोग महीनो तक जारी रखा जाता है। Non Specific desensitisation करने वाली औषधि जैसे Armour's No. 2 Peptone (७½% सोल्यू०) मास द्वारा ३-४ दिन के अन्तर से वढती मात्रा मे प्रयोग किया जा सकता है। भोजन द्रव्यो मे से कोई Allergen का कारण हो तो इसका पता लगाने के लिये रोगी को विरेचन देकर पहले केवल सन्तरे, गाजर, खमानी, अजीर आदि किन्ही फलो, सब्जी, जैम तथा चाय या काफी आदि पर सात दिन रखना चाहिये। यदि इस भोजन से इस समय मे रोग न हो तो दूध, चावल या गेहू का आटा कोई एक नया भोजन इसमे मिलाकर पन्द्रह दिन देखना चाहिये। इस प्रकार प्रतिदिन काम आने वाले भोजन द्रव्यो मे से एक-एक को १५-१५ दिन वाद वढाते हुए पता लगाना चाहिये कि कौन-सा पदार्थ Allergen का कारण है। जो पदार्थ ऐसा होता है उसके लेने के २-६ घ० मे ही Allergy हो जाती है, उसका प्रयोग वन्द कर देना चाहिये अथवा उसे स्वल्प मात्रा मे सेवन करना चाहिये या Promethazine Hydrochloride (Phenergan) २५ मिलि० दैनिक मात्रा मे देनी चाहिये। रात को सोने से एक घण्टा पहले इसकी एक मात्रा के दे देने से रात को श्वास के वेग की आशका नही रहती। इस प्रकार Antihistamine औषधि से इस रोग मे आराम रहता है। Non Specific Desensitization अर्थात् किसी प्रोटीन जैसे Peptone, Milk तथा Autohemotherapy १-१० सी०सी० के सप्ताह मे २ वार मास द्वारा देने से इस रोग मे थोडा लाभ होता है, विशेष स्थायी लाभ नही होता। कैल्सियम (Calci Ostelin) के त्वचा द्वारा कुछ दिन देने से भी रोग के वेग के होने का भय नहा रहता।

श्वासवेग की शामक चिकित्सा

श्वासरोग की दूर करने वाली कोई चिकित्सा अभी तक नही है। केवल शामक चिकित्सा है जिसका प्रभाव थोडी देर रहता है, इसी का वर्णन किया जाता है। वेग के आरम्भ होते ही नये रोग मे Adrenaline Hydrochloride १००० मे १ की ताकत की १-२-३ वून्द त्वचा के नीचे दे दी जाय और पुराने रोग मे २०-३० मिनट के अन्तर से ऐसी दो-तीन मात्रा दे दी जाय या एक-एक वून्द प्रति दो-दो मिनट पर दे दी जाय तो सम्भवत Allergy से उत्पन्न श्वासनालीगत श्वयथु (Oedema) की शान्ति से या स्राव शोषक होने से तीन-चार घण्टो के लिए वेग शान्त हो जाता है। इसे १-२ या ३ घ० पर दुहरा सकते हैं। इसके Sympathetic नाडी मण्डल के उत्तेजक होने से भी श्वासनाली प्रसार (Broncho dilatation) होकर रोग शात होता प्रतीत होता है। वेग के समय रोगी को ग्लूकोज से मीठा किया हुआ गर्म जल पिलाते रहना चाहिये। पैरो पर गर्म बोतलो के रखने से तथा एक प्याला गर्म काफी पीने से भी वेग शात होता है। यदि Adrenaline in Oil (५००-१ Adrenol B I) को ३-८ वून्द की मात्रा मे मास द्वारा दे दिया

जाय तो रोग का वेग १२ घंटों के लिए शान्त हो जाता है। Gelatin and epinephrine के इंजेक्शन का भी ऐसा ही प्रभाव होता है। बड़ी आयु के व्यक्ति मे जब पहले ही रक्त भार बढ़ा हुआ हो, हृदय आकार मे बड़ा हो गया हो या हृदय शूल Angina का लक्षण भी हो तो इस औषध का प्रयोग नही करना चाहिये अथवा Ephedrine १/२-३/४ ग्रेन या २५ मिलि० के मुख द्वारा लेने से वेग शात हो जाता है। Caffeine Iodide Elixir के एक चम्मच की मात्रा मे लेने मे भी आराम आ जाता है। Phenobarbitone १ १/३ ग्रेन के देने से या Pentobarbital Sodium के १ १/२-३ ग्रे० की मात्रा मे त्वचा द्वारा देने से भी वेग शात हो जाता है। Isoprenaline Sulph (Neoepinine B W. Isoprenal B I. या Aleudrin या Isuprel के कि जो Bronchodilator है १०-२० मिलि ग्राम की मात्रा मे जिह्वा के नीचे दिन मे तीन बार रखने से भी इस रोग का वेग शान्त हो जाता है या इसके १/२-१ प्रतिशतक जलीय घोल के २-७ बून्द मात्रा मे चार-चार घंटे के बाद नासिका मे Inhalation apparatus (De Vilbiss No 40) के द्वारा छिड़कने से या सूंघने से या इसके १०-१५ प्रतिशतक चूर्ण के नस्य द्वारा लेने मे श्वास का वेग शात हो जाता है। Adrenaline १००-१ के Nebulizer (De Vilbiss No. 40) के द्वारा ·५ सी०सी० मात्रा के नाक मे १/२-२ घंटे पर छिड़कने से भी वेग शात हो जाता है, Isoprenaline का प्रभाव शीघ्रता से होता है, पर अस्थायी होता है। Ephedrine ३० मिलि० तथा Methoxyphenamine (Orthoxine) १०० मिलि० का प्रभाव कुछ देर मे होता है पर देर तक रहता है। इन से लाभ न हो तो Aminophylline (Cardophylline) २५ मिलिग्राम को १०-२० सी०सी० सेलाइन मे या ५० प्रतिशतक ग्लूकोज मे बहुत धीरे-धीरे शिरा द्वारा दे देने पर इस रोग का वेग शात हो जाता है इसे ४-६ घ० पर दुहरा सकते हैं। इसके शीघ्रता मे देने मे रोगी मूर्छित हो सकता है। इसकी ७ १/२ ग्रेन या ३६० मिलि० की गुदावर्ती (सपोजिटरी) को १२-१२ घण्टों बाद गुदा मे प्रविष्ट कर देने से या रात को १ बार गुदा मे रख देने से या इसके ५ ग्राम को २०-३० सी०सी० जल मे मिलाकर गुदा द्वारा अन्दर डाल देने से या ५ ग्राम का बना हुआ सूची वेध मास द्वारा दे देने से भी वेग शात हो जाता है। Aminophylline १-५ ग्राम या Ephedrine १/३ या ३/४ ग्रेन Phenobarbitone १/४-१/२ Gr परस्पर मिलाकर (Tedral S A) दिन मे ३-६ बार देने से भी इस रोग का वेग शान्त होता है। अथवा Phenobarbitone को रात की मात्रा में ही मिलायें। केवल Ephedrine १/३ ग्रेन प्रात तथा मध्यान्ह मे देने से भी लाभ होता है। इसे रात मे देने से भी नींद घटती है। १ मास बाद कुछएक दिन के लिये इसे बन्द कर देना चाहिये, इससे फिर इसका प्रभाव प्रबल हो जाता है। या Aminophylline के स्थान पर Cholinetheophyllinate, Choledyl (Glaxo) Kolinate (B I) २०० मिलि० को मुख द्वारा ३ बार प्रतिदिन देवे। तो भी अनुभव बताता है कि सब महगी दवाइयो की अपेक्षा इफेड्रीन और किसी शामक दवाई को मिला रात को एक बार ही पर्याप्त रहता है। तीव्र रोग में Hydrocortisone hemisuccinate १०० मिलि० को शिरा द्वारा (अर्थात् Solucortef के) पहले दिन मे २ बार देने से इस वेग मे तुरन्त लाभ हो जाता है। इसे एक-दो दिन बाद फिर एक बार ही दिया जाता है। लाभ तो एक-दो दिन मे ही हो जाता है, इसे एक सप्ताह तक दे सकते है या Prednisolone ५-१०, या Betamethasone (Betnelan) ५ मिलि० या Triamcinolone ४, या Dexamethasone (Dexacortisyl या Decadron) १/२ मिलि० चार बार प्रतिदिन क्रमश घटती हुई मात्रा मे सात दिन तक मुख से दे। इनमे मे Cortisone Dexamethasone से सोडियम और जल शरीर मे अधिक रुक जाते है। Triamcinolone निर्बलताजनक है। Betamethasone तथा Prednisolone अधिक निर्दोष हैं। परन्तु इन्हे भी देर तक देने से हानि होती है। पहली को १० मिलि० दैनिक दूसरी को १ मिलि० दैनिक मात्रा मे देते रहना ही ठीक है। अधिक मात्रा मे देते रहने से इनके दुर्गुण प्रकट होने लगते है। शोथ शामक या anti inflammatory होने से ये औषधिया लाभ करती है पर इनका यह प्रभाव अस्थायी होता है। Prednisolone Ephedrine, Aminophylline, Phenobarbitone से बने योग Asmacort (Indopharma) Cortasmyl (Roussel) दिये जा सकते हैं। Prednisolone को धीरे-धीरे कम कर दे। आक्सिजन के देने से भी श्वास कठिनता दूर होती है। श्वासनालियो मे सचित हुये गाढे श्लेष्म द्रव को जो इस रोग का कारण मानते हैं वे कफ स्रावक औषधि को हितकर कहते है, अत उसे निकालने के लिये कफ स्रावक (Expectorant) औषधि देनी चाहिये। तथा उसी मे स्तम्भ शामक (Antispasmodic) औषधिया मिलाकर देनी चाहियें। उदाहरणत Potassium Iodide ३ ग्रेन अथवा इसके स्थान पर Ammonium Chloride ८ ग्रेन, तथा Potassium Bicarbonate १५ ग्रेन, Tincture Lobelia Aetheris १० बून्द, Tincture Stramonium १० बून्द, Tincture Hyoscyamus १० बून्द, Extract Grindelia

Liquid ३० बून्द, Syrup Tolu १ ड्राम Aqua १ औंस, ऐसी एक मात्रा दिन मे तीन बार एक मास तक पिलानी चाहिये और फिर दिन मे एक मात्रा ही देते रहना चाहिये। वेगो के बीच के काल मे वेगो की रोकथाम के लिये किसी कफ स्रावक औषधि के अतिरिक्त Ephedrine, $\frac{3}{8}$, $\frac{1}{2}$ ग्रेन Aminophylline $1\frac{1}{2}$ ग्रेन तथा मानस विक्षोभ शामक Phenobarbitone $\frac{1}{8}$, $\frac{1}{2}$ ग्रेन मिलाकर प्रतिदिन एक-दो बार दे सकते हैं या Isoprenaline Sulphate २० मिलि० मात्रा मे दें। रात को Phenobarbitone, १ ग्रे० लेने से ही इसके वेग का भय नही रहता अथवा रात को Calcibronate की गोली या एक-दो गोली एस्पिरीन की लेने से तथा Calcium (Calciostelin, Collo Cal) के सेवन से भी इस रोग का वेग उठना बन्द हो जाता है। रोगी को रात्रि का भोजन जल्दी लेना चाहिये तथा बहुत थोडी मात्रा मे लेना चाहिये। श्वास रोगी को निद्राजनक औषधिया अधिक नही देनी चाहिये। Aspirin Codeine की गोली Linctus-dipher hydramine या Barbiturate की गोली दे सकते है। जीर्ण श्वास रोग मे रोगी की पुरानी खासी को दूर करने के लिये इन्हे Tetracycline २५० मिलि० दिन मे ३ बार सप्ताह भर देना हितकर है। सतत श्वासरोग (Status Asthmaticus) के लिये Isoprenaline spray से बहुधा लाभ हो जाता है या Prednisolone का १० या १५ मिलि० मात्रा मे पहले दिन चार बार और फिर दूसरे दिन १० मिलि० मात्रा मे चार बार फिर ५ मिलि०मात्रा मे ४ बार ५ दिन दे। यह औषधि आतो मे शीघ्र विलीन हो जाती है इसलिये यह औषध मुख से उतना ही लाभ करती है जितना इजेक्शन मे तो भी इससे लाभ न लगे तो Prednisolonedisodium Phosphate को २०-४० मिलि० मात्रा मे या Hydrocortisone hemisuccinate १००-२०० मिलि० मात्रा मे शिरा द्वारा दें। निद्रानाश के लिए Barbiturates न दें क्योंकि वे श्वासकेन्द्र के अवसादक हैं Chlorpromazine को २५ मिलि० मात्रा मे ३ बार दिन मे दें। Oxygen देने से भी श्वास वेग शान्त होता है। ५% Dextrose in water के शिरा द्वारा १-२ लिटर की मात्रा मे बून्द-बून्द देने से या उसमे Aminophylline के २५-५ ग्राम मात्रा मे मिलाकर देने से भी आराम आ जाता है।

आयुर्वेद मे श्वास रोग

आयुर्वेदानुसार श्वास रोगी की श्वासनालियों या श्वास नियामक केन्द्र मे एक सहज धातिष दुर्बलता या प्राणतत्व की हीनता रहती है जो शरीर को निर्बल कर देने वाले कारणों से जैसे अनिर्गतवेदन, चिन्ता, रोगादिजनित निर्बलता, शुक्रनाश आदि से या किसी विक्षोभक विषैले द्रव्य के इन पर दुष्प्रभाव से प्रकट हो जाती है। इस प्रकार जब श्वासनालियो, विशेषत सूक्ष्म श्वासनालियो मे वातिक दुर्बलता या अक्षमता या असहिष्णुता बढी हुई होती है तब उनमे स्वल्प कारण से कफ दोष बढ़ जाता है तथा उससे शोथ और वायु की वृद्धि से चलता या स्तम्भ का लक्षण उत्पन्न हो जाता है। उनमे शोथ और स्तम्भ हो जाने अर्थात् श्वासनालियो के मार्ग के सकुचित हो जाने से श्वास कृच्छ्रता का वेग आरम्भ हो जाता है जिसे श्वास रोग कहते है। कफ वर्धक या देहाग्नि को न्यून कर देने वाले नाना कारणो से जैसे शीत गुरु स्निग्ध आहारो के अति सेवन से और श्रम न करने से जब शरीर मे कफ दोष या आम दोष बढ जाता है तब श्वासनालियो के स्वभावत निर्बल होने से यह बढा हुआ कफ दोष वहा पर ही अभिव्यक्त होता है। इसी प्रकार धूल, धूम तथा अन्य विषैले पदार्थो के श्वास वायु द्वारा अन्दर आने या मानसिक विक्षोभो के द्वारा या शरीर के प्राणतत्व को हीन करने वाले अन्यान्य कारणो के द्वारा श्वासनालियो मे वायु प्रकोप (Instability या चलता का गुण) विशेष होकर एवं वहा कफ सचय (Exudation) के होने पर यह रोग होता है। चरक ने श्वासनालियो मे वात, कफ दोषो की वृद्धि को इस रोग का कारण कहा है। तथा कहा है कि कफ मिश्रित वायु के द्वारा श्वासनालियो के भिच जाने (Constricted हो जाने) से यह रोग होता है। (चि०।१७।अ०।श्लो०८।१७।२१)

इस प्रकार कफाधिक श्वास रोग तथा वाताधिक श्वास रोग प्रधानत दो प्रकार का यह रोग होता है। कफाधिक रोगी बलवान् होता है तथा वाताधिक दुर्बल होता है। नवीन रोग साध्य है, पुराना हो जाने पर यह असाध्य हो जाता है। रोगी निर्बल हो तो भी यह रोग ठीक नहीं होता।

लक्षण

इस रोग का वेग बहुधा रात को होता है। इसलिये इसे आयुर्वेद मे तमक श्वास कहा है। सोये हुये रोगी को श्वास लेने के लिये उठकर बैठ जाना पडता है। पहले श्वास कृच्छ्रता का लक्षण होता है फिर जब कुछ कफ निकलने लगता है रोग का वेग मन्द होने लगता है। (च० चि० १७)

चिकित्सा

रोग कफ प्रधान हो, रोगी बलवान हो तो रोगी की पहले मृदु शोधन चिकित्सा करके फिर सन्तर्पण चिकित्सा करनी चाहिये। रोग वात प्रधान हो, रोगी निर्बल हो, तो रोगी की पहले से ही सतर्पण चिकित्सा होनी चाहिये। साधारणत इस रोग की कफ वात शामक (अर्थात् अग्निवर्धक तथा प्राणवर्धक) चिकित्सा होती है अर्थात् रोगी को

ऐसी औषध देश, काल, आहार-विहार आदि मिलने चाहियें जो वायु तथा कफ (अग्नि मन्दता) दोनों के शामक हों। दूसरे शब्दों में जो शरीर को बलिष्ठ करने वाले हों, परन्तु इतने गुरु शीत स्निग्ध न हों कि देहाग्नि को कम कर देवें। वे इतने लघु, ऊष्ण और रुक्ष भी न हों कि शरीर के अपतर्पक हो जायें। इस रोग में तो कफ की शान्ति की अपेक्षा वायु की शान्ति पर (अर्थात् प्राणवृद्धि पर) अधिक बल देना चाहिये। (सु०।उ०।५१)

कफ प्रधान श्वास रोगी को पहले अपतर्पक चिकित्सा होनी चाहिये अर्थात् पहले १ सप्ताह तक उसे भोजन का परित्याग कर ७ दिन के लगभग निंबुरसमिश्रित जल या जल पर ही रहना चाहिये। जल की मात्रा पर्याप्त होनी चाहिये इसके बाद इतने दिन के ही लगभग फलरस तथा अदरक युक्त सब्जियों के रसों पर जिसमे नमक हो, रहना चाहिये। इसके बाद फिर क्रमश रोटी और सब्जी तथा फल पर ही कुछ काल रोगी को रहना चाहिये। मलशोधक वस्ति का प्रयोग भी करना चाहिये। खाण्ड, दूध, दही, मांस, दाल, आदि का कुछ मास प्रयोग बन्द करके रोटी, सब्जी, फल तथा स्वल्प घृत पर ही रहना चाहिये।

इसके विपरीत अति निर्बल श्वास रोगी को प्राय सतर्पक आहार मिलना चाहिये। उसके लिये पुराने चावल, गेहू, कुलथी, मूग, जौ, घृत, मधु, परवल, सोहाजना, बैंगन, मूली, अगूर, मुनक्के, हींग, लशुन, त्रिकटु, जीरा तथा गर्म जल हितकर होते हैं। उसे दशमूल या लघु पचमूल से पकाया हुआ जल पीना चाहिये। तथा लाल मिर्च, तेल, खटाई, उडद, गुड, शक्कर, तले हुए पदार्थों, शीतल पेयो, दही, छाछ, दूध तथा मास विशेषत आनूप मास के सेवन से बचना चाहिये। जागल पक्षी मास थोडा लिया जा सकता है। समशर्करलोह (भै र.) १ माशा का दिन में ३ बार प्रयोग कुछ मास करना चाहियें।

श्वास रोग मे प्रयुक्त होने वाले कुछ योग निम्नलिखित हैं—

(१) दशमूली कषाय (भै.र) दशमूल के क्वाथ के साथ पुष्करमूल का चूर्ण का कुछ काल प्रयोग करें।
(२) कुलत्थादिक्वाथ (वृ नि र) कुलत्थ, जौ, दशमूल, बला प्रत्येक समान-समान का क्वाथ पिलाए।
(३) क्षुद्रादिक्वाथ (शा.स) कटैली, कुलथी, वासा, सोठ समान-समान के क्वाथ के साथ पुष्करमूल चूर्ण २ माशा दें।
(४) पुष्करादिक्वाथ (यो र) पुष्करमूल, कायफल, भारगी, सोठ, पिप्पली समान-समान का क्वाथ दें।
(५) कुलत्थादिकषाय द्वितीय (यो र) कुलत्थ, सोठ, कण्टकारी वासा समान-समान का क्वाथ पुष्करमूल चूर्ण दो माशा के साथ।
(६) वासादिक्वाथ (यो र.) वासा, हल्दी, धनिया, गिलोय, भारंगी, पिप्पली, सोठ, कटेली समान-समान का क्वाथ मरिच चूर्ण के साथ।

कट्फलादिचूर्ण (शा ध) कायफल, पुष्करमूल, शृंगी, त्रिकटु, शटी समान-समान का चूर्ण आर्द्रकरस तथा शहद से मात्रा ३ माशा।

शटयादि (यो र) कचूर, भारगी, वचा, त्रिकटु, हरड, सज्जीखार, कायफल, मालकंगनी, पुष्करमूल, शृंगी समान-समान का चूर्ण मधु से।

शृंग्यादि (यो.र) शृंगी, त्रिकटु, त्रिफला, कटैली, भारगी, पुष्करमूल, पाचो नमक समान-समान गर्म जल से ३ माशा मात्रा में दें।

हिंग्वादि (भा भै र.) हींग १, वचा २, चित्रक ३, सोठ ४, अजवायन ५, हरड ६, पिप्पली ७, त्रिवृत ८ के चूर्ण को घृत से दें।

त्रिकटुकादि (वै जी) त्रिकटुचूर्ण को घृत तथा गुड से दें।

शर्करासमचूर्ण (यो र) इलायची छोटी १, दालचीनी २, तेजपत्र ३, नागकेसर ४, मरिच ५, पिप्पली ६, सोठ ७ भाग, खाण्ड २८ भाग।

मरिचचूर्ण (यो र.) मरिच, खाण्ड समान-समान मिला के इसे शहद से चटाएं।

विभीतकी चूर्ण (भा भै र) विभीतकी चूर्ण ३ माशा भोजन के बाद शहद से चटाएं।

पुष्करमूलादिकल्क (वृ.मा) पुष्करमूल, जवाखार, काली मरिच समान-समान गर्म जल से पिलाए।

गुडादिलेह (वृ नि र) गुड, मरिच, पिप्पली, मुनक्का, हल्दी समान-समान को घी या तेल से चाटें। मात्रा ३ माशा।

गुडादिअवलेह (वृ नि र) त्रिकटु, गुड समान-समान को निम्बुरस और शहद से चाटें।

खर्जूरादिलेह (ग नि) खजूर, पिप्पली, मुनक्का, खाण्ड समान लेकर पीसकर घृत मधु से चटाए।

आर्द्रकपाक (यो.चि) अदरक के बारीक टुकडे कर घृत मे भून लें, उनके बराबर गुड डालकर पकाकर उसे गाढा कर लें। फिर उसमे त्रिकटु, चतुर्जातक, दोनो जीरे, जावित्री, धनिया, विडग, पिप्पलीमूल समान-समान का चूर्ण उचित मात्रा मे मिला दें। इस गुड का सेवन करे।

अगस्त्य हरीतकी (भै र) दशमूल, कौंचबीज, शखपुष्पी, कचूर, बला, अपामार्ग, पिप्पलीमूल, चित्रक, भारगी, पुष्करमूल १०-१० तोला, हरड १०० तोला, जल २० सेर पकाएं। हरड़ो को अलग निकालकर उन्हें कपड़े मे से छानकर उनका

कल्क ले लें। फिर इसे २० तोला घृत, २० तोला तेल मे भून ले। उपरोक्त छने हुए क्वाथ मे ६$\frac{1}{4}$ सेर गुड डाल चासनी बना उसमे हरडो का कल्क मिला दे। उसे गाढा करके उसमे पिप्पली चूर्ण २० तोला डालें। शीतल होने पर उसमे २० तोला मधु डाल दें। १ तोला दिन मे दो बार ले।

चित्रकहरीतकी अवलेह (भै र) (प्रतिश्याय प्रकरण मे) १ चम्मच दिन मे दो बार।

वासाहरीतकी अवलेह (भै र) वासा ६$\frac{1}{4}$ सेर, जल इससे आठ गुणा पका $\frac{1}{8}$ शेष रखे। उसी मे ४ सेर हरड भी पकावें। फिर हरडो को निकाल कपडछन कल्क को १ पाव घृत मे पकावे। फिर उपर्युक्त क्वाथ मे ६$\frac{1}{4}$ सेर खाण्ड डालकर चासनी बनावे। उसमें हरडो का कल्क पकाकर अवलेह बनावें। फिर नीचे उतारकर उसमे पिप्पली चूर्ण १० तोले, चतुर्जातक ५-५ तोले मिलावें। शीतल होने पर मधु ४० तोला मिलावें। १-१ तोला दिन मे २ बार लें।

कास श्वास विधूनन रस (यो र) पारा १, गधक २, यवक्षार ३, सर्जक्षार ४, मरिच ५ भाग, तुलसीस्वरस से मर्दन, गोली बनाए। दिन मे ३-४ गोली दें।

श्वास चिन्तामणि (भै र) लोह ४, गधक २, अभ्रक २, पारद, स्वर्णमाक्षिक १-१, मुक्ता $\frac{1}{2}$, स्वर्णभस्म $\frac{1}{2}$ तो., अदरक, मुलैठी, कटैली के रस की २-३ भावना। गोली २ रत्ती की। बहेडे तथा शहद के अनुपान से लें।

दशमूल षट्पलघृत (च द) दशमूलकाढा ४ सेर, घृत १ सेर, पञ्चकोल तथा यवक्षार १-१ छटाक घृत पाक करें।

दशमूलादिघृत (च स चि २२) दशमूल ४ सेर का क्वाथ, पुष्करमूल, शटी, त्रिकटु, हींग, तुलसी, बेलछाल प्रत्येक १$\frac{1}{4}$ तो, घृत १ सेर पकाकर घृत साधन करें। १ तोला २ बार।

दशमूलारिष्ट (शा ध देखें) १-२ तोला मात्रा २ बार।

कनकासव (भै र) धत्तूर पञ्चाङ्ग, वासा २०-२० तो, मुलैठी, पिप्पली, कटैली, सोठ, भारगी, तालीश, नागकेसर प्रत्येक १० तो, धातकी १ सेर, मुनक्का १$\frac{1}{4}$ सेर, पानी ३२ सेर, खाण्ड ६$\frac{1}{4}$ सेर, शहद ३ सेर, जल ३२ सेर आसव बनाए। १ तो मात्रा।

काकोदुम्बर योग (भा भै र) गूलर के पत्ते २$\frac{1}{2}$ तो, दूध १ पाव, जल १ सेर पकायें। जल भाग उड जाने पर, छानकर पिप्पली के चूर्ण के साथ लें।

तेजोवत्यादिघृत (च स) चव्य, हरड, कुष्ठ, पिप्पली, कटुकी, अजवायन, पुष्करमूल, चित्रमूल, शठी, काला नमक, भूई आवला, सेंधव, तालीश, जीवन्ती, वचा १$\frac{1}{4}$–१$\frac{1}{4}$ तोला, हींग २० तोला का कल्क। घृत १ सेर, जल ४ सेर, घृत साधन करें। १ तोला दिन मे २ बार।

हृदयनैर्बल्य जनित श्वास (Cardiac Asthma) वार्धक्य सुलभ रोग है। उसके लिए निम्नलिखित योगो का प्रयोग हितकर है :—

अर्जुनसिद्धक्षीर (यो र) अर्जुनत्वक् २$\frac{1}{2}$ तो०, दूध १ पाव, जल १ पाव, जल उड जाने तक पकाए, खाण्ड डालकर पिलाए। इसी प्रकार बलासिद्धक्षीर या लघुपचमूलीसिद्ध-क्षीर देवें।

ककुभचूर्ण (यो र) अर्जुनत्वक्चूर्ण को वासास्वरस की ७-८ भावना देकर उसे घृत, मधु तथा मिश्री के साथ दें या दूध से दें।

यष्ट्यादिघृत (यो र) मुलैठी, बला, अर्जुन का मिलित कल्क १ पाव। इनका क्वाथ ४ सेर, घृत १ सेर, पाककर घृत साधन करें।

हिक्का (Hiccough या Diaphragmatic Spasm)

साधारणत· जब श्वास महापेशी (Diaphragm) सकोच करती है तब कठ कपाट (Glottis) खुला हुआ होता है जिससे श्वास अन्दर आ जाता है। परन्तु कभी-कभी इस मास मे अचानक और असमय पर सकोच हो जाता है और बार-बार सकोच (Spasm) होने लगता है और क्योकि इस सकोच के समय कठच्छद या कठकपाट (Glottis) (उसका एक ओर का भाग) बन्द होता है और अन्त-श्वास सहसा रुक जाता है, जिससे "हिक" जैसी आवाज उत्पन्न हो जाती है, इसे हिक्का कहते है। इस मासपेशी की नाडी (Phrenic Nerve) मे विक्षोभ या तो आमाशय या आत या यकृत् या Diaphragm पर चढे Pleura से या उदर (Peritoneum) मे से आता है। अर्थात् पेट मे या आत मे हवा हो जिससे उनकी दीवार पर दबाव पडता हो या Peritoneum मे शोथ हो या घात (Paralysis) हो या Pleura मे विशेषत Diaphragm पर चढे उसके भाग मे क्षय-रोगजनित शोथ हो या यकृत् पर विद्रधि या कैन्सर हो तो हिक्का हो सकती है। आत मे कृमिजनित विक्षोभ हो या मस्तिष्क मे किसी प्रकार का Nerve सम्बन्धी विक्षोभ हो जैसे हिस्टीरिया हो अर्थात् कोई Psychoneurotic कारण हो या वहा क्षयजनित Meningitis या Encephalitis जैसा शोथ हो या वहा अर्बुद हो तो भी Phrenic नाडी विक्षुब्ध हो सकती है। बालक मे फुफ्फुसावकाश या Mediastinum मे विद्यमान लसीका ग्रन्थियो मे किसी मे क्षयरोगजनित शोथ हो या वृद्ध मे इनमे से किसी मे कैन्सरजनित शोथ हो तो एक Phrenic नाडी विक्षुब्ध हो जाने से हिक्का हो सकती है। चिरस्थायी वृक्क रोग मे मूत्रविषसचार (Uraemia) हो जाय, किसी तीव्र ज्वर का विष रक्त मे सचार कर जाय, तो भी उस विष के इस नाड़ी

पर दुष्प्रभाव से Toxic हिक्का हो सकती है, पर यह हिक्का कष्टसाध्य होती है अतएव Uraemia, Colaemia तथा ज्वरजनित विपो के कारण होने वाली हिक्का असाध्य होती है।

चिकित्सा

कारण को दूर करना चाहिये। यद्यपि वहुवा इसके कारण का पता नही चलता। पेट और आत में विक्षोभ के कारण हो तो पिपरमेन्ट जल मे ५ बून्द Cloves, या Cajuput Oil मिला सोडा वाईकार्व डालकर पिलाने से तथा वस्ति कर आत को साफ कर देने से आराम आ जाता है। या १ बून्द पिपरमेन्ट के तेल को खाण्ड के साथ दे सकते हैं। Ammonia के सुघाने से भी श्वास महापेशी का विक्षोभ शान्त होता है। मस्तिष्क तथा नाडीमण्डल के विक्षोभ को शान्त करने के लिये Phenobarbitone १½ ग्रेन मात्रा में मुख से या स्तम्भ शामक औपधि Octin के (Neo-octinum Liquid, Knoll) १० प्र०श० सोल्यूशन के १० बून्द की मात्रा मे ३-३ घन्टे पर देने से या इसके इन्जेक्शन (½ मिलीलि०) या Dragee के देने में या Atropine Sulphate ¹⁄₁₀₀, ¹⁄₁₀₀ ग्रेन मात्रा मे त्वचा द्वारा देने से या Papaverine १½ ग्रे० देने से या Chlorpromazine (Thorazine, Largactil) ५० मिलि० मात्रा में मुख द्वारा दिन में तीन वार या ५० मिलिग्राम मात्रा मे मास द्वारा एक वार देने से आराम आ जाता है। Promazine Hydrochloride (Sparine, wyeth) भी इस प्रकार इतनी मात्रा मे लाभदायक है।

आयुर्वेद में हिक्का

आयुर्वेदानुसार शरीर मे उसके निर्वल हो जाने से या उसमें किसी रोग विष के रहने से वायु की वृद्धि या प्राण शक्ति की हीनता हो जाय और यह निर्वलता विशेषत श्वास महापेशी (Diaphragm) मे हो और ऐसी अवस्था मे श्वास मार्ग व अन्न मार्ग मे कफ का प्रकोप होकर उनके मार्ग मे कुछ अवरोध हो जाय तो इस मासपेशी मे स्तम्भ होकर हिक्का उत्पन्न हो जाती है। अर्थात् प्रधानतः तो यह रोग शरीर तथा श्वास मार्ग मे वायु की वृद्धि (विक्षोभशीलता, चलता के वढ जाने) से होता है तथा गौण रूप मे शरीर मे विशेषतः श्वास तथा अन्न मार्ग मे कफ की वृद्धि से होता है। वृद्धावस्था मे या किसी तीव्र रोग मे या शरीर मे उत्पन्न विषो के कारण इस मांसपेशी मे स्तम्भ होकर जो हिक्का होती है वह असाध्य कही गई है। क्षयजनित हिक्का युवको मे होती है।

(च०।चि०।१७), (सु०।उ०।५०)

चिकित्सा

निम्नलिखित किसी योग के प्रयोग से हिक्का शान्त हो जाती है—

(१) कृष्णा चूर्ण (सुश्रुत) पिप्पली, शुण्ठी, आंवला १-१ भाग, खाण्ड ३ भाग इस चूर्ण को मधु से चटाएं।
(२) कपित्थरसयोग (सुश्रुत) कपित्थरस तथा शहद के साथ पिप्पली चूर्ण को चटाएं।
(३) मातुलुंगरस योग (वृ मा.) बिजोरे निम्बु के रस को काला नमक तथा मधु मिलाकर चटाएं।
(४) मातुलुंगादि घृत (ग.नि) बिजोरे निम्बु का रस ४ भाग, घृत १ भाग, संधव तथा राल का कल्क थोड़ा डालकर घृत वनाएं, इसे चटाएं।
(५) मयूरपिच्छादि योग (भा. भै र.) मयूरपिच्छा भस्म ३ रत्ती, पिप्पली ३ रत्ती मिलाकर मधु से चटाए।
(६) मागध्यादि चूर्ण (ग नि.) पिप्पली, त्रिफला समान-समान के चूर्ण को शहद के साथ चटाएं।
(७) अभयादिकल्क (वृ मा.) हरड और सोठ को जल से पीसकर या पुष्करमूल, मरिच तथा जवाखार को जल से पीसकर चटाए।
(८) ताम्रभस्म २ चावल भर को मधु के साथ चटाएं। या ताम्रभस्मयुक्त सूत शेखर आदि किसी रस को १-२ रत्ती की मात्रा मे मधु से दें।
(९) मद्य में या मधु में थोड़ा लवण मिलाकर पिलाएं।
(१०) मरिच, हींग अथवा राल का धुआ देवें।
(११) सैन्धवयुक्त जल का नस्य देवें।
(१२) शुण्ठी या पिप्पली को खाण्ड मे मिला उसका नस्य देवें।

युवासुलभ जीर्ण कास
(Pulmonary Eosinophilia Eosinophilic Lung)

यह रोग हमारे देश मे सुलभ है परन्तु पहले पहल Weingarten ने १९४३ ई० मे वम्बई में इस रोग की ओर हमारा ध्यान खिचाया। उन्होने इसका नाम Tropical Eosinophilia रक्खा तथा यह घोपित किया कि सोमल के प्रयोग से यह रोग अच्छा हो जाता है। उसके वाद नाना गर्म देशो मे इस रोग के होने की सूचना मिली और अव इस रोग को Pulmonary Eosinophilia कहते है।

यह रोग अधिकत २०-३० वर्ष की आयु के व्यक्तियो में खासी के दौरो के रूप मे होता है। वालको मे भी हो सकता है। ये खासी के दौरे रात को या उसके पिछले भाग मे विशेपत उठते हैं और वहुधा श्वासकृच्छ्रता से युक्त होते हैं जिससे इस रोग का भ्रम श्वास रोग से हो सकता

है। परन्तु श्वास रोग मे श्वास को बाहिर फैंकने के समय जो कृच्छ्रता होती है वैसी इस रोग मे नही होती। इस रोग मे बहुत खासने के बाद चपकीला-सा थोडा-सा ही बलगम निकलता है या नहीं भी निकलता। श्वासरोग के वेग मे खासी अन्त मे होनी है, इस रोग के वेग मे खासी प्रारम्भ से अन्त तक रहती है। खासी के साथ कुछएक मे सीटियो की-सी आवाज (Wheezing) भी सुनती है। बहि श्वास लम्बा होता है। श्वासयुक्त खासी के अतिरिक्त सायकालिक मृदु ज्वर ९९ या १०० डिग्री तक हो जाता है। अन्नारुचि और वमन के लक्षण भी होते है जिनके कारण शरीर मे कृशता के लक्षण हो जाते हैं। रोगी को अशक्ति प्रतीत होती है। इस प्रकार यह खासी का रोग महीनो या वर्षो तक रहता है। कभी मन्द हो जाता, कभी प्रकट हो जाता है। इस रोग का भ्रम उर क्षय से हो जाता है। परन्तु फुफुस शिखर की परीक्षा करने पर उसमे ठोसपन (Consolidation) के लक्षण नही मिलते, ना ही X-Ray द्वारा परीक्षा करने पर उसमे कोई लक्षण पाया जाता है। इस रोग के X-Ray चित्र मे Bronchial Markings या Bronchial Striations, Hilar shadows और Mottled shadows का लक्षण अर्थात् श्वासनालियो की छाया का लक्षण (सम्भवत Peribronchial Fibrosis के कारण) स्पष्ट होता है तथा Pneumonitis का सा चित्र मिलता है। छाया फुफुस के शिखर मे नही होती जैसे कि क्षय रोग मे होती है। फुफुस की Biopsi मे वहा Histiocytes, Eosinophils और Lymphocytes का सचय हुआ मिलता है। क्षय रोग के समान इसमे हृदयगति या नाडीगति तीव्र नही होती है। उसके समान खासी दिन-रात न उठकर रात को ही विशेष होती है। थूक मे क्षय जीवाणु भी नही पाये जाते है। इस रोग मे रक्त की परीक्षा करने पर श्वेतकणो की अतिवृद्धि (Leucocytosis) का लक्षण पाया जाता है (श्वासरोग मे यह लक्षण नही पाया जाता)। श्वेतकणो की वृद्धि Eosinophils की वृद्धि के कारण होती है। रक्त के प्रति क्यूबिक मिलिमीटर मे श्वेतकणो की सख्या १०, २०, ३० हजार या इससे भी अधिक होती है। जिनमे से चौथाई या आधे या इससे भी अधिक Eosinophils होते है। दूसरे श्वेत कण लगभग नार्मल सख्या मे होते है तो भी Neutrophils की अपेक्षा Lymphocytes कुछ अधिक होते है। यदि प्रति क्यूबिक मिलिमीटर रक्त मे Eosinophils २००० से अधिक हो या २०, ३०, ४० या इससे अधिक प्रतिशतक हो तो इसी रोग का सदेह करना चाहिये। इस रोग मे रक्तकणो का Sedimentation Rate भी बढा हुआ होना है। अर्थात् २०, ३० या ४० मिलीमीटर प्रति घटा होता है। फुफुस की परीक्षा करने पर उसमे Broncho Pneumonia के से चिन्ह होते है। उसके निम्न भागो पर Rales या Crepitations सुनाई पडते है। बहि श्वास लम्बा सुनाई पडता है। वायु कोष्ठको मे विद्यमान स्राव मे ७० प्र० श० से अधिक Eosinophils होते हैं। वहा की रक्त वाहिनिया रक्त से भरी होती हैं। कुछएक रोगियो की आत मे कृमि (Round या Hook Worms) भी पाये जाते है। इस रोग का कारण Microfilaria का रक्त मे सक्रमण कर जाना है। इसे रोगी के फुफुस, यकृत्, लसीका ग्रन्थियो मे देखा गया है। इस कृमि के Larvae के कारण ही फुफुस मे विकृति होकर यह रोग होता है। कई बार Microfilaraemia नेगेटिव होता है पर Filariasis के लक्षण बहुधा मिलते है।

चिकित्सा

इस कृमि से बने Antigen के १ मिलिलि० को त्वचा मे डाले तो २०-३० मिनट मे एक चकत्ता प्रकट हो जाता है। Round Worms, Thread Worms के सक्रमण से भी यह रोग हो सकता है। इस रोग की प्रधान औषधि Diethylcarbamazine Citrate [Herogen B D H Citrazan, Hetrazan Lederle, Banocide (B W) Unicarbazan की ५० मिलि गो या १३० मिलि० १ सी०सी०] है। इसका प्रयोग पहले १९५५ मे Ganatra और Lewis ने किया। इसकी १०० मिलिग्राम की मात्रा को दिन मे तीन बार ८-१० दिन तक भोजन के बाद दिया जाता है परन्तु लाभ तो पहले दिन ही प्रतीत होता है। रक्त मे Eosinophils की मात्रा भी नार्मल हो जाती है। इसका Microfilaria पर ऐसा प्रभाव (Sensitising effect) होता है कि R E system के Phagocytes उन्हे शीघ्र पकड लेते है। इसी प्रकार इससे बने Uni-carbazan (Unichem) इजे० के जिसमे २०० मिलि० इस औषधि के पीछे १० मिलि० एक Antihistamine (Chlorpheniramine Maleate) भी होता है ४०० मिलि० के मास द्वारा १-२ दिन के अन्तर से दो-चार बार देने से यह रोग अच्छा हो जाता है। इससे अरुचि तन्द्रालुता, शिरोभ्रम के उपद्रव हो सकते हैं। Cortisone वर्ग की औषधियो से भी इस रोग मे विशेष लाभ होता है जबकि यह रोग कुछ पुराना हो और Fibrosis विशेष हो।

आयुर्वेद मे भी इस प्रकार के श्वास रोग के लिये सोमल का प्रयोग होता है। अर्थात् मल्ल सिंदूर को एक रत्ती की मात्रा मे या सोमलत्रिकटु चूर्ण को (६० मे १) दो रत्ती की मात्रा मे या श्वास-कुठार को दो रत्ती की मात्रा मे दिन मे ३ बार घृत के साथ दिया जाता है।

कास रोग : तीव्र कास रोग
(Bronchitis, Acute Bronchitis, Tracheo-Bronchitis)

श्वास मार्ग का कार्य

बाहर से आने वाली श्वास वायु के साथ धूल के कण तथा जीवाणु भी श्वासमार्ग मे प्रवेश करते हैं। परन्तु नासिका, गले आदि का मार्ग ऐसा तिरछा बना हुआ है तथा उसमे श्लेष्म स्राव इतना होता है कि ये सब ऊपर-ऊपर ही पकड लिये जाते हैं और कण्ठ (Larynx) के नीचे के श्वास मार्ग मे नही पहुँच पाते। गले (Pharynx) के ऊपर के भाग मे चारो ओर इतना अधिक जो Lymphoid Tissue रहता है वह भी द्वारपाल के समान बाहर से आये जीवाणुओ आदि को पकडकर नष्ट करने का कार्य करता है। तथापि यदि कोई जीवाणु या कण, श्वासनालियो मे प्रवेश करते हैं तो वहा श्लेष्मकला की श्लेष्म ग्रन्थियो (Mucous Glands) से होने वाला श्लेष्म स्राव उनको पकडकर नष्ट कर देता है। श्लेष्मकला के अन्त स्तर (Epithelium) के Cilia वाले सेल ऊपर की ओर गति करते रहते हैं। उनकी इस गति के द्वारा जीवाणु तथा कण जो श्लेष्म स्राव के साथ मिश्रित होते हैं ऊपर गले की ओर धकेल दिये जाते हैं। इसी प्रकार श्वासनालियो मे स्वभावत एक ऊर्ध्वमुख गति थोडी-थोडी देर के लिये उठती रहती है जिसे Bronchial Peristalsis कहते है। यह बाह्य पदार्थों को ऊपर गले की ओर फेंकती रहती है। श्वासनालियो के अन्त स्तर (Epithelium) मे रक्तवाहिनिया भी अधिक मात्रा मे बिछी रहती है। जब बाहर से कोई विक्षोभक जीवाणु वहा पहुचता है तो इन रक्तवाहिनियो के द्वारा श्वेतकण (Leucocytes) भी वहा पर्याप्त मात्रा मे पहुंच जाते हैं और Phagocytosis के द्वारा उन्हे नष्ट कर देते है, जो जीवाणु बचते है वे भी श्वासनालियो की दीवार मे विद्यमान लसीका वाहिनियाँ Lymphatics के द्वारा पकड लिये जाते हैं। इस प्रकार जब तक श्वासनालिया स्वस्थ अवस्था मे रहती है कोई जीवाणु वहा रोहण नही कर पाता।

कारण

प्राय जुकाम (Cold) के Virus या श्लेष्म ज्वर (Influenza) के Virus का सक्रमण होकर खासी का रोग हुआ करता है अर्थात् श्वासनालियो मे Viral Infection होकर यह रोग आरम्भ होता है। परन्तु बाद मे नासिका, गले आदि मे विद्यमान जीवाणुओ, विशेषत Haemophilus Influenzae, Pneumococcus, Streptococci haemolyticus का और कभी-कभी Neisseria catarrhalis, Staphylococcus aureus आदि का सक्रमण हो जाता है। श्वासनालियो की साधारण जीवाणु प्रतिरोधक शक्ति के कम हो जाने पर ही Virus या उपर्युक्त जीवाणुओ का सक्रमण हो सकता है। इसीलिये आर्द्रतायुक्त शीतकाल मे सहसा शीत लग जाने से शिशुओ और वृद्ध व्यक्तियो मे, जिनमे स्वभावत. प्रतिरोधक शक्ति कम होती है, खासी का रोग बहुत पाया जाता है। शिशुओ के अतिरिक्त बडी आयु के व्यक्तियो मे विशेषत हृदयरोग से युक्त वृद्धो मे थोडी सर्दी लगकर ही खासी का रोग हो जाता है। अन्य रोगो के उपद्रव रूप मे जैसे विषम ज्वर, उर क्षय मे, वृक्कशोथ मे, मन्थर ज्वर मे भी श्वासनालियो मे सक्रमण होकर खासी का रोग हो जाता है।

विकृति

ऊपर-ऊपर की बडी श्वासनालियो की श्लेष्मकला मे जीवाणु या Virus का सक्रमण होने पर अतिमात्रा मे रक्त सचित हो जाता है। श्लेष्म ग्रन्थियो (Mucous Glands) की प्रणालिकाओ (Ducts) के सूज जाने के कारण पहले उनसे होने वाला श्लेष्म स्राव बन्द हो जाता है जिससे श्वासनालिया खुश्क हो जाती हैं इसे इस रोग की प्रथम शुष्क अवस्था (Dry Stage) कहते है। फिर शीघ्र ही श्लेष्मग्रन्थियो मे से श्लेष्म स्राव या म्यूकस की मात्रा अत्यधिक हो जाती है क्योकि ये सूजकर बडी-बडी हो जाती है। पहले पतला श्लेष्म स्राव Mucoid Exudation होता है फिर वहा श्वेत कणो (Leucocytes) के अधिक मात्रा मे सचित हो जाने से यह गाढा (Mucopurulent) हो जाता है। इस श्लेष्म स्राव की अवस्था को (Mucoid Stage) कह सकते है। इस निकलने वाले स्राव में, श्वासनालियो के अन्त स्तर (Epithelium) के सक्रमण के कारण मरे हुए सैल, जीवाणु तथा श्वेतकण मिले हुए होते हैं। श्वासनालियो मे जीवाणु सक्रमण होने पर Vagus के सज्ञावाही सूत्रो (Afferent Fibres) के द्वारा, इसकी प्रतीति Medulla को होती है और वहा से इस सक्रमण के निराकरण के उद्देश्य से खासी की प्रतिक्रिया (Cough Reflex) होती है अर्थात् जब श्लेष्मकला के रोगटे (Cilia) अपना कार्य पूर्णतया नही कर पाते तो उनकी सहायता के लिये खासी उत्पन्न होती है। साधारणत खासी तब उठती है जब श्वासमार्ग मे अर्थात् गले, कठ, कठ नाली, श्वासनालियो या फुफ्फुसावरण मे कही पर कोई विक्षोभक कारण हो। विक्षोभक कारण जीवाणु सक्रमण, अर्बुद (Neoplasm) कोई असात्म्य द्रव्य (Allergen) कोई बाह्य या आभ्यन्तर रासायनिक द्रव्य हो सकता है।

लक्षण

खासी का रोग प्राय जुकाम का ही एक भाग होता है। उसके Virus के रक्त मे सचार कर जाने (Toxaemia) के कारण शरीर मे भारीपन, जकडन (Malaise) ९९ या १०० डिग्री तक का ज्वर, हृदय गति, नाडी गति, तथा श्वास गति की कुछ तीव्रता और श्वेतकणो की कुछ वृद्धि हो जाने के लक्षण हो जाते हैं। जुकाम के इन लक्षणो के प्रकट होने के थोडे समय बाद अर्थात् दूसरे दिन खासी उठने लगती है जो पहले एक दिन के लिये खुश्क और तग करने वाली होती हे। खासने से गले तथा छाती के ऊपर के भाग मे दुखन (Soreness) की प्रतीति होती है। जो श्वासनाली शोथ (Tracheitis) के कारण होती है। श्रवण यत्र द्वारा सुनने से श्वास-प्रश्वास की आवाज कुछ कठोर और ऊची सुनाई पडती है। वहि श्वास कुछ लम्बा सुनता है। फिर एक दिन के बाद पहले पतली और चपकीली बलगम कठिनता से निकलती है जो शीघ्र ही मात्रा मे अधिक-अधिक होती जाती एव गाढी होती जाती तथा सुगमता से निकलते लगती हे। तब सुनने से Rales की ध्वनि सुनाई पड सकती है।

इस प्रकार तीसरे दिन के लगभग जब बलगम निकलने लगती है तो इस रोग के प्रारम्भिक विष सचार (Toxaemia) के लक्षण जैसे जकडन (Malaise), तापमान की वृद्धि आदि शात हो जाते है फिर खासी तथा बलगम के लक्षण भी ८-१० दिन तक ठीक हो जाते है। यदि किसी शिशु या वृद्ध व्यक्ति मे ज्वर तीसरे, चौथे दिन भी बना रहे और खासी खुश्क ही रहे तो छोटी श्वासनालियो मे शोथ के प्रसरण कर जाने अर्थात् Bronchiolitis की आशका करनी चाहिये। इसी प्रकार यदि किसी युवक मे खुश्क खासी १५ दिन से अधिक चले तो उसमे उर क्षय की आशका करनी चाहिये। बालक मे खुश्क खासी रात को उठे तो Tonsils के कारण, दिन-रात खुश्क खासी उठे तो Mediastinal Glands मे शोथ, बडी आयु मे श्रम करने पर खासी उठे, झागदार पतली बलगम गिरे तो हृदय रोग, पसली मे दर्द के साथ खुश्क खासी उठे तो Pleurisy, बालक मे खासी के साथ उलटी हो जाय तो काली खासी का सन्देह करे।

जीर्ण कास (Chronic Catarrhal Bronchitis या Winter Cough)

पुरानी खासी का रोग प्राय ५० वर्ष से ऊपर की आयु के व्यक्तियो मे जब उनकी श्वासनालियो की श्लेष्मकला की स्वाभाविक प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है, होता है। शीतकाल तथा वसन्त ऋतु मे विशेषत जब वायु आर्द्र होती है, शीत लग जाने से होता है। गर्म मौसम मे यह रोग ठीक रहता है। यह रोग शीत देशो मे पाया जाता है गर्म देशो मे नही। वाम हृदय के निर्बल हो जाने से या Mitral Valve के रुग्ण हो जाने से जब फुफ्फुसो मे रक्त सचय अधिकाधिक होने लगता है तब श्वासनालियो की जीवाणु प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है। इसी प्रकार शरीर की धमनियो के कठोर (Arteriosclerosis) हो जाने से जब श्वासनालियो की श्लेष्मकला का पोषण कम हो जाता हे तब भी उनकी जीवाणु रोधक शक्ति घट जाती है अथवा जीर्ण प्रतिश्याय, Sinusitis, Tonsillitis, आदि ऊपर के श्वासमार्ग के रोगो के कारण Pneumococcus, Streptococcus Haemolyticus और Haemophilus Influenzae का सक्रमण श्वासनालियो मे बार-बार होता रहे तो भी खासी बार-बार हो जाती है। श्वासनालियो की श्लेष्मकला का प्रधान विक्षोभक कारण पुरुषो मे सिगरेट का धुआ, स्त्रियो मे चूल्हे का धुआ या शहरो मे फैला हुआ पेट्रोल आदि का धुआ प्रतीत होते हैं। अथवा नीचे फुफ्फुस मे कोई पुराना रोग हो जैसे उर क्षय, श्वास रोग या उर-काठिन्य (Pulmonary Fibrosis) या उर शैथिल्य (Emphysema) या Bronchiectasis का रोग रहता हो तो भी खासी का रोग जीर्ण रूप मे रहता है। अर्थात् जैसे ऊपर कहा गया है, गले (Pharynx) से लेकर Pleura तक के श्वासमार्ग मे कही पर भी विक्षोभक कारण उपस्थित हो तो उससे Vagus तथा Glossopharyngeal नाडियो के सज्ञावाही (Afferent) सूत्रो द्वारा Medulla मे विद्यमान कास केन्द्र (Cough Centre) उत्तेजित होता है और फिर चेष्टावाही सूत्रो के द्वारा श्वास-प्रश्वास की मासपेशियो के उत्तेजित हो जाने से खासी उठती है। श्वासमार्ग मे पाये जाने वाले उपर्युक्त Pneumococcus तथा Streptococcus आदि जीवाणु उसके प्रधान कारण नही क्योकि जब शहरो के धूल, धूम तथा गैसो के कारण तथा रक्त के अन्दर विद्यमान असात्म्य Allergic द्रव्यो के द्वारा श्वासनालिया विक्षुब्ध होती है एव उनमे स्राव तथा स्तम्भ (Bronchospasm) अधिक होता है तब इन जीवाणुओ को वहा बढने का अवसर मिल जाता है, तथा इनके कारण स्राव और स्तम्भ और अधिक होते है।

इस प्रकार उस रोग को जिसमे महीनो या वर्षो तक विशेषत. शीतकाल मे खासी के साथ पकी हुई बलगम श्वासनालियो से निकलती रहे जो क्षयरोगजनित या कैन्सर आदि के कारण न हो उसे जीर्ण कास (Ch Bronchitis) कहते हे। इसमे गौण रूप से जीवाणु सक्रमण

हो सकता है तब इसे जीवाणुयुक्त जीर्णकास (Ch Bronchitis with infection) कहते हैं। यदि श्वासनालियो मे स्तम्भ (Spasm) तथा अवरोध (Obstruction) भी हो तो इसे श्वासयुक्त जीर्णकास (Ch Bronchitis with airway obstruction) कहते हैं। यदि पुफुस मे Emphysema हो जाय तो फिर इसे ऊर्ध्वश्वास-युक्त जीर्णकास (Ch Bronchitis with Emphysema) कहते हैं। जीवाणु सक्रमण इस रोग का कारण नही पर इस रोग का परिणाम होता है, जितना-जितना वह बार-बार होता है उतना-उतना ही यह रोग अधिकाधिक घातक होता जाता है। क्षयरोग जैसा युवकों का घातक है, यह रोग वैसे ही बडी आयु के व्यक्तियो का घातक है।

विकृति

श्वासनालियो के अन्दर बाहर के धुए के चिरकाल तक लगते रहने से या चिरस्थायी सक्रमण जनित विक्षोभ के रहने से श्लेष्मकला, श्लेष्म ग्रन्थियो (Mucous Glands, Goblet Cells, Submucous Layer), तथा मासमय स्तर (Muscular Layer) मे अतिवृद्धि हो जाती है। सूजी हुई श्लेष्म ग्रन्थियो मे से श्लेष्म स्राव भी अधिक मात्रा मे होता है। क्रमश Submucous Layer मे स्नायु तन्तु की वृद्धि होती जाती है जिससे श्वासनालियो की मृदुता या लचकीलापन कम हो जाता है अर्थात् चिररुग्ण श्वासनालियों के मास मे Elastic Tissue तो कम होता जाता है और स्नायुततु (Fibrous Tissue) बढता जाता है। श्वासनालियो के लचकीलेपन के कारण ही श्रम करने पर सुगमता से अधिक हवा फेफड़ो तक पहुच जाती है। इनके कुछ कठोर और कुछ शिथिल (Dilated) हो जाने पर फिर श्रम करने से शीघ्रश्वास काठिन्य के हो जाने या सास चढ जाने का लक्षण होने लग जाता है। बार-बार शोथ होते रहने से श्लेष्मकला के Cilia भी नष्ट हो जाते हैं। खाँसी का रोग और भी पुराना हो जाय तो धीरे-धीरे स्नायुभाव (Fibrosis) की यह प्रक्रिया बढती जाती है अर्थात् श्वासनालियो की श्लेष्मकला, श्लेष्म ग्रन्थियो, अन्त स्तर तथा मासमय स्तर सबमे लघुता (Atrophy) की प्रक्रिया होने लगती है और Submucous स्तर मे स्नायुभाव बढता जाता है। श्वासनालियो के शिथिल (Dilated) हो जाने से उनमे से कफ या बलगम पूरी तरह से नही निकल पाता जिससे वहाँ जीवाणु रोहण और अधिक सुगम हो जाता है। जीवाणु सक्रमण के बार-बार होते रहने से यह रोग और अधिक चिरस्थायी हो जाता है। जीवाणु सक्रमण इस रोग का कारण नही होता पर इसका परिणाम या इसका वर्धक होता है। सूक्ष्म श्वासनालियो मे स्नायुभाव होने से कही-कही उनका स्रोत तग हो जाता या अवरुद्ध भी हो जाता है।

लक्षण

श्वासनालियो मे थोडी सर्दी लग जाने पर भी वहाँ की रक्तवाहिनियो मे सकोच होकर उनकी श्लेष्मकला मे जीवाणु सक्रमण हो जाता हे और खासी का रोग विशेषत शीतकाल मे हो जाता है, तथा (१) खासने और (२) श्लेष्म स्राव (केवल श्लेष्मद्रव या पूययुक्त श्लेष्मद्रव) होने के लक्षण हो जाते हैं। श्वासनालियो मे अधिक मात्रा मे सचित हुये जीवाणुओ, श्लेष्म स्राव, अन्त स्तर (Epithelium) के मृत हुए सेलो और श्वेत कणो (Leucocytes) को बाहर फेंकने के लिये ही खाँसी उठती है। नालियो की श्लेष्मकला के सूजे हुये रहने, उनके मार्ग मे श्लेष्म स्राव के भरे हुये रहने, तथा उनकी दीवार मे न्यूनाधिक कठोरता के हो जाने मे तथा उनमे श्लेष्मा के रुकने से श्रम करने पर या ऊपर चढने पर (३) श्वासकृच्छ्रता का लक्षण हो जाता है तथा श्वासनालियो मे शोथ या जीवाणु सक्रमण के चिरस्थायी रूप मे रहने से (४) रक्त मे कुछ विष सचार भी होता रहता है। रक्त को आक्सिजन भी कुछ कम मिलता हे जिसमे रोगी की कार्य करने की शक्ति मन्द हो जाती है। श्वासनालियो मे चिरस्थायी शोथ के रहने से तथा उनमे बलगम के रहने से उनके मार्ग के तग हो जाने पर, वायु कोष्ठको (Air Vesicles) की दीवारो पर दबाव बढ जाता है और वायु कोष्ठको मे वायु अधिक रुक जाती है जिससे उनकी दीवारे फट जाती हे। उनमे (Pulmonary lobules मे) सक्रमण भी हल्का-हल्का रहता है, जिसे ऊर्ध्वश्वास, पुफुस वृद्धि, या उर शैथिल्य (Emphysema) कहते है। पुरानी खाँसी मे Emphysema का होना स्वाभाविक है। पुफुस के लचकीलेपन के कम होने से सूक्ष्म-श्वासनालियो के स्रोत कुछ तग हो जाते हैं इससे भी Alveoli मे हवा अधिक भरी रहती हे। पुफुसो मे हवा के अधिक मात्रा मे रुकने से श्रम करने पर श्वास चढ जाने का उपर्युक्त लक्षण होने लगता हे। इस उपद्रव के होने पर रोगी की अपनी छाती को फुला सकने (Expansion) की शक्ति कम होती है अर्थात् अन्दर हवा के भरे रहने से पुफुस की Vital Capacity आधी रह जाती है। इसीलिए जीर्णकास रोग मे छाती अधिक फूली हुई दीखती हे जबकि उरक्षय रोग मे सदा छाती दबी हुई होती हे। जीर्णकास रोग सर्दी की ऋतु मे बढता है, गर्मी मे ठीक रहता है जबकि

उर क्षय से होने वाला कास रोग गर्मी की ऋतु मे अधिक बढता है। जीर्णकास रोग मे ज्वर नही होता, श्वास-प्रश्वास के साथ छाती कम हिलती दीखती है, टकोर की आवाज ऊची होती है, श्वास ध्वनियाँ मन्द सुनती, बहिःश्वास लम्बा सुनता, श्वास-प्रश्वास के साथ Rhonchi सुनाई पडती, पुफ्फुस तल पर Rales भी सुनाई पडती, Pulmonary प्रदेश पर दूसरा शब्द ऊचा सुनाई पडता है। पुफ्फुस मे कैन्सर रोग से इसका सन्देह हो सकता है जिसमे पुफ्फुस मूल (Hilum) के समीप की श्वासनालियो की श्लेष्मकला के Basal सेलो की तह मे अतिवृद्धि होती है जिसके कारण श्वासनालिया अवरुद्ध-सी हो जाती है। परिणामत पुफ्फुस का वह भाग शिथिल (Atelectatic) हो जाता है। समीपस्थ पुफ्फुसावरण पर भी यह रोग फैलता है जिससे पुफ्फुसावरण कोष मे जल (Effusion) उत्पन्न हो जाता है। इस वृद्धि के कारण खाँसी रहती, बलगम पडती है जिसमे कभी-कभी रक्त भी आ सकता है, दर्द भी हो सकता है, श्रम से श्वास चढ जाता है। यदि रोगी अति धूम्रपाई हो, पुफ्फुसावरण जल मे रक्त का मिश्रण हो तो कैन्सर का सन्देह करना चाहिये। उपद्रव —श्वास रोग Bronchospasm के अतिरिक्त खाँसी के चिरकाल जारी रहने से ऊर्ध्वश्वास (Emphysema) तथा दक्षिण हृदय शैथिल्य (Cor. Pulmonale) इसके उपद्रव होते है। रोगी के रक्त मे PCO_2 की वृद्धि और O_2 की न्यूनता के परिणामरूप मे यह अन्तिम उपद्रव होता प्रतीत होता है। साधारणत कासरोग ७-१० दिन मे ठीक हो जाता है। तीव्र रूप मे हुआ रोग ३-४ सप्ताह मे ठीक होता है। शिशु तथा वृद्ध मे प्रतिरोधक शक्ति के कम होने से यह देर तक रह सकता है। रोगी का भार घटता जाता हो, ज्वर हो जाता हो तो उर क्षय का तथा यदि पुफ्फुस तल पर Basal Rales सुनाई दे तो हृदय नैर्बल्य का सन्देह करना चाहिये। बलगम मे दुर्गन्ध हो, अगुलियो मे Clubbing हो तो Bronchiectasis का सन्देह करे। रोगी मे वृक्करोग या हृदयरोग हो तो यह रोग कष्टसाध्य होता है। यदि यह रोग २-३ शीतकालो मे होता रहे तो फिर पुफ्फुस मे इससे उत्पन्न विकृति ठीक नही होती और यह रोग उत्तरोत्तर बढता ही जाता है। शरीर की आक्सिजन की सप्लाई कम होती जाती है जिससे हृदय के फेल होने का उपद्रव हो जाता है।

तीव्रकास Acute Bronchitis की चिकित्सा

तीव्रकास का रोग जुकाम के समान Virus के विषसचार से होता है। अत Antibiotic का इस पर कोई प्रभाव नही। इसके लिए रोगी को एक गर्म कमरे मे जिसका तापमान ६५ डिग्री फारनहाईट के लगभग रहता हो गर्म कपडा लेकर एक-दो दिन के लिये लेट जाना चाहिये। पूर्ण विश्राम से ज्वर, हडफूटन (Malaise) आदि विषसचार के लक्षण शान्त हो जाते है। Terpin Hydrate Elixir ५ मिलि लि Syr Codeine तथा Syr Tolu १-१ चम्मच मिलाकर तीन बार देवें या Aspirin, Phenacetin ४-४ ग्रेन Codeine ⅓ ग्रेन की एक मात्रा दे सकते है। गले और छाती की दुखन को दूर करने के लिये १०० डिग्री मे कुछ कम गर्म किये १ पाइट जल मे १ ड्राम Tr Benzoin Co अथवा Eucalyptus Oil की कुछ बून्द या Menthol के एक-दो दाने डालकर उसकी वाष्प कमरे मे देनी चाहिये। इस औषधयुक्त गर्म वाष्प से श्वासनालियो की विक्षोभशीलता और दुखन दूर होती है। छाती पर गर्म बोतल रखने या Liniment Terebenth या Liniment Camphorae मलने से भी खाँसी को आराम आता है। Alkaline Diaphoretic Mixture जैसे Potassium Citrate १५ ग्रेन, Liquor Ammonium Acetate १ ड्राम, Tincture Camphor Co १५ बून्द, Syrup Tolu १ ड्राम, जल १ औंस मिलाकर ऐसी तीन मात्रा या Pot Acet १५ ग्रेन, Tinct Ipecac १० बून्द, Vin antim ५ बून्द, १ औस जल मे मिलाकर तीन मात्रा दिन मे देवे, रात की कष्टदायक खाँसी की शांति के लिये शामक औषधि जैसे Pholcodeine Linctus (B P C) ४ मिलि लि० या Methadone Linctus (B P.C) ४ मिलि लि० (एक चम्मच) देवे। खासी तथा ज्वर अधिक हो तो कोई Tetracycline २५० मिलि० प्रति ४-६ घटे पर (जैसे Achromycin Beplex के साथ) ३-४ दिन दे या Procaine Penicillin ५ लाख Units मास द्वारा दो-तीन दिन प्रतिदिन दे या Sulphamezathine या Sulpha phenazole (Orisul) ½-१ ग्राम दैनिक का दो-तीन दिन प्रयोग करना चाहिये या Penicillin के साथ ५ ग्राम Streptomycin भी मिलाकर (डाइक्रिस्टीसीन) दे या Penicillin V १२५-२५० मिलि० प्रति ४ घटे पर मुख से दे, रोग आरम्भ होने के तीन-चार दिन बाद जब बलगम गिरने लगती है १५ ग्रेन Soda Bicarb को दिन मे तीन बार एक-एक गिलास गर्म जल के साथ पिलाने या Ammonium Carbonate ५ ग्रेन, Potassium Iodide २ ग्रेन, Potassium Bicarbonate १५ ग्रेन, Spirit Chloroform ५ बून्द, जल १ औस मिलाकर ऐसी तीन मात्रा दिन मे गर्म जल के अनुपान के साथ देने से बलगम भली प्रकार गिरने लगती है। साथ ही रोगी को प्रतिदिन प्रात.

कोई मृदु विरेचन जैसे १-२ ड्राम Mag Sulph दे देना चाहिये। रात निद्रा के लिये Phenobarbitone ½ ग्रेन दे, भोजन के लिये हलकी गर्म चाय गर्म जल मे किसी फल के रस तथा ग्लूकोज़ को मिलाकर या किसी सब्जी का यूप दे सकते हैं। भोजन द्रव होना चाहिये तथा दिन मे ३ लिटर हलका गर्म जल पिला देना चाहिए अर्थात् १-१ ग्लास गर्म जल २-२ घ० पर पिला देना चाहिये। जिन्हे खासी बार-बार हो जाती हो उन्हे उस मौसम के आने पर पहले ही Sulphadimidine १ ग्राम एक बार प्रात. प्रतिदिन ले लेनी चाहिये।

जीर्ण कास रोग की चिकित्सा Chronic Bronchitis

प्रथम तो जीर्ण प्रतिश्याय Sinusitis, Tonsillitis, हृदय दौर्बल्य या धूल, धूम, भीड-भाड़ या सिनेमा जाने, बीडी-सिगरेट पीने आदि जिन कारणो से चिरस्थायी कास रोग होता है उनसे दूर रहने का उपाय करना चाहिये। दूसरा श्वासनालियो की जीवाणु प्रतिरोधक शक्ति को बढाने के लिये यदि तो रोगी निर्बल हो तो उसे घृत, दूध, Cod Liver Oil, Vitamin A D तथा कैल्सियम तथा Vitamin B आदि पर्याप्त मात्रा मे देने चाहिये। यदि रोगी शरीर मे भारी हो तो उसके भोजन की मात्रा कम करनी चाहिये। उसे प्रधानत फलो, सब्जियो पर ही रहना चाहिये। खुली हवा मे मृदु व्यायाम करने, प्राणायाम करने से भी स्वास्थ्य अच्छा होता है। क्योकि अन्त श्वास के सक्रिय कर्म होने से हवा अन्दर आ तो जाती हे पर नालियो के तग हो जाने से वह निकलती नही, बहि श्वास बल से लेना चाहिये। श्वासनालियो मे सचित हुये श्लेष्म द्रव को निकालने के लिये निम्बू या किसी फलरस से मिश्रित गर्म-गर्म जल या गर्म चाय को ग्लूकोज डालकर दिन मे दो बार पिलाना चाहिये। अथवा ३ ग्रेन लवण और १० ग्रेन सोडा बाईकार्ब और Spirit Chloroform ५ बून्द, Aqua anisi १ औंस के गर्म-गर्म जल के एक औंस मे प्रात तथा सायकाल पीन रहने मे भी बलगम सुगमता के साथ निकलती रहती है। Pot Bicarb. १५ ग्रेन, लवण ५ ग्रेन, Ammon Bicarb ५ ग्रेन, Spirit Ammon २० बून्द, जल १ औंस को एक गर्म-गर्म जल के प्याले मे मिलाकर दिन मे तीन बार दे सकते है। अथवा Ammon Carb ५ ग्रेन, Tr Nux ८ बून्द, जल १ औस तीन बार दे सकते हैं इससे बलगम सुगमता से निकल जाती हे। निकलने वाली बलगम मे कुछ दुर्गन्ध हो तो Eucalyptus Oil, Menthol आदि मे युक्त गर्म बाष्प का सेवन कुछ देर के लिये प्रतिदिन करना चाहिये। श्वासनालियो के स्तम्भ के लिये Ephedrine ½ ग्रेन, Oxymel Scillae तथा Syrup Tolu ३०-३० बून्द मिलाकर ३-४ बार देना चाहिये। एतदर्थ Codeine, Ephedrine, Tolu, Vasaka से बने Cofcur (Unichem) Nocuff with Codeine and Ephedrine (Calcutta Chemical) Zip Cough Syrup (Smith stanisreet) Glycodinterp Vasaka (Alemb) बाजार मे मिलते है। श्वासनालियो मे विद्यमान जीवाणुओ के नष्ट करने के लिये Crystalline Penicillin १० लाख यूनिट के दिन मे २ बार लेने से या Penicillin और इसके साथ Streptomycin १ ग्राम के मिश्रित इजेक्शन के दिन मे एक बार ७ दिन मास द्वारा लेते रहने से या Penicillin V के मुख द्वारा २५० मिलि० मात्रा मे २ बार दिन मे लेने से या Ampicillin अर्थात् Penbritin २५० मिलि० के दिन मे तीन बार मुख से लेने से या Tetracycline Hyd को जो अन्य औषधियो के मुकाबले बेहतरीन हे, २५० मिलि० कैपसूल के रूप मे दिन मे चार बार केवल पाच दिन तक लेने से या Chloramphenicol २५० मिलि० के दिन मे चार बार ५ दिन तक लेने से लाभ होता है या इसके बाद फिर इनकी मात्रा कम कर सकते हैं। इनके साथ Beplex कैपसूल भी दिन मे तीन बार दें अथवा जब तक बलगम गाढी हो इनका प्रयोग करें। जब वह पतली श्लेष्म द्रवमय हो जाये इन्हे बन्द कर देना चाहिए। पुराने रोगी को इनके २-३ कोर्स हर शीतकाल मे ले लेने चाहिए। थूक मे जब पूय आने लगे इन्हे तुरन्त लेना आरम्भ करना चाहिए। रात मे खाँसी के कष्ट को कम करने के लिये Codeine Phos ½ ग्रेन दे या Syr Codeine Phos ४५ बून्द, एक्वा क्लोरोफार्म १ ड्राम मे मिलाकर दे सकते है। हृदय दौर्बल्य मे खाँसी हो तो Tr Digit ५ बून्द, Tr Nux ५ बून्द, Ammon Carb ५ ग्रे०, Spt Chloro जल मे दे सकते है या Chlorothiazide (Chlortride या Dichlortride) या Esidrex २५ मिलि २ गोली प्रतिदिन दें, श्वास काठिन्य का लक्षण हो तो इफेड्रीन या अमीनोफिलीन का प्रयोग करें।

आयुर्वेद मे कास रोग

आयुर्वेद मे कहा गया है कि श्वासनालियो में विद्यमान वह प्राणवायु जो बाहर की हवा को अन्दर लाने का कार्य करता है, उन नालियो के सूज जाने से जब प्रतिहत (विक्षुब्ध) होकर स्वतंत्र या कफ के साथ ऊर्ध्वगति करने लगता या उदान भाव को प्राप्त करता है तब उसके द्वारा कण्ठ मे जो टूटे हुए कांसी के बर्तन के समान शब्द उत्पन्न होता है, उसे कास या खांसी (कासृ कुशब्दे) कहते है। (च०।चि०।१८।श्लो०६-८।सु०उ०।५२श्लो० ३)

श्लैष्मिक कास (Catarrhal Bronchitis)

देहाग्नि को मन्द कर देने वाले शीत, स्निग्ध, गुरु आहार तथा अव्यायाम आदि शरीर मे आम दोष या कफ दोष को बढा देने वाले, कारणो से जब श्वासनालियो का रक्षक कफ धातु दूषित हो जाता है, एव बाहर से आये जीवाणु या विषद्रव्य या धूल आदि का भली प्रकार निराकरण नहीं कर पाता तब वह जीवाणु या विषद्रव्य वहा बढने लगता है। फिर उसके निराकरण के लिये वहा कफ धातु का जो कफ शोथ (Catarrh या Exudation) के रूप मे प्रकोप होता है, उसे कफकास कहते हैं। इसमे खासी के साथ पतले या गाढे कफ या Mucus के अतिमात्रा मे स्राव होने तथा शरीर मे आम दोष की वृद्धि के सूचक लक्षण होते हैं।
(च०।चि०।१८।श्लो० १७, सु०।उ०।५२ श्लो० ८)

वातिक कास (Chronic Bronchitis)

श्वासनालियो के सहज प्राणतत्व की हीनता के कारण तथा उनमे चलता, लघुता, रुक्षता, खरता आदि क्षीणता के सूचक लक्षणो के रहने से प्रधानतया जो खासी होती है उसे वातिक कास कहा जाता है। बडी आयु के व्यक्तियो के शरीर में स्वभावत: वायु की वृद्धि होती है। श्वासनालियो मे यह वायु वृद्धि या अक्षमता व असमर्थता विशेष हो तो शीत आदि स्वल्प वायुवर्धक कारण से यह और बढ़ जाती है। ऐसी अवस्था में उनमें ऊपर से जीवाणु सक्रमण सुगमता से हो जाता है। वातिक कास एक चिरस्थायी रोग है जो शीत से बढता है जिसमे खासी खुश्क होती या बहुत खासने से थोडी बलगम निकलती है तथा शरीर मे निर्बलता विशेष रहती है। श्वासनालियो में चिरस्थायी शोथ के अतिरिक्त स्तम्भ या चलता के कारण होने वाली श्वासयुक्त खासी (Spasmodic Bronchitis) को भी वातिक कास कहा जाता है।

पैत्तिक कास (Purulent Bronchitis)

देहाग्नि को तीव्र कर देने वाले पित्तवर्धक कारणो से जब देह में अग्निकर्म (Catabolism) बढ़ जाता है एव उससे पित्तदोष Catabolic Malproduct बढ जाता है तो श्वासनालियो की सहज पित्त धातु में ऊपर से आये जीवाणुओ व विक्षोभक द्रव्यो को पचाकर नष्ट कर देने की प्रक्रिया मन्द हो जाती है, जिससे जीवाणु वहा रोहण करने लगता तथा बाहर से आया विक्षोभक द्रव्य प्रबल विक्षोभक हो जाता है। फिर उनके विपरीत वहा जो पित्त प्रकोप या पाकात्मक शोथ होता है (अर्थात् Purulent या Inflammatory Bronchitis की प्रक्रिया होती है) उसे पित्तकास कहते हैं। इस रोग में कफगत के पूय मिश्रित होने से उसमें दुर्गन्ध भी हो सकती है तथा शरीर मे ज्वर, पाण्डुता आदि पित्त वृद्धि के लक्षण होते हैं। Bronchiectasis की प्रारम्भिक अवस्था मे बहुधा ऐसा होता है। (च०।चि०।१८, सु०।उ०।५२)

कफ प्रधान तीव्र कास (Catarrhal Bronchitis) में निम्नलिखित योगो में से किसी का प्रयोग हितकर है —

(१) कफकेतु रस (भै र) पिप्पली, शखभस्म, सुहागे की खील, मीठा विष समान-समान को अदरक रस से गोलिया बांधें। अदरक रस और मधु मे दिन में ३ गोली दें।

(२) कासकुठार (भै र) शिगरफ, मरिच, गधक, त्रिकटु, सुहागे की खील, अदरक रस से भावना देकर २ रत्ती की गोली दिन में ३ बार।

(३) दरदादिवटी (सि भै म मा) शिगरफ, मीठा विष, पिप्पली, मरिच लौंग, मुस्ता समान-समान को निम्बुरस से मर्दन कर २ रत्ती की गोली।

(४) व्योषादिवटी (शा स) त्रिकटु, चव्य, तालीश, चित्रमूल, जीरा, तिन्तडीक अम्लवेतस १½-१½ तोला त्रिजातक प्रत्येक ¼ तोला, गुड सबसे दो गुना बडी-बडी गोलिया बनाए। मात्रा ३-६ माशा।

(५) हरीतक्यादिवटी (भा प्र) हरड, त्रिकटु समान-समान को सर्वतुल्य गुड में गोली बना के दिन में ३-६ माशा लें।

(६) लवगादिगुटी (वै जी) लौंग, मरिच, बहेडा १-१ भाग। खदिरसार सबके बराबर। बबूलत्वक् क्वाथ से घोट कर गोली बांधें। इसे मुंह में रखें।

(७) खदिरादिगुटी (यो र) पुष्करमूल, शृंगी, कायफल, मुलैठी, लौंग, हरड़, त्रिकटु, अतीस, कालाजीरा, धमासा, बहेडा, समान-समान कत्था सर्वतुल्य, अनार के छिलके, स्टैली, बबूलछाल, वासा के कषाय से ७ भावना देकर गोली बनाए, इसे मुंह में रखें।

(८) पिप्पल्यादिक्षारगुटी (ग नि) पिप्पली २, मरिच १½ तोला, अनारदाना ५ तोला, जवाखार ७½ माशा, गुड १० तोला, गोली बना के मुंह में रखें। (इसे ही मरिचादिगुटी भी कहते है)।

(९) कफघ्नीवटी (वृ नि र) कपूर ७½ माशा, लौंग २½ तोला, मरिच, पिप्पली, बहेडा, कुलिजन २½-२½ तोला। अनार का छिलका ५ तोला। कत्था सर्वतुल्य। २-२ रत्ती की गोली बांधें। मुंह में रखें।

तालीशादि चूर्ण (शा ध) तालीशपत्र १, मरिच २, सोठ ३, पिप्पली ४, वशलोचन ५ भाग, इलायची, दालचीनी

½-½ भाग। खाण्ड सबसे दो गुणा। ३ माशा शहद से।

वृहच्छर्करासम चूर्ण (व मे) लौंग, जायफल, पिप्पली १¼-१¼ तो, मरिच २½ तोला। सोंठ २० तोला। खाण्ड सर्वतुल्य। ३ माशा शहद से।

त्रिफलादिप्रयोग (वं से) त्रिफला, त्रिकटु, यवक्षार प्रत्येक समान-समान शहद से चाटें।

पुष्करमूलादिलेह (भा प्र) पुष्करमूल, त्रिकटु, शृंगी, कट्फल, धमासा, कालाजीरा समान-समान का चूर्ण शहद से चाटें। ३ माशा।

चातुर्भद्रचूर्ण (भै र.) मुस्ता, पिप्पली, अतीस, शृंगी समान-समान का चूर्ण वालकों की खांसी मे उपयोगी। मात्रा ४ रत्ती शहद या दूध से।

पुष्करादिचूर्ण (भै.र) पुष्करमूल, अतीस, शृंगी, पिप्पली, धमासा समान-समान का चूर्ण शहद से— वालकों के लिए विशेषत' उपयोगी।

शृंगवरे रसयोग (वृ नि र) अदरक रस मधु के साथ चाटें।

वातिक कास (Chronic Bronchitis) दो प्रकार का है (१) जरा कास या निर्बलताजनित कास। उसके लिए निम्नलिखित औषधिया उपयोगी हैं —

(१) पञ्चमूल्यादिक्षीर (ग नि) शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, दोनो कटेली, गोखरु, पिप्पली, मुनक्का समान-समान को यवकुट कर लें। इसमें से आधी छटाक औषधि को आध सेर जल में पका आध पाव रखकर छान लें। फिर उसे १ पाव दूध में पकाए, जब तक जलांश उड़ जाए। उसमें शर्करा डालकर पिलाएं।

(२) शतावरी क्वाथ (हा स स्था ३) शतावरी आधी छटांक के क्वाथ को दूध में डाल, मीठा करके, पिप्पली चूर्ण दो माशे के साथ लें।

(३) पिप्पल्यादिक्षारगुटी (ऊपर देखें)

(४) लक्ष्मीविलास रस (भै र) अभ्रक ५, पारा, गधक २½-२½ तोला, कपूर, जायफल, जावित्री, विधारा बीज, धत्तूरबीज, शतावरी वला बीज, गोखरु, हिज्जल १¼ तो प्रत्येक। पान के रस से गोली। १ गो दिन मे २-३ वार। (इसमें स्वर्ण भस्म १५ रत्ती मिला दें तो इसे महालक्ष्मी विलास कहते है।)

कण्टकारी हरीतकी अवलेह (भा प्र) कटेली ६¼ सेर, हरड १ सेर, जल ३२ सेर पकाएं। ⅛ शेष रखें। हरडो का कल्क छान लें। क्वाथ में हरडो का कल्क ६¼ सेर गुड डाल पकाकर अवलेह बनाए। उतारकर त्रिकटु, चतुर्जातक ५-५ तो तथा शहद ६० तो डालें। १-१ तोला दिन में १-२ वार लें।

च्यवनप्राश (च स) बेलछाल, अरणी, अरलु, खम्भारी, पाढल की छालें, बला, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पिप्पली, गोखरु, कटेली, बडीकटेली, शृंगी, मुनक्का, जीवन्ती, पुष्करमूल, अगर, हरड़, गिलोय, भुई आंवला, शतावरी, वाराहीकन्द, अश्वगंधा, कचूर, मुस्ता, पुनर्नवा, चन्दन, विदारी, नीलोफर, वासामूल, विधारा, काकनासा ५-५ तोले, आवले ६¼ सेर, सबको १६ सेर जल में पकाए, ४ सेर शेष रखें। आवलो का कल्क छानकर निकालें। आवलो के कल्क को घृत ३० तोला तथा तिल तेल ३० तोला में भूनकर लाल-सा कर लें। क्वाथ में मिश्री ३ सेर दस तोला डालकर उसकी चासनी बना लें। उसमें आवलो को डालकर गाढा करें। शीत होने पर वशलोचन २० तो, पिप्पली १० तो, चतुर्जातक प्रत्येक ५ तो मिला दें। शहद ३० तो मिला दें। मात्रा १-२ तोला।

(२) श्वासयुक्त चिरस्थायी कास (Spasmodic Bronchitis) के लिए श्वास रोग में लिखे किसी योग या निम्नलिखित किसी योग का प्रयोग करना चाहिए —

(१) चित्रक हरीतकी (प्रतिश्याय में देखें)

(२) अगस्त्य हरीतकी (श्वास रोग में देखें)

(३) वासा हरीतकी अवलेह (श्वास रोग में)

(४) वब्बूलादिगुटी (भै र) पारद १, गंधक २, पिप्पली ३, हरड ४, वहेडा ५, वासा पञ्चाग ६, भारगी ७, कूट छानकर चूर्ण करें। वब्बूल क्वाथ की २१ भावना दें। फिर शहद से वडी-वडी गोलिया बनाए। मात्रा १ माशा दिन में ४ वार।

ऊर्ध्वश्वास रोग जिसका आगे वर्णन हुआ है उसकी भी कास श्वास के समान ही चिकित्सा होनी चाहिए।

(५) सम शर्कर लोह

पित्ताधिककास (Suppurative Bronchitis) दो प्रकार का है (१) चिरस्थायी पूयकास (Bronchiectasis) तथा (२) क्षतकास Bronchitis due to Pulmonary Abscess)

तीसरा क्षयकास भी पूयकास एव पित्ताधिक कास है उसकी प्रधान चिकित्सा क्षयरोगोक्त चिकित्सा है।

आयुर्वेद ग्रन्थो में पूयकास रोग का जिसका आगे वर्णन हुआ है पृथक् उल्लेख नहीं मिलता परन्तु इस रोग में फुफुस में जो विकृति होती है उसके अनुसार इसे पित्ताधिक त्रिदोष कास कह सकते हैं। इसके लिए रोगी की प्राणवर्धक एवं पित्त शामक चिकित्सा होनी चाहिए।

उरो विद्रधि का रोग एक तीव्र रोग है उसे चरक ने उर क्षत नाम से पढ़ा है। चरक ने कहा है इस रोग में विना

गठा हुआ ढीला कुछ नीले पीले रंग का दुर्गन्धयुक्त बलगम बहुत अधिक मात्रा में मुंह से खासी के द्वारा बाहर आता है। उसमें रक्त का मिश्रण भी होता है रोगी क्षीण हो जाता है इसलिए इसे क्षतक्षीण रोग उसने कहा है। इसमें उसने यह भी कहा है कि रोगी का रंग फीका पड़ जाता है शरीर सूख जाता है बलहीन हो जाता है। अग्निमन्द हो जाती है खांसने में पार्श्वशूल भी होता है

इन उपर्युक्त पित्तकास रोगो के लिए निम्नलिखित किसी योग का जो बल्य और शीत गुण है उनका प्रयोग करना चाहिए :—

(१) खर्जूरादिचूर्ण (भै र) खजूर, मुनक्का, पिप्पली, लाजा की खील, मिश्री समान-समान का चूर्ण। घृत मधु के साथ चटाएं।

(२) मधुकादिलेह (वृ मा) मुलैठी, द्राक्षा, लाक्षा, शतावरी, पिप्पली, शृंगी १–१ तो, वंशलोचन १२ तो, खाण्ड सबसे ४ गुणा। इस चूर्ण को दिन में कई बार घृत मधु से चटाएं।

(३) पद्मबीजयोग (ग नि) कमलगट्टे के बीजो का चूर्ण, शहद से दें।

(४) पिपल्यादिलेह (ग नि) पिप्पली, आवला, खजूर, मुनक्का मिश्री समान-समान को पीसकर घृत मधु से चटाएं।

(५) एलादिगुटी (भै र) छोटी इलायची, तेजपत्र, दालचीनी ७½ माशा, पिप्पली २½ तो, मिश्री मुलैठी, खजूर, द्राक्षा ५-५ तोला शहद से गोली बाधें। ६ माशे से १ तोला मात्रा दैनिक।

(६) बलादिक्वाथ (यो र) खरैंटी, दोनो कटैली, मुनक्का, वासा, समान-समान के क्वाथ को मिश्री, शहद मिला के पिलाए।

(७) वासादिक्वाथ (शा ध) वासा, मुनक्का, हरड समान-समान का क्वाथ। खाण्ड शहद मिलाकर पिलाए।

(८) वासास्वरसयोग (भा मै र) वासास्वरस में मधु और पिप्पली मिलाके चटाए।

(९) वासावलेह (भा प्र) वासाक्वाथ या ताजा स्वरस १ सेर, खाण्ड ४८ तो, घृत १० तो, पिप्पली १० तो, आवले १ सेर को पकाकर उनका छना हुआ कल्क घृत में भूनकर उपर्युक्त क्वाथ में डालकर अवलेह बनाए। ठंडा होने पर शहद ४० तोला मिलाए। शहद न हो तो खाण्ड की मात्रा १ सेर लें।

(१०) क्षीरी घृत (यो र) पीपल, पिलखन, बड, गूलर, पारस पीपल, की कोपल समान-समान मिलाकर २½ सेर, जल २० सेर, चतुर्थांश शेष रखकर, १ सेर घृत, १ सेर दूध मिलाके घृत साधन करें। इस घृत को शहद के साथ चटाएं।

उपर्युक्त पिप्पल्यादिक्षार गुटी या जिसे मरिचादि गुटी भी कहते है इसके प्रयोग से अन्दर की पूय बाहर निकल जाती है जैसे कि शास्त्र में लिखा है "सर्वोषधैरसाध्या-ये कासाः सर्ववैद्यविनिर्मुक्ता.। अपिच्छर्दयतां पूय तेषामिदमौषधंपरमम्"

(११) कासश्वासविधूनन रस (यो र) पारद १, गंधक २, यवक्षार ३, सज्जीखार ४ भाग, मरिच ५ भाग। तुलसी स्वरस से मर्दन कर ३-४ रत्ती की गोली बनाए। दिन में ३-४ दें। इससे भी कफ निकल जाता है।

क्षयकास की शान्ति के लिए निम्नलिखित योगो का प्रयोग करें—

(१) सितोपलादिचूर्ण (भै र) दालचीनी १, इलायची छोटी २, पिप्पली ४, वंशलोचन ८, मिश्री १६ भाग। मधुघृत से ३-४ माशे की मात्रा दें।

(२) लवंगादिचूर्ण (भै र) लौंग, शीतलचीनी, खस, चन्दन, नीलोफर, जीरा, इलायची छोटी, दालचीनी, नागकेसर, पिप्पली, मोथा, जातिफल, सोठ, अगर, वंशलोचन समान-समान, खाण्ड सबसे २ गुणा। ३-४ माशा शहद से।

(३) द्राक्षारिष्ट (भै र) द्राक्षा ३ सेर १० तो, जल ६४ सेर पकाकर चतुर्थांश करे। गुड १२½ सेर, धातकी ४० तोला। विडंग, प्रियंगु, पिप्पली, मरिच, चतुर्जातक, ५-५ तो। आसव निर्माण करें। मात्रा आधी छंटाक।

(४) एलादिगुटी (उपर्युक्त)

जीर्णपूयकास-श्वास नाली शैथिल्य
Bronchiectasis (Ectasis Dilation)

कारण तथा सम्प्राप्ति

एक या अनेक बडी श्वासनालियो के शिथिल हो जाने या फैलकर चौडी हो जाने के रोग को श्वासनाली शैथिल्य कहते है। यह रोग बालकपन मे हुए खसरे (Measles) व काली खाँसी (Whooping Cough) के बाद उपद्रव रूप मे या कासजनित पुफुस ज्वर (Brancho pneumonia या Pneumonia के हो जाने और फिर उसके पूरी तरह ठीक न होने एव जीर्ण रूप मे रह जाने से आरम्भ होता है परन्तु बाद मे ३०-४० वर्ष की आयु मे यह रोग प्रकट होता है। इस आयु तक इसके जीर्ण रूप मे रहने से प्राय पुफुस के निम्न भाग या निचले पुफुसखण्ड मे स्नायुभाव (Fibrosis) हो जाता हे। अर्थात् वहाँ के वायु

कोष्ठक पिचक जाते है व कुछ ठोस से हो जाते है (Collapsed या Atelectatic हो जाते है) और उनमे वायु का प्रवेश कम हो जाता है। स्पष्ट है कि जब वहा का फुफुस सकुचित हो जाता है तो उसमे विद्यमान वायु प्रणालियो पर बाहिर की तरफ खीच (Negative pressure) पड जाती है जिससे उनका स्रोत कुछ चौडा होकर देखने मे तकुए या नली के आकार का हो जाता है। हर बार अत श्वास लेने पर उनका यह चौडापन और अधिक बढ जाता है। ऐसे रोगी मे वहाँ पर Infection के रहने से खांसी का रोग भी चिरस्थायी रूप मे रहता है जिससे श्वासनालियो मे श्लेष्म स्राव बढ जाता है। इन चौडी हुई २ श्वासनालियो मे स्राव अधिक मात्रा मे भरा रहता है जिससे बाद मे वहाँ पूय जीवाणुओ का सक्रमण हो जाता है अर्थात् बलगम मे कुछ पूय का मिश्रण हो जाता है और उस Infection के कारण इन श्वासनालियो की दीवारो पर निर्बलताजनक दुष्प्रभाव पडने लगता है और वे शिथिल हो जाती हैं। एक तो इस द्रव के दबाव से जो दीवारो पर पडता है वे निर्बल हो जाती हैं, दूसरा इन जीवाणुओ से उत्पन्न Trypsin सदृश पाचक रसो के द्वारा दीवारो की श्लेष्मकला पर दुष्प्रभाव पडता है। इस प्रकार जीवाणु सक्रमण के कारण नालियो की श्लेष्मकला के अन्त स्तर पर विद्यमान प्रेरक सूत्र (Cilia) नष्ट हो जाते हैं जिससे वहाँ द्रव का सचय और बढता है। फिर क्रमश दीवारो के माँस व लचकीले अवयव (Elastic Tissue) मे भी स्नायुमय (Fibrotic) क्षीणता आ जाती है जिससे ये नालियाँ और अधिक शिथिल व चौडी हो जाती है। खासी के बने रहने से इनके अन्दर का दबाव (Intrabronchial) बढा रहता है। इन दीवारो के अन्दर विद्यमान धमनियो मे भी शोथ (Endarteritis) हो जाता है अर्थात् रक्त-वह-स्रोतोरोध होकर इन दीवारो का पोषण भी घट जाता है। इस प्रकार इन नालियो की दीवारो की मलक्षेपक शक्ति एव उनकी जीवाणुरोधक शक्ति दोनो क्षीण हो जाती हैं। मल के अधिकाधिक रुकने से वहाँ जीवाणु सक्रमण और अधिक सुगमता मे होने लगता है। इस प्रकार श्वासनालियो का चिरस्थायी जीवाणु सक्रमण (Infection) इस रोग का प्रधान कारण है। इसी प्रकार यदि कोई बडी श्वासनाली Bronchus क्षयजनित ग्रन्थि (Hilar gland) से बन्द हो जाय या कैंसर से अवरुद्ध हो जाय तो भी उसके अगले भाग मे यह रोग हो सकता है। इस रोगग्रस्त श्वासनाली के आसपास का फुफुस वायुरहित तथा Fibrosis की प्रक्रिया के कारण कुछ कठोर-सा हो जाता है। इस फुफुस के ऊपर दोनो Pleura परस्पर चिपके होते है।

शुष्क उरःक्षय (Fibroid Phthisis) के होने पर भी श्वासनालियो पर बाहर से खीच पडकर वे चौडी हो जाती हैं एव उनमे से पूय सदृश बलगम समय-समय पर बडी मात्रा मे निकलता है पर उस अवस्था मे उरःक्षय रोग के सूचक लक्षण इतने स्पष्ट होते है कि उनमे श्वास प्रणाली शैथिल्य रोग के सूचक लक्षण छिप से जाते है।

श्वास प्रणाली शैथिल्य की यह विकृति बढती जाय अर्थात् श्वासनालियो की निर्बलता एव क्षीणता बढती जाय तो उनमे विद्यमान Pulmonary Artery की प्रशाखाओ मे अवरोध भी उत्तरोत्तर बढता जाता हे, जिसके परिणामरूप मे दायें हृदय मे रक्त अधिकाधिक रुक जाता है और वह कुछ शिथिल (Dilated) हो जाता हे। Tricuspid Valve मे भी कुछ-कुछ रक्त वापिस दक्षिण ग्राहक कोष्ठक मे लौटने लगता है और शरीर की शिराओ मे रक्त अधिक रुकने लगता है।

लक्षण

श्वास प्रणाली शैथिल्य का रोग बहुत कम देखने मे आता है और जब किसी को होता है तो धीरे-धीरे अज्ञात रूप मे आरम्भ होता है। बहुत वर्षो तक खासी के सिवाय और कोई विशेष लक्षण प्रकट नही होता। बाद मे किसी एक विशेष करवट पर लेटने से जब शिथिल हुई श्वासनालियो मे सचित बलगम भार के कारण अपने स्थान से हिलकर श्वासनालियो के ऊपर के स्वस्थ भाग मे स्पर्श करता है तो खासी से (Cough Reflex) थोडी देर मे बहुत-सी बलगम अर्थात् आधी छटाक से ५-६ छटाक तक मुख द्वारा बाहर आ जाती हे एव दिन मे एक बार प्रतिदिन ही बलगम की बडी मात्रा मे गिरने की यह प्रक्रिया बहुत काल तक जारी रहती हे। बर्तन मे पडे रहने पर यह तीन स्तरो मे विभक्त हो जाती है। ऊपर पतला झागदार पानी (Mucus) होता है, बीच मे धुँधला सा अपारदर्शक द्रव होता हे और नीचे भूरे-से रग का गाढा द्रव होता है जिसमे Strepto-Staphylococci प्रधान रूप से होते है। इसमे Anaerobic जीवाणुओ की सख्या भी बढ जाय तो इसमे दुर्गन्ध भी आ जाती है। फुफुसगत पूय के कारण श्वास मे भी दुर्गन्ध हो सकती है। फैली हुई श्वासनालियो की झिल्ली मे विद्यमान अकुरो (Papillae) मे रक्त के अधिक होने से उनके क्षत हो जाने पर कभी-कभी बलगम मे पूय के साथ स्वल्प-सा रक्त भी आ जाता हे, पर उरःक्षय रोग के समान अधिक मात्रा मे रक्त इस रोग मे नही आता।

इस प्रकार पूयकास के या पूययुक्त बलगम के दिन

मे १-२ बार खासी द्वारा बाहर आते रहने पर भी कोई अन्य विशेप दुर्लक्षण स्पष्ट रूप से नही होता। हा शरीर मे पूयभाव (Sepsis या Infection) के न्यूनाधिक रहने के कारण शरीरव्यापी कुछ लक्षण जैसे श्रम शक्ति की न्यूनता, हलकी पाण्डुता, भार की कमी या कृशता, अन्नारुचि, हृदय गति की तीव्रता के लक्षण रहते है। जब बलगम भली प्रकार निकलता रहता है, तापमान नहीं रहता, जब वह कुछ रुक जाता है तब कुछ-कुछ तापमान हो जाता है।

कालान्तर मे इस बलगम के देर तक बडी मात्रा मे रुक जाने से कुछ-कुछ काल बाद ज्वर के वेग होने लगते है जिनमे सर्दी लगकर ज्वर चढ जाता है। स्वेद भी आता है और विपम ज्वर (Malaria) होने का सन्देह होता है। ऐसे ज्वर वेग शीघ्र-शीघ्र और तीव्ररूप मे होने लगे तो समझना चाहिए कि रोग ने कुछ उग्र रूप ले लिया है। फिर भी यदि इस रोग की चिकित्सा होती रहे तो रोगी इस रोग के रहने पर भी चिरकाल तक सुखी रह सकता है। पर यदि नियमपूर्वक अन्दर सचित हुई बलगम को बाहर न निकाला जाय, औपधियो के द्वारा उसमे जीवाणु सक्रमण को भली प्रकार न रोका जाय तो पुफुस ज्वर (Septic Bronchopneumonia) हो जाने या दक्षिण हृदय के ऊपर भार पडकर उसके फेल (Cor Pulmonale) हो जाने का भय रहता है। मस्तिष्क विद्रधि का उपद्रव भी कभी-कभी होता है। ये इस रोग के उपद्रव है जिनसे रोगी को बचाना चाहिये। यह रोग असाध्य है एक बार बढकर अच्छा नही होता। जीवाणुनाशक औषधियो की सहायता से शान्त रहता है। गर्म खुश्क ऋतु या देश मे यह रोग शान्त रहता है।

इस रोग की आशका उरक्षय से हो सकती है। परन्तु वह रोग पुफुस के शिखर मे होता है। उसमे स्नायुभाव (Fibrosis) दोनो ओर होता है तथा उसकी थूक मे क्षय जीवाणु व Elastic Tissue मिलते हैं इससे सन्देह दूर हो जाता है। उरो विद्रधि का रोग एक तीव्र रोग है जिसमे रोगी अधिक रोगी दीखता है। वह इस रोग के समान चिरस्थायी नहीं होता। इस रोग के उपद्रव के रूप मे उरोविद्रधि का रोग हो सकता है। चिरस्थायी कास मे दोनो पुफुस ग्रस्त होते हैं उसमे थूक दुर्गन्धित नहीं होता, अगुलिया आगे से मोटी नही होती।

रोग परीक्षा

यह रोग प्राय करके किसी एक पुफुस के एक खण्ड मे और उसके भी एक उपखण्ड (Segment) मे होता है। दाये पुफुस के मध्य खण्ड के निम्न भाग मे यह रोग होता है या उससे भी ज्यादा यह वाम पुफुस के ऊपर के खण्ड के निम्न भाग (Lower Segment, Lingula) मे जो दक्षिण पुफुस के मध्यम खण्ड का ही उत्तर प्रतिनिधि है, होता है।

इस प्रकार किसी ओर के पुफुस के निम्न भाग के सकुचित हो जाने से उधर की छाती की दीवार कुछ दबी हुई चपटी तथा श्वास-प्रश्वास के साथ कुछ कम हिलती दीखती है। वहा पर के पुफुस के कुछ ठोस होने तथा श्वासनालियो के बलगम से भरे होने से टकोर की आवाज भी मन्द होती है। स्पर्शन द्वारा वहा होने वाला वाचिक कम्पन (Vocal Fremitus) कम प्रतीत होता है। वहा के ठोसपन के कारण वहा श्वास प्रणालियो पर सुनाई पडने वाली आवाज (Bronchophony) तथा मुह मे बोला हुआ शब्द (Pectoriloquy) भी ऊचा व अधिक स्पष्ट सुनाई पडता है। इन फैली हुई श्वासनालियो व श्वास कोष्ठको मे विद्यमान बलगम मे वायु गुजरती हो तो बुलबुलो के फटने (Consonating Rales) की आवाज रोगग्रस्त पुफुस के एक सीमित प्रदेश पर सुनती है। इनके साथ-साथ सूजी हुई श्वासनालियो मे श्लेष्म स्राव के होने से Rhonchi भी सुनाई पड सकती है। रक्त मे आक्सिजन की न्यूनता हो जाने से अगुलियो के सिरे मोटे हुए-हुए दीखते हैं (Clubbing)।

रोगविनिश्चय मे Bronchography बहुत सहायक होती है। यदि वह ५० वर्ष की आयु से बडा न हो तो तथा एक सप्ताह तक प्रतिदिन लेटकर २-३ बार अन्दर से बलगम पूरी तरह से निकाल दी गई हो तो जिस पुफुस मे रोग का सन्देह हो उसमे ही Cricothyroid Membrane मे से Trachea मे १०-१५ सी०सी० Lipiodol या Neohydriol या Dionosil (Iodine युक्त अविक्षोभक तेल) को एक मुडी हुई सुई के द्वारा डाल दिया जाता है जो उधर की Bronchi, Bronchioles मे फैल जाता है। इसके देने से पहले इन प्रदेशो को सज्ञाहीन कर लिया जाता है। इसके तुरन्त बाद Radiography की जाती है जिससे फैली हुई गोलाकृति श्वासनालिया देखी जा सकती है।

उपद्रव—Septic bronchopneumonia, gangrene तथा विद्रधियो Abscess का बन जाना प्रधान उपद्रव है।

अवरोधक चिकित्सा

क्योकि यह रोग Bronchopneumonia के उपद्रव रूप मे होता है अत जब किसी बालक को यह रोग हो तो

उसकी चिकित्सा मे लापरवाही न होनी चाहिये। ४-६ लाख यूनिट Procaine Penicillin के तब तक प्रतिदिन देने चाहिये जब तक तापमान और खासी सर्वथा दूर न हो जायें। इसके बाद भी उसे प्राणायाम की क्रिया दिन में ३ बार कुछ दिन तक करानी चाहिये ताकि पुफुस फैल कर फिर अपनी नार्मल अवस्था मे आ जायें।

निवारक चिकित्सा

शय्या कफप्रवाहण Postural (Drainage) चारपाई पर एक करवट पर लेटकर दोनो हाथो को नीचे फर्श पर रखे तकिये पर टिकाकर सिर को नीचा करके, रोगग्रस्त पुफुस के निम्न खण्ड को मुख की अपेक्षा ऊँचा करके अन्दर सचित हुई बलगम को नीचे रखे बर्तन मे निकाल देना चाहिये। १५-३० मिनट तक ऐसी स्थिति मे रहने से प्राय सारी बलगम निकल जाती है तथा प्रात काल उठने पर तथा रात को या किसी समय भोजन से पहले या बहुत बाद में बिस्तरे पर लेटते समय दोनो वक्त इस क्रिया को करके बलगम को नित्यप्रति साफ करते रहना चाहिये। क्षारीय मिश्रण की एक मात्रा लेकर ऊपर गर्म जल का एक कप पी लेने से यह बलगम पतली होकर आसानी के साथ निकल जाती है। अथवा चारपाई के पायते को ½, १ फुट ऊँचा करके लेटने से भी अन्दर सचित बलगम बाहर निकलने लग जाती है जिससे कास तथा विष सचार के लक्षण बहुत कम हो जाते हैं। जब-जब भी ज्वर का वेग हो या जीवाणु सक्रमण के लक्षण हो ७ दिन Crystalline Penicillin G ५ लाख यूनिट मात्रा मे १२-१२ घन्टे बाद दिन मे २ बार या Procaine Penicillin ६ लाख यूनिट दिन मे १ बार मास द्वारा दे देना चाहिये। ज्वर वेग न भी हो तब भी १½-दो मास के अतर से यदि एक सप्ताह तक उपर्युक्त विधि से इस औषधि को ले लिया जाय तो रोग दबा रहता है। इस औषधि से बलगम पूयमय न रहकर जलमय या अधिक पतला हो जाता है। इस औषधि का प्रभाव ठीक-ठीक न हो तो Streptomycin १-२ ग्राम मात्रा मे दिन मे दो बार करके सात दिन तक दे देना चाहिये। इतने दिन देने से गाढी बलगम पतली हो जाती है। या Tetracycline (Achromycin Terramycin) २५०-५०० मिलि० ८-८ घन्टे बाद मुख से दे या Erythromycin (Ilotycin) ५ ग्राम गोलिया ६-६ घन्टे बाद दें। या Ampicillin ५०० मिलि० मात्रा मे ६-६ घटे पर मुख द्वारा दे।

Aerosoltherapy . ५० हजार यूनिट पेनिसिलिन को प्रति सी०सी० नॉर्मल सेलाइन मे मिलाकर उसे एक अच्छी छिडकने वाली मशीन (Nebuliser Devilbiss No 40) के द्वारा Tracheobronchial नालियो में तीन-तीन घन्टे पर छिडकने से भी लाभ होता है। Strepromycin ५०-२५० मिलि० प्रति सी०सी० नॉर्मल सेलाइन मे मिलाकर भी छिडक सकते हैं। Terramycin ५०-१०० मिलि० को ७'५% Propylene Glycol १ मिलिलि० मे मिलाकर छिडक सकते है। इसी प्रकार Tr Benzoin Co (१ पाइट मे १ ड्राम) का वाष्प श्वासनालियो मे देने से भी बलगम पर अच्छा प्रभाव पडता है। थूक की दुर्गन्ध को दूर करने के लिये Creosote मिश्रण Pot Iod ५ ग्रे०, Creosote २ बूद, Ext Glycyrrihz Liq २० बूद, Syrup Tolu ३० बूद, Aq Anisi dest ½ औंस दिन मे तीन बार जल मे मिलाकर लेना चाहिये। या Creosote ३-५ बूद को कैपसूल्स मे दिन मे तीन बार दे सकते हे।

इस चिकित्सा के साथ-साथ नासिका, गले आदि मे शोथ का प्रतिकार भी करते रहना चाहिये, वह जब भी हो तुरन्त उसकी चिकित्सा होनी चाहिये। शुष्क तथा गर्म ऋतु मे और इसी प्रकार के देश मे रहने तथा धुए और धूल से बचने से क्योंकि जीवाणु सक्रमण तथा विक्षोभ कम होता है रोग बढने नही पाता।

जब-जब रोग थोडा भी बढे, लेट जाना चाहिये। तथा चारपाई के पायते को ½, १ फुट ऊँचा रखना चाहिये। अच्छी खुराक तथा शुद्ध हवा से शरीर के पोषण को बढाना चाहिये।

इससे रोग शान्त न हो तो Segmental Resection या Lobar Resection का शल्य कर्म कराना चाहिये।

पुफुस त्रिदोषार्बुद

Primary Carcinoma of the Lung, Bronchial Carcinoma

कारण

यो तो कैंसर एक बडा व्यापक रोग है इग्लैण्ड व अमरीका मे ६-८ मृत्युओ मे एक मृत्यु इससे होती है परन्तु वह भी गत २५-३० वर्षो से पुफुस मे होता हुआ अधिक देखने मे आ रहा हे। ज्यो-ज्यो कल-कारखाने बढ रहे है यह रोग बढ रहा है। १९०० ई० मे इग्लैण्ड मे १० लाख के पीछे ८ मृत्यु इससे हुई, १९५५ ई० मे यह सख्या २० हो गई, १९६२ ई० मे यह सख्या ३२१ हो गई। १९५९ ई० मे इग्लिस्तान मे लगभग कुल २० हजार

और १९६२ मे कुल २६ हजार मृत्यु इस रोग से हुई जो एक शोचनीय विषय है। हमारे देश मे भी इस रोग के रोगियो की सख्या बराबर बढ रही है। यहाँ तक कहा जाता है कि वडी आयु के प्रारम्भिक भाग मे यदि खासी और सास चढने के लक्षण होने लगे और हृदय रोग, वृक्करोग आदि न हो तो पुफुस मे कैसर का ही सन्देह करना चाहिये। यह वृद्धि क्यो हुई है तथा इस रोग का कारण क्या है, इस विषय मे अभी तक कोई निश्चित मत नही है। इतना तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि वडे शहरो मे जहाँ गाडियाँ, डीजल आयल (Diesel exhaust fumes) व कारखानो आदि का धुआ अधिक होता है, जो लोग सिगरेट, तमाखू आदि अधिक मात्रा मे पीते है, उनमे ४५ से ५५ वर्ष की आयु के बीच मे विशेषत पुरुषो मे यह रोग होता है। तमाखू न पीने वालो मे यह बहुत कम होता देखा जाता है। तमाखू के कारण इग्लैण्ड मे ६५०० मृत्यु प्रति वर्ष ५५ वर्ष की आयु से पहले हो जाती है। इन धुओ मे कोई कैन्सरजनक Cancerogenic Hydrocarbon इस रोग का कारण प्रतीत होता है। धुए मे विद्यमान Polycyclic hydrocarbon (Benzene Nuclei का कपौण्ड) जैसे ३, ४ Benzpyrene Dibenzanthrocene पर परीक्षा करके देखा गया है कि ये कैन्सरजनक होते हैं। क्योकि पुफुस मे श्वासनाली के अन्दर मे यह अर्बुद आरम्भ होता है, जिससे प्रतीत होता है कि इसका प्रधान कारण बाहर से आता है। कैम्ब्रिज के डा० Lasnitoski ने गर्भस्थ शिशु के पुफुस के Explant को लेबोरेटरी मे पालकर सिगरेट के धुए के Carcinogen से उसमे तीन सप्ताह मे कैन्सर या Epithelial Growth उत्पन्न करके दिखाई भी है। ४० वर्ष की आयु के बाद अधिक सिगरेट पीने से इस रोग के होने का विशेष भय रहता है।

सम्प्राप्ति

एक ओर के पुफुस मूल (Hilum) के समीप किसी वडी या मध्यम आकार की श्वासनाली की श्लेष्मकला के गहरे (Basement Membrane) सैलो मे अतिवृद्धि की प्रक्रिया के हो जाने से यह अर्बुद बनता है। अधिकत इस अर्बुद के सैल प्राथमिक या अविकसित किस्म (Undifferentiated या Embryonic) के होते है, इसलिये इसे Anaplastic किस्म का कैंसर कहते है। इसके सैलो के अण्डाकृति या गोल होने से इसे Oat Cell, Round Cell किस्म का अर्बुद भी कहते है चपटे या Squamous Cell कैंसर भी होता है जो धीरे-धीरे बढता है। विकसित किस्म (Differentiated) का कैन्सर या Columnar celled कैसर भी होता है जो कम घातक है।

रोगग्रस्त पुफुस की परीक्षा करने पर यह एक भूरा श्वेत-सा कठोर अर्बुद होता है जो एक श्वासनाली की अन्दर की झिल्ली मे से प्रारम्भ होकर पुफुस मे जाता है। श्वासनाली के भीतर इसके उभरे हुए स्तम्भ (Papillae) भी देखे जा सकते है। श्वासनाली की दीवार कठोर, श्वेत वर्ण होती तथा अन्दर की श्लेष्मकला खुरदरी होती है। इसके कारण से श्वासनाली का स्रोत तग हो जाता है। जैसे और कैसर होते हैं यह भी प्रसरणशील होता है। एक तो श्वासनाली के भीतर-भीतर यह पुफुस कोष्ठको (Alveoli) मे प्रसरण करके नई श्लेष्मकला बना देता है। दूसरा आसपास की (Perivascular Peribronchial) लसीकावाहिनियो के द्वारा यह पुफुस मे प्रसरण करता है। पुफुस मे से प्रसरण करके यह पुफुसावरण के बाहर के खोल (Parietal Pleura) मे Diaphragm के ऊपर चढे Pleura मे हृदय पर चढे आवरण (Pericardium) मे भी फैल सकता है। जिससे पुफुसावरण कोष मे शूल होने तथा उसमे जल उत्पन्न हो जाने का लक्षण हो जाता है। इसी प्रकार इसके समीप विद्यमान जो लसीका ग्रन्थिया होती है जैसे कण्ठ नाली (Trachea) और उससे निकलने वाली श्वासनालियो (Bronchi) के बीच मे पडी ग्रन्थियो मे प्रसरण करता है। वहाँ एक ढेर-सा बन जाने के बाद फिर वहा से इसके सैल कक्ष ग्रन्थियो अथवा हसली की हड्डी के ऊपर विद्यमान (Supraclavicular) ग्रन्थियो तथा ग्रीवा की ग्रन्थियो मे फैलकर उन्हे फुला देता है। Mediastinum मे इस ढेर के हो जाने से वहा Nerves, शिराये, कण्ठ नाली (Trachea), भोजन नाली आदि पर दबाव पड जाता है। पुफुस से बाहर यकृत्, Adrenal ग्रन्थियो, मस्तिष्क, नेत्र, सुषुम्ना काण्ड, वृक्को तथा अस्थियो मे भी यह रोग लसीका वाहिनियो के द्वारा प्रसरण कर सकता है।

लक्षण

श्वासनाली मे उत्पन्न अर्बुद के विक्षोभक होने से, पहले पहल इस रोग मे खासी का लक्षण होता है जो पहले खुश्क होती है पर रोगी समझता है खासी उसे सिगरेट के कारण है पर बाद मे इसके श्वास मार्ग मे कुछ दूर फैल जाने पर कफ का स्राव भी अधिक होने लगता है जिससे झागदार या गाढी बलगम भी गिरने लगती है। यदि अर्बुद से युक्त श्वासनाली मे क्षत भी हो जाय तो थूक मे मिला हुआ रक्त भी आ जाता है। Bronchoscopy से इस

अर्बुद को देखा जा सकता है। तथा निकलने वाली थूक मे Tumour सैलो का पता Dudgeon की विधि से लगाया जा सकता है। इस अर्बुद के कारण रोग-ग्रस्त श्वासनाली का स्रोत कुछ-कुछ तग हो जाय तो श्वास-प्रश्वास मे सीटी की-सी आवाज (Wheezing) भी होने लगती है। तत्सम्बन्धित पुफुस मे हवा के अधिक मात्रा मे भरे रहने से अर्थात् वहाँ Emphysema के होने के कारण श्वास चढ जाता है।

इस अर्बुद के कारण श्वासनाली का स्रोत बन्द हो जाय तो उस नाली से सम्बन्धित पुफुस मे हवा के न जा सकने से वह सकुचित (Collapsed या Atelectatic) हो जाता है जिससे उस पुफुस खण्ड (Lobe) से सम्बन्धित छाती अन्दर दब-सी जाती है। वायु के वहाँ न जा सकने से वहाँ पर छाती कम हिलती दीखती है तथा श्वास-प्रश्वास ध्वनि कम सुनाई पडती है। सकुचित हुए पुफुस खण्ड मे श्वासनालिया शिथिल होकर फैल जाती हैं अर्थात् वहाँ Bronchiectasis हो जाता है उनमे पूय भाव हो जाता है तथा उनसे सम्बन्धित सकुचित हुए पुफुस खण्ड मे विद्रधि (Abscess) भी हो सकती है। इसीलिये इस रोग मे पूययुक्त काम का लक्षण हो सकता है। अत ४० वर्ष के ऊपर पूययुक्त बलगम के आने तथा लगातार खाँसी रहने के लक्षण हो तो इस रोग की आशका करनी चाहिये। पुफुस के एक भाग मे वायु के न जाने एव उसमे Collapse हो जाने से श्वास चढ जाने का लक्षण भी होता है। Pleura मे द्रव होने से पुफुस के एक प्रदेश के दब जाने मे भी श्वास काठिन्य का लक्षण होता है।

पुफुस मे अर्बुद होने पर पुफुसावरण (Pleura) मे भी इसके सैलो का सक्रमण हो जाता है। वहा इसका प्रभाव होने से छाती पर अन्त श्वास के समय कही दर्द हो सकता है जो इस रोग का विशेष लक्षण है। बहुधा Sternum के पीछे (Retrosternal) यह दर्द होता है। दर्द के बाद पुफुसावरण कोष (Cavity) मे जल (Effusion) भी उत्पन्न हो सकता है। इस जल मे रक्त का मिश्रण होता है तथा उसमे इस अर्बुद के सैल भी पाये जा सकते हैं। अत यदि मध्यम आयु के व्यक्ति मे प्लूरिसी हो तो इस रोग का सन्देह करे। Diaphragm पर चढे पुफुसावरण मे इस रोग का प्रभाव हो तो दर्द पेट मे प्रतीत होता है। कभी-कभी यह अर्बुद श्वासनाली के सिरे पर पुफुस के प्रान्त भाग मे Pleura के निकट होता है। ऐसी अवस्था मे Pleura मे जल उत्पन्न होने या छाती की दीवार पर इसके दुष्प्रभाव होने का लक्षण अधिक स्पष्ट होता है किसी पर्शु का Rib मे इसके सैलो का सक्रमण होने से भी छाती मे दर्द हो सकता है। इस प्रकार यदि ४५-५० वर्ष की आयु के व्यक्ति मे पहले पहल खासी, बलगम, श्वास कृच्छ्रता, रक्तष्ठीवन, छाती पर दर्द के लक्षण हो, साथ ही कृशता (Cachexia) या भार की न्यूनता, अन्नारुचि, मन्द ज्वर के लक्षण हो तो इस रोग का सन्देह करना चाहिये। इस रोग मे रोगी की अगुलियो के सिरे मोटे हो जाते हैं (Clubbing) जो चिरस्थायी पुफुस रोग का एक लक्षण है, क्षुधानाश या अरुचि का लक्षण Infection का सूचक है।

किसी पुफुस के शिखर (Apex) के समीप यह अर्बुद उत्पन्न हो Apical Carcinoma हो तो कन्धे मे दर्द का लक्षण होता है तथा प्रथम पृष्ठ सम्बन्धी सौषुम्न नाडी (प्रथम Thoracic root) के ग्रस्त हो जाने से ऊर्ध्व बाहु तथा अग्रबाहु दोनो के आभ्यन्तर भाग मे भी दर्द होता है तथा हाथ की छोटी मासपेशियो मे कृशता और निर्बलता हो जाती है (Ulnar तथा Median नाडियो के ग्रस्त होने से) बाये पुफुस के शिखर मे अर्बुद हो तो Recurrent Laryngeal Nerve के ग्रस्त होने से वाम Vocal-cord मे घात होकर स्वर भग का लक्षण हो सकता है।

एक बडी श्वासनाली के इस रोग के कारण बन्द हो जाने से उधर के पुफुस का एक भाग शिथिल Collapsed हो जाता है जिससे वह कम हिलता है, मन्द टकोर देता है, Vocal resonance भी वहाँ कम हो जाती है।

पुफुसो के बीच के प्रदेश (Mediastinum) मे ऊपर की ग्रन्थियो के फूल जाने से जब एक ढेर बन जाता है तब उसके द्वारा Superior Venacava के दब जाने से ग्रीवा तथा चेहरे पर श्वयथु या भारीपन आ जाता है यह ऐसा श्वयथु Oedema होता है जो दबाने से दबता नहीं। यदि इसके द्वारा Trachea दब जाय तो श्वासकृच्छ्रता और भोजन नाली पर दुष्प्रभाव पड जाय तो निगरण काठिन्य (Dysphagia) का लक्षण हो जाता है। Vagus & Sympathetic नाडियो के दब जाने से नाडी गति मन्द या तीव्र हो जाती है। Sympathetic cervical सूत्रो के घात से पुतली सिकुडती, आँख दब जाती है (Enophthalmos जिसे Horners syndrome कहते हैं) Phrenic नाडी के दब जाने से हिक्का हो सकती है। Inter costal नाडियो के दब जाने से छाती या ऊर्ध्व बाहु पर दर्द हो सकता है।

रोग विनिश्चय

खासी, रक्तमिश्रित बलगम, भार की कमी, अगुलियो मे Clubbing तथा अन्नारुचि को देखकर इस रोग का सदेह करे। इस अर्बुद के सैलो के फैलने Metastases के कारण

हसली की हड्डी (Clavicle) के ऊपर तथा यकृत् मे बहुधा ग्रन्थिया Nodes बन जाते है इनसे इस रोग का सन्देह हो जाता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है Bronchoscopy तथा थूक की Dudgeon की विधि से परीक्षा करने पर भी इस रोग का निश्चय हो सकता है। X-Ray के द्वारा पुफुस मूल Hilum से सम्बन्धित कोई स्पष्ट किनारो वाली छाया मिले, ऊपर की ३ Ribs को क्षति पहुँचने के चिन्ह हो, पुफुस मे कोई सकोच या निश्चेष्टता का अर्थात् Emphysema या Atelectasis का चिन्ह मिले तो इस रोग का सन्देह होना चाहिये। यह छाया कैन्सर के कारण या Collapsed हुए पुफुस के प्रदेश के कारण होती हे। Exfoliative Cytology की विधि—कैन्सर सम्बन्धी सैल्स अन्य सैलो के समान चपकीले न होकर झडने वाले होते है, ऐसा देखा गया है इसलिये पुफुम मे इस रोग के होने पर श्वासनालियो के स्राव मे Papanicolaou की विधि से यदि इस प्रकार झडने वाले सैलो का पता चले तो इस रोग का निश्चय हो जाता है। इसी प्रकार Pleural या Peritoneal या Gastric द्रवो की परीक्षा से अन्यान्य स्थानो पर कैन्सर के होने का निश्चय भी किया जा सकता है। Clavicle के ऊपर के फैट के ढेर की Biopsy करने पर वहाँ के Lymphglands मे कैन्सर के सैल मिलते है। इसी प्रकार यदि किसी ४५ वर्ष से ऊपर के व्यक्ति को लगातार ३-४ सप्ताह तक खाँसी रहे ऐसा व्यक्ति यदि २० वर्ष से एक पैकेट से अधिक सिगरेट दिन मे पीता रहा हो, दिन भर खासी खुश्क-सी रहती हो तो भी इस रोग का सन्देह करना चाहिये। यह रोग एक बार होकर बढता ही जाता है तथा लक्षणो के प्रकट होने के १-१½ वर्ष के अन्दर-अन्दर घातक हो जाता है। Lobectomy या Pneumonectomy के शल्य कर्म के सिवाय किसी दूसरी चिकित्सा से लाभ नही होता। इस शल्य कर्म मे मृत्यु सख्या ५-१०% से अधिक नही हे।

पुफुसशोथ, पुफुस ज्वर

Pneumococcal Pneumonia, Acute lobar Pneumonia (Pneumon-Lung)

कारण

१५ से ४० वर्ष की आयु तक पाये जाने वाला शीतकाल तथा वसन्तकाल मे होने वाला यह रोग पुफुस मे Diplococcus Pneumoniae के सक्रमण से होता है जिसका पता Pasteur (१८८१) ने तथा Fraenkel (१८८४) ने पहले पहल लगाया। शहरो के, खुली हवा से रहित, बन्द घरो मे रहने वाले ऐसे व्यक्तियो के, कि जिनकी प्रतिरोधक शक्ति अपनी अवस्था के कारण, या किसी चिररोग के कारण गिर गई है, तथा जुकाम या Influenza के Virus के कारण जिनके श्वासमार्ग को क्षति पहुँच गई है उनके फेफडो मे शीत लगकर जो शोथ हो जाता है उसे पुफुस ज्वर (Pneumonia) कहते हैं। सहसा शीत लग जाने से श्वास मार्ग की प्रतिरोधक शक्ति गिर जाती है।

किसी पुफुम ज्वर से ग्रस्त रोगी की थूक मे विद्यमान Capsule वाले Pneumococci के जिन पर Phagocytes का प्रभाव नही हो पाता मुख, गले आदि स्थानो मे से पुफुम के वायु कोष्ठको मे सक्रमण कर जाने से यह रोग होता है। परन्तु सीधा रोगी से नही होकर किसी स्वस्थ रोग जीवाणु वाहक रोगी (Carrier) के द्वारा इसका सक्रमण ऊर्ध्व श्वास मार्ग मे हुआ करता है। स्वभावत गले मे विद्यमान Pneumococci के जो कि Noncapsulated एव निरुपद्रव होते है सक्रमण से यह रोग नही होता। पुफुस ज्वर से मुक्त हुए व्यक्ति, ३ मास तक इस जीवाणु के वाहक हो सकते है। पुफुस ज्वर रोगी के सम्पर्क मे रहने वाले व्यक्ति भी २३ दिन तक इस कैपसूल वाले रोगजनक Pneumococcus के वाहक हो सकते है तथा जिस कमरे मे पुफुम ज्वर का रोगी रहा हो उसकी धूल मे भी यह जीवाणु बहुधा पाया जाता है। इनमे से किसी कारण से भी वायु द्वारा आया हुआ जीवाणु नाक मे या गले मे श्लेष्मा—Mucus—के द्वारा पकडा जाता है एव पुफुस के वायु कोष्ठको तक पहुच नही सकता। परन्तु सर्दी की ऋतु मे या वसन्त ऋतु के प्रारम्भ मे जब जुकाम या श्लेष्म ज्वर (Influenza) के Virus के सक्रमण से नासा पश्चिम देश (Nasopharynx) की प्रतिरोधक शक्ति घटी होती है तब यह जीवाणु सक्रमण कर जाये तो नासिका के पिछले और गले के ऊर्ध्व भाग मे वृद्धि करने लगता है। इसका परिपाक काल (Incubation काल) १-२ दिन का ही होता है। फिर वहा का लेसदार द्रव अन्त श्वास के द्वारा खिचा हुआ Aspiration के द्वारा जब कण्ठ नाली मे से होता हुआ पुफुस के वायु कोष्ठको मे पहुचता है तब यह रोग आरम्भ होता है

साधारणत पुफुस के वायु कोष्ठक खुश्क होते हैं। इसलिये वहा पहुँचे हुए Pneumococcus को वृद्धि करने के लिये अनुकूल भूमि नही मिलती। पर यदि वाम हृदय की निर्बलता के कारण पुफुस के वायु कोष्ठको मे श्वयथु (Oedema) हुआ हो या जीर्ण कास, श्वास आदि के कारण उनमे श्लेष्म द्रव का सचय हो या किसी कारण उनमे श्लेष्म द्रव पहले उत्पन्न हो गया हो तो

Pneumococcus को वहाँ वृद्धि करने का अवसर मिल जाता है, अर्थात् वायु कोष्ठको के बीच-बीच की दीवारो मे से (Pores of Cohn मे से) यह दूसरे कोष्ठको मे प्रसरण कर जाता है। वृद्धावस्था मे जब हृदय नैर्बल्य या वृक्क रोग (Nephritis) का रोग होता है Pneumonia अधिक होता है। गले के ऊर्ध्व भाग मे से यह जीवाणु श्वास-नालियो मे से होता हुआ बहुधा दाये पुफुस के निम्न खण्ड (Base) मे विद्यमान वायु कोष्ठको मे सक्रमण करता है। इस जीवाणु के विक्षोभक तथा श्वयथु जनक होने के कारण उनकी सूक्ष्म सिराओ (Capillaries) मे अति रक्त सचय (Hyperaemia) होकर इन वायु कोष्ठको के अन्दर शोथ जनित श्लेष्म द्रव (Inflammatory Fluid) भर जाता है। इस श्लेष्म द्रव के द्वारा वहा पर Fibrinogen, रक्तकण, तथा Polymorphonuclear Leucocytes अत्यधिक मात्रा मे पहुँचते हैं। इनसे युक्त श्लेष्म द्रव के वायु कोष्ठको मे भर जाने से फुफ्फुस का एक खण्ड (Lobe) ठोस (Consolidated) हो जाता है तथा उनमे वायु नही रहती। फुफ्फुस के यकृत् के समान ठोस हो जाने से इस प्रक्रिया को Red Hepatisation कहा जाता है। इस अवस्था मे श्वासनालियो के स्राव मे भी रक्त, मिश्रित हुआ होता है, और सचित हुए श्लेष्म द्रव मे विद्यमान रक्तकणो के कारण यह खण्ड रक्त वर्ण होता है। इसमे विद्यमान Fibrinogen एक-दो दिन के अन्दर-अन्दर Fibrin मे परिवर्तित होकर जीवाणुओ को फैलने से रोक देता है तथा इस द्रव मे विद्यमान श्वेतकण इन जीवाणुओ को नष्ट करने का कार्य करने लगते हैं। वे जीवाणुओ को Fibrin के जाल या वायु कोष्ठक की दीवार के पृष्ठ पर चिपकाकर या दबाकर उन्हे हजम कर लेते है, इसे Surface Phagocytosis की प्रक्रिया कह सकते हैं। इससे पहले कि इन Pneumococci के विरोधी Opsonizing Immune Bodies (Antibodies) उत्पन्न होकर इन्हे नष्ट करे जैसे कि वे ७ दिन तक उत्पन्न हो जाते हैं, श्वेत-कण (Leucocytes) अपने Phagocytosis के द्वारा उन्हे नष्ट करना आरम्भ कर देते हैं। यदि रोगी को Antibiotic मिल जाय तो उससे भी जीवाणु नष्ट हो जाते हैं और जो बच जाते हैं, वे Phagocytosis से नष्ट हो जाते है। यदि Antibiotic न मिले तो Phagocytosis और उसके प्रारम्भ होने के तीन-चार दिन बाद उत्पन्न होने वाले Immune Bodies इन दोनो के द्वारा वे नष्ट कर ही दिये जाते हैं। इस अवस्था को जब वायु कोष्ठको मे श्वेत-कण भर जाते है और Pneumococci मर जाते है, Grey Hepatization कहते है यदि Infection बना रहे तो श्वेत-कणो के अति सचय से वहा पूयभाव Suppuration भी हो सकता है। जब वायु कोष्ठको मे आये हुये जीवाणु श्वेत-कणो के द्वारा नष्ट कर दिये जाते है तब इन मरे हुये श्वेत-कणो तथा वायु कोष्ठको मे बचे हुये मलवे को साफ करने के लिये वहाँ पर Macrophages आ जाते है जो इन्हे Phagocytosis की प्रक्रिया के द्वारा अपने मे पचा लेते हैं। ये Macrophages या तो रक्त के Monocytes अर्थात् Large mononuclear Leucocytes होते है या वायु कोष्ठको की दीवार मे विद्यमान सैलो से ही परिणत होकर बनते है। सभव है कि वहाँ सचित हुआ Fibrin तथा मरे हुये ये श्वेत-कण अपने मे से निकले Cytolitic Ferment के द्वारा भी पच जाते है (Autolysis), इस प्रकार वायु कोष्ठको मे सचित हुआ मलवा द्रवीभूत (Liquified) हो जाता है जो कुछ तो थूक के द्वारा निकल जाता कुछ लसीका वाहिनियो द्वारा हजम हो जाता है। इस प्रकार सूजकर ठोस हुआ फुफ्फुस खण्ड फिर शीघ्र ही पूर्ववत् साफ सछिद्र तथा स्वस्थ हो जाता है। प्राय कर इस रोगग्रस्त फुफ्फुस खण्ड मे न तो स्नायुभाव होता है (Scar Tissue बनता है) न ही वहाँ पर पूय भाव Suppuration होता है। वायु कोष्ठको मे सचित हुआ श्लेष्म द्रव भी पूर्णतया विलीन हो जाता है। अर्थात् वहा पर सचित हुए Fibrin मे स्नायुभाव (Fibrosis) की प्रक्रिया नही होती। पूय-भाव भी वहाँ नही होता। इस प्रकार आश्चर्यकारी रूप से रुग्ण फुफ्फुस खण्ड के पुन स्वस्थ हो जाने की इस प्रक्रिया को Resolution कहते हैं। इस रोग मे रोगग्रस्त फुफ्फुस खण्ड के ऊपर चढे Pleura पर भी फुफ्फुस ज्वर जीवाणु या तो लसीका वाहिनियो द्वारा या Subpleural Alveoli के द्वारा सीधे पहुँच जाते है और उसमे शोथ या Pneumococcal Fibrinous Pleurisy के रोग को उत्पन्न कर देते है इसीलिए इस रोग को Pleuro-Pneumonia भी कहते है। फुफ्फुस ज्वर का यह रोग तीव्र रूप मे हो, प्रतिरोधक शक्तिहीन हो, तो ये जीवाणु रक्त मे भी सचार कर जाते हैं अर्थात् Bacteraemia भी हो जाता है। सम्भवत. लसीका वाहिनियो के द्वारा फुफ्फुस मे से रक्त मे यह सक्रमण होता है। दाई ओर के निचले Lobe मे यह रोग अधिकत होता है।

लक्षण

फुफ्फुस मे जीवाणु प्रवेश होने पर ४-५ दिन तक उसके विपरीत जब प्रतिक्रिया होती है जैसा कि प्राय रात को होता है, तब ८०% मे सहसा सर्दी लगकर जो कुछ

मिनटो तक रहती है ज्वर चढ जाता है। और उसी रात १०३ या १०४ डिग्री तक पहुँच जाता है तथा इसी प्रकार तीव्र बना रहता है। ज्वर के साथ सर्वांग शैथिल्य (Prostration) का लक्षण भी बहुत अधिक होता है। रोगी शीघ्र-शीघ्र उथले श्वास ले रहा होता है अर्थात् उसे कुछ श्वास कृच्छ्रता का लक्षण होता है (मिनट मे ३०-४० तथा बालक मे ५०-६०)। श्वास-प्रश्वास की कठिनता के कारण उसके नथुने हिल रहे होते है। ये सब लक्षण विष सचार (Pneumococcal Toxaemia) के कारण होते है। सम्भवत श्वास-काठिन्य Hering Breuer Reflex के कारण होता है। रोग के प्रारम्भ से ही ७०% मे रोगी को अपने एक पार्श्व मे चुभने वाला (Stabbing) दर्द होता है जो श्वास लेने तथा खासने पर विशेष होता है। यह दर्द Pleura मे Pneumococci के पहुच जाने तथा उनके कारण शोथ के उत्पन्न हो जाने से होता है। रोगी इस शोथयुक्त Pleura के भार लेटता है क्योकि ऐसा करने से उसे दर्द मे कमी लगती है। उसे छोटी-छोटी खुश्क खासी भी होती रहती है पर क्योकि खासने से छाती मे दर्द होता है, इसलिये वह खासी को कुछ दबाकर खासता है। यह खासी श्वासनालियो के खुश्क एव विक्षुब्ध रहने से उत्पन्न होती है। एक-दो दिन बाद ७५% मे फिर गुलाबी से रग का झागदार बलगम निकलने लगता है, जिसमे रक्तकण, Epithelium के सैल तथा Pneumococci होते है। वायु कोष्ठको (Alveoli) की सिराओ (Capillaries) मे से निकले रक्त-कणो के कारण यह बलगम गुलाबी रग का होता है (Engorgement-stage)। ज्यो-ज्यो इस बलगम की मात्रा बढती है (Hepatization-stage) छाती का दर्द कम हो जाता है। इस रोग मे निकलने वाला बलगम बडा चपकीला होता है। इस चपकीलेपन का कारण इन जीवाणुओ के Capsule मे से अत्यधिक मात्रा मे निकलने वाला एक Polysaccharide पदार्थ है। जिससे श्वयथु भारी मात्रा मे होता है एव Fibrin बहुत बनता है जो बलगम को चपकीला करता है। रोगी निर्बल नाडी मण्डल का Asthenic हो तो वह न्यूनाधिक प्रलाप भी करने लगता है। यदि Antibiotic या Sulpha Drugs का प्रयोग न किया जाय और रोग साध्य हो तो ज्वर सातवे दिन के लगभग सहसा Crisis से उतर जाता है। अर्थात् कुछ घण्टो के अन्दर-अन्दर ही स्वेद मूत्र तथा मल प्रवृत्ति के साथ-साथ बढा हुआ तापमान उतर जाता है। आयु बडी हो, रोगी को मधुमेह, वृक्क रोग, हृद्रोग, रक्तभार आदि कोई रोग हो, तापमान अधिक हो, या नाडी तीव्र हो, प्रलाप हो, उन्निद्रता हो, मूर्छा-सी हो तो हृदय नैर्बल्य होकर मृत्यु हो जाती है। Toxaemia के कारण सिरा शैथिल्य (Circulatory Collapse) भी कभी-कभी होकर मृत्यु हो जाती है। बालको मे रोग हो तो उनमे बलगम नही गिरती, श्वास तीव्रता तथा मस्तिष्क सम्बन्धी लक्षण होते है। वृद्धो मे हृदय नैर्बल्य का पता ओष्ठो की नीलिमा, श्वासकृच्छ्रता और Jugular-veins के भर जाने से लगता है।

परीक्षा

इस रोग मे रोगी की परीक्षा करने पर, उसके शरीर मे शिथिलता (Prostration), श्वास-प्रश्वास की तीव्रता तथा चेहरे पर चिन्ता दीखती है। उसकी नाडी गति ११० या १२० प्रति मिनट होती तथा दीर्घ (Bounding) होती और कम दबाव की होती तथा श्वास गति ३०-४० प्रति मिनट के लगभग होती है तथा इन दोनो का अनुपात परस्पर ३ और १ होता है श्वास मासपेशिया अधिक चेष्टाशील दीखती हैं। श्वास की तीव्रता फुफ्फुस के एक खण्ड के ठोस हो जाने के कारण तथा विष सचार (Toxaemia) के कारण होती है, उसका रुग्ण फुफ्फुस कम हिलता लगता है रोगी रुग्ण फुफ्फुस के भार लेटा होता है, उसकी जिह्वा मैली, श्वेत तथा खुश्क होती है। त्वचा खुश्क और गर्म होती है होठो पर नीलिमा होती है रोगी पीठ के भार या ग्रस्त पार्श्व पर लेटा होता है। वायु कोष्ठको मे चिपचिपे द्रव उत्पन्न हो जाने पर श्रवण यन्त्र द्वारा सुनने से अन्त श्वास के अन्त मे बालो के रगडने की आवाज Fine Rales या Crepitations सुनाई पडती है। फुफ्फुस के ठोस हो जाने पर श्वास-प्रश्वास की आवाज Tubular या Bronchial हो जाती है तथा Bronchophony और Pectoriloquy के चिह्न स्पष्ट होते है। टकोर मन्द होती है। रोगग्रस्त फुफ्फुस प्रश्वास के साथ कम फैलता है। वाचिक कम्पन (Vocal Fremitus) बढा हुआ होता है, रोग के अच्छा (Resolution) होने पर श्रवण करे तो नालियो मे पतले स्राव के कारण बुलबुलो के फटने की-सी आवाज (Coarse Crepitations) अन्त तथा बहि दोनो श्वासो के साथ सुनाई पडती है। मूत्र मात्रा मे कम होता, उसमे Chlorides की मात्रा कम हो जाती है। रक्त की परीक्षा करने पर श्वेत कणो की १५ से ३० हजार तक वृद्धि पाई जाती है। रक्त भार घटा हुआ होता है। Broncho Pneumonia शिशुओ व वृद्धो मे होता है। वह खासी के उपद्रव के रूप मे होता, सर्दी (Rigor) से आरम्भ नही होता,

उसमे वलगम पतला होता, तथा रक्तवर्ण, चपकीला नही होता, उसमे तापमान न्यूनाधिक होता रहता है। वह सहसा आरभ न होकर अज्ञात रूप मे आरभ होता है वह एक सप्ताह से अधिक देर तक रहता है। उसमे खासी का लक्षण अधिक स्पष्ट होता है अत उससे इस रोग का भेद सुगम है।

उपद्रव

पार्श्व शूल (Dry Pleurisy) तो इस रोग का एक लक्षण ही है। परन्तु कभी-कभी द्रवयुक्त पार्श्वशूल (Pleurisy with effusion) का उपद्रव भी हो जाता है। तथापि वह द्रव का सचय इतना अधिक नहीं होता कि उससे श्वास-प्रश्वास मे कठिनता होने लगे। प्राय यह द्रव जीवाणुरहित होने के कारण उपद्रवकारी नही होता यदि इसमे Pneumococci का सक्रमण हो जाय तो इसमे पूय भाव होकर पूययुक्त पार्श्वशूल (Empyema) का उपद्रव हो जाता है। यदि ७ दिन के वाद भी निरन्तर ज्वर (Remittent Continuous Fever) जारी रहे, प्रतिदिन स्वेद आने का लक्षण हो, श्वेत-कणो की वृद्धि वनी रहे, तो इस उपद्रव के हो जाने की आशका करनी चाहिये। वालको मे Otitis-media एक सुलभ उपद्रव है।

फुपफुस ज्वर (Pneumonia) की चिकित्सा

प्रथम तो इस रोग के लिये प्राणवर्धक (Supportive) चिकित्सा करनी चाहिये। रोगी को एक गर्म कमरे मे जिसका तापमान ६५ डिग्री फा० के लगभग हो, आराम से लिटाये रखना चाहिये। थोडा उठने से भी शरीर की शक्ति का अपव्यय होता है, अत पूर्ण विश्राम इस रोग के लिये आवश्यक है। खुली हवा या आक्सिजन भी रोगी को पर्याप्त मिलनी चाहिये ताकि उसके अन्दर हुई आक्सिजन की कमी और न वढे। अन्य ज्वरो के समान इस तीव्र ज्वर मे भी शरीर के अन्दर जल की मात्रा घट जाती है अत रोगी को द्रवाहार पर्याप्त मात्रा मे मिलना चाहिये। तीव्र ज्वर मे साधारण आहार हाजमे मे नही आता अत रोगी को दूध, चाय तथा फलरस का आहार देना चाहिये। १ पाइंट गर्म जल मे ४ औंस Dextrose एक सन्तरे का रस मिलाकर पिलाते रहना चाहिये। दिन-रात मे कम-से-कम ३ या ४ पाइंट द्रव आहार दे देना चाहिये, ताकि मूत्र मे कोई न्यूनता न हो और वह १५०० मिलिलि० मात्रा मे आता रहे। मूत्र की स्पेसिफिक ग्रेविटि देखने से पता लगे कि वह १०२० से अधिक है तो समझना चाहिये कि उसे जल न्यून मात्रा मे मिल रहा है। जल के न्यून मात्रा मे मिलने से रक्तवाहिनियो की स्वाभाविक रक्त प्रेरक (Vasomotor) शक्ति कम हो जाती है। इस शक्ति के कम हो जाने से रक्त सचार मे कमी या Circulatory Failure हो जाने का भय रहता है, अत जल की मात्रा पर्याप्त देनी चाहिये। इसके एक बार हो जाने पर फिर यह ठीक नही होता पर Metaraminol (Aramine) को जो सिरा सकोचक तथा हृदयोत्तेजक है १०-२५ मि० मात्रा मे मास से देना चाहिये। रोगी को रात को नीद न आये प्रलाप रहे और आराम न मिले तो भी उसकी प्राण-शक्ति कम होती है, अत सोने से पहले उसे गर्म जल का प्याला जिससे निम्बू का रस तथा ग्लूकोज हो, पिला देना चाहिये। इससे भी नीद न आये तो इसमे ३-४ ड्राम Brandy मिला सकते हैं अथवा Chloral Hydrate की १०-१५ ग्रेन की मात्रा या Phenobarbitone Sodium १½ ग्रेन की एक मात्रा त्वचा से दे सकते है। हृदय को वल देने के लिये Coramine या Strychnine किसी एक का वडी मात्रा मे प्रयोग करना चाहिये। Degoxin को शिरा द्वारा दे यदि Auric Fibrillation हो। Septicaemia या Toxaemia से (Supra renal Gland के फेल हो जाने से) हृदय तथा रक्त सचार निर्वल हो जाते है अत Prednisolone २५ मिलि० या Hydrocortisone Hemisuccinate १०० मिलि०, ५०० सी०सी०, ५० प्र०श० ग्लूकोज द्रव के साथ शिरा द्वारा दे देना चाहिये। ८ घन्टे बाद इसे फिर दोहरा सकते है। या Mephenteramine (Mephine) १५ मिलि० या Metaraminol का इन्जेक्शन मास द्वारा दे या Nikethamide दे।

श्वास काठिन्य व मुख पर की श्यामता के लिये आक्सिजन B L B Face mask द्वारा देना चाहिये इसी से प्रलाप को जो कि मस्तिष्क मे O_2 की कमी से होता है लाभ हो जाता है। हिक्का हो तो Chlorpromazine २५ मिली० चार-चार घण्टे पर दें। पेट मे आध्मान हो तो Prostigmine (Neostigmine) ½-१ मिलि० त्वचा द्वारा दे सकते है या Carbachol २ मिलि० मुख से देवे या Pituitrin १ सी०सी० त्वचा से दें। पार्श्वशूल हो तो वहाँ प्लास्टर या गर्म रुई बाँधनी चाहिये या वहाँ Ethylchloride को १-½ मिनट तक छिडकना चाहिये। Codeine Phos ½ ग्रेन के देने से भी आराम आता है।

दूसरे नम्बर पर इस रोग की जीवाणु प्रतिरोधक चिकित्सा (Antimicrobial Therapy) की जाती है। इस प्रयोजन के लिये Penicillin सर्वोत्तम औषधि है।

यो तो १० मे से ७ रोगी विना जीवाणु प्रनिरोधक चिकित्सा के भी सात-आठ दिन मे स्वयमेव ठीक हो जाते हे अर्थात् फुफ्फुस मे सक्रान्त हुये जीवाणु Phagocytes तथा Antibodies के द्वारा नष्ट कर दिये जाते है तो भी वृद्ध और निर्वल व्यक्तियो के लिये जीवाणु प्रनिरोधक औषधि देनी अति आवश्यक होती हे। Pneumococcal तथा Streptococcal रोग मे Crystelline Penicillin को ५ लाख यूनिट मात्रा मे प्रति ६-८ घन्टे पर २-३ दिन देना चाहिये। Procaine Penicillin के ४ लाख Units की मात्रा मे प्रतिदिन दो वार देने से एक दो दिन मे ही ज्वर उतर जाता हे। ज्वर उतर जाने के वाद भी दो दिन इन औषधियो का प्रयोग जारी रखना चाहिये। रोग मृदु हो तो Penicillin V (Phenoxymethyl Peni) की गोलिया २ लाख Units की ४-४ घण्टे वाद दे, ज्वर उतरने पर ८-८ घण्टे वाद दो चार दिन दे (१२५ मिलि० =२ लाख यूनिट) Teramycin या Erythrocin (Oxytetracycline) के २५ ग्राम की मात्रा मे Achromycin (Tetracycline HCl) के ५ ग्राम मात्रा मे Chloramphenicol के ५ ग्राम की मात्रा मे तथा Ilotycin (Erythromycin) के २ ग्राम की मात्रा मे मुख द्वारा प्रति ६ घन्टे वाद देने से भी यह ज्वर शीघ्र उतर जाता हे। १०० मिलि० मात्रा मे इन्हे दिन मे तीन वार मास द्वारा भी दे सकते है। तीव्र (Fulminating) रोग मे Erythromycin १०० मिलि० का इजेक्शन भी मिलता है, जिसे मास द्वारा दे देना चाहिये। इसी प्रकार Sulphadiazine तथा Sulphamerazine, Sulphamezathine, Sulphisoxazole (Gantrisin) या Sulphadimidine या Sulphasomidine (Elkosin, Ciba) २ ० ग्राम की प्रथम मात्रा मे देने तथा उसके वाद इन्ही की आधे से एक ग्राम की मात्रा प्रति ६ घन्टे वाद २-३ दिन देने से भी यह ज्वर शीघ्र ठीक हो जाता है। Sulphapyridine या Sulphathiazole तथा Sulphatriad का भी इसी प्रकार प्रयोग लाभदायक हे। Sulphamethoxypyridazine (Lederkyn) या Sulphaphenazole (Orisul) या Sulphadimethoxine (Madribon) के पहले १ और फिर ½ ग्राम दिन मे एक वार ५ दिन तक देने से यही लाभ होता है। इन औषधियो को दो गुना Soda bicarb के साथ मिलाकर दिया जाता है, तथा जल का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग किया जाता है। तीव्र रोग मे Sulphadiazine Sodium या Sulphamerazine Sodium १-२ ग्राम मात्रा मे ५०० सी०सी० M/6 Sodium lactate के साथ शिरा द्वारा भी दिया जा सकता है। इन औषधियो से जब यह रोग ठीक न हो तो Empyema के उपद्रव का सन्देह करें। Polymorphonuclear Leucocytosis से इसका निश्चय हो जाता है। यह न हो तो T.B के कारण ज्वर हो सकता है जिसका निश्चय थूक की परीक्षा से हो जाता है। Staphylococcal Pneumonia का रोग, Influenza या Measles के उपद्रव रूप मे अधिकतर होता है। छोटी आयु के वालको मे विशेष होता है। उच्च तापमान तथा स्वेद इसके प्रधान लक्षण होते है। फुफ्फुस मे कहीं-कहीं Consolidation होकर उसमे Necrosis की प्रक्रिया हो जाती है। पास के Pleura के अन्दर भी पूयभाव हो जाता है तब Erythromycin के ३०० मिलि० मात्रा मे दिन मे ४ वार तथा Novobiocin के ५०० मिलि० मात्रा मे दिन मे २ वार मुख द्वारा देने से शीघ्र लाभ हो जाता हे। यदि यह जीवाणु Penicillin विरोधी न हो तो Benzylpenicillin को १० लाख यूनिट मात्रा मे दिन मे ३ वार मास द्वारा देने से ही लाभ होने लगता है। Methicillin (Celbinin) १ ग्राम इन्जे ६-६ घ० पर ५-६ दिन दें। वालक को आधी मात्रा दें। Reueringm छोटे वालक को मास द्वारा १५० मिलि० दैनिक देने मे तथा ५ वर्ष से ऊपर के वालक को यही मात्रा दिन मे दो वार १५-२० देने से और भी शीघ्र लाभ होता है। Cyanosis का उपद्रव हो तो ऑक्सिजन को नेजल केथिटर से दे। हृदय नैर्वल्य के लिए Nikethamide का सूचीवेध चार-चार घण्टे पर दे। रक्त भार कम हो तो Decadron मुख या मास द्वारा दे।

आयुर्वेद मे श्वसनक ज्वर

आयुर्वेद मे निमोनिया या श्वसनक ज्वर को रक्तष्ठीवी ज्वर कहा गया प्रतीत होता है। इसकी गणना सन्निपात ज्वरो मे हुई है तथा इसकी ८-१० दिन की मर्यादा कही गई है। यह फुफ्फुस के रुग्ण होने से उत्पन्न होने वाला ज्वर है। फुफ्फुस गत वायु के दूषित होने पर अर्थात् फुफ्फुस गत प्राण तत्त्व के हीन हो जाने पर तथा फुफ्फुस मे कफ दोष या आम दोष (Abnormal Metabolites) के बढ जाने पर उसकी ऊपर से आये जीवाणुओ या उनकी विषो को नष्ट करने की शक्ति घट जाती है। ऐसी अवस्था मे जब किसी दूसरे से इस रोग के विष का सक्रमण फुफ्फुस के एक खण्ड मे हो जाता है तब यह विष वहा रोहण करने लग जाता है, जिसके विपरीत फुफ्फुस गत वायु (प्राण तत्त्व) कफ (रक्षक तत्त्व) पित्त (पाचक तत्त्व) तीनो धातुओ की प्रतिक्रिया (प्रकोप) होती है। वायु के कारण उदान गति के बढ जाने से खांसी उठती है।

कफ के कारण फुफ्फुस मे परिस्रवण की मात्रा बढ़ जाती है। पित्त के प्रकुपित होने से अर्थात् वहां पक्तिकर्म के बढ़ने से तीव्रशोथ-पूयभाव व ज्वर उत्पन्न होते है। इनके ठीक-ठीक प्रकुपित (Excited) होने से ८-१० दिन मे जीवाणु का प्रतिकार हो जाता है और यह रोग शात हो जाता है।

निमोनिया श्वसनक या रक्तष्ठीवी ज्वर की चिकित्सा

रोगी मे वायु दोष की शान्ति के लिये उसे पूर्ण विश्राम मिलना चाहिये तथा प्राण वायु, जल, मधु, ग्लूकोज, यूष आदि पोषक द्रव्य पर्याप्त मात्रा में मिलने चाहियें। लघु-पचमूल डालकर पकाया हुआ जल या दूध उसे पीने के लिये देना चाहिये। कफ दोष की शान्ति के लिये रोगी की देहाग्नि को बढाने का यत्न करना चाहिये उसका स्थान गर्म होना चाहिये। उसका पेय जल, आहार आदि भी गर्म होने चाहियें। औषधिया भी बल्य, पाचन, दीपन, उष्ण गुण होनी चाहियें। पहले बढते ज्वर में २-३ दिन त्रिभुवन कीर्ति रस (हिंगुल, विष, त्रिकटु, सुहागा, पिप्पलीमूल, समान-समान तुलसी, अदरक, धतूर रस से मर्दन) १ रत्ती मात्रा में या कस्तूरी भैरव दो रत्ती और फिर लक्ष्मी विलास या मकरध्वज वटी दो दो रत्ती की मात्रा में दिन में तीन-चार बार देने चाहियें। बलगम को निकालने के लिये लक्ष्मी विलास दो रत्ती में शृ ग भस्म दो रत्ती टंकण ४ रत्ती मिलाकर देना लाभदायक है। वात, कफ दोषो की शान्ति के लिये दशमूल कषाय में यवक्षार डालकर या दशमूलासव या द्राक्षासव का दिन में तीन बार प्रयोग किया जाता है। रोगी बालक को लक्ष्मी विलास ½ रत्ती चातुर्भद्र चूर्ण १-२ रत्ती के साथ मधु द्वारा दिन में ३-४ बार दें। शृंग भस्म ½ रत्ती, टकण १ रत्ती मिलाकर दिन में तीन बार देने से भी कफ शान्त रहता है।

उरोविद्रधि-उरःक्षत-क्षतकास

Abscess of the Lung, Plumonary Abscess, Suppurative Pneumonia

विना क्षय रोग के फुफ्फुस के एक प्रदेश मे पूयभाव हो जाये तो उसे उरोविद्रधि कहते है। Chemotherapy तथा Anaesthesia मे हर प्रकार की सावधानता रखने के कारण यह रोग पूर्व कालो की अपेक्षा बहुत कम होता है।

श्वास द्वारा विष प्रवेश (Aspiration)

प्रधानत यह रोग मध्यम आयु का तथा पूयजनक जीवाणुओ जैसे Staphylo, Strepto, Pneumococci, Friedlander's Bacillus H influenzae, आदि से विशेषत Strepto युक्त किसी पूयखण्ड के अन्त श्वास के द्वारा श्वासनाली (Bronchus) मे से फुफ्फुस मे प्रवेश कर जाने से होता है। Tonsillitis नासिका, दन्त, आदि पर शल्यकर्म के होने के बाद जब रोगी मूर्छा मे बेहोश-सा पडा होता है तो ऐसे किसी पूय खण्ड का अन्त श्वास के द्वारा खिचकर एक Bronchus मे उतर जाना सुगम हो जाता है। औषधिजनित मूर्छा (Anaesthesia) मे नासिका तथा आमाशय आदि से आये द्रव के किसी Bronchus के द्वारा फुफ्फुस मे पहुच जाने का भय सदा रहता है क्योकि उस अवस्था मे Larynx या कण्ठ मे होने वाले Reflexes लुप्त हो जाते है। यह जीवाणु युक्त बाह्य द्रव्य बहुधा दक्षिण फुफ्फुस मे प्रवेश करता है। (क्योकि उसमे जाने वाली नाली या Bronchus अधिक नीचे की तरफ को सीधी रहती है) तथा एक सूक्ष्म श्वासनाली के सिरे पर पहुचकर उसे बिलकुल बन्द करके उससे सम्बन्धित फुफ्फुस उपखण्ड मे Collapse तथा शोथ को उत्पन्न करने का कारण बन जाता है। ऐसे रोगी के लेटे हुये होने से दाहिने फुफ्फुस के ऊर्ध्व खण्ड (Upper lobe) के शिखर के निचले पिछले या कक्षागत (Auxiliary) उपखण्ड (Segment) मे यह विद्रधि होती है। बहुधा निम्न खण्ड के शिखर गत उपखण्ड (Apical या Superior Segment) मे पाई जाती है। जीवाणु के अतिरिक्त फुफ्फुस की प्रतिरोधक शक्ति को न्यून करने वाले कारण भी इस रोग के कारण बन जाते है। इन जीवाणुओ के पाचक होने के कारण उस सूजे हुये फुफ्फुस खण्ड मे शीघ्र द्रवता या पूयभाव की प्रक्रिया हो जाती है परन्तु श्वासनाली के अन्दर शोथ होने तथा उसके बन्द होने के कारण यह पूय पहले बाहिर निकल नही पाता पर कुछ काल बाद शीघ्र ही यह पूय थूक के रूप मे इस श्वासनाली के द्वारा बडी मात्रा मे बाहिर निकलता है जिससे फुफ्फुस विद्रधि का पता चलता है। फुफ्फुस मे विष प्रवेश (Aspiration) के बाद १५ दिन तक यह विद्रधि बनती है। श्वासनालियो मे से किसी के अवरुद्ध हो जाने से भी उसके निम्न भाग मे जब वायु का आना-जाना बन्द हो जाता है एव वहा Atelectasis हो जाता है अर्थात् वहा की हवा तो विलीन हो जाती है उसके साथ सबधित फुफ्फुसखण्ड निष्क्रिय हो जाता है तो वहा Infection भी सुगमता से हो जाता है तब वहा यह विद्रधि बन सकती है। अवरोध Neoplasm या किसी बाह्य पदार्थ के कारण होता है, सक्रमण किसी उपर्युक्त पूयजनक जीवाणु या Anaerobic Bacteria

से होता है।

(२) Bronchiectasis या किसी श्वासनाली मे पूय भाव हो जाने के बाद वहा से पूय खण्ड के श्वास द्वारा नीचे उतर जाने से उपद्रव रूप मे भी फुफ्फुस मे विद्रधि हो सकती है। तब यह चिरस्थायी रूप मे होती है। तब इसके चारो ओर Fibroblasts के आ जाने से स्नायुभाव हो जाता है।

(३) कास जनित फुफ्फुस शोथ (Bronchopneumonia) के उपद्रव रूप मे वहाँ पूय भाव होकर कभी-कभी चिरस्थायी विद्रधि रह जाती है। जो Friedlander's bacillus और Staphylococci के सक्रमण से होती है।

(४) श्वासनाली मे कैंसर होने पर उसके उपद्रव रूप मे पूयखण्ड के नीचे उतर जाने से फुफ्फुस विद्रधि हो सकती है।

(५) श्वासनाली मे चिरस्थायी कास जनित शोथ होने पर वहा से पूय युक्त खण्ड के नीचे की ओर प्रसरण कर जाने से भी फुफ्फुस मे पूयभाव हो सकता है। इसीलिये इसे Suppurative Pneumonia भी कह देते है जो Suppurative Bronchitis या पूय कास से पृथक् रोग है।

लक्षण

बाह्य पूय खण्ड के फुफ्फुस मे पहुँचने के १-२ दिन के अन्दर खाँसी तथा ज्वर के लक्षण प्रकट हो जाते हैं जो श्वासनाली शोथ व फुफ्फुस शोथ के कारण होते हैं। फुफ्फुसावरण के ठीक नीचे इस विद्रधि के होने से इसमे शोथ के हो जाने पर पार्श्वशूल (Pleuritis) का लक्षण भी इस रोग मे होता है। फुफ्फुस मे पूयभाव के होने से सर्दी लगकर ज्वर चढता रहता तथा पसीना देकर उतरता या ढीला होता रहता है। उसके सास मे दुर्गन्ध आ जाती है फिर कुछ दिन बाद जब पूयमय बलगम बडी मात्रा मे मुख से निकलने लगती है और उससे लक्षण शान्त हो जाते हैं तब इस रोग का सन्देह होने लगता है। Pneumonia मे इस प्रकार का थूक नही आया करता। रोगी के थूक मे कुछ रक्त का मिश्रण होने से इसका रग चोकोलेट का-सा होता है। पूयजनक जीवाणु के कारण विद्रधि हो तो देखने मे यह थूक गाढी पीले हरे-से रग की होती है तथा इसमे कुछ दुर्गन्ध भी होती है। Anaerobic जीवाणु के कारण हो तो राख के रग की या भूरे रग की अति दुर्गंधित होती है। २४ घन्टे तक इसके निकलने के बाद फिर ज्वर कम हो जाता है, रोगी की अवस्था भी बहुत कुछ सुधर जाती है, यद्यपि खासी व बलगम की निकासी कुछ-कुछ जारी रहती है। इस अवस्था मे उचित चिकित्सा हो जाय तो रोगी अच्छा हो जाता है। बलगम की परीक्षा करने पर उसमे Elastic Tissue तथा जीवाणु पाये जाते हैं। रोगी की रक्त परीक्षा करने से Polymorph Leucocytes की वृद्धि पाई जाती है। Bronchoscopy की परीक्षा से श्वासनाली मे विद्यमान बाह्य द्रव्य को देखा जा सकता है। १० प्र०श० अवस्थाओं मे यह विद्रधि का रोग कैन्सर के कारण होता है जिसे इस परीक्षा के द्वारा देखा जा सकता है। इसकी चिकित्सा ठीक-ठीक न की जाय तो फुफ्फुस गत यह विद्रधि मन्द रूप मे तथा चिरस्थायी रूप मे रहती है तब समय-समय पर खासी के साथ पूयमय थूक अधिक मात्रा मे निकलती रहती है। रोगी को हलका-हलका ज्वर भी रहता है। पूय के निकल जाने पर ज्वर उतर जाता है। इसके अन्दर रुक जाने पर फिर ज्वर रहने लगता है। यदि पूय भली प्रकार न निकले, ठीक-ठीक चिकित्सा भी न हो तो रोगी का भार घटता जाता, अशक्ति बढती जाती तथा रग भी फीका पडता जाता है। इस प्रकार यह रोग १-२ महीनो तक चला जाता है। इस अवस्था मे अगुलियो के सिरे मोटे हुए दीखते हैं। परीक्षा करने पर अधिकत ऊर्ध्वकक्ष प्रदेश पर Consolidation के लक्षण पाये जाते हैं। एक स्थान पर Coarse crepitations भी सुनाई पडते हैं। Radiology मे एक बडी Opacity मिलती है।

रोग विनिश्चय

१-२ मास से यदि कोई अधिक रोगी हो, Toxaemia से पाण्डुर हो, भार घटता जाता हो, खासी रहती हो तथा उसे अधिक मात्रा मे, कुछ दुर्गन्धित, पूयमय, कुछ रक्त से मिश्रित, थूक आने लगी हो तो इसी रोग का निश्चय करना चाहिये अथवा सहसा बहुत-सी पूयमय थूक आ जाय और इससे ज्वर कुछ कम हो जाय तो भी इसी रोग का सन्देह करे। यदि पूयमय थूक वर्षों से आती हो तो श्वासनाली शैथिल्य (Bronchiectasis) ही समझना चाहिये। परन्तु पहले से दूसरा और दूसरे से पहला रोग उपद्रव रूप मे हो सकते है। Chronic Purulent Bronchitis रोग मे फुफ्फुस परीक्षा सम्बन्धी चिह्न व्यापक होते हैं, इसमे एक स्थानिक होते हैं। उसकी पूय मे Elastic Tissue भी नही होता।

उर क्षय रोग धीरे-धीरे प्रारम्भ होता है, इस रोग के समान सहसा नही। उसकी थूक मे दुर्गन्ध नही होती न ही वह मात्रा मे अधिक होती है। X-Ray परीक्षा करने से फुफ्फुस मे एक स्थान पर एक गोलाकार-सी गहरी छाया

दीखती है इसमे नीचे तो द्रव होता है ऊपर कुछ हवा होती है। Lipiodol परीक्षा करने पर वह इस विद्रधि प्रदेश मे प्रवेश नही करता। कैन्सर रोग मे छाती पर दर्द, श्वास कृच्छ्रता और खासी के लक्षण होते हैं। साथ ही वह रोग वडी आयु मे होता है।

साध्यासाध्य

प्रारम्भ मे ही ठीक-ठीक चिकित्सा करने पर यह रोग वहुधा ठीक हो जाता है। रोगी वृद्ध हो, मधुमेही, मद्यपी हो तो रोग-ग्रस्त भाग में Necrosis या मृत्यु की प्रक्रिया हो जाती है। इस प्रकार यदि वलगम गाढी न होकर पतली हो, विशेष दुर्गन्धित हो, रग मे नीली, भूरी-सी हो, रोगी अति कृश हो तो फुफ्फुस मे मृत्यु भाव या Pulmonary Gangrene के हो जाने का सन्देह करना चाहिये। यह अवस्था प्राय घातक होती है। साधारणत Antibiotic चिकित्सा से यह रोग ठीक हो जाता है।

तीव्र रोग मे विद्रधि के फुफ्फुसावरण कोश Pleura मे खुल जाने से Empyema का उपद्रव हो जाय तो ज्वर वढ जाता है पार्श्वशूल तीव्र हो जाता तथा सारे शरीर पर स्वेद आ जाता है। Toxaemia के से लक्षण हो जाते हैं। पुराने रोग मे फुफ्फुस से रक्तस्राव होने का उपद्रव हो सकता है।

चिकित्सा

गले नाक आदि मे शल्यकर्म के वाद यह ध्यान रखना चाहिये कि रोगी की वेहोशी मे कोई पूयखण्ड, श्वास के साथ फुफ्फुस मे न जाने पाये। रोग हो जाने पर वलवर्धक आहार तथा औषधियो के अतिरिक्त निम्नलिखित Antibiotics का प्रयोग करें और इनसे कुछ लाभ दीखने लगे तो इन्हे १-२ महीना जारी रखना चाहिये। Benzyl Penicillin १० लाख यूनिट्स मात्रा मे १२-१२ घन्टे वाद दे दी जाय। साथ ही ५ ग्राम Streptomycin दे दी जाय तो रोग का वेग शान्त होने लगता है। Tetracycline २ कैपसूल ८-८ घ० पर देने से भी लाभ हो जाता है। Pro Penicillin ४-६ लाख यूनिट की मात्रा मे १२-१२ घन्टे पर देने से भी लाभ होता है। इससे लाभ न हो तो Erythromycin (Ilotycin) १०० मिलि० मास द्वारा या २०० मिलि० की गोलिया मुख द्वारा ६-६ घन्टे पर देवें, यह Gram Positive तथा Negative दोनो के लिये उपयोगी है या Carbomycin (Magnamycin) ५-१ ग्राम मात्रा मे मुख द्वारा ६-६ घन्टे पर दें। या Spiramycin (Rovamycin) ५-१ ग्राम मात्रा मे ६-६ घन्टे पर दें। ये Gram Positive जीवाणुओ के लिये विशेष उपयोगी हैं। Staphylococcus के कारण विशेषत: विद्रधि हुई हो तो Celbinin (Methicillin) १ ग्राम ४-४ घन्टे पर मास द्वारा ५ दिन देना चाहिये। Friedlander's Bacillus के कारण विशेषत हो तो Streptomycin १ ग्राम मात्रा मे १२-१२ घन्टे पर दो दिन और फिर १ ग्राम मात्रा मे २४ घन्टे मे एक वार दें। या Sulfisoxazole (Gantrisin) १ ग्राम मात्रा मे ६-६ घन्टे पर दें। इस चिकित्सा से लाभ न हो तो Resection का शल्यकर्म आवश्यक हो जाता है। विद्रधि के चारो ओर Fibrous दीवार न वन जाए इसके लिए Prednisolone ५ मिलि० दो वार दे सकते है।

कासजनित फुफ्फुस ज्वर

Broncho Pneumonia, Catarrhal Pneumonia या Lobular Pneumonia

युवावस्था मे होने वाले फुफ्फुस ज्वर (Pneumonia) मे Pneumococci का सक्रमण गले मे से सीधा वहुधा किसी एक फुफ्फुस मे होता है और उसका एक खण्ड (Lobe) सूजकर ठोस हो जाता है। परन्तु शिशुओ, वालको तथा वडी आयु के वृद्ध पुरुषो मे शीतकाल मे पहले खासी का रोग होकर अर्थात् वडी श्वासनालियो मे शोथ होकर वह पहले सूक्ष्म श्वासनालियो (Bronchioles) मे और वहा से फिर कुछ एक श्वास कोष्ठको (Alveoli) मे प्रसरण कर जाता है। या वडी श्वासनालियो मे विद्यमान जीवाणु युक्त वलगम का कोई खण्ड अन्तःश्वास के साथ श्वासनाली मे नीचे उतर जाता है और छोटी नालियो मे सक्रमण का तथा इस रोग के भयकर रूप मे होने का कारण वनता है। अर्थात् दोनो फुफ्फुसो की अनेकानेक खण्डिकाओ (Lobules) मे शोथ प्रसरण कर जाता है जिससे वे ठोस हो जाती हैं। इस फुफ्फुस खण्डिका शोथ (Lobular Pneumonia) को कास जनित फुफ्फुस ज्वर कहते हैं इसे Aspiration Pneumonia या खासी से होने वाला या Broncho Pneumonia कहते है। यह दो प्रकार का होता है। (१) स्वतन्त्र कास जनित फुफ्फुस ज्वर Primary Broncho Pneumonia, (२) उपद्रवरूप कास जनित फुफ्फुस ज्वर (Secondary Broncho pneumonia).

स्वतन्त्र कास जनित फुफ्फुस ज्वर (P B P) निर्वल प्रवृत्ति के एक-दो वर्ष के शिशुओ मे शीतकाल मे खासी होने पर Pneumococci का और कभी-कभी Streptococci, Staphylococci, N Catarrhalis आदि का सक्रमण शीघ्र ही नालियो के द्वारा उनके वायु

कोष्ठको मे पहुच जाता है। जिसमे सूक्ष्म नालियो के साथ-साथ दोनो फुफ्फुसो की अनेक खण्डिकाये सूज जाती हैं अर्थात् उनमे Catarrhal Inflammation हो जाती है तथा उनके फुफ्फुस की श्वासनालिया तथा वायु कोष्ठक श्वेत कणो विशेषत Polymorphs से और आभ्यन्तर स्तर के झडे हुये सैलो से युक्त द्रव (Exudation) से भर जाते हैं। फिर स्राव द्वारा सूक्ष्म नालियो के वन्द हो जाने से वायु कोष्ठको मे हवा नही पहुच पाती। जो थोडी हवा उनमे पहली होती है वह विलीन हो जाती है जिससे कोष्ठक वन्द या Collapsed हो जाते हैं। इस प्रकार कुछ कोष्ठक वन्द हो जाते, कुछ द्रव से भरकर ठोस हो जाते, कुछ हवा से भरे होते हैं। इस रोग मे खासी के साथ तापमान सहसा वढकर १०३-१०४ डिग्री तक पहुच जाता है। शिशु आवाज के साथ शीघ्र-शीघ्र श्वास लेने लगता है। छाती की परीक्षा करने पर अन्त-श्वास लेने पर निचली पसलिया उठने के स्थान पर अन्दर की ओर धसती दिखाई पडती हैं। दोनो ओर Rhonchi, तथा फुफ्फुस के तलो पर मृदु (Fine) या स्थूल (Coarse) Rales सुनाई पडते हैं। शिशु विशेष निर्बल न हो तो प्राय यह ज्वर ५-७ दिन मे क्रमशः उतर जाता है। यह ज्वर जारी रहे तो उर क्षय का सन्देह करना चाहिये।

(२) उपद्रवरूप कास जनित फुफ्फुस ज्वर (Secondary Broncho Pneumonia)—कास जनित फुफ्फुस ज्वर का रोग वालको मे रोमान्तिका (Measles), काली खासी तथा मसूरिका के उपद्रव के रूप में तथा वृद्ध व्यक्तियो मे चिरस्थायी हृदयरोग, चिरस्थायी कास रोग Emphysema, वृक्करोग के उपद्रव रूप मे या मधुमेह, कैन्सर आदि के उपद्रव रूप मे होता है। स्पष्ट है इन अवस्थाओ मे यह रोग प्राय. वडा भयकर होता है और घातक ही होता है। Influenza मे उपद्रव रूप मे भी यह रोग होता है तथा प्रधानतया Streptococcus Haemolyticus के फुफ्फुस मे सक्रमण कर जाने से होता है। उसके सहायक रूप मे Pneumococci, Staphylococci, H Influenzae आदि भी होते हैं। इनकी प्रतिक्रिया के रूप मे पहले वडी श्वासनालियो फिर छोटी श्वासनालियो और फिर उनमे सम्वन्धित वायु कोष्ठको (Alveoli) मे श्लैष्मिक (Catarrhal) शोथ प्रसरण करता जाता है। इस शोथ के कारण पहले तो सूक्ष्म श्वासनालिया तथा उनमे सम्वन्धित वायु कोष्ठक पूय तथा अन्तास्तर के झरे हुये सैलो से युक्त स्राव (Exudation) के द्वारा भर जाते हैं। सूक्ष्म श्वासनालियो के स्राव द्वारा वन्द हो जाने से वायु कोष्ठको मे न बाहर की हवा जा पाती है, न ही वहा पडी हुई हवा बाहर निकल पाती है। फिर जव यह रुकी हुई हवा वहाँ विलीन हो जाती है तो वायु कोष्ठको की दीवारे गिर जाती हैं अर्थात Collapsed हो जाती हैं। अर्थात् खण्डिकाओ (Lobules) के कुछ-कुछ भाग तो दोनो फेफडो मे विशेषत. निम्न खण्डो (Lower Lobes) के पिछले भागो मे ठोस हो जाते हैं तथा इन ठोस हुये भागो के आसपास के वायु कोष्ठको मे हवा के अधिक भर जाने से वे फूल जाते हैं अर्थात् Emphysematous हो जाते हैं। इस प्रकार फेफडो मे वायु कोष्ठको (Lobules) के कुछ चकत्ते ठोस होने, कुछ अधिक हवा से भरे हुए होते, कुछ नार्मल होते हैं। जव वायु कोष्ठको मे शोथ (Catarrh) मात्र होता है, रोग मृदु रूप मे होता है। पर यदि कुछ कोष्ठक समूहो (Lobules) मे पूयभाव (Abscess formation या Gangrene) हो जाय जैसा वृद्धो मे हो जाता है, तो यह रोग भयकर रूप ले लेता है। ऐसा विशेषत Staphylococcus तथा Friedlander Bacillus के सक्रमण से होता है तथा इस अवस्था मे इस रोग का सन्देह उर क्षय रोग से हो जाता है। वालको मे वायु कोष्ठको का शोथ मृदु हो तो यह शोथ शान्त हो जाता है और कोई स्थायी दुष्प्रभाव नही रह जाता। परन्तु वहुधा जव यह रोग तीव्र रूप मे होता है तव इन वायु कोष्ठको की दीवारो मे हुई क्षति स्नायु तन्तु (Fibrosis) के द्वारा पूर्ण होती है जिससे ये मृदु न रहकर कठोर हो जाते हैं अर्थात् इनमे अपूर्ण प्रसार या Atelectasis या श्वासनाली शैथिल्य Bronchiectasis का उपद्रव न्यूनाधिक रूप मे रह जाता है।

लक्षण

जव तक शोथ वडी श्वासनालियो मे रहता है खासी और वलगम के साथ मृदु ज्वर रहता है जो सायकाल वढता, प्रात कम हो जाता, परन्तु जव शोथ सूक्ष्म नालियो मे प्रसरण करता है अर्थात् जव यह तीव्र Bronchitis तथा Bronchiolitis हो जाता है तव विष सचार या Toxaemia के कारण ज्वर वढ जाता तथा श्वास गति भी तीव्र हो जाती है। हृदय गति तथा नाडी गति भी तीव्र हो जाती है अर्थात् नाडी १२० तथा श्वास-गति ५०-६० प्र० मि० तक हो जाती है। श्वास कोष्ठको के अन्दर शोथ के प्रसरण करने से श्वास उथला-उथला होता तथा रक्त मे आक्सिजन के कम हो जाने से चेहरे पर नीलापन (Cyanosis) झलकता तथा रोगी मे मूर्छा,

प्रलाप और बेचैनी के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। आक्सिजन की कमी तथा Toxaemia की वृद्धि से हृदय के फेल हो जाने से मृत्यु होती है।

रोगी की परीक्षा करने पर उसकी जिह्वा खुश्क होती, नथने चलते दीखते, श्वास गति तीव्र होती, प्यास अधिक लगती, रोगी को छाती मे दर्द तो कोई नही होता, पर देखने मे अन्त श्वास तो छोटा, वहि श्वास कुछ लम्बा दीखता है। श्वास-प्रश्वास के वीच का विराम जो वहि-श्वास के वाद हुआ करता है वह अन्त श्वास के वाद होता है। फुफ्फुस मे कही-कही पर जहा कुछ ठोसपन हो गया होता है श्वास-प्रश्वास ध्वनि Bronchial या Tubular किस्म की सुनाई पडती है, तथा वहा-वहा पर वाचिक (Vocal) ध्वनि भी ऊची सुनती है। दोनो ओर Rhonchi तथा फुफ्फुस तलो पर Rales भी सुनाई पडते हैं। श्रवण से हृदय गति तीव्र प्रतीत होती है। Pulmonary क्षेत्र पर हृदय का दूसरा शब्द ऊचा सुनता है। मूत्र मात्रा मे कम तथा गहरे रग का होता है। वलगम आये तो वह पूय-युक्त होता है। श्वासकाठिन्य, श्यामता तथा वलगम इस रोग के प्रधान लक्षण हैं।

Antibiotic का प्रयोग हो तो यह रोग २-३ सप्ताह चलता है वहुत-से अच्छे हो जाते है तो भी इसे सदा ही भयकर समझना चाहिये। वालक छोटी आयु का हो, वृद्ध वडी आयु का हो, नाडी गति १३० हो, चेहरे पर नीलापन हो, रोगी वेचैन हो, रक्त भार गिरा हुआ हो तो हृदय के फेल होने की आशका करनी चाहिये, वृद्ध को चिर कास Emphysema या Nephritis का रोग हो तो यह रोग कष्टसाध्य होता है। यदि यह रोग वालक मे ३ सप्ताह से अधिक रहे तो उर क्षय रोग का सन्देह करना चाहिये। साधारणत रोग के ठीक हो जाने पर फुफ्फुस नार्मल हो जाते हैं। चिकित्सा ठीक न हो तो रोग का निशान फुफुस मे रह जाता है जो वाद मे Bronchiectasis का रूप ले लेता है।

चिकित्सा

वृद्ध मे पुरानी खासी कुछ तीव्र रूप ले तो तुरन्त उस रोग की Antibiotic चिकित्सा होनी चाहिये। शिशु मे खसरे तथा काली खासी की ठीक-ठीक चिकित्सा हो तो इस रोग का भय नही रहता। कास जनित फुफ्फुस ज्वर के रोगी शिशु या वृद्ध को ऐसे कमरे मे जिसका तापमान रात दिन ६५ फा० डिग्री के आसपास रहता हो, आराम से लिटाये रखना चाहिये। कमरे के वायुमण्डल को आर्द्र तथा गर्म रखने के लिये कमरे मे गर्म जल की भाप चलती रहनी चाहिये जिसमे Tr Benzoin मिला हुआ हो। रोगी वालक की शक्ति को कायम रखने के लिये प्रति ३ घण्टे पर उसे ३-४ औस दूध इतना ही जल और दो चम्मच (८ ग्राम) Lactose मिलाकर वोतल या चमचे से देना चाहिये। पानी मिलाने के पहले प्रति औस दूध मे २ ग्रेन Sodium Cit मिला देने से वालक को दूध सुगमता मे हजम हो जाता है। दूध देने के दो समयो के वीच-वीच मे आधी ताकत का नार्मल सेलाइन भी उचित मात्रा मे वालक को देते रहना चाहिये ताकि शरीर मे द्रवाश की कमी न हो। वालक को रेचन न हो, तो दो-दो दिन के वाद Glycerin Suppository लगाकर या Syrup Ficorum १ छोटा चम्मच देकर मल त्याग करा देना चाहिये।

औषधियो मे से वालक को Procaine Penicillin को तीन लाख यूनिट मात्रा मे १२-१२ घण्टे वाद मास द्वारा देना चाहिये या Penicillin G को दो वर्ष तक की आयु तक १० लाख यूनिट दैनिक मात्रा मे और ५ वर्ष तक वालक मे २० लाख यूनिट दैनिक मात्रा मे २-३ वार वाटकर दे। या Penicillin V (१२५ मिलि० की गोली मे २ लाख यूनिट) ६०-१२० मिलि० मात्रा मे प्रति चार घण्टे वाद देनी चाहिये यद्यपि H Influenza या Virus पर इसका कोई प्रभाव नही। या Achromycin (Tetracycline Hydrochloride) को प्रति किलोग्राम भार के पीछे १२½ मिलि० दैनिक मात्रा मे देना चाहिये। इसके Syrup के ४ मिलिमीटर मे १२५ मिलि० औषधि होती है। इसकी गोली २५० मिलि० की मिलती है। Chloramphenicol ५० मिलि० प्रति पौण्ड भार के पीछे प्रति दिन ४ दिन देने से भी इसी प्रकार तीव्र रोग मे वडा लाभकारक होता है। पुरानी खासी मे Pneumococcus, Haemophilus Influenzae ये जीवाणु पाये जाते हैं इनके लिये भी Tetracycline का ६-६ घ० पर देना सर्वोत्तम है।

अथवा मृदु रोग मे Sulphadiazine या Sulphamezathine को प्रति पौण्ड भार के पीछे १ ग्रेन की दैनिक मात्रा मे वाटकर ६ वार अर्थात् ४-४ घण्टे पर देना चाहिये, साथ ही Sodabicarb का मिश्रण दे देना चाहिये। या Sulphafurazole (Gantrisin मात्रा १-२ ग्राम ६-६ घण्टे पर ३ वर्ष तक के वालक की मात्रा इसकी ⅓ है Syrup के रूप मे प्रति पौण्ड भार के पीछे ५० मिलि० मात्रा मे) प्रति ६ घण्टे पर देना चाहिये। या Sulphasomidine (Elkosin) जिसकी ५०० मिलि० की गोलिया या

१ चम्मच सीरप मे ५०० मिलि० औषधि होती हे वडो को १-१ ग्राम मात्रा मे तथा वच्चो को इसकी एक-तिहाई मात्रा ४-४ घन्टे पर देनी चाहिये ।

H Influenzae के कारण या काली खासी मे B Pertussis के कारण फुफ्फुस शोथ का रोग हो तो Chloramphenicol १२५ मिलि० मात्रा मे ३-३ घन्टे वाद दो दिन देना चाहिये या Penicillin तथा Streptomycin दोनो का मिलित प्रयोग करना चाहिये। वृद्ध व्यक्तियो मे खासी वहुत दिन रहती है अत इन औषधियो का प्रयोग १½ मास के लगभग जारी रखना चाहिये जव तक कि खासी सर्वथा ठीक न हो जाय।

खुश्क खासी के लिये प्रारभ मे वडो मे Pot Bicarb Pot Acet Pot Cit प्रत्येक १०-१५ ग्रेन मिलाकर Aquachlorof १ औंस मे दिन मे ३-४ वार देवे। फिर जव वलगम निकलने लगे तब Ammon Carb ३ ग्रेन, Tincture Squill ६ बूद, Tincture ipecac १० बूद, Tincture Senega २० बूद का मिश्रण दिन मे ३-४ बार देवे। वृद्धो के लिये Bronchodilator कोई औषधि जैसे Cholinetheophillinate २०० मिलि० मात्रा मे ६-६ घ० पर देनी चाहिये या Ephedrine १ ग्रेन प्रात साय देनी चाहिये।

हृदय की निर्वलता के लिये शिशु को Coramine आधी मिलिलिटर मात्रा मे त्वचा द्वारा ४-४ घन्टे पर दें या १० पौण्ड भार हो तो Digoxin १२५ मिलि० इन्जेक्शन् द्वारा दिन मे ३ वार दे फिर ०४ मि० रोज दें। वेचैनी के लिये Brandy २० बूद मात्रा मे आधा औस जल मे ४-४ घन्टे पर देवे। पेट मे अफारा हो तो वस्ति करे या Prostigmin आधा मिलिग्राम मात्रा मे त्वचा द्वारा दे। चेहरे पर नीलापन (Anoxia) होने लगे तो केथिटर द्वारा आक्सिजन देना प्रारम्भ करे। शिशु उन्निद्र रहता है अत उसे Phenobarb ⅛ ग्रेन मात्रा मे ६-६ घ० पर देवें। उसमे श्वासनाली स्तभ (Spasm) और Emphysema के उपद्रव हो तो Choline theophillinate (Choledyl-glaxo) ५० मिलि० दिन मे ४ वार दे। शिशु को Ephedrine नहीं देना चाहिये क्योकि वह हृदयकप का कारण हो जाती है।

आयुर्वेदानुसार

फुफ्फुस ज्वर की तरह ही बालको व वृद्धो में पाये जाने वाला यह वात कफोल्बण सन्निपात ज्वर है। जिसमें फुफ्फुस की वातिक या प्राणसम्वन्धी (Resistance सम्बन्धी) निर्वलता तथा कफ वृद्धि (या देहाग्नि की हीनता) के कारण उसमें जीवाणु सक्रमण होकर खासी, जुकाम आदि उपद्रव रूप में फुफ्फुस शोथ हो जाता है। कफदोष की शांति के लिये उसकी देहाग्नि को वढाना चाहिये कफ केतु, टंकण, शृगभस्म, आदि औषधियो का प्रयोग करना चाहिये। कफ दोष या Metabolic Malproducts के कम करने के लिये वमन तथा लघन कराना चाहिये। वात दोष वृद्धि (प्राणतत्व की हीनता या वढे हुये चलता—Instability—आदि) की शाति के लिये उसे पर्याप्त जल के साथ मधु सुपच आहार तथा ग्लूकोज् देना चाहिये, लघुपचमूल क्वाथ, लक्ष्मी विलास, कस्तूरी भैरव आदि का प्रयोग कराना चाहिये।

ऊर्ध्वश्वास, श्वासकोष्ठक शैथिल्य, श्वास काठिन्य

Pulmonary Emphysema (Inflated) Lung Alveolarectasis. Ch. Generalized-Emphysema

शीत देशो के पिछली मध्यम आयु के व्यक्तियो मे विशेषत पुरुषो मे दोनो फुफ्फुसो के अन्दर चिरस्थायी रूप से जव अधिक हवा भरी रहती है तथा उनकी मृदुता, सकोचशीलता Elasticity घट जाती है अर्थात् निम्न फुफ्फुसो के कोष्ठक हवा से फूले रहते हैं तव उसे श्वासकोष्ठक शैथिल्य का रोग कहते है। क्योकि इसमे रोगी को वल लगाकर अन्दर की हवा को वाहर निकालना पडता है यद्यपि अन्त श्वास मे उसे कोई अवरोध प्रतीत नहीं होता। इसलिये इसे ऊर्ध्वश्वास भी कहा जाता हे। श्वासरोग (Asthma) मे वेग के समय थोडी देर के लिये ही श्वास कोष्ठको मे अधिक हवा रुकती है, इस रोग मे उनके अन्दर सदा ही अधिक हवा भरी रहती है जिससे वहा रक्त मे से CO_2 की निकासी तथा रक्त मे O_2 का प्रवेश कम हो जाता है। बडी आयु के व्यक्तियो मे होने वाला कठिनश्वास और हृदय शैथिल्य—Cor Pulmonale—का रोग प्राय इसी रोग के कारण होता है।

कारण तथा सम्प्राप्ति प्रकार

बडी-छोटी श्वासनालियो मे वर्षो तक शोथ या सकोच (Spasm) का कष्ट वना रहे, अर्थात् खासी या सास का रोग चिरस्थायी रूप मे रहे तो श्वास कोष्ठको पर जोर पडते-पडते तथा उनमे चिरस्थायी शोथ के रहने से उनका लचीलापन कम हो जाता है जिससे उनमे अन्दर की हवा को वाहर फेंकने की शक्ति घट जाती है। सम्भव है कुछ

एक के फुफ्फुसो के कोष्ठको मे ही नहीं उनके (फुफ्फुसो के) सब अवयवो मे लचीलापन जन्म से कम होता है ।

अत श्वास के समय तो स्वभावत ही श्वासनालियो के स्रोत फैल जाते है जिससे हवा अन्दर तो सुगमता से या कुछ रुकावट से प्रवेश कर जाती है पर यदि सूक्ष्म श्वास-नालियो मे शोथ रहता हो या उनमे कफ-द्रव भरा रहता हो या उनमे स्तम्भ (Spasm) का वेग होता रहता हो जैसा कि खाँसी तथा सास के दौरो के समय होता है तब वहि श्वास के समय जब श्वास सम्बन्धी सभी स्रोत तग होने लगते हैं तो इन रोगियो मे वे विल्कुल बन्द से ही हो जाते हैं जिससे वायु बाहर निकल नही पाती, वह फुफ्फुसो के निम्न भागो मे रुकी रह जाती है। इस प्रकार अन्त-श्वास के समय तो हवा (बिना किसी अवरोध या wheeze के उत्पन्न किये) अन्दर फुफ्फुस कोष्ठको मे चली जाती है जिससे पहले से ही हवा से भरे हुए कोष्ठक और अधिक हवा से तन जाते हैं पर वहि श्वास के समय उनकी हवा ऊपर के स्रोतो के तग होने तथा कोष्ठको की दीवार के Pores of Cohn के बन्द हो जाने के कारण बाहर निकल नहीं पाती। इस प्रकार फुफ्फुस कोष्ठको पर सदा हवा का अधिक दबाव बना ही रहता है अर्थात् Intra-alvoolar pressure बढा रहता है । इस प्रकार वायु कोष्ठको मे जाने वाली सूक्ष्म-नालियो (Alveolar Ducts या Infundibulae) तथा कोष्ठको की दीवारो मे क्षीणता की प्रक्रिया हो जाती है । उनका लचीलापन कम हो जाता है वे स्थायी रूप मे फैल जाती व शिथिल हो जाती हैं । इस प्रकार अभिप्राय यह है कि जब अत श्वास तो प्रबल हो और सूक्ष्म श्वास-नालियो मे अवरोध के कारण वहि श्वास मे अवरोध हो तो वायुकोष्ठको पर दबाव पडने से वे शिथिल हो जाते या फैल जाते हैं। वायु कोष्ठको के फैल जाने व कठोर हो जाने से श्वास लेने मे तथा श्वास फेकने मे रोगी को कुछ यत्न करना पडता है । पुफुस मे जो स्वाभाविक लचीलापन है उसके कारण श्वासनालियो का सोत अधिक खुला रहता है । जब पुफुस मे यह लचीलापन कम हो जाता है उसमे कठोरता आ जाती है जैसे Emphysema मे तब श्वास-नालियो का सोत भी अधिक तग हो जाता है अन्त श्वास मे तो श्वासनालिया खुली रहती हैं पर वहि श्वास मे वे अधिक तग रहती हैं जिससे वे वहि श्वास मे वायु को अधिक अवरोध का सामना करना होता है और यदि श्वास-नालियो मे शोथ हो या स्तम्भ हो तो वहि श्वास और अधिक कठिन हो जाता है।

ऐसे रुग्ण फुफ्फुस के एक छोटे खण्ड (Lobule) की परीक्षा करने पर पता लगता है कि उसकी सूक्ष्म नालिया (Bronohioles) तथा आसपास के सब कोष्ठक फैलकर बडे हो गये है । कोष्ठको से पर्दे या उनकी दीवारे पतली पड गई है फट गई हैं या क्षीण होकर लुप्त भी हो गई हैं जिससे अनेक छोटे-छोटे कोष्ठको के मिल जाने से बडे-बडे कोष्ठक (Bullae) बन गये है जिनमे लालिमा के स्थान पर फीकापन तथा लचीलापन के स्थान पर कठोरता आ गई है फुफ्फुस मे हवा को लेने, छोडने का जितना क्षेत्रफल एक स्वस्थ व्यक्ति मे होता है उससे रोगी मे बहुत कम रह जाता है जिससे आक्सिजन का आगमन शरीर मे तथा शरीर से कार्बन डाइआक्साइड की निकासी कम हो जाती है (Inefficient Ventilation) । मध्यमाकार की श्वास-नालियो के अन्दर शोथ होता है तथा उनमे पूययुक्त कफ (Mucopus) भी जगह-जगह पर होता है ।

कोष्ठको की दीवारो के क्षीण या कठोर हो जाने व लुप्त हो जाने से तथा आक्सिजन के कम मिलने से फुफ्फुस धमनी की अनेकानेक सूक्ष्म शिराओ का स्रोत तग हो जाता है अर्थात् उनमे Thrombosis हो जाता है तथा कुछ कोष्ठको के नष्ट हो जाने से कुछ फुफ्फुस धमनी शिराए (Pulmonary Capillaries) बद सी हो जाती हैं व लुप्त हो जाती हैं परिणामत इनमे रक्त भार (B P) बढ जाता है, दक्षिण हृदय के सामने रुकावट बढ जाती है। इस प्रकार फुफ्फुस मे तथा रक्त मे आक्सिजन की मात्रा घट जाती है। स्पष्ट है कि फुफ्फुस का वह पृष्ठ जो रक्त मे आक्सिजन लेता है तथा CO_2 फेंकता है विस्तार मे बहुत कम हो जाता है। इसीलिए रोगी को श्वास काठिन्य हो जाता है तथा ओष्ठो पर नीलिमा Cyanosis का लक्षण हो जाता है। हृदय मास को आक्सिजन के कम मिलने से वह भी निर्बल होता जाता है। रोगी मे फुफ्फुस कोष्ठको के शिथिल होकर फैल जाने से उस हवा की मात्रा जो प्रबल वहि श्वास के बाद अन्दर फुफ्फुसो मे रह जाती है जिसे Residual Air कहते है, नार्मल से दुगनी के लगभग होती है (नार्मल १५०० सी०सी०) ।

रोगी के फुफ्फुस मे बाहर की शुद्ध हवा का आवा-गमन (Ventilation) भी कम हो जाता है अर्थात् १ मिनट मे जितनी हवा फुफ्फुस मे आया करती है जिसे Maximum Breathing Capacity कहते हैं वह इस रोगी मे बहुत घट जाती हे (साधारणत १०० लिटर से अधिक होती है। इसमे चतुर्थाश तक रह जाती है) रोगी की Vital Capacity भी आधी-तिहाई रह जाती है (नार्मल ४०००-५००० सी०सी०) ।

स्वस्थ फुफ्फुस अत्यन्त लचीला होता है। हवा उसके अन्दर ही होती है जो उसे फुलाये हुए है अन्यथा उसकी

शरीर की प्रतिरोधक शक्ति को हीनता से जुडना होगा। इन दोनो बातो अर्थात् जीवाणुओं की प्रबलता और शरीर की निर्बलता का कारण भोजन-दोष ही प्रतीत होता है। जिसका सबूत यह है कि प्राकृतिक या Cellulose वाले आहार लेने वालो की अपेक्षा कृत्रिम आहार लेने वालो मे (अर्थात् नगरो मे रहने वाले उच्च वर्ग के लोगो मे ही) यह अधिकत होता है। उनके भोजन मे Cellulose की मात्रा तथा Vitamins की मात्रा कम होती है जिससे एक ओर मलबन्ध रोग हो जाता है, दूसरी ओर आत की प्रतिरोधक शक्ति गिर जाती है। बृहदन्त्र तथा विशेषत Caecum मे मलावरोध के कारण शोथ अर्थात् Typhlitis हो जाता है और उसके कारण Appendix की श्लेष्मकला मे भी शोथ का प्रसरण हो जाता है। अब यदि आन्त्र पुच्छ का मुख Sphincter सूज जाने से बन्द हो जाय और इसके अदर होने वाला श्लेष्म-स्राव (Mucus) इसके अन्दर रुक जाय तो उसमे प्रधानतया Streptococci तथा गौण रूप से B Coli की वृद्धि के कारण यह श्लेष्म-स्राव और अधिक बढता है। इस बढे हुए तथा बन्द हुए (Obstructed) स्राव का दबाव पडने से आन्त्र पुच्छ की दीवार मे विद्यमान Veins तथा Lymphatics अवरुद्ध हो जाती हैं एव फट जाती है, जिससे ऑक्सीजन के उचित मात्रा मे न मिलने से आन्त्र पुच्छ की प्रतिरोधक शक्ति हीन हो जाती है एव उस पर इन जीवाणुओ का आक्रमण सुगम हो जाता है। यह रोग तीव्र (Gangrenous) रूप मे मासाहारियो मे ही पाया जाता है।

विकृति

आन्त्र पुच्छ के अन्दर जीवाणुओ के अति मात्रा मे रोहण कर जाने से पहले उसकी श्लेष्मकला मे श्लैष्मिक शोथ (Catarrhal) हो जाता है। फिर उसके अन्यान्य स्तरो से भी रक्तसचय होकर शोथ हो जाता है, जिससे आन्त्र पुच्छ रक्त वर्ण का तथा मोटा हो जाता है। इसे Catarrhal Appendicitis या श्लैष्मिक आन्त्र गुल्म कहते हैं। बहुधा यह शोथ दर्द होने के दूसरे या तीसरे दिन शात होने लगता है तथा एक सप्ताह तक पूर्णतया शान्त हो जाता है। इसके जो अवयव अर्थात् श्लेष्मकला या उससे नीचे का अवयव (Submucos Tissue) नष्ट हुआ होता है उसके स्थान पर नया स्नायु-तन्तु आ जाता है।

परन्तु यदि यह शोथ दूसरे-तीसरे दिन शान्त न हो तो उसके अन्दर पूयभाव के और भी आशंका करनी चाहिये। पहले तो आन्त्र पुच्छ की श्लेष्मकला के किसी एक Lymph Follicle मे पूयभाव आरम्भ होता है वहा से रोग-जीवाणु Submucous Layer मे फैलते है और फिर वहा से Muscularis मे से होकर रक्तवाहिनियो के साथ-साथ ये Subserous Layer मे भी फैल जाते है। इस प्रकार क्रमश मासमय स्तर तथा बाहर की Peritoneum के स्तर मे भी फैल जाते है। इस प्रकार क्रमश मासमय स्तर तथा बाहर की Peritoneum के स्तर मे पूयभाव फैल जाता है। इसे Suppurative Appendicitis या पैत्तिक आन्त्र गुल्म कहते है। Peritoneum मे पूयभाव होते ही Omentum, नजदीकस्थ आन्त्र (Loops of intestine) तथा Caecum ये सब इस सूजे हुए चिपचिपे आन्त्र पुच्छ से चिपट जाते हैं तथा विद्यमान पूयभाव को Peritoneal Cavity मे फैलने से रोक देते हैं। आन्त्रपुच्छ (Appendix) के इन समीपस्थ अवयवो के साथ जुड जाने (Adhesion) से जो एक गोला या गुल्म-सा बनता है उसे Appendicular Mass कहते है। आन्त्र पुच्छ मे पूयभाव हुआ हो तो दर्द होने के तीसरे-चौथे दिन यह गुल्म अनुभव किया जा सकता है। यदि पूयभाव मन्द रूप मे हो तो यह गुल्म भी कुछ-एक सप्ताहो मे पूर्णतया लुप्त हो जाता है और इस रोग के लक्षण भी सर्वथा शान्त हो जाते हैं। यदि इसके बाद फिर कभी दोबारा इस रोग के दर्द आदि के लक्षण प्रकट हो तो जान लेना चाहिये कि रोग शान्त नही हुआ, केवल दबा हुआ है। तब शल्यकर्म कराना आवश्यक हो जाता है। जब इस रोग के आरम्भ होने के एक सप्ताह बाद भी ज्वर आदि लक्षण जारी रहे तो समझना चाहिये कि एक स्थानिक विद्रधि (Localized Intraperitoneal Abscess) बन चुकी है जो Caecum के पीछे नीचे की तरफ होती है तथा साधारण चिकित्सा से ठीक नही होती। जब आन्त्र पुच्छ के सिरे का रक्त-सचार बन्द हो जाता है तब वह मरकर कुछ काला-सा पड जाता है। इसे वातिक आन्त्र-गुल्म-शोथ या Gangrenous Appendicitis कहते है। इसके फट जाने से वहा बहुधा स्थानिक विद्रधि (Local Appendicular abscess) बन जाती है।

लक्षण

सहसा पेट मे दर्द हो जाना इस रोग का प्रधान लक्षण है। दर्द जो बहुधा प्रात काल आरम्भ होता है और रोगी को जगा देता है शूल चुभने का-सा होता है तथा

एक के फुफ्फुसो के कोष्ठको मे ही नही उनके (फुफ्फुसो के) सब अवयवो मे लचीलापन जन्म से कम होता है ।

अत श्वास के समय तो स्वभावत ही श्वासनालियो के स्रोत फैल जाते हैं जिससे हवा अन्दर तो सुगमता से या कुछ रुकावट से प्रवेश कर जाती है पर यदि सूक्ष्म श्वास-नालियो में शोथ रहता हो या उनमे कफ-द्रव भरा रहता हो या उनमे स्तम्भ (Spasm) का वेग होता रहता हो जैसा कि खांसी तथा सास के दौरो के समय होता है तब वहि श्वास के समय जब श्वास सम्बन्धी सभी स्रोत तग होने लगते हैं तो इन रोगियो मे वे बिल्कुल बन्द से ही हो जाते हैं जिसमे वायु बाहर निकल नही पाती, वह फुफ्फुसो के निम्न भागो मे रुकी रह जाती है। इस प्रकार अन्त-श्वास के समय तो हवा (बिना किसी अवरोध या wheeze के उत्पन्न किये) अन्दर फुफ्फुस कोष्ठको मे चली जाती है जिससे पहले से ही हवा से भरे हुए कोष्ठक और अधिक हवा से तन जाते हैं पर वहि श्वास के समय उनकी हवा ऊपर के स्रोतो के तग होने तथा कोष्ठको की दीवार के Pores of Cohn के बन्द हो जाने के कारण बाहर निकल नही पाती। इस प्रकार फुफ्फुस कोष्ठको पर सदा हवा का अधिक दबाव बना ही रहता है अर्थात् Intra-alveolar pressure बढा रहता है । इस प्रकार वायु कोष्ठको मे जाने वाली सूक्ष्म-नालियो (Alveolar Ducts या Infundibulae) तथा कोष्ठको की दीवारो मे क्षीणता की प्रक्रिया हो जाती है । उनका लचीलापन कम हो जाता है वे स्थायी रूप मे फैल जाती व शिथिल हो जाती हैं । इस प्रकार अभिप्राय यह है कि जब अंत श्वास तो प्रबल हो और सूक्ष्म श्वास-नालियो मे अवरोध के कारण वहि श्वास मे अवरोध हो तो वायुकोष्ठको पर दबाव पडने से वे शिथिल हो जाते या फैल जाते है। वायु कोष्ठको के फैल जाने व कठोर हो जाने से श्वास लेने मे तथा श्वास फेंकने मे रोगी को कुछ यत्न करना पड़ता है । फुफ्फुस मे जो स्वाभाविक लचीलापन है उसके कारण श्वासनालियो का स्रोत अधिक खुला रहता है । जब फुफ्फुस मे यह लचीलापन कम हो जाता है उसमे कठोरता आ जाती है जैसे Emphysema मे तब श्वास-नालियो का स्रोत भी अधिक तग हो जाता है अन्त श्वास मे तो श्वासनालिया खुली रहती है पर वहि श्वास मे वे अधिक तग रहती हैं जिससे वे वहि श्वास मे वायु को अधिक अवरोध का सामना करना होता हे और यदि श्वास-नालियो मे शोथ हो या स्तम्भ हो तो वहि श्वास और अधिक कठिन हो जाता है।

ऐसे रुग्ण फुफ्फुस के एक छोटे खण्ड (Lobule) की परीक्षा करने पर पता लगता है कि उसकी सूक्ष्म नालिया (Bronchioles) तथा आसपास के सब कोष्ठक फैलकर बडे हो गये हैं । कोष्ठको से पर्दे या उनकी दीवारे पतली पड गई हैं फट गई हैं या क्षीण होकर लुप्त भी हो गई हैं जिसमे अनेक छोटे-छोटे कोष्ठको के मिल जाने से बडे-बडे कोष्ठक (Bullae) बन गये है जिनमे लालिमा के स्थान पर फीकापन तथा लचीलापन के स्थान पर कठोरता आ गई है फुफ्फुस मे हवा को लेने, छोडने का जितना क्षेत्रफल एक स्वस्थ व्यक्ति मे होता है उसमे रोगी मे बहुत कम रह जाता है जिससे आक्सिजन का आगमन शरीर मे तथा शरीर से कार्बन डाइआक्साइड की निकासी कम हो जाती है (Inefficient Ventilation) । मध्यमाकार की श्वास-नालियो के अन्दर शोथ होता है तथा उनमे पूययुक्त कफ (Mucopus) भी जगह-जगह पर होता है ।

कोष्ठको की दीवारो के क्षीण या कठोर हो जाने व लुप्त हो जाने से तथा आक्सिजन के कम मिलने से फुफ्फुस धमनी की अनेकानेक सूक्ष्म शिराओ का स्रोत तग हो जाता है अर्थात् उनमे Thrombosis हो जाता है तथा कुछ कोष्ठको के नष्ट हो जाने से कुछ फुफ्फुस धमनी शिराए (Pulmonary Capillaries) बद सी हो जाती हैं व लुप्त हो जाती हैं परिणामत इनमे रक्त भार (B P) बढ जाता है, दक्षिण हृदय के सामने रुकावट बढ जाती है। इस प्रकार फुफ्फुस मे तथा रक्त मे आक्सिजन की मात्रा घट जाती है। स्पष्ट है कि फुफ्फुस का वह पृष्ठ जो रक्त मे आक्सिजन लेता है तथा CO_2 फेंकता है विस्तार मे बहुत कम हो जाता है । इसीलिए रोगी को श्वास काठिन्य हो जाता है तथा ओष्ठो पर नीलिमा Cyanosis का लक्षण हो जाता है । हृदय मास को आक्सिजन के कम मिलने से वह भी निर्बल होता जाता है । रोगी मे फुफ्फुस कोष्ठको के शिथिल होकर फैल जाने से उस हवा की मात्रा जो प्रबल वहि श्वास के बाद अन्दर फुफ्फुसो मे रह जाती है जिसे Residual Air कहते हैं, नार्मल से दुगनी के लगभग होती है (नार्मल १५०० सी०सी०) ।

रोगी के फुफ्फुस मे बाहर की शुद्ध हवा का आवा-गमन (Ventilation) भी कम हो जाता है अर्थात् १ मिनट मे जितनी हवा फुफ्फुस मे आया करती है जिसे Maximum Breathing Capacity कहते हैं वह इस रोगी मे बहुत घट जाती है (साधारणत १०० लिटर से अधिक होती है। इसमे चतुर्थांश तक रह जाती है) रोगी की Vital Capacity भी आधी-तिहाई रह जाती है (नार्मल ४०००-५००० सी०सी०) ।

स्वस्थ फुफ्फुस अत्यन्त लचीला होता है । हवा उसके अन्दर ही होती है जो उसे फुलाये हुए है अन्यथा उसकी

प्रवृत्ति सिकुडने की ओर रहती है। चारो ओर के प्रदेश अर्थात् फुफ्फुसावरण कोष (Pleural Cavity) मे सर्वथा ही हवा नही होती। फुफ्फुस मे हवा केवल कण्ठ मे ही जाती है व कण्ठ मे ही निकलती है। इस प्रकार फुफ्फुस के चारो ओर का दवाव (Intrapleural Pressure) "माइनस" होता है। अन्त श्वास के समय यह दवाव —८ और वहि श्वास के समय —१४ Centimetre of Water होता है। इस रोग मे श्वासनालियो मे अवरोध तथा फुफ्फुस के कठोर हो जाने के कारण यह दवाव अन्त श्वास के समय —५ तथा वहि श्वास के समय +१० या इससे भी अधिक Centimetres of Water तक रहता है। इस दवाव के वढ जाने से ही वहि श्वास के समय रोगी को वल लगाकर हवा को वाहर फेकना पडता है तथा वहिःश्वास की लम्बाई भी अधिक होती है।

फुफ्फुसो मे अधिक हवा के भरे रहने (Hyperinflation) से तथा उनमे न्यूनाधिक कठोरता (Interstitial Fibrosis) के हो जाने से छाती की मासपेशियो पर विशेषत Diaphragm पर जो श्वास की प्रधान पेशी है, सकोचक (Tonic) प्रभाव पडता है, वह सदा ही नीचे की तरफ झुकी हुई एव अधिक चपटी रहती है। अन्त श्वास के लेने पर उसमे और सकोच विशेष नहीं होता। उसमे स्वल्प सा सकोच होने से निचली छाती के दोनो पार्श्व तथा उसका अगला भाग कुछ अन्दर की ओर खिच जाते हैं। रोग कुछ अधिक वढा हुआ हो तो फुफ्फुसो के निचले भागो मे अन्त श्वास लेने पर भी कोई विस्तार नही होता अर्थात् वे श्वास-प्रश्वास मे भाग लेते ही नही। इस प्रकार जव रोगी की सास लेने व उसे वाहर फेकने की शक्ति घट जाती है तव रक्त को आक्सिजन की मात्रा विशेषत कम मिलती है (Anoxia)। फुफ्फुस कोष्ठको की हवा मे तथा रक्त के अन्दर कार्वन डाइऑक्साइड की मात्रा वढ जाती है (Hypercapnia) तथा उसके वढने से रक्त मे अम्लीयता (Acidosis) भी वढ जाती है उसकी शिराओ के रक्त मे PCO_2 की मात्रा नार्मल से अधिक होती है इसकी वृद्धि सिरदर्द, मासपेशियो मे कम्प तथा निद्रालुता से सूचित होती है। रक्त मे CO_2 के वढ जाने या उसके pH के घट जाने से उत्पन्न लक्षण समूह को Carbon Dioxide Narcosis कहते हैं।

जव रक्तमे कार्वन डाइआक्साइड की मात्रा हर समय ही वढी रहती है तो Medulla मे विद्यमान श्वास केन्द्र (Respi Centre) पर उसका उत्तेजक प्रभाव होना वन्द हो जाता है (अर्थात् केन्द्र Refractory हो जाता है) अव तो रक्त मे जो आक्सिजन की कमी रहती है उसके Carotid Bodies तथा Aorta के मोड के Chemoreceptors के ऊपर पडे प्रभाव के द्वारा श्वास केन्द्र को उत्तेजना मिलती है एव श्वास-प्रश्वास गति धीरे-धीरे चलती रहती है। इसीलिए ऐसे रोगी को शुद्ध आक्सिजन अधिक मात्रा मे नही दी जा सकती है। इसी प्रकार श्वास के कष्ट को कम करने के उद्देश्य से मार्फिया का प्रयोग भी नही किया जाता क्योकि इससे Chemoreceptors की क्रिया के मन्द हो जाने एव Acidosis होकर निद्रालुता व मूर्छा के हो जाने का भय रहता है।

फुफ्फुस धमनी रक्तभार Pulmonary arterial pressure एक तो दक्षिण क्षेपक मे जितने रक्त की मात्रा आती है उस पर तथा रक्त के सामने फुफ्फुस मे जो अवरोध पडता है उस पर निर्भर है। श्रम के समय जब दक्षिण हृदय से रक्त की अधिक मात्रा फुफ्फुस मे जाती है तव वहाँ Arteries को Veins से मिलाने वाले रास्तो के खुल जाने से तथा रक्त-वाहिनियो के फैल जाने से रक्तभार वढता नही है। जव फुफ्फुस की Pulmonary Veins मे रक्तभार वढता है जैसे कि वाम हृदय दौर्बल्य मे या जव फुफ्फुस की रक्तवाहिनियो मे क्षीणता या विनाश की प्रक्रिया वढ जाती है जैसे कि Emphysema रोग मे होता है या जव दक्षिण हृदय से रक्त वहुत अधिक मात्रा मे १५, २० लिटर प्रति मिनट फुफ्फुस मे आने लगता है तव फुफ्फुस धमनी रक्तभार या Pulmonary arterial pressure वढ जाता है Cardiac catheterisation अर्थात् वाहु की शिरा मे से Catheter के S V. Cava—दक्षिण हृदय—Pulmonary artery और उसकी शाखाओ मे डालने से इस भार का ठीक-ठीक पता चल सका है।

इस रोग मे फुफ्फुस धमनी की फुफ्फुस मे व्याप्त शाखाओ प्रशाखाओ मे Atheroma हो जाने से व उनको Oxygen के कम मिलने या Hypoxia से उनकी दीवारो के कठोर हो जाने से अर्थात् उनमे Arterio sclerosis के हो जाने से फुफ्फुस मे रक्त भार वढकर ४०/१५ M M of Mercury या इससे भी अधिक हो जाता है (नार्मल २०-३०/८) इस धमनी मे दवाव के वढने से दक्षिण हृदय पर कार्यभार वढ जाता है जिससे दक्षिण क्षेपक (Ventricle) आकार मे वडा या शिथिल हो जाता है (Cor Pulmonale) Tricuspid Valve मे से कुछ रक्त दक्षिण क्षेपक कोष्ठ मे से दक्षिण ग्राहक कोष्ठक मे आने लगता है तथा यकृत् और शरीर की शिराओ मे रक्त अधिकाधिक रुकने लगता है।

लक्षण

ऊर्ध्व श्वास का यह रोग अज्ञात रूप मे धीरे-धीरे आरम्भ होता है। पहले शीतकाल मे आकाश मे विशेष नमी के बढ जाने पर श्वासनालियो मे Infection होकर खासी उठने लगती है जिसके बीच मे श्वास रोग का दौरा भी हो जाता है। श्वासनालियो के शोथ के कारण उसमे पतली (Mucus) या गाढी (Mucopus) बलगम भी गिरती है। अथवा श्रम करने पर श्वास चढ जाने का लक्षण इस रोग में पहले होता है श्वास चढते ही खासी भी हो जाती है। बाद मे बैठे-बैठे भी श्वास चढ जाता है तथा रात को सो जाने पर खासी होकर नींद टूट जाने और उठकर बैठ जाने की उसे शिकायत रहती है। ऐसे समय मे श्वासनालियो के बलगम के कारण या सकोच के कारण बन्द हो जाने पर अन्त श्वास मे अन्दर ली गई हवा को बाहर फेकना कठिन हो जाता है। रोगी बैठकर और बल लगाकर अर्थात् कोष्ठ और छाती की मासपेशियो को प्रधानत Sternomastoid, Pectorals, Scaleni को सकुचित कर उसे बाहर फेंकने का यत्न करता है। इसीलिये इसे ऊर्ध्व श्वास (Expiratory Dyspnoea) रोग कहा जाता हैं। बलगम के निकल जाने पर फिर ऊर्ध्व श्वास का वेग घट जाता है तो भी श्रम करने पर श्वास चढ जाने तथा फिर खासी उठकर बलगम निकल जाने का लक्षण इस रोग का सूचक होता है। ऊर्ध्व श्वास के इस लक्षण के साथ-साथ रोगी के चेहरे पर अर्थात् ओठो पर तथा उसके नखो पर श्यामता (Cyanosis) का लक्षण भी होता है। महाश्वास पेशी (Diaphragm) की गति का विस्तार जितना बैठी अवस्था मे होता है उतना लेटे हुए नही होता इसीलिए रोगी को लेटे हुए उठकर बैठ जाना पडता है। खासी तथा कफ गिरने के लक्षण श्वासनालियो में जीवाणु सक्रमण के हो जाने पर होते हैं। श्वासनालियो मे शोथ होने पर रोग का वेग तीव्र हो जाता है। बैठे-बैठे या पडे हुए श्वास चढ जाने या उसमे कठिनता होने का लक्षण इसका प्रधान लक्षण नही है पर श्रम करने पर श्वास और कास का होना तथा स्वल्प खासी के होते ही श्वास काठिन्य और बलगम गिरने लग जाना इस रोग का सूचक लक्षण है। पहले इस रोग मे खासी और श्वास काठिन्य के वेग वर्षो तक होते हैं बाद मे इसमे आक्सिजन की कमी Hypoxia तथा CO_2 की वृद्धि Hypercapnea के सूचक लक्षण होते हैं। इस रोग मे रोगी की श्रम करने की सामर्थ्य उत्तरोत्तर घटती जाती है उसे श्रम से जल्दी श्वास चढ जाता है।

शारीरिक लक्षण (Signs)

फुफ्फुसो के फूल जाने से रोगी की छाती कुप्पे की तरह (Barrel) की-सी दीखती है अर्थात् उसका आगे-पीछे का व्यास, दाये बाये व्यास जितना ही हो जाता है। उरोस्थि (Sternum) आगे की ओर उभरी होती है। उसके ऊपर के खड (Manubrium) तथा बीच के खण्ड (Gladiolus) के बीच का कोण उभरा हुआ होता है। रीढ की हड्डी का ऊपरला भाग पीछे की तरफ कुछ गोल हुआ-हुआ दीखता है। पसलिया कुछ-कुछ पडी हुई दिशा (Horizontal) ले लेती हैं। पसलियो के बीच के अन्तर भी कुछ चौडे हो जाते है (Residual Air बढी हुई)। छाती पर स्पर्शन से पता चलता है कि अन्त श्वास के समय छाती विशेष फूलती नही बहि श्वास के समय विशेष सिकुडती नही। चूचुक प्रदेश पर माप लिया जाये तो इन दोनो मे आधे-एक इच का ही अन्तर होता है (नार्मल २ इच) हसली की हड्डी के ऊपर का गढा (Supra clavicular fossa) भरा हुआ दीखता है। ग्रीवा लम्बाई मे छोटी दीखती है उस पर Sternomastoid मासपेशिया तथा Jugular Veins अधिक स्पष्ट दिखाई पडती हैं। पसलियो के नीचे का बीच का कोण (Subcostal Angle) कुछ चौडा दीखता है। फुफ्फुसो के फूलकर हृदय पर छा जाने से हृदय का स्पन्दन न तो दीखता है न ही स्पर्शन से अनुभव होता है। छाती मे होने वाला वाचिक कम्पन (Vocal Fremitus) स्पर्शन करने से कम प्रतीत होता है। छाती पर टकोर की आवाज ऊची होती है। हृदय प्रदेश पर हलकी टकोर मन्द हुआ करती है पर फुफ्फुस के बीच मे आ जाने से वह उतनी मन्द नही रहती। इस रोग के कारण यकृत् कुछ नीचे की तरफ खिसक जाता है जिससे वह पसलियो के नीचे अनुभव होने लगता है।

फुफ्फुस मे श्वास-प्रश्वास से उत्पन्न होने वाली ध्वनि (Vesicular murmur) नीची सुनाई पडती है। बहि-श्वास की आवाज कुछ लम्बी व स्पष्ट सुनाई पडती है। श्वासनालियो के तग होने के कारण बहि श्वासो के साथ सीटिया (Rhonchi) सुनाई पडती हैं। खासी गीली हो, श्वासनालियो मे कुछ शैथिल्य (Bronchiectasis) हो, तो निचले भागो पर बुलबुलो की आवाज (Moist Rales) भी सुनाई पडती है। थूक झागदार चिपचिपी तथा पूययुक्त होती है। रोगी के लिये फूक मारकर जलती आग को बुझाना कठिन होता है। X-Ray द्वारा परीक्षा करने पर फुफ्फुस साफ (Translucent) दीखते, पसलिया पडी हुई दिशा मे,

उनके बीच के अन्तर वडे तथा महाश्वास पेशी नीचे झुकी हुई, चपटी दीखती है, उसकी चेष्टा कम होती है। Hila पर धमनियो की छाया अधिक स्पष्ट दीखती है दक्षिण हृदय आकार में वडा दीखता है। Spirogram परीक्षा मे Forced Vital capacity, vital capacity की अपेक्षा काफी घटी होती है Forced expiratory Volume एक सेकण्ड मे घटी हुई होती है इसका Vital capacity के साथ अनुपात ५० प्र०श० के लगभग होता है। श्वास रोग मे अन्त.श्वास तथा वहिःश्वास दोनो मे अवरोध होता एव Wheeze की-सी ध्वनि सुनती है इस रोग मे अन्त श्वास में अवरोध नही होता एव Wheeze की ध्वनि नही होती ।

साध्यासाध्य

यह रोग वर्षों तक रहता है खासी व श्वास रोग को नियन्त्रित रखा जाय तो रोगी चिरकाल तक जीवित रहता है। खुश्क गर्म वायुमण्डल मे यह रोग वढने नही पाता, शीत तथा गीले वायुमण्डल मे वढता है । पर यदि श्वास और खाँसी के दौरे होते ही रहे और पूययुक्त वलगम आती रहे तो फुफ्फुसो के क्षीण हो जाने, अर्थात् उनमे Non-Specific Fibrosis के हो जाने, या क्षयजनित Fibrosis के हो जाने, या किसी कोष्ठक के Pleura मे फट जाने से वहाँ हवा हो जाने (Pneumothorax) या दक्षिण हृदय पर कार्यभार के वढ जाने पर उसके आकार मे वडे हो जाने (Cor Pulmonale) और शिराओ मे रक्त भार के वढ जाने, यकृत् के आकार मे वढ जाने, पैरो के भारी हो जाने, रक्त मे आक्सिजन की कमी से शरीर, मन व अग्नि के निर्वल हो जाने के उपद्रव हो जाते है।

जीर्ण फुफ्फुस रोग-जनित हृदय नैर्बल्य

Chronic Pulmonary Heart Disease, या Emphysema Heart disease, Chronic cor pulmonale

ऊर्ध्व श्वास रोगियो मे से एक-तिहाई से आधे रोगियो मे दक्षिण हृदय नैर्वल्य का उपद्रव हो जाया करता है। इसके अतिरिक्त जीर्ण कास (C Bronchitis) या श्वासनाली शैथिल्य (Bronchiectasis) मे भी उपद्रव रूप मे यह रोग होता है। जीर्ण श्वास रोग के उपद्रव रूप मे भी यह होता है। इसी प्रकार फुफ्फुस स्नायुभाव (Fibrosis हो, या Fibroid Lung का रोग हो) जैसे कि वालकपन मे रोमान्तिका (Measles) या सक्रामक कास (Whooping Cough) के उपद्रव के कारण होता है या उर क्षय रोग जनित स्नायुभाव हो जिसका पता एक ओर की छाती के शिखर के भाग के कुछ दव जाने मे लगता है, यह उपद्रव हो सकता है।

इन सब रोगो मे फुफ्फुस के वायु कोष्ठको मे कार्वन डाइ-आक्साइड गैस का तथा आक्सिजन का आदान-प्रदान कम हो जाता है। परिणामत· रक्त मे आक्सिजन की मात्रा कम हो जाती तथा CO_2 की मात्रा वढ जाती है क्योंकि धमनियो के रक्त मे जव-जव भी आक्सिजन की मात्रा कम होती है रक्त मे pH घट जाता है तव-तव फुफ्फुस सम्वन्धी धमनियो (Pulmonary Arte) मे रक्त भार वढ जाता है। सम्भवत धमनियो मे सकोच के वढ जाने से ऐसा होता प्रतीत होता है। दक्षिण हृदय के निर्वल होने से भी रक्त वाहिनियो मे रक्त की मात्रा वढ जाती है इससे फुफ्फुस मे रक्त भार वढ जाता है। श्रम करने पर यह Pulmonary Hypertension और वढ जाता है । उनमे रक्त भार के $\frac{६०}{२०}$ M M Hg तक वढ जाने पर पहले तो दक्षिण क्षेपक आकार मे वडा हो जाता है परन्तु फुफ्फुस रोगो मे रक्त के अन्दर आक्सिजन की कमी (Anoxia या Hypoxia) हो जाने के कारण उसे Oxygen ठीक-ठीक न मिलने से वह शिथिल भी होने लगता है। फुफ्फुस मे रक्तभार के वढे होने से श्रवण-यन्त्र द्वारा सुनने से Pulmonary second sound ऊचा सुनाई पडता है।

Infection, Pulmonary Hypertension और Hypoxia इस रोग के कारण वन जाते हैं।

लक्षण

पहले तो सक्रमण जनित फुफ्फुस रोग के कारण शीत-काल मे ही ज्वर के साथ खासी का कष्ट रहता है फिर वर्ष भर ही खासी तथा वलगम गिरने के लक्षण रहते है फिर जव आक्सिजन की कमी (७० प्र०श० से कम तथा PCO_2 ६० MM of mercury से ऊपर) विशेष हो जाती है तव हृदय की निर्वलता के हो जाने से श्रम अर्थात् थकावट और मुख पर श्यामता (Cyanosis) के लक्षण होने लगते है। अर्थात् शरीर के अवयवो को रक्त के कम मिलने से स्वल्प व्यायाम मे भी थकावट और अशक्ति अनुभव होती है। वृक्को को रक्त कम मिलने से श्वयथु का लक्षण प्रकट हो जाता है। दक्षिण हृदय के पीछे की ओर ऊपर और नीचे से आने वाली शिराओ मे रक्त के रुकने से अनेक लक्षण होने लगते है। सिर की शिराओ मे रक्त रुक जाने से सिरदर्द रहता, मस्तिष्क की विचार शक्ति, निद्रा करने की शक्ति तथा उसकी सहज शान्ति कम हो जाती है अर्थात् वह कुछ उन्निद्र, वेचैन, और कुछ

मस्तिष्क-सम्बन्धी मन्दता अनुभव करता है। फुफ्फुस की शिराओ मे रक्त के रुकने से खाँसी व श्वास कृच्छ्रता के लक्षण होते हैं। यकृत् मे तथा कोष्ठ की शिराओ मे रक्त के रुकने से क्षुधानाश, अन्न के लिये अरुचि, भोजन के बाद पेट मे भारीपन लगने लगता है। रक्त में कार्बन डाइ-आक्साइड गैस की वृद्धि होते जाने से अर्थात् Respiratory acidosis या फुफ्फुस जनित अम्ल वृद्धि से तन्द्रालुता और कुछ-कुछ मूर्छा के उपद्रव भी होते हैं। इस फुफ्फुस रोगजनित हृदय नैर्बल्य का हृदय रोग जनित हृदयदौर्बल्य से भेद करना चाहिये। इसमे किसी फुफ्फुस रोग का इतिवृत्त होता है।

परीक्षा करने पर Jugular Veins मे धमन, यकृत् वृद्धि तथा उस पर स्पर्शा-क्षमता, पाद श्वयथु, हृदय व नाडी मे निर्बलता, नाडी की तीव्रता के लक्षण मिलते हैं ग्रीवा की शिराए भरी हुई दीखती है। उरोस्थि के निम्न भाग या आमाशय प्रदेश पर हृदय का धमन स्पष्ट दीखता है। हृदय आकार मे बडा होने से नाडी भरी हुई दीखती है। फुफ्फुस पर सुनने से श्वास-प्रश्वास के साथ सीटियो की आवाज सुनाई देती है। शिरा रक्तभार बढा हुआ होता, धमनियो के रक्त मे O_2 ८५%—मे कम होता है। Ecg तथा X-Ray परीक्षा से इसका निश्चय हो जाता है। हृदय दक्षिण की ओर बढा होता है जिसका पता टकोर की मन्दता से लगता है पर Emphysema के कारण यह टकोर मन्द नहीं भी होती। हृदय का शब्द Pulmonary Area पर ऊँचा सुनता है। दक्षिण फुफ्फुसावरण कोष मे जल के उत्पन्न हो जाने के लक्षण भी हो सकते हैं। जितना-जितना इसमे व्यायाम या श्रम सहनशक्ति कम होती जाती है अर्थात् जितना-जितना स्वल्प श्रम से श्वास चढने लगता है उतना-उतना यह रोग भयकर हो जाता है। जब शिराओ मे रक्त संचय की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है अर्थात् कुछ श्वयथु हो जाता है रोगी १-२ वर्ष ही जीवित रह सकता है।

चिकित्सा

Emphysema का यह रोग चिरस्थायी कास तथा कुछ-कुछ श्वास के उपद्रव रूप मे होता है। अत इनकी चिकित्सा तत्परता के साथ होनी चाहिये। हर प्रकार के धुए व धूल वाले वायुमण्डल से बचना चाहिये। खुली हवा मे भ्रमण तथा मृदु व्यायाम नित्य करना चाहिये। रात को भी जहाँ तक हो सके, खुले मे जहाँ शुद्ध वायु का प्रवेश हो, सोना चाहिये। गर्म जल पीना चाहिये। गर्म दूध-फलरस-विटामिन का सेवन करना चाहिये। शरीर भारी हो तो भोजन मे कैलोरीज की मात्रा कम कर देनी चाहियें। भोजन प्रात ८, दोपहर १२ व सायकाल ४ बजे परिमित मात्रा मे लेना चाहिये। बाद मे रात तक निराहार ही रहना चाहिये।

श्वासनालियो मे विद्यमान जीवाणु सक्रमण को दूर करने के लिये Penicillin व Streptomycin दोनो का मास द्वारा एक सप्ताह तक प्रयोग करना चाहिये या Tetracyline २५० मिलि० दिन मे ४ वार देना चाहिये। अथवा Aerosol therapy से इनका प्रयोग करना चाहिये। Nebulizer (Vaponephrine, D-Vilbiss) के द्वारा Penicillin ५० हजार यूनिट को या Streptomycin २५ ग्राम को १-२ सी०सी० जल मे मिलाकर इनके छींटे श्वास द्वारा श्वासनालियो मे देने चाहियें। रक्त मे CO_2 को कम करने के लिये Carbonic anhydrase inhibitor औषध श्वासनाली प्रसारक—जैसे Dichlorphenamide (Daranide) २५-५० मिलि० दिन मे ४ वार देना चाहिये।

श्वास का वेग हो तो Bronchodilator Epinephrine Inhalation (१०० मे १) ½ सी०सी० या Isuprel (१०० मे १) १-५ सी०सी० के छींटे भी Nebulizer के द्वारा सास से दिये जा सकते हैं। मुख द्वारा Choline Theophyllinate (Choledyl, Kolinate या Kolinate compound) २०० मिलि० की गोली के रात को देने से या शिरा द्वारा Aminophylline २५ ग्राम मात्रा मे देने से या Ephedrine ½ ग्रेन के मुख द्वारा दिन मे तीन बार देने से भी श्वासनालियो मे उत्पन्न सकोच शान्त हो जाता है। मस्तिष्क उत्तेजित होने से रात को इसके स्थान पर Aminophylline या Choline Theophyllinate का प्रयोग करना चाहिये। इसे केवल प्रात और मध्याह्न ही देवें। श्वासनालियो का स्तम्भ इनसे शान्त न हो तो Corticosteroids का स्वल्प मात्रा मे प्रयोग करने से शान्त हो जाता है।

श्वासनालियो मे सचित हुए बलगम को निकालने का यत्न करना चाहिये इसके लिये Sodium Bicarbonate १५ ग्रेन, Sodium Chloride ३ ग्रेन, Spirit Chloroform ५ बून्द, Aqua Anethi dest १ औस, ऐसी एक मात्रा को सवेरे-शाम लेकर ऊपर से गर्म जल का एक कप पी लेना चाहिये। श्वास की शान्ति के लिये इसी मिश्रण मे २-३ ग्रेन Pot. Iod मिला सकते हैं। यदि खासी गीली न होकर सूखी हो तो उसकी शान्ति के लिये Syrup Codeine Phosphate १ ड्राम की एक मात्रा रात को दे सकते है। Barbiturates, तथा Morphia

श्वास केन्द्रशामक—Depressant—है इनका प्रयोग इस रोग मे नही करना चाहिये या सभलकर करना चाहिये।

पेट पर कसकर पेटी (Emphysema belt) बाधने या कपडा बाधने से Diaphragm को सहारा मिल जाता है जिससे फिर श्वास जल्दी नहीं चढता, रोगी को चाहिये कि वह फुफ्फुस कोष्ठको मे सचित हुई हवा को बाहर निकालने के लिये चटाई पर, पीठ के भार लेटकर, पहले अन्त श्वास ले, फिर दोनो हथेलियो से दोनो ओर निचली पसलियो को अन्दर और ऊपर की ओर दबाये तथा वहि - श्वास लेकर अन्दर की हवा को मुख से बाहर फेंके। एक समय मे ऐसा १०-१५ वार करना चाहिये तथा दिन मे २-३ वार इसी प्राणायाम को दुहराना चाहिये। इस प्राणायाम से जिसमे अन्त श्वास पर नही, पर वहि श्वास पर विशेष बल दिया जाता हो, इस रोग मे लाभ होता है। पेट की मासपेशियो पर मालिश करके उन्हे बलवान् बनाने का यत्न करना चाहिये। शरीर मेदस्वी हो तो मेदा को कम करे ताकि आक्सिजन का खर्च जो बढा हुआ है, घटे। आक्सिजन के २०-३० मिनट के लिये दिन मे तीन बार प्रयोग करने से भी रोगी को श्वास कृच्छ्रता तथा Acidosis के कारण होने वाले उपद्रवो मे आराम आ जाता है। रोगी के रक्त मे CO_2 के अधिक मात्रा मे रहने से मस्तिष्कगत श्वास केन्द्र पर उसका उत्तेजक प्रभाव कालान्तर मे कम होता जाता है जिससे वह अब O_2 की न्यूनता से ही उत्तेजित रहता है। ऐसी अवस्था मे O_2 अधिक दिया जाय तो इसकी न्यूनता के कारण केन्द्र को जो उत्तेजना मिलती है वह जाती रहती है जिससे CO_2 रक्त मे जमा होने लगता है जिससे तन्द्रा-मूर्छा प्रलाप आदि लक्षण होने लगते हैं। श्वास फेल होने (Respi failure) का डर होने पर Prethcamide (Micoran) १-२ मिलि० मात्रा मे ½ घ० के अन्तर से मास या शिरा द्वारा देना चाहिये। श्वास रोग की तीव्रता शान्त हो जाय तो फिर इस औषधि को मुख से दिया जा सकता है।

दक्षिण हृदय नैर्बल्य की चिकित्सा

Penicillin ५-१० लाख यूनिट, Tetracycline १ या २ ग्राम दैनिक आदि उपर्युक्त औषधियो के साथ-साथ Isoprenaline (Neoepinine) ५-१० मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन वार जीभ के नीचे रखाने से श्वासनालियो का स्रोत खुल जाता है (Bronchodilatation होता)। फुफ्फुस मे जीवाणु सक्रमण को रोकने से ही हृदय की रक्षा हो जाती है अत इनका प्रयोग निरन्तर कुछ काल इस रोग मे अत्यावश्यक होता है। मुख से Ephedrine ३० मिलि० मात्रा मे अकेले या Phenobarbitone १५ मिलि० के साथ दिन मे दो वार देवे, हृदय की निर्बलता के लिये तथा श्वासनालियो के सकोच को दूर करने के लिये Amino-phylline, (Sedonal East Indiapharma, Sedocordil, Papaphylin unichem Neusedil) १००-५०० मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन वार या Choline Theophyllinate (Choledyl) २०० मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन-चार वार दें। तथा इसे पर्याप्त समय तक जारी रखे या श्वासनालियो के शोथहर Prednisolone की ५ मिलि० मात्रा को दिन मे ३-४ वार दे और उसे धीरे-धीरे कम करते जाये। स्वरघ्न के लिये Mersalyl या Hydrochlorothiazide (Dichlortride) २५-५० मिलि० या Lasix का प्रयोग करना चाहिये। भोजन मे लवण नही होना चाहिये। आक्सिजन घन्टे मे १५-२० मिनट देने से या २५-३०% (२ लि० आक्सि० प्रति मि०+४० लि० हवा १ मि०) देने मे रोगी को आराम रहता है। इस रोगी मे आक्सिजन का प्रयोग स्वल्प मात्रा मे ही करना चाहिये क्योकि इसका श्वास केन्द्र CO_2 की वृद्धि से इतना उत्तेजित नही होता जितना Hypoxia से होता है अत इसका अधिक देना ठीक नही। उसे निद्राजनक औषधिया भी नही देनी चाहिये। क्योकि जैसे ऊपर कहा गया है उससे श्वास केन्द्र और अधिक मन्द हो सकता है। यह High output cardiac failure है अर्थात् इसमे रक्त की अधिक मात्रा के नाडी मे जाने पर भी हृदय नैर्बल्य है इसलिये इसमे Digitalis से लाभ नही होता।

आयुर्वेदानुसार

फुफ्फुस में वात कफ वृद्धि से उत्पन्न होने वाला यह ऊर्ध्व श्वास है जिसमें वात वृद्धि या प्राणतत्व की मन्दता के लक्षण विशेष होते है। अत रोगी की वात कफ शामक, उष्ण, बल्य चिकित्सा होनी चाहिये उसे उष्ण शुष्क प्रदेश मे रहना चाहिये। दशमूल घृत (चरक।चि०।कास रोग) दशमूलारिष्ट, दशमूलक्वाथ, अगस्त्य हरीतकी, श्वास चिन्तामणि समशर्करलोह आदि में से किसी के प्रयोग से रोग बढता नहीं है।

जीर्ण फुफ्फुस-जराकास-जराश्वास
Pulmonary Fibrosis, Chronic Interstitial Fibrosis of the Lungs

३०-४० वर्ष की आयु के हो जाने पर स्वभावत फुफ्फुसो मे कुछ-कुछ लघुतायुक्त जीर्णता (Atrophic

Fibrosis) के चिह्न प्रकट होने लगते है, जिससे उनकी Vital Capacity या अधिक से अधिक हवा को बाहर फेंकने की शक्ति, तथा Breathing Capacity अर्थात् एक मिनट मे जितनी हवा श्वास-प्रश्वास में ली जाती या छोडी जाती है उसकी मात्रा तथा *Maximum Diffusion* Capacity अर्थात् फुफ्फुस के रक्त की वायु मे से अधिक-से-अधिक आक्सिजन को ले लेने की शक्ति ये सब कुछ-न-कुछ घट जाती हैं जिससे बडी आयु में रक्त के अन्दर आक्सिजन की प्रतिशतक मात्रा ९२ प्र०श० ही रह जाती है जबकि छोटी आयु में वह ९६ प्र०श० होती है ।

परन्तु जीर्ण कास रोग (Ch Bronchitis) मे जब श्वासनालियो मे चिरस्थायी रूप मे शोथ रहता है उनकी दीवारो मे ही स्नायुतन्तु की वृद्धि नहीं पर समीप-समीप के अवयवो में भी स्नायुतन्तु की वृद्धि (Peribronchial Fibrosis) होकर फुफ्फुस की ओर प्रसरण करने लगती है ।

छोटी-छोटी श्वास नालिकाओ मे शोथ के रहने से उनके स्रोत मे अवरोध उत्पन्न हो जाने (Bronchiolitis obliterans) से उनसे सम्बन्धित वायु कोष्ठक (Alveoli) भी भिच जाते हैं, और उनमे भी स्नायुतन्तु की वृद्धि हो जाती है । इस प्रकार जीर्ण कास रोग इसका एक प्रधान कारण है ।

इसी प्रकार वाम हृदय (Left Ventricle) के निर्बल होने पर जब फुफ्फुस के श्वास कोष्ठको मे विद्यमान सूक्ष्म रक्तवाहिनियो मे रुधिर अधिक मात्रा मे रुकता रहता है तब श्वास कोष्ठको की दीवारें सम्भवत श्वयथु (Oedema) के कारण स्थूल (Fibrotic) हो जाती है और इन रक्तवाहिनियो की दीवारें भी कुछ कठोर हो जाती हैं (Pulmonary Arteriosclerosis)

कभी-कभी बालको मे रोमान्तिका (Measles) या सक्रामक कास (Whooping Cough) के कारण हुआ तीव्र फुफ्फुस ज्वर (Bronchopneumonia) पूर्णतया जैसे ठीक हो जाना चाहिये वैसे ठीक नही होता प्रत्युत वायु कोष्ठको मे सचित श्लेष्म द्रव (Exudate) मे नई रक्तवाहिनियो तथा स्नायुतन्तु (Connective Tissue) के फैल आ जाते हैं जिससे वहा स्नायुतन्तु (Fibrosis Tissue) बन जाता है और फुफ्फुस का वह प्रदेश कठोर-सा हो जाता है जिसे Ch interstitial Pneumonia भी कहते हैं । इसी प्रकार बालको मे बाल्यावस्था मे ही फुफ्फुस के एक खण्ड मे स्नायुभाव हो जाता है जिसके अन्दर विद्यमान श्वासनालियो मे शोथ के रहने से खाँसी का लक्षण वर्षो तक बना रहता है । फिर इस कठोर फुफ्फुस मे श्वास नाली शैथिल्य (Bronchiectasis) का उपद्रव भी हो जाता है ।

एक व्यापक फुफ्फुस स्नायुभाव Diffuse Fibrosis of the Lungs का रोग भी पाया गया है जिसे Hamman and Rich (१९४४) का रोग भी कहा जाता है जिसके कारण के विषय में अभी तक कोई निश्चय नही हो पाया पर Auto immunity को उसका कारण कहा जाता है इसमे दोनो फुफ्फुसो के वायु कोष्ठको मे व्यापक स्नायुभाव पाया जाता है ।

क्षय रोग से ग्रस्त फुफ्फुस के एक भाग मे स्नायुतन्तु के आ जाने से कभी-कभी वह एक कठोर से अवयव (Fibrocaseous Mass) मे परिवर्तित हो जाता है । हो सकता है कि रक्त मे से Calcium Phosphate के निक्षिप्त हो जाने से यह और भी कठोर हो जाय । इस प्रकार क्षय रोग के कारण भी फुफ्फुस मे स्नायुभाव (Fibroid T B) हो सकता है ।

इन व्यापक स्नायुभावो के अतिरिक्त फुफ्फुस मे स्थानिक स्नायुभाव भी होता है जिसके प्रधान कारण स्थानिक क्षय रोग, फुफ्फुस विद्रधि (Abscess of the Lung), श्वासनाली शैथिल्य (Bronchiectasis), फुफ्फुस कैन्सर और चि० पार्श्वशूल (Chronic Pleurisy) के रोग होते हैं । क्षय रोग जनित स्नायुभाव फुफ्फुस के ऊर्ध्व भाग मे होता है । शेष स्नायुभाव फुफ्फुस के निम्न भाग में होते है । फुफ्फुसावरण मे शोथ के कारण हुआ स्नायुभाव प्राय क्षय रोग जनित होता तथा फुफ्फुस के किनारो से आरम्भ होकर अन्दर की ओर प्रसरण करता है । श्वास कृच्छ्रता के लक्षण के अतिरिक्त समय-समय पर खासी के होने व बलगम के गिरने के लक्षण भी होते हैं । तापमान की वृद्धि का लक्षण प्राय नही होता ।

फुफ्फुस मे स्नायुभाव का कारण क्षय रोग हो या श्वासनाली शैथिल्य (Bronchiectasis) हो या कैन्सर हो या चिरस्थायी विद्रधि हो तो उस रोग के लक्षण भी होते है ।

परीक्षा

परीक्षा करने पर श्वास गति तीव्र पाई जाती है फुफ्फुस के ग्रस्त प्रदेश पर छाती दबी हुई दिखाई पडती है । रोग व्यापक हो तो एक ओर या दोनो ओर छाती दबी होती है । उधर का कन्धा भी कुछ गिरा होता है, श्वास-प्रश्वास के साथ उधर की छाती स्वस्थ छाती की अपेक्षा कम हिलती है या कम फूलती है, उधर की छाती पर टकोर ध्वनि, स्वस्थ छाती की अपेक्षा (जिसमे Emphysema के कारण अधिक वायु रुकी हो सकती है) मन्द होती है ।

ऊपर की श्वासनालियो (Hılum) पर श्वास-प्रश्वास ध्वनि ऊँची (Bronchıal या Tubulaı) सुनाई पडती है। नीचे वुलवुलो की-सी ध्वनि (Rales) सुनाई पड सकती है। रोग-ग्रस्त फुफ्फुस पर श्वास-प्रश्वास ध्वनि निर्वल सुनाई पडती है। जीर्ण कास के कारण सीटियो की आवाज (Rhonchı) दोनो ओर सुनाई पड सकती है। मुख मे वोला हुआ शब्द भी रोग-ग्रस्त फुफ्फुस पर सुनाई नहीं पड़ता। जिधर की छाती दवी होती हे हृदय उधर की ओर खिसक जाता है। जिससे हृदय के कारण होने वाला कम्पन अधिक दाईं ओर को या अधिक वाईं ओर को खिसका हुआ दिखाई पडता है। नाडी गति तीव्र होती है। फुफ्फुसो मे रक्तभार के वढने से तथा दक्षिण क्षेपक (Rıght Ventrıcle) के आकार मे वडा हो जाने से फुफ्फुस प्रदेश (Pulmonary Area) पर हृदय का द्वितीय शब्द ऊचा सुनाई पडता है। रोगी की अगुलियो के सिरे मोटे (Clubbıng) दीखते हैं। आक्सिजन की न्यूनता के कारण चेहरे पर नीलापन भी झलकता है, विशेषत जव रोग अधिक वढ जाता है। देखने मे रोगी वडा कृश दीखता है। X-Ray परीक्षा करने पर दोनो फेफडो मे व्यापक वदलिया छाई हुई दीखनी हे।

लक्षण

फुफ्फुस के वायु कोष्ठको की दीवारो के स्थूल हो जाने से उनमे विद्यमान सूक्ष्म फुफ्फुस धमनियो (Pulmonary Capillarıes) की भी दीवारे स्थूल हो जाती हैं जिससे कोष्ठको मे विद्यमान आक्सिजन का रक्तवाहिनियो मे विद्यमान रक्त के अन्दर प्रवेश (Perfusıon) उस सुगमता से नही होता जैसा स्वस्थ फुफ्फुस मे होता है। इस कारण Alveolar Arterıal Oxygen Gradıent जो साधारणत (१०३ ५ M M Hg कोष्ठको की हवा का ९४ २ M M Hg धमनियो के रक्त का) ९ ३ M M Hg होता है इस रोग मे वढ जाता है। रोगी जव विश्राम कर रहा होता है तव तो इतनी आक्सिजन भी उसे पर्याप्त हो जाती है परन्तु जोर से चलने या ऊपर चढने या तीव्र श्रम करने पर आक्सिजन की आवश्यक मात्रा के न मिलने से अर्थात् जव रक्त मे आक्सिजन की समाई (Saturatıon) ८०-६० प्र०श० रह जाती है तव रोगी हाफ जाता है। दूसरे शब्दो मे वायु कोष्ठको और रक्त के वीच मे स्नायुभाव की जो दीवार (Alveolo Capıllary Block) खडी हो गई है उसके कारण आक्सिजन के पर्याप्त मात्रा मे न मिलने से रोगी को शीघ्र-शीघ्र श्वास लेने पडते है। इस प्रकार श्वास कृच्छ्रता (Tachypnoca या Hyperpnoca) अर्थात् श्वास गति की तीव्रता या उथले-उथले तीव्र श्वास लेने का लक्षण प्रकट हो जाता है। पहले तो श्रम करने से ही श्वास कृच्छ्रता होती है पर रोग के वढ जाने पर वैठे-वैठे भी रोगी को श्वास चढा रहता है। खासी होने पर श्वास कृच्छ्रता और वढ जाती है। लेटने मात्र से जैसे कि वाम हृदय दौर्वल्य (Left Heart Faılure) मे श्वासगति तीव्र हो जाती है वैसे इस रोग मे नही होती। मध्यमायु के वाद की आयु मे जव क्रमश श्वास कृच्छ्रता के वढते जाने का लक्षण हो, पहले पुरानी खासी या श्वास रोग का इतिवृत्त भी हो तो फुफ्फुस मे स्नायुभाव या फुफ्फुस जरा रोग का सन्देह करना चाहिये जितना श्वास काठिन्य अधिक हो, उतना ही फुफ्फुस मे स्नायुभाव अधिक समझना चाहिये।

भेदक लक्षण

उर क्षय-जनित-स्नायुभाव हो तो Radıography के द्वारा छाया फुफ्फुस-शिखर मे मिलती है। अन्य रोगो के कारण उत्पन्न छाया फुफ्फुस के निम्न भाग मे मिलती है उसमे वलगम श्लेष्म द्रवयुक्त होती है इस रोग मे वह पूययुक्त होती है। कैन्सर के कारणो Medıastınum की ग्रन्थियो के सूज जाने से Hılum या फुफ्फुस मूल मे छाया आरम्भ होकर फुफ्फुस की ओर फैलती है। उसकी थूक की परीक्षा करने से उसमे कैन्सर सैल मिलते हैं। प्रारम्भिक कैन्सर श्वासनालियो या आमाशय मे होता है।

छाती अन्दर को दवी हुई हो, हृदय एक ओर को खिसका हुआ हो तो फुफ्फुस स्नायुभाव का सन्देह कर लेना चाहिये। कुछएक वर्षो तक रुग्ण रहने के वाद अत मे रक्त को आक्सिजन के कम मिलने से या फुफ्फुसो मे Broncho-pneumonıa का आक्रमण हो जाने से या दक्षिण हृदय के सामने रुकावट के बढ जाने एव उसके आकार मे वडे होकर अत मे फेल हो जाने से मृत्यु होती है।

चिकित्सा

इस रोग की निवारक चिकित्सा कोई नही। रोग के प्रारम्भ मे धुए तथा धूल से वचा जाय और खाँसी, Pneumonıa आदि के होने के वाद प्राणायाम सम्वन्धी व्यायाम नियम से किया जाय तो फुफ्फुस मे स्नायुभाव की वृद्धि को रोका जा सकता है। फिर ज्वर या खाँसी का सक्रमण होने पर जैसा कि शीत ऋतु मे होता है उचित Antıbıotıc औषधि का प्रयोग करना चाहिये। पर इनके

देने से स्नायुभाव पर कोई प्रभाव नहीं होता। रोगी को फुफ्फुस तथा हृदय की शक्ति के अनुसार ही श्रम करना चाहिये। उर क्षय रोग के कारण हो तो तदनुसार औषधि का प्रयोग करना चाहिये। Cortisone तथा दूसरे Corticosteroids के पहले बडी और फिर न्यून मात्रा मे कुछ मास तक देने से लाभ हो सकता है। अन्तिम अवस्था मे फुफ्फुस की असमर्थता को पूरा करने के लिये आक्सिजन का प्रयोग आवश्यक है। मूत्रल औषधियो के प्रयोग तथा लवण की मात्रा को कम करने से दक्षिण हृदय की निर्बलता बढती नही।

रक्त रोग
Diseases of the Blood

रक्त रचना

शरीर में रक्त शरीर का आठवा-नौवा या दसवा भाग या औसतन ६ सेर या ६ लिटर के लगभग होता है। १ फुफ्फुसो मे से यह अपने हीमोग्लोबिन के द्वारा आक्सिजन को अवयवो तक पहुचाता है तथा वहाँ से कार्बोनिक एसिड गैस को लेकर फुफ्फुसो तक पहुचाता है। २ आतो मे से आहार रस को लेकर उसे अवयवो तक पहुचाता है। अवयवो मे उत्पन्न मलो को लेकर उसे त्वचा तथा वृक्को तक पहुचाता है। ३ नि स्रोतस ग्रन्थियो (Ductless Glands) के रसो (Hormones) को शरीर के अवयवो तक पहुचाता है। शरीर मे ऊष्मा की उत्पत्ति करके उसे शरीर मे प्रसारित करता है। ऊष्मा बढ जाय तो इसे बाहर भी करता है। रक्त में आधे के या ३ लिटर के लगभग Plasma और आधे के लगभग दाने (Corpuscles) होते हैं जो रक्त के गतिशील रहने के कारण उसमे घुले-मिले रहते हैं। इन दोनो मे मे अधिकतर रक्तकण (Red Cell) होते है। इनके अतिरिक्त श्वेतकण (Leucocytes) तथा क्षुद्रकण जो अपने पूर्ववर्ती Megakaryocytes के रूपान्तर है (Thrombocytes या Platelets) भी प्रति क्यूबिक मिलिमीटर रक्त मे २ लाख के लगभग होते हैं। ये तीनो कण, रक्त वर्ण मज्जा की Erythron या सूक्ष्म केपरलरीज मे जो चपटी अस्थियो (कसेरुकास्थि, उरोस्थि, पसली, कपालास्थि आदि) मे होती है उत्पन्न होते है। पाण्डु रोग मे जब रक्त मे आक्सिजन की न्यूनता हो जाती है, मज्जा मे रक्तकणो का निर्माण अधिक होने लगता है। रक्त मे विद्यमान Haemopoietin नामक Hormone के ऐसी अवस्था मे बढ जाने से मज्जा मे ऐसा प्रभाव होता है कि उनकी उत्पत्ति अधिक होने लगती है। जीवाणु सक्रमण के होने पर मज्जा मे श्वेत कणो की जो शरीर के रक्षक हैं उत्पत्ति बढ जाती है क्योकि ये Phagocytosis का तथा Repair का काम करते है। ये Antibodies के उत्पादक भी हैं। श्वेत कणो मे से दानेदार कणो (Granulocytes) की उत्पत्ति ही मज्जा मे होती है। Lymphocytes लसीका ग्रन्थियो तथा लसीकामय प्रदेश (Lymph glands+Lymphoid Tissue) मे उत्पन्न होते है। Monocytes नामक श्वेत कण यकृत् प्लीहा आदि के Reticulo endothelial सैलो तथा Lymphoid अवयवो जैसे प्लीहा टान्सिल, Peyer's patches, bonemarrow की रक्त वाहिनियो के सैलो से उत्पन्न होते है। श्वेत कण रक्त के प्रति क्यूबिक मिलिमीटर मे ७ हजार के लगभग होते हैं। जिनमे से दानेदार कणो (Granulocytes) मे से Polymorphonuclears ६० प्रतिशत, Eosinophils २ प्रतिशत के लगभग होते हैं Lymphocytes छोटे २०, बडे (अपूर्णपरिणत) १० प्रतिशत के लगभग होते है। बडे Mononuclears ५ प्रतिशत के लगभग होते हैं। ये Immune bodies उत्पन्न करके जीवाणुओ या बाह्य पदार्थों को नष्ट करने का काम करते हैं तथा इसी कार्य मे बहुत अधिक संख्या मे नष्ट होते रहते है। Polymorphs सख्या मे बढ जाय तो कहीं पर जीवाणुओ द्वारा हुई क्षति का सन्देह करना चाहिये। *Monocytes* बढे हुए हो तो चिरस्थायी सक्रमण का सन्देह करना चाहिये। Eosinophils बढे हो तो Allergy या Parasites का सन्देह करना चाहिये। श्वेत कणो मे बहुत से Enzymes होते है। Acid and Alkaline Phosphatase, Nucleotidase, Transaminase प्रमुख हैं।

प्लाज्मा (Plasma)

क्षारीय प्रतिक्रिया का हलके से पीले रग का १०५० के लगभग भार का द्रव है जिसके १०० सी०सी० मे ६ ½ ग्राम प्रोटीन्स होते है। जिनमे से *Albumin* ४ ग्राम होता हे। यह पदार्थ सिराओ (Capillaries) मे से बाहर नही होता। अत इसके कारण रक्त मे एक दबाव (Colloid Osmotic Pressure) रहता है एव रक्त के इस भार के कारण अवयवो मे सचित हुआ द्रव शिराओ (Veins) की तरफ खिचकर रक्त में आ जाता है। प्लाज्मा मे Globulin २ ग्राम प्रतिशत होता हे। इसमे Viruses, Exotoxins, बाह्य प्रोटीन्स तथा बैक्टीरिया के विपरीत Anti-bodies रहते हैं जिनके कारण रक्त मे प्रतिरोधक शक्ति (Immunity) रहती है। Fibrinogen नामक प्रोटीन जो Globulin

है, आधे ग्राम से कुछ कम मात्रा में होता है। जब कोई सिरा फट जाती है तब रक्त का Thrombin नामक Enzyme इसको Fibrin में बदल देता है जिससे सिरा में उत्पन्न हुआ छिद्र भर दिया जाता है। इस प्रकार यह प्रोटीन सिराओं की मरम्मत का कार्य करता है। जब शरीर में कहीं पर शोथ (Inflammation) होता है तब वहाँ रक्त में से ये प्रोटीन बाहर निकलकर उस अवयव की रक्षा तथा रोहण का कार्य भी करते हैं।

रक्तकण (Red Cells)

एक रक्तकण दोनों ओर नतोदर चक्रिकाकार होता है ताकि गैसें प्लाज्मा उसमें सुगमता से आ जा सकें तथा स्लाइड पर देखने पर ७.२ माइक्रोन व्यास का होता है। इसका खोल या स्वच Cholesterol, Lecithin तथा Nucleoprotein का बना हुआ तथा इसके अन्दर एक अर्ध द्रव पदार्थ Haemoglobin भरा होता है। शुष्कावस्था में जो इसका ९५% होता है। आर्द्र अवस्था में ३४% होता तथा ६५% जल भाग होता है। इसी के कारण यह कण लाल रंग का दीखता है। रक्तकणों के बाह्य भाग में स्नेहाम्ल के होने से उसमें Negative चार्ज रहता है सभी कणों के ऐसा होने से वे कभी भी एक दूसरे से टकराते नहीं। रक्तवाहिनियों की झिल्ली के मेल भी Negative चार्ज के होते हैं उनसे भी इसीलिये टकराते नहीं। एक क्यूबिक मिलीमीटर रक्त में ५०, ५०½ लाख, (५, ५½ मिलियन) रक्तकण होते हैं।

Packed Cell Volume (P C V) तथा Mean Corpuscular Volume (M.C.V.) – -

एक रक्तकण का क्षेत्रफल कितना है, यह Haematocrit नामक एक ११ सेन्टीमीटर लम्बी २½ मिलीमीटर चौड़ी शीशे की नली के द्वारा जाना जाता है। इसमें इसके १०० नम्बर के चिह्न तक Potassium और Ammonium Oxalate के साथ या Heparin के साथ मिश्रित किया हुआ रक्त भर दिया जाता है फिर इसे उतनी देर तक Centrifuge किया जाता है कि जिसके बाद लाल दानों (Red Cells) का लेवल आगे गिरना बन्द हो जाता है। सामान्यतः रक्तकणों का यह लेवल या सेलों के ढेर का लेवल लगभग ४६ सी०सी० के चिन्ह तक होता है। इस संख्या को Packed Cell Volume (P C V) कहते हैं। अब इस हिसाब से १००० सी०सी० रक्त में जितने सी०सी० रक्तकण हों उसे प्रति क्यूबिक मिलीमीटर रक्त में जितने मिलियन रक्तकण हों उस संख्या के द्वारा भाग दे देने से एक सेल का क्षेत्रफल आ जाता है अर्थात्

Volume of Packed Cells in c.c. per 1000 c.c. of Blood / Red Cells in Millions per cu. mm.

Mean Corpuscular Volume अर्थात् (M.C.V.), सी०सी० (Cell Volume) [illegible] इस प्रकार प्रत्येक रक्तकण का क्षेत्रफल [illegible] Cubic Microns होता है। जब शरीर में रक्तकण का क्षेत्रफल इससे बढ़ जाता है, उदाहरणार्थ [illegible] हो जाता है तब उसे बड़ा कण (Macrocyte) कहा जाता है। यदि उसका क्षेत्रफल ७८ Cubic Micron से कम हो जाता है तब उसे छोटा कण (Microcyte) कहते हैं। साधारण क्षेत्रफल के रक्तकण को साधारण कण (Normocyte) कहते हैं। रक्तकण के क्षेत्रफल के बढ़ जाने पर भी उसमें हीमोग्लोबिन की मात्रा साधारण ही रहती है। इसलिए इसे Macrocytic, Hypochromic या Normochromic Anaemia कहते हैं। हीमोग्लोबिन के अतिरिक्त रक्तकण में स्वल्प मात्रा में ग्लूकोज, Enzymes, विटामिन्स, और पार्थिव तत्त्व, Anions Cations, Sulphydryl compounds भी होते हैं।

Haemoglobin

एक Lipoprotein है जो एक लाल रंग के युक्त द्रव्य Haematin (लोहयुक्त Porphyrin) तथा एक श्वेत वर्ण Globin नामक प्रोटीन के मिलने से बना है। इसमें ⅓ प्रतिशतक लोह रहता है अर्थात् १ ग्राम हीमोग्लोबिन में ३.३ मिलीग्राम लोह होता है। शरीर में कुल मिलाकर ४.५ ग्राम लोहा होता है (जन्म के समय शरीर में यह कुल ५ ग्राम होता है) जिसमें से ७२ प्रतिशत हीमोग्लोबिन में तथा २३.५ प्रतिशत मृत हुए रक्तकणों से मुक्त हुआ २ यकृत् प्लीहा तथा मज्जा के Reticulo endothelial Cells में मिलता है जहाँ से यह एक Organic Iron (Ferritin) के रूप में रक्त के द्वारा मज्जा (Marrow) में सञ्चित होता तथा नये रक्तकणों की उत्पत्ति में अर्थात् Erythropoiesis में खर्च होता है। ३.३ प्रतिशत लोहा मास के Myoglobin में (रक्त में से O_2 को मांस सूत्रों में लेने के लिये) २ प्रतिशत Enzymes (Cytochrome, Catalase, Peroxidase) में जो cellular respiration का काम करते हैं मिलता है। स्पष्ट है कि यदि पत्र शाक, फल, गेहूं के आटे, अण्डे तथा दालों के द्वारा लोहा शरीर में न आये (यह हमारे दैनिक भोजन में १२ मिलि० के लगभग होता है पर इसमें से १ मिलि० के लगभग ही लीन होता है) तथा प्रोटीन्स भी शरीर को कम मिले तो हीमोग्लोबिन

की मात्रा शरीर मे कम हो जाती है। इसके आक्सिजन का उत्तम वाहक होने से पाडु रोग मे अवयवो को आक्सिजन कम मिलती है। आक्सिजन के अतिरिक्त शरीर के ४०% CO_2 को भी यह फेफडो तक ले जाता है। प्रतिदिन Haemoglobin के टूटने से २७-२८ मिलिग्राम लोहाश मुक्त होता है। इसमें से एक या १ २ मिलिग्राम अर्थात् बहुत थोडा अश पुरीष-स्वेद-त्वचा और लोम के उतरने वाले छिलको के द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है। शेष नये Haemoglobin के निर्माण में काम आ जाता है। अत भोजन से प्रतिदिन १ मिलिग्राम लोहे की पूर्ति करना आवश्यक होता है (इसीलिये साधारणत स्वस्थ मनुष्य में Iron Balance Positive होता है)। स्त्रियो में आर्तव के होते रहने या गर्भ की स्थिति या स्तन्यपान कराने के कारण प्रतिदिन २ मिलिग्राम के हिसाब से लोहा शरीर से निकल जाता है (अर्थात् उसमें Iron Balance Negative होता है) अत उन्हें पुरुषो से दुगुने लोहे की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। गर्भिणी में गर्भस्थ शिशु को प्रतिदिन २ ७ मिलिग्राम के हिसाब से लोहे की आवश्यकता रहती है। अत आर्तव के न होने पर भी गर्भिणी को प्रतिदिन २ ७ मिलिग्राम लोहे की आवश्यकता रहती है।

भोजन का लोहाश आत के उपरले भाग मे पहुचकर पहले Ferrous Oxide बनता है फिर Mucosal सैलो मे Ferric Oxide बनकर एक प्रोटीन से मिलकर Ferritin (जो लोह, फोस्फोरस, प्रोटीन का कम्पोण्ड है) के रूप मे श्लेष्मकला के सैलो मे से खाने के ५ घटे तक विलीन होता है। वहाँ फिर Ferrous Oxide बन के Portal Vein की सूक्ष्म सिराओ मे प्रवेश करता है। फिर लोहे को बाँधने वाले एक प्रोटीन के साथ बधकर Transferrin के रूप मे जिसे हम Plasma iron कहते हैं तथा जो ३-४ मिलि० होता है यह मज्जा मे या लोहे के कोष स्थानो मे जैसे यकृत् व प्लीहा के Reticulo endothelial सैलो मे जाता है १०० सी०सी० सीरम मे ३००-३६० माइक्रोग्राम Transferrin इन स्थानो तक जा सकता है। इस प्रकार लोहा मज्जा, यकृत् और प्लीहा मे Ferritin तथा Haemosiderin के रूप मे सचित रहता है। आतो मे Ascorbic Acid इसके विलयन मे सहायक होता हे। दूसरी ओर वहाँ Phosphates और भोजन के Phytic-acid या Phytates मे जो लोहा रहता है वह विलयनशील नही होता अर्थात् ये दोनो लोहे के विलयन मे बाधक होते हैं अत अधिक अनाज खाने वाले तथा दूध कम या न लेने वाले मे लोहे का विलयन कम होता है। इसी प्रकार मिट्टी खाने वाले मे भी लोहे का विलयन कम होता है। यह भी देखा गया है कि यदि शरीर मे लोहे की कमी न हो तो शरीर से जितना लोहा प्रतिदिन निकलता है उतना ही विलीन होता है अधिक विलीन नही होता। परन्तु यदि शरीर मे लोहे का भण्डार घटा हुआ हो तो भोजन मे से लोहाश अधिक मात्रा मे विलीन होने लगता है, अर्थात् यह One Way Element है। इसके शरीर से निकलने का कोई रास्ता विशेष नही है। शरीर मे यह पर्याप्त हो तो इसका प्रवेश आगे बन्द हो जाता है या शरीर मे जो इसका भण्डार है वह कुछ बढ जाता है।

हीमोग्लोबिन की मात्रा

Haldane के तरीके मे जब रक्त के १०० सी०सी० मे १४ ८ ग्राम हीमोग्लोबिन होता है तब उसे १०० प्रतिशतक कहा जाता है। Sahli के तरीके से जब वह १०० सी०सी० मे १७ ४ ग्राम होता है तब उसे १०० प्रतिशतक कहा जाता है। इन दोनो की औसत निकालते हुये १४½ ग्राम को १०० प्रतिशतक कह दिया जाता है (लगभग १५ ग्राम। १०० सी०सी० रक्त) १ ग्राम हीमोग्लोबिन १ ३४ सी०सी० आक्सिजन को पकडता एव Oxyhaemoglobin (HbO_2) बन जाता है। इस प्रकार का १०० सी०सी० रक्त १९ ४ सी०सी० आक्सिजन का वाहक होता है इसलिये जितना हीमोग्लोबिन की मात्रा कम होती है उतना ही शरीर को आक्सिजन कम मिलती है। Haemoglobin हलका अम्ल होता है। Potassium के साथ मिलकर यह Potassium haemoglobinate के रूप मे रक्तकण मे रहता है तो एक Alkali हो जाता है। इसीलिये रक्त के कार्बोनिक एसिड के प्रति Buffer का काम करता है। . १२ ग्राम (८०%) हो जाय तो पाण्डु रोग कहा जाता है।

Colour Index

हीमोग्लोबिन तथा रक्तकणो की प्रतिशतकता के अनुपात को Colour Index कहते हे अर्थात् साधारणत जब १०० सी०सी० रक्त मे १४½ ग्राम हीमोग्लोबिन हो और रक्त के प्रति क्यूबिक मिलिमीटर मे ५ मिलियन रक्तकण हो तो Colour Index=हीमोग्लोबिन प्रतिशतक/रक्तकण प्रति क्यूबिक मिलिमीटर जितने होते है उतने हो=१००/१००=१ होता है। जब रक्त-स्राव होकर हीमोग्लोबिन तो विशेष घटे और रक्तकण विशेष न घटे तो यह १ सख्या मे कम हो जाता है। जब तीव्र पाडु (Pernicious Anaemia) या मज्जा के रुग्ण होने के कारण रक्तकणो की मात्रा तो विशेष कम हो जाय हीमोग्लोबिन उतना न

घटे तो यह सख्या १ से अधिक होती है। उदाहरणतया यदि हीमोग्लोबिन २५ प्रतिशतक रह गया है और रक्तकण घटकर २० प्रतिशतक रह गये हैं तो Colour Index= २५/२०=१ २५ समझना चाहिये। इसका अभिप्राय यह भी है कि औसतन प्रत्येक सैल का व्यास ७ २ माइक्रोन से अधिक हो गया है। इसलिये ऐसे पाण्डु रोग को Macrocytic Anaemia कहते हैं। यदि Haemoglobinometer मे पता लगे कि रक्त मे हीमोग्लोबिन ५० प्रतिशतक रह गया है, रक्तकणो मे कोई विशेष न्यूनता नही हुई तो Colour Index ५०/१००=५ है। अब यदि रक्तकण सामान्य आकार के हो तो उसे Normocytic Hypochromic Anaemia कहते हैं। यदि रक्तकण छोटे आकार के हो तो उसे Microcytic Hypochromic Anaemia कहते हैं। साधारणत जब हीमोग्लोबिन ७५ प्रतिशतक से कम हो जाता है, पाण्डु रोग के लक्षण प्रकट होने लग जाते हैं।

Mean Corpuscular Haemoglobin (M C H)

प्रत्येक रक्तकण मे औसतन कितनी मात्रा हीमोग्लोबिन की है, यह जानने के लिये १०० सी०सी० रक्त मे विद्यमान हीमोग्लोबिन की मात्रा के हिसाब से १००० मी०मी० मे जो मात्रा निकले उसे रक्त के एक क्यूबिक मिलिमीटर मे विद्यमान रक्तकणो की सख्या से भाग दे दिया जाता है अर्थात् उतने माइक्रो माइक्रोग्राम हीमोग्लोबिन प्रत्येक रक्तकण मे होता है। इस प्रकार स्वस्थावस्था मे यह सख्या १०० सी०सी० रक्त मे हीमोग्लोबिन ×१०/ रक्तकणो की सख्या मिलियन्स मे =१४½×१०/५≐२९ माइक्रो माइक्रोग्राम हीमोग्लोबिन प्रत्येक रक्तकण मे होता है। यह सख्या रक्तकण के रग (Chromicity) का मापक है अर्थात् इस सख्या के अनुसार पाण्डु (Anaemia) को Hypochromic या Hyperchromic कहा जाता है। सख्या बडी हो तो Macrocytic anaemia का सन्देह करना चाहिये।

Mean Corpuscular Haemoglobin Concentration (M C H C)

प्रत्येक रक्तकण मे हीमोग्लोबिन की औसतन प्रतिशतक मात्रा कितनी है यह जानने के लिये १०० सी०सी० रक्त मे विद्यमान हीमोग्लोबिन की मात्रा को १०० की सख्या से गुणा करके प्राप्त सख्या को Packed Cell Volume की सख्या अर्थात् १०० सी०सी० रक्त मे ठोस हो गये रक्तकणो के क्षेत्रफल की सूचक सख्या से भाग दे देना चाहिये। साधारणत यह सख्या=हीमोग्लोबिन प्रति १०० सी०सी० ×१००/Packed Cell Volume=१४½×१००/४६= लगभग ३२-३४ प्रतिशतक है अर्थात् साधारणत रक्तकण का ३२-३४ प्रतिशतक भाग हीमोग्लोबिन से बना हुआ है जिसे Normochromic कहते हैं। लोहे की अथवा हीमोग्लोबिन की कमी से उत्पन्न पाण्डु रोग मे यह सख्या घटी हुई होती है जिसे Hypochromia कहते हैं। ज्यो-ज्यो रोगी अच्छा होता जाता है यह सख्या क्रमश बढती जाती है। पाण्डु रोग मे कभी-कभी M C H की सख्या नार्मल से अधिक भी हो सकती है। परन्तु M C H C की सख्या कभी भी नार्मल से अधिक नही हो सकती क्योकि यह रक्तकण के हीमोग्लोबिन के द्वारा पूर्ण (Saturated) होने को सूचित करती है और पाण्डु रोग मे रक्तकण रग से पूर्ण Normo Saturated तो हो सकते हैं, अधिक रग वाले (Over Saturated) हो ही नही सकते। इस सख्या के कम होने को Hyposaturation कहा जाता है। यह Saturation की कमी लोहे से पूर्ण होती है।

रक्तकणो का नाश तथा उत्पत्ति

रक्तकण की आयु लगभग चार मास होती है अर्थात् रोज १/१२० सख्या इनकी नष्ट होती है। इनके अन्दर क्रमश Glycolysis या ग्लूकोज के खपने की प्रक्रिया कम होती जाती है। इनके Enzymes कम होते जाते है। Adenosine diphosphate (A D P) से A T P अर्थात् Adenosine triphosphate के जो इनको शक्ति प्रदान करता है निर्माण के कम होते जाने से ये कुछ गोल से हो जाते एव टूटने लगते हैं। जब ये टूटने लगते हैं तो प्लीहा आदि के Reticulo endothelial सैल इनके टुकडो को पकड लेते हैं। उनका Bilirubin तो प्लाज्मा द्वारा यकृत् मे जाता है तथा वहाँ से पित्त द्वारा बाहर कर दिया जाता है। लोहा एक प्रोटीन के साथ बधा हुआ उनमे सचित रहता है और वहाँ से Ferritin या Haemosiderin के रूप मे मज्जा मे जाता है। कुल ५ लि० रक्त मे ७५० ग्राम हीमोग्लोबिन होता है। रक्तकण की आयु १२० दिन की होती है। इस हिसाब से ६ ग्राम हीमोग्लोबिन प्रतिदिन नष्ट होता है और क्योकि उसके प्र० ग्रा० से ३५ मिलि० पहले Biliverdin और फिर Bilirubin बनता है अत २१०-२५० मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन उसकी उत्पत्ति होती है। यह Urobilinogen बनकर मल से प्रतिदिन निकल जाता है। लगभग ८३ प्रतिशतक रक्तकण तथा लगभग ७ ग्राम

हीमोग्लोबिन प्रतिदिन नष्ट होते रहते हैं तथा इतने ही कणो और हीमोग्लोबिन की प्रतिदिन उत्पत्ति भी होती है, जिस कार्य के लिये भोजन मे प्रोटीन तथा स्वल्प लोह-युक्त भोजन जैसे पत्र, शाक, गेहू के आटे, फल आदि की आवश्यकता रहती है साधारणत तो रक्तकणो के टूटने से जो Globin नामक प्रोटीन मुक्त होता है वह Amino acids बनकर शरीर मे काम आ जाता है, जो Proto Porphyrin मुक्त होता है उससे Plasma Bilirubin बनता है, जो लोहा मुक्त होता है वह नये रक्तकणो के निर्माण के लिये पर्याप्त होता है। पर यदि आर्तव अधिक हो, अर्शोरोग आदि से रक्त स्राव होता हो, बाह्य लोह की भी आवश्यकता रहती है। इसी प्रकार बालक को भी लोहे की आवश्यकता रहती है। रक्त वर्ण मज्जा (Red Marrow) मे जो रीढ की अस्थियो, उरोस्थि, पसलियो, कपालास्थियो, जघनास्थियो मे पाई जाती हैं अन्दर विद्यमान रक्तवाहिनियो की आभ्यन्तर कला के जिन जालाकार सैलो (Reticulo Endothelial Cells) मे रक्त के रक्तकण विकसित होते हैं, उन्हें पहले Haemocytoblasts और कुछ विकसित होने पर Proerythroblasts कहा जाता है। क्योकि ये आकार में रक्तकणो से बडे होते है इन्हें Megaloblasts भी कहा जाता है। इस प्रारम्भिक अवस्था मे इनका Cytoplasm भी Basophil या हलका नीला होता है Acidophil या गुलाबी नही होता। जब ये सैल विकसित होते-होते रक्तकण के आकार के हो जाते है, तब इन्हे Normoblast कहते हैं। मज्जा में यहाँ तक इनका विकास तभी ठीक-ठीक होता है जब तक यकृत् तथा आमाशय की आभ्यन्तर कला मे एक विशेष रक्तोत्पादक तत्व (Haemopoietic Factor) की उत्पत्ति ठीक-ठीक होती रहे क्योकि Megaloblastic Anaemia मे Liver Extract, Stomach Extract, Folic Acid, तथा Vit B_{12} के देने से पूर्ण लाभ हो जाता है। इन्ही के द्वारा प्रारभिक रक्तकण के Cytoplasm तथा Nucleus में प्रोटीन और Nucleic acid उत्पन्न हो पाते हैं। इनके Chromosomes मे Desoxyribo Nucleic acid विशेषत सचित होता है तथा इनके Nuclei और Cytoplasm मे Ribonucleic acid तथा Chromatin विशेषत सचित होते है। Ribonucleic acid के कारण ही ये कण Basophil होते है। धीरे-धीरे मज्जा के इन सैलो की मींगी या Nuclei लुप्त हो जाती है और इनमे हीमोग्लोबिन उत्पन्न होता जाता है। इनका आकार भी रक्तकण जितना हो जाता है और ये Acidophil या गुलाबी रग के हो जाते हैं और असली रक्तकण बन जाते हैं। इस अवस्था मे इन्हे Erythrocyte कहा जाता है। Normocyte से Erythrocyte तक के इनके परिवर्तन के लिये इन्हे Iron, Copper, Vitamin 'C', Cobalt, Sex Glands, Adrenals, Anterior Pituitary Gland के Hormone (ACTH) तथा Thyroxine (Metabolism के उत्तेजक तत्त्व) की आवश्यकता रहती है। Erythropoietin नामक एक पदार्थ जो ग्लाइको प्रोटीन है और विशेषत वृक्को से उत्पन्न होता है रक्तकणो के निर्माण का नियामक कहा जाता है। वृक्क रोग मे इसकी उत्पत्ति कम हो जाती है।

जब मज्जा मे रक्तकणो की वृद्धि यथोचित रूप मे नही होती तब रक्त के अन्दर कुछ बडे आकार के रक्तकण भी दिखाई पडते है। रक्त मे विषम आकृति के अर्थात् कुछ बडे कुछ छोटे रक्तकण हो तो इस अवस्था को Anisocytosis (Aniso=असमान) कहते है। जब मींगी का कुछ अश किसी-किसी कण मे दीखता हो तो इसे Reticulocytosis कहते है। जब अपूर्ण परिणत रक्तकणो मे हलके नीले रग के दाने दिखाई देते है या रक्तकण नीले रग के दीखते हैं तब उन्हे Stippled Cells या Basophilic Cells कहते हैं। अवयवो मे आक्सिजन की कमी हो जाय जैसे कि तीव्र व्यायाम करने से या ऊचाई पर चले जाने मे होती है तब शरीर मे कोई ऐसा पदार्थ उत्पन्न हो जाता है जिसके मज्जा मे जाने से वहा रक्तकणो की उत्पत्ति तीव्रता से होने लगती है।

पाण्डु रोग

पाण्डु रोग उसे कहते है जब रक्तकणो की सख्या प्रति क्यूबिक मिलिमीटर नार्मल से कम हो जाय या हीमोग्लोबिन की मात्रा १५ ग्राम प्रतिशत से कम हो।

Anaemia वात पाण्डु या रक्तोत्पत्ति वैषम्य-जनित पाण्डु Dyshaemopoietic Anaemia

(क) विटामिन बी$_{12}$ तथा फौलिक एसिड की न्यूनता से होने वाला पाण्डु—Dyshaemopoietic Anaemia Due to Vit$_{12}$ and Folic Acid Deficiency

रक्तवर्ण मज्जा के अन्दर होने वाली रक्तकणो की उत्पत्ति मे कमी हो जाने से जो पाण्डु रोग उत्पन्न होता है उसे वात पाण्डु या Dyshaemopoietic Anaemia कहा जाता है। रक्तकणो के निर्माण के लिये एक तो Castle का बाह्य तत्त्व (Extrinsic Factor) जो Dietary Vitamin B_{12} है आवश्यक होता है। यह जान्तव प्रोटीन्स से अर्थात् यकृत् तथा मास से विशेषत

तथा अंडे व दूध से स्वल्प मात्रा मे प्राप्त होता हे तथा मज्जा मे Megaloblasts को Normoblasts मे परिवर्तित करने तथा सुषुम्ना काण्ड के नाडी सूत्रो (Neurones) और हाथ पैर की नाडियो (Peripheral Nerves) के पोषण के लिए अत्यावश्यक होता है। रक्तकणो की उत्पत्ति के लिए Castle का आभ्यन्तर तत्त्व (Intrinsic Factor of Wilkinson) जो आमाशय रस (Gastric Juice) मे विद्यमान एक Ferment या Enzyme के सदृश Mucoprotein या Mucopolysaccharide प्रकृति का तत्त्व होता है आवश्यक होता है। यद्यपि यह अभी तक पृथक् नही किया गया है इसे Haemopoietin कहा जाता है तथा पेट के Glands से, fundus मे विशेषत उत्पन्न होता है। यह बाहर से भोजन द्वारा आये बाह्य तत्त्व (Extrinsic Factor) को बाधने अथवा शरीर मे विलीन होने योग्य बनाने का कार्य करता है। इन दोनो के सहयोग से ही Intrinsic Factor तथा Vitamin B_{12} से बना Complex एक Haematinic Principle या Anti-anaemic Principle या रक्तकणो के बनाने वाला Maturation Factor क्षुद्रान्त्र से विशेषत उसके ileum से pH ५-७ तक की उपस्थिति मे विलीन होकर यकृत् मे पहुँचता और वहा सचित होता रहता है जहा यह २००० माइक्रोग्राम मात्रा मे अर्थात् यकृत् के प्रति ग्राम मे १ माइक्रोग्राम मात्रा मे पाया जाता है तथा वहा से रक्त द्वारा रक्त-वर्ण मज्जा की सूक्ष्म रक्तवाहिनियो मे पहुँचता और रक्तकणो के विकास मे सहायक होता है अर्थात् Deoxyribonucleic acid (D N A) के पूर्वरूप Deoxyribosyl के Synthesis मे एक Coenzyme का पार्ट अदा करता है। इन दोनो मे से जब किसी एक की भी न्यूनता हो जाती है तो मज्जा मे Megaloblastic Anaemia तथा रक्त मे बडे रक्तकणो वाला पाण्डु Macrocytic Anaemia हो जाता है अर्थात् इस अवस्था मे रक्तकण का व्यास ८.४ माइक्रोन, M C V १००-१४५ घन (Cubic) माइक्रोन होता है। M C H ३३-३५ माइक्रो माइक्रोग्राम के लगभग होता है। M C H C ३२ प्र० श० से कुछ अधिक होता है।

हमारे भोजन मे विशेषत पत्र शाको मे लिवर, मास तथा यीस्ट मे एक बी ग्रुप का Vitamin, Folic Acid होता है जो Jejunum मे से विलीन होकर यकृत् मे जाकर Folinic Acid के रूप मे सचित होता रहता हे तथा वहा से रक्त द्वारा मज्जा मे पहुचकर रक्तकणो के विकास मे सहायक होता हे अर्थात् उनमे Deoxyribonucleic acid के एक Precursor के निर्माण मे Enzyme का काम करता है जिससे इसे भी Erythrocyte Maturation Factor कहा जाता है। जब यह भोजन मे कम होता है या यह Ascorbic Acid के अभाव मे अपने क्रियाशील रूप Folinic Acid (Citrovorum Factor या Tetrahydrofolic acid) मे परिवर्तित नही हो पाता या आतो मे से इसका विलयन ठीक-ठीक नही होता, या यकृत् इसे ठीक-ठीक सचय नही कर पाता तब भी मज्जा मे Megaloblasts भली प्रकार Normoblasts मे विकसित नही हो पाते जिससे Megaloblastic या Macrocytic Anaemia हो जाता है। इनमे से B_{12} तथा Folic Acid की न्यूनता से होने वाला एक तो **हीन-भोजन-जनित-पाण्डु** (Nutritional Megaloblastic Anaemia या Tropical Anaemia) है। दूसरा इन दोनो के आत मे विलयन के घट जाने से होने वाला **ग्रहणी-पाण्डु** (Megaloblastic Anaemia of Sprue या Malabsorption syndrome) है तथा Folic Acid के पर्याप्त मात्रा मे न मिलने से होने वाला **गर्भिणी-पाण्डु** (Megaloblastic Anaemia of Pregnancy) है जो गर्भावस्था के पिछले महीनो मे होता है तथा डिब्बो के दूध पर अर्थात् हीन भोजन पर पलने वाले ४ से १८ मास तक के बालको मे होने वाला **बाल-पाण्डु** (Megaloblastic Anaemia of Infancy) है जो औरो के समान Folic Acid की कमी तथा गौण रूप मे Vitamin B_{12} और विटामिन 'सी' की कमी से होता है। ये सब पाण्डु Macrocytic Type के होते हैं। यकृत् वृद्धि (Cirrhosis) के कारण भी Megaloblastic Anaemia होता है (Anaemia of liver - disease) क्योकि यकृत् इस Haem Principle को स्टोर नही करता, परन्तु वह भी बहुत सभवत हीन भोजन जनित (Nutritional Anaemia) ही होता है। इन सबको फौलिक एसिड की न्यूनता से होने वाला पाण्डु भी कहते हैं। Gastrectomy के शल्यकर्म के बाद भी Megaloblastic पाण्डु होता है।

हीन भोजन जनित पाण्डु साधारणत तो अस्पष्ट रूप मे रहता है परन्तु जब कोई ज्वर हो जाता अर्थात् विषम ज्वर होता या अमीबिका प्रवाहिका होती या कोई दूसरा जीवाणु जनित रोग होता है तब यह स्पष्ट हो जाता है अर्थात् हीन भोजन करने वाले व्यक्ति—गर्भिणी या शिशु—मे रोग क्षमता नही होती। परीक्षा करने पर अधिकतर रक्तकणो का व्यास ७ ७ माइक्रोन से अधिक होता है तथा Colour Index १ से अधिक होता अर्थात् यह पाण्डु Macrocytic तथा Hyperchromic किस्म का होता है। हीन भोजन

जनित पाण्डु (Nutritional Anaemia) ३०-३५ की आयु के नीचे होता है। त्रिदोष पाण्डु (Pernicious A) इससे बडी आयु मे होता है।

औषधि जनित वातपाण्डु

Phynytoin (Epanutin) Primidone (Mysoline) तथा Barbiturates के प्रयोग मे कभी-कभी Macrocytic Anaemia हो सकता है जो Folic Acid देने मे ठीक हो जाता है। Daraprim के देने से भी ऐसा पाण्डु हो सकता है जो Folinic Acid के देने मे ठीक हो जाता है। ये औषधियाँ Folic acid-antagonist अर्थात् तद्विरोधी है।

(ख) लोहे की न्यूनता से होने वाला पाण्डु—Dyshaemopoietic Anaemia due to Iron Deficiency

पाण्डु रोगो मे सबसे अधिक सुलभ यही पाण्डु है।

हीमोग्लोबिन के निर्माण के लिये २७ मिलि० लोह की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। इसमे से २० मिलि० शरीर के अन्दर से टूटे हुए रक्तकणो से आता है, शेष भोजन मे आता है। यदि भोजन का लोह आतो मे से ठीक-ठीक विलीन न हो जैसा कि आतो मे विदाह जनित वेक्टीरिया के द्वारा Phytase के उत्पन्न हो जाने से होता है, या कही से रक्तस्राव के कारण शरीर मे से लोहे की निकासी अधिक होती हो तो भी लोहे की न्यूनता होती जाती है। साधारणत Serum के १०० मिलिलि० मे ९०-१५० माइक्रोग्राम लोह होता है। इस रोग मे यह मात्रा घट जाती है। मज्जा मे Haemosiderin नहीं होता।

(१) स्त्री पाण्डु—Hypochromic Anaemia of Women, Nutritional Hypochromic Anaemia

२० से ४५ वर्ष की अर्थात् मध्यम आयु की स्त्रियो मे आर्तव के द्वारा तथा गर्भ के द्वारा, दूध (Lactation) के द्वारा लोहाश के बाहर जाते रहने से भोजन मे लोहे की आवश्यकता विशेष रहती है। साधारणत ६०० मिलिग्राम लोहा ऐसी स्त्री के शरीर मे से प्रति वर्ष बाहर आता है। अब यदि इस आयु मे स्त्री को प्रदर रोग रहे या मलेरिया आदि कोई जीवाणु जनित रोग (Infectious) हो जाय तो स्त्री को पाण्डु हो जाता है विशेषत रक्तस्राव की अधिकता से यह पाण्डु रोग होता है। जिसे लोह की न्यूनता से उत्पन्न पाण्डु (Iron-Deficiency Anaemia या Hypochromic Anaemia of Women) कहते हैं। ऐसी स्त्री पाण्डु की परीक्षा की जाय तो रक्तकणो का औसतन व्यास ६.२ से ६७ माइक्रोन, Mean Corpuscular Volume ७८ Cubic Microns से कम (६०-८० Cubic Micron तक) Mean Corpuscular Haemoglobin Concentration ३२ प्रतिशतक से कम होता है (२२-२८ प्र०श० तक) M C H १८-२३ मा० मा० ग्राम होता है। इसलिये इसे Microcytic Hypochromic Anaemia कहते हैं। इस रोग मे Serum iron घट जाता है। Bone marrow मे Stainable लोह की मात्रा बहुत कम होती है। इस पाण्डु मे Serum के अन्दर लोहा १०० मिलिलि० मे ३०-५० मा० ग्रा० रह जाता है। हीमोग्लोबिन ४० या ५० प्रतिशतक रह जाता तथा Colour Index १ Unit से कम (७) होना है अर्थात् RBC ३ मिलियन क्यू० मि० मी० से कम नही होते। आमाशय की एसिड स्रावी ग्रन्थियो मे लघुता (Atrophy) होती है जिससे एसिड बहुत कम बनता है (Achlorhydria)। इसकी कमी के कारण लोह का विलयन जो ग्रहणी आशय (Duodenum) मे होता है, नही हो पाता। Achlorhydric Anaemia of Women या मन्दाग्नि जनित स्त्री पाण्डु—स्त्रियो को गर्भावस्था के पिछले महीनो मे लोहे की न्यूनता से भी Hypochromic पाण्डु रोग हो सकता है यदि उसे भूख न लगती हो, आमाशय शोथ रहता हो, आमाशय रस मे अम्ल बहुत कम हो, श्लेष्म रस Mucus बहुत अधिक हो, जिह्वा साफ चट हो, रक्त परीक्षा करने पर रक्तकण Hypochromic तथा Microcytic हो, Colour Index कम हो तो लोहे की न्यूनता से Normoblasts विकसित नही हो पाते, ऐसा समझना चाहिये। यह रोग घातक नही पर इससे कार्य शक्ति तथा रोग-रोधक शक्ति घट जाती है। Hb ११ ग्राम प्र०श० से कम होता है।

(२) लोह की न्यूनता से होने वाला बाल पाण्डु—Infantile Anaemia due to Iron Deficiency, Hypochromic Anaemia of Infancy

(क) सहज बाल पाण्डु :

माता से बच्चे को गर्भ के पिछले तीन महीनो मे लगभग ३७५ मिलिग्राम लोहा प्राप्त होता है। परन्तु यदि माता पाण्डुर हो या शिशु ७-८वे मास मे समय से पहले हो जाय तो उसे लोहा कम मिलता है तथा जोडो (Twins) को भी लोहा कम मिलता है जिससे दूसरे

महीने के अन्दर-अन्दर ही उस शिशु को पाण्डु हो जाता है इसे सहज बाल पाण्डु कहते हैं।

(ख) पोषण की न्यूनता से होने वाला बाल पाण्डु—Nutritional Infantile Anaemia

केवल डिब्बे के दूध पर पाले गये या उबाले हुये गाय के दूध पर पाले गये बालको मे ८वे से ११वे मास के बीच मे होता है। इन दूधो मे लोहे या Ascorbic Acid जो लोहे के शरीर मे विलयन के लिये आवश्यक होता है, न होने से यह होता है अर्थात् यह बाल पाण्डु Normocytic Hypochromic Anaemia होता है। विशेषत यदि ऐसे बालक मे कोई ज्वर रहे तो लोहे के शरीर मे विलयन के और भी कम हो जाने से यह पाण्डु होता है। शरीर मे कही पर पूयभाव Sepsis हो या क्षयरोग हो तो भी पाण्डुता होती है उनसे इस लोह हीन जनित पाण्डु का भेद करना चाहिये। उनमे Hb की प्रतिशतक मात्रा अधिक नही गिरती जितनी इनमे गिरती है। उनमे रक्तकण Normocytic होते है। Total iron binding capacity जो नार्मल १०० मिलिलि० मे २५०-३५० माइक्रोग्राम होती है उनमे कम हो जाती है जबकि वह इस रोग मे बढकर ३५०-५०० माइक्रोग्राम हो जाती है।

तीव्र रक्तस्राव जनित पाण्डु मे त्वचा फीके रग की ठण्डी गीली सी हो जाती है। श्वास उथला तथा तीव्र, नाडीगति अस्पष्ट तथा तीव्र, रक्तभार गिरा हुआ और मूत्र की निकासी बहुत कम या बन्द हो जाती है। रक्त द्वारा रक्त, प्लाज्मा या ग्लूकोज सेलाइन देने से लाभ प्रतीत होता है।

चिरस्थायी रक्तस्राव जनित पाण्डु

कैन्सर रोग मे रक्तस्राव के कारण पाण्डुता होती है। ऐसे रोगी मे Hb 80% Colour Index ६ होता है। इसी प्रकार अर्शो रोग जनित रक्तस्राव से भी पाण्डु रोग हो जाता है। Peptic ulcer से भी यह लक्षण हो सकता है। Hookworm रोग, Ulcerative colitis मे भी रक्तस्राव पाण्डु होता है। २-३ मिलिलि० रक्तस्राव मे १ मिलि० के लगभग लोहा नष्ट होता है।

(ग) विष जनित पाण्डु—Dyshaemopoietic Anaemia due to some toxin or Secondary Hypoplastic Anaemia or Bone marrow failure

Marrow Hypofuction, Marrow aplasia, Aplastic anaemia, सहज या आगन्तु दो प्रकार का होता है। यहा आगन्तु का उल्लेख किया जाता है।

कभी-कभी किसी जीवाणु विष के मज्जा पर दुष्प्रभाव या Degeneiative प्रभाव से अथवा किसी तीव्र औषधि से जैसे Benzene, Organic Arsenic Lead, Gold, Chloramphenicol, Mepacrine, Tridione, Thiouracil, Butazolidin, Dilanlin, Mesantoin, Chlorpromazine, कोलटार के धूम, Radium, आदि किसी के मज्जा पर दुष्प्रभाव से किसी एक मे रक्तकणो का निर्माण कर्म ही मन्द हो जाता है। शरीर के अन्दर उत्पन्न होने वाले किसी विषैले द्रव्य जैसे जीर्ण वृक्क रोग (Chronic Nephritis) मे मूत्र विष सचार (Uraemia) या यकृद्रोग Hepatitis के कारण भी मज्जा मे क्षीणता (Hypoplasia) होकर पाण्डु हो जाता है Rheumatoid arthritis मे भी पाण्डु होता है। कैन्सर, ग्रहणी रोग, त्रिदोष पाण्डु, Leukaemia के उपद्रव रूप मे भी यह रोग हो सकता है। X-Rays तथा एटम के Radiation का मज्जा पर दुष्प्रभाव होकर भी मज्जा रोग जनित पाण्डु हो सकता है। इन अवस्थाओ मे रक्तकणो की वृद्धि के ठीक-ठीक न होने से उनका नाश अधिक होता एव Secondary Haemolytic Anaemia भी होता है। यह पाण्डु धीरे-धीरे अज्ञात रूप मे होता है, और इस अवस्था मे Thrombocytopenia के होने के कारण रक्तस्राव होने का लक्षण भी होता है। इस अवस्था मे रक्तकण नार्मल आकार के नार्मल रग के होते हैं अर्थात् यह पाण्डु Normocytic तथा Normochromic होता है तथा पाण्डु के साथ-साथ Polymorphic Leucopenia होने का लक्षण भी होता है जिससे कोई Infection भी होता है। रक्तकणो की सख्या बहुत घटी हुई होती है (२ मिलियन)। Colour Index १ Unit होता है। स्पष्ट है कि इस प्रकार का पाण्डु एक कष्ट-साध्य रोग है। रक्तजनक औषधियो से इसमे कोई लाभ नहीं होता। इस रोग का रोगी युवक, श्वेत कुछ पीले रग का होता पर कृश नही होता। वृक्क रोग जनित पाण्डु Normo, Micro या Macrocytic किसी प्रकार का हो सकता है। यकृद्रोग जनित Macro या Normocytic होता है। विटामिन 'सी' की न्यूनता मे होने वाला पाण्डु (Anaemia due to Vitamin 'C' deficiency) Scurvy रोग मे होता है। Thyroxine की कमी से (Anaemia due to thyroxine deficiency) Myxoedema रोग मे होता है। यह रोग अति कष्टसाध्य या असाध्य है।

(घ) त्रिदोष पाण्डु—Dyshaemopoietic Anaemia Due to Lack of Intrinsic Factor Pernicious Anaemia Addison's Anaemia

जब ४० से ७० वर्ष की आयु मे आमाशय की श्लेष्म-कला तथा दूसरे स्तरो के क्षीण (Atrophied) हो जाने से एसिड, पेप्सीन तथा आभ्यतर तत्त्व (Intrinsic Factor of Castle) जो Fundus की श्लेष्मकला से उत्पन्न होता है, जिसे Haemopoietin कहते है सभी लुप्त हो जाते है तब इसे Achylia Gastrica कहते हैं। सम्भवत इन व्यक्तियो मे आमाशय की यह निर्बलता सहज होती है। उनमे पलित रोग भी आयु से पहले हो जाता है। Gastrectomy के बाद भी यह रोग हो सकता है, इस आभ्यन्तर तत्त्व के कमी या अभाव के कारण भोजन के द्वारा आये हुये बाह्य तत्त्व (Extrinsic Factor तथा Vitamin B_{12}) से बनने वाला Haematinic Principle बनकर यकृत् प्लीहा और वृक्को मे जमा नही हो पाता जिसमे रक्त वर्ण मज्जा के अन्दर उत्पन्न होने वाले Megaloblasts भली प्रकार से विकसित होकर वहा Erythroblasts और Normoblasts मे परिवर्तित नही हो पाते एव बडे-बडे रक्तकण रक्त मे प्रसरण कर जाते हैं। देखने से रोगी के चेहरे पर निम्बू का सा पीलापन झलकता है। बाल सफेद हो गये होते है। शरीर देखने मे दुबला नही होता। उसे भोजन के लिये अरुचि की शिकायत रहती है। Peripheral Neuritis का लक्षण अर्थात् अगुलियो मे चमचमाहट Tingling, तथा सुप्ति Numbness का लक्षण भी रहता है। प्राणियो के आमाशय को सुखाकर बनाये चूर्ण (Desiccated hog's stomach) से इस रोग को ठीक किया जा सकता है। इससे भी यही पता लगता है कि Intrinsic Factor का अभाव इस रोग का कारण है। मज्जा की परीक्षा करने मे उसमे Megaloblasts तथा Normoblasts अधिक सख्या मे पाये जाते हैं। Hemosiderin बढा हुआ मिलता है। रक्त की परीक्षा करने से रक्तकणो का व्यास ८ ५ माइक्रोन के लगभग पाया जाता है जिससे इस पाण्डु को Macrocytic या Megaloblastic Anaemia कहते हैं। रक्तकणो के निर्माण मे ह्रास हो जाने से ३, २ या १ मिलियन रक्तकण एक क्यूबिक मिलिमीटर मे पाये जाते हैं। श्वेतकण भी घटकर एक क्यूबिक मिलिमी० मे ४ हजार रह जाते है तथा क्षुद्र कण ५० हजार रह जाते हैं। हीमोग्लोबिन भी घट जाता है पर उतना नही, जितना रक्तकण। वह ३० या ४० प्रतिशतक (५ ग्राम प्र०श०) होता है, इसीलिये Colour Index १ यूनिट से ऊपर होता है (१ ३)। Mean Corpuscular Haemoglobin ५० माइक्रो माइक्रोग्राम Mean Corpuscular Haemoglobin Concentration ३५ के अर्थात् नार्मल के लगभग होता है। बहुत से रक्तकणो के आकार मे बडा होने के कारण Mean Corpuscular Volume ११५-१३० क्यूबिक माइक्रोन के लगभग होता है। Poikilocytosis, Anisocytosis, Megalocytosis, Polychromasia तथा Stippled Basophilic Cells के होने के लक्षण होते है। इन अप्राकृतिक रक्तकणो के Reticulo Endothelial Cells के अन्दर अधिक मात्रा मे टूटने से Bilirubin की मात्रा रक्त मे अधिक होती है अर्थात् Icterus Index 4 Units से अधिक होता है। मूत्र तथा मल मे Urobilinogen अधिक मात्रा मे होता है। इसीलिये त्वचा मे पाण्डुता के साथ पीलापन भी होता है। Van den Bergh Reaction Indirect पाजिटिव होता है। इस रोग मे आमाशय श्लेष्मकला मे क्षीणता (Atrophy) होती है जिससे रोगी को भूख नही लगती। आमाशय रस की मात्रा बहुत कम होती है। Histamine के इजेक्शन के बाद भी कम रहती है, स्वतन्त्र Gastric acid होता ही नही। इन सबसे यह भी स्पष्ट है कि Gastrectomy के शल्यकर्म के बाद शरीर मे विटामिन B_{12} का देना आवश्यक हो जाता है। पर इसके अतिरिक्त कभी-कभी सुषुम्नाकाण्ड के सूत्रो (Postero lateral Columns) मे भी क्षीणता हो जाती है अर्थात् Subacute Combined degeneration of the Spinal Cord हो जाता है। इस रोग की उचित चिकित्सा न हो तो २-३ वर्ष मे घातक हो जाता है। पेट मे कैन्सर के रोग से इसका सन्देह नही होना चाहिये। उसमे भार अधिक घटता है, रोगी का रग पीला न होकर फीका होता है, आमाशय रस मे रक्त तथा Lactic Acid मिलते हैं।

सीसक पाण्डु—Anaemia due to Lead

सीसे के अन्दर जाते रहने से Haemoglobin के निर्माण मे विषमता या न्यूनता आ जाती है जिससे शरीर का रग कुछ फीका-सा हो जाता है। मूत्र मे Coproporphyrin की मात्रा विशेष बढ जाती है। इसी प्रकार जीर्ण वृक्क रोग Azotaemia के कारण मज्जा मे रक्त निर्माण या Erythropoiesis मे न्यूनता आ जाती है उसमे NPN ७५ मिलि० प्र०श० से अधिक होता है।

वात पाण्डु या Dyshaemopoietic Anaemias के लक्षण

(क) शरीर मे रक्तकणो तथा हीमोग्लोबिन के कम हो जाने से अगो को आक्सिजन की मात्रा कम प्राप्त होती है जिससे उनकी कार्य शक्ति घट जाती है। उदाहरणत आक्सिजन के कम मिलने से हृदय माँस शिथिल (Dilated) हो जाता है। श्रम करने पर धडकने लग जाता है तथा रोगी को श्वास चढने लग जाता है, उसकी निर्बलता से रक्त भार गिर जाता है, इसकी निर्बलता से ही रोगी के पाँवो मे श्वयथु हो जाता है। आमाशय को आक्सिजन कम मिलने से पाचक अग्नि मन्द हो जाती है, क्षुधा कम लगती है, भोजन के बाद पेट कुछ भारी लगने लगता है। मस्तिष्क को रक्त कम मिलने से मानसिक श्रम नही होता, सहन शक्ति कम हो जाती है तथा निद्रा कम आती है। इस रोग मे बहुधा जिह्वा सूज जाती है अर्थात् रक्त वर्ण हो जाती है (Glossitis हो जाता है) तथा मुख आ जाता है (Stomatitis हो जाता है) विशेषत ग्रहणी तथा त्रिदोष पाण्डु मे ऐसा होता है। देखने मे रोगी का शरीर पाण्डुर दीखता है। विशेषत. अगुलियो के सिरे, नख, नाक, कान, तालु, नेत्र, जिह्वा ये अग पाण्डुर दिखाई पडते हैं। पाण्डु रोग तीव्र हो, विशेषत त्रिदोष पाण्डु (Pernicious Anaemia) हो तो सुषुम्ना काण्ड को आक्सिजन न मिलने से उसमे क्षीणता हो जाती है जिससे पाँवो मे नाडी रोग (Neuritis) के झनझनाहट Paraesthesia सुप्ति आदि लक्षण भी हो जाते है। दृष्टि नाडी (Optic Nerve) मे क्षीणता के होने से दृष्टि कम होती जाती है।

(ख) रजक द्रव्य की कमी या लोहे की कमी जब विशेष होती है अर्थात् Microcytic Hypochromic पाण्डु होता है तब शरीर मे फीकापन अधिक स्पष्ट होता है। चेहरा देखने मे पाण्डुर तथा कुछ फूला हुआ दीखता है। हृदय शैथिल्य भी अधिक होता है। जिससे स्वल्प श्रम से भी श्वास चढ जाता तथा हृदय कम्प का लक्षण हो जाता है अर्थात् हृदय शिथिल (Dilated) हो जाता है जिसमे Haemic Murmur भी सुनाई पडता है। मदाग्नि का लक्षण रहता है, भूख नही लगती, मल बन्ध रहता है। लोहे की न्यूनता देर तक रहे तो पाँवो मे भी शोथ दीखता है तथा नख क्षीण होकर नतोदर से हो जाते हैं (जिसे Koilonychia कहते हैं) बाल कान्तिहीन, शुष्क से दीखते हैं, जीभ की Papillae क्षीण हो जाती हैं। स्त्री पाण्डु रोग एक चिरस्थायी रोग है।

पित्त पाण्डु—Haemolytic Anaemia

रक्त मे रक्तकणो के अधिक मात्रा मे नष्ट हो जाने से जो पाण्डु रोग उत्पन्न होता है उसे पित्त पाण्डु Haemolytic Anaemia (Intravascular Blood Destruction) कहते है। मल मे प्रतिदिन जितना Urobilinogen निकलता है उसमे पता लग सकता है कि रक्तकण कितने टूट रहे है। इस रोग मे रक्तकण की आयु १२० दिन से २०-३० दिन तक की हो सकती है। Bilirubin के अधिक बनने से रोगी का रग कुछ हलका पीला सा होता है अत इसे Haemolytic Icterus भी कहते हैं।

(क) रोग जनित कामला या पाण्डु जनित कामला—Acquired Haemolytic Anaemias, Acquired Acholuric Jaundice, Acute Haemolytic Anaemia

विषम ज्वर तथा Black Water Fever तथा Esch Coli infection, Haemolytic, Streptococcal, Staphylococcal Septicaemia के कारण कामला युक्त पाण्डु हुआ करता है। यद्यपि बहुतो का मत है कि मज्जा पर पूयविष (Sepsis या Cli Suppuration) का दुष्प्रभाव होकर उसमे रक्तकणो का निर्माण मन्द पड जाने से यह पाण्डु होता है पर पूय का रक्तकणो पर विनाशक (Haemolytic) प्रभाव भी अवश्य होता है। मलेरिया मे तो पित्त पाण्डु Haemolytic Anaemia ही होता है। जीवाणु सक्रमण (Infection) चिरकाल रहे तो पाण्डु रोग हो जाता है जैसे चिरस्थायी Bacterial Endocarditis, जीर्ण क्षय रोग जीर्ण पूयभाव, Rheumatic fever, Rheumatoid Arthritis, Infectious Hepatitis, प्रसूति ज्वर, Puerperal infection मे होता है, इसका कारण स्पष्ट नही। कहा जाता है कि शरीर मे पूय या शोथ कही पर हो तो उसकी विष के कारण रक्त नष्ट क्यो होता है। Hookworm के कारण भी पाण्डु होता है। औषधि जनित पाण्डु अर्थात् Lead, Arsenic, Quinine, Primaquine, Phenylhydrazine के कारण भी कभी-कभी रक्तकणो का विनाश होकर कामला का रोग (Toxic Haemolytic Jaundice) हो जाता है Sulphonamides, Nitrofurantoin, PAS, Snake Venom भी रक्तकण नाशक होते है। प्लीहा बढी हुई हो, Hypersplenism, यकृत् वृद्धि Cirrhosis हो तो भी रक्त नाश जनित पाण्डु होता है। इस रक्त नाश जनित पाण्डु मे रक्त मे पित्त रजक द्रव्य बढ

जाता है (Bilirubin Anaemia होता है), मूत्र मे विलिरुविन नही पर Urobilinogen वढ जाता है। मल मे Stercobilin की अधिकता से पीलापन होता है। Icterus Index की अधिकता, त्वचा मे पाण्डुता के साथ कुछ पीलेपन का मिश्रित होना, रक्तस्राव हो जाना, ये लक्षण भी होते हैं। इस रोग मे कामला का रग हलका सा ही होता है गहरा नही होता। यह Normoblastic या Normocytic Hypochromic Anaemia है। जव यह तीव्र रूप मे होता है तत्र श्वेत कण वृद्धि (Leucocytosis) भी ३०-५० हजार तक होती है और जव यह चिरस्थायी रूप मे होता है तव श्वेत कण नार्मल सख्या मे ही रहते हैं। रक्तकणो के अधिक सख्या मे टूटने के कारण प्लीहा वृद्धि और कुछ-कुछ यकृत् वृद्धि के लक्षण भी होते है, रक्त मे Reticulocytes अधिक वढे हुए हो सकते हैं। रक्तकण २० लाख तक, रजक द्रव्य ३० प्रतिशत तक रह जाते हैं Serum iron घटा हुआ होता है। Van den Bergh Test Indirect Positive होता है अर्थात् सीरम मे अलकोहल मिलाने पर तुरत लाल रग आ जाता है क्योकि Blood Bilirubin के अधिक वनने के कारण उसका वहुत-सा अश यकृत् के मैलो मे से विना निकले ही रह जाता है। यह वृक्को की झिल्ली मे से भी मूत्र द्वारा नही निकलता। इसमे ज्वर, कामलायुक्त पाण्डुता, निर्वलता, हृत्कम्प आदि लक्षण होते हैं।

प्रतिविष जनित पाण्डु या कामला—Autoantibody Anaemia **तथा** Paroxysmal Cold Haemoglobinurea **अथवा** Acquired Haemolytic Anaemia with Auto antibody

इस पाण्डु मे मध्यमायु के व्यक्तियो विशेषत स्त्रियो के रक्तकणो के अपने अन्दर कोई सहज विकार नही होता पर रक्त के सीरम मे कोई Antibodies या Haemolysins या प्रति विष जो प्रोटीन्स Globulins होते हैं उत्पन्न हो जाते हैं जो सर्दी लगने पर रक्तकणो के चारो ओर चिपक कर उनके अन्दर विद्यमान Enzymes को निश्चेष्ट करके उन्हे खण्डित करते एव पाण्डु या कामला का कारण हो जाते हैं। किसी सक्रामक रोग (Infection) के वाद मे अपने ही प्रोटीन की किस्म या Pattern के वदल जाने एव उसके अजनवी हो जाने से ये रक्त मे उसके अर्थात् अपने अन्दर उत्पन्न Antigen के विपरीत उत्पन्न हो जाते हैं तथा फिर सर्दी लग जाने पर ये रक्तकणो पर उपर्युक्त प्रतिक्रिया करके उन्हे खण्डित कर देते हैं जिससे उनमे जिनके रक्त मे Cold Auto Antibody या Auto Haemolysin पाया जाता है कभी-कभी माजिष्ठमेह या Paroxysmal Cold Haemoglobinuria का रोग हो जाता है। समय-समय पर सर्दी लगकर शरीर मे विशेषत कमर मे तथा पेट मे दर्द हो जाता और १०३-१०४ डिग्री तक ज्वर हो जाता है तथा मजिष्ठा के जल (Port Wine) के रग का मूत्र आने लगता है। टूटे रक्तकणो मे से निकले Haemoglobin से Bilirubin की उत्पत्ति होने से कुछ-कुछ कामला रोग भी हो जाता है। प्लीहा कुछ वढी हुई होती है। Reticulocytes वढे होते है। हीमोग्लोविन के रक्त मे आने पर Protein Shock होता है अत श्वेत कणो की न्यूनता (Leucopenia) का भी लक्षण होता है। समय-समय पर कुछ घण्टो के लिये इस रोग के होते रहने से ही इसे Paroxysmal Cold Haemoglobinuria कहते हैं। ए - तो Warm-Antibody type इस रोग का है जिसमे गर्मी मे Antibody अधिक सक्रिय होता है दूसरा Cold-Antibody type है जिसमे Antibody तापमान के गिरने पर प्रवल होता है। Paroxysmal Nocturnal Haemoglobinuria के कारण भी Haemolytic anaemia होता है इस अवस्था मे सवेरे उठने पर मूत्र लाल भूरे रग का आता है। यह एक Haemosiderinuria है। लोहाश के मूत्र द्वारा निकलने से पाण्डु होता है। इस रोग मे सोते समय ही Haemolysis होता है। यह ३०-४० वर्ष की आयु मे होता है। रोग मृदु हो तो इसकी चिन्ता न करनी चाहिए।

Primaquin आदि औषधियो के देने पर भी किसी-किसी मे ऐसा मूत्र आ जाता है। जिन कुछ एक के रक्तकणो मे Glucose-6-phosphate dehydrogenase का Enzyme कम होता है इसलिये जो Glucose-6-phosphate को भली प्रकार Triphosphopyridine Nucleotide मे वदल नही सकते ऐसी अवस्था म ये रक्तकण, विरोधी औषधि के आने पर टूट जाते है अर्थात् ऐसे व्यक्ति मे रक्तकण की आयु ९० दिन के लगभग होती है एव Haemolysis हो जाता है। ऐसी अवस्था मे पाण्डु रोग Sulphonamides, Sulfones, Antimalarials Nitrofurantoin, P A S Phenacetin आदि औषधि से भी हो सकता है।

Coomb's Test से इस Antibody Anaemia का निश्चय हो जाता है (अर्थात् मनुष्य के Globulin को खरगोश मे प्रविष्ट करके उसके अन्दर उत्पन्न Anti-Human Globulin Serum को Coomb का Fluid कहते है,) इसके साथ रोगी के रक्तकणो को मिश्रित करने पर रक्तकण Agglutinated हो जाये तो इसे Coomb's

Test पाजिटिव कहा जाता है अर्थात् रक्तकणो पर Globulin है, ऐसा समझा जाता है।

(ख) सहज पाण्डु या सहज कामला—Congenital Acholuric Jaundice, Congenital Haemolytic Anaemia Hereditary Spherocytosis

कुछ एक परिवारो मे एक से अधिक व्यक्तियो मे बालपन से ही पाण्डुता तथा हलकी कामला के लक्षण होते है। रक्त की परीक्षा करने पर पता लगता है कि इनके रक्तकण चक्रिकाकार (Biconcave) न होकर गोलाकार (Spheroid) होते है। सम्भवत जन्म से इनके अन्दर ग्लूकोज के पाचन करने वाले Enzyme मे कोई न्यूनता होती है जिससे इनके अन्दर Adenosine triphosphate तथा २,३ diphosphoglycerate की उत्पत्ति ठीक-ठीक नही होती एव इनका पोषण ठीक न होने से ये गोल होते हैं। इस प्रकार असाधारण होने के कारण ये अधिक भगुर होते है जिससे प्लीहा के Reticulo endothelial सैलों मे जहाँ रक्त सचार अति मन्द होता है तथा जहाँ इन्हे ग्लूकोज और कम मिलता है ये अधिक मात्रा मे टूटते रहते है। इसी कारण एक तो रोगी मे प्लीहा वृद्धि और दूसरा पाण्डुता का लक्षण रहता है। रक्तकणो के अधिक सख्या मे टूटने से Bilirubin की उत्पत्ति अधिक होती है जिसके कारण इन्हे हलकी सी कामला होने का लक्षण भी रहता है। अति शारीरिक श्रम करने तथा किसी ज्वर आदि होने पर इसमे पाण्डुता तथा कामला के लक्षण अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। बहुधा यह रोग मृदु रूप मे ही रहता है। परन्तु इसके कारण इनमे पित्ताशय के अन्दर Calcium Bilirubinate की पथरियो के बन जाने का उपद्रव हो जाता है।

रक्त की परीक्षा करने पर इस रोग का निश्चय हो जाता है। साधारण व्यक्ति के रक्तकण ४५ प्रतिशतक Hypotonic Saline Solution मे टूटने लगते है। परन्तु इस रोगी के रक्तकण ६ प्रतिशतक के Saline Solution मे ही टूटने लग जाते है और ४ प्रतिशतक Saline Solution मे सर्वथा टूट जाते है। रक्तकणो का व्यास तो छोटा होता है परन्तु उनके गोलाकार होने से अर्थात् उनमे Spherocytosis होने से Mean Corpuscular Volume तथा Mean Corpuscular Haemoglobin नार्मल होते हैं। Colour Index भी नार्मल होता है। रक्तकणो के अधिक सख्या मे टूटते रहने से Reticulocytes अधिक मिलते है (१-२ प्र०श० से अधिक) Van den Bergh Test Indirect Positive होता है क्योकि रक्त मे Blood Bilirubin अधिक होता है जो वृक्को की झिल्ली मे से न निकल सकने के कारण मूत्र मे नही आता इसीलिये इसे Acholuric Jaundice भी कहते हैं। मूत्र मे Urobilin (Urobilinogen) की अधिकता से गहरापन होता है मूत्र मे Bilirubin नही मिलता। मल भी Stercobilin की अधिकता मे गहरे रग का होता है। यह रोग रोगी के लिये विशेष हानिकर नही होता।

रक्तस्राव जनित या उपद्रव रूप पाण्डु—Haemarrhagic Anaemia

५० वर्ष से ऊपर की आयु मे पाण्डु हो तो वह बहुधा आतो मे कैन्सर के कारण होता है। मल मे Occult रक्त के मिलने अथवा Barium X-Ray द्वारा उनकी परीक्षा होती है। उस अवस्था मे रक्त मे Polymorphs की वृद्धि भी पाई जाती है। रक्त के निकलते रहने से लोह की कमी से यह होता है। कभी-कभी मज्जा मे भी Malignant tissue के प्रसरण कर जाने से यह होता है।

१. वात पाण्डु या रक्तोत्पत्ति वैषम्य, Deficiency Dyshaemopoietic Anaemia **की चिकित्सा**

Nutritional Megaloblastic Anaemia के लिये Folic Acid (Folvite, Novafol) १०, २० मिलिग्राम दैनिक मात्रा मे कुछ सप्ताह (४-६) देने तथा दूध, अण्डा, रोटी, घृत आदि के साथ-साथ Vitamin B Complex के या Marmite के ½ औंस की मात्रा मे देने से तथा Vit B_{12} २५० मा० ग्रा० के सप्ताह मे १ बार देने से शीघ्र लाभ प्रतीत होता है। Folic acid ५ मिलिग्राम की चालू मात्रा कुछ काल दी जानी चाहिये। विटामिन B_{12} के साथ मिले योग (Rubrafolin Tab) तथा Crude Liver Ex भी सहायक रूप मे लाभ दे सकते हैं। Liver Ex भी B_{12} के बल के कारण कार्यकारी होता है। (१ U S P Unit=१५ mcgram विटामिन बी$_{१२}$)।

गर्भिणी पाण्डु, बाल पाण्डु, ग्रहणी पाण्डु तथा प्रसूता पाण्डु—Megaloblastic Anaemia of Pregnancy, of Infancy तथा of Sprue के लिये भी Folic Acid इसी मात्रा मे कुछ काल देना चाहिये। Folic Acid से युक्त भोजन जैसे Yeast (१०० ग्राम मे ७ मिलिग्राम), गेहू का आटा (१०० ग्राम मे ०५ मिलि०), पत्र शाक (१०० ग्राम मे ०१ मिलि०), दाल (१०० ग्राम मे ०७ मिलिग्राम) तथा प्रोटीन भोजनो आदि के प्रयोग से भी लाभ

होता है। गर्भिणी मे Hypochromia हो, M C H C भी कम हो, Colour Index भी कम हो तो Ferrous Gluconate ४ ग्रेन के दिन मे तीन बार देने या Ferrous Sulphate के तीन ग्रेन की मात्रा मे दिन मे तीन वार देने से भी इस रोग मे लाभ होता है। ग्रहणी पाण्डु मे Cortisone की चिकित्सा के द्वारा आत मे से प्रोटीन्स तथा फैट्स का विलयन बढ जाता है। यकृद्रोग जनित पाण्डु मे Liver Ext मास द्वारा या मुख से Folic acid का तथा प्रोटीन्स का प्रयोग करना चाहिये। पर इनसे इस रोग मे विशेष लाभ नही होता। औषधि जनित पाण्डु से पाण्डु का लक्षण हो तो औषधि के साथ Folic acid ५ मिलि० दैनिक दे।

त्रिदोष पाण्डु या Pernicious Anaemia के लिये Vitamin B_{12} (Anacobin B D H, Macrabin Glaxo Redisol M S D) १००० माइक्रोग्राम की मात्रा मे मास द्वारा सप्ताह में २ दिन दिया जाता है। रोगी की अवस्था के सुधर जाने पर फिर २५० माइक्रोग्राम मात्रा मे इसका महीने मे चार वार प्रयोग सदा के लिये जारी रखा जाता है या पहले १००० माइक्रोग्राम एक-एक दिन छोड के ५ मात्रा दें फिर ५०० मा० ग्रा० मास मे १ वार देते रहे। इस औषधि के साथ लोह का प्रयोग भी भोजन के वाद कुछ काल लगभग दो मास तक किया जाता है। Vitamin B_{12} के भोजन जैसे दूध (१०० ग्राम मे १० माइक्रोग्राम), आटा (१०० ग्राम मे १ माइक्रोग्राम), अडा (१०० ग्राम मे ५ माइक्रोग्राम) आदि भी देने चाहिये। विटामिन 'सी' भी १०० मिलि० दैनिक मात्रा मे दिया जाता है।

इस रोग की चिकित्सा को जारी न रखे तो सुषुम्ना काण्ड मे क्षीणता का लक्षण प्रकट होने लगता है। इनमे विटामिन 'बी$_{12}$' को वडी मात्रा मे ६ मास जारी रखना चाहिये।

विष जनित पाण्डु—(Secondary Hypoplastic Anaemia)

कारण का निवारण करने तथा Cortisone चिकित्सा (Prednisolone १० मिलि० ८-८ घटे पर) ३ सप्ताह देने से लाभ प्रतीत होता है यद्यपि वहुत काल तक इसे जारी नही रखना चाहिये। Testosterone २५ मिलि० के मास द्वारा या Methyltestosterone २५-१०० मिलि० के प्रतिदिन मुख द्वारा देने से या Testosterone-Enanthate in Oil ६०० मिलि० के मास द्वारा सप्ताह मे एक वार देने से लाभ हो सकता है। २०-३० दिन के अन्तर से रक्त दान Transfusion २ लिटर ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। सम्भव है उसके वाद मज्जा मे रक्त निर्माण की प्रक्रिया फिर होने लगे। Proteolysed liver तथा Pyridoxine ५०-१०० मिलि० दैनिक मात्रा मे भी इस रोग मे हितकर है।

लोहे की न्यूनता से उत्पन्न पाण्डु—Dyshaemopoietic Anaemia due to Iron Deficiency **या** Nutritional Hypochromic Anaemia **की चिकित्सा**

इस पाण्डु रोग मे Ferri Et Ammonium Citras १० से ३० ग्रेन की मात्रा मे Aqua Chloroform १ औंस मे मिलाकर दिन मे तीन वार भोजन के वाद दे देना चाहिये। या Ferrous Sulphate ३ ग्रेन की गोली के रूप मे तीन-चार वार भोजन के वाद या Ferrous Sulphate Mixture (B P C) भोजन के वाद या Ferrous Gluconate ५ ग्रेन या Ferrous Succinate या Molybdate या Glutamate २½ ग्रेन की बनी गोली दिन मे तीन वार भोजन के वाद १½ मास के लगभग दी जाती है या Blaud's Pill दिन मे तीन वार या Ferrous Fumarate ३ ग्रेन गोली वार-वार या केवल Ferrous Gluconate (Fergon या Ferromyn) ५ ग्रेन की १-२ गोलिया या Fersolate (Ferrous Sulphate ७ ग्रेन, Copper Sulph १/१०० ग्रेन, Manganese Sulphate १/१०० ग्रेन Glaxo) या Ferigen (B I) Polycytol (Alemb) ३ ग्रेन की गोलिया तीन वार भोजन के वाद १½ मास के लगभग दी जाती है। Iron Choline Citrate (Haematinga) १ ग्राम प्रतिदिन देने या Saccharated iron ox (Neo Ferrum Crookes) के देने से भी यही लाभ होता है। लोहे के शरीर मे विलयन के लिये Ascorbic Acid १००, २५० मिलिग्राम मात्रा मे प्रतिदिन देना चाहिये। Ferrous Sulph, Folic acid (Folvron Lederle Cap तथा Syrup, Rubraferate, Squibb) मिले हुए मिलते हैं। Ferrous Gluconate तथा Vit 'C' (Irofol A French) भी दिये जा सकते हैं। Ferrous Fumarates Vit 'C' Folic acid (Autrin Hematinic Cap Lederle) भी दिये जा सकते हैं। Ferrous Sulph को मिश्रण मे देना हो तो उसका ५०% ग्लूकोज सोल्यूशन देना चाहिये जिससे वह Ferric नही वनता। अजीर्ण तथा आध्मान के लिये HCl हलका ३० बूद तथा Glycerin of Pepsin एक ड्राम भोजन के वाद दे सकते हैं। Calcium भी देना चाहिये क्योकि वह इसके विलयन मे सहायक है। लोहे के प्रयोग से पेट

खराब हो जाने का भय हो तो पहले एक-एक गोली ही दिन मे लेनी चाहिये। क्रमश मात्रा बढाए। लोहा मुख से दिया जा सके तो उसके इजेक्शन द्वारा देने की आवश्यकता नही। Iron dextran (Imferon Bengers १ सी० सी० मे ५० मिलि० लोहा) पहले इसकी १ सी०सी० (५० मिलि० लोहा) की और फिर २-५ सी०सी० की मात्रा १½-२ इच लम्बी सुई से मास द्वारा प्रतिदिन या प्रति दूसरे दिन तब तक दी जाती है जब तक Haemoglobin की जो प्रतिशतक कमी हुई है वह पूर्ण न हो जाय। इसकी अपेक्षा अच्छा हो कि Iron Sorbitol-Citric acid Complex (Jectofer 2 c c Amp मे १०० मिलि० लोहा है) मास द्वारा दिया जाय। इसकी १ प्रतिशत कमी के पीछे ४० मिलिग्राम लोहा (Inferon द्वारा) दिया जाता है अथवा नार्मल १५ Hb से प्रत्येक ग्राम कमी के पीछे २५० मिलि० लोहा देना चाहिये। Ferrivenin (Saccharated-Iron oxide ५ सी०सी० एम्पूल जिसमे १०० मिलि० ५ प्रतिशत यह साल्ट होता है) २५ मिलि० प्रथम दिन, फिर ५०-१०० मिलि० प्रतिदिन शिरा द्वारा बहुत धीरे-धीरे दिया जाता है। इसका कोई अश शिरा से बाहर नही निकलना चाहिये। कुल मिलाकर १ ग्राम से कम ही इसकी मात्रा रहनी चाहिये। यह उपर्युक्त लोह चिकित्सा १-१½ मास जारी रहनी चाहिये। प्रत्येक गर्भिणी स्त्री को भी लोह प्रतिदिन ३-६ ग्रेन मात्रा मे लेते रहना चाहिये। मुख द्वारा लोह चिकित्सा को ५-६ मास तक चालू रखना चाहिये। १-१½ वर्ष की आयु के बालको मे जो डिब्बे के दूध या माता के दूध पर ही पाले गये है लोह की न्यूनता से जो पाण्डु रोग होता है उसके लिये Ferri Et Ammonium Citras १½ ग्रेन की मात्रा मे Aqua Chloroform ६० बूद मिलाकर पीने के दूध के साथ दिन मे ३ बूद मात्रा मे तीन बार देना चाहिये या ग्लिसरीन से मीठे किये जल मे मिला के पिला देना चाहिये। Ferric Ammonium Citrate mixture Paediatric (BPC) तथा Ferrous Sulphate mixture Paediatric (BPC) भी मिलते हैं। या Ferrous Sulphate १ ग्रेन की मात्रा मे Dilute Hypophosphorus Acid ½ बून्द, Dextrose १५ ग्रेन, Aqua Chloroform १ ड्राम मे मिलाकर दिन मे तीन बार दिया जा सकता है (Ferrous Sulph ३ dextrose ३० ग्राम Dil Hypophosph Acid ६ Chlorof Water १२० मिलिलि०) Ferrous Sulph ६ मास तक १५, १½ वर्ष तक ३, ५ वर्ष तक ४, १० वर्ष तक ६ ग्राम दैनिक देवे या Fersolate को पानी मे मिलाकर बालक को दूध मे दे सकते हैं या Syrup Ferrous Sulphate और Amino Acetate को मिलाकर बने Plasmet Syrup के २ चम्मच दिन मे तीन बार बालक को दिये जा सकते हैं (८ वर्ष के बालक की मात्रा) Ferrous Gluconate के शर्बत Ferlucon elixir Evans, Ferronicum Sandoz दिये जाते हैं। Ferrous Fumarate Syrup Fersamal Syrup भी मिलता है जो अधिक स्वादिष्ट है। Imferon १ सी०मी० मास द्वारा सप्ताह मे दो बार दो सप्ताह तक दिया जा सकता है अथवा Ferradol (Ferri Et Ammon Cit विटामिन्स, Malt) का प्रयोग कर सकते हैं। या Calron (Ferri Et Ammon Cit , विटामिन्स, Glycerophospates) २ छोटे चम्मच २ बार दें।

लोह युक्त आहार द्रव्य जैसे मसूर की दाल (१ औस मे २ १७ मिलिग्राम), पत्र गोभी (१ औंस ·२५ मिलि०), गाजर (१ औंस १६ मिलि०), सेब (१ औंस ०८ मिलि०), शलगम (१ औंस ११ मिलि०) आलू (१ औस २१ मिलि०), आटा (१ औस ४५ मिलि०), अण्डा (१ औस ७२ मिलि०), सतरा (१ औस ०७ मिलि०), प्याज (१ औंस ०९ मिलि०) आदि मे से किन्ही द्रव्यो का प्रयोग करने से भी पाण्डु रोग ठीक होता है।

Haemolytic Anaemia—रक्तनाश जनित पाण्डु चिकित्सा

Acquired Haemolytic Anaemia के लिये जीवाणु नाशक (Antibiotic या Anti-infective) औषधियो के प्रयोग से तथा बलवर्धक (Supportive) चिकित्सा से लाभ हो जाता है अर्थात् Reticulocytosis कम होता जाता है तथा Hb बढता जाता है। जिन औषधियो या विषो के कारण रक्तकण नष्ट हो रहे हो, उनका भी प्रतिकार करना चाहिये। इस पाण्डु मे Reticulocytes बढे हो Hb कम हो तो Prednisolone १० mg के दिन मे ४ बार के प्रयोग से भी सामयिक लाभ होता है जब Hb की मात्रा ठीक हो जाय तब ५ मिलि० दैनिक मात्रा एक-एक हफ्ते बाद कम करते जाय। १½-२ महीना इसे जारी रखे। Anti-Body Anaemia के लिये A C T H विशेष लाभदायक है। पहले A C T H १२५-२०० Mg १-२ सप्ताह देकर फिर मुख से Prednisolone २५-३० मिलि० दैनिक दिन मे ३ बार बाँटकर महीनो तक देना चाहिये। आराम दीखने पर मात्रा कम कर देनी चाहिये और

फिर कुछ सप्ताहो मे धीरे-धीरे इसे बन्द कर देना चाहिये अर्थात् प्रति सप्ताह इसकी मात्रा मे ५ मिलि० की कमी करते जाना चाहिये। १-१ महीने पर रक्त परीक्षा होनी चाहिये। रक्त मे Cold Haemolysins हो तो ज्यादा सर्दी से बचना चाहिये। Paroxysmal Nocturnal Haemoglobinuria हो तो Fluoxymesterone (Ultandren) २० मिलि० दैनिक देने से भला हो सकता है।

Chronic Haemolytic Jaundice के लिए अधिक गर्मी, तेज धूप, अति शारीरिक श्रम, तीक्ष्ण उष्ण गुण औषधियो और आहार द्रव्यो तथा सक्रामक ज्वरो से सदा बचना चाहिये। Corticosteroids के देने से हीमोग्लोबिन की कमी पूर्ण हो जाती है। ऐसा हो जाने पर इनकी स्वल्प मात्रा जारी रखनी चाहिये।

सहज पाण्डु या Congenital Spherocytosis के लिये Splenectomy की चिकित्सा की जा सकती है। इससे पाण्डुता व कामला ठीक हो जाते हैं। रक्तकणो का आकार वैषम्य तो बना ही रहता है पर वे अपने जीवन काल से पहले फिर नही टूटते।

आयुर्वेदानुसार

वात पाण्डु शरीर तथा रक्त के निर्माण करने वाले प्राणतत्त्व के दुर्बल करने वाले कारणो से उत्पन्न पाण्डु को जिसमें शरीर के अन्दर रक्तकण तथा रक्तरञ्जक द्रव्य के ठीक-ठीक न बनने से बल-क्षय के सूचक लक्षण विशेष होते हैं तथा निर्बलता के कारण ही जिसमें त्वचा का रग कुछ काला हो जाता है, वातिक पाण्डु (Due to Dyshaemopoiesis) कहा जाता है।

(च०। चि०। १६)

पैत्तिक पाण्डु

शरीर में रक्त आदि धातुओ के पचन कर्म को बढाने वाले कारणो से उत्पन्न हुई रक्त की न्यूनता को जिसमे पित्त (Bilirubin) की उत्पत्ति की अधिकता के कारण त्वचा, मूत्र, पुरीष आदि में पीत वर्ण झलकता है पैत्तिक पाण्डु (Due to Haemolysis) कहते हैं।

श्लैष्मिक पाण्डु

नानाविध कारणो से शरीराग्नि के मन्द हो जाने पर उसके परिणाम रूप में रक्तकणो या मज्जा पर या यकृत् के अथवा वृक्को के ऊपर आम विषो (Metabolites) का दुष्प्रभाव हो जाने से या शरीर मे प्रोटीन के कम हो जाने से जो रक्त की न्यूनता होती है जिसमे मन्दाग्नि के कारण ही अन्नारुचि, छर्दि, गुरुता (पेट मे भारीपन) आदि लक्षण विशेष होते हैं तथा जिसमें शोथ (Oedema) के कारण, त्वचा, नेत्र, मूत्र, पुरीष आदि का रग श्वेत वर्ण होता है उसे श्लैष्मिक पाण्डु कहा जाता है।

त्रिदोष पाण्डु

एक तो शरीर तथा रक्त निर्माण करने वाले प्राणतत्त्व को दुर्बल कर देने वाले कारणो, दूसरा रक्त आदि धातुओ का अधिक मात्रा में पचन करने वाले कारणो, तथा तीसरा पाचक अग्नि को मन्द कर देने वाले कारणो से अर्थात् इन तीनो से जो रक्त की न्यूनता होती है जिसमें बल-क्षय, पीत-वर्णता, तथा अन्नारुचि तथा त्वचा मे कृष्णता, पीतता और श्वेतता आदि तीनो दोषो के प्रकोप के लक्षण मिश्रित होते हैं उसे त्रिदोष पाण्डु कहा गया है। इस प्रकार आयुर्वेद के वातिक पाण्डु से Dyshaemopoietic, पित्त पाण्डु से Haemolitic तथा कफ पाण्डु से यकृत् रोग, वृक्क रोग, अजीर्ण, श्वयथु आदि से उत्पन्न पाण्डु से और त्रि-दोषज से Pernicious पाण्डु का अभिप्राय प्रतीत होता है।

मृत्तिका जनित पाण्डु में आहारगत लोहांश मृत्तिका के द्वारा बाहर निकल जाता है जिससे शरीर मे लोह नहीं पहुचता।

बहुपित्ता कामला

पित्त पाण्डु जनित कामला (Haemolytic Jaundice)

पित्त पाण्डु में तीक्ष्ण उष्ण गुण आहार-विहार औषधि आदि का सेवन किया जाय तो रक्त के पचन की अधिकता से पाण्डुता के साथ त्वचा में पीलापन भी झलकने लगता है। इसे बहुपित्ता कामला (Haemolytic Jaundice) कहा जाता है। इसमें यकृत् रुग्ण नहीं होता। प्लीहा बढी हुई हो सकती है। मूत्र में Urobilin अधिक होता है एव वह पीला होता है।

(च०।चि०।१६।३४)

पाण्डु रोग चिकित्सा—वातिक पाण्डु चिकित्सा

वात-प्रधान पाण्डु रोगो में जिसमे रक्त निर्माण कर्म मन्द होता है पहले घृत-पान द्वारा शरीर का स्नेहन कराकर ऊपर तथा नीचे से मृदु शोधन करना चाहिये अर्थात् वमन और विरेचन कराना चाहिये। जिससे रक्त निर्माण को मद कर देने वाले विष द्रव्य या दोष का शोधन हो जाय तथा रोगी निर्बल भी न हो। एतदर्थ दूध या घृत के साथ

हरीतकी चूर्ण का या आरग्वधादि क्वाथ या किसी मृदु रेचक औषधि का प्रयोग कुछ काल तक करना चाहिये। गोमूत्र से भावित हरीतकी के चूर्ण के प्रयोग से वातिक पाण्डु में विशेष लाभ प्रतीत होता है। रोगी निर्बल न हो इसके लिये दूध, चावल, या किसी दाल के यूष या मासरस के साथ रोटी या चावल का आहार देना चाहिये। शरीर शोधन के बाद उसके प्राणतत्त्व को बढाने के लिये फलरस, मासरस, दूध, तक्र, घृत आदि उत्तम आहार दशमूलारिष्ट तथा बहुत बार गोमूत्र से भावित किये हुए या गोमूत्र में पकाये हुए मण्डूर या पुनर्नवा मण्डूरवटक, या लोह भस्म का दूध या घृत के साथ कुछ महीनो तक प्रयोग जारी रखना चाहिये। चरक ने जीवनीय घृत का वात प्रधान पाण्डु रोग के लिये विधान किया प्रतीत होता है। लोहे की न्यूनता से होने वाले वातिक पाण्डु के लिये नवायस लोह १ माशा दिन में ३ बार घृत से या योगराज दिन में ३ गोली दूध से देने चाहिएं।

पित्त पाण्डु की चिकित्सा

पित्त पाण्डु तथा बहुपित्त कामला मे शरीर मे बढे Catabolism के लिये रोगी की शीतप्रधान ज्वरनाशक चिकित्सा होनी चाहिये। त्रिवृत तथा खाण्ड के शर्बत के द्वारा या त्रिफला का या कटुकी का ३ से ६ माशे की मात्रा में कुछ काल प्रयोग करके शरीर का शोधन करना चाहिये। अथवा फल त्रिकादि क्वाथ (त्रिफला, गुडूची, वासा, कटुकी, चिरायता, नीम) मधु के साथ पिलाते रहना चाहिये। शरीर में कोई जीवाणु सक्रमण जनित रोग हो तो उसका प्रत्युपाय होना चाहिये। रोगी को शीत प्रदेश में रखना चाहिये।

शरीर शोधन के साथ-साथ या उसके बाद गोमूत्र भावित मण्डूर का मधु से या लोह भस्म, नवायस लोह या योगराज (शिलाजीत, रौप्य माक्षिक, स्वर्ण-माक्षिक, लोहभस्म ५-५, खाण्ड ८, त्रिफला, त्रिकटु, चित्रक, विडग १-१ भाग) या लोहासव, त्रिफलासव, उशीरासव, आमलक्यासव, तिक्तघृत आदि किसी पित्तशामक औषधि का प्रयोग करना चाहिये।

श्लैष्मिक पाण्डु

श्लैष्मिक पाण्डु मे भी पाण्डु कारक विष या दोष का शोधन करने के लिये लघन या अर्ध लघन करना चाहिये तथा शरीर का कटुकी क्वाथ से शोधन करना चाहिए और पाचक अग्नि को बढाना चाहिये। शीतस्निग्ध गुरु आहारो का त्याग कर देना चाहिये। यकृद्रोग की निवृत्ति के लिये गोमूत्र से भावित हरीतकी द्वारा शोधन करना ठीक है। इसके साथ-साथ गोमूत्र भावित मण्डूर या गोमूत्र साधित पचामृत लोह मण्डूर (लोह-ताम्र-अभ्रक-गन्धक-पारद-त्रिफला-विडग-चित्रक-दो हल्दी, दो जीरे, अजवाइन, मोथा, पुष्कर, कचूर, चव्य, चिरायता, धनिया १-१, मण्डूर सबसे आधा, जिसे ४ गुणा गोमूत्र, ८ गुणा पुनर्नवा क्वाथ में पका के चूर्ण मिलायें) या पुनर्नवा मण्डूर का मधु से कुछ काल निरतर प्रयोग करना चाहिये। तक्र का विशेष प्रयोग करना चाहिये। वृक्क रोग हो तो भी लघन प्रधान चिकित्सा होनी चाहिये। इस प्रकार वात प्रधान पाण्डु रोगी की लोहयुक्त स्निग्ध तथा पोषक चिकित्सा से, पित्त प्रधान पाण्डु रोगी को लोहयुक्त शीत चिकित्सा से तथा कफ पाण्डु रोगी को लघन प्रधान लोह युक्त रुक्ष तथा उष्ण चिकित्सा से लाभ होता है।

(सु०उ०।४४)

पाण्डुरोगोपयोगी कुछ एक प्रयोग निम्नलिखित हैं—

(१) गोमूत्र भावित हरीतकी योग (बृ. नि र.) हरड बढिया के गोमूत्र में तीन सप्ताह तक भिगो-भिगो कर सुखाकर बनाए चूर्ण का ३ माशे मात्रा में प्रयोग दिन में १ बार।

(२) त्र्यूषणादि मण्डूर (र. सा स) मण्डूर को ८ गुणा गोमूत्र में पका, गाढा होने पर उसमें त्रिकटु, त्रिफला, चित्रक, दारुहल्दी, देवदारु, मुस्ता, विडग समान-समान का बनाया चूर्ण मण्डूर तुल्य मिलाकर १-२ माशा मात्रा में मधु के साथ सेवन कराए।

(३) नवायस लोह (च स चि २०) त्रिकटु, त्रिफला, मुस्ता, विडग, चित्रक १-१ भाग, लोह ९ भाग चूर्ण करें। आधा या एक माशा मात्रा मधु घृत के साथ।

(४) विडगादि लोह (व से) विडंग, त्रिकटु, त्रिफला, दारुहल्दी, लोहभस्म, गोमूत्र शोधित मण्डूर चूर्ण १-१ भाग मिला के चूर्ण बनाए। १ माशा घृत मधु से दें।

(५) भूनिम्बादि लोहगुटी (बृ नि र.) चिरायता, पटोल, नीमछाल, कुटकी, मोथा, दारुहल्दी, विडग, गिलोय, त्रिफला, पिप्पली, सोंठ, पित्तपापडा, चित्रक, लोहभस्म समान-समान आर्द्रकरस से मर्दन, मात्रा २ माशा।

(६) निशा लोह (र सा स) दोनो हल्दी, त्रिफला, कटुकी, लोहभस्म, समान-समान का चूर्ण करें। १-२ माशा घृत मधु से।

(७) लोहासव (शा. ध) लोहचूर, त्रिकटु, त्रिफला, अजवायन, विडंग, मुस्ता, चित्रक २०-२० तो, धातकी १½ सेर, शहद २ सेर, गुड ६¼ सेर, उबालकर शीतल किया जल ३२ सेर। आसव बनाए। १ तोला मात्रा।

(८) त्रिफलारिष्ट (च चि १७) त्रिफला, चित्रमूल, पिप्पली, अजवायन, विडग, लोहचूर २०-२० तोला। शहद ४० तोला। गुड पुराना ६¼ सेर, उबालकर ठण्डा किया जल १६ सेर, आसव बनाएं। १ तोला मात्रा।

पथ्यापथ्य

पाण्डु रोगी को धूप, अतिश्रम, अध्वगमन, क्रोध, मैथुन, तीक्ष्ण गुण आहार औषध सेवन से बचना चाहिए।

श्वेत पाण्डु, दीर्घ पाण्डु, श्वेताणु अतिवृद्धि Leukaemia

यह एक घातक पाण्डु रोग है जिसका वर्णन पहले-पहल १८२७ मे Velpeau ने तथा फिर १८३९ मे Donne ने किया। फिर इसका विशेष वर्णन जर्मनी के Virchow ने १८४२ मे किया। यह मध्यमायु के पुरुषो मे अधिक, स्त्रियो मे कम होता है। इसमे विकृत रूप या अपूर्ण परिणत श्वेताणु रक्त मे अत्यधिक बढ जाते है। साथ ही श्वेताणुओ को उत्पन्न करने वाले Leucopoietic अवयवो अर्थात् मज्जा मे तथा प्लीहा और लसीका ग्रन्थियो मे विद्यमान लसीका सम्बन्धी अवयव मे भी अर्बुद के किस्म की अतिवृद्धि (Neoplastic Hyperplasia) हो जाती है। इसीलिये इसे रक्त का केन्सर कह देते हैं। यह रोग घातक होता है क्योंकि इसमे पाण्डु रोग बढता ही जाता हे फिर रक्तस्राव से या किसी रोग के सक्रमण द्वारा मृत्यु हो जाती हैं। सक्षेपत इस रोग मे मज्जा तथा प्लीहा मे Myeloid या Myelocyte सैल बहुत बढ जाते हैं। तथा Lymphoid प्रदेशो मे Lymphoid या Lymphocyte सैल बढ जाते हैं।

एक्स-रेज नामक किरणो या परमाणु बम की किरणो के शरीर पर दुष्प्रभाव से रक्त निर्माण करने वाली मज्जा मे घातक (Malignant) अतिवृद्धि होती देखी गई है। इस रोग मे जो अतिवृद्धि होती हे वह किस कारण से होती है इसका अभी तक निर्णय नही हो पाया।

श्वेत पाण्डु या श्वेताणु अतिवृद्धि का रोग चिरस्थायी तथा तीव्र इन दो रूपो मे पाया जाता हे तथा बहुधा तो यह मज्जा मे अतिवृद्धि से होता है अर्थात् Myeloid या Granulocytic Leukaemia के रूप में होता है। कभी-कभी लसीका सम्बन्धी अवयव मे अतिवृद्धि से भी होता है अर्थात् Lymphatic Leukaemia के रूप मे होता है।

चिरस्थायी मज्जा सम्बन्धी श्वेताणु अतिवृद्धि या Chronic Myeloid Leukaemia—Leukaemia का सबसे अधिक सुलभ भेद है। इस रोग मे मज्जा के अन्दर श्वेताणुओ का वा उनके प्रारम्भिक कणो Myeloblasts तथा Myelocytes को बनाने वाला अवयव Myeloid अवयव बहुत अधिक बढ जाता हे जिससे वहा का रक्तकणो को बनाने वाला अवयव Erythroblastic tissue बहुत कम हो जाता है। अतएव रक्त मे दानेदार श्वेत कण (Granulocytes) बहुत अधिक बढे हुए होते है, रक्त के प्रति क्यूबिक मिलिमीटर मे ५० हजार से १-५ लाख तक हो सकते हैं जिनमे से ४० प्र०श० के लगभग तो Myelocytes होते है Polymorphonuclear सैल ४० प्र०श० के लगभग होते है, Eosinophils ५ प्र०श० के लगभग होते हैं Basophils भी बढ जाते हैं: इनमे Glycogen तथा Alkaline Phosphatase की मात्रा नार्मल से कम Histamine की मात्रा अधिक होती है। मज्जा मे रक्तकणो के निर्माण करने वाले भाग के कम हो जाने से रक्तकणो की सख्या प्रति क्यूबिक मिलिमीटर मे ३ से ५ मिलियन होती है। हीमोग्लोबिन ५० प्रतिशतक (१०० मिलिमीटर मे ७ ४ ग्राम) हो जाता है Colour Index १ होता है। रक्तकणो के देखने से उनमे Anisocytosis, Polychromasia तथा Normoblasts भी पाये जाते हैं, Platelets भी रोग बढने पर घटे हुए होते है। प्लीहा मे Malpighian Bodies के स्थानो पर मज्जा सम्बन्धी (Myeloid) सैलो के बहुत बढ जाने से वह आकार मे बडी हो जाती है एव कुछ कठोर अनुभव होती है। मज्जा मे उत्पन्न इन Myeloid या श्वेताणु सदृश सैलो के रक्तवाहिनियो मे अत्यधिक भर जाने से यकृत् भी आकार मे बडा हो जाता है। लसीकाग्रन्थिया भी इसी कारण कुछ बढी हुई पाई जाती है। इस रोग मे मज्जा मे Sarcoma से मिलती-जुलती घातक अर्बुद की उत्पत्ति की प्रक्रिया होती प्रतीत होती है।

लक्षण

यह रोग ३५ से ५५ वर्ष की आयु में अर्थात् युवावस्था व मध्यमायु मे पाया जाता है। रक्त निर्माण के मन्द हो जाने मे पहले पहल बढती हुई कृशता, पाण्डुता,

अशक्ति, शीघ्र थक जाने, श्वास चढ जाने, हृदय कम्प हो जाने, अग्नि के मन्द हो जाने के लक्षण होते है अर्थात् Hypochromic किस्म के पाण्डु के लक्षण होते हैं। इस प्रारंभिक अवस्था के ६-१२ महीनो बाद प्लीहा के अन्दर Myeloid सैलो की अतिवृद्धि से जब वह बडी हो जाती है और उसके कारण पेट उभरकर बडा हो जाता है तब इस रोग का सन्देह होता है। प्लीहा आकार मे बहुत बडी, कुछ कठोर, समपृष्ट होती है उसके बढ जाने से पेट मे बाई ओर दर्द रहता है। यकृत् भी कुछ बडा तथा कठोर हो जाता है। तब रोगी मे बीच-बीच मे उतर जाने वाला या कम हो जाने वाला ज्वर भी पाया जाता है जो १०१ डिग्री तक पहुच जाता है। बढे हुए श्वेतकणो के अति मात्रा मे नष्ट होने के कारण शरीर मे धातुपाक (Metabolism) के बढ जाने से यह ज्वर होता है। इससे स्वेद के होने तथा कृशता के बढने जाने के लक्षण होते है। इन मज्जा सम्बन्धी (Myeloid) सैलो के श्रवण नाडी या अन्त कर्ण मे सचित (Infiltration) हो जाने से बधिरता तथा शिरोभ्रम का लक्षण तथा नेत्र पश्चिम पटल (Retina) मे वृद्धि होने से दृष्टि नाश का लक्षण हो सकता है। इसी प्रकार महास्रोतम् मे Leukaemic infiltration से कोष्ठ मे अर्बुद (Lump) होने, आन्त्र मे अवरोध होने और उसके कारण कोष्ठ मे शूल होने, अतिसार या मलवध होने का लक्षण हो सकता है। सुषुम्नाकाण्ड मे इस प्रकार Infiltration होकर अर्बुद हो जाने से Myelitis के लक्षण हो सकते है। अस्थि मे कही इस प्रकार का सचय होने से उसमे दर्द या उभार होने का या स्पर्शाक्षमता का लक्षण हो सकता है। शरीर के किसी अग मे इनका सचय होकर वहा दबाव की वृद्धि से उत्पन्न लक्षण हो सकता है। इस रोग मे मज्जा के अन्दर क्षुद्रकणो (Platelets) की उत्पत्ति के कम हो जाने मे नासिका, त्वचा, गर्भाशय, वृक्क, आत आदि कही से भी रक्तस्राव होने लगता है। इस प्रकार पाण्डुता, कृशता, प्लीहा-वृद्धि, ज्वर, कही शूल युक्त अर्बुद और रक्तस्राव के लक्षणो तथा रक्त मे आदिम श्वेत कणो की अतिवृद्धि को देखकर इस रोग का सन्देह हो जाता है।

अन्त मे कृशता, पाण्डुता, अशक्ति के बढते जाने से या किसी आभ्यन्तर अग मे रक्तस्राव हो जाने से ३ वर्ष तक मृत्यु हो जाती है। इस रोग की चिकित्सा जो आगे लिखी है वह केवल रोग की गति को मन्द करती है रोग का निवारण नही कर सकती। रक्त मे परिणत अपरिणत दोनो श्वेतकणो की अतिवृद्धि Normablasts की वृद्धि, प्लीहातिवृद्धि से इस रोग का निश्चय हो जाता है। Sternum पर टकोर से स्पर्शाक्षमता का लक्षण भी होता है।

शीघ्रमारी पाण्डु या तीव्र मज्जा सम्बन्धी श्वेताणु अतिवृद्धि—Acute-Granulocytic or Myeloid Leukaemia

तीव्र रूप मे यह रोग नव-युवावस्था मे अर्थात् २० वर्ष की आयु के नीचे के बालको मे होता है तथा एक तीव्र रूप के Influenza के रूप मे आरम्भ होता है। रक्तकणो की न्यूनता के कारण जिसमे अशक्ति, क्षुधा नाश और बढती हुई पाण्डुता के लक्षण होते है। साथ ही गल शोथ Tonsil मे शोथ दन्त मास शोथ और कभी-कभी मुख मे व्रण भाव के लक्षण होते हैं। दन्त मास मे या गले मे मृत्यु—Necrosis—तथा कभी-कभी ज्वर का लक्षण भी हो सकता है। रोगी शीघ्र-शीघ्र पाण्डुर होता जाता है। या प्लेटलेट्स की कमी से नासिका, गर्भाशय, त्वचा, दात, मूत्र आदि से दीर्घ रक्तस्राव होता है जो बन्द नही होता या त्वचा पर लाल चकत्ते Petechiae दीखते हैं (Thrombocytes की न्यूनतावश)। कुछ एक महीनो के अन्दर-अन्दर ही पूय भाव (Infection) से या अशक्ति से या किसी आभ्यन्तर अग मे रक्तस्राव से मृत्यु हो जाती है। तीव्र गति से बढते हुए पाण्डु रोग—प्लीहावृद्धि-यकृत्वृद्धि-लसीकाग्रन्थि वृद्धि तथा श्वेताणुओ की वृद्धि को देखकर इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिये। Miliary T B से इसका भेद करना चाहिये। यह रोग घातक है।

रक्त की परीक्षा करने से इसमे भी श्वेत-कण प्रति क्यूबिक मिलिमीटर मे २० हजार के ऊपर होते हैं जिनमे Myelocytes तथा Myeloblasts ९० प्र०श० से अधिक होते है, प्लेटलेट्स १ लाख क्यू० मि० मी० से कम होते हैं। मज्जा मे Myeloid अवयव बहुत अधिक बढ जाता है। रक्तकणो का बनाने वाला अवयव बहुत घट जाता है। लसीका ग्रन्थियो, प्लीहा आदि नाना अगो मे श्वेत-कणो के प्रारभिक सैल्स Blast cells सचित हो जाते है। Acute Lymphatic Leukaemia हो तो Lymphocytes या उसके पूर्वरूप इतने बढे होते है कि पाण्डु Normocytic, Normochromic किस्म का होता है।

जीर्ण लसीका सम्बन्धी श्वेताणु अतिवृद्धि (Chronic Lymphocytic Leukaemia)

६० वर्ष के लगभग बडी आयु के या मध्यमायु के पुरुषो मे कभी-कभी उनके रक्त के अन्दर Lymphocytes बहुत अधिक बढ जाते है अर्थात् २० हजार से २

लाख तक क्यू० मि० मी० होते हैं। छोटे Lymphocytes ही अधिक बढ़ते हैं तथा उनके लसीका सम्बन्धी अवयवों में अतिवृद्धि का लक्षण भी पाया जाता है जो एक Malignant अर्बुद के सदृश ही प्रतिक्रिया प्रतीत होती है। विशेषत. लसीका ग्रन्थियां स्थूल और स्पर्श में कठोर हो जाती है जिनको ग्रीवा, कक्ष तथा वक्षण में अनुभव किया जा सकता है। इनमें स्पर्शाक्षमता नहीं होती। इनको हिलाया जा सकता है अर्थात् ये चिपकी हुई नहीं होती। गले, टान्सिल, आँत आदि के लसीका सम्बन्धी अवयवों में भी अतिवृद्धि होती है। यकृत् की शिराओं में लिम्फोमाइड्स के सचय से लसीका सम्बन्धी तथा प्लीहा में अवयव के बढ़ जाने के कारण वृद्धि होती है अधिक नहीं। मज्जा में Lymphocytes भर जाते हैं जिससे रक्त निर्माण करने वाला अवयव घट जाता है अत रक्त में रक्तकण कुछ घट जाते हैं। प्लेटलेट्स भी घट जाते हैं। श्वेतकण प्रति क्यूबिक मिलिमीटर में कई हजार या लाख तक होते हैं जिनमें से Lymphocytes ६०-९० प्र०श० होते हैं। लसीका ग्रन्थियां देखने में बड़ी कठोर, रबर की तरह की तथा वेदनारहित होती हैं। इस रोग का भेद Lymphadenoma से करें जो छोटी आयु में होता है। रक्त परीक्षा में भी उसका भेद हो जाता है।

यह रोग भी धीरे-धीरे अज्ञात रूप में आरम्भ होता है। पाण्डुता, ज्वर, क्षुधानाश, अशक्ति, बढ़ती हुई कृशता, लसीका ग्रन्थियों में तथा प्लीहा में और यकृत् में वृद्धि के लक्षण दो-तीन वर्ष तक रहते है। अन्त में अशक्ति, पूयभाव (Sepsis) रक्तस्राव आदि किसी उपद्रव से ३-४ वर्ष में मृत्यु होती है। चिकित्सा में केवल रोग को मृदु, मन्द या कुछ देर रोका जा सकता है। अत यह भी एक असाध्य रोग है। इसका रोगी Myeloid Leukaemia के रोगी की अपेक्षा देर तक जीता रहता है। जितने ही सैल्स ज्यादा हों, ग्रन्थियों की अधिक संख्या ग्रस्त हो उतना ही रोग अधिक घातक होता है।

लसीका ग्रन्थ्यर्बुद Lymphadenoma (Hodgkin's disease १८३१) में प्रारंभ में एक ओर की ग्रीवा ग्रंथियां १-२ इंच व्यास के अर्बुद का रूप ले लेती हैं। वे स्पर्श में कठोर पर वेदनारहित होती हैं। इनके बाद कक्ष तथा वक्षण ग्रंथियों में भी यही अर्बुद भाव होने लगता है। इस रोग के क्रमश बढ़ जाने पर प्लीहावृद्धि, अशक्ति, कृशता, बढ़ती हुई पाण्डुता (Normocytic, Normochromic) और कभी-कभी होने वाले या दौरों में होने वाले ज्वर के लक्षण भी होते है। यह रोग २० से ४० तक के युवकों में होता है तथा क्षयज कण्ठमाला Lymphadenitis से सर्वथा भिन्न है। Leukaemia के समान इसमें रक्त के श्वेतकणों में अतिवृद्धि का लक्षण नहीं होता। इसके कारण के विषय में कोई निर्णय नहीं हो पाया। लोग Malignant अर्बुद से इसका सम्बन्ध जोड़ते है एव इसे Malignant Neoplasm of Reticulum Cells of Lymphoid Tissue कहते हैं अर्थात् इस रोग में लसीका ग्रन्थियों, प्लीहा, यकृत्, मज्जा के Reticuloendothelial Cells में अतिवृद्धि होती है। रोग की पिछली अवस्था में इसमें Fibrosis हो जाता है सैलों की संख्या कम हो जाती है। एव यह Anaplastic Sarcoma जैसा रोग है। सैलों में अतिवृद्धि विशेष हो और वे अपरिणत Immature रहें तो रोग भयंकर एव मारक होता है अन्यथा यह रोग धीरे-धीरे बढ़ता है और वर्षों बाद जब यकृत्, प्लीहा और मज्जा में फैल जाता है तो पाण्डुता-ज्वर-कृशता-कामला आदि के कारण घातक हो जाता है। यह एक असाध्य रोग है। ५-७ वर्ष में अपने दबाव के कारण तथा बढ़ती हुई निर्बलता और पाण्डुता के कारण घातक होता है।

चिकित्सा

Chlorambucie को ६-८ मिलि० दैनिक मात्रा में भोजन के बाद देने पर एक महीने में आराम मालूम होने लगता है। आराम हो तो ४-५ मास इसे जारी रखें। श्वेतकणों की परीक्षा समय-समय पर करनी चाहिये। २००० हो जाए तो औषधि बन्द करें।

Corticosteroids — Prednisolone को पहले ६० मिलि० दैनिक मात्रा में दें। लाभ होने पर २०-३० मिलि० दैनिक मात्रा कर दें।

Leukaemia की चिकित्सा

इस रोग की सन्तोषजनक चिकित्सा नहीं है। चिरस्थायी मज्जा सम्बन्धी श्वेताणु अतिवृद्धि (Ch Myeloid Leukaemia) के लिये स्थानिक रोग हो जैसे प्लीहावृद्धि तो X-ray द्वारा Irradiation के कई सप्ताह तक देने से इस रोग में लाभ हो जाता है। प्लीहावृद्धि पुन हो तो फिर Irradiation को दुहराना चाहिए।

Chemotherapy

(१) Busulfan (Myleran B W) —२ मिलि० मात्रा में प्रतिदिन २ बार ६ सप्ताह तक प्रातराश से पहले देने से अपूर्ण परिणत श्वेतकण मर जाते है। प्लीहा घट जाती है। एतदर्थ रक्त परीक्षा १५-१५ दिन बाद

होनी चाहिये । जब इनकी संख्या ५० हजार प्रति क्यू० मि० मि० आ जाय तब मात्रा २-४ मिलि० प्रति दूसरे दिन दी जाती है । इसके साथ-साथ लोहे का प्रयोग भी किया जाता है । रक्तदान Transfusion से भी लाभ होता है । Antibiotic औषधियो मे भी कुछ लाभ होता है । Thrombocytopenia न हो जाय अत प्लेटलेट्स की परीक्षा होती रहनी चाहिये । श्वेतकणो की संख्या को १०-१५ हजार प्रति क्यू० मि० मी० तक नहीं आने देना चाहिये । पहले ही औषधि को बन्द कर देना चाहिये । इसकी चालू मात्रा ५ मिलि० दैनिक है । इस औषधि से त्वचा का रग काला होने लगे तो इसे बन्द कर दे ।

(२) Demecolcine (Colcemid, Ciba) के जो कुछ निर्बल औषधि है पहले एक मिलि० मात्रा के दिन मे तीन बार देने और फिर २ मिलि० के ३ बार देने से Ch Myeloid Leukaemia मे बढे हुए सैल कम हो जाते है । इनके कम हो जाने पर इसकी चालू मात्रा प्रतिदिन १-५ मिलि० कर दी जाती है । दुर्भाग्य से फिर भी रोगी को ३-४ वर्ष के लगभग ही जीवित रखा जा सकता है । Radiotherapy—जैसे ऊपर कहा है प्लीहा पर Irradiation देने से वह आकार मे छोटी हो जाती है । ऐसा तब तक किया जाता है जब तक श्वेतकण ३० हजार प्रति क्यू० मि० मी० न हो जाए । यह रोग ठीक सा होकर फिर बढता है । जब बढे तब फिर पूर्ववत् उसकी चिकित्सा होनी चाहिए ।

लसीका सम्बन्धी श्वेताणु वृद्धि Ch Lymphatic Leukaemia मे प्लीहा पर Irradiation देते है जब तक W B C १० हजार हो जाए अथवा Chlorambucil (Leukeran B W) २-१२ मिलि० दैनिक मात्रा को कई बार विभक्त करके खाली पेट १ महीने तक दिया जाता है फिर W B C २५ हजार कम से कम हो जाये तो केवल २ मिलि० दैनिक मात्रा मे दिया जाता है । प्रति सप्ताह Blood count किया जाता है । ये नार्मल के पास आ जाय तो औषधि की मात्रा बद कर दी जाती है । Steroids से भी इस रोग के तीव्र लक्षण शान्त होते हैं अर्थात् Haemolysis हो तो Prednisolone को १० मिलि० मात्रा मे रोज ४ बार दे ।

तीव्र रोग (Acute Lukaemia) मे Purine antagonist Mercaptopurin (Purinethol) को प्रति किलोग्राम भार के पीछे २½ मिलि० दैनिक मात्रा मे मुख द्वारा एक बार मे ही दिया जाता है । अर्थात् बालक को १५० मिलि० युवक को २०० मिलि० मात्रा मे दी जाती है । १ मास के अन्दर-अन्दर इसका उत्तम प्रभाव प्रतीत होने लगता है । बीच-बीच मे रक्त मे श्वेताणुओं की परीक्षा की जाती है अर्थात् श्वेतकणो की संख्या गिर जाती है हीमोग्लोबिन की मात्रा बढ जाती है । १½ मास तक भी श्वेतकणो मे कमी न हो तो औषधि को निरर्थक समझना चाहिये । जब इस औषधि से अन्नारुचि, वमन होने की प्रवृत्ति होने लगे, औषधि बद कर देनी चाहिये अथवा जब श्वेताणुओ की संख्या कम होने लग जाय तब मात्रा ५० मिलि० दैनिक कर देनी चाहिये । उनके १० हजार के लगभग आ जाने पर औषधि बद कर दी जाती है । Corticosteroids के उपर्युक्त औषधि के साथ देने से ५० प्र० श० रोगियो मे लाभ शीघ्र होने लगता है । Prednisone को ६० मिलि० मात्रा मे ४ बार विभक्त करके १० दिन देना चाहिये । ११ वर्ष से ऊपर की आयु मे चिकित्सा का परिणाम आशाजनक नही होता । कुछ लोग पहले इस रोग मे इसी चिकित्सा से रोग के वेग को रोक लेते हैं । जब लक्षण शात होने लग जाय तब प्रति सप्ताह ५ मिलि० मात्रा इसकी कम करते जाना चाहिये । बिना चिकित्सा रोगी ३-४ मास मे मृत्यु को प्राप्त हो जाता है । चिकित्सा होने पर रोगी १ वर्ष तक जीवित रह सकता है । Blood Transfusion से रक्तस्राव आदि लक्षण शात हो जाते है । बडी आयु के व्यक्तियो के लिये यह चिकित्सा तथा Antibiotic औषधिया ही देना उचित है ।

रक्तस्राव
Purpura

रक्त के जम जाने, स्कन्दित होने (Coagulation) की प्रक्रिया

(१) प्लाज्मा मे कैल्सियम होता है जो रक्त के जमने के लिये आवश्यक है । उसे Oxalate या Citrate के द्वारा अनघुलनशील Calcium Oxalate या Citrate बनाकर पृथक् कर सकते हैं (Heparin का प्रभाव भी इसी प्रकार है) ।

(२) प्लाज्मा मे Prothrombin तथा Fibrinogen दोनो Globulins परस्पर मिले हुए रहते है जिनमे से Prothrombin को पहले प्लाज्मा मे Oxalate और फिर Acetone डालकर पृथक् किया जा

सकता है। इसी प्रकार रक्त मे Oxalate डालकर और फिर Centrifuge के द्वारा रक्तकणो के दूर हो जाने पर उसमे Ammonium Sulphate डाल देवे तो उसमे Fibrinogen Globulin पृथक् हो जाता है।

(३) रक्त के जम जाने के वाद वचे हुये Serum मे मे एक पदार्थ Thrombin पृथक् किया जाता है।

(४) इस Thrombin को यदि Fibrinogen मे मिलाया जाय तो वह Fibrin या एक क्कद या रक्त खण्ड (Thrombus) बन जाता है।

(५) Oxalate मिश्रित प्लाज्मा को Centrifuge करने पर नीचे प्राप्त हुये Precipitate में एक पदार्थ होता है जिसे Thromboplastin (Thrombokinase) कहते हैं। इसे Prothrombin मे मिलाया जाय तो वह Thrombin में परिवर्तित हो जाता है। शरीर के किसी अवयव से मिले विशेषत Platelets से उत्पन्न Extract को रक्त मे मिलाया जाय तो उसका Prothrombin शीघ्र Thrombin मे परिवर्तित हो जाता है और वह फिर रक्त के घुलनशील Fibrinogen को अघुलनशील Fibrin मे परिवर्तित करने का कार्य करता है। *Fibrin सूत्रो का एक जाल-सा विछा होता* है जिसमे रक्तकण पकडे हुए होते हैं। इसी को Clot कहते है। इस प्रकार Plasma में से Fibrinogen के निकल जाने पर Blood Serum शेष वच जाता है।

जब शस्त्र या आघात के लगने से शरीर की एक रक्तवाहिनी क्षत हो जाती है अर्थात् उसकी दीवार मे छिद्र हो जाता है तो रक्त के अन्दर स्वयमेव ही इसे भरने की एक प्रक्रिया होने लगती है। पहले तो वहाँ के पृष्ठ के विषम हो जाने तथा वहाँ पर रक्त गति के कुछ मद हो जाने और वहाँ के सैलो के Negative चार्ज के न रहने से १०-३० सेकण्ड के अंदर-अदर Platelets बहुत अधिक मात्रा मे जमा होने लगते हैं। उनमे से कोई Vasotonic द्रव्य निकलता है, जिससे रक्तवाहिनी की Smooth Muscle सकुचित हो जाती है अथवा Sympathetic नाडियो के द्वारा वह सकुचित हो जाती है एव उसका छिद्र छोटा हो जाता है जिससे रक्त का वहना तुरत कम हो जाता है। दूसरे वहाँ पर भारी सख्या मे एकत्रित हुए Platelets के Cytoplasm मे से Pseudopodia निकल कर छिद्र के किनारो पर चिपक जाते है तथा प्लेटलेट्स परस्पर एक दूसरे से भी चिपक जाते है। उनके खण्डित हो जाने से उनमे से तथा क्षत प्रदेश से निकले हुये Thromboplastin Enzyme के द्वारा वहाँ एकत्रित हुये रक्त के Prothrombin (यकृत् में विटामिन 'के' से उत्पन्न Globulin) के Molecules में ऐसा परिवर्तन होता है कि उनसे एक *सर्वथा नया पदार्थ Thrombin जो एक Enzyme है* उत्पन्न हो जाता है। इसके उत्पन्न हो जाने पर Platelets मे से और अधिक Thromboplastin उत्पन्न होता है और इसके परिणामस्वरूप और अधिक Thrombin उत्पन्न होता है जो रक्त मे घुले हुये Fibrinogen Globulin को Fibrin नामक जाल के ढेर मे परिवर्तित कर देता है। यह भी स्मरणीय है कि Tissue Thromboplastin का Clotting प्रभाव Platelets से उत्पन्न Thromboplastin की अपेक्षा अधिक प्रबल होता है। Phromboplastin तथा Calcium की उपस्थिति मे ही Prothrombin Thrombin मे परिवर्तित होता है। इस प्रकार Platelets और Fibrin इन दो के द्वारा एक डाट सा बन जाता है जो रक्तवाहिनी में हुये छिद्र को भर लेता है। फिर यह डाट (Clot) सकुचित (Contracted) होने लगता है अर्थात् इनमें से Serum पृथक् हो जाता है और Fibrin के धागो के सकुचित होने से छिद्र के किनारे समीप-समीप आ जाते है और फिर यह डाट रक्तवाहिनी *की दीवार का ही एक भाग बन जाता है। ½ से एक घटे के* अन्दर यह प्रक्रिया हो जाती है। इस प्रकार प्लेटलेट्स न केवल Thromboplastin की उत्पत्ति मे भाग लेते है, पर हुए छिद्र को वैसे वन्द करने मे भी प्रमुख भाग लेते हैं। इसमे स्नायुततु के वनने तथा अदर की झिल्ली वनने मे कुछ एक दिन लगते हैं।

रक्त के ठीक-ठीक जमने के लिये रक्त मे जिन-जिन द्रव्यो का होना आवश्यक है उनमे से एक तो Calcium (Factor 4) है जो १०० सी०सी० मे ९.६-१०.९ मिलि० होता है, जिसके विषय मे १८९० मे Arthur तथा Pages द्वारा हमे पता लग चुका था। उसके वाद १९०५ मे Morawitz ने रक्त के जमने की प्रक्रिया पर वहुत प्रकाश डाला। उसने वताया कि Thromboplastin (Factor 3) रक्त के अदर विद्यमान Prothrombin (Factor 2) को, जिसे रक्त मे से पृथक् किया जा सकता है तथा जो यकृत् मे वनता है, Thrombin मे परिवर्तित कर देता है तथा इस परिवर्तन के लिये रक्त मे Calcium का होना आवश्यक है। फिर यह Thrombin (Thrombase), जो एक Enzyme है, Fibrinogen (Factor 1) को जिसे रक्त मे से पृथक् किया जा सकता है Fibrin (Blood Clot) मे, जो

धागो के रूप मे होता है, वदलने का काम करता है। Prothrombin की उत्पत्ति यकृत् मे विटामिन "के" के द्वारा होती है। सक्षेप मे कहा जा सकता है Clotting= Prothrombin + Thromboplastin + Calcium ions →Thrombin/Thrombin + Fibrinogen→Fibrin.

१९४७ मे Quick तथा Brinkhouse ने Thromboplastin की उत्पत्ति पर विशेष प्रकाश डालते हुये वताया कि रक्त मे एक और Globulin है जिसे उन्होने Antihaemophilic Globulin (A H G या Thromboplastinogen Factor 8) का नाम दिया। यह द्रव्य खण्डित हुए अवयव के सपर्क मे आए Platelets को खण्डित कर उसमे से *Thromboplastin Factor* की उत्पत्ति मे सहायक होता है। अर्थात् रक्त के जमने के लिये Platelets के अतिरिक्त रक्त मे एक Antihaemophilic Globulin या Factor 8 का होना अत्यावश्यक है।

इसके वाद Plasma मे और Serum मे विद्यमान कुछ और तत्वो का भी पता लगा जो कि रक्त के जमने मे सहायक होते हैं। इनमे से एक को, जो यकृत् मे उत्पन्न होता है तथा प्लाज्मा मे रहता है और उसके जम जाने के वाद नष्ट हो जाता है, Plasma Prothrombin Accelerator या Conversion Factor 5 (Proaccelerin) कहते है, यह नश्वर या Labile Factor है और वाद मे वचे Serum मे नही रहता। प्लाज्मा को गर्म करने या रखने से यह नष्ट हो जाता है। इसकी अनुपस्थिति मे भी Prothrombin का Thrombin मे परिवर्तन विलम्व से होता है। दूसरा एक पदार्थ जो प्लाज्मा के जम जाने के वाद सीरम मे रहता हे तथा प्लाज्मा मे विद्यमान अपने किसी पूर्वरूप (Precursor) से उत्पन्न होता है तथा सीरम के वहुत काल तक गर्म करने या रखने पर भी नष्ट नही होता अर्थात् स्थिर (Stable Factor) होता है, उसे Serum Prothrombin Conversion Accelerator (SPCA) या Converter Factor 7 (Proconvertin) कहा जाता है। (एक Serum Accelerator Factor 6 कहा गया था, उसे अव नही माना जाता।) ये दोनो फैक्टर Prothrombin से Thrombin की उत्पत्ति मे सहायक होते है। इन दो Factors अर्थात् ५ और ७ के तथा Prothrombin की न्यूनता मे "Prothrombin काल" दीर्घ हो जाता है।

१९५३ मे Biggs, Douglas तथा Macfurlane ने वताया कि रक्त मे Thromboplastin की ठीक-ठीक उत्पत्ति के लिये तथा उसके द्वारा उसके जमने के लिये Platelets, Antihaemophilic Globulin, Factor 5, Factor 7 तथा Calcium के अतिरिक्त एक और आवश्यक तत्त्व भी होता है, जिसे उनने Christmas Factor या Plasma Thromboplastin Component (Factor 9) का नाम दिया। यह रचना मे तो Factor 7 के सदृश तथा कार्य मे Antihaemophilic Globulin की तरह का होता है अर्थात् Platelets इसके सपर्क मे Thromboplastin को उत्पन्न करते हैं। इसकी उत्पत्ति क्योकि कुछ देर मे अर्थात् ३ से ८ मिनट मे होती है, इसीलिये नार्मल रक्त का जमने का समय कुछ लम्बा होता है जवकि प्लाज्मा में Stock Tissue-Thromboplastin मिलाने से वह इस *समय से पहले ही जम जाता है। Factor 8* तथा Factor 9 एक सा कार्य करते हैं अर्थात् Thromboplastin की उत्पत्ति में सहायक होते हैं। जो Thromboplastin शारीरिक अवयव के रस मे से उत्पन्न होता है उसे Tissue Thromboplastin कहते है। उसकी उत्पत्ति के लिए Factor 5 और 7 सहायक होते हैं। जो Thromboplastin रक्त के अन्दर Platelets से उत्पन्न होता है उसे Bloodthromboplastin कहते हैं उसकी उत्पत्ति में Factor 5 के अतिरिक्त Factor 8 और 9 आवश्यक होते है।

Vitamin K के देने से Prothrombin और सम्भवत Serum Prothrombin Accelerator 7 की वृद्धि होकर रक्त जमने (Coagulation) की प्रक्रिया तीव्रतर हो जाती है। गर्मी के देने तथा Adrenalin के देने से भी यह प्रक्रिया तीव्र होती है। इसके विपरीत Dicoumarin तथा Tromexan, Heparin किस्म की औषधियो के देने से तथा शीत से Factor 7 की क्रिया मन्द हो जाती है जिससे Thrombin की उत्पत्ति कम होती है एव रक्त मे Thrombus की उत्पत्ति मन्दता से होती है।

रक्तस्राव रोगी की परीक्षा

(१) Bleeding Time—कान के निचले सिरे मे सुई से छिद्र करके रक्त के निकलने पर आधे-आधे मिनट मे उसे फिल्टर पेपर से चूस लिया जाता है। जितने समय पर रक्तस्राव वन्द हो जाता है उसे नोट कर लिया जाता है। स्वस्थ व्यक्ति मे यह २-५ मिनट मे वन्द हो जाता है। इसे Bleeding Time कहते है। Capillary Contraction के ठीक होने से यह वन्द होता है। रक्त पित्त रोग मे ऐसा न होने मे स्राव जारी रहता है।

(२) Blood Clotting Time—Lea and White's Method के अनुसार एक शिरा मे से सीरिञ्ज

के द्वारा रक्त लेकर ४ ट्यूबो में जो $2\frac{3}{4} \times \frac{3}{8}$ इंच माप की होती हैं १-१ मिलिमीटर मात्रा में डाल दिया जाता है। इन ट्यूबो को ३७ सेण्टीग्रेड डिग्री के जल (Water Bath) मे रखा जाता है $\frac{1}{2}$ मिनट मे इन ट्यूबों को हिलाया जाता है जब तक कि उन्हे उलटाने से भी रक्त न उलटे। सीरिन्ज मे रक्त लेने से इस समय तक के अन्तर को नोट किया जाता है। चारो के औसतन टाइम को ही ठीक माना जाता हे। स्वस्थ रक्त मे यह समय ४-१० मिनट तक होता है। ट्यूब को तोडने पर टूटे प्रदेश पर Fibrin के धागे दीखते हैं। यह समय दीर्घ हो जाता है कामला, यकृत् के फेल होने पर, Aplastic पाण्डु तथा Leckaemia में।

1. Vitamin "K" या Prothrombin की न्यूनता से होने वाला रक्तस्राव—Haemorrhagic Disease Due to Hypoprothrombinaemia

(क) नवजात शिशु रक्त पित्त—Purpura Neonatorum, Melaena Neonatorum, Haemorrhagic Disease of the New born, Primary Hypoprothrombinaemia

२००-३०० नवजात शिशुओ मे से एक मे, अर्थात् कभी-कभी, जन्म के दूसरे-तीसरे दिन रक्तातिसार हो जाता है अथवा उसकी नाभि मे से रक्तस्राव हो जाता है कभी-कभी मूत्र मार्ग या योनि मार्ग से भी होता है। माता का दूध पीने के बाद अर्थात् जन्म के चार दिन बाद फिर यह रोग नही होता। माता में Vitamin "K" की न्यूनता के कारण उसके शिशु के यकृत् मे Prothrombin की अति न्यूनता हो जाती है। आँत मे विद्यमान Saprophytes के द्वारा Vitamin "K" उत्पन्न होता है। नवजात शिशु की आँत में ये जीवाणु भी उत्पन्न नही हुए होते। रक्त मे Prothrombin नार्मल का २०% रह जाय तो रक्तस्राव की यह प्रवृत्ति रहती है। उसे यह रोग न हो, इस उद्देश्य से प्रसव के आरम्भ मे माता को २५ मिलिग्राम के लगभग Vit K (Menaphthone) मुख द्वारा दे दिया जाता है। रक्तस्राव होने पर ५-१ मिलि० विटामिन 'के' त्वचा या मास में दिन में १ बार दे देना चाहिए (Menaphthone Sodium bisulphite)।

(ख) Vitamin "K" या Prothrombin की न्यूनता से होने वाला रक्तस्राव, Acquired Hypoprothrombinaemia

जीर्ण ग्रहणी रोग (Sprue) जीर्ण त्रिदोषातिसार (Ulcerative Colitis) मे Vitamin "K" की न्यूनता का हो जाना स्वाभाविक है, जिससे यकृत् मे Prothrombin की उत्पत्ति कम होती है। इसी प्रकार अवरोध जनित कामला (Obstructive Jaundice) मे तथा पीलिया (Infective Hepatitis) तथा जीर्ण यकृद्रोग (Hepatic Cirrhosis) में जब यकृत् के सैल रुग्ण होते है, Prothrombin का निर्माण ही कम होता है। Antibiotic औषधि का देर तक प्रयोग करने से भी ऐसा ही होता है। Vitamin "K" स्नेह मे घुलने वाला पदार्थ है और स्नेह के पूर्ण विलयन के लिये आँत मे पित्त का उचित मात्रा मे होना आवश्यक है। इसीलिये यकृद्रोग मे जब पित्त आँत मे कम पहुँचता है Vitamin "K" का विलयन भी कम हो जाता है। इसी प्रकार Decoumarol सदृश Anticoagulant औषधियो के अति प्रयोग से भी शरीर मे Prothrombin तथा Factor VII और Factor IX की न्यूनता होकर रक्तस्राव हो सकता है। इन औषधियो के कारण पहले पहल मूत्र मे रक्त आता है। अत इनके प्रयोग के समय मूत्र परीक्षा करनी आवश्यक होती है।

जब शरीर मे Vitamin "K" की न्यूनता हो जैसे कि Gallstones के रोग के कारण होता है या जीर्ण आन्त्र रोगो में होता है उसके कारण यकृत् मे Prothrombin कम बनता हो, तब Coagulation या Clotting Time तथा Prothrombin Time दोनो लम्बे हो जाते हैं।

Prothrombin Time

रक्त लेकर उसे ३७ सेण्टीग्रेड पर रखकर उसमे Standard Solution of Oxalate मिलाया जाता है, जिससे रक्त का Calcium पृथक् (Dicalcification) हो जाता है। अब पहले उसमे Tissue Extract अर्थात् Thromboplastin मिलाया जाता है और उसके बाद उसमे Calcium के मिलाने के बारह सैकिण्ड मे रक्त जम जाता है अर्थात् नार्मल Prothrombin Time १२ सैकिण्ड है। जब रक्त में Prothrombin कम होता है अर्थात् Vitamin "K" या यकृत् के सैलो मे निर्बलता होती है तो यह Prothrombin Time १२ सैकिण्ड से लम्बा हो जाता है। २०-३० सैकिण्ड का यह हो तो व्यक्ति मे रक्तस्राव होने का भय रहता है। इस रोग मे Prothrombin Time ४०-५० प्रतिशत से नीचे रहता है। इसके १०-१५ प्रतिशत तक आ जाने पर रक्तस्राव हो सकता है।

2. Platelets की न्यूनता से होने वाला रक्तस्राव

Platelets की सहज न्यूनता से (बहुत कम अवस्थाओं में) होने वाला रक्तस्राव Primary या Essential Thrombocytopenic Purpura या P Haemorrhagica

किसी-किसी बाल्यावस्था व नवयुवावस्था के व्यक्ति मे अधिकतर स्त्री मे Platelets की सहज न्यूनता के कारण त्वचा मे या नाक, मुख, आमाशय, पेट, गर्भाशय, मूत्र मार्ग आदि किसी द्वार से रक्तस्राव हो जाता है और इसी प्रकार समय-समय पर होता रहता है अथवा उसके क्षत हुये प्रदेश से रक्तस्राव देर तक जारी रहता है अर्थात् Bleeding Time जो साधारणत १-४ मिनट का होता है, इनमे अधिक लम्बा होता है। सिरा मे उत्पन्न छेद को पहले प्लेटलेट्स भरते है, उनकी कमी मे रक्त बहता रहता है। रक्त की परीक्षा करने पर रक्त मे Platelets एक क्यूबिक मिलिमीटर मे २ लाख से ६ लाख के स्थान पर ६० हजार के लगभग या इससे भी कम पाये जाते हैं जिससे इनमे रक्तवाहिनियो मे उत्पन्न हुये छिद्र को भरने की शक्ति कम होती है। प्लेटलेट्स मे से उनमे Thromboplastin की उत्पत्ति होकर रक्त मे जमने या Clot बनने की प्रक्रिया तो ठीक होती है पर Platelets की सख्या के कम हो जाने पर यह छिद्र भली प्रकार बन्द नही हो पाता, Clot मे सिकुड जाने का गुण भी नहीं होता। जिससे इस रोगी मे यद्यपि जमने का समय (Coagulation Time) तो नार्मल अर्थात् ५ से १० मिनट का होता है पर छिद्र के शीघ्र बन्द न होने से Bleeding Time लम्बा होता है। टागो पर जहा रक्तवाहिनियो के अन्दर रक्त का दवाव अधिक रहता है या जहाँ पर बाह्य आघातो के लगने का अवसर अधिक रहता है, लाल चकत्ते (Petechiae या Ecchymoses) या छोटे रक्त अर्बुद (Haematoma) निकलते रहते है अथवा किसी एक द्वार से समय-समय पर रक्तस्राव होता रहता है, रक्तस्राव किसी प्रकार की चोट पहुचने मे होता है, या बहुधा किसी प्रत्यक्ष चोट के बिना भी रक्तस्राव होता है। प्रति क्यूबिक मिलिमीटर रक्त मे ४० हजार की इनकी सख्या के हो जाने पर रोग प्रकट हो जाया करता है। यह रोग तीव्र रूप मे कम होता है और बालको मे होता है। चिरस्थायी रूप मे यह बडो मे भी होता है तथा अधिक होता है। तीव्र रूप मे जब होता है तब नासिका, मसूडो, अन्नमार्ग, मूत्रमार्ग या गर्भाशय मे सहसा रक्तस्राव होने लगता है और किसी सक्रामक रोग के वेग के होने पर होता है तथा स्वयमेव कुछ सप्ताह मे ठीक हो जाता है। इस प्रकार लगभग ७५ प्रतिशत में यह शान्त हो जाता है। चिरस्थायी रूप में रक्तस्राव विशेष नही होता परन्तु रक्तवर्ण चकत्ते त्वचा पर विशेष निकलते हैं। बाहु पर शिराओं को २ मिनट के लिये दवाकर अवरुद्ध कर दिया जाय तो त्वचा पर लाल चकत्ते प्रकट हो जाते है। अर्थात् उनकी दीवारो की भगुरता (Fragility) बढ जाती है। ज्यो-ज्यो रोगी बडा होता है, रोग हलका पडता जाता है तथा २५ प्रतिशत में ठीक हो जाता है। इस रोग के—जिसका पता पहले-पहल १९१० मे Duke ने लगाया—कारण के विषय में एक मत तो यह है कि मज्जा में Platelets का विकास ठीक-ठीक नही होता जिससे वहा Megakaryocytes और उनके भी पूर्वरूप Megakaryoblasts की सख्या बहुत बढ जाती है। वे देखने मे अजीब से होते Nucleus एक ही होता है। Cytoplasm कम होता है उसमे खाली सा Vacuole होता है। अपूर्ण विकसित Platelets रक्त मे सचार कर जाते हैं। उनमे कोई बहुत बडे कोई बहुत छोटे होते हैं और जैसे प्लीहा, यकृत्, मज्जा आदि के Reticulo-endothelial Cells के द्वारा अपूर्ण परिणत रक्तकणो (Megalocytes) के अति मात्रा में नष्ट होने से अर्थात् Hypersplenism के कारण Macrocytic Anaemia होता है, वैसे ही प्लीहा के इस रोग के कारण शरीर मे Platelets के अधिक मात्रा में नष्ट होते रहने (Sequestering) या Fragile होने से Thrombocytopenic Purpura का रोग हो जाता है। अर्थात् या तो मज्जा मे इनका विकास ठीक न होने से प्लीहा मे नष्ट होते है या प्लीहा के Platelet agglutinins के उत्पन्न करने के कारण Platelets sensitize हो जाते हैं जो प्लीहा मे नष्ट कर दिये जाते है, कुछ एक मे वह बढी हुई भी होती है। देखा गया है कि पूर्ण परिणत हुए छोटे Platelets से जैसा Thrombus बनता है वैसा वह आकार मे बडे दीखने वाले अविकसित Platelets के द्वारा नही बनता तथा Splenectomy का शल्यकर्म हो जाने पर ये भगुर प्लेटलेट फिर कम नही होते। इस प्रकार Platelets की न्यूनता का एक कारण तो अस्थि मज्जा मे Megakaryocytes का जो इनके प्रारम्भिक रूप होते हैं ठीक-ठीक विकसित न होना है और फिर इनका प्लीहा मे नष्ट होना है। रक्तकणो की ठीक उत्पत्ति न होने वाले पाण्डु रोग मे भी प्लेटलेट्स की कमी होती है तो भी लगभग तीन-चौथाई रोगियो मे उनके रक्त प्लेटलेट्स की कमी का कारण उनके प्लाज्मा मे एक प्लेटलेट्स विरोधी या Antiplatelet पदार्थ या Platelet Agglutinin या

Circulating Auto Agglutinin का होना है, वह इनका विनाशक होता है। उसकी उत्पत्ति किसी सक्रामक रोग के जीवाणु या विष के कारण रक्तस्थ प्रोटीन्स की किस्म या Pattern का ही वदल जाना है जिससे यह Complex Protein एक Antigen हो जाता है और इसके विपरीत यह Agglutinin उत्पन्न हो जाता है या किसी औषधि विशेष के कारण उत्पन्न Antigen के विरोध मे इसकी उत्पत्ति होती है। फिर इन दोनो की परस्पर प्रतिक्रिया से Platelets अधिक मात्रा में नष्ट हो जाते हैं। इनके प्लाज्मा को स्वस्थ व्यक्ति के रक्त मे डालने से उसे भी रक्त पित्त या Purpura हो सकता है। Immune Mechanism इस रोग का कारण है इसलिए भी क्योंकि Steroids से इसमे लाभ होता है।

इस प्रकार औषधियो और किसी सक्रामक रोग के कारण होने वाले रक्त पित्त का कारण भी Platelet Agglutinins होते हैं। ऐसे रक्त रोगो में जैसे मज्जा रोग जनित पाण्डु (Aplastic Anaemia) Reticulocytosis, Leukaemia में वहुधा Platelet Agglutinin के कारण रक्त पित्त पाया गया है। Lupus Erythematosus मे भी इन्ही के कारण रक्तस्राव हो सकता है। इन्हे Primary न कहकर Secondary Thrombocytopenia कहते हैं।

प्लेटलेट्स की आगन्तु न्यूनता से होने वाला रक्तस्राव— Secondary Thrombocytopenic Purpura

Aplastic Anaemia, Leukaemia, X-Ray या Radio-active पदार्थों या तीव्र ज्वर के कारण इन कणो की न्यूनता हो जाने पर होता है।

भेदक लक्षण

प्लेटलेट्स की न्यूनता के कारण (Thrombocytopenic) होने वाले चकत्ते छोटे, नीले या भूरे रग के होते हैं तथा वेदनाजनक नही होते। आगे कहे जाने वाले सिरा नैर्बल्य जनित (Anaphylactoid) चकत्ते वडे, गाढे लाल रग के, तथा वेदनाजनक होते है। उसमें Bleeding Time नार्मल होता है, प्लेटलेट्स की सख्या भी नार्मल होती है। यदि प्लीहा कुछ वढी हुई लगे तो Reticulosis आदि रक्त रोगो के कारण रक्त पित्त है ऐसा समझना चाहिये क्योंकि इस रोग मे प्लीहा वृद्धि नहीं होती। प्लेटलेट्स की न्यूनता से रक्त पित्त हो तो Bleeding Time लम्वा होता है रक्तवाहिनियो की निर्वलता के कारण रक्तस्राव हो तो Hess's Test करे। अर्थात् कोहनी से २ इच नीचे अग्रवाहु के अग्रिम पृष्ठ पर १ इच व्यास का वृत्त खीचे फिर Sphygmomanometer से Systolic तथा Diastolic विन्दुओ के मध्य विन्दु पर १५ मिनट तक दवाव रखे और ५ मिनट वाद वृत्त मे चकत्तो की सख्या गिने, ये २० से अधिक हो तो इस रोग का सन्देह करना चाहिये। Aplastic Anaemia के रोग मे भी Thrombocytopenia का लक्षण होता है पर उसमे मज्जा मे Megakaryocytes वहुत कम होते हैं।

साध्यासाध्य

Thrombocytopenia तीव्र रूप मे, लडकियो व वालको मे हो तो वहुधा ठीक हो जाता है। युवावस्था के वाद यह रोग लगभग ५०% में ठीक हो जाता है। मस्तिष्क मे रक्तस्राव हो जाना इसका एक वडा उपद्रव हो सकता है।

3. प्लाज्मा मे Antihaemophilic Globulin की न्यूनता से उत्पन्न होने वाला रक्तस्राव

पैत्रिक रक्त पित्त—Haemophilia

सहज रक्तस्राव का रोग, किसी-किसी परिवार मे, देखने मे इस रोग से रहित माता के द्वारा पैतृक परम्परा से पुरुषो मे आता है अर्थात् स्त्री रोगवाहक होती है। रोग पुरुष मे ही प्रकट होता है। इन परिवारो के व्यक्तियो के रक्त मे स्वभावत· Antihaemophilic Globulin या Factor 8 की न्यूनता होती है जिससे Platelets के उचित मात्रा मे होने पर भी इनके प्लाज्मा मे Thromboplastin की उत्पत्ति उचित मात्रा मे नही होती।

सौभाग्य से यह रोग वहुत कम होता है। जव होता है तो वालक मे दूसरे वर्ष के अन्दर ही इसके लक्षण प्रकट हो जाते हैं। अर्थात् उसके किसी अग पर स्वल्प आघात लगने पर भी त्वचा के अन्दर रक्तस्राव होकर Haematoma वन जाता है या लाल रग का वडा चकत्ता वन जाता है। वालक के रिडने पर उसके गोडे भीतर मे रक्तस्राव होने के कारण सूज जाते है, जो रक्त विलीन नही होता उससे Synovial Membrane मोटी हो जाती है। त्वचा मे क्षत होने पर भी वहा से रक्तस्राव अधिक देर तक चलता है। रोगी के रक्त मे जमने की प्रक्रिया अति मन्द रूप मे होती है अर्थात् उसके रक्त का Coagulation Time ५-७ गुणा लम्वा होता है। ३० मिनट से घटो तक हो सकता है परन्तु यदि उसे सुई चुभोई जाय तो Platelets के साधारण मात्रा मे होने के

कारण वहा का छिद्र तो बन्द हो जाता है अर्थात् Bleeding Time तो लगभग साधारण या कुछ लम्बा होता है, Prothrombin Time भी लगभग साधारण होता है पर Coagulation Time असाधारण तौर से लम्बा होता है जिससे रक्त रिसता ही रहता है। उस परिवार के बालको मे पहले भी इस रोग के होने का इतिवृत्त होता है।

4. सिरा नैर्बल्य जनित रक्तस्राव Vascular Purpura, Capillary Purpura, Haemorrhagic Capillary Toxicosis, Anaphylactoid Purpura, Allergic Purpura

बालको और नवयुवको मे एक रक्तस्राव पाया जाता है जो उनकी सूक्ष्म सिराओ (Capillaries या Endothelium के Collagen Tissue) की किसी बाह्य प्रोटीन के प्रति असहनशीलता (Hypersensitivity एव Permeability) के बढ जाने के कारण होता है न कि रक्त मे किसी कमी के कारण। यह बाह्य प्रोटीन भोजन से आता है, विटामिन 'सी' की कमी से भी इनमे निर्बलता आती है। सिराओ के Collagen Tissue को विक्षुब्ध करने वाला पदार्थ कोई विष (Toxin) भी होता है अर्थात् Streptococcal, Malarial Meningococcal, Enteric, Staphylococcal या Eruptive Fever सम्बन्धी विष भी इस रोग का कारण हो जाते हैं। इसी प्रकार किसी Antigen के कारण उत्पन्न सिराओ की क्षति से भी यह रक्तस्राव हो सकता है। रक्त मे पूय जनक जीवाणु या उनके विष हो अर्थात् तीव्र ज्वर हो तो रक्तस्राव का लक्षण हो सकता है। भोजन सम्बन्धी कोई तीक्ष्ण पदार्थ या शरीर मे उत्पन्न विष (Metabolite) या कोई तीक्ष्ण औषधि (क्विनीन, एट्रोपीन, Ergot, सुवर्ण, Chloramphenicol) किसी व्यक्ति की सिराओ पर विष का सा प्रभाव करके रक्तस्राव का कारण हो सकती है। किसी प्रोटीन के कारण भी जो रक्तवाहिनियो को सहन नही होता यह रक्तस्राव होता है, अत इसे Allergic Purpura भी कहते हैं, सर्प विष का भी ऐसा ही रक्तस्रावक प्रभाव होता है। यह रोग निम्नलिखित रूपो मे देखा जाता है —

१ Purpura Simplex **या मृदु रक्त पित्त**

बालक या नवयुवक को विष सचार (Toxaemia) के लक्षणो अर्थात् सिरदर्द और कुछ ज्वर के साथ शाखाओ की त्वचा मे रोम कूपो के चारो ओर के प्रदेश मे कुछ एक शीत पित्त सदृश रक्तवर्ण चकत्ते दोनो ओर निकल आते है। कोहनी के आसपास, निचली टागो के अगले पृष्ठ पर, गिट्टो पर, पैरो पर, तथा बैठने के स्थान की त्वचा मे, ये लाल चकत्ते विशेषत दीखते हैं। सिराओ मे से निकले रक्तकणो के कारण ये चकत्ते लाल होते हैं तथा उनमे से निकले Plasma के कारण ये उभरे हुए भी होते हैं। इस प्रकार यह रोग एक प्रकार का शीत पित्त सदृश (Urticarial) Purpura है जो एक महीने के लगभग रहता है। कभी-कभी इस रोग के कारण हाथ, पैर निचली टाग या चेहरे पर उदर्द का सा उभार (Angioneurotic Oedema) भी हो जाता है। इन पर दबाने से कुछ दर्द भी होता है। यह किसी जीवाणु विशेषत Streptococci या किसी भोजन या औषधि की असात्म्यता से उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह Allergic Purpura है।

२ Abdominal Purpura, Henoch's Purpura—आन्त्रिक रक्तस्राव

बालक या नवयुवक में कभी-कभी त्वचा मे रक्तस्राव होने के साथ-साथ, आमाशय तथा आँत की दीवार के किसी भाग की सिराओ से Serum तथा रक्त के श्लेष्मकला से नीचे के स्तर (Submucous) मे पर्याप्त मात्रा मे परिस्रुत हो जाने से उनका एक भाग मोटा और कठोर हो जाता है जिससे रोगी को बिना भोजन किये भी पेट मे भारी दर्द होती या वमन होती है या मलबन्ध या अतिसार के लक्षण हो जाते हैं जो १-२ दिन मे ठीक हो जाते हैं या १ सप्ताह के लगभग रहते हैं तथा बर्फ की टोपी रखने से जिसमे आराम प्रतीत होता है। परीक्षा करने पर रोगी का पेट कठोर दीखता है तथा रोगी को हलका ज्वर भी होता है। यदि शाखाओ और धड की त्वचा पर Purpura Simplex का लक्षण भी साथ ही हो तो इस रोग के निश्चय करने मे कठिनता नही होती। आमाशय या आँत मे हुआ रक्तस्राव जनित यह शोथ एक-आध दिन मे ठीक हो जाता है परन्तु इसके दुबारा होने की आशका करनी चाहिये। बालक मे बार-बार ऐसा दर्द होने पर तो इस रोग का निश्चय हो जाना चाहिये। क्योकि वर्ष मे २-३ बार या अधिक बार यह होता है। इसमे रक्त का प्लाज्मा ही निकलता है रक्तकण कम निकलते हैं। अत त्वचा मे रक्तस्राव हो तो वह शीत पित्त की तरह का उभार होता है उसमे लाली नही होती।

३. सधि में रक्तस्राव—Rheumatic Purpura, Schonlein's Purpura

१०-३० वर्ष के नवयुवक व्यक्ति मे Purpura Simplex के लक्षणो के साथ-साथ अर्थात् टागो पर चकत्ते निकलने के साथ किसी बडी सन्धि की जैसे कोहनी या गोडे या गिट्टे की सिराओ मे से सहसा परिस्रवण होकर सन्धि मे या तो केवल Plasma या रक्तकणो से युक्त Plasma एकत्रित हो जाता है जिससे उसमे दर्द होने लगता है। एक के वाद दूसरी सन्धि मे यह शोथ हो जाता है। यह शोथ सन्धि के अन्दर (Intra) न होकर आसपास (Periarticular) होता है या किसी मासपेशी मे भी प्लाज्मा होने से दर्द हो सकता है। परीक्षा करने पर सन्धि कुछ-कुछ फूली हुई होती है पर रक्त वर्ण नही होती। तापमान भी १०३ फा० तक हो जाता है। गला भी सूजा होता है। त्वचा मे कही पर लाल चकत्ते (Urticaria) भी हो जैसे कि निम्न जघा के अग्रिम पृष्ठ पर तो आम वातिक सन्धि शोथ (Rheumatic Arthritis) से इसका भेद सुगम हो जाता है। कभी-कभी टागो, पैरो, चेहरे, हाथो पर वडे उभार भी होते हैं। इन सर्व अवस्थाओ में प्लेटलेट्स की सख्या Coagulation तथा Bleeding Time नार्मल होते हैं। यह अवस्था कई सप्ताह चलती है। परीक्षा करने पर Eosinophilia या Polymorph Leucocytosis का लक्षण मिल सकता है। यह रोग सुखसाध्य है।

४ शारीरिक विष के कारण रक्तस्राव

जीर्ण वृक्क रोग में मूत्र विष सचार (Uraemia) के उपद्रव के रूप में रक्तवाहिनियो पर दुष्प्रभाव होकर आमाशय, आँत, मस्तिष्क आदि में रक्तस्राव हो सकता है। पहले नाक से रक्तस्राव (Epistaxis) का लक्षण होता है। मूत्र तथा रक्त की परीक्षा से वृक्क रोग होने का पता चलता है। इसी प्रकार कामला या Infective Hepatitis में Cholaemia का रक्तवाहिनियो पर दुष्प्रभाव होकर आमाशय, आँत आदि से रक्तस्राव हो सकता है तथा त्वचा पर चकत्ते (Petechiae) निकल सकते हैं।

५ उर.क्षय के कारण रक्तस्राव

Purpura in Pulmonary T B —उर क्षय रोग में शाखाओ तथा कोष्ठ की त्वचा पर रक्त वर्ण चकत्ते कभी-कभी निकलते देखे जाते है। क्षय की अत्यन्त असात्म्यतावश रक्तवाहिनियो की अन्त कला पर उसका दुष्प्रभाव होकर यह रक्तस्राव होता लगता है।

Scurvy रोग मे भी दन्त मास से रक्तस्राव होता है क्योकि सैलो को जोडने वाला सीमेंट पदार्थ निर्वल होता है।

६ फाइब्रिनोजन की न्यूनता से होने वाला रक्तस्राव—Fibrinogenemia

तीव्र यकृद्रोग में फाइब्रिनोजन की उत्पत्ति कम हो जाती है। कैन्सर में इसका खर्च अधिक होने से इसकी कमी हो जाती है। इसी प्रकार शरीर से रक्तस्राव अधिक होता रहता है तो भी इसकी मात्रा कम हो जाती है। Fibrinogen के कम हो जाने पर Coagulation Time तथा Prothrombin Time लम्वे हो जाते हैं। प्रसव अथवा शल्यकर्म के वाद रक्तस्राव हो जाय तो इसका सन्देह करना चाहिये। स्वल्प आघात से भी इसमें रक्तस्राव हो जाता है।

७ विषज रक्तस्राव—Toxic Purpura

तीव्र ज्वरो में सिराओ की अन्दर की झिल्ली पर जीवाणुओ से उत्पन्न Enzymes के दुष्प्रभाव से भी यह रोग हो सकता है।

८ औषधिजनित रक्तस्राव—Drug Purpura

किसी तीक्ष्ण औषधि के सिराओ की झिल्ली पर दुष्प्रभाव या Allergy से होता है।

आहारजनित

गेहू, अण्डा, दूध, टमाटर, प्याज, मछली, मास आदि की Allergy से भी यह रोग हो सकता है।

रक्तस्राव की चिकित्सा

Hypoprothrombinaemia मे विटामिन K के अभाव या Vitamin K_1 के स्थान पर Water Soluble Synthetic Vitamin Menadione Sodium Bisulphite केप्सूल्स मे १० मिलिग्राम मात्रा में मिलता है। उदाहरणत Synkavit (Roche) या Kapilin (Glaxo) या Menadione (K-Vit B I, Vitamindon-K, Indopharma) या Synkamin १० मिलिग्राम की दैनिक मात्रा मे मुख द्वारा दिये जाते हैं। Acetomenaphthone (Kapilon Prokayvit B D H) १० मिलि० दैनिक मात्रा मे मुख मे दिया जाता है। ग्रहणी, कामला आदि से उत्पन्न Prothrombin की न्यूनता इसके ३-४ दिन के प्रयोग से ठीक हो जाती है। यकृद्रोग जनित रक्तस्राव मे इससे वहुधा लाभ नही होता। Menadione Sodium Bisulphite (Hyki-

none) तथा Sodium Menadione Diphosphate (Synkavit) मास व शिरा द्वारा भी दिये जाते हैं। कामला—Jaundice—तथा यकृद्रोग मे मास द्वारा इसका प्रयोग करना चाहिये। नवजात शिशु के रक्तस्राव के लिये Menaphthone (Synkavit) को एक मिलिग्राम की मात्रा मे मास द्वारा या ५ मिलिग्राम मुख द्वारा ८ घटे के अन्तर से दो तीन बार देने से लाभ हो जाता है। Phytomenadione (Mephyton तथा Konakion) के १० मिलि० मात्रा मे शिरा द्वारा ५ मिनट लगा के धीरे-धीरे देने से बढा हुआ Prothrombin Time नार्मल हो जाता है। इसे ५ मिलि० मात्रा मे मुख से देने से भी यही लाभ होता है। यह रक्तस्राव न हो इस उद्देश्य से Acetomenaphthone (Kapilon oral) २५ मिलिग्राम मात्रा मे माता को प्रसव से १२ से ४ घण्टे पहले दे दिया जाता है तथा नवजात शिशु को ५ मिलि० मात्रा मे मुख द्वारा पहले दिन दे दिया जाता है। रक्तस्राव अधिक हो तो ६० सी० सी० रक्त Scalp या वाहु की किसी शिरा से देना चाहिये। Albumen Water मुख से २-२ घटे पर देवे। Anticoagulant औषधि से उत्पन्न रक्तस्राव मे इसे ५-१० मिलि० मात्रा मे शिरा द्वारा देना चाहिये। स्पष्ट है कि इनमे से एक की वृद्धि हो तो दूसरे की वडी मात्रा देनी पडती है।

क्षुद्र कण जनित रक्तस्राव अर्थात् Idiopathic Thrombocytopenic Purpura

इसकी चिकित्सा Autoimmune Haemolytic Anaemia के समान है, अत इसके लिये Corticotrophin के ८०, १०० मिलिग्राम या Prednisone (Delta Corlin tab, Delta Corton) के ६० मिलिग्राम दैनिक मात्रा मे १५-२० दिन तक देने से वहुधा लाभ हो जाता है या Prednisolone ४० मिलि० दैनिक मात्रा मे इतने ही दिन देना चाहिये। बालक के लिये २० मिलि० मात्रा दैनिक है। इनके प्रयोग से यदि तो Platelets की मात्रा वढ जाती है तो स्थायी लाभ हो जाता है परन्तु यदि इनके द्वारा केवल सिराओ की दुर्बलता (Fragility) ही शान्त हो तो लाभ अस्थायी होता है। इनका प्रयोग ३-४ सप्ताह तक करना पर्याप्त होता है। इसका प्रयोग वन्द करने पर फिर रक्तस्राव हो तो इस औषधि को चिरकाल तक स्वल्प मात्रा मे देवे। रक्तदान Transfusion के वार-वार प्रयोग से भी इसमे लाभ हो जाता है। इन दोनो चिकित्साओ से लाभ न हो तो Splenectomy के शल्यकर्म से वहुधा लाभ हो जाता है अर्थात् प्लेटलेट्स की सख्या वढ जाती है। इस शल्यकर्म के बाद स्टेरॉयड का प्रयोग जारी रखना चाहिए। Secondary Thrombocytopenia के लिये जिस औषधि से Aplastic Anaemia हो उसे वन्द कर देना चाहिये तथा Transfusion देना चाहिये तथा इसमे भी Prednisolone का प्रयोग उपयुक्त विधि से करना चाहिए।

Anaphylactoid Purpura मे Allergy कारण हो तो Adrenalin या Antihistamine Drugs जैसे Benadryl ५० मिलि० या Phenindamine Tartrate (Thephorin) २५ मिलि० या Chlorpheniramine ४ मिलि० (Piriton) दिन मे तीन वार देने से और यदि सक्रमण या Infection कारण हो तो Penicillin की चिकित्सा मे लाभ हो सकता है। Prednisolone के ५-१० मिलि० मात्रा मे ३ वार २०-३० दिन देने से भी लाभ होता है।

पैतृक रक्त पित्त के लिये रोगी को ताजा प्लाज्मा (Fresh Frozen Plasma) जिसमे Antihaemophilic Factor होता है कुछ पाइन्ट्स (१० सी० सी० १ किलो भार के पीछे) की मात्रा मे वहुत दिनो तक देना चाहिये या रक्त Transfusion इसी प्रकार देना चाहिये। A Factor पशुओ मे से निकाला मिलता है पर वह मनुष्य के लिये Antigen का कार्य करने से हितकर नही है, मनुष्य रक्त मे निकाला यह Factor मिले तो इसका प्रयोग सर्वोत्तम है। रोगी को जब रक्तस्राव हो उसे आराम से लिटा देना चाहिये तथा स्राव स्थान को साफ करके Thrombin या Adrenalin या Fibrinfoam, Oxidised Cellulose (Oxycel) या Gelatin Sponge (Gelfoam) को उस स्थान पर लगा देना चाहिये। ताजे रक्त के लगाने या १० हजार मे १ Vipervenom (Stypven) लगाने से भी रक्त वन्द हो जाता है। रोगी को गहरे इजेक्शन देना या उस पर किसी प्रकार का शल्यकर्म करना ठीक नही। सधि मे रक्तस्राव हो जाय तो उस पर वर्फ वाधनी चाहिये तथा उसे पूर्ण विश्राम देना चाहिये।

क्षयजनित रक्तस्राव के लिये क्षय रोग की औषधियो के साथ Prednisolone ५ मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन देने से लाभ हो जाता है।

सामान्यत रक्तस्राव के लिये Cal Glucon Vit 'C', Rutin Vit 'K' (Hemostic, Alemb) Styptobion merk, Styptindon Indopharma) का प्रयोग किया जाता है।

रक्तस्राव की रुधिर द्वारा चिकित्सा—Blood Transfusion

Haemophilia, Thrombocytopenia तथा Marrow Hypoplasia के कारण रक्तस्राव हो या रक्तस्रावजनित Shock हो या रक्तस्राव अधिक हो गया हो या शरीर मे Ch Sepsis हो तो रोगी को शिरा द्वारा रक्त देने से लाभ हो जाता हैं। Coalgas विष मे, रक्तस्राव करके रक्तदान से रोगी बच सकता है। रक्त ऐसे व्यक्ति का लिया जाता है जिसमे फिरंग, Allergy, विषम ज्वर तथा Infective Hepatitis मे से कोई रोग सर्वथा न हो।

रक्त वर्गीकरण—Blood Grouping

१९०० मे जर्मनी के Landsteiner ने जिनको बाद मे Nobel Prize भी मिला पहले-पहल बताया कि प्रत्येक व्यक्ति का रक्त दूसरे व्यक्ति को शिरा द्वारा नही दिया जा सकता। इसका कारण यह है कि कुछ एक के रक्तकणो के पृष्ठ पर Agglutinogens पाये जाते हैं जो A प्रोटीन तथा B प्रोटीन भेद से दो प्रकार के हैं। Agglutinogen A (Anti-B) तो ४० प्रतिशतक व्यक्तियो के रक्तकणो मे पाया जाता है। Agglutinogen B (Anti-A) १० प्रतिशतक के, Agglutinogen A B दोनो, ५ प्रतिशतक के रक्तकणो के पृष्ठ पर पाये जाते हैं, तथा ४५ प्रतिशतक व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनके रक्तकणो पर Agglutinogen A अथवा B कोई सा भी नही होता (Anti-A तथा Anti-B)। इन चारो को क्रमश A ग्रुप, B ग्रुप, A B ग्रुप तथा जीरो (०) ग्रुप कहते है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिन ४० प्रतिशतक व्यक्तियो के रक्तकणों मे Agglutinogen A होता है उनके Serum या प्लाज्मा मे केवल Anti-B Agglutinin या Beta-Agglutinin (b) ही रह सकता है। जिन १० प्रतिशतक व्यक्तियो के रक्तकणो मे Agglutinogen B होता है उनके Serum या प्लाज्मा मे Anti-A Agglutinin या Alpha Agglutinin (a) ही रह सकता है। जिन ५ प्रतिशतक व्यक्तियो के रक्तकणो मे Agglutinogen A तथा B दोनो होते हैं उनके Serum मे Anti-A Agglutinin (Alpha Agglutinin) तथा Anti-B Agglutinin (Beta Agglutinin) कोई भी नही रह सकता तथा जिन ४५% व्यक्तियो मे इनमे से कोई भी नही उनमे दोनो Agglutinins रहते है।

Groups के नाम	Agglutinogen जो रक्तकणो मे है	Agglutinin जो Serum में है	प्रतिशतक Groups
A B (१)	A तथा B	कोई भी नही	५
A (२)	A	Beta (Anti B)	४०
B (३)	B	Alpha (Anti A)	१०
० जीरो (४)	कोई भी नही	Alpha, Beta	४५

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि यदि Agglutinogen A वाले रक्तकण किसी ऐसे व्यक्ति को दिये जाये जिसके Serum मे Alpha Agglutinin या Anti-A हो, तो इनमे परस्पर प्रतिक्रिया होने से अर्थात् Antigen Antibody Reaction से दिये गये रक्तकण सबके सब एक ढेर-सा Clump या Agglutinate होकर नष्ट हो जायेंगे अर्थात् Haemolysis हो जायेगा तथा रोगी को धक्का Shock पहुचेगा। इसी प्रकार Agglutinogen B वाले रक्तकण ऐसे व्यक्तियो मे जिसके Serum मे Anti-B या Beta Agglutinin हो, दिये जाने पर नष्ट हो जाते हैं तथा Agglutinated रक्तकणो के द्वारा सूक्ष्म सिराओ के बन्द हो जाने का भय रहता है। श्वास कृच्छ्रता, हृदय प्रदेश पर दर्द, नाडी की निर्बलता, मूत्र की कमी या मूत्राघात (Haemoglobin के Tubules मे बैठ जाने से) के लक्षण हो जाते है।

इसलिये रक्त लेने वाले व्यक्ति को अपने समान ग्रुप वाले व्यक्ति का ही रक्त लेना चाहिये तथापि A B वर्ग का रक्त A B वर्ग के लोगो को नि सशय रूप से दिया जा सकता है। A वर्ग का रक्त अर्थात् 'Agglutinogen A वाला रक्त, A वर्ग तथा A B वर्ग के व्यक्तियो को दिया जा सकता है। B वर्ग का अर्थात् Agglutinogen B वाला रक्त B वर्ग के तथा AB वर्ग के व्यक्तियो को दिया जा सकता है। यह ठीक है कि दिये जाने वाले A वर्ग के Serum मे Anti-B या Beta Agglutinin तथा दिये जाने वाले B वर्ग के Serum मे Anti-A या Alpha Agglutinin है तथापि रक्त लेने वाले व्यक्ति के अन्दर ये इतने हलके हो जाते हैं कि उसके रक्तकणो को ये कोई हानि नही पहुचा पाते। ज़ीरो वर्ग (0 Group) के व्यक्तियो का रक्त जिनमे कोई भी Agglutinogen नहीं है, सभी व्यक्तियो को दिया जा सकता है। इनके रक्त के Serum मे यद्यपि Anti-A तथा Anti-B

Agglutinin होते है पर ये लेने वाले के रक्त मे पहुचकर इतने हलके हो जाते हैं कि उसके रक्तकणो को हानि नही पहुँचाते। क्योकि कभी-कभी Anti-A Antibodies, Anti-B Antibodies की अपेक्षा प्रवल होते हैं, अत A ग्रुप मे इसके देने से Haemolysis हो सकता है।

देने वाले—Donors

इस प्रकार

A B वर्ग का रक्त	A B वर्ग को।
A वर्ग का रक्त	A तथा A B वर्ग को।
B वर्ग का रक्त	B तथा A B वर्ग को।
० वर्ग का रक्त	सवको दिया जा सकता है। इसीलिये ये Universal Donors कहाते हैं तो भी A वर्ग को इसका न देना ही ठीक है।

लेने वाले—Recipients

A B वर्ग के व्यक्ति को	सवका।
A वर्ग के व्यक्ति को	A तथा o वर्ग का।
B वर्ग के व्यक्ति को	B तथा o वर्ग का।
० वर्ग के व्यक्ति को	० वर्ग का रक्त दिया जा सकता है।

Grouping—ग्रुप जानने की विधि

कोई नया व्यक्ति किस ग्रुप का है, यह जानने के लिये हमारे पास Anti-A तथा Anti-B Agglutinins के पृथक्-पृथक् नमूने होने चाहिये जो Refrigerator मे रखे जाते है। जिस व्यक्ति का ग्रुप जानना हो उसके एक वूद रक्त को २-३ सी०सी० नार्मल सेलाइन मे मिलाकर उसका ३ प्रतिशतक के लगभग का घोल बना लेना चाहिये या उसकी शिरा मे से ४ सी०सी० रक्त लेकर ट्यूब मे ३० मिनट रखें ताकि सैल्स और सीरम पृथक् हो जाए। उसके Clot को तोड उसके चार वूद को १ सी०सी० सेलाइन से मिला रक्तकणो का ५ प्र०श० सोल्यूशन वना ले। फिर एक स्लाइड पर A लिखकर उस पर एक वूद Anti-A Agglutinin की तथा दूसरी पर B लिखकर उस पर एक वूद Anti-B Agglutinin की पृथक्-पृथक् पिप्पट से डाल देनी चाहिये। अव पृथक् पिप्पट से इन पर एक वूद उपर्युक्त रक्त घोल की डाल के इन्हे पृथक्-पृथक् ग्लास रोड से हिला के १०-१५ मिनट ग्लास डिशो से ढककर रख देना चाहिये। अब जो रक्त का घोल ईंट के चूरे के सदृश हो जाय उसके रक्तकणो को Agglutinated हुआ समझना चाहिये।

स्पष्ट है कि यदि दोनो स्लाइडो पर Agglutination हुआ हो तो व्यक्ति को A B वर्ग का समझना चाहिये। B स्लाइड या Anti-B Serum मे Agglutination हो तो व्यक्ति को B Group का समझना चाहिये। A स्लाइड या Anti-A Serum मे Agglutination हो तो व्यक्ति को A Group का समझना चाहिये। यदि किसी स्लाइड पर भी Agglutination नही हुआ हो तो व्यक्ति को ० (जीरो) ग्रुप का समझना चाहिये।

रक्तकणो को Agglutinate करता है		व्यक्ति जिस वर्ग का है
Anti-B Serum	Anti-A Serum	
+	+	A B वर्ग
—	+	A वर्ग
+	—	B वर्ग
—	—	० वर्ग

+Agglutination का सूचक चिह्न।

नोट—Agglutinogens के दो सव-ग्रुप हो जाने से अर्थात् A_1 A_2 दो भेद होने से वस्तुतः ४ वर्गों के स्थान पर ६ वर्ग हो जाते है अर्थात् A_1 Agglutinogen श्रेणी के व्यक्ति जो A वर्ग मे ७५% होते हैं, (२) A_2 Agglutinogen श्रेणी के व्यक्ति जो A वर्ग मे २५% हैं, (३) B Agglutinogen श्रेणी के व्यक्ति, (४) A_1 B Agglutinogen श्रेणी के व्यक्ति, (५) A_2 B Agglutinogen श्रेणी के व्यक्ति, (६) 0 Agglutinogen श्रेणी के व्यक्ति। इनके रक्तकणो को ऐसे व्यक्तियो मे जिनके प्लाज्मा मे इनसे विपरीत श्रेणी का Agglutinin Antibody हो प्रविष्ट नही करना चाहिये। यह भी स्पष्ट है कि ० ग्रुप के माता-पिता के वच्चे A B, A, या B ग्रुप के नही होते। दोनो माता-पिता B ग्रुप के हो तो बच्चे A ग्रुप के नही हो सकते। दोनो A ग्रुप के हो तो बच्चे B ग्रुप के नही हो सकते।

Rh रक्त वर्ग—Rh Blood Groups

१९४० मे यह देखा गया कि Rhesus वानर के रक्त को खरगोश के अन्दर प्रविष्ट करने पर उसके रक्त मे प्रविष्ट हुए रक्तकणो के विपरीत एक Agglutinin उत्पन्न हो जाता है और यदि खरगोश के इस रक्त को ९० प्र०श० मनुष्यो के रक्त से मिलाया जाय तो उनके रक्तकण Agglutinated हो जाते है। जिससे पता लगा कि ९० प्र०श० व्यक्तियो के रक्त के रक्तकणो मे Rhesus या Rh Agglutinogen होता है। इन्हे Rh Positive तथा शेष १० प्र०श० व्यक्तियो को जिनमे यह Agglutinogen नही होता Rh Negative कहा जाता है। इन दोनो के Serum मे ही इस Agglutinogen के विपरीत पहले से कोई Agglutinin नही होता।

हा, यदि Rh Negative व्यक्ति के रक्त मे Rh Positive व्यक्ति के रक्त को Transfusion द्वारा एक बार प्रविष्ट किया जाय तो दिये रक्त के Antigen होने से दिये जाने वाले के रक्त मे Anti Rh Agglutinins उत्पन्न हो सकते है। अब इसके बाद फिर उस दिये जाने वाले व्यक्ति को Rh Positive रक्त नही दिया जा सकता। यदि दिया जायेगा तो उसके Agglutinated हो जाने का भय रहता है। अत लेने वाले के सैलो को Anti Rh Serum के साथ मिलाकर देख लेना चाहिये कि उसे Rh Positive या Rh Negative कौन-सा रक्त मिलना चाहिये।

इसी तरह यह भी हो सकता है कि यदि पिता तो Rh Positive हो और माता Rh Negative हो तो गर्भस्थ शिशु का रक्त भी Rh Positive हो जाय और उसके रक्तकणो के विपरीत माता के रक्त मे Anti Rh Agglutinins उत्पन्न हो जाये और वहा से वे गर्भस्थ शिशु के रक्त मे भी चले जायें।

ऐसी अवस्था मे स्पष्ट है कि यदि उस माता को आवश्यकता पडने पर Rh Positive व्यक्ति का रक्त दे दिया जाय तो उस दिये रक्त के रक्तकण Agglutinated हो जायेंगे। दूसरा यदि माता के अन्दर बने Anti Rh Agglutinins गर्भस्थ शिशु के रक्त मे चले जाये तो उसके रक्तकणो के Agglutinogen से प्रतिक्रिया करके उनको नष्ट कर देगे। इस रोग को Haemolytic Anaemia of the New Born या नवजात पाण्डु कहते है। अर्थात् ऐसा नवजात शिशु पाण्डु तथा कामला से ग्रस्त होता है तथा उसमे Coomb's Test पाजिटिव होता है। इनमे Leucocytosis हो तो रक्तकण १ मिलियन तक Per C M M होते हैं और कई Nucleated भी होते है। Reticulocytes १०-५० प्र०श० होते हैं। यह ठीक है कि लगभग १२ विवाहित व्यक्तियो मे से १ मे पिता Rh Positive तथा माता Rh Negative होती है तथापि २५०-५०० प्रसवो मे से १ मे यह नवजात पाण्डु रोग देखा जाता है। यह भी हो सकता है कि प्रथम सन्तान मे या द्वितीय सन्तान मे भी यह रोग न हो, आगे होने वाली सन्तान मे हो जाय। इस सब व्यतिक्रम के कारण का अभी तक कुछ पता नही लगा।

एक बात तो स्पष्ट है कि किसी Rh Negative स्त्री को जिसके बालक हो चुके हो यदि रक्त देने की आवश्यकता पडे तो Rh Negative व्यक्ति का ही रक्त देना चाहिये। यह रोग शिशु मे मृदु रूप मे हो तो Transfusion से ठीक हो जाता है। बहुधा बिना चिकित्सा के भी ठीक हो जाता है। रोग तीव्र रूप मे हो तो Exchange Transfusion से ठीक हो सकता है। व्यक्ति Rh Negative है इसका पता लगाने के लिये Transfusion Specialist की आवश्यकता होती है।

पुराने रक्तहीन, निर्बल हृदय के रोगी को रक्त धीरे-धीरे १ घटे मे १ पाइन्ट की रफ्तार से थोडी मात्रा मे ही दिया जाता है। अग्रबाहु की शिरा के पास सज्ञानाशक औषधि डाल के उस प्रदेश को सज्ञाहीन करके नीडल शिरा मे प्रविष्ट करने पर जब उसमे से रक्त बाहर आने लगे उसे Transfusion सेट के साथ जो रोगी से ३-४ फुट ऊपर होता है, जोड दिया जाता है।

रक्तदान (Blood Transfusion) **की प्रक्रिया**

रक्त को स्वल्प Sodium Potassium Ammo Cit तथा Glucose से युक्त करके ४० डिग्री सेन्टीग्रेड पर ३ सप्ताह रखा जा सकता है। इसका थोडी देर को भी बाहर रखना ठीक नही। उस पर Blood ग्रुप का, जिसका वह हो, स्पष्ट उल्लेख होना चाहिये।

रक्त देते समय रोगी को सर्दी लगने लगे या सर्दी लगने के बाद कुछ तापमान भी बढ जाय परन्तु ये लक्षण हलके रूप मे ही हो तो रक्तदान की गति को मन्द कर देना चाहिये (१ मि० मे १५ बूद)। साधारण रूप मे ये लक्षण Citrate के घोल या उपकरणो या Distilled Water के किसी Pyrogen दोष से या Dead Bacteria के किसी तत्त्व से या रक्त के तापमान के ३५ डिग्री सेन्टीग्रेड से कम हो जाने से होते है। पर यदि ये लक्षण ४-५ मिनट के बाद भी जारी रहे तो रक्तदान बन्द कर देना चाहिये। कष्ट साधारण हो तो Dover's Powder ३ ग्राम दे देवे, अधिक हो तो मार्फिया १५ मिलि० दे देना चाहिये।

यदि रक्त के देते समय उसकी असात्म्यता Allergy के लक्षण होने लगें जैसे श्वास कृच्छ्रता, पसलियों पर दर्द, त्वचा पर शीत पित्त के चकत्ते निकलने लगें तो भी रक्त-दान बन्द कर देना चाहिये। इनके लिये Adrenaline ½ सी०सी० त्वचा द्वारा या Hydrocortisone Hemi-succinate १ ग्राम शिरा द्वारा दें। त्वचा पर Allergy के लक्षण रहे तो बाद में Benadryl दें। छाती पर दर्द Precordial Pain हो तो Oxygen देनी चाहिये।

परन्तु यदि बेमेल रक्त दिया जा रहा हो और दिये हुए रक्तकण रोगी के सीरम में विद्यमान Agglutinin के द्वारा टूटने लगें (Haemolysis होने लगे) तो रोगी को सिर में भारीपन, चेहरे पर लाली, छाती या कटिप्रदेश पर दर्द होने लगता है और वह अधिक बेचैन होने लगता है। सर्दी लगने व श्वास कृच्छ्रता का लक्षण भी होता है। Tachycardia तथा रक्त भार गिर जाने का लक्षण भी होता है। इन लक्षणों का आरम्भ होते ही रक्तदान बन्द कर देना चाहिये। तथा ४ प्र०श० Soda Bicarb के जलीय घोल को १०० सी०मी० की मात्रा में शिरा द्वारा देकर मूत्र को क्षारीय करना चाहिये। मूत्र को क्षारीय रखने के लिये Sodium Cit तथा Sodium Bicarb २-२ ग्राम मात्रा में ४-४ घंटे बाद मुख से भी देना चाहिये। दूसरे दिन इसकी मात्रा कम करके ७ दिन तक मूत्र को क्षारीय ही रखना चाहिये। रक्तकणों के अधिक मात्रा में टूटने से एवं Haemoglobin के अधिक मात्रा में मूत्र से निकलने तथा उसके मूत्र स्राविणियों (Tubules) में बैठ जाने से मूत्र की निकासी कम हो जाती है और यूरिया विष सचार (Uraemia) के लक्षण हो सकते हैं। इसकी रोकथाम के लिये मूत्र को पहले ही क्षारीय करना आवश्यक हो जाता है। मूत्राघात Anuria या Oliguria हो तो जल तथा आहार का देना बन्द करके वृक्कों को पूर्ण विश्राम में रखना चाहिये। Shock का लक्षण हो तो उचित रक्त का दान तथा कोई Vasopressor औषधि देनी चाहिये।

आयुर्वेद में रक्तस्राव रोग

किसी छिद्र अथवा त्वचा से रक्तस्राव हो जाने को आयुर्वेद में रक्त पित्त रोग कहा गया है। क्योंकि रक्त में पचन कर्म (Haemolysis) की अधिकता से या किसी तीक्ष्ण उष्ण गुण द्रव्य के रक्तवाहिनियों पर तीक्ष्ण प्रभाव से रक्तस्राव होता है, इसलिये आयुर्वेद में इसको रक्त पित्त कहा गया है।

श्लैष्मिक रक्त पित्त

जब देहाग्नि की मन्दता के कारण कोई आम विष (Metabolic Toxin) उत्पन्न हो जाता है और उसके रक्तवाहिनियों पर दुष्प्रभाव से रक्तस्राव हो जाता है तो इसे श्लैष्मिक रक्त पित्त कहा गया लगता है।

पैत्तिक रक्त पित्त

देहाग्नि की तीक्ष्णता के कारण रक्त आदि धातुओं के अति पचन से यदि कोई तीक्ष्ण उष्ण गुण द्रव्य (Ketabolic Toxin) उत्पन्न हो जाता है और उसके या किसी तीक्ष्ण गुण बाह्य द्रव्य के रक्तवाहिनियों पर दुष्प्रभाव से रक्तस्राव होने लगे तो इसे पैत्तिक रक्त पित्त कहा गया प्रतीत होता है।

वातिक रक्त पित्त

शरीर के प्राणतत्त्व को निर्बल कर देने वाले कारणों से जब शरीर और विशेषत रक्त का यथावत् पोषण नहीं होता जिससे उसमें कोई न्यूनता आ जाती है अथवा रक्त-वाहिनियों की अपनी स्वाभाविक प्राणशक्ति क्षीण हो जाती है तो इस कारण रक्तस्राव होने लगे तो ऐसे रक्त पित्त को वातिक रक्त पित्त कहा जाता है। इस प्रकार Blood Deficiency या Vascular Degeneration या Allergy से होने वाले रक्तस्राव को वातिक रक्त पित्त कहा गया लगता है।

(सु०।उ०।४५।, तथा च०।चि०।४)

रक्त पित्त रोग की चिकित्सा

बहुधा यह रोग रक्त में किसी बाह्याभ्यन्तर या कफ पित्त प्रकोप जनित विष द्रव्य के सचय के कारण होता है। अत इस रोग के लिये दोष शोधन चिकित्सा करनी चाहिये। अर्थात् एक तो प्रारम्भ में रक्तस्राव की उपेक्षा करते हुये दोष को निकलने देना चाहिये। दूसरे, निम्न छिद्रों में रक्त जाता हो तो वमन द्वारा तथा ऊर्ध्व छिद्रों में से रक्त जाता हो तो विरेचन चिकित्सा द्वारा शरीर से इस दोष का निर्हरण करना चाहिये। अर्थात् पित्त दोष या कफ दोष के सचय से उत्पन्न रक्त पित्त रोग में लंघन चिकित्सा या शक्ति हो तो दोष शोधन चिकित्सा करनी चाहिये। पर जब रक्त के अन्दर किसी प्रकार की न्यूनता या पोषण की कमी के कारण रक्त पित्त रोग हो तो शरीर का संतर्पण ही करना चाहिये। वासा रस से भावित हरीतकी चूर्ण शोधन के लिये उत्तम औषधि है या हरड और मुनक्को का क्वाथ जिसमें वासा भी मिलाया हो, मिश्री मिलाकर दिन में दो तीन बार देना चाहिये। परन्तु यदि रोगी निर्बल हो अथवा रक्तस्राव वात प्रकोप जनित हो तो शीतल

गुण, तर्पण चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् वात प्रधान रक्त पित्त रोगी को मुलेठी, अजीर, मुनक्का, खजूर, शतावरी, गोखरू, या लघु पचमूल आदि किसी से पकाया हुआ दूध मिश्री मिलाकर तथा फलरस दिन में कई वार पिलाना चाहिये तथा शामक औषधियों का ही प्रयोग करना चाहिये। वातिक रक्त पित्त के लिये शतावरी, घृत, दूध, खजूर, मुनक्के आदि द्वारा शरीर का तर्पण करना चाहिये। उसके रक्त में ग्लूकोज् जल या रुधिर (Transfusion द्वारा) देना चाहिये। क्षयजनित रक्त पित्त में छोटी इलायची तथा वंशलोचन आधा-आधा माशा, मिश्री आधा तोला के साथ दिन में चार-छ. वार देना चाहिये।

पैत्तिक तथा श्लैष्मिक रक्त पित्त के लिये शोधन के अनन्तर रक्त पित्त शामक औषधियो का प्रयोग करना चाहिये। जैसे प्रारम्भ में तो त्रिफला और अमलतास का क्वाथ, मधु डालकर पिलाना चाहिये और फिर दूर्वादि घृत, (दूर्वा रस १६ भाग, घृत ४ भाग, तण्डुलोदक, अजाक्षीर १६-१६ भाग, नीलोफर, उशीर, श्वेत चन्दन, चन्दन लाल, मुलेठी, पद्माक, मजिष्ठा, द्राक्षा, महुआ, मिलित १ भाग) या वासावलेह वासा घृत, यावासा खण्ड कूष्माण्ड या पेठें की मिठाई या उशीरासव या चन्दनासव दो तो०, या पीपल की लाख को धो-साफ कर बरावर मिश्री के साथ मिलाकर बनाया चूर्ण ६ माशा की मात्रा में या हरीतकी चूर्ण ३ माशा मधु के साथ या सितोपलादि चूर्ण मधु के साथ या प्रवाल पंचामृत २ माशा मधु के साथ या लोध्र चूर्ण मधु के साथ देना चाहिए या मुलेठी ३ माशा, मुनक्का १२ दाने का एक पाव जल में बना क्वाथ मिश्री डालकर या धनिये या आंवले या वासे और मुलेठी का क्वाथ या वासा और हरड का क्वाथ खाण्ड या मधु डालकर दें या द्राक्षा और खजूर के क्वाथ में खाण्ड मिलाकर दें या स्वर्ण गैरिक, वंशलोचन, इलायची छोटी, नागकेसर, कहरवा, संग जराहत, समान-समान मिलाकर ६ माशे की मात्रा में या वोल पर्पटी १ तोला, शुक्ति, शख, प्रवाल, मुक्ता भस्म दो-दो माशे, गैरिक ६ माशे, कहरवा ६ माशे, मिलाकर इसकी दो माशे की मात्रा या केवल वोल पर्पटी की १-२ रत्ती की मात्रा वासा, द्राक्षा और हरीतकी के क्वाथ के साथ या दूर्वा स्वरस के साथ या केवल वासा का स्वरस या उसका पुटपक्वरस बरावर मधु मिलाकर या गूलर के फल के रस को मधु मिलाकर जब तक रक्त बन्द न हो तीन-तीन घंटे पर देते रहना चाहिये। रक्तस्राव के लिये अजायकृत् के रस या सुखाये हुए अजायकृत् के खिलाने का भी विधान किया गया है।

(सु०उ०४५॥, ॥च०चि०४॥, ॥चक्रदत्त,यो०र०)

रक्तपित्तोपयोगी कुछ प्रयोग निम्नलिखित हैं :—

(१) वासाहिमक्वाथ (व. से) उबलते जल में वासापत्र डालकर कुछ काल बाद छानकर उसमें खाण्ड डालकर पिलाए। या वासास्वरस ५ तोला शहद २½ तोला मिला थोड़ा-थोड़ा चटाए।

(२) आटरूषादिकषाय (यो. र.) वासापत्र रस या उसके हिम क्वाथ में चौथाई भाग शहद तथा चौथाई भाग फूल प्रियंगु, लोध्र, रसौत, सौराष्ट्र मृत्तिका समान-समान मिलाकर चटाए।

(३) चन्दनादि शीतकषाय (वा. भ.) चन्दन, नीलोफर दोनो का शीतकषाय दें।

(४) चन्दनादि क्वाथ द्वितीय (वा. भ) लाल चन्दन, खस, मुस्ता, धान की खील समान-समान को बला क्वाथ में रात भर रखकर प्रात: छानकर खाड डालकर पिलाए।

(५) प्रियंग्वादि शीतकषाय (ग नि.) फूल प्रियगु, लाल चन्दन, लोध्र, सारिवा, मुलेठी, मुस्ता, खस, धातकी समान-समान का २½ तो का शीतकषाय। खाण्ड डालकर पिलाए।

(६) धान्यकादिहिम (भा प्र.) धनिया, आवला, मुनक्का, वासा, पित्तपापडा समान-समान, २½ तोला मात्रा में शीतकषाय बनाकर दें।

(७) दूर्वास्विरस या पेठे का स्वरस १-१ तोला दिन में ३–४ वार दें।

(८) ह्रीवेरादि क्वाथ (यो र) सुगन्ध वाला, धनिया, मोथा, चन्दन, मुलेठी, खस, वासा समान-समान का क्वाथ खाण्ड डालकर दें।

(९) वासादिक्वाथ (च स.) वासा, मुनक्का, हरड का क्वाथ खाड डालकर दें।

(१०) पटोलादिक्वाथ (वा. भ) पटोल, चमेलीपत्र, नीम छाल, दोनो चन्दन, नीलोफर समान-समान का क्वाथ शहद मिश्री मिलाकर दें।

(११) कटुकादि चूर्ण (यो र.) कुटकी, मुलेठी समान-समान का चूर्ण ३ माशा मात्रा।

(१२) हरीतक्यादियोग (हा स.) हरीतकी चूर्ण को वासास्वरस की सुखा-सुखा कर ७ वार भावना दें। इस चूर्ण को ३–६ माशे मात्रा में मधु से दें।

(१३) उशीरादि चूर्ण (वृ. नि. र) खस, दारु हल्दी, लोध्र, पद्माक, फूल प्रियगु, कायफल, शखभस्म, गेरू, चन्दन समान-समान, खाण्ड सर्वतुल्य, चावलो के पानी से ३ माशा दें।

(१४) चन्दनादि चूर्ण (यो र) चन्दन, लोध्र, खस, मुस्ता, सुगधवाला, कुटज, अतीस, धातकी, रसोत, मोचरस, नीलोफर, छोटी इलायची, अनार का छिलका, नागकेसर समान-समान का चूर्ण । मात्रा ३ माशा ।

(१५) मधुकादि गुटी (व. से) मुलेठी, महुआ, मुनक्का, वशलोचन, त्रिजातक १$\frac{1}{4}$-१$\frac{1}{4}$ तोला, मुलेठी, मुनक्का, खजूर ५-५ तोला, खाण्ड १० तोला, शहद से गोलिया वनायें ।

(१६) सप्तप्रस्थ घृत (च द) शतावरी स्वरस, विदारी स्वरस, इक्षुरस, आमलकी स्वरस, द्राक्षा क्वाथ, दूध, घृत, प्रत्येक १ सेर का घृत वनाए, उसमे एक पाव खाण्ड मिला दें । १-१ तोला मात्रा दें ।

(१७) महावासा घृत (ग नि) वासारस १ सेर, घृत १ सेर, गौ दूध २ सेर, चिराण्ता, कुटज, मुस्ता, मुलेठी, चन्दन, सुगधवाला, नीलोफर, पद्माक, चमेलीपत्र, सारिवा, त्रायमाण समान-समान, मिलित १ पाव । घृत वनाए । मात्रा १ तोला ।

(१८) द्राक्षादि क्षीर (यो र) मुनक्का, शतावरी, वला, फूल प्रियगु, गोखरु, मुलेठी, किसी एक को २ तोला लेकर, दूध १६ तोला, जल ३२ तोला मिलाकर, पकाकर, दूध मात्र रहने पर पिलाए ।

(१९) उशीरासव (भै र) खस, सुगधवाला, कमल, नीलोफर, खम्भारी, फूल प्रियगु, पद्माक, लोध्र, मजीठ, धमासा, चिरायता, वड की छाल, गूलर की छाल, जामनछाल, पटोल, सेंभल की गोद, पाठा, ५-५ तोला, द्राक्षा १०० तोला, धातकी १ सेर, उवालकर ठण्डा किया जल ३२ सेर, खाण्ड ६$\frac{1}{4}$ सेर, शहद ६$\frac{1}{4}$ सेर । आसव वनाए । १-४ तोला मात्रा ।

(२०) कपर्दरस (र र) रससिन्दूर को कपास के फूलो के रस से मर्दन कर कौडियो में भर, अन्धमूषा में बन्द कर, उस मूषा को एक हाण्डी में बन्द कर पुट दे दें । कौडियो को पीस लें । इसकी १ रत्ती मात्रा को काली मरिच के समान चूर्ण में मिलाकर मिश्री के साथ दें ।

(२१) वोल पर्पटी रस (यो र) पर्पटी तथा बोल समान-समान मिलाकर चूर्ण कर लें । मात्रा २-३ रत्ती ।

हरीतकी या आमलकी के मुरब्बे या पेठे की मिठाई के सेवन से भी रक्त पित्त में लाभ होता है ।

मूत्र मे रक्त आए तो चार पर्णियो, गोखरु, शतावरी, न्येपक्वक्षीर या तृणपञ्च मूल से पक्व दूध पिलाए ।

पेट से रक्त आए तो उशीरादि चूर्ण (भै र) अर्थात् खस, शीतल चीनी, दो चन्दन, नागकेसर, छोटी इलायची, मोया, मुलेठी, वशलोचन, कपूर, लौंग, तगर, अगर समान-समान, मिश्री सवसे ८ गुणा ।

नासारक्तस्राव में—(यो र) दूर्वास्वरस, लाक्षारस, अनार के फूल का रस, धातकी और मुलेठी को दूध में पीसकर वनाए रस, किसी का नस्य दें ।

थूक में रक्त आए तो चन्दनादि क्वाथ (यो र) लाल चन्दन, नेत्रवाला, लोध्र, पाठा, धमासा, गिलोय, कुटकी के क्वाथ में मधु और पिप्पली डालकर पिलाए ।

गुदा से रक्त आए तो (ग. नि) मोचरस १ तोला, दूध १६ तो, ६४ तो पानी, पका, दूध शेष रख, पिलाए ।

त्वचा मे रक्तपित्त हो तो ह्रीवेरादि तेल (भै. र) तिल तेल १ सेर, लाक्षारस ४ सेर, दूध १ सेर, सुगधवाला, खस, लोध्र, पद्मकेसर, नागकेसर, मोया, चन्दन, कुटज, इन्द्रयव, त्रिफला, वहेडा, जामुन की गुठली, प्रत्येक २ तोला का कल्क । इसका तेल वनाकर मलें ।

पथ्य

शीत दूध, चावल, चना, मूग, मसूर, मोठ । दूध को शतावर या द्राक्षा से साधित कर लें ।

हृदय रोग
Diseases of the Heart

हृदय की रचना

गोलाकार रक्त-प्रणाली के एक भाग के आमने-सामने एक दूसरे पर दोहरा हो जाने से दो कोष्ठको वाले हृदय की उत्पत्ति हो गई प्रतीत होती है । गर्भावस्था मे ये दोनो कोष्ठक Foramen Ovale के द्वारा मिले रहते हैं । गर्भावस्था के वाद जव दोनो कोष्ठको के वीच की दीवार मे विद्यमान यह छिद्र वन्द हो जाता है तव ये दोनो कोष्ठक फुफ्फुस के द्वारा परस्पर एक हो जाते हैं अर्थात् दाये कोष्ठक का रक्त Pulmonary Artery के द्वारा फुफ्फुस मे और वहा से रक्त Pulmonary Veins के द्वारा वाये कोष्ठक मे जाने लगता है । अभिप्राय यह है कि गोलाकार रक्त-प्रणाली के ही, एक भाग के, दोहरा हो जाने से हृदय रूपी पम्प उत्पन्न हो गया है, जो रक्त की चक्राकार गति का कारण है । इन दोनो कोष्ठको मे से प्रत्येक कोष्ठक एक कपाटी (Valve) के द्वारा दो-दो कोष्ठको मे विभक्त हो गया है । प्रत्येक के उपरले कोष्ठक को ग्राहक (Auricle या Atrium) कोष्ठ और

निचले को क्षेपक कोष्ठ (Ventricle) कहते हैं। इस प्रकार ग्राहक तथा क्षेपक कोष्ठ वाम और दक्षिण भेद से दो-दो होते हैं। हृदय का ऊपर का Base वामग्राहक तथा हृदय का निचला सिरा Apex वामक्षेपक कोष्ठ से बना हुआ है। हृदय का ⅔ भाग मध्य रेखा मे बाईं ओर और ⅓ भाग इस रेखा के दक्षिण की ओर रहता है। हृदय का अगला पृष्ठ अधिकतर दक्षिणक्षेपक कोष्ठ मे बना है। अगले पृष्ठ का बाया किनारा केवल वामक्षेपक कोष्ठ मे बना है। सिराओं (Veins) मे जैसे कपाटियाँ (Valves) रहती है वैसे ही ये भी नीचे की तरफ अर्थात् (Ventricle) की तरफ तो खुलती हैं और उसके सकोच के समय जब रक्त वापिस Auricles मे जाने लगता है तो ये बन्द हो जाती हैं। दाहिने कोष्ठक मे विद्यमान कपाटी को Tricuspid Valve तथा छिद्र को Tricuspid Ring कहा जाता है। बायें कोष्ठक के बीच की कपाटी को Biscuspid या Mitral Valve तथा छिद्र को Biscuspid या Mitral Ring कहा जाता है। हृदय अपनी स्वाभाविक (Inherent) सकोच-शक्ति के द्वारा रक्त को फुफ्फुस धमनी (Pulmonary Artery) से फुफ्फुस मे और Aorta या महाधमनी द्वारा शरीर मे फेकता है जहा पहले यह सूक्ष्म धमनियो (Arterioles) और फिर सिराओ (Capillaries) के द्वारा फुफ्फुस और शरीर के अवयवों मे प्रसरण करता है। फिर अवयवों मे से यह पहले सूक्ष्म सिराओं (Venules) और फिर स्थूल सिराओं (Veins) के द्वारा वापिस होकर बायें हृदय मे 4 Pulmonary Veins के द्वारा तथा दक्षिण हृदय मे Superior और Inferior Vena Cava के द्वारा वापिस जाता है। रक्तवाहिनियो मे विद्यमान सहज शक्ति (Vascular Tone) रक्त की इस वापसी का एक कारण प्रतीत होती है। इस प्रकार हृदय तथा रक्तवाहिनियो के साथ मे विद्यमान, रक्त प्रेरक शक्ति के द्वारा, रक्त, शरीर मे चक्राकार गति करता हुआ अवयवो को आक्सिजन, ग्लूकोज आदि आहार द्रव्य, Hormones, Immune Bodies आदि आवश्यक तत्त्व पहुचाता तथा उनमे उत्पन्न होने वाले विषैले द्रव्यो (Metabolic Malproducts) तथा CO_2 को वृक्क, त्वचा तथा फुफ्फुस आदि मे पहुँचा कर शरीर मे बाहर करता रहता है।

हृदय मे उत्पन्न होने वाला सकोच (Sinus rhythm या Systole) जो एक मिनट मे लगभग ७२ या ७५ बार होता है तथा जिसमे २-३ औंस रक्त प्रति बार आगे जाता है Sinoauricular या Sinoatrial Node से आरम्भ होता है। यह नाडी तथा मासमय अवयव (Neuromuscular Tissue) की बनी एक ग्रंथि है जो Superior Vena Cava के Right Auricle मे प्रवेश स्थान के समीप अन्तस्तर (Endocardium) के नीचे होती है। उसमे प्रत्येक हृदय सकोच गति (Impulse) को नियमपूर्वक (Rhythmic) आरम्भ करने का गुण होता है। इसलिये इस Sinoatrial ग्रन्थि को Pace Maker भी कहा जाता है। इस ग्रन्थि को रक्त Right Coronary धमनी से निकलने वाली एक शाखा के द्वारा मिलता है। Right Auricle के Interatrial Septum के अन्तस्तर के अन्दर Coronary Sinus के सामने एक और ग्रन्थि होती है जिसे Auriculo Ventricular Node कहा जाता है। इसे दाहिनी Coronary Art की अन्तिम शाखाओ द्वारा रक्त पहुचता है। इसमे से Auriculo Ventricular Bundle निकलकर नीचे दोनों क्षेपक कोष्ठो (Ventricles) के बीच की दीवार के नीचे उतरता है और वहा दाईं और बाईं दो शाखाओं (Right तथा Left Branches) मे विभक्त हो जाता है। इनमे से प्रत्येक शाखा Purkinje-Fibres के रूप मे Endocardium के नीचे-नीचे हृदय मास मे फैल जाती है। दाहिनी शाखा Septum के दाहिनी ओर दाहिने क्षेपक मे तथा Papillary मासपेशियो मे फैल जाती है वाम शाखा Septum की बाईं ओर बाये क्षेपक मे फैल जाती है। हृदय सकोच गति को ले जाने वाले ये सूत्र हृदय मे व्याप्त हुए हैं। इन सूत्रों को विशेषकर हृदय धमनियो के द्वारा रक्त पहुचता है। दोनों ग्राहक कोष्ठो के तथा दोनो क्षेपक कोष्ठो के मास सूत्र तो (Syncyteal arrangement के द्वारा) परस्पर एक हुए-हुए ही होते है परन्तु ग्राहक कोष्ठको और क्षेपक कोष्ठको के पृथक्-पृथक् मास सूत्रो को परस्पर जोडने वाले ये ही नाडी सूत्र होते हैं। जो सकोच गति (Impulse) जोकि एक Electric Wave है पहले-पहल Sino Auricular Node मे आरम्भ होती है, वह दोनो Auricles के परस्पर मिल कर एक हुए सूत्रो मे प्रसरण कर जाती है जिससे उनमे सकोच उत्पन्न हो जाता है। इन सूत्रो के द्वारा यह सकोच गति या विद्युत् गति Auriculo Ventricular Node मे आ जाती है और वहा से His के Bundle के द्वारा दोनो Ventricles से मिलकर एक हुए मास सूत्रो मे प्रसरण कर जाती है जिससे ग्राहक कोष्ठों (Auricles) के सकोच के बाद ही तुरन्त दोनो क्षेपक कोष्ठो (Ventricles) मे सकोच हो जाता है। Electrocardiogram मे विद्यमान "P" Wave Auricles के सकोच का द्योतक होती है। वह आकार मे बड़ा हो तो यह Wave चौडी दीखती है

तथा Q R S T Wave दोनो Ventricles के सकोच को सूचित करती है। R Wave Ventricle के सकोच का सूचक होती है तथा P के १२–२ सेकण्ड के बाद होती है। Q. R. S. १ सेकण्ड तक का होता है, "T" Wave Refractory Period के अन्त का सूचक होती है। हृदय के इस सकोच (Systole) के बाद पहले हृदय के ग्राहक कोष्ठ और फिर उसके क्षेपक कोष्ठ (Auricles तथा Ventricles) दोनो स्वल्प विश्राम करते हैं। इसे हृदय का विश्राम काल (Diastole) कहते हैं। हृदय के इस सकोच तथा विश्राम के काल को हृदय चक्र (Cardiac Cycle) कहते हैं। यदि हृदय एक मिनट मे ७५ स्पन्दन करे जैसे कि साधारणत वह करता है तब एक चक्र मे ८५ सेकण्ड का समय लगता है, जिसमे मे Auricles तथा Ventricles के सकोच मे ३ तथा विश्राम मे ५ सेकण्ड के लगभग समय लगता है अर्थात् उसका विश्राम काल कार्यकाल से अधिक होता है। Electrocardiogram मे देखने से इस बात का ठीक-ठीक पता चलता है। जब एक मिनट मे ७५ के स्थान पर हृदय स्पन्दन ८० या ९० हो जाते हैं तब प्रत्येक चक्र कम समय मे होने लगता है पर क्योकि काल तो उतना ही रहता है इसलिये विश्राम काल (Diastole) के समय मे कमी हो जाती है। सकोच काल मे हृदय मास के सकुचित (Contracted) होने से तथा साथ ही Auriculo (Atrio) Ventricular Valves के बन्द होने से हृदय-प्रथम-शब्द उत्पन्न होता है। यह दूसरे शब्द की अपेक्षा कुछ लम्बा होता है, परन्तु ऊचाई मे नीचा होता है। इसकी ध्वनि ऐसी होती है जैसे लूब (Lube) शब्द मे बोलने मे होती है। हृदय सकोच काल मे रक्त एक तरफ तो महाधमनी (Aorta) तथा दूसरी तरफ फुफ्फुस धमनी (Pulmonary Artery) मे प्रवेश करता है, क्योकि उनमे पहले दबाव कम होता है, अब जब प्रत्येक हृदय सकोच मे ७० से ७५ सी०सी० के लगभग रक्त उनमे और जाता है तो उन धमनियो मे दबाव और बढ जाता है। इस बढने वाले दबाव को नाडी भार (Pulse Pressure) कहते है। जो दबाव धमनियो मे हर समय रहता है अर्थात् हृदय सकोच से पहले रहता है, उसे विश्राम-कालिक भार (Diastolic Pressure) कहते हैं तथा हृदय सकोच के समय धमनियो मे जो दबाव हो जाता है उसे सकोचकालिक भार (Systolic Pressure) कहते है क्योकि दक्षिण हृदय के सामने हर समय रहने वाला दबाव अर्थात् फुफ्फुस धमनी की शाखाओ मे रक्त भार (Peripheral Resistance) कम होता है, अत उस पर कम कार्यभार पडने से उसकी दीवार पतली होती अर्थात् ५ मिलि० मोटी होती है। पर क्योकि वाम हृदय के सामने रुकावट (Peripheral Resistance) अधिक रहती है अर्थात् शारीरिक धमनियो मे हर समय रहने वाला दबाव अधिक होता है, अत उसकी दीवार स्थूल और दृढ होती हैं, अर्थात् १०-१५ मिलिमीटर मोटी होती है।

हृदय सकोच के बाद जब हृदय का विश्राम काल आरम्भ होता है तब वहा दबाव के कम हो जाने से जब रक्त, महाधमनी (Aorta) तथा फुफ्फुस धमनी (Pulmonary Artery) मे से वापस दौडने लगता है, तब इन धमनियो के मुख मे विद्यमान कपाटिया (Aortic+Pulmonary Valves or Semilunar Valves) सहसा बन्द हो जाती हैं एव तन जाती हैं जिससे हृदय का दूसरा शब्द जिसकी ध्वनि डप (Dup) जैसी होती है, उत्पन्न होता है। यह प्रथम शब्द की अपेक्षा ऊचाई मे ऊचा, लम्बाई मे छोटा होता है। प्रथम शब्द लगभग २ सेकण्ड का, दूसरा शब्द १ सेकण्ड का होता है। दोनो के बीच का अन्तर ·१ सेकण्ड का होता है। इस प्रकार दोनो शब्द ४ सेकण्ड लेते है। इनके बाद ४ सेकण्ड का अन्तर होता है जिसके बाद फिर क्रमश. दोनो शब्द होते हैं। प्रथम अन्तर को Systolic Pause दूसरे अन्तर को Diastolic Pause कहते हैं। जब हृदय तीव्र गति करता है दूसरा अन्तर विशेषत छोटा हो जाता है। इस प्रकार प्रथम शब्द से द्वितीय शब्द तक हृदय का सकोच काल और द्वितीय शब्द के बाद अगले प्रथम शब्द तक हृदय का विश्राम काल होता है। हृदय सकोच काल मे रक्त हृदय मे से शरीर तथा फुफ्फुस मे जाता है तथा हृदय विश्राम काल मे रक्त शरीर तथा फुफ्फुस मे से शिराओ के द्वारा वापस हृदय मे आता है। स्पष्ट है कि सीधे खडे होने की अपेक्षा जब मनुष्य बिस्तरे पर लेटता है तब शिराओ के द्वारा रक्त अधिक मात्रा मे हृदय मे लौटता है और जब हृदय को रक्त अधिक लौटता है तो उसे आगे भी अधिक फेकना पडता है इसीलिये निर्बल हृदय वाले व्यक्ति को लेटने की अपेक्षा बैठने मे अधिक आराम लगता है तथा ऐसा व्यायाम भी, जिसमे हृदय को प्रत्येक मिनट मे ५-६ लिटर के स्थान पर ८-१० लिटर रक्त शरीर को देना पडता है, सहन नही होता।

हृदय का प्रथम शब्द शिखर (Apex) पर जो बाई ओर के ५वे Inter Space मे मध्य रेखा से ३½ इच बाहर की ओर होता है अच्छा सुनाई पडता है। हृदय का द्वितीय शब्द मध्य रेखा के पास दाई तथा बाई दूसरी

पर्शुकाओं (Costal Cartilages) पर अच्छा सुनाई पडता है।

हृदय की दीवार मास सूत्रो (Myocardium) से बनी हुई है जिनमे नियमित सकोच (Rhythmic Contraction) करने का स्वाभाविक गुण है। Sino Auricular Node प्रदेश के मास मे ७२ बार, Auricle के मास मे ६० बार, Ventricle के मास मे २५ बार प्रति मिनट सकोच करने का स्वाभाविक गुण रहता है। जो भाग सबसे अधिक बार संकोच करता है हृदय उसी के अनुसार संकोच करता है जब तक कि सकोच वाहक मार्ग के सूत्र ठीक रहते हैं क्योंकि Ventricles इसी मार्ग के द्वारा Auricles से सम्बन्धित हैं यदि इन सूत्रों मे थोडा सा भी Fibrosis हो जाय अर्थात् A V Bundle Block हो जाय तो हृदय मे चेष्टा वैषम्य हो जाता है। हृदय अन्दर की ओर अन्त स्तर Endocardium से ढका हुआ है जो कि एक पतली पारदर्शक चिकनी तह है तथा स्नायु तन्तु (Connective Tissue) और लचकीले सूत्रों (Elastic Fibres) की तह पर पडे हुए Endothelial Cells से बनी हुई है। हृदय बाहर की ओर हृदयावरण (Pericardium) से जो अन्दर Serous Pericardium की बन्द थैली से तथा बाहर Fibrous Pericardium से बना हुआ है, ढका हुआ है। इन दोनो के बीच मे थोडा अवकाश होता है जिसमे ½ औंस के लगभग Pericardial Fluid भी रहता है। यह आवरण हृदय को अधिक फैलने से रोकता है।

हृदय की कार्य शक्ति

हृदय मे से प्रत्येक स्पन्दन मे ५ घन इच रक्त ७० मिलिलि० के लगभग आगे फेका जाता है। दिन भर मे १ लाख से अधिक स्पन्दनों मे इसमे ५ लाख घन इच के लगभग रक्त फेंका जाता है। हृदय की यह शक्ति इतनी है जितनी १ टन वजन को ४१ फुट ऊचा उठाने मे खर्च होती है। अत हृदय रात दिन कार्य करता हुआ आयु भर इतना कार्य करता है कि जितना कोई साधारण मशीन नहीं कर सकती। इसलिये शरीर मे इसे अन्य अगो की अपेक्षा अधिक रक्त पहुचाया जाता है अर्थात् इसे सबसे अधिक O_2 आवश्यक होती है। प्रति स्पन्दन या प्रति मिनट जितना रक्त सम्पूर्ण शरीर को जाता है उसका चतुर्थांश हृदय को मिलता है। Aortic Cusps के ठीक ऊपर Anterior Sinus मे से दक्षिण हृदय धमनी (Right Coronary Artery) निकलती है जो Right Auricle, Right Ventricle की पिछली दीवार तथा Left Ventricle की पिछली दीवार के कुछ भाग को रक्त पहुचाती है। Posterior Sinus से वाम हृदय नाडी (Left Coronary Artery) निकलती है जो Left Auricle, Left Ventricle दोनों Ventricles के बीच की दीवार तथा Right Ventricle की अगली दीवार को रक्त पहुचाती है। ये हृदय धमनिया हृदय के पृष्ठ पर फैलती है तथा शाखाओ के द्वारा परस्पर सम्बन्धित होती हैं। जैसे मस्तिष्क के Cortex पर धमनियो का जाल बिछा होता है, वैसे ही हृदय के पृष्ठ पर भी धमनी जाल बिछा हुआ है। इसका कारण यही है कि हृदय मास को पहुचने वाली रक्त की मात्रा कभी भी कम न होने पाये पर Schlesinger (१९३८) का कहना है कि ये Endarteries होती हैं परस्पर सम्बन्धित नहीं होती इसी कारण इनमे अवरोध Occlusion होने पर हृदय मास मे मृत्यु या Infarction का उपद्रव हो जाता है। हृदय विश्राम काल मे इन धमनियो मे रक्त भरा रहता है तथा सकोच काल मे इनमे से रक्त निचुड कर Coronary Sinus के द्वारा वापिस दक्षिण हृदय Right Auricle मे जाता है। स्पष्ट है हृदय को रक्त अधिक मात्रा मे Diastole के समय मे मिलता है। इसीलिये रक्त का जब Diastolic भार गिर जाता है तब हृदय को रक्त कम मिलता है। इसी प्रकार हृत्कप (Palpitation) के समय जब हृदय का विश्राम काल छोटा हो जाता है, हृदय को रक्त की मात्रा कम मिलती है बडी आयु मे ये धमनिया क्रमश. तग होती जाती हैं। इन्ही कारणो से विशेषत बडी आयु मे हृदय मे Infarction का रोग अधिक होता है।

हृदय की नाडिया (Nerves) Cardiac Plaxus से, जो Sympathetic और दोनो Vagus की शाखाओ से बना हुआ है, आती हैं। इनमे से Sympathetic नाडिया Stellate Ganglion मे समाप्त हो वहा से फैलती है हृदय या Sinoatrial तथा Atrioventricular Nodes के लिये उत्तेजक (Accelerator या Augmentor) होती है तथा Vagus की Efferent नाडिया जो ग्राहक कोष्ठो में Ganglion Cells मे समाप्त होके वहा से फैलती है ये नाडिया हृदय या Sinoatrial तथा Atrioventricular Nodes के लिये शामक (Cardiac Inhibitor) होती है। ये हृदय मास मे, Bundle of His मे तथा हृदय धमनियो मे व्याप्त हुई है। शारीरिक, मानसिक श्रम के समय Sympathetic नाडिया उत्तेजित होती है। इस उत्तेजना से हृदय से प्रति मिनट रक्त की मात्रा अधिकाधिक आगे जाने लगती है। हृदय पोषक

धमनिया (Coronary Arteries) चौडी हो जाती है जैसे कि व्यायाम, चिन्ता या सकट काल मे होता है। इसी कारण शरीर पर कितना भी कार्य आ पडे हृदय उसे आवश्यक मात्रा पहुँचाने से नही चूकता। हा यदि हृदय के सामने रुकावट बढ जाय अर्थात् रक्तवाहिनिया कठोर हो जाय या फुफ्फुस मे हवा अधिक भरी रहे जिससे वहा रक्तवाहिनियो मे रक्त भार बढ जाय तो हृदय शरीर को आवश्यक रक्त पहुचाने मे असमर्थ होने लगता है। Vagus नाडियो की उत्तेजना से (उनके Cholinergic प्रभाव से) हृदय गति मन्द होती है, Diastole का समय लम्बा हो जाता है, Bundle of His की वाहक शक्ति या Conductivity घटती है जैसा कि आराम या शान्ति के समय होता है। स्पष्ट है कि इससे रक्त भार भी घट जाता है।

रक्तवाहिनियो की रचना

रक्तवाहिनियो की दीवार एक तो आभ्यन्तर स्तर (Tunica intima) से जो कि फैट सदृश पदार्थ से बने सैलो से बनी है, बनी हुई है। दूसरे मध्य स्तर (Tunica media) से जो अनैच्छिक (Unstriped) वृत्ताकार मास सूत्रो से बनी है, बनी हुई है। तीसरे बहिस्तर (Tunica Adventitia) से जो कि स्नायु तन्तु (Areolar Tissue) से बनी है, बनी हुई है। बडी धमनियो के अन्दर इन तीनो स्तरो के साथ लचकीले अवयव (Elastic Tissue) के सूत्र भी पर्याप्त मात्रा मे मिले होते है। इसी से बडी-बडी धमनियो (जैसे Aorta, Carotid, Femoral आदि) मे लचकीलेपन का गुण विशेष रहता है। यहा तक कि वे ३०० मिलिमीटर आफ मर्करी के दबाव को भी सहन कर सकती है। लचकीलेपन के कारण ये बडी धमनिया हृदय सकोच काल मे फैलकर चौडी हो जाती तथा हृदय विश्राम काल मे सकुचित हो जाती है।

मध्यम तथा छोटी धमनियो (Arterioles) मे भी ये ही तीन स्तर (Intima, Media, Adventitia) होते है परन्तु उनमे लचकीले अवयव के सूत्र बहुत कम हो जाते हैं तथा मध्यम स्तर मे मासमय वृत्ताकृति सूत्र अधिक स्पष्ट होते हैं जिनके सकोच प्रसार के कारण उनके बीच का स्रोत बढ सकता है।

मस्तिष्क धमनियो के मध्यम स्तर मे भी मासमय सूत्र बहुत कम होते हैं। उनमे जेलाटिन सदृश स्नायु तन्तु (Collagen) प्रधान रूप मे रहता है। सूक्ष्म रक्तवाहिनियो या केशिकाओ (Capillaries) की दीवार मे केवल आभ्यन्तर स्तर ही जो चपटे सैलो के सीमेन्ट सदृश पदार्थ के द्वारा जुडने से बनता है, होता है। इनका व्यास भी बहुत तग, एक इच के दो हजारवें भाग के लगभग होता है।

शिराओ (Veins) की दीवार मे लचकीले अवयव या मास के सूत्र दोनो बहुत कम होते हैं। उनमे स्नायु तन्तुओ की प्रधानता रहती है। मस्तिष्क, अस्थि, नेत्र आदि की शिराओ के मध्यम स्तर मे भी मास सूत्र नही होते। धमनियो की दीवार के बहिस्तर मे धमनी पोषक धमनियो (Vasa Vasorum) तथा लसीका वाहिनियो (Lymphatics) का जाल बिछा रहता है जिसमे से इनकी शाखाये मध्यम स्तर के अन्दर के भाग तक जाती है।

इसी प्रकार नाडियो (Nerves) का जाल भी धमनियो के बहिस्तर मे बिछा रहता है जिसमे से सूत्र मध्यम स्तर के मासमय सूत्रो तक जाते हैं। अधिकतर नाडी सूत्र बिना वसामय (Medullary या Myelin के) आवरण के होते है। ये चेष्टावाही (Efferent) सूत्र Sympathetic सस्थान से आते और मासमय स्तर को चेष्टा देते है अर्थात् ये सूत्र रक्तवाहिनियो को सकोच Vasoconstriction की अवस्था मे रखते है। वसामय आवरण वाले सूत्र सज्ञावाही (Afferent) होते है। इसी प्रकार के विशेष सज्ञावाही सूत्र Aorta के Arch मे रहते है (Pressure तथा Chemoreceptors) Carotid Sinus मे (Pressure Receptor) तथा Carotid body मे भी (Chemoreceptor) रहते है।

चिरस्थायी हृदय दौर्बल्य (Chronic Cardiac Failure)

१. वाम हृदय दौर्बल्य (Left Ventricular Failure)

अति शारीरिक श्रम करने पर मासपेशियो को, क्रोध आदि मानसिक आवेशो के समय मस्तिष्क को, तथा अति मात्रा मे आहार-पान करने पर पेट को जितने भी रुधिर की आवश्यकता होती है उतना ही उन्हे मिल जाता है। क्योकि इन अवस्थाओ मे हृदय प्रबलतर सकोच Contraction करके अधिक रक्त भेजने लगता है, अर्थात् शरीर के किसी अग को जितने रक्त की आवश्यकता होती है, उसे हृदय से मिल जाता है। हृदय अपनी क्षमता (Reserve Power) मे अधिक कार्य भी कर सकता है। आराम मे यह प्रति मिनट ५ लिटर रक्त शरीर को देता है। आवेश के समय इसे तीन गुना तथा तीव्र श्रम के समय ४-५ गुना रक्त शरीर को देना पडता है। जब हृदय

के मास Myocardium की यह अतिरिक्त कार्य कर लेने की शक्ति कम होने लगती है तव इसे चिर हृदय दौर्वल्य कहते हैं। वहुधा यह दुर्बलता पहले वाम हृदय मे प्रारम्भ होती है और वाद मे दक्षिण हृदय में होती है। ४५-५० की आयु में जैसे केश, नख, त्वचा आदि पहले के समान मृदु न रहकर कुछ कठोर होने लगते हैं उसी प्रकार धमनियो की मृदुता भी स्वभावत कुछ कम होने लगती है, अर्थात् उनमें धमनी काठिन्य (Arterio sclerosis) की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। इससे वाम हृदय के सामने अवरोध की वृद्धि हो जाने से वह आकार मे कुछ स्थूल होने लगता है, अर्थात् उसकी दीवारे मोटी हो जाती हैं। इसे Hypertrophy of the Left Ventricle कहते हैं। हृदय रोगो मे यह रोग, अर्थात् रक्त भार जनित हृदय रोग वडा सुलभ रोग है तथा आगे-आगे वृद्धि करता जाता है। इसे Hypertensive Heart Disease कहा जाता है। कभी-कभी इस आयु मे Syphilitic Aortitis हो कर Aortic Valve में कुछ रक्त के वापस लौट आने या Regurgitation का रोग हो जाता है, जिससे हृदय के प्रति स्पन्दन में कुछ रक्त वापस वामक्षेपक मे आ जाता है। इससे भी वाम हृदय में अतिवृद्धि (Hypertrophy) हो जाती है। इस छिद्र के तग हो जाने (Aortic Stenosis) मे भी वाम हृदय में अतिवृद्धि हो जाती है। कभी-कभी वृक्क रोग होता है और उसके कारण धमनियो मे रक्त भार वढ जाता है फिर उससे वाम हृदय मे अति वृद्धि हो जाती है। वाम हृदय के स्थूल हो जाने से धमनियो में उत्पन्न हुई कठोरता का प्रतिकार हो जाता है, अर्थात् शरीर के अगो को जितने रक्त की भी आवश्यकता होती है उतना ही प्राप्त होता रहता है। इसलिये हृदय की इस अतिवृद्धि को क्षतिपूरक वृद्धि (Compensatory Hypertrophy) कहते हैं। इस अवस्था मे हृदय दौर्वल्य सम्वन्धी कोई लक्षण नही होता। यदि हृदय का पोषण ठीक-ठीक होता रहे तो वर्षो तक यह अतिवृद्धि काम देती है। यद्यपि देखने मे रोगी का रक्त भार बढा हुआ होता है, तथा नाडी प्रवल और कठोर होती है। हाँ, कुछ अधिक श्रम करने पर या ऊपर चढने पर श्वास फूल जाता है या कभी हृत्कम्प सा प्रतीत होता है या कभी हृत्प्रदेश पर हलकी सी दर्द होती है।

साधारणत हृदय मास को दूसरी मासपेशियो की अपेक्षा वहुत अधिक आक्सिजन की आवश्यकता होती है। जव उस पर यह कार्य का भार वढ जाता है और आक्सिजन कम मिलती है एव आयु के वढने के साथ-साथ जव वाम हृदय के मास की शक्ति घटने लगती है, विशेषत Influenza, Malaria आदि के विष से उत्पन्न विष सचार (Toxaemia) से अथवा Coronary Arteries के अन्दर फिरग रोग के कारण या Cholesterolaemia के कारण उत्पन्न Atheroma या Atherosclerosis से जव हृदय को रक्त कम मिलने लगता है अर्थात् उसमे आक्सिजन के ठीक-ठीक न पहुचने (Anoxaemia) से इनमें स्नायु भाव हो जाता है तव वाम हृदय मे शिथिलता (Dilatation) का लक्षण प्रकट होने लगता है। Infarction हो जाने से भी वाम हृदय निर्वल हो जाता है, अर्थात् उसमें सकोच (Contract) करने की शक्ति कम होने लगती है, यानि उसके स्पन्दन अथवा प्रति मिनट मे रक्त की आगे जाने वाली मात्रा कम हो जाती है। दूसरे शब्दो मे, वाम हृदय की निकासी (Output) घट जाती है। स्पष्ट है कि इससे शरीर के अगो अर्थात् वृक्को, मस्तिष्क की मासपेशियो आदि को रक्त की मात्रा नार्मल से अर्थात् Metabolism चलाने के लिये जितनी मात्रा चाहिये, उससे कम मिलने लगती है तथा Veins मे रक्त भार कुछ वढ जाता है पर श्वयथु नही होता। विष सचार (Toxaemia) और हृदय पोषक धमनी (Coronary Artery) के रोग (Occlusion) के अतिरिक्त पाण्डु रोग हो जाय या शरीर का पोषण ठीक-ठीक न हो या Thyrotoxicosis हो तो भी वाम हृदय मे दुर्बलता की यह प्रक्रिया हो जाती है इसे वाम हृदय दौर्वल्य कहते है। जव इसमे से आगे जाने वाले रक्त की मात्रा आधी रह जाती है तव शिराओ तथा सिराओ Capillaries मे रक्त भार इतना वढ जाता है कि श्वयथु (Oedema) का लक्षण प्रकट हो जाता है।

विकृति

वाम हृदय मे अतिवृद्धि होने पर उसका प्रत्येक मास सूत्र लम्वा तथा मोटा हो जाता है जिससे उसकी दीवार मोटी तो हो जाती है पर उसको रक्त पहुचाने वाली पोषक धमनी या Coronary Artery की सूक्ष्म शाखाओ मे कोई वृद्धि नही होती प्रत्युत आयु के वढने के साथ-साथ उनकी दीवारो मे कठोरता (Sclerosis) की प्रक्रिया होती जाती है जिससे वाम हृदय मे आक्सिजन कम पहुचने से उसमे शिथिल हो जाने की प्रवृत्ति रहती है। उसमे शैथिल्य (Dilatation) प्रारभ होने पर वृक्को को प्रति मिनट रक्त की मात्रा कम मिलती है जिससे मूत्र कम वनता है अर्थात् रक्त मे से जल और लवण की निकासी कम हो जाती है। वृक्को के गुच्छो या Glomeruli मे जो जल और लवण निकलता भी है उसका कुछ

अश स्राविणियो (Tubules) के अन्दर फिर विलीन हो जाता है, इस प्रकार रक्त मे जल तथा लवण की मात्रा क्रमश बढती जाती है। जब शरीर के अगो (वृक्को) को रक्त कम मिलता है तब Adrenal cortex के Hormones भी अधिक निकलते है। Aldosterone की अधिकता से वृक्को मे जल और लवण का विलयन और अधिक होने लगता है। (दूसरे शब्दो मे, Hypervolaemia, Hypernatraemia और Hyperchloraemia के लक्षण हो जाते है) अब जब कभी शरीर पर अति कार्यभार आ पडता है या मन पर भारी विक्षोभ आ पडता है या जब कभी भोजन अति मात्रा मे खाया जाता है अर्थात् वाम हृदय पर कार्यभार आ पडता है तो उसकी असमर्थता से उसके पीछे की ओर फुफ्फुस या Pulmonary Capillaries मे रक्त की कुछ अधिक मात्रा रुक जाती है। फुफ्फुस की शिराओ तथा सूक्ष्म सिराओ (Capillaries) मे रक्त भार के बढ जाने से और फुफ्फुस के अवयवो में भार (Tension) के कम होने से रक्तस्थ जल तथा लवण का कुछ अश उनमे प्रसरण (Transude) कर जाता है। प्रारम्भ मे तो ये सूक्ष्म शिराओ (Capillaries) के आसपास के अवयवो मे प्रसरण करते हैं जिससे श्वास कोष्ठको की दीवार मे श्वयथु (Perivascular Oedema) होता है। फिर श्वास कोष्ठको (Alveoli) मे भी कुछ जल भर जाता है, अर्थात् Intra alveolar या Pulmonary Oedema भी हो जाता है। इस फुफ्फुस श्वयथु से फुफ्फुस का अपना स्वाभाविक लचकीलापन कम हो जाता है, वह कुछ कठोर हो जाता है। फुफ्फुस के कठोर हो जाने से फुफ्फुस मे जो ५०० सी०सी० के लगभग आने-जाने वाली हवा (Tidal Air) को ही नही, परन्तु उसके अतिरिक्त १६०० सी०सी० के लगभग और ली गई हवा (Reserve Air) को भी आराम से फेक देने की जो शक्ति (Vital Activity) है वह घट जाती है। जब-जब वायु कोष्ठको मे जल (Exudation) आ जाता है फुफ्फुस की Vital Capacity घट जाती है।

लक्षण

१ Dyspnoea—श्वास कृच्छ्रता

स्वल्प श्रम जनित श्वास—इस रोग का प्रथम लक्षण है। वाम हृदय दौर्बल्य के प्रकट होने पर, शीघ्रता से चलने पर, ऊचा बोलने पर, मानसिक आवेश के होने पर, सीढी चढने पर, श्वास उथला (Shallow) तथा तीव्र हो जाता है दूसरे शब्दो मे श्वास चढ जाता है जिसे स्वल्प श्रम जनित श्वास कृच्छ्रता कहते हैं। अर्थात् जब फुफ्फुस की Vital Capacity तो घट जाती है और जब फुफ्फुस मे वायु का आवागमन Ventilation बढ जाता है तब सहायक श्वास मासपेशियो (Accessory Muscles of Respiration) की सहायता से श्वास कोष्ठको मे भरी हुई हवा को बाहर फेंकना पडता है। जितना-जितना वाम हृदय निर्बल होता जाता है और फुफ्फुस मे Oedema बढता है उतना-उतना ही स्वल्प श्रम मे श्वास चढने लगता है। फुफ्फुस मे रक्त सचय के कारण उत्पन्न Hering Breuer Reflex (फुफ्फुस मे द्रव के भर जाने से अन्त श्वास मे कठिनता) से तथा श्वास केन्द्र के रक्त मे O_2 के कम हो जाने से और रक्त मे Acidity के बढ जाने से यह श्वास कृच्छ्रता उत्पन्न होती है। इस प्रकार श्वास कृच्छ्रता तथा व्यायाम को सहन न कर सकना ये हृदय निर्बलता के प्रधान लक्षण हैं। फुफ्फुस की Pulmonary Veins तथा Capillaries मे दबाव के बढ जाने से फुफ्फुस के अवयवो मे नमक और जल की मात्रा बढ जाती है एव फुफ्फुस मे श्वयथु हो जाता है। श्वयथु से श्वास काठिन्य और बढता है।

२ हृदयजनित रात्रि श्वास

(Cardiac Asthma या Pulmonary Oedema या Paroxysmal Nocturnal Dyspnoea)—इस रोग मे फुफ्फुस मे रक्त की मात्रा के बढ जाने पर होता है। दिन मे या रात्रि को सीधे लेट जाने पर शिराओ द्वारा रक्त शाखाओ की ओर से अधिक मात्रा मे दक्षिण हृदय मे लौटने लगता है। दक्षिण हृदय स्वस्थ हो तो वह इसे आगे फुफ्फुस मे फेंकने लगता है। स्पष्ट है कि रात को लेटने पर फुफ्फुस के अन्दर (Pulmonary) रक्त की मात्रा बढ जाती हैं एव खडे होने की अपेक्षा लेटे होने की अवस्था मे उसकी Vital Capacity (दीर्घ अन्त श्वास के बाद अधिक से अधिक हवा को बाहर फेकने की शक्ति) घट जाती है। यह भी स्पष्ट है कि गाढ निद्रा में सोते समय हृदय गति तथा उसमे से होने वाली रक्त की निकासी भी रात को Adrenaline तथा Noradrenaline की कमी से कम हो जाती है साथ ही निद्रा में श्वास केन्द्र के मन्द हो जाने श्वास मन्दता तथा O_2 की रक्त मे कमी भी होती है। अब यदि किसी दिन वाम हृदय अति निर्बल हो गया हो, जैसा कि दिन मे अति शारीरिक श्रम करने से, क्रोध करने या किसी प्रबल मानसिक विक्षोभ में ग्रस्त होने से या रक्त भार की अतिवृद्धि से या रात को अधिक भोजन करने से या पहले दिन अधिक नमक लेने से या *Aortic Stenosis या Regurgitation या*

Myocardial Infarction मे होता है तो वह फुफ्फुस मे भरे रक्त को आगे नही फेंक पाता जिससे फुफ्फुस की Pulmonary Veins मे रक्त अधिक मात्रा मे रुक जाता है और पुफुस मे श्वयथु (Oedema) इतना हो जाता है कि उसमे या तो श्वास नालिया तग हो जाती है या उनमें कोई स्तम्भ (Spasm) या कठोरता उत्पन्न हो जाती है। इसमे अन्दर की हवा को वाहर फेकना और वाहर की हवा को अन्दर लेना कठिन हो जाता है। अब यदि सोये हुए रोगी में खासी का वेग उठे या कोई भयप्रद स्वप्न आये जिससे हृदय धडकने लगे तो दक्षिण हृदय से और भी अधिक रक्त फुफ्फुस मे आने लगता है जवकि निर्वल वाम हृदय इतने रक्त को आगे फेंक नहीं सकता। इससे फुफ्फुस की Vital Capacity के अत्यधिक गिर जाने से रक्त मे आक्सिजन की मात्रा तो वहुत घट जाती तथा CO_2 की मात्रा अधिक बढ जाती है जिसके द्वारा Medulla मे विद्यमान श्वास केन्द्र (Respiratory Centre) के विक्षुब्ध हो जाने से श्वास वेग उठ खडा होता है। Vital Capacity के अत्यधिक कम हो जाने तथा रक्त में आक्सिजन के कम (Anoxaemia) हो जाने मे वाम हृदय रोगी को ऐसा पता लगता है कि उसका दम घुट गया है और उसके प्राण निकलने वाले हैं। वह हडवडा कर उठ वैठता है, वाहर की हवा लेने के लिए व्याकुल हो उठता है, उसका चेहरा फीका होता तथा ठडा पसीना आ जाने से गीला होता है। अन्दर की हवा के वाहर न जाने तथा वाहर की हवा के अन्दर न आ सकने से दोनो मे कठिनता के होने से उसकी छाती अन्त-श्वास (Inspiration) की अवस्था मे होती अर्थात् फूली हुई होती है। उमे लगातार खासी उठ रही होती है, वडी मात्रा मे झागदार वलगम भी निकल रही होती है। फुफ्फुस के निचले भाग से Rales की ध्वनि सुनने मे आती है। क्योकि श्वास कोष्ठको मे श्वयथु (Pulmonary Oedema) होता है श्वास नालियो मे स्तम्भ हो जाने से श्वास-प्रश्वास दोनो के साथ सीटियो (Wheezes या Rhonchi) की ध्वनि सुनाई पडती है। हृत्कम्प Tachycardia का लक्षण होता है Pulmonary द्वितीय शब्द ऊचा होता है। रात को रोगी की आख लग जाने के थोडी देर वाद ही यह श्वास का वेग हो जाया करता है। यदि रोगी की आयु ५० के ऊपर हो, हृदय गति तथा नाडी गति तीव्र हो, रक्त भार विशेषतः विश्रामकालिक (Diastolic) ऊचा हो, हृदय का दूसरा शब्द विशेषत वाई ओर की दूसरी पसली पर सुनने से ऊचा हो तो हृदय-जनित श्वास का ही सन्देह करना चाहिये। रोगी की व्याकुलता तो शीघ्र शात हो जाती है, श्वास कृच्छ्रता कुछ देर वाद शान्त होती है। यह वेग लगभग १ घण्टे तक रहकर सहसा ही शान्त हो जाया करता है। रोगी के सो जाने पर फिर दुवारा यह वेग कभी नही होता।

विषम श्वास (Cheyne Stokes Breathing—Periodic Breathing)

स्वस्थ व्यक्ति मे भी रात को सोते समय जब वाम हृदय गति मन्द हो जाती है और श्वास केन्द्र (Respiratory Centre) को रक्त कम मिलता है तो श्वास गति मन्द हो जाती है। वाम हृदय की दुर्बलता मे रात के समय निद्रा मे मस्तिप्क तथा इस केन्द्र को जव रक्त की मात्रा और भी कम मिलती है तो (Hypoxia के कारण) यह CO_2 के लिये अधिक विक्षोभशील हो जाता है। रात को फुफ्फुस मे रक्त के अति मात्रा मे सचित हो जाने पर यह केन्द्र शीघ्र विक्षुब्ध हो उठता है। जिससे कुछ एक श्वास अधिक गहरे-गहरे आते है। इन गहरे श्वासो के कारण रक्त मे CO_2 की मात्रा कम हो जाती है। उसके कम हो जाने एव उत्तेजना के कारण के न रहने से यह केन्द्र फिर वहुत कम उत्तेजित होता है जिससे कुछ एक श्वास बहुत हलके-हलके होते हैं। ऐसे श्वासो के कारण रक्त मे फिर CO_2 की मात्रा जब वढती है तो उसके कारण इस केन्द्र के अधिक उत्तेजित हो जाने से फिर कुछ अधिक गहरे श्वास होते है। इस प्रकार गहरे श्वासो (Hyperpnoea) और उथले श्वासो (Apnoea) के $\frac{1}{2}$ मिनट के लगभग क्रमश. होने को विषम श्वास (Cheyne Stokes Breathing) कहते हैं। कभी-कभी उथले श्वासो (Apnoea) के दौरान मे ३०-४० सेकण्ड के लिये सर्वथा श्वास की गति बन्द भी हो जाती है। वाम हृदय के निर्वल होने तथा Respiratory Centre के विक्षोभशील हो जाने और रक्त सचार के निर्वल हो जाने से वडी आयु के व्यक्तियो मे यह लक्षण पाया जाता है। निद्रा व निद्राजनक औषधि से यह लक्षण होता है। Hyperpnoea के तीव्रता से होने पर क्योकि फुफ्फुस मे रक्त भरे होने से रोगी को कुछ वेचैनी होती है वह इससे जाग जाता है। रक्त भार जनित वाम हृदय दौर्वल्य के अतिरिक्त यह विषम श्वास का लक्षण हृदय पोषक धमनियो के रोग (Coronary disease) अर्थात् उसके कारण उत्पन्न हृदय मास की क्षीणता मे भी होता है। ज्वरो से उत्पन्न Toxic Myocarditis मे भी होता है। इनके अतिरिक्त स्पष्ट ही है कि मस्तिष्क मे धमनी रोग—Arterial Degeneration हो तो भी यह लक्षण हो सकता है।

शैय्या श्वास (Orthopnoea)

जब वाम हृदय दौर्वल्य और अधिक बढ जाता है तो निरन्तर श्वास कृच्छ्रता का लक्षण रहता है। तब रोगी के लिये सीधा पडकर सोना भी कठिन हो जाता है। अर्थात् वह जब लेटता है और शाखाओ से रक्त सिराओ द्वारा दक्षिण हृदय मे अधिक मात्रा मे आने लगता हे तो क्योकि दक्षिण हृदय तो स्वस्थ है, वह रक्त का पूरा कोटा फुफ्फुस मे फेकता है। उधर वाम हृदय अति निर्बल होने मे रक्त को आगे फेक नहीं पाता इसलिये फुफ्फुस मे रक्त सचय अत्यधिक बढ जाता है। उसके Alveoli की दीवारो पर दबाव से वहा जो विक्षोभ (Hering Breure's Reflex) उत्पन्न होता है अर्थात् Vagus नाडियो के विक्षोभ से श्वास नालियो का मास सकुचित—Contracted—हो जाता है उसके कारण श्वास-प्रश्वास उथला तथा शीघ्रगामी हो जाता है और रोगी को श्वास कृच्छ्रता का वेग होने लगता है। उसके उठकर बैठ जाने से या आराम कुर्सी पर सोने से यह कष्ट शान्त हो जाता है। Reflex action इसका कारण है क्योकि Morphine के देने से रोगी का यह कष्ट दूर हो जाता है। फुफ्फुस के कठोर हो जाने से भी उसे श्वास लेने और श्वास के बाहर फेकने का काम कुछ कठिनता से करना पडता है। प्रारभ मे रोगी एक के स्थान पर २-३ तकिये रख के रात को सोता हे। रोग के बढने पर वह रात बैठकर काटता है, दिन मे तो भी वह लेटकर सो सकता है।

कृशता

वाम हृदय नैर्बल्य से अगो को रक्त कम मिलता है जिससे उनका पोषण कम हो जाता है एव रोगी कृश हो जाता हे।

कास

वाम हृदय दौर्वल्य मे फुफ्फुस मे रक्त के सचित रहने या श्वयथु होने से उसके विक्षोभ या Reflex के कारण न्यून या अधिक रूप मे खासी भी होती हे तथा कुछ बलगम भी गिरती हे। स्पष्ट है रात को या लेटने पर खासी अधिक उठती हे।

हृदय कम्प (Tachycardia)

स्वल्प श्रम करने पर भी हृदय कम्प हो जाना तथा श्रम के बाद उसका देर तक जारी रहना भी वाम हृदय दौर्वल्य का एक लक्षण हे।

निर्बलता-थकावट-उन्निद्रता के लक्षण भी अगो को उचित मात्रा मे रक्त न मिलने मे होते है। रात को अधिक मूत्र आने और दिन मे थोड मूत्र आने की शिकायत भी रहती है। वेग के समय शाखाओ के सिरे ठण्डे मे तथा पाण्डुर दीखते हे।

परीक्षा

हृदय का भार स्त्री मे २५० के लगभग पुरुष मे ३०० ग्राम तक होता है। अतिवृद्धि हो जाने मे इसका भार ४००-५०० ग्राम तक हो जाता हे।

वाम हृदय अतिवृद्धि

स्पदन (Apex Beat) कुछ नीचे की ओर, अर्थात् छठे Inter Space मे खिसक जाता हे और हमारे हाथ को उठाने वाला होता हे। Mitral Area पर प्रथम शब्द ऊचा व कुछ लम्बा सुनता है। द्वितीय शब्द भी ऊचा होता है। नाडी बलवती तथा कुछ भरी हुई कठोर होती हे। उसकी प्रति० मि० सख्या कम होती है। रक्त भार Systolic बढा हुआ तथा Diastolic भी कुछ बढा हुआ होता है। रोगी की आयु ४५ से ऊपर की होती है। Radiology से हृदय अतिवृद्धि का विशेष पता चलता हे।

वाम हृदय शैथिल्य (Dilatation of the left Ventricle) मे जो कि हृदय पर हृदय दौर्बल्य के उपद्रव रूप मे फैट के बढ जाने, रक्त भार की अधिकता मे तथा महाधमनी कपाटी रोग के उपद्रव रूप मे होता है तथा Cardiac Thrombosis मे भी होता है, स्पन्दन (Apex Beat) कुछ बाहर की ओर खिसक जाता है, तथा कुछ निर्बल होता है। हृदय मास के निर्बल हो जाने से प्रथम शब्द की Volume घट जाती है। वह कुछ छोटा (Sharp) तथा कुछ मध्यम (Faint) सुनता हे। हृदय के फैलने (Dilatation) के कारण यदि Mitral Ring भी चौडा हो गया हो और सकोच के समय कुछ रक्त वापस चला जाता हो तो प्रथम शब्द अस्पष्ट (Murmured) हो जाता है। नाडी निर्बल तथा शीघ्रगामी होती हे। फुफ्फुस मे रक्त के अधिक सचित हो जाने से द्वितीय शब्द बाई ओर की दूसरी पसली पर (Pulmonary Area पर) Aortic शब्द की अपेक्षा ऊचा सुनाई पडता है। रक्त भार सकोचकालिक (Systolic) कुछ कम हो जाता है पर विश्रामकालिक (Diastolic) बढा हुआ ही रहता है। मूत्र की मात्रा कम हो जाती है। उसमे लवण की मात्रा भी कम होती है। उसकी Sp Gravity बढी हुई होती उसमे अल्ब्यूमिन होता Casts होते है। रक्त मे यूरिया कुछ अधिक, प्रोटीन कम, सोडियम कम होता है। फुफ्फुस के निचले भाग मे किसी एक ओर या दोनो ओर सुनने से, पहले तो Crepitations और बाद मे Coarse Crepitations या

Rales सुनाई पडते है । रोगी की थूक मात्रा मे अधिक होती, झागदार और कभी-कभी गुलाबी सी होती है। X-Ray मे हृदयछाया बडी होती है। Hilar छाया भी बडी होती है। पुफ्फुस मे छाया फैली हुई रहती है।

२. दक्षिण हृदय दौर्बल्य (Right Heart or Right Ventricular Failure) Congestive Heart Failure जैसे शरीर मे रक्त भार वढने से वाम हृदय निर्वल होता है वैसे ही पुफ्फुस मे रक्त भार बढने से दक्षिण हृदय निर्वल होता है। अत वाम हृदय निर्वल होता जाए तो स्वभावत दक्षिण हृदय के सामने अवरोध के वढने से उसमे अतिवृद्धि और शिथिलता आ जाती है। अर्थात् जव वाम हृदय फेल होने लगता है और इस कारण फुफ्फुस की रक्तवाहिनियो मे रक्त अधिक मात्रा मे सचित होने लगता अर्थात् फुफ्फुस धमनी (Pulmonary Artery) मे रक्त भार वढ जाता है(१८ से ३०/७ से १० M M Hg नार्मल) तव सामने अवरोध के रहने के कारण दक्षिण हृदय आकार मे वडा तथा स्थूल हो जाता है या वाम हृदय कपाटी मे रोग होने पर भी यह वडा हो जाता है विशेषत. उसके Stenosis मे। कभी-कभी फुफ्फुस मे पुरानी खासी, श्वास, Emphysema (Chronic Asthmatic Bronchitis), श्वास नाली शैथिल्य, Pulmonary Fibrosis आदि पुराने रोगो के कारण फुफ्फुस मे जो स्नायु भाव (Fibrosis) हो जाता है जिससे Pulmonary सूक्ष्म शिराये वहुत सी वन्द हो जाती हैं और उनमे Arteriosclerosis की विकृति हो जाती है एव धमनियो मे रक्त भार वढ जाता है उस कारण भी दक्षिण Ventricle मे अतिवृद्धि का रोग हो जाता है। परन्तु इसके न्यूनाधिक समय वाद किसी शारीरिक विष (Toxin) के दुष्प्रभाव से या धमनी रोग अर्थात् Coronary Disease के कारण उचित मात्रा मे आक्सिजन न मिलने (Anoxaemia) से या तीव्र खासी के दौरे से जव दक्षिण क्षेपक मे भी स्नायु भाव (Fibrosis या Fatty Degeneration) की प्रतिक्रिया होने लगती है तो वह शिथिल या निर्वल हो जाता है। प्राय जव फुफ्फुस धमनियो मे रक्त भार ६०/३० M M Hg हो जाता है तव दक्षिण हृदय मे शिथिलता आ जाती है। दक्षिण हृदय क्षेपक के शिथिल होकर फैल जाने से Tricuspid Valve या छिद्र भी कुछ चौडा हो जाता है जिसमे शिराओ मे रक्त अधिक-अधिक रुकने लगता है। और उसके परिमाण रूप मे पैरो मे श्वयथु प्रकट हो जाता है।

लक्षण

शरीर की शिराओ मे रक्त के अधिक भर जाने तथा आसपास के अवयवो मे सोडियम तथा जल के अधिक रुक जाने से इस रोग के लक्षण होते हैं।

श्वयथु (Cardiac Oedema या Congestive Oedema)—हृदय मे जाने वाले रक्त का चतुर्थांश वृक्को को मिलता है। हृदय की निकासी के कम हो जाने से अर्थात् प्रति मिनट उसके ५ से ३-४ लिटर हो जाने पर वृक्को के कार्य मे कमी आ जाती है अर्थात् उसकी Tubules मे से लवण तथा जल अधिक मात्रा मे पुर्नविलीन होने लगते है जिसमे शरीर मे सोडियम तथा जल अधिक मात्रा मे रुक जाते हैं जिसका परिणाम श्वयथु होता है। इन दोनो के पुर्नावलयन के वढ जाने का कारण वृक्को को रक्त का कम मिलना है। रक्त मे लवण तथा जलाश के अधिक रुक जाने से तथा दक्षिण हृदय की रक्त को फेकने की शक्ति के क्षीण हो जाने पर शिराओ मे रक्त अधिक सचित हो जाता है, Jugular Veins या ग्रीवा की शिराये रक्त मे अधिक भरी हुई दीखती हैं (उनमे सामान्य रक्त भार ५०-१४० M M of Water होता है, वह २५० तक हो जाता है) जिससे शिराओ मे या स्रोतो में (Capillaries में) Hydrostatic भार के वढ जाने से उनकी दीवारो पर इसका दुष्प्रभाव पडने से तथा उन्हे आक्सिजन ठीक-ठीक न मिलने से अवयवो मे जल और लवण अधिक-अधिक रिसते लगते है। जव अवयव द्रव Extra cell द्रव १०% मे अधिक वढता है तक श्वयथु रोग हो जाता है। शिराओ मे अधिक-अधिक रक्त के रुकने से अर्थात् Capillaries मे रक्त के रुकने से आसपास के अवयव मे Metabolites अधिक मात्रा मे रुक जाते हैं एव वहा Osmotic Pressure वढ जाता है जिससे Capillaries मे विद्यमान रक्त से द्रवभाग अधिक मात्रा मे परिस्रुत होता है इससे श्वयथु होता है। वहुत सभव है वृक्को को रक्त के कम मिलने से श्वयथु होता है, इनमे से इस समय दूसरे पर वल दिया जाता है। इस श्वयथु जल मे प्रोटीन ½ से २ प्र०श० तक होता है। जव Capillaries मे से अधिक द्रव निकलने लगता है तो रक्त के प्लाज्मा मे प्रोटीन कम होने लगता है और उसमे जल और लवण को रोकने की शक्ति कम हो जाती है जिससे Capillaries की परिस्रवणशीलता और वढती है। अवयवो मे Osmotic Pressure के वढ जाने से रक्त मे से और अधिक द्रव अवयवों मे जाने लगता है। दिन के समय टागो की शिराओ मे रक्त भार अधिक होता है, अतः उन स्थानो मे श्वयथु हो जाता है। रात को यह श्वयथु घट जाता है। दिन मे रोगी के पैर भारी हो जाते है। पहले भारीपन वायें पैर मे आता है। इसके वढने पर अण्डकोषो, पेट, Peritoneum, Pleura (विशेषत. दायें) मे और कभी-

कभी हृदयावरणकोप (Pericardium) में भी जल भर जाता है। स्पष्ट है जिन अवयवों मे श्वयथु होता है उन्हें भी आक्सिजन ठीक-ठीक नहीं मिल पाती। फुफ्फुस के वायु कोष्ठको मे श्वयथु होने से उनकी दीवारों मे स्थित रक्त-वाहिनियो को आक्सिजन कम मिलती है अर्थात Alveolar Capillary Block हो जाता है। इसी प्रकार वृक्क की अपनी सिराओं मे रक्त के रुक जाने से मूत्र ठीक-ठीक नही बनता। हृदय के निर्बल हो जाने तथा Common Carotid धमनी तथा वृक्क धमनियो मे Pulse Pressure की कमी हो जाने पर एव शरीर को रक्त के कम मिलने पर एक तो Adrenal Cortex के सूक्ष्म स्रावों (Aldosterone, Desoxycorticosterone) की रक्त मे वृद्धि हो जाती है या तो इनका Secretion बढ जाता है या यकृत् द्वारा इनके विनाश की मात्रा घट जाती है जिनसे Sodium वृक्को मे अधिक पुर्नविलीन होने लगता है। (Spironolactones औषधिया इनकी विरोधी है) दूसरे Hypothalamus तथा Post Pituitary दोनो की उत्तेजना से Antidiuretic Hormone अधिक बनता है जिससे वृक्को की नालियो से जल की निकासी कम होती है और धमनियो मे Pulse Pressure नार्मल हो जाता है तथा अन्नारुचि के कारण शरीर मे प्रोटीन्स के कम हो जाने, आंत की शिराओ मे रक्त के भरे रहने से भोजनगत प्रोटीन्स के कम विलीन होने से, यकृत् मे रक्त के सचय के कारण प्रोटीन्स के कम बनने से तथा शरीर गत श्वयथु जल मे इनके अधिक रिस जाने से रक्त मे ये कम हो जाते है जिससे उसका Osmotic भार घट जाता है एव श्वयथु होता जाता है।

हृदय रोग जनित यकृत् वृद्धि (Cardiac Cirrhosis)

इस रोग मे Tricuspid छिद्र मे से रक्त वापस हो जाने, अर्थात् Functional Incompetence के होने के कारण Hepatic Vein मे भी रक्त के अधिक रुक जाने पर यकृत् के Lobules की Central Vein तथा उनके आस-पास की Lobular Sinusoids मे भी रक्त अधिक मात्रा मे रुक जाता है। यकृत् मे रक्त के अधिक रुक जाने तथा उसमे श्वयथु के हो जाने से यकृत् आकार मे बडा हो जाता है। यकृत् के खोल (Capsule) के तन जाने से यकृत् मे दर्द भी हो सकता है। उस पर दबाने से भी रोगी को दर्द होता है। Lobules के सैलो को आक्सिजन नहीं मिलती जिससे उनमे क्षीणता (Fatty Degeneration तथा Necrosis) की प्रक्रिया होने लगती है। अतएव देखने मे प्रत्येक Lobule बीच मे Central Vein के आसपास का भाग रक्त से भर और किनारों पर फैट से भर जाने (Degeneration) के कारण [illegible] का दीखता है। इसी कारण यकृत् की कट में [illegible] है। रोगी में भी Portal Congestion के कारण रक्त अधिक भर जाता है।

श्वास कृच्छ्रता

क्योंकि वाम हृदय दौर्बल्य के कारण फुफ्फुस में रक्त सचय अधिक होता है, फुफ्फुस का आकार देखने पर कुछ कठोर पाया जाता है जिसे इसका Brown Induration कहते हैं, अतः इस रोग मे श्वास कृच्छ्रता का लक्षण भी होता है परन्तु दक्षिण हृदय के निर्बल हो जाने के बाद फुफ्फुस को रक्त की कम मात्रा के मिलने से रात्रि श्वास (Cardiac Asthma या Orthopnoea) का लक्षण लुप्त हो जाता है। रोगी की श्वास और प्रश्वास गति तीव्र होती है तथा उथली-उथली होती है। रोगी को खासी उठती रहती है जिसमे कठिनता से बहुत थोडी झागदार बलगम निकलती है। चेहरे पर नीलेपन (Cyanosis) का लक्षण विशेष होता है जो नाक के सिरे, कानो तथा अगुलियो मे अधिक देखा जा सकता है। श्वास कृच्छ्रता और श्वयथु दो प्रधान लक्षण इस रोग के है। साथ ही थकावट हो जाने या श्रम लक्षण भी होता है।

कोष्ठ सम्बन्धी

आमाशय श्लेष्मकला की सिराओ मे रक्त के अति मात्रा मे सचित रहने (Gastritis) से अन्नारुचि, पेट मे दर्द तथा वमन के लक्षण रहते हैं। भोजन के बाद भारी-पन तथा मलबन्ध के लक्षण भी होते है।

मस्तिष्क सम्बन्धी

हृदय दौर्बल्य के कारण मस्तिष्क के सैलो को रक्त व आक्सिजन कम मिलती है। उनका पोषण कम हो जाता है जिससे बेचैनी, मानसिक विक्षोभ, एकाग्रता की कमी तथा तन्द्रा, निद्रा के लक्षण होते हैं या मस्तिष्क की शिराओ मे रक्त सचय के कारण हो सकता है ये लक्षण होते हो।

मूत्र सम्बन्धी

वृक्को को आक्सिजन न मिलने से मूत्र कम बनता है। दिन मे मूत्र कम आता (Oliguria) है, पर रात को मूत्र अधिक आता है (Nocturia)। सम्भवत. दिन मे रक्तवाहिनियो मे से बाहर निकले हुए द्रव के रात को फिर रक्त मे विलीन हो जाने से रात को मूत्र अधिक आता है। इस रोग मे मूत्र द्वारा न्यूनाधिक प्रोटीन निकलता रहता

है। सभवत वृक्को की शिराओ मे अति सचय के हो जाने से यह निकलता है। मूत्र मे Granular Casts भी होते हैं। मूत्र भार बढा हुआ होता है।

परीक्षा—दक्षिण हृदय मे अतिवृद्धि होने पर हृदय की धडकन आमाशय प्रदेश (Epigastrium) मे दीखती है तथा कुछ प्रबल होती है। Tricuspid Area (Sternum के निचले सिरे) पर प्रथम शब्द सुनता तथा Pulmonary Area (दूसरी बाईं पसली) पर द्वितीय शब्द ऊचा होता है।

दक्षिण हृदय-शैथिल्य (Dilatation या Failure) हो जाने पर ग्रीवा की शिराओ मे रक्त के भर जाने से वे भरी हुई दीखती है अर्थात् External Jugular Vein उभरी हुई दीखती है। कभी-कभी दक्षिण कपाटी (Tricuspid Valve) मे से रक्त के वापस हो जाने से उनमे धमन (Venous Pulsation) भी होता हुआ दीखता है। इसी से Internal Jugular Vein मे स्पन्दन दीखता है। हृदय के प्रति स्पन्दन मे रक्त की निकासी के कम हो जाने से नाडी निर्बल होती है, अर्थात् उसकी Volume कम होती तथा हृदय की निर्बलता से उसकी प्रति मिनट गति तीव्र होती है। प्रथम शब्द छोटा होता है। Tricuspid Regurgitation हो तो मर्मर ध्वनियुक्त होता है। दूसरा शब्द Pulmonary Area पर ऊचा होता है। रक्त भार प्राय घटा हुआ होता है, अगुलियो को रक्त कम पहुचने से वे शीतल व नीली-सी होती है। मूत्र कम हो जाता है। अर्थात् Glomeruli मे छनने की प्रक्रिया मन्द हो जाती है, मूत्र मे लवण की मात्रा घट जाती है। मूत्र मे Urea के कम निकलने से रक्त मे उसकी मात्रा बढ जाती है। साथ ही मूत्र मे अल्व्यूमिन आने लगता है। यकृत् बढा हुआ हाथो से स्पष्ट अनुभव होता है। नाभि प्रदेश के उभरे होने से जलोदर भी दिखाई पडता है। ECG तथा X-Ray से इस रोग का निश्चय हो जाता है। Blood urea Nitrogen बढा हुआ होता है, शिरा रक्त भार (Venous Pressure) बढा हुआ होता है।

हृदय की जीर्णता (Myocardial Degeneration) का रोग उसे कहते है जब हृदय पोषक धमनियो की जीर्णता के कारण हृदय मास का पोषण मन्द पड जाता है जिससे उसमे स्नायु भाव तथा वसा वृद्धि हो जाती है जिससे श्रम करने पर हृत्कम्प तथा श्वास कृच्छ्रता के लक्षण हो जाने हैं। प्रथम शब्द कुछ छोटा सुनाई पडता है। Systolic B P अधिक मात्रा मे तथा Diastolic कम मात्रा मे गिर जाता है। Ventricles की निर्बलता के कारण ऐसा होता है।

साध्यासाध्य—वाम हृदय शैथिल्य की अपेक्षा दक्षिण हृदय शैथिल्य अधिक भयकर है। यदि फुफ्फुस मे श्वयथु विशेष न हो, प्लूरा मे जलन हो, रक्त भार विशेष न हो, गुर्दे अधिक निर्बल न हो, यकृत् अधिक बढा न हो, Bronchopneumonia न हो तो रोगी वर्षो जीवित रह सकता है।

हृदय दौर्बल्य की चिकित्सा

वाम हृदय अतिवृद्धि की अवस्था मे शरीर के अगो को उचित मात्रा मे रक्त मिलता है, इसलिये केवल हृदय को निर्बल कर देने वाले भावो से बचना ही इसकी चिकित्सा है। जब कोई सक्रामक रोग हो जाय या जब अधिक शारीरिक श्रम किया गया हो तो अधिक काल के लिये विश्राम कर लेना चाहिये। फुफ्फुस मे सक्रमण जनित रोग हो तो Antibiotics का प्रयोग करना चाहिये। क्रोध से या हर प्रकार के वाद-विवाद से या मोटर कार आदि को चलाने की जिम्मेवारी से बचना चाहिये। हृदय तथा शरीर को पुष्ट करने वाला सुपच पोषक आहार तथा लघु व्यायाम करना चाहिये। परन्तु अधिक भोजनपान से व अधिक स्निग्ध गुरु आहार और अति व्यायाम से बचना चाहिये। भोजन करके दूर तक चलने या सीढियो पर चढने, अधिक भार उठाने या अधिक मात्रा मे चाय, मद्य, तम्बाकू, नमक आदि के सेवन से बचना चाहिये। मलबन्ध के न होने देने के लिये कभी-कभी कोई मृदु रेचन औषधि लेनी चाहिये। पाण्डुता के लिये लोह का सेवन करना चाहिये। रात को १० घण्टे की नीद लेने, दिन मे भोजन के बाद थोडी देर विश्राम करने, लेटकर गहरे प्राणायाम करने अर्थात् Diaphragm को नीचे-ऊपर करने से हृदय को रक्त अधिक मिलता है और उसका पोषण होता है।

वाम तथा दक्षिण हृदय दौर्बल्य (Congestive Cardiac Failure) की चिकित्सा

विश्राम चिकित्सा

हृदय दौर्बल्य के लिये लगभग एक मास तक शय्याशायी होकर पूर्ण विश्राम लेना चाहिये। सीधा लेटने मे श्वास कृच्छ्रता हो तो सिर और कन्धो के पीछे बडे-बडे तकियो के सहारे से लेटना चाहिये, या बिस्तरे पर पडी हार्ट टेबल पर झुककर पडे रहना चाहिये। शय्या श्वास (Orthopnoea) हो तो आरामकुर्सी पर टागो को कुछ नीचे लटकाकर लेटना चाहिये ताकि हृदय की बडी शिराओ मे रक्त कम मात्रा मे लौटे। केवल मल त्याग या भोजन या मुख आदि धोने के लिये उठना

चाहिये। विश्राम से मूत्र की मात्रा बढ जाती है, श्वयथु कम होता है। विश्राम करने से भोजन की मात्रा स्वभावत कम हो जाती है, जिससे हृदय का कार्यभार और कम हो जाता है। दो सप्ताह बाद प्रतिदिन आध घटे के लिये शाखाओ का मृदु मर्दन करना चाहिये। पैरो, टागो पर मर्दन करने से तथा १०-१२ बार सुवह शाम उन्हे फैलाने सिकोडने से श्वयथु घटता, मासपेशियो का पोषण तथा वल वढता है, Phlebitis या जघागिराशोथ की आशका नही रहती।

निद्रा भी हृदय की निर्वलता को दूर करती है, अत रात को ९-१० घटे निद्रा लेनी चाहिये जिसमें से ६ घटे की गहरी निद्रा होनी चाहिये। हाथ पैरो तथा सिर को मलने से नीद अच्छी आती है। निद्रा कम होती हो तो Phenobarbitone ३० मिलि० दिन मे तीन वार दे सकते हैं या इसके Soluble Sodium Salt के २० प्रतिशतक Solution की एक सी०सी० मात्रा मे, जिसमे ३ ग्रेन साल्ट होता है, मास द्वारा रात को दी जा सकती है। इसके अतिरिक्त Chloral Hydrate २० ग्रेन की मात्रा मिक्सचर के रूप मे एक वार रात को दी जा सकती है तथापि Morphine $\frac{1}{8}$-$\frac{1}{6}$ ग्रेन या तत्सम्वन्धित औषधि रोगी के लिये अधिक सहायक होती है। व्यवहार मे व्याकुलता या अशान्ति का परित्याग कर शान्त तथा प्रसन्न रहने का यत्न करना चाहिये। रोग अधिक न हो अर्थात् नाडी सख्या ८० प्रति मिनट हो तो खुली हवा मे भ्रमण करने से हृदय का वल वढता है।

लघु भोजन चिकित्सा

शरीर मे जितना Oxidation अधिक होता है उतना ही हृदय पर कार्यभार वढता है। भोजन शरीर के Oxidation को वढाता है, अत उसकी मात्रा कम कर देनी चाहिये। प्रारम्भ मे तो रोगी को केवल कुछ फलरस तथा ग्लूकोज पर ही रहना चाहिये या फलरस के अलावा १ पाव से कुछ कम दूध दिन मे ४ वार देना चाहिये। इससे कुछ लाभ हो जाने पर सब्जी, फल, रोटी, खाड आदि कार्वोहाइड्रेट प्रधान लघु भोजन पर ही रहना चाहिये। प्रोटीन-प्रधान भोजन शरीर के Metabolism के लिये कुछ उत्तेजक होता हे उसमे सोडियम की मात्रा भी अधिक होती है अत ५०-६० ग्राम मात्रा से अधिक उसका दैनिक प्रयोग नही करना चाहिये। स्नेह या फैट भी हृदय रोगी को अनुकूल नही होता। उसे कार्वोहाइड्रेट भोजन ही थोडी-थोडी मात्रा मे कई वार लेना चाहिये। घी दिन भर मे आधी छटाक से अधिक तथा दूध दिन मे ८ छटाक से अधिक नही लेना चाहिये। जल भी दिन भर मे ८ छटाक से अधिक नही लेना चाहिये। भोजन मे लवण का सर्वथा परित्याग कर देना ही ठीक है। दूध तथा सब्जियो मे १$\frac{1}{2}$ ग्राम दैनिक के लगभग जो नमक स्वभावत होता है उतना ही शरीर के लिये पर्याप्त है। गाजर, पालक, सूखे मेवे आदि मे सोडियम अधिक होता है। दूध के १ पाव मे १२५ मिलि० नमक होता है, उसे अधिक नही दिया जा सकता। चावल, आलू, रोटी मे इसकी मात्रा कम है। नमक से रहित भोजन को निम्बु, मसाले, प्याज आदि से स्वाद वना सकते हे। उसके अतिरिक्त जो लवण लिया जाता है उसके प्रत्येक ६ ग्राम के पीछे १०० सी०सी के लगभग जल रुक जाता है। Karell के अनुसार हृदय दौर्वल्य के रोगी को दो चार दिन केवल ८०० सी०सी० अर्थात् एक किलो के लगभग दूध पर ही रहना चाहिये जिसे ५-६ वार करके लिया जाय—इससे रोगी को लगभग ७०० केलोरीज मिलती है। इसमे पडी $\frac{1}{2}$ छटाक (असल मे २४ ४ ग्राम या ८६ औस) खाड से १०० केलोरीज और मिल जाती है। इस पर दो-तीन दिन रहने के वाद फिर ६०० ग्राम दूध (४५० केलोरीज), ४ औस रोटी या टोस्ट (३०० केलोरीज), कुछ उवली हुई सब्जी, कुछ घृत तथा कुछ फल पर रहना चाहिये। इस प्रकार का भोजन १००० केलोरीज देता है जो विश्राम करने वाले के लिये पर्याप्त है। या रोगी को कुछ दिन केवल चावल, खाण्ड, फल पर ही रखे।

अथवा प्रात काल एक कप चाय जिसमे आधी छटाक दूध तथा दो चमचे खाण्ड हो, लेनी चाहिये। फिर नाश्ते मे १ पाव दूध, दो टोस्ट, १ तोला मक्खन, १ तोला मधु ली जा सकती है। फिर भोजन मे १ छोटी रोटी, १ छटाक सब्जी, १ छटाक दही, १ तोला घी, लिया जा सकता हे। फिर एक कप चाय जिसमे आधी छटाक दूध, दो चमचे खाण्ड हो, ली जा सकती है। तथा रात को १ छोटी रोटी, १ तोला घी, १ तोला मधु तथा १ कप दूध लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त जल २ पाव के लगभग ले सकते है। सब्जी मे नमक का प्रयोग नही या न्यूनतम मात्रा मे करना चाहिये। इस भोजन मे दूध १६ औस है जिसमे कार्वो० २४, प्रो० १६, फैट २० ग्रा०, सोडियम २२५ मिलि० है। रोटी ६ औस है जिसमे कार्वो० ९०, प्रो० १८, फैट ३ ग्रा०, सोडि० २५ मिलि० है, मक्खन १ औस है जिसमे फैट २५ ग्रा० है, सब्जी ४ औस है जिसमें सोडि० १५ मिलि० है, खाण्ड तथा मधु २ औस है जिसमे

कोर्वो० ६० ग्राम हैं। इस भोजन मे मनुष्य को १२०० के लगभग केलोरीज़ मिल जाती है।

पेट में गैस करने वाले भोजन जैसे फलरस, पत्र तथा फूल दोनो गोभी, मेवे, मिठाई, तले हुए पदार्थ वन्द कर देने चाहिए। पर हृदय रोगी मे Potassium की न्यूनता होती है। उसकी पूर्ति के लिए कुछ फलरस दे देना ही ठीक है।

मासाहारी के लिये प्रातराश मे १ औस टोस्ट, थोडा मक्खन, ½ औ० जैम, थोडा फल का मुरव्वा १ औस, दूध की चाय, भोजन से पहले २-२ कप किसी फल का रस, भोजन मे मास २ औस, आलू २ औस (लवणहीन), सब्जी २ औस, (लवणहीन), ५ औस दूध के साथ वनी चावल या सेवियो की खीर, तीसरे पहर टोस्ट १ औम, कुछ मक्खन, ½ औंस जैम, २ औस दूध की चाय, रात को मास १ औस, आलू २ औंस, टोस्ट १ औस, कुछ मक्खन, कोई फल या मुरव्वा दे सकते हैं।

इस भोजन मे भोजन तत्त्वो की मात्रा इस प्रकार है

	औंस	कार्वो० (ग्राम)	प्रो० (ग्राम)	फैट (ग्राम)	सोडियम मिलिग्राम
रोटी	३	४५	९	१५	१२८
मास	३		२४	१५	६०
आलू	४	१२	१२		४
हरी सब्जी	२				७६
दूध	८	१२	८	१०	११३६
सेविया या चावल	½	१०	१		१
जैम	½	८			२
फल	१२	३०			
खाण्ड	३	९०			
मक्खन	१			२५	
कुल लगभग		२११	४३	५१	२०२

कुल केलोरीज़ लगभग १५००।

इस भोजन में विटामिन कम होते है अत विटामिन 'सी' ५०० मिलि० तथा Nicotinic Acid १०० मिलि० तथा Riboflavine १० मिलि० रोगी को प्रतिदिन मिलने चाहिये।

या विटामिन वी-कम्पलेक्स Forte का एक कैपसूल रोज मिलना चाहिये।

Digitalis चिकित्सा

Digitalis का, जिसका पहले-पहल पता १७८५ मे अचानक William Withering को लगा, प्रयोग करने से हृदय की सकोच करने की शक्ति प्रवल हो जाती है। हृदय चेष्टावाहक मार्ग अर्थात् Sino atrial और Atrio ventricular nodes मे चेष्टा मन्द हो जाती है जिससे इनका विश्राम काल (Refractory Period) लम्वा हो जाता है अर्थात् प्रति मिनट सकोच भी कम हो जाते है। उसके प्रति स्पन्दन मे रक्त अधिक मात्रा मे आगे जाने लगता है अर्थात् हृदय की निकासी वढ जाती है और स्पन्दन कम हो जाते है। इससे हृदय के पीछे की ओर फुफ्फुस मे वडी-वडी शिराओ मे रक्त सचय तथा रक्त भार भी घट जाता है। इस प्रकार वाम हृदय तथा दक्षिण हृदय दोनो की निर्वलता से उत्पन्न लक्षण शान्त हो जाते है। धमनियो मे रक्त के अधिक मात्रा मे जाने से Vagus पर Reflex प्रभाव होता है जिसके द्वारा हृदयगति मन्द हो जाती है अर्थात् हृदयद्रव या धडकन (Tachycardia) का लक्षण शान्त हो जाता है। धमनियो मे रक्त के अधिक जाने से वृक्को, सर्व मासपेशियो और मस्तिष्क को रक्त अधिक मिलने लगता हे जिससे मूत्र अधिक वनने लगता तथा उसके द्वारा लवण और जल शरीर मे से अधिक निकलने लगते हे। चलने पर थकावट कम होती तथा फुफ्फुस मे रक्त सचय के कम हो जाने से श्वयथु (Oedema) तथा यकृत् वृद्धि शान्त होते हैं तथा श्वासकृच्छ्रता, रात्रिश्वास (Cardiac Asthma), Atrial fibrillation, Paroxysmal Tachycardia आदि लक्षण शान्त होते हैं। स्पष्ट है कि Digitalis के देने से हृदय तथा नाडी मे फिर से वल आ जाता हे। Mitral valve के रोगो मे यह उपयोगी औषधि है।

Digitalis की भरपूर मात्रा या Digitalization

Digitalis Purpurea के पत्र-चूर्ण के, जिसकी मात्रा १ ग्राम (१½ ग्रेन) है, देने पर शरीर मे से दिन मे १½ ग्रेन मात्रा वाहर निकलती है। इससे अधिक जितनी मात्रा दी जाती है वह शरीर मे सचित होती जाती है। इस अधिक मात्रा के शरीर मे सचित होते जाने से एक दिन शरीर मे इसकी भरपूर मात्रा पहुच जाती है। जिससे अधिक और देने पर शरीर मे इसकी मात्रा वढ जाती है। भरपूर मात्रा के पहुँचने की अवस्था को Digitalization या Saturation की अवस्था कहते है। इस अवस्था मे वाम तथा दक्षिण हृदय की निर्वलता से उत्पन्न लक्षण शान्त हो जाते हैं अर्थात् शिराओ मे रक्त सचय तथा क्षेपक कोष्ठो की तीव्र गति जाती रहती है। इससे अधिक मात्रा मे इसके पहुचने पर फिर शरीर मे Digitalis के विषैले लक्षण जैसे सिरदर्द, अन्नारुचि, असामयिक सकोच Ectopic beats तथा वमन की प्रवृत्ति के लक्षण पैदा होने लगते

हैं। इस अवस्था को Digitalis Intoxication की अवस्था कहते हे। Digitalis पत्र-चूर्ण की Digitalization करने वाली मात्रा १५ से २२½ ग्रेन की होती है। यदि प्रथम दिन पत्र-चूर्ण ३-३ ग्रेन की, दूसरे दिन २-२ ग्रेन की तथा तीसरे दिन १-१ ग्रेन की तीन मात्राए दे दी जाये तो तीन दिन बाद शरीर मे Digitalization अर्थात् इस औषधि का पूर्ण प्रभाव हो जाता है। उसके बाद इसे १ से ३ ग्रेन की दैनिक चालू मात्रा मे देने से रोगी मे इसकी भरपूर मात्रा कायम रहती है या १½ ग्रेन की मात्रा तीन बार ४-६ दिन देने से या १-१ ग्रेन की मात्रा दिन मे ३ वार देते रहने से शीघ्र इसका प्रभाव हो जाता हे। पत्र-चूर्ण की ½, १ तथा १½ ग्रेन (अर्थात् ३०-१०० मिलि०) की गोलिया बनी बनाई मिलती है इसकी चालू मात्रा १ ग्रेन दिन मे २ बार पर्याप्त होती है। Tincture की जिसकी मात्रा ५-१५ बूद है (१ ग्रेन पत्र-चूर्ण=१० बूद Tincture) १२ सी०सी० की मात्रा से Digitalization हो जाता है। उसे पहले ४, फिर २-२ और फिर १ सी०सी० दैनिक मात्रा मे दे सकते हैं।

Digoxin या Lanoxin—Digitalis Lanata के पत्तो से तैयार किया हुआ Glycoside है जिसकी २५ मिलिग्राम (१/२४ ग्रे०) की गोलियाँ जो १ ग्रे० पत्र-चूर्ण के बराबर होती हे, मिलती हैं। इसकी मौखिक मात्रा २५ मिलि० है। इसकी २-३ मिलिग्राम मात्रा के शरीर मे पहुँच जाने मे शरीर का Digitalization हो जाता है। इसलिये यदि इसकी एक-एक गोली ४ दिन तक दिन मे ३ बार दे दी जाय तो चौथे दिन शरीर का Digitalization हो जाता हे या पहले इसकी दो गोली देकर फिर ६-६ घटो पर १-१ गोली दे दी जाय तो २-३ दिन मे यही परिणाम होता है अथवा इसकी दो-दो गोलियो के दो दिन तक तीन-तीन बार देने से दो दिन मे शरीर का Digitalization हो जाता है अथवा प्रथम दिन ५ गोली, दूसरे दिन ४, तीसरे दिन ३ गोली, देने से ३ दिन मे Digitalization हो जाता है। चलते-फिरते रोगी के लिये एक गोली दिन मे तीन बार देने से ७ दिन मे या २५-५ मिलि० मात्रा मे दिन मे २ बार ४-६ दिन तक देने से यही परिणाम होता है अर्थात् हृदय गति कम होकर ७०-८० प्रति मिनट हो जाती हे, मूत्र की मात्रा बढ जाती हे, उठने-बैठने मे प्रतीत होने वाली थकावट जाती रहती है, श्वयथु घट जाता हे, यकृत् वृद्धि घट जाती है। इस पूर्ण मात्रा के पहुँच जाने के बाद इसकी चालू मात्रा सप्ताह मे ६ दिन दैनिक डेढ गोली की होती हे या प्रति ७ दिन मे इसे केवल ५ दिन दे। शीघ्र प्रभाव के लिये अर्थात् श्वास गति और हृदय गति तीव्र हो तो इसे १ मिलि० मात्रा मे १० सी०मी० Saline के साथ मिलाकर बहुत धीरे-धीरे शिरा द्वारा देना चाहिये। जब Digitalis Intoxication का कोई लक्षण प्रतीत हो, अर्थात् अन्नारुचि या सिरदर्द, निद्रानाश हो या सुनने से Extrasystoly सुनाई पडे या नाडी ६० प्रति मिनट से नीचे आ जाए तो ४ दिन के लिये औषधि का प्रयोग बन्द कर देना चाहिये, और फिर उसकी चालू मात्रा का प्रयोग प्रारम्भ कर देना चाहिये और निर्बल हृदय के लिए आयु भर उसे जारी रखना आवश्यक होता है। सम्भव है Digitalis की अधिक मात्रा देने से हृदय के सैलो मे से पोटासियम तथा शक्ति के भण्डार Phosphates कुछ निकल जाते हैं जिससे Arrhythmia हो जाता है अत. पोटासियम (Pot Cit ½ ग्राम दिन मे ४ बार) देना चाहिये। Acetyldigitoxin (Acylanid-Sandoz) १ २ मिलिग्राम मात्रा मे Digoxin की तरह ही प्रयुक्त होता है। Heart Block तथा Infarction के कारण हृदय निर्बल हो तो Digitalis का प्रयोग उचित नही होता।

फुफ्फुस मे किसी प्रकार का सक्रमण (Infection) हो तो इस औषधि के साथ उसका भी प्रतिकार करना चाहिये।

मूत्रलपारे या Mercurial Diuretics के द्वारा चिकित्सा

Organic Mercurial Diuretics जैसे Mersalyl (Salyrgan) Chlormerodrin (या Merchloran तथा Neohydrin, P D Co), Mercurophyllin (या Mercuzanthin), Meralluride Sodium (या Mercuhydrin, Lakeside Labo), Mercaptomerin (Theomerin Wyeth), Mercuderamide (Neptal) का वृक्को के Tubules के सेलो पर अवसादक प्रभाव होता है जिससे मूत्र मे से लवण तथा जल को फिर से विलीन कर लेने की शक्ति थोडी देर के लिये लुप्त हो जाती है। वृक्को के Glomeruli मे मूत्र अधिक नहीं बनता, केवल उसके जलाश तथा लवणाश का पुनर्विलयन कम हो जाता है जिससे रक्त मे इनकी मात्रा कम हो जाती है (अर्थात् Hypochloraemia और Hyponatraemia हो जाते है) ये Salts १० प्रतिशतक Solution की १ या २ सी०सी० की Ampoules मे मिलते हैं। प्रात मास द्वारा इनके १-२ सी०सी० इजेक्शन देने के दो घण्टे बाद पतला मूत्र आना शुरू होता है और १२ घण्टे तक आता रहता हे। एक इजेक्शन के बाद १०० औंस मूत्र निकल जाता हे। यदि ३० ग्रेन Ammonium Chloride दिन मे तीन बार एक दिन पहले और इजेक्शन वाले दिन

२ घटे पहले दे दिया जाय तो मूत्र खुलकर आता है तथा Chloride के शरीर में से अधिक निकल जाने, अर्थात् Hypochloraemia हो जाने पर भी रक्त मे अम्लीयता (Acidity) बनी रहती है। ये प्रयोग रक्त की अम्लीयता मे अधिक काम करते हैं। मूत्र द्वारा लवण तथा जल के पर्याप्त मात्रा मे निकल जाने से फुफ्फुस तथा शाखाओ मे विद्यमान श्वयथु शान्त होता है तथा वाम हृदय और दक्षिण हृदय दौर्बल्य (Cardiac failure) से उत्पन्न होने वाले श्वास कृच्छ्रता Paroxysmal Dyspnoea आदि लक्षण शान्त हो जाते है। दिन मे एक बार कुछ दिन, सप्ताह मे दो बार वर्षो तक इनका प्रयोग किया जा सकता है। अधिक प्रयोग से रक्त मे लवण की कमी Hyponatraemia या पोटासियम की कमी हो सकती है जिससे निर्बलता का लक्षण हो सकता है। अत इनका प्रयोग अब कम होता है।

Steroids—श्वयथु अधिक हो, रक्त भार घटा हुआ हो तो Prednisolone १५ ग्रेन दैनिक देने या Betamethasone ५ मिलि० के दिन मे ३ बार देने से दोनो लक्षणो मे लाभ होने लगता है। इनके प्रयोग से मूत्रल औषधि अधिक सक्रिय हो जाती है।

मौखिक मूत्रल औषधियों के द्वारा चिकित्सा

Thiodiazine या Thiazide वर्ग की औषधियो के, जिनका १९५७ से प्रयोग हो रहा है, देने से वृक्को की मूत्र स्राविणियो (Tubules) के प्रारम्भिक (Proximal) भाग मे सोडियम क्लोराइड का पुनर्विलयन बन्द हो जाता है जिससे मूत्र की मात्रा भी बढ जाती तथा शरीर मे नमक का सचय रुक जाता है। Potassium के पुनर्विलयन के कम हो जाने से उसकी कमी (Hypokalaemia) शरीर मे हो सकती है जिसके लिये रोगी को सब्जिया तथा फल कुछ मिलते रहने चाहियें या आधा-आधा ग्राम Pot Cit, Pot Acet, Pot Chlor का मिक्सचर या Potassium Chloride १ ग्राम दिन मे ३ बार मिलना चाहिये। इसकी कमी होने पर भूख घट जाती है तथा मासपेशिया शीघ्र थकने लगती है। दो घटे मे इनका प्रभाव शुरू होता है ४ घटे तक पूर्णता तक पहुचकर ६-८ घटे तक रहता है।

इस वर्ग की ये औषधिया दी जाती है—

(१) Benzthiazide (Naclex, Fovane) ५०-१०० मिलि० दैनिक मात्रा मे दिन मे दो बार करके सप्ताह मे ३ दिन।

(२) Chlorothiazide (१९५७) (Diuril, Saluric, Chlortride-M S D) ५००-१००० मिलि० दैनिक मात्रा मे। यह २ ग्राम मात्रा मे २ मिलिलि० Mersalyl के बराबर है।

(३) Hydrochlorothiazide (Esidrex, Dichlortride, Hydrodiuril, Hydrosaluric) ५०-१०० मिलि० दैनिक मात्रा मे।

(४) Hydroflumethiazide (Hydrenox, Naclex, Saluron) ५०-१०० मिलि० दैनिक मात्रा मे। Diadamil Squibb मे २५ मिलि० यह औषधि है तथा ६०० मिलि० के लगभग पोटासियम है।

(५) Bendrofluazide (Neonaclex या aprinox) ५ मिलि० से १० मिलि० तक दैनिक मात्रा मे। इससे पोटासियम की निकासी कम होती है।

(६) Flumethiazide (Ademol) २५०-१००० मिलि० दैनिक मात्रा मे।

(७) Polythiazide (Renese, Nephril) १-२ मिलि० दैनिक मात्रा मे। प्राय प्रारभ मे दिन मे २ बार फिर १-१ मिलि० मात्रा मे एक बार।

(८) Chlorthalidone (Hygroton) ४०० मिलि० मात्रा मे सप्ताह मे २ दिन। इनमे से किसी को पहले प्रतिदिन देकर अर्थात् ३ दिन रोज देकर फिर सप्ताह मे दो-तीन दिन लगातार प्रात देना चाहिये। जिन दिनो मे यह दवाई नही दी जाती, उन दिनो मे पोटासियम क्लोराइड १-२ ग्राम देना चाहिये।

(९) Triamterene (Dytac) १५० मिलि० को तीन बार बाट के दैनिक देने से ये ही लाभ होते है पर पोटासियम की निकासी नही होती। Oedema के लिये यह उत्तम औषधि है।

(१०) Frusemide (Lasix) एक प्रबल मूत्रल औषध है। एक घण्टे के अन्दर मूत्र आने लगता है और ४ घटे बाद प्रभाव समाप्त हो जाता है। ४०-८० मिलि० मात्रा। इससे पोटा० की निकासी भी विशेष नही होती। Renal Tubule के निचले भाग पर प्रभाव करके Sodium और Chloride की निकासी को बढाता है।

Spironolactones (Aldactone-A) —Aldosterone (Adrenal Hormone जो वृक्को मे सोडियम को रोकता तथा पोटासियम को प्रवृत्त करता है) नामक मूत्र विरोधी Hormone के सभवत इन रोगियो मे बढ जाने और उसके कारण सोडियम के अन्दर अधिक रुकने से यह हो तो इसके विरोधी होने से २५-५० मिलि० मात्रा मे ४ बार प्रतिदिन Aldactone-A एक मास तक दिया जाता

है। १ सप्ताह छोडकर फिर इसे दिया जा सकता है। इससे Distal Tubules मे सोडियम का विलयन कम हो जाता है। इसके देने से सोडियम की निकासी तो हो जाती है, पोटासियम की निकासी नही होती (Hypokalaemia का भय नही रहता) उपर्युक्त मूत्रल औषधियो के साथ तथा उनके इजेक्शन देने से २ दिन पहले प्रारम्भ करके इसका प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है। पर इसकी आवश्यकता चिर रोगी मे है, नवीन रोगी मे नही। यह Ascites तथा Nephrosis मे भी उपयोगी है।

Xanthines—Aminophylline (Cardophylline-Euphyllin) २५०-५०० मिलि० मात्रा मे १० सी०सी० जल मे Mersalyl के देने के २ घन्टे बाद धीरे-धीरे शिरा द्वारा देने से मूत्र अधिक खुलकर होना है। इसका प्रयोग (Phyllindon या Sedonal) ४-९ ग्रेन मात्रा मे या २-४ गो० प्रतिदिन मुख से भी किया जा सकता है। ४८ ग्राम मात्रा मे इसे प्रतिदिन मास द्वारा दे सकते हैं। इससे Venous Pressure घट जाता है।

Carbonic Anhydrase को जो वृक्को की प्रणालिकाओ के सैलो मे एक Enzyme रहता है और Bicarbonate को मूत्र मे से पुर्नविलीन करता है, शान्त करने वाली (Inhibitor) औषधियो जैसे (१) Acetazolamide (Diamox) के २५० मिलि० मात्रा मे सप्ताह मे २-३ वार या (२) Ethoxzolamide (Cardrase) ६२ ५-१२५ मिलि० मात्रा मे सप्ताह मे ३ दिन देने से मूत्र खुलकर आता है। इनसे सोडियम तथा पोटासियम दोनो की निकासी वढती है जिससे Acidosis की आशका रहती है।

रात्रि श्वास (Cardiac Asthma) की चिकित्सा

रोगी के वैठ जाने या खडे होने से फुफ्फुस मे सचित हुआ रक्त पैरो की ओर चला जाता है और उसकी Vital Capacity वढ जाती है, अत रोगी को उठकर वैठ जाना चाहिये। तीव्र रात्रि श्वास की अवस्था मे चौथाई ग्रेन (१५ मिलि०) Morphine या Pethidine ७५-१०० मिलि० के या Papaveratum (Omnopon) ⅓ ग्रेन के त्वचा, मास या शिरा द्वारा देने मे या Whisky ½ औस मुख द्वारा रोगी को देने मे आराम आ जाता है। Morphine को शिरा द्वारा देना हो तो १० मिलि० की मात्रा धीरे-धीरे दें। ये दोनो Vasoconstriction को दूर करके हृदय के आगे के रोध को हटाते है। Morphia श्वास केन्द्र को तथा H B Reflex को भी शान्त करता है। Atropine 1/100 ग्रेन के देने से फुफ्फुस मे स्राव (Oedema) घट जाता है तथा Vagus का प्रभाव भी कम होता है क्योकि फुफ्फुस मे श्वयथु के कारण रक्त को आक्सिजन कम मिल रही है अत उसके देने से भी रोगी को आराम आने लगता है। मार्फिया से वमन की आशका हो तो Stemetil की गोली साथ मे दे दें। किसी शिरा मे से (ऊपर ब्लड प्रेशर कफ लगाकर) ३०० सी०सी० के लगभग रुधिर के शिरावेध (Venesection) के द्वारा अर्थात् चौडे सोत की नीडल द्वारा निकाल देने से भी रोगी को आराम आ जाता है। अथवा एक टाग को छोडकर चारो शाखाओ के मूल मे (कोहनियो के ऊपर) रवर की नालिया या तौलिये कसकर बॉध दिये जाये जिससे लगभग ७०० सी०सी० रक्त शाखाओ की शिराओ मे रुक जाय (Bloodless Phlebotomy) और दक्षिण हृदय मे न जाने पाये तो फुफ्फुस मे वढा हुआ रक्त सचय (Pulmonary Oedema) घटने लगता है। इनके कसकर वाधने से कष्ट होता है, इसलिये १५-१५ मिनट बाद इनमे से क्रमश एक-एक को कुछ ढीला करके फिर कस दिया जाता है। एक घण्टा इनके वाधने से श्वास कृच्छ्रता का वेग शान्त हो जाता है अथवा Antecubital Vein मे French's Needle डालकर और Needle मे एक रवर की नाली लगाकर Venesection कर दे तो तुरन्त लाभ होता है। १० औस रक्त निकालना पर्याप्त है। यदि रक्त भार कम न हो तो Aminophylline २५ ग्राम को २० सी०सी० Distilled Water या २५% ग्लूकोज सोल्यूशन मे मिलाकर धीरे-धीरे ३-५ मिनट मे शिरा द्वारा देने से भी श्वास कृच्छ्रता शान्त हो जाती है। इसके ५ ग्राम की मात्रा मे मास द्वारा देने से भी यही लाभ होता है तो भी मार्फिया की अपेक्षा वह औषध निर्बल है। अथवा Digoxin का Intravenous Injection भी मिलता है जिसमे ५-१ मिलिग्राम Digoxin होता है। इसे १० सी० सी० Sterile Water मे मिलाकर शिरा द्वारा देने से तुरन्त Digitalization होकर वेग शान्त हो जाता है। इससे १४ दिन पहले तक Digitalis लिया गया हो तो यह इजेक्शन नही देना चाहिये। इसे मास द्वारा देने से भी यही लाभ होता है। ६ घटे वाद २५ मिलि० फिर इसी तरह दे सकते हैं। ५०% Sucrose ५० मिलिलिटर मे Papaverine का एक इजेक्शन मिलाकर इसी प्रकार देने से भी यही लाभ होता है। तीव्र श्वास काठिन्य के कम हो जाने पर किसी मूत्रल औषध जैसे Neptal के या Chlorothiazide आदि के देने से भी लाभ होता है विशेषत फिर दुवारा इसका वेग नहीं होता। Neptal की अपेक्षा अब Frusemide का प्रयोग अधिक होता है उसे

२०-४० मिलि० मात्रा मे शिरा द्वारा देने से मिनटो मे ही मूत्र खुलकर आ जाता है या मूत्रल औषधि के साथ-साथ Prednisolone के २½-५ मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन बार देने से साथ ही Digitalis के देने से लाभ हो जाता है। हृदय दौर्बल्य या वाम तथा दक्षिण हृदय दौर्बल्य मे Adrenocarticosteroids की उत्पत्ति कम हो जाती है अतः इसका प्रयोग लाभदायक होता है। इससे शरीर तथा फुफ्फुस दोनो के श्वयथु कम होते हैं सभवतः इस औषधि के देने से Antidiuretic Hormone (Aldosterone) का शमन हो जाता है साथ ही सभवत गुर्दों मे Glomeruli मे मूत्र अधिक छनने लगता है। रात्रि श्वास के दौरे हो जाने के बाद रोगी को एक मास के लिये शय्या-शायी होकर पूर्ण विश्राम लेना चाहिये जिससे हृदय मास फिर यथावत् मात्रा मे रक्त को आगे फेंकने मे समर्थ हो जाये। रोगी को रात को सिर तथा कन्धे ऊचे रखकर अर्थात् बडे-बडे तकियो के सहारे से सोना चाहिये तथा रात्रि को भोजन अति स्वल्प मात्रा मे करना चाहिये। भोजन मे लवण का प्रयोग न हो तो फुफ्फुस मे होने वाला श्वयथु शान्त हो जाता है।

आक्सिजन चिकित्सा

हृदय दौर्बल्य के कारण श्वास रोग हो तो नासिका के कैथिटर के द्वारा आक्सिजन देना चाहिए इससे दक्षिण हृदय मे आने वाली रक्त की मात्रा कम हो जाती है दूसरे फुफ्फुस मे Alveoli मे भार के बढने से वहा की Capillaries से जल का परिस्रवण कम हो जाता है।

हृदय शूल का रोग (Ischaemic Disease of the Heart, Coronary Heart Disease Myocardial Ischaemia)

छाती के मध्य प्रदेश मे किसी श्रम के करने पर उत्पन्न होने वाली तथा वाम बाहु की ओर जाने वाली दर्द को हृदय शूल कहते है।

कारण

वृद्धावस्था मे शरीर की धमनियो के कुछ कठोरतर हो जाने अर्थात् धमनी काठिन्य (Arterio sclerosis) के रोग के कारण, दूसरे शब्दो मे, Diastolic भार के बढ जाने पर हृदय आकार मे बडा हो जाता है परन्तु उसकी पोषक धमनियो मे कोई वृद्धि नही होती तथा वे कठोर भी हो जाती है। भारी श्रम के समय या किसी तीव्र मानसिक आवेग के समय जब शरीर एव मस्तिष्क को अधिक रक्त पहुचाने का काम हृदय पर आ पडता है परन्तु इसे स्वय रक्त की या आक्सिजन की उचित मात्रा नही मिल पाती, इसलिये इसमे दर्द होने लगता है। इसे हृदय शूल कहा जाता है। परन्तु इस अवस्था मे हृदय पोषक धमनियो मे कोई रोग नही होता। इसे वृद्धावस्था सुलभ हृदय रोग (Senile Heart) कहते हैं। ६० वर्ष की आयु के बाद साधारण Atherosclerosis का यह विकार प्राय सभी मे न्यूनाधिक रूप मे होता है। कभी-कभी धमनी सर्वथा ही अवरुद्ध Occluded ही हो जाती है पर ऐसा धीरे-धीरे होने तथा सहायक धमनियो के बन जाने से कोई उपद्रव नही होता। इसमे हृदय मास को उचित मात्रा मे चिरकाल तक रक्त न मिलने से उसमे स्नायुभाव Fibrosis होता जाता है या शरीर मे आक्सिजन का खर्च बढ गया हो जैसा कि Thyrotoxicosis मे होता है तब भी हृदय पर कार्य का भार बढ जाता है। वास्तविक हृदय शूल का रोग तो इन हृदय पोषक धमनियो मे धमनी रोग या Atherosclerosis या Atheroma के हो जाने के कारण होता है। अर्थात् इन धमनियो के आभ्यन्तर स्तर (Endothelium) मे स्थान-स्थान पर कठोर से बटनसदृश उभार हो जाते हैं, जिनके कारण इनके अन्दर का स्रोत न्यूनाधिक तग हो जाता है। एक-तिहाई तक या इससे भी कम हो जाता है एव हृदय मास को रक्त कम पहुचता है। हृदय मास को जितना रक्त मिलना चाहिये उसमे कुछ कमी हो जाय तो दीर्घ हृदय शूल (Occlusion) का रोग होता है। Occlusion के अतिरिक्त सभव है रक्त मे जमने की प्रवृत्ति या Coagulability के बढने से भी हृदय मे Infarction हो जाता हो।

हृदय पोषक धमनियो की दीवारो का पोषण कम हो जाने से इनमे ये उभार होते प्रतीत होते हैं। इनकी दीवारो को रक्त पहुचाने वाली सूक्ष्म धमनियो (Vasavasoram) की दीवारो मे मास स्तर (Muscular Layer) नही होता। Aorta के लचकीलेपन (Contractility) के ही कारण उन्हे रक्त ठीक-ठीक मात्रा मे पहुचता रहता है। वृद्धावस्था मे जब Aorta का लचकीलापन कम हो जाता है तब इन सूक्ष्म धमनियो के द्वारा हृदय पोषक धमनियो की दीवारो को रक्त कम मिलने लगता है। इन्हे आक्सिजन के कम मिलने (Anoxia) के कारण इनके Connective Tissue के बीच-बीच वसा (Cholesterol, Phospholipid तथा Neutral fat जो स्नेह तत्त्व रक्त मे होते हैं) के ढेर स्थान-स्थान पर बैठने लग जाते है। जहा-जहा यह वसा का ढेर बैठता है इसके विक्षोभक होने के कारण वहा-वहा की आभ्यन्तर स्तर (Endothe-

lium) में स्नायु तंतु (Fibrous tissue) की मात्रा भी बढ़ने लगती है साथ ही कैल्सियम भी वहां बैठने लगता है जिससे वहां-वहां का आभ्यन्तर स्तर Nodule या बटन की तरह कठोर सा हो जाता है (Lipids+Fibrosis= Fibrous Nodule) एवं हृदयपोषक धमनियों की आभ्यन्तर स्तर में वसा के कारण पीले से रंग के अनेकानेक उभार (Yellow Nodules) हो जाते हैं। हृदयपोषक धमनियों के आभ्यन्तर स्तर (Tunicaintima) में उत्पन्न इन बटन सदृश उभारों के दूर तक उत्पन्न होकर परस्पर मिल जाने से हृदय पोषक धमनी नलकी की तरह कठोर हो जाती है और उनके बीच का स्रोत तंग हो जाता है। अब इन छोटे-छोटे उभारों के पोषण के लिये जो सूक्ष्म धमनियां (Capillaries) उत्पन्न होती हैं और जो अन्दर के स्रोत से ही वहां रक्त पहुंचाती हैं या रक्त-वाहिनियों से निकलकर वहां आती हैं, अधिक भंगुर होती हैं जिससे रक्त भार के थोड़ा बढ़ने (Hypertension) से भी शीघ्र फट जाती हैं। इन सूक्ष्म धमनियों (Vasa-vasorum) के इन उभारों में रक्तस्राव हो जाता है एवं इन रक्त के ढेरों या Haematoma के कारण ये उभार हृदय पोषक धमनी (Coronary Artery) के स्रोत के अन्दर और भी उभर जाते हैं और मार्ग को और भी अधिक तंग कर देते हैं। इससे भी अवरोध Occlusion हो सकता है। उभार के अन्दर रक्त के जमा हो जाने से वहां वसा की मात्रा और बढ़ती है एवं Atherosclerosis की प्रक्रिया और अधिक तेज हो जाती है। इन उभारों के अन्दर एक मृदु सा पदार्थ होता है, जो दलिये (Athera) की तरह लुचलुचा होता है, इसलिये इस उभार को Atheroma कहते हैं। हृदय पोषक धमनियों को तंग कर देने का यह प्रधान कारण होता है। इसके कारण हृदय मांस को कभी-कभी क्षण भर के लिये रक्त कम पहुंचता है, विशेषतः श्रम के समय हृदय मांस को स्वल्प काल के लिये रक्त कम मिलने से हृदय शूल या Angina का रोग हो जाता है। बाद में Atheroma के फट जाने एवं वहां व्रणभाव (Ulceration) हो जाने से और इसके अन्दर के लुचलुचे पदार्थ के इसके पृष्ठ पर आ जाने से वहां पर रक्त के कण या Thrombocytes बैठने लग जाते हैं जिससे वहां क्लाट या Thrombus बनकर धमनी का स्रोत पूर्णतया बन्द हो सकता है, इसी को Coronary Endarteritis या हृदय धमनी रोध (Coronary Thrombosis या Occlusion) कहते हैं। Atheroma के फट जाने से उसमें से निकले Lipoid पदार्थ से भी धमनी का स्रोत बन्द हो सकता है। हृदयपोषक धमनियों में अवरोध धीरे-धीरे या क्रमिक हो तो हृदय के जिन भाग गुणों को रक्त कम मिलता है उनमें स्नायु भाव या Fibrosis की प्रक्रिया हो जाती है जिससे हृदय के मांस में स्थान-स्थान पर स्नायुभाव हो जाता है। यह रोग अधिक आहार लेने वाले पर बैठे रहने वाले ४५-५० वर्ष से ऊपर के दिमागी काम करने वाले आढ्य पुरुषों में होता है। हीन आहार लेने वाले श्रमशील देहातियों में यह सर्वथा नहीं होता जिससे शंका पड़ती है कि Fat metabolism की मन्दता इसका कारण है। स्त्रियों में विशेषतः ६० वर्ष से नीचे बहुत कम होता है। हृदयपोषक धमनी रोग के अतिरिक्त मानसिक आवेश के समय या सहसा शीत लग जाने से हृदयपोषक धमनियों में विष्टम्भ (Spasm) होकर भी सम्भव है यह शूल हो सकता है विशेषतः जब वे कठोर या Arteriosclerosis से युक्त होती हैं।

हृदय शूल का रोग ५०-६० वर्ष से पहले बहुत कम पाया जाता था। वर्तमान समय में उत्तरोत्तर यह रोग अधिकाधिक पाया जा रहा है। वर्तमान समय में भी देहात के निश्चिन्त श्रमियों की अपेक्षा शारीरिक श्रम सर्वथा न करने वाले, चिन्ताशील, दिमागी काम करने वाले, ४५-४६ वर्ष की आयु के शहरियों में अधिक होता हुआ देखा जाता है। यह रोग जैतून, तिल, सोयाबीन, बादाम आदि के तेल की अपेक्षा तथा मछली की अपेक्षा जान्तव फैट खाने वालों में अधिक होता है, अर्थात् Saturated Stearic, Palmitic acids से बने साधारण तापमान पर जमे रहने वाले स्नेहों के खाने वालों में Unsaturated oleic, Linoleic acids से बने न जमने वाले स्नेहों के खाने वालों की अपेक्षा अधिक होता है। शान्त प्रकृति के स्थूल व्यक्तियों की अपेक्षा विक्षोभशील प्रकृति के नाटे कद के स्थूल व्यक्तियों में अधिक होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि शारीरिक श्रम सर्वथा न करने पर स्निग्ध गुरु गुण भोजन के, विशेषतः ऊपर कहे गये Saturated फैट या जान्तव फैट व वनस्पति घी के अधिक मात्रा में लेते रहने से अर्थात् शरीर के अन्दर जान्तव फैट के अधिक जाने, पचन (Combustion या Basic Metabolism) के मन्द हो जाने से या शरीर में व्यय की अपेक्षा आय के अधिक बढ़ जाने से एवं रक्त में Cholesterol की मात्रा के बढ़ जाने या Lipaemia (Lipoproteins+Cholesterol+Phospholipids की वृद्धि) के होने से हृदयपोषक धमनियों में रोध (Atherosclerosis) होने की आशंका अधिक रहती है यद्यपि उससे Atheromia का सम्बन्ध अभी तक निश्चित नहीं हो पाया। ३०-३५ वर्ष की आयु के व्यक्तिओं में Choles-

terol २६० मिलि० प्र०श० से ऊपर हो तो समझना चाहिये कि इस रोग के होने की सभावना है। विशेषत यदि वह शारीरिक श्रम या व्यायाम न करता हो। शारीरिक श्रम करने वालो मे रक्त के अन्दर Cholesterol की मात्रा कम रहती है। युवा व्यक्ति मे Hypercholesterolaemia, Lipoproteinaemia और रक्त भार वृद्धि हो तो उसमे भी Atheroma होकर Angina का रोग हो सकता है।

Thyroid ग्रन्थि की मन्दता मे भी इसकी आशका रहती है। अर्थात् जो अवस्थाये शरीर मे मधुमेह या Myxoedema या Xanthomatosis (मेदोवृद्धि) और वातरक्त (Gout) जैसे लक्षणो को उत्पन्न करती हैं वे इस रोग के बढाने वाली होती हैं। इसीलिये इस रोग मे प्राय मेदो वृद्धि (Obesity) तथा Hypercholesterolaemia और Gout के लक्षण भी हुआ करते हैं। समृद्ध देशो के व्यक्तियो मे असमृद्ध व्यक्तियो की अपेक्षा यह रोग अधिक पाया जाता है। क्वीन एलिजावेथ काल्लेज, लन्दन के भोजन विशेषज्ञ प्रोफेसर John Yudkin का कथन है कि भोजन मे खाण्ड के अधिक सेवन से Coronary Thrombosis का रोग होता है। इस रोग से बचने के लिये उनके अनुसार खाण्ड का सेवन बहुत कम करना चाहिये। देहाग्नि की न्यूनता के अतिरिक्त मानसिक चिन्ताशीलता एव व्याकुलता भी रक्तभार तथा हृदय धमनी काठिन्य (Coronary Atherosclerosis) की वर्धक प्रतीत होती है और क्योंकि वर्तमान समय मे विशेषत अनेक टैक्सो और उनको वसूल करने के ढगो के कारण तथा आर्थिक दृष्टि से अपने को आगे बढाने की प्रबल इच्छा के कारण लोगो की आर्थिक चिंता और व्याकुलता बढ गई है, इसलिये यह रोग भी पहले के शान्त युगो की अपेक्षा अधिक बढ गया है। इन कारणो से Adrenaline की उत्पत्ति बढती है, रक्तवाहिनियो मे सकोच बढता है, जिससे हृदय को रक्त कम मिलता है। बहुधा तो हृदय धमनियो मे Atherosclerosis होने के कारण हृदय शूल का रोग होता है। तम्बाकू Adrenaline का प्रवर्तक है, Vasospastic एव रक्त भार वर्द्धक है अत तम्बाकू पीने वालो मे न पीने वालो की अपेक्षा तथा मासाहारियो मे शाकाहारियो की अपेक्षा, अधिक रक्त भार वालो मे न्यून रक्त भार वालो तथा आसनशील व्यक्तियो मे श्रमशील व्यक्तियो की अपेक्षा यह रोग अधिक होता है। तम्बाकू इस रोग का एक प्रधान कारण है जो २० सिगरेट रोज पीता है उसमे इसके होने की आशका ४-५ गुणा अधिक होनी चाहिए। कैन्सर के होने की अपेक्षा भी इसमे इस रोग के होने का भय है। उसमे यदि रक्त भार भी ज्यादा हो तथा मेदोवृद्धि भी हो तो इस रोग के होने का बहुत अधिक भय है। माता-पिता मे से किसी मे यह रोग हो चुका हो तो सन्तान मे इसके होने की आशका दो गुणा हो जाती है। यदि मधुमेह हो तो भी इस रोग के होने की आशका बढती है। जो सिगरेट नही पीते उनमे यह रोग बहुत कम देखा जाता है। कभी-कभी Syphilitic Aortitis के कारण Aortic Valve मे Regurgitation का रोग हो गया हो या Aorta मे विद्यमान हृदय पोषक धमनियो के मुख तग हो गये हो (Stenosis हो) तो इन दोनो अवस्थाओ मे हृदय मास को रक्त के कम मात्रा मे मिलने से भी हृदय शूल का रोग हो सकता है। हृदय मास को रक्त कम मिलने मात्र से जो हृदयशूल हो उसे Angina तथा रक्त के अभाव मे मास को क्षति पहुच जाने से जो दर्द हो उसे Infarction कहते हैं। इस अवस्था मे Serum Glutamic Oxalacetic Transaminase अर्थात् S G O T जो सामान्यत. ४-४० यूनिट मात्रा मे होता है, रक्त मे अधिक बढ जाता है और ५० यूनिट से ऊपर हो जाता है। जितना ही यह अधिक पाया जाय उतना ही हृदय मे क्षति (Infarction) अधिक हुई है, ऐसा समझना चाहिये। सक्षेप से इस रोग के कारण ये हैं—रक्त मे Cholesterol की वृद्धि, प्लेटलेट्स मे चिपचिपेपन की उत्पत्ति, प्लाज्मा मे Fibrinogen की वृद्धि और रक्त मे बने fibrin को तोडकर घुलनशील करने वाले Enzymes की न्यूनता अर्थात् Fibrinolysis की मन्दता है। साधारण व्यक्ति मे Fibrin बनने और उसके टूटने या पचने की क्रिया सन्तुलित रूप मे रहती है इस रोग मे यह क्रिया विषम हो जाती है। मेदोवृद्धि (Obesity) भी इस रोग का एक कारण है।

हृदय शूल के व्यंजक (Exciting) कारण

शाखाओ की मासपेशियो पर जब कार्यभार अधिक आ पडता है और उतनी मात्रा मे उन्हे रक्त मिलता नही तब उनमे दर्द होने लगता है। इसी प्रकार जब हृदय पर कार्यभार तो अधिक आ पडे और उसे उचित मात्रा मे रक्त न मिल सके तब उसमे भी दर्द हो जाता है। जैसे सीढियो पर चढने या किसी भारी बोझ को उठाने या तीव्र आवेश के साथ बोलने या काम-क्रोध आदि के वेग के आने या वाद-विवाद करने से तथा घबराकर शीघ्रता मे चलने से शरीर की अन्य सूक्ष्म धमनियो मे सकोच Vasoconstriction हो जाता है वैसे ही हृदय पोषक धमनियो मे भी सकोच हो जाता है। इस प्रकार जब-जब भी ऐसे व्यक्ति को जिसकी, हृदय-पोषक धमनियो मे Atherosclerosis

हो, घबराहट मे, क्रोध के आवेश मे अथवा अधिक शीत मे किसी प्रकार का तीव्र श्रम करना पडे तो इनमे धमनी सकोच होकर हृदय को उचित मात्रा मे रक्त नही मिल पाता, तब हृदय मे शूल होता है। भोजन के बाद जब शरीर को पहले ही अधिक रक्त जरूरी होता है, भारी श्रम करना पडे तो भी यह शूल हो जाता है। श्रम के कारण होने से इसे Angina of Effort का नाम दिया गया है। श्रम के समय हृदय मास मे विद्यमान Glycogen का पचन होकर Lactic Acid की उत्पत्ति होती है। वहा रक्त की मात्रा पर्याप्त हो तो यह एसिड वहा से हट जाता है। परन्तु रक्त की न्यूनता मे जब इसकी मात्रा नार्मल से अधिक हो जाती है तो यह दर्द का कारण बन जाता है। धमनियो की दीवार मे विद्यमान Sympathetic नाडियो के द्वारा पहले Superficial तथा Deep cardiac plexus मे जाती और फिर वहा से Inferior Cervical Ganglion मे से होकर इस दर्द की प्रतीति पहले चार Thoracic Ganglion मे जाती और फिर प्रथम चार Dorsal Segments तथा ८वे Cervical Segment मे से होकर मस्तिष्क मे जाती है। इन Segments से सम्बन्वित Sensory तथा Motor Nerves पर भी इसका Reflex प्रभाव पडता है। इसीलिये वाम अग्रबाहु के अन्त पृष्ठ पर भी यह शूल प्रतीत होता है, क्योकि यह प्रथम Dorsal Segment का क्षेत्र है। वाम ऊर्ध्वबाहु के अन्त पृष्ठ पर भी यह शूल प्रतीत होता है क्योकि वह दूसरे तथा तीसरे Dorsal Segment का क्षेत्र है। उरोऽस्थि (Sternum) के मध्य से बाये कन्धे तक के प्रदेश मे भी यह शूल हो सकता है, क्योकि यह द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ Dorsal Segments का क्षेत्र है। कभी-कभी बायें हाथ के पौचे के अन्दर के पृष्ठ तथा अन्दर की दोनो अगुलियो मे भी दर्द होता है क्योकि यह आठवे Cervical Segment का क्षेत्र है। कभी-कभी यह दर्द वाम ग्रीवा और कन्धे के पीछे Trapezius के प्रदेश तथा Sternomastiod के प्रदेश मे भी होता है, क्योकि हृदय मे दर्द की प्रतीति ऊपर Vagus के Nucleus मे जाती है और Vagus तथा Spinal Accesory Nerve के Jugular Foramen मे इकट्ठे हो जाने से यह दर्द इस Nerve के प्रदेश मे भी प्रतीत हो सकता है। हृदय शूल के समय रोगी को अपनी छाती 'एक शिकजे मे कसी जा रही है या दबी जा रही' प्रतीत होती है, क्योकि इन्ही Segments मे से निकली Motor Nerves पसलियो की Inter Costal Muscles मे तीव्र सकोच उत्पन्न करने का कारण हो जाती हैं।

बहुत से व्यक्तियो मे शूल के दौरान मे तथा उसके बाद दाये बाहु या उसकी अन्दर की एक दो अगुलियो मे झनझनाहट या निर्बलता या सुप्ति का लक्षण भी प्रतीत होता है। किसी-किसी को यह शूल निचली अधोहन्वस्थि Lower Jaw या ग्रीवा के निम्न भाग मे प्रतीत होता है।

अस्थायी हृदय शूल Angina Pectoris (ग्रीवा मूल तथा छाती मे गले घोटने जैसा दर्द) Angina of Effort—५० से ७० के व्यक्तियों मे विशेषत पुरुषो मे घबराहट या व्याकुलता के साथ किसी प्रकार का श्रम करते समय या खाना खाकर जल्दी मे कही जाते समय या सीढी चढते समय विशेषत शीतकाल मे उरोऽस्थि के मध्य भाग के पीछे या कुछ बाई ओर के प्रदेश मे सहसा ही एक तीव्र शूल उत्पन्न होता है और अधिकत वाम वक्ष की ओर और कभी-कभी दाईं ओर फैलता है जो कुछ सेकण्ड से १-२ मिनट ही रहता है। हो सकता है कि क्रोध के आवेश से होने वाला शूल इससे अधिक देर तक रहे। कभी-कभी जल्दी चलने, देर तक बोलने, आवेश मे बोलने से भी शूल होता है। शूल कभी मन्द, कभी तीव्र और कभी तीव्रतर होता है। इसके होते ही रोगी अवाक् और निश्चल होकर जैसे का तैसा खडा रह जाता है। उसका श्वास-प्रश्वास भी उथला और हलका पड जाता है। उसका चेहरा चिन्ताग्रस्त, फीका और शीत स्वेद से युक्त हो जाता है। उसे मृत्यु निकट प्रतीत होती है। रोगी मे दर्द कभी-कभी बाये कन्धे, बाई भुजा के अन्त पृष्ठ पर अन्दर की ओर कोहनी तक या कलाई तक या अगुलियो तक या ऊपर कन्धे के पीछे पीठ तक प्रसरण करता है। कभी-कभी दाई बाहु की ओर प्रसरण करता है, कभी-कभी वाम बाहु के किसी एक स्थान पर प्रतीत होता है, कभी-कभी ऊपर ग्रीवा, गले, हनु या दातो की ओर प्रसरण करता है। इस प्रकार Centrifugal होता है। इन स्थानो पर होने वाले दर्द को हृदय का Referred pain कहते हैं। इसमे छाती शिकजे मे कसी या दबी या कुचली जा रही प्रतीत होती है। कभी-कभी आमाशय-प्रदेश पर तीव्र शूल के रूप मे होता है साथ ही अरुचि व वमन के लक्षण भी होते हैं। यह थोडी देर ही रहता है। इसे रोगी वायु या बदहज्मी का दर्द बताता है (Abdominal Angina)। कभी-कभी दर्द बाहु के किसी प्रदेश या पीठ पर या Epigastrium मे प्रारभ होता है। शूल के वेग के बाद रोगी की परीक्षा करने पर उसके हृदय मे अतिवृद्धि तथा बढे हुए रक्त भार के लक्षण पाये जाते हैं परन्तु बहुधा तो हृदय पोषक धमनी मे ही अपूर्ण अवरोध होता है। हृदय मास मे कोई विकार नही होता। ५० वर्ष से ऊपर के व्यक्ति मे पेट से ऊपर ग्रीवा तक के प्रदेश मे

श्रम या आवेश के कारण ऐसा सहसा होने वाला दर्द हो जो आराम से ठीक हो जाता हो तो उसे अस्थायी हृदय शूल ही समझना चाहिए। इसी प्रकार रोगी को मधुमेह हो Aortic stenosis, mitral stenosis हो या Thyrotoxicosis हो तो भी इसी रोग का सन्देह करना चाहिये। रक्तपरीक्षा करने पर Hypercholesterolaemia का लक्षण मिलता है। हो सकता है रोगी को Hyperthyroidism का रोग हो। ७५% मे Ecg परीक्षा से हृदय अतिवृद्धि या Conduction defect का पता लगता है।

यद्यपि Coronary Atherosclerosis होकर धीरे-धीरे बढता ही जाता है तथा कभी-कभी सहसा मृत्यु भी हो जाती है तथापि यदि शरीर मे मेदा को तथा रक्तभार को न बढने दिया जाय, मधुमेह रोग को न रहने दिया जाय तथा व्याकुलता के साथ श्रम न किया जाय तो रोगी ८-१० वर्ष तक सुख से रह सकता है। हृदय मास के जिस भाग को रक्त कम पहुचता है, धीरे-धीरे उत्पन्न हुई, रक्तवाहिनियो (Collateral Channels) से उसे फिर रक्त पहुचने लग जाता है। यदि यह रोग धीरे-धीरे बढता जाय तो अन्त मे दीर्घ हृदय शूल का रोग हो जाता है। रक्त भार वृद्धि, वाम क्षेपक कोष्ठ की वृद्धि, मधुमेह, 'मेदोवृद्धि, पैतृक परम्परागत हृदय रोग के लक्षण हो तो यह रोग शीघ्र घातक हो जाता है अन्यथा रोगी ८-१० वर्ष तक जीवित रह सकता है, क्योकि इस रोग मे हृदय मास मे कोई विशेष विकार नही होता। उसकी श्रम करने की शक्ति कम होती है। मृत्यु अन्त मे हृदय मे Infarction से या हृदय नैर्बल्य से होती है। १०% मे सहसा ही हो जाती है।

आमाशयव्रण, पित्ताशयशूल, Cardio Spasm तथा अजीर्णशूल ये सभी रोग भोजन से सम्बन्धित होते हैं, अत इससे इनका भेद सुगमता से किया जा सकता है।

शारीरिक लक्षण—इस रोग मे हृदय मास मे कोई परिवर्तन नही होता। अत E C G परीक्षा मे कोई दुर्लक्षण नही होता।

दीर्घ हृदयशूल (Coronary Thrombosis, Myocardial Infarction)

हृदय मास के एक भाग को स्रोतोरोध के कारण रक्त मिलना बन्द हो जाए और वह मृत हो जाए तो उसे Cardiac Infarction कहते हैं।

शहरो के बडे-बडे आदमियो व ऊची किस्म के पेशेवर लोगो का घातक यह रोग उत्तरोत्तर बढ रहा है। इग्लैण्ड, अमरीका आदि मे ५० प्रतिशत तक मृत्यु हृदय रोग के कारण होती है। अमरीका मे १ वर्ष मे इस रोग के रोगी १० लाख से अधिक होते है। हृदयपोषक धमनियो की किसी बडी शाखा मे एक किलाट clot, Thrombus के कारण या उसकी अन्दर की झिल्ली के नीचे विद्यमान Plaque मे रक्तस्राव हो जाने से उत्पन्न Thrombus के कारण पूर्ण अवरोध होकर हृदय मास को विशेषत वामक्षेपक के एक भाग को रक्त का मिलना अर्थात् आक्सिजन का मिलना सहसा बन्द हो जाय तो उस भाग के मास सूत्रो मे मृत्यु की प्रक्रिया (Coagulation Necrosis) हो जाती है। इस मृदु हुए या मृत भाग को Infarct कहते हैं। कभी-कभी एक शाखा के अन्दर प्लेटलेट्स से बने ढेर के बडे हो जाने या उसमे रक्तस्राव के होने से अवरोध होता है। यदि अवरोध के कारण मृत हुआ यह भाग बडा हो तो वहा दीवार के मृदु होकर फट जाने से सहसा मृत्यु हो जाती है। यदि यह मृत भाग छोटा सा ही हो, सारी दीवार मे न होकर Endocardium के नीचे थोडे प्रदेश मे हो तो तीन-चार सप्ताह तक Macrophages इन मरे हुए मास सैलो को हटा देते है तथा वहा नई रक्तवाहिनियो के बन जाने और Fibroblasts के आसपास से इसमे आ जाने से मृत हुये मास के स्थान पर नये स्नायु तन्तु (Fibrous Tissue, Scar Tissue) आ जाते हैं यद्यपि ३ सप्ताह तक वहा स्नायुभाव काफी हो जाता और वहा रक्तवाहिनिया भी बन जाती है तथापि दो महीने तक मृत मास सूत्रो के स्थान पर स्नायु तन्तु के भली प्रकार आ जाने से प्राय हृदय मास मे उत्पन्न हुआ Infarct पूर्णतया भर जाता है। परन्तु हृदय का वह भाग पतला हो जाने से निर्बल रह जाता है। हा, यदि सहसा अवरोध न होकर धीरे-धीरे अवरोध हो और धीरे-धीरे ही माँस सूत्रो की मृत्यु होती जाय और उनके स्थान पर स्नायु तन्तु भी आता जाय तो इसे Cardiac Infarct नही कहते, तब इसे Myocardial Fibrosis कहा जाता है। उस अवस्था मे तीव्र लक्षण नहीं होते।

प्राय बाईं Coronary Artery की Anterior Descending Branch के प्रारम्भ से २ सेटीमीटर नीचे अवरोध (Coronary Occlusion) हुआ करता है जिससे रक्ताभाव Ischaemia से उत्पन्न Infarct बायें Ventricle के तथा क्षेपक कोष्ठो के बीच की दीवार (Interventricular Septum) के अगले भाग मे तथा सिरे (Apex) के पास वामक्षेपक की अगली दीवार मे होता है। जब अवरोध दाईं Coronary Artery के प्रथम भाग पर Circumflex Branch मे होता है तो बायें Ventricle के क्षेपक कोष्ठो के बीच की दीवार मे Infarct होता है। Left Circumflex Artery मे

अवरोध हो जैसा कभी-कभी होता है तो बाये क्षेपक कोष्ठ की बाहर की दीवार मे Infarct होता है जो रक्त न मिलने से कुछ फीके से रग का होता है। इसके आसपास का प्रदेश कुछ रक्तस्राव हो जाने से रक्त वर्ण का होता है। वहाँ की सज्ञावाहिनियो मे रक्ताभाव होकर शूल की प्रतीति होती है, जब सज्ञावाहिनिया मर जाती हैं तो शूल भी नही रहता। यह रोग विशेषत पुरुषो मे होता है स्त्रियो मे कम। रक्त भार वृद्धि, मधुमेह, मेदो वृद्धि इसके उत्पादक तथा मानसिक आवेग, प्रबल तनाव तथा अति श्रम इसके व्यजक कारण है।

लक्षण

पूर्वरूप—वेग के १-२ दिन पहले रोगी को हृदय शूल के हलके-हलके वेग के होने और कुछ तबीयत गिरी-गिरी प्रतीत होती है। पडे हुए रोगी को भी ये हलके वेग होते है, बाद मे ऐसे ५०-७० वर्ष की आयु के व्यक्तियो मे जिनका रक्त भार बढा हुआ होता तथा जिन्हे बहुधा पहले हृदय शूल के वेग होते रहे है और अब शीघ्र-शीघ्र होने लगे हैं या अजीर्ण (Indigestion) सूचक अजीब से लक्षण होते रहे है आराम से पडे हुये या सोते हुये जब हृदय गति के मन्द हो जाने से Coronary Atherosclerosis से ग्रस्त हृदय को रक्त मिलना सर्वथा ही बन्द हो जाता है (Hypoxia या Anoxia हो जाता है) तब हृदय मास मे Infarct होकर सहसा तीव्र एव असह्य हृदय शूल होता है जो उरोऽस्थि (Sternum) के मध्य या अधिकतर निम्न भाग के पीछे होता तथा वाम बाहु या दोनो बाहुओ मे अगुलियो तक या ऊपर कन्धो अधोहनु और ग्रीवा तक प्रसरण करता है या दोनो Scapulae के बीच के प्रदेश तक जाता है। मनुष्य को होने वाले सब शूलो मे यह प्रबलतम शूल है। यह क्रमश: बढकर निरन्तर मिनटो या घन्टो तक जब तक कि हृदय के रक्तविहीन प्रदेश की सज्ञा-वाहिनियाँ जीवित रहती है बना रहता है आधे घण्टे के लग-भग विशेष रहता है और अत्यन्त वेदनाजनक होता है जबकि साधारण शूल १-२ मिनट ही रहता है। रोगी को अपनी छाती एक शिकजे मे कसी जा रही, भीची जा रही, दबाई जा रही, कुचली जा रही, या पीसी जा रही, प्रतीत होती है। इस शूल मे रोगी शान्त एव निश्चल न होकर अत्यन्त बेचैन होता है। दर्द के साथ उसे वमन भी बार-बार होती है तथा श्वास कृच्छ्रता का लक्षण भी हो सकता है। इस दर्द के होने के साथ ही रोगी का चेहरा चिन्ता या भय से ग्रस्त हो जाता है तथा फीका और शीत स्वेद से युक्त हो जाता है अर्थात् शूल, सर्वांग शैत्य (Collapse) और श्वासकृच्छ्रता के लक्षण होते है। रोगी अपने को अत्यन्त निर्बल अनुभव करने लगता है। रोगी को मर्मान्ति कष्ट हो रहा होता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि उसका अन्त सन्निकट है। कभी-कभी दर्द पेट मे लगता है साथ ही वमन के वेग होते हैं तब Peptic ulcer का सा भ्रम हो सकता है। उसकी नाडी तीव्र, अस्पष्ट, अति निर्बल अर्थात् छोटी (Tic-Tac किस्म की) होती है जिसकी प्रति मिनट गति १०० के लगभग होती है, बहुत विषम भी होती है। अर्थात् या तो Heart Block होता है या असामयिक स्पन्दन (Ectopic Beat) सुनाई पडता है। असामयिक स्पन्दन गति ३०% के लगभग रोगियो मे Atrium से तथा ५०% के लगभग रोगियो मे Ventricle मे से शुरू होती है। इनसे उत्पन्न Tachycardia एक अशुभ लक्षण है। हृदय स्पन्दन की निर्बलता से रक्त भार गिरकर १०० MM Hg तथा इससे भी नीचे आ जाता है। तापमान नार्मल से कम होता है यद्यपि इस दिन से हलका सा ज्वर हो जाता है जो लगभग १ सप्ताह रहता है। हृदय का प्रथम शब्द निर्बल होता है। हृदय के दोनो शब्द एक से सुनाई पडते है तथा बीच के दोनो अन्तर भी एक जितने होजाते हैं (Embryocardia), ग्रीवा की सिराए फूली हुई दीखती है, पीठ पर छाती के निम्न भाग पर Rales सुनाई पडते हैं, रोगी के हाथ-पैर भी तीव्र सिरा सकोच (Vasoconstriction) के कारण फीके दिखाई पडते हैं। यह सकोच (Collapse) हृदय की निर्बलता के कारण लगता है। इस प्रकार रोगी उस समय आघात लगने (Shock) की अवस्था मे होता है। Cardiac Infarct (Trauma) के कारण ही हृदय शूल तथा आघात (Shock) के लक्षण हो सकते है ५-७ दिन तक Serum Lactic Acid Dehydrogenase बढा हुआ मिलता है। रोगी के Serum मे प्राय Uric Acid की मात्रा नार्मल से (८ मिलि० प्रतिशत तक) अधिक पाई जाती है। इसकी वृद्धि इस रोग का कारण है या परिणाम है, इस विषय मे अभी निश्चय नही हो पाया। रोगी को Probenecid के देने से तो लाभ अवश्य होता है।

आघात प्रधान हृदय शूल—कभी-कभी आघात (Cardiogenic Shock या Peripheral failure) का लक्षण प्रधान तथा दर्द का लक्षण अस्पष्ट होता है। जब आघात प्रधान लक्षण होता है तब या तो रोगी बैठा-बैठा नीचे ढुलक जाता और तुरन्त मर जाता है या एक व्यक्ति को निर्बलता, शिरोभ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, शीतागता, हस्त-पाद-शैत्य के लक्षण हो जाते है और उसे ऐसा लगता है कि मृत्यु निकट है उसकी नाडी निर्बल, तीव्र, रक्तभार

और तापमान गिरा हुआ होता है। कुछ घंटों में फिर उसका तापमान बढ़ने लगता है Shock के कारण मूत्राघात (Anuria) भी होता है। इसके अतिरिक्त हृदय दौर्बल्य (Left Heart Failure) का लक्षण भी हो सकता है। कभी-कभी तो उपर्युक्त लक्षण गौण होते हैं वही प्रधान रूप में होता है। उसके कारण (छाती में रक्त के रुक जाने या Pulmonary Oedema से) श्वासकृच्छ्रता या रात्रि श्वास का लक्षण होता है जिससे Orthopnoea का लक्षण हो जाता है। इस अवस्था में छाती की परीक्षा करने से Medium Moist Rales सुने जा सकते हैं तथा कभी-कभी श्वास रोग के समान सीटियों (Rhonchi) के साथ लम्बे बहिःश्वास (Expiration) भी सुनाई पड़ते हैं। फुफ्फुस में रक्त संचय और श्वयथु के कारण बाईं ओर की दूसरी पसली पर हृदय का दूसरा शब्द ऊंचा सुनाई पड़ता है। परीक्षा करने पर नाड़ी निर्बल होती है, हृदय शब्द निर्बल होते हैं। दक्षिण हृदय निर्बल हो तो ग्रीवा की Veins फूली हुई दीखती हैं, यकृत् बढ़ा होता है।

शूल के वेग के शान्त हो जाने पर भी छाती में हलके दर्द की प्रतीति कुछ घण्टों तक बनी रहती है। Infarct के कारण कुछ मांस के मृत हो जाने से कोई प्रोटीन विष रक्त में संक्रमण कर जाता है जिससे २४ घंटों बाद १०० डिग्री के लगभग ज्वर भी हो जाता है, जो ३-४ दिन में शान्त हो जाता है। जितना Infarct बड़ा होता है, उतना यह ज्वर देर तक रहता है। Infarct बहुत छोटा हो तो ज्वर नहीं होता। ज्वर के साथ वहां क्षत होने के कारण Leucocytosis (१०-१५ हजार तक) तथा B.S.R. भी दूसरे दिन से २०वें दिन के लगभग समय तक बढ़े हुए पाये जाते हैं। Serum में Glutamic Oxalo-acetic Transaminase (Enzyme) की मात्रा जो क्षत हुए हृदय मांस से आती है बढ़ी हुई होती है। अर्थात् नार्मल (१०-४० यूनिट तक) से अधिक (१००-६०० तक हो जाती है) और ३-४ दिन तक फिर नार्मल हो जाती है। हृदय में दौर्बल्य के कारण मूत्र मात्रा में कम तथा अल्ब्यूमिन से युक्त होता है। Plasma में Fibrinogen की मात्रा भी बढ़ी हुई पाई जाती है। वृद्धि थोड़ी हो तो रोग साध्य होता है। १०० सी०सी० में ८०० मिलि० से अधिक हो तो रोग का रूप भयंकर समझा जाता है। Plasma में अल्ब्यूमिन की मात्रा कम तथा Globulins की मात्रा अधिक हो जाती है। Lipids की मात्रा भी बढ़ जाती है। Infarct बड़ा हो तो संकोचवाही सूत्रों (Conduction System) के ग्रस्त हो जाने से तुरन्त मृत्यु हो जाती है। E C G परीक्षा से इस रोग का निर्णय हो जाता है।

उपद्रव

१. Hypostatic Pneumonia—वाम हृदय की निर्बलता के कारण फुफ्फुस में श्वयथु होकर हो सकता है। इसके कारण ज्वर, शीघ्र श्वास, हृदय की गति की तीव्रता, खांसी, कफागम तथा फुफ्फुस के निम्न भाग में ठोसपन (Consolidation) हो जाने के लक्षण होते हैं।

२. Congestive Heart Failure का उपद्रव कुछ दिन बाद होता है। दक्षिण हृदय के निर्बल होने का यह लक्षण हो तो शिराओं तथा शाखाओं में श्वयथु का लक्षण होता है यकृत् कुछ बड़ा होता है।

३. हृदय गति वैषम्य (Arrhythmia)—दोनों हृदयों के बीच की दीवार में विद्यमान Bundle of His भी इसमें ग्रस्त हो तो बहुधा Ventricular extrasystoles या Premature Contraction का उपद्रव होता है। इसके अतिरिक्त Paroxysmal Tachycardia, Auricular Fibrillation, Heart Block आदि किसी भी प्रकार का हृदय गति वैषम्य हो सकता है। Right Coronary artery में अवरोध हो तो हृदय मांस के निम्न भाग में Infarction होता है जिससे Bradycardia या Brady-arrhythmia का लक्षण भी होता है। यह या तो Sinus bradycardia होता है या Heart Block के कारण होता है।

४. हृदय के आभ्यन्तर स्तर में हुए Thrombosis से या जंघाओं की शिराओं में Phlebitis होने से रक्त खंड या Emboli वहां से पृथक् होकर, दूसरे सप्ताह में १०-१५% रोगियों में मस्तिष्क या फुफ्फुस की सूक्ष्म धमनियों में या शाखाओं की धमनियों में अवरोध का कारण बन सकते हैं। Pulmonary Embolism से वक्ष शूल, श्वास कृच्छ्रता, कास, ज्वर, हृदयकम्प Tachycardia, के लक्षण हो जाते हैं। मस्तिष्क में अवरोध (Thrombosis) होकर पक्षाघात आदि मस्तिष्क सम्बन्धी घोर लक्षण हो सकते हैं। वृक्क में Infarction होकर रक्तमेह हो सकता है। प्लीहा में Infarction होकर वाम पार्श्व में तीव्र शूल हो सकता है।

५ वाम हृदय रक्तार्बुद (Left Ventricular Aneurism) उनमे हो सकता है जो एक महीने से पहले ही चलने-फिरने लग जाते है।

६ वाम हृदय की निर्बलता तो इस रोग का एक लक्षण है जिससे फुफ्फुस मे श्वयथु (Pulmonary Oedema) हो सकता है। ये उपद्रव शूल के बाद २ सप्ताह तक हो सकते है।

साध्यासाध्य (Prognosis)

इस रोग के २५% रोगी १ सप्ताह के अन्दर-अन्दर विशेषत पहले २ दिन के अन्दर-अन्दर मृत्यु को प्राप्त हो जाते है। रोग के दूसरे आक्रमण होने पर ५०% मे मृत्यु हो जाती है। रोगी २ या ३ दिन तक बच जाए तो वह ठीक हो जाता है। मृत्यु Ventricular Fibrillation Shock तथा Pulmonary Oedema से होती है। यदि रोगी को एक के बाद दूसरा दौरा न उठे तो उसकी आयु बहुत बडी न हो, रक्तभार पहले अधिक ऊंचा न रहा हो, हृदय शूल का तीव्र वेग पहला ही हो तथा दीर्घ न हो, अर्थात् कई घण्टो तक न रहे, दर्द के दौरे के साथ श्वास कृच्छ्रता अर्थात् वाम हृदय दुर्बलता और आघात या Shock के लक्षण विशेष न हो, ज्वर न हो या मन्द हो, रोगी को मधुमेह न हो, रोगी मद्यपी न हो, अति स्थूल न हो, धूम्रपायी न हो, Leucocytosis अधिक न हो, हृदय शब्द निर्बल न हो, नाडी वैषम्य देर तक न रहे, अर्थात् हृदय मास (Myocardium) मे विशेष क्षति न हुई हो, वेग के बाद ३ सप्ताह बिना किसी उपद्रव के व्यतीत हो जाये तो हृदय के इस मृत हुए प्रदेश (Infarct) के अन्दर चारो ओर से नई रक्तवाहिनियो के आ जाने (Arterial Anastomosis) के द्वारा नये स्नायु तन्तु के बन जाने से क्षति की पूर्ति हो जाती है, ECG परीक्षा से इस क्षतिपूर्ति का पता लग जाता है। इसके बाद यदि हृदय शिथिल हुआ-हुआ हो, श्रम से श्वास चढ जाता हो तो शारीरिक श्रम से बचना चाहिये। अन्यथा अपने साधारण काम मे लग सकते है। बाद मे भी यदि हृदय निर्बल ही रहे, शूल कभी-कभी हो तो भी मृत्यु ३-४ वर्ष मे हो जाती है। पर यदि आघात (Shock) का समय दीर्घ हो औषधि से भी शान्ति न हो, Leucocytosis २५ हजार से ऊपर हो, ज्वर ऊचा हो, मधुमेह नियन्त्रित न हो, आयु बडी हो, फुफ्फुस मे श्वयथु के लक्षण हो, हृदय वैषम्य जारी रहे, Embolism हो, रक्त भार गिरा रहे, तो ७५% अवस्थाओ मे मृत्यु हो जाती है। सक्षेप मे अति स्वेद और श्वासकृच्छ्रता इस रोग के दुर्लक्षण हैं।

अस्थायी हृदय शूल Angina Pectoris की चिकित्सा

वेग की समय की चिकित्सा

शान्त एव निश्चिल होकर खडे रहने या बैठ जाने या लेट जाने से दर्द शान्त हो जाया करता है। अत दर्द प्रतीत होते ही लेट जाना चाहिये। दर्द के शान्त हो जाने के बाद भी कुछ मिनट तक आराम जारी रखना चाहिये। वेग तीव्र हो या शीघ्र-शीघ्र हो जाते हो तो वेगो के शान्त हो जाने के बाद ३-४ सप्ताह तक शय्या शायी होकर विश्राम कर लेने से फिर वेग नहीं होते। परन्तु देर तक निश्चल पडे रहने से लाभ नही होता। शक्ति के अन्दर-अन्दर ही श्रम करना उचित है। हृदय शूल शामक औषधियो मे से जो Vasodilator होती हैं, प्रमुख औषध Trinitroglycerin Nitroglycerin या Glyceryl trinitrate (angised) Tablet है, (Coronary Vasodilator, Antispasmodic हैं)। इसकी ५ मिलिग्राम या $\frac{1}{130}$ ग्रेन की दूध की खाण्ड के साथ बनी, चोकोलेट चढी, गोलिया मिलती हैं। एक गोली को मुख मे रखकर चूसने या उसे कुछ देर जीभ के नीचे रखने से १-२ मिनट के अन्दर-अन्दर इसका प्रभाव हो जाता है तथा आधे घण्टे के लगभग कायम रहता है। इससे हृदय पोषक धमनियो मे उत्पन्न हुआ स्तम्भ (Constriction) दूर होता है। सभवत उनके शिथिल होकर फैल जाने से हृदय मास को रक्त अधिक पहुचने लगता है। इसका प्रभाव शरीर धमनियो पर भी होता है सिर की धमनियो मे भी रक्त अधिक हो जाता है जिससे शिर भारी हो जाता है। उनके फैल जाने अर्थात् उनके अन्दर रक्तभार के गिर जाने से हृदय के सामने की रुकावट (Resistance) भी घट जाती है। एक गोली से आराम प्रतीत न हो तो १५ मिनट बाद दूसरी गोली भी ली जा सकती है तथा यदि १ गोली के लेने से रक्तवाहिनियो मे अधिक शिथिलता होकर मुख लाल हो जाता हो या शिर मे दर्द हो जाता हो तो इसकी आधी मात्रा (३ मिलि०) लेनी चाहिये। इस औषध को से $\frac{1}{50}$ से $\frac{1}{200}$ ग्रेन तक की मात्रा मे लिया जा सकता है। ये गोलिया Paraffin Wax के द्वारा सील करके रखी जाती है क्योकि देर तक हवा के लगने से निष्क्रिय हो जाती है। अत बहुत देर तक बाहर रखी हुई गोलियो पर विश्वास नहीं करना चाहिये। किसी श्रम के करने मे पहले इसकी एक गोली जीभ के नीचे रख ली जाय तो भी शूल से बचा जा सकता है। Enteric coated Oral Nitroglycerin गोलिया भी मिलती हैं इन्हे निगला जा सकता है। एक गोली का प्रभाव धीरे-

धीरे होता है और १२ घण्टे तक रहता है। इस प्रकार इसकी २ गोली दैनिक पर्याप्त है। Amylnitrite ३-५ बूंद कैप्स्यूल मे मिलता है, Octyl Nitrite ३-५ बूंद भी मिलता है। इसे रुमाल मे तोडकर सूघने से यह शूल तुरन्त शान्त हो जाता है पर अब इसका प्रयोग नहीं होता। यदि ये औषधिया उस समय न मिल सकें तो Alcohol या Brandy या Whisky या Carminative Mixture १ औंस पिला देने से भी यही लाभ होता है। Morphine Sulph $\frac{1}{6}$ ग्रेन के त्वचा द्वारा देने से भी यही लाभ होता है। Catron Hydroch के जो Monoamine Oxidase की विरोधी औषधि है (Lakeside Laboratory) ३-६ मिलि० मात्रा मे देने से शूल शान्त होता है।

वेग के बाद की चिकित्सा

अति शारीरिक श्रम से बचना चाहिये। विशेषत भोजन करने के बाद जब हृदय पर पहले ही कार्यभार होता है, शीघ्र-शीघ्र चलने या शीघ्रता मे सीढियो पर चढने का श्रम नहीं करना चाहिये, भोजन के बाद कुछ देर विश्राम करना चाहिये। श्रम की अपेक्षा भी व्याकुलता, व्यग्रता और क्रोध से हृदय पर कार्यभार अधिक आ पडता है। अन मानसिक व्याकुलता उत्पन्न करने वाले कार्यो से सदा बचना चाहिये, सासारिक व्यवहार मे सहनशील रहे तथा विक्षोभ का कारण होने पर भी शान्त रहने का यत्न करना चाहिये। इसके लिये काम-धन्धे के उत्तरदायित्व से मुक्त होना पडे तो मुक्त हो जाना चाहिये। खुली हवा मे भ्रमण या मृदु व्यायाम करने से हृदय का पोषण बढता है, रक्त मे Cholesterol की मात्रा घटती है अत साधारण शारीरिक श्रम से कोई हानि नही प्रत्युत लाभ ही होता है। अतएव वेग के शान्त हो जाने पर विश्राम के स्थान पर उचित व्यायाम पर बल देना चाहिये। रात्रि को नियम से ८ घण्टे विश्राम करना चाहिये। तथा अवकाश के दिन भी बहुत-सा समय शय्याशायी होकर विश्राम मे व्यतीत करना चाहिये। मस्तिष्क को विक्षुब्ध व क्रुद्ध कर देने वाले सभी भावो से अर्थात् हर प्रकार के वाद-विवाद मे बचना चाहिये। इनसे हृदय पर अत्यधिक कार्यभार पडता है। रक्त की कमी या पाण्डुता भी हो तो रक्त-वृद्धि के उपाय भी करने चाहियें। यदि व्यक्ति का स्वभाव विक्षोभशील हो तो Phenobarbitone $\frac{1}{6}$ ग्रेन का दिन मे तीन बार प्रयोग कर लेना चाहिये। हृदय का कार्यभार कम कर देने से उनकी धमनियो को जोडने वाली Collateral शाखायें बन जाती है। आयु तथा ऊचाई के अनुसार जितना भार होना चाहिये उससे अधिक हो तो उसे कम करना चाहिये, अर्थात् भोजन की मात्रा कम कर देनी चाहिये। तथा भोजन मे घी, दूध, मलाई, चर्बी, खाण्ड, मास आदि की मात्रा विशेष घटा देनी चाहिये तथा शरीर के भार को घटाने का यत्न करना चाहिये। कुछ पौण्ड भार घट जाने मे हृदय पर कार्यभार घट जाता है। जान्तव फैट तथा वनस्पति घी खाना बन्द कर देना चाहिये, मक्खन तथा वनस्पति घी सप्ताह मे १-२ छटाक से अधिक नही लेने चाहिये। जैतून, Maize Oil, तिल, Safflower आदि के तेल (Linoleic Acid) अर्थात् Unsaturated Fatty Acids लिये जा सकते है। (दही पनीर भी सपरेटे दूध के ही लेने चाहियें।) इन तेलो के लेने से सैलो मे पडा हुआ Lipoid पदार्थ कम होने लगता है। इनमे विद्यमान Linoleic, Arachidonic Acid के द्वारा सीरम तथा सैलो मे विद्यमान Cholesterol का पाचनकर्म बढ जाता है जिससे वह Cholic Acid मे बदल जाता एव बाइल के द्वारा आत से बाहर निकल जाता है। वनस्पति घी तेल से बनता है पर जब उन पर Hydrogen की क्रिया होती है तब उनके Unsaturated Fatty Acids क्योकि Saturated Fatty Acids बन जाते हैं इसलिये उनकी गणना तेलो मे नही क जा सकती। ऐसा भी कहा जाता है कि तेलो के सेवन से रक्त के जमने की प्रक्रिया अर्थात् Coagulation की प्रवृत्ति घटती है तथा उसके विपरीत घृत, मक्खन, अण्डे, वनस्पति घी आदि के सेवन से रक्त मे यह प्रवृत्ति बढती है। Atheroma रोग मे यह प्रवृत्ति रक्त मे पहले ही बढी हुई होती है। Linoleic Acid के Ethylester को इस रोग की चिकित्सा के रूप मे दिया जा रहा है पर उसके विषय मे अभी किसी राय का देना कठिन है। इस विषय मे जो परीक्षण अभी-अभी हुए हैं उनसे तो ऐसा पता चलता है कि जान्तव फैट और वनस्पति घी तो Atheroma करते ही है पर तेल भी अधिक और चिरकाल तक लिये जाये तो उनसे भी Atheroma हो सकता है (A K Basu)। रोगी को प्रातराश हलका लेना चाहिये। भोजन के बाद १ घण्टा लेटकर फिर काम मे लगना चाहिये। वर्ष मे एक मास के लिये बाहर जाकर वहा पूर्ण विश्राम करना चाहिये। रक्त भार को बढने न देना चाहिये एतदर्थ नमक आधे ग्राम दैनिक से अधिक न लेना चाहिए। यदि वह हो तो पर्वत पर न जाना चाहिये। खुली हवा मे चलने से आक्सिजन अधिक मिलती है। घबराहट जल्दबाजी, क्रोध व आवेशो से बचकर सदा खुश रहने का यत्न करना चाहिये। जितनी मेदा अधिक होती है उतना ही हृदय पर कार्यभार बढता है। अत शरीर की मेदा को

कम करना चाहिये। रक्त मे Cholesterol २६० मिलि० प्र०श० से अधिक हो, (१५०-२६० प्र० श० मिलि० नार्मल) रक्त मे वसा वृद्धि Cholesterolaemia हो तो उसे रोकने के लिए मृदु व्यायाम करना चाहिये। प्रारम्भिक विश्राम काल मे दैनिक १००० केलोरी का भोजन लेना ही पर्याप्त होता है तथा लवण आधे ग्राम से अधिक नही लेना चाहिये। फिर बाद मे भोजन बढाया जा सकता है। पेट भरके भोजन करने की आदत छोड देनी चाहिये। दिन मे छोटे नाश्ते की तरह के चार भोजन ही लेने चाहिये जिनमे जल या द्रव नही लेना चाहिये। इनमे जान्तव फैट की मात्रा बहुत कम होनी चाहिये (सब Calories मे २५% फैट की होनी चाहिये, फैट मे ६०% तेल होना चाहिये)। कार्बोहाइड्रेट भोजन भी अधिक नही लेना चाहिये, Gout करने वाले आहारो से बचना चाहिये क्योकि उस रोग का इससे सम्बन्ध प्रतीत होता है। तम्बाकू या सिगरेट, अति चाय, काफी के प्रयोग आदि से रक्त भार बढता है तथा हृदय गति तीव्र होती है अत उनका परित्याग करना चाहिये, अति विश्राम से Atheroma की प्रक्रिया तेज होती है अत मृदु व्यायाम करते रहना चाहिये। हृदय शूल के वेगो से बचने के लिये उन Nitrites का जिनका सिरा प्रसारक (Vasodilator) प्रभाव रक्तवाहिनियो पर देर तक रहता है करना चाहिये, Nitroglycerin या Trinitrin ५ मिलि० गोली के जीभ के नीचे रखने से यह दर्द शान्त हो जाता है। प्रान्तीय शिराओ मे रक्त के अधिक भर जाने से कुछ हलकी सी मूर्छा हो सकती है। ऐसा हो तो लेट जाना चाहिए। स्थायी प्रभावक औषधियो मे से Penta Erythritol Tetranitrate (Peritrate Warner या Pentanitrine, Mycardol Bayer, Equanitrate-Wyeth) का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है पर तीव्र रोग के समय यह विशेष सहायक नही होती। इसके १५ मिलिग्राम या ¼ ग्रेन की मात्रा मे जीभ के नीचे रखकर ३ वार भोजन मे पहले तथा सोते समय लेने से आगे कुछ काल हृदय शूल होने का भय नही रहता। इसकी एक मात्रा का प्रभाव २० मिनट मे आरम्भ हो जाता तथा ४-६ घण्टे तक रहता है। अत किसी आवश्यक श्रम करने से पहले इसकी एक मात्रा ले ली जाती है। Dipyridamole (Persantin) जो हृदय मे अधिक रक्त देती है २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार भोजन से पहले लेने से इसी प्रकार दर्द को हटाती है। Papaverine HCl ½-1½ ग्रे० और Phenobarbitone के साथ मिलाकर बनाई गोलिया (Cardioplon Khandelwal Pentanitrine Phenobarbital Gumault, Tetrine Compound A French) भी दी जा सकती है या Sorbide Nitrate की बनी Sorbinitrate (Schering) की गोली दी जा सकती है या Isosorbide Dinitrate (Isordil या Sorbitrate) ५-१० मिलि० को दिन मे ३-४ वार जीभ के नीचे रखा जा सकता है या निगला जा सकता है। जीभ के नीचे रखने से प्रभाव शीघ्र प्रारम्भ हो जाता है। उसका प्रभाव ५ घण्टे रहता है। इसलिए ६-६ घण्टे पर एक गोली लेनी चाहिए या Meprobamate के साथ बनी इसकी Equanitrate की गोली दी जा सकती है। Trolnitrate Phosphate (Metamine or Nitretamin) २-४ मिलि० के मुख द्वारा ३-४ वार लेने से यही प्रभाव होता है। १ मात्रा का प्रभाव ६ घण्टे तक रहता है। Mannitol Hexanitrate (Nitranitol) की १५ मिलिग्राम या ¼ ग्रेन की गोलिया या Erythrityl Tetranitrate (Cardilate) के १५-३० मिलि० गोलिया भी इसी प्रकार ४-६ घण्टे तक अपना Vasodilator प्रभाव करती हैं। इसका प्रभाव १५ मिनट मे शुरू हो जाता है। Diprophylline (Neutraphylline Continental Laboratories) ३ ग्रेन दैनिक या Choline Theophyllinate (Choledyl, Allen Hamburys) २५ ग्राम दिन मे ३ वार Aminophylline (Theophylline तथा Ethylene Diamine का मिश्रण जो Musculotropic Antispasmodic है) की १½ ग्रेन से ३ ग्रेन १-२५ ग्राम तक की गोलियो के दिन मे तीन वार लेने से या Papaverine (धमनी स्तम्भ शामक Smooth Muscle Relaxant) १½ ग्रेन के ३ वार प्रतिदिन लेने से ही हृदय सिरा प्रसारण (Coronary Dilatation) होता है तथा हृदय शूल के होने की आशका नही रहती, त्वचा से ३० मिलि०, मुख से इसके योग Cardosedan Alemb Papaphylin Unic Neospasmindon Indoph उपयोगी है। Aminophylline २ ग्राम (३ ग्रेन) की मात्रा मे २५ Aluminium Hydroxide Gel के साथ मिलाकर (Theodrox, Aludrox के रूप मे) लेने से इसका पेट पर विक्षोभक प्रभाव नही होता एतदर्थ Sedonal (E I Pharma) की गोली ली जा सकती है। Propranolol (Inderal) यह एक नवीन औषधि है जो हृदय पर Sympathetic नाडियो के प्रभाव को कम करती है। इसे पहले ५-१० मिलि० मात्रा मे दिन मे ४ वार दिया जाता है। इससे यह रोग सर्वथा शान्त रहता है। श्वास रोगी को यह औषधि नही देनी चाहिए। इसी प्रकार Phenylamine Lactate (Segontin) भी एक Vasodilator उत्तम औषधि है

जिसे ६० मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार दिया जाता है। रोगी को महसा सर्दी मे जाने से वचना चाहिये तथा सर्दी मे गर्म कपडो मे रहना चाहिये। छाती पर गर्म कपडा रखने से भी हृदयधमनियो मे सकोच (Vasoconstriction) नही होता। Anticoagulant चिकित्सा के चिरकाल जारी रखने से भी हृदय शूल को रोका जाता है। पर यह चिकित्सा अभी तक विवादास्पद है।

स्थायी हृदय शूल की चिकित्सा Cardiac Infarction या Cardiac Thrombosis की चिकित्सा

विश्राम चिकित्सा

तीव्र हृदय शूल के वेग के समय हृदय को पूर्ण विश्राम देना चाहिये, करवट तक दूसरे के सहारे लेनी चाहिये, ताकि उसमे उत्पन्न हुआ infarct और न वढे, इस प्रयोजन से रोगी को आराम से लिटा देना चाहिये। उसके पायते को ऊचा करके रखना चाहिये। लेटना कठिन हो तो तकियो के सहारे से लिटा देना चाहिये। उसे पूर्ण विश्राम देने के लिये शूल थोडा हो तो Codeine Phosphate ३० मिलिग्राम तथा Phenobarbitone ३० मिलिग्राम मिलाकर दो वार दे सकते हैं या Tab Codeinco २-२ गोली दें। Papaverine (Musculotropic antispasmodic) १½ या २ ग्रेन के ३ वार देने से भी लाभ होता है और हृदय की रक्तवाहिनिया शिथिल होती हैं। शूल अधिक हो तो Morphine Sulphate १५-३० मिलिग्राम (¼-½ ग्रेन) की मात्रा मे Atropine Sulphate $\frac{1}{100}$ ग्रेन के साथ त्वचा या मास द्वारा देना चाहिये। इससे Coronary धमनिया शिथिल हो जाती हैं। Morphia को छोटी मात्रा मे ही देवे। Atropine से हृदय गति तीव्र होती, हृदयवल वढता, रक्त भार वढता है। इस औषधि से वमन होने की आशका रहती है। इसलिये पहले Cyclizine (Marzine) २५-५० मिलि० मुख से दे दें, या Stemetil का इजेक्शन दे दें, या इसे न देकर इसके स्थान पर Pethidine Hydrochloride का १०० मिलिग्राम की मात्रा मे मास या त्वचा द्वारा प्रयोग किया जा सकता है पर Morphia इससे वेहतर है। कोई लोग Morphia के स्थान पर Meperidine (Demerol) को ५०-१०० mg मात्रा मे या Dihydromorphinone (Dilaudid) को ४ मिलि० मात्रा मे या Omnopon को मास या शिरा द्वारा देना पसन्द करते है। कोई मार्फिया के साथ-साथ मास द्वारा Coramine भी दे देते है। एक इजेक्शन के वाद भी दर्द वना रहे तो आधे या २ घटे वाद ¼ ग्रेन मार्फिया या ५०-१०० मिलि० Pethidine त्वचा द्वारा फिर भी दे देना चाहिये अथवा पहले ⅙, ¼ ग्रेन Morphia को ५-१० मिलिलि० शुद्ध जल मे मिला धीरे-धीरे शिरा द्वारा दे दें। इससे १५ मि० के अन्दर दर्द हट जाता है। इसके वाद २-२ घण्टे मे १५ मिलि० मार्फिया त्वचा द्वारा दिया जा सकता है। ६ घण्टे मे ६० मिलि० तक इसे दे सकते हैं। यह श्वास केन्द्र के लिए अवसादक है। अत पिछले इजेक्शन के साथ Lethidrorne ५ मिलि० भी मिला दे। शूल के अतिरिक्त रोगी मे आघात (Shock) के भी लक्षण होते हैं जैसे रक्त भार की न्यूनता, सर्वांगशैत्य तथा कभी-कभी मूर्च्छा (Syncope) भी रोगी मे होती है। इसकी शान्ति के लिये रोगी के पायते को ऊचा कर देना चाहिये, उसके आसपास गर्म वोतलें रख देनी चाहियें। गर्मी के अतिरिक्त मार्फिया के शिरा द्वारा धीरे-धीरे देने तथा विश्राम के देने से ये लक्षण भी शान्त हो जाते है। श्वास-गति प्रति मिनट १२ से ऊपर हो तो मार्फिया को दुवारा भी त्वचा द्वारा आवश्यक होने पर दे सकते हैं। Shock के लक्षण तीव्र हो, शूल जारी रहे, श्वासकृच्छ्रता का लक्षण हो अर्थात् पुफ्फुस मे श्वयथु हो तो Nasal Catheter या B L B Mask द्वारा आक्सिजन कई घण्टो तक देनी चाहिये ताकि हृदय मास को आक्सिजन मिले उसमे Infarction न वढे। इसके देने से उपद्रवो का भय नही रहता। रक्तभार ९० M M Hg से कम हो तो Vasopressor औषधि का प्रयोग करे। इस रोग मे हृदयोत्तेजक Adrenaline आदि का प्रयोग नही करना चाहिए। Vasopressor औषधि से हृदय को अधिक रक्त मिलने लगता है। इफेड्रीन का प्रयोग ठीक नही।

(१) Noradrenaline (Levophed) (१००० मे १) ४ मिलिलिटर (या ४ मिलि०) को १००० सी०सी० ५% ग्लुकोज के (नार्मल सेलाइन मे नही) मिला कर शिरा द्वारा वूद-वूद (१ मि० मे ३० वूद) दे, रक्तभार १०० या ११० M M. Hg से ऊपर न करे। एतदर्थ इसे हर ४-५ मिनट वाद देखते रहे। इस औषधि को घण्टो या दिनो तक दिया जा सकता है।

(२) Mephentermine Sulphate (Mephentine Wyeth) ५० मिलि० १०-२० सी०सी० ५% Dextrose solu या नार्मल सेला० मे शिरा द्वारा वूद-वूद (मिनट मे २०, ३०) विधि से २ मिनट मे दे या १५-३० मिलि० मास द्वारा १-४ घण्टे मे दें। या मुख से १०-२० मिलि० २ वार दे।

(३) Phenylephrine Hydrochloride (Neosynephrine) ५ मिलि० त्वचा द्वारा या मास द्वारा या ५-१ मिलि० शिरा द्वारा ग्लुकोज सोल्यूशन मे धीरे-धीरे दे ।

(४) Methoxamine Hydrochlor (Vasoxine, Vasoxyl) १० मिलि० मास द्वारा या ५० मिलि० २५०-५०० सी०सी० Dex Solu मे शिरा द्वारा या ५-२० मिलि० मुख से २ बार या ५-१५ मिलि० मास द्वारा दे ।

(५) Metaraminol Bitartrate (Aramine Bitartrate M Sharp Dohme) ५० मिलि० ५०० सी०सी० ग्लुकोज सेलाइन मे शिरा द्वारा बूद-बूद करके दे या १-५ मिलि० १० सी०सी० ग्लूकोज मे शिरा द्वारा दे या इसे २-१० मिलि० त्वचा या मास द्वारा दे (२० मिलि०=१ मिलि० Noradrenaline)

(६) Angiotensin (Hypertensin) ५ मिलि० को ५०० मिलिलि० ५% ग्लूकोज़ मे मिलाकर शिरा द्वारा दे ।

(७) या Pholedrine Sulphate (Veritole, Veritain) २% सोल्यूशन को १ मिलिलि० मात्रा मे २-३ घण्टे पर मास द्वारा दे । यदि Atrial tachycardia हो, हृदय गति तीव्र हो तो Digoxin १ मिलि० को धीरे-धीरे शिरा द्वारा दे । Bradycardia के लिए Atropine ·६ मिलि० को शिरा द्वारा दे । इसे कई बार दे । इससे लाभ न हो तो Steroids दे ।

Hydrocortisone २०० मिलि० या Dexamithasone (Decadron) ४ मिलि० या Prednisolone २५ मिलि० के ६-६ घटे पर २-३ दिन देने से इन औषधियो को बल मिलता है तथा इनसे Bundle of His का शोथ Oedema दूर होता हे एव Heart block शान्त होता है। Hydrocortisone hemisuccinate को २०० मिलि० मात्रा मे शिरा द्वारा देना विशेप लाभदायक है । ६-६ घ० पर इसे दोहराए । तथापि इस रोग की प्रधान चिकित्सा Morphine तथा Oxygen inhalation ही हैं । उपर्युक्त Pressor औषधियो से भी बहुधा लाभ नही होता । रक्त भार के गिरे होने से शिरा प्रसारक Vasodilator औषधियो जैसे Aminophylline आदि का प्रयोग इस रोग मे ठीक नहीं ।किसी शामक Sedative औषधि का प्रयोग करना चाहिए । रोगी को प्रारम्भ मे भोजन बहुत ही थोडा देना चाहिये । जल की मात्रा भी दिन मे थोडी होनी चाहिये । प्रारभिक वेग के साथ घूट-घूट पानी या ग्लूकोज मिश्रित जल थोडी-थोडी देर मे दें । रोगी को वस्ति तथा रेचन एक सप्ताह तक नहीं देने चाहियें । एक सप्ताह तक भोजन स्वल्प मात्रा मे ही देना चाहिये । अर्थात् रोगी को कुछ फलरस या मूग के पानी, हलकी चाय से मिश्रित दूध या खाली मलाईरहित दूध पर ही रहना चाहिये। द्रव भोजन भी दिन भर मे एक या सवा सेर से अधिक नही देना चाहिये । एक-एक कप मलाईरहित दूध ४-४ घंटे० पर दे। बीच-बीच मे १ बार आधा कप फलरस दें, इनमे ग्लूकोज़ मिला दे। एक सप्ताह के बाद भी महीनो तक रोगी को पेट भर के भोजन न लेकर दिन भर फलरस, बिस्कुट, टोस्ट और दूध, चाय आदि नाश्ते की तरह के चार भोजनो पर ही रहना चाहिये (१२०० कैलोरीज तक का भोजन)। पपीता, आम, सेव, केला आदि फल दिये जा सकते है । जिससे शरीर का भार घटे, ऐसा भोजन लेना उचित है । भोजन मे लवण की मात्रा १-२ माशे से अधिक नही होनी चाहिये, फैट तो देना ही नही चाहिये ।

हृदय शूल के इस तीव्र वेग के होने के तीन सप्ताह तक रोगी को शय्याशायी होकर विश्राम करना चाहिये । प्रारम्भिक दो-तीन दिनो मे तो उसे करवट भी दूसरे के सहारे से लेनी चाहिये । मल, मूत्र आदि का परित्याग भी पडे-पडे ही करना चाहिये । भोजनपान भी पडे-पडे ही मिलना चाहिये । उसके पास दो सेवक नियुक्त होकर सदा रहने चाहिये ताकि वह अपने आप किसी प्रकार का शारीरिक श्रम न करे । दो-तीन दिन के बाद तीन सप्ताह तक हाथ-पाव की हरकत या मालिश के अतिरिक्त साधारणत विस्तरे पर ही रहना चाहिये । तीन सप्ताह के बाद आधे मास के लिये फिर भी उसे शय्या पर ही रहना चाहिये परन्तु शय्या पर उठ बैठने की पूरी छूट दे देनी चाहिये । डेढ मास बाद एक सप्ताह के लिये घर के अन्दर ही रहते हुये बहुत-सा समय विश्राम मे बिताना चाहिये । पर शाखाओ की हलकी मालिश होनी चाहिये। इस प्रकार लगभग डेढ-दो मास तक शारीरिक तथा मानसिक विश्राम लेने से हृदय की दीवार मे उत्पन्न क्षति की पूर्ति हो जाती है । हाँ Arrhythmia और हृदय दौर्बल्य विशेष न हो तो १ मास का विश्राम ही पर्याप्त है । इसके बाद उचित श्रम करने या हलका व्यायाम करने से उसे हानि नही लाभ ही होता है । इस काल मे मलबन्ध की शिकायत प्राय रहती है । इसके लिये तीव्र विरेचन कोई नही देना चाहिये । वेग के तीन-चार दिन बाद वस्ति तथा Liquid Paraffin या

Milk of Magn का प्रयोग किया जा सकता है। दो मास वाद उसे धीरे-धीरे अपने काम मे लग जाना चाहिये पर सीढी चढने से वचना चाहिये। इस रोग के भय को मन से सर्वथा निकाल देना चाहिये। वाद मे रक्त मे Cholesterol की मात्रा को कम करने के लिये भोजन मे फैट तथा Yudkin के मत मे विशेपत खाड की मात्रा कम कर दे। Unsaturated Fatty acids (Cotton seed, Safflower, maize तथा Soyabean oils) का प्रयोग करे, Oestrogen, Nicotinic Acid, Setosteıol आदि का प्रयोग करें और नित्य कुछ शारीरिक श्रम करे। रोगी को धूम्रपान वन्द कर देना चाहिये। इसी प्रकार मद्य से भी वचना चाहिये। Phenformin (D B I Dibotin) मधुमेह की औषध है उसके २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार भोजन के वाद देने से रक्त मे Cholesterol की मात्रा घट जाती है, इसके साथ Ethylestrenol को भी मिला सकते है।

अन्त मे मृत्यु हृदय नैर्वल्य से होती है अत अत्याहार, अति श्रम, मानसिक आवेश से वचना चाहिए। हृदय नैर्वल्य हो तो मूत्रल औषधि कोई (Thiazide) देनी चाहिये। Aminophylline २५ ग्राम को शिरा द्वारा देना चाहिए। डिजिटेलिस (Digoxin) का प्रयोग भी करना चाहिए। आक्सिजन तथा चारो शाखाओ पर वन्धन लगाने का प्रयोग भी होना चाहिए। परन्तु यदि Shock या Peripherol Circulatory Failure का लक्षण भी हो तो Aminophylline तथा चारो शाखाओ के वधन का प्रयोग नही करना चाहिए। तव Vasopressor औषधियो तथा Digoxin का प्रयोग ही ठीक हे। Sodium कम करके Potassium Chloride दिन मे २ वार १-१ ग्राम देना चाहिये। पुफ्फुस मे रक्त सचय हो तो रोग के प्रथम सप्ताह मे Penicillin का प्रयोग भी करना चाहिये। रोगी मधुमेही हो तो Insulin देने से भी लाभ होता है। Toronto के डा० Hugh Smithe के कथनानुसार Gout के लिये उपयोगी औषधि Anturan धमनियो Thrombosis, Atherosclerosis के लिये भी उपयोगी है। Embolism के दर्द के लिये Pethidine दें। Heparin ५० मिलि० शिरा द्वारा दे।

रक्त के जम जाने की वढी हुई प्रवृत्ति को रोकने की चिकित्सा—Anticoagulant Therapy

यदि रोग तीव्र रूप मे हो अर्थात् Shock, हृदयनैर्वल्य, और गतिवैपम्य के चिह्न हो तो हृदयपोपक (Coronary) रक्तवाहिनियो मे रक्त के जमने को वढी हुई प्रक्रिया अर्थात् Thrombosis के रोकने के लिये एव Prothrombin की तीव्र हुई प्रक्रिया को मन्द करने के लिये प्रोथ्रोम्विन शामक (Prothrombin depressant या Antithrombin या Anticoagulant) औषधियो का प्रयोग पहले दिन से ही प्रारम्भ कर देना चाहिये। ताकि वहाँ वना हुआ क्लाट या Thrombus मात्रा मे और न वढे तथा नया क्लाट न वने विशेषत रक्तभार अधिक गिरा हो तो हृदय पोषक धमनी मे क्लाट के फैलने की जो आशका रहती है उसे हटाने के लिए, हृदय की दीवार मे क्लाट वनने की प्रक्रिया को रोकने तथा उसके एक अश के टूटकर फुफ्फुस या टाँगो आदि मे जाकर किसी शिरा मे फस जाने (Pulmonary या Peripheral Embolism) की प्रक्रिया को रोकने के लिये विशेषत ७० वर्ष की आयु से नीचे इन औषधियो का प्रयोग आठ सप्ताह तक करने से इस रोग मे मृत्यु सख्या आधी रह जाती हे। इसके वाद इन औषधियो का प्रयोग लाभदायक है या नहीं, यह निश्चित नहीं हो पाया। कुछ एक ज्ञाता लोग वर्षों तक इन औषधियो के प्रयोग के पक्ष मे है।

(१) Heparin—(Pularin Evans) फुफ्फुस या यकृत् से निकला एक Organic Acid है जो Antithrombin, Antiprothrombin तथा Antithromboplastin है तथा जो रक्त मे ०१ मिलि० प्र०श० रहता है। इसका Sodium Salt रवड की टोपी वाली ५ मिलिलिटर की शीशियो मे वन्द मिलता है जिसके प्रति मि०लि० मे १, ५, १० या २५ हजार यूनिट्स (१ मिलि० औषधि = १०० यूनिट्स) इस औषधि के होते है। इसे ८ हजार यूनिट मात्रा मे त्वचा या मास द्वारा भी दिया जाता है। वहा वेदनाजनक होने से इसके साथ आधी मि०लि० मात्रा २ प्र०श० Procaine के सोल्यूशन को मिला सकते है। इस औषधि का प्रभाव १ घटे वाद आरम्भ हो जाता तथा १२-२० घटे तक रहता है। इसलिये इसे १२-१२ घटे वाद दो दिन दुहराना चाहिये।

इस औषधि का प्रभाव तुरन्त अपेक्षित हो तो इसके १० हजार यूनिट्स (८०० मिलि०) को १ हजार मिलिलिटर नार्मल सेलाइन मे मिला के प्रति मिनट १-२ सी०सी० के हिसाव से इसे शिरा मे प्रविष्ट करना चाहिये। इससे इसका प्रभाव उसी समय शुरू हो जाता है। इसे २ दिन तक ८-८ घटे वाद दुहराना चाहिए।

Heparin २० हजार यूनिट्स Pitkin's Menstruum (१८ प्र०श० जेलाटिन, ८ प्र०श०

ग्लुकोज़, १ प्र०श० Acetic Acid, शुद्ध जल मे) मे मिले हुए मिलते हैं। त्वचा के नीचे इसके डाल देने से इसका प्रभाव १-२ घटे बाद आरम्भ होकर लगभग २४ घटे तक रहता है।

(२) Phenindione (Phenylindanedione, Dindevan Evans, Bindan B I Danilone, Hidulin) को, जो Thromboplastin की उत्पत्ति को रोक Prothrombin Time को दीर्घ करती है Heparin के देने के साथ ही मुख मे १५० मिलि० मात्रा मे पहले दिन दे देना चाहिये। इसका प्रभाव देने के २४ घटे बाद शुरु होता हैं अत Heparin के साथ ही इसे दे देना चाहिये। फिर Heparin को न देकर केवल इसे ही दूसरे दिन ५०-१०० मिलि० मात्रा मे १ बार और फिर ५० मिलि० मात्रा मे दिन मे १ वार १५-२० दिन तक देते रहना चाहिये। Factor VII तथा Prothrombin का निर्माण इससे कम हो जाता है।

(३) Warfarin Sodium (Coumadin Sodium, Panwarfin, Athrombin) का प्रभाव भी उपर्युक्त औषधो के समान देने के १२-१८ घटे बाद प्रारम्भ होता है। पर इसका प्रभाव ५-६ दिन तक रहता है। उपर्युक्त औषधिया मुख से दी जाती है। यह औषध शिरा तथा मास द्वारा भी दी जाती है। पहले दिन इसे ३०-५० मिलि० मात्रा मे मुख द्वारा दो बार करके या मास व शिरा द्वारा एक बार देकर दूसरे दिन १०-१५ मिलि० देकर फिर इसे प्रतिदिन २-७½ मिलि० मात्रा मे मुख द्वारा दिया जाता हे। शिरा द्वारा देने से १२ घटो मे ही Hypoprothrbinaemia हो जाता है।

(४) Acenocoumarin (Sintrom Geigy) गोली १६-२० मिलि० मात्रा मे प्रथम दिन, ८-१६ मिलि० मात्रा मे दूसरे दिन और फिर ४-६ मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन दी जाती है। इतनी मात्रा देनी चाहिये जिससे Prothrombin समय २४-३० सेकण्ड के बीच रहे। इसका प्रभाव २ दिन बाद आरम्भ होता है तथा अन्य औषधो के समान वन्द करने के ३ दिन तक इसका प्रोथ्रोम्बिन शामक प्रभाव जाता रहता है। इस औषध को एक सप्ताह मे एक दिन छोडकर एक ६ मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन दिया जाता रहे तो प्राय Prothrombin Index ३० प्रतिशत तक गिरता है ओर कोई उपद्रव भी नही होता। इस प्रकार इसे १½-२ वर्ष तक दिया जा सकता है साथ ही Peritrate जैसी औषधि भी दी जा सकती है। यदि Clotting Time १८ मिनट से लम्बा हो जाय तो दवाई को थोडी देर के लिए वन्द कर देना चाहिये। कई लोग इस चिकित्सा को ३० दिन तक ही जारी रखते हैं।

इन प्रोथ्रोम्बिन शामक औषधियो मे से किसी के Heparin के साथ या स्वतन्त्र रूप मे देने से प्रोथ्रोम्बिन टाइम, जो १४-१८ सेकण्ड तक होता है दीर्घ होकर २८ से ३६ सेकण्ड हो जाना चाहिये, अर्थात् नार्मल का २-२½ गुणा हो जाता है। इन औषधो के देने मे पहले तथा देते समय प्रोथ्रोम्बिन टाइम की जाच करते रहना चाहिये। एव इसे ५ गुना मे ज्यादा नही होने देना चाहिये। रोगी की त्वचा, मूत्र, पुरीष और थूक को भी देखते रहना चाहिये। उनमे रक्त का कुछ अश नही आना चाहिये। रोग के तीन सप्ताह बाद भी उचित मात्रा मे महीनो तक इनमे से किसी औषधि का प्रयोग करने से फिर इस रोग के होने की आशका नही रहती। इस बात की जाच कभी-कभी कर लेनी चाहिये कि रक्त मे Prothrombin Time रोगी का ३०-३५ सेकण्ड से ज्यादा न हो। इस प्रकार रोगी का Prothrombin Index $\frac{१४ \times १००}{३५}$=४० प्रतिशत से अधिक न होने देना चाहिये। पहले तीसरे दिन, फिर सप्ताह मे ३ बार, फिर १५ दिन मे एक बार और फिर १-१½ मास बाद Prothrombin परीक्षा होती रहनी चाहिये।

नोट—Heparin के दुष्प्रभाव से रक्तस्राव होने लगे तो Protamine Sulphate १ प्र०श० सेलाइन मे बना ५-१० सी०सी० शिरा द्वारा देना चाहिये। दूसरे शब्दो मे Heparin के १००० यूनिट्स के लिये इस सोल्यूशन का १ मिलिलि० देना चाहिये।

अन्य प्रोथ्रोम्बिन शामक औषधियो के दुष्प्रभाव से रक्तस्राव का लक्षण हो जाय तो विटामिन के (Synkavit या Konokion) १०-२० मिलि० मुख द्वारा या ५ मिलि० शिरा द्वारा देना चाहिये। उपर्युक्त चिकित्सा के दौरान मे कोई शल्यकर्म करना पडे तो दो दिन औषधि को वन्द करके तब शल्यकर्म करना चाहिये।

Phytomenadione (Mephyton) ५०-१०० मिलि० मात्रा मे Dextrose Solution या नार्मल सेलाइन के साथ या दोनो के मिश्रण के साथ बहुत धीरे-धीरे (१ मिनट मे १० मिलि०) शिरा द्वारा देना चाहिये। Phytomenadione की ५ मिलि० की गोलिया भी मिलती हे। ५-१० या १५ मिलि० मुख द्वारा देने से भी लाभ हो

जाता है। रक्तस्राव मन्द रूप मे हो तो कृत्रिम विटा० 'के' Menaphthone (Menadione) को १-५ मिलि० मात्रा मे मास द्वारा दिया जा सकता है।

Contraindications—यकृत् रोग मे जब विटामिन 'के' की उत्पत्ति कम हो वृक्क रोग मे जब इन औषधियो की निकासी कम हो रक्त भार अधिक हो Peptic ulcer हो तो इनका प्रयोग नही करना चाहिए। Atrial fibrillation के लिए Sodium Amytal २०० मिलि० मास द्वारा दे।

रक्तभार वृद्धि या धमनी जरारोग
Hypertension, Blood Pressure, Arteriolosclerosis

रक्त भार वृद्धि का रोग १५-२०% हृदय रोगियो मे पाया जाता है तथा आम लोगो मे से १०% लोग इस रोग से ग्रस्त हैं तथा ५० वर्ष से ऊपर के लोगो मे से ५०% के लगभग व्यक्ति इस रोग के शिकार है। जितनी मृत्यु होती हैं उनमे २०% के लगभग इस रोग से होती हैं।

रक्तवाहिनियो पर रक्त का जो भार या दबाव सदा रहता है उसे रक्तभार कहते हैं इसीलिये जब कोई धमनी फटती है तो वहा से रक्त की धार कई फुट दूर तक जाती है। यह भार धीरे-धीरे छोटी धमनियो—सिराओ Capillaries मे तथा फिर शिराओ Veins मे कम होता जाता है। वाम हृदय का मास जिस बल से तथा जितने अधिक रक्त को आगे की ओर फेकता है उससे सकोच कालिक रक्तभार (Systolic Pressure) उत्पन्न होता है तथा लचकीली अर्थात् Elastic Tissue प्रधान बडी-बडी धमनियाँ (Aorta तथा शाखाओ मे जाने वाली उसकी शाखाये) हृदय के विश्रामकाल (Diastole) के समय जिस बल के साथ पीछे को फिरती है (Peripheral resistance या Recoil करती हैं), उसके कारण रक्त का भार उत्पन्न होता है। बडी आयु मे जब बडी धमनियो का यह लचकीलापन कम हो जाता है, वे हृदय सकोच के समय फैल नही सकतीं जिससे रक्त भार (Systolic) बढ जाता है। बडी-बडी धमनियो मे से फूटने वाली छोटी-छोटी धमनियो (Arterioles) मे लचकीला अवयव नही होता। प्रत्युत उसमे मासमय स्तर (Muscular Layer) विशेष तौर से विकसित होता है तथा उनका यह मासमय स्तर सदा ही न्यूनाधिक रूप मे सकोच (Constriction या Tonus) की अवस्था मे रहता है। इसलिये इनके अन्दर जब रक्त पहुँचता है तो रक्त और इनकी दीवार के बीच का सघर्ष (Friction) और भी बढ जाता है, अर्थात् उनके सकोच के कारण जब इनके बीच का मार्ग तग हो जाता है तो रक्त का भार और भी बढ जाता है। हृदय के सकोच कालो के बीच के काल मे धमनियो मे जो रक्त भार रहता है उसे Diastolic रक्त भार कहते है। शरीर की छोटी-छोटी धमनियो का मासमय स्तर ऊपर Medulla मे विद्यमान Vasomotor Centre के नियत्रण मे रहता है। यह केन्द्र ऊपर के Hypothalamus तथा Frontal Lobe के निम्न पृष्ठ पर विद्यमान केन्द्रो से बहुत अधिक प्रभावित रहता है अर्थात् नाना प्रकार के मानसिक आवेशो और विक्षोभो से विक्षुब्ध रहता है। इस केन्द्र मे से उतरे सकोचक (Vasoconstrictor) नाडीसूत्र सुषुम्ना मे से निकलकर Sympathetic Ganglia मे आते है। और वहा से निकले सकोचक (Vasoconstrictor) नाडीसूत्र सौषुम्न नाडियो (Spinal Nerves) के साथ-साथ धमनियो (Arterioles) मे पहुचते और उन्हें सकुचित रखने का और हृदय को उत्तेजित रखने का कार्य करते हैं। इसीलिये आवेशप्रधान, विक्षोभशील प्रकृति के व्यक्तियो मे स्वभावत ही Vasomotor सस्थान विक्षोभशील होता है एव उनमे रक्त भार बढने की प्रवृत्ति रहती है। Sympathetic नाडीमण्डल की उत्तेजना से उत्पन्न होने वाले सकोच (Vasoconstriction) को कम करने का कार्य Parasympathetic नाडिया विशेषत Vagus की नाडिया करती है। परन्तु जो व्यक्ति व्यायामशील नही होते या अत्यधिक चिन्ताशील एव आवेगप्रधान होते है उनमे Parasympathetic की अपेक्षा Sympathetic नाडियो की प्रबलता रहती है जिससे उनमे रक्तभार बढ जाता है। इसीलिए वायु प्रकृति (Neuropathic) के व्यक्तियो मे धमनी-सकोच अर्थात् सूक्ष्म धमनियो Arterioles की मासमय दीवार मे सकोच की अधिकता के कारण रक्तभार बढ जाता है। इसे रक्तभार की Neurogenic theory कहते है परन्तु Sympathectomy के शल्यकर्म से लाभ चिरस्थायी नही होता। इसलिए इस कारण मे भी सन्देह हो जाता है तथा अधिकत यह रोग श्लेष्म प्रकृति Pyknic type के व्यक्तियो मे अर्थात् स्थूल मेदस्वी शरीर के व्यक्तियो मे होता है।

यह भी माना जाता है कि वृक्को की मूत्रस्राविणियो के प्रथम मुडे हुए भागो Convoluted Parts मे जो एक Renin नामक Enzyme एकत्रित हुआ पाया जाता है उसके यकृत् मे बनने वाले एक Alpha Globulin प्रकृति के पदार्थ के साथ अर्थात् उस Substrate पर जो कि रक्त मे रहता है और जिसे Hypertensinogen या Angioten-

sinogen भी कहते हैं, मिलने से एक रक्त भार-वर्धक पदार्थ Angiotensin या Hypertensin बन जाता है जो छोटी धमनियो के लिये Vasoconstrictor है। साधारण अवस्था मे इस पदार्थ के कारण वृक्को मे धमनी गुच्छो (Glomeruli) मे एक रक्त भार उत्पन्न होता है जिससे उनमे मूत्र छनने की प्रक्रिया भली प्रकार चलती रहती है। इस प्रकार सभव है Renin रक्त भार का कारण हो या इसके कारण Adrenal Cortex मे से Aldosterone की निकासी अधिक होती है जिससे वृक्को मे लवण का पुनर्विलयन बढ जाता है एव रक्त भार बढ जाता है। वृक्को मे एक दूसरा Enzyme, जिसे Hypertensinase कहते है, उत्पन्न होता रहता है जो रक्त के Hypertensinogen को उदासीन एव निष्क्रिय करता रहता है। वृक्को को रक्त कम मिले जैसे कि बडी आयु मे Renal धमनियो मे Atherosclerosis से होता है, या वे रुग्ण हो अर्थात् उनमे चिरस्थायी शोथ Nephritis हो, Pyelonephritis हो, Diabetic Kidney हो, कैन्सर हो, मूत्र मार्ग मे अवरोध अर्थात् Prostate ग्रन्थि बढ गई हो, Stone हो, Cysts हो, क्षयरोग हो तो, या तो Angiotensin की उत्पत्ति बढ जाती है या वृक्को के कारण इसका जो विनाश होता है, वह कम हो जाता है। या वृक्को के कारण जो जल तथा Electrolytes की शरीर से निकासी होती है उसका कम हो जाना है जिससे शरीर की सब धमनियो पर इसका सीधा रक्तभार-वर्धक (Pressor) प्रभाव पडता है और इसके वृक्को को रक्त की पूर्ण मात्रा मिलने लग जाती है। अभिप्राय यह है कि वृक्को को रक्त कम मिले तो उनसे कोई Hormone निकलता है जो धमनी के सकोचक का काम करता है। जब वृक्को को रक्त अधिक मात्रा मे मिलने लगता है तो फिर धमनियो का बढा हुआ सकोच कम हो जाता है। इसे रक्त भार की Renal या Humoral Theory कहते हैं, पर रोगी के रक्त मे Renin या Angiotensin की वृद्धि देखने मे नही आती। यद्यपि बहुधा देखा जाता है कि छोटी आयु मे Pyelonephritis रोग के हो जाने पर युवक या युवती का रक्तभार बढ जाता है। Intravenous pyelogram लेने से इस रोग का निश्चय हो जाता है।

वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि (Suprarenal ग्रन्थि) के Cortex मे कैसर हो या उसमे कोई अर्बुद (Adenoma) हो या आघात (Stress) पड जाय तो उसके Aldosterone hormone की अधिकता से भी शरीर मे लवण और जल अधिक रुक जाते है और उससे रक्त भार बढ जाता है। रक्त भार रोगियो के अवयवो Tissue मे लवण और जल भाग दूसरो की अपेक्षा अधिक रहते हैं। इस ग्रन्थि के Medulla मे अर्बुद हो अर्थात् Phaeochromocytoma हो तो भी रक्त भार बढ जाता है। कुछ लोगो का कथन है कि Angiotensin से Aldosterone की उत्पत्ति बढती है परन्तु अनेक परीक्षक बताते हैं कि रोगी मे Aldosterone की अधिक उत्पत्ति बहुधा नही मिलती है। Thyroid ग्रन्थि भी किसी कारण अधिक क्रियाशील हो (Hyperthyroidism हो) या अधिक निष्क्रिय हो जाय (Myxoedema हो जाय) तो भी रक्त भार बढता है। Pituitary ग्रन्थि की प्रबलता मे भी धमनी सकोच होकर यह रोग हो सकता है। Cushing's Syndrame मे भी रक्त भार (विशेषत Systolic) बढता है। स्त्रियो मे आर्तवसमाप्ति काल (Climacteric) मे जब Ovaries का स्राव मन्द पडता है, रक्तभार बढ सकता है।

यह भी कहा जाता है कि जब रक्त की मात्रा बढ जाती है जैसे अति मात्रा मे आहारपान करते रहने तथा शारीरिक श्रम सर्वथा न करने वालो मे होता है तब भी रक्त भार बढ जाता है। इस प्रकार मधुमेह, मेदोवृद्धि (Obesity) Myxoedema आदि रोगो मे रक्त भार बढ जाया करता है तथा तम्बाकू, मद्य, चाय, काफी आदि पदार्थों के अति मात्रा मे चिरकाल तक सेवन करते रहने से भी रक्त भार बढ जाता है। Necotine विशेषत Sympathetic Ganglia के लिये उत्तेजक होता है। बहुत से दातो की जडो मे पूय हो या शरीर के किसी अश मे पूय रहता हो तो उसके दुष्प्रभाव से भी रक्त भार बढ सकता है।

रक्त मे किसी प्रकार के विषैले द्रव्य (Metabolic, Bacterial या Chemical) के देर तक बने रहने से भी रक्त भार बढता है। उदाहरणत गर्भावस्था मे छठे, सातवे मास मे भी रक्त के अन्दर कभी-कभी एक विष द्रव्य बढ जाता है (Pregnancy-Toxaemia) जिससे गर्भिणी का रक्त भार बढ सकता है। ये विष द्रव्य धमनी सकोच (Vasoconstriction) का कारण हो जाते हैं जो कि रक्त भार वृद्धि का प्रधान कारण है इसके कारण जो रक्त भार उत्पन्न होता है उसे विश्राम कालिक (Diastolic) भार कहते है। यह जितना बढता है उतना ही हृदय को अपना सकोच प्रबलतर करना पडता है जिससे हृदय सकोच कालिक भार बढ जाता है औषधियो मे से Adrenaline तथा Ephedrine के अति प्रयोग से भी रक्त भार बढ सकता है। शरीर मे Uric acid की वृद्धि अर्थात् Gout की प्रवृत्ति हो तो भी रक्त भार बढ सकता है।

५० से ६० या ७० वर्ष की आयु मे रक्त भार वृद्धि का रोग पाया जाता है। धमनियो मे जीर्णता (Sclerosis) का रोग भी इसी आयु मे होता है। सम्भवत Hypothalamus तथा उसके कारण नाडियो के उत्तेजित रहने से पहले तो वृक्क की धमनियो मे जीर्णता का रोग विशेष रूप से आरम्भ हो जाता है, फिर वृक्क के उपद्रव के रूप मे रक्तभार वृद्धि का रोग होता है। दूसरे शब्दो मे, वृक्को मे आने वाली सूक्ष्म धमनियो के अन्त स्तर (Intima) मे स्थूलता के हो जाने से वृक्को को जब रक्त कम मिलता है और वहा Scar tissue बनता जाता है अर्थात Arteriolar Nephrosclerosis हो जाता है तब भी रक्तभार बढ जाता है। इसी प्रकार माता पिता मे से एक को यह रोग हो तो २५% सन्तान में यह रोग होता है, मातापिता दोनो को यह रोग हो तो ६०-७०% सन्तान मे यह रोग होता है।

इस प्रकार पैतृक परम्परागत इस रोग की प्रवृत्ति, वृक्क रोग, मानसिक विक्षोभ, अत्यासन, रक्त मे किसी विषद्रव्य का सचार (Toxaemia) स्थूलता, मधुमेह, Gout प्रधानत इस रोग के कारण माने जाते है। वस्तुत तो इस रोग के कारणो का अभी तक ठीक-ठीक पता नही चला। बिना वृक्करोग गठिया या Gout आदि किसी विशेष कारण के होने वाले रक्तभार को Essential Hypertension कहते हैं। यह ३५-५५ वर्ष की आयु के बीच मे शुरू होता है। वृक्करोग, Adrenal Tumour आदि से उत्पन्न रक्तभार को घातक रक्तभार कहते हैं। इस प्रकार निरुपद्रव (Benign) तथा सोपद्रव (Malignant) रक्तभार दो प्रकार का होता है।

विकृति

निरुपद्रव रक्तभार रोग मे शरीर की सूक्ष्म धमनियो (Aterioles) मे अधिक-अधिक सकोच होते रहने से पहले तो स्थान-स्थान पर उनके मध्यम (Middle Coat) तथा फिर आभ्यन्तर स्तर (Intima) भी क्रमश Hypertrophy के कारण स्थूल होते जाते है जिससे इनकी दीवारे तो स्थूल होती जाती है पर बीच का स्रोत तग होता जाता है। फिर इन दीवारो की सूक्ष्म पोषक धमनियो (Vasavasoram) मे भी क्षीणता के हो जाने से इनका पोषण ठीक-ठीक नही होता। जिससे क्रमश. इनके मासमय स्तर मे स्नायु तन्तु की वृद्धि (Fibrosis) तथा वसायुक्त काच सदृश कठोरता (Fatty Hyaline Degeneration) होने लगती है जिससे ये धमनिया कुछ कठोर हो जाती है अर्थात् इनमे सूक्ष्म धमनी काठिन्य (Hyaline Arteriolosclerosis) की प्रक्रिया हो जाती है। सूक्ष्म धमनियो तथा स्थूल धमनियो दोनो के आभ्यन्तर स्तर (Intima) मे Atheroma सदृश क्षीणता के लक्षण हो जाने से उनमे कुछ-कुछ अवरोध उत्पन्न हो जाता है। हृदयपोषक धमनियो, मस्तिष्क धमनियो तथा यकृत्, प्लीहा, अग्न्याशय और वृक्क की आभ्यन्तर सूक्ष्म धमनियो और Adrenal तथा Retina की धमनियो मे इस धमनी काठिन्य की प्रक्रिया शुरू होने से वृक्क जल्दी तो फेल नही होते पर उनमे Nephrosclerosis होकर रक्तभारवृद्धि का लक्षण हो जाता है ऐसा माना जाता है। परन्तु वर्षो तक इस अवस्था के रहने से भी कोई उपद्रव नही होता। हृदय को शरीर की धमनियो के कठिन हो जाने से सकोच के समय एक बढे हुये प्रतिरोध का सामना करना पडता है इसलिए उसका वाम क्षेपक कोष्ठ आकार मे बडा हो जाता है यहा तक कि कभी-कभी दुगना-तिगुना हो जाता है पर उसकी Cavity उतनी ही रहती है। इसे क्षतिपूर्ति-कारक हृदय की अति वृद्धि कह सकते है। इस प्रकार धमनियो के मासमय स्तरमे जितनी-जितनी क्षीणता की प्रक्रिया बढती जाती है उतना वाम क्षेपक बढता, उतना ही रक्तभार भी बढता जाता है। अन्त मे ५-१० वर्ष बाद जब वाम क्षेपक शिथिल होने लगता है अर्थात् उसकी Cavity भी बडी हो जाती है तब वाम छिद्र चौडा हो जाता है तब वाम ग्राहक भी बडा हो जाता है और फिर फुफ्फुस में रक्त के रुकने से Oedema होने लगता है। अर्थात् हृदय फेल होने लगता है। मस्तिष्क मे रक्तस्राव या अवरोध Thrombosis हो जाता है या हृदयपोषक धमनियो मे अवरोध हो जाता है, या वृक्को के फेल होने से मूत्र विष सचार Uraemia का विकार हो जाता है।

सोपद्रव रक्तभार (Malignant Hypertension)—उपर्युक्त धमनी काठिन्य रोग के उपद्रव रूप मे सूक्ष्म धमनियो के आभ्यन्तर स्तर के नीचे स्थान-स्थान पर वसा (Lipoid) के सचित हो जाने से धमनीरोध (Endarteritis) के लक्षण हो जाये तो इससे उपद्रव हो सकते हैं। दूसरे शब्दो मे सूक्ष्म धमनियो मे कठोरता (Arteriolosclerosis) तो रक्तभार की वृद्धि का कारण है परन्तु सूक्ष्म धमनियो की दीवार मे जीर्णता या Necrosis हो जाय तथा आभ्यन्तर स्तर (Intima) मे स्थूलता हो जाय अर्थात् Arteriolo Necrosis हो जाय तो इसे Malignant Hypertension कहते है। अर्थात् इस रोग मे सूक्ष्म धमनियो मे विकृति होती है जिसका वर्णन आगे Artereolar Sclerosis में किया गया है इस रोग मे वह व्यापक Diffuse रूप मे होती है। इससे वृक्क की सूक्ष्म धमनियो (Glomeruli) मे जीर्णता Necrosis और

अवरोध हो जाय और उनमे तथा Tubules मे Hyaline Degene हो जाय तो जीर्ण वृक्करोग (Nephrosclerosis) हो जाता है और ऐसा वृक्क घातकरक्त भार का कारण वन जाता है। छोटी आयु मे होने वाला रक्त भार-वृद्धि का रोग भी प्राय चि० वृक्क रोग के या Pyelonephritis के कारण होता है। घातक रक्तभार रोग मे मस्तिष्क, हृदय तथा Mesentery (उदर) की धमनियो के आभ्यन्तर स्तर के नीचे वसा के सचित हो जाने या अवरोध (Thrombosis) के कारण इन अगो को रक्त ठीक-ठीक मात्रा मे नही मिल पाता जिससे इनमे Infarction भी हो सकता है जिससे रक्तवमन Haematemesis या मस्तिष्क मे रक्तस्राव भी हो सकता है। Atherosclerosis या Arteriolar Necrosis की इस अवस्था मे पाण्डुता का लक्षण भी होता है। इसमे सकोचकालिक रक्तभार २२० के लगभग तथा विश्राम कालिक रक्त भार १२०-१३० M M Hg से भी ऊपर रहता है। नेत्र पश्चिमपटल या Retina मे श्वयथु (Papilloedema) इस अवस्था का प्रधान लक्षण होता है। इस प्रकार जव वृक्क फेल हो रहे होते है और दृष्टि पटल मे Papilloedema शुरू हुआ होता है तव इसे Malignant Hypertension कहते है। रक्तभार की चिकित्सा न होने से वह अधिक ऊचा ही रहे तो उसे उपद्रवकारी होने से Malignant या घातक रक्तभार कहते हैं।

लक्षण

धमनियो पर जो रक्तभार हर समय रहता है उसे विश्रामकालिक भार (Diastolic Pressure) कहते हैं तथा हृदय के सकोच के समय उनमे जो रक्तभार होता है उसे सकोचकालिक भार (Systolic Pressure) कहते है। जन्म के समय जव धमनियाँ मृदु होती है तव विश्रामकालिक भार ४० तथा सकोचकालिक भार ७५ होता है (नाडी भार ३५) नवयुवावस्था मे विश्रामकालिक ६०, सकोचकालिक १०० (नाडी भार ४०) होता है। मध्य आयु मे विश्रामकालिक भार ८० तथा सकोचकालिक भार १२० होता है (नाडी भार ४०) इसी को १५ वर्ष से ऊपर औसतन भार कहा जाता है। ५०, ६० वर्ष की आयु मे विश्रामकालिक भार ९० तथा सकोचकालिक भार १४० होता है (नाडी भार ५०)। साधारणत १२० मे आयु का आधा जोड देने से Systolic तथा २० की आयु के ऊपर ८० मे प्रति १० वर्ष के पीछे १ जोड देने से Diastolic भार आ जाता है। इसके वाद इनमे थोडी वृद्धि होती है तथा फिर वडी आयु मे विश्रामकालिक भार ९५ तथा सकोचकालिकभार १४५ नार्मल समझे जाते हैं, यह भी उच्चतम सीमा है रक्तभार इससे ऊपर हो जाए तो उसे रोग जनित जानना चाहिए परन्तु साधारणत. तो १४० और ९० तक ही रक्तभार रहना चाहिए। नाडी भार सकोचकालिक भार का एक तिहाई होता है। साधारणत नाडी भार सकोचकालिक भार का एक तिहाई होता है साधारणत: नाडी भार ४०-७० तक के लगभग रहता है। जव विश्रामकालिक भार निरन्तर ९० और सकोचकालिक भार १५० M M of Mercury से ऊपर रहे तव इसे मृदु रूप मे वढा हुआ रक्त भार कहा जाता है, ५० वर्ष की आयु से नीचे विश्रामकालिक भार ९० M M Hg से ऊपर हो तव भी ऐसा कहा जाता है। जव विश्रामकालिक रक्तभार ११० M M Hg तथा सकोचकालिक रक्तभार १८० के लगभग हो तो मध्यम रूप मे वढा हुआ रक्तभार कहा जाता है। जव विश्रामकालिक रक्तभार ११० तथा सकोचकालिक भार २०० से ऊपर होता है तव इसे तीव्र रूप मे रक्तभारवृद्धि का रोग कहा जाता है। साधारणतया ९० मे आयु का आधा जोडने पर जो सख्या आये उससे अधिक Systolic भार हो तो उसे वढा हुआ समझे। विश्रामकालिक रक्तभार की वृद्धि को सकोचकालिक की अपेक्षा अधिक चिन्ताजनक समझना चाहिये। सकोचकालिक भार ११० से कम हो तो उसे Hypotension कहते है। रक्तभार वढा हो तो नाडी भार भी वढा हुआ होता है (२२०/१२०) कभी-कभी Systolic भार २२० तक तथा Diastolic भार ९० ही होता है। इसका अभिप्राय है कि रोगी की वडी धमनियो मे कठोरता है सूक्ष्म धमनियो मे नही।

प्रारम्भ मे जव तक सूक्ष्म धमनियो (Arterioles) तथा हृदय के मास मे अति वृद्धि का लक्षण रहता है तथा जव तक इससे शरीर के अवयवो को उचित मात्रा मे रक्त मिलता रहता है, कोई विशेष लक्षण नही होता। इसे मध्यम (Moderate) रक्तभार कह सकते हैं। जव सूक्ष्म धमनियो तथा हृदय के माँस मे क्षीणता (Degen) के लक्षण हो जाते हैं एव अवयवो को उचित मात्रा मे रक्त नही पहुच पाता तव लक्षण उत्पन्न होने लगते है इसे तीव्र (Severe Type) रक्तभार कह सकते है। किन्तु वहुधा तो रक्तभार के वढे हुए रहने पर भी कोई विशेष लक्षण नही होता, क्योकि रक्तभार में वृद्धि, अवयवो को उचित मात्रा मे रक्त पहुँचाने के लिये अर्थात् Compensatory होती है तो भी यदि किसी मे शिरोभ्रम Dizziness का लक्षण हो तो इस रोग का सन्देह करे। वहुत सभवत धमनी काठिन्य (Atherosclerosis) रोग मे रक्तभार को

वलपूर्वक कम किया जाय तो ऐसा करने से मस्तिष्क व हृदय मे Thrombosis का भय रहता है। सभवत इस रोग मे सवसे पहले वृक्क ग्रस्त होते है परन्तु तो भी हृदय या मस्तिष्क सम्वन्धी लक्षण ही पहले रोगी का ध्यान खीचते हैं। जव लक्षण होने लगते हैं तो वे ये है —

१ Hypertensive encephalopathy—मस्तिष्क सम्वन्धी लक्षण —जव मस्तिष्क धमनियो के कठोर हो जाने अथवा Cerebral Vasospasm के कारण सकुचित हो जाने या Atheroma होने पर मस्तिष्क का पोषण घट जाता है अर्थात् उसमे Ischaemia हो जाता है तव बुद्धि, धृति, स्मृति, एकाग्रता आदि की शक्तिया घट जाती है जिससे वुद्धि-माद्य Dementia, स्मृतिमान्द्य, विक्षोभशीलता (Irritability) तथा चिन्ताशीलता के लक्षण वढ जाते हैं। जिससे व्यक्ति स्वल्प कारणो से भी व्याकुल और अशान्त हो जाता है, विषादरोग भी हो सकता है। मानसिकनैर्वल्य (Neurasthenia) तथा उन्निद्रता के लक्षण प्रवल रूप मे हो सकते हैं। किसी-किसी मे भाषणशक्ति निर्वल हो जाती है (Aphasia), किसी मे दृष्टिमन्दता (Amaurosis) का लक्षण हो जाता है जो अस्थायी रूप मे होता है, एक या दोनो आँखो मे होता है। किसी मे अर्दित रोग (Bell's Palsy) किसी मे अस्थायी एकाग घात या अर्धाङ्ग घात का लक्षण हो जाता है, किसी-किसी मे थोडी देर के लिये मूर्छा या गहरी निद्रा (Coma) हो जाने का लक्षण होता रहता है, किसी-किसी मे उसके किसी अग मे आक्षेप (Convulsion) होने का लक्षण होता रहता है। अपस्मार के समान आक्षेप और मूर्छा दोनो साथ-साथ भी होते हैं अर्थात् मस्तिष्क के किसी एक भाग को धमनी स्तम्भ (Spasm) या Atheroma के कारण थोडी देर के लिये रक्त के न मिलने से ये लक्षण होते है, ४०% रोगियो मे अरुचि (Nausea) और वमन हो जाने के दौरे होते हैं, ये क्यो होते हैं स्पष्ट नही। ७५% रोगियो को इस रोग मे शिर शूल रहता है, जो सिर के एक देश मे विशेषत उसके पश्चिम प्रदेश मे रहता है। सवेरे उठने पर विशेष रूप मे प्रतीत होता है, फिर धीरे-धीरे कम हो जाता है। सभवत Ex Carotid art की शाखाओ मे प्रसार से उनकी दीवार की नाडियो के दवने से होता है या कभी मस्तिष्क के श्वयथु (Oedema) के होने से होता है या चिन्ताशीलता या विक्षोभशीलता के कारण होता है, १५% रोगियो मे शिरोभ्रम (Giddiness या Vertigo) या कर्णघोष (Tinnitus) का लक्षण होता है जो मस्तिष्क के पोषण की न्यूनता के कारण या मस्तिष्क मे श्वयथु (Oedema) के कारण होता है। नेत्र पश्चिम पटल Retina मे स्वल्प रक्तस्राव होकर दृष्टि धु धली पड सकती है। अत मे किसी मस्तिष्क धमनी मे अवरोध (Thrombosis) होकर या धमनी की जीर्णता के कारण रक्तस्राव होकर मूर्छा तथा पक्षाघात के उपद्रव हो जाते है। इस अवस्था को Hypertensive Encephalopathy कहा जाता है। इस रोग के २०% रोगी Encephalopathy से मृत्यु को प्राप्त होते है।

२. Hypertensive Heart—इस रोग मे पहले तो वाम हृदय मे अति वृद्धि होती है फिर क्रमश हृदयमास के पोषण के कम हो जाने से अर्थात् उसमे क्षीणता (Failure) के हो जाने के कारण व्यायाम करने पर आधे के लगभग रोगियो मे हृदयकम्पन तथा श्वासकाठिन्य के लक्षण होने लगते है। श्वास केन्द्र को रक्त के या O_2 के कम मिलने तथा उसके रक्त मे Acidosis के वढ जाने से श्वासकाठिन्य होता है, या फुफ्फुसो मे श्वयथु होने से होता है। पुफ्फुस मे श्वयथु अधिक भी हो जाय तो १० प्रतिशत रोगियो मे रात्रि श्वास Nocturnal Asthma के वेग का उपद्रव होने लगता है। ऊपर मस्तिष्क मे रक्त के रुकने से वहाँ Pressure वढे तो मस्तिष्क मे रक्तस्राव हो जाता है (१५% मे)। हृदय पोषक धमनियो मे Spasm या Sclerosis के कारण, हृदय का पोषण कम होने से तीव्र श्रम करने पर मृदु हृदयशूल (Angina) के होने का लक्षण भी हो जाता है, (१५% मे) Auricular Fibrillation तथा Coronary Thrombosis तथा हृदय के फेल होने (Congestive Cardiac Failure) के उपद्रव भी हो सकते हैं (५०% मे) जिससे शाम को पैरो पर Oedema हो जाता है। रक्तभारवृद्धि से कभी-कभी नासा रक्तस्राव हो जाता है। अन्त मे जव वाम क्षेपक निर्वल होकर फैल जाता है (Dilatation) तव Systolic रक्तभार गिरता जाता है पर Diastolic भार नही गिरता (१५०-११०) इस प्रकार रक्तभार वृद्धि के ६०-७०% व्यक्ति हृदय रोग से मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

३ Hypertensive Kidney—वृक्को की सूक्ष्म

धमनियो के कठोर होने अर्थात् Arteriolar Nephrosclerosis होने एव उनकी Tubules का पोषण कम हो जाने पर उनकी मूत्र को गाढा करने की शक्ति घट जाती है जिससे आधे के लगभग रोगियो मे रात्रिमेह (Nocturia) अर्थात् मूत्र के रात को अधिक मात्रा मे आने का लक्षण होता है दिन मे भी मूत्र अधिक आता है (Polyuria) इससे शरीर मे से सोडियम और पोटासियम की निकासी वढ जाती है पिपासा भी अधिक लगती है रात्रिमेह शायद श्वयथु द्रव के रात को फिर रक्त मे विलीन हो जाने के कारण होता है। रक्तभार की ओषधि के देने से रात्रिमेह रोग दूर हो जाता है। मूत्र मे अलव्यूमिन आने लगता है Hyaline तथा Granular Casts भी आते है। रोग के वढ जाने पर जव उनकी Urea निकालने की शक्ति घट जाती है तव रक्त मे उसकी मात्रा वढ जाती है, रोगी फीका पडता जाता है, सिरदर्द रहने लगता है। और Uraemia वढता जाता है Retinopathy के सूचक लक्षण होने लगते है हृदय मे वृद्धि हो जाती है। Renal Angiography से वृक्क की धमनियो की अवस्था का पता चल जाता है। इस रोग के १०-२०% रोगी Uraemi के कारण मृत्यु को प्राप्त होते है। इस रोग के कारण अल्व्यूमिनूरिया न हो, रक्त भार विशेष न हो तो इस रोग का रोगी १५ वर्ष तक जीवित रह सकता है। अल्व्यूमिनूरिया होने पर ५ साल तक जीवित रह सकता है।

नेत्रो के पश्चिम पटल (Retina) की धमनियो के कठोर और सकुचित हो जाने के कारण वे चादी की तार के समान तथा मुडी-तुडी दिखाई पडती है शिराए भरी हुई दीखती है जिससे आधे के लगभग रोगियो मे प्राय एक आख मे दृष्टि धुधली हो जाती है जिसे Hypertensive Neuro retinopathy कहते हैं। रक्तभार की अधिकता मे आख के सामने धब्बे या Spots भी दिखाई देने लगते हैं। जवाओ की मासगत सूक्ष्म धमनियो के कठोर हो जाने मे प्रान्त भागो की मासपेशियो का पोषण कम हो जाने पर उनमे रात को Cramps या उद्वेष्टन की वेदना होने लगती है या दूर तक चलने पर उनमे वेदना (Claudication) होने लगती है। साधारणत चलने पर मास मे जो कोई विषद्रव्य उत्पन्न होता है वह वहा की रक्तवाहिनियो द्वारा शीघ्र वापस हो जाता है। पर धमनियो के कठोर हो जाने पर मास को पर्याप्त रक्त न मिलने से तथा वहा के विष द्रव्य के वापस न हो सकने से मास मे यह वेदना का लक्षण होता है। पैरो को धमनीकाठिन्य के कारण रक्त कम मिले तो उनकी वसा शुष्क होती जाती है और वे कृश होते जाते हैं। पैरो तथा हाथो को रक्त कम पहुचने से नख शुष्क एव कठोर से दीखने लगते है। त्वचा को रक्त न मिलने से वह पतली, शुष्क, झुर्रीदार हो जाती है। इन लक्षणो के होने के ४-५ वर्ष तक हृदय की पोषक धमनियो मे भी अवरोध होने का भय रहता है।

६ आमाशय की धमनियो की क्षीणता से अजीर्ण सम्वन्धी लक्षण होते है। आत मे तथा प्लीहा और पित्ताशय मे भी धमनीकाठिन्य होकर इनके अधिक सकुचित (Constricted या Thrombosed) हो जाने से उनमे भी तीव्रतर वेदना हो सकती है, तीव्रकोष्ठ शूल इस रोग के कारण हो सकता है। फुफ्फुस की किसी सूक्ष्म धमनी मे Thrombosis होकर Infarct वन कर सहसा पार्श्वशूल और रक्तवमन के लक्षण हो सकते है।

चिरस्थायी वृक्क रोग के कारण रक्तभार मे वृद्धि हो तो विश्रामकालिक रक्तभार विशेष वढा हुआ होता है। मूत्र मे अल्व्यूमिन रक्तकण तथा Casts होते हैं उसका आपेक्षिक भार १००८-१०१२ के बीच मे रहता है। शरीर पर पाण्डुता का लक्षण होता है। रात को मूत्र अधिक आता है। रक्त मे Non-Protein Nitrogen की वृद्धि होती है। गर्भावस्था मे विष के कारण रक्तभार वढे तो Eclampsia का लक्षण होता है। Ephedrine, Adrenaline के कारण रक्तभार वृद्धि अस्थायी ही होती है।

परीक्षा

नाडी स्पर्श करने मे कठोर प्रतीत होती है, आसानी से दवती नही। प्रति मिनट नाडी सख्या अधिक होती है। हृदय के विशेषत वाम हृदय के आकार मे बडा होने से उसका स्पन्दन प्रवल होता है। Apexbeat कुछ नीचे और वाहो की ओर खिसक जाती है। प्रथम शब्द कुछ दीर्घतर होता है E C G परीक्षा से Q R S Complex लम्वा होता है। द्वितीय शब्द महाधमनी प्रदेश पर ऊचा होता है। Pulmonary area पर भी द्वितीय शब्द ऊचा होता है। हृदय निर्वल हो तो फुफ्फुस मे श्वयथु के चिह्न (Crepi-

tations या Moist Rales) भी होते हैं। वृक्को की मूत्र बनाने की शक्ति की निर्वलता के कारण १०-१२ घण्टे जल न पीने के वाद भी मूत्र की 'स्पेसिफिक ग्रेविटी' १०१० या १०१२ के लगभग ही होती है। उसमे स्वल्प सा अल्व्यूमिन भी हो सकता है रोग अधिक हो तो R B C तथा Casts भी होते हैं अर्थात् रोगी मे Pyelonephritis होता है। रक्त मे Urea की परीक्षा भी करनी चाहिए। वह १०० मिलि० प्रति १०० सी०सी० मे हो तो रक्तभार की औषधि देना व्यर्थ है। N P N १०० मे ७५ मिलि० से अधिक होता है तथा चेहरे पर पाण्डुता स्पष्ट दीखती है। नेत्र के Retina की परीक्षा करने पर उसकी धमनियाँ फीके रग की तथा सकुचित दीखती है। धमनियो के कठोर हो जाने एव उनके दवाव से उनकी शिराए रक्त से अधिक भरी होती हैं जिससे कही-कही रक्तस्राव के चिह्न दीखते है Disc कुछ फूला हुआ, अस्पष्ट किनारो का दीखता हे (Keth-Wagener Retinal changes)। रोग की प्रथम अवस्था मे ये धमनियाँ स्वल्प सी सकुचित दीखती है। द्वितीय अवस्था मे इन धमनियो पर एक खोल सा दीखता है (Silver Wire)। तीसरी अवस्था मे इनमे से स्थान-स्थान पर स्वल्प सा रक्तस्राव भी दीखता है। चतुर्थावस्था मे इनमे से रक्तस्राव के साथ दृष्टिपटल श्वयथु या Papilloedema भी दीखता है। हृदय की परीक्षा मे Radiology तथा Electrocardiography भी वडी सहायक हैं। Skiagram मे हृदय वृद्धि मिले Ecg मे वाये Ventricle मे वृद्धि या Myocardium मे रोग का लक्षण मिले तो इस रोग का निश्चय हो जाता है।

साध्यासाध्यता

धमनी-सकोच के बढने से विश्रामकालिक रक्तभार वढता है। तथा इसी से सूक्ष्म धमनियो मे कठोरता और जीर्णता के लक्षण भी उत्पन्न होते है और ज्यो-ज्यो उनमे कठोरता और जीर्णता वढती हे त्यो-त्यो उनमे विश्राम-कालिक रक्तभार भी वढता है। अतएव विश्रामकालिक रक्तभार की वृद्धि को अधिक हानिकारक समझना चाहिए। क्योकि यह भार धमनियो की जीर्णता का जो इस रोग के उपद्रवो का कारण है, सूचक होता है। यदि यह भार १०० या ११० के लगभग रहे तो भी रोगी ८-१० वर्षो तक भला चगा रह सकता है। यदि १२० या १३० से ऊपर रहे, सकोचकालिक तथा विश्रामकालिक रक्त-भारो का अन्तर (Pulse Pressure) कम होता जाय, स्वल्प व्यायाम मे या ऊपर चढने से श्वास फूलने लगे, या हलका सा हृदयशूल हो जाय, या रात्रिमेह का लक्षण अधिक रहे, मूत्र की स्पेसिफिक ग्रेविटी कम रहे, मूत्र का रग फीका हो (Urochrome की कमी से), मूत्र मे अल्व्यूमिन आता रहे, रक्त मे Urea वढ जाए अर्थात् ७५ या १०० मिलि० प्रतिशत से अधिक हो, Retina की धमनियाँ कठोर और फीकी दिखाई पडे, दृष्टि मन्द हो जाय, शिरशूल वना रहे तो इस रोग के उपद्रवकारी लक्षण २-३ वर्ष तक प्रकट हो जाया करते है। चिकित्सा के न मिलने पर इस रोग मे मृत्यु लगभग ६० प्रतिशतक मे हृदय के फेल होने से, २० प्रतिशतक के लगभग मूर्छा व पक्षाघात होने से, तथा १० प्रतिशतक के लगभग वृक्को के फेल होने तथा १० प्रतिशतक के लगभग मे दूसरे रोगो से होती है। चिकित्सा के होते रहने पर मृत्यु अधिकतर Atherosclerosis से अर्थात् मूर्छा या पक्षाघात या हृदयशूल से होती है। किन्तु जव बढा हुआ रक्तभार ७ दिन के पूर्ण विश्राम करने से तथा निद्राजनक औषधियो के लेने से कम हो जाय तो इसे भी निरुपद्रव ही समझना चाहिये। चतुर्थ अवस्था मे पहुचे रोगी अर्थात् Retina मे रक्तस्राव व Papilloedema के होने पर भी चिकित्सा करने पर यदि Urea ६० मिलि० प्रतिशत से अधिक न हो तो ४५ प्रतिशत के लगभग रोगी ३ वर्ष तक, ३० प्रतिशत रोगी ६ वर्ष तक जीवित रह सकते हैं (Harington)। स्पष्ट है कि यदि रोगी मे हृदयदौर्वल्य के लक्षण हो, Retinitis हो, तीव्र वृक्क रोग हो तो यह रोग असाध्य ही समझना चाहिये, मृत्यु १-२ वर्ष मे हो जाती है।

चिकित्सा

रक्तभार १५०/९० M M Hg. से ऊपर हों तो उसकी चिकित्सा उसी समय आरम्भ कर देनी चाहिये अन्यथा फिर इसके अधिक वढ जाने पर चिकित्सा कठिन होती जाती हे। नेत्र, हृदय अथवा मस्तिष्क सम्वन्धी कोई उपद्रव प्रकट हो जाय तो रक्तभार की चिकित्सा करने से फिर उसमे कोई लाभ नही होता है। पर रोग प्रारभिक अवस्था मे हो तो औषधियो का प्रयोग नही करना चाहिये केवल कारण निवारण करना चाहिए।

१ रक्तभार वृद्धि से वचने के लिये रोगी को सदा काम, क्रोध, चिन्ता, व्याकुलता आदि मानसिक आवेगो से वचना चाहिये। अपने भाषण तथा व्यवहार मे कभी गर्मी न आने देनी चाहिये क्रोध और जोश से वचना चाहिये क्योकि मानसिक आवेगो से Sympathetic नाडिया विक्षुब्ध होती है तथा धमनी-सकोच प्रवलता से होता है। रक्तभार-वृद्धि रोग की चिन्ता भी सर्वथा नही करनी चाहिये। क्योकि इस रोग के प्रारम्भ हो जाने के वाद भी वह १०-१५ वर्ष तक

भला चगा रह सकता है। रोगी को कठिन शारीरिक परिश्रम से तथा शीघ्र-शीघ्र सीढियो पर चढने से बचना चाहिये। मानसिक श्रम भी देर तक नही करना चाहिये। खुली हवा मे प्रतिदिन भ्रमण करना, स्वल्प मात्रा मे आहार लेकर शरीर के भार को कम कर लेना भी रक्तभार को कम करने मे सहायक होता है।

२ रोगी को चाहिये कि वह रात्रि मे ९ घटे की निद्रा ले तथा दिन मे भी भोजन के बाद दोपहर को एक घटा पूर्ण विश्राम करे। निद्रा कम हो तो Barbiturate का सेवन करना चाहिये। उसे अपनी शक्ति के अन्दर ही शारीरिक परिश्रम करना चाहिये। इस रोग के रोगी को सर्दी से तथा शीत-स्नान से बचना चाहिये क्योकि धमनी रोग मे सर्दी शीघ्र लग जाती है तथा इससे उसमे जीवाणु-सक्रमण शीघ्र हो जाता है। जीवाणु-सक्रमण से रक्तभार मे वृद्धि होती है। दात आदि किसी स्थान पर पूय हो तो उसे हटा देना चाहिये। भोजन के स्वल्प मात्रा मे तथा भूख से कम लेने तथा उसमे प्रोटीन और सोडियम की मात्रा के कम कर देने से रक्त भार घट जाता है। वृक्को के निर्बल होने से प्रोटीन कम लेना चाहिये। रात को भोजन हलका होना चाहिये। चावल, दूध, केला, सेब, अगूर, सतरा आदि फलो मे सोडियम की मात्रा कम होती है, जबकि गेहूँ के आटे, अण्डे, मास, डबल रोटी, रस्क, सूखे मेवो तथा कुछ पत्रशाको, गाजर मे, सोडियम की मात्रा अधिक होती है। (१ छटाक चावल मे १३ मिलिग्राम जबकि एक छटाक आटे मे ८०० मिलिग्राम है)। रक्तभार को कम करने के लिये दिन भर मे लवण एक माशे या ग्राम से अधिक नहीं लेना चाहिये। हृदय की निर्बलता, सिरदर्द आदि के लक्षण हो तो इसकी मात्रा आधे माशे तक ही रखनी चाहिये। रोगी केवल चावल दूध, फल आदि पर रहे, नमक न ले तो भी रक्तभार घटता है। नमक कम हो तो रक्तभार को घटाने वाली औषधि की स्वल्प मात्रा पर्याप्त होती है। Chlorothiazide दिया जा रहा हो तो २ ग्राम तक नमक दिया जा सकता है। प्रोटीन भोजन भी स्वल्प मात्रा मे ही लेना चाहिये। Vitamin B तथा C का प्रयोग भी इस रोग मे लाभदायक है। सप्ताह मे एक दिन द्रव आहार पर ही रहना चाहिये। दिन भर मे जल अधिक मात्रा में पीना चाहिए जिससे मूत्र दिन भर मे दो सेर तक आ जाये। भारी भोजन तथा अधिक मात्रा मे भोजन लेने से हृदय और रक्तवाहिनियो पर बोझ पडता है, अत शरीर भारी हो तो भार कम करना चाहिये और तदर्थ भोजन की मात्रा कम कर दे। भूख कम करने के लिये Preludin (Phenmetrazine Hydro) २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे २ वार भोजन से आधा घटा पहले देने से या Dexamphetamine Sulphate (Dexedrine) २५ मिलि० मात्रा मे प्रातराश के साथ देने से और क्रमश ५ मिलि० मात्रा मे देने से पर्याप्त सहायता मिलती है, मेदा भी घटती है। मद्य, चाय, तम्बाकू आदि का सेवन नही करना चाहिये। वनस्पति घी भी नही लेना चाहिये। कभी-कभी वाष्प स्वेदन लेते रहना चाहिये।

औषध चिकित्सा

उपर्युक्त भोजन सम्बन्धी तथा विश्राम सम्बन्धी पथ्य के साथ मस्तिष्क के Cortex पर शामक प्रभाव की औषधि जैसे Meprobamate के ४०० मिलि० मात्रा मे दिन मे २ वार लेते रहने या रात को सोने से पहले $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{2}$ ग्रेन Phenobarbitone के लेते रहने से एव Theomindon (Indopharma) के लेने से ही मृदु रक्तभार ठीक हो जाता है। अन्यथा निम्नलिखित औषधियो का जो कि सिराप्रसारक (Vasodilator) होती हैं, प्रयोग करना चाहिए। स्वल्प मात्रा मे इन्हे आरम्भ करके क्रमश इनकी मात्रा को बढाना चाहिये तथा चिरकाल तक जारी रखना चाहिये। अथवा शामक औषधियो के साथ आगे लिखी किसी मूत्रल औषधि के सप्ताह मे ३ दिन प्रात १ वार देने से भी प्रारम्भिक अवस्था मे विद्यमान रक्तभार का रोग रुक जाता हे।

(१) सर्पगन्धा (Rauwolfia) Vasomotor केन्द्र के लिये तथा मस्तिष्क (Central Nervous System) के लिये शामक होता है प्रान्तीय (Perepheral) रक्तवाहिनियो मे इसके द्वारा रक्तभार गिर जाता है (उनमे कुछ Vasodilatation हो जाता है)। यह मस्तिष्क के Hypothalamus मे से Serotonin को खाली करके मानसिक शान्ति का कारण बनता है। तथा वहा से और Odrenergic post ganglionic Sympathetic Nerves मे से Noradrenaline या Catechol amines को खाली करके सूक्ष्म धमनियो मे रक्त भार को कम करने का कारण बनता है।

Parasympathomimetic अर्थात् Parosympathetic संस्थान सदृश काम करता है अत Bradicardia हृदय माद्य का कारण हो जाता है, मूलचूर्ण (Dried Root Powder) की १ ग्राम मात्रा को दिन मे २-३ वार विभक्त करके अर्थात् ३०० मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन वार दिया जा सकता है। इसके २५० मिलि० चूर्ण मे लगभग ½ मिलि० Reserpine होता है। यह चूर्ण Raudixin (५० मिलि० की गोली) या Serpina (३०० मिलि० गोली) के रूप मे वाजार मे मिलता है, इसकी १ या २ गोली दिन मे ३ वार दी जाती है। इसकी रात की मात्रा मे Phenobarbitone ¼-½ ग्रेन की मात्रा मे मिला देने से और भी अधिक लाभ होता है। इस प्रकार १५-२१ दिन तक इस चूर्ण या Serpina या Raudixin की १ गोली के दिन मे ३ वार प्रयोग करने के वाद फिर इसकी केवल एक मात्रा १००-२०० मिलि० की रात को चालू रखनी चाहिये। Rauwolfia dried Extract को ५० मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार दिया जा सकता है।

इसका Alkaloid Reserpine १९५२ (Serpasil Ciba, Reserpex I.C I Alsulpin Alemb.) २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन वार मुख से दिया जाता है, ½ मिलि० मात्रा क्रमश वढाई जाती है। २-३ सप्ताह वाद जव इसका प्रभाव स्पष्ट हो जाता है रक्त भार ठीक आ जाता है, इसे दिन मे एक वार ही (२५-५ मिलि०) लिया जाता है। इस औषधि का प्रभाव मुख से लेने के ४-७ दिन वाद आरम्भ होता है, इजेक्शन द्वारा देने पर प्रभाव १-३ घंटे मे ही आरम्भ हो जाता है तथा ६-८ घंटो तक यह प्रभाव कायम रहता है। इस औषध से Sympathetic नाडी मण्डल मन्द हो जाता है। Parasympathetic नाडी मण्डल प्रवल हो जाता है। जैसे ऊपर कहा है इससे Sympathetic Post ganglionic Nerve endings और केन्द्रीय नाडी मण्डल से एड्रिनलीन और नॉर एड्रिनलीन का प्रभाव दूर हो जाता है। शिरा द्वारा देने से इसका प्रभाव १ घटे मे हो जाता है। किसी उपद्रव के समय २ घटे मे ही इसका शीघ्र प्रभाव अपेक्षित हो तो इसके १ मिलि० तथा २ ५ मिलि० के इजेक्शन मिलते हैं जिन्हें मास या शिरा द्वारा १२-१२ घटे पर दिया जा सकता है। इसे Apresoline (Hydrallazine) के साथ जिससे कि वृक्क की शिराए फैल जाती हैं मिलाकर Adalphane के रूप मे भी दिया जाता है जिससे उस औषध के दोष इसके द्वारा दूर हो जाते हैं। Hydrochlorothiazide ५० मिलि० के साथ इसे देवें या मूत्रल औषधि के साथ मिलाकर इसे 'सीवा' Adelphane Esidrex के रूप मे दिया जाता है। इसकी एक गोली दिन मे ३ वार २ सप्ताह देकर यदि रोग तीव्र रूप में हो तो फिर दिन मे ४ गोली कर दें। Hydralazine को २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार पृथक् भी दे सकते हैं।

इसके Total Alkaloids की गोलिया (Rauwiloid, Serpirutin, Serpex B I २ मिलि० की भी) मिलती हैं जिनकी दैनिक मात्रा ४-८ मिलि० दिन मे दो वार विभक्त करके दी जाती है। वाद मे इसकी २ मिलि० की दैनिक मात्रा जारी रखी जाती है। इस औषध के साथ मूत्रल औषव को भी प्रात: १ वार सप्ताह मे २-३ वार दे दिया जाय तो इस औषध का वल वढ जाता है।

सर्पगन्धा के वन्द कर देने के वाद भी २-४ सप्ताह तक इसका प्रभाव वना रहता है। वस्तुत. यह इस रोग की एक लगभग निरुपद्रव परन्तु मृदु औषध है। परन्तु जो रक्तभार का रोगी स्वभावत विषाद प्रधान हो उसे इस औषध का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए। इस औषध से उदासीनता का लक्षण (Apathy) तथा कुछ-कुछ Parkinsonism का दुर्लक्षण हो सकता है अत Reserpine को ५ मिलि० दैनिक से अधिक न दें। इससे नासिका के वन्द होने का दुर्लक्षण भी होता है। नमक और जल के अन्दर रुकने से भार वढने का दुर्लक्षण भी हो सकता है, आमाशय व्रण Peptic Ulcer के होने का भय भी रहता है।

अनैच्छिक (Autonomic) नाडियो के Ganglia में अवरोध करने वाली (Ganglia Blocking) औषधियां—Sympathetic तथा Parasympathetic दोनो Ganglia का अवरोध करती है।

इन औषधियो का Autonomic Ganglia पर अवरोधक प्रभाव होने से नाडियो द्वारा आने वाली चेष्टाए अवरुद्ध हो जाती हैं जिससे Vasoconstriction वन्द हो जाता है एव रक्तवाहिनिया कुछ शिथिल हो जाती हैं। Retina तथा Choroid की रक्तवाहिनिया भी शिथिल हो जाती हैं जिससे रक्तभार वढा हो तो वह गिर जाता है, हृत्कम्प विशेष नही होता। हा Parasympathetic Ganglia पर भी यही अवरोधक (Blockade) प्रभाव हो जाता है ऐसा होने से मुख, आमाशय, आत आदि की चेष्टा तथा स्राव कुछ मन्द हो जाते है। जिससे मुख शोष, मलवन्ध आदि कष्ट होते हैं। स्वेद भी कम हो जाता है, दृष्टि के घु धले होने (Paralysis of Accommodation)

या मूत्रावरोध का लक्षण भी हो जाता है। नेत्र, मस्तिष्क, हृदय आदि मे होने वाले रक्त भार जनित उपद्रवो के लिये ये उत्तम औषधे है पर दुर्लक्षणो का कारण होने से आदर्श औषधे नही। इन दुर्लक्षणो के होने पर रोगी को ऊँचे पायतो वाली चारपाई पर लेट जाना चाहिये। प्रमुख Ganglia blocking औषधियां ये हैं:

(१) Mecamylamine Hydrochloride (Mevasine MSD) या Inversine, Merck Sharp Dohme) २½ मिलि० मात्रा मे १२-१२ घंटे के अन्तर से भोजन के बाद मुख से दी जाती है। २-३ दिन बाद दैनिक २½ मिलि० की वृद्धि करते हुए ४०-६० मिलि० तक इसकी दैनिक मात्रा की जा सकती है। एक मात्रा का प्रभाव ½, २ घंटे मे आरम्भ होकर ८-१२ घंटे तक रहता है। इसकी चालू मात्रा २०-१५० मिलि० दैनिक है। Malignant किस्म के रक्तभार के लिये मूत्रल औषधि के साथ यह उत्तम औषध है। इसका आंत द्वारा विलयन पूर्ण रूप से होता है। मूत्रल औषध का प्रयोग करें तो साथ Pot Chlor १-२ ग्राम दैनिक देना भी उचित है।

(२) Pempidine Tartrate (Perolysin. MB, Tenormal I C I) को २½ मिलिग्राम मात्रा मे दिन मे ३ बार (६-२-१० बजे) आरम्भ करके प्रतिदिन २½ मिलिग्राम की वृद्धि करते हुये २५ मि० ग्राम दैनिक तक दिया जाता है।

(३) Chlorisondamine Chloride (Ecolid)—प्रारम्भ मे १२½ मिलि० मात्रा मे दिन मे १ बार भोजन से पहले दी जाती है। दो दिन बाद १२½ मिलि० मात्रा बढाई जाती है।

इन औषधियो से पहले Guanethidine का ही प्रयोग किया जाता है। उससे जिन्हे लाभ नही होता अर्थात् जब रोग तीव्र रूप मे होता है तब इन औषधियो का प्रयोग करने से लाभ हो जाता है।

केवल Adrenergic Blocking या Sympathetic या Adrenergic नाडियो मे अवरोध करने वाली या Catecholamines के मन्द करने वाली औषधें (Sympatholytic Drugs, या Peripheral Sympathetic Blocking या Post Ganglion Sympathetic Nerve Blocking agents)

स्पष्ट है कि इन औषधो का Parasympathetic नाडियो पर कोई दुष्प्रभाव नही होता, इसलिये ये उनमे अधिक निरुपद्रव तथा अधिक उपयोगी हो जाती हैं। इन औषधो के द्वारा Sympathetic Nerves के सिरो मे Noradrenaline की निकासी रुक जाती है तथा Cardiovascular सस्थान पर नाडियो के अनुचित प्रभाव को रोक दिया जाता है। उपर्युक्त Ganglion Blocking औषधियो के स्थान पर अब इन्ही का प्रयोग होता है।

(१) Guanethidine Sulphate (Ismelin, Ciba)—इसका पता १९६० मे लगा। पहले १० मिलि० दैनिक मात्रा मे बहुधा एक ही बार सवेरे के नाश्ते के साथ इसे दिया जाता है। सात दिन बाद दैनिक मात्रा मे १० मिलि० की या ३ दिन बाद ५ मिलि० की वृद्धि की जाती है, फिर साधारणत इसकी दैनिक मात्रा ३०-६० मिलि० रखी जाती है जो एक ही बार दी जाती है। इसका प्रभाव लगभग एक सप्ताह रहता है। यह इस समय तक सबसे अधिक निरुपद्रव औषध है, और रक्तभार के भयकर उपद्रवो के लिये उत्तम है, इससे खडे होने पर रक्तभार १६०-१०० तक हो जाना चाहिए। इसमे खडे होने या व्यायाम करने पर रक्तभार के गिरने (तथा दूसरे Side effects) का दुर्लक्षण भी कम है तो भी रोगी को बता देना चाहिए कि सहसा खडा होने या व्यायाम करने से Hypotension हो सकता है। किसी मूत्रल औषधि के साथ इसके देने से इसकी थोडी मात्रा से ही शीघ्र लाभ प्रतीत होने लगता है। चिरकाल तक देने से भी यह औषधि निष्प्रभाव नही होती।

(२) Bethanidine Sulphate (Estabal) भी इसी प्रकार की औषधि है। ५ मिलि० मात्रा दिन मे २ बार मुख से दी जाती है। क्रमश बढाकर २५-५० मिलि० दिन मे २ बार दी जा सकती है।

(३) Guanoxan (Envacar) १०-३० मिलि० मात्रा मे १ बार।

(४) Debrisoquine (Declinax) को ५-१०० मिलि० मात्रा मे १ बार मुख से।

(५) Guanoclor (Vatensol) को २०-१०० मिलि० मात्रा मे १ बार देने से यही लाभ होता है। इनमे से Guanoxan से यकृत् को कुछ हानि पहुच सकती है जिससे वह अधिक उपयोग मे नही आती।

मूत्रल औषधो का प्रयोग

मूत्रल औषध (विशेषत Non-Mercurial) के देने मे भी रक्त की मात्रा के कम हो जाने तथा सूक्ष्म धमनियो की Tone के कम हो जाने के कारण रक्तभार कम होता है। विशेषत यदि उन्हे Rauwolfia के Alkaloids के साथ-साथ प्रयुक्त किया जाय। इसी प्रकार Ganglia मे अवरोध उत्पन्न करने वाली उपर्युक्त औषधियो के साथ-साथ इनका प्रयोग करने पर उनकी मात्रा अधिक नही बढानी पडती तथा उनसे होने वाले दुर्लक्षणो से भी रोगी बच जाता है। पर इन मूत्रल औषधो से लवण के साथ-साथ पोटासियम की निकासी भी शरीर से बढती है जिसमे शरीर की मासपेशियो मे निर्बलता उत्पन्न होती है। अत १ ग्राम पोटासियम क्लोराइड के दो बार प्रतिदिन प्रयोग के साथ-साथ या नीबू, सतरा आदि के प्रयोग के साथ Ganglia मे अवरोध उत्पन्न करने वाली औषधे हलकी मात्रा मे ही देनी चाहिये। २-३ महीनो तक इन्हे जारी रखा जा सकता है। Thiazide के समासो द्वारा वृक्को की स्राविणियो में सोडियम तथा क्लोराइड का विलयन कम हो जाता है, परन्तु इन नालियो के प्रात भाग या Distant tubules मे सोडियम का विलयन तथा पोटासियम की निकासी Adrenal ग्रन्थि के Aldosterone के प्रभाव मे होती है अत तद्विरोधी किसी औषध का प्रयोग भी आवश्यक हो जाता है। इसीलिये Thiazide कम्पाउण्ड के साथ Spironolactone (Aldactone) का प्रयोग करने से Na, Cl, तथा जल की निकासी बढती है एव मूत्र विशेषत खुलकर आता है। उसका २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ४ बार इन औषधो के साथ प्रयोग किया जाता है।

(१) Chlorothiazide (Diuril-Chlortride-Saluric) ५ ग्राम २ ग्राम दैनिक मात्रा मे विभक्त करके देना चाहिए।

(२) Hydrochlorothiazide (Dichlortride M S D या Esidrex Ciba) २५-१०० मिलि० दैनिक मात्रा मे सामान्यत ५० मिलि० मात्रा मे सप्ताह मे ३ दिन।

(३) Trichlor methiazide (Metahydrin, Naqua) २-८ मिलि० दैनिक मात्रा (५० मिलि० Hydrochlorothiazide के बराबर)।

(४) Bendrofluazide (Neonaclex, Glaxo, Aprinox-Gentyl-Pluryle) पहले २½, ५ मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन और फिर इतनी मात्रा मे सप्ताह मे २-३ बार दिया जाता है।

(५) Hydroflumethiazide (Hydrenox Boots-Naclex Glaxo, Saluron) २५-१०० मिलि० दैनिक मात्रा मे मुख द्वारा सप्ताह मे तीन दिन दी जाती है। इनके द्वारा पोटासियम की निकासी बढ जाती है। अत Pot Cit २० ग्रेन दिन मे एक बार दे देना चाहिये (या Alkazyme K दे)।

(६) Methyclothiazide (Enduron-Abbot) २½, ५ मिलि० दैनिक मात्रा मे शुरु करके १०-१२ मिलि० दैनिक मात्रा तक दिया जाता है।

(७) Polythiazide (Renese, Nephril) १-२ मिलि० दैनिक मात्रा मे दिया जाता है। पहले दिन २ मिलि० फिर १-१ मिलि० प्रतिदिन या दूसरे दिन देते हैं।

(८) Benz thiazide (Fovane Pfezer) ५०-१०० मिलि० दैनिक।

(९) Cyclopenthiazide (Navidrex)।

(१०) Chlorthalidone (Hygroton) जो Carbonic Anhydrase का शामक है तथा Tubules मे सोडियम के पुनर्विलयन को कम करने वाली औषध है १०० मिलि० मात्रा मे सप्ताह मे २ बार देने से उत्तम मूत्रल पाया गया है यद्यपि इसमे भी सीरम मे पोटासियम की कुछ न्यूनता तो होती है। इसकी १ मात्रा का प्रभाव ३ दिन तक रहता है। इसे Rauwolfia के साथ देने से रक्त भार शीघ्र कम हो जाता है। हृदय जनित श्वयथु Oedema के लिये इसे विशेष उपयोगी पाया गया है पर अभी तक यह औषधि परीक्षाधीन है। पोटासियम की न्यूनता के प्रतिकार के लिये Pot Acid Tart तथा Pot Carb की बनी गोलिया दिन मे ४ बार दी जा सकती है। ये कुछ मूत्रल भी होती है।

(११) Quinethazone ५० मिलि० गोलिया Aquamox (Lederle) नाम से मिलती है। दिन मे १-४ गोलिया दी जाती है। ये मूत्रल तथा रक्त भार नियामक हैं।

(१२) Triamterene (Dytac) भी एक मृदु मूत्रल औषध है इसका प्रभाव ८-१० घ० तक रहता है। १५० मिलि० मात्रा मे आधा-आधा करके प्रात के नाश्ते और दोपहर के भोजन के बाद २ बार दे दी जाती है। इससे मूत्र कुछ नीले रग का हो जाता है उससे रोगी को भयभीत न होना

चाहिए। इसे एक-एक दिन छोडकर सप्ताह मे ३ दिन ही दिया जाता है। इसकी Dylide नामक गोली मे ५० मिलि० यह औषधि तथा २५ मिलि० Benzthiazide होती है।

(१३) Frusemide (Furosemide, Lasix, Hoechst) उत्तम मूत्रल है इसकी ४० मिलि० की गोलिया तथा २० मिलि० का २ सी०सी० का इजेक्शन मिलता है। मुख से देने के ४-५ घ० बाद मूत्र आना शुरू होता है और अन्य मूत्रल औषध की अपेक्षा अधिक आता है। इससे Potassium की निकासी कुछ बढती है अत पोटासियम वाले आहार जैसे सन्तरा, टमाटर, मेवे, आलू आदि का प्रयोग भी करना चाहिए। इसकी Reserpine के साथ मिली गोली Terbolan (Hoechst) भी मिलती है।

Sympathetic नाडियो के प्रभाव को या Adrenaline के प्रभाव को रोकने वाली औषधि (Sympatholytic या Adrenolytic या Peripheral Vasodilator औषधि)

(१) Hydrallazine Hydrochloride (Apresoline १९५०)—यह मस्तिष्क से आने वाली धमनी-सकोचक (Sympathetic Vasopressor) प्रक्रिया को रोकने वाली Peripheral Vasodilator) औषधि है जिसे रक्त भार कम करने के लिए २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे चार वार भोजन के वाद दिया जाता है। एक सप्ताह के वाद दिन मे ५०-१०० मिलि० की वृद्धि की जाती है जब तक रक्तभार ठीक न हो जाय। परम दैनिक मात्रा ३०० मिलि० दैनिक है। Rauwolfia या Serpasil के साथ मिलाकर देने मे इसकी थोडी मात्रा ही पर्याप्त होती है (Adelphane Ciba) इससे वृक्को मे रक्त मात्रा अधिक जाती है। जिससे इसकी उपयोगिया वढ जाती है। मूत्रल ओषधो के साथ भी इसे दिया जाता है। (Adelphane Esidrex Ciba या Dichlortride with Reserpine M S D)। Systolic की अपेक्षा Diastalic रक्त भार पर इसका अधिक प्रभाव होता है। इसका १०-५० मिलि० का इजेक्शन (मास द्वारा १०-२५, शिरा द्वारा ५-१० मिलि०) भी मिलता है जिमे अन्यावश्यकता के समय मास या शिरा द्वारा धीरे-धीरे दे सकते है। ८ घटे बाद दुहरा भी सकते हैं। Rheumatoid Arthritis इसके अधिक उपयोग से हो सकता है।

Methyldopa (Aldomet) यह भी Sympathetic Nerves के सिरो को Block करने वाली औषध है साथ ही मस्तिष्क शामक Tranquillizer भी है। क्योंकि यह मस्तिष्क मे Serotonin को कम करती है। औषध के Decarboxylase के शामक या मन्द कर देने वाला होने से Sympathetic नाडियो के सिरो पर Dihydroxy Phenylalanine (Dopa), Dopamine मे परिवर्तित नहीं होता जिससे Noradernaline की उत्पत्ति कम हो जाती है इसकी तथा Adrenaline की उत्पत्ति Dopamine से होती है इससे सभवत रोगी का रक्त-भार गिर जाता है। Ganglion Blocker औषधो के समान इसके प्रयोग मे खडे होने या व्यायाम करने पर रक्तभार के अधिक गिर जाने से उत्पन्न होने वाले दुर्लक्षण भी नहीं होते। इसकी २५० मिलि० मात्रा दिन मे २-३ वार दी जाती है धीरे-धीरे इसे दैनिक १ ५-२ ग्राम मात्रा मे दिया जाता है। किसी Thiazide मूत्रल औषध के साथ देने से इसकी स्वल्प मात्रा भी कार्यकारी हो जाती है परन्तु कुछ एक मे ज्वर, तन्द्रालुता, नासारोध, विषाद, दु स्वप्न, Sodium retention, रक्तातिसार, Leucopenia आदि उपद्रव होने लगते है। इसलिये यह भी कोई उत्तम औषध नही कही जा सकती। मूत्रल ओषधि के साथ मिली इसकी गोली Hydromet है (M S D) जो दिन मे २ वार दी जा सकती है।

रोगी का रक्त भार अधिक हो तो उमे अधिक गिराना उचित नही होता। ऐसी अवस्था मे १८०-१०० M M of Hg आ जाने पर आगे गिराने के लिये औषध नही देनी चाहिये। फिर इन औषधो को वन्द करके Rauwolfia को ही जारी रखना चाहिये। रक्त भार के और गिर जाने से मस्तिष्क, हृदय व वृक्को को उचित मात्रा मे रक्त न मिल सकने से इन अगो सम्बन्धी उपद्रव हो सकते है। अर्थात् मस्तिष्क का पोषण कम होने से शिरोभ्रम हो जाता है।

रोग की प्रथम, द्वितीय अवस्थाओ मे Chlorothiazide श्रेणी की कोई औषध देना पर्याप्त होता है। उसी से रक्तभार घट जाता है। इसका प्रभाव पर्याप्त न हो तो फिर इस औषध के साथ-साथ २५ मिलि० मात्रा मे Reserpine का दिन मे एक वार प्रयोग करना चाहिये। इन दोनो से प्राय रक्तभार घट जाता है। रक्तभार का रोग तीव्र रूप मे हो तो Sympatholytic या Ganglion Blocking औषधो का या उन दोनो को मिलाकर प्रयोग करना

चाहिये। इनमे से पिछली औषधियो को स्वल्प मात्रा मे आरम्भ करके तब तक बढाना चाहिये जब तक रक्त भार $\frac{150}{100}$ के लगभग आ जाय। इनके कारण मलबन्ध हो तो रात को कोई रेचक औषध दे देनी चाहिये। Guanethidine Bethamidine Methyldopa, Reserpine, Esidrex ये उत्तम औषधे है। यदि वृक्क विशेष निर्बल न हो अर्थात् रक्त मे Urea ४० मिलि० प्रतिशत से कम हो तब तक रक्त भार को गिराना चाहिये। इसके विपरीत यदि वह रक्त मे ६० मिलि० प्र० श० से ऊपर हो तो रक्त भार को गिराने से वृक्को को रक्त कम मिलता है एव रक्त मे Urea की मात्रा और बढती है। ऐसी अवस्था मे Ganglion Blocking औषधे सर्वथा नही देनी चाहिये तथा वृक्को का कार्यभार कम करने के लिये प्रोटीन भोजन प्रति किलो भार के पीछे $\frac{1}{2}$ ग्राम कर देना चाहिये। प्रोटीन के खर्च को कम करने के लिये रोगी को बिस्तर पर पडे रहना चाहिये। जल अधिक देना चाहिये, ज्ययु Oedema हो तो मूत्रल ओषध देनी चाहिये। वृक्को मे कोई जीवाणु सक्रमण भी हो तो Tetracycline का प्रयोग करना चाहिये। Serpasil तथा Apresoline का सम्मिलित प्रयोग श्रेष्ठ माना जाता है। Rauwolfia मे Vitamins तथा Phenobarbitone मिला के बनी Serpiiutin 'C' औषध भी एक उत्तम औषध है।

गर्भावस्था जनित विष Pregnancy Toxaemia के कारण रक्त भार बढा हो तो Reserpine का शिरा द्वारा प्रयोग करना चाहिये। साथ ही मुख से Hydrallazine (Apresoline) भी देना चाहिए या Chlorothiazide देना चाहिए। अर्थात् जब जी वृक्क शोथ का रोग रक्तभार के साथ हो तो रक्त मे Reserpine का तथा मुख से Hydrallazine का प्रयोग करना चाहिये। गर्भिणी को विश्राम करना चाहिए। लवण का सेवन नही करना चाहिये। प्रसव तथा बाद मे भी स्त्री की चिकित्सा जारी रहनी चाहिए।

लाक्षणिक चिकित्सा

(१) मस्तिष्क सम्बन्धी उपद्रवो की अर्थात् Thrombosis, Coma की रोकथाम के लिये Diastolic रक्तभार का ध्यान रखना चाहिये, इसकी वृद्धि को रोकना चाहिये। उपद्रव होने पर Phenobarbitone Sodium ३ ग्रेन मास द्वारा या Paraldehyde ५ सी०सी० मास द्वारा देवें, या Magnesium Sulphate २० प्र०श० सोल्यूशन ४ औस गुदा मे ६-६ घटे पर ऊपर करके डाल दे, या २५ प्र०श० इसी का सोल्यूशन १० सी०सी० मात्रा मे मास द्वारा दे दे, या ग्लिसरीन ५० मिलिलि० बराबर जल मे मिलाकर Nasal tube के द्वारा गुदा मे ऊपर डाल दें। इनसे १-२ घटे मे रक्त-भार घटता है। ४-४ घण्टे बाद इस प्रयोग को दुहरा सकते है, Siquil के १० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा देने से भी रक्तभार गिरता है। इसी प्रकार Sucrose या Glucose के ५० प्र०श० Solution के ५० सी०सी० की मात्रा मे शिरा द्वारा देने से भी सिर के अन्दर रक्तभार घटता है यदि वृक्क मूत्र बनाते हो तभी इतने जल का देना ठीक है। २५०-५०० सी०सी० रक्त के किसी शिरा मे से निकालने से भी सिर मे रक्तभार घटता है। रक्तभार को कम करने वाली उपर्युक्त औषधो का सूचीवेध द्वारा प्रयोग करना चाहिये। उदाहरणत Reserpine की या तो २५ मिलि० मात्रा मे या रोग अधिक हो तो २ ५ मिलि० मात्रा मे मास द्वारा या धीरे-धीरे शिरा द्वारा दे देना चाहिये या Pentolineum को ५-१० मिलि० मात्रा मे शिरा द्वारा दे इसका प्रभाव ६ घण्टे रहता है या Hydrallazine Hydrochloride १०-२५ मिलि० मास द्वारा दे, या ५-२० मिलि० शिरा द्वारा धीरे-धीरे दे। २-८ घण्टे के बाद इन्हे दुहरा सकते है साथ ही Hydrochlorothiazide दे देवे। बाद मे Guanethidine का मुख से प्रयोग करना चाहिये। विश्रामकालिक भार को १०० M M Hg तक गिराना चाहिए।

(२) जब सिरदर्द का लक्षण विशेष हो तो Theophyline १०० मिलि० मात्रा मे या Phenobarbitone $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{2}$ ग्रेन दिन मे तीन बार दे। चारपाई का सिरा ऊचा कर दे। Nicotinic Acid ५०-१०० मिलि० दिन मे दो बार दे, या शिरा मे से रक्तस्राव कर दे, शिरोभ्रम के लिये Phenobarbitone दे या Diamamine ५० मिलि० दिन मे २-३ बार दे, नमक बन्द कर दे।

(३) रक्तभार जनित वाम हृदय नैर्बल्य के लिये X-ray के द्वारा हृदय के आकार तथा फुफ्फुस मे रक्त सचय की जाच करनी चाहिये। रोगी का भार भी लेते रहना चाहिये। Aminophylline २५-५ ग्राम को ग्लूकोज जल मे मिला धीरे-धीरे शिरा द्वारा देना चाहिये या Phenobarbitone $\frac{1}{2}$ ग्रेन,

Aminophylline १ ग्राम ४-४ घण्टे पर मुख से देना चाहिए आक्सिजन का प्रयोग करे, या Digoxin १ मिलि० मात्रा मे शिरा द्वारा दे या मूत्रल ओषधो का प्रयोग करना चाहिये। या Reserpine २५ मिलि० मास द्वारा १२-१२ घण्टे पर दे या Guanethidine (५-१० मिलि०) का मुख से प्रयोग करे।

(४) वृक्क सम्बन्धी उपद्रवो जैसे Uraemia (पाण्डु, हिक्का, अतिसार, मुखशोथ) मे जैसे ऊपर कहा है प्रोटीन बन्द करके जल अधिक देवे १/६ Molar Sod Lactate Solution का शिरा द्वारा १ लिटर या ½ लिटर प्रतिदिन दे। Guanethidine ओर Reserpine का प्रयोग साथ-साथ करे। रक्तभार को अधिक न घटाये। यदि मूत्र की स्पेसिफिक ग्रेविटी कम हो रक्त मे Urea बढा हो तो रक्तभार को अधिक न घटाए। Angina हो तो भी इसे अधिक कम न करे। आयु बडी हो तो भी अधिक न घटाए।

धमनी जरा रोग (Arteriosclerosis) **जरा रोग** (Ageing process या Senility)

हमारे शरीर मे पहले-पहल वृद्धि की प्रक्रिया प्रबलता से होती है, उस समय शरीर के सर्व धातु (Tissues) आर्द्र होते है, सर्व सैल भी मृदु होते है, उनमे जल भाग ९५ प्र० श० होता है। बाद मे एक समय आता है जो ४० वर्ष की आयु के लगभग होता है जब ह्रास (Involution) की प्रक्रिया आरम्भ होती है तब शरीर के धातु ओर सैल कुछ रूक्ष और कठोर होने प्रारम्भ होते है तब सैलो मे जल भाग ७० प्रतिशत के लगभग रह जाता है। ऐसा क्यो होता है या आयुर्वेद के शब्दो मे कफतत्त्व या जलतत्त्व के स्थान पर रूक्षता, खरता और लघुता का उत्पन्न करने वाला वायुदोष क्यो बढता है इसका पता अभी तक नही चला।

धमनीकाठिन्य (Arteriosclerosis)

देखने से पता चलता है कि पहले-पहल यह कठोरता की प्रक्रिया धमनियो से आरम्भ होती है। मध्यमायु मे किसी समय हमारी धमनियो के मध्य स्तर अर्थात् मासमय स्तर तथा उससे मिले लचकीले अवयव मे फैट तथा प्रोटीन बैठने लग जाते है और फिर धीरे-धीरे इनमे लाइम के साल्ट बैठने लगते है जिससे वे तार की तरह कठोर हो जाती हैं, इसे धमनीकाठिन्य (Arteriosclerosis या Moncheberg का Medial sclerosis) कहते हैं। यह वृद्धावस्था का एक स्वाभाविक लक्षण है। विशेषत यह प्रक्रिया महाधमनी Aorta के छाती और कोष्ठ के अन्तर्गत भाग मे तथा उसकी हृदय, मस्तिष्क और जघाओ मे जाने वाली मध्यमाकार शाखाओ मे होती है महाधमनी की शाखाओ मे कठोरता तो हो जाती है पर उनके बीच का मार्ग तग नही होता। यह वृद्धावस्था सूचक एक लक्षण मात्र है। इसे रोग नही कहना चाहिये क्योकि इसमे अर्थात् बडी और मध्यमाकार धमनियो के कठोर हो जाने से कोई विशेष उपद्रव नही होता, हा Systole के समय इनके फैलकर रक्त को जमा कर लेने और Diastole के समय उस रक्त को आगे फेकने की इनकी सामर्थ्य कुछ कम हो जाती है परन्तु किसी अग को रक्त न मिले अर्थात् उसमे Ischaemia हो जाय, ऐसा नही होता। इसकी कठोरता से हृदय के सामने रुकावट या प्रतिरोध की मात्रा बढ जाती है जिससे उसे आकार मे बडा होना पडता है, तथा उसकी अतिरिक्त कार्य कर लेने की शक्ति या Reserve शक्ति कुछ कम हो जाती है। इसलिए धमनीकाठिन्य रोग मे संकोचकालिक Systolic रक्तभार कुछ बढ जाता है।

सूक्ष्म-धमनीकाठिन्य (Arteriosclerosis या Arterio Capillary Fibrosis)

वृद्धावस्था मे वृक्को तथा प्लीहा के अन्दर विद्यमान सूक्ष्म धमनियो मे बहुधा और कभी-कभी अग्न्याशय या यकृत् मे से किसी के अन्दर की कुछ एक सूक्ष्म धमनियो के अन्त स्तर या Intima मे वृद्धि अर्थात् Hyperplasia की प्रक्रिया होती है। इससे रक्तभार वृद्धि का रोग हो जाता है, सूक्ष्म परीक्षा मे पता चलता है कि इनके अन्त-स्तर मे वृद्धि होने के बाद उसमे Hyaline तथा Fibrous क्षीणता की प्रक्रिया हो गई है और उससे उत्पन्न रक्तभार वृद्धि के कारण इनके मध्यम स्तर (Media) मे भी कुछ स्थूलता का लक्षण हो गया है। इस प्रक्रिया को केवल जराजनित (Involutional) नही कहा जा सकता अर्थात् यह स्वाभाविक न होकर अस्वाभाविक लक्षण है। बहुधा शरीर के किसी एक अग मे ही वह Arteriosclerosis की प्रक्रिया क्यो होती है, इसके कारण का कुछ पता नही चला।

स्रोतोरोध-सिरारोध (Atheroma, Atherosclerosis—Intimal Sclerosis)

महाधमनी (Aorta), तथा विशेषत उसकी हृदय और मस्तिष्क को तथा निम्न शाखाओ को जाने वाली

गाखाओं के अन्त स्तर (Intima) की गहराई मे कही-कही पर उसके सैलो मे वसा अर्थात् Cholesterol तथा उसके Esters, Phospholipids, Neutral Fat (Triglycerides) और प्रोटीन बैठने लगते हैं रक्तभार की वृद्धि Hypertension के कारण Lipoproteins रक्त मे से रक्तवाहिनियों के अन्त स्तर मे प्रवेश करते प्रतीत होते है अर्थात् रक्तवाहिनियो की दीवार मे Permeability के बढने पर रक्तवाहिनियो की दीवार मे वसा वृद्धि होती है अन्त स्तर वृद्धि की यह प्रक्रिया भी हृदय पोषक धमनियो मे पहले होती है मस्तिष्क धमनियो मे बाद मे होती है। कुछ काल बाद इस वसा का कुछ अश इन धमनियो के अन्दर वाले स्तर के पृष्ठ पर भी आ जाता है। जिनमे जहा-जहा यह वसा पृष्ठ पर आती है वहा-वहा का स्नायुतन्तु (Connect, T) फूलकर मोटा हो जाता है, जिससे वहा-वहा वृत्ताकार या अण्डाकार वसामय उभार Atheromatous plaques हो जाते हैं और फिर क्रमश लाइम के साल्ट के बैठने मे अर्थात् Fibrosis और Calcification से ये और कठोर होते जाते हैं, इनके कारण पहले लक्षण नही होते। इन उभारो के बढ जाने के कारण जब न्यूनाधिक स्रोतोरोध हो जाता है तब हृदय, मस्तिष्क या हाथ-पैरो को जाने वाले रक्त मे रुकावट पड कर घोर उपद्रव हो जाया करते है। शरीर मे Lipoid Metabolism या फैट के परिपचन की विकृति, जो कि मेदस्वी तथा मधुमेही मे विशेषत होती है, इस रोग की उत्पत्ति का एक कारण प्रतीत होती है। Atheroma के उभार के ऊपर प्लेटलेट्स के बैठने मे उत्पन्न Thrombosis के कारण स्रोतोरोध होता लगता है।

इस प्रकार Arteriosclerosis को तो केवल वृद्धावस्था का लक्षण मात्र कह सकते है। परन्तु Atherosclerosis को वृद्धावस्था का एक अस्वाभाविक लक्षण या महारोग या उपद्रव कहा जाता है। यह शाकाहारी पशुओ मे नहीं होता है, परन्तु मनुष्यो मे होता है। रक्त मे वसा वृद्धि तथा रक्तभार वृद्धि को इस रोग का प्रधान कारण कहा जा सकता है।

जरावस्था के स्वाभाविक एवं अस्वाभाविक लक्षण

स्वाभाविक जरावस्था ६०-६५ के बाद आरभ होती है जब शरीर तथा मन की सभी शक्तिया घटने लगती है अर्थात् श्रवणशक्ति, दृष्टिशक्ति, श्रमशक्ति, पु स्त्वशक्ति, स्मृतिशक्ति, धृतिशक्ति सभी मन्द होने लगती हैं। अवयवो का पोषण कम होने लगता है वृद्धावस्था के कुछ सामान्य लक्षण यहा दिये जाते हैं।

हृदय सम्बन्धी (Senile Heart)

महाधमनी तथा उसकी शाखाओं मे Arteriosclerosis के होने से हृदय पर कार्यभार बढ जाता है जिससे वह कुछ बडा हो जाता है। Aorta के समान उसके मास तथा लचकीले अवयव मे स्नायुतन्तु या Fibrous Tissue आ जाता है, हृदयमास के सैल छोटे एव कठोर हो जाते है, हृदय कपाटिया, हृदय के अन्दर का स्तर (Endocardium) सभी कुछ-कुछ कठोर हो जाते है। हृदय की सब धमनियो और शिराओ के मासमय भाग मे कठोरता के हो जाने से रक्त जिस बल और गति से वापस हृदय मे आता है वे दोनो भी कम हो जाते है। इस प्रकार सारे शरीर का रक्त सचार निर्बल हो जाता है। रक्त सचार पर निर्भर शरीर की सर्व रचनात्मक (Structural) व पचनात्मक (Enzymatic) प्रक्रियाए कुछ मन्द पड जाती है। रक्तवाहिनियो मे कठोरता के आ जाने से हृदय का अधिक बल से स्पन्दन करना पडता है जिससे रक्तभार कुछ बढ जाता है इसीलिये वृद्धो मे रक्तभार १५०/९० मे कुछ ऊपर रहता है। कईयो मे इससे अधिक रहता है। Cardiac Ischaemia मे थोडे श्रम से सास चढ जाता है। वृद्धो के हृदय नैर्बल्य मे Thiazide श्रेणी की या Frusemide के कभी-कभी देने से विशेष लाभ रहता है।

अब यदि Aorta या हृदयपोषक धमनियो (Coronaries) मे कुछ-कुछ Atherosclerosis भी हो जाय तो हृदयमास मे क्षीणता की प्रक्रिया बढ जाती है जिसके दुष्परिणाम मे हृदय-गति-वैषम्यसूचक रोग जैसे असामयिक स्पन्दन (Extra Systole) हृदय गति लोप या Atrioventricular Block या अति गति वैषम्य (Atrial Fibrillation) हो जाते हैं। ये लक्षण हृदयमास मे जीर्णता के सूचक प्रतीत होते है। परन्तु हृदयशूल (Angina तथा Thrombosis) का लक्षण तो अति स्रोतोरोध का सूचक एवं एक अस्वाभाविक लक्षण है।

मस्तिष्क सम्बन्धी

मस्तिष्क को रक्त ले जाने वाली Carotid Arteries और Basilar Artery तथा उनकी शाखाओ के मासमय स्तर मे कठोरता (Medial Sclerosis) के हो जाने से वृद्धावस्था मे मस्तिष्क को रक्त पर्याप्त मात्रा मे नही मिल पाता, उसमे Gliosis की प्रक्रिया बढ जाती है जिससे मस्तिष्क की सहन शक्ति, धृति (Control) शक्ति, स्मृति शक्ति, विचार शक्ति, समाहित होने तथा प्रसन्न रहने की शक्ति तथा इसी प्रकार दर्शन, श्रवण की शक्तिया

कम हो जाती है। उसकी विचार परिवर्तन करने की शक्ति घट जाती है। प्रत्युत वह नवीन विचार को सुनकर या किन्ही नवीन परिस्थितियो मे जाकर भी व्याकुल सा हो जाता है। वह किसी प्रकार के परिवर्तन को पसन्द नही करता अर्थात् अपने को अवस्थानुसार ढाल लेने की शक्ति उसमे नही रहती। इसीलिये वह प्राचीन काल मे निवास करता है। बीती हुई बातो को याद करता है। साथ ही वह दूसरो की नही सोचता, अपनी ही सोचता हे, इस प्रकार वह कुछ स्वार्थ पर हो जाता है, वह विषाद प्रधान भी हो जाता है। सहन न कर सकने से वह क्रोधशील हो जाता है साथ ही वह अधिक शकाशील हो जाता है। दूसरो के सम्बन्ध मे उसे मिथ्या भ्रम जल्दी हो जाते हैं। हाथो का कम्प (Tremor) भी मस्तिष्क मे Arteriosclerosis का द्योतक होता है। बडी आयु मे पाये जाने वाले शिरोभ्रम (Giddiness या Tinnitus) तथा कुछ-कुछ बुद्धिभ्रंश (Dementia) के लक्षण भी बहुत सम्भवत Arteriosclerosis, Vasomotor instability के कारण होते हैं। इस रोग के कारण वृद्धावस्था मे प्रात जल्दी नीद टूट जाती है और फिर नही आती। इस प्रकार निद्रानाश भी वार्धक्य का लक्षण हे। शिरोभ्रम बहुधा Vasomotor कारण से होता है अत लेटकर जल्दी उठकर खडे होने तथा जल्दी मे अपनी स्थिति को बदलने से बचना चाहिए।

परन्तु जब Internal Carotid तथा Basilar धमनियो मे, जो मस्तिष्क को रक्त पहुचाती हे स्रोतोरोध (Occlusion) की प्रक्रिया अधिक हो जाती है तब मस्तिष्क के सैलो को रक्त की उचित मात्रा नही मिल पाती जिससे उनमे तथा उनसे निकलने वाले नाडी सूत्रो मे क्षीणता की प्रक्रिया होने लगती है। इससे अनेक हलके-हलके नाडी सम्बन्धी लक्षण होने लगते है। यदि अवरोध अधिक बढ जाय तो मस्तिष्क के एक छोटे या बडे भाग को रक्त न मिलने से सिर मे चक्कर सा आता और मूर्छा (Syncope) हो जाती है। जिस भाग को रक्त ठीक नही मिलता वह कुछ मृदु हो जाता या मर सा जाता है (Softening) जिससे किसी अग मे न्यूनाधिक पक्षाघात का लक्षण हो जाता हे या बुद्धि स्मृति आदि के विनाश के लक्षण अधिक स्पष्ट हो जाते है या नाना प्रकार के भ्रमो के हो जाने के लक्षण हो जाते है। वस्तुत वृद्धावस्था मे पाये जाने वाले रोग सूचक लक्षण Medial Sclerosis से न होकर Intimal Sclerosis के ही सूचक होते हैं, कभी-कभी होने वाली मूर्छा (Aphasia) या आक्षेप या टागो मे स्तम्भ या थोडी देर के लिये दृष्टिनाश भी इस रोग के सूचक होते है। मस्तिष्क धमनियो मे Atheroma के कारण सभी मासपेशियो मे स्तब्धता Rigidity उत्पन्न हो जाती हे। इसे Pseudo Parkinsonism कहते हैं। टागो मे स्तब्धता से कदम छोटे-छोटे हो जाते हैं। उसकी बाहुए ग्रीवा आदि सभी स्तब्धावस्था मे रहती हे। उनके ओष्ठ, जिह्वा, तालु, गला, Vocal cords सभी स्तब्धावस्था मे रहते है जिससे खाना निगलना, बोलना सभी कुछ कठिन हो जाता है। वृद्धावस्था मे बहुधा Tendon reflexes घट जाते हैं। यदि मस्तिष्क की किसी धमनी मे ये दोनो प्रक्रियाए विशेष रूप मे हो गई हो, रक्तभार भी कुछ बढा हुआ हो तो सहसा भारी श्रम करने पर या क्रोध आदि का मानसिक आवेग होने पर यह धमनी फट जाती है और मस्तिष्क मे न्यूनाधिक रक्तस्राव होकर सन्यास मूर्छा (Coma) का रोग होकर प्राय मृत्यु हो सकती है। Retina की धमनियो मे Arteriosclerosis हो तो दृष्टि मन्दता का लक्षण होता है। Central artery मे Atherosclerosis हो तो दृष्टिनाश का लक्षण हो जाता है।

मूत्र सम्बन्धी

वृक्को को रक्त पहुचाने वाली बडी वृक्क धमनियो मे वृद्धावस्था मे न्यूनाधिक Arteriosclerosis या धमनीकाठिन्य का रोग हो जाता है। इससे वृक्को के अन्दर भी न्यूनाधिक स्नायुभाव (Fibrosis) हो जाता है (Nephrosclerosis) अर्थात् वृक्को की Reserve शक्ति या अतिरिक्त कार्य को कर लेने की शक्ति घट जाती है। परन्तु इसके कारण उनकी कार्यशक्ति ४० प्रतिशत के लगभग ही घटती है। इससे कोई रोग प्रकट नही होता।

परन्तु यदि इन्ही वृक्क (Renal) धमनियो के अन्त -स्तर मे रोध हो जाय अर्थात् Atherosclerosis की प्रक्रिया आरम्भ हो जाय तो वृक्को के मृदु अवयवो मे स्नायुतन्तु बढने लगता है। अर्थात् धमनीगुच्छो (Glomeruli) तथा मूत्रस्राविणियो (Tubules) मे क्षीणता (Hyalinization तथा Fibrosis) की प्रक्रिया हो जाती है जिसे Benign Nephrosclerosis का रोग कहते हैं वह हो जाता हे। इससे मूत्र कुछ पतला हो जाता है अर्थात् उसकी स्पेसिफिक ग्रेविटी घट जाती है रात्रिमेह होता है। उसमे अलब्यूमिन भी होता है। इसके कारण कुछ रक्तभार भी बढ जाता हे तथा रक्त मे Urea की मात्रा बढ जाती है परन्तु तो भी वृक्को की कार्यशक्ति इतनी नहीं घटती कि उससे कोई रोग विशेष प्रकट हो। यह रोगमारक नहीं है।

यह रोग Arteriolar Nephrosclerosis से जो रक्त भार के उपद्रव रूप में वृक्कों के अन्दर की सूक्ष्म धमनियों के अन्तःस्तर Endothelium में क्षीणता की प्रक्रिया (Hyaline Degeneration) के हो जाने और उनमें स्रोतोरोध के हो जाने से और फिर वृक्कों के कार्यकारी भाग में स्नायुभाव हो जाने से होता है और भयकर रोग है, भिन्न है। वह रोग तो वृद्धावस्था में कुछ पहले होता है।

वृद्धावस्था में Prostate ग्रन्थि के अन्दर भी मांस भाग कम हो जाता तथा स्नायुतन्तु बढ जाता है। इस ग्रन्थि के आकार में वृद्धि हो जाने से मूत्र मार्ग में अवरोध हो जाता है, Pyelonephritis का रोग भी न्यूनाधिक मात्रा में होने लगता है।

वृद्धावस्था में मूत्र पर मस्तिष्क नाडियों का या Cortex का नियन्त्रण शिथिल हो जाता है जिससे Incontinence का रोग हो सकता है। नाडी मण्डल की विक्षोभशीलता (Excitability) के कारण ऐसा होता प्रतीत होता है। प्रोस्टेट ग्रन्थि की वृद्धि में भी यह लक्षण होता है।

कोष्ठ सबंधी (Arteriosclerosis or Atherosclerosis of the Mesentery Vessels)

कोष्ठस्थ अंगों को रक्त पहुचाने वाली धमनियों की मांसमय स्तर के कठोर हो जाने से कोष्ठस्थ अगों को रक्त की पूर्ण मात्रा नहीं मिल पाती जिससे आमाशय में एसिड की उत्पत्ति कम हो जाती है। भूख तथा पाचन शक्ति घट जाती अन्नारुचि आध्मान और दर्द के लक्षण रहते हैं। अग्न्याशय में Trypsin तथा Insulin की उत्पत्ति घट जाती है, यकृत् भी आकार में कुछ छोटा हो जाता है। आंतों में विशेषत वृहदन्त्र की दीवार में लघुता (Atrophy) और अशक्ति बढ जाती है, इसी से वृद्धावस्था में प्रायः मलबन्ध की शिकायत रहती है तथा पोषण न होने से भार घटता जाता है।

अब यदि इन धमनियों में स्रोतोरोध (Atherosclerosis) की प्रक्रिया भी होने लगे तो अजीर्ण (Achylia) मधुमेह, तीव्र मलबन्ध के या पेट में हवा (गैस) के रहने के लक्षण होने लगते हैं। कभी-कभी किसी धमनी में विशेषत Sup Mesent Art की शाखा में पूर्ण अवरोध Thrombosis हो जाने से आंत के एक भाग को रक्त मिलना बन्द हो जाता है (Inchaemia हो जाता है) तब आंत का वह भाग मृत (Infarcted) हो जाता है। उसमें शीतव्रण (Gangrene) होकर उदरशोथ (Peritonitis) का रोग हो जाता है। इस अवस्था में कोष्ठ की दीवार में स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है। वह काष्ठ की तरह होती है। रोगी को मध्य कोष्ठ या ऊर्ध्व कोष्ठ में तीव्र कोष्ठशूल (Angina Abdominis) का लक्षण होता है। रोगी को वमन भी होती है। परीक्षा करने पर रोगी का रक्तभार या तो बढा होता है, यदि वह घटा होता है तो साथ ही शरीर का तापमान भी गिर जाता है। उसी समय शल्यकर्म करके Embolus को निकाल कर मृत आंत को निकालने का कर्म न हो सके तो यह एक मारक रोग है। पेट में दर्द Amaebic Liver Abscess से भी होता है, ऊपर के भाग में भारी दर्द Cardiac Infarction से भी हो सकता है उनसे इसका भेद करना चाहिये।

जंघा सम्बन्धी

जंघा सम्बन्धी धमनियों में Arteriosclerosis के होने से कोई विशेष लक्षण नहीं होते जब तक कि उनमें स्रोतोरोध या Atherosclerosis न हो। दोनों जंघाओं में स्तम्भ (Atrophic Paraplegia) का लक्षण बहुधा हो जाता है। जिसका कारण या तो Anterior Spinal Artery में जो कि Vertebral धमनी की एक शाखा है तथा जिसमें कि Cirvical, Intercostal तथा Lumber Arteries की शाखायें आकर मिलती हैं Atherosclerosis का होना है। अथवा हो सकता है कि मस्तिष्क धमनियों में स्रोतोरोध होने से ऐसा होता हो।

जांघ की धमनियों में विशेषत अधोजंघा तथा पांव को रक्त देने वाली Posterior Tibial तथा पांव के ऊपरले पृष्ठ की, पांव को रक्त देने वाली Dorsalis Pedis में न्यूनाधिक Atherosclerosis की प्रक्रिया हो जाने पर टांगों के निर्बल हो जाने के अतिरिक्त जंघा तथा पांव सम्बन्धी ये लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

(१) जब पैरों को रक्त कम मिलता है तो अंगुलियों के सिरे तथा पैर ठंडे से रहते हैं। एक पांव दूसरे की अपेक्षा अधिक ठंडा रहे तो इस रोग का निश्चय हो जाता है।

(२) अंगुलियों को रक्त न मिलने से उनका रंग कुछ पाण्डुर सा रहता है। उनकी त्वचा पतली पड जाती है। उनके नीचे की वसा सूख जाती है, नख कठोर, खुर्दरे तथा भंगुर हो जाते हैं। उन पर बाल नहीं रहते उनकी मांसपेशियां सूख जाती है। लेटकर पैरों को हृदय के लैवल से ऊपर रखा जाय तो उनमें रक्त के सर्वथा न पहुंचने से वे और अधिक पाण्डुर हो जाते हैं फिर उन्हें नीचा करने पर भी कुछ देर उनकी शिरायें दबी हुई ही

रहती है। कुछ देर नीचे लटकाये रखने पर ही फिर उनमे लालिमा आती है।

(३) इसीलिये रात को सोते समय जब पैरो की मासपेशियो व नाडियो को उचित मात्रा मे रक्त नही मिल पाता तब मासपेशियो मे उद्वेष्टन (Cramps) होने लगते है तथा पिण्डलियो और पैरो मे विशेषत अगुलियो मे दर्द होने लगता है इसे विश्रामकालिक पिण्डिकोद्वेष्टन तथा विश्रामकालिक पादशूल (Night Cramp, Ischaemic Neuropathy तथा Rest Pain) कहते है। पादाङ्गुलियो मे चमचमाहट Tingling तथा सुप्ति सी प्रतीत होती है। रोगी उठकर जब पैरो, पिण्डलियो को मलता व कुछ गरम करता है तब इन लक्षणो मे शान्ति पडती है। या वह जब टागो को विस्तरे से नीचे लटका देता है तो भी ये लक्षण शान्त हो जाते है। इस अवस्था मे पाव को शीत सहन नही होता क्योकि उससे रक्तवाहिनियो मे सकोच और बढ जाता है। Ischaemia से टागो की मासपेशियो मे निर्वलता लगती है। सोने से पहले पैरो को गर्म पानी मे रखने या धोने से तथा Nicotinsic Acid के ५०-१०० मिलि० मात्रा मे दिन मे २ वार लेने से आराम मिलता है।

(४) अवरोध अधिक हो तो कुछ दूर चलने पर जघाओ की मासपेशियो को आवश्यक रक्त की मात्रा नही मिल पाती तो पिण्डलियो की मासपेशियो मे उद्वेष्टन होकर तीव्र जघाशूल (Angina Cruris, Intermittent Claudication) होने लगता है जिसमे आगे कदम रखना असम्भव हो जाता है, रोगी वही खडा हो जाता है, खडा होने से यह दर्द तुरन्त शात हो जाता है। यद्यपि दोनो जघाओ की रक्तवाहिनियो मे Atherosclerosis होता है पर दर्द बहुधा एक ही टाग मे होता है। ऐसा भी हो सकता है कि यह शूल पिण्डलियो के स्थान पर पैर मे ऊर्ध्वजघा मे या नितम्ब मे प्रतीत हो।

(५) कुछ काल बाद जब पैरो मे पहुचने वाले रक्त की मात्रा और घट जाती है तब उनमे चोट लगकर हुए व्रण शीघ्र भरने मे नहीं आते। पामाव्रण (Eczema) हो जाय तो उसे भी देर से आराम आता है। मधुमेह हो तो शीतव्रण (Gangrene) होने की आशका रहती है। जघा की प्रान्तीय नाडियो मे रक्त के ठीक न पहुचने मे Peripheral Neuritis का लक्षण हो जाता है।

श्वास सम्बन्धी

वृद्धावस्था मे श्वासनालियो तथा श्वासकोष्ठको मे तथा श्वास सम्बन्धी मॉसपेशियो मे कठोरता (Fibrosis) की प्रक्रिया हो जाती है तथा निर्वलता आ जाती है जिससे फुफ्फुसो की Vital Capacity घट जाती है। कुछ श्रम करने पर श्वास चढ जाता है। दूसरे शब्दो मे, फुफ्फुस वायु सचय (Emphysima) का विकार हो जाया करता है। साथ ही पुफुस मे स्राव अधिक सचित हो जाता है जिससे पुफुस मे Infection सुगमता से हो जाता है।

सधियो सम्बन्धी

सधियो मे विशेषत. कूल्हे, गोडे या रीढ की हड्डी की कटिप्रदेशीय (Lumber) सधियो की तरुणास्थि का पोषण कम हो जाता है वह खुर्दरी विषमाकृति और क्षीण हो जाती है। सधि के सभी भागो मे विशेषत अस्थियो के सिरो मे पोषण के अभाव मे कठोरता (Ossification, Fibrosis) की प्रक्रिया हो जाती है। सधि के स्नायुतन्तु से बने अवयव भी कठोर हो जाते हैं। किसी एक सधि मे प्राय यह लक्षण विशेषता से होता हुआ देखा जाता है। इसे वृद्धसुलभसधि रोग (Osteo arthritis) कहा जाता है। यह वृद्धावस्था का अस्वाभाविक लक्षण है। स्वभावत Arteriosclerosis या धमनीकाठिन्य के कारण सभी सधियो मे लचकीले अवयव के स्थान पर स्नायुतन्तु के आ जाने से स्तब्धता आ जाया करती है, तथा प्रात काल विस्तरे से उठने पर यह स्तब्धता विशेष लगती है। फिर चलने-फिरने से यह लुप्त हो जाती है। यह वृद्धावस्था का स्वाभाविक लक्षण है। मालिश और व्यायाम करने वालो मे ये रोग कम होते हैं। भारी व्यक्ति मे अधिक होते है।

जीवाणु प्रतिरोध सम्बन्धी—श्वासमार्ग, सूत्रमार्ग, अन्नमार्ग आदि को रक्त कम मिलने से उनकी जीवाणुरोधक शक्ति घट जाती है।

अस्थियो—मे कैल्सियम की न्यूनता हो जाया करती है अर्थात् Osteoporosis हो जाता है जिससे वे वृद्धावस्था मे अधिक पोली व भगुर हो जाती है। जिससे थोडा प्रबल झटका लगने से भी वे टूट जाती है। Femur की ऊपर की ग्रीवा, Radius के निचले सिरे पर Fracture हो जाता है। Spine मे इस रोग के कारण पृष्ठ कसेरु दब जाते हैं पृष्ठ मे वेदना होती है और कसेरुओ के दबने मे व्यक्ति की ऊचाई कम हो जाती है। भ्रमणशील व्यक्तियो मे Decalcification की प्रक्रिया मन्द होती है।

मासपेशियो—का पोषण Arteriosclerosis के कारण कम हो जाता है जिससे थोड़े श्रम से थक जाती हैं। वृद्धावस्था में प्रसारक (Extensor) मासपेशियो की अपेक्षा Flexor या सकोचक मासपेशियो मे Tone वढ जाती हे जिससे वृद्ध व्यक्ति के चलते समय उसकी टागे गोडो तथा कूल्हे की सधियो पर कुछ-कुछ सकुचित हुई रहती हे।

त्वचा सबधी—त्वचा मे शुष्कता, छिलको का झडना, मृदुता की कमी, नखो की भगुरता दवाने के वाद उसमे रग का देर से आना, व्रण का शीघ्र न भरना उसमे रक्त की पहुच की न्यूनता को सूचित करते हैं।

इस प्रकार Arteriosclerosis से वृद्धावस्था उत्पन्न होती है, परन्तु मृत्यु Atherosclerosis की अधिकता से होती है।

वृद्धावस्था के अन्त मे मृत्यु २५ प्रतिशत व्यक्तियो मे हृदय रोग से, २५ प्रतिशत के लगभग फुफ्फुस सम्बन्धी रोगो से, २५ प्रतिशत की मस्तिष्क धमनी सम्बन्धी रोगो से, १५ प्रतिशत केन्सर से, ८ प्रतिशत के लगभग वृक्क रोगो से तथा शेष की अन्यान्य रोगो से होती है।

कारण

पैतृक परम्परा (Heredity) के अतिरिक्त Arteriosclerosis तथा Atherosclerosis के कारण का अभी तक ठीक-ठीक पता नही चला। इनमे से प्रथम प्रक्रिया को कोई किसी न्यूनता के कारण उत्पन्न हुआ मानते हैं। (Deficiency Theory) अर्थात् नाना प्रकार के विटामिनो की न्यूनता से या Endocrines की न्यूनता से यह प्रक्रिया होती है। कोई अनैच्छिक नाडी मण्डल (Autonomic N System) की विक्षोभशीलता से इसे उत्पन्न होता मानते हैं।

इनमे से दूसरे Atherosclerosis के कारण के विषय मे भी अभी तक कोई निश्चित मत नही। ज्यो-ज्यो आयु वढती है, इसकी प्रक्रिया भी त्यो-त्यो वढती जाती है। अत सम्भव है रक्त मे किसी पदार्थ की वृद्धि विशेषत Cholesterol ester या Lipoproteins या Plasma lipids की वृद्धि से ऐसा होता हो। देखा जाता है कि वनस्पतिभोजियो की अपेक्षा मासाहारियो की रक्तवाहिनियो मे यह प्रक्रिया तीव्रता से होती है। Unsaturated Fatty Acids की अपेक्षा Saturated Fatty Acids को अधिक मात्रा मे लेने वालो मे यह प्रक्रिया तीव्रता से होती है। पतले व्यक्तियो की अपेक्षा स्थूल व्यक्तियो मे यह अधिक पाई जाती हे। श्रम करने वालो की अपेक्षा वैठे रहने वालो की रक्तवाहिनियो मे यह प्रक्रिया अधिक होती है। तम्बाकू पीने वालो मे तथा फिरग रोग एव मधुमेह रोग से ग्रस्त व्यक्तियो से जब रक्त मे Cholesterol वढा हुआ होता है Atherosclerosis की प्रक्रिया अधिक तीव्रता से होती है। इसी प्रकार दूसरे विषैले द्रव्यो के रक्त मे रहने से भी, सम्भव है, इस रोग की प्रवृत्ति वढती है (Toxaemic theory of Atherosclerosis) उत्तरोत्तर धनी व्यक्तियो मे शारीरिक श्रम के कम लेने, भोजन के विशेषत जान्तव फैट्स के अधिक लेने, सासारिक चिन्ताओ मे अधिक ग्रस्त रहने से Atheroma की प्रक्रिया वढती जाती है। चिरकाल तक उत्तेजक गुण वाली औषधे लेते रहने से भी हृदय पर स्थायी दुष्प्रभाव पडता है।

धमनीजरा रोग (Arteriosclerosis तथा Atherosclerosis) **की प्रतिरोधक चिकित्सा**

भोजन सम्बन्धी—वडी आयु मे रक्त के अन्दर खाण्ड के वढ जाने की प्रवृत्ति रहती है, इसलिये खाण्ड का सेवन इस आयु मे कम कर देना चाहिये। लवण भी वृक्को द्वारा शरीर से निकलता है और इससे उनका कार्यभार वढता है, अत इसका सेवन भी परिमित मात्रा मे ही रखना चाहिये। प्रोटीन भोजन भी Urea के रूप मे वृक्को से निकलते है, अत इनके शरीर के लिये आवश्यक होने पर भी इनका सेवन अधिक नही करना चाहिये। फैट्स मे भी Saturated फैट्स का प्रयोग वहुत कम कर देना चाहिये, क्योकि इनसे Atheroma की प्रक्रिया तीव्र होती है, स्पष्ट हे कि वनस्पति घी का प्रयोग भी नही करना चाहिये। आमाशय मे एसिड की उत्पत्ति इस आयु मे कम हो जाती है, अत घृत-तेल आदि मे तले हुए द्रव्यो, मिठाइयो, टौफी, चौकलेट्स आदि का त्याग करके साधारण भोजन का भी एक वार मे अति मात्रा मे प्रयोग नही करना चाहिये। घृत के स्थान पर तिल तेल, मूगफली तेल, जैतून तेल आदि किसी का प्रयोग करना चाहिये (खोपरे के तेल का नही)। सक्षेपत दूध, फल, सब्जी प्रधान ऐसा आहार जिसमे प्रोटीन हो, अन्न तथा घृत की मात्रा अधिक न हो, थोडा-थोडा करके दिन में तीन-चार वार करना चाहिये। फलो मे विटामिन 'सी' होता है जिससे Atherosclerosis की प्रक्रिया मन्द पड जाती है अत फल भी आयुवर्धक होते हैं। अण्डा लेते हो तो सप्ताह मे ३-४ से अधिक नही लेने चाहिये। दूध भी जो फैट से रहित हो, वही लेना चाहिये। रात्रि को आहार के अधिक मात्रा में करने या च य या दूध के लेने से भी मूत्र के लिये उठना पडता है अत कोई सा थोडा कार्वो-

हाइड्रेट भोजन लेना चाहिए। इस प्रकार वानस्पतिक भोजन के स्वल्प परन्तु उचित मात्रा मे लेने से Atherosclerosis को रोका जा सकता है। अनुभव तथा ससारभर के Statistics बताते है कि स्थूलता मे धमनी रोग, हृदय रोग, वृक्क रोग, मधुमेह रोग होने की आशका अधिक रहती है इसीलिये स्थूल व्यक्ति दीर्घायु नही होते और स्थूलता का प्रधान कारण अतिमात्रा मे आहार का लेना अर्थात् शरीर मे जितनी Calories का खर्च हो, उसमे अधिक Calories का लेना है अतएव आहार की मात्रा को कम रखना दीर्घायु होने की एक कुन्जी समझना चाहिये। बडी आयु मे जल प्रभूत मात्रा मे २½, ३ सेर तक पीना चाहिये। इससे न केवल मल, मूत्र, स्वेद आदि खुलकर होते हैं साथ ही इससे Vasomotor शक्ति बढती है जिससे शिरोभ्रम, पैरो मे दर्द (Cramps) आदि कष्ट भी शान्त रहते है, सैलो मे विद्यमान जल की न्यूनता का भी कुछ प्रतिकार होता है। ग्लूकोज या शहद भी इस आयु मे शरीर की शक्ति को बढाने के लिये उत्तम आहार हैं, सम्भव है ये Atherosclerosis के निवारक भी हो। तम्बाकू खाया जाता या पिया जाता हो तो उसके बन्द करने से भी इस रोग को रोका जा सकता है।

श्रम तथा विश्राम सम्बन्धी

बडी आयु के व्यक्तियो को रात को ८, ९ घण्टे तथा दिन मे १-२ घण्टे का पूर्ण विश्राम तो करना ही चाहिये, क्योकि इससे शरीर के पोषण मे सहायता मिलती है, शेष दिन मे बहुत से समय मे उन्हे किसी रुचि अनुकूल शारीरिक या मानसिक कार्य मे लगे रहना चाहिये। कम से कम ४ घण्टे किसी शारीरिक श्रम और ४ घण्टे किसी मानसिक श्रम मे लगाने चाहिए। इस आयु मे दिन-भर शय्याशायी और उदासीन रहने वालो की अपेक्षा दिन-भर किसी कार्य मे व्यस्त रहने वाले प्रसन्न वदन व्यक्ति अधिक चिरायु होते है। इसके अतिरिक्त प्रात साय खुली हवा मे भ्रमण करने, यथाशक्ति मृदु व्यायाम करने से शरीर की मासपेशियो तथा हृदय आदि को रक्त अधिक मात्रा मे मिलता है और उनका पोषण अच्छा होता है, इससे भूख भी अच्छी लगती है व्यायाम करने वालो मे धमनी रोग Atheroma या Arteriosclerosis की प्रक्रिया कम होती है। भ्रमणशीलता से Incontinence का विकार भी नहीं होता, शरीर के जिस प्रदेश का रक्त अवरुद्ध होता है वहाँ Collateral Circulation भी भ्रमण तथा मृदु व्यायाम से बढता है अत जघाशूल रोग होने पर भी रोगी को चलते रहना चाहिये, पर शूल के प्रकट होते ही ३-४ मि० बैठ जाना चाहिये। व्यायाम के अतिरिक्त सारे शरीर पर तैलाभ्यग करने से सिर, कान, नासिका आदि मे तैल, घृत, बादाम रोगन आदि का प्रयोग करते रहने से भी शरीर के भिन्न-भिन्न अगो का पोषण बढता है। वृद्ध व्यक्ति को अधिक सर्दी तथा अधिक गर्मी दोनो से ही बचना चाहिये। You are as young as you feel की लोकोक्ति के अनुसार मनुष्य को सदा अपने को युवा ही अनुभव करना चाहिए, प्रसन्न वदन और आशावादी रहना चाहिए।

बूर्जर की व्यायाम (Buerger's Exercise)

विश्रामजनित पादशूल या श्रमजनित जघाशूल को, जो कि जघा धमनियो मे अवरोध से उत्पन्न होते हैं, निवृत्ति के लिये रोगी को यह व्यायाम एक बार मे ५ बार तथा दिन मे ३-४ बार नित्य प्रति करना चाहिये। एक तख्त पर पीठ के भार सीधे लेटकर (१) पहले दोनो टागो को ४५ डिग्री पर ऊपर उठाकर १-२ मिनट के लिये उसी स्थिति मे (दीवार अथवा कुर्सी का सहारा लेकर) रखना चाहिये। (२) फिर तख्त के सिरे पर दोनो निम्न जघाओ को तख्त के नीचे लटका देना चाहिये, और उस स्थिति मे २-५ मिनट उन्हे रखना चाहिये। इस बीच मे पैरो को ऊपर नीचे तथा अन्दर बाहर ८-१० बार मोडना चाहिये। अगुलियो को भी फैलाते तथा बन्द करते रहना चाहिये। फिर दोनो टागो को सीधा १८० डिग्री पर फैला देना चाहिये। २ मिनट वैसा ही रखना चाहिये। इस व्यायाम से टागो तथा पैरो मे रक्त की अधिक मात्रा आने-जाने लगती है। दिन के समय पैर की अगुलियो को कई बार मलना चाहिये ताकि शिराओ मे विद्यमान रक्त वापिस हो सके। रात को Rest pain या पिण्डिकोद्वेष्टन (Cramp) से बचने के लिये चारपाई के सिर की तरफ के सिरे को एक फुट ऊचा कर देना चाहिये ताकि रक्त पैरो तक सुगमता से जा सके। पैरो को रजाई से बाहर रखना चाहिये ताकि वे ठण्डे रहे। ऊपर के शरीर को रजाई या गर्म बोतलो से गर्म रखना चाहिये। दिन के समय अधिक चलने से बचना चाहिये।

निवास सम्बन्धी

इस आयु के व्यक्ति को अपने परिवार मे प्रसन्नता और निश्चिन्तता का वातावरण मिले तो वहाँ रहना ठीक है। परन्तु यदि हमेशा बाल-बच्चो के साथ रहने से उनमे वृद्ध के लिये प्रेम व आदर घटता है अत उनके पास कभी-कभी रहना ही उचित है पर यदि वहा कुछ भी कलह या चिन्ता का वातावरण हो तो उसे ऐसे अशान्त स्थान से दूर

अपने स्वतन्त्र स्थान मे रहते हुए अपना कार्य अपने आप कर लेने का यत्न करना चाहिये। मानसिक शान्ति से जरा का वेग कम होता है। वृद्ध व्यक्ति बहुधा स्वार्थी, आदर का इच्छुक तथा विरोधी विचारो के लिये असहिष्णु हो जाता है अत उसे दूसरो के साथ रहते हुए इन दोषो से बचने का यत्न करना चाहिये।

औषध सम्बन्धी

Atherosclerosis जो Coronary arteries मे विशेष होती है उसके वेग को रोकने के लिये मधुमेह रोग हो तो उसकी पूर्ण चिकित्सा करनी चाहिए, विटामिन बी$_{12}$ को १-२ हजार मा० ग्रा० मात्रा मे कुछ काल देना चाहिये इससे Cholesterin की मात्रा रक्त मे घटती है। तम्बाकू का सेवन सर्वथा बन्द कर देना चाहिये। Saturated के स्थान पर Unsaturated स्नेह का सेवन करना चाहिये। Diethylstilboestrol (Stilboestrol-Clinestrol) १ मिलि० अथवा Aethinyloestradiol (Aestradiol) १ मिलि० दैनिक मात्रा मे सेवन करते रहने से इस रोग की रोकथाम करता है ऐसा माना जाता है, इसका Methyl testosterone के साथ प्रयोग (जैसे Mixogen Organon, Hormindon, Indopharma, Femandren Ciba) अधिक लाभदायक होता है। वृद्धावस्था सम्बन्धी कष्टो के लिये प्रयुक्त होने वाली औषधियो मे इन दोनो का Vitamins के साथ प्रयोग किया जाता है (जैसे Geriatone wyeth, Gerobion, E Merck, Geriatindon Indopharma)। ऊपर (हृदयशूल मे) कही गई Anticoagulant (Dindevan, Sintrom) औषधें तो उस मात्रा मे कि जिससे रोगी का Prothrombin Time २ गुणा से अधिक न हो, इस रोग की रोकथाम के लिये उपयोगी हैं परन्तु यह चिकित्सा भी इस रोग के लिये कोई उत्साहजनक सावित नहीं हुई। विटा० 'ए', विटा० 'ई', विटा० बी$_6$ (Sclerobeon Merck, Rovigon Roche, Linatol Fairdeal) के देने का रिवाज भी है। विटामिन 'ई' को प्राणियो मे आयुवर्धक पाया गया है तथा Nicotinic Acid तथा Ronicol, Ciba (Beta-Pyridyl Carbinol) २५ मिलि० गोलियो का तथा Vitamin E और Pyridoxine और Nicotinic Acid से बने Collofac (Crookes) लिक्विड का प्रयोग भी किया जाता है पर इनसे लाभ कितना है इसके विषय मे अभी तक निश्चय नही हो पाया है। Ascorbic Acid भी बहुत सभवत सूक्ष्म रक्तवाहिनियो की भगुरता को रोकता है। इस प्रकार विटामिन A, B तथा 'C' Atherosclerosis की गति को मन्द करते हैं।

जघाओ की धमनियो मे अवरोध या स्तभ (Spasm) होकर पाव व जघाओ मे श्रमजनित जघाशूल या विश्रामजनित जघाशूल के लक्षण हो तो रोगी को धीरे-धीरे चलना चाहिये। Papaverine HCl १०० मिलि० के ४-४ घ० पर देने से भी लाभ हो जाता है तथा निम्नलिखित सिरा प्रसारक (Vasodilator) या Peripheral Vasodilator औषधो के प्रयोग से शान्ति पड जाती है। इनमे से कुछ एक नीचे दी जाती है (परन्तु इन औषधो से जब सारे शरीर की रक्तवाहिनियो मे प्रसार या शैथिल्य होता है तो जिस अग को पहले ही कम रक्त मिल रहा है उसे और भी कम रक्त पहुचता है अत इनका प्रभाव प्राय निराशाजनक होता है)।

(१) Phenoxybenzamine (Dibenyline, Dibenzyline Smith Kline & French), जो धमनियो की मासमय दीवार मे आने वाली Sympathetic नाडी सूत्रो पर शामक प्रभाव करके धमनियो को सकुचित होने से रोकने वाली (Sympatholytic, Adrenolytic, Adrenergic Blocking अर्थात् Adrenaline तथा Noradrenaline के प्रभाव के रोकने वाली) दवा है, १० मिलि० मात्रा, कैप्स्यूल मे मिलती है, दिन मे २ बार भोजन के बाद इसका एक-एक कैप्स्यूल दिया जाता है। प्रति किलोग्राम भार के पीछे आधे या १ मिलि० मात्रा मे २५०-५०० सी०सी० नार्मल सेलाइन या ग्लूकोज़ सोल्यूशन के साथ शिरा द्वारा भी दी जाती है। प्रान्तभागो को रक्त पहुचाने के लिए उत्तम औषध है। नासारोध, हृत्कम्प, अरुचि, शिरोभ्रम आदि उपद्रव हो सकते है।

(२) Tolazoline Hydrochloride (Priscol), जो एक मृदु सिम्पेथेटिक शामक (Sympatholytic) औषध है साथ ही सीधा प्रान्तीय रक्तवाहिनियो की प्रसारक औषध (Direct-Vasodilator) भी है शरीर के किसी भाग की रक्तवाहिनियो मे अवरोध हो तो उसके दूर करने के लिये इसकी २५ मिलि० की गोलिया दिन मे तीन बार दे दी जाती हैं। १ सी०सी० मे १० मिलि० औषध के इजेक्शन भी मिलते है। जिन्हे मास द्वारा या शिरा द्वारा दिया जा सकता है। इसकी १० प्रतिशत मलहम भी मिलती है जिसके शीत व्रणो (Bed Sores Chilblains) पर लगाने से वहा की रक्तवाहिनियो मे रक्त की

मात्रा बढ जाती है। Intermittent Claudication तथा Raynaud's Disease के लिये लाभदायक है। हृदयशूल-आमाशय व्रण मे इसे नही देना चाहिए क्योकि इससे हृत्कम्प-हृदयशूल-अरुचि, वमन आदि दुर्लक्षण हो सकते है।

(३) Phentolamine Hydrochloride (Regitine) यह भी एक सिराप्रसारक (Vasodilator) औषध है एव धमनियो का स्रोत तग हो गया हो तो उसे खोलती है। ५०-६० मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन ३ बार मुख द्वारा दी जाती है। यह भी Arteriosclerosis के लिये Priscol से अधिक उपयोगी है।

(४) Nicotinic Acid या Nicotinamide भी सिराप्रसारक (Vasodilators) है। १००-२०० मिलि० दैनिक मात्रा मे विभक्त करके मुख द्वारा इनके देने से हाथो, पैरो, तथा हृदय मस्तिष्क आदि मे होने वाली रक्त की कमी दूर होती है। ५० मिलि० मास द्वारा दे।

(५) Nicotinyl Alcohol Tartrate (Ronicol Roche) उपर्युक्त औषधो के समान सिराप्रसारक है पर इसका प्रभाव देर तक रहता है। २५-५० मिलि० मात्रा मे मुख से ३-४ बार देने से हृदय तथा हाथ-पैरो की रक्तवाहिनियो के लिये प्रसारक होती हैं। एक मात्रा का प्रभाव ४ घ० के लगभग रहता है।

(६) Isoxsuprine Hydrochloride (Vasodilan तथा Duvadilan) भी सिम्पेथेटिक शामक है। इसकी १० मिलि० की गोली पहले दिन मे चार बार दी जाती है। फिर क्रमश इसकी मात्रा ३ गोली कर दी जाती है। यह औषध सीधा रक्तवाहिनियो के मास पर प्रभाव करके उन्हे फैलाती है। Cerebral arteriosclerosis मस्तिष्क सम्बन्धी लक्षणो के लिये उपयोगी है। Sex Hormones के साथ बनी गोली Hormoduvadilan भी उपयोगी है।

(७) Nylidrine Hydrochloride (Arlidin) का भी उपर्युक्त औषध के समान गुण है। ५ मिलि० की गोलिया दिन मे तीन बार भोजन के बाद दी जाती है। Night Cramps (रात्रि उद्वेष्टन) के लिए उपयोगी है। हृदयशूल, आमाशय व्रण, Tachycardia मे इसका प्रयोग निषिद्ध है।

(८) Azapetine Phosphate (Ilidar) भी इसी प्रकार की औषध है। २५ मिलि० की गोली दिन मे तीन बार भोजन के बाद एक सप्ताह तक दी जाती है। फिर दो गोली दिन मे तीन बार एक सप्ताह दी जाती हैं। फिर जितनी अनुकूल हो उतनी दी जाती हैं। हृत्कम्प, अरुचि, वमन, शिरोभ्रम, शिरदर्द, आमाशय व्रण आदि करने के दोष इनमे भी है।

(९) Cyclospasmol को १०० मिलि० मात्रा मे दिया जा सकता है।

आयुर्वेद मे रक्तभार रोग तथा धमनी-जरा रोग

शरीर मे दोषो की विशेषत वायु तथा कफवर्धक कारणो से वायु, कफ दोषो की वृद्धि रहने से धमनियो में धीरे-धीरे वात, कफजनित शोथ (Sclerosis तथा Hypertrophy) हो जाता है जिससे जरा के लक्षण समय से पहले हो जाते हैं। धमनी-जरा के कारण जरा रोग होता है अर्थात् धमनियो के रुग्ण होने से जब मस्तिष्क आदि सर्व अगो को यथावत् मात्रा में रक्तगत पोषक द्रव्य नहीं मिलते तो चित्त विषण्ण और म्लान रहता है। उत्साह नहीं रहता, व्यक्ति शारीरिक तथा मानसिक श्रम के लिये असमर्थ हो जाता है, थोडे श्रम से उसे श्वास चढने लगता है। उसकी सर्व मानसिक तथा शारीरिक शक्तिया हीन हो जाती हैं। समय से पहले ही उसके हृदय, मस्तिष्क, वृक्क आदि प्रधान अग जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं। ऐसी निर्बल अवस्था में मनुष्य नाना रोगो से ग्रस्त होकर मृत्यु का ग्रास हो जाता है।

कारण

शरीर में कफदोष की वृद्धि मधुर-अम्ल-अभिष्यन्दी भोजनो के सेवन से तथा मात्रा में अधिक भोजन करते रहने अर्थात् अग्नि मन्दता से और शारीरिक श्रम या व्यायाम के न करने से होती है। इसके विपरीत शरीर की शक्ति से अधिक शारीरिक श्रम या मानसिक श्रम करने से, शुक्रादि धातुओ के अधिक क्षीण हो जाने, काम, क्रोध, भय, शोक आदि आवेशो में ग्रस्त रहने, लघु, रुक्ष, शीतगुण तथा हीनगुण भोजनो, कटु तिक्त-कषाय रसो के अति सेवन से शरीर मे वायुदोष की वृद्धि होती है। कुछ-एक व्यक्तियो मे इन दोषो की वृद्धि का दुष्प्रभाव रक्तवाहिनियो पर ही विशेष रूप से होता है। (च०। चिकि०। १)

रक्तभार-वृद्धि तथा धमनी-जरा रोग की चिकित्सा

रक्तभार-वृद्धि तथा धमनी-जरा-रोग के लिये रसायन-चिकित्सा, अर्थात् आयुवर्धक चिकित्सा, की जाती है।

चरक ने कहा है कि भूख लगने पर भोजन करने से, मल-मूत्र-स्वेद आदि मलो को देह में से यथोचित रूप में प्रवृत्त करते रहने से, उचित मात्रा में निद्रा और आराम लेते रहने से, अति शारीरिक श्रम से वचते हुए मृदु व्यायाम करने से, काम, हिंसा आदि मानसिक आवेशो से बचने से, वीर्य की रक्षा करने से, सदा शान्त रहने का यत्न करने से, सर्व इन्द्रियो के सयम से तथा घृत-क्षीर-प्रधान आहार लेने से आयु बढती है। प्रात.काल उषापान करने या प्रात' घृत और मधु मिलाकर चाटने से भी आयु वढती है। प्रात काल नित्य अभ्यंग करने और खुली हवा में व्यायाम करने से भी जरा का वेग मन्द हो जाता है। वाग्भट्ट ने कहा है—

"अभ्यंगमाचरेन्नित्य स जराश्रमवातहा।"
(चि०।अ०१)

सुश्रुत ने कहा है—

आरोग्य चापि परम व्यायामादुपजायते।
न च व्यायामिन शीघ्रं जरा समधिरोहति॥
(सु०। चि०। ४)

औषधियो मे से हरीतकी, आमलकी, ब्राह्मी, शख-पुष्पी, भृंगराज, गुडूची, शिलाजतु, लशुन, सुवर्ण आदि रसायन मानी जाती हैं।

१. रसायन रूप से हरीतकी का प्रयोग किया जाता है। २-३ माशे की मात्रा मे इसे शरद् ऋतु में खाड, हेमन्त में सोठ, शिशिर में पीपल, वसन्त में मधु, गर्मी में गुड तथा वर्षा में सेंधा नमक के साथ प्रतिदिन लिया जाता है। मात्रा वह ठीक है जो रेचक न हो।

२ आमलकी को च्यवनप्राश के रूप में या आमलकी रसायन (आमला, हरड, २½ सेर पकाकर कपडे में से छानकर १० तोला गोघृत में भूनकर ५ सेर चीनी की चाशनी मे डालकर बाद में छोटी इला-यची, अगर, तगर, मासी, वंशलोचन, गुलाब, धनिया, काला जीरा १-१ तोला मिलायें) अथवा मुरब्बे के रूप में प्रात दूध के साथ लिया जाता है।

३ समान-समान आमला (हृद्य), गिलोय (यकृच्छोधक) और गोखरू (मूत्रल) का बना चूर्ण दो-तीन माशे की मात्रा में घृत और मिश्री के साथ लिया जाता है। (वैद्य जीवन)

४ आमला ४ भाग, भृंगराज २ भाग, हरड, शख-पुष्पी, विडग १-१ भाग, मिश्री सर्वतुल्य भाग मिलाकर बनाया हुआ चूर्ण १-२ माशा मात्रा में प्रतिदिन इसी उद्देश्य से लिया जाता है।

५ ब्राह्मी का प्रयोग भी रसायन है। इसका स्वरस ½ तोला या ब्राह्मीचूर्ण २ माशे की मात्रा में प्रति-दिन लेने से रसायन गुण होते है। ब्राह्मी घृत (सु० चि०।२८) (स्वरस या कषाय ४ सेर, घृत ४ पाव, विडग २० तोला, वचा, शंखपुष्पी और त्रिवृत १०-१० तोला, हरड, आवला, और बहेडा २०-२० तोला) ६ माशे की मात्रा मे लेने से रसायन गुण होता है। ब्राह्मी-शखपुष्पी का समान भाग चूर्ण भी २-३ माशे की मात्रा में तथा इनकी चाय भी रसायन है।

६ त्रिफला चूर्ण २-३ माशे की मात्रा मे मधु और घृत के साथ प्रतिदिन चाटने से रसायन गुण होता है। त्रिफला रसायन (चि०।चि०।अ० १) (त्रिफला, पिप्पली, वंशलोचन, मुलहठी, प्रत्येक १-१ भाग) मधु, घृत, के साथ लेने से रसायन गुण है। या ब्राह्मी, शखपुष्पी, भागरा १-१ भाग, आंवला-हरड ४-४ भाग, इलायची छोटी ½ भाग, मिश्री सबके बराबर मिलाकर बनाया चूर्ण २ माशे की मात्रा में मधु, घृत के साथ २ बार लेना भी रसायन गुण है।

७ शिलाजीत या चन्द्रप्रभा प्रतिदिन लेने से भी रसायन गुण होते हैं।

८ स्वर्ण भस्म तथा उसके योगो को भी आयुवर्धक कहा जाता है।

त्रिफला, शिलाजतु तथा गुग्गुलु कफशामक होने के कारण रक्तवाहिनियो में होने वाले Atheroma की प्रक्रिया के रोधक प्रतीत होते हैं। इसीलिए वृद्धावस्था के विकारो में इन्हें दिया जाता है।

रक्तभार को, जिसके कारण हृदय रोग होते हैं, शीघ्र कम करने के लिये इनमें से किसी रसायन औषधि का सर्प-गन्धा के साथ प्रयोग करना चाहिये।

उदाहरणतः—

(१) त्रिफला, सर्पगन्धा प्रत्येक को समान मात्रा में मिला बिल्वपत्र स्वरस से मर्दन कर चूर्ण कर ½ माशे की मात्रा में दिन में दो वार लिया जाता है, अथवा

(२) शिलाजीत को ६ गुणा सर्पगन्धा चूर्ण में मिलाकर २-२ रत्ती की गोलिया बनाकर दिन में ३-४ बार दिया जाता है, या

(३) सर्पगधा के घनसत्त्व से ब्राह्मी, शखपुष्पी, वचा, माल कगनी, जटामासी, समान-समान का चूर्ण मिला गोलिया बनाकर दिन में तीन बार दी जाती हैं, अथवा जैसे ऊपर कहा है केवल सर्पगन्धा चूर्ण को ½ माशा की मात्रा में घृत, मधु के साथ प्रतिदिन दो तीन बार देने से रक्तभार घटता है।

प्रमाण—

हरीतकी—

हरीतकीं पचरसामुष्णामलवणा शिवाम्।
आयुष्या पौष्टिकीं धन्या वयस.स्थापनीं पराम्॥
सर्वरोगप्रशमनीं, वुद्धीन्द्रियवलप्रदाम्।
स्मृतिबुद्धिप्रमोह च जयेच्छीघ्रं हरीतकी॥
(चि० चि०।१)

तद्वदामलकम् (वा०।सू०।५)

त्रिफला—

त्रिफला मधु सर्पिर्भ्या युक्ता सिद्धा रसायनम्।
(चि०।चि०।१)

शिलाजतु—

जराव्याधिप्रशमनं देहदार्ढ्यकर परम्।
मेधास्मृतिकर धन्य क्षीराशी तत्प्रयोजयेत्॥
(च०।चि०।१)

ब्राह्मी—

ब्राह्मी आयुष्या।
(ध० नि०)

शखपुष्पी—

शखपुष्पी हिमा तिक्ता मेधाकृत् स्वरकारिणी।
विषापस्मारभूतादीन् हन्ति मेध्या रसायनी॥
(ध० नि०)

लशुन—

लशुनो भृश तीक्ष्णोष्णःकटुपाकरस' सरः।
हृद्य केश्यो गुरुर्वृष्य स्निग्धो रोचन दीपन।
सहिध्म पीनस श्वास कासान्हन्ति रसायनम्॥
(वाग्भट्ट, सू०।५)

कुछ एक उपयोगी रसायन योग अर्थात् आयुर्वल स्वास्थ्यवर्धक योग निम्नलिखित हैं —

(१) अश्वगधादि चूर्ण (शा. ध. म. ख) असगध, विधारा दोनो को समान-समान मिलाकर बनाये चूर्ण को २–३ माशा मात्रा में दूध से दें।

(२) आमलकीरसायन (च स) आवलो के चूर्ण को आवले के रस की २१ भावना देकर उसे बन्द बोतल में रखें उसके १–२ माशा को घृत, शहद, खाण्ड के साथ दें।

(३) त्रिफलायोग (ग. नि) त्रिफला को खैर और असन की छाल के क्वाथ से भावना देकर सुखाकर २–३ माशे की मात्रा में मधु घृत से चटाए।

(४) गुडूच्यादिरसायन (वृ मा, वं से.) गिलोय, विडग, शखपुष्पी, वच, हरड, सोठ, शतावरी समान-समान के चूर्ण को २–३ माशा मात्रा में घृत के साथ दें। यह बुद्धि, स्मृति आदि मानसिक शक्तियो को बढाता है।

(५) वचादिघृत (वाग्भट्ट, उत्तर, अ १) वचा, गिलोय, हरड, शंखपुष्पी, विडग, सोठ, शतावरी इन्हीं उपर्युक्त औषधियो को २०–२० तोला मात्रा में लेकर जल १६ सेर में पका चतुर्थांश शेष रखकर १ सेर घृत तथा १⅓–१⅓ तोला उपर्युक्त औषधियो का कल्क डालकर बनाया घृत १ तोला मात्रा में मानसिक विकारो अर्थात् बुद्धिस्मृति आदि की न्यूनता को दूर करता है।

(६) वचारसायन (वृ मा) केवल वचा चूर्ण को २–३ रत्ती की मात्रा में घृत के साथ दिन में २ बार चटाए। इससे वाणी सम्बन्धी विकार भी दूर होते हैं।

(७) विडगादियोग (ग नि) विडग, त्रिफला, पिप्पली, लोह भस्म समान-समान के चूर्ण को २–३ माशा मात्रा में खाण्ड घृत मधु से चटाए यह वार्धक्य दोष का निवारक है।

(८) वृद्धदारुरसायन (च द.) विधारा के चूर्ण को शतावरी स्वरस की ७ भावना देकर उसे २–३ माशे मात्रा में मधु से चटाए।

(९) भृगराज चूर्ण (व से रसायन) भृगराज चूर्ण को २–३ माशा मात्रा में दूध के साथ १ महीना लेने से दृष्टि मान्द्य, बाधिर्य, वाग्दोष, षण्ढता, पलितरोग, दन्त नैर्बल्य आदि विकार दूर होते है।

(१०) वृद्ध दार्वादिचूर्ण (भा. प्र.) विधारा, शतावरी, गोखरू समान का चूर्ण। ३–४ माशा घृत मधु से

वल्य है। अष्टाग सग्रह ने कहा है विवारा शरीर को स्थूल करता, ऊचाई प्रदान करता, वाणी दोष को दूर करता है।

चिरस्थायी कपाटी रोग (Chronic Valvular Disease)

तीव्र आमवातिक (Rheumatic) ज्वर मे हृदय के अन्तगवरण मे विशेषत कपाटियो पर न्यूनाधिक शोथ (Rheumatic Valvulitis) अवश्य ही होता है। यदि आमवातिक ज्वर के वेग वार-वार होते रहे तो (Rheum Endocarditis के कारण) चिरस्थायी कपाटी रोग हो जाता है। अर्थात् कपाटियो की पखडिया सूज जाने के कारण परस्पर जुड जाती हैं तथा उनमे स्नायुतन्तु की वृद्धि के कारण वे छोटी-मोटी एव सुकडी हुई कठोर हो जाती हैं। उनके सिरो को दीवार के साथ वाधने वाले कडरा-सूत्र (Chordae Tendinae) भी स्नायुतन्तु की वृद्धि से सुकडकर तग हो जाते हैं। यह चिरस्थायी कपाटी रोग सवसे अधिक वाम कपाटी (Mitral Valve) मे होता है (५०-६० प्रतिशत) सभवत. उस पर सवसे अधिक रक्त का भार पडने के कारण ऐसा होता है। वाम छिद्र तथा वाम कपाटी के रोगग्रस्त हो जाने से छिद्र वहुधा तग हो जाता है अर्थात् उसके रक्त के मार्ग मे अवरोध उत्पन्न हो जाता है। इसे वाम छिद्रावरोध (Mitral Stenosis) कहते हैं। जव पखडियो (Cusps या Leaflets) मे वधन या Fusion हो गया हो Calcification हो गया हो और उनकी रज्जुओ Chordae Tendinaes मे ही रोग विशेष हो अर्थात् वे सुकडकर छोटी और कठोर (Fibrotic) हो गई हो, छिद्र Annulus मे रोग-विशेष न हो प्रत्युत वह फैल गया हो तो, क्योकि कपाटी पूरी तरह से छिद्र को वन्द नही कर सकती, इसलिये वाम क्षेपक के सकोच (Systole) के समय रक्त का कुछ अश पिछले कोष्ठ मे वापस चला जाता है। इसे वाम छिद्र प्रत्यावर्तन (Mitral Regurgitation) *या वाम कपाटी की असमर्थता का रोग (Mitral* Incompetence) कहते हैं। वहुधा वाम कपाटी मे अवरोध तथा प्रत्यावर्तन दोनो न्यूनाधिक सम्मिलित रूप मे होते हैं तथापि कभी एक अवस्था कभी दूसरी अवस्था अधिक स्पष्ट होती है, वहुधा अवरोध अधिक तथा प्रत्यावर्तन कम मात्रा मे होता है अर्थात् वाम कपाटी रोगियो मे से ६०% मे अवरोध होता है। वाम कपाटी से उतर कर चिरस्थायी कपाटी रोग महाधमनी कपाटी (Aortic Valve) मे होता है (१० प्रतिशत)। अन्य कपाटियो मे यह रोग वहुत कम पाया जाता है।

वाम कपाटी रोध (Mitral Stenosis)

कपाटी रोगो मे यह सवसे अधिक सुलभ रोग है तथा वाम कपाटी रोगियो मे से ६०% मे यही होता है तथा वातिक प्रकृति के २० से ४० वर्ष तक के युवक व्यक्तियो, विशेषत स्त्रियो, मे पाया जाता है और Rheu Carditis होने के २-३ वर्ष वाद होता है। साधारणत वाम छिद्र ३ अगुली चौडा (५ CM_2) होता है। जव यह २ CM का हो जाता है रक्त मार्ग मे पर्याप्त अवरोध हो जाता है। इस रोग मे यह सुकडकर २ या १ अंगुली या ½ सेन्टीमीटर से २ तक का भी रह जाता है। कपाटी की पखडिया किनारो पर परस्पर कुछ जुड सी जाती हैं साथ ही कपाटी का छिद्र भी कुछ सुकड जाता है। जिससे रक्त के वाम ग्राहक कोष्ठ (Atrium) से वाम क्षेपक कोष्ठ मे जाने मे वाधा पड जाती है। स्वभावत इस क्षति को पूर्ण करने के लिये वाम ग्राहक कोष्ठ स्थूल हो जाता है तथा *आकार मे भी बडा हो जाता है। उसकी समाई ३०-४०* सी०सी० से वढकर ५०० सी०सी० तक हो जाती है। वाम ग्राहक कोष्ठ के वलवान हो जाने से (Compensatory Hypertrophy) इस रोग के रोगी को कोई कष्ट नही होता है। परन्तु ऐसे श्रम से जिससे हृदय का वाम 'ग्राहक' रक्त को भली प्रकार आगे न धकेल सके तथा हृदय की गति अति तीव्र हो जाय तो इस अवरोध के कारण रक्त ऊपर फुपफुस की शिराओ (Pulmonary Veins) मे जिनके द्वारा वह हृदय में आता है अधिक भर जाता है और फिर फुपफुस की सूक्ष्म रक्तवाहिनियो (Capillaries) मे भी अधिक भर जाता है, जिससे फुपफुस श्वयथु (Pulmonary Oedema) हो जाता है तथा कोष्ठको की दीवारो तथा Pulmonary Capillaries की दीवारो मे स्थूलता (Fibrosis) के होने से रक्त को आक्सिजन कम मिलती है इससे श्वासकृच्छ्रता का लक्षण होने *लगता है अर्थात् थोडा श्रम करने या काम क्रोध का* आवेश होने पर सास फूल जाने (Dyspnoea) या लेटने से भी साँस चढ जाने (Orthopnoea) का लक्षण इस रोग मे होता है। रात को लेटने पर फुपफुस के अन्दर रक्तसञ्चय और वढता है जिससे रात्रि-श्वासकृच्छ्रता Nocturnal Dyspnoea का लक्षण हो जाता है। उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि वाम ग्राहक कोष्ठ मे रक्तभार वढ जाता है (२० M.M Hg) इसके परिणाम-

स्वरूप Pulmonary Capillaries मे भी रक्तभार बढता हे उसके परिणाम रुप मे फिर वहाँ Arteries तथा Veins मे रक्तभार बढता हे। कहा जाता है कि जब Pulmo Veins मे यह ३० M M Hg हो जाता है तब फुफ्फुस मे श्वयथु हो जाता हे। आयु के कुछ बढने पर हृदयमास मे भी स्नायुतन्तु की वृद्धि हो जाने एव उसके निर्बल हो जाने पर जब वाम ग्राहक कोष्ठ बलहीन (Dilated) होने लगता हे तब हृत्कम्प Palpitation Atrial fibrillation, Premature beats के लक्षण तथा इस रोग के वे ही श्वासकृच्छ्रता सूचक लक्षण उत्पन्न होते हे जो ऊपर हृदय के फेल होने के कहे गये हे। उनके अतिरिक्त फुफ्फुस शिराओ (Pulmonary Capillaries) के रक्तभार मे वृद्धि के कारण फट जाने से रक्तवमन का उपद्रव भी हो सकता है। तथा फुफ्फुस धमनी (Pulmonary Artery) मे चिरकाल तक रक्तभार के बढे रहने से उसमे Atherosclerosis की प्रक्रिया होने लगती है। इसके परिणाम रूप मे दक्षिण 'क्षेपक' मे रक्तभार बढकर उसमे अतिवृद्धि (Hypertrophy) हो जाती है। बाद मे दक्षिण हृदय के निर्बल हो जाने पर वह शिथिल (Dilated) भी हो सकता हे जिससे Tricuspid Valve का छिद्र खुला हो जाता हे। परिणामत शरीर की शिराओ मे रक्तसचय (Venous Stasis) बढ जाता है। फुफ्फुस के तलो पर रक्तसचय के कारण श्रम करने पर खासी होने लगती है। शरीर की शिराओ मे रक्तसचय बढने से गिट्टे भारी हो जाते है। Jugular vein मे रक्तभार बढ जाता है, यकृत् बढ जाता है, भूख मर जाती है, भार घट जाता है।

श्रवण परीक्षा

रोगी के कुछ व्यायाम करने के बाद उसे वाम पार्श्व पर लिटाकर श्रवण-यन्त्र द्वारा सुनने से विश्राम काल (Diastole) के समय अर्थात् द्वितीय शब्द के बाद प्रथम शब्द से पहले (Pre systolic या Mid diastolic) जब रक्त वाम ग्राहक से वाम क्षेपक मे आ रहा होता है तो हृदय के निचले सिरे (Apex) के कम्पन प्रदेश के अन्दर की ओर उरोस्थि के बाएँ किनारे पर थोडे से स्थान पर सीमित, एक ऊचा सा Quick Sharp sound या फूत्कार (Crescendo Murmur) सुनाई पडता है जो तीव्रगामी रक्त के मार्ग मे किसी प्रकार का अवरोध हो जाने से रक्त मे घुमघेरी (Eddy) के उत्पन्न होने या रक्त के कुछ अश के छिद्र के तग होने के कारण पीछे की ओर छलकने से उत्पन्न कपाटिका-कम्पन के कारण होता है थोडे व्यायाम के बाद रोगी को वाम पार्श्व पर लिटाकर सुनने से यह स्पष्ट सुनाई पडता है। वाम क्षेपक के छोटा होने के कारण प्रथम शब्द भी दूसरे के समान छोटा और ऊचा होता है। महाधमनी मे रक्त के कम मात्रा मे जाने से द्वितीय शब्द भी द्वितीय दक्षिण पसली पर सुनने से नीचा सुनाई पडता है। Pulmonary प्रदेश पर Pulmonary artery मे रक्तभार वृद्धि के कारण द्वितीय शब्द ऊचा होता है। नाडी मे रक्त के कम जाने से सकोच कालिक रक्तभार कम होता है। नाडी का उठाव (Volume) छोटा होता है, उसकी प्र० मि० गति कुछ अधिक होती है। नाडीभार (Pulse Pressure) भी कम होता हे 'वाम ग्राहक' के आकार मे बडा हो जाने से तीसरे Intercostal प्रदेश मे उरोस्थि के बाईं ओर टकोर मद्धम हो जाती है। X-Ray के द्वारा भी वाम ग्राहक (Left atrium) आकार मे बडा दीखता है। Pulmonary शिराओ मे रक्त के भर जाने से फुफ्फुस के मूल Hilum मे पखे के आकार मे Mottling या निर्वर्ण छाया दीखती है। रोगी देखने मे कृश तथा कुछ पाण्डुर दीखता है। इस रोग से ग्रस्त रोगीं की कार्य करने की शक्ति कम होती है। २०-३० प्र०श० रोगियो मे मृत्यु ४५ वर्ष की आयु तक Atrial Fibrillation से, वाम ग्राहक कोष्ठक मे बने किसी Clot के रक्त मे जाकर मस्तिष्क, वृक्को, प्लीहा, Mesentery या जघाओ की किसी सूक्ष्म धमनी मे अड जाने (Embolism) से पक्षाघात आदि होकर या पेट, जघा आदि मे दर्द उठकर होती है या फुफ्फुस मे अधिकाधिक रक्त के रुकने से रक्तवमन, श्वासकाठिन्य और खासी के रोग के रहने के कारण होती है। या ४०-५० प्र०श० रोगियो मे दक्षिण हृदय के शिथिल हो जाने पर Congestive Failure के कारण होती है। E C G परीक्षा से वाम ग्राहक तथा दक्षिण क्षेपक आकार मे बढ़े हुए पता लगते है। Radiology से भी हृदय आकार मे बडा दीखता है। उसका बाया किनारा सीधा हो जाता है फुफ्फुस धमनिया (Pulmon arteries) कुछ स्थूल दीखती है। फुफ्फुस मे फैली हुई छोटी-छोटी Opacities दीखती है जो Alveolar दीवारो मे fibrosis को सूचित करती है।

वाम कपाटी प्रत्यावर्तन (Mitral Regurgitation or Incompetence)

वाम कपाटी मे यह रोग कम होता है अर्थात् इस कपाटी के रोगियो मे ३० प्र०श० के लगभग मे यह रोग होता है तथा २० वर्ष की आयु के पुरुषो मे अधिक होता है।

स्थायी रूप मे यह रोग आमवात रोग जनित कपाटी रोग से होता है और तब भी कुछ काल बाद इसमे रोध या Stenosis होता है। अस्थायी रूप मे किसी ज्वर मे हृदय शिथिल (Dilated) हो जाने पर वाम छिद्र के बडा हो जाने से होता है तब इसे Functional Regurgitation कहते हैं जो विशेषत बालको या नवयुवको मे पाया जाता है। इस रोग के होने पर वाम ग्राहक मे फुफ्फुस से तो रक्त आता ही है साथ ही कुछ रक्त वाम क्षेपक के संकोच के समय उसमे से इसमे वापस होने लगता है। जिससे यह वाम ग्राहक कोष्ठ आकार मे बडा हो जाता है। ऐसा होने पर विश्राम काल में वाम क्षेपक मे भी रक्त अधिक मात्रा मे आता है। जिससे वह भी आकार मे बडा हो जाता है। दोनो वाम कोष्ठको मे अतिवृद्धि ठीक-ठीक बनी रहे, Compensatory Hypertrophy बनी रहे तो इस रोग के होने पर भी बहुत काल तक रोगी को कोई कष्ट नही होता हाँ श्रम करने पर श्वास चढ जाता है तथा थकावट हो जाती है। इस रोग मे वाम क्षेपक का निचला सिरा वाम पार्श्व की ओर Midclavicular रेखा के बाहर खिसक जाता है। श्रवणयंत्र मे सुनने पर क्योंकि यह कपाटी भली प्रकार बन्द नही होती प्रथम शब्द के साथ-साथ Systole के सारे दौरान मे एक सकोच कालिक फूत्कार (Pan Systolic Mitral Murmur) सुनाई पडता है क्योंकि वाम कपाटी मे उत्पन्न कम्पन हृदय के निचले सिरे तक जाता है इसलिये यह फूत्कार शब्द भी कक्ष की ओर जाता हुआ प्रतीत होता है श्रम के बाद अधिक स्पष्ट सुनाई पडता है। आम वातिक रोग मे यह कठोर तथा ऊचा होता है, Functional Murmur कठोर नही होता तथा नीचा होता है वाम ग्राहक की वृद्धि Radiology से दीखती है वाम क्षेपक के बडे होने से Apex पर होने वाला धक्का Thrust स्पष्ट होता है। अन्त मे बडी आयु मे अर्थात् ६० वर्ष की आयु के बाद जब हृदयमास मे ही क्षीणता होने लगती है तब वाम हृदय के फेल होने से उसमे से आगे शरीर को रक्त के कम जाने मे होने वाले उपर्युक्त लक्षण होने लगते हैं अर्थात् पहले श्रम करने पर श्वास चढ जाता है धडकन होने लगती है फिर खासी तथा बलगम गिरने के लक्षण होने लगते हैं, या शीघ्र थकावट होने का लक्षण होता है। यह तो स्पष्ट ही है कि वाम क्षेपक मे से रक्त के महाधमनी मे जाते समय क्योंकि कुछ रक्त पीछे वाम ग्राहक मे चला जाता है इसलिये नाडी का उठाव Volume कम होता है और वह उठकर सहसा बैठ जाती है (Collapsing) बहुतसो मे तो केवल Systolic Murmur ही सुनती है। यह रोग मृदु रूप मे हो तो रोगी पूरी आयु भोग सकता है। रोग तीव्र रूप मे हो और हृदय फेल होने लगे तो चिकित्सा से विशेष लाभ नही होता। ECG तथा X-Ray परीक्षा करने पर बाया Ventricle बडा दीखता है Fluoroscopy से बाया Atrium फैला हुआ दीखता है।

महाधमनी कपाटी प्रत्यावर्तन (Aortic Regurgitation)

चिरस्थायी आम वात रोग के कारण बहुधा तो Mitral Valve रुग्ण होता है पर कभी-कभी महाधमनी कपाटी मे भी या केवल उसी मे चिरस्थायी शोथ हो जाता है और फिर स्नायुतन्तु की वृद्धि (Sclerosis) होकर इस कपाटी की पखडिया कुछ सुकडकर छोटी हो जाती हैं और इस छिद्र को पूरी तरह बन्द नही कर पाती। साथ ही छिद्र भी कुछ चौडा हो जाता है जिससे इस कपाटी के बन्द होते समय अर्थात् द्वितीय शब्द के होने के साथ ही महाधमनी मे से कुछ रक्त वापस वाम क्षेपक मे चला जाता है जिससे इसे 'आम वातिक महाधमनी कपाटी प्रत्यावर्तन' (Rheumatic Aortic Regurgitation) कहते है। यह रोग मध्य आयु मे अर्थात् २० से ४० वर्ष के काल मे, अधिकत पुरुषो मे, होता है। इस अवस्था मे सकोच कालिक रक्तभार १४० तथा विश्राम कालिक रक्तभार ७० के लगभग होता है अर्थात् नाडीभार विश्राम कालिक रक्तभार के बराबर होता है। कभी-कभी चिरस्थायी फिरग रोग के विषैले प्रभाव से महाधमनी के प्रारम्भिक भाग के सूत्रो तथा Elastic Tissue के स्थान पर स्नायुतन्तु उत्पन्न हो जाता है जिससे उसका लचकीलापन कम होकर यह प्रारम्भिक भाग चौडा हो जाता है। तथा फिरग रोग के कारण ही कपाटी की पखडिया कठोर और आकार मे छोटी हो जाती है जिससे इस कपाटी के बन्द होते समय महाधमनी मे से कुछ रक्त वापस वाम क्षेपक मे चला जाता है। इसे फिरग जनित महाधमनी रक्त प्रत्यावर्तन (Syphilitic Aortic Regurgitation) कहते है। यह रोग ४० से ६० वर्ष की आयु के व्यक्तियो मे मिलता है। इस अवस्था मे सकोच कालिक भार १६० तथा विश्राम कालिक भार ६०-७० के लगभग होता है। परन्तु फिरग जनित यह कपाटी रोग अब लगभग नही होता। Atherosclerosis के कारण भी यह रोग हो सकता है।

विश्राम काल मे महाधमनी की ओर से कुछ रक्त के वाम क्षेपक मे आ जाने से वाम क्षेपक आकार मे अधिक

शरीर की प्रतिरोधक शक्ति की हीनता से सूजता होगा। इन दोनो बातो अर्थात् जीवाणुओ की प्रबलता और शरीर की निर्बलता का कारण भोजन-दोष ही प्रतीत होता है। जिसका सबूत यह है कि प्राकृतिक या Cellulose वाले आहार लेने वालो की अपेक्षा कृत्रिम आहार लेने वालो मे (अर्थात् नगरो मे रहने वाले उच्च वर्ग के लोगो मे ही) यह अधिकत होता है। इनके भोजन मे Cellulose की मात्रा तथा Vitamins की मात्रा कम होती है जिससे एक ओर मलवन्ध रोग हो जाता है, दूसरी ओर आत की प्रतिरोधक शक्ति गिर जाती है। बृहदंत्र तथा विशेषत Caecum मे मलावरोध के कारण शोथ अर्थात् Typhlitis हो जाता है और उसके कारण Appendix की श्लेष्मकला मे भी शोथ का प्रसरण हो जाता है। अब यदि आत्र पुच्छ का मुख Sphincter सूज जाने से वन्द हो जाय और इसके अदर होने वाला श्लेष्म-स्राव (Mucus) इसके अन्दर रुक जाय तो उसमे प्रधानतया Streptococci तथा गौण रूप से B Coli की वृद्धि के कारण यह श्लेष्म-स्राव और अधिक वढता है। इस वढे हुए तथा वन्द हुए (Obstructed) स्राव का दवाव पडने से आत्र पुच्छ की दीवार मे विद्यमान Veins तथा Lymphatics अवरुद्ध हो जाती है एव फट जाती हैं, जिसमे ऑक्सीजन के उचित मात्रा मे न मिलने से आत्र पुच्छ की प्रतिरोधक शक्ति हीन हो जाती है एव उस पर इन जीवाणुओ का आक्रमण सुगम हो जाता है। यह रोग तीव्र (Gangrenous) रूप मे मासाहारियो मे ही पाया जाता है।

विकृति

आत्र पुच्छ के अन्दर जीवाणुओ के अति मात्रा मे रोहण कर जाने से पहले उसकी श्लेष्मकला मे श्लैष्मिक शोथ (Catarrhal) हो जाता है। फिर उसके अन्यान्य स्तरो से भी रक्तसचय होकर शोथ हो जाता है, जिससे आत्र पुच्छ रक्त वर्ण का तथा मोटा हो जाता है। इसे Catarrhal Appendicitis या श्लैष्मिक आत्र गुल्म कहते है। बहुधा यह शोथ दर्द होने के दूसरे या तीसरे दिन शात होने लगता है तथा एक सप्ताह तक पूर्णतया शान्त हो जाता है। इसके जो अवयव अर्थात् श्लेष्मकला या उससे नीचे का अवयव (Submucos Tissue) नष्ट हुआ होता है उसके स्थान पर नया स्नायु-तन्तु आ जाता है।

परन्तु यदि यह शोथ दूसरे-तीसरे दिन शान्त न हो तो इसके अन्दर पूयभाव के होने की आशका करनी चाहिये। पहले तो आत्र पुच्छ की श्लेष्मकला के किसी एक Lymph Follicle मे पूयभाव आरम्भ होता है जहा से रोग-जीवाणु Submucous Layer मे फैलते है और फिर वहा से Muscularis मे से होकर रक्तवाहिनियो के साथ-साथ ये Subserous Layer मे भी फैल जाते हैं। इस प्रकार क्रमश मासमय स्तर तथा वाहर की Peritoneum के स्तर मे भी फैल जाते हैं। इस प्रकार क्रमश मासमय स्तर तथा वाहर की Peritoneum के स्तर मे पूयभाव फैल जाता है। इसे Suppurative Appendicitis या पैत्तिक आत्र गुल्म कहते है। Peritoneum मे पूयभाव होते ही Omentum, समीपस्थ आत्र (Loops of intestine) तथा Caecum ये सब इस सूजे हुए चपकीले आत्र पुच्छ से चिपक जाते है तथा विद्यमान पूयभाव को Peritoneal Cavity मे फैलने से रोक देते हैं। आत्रपुच्छ (Appendix) के इन समीपस्थ अवयवो के साथ जुड जाने (Adhesion) से जो एक गोला या गुल्म-सा वनता है उसे Appendicular Mass कहते है। आत्र पुच्छ मे पूयभाव हुआ हो तो दर्द होने के तीसरे-चौथे दिन यह गुल्म अनुभव किया जा सकता है। यदि पूयभाव मन्द रूप मे हो तो यह गुल्म भी कुछ-एक सप्ताहो मे पूर्णतया लुप्त हो जाता है और इस रोग के लक्षण भी सर्वथा शान्त हो जाते है। यदि इसके वाद फिर कभी दोबारा इस रोग के दर्द आदि के लक्षण प्रकट हो तो जान लेना चाहिये कि रोग शान्त नही हुआ, केवल दवा हुआ है। तब शल्यकर्म कराना आवश्यक हो जाता है। जब इस रोग के आरम्भ होने के एक सप्ताह वाद भी ज्वर आदि लक्षण जारी रहे तो समझना चाहिये कि एक स्थानिक विद्रधि (Localized Intraperitoneal Abscess) वन चुकी है जो Caecum के पीछे नीचे की तरफ होती है तथा साधारण चिकित्सा से ठीक नही होती। जब आत्र पुच्छ के सिरे का रक्त-सचार वन्द हो जाता है तब वह मरकर कुछ काला-सा पड जाता है। इसे वातिक आत्र-गुल्म-शोथ या Gangrenous Appendicitis कहते है। इसके फट जाने से वहा बहुधा स्थानिक विद्रधि (Local Appendicular abscess) वन जाती है।

लक्षण

सहसा पेट मे दर्द हो जाना इस रोग का प्रधान लक्षण है। दर्द जो बहुधा प्रात काल आरम्भ होता है और रोगी को जगा देता है शूल चुभने का-सा होता है तथा

स्थायी रूप मे यह रोग आमवात रोग जनित कपाटी रोग से होता है और तब भी कुछ काल बाद इसमे रोध या Stenosis होता है। अस्थायी रूप मे किसी ज्वर मे हृदय शिथिल (Dilated) हो जाने पर वाम छिद्र के बडा हो जाने से होता है तब इसे Functional Regurgitation कहते है जो विशेषत बालको या नवयुवको मे पाया जाता है। इस रोग के होने पर वाम ग्राहक मे फुफ्फुस से तो रक्त आता ही है साथ ही कुछ रक्त वाम क्षेपक के सकोच के समय उसमे से इसमे वापस होने लगता है। जिससे यह वाम ग्राहक कोष्ठ आकार मे बडा हो जाता है। ऐसा होने पर विश्राम काल मे वाम क्षेपक मे भी रक्त अधिक मात्रा मे आता है। जिससे वह भी आकार मे बडा हो जाता है। दोनो वाम कोष्ठको मे अतिवृद्धि ठीक-ठीक बनी रहे, Compensatory Hypertrophy बनी रहे तो इस रोग के होने पर भी बहुत काल तक रोगी को कोई कष्ट नही होता हाँ श्रम करने पर श्वास चढ जाता है तथा थकावट हो जाती है। इस रोग मे वाम क्षेपक का निचला सिरा वाम पार्श्व की ओर Midclavicular रेखा के बाहर खिसक जाता है। श्रवणयत्र से सुनने पर क्योंकि यह कपाटी भली प्रकार बन्द नही होती प्रथम शब्द के साथ-साथ Systole के सारे दौरान मे एक सकोच कालिक फूत्कार (Pan Systolic Mitral Murmur) सुनाई पड़ता है क्योंकि वाम कपाटी मे उत्पन्न कम्पन हृदय के निचले सिरे तक जाता है इसलिये यह फूत्कार शब्द भी कक्ष की ओर जाता हुआ प्रतीत होता है श्रम के बाद अधिक स्पष्ट सुनाई पडता है। आम वातिक रोग मे यह कठोर तथा ऊचा होता है, Functional Murmur कठोर नही होता तथा नीचा होता है वाम ग्राहक की वृद्धि Radiology से दीखती है वाम क्षेपक के बडे होने मे Apex पर होने वाला धक्का Thrust स्पष्ट होता है। अन्त मे बडी आयु मे अर्थात् ६० वर्ष की आयु के बाद जब हृदयमास मे ही क्षीणता होने लगती है तब वाम हृदय के फेल होने से उसमे से आगे शरीर को रक्त के कम जाने से होने वाले उपर्युक्त लक्षण होने लगते है अर्थात् पहले श्रम करने पर श्वास चढ जाता है धडकन होने लगती है फिर खासी तथा बलगम गिरने के लक्षण होने लगते हैं, या शीघ्र थकावट होने का लक्षण होता है। यह तो स्पष्ट ही है कि वाम क्षेपक मे से रक्त के महाधमनी मे जाते समय क्योंकि कुछ रक्त पीछे वाम ग्राहक मे चला जाता है इसलिये नाडी का उठाव Volume कम होता है और वह उठकर सहसा बैठ जाती है (Collapsing) बहुतसो मे तो केवल Systolic Murmur ही सुनती है। यह रोग मृदु रूप मे हो तो रोगी पूरी आयु भोग सकता है। रोग तीव्र रूप मे हो और हृदय फेल होने लगे तो चिकित्सा से विशेष लाभ नही होता। ECG तथा X-Ray परीक्षा करने पर बाया Ventricle बडा दीखता है Fluoroscopy से बाया Atrium फैला हुआ दीखता है।

महाधमनी कपाटी प्रत्यावर्तन (Aortic Regurgitation)

चिरस्थायी आम वात रोग के कारण बहुधा तो Mitral Valve रुग्ण होता है पर कभी-कभी महाधमनी कपाटी मे भी या केवल उसी मे चिरस्थायी शोथ हो जाता है और फिर स्नायुतन्तु की वृद्धि (Sclerosis) होकर इस कपाटी की पखडिया कुछ सुकडकर छोटी हो जाती हैं और इस छिद्र को पूरी तरह बन्द नही कर पाती। साथ ही छिद्र भी कुछ चौडा हो जाता है जिसमे इस कपाटी के बन्द होते समय अर्थात् द्वितीय शब्द के होने के साथ ही महाधमनी मे से कुछ रक्त वापस वाम क्षेपक मे चला जाता है जिससे इसे 'आम वातिक महाधमनी कपाटी प्रत्यावर्तन' (Rheumatic Aortic Regurgitation) कहते है। यह रोग मध्य आयु मे अर्थात् २० से ४० वर्ष के काल मे, अधिकत पुरुषो मे, होता है। इस अवस्था मे सकोच कालिक रक्तभार १४० तथा विश्राम कालिक रक्तभार ७०ं के लगभग होता है अर्थात् नाडीभार विश्राम कालिक रक्तभार के बराबर होता है। कभी-कभी चिरस्थायी फिरग रोग के विषैले प्रभाव से महाधमनी के प्रारम्भिक भाग के सूत्रो तथा Elastic Tissue के स्थान पर स्नायुतन्तु उत्पन्न हो जाता है जिससे उसका लचकीलापन कम होकर यह प्रारम्भिक भाग चोडा हो जाता है। तथा फिरग रोग के कारण ही कपाटी की पखडिया कठोर और आकार मे छोटी हो जाती हैं जिससे इस कपाटी के बन्द होते समय महाधमनी मे से कुछ रक्त वापस वाम क्षेपक मे चला जाता है। इसे फिरग जनित महाधमनी रक्त प्रत्यावर्तन (Syphilitic Aortic Regurgitation) कहते है। यह रोग ४० से ६० वर्ष की आयु के व्यक्तियो मे मिलता है। इस अवस्था मे सकोच कालिक भार १६० तथा विश्राम कालिक भार ६०-७० के लगभग होता है। परन्तु फिरग जनित यह कपाटी रोग अब लगभग नही होता। Atherosclerosis के कारण भी यह रोग हो सकता है।

विश्राम काल मे महाधमनी की ओर से कुछ रक्त के वाम क्षेपक में आ जाने से वाम क्षेपक आकार मे अधिक

वडा तथा स्थूल हो जाता है। इतना वडा हो सकता हे कि उसे Cor bovinum कहते है। उसका निचला शिखर (Apex) छठे पर्शुका मध्य तथा वाहर की ओर अग्रिम कक्ष रेखा (Anterior Axillary Line) तक खिसक जाता हे तथा उसका धमन प्रवल हुआ दीखता है। दर्शन परीक्षा से रोगी की ग्रीवा पर धमन (Carotid Pulsation) होता हुआ दीखता है। Temporal Pulsation भी दीखता हे। श्रवणयन्त्र द्वारा सुनने से हृदय के निचले सिरे पर दोनो शब्द सुनाई पडते हे परन्तु दाहिनी द्वितीय पर्शुका के अन्दर के सिरे अर्थात् Aortic Area पर सुनने से द्वितीय शब्द के साथ या उसके स्थान पर उरोस्थि के निचले सिरे तक जाता हुआ, या उरोस्थि के वाई ओर तीसरे पर्शुका के मध्य पर सुनने से द्वितीय शब्द के साथ या उसके स्थान पर हृदय के निचले सिरे तक जाता हुआ एक मृदु फूत्कार (Aortic Soft Blowing Diastolic Murmur) सुनाई पडता है जो इस कपाटी मे लौटते हुए रक्त के द्वारा इस Valve की अगली पखडी मे उत्पन्न होता है जिसे Austin Flint Murmur भी कहते हैं (Austin Flint १८६२) शान्त वातावरण मे रोगी को आराम से विठाकर वहिश्वास या Expiration की अवस्था मे यह सुना जा सकता है। फिरग जनित रोग मे उरोस्थि के दक्षिण ओर सुनता है क्योकि Aorta के फैल जाने से यह उत्पन्न होता है। आमवात जनित रोग मे उरोस्थि के वाम ओर अधिक स्पष्ट सुनता है। रक्त के महाधमनी मे पीछे लौट जाने से रोगी के चेहरे का रग फीका सा दीखता है।

इस रोग मे वाम क्षेपक के आकार मे वडा हो जाने के कारण प्रत्येक सकोचकाल मे वहुत-सा रक्त महाधमनी मे जाता है। जिससे नाडी वहुत अधिक उठती हे परन्तु शीघ्र ही उसमे से कुछ रक्त के वापस वाम क्षेपक मे चले जाने से विश्राम काल मे नाडी के अन्दर रक्त का भार गिर जाता हे जिससे नाडी फिर सहसा गिर जाती हे (Water hammer Pulse या Collapsing Pulse)। इसलिये जैसा ऊपर कहा हे परीक्षा करने पर रोगी का सकोच कालिक रक्तभार १६० M M Hg हो सकता हे। जवकि विश्राम कालिक रक्तभार ६० तक हो सकता है। अर्थात् नाडी भार अधिक वढा होता हे १०० या इससे अधिक मिलिमीटर नाडी भार हो तो हृदय का कार्यभार वढ जाता है। अर्थात् आधा रक्त लौटे तो कार्यभार दोगुना हो जाता है। छोटी-छोटी रक्तवाहिनियो (Capillaries) मे भी धमन होने लगता है। शीशे की स्लाइड से ओष्ठ को दवाने पर वारी-वारी ओष्ठ पहले लाल फिर सफेद होता हुआ देखा जाता है विशेषत श्रम के वाद नख को हलका दवाने पर भी यही वात देखने मे आती हे। नाडी मे वहुत-सा रक्त जाने से रोगी की ग्रीवा मे धमन वडा स्पष्ट दिखाई पडता हे।

जव तक वाम क्षेपक कोष्ठ स्थूल तथा स्वस्थ रहता है तथा रक्त प्रत्यावर्तन स्वल्प मात्रा मे हो तो हृदय की धडकन के कुछ प्रवल होने या श्रम से मास चढ जाने के सिवाय और कोई दुर्लक्षण नही होता, पर अन्त मे वाम कोष्ठक के मास मे स्नायुतन्तु के वढ जाने पर, या फिरग रोग जनित कपाटी-प्रत्यावर्तन मे, जो कि ५० वर्ष की आयु के लगभग काल मे होता हे सहसा खडा होने पर सिर को रक्त के कम मिलने से सिर मे चक्कर आने की या गिरने की शिकायत होने लगती हे रोगी मे वृद्धावस्था समय से पहले आ जाती है। आमवातिक महाधमनी कपाटी रोग मे चिरकाल तक २०-३० वर्ष तक कोई विशेष दुर्लक्षण नही होता, वह प्राय निरुपद्रव होता है किन्तु फिरग जनित महाधमनी कपाटी रोग मे जो अधिक उपद्रवकारी हे, हृदयपोषक धमनियो के तग हो जाने से श्रम करने पर हृदयशूल का लक्षण हो जाया करता है या हृदयनैर्वल्य या हृदय गति वैषम्य का लक्षण हो जाता हे। वाम हृदय नैर्वल्य के कारण रात्रि श्वास रोग, Orthopnoea, श्रम से श्वास चढने के लक्षण होते हे। इन लक्षणो के हो जाने पर आयुष्य काल २-४ वर्ष से अधिक नही कहा जा सकता। स्पष्ट हे कि जव Systolic Pressure गिरने लगे तो समझना चाहिये कि हृदयमास क्षीण हो रहा है। मस्तिष्क को रक्त की उचित मात्रा न मिलने से शिरोभ्रम मूर्छा Syncope तथा निद्राहीनता का लक्षण हो सकता हे। Radiology से हृदय का वाया निचला किनारा Convex दीखता है। फुफुस की शिराओ मे रक्त सचय के कारण Opacities हो सकती हे।

महाधमनी कपाटी रोध (Aortic Stenosis)

कभी-कभी आमवातिक शोथ के वने रहने या Arteriosclerosis के कारण स्नायुतन्तु की वृद्धि हो जाने से वडी आयु अर्थात् ४० वर्ष के पुरुषो मे महाधमनी छिद्र के तग हो जाने का रोग भी हो जाता है। महाधमनी कपाटी की पखडिया स्थूल हो जाती हे और परस्पर जुड जाती हे तथा मृदु न रहकर कठोर (Calcified) हो जाती हैं। इससे महाधमनी कपाटी के वीच का मार्ग न्यूनाधिक तग हो जाता है। यह रोग वहुत कम पाया जाता है, प्रत्युत महाधमनी कपाटी

रोव और महाधमनी कपाटी प्रत्यावर्तन दोनो का मिश्रण इनसे अधिक पाया जाता है। इससे भी वाम क्षेपक कोष्ठ आकार मे बडा तथा स्थूल हो जाता है। जिससे हृदय-कम्पन Nipple line से बाहर ५वें या ६ठे पर्शुका के मध्य मे दिखाई पडता है। श्रवणयन्त्र द्वारा दाईं ओर की दूसरी पर्शुका के अन्दर के सिरे (Aortic Base) पर सुनने से एक सकोचकालिक कर्कश फूत्कार (Systolic Crescendo या Rough Murmur) उरोस्थि के दाईं ओर दक्षिण ग्रीवा मे ऊपर Carotid Artery मे जाता हुआ तथा नीचे (Apex) की ओर जाता हुआ सुनाई पडता है, Apex पर भी यह सुनता है। आराम के समय तथा Expiration के समय स्पष्ट सुनता है। स्पष्ट है कि इस स्थान पर द्वितीय शब्द मन्द सुनाई पडता है रक्त के तग छिद्र मे से गुजरने से यह फूत्कार उत्पन्न होता है तथा द्वितीय शब्द से पहले समाप्त हो जाता है। महाधमनी मे रक्त के कम मात्रा मे जाने से नाडी का उठाव (Lift या Amplitude) कम होता, पर वाम क्षेपक के आकार मे बडा होने से नाडी का टिकाव (नाडी की स्थिरता) लम्बा होता है अर्थात् वह एकदम न गिरकर क्रमश गिरती है। (Anachrotic Plateau Pulse or Pulsus Parvus et Tardus) नाडी का सकोच कालिक भार तो कम होता है, १४० हो सकता है, पर विश्राम कालिक भार कुछ अधिक होता है, १०० हो सकता है अर्थात् नाडी भार (Pulse Pressure) कम हो जाता है। सकोच कालिक भार १०० और विश्राम कालिक भार ८० हो तो स्पष्ट है नाडी भार कम होने से मस्तिष्क को रक्त ठीक नही मिलता। जब तक वाम क्षेपक बलवान् रहता है रोगी को कोई कष्ट नहीं होता। किन्तु बडी आयु मे जब वामहृदय-मास मे क्षीणता या स्नायुतन्तु की वृद्धि होती है तथा Atheroma और Calcification की प्रक्रिया कपाटी मे हो जाती है तब वामहृदय के फेल होने के श्वासकाठिन्य आदि जो लक्षण ऊपर कहे गये हैं, होने लगते है। अथवा हृदय की पोषक धमनियो मे रक्त के कम जाने मे श्रम करने पर हृदयशूल का लक्षण होने लगता है या सिर मे रक्त कम जाने से चक्कर (Dizziness) आ जाता है या सहसा किसी शारीरिक श्रम के करने पर मूर्छा-सी हो जाती है तथा चेहरा कुछ फीका दीखता है। E C G. परीक्षा से वाम Ventricle मे वृद्धि हुई मिलती है उसमे Ischaemia का लक्षण भी मिलता है। धीरे-धीरे चढकर स्थिर अर्थात् Plateau Pulse, Aortic Systolic Murmur तथा वामहृदय की अतिवृद्धि के लक्षणो से इस रोग का निश्चय हो जाता है। Mitral Systolic फूत्कार महाधमनी कपाटी क्षेत्र पर स्पष्ट नही होता तथा वह कक्ष की ओर जाता है।

कपाटी रोगो के सामान्य लक्षण

हृदय अतिवृद्धि इनका सामान्य लक्षण है जिसके रहने पर कोई विशेष लक्षण नहीं होता पर उसके स्थान पर Dilatation के हो जाने पर प्रधान लक्षण श्वास-कृच्छ्रता का होता है। दूसरा लक्षण श्वयथु का होता है जो Mitral कपाटी रोग मे विशेष होता है Dilatation के कारण विष सचार Toxaemia, पाण्डु Anaemia, Uraemia, रक्तभार वृद्धि आदि होते हैं।

चिकित्सा Mitral Stenosis

आमवातिक प्रकृति के बालक व युवक को Streptococcal सक्रमण से बचना चाहिये जिसके लिये उसे Benzathine Penicillin (Penidure) का महीने मे १ बार तथा साथ ही Salicylate of Sodium का प्रयोग कुछ वर्षों तक करते रहना चाहिये। जब तक हृदय मे किसी कपाटी पर इस रोग का दुष्प्रभाव प्रतीत हो जिससे नाड़ी तीव्र रहे तथा E S R बढा हो, तब तक किसी निद्राजनक औषध का प्रयोग करना तथा रोगी को ९ घटे रोज बिस्तरे पर विश्राम लेना चाहिये और सदा अति श्रम, मद्य, तम्बाकू आदि से बचना चाहिये। बार-बार होने वाली खासी के लिये Antibiotics का प्रयोग करें। तथा Antispasmodic औषध Aminophylline का प्रयोग करें। Atrial fibrillation के लिये भी Digoxin का प्रयोग करे। कष्टदायक Mitral Stenosis तथा Incompetence के लिये Digitalis तथा किसी मूत्रल औषधि का प्रयोग करना चाहिये। नमक का निषेध करना चाहिए। थूक मे रक्त आए तो विश्राम करना चाहिए। अन्त मे जब हृदय के फेल होने के लक्षण होने लगे तब हृदय को बल देने वाली Digoxin तथा मूत्रल औषधो का प्रयोग करना चाहिते। Mitral Incompetence के लिये ठीक-ठीक शल्यकर्म अभी नही निकला। उसके लिये बहुधा किसी चिकित्सा की जरूरत नही होती पर Stenosis के लिये Mitral Valvotomy का शल्यकर्म करने से रक्त का पीछे की ओर बहाव रुक जाता और आगे की ओर बढ जाता एव बहुधा वह सफल होता है। श्रम से साँस चढ जाता हो, रात्रि श्वास के दौरे होते हो, कभी-कभी रक्त-स्राव होता हो, Congestive किस्म का हृदय नैर्बल्य हो तो Valvotomy आवश्यक होती है। Aortic Stenosis

मे हृदय नैर्बल्य के लक्षण प्रकट होने पर रोगी ३-४ वर्ष जीवित रह सकता है, हृदय शूल और मूर्छा इसके अशुभ लक्षण हैं। इसके लिये Aortic Valvotomy विशेष लाभदायक सिद्ध नहीं हुई। Mitral और Aortic Incompetence के लिये भी यही शल्यकर्म हितकर समझा जाता है। परन्तु हृदयमास रुग्ण हो, आयु ४० वर्ष से ऊपर हो तो ये शल्यकर्म नहीं किये जाते। इन कपाटी के रोग मे श्रम से बचना चाहिए। हृदय के निर्बल होने पर Digoxin, मूत्रल औषधि तथा लवणत्याग का विधान करना चाहिए।

हृदयगतिवैषम्य (Cardiac Arrhythmia)

१ हृत्कम्प-हृद्द्रव (Tachycardia)

Sinus Tachycardia—साधारणत बैठी हुई अवस्था मे हृदय गति ५० से ९० प्र० मि० होती है। जब हृदय नाडी की गति Sino atrial Node से आरम्भ होकर प्रति मिनट ९० से १२० तक हो जाती है तो उसे हृत्कम्प या Sinus Tachycardia कहते है। मध्य आयु से पहले प्राय अनैच्छिक (Sympathetic) नाडीमण्डल की उत्तेजना मे या Vagus की मन्दता से शरीर मे कही पूय (Sepsis) होने से, Uraemia से, Cancer से, Neurosis से, पाण्डुता से Thyroid ग्रन्थि की प्रबलता या Graves रोग से, Shock से तथा ऐसे ज्वर से जिसके विष का दुष्प्रभाव हृदय पर भी हो, नाडी तीव्र हो जाती है तम्बाकू, चाय, बैलाडोना, एड्रिनलीन से भी ऐसा होता है। मध्यमायु के बाद हृदयमास मे न्यूनाधिक विकृति के हो जाने और उसके निर्बल हो जाने से नाडीगति तीव्र होती है। Atrial Paroxysmal Tachycardia—सहसा थोडे काल के लिये ग्राहक कोष्ठो के या A V Nodes के आगन्तुज विक्षोभ से नवयुवावस्था मे घटो तक के दौरो मे होने वाले हृत्कम्प को जिसमे हृदयगति १५०-२२० प्र० मि० के लगभग होती है **Auricular या Paroxysmal या Supra Ventricular Tachycardia** कहते है। इसमे समय-समय पर हृत्कम्प के वेग होते है जो सहसा शुरू होते सहसा ही समाप्त होते हैं, थोडा समय या एक दो दिन भी रहते हैं, शिरोभ्रम-थकावट के अतिरिक्त रोगी मे चिन्ता का लक्षण भी होता है, पेट मे अफारा होता है। वेग के अन्त मे Polyuria का लक्षण होता है। यह मारक नहीं है।

वाम क्षेपक हृदय मे Infarction होने से या Congestive Heart failure के उपद्रव रूप मे उत्पन्न हृत्कम्प को **Ventricular Tachycardia** कहते है इसमे हृदयगति १५० प्रति मिनट से ऊपर होती है। इसमे रक्तभार गिरा हुआ, हाथ-पैर ठण्डे तथा स्वेद का लक्षण होता है। मूर्छा Syncope का लक्षण भी होता है। यह एक भयकर रोग है।

२ असामयिक सकोच या असामयिक नाडी (Premature Contraction अथवा Premature Systole Ectopic Beats या Extrasystoles)

साधारणत ग्राहक कोष्ठ मे विद्यमान Sino Auricular Node हृदय का सबसे अधिक विक्षोभशील स्थान है परन्तु कभी-कभी ग्राहक कोष्ठ का कोई भाग या Auriculo Ventricular Node या क्षेपक कोष्ठो का कोई भाग अधिक विक्षोभशील हो जाता है, जिससे हृदय की कोई गति Sino Auricular Node मे आरम्भ होने के स्थान पर वहाँ से आरम्भ होती है। ऐसी अवस्था मे ग्राहक कोष्ठ के प्रारम्भिक भाग मे उत्पन्न होने वाले, अगले नियमित वेग (Impulse) के आने से पहले ही, इस स्थान मे उत्पन्न वेग के कारण क्षेपक मे एक असामयिक सकोच उत्पन्न हो जाता है। क्योकि दोनो क्षेपक कोष्ठो का यह सकोच नियमित समय से पहले ही उनके विश्राम काल मे होता है इसलिए अन्य सकोचो की अपेक्षा जहाँ यह समय से पहले होता है वहा निर्बल भी होता है। उनके इस निर्बल सकोच के द्वारा रक्त की थोडी मात्रा ही नाडी मे जाती है। इसलिये इस सकोच मे उत्पन्न असामयिक नाडी भी छोटी होती है। ७० प्र०श० रोगियो मे यह असामयिक वेग (Impulse) क्षेपक कोष्ठो के किसी विक्षोभशील भाग से उठा करता है। इस असामयिक छोटे सकोच के बाद Sino Auricular Node से आने वाला सामयिक वेग, क्षेपक कोष्ठो मे तब पहुचता है जब वे विश्राम काल (Relaxation) मे होते हैं, इसलिये उस वेग (Impulse) का उन पर कोई प्रभाव नहीं होता। इसीलिये असामयिक छोटे सकोच के बाद या असामयिक नाडी के बाद एक लम्बा अन्तर (Pause) अनुभव होता है। इस लम्बे अन्तर के बाद होने वाला क्षेपक कोष्ठो का सामयिक सकोच (Diastolic filling) या रक्त के अधिक भरते रहने से स्वभावत कुछ प्रबल होता है। इस प्रकार नाडी मे प्रतीत होने वाला एक लम्बा विराम प्रायः करके इसी रोग का अर्थात् असामयिक सकोच (Premature Systole) का द्योतक होता है। नाडी या हृदय की श्रवण परीक्षा करने पर बीच-बीच मे एक नाडी या हृदय का एक स्पन्दन नियमित समय से पहले होता हुआ पाया जाता है इसे Ventricular Type of

Premature Beat कहते हैं। असामयिक सकोच ग्राहक कोष्ठ से उठा हो तो अन्तर (Pause) छोटा होता है। उसे Auricular Type of extra systole कहते हैं। क्षेपक कोष्ठको मे होने वाला यह असामयिक क्षेपक सकोच अति निर्बल हो, उससे धमनियो मे रक्त न जाय तो नाडी परीक्षा मे बीच-बीच मे एक नाडी लुप्त होती दीखती है। E C G. से इस रोग का निश्चय हो जाता है। नियम से दो नियमित नाडियो के बाद एक लम्बा विराम हो तो उसे Pulsus bigeminus कहते हैं। तीन नाडियो के बाद एक लम्बा विराम हो तो उसे Pulsus Trigeminus कहते हैं।

यह नाडीवैषम्य हृदयमास के विक्षोभ को सूचित करता है। किसी रोग की विष (Toxaemia) से जैसे श्लेष्मज्वर (Influ) से पूय विष से या तम्बाकू, काफी, मद्य, डिजिटेलिस के हृदय पर विषैले प्रभाव से या चिन्ता रोग (Anxiety) से ऐसा हो सकता है। आमवात ज्वर (Rheum) के कारण भी यह रोग हो सकता है। मध्यम आयु के पहले बहुधा यह लक्षण किसी प्रकार के ऐसे विक्षोभ का ही सूचक होता है। रक्तभारवृद्धि के कारण वाम हृदय आकार मे बड़ा हो गया हो तो भी Ventricular Ectopic Beats हो सकती है। बाया Atrium बडा हो गया हो तो Atrial Ectopic Beats हो सकती हैं। ५० वर्ष की आयु के बाद यह रोग हृदयमास के तथा उसकी रक्तवाहिनियो मे क्षीणता (Degen) के हो जाने का सूचक होता है व्यायाम से यह वैषम्य लुप्त हो जाता है इसलिये इसे Benign Nodal तथा Ventricular Ectopic Beats कहते हैं। Coronary Occlusion मे उपद्रव के रूप मे भी यह लक्षण होता है। इस वैषम्य के कारण बहुधा रोगी को कोई कष्ट प्रतीत नही होता। किसी-किसी को हृदय पर इसके कारण कुछ प्रतीति होती है।

ग्राहक कोष्ठक विषम हृत्कम्प (Auricular या Atrial Fibrillation)

विषम हृत्कम्प का रोग बहुत सुलभ रोग है जो मध्यम आयु के बाद होता है। इसमे नाडियाँ भी परस्पर विषम और उनके बीच का अन्तर भी परस्पर विषम हो जाता है। इस रोग मे दक्षिण ग्राहक कोष्ठ के प्रारम्भिक भाग मे विद्यमान हृदयगति नियामक शक्ति विलुप्त हो जाती है अर्थात् Sino Auricular Node से हृदयगति का सचलन बन्द हो जाता है (E C G मे P wave नही मिलती)। उसके स्थान पर ग्राहक कोष्ठको के कुछ एक मास सूत्र (Bundles of fibres) जो विक्षुब्ध हुए होते हैं स्वतन्त्र रूप से तथा शीघ्र-शीघ्र विषम रूप से सकोच करते है जिससे ग्राहक कोष्ठको के मास सूत्रो का सम्मिलित होकर व्यवस्थित रूप से स्पन्दन (Contraction) तो बन्द हो जाता है, उसके स्थान पर उसके सूत्र परस्पर निरपेक्ष होकर स्वतन्त्र रूप से तथा अव्यवस्थित रूप से शीघ्र-शीघ्र स्पन्दन करने लगते हैं। साधारणत वे एक मिनट मे ७२ बार स्पन्दन करते है और इनसे आरम्भ हुए वेग के क्षेपक कोष्ठो मे पहुचने से वे भी प्रति मिनट ७२ बार सकोच करते है किन्तु इस रोग मे ग्राहक कोष्ठो के बहुत से वेग तो इतने निर्बल होते है कि वे Auriculoventricular बण्डल द्वारा क्षेपक कोष्ठो तक पहुचते ही नही। इसलिए इस रोग मे जबकि ग्राहक कोष्ठो मे कम्पन प्रति मिनट ४००-६०० (L Waves) के लगभग होते है Bundle of His द्वारा क्षेपक कोष्ठो मे केवल १०० से १५० ही स्पन्दन पहुच पाते है। इनमे से भी क्षेपक कोष्ठो का कोई स्पन्दन प्रबल होता है और कोई निर्बल होता है। उनके बीच का अन्तर भी परस्पर विषम होता है। क्षेपक कोष्ठो का कोई-कोई स्पन्दन इतना निर्बल होता है कि उनके कारण महाधमनी मे रक्त पहुचता ही नही। इसी कारण प्रति मिनट हृदयगति या क्षेपक कोष्ठो के स्पन्दन की सख्या की अपेक्षा नाडी की प्रति मिनट सख्या कम होती है। हृदयगति २२० प्रति मिनट हो सकती तथा नाडी १०० के लगभग रहती है जिसे Pulse Deficit कहते हैं।

मध्यम आयु से पहले ग्राहक कोष्ठको मे आमवातिक शोथ (Rheumatic Carditis) के होने या आमवातिक वाम कपाटी रोध (Mitral Stenosis) के होने से यह रोग होता है। मध्यम आयु के बाद यह रोग ग्राहक कोष्ठो को तथा Sino Atrial Node को धमनी जरा रोग के कारण उचित मात्रा मे रक्त न मिलने (Ischaemic Heart disease होने से) एव उनमे स्नायुतन्तु और वसा की वृद्धि हो जाने (Cardiac Arteriosclerosis, Atherosclerosis, Hypertension) से होता है। हृदयमास का यथावत् पोषण न होने से उसमे क्षीणता (Digen) के हो जाने से वह विक्षोभशील हो जाता है जिससे स्वल्प मानसिक विक्षोभ मे भी यह वैषम्य आरम्भ हो जाता है थोडे व्यायाम से भी यह विषमता और अधिक स्पष्ट हो जाती है। हृदय आकार मे कुछ बडा होता है। कई रोगियो को यह रोग होता है पर रोगी को कोई विशेष कष्ट नही होता। किसी-किसी को हृत्कम्प, हृदय-शूल या श्वासकृच्छ्रता की शिकायत होती है। एक बार आरम्भ होकर यह रोग फिर बना ही रहता है। गाहक

कोष्ठों मे रक्तसचार के मन्द हो जाने से रक्त के छिछड़े (Clots) जम जाते हैं जिनके खण्डो के रक्त मे चले जाने से मस्तिष्क सिरावरोध (Embolism) हो सकता है। किसी जाघ की धमनी मे इस Clot के फस जाने से तीव्र जघाशूल हो सकता है जिसमे निचली टाग शीतल तथा नीली सी हो जाती है और उसमे Gangrene होने का भय हो जाता है दायें ग्राहक कोष्ठ से छिछडा फुफ्फुस मे Pulmonary Embolism कर सकता है। इस उपद्रव के अतिरिक्त हृदय नैवल्य (Congestive Failure) का उपद्रव भी हो सकता है।

लक्षण

नाडी के अति विषम होने पर भी यदि क्षेपक कोष्ठो का स्पन्दन तीव्र न हो तो रोगी को कोई विशेष कष्ट नहीं होता। यदि हृदयगति या स्पन्दन तीव्र हो तो वाम क्षेपक कोष्ठ से कभी-कभी रक्त कम मिलता और उसमे आगे भी कम जाता है। अत मस्तिष्क को रक्त कम पहुंचने के कारण कभी-कभी रोगी मे कुछ भय तथा विक्षोभशीलता के लक्षण होते हैं। श्रम करने पर हृत्कम्प के बढ जाने तथा श्वास चढ जाने या सहसा खडे होने पर सिर मे चक्कर आ जाने का लक्षण भी हो सकता है। हृदयमास मे क्षीणता को न बढने दिया जाय, मानसिक विक्षोभ न होने दिया जाय तो रोगी अनेक वर्षों तक सुख से जी सकता है। क्षेपक कोष्ठो के स्पन्दन की प्रति मिनट सख्या जितनी बढती जाय उतनी ही मास मे क्षीणता बढती जाती है ऐसा समझना चाहिये। मस्तिष्क मे शिरावरोध हो जाने पर सहसा गहरी मूर्छा (Apoplexy) का लक्षण हो जाता, विशेषत Middle Cerebral धमनी की शाखा मे अवरोध होने पर ऐसा होता है। Pulmonary Embolism होने से सहसा छाती मे दर्द Pleuritic Pain (७५%) श्वासकृच्छ्रता (५०%) फुफ्फुस मे Infarction तथा श्वयथु या Oedema, खासी (३०%) थूक मे रक्त (२५%) तापमान, अतिनैर्बल्य, नाड़ी की तीव्रता, मुख पर स्वेद या Shock का लक्षण होता है, रोगी मे मूर्छा (Syncope) का लक्षण भी हो सकता है। Leucocytosis, तथा बढे हुए E S R के लक्षण भी होते हैं।

रोग विनिश्चय

जब दो नाडियों और उनके बीच के अन्तर मे विषमता पाई जाय, नाडी सख्या प्रति मिनट कुछ अधिक हो तो इसी रोग का सन्देह करना चाहिये।

नाडी लोप, नाड़ी भ्रंश (Partial Heart Block, Auriculo Ventricular Block)

हृदय गति वाहक मार्ग जो १ Sino Auricular Node, २ Auriculo Ventricular Node, ३ Bundle of His तथा ४ उससे निकली दाईं, बाईं दो शाखाओ से बना है, कभी-कभी रुग्ण हो जाता है। मध्यम आयु से पहले आमवातिक हृद्रोग या किसी शोथ Inflammation के कारण यह मार्ग रुग्ण होता है पर जीवन को इससे कोई भय नही होता। मध्यमायु के बाद अधिकत. पुरुषो मे जब धमनीकाठिन्य (Arteriosclerosis) तथा रक्तभार वृद्धि के रोग हो जाते हैं तब हृदयपोषक धमनियो मे भी Atherosclerosis या धमनीकाठिन्य या Cardiac Infarction के रोग हो जाने से क्योकि इन गति मार्ग को रक्त या ऑक्सिजन पूर्ण मात्रा मे नही मिल पाता, इसमे स्नायुतन्तु की वृद्धि (Fibrosis) हो जाती है Aortic stenosis मे भी हृदयपोषक धमनियो को रक्त कम मिलता है जिससे इस मार्ग मे कठोरता Sclerosis थोडी सी होती है, जिससे कोई-कोई हृदय गति वहा रुक जाती है और क्षेपक कोष्ठो तक नहीं पहुचती। बहुत सभवत Coronary Artery के रोग के बिना केवल मासरोग (Myocarditis) के कारण भी इस गति मार्ग मे कठोरता हो जाती है। परिणाम रूप मे उनका कोई स्पन्दन या नाडी की कोई-कोई गति लुप्त हुई होती है। इसे नाडी लोप या Heart Block का रोग कहते हैं। इस रोग मे बहुधा तो कुछ-कुछ अन्तरो के बाद कोई-कोई नाडी लुप्त होती है। कभी-कभी आठवी, सातवी या छठी इस क्रम से नाडी लुप्त होती है। इस वैषम्य के होने पर भी रोगी को कोई विशेष कष्ट नही होता। कभी-कभी क्षेपक कोष्ठों के सकोच की गति इतनी कम हो जाय कि मस्तिष्क को पर्याप्त रक्त न मिले तो सिर मे चक्कर होकर मूर्छा और आक्षेप के दौरे हो जाते है जिसे Stokes-Adam's Attack, Irish अन्वेषको के नाम पर कहते हैं। हृदयमास की क्षीणता को न बढने दें तो रोगी कई वर्ष तक जी सकता है। किसी रोग के दौरान मे वह हो तो यह एक दुर्लक्षण होता है। इस रोग मे जब नाडी मे एक नाडी लुप्त होती है तब हृदय पर भी एक शब्द लुप्त होता है। Ectopic Beats रोग मे जब नाडी मे एक नाडी लुप्त होती है तब हृदय पर शब्द स्पष्ट सुनाई पडते हैं। यद्यपि वे कुछ मध्यम तथा समय से पहले होते हैं।

Stokes Adam's Syndrome—जब इस मार्ग मे अवरोध की मात्रा अधिक बढ जाती है अर्थात् क्षेपक कोष्ठ

कुछ अधिक देर तक स्पदन नही करते तो मस्तिष्क मे रक्त के न पहुचने से सिर मे चक्कर आकर मूर्छा हो जाती है जिसमे आक्षेप भी होते हैं। चेहरा फीका पड जाता है रोगी घुर्राटे लेता है। रोग मन्द हो तो शिरोभ्रम (Dizziness) ही होता है। इस मूर्छा का सन्देह अपस्मार से नही होना चाहिये। क्योकि यह क्षणिक या स्वल्प-कालिक ही होती है, इसमे नाडी मन्द होती अर्थात् Bradicardia होता है।

नाडीवैषम्य की चिकित्सा

आमवात आदि कारणो को दूर करने के अतिरिक्त हृत्कम्प (Tachycardia) का लक्षण Phenobarbitone १५ मिलि० के दिन मे ३ वार देने वा Serpasil १ मिलि० के मास द्वारा देने से या Papaverine के १-५ ग्रेन की मात्रा मे प्रतिदिन तीन वार देने से या किसी Sedative औषध से शान्त हो जाता है। Coramine या Alcohol के प्रयोग से भी वडा आराम मिलता है। ऐसे ही Mephentermine Sulphate १५ मिलि० के मास द्वारा देने या १० मिलि० के २-३ वार मुख द्वारा देने और रक्तभारवर्धक होने से भी लाभ होता है।

Supraventricular या Atrial Paroxysmal Tachycardia के लिये Carotid Sinus पर पहले दाई और फिर वाद मे वाई ओर मालिश करनी चाहिए। इससे Vagus उत्तेजित होती है। या Methoxamine Vasoxine) १० मिलि० मास द्वारा या शिरा द्वारा देना चाहिये। इससे Vagus उत्तेजित होती है एव हृदय गति मन्द होती है। Prostigmine ५-१ मिलि० के मास द्वारा देने से भी लाभ होता है। Quinidine ३ ग्रेन को २-२ घटे पर किसी Sedative औषधि के साथ ३-५ मात्रा तक देकर देखना चाहिये। यदि इससे लाभ न हो तो तीसरे दिन ६ ग्रे० मात्रा मे २-२ घटे पर ३-४ वार देना चाहिये लाभ न हो तो फिर इसे न दें। Digoxin २५ मिलि० २-२ घ० पर दें इससे भी लाभ होता है।

Ventricular Tachycardia के लिये Procainamide Hydrochloride (Pronestyl) जो Procaine के सदृश है Ventricles तथा Atria के विक्षोभ को शान्त करता है इसे ½ ¾ ग्राम मात्रा मे मुख द्वारा ४-६ घण्टे के अन्तर से दें या इसी मात्रा मे मास द्वारा दें या २००-५०० मिलि० मात्रा मे १०० सी०सी० ग्लूकोज मे मिला वहुत धीरे-धीरे रक्त मे डाले। मुख द्वारा इसे दिन मे ३-४ वार कुछ काल देते रहना चाहिए। क्विनिडीन ६ ग्रे० प्रति० ४ घ० वाद देने से भी इस रोग मे विशेष लाभ होता है। ठीक हो जाने पर इसी मात्रा मे इसे दिन मे २ वार २-३ दिन देते रहें।

असामयिक हृत्सकोच (Premature Systole)—युवक मे हो तो वह चिन्ताजनक नही होता, सिगरेट पीना वन्द कर देना चाहिये। भोजन तथा चाय की मात्रा कम कर देना भी ठीक है। इस रोग मे ग्राहक या क्षेपक (Atrial or Ventricular) कोष्ठो की विक्षोभशीलता को शान्त करने के लिये Reserpine २५ मिलि० दैनिक दें या किसी शामक औषधि का प्रयोग पर्याप्त है। यदि यह लक्षण Left Ventricle मे विद्यमान किसी रोग के कारण हो तो Procainamide-Hydrochloride (Pronestyl) २५-५ ग्राम मात्रा मे मुख से दिन मे चार वार दें। अथवा Quinidine जो हृदय के लिये शामक (Depressant) है ३ ग्रेन के कैप्स्यूल मे दिन मे ३-४ वार दिया जा सकता है तथा ठीक हो जाने के वाद स्वल्प मात्रा मे १ सप्ताह और दें। या Propranolol (Inderal) २० मिलि० दिन मे ३ वार दें। Phenobarbitone ½ ग्रेन के दिन मे तीन वार देने या Digoxin २५ ग्राम के दिन मे ३ वार ३ दिन देने या Dilantin Sodium १०० मिलि० के दिन मे ३ वार देने से भी हृदयमास की विक्षोभशीलता शान्त हो जाती है। हृदय-क्षोभक विष का निवारण करना चाहिये।

Auricular Fibrillation या अति नाडी वैषम्य—इसके लिये एक तो रोगी को शय्याशायी होकर पूर्ण विश्राम लेना चाहिये तथा उसे Digitalis पत्र पहले ३ ग्रेन मात्रा मे ३ वार, दूसरे दिन २ ग्रेन मात्रा मे ३ वार, फिर २ ग्रेन मात्रा मे ३ वार एक दिन, फिर १ ग्रेन मात्रा मे एक दिन देकर इसे १ ग्रेन मात्रा मे २ वार या १ वार कुछ दिन देना चाहिए। या Digoxin की पहले २ गोलियाँ दिन मे ३ वार २ दिन दे के, फिर १ गोली दिन मे ४ वार दें। इससे जव हृदयक्षेपक कोष्ठो (Ventriculi) की प्रति मिनट गति ८० तक आ जाय तो २५ मिलिग्राम की मात्रा मे इसे दिन मे एक या दो वार देते रहें। इसी औषध से क्षेपक कोष्ठो के मास की शक्ति वढती है तथा उनका सकोच भी प्रवल हो जाता है यद्यपि Auricular Fibrillation तो रहता ही है। (इससे पहले रोगी ने १½ महीना Digitalis न लिया हो तभी यह मात्रा दी जाती है।) ग्राहक कोष्ठ मे Clot की बनने की प्रक्रिया को रोकने के लिये Anticoagulant औषध को २ सप्ताह के लिये पहले देकर वाद मे Digitalis का प्रयोग करना चाहिये Anticoagulant औषध से मस्तिष्क मे होने वाले Embolism को

रोक सकते है। Digitalis के साथ-साथ Quinidine से भी इसकी चिकित्सा की जाती है। २ ग्रेन की मात्रा देकर देख लेना चाहिये कि यह रोगी को अनुकूल है या नहीं। न हो तो इसे नहीं दें। हृदय में Enlargement हो रोग पुराना हो तो इसे न दे। १ दिन में इसे ५ ग्रेन मात्रा में ३ वार, दूसरे दिन १० ग्रेन मात्रा मे ३ वार, तीसरे दिन भी १० ग्रेन मात्रा, ३ वार मे चोथे दिन भी इसी मात्रा मे ३ वार दिया जाता है, इससे यदि हृदयगति नार्मल हो जाय तो फिर इसे ५ ग्रेन की मात्रा मे दिन मे ३ वार १-२ मास चालू रखा जाता है ताकि फिर हृदयगति विषम न हो। इसके उपद्रव—वमन, अतिसार, रक्तभार का गिर जाना। यह औषध न दी जा सकती हो तो Procainamide २५ ग्राम मात्रा मे ४-४ घ० पर देवें। Direct Current Countershock इसकी नवीनतम चिकित्सा है जिसकी Technique देखने से ही आती है। Pulmonary Embolism के लिये आक्सिजन दें। दर्द के लिये Pethedine दें, Shock के लिये Levophed ४ मिलि० १ लिटर ग्लूकोज सोल्यू० मे दें। Anticoagulant औषध का भी प्रयोग करें। Propranolol के २० मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार देने से भी यह रोग शान्त होता है।

Paroxysmal Tachycardia तथा Auricular flutter मे, जो Ischaemic heart disease के कारण ६० वर्ष की आयु के वाद होने वाला रोग है जिसमे हृद्गति सहसा १८० प्र० मि० हो जाती है, भी Digitalis उपयोगी है।

नाडी लोप (Heart Block) तथा Stokes Adam's Syndrome के लिये रोगी को विश्राम अधिक करना चाहिये। Coronary Disease की चिकित्सा करनी चाहिये। हृदय के वल, गति तथा निकासी को वढाने वाली Ephedrine (½ ग्रेन) दिन मे तीन वार, Isoprenaline Sulphate (Neoepinine) १० मिलि० (जीभ के नीचे) या Adrenaline In Oil (½-१ मिलिलि० मात्रा मे त्वचा द्वारा कई वार) आदि औषधों का प्रयोग करना चाहिये, या Prednisolone १० मिलि० का दिन मे ३ वार १० दिन प्रयोग करना चाहिये, या Sodium Molar Lactate (जिससे Sinus तथा Ventricles नियमित गति करने लगते हैं) का इंजेक्शन शिरा द्वारा धीरे-धीरे देना चाहिये। Thiazide मूत्रल औषधियों के देने से रक्त मे Potassium के न्यून हो जाने मे भी इसमे लाभ होता है ऐसा कहा जाता है। ऐसे रोगी को अति शारीरिक श्रम मे वचना चाहिए अर्थात् जल्दी मे सीढी चढने, भारी वोझ उठाने से वचना चाहिए।

हृदय-अवरोध (Cardiac या Circulatory Arrest) की चिकित्सा

Cardiac Thrombosis, Ventricular Fibrillation, Anaesthesia, शल्यकर्म, अभिघात आदि के कारण सहसा हृदयगति वन्द हो जाय तो उसे हृदयावरोध कहते है। तीन मिनट तक इसका उपाय न किया जाय, हृदय को फिर से चालू न किया जाय तो मस्तिष्क मे अपरिहार्य विकृति हो जाती है। इसके लिये छाती को Sternum से १ इंच वाईं ओर चौथी या पाचवीं Interspace मे खोलकर हृदय पर मालिश (Massage) करने की विधि तो वडे अस्पतालो मे ही की जा सकती है। परन्तु छाती को विना खोले भी हृदय पर मालिश की जा सकती है। खोलने पर ऊपर नीचे की Costal Cartilages काटनी पडती हैं और हृदय को हथेली से Sternum पर १ मिनट मे ८० वार के हिसाव से दवाया जाता है।

विना खोले हृदय की मालिश

रोगी जो कठोर शय्या पर ऊपर मुख करके पड़ा हुआ हो, उसकी ग्रीवा को तना (Extend) करके उसकी छाती पर Thumping करे, भारी टकोर दे, लाभ न हो तो उसके मुह मे ३-४ फूक मारके फेफडो मे हवा पहुचानी चाहिये और फिर एक वाजू पर खडे होकर एक हाथ की हथेली को Xiphoid या Sternum के निचले सिरे पर रखकर सारे हाथ पर दूसरे हाथ को रखके अपने शरीर का वोझ देकर Sternum को १-१½ इंच तक रीढ की हड्डी की तरफ दवाना चाहिए। वडी आयु मे भी पसलिया इतनी नरम होती है कि वे दव जाती है। इससे शिथिल हुआ-हुआ हृदय अगली उरोस्थि और पिछली रीढ की हड्डी के वीच मे दव जाता है। उसमे से रक्त निकलकर फुफ्फुसो तथा शरीर की धमनियों मे जाता है। अव हाथ को ढील दे दे जिससे छाती फिर फैल जाती है और रक्त दोनो क्षेपक कोष्ठो मे भरता है। इस प्रकार दवाने व ढील देने की प्रक्रिया को प्रति मिनट ६०-८० वार दुहराना चाहिये अर्थात् सेकेण्ड मे १ वार उरोस्थि को दवाकर साथ ही हाथ उठा लेना चाहिये। यदि चिकित्सक अकेला ही हो तो ३-४ गहरी फूक से फुफ्फुसो मे हवा भर के उसे १-१½ मिनट तक हृदय की उपर्युक्त विधि से मालिश करनी चाहिये और फिर मुख मे तीन-चार वार फूक मार

कर हवा टालनी चाहिये। दो चिकित्सक हो तो एक हवा पहुचाने तथा दूसरा हृदय पर मालिश की प्रक्रिया को जारी रखने का कार्य करता है। इससे बहुधा हृदयगति अर्थात् नाडी पुन चालू हो जाती है। अथवा रोगी की शिरा मे ५ सी०सी० Epinephrine (१००० मे १) डाल दें या ५०० सी०सी० Dextrose Solu मे जो ५% हो Isuprel ४ मिलि० धीरे-धीरे बूद-बूद करके (१ मिनट मे १५ बूंद) डालें या इसके साथ ही १०० मिलि० Hydro cortisone hemisuccinate भी शिरा द्वारा ही देवें। या केवल Molar Sod Lactate Solu प्रति मि० शिरा द्वारा १० सी०सी० मात्रा मे देने लगें, रोगी के ठीक होने पर फिर Isuprel १० मिलि० जिह्वा के नीचे १-१ घटा बाद रखना काफी है। Cardiac Arrest से Acidosis हो जाता है अत बाद मे ३.७५ ग्राम Soda-bi-Carb ५० सी०सी० जल मे धीरे-धीरे शिरा द्वारा देना चाहिये।

जीवाणु जनित हृदय अन्त शोथ (**Bacterial Endocarditis**)—यह रोग दो प्रकार का है तीव्र Acute तथा चिरस्थायी Subacute, यहा पर चिरस्थायी हृदय अन्त-शोथ का वर्णन किया जाता है।

कारण

यह रोग १५-३० वर्ष के ऐसे युवकों मे होता है जिन्हे पहले से आमवातिक हृदय अन्त शोथ (Rheumatic Endocarditis) का रोग हो या जिन्हे सहज हृदय रोग (अर्थात् Patent Ductus Arteriosus, Bicuspid Aortic Valve, या Coarctation of the Aorta या Septal disease) हो। अधिकत यह रोग वामकपाटी मे होता है उससे उतरकर Aortic कपाटी मे और उससे कम Tricuspid कपाटी मे होता है। इनमे से किसी कपाटी मे पहले से ही Nonbacterial Thrombotic Endocarditis हो अर्थात् इनके सूजन के कारण इनमे Thrombi बने हुए हो और ऐसी अवस्था मे मुख मे टासिल का आपरेशन हो या दात सम्बन्धी कोई शल्यकर्म हो या स्त्री मे प्रसव हुआ हो तो इन प्रदेशो से ८०% रोगियो मे Haemolytic Streptococcus (Viri dans) तथा बहुत थोडे रोगियो मे Non-haemolytic Streptococcus का जब रक्त मे सक्रमण हो जाता है तो ये जीवाणु, रोगग्रस्त कपाटी के Thrombi मे, बैठ जाते हैं और वहा बढने लगते हैं। इनके सक्रमण से कपाटी के Cusps के पृष्ठ पर छोटे-छोटे भगुर से अकुर—Vegetations—उत्पन्न हो जाते हैं जो रक्तकणो, श्वेतकणो, प्लेटलेट्स और Fibrin के बैठते जाने से बनते हैं इनके बीच-बीच के प्रदेशो मे Bacteria के समूह बैठ जाते है। इन अंकुरो मे से समय-समय पर Bacteria रक्त मे जाते रहते हैं जिससे इस रोग मे Bacteraemia की अवस्था बनी रहती है। क्योकि एक तो Reticuloendothelial Cells इन Bacteria को नष्ट करते रहते हैं, दूसरे इनके विपरीत Antibodies उत्पन्न हो जाते हैं, तीसरे इनको नष्ट करने के लिए Polymorphonuclear Leucocytes की उत्पत्ति अधिक हो जाती है। इससे ये कही अन्यत्र रोहण तो नही कर पाते परन्तु रोगग्रस्त कपाटी के अकुरों मे ये ऐसी जगह पडे रहते है कि जहा Capillaries नही पहुँचती। इसलिये वहा ये जीवित पडे रहते है और बढकर समय-समय पर Bacteraemia का कारण बनते हैं। रोगग्रस्त कपाटी के ऊपर तथा आसपास की Mural endocardium पर उत्पन्न हुए अकुर भगुर होते है। इनमे से कोई टूटकर रक्तप्रवाह मे चला जाता है और किसी अग की Artery मे अवरुद्ध होकर Embolism या धमनी-रोध का कारण बन सकता है।

लक्षण

जीवाणु सक्रमण जनित यह रोग धीरे-धीरे अज्ञात रूप से आरभ होता है जिससे रोगी को भी यह कहना कठिन होता है कि उसे यह कब आरम्भ हुआ। Bacteraemia या उनकी विष के सचार Toxaemia के कारण इस रोग के लक्षण उत्पन्न होते है। इसी कारण रोगी को दौर्बल्य, कृशता तथा थोडे श्रम से थक जाने के लक्षण होने है। इसी कारण उसकी क्षुधा नष्ट हो जाती है। उसे हलका-हलका ज्वर भी रहता है जो सवेरे उतर जाता है, सायकाल कुछ सर्दी लगकर हो जाता है। रात्रिस्वेद भी होता है। उसके शिर मास तथा सन्धियो मे आने-जाने वाला दर्द भी होता है। जीवाणु सक्रमण या विषसचार के कारण रक्तकणो को लोह नही मिल पाता जिससे उनमे Haemoglobin की प्रतिशतक मात्रा घट जाती है। इस प्रकार पाण्डुता का लक्षण इस रोग मे प्रारम्भ से ही रहता है और उत्तरोत्तर बढता जाता है। रोगी का रग भूरा मटियाला-सा हो जाता है (Cafe-au-late) Bacteraemia के कारण प्लीहा भी कुछ बढ जाती है (Splenomegaly) स्पर्श मे वह मृदु होती है। जीवाणुओ या उनकी विष का रक्तवाहिनियो की दीवार पर दुष्प्रभाव होकर रक्तस्राव-जनित छोटे-छोटे चकत्ते (Petechiae) भी त्वचा पर निकल सकते हैं जो हसली की हड्डी पर, गिट्टो पर, निचली पलक की अन्दर की झिल्ली पर मुख के अन्दर की झिल्ली पर निकलते है। इस रोग के कारण हाथो की

अगुलियो के सिरे मोटे हो जाते हैं (Clubbing) चिरस्थायी जीवाणु सक्रमण का यह एक चिह्न है। ऐसा क्यो होता है इसकी कोई ठीक व्याख्या अभी नही हुई। इस रोग मे हाथ-पाव की अगुलियो के मास मे मटर के आकार की छोटी-छोटी वेदनायुक्त ग्रन्थिया भी वन जाती है जिन्हे Osler's Nodes कहते हैं। सभवत रक्तवाहिनियो मे शोथ या Emboli के कारण होती हैं।

परीक्षा

हृदय परीक्षा करने पर उसमे प्रथम शब्द के स्थान पर एक कठोर फूत्कार Pansystolic Murmur सुनाई पडती है जो वाम कपाटी मे Incompetence के कारण उत्पन्न होती है। कभी-कभी महाधमनी कपाटी Aortic Valve मे Incompetence के कारण उसके प्रदेश पर Murmur सुनाई पडती है। हृदयगति तीव्र होती तथा हृदय आकार मे कुछ वडा भी होता है। रक्त मे श्वेत-कण-वृद्धि—Polymorphonuclear Leucocytosis—पाई जाती है अर्थात् वे वढकर १२ हजार तक हो जाते हैं। हिमोग्लोविन ८-१२ ग्राम प्रतिशतक मिलिलिटर होता है। रक्तकण अधिक नही गिरते वे ३ मिलियन से अधिक ही होते है। Sedimentation Rate कुछ वढा होता है। मूत्र मे रक्तस्राव होने से कुछ रक्तकण मिलते तथा कुछ अलव्यूमिन भी होता है।

उपद्रव

धमनीरोध Embolism इस रोग का वडा उपद्रव है। वाईं छाती के नीचे दर्द उठे तथा वहा स्पर्शाक्षमता हो तो प्लीहा मे Embolism का सन्देह करें। पीछे वृक्क प्रदेश पर सहसा शूल उठे, मूत्र मे रक्त मिले तो Embolic Nephritis का सन्देह करें। सहसा दृष्टिनाश हो तो Retina की धमनी मे Embolism का सन्देह करें। पेट मे सहसा शूल हो, अफारा हो जाए, आन्त्रवन्ध लग जाए तो Mesenteric artery मे Embolism का सन्देह करे। मस्तिष्क मे धमनीरोध हो तो अर्धांगरोग Hemiparesis हो सकता है।

रोग विनिश्चय

हृदय पर फूत्कार सुनाई पडे, ज्वर रहता हो, त्वचा पर चकत्ते दीखें, अगुलियो में Clubbing हो Osler's Nodes हो, प्लीहा वृद्धि हो, पाण्डुता हो, मूत्र मे रक्त हो तो इस रोग का वहुत कुछ निश्चय हो जाता है। जितना इस रोग का शीघ्र पता लग जाए उतना ही यह औषध साध्य है। रोग के प्रारभ होने से १-२ मास के अन्दर इसकी चिकित्सा आरंभ हो जाए तो ९०% रोगी अच्छे हो जाते हैं। ३ मास के वाद चिकित्सा आरभ हो तो केवल ५०% रोगियो को वचाया जा सकता है। चिकित्सा न मिले तो रुग्ण कपाटी के असमर्थ होते जाने मे हृदय वढता जाता और फेल हो जाता है या किसी अग मे Embolism के होने की आशका रहती है। इस रोग का क्षय रोग, Typhoid fever तथा Rheumatic fever से भेद करना चाहिए। इनमे से प्रत्येक से भेद करना कुछ कठिन नहीं।

चिकित्सा

Prophylactic—यदि किसी Rheumatic carditis रोगी के मुख आदि मे कोई शल्यकर्म करना हो तो एक दिन पहले उसे ५ लाख यूनिट्स Penicillin के दिन मे २ वार दे देने चाहिए और एक दिन वाद भी। उसे दातो मे पूय उत्पन्न होने नहीं देना चाहिए। उसके मूत्र की परीक्षा होती रहनी चाहिए ताकि वहा से Streptococcus Faecalis रक्त मे न जाने पाए।

Curative—रोग का पता लगते ही रोगी के रक्त के कुछ नमूने Blood Culture के लिये लेने के वाद उसे Penicillin Crystalline ५-१० लाख मात्रा मे ६-६ घण्टे वाद देनी आरभ कर देनी चाहिए और इस क्रम को ६ सप्ताह जारी रखना चाहिए। साथ ही रोगी को विश्राम, विटामिन्स तथा लोह और प्रोटीन भोजन मिलना चाहिए। ज्वर कम हो, क्षुधा लगे, पाण्डुता कम हो, भार वढे, Sedimentation rate घटे, रोगी अपने को अच्छा अनुभव करे तो समझें कि उसे चिकित्सा से लाभ है।

आमवातिक हृदय अन्त:शोथ (Rheumatic Endocarditis)

सधिक ज्वर (Rheumatic fever) ५ से २५ वर्ष तक के वालको और युवको मे होने वाला एक रोग है जिसके उपद्रव रूप मे आधे या तीन चौथाई रोगियो मे हृदय अन्त शोथ या Rheumatic Endocarditis हो जाता है। टान्सिल्स के Beta Haemolytic Streptococcus के प्रति शरीर के स्नायुतन्तु या Connective Tissue मे असात्म्यता या Allergy के कारण शोथ हो जाने से ही सधिक ज्वर उत्पन्न होता है। यो तो इस रोग मे शरीर का सारा स्नायुतन्तु ही ग्रस्त होता है पर सधियो तथा हृदय मास का स्नायुतन्तु अधिक ग्रस्त होता है। और हृदय मे भी Mitral तथा Aortic Valves अधिक ग्रस्त होते हैं। दुख की वात यही है कि तीव्र रोग के अच्छा हो जाने के वाद भी आधे से अधिक रोगियो मे Valvular Endocardi का रोग चिरस्थायी रूप मे रह जाता है।

संधिक ज्वर ग्रस्त स्नायुतन्तु मे तकुआकार सूक्ष्म ग्रन्थिया जिन्हें Aschoff body या Node कहते हैं हो जाती हैं। ये ग्रन्थिया इस रोग का विशेष चिह्न है। रोगग्रस्त हृदयमास या Myocardium मे भी ये हो जाती हैं। हृदय कपाटियो या Valves पर ये विशेष रूप मे होती हैं जिससे उन पर मस्सो Warts की तरह के पिन के नक्के जितने अकुर या Vegetations बन जाते हैं। फिर इनमे Fibrosis की प्रक्रिया के होते जाने से हृदय कपाटिया विषम आकृति की हो जाती हैं।

स्नायुतन्तु मे उत्पन्न हुई Aschoff body की परीक्षा करें तो उसके केन्द्र मे मृत हुआ Callagen Tissue होता है। उसके चारो ओर अनेक Nuclei वाले Giant Cells होते हैं, उसके बाहर Lymphocytes, उसके बाहर Plasma Cells और सबसे बाहर Fibroblast Cells होते हैं। Aschoff Nodes सभी रोगग्रस्त स्नायुतन्तुओं मे होते हैं पर हृदय मे विशेष होते हैं।

इस रोग मे हृदय मास सूजकर कुछ मोटा हो जाता है, विशेषतः वामक्षेपक अधिक बड़ा हो जाता है तथा Mitral Valve का छिद्र (Ring) कुछ चौडा हो जाता है।

लक्षण

Rheumatic Endocarditis हो जाने पर हृत्प्रदेश पर दर्द, हलका हृत्कम्प, स्वल्प श्रम से श्वासकृच्छ्रता का होना, क्षुधानाश, पाण्डुता आदि लक्षण होते हैं। जितनी आयु छोटी होती है उतना ही संधिक ज्वर का दुष्प्रभाव हृदय पर अधिक स्थायी होता है। परीक्षा करने पर हृदय के निचले सिरे Apex पर सुनने से प्रथम शब्द के स्थान पर एक Pansystolic murmur सुनती है जो Mitral Incompetence या Mitral Valvulitis के कारण होती है। Aortic Valvulitis हो तो हृदय के Base पर अर्थात् Sternum के बायें किनारे पर ३-४ Intercostal प्रदेश पर सुनने से द्वितीय शब्द के बाद Early Diastolic murmur सुनती है। E S R बढा हुआ होता है। रोगी के सीरम मे C-Reactive प्रोटीन जो साधारण व्यक्ति मे नहीं होता वह पाया जाता है। इसका पता Antiserum के द्वारा लगता है। यह इस रोग का एक विशेष चिह्न है। E C G परीक्षा मे P R तथा Q T. अन्तर कुछ लम्बे होते है।

चिकित्सा

जब तक ज्वर रहे रोगी को पूर्ण विश्राम करना चाहिए Sodium Salicylate १५-२० ग्रेन मात्रा मे जल मे मिलाकर उसे ३-३ या ४-४ घ० पर मिलना चाहिए। बालक की मात्रा इससे कुछ कम होनी चाहिए। Digoxin दें साथ ही Prednisolone १० मिलि० मात्रा मे ६-६ घ० बाद उसे जल से दे देना चाहिए। १ सप्ताह बाद इसकी मात्रा ५ मिलि० ६-६ घ० कर दे। और इस प्रकार इस चिकित्सा को १½ मास तक चलाना चाहिए।

आयुर्वेद में हृदय रोग

कारण

आयुर्वेद ग्रन्थो मे अति शारीरिक श्रम, चिन्ता, भय आदि तीव्र मानसिक भाव, अति उष्ण, अति रूक्ष गुण तथा अति गुरु गुण भोजन, मल मूत्रादि का शरीर से भली प्रकार न निकलना, आमवात आदि की रोगो की उचित चिकित्सा का न होना, शरीर को निर्बल कर देने वाले सर्व भाव, ये हृदय रोग के कारण कहे गये हैं।

श्लैष्मिक हृदय रोग (Rheumatic Carditis)

अत्याहार आदि से शरीर में आम दोष की वृद्धि के परिणामस्वरूप हृदय के अन्तरावरण मासमय भाग या बाह्य आवरण मे श्लैष्मिक शोथ हो जाने से उत्पन्न होने वाले हृद्रोग को जिसके कारण कि मन्द ज्वर, शरीर मे मन्दता, हृदय मे गुरुता, अग्निमन्दता, कास आदि के लक्षण हो, श्लैष्मिक हृद्रोग कहा है।

वातिक हृद्रोग (Asthenic or Degenerative Heart Disease)

पोषण के कम हो जाने से हृदय की सहज प्राणशक्ति हीन हो जाय तथा उसके मास मे क्षीणता आ जाय और इस कारण हृदय नैर्बल्य, हृच्छूल, हृत्कम्प, मूर्छा आदि लक्षण हो तो इससे उत्पन्न हृद्रोग को वातिक हृद्रोग कहा है। (चि०। चि०। २६) सुश्रुत के अनुसार जब हृदय मे शूल का लक्षण विशेष हो तो उसे वातिक हृद्रोग कहते हैं।

पैत्तिक हृदय रोग (Subacute Bacterial Endocarditis)

हृदय के Endocardium मे पहले आमवातिक शोथ हो चुका हो तो कभी कभी उसके Mitral एव Aortic कपाटियो मे विशेषत. शरीर के किसी अन्य भाग से जैसे फुपफुस मे से पूय जनक जीवाणु (Strepto-

coccus Viridans) का संक्रमण होकर उनमे शोथ और अधिक बढ जाता है, जिससे एक नवयुवक रोगी मे स्वल्प श्रम से श्वास चढ जाने, कृश हो जाने, नाडी की तीव्रता (१००-१२०) मन्द ज्वर (९९-१००) पाण्डुता, पीतभाव, रात्रिस्वेद आदि के लक्षण होते हैं इसे पैत्तिक हृद्रोग (Bact Endocarditis) कहते हैं । मस्तिष्क में यहा से किसी रक्त खण्ड Embolus के जाने से मूकता, दृष्टिनाश, अग घात के उपद्रव; Mesentery में रक्त खण्ड के फस जाने से पेट में दर्द का उपद्रव हो सकता है । (च० । चि० । २६)

श्लैष्मिक या आमवातिक हृद्रोग के लिये लघन, मृदु विरेचन, तथा आमवाताधिकारोक्त रास्नादिक्वाथ महायोगराज गुग्गुलु आदि किसी गुग्गुलु या यवक्षार-युक्त दशमूल क्वाथ का प्रयोग लाभदायक रहता है।

वातिक हृद्रोग अर्थात् हृदय की हर प्रकार की निर्वलता के लिये अति व्यायाम तथा मानसिक विक्षोभो से वचते हुए रात्रि को पर्याप्त निद्रा, दिन में भी उचित विश्राम करते हुए मुक्ता पचामृत २ रत्ती प्रतिदिन तीन वार, या मुक्ता १½ रत्ती, अकीक-प्रवाल १-१ रत्ती को सितोपलादि २ माशा मिलाकर दिन मे २ वार लेना चाहिये । स्वर्ण भस्म, मुक्ता, प्रवाल, रजत, अकीक, सगयशव, शृ ग, समान-समान को अर्जु न क्वाथ से भावना देकर १-२ रत्ती की मात्रा में दिन में दो वार देने से भी हृदय की प्राणशक्ति वढती है। चतुर्मु खचिन्तामणि, नवरत्न मृगाक, वृहद्वात चिन्तामणि, योगेन्द्र रस, प्रभाकर वटी भी २-२ रत्ती की मात्रा में दिन में दो वार लेने से हृदय को वलवर्धक होते हैं। इसी प्रकार जवाहर मोहरा, माणिक्य, पन्ना, मुक्ता, प्रवाल, सगेयशव, कहरवा, वर्क चादी, वर्क सोना १-१ तोला, शृ ग भस्म दो तोला, कस्तूरी ६ माशा, अम्वर १ तोला, अर्क गुलाव से १५ दिन घुटाई करें। यह औषध १ रत्ती दिन में दो वार लेने से हृद्य होती है। हृदय को वल देने के लिये तथा हृदय नैर्वल्य से उत्पन्न शोथ-श्वास आदि उपद्रवो के लिये मुक्ता, प्रवाल, सगेयहूद के साथ गोक्षुरु युक्त पुनर्नवाष्टक क्वाथ, दशमूलक्वाथ यवक्षार सहित, या अगस्त्यहरीतकी का प्रयोग करना चाहिये या च्यवनप्राश, अर्जु नारिष्ट, त्रिफलारिष्ट या खमीरा गाजवा का सेवन करना चाहिये। हृदय में शूल तथा निर्वलता के लिये शृंग भस्म को २ रत्ती की मात्रा में ६ माशा घृत के साथ दिन में ३ वार दिया जाता है (यो र)।

हृद्रोगोपयोगी कुछ प्रयोग नीचे दिये जाते हैं:—

(१) ककुभचूर्ण (यो र) अर्जुनवृक्ष की छाल का चूर्ण २-३ माशा मात्रा में दूध के साथ पिलाना चाहिए। हृदय नैर्वल्य में उपयोगी।

(२) ककुभादिचूर्ण (भै. र.) अर्जुन की छाल, वचा, रास्ना, वला, नागवलामूल, कचूर, पुष्करमूल, पिप्पली, सोठ, हरड समान-समान का चूर्ण ३ माशा मात्रा।

(३) अर्जुनक्षीर (यो र) अर्जुन छाल १ तो, दूध १६ तो., जल १६ तो., जल भाग उडने तक पकाकर छानकर मिश्री आधा तोला, इलायची छोटी ५ का चूर्ण डालकर पिलाए। हृदय नैर्वल्य में उपयोगी।

(४) अर्जुनघृत (भै र.) अर्जुन छाल का रस या गर्म जल में वनाया फाण्ट ४ भाग, छाल का कल्क ½ भाग घृत १ भाग। घृत वनाए। मात्रा १ तो।

(५) वलामधुयष्ठीक्षीर (यो र) आधा-आधा तोला दोनो से उपर्युक्त विधि से पकाया दूध भी हृदय के लिए वल्य है। लघु पचमूल से पक्व दूध भी हृद्य है।

(६) कटुकादिचूर्ण (यो र) कुटकी और मुलैठी समान का वनाया चूर्ण ३ माशे की मात्रा में गर्म जल से देने से हृदय के लिए वल्य है।

(७) त्रिनेत्ररस (यो र) पारा, गधक, अभ्रक समान-समान मिलाके अर्जुन के छाल के रस की २१ वार भावना दें। २-३ रत्ती मात्रा। हृदय के लिए वल्य है। मधु से दें।

(८) नागार्जुनाभ्र (र सा स) शतपुटीअभ्रक को ७ दिन अर्जुन के छाल के रस की भावना दें। १-१ रत्ती की गोली। हृदय के लिए वल्य है।

(९) पञ्चाननरस (भै र) पारा, गंधक समान-समान को आवले, मुलैठी, खजूर, मुनक्का प्रत्येक के क्वाथ से एक-एक वार मर्दन कर २-२ रत्ती की गोली वना के एक गोली को आमलकी चूर्ण २ माशे और उतनी ही मिश्री या खाण्ड मिलाके दें। यह भी हृदय के लिए वल्य है।

(१०) हिंग्वादिचूर्ण (भै र तथा शा. स) हींग, वचा, सोठ, पिप्पली, कुष्ठ, हरड, चित्रमूल, कालानमक, विडलवण, जवाखार, पुष्करमूल समान का चूर्ण १-२ माशा मात्रा। हृदय शूल के लिए उपयोगी है।

(११) यवक्षारयुक्त हिंग्वष्टक भी हृदय शूल में उपयोगी है।

(१२) पुष्करादिक्वाथ (यो र) पुष्करमूल, कायफल, भारंगी, सोठ, पिप्पली का क्वाथ कफ हृद्रोग या Rheumatic heart में उपयोगी।

(१३) पुष्करमूल चूर्ण (भै. र.) आधा माशा की मात्रा में मधु के साथ दें। यह भी हृदयशूल में उपयोगी है।

(१४) खमीरा गाज़ुबान (यूनानी औषधि) ३ माशे की मात्रा में हृदय के लिए बल्य है।

(१५) पुनर्नवासव (भै. र.) पुनर्नवा दोनों, पाठा दोनों, गिलोय, चीतामूल प्रत्येक १०-१० तोला। कण्टकारी १५ तो.। जल १२८ सेर में पका $\frac{1}{4}$ शेष रखकर गुड़ १२$\frac{1}{2}$ सेर, शहद २ सेर डालकर आसव उठाए। आसव उठ जाने पर उसमें त्रिजातक, सुगंधवाला मरिच २$\frac{1}{2}$-२$\frac{1}{2}$ तो. मिलावें। २$\frac{1}{2}$ तोला मात्रा। हृदय रोगजनित शोथ में उपयोगी।

(१६) दशमूलादिक्वाथ (यो. र.) दशमूल क्वाथ में यवक्षार सेंधव मिलाकर पिलायें। मूत्रप्रवृत्त होकर हृदय को आराम मिलता है।

(१७) शिवागुग्गुलु (भै र, च. द.) त्रिफला प्रत्येक २० तो., जल ४ सेर पकाकर $\frac{1}{4}$ शेष रखें। इसमें एरण्डतेल १० तोला, गन्धक २$\frac{1}{2}$ तो. गुग्गुलु १० तो. डालकर गाढ़ा करें। उसमें रास्ना, विडंग, मरिच, पिप्पली, सोंठ, देवदारु आधा-आधा तोला डालें। इसकी १ माशा मात्रा। हृदय शूल में हितकर।

(१८) बिजौरापानी या निम्बूपानी सेंधव लवण डालकर पीने से हृदय शूल शान्त होता है (ग. नि. शूले)।

हृदय रोग में पथ्यापथ्य :—चावल, मूग, गेहूं, परवल करेला, गोक्षीर आदि पथ्य हैं। तेल, खटाई, गुरुस्निग्ध अन्न, श्रम, धूप, काम, क्रोध, चिन्तादि मानस आवेश तथा भाषण अपथ्य हैं।

मूत्र रोग
Diseases of the Kidney

वृक्कों की रचना तथा कार्य

ऊपर कहा गया है कि हृदय रुग्ण या निर्बल हो तो वृक्कों को रक्त व ऑक्सिजन के कम मिलने से वे भी फेल होने लगते है। इसी प्रकार वृक्क पहले रुग्ण हो जायें और रक्त मे से मल द्रव्यों (Metabolites) को मूत्र के द्वारा शरीर मे बाहर न कर सकें तो इन मल द्रव्यों के दुष्प्रभाव मे धमनिया रुग्ण होने लगती हैं। उनमें धमनीकाठिन्य (Arteriosclerosis) होने से रक्तभार बढता है और हृदय के वाम कोष्ठ मे वृद्धि होकर हृदय रुग्ण हो जाता है। इस प्रकार हृदय रोग के कारण वृक्क और वृक्क रोग के कारण हृदय रुग्ण हो जाता है।

रचना

प्रत्येक वृक्क १५० ग्राम भार का लोभिये की तरह का ठोस अवयव है जिसके ऊपर का किनारा १२वीं Dorsal Vertebra के लैवल पर और निचला किनारा दूसरे Lumber Vertebra के लैवल पर होता है जो लगभग ५ सेन्टीमीटर लम्बी १० लाख मूत्र बनाने वाली नालियों (Nephrons) के परस्पर स्नायुतन्तु के द्वारा मिलने से बना हुआ है। इनके द्वारा बना मूत्र, वृक्काशय (Renal Palvis) मे और वहा से Ureter के द्वारा मूत्राशय (Bladder) मे चला जाता है। वृक्क का बाहर का भाग Cortex कहाता है जिसमे धमनिया, शिरायें, Proximal तथा Distal Convoluted Tubules तथा Glomerular Capsules होते हैं अन्दर का भाग Medulla कहाता है जिसमे Pelvis उसके Calices व Renal Pyramids तथा Loops of Henle होते है।

प्रत्येक मूत्र बनाने वाली नाली या मूत्र स्राविणी की सूक्ष्म परीक्षा की जाय तो उसका मुख्य भाग जो Cortex मे रहता है बीच मे एक धमनी गुच्छ (Glomerulus) और उस पर चढे कोष (Capsule) से बना हुआ है। प्रत्येक धमनी गुच्छ मे, साथ-साथ एक धमनी रक्त को लाती है जिसे Afferent धमनी (Arteriol) कहते है और एक रक्त को बाहर ले जाती है जिसे Efferent धमनी (Arteriol) कहते हैं। बाहर जाने वाली धमनी की चौडाई अन्दर आने वाली धमनी से आधी होती है जिससे स्पष्ट है कि इस धमनी गुच्छ (Glomerulus) मे रक्त का दबाव अधिक रहता है, इसलिये उसके छनने मे सुविधा रहती है। बाहर जाने वाली धमनी की शाखाओ (Peritubular Capillaries of the Efferent Artery) के, अपने चारो ओर फैले जाल से ही, मूत्र स्राविणी को रक्त मिलता है। इस जाल मे से ही छोटी-छोटी शिरायें Venules बनती हैं जो वृक्क की Interlobular शिराओ मे जाती है और फिर ये Renal Vein मे वापिस रक्त ले जाती हैं। धमनी गुच्छो मे रक्त लाने वाली धमनियो या Afferent Arterioles मे Sympathetic नाडिया आती हैं उनके उत्तेजित होने पर अर्थात् धमनियो के सकुचित हो जाने पर स्पष्ट है कि धमनी गुच्छो मे दबाव (Pressure) गिर जाता है और मूत्र कम बनता है। ये नाडिया शान्त हो तो मूत्र ठीक-ठीक बनता है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि शरीर मे रक्तभार बढा हुआ हो तो धमनी गुच्छो मे भी दबाव बढ जाता है और मूत्र अधिक बनता है। रक्तभार गिर जाय तो धमनी गुच्छो मे मूत्र

कम छनता है। आने वाली धमनी को फैलाने वाले द्रव्य जैसे मद्य, Caffeine, Xanthine आदि के प्रयोग से मूत्र बढ जाता है। धमनी गुच्छ मे प्रवेश करने वाली सूक्ष्म धमनी की दीवार मे एक छोटा सा अवयव है जिसे Juxta Glomerular apparatus कहते हैं उसमे एक एन्जाइम Rennin बनता है जिसके रक्त मे जाने से उसके एक ग्लोब्युलिन पर प्रभाव होकर Angiotensin एक Octapeptide बन जाता है जो बडा Vasopressor होता है। सभवत इसके धमनी गुच्छ के द्वारा Efferent धमनी मे जाने से उसके अन्दर दबाव बढ जाता है उसमे दबाव बढने से धमनी गुच्छ मे से मूत्र के छनने की प्रक्रिया सुगमता से हो जाती है। सारी मूत्र नाली या मूत्र स्राविणी (Tubule) एक Basement Membrane से बनी है जिस पर एक पतली झिल्ली (Epithelial Cells) की चढी रहती है। इस नाली के मुख भाग के कोष या Capsule मे यह झिल्ली चपटे सैलो से जिनके Nuclei अण्डाकृति होते है बनी है। धमनी गुच्छ पर भी यह Epithelium वाली Basement Membrane चढी हुई है जिसे Visceral Layer of Capsule कह सकते हैं। धमनी गुच्छ के अन्तर्गत सिरा (केपिल्लरी) के मोड (Loop) की सूक्ष्म परीक्षा करें तो उसकी Epithelium के सैलो मे जिन्हे Podocytes कहते हैं असख्य-असख्य अकुर (Villi) दीखते है जिनके पाव (Foot Processes या Pedicles) सिरा या केपिल्लरी की दीवार मे उसकी Basement Membrane मे होते हैं। पर इन Foot Processes के बीच-बीच मे अवकाश होते है जो रक्त के छनने मे बडे सहायक होते ह। रक्तवाही सिरा की Endothelium के सैलो मे भी सूक्ष्म छिद्र (Pores, Fenestra) होते है। इस प्रकार सिरा के अन्दर के रक्त और बाहर केपसूल के अन्दर विद्यमान मूत्र के बीच मे केवल अन्तर तो एक Basement Membrane का होता है जो कि वस्तुत सिरा की Endothelium और Epithelial सैलो के पावो (Foot Processes) के मिलने से बनी हुई है इसमे से छनकर मूत्र बनता है। इस Basement Membrane को रक्त के अथवा ऑक्सिजन के कम मिलने से या किसी विषैले द्रव्य के द्वारा उसके निर्बल या विकृत हो जाने से रक्त का प्रोटीन भाग भी छनकर मूत्र मे अर्थात् Bowman's Capsule मे आ जाता है।

मूत्र स्राविणी के मुख भाग (Glomerulus तथा Capsule) से अगले भाग को इसका प्रथम तिर्यक् भाग या Proximal Convoluted भाग कहते है। इसकी Basement Membrane की Epithelium के सैल स्तम्भाकृति होते, आकार मे बड़े होते तथा अधिक दानों (Mitochondria) वाले होते है। इनके Nuclei गोल होते है। इनमे नाली के भीतर की ओर को निकले असंख्य Microvilli या सूक्ष्म ब्रुश के समान बाल होते है जो मूत्र को फिर से चूस लेने का काम करते है।

मूत्र स्राविणी के इनसे अगले उतरते तथा चढ़ते हुए पतले भाग को Henle का मोड़ (Loop) कहते है। यह Descending तथा Ascending Limbs तथा बीच के Thin segment से बना है। यह वृक्क के Medulla मे रहता है। इसकी दीवार एक सिरा (Capillary) की तरह पतली होती है जिससे इसके Descending Limb मे मूत्र के जल भाग का विलयन सम्भवतः अधिक होता है जिससे Ascending Limb मे सोडियम की मात्रा बढ़ जाती है इससे मूत्र के बहुत से भाग के फिर से विलीन होने मे सहायता मिलती है और उसका विलयन वहा अधिक होता है, एव Distal Convoluted Tubules मे जो मूत्र प्रवेश करता है वह अधिक Dilute होता है।

मूत्र स्राविणी के इससे अगले मुडे-तुडे भाग को जो वृक्क के Cortex मे आ जाता है द्वितीय तिर्यक् भाग Distal Convoluted Tubule कहते है। इसकी Epithelium के सैल भी प्रथम तिर्यक् भाग के सैलो की तरह के होते हैं। यद्यपि उनके अन्दर ब्रुश की तरह के बाल (Microvilli) कम विकसित रूप मे होते हैं पर सैलो के अन्दर दाने (Mitochondria) बहुत अधिक मात्रा मे होते है। यह द्वितीय तिर्यक् भाग Collecting Ducts मे समाप्त होता है जो फिर Medulla मे उतरती है। Collecting Ducts पर Antidiuretic Hormone का प्रभाव होने से वहाँ ऊपर से आया Dilute मूत्र फिर गाढा हो जाता है, ये Collecting Ducts फिर वृक्क के मूत्राशय (Pelvis) मे मूत्र डालती है। इस Hormone के कारण वहाँ Epithelium मूत्र के पानी को अधिक चूस लेती है।

इस प्रकार जिन Nephrons से वृक्क बने हुए है उनमे से प्रत्येक (१) Glomerulus (२) प्रथम Convoluted Tubule (३) द्वितीय Convoluted Tubule (४) तथा Collecting Tubule इन चार भागो से बना हुआ है जो मूत्र निर्माण करते हैं। इस प्रकार के १० लाख Nephrons प्रत्येक वृक्क मे पाये जाते ह यद्यपि एक समय मे इनमे से कुछ एक ही क्रियाशील होते है शेष Reserve मे रहते ह। प्रत्येक मूत्र स्राविणी १½ इच लम्बी है। इस प्रकार सबकी लम्बाई मिलकर ४५ मील है। धमनी गुच्छ मे आने वाली धमनी ३ शाखाओ मे

विभक्त हो जाती है। प्रत्येक शाखा से ५० कैपिल्लरी लूप या मोड बन जाते हैं। इस तरह धमनी गुच्छो से बनी हुई मोडो (Loops) की लम्बाई दोनो वृक्को की मिलाकर ३७ मील से अधिक हो जाती है। इसलिये यदि शोथ के कारण अर्थात् Nephritis से या इनमे क्षीणता (Nephrosis) के कारण वृक्क का एक भाग निष्क्रिय भी हो जाय तो शेष भाग मूत्र बनाने का कार्य करता रहता है परन्तु इन रोगो के बने रहने से उत्तरोत्तर वृक्को की अतिरिक्त शक्ति घटती जाती है। हा इनके रुग्ण होते जाने से मूत्र के छनने की क्रिया को कायम रखने के लिये रक्तभार को बढाना पडता है एव रक्तभार के बढने से रक्त के विष पदार्थ शरीर से भली प्रकार निकलते रहते हैं। इसीलिये बडी आयु मे रक्तभार को अधिक घटाना ठीक नही।

वृक्को का कार्य

वृक्को का भार आधा प्रतिशतक शरीर का है परन्तु उन्हे हृदय से आए रक्त का २५ प्र०श० भाग मिलता है तथा वृक्को मे से प्रति मिनट कुल रक्त का $\frac{1}{4}$ भाग (१२०० सी०सी०) चक्कर काट जाता है। इस बात को देखकर जाना जा सकता है कि इनको कितना काम करना पडता है। वृक्को के धमनी-गुच्छ अपने में से मूत्र स्राविणी के मुखो मे १७० लिटर मूत्र जो प्रोटीन तथा फैट व्यतिरिक्त प्लाज्मा के सदृश होता है प्रतिदिन छानकर डाल देते हैं। इनकी Filtration की रफ्तार १ मिनट मे १२७ मिलिलि० होती है परन्तु दैनिक मूत्र की मात्रा लगभग १$\frac{1}{2}$ लिटर होती है अर्थात् जितना जल या नमक Glomeruli में छनता है इसका सौवा भाग ही मूत्र द्वारा बाहर आता है दूसरे शब्दो मे १ मिनट मे १ मिलिलि० मूत्र बनता है। शेष स्राविणियो द्वारा विलीन कर लिया जाता है। अर्थात् वृक्को की मूत्र स्राविणिया गुच्छो मे से आये १६९ लिटर मूत्र को फिर से चूसकर Efferent धमनी की सिराओ के रक्त मे वापस कर देती है। स्पष्ट है कि मूत्र स्राविणी नालियो का काम धमनी गुच्छो या Glomeruli के समान ही महत्व का होता है। धमनी गुच्छो के रक्त मे से १० प्रतिशत के लगभग जल तथा ग्लूकोज़, लवण, पोटासियम, कैल्सियम आदि Crystalloid पदार्थ कैप्सूल या मूत्र स्राविणी नाली मे चले जाते है। स्पष्ट है कि इससे बाहर आने वाली (Efferent) धमनी मे Colloid पदार्थ की मात्रा के अधिक हो जाने से, उसकी नाली (Tubule) को जाने वाली शाखाओ मे Osmotic दबाव भी बढा हुआ होता है इसलिये उनके रक्त मे नालियो के अन्दर विद्यमान जल तथा Crystalloid पदार्थों को खीच लेने या चूस लेने का विशेष गुण रहता है। Efferent Arterioles इन मूत्र स्राविणियो के सैलो के द्वारा चूसे हुए द्रव्यो को ले जाकर वृक्क से बाहर निकलने वाली शिरा (Renal Vein) मे पहुचा देती है।

इस प्रकार मूत्र का छनना Glomeruli की सूक्ष्म सिराओ मे विद्यमान रक्तभार पर, जो साधारणत ७५ M M Hg होता है तथा उसके रक्त मे विद्यमान Osmotic भार पर जो उसके प्रोटीनो के कारण उसमे होता है तथा २५ M M Hg होता है, इन दोनो का अन्तर अर्थात् ५० M M Hg ही Filtration Pressure कहलाता है। इस पर ही मूत्र का निर्माण निर्भर है। अर्थात् रक्तभार तथा Osmotic भार पर वह निर्भर है। Bowman's Capsule मे भी भार १० M M Hg होता है उसके विपरीत Glomerular Pressure को काम करना पडता है। इस प्रकार Filtration Pressure कुल ४० M M Hg के लगभग होता है। शरीर का Arterial Pressure बदल जाए पर Glomerular Capillaries का दबाव सदा एक सा रहता है इसे वृक्को का Autoregulation कहते है।

प्रथम तिर्यक् भाग —ऊपर कहा गया है कि Glomeruli मे जो मूत्र छनकर आता है उसका ९९ प्रतिशतक भाग नालियो मे फिर से चूस लिया जाता है। इसका भी ८०-८५ प्रतिशत भाग प्रथम तिर्यक् भाग मे चूसा जाता है। वृक्को के अन्दर के मूत्र मे विद्यमान उपयोगी द्रव्य जैसे ग्लूकोज, लवण, बाइकार्बोनेट तथा सोडियम, पोटासियम, कैल्सियम के Chlorides, Amino-acids आदि भी आवश्यक जल भाग के साथ पूर्णतया चूस लिये जाते है। रक्त मे ये नार्मल से अधिक हो तो उतनी मात्रा मे इन्हे भी जाने दिया जाता है इन्हे High Threshhold पदार्थ कहा जाता है। धमनी गुच्छो से दिन मे १८० ग्राम ग्लूकोज़ छनती है पर वह प्रथम Convoluted Tubule मे सारी विलीन हो जाती है। सोडियम धमनी गुच्छो मे १००% हो तो अन्तिम मूत्र मे वह १-२% रह जाता है। Proximal Convolution मे उसका ८५% भाग विलीन हो जाता है। शेष Distal Convolution मे विलीन हो जाता है और यह विलयन Aldosterone के कारण होता है। धमनी गुच्छो-से छने पोटासियम का भी ९०% भाग Proxymal Convolution मे पुर्नविलीन हो जाता है पर Distal Convolution मे मूत्र के पहुँचने पर फिर मूत्र मे कुछ पोटासियम शरीर मे से आकर मिल जाता

है। इसके बदले मे मूत्र का सोडियम शरीर मे विलीन हो जाता है। यदि शरीर मे पोटासियम की कमी हो तो Collecting Ducts मे फिर वह कुछ विलीन हो जाता है। हा Urea, Creatinine, Uric acid तथा Phosphates और Sulphates का पुनर्विलयन नही होता। ये थोडी मात्रा मे भी हो तो उपर्युक्त द्रव्यो के समान प्रसरणशील या Diffusible न होने से विलीन नही होते इन्हे Low threshhold पदार्थ कह सकते है। जल के अधिकाधिक विलीन होते जाने से इनकी प्र०श० मात्रा मूत्र मे बढ जाती है। वहा के सैलो मे विद्यमान Enzymes भी उपर्युक्त इन विलेय पदार्थों के विलयन मे सहायक होते हैं। यदि ये सैल रुग्ण हो जाय तो ये उपयोगी पदार्थ भली प्रकार विलीन नही हो पाते एव मूत्र मे अधिक निकलने लगते हैं। इन पाचक रसो मे से (१) Alkaline Phosphatase है जो ग्लूकोज़ के विलियन में सहायक होता है। क्योकि यह ग्लूकोज़ फास्फेट के रूप मे विद्यमान द्रव्य पर प्रभाव करके ग्लूकोज़ को स्वतन्त्र करता एव उसे विलीन होने लायक बना देता है। Glomerulonephritis रोग मे यह Enzyme इन सैलो मे कम हो जाता है। (२) प्रथम तिर्यक् भाग के सैलो मे ५—Nucleotidase नामक एक Phosphatase भी होता है जो Adenosine Triphosphate के विश्लेषण से उत्पन्न Nucleotide का पाचक होता है। अभिप्राय यह है कि इन सैलो मे ऐसे Enzymes हैं जो ग्लूकोज़, Amino acids आदि मे रासायनिक परिवर्तन करके इन्हे विलयन योग्य बनाते है। इसे Active reabsorption कहते हैं।

जैसे ऊपर कहा है हैनले के मोड तथा मूत्र स्राविणी के दूसरे तिर्यक् भाग और Collecting Ducts मे ऊपर से आये मूत्र का १०-२० प्रतिशत भाग विलीन हो जाता है। ये निचले दोनो भाग Pituitary ग्रथि के पश्चिम खड के सूक्ष्म स्राव Antidiuretic Hormone के नियन्त्रण मे होते हैं। जब तक इसका प्रभाव रहता है तो इसके जल का पुनर्विलयनकारक होने से मूत्र मात्रा मे कम व गाढा अर्थात् १०२०-१०३० स्पेसिफिक ग्रेविटी (आपेक्षिक गुरुत्व) का आता है इस ग्रथि के स्राव की न्यूनता हो जाय या इस ग्रथि का Hypothalamus के Supraoptic Nucleus से सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाय तो मूत्र मे जल के अधिक आने मे वह बहुत अधिक मात्रा मे आने लगता है (Diabetes Insipidus या हस्तिमेह हो जाता है) दूसरी ओर शारीरिक या मानसिक आघात से इस Hormone की वृद्धि होकर मूत्र की मात्रा या शरीर मे जल की निकासी कम हो जाती है।

इस Hormone का प्रभाव ऐसा होता है कि मूत्र स्राविणी के इस निचले भाग के सैलो को जोडने वाले पदार्थ तथा Basement Membrane की परिस्रवणशीलता (Permeability) बढ जाती है। कहा जाता है कि इनमे Mucopolysaccharide Hyaluronic acid पर्याप्त मात्रा मे होता है। उपर्युक्त Hormone के प्रभाव से इस भाग के सैलो मे से Hyaluronidase का पाचक रस अधिक निकलता है और इसके कारण Polysaccharides के टूटने या विश्लिष्ट (Depolymerize) हो जाने से यह झिल्ली अधिक सछिद्र हो जाती है एव बहुत सा मूत्र सुखा लेती है।

Adrenel Cortex के Hormone, Aldosterone के प्रभाव से भी विशेषत सोडियम का पुनर्विलयन तथा पोटासियम की निकासी इस निम्न भाग मे विशेष होती है। Addison's Disease मे जब इस Hormone की न्यूनता हो जाती है तब मूत्र] द्वारा सोडियम शरीर मे से अधिक निकल जाता है और रक्त मे पोटासियम की मात्रा अधिक रुक जाती व बढ जाती है। Cortisone के देने पर अथवा शरीर तथा मन पर किसी आघात के पहुचने पर Aldosterone की निकासी बढती है जिससे पोटासियम की सैलो मे मे उनके बाहर विद्यमान द्रव मे निकासी और उस द्रव मे से मूत्र द्वारा शरीर से निकासी बढ जाती है अर्थात् शरीर मे Hypopotassaemia हो जाता है और साथ ही शरीर मे सोडियम अधिक रुक जाता है। श्वयथु रोग मे तथा Pregnancy Texaemia मे भी ऐसा होता है। वृक्क को रक्त कम मिले, उसमे रक्तभार गिर जाए तो Juxta Glomerular Apparatus से Renin की उत्पत्ति अधिक होती है और जिससे Angiotensin की उत्पत्ति बढती है जिससे Aldosterone की उत्पत्ति बढती है और शरीर मे अधिक लवण सचित हो जाता है। Shock, रक्तस्राव, आदि मे जब रक्तभार गिरता है Aldosterone की उत्पत्ति के बढ जाने से फिर रक्तभार नार्मल हो जाता है।

मूत्र नाली के इस भाग मे पुनर्विलयन के अतिरिक्त कुछ द्रव्य मूत्र मे प्रवेश भी करते है (१) इस भाग के सैल Organic Phosphate से Acid Sodium Phosphate बनाते है। Glomeruli से आये मूत्र मे Alkaline Sodium Phosphate (Na_2HPO_4) का अनुपात Acid Sodium Phosphate ($NaHPO_4$) से ५ १ का होता है परन्तु बाहर आये मूत्र मे इनका अनुपात १ ९ का हो जाता है। इस प्रकार यहा एमिड की उत्पत्ति से बहुत सा मूत्र का Sodium तथा अन्य Base फिर शरीर मे वापस चले जाते है। अर्थात् यहा के सैलो मे उत्पन्न

H_2CO_3 जो CO_2 व H_2O के वहाँ मिलने से बनता है मूत्र मे आये Na_2HPO_4 से मिलकर NaH_2PO_4 मे बदलकर मूत्र मे चला जाता है। जो H_2CO_3 बनता है वह CO_2 तथा H_2O मे बदल जाता है जिसमे से CO_2 वापस सैलो मे चला जाता है।

(२) इस भाग सैल अपने मे विद्यमान Enzyme, Amino acid Oxidase के द्वारा Amino Acids के Amino भाग से अमोनिया (NH_3) को भी तैयार करते हैं। जिसके मूत्र मे आये Acid Radicals (Anions) के साथ मिलने से अमोनिया के साल्ट्स बन जाते है, जिसका परिणाम यह होता है कि ऊपर से मूत्र मे आये Base फिर से *विलीन होकर शरीर मे चले जाते हैं।*

मूत्र नालियो के सैलो मे से Hydrogen Ion (H) या Hydrion निकलकर मूत्र मे आकर उसके Sodium Bicarbonate ($NaHCO_3$) आदि के Cation का स्थान ले लेता है और सोडियम को शरीर मे फिर से विलीन होने के लिये स्वतन्त्र कर देता है। वृक्क की नालियो के सैल Bicarbonate को भी बनाते है जिसके साथ मिलकर यह Sodium फिर शरीर मे विलीन हो जाता है। मूत्र मे H का Ion कार्बन डायऑक्साइड मे से आता है CO_2+H_2O से HCO_3 तथा H बनते हैं ये सैलो मे से आकर मूत्र के $NaHCO_3$ से मिलकर फिर रक्त मे चले जाते हैं और इसकी उत्पत्ति (Catalysis) के लिये वहा सैलो मे Carbonic anhydrase नामक एक पाचक तत्व स्वभावत रहता हे (इसीलिये Carbonic anhydrase Inhibitor द्रव्य Diamox आदि मूत्रल हो जाते हैं)। H Ion के कारण मूत्र अम्लीय होता है, तथा निम्न भाग के सैलो मे Glutamine मे से Amino ग्रुप NH_2 के पृथक् हो जाने से NH_3 (अमोनिया) उत्पन्न हो जाता है जो मूत्र मे आके H के साथ मिलकर NH_4 बन जाता है जो फिर मूत्र के NaCl, $NaSO_4$ के साथ मिलकर NH_4Cl तथा NH_4SO_4 बन के मूत्र द्वारा निकल जाते है। Na मुक्त होकर HCO_3 से मिलकर रक्त मे चला जाता है। जब शरीर मे Organic acids अधिक उत्पन्न हो रहे होते हैं तब वृक्कों का यह उपर्युक्त कार्य अधिक प्रबलता के साथ होने लगता हे और यदि वृक्क सक्रिय न हो तो रक्त मे अम्ल की अधिकता (Acidosis) हो जाती है। इसके विपरीत यदि हम Alkali अधिक लें या Alkaline ash भोजन या क्षारोत्पादक फल सब्जी आदि अधिक लें तो वृक्को मे H Ion तथा Ammonia की उत्पत्ति कम हो जाती है *और Alkaline Sodium Phosphate तथा Sodium* Bicarbonate मूत्र द्वारा निकल जाते हैं अर्थात् Alkalosis की अवस्था मे इन निम्न सैलो मे H तथा NH_3 की उत्पत्ति कम हो जाती है तथा $NaHCO_3$, Na_2HPO_4 तथा K की निकासी के बढ जाने से $KHCO_3$ की मूत्र द्वारा निकासी बढ जाती हे। इस प्रकार रक्त के *p*H को नियमित रखने का काम वृक्क करते है। यह भी स्मरणीय है कि Pyelography मे काम आने वाली Diodone औषधि तथा Penicillin आदि रक्तगत औषध भी इन Tubular सैलो मे से Active Secretion द्वारा निकाली जाती हे। यह भी स्मरणीय है कि Carbonic Anhydrase की शामक कुछ औषधिया भी बनाई गई है जिनसे *मूत्र बढता है तथा Glaucoma कम होता है जैसे Acetazolamide* (Didmox) Ethoxzolamide, Dichlorphenamide आदि।

इस प्रकार मूत्र स्राविणियो के दो भागो मे से Glomeruli मे तो साधारण तरीके से रक्त के छनने का काम होता है जैसे शरीर की दूसरी शिराओ (Capillaries) मे रक्त के छनने से Tissue Fluid उत्पन्न होता है वैसे मूत्र उत्पन्न हो जाता है। दूसरे भाग मूत्रस्रावी नालियो या Tubules मे इस मूत्र के उपयोगी द्रव्यो के पुनर्विलयन का काम होता हे। इस प्रकार वहा ½ पौण्ड ग्लूकोज़ २ ५ पोण्ड नमक तथा ५० गैलन जल का प्रतिदिन शरीर मे विलयन होता है। उनका काम कम से कम जल (Base) के द्वारा अधिक से अधिक जहरीले पदार्थों को निकालने का होता है तथा जैसे ऊपर कहा हे वृक्को का काम रक्त के *p*H (H ion concentration) को या उसमे Hydrogen Ions को उचित मात्रा मे रखने का भी रहता है (७ ३ से ७ ५ तक रक्त का *p*H होता हे) जब रक्त मे अम्लीयता बढती हे वृक्को की प्रणालियो मे से Sodium का पुनर्विलयन अधिक हो जाता है। Urea=CO$(NH_2)_2$ का विश्लेषण अधिक हो जाता है। उससे उत्पन्न Ammonia मूत्र मे विद्यमान अम्ल को उदासीन करके मूत्र द्वारा बाहर निकल जाता हे।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि यदि वृक्को के (१) धमनी गुच्छो Glomeruli की रक्तवाहिनियो की परिस्रवणशीलता घट जाय जैसा कि (१) तीव्र वृक्क शोथ (Acute Nephritis) मे होता है या (२) जब बहुत से धमनी गुच्छ नष्ट हो गये हो जैसा कि चिरस्थायी वृक्क रोग (Chronic Nephritis या Nephrosis) मे होता हे या (३) जब प्रोस्टेट ग्रन्थि के बढ जाने से वृक्को की मूत्रस्राविणियो (Tubules) मे भी अवरोध हो जाय या (४) जब हृदय निर्बलतावश या शरीर की रक्तवाहिनियो की *रक्त प्रेरक शक्ति के हीन हो जाने से* जैसा कि शरीर या

मन पर प्रबल आघात (Shock) लगने से या अतिसारो के कारण उन्हे रक्त कम मिले तो इन सर्व अवस्थाओ मे रक्त के अन्दर Urea की मात्रा नार्मल (२०-४० मिलि० प्र०श०) से अधिक हो जाती हे।

Urea Clearance Test —प्रात रोगी को एक गिलास जल पिलाकर उसे मूत्र करने को कहा जाता है। एक घटे वाद फिर उसे मूत्र करने को कहा जाता हे। इस मूत्र को ले लिया जाता है। उसके साथ ही रक्त भी लेकर उसमे Urea की जाच की जाती है। एक गिलास जल और पिला दिया जाता है, इसके एक घटे बाद के मूत्र को लेकर वह जितने सी०सी० हो उसे ६० से भाग दिया जाता हे ताकि एक मिनट मे कितने सी०सी० आया है यह पता लगे तथा दोनो मूत्रो की मिलिग्राम्स मे Urea के लिये जाच की जाती है। इस प्रकार मूत्र और रक्त दोनो मे Urea को देखा जाता है । Urea Clearance = $\frac{\text{प्रति मिनट मूत्र मे मिलि०}}{\text{प्लाज्मा के १ मिलिलि० मे मिलि०}}$ । नार्मल व्यक्ति का प्रति मिनट का मूत्र १ सी०सी० होता है। १ मिनट मे धमनी गुच्छो मे जो १२० मिलिलि० मूत्र छनता है उसमे से ५४ मिलिलि० विलीन हो जाता हे। इससे पता चलता है कि गुर्दे १ मिनट मे ५४ सी०सी० रक्त के Urea को पृथक् कर देते हैं। इसे गुर्दों की Urea Clearance की सामर्थ्य कहते हैं। आदर्श सामर्थ्य या Standard Clearance का जिसमे गुर्दे १ मिनट मे २ सी०सी० या इससे भी अधिक मूत्र बना लेते हैं यह ६० प्र०श० सामर्थ्य है। यदि उनकी सामर्थ्य इससे कम हो जाय, ४० या २० प्र०श० रह जाय तो उन्हे रुग्ण कहा जाता हे। तब रक्त मे Urea की मात्रा बढी हुई पायी जाती है। इसे गुर्दो की Urea Clearance की परीक्षा कहा जाता है

Water Concentration Test .—वृक्को के रुग्ण होने का पता मूत्र के आपेक्षिक गुरुत्व (Specific Gravity) के जानने से भी चलता हे। मूत्र मे प्रतिदिन ५५ ग्राम के लगभग जो ठोस पदार्थ निकलते है (अर्थात् १० ग्राम लवण, १० ग्राम दूसरे साल्ट, ३० ग्राम यूरिया, ५ ग्राम दूसरे Organic पदार्थ) उनके कारण मूत्र का आपेक्षिक गुरुत्व होता है। साधारणत यह १००५ से १०३० तक होता है। दिन के मूत्र का औसत आपेक्षिक गुरुत्व १०१८ और रात के मूत्र का १०५५ के लगभग होता हे। अब यदि सायकाल ६ बजे के खुश्क भोजन के बाद से अगले दिन प्रातः १० बजे तक सर्वथा जल के न पीने पर तथा प्रात ७ बजे तक के सब मूत्रो को फेंक देने के बाद ८-९-१० बजे के तीन मूत्रों को लेकर उनका आपेक्षिक गुरुत्व १०२५ से ऊपर न हो तो समझना चाहिये कि वृक्क रुग्ण है। इसे वृक्को का Water Concentration Test या Maximal Concentration of Urine कहते हैं।

Water Elimination Test —अब यदि रात ८ बजे बाद कोई भोजन या जल न दिया जाय और प्रात ७ बजे तक मूत्रो को फेककर उस समय १२५० मिलिलिटर जल पिलाकर ८-९-१०-११ बजे के मूत्रो को ले लेना चाहिये। इन सबकी सम्मिलित मात्रा पिये हुए जल का ८० प्रतिशत न हो और उसमे से कम से कम किसी एक का आपेक्षिक गुरुत्व १००३ न हो तो समझना चाहिये कि वृक्को मे मूत्र को पतला करने या जल को निकालने की शक्ति कम हे। इसे वृक्को का Water Elimination Test या Minimal Concentration Test कहते हैं।

वृक्को की मूत्र को गाढा करने की शक्ति जब कम हो जाती हे तब वे उतने ही मलो (Solids) को निकालने के लिये अधिक जल को निकालने लगते हैं, जिससे Polyuria या बहुमूत्र का रोग हो जाता है विशेषत रात्रि मेह (Nocturia) का रोग हो जाता हे। यह भी वृक्को की असमर्थता का सूचक होता है।

साधारणत मूत्र मे ९५% जल, ५% ठोस द्रव्य होते हैं। १ लिटर मूत्र मे यूरिया २३, यूरिक एसिड ६, Creatine १५ ग्राम होते हैं। इन Organic द्रव्यो के अतिरिक्त Sod Chloride ९, Pot Chlor २५, Sulphuric Acid १८, Phosphoric Acid १८, Ammonia ६, Calcium २, Magnesium २ होते हैं जो Inorganic हे।

तीव्र वृक्क-शोथ [Acute Nephritis, Proliferative or Hemorrhagic Glomerulonephritis (Ellis Type I, Nephritic Glomerulonephritis)]

१८२७ मे पहले-पहल इग्लिश डाक्टर Richard Bright (१७८०-१८५८) ने यह बताया कि यदि मूत्र गर्म करने पर जम जाय अर्थात् उसमे अलब्यूमिन हो तथा सारे शरीर मे श्वयथु दिखाई पडे तो वृक्को के रुग्ण होने की आशका करनी चाहिये। उसने यह भी बताया कि वृक्क रोग मे नाडी भरी हुई तथा कठोर होती हे। इसलिये इस रोग को पहले Bright का रोग कहते थे।

इस रोग मे वृक्को के Glomeruli विशेष ग्रस्त होते हैं उनके ग्रस्त होने से मूत्र का Filtration कम हो जाता है। इस रोग मे शोथ Glomeruli मे होता

है Tubules मे नहीं। Glomeruli मे जब शोथ होता है, तो उनमे से अलव्यूमिन छन जाता है तथा मूत्र की मात्रा कम हो जाती है।

तीव्र रूप मे यह रोग ३ से १० वर्ष के बीच बाल्यावस्था मे होता है। लडकियो से लडको मे अधिक पाया जाता है। जिन बालको मे इस रोग के होने की प्रवृत्ति पहले से ही होती है उनमे Tonsillitis का या त्वचा में पिडिका, अग्निदाह आदि कोई रोग स्पष्ट या अस्पष्ट रूप मे होकर वहा से Haemolitic Streptococcus (Certain Strains) का सक्रमण वृक्को मे हो जाता है। परन्तु एक तो यह रोग टासिलो के रुग्ण होने के १५-२० दिन वाद होता है, दूसरा रुग्ण वृक्को मे यह जीवाणु पाया भी नही जाता। अत: वृक्को के धमनी गुच्छो (Glomeruli) के Basement Membrane के इस जीवाणु या इसके विप के कारण उत्तेजित या रुग्ण हो जाने से उसमे ऐसा परिवर्तन हो जाता है, दूसरे शब्दो मे Glomeruli के प्रोटीन्स की किस्म या Pattern ही मे ऐसा परिवर्तन हो जाता है कि वह वृक्को का एक अग होता हुआ भी एक Antigen (या वाह्य पदार्थ) का सा व्यवहार करता है क्योंकि वह अजनवी-सा प्रोटीन हो जाता है जिससे उसके विपरीत Antibodies उत्पन्न हो जाते हैं जो रोगी के रक्त या सीरम के Gamma-Globulin मे पाये जाते है, इन्हें Anti kidney Antibodies कहते हैं। इनकी वृक्को के अन्तर्गत Antigen के साथ परस्पर प्रतिक्रिया होने से यह वृक्क-शोथ का रोग उत्पन्न होता है। दूसरे शब्दो मे शरीर के अन्दर ही Auto-Immunity या Autoallergy की प्रक्रिया के हो जाने से यह वृक्क-शोथ का रोग उत्पन्न होता है। अत यह एक Auto-Immunity से होने वाला रोग माना जाता है। इसीलिये वहुत से रोगियो के सीरम मे Antistreptolysin titres जो इस जीवाणु के सक्रमण के सूचक होते है पाए जाते हैं।

विकृति

रुग्ण वृक्को की स्थूल परीक्षा करने पर उनके Cortex या खोल मे रक्तस्राव के लाल दाने दीखते हैं तथा सूक्ष्म परीक्षा से पता चलता है जैसे विप ने उनके 'धमनी गुच्छो' (Glomeruli) की धमनिकाओं पर दुष्प्रभाव करके उन्हें सुजा दिया या फुला दिया हो। इन धमनी गुच्छो के वहिस्तर (Epithelium) के फूल जाने से अर्थात् Proliferative Capsulitis हो जाने से कैप्सूल के अन्दर का खाली अवकाश स्थान अर्थात् कैप्सूल्स और धमनी गुच्छो के वीच का अवकाश भर-सा जाता है। प्रत्येक धमनी गुच्छ (Glomerulus) अनेकानेक मोडो (Capillary Loops) से वना होता है। इनमे से एक मोड (Loop) की जाच करें तो पता लगता है कि उसके अन्दर का अन्त.स्तर (Endothelium) भी फूलकर मोटा (Endocapillaritis या Proliferation) हो गया है। दूसरे शब्दो मे उसके सैलो में अतिवृद्धि के हो जाने से उसके अन्दर का स्रोत या रास्ता भी वन्द-सा हो गया है जिससे उसमे रक्त स्वल्प मात्रा मे ही आ पाता है। यहा तक कि धमनी गुच्छो के अनेक मोडो मे तो रक्त वहना ही वन्द हो जाता है। इन सैलो के बीच-बीच Polymorph श्वेताणु छाए होते है। प्रत्येक धमनी गुच्छ मे रक्त एक आने वाली धमनिका (Afferent Arteriole) से आता है, और एक वाहर जाने वाली धमनिका (Efferent Arteriole) से वाहर जाता है। धमनी गुच्छ से निकलने वाली मूत्र स्राविणी (Tubule) की दीवार को क्योकि रक्त इसी वाहर जाने वाली धमनिका (Effe Arte) के द्वारा पहुचता है, अत जब धमनी गुच्छ मे रक्त थोडा ही पहुचता है तब उसकी मूत्र स्रावणी (Tubule) को भी रक्त थोडा मिलता है। इसलिए उसकी Epithelium मे भी क्षीणता की प्रक्रिया (Hyalinization) होने लगती है।

जैसा ऊपर कहा है, धमनी गुच्छ के मोडो (Loops) का वहिस्तर (Epithelium) भी फूलकर मोटा हो जाता है। जिससे दो मोडो के वीच का प्रदेश भर-सा जाता है। इस सूजे हुए वहिस्तर के अनेकानेक सैल क्षीण होकर झड जाते एव कैप्सूल के अन्दर के रिक्त स्थान मे वह जाते हैं। इन सूजे हुए मोडो या 'लूप्स' पर से श्लेष्म स्राव (Exudate) भी अधिक मात्रा मे निकलता है। इस श्लेष्म स्राव से द्वारा मोडो मे रक्तकण, श्वेतकण, अलव्यूमिन, Fibrin भी कैप्सूल के अन्दर के खाली स्थान (Capsular Space) मे जाते रहते है तथा मूत्र द्वारा वाहर निकलते रहते हैं। धमनिकाओ के फूल जाने से इस रोग को Proliferative वृक्क शोथ कहते हैं। इस रोग मे Tubules तथा वृक्क की रक्तवाहिनियो मे कोई विशेष विकृति नही होती।

लक्षण

तीव्र वृक्क-शोथ का रोग जो पहले वहुत होता था अव वहुत कम हो गया है। सम्भवत Tonsillitis मे Antibiotic औषधो के प्रयोग से ऐसा हुआ है। यह रोग Streptococci के सक्रमण के १५ दिन वाद सहसा

आरभ होता है, बालक या नवयुवक के आखों के आस-पास के अवयव में श्वयथु उत्पन्न हो जाता है जो कुछ दिन में पावो, टागो, अण्डकोषो तथा पीठ पर की त्वचा में भी प्रसरण कर जाता है। फुफ्फुस में श्वयथु हो जाय जिसे इस रोग का उपद्रव कह सकते है तो श्वासकृच्छ्रता हो जाती है इस श्वयथु का कारण या तो गुच्छो (Glomeruli) के सूज जाने से उनकी सूक्ष्म रक्तवाहिनियो में से परिस्रवण (Permeability या Glomerular Filtration Rate) का घट जाना एव उनमे मूत्रोत्पत्ति का घट जाना या Tubules में से लवण और जल का अधिक मात्रा में पुनर्विलीन (Reabsorb) हो जाना है, या धमनी गुच्छो के Endothelium के रुग्ण हो जाने से उनमें से अलब्यूमिन के अधिक मात्रा में निकल जाने से शरीर के रक्तद्रव (Plasma) में अलब्यूमिन का मात्रा में न्यून हो जाना है। क्योकि इससे रक्त का अन्दर का भार (Colloid Osmotic Pressure) घट जाता है एव उसमे अवयवो से द्रव को खीचने की शक्ति न्यून हो जाती है क्योकि जब-जब रक्त मे प्रोटीन की मात्रा ५ प्रतिशतक से गिर जाती है तब-तब शरीर मे न्यूनाधिक श्वयथु का लक्षण हो जाता है। अलब्यूमिन और ग्लोब्युलिन में से भी अलब्यूमिन के सोल्यूशन मे Osmotic Pressure अधिक होता है, दोनो का सोल्यूशन समान बल हो तो अलब्यूमिन के सोल्यूशन में यह प्रेशर दूसरे सोल्यूशन से चार गुणा अधिक होता है। बहुत सम्भवत मूत्र के बहुत कम हो जाने से रक्त में सचित विष (Toxins) के शरीरगत सर्वसूक्ष्म सिराओ की दीवारो पर दुष्प्रभाव पडने से उनमें से न केवल Electrolytes की वरन् प्रोटीन की भी निकासी होने लगती है। इसीलिये इस रोग के होने पर शरीर द्रव (Tissue Fluid) मे प्रोटीन १ प्रतिशत से अधिक पाया जाता है अर्थात् शरीर द्रव कुछ-कुछ प्लाज्मा के सदृश हो जाता है पर शरीर की सर्वसूक्ष्म सिराओ के ग्रस्त होने का कोई सबूत नही मिलता। श्वयथु के कारण रक्त मे Plasma की वृद्धि हो जाती है अर्थात् रक्त हलका पड जाता है जिससे पाण्डुता का लक्षण उत्पन्न हो जाता है।

इस रोग के प्रारम्भ मे रोगी बालक को चार-पाच दिन लगभग १०० डिग्री तक मन्द ज्वर भी होता है जो जीवाणु सक्रमण का सूचक होता है। उसकी नाडीगति भी कुछ तीव्र होती है। उसका रग भी कुछ फीका-सा हो जाता है अर्थात् रजक द्रव्य रक्त मे घट जाता है परन्तु द्रव के अन्दर रुक जाने से अर्थात् Overhydration में भी पाण्डुता (Normocromic) होती है। सभवत वृक्को से निकलने वाले Erythropoietin की उत्पत्ति के कम हो जाने से पाण्डुता होती हो। उसका B.S.R बढा हुआ होता है। बहुत से धमनी गुच्छो के अन्दर से अवरुद्ध हो जाने से मूत्र मात्रा में कम होता है (Oliguria)। दिन भर मे ५-१० छटाक तक होता तथा धुए मे रग का या काला होता है। अपने अन्दर विद्यमान-रक्तकणो तथा Urates के कारण वह इस रग का होता है। परीक्षा करने पर उसमे अलब्यूमिन बहुत अधिक पाया जाता है जो ४ से २ प्रतिशतक तक होता है। जब धमनी गुच्छो मे विद्यमान Basement Membrane को पूर्ण मात्रा में रक्त नही मिलता अर्थात् उनको आक्सिजन पूर्णतया प्राप्त नही होता तब रक्त का अलब्यूमिन उनमें से मूत्र में निकलने लगता है। इस प्रकार मूत्रगत अलब्यूमिन धमनी गुच्छो की रुग्णता का सूचक होता है। परीक्षण के तौर पर यदि वृक्क धमनी को आधे मिनट के लिये भी बाध दें तो Anoxia के कारण अलब्यूमिन आने लगता है। इसी के कारण मूत्र की स्पेसिफिक ग्रेविटी बढी हुई (लगभग १०२५ या १०३० तक) होती है। मूत्र मे Leucocytes, रक्तकण, तथा Epithelial, Hyaline तथा Granular Casts पाये जाते हैं जो कि धमनी गुच्छो के रुग्ण हो जाने के सूचक होते हैं।

तीव्र वृक्क-शोथ होने पर रक्तभार भी कुछ बढ जाता है। सम्भवत जिस विष से धमनी गुच्छो मे शोथ होता है उसी से सूक्ष्म धमनियो मे स्तम्भ (Spasm या Vasoconstriction) होकर रक्तभार के बढ जाने पर वाम हृदय के सन्मुख अवरोध के बढ जाने से उसमें अतिवृद्धि का उपद्रव हो जाता है जो रोग के आरम्भ होने के एक-डेढ मास के बाद प्रकट होता है। हृदय मे अतिवृद्धि होने के स्थान पर कुछ शैथिल्य (Dilatation) भी हो सकता है। इस अवस्था मे अर्थात् हृदय की शिथिलता और निर्बलता मे हृत्कम्प (Tachycardia) तथा श्वासकृच्छ्रता के लक्षण तथा Jugular Veins मे रक्तभार की वृद्धि के लक्षण प्रकट हो जाते है जो रात को विशेष होते हैं। हृदय की निर्बलता से Veins मे दबाव के बढ जाने से कुछ श्वयथु होता है। बालक मे हृदय दौर्बल्य सम्बन्धी इन लक्षणो को देखकर वृक्क रोग का सन्देह हो जाना चाहिये। जितना Albuminuria, Haematurea रक्तभार तथा श्वयथु अधिक हो उतना ही यह रोग तीव्र समझा जाता है।

रक्तभार की अधिकता से मस्तिष्क श्वयथु या Oedema होकर या Encephalitis होकर या बहुधा तो उसकी रक्तवाहिनियो मे स्तम्भ (Spasm या Vasoconstriction) होकर एव उसे रक्त के कम मिलने से सिर-

दर्द, तन्द्रा रोग तथा आक्षेप (Convulsion) के उपद्रव हो सकते हैं। इस रोग मे कभी-कभी मूत्र की मात्रा के न्यून हो जाने से अर्थात् दिन भर मे १० छटाक से कम हो जानेतथा स्पे० ग्रे० के १०१४ से कम हो जाने से मूत्र विपसचार (Uraemia) होकर उसके उपद्रव भी हो सकते हैं। साधारणत रक्त के १०० सी०सी० मे ३० मिलिग्राम के लगभग यूरिया होता है। इस रोग मे यह वढ़कर २००-३०० मिलिग्राम तक हो जाय तो उसके विपैले लक्षण होते है। अर्थात् यूरिया-विप-सचार के कारण नाडियो और मासपेशियो मे कम्प (Twitchings, Cramps) हो सकते हे। आमाशय तथा आतो पर इस विप का दुष्प्रभाव होने से क्रमश वमन और अतिसार के लक्षण भी हो सकते हैं। नासा से रक्तस्राव हो सकता हे रक्त में Acidosis का लक्षण भी हो सकता है। पर इस रोग मे मूत्र-विप-सचार का यह उपद्रव वहुवा ठीक हो जाता हे। रक्तभार-वृद्धि से उत्पन्न हृदय नैर्वल्य भी इस रोग का प्रधान उपद्रव है जिसका पता श्वास काठिन्य से लगता है। रक्तभार के कारण Retina मे कुछ स्राव होकर दृष्टिमाद्य का उपद्रव हो सकता है। कभी-कभी श्वास-ज्वर (Pneumonia) हो जाता है। श्वयथु, रक्तभार वृद्धि, मूत्र मे अलव्यूमिन, रक्त तथा Casts की उपस्थिति, मूत्राल्पता इसके प्रधान लक्षण हैं जिनको देखकर इस रोग का निश्चय हो जाता है।

साध्यता

साधारणत तापमान, नाडी-सख्या तथा रक्तभार ३-४ दिन मे घट जाते हे मूत्र की मात्रा वढ जाती हे और श्वयथु उतर जाता है मूत्र मे रक्त २ सप्ताह तक आ सकता है और प्रोटीन महीनो तक आ सकता है। ५ प्र० श० मे यह रोग मारक होता है। ८५ प्रतिशतक लगभग वालकों मे यह रोग १½-२ मास या कुछ महीनो तक ठीक हो जाता है, १ मास तक मूत्र मे रक्त आना वन्द हो जाता है, रक्तभार भी नार्मल हो जाता है। जव यह रोग दो-चार मास तक भी ठीक न हो तो उसके जीर्ण रूप मे हो जाने का भय रहता है। १० प्र०श० के लगभग मूत्र मे अलव्यूमिन आता रहता है, रक्तभार वढता जाता हे, वृक्क सकुचित से हो जाते हे ओर मूत्र वनाने मे असमर्थ हो जाते हैं एव जीर्ण वृक्क शोथ Ch Nephritis का रोग हो जाता है। आयु जितनी ही अधिक होती है अर्थात् १५-२० वर्ष से ऊपर होती है उतना ही यह रोग कष्टसाध्य होता है, क्योकि उतना ही इस रोग मे रक्तभार के उपद्रव के होने का भय रहता हे। यदि रोग का आरम्भ ही प्रवल हो, मूत्र वहुत कम आये २००, ३०० मिलिलिटर से कम हो (Oliguria हो), मूत्र मे रक्त जारी रहे, श्वयथु वना ही रहे, रक्तभार भी वना रहे, BSR वढा हुआ ५० mm/1st hour से ऊचा रहे, Uraemia का कोई लक्षण हो, रोग ६-१२ मास वना रहे तो यह रोग कष्टसाध्य होता है। मृत्यु, हृदय दौर्वल्य, मूत्राघात (Anuria) या फुसफुस-श्वयथु (Oedema) से होती है।

शोथयुक्त जीर्ण वृक्क शोथ, मन्द वृक्क शोथ (Subacute Nephritis, Membranous Glomerulonephritis Hydraemic Nephritis, Subacute Glomerulonephritis, Wet Nephritis, Nephrotic Nephritis, Nephrotic Syndrome, Lipoid Nephrosis Ellis Type II)

जैसे ऊपर कहा हे, वृक्को को पूर्ण विश्राम दिया जाए तो तीव्र वृक्क-शोथ वहुवा ठीक हो जाता है। परन्तु यदि यह रोग अस्पष्ट (Latent) रूप मे शुरू हुआ हो या उचित चिकित्सा न मिलने से वृक्क-शोथ २-३ मास तक ठीक न हो, एव इस रोग के कारण का, अर्थात् शरीर मे पडे किसी Septic Focus का निवारण न हो, तो शोथयुक्त जीर्ण-वृक्क-शोथ का रोग हो जाता है। परन्तु देखने मे आता हे कि वहुधा यह रोग तीव्र वृक्क-शोथ के उपद्रव-रूप मे प्रारम्भ नहीं होता, स्वतन्त्र रूप मे होता है और किसी जीवाणु सक्रमण से होता प्रतीत नही होता तथा उसके समान छोटी आयु मे ही न होकर वडी आयु मे भी अर्थात् ६० वर्ष तक भी होता है। इस शोथयुक्त-वृक्क रोग का कारण निश्चित नहीं हो पाया Metabolism की कोई विकृति कारण हे या Antigen-antibody की प्रक्रिया कारण हे इसका निर्धारण अभी तक नही हुआ। इस अवस्था मे देखने मे वृक्क अधिक स्थूल हो जाते हे तथा कुछ-कुछ श्वेत वर्ण के दीखते ह। इस अवस्था मे धमनी गुच्छो मे अतिवृद्धि Proliferation का लक्षण वहुत स्पष्ट होता हे। Basement Membrane स्थूल हो जाती हे Tubules मे क्षीणता Degeneration का लक्षण विशेष होता हे। जिससे इसे श्वेतवर्ण वडा वृक्क या Large White Kidney कहते है। वृक्को की श्वेतिमा का कारण Convoluted Tubules के सैलो मे वसामय क्षीणता का हो जाना तथा वहुत से धमनी गुच्छो मे रक्त-सचार का वन्द हो जाना हे। इस रोग मे धमनी गुच्छो मे स्थूलता का तथा मूत्रस्राविणियो (Tubules) मे क्षीणता का लक्षण विशेष रूप मे पाया जाता है।

धमनी गुच्छो की दीवारो मे इस रोग के विप के दुष्प्रभाव से काचसदृश क्षीणता (Hyalinization) की

प्रक्रिया हो जाती है, अर्थात् गुच्छो की सूक्ष्म सिराओं की दीवारो में Hyaline Fibres छा जाती हैं। इनकी उपस्थिति इन गुच्छो के रोपण के न्यून हो जाने की सूचक होती है। गुच्छो मे विद्यमान मोडो (Capillary Loops) के अन्त स्तर (Endothelium) इतने मोटे हो जाते है कि उनमे रक्त-सचार ही वन्द हो जाता है, धमनी गुच्छो मे कठोरता या Glomerulosclerosis की विकृति हो जाती है। इन सूजे हुए गुच्छों मे से उनके वहिस्तर (Epithelium) मे से झडे हुए सैल तथा इनके अन्दर से स्रवित हुए रक्त-कण, Albumin और इनसे उत्पन्न स्राव का वना Fibrin, ये सब Capsule के खाली स्थान मे जमा हो जाते हैं।

धमनी गुच्छो के चारो ओर के कैपसूलो के अन्दर का अन्त स्तर (Epithelium) विशेष स्थूल हो जाता है, अर्थात् इसके सैलो मे अतिवृद्धि हो जाती है। कैपसूल के एक भाग का अन्त स्तर (Epithelium) ही मोटा होता है और फूलकर कैपसूल के रिक्त स्थान को घेर लेता है। कैपसूल के इन उभरे हुए भागो को अर्धचन्द्राकार होने से Epithelial Crescents कहते हैं। इनकी उपस्थिति इस रोग का एक विशेष लक्षण है। कैपसूल मे मूत्र के साथ आये रक्त-कणो के विक्षोभक होने के कारण ही अन्त स्तर के सैलो मे यह वृद्धि होती प्रतीत होती है। वाद मे Capsular Epithelium के ये फूले हुए भाग स्नायुतन्तु की वृद्धि (Fibrosis) की प्रक्रिया के हो जाने से कठोर हो जाते और गुच्छ या Glomerulus के वहिस्तर (Epithelium) के साथ, जिसमे काच-सदृश क्षीणता (Hyalinization) होती है, जुड जाते हैं और उनमें रक्त-मार्ग के अवरोधक हो जाते है। इस प्रकार नालियो तथा गुच्छो के ऊपर के खोल या कैपसूल दोनो मे क्षीणता का हो जाना इस रोग का विशेष लक्षण है।

धमनी गुच्छो मे रक्त-सचार के कम हो जाने से इनमें से निकली Efferent Arterioles के द्वारा Tubules को भी रुधिर की मात्रा वहुत कम मिलती है जिससे उनके मुडे हुए (Convoluted) भागो मे विद्यमान सैलो मे वसामय (Fatty या Cloudy) क्षीणता हो जाती है, अर्थात् इन सैलो मे फैट की मात्रा अत्यधिक वैठ जाती है। Neutral Fat के अतिरिक्त इनमे Lipid पदार्थ या Cholesterol की मात्रा भी अत्यधिक हो जाती है और वढकर ८०० मिलिग्राम प्रतिशतक तक हो सकती है। Tubules की क्षीणता इस रोग का विशेष लक्षण है इस के होने मे उनके सैलो की परतें झड-झडकर मूत्र के साथ निकलने लगती हैं, जिन्हे हम Epithelial Casts कहते है इस प्रकार Tubules मे लघुता (Atrophy) की क्षीणता हो जाती है। Epithelial, fatty तथा granular Casts इनकी गणना के सूचक है।

वृक्कों के स्नायुतन्तु (Interstitial Tissue) में इस भाग मे भी पहले तो शोथ की प्रक्रिया होती है और वाद मे स्नायुशोथ (Fibrosis) की प्रक्रिया हो जाती है। जैसे Tubules के सैलो मे फैट (Lipoid) वैठ जाता है, जैसे ही वह Interstitial Tissue मे भी वैठता जाता है। इसी से वृक्क देखने मे श्वेत-वर्ण दीखते है जिससे इसे Lipoid Nephrosis का रोग भी कहा जाता है।

लक्षण

प्रारम्भिक वृक्क-शोथ दो-तीन मास मे ठीक नहीं होता तो वह मन्द या चिरस्थायी वृक्क-शोथ वन जाता है। पर वहुधा यह रोग इतने मन्द एव अज्ञात रूप से प्रारम्भ होता है कि रोगी को शारीरिक निर्वलता, तथा चलने पर श्वास चढने के अतिरिक्त महीनों तक इस रोग का पता नहीं चलता। फिर चेहरे पर या वहुधा निम्न शाखाओं मे श्वयथु होने का लक्षण होता है। टांगो पर से क्रमश श्वयथु सारे शरीर पर प्रसरण कर जाता है। आतो की दीवार मे श्वयथु होने से वमन और अतिसार के लक्षण हो सकते हैं। कई महीनों तक यह श्वयथु न्यूनाधिक रूप मे घटता-वढता रहता है। त्वचा के नीचे जल भरने के साथ-साथ उदर-गुहा मे जल भरने से मन्द जलोदर तथा फुफ्फुसावरण (Pleura) मे जल भरने से पार्श्वोदक भी होता है जिससे श्वास काठिन्य का लक्षण होता है। श्वयथु इतना हो सकता है कि रोगी का भार नार्मल से दो गुना हो जाय। श्वयथु पेट के अतिरिक्त छाती मे भी (Hydrotharax) हो सकता है। श्वयथु के साथ रोगी मे पाण्डुता का लक्षण भी होता है अर्थात् Hb की मात्रा ३/४ के लगभग रह जाती है। इन दोनो मे परस्पर मिल जाने से रोगी का रग मोम के सदृश दीखता है। रोगी देखने मे फूला हुआ श्वेतवर्ण होता है, ठीक जैसे कि उसके वृक्क फूले हुए श्वेत वर्ण होते हैं (Normochromic Anaemia)।

श्वयथु के साथ-साथ मूत्र मे अलव्यूमिन वहुत जाता है, लगभग ५-१०-१५ और २० ग्राम तक प्रतिदिन शरीर मे से निकल जाता है (२ ग्राम प्र०श०)। इस रोग मे धमनी गुच्छो मे शोथ होने से उनमे मे रक्त के प्रोटीन्स अधिक छन जाते है इसलिये इसमे Proteinuria का लक्षण विशेष होता है। मूत्र की दैनिक मात्रा थोडी होती है तथा रक्त कणो और Urates के कारण उसका रग गहरा सा या

कुछ काला सा होता है। उसकी स्पेसिफिक ग्रेविटी १०२०-१०२५ तक होती है। उसमें जल तथा लवण (Sodium Chloride) की मात्रा साधारण से कम होती है। परीक्षा करने पर उसमें Epithelial, Hyaline, Waxy, Fatty तथा Granular Casts विशेषत तथा रक्तकण और श्वेतकण भी स्वल्प मात्रा में पाये जाते हैं। इस अवस्था में अलब्यूमिन तो वृक्कों में से जाता है पर उनके अपने कार्य में विशेष क्षति नहीं होती, अर्थात् यूरिया आदि नाइट्रोजन वाले मलों की निकासी में विशेष कमी नहीं होती।

अत. ऐसा प्रतीत होता है कि एक तो जल और लवण के मूत्र द्वारा शरीर में से कम निकलने तथा रक्त में अधिक रुक जाने से तथा मूत्र द्वारा अलब्यूमिन के अति मात्रा में निकल जाने से श्वयथु होता है। रक्त में भार (Colloid Osmotic Pressure) के न्यून हो जाने पर रक्त, अवयवों में संचित हुए द्रव को अपनी ओर खीचने में असमर्थ हो जाता है। (दूसरे शब्दों में, वृक्कों के रुग्ण होने से उत्पन्न Hypoalbuminaemia या Hypoproteinaemia श्वयथु को उत्पन्न करता है।) साधारणत रक्त में Albumin ४ ग्राम, Globulin २ ५ ग्राम प्रति सौ सी०सी० में होता है; अर्थात् मिलकर कुल प्रोटीन ६ ५ ग्राम सौ सी०सी० में होता है। इन दोनों प्रोटीनों का रेशियो १ ६ और १ होता है। Globulin का Molecule बड़ा होता है जो धमनी गुच्छ की छलनी में से निकल नहीं पाता इसलिये वह नहीं निकलता, अलब्यूमिन पहले निकलता है। इस रोग से वह इतना निकल जाता है कि रक्त में इन दोनों का रेशियो १ और २ का हो जाता है, क्योंकि अलब्यूमिन इस रोग में रक्त के १०० सी०सी० में २ ग्राम के लगभग रह जाता है। इस प्रकार रक्त में अलब्यूमिन और ग्लोबूलिन का परस्पर रेशियो बदल जाता है। कुल प्रोटीन्स प्र०श० ३-४ ग्राम रह जाते हैं। जब-जब रक्त का टोटल प्रोटीन ५ प्रतिशतक से कम हो जाता है, या अलब्यूमिन २ ग्राम प्र०श० से कम होता है तब-तब रक्त का जल अवयवों की ओर जाने लगता है, एव शरीर में श्वयथु हो जाने की प्रवृत्ति होती है इस प्रकार इस Wet Nephritis में शोथ का प्रधान कारण रक्त के अन्दर के दबाव Osmotic Pressure का कम हो जाना है। सभव है हृदय की निर्बलता के कारण Veins में दबाव बढने से भी श्वयथु होता हो। दूसरी ओर रक्त में Urea, लवण तथा Cholesterol (नार्मल १३०-२५० मिलि० प्र०श०) की मात्रा साधारण से अधिक (४००-६०० मिलि० प्र०श०) हो जाती है। प्रोटीन के साथ बधे (Protein bound) कैल्सियम के निकलने से रक्त में कैल्सियम घट जाता है, पर स्निग्ध तत्त्व बढ जाता है, अर्थात् Lipaemia का लक्षण होता है अर्थात् यकृत् में Lipoproteins की उत्पत्ति बढ जाती है। सारे शरीर में धातुपाक या Metabolism के कम हो जाने के लक्षण पाये जाते हैं अर्थात् रक्त के १०० सी०सी० में ३०० मिलिग्राम से अधिक Cholesterol हो जाता है जिसके कारण नालियों के Epithelium के सैलों में वसा अधिक भर जाती है। Interstitial अवयव में भी इसी कारण वसा बैठ जाती है। जितना रोग तीव्र होता है उतना ही प्लाज्मा में स्नेह अधिक होता है, साधारण से १० गुणा तक हो सकता है। इसी कारण रोगी का रक्तभार कुछ-कुछ बढा हुआ होता है उतना नहीं जितना चिरस्थायी वृक्क रोग में। रक्तभार से शिर शूल, तन्द्रा, आक्षेप, बेचैनी, नाक से रक्तस्राव, दृष्टिमन्दता तथा हृदय-सम्बन्धी श्वास-कृच्छ्रता आदि लक्षण हो सकते हैं। रक्त में सल्फेट तथा फास्फेट (Anion) की मात्रा बढ जाती है तथा मूत्र द्वारा सोडियम (Cation) के कुछ निकल जाने से रक्त में अल्कली की मात्रा घट जाती है। सैलों में से पोटासियम भी सम्भवत प्रोटीन के साथ बाहर आने लगता तथा प्लाज्मा में बढ जाता है। इससे हृदय में Necrosis की प्रक्रिया होने लगती है। सभव है कि वृक्कों को रक्त कम मिलने से Adrenal Cortex के, लवण को अन्दर रोकने वाले, Aldosterone के बढ़ जाने से भी लवण शरीर में बढता है जिससे श्वयथु बढता है। मूत्र में इसकी मात्रा बढी हुई पाई जाती है। Renin से Angiotensin की उत्पत्ति बढती है, उससे Aldosterone की उत्पत्ति बढती है।

हृदय-रोग-जनित श्वयथु बडों में होता है। उसमें रक्त के अन्दर Cholesterol की वृद्धि नहीं होती। वह निचले प्रदेशों में होता है, मुख पर नहीं। उसमें जलोदर भी नहीं होता तथा Proteinuria कम होता है। वह साय अधिक होता है जबकि यह प्रात· अधिक होता है। इसलिए उससे इसका भेद करना सुगम है।

वृक्क रोग से युक्त स्त्री को गर्भ-स्थिति हो जाय तो उसमें यह रोग और बढता है। अर्थात्, मूत्र में अलब्यूमिन बढ जाता, पैरों में शोथ हो जाता, शरीर में पाण्डुता आ जाती, रक्त में Urea कुछ बढ जाता है, अत उसमें गर्भ का रहना ठीक नहीं होता है।

उपद्रव

श्वयथु ठीक न हो तो फुफ्फुसों में भी यह हो जाता है

और फिर सारे शरीर पर हो जाता है। इस रोग के कारण Retinitis भी हो सकता है। इसके कारण श्वासज्वर (Pneumonia) आदि कोई Infection भी हो सकता है।

साध्यासाध्यता

अधिकतर यह रोग घटता-बढ़ता हुआ वर्षों तक रहता है फिर वृक्कों के फेल होते जाने और Glomeruli के नष्ट होते जाने से प्रोटीन्स की निकासी के कम होने से शोथ घट जाता है पर चिरस्थायी वृक्कशोथ हो जाता है। और यदि वृक्कों की क्षीणता और रक्तभार-वृद्धि के लक्षण न रहें, श्वयथु शान्त हो जाय तो रोग ठीक भी हो सकता है। ऐसे यह रोग बड़ा कष्टसाध्य है विशेषत मध्यम या बड़ी आयु में, तथापि नवीन चिकित्सा के समय पर मिल जाने से ठीक भी हो सकता है।

शोथरहित मन्द वृक्कशोथ (Non Oedematous Subacute Nephritis)—

कभी-कभी वृक्कशोथ के मन्द रूप में रहने से मूत्र में अलब्यूमन, Casts, रक्तकण आते है पर रोगी के चेहरे आदि पर श्वयथु नहीं होता। कभी-कभी भारीपन दीखता है। रोगी में पाण्डुता का लक्षण स्पष्ट होता है। उसे निर्बलता तथा रक्तभार के बढ़े होने से सिरदर्द की शिकायत रहती है। रक्त-परीक्षा में उसमें Urea की मात्रा बढ़ी हुई मिलती है। इस रोग में यदि रक्तभार न बढ़े, रक्त में Urea की मात्रा भी न बढ़े, मूत्र में अलब्यूमन न बढ़े तो रोगी वर्षों तक जीवित रह सकता है।

जीर्ण वृक्क-शोथ (Chronic Nephritis, Ch Glomerulonephritis, Small White Kidney, Ch Renal Failure)

एक तो यह रोग तीव्र वृक्क-शोथ तथा दूसरे शोथ-युक्त मन्द वृक्क-शोथ दोनों में से किसी के चिरकाल लगभग दो वर्ष तक बने रहने से होता है। तब इसे Secondary Contracted Kidney या Ch Diffuse Nephritis कहते हैं। इसमें अल्ब्यूमन कम हो जाता, मूत्र बढ़ जाता, पर वह पतला होता है, श्वयथु नहीं होता है। दूसरे, यह रोग कभी पहले बिना तीव्र रूप में होने के प्रारम्भ में ही अति मन्द रूप में धीरे-धीरे होता है जिससे इसका पता नहीं चलता और पहले-पहल इसका पता मूत्र-क्षिप-सचार या रक्तभार-वृद्धि के लक्षणों को देखकर लगता है। इसमें वृक्कों में आवश्यक अवयव के स्थान पर स्नायुतन्तु की वृद्धि वृक्क रोग के कारण नहीं, पर धमनी रोग (Arteriosclerosis) के कारण होती है जिससे उन्हें रक्त कम मिलता है। चिरस्थायी वृक्क रोग के इस भेद को Chronic Interstitial Nephritis कहते हैं। स्पष्ट है ये दोनों भेद मध्यमायु में या बड़ी आयु में होते हैं। धमनी रोग से होने वाले इस चिरस्थायी वृक्क रोग को Nephrosclerosis भी कहा जाता है।

इस भेद में पहले श्वयथु नहीं हुआ होता, पर रक्त-भार-वृद्धि, Albuminuria, Cylindrurea के लक्षण होते है। रक्तभार-वृद्धि का रोग साधारण हो तो इसे Benign Nephrosclerosis कहते हैं, रक्तभार-वृद्धि का रोग तीव्र रूप में हो तो इसे Malignant Nephrosclerosis कहते हैं Pyelitis या Pyelonephritis के उपद्रव रूप में भी Ch Nephritis का यह रोग हो सकता है (इस भेद का वर्णन आगे विशेष रूप से किया जायेगा)।

चिरस्थायी वृक्क रोग में वृक्कों की परीक्षा करने से पता लगता है कि उनके आवश्यक अवयव (Parenchyma) के स्थान पर स्नायुतन्तु (Conne Tissue) बढ़ गया है, अर्थात् इन दोनों भेदों में वृक्कों में स्नायुभाव (Fibrosis) की वृद्धि पाई जाती है और बहुत से Glomeruli सुकड़कर लुप्त हो जाते हैं। अतएव वृक्क देखने में छोटे तथा सुकड़े हुए दीखते हैं। Glomeruli के बहुत सख्या में नष्ट होने से Efferent Arterioles में रक्त कम जा पाता है जिससे Tubules को रक्त कम मिलता है एवं उनमें Necrosis की प्रक्रिया होने लगती है।

धमनी गुच्छों में विद्यमान Capillary Loops की दीवारों में काच-सदृश क्षीणता (Hyaline Degeneration) बहुत अधिक स्पष्ट रूप से हो जाती है जिससे कुछ-एक धमनी गुच्छ स्नायुभाव की वृद्धि के द्वारा सर्वथा बन्द एवं रक्तविहीन हो जाते हैं। कुछ समय बाद ये धमनी गुच्छ (Hyaline हुए २) लुप्त होकर पास के स्नायुतन्तु के साथ एक हो जाते है, वृक्कों के कुछ-एक धमनी गुच्छों में थोड़ा-थोड़ा रक्त प्रवाहित होता रहता है, जिनसे थोड़ा-थोड़ा मूत्र छनता है। कुछ-एक धमनी गुच्छ आकार में बड़े-बड़े (Hypertrophied) हो जाते हैं जो अधिक मात्रा में मूत्र बनाकर रोगी को जीवित रखने का कार्य करते है। इसे क्षतिपूरक अतिवृद्धि (Compensatory Hypertrophy) कहते हैं।

इस रोग में ऑक्सिजन के कम मिलने से मूत्र स्राविणियों (Tubules) के अन्दर लघुता (Atrophy) की प्रक्रिया विशेष रूप से होती है। उनके अन्त स्तर

(Epithelium) के सैलो में स्निग्ध तत्त्व (Lipoid), जो उनकी क्षीणता का सूचक होता है, विशेष रूप से सञ्चित हो जाता है। Tubules अधिक मात्रा में विलुप्त हो जाते हैं। Glomeruli के समान कुछ Tubules में भी अतिवृद्धि (Compensatory) हो जाती है जिससे मूत्र बनने का काम चलता रहता है। इस प्रकार एक बढा हुआ Nephron अनेकानेक मृत हुए Nephrons का काम पूर्ण करता है। इन्हीं के कारण रोगी पर्याप्त समय जीवित रहता है। कुछ Tubules Aglomerulai होती हैं पर उन्हें भी Ludwig's Vessel से रक्त मिल जाता है। इस रोग मे Glomeruli तथा Tubules दोनों मे असमर्थता उत्पन्न हो जाती है।

नष्ट हुए धमनी-गुच्छो और मूत्रस्राविणियो (Tubules) के आसपास का सयोजक तन्तु (Interstitial Tissue) मात्रा मे अधिक बढ जाता है। जिस विष के दुष्प्रभाव से वृक्क के प्रधान सैल मर जाते हैं उसीके दुष्प्रभाव से सयोजक तन्तु के सैल अधिक बढ जाते हैं।

वृक्को के क्षीण हुए धमनी-गुच्छो और मूत्रस्राविणियो मे आने वाली धमनियों की दीवार में क्षीणता Disuse Atrophy (Fibrosis) की प्रक्रिया हो जाती है जिससे वे कठोर हो जाती हैं और इससे उनमे रक्तभार बढ जाता है, अर्थात् धमनी-काठिन्य (Arteriosclerosis तथा Arteriolar Nephrosclerosis तथा Atherosclerosis) हो जाता है। धमनियों के आभ्यन्तर स्तर मे स्नायुमय क्षीणता तथा उसकी स्थूलता (Proliferation of the Connective Tissue) मे वृक्कों को रक्त की मात्रा कम मिलती है। जब वृक्को को रक्त कम मिलता है, उनमे मूत्र-पदार्थ कम निकलते है तब शरीर मे रक्त-भार का रोग हो जाता है। रक्तभार के बढने से वृक्को मे भी रक्तभार बढता है जिससे मूत्र के Filtration या बनने की प्रक्रिया में सहायता ही मिलती है। परन्तु धीरे-धीरे जब बची हुई मूत्रस्राविणियो को भी रक्त नहीं पहुच पाता तो वृक्क क्षीण होते जाते है एव फेल होने लगते है। इस रोग में हृदय आकार मे बडा होता है, Aorta में भी Atheroma हो जाता है।

उपर्युक्त जीर्ण वृक्क रोग (Secondary Contracted Kidney अर्थात् Ch Glomeruli Nephritis तथा Ch Interstitial Nephritis) के लक्षण

चिरवृक्क रोग होने पर भी प्रारम्भ मे कोई विशेष लक्षण नहीं होते। केवल मूत्र मे स्वल्प सा अलव्यूमिन हो सकता है, मूत्र कुछ पतला होता है, सूक्ष्म सा रक्तमेह भी हो सकता है। इस अवस्था में रोगी २०-२५ वर्ष तक रह सकता है जब वृक्को का कार्य २०, २५% से नीचे गिर जाता है तब रोगी मे इस रोग के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। प्रारम्भ मे तो केवल रात्रिमेह Nocturia का लक्षण होता है।

वृक्क रोग हो अर्थात् वृक्क के धमनी-गुच्छ रुग्ण हो तो रक्त मे विद्यमान अलव्यूमिन उनमें से निकलने लगता और मूत्र मे आने लगता है। इसलिए इस रोग के प्रारम्भ मे अलव्यूमिन तो मूत्र मे आता है, परन्तु क्योंकि बहुत से रुग्ण हुए धमनी-गुच्छ स्नायुतन्तु में परिवर्तित (Fibrosed) होकर बन्द हो जाते है, अत बचे हुए स्वस्थ धमनी-गुच्छ आकार मे बडे होकर रुग्ण हुए धमनी-गुच्छों की न्यूनता को पूर्ण कर लेते हैं अर्थात् बचे हुए धमनी-गुच्छो मे अतिवृद्धि के हो जाने से वृक्को मे हुई क्षति पूर्ण हो जाती है, इसीलिये पुराने वृक्क रोग में मूत्र में निकलने वाले अलव्यूमिन की मात्रा घट जाती है। इस प्रकार रुधिर के अन्दर अलव्यूमिन की मात्रा लगभग साधारण हो जाती है। इसीलिए वृक्क रोग के कारण उत्पन्न होने वाला श्वयथु का लक्षण भी शान्त हो जाता है जिससे जीर्ण वृक्क रोग मे श्वयथु का लक्षण नहीं पाया जाता तथा कई बार मूत्र-परीक्षा करने पर उसमे अलव्यूमन नही भी मिलता। अत स्वल्प से अलव्यूमिन का आना इस रोग का सूचक लक्षण है।

इसी प्रकार अनेकानेक मूत्र-स्राविणियो (Tubules) के क्षीण हो जाने से और उनके मूत्र बनाने के कार्य में भाग न लेने से उनके अन्त स्तर (Epithelium) से झडने वाले Fatty, Granular या Hyaline Casts की मात्रा भी मूत्र मे बहुत थोडी होती है। क्योंकि इस रोग में वृक्क के धमनी-गुच्छ तथा मूत्रस्राविणिया बहुत अधिक सख्या मे क्षीण हो जाती हैं, अत वृक्को का स्वाभाविक मूत्रनिर्माण-कर्म या पुनर्विलयन कर लेने की शक्ति एव उनकी स्वल्प मूत्र मे अधिक से अधिक मल-द्रव्यो को बाहर फेकने की सामर्थ्य कम हो जाती है अर्थात् वृक्क रोग के इस रूप मे वृक्को की असमर्थता या Failure का लक्षण प्रधान होता है अर्थात् मूत्र-स्राविणियो (Convoluted मार्गों) की मूत्र को गाढा (Concentrate) करने की शक्ति घट जाती है जिससे मूत्र मात्रा मे तो अधिक होता है, लगभग १०० औंस तक हो सकता है, परन्तु उसमें गाढापन नहीं रहता। इसीलिये उसकी स्पैसिफिक ग्रेविटी घटकर १०१० या १०१२ तक आ जाती है। यदि भोजन लेने के बाद २०-२२ घण्टे तक जल या किसी प्रकार का द्रव न पिया जाय और इस पर भी मूत्र की स्पैसिफिक ग्रेविटी १०२२ से कम हो और

उसमें Urea २ ग्राम प्र०ग० से कम हो तो समझना चाहिए कि वृक्को की बहुत-सी मूत्रस्राविणिया क्षीण हो चुकी ह। उनसे होने वाला जल का पुनर्विलयन भी स्वभावत कम हो जाता है। इसीलिए जीर्ण वृक्क रोग मे मूत्र मात्रा मे अधिक होता है, अर्थात् उसे कुछ-कुछ बहुमूत्र (Polyuria) की शिकायत रहती है। इसी से उसे पिपासा (Thirst) रहती है, Dehydration रहता है। रक्तभार के बढ जाने एव वाम हृदय मे अतिवृद्धि हो जाने से गुच्छो मे Filtration अधिक होता है। विशेषत रात को बहुमेह (Nocturia) होता है, पर उसके मूत्र की स्पैसिफिक ग्रेविटी कम होती है। वृक्को को स्वरूप से Urea, Uric Acid, Creatinine आदि मलो के निकालने के लिए बहुत से जल की आवश्यकता रहती है, इसलिए पतला और हलका बहुमूत्र, जीर्ण वृक्क रोग का प्रधान सूचक लक्षण होता है। साथ ही मूत्र मे Granular तथा Hyaline Casts होते हैं। रक्त द्वारा वृक्को मे Glutamine के कम पहुँचने तथा Nephrons की कमी के कारण वृक्को मे अमोनिया के कम बनने से सोडियम तथा कैल्सियम (Cations) मूत्र द्वारा अधिक निकल जाते हैं तथा सल्फेट और फॉस्फेट (Anions) रक्त मे अधिक रुक जाते हैं जिससे रक्त मे Bicarbonate घट जाता एव अम्लीयता (Acidosis) बढ जाती है (नार्मल Phosphates २-३ मिलि० प्र०श०)। सम्भव है इन Anions की वृद्धि के कारण इस रोग के लक्षण होते हों। स्पष्ट है इस रोग मे Plasma pH घट जाता है, Acidosis के कारण श्वास गहरे-गहरे हो जाते और Dyspnoea का लक्षण होता है। रक्त मे कैल्सियम के कम हो जाने से (नार्मल ९½-११ मिलि० प्र०श०) Osteomalacia (अस्थिमृदुता) व Osteitis Fibrosa के रोग भी हो जाते हैं। इस प्रकार अस्थियो मे कैल्सियम की न्यूनता से दर्द होने लगता है। बालको मे Tetany रोग भी हो सकता है। इस प्रकार इस रोग मे रक्त मे Hyponatraemia, Hypocalcaemia होते हैं, साथ ही रक्त मे पोटासियम की वृद्धि से Hyperkaliemia और Hyperphosphataemia भी होते हैं। पोटासियम की वृद्धि से विशेषत. हृदय पर बडा निर्बलताजनक प्रभाव पडता है।

वृक्को की मूत्रस्राविणियो के रुग्ण या क्षीण हो जाने के कारण जब मूत्र से निकलने वाले मल-द्रव्य रक्त मे अधिक रुक जाते हैं तो सम्भवत रक्तवाहिनियो पर उनका विक्षोभ पडने से उनमे रक्तभार-वृद्धि का लक्षण या उपद्रव हो जाता है। ऊपर कहा गया है, वृक्को मे विद्यमान रक्तवाहिनियो का रक्त-प्रवाह मन्द हो जाय तो रक्तभार बढता है। रक्तभार के बढने पर वाम हृदय मे अतिवृद्धि हो जाती है, परन्तु इससे पहले तो कोई उपद्रव नही होता। जब सहसा अतिश्रम करने पर वाम हृदय मे कुछ निर्बलता (Failure) हो जाती है, दूसरे शब्दो मे जब रक्तभार गिर जाता है, तब श्वास-काठिन्य या हृत्कम्प, या हृदय को रक्त के कम मिलने से हृदय-शूल होने का लक्षण हो जाता है।

रक्त मे विष-द्रव्यो की वृद्धि से जीर्ण वृक्क रोग मे रक्तपित्त, अर्थात् त्वचा पर छोटे-छोटे लाल चकत्ते (Petechiae व Ecchymoses) भी निकल आते हैं तथा नासा-रक्तस्राव या अन्न-मार्ग मे से रक्तस्राव हो सकता है।

रक्तभार-वृद्धि होकर शिर-सम्बन्धी लक्षण अर्थात् सिरदर्द, शिरोभ्रम (Vertigo), मानसिक विक्षोभशीलता, या वृक्क रोग-जनित दृष्टिनाश (Albuminuric Retinitis) के रोग हो जाते हे। अर्थात् Retina की धमनियो की क्षीणता (Arteriosclerosis) के कारण उनमे परिस्रवण (Permeability) बढ जाता है जिससे Lymph तथा कभी-कभी रक्त के भी बाहर आ जाने से Retina मे श्वयथु तथा रक्तपित्त होकर वहा श्वेत वर्ण तथा रक्त वर्ण के धब्बे देखे जाते हैं। इससे क्रमश दृष्टि-शक्ति कम होती जाती है।

वृक्को मे से मूत्र के द्वारा प्रोटीन-पदार्थों से उत्पन्न होने वाले मल द्रव्य (End Products) जैसे Urea, Uric Acid, Creatinine तथा Ammonia शरीर से बाहर निकलते हैं। इस रोग मे जब इन द्रव्यो की, विशेषत Urea की, शरीर मे से निकासी कम हो जाती है, (२५ या २ प्रतिशतक से कम हो जाती है) एव रक्त मे इनकी वृद्धि ५० मिलि० प्र०श० हो जाती है (नार्मल १५-३० मिलि० प्र०श० बढकर १०० मिलि० या अधिक भी हो जाती है) तो इस (Uraemia या Azotaemia) के कारण एक तो, शरीर तथा मस्तिष्क थोडे श्रम से भी थकने लगते हैं, दूसरे, पाण्डु रोग अर्थात् मज्जा की प्रक्रिया मे मन्दता के आ जाने से, रक्त-कणो के ठीक-ठीक न बनने से तथा यकृत् मे हीमोग्लोबिन के ठीक-ठीक न बनने तथा उसके Redcell Precursors मे ठीक-ठीक न बैठने से शरीर मे ऐसा फीकापन (Aplastic Anaemia) होता है, जिसे पाण्डु की औषधो से लाभ नही होता। जीर्ण वृक्क रोग तथा पाण्डुता का परस्पर एक घनिष्ठ सम्बन्ध है। नाडियो पर विक्षोभक प्रभाव होकर हाथ-पाव की मासपेशियो में स्तम्भ (Cramps) के लक्षण होते हैं। नाडीमण्डल के विक्षोभ के कारण ही त्वचा पर कण्डू (Pruritus) होने का लक्षण होता है। आमाशय तथा

आतो पर इसका दुष्प्रभाव होने से अन्नारुचि, वमन या अतिसार के लक्षण, जो चिकित्सा से ठीक नही होते, हो जाते है। मस्तिष्क पर इस रोग के दुष्प्रभाव से दिन में निद्राधिक्य (Drowsiness) तथा रात को उन्निद्रता (Insomnia) के लक्षण रहते हैं। रक्तभार-वृद्धि तथा मूत्र-विष-सचार (Uraemia) इन दोनो के उपद्रव स्पष्ट रूप से होने लगें तो कुछ-एक महीनो में यह रोग मस्तिष्क में रक्तस्राव होकर घातक हो जाता है। यदि किसी वडी आयु के रोगी में सिरदर्द, दृष्टिमाद्य, Convulsion (आक्षेप) दिग्भ्रम (Disorientation), Coma, पाण्डु, या मूर्छा, रात्रिमेह, नासा से रक्तस्राव, श्वास या स्वल्प श्रम करने से श्वास वढ जाने, अरुचि, वमन, सर्वांग मे कण्डू, मुख पर हलका सा श्वयथु, नैर्बल्य, मलवन्ध या अतिसार आदि लक्षण हो, परीक्षा करने से रक्त-भार-वृद्धि, मूत्र मे भार की कमी हो तो चिरस्थायी वृक्क रोग (Interstitial Nephritis) का सन्देह करना चाहिए। इस रोग का सन्देह प्राय. इन लक्षणो मे से किसी को देखकर हुआ करता है। चि० वृक्क रोग मे Albuminuric Retinitis हो जाए तो Disc मे श्वयथु होकर Papilloedema हो जाता है। Retina मे रक्तवाहिनियो के पास रक्तस्राव हो जाता है। ये लक्षण हो तो रोग कुछ मास मे घातक हो जाता है।

यह रोग वर्षों तक रहता है। रोग तीव्र हो तो ५-१० वर्ष मे, रोग मृदु हो तो २५-३० वर्ष मे Uraemia हो जाता है। पहले इस रोग मे वहुमेह (Polyuria) के कारण वृक्को मे हुई क्षति पूर्ण हो जाती है, पर जव यह लक्षण नहीं रहता, मूत्र कम हो जाता है तव रक्त मे Urea की मात्रा वढ जाती है। रक्तभार वढ जाता है और उसके कारण होने वाले मस्तिष्क सम्वन्धी आक्षेप-दिग्भ्रम, दृष्टिमाद्य, मूर्छा आदि या हृदय-सम्वन्धी श्वास-काठिन्य आदि उपर्युक्त उपद्रवो से मृत्यु होती है। दूसरे शब्दो में, कुछ-एक मे तो वृक्को के फेल हो जाने अर्थात् Uraemia के कारण मृत्यु होती हे, परन्तु वहुधा तो रक्त-भार की वृद्धि के कारण पहले हृदय आकार में वढता हे और फिर उसमे शिथिलता (Dilatation) होकर क्रमश रक्तभार गिरने लगता हे। उसके गिरते जाने से अन्त मे कुछ महीनो वाद मृत्यु हो जाती है। मस्तिष्क मे रक्त-भार की वृद्धि से भी मृत्यु हो सकती हे।

परीक्षा करने से मूत्र मे थोडा-थोडा अलव्यूमिन होता, Granular तथा Hyaline Casts होते हैं। Specific Gravity कम होती है। रक्त मे यूरिया अधिक होता, Acidosis होता है। रक्तभार की निरन्तर वृद्धि, हृदय को वढती हुई निर्वलता, दृष्टि शक्ति की न्यूनता ये इस रोग के दुर्लक्षण हैं।

तीव्र वृक्क-शोथ (Acute Glomerulo Nephritis) की चिकित्सा—शय्याविश्राम चिकित्सा तथा त्वचा को गर्म रखने की चिकित्सा

जव तक वृक्को मे शोथ रहे, तव तक रोगी को श्रम से तथा शीत से वचना चाहिए। त्वचा को गर्म रखना चाहिए। उसे गर्म रखने से गुर्दों की रक्तवाहिनिया भी फैल जाती हैं। अत गर्म कमरे मे, गर्म कपडो मे, एक मास तक पूर्ण विश्राम मे रहने से तथा गर्म जल द्वारा स्पज करने से या आसपास गर्म वोतलो के रखने से रोग के लक्षण शान्त हो जाते हैं अर्थात् मूत्र की मात्रा वढ जाती है। श्वयथु शान्त हो जाता है। मूत्र मे अलव्यूमिन तथा रक्त की मात्रा वहुत घट जाती है। रक्त का B S R. तथा रक्तभार घट जाते हैं। इसलिए प्रति दूसरे-तीसरे दिन मूत्र की मात्रा, रोगी का रक्तभार, रोगी के शरीर का भार, मूत्र मे अलव्यूमिन तथा रक्त की मात्रा की जाच करते रहना चाहिए। जव रक्तभार तथा N P N दो सप्ताह तक नार्मल रह जायें तथा जव तक मूत्र मे अलव्यू-मिन की मात्रा २ ग्राम दैनिक न आ जाय तव तक रोगी को उठने-वैठने की अनुमति न देनी चाहिए। एक मास की विश्राम-चिकित्सा से लाभ पूर्ण न हो तो २ मास तक इसको जारी रखना चाहिए। यदि मूत्र मे कुछ रक्तकण, कोई-कोई Casts तथा कुछ थोडा प्रोटीन आते भी हो तो रोगी को चलना-फिरना भी आरम्भ कर देना चाहिए। विश्राम के साथ वृक्क-प्रदेश पर Kaolin पुल्टिस वाधे रखने अथवा उन पर स्वेदन करने या उन पर Cupping करने से भी उनका शोथ उतरता है। यह तो स्पष्ट ही है कि गले या श्वास के मार्ग मे विद्यमान Streptococci के सक्रमण का प्रत्युपाय किया जाना चाहिए। रोगी के अच्छा होने पर भी मूत्र मे कई वार रक्तकण आते रहते हैं। विश्राम-चिकित्सा के वाद श्रम को क्रमश वढाना चाहिए।

उपवास-चिकित्सा या भोजन-सम्वन्धी चिकित्सा

हमारे वृक्क आहार द्वारा लिये गये प्रोटीन के परिपचन (Metabolism) से उत्पन्न मलो (Urea, Uric Acid, Creatinine, Ammonia) आदि को रक्त मे से पृथक् करके मूत्र द्वारा वाहर फेकने का कार्य करते है तथा पिये गये जल को भी वे ही आवश्यकतानुसार वाहर करने का कार्य करते ह। इसके अतिरिक्त उन्हे जल-भाग को फिर

से चूसकर मूत्र को गाढा भी करना पडता है। जितना ही मूत्र मे ठोस पदार्थ अधिक होते है, उतना ही उसका Osmotic Pressure भी अधिक होता है। जितना मूत्र मे प्रेशर अधिक होता है उतना ही वृक्को को उसके जल-भाग को पृथक् करने मे अधिक श्रम करना पडता है। अत वृक्को के रुग्ण हो जाने पर अर्थात् Glomeruli के रक्त-हीन हो जाने पर यह आवश्यक हो जाता है कि उनके कार्यभार को घटाया जाय। वृक्को के कार्यभार को घटाने के लिए आहार तथा पेय द्रव्यो की मात्रा कम कर देनी चाहिए। जब तक रक्त मे Urea की मात्रा नार्मल के लगभग न हो जाय, भोजन तथा पेय की मात्रा बढानी नहीं चाहिए। वृक्क-शोथ के लिए उन पर Kaolin पुल्टिस बाधी जा सकती है।

प्रथम तीन चार दिन तक यदि पूर्ण लघन कराया जा सके तो वृक्को पर कार्यभार के हट जाने से बडा लाभ प्रतीत होता है। मुख को गीला रखने या सतरे की फाको के कभी-कभी चूस लेने से तीन दिन बिना आहार तथा जल के रहा जा सकता है। यदि रोगी न रह सके तो दिन मे दो बार आधा-आधा गिलास जल या लेमॉनेड, जिसमे थोडा ग्लूकोज और आधा निम्बू या आधे सतरे का रस पडा हो, पीकर तीन-चार दिन गुजारे जा सकते हैं। यदि एक गिलास जल से निर्वाह न हो सकता हो तो दिन-भर मे कुल एक पाइंट (६०० सी०सी०) या १½ पाइण्ट द्रव भोजन, जल या यवोदक, लेमॉनेड, Imperial Drink (Acid Potassium Tertrate ६० ग्रेन, आधा निम्बू, जल एक पाइंट, तथा खाण्ड) टमाटर के रस या अगूर के रस आदि के रूप मे ४-८ औंस Dextrose के साथ मिलाकर दे सकते है। ग्लूकोज देते रहना चाहिए ताकि प्रोटीन Catabolism न हो तथा Starvation Ketosis भी न हो। अथवा ३-३ औस सतरे का रस ७-१०-१-४-७-१० बजे दे दे। इस लघन से मूत्र की मात्रा बढ जाती है तथा रक्तमेह मे कमी हो जाती है। इसके बाद जब मूत्र की मात्रा बढ जाय, दूध और सोडावाटर ५-५ छटाक (½ पाइंट) की मात्रा मे दिन-भर मे दो बार विभक्त करके एक-दो दिन देवें। सन्तरे के १ औंस रस मे ५० मिलि० पोटासियम होता है, अत इसका भी अधिक प्रयोग नहीं किया जा सकता। इसके बाद दो-तीन दिन प्रतिदिन १ पाइंट या १० छटाक दूध (१८ ग्राम प्रोटीन, ७५ ग्राम नमक, ३४० कैलोरी) ५ प्रतिशत ग्लूकोज के साथ १-१ छटाक की मात्रा मे प्रति दो घण्टे के बाद देवें अथवा दिन-भर मे कुल द्रव भोजन १¼ (१२०० सी०सी०) या १½ सेर तक देवे जिसमे से दूध ५ छटाक (१७० कैलोरी प्रो० ९ ग्राम) हो, उसे चाय के रूप मे भी दे सकते है। शेष द्रव भोजन को यवोदक, ग्लूकोज-मिश्रित लेमॉनेड, Imperial Drink सन्तरे, टमाटर, अगूर आदि के रस के रूप मे दे सकते ह। दो-तीन पतले टोस्ट, शहद (१ आम ८० कैलोरी), और घी या क्रीम लगाकर भी दे सकते ह। कुछ अश द्रव के स्थान पर उतने भार का कोई फल दिया जा सकता है। दस-बारह दिन इस भोजन पर रखने से रोगी को और अधिक लाभ प्रतीत होता है। जब तक मूत्र की दैनिक मात्रा ४०० मिलिलि० से न बढे, तब तक दैनिक जल की मात्रा ४०० मिलिलि० के लगभग ही रहनी चाहिए।

इसके बाद रोगी के दैनिक द्रव की मात्रा २ किलो तक की जा सकती है जिसमे १० छटाक (१ पाइंट) दूध स्वतन्त्र या चाय के रूप मे हो सकता है या Corn Flour आदि किसी प्रकार की खीर के रूप मे दिया जा सकता है। शेष द्रवाहार लेमॉनेड, Imperial Drink, सन्तरे, टमाटर, अगूर या किसी फल के रस के रूप मे दिया जा सकता है। इस द्रव के अतिरिक्त पतले चार-पाच टोस्ट, शहद और घृत ½ औस (११२ कैलोरी) के साथ दिये जा सकते है। कार्बोहाइड्रेट और फैट के पचन से उत्पन्न मल Metabolites वृक्क से नही निकलते, अत इनके प्रयोग मे कोई हानि नही। प्रोटीन तथा सोडियम, पोटासियम का प्रयोग इस रोग मे ठीक नही।

दाल, मास, अण्डा, पनीर आदि प्रोटीन-प्रधान आहार, लवण, काफी, मद्य, मसाले, सिरका आदि विक्षोभक पदार्थ तथा लवण-प्रधान होने के कारण सब्जियो के यूष, इस रोग मे अपथ्य होते है। प्रोटीन-प्रधान द्रव्यो मे से दूध तथा रोटी या बिना नमक के बना हुआ डबल रोटी का टोस्ट स्वल्प मात्रा मे रोगी को दिया जा सकता है। दूध १ औस मे ·९ गाम तथा टोस्ट १ औस मे २ ३ ग्राम प्रोटीन होती है। इस प्रकार १० छटाक दूध एक दिन मे रोगी को दिया जाय तो उसमे १८ ग्राम प्रोटीन शरीर मे जाता है। यह वृक्को के लिए हानिकारक नही हो सकता। रोटी भी १½ या ३ औस तक वृक्को के लिए हानिकारक नही। २- ३ ग्राम प्रोटीन शरीर के प्रति किलोग्राम भार के पीछे, तथा जितना मूत्र से जाता है, उतना दैनिक प्रोटीन दिया जा सकता है। लवण इस रोग मे अपथ्य है। यद्यपि १० छटाक दूध मे ७ ग्राम लवण होता है तथा १ औस रोटी मे भी कुछ नमक होता है। लवण का कोई प्रतिनिधि द्रव्य जैसे Neoselarom दिया जा सकता है। तथापि १ ग्राम नमक के जाने से कोई हानि नही

होती। सक्षेपतः, तीव्र वृक्क-शोथ मे रोगी को फलरस तथा ग्लूकोज पर ही रहना चाहिए। थोडा दूध या डबल रोटी का एक टुकडा लवण-रहित मक्खन के साथ दिया जा सकता है। कुल १००० किलो० तक का भोजन पर्याप्त होता है। जब मूत्र एक लिटर प्रतिदिन आने लगे, तब नार्मल भोजन तथा यथेच्छ जल दे सकते है। क्योकि गले मे पाया जाने वाला पूयभाव इस रोग का कारण होता है। अत शिशु को १ लाख Benzyl Penicillin दिन मे ४ बार दे देनी चाहिए। बालक हो तो उसे Methyl Penicillin २५० मिलि० गोली दिन मे ४ बार दें। या एक सप्ताह तक Pro Penicillin ४ लाख यूनिट के दिन मे १ बार के प्रयोग से तथा लघु विरेचन और क्षिमी क्षार के देने से लाभ होता है। विटामिन 'सी' का प्रयोग भी इसमे लाभदायक होता है। इस रोग की विशेष चिकित्सा अभी तक कोई नही। कुछ लोग Antihistamine औषधियो का प्रयोग करते हैं पर उनसे कोई लाभ होता हुआ नही पाया गया। Steroids (Prednisolone) के दैनिक २०-३० मिलि० मात्रा मे १ सप्ताह देने से लाभ हो सकता है। इनसे या तो Glomeruli से मूत्र अधिक छनता है या Adrenal Hormones की उत्पत्ति ठीक-ठीक होने लगती है, तथापि इससे विशेष लाभ नहीं होता। प्रत्युत हानि हो सकती है, क्योकि इनके प्रयोग से Sodium अन्दर अधिक रुकता है, रक्तभार बढता है तथा प्रोटीन्स का परिपचन (Catabolism) भी बढता है, एव वृक्को पर कार्यभार बढ जाता है। तथापि इनसे Antigen और Antibody का सघर्ष बन्द होकर यह Auto immunity की प्रतिक्रिया शान्त हो जाती है।

उपद्रवो की चिकित्सा

रक्तभार वृद्धि विश्राम तथा लवण के त्यागने से नही होती पर यदि वह अधिक हो, उसका प्रभाव मस्तिष्क पर पडने लगे अर्थात् शिर शूल, वमन, तन्द्रा, निद्रा, मूर्छा, अपस्मार सदृश आक्षेप (Convulsions) होने लगे, दृष्टि-नाश (Amaurosis) एकाग-घात आदि दुर्लक्षण मस्तिष्क-धमनियो मे स्तम्भ (Spasm) के कारण होने लगें तो Hydralazine (Apresoline) २० मिलि० १ सी०सी० मे तथा Serpasil ५-१ मिलि० का सम्मिलित इजेक्शन एक बार प्रतिदिन दे देना चाहिए। (प्रथम औषध १-५ मिलि० प्रति किलो दी जाती है) या Reserpine २५ मिलि० दिन मे ३ बार दें, आवश्यक हो तो Chlorothiazide भी दे। हृदय के सहसा निर्बल हो जाने का भय हो जिससे श्वास-काठिन्य का लक्षण हो तो लवण और जल के परहेज के अतिरिक्त Morphia $\frac{1}{6}$ ग्रे० का इजेक्शन देकर चारो शाखाओं को ऊपर के भाग मे बाँधकर हृदय मे रक्त की वापसी को कम करना चाहिए। अथवा ४००-५०० सी०सी० रक्त को निकाल देना चाहिए तथा Digoxin १ मिलि० शिरा द्वारा दे देना चाहिए और फिर स्वल्प मात्रा मे इसे मुख द्वारा कुछ दिन देना चाहिए या १ गोली ६-६ घटे पर दे, फिर दिन मे ३ गोली कर दें। मूत्रल औषधो का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

शोथयुक्त वृक्कशोथ (Nephrosis) की चिकित्सा

इस अवस्था मे भी वृक्को के शोथ के कारण रोगी को विश्राम तो करना ही चाहिये पर साधारण शारीरिक श्रम करते रहना चाहिए। इस अवस्था मे एक ओर जहा रक्त मे प्रोटीन के न्यून हो जाने से श्वयथु का लक्षण होता है वहाँ दूसरी ओर प्रोटीन-भोजन से उत्पन्न यूरिया आदि नाइट्रोजन-युक्त मलो को शरीर से बाहर करने की असमर्थता भी बढी हुई होती है जिससे प्रोटीनयुक्त भोजन देना तो पडता है पर वह स्वल्प मात्रा मे ही दिया जा सकता है। सब्जियो तथा फलो में लवण अधिक मात्रा मे होने से इनका प्रयोग अधिक नही किया जा सकता। रक्त मे Urea या NPN न बढा हो तो प्रोटीन प्रधान भोजन दे देना चाहिए।

साधारणत इस रोग मे शरीर के प्रति सेर या किलोग्राम भार के पीछे आधा या पौना ग्राम प्रोटीन तथा जितना मूत्र द्वारा निकलता हो उतना और मिलाकर प्रतिदिन दे देना चाहिए। उदाहरणत, यदि भार ५० किलो हो और प्रतिदिन मूत्र मे १० ग्राम अलब्यूमिन जाता हो तो कुल ५०/२+१०=३५ ग्राम प्रोटीन भोजन द्वारा दे देना चाहिए। इस रोग मे प्रोटीन के बाहर निकल जाने से जब सैलो मे प्रोटीन कम हो जाता है तो उनमे से जल तथा साल्ट निकलकर सैलो के बीच-बीच के अवयव मे जाने लगते है। इससे सैल मेटाबोलिज्म विकृत हो जाता है अत प्रोटीन आहार देना आवश्यक होता है तथा नमक कुल मिलाकर एक-दो ग्राम से अधिक नही देना चाहिए। जल की दैनिक मात्रा उतनी होनी चाहिए जितनी कि मूत्र की मात्रा हो तथा जितना जल, मल-स्वेद के द्वारा शरीर से बाहर होता हो, अर्थात् उसकी दैनिक मात्रा दो या तीन पाइट से अधिक नही होनी चाहिए। उदाहरणत, रोगी को प्रतिदिन १ पाइट दूध दे देवें जिसमे १८ ग्राम प्रोटीन तथा ७ ग्राम नमक तथा ३४० कैलोरी गर्मी रोगी को मिल जाती हैं। दूध के अतिरिक्त १५-२० औंस दूसरा द्रव भोजन जैसे सतरा, अगूर, टमाटर

आदि किसी का रस ५ औंस, ग्लूकोज ४ ड्राम (जिससे गर्मी की कैलोरी १०४ मिलती है), फल ७ औंस (७५ कैलोरी), कोई मौसमी सब्जी विना नमक के ४ औंस (८५ कैलोरी), चाय ४-५ औंस दे सकते हैं। चावल १ औंस (प्रोटीन १ ८ ग्राम कैलोरी १५) को थोड़े दूध मे मिला खीर के रूप मे दे सकते है। इनके अतिरिक्त खाण्ड, मधु, मुरब्बा आदि (१ औंस खाण्ड से ११२ कैलोरी मिलती है) स्वल्प मात्रा मे दे सकते हैं। रोटी या टोस्ट ६ औंस (१ औंस रोटी मे २ ३ ग्राम प्रोटीन होता है तथा रोगी को ७० कैलोरी गर्मी मिलती है) दे सकते हैं। इस भोजन से रोगी को लगभग ३५ ग्राम प्रोटीन तथा दो ग्राम तक नमक और २ से २½ पाइट तक द्रव मिलता है। प्रोटीन भोजन के साथ-साथ Durabolin का सप्ताह मे एक वार प्रयोग करना चाहिए।

अथवा रोगी को 'केरल' के भोजन (Carell-Diet) पर रख सकते है। केरल के अनुसार सात दिन रोगी को ७-७ औंस दूध, चार-चार घण्टे बाद दिन मे चार बार दिया जाता है। जिससे रोगी को उचित मात्रा मे प्रोटीन मिल जाता है। उसमे नमक १ ३ ग्राम तक दूध के द्वारा पहुच जाता है। ८वें दिन इसी भोजन के दो समयो के बीच मे, एक बार एक अण्डा और १ टुकडा टोस्ट का दे दिया जाता है। इस प्रकार उस दिन नमक की कुल मात्रा १ ७८ ग्राम तक उसके शरीर मे पहुचती है। ९वें दिन दोपहर के दूध मे एक छोटा चम्मच Corn Flour को डालकर उसकी खीर बनाकर देते हैं तथा साथ ही १ छटाक कोई मौसमी सब्जी दे दी जाती है तथा सायकाल के दूध के साथ १ टोस्ट दे दिया जाता है। उस दिन रोगी को कुल १ ८९ ग्राम लवण मिलता है। १०-१२वें दिन १ अण्डा, १ औंस चावल (कच्चा), २ औंस सब्जी, इसी भोजन मे और मिलाकर दे सकते है। इस प्रकार अब रोगी को २ ४१ ग्राम नमक मिलने लगता है।

प्रतिदिन मूत्र की मात्रा का माप तथा सप्ताह या १० दिन बाद Plasma मे अलब्यूमिन तथा Urea की मात्रा की जाच करते रहना चाहिये तथा मूत्र मे भी Urea की मात्रा को देखते रहना चाहिये।

औषधो मे से गुर्दों की रक्षा के लिए कोई Antibiotic जैसे Penicillin या Tetracycline (Achromycin या Hostacycline) देना चाहिये। मूत्रल औषधे भी जैसे Potassium Citrate १५ ग्रेन तथा Potassium Bi-carbonate ३० ग्रेन की मात्रा मे दिन मे २-३ बार दी जा सकती है। जहा तक हो सके Mersalyl जैसी औषधियो का प्रयोग नही करना चाहिये। Frusemide ४० मिलि० को दिन मे दो बार दे सकते है। या Chlorthalidon (Hygroton) का २०० मिलि० मात्रा मे प्रयोग करना चाहिये। इसी प्रकार Chlorothiazide वर्ग की औषधो के पहले २ ग्राम दैनिक देने, बाद मे कम मात्रा मे देने से कइयो मे मूत्र की मात्रा बढ जाती है तथा श्वयथु उतर जाता है अर्थात् Chlorothiazide (Chlortride ५ ग्राम या Saluric ५ ग्राम) दिन मे ४ बार दें। या Hydrochlorothiazide (Esidrex) २५-५० मिलि० दिन मे २ बार दें या Frusemide (Lasix) १ गोली ४० मिग्रि० की एक बार दें। या Aprinox १० मिलि० मात्रा मे दे। इन्हें सप्ताह मे २-३ दिन ही दे। रोगी को २½ सेर (२५०० सी०सी०) मूत्र रोज आ जाय तो ८०० मि० ग्रा० प्रतिशतक Urea की निकासी के हिसाब से २० ग्राम Urea शरीर से निकल जाता है जो लगभग ५० ग्राम प्रोटीन का मल होता है, अत मूत्रल औषध से लाभ होता है। मूत्र मे Pot के निकलने से १ ग्राम Pot Chlor भी दिन मे २-३ बार देना चाहिये। उपर्युक्त औषधियो के ५-७ दिन देने से मूत्र खुल के न आये तो Aldactone (Spironolactone) भी साथ हो १०० मिलि० मात्रा मे ४ बार देवे। या Aldactone A १०० मिलि० दैनिक मात्रा मे दे। इसे उपर्युक्त Thiazide औषध के साथ देना चाहिए। पृथक् देने मे यह मूत्रल नही होती। इससे मूत्रल औषध का मूत्रल प्रभाव तीव्र हो जाता है क्योंकि यह Aldosterone विरोधी है। Aldosterone के द्वारा Renal Tubules के सिरो पर ऐसा प्रभाव होता है कि वहा Sodium का पुनर्वितयन बढ जाता है और Potassium की निकासी बढ जाती है। Aldactone इसके विपरीत कार्य करता है अर्थात् Sodium की निकासी को बढाकर मूत्र प्रवर्तक होता है। इसका ५ दिन प्रयोग करना चाहिए।

Proteinuria की चिकित्सा—Corticotrophin (ACTH) २५ मिलि० दैनिक मात्रा मे ५ प्रतिशत ग्लूकोज सोल्यू० मे शिरा द्वारा एक सप्ताह या दस-बारह दिन तक देने से Glomeruli पर प्रभाव होने या Adrenal ग्रन्थि पर प्रभाव होने से मूत्र मे अलब्यूमिन लुप्त हो जाता है, या बहुत घट जाता है। मूत्र अधिक आने लगता है तथा रक्त मे अलब्यूमिन की मात्रा साधारण लेवल तक आ जाती है। या Prednisolone को पहले बडी आयु के व्यक्तियों मे १० दिन ४०, फिर १० दिन २०, फिर महीनो तक १० मिलि० मात्रा मे दो बार विभक्त करके दे देना चाहिये। जब-जब भी रोग प्रकट हो फिर इस औषध का २०, २५ मिलि० दैनिक मात्रा मे

मात्रा को विभक्त करके प्रयोग करना चाहिये। इस चिकित्सा के समय रोगी को लिटाकर रखना चाहिये। वालक को १ किलो भार के पीछे १-२ मिलि० दैनिक यह औषधि देवें। इससे मूत्र मे प्रोटीन की मात्रा कम होती है। मूत्र मे उसकी मात्रा को देखकर इसे वढाना-घटाना चाहिए। प्रति सप्ताह रोगी का भार तथा रक्तभार देखते रहना चाहिए। मूत्र मे प्रोटीन न मिले, जैसा कि मूत्र की मात्रा के वढ जाने पर होता है तो सप्ताह मे ३ दिन लगातार ६० मिलि० दैनिक मात्रा मे इस चिकित्सा को जारी रखना चाहिये। सप्ताह के शेष ४ दिन इसे वन्द रखें। इस प्रकार व्यवधान के साथ इसका प्रयोग महीनो तक जारी रखना चाहिए। रक्तभार अधिक हो तो यह औषध नही देनी चाहिये। इस औषध के साथ-साथ Benzthiazide (Fovane) को ५० मिलि० मात्रा मे प्रात १ दिन छोडकर देना चाहिये। इस दौरान मे सोडियम तथा जल अन्दर रुकते तथा पोटासियम अधिक मात्रा मे मूत्र से निकलता है। अत Pot Chlor ५ ग्राम गोलिया या कैपसूल दिन मे चार-छ देनी चाहिये। कैल्सियम भी थोडा-थोडा देना चाहिए। रक्त की मात्रा को वढाने से भी कभी-कभी मूत्र आने लगता है। इस उद्देश्य से Dextran Sulphate के १० प्रतिशत सोल्यूशन को ५०० सी०सी० की मात्रा मे शिरा द्वारा दे देना चाहिए। इस रोग मे दूसरे जीवाणुओ का सक्रमण शरीर मे हो सकता है तथा शरीर मे छिपा हुआ कोई Sepsis ही इस रोग का कारण होता है। Penicillin आदि किसी Antibiotic का तथा Iron, Calcium और Vitamins का प्रयोग भी प्रतिदिन करते रहना चाहिये। अच्छा हो जाने पर भी देखना चाहिये कि रोगी का भार तो नही वढता, वढे तो श्वयथु प्रारम्भ हुआ समझे, तथा यदि कभी वमन हो तो Uraemia के आरम्भ होने की शका करनी चाहिये। अत उसे मूत्रल औषध तथा Steroid औषध Prednisolone २५ मिलि० दैनिक मिलती रहनी चाहिये। भोजन मे नमक कम मिलना चाहिए।

जीर्ण वृक्क रोग (Chronic Nephritis) की चिकित्सा

प्रोटीन-भोजनो से उत्पन्न होने वाले मलो, विशेषत यूरिया, को वृक्क भली प्रकार नहीं निकाल सकते। थोडे मूत्र मे अधिक यूरिया को निकालने की उसकी स्वाभाविक शक्ति घट जाती है जिससे मूत्र पतला और मात्रा मे अधिक होता है, परन्तु उसमे निकलने वाले ठोस द्रव्यो की मात्रा कम होती है जिससे मूत्र की स्पैसिफिक ग्रेविटी कम होती है। मूत्र के अधिक आने से प्यास भी अधिक लगती है। वृक्को की इस असमर्थता के कारण रक्त मे यूरिया वढ जाता है, रोगी के चेहरे पर पाण्डुता आने लगती है जिसका कारण हीमोग्लोविन की उत्पत्ति की न्यूनता प्रतीत होती है। उसे सिरदर्द रहने लगता है। शरीर मे उत्पन्न होने वाले मलो के अम्लीय प्रकृति का होने से रक्त मे अम्लीयता का रोग (Acidaemia) हो जाता है।

ऐसी अवस्था मे जव तक Urea १०० सी०सी० रक्त मे १०० मिलिग्राम से ऊपर हो, तव तक प्रोटीन-भोजन अति स्वल्प मात्रा मे देना चाहिए। शरीर के एक किलो भार के पीछे आधा ग्राम तथा जितनी उसकी मात्रा मूत्र मे प्रतिदिन निकलती हो उतनी मात्रा प्रोटीन की रोगी को देनी चाहिए, अर्थात्, लगभग ३५ ग्राम प्रोटीन उसे देना चाहिए (Low Protein Diet), परन्तु इसके देने से पहले ३-४ दिन तक रोगी को कुछ-कुछ निराहार (केवल २½-३ पाइट द्रवाहार पर ही रखा जाय तो लाभ अधिक होता है, अर्थात् इस द्रव-आहार का कुछ अश टमाटर या अगूर आदि के फलरस का होता है) रखना चाहिए। शेष अश पतली चाय, लेमोनेड, Imperial Drink आदि के द्वारा जिसमे दैनिक ४-६ औंस ग्लूकोज मिला हुआ हो, पूर्ण किया जाता है। इस प्रकार के प्रोटीन-रहित कार्वोहाइड्रेट वाले आहार के १५ दिन जारी रखने से रक्त के अन्दर विद्यमान यूरिया की मात्रा न्यून हो जाती है। जव रक्त मे यूरिया की मात्रा १०० सी०सी० मे ८० मिलिग्राम के लगभग हो, तव उसे ऐसा भोजन, जिसमे प्रोटीन ३५-४० ग्राम के लगभग (Low Protein Diet) हो, देना चाहिए। इनमे कुल जल की मात्रा २½-३ पाइट तक होती है जिसमे दूध आधा पाइट तथा चाय, लेमोनेड आदि भी लिये जा सकते है। ठोस पदार्थों मे से रोटी या टोस्ट ५ ओंस, चावल (कच्चा) २ औंस, आलू ५ आंस, अण्डा १, घृत २ ओंस, मधु ½ औंस, खाण्ड २ औंस, क्रीम १ ओंस, हरी सब्जी स्वल्प मात्रा मे दे सकते हैं। इस भोजन मे दूध से ९, रोटी से ११ ५, चावल से ३ ६, अण्डे से ७, आलू से २ ग्राम अर्थात् कुल ३०-३२ ग्राम के लगभग प्रोटीन शरीर मे जाता है। इस भोजन मे फैट ९९ ग्राम, कार्वोहाइड्रेट २१२ ग्राम के लगभग है तथा इसके द्वारा शरीर को १६०० कैलोरी गर्मी भी प्राप्त होती है। इस भोजन मे रोगी को फल, मधु, सलाद आदि अधिक मात्रा मे भी दिये जा सकते हैं या रोगी को कुछ दिन केवल उवला हुआ चावल ३-३ छटाक दिन मे तीन वार खाण्ड या मुरव्वे के साथ दिया जाय, दूध विलकुल न दिया जाय तो भी रक्त मे Urea आदि की मात्रा घट जाती है।

इस आहार से रक्त में यूरिया की मात्रा घटकर ४०-५० या ६० मिलिग्राम प्रतिशतक हो जाय तो जल की मात्रा साधारण अर्थात् ३-३½ पाइंट तक दी जा सकती है। सब्जी, आलू, फल, Wheat Flakes, Flaked Rice अधिक मात्रा में दिये जा सकते हैं। तथा घृत या मक्खन की मात्रा भी बढाई जा सकती है तथा प्रोटीन-भोजन की मात्रा भी थोडी बढाई जा सकती है। परन्तु मांस, मसाले, सिरके आदि सर्वथा अपथ्य होते हैं। नमक के विषय में यह जानना आवश्यक है कि साधारणत १०० सी०सी० मूत्र में १ ग्राम नमक निकलता है। इस रोग में वृक्कों की Concentration की शक्ति के कम होने से १०० सी०सी० में २५० मिलिग्राम तो अवश्य निकलता ही है। इसलिये यदि मूत्रल औषधो से मूत्र २५०० सी०सी० रोज आ रहा हो तो ६-७ ग्राम नमक तो रोगी को प्रतिदिन मिलना ही चाहिए। इतना नमक देने से Tubules का मूत्र में से नमक को पुनर्विलयन करने का श्रम बच जाता है। शरीर में से अधिक लवण के निकलते रहने से कृशता व निर्बलता के लक्षण हो सकते हैं। अत नमक या सोडाबाईकार्ब जिसने Acidosis के लक्षण शान्त रहते है, देना ही चाहिये। यदि रक्तभार के कारण हृदय या मस्तिष्क के उपद्रवो का भय हो तो नमक उतना ही देवें जितना भोजन के लिए जरूरी है या उसे भी बन्द कर दें।

इस प्रकार के न्यून प्रोटीन वाले भोजन पर रहते समय रोगी को विश्राम करना चाहिए। मूत्रल औषधो (Thiazides) के देने पर भी मूत्र द्वारा जो शारीरिक मल नहीं निकल पाते, उन्हें आंतों द्वारा, अर्थात् Mag Sulph १, २ ड्राम दूसरे-तीसरे दिन देकर, निकालना चाहिए। परन्तु मूत्र में रक्तकणो के आने के कारण मूत्रल औषधों का प्रयोग कम ही करना चाहिए। रक्त के अन्दर उत्पन्न अम्लीयता की वृद्धि के हटाने के लिए अर्थात् Sodium Cation की कमी को पूरा करने के लिए Sodium Cit या Soda Bicarb ३० ग्रेन (७½ प्रतिशत सोल्यू० २० सी०सी०) दिन में दो-तीन बार देते रहना चाहिये या Sodium Lactate १५-२० ग्राम प्रतिदिन दे या M/6 Sod Lactate २५ मिलिलि० मात्रा मे शिरा द्वारा दिन में ३ बार दें। अम्लीयता (Acidosis) मे श्वास-काठिन्य भी होता है। वह भी इस क्षार-चिकित्सा मे शान्त हो जाता है। रक्त मे Potassium की कमी हो तो इसके स्थान पर Pot Cit देना चाहिये। रोगी को जल या ग्लूकोज मिश्रित जल, पर्याप्त मात्रा मे, मुख द्वारा, त्वचा द्वारा या शिरा द्वारा मिलते रहना चाहिए। रोगी में शैथिल्य (Prostration), निर्बलता, वमन, रक्तभार की कमी के लक्षण हो तो Sodium व Potassium की न्यूनता की आशका करनी चाहिये। कैल्सियम की कमी इस रोग मे होती ही है एतदर्थ Cal Lactate ४ ग्राम दिन मे २-३ बार देना चाहिये। कैल्सियम की कमी से आक्षेप Convulsions हो तो Cal Gluconate (१०% का १० मिलिलि०) शिरा द्वारा धीरे-धीरे दे। साथ ही Calciferol की गोलिया दिन में तीन दे। रोगी में कोई Infection हो तो उसे Penicillin देना चाहिये। इसे वृक्कों की निर्बलता में भी दिया जा सकता है, वहा से इसकी निकासी पूर्णतया हो जाती है। रक्तभार-वृद्धि के लिए अर्थात् सिरदर्द, रात्रि-श्वास (Cardiac Asthma) के लक्षण हो तो Guanethidine (३० मिलि०) या Mecamylamine (२५ मिलि०) को Reserpin २५ मिलि० ३ बार दे या Pempidine (Tenormal I C I) को, इतनी मात्रा मे (२५ मिलि० ३ बार) कि रक्तभार अधिक न गिरे, दे या रोग अधिक न हो तो किसी Sedative औषधि को प्रात-साय देना चाहिए। हृदय फेल होने के लक्षण हो तो इस उपर्युक्त चिकित्सा के अतिरिक्त Digitalis या Thiazide श्रेणी की मूत्रल औषधे भी देनी चाहिए। रक्त मे Phosphate की मात्रा को कम करने के लिए आंतों में से इसके विलयन को Aluminium Hydroxide Gel १ औंस दिन मे ३ बार देकर कम करना चाहिए। वमन का कष्ट हो तो Cyclizine Lactate ५० मिलि० मांस द्वारा दें या Chlorpromazine २५-५० मिलि० मुख द्वारा दें। पाण्डुता के लिए लोह का प्रयोग करना चाहिए।

आयुर्वेद में श्लैष्मिक वृक्क-शोथ
(Acute Glomerulonephritis)

बालकों, युवकों में पाये जाने वाले शोथ का कारण बहुधा श्लैष्मिक वृक्क-शोथ होता है। शोथ का अर्थ उभार है, जो रक्तवाहिनियो में से रक्त प्लाज्मा में विद्यमान द्रव के अधिक मात्रा मे बाहर निकलने से अथवा, दूसरे शब्दों मे, सैलो के बीच-बीच के भाग में विद्यमान द्रव के मात्रा मे बढ जाने से उत्पन्न होता है। साधारणत. तो रक्तवाहिनिया अपने अन्दर से ग्लूकोज, एमिनो एसिड्स आदि पोषक द्रव्यो को बाहर जाने देती हैं और अवयवो के अन्दर विद्यमान यूरिया आदि विषैले द्रव्यो को बाहर से अपने अन्दर खींच लेती हैं। परन्तु कभी-कभी शरीर की रक्तवाहिनियों की परिस्रवणशीलता (Permeability) बढ जाती है। शरीर

मे उत्पन्न या बाहर से आये किसी विष-द्रव्य के सम्पर्क से उनकी दीवारें शिथिल और निर्बल (Dilated) हो जाती हैं, जिससे इनके अन्दर का जलांश और उसमें घुले हुए साल्ट्स अधिक मात्रा में बाहर आसपास के अवयव में परिस्रवित होने लगते हैं। इससे उत्पन्न होने वाले उभार को शोथ रोग कहते हैं। हृदय व रक्तवाही स्रोतो की निर्बलता इसका प्रधान कारण हो तो इसे वातिक श्वयथु कहते हैं। यदि सम्पूर्ण रक्त में या अवयवो में विद्यमान किसी आम (Metabolic) द्रव्य की उपस्थिति से श्वयथु हो तो उसे श्लैष्मिक श्वयथु कहते हैं।

श्लैष्मिक शोथ

देहाग्नि की निर्बलता के कारण शरीर में किसी आम-द्रव्य या कफदोष के बढ जाने से अर्थात् रक्त में स्नेह आदि (Cholesterol आदि Metabolites) के बढ़ जाने पर बहुत सम्भवतः पहले श्लैष्मिक वृक्क-शोथ होता है। अर्थात् पहले वृक्क की रक्तवाहिनियो (Glomeruli) में शोथ होता है। उनके सूज जाने से मूत्र कम बनता है जिससे रक्त में जलाश तथा लवण की मात्रा बढ़ जाती है। इसी आम-दोष का सम्भवतः शरीर की सर्व रक्तवाहिनियो पर दुष्प्रभाव पडता है जिससे उनकी परिस्रवणशीलता बढ जाती है। उनमें से जल तथा लवण अधिक मात्रा में बाहर परिस्रुत होने लगते हैं जिससे सारा शरीर फूल सा जाता है। बालक या युवक देखने में श्वेत, फूला हुआ दीखता है, पर मुख तथा आंखो पर अधिक स्पष्ट दीखता है। गुर्दों के सूज जाने के कारण मूत्र की मात्रा घट जाती है। आम-दोष की वृद्धि के कारण अग्निमांद्य, तन्द्रा, निद्रा, गौरव अन्नारुचि आदि Metabolism के हीन (Low) हो जाने के लक्षण भी होते है। श्लैष्मिक श्वयथु सारे शरीर पर होता है, धीरे-धीरे बढता है, यद्यपि रात-दिन रहता है तथापि रात को बढ़ता है।

(च०।चि०।१२; च०।सू०।१८; तथा सु०।चि०।२३)

वातिक वृक्क-शोथ (Chronic Nephritis) तथा वातिक शोथ (Asthenic Oedema)

जब वृक्को, हृदय तथा रक्तवाहिनियो की अपनी सहज प्राणशक्ति निर्बल हो जाती है, अर्थात् इनकी मूत्र बनाने की या रक्त को प्रेरित करने की अपनी शक्ति कम हो जाती है तब शिराओ (Veins) में रक्त अधिक-अधिक रुक जाता है। अर्थात् उनमें रक्तभार (Hydrostatic दबाव) बढ़ जाता है, इससे भी रक्त का जलाश अधिक मात्रा में बाहर परिस्रुत होने लगता है। इस अवस्था को, अर्थात् वृक्क, हृदय तथा रक्तवाहिनियो की प्राणशक्ति की न्यूनता से उत्पन्न होने वाले शोथ रोग को वातिक श्वयथु कहा जाता है। सूक्ष्म शिराओ की निर्बलता या प्राणशक्तिहीनता से, उनसे होने वाला परिस्रवण बढ़ जाता है। वृक्को, हृदय तथा रक्तवाहिनियो की प्राणशक्ति को कम करने वाला भी कोई विष-द्रव्य शरीर में विद्यमान होता है। किस विष-द्रव्य से यह वातिक श्वयथु उत्पन्न होता है, यह निश्चय से कहा नहीं जा सकता। वृद्धावस्था में शरीर के अन्दर उत्पन्न होकर बढ़ने वाले किसी विष-द्रव्य के रक्तवाहिनियो पर हुए दुष्प्रभाव से यह रोग होता है। जिस व्यक्ति के वृक्को में पहले ही पहल यह निर्बलता आरम्भ होती है, उसके वृक्को में पहले वातिक वृक्क-शोथ (Nephritis) होता है, फिर शरीर में शोथ प्रकट होता है। विषो (Toxins) के अतिरिक्त ऑक्सिजन के कम मिलने से भी शिरा-शैथिल्य होकर श्वयथु होता है, अर्थात् हृदय की निर्बलतावश शिराओ में रक्त-संचय होकर उनकी दीवारो को ऑक्सिजन के कम मिलने से यह होता प्रतीत होता है। वातिक शोथ बड़ी आयु में होता है। आराम करने से घट जाता है, श्रम करने से बढता है। शरीर का पोषण कम होने अर्थात् रक्त में उसके प्रोटीन अश के कम होने से भी यह बढता है और रक्त में प्रोटीन के बढने से यह घट जाता है। अतः अन्न सकट के समय या अकाल के समय भी वातिक शोथ का रोग होता देखा जाता है। वातिक श्वयथु स्थिर न होकर घटता-बढता रहता है।

पित्त-शोथ

किसी प्रदेश में पचन-कर्म (Destructive act) के बढ़ जाने पर वहाँ उत्पन्न विक्षोभक द्रव्य (Inflammatory Product) के द्वारा रक्तवाहिनियो के शिथिल (Dilated) हो जाने से उनसे जल, रक्तकण, श्वेतकण, प्रोटीन आदि की निकासी से जो शोथ (Inflammation) होता है, उसे पित्त-शोथ कहते हैं।

श्लैष्मिक वृक्क-शोथ की चिकित्सा

कफदोष-जनित वृक्क-शोथ के लिए लंघन, पाचन, दीपन तथा रूक्षण चिकित्सा करनी चाहिए। रोगी को तीन-चार दिन केवल जल पर रखकर फिर बकरी या गाय के स्वल्प दूध पर या फलरस पर ही रखना चाहिए। गौ का मूत्र इस रोग के लिए एक उपयोगी औषध है। आठ

गुणा गोमूत्र से पकाया हुआ मण्डूर अपने से आधी मात्रा में पाचन-दीपन औषधो से मिश्रित करके देना चाहिए। पुनर्नवामण्डूर इसी प्रकार का एक उपयोगी योग है जिसे ४-४ रत्ती की मात्रा में दो-तीन बार दिया जाता है; अथवा आठ गुणा गोमूत्र से पकाया हुआ मण्डूर, पुनर्नवाष्टक कषाय (पुनर्नवा, कटुकी, हरीतकी, नीम, पटोल, गुडूची, सोठ, दारुहल्दी, गोखरू) के साथ दिया जाता है। दीपन-पाचन औषधो को क्षार के साथ मिलाकर देने से भी यह शोथ शान्त होता है। इसके लिए क्षारगुटिका (सूखी हुई मूली १०२४ तोला का क्षार, यवक्षार, सर्जक्षार, चारो लवण, लोहा, त्रिफला, त्रिकटु, अतिविषा, अजवायन, वायविडग, पिप्पलीमूल, चित्रकमूल, मोथा, ४-४ तोला, हींग १ तोला) दो-दो रत्ती की मात्रा में चार बार दी जाती है। पत्थरखेर का चूर्ण २-२ रत्ती की मात्रा में तीन बार देने से मूत्रल होता है। इन औषधो के साथ रोगी को केवल बकरी या गाय के दूध, जौ (वार्ले) या मू ग-कुलथी आदि के लवण-रहित यूष पर रहना चाहिए। रोगी को तीन-चार सप्ताह तक केवल शतावरी तथा गोखरू से साधित गाय के दूध तथा दुग्धवटी (सिंगरफ, अफीम, धतूर-बीज समान-समान) ½-½ रत्ती की तीन गोली दिन में देने से भी लाभ होता है। रोगी को लवण, घृत, तेल, दही, आदि गुरु भोजन अपथ्य होता है।

(च०।चि०।१२)

वात-श्वयथु चिकित्सा

वातिक वृक्क-शोथ में वृक्को में वातिक क्षीणता के होने से वे रक्तस्थ मल-द्रव्यो को भली प्रकार बाहर नहीं कर सकते। अतः इन मलो को आतो के मार्ग से बाहर करना चाहिए। परन्तु रोगी की प्राणशक्ति को कम नहीं होने देना चाहिए। रोगी को कभी-कभी त्रिवृतचूर्ण दूध के साथ देकर या एरंड तेल देकर मृदु शोधन करना चाहिए या दूध के साथ त्रिफला का प्रयोग करना चाहिए। तथा उसे दूध, चावल, वार्ले, यूष और मास-रस पर रखना चाहिए जिससे वह निर्बल न हो। त्रिफला चूर्ण या कषाय के साथ शिलाजतु या चन्द्रप्रभा का प्रयोग करने से भी वातिक वृक्क-शोथ में रोगी को आराम रहता है। चिरस्थायी वृक्क-शोथ में दशमूल हरीतकी, हरीतकी अवलेह, त्रिफला, यवक्षार समान-समान का चूर्ण त्रिफला क्वाथ से चन्द्रप्रभा आदि किसी का प्रयोग करें।

(च०।चि०।१२, सु०।चि०।२३)

कफ तथा वातजनित श्वयथु (Oedema) मे उपयोगी प्रयोगो का उल्लेख यहा किया जाता है —

(१) दशमूलहरीतकी (वा भ चि १७) दशमूल ४ सेर, जल ३२ सेर पकाकर ८ सेर कषाय बनाए। उसी में पकी १०० हरडो का छना हुआ कल्क कषाय में मिला तथा ६¼ सेर गुड मिला पकाकर अवलेह बनाए। परिपाककाल में त्रिकटु, यवक्षार प्रत्येक २०-२० तोला, त्रिजातक प्रत्येक १¼-१¼ तोला मिलायें। शीतल होने पर १ सेर शहद मिलाए। १-१ तोला दिन मे २ बार दें।

(२) पुनर्नवादिलेह (च द.) पुनर्नवा, गिलोय, दशमूल, देवदारु समान-समान मिलाके कुल ४ सेर, जल ३२ सेर, पकाकर ८ सेर शेष रखें। उसमें अदरक का रस २ सेर, गुड ६¼ सेर मिला पकाकर अवलेह बनाएं। परिपाककाल मे त्रिकटु, त्रिजातक, चव्य १¼-१¼ तोला मिलाएं। शीतल होने पर शहद ४० तोला मिलाए। १-१ तोला दिन मे २ बार दें।

(३) पुनर्नवासव (च सं चि अ १७) हृदय रोग मे देखें।

(४) पुनर्नवादिमण्डूर (भै र) मण्डूर ४० तोला को गोमूत्र ४ सेर में पकाकर गाढ़ा होने पर उसमें पुनर्नवा, त्रिकटु, त्रिवृत, विडंग, देवदारु, चित्रक, पुष्करमूल, त्रिफला, दोनो हल्दी, कटुकी, पिप्पली-मूल, मुस्ता, चव्य, इन्द्र जौ, दन्तीमूल १-१ तोला का चूर्ण मिला दें। ४-४ रत्ती की गोली बनाए। दिन मे ३ बार दें।

(५) आर्द्रकस्वरस (यो.र) अदरक के रस में गुड मिलाकर दिन में दो बार दें। या सोठ और गुड बराबर का चूर्ण जल से २ बार पिलाएं। या गुड और पिप्पली समान-समान का चूर्ण गर्म जल से पिलाए। या गुड और हरड समान-समान का चूर्ण (सब ४-६ माशा मात्रा में) खिलाएं।

(६) शिलाजतुयोग (यो.र) शिलाजीत ४ रत्ती की मात्रा में त्रिफला क्वाथ के साथ पिलाएं।

(७) अगस्तिमोदक (यो र) हरड १५, त्रिकटु प्रत्येक ५, त्रिजातक प्रत्येक २½-२½, गुड ४० तोला मिलाए। ४ माशा मात्रा दिन में २ बार दें।

(८) गुडादिचूर्ण (भा प्र) गुड़ १५, सोठ १५, पिप्पली १५, मण्डूर ५ तोला मिलाकर इस चूर्ण की ४ माशा मात्रा २ बार गर्म जल से दें। यो.र. ने गुड, पिप्पली, शुण्ठी समान-समान का चूर्ण ४ माशा मात्रा में श्वयथु के लिए लिखा है।

(९) गुग्गुलु प्रयोग (ग.नि.) किसी गुग्गुलु को दशमूल क्वाथ के अनुपान से या गोमूत्र के साथ दें।

(१०) दशमूलादिक्वाथ (ग.नि) दशमूल, देवदारु, सोंठ, गिलोय, पुनर्नवा समान-समान के २-३ तोले का क्वाथ दें।

पित्तशोथ के लिए उपयोगी प्रयोग निम्नलिखित हैं :—

(१) पटोलादिक्वाथ (यो.र) पटोल, त्रिफला, नीम-छाल, दारु हल्दी समान-समान का २½ तोला का क्वाथ गुग्गुलु के साथ दें।

(२) त्रिफलाचूर्ण (यो.र.) त्रिफला का चूर्ण ३-४ माशे गोमूत्र के साथ दें। अथवा त्रिफला क्वाथ दें।

(३) विशालादिक्वाथ (ग नि) इन्द्रायण, कुटकी, त्रिफला, हल्दी, त्रिवृत, पटोलमूल, त्रायमाण १-१ भाग, सोंठ २ भाग १ तो का क्वाथ करके पिलाए।

(४) आमलकीस्वरस (ग. नि.) आवले का रस पिलाए।

पथ्यापथ्य—श्वयथु रोग में दूध के साथ रोटी या चावला आदि दें। लवण, अम्ल, मद्य, गुरु भोजन, दधि आदि का प्रयोग न करें।

मूत्र-विष-संचार
(Uraemia, Chronic Renal Failure, Renal Uraemia)

यद्यपि शरीर की धातुओ मे पचन के परिणाम के कारण फास्फोरिक अम्ल (H_2PO_4), सल्फ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4), जो सल्फरयुक्त Amino Acids से उत्पन्न होता और Acids का ७५-८०% होता है। लवणाम्ल (HCl) तथा अनेक मृदु Organic Acids जो कार्वोहाइड्रेट्स और फैट्स के अपूर्ण पचन से उत्पन्न होते रहते हैं, तथापि रक्त तथा शरीर के सभी द्रव मन्द-मन्द क्षारीय प्रतिक्रिया के होते हैं। कारण यह है कि भोजन से प्राप्त होने वाले Sodium, Potassium, Calcium, Magnesium आदि Cations या Base रक्त आदि द्रवो को क्षारीय प्रकृति का वनाये रखते है। जैसे ऊपर कहा है कि वृक्को का यह कार्य है कि वे शरीर मे वढे हुए अम्लो (Acid Radicals) को मूत्र द्वारा वाहर करते रहे। इस प्रकार जव तक वृक्क स्वस्थ रहते है, रक्त मे अम्ल-द्रव्यो की वृद्धि नही हो सकती। वृक्को के सिरा-गुच्छो मे से जो मूत्र छनता है वह क्षारीय प्रकृति का होता है। परन्तु वृक्को की मूत्र-स्राविणियो (Tubules) के सैल शरीर मे मे CO_2 को लेकर उससे कार्वोनिकाम्ल (H_2CO_3) वना लेते हैं जिससे मूत्र अम्लीय प्रतिक्रिया का हो जाता है। वृक्को के इस कार्य को अम्लीयकरण (Acidification) का कर्म कहा जाता है। इस कारण रक्त मे विद्यमान इलके अम्ल जैसे Uric Acid, Citric Acid, Beta hydroxybutiric Acid, Aceto acetic Acid आदि स्वतन्त्र रूप मे अर्थात् अम्ल के रूप मे ही शरीर से निकल जाते हैं। मूत्र अम्लीय न होता तो ये अम्ल भी रक्त मे से Cations को लेकर साल्ट्स के रूप मे निकलते जिससे रक्त मे Sodium आदि की न्यूनता हो जाती। जव रक्त मे अम्लीयता वढती हे, वृक्क की नालिया मूत्र मे से सोडियम को अधिक मात्रा मे पुर्नविलीन करने लगती है। इस प्रकार वृक्क, क्षार-अम्ल-साम्यता (Acid Base Equilibrium) को कायम रखते हे।

यह ठीक है कि रक्त मे से निकलने वाले फास्फोरिक तथा सल्फ्यूरिक अम्ल (H_2PO_4, H_2SO_4) रक्त मे से सोडियम आदि Cations या Base को लेकर ही मूत्र मे जाते हे, परन्तु जैसा ऊपर कहा है, वृक्को की मूत्र-स्राविणियो के सैल प्रोटीन के Amino Acids तथा Urea के Amine भाग मे से प्रतिदिन ·३ से १ २ ग्राम Ammonia (NH_4) वना लेते हैं जो इन साल्टो के Acid Radicals (Anions) को पकड लेता है और उनके साथ मिले सोडियम आदि Base को शरीर में वापिस जाने के लिए मुक्त कर देता है। इन मूत्र-स्राविणियो के सैल इन मुक्त हुए Base को फिर से विलीन कर लेते और रक्त मे पहुचा देते है। इसमे रक्त मे Sodium आदि Cations की न्यूनता नही होने पाती एव रक्त की क्षारीयता वनी रहती है। Adrenal Cortex का Salt Hormone वृक्को के इस पुर्नविलयन कर्म मे वडा सहायक होता है। सोडियम के २५ हजार मिलि ईक्विवेलेंट धमनी-गुच्छो से प्रतिदिन छनते हैं जिनमे से २० हजार मिलि ईक्विवेलेट क्लोराइड के साथ, ४६०० मि० ई० वाईकार्वोनेट के रूप मे, ५० मि० ई० अमोनिया के वदले मे, ३० मि० ई० H ion के वदले मे और १५० मि० ई० पोटासियम के वदले मे विलीन हो जाते हैं। शेष १७० मि० ई० केवल मूत्र द्वारा दैनिक निकलते है।

वृक्क अपने अन्दर Acid Sodium Phosphate को भी तैयार करते हे जिसके कारण मूत्र की अम्लीयता वनी रहती हे। रक्त मे यही साल्ट क्षारीय प्रकृति का होता है। स्पष्ट है कि वृक्को के इस अम्लीकरण के कर्म से तथा साथ ही अमोनिया के उत्पादक होने के कारण रक्त मे अम्ल द्रव्यो की वृद्धि नहीं हो पाती तथा उसमे सोडियम आदि Cations भी उचित मात्रा मे सुरक्षित रहते है। वृक्को की मूत्रस्राविणिया (Tubules) मूत्र

को गाढा करने तथा अधिक मल-द्रव्यो को थोडे से थोडे जल के द्वारा वाहर करने का यत्न करती हैं। ऊपर कहा गया है कि धमनी-गुच्छो से जो जल-भाग छनकर उनमे आता है उसके ९९ प्रतिशतक भाग को उन नालियों के सैल फिर विलीन कर लेते है। इसी प्रकार इन धमनी-गुच्छो से जितना लवण छनकर आता है उसमे से भी ९९ प्रतिशतक भाग को इन नालियो के सैल फिर चूस लेते हैं अर्थात् स्वस्थ वृक्क रक्त मे जल तथा Sodium की मात्रा को कम नहीं होने देते। यदि लवण अधिक लिया जाय, जल कम मात्रा मे पिया जाय तो वृक्क की मूत्रस्राविणिया जल भाग को अधिक और लवण को कम मात्रा मे चूसने लगती हैं, अर्थात् वृक्क मूत्र को अधिक घना (Concentrated) कर देते हैं। इसके विपरीत यदि जल अधिक लिया जाय और लवण कम, तो वृक्क की नालियो के सैल लवण को अधिक चूस लेते और जल को कम चूसते हैं, अर्थात् मूत्र पतला आता है। चिर वृक्क रोग मे वृक्को की यह मूत्र को गाढा या पतला कर लेने की शक्ति घट जाती है। वृक्क लगभग १०३२ स्पैसिफिक ग्रेविटी तक मूत्र को गाढ़ा कर सकते हैं। रोग मे उनकी यह शक्ति घट जाती है। तब वे अधिक से अधिक जल मे थोडा ही मल फेंक सकते हैं। इसलिए मूत्र मात्रा मे अधिक, पर न्यून स्पैसिफिक ग्रेविटी का हो जाता है जिसे वृक्क रोग-जनित वहुमूत्र (Hyposthenuria या Hyposthenuric Polyuria) कह सकते हैं। रात को अधिक आए तो Nocturia या रात्रिमेह कहते हैं। इस प्रकार वृक्क शरीर मे जल की मात्रा को कायम रखने का काम भी करते है।

वृक्को (या Glomeruli) का एक प्रधान कार्य भोजन तथा धातुओं के प्रोटीन-पदार्थों के नाइट्रोजन और कार्बन के पचन से उत्पन्न Non-Protein Nitrogen (N P N) मल का, जो रक्त में सचित होता रहता है, वाहर निकालना है। मूत्र से निकलने वाले नाइट्रोजन की दैनिक मात्रा १८ ग्राम होती है जिसमे से १५ ४ ग्राम तो केवल यूरिया द्वारा शरीर से निकलता है। मूत्र द्वारा प्रतिदिन ३३ ग्राम यूरिया रक्त मे से निकलता है। इसमे से वहुत-सा यूरिया तो भोजन मे विद्यमान प्रोटीन्स से आता है।

यूरिया के अतिरिक्त Uric Acid (जो Nucleo Protein से निकलता है) तथा Creatinine (जो Creatine से बनता है) इन N P N के द्वारा भी नाइट्रोजन रक्त मे से वाहर निकलता है। वृक्को के रुग्ण होने पर रक्त मे नाइट्रोजन-वृद्धि (Azotaemia) भी हो जाती है। इसी प्रकार Indican, Phenol आदि भी, मूत्र के कम बनने मे, रक्त मे रुक जाते हैं।

साधारणत. रुधिर मे २० मिलिग्राम प्रतिशतक या वृद्धो मे ५० मिलिग्राम प्रतिशतक यूरिया भी होता है। यदि वह बढ जाय ७० मिलि० प्रतिशतक हो जाय तो यह वृक्क के रुग्ण होने का लक्षण है। १२० मिलि० प्र०श० हो जाय तो यह मूत्र-विष-सचार (Uraemia) का सूचक होता है।

इस प्रकार रुधिर मे नाइट्रोजन वाले मलो के Non-Protein Nitrogen (N P N के) बढ जाने से, दूसरे, रक्त मे अम्लीय प्रतिक्रिया के हो जाने से अर्थात् वृक्को मे Soda Bicarb के विलीन न करने के कारण रक्त मे उसके लेवल के गिर जाने से, उसमे सोडियम तथा कैल्सियम दोनों Cations के कम हो जाने से, Tubules मे Hion के उत्पन्न न होने से सोडियम की न्यूनता के साथ-साथ जलांश के अधिकाधिक वाहर निकलने से अर्थात् Dehydration से तथा Potassium Sulphate और Phosphate तथा Organic anions के रक्त मे अधिक रुक जाने से अर्थात् Hyperkalaemia से (जिसमे Serum Calcium घट जाता है तथा Acidosis हो जाता है) जो लक्षण उत्पन्न होते हैं उन्हे Uraemia नाम से पुकारा जाता है। कुछ Organic Metabolites जैसे Phenols तथा प्रोटीन्स के पचन मे उत्पन्न होने वाले Guanidine आदि पदार्थ भी रक्त मे बढ जाते हैं। जीर्ण वृक्क रोग, मधुमेह जनित वृक्क रोग (Diabetic Nephropathy) तथा जीर्ण वृक्काशय-शोथ (Pyelonephritis) के उपद्रव-रूप में होता है। रक्तभार-वृद्धि मे तथा मूत्र-मार्ग मे अवरोध से, जैसे Prostate की अतिवृद्धि से भी, यह रोग होता है। यह मूत्र-विष-सचार (Urinary Intoxication) का रोग किसी विष-विशेष मे होता है या अनेक स्वाभाविक एव अस्वाभाविक आम-द्रव्यो (Metabolites) की वृद्धि से होता है, यह नहीं कहा जा सकता। यह रोग दोनो वृक्को के फेल होते जाने से, जैसा कि वह Ch Nephritis या वृक्क धमनियो के रोग या अतिरक्तभारवृद्धि से या मधुमेह से या Pyelonephritis से होता है, होता है। हृदय दौर्बल्य के उपद्रव रूप मे भी यह रोग होता है। Dehydration से भी होता है।

लक्षण

वडी आयु के व्यक्तियो मे पाण्डुता के साथ रक्तभार वृद्धि का लक्षण हो विशेषत रात को मूत्र अधिक आता हो, मूत्र मे Urea की मात्रा कम हो, मूत्र की स्पैसिफिक ग्रेविटी कम हो, उसमे अलव्यूमिन हो, रक्तकण, श्वेतकण

तथा Granular Casts हो तो वृक्क रोग का सन्देह हो जाना चाहिए। इस रोग के प्रारम्भिक लक्षण तो जीर्ण वृक्क रोग (Chronic Nephritis) से उत्पन्न रक्तभार के कारण होते हैं। पहले तो रक्तवाहिनियो की मासमय दीवार (Muscular Coat) स्थूल हो जाती है फिर कुछ काल बाद धमनियो की दीवार मे अतिवृद्धि के स्थान पर क्षीणता (Fibrous Degeneration) हो जाती है। इससे मूत्र-विष-संचार के रक्तभार-जनित लक्षण (Hypertensive Symptoms of Uraemia) उत्पन्न होते है। मस्तिष्क आदि अगो को रक्त के कम मिलने (Ischaemia) अर्थात् रक्तवाहिनियो मे Arteriolitis या Arteriolar Sclerosis होने से ये लक्षण होते हैं। सक्षेपत चिरस्थायी वृक्क रोग के कारण धमनी रोग के हो जाने तथा रक्त मे कुछ रासायनिक द्रव्यो (Chemicals) के जमा हो जाने से ये लक्षण होते है।

१ मस्तिष्क के पोषण मे न्यूनता के आने मे स्मृति-नाश, एकाग्रता की न्यूनता, आवेश, बेचैनी, क्रोधादि मानसिक दुर्बलता के लक्षण होते हैं। नाडियो (Nerves) पर इसके दुष्प्रभाव से Neuralgias या नाडी-शूल हो सकते हैं।

२ अष्टम मस्तिष्क-नाडी का पोषण न होने से शिरोभ्रम (Vertigo) तथा कर्ण-घोष (Tinnitus) के लक्षण होते हैं।

३ रक्तभार की वृद्धि होने पर लगातार सिरदर्द रहने का लक्षण रहता है। रक्तभार के कारण मस्तिष्क सबधी Encephalopathy के लक्षण तथा नेत्र दृष्टि सम्बन्धी लक्षण हो सकते हैं।

४ वृक्को के रुग्ण होने और मस्तिष्क पर उसका दुष्प्रभाव पडने पर रोगी को निद्रा प्रबलता से दबा लेती है जिससे वह पडते ही खुर्राटे लेने लगता है, परन्तु शीघ्र ही निद्रा टूट भी जाती है। इस प्रकार रात मे कई बार निद्रा आती और टूटती है। यह मस्तिष्क के पोषण की न्यूनता को सूचित करती है।

५ वाम हृदय मे रक्तभार जनित अतिवृद्धि होने के बाद जब कभी शक्ति से अधिक श्रम किया जाता है, हृदय नैर्बल्य का लक्षण हो जाता है अर्थात् वाम हृदय की दुर्बलता के कारण नाडी निर्बल तथा तीव्र-गामी होती है एव हृदय-नैर्बल्य-जनित श्वासरोग (Renal Asthma) का वेग हो जाता है। दक्षिण हृदय की निर्बलता से Congestive Heart Failure का लक्षण हो सकता है।

६ पश्चिम दृष्टि-पटल (Ratina) की रक्तवाहिनियो मे क्षीणता के हो जाने से दृष्टिमन्दता का लक्षण भी हो जाता है जो Albuminuric Retinitis के समान धीरे-धीरे न होकर सहसा आरम्भ होता है।

७ शरीर की समस्त रक्तवाहिनियो के कठोर होते जाने से मास और मेद दोनो क्षीण हो जाते है जिसमे शरीर कृश होता जाता है। मस्तिष्क तथा शरीर दोनो की कार्य करने की शक्ति क्षीण होती है जिससे शीघ्र थकावट हो जाने का लक्षण हो जाता है। मानसिक मन्दता का लक्षण भी हो जाता है।

जब मूत्र विष-सचार (Uraemia) का रोग अधिक बढ जाता है, अर्थात् १०० सी०सी० रक्त मे २०० मिलिग्राम से अधिक मात्रा मे यूरिया हो जाता है, तब वास्तविक मूत्र-विष-सचार के विपैले लक्षण बहुधा रोग की असाध्यता या कष्ट-साध्यता के सूचक होते है।

१ ऐसे मूत्र-विष-सचार का प्रारम्भिक लक्षण बहुधा अन्नारुचि होता है क्योकि आमाशय श्लेष्मकला के Oxyntic सैलो मे यूरिया के Urease के द्वारा विश्लिष्ट हो जाने से जो वहा अमोनिया उत्पन्न होता है उससे आमाशय का एसिड क्षीण हो जाता है। इस प्रकार इस रोग मे Hypochlorhydria का लक्षण होता है Acidosis के कारण भी अन्नारुचि का लक्षण होता है रोग के बढने पर प्रात कालिक वमन का लक्षण भी होता है। इसके साथ-साथ Acidosis के कारण शरीर और मस्तिष्क थोडा श्रम करने से भी थक जाते हैं। थकावट Uraemia का सूचक लक्षण होता है। क्षुधानाश के कारण तथा शरीर के प्रोटीन्स के खर्च होते जाने से कृशता और निर्बलता के लक्षण होते हैं।

२ रक्त मे कैल्सियम Ions के न्यून हो जाने से, अथवा बहुत सम्भवत पोटासियम की वृद्धि के नाडी-मण्डल (N System) पर दुष्प्रभाव से हाथ-पाव की अगुलियो की मासपेशियो मे विशेषत मोते हुए स्तम्भ (Cramp), कम्प (Twitchings) तथा खल्ली (Tetany) शाखाओ मे Neuritis का दर्द और आक्षेप (Convulsion) के लक्षण हो जाते है। रक्तभार के बढ़ने से भी आक्षेप हो सकते हैं। पैरो मे सुप्ति, दाह, वेदना, चमचमाहट आदि Neuritis के लक्षण होते हे।

३ मस्तिष्क पर मूत्र-विष (Nitrogen Retention) का दुष्प्रभाव होने से तन्द्रालुता या तन्द्रा या उदासीनता का लक्षण रहता है। अथवा रोगी दिन मे तन्द्रालु तथा रात को उन्निद्र (Insomnia) रहता हे या शीघ्र ही नीद आ जाती है और फिर वह शीघ्र ही

टूट जाती है ऐसा क्रम रहता है। मृत्यु से पहले इस विष के कारण मोह-निद्रा (Stupor और Coma) के लक्षण होते हैं। मस्तिष्क में श्वयथु (Oedema) के कारण ये लक्षण होते हैं।

४ श्वास-केन्द्र पर इस रक्त की अम्लीयता (Acidosis) का दुष्प्रभाव होकर या वाम Ventricle के फेल होने से फुफ्फुस में Oedema होकर रात को गहरे-गहरे श्वास आने (Nocturnal Dyspnoea) या श्वास-काठिन्य (Dyspnoea of Acidosis) जिसमें श्वास गहरे तथा कठोर हो जाते हैं या लेटे-लेटे श्वास न आने (Orthopnoea) का लक्षण होता है। इस विष के कारण कभी-कभी हिक्का होती है या Cheyne Stoke's Respiration या विषम श्वास कई सप्ताहों तक रहता है। Diaphragm की नाडी तथा मांसपेशी पर इस विष (Nitrogen retention), का प्रभाव होने से ऐसा होता है।

५ इस विष का अन्न-मार्ग पर दुष्प्रभाव होने से, जैसे ऊपर कहा है, पहले अजीर्ण, अरुचि, वमन, अफारा, मलबन्ध आदि लक्षण रहते हैं। जिह्वा शुष्क, मुख आया हुआ (Stomatitis Uraemic) और श्वास में मूत्र-गन्ध होती है और अन्त में तीव्र पतले और असाध्य अतिसार (Uraemic Enteritis) का दौरा होकर मृत्यु हो जाती है। छोटी आंतों के निम्न भाग तथा बृहदन्त्र में Uraemia जनित व्रणों (Uraemic Ulcerative Colitis) के होने से दस्त होते हैं। इसलिये वृद्ध व्यक्ति में कभी-कभी वमन होने का लक्षण हो तो अजीर्ण का सन्देह न करके वृक्क रोग का ही सन्देह करना चाहिए जिसे हम Metabolic Dyspepsia कहते हैं। इस रोग के कारण गला, पेट, आंत किसी में शोथ हो सकता है।

६ त्वचा की नाडियों के विक्षोभ से कण्डू का लक्षण रहता है और फिर पामा या कोठ (Papules) या विस्फोट (Vesicles या Pemphigoid) आदि निकल आते हैं जो साधारण औषधों से ठीक नहीं होते। ये टांगों पर विशेष दीखते हैं। त्वचा में Uraemia के Crystals भी बैठ सकते हैं पर बहुधा तज्जनित विक्षोभ ही त्वचा में होता है। त्वचा शुष्क, मटियाले रंग की हो जाती है। टांगों में हलका श्वयथु (Oedema) भी होता है।

७ इस विष के अस्थि-मज्जा पर दुष्प्रभाव होकर अर्थात् Decreased Erythropoiesis के कारण तीव्र पाण्डु रोग (Normocytic) प्राय हो जाता है अर्थात् रक्तकणों के निर्माण (Erythropoiesis) में वृक्क में उत्पन्न होने वाले Erythropoietin की कमी से न्यूनता होती है। रक्त में हिमोग्लोबिन की जितनी न्यूनता होती जाए उतना ही N P N की मात्रा रक्त में बढ़ती हुई समझनी चाहिए।

८ रक्त में कैल्शियम और सोडियम के कम हो जाने तथा पोटाशियम के बढ़ जाने से हृदय-मांस के कार्य में क्षति हो जाती है। उसकी नियमित गति (Rhythm) में विषमता आ जाती है। Bradicardia इसका सूचक लक्षण होता है। अस्थियों में मृदुता Osteomalacia या शुष्कता Osteosclerosis का उपद्रव हो सकता है।

९ मूत्र-विष के कारण Clotting Factors पर किसी प्रभाव से रक्तभार बढ़ जाने तथा धमनी रोग के हो जाने से नासिका, दन्त, मांस, अन्न-मार्ग, श्वास-मार्ग, मूत्र-मार्ग, त्वचा आदि से रक्तस्राव (Purpura तथा Petechiae) भी हो जाता है, Retina में भी रक्तस्राव हो जाता है। Papilloedema का उपद्रव भी देखा जाता है। बड़ी आयु में Epistaxis हो तो वृक्क रोग का सन्देह हो जाना चाहिये। जीर्ण वृक्क रोग के उपद्रव-रूप में हुआ यह मूत्र-विष-संचार का रोग प्राय असाध्य होता है। बड़ी आयु में मस्तिष्क में रक्तस्राव होकर मृत्यु हो जाती है।

हृदय दौर्बल्य-जनित मूत्र-विष-संचार (Pre-Renal Uraemia)—अति अतिसार, अतिवमन, हृदय-दौर्बल्य आदि से वृक्कों को रक्त न मिले तो वृक्कों का कार्य बन्द (Nitrogen Retention) हो जाता है। इसे Pre-renal Uraemia कहते हैं।

Post-Renal Uraemia—Pelvis, Ureters में पथरी के कारण प्रोस्टेट-वृद्धि के कारण या गर्भाशय में कैंसर के कारण मूत्र-मार्ग में अवरोध होकर जो मूत्र-विष-संचार होता है उसे Post-Renal Uraemia कहते हैं।

वृक्कों में क्षीणता विशेष हो, Ch Nephritis देर से हो, पाण्डुता, कृशता, तन्द्रा, वमन, अतिसार या हृदय सम्बन्धी लक्षण विशेष हो तो रोग को असाध्य ही समझना चाहिये।

मूत्र-विष-संचार (Uraemia) की चिकित्सा

वृक्कों की बढ़ी हुई असमर्थता में, अर्थात् यदि रक्त में यूरिया ७०-१०० मिलि० प्र०श० हो तो प्रोटीन-भोजन स्वल्प मात्रा में ही दिया जा सकता है या उसे बन्द भी किया जा सकता है। प्रति किलोग्राम भार के पीछे अधिक से अधिक आधा ग्राम प्रोटीन देनी चाहिए। अर्थात्, उपर्युक्त कम प्रोटीन वाला भोजन (Low Protein

Diet) देना चाहिए या १–२ कप दूध दिन मे ४-५ वार स्वल्प विस्कुट व थोडी रोटी व फल के साथ लिया जा सकता है। कम प्रोटीन वाले भोजन से रक्त मे सल्फेट भी घट जाता है। इस भोजन के १-१½ मास तक देने के वाद फिर प्रोटीन-भोजन की मात्रा कुछ वढा सकते हैं। इसके लिये मध्यम प्रोटीन-भोजन (Moderate Protein Food), जिसका एक उदाहरण यहा दिया जाता है, दिया जा सकता है। प्रातराश अण्डा एक, रोटी या टोस्ट २ औंस, मक्खन या घी आधा औंस, दूध ४ औंस, मधु ½ औंस, चाय ५ औंस। मध्याह्नाश आलू ४ औंस, रोटी ३ औंस, हरी सब्जी २ औंस, फल २ औंस, मक्खन या घी आधा औंस, चाय २ औंस। तीसरे पहर का भोजन आलू ४ औंस, हरी सब्जी २ औंस, रोटी या टोस्ट ३ औंस, मक्खन ½ औंस, फल ४ औंस, खाण्ड दिन भर मे कुल २ औंस। इस प्रकार के भोजन मे प्रोटीन ५० ग्राम के लगभग होनी चाहिये।

इसके वाद रोगी के भोजन मे घृत, खाण्ड तथा कार्वोज भोजन कुछ और वढा सकते है। परन्तु प्रोटीन-भोजन अधिक नही दिया जा सकता। रोगी को जल की मात्रा इतनी कम न दी जाय कि वृक्क शरीर के मलो को ही न निकाल पायें। साधारणत जितना मूत्र प्रतिदिन आता हो, और ऊपर कहा गया है कि इस रोग मे मूत्र अधिक आता है, उससे १ सेर अधिक जल देना चाहिए। ताकि स्वेद, पुरीष, श्वास आदि के द्वारा प्रतिदिन १००० मिलि-लिटर मात्रा मे निकलने वाले जल की भी पूर्ति हो जाय। इस प्रकार दिन भर मे लगभग ३ सेर या ३ लिटर जल पर्याप्त होता है, अर्थात् वलपूर्वक अधिक दें। मूत्र आ रहा हो तो रोगी को लवण भी ६-७ ग्राम दैनिक मात्रा मे देना चाहिए। उसे कम न करना चाहिए। रक्तभार अधिक हो तो अधिक मात्रा मे लिया नमक उसे और वढाता है पर परीक्षक लोग वताते है कि जीर्ण वृक्को मे भी सोडियम तथा पोटासियम को Balance मे रखने की शक्ति रहती है। जव वृक्क मूत्र-सवधी मलो के निकालने मे असमर्थ हो गये हो, मूत्र की मात्रा कम हो रही हो एव Urea की निकासी भी कम हो तव तो अन्य आहार न देकर ३ छटाक उवले चावल खाण्ड के साथ दिन मे ३ वार ही देने चाहिए और उन मलो को मृदु विरेचन औषधो द्वारा अथवा वस्तियो द्वारा आतो के रास्ते से निकालने का यत्न करना चाहिए। मूत्र की मात्रा को वढाने के लिए जहा वृक्को पर कार्य-भार कम करना चाहिए वहा Acidosis के दूर करने के लिए Sodium Lactate २५-३० ग्रे० Sodium Bicarbonate को २५-३० ग्रेन की मात्रा मे दिन मे तीन वार देते रहना चाहिए। परन्तु रक्तभार अधिक हो या हृदय नैर्वल्य से कुछ श्वयथु हो तो सोडियम का प्रयोग अधिक नही किया जा सकता। आतो मे विद्यमान अनघुलनशील Phosphates को नीचे वैठा देने और रक्त मे न जाने देने के लिए Aluminium Hydroxide Gel या Colloidal Aluminium Hydroxide ४ ड्राम की मात्रा मे प्रतिदिन तीन वार देना चाहिए। Acidosis अधिक हो तो Sodium Bicarbonate १-१ ग्राम दिन मे ३-४ वार देवें। Sodium Lactate Solution (Heart Mann's Solution अर्थात् Lactic Acid २·४ सी०सी०, Sodium Hydroxide कुछ, Sod Chlor ६ ग्रा०, Pot Chloride ·४ ग्राम, Hydrated Cal Chloride ४ ग्राम, जल १००० सी०सी०) शिरा द्वारा देना चाहिए। कैलसियम की न्यूनता को पूर्ण करने के लिए Calciferol, विटामिन 'डी' १ २५ मिलि० दिन मे तीन वार दे देना चाहिए अथवा सोडियम और कैलसियम की रक्त मे हुई न्यूनता की पूर्ति के लिए Sodium Citrate १०० ग्राम Calcium Chloride ३ ग्राम मिलाकर इसमे से २ ग्राम मात्रा १ गिलास जल मे दिन मे ३ वार पिला देनी चाहिए। या Calcium Gluconate १० प्र०श० सोल्यूशन १० मिलिलि० मात्रा मे शिरा द्वारा भी दिया जा सकता है।

इस रोग के प्रारम्भिक लक्षणो (Hypertensive Uraemia) के लिए Rhubarb, Aloes, Cascara, Magnesium (Mag Sulph १-३ चम्मच २ औं० जल मे प्रात) का प्रयोग करते रहना चाहिए या प्रति सप्ताह एक वार रात को Mercury Pill लेकर प्रात Mag Sulph की एक मात्रा दे देनी चाहिए तथा सप्ताह मे एक वार वाष्प-स्नान (Turkish Bath) दे देना चाहिए। रक्तभार-शामक किसी औषध जैसे Serpasil १- २५ मिलि० दिन मे दो वार या Macamylamine Hydr. (Inversine) ५-२५ मिलि० दैनिक मात्रा मे या Adelphane २-३ गोली का दैनिक प्रयोग भी कराना चाहिए। हृदय नैर्वल्य के लिये डिजोक्सीन २५ मिलि० १-१ गोली सप्ताह मे ३ दिन दे।

रोग तीव्र रूप मे हो, रक्त मे यूरिया १०० मिलि० प्र०श० से अधिक हो तो रोगी को जल दिन भर मे १⅓ या १½ सेर तक ही देना चाहिए। इसके साथ ग्लूकोज पर्याप्त मात्रा मे देते रहना चाहिए। कुछ मक्खन भी देते रहना चाहिए। प्रोटीन की मात्रा वहुत कम कर देनी चाहिए या वन्द कर देनी चाहिए। रक्त मे पोटासियम ज्यादा हो (Hyper-kalaemia हो) तो १० प्र०श० ग्लूकोज सोल्यूशन न।

सेलाइन में बना हुआ देना चाहिए। इससे सोडियम की कमी (Hyponatraemia) भी दूर होती है। Hydrochlorothiazide (Dichlortride Merc Sharp या Esidrex Ciba) २५-५० मिलि० दिन में दो बार देना चाहिए। मूत्रल औषधों से हृदय को भी सहारा मिलता है। रक्तभार को कम करने की औषधें, जो ऊपर कही गई हैं उन्हें या Guanethidine को १०-२० मिलि० दैनिक मात्रा में देते रहना चाहिए। रक्तभार को अधिक कम करने से वृक्कों को रक्त और भी कम पहुँचता है, अत उसे अधिक घटाना ठीक नहीं। रक्त में यूरिया १०० प्र०श० हो तो रक्तभार घटाना ठीक नहीं। ऐसी अवस्था में Reserpine १ मिलि० दैनिक या Aldomet ५ ग्राम दैनिक का प्रयोग ही काफी है। Renal Transplantation की चिकित्सा अभी तक परीक्षाधीन है। Artificial Kidney के द्वारा Dialysis चिकित्सा के सप्ताह में १-२ बार १०-१२ घंटों तक लेने से रोगी को २ वर्ष और जीवित रखा जा सकता है। पर यह चिकित्सा इस समय तक अत्यधिक महगी है जिससे इसका लाभ भी कोई उठा नहीं सकता।

लक्षणानुसार चिकित्सा

१ अन्नारुचि या वमन के लिए मुख से पानी न देकर ५ प्रतिशतक Dextrose वाले Normal Saline को ४-८ औंस की मात्रा में चार-चार घंटे बाद गुदा में डालते रहना चाहिए। ५ प्रतिशतक में १० प्रतिशतक ग्लूकोज के नार्मल सेलाइन में घोल के शिरा द्वारा देने से भी अरुचि और वमन के लक्षण शान्त होते हैं। या एक पाइण्ट जल में ६० ग्रेन लवण, ३-४ प्र०श० ग्लूकोज मिलाकर त्वचा द्वारा भी दे सकते हैं। अथवा Chlorpromazine Hydrochloride (Thorazine, Largactil) के या Stemetil के १० से २५ मिलिग्राम की मात्रा में ६-६ घंटे बाद मुख द्वारा देने से अरुचि और वमन के लक्षण शान्त हो जाते हैं। १ औंस जल में १ ड्राम ग्लूकोज मिलाकर ऐसे २ औंस जल के पिलाने से भी वमन शान्त हो जाती है। Cyclizine Lactate ५० मिलि० के मास द्वारा देने से भी यही लाभ होता है।

२ त्वचा पर होने वाली कण्डू को Ergotamine (Femergin या Bellergal) $\frac{1}{2}$ मिलिग्राम मात्रा में दिन में तीन बार मुख द्वारा देने से लाभ होता है।

३ मूत्र के विष-सचार से उत्पन्न अजीर्ण (Uraemic Dyspepsia) के लिए Potassium Bromide १५ ग्रेन तथा Sodium Bicarbonate २० ग्रेन दिन में तीन बार दे सकते हैं। मूत्रविष-जनित तीव्र अतिसार के लिए Streptomycin १ ग्राम दिन में दो बार मुख द्वारा देना चाहिए (Chlorostrep या Enterostrep कैप्स्यूल भी दे सकते हैं)। अतिसार से होने वाली शरीर में जल की न्यूनता को दूर करने के लिये मुख द्वारा या शिरा द्वारा ग्लूकोज़युक्त लवण-जल देना चाहिए।

४ सिरदर्द, उन्निद्रता, व्याकुलता आदि के लिए Doriden ५०० मिलि० के रात को देने से लाभ न हो तो Heroin ५-८ मिलिग्राम ($\frac{1}{12}$, $\frac{1}{8}$ ग्रेन) की मात्रा में त्वचा द्वारा देने से लाभ हो जाता है। Nembutal (Pentobarbitone Sodium) १$\frac{1}{2}$ ग्रेन की मात्रा में कैप्स्यूल में दिन में १-२ बार दिया जा सकता है इनके लिए रक्तभार कम करने वाली किसी औषध से जैसे Ismelin या Aldomet आदि का प्रयोग विशेष लाभदायक है।

५. मूत्र-विष-सचार-जनित स्तम्भ (Cramp) अथवा Tetany या खल्ली रोग के लिए Calcium Chloride का ५ प्रतिशतक घोल १० या २० सी०सी० की मात्रा में अथवा Calcium Gluconate का १० प्रतिशतक घोल १०-२० सी०सी० की मात्रा में शिरा द्वारा दिया जाता है तथा विटामिन 'डी' दें।

६ रक्त में Urea के बढने तथा Haemoglobin के घटने से उत्पन्न पाण्डुता Anaemia के लिए Vitamin B_{12} दिया जाता है, पर उसके प्रयोग से लाभ नहीं होता। Transfusion या रक्तदान से भी सामयिक लाभ होता है। पर अधिक रक्त नहीं देना चाहिए, क्योंकि वाम हृदय के फेल होने तथा शरीर में Nitrogen द्रव्यों के बढ जाने का भय रहता है।

७ मूत्र-विष-सचार-जनित हिक्का भयकर लक्षण है, आक्सिजन देने से या Chlorpromazine ५० मिलि० या Promazine Hydrochloride (Sparine) ५० मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार देने से यह ठीक होती है।

८ मूत्र-विष-सचार के कारण होने वाले रक्तस्राव के लिए Vita. 'C' २०० मिलिग्राम प्रतिदिन देवें, पर अभी तक इसकी कोई मानी हुई चिकित्सा नहीं है।

९ श्वासकृच्छ्रता (Dyspnoea) के लिए जो रक्त में क्षार की न्यूनता से होती है, Sodium Bicarb, ३-६ ग्राम रोज तब तक दें जब तक मूत्र की अम्लीयता

न रहे। या Isotonic Sod. Lactate १ ९ (प्रतिशत) शिरा द्वारा दें तथा कोई शामक औषध Largactil आदि दें।

१० फुफ्फुस, मूत्रमार्ग आदि मे कही कोई Infection लगे तो Benszyl Penicillin का प्रयोग करना चाहिए।

सहसा मूत्राघात (Acute Uraemia, Acute Renal Failure, Acute Oliguria or Anuria, Traumatic Anuria, Acute Tubular Necrosis, Toxic Nephrosis)

जब किसी रोग के कारण शरीर की रक्तवाहिनियो मे रक्त की मात्रा सहसा घट जाती है तब वृक्को अथवा उनकी मूत्र-स्राविणियों (Tubules) को सहसा रक्त मिलना बन्द हो जाने से Anaxia होकर उनमे मृत्यु (Necrosis) की प्रक्रिया होने लगती है। उनके Glomeruli मे छनने की प्रक्रिया मन्द पड जाती है जिससे मूत्र बहुत कम, अर्थात् २०-३० सी०सी० ही, बनता है। नालियो के निम्न भाग की झिल्ली मे Necrosis के कारण ही पुनर्विलयन की प्रक्रिया मन्द हो जाती है तथा उनमे Ammonia बनना बन्द हो जाने से और Phosphate, Sulphate आदि के मूत्र द्वारा शरीर मे से न निकलने से तथा रक्त मे बढ जाने से शरीर मे अम्ल-वृद्धि (Acidosis) का लक्षण हो जाता है अर्थात् हाथो मे Twitching तथा श्वास मे गहरापन होता है। Serum मे सोडियम तथा Chloride घट जाते है। धातु पाक के परिणामरूप में सैलो से उत्पन्न Potassium के या शरीर के किसी अग पर भारी चोट लगकर उसके कुचले जाने से उत्पन्न Potassium के रक्त मे बढ जाने से Hyperpotassaemia (Neuro-muscular Depression) का लक्षण हो जाता है, Inorganic Phosphate बढता जाता एव कैलसियम घटता जाता है। मूत्र के न बनने से Urea तथा Non-Protein Nitrogen से बने द्रव्य भी रक्त मे बढ जाते हैं अर्थात् न्यूनाधिक मूत्राघात हो जाने के कारण मूत्र-विष-सचार का रोग हो जाता है। जिससे अन्नारुचि, वमन तथा शरीर मे मन्दता (Lethargy) आ जाने का लक्षण होता है।

शरीर की रक्तवाहिनियो मे रक्त की मात्रा कई रोगो मे सहसा कम हो जाती है। उदाहरणत गर्भपात, या भारी चोट या उग्र शल्यकर्म (Shock) या हृदय मे तीव्र शूल (Infarction) से या पेट-आत आदि मे से भारी रक्तस्राव हो जाने अर्थात् Shock से शरीर मे रक्त की मात्रा कम हो जाती है तथा रक्तभार गिर जाता है (Hypotension हो जाता है)। अथवा विस्तृत प्रदेश पर अग्नि-दाह के हो जाने या किसी बडे अग के कुचले जाने से वहा से प्लाज्मा के अति मात्रा मे बह जाने से रक्त की मात्रा कम हो जाती है। अथवा वमन एव अतिसार की तीव्रतावश या आतप-ज्वर (Sun Stroke) मे स्वेद की अत्यधिकता से भी मूत्र की मात्रा सहसा गिर जाती है। प्रतिकूल रक्त-दान (Incompatible Transfusion) से भी Hypersensivity के कारण दिये गये रक्तकणो के टूट जाने से रक्तरजक द्रव्य अति मात्रा मे मूत्र द्वारा आने लगता है और वृक्को की नालियो मे Necrosis की प्रक्रिया होकर मूत्र की मात्रा बहुत कम रह जाती है, साथ ही नालियो के अन्दर से झडे हुए सैलो के ढेर नालियो मे पाये जाते है। इसी प्रकार कुछ एक विषद्रव्यो, जैसे गर्भावस्था मे उत्पन्न विष के कारण वृक्क रोग होकर मूत्र की मात्रा कम हो जाती है अर्थात् कुछ तीव्र Toxins के कारण भी मूत्रस्राविणियों मे क्षीणता उत्पन्न हो जाती है (Eclamptic Nephrosis) या पारे (Mercury Bichloride), स्वर्ण, Lead आदि किसी धातु के अतिमात्रा मे लेने पर उनका वृक्को की Tubules पर दुष्प्रभाव होकर उनमे Necrosis की प्रक्रिया (Toxic Nephrosis) हो सकती है, किसी तीव्र जीवाणु-सक्रमण (Bacteremia) मे ज्वर के साथ वृक्क मे यही प्रक्रिया होकर मूत्राघात हो सकता है। शरीर मे रक्त के कम हो जाने से शरीर की धमनियो मे सकोच-कर्म (Vasoconstriction) हो जाता है। वृक्को मे इसी प्रक्रिया के हो जाने और उसके देर तक रहने से उसकी नालियो की झिल्ली के सैलो मे यह मृत्यु प्रक्रिया (Necrosis) होती प्रतीत होती है। अन्य अवस्थाओ मे रक्तगत विष का या Sepsis का वृक्को के सैलो पर सीधा विषैला प्रभाव होने से उनमे Necrosis होने लगता है।

लक्षण

पहले Shock की अवस्था मे मूत्राघात (Oliguria) का लक्षण होता है शरीर मे प्रोटीन तो टूट रहा होता है और दूसरी ओर मूत्राघात होता है। इससे रक्त मे Azotaemia तथा पोटासियम और एसिड्स की अतिवृद्धि हो जाती है। ज्वर हो जीवाणु सक्रमण हो तो प्रोटीन और अधिक टूटता है, जिससे यूरिया की वृद्धि रक्त- मे हो जाती है। पोटासियम की अतिवृद्धि से तथा Acidosis से हृदय निर्बल होता जाता है। शरीर शिथिल हो जाता है। जल के शरीर मे अधिक रुक जाने से त्वचा तथा फुफ्फुस मे श्वयथु Oedema हो जाता है जिससे श्वास-काठिन्य का लक्षण होता है। Acidosis के कारण गहरे-गहरे श्वास आने का लक्षण होता है।

जिस रोग से मूत्राघात का तथा मूत्र-विष-सचार का यह रोग होता हे उसके लक्षणो मे पहले-पहल यह रोग छिपा-सा रहता हे Dehydration या Burn मे जब शरीर मे से बहुत सा रक्त निकल गया हो या रक्त का बहुत सा जलीय अश निकल गया हो तो या तो रक्तदान या Plasma Solu ५०० मिलिलि० या Dextran ६ प्र०श० Isotonic Saline Solu मे ५०० मिलिलि० मात्रा मे दे देने से वृक्को की नालियो मे होने वाली Necrosis की प्रक्रिया को रोका जा सकता है (इसीलिए Surgery के समय ग्लूकोज़ सोल्यू० या रक्त दे दिया जाता हे) Shock से या Vasodilatation मे मूत्राघात हो तो Metaramenol (Aramine) २-१० मिलि० या Veritole मास द्वारा दे या Levophed (Noradrenaline) शिरा द्वारा दें। पर जब मूत्राघात (Oliguria) का लक्षण प्रकट हो जाता है तब शिरा द्वारा इस प्रकार सोल्यूशन देकर उसे बलपूर्वक मूत्र बनाने के लिए प्रवृत्त नही किया जा सकता, तथा क्योंकि वृक्को की मूत्र बनाने की असमर्थता बहुधा १-२ सप्ताह के समय के बाद क्रमश स्वय ठीक हो जाती हे, इसलिए इतने समय तक रोगी को ऐसी खुराक पर, जिससे वह जीवित तो रहे परन्तु उसके गुर्दों पर कोई विशेष कार्य-भार न पडे, रखना चाहिये (Bull's regime)। अर्थात्, कोई प्रोटीन या Electrolyte पदार्थ उसे न देते हुए उसे केवल कार्बोहाइड्रेट मात्र पर रखना चाहिए। जल भी दिन-भर मे उतना मिलना चाहिए जितना मूत्र फुफ्फुसो तथा त्वचा से प्रतिदिन निकलता हे, तथा वमन हो या अतिसार हो तो उनके द्वारा निकले जल की भी पूर्ति होनी चाहिए। अनुभव बताता हे कि यदि १००-३०० ग्राम Glucose या Lactose को ६०० मिलिलि० जल मे (४०० मिलिलि० Basic ration, २०० स्वेद-वमन आदि के लिए) मिलाकर मुख द्वारा या Stomach Tube या Intranasal Polyethylene Plastic Tube के द्वारा थोडा-थोडा करके प्रतिदिन दे दिया जाय तो रोगी को जीवित रखा जा सकता हे तथा उससे वृक्को को विश्राम भी दिया जा सकता है। ग्लूकोज़ का घोल १५% से अधिक गाढा नहीं होना चाहिए। शिरा द्वारा ग्लूकोज देना पडे तो एक बडी शिरा मे Catheter को प्रविष्ट करके, उसके द्वारा धीरे-धीरे दें। Insulin १० यूनिट्स भी दिन मे ३-४ बार दे। Vit B Complex तथा 'सी' भी देवे। इस भोजन के द्वारा शरीर, जो अपने प्रोटीन को खर्च करके (Protein Catabolism पर) जीवित रहता है, उस प्रक्रिया को भी मन्द किया जा सकता है। इसीलिए इस भोजन पर भी रक्त मे Urea तथा Potassium की वृद्धि तो होती है, पर इतनी नही होती जो दुष्परिणामो को उत्पन्न करने वाली हो। इतना जल देने पर भी यदि शरीर मे कही श्वयथु (Oedema) का लक्षण प्रतीत होने लगे अर्थात् उसका भार जिसकी परीक्षा प्रतिदिन होनी चाहिए, बढे तो जल की मात्रा को इससे भी कम (४०० मिलिलि०) कर देना चाहिये, वैसे तो रोगी का भार प्रतिदिन ½ किलो घटना चाहिए। धातुओं मे प्रोटीन के परिपचन को कम करने के लिए Nandrolone Phenyl Propionate (Anabolic Hormone) को अर्थात् Durabolin को २५ मिलि० दैनिक मात्रा मे मास द्वारा या मौखिक अर्थात् Norethandrolone (Nilevar) या Orabolin (Ethylestrenol) को १० मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ बार मुख द्वारा दे सकते हैं या Cal gluco शिरा द्वारा १० ग्राम दैनिक दें या १५ प्रतिशत ग्लूकोज़+Insulin ५० units १०० मिलिलि० शिरा द्वारा दें। इससे वमन की आशका भी नही होती, इसे भी बूद-बूद करके दें। ऐसे रोगी मे जीवाणु-सक्रमण (Infection) की आशका भी रहती है। उसके निवारण के लिए Tetracycline (Subamycin) २५०-५०० मिलिग्राम दैनिक दें Erythromycin भी उत्तम है। या Penicillin G पहले १० लाख और फिर २½ लाख दैनिक दे। बेचैनी का लक्षण हो तो Barbiturates का प्रयोग भी करना चाहिए।

इस चिकित्सा के होने पर भी ५-७ दिन बाद अरुचि तथा वमन के लक्षण हो तो मूत्र-विष-सचार के प्रकट होने का सन्देह करना चाहिए। सर्वांगदौर्बल्य व हृदय-दौर्बल्य हो तो Hyperpotassaemia का सन्देह होना चाहिए। श्वास मे कठिनता का लक्षण हो तो Acidaemia का सन्देह करना चाहिए। मूत्र की परीक्षा भी करते रहना चाहिए। कैथिटर लगा रहे तो मूत्र का दैनिक माप भी ठीक-ठीक हो सकता हे। उसका भार १०१० के लगभग रहता है। उसमे अलब्यूमिन, रक्तकण तथा Pus cells पाये जाते हैं। रक्त की परीक्षा भी करते रहना चाहिए, प्राय उसमे Urea की मात्रा नार्मल से अधिक होती है, Potassium की मात्रा भी अधिक पायी जाती है।

१-२ सप्ताह के मूत्राघात के बाद वृक्क अपना कार्य करने लगते है, अर्थात् उनके Glomeruli मे छनने की प्रक्रिया तो आरम्भ हो जाती है पर उनकी नालियो (Tubules) मे पुर्नविलयन का कार्य अभी आरम्भ नही होता जिससे मूत्र की मात्रा बढ जाती है, अर्थात् रक्त मे से जल, Sodium Chloride तथा Potassium की मात्रा अधिक निकलने लग जाती है (Diuretic phase), इसलिए

इस अवस्था के आरम्भ होने पर प्रतिदिन मूत्र की मात्रा का माप होना चाहिए तथा उसके अनुसार ही रोगी को जल व लवण मिलना चाहिए। एक लिटर जल मे ३ ग्राम साल्ट उसे मिलना चाहिए। फलरस दे दिया जाय तो Potassium की न्यूनता को पूर्ण किया जा सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि मूत्र मे जल की मात्रा अधिक निकले, पर Electrolytes कम निकले, अर्थात् ये तो पुनर्विलीन होने लग जायें पर जल का पुनर्विलयन कम हो। इस अवस्था की तदनुसार ही चिकित्सा होनी चाहिए अर्थात् जल अधिक दें, साल्ट कम दें। इस अवस्था मे थोडा प्रोटीन-भोजन जैसे दूध आरम्भ कर देना चाहिए। इसके बाद २-३ मास में वृक्क पूर्णतया मूत्र के बनाने में समर्थ हो जाते है तथा वे जितना-जितना समर्थ होते जायें, तदनुसार ही भोजन मे उत्तरोत्तर परिवर्तन करते जाना चाहिए। मृत्यु इस रोग में शरीर के अन्दर जल के अधिक रुक जाने से, Congestive Cardiac Failure से, फुफ्फुस मे श्वयथु (Oedema) से या Potassium Intoxication से या Encephalopathy से होती है। इनसे बचना चाहिये।

मधुमेह Diabetes Mellitus (Diabetes-प्रवाह, Mellitum-मधु से मीठा किया हुआ)

मधुमेह वह रोग है जिसमे रक्त के अन्दर ग्लूकोज़ की मात्रा बढ जाती है हो सकता है कि मूत्र मे इसकी वृद्धि न हो इसलिये इसे Hyperglycaemia कहना अधिक उचित है। इसमे Insulin की उत्पत्ति कम होती एव कार्बोहाइड्रेट्स का परिपचन ठीक नहीं होता।

इतिवृत्त

मधुमेह एक बडा व्यापक और चिकित्साशास्त्र का आवश्यक रोग है। Endocrine ग्रन्थियो मे होने वाले रोगो में सबसे अधिक (Thyroid को छोडकर) पाये जाने वाला रोग है। १०० व्यक्तियों के पीछे १ मे यह पाया जाता है। इसमे रक्त तथा मूत्र के अन्दर ग्लूकोज की मात्रा बढ जाती है। सुश्रुत (पाचवी शताब्दी) ने इसे मधुर मूत्र कह कर इसका पता दिया। Von Mering तथा Minkowski (१८८९) ने पहले-पहल हमें बताया कि जिस पशु मे से अग्न्याशय को निकाल दिया जाय उसे मधुमेह हो जाता है। फिर Laguessee (१८९५) ने बताया कि Langerhans (१८६९) के बताये सैल-समूहो (Islets) मे कुछ ऐसे सैल हैं जो मधुमेह रोग से सम्बन्ध रखते है। कुछ काल बाद Homans तथा Allen ने घोषणा की कि अग्न्याशय के Beta Cells मे से एक Hormone निकलता है जो रक्त मे जाकर मधुमेह का निरोध करता है, और १९०९ मे De Meyer ने इसे Insulin का नाम भी दिया, पर अग्न्याशय मे से इसे निकालते समय Trypsin भी साथ आ जाता था जो इसके प्रोटीन होने के कारण इसे हजम कर देता था इसलिये Banting, जो एक सर्जन था, और Best (१९२२) ने, जो अभी ग्रेज्युएट हुआ था, Toronto मे Macleod की प्रयोगशाला मे पहले Pancreatic Duct को बन्द करके अग्न्याशय के दूसरे सैलो को नष्ट कर दिया जिससे Trypsin नष्ट हो गया और फिर अग्न्याशय के Islets से शुद्ध Insulin को पृथक् कर लिया तथा Enzyme निकालने वाले सैलो के बनने से पहले ही Foetal Pancreas मे से भी इसे निकाल लिया, जिसके निकलने पर चिकित्सा-ससार मे हर्षोल्लास छा गया। सचमुच इस आविष्कार ने रोगियो और चिकित्सको को एक अमूल्य रत्न प्रदान कर दिया अब यह औषध प्राणियो के अग्न्याशय से तैयार की जाती है। अभी १९५८ मे Sanger ने Insulin Molecule की रासायनिक रचना का भी पता लगा लिया है जिससे इसके बना सकने की सभावना बढ गई है।

इन्सुलिन की उत्पत्ति—अग्न्याशय की धमनी मे जितना ग्लूकोज आता हे उसी अनुपात मे Beta Cells मे से इन्सुलिन की उत्पत्ति होती है, फिर वह Portal Vein के द्वारा यकृत् मे जाती है वहा से यह रक्त मे फैल जाती है और वहा यह अपने विरोधी द्रव्यो जैसे Pituitary, Adrenal Hormones आदि के सपर्क मे आती है तथा सैलो तक पहुचती हे।

शरीर में कार्बोहाइड्रेट का परिपचन (Metabolism)

भोजन मे लिया हुआ सम्पूर्ण कार्बोहाइड्रेट जो शरीर रूपी मशीन मे कोयले का कार्य करता है, आत मे तीन 6 Carbon Sugars अर्थात् Glucose Fructose, Galactose [($C_6H_{12}O_6$ Monosaccharides) मे परिवर्तित हो जाता है। आतो के सकोच के समय उनमे उत्पन्न होने वाले Adenosine Triphosphate मे से फासफोरस या Phosphoric Acid को लेकर (Phosphorylated होकर) ये खाण्डें आतो की झिल्ली मे से रक्त मे प्रवेश कर सकती है। इस प्रकार Phosphoric Acid के साथ मिलकर ये खाण्डें 6 Carbon Sugars (Hexose 6-Phosphates) के रूप मे रक्त मे विलीन होती हे तथा रक्त से सैलो मे विलीन होती हे। इस परिवर्तन या पचन या Phosphorylation के लिए Hexokinase नामक Enzyme की, जो सर्व सैलो मे

रहता है, उपस्थिति आवश्यक होती है, और उसके सक्रिय करने के लिए Insulin का होना जरूरी है। क्योंकि उसकी अनुपस्थिति मे Anterior Pituitary Hormone तथा Adrenocortical Hormones इस Enzyme को निष्क्रिय कर देते है। सैलो के अन्दर Adenosine Triphosphate के साथ ग्लूकोज के मिलने अर्थात् उपर्युक्त Glucose 6 Phosphate के रूप मे परिवर्तन के लिए Insulin का होना आवश्यक है यद्यपि ग्लूकोज के इस विलयन के लिए आत का तथा Thyroid ग्रन्थि का स्वस्थ होना भी आवश्यक है। साथ ही विटामिन बी कम्पलेक्स की उपस्थिति भी आवश्यक होती है। रक्त मे आए इस ग्लूकोज मे से ३ प्रतिशतक के लगभग अश तो यकृत् तथा मासपेशियो आदि मे पहुचकर विशेष Enzymes के द्वारा शकराजन (Glycogen) के—जो एक Animal Starch है—रूप मे परिवर्तित होकर जमा हो जाते हैं ताकि समय पडने पर मासपेशियो को खर्च करने के लिये खाण्ड तुरन्त मिल सके इसके लिए भी Insulin आवश्यक है। शेष ग्लूकोज कुछ Enzymes के द्वारा परिवर्तित होता हुआ 3 Carbon Sugars (Triose) Lactic Acid (CH_3, CH, OH, COOH) Pyruvic Acid (CH_3 CO COOH) तथा Lactate, Pyruvate मे परिवर्तित हो जाता है। (यद्यपि ये सभी फिर Blood Glucose या Glycogen मे परिवर्तित होकर यकृत् मे जमा हो सकते हैं।) फिर ये Lactic तथा Pyruvic एसिड इनमे मे CO_2 मोलिक्यूल के निकल जाने पर (Decarboxylation) और O के मिल जाने के बाद 2 Carbon units या 2 Carbon Sugar अर्थात् Acetic Acid (CH_3COOH) मे बदल जाते हैं। तथा Pyruvic Acid मे (यकृत् के अन्दर Oxaloacetic Decarboxylase के द्वारा) CO_2 के मोलिक्यूल के मिल जाने से Oxaloacetic Acid (COOH CH_2 CO COOH) बन जाता है फिर इन Acids का बडा भाग या तो Krebs Tricarboxylic Acid (अर्थात् 3 COOH वाले Citric Acid, Keto Glutaric Acid, Succinic Acid, आदि) की Cycle या चक्र मे से गुजरकर अन्त मे CO_2 तथा H_2O मे परिवर्तित होकर उपर्युक्त परिवर्तनो के साथ-साथ शक्ति (Energy) को उत्पन्न करके शरीर से निकल जाता है। ९७ प्र०श० मे से ७० प्रतिशतक ग्लूकोज इसी प्रकार शरीर को शक्ति प्रदान करने मे खर्च हो जाता है या Amino acids तथा प्रोटीन के निर्माण मे सहायक होता है। शेष ३० प्रतिशतक के लगभग ग्लूकोज 2 Carbon Sugar या Acetic Acid के बाद यदि वह शरीर मे खर्च नहीं हो पाता तो वह Acetoacetic Acid ($CH_3CO\ CH_2COOH$) मे परिवर्तित हो जाता है। अर्थात् 2 Carbon Sugar, 4 Carbon Sugar मे परिवर्तित हो जाता है और फिर इससे Fatty Acids की एक लम्बी श्रेणी (C_3H_7 COOH अर्थात् Butyric Acid, C_4H_9 COOH अर्थात् Valeric Acid आदि-आदि) उत्पन्न हो जाती है जो अन्त मे Stearic Acid ($C_{17}H_{35}$ COOH) अर्थात् शरीर की वसा धातु या Neutral Fat बनकर Triglyceride के रूप मे शरीर के वसामय प्रदेशो मे जमा हो जाती है। इसीलिए कार्बोहाइड्रेट के अति सेवन से शरीर भारी हो जाता है। अभिप्राय यह है कि जो खाण्ड शरीर मे सीधे रूप मे खप नहीं पाती वह शरीर के अवयवो मे Glycogen तथा फैट अर्थात् Lipid के रूप मे सचित हो जाती है ताकि उपवास के समय या अति कार्यभार आ पडने पर उनके द्वारा शरीर का अग्नि-कर्म (Oxidation) चलाया जा सके। ग्लूकोज के, वसा के सैलो मे, Fatty Acid के रूप मे जमा होने के लिये भी Insulin का होना जरूरी है। इस प्रकार भोजन का कार्बोहाइड्रेट शरीर मे चलता तो है ग्लूकोज के रूप मे, पर जलता (खर्च होता है) ग्लाइकोजन या वसा के रूप मे।

रक्त मे विद्यमान ग्लूकोज की अधिकतर मात्रा तो भोजन द्वारा ही आती है। परन्तु कुछ एक Amino Acids अर्थात् प्रोटीनो से, जैसे Alanine, Glycine आदि के परिपचन से भी Pyruvic Acid या Pyruvate बन जाता है और फिर आगे उसका पाक ग्लूकोज की तरह शरीर को शक्ति प्रदान करने मे सहायक होता है अर्थात् Alanine अर्थात् CH_3CHNH_2COOH मे से NH_2 के निकल जाने तथा फिर Oxidation के हो जाने से CH_3 CO COOH अर्थात् Pyruvic Acid बन जाता है। दूसरा Amino Acid, Glutamic Acid अर्थात् COOH CH_2 CH NH_2 COOH भी इसी विधि से Ketoglutaric Acid अर्थात् COOH CH_2 CH_2 CO COOH बन जाता, Aspartic Acid अर्थात् COOH CH_2 $CHNH_2$ COOH इसी विधि से COOH CH_2 CO COOH अर्थात् Oxaloacetic Acid बन जाता है। इनका तथा Glycine आदि का आगे पचन T C A साइकल मे पडकर खाण्ड की तरह होता है। इसीलिए ये Glucogenic या Ketogenic भी कहाते हैं। इसी तरह भोजन मे खाये गये स्निग्ध तत्त्वो के परिपचन से शरीर मे जो कुछ Glycerol उत्पन्न होता है उसका कुछ अश भी Pyruvic Acid तथा Pyruvate मे परिवर्तित होकर आगे ग्लूकोज

की तरह ही शरीर मे खर्च होता है। इसी प्रकार फैट के परिपचन से जो Fatty Acids उत्पन्न होते है, उनका कुछ अश भी Acetic Acid मे परिवर्तित होकर आगे ग्लूकोज़ के समान ही शरीर मे खपता है। शरीर को Glycogen से जितनी खाण्ड खर्च के लिए मिलती है उससे कही अधिक मात्रा में खाये हुए स्निग्ध तत्त्वो से तथा प्रोटीनो के परिपचन से मिलती है। इसे Gluconeogenesis की प्रक्रिया कहा जाता है। इस प्रकार भोजन में जितना कार्वोहाइड्रेट होता है उतना तथा जितना प्रोटीन होता है उसका ५८ प्रतिशत तथा जितना फैट होता है उसका १० प्रतिशत ग्लूकोज़ वह हमे देता है। जैसे ऊपर कहा है इन्सुलिन के कारण रक्त की खाण्ड यकृत् तथा मास मे Glycogen के रूप में सचित होती है। उसी के कारण खाण्ड अवयवो में खर्च Burn होती है।

शरीर में वसा या फैट का परिपचन (Metabolism)

शरीर में विद्यमान वसा जो शरीर के भार का १०% है भोजन में लिये गए स्निग्ध तत्त्वो से तथा कार्वोहाइड्रेट के परिपचन से उत्पन्न Fatty Acids से आती है। यह स्मरणीय है कि वसा सैलो के बीच-बीच के Matrix में या सूत्रो (Fibres) के बीच-बीच के प्रदेश में जमा नही होती यह Adipose तन्तु के सैलो के भीतर जमा होती है। इन सैलो में रक्त के अन्दर वढे हुए फैट को जमा करने का विशेष गुण रहता है। रक्त मे वसा की मात्रा लगभग एक सी रहती है, वह आधे प्रतिशतक से कम नही होती, यद्यपि भोजन के वाद रक्त मे मात्रा वढ जाती है पर २ प्रतिशतक से अधिक नही होती। खाण्ड (Glucose) के समान शरीर की वसा भी धातुओ को शक्ति प्रदान करने में खर्च होती है। यकृत् मे फैट Hydrolysis के द्वारा ग्लिसरोल और Fatty Acids में परिवर्तित होता है (Liver Lipase के द्वारा) ग्लिसरोल का आगे पचन कार्वोहाइड्रेट की तरह होता है। वसा से लम्बी शृ खलाओ (Long Chain) वाले जो Fatty Acids उत्पन्न होते हैं ऑक्सिजन से मिलते-मिलते वे फिर छोटी-छोटी शृ खलाओ वाले Fatty Acids वनते जाते हैं। उदाहरणत, Caproic Acid नामक Fatty Acid (CH_2 CH_2 CH_2 CH_2 CH_2 COOH) जब O_2 के साथ मिलता है तो Butyric Acid (CH_3 CH_2 CH_2 COOH) रह जाता है फिर जब इसमें और 3 O_2 मिल जाता है और उसके मिलने से 2 CO_2 और 2 H_2O वन जाते हैं तो वह Fatty Acid, Acetic Acid (CH_3COOH) ही रह जाता है। यह Acid फिर Tri Carboxylic Acid Cycle में से गुजरकर (अर्थात् इसमे 2 O_2 के और मिलने से) 2 CO_2 तथा 2 H_2O मे परिवर्तित होकर पूर्णतया खर्च हो जाता है। इस प्रकार वसा (Stearic Acid) धातुओ में खर्च (Oxidised) होकर उन्हें शक्ति प्रदान करने का कार्य करती है। जब तक शरीर में Fatty Acids वसा में परिवर्तित होते रहते हैं और जमा होते रहते हैं तब तक Ketone Body उत्पन्न नही होते। यह ऊपर कहा गया है कि फैट से ९० प्रतिशत तो Fatty Acids वनते हैं, १० प्रतिशत उससे ग्लूकोज़ भी वनती है जिस ग्लूकोज़ के विना Fatty Acids का परिपचन पूर्णत नही होता।

वसा के परिपचन मे 4 Carbon Units के वाद आगे परिपचन होने के लिये यह आवश्यक है कि शरीर मे खाण्ड का परिपचन पर्याप्त हो। इसके विपरीत यदि खाण्ड का परिपचन धातुओ मे न हो रहा हो, जैसा कि मधुमेह मे होता है और Insulin की कमी के कारण होता है, तो Fatty Acids का परिपचन भी आगे भली प्रकार नहीं हो पाता तो Acetic Acid या Acetate के अधिक मात्रा मे उत्पन्न हो जाने और उनके Molecules की परस्पर प्रतिक्रिया से अर्थात् (CH_3 COOH+HCH_2 COOH के मिलने से एक 4 Carbon Unit का Fatty Acid जिसे Diacetic Acid या Aceto Acetic Acid (CH_3 CO CH_2 COOH) कहते है, उत्पन्न हो जाता है। तथा इसमे स्वल्प परिवर्तन से (2 H मिलने से) वनने वाला Beta Hydroxybutyric Acid (CH_3 CHOH CH_2 COOH) भी वन जाता है। ये दोनो एसिड यकृत् मे वनते है एव कुछ विषैले होते हैं तो भी स्वस्थ व्यक्ति मे इनका भी पूर्ण परिपचन हो जाता है। तीसरा उसी मे से CO_2 के निकल जाने से Acetone (CH_3 CO CH_3) भी उत्पन्न हो जाता है, इसका भी पचन मास मे हो जाता है, अर्थात् यकृत् मे से मास मे पहुचने पर इनका CO_2 तथा H_2O मे परिवर्तन हो जाता है। Fatty Acids के अपूर्ण परिपचन से उत्पन्न इन Acids को Ketone Bodies कहा जाता है। जब ये इतने वनने लगते हैं कि जितने खर्च नही होते, जैसे कि मधुमेह रोग मे रक्त के अन्दर वढ जाते हैं एव मूत्र मे आने लगते हैं (Ketonuria), तो इसे Ketosis या Diabetic Acidosis कहते है। सामान्यत. Body Fluid का pH ७ ४ होता है। इस अवस्था मे वह Keto Acids के वढने से ७ तक हो जाता है। मूत्र मे खाण्ड तथा Diacetic Acid के वढ जाने पर अन्नारुचि, जी मचलाना, वमन, पेट मे दर्द, शिरोभ्रम, श्वासकृच्छ्रता

तथा तन्द्रा के लक्षण होने लगते हैं। बाद में इस Acid के मस्तिष्क पर Depressant या अवसादक होने से दिग्भ्रम और मूर्छा का लक्षण हो जाता है।

मधुमेह में कार्बोहाइड्रेट तथा फैट का परिपचन

मधुमेह रोग मे रक्त के अन्दर पहुँचे ग्लूकोज का धातुओं मे परिपचन अपूर्णता से होता है। एक तो Pyruvic Acids के रूप मे उसका परिवर्तन भली प्रकार नही होता, दूसरे, उससे आगे Fatty Acids के रूप मे उसका परिवर्तन ठीक नही हो पाता, अर्थात् धातुओं मे उसका खर्च ठीक प्रकार नही हो पाता। Fatty Acids के भली प्रकार न बनने से वसा के रूप मे उसका परिवर्तन भी कम होता है। Amino Acids तथा प्रोटीन के निर्माण मे भी उसकी खपत कम होती है। यकृत् तथा मासपेशियो मे Glycogen से रूप मे उसका सचय भी कम होता है। इस प्रकार जब ग्लूकोज की खपत शरीर मे घट जाती है तो रक्त मे उसकी मात्रा बढ जाती है। ऊपर कहा गया है कि Insulin, शर्करा के शरीर मे उपर्युक्त विधि से व्यय होने के लिए आवश्यक है। उसके कारण Gluconeogenesis की प्रक्रिया भी मन्द रूप मे होती है। साधारणतः रक्त मे खाण्ड प्रति १०० सी०सी० में ८० से १२० मिलिग्राम मात्रा में रहती है और भोजन के बाद यद्यपि १४० या १५० मिलिग्राम तक भी हो जाती है तथापि शीघ्र ही फिर यह साधारण हो जाती है। इस प्रकार उसकी रक्त मे मात्रा १ या १८ ग्राम प्र०ग्रा० से ऊपर कभी नही जाती। इस रोग मे खाण्ड की खपत के कम हो जाने, Gluconeogenesis (Amino Acids के अधिक मात्रा में खाण्ड में बदलने) की प्रक्रिया के अधिक होने से रक्त के अन्दर इससे अधिक बढ जाती है एव वृक्को द्वारा मूत्र में निकलने लगती है। अर्थात्, शक्ति उत्पन्न करने के लिये जब खाण्ड नही मिलती तब शरीर प्रोटीन को जलाने लगता है अर्थात् प्रोटीन के Amine(NH_2) से व्यतिरिक्त भाग को ग्लूकोज या Acetoacetate में परिवर्तन कर उसे खर्च करने लगता है जिससे सैलो को प्रोटीन कम मिलता है और उनकी क्षतिपूर्ति ठीक-ठीक नहीं हो पाती जिससे कृशता भी हो जाती है।

शरीर की धातुओं को खर्च करने के लिए जब खाण्ड नहीं मिलती तो उसके स्थान पर वे वसा या Fatty Acids को खर्च करने लगती है और उसके Oxidation के द्वारा शक्ति उत्पन्न करने लगती हैं। इस अवस्था में जब शरीर वसा या Fatty Acids के खर्च पर शक्ति प्राप्त करता है तब एक तो शरीर कृश होने लगता है, दूसरे, Fatty Acids के अधिक परिपचन से रक्त के अन्दर वसा विशेषत Keto acids, Cholesterol तथा Lipids के रूप मे बढ जाती है अर्थात् Lipaemia या Hypertriglyceridaemia हो जाता है (नार्मल ½, १ प्र०ग्रा०) रक्त मे बढी हुई वसा के रक्तवाहिनियो के अन्तःस्तर (Endothelium) के नीचे के प्रदेश मे समा जाने मे उनमे Atherosclerosis की प्रतिक्रिया होने लगती है और रक्तवाहिनियों का स्रोत तग होने लगता है। विशेषत Triglyceride और Cholesterol प्रधान वसा के कणो के वहा-वहा बैठने मे रक्त की नालिया तग हो जाती हैं। जघाओं, मस्तिष्क तथा Coronary धमनियो मे यह प्रक्रिया विशेष रूप से होती है। यकृत् मे भी फैट की मात्रा बढ जाती है। बाद मे वसा या Fatty Acids के अति मात्रा मे पचन से Acetic Acid या 2 Carbon Units की मात्रा बढ जाती है। जिसका ग्लूकोज के अभाव मे आगे ठीक-ठीक परिपचन नहीं होता एव 2 Carbon Units के 2 Molecules के सघटित हो जाने से 4 Carbon Units के Fatty Acids जैसे Aceto Acetic Acid (CH_3 CO CH_2 COOH) तथा Beta Hydroxybutyric Acid (CH_3 OH CH CH_2 COOH), जिन्हें ऊपर Ketone Bodies कहा है अधिक मात्रा मे उत्पन्न हो जाते हैं और बढकर १०० सी०सी० रक्त मे १००, १५० मिलिग्राम तक हो जाते हैं जबकि साधारणत. ये १ मिलिग्राम प्र०श० होते हैं। इसीलिए मधुमेह मे वसामेह (Ketosis, Acidosis या) Ketonuria होने का भी भय रहता है। इस अवस्था मे इन अम्ल द्रव्यो से रक्त का बाइकार्बोनेट लेवल कम हो जाता है, रक्त मे CO_2 बढ जाता है, रक्त का pH घट जाता है। इससे स्पष्ट है श्वास गति बढ जाती है (Air Hunger) अर्थात् शरीर CO_2 को निकालने लगता है। मूत्र मे अम्ल अधिक निकलता है। मूत्र की मात्रा भी बढ जाती है। इस रोग मे वृक्को के अन्दर सूक्ष्म रक्तवाहिनियो के बीच के प्रदेश मे स्नायुतन्तु (Hyalinization) की वृद्धि हो जाती है तथा बाद मे अनेक Glomeruli नष्ट हो जाते हैं। वृक्को के रुग्ण होने से रक्तभार भी बढ जाता है। Nerves, माँसपेशियो, त्वचा आदि की सूक्ष्म रक्तवाहिनियो मे भी Sclerosis की प्रक्रिया हो जाती है। इसी से इस रोग म Neuritis होता है।

रक्त में खाण्ड की मात्रा को समता में रखने का प्रबन्ध

खाली पेट रहने पर रक्त मे खाण्ड की मात्रा ५०-९० मिलि० या अधिकत ८० मिलि० प्र०श० होती है। यदि रक्त मे खाण्ड की मात्रा ०८ प्रतिशतक या १०० मे ८०

मिलि० से ५० मिलि० तक से कम हो जाय तो शर्कराक्षय (Hypoglycaemia) का रोग हो जाता है। यदि रक्त मे शर्करा की मात्रा १८०-२०० मिलि० प्रतिशतक से अधिक हो जाय विशेषतः Renal Threshhold १८० मिलि० प्रतिशतक से ऊपर हो जाय तो उसे मधुमेह या शर्करा-वृद्धि (Hyperglycaemia) का रोग कहते हैं (२०० मिलि० तक इसे मध्यम, इससे ऊपर हो तो तीव्र मधुमेह कहते है) पर इन दोनो मे से भी शर्कराक्षय की अवस्था अधिक घातक है। इसलिए इन दोनो रोगो को रोकने के लिए शरीर मे उचित प्रबन्ध है। एक तरफ तो Adrenal Cortex से उत्पन्न होने वाले Adrenocortical steroids (Cortisone आदि) रक्त मे शर्करा की मात्रा को कम नहीं होने देते। वे सम्भवत: प्रोटीन, फैट आदि से उत्पन्न होने वाले ग्लूकोज (Gluconeogenesis) की गति को तीव्र कर देते हैं, Hydrocortisone के प्रयोग से रक्त मे शर्करा बढ़ती है, Cushings Syndrome मे भी ऐसा होता है Adrenal Medulla से उत्पन्न होने वाला Adrenaline भी यकृत् और मास मे विद्यमान Glycogen से उत्पन्न होने वाली शर्करा की गति को और अधिक तीव्र कर देता है। देखा जाता है, रक्त मे शर्करा के कम होने पर यकृत् मे शर्करा की उत्पत्ति बढ़ जाती है, तथा जब-जब शरीर मे Sympathetic नाडी-मण्डल उत्तेजित होता है, रक्त मे शर्करा की मात्रा बढ जाती है, क्योकि रक्त मे खाण्ड की मात्रा के कम हो जाने पर Adrenaline की उत्पत्ति स्वभावत बढती है, इससे यकृत् के Glycogen से ग्लूकोज अधिक उत्पन्न होने लगता है। इसी से Adrenal अतिवृद्धि तथा ट्यूमर मे मधुमेह रोग हो जाता है। इसी प्रकार Pituitary Gland के Anterior Lobe के सार (Extract) के देने से विशेषत उसके Growth Hormone (Somatotropin Hormone) के देने से Hexokinase नामक Enzyme पर उसका शामक प्रभाव पडने से रक्त मे शर्करा की मात्रा बढती है इसीलिए Acromegaly में मधुमेह भी हो जाता है। रक्त मे खाण्ड कम हो जाय (Stress Shock) तो Ant Pituitary उत्तेजित हो जाता है तथा वह Insulin के विपरीत कार्य करता है। इसके कारण उत्तेजित हुआ Adrenocorticotrophic Hormone, Cortex मे से अधिक Hydrocortisone को उत्पन्न करता है जिससे Gluconeogenesis की वृद्धि होकर रक्त के अन्दर शर्करा की मात्रा बढ जाती है (परन्तु इसका प्रयोग केवल मधुमेह रोगी मे ही शर्करा का वर्धक होता है। स्वस्थ व्यक्ति मे इसका प्रयोग मधुमेह का जनक नहीं होता)। इसी प्रकार अग्न्याशय (Pancreas) के Alpha सैलो (α cells) के अन्त स्राव Glucagon के द्वारा यकृत् मे से अधिक Glycogen के (ग्लूकोज के रूप मे) निकलने से अर्थात् Gluconeogenesis के बढने से भी रक्त मे खाण्ड की मात्रा बढती है। Thyroid Gland भी यदि अधिक सक्रिय (Hyperthyroidism) हो तो भी Glycogen अधिक मुक्त होता है और उससे अधिक ग्लूकोज बनने से रक्त मे शर्करा की मात्रा बढती है।

इस प्रकार इन चार निस्स्रोतस् ग्रन्थियो (Ductless Glands) के अन्त स्राव रक्त मे शर्करा की मात्रा को घटने नही देते हैं। अत. दीर्घ उपवास मे भी रक्त के अन्दर खाण्ड घटती नही साधारण मात्रा मे रहती है। दूसरी ओर Pancreas के साधारण (Glandular Acini) सैलो के बीच-बीच मे जो Epithelial Cells पाये जाते है (Islets of Langer hans के सैल या Beta Cells of the Inter Alveolar Cell Islets) एक प्रकार के अन्त.स्राव (Hormone) को उत्पन्न करते हैं जिसे Insulin कहते हैं। रक्त मे खाण्ड के बढते ही अग्न्याशय के सैलो मे इसे उत्पन्न करने की प्रेरणा हो जाती है। जैसे ऊपर कहा है यह रक्त मे विद्यमान खाण्ड की धातुओ मे खपत होने (Burning) की प्रक्रिया को बढाता है अर्थात् बाहर के द्रव मे विद्यमान खाण्ड की, सैलो के अन्दर प्रविष्ट होने की गति को बढाता है अर्थात् Cell Permeability को बढाता है इसके कारण ग्लूकोज सुगमता से सैलो मे प्रविष्ट हो जाती है मास वसा आदि के सैलो मे यह ग्लूकोज की खपत को बढाता है तथा खाण्ड को Glycogen के रूप मे परिवर्तित करके उसे यकृत् तथा मासपेशियो मे जमा करने का कार्य करता है तथा यकृत् मे प्रोटीनो से खाण्ड बनने की प्रक्रिया (Gluconeogenesis) को रोकता है जिससे शरीर कृश एव अशक्त नही होता है। रक्त मे बढी हुई खाण्ड की मात्रा को, शरीर के सैलो मे खपाकर, यह फिर साधारण कर देता है तथा यह वसामय प्रदेशो मे वसा के सचित होने मे भी सहायक होता है। इस प्रकार Insulin के द्वारा रक्त मे विद्यमान खाण्ड की मात्रा और Cholesterol की मात्रा घटती है जिससे शरीर रोगो से बचा रहता एव स्वस्थ रहता है, जबकि उपर्युक्त चार ग्रन्थियो के स्रावो के द्वारा रक्त मे खाण्ड की मात्रा बढती है। भोजन मे खाण्ड अधिक ली जाय तो भी अग्न्याशय उत्तेजित हो जाता एव Insulin अधिक बनता है तथा २ घटे के अन्दर ही रक्त मे खाण्ड प्र०श० १०० मिलि० से कम हो जाती है। रक्त मे खाण्ड को सन्तुलित रखने का यह प्रबन्ध जब ठीक नही रहता, तब मधुमेह रोग

होता है। अर्थात्, या तो Pancreas के Islets of Langer hans की रक्तवाहिनियों में किसी प्रकार की क्षीणता (Fibrosis या Arteriosclerosis या Micro-vascular change या Hyalinization) उत्पन्न हो जाती है या सहज होती है या Adrenal और Pituitary Glands के कार्य में तीव्रता आ जाती है। यहां यह भी स्मरण रखना चाहिए कि Parasympathetic System के तीव्र होने से Pancreas तथा Sympathetic System के उत्तेजित होने से Adrenal Gland अधिक सक्रिय होता है। इसलिये नाडी-मण्डल की विक्षोभशीलता भी इस रोग का कारण हो जाती है, अर्थात् चिन्ता की अधिकता से यह रोग हो सकता है।

कारण

मधुमेह का रोग बहुधा ५०-६० वर्ष के बीच के उच्च र्ग के शिक्षित, बैठकर काम करने वाले, अधिक मात्रा में आहार करने वाले, शाकाहारी, स्थूल नागरिक व्यक्तियों में होता हुआ देखा जाता है, श्रम करने वाले ग्रामीणों में नहीं जिससे पता चलता है कि शरीर को जितने कैलोरी वाले भोजन की आवश्यकता होती है उससे अधिक कैलोरी वाला भोजन निरन्तर चिरकाल तक लेते रहने से, विशेषत कार्बोहाइड्रेट के अधिक मात्रा में लेते रहने से, उसका कुछ अंश फैट में परिवर्तित होकर वसामय प्रदेशों में बैठ जाता है जिससे शरीर भारी होता जाता है। इस परिवर्तन के लिये अर्थात् Fatty Tissue में Fatty Acids के संचित करने के लिये भी Insulin आवश्यक है, परन्तु बराबर अत्याहार करते रहने से Pancreas के Islets के सैलो पर इतना कार्यभार पडता रहता है कि उनमें काच-सदृश Hyalinization की क्षीणता उत्पन्न हो जाती है। वह कुछ काल बाद इतने कार्यभार को उठा नहीं पाते जिससे उत्पन्न होने वाले Insulin की मात्रा जितना अधिक भोजन लिया जाता है उसके पाचन के लिए पर्याप्त नहीं रहती। इसलिए स्थूलता इस रोग का बडा कारण है जिससे रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढती है।

इस रोग की निर्बलता पैतृक परम्परा से भी आती प्रतीत होती है क्योंकि यदि माता-पिता दोनों में मधुमेह रोग हो तो सन्तान मात्र में मधुमेह होता हुआ देखा जाता है। सम्भव है कि यदि इस रोग की निर्बलता जन्म से हो और उस पर ३०-४० वर्ष की आयु में अति मात्रा में कार्बोहाइड्रेट का भोजन किया जाय तो यह रोग या तो खाण्ड को नियन्त्रित रखने वाले अन्तःस्रावों के असन्तुलन से या ग्लूकोज को पचाने वाले Glucokinase आदि Enzymes की न्यूनता के कारण हो जाता है। सर्व प्रकार के ज्वर तथा संक्रामक रोगों के कारण भी रक्त में खाण्ड की मात्रा बढ जाती है (सम्भवत जीवाणु-जनित विष के कारण Adrenal तथा Pituitary Glands के उत्तेजित हो जाने से ऐसा होता है)। अत इन दोनों की उत्तेजना इस रोग का कारण प्रतीत होती है। इसीलिए मधुमेह रोग की प्रकृति हो तो जीवाणु-विष (Infection) भी इस रोग का कारण हो जाते हैं। मानस-उद्वेग व चिन्ता (Nervous Shock) के वेग से भी सम्भवत Adrenal ग्रन्थि के उत्तेजित होते रहने से रक्त में शर्करा बढ जाती है। पैतृक परम्परा तथा स्थूलता इस प्रकार इसका कारण प्रतीत होते हैं। सम्भवत आमनशील होने से स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा यह रोग अधिक होता है। Pregnancy भी उनमें इस रोग का व्यंजक कारण बनती है। पैतृक प्रवृत्ति होने पर भी यदि व्यक्ति कार्बोहाइड्रेट भोजन स्वल्प मात्रा में ले तो वह रोग से बच सकता है।

मधुमेह का लक्षण

मधुमेह का रोग धीरे-धीरे अज्ञात रूप में होता है। रोगी को सबसे पहले बहुमूत्र (Polyuria) की शिकायत होती है। दिन-रात में बार-बार तथा मात्रा में अधिक मूत्र आता है। २४ घण्टे में वह १½ सेर से बढकर ३ सेर या इससे भी अधिक हो सकता है। रक्त में तथा Glomeruli से छने मूत्र में बढी हुई खाण्ड को निकालने के लिए शरीर में से जल को तथा वृक्कों में से मूत्र को शरीर से अधिक मात्रा में निकलना पडता है। अर्थात् वृक्कों की नालियों में खाण्ड के कारण Osmotic भार की अधिकता से बहुमूत्र होता है विशेषत रात को (Nocturia) अधिक मूत्र के साथ लवण भी कुछ अधिक निकलता है। अधिक जल के साथ पोटा०, कैल्सियम तथा बाइकार्बोनेट भी अधिक निकल जाते हैं। इस प्रकार जल के अधिक निकल जाने से पिपासा (Polydipsia) अधिक लगती है (५०% में), शरीर में से खाण्ड के अधिक मात्रा में निकल जाने से भूख (Polyphagia) अधिक लगती है (३५% में)। परन्तु अधिक आहार लेने पर भी उसे तो कार्बोज मिलता नहीं, जिससे शरीर में अशक्ति बढती जाती है। यदि २५० ग्राम खाण्ड दैनिक नष्ट होती हो तो उसे १००० कैलोरीज़ की हानि होती है। Gluconeogenesis के बढने से भी अर्थात् प्रोटीन्स व फैट्स के जलते रहने से शरीर कृश होता जाता है एव स्वल्प श्रम से शरीर थक जाता है। इसीलिये रोगी प्राय अपनी बढती हुई अशक्ति (४०% में) एव घटते हुए भार (५०% में) की शिकायत लेकर आता है।

शरीर में से खाण्ड तथा जल, इन दो मूल्यवान् द्रव्यो के अति मात्रा मे निकलते रहने से धातुओ पर अनेक दुष्प्रभाव पडते हैं, खाण्ड के निकलते रहने से निर्बलता तथा Ketosis के लक्षण होते है। जल के अधिक निकलते रहने से धातुओ मे जलहीनता (Desiccation, Dehydration) या शुष्कता-कठोरता के लक्षण होते हैं। इसीलिए धमनियो की मृदु दीवारें कुछ-कुछ कठोर होती जाती हैं। हृदय, मस्तिष्क तथा टागो की रक्तवाहिनियो मे कठोरता विशेषत होती है। त्वचा मे शुष्कता के कारण तथा उसका पोषण भला प्रकार न होने से उसमे मृदुता की न्यूनता या शुष्कता और रूक्षता का लक्षण होता है। इसी कारण उसमे Staphylococci का सक्रमण शीघ्रता से हो जाता है। जिससे पिडिकाए (Boils) तथा मधुमेह पिडिकाए निकल आती हैं। सीवन प्रदेश के आसपास पिडिका निकले तो इस रोग का सन्देह करे। आतो की श्लेष्मकला के शुष्क रहने से मलबन्ध की शिकायत रहती है क्योकि यह रोग धमनियो को क्षीण कर देता है तथा शरीर को जीवाणु-सक्रमण के लिए योग्य भूमि बना देता है, अतएव यह घातक हो जाता है, क्योकि Phagocytosis के लिये श्वेत-कणो के भीतर Glycolysis शर्करा पचन ठीक-ठीक हो तभी उन्हें शक्ति प्राप्त होती है।

मूत्रगत खाण्ड के मूत्र स्थान पर लगे रहने से वहा Monilia albicans की वृद्धि होकर स्त्रियो मे भग-कण्डू (Pruritus) तथा पुरुषो मे मुण्ड-शोथ (Balanitis) का लक्षण हो सकता है। जाघो में नाड़ी-शोथ (Peripheral Neuritis) का लक्षण भी २० प्रतिशत रोगियो मे पाया जाता है जिससे टागो मे दर्द रहता है, Amyotrophy अर्थात् पेशियो मे कृशता और निर्बलता आ जाती है। स्त्रियो में स्तनो के नीचे तथा जननेन्द्रिय के समीप की त्वचा मे रक्तवर्ण पामा (Eczema) रोग भी हो जाता है और शरीर पर कण्डू का (२०% मे) रोग भी हो सकता है जिसका कारण अवयवो मे खाण्ड का सचित हो जाना है। इस रोग का आरम्भ इतने अज्ञात रूप मे होता है कि बहुत काल तक तो इस रोग का पता नहीं चलता परन्तु यदि किसी के अगो मे दर्द तथा Cramp रहने लगे, चलने-फिरने मे अशक्ति लगने लगे (४०% मे), त्वचा पर खुजली रहने लगे,पिडिकाएं निकलती हो (१५% मे), हाथ-पाव मे शीतलता या उष्णता (२०% में) लगे, रात को मूत्र अधिक आए, कृशता (५०% मे) आती-जाती हो, B P बढ जाये (२०% मे) तो इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिए।

मधुमेही का मूत्र देखने मे फीके रग का, मात्रा मे अधिक, १·०२० या १·०२५ से अधिक स्पैसिफिक ग्रेविटी का ५ सी०सी० Benedicts Reagent मे ८ बूद डालकर २ मिनट उबालने से हरा, पीला या लाल सा निक्षेप देने वाला, अर्थात् खाण्ड से युक्त तथा अम्लीय प्रतिक्रिया का होता है।

Clinitest Reagent—एक टैस्ट-ट्यूब मे १० बूद जल के तथा ५ बूद मूत्र के ड्रापर से डालकर १ गोली Clinitest की डाल दें, टैस्ट-ट्यूब को पडा रहने दे, जब क्रिया हो चुके तब उसे उठाके हिलायें, अब साथ मे दिए गए Colour scale के साथ तुलना करे। यदि रंग नीला हो Negative समझे, कुछ हरा हो तो ½, हरा-पीला हो तो ¾, लाल-पीला हो तो १, लाल हो तो २ प्रतिशत खाण्ड समझे। Clinistix एक औषध निर्मित पत्र है उसे मूत्र मे डाल उस पर हुई रग की प्रतिक्रिया से भी मधुमेह का निश्चय हो जाता है। Uristix के पीले सिरे से मूत्र में प्रोटीन का तथा उसके रक्तवर्ण भाग से मूत्रगत खाण्ड का पता चल जाता है। मृदु रोग मे उपवास के बाद लिये गए मूत्र मे खाण्ड नही मिलती। दिन के प्रधान भोजन के २ घटे बाद लिये गए मूत्र की ही परीक्षा करनी चाहिए।

Examination of Post Prandial Blood Glucose—भोजन से पहले लिए गए रक्त मे १४० मिलि० प्रतिशत से अधिक ग्लूकोज हो तो भी इस रोग का निश्चय हो जाता है। कई बार रक्त मे ग्लूकोज के अधिक होने पर भी मूत्र मे टैस्ट नही आता। अत इस रोग के निश्चय के लिये रक्त परीक्षा आवश्यक है।

रोग अधिक हो तो मूत्र मे Ketone Bodies, अलब्यूमिन (१५% मे) तथा Hyaline और Granular Tube Casts भी होते हैं। Ketonuria का निश्चय Sodium Nitroprusside या Ferric Chloride से या Ketostix से, जो बाजार मे मिलता है, हो जाता है। रक्त परीक्षा करने से उसमे भी खाण्ड की मात्रा १ प्रतिशतक से अधिक होती है। वसा (Lipids) की मात्रा भी अधिक होती है अर्थात् Hypercholesterolaemia होता है, सीरम मे अलब्यूमिन की मात्रा कम पायी जाती है। मूत्र मे खाण्ड के अधिक निकल जाने से बहुधा प्रोटीन में से खाण्ड बनने (Gluconeogenesis) की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है, जिससे शरीर की मासपेशियो के अधिक खर्च होने से शरीर कृश होता जाता है। ऐसी अवस्था मे मूत्र मे Nitrogen की मात्रा बढ जाती है।

वृक्कजनित मधुमेह (Renal Glycouria) तथा ग्लूकोज की क्षमता की परीक्षा (Glucose Tolerance Test)

साधारणत १०० सी०सी० रक्त मे जब तक खाण्ड १७०, १८० मिलिग्राम से ऊपर न हो जाय वह वृक्को मे से

मूत्र द्वारा बाहर नहीं निकलती। इसे साधारण Renal Thresh-Hold या वृक्को की साधारण शर्करा-क्षमता कहते हैं। परन्तु किसी-किसी व्यक्ति मे जन्म से ही वृक्को की शर्करा-क्षमता कम होती है अर्थात् रक्त मे १००-१३० मिलिग्राम प्रतिशतक शर्करा होने पर भी उस व्यक्ति के मूत्र मे शर्करा आने लगती है। इसे वृक्कजनित मधुमेह (Renal Glycouria) कहते हैं।

Glucose Tolerance Test रक्त मे खाण्ड के बढने पर अग्न्याशय के सैल कितने उत्तेजित होते हैं, इसकी परीक्षा के लिए यह टैस्ट है। प्रात काल खाली पेट रक्त का एक नमूना ले लिया जाता है और उसमे शर्करा की परीक्षा की जाती है, फिर ५० ग्राम ग्लूकोज २०० सी०सी० जल मे मिलाकर पिला दी जाती है। इसके आधे-आधे घण्टे बाद रक्त के ५ नमूने ले लिये जाते हैं जिनमे से प्रत्येक मे शर्करा की परीक्षा की जाती है। नार्मल व्यक्ति के खाली पेट लिये गए रक्त मे ग्लूकोज ८०-१२० मिलिग्राम प्रतिशतक होता है। १ घण्टे बाद लिये गए रक्त मे यह मात्रा १८० मिलि० प्र०श० हो जाती है और २½ घण्टे बाद यह मात्रा फिर नार्मल हो जाती है। मृदु मधुमेह मे खाली पेट लिये गए रक्त मे शर्करा नार्मल के लगभग ही होती है। भोजन के बाद शीघ्र ही २०० मिलि० के लगभग हो जाती है और २½ घण्टे बाद तक भी नार्मल नहीं आती। तीव्र मधुमेह मे खाली पेट लिये गए रक्त मे भी नार्मल नहीं होती तथा भोजन के बाद ३४० मिलि० प्र०श० से भी ऊपर हो जाती है और २½ घण्टे बाद भी २०० मिली० प्र०श० से ऊपर रहती है। मधुमेह रोग मे अग्न्याशय के सैल रक्त मे विद्यमान खाण्ड से भली प्रकार उत्तजित नहीं होते। Renal Glycouria मे भोजन बाद थोडी देर के लिये मूत्र मे खाण्ड आ जाती है यद्यपि रक्त मे वह १८० मिलि० प्र०श० से कम होती है। यदि भोजन के ३ घंटे बाद लिये गए रक्त मे खाण्ड की प्रतिशतक मात्रा अधिक पायी जाय तो उस अवस्था मे इस टैस्ट की कोई आवश्यकता नहीं रहती, क्योकि वह तो मधुमेह का पक्का रोगी है ही।

Serum Cholesterol Test स्पष्ट है। मधुमेह मे रक्त के अन्दर Cholesterol की मात्रा बढी हुई होती है।

Cortisone Test—Cortisone श्रेणी की औषध के देने के बाद ग्लूकोज को सहन कर सकने (Glucose Tolerance) की शक्ति कम हो जाती है। इस Test के करने के अगले दिन ५० मिलि० Cort Acetate १ बजे रात तथा ७½ बजे प्रात २ बार दे दिया जाता है, फिर ९½ बजे पुन Glucose Tolerance Test लिया जाना है। ६० मिनट पर लिया Blood Sugar १०० मिलिलि० मे १८५ मिलि० से ऊपर हो या १२० मिनट पर लिया Blood Sugar १४० मिलि० से ऊपर हो तो इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिए।

उपद्रव

मधुमेही को उर क्षय रोग भी अन्य लोगो की अपेक्षा सुगमता से हो जाता है (५%मे)। अत यदि मधुमेही का शरीर कृश, निर्बल एव ज्वरयुक्त रहने लगे, भूख घट जाय, तो शीघ्र ही फुफ्फुस की X-Ray परीक्षा करनी चाहिए।

मधुमेही मे मूत्र के द्वारा अधिक जल के निकलते रहने से सूक्ष्म धमनियो के मृदु अवयवो, विशेषत उनके Basement Membrane मे, स्थूलता हो जाने पर ऐसा दुष्प्रभाव पडता है कि उनमे धमनी-काठिन्य रोग (Arteriosclerosis तथा Lipaemia के कारण Atherosclerosis) अन्यो की अपेक्षा सुगमता से होता है। ग्लूकोज के न मिलने से शरीर को फैट के ज्वलन पर रहना पडता है जिससे रक्त मे फैट अधिक रहता है। मस्तिष्क, हृदय तथा टागो की धमनिया (Claudication के रूप मे) फैट के बैठने से विशेषत कठोर हो जाती हैं जिससे हृदय-मास मे क्षीणता हो जाती है। पैरो को उसकी सूक्ष्म धमनियो मे अवरोध के कारण रक्त के कम मिलने से या Acidosis से उनमे सुगमता से व्रण हो जाते है। जो शीत-व्रण, वातिक व्रण (Trophic या Painless Ulcer, Gangrene) का रूप ले लेते हैं। इसी प्रकार हृदय-शूल (Angina) तथा हृदय-घात (Cardiac Infarction) के रोग भी मधुमेही मे अधिक होते हैं। इस रोग मे ५० प्र०श० व्यक्तियो की मृत्यु मस्तिष्क, हृदय और वृक्क की पोषक धमनियो मे Atherosclerosis हो जाने के कारण होती है। Cholesterol यकृत् मे से बाइल के द्वारा आँत मे और वहा से विलीन होकर रक्त मे आता है। मधुमेह, मेदोवृद्धि आदि मे रक्त के अन्दर इसकी मात्रा अधिक रहती है। इन रोगो मे हृदय, मस्तिष्क, जघाओ की सूक्ष्म धमनियो की दीवार के स्नायुतन्तु अर्थात् Ground Substance मे जोकि Mucopolysaccharide तथा HyaluronicAcid है उसमे अधिकाधिक सचित होने लगता है। फिर इस सचित वसा के अन्दर Fibrosis या Hyalinization की प्रक्रिया होकर धमनियो मे स्थान-स्थान पर उभार हो जाते हैं जिनके कारण धमनी स्रोतो-रोध हो जाता है। यह फैट वहा धमनी के अन्दर के रक्त-स्थ सीरम के बाहर की ओर रिसने वाले अश के द्वारा

पहुचता है। Unsaturated Fatty Acids (Oleic, Linoleic, Linolenic Acids) रक्त मे हो तो स्रोतोरोध नही होता। Saturated Fatty Acids (Palmitic Stearic, Butyric Acids) की रक्त मे अधिकता हो तो स्रोतोरोध होने की आशका रहती है। धमनी के तग हुए स्रोत के प्रदेश पर से गुजरते हुए रक्त के Clot के जम जाने का भय रहता है। यदि यह Clot बडा हो जिससे धमनी स्रोत अवरुद्ध हो जाए तो इससे पूर्ण स्रोतोरोध होकर हृदय, मस्तिष्क, जघा आदि के भयकर उपद्रव हो जाते है। पहले कालो मे मृत्यु क्षयरोग व मधुमेह-पिडिकाओ के कारण होती थी। Banting और Best (१९२२) के प्रयत्नो का यह फल हुआ कि यह रोग मनुष्य जाति के लिए उतना सहारक नही रहा। पिडिकाओ का कारण यह है कि मधुमेही की त्वचा मे Staphylococci का सक्रमण सुगमता से हो जाता है।

रक्त मे वसा-वृद्धि (Ketosis, Ketoacidosis, Lipaemia या Acetoacetic Acid तथा Betahydroxybutyric Acid की वृद्धि होकर रक्त मे Acetone मिलता है) का हो जाना इस रोग का एक बडा उपद्रव है। यह मस्तिष्क के लिए अवसादक होता है। रक्त मे हलकी सी वसा-वृद्धि हो तो कुछ अन्नारुचि तथा पिपासा वृद्धि के लक्षण होते हैं। इसके बढने पर पहले तो थकावट, पेट मे दर्द, मलबन्ध, अति अरुचि तथा वमन के लक्षण होते है। इसके कारण चिडचिडापन और शिरोभ्रम भी हो सकते है। फिर तन्द्रालुता रहने लगती है, श्वास कुछ गहरा हो जाता है ताकि CO_2 के निकलने से pH बढे। Hyperpnoea या श्वास मे कुछ कठिनता भी प्रतीत होने लगती है और फिर मधुमेह मूर्छा का उपद्रव हो जाता है जिसमे श्वास-केन्द्र पर Acidosis के उत्तेजक प्रभाव के कारण रोगी धीरे-धीरे अधिक गहरे लम्बे-लम्बे श्वास ले रहा होता है (Air Hunger) जिनमे मीठी सी Acetone की दुर्गन्ध आती है। आँखे कुछ धसी हुई होती हैं, एव उसके पीछे जलाश की न्यूनता के हो जाने से, दबाने से दब जाने वाली होती है, जल की न्यूनता (Dehydration) के अन्य चिह्न भी होते हैं। (Intra ocular Tension कम होती है) रोगी के हाथ-पैर ठण्डे होते है। शरीर का तापमान नार्मल से कम होता है। नाडी-गति निर्बल तथा तीव्र होती है तथा ११०-१२० प्र०मि० से अधिक होती है। रक्तभार गिरा हुआ होता है। जीभ तथा त्वचा देखने मे शुष्क होती है। दोनो ओर की शाखाए शिथिल होती है। मूत्र मे खाण्ड तथा Acetone मिलते है। श्वेतकण-वृद्धि (Leucocytosis) १५०० प्रति क्यूबिक मिलिमीटर से अधिक होती है। रक्त मे खाण्ड २५० मिलि० प्र०श० हो सकती है। Acetone Level ऊचा होता है। N P N की मात्रा भी अधिक होती है। Dodds तथा Robertson (१९३०) ने इस बात का विरोध किया है कि मधुमेह-मूर्छा Ketone Bodies के कारण होती है। अब विद्वानो का विचार यह है कि ये तीक्ष्णाम्ल रक्त के सोडा बाईकार्ब के सोडियम तथा शरीर मे उपलब्ध Ammonium के साथ मिलकर साल्टो के रूप मे बहुधा अधिक मूत्र के साथ बाहर निकलते हैं जिससे शरीर मे Electrolytes तथा जल की कमी हो जाती है। उसी का परिणाम यह मूर्छा होती है। मूत्र मे खाण्ड बहुत अधिक (३०० मिलिग्राम प्रतिशतक के लगभग) होती है। Hypoglycaemia की मूर्छा मे खाण्ड ६०% से कम होती है उसमे श्वास नार्मल होता है। सिराओ (Capillaries) मे अवरोध के उत्पन्न होते जाने से मधुमेही मे नेत्र-काच रोग (Cataract) आयु से पहले होने लगता है (१२% मे) Presbyopia अर्थात् निकट दृष्टिमन्दता भी आयु से पहले हो जाती है। नेत्र के पश्चिम पटल (Retina) की सूक्ष्म धमनियो या Capillaries की दीवार मे Mucopolysaccharides के ठीक-ठीक न बनने से उनमे क्षीणता के उत्पन्न हो जाने के कारण दृष्टिमन्दता (Retinopathy + Micro aneurisms) का लक्षण भी हो जाता है (३०% मे), अर्थात् उनसे रक्तस्राव या द्रव के स्राव (Exudation) के अधिक होने से ऐसा होता है। Retina की रक्तवाहिनियो से पहले मृदु रक्तस्राव होता है जो क्रमश अधिक-अधिक होता जाता है जो Vitreous मे प्रसरण कर जाता है। इस अवस्था मे दृष्टिमन्दता का लक्षण प्रकट होता है। प्रारम्भ मे यह रक्त भी विलीन हो जाता है और दृष्टि भी कुछ ठीक हो जाती है परन्तु जब नई धमनिया Vitreous मे प्रसरण कर जाती हैं, Neovascularisation हो जाता है तब दृष्टि नष्ट होने लग जाती है। मधुमेह मे यह उपद्रव क्यो होता है, इसका सन्तोषजनक उत्तर अभी तक नही मिला। परन्तु ७०% रोगियो मे यह उपद्रव होता हुआ पाया जाता है।

मधुमेह जनित नाडी रोग (Diabetic Neuropathy)

नाडीशूल इस रोग का प्रारम्भिक उपद्रव है खाण्ड का रक्त मे नियन्त्रण ठीक न हो, मूत्र मे खाण्ड निकलने दी जाए तो यह लक्षण होता है। ४०% रोगियो मे किसी एक ओर Peripheral Neuritis का लक्षण होता है।

जघाओ की वात-नाडियो (Ant Crural या Femoral तथा Sciatic N) मे विशेषत यह दर्द होता है, रात को पाव मे दर्द Hyperaesthesia, दाह या सुप्ति की प्रतीति

होती है, पिंडलियो मे स्तम्भशूल (Cramps) तथा जाघो और पैरो मे निर्बलता और अशक्ति के लक्षण होते हैं जिसमे विटामिन्स आदि से कोई लाभ नही होता। किसी-किसी मे, खासतौर से सज्ञावाही सूत्रो मे, क्षीणता अधिक होती है जिससे Tenden Reflexes लुप्त हो जाते हैं। Neuritis के कारण पैरो मे सुप्ति होने से वहा चोट लगकर व्रण हो जाता है, वेदना न होने से चिकित्सा नही होती। रक्त-वाहिनियो के रोग के कारण वहा रक्त व ऑक्सिजन भी नही पहुँचते। अत व्रण के बाद वहा Gangrene भी हो जाता है, चेष्टावाही नाडियो मे क्षीणता के होने से मास-पेशिया कृश होने लगती हैं। क्लीवता (Impotence) भी एक Neuropathy का लक्षण है।

मधुमेह जनित वृक्क रोग (Diabetic Nephropathy)

वृक्को की सिराओ मे तथा विशेषत सिराओ के बीच-बीच के प्रदेश मे Inter capillary Sclerosis होने से मूत्र मे अलब्यूमिन आने लगता तथा क्रमश बढता जाता है (१५% मे) अर्थात् मधुमेह के स्थान पर मूत्राघात (Ischaemic Oliguria) हो जाता तथा रक्त मे Urea बढने लगता (१% मे) और Uraemia के कारण रक्तभार बढ जाता है। इस रोग को मधुमेह जनित वृक्कधमनी रोग (Diabetic Glomerulosclerosis) कहा जाता है जिसकी गणना Ch Nephritis मे की जाती है। इसमे धमनी-गुच्छो के खोल Bowman's Capsule की Basement झिल्ली मे कठोरता आ जाती है या उसमे काच-सदृश क्षीणता Hyaline Degeneration हो जाती हैं। अलब्यूमिनमेह, रक्तभार वृद्धि और श्वयथु तीनो रोग इकट्ठे हो जाते हैं इस मिश्रण को Kimmelstiel Wilson (१९३६) Lesion कहते हैं। साथ ही Glomeruli मे आने वाली तथा बाहर जाने वाली रक्तवाहिनियो (Glomerular Arterioles) मे Hyaline Degeneration होकर कठोरता उत्पन्न हो जाती है। इससे वृक्को के पोषण मे कमी आ जाती है। जहा इस रोग मे पहले मूत्र मे अलब्यूमिन आती है, श्वयथु (Oedema) आ जाता है व रक्तभार बढ जाता है वहा कभी-कभी Pyelonephritis का उपद्रव भी हो जाता है। बहुत से मधुमेह रोगियो मे Renal तथा Intrarenal दोनो धमनियो म Atherosclerosis का उपद्रव हो जाता है जिससे रक्तभार वृद्धि का लक्षण होता है।

Atherosclerosis के हृदय-धमनियो मे हो जाने से हृदय निर्बल होता जाता है जिससे हृदयशूल भी होता है। इस प्रकार रक्त मे प्रोटीन के कम हो जाने व हृदय के निर्बल हो जाने मे फिर पैरो मे शोथ होने लगता है।

मधुमेह जनित दृष्टि रोग—मधुमेही की दृष्टि क्रमश मन्द होती है तो मोतियाबिन्द का सन्देह करें। शीघ्रता से मन्द हो तो Retinopathy का सन्देह करना चाहिए। उसकी सूक्ष्म धमनियो की दीवारो के निर्बल हो जाने से उनमे छोटे-छोटे Micro aneurisms सिरा शैथिल्य हो जाते है। बाद मे चिकित्सा न मिले तो इन धमनियो से सूक्ष्म रक्तस्राव या श्वेत रुई के रग के Exudates के स्राव के लक्षण हो जाते हैं। रक्तस्राव अधिक हो तो वह Vitreous के साथ जुड जाता है। इस Clot के Fibrous हो जाने के कारण Retina पर खीच पडती एव Retinal Detachment का भय रहता है।

मधुमेह रोग की भोजन-चिकित्सा

मधुमेही का भार प्राय अधिक होता है, अर्थात् ऊचाई की दृष्टि से उसका जितना आदर्श भार होना चाहिए, उससे वास्तविक भार अधिक होता है। उसके आदर्श भार के अनुसार ही उसे अपना भोजन लेना चाहिए।

ऊचाई के अनुसार २५ वर्ष से ऊपर मध्यम ढाचे या फ्रेम के शरीर का भार पुरुष मे यह होता है —

(कपडो का २½ किलो भार कम करके आदर्श भार होता है)

५ फुट २ इच	—	११८-१३० पौंड
५ फुट ३ इच	—	१२१-१३३ पौंड
५ फुट ४ इच	—	१२४-१३६ पौंड
५ फुट ५ इच	—	१२७-१३९ पौंड
५ फुट ६ इच	—	१३०-१४३ पौंड
५ फुट ७ इच	—	१३४-१४७ पौंड
५ फुट ८ इच	—	१३८-१५२ पौंड

ऊचाई के अनुसार २५ वर्ष से ऊपर मध्यम ढाचे के शरीर का भार स्त्री मे यह होता है —

(इस भार मे से २½ सेर कपडो का भार निकाल देवे)

४ फुट १० इच	—	९६-१०७ पौंड
४ फुट ११ इच	—	९८-११० पौंड
५ फुट	—	१०१-११३ पौंड
५ फुट १ इच	—	१०४-११६ पौंड
५ फुट २ इच	—	१०७-११९ पौंड
५ फुट ३ इच	—	११०-१२२ पौंड
५ फुट ४ इच	—	११३-१२६ पौंड
५ फुट ५ इच	—	११६-१३० पौंड

मधुमेह के रोगी को प्रति किलो आदर्श भार के पीछे ३० कैलोरी का दैनिक भोजन लेना चाहिए। (स्वस्थ को प्रति किलोग्राम भार के पीछे ३० कैलोरी तथा श्रम करने

पर ३५ कैलोरी का भोजन लेना चाहिए, रोगी स्थूल हो तो २५ कैलोरी भोजन ही उसे मिलना चाहिए) उदाहरणतः यदि उसका आदर्श भार ६५ किलो हो तो उसे २००० कैलोरी का भोजन पर्याप्त होता है। Basal Metabolism के लिए १०-१५ प्र०श० कैलोरीज मिलाकर कुल २२५० कैलोरी उसके लिए आवश्यक होती हैं। यद्यपि उसका वास्तविक भार इससे अधिक भी हो, उसे इतनी ही कैलोरी लेनी चाहिए। प्रारम्भ मे उसके मूत्र को खाण्ड से सर्वथा मुक्त करने का यत्न करना चाहिए। मूत्र खाण्ड से सर्वथा मुक्त हो जाय तो क्रमश फिर रोगी को २२५० तक की कैलोरीज के इस भोजन पर ले आना चाहिए। इतने भोजन से प्राय फिर मूत्र मे खाण्ड नहीं आती।

रोगी के मूत्र को खाण्ड से मुक्त करने के लिए उसे दो दिन मृदु विरेचन औषधि देते हुए उपवास-मात्र भोजन पर रखना चाहिए। अर्थात् या तो वह जल-मात्र पर रहे या तीन-तीन घंटे बाद दिन मे ६-७ बार एक-एक कप चाय का, जिसमे दूध स्वल्प ही हो, (खाण्ड सर्वथा न हो) पी ले। इस प्रकार के २-३ दिन के मृदु विरेचन तथा उपवास से प्राय तीसरे दिन मूत्र खाण्ड से मुक्त हो जाता है।

जब रोगी के मूत्र मे खाण्ड न रहे तब तीसरे दिन निम्नलिखित भोजन दे सकते हैं —

	प्रोटीन ग्राम	फैट ग्राम	कार्बोहाइड्रेट ग्राम	कैलोरी
७ वजे एक प्याला चाय				
९ वजे एक अडा	६	६	—	७५
११ वजे ५ प्रतिशतक कार्बोहाइड्रेट वाली सब्जिया दो २½, २½ औंस,			७	३०
दही २ औंस	२	२	३	३८
२ वजे दूध ४ औंस	४	४	६	७६
४ वजे एक प्याला चाय				
७ वजे एक अण्डा	६	६	—	७५
दो सब्जी २-२ औंस (५ प्रतिशत)	—	—	७	३०
९ वजे दूध २ औंस	२	२	३	३८
कुल	२०	२०	२६	३६२

मूत्र-परीक्षा करने पर यदि मूत्र मे खाड न रहे तो चौथे दिन भी यही भोजन देवें।

उपर्युक्त भोजन के अतिरिक्त ४ वजे एक अण्डा और दे सकते हैं।

मूत्र-परीक्षा करने पर यदि मूत्र मे खाण्ड न मिले तब पांचवें दिन निम्नलिखित भोजन देवें —

	प्रोटीन ग्राम	फैट ग्राम	कार्बोहाइड्रेट ग्राम	कैलोरी
७ वजे एक प्याला चाय				
९ वजे दूध ४ औंस	४	४	६	७६
११ वजे एक अडा	६	६		७५
४ सब्जी २½, २½ औंस			१५	६०
रोटी २ औंस	६		४०	२००
मास का सूप १ औंस अथवा दाल का सूप १५ कैलोरी के लगभग अथवा मट्ठा ४ औंस (४० कैलोरी)	३	२		३०
२ वजे चाय				
५ वजे एक अडा	६	६		७५
२ औंस टोस्ट	६		३२	१५०
७ वजे ३ सब्जिया २½ औंस,			१२५	५०
मीट-सूप १ औंस या मटर आदि का सूप	३	२		३०
कुल	३४	२०	१०५५	७४६

छठे दिन निम्नलिखित भोजन देवें :—

	प्रोटीन ग्राम	फैट ग्राम	कार्बोहाइड्रेट ग्राम	कैलोरी
७ वजे एक प्याला चाय				
९ वजे दूध ४ औंस	४	४	६	७६
११ वजे एक अडा	६	६		७५

	प्रोटीन ग्राम	फैट ग्राम	कार्बोहाइड्रेट ग्राम	कैलोरी
मास २ औंस	१४	१०		१४६
४ सब्जिया प्रत्येक २½, २½ औंस			१५	६०
२ वजे चाय, एक नमकीन विस्कुट			२०	८०
५ वजे एक अण्डा	६	६		७५
टोस्ट २ औंस	६	—	३२	१६०
७ वजे एक अडा	६	६	—	७५
१ रोटी २ औंस	४	—	४०	२००
२ सब्जी प्रत्येक २ औंस	—	—	७	२८
९ वजे दूध ४ औंस	४	४	६	७६
कुल	७२	४२	१९८	१५११

मूत्र-परीक्षा करने पर उसमें खाण्ड न हो तो **ग्यारहवें दिन** यह भोजन देवें। उपर्युक्त भोजन के दोपहर ११ वजे के आहार में यह और मिला दें।

	प्रोटीन ग्राम	फैट ग्राम	कार्बोहाइड्रेट ग्राम	कैलोरी
११ वजे दोपहर घृत १ औंस	—	२५	—	२२५
७ वजे साय आलू २ औंस			१०	४०
कुल		६७	२०८	१७७६

बारहवें दिन मूत्र-परीक्षा करने पर यदि वह शर्करा-रहित हो तब यह भोजन देवें —

	प्रोटीन ग्राम	फैट ग्राम	कार्बोहाइड्रेट ग्राम	कैलोरी
प्रात चाय १ प्याला				
९ वजे अडा एक	६	६		७५
११ वजे मीट-सूप ३ औंस	६	६		७५
सब्जिया चार २½, २½ औंस			१५	६०
मटर २½ औंस	२		४	२५
रोटी २ औंस	४		४०	२००
२ वजे चाय, एक नमकीन विस्कुट			२०	८०
५ वजे २ अडे	१२	१२		१५०
टोस्ट २ औंस	४		३२	१६०
७ वजे सब्जी का सूप २½ औंस	२		४	२५
चार सब्जिया २½, २½ औंस			१५	६०
दही ३ औंस	३	३	५	६०
चावल ३ औंस	४		६०	३००
९ वजे दूध ६ औंस	६	६	९	११४
कुल	४९	३३	२०४	१३८४

तेरहवें दिन भी मूत्र शर्करा से मुक्त हो तो उपर्युक्त भोजन में यह और मिला दें —

	प्रोटीन ग्राम	फैट ग्राम	कार्बोहाइड्रेट ग्राम	कैलोरी
११ वजे के भोजन में घृत १ औंस		२५		२२५
आलू २ औंस			१०	४०
कुल	४९	५८	२१४	१६४९

अर्थात् रोगी को उसके प्रति किलो भार के पीछे ३० कैलोरीज़ का भोजन प्राप्त होता है। प्रति किलो पीछे २५ कैलोरीज़ का भोजन तो जरूरी है ही, ५-१० कैलोरीज श्रम के करने पर और आवश्यक हो जाती है। अधिक कार्वोहाइड्रेट वाले भोजन, जैसे खाण्ड या उसके वने पकवान या १५-२० प्रतिशतक से अधिक कार्वोहाइड्रेट वाले भोजन या ग्लूकोज, शहद, मिठाई, हार्लिक्स, दूध, मीठे विस्कुट, मद्य आदि नही देने चाहिए (खाण्ड के स्थान पर Saccharin Sweetex, Sucoryl abbot दिये जा सकते है)। चावल मे ७८, गेहू मे ६८, दालो मे ६० प्रतिशतक के लगभग कार्वोहाइड्रेट होता हे। इसलिए इनका प्रयोग अति परिमित मात्रा मे ही करना चाहिए। कम कार्वोहाइड्रेट वाले भोजन जैसे पत्र-शाक, मूली, टमाटर, नीवू, आदि, जिनके १०० ग्राम मे ३ ग्राम के लगभग कार्वोहाइड्रेट होता है, तथा पातगोभी, सरसो, हरी मिर्च, पालक एव दूसरे पत्र-शाक, प्याज, शलजम, कद्दू आदि जिनके १०० ग्राम मे ५ ग्राम के लगभग कार्वोहाइड्रेट होता है तथा हरी फलिया, गाजर, मटर, हरे चने, आदि तथा अनार, सन्तरा, तरवूज, रसभरी, स्ट्रावेरी आदि, जिनके १०० ग्राम मे १० ग्राम के लगभग कार्वोहाइड्रेट होता हे, तथा सेव, नाशपाती, अगूर, खूमानी, आडू आदि, जिनके १०० ग्राम मे १५ ग्राम के लगभग कार्वोहाइड्रेट होता है, कुछ-कुछ स्वतत्रता से दिये जा सकते है। आलू, केला, सूखे हुए मीठे मेवो मे कार्वोहाइड्रेट २० प्रतिशतक के लगभग होता हे। इनका प्रयोग अति परिमित मात्रा मे ही ठीक रहता है, दूध-दही मे कार्वोहाइड्रेट ५ प्र०श० होता है तथा पनीर, मक्खन, अण्डे मे यह सर्वथा नही होता, इनका प्रयोग किया जा सकता है। रोगी के अन्दर उत्पन्न होने वाले Insulin की मात्रा न्यून होती है, अत दैनिक भोजन को दो-तीन भागो के स्थान पर ६-७ भागो मे वाटकर उसे देना चाहिये। जिसमे ३ वडे खाने प्रातराश, मध्याह्नाश तथा अपराह्नाश के हो तथा दो छोटे खाने सवेरे तथा शाम के स्वल्पाहार या छोटी हाजरी (Snack) के होने चाहियें। छोटे खाने एक-एक कप दूध के, विना चिकनाई वाली दही के, मट्ठे के भी हो सकते हैं। प्रत्येक भोजन मे इतना कार्वोहाइड्रेट होना चाहिये कि वह शरीर मे खप सके, मूत्र मे न निकले। इसके लिए मूत्र की दैनिक परीक्षा होनी चाहिए। जव कभी मूत्र मे शर्करा प्रकट हो, आहार की मात्रा को तुरन्त घटा देना चाहिए। रोगी को खाण्ड के स्थान पर Saccharin का प्रयोग करना चाहिए। रोटी दिन भर मे ३-४ छटाक ही लेनी चाहिए। पनीर का प्रयोग अधिक किया जा सकता हे। चाय, कॉफी, सोडा, लेमोनेड, घी, मक्खन, सब्जियां यथेच्छ ली जा सकती हैं, यद्यपि घृत भी Atherosclerosis का कारण होने से कम ही लेना चाहिए। उदाहरण के तौर पर, दिन भर मे २ या २½ पाव दूध, ½ छटाक घी लेते हुए प्रात ४ छटाक दलिया और चाय; दोपहर को दो छोटी रोटियो के साथ थोडा दही सब्जिया और लस्सी, तीसरे पहर डवल रोटी के २ टोस्ट और चाय, रात को २ छोटी रोटी और सब्जी का भोजन लिया जाय तो रक्त मे खाण्ड की मात्रा नियन्त्रित रहती है। जो अण्डा ले सकते हैं वे प्रात-साय की चाय मे अन्न के स्थान पर १-१ अण्डा ले सकते हैं। दूसरे लोग अण्डे के स्थान पर पनीर १-२ औंस प्रात-साय के भोजन मे ले सकते हैं। एक औंस आटे या चावल से १०० कैलोरीज प्राप्त होती है। इसी प्रकार १ औंस दाल, ३ औंस भैंस के दूध, ५ औंस गाय के दूध, २ अण्डों, ५ छोटे चम्मच खाण्ड या मधु, २ छोटे चम्मच घी या तेल, १ सेव, १ केला, ५ खजूरो, १ वड़े सन्तरे, १०-१५ वादाम या अखरोट, एक छोटी पातगोभी, ५ मध्यमाकृति गाजरो, एक छोटी फूलगोभी, ५ प्याज, १ आलू, ५ टमाटरो, इनमे से प्रत्येक से ऊष्मा की १०० कैलोरीज प्राप्त होती हैं। इस वात का ध्यान रखते हुए रोगी के भोजन की तालिका वनायी जा सकती है।

मधुमेह के रोगी के लिए (Lange Hand-book of Medical Treatment, १९६२ के आधार पर) दैनिक खुराक का एक नमूना यहा पर दिया जाता है, जिससे १४०० कैलोरीज प्राप्त होती हैं।

	प्रोटीन ग्राम	फैट ग्राम	कार्वोज ग्राम	कैलोरी
६½ वजे प्रतिराश मे आधे कप दूध की चाय	३	४	५	६५
१ टोस्ट, डवल रोटी	२		१५	७५
घी १ छोटा चम्मच		४		४०
एक कप फल १० प्र०श० कार्वोज वाला		१३		५०
१० वजे चिकनाई-रहित दही या चिकनाई रहित दूध १ कप	६		१०	६५

	प्रोटीन ग्राम	फैट ग्राम	कार्बोज ग्राम	कैलोरी
[illegible] बजे २ टोस्ट या एक रोटी २ औंस की	६		३५	१५०
३ औंस प[illegible] मास	१८	६		१२५
घी १ चम्मच		४		४०
फल १० प्र०श० कार्बोज वाला १ कप			२०	८०
सब्जी ५ प्र०श० कार्बोज वाली एक कप			१०	४०
४ बजे एक कप दूध की चाय	६	८	१०	१३०
[illegible] बजे कम फैट का मीट ४ औंस	१८	६		१२५
२ टोस्ट या एक रोटी	६		३५	१५०
घी १ चम्मच		४		४०
½ कप सब्जी २० प्र०श० कार्बोज वाली या आलू	२		१६	७५
½ कप सब्जी, १० प्र०श० कार्बोज वाली			१०	४०
१ कप सब्जी (५ प्र०श० कार्बोज) [illegible] ग्राम			१०	४०
फल १० प्र०श० कार्बोज वाला एक कप	२		२०	८०
१० बजे रात १ कप [illegible] दूध	६		१०	६५
[illegible] कुल	३३	६१	२०६	१८७५

	प्रोटीन ग्राम	फैट ग्राम	कार्बोज ग्राम	कैलोरी
दूध एक कप (२०० मिलिलिटर	६	८	१०	१३०
बिना चिकनाई का दूध एक कप	६		१०	६५
एक छोटा अण्डा	६	६		७५
बनी हुई दाल ½ कप	३		१५	१००
मू ग की दाल १०० ग्राम	२४	१	६०	२२०
टोस्ट १ अदद	२		१६	७५
आलू बने हुए ½ कप			१५	७५
रोटी १ औंस	१½		१३	१००
गेहू या उसका आटा १ औंस			२०	१००
चावल १ औंस			२३	९८
बिस्कुट १ औंस			२०	
पक्षियों का ताजा मांस १ औंस	६	२		४०
पनीर बिना चिकनाई का एक बडा चम्मच	६		१	३०
दालें १ औंस			१७	१००
बकरे का मांस १ औंस	७	५		७५
तेल १ औंस		३०		२७०
घी १ छोटा चम्मच				४०
मक्खन १ औंस या ५ चम्मच घी		२५		२२५
सोयाबीन १ औंस			६	१२३
पनीर चिकनाई-सहित १ औंस	६	७		८५
सूखे मेवे १ औंस			१५-२०	
सूखा मेवा ½ कप किशमिश या ३-४ दाने खुबानी या खजूर या १-२ दाने सूखी अजीर	१			७५
बादाम १०० ग्राम	२०	५८	१०	६५०
२० प्र०श० कार्बोज वाले फल तथा सब्जियां ताजी १०० ग्राम (३ औंस)				५०

[illegible] दिन [illegible] को देते हुए उपर्युक्त सूचना से [illegible] प्रकार बनाया जा सकता है जिससे रोगी को [illegible] १८०० या २०००, २५०० कैलोरीज [illegible]

	प्रोटीन ग्राम	फैट ग्राम	कार्वोज ग्राम	कैलोरी
खाण्ड २ छोटे चम्मच भरे हुए				८५
खाण्ड १ औंस			३०	
१ सेव या १ नाशपाती या २ खूबानी ताजी				५०
मधु १ औंस			२५	
१ सन्तरे का रस या एक बडा आडू				४०
टमाटर एक (बीच का मेल)				२५
या आम एक छोटा			११	५०
ताजे फल १ औंस			२-४	

उपवास तथा भोजन के अति नियत्रण के समय तो रोगी को विश्राम मे ही रहना चाहिए, परन्तु १०-१५ दिन वाद जव रोगी दो हजार कैलोरी के लगभग के आहार पर आ जाय तो उसे भ्रमण, आसन या मृदु व्यायाम का सेवन नित्य-प्रति करना चाहिए क्योकि व्यायाम से शरीर मे कार्वोहाइड्रेट की खपत वढती है। परीक्षक लोग वताते हैं कि ४०% रोगियो को भोजन-सम्वन्धी नियत्रण से ही रोग-मुक्त रखा जा सकता है। भूख को कम करने के लिए Amphetamine या Dextro Amphetamine (Benzedrine या Dexedrine) ५-१०मिलि० प्रात तथा दोपहर को दिया जा सकता है।

मधुमेह के रोगी को ज्वरो से, प्रतिश्याय आदि छोटे-छोटे जीवाणु-सक्रमण-जनित विकारो से वचना चाहिए क्योकि सक्रमण के होने पर उसकी कार्वोहाइड्रेट को अपने मे खपाने की शक्ति और भी घट जाती है। मानसिक दु ख या व्याकुलता या अशान्ति से भी शरीर की कार्वोहाइड्रेट को अपने मे खपा लेने की शक्ति घट जाती है। स्थूल मधुमेही के लिए भोजन चिकित्सा ही उपयोगी है क्योकि उसे Insulin दिया जाय तो उसकी भूख और वढती है एव रोग और वढता है। स्थूलता के कम हो जाने से मधुमेह रोग मन्द हो जाता या ठीक हो जाता है।

जिन घरो मे मधुमेह का रोगी हो, उनकी सतानो को चाहिए कि वे अपने शरीरो को भारी न होने दे। यदि शरीर भारी न हो तो इस रोग के होने का भय नही रहता। साधारणत स्थूलता (Obesity) की चिकित्सा के लिए भोजन की मात्रा कम कर देनी चाहिए। प्रोटीन को एक किलो के पीछे १ ग्राम मात्रा मे देकर कुल १२००-१५०० कैलोरीज मे से शेप की पूर्ति कार्वोज भोजन से करनी चाहिए। फैट स्वल्प मात्रा मे ही लेना चाहिए।

मधुमेही के लिए पथ्य—पनीर, अण्डा, मास, चाय मक्खन, पत्र-शाक, शलजम, मूली, गोभी, टमाटर, निंवू।

स्वल्प मात्रा में ही पथ्य—रोटी, फल, दूध।

सर्वथा अपथ्य आहार—मद्य, खाण्ड, ग्लूकोज, शहद, खाण्ड से वने भोजन। भोजन की एक समय की मात्रा थोडी ही रहनी चाहिए।

मधुमेह की इंसुलिन (Insulin) चिकित्सा

Mammalian Pancreas के Islets of Langerhans के क्रियाशील तत्व को, जो Amino acids का वना एक प्रोटीन है, Insulin कहा जाता है। इसके प्रयोग से यकृत् तथा मास मे Glycogen का नि क्षेप वढने लगता है, इससे खाण्ड फैट के रूप मे जमा हो जाती है एव Gluconeogenesis की प्रक्रिया भी कम हो जाती है। रक्त आदि धातुओ मे ग्लूकोज का खर्च (Oxidation) भी वढ जाता है। इसके कारण ग्लूकोज का सैलो मे प्रवेश सुगम हो जाता है। रोगी साधारण व्यायाम भी करता रहे तो स्वल्प औषध से भी रक्त का ग्लूकोज सैलो मे खप जाता है। इसके घुलनशील इजेक्शन को Injecto Insulin या Short Acting या Soluble या Crystalline या Clear Insulin कहा जाता है जिसका प्रचलन १९२२ के वाद हुआ। यह एक सी०सी० द्रव मे २०-४०-८० यूनिट की मात्रा मे अर्थात् तीन ताकतो का मिलता है। इसकी साधारण मात्रा १०-१५ यूनिट होती है तथा दिन मे ऐसी २ मात्रा प्रातराश तथा रात के भोजन से आधा घटा पहले त्वचा द्वारा दी जाती है जहा से यह रक्त मे चली जाती है। मुख द्वारा देने से यह औषध Pepsin व Trypsin द्वारा नष्ट हो जाती है। Insulin का १ यूनिट, १½ या २ ग्राम ग्लूकोज का परिपचन कर देता है। अत दिन भर के मूत्र मे जितने ग्राम ग्लूकोज हो जिसका पता खाण्ड की प्रतिशतक मात्रा से तथा मूत्र की कुल मात्रा से लगता है। उससे लगभग आधी मात्रा Insulin के यूनिट्स की प्रतिदिन पर्याप्त समझी जाती रही है। (२४ घटे के मूत्र मे २% ग्लूकोज हो और मूत्र की दैनिक निकासी २ लिटर अर्थात् २००० मिलिलि० हो तो ३० यूनिट के लगभग इन्सुलिन की दैनिक मात्रा होनी चाहिए) घुलनशील होने के कारण यह देने के आधे घटे के अन्दर अपना कार्य प्रारम्भ कर देती है। २-३

घण्टे इसका प्रभाव प्रबल रूप में रहता है तथा इसका शर्करा-परिपचन का साधारण कार्य लगभग ८ घंटे तक जारी रहता है। यदि ३० यूनिट प्रतिदिन देने आवश्यक हों, जैसा कि प्राय होता है, तो प्रातः १५-२० तथा रात्रि के भोजन से आधा घटा पहले १० यूनिट दे दिये जाते हैं। इस अवस्था में दिन भर के कार्बोहाइड्रेट भोजन का अधिक भाग (लगभग ४०-५० ग्राम) प्रातराश के भोजन तथा रात के भोजन में होना चाहिए। इस अवस्था में रक्त में खाण्ड की कमी (Hypoglycaemia) की आशका इसके देने के २-३ घण्टे बाद या दोपहर के भोजन से पहले या चार बजे तक के समय में या रात के पहले भाग में हो सकती है।

तथापि साधारण रोगियों में Soluble Insulin का प्रयोग नहीं किया जाता, क्योंकि इसे दिन में दो बार देना पडता है। इसका प्रयोग विशेषत तीव्र रोग में, उपद्रव-युक्त मधुमेह रोग में जैसे क्षययुक्त मधुमेह में तथा रोगी के अन्दर Ketosis या मधुमेह-मूर्छा के हो जाने पर किया जाता है। इन अवस्थाओं में १६-२४ यूनिट प्रात, १० यूनिट सायकाल इसके दे देने चाहिए। मधुमेह-मूर्छा में रक्त में खाण्ड ६०० मि० ग्रा० प्र०श० से ऊपर हो तो ४० यूनिट, ७५० मिलिग्राम प्रतिशत से ऊपर हो तो ६० यूनिट S I के दे देने चाहिए। मधुमेह रोगी को यदि कोई सक्रमणजनित ज्वर हो तो भोजन के बाद उसे यही इन्सुलिन उचित मात्रा में देना चाहिए। आपरेशन से पहले तथा बाद में भी उसे यही दिया जाता है। मधुमेही गर्भिणी हो तो भी उसे पिछले महीनों में यही दिया जाता है।

(२) इसका दूसरा भेद दीर्घकारी या Retard Insulin या Protamine Zinc Insulin Long Acting या Zinc Pro Insulin या Cloudy Insulin है। (P Z T) इसे Depot Insulin भी कहते हैं। इसका प्रचलन १९३५ से हुआ। इसके एक मी०सी० द्रव में *Insulin के ४० या ८० Units* होते हैं। Insulin Hydrochloride में एक प्रोटीन (Protamine) तथा Zinc (५०० units में १ मिलि०) के मिश्रण से इसे तैयार किया जाता है। इनके मिश्रण से Insulin की घुलनशीलता मन्द हो जाती है। उसका प्रभाव ४-५ घंटे में आरभ होता तथा शीघ्र ६-८ घण्टो में समाप्त न होकर लगभग २४ घण्टे तक या अगले दिन प्रात काल तक अर्थात् ३६ घण्टे रहता है। अत इसके प्रात के इजेक्शन के ५ घण्टे तक उसका प्रभाव नहीं होता, दोपहर बाद इसका प्रभाव आरम्भ होता है। १६ से २४वें घंटे तक इसका प्रभाव प्रबल रहता है। इसलिये इसके सेवन में रोगी के प्रातराश में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अति-स्वल्प ही होनी चाहिए। उस औषध की मात्रा यदि कुछ अधिक दी गई हो तो रात्रि के पिछले भाग में, जब जागे हुए देर हो जाती है, या प्रात काल रात में खाण्ड के कम हो जाने (Hypoglycaemia) की भी आशका करनी चाहिए।

साधारण मधुमेह रोग में १२-१८ यूनिट तथा तीव्र मधुमेह में २० यूनिट की एक मात्रा इसकी प्रातराश से ½ या १ घण्टा पहले दी जाती है, अथवा यदि मूत्र को शर्करायुक्त करने के लिए सबेरे-शाम मिलाकर कुल ६४ यूनिट घुलनशील (Soluble Insulin) की आवश्यकता होती है तो इसका ⅔ भाग तो Protamine Zinc *Insulin के रूप में तथा ⅓ भाग Soluble Insulin के* रूप में एक ही इजेक्शन प्रातराश से पहले दे सकते है। अर्थात्, पहले एक सीरिंज में १६ Units Soluble Insulin के भरकर त्वचा में डाल देवें, फिर सुई को वहीं लगा हुआ छोडकर दूसरी सुई में उसी सीरिंज में २८ Units Protamine Zinc Insulin के लेकर त्वचा में लगी हुई सुई के द्वारा ही प्रविष्ट कर देवें। इस प्रकार आशुकारी तथा दीर्घकारी दोनों प्रकार की Insulin के देने पर प्रातराश में लिये हुए कार्बोहाइड्रेट का भी पूर्णतया परिपचन हो जाता है। यद्यपि Protamine Zinc Insulin को Soluble Insulin में मिलाने से यह भी कुछ-कुछ दीर्घकारी हो जाती है, तथापि यदि एक ही सीरिंज और सुई में दोनों मिलाकर देने हों तो जितनी Protamine Zinc Insulin लेनी हो उतनी हवा उसमें भरकर, बिना दवा लिये, सुई वापस कर लेनी चाहिए और फिर Soluble Insulin जितनी लेनी हो उतनी ले लेनी चाहिए, और उसी सीरिंज में प्रोटामीन जिंक इसुलिन जितनी लेनी हो, ले लेनी चाहिए। दोनों को परस्पर मिश्रित किये बिना ही उसी तरह त्वचा में डाल दिया जाय तो दोनों प्रकार की Insulins का प्रभाव बना रहता है। प्रात केवल इसी के देने से अगले दिन प्रात के मूत्र में कुछ खाण्ड हो सकती है तथा P Z I केवल देनी हो तो २ दिन बाद ३-४ यूनिट बढाकर दें, जिससे अगले दिन प्रात के मूत्र में खाण्ड बिलकुल न रहे। इस अवस्था में स्टार्च को दिन भर में फैलाकर देना चाहिए तथा सोते समय २० ग्राम मात्रा में फिर दे देना चाहिए। परन्तु इसका प्रभाव देर में आरम्भ होता है। अतः उपर्युक्त दोनों प्रकार के Insulins को मिलाकर कुछ Insulins बनाये गये जो विशेष प्रयुक्त होते हैं।

(३) Insulin Zinc Suspensions (क) Insulin Zinc Suspension Amorphous (Insulin Semi

Lente)—यह बिना किसी प्रोटीन (Protamine) के Zinc Insulin के सूक्ष्म कणों से युक्त होता है, जिक के कारण जिसका प्रभाव आधे घंटे तक आरम्भ होता लगभग १६ घण्टों तक रहता है पहले २-३ घंटे तक प्रबल प्रभाव रहता है। यह Insulin का एक नया योग है जो १ सी०सी० द्रव ४० Units की ताकत का मिलता है जिनमे प्रोटीन के लिए Allergy हो उनमे उपयुक्त होता है।

(ख) Insulin Zinc Suspension Crystalline (Insulin Ultra Lente) है। यह Zinc Insulin के बड़े कणों या स्फटिको का एक घोल है। इसमे इसुलिन्स के १०० Units मे २ जिक होता है। जिसका प्रभाव पहले धीरे-धीरे १-२ घंटे मे आरम्भ होता है पर लगभग ३०-४० घण्टे तक रहता है ७ से १० घण्टे के बीच मे इसका प्रभाव प्रबल रूप मे रहता है। यह १ सी०सी० द्रव मे ४० Units की मात्रा मे मिलता है।

(ग) Danish Lente Insulin—उपर्युक्त दोनों (Semi तथा Ultra) का मिश्रण Insulin Zinc Suspension (Lente Insulin) जिसमे ३ भाग Amorphous (Semi Lente) तथा ७ भाग Crystalline Insulin (Ultra Lente) होता है Danish Lente Insulin कहलाता है। प्रति सी०सी० मे ४० तथा ८० यूनिट्स का मिलता है।

इसका प्रभाव १ घण्टे मे आरम्भ होकर २४ घण्टे तक रहता है तथा पाचवें छठे घण्टे से २४ घण्टे तक इसका प्रभाव प्रबल रहता है। इस समय यही सर्वप्रिय Insulin प्रतीत होता है। आध घण्टा प्रात के नाश्ते से पहले इसके १ दैनिक इजेक्शन के देने से ९० फीसदी रोगियो को खाण्ड से मुक्त रखा जा सकता है। इसका प्रभाव भी Soluble तथा Protamine Zinc Insulin के मिश्रण के समान ही होता है, पर इसमे कोई बाह्य प्रोटीन नहीं होता। अर्थात् वह Protamine तथा Phosphate से रहित होता है तथा इसमे रात के पिछले भाग मे Hypoglycaemia के होने की आशका भी नही रहती। इसके प्रयोग के समय कार्बोहाइड्रेट की दैनिक मात्रा को तीनो प्रधान भोजनो मे बाटकर देना चाहिए। ७५% रोगियो मे दैनिक ४० यूनिट्स से कम मात्रा मे मूत्र ग्लूकोज रहित हो जाता है। मृदु रोग मे पहले इसे ३० यूनिट्स की मात्रा मे सवेरे के नाश्ते से आधे घण्टे पहले दे दे। इस मात्रा के देते रहने से चौथे, पाचवें दिन रक्त मे ग्लूकोज की मात्रा नार्मल के निकट आ जाती है। फिर इसकी मात्रा पहले २५ और फिर मूत्र या रक्त मे खाण्ड अधिक न रहे तो कुछ कम भी की जा सकती है अन्यथा २५ यूनिट्स की मात्रा को कायम रखा जाता है। यदि भोजन बाद मूत्र मे कुछ खाण्ड दिखाई दे तो भी इन्सुलिन की मात्रा बढाना नही चाहिए उसकी उपेक्षा करनी चाहिए। इस Danish Lente या Insulin Zinc Suspension के प्रभाव को दीर्घ करना हो तो इसमे Insulin Zinc Suspension Crystalline (Ultra Lente) का योग कर सकते है। यदि इसी के प्रभाव को शीघ्र करना हो तो इसमे Insulin Zinc Suspension Amorphous Semi Lente का योग कर सकते हैं। रोगी की अनुकूलता को देखते हुए Insulin Zinc Suspension Crystalline को Insulin Zinc Suspension Amorphous के साथ किसी भी अनुपात मे मिलाकर दे सकते है। दूसरे शब्दो मे, यदि दोपहर के भोजन के बाद के मूत्र मे खाण्ड हो तो Lente Insulin मे Semi Lente अधिक मिला दें, यदि प्रात के मूत्र मे खाण्ड मिले तो Ultra Lente अधिक मिलायें।

(४) Intermediate Acting Insulin–Globin Insulin With Zinc—रक्त के Globin, Insulin तथा Zinc के योग से बना हुआ यह Insulin भी उपयुक्त होता है। Globin इसमे Protamine का काम करता है। इसका प्रभाव देने के २ घंटे के अन्दर आरम्भ हो जाता, ८वें से १६वें घंटे तक पूर्णता को पहुच जाता, लगभग २४ घंटे तक रहता है। प्रातराश के पहले एक बार दिया जाता है। १०-१५ यूनिट से आरभ किया जाता है। रक्त मे खाण्ड की कमी १० घंटे बाद हो सकती है। मृदु रोग हो तो शर्करा को नियमित रखने के लिए यह उत्तम Insulin है। १०-१५ यूनिट से प्रारम्भ करके उस मात्रा को, जिससे मूत्र मे खाण्ड लुप्त हो जाय, देते रहना चाहिए। पर यह विशेष प्रयोग मे नहीं आता।

(५) Isophane Insulin (N P H Insulin या Neutral Protamine Hagedorn Insulin), जिसमे जिक तो P Z I जितना होता तथा Protamine १०० Units Insulin के पीछे ५० मिलि० होता है, यह Crystalline Insulin का घोल है। इसका प्रभाव १-२ घंटे मे प्रारम्भ हो जाता, १०-१२ घण्टे मे पूर्णता को पहुच जाता और २४-३० घण्टे तक रहता है। इसके कारण रक्त मे खाण्ड की कमी १२-१८ घण्टे के बीच हो सकती है पर इसका प्रयोग कम होता है।

एक मध्यम किस्म के मधुमेही को जिसने पहले Insulin न ली हो प्रथम दिन १०-१२ यूनिट्स Lente Insulin के प्रातराश से ½, १ घण्टे बाद या पहले दे देने चाहिए। दो दिन छोड़कर ४ यूनिट्स की वृद्धि करनी चाहिए अर्थात्

इसे क्रमश बढाना चाहिए या कुछ दिन २४ घण्टे के मूत्र की परीक्षा करते रहना चाहिए। जितनी मात्रा से मूत्र तथा रक्त मे खाण्ड लुप्त हो जाय उसी मात्रा को फिर कायम रखना चाहिये । परन्तु जैसा ऊपर कहा है कि देखने से पता लगे कि रात के मूत्र मे कुछ खाण्ड रहती है, तो प्रभाव को दीर्घ करने के लिए Lente Insulin मे बराबर Ultra Lente का मिश्रण कर देना चाहिए। यदि दिन के मूत्र मे खाण्ड हो, रात के मूत्र मे न हो तो औषध को आशुकारी बनाने के लिए बराबर Semi Lente (१ १) मिला देना चाहिए। अथवा पहले मे ही Protamine Zinc Insulin या Globin Insulin किसी की उतनी मात्रा जिससे दिन-रात के मूत्रो मे खाण्ड न रहे प्रतिदिन १ वार प्रात प्रातराश से पहले देनी चाहिए। पर Lente Insulin सर्वोत्तम प्रतीत होती है। Insulin इस प्रकार देनी चाहिए कि २४ घण्टे किसी समय भी रक्त मे ग्लूकोज मर्यादा से बाहर न हो। ऐसा हो जाने पर फैट का अधिक परिपचन (Catabolism) बन्द हो जाता है, जिसमे Lipaemia नहीं होता, साथ ही मूत्र मे खाण्ड नही निकलती जिससे जल की अति निकासी बन्द हो जाती है, भार नही घटता, शरीर के प्रोटीन मे Gluconeogenesis की प्रक्रिया बन्द हो जाती है एव शरीर कृश नही होता। इस रोग मे कृशता का लक्षण बढ रहा हो तो Durabolin का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार Testosterone या Female Sex Hormone का प्रयोग भी लाभदायक रहता है। Vitamin B Complex तथा B_{12} (Neurobion) भी रोगी के लिए बड़े सहायक होते हैं। उसे सोडियम तथा पोटासियम भी प्राय थोड़े-थोड़े देने चाहिये।

मधुमेही की मूत्र-परीक्षा

मधुमेही की मूत्र-परीक्षा करने के लिए रोगी को एक दिन मधुमेह-योग्य भोजन पर रखने के बाद अगले दिन प्रातराश से पहले मूत्र कराकर वह फेंक दिया जाता है।

१ फिर प्रातराश के बाद से लेकर दोपहर के खाने से ठीक पहले तक का मूत्र एक पात्र मे एकत्रित किया जाता है।

२ मध्याह्न के भोजन से लेकर रात्रि के भोजन के ठीक पहले तक का मूत्र दूसरे पात्र मे जमा किया जाता है।

३ रात के भोजन से सोते समय तक मूत्र एक पृथक् पात्र मे इकट्ठा किया जाता है।

४ सोने के बाद से अगले दिन प्रातराश से पहले तक का सारा मूत्र एक पृथक् पात्र मे जमा किया जाता है।

इनमे से प्रत्येक की कुछ बूदें लेकर यह देखना चाहिए कि इनमे से कौन-कौन-सा मूत्र खाण्ड के लिए Positive Test देता है। जिससे यह पता लगता है कि रोगी के रक्त मे दिन के किस भाग मे ग्लूकोज की मात्रा बढती है। तदनुसार शीघ्रकारी (Short Acting) या दीर्घकारी (Long Acting) Insulin की मात्रा का निर्णय किया जा सकता है।

इन चारो मूत्रो के अन्दर कुल कितनी खाण्ड है, इसके लिए Quantitative Sugar परीक्षा भी करनी चाहिए। २४ घटे मे जितनी कुल खाण्ड हो, उसको दो की सख्या से भाग देने पर जो सख्या आती हो, उतने Units Insulin की दैनिक मात्रा रोगी को देने चाहिए। प्रारम्भ मे मूत्र की यह परीक्षा प्रतिदिन होनी चाहिए । यदि सभी, अर्थात् चारो नमूनो, मे खाण्ड मिलती हो तो Insulin की दैनिक मात्रा कुछ बढा दी जाती है। यदि दिन मे लिये गए नमूनो मे खाण्ड का Test Positive हो तो शीघ्रकारी (Short Acting) Insulin की मात्रा बढायी जाती है। यदि रात के भोजन के बाद लिये गए नमूनो मे खाण्ड का Test Positive हो तो दीर्घ प्रभाव करने वाली Long Acting Insulin की मात्रा बढानी चाहिये। इस प्रकार किसी रोगी की चिकित्सा प्रारम्भ करने के तीन-चार दिन तक उसको कितनी Insulin देनी चाहिए तथा प्रात काल के इजेक्शन मे Short Acting Insulins तथा Long Acting Insulins कितने-कितने होने चाहिए, इसका निश्चय कर लिया जाता है। रोगी के दिन भर के मूत्र मे कुल खाण्ड कितनी है, इसकी Quantitative परीक्षा तो केवल एक दिन करना पर्याप्त है। Qualitative परीक्षा कुछ दिन तक की जाती है। दिन या रात का मूत्र का नमूना यदि पीला सा रग (Yellow Reduction) दिखाए, तो तदनुसार Short या Long Acting Insulin मे ५ Units की वृद्धि कर दी जाती है। यदि दिन या रात का नमूना सतरी रग (Orange Reduction) का मिले तो १० Units की तथा यदि ईंट के चूरे जैसा रग (Brick Red Reduction) मिले तो १२-१३-१४ Units की वृद्धि करनी चाहिए। यदि मूत्र का रक्त हरा ही रहे तो यह शका करनी चाहिए कि कही Hypoglycaemia का कोई लक्षण तो नही होता।

रक्त में शर्करा की न्यूनता (Hypoglycaemia)—Insulin के देने से रक्त मे खाण्ड ६० मिलि० प्रति १०० मिलिलि० हो जाय तो रक्त मे खाण्ड की न्यूनता के लक्षण होने लगते हैं, परन्तु मधुमेही अधिक खाण्ड का अभ्यस्त होता है, उसमे १०० मिलि० प्र०श० या उससे कुछ अधिक होने पर भी खाण्ड की न्यूनता के लक्षण होने लगते है

अर्थात् कप, निर्बलता, अस्थिरता, क्षुधा, हृत्कम्प, बेचैनी आदि होने लगें तो थोडी खाण्ड या मिश्री खा लेनी चाहिए। इसलिए Insulin लेने वाले को हर समय अपने पास कुछ मिश्री रखनी चाहिए। रक्त-मे-खाण्ड के बहुत कम हो जाने से जैसे S I के लेने के ५-६ घण्टे बाद या P Z I के लेने के बाद रात को या I Z S (Lente) के लेने के बाद सायकाल को हो सकता है, रोगी को मूर्छा हो जाय तब मुख मे खाण्ड डालनी चाहिए, Glucagon १ मिलि० सिरा द्वारा देना चाहिए या Adrenaline १ मी०मी० त्वचा द्वारा दे दें। रक्त मे खाण्ड के कम हो जाने पर Sympathetic नाडी-मण्डल उत्तेजित होता है जिसमे Adrenaline की उत्पत्ति बढती है और उससे रक्त मे Glycogen अधिक आने लगता है।

मधुमेही की मौखिक औषधें

४० वर्ष से ऊपर की आयु के ऐसे मधुमेह-रोगियो के लिए, जिनके रक्त मे २५० मिलि० प्र०श० रक्त से अधिक मात्रा मे खाण्ड नही पायी जाती, जिनको मधुमेह-जनित Acidosis आदि कोई उपद्रव न हुआ हो, जिनकी Insulin की दैनिक मात्रा ४० यूनिट से कम है, उनके लिए ये औषधें उपयोगी हैं। निम्नलिखित Sulphonylurea कम्पाउण्ड प्रयुक्त होते हैं :—

(१) Tolbutamide १९५६ (Rastinon Hoechst, Unitolbid)—यह एक Sulphonylurea Compound है। आत मे Alkalics मे मिलकर घुलनशील होता है और शीघ्र शरीर मे व्याप्त हो जाता है तथा Pancreas के Beta Cells को उत्तेजित करके उनसे या उन्हे Regenerate करके Insulin को प्रवृत्त करता है। ३-४ घटे के अन्दर इसका पूर्ण प्रभाव हो जाता है तथा इसका प्रभाव १२ घटे तक ही रहता है। इसे भी प्रथम दिन २½ ग्राम, दूसरे दिन २ ग्राम, तीसरे दिन १½ ग्राम मात्रा मे विभक्त करके कई बार दिया जाता है, फिर ५ ग्राम मात्रा मे, जिसका असर १०-१२ घटे रहता है, दो-तीन बार भोजन के साथ या बाद मे प्रतिदिन दिया जाता है। आमाशय के लिए उत्तेजक Secretogogue होने से खाली पेट देने पर यह अजीर्णकारक हो जाता है। यह शरीर से शीघ्र निकल जाता है, इसलिए इसका कोई उपद्रव विशेष नहीं होता, इसका प्रभाव एक मास तक प्रयोग के बाद ठीक-ठीक होता है। २५ प्र०श० रोगियो मे इसके २-४ वर्ष के उपयोग के बाद इससे लाभ होना बन्द हो जाता है या इसके कारण पेट मे दर्द (Epigastric Pain) का लक्षण हो जाता है या त्वचा पर चकत्ते निकलने लगते है। भोजन-सम्बन्धी नियत्रण रखने से इसकी सभावना कम रहती है। ४-५ वर्ष बाद फिर Chlorpropamide का प्रयोग आरभ किया जा सकता है।

(२) Chlorpropamide (Diabenese, Pfizer २५० मिलि० गोली Diabinol B Chemical)—यह भी Sulfonylurea Compound है। यह शरीर से जल्दी नहीं निकलता, अत इसका प्रभाव उपर्युक्त औषधो की अपेक्षा देर तक, अर्थात् ३-४ दिन तक, रहता है। पहले दिन इसे २५०-५०० मिलि० मात्रा मे प्रातराश से पहले दिया जाता है, फिर इसे इसी प्रकार प्रतिराश से पहले प्रतिदिन एक बार १००-२५० मिलि० मात्रा मे दिया जाता है। इसकी दैनिक मात्रा ½ से १ गोली की पर्याप्त होने से यह अधिक उपयोगी है। परन्तु यह औषध Tolbutamide से अधिक विषैली है, क्योंकि आधे ग्राम दैनिक से अधिक लेने पर इससे पेट कुछ खराब हो सकता या चमडी पर चकत्ते निकल सकते है। Acetohexamide (Dimelor) जिसका निर्माण बाद मे हुआ है, इससे कम विषैला कहा जाता है। उसका प्रभाव इससे कुछ कम देर रहता है। इसकी २५-५ ग्राम मात्रा १ बार प्रातराश के बाद दे दी जाती है।

(३) Diguanides या Biguanides [Phenformin Hydrochloride (D B I) तथा Dibotin] कहा जाता है कि इसके देने से अग्न्याशय के Beta सैल्स तो उत्तेजित नहीं होते, पर यकृत् मे होने वाली प्रोटीन्स से खाण्ड के बनने की प्रक्रिया (Gluconeogenesis) मन्द हो जाती है तथा इनके Insulin पर प्रभाव से शरीर मे खाण्ड की खपत (Anaerobic Glycolysis) बढ जाती है, इस प्रकार रक्त मे खाण्ड की मात्रा घट जाती है। पहले Phenformin को २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन बार भोजन के साथ दिया जाता है। फिर क्रमश २ सप्ताह मे इसकी २५ मिलि० की गोलिया दिन मे ३-६ बार तक दे दी जाती हैं। Metformin (Glucophage) को ५ ग्राम मात्रा मे पहले प्रतिदिन ३-४ बार दिया जाता है, २-३ सप्ताह मे इसे क्रमश बढाकर ३ ग्राम प्रतिदिन कर दिया जाता है। फिर प्रभाव हो जाने पर इसकी ½-३ ग्राम दैनिक मात्रा चालू रखी जाती है। कुछ एक मे अरुचि, वमन, अतिसार, पेट दर्द के लक्षण हो

सकते हैं। परन्तु Phenformin से रक्त में Cholesterol की मात्रा घटती है जो एक बड़ा लाभ है।

जो रोगी Insulin ले रहा है उसे उसके साथ-साथ Diabenese की प्रारम्भिक मात्रा देकर फिर Insulin की मात्रा कम करते हुए Diabenese को जारी रखा जाता है। रोगियों में से चौथाई रोगी भोजन-नियन्त्रण तथा इनमें से किसी मौखिक औषध के प्रयोग से ठीक रखे जा सकते हैं।

नये रोगी में पहले भोजन-चिकित्सा को २-४ सप्ताह करके देखना चाहिए, अर्थात् कार्बोहा० १५० ग्राम, प्रोटीन तथा फैट नार्मल मात्रा में देकर देखना चाहिए। यदि उससे लाभ न हो तो Diabenese का प्रयोग २५-५ ग्राम दैनिक मात्रा में प्रातराश के बाद आरम्भ करना चाहिए। उससे भी १½ मास में पूर्ण लाभ न हो तो फिर इसके साथ, या १ ग्रा० Rastinon के साथ Phenformin का प्रयोग आरम्भ कर देना चाहिए। अर्थात् २५० मिलि० Diabenese या ५०० मिलि० रेस्टिनान के साथ ७५ मिलि० Phenformin दैनिक का दिया जाना आरम्भ करना चाहिए। इससे भी लाभ न हो तो Insulin का ही आश्रय लेना चाहिए। प्रधान भोजन के २ घंटे बाद के मूत्र में खाण्ड न हो तो समझना चाहिए कि औषध ठीक कार्य कर रही है।

मधुमेह मूर्छा (Diabetic Coma)

मूर्छित रोगी के शरीर को पहले गर्म कपड़ों पर गर्म बोतलों की सहायता से गर्म रखना चाहिए। फिर मूत्र-नाली (Catheter) प्रविष्ट करके मूत्र निकालकर उसमें खाण्ड तथा Ketone Bodies की परीक्षा करनी चाहिए रक्त में ग्लूकोज़, सीरम, पोटासियम और प्लाज्मा बाइकार्बोनेट की परीक्षा करनी चाहिए। यूरिया की परीक्षा भी होनी चाहिए। रोगी का Blood Pressure, नाड़ी गति, श्वास-गति भी नोट करनी चाहिए। मूत्र में खाण्ड बहुत होती है, अतः २० यूनिट्स Insulin (Crystalline, Soluble) शिरा द्वारा दे देनी चाहिए। साथ ही ८० यूनिट्स त्वचा द्वारा भी दे देनी चाहिए। मूर्छा से पहले मूत्र द्वारा तथा उलटियों के कारण शरीर से बहुत-सा जल निकल चुका होता है Dehydration हो चुका होता है तथा उनके साथ बहुत सा Sodium भी निकल चुका होता है, अतः Rehydration के लिए १५०० मिलिलिटर नार्मल सेलाइन शिरा द्वारा बूंद-बूंद करके दे देना चाहिए। अथवा १००० मिलिलि० शुद्ध जल में Sodi Chloride ५·८५ ग्राम तथा Sodium Lactate ३·३६ ग्राम मिलाकर उसे शिरा द्वारा देना चाहिए या इतना ही ५% Soda Bicarb सोल्यूशन शिरा द्वारा दें। इससे रक्त-भार फिर भी ३० M M Hg से कम रहे तो फिर इसे दुहराना चाहिए या इसी में Noradrenaline, Metaramenol, Hydrocortisone मिलाकर दें। या Mephentermine Sulphate (Mephentine) १५ मिलि० मांस द्वारा प्रति ४ घंटे पर दें। इसके देने के साथ फिर मूत्र निकालकर खाण्ड के लिए उसकी परीक्षा करनी चाहिए। यदि वह लाल रंग दे तो २० यूनिट, पीला रंग दे तो १५ यूनिट, और हरा-पीला रंग दे तो १० यूनिट्स Insulin के फिर त्वचा द्वारा देने चाहिए (एक + के लिए १० यूनिट्स)। यदि मूत्र-परीक्षा न हो सकती हो तो पहले इंजेक्शन के एक-एक घंटा बाद एक-एक कर Insulin २५-५० यूनिट्स मात्रा में त्वचा से देते रहना चाहिए। यदि रोगी अधिक शीतल (Collapsed) न हो, उसे उलटियां हो रही हों, तो उसके पेट को Ryle's Tube के द्वारा २०० मिलिलि० ५ प्र०श० सोडे के जल या नार्मल सेलाइन से धो देना चाहिए और थोड़ा अन्दर छोड़ देना चाहिए। पेट के अफारे को दूर करने के लिए नमक के जल की वस्ति देनी चाहिए। ३-४ घण्टे बाद यदि Catheter डालने से मूत्र नहीं आता तो इससे पता लगता है कि रक्त में खाण्ड की मात्रा कम हो गयी है और अब Insulin देने की आवश्यकता नहीं रही है। क्योंकि, रक्त में जब तक खाण्ड अधिक रहती है, मूत्र आता रहता है एवं शरीर में से जल, सोडियम आदि की निकासी अधिक-अधिक होती रहती है। चिकित्सा के ६ घंटे बाद भी यदि रोगी को उलटी (Nausea) हो, उसके पेट में फलरस या हलके नमक वाला जल न जा सकता हो तो उसे शिरा द्वारा १००० मिलिलि० नार्मल सेलाइन, जिसमें ५ प्र०श० ग्लूकोज़ हो, बूंद-बूंद करके दे देना चाहिए। विशेषतः मूत्र में जब ग्लूकोज ३०० मिलि० प्र०श० के लगभग आ जाय, अर्थात् जब रक्त में ग्लूकोज की मात्रा कम होने लग जाय, तब ग्लूकोज के देने से कोई हानि नहीं, प्रत्युत इसके Acidosis का शामक होने से लाभ ही होता है, एतदर्थ शिरा द्वारा ५% ग्लूकोज सोल्यूशन जो सेलाइन में बना हो तथा जिसमें प्रति ग्राम ग्लूकोज़ के पीछे ·५-१ यूनिट Insulin मिला हो (१ लिटर में २५-५० यूनिट्स), बूंद-बूंद करके लिटर मात्रा में ६-६ घंटे पर देना चाहिए। इससे घटा हुआ रक्तभार भी बढ़ता है। इस प्रकार Rehydration ही इस रोग की प्रधान चिकित्सा है। रक्तभार के बढ़ाने के लिए कोई Vasopressor (Metaraminol १५ मिलि० २५० सी०सी० जल में) या Coramine १½, ५ सी०सी० शिरा द्वारा दे देना चाहिए। जब मूत्र में

ग्लूकोज न रहे अर्थात् रक्त मे से वह मूत्र मे आने के स्थान अवयवो मे जाने लगे, रक्त मे वह १२० मिलि० % हो जाए तब Insulin का देना बन्द कर देना चाहिए। अब यदि ग्लूकोज के साथ रक्तस्थ पोटासियम के भी अवयवो की ओर जाने से हाथ-पाव मे Paralysis जैसी निर्बलता हो, Diaphragm की निर्बलतावश श्वास-प्रश्वास मे कठिनता (Dyspnoea) का लक्षण हो, जैसा कि रक्त मे Potassium के उसमे से बाहर निकलने और अवयवो मे चले जाने से होता है, तब उसकी कमी (Hypokalaemia) को पूरा करने के लिए १० सी०सी० Pot Chloride Injection को १ लिटर ग्लूकोज सोल्यूशन के साथ दें या Pot Chloride की २ ग्राम की मात्रा एक-एक घण्टा बाद केवल तीन बार या Pot Cit को २ ग्राम मात्रा मे १-१ घण्टे बाद केवल तीन-चार बार या Pot Cit, Pot Acet, Pot Bicarb १०-१५ ग्रेन मात्रा दिन मे ३ बार Stomach Tube द्वारा दें। यदि रोगी इसे मुख से न ले सकता हो तो इसके (Pot Cit) १ प्र०श० सोल्यूशन को २०० मिलिलि० की मात्रा मे शिरा द्वारा दे देना चाहिए। जब रोगी को मूत्र खुलकर आ रहा हो तभी Potassium देना चाहिए। यदि मूत्र न आ रहा हो तो इसे नही देना चाहिए, अथवा जब रोगी कुछ-कुछ होश मे आ रहा हो तभी पोटासियम देना चाहिए, पहले नही।

जब रोगी को होश आ जाय और उसमे हुई जल की कमी पूरी हो जाय तब उसे १-१ कप दूध ३-३ घण्टे बाद देते रहना चाहिए। इनके बीच-बीच के समय मे फलरस (उदाहरणत सन्तरे का रस ६ औंस १ टेबल-स्पून ग्लूकोज के साथ) तथा जल भी देना चाहिए और दिन मे तीन बार उतनी Crystalline Zinc Insulin, जिससे मूत्र मे खाण्ड न आये, देते रहना चाहिए। प्रत्येक Insulin के बाद Dextrose आधा औंस भी देना चाहिए इससे Acetone Bodies मूत्र मे फिर नही आते, अन्यथा उनके आने की आशका रहती है। मूर्छा के २४ घण्टे बाद रोगी को उसका दैनिक स्वल्प आहार आरम्भ करा देना चाहिए तथा मूत्र मे Acetone Bodies जब तक रहें, Dextrose भी Insulin के साथ उपयुक्त विधि मे देते रहना चाहिए। रोगी के शरीर मे कही पूयभाव हो तो उसकी Antibiotic (Benzyl Penicillin ५ लाख यूनिट) चिकित्सा करना भी आवश्यक है। बाद मे मूत्र मे Acetone की परीक्षा (मूत्र+Ammon Sulph को कुछ गाढा करके Sod Nitroprusside Solution की कुछ बूद मिला, कुछ बूद Strong Ammo Solu मिलायें तो Violet ring आता है) समय-समय पर करनी चाहिए।

मधुमेह जनित धमनी-काठिन्य या धमनी-जरा रोग (Arteriosclerosis तथा Atherosclerosis)—मधुमेह रोगियो की धमनियों के मासमय स्तर मे कठोरता के आ जाने तथा उनके अन्त स्तर के नीचे Beta Lipoproteins के स्थान-स्थान पर एकत्र हो जाने से उनमे उपर्युक्त धमनी रोग (Ischaemia) हो जाया करते है। इन रोगो के कारण पैरो को, हृदय को तथा मस्तिष्क को, रक्त के कम मिलने से तत्सम्बन्धी उपद्रव हो सकते है।

कुछ लोग रक्त मे वसा-वृद्धि (Hyperlipaemia) को, जो भोजन मे वसा की अधिकता से, शरीर मे मेदस्विता मे, पैतृक प्रवृत्ति से, यकृत् की असमर्थता से, या अ-व्यायाम से उत्पन्न होती है, इस रोग का कारण कहते है। तथा अतिचिन्ता और मानसिक विक्षोभशीलता को, जो धमनियो मे रक्तभार को बढाने के कारण होते है, इस रोग की उत्पत्ति मे सहायक कारण बताते है।

दूसरे लोगो का मत है कि पहले वृक्क रुग्ण होते हैं, उनकी असमर्थता से रक्त मे अम्लीयता की वृद्धि होती है और फिर उसके कारण धमनी रोग उत्पन्न होता है। इन दोनो मतो मे से कौन सा ठीक है, इस विषय मे अभी कुछ निश्चय से नही कहा जा सकता है।

इस रोग की रोकथाम के विषय मे भी अभी कोई निश्चित मत उपलब्ध नही होता। कुछ एक का यह कथन है कि Saturated फैट्स रक्त मे वसा-वृद्धि करते है। इसके विपरीत Unsaturated फैट्स रक्त मे वसा-वृद्धि को कम करते है। अत Linoleic Acid, Linolenic Acid, Arachidonic Acid का सेवन, अर्थात् जमाये हुए तेलो की अपेक्षा न जमाये हुए वानस्पतिक तेलो का सेवन, अधिक हितकर होता है। Ischaemia के लिए Vasodilator औषधि का प्रयोग करना चाहिए। उदाहरणत Chlorpromazine को २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ बार दें।

वृक्को के रुग्ण होने के कारण अलब्यूमिनमेह हो, श्वयथु हो, रक्तभार बढा हो अर्थात् Kimmel Stiel Wilson Syndrome हो तो मूत्रल औषध दें और प्रोटीन भोजन कम कर दें।

मधुमेह जनित जघाशूल (Diabetic Peripheral Neuritis) के लिए Insulin के प्रयोग के अतिरिक्त, नाडियो के उचित पोषण के लिए विटामिन 'बी' कम्प्लैक्स तथा विटामिन बी$_1$ का उचित मात्रा मे कुछ काल तक बराबर सेवन कराना चाहिए। विटामिन बी$_{12}$ का प्रयोग भी बडी मात्रा मे लाभदायक पाया गया है। अत Neurobion आदि योग उपयोगी हैं।

मधुमेह जनित दृष्टिमाद्य (Retinitis) के रोकने के लिए Animal Fat के स्थान पर Unsaturated Fat दें, इसकी चिकित्सा के लिए कोई उपयोगी उपाय उपलब्ध नहीं हुआ, Vit A, E (Rovigon) दें या Vit B तथा C के देने से Retina में रक्तस्राव को रोका जा सकता है। मधुमेह-पिडिका के लिए Insulin तथा Antibiotic औषध का प्रयोग करना चाहिए। मधुमेह-पिडिकाओं, मधुमेह-जनित क्षय रोग, नाडी रोग, वृक्क रोग दृष्टि रोग आदि से रोगी को बचाने के लिए उसके रक्त व मूत्र में खाण्ड का नियन्त्रण ठीक-ठीक होना चाहिए। पहले से ही मधुमेह रोग की वृद्धि को रोकने के लिए आवश्यक है कि मधुमेही माता-पिता की सन्तान तथा स्थूल व्यक्तियों के मूत्र की मधुमेह-सूचक परीक्षा ६-६ मास बाद होती रहे, इसका कोई प्रबन्ध राज्य की ओर से होना चाहिए। क्योंकि ऐसे व्यक्तियों में से कुछ एक में यह रोग अव्यक्त रूप में होता है, पर रोगी को उसका पता नहीं होता। कुछ एक में इस रोग का तब पता चलता है जब उनमें श्वयथु तथा मूत्र में अलब्यूमिन आने लगता है। अत इस रोग का प्रारम्भ में पता लगाना बड़ा जरूरी है।

आयुर्वेद में मधुमेह

चरक (सू। १३। श्लो० ७–८०) तथा सुश्रुत (नि० ४/५०–५१) ने कहा है यदि मनुष्य आसनशील हो, व्यायाम सर्वथा न करे, न ही समय-समय पर शरीर का शोधन करें, शरीर में स्थूल हो तो तथा मधुर-अम्ल-लवण रस, गुरु-शीत-स्निग्ध आहारों को अधिक मात्रा में ग्रहण करे तो उससे कफदोष बढ़ जाता है। फिर जब वायु-वर्धक अर्थात् निर्बलताजनक कारणों से शरीर में वायु की वृद्धि हो जाय, अर्थात् शरीर में अन्न को खपा लेने की शक्ति भी कम हो जाय, चिन्ता आदि से नाडी-मण्डल भी निर्बल हो जाय तो भोजन से उत्पन्न हुआ सार, अर्थात् ओज (जिसे अब हम ग्लूकोज कहते हैं) शरीर में से मूत्र द्वारा निकलने लगता है, इसी को मधुमेह कहते हैं। इस रोग की गणना कफजनित मेहों में नहीं, पर वातजनित मेहों में की गई है, जिससे पता लगता है इसका प्रधान कारण शरीर या अग्न्याशय की प्राणशक्ति की निर्बलता है।

कफ-वृद्धि के कारण होने से इस रोग की रूक्षण तथा अपतर्पण चिकित्सा की जाती है तथा व्यायाम कराया जाता है, साथ ही प्राणशक्ति की हीनता को दूर करने के लिए इसमें स्वर्ण, मुक्ता, लौह, अभ्रक, शिलाजतु आदि का प्रयोग तथा अति व्यायाम, अति मानसिक श्रम से भी बचाया जाता है। अपतर्पण के लिए रोगी को स्वल्प तथा रूक्ष आहार पर रखा जाता है। रूक्ष, शोषक गुण वाली औषधों जैसे त्रिफला, त्रिवंग, नीम, करेला, लोध्र, बिल्वपत्र तथा शालसारादि वर्ग और न्यग्रोधादि वर्ग की औषधियों का इस रोग में प्रयोग ठीक रहता है। इनसे मूत्र में शर्करा की निकासी कम हो जाती है। रोगी को जामुन के फल की मज्जा ४ भाग, निम्बपत्र ४ भाग, आवला ४ भाग, गुड़मार-पत्र २ भाग, बिल्वपत्र २ भाग और करेला सूखा ८ भाग मिलाकर बनाया हुआ चूर्ण २ माशा की मात्रा में दिन में दो-तीन बार देने से एक-दो मास में लाभ प्रतीत होता है। या जामुन फल मज्जा के Extract में करेले, नीम, आवले व बिल्वपत्र के चूर्ण को मिलाकर गोलियां बनाके दिन में ४-६ तक दी जाती हैं। इस चूर्ण या गोली के साथ प्राणशक्ति की वृद्धि के लिए रोगी को लोह-त्रिवंग-अभ्रक-प्रवाल-शुक्ति-रजत भस्म ये ६ दवाएं १-१ भाग, शिलाजतु २ भाग, अहिफेन ½ भाग की १-१ रत्ती की बनी गोली दिन में दो बार देनी चाहिए। खदिरादिक्वाथ (ग० नि०) खदिर, कदर (खदिरभेद) और सुपारी समान-समान २½ तोला का क्वाथ या असनादियोग (भा०प्र०) असन (पीतशाल) साल, पियाल, खैर तथा शालवर्ग की दोनों चन्दन, लोध्र, सिरस, अर्जुन, दारुहल्दी, सुपारी, अगर आदि को समान-समान मिलाके बनाया चूर्ण ४-६ माशा मात्रा में देना चाहिए। स्वर्णभस्म, मुक्ता आदि के बने प्रयोग जैसे वसंतकुसुमाकर (जिसमें इक्षुरस के स्थान जामुन की भावना दी हो), स्वर्णघटित चन्द्रकान्त रस आदि में से किसी का प्रयोग दिन में एक बार करने से भी रोगी की प्राणशक्ति बढ़ती है। शिलाजीत के चन्द्रप्रभा के रूप में या स्वतन्त्र रूप में चार रत्ती की मात्रा दिन में दो-तीन बार त्रिफला के साथ प्रयोग करने से भी मूत्र में शर्करा की मात्रा कम होने लगती है। करेला खुश्क ४ भाग, जामुन २ भाग, त्रिवंग २ भाग, अभ्रक १ भाग, लोह १ भाग, शिलाजीत २ भाग और अफीम ½ भाग मिलाकर बनायी गई गोलियां दो रत्ती की मात्रा में दिन में ४ बार दे सकते हैं। रोगी को दोनों समय जौ और गेहूं की बनी रोटी केवल २ छटाक की मात्रा में करेले तथा दूसरी हरी सब्जियों के साथ लेनी चाहिए। चिकनाईरहित दही का मट्ठा २ समय लेना चाहिए तथा दो-तीन मील के लगभग प्रतिदिन भ्रमण करना चाहिए। पुराने जौ, बाजरा व गेहूं के अतिरिक्त कोदो, सावक, मूंग, अरहर, जांगल मांस तथा नाना शाक, सरसों आदि के तेल से बनाये हुए उचित मात्रा में देने चाहिए।

सिकता मेह-वृक्काश्मरी (Nephrolithiasis Nephrocalcinosis या Renal Calculus, Urolithiasis या Renal Lithiasis)

३० से ४० वर्ष की आयु के ऐसे व्यक्तियों, जिनका Metabolism ठीक न हो एवं जिनके मूत्र में Oxalates, Urates, Phosphates (Endo or Exogenous) अधिक आते हों, जिनके कारण उनके वृक्कों में विक्षोभ बना रहता हो और उनसे Colloid पदार्थ की उत्पत्ति अधिक होती हो, जिनका मूत्र अधिक अम्लीय हो, जो अन्न अधिक लेते हों, या जल कम लेते हों, या जो गर्मी में श्रम करते हों, जिनके मूत्र में Uric Acid अधिक हो, जिनकी अग्नि मन्द हो (Hypochlorhydria) या जो दूध कम पीते हों, अर्थात् जिनके भोजन में विटामिन 'ए' तथा कैल्सियम की न्यूनता हो जिनको Ch Pyelonephritis या वृक्क में जीवाणु संक्रमण हो, या जो सर्वथा श्रम न करते हों, मूत्र में सिकता जाने की शिकायत होती है, अर्थात् मूत्र में Acidosis के कारण कैल्सियम आदि Cations अधिक निकलते हैं, भोजन में कैल्सियम की कमी ने अस्थियों से अधिक कैल्सियम-फास्फेट रक्त में आ जाता है और अश्मरी का कारण बन जाता है। Parathyroid ग्रन्थि का Hormone गुर्दों की नालियों में होने वाले Phosphate के पुनर्विजयन को कम करता है। उस Hormone की वृद्धि अर्थात् Hyperparathyroidism के रोग में, जब मूत्र से यह अधिक निकलता रहता है, तब भी अस्थियों में से Calcium Phosphate रक्त में अधिक आता है और मूत्र में अधिक निकलता है (Hypercalciuria) तब वृक्क में इसकी अश्मरी बन सकती है। इसीलिए Cushing's Syndrome में भी यह अश्मरी बन सकती है। मूत्र में विद्यमान Calcium Oxalate, Cal Mag Phosphate, Uric Acid, Urates आदि के मूत्र के अन्दर बैठ जाने से ये अश्मरियां बनती हैं। वृक्कों के आशय (Pelvis) तथा उससे सम्बन्धित Papillae में सम्भवत पहले किसी जीवाणु जैसे Staphylococcus, B Coli B Proteus, आदि किसी का संक्रमण (Infection) होता है, उसके कारण वहां उत्पन्न श्लेष्म-द्रव या जीवाणु के या मैलों के ढेर या Mucopus अर्थात् किसी Colloid पदार्थ पर मूत्रगत उपर्युक्त पार्थिव द्रव्यों के निक्षिप्त हो जाने से ये बनती हैं। Papilla से यह वृक्काशय Pelvis में या Calyx में आ जाती हैं। जल कम पिया जाय जिससे मूत्र गाढा हो जाय या जब पसीना अधिक आता हो मूत्र कम आता है तब भी इनके बनने की प्रवृत्ति अधिक होती है पर जो मूत्रगत द्रव्य औरों के वृक्काशय (Pelvis) में नहीं बैठते वे किसी-किसी में क्यों बैठ जाते हैं, इसका ठीक-ठीक पता अब तक भी नहीं चला, भोजन से अश्मरी का सम्बन्ध माना जाता है। सम्भवत उसमें तत्वों का Imbalance इसका कारण हो। अश्मरी स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में, दायें की अपेक्षा बायें वृक्क में तथा मूत्राशय की अपेक्षा वृक्क में अधिक होती है। Calcium Oxalate की पथरी काली या गहरी भूरी, खुर्दरी, कठोर, कांटेदार एवं वेदनाजनक होती है। Uric Acid तथा Urates की पथरी अम्लीय मूत्र में होती तथा पीली, हलकी भूरी तथा कठोर होती है। Cal Phosphate की पथरी श्वेत और नरम होती है तथा क्षारीय मूत्र में होती है। यह अधिक सुलभ है। Cal Ox तथा Cal Phosphate की मिश्रित पथरी भी होती है जो उससे कम सुलभ है तथा Cal Ox और Uric Acid की मिश्रित पथरी भी होती है। यदि पथरी यूरिक एसिड या यूरेट्स की हो तो वह एक्स-रे में नहीं आती।

कुछ लोगों में सिकता या शर्करा के रूप में मूत्र द्वारा कुछ दाने बिना किसी विशेष कष्ट के निकलते रहते हैं। कुछ एक में छोटी पथरी वृक्क में ही रहती है तब स्त्री या पुरुष को एक ओर वृक्क-प्रदेश पर चुभन जैसा हलका दर्द रहता है। मूत्र-परीक्षा करने पर उसमें अलब्यूमिन और सूक्ष्म मात्रा में रक्त भी मिलता है। श्रम करने या सवारी करने पर उसे दर्द अधिक प्रतीत होता है। परन्तु कभी-कभी जब यह पथरी उतरकर वृक्काशय (Pelvis) तथा वृक्क-स्राविणी (Ureter) के सन्धि-प्रदेश में अड जाती है, तब उसकी दीवार में स्तम्भ (Spasm) के उत्पन्न होने से रोगी को तीव्र वृक्क-शूल (Renal Colic) उठता है। यह सहसा ही प्रारम्भ होता है। रोगी बेचैन होकर लोट-पोट हो जाता है। वेदना कटि-प्रदेश से उठकर नीचे Genitocrural Nerve की दिशा में पुरुष में अण्ड, स्त्री में भगोष्ठ या जंघा के आभ्यन्तर पृष्ठ तक जाती प्रतीत होती है (१ L के संज्ञा क्षेत्र में)। रोगी को थोडा-थोडा गाढे रंग का मूत्र बार-बार होता है। मूत्र में रक्तकण, श्वेतकण, पूय, जीवाणु तथा प्रोटीन पाये जाते हैं। रोगी का रंग फीका सा हो जाता है। वमन भी होता है तथा उसके माथे पर ठण्डा पसीना दिखाई पडता है। उसका ताप्मान नार्मल से कम, नाडी निर्बल तथा तीव्र होती है। Oxalate की पथरी अधिक कष्टदायक होती है। वृक्क-शूल का यह वेग प्राय कुछ मिनटों से २ घण्टे तक के लिए रहता है। उसके बाद पथरी के फिसलकर मसाने में चले जाने से सहसा शान्त हो जाया करता है। अश्मरी बडी हो तो रक्तमेह तथा हलकी वेदना के लक्षण होते हैं। उसका निश्चय X-Ray के द्वारा हो सकता है। इसके उपद्रव वृक्क-

वस्तिशोथ (Pyelitis), वृक्क-शोथ (Pyelonephritis) हो सकते हैं जिनसे वृक्क मे विनाश की प्रक्रिया होने लगती है। पथरी से एक वृक्क मे मूत्ररोध हो जाय तो उधर वृक्क-वस्ति मे जल या पूय एकत्रित हो जाता है (Hydronephrosis, Pyonephrosis)। वृक्कस्राविणी Ureter मे अश्मरी हो तो उसे Ureteral Stone कहते हैं। X-Ray से इसका निश्चय हो सकता है। इसके कारण होने वाले वृक्काश्मरीशूल मे रोगी Shock की अवस्था मे होता है अर्थात् उसके हाथ-पाव ठण्डे तथा स्वेद से युक्त होते है, भारी दर्द Costo-Vertebral कोण मे उठता प्रतीत होता है। वृक्क मे कैन्सर हो तो मूत्र मे रक्त अधिक होता है, वेदना तीव्र नही होती है।

चिकित्सा

रोगी को चाहिए कि वह प्रतिदिन २½ या ३ सेर जल पिये जिससे मूत्र खुलकर आता रहे। अन्न की मात्रा कम करके सब्जी, फल, दूध आदि का सेवन विशेष करना चाहिए। मूत्र के *p*H को ऊचा रखना चाहिए। क्षारीय मूत्रल औषधों—जैसे Potassium Citrate ३० ग्रेन, Potassium Bicarbonate २० ग्रेन, Spirit Chloroform ७ बूद, जल एक औंस मिलाकर दिन मे ऐसी चार मात्राओं का सेवन करने से या केवल Potassium Citrate के ४० ग्रेन की मात्रा मे दिन मे ४ बार लेने से, या Sodium Bicarbonate ६० ग्रेन, Citric Acid ४० ग्रेन के ४ औंस जल मे मिलाकर दिन मे तीन-चार बार पीने से या केवल Soda bicarb के ४० ग्रेन के दिन मे ४ बार लेने से या किसी मूत्रल औषध के लेते रहने से मूत्र खुलकर आता है तथा पथरी निकल जाती है। साधारणत इन क्षारीय मिश्रणों मे Tincture Belladonna ५ बूद मिलाकर लेते रहना चाहिए। चाय के १०० ग्राम मे सवा ग्राम, इतने ही Sorrel (पत्र-शाक) मे २ ग्राम, सोया-पालक मे ८३० मिलिग्राम, Rhubarb मे ४१० मिलि०, आलू तथा चुकन्दर मे ४० मिलि०, प्याज मे ५५ मिलि०, किशमिश-मुनक्को मे ७० मिलि०, शुष्क अजीर मे १०० मिलि० Oxalic Acid होता है, अत इनका सेवन रोगी के लिये अपथ्य है। इसी प्रकार टमाटर, गाजर, फलियो की सब्जियों मे इसकी मात्रा ३० मिलि० के लगभग होती है। गठिया करने वाले द्रव्य जैसे चौकोलेट (९० मिलि० प्रतिशत Ox Acid), दाले, मटर आदि भी रोगी के लिए अपथ्य हैं, ये Urates के वर्धक हैं। दर्द के समय मे Morphine $\frac{1}{4}$ ग्रेन (१५ मिलि०) Atropine Sulphate $\frac{1}{100}$ ग्रेन या १ मिलि० का सम्मिलित सूचीवेध देना पडता है, अथवा इसके समान प्रभाव रखने वाली औषध Pethidine Tablet (Meperidine, Demerol, Dolantin) १०० मिलि० मात्रा मे मुख द्वारा देवे, आवश्यकता हो तो ४ घण्टे मे इसे दुहरायें या इसका २५ मिलि० का त्वचा द्वारा इंजेक्शन दें। Tincture Belladonna १५ बूद, Potassium Bromide १५ ग्रेन, Potassium Bicarb २० ग्रेन तथा Potassium Citrate ३० ग्रेन, SP Chloroform ७ बूद की मात्रा के देने से भी लाभ हो सकता है। Spasmocibalgin ३ ग्राम या Papaverine के १०० मिलि० के देने से भी यही प्रभाव होता है। रोगी के वृक्क-प्रदेश पर गर्म बोतल रखने या उसे गर्म जल मे बिठाने से भी यूरिटर का स्तम्भ (Spasm) ढीला पड सकता है। वृक्क के आशय मे शोथ के कारण अश्मरी बने तो शोथ को हटाने के उपाय करने चाहिएँ अर्थात् उचित Terramycin आदि Antibiotic औषधिया देवें। वहा पर शोथ Colon-bacillus के संक्रमण के कारण होता है जिससे वृक्क प्रदेश पर हलका दर्द रहता तथा मूत्र बार-बार आता कुछ धुधला सा दुर्गन्धित तथा अधिक अम्लीय होता है। छोटी अश्मरिया टूटकर निकल सकती हैं, बडी अश्मरिया यदि अवरोधक हो जायें या वृक्क को हानि पहुचाने का कारण हो जाये तो शल्यकर्म द्वारा निकाल दी जाती है। Ureteral Stone के लिये Morphine $\frac{1}{4}$ ग्रेन की मात्रा मे शिरा द्वारा देना चाहिए। आवश्यक हो तो फिर इसे त्वचा द्वारा दुहरायें। Atropine $\frac{1}{100}$ ग्रेन त्वचा द्वारा दी जा सकती है या Methantheline Bromide अर्थात् Banthine को १ ग्राम मात्रा मे शिरा द्वारा देने से Spasm दूर होकर यह अश्मरी नीचे उतर सकती है। Spasmindon Injection या गोली या Probanthine की गोली के देने से भी इस रोग मे आराम रहता है।

आयुर्वेद में

सिकतामेह को पाचकाग्नि की मन्दता एव श्लैष्मिक अजीर्ण के कारण मूत्र मे कफजनित दोष के बढ जाने से उत्पन्न होने वाला रोग कहा है, जिससे इसकी गणना कफज मेहो मे की गयी है। वृक्को के आशय (Pelvis) मे कफदोष की वृद्धि होने पर वहा जीवाणु संक्रमण हो जाता है, फिर उसके विपरीत वहा मूत्रगत द्रव्यो के बैठने से पथरिया बनने लगती हैं। इसीलिए रोगी मे कफदोष की शान्ति करनी चाहिए अर्थात् रोगी को स्नेहरहित लघु आहार पर रखना चाहिए। निम्बादि चूर्ण या किसी क्षार-युक्त चूर्ण के भोजन के पहले दो बार देने, अन्न की मात्रा कम कर देने तथा साधारण व्यायाम करने से उसे

लाभ होता है। मूत्र-प्रवर्तक औषधियो जैसे अति जलपान, निम्बूरस तथा अन्य फलरसो के लेते रहने या सुकुमार-कुमार घृत (पुनर्नवा ४००, दशमूल, शतावरी, बला, असगन्ध, पचतृणमूल, गोखरू, शालिपर्णी, गिलोय, अतिवला ४०–४० तोला, आठ गुणा जल में पका, कषाय बना, घृत १२८ तोला, एरण्ड तेल ६४ तोला, सोठ, मुनक्का, छोटी पीपल, मुलहठी, संधव ८-८ तोला, अजवायन १६ तोला, गुड १२० तोला) एक तोला दिन मे दो वार, या यवक्षार, मर्जक्षार, नवसार, गोखरू, कुलथी, हजरुलयहूद, समान भाग का चूर्ण तीन माशे को मात्रा मे दो वार देने से मूत्र खुलकर आता है। इस रोग मे शिलाजतु का यवक्षार के साथ या गोखरू, पाषाणभेद के कषाय के साथ प्रयोग भी हितकर है। कुलथी क्वाथ के पीने मे इसी प्रकार खरबूजे के सेवन से खरबूजे के छिलके के क्वाथ से तथा मक्की के बालों की चाय के चार औंस मात्रा में प्रतिदिन पीते रहने से पथरी निकलती है।

'अश्मरी' के लिये कुछ एक उपयोगी प्रयोग नीचे दिये जाते हैं —

(१) कुलत्थक्वाथ (वृ नि.र) कुलथी १ छ. के क्वाथ में संधव लवण मिलाकर दिन में एक वार पिलाएं।

(२) शिग्रुक्वाथ (वृ नि र.) सोहाजने तथा वरुणत्वक् समान के २½ तोला के क्वाथ में यवक्षार १ माशा डालकर पिलाएं।

(३) शुण्ठयादिक्वाथ (यो र) सोठ, पाषाणभेद, सोहाजना, वरुणत्वक्, अग्निमन्थ, गोखरू, अमलतास का गूदा, हरीतकी समान-समान के २½ तोला के क्वाथ में यवक्षार, संधव मिलाकर २ रत्ती हींग की गोली के साथ दें।

(४) वरुणादिक्वाथ (भै र) वरुणत्वक्, पाषाणभेद, सोठ, गोखरू समान-समान के २½ तोला के क्वाथ में यवक्षार तथा खाड मिलाकर पिलाए।

(५) पाषाणभेदादिक्वाथ (च से.) पाषाणभेद, वरुणत्वक्, गोखरू, ब्राह्मी समान-समान के २½ तोला के क्वाथ में गुड डालकर उसे शिलाजीत ३-४ रत्ती की गोली के साथ पिलाए।

(६) शतावरी योग (यो र) शतावरी स्वरस या फाण्ट को दूध के साथ प्रतिदिन दें, दूध में मिश्री डाले।

(७) गोक्षुरचूर्ण (हा स स्था ३) गोखरू के चूर्ण को स्वल्प स्वर्णमाक्षिक भस्म के साथ, ३ माशे की मात्रा में, दूध के साथ रोज दें। या गोक्षुरचूर्ण को शहद से चटाए। या गोक्षुरचूर्ण और यवक्षार मिलाकर जल से दें (यो र)।

(८) शिलाजतुयोग (यो र.) शिलाजीत ४-६ रत्ती को शहद के साथ मिलाकर चटाएं। या दूध के साथ दें।

(९) हरिद्रायोग (यो र) हल्दी ३ माशा को गुड १ तोला में मिलाकर खिलाएं।

(१०) केसरयोग (वृ.नि.र) २ रत्ती केसर को घृत के साथ पीसकर दिन में १ वार ३ दिन मात्र चटाएं।

(११) तिलादिक्षार (यो.र) तिलनाल के क्षार, या तिलनाल, अपामार्ग पलाशकाष्ट, यवकाण्ड और कदली पत्र में से २-४ द्रव्यो के क्षार को दूध के साथ दें। मात्रा १ माशा दिन में २ वार। या तिलनाल, अपामार्ग, करेले की वेल, जौ के डठल, आदि की भस्म को कपडछन कर उसे १-२ माशा की मात्रा में ७ दिन दूध से दें (र.चि.म.)।

(१२) वरुणगुड (भा प्र.) वरुणत्वक् ६¼ सेर, जल १ मन १० सेर पकाकर १२½ सेर शेष रखें। ६¼ सेर गुड डाल अवलेह बनाए। पाक से पहले उसमें गोखरू, सोंठ, पाषाणभेद, शिलाजीत, इलायची छोटी, धनिया, ककड़ीबीज, खीरे के बीज, पेठे के बीज, मुनक्का, कमलगट्टा, सोहाजने की छाल, विडग, प्रत्येक ५ तोला का चूर्ण मिलाए। १-२ तोला मात्रा।

(१३) कुलत्थादि घृत (भै र) कुलथी, जवाखार, विडग, शीतल चीनी, गोखरू, पेठा बीज, संधा नमक, खाड मिलित १ सेर के कल्क, घृत ४ सेर तथा वरुणत्वक् ८ सेर और जल ६४ सेर से तैयार किया क्वाथ १६ सेर, इन सबसे बनाया घृत १ तोला मात्रा में १ वार रोज दें।

पथ्य—कुलथी, मूग, गेहू, पुराने चावल, पेठा, अदरक, जौ, नारियलजल, इक्षुरस, गुडयुक्त दूध, मुनक्को की चाय, अनार, खीरा, ककडी, खरबूजे, पेठे आदि के बीजो की गिरी आदि पथ्य हैं।

अश्मरी जनित या वृक्कमूत्राशय में शोथ के कारण उत्पन्न या मूत्रमार्ग में शोथ के कारण उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र के लिये उपयोगी कुछ योग निम्नलिखित है .—

(१) गोक्षुरक्वाथ (भै र) गोखरू २½ तोला के क्वाथ में यवक्षार १-२ माशा डालकर पिलाए या मिश्री डालकर दें।

(२) धात्र्यादिक्वाथ (भै.र) आवला, मुनक्का, मुलैठी, गोखरू, विदारी समान-समान के २½ तोला के क्वाथ में खाड डाल के दें।

(३) शतावर्यादिक्वाथ (भा प्र.) शतावरी, गोखरू, कसेरू, कुश, कास, इक्षुमूल समान-समान का क्वाथ शहद मिला के दें ।

(४) हरीतक्यादिक्वाथ (भै र.) हरड, गोखरू, पाषाण-भेद, धमासा, अमलतास समान-समान के २½ तोला का क्वाथ मधु से दें ।

(५) शतावरीक्वाथ (यो.र) शतावरी २½ तोला के क्वाथ में मिश्री डालकर पिलाए या यवक्षार १-२ माशा मिलाकर दें ।

(६) मूत्रकृच्छ्रहर (भै र) विदारी, गोखरू, मुलैठी, नागकेसर १-१ तोला। जल ३२ तोला में पकाए । ८ तोला शेष रख के मधु मिला के १ रत्ती रससिन्दूर के साथ दें ।

(७) त्रिकण्टकादि सिद्धपय (च.द.) गोखरू, शतावरी, एरण्ड मूल समान-समान के २ तोला से साधित दूध पिलाए ।

(८) एलाचूर्णयोग (यो.र.) इलायची चूर्ण २ माशे केले के पानी से २-३ बार दें । एलादिचूर्ण (भै.र) इलायची छोटी, पाषाणभेद, शिलाजीत, पिप्पली समान के चूर्ण को ३-४ माशे की मात्रा में गुड दो गुणा के साथ मिलाकर दें ।

(९) श्वेतचन्दनयोग (यो.र.) श्वेतचन्दन के चूर्ण को चावलों के पके जल से दें ।

(१०) यवक्षारयोग (यो.र) यवक्षार १ माशा, कूष्माण्डरस ५ तोला, खाण्ड १½ तोला मिलाकर पिलाए ।

(११) एलादियोग (यो र) इलायची तथा गोखरू समान-समान के चूर्ण का ३ माशा मात्रा में मधु से चटाए ।

(१२) गोक्षुरादिगुग्गुलु (शा. स) गोखरू २½ सेर । जल ६ गुणा में पका चतुर्थांश शेष रखें । गुग्गुलु ३५ तोला मिलाए । अवलेह बनाए । कुछ गाढा होने पर उसमें त्रिकटु, त्रिफला, मुस्ता प्रत्येक द्रव्य ५-५ तोला मिला आवें माशे की गोलिया बनाए । २ गोली दिन में ३ बार दें । इससे मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी तथा मूत्राघात शान्त होते हैं । वृक्काशयशोथ में इसे चन्दनासव या पञ्चतृणमूल क्वाथ से दे सकते हैं ।

पथ्यापथ्य—पुराने चावल, मूग, तक्र, गोदुग्ध, घृत, पेठा, परवल, खीरा, ककडी, खरबूजा, नारियल, आवला, मिश्री आदि पथ्य हैं। मद्य, मास, माष, लवण, उष्णगुणाहार, तेल, अजीर्णकारक सर्व आहार, हींग, तिल, सरसो, अम्लाहार अपथ्य हैं ।

मूत्राघात या मूत्रावरोध के लिए निम्नलिखित योगो में से किसी का प्रयोग करना चाहिये —

(१) त्रिफलादि क्वाथ (वृ.नि.र.) त्रिफला २½ तोला के क्वाथ में लवण डालकर उसे १-२ रत्ती रससिन्दूर को शहद से चटाकर उस पर पिलाए ।

(२) त्रिफलाचूर्ण (यो.चि) त्रिफला ३ माशा चूर्ण में थोडा शिलाजीत तथा लवण मिलाकर उसे जल से दें ।

(३) गोक्षुरक्वाथ (यो. र) गोखरू २½ तोला के क्वाथ में खाड मिलाकर उसके साथ चन्द्रप्रभावटी दें ।

(४) गोक्षुराद्यवलेह (भा प्र.) गोखरूक्षुपपचाग ६½ सेर, जल १६ सेर पकाकर चतुर्थांश रखें । खाड ३ सेर मिला के अवलेह बनाए । पाक काल में त्रिकटु, त्रिजातक प्रत्येक १०-१० तोला वशलोचन ४० तोला मिलाए । १-२ तोला मात्रा दें ।

(५) गोक्षुरादिगुग्गुलु (मूत्रकृच्छ्र में देखें) दिन में २-३ बार दें ।

(६) पाषाणभेदादिक्वाथ (यो र) पाषाणभेद, वरुण-त्वक्, गोखरू, दोनो कटेली, एरण्डमूल समान-समान के २½ तोला का क्वाथ पिलाए ।

(७) दाडिमाम्बुयोग (वृ मा.) अनार के रस में छोटी इलायची का चूर्ण तथा सोठ का चूर्ण डालकर पिलाए ।

पथ्यापथ्य—पुराने चावल, तक्र, दूध, दही, माष का यूष, पेठा, परवल, खजूर, नारियल आदि पथ्य हैं । अधिक व्यायाम, व्यवाय, मलबन्ध, विदाही, विष्टम्भी रूक्ष भोजन अपथ्य हैं ।

तीव्र वृक्काशय शोथ—पूयमेह (Acute Pyelonephritis, Bacteriuria, Bacilluria)

वृक्क के आशय (Pelvis) में तथा उससे ऊपर की ओर सम्बन्धित Papillae तथा Pyramids में और नीचे की तरफ सम्बन्धित मूत्रस्राविणी (Ureter) में शोथ होकर वहा से पूय मूत्र में आने लगे तो इस रोग को वृक्काशय शोथ या पूयमेह (Pyelitis) कहते हैं । Pelvis के ग्रस्त होने पर वृक्क भी न्यूनाधिक ग्रस्त होता है इसलिए इसे Pyelonephritis भी कह देते हैं । एक या दोनो वृक्क ग्रस्त हो सकते हैं ।

वृक्काशय (Pelvis) में किसी प्रकार का विक्षोभ रहे अर्थात् वहा अश्मरी बन जाय या वहा मूत्र अधिक देर तक रुका रहे तो उसके विक्षोभ से वहा शोथ हो जाता है । वहा शोथ हो जाय तो उसकी प्रेरक शक्ति (Peristalsis) के घट जाने से वहा मूत्र देर तक रुका रहता है जिससे और शोथ बढता है । साधारणत जिन कारणो से वहा

मूत्र देर तक रुका रहता है अर्थात् जिन कारणो से Hydronephrosis (जल मूत्र) बढता है उनमे यह रोग उत्पन्न हो जाता है। गर्भिणी में विशेषत प्रथम बार की सगर्भा स्त्री मे चौथे पाचवें मास मे गर्भस्थ शिशु के सिर के वस्तिगुहा (Pelvis) के ऊपर के किनारे पर दबाव पडने से, विशेषत दाईं ओर का Ureter दब जाता है जिससे उधर के वृक्काशय तथा Ureter के ऊपर के भाग मे मूत्र का सचय (Hydronephrosis) अधिकाधिक होने लगता है। बहुगर्भा स्त्री मे यही लक्षण ६ठे-७वें मास मे होता है। इस प्रकार ५वें से ७वे मास तक वृक्काशय तथा Ureter के ऊपर के भाग की प्रेरक शक्ति बहुत घटी हुई होती है। स्त्रियो में तो युवावस्था में अर्थात् २०–४० वर्ष की आयु में, पुरुषों मे बडी आयु में जब मूत्र-मार्गावरोध अधिक होता है, यह रोग अधिक पाया जाता है। Ureter मे अवरोध इसका कारण बन जाता है। गर्भ, वृक्क तथा Ureter मे अश्मरी के होने तथा मूत्राशय, प्रोस्टेट ग्रन्थि, तथा मूत्र-नाली (Urethra) के रोगों में भी वृक्काशय मे मूत्र-सचय (Hydronephrosis) हो जाने का यह उपद्रव हो सकता है। छोटे बच्चो में जब यह होता है तो ऐसे बच्चो का एक या दोनों वृक्क जन्म से रुग्ण होते हैं। मधुमेह, चि० स्था० वृक्क रोग तथा रक्तभार वृद्धि मे भी इस रोग के होने की प्रवृत्ति रहती है।

जब वृक्काशय तथा उससे सम्बन्धित Ureter मे मूत्र के रुके रहने से वहा विक्षोभ बना रहता है, तब नीचे मूत्र-मार्ग मे से सीधे या उसके पास की Periurethral लसीका-वाहिनियो के द्वारा मूत्रगत जीवाणु का या बृहदन्त्र (Colon) की लसीका-वाहिनियो के द्वारा वृक्क की लसीका-वाहिनियों मे आन्त्रिक जीवाणुओ (Bacillus Escherichia Coli) का सक्रमण हो जाता है। अथवा रक्त-वाहिनियों के द्वारा वहा मे इसी जीवाणु का सक्रमण नीचे से ऊपर की ओर होता है। बहुधा (लगभग ९० प्र०श० मे) यह रोग इस जीवाणु के सक्रमण से होता देखा जाता है जिससे पता लगता है कि आतों मे किसी प्रकार का शोथ होने से भी यह रोग हो सकता है। पर आतो मे शोथ होने पर भी कई बार यह रोग नहीं होता तथा कई बार यह रोग होता है पर आतों मे कोई रोग नही होता। सभव है हमारे Catheter डालते रहने से बाहर से इन जीवाणुओ का प्रवेश मूत्र-मार्ग मे हो जाता हो। इस प्रकार अधिकत यह रोग Gram negative जीवाणु सक्रमण से होता है।

कभी-कभी Staphylococci albus या कभी-कभी aureus, Streptococci (Faecalis) Pseudomonas Pyocyaneus, Proteus Vulgaris, Aerobacter Aerogenes, Pseudomonas aeruginosa आदि भी वहा पाये जाते है वृक्क म पहले से किसी प्रकार का अवरोध हो तभी ये वहा रोगजनक होते है अन्यथा नही। मूत्र करने पर उसके मध्यम भाग के नमूने मे इन जीवाणुओ की जाच करनी चाहिए। तथा इस मूत्र में जब तक ये जीवाणु मिलें चिकित्सा को जारी रखना चाहिए।

विकृति

तीव्र (Acute) रोग मे वृक्काशय की श्लेष्मकला मे रक्त अधिक सचित हो जाता है जिससे वह फूली हुई रक्त-वर्ण दीखती है। श्लेष्मकला मे नीचे के स्तर (Submucous या Subepithelial Tissue) मे शिराए रक्त से पूर्ण होती हैं। वृक्काशय फैलकर आकार मे बडा हो जाता है, उसमे पूय भी हो सकती है। Ureter के ऊपर के भाग की दीवार भी सूजकर मोटी हो जाती तथा उसका स्रोत चौडा हो जाता है। वृक्क मे भी कुछ शोथ (Cloudy Swelling) होता है। वृक्क मे कही-कही Tubules मे तथा Pyramids और Medulla के स्नायुतन्तु मे पूय-भाव भी हो जाय तो इसे वृक्काशय तथा वृक्क दोनो का शोथ (Pyelonephritis) कहते है। अधिकत यह रोग इसी रूप मे होता है। रोगग्रस्त वृक्क के Tubules मे कही-कही Polymorph श्वेताणुओं का सचय हुआ-हुआ होता है तथा इनके आसपास या Glomerular Capsules के आसपास भी इन श्वेताणुओं का सचय हुआ-हुआ होता है पर Glomeruli मे शोथ नहीं होता। Ch Pyelonephritis की Biopsy परीक्षा से पता लगता है कि कुछ एक Tubules मे लघुता या Atrophy हो गई है। इनके आसपास के अवयव मे Fibroblasts का सचय हुआ-हुआ तथा Scar Tissue उत्पन्न हुआ-हुआ मिलता है और इनसे सम्बन्धित Glomeruli भी बेकार हो गयी होती है। Arterioles की दीवार मोटी हो गई होती है। Glomeruli के चारो ओर Fibrosis की प्रक्रिया हो रही होती है तथा उनमे Hyalinization की प्रक्रिया जारी हुई-हुई मिलती है। परन्तु अभी तक वृक्क मे से किसी जीवाणु को Culture नहीं किया जा सका।

लक्षण

पूयमेह का रोग युवती स्त्रियो मे अधिक होता है। गर्भिणी मे विशेषत होता है तथा दाईं ओर के वृक्क मे विशेषत होता है क्योंकि उधर के Ureter पर गर्भ का दबाव पडने की अधिक सम्भावना रहती है। बाल्यावस्था मे विशेषत बालिकाओ मे यह रोग बहुत होता है। तीव्र, मध्यम

तथा मन्द पर चिरस्थायी—इन रूपो मे यह रोग होता है।

तीव्र रूप (Acute Pyelonephritis) मे तीव्र सक्रमण के कारण से सर्दी के साथ सहसा ज्वर चढता है और १०२-१०४ फा० डिग्री तक हो जाता है जो बराबर बना रहता है, या न्यूनाधिक हो जाता है, या बीच-बीच मे उतर भी जाता है, जिससे विषमज्वर का भ्रम हो जाता है। वृक्काशय मे से विप-सचार (Toxaemia) के कारण सिर-दर्द, अरुचि, वमन, सर्वाग-शैथिल्य (Malaise) के लक्षण भी होते है, रोगी मे पाण्डुता का लक्षण भी होता है। एक वृक्क-प्रदेश पर, अधिकतर दाये पर, मन्द-मन्द दर्द होता है जो या तो ठहर-ठहरकर उठता है या लगातार रहता है। वहा पर स्पर्शाक्षमता का लक्षण भी होता है वहा से यह दर्द आगे Iliac fossa तथा Pubis तक आता है। मूत्राशय (Bladder) के विक्षुब्ध रहने से मूत्र वार-वार (लगभग ½-½ घटे पर) थोडा-थोडा आता है तथा जलन के साथ आता है। उसमे पूय तथा कुछ रक्त का अश भी (Pyuria, Haematuria) होता है अर्थात् उसमे Pus Cells होते है Bacteria तथा Leucocytes भी होते हैं जिससे वह धु धला और दुर्गन्वित होता है। अर्थात् Colon bacilli के होने पर उसमे मछली की सी बू आती है। और Proteus के सक्रमण के होने पर उसमे अमोनिया की सी बू आती है। वह अम्लीय होता है। मूत्राशय मे मूत्र के न होने पर भी मूत्र लगा रहता है (Strangury) रक्त-परीक्षा करने पर Polymorphonuclear नामक श्वेत-कणो मे वृद्धि पायी जाती है। नाडी तीव्र एव निर्वल होती है। B S R तीव्र हुआ मिलता है।

मध्यम (Subacute) रूप मे यह रोग अधिकतर होता है। सर्दी के साथ नहीं चढता, तापमान ९९-१०० डिग्री फा० के लगभग रहता तथा समय-समय पर न्यूनाधिक होता रहता है। विष-सचार (Toxaemia) के कारण भोजन के लिए अरुचि, पाण्डुता, सिरदर्द आदि लक्षण रहते है। मूत्र गहरे रग का, धु धला सा होता एव वार-वार थोडा-थोडा आता है। कमर मे एक ओर वृक्क-प्रदेश पर हलका दर्द भी होता है। वहा पर दवाने से स्पर्शाक्षमता का लक्षण भी होता है। मूत्र की परीक्षा करने पर उसमे कुछ Albumen, Pus Cells, रोग के कारणभूत जीवाणु, रक्तकण, Granular Casts तथा कुछ Epithelial Cells पाये जाते है जो रखने पर नीचे वैठ जाते है। मूत्र प्रबल अम्लीय प्रतिक्रिया का होता है, मूत्र के प्रति मिलिलि० मे १ से १० लाख तक जीवाणु पाये जाते है तथा वह मछली की सी दुर्गन्ध से युक्त होता है। रक्त की परीक्षा करने से उसमे श्वेतकणो की सख्या १०-१५ हजार प्रति क्यूबिक मिलिमीटर पायी जाती है, जिनमे Polymorphonuclear नामक श्वेतकण विशेष बढे होते है। नाडी की गति तापमान की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है। रोगी को मलबन्ध रहता है। चिकित्सा से यह रोग कुछ दिन मे ही ठीक हो जाता है पर उचित चिकित्सा न मिलने पर यह चिरस्थायी रूप ले लेता और वृक्को के फेल होने तथा रक्तभार वृद्धि इन दो उपद्रवो का कारण हो जाता है।

चिरस्थायी वृक्काशय-शोथ (Ch Pyelitis)

जब यह रोग दो-तीन सप्ताह रहकर क्रमश ठीक हो जाने के बाद फिर भी समय-समय पर होता रहे अथवा विना तीव्र रूप मे हुए मृदुरूप मे चार मास से अधिक समय तक बना रहे, तो इसे चिरस्थायी वृक्काशय-शोथ कहते है। स्त्री मे गर्भावस्था से तथा पुरुष मे प्रोस्टेट ग्रन्थि या मूत्र-मार्ग मे किसी रोग के होने के बाद या वृक्क मे अश्मरी होने के बाद यह आरम्भ होता है। इस अवस्था मे मूत्राशय के विक्षोभ के लक्षण, जैसे वार-वार मूत्र के वेग के होने, उसके धु धले तथा दुर्गन्वित होने, रखने पर उसके नीचे पूय के बैठ जाने, और कभी-कभी मृदु ज्वर के हो जाने के लक्षण रहते हैं। हलके-हलके विप-सचार (Toxaemia) के कारण शरीर के निर्वल एव अशक्त रहने, सिर मे दर्द रहने, भोजन के लिए अरुचि के रहने तथा शरीर मे पाण्डुता के रहने के लक्षण रहते है। वृक्क-प्रदेश पर दर्द भी होता है। ऐसी अवस्था महीनो अथवा वर्षो तक रहती है।

जीर्ण वृक्काशय-शोथ तथा वृक्क-शोथ (Chronic Pyelonephritis, Pyelonephritic Contracted Kidney)

सम्भवत Ch Pyelitis जिसे कहते हैं वह Ch Pyelonephritis ही होता है अर्थात् वृक्क अवश्य ग्रस्त होता है। छोटी आयु की स्त्रियो मे जिन्हे पहले Pyelitis हो चुका हो या वडी आयु के पुरुषो मे, जिन्हे Prostate के बढने की शिकायत हो यह रोग मे हो जाता है। यह एक सुलभ रोग है। एक या दोनो ओर हो सकता है। वृक्काशय Pelvis मे से शोथ ऊपर की ओर वृक्क मे प्रसरण कर जाय, जिससे अनेक मूत्र-स्राविणियो (Tubules) के प्रान्त भाग (Distal Parts) ग्रस्त हो जाये और उनमे शोथ एव पूयभाव हो जाय, जैसा कि वडी आयु के मधुमेही व्यक्ति मे होता है, तो इसे Chronic Pyelonephritis कहते हैं। इसमे वृक्को के Medulla मे Necrosis या मृत्यु या Scarring की प्रक्रिया हो जाती है। अर्थात्

मूत्र-नालियो के स्थान पर स्नायुतन्तु आ जाता है। धमनिया कठोर होकर बन्द हो जाती हैं (Endarteritis) रुग्ण वृक्क मे Interstitial Fibrosis हो जाता है जिससे वह शुष्क सा होकर आकार मे छोटा हो जाता है (Pyelonephrotic Contracted Kidney) यदि मूत्र मे अलब्यूमिन, पूय, श्वेतकण, Epithelial सैल्स तथा जीवाणु आते रहें, ज्वर, अन्नारुचि, कृशता, पाण्डुता तथा विष-सचार के लक्षण हो, मूत्र लगकर आवे, जल्दी-जल्दी आवे, अधिक आवे (Polyuria हो), वृक्क-प्रदेश पर दर्द हो तो इस रोग का सन्देह करना चाहिए। कई बार रोगी को चिर-वृक्काशय-शोथ होता है पर चिकित्सक को उसका पता नही चलता। यदि रोगी के मूत्र मे अलब्यूमिन हो, उसका मूत्र पतला हो, Polyuria हो विशेषत Nocturia या रात्रिमेह हो, अरुचि, सर्वांग शैथिल्य, नैर्बल्य, Dysuria, मन्द ज्वर, पाण्डुता, रक्तभार-वृद्धि, सिरदर्द आदि लक्षण हो तथा मूत्र मे Polymorphs तथा पूय हो तो इस रोग का सन्देह करें। Bacteriurea इस रोग का प्रधान सूचक लक्षण है। इसी प्रकार Granular या Leucocyte Casts मिलें तो भी इस रोग का सन्देह करें। इस अवस्था मे जब एक वृक्क मे या दोनो मे यह रोग हो अर्थात् Atrophic Pyelonephritis देर तक रहें तो मूत्रगत विष शरीर से भली प्रकार नही निकल पाते, जिसमे मूत्रविष-सचार (Uraemia) के लक्षणो के होने का भय रहता है। यह रोग वर्षों तक मृदु रूप मे रहता तथा अन्त मे Uraemia से मृत्यु होती है। इस रोग मे एक या दोनो वृक्को को रक्त की मात्रा के ठीक-ठीक न मिलने मे रक्तभार-वृद्धि का लक्षण विशेषत रहता है। मूत्र-विष-सचार तथा रक्तभार-वृद्धि—ये दोनो इसके उपद्रव समझने चाहिएँ। यदि किसी मे ३० वर्ष की आयु से पहले ही रक्तभार बढा हुआ हो तो किसी एक वृक्क मे इस रोग का सन्देह करना चाहिए। Intravenous Pyelography से तथा रक्त मे Urea की कुछ वृद्धि से इस रोग का निश्चय हो जाता है। इसीलिये यदि कोई युवती पाण्डुरोग, रक्तभार-वृद्धि, अशक्ति, बार-बार मूत्र आने तथा अधिक मूत्र आने (Polyuria) की शिकायत से आये तो इस रोग का सन्देह करना चाहिए। रोग एक वृक्क मे ही हुआ करता है। अत Nephrectomy के द्वारा रोगी को रोगमुक्त किया जा सकता है।

भेदक लक्षण

यदि स्पर्शाक्षमता का लक्षण वृक्क-प्रदेश पर हो तथा आगे की ओर पसलियो और नाभि के मध्य मे Rectus के किनारे पर विशेष हो और मूत्र सम्बन्धी उपर्युक्त लक्षण हो, तो इस रोग का सन्देह कर लेना चाहिए। वृक्काश्मरी का पता तीव्र शूल (Colic) तथा Radiography से लग जाता है। मूत्राशय-शोथ (Cystitis) मे, जो कि प्रोस्टेट की वृद्धि या अश्मरी के कारण होता है, ज्वर नही होता तथा तब मूत्र के अन्त मे दर्द होता है। Intravenous Pyelography से एक ओर का वृक्काशय तथा कुछ Calices फैले हुए दिखाई पडते है। रुग्ण वृक्क आकार मे छोटा दीखता है। उसके Calices कुछ फैले हुए दिखाई पडते है। इस परीक्षा से जीर्ण रोग का ठीक-ठीक पता चल जाता है। Urine Culture विधि से जीवाणु की किस्म का ठीक-ठीक पता चल सकता है। इस रोग मे मूत्र-स्राविणियो के निचले सिरे विशेष ग्रस्त होते है जिससे वृक्क की Concentrating Power कम हो जाती है जिससे मूत्र अधिक आता है। जलभाग तथा सोडियम का विलयन कम हो जाने से मूत्र पतला और अधिक आता है। रक्त मे सोडियम के कम लौटने से Acidosis का लक्षण होता है।

साध्यासाध्यता

आरम्भ मे ही इस रोग की उचित चिकित्सा की जाये तो वह कुछ सप्ताहो मे ठीक हो जाता है तथा इस रोग के जीर्ण हो जाने या वृक्क मे पूयभाव (Pyonephrosis या Pyelonephritis) हो जाने की आशका नहीं रहती। परन्तु यदि वृक्क मे शोथ थोडा-बहुत बना रहे तो नीचे के मूत्र-मार्ग से या रक्त द्वारा बार-बार वहाँ जीवाणु-सक्रमण हो जाने का भय रहता है और इसीलिए जीर्ण वृक्क शोथ का रोग अच्छा नही हो पाता।

चिकित्सा

तीव्र वृक्काशय-शोथ की चिकित्सा

रोगी को आराम मे गर्म कपडो मे लेटे रहना चाहिए तथा उसे ५, ६ औंस करके दूध दिन मे कई बार पृथक् या चाय के साथ मिलाकर दिन मे १-१½ सेर की मात्रा मे दे देना चाहिए। दिन मे ५-७ औंस ग्लूकोज़ फलरसो या Squashes के साथ या निम्बू के रस के साथ मिलाकर देना चाहिए। दिन मे जितना मूत्र आता हो उतना तथा आधे लिटर के लगभग जल भी रोगी को पिला देना चाहिए (४-६ पा० दे०)। वृक्क-प्रदेश पर Kaolin पुल्टिस बाध देनी चाहिए या गर्म बोतल रखनी चाहिए। मूत्रगत पूय या जीवाणु की शान्ति के लिए Sulphadimidine या Sulphafurazole (Sulfisoxazole, या

Gantrisin) को पहले दो और फिर १ ग्राम मात्रा मे ६-६ घण्टे पर देने से या Sulphatriad को १ ग्राम की मात्रा मे ६-६ घण्टे पर ७ दिन देने से और साथ ही Sodium Citrate तथा Sodium Bicarbonate के ३०-३० ग्रेन Syr aurant ३० बूद जल १ औंस का या Sodium Potassium cit को १० ग्रेन मात्रा मे ४-४ घण्टे पर देने से यह रोग शान्त हो जाता है। मूत्र लगता हो तो Hyoscyamus भी देना चाहिए। या Sulphamethizole (Urolucosil, Warner) १०० मिलि० दिन मे चार वार देना चाहिए । इसके साथ क्षारौषध नही देनी चाहिए।

Cycloserine (Oxamycin) २५ ग्राम दिन मे २-३ वार देने से E Coli का सक्रमण शान्त हो जाता है। इसे १४ दिन जारी रखना चाहिए। यह औषध निर्विष और निरुपद्रव है। गर्भिणी का भी दी जा सकती है।

Kanamycin भी मूत्र-मार्ग के जीवाणुओ के लिए उत्तम घातक औषध है। विशेषत B Coli, Proteus Vulgaris, Aerobacter aerogenes के लिए ½ ग्राम मात्रा मे मास द्वारा दिन मे दो वार १४ दिन देनी चाहिए।

Polymyxin B (Bacillus Polymixa से वना) Pseudomonas Pyocyanea जीवाणुओ के लिए घातक है। २½ लाख यूनिट की मात्रा मे N Saline या १% Proc Hydro Solution मिलाकर मास द्वारा प्रति ४-६ घण्टे पर दो दिन दी जाती है।

Penbritin, जो एक पेनिसिलिन Ampicillin का व्यापारिक नाम है जो B Coli Streptococci आदि के Gram Negative तथा Gram Positive दोनो के विपरीत कार्य करती है, २५०-५०० मिलि० मात्रा में मुख द्वारा प्रति ६ घण्टे पर खाने से ½ घटे पहले १० दिन तक दी जाती है। यह इस रोग की उत्तम औषध है।

Nitrofurantoin (Furadantin) मूत्र-मार्ग के अन्दर विद्यमान Proteus, E Coli, Ps Pyocyaneus सक्रमण के लिए उपयुक्त औषध है। मूत्र के Gram Positive तथा Negative दोनो जीवाणुओ के लिए घातक है। १०० मिलि० मात्रा मे दिन मे चार वार भोजन के वाद तथा वालको को २५-५० मिलि० मात्रा मे दिन में ४ वार मुख द्वारा १ सप्ताह या १० दिन तक दी जाती है। अरुचि, वमन आदि उपद्रवकारक हो सकती है। गर्भिणी को भी दी जा सकती है। इसके देने के वाद ज्वर, मूत्रसम्वन्धी लक्षण शीघ्र शान्त हो जाते हैं तथापि इसे १-१½ सप्ताह जारी रखना चाहिए। गुर्दे निर्वल हो, Urea को भली प्रकार न निकालते हो तो औषध का प्रयोग नहीं करना चाहिये, एक मास वाद फिर दे सकते है।

Mandelamine, Methenamine (Mandelic Acid तथा Hexamine) ५ ग्राम मात्रा में दिन मे तीन वार १०-१२ दिन तक देनी चाहिए (इसके साथ क्षारीय मिश्रण न दें)। इन औषधियों मे से Cycloserine तथा Ampicillin ये ही इस रोग मे अधिक उपयुक्त होती है। Subacute रोग में भी इन्ही में से किसी को २५० मिलि० मात्रा मे दिन मे १ वार कुछ मास तक दे देना चाहिए।

तीव्र रोग मे इस चिकित्सा के समाप्त करने पर तथा उसके चार दिन वाद और फिर २ मास वाद मूत्र-परीक्षा करके देखना चाहिए कि उसमे Bacilli तो नहीं हैं। अन्यथा इस रोग के चिरस्थायी हो जाने का और वृक्को के चिर रुग्ण हो जाने का भय रहता है। इसलिए तीव्रावस्था मे ही इस रोग की वडी तत्परता के साथ चिकित्सा होनी चाहिए। साधारणत तीव्रावस्था मे यह रोग १-२ सप्ताह मे ठीक हो जाता है। यह रोग मूत्र-मार्ग मे अश्मरी या प्रोस्टेट-ग्रन्थि की वृद्धि या किसी दूसरे अवरोध के कारण हो, तो शल्यकर्म द्वारा इसका निवारण करना आवश्यक होता है। जीवाणु-सक्रमण प्रधान कारण हो तो उपर्युक्त जीवाणुनाशक औषधो में से उपयुक्त औषधो का प्रयोग दो सप्ताह तक करके देखना चाहिए। E Coli के लिए Tetracycline, Chloromycetin, Bacteriostatic हैं Bactericide नहीं। Ps Pyocyanus के लिए Chloromycetin, केवल Bacteriostatic है Streptomycin के लिए वह शीघ्र Resistant हो जाता है। P Vulgaris के लिए Chloromycetin, Nitrofurantoin कम प्रभावकारी है इसलिए इनके प्रयोग से लाभ नहीं।

रोग अधिक पुराना हो, मूत्र मे अलव्यूमिन, पूय तथा जीवाणु हो, रोग का प्रसरण अनेक मूत्र-स्राविणियो (Tubules) मे हो गया हो, वृक्को के रोग के कारण रक्तभार वढा हुआ हो, वृक्को द्वारा मूत्र मे से यूरिया आदि नाइट्रोजनयुक्त मलो की निकासी कम हो गयी हो (Azotaemia तथा Uraemia हो), मूत्र-स्राविणियो के मूत्र को गाढा कर लेने की शक्ति के घट जाने से शरीर मे से जल अधिक निकलने लगे, मूत्र की Sp Gravity कम हो तथा उनकी अमोनिया वना लेने की कमी से सोडियम, पोटासियम, कैल्सियम (Base) अधिक मात्रा मे मूत्र द्वारा निकलने लगे (जिससे शरीर मे Acidosis हो, Salt Losing Nephritis हो), जिनके निकलने से मासपेशियो मे निर्वलता एव हृदय मे निर्वलता होने के लक्षण हो, रक्त-

भार बढने के बाद गिर गया हो, मासपेशियो मे Tetany तथा Cramps होने के लक्षण हो, तो क्योकि गुर्दों की Concentrating Power गिर जाती है उपर्युक्त औषधियो से मूत्रस्थ जीवाणुओ पर ठीक प्रभाव नहीं पड़ता तथा इन औषधियो के शरीर मे अधिक मात्रा मे रुक जाने का भी भय रहता है। अत इन औषधियो को उचित मात्रा मे नही दिया जा सकता (१) वृक्कों की असमर्थता को देखते हुए प्रोटीन-भोजन बहुत कम कर देना चाहिए, (२) जल प्रतिदिन बढाकर ३-४ लिटर तक पिलाना चाहिए क्योकि वृक्को की मूत्र को घना करने की शक्ति के कम हो जाने से उन्हे जल अधिक चाहिए जिससे मूत्र अधिक आता है, (३) Calcium Lactate ४५-७५ ग्रेन प्रतिदिन दे देवे या Calciferol १-२ मिलि० रोज दें ताकि कैल्सियम की न्यूनता से Osteomalacia और Osteosclerosis न बढें; (४) मूत्र के pH को ६ से ऊपर रखना चाहिए इसके लिए Sodium Citrate या Sodium Bicarbonate का १५-३० ग्रेन की मात्रा मे दिन मे २-३ बार प्रयोग करना चाहिए। इससे शरीर मे सोडियम की कमी भी पूर्ण होती है, Acidosis भी नही होता। मूत्र मे विद्यमान जीवाणु के अनुसार किसी Antibiotic औषध का प्रयोग करना चाहिए। Ampicillin या Lederkin के प्रयोग से प्राय. लाभ होता है । वृक्क के रुग्ण होने से जरूरी है कि Sulpha तथा अन्य ऐसी औषधो का प्रयोग स्वल्प मात्रा मे ही होना चाहिए । जीर्ण वृक्क रोग के कारण उत्पन्न रक्तभार-वृद्धि के लिए उसकी उचित चिकित्सा होनी चाहिए, कुछ श्वयथु Oedema भी हो तो लवण की मात्रा कम करे, हृदय की निर्बलता से श्वयथु हो तो सप्ताह मे ३ दिन Digoxin २५ मिलि० दे, वमन तथा अरुचि के लक्षण हो तो Chlorpromazine ५० मिलि० १ बार दैनिक दे। इस प्रकार रक्त तथा मूत्र की परीक्षा करते हुए रक्त मे हुई न्यूनता को पूर्ण करके Replacement therapy द्वारा वृक्क रोग से होने वाले रक्तभार-वृद्धि, श्वयथु, Acidosis व Uraemia के दुष्प्रभाव को रोका जा सकता और रोगी को वर्षो तक जीवित रखा जा सकता है।

आक्सेलेट मेह या Hyper Oxaluria

साधारणत रक्त के प्रति लिटर मे २३-७७ मिलिग्राम ऑक्ज़ेलिक ऐसिड होता है। मूत्र मे २४ घण्टे मे २०-४७ ५ मिलि० शुद्ध ऑक्ज़ेलिक ऐसिड पाया जाता है। परन्तु स्वस्थावस्था मे मूत्र के अन्दर इसके स्फटिक या क्रिस्टल कभी नहीं बनते । उपवास करने पर भी मूत्र मे कुछ ऑक्ज़ेलिक ऐसिड पाया जाता है। कइयो मे Cal Oxalate के स्फटिक वर्षों तक मूत्र द्वारा आते रहते हैं परन्तु उन्हे कोई कष्ट नही होता। शरीर के किस तत्त्व से यह आता है, इस विषय मे अभी तक कुछ निश्चय नहीं हो पाया । इतना तो प्रतीत होता है कि खाण्ड, स्टार्च, चाय, कॉफी, कुछ पत्र-शाको, कुछ फलो, स्नेहो तथा अण्डे आदि के आँतो मे भली प्रकार जीर्ण न होने एव उनके वहाँ विदग्ध हो जाने पर ऑक्ज़ेलिक ऐसिड की उत्पत्ति होती है, अर्थात् स्टार्च-भोजनो के अजीर्ण से इसकी उत्पत्ति होती है। वहाँ से यह विलीन होकर रक्त द्वारा मूत्र मे निकलता है और वहाँ कैल्सियम के साथ मिलने से इसके डम्बलाकृति या अष्टमुखी स्फटिक (Cal Oxalate) बन जाते है जो वृक्क के Pelvis व Calyces मे जमा हो जाते हैं तथा मूत्राशय व मूत्र-मार्ग के लिए विक्षोभक होते है, जिससे मूत्र लगकर आता, बार-बार आता, तथा कभी-कभी तो रात को बिस्तरे पर ही निकल जाता है। इसके विक्षोभ से स्वप्नमेह (Spermatorrhoea) का लक्षण भी हो जाता है, वृक्काश्मरी भी बन जाती है। रक्त मे ऑक्ज़ेलिक ऐसिड की वृद्धि से कटिशूल का लक्षण होता तथा शरीर सुस्त और थका हुआ सा लगता है ।

मूत्र के ठण्डा हो जाने पर वह नीचे से धुधला हो जाता है, नीचे से Mucus बैठ जाता है, उस पर इसके स्फटिक बैठ जाते है जो धूप मे देखने से चमकते दीखते है।

इस रोग की निवृत्ति के लिए Oxalic Acid के उत्पादक उपर्युक्त पदार्थों का सेवन कम कर देना चाहिए। अर्थात् कार्बोहाइड्रेट, खाण्ड या स्टार्च-भोजनो की मात्रा कम कर देनी चाहिए और इन भोजनो के साथ कुछ दूध का सेवन भी करना चाहिए, ताकि दूध मे विद्यमान कैल्सियम से मिलकर इसका कैल्सियम ऑक्जेलेट बन जाये जो अविलेय होने से शरीर मे विलीन न होकर एव पुरीष द्वारा आँतो से निकल जाता है अथवा कैल्सियम कार्बोनेट १ ग्राम मात्रा मे भोजन के साथ लिया जा सकता है। जल के अधिक मात्रा मे प्रयोग से भी मूत्र मे इसके स्फटिक बैठने नही पाते। प्रात Mag Sulph १-२ ड्राम ले लेने से तथा किसी पाचक औषध के प्रयोग से फिर मूत्र मे इसके निकलने की आशका नहीं रहती । Oxalic acid तथा Uric Acid के कारण Stone बनते हो तो २-३ ग्राम सोडियम बाइकार्बोनेट दिन मे ३ बार देना चाहिए।

फास्फेट मेह या Phosphaturia

Phosphates साधारणत Potassium Sodium के Alkaline Phosphates तथा Calcium और Magne-

sium के Earthy Phosphates के रूप मे दिन भर मे २½ या ३½ ग्राम मात्रा मे मूत्र के द्वारा शरीर मे निकलते है। जब ये लगातार अधिक मात्रा मे बाहर निकलें, या मूत्र के थोडा देर रखने पर निक्षिप्त हो जायें या मूत्र के प्रारम्भ या अन्त मे अन्दर से ही मठे के रूप मे अर्थात् Earthy Phosphates के रूप में बाहर आयें तब इसे फास्फेट्स मेह का रोग कहते है।

क्षारीय प्रतिक्रिया के मूत्र मे ये Disodium Hydrogen Phosphate (Na_2HPO), Calcium Hydrogen Phosphate ($CaHPO_4$) तथा Mag Hydrogen Phosphate ($MgHPO_4$) के रूप मे होते हैं। अम्लीय प्रतिक्रिया के मूत्र मे ये Sodium Dihydrogen Phosphate (NaH_2PO_4) के रूप मे तथा Calcium Hydrogen Phosphate, $Ca(H_2PO_4)_2$ के रूप मे होते हैं।

क्षारीय मूत्र मे कैल्सियम हाइड्रोजन फास्फेट का, श्वेत वर्ण दूधिया रग का निक्षेप आया करता है जो हलके Acetic Acid के द्वारा मूत्र को अम्लीय कर देने से तुरन्त घुल जाता है। हलके अम्लीय मूत्र मे कैल्सियम हाइड्रोजन फास्फेट के प्रिज्म की तरह के स्फटिक भी बैठ जाते है जो सूक्ष्मवीक्षक से सितारो के आकार के दीखते है। Ammonium Magnesium Phosphate (Triple Phosphate Crystals) के प्रिज्म की तरह स्फटिक सूक्ष्मवीक्षक द्वारा क्षारीय मूत्र मे देखे जाते है। Calcium Mag Phosphates के सूक्ष्म-सूक्ष्म दाने भी बिखरे हुए सूक्ष्मवीक्षक द्वारा क्षारीय मूत्र मे देखे जा सकते है।

मूत्र मे फास्फेट्स के अधिक मात्रा मे आने पर भी शरीर मे कोई कष्ट विशेष नही होता। बहुधा तो मूत्र के क्षारीय हो जाने से उसमें विद्यमान फास्फेट्स, जो मात्रा मे अधिक न भी हो, उसमें बैठ जाते है। इसलिए बहुधा इस धुधले निक्षेप का कारण वानस्पतिक आहार का जीर्ण न होना प्रतीत होता है। शाको, फलो आदि का आर्गेनिक ऐसिड तो ऑक्सिजन से मिल जाता तथा Bases मूत्र में अधिक मात्रा में जाकर उसे क्षारीय कर देते है जिससे कैल्सियम फास्फेट नीचे बैठ जाता है। यदि वानस्पतिक आहार का पाचन ठीक हो तथा दूध-अण्डा कैल्सियम-प्रधान आहार न लिया जाये तो भी कैल्सियम फास्फेट का मूत्र में आना बन्द हो जाता है। मूत्र को अम्लीय करने वाली औषधें भी इसे बन्द कर देती हैं। इसलिए भोजन के बाद Phosphates मूत्र में आने भी लगें तो चिन्ता का कोई कारण नहीं होता।

फास्फेट्स के आतो मे आने के अतिरिक्त नाडी-मण्डल के Lecithin तथा Nuclein के पचन से भी Phosphates की निकासी होती है। इसीलिए नाडी-रोगो मे अर्थात् नाडी दौर्बल्य (Neurasthenia), मानसिक विषाद (Depression) आदि रोगो में मूत्रगत फास्फेट्स की मात्रा बढी हुई देखी जाती है। उनकी चिकित्सा ही इसकी चिकित्सा है। मुख से Aluminium Hydroxide के देने से आँत के अन्दर विद्यमान Phosphate अनघुलनशील Aluminium Phosphate बन जाता है, जिससे वह मूत्र में फिर नही आता या मूत्र को अम्लीय कर देने से भी जैसे Ammonium Chloride १५ ग्रेन Acid Sodium Phosphate ३० ग्रेन के तीन बार देने से वह मूत्र मे नीचे नही बैठता। Phosphaturia रोगी के भय को शान्त करना उचित है।

आयुर्वेदानुसार मेह रोग

वातिक मेहरोग

मूत्र मे खाण्ड आये, Glycouria हो, मूत्र मे वसा आये, Ketonuria हो, तो क्योकि शरीर मे खाण्ड व वसा को खपा लेने की शक्ति की न्यूनता एव शरीर के अगो की वातिक दुर्बलता से ये रोग होते हैं अत इन्हें वातिक मेहरोग कहा जाता है। वृक्को की क्षीणता, जीर्णता व अशक्ति के कारण मूत्र में मज्जा आने लगे, अर्थात् Albuminuria हो, उसे भी वातिक मेह कहा जाता है। इसी प्रकार यदि मूत्र मे Amino Acids अधिक मात्रा में निकलने लगें तो ये भी यकृत् आदि की अशक्ति और क्षीणता के कारण निकलने लगते हैं। इस Acidoaminuria की गणना भी वातिक मेहो में की जायेगी। Pituitary ग्रन्थि की निर्बलता से होने वाले अतिमेह (हस्तिमेह) की गणना भी वातमेहो में हुई है।

पैत्तिक मेहरोग

मूत्र में Uric Acid के स्फटिक निकलने लगें या Acid Sodium Urate का ईट का सा चूरा मूत्र के करने के बाद नीचे बैठ जाये, तो, क्योकि ये शरीर के Nucleoproteins के अतिपचन के परिणाम होते हैं, अत इन्हें पैत्तिक मेहरोग कहा जाता है। मूत्र में Urobilin अधिक मात्रा में आये, जिससे उसका रग सन्तरी हो जाता है या मूत्र में Urobilinogen अधिक मात्रा में हो, जिसके कारण मूत्र पडा-पडा गहरे रग का हो जाता है, तब इसे भी पैत्तिक मेह कहा जाता है क्योकि ये द्रव्य रक्त-कणो या Haemoglobin के अतिपचन के परिणाम होते है। मूत्र में Haemoglobin के आने (Haemo-

globinuria) को भी रक्त के अतिपचन का परिणाम होने के कारण पित्तमेह कहा जाता है। मूत्र-मार्ग में कहीं पर पित्त-प्रकोप-जनित शोथ व पाक होकर रक्त या पूय आने लगे, तो उसे भी पित्तज मेह कहा जाता है।

श्लैष्मिक मेह

कार्बोहाइड्रेट्स या अन्नों व खाण्ड के अपूर्ण पचन के परिणामस्वरूप मूत्र मे Oxalates आने लगें तो इससे Oxaluria को अग्नि की मन्दता के कारण होने से श्लैष्मिक मेहरोग कहा गया है। इसी प्रकार अजीर्ण और मन्दाग्नि के कारण आने वाले नाना द्रव्यो को मूत्र मे देखकर इसे श्लैष्मिक मेह कहा जाता है। मूत्र-मार्ग में श्लैष्मिक शोथ के परिणामभूत द्रव्य उसमें आने लगें तो भी उसे श्लैष्मिक मेह कहा जाता है।

प्रमेह-चिकित्सा

इसीलिए वातिक मेहरोगो के लिए रोगी की बल्य चिकित्सा की जाती है। चन्द्रप्रभा, वसन्तकुसुमाकर, चतुर्मुखचिन्तामणि आदि रसो का प्रयोग किया जाता है, त्रिफला व शिलाजतु का प्रयोग भी किया जाता है। अश्मरी बनने की वातिक दुर्बलता हो तो अश्मरीनाशक औपधो के बने घृत, जैसे पाषाणभेदादि, का सेवन कराया जाता है। पित्तज प्रमेहो के लिए शीतल औपधो के कपाय, घृत, आसवादि दिये जाते है। त्रिफला का नाना रूपो में प्रयोग कराया जाता है। शरीर-शोधन के लिये विरेचन भी दिया जाता है।

श्लैष्मिक मेहरोगो के लिए त्रिकटु चूर्ण आदि दीपन-पाचन औषधिया तथा लघन, वमन, विरेचन और रूक्षण विधिया हितकर होती हैं।

वृक्क-विद्रधि (Renal Abscess-Perirenal या Perinephric Abscess या Perinephritis)

यदि पहले शरीर पर पिडिकाए निकलती रही हो, अर्थात् Boils या Carbuncles हुए हो, तो उनके निकलने के ½, १ या २ महीने के बाद तक Staphylococcus Pyogenes के रक्त द्वारा किसी वृक्क के आवरण (Cortex) मे प्रसरण कर जाने से वृक्क के पृष्ठ पर उसके समीपस्थ अवयव में पूयभाव होकर वृक्क-विद्रधि या वृक्क-बहिर्विद्रधि उत्पन्न हो जाती है जिसका मुख कटि-प्रदेश पर होता है।

इसका आरम्भ धीरे-धीरे ज्वर तथा विप-सचार (Toxaemia) के लक्षणो के साथ होता है। १-२ सप्ताह तक, जब कटि-प्रदेश पर इसके स्थानिक लक्षण प्रकट नही होते इसका मलेरिया या टायफायड से भ्रम होता है। जब वृक्क-प्रदेश पर पीछे एक रक्तवर्ण कठोर-सा उभार प्रकट हो जाता है जिसमे दर्द, स्पर्शाक्षमता के लक्षण होते हैं तथा जिसमे रोगी उधर की टाग को गोडे पर सकुचित करके लेटा होता है तब इस रोग की ओर हमारा ध्यान जाता है। इस रोग के कारण पहले तो रोगी उधर की टाँग पर लगडाकर तथा उधर की ओर Spine का Curvature करके चलता है। साथ ही, ज्वर, स्वेद, पाण्डुता तथा पूयभाव हो जाने के लक्षण भी उसमे होते है। वृक्क-प्रदेश पर दर्द, कुछ भारीपन और कुछ Rigidity के होने के लक्षण भी होते हैं। वृक्क-प्रदेश पर दर्द तभी होता है जब वृक्क के आवरण या कैपसूल पर अन्दर स दबाव पडे। जब वृक्क या उसके Pelvis मे शोथ होता है तब उसके प्रदेश पर दर्द की प्रतीति होती है। Antibiotics के देने से यह रोग ठीक न हो तो शल्यकर्म के द्वारा इसकी पूय को निकालना पडता है। अन्यथा यह विद्रधि स्वय आँत मे, उदरगुहा, उरोगुहा (Pleura) मे या Psoas मासपेशी पर खुलकर वस्तिगुहा मे, वक्षण मे या पीठ पर खुल जाती है।

वृक्क क्षय (Tuberculosis of the Kidney, Tuberculous Pyelonephritis)

बीस-तीस वर्ष के नवयुवको मे, कभी-कभी नवयुवतियो मे भी उनके किसी एक वृक्क के Pyramids के तलो पर क्षयाकुर उत्पन्न हो जाते हैं जहाँ पर इनके कारणभूत जीवाणु सभवत पुप्फुस मे से या किसी क्षयग्रन्थि मे से रक्त के द्वारा आते है। फिर इन क्षयाकुरो मे पनीरभाव तथा व्रणभाव (Caseation तथा Ulceration) भी हो जाता है। यहाँ से पूयस्राव होकर वृक्काशय (Pelvis) मे जाता है, जिससे मूत्र मे पूय आने लगती है जो ग्लास मे मूत्र के रखने पर तल पर बैठ जाती है जिसमे क्षय जीवाणु भी Culture तथा 'गिनीपिगइनओक्युलेशन' के द्वारा देखे जा सकते है। प्रारभ मे मूत्राशय की श्लेष्म-कला के सूज जाने के कारण रोगी को विशेपत रात को शीघ्र-शीघ्र मूत्र प्रवृत्ति होने लगती है तथा मूत्र आते समय जलन होने की शिकायत भी होती है। वृक्क के रुग्ण होने के कारण कटिप्रदेश पर निरन्तर हलका-हलका दर्द रहता है, जो रात को आराम करने पर भी घटता नही प्रत्युत बढता है। जमी हुई पूय के मूत्रस्राविणी या यूरिटर मे रुक जाने से वृक्कशूल भी उठ सकता है। मूत्र मे कभी रक्त भी आ सकता है। मूत्र की स्पेसिफिक ग्रेविटी घटी हुई होती है। वह अम्लीय प्रतिक्रिया का होता, उसमे Pus Cells भी होते है जिनमे क्षय जीवाणु भी मिलते है। इन स्थानीय लक्षणो के अतिरिक्त सामान्य लक्षण जैसे ज्वर, कृशता, पाण्डुता, रात्रिस्वेद,

अन्नारुचि के क्षय सूचक लक्षण भी होते हे। कुछ काल रोग के रहने के बाद वृक्क मे Fibrosis तथा Calcification की प्रक्रिया भी हो जाती है। इस रोग का भेद B Coli के कारण होने वाले Pyelonephritis से करना चाहिए। अर्थात् यदि Pyelonephritis की उचित औषधि के देने से भी लाभ न हो तो वृक्क क्षय रोग का सन्देह हो जाना चाहिए। इस रोग से ग्रस्त वृक्क को Nephrectomy शल्यकर्म के द्वारा Ureter सहित निकाल दिया जाये तो रोग दूसरे वृक्क मे प्रसरण नही करता ओर ठीक भी हो जाता ह। अत इस रोग का निश्चय शीघ्र ही होना चाहिये।

इस रोग के लिए डेढ मास तक प्रतिदिन Streptomycin १ ग्राम तथा PAS ४ ग्राम दिन मे ३ बार देकर फिर ३ मास तक PAS तथा INH १०० मिलि० दिन मे ३ बार देना चाहिए।

प्रोस्टेट वृद्धि (Senile Enlargement of the Prostate, Fibrous Prostate, Fibro adenoma of the Prostate)

पुरुषो मे मूत्रस्रोतस् के उपरले सिरे तथा मूत्राशय के निम्न द्वार Sphincter को घेरे हुए चेसनेट के सदृश दो तोले लगभग भार की ४×३×२५ सेंटीमीटर आकार की एक Median तथा दो Lateral Lobes से बनी हुई एक ग्रन्थि हे—जिससे निकले दोनो ओर के स्रोत मूत्रस्रोतस् Urethra मे खुलते है—Prostate कहते है। यह ग्रन्थि Glandular Tissue को घेरे हुए माससूत्रो से बनी हे तथा Fibrous Tissue के कैपसूल से ढकी हुई है। वस्तुत इसी ग्रन्थि के द्वारा मूत्राशय निम्न द्वार Sphincter बना हुआ हे। इस ग्रन्थि का पतला सा स्राव शुक्र Semen का सहायक स्राव हे उसके Sperms को गतिशीलता प्रदान करता है।

५५ वर्ष के ऊपर के विशेषत ६०-७० वर्ष के बीच की आयु के ४०-५० प्रतिशतक वृद्ध पुरुषो मे यह ग्रन्थि आकार मे कुछ बडी हो जाती हे जिसे Enlargement of Prostate कहते हैं। इस आयु मे आकर प्राय मेल हार्मोन Testosterone की उत्पत्ति कम हो जाती है, फीमेल हार्मोन Oestrogen की उत्पत्ति उतनी कम नहीं होती उसके अपेक्षतया वढ जाने से प्रोस्टेट मे वृद्धि होती लगती है इसे Involutional Hypertrophy कहते हे। इसमें स्नायुतन्तु की वृद्धि हो जाने के कारण इसे Fibro adenoma कहते हैं।

इस ग्रन्थि का Middle Lobe वढे तो वह मूत्राशय के Sphincter मे ऊपर मूत्राशय के अन्दर की ओर वढता हे इसी कारण जब रोगी मूत्र मे जोर लगाता है तो मूत्राशय के अन्दर Intravesicular भार वढ जाता है। इससे यह Lobe नीचे को झुक जाता है जिससे Sphincter वन्द हो जाता है एव मूत्र अवरुद्ध हो जाता हे। यदि Lateral Lobes वढ जाये तो मूत्र के लिये जोर लगाने पर मूत्राशय के अन्दर के भार के वढ जाने से दोनो Lobes अन्दर की ओर पास-पास आ जाते ह जिससे Sphincter वन्द सा हो जाता है इससे भी मूत्र निकलना वन्द हो जाता हे।

इस ग्रथि के मध्यम खण्ड Middle Lobe के मूत्राशय के अन्दर ऊपर की ओर वढ जाने से उसके पीछे के मूत्राशय मे एक Pouch सा वन जाता है जहाँ मूत्र के करने के वाद भी कुछ अश मूत्र का रुका रह जाता है जिसे Residual Urine कहते हे। देर तक एकत्रित रहने वाले इस मूत्रभाग मे कभी-कभी अश्मरियाँ भी वन जाती है।

लक्षण

प्रोस्टेट ग्रन्थि के वढने पर पहले रात को फिर दिन मे भी मूत्र की हाजत वार-वार होती है। Prostate के अन्दर के मूत्रस्रोतस् के ऊपर मूत्राशय की तरफ वढ जाने से ऐसा होता लगता हे। Residual Urine अधिक-अधिक हो जाये तो भी वार-वार मूत्र आने की प्रवृत्ति रहती हे। प्रारभ मे पुरुष के अन्दर कामशक्ति कुछ वढ सी जाती है पर जव ग्रन्थि कुछ वडी होती है तो कामशक्ति लुप्त होने लगती हे। मूत्र करते समय मूत्र कुछ देर से उतरता हे। आधे मिनट तक का समय लग सकता हे। इस रोग मे मूत्र की धार निर्वल हो जाती है वह आगे की ओर दूर न पडकर नीचे की ओर Perpendicular पडती है। मूत्र की धार वीच-वीच मे टूटकर फिर शुरू होती है। मूत्र के अन्त मे तो मूत्र वून्द-वून्द करके आता रहता है। इस प्रकार मूत्र करने मे पुरुष को पर्याप्त समय लग जाता हे। मूत्र की हाजत को वहुत काल रोका जाये तो फिर मूत्र करने पर मूत्र वहुत देर से उतरता है। अत्युष्णपान, मद्यपान, अति शीत सेवन या दीर्घ काल तक विस्तरे मे पडे रहने से मूत्राघात Retention की प्रवृत्ति वढती है।

मूत्राशय के अन्दर मूत्र देर तक रुकता रहे तो कालान्तर मे गुर्दो पर इसका दुष्प्रभाव पडने लगता है अर्थात् उनकी मूत्र वनाने की शक्ति कम होती जाती हे जिससे वे Urea को पूरी तरह नही निकाल पाते एव वह रक्त मे अधिक-अधिक वढने लगता है। इस प्रकार Uraemia शुरू हो रहा हो तो रोगी की जीभ सूखने लगती हे जिससे उसे पानी पीना पडता है। साथ ही वह रात को तो उन्निद्र

रहता और दिन मे ऊघता रहता है। सिरदर्द का लक्षण भी होने लगता है। यदि वडी आयु के व्यक्ति के मूत्र की Specific Gravity कम हो जायें तो Uraemia की आशका करनी चाहिये।

गुदा मे अगुली डालकर आगे की ओर एक कठोर पर लचीली सी गाठ प्रतीत होती हे जिसके ऊपर गुदा की श्लेष्मकला को हिलाया जा सकता है।

इस रोग की कोई सफल औषधि अभी तक नही मिली तो भी Testosterone Propionate का २५ मिलि० मात्रा मे सप्ताह मे दो वार मास द्वारा देने का रिवाज है। अथवा Methyl Testosterone (Perandren) ५ मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन वार देते हैं। Spemen Tablets २ अदद दिन मे तीन वार देने और इसके कुछ काल जारी रखने से वहुत वार इस रोग मे लाभ होता हुआ देखने मे आता है।

प्रोस्टेट कैन्सर (Carcinona of the Prostate)

प्रोस्टेट वृद्धि के रोगियो मे से २०% के लगभग मे प्रोस्टेट कैन्सर होता है। उस रोग की अपेक्षा यह रोग कुछ पहले अर्थात् ६५-७० वर्ष की आयु मे होता है। उस रोग की वृद्धि देर मे होती है पर यह रोग कुछ जल्दी-जल्दी वढता है। इसके कारण मूत्राघात या मूत्रावरोध होता है तो सीवन प्रदेश मे या नाभि से नीचे के Suprapubic प्रदेश मे दर्द की शिकायत भी होती है। Lateral Lobes मे रोग हो तो मूत्रस्रोतस् Urethra मे भी यह रोग फैल जाता है मूत्राशय के निम्न द्वार Sphincter मे भी हो जाता है तथा पीछे Rectum मे भी यह प्रसरण कर जाता है रक्त द्वारा इसका प्रसरण प्राय कूल्हे की हड्डी Ileum के ऊपर के सिरे मे तथा Lower lumber Vertebrae मे भी यह रोग प्रसरण कर जाता है। कई वार Femur के ऊपर के हिस्से में भी प्रसरण करता है। Lymph द्वारा प्रसरण करे तो कभी-कभी Mediastinal Lymph Glands में भी प्रसरण करता है।

इस रोग का प्रधान लक्षण मूत्राघात या मूत्रावरोध है। कटिप्रदेश की अस्थियो में रोग प्रसरण हो जाये तो कमर मे दर्द होती हे साथ ही Sciatica भी जो दोनो ओर होती है। पाण्डुता और कृशता के लक्षण भी होते हैं।

गुदा परीक्षा करने मे आगे की ओर विषमाकृति पत्थर की तरह कठोर ग्रन्थि अनुभव होती है। X-Ray परीक्षा में Pelvic Bone में Density अधिक वढी हुई दीखती है Serum acid phosphatase ५ King Arinstrong units से अधिक मिलता है।

यह रोग असाध्य है परन्तु Stilboestrol ५ मिलि० मात्रा में दिन में ३ वार देते रहने तथा इसकी दैनिक मात्रा २५ मिलि० तक ले जाने से इस रोग की तीव्रता को कम किया जा सकता है।

त्वचा के रोग

Diseases of the Skin

त्वचा की रचना

त्वचा, वहिश्चर्म (Epidermis) तथा अन्तश्चर्म (Dermis या Corium) इन दो स्तरो से वनी हुई है। इनमे से वहिश्चर्म केवल सैलो की कुछ तहो से वना है, तथा उसमे रक्तवाहिनियाँ नही होती। करतल तथा पादतल मे यह स्तर अति स्थूल और कठोर होता है। वहिश्चर्म के सवसे अन्दर की ओर स्तम्भाकृति (Columnar) सैलो के स्तर को चर्मजनक स्तर (Germinal Layer या Stratum Germinatum) कहते हैं, क्योंकि इस स्तर के सैलो के विभाजन (Mitosis) से वहिश्चर्म उत्पन्न होता है। इस स्तर के कुछ-एक शाखाओ वाले सैलो के, जिन्हे Melanoblasts कहते हैं, Cytoplasm मे त्वचा के रग (Melanin) के दाने उत्पन्न होते हैं। भोजन के Tyrosine नामक अमीनो एसिड से (Casein मे) Tyrosinase की उपस्थिति मे इस रग की उत्पत्ति होती है। Ultra-violet किरणो से Tyrosinase अधिक क्रियाशील हो जाता है।

इस चर्मोत्पादक स्तर के वाहर गोलाकृति या वहुपार्श्वीय (Cuboidal) सैलो से वना वहिश्चर्म का प्रधान एव स्थूल स्तर होता है जिसे श्लैष्मिक स्तर (Mucus Layer) कहते हे। इसके सैल परस्पर कटकाकृति प्रवर्धनो से जुडे रहते हे। इसलिए इसे कण्टकी सैलो की तह (Prickle Cell Layer या Stratum Spinosum या Rete malpighii) भी कहते है। इन सैलो के वीच-वीच मे सूक्ष्म लसीकावाही स्रोत (Lymph channels) होते है जिसमे लसीका के दाने तथा रग के दाने (Pigment Granules) भी रहते हैं।

इस श्लैष्मिक स्तर के वाहर तकुए के आकार के सैलो की २-३ तहो से वनी एक तह होती है जिनके अन्दर प्रोटो-प्लाज्म Eleidin (Acidophil पदार्थ) के (जो Keratin का पूर्वरूप होता है) दानो के रूप मे होता हे, जिससे इसे Granular Layer कहते हैं। इसके वाहर विना मीगियो (Nuclei) के चपटे सैलो का एक श्वेतवर्ण का स्तर होता

है, जिसे Stratum Lucidum कहते है। इन सैलो का Eleidin एक शीशे के तुल्य पदार्थ (Karatohyalin) मे बदल गया है। करतल और पादतल मे यह स्तर स्थूल होता है। इसके बाहर की ओर तथा त्वचा के पृष्ठ पर चपटे कठोर सैलो की अनेक तहो से बना स्तर है जिसे शुष्क स्तर (Horny Layer या Stratum Corneum) कहते है। इसके सैलो का प्रोटो प्लाजम कठोर होता है, अर्थात् जेलाटिन या केराटिन नामक पदार्थ मे परिवर्तित हुआ-हुआ होता है, इन सैलो मे Nuclei नही होते। इस शुष्क स्तर के कारण बाह्य शीत-उष्ण अथवा विषैले एव विक्षोभक पदार्थों का कोई दुष्प्रभाव निम्न स्तरो पर नही हो पाता।

अन्तश्चर्म (Dermis या Corium) सैलो स बना हुआ न होकर स्नायुतन्तुओ (Connective Tissue) से, जो कि Hyaluronic Acid का कम्पॉउण्ड है, बना हुआ है। इसमे लचकीला अवयव (Elastic Fibres) भी होता है जिससे यह नमदे की तरह लचकीला, परन्तु पर्याप्त दृढ भी, होता है। अन्तश्चर्म मे रक्तवाहिनियाँ, लसीकावाहिनियाँ तथा नाडियाँ पर्याप्त मात्रा मे होती है। अन्तश्चर्म स्थान-स्थान पर स्तम्भो के रूप मे बहिश्चर्म के अन्दर धँसा होता है। उन उभारो को Papillae कहते है। इन उभारो मे से प्रत्येक मे सूक्ष्म रक्तवाहिनी का एक मोड (Loop) पाया जाता है जिससे बहिस्त्वक् को रक्त मिलता है तथा बहुत-सो मे स्पर्शवाहिनी वातनाडियो के सिरे (Tactile Corpuscle) भी पाये जाते है। इस प्रकार अन्तश्चर्म के बाहर के भाग को इन उभारो के कारण Papillary Layer कहत ह। अन्तश्चर्म के गहरे भाग को स्नायुतन्तुओ (White Fibrous Tissue) की प्रधानता के कारण Reticular Layer कहते है। इसमे रक्तवाहिनियो तथा लसीकावाहिनियो के जाल (Sub-papillary Vascular and Lymphatic Plexuses) सुरक्षित रूप मे रहते है। जिनमे से सूक्ष्म शाखाएँ उभारो (Papillae) के सिरो तक तथा रोम-कूपो मे विद्यमान रोम-मूलो तक जाती है। इस स्तर मे स्पर्शवाहिनी नाडियो (Cutaneous Nerves) के जाल भी रहते है जिनके सिरे Papillae मे समाप्त होते है। Non-Medullated Nerve सूत्र, बाहर बहिश्चर्म मे रोगटो मे तथा स्वेद-ग्रथियो मे आते है। कर-पाद-तलो मे ये Papillae तथा इनके अन्दर स्पर्श ज्ञान के वाहक Tactile Corpuscles बहुत अधिक होते है। अन्तश्चर्म Sub-Cutaneous टिशू पर, जिसमे एडिपोज टिशू है, टिका हुआ है।

रोम तथा केश (Short and Long Hair) भी त्वचा का ही एक भाग है जो अन्तस्त्वचा के अन्दर बहिस्त्वचा के धँस जाने (Invagination) से बने एक गर्ते या रोम-कूप (Hair Follicle) मे से उत्पन्न होते हैं। रोम-कूप की दीवार का बाहर का स्तर अन्तश्चर्म तथा अन्दर का स्तर बहिश्चर्म या Horny Layer से बना हुआ है। इस प्रकार बहिश्चर्म के स्थान-स्थान पर अन्तश्चर्म मे धस जाने से ये रोम-कूप बने हुए हैं इनसे निकला रोम भी Cornified सैलो का बना हुआ होता है। रोम-कूप के मुख के समीप इसमे एक-दो स्नेह-ग्रन्थियो (Sebaceous Glands) की प्रणालियाँ खुलती है जिनका स्नेह-स्राव (Sebum) लोम-कूप मे होकर बहिस्त्वचा पर आ जाता और उसे स्निग्ध रखता है तथा पानी मे घुले जीवाणुओ व विषो से उसे बचाता है। इसमे Pro Vitamin D होता है जो सूर्यकिरणो से विटामिन डी बनकर विलीन हो जाता है। प्रत्येक रोम-मूल का एक सूक्ष्म रक्तवाहिनी द्वारा पोषण होता है, यह ऊपर कहा ही जा चुका है। तेल, घृत आदि स्नेहो मे घुले पदार्थ इन्ही स्नेह-प्रणालियो द्वारा Dermis मे पहुच जाते हैं। सिर के बाल २-५ वर्ष रहकर गिर जाते और उनके स्थान पर नये बाल जम जाते हैं। नये बालो के आने की रफ्तार उनके गिरने की अपेक्षा कम हो तो इसे Alopecea कहते है। स्नेह ग्रथिया कपाल और चेहरे की त्वचा म बहुत अधिक है माथे की त्वचा के एक वर्ग सेंटीमीटर मे १००० के करीब है। धड और शाखाओ मे बहुत कम है, करतल पादतल मे सर्वथा नही हैं।

स्वेद-ग्रन्थिया (Eccrine Sweat Glands)

ये त्वचा मे विशेषत करतल पादतल मे बहुत अधिक सख्या मे (३-४ मिलियन) होती है, अतश्चर्म के अदर के मेदोमय स्तर (Sub-Cutaneous Tissue) मे इनका Secreting portion रहता है, इनकी प्रणालियाँ Excretory ducts बाहर बहिश्चर्म पर खुलती है। ये बहिश्चर्म को आर्द्र रखने का कार्य करती हैं। इनमे रक्त पर्याप्त मात्रा मे पहुचता रहता है। ये एक लिटर स्वेद रोज निकालती है। इस प्रकार ५०० कैलोरीज हीट निकालकर शरीर को ठडा रखती है। Sympathetic Nerves जो Cholinergic है अर्थात् जो Acetylcholine को उत्पन्न करती है इनमे आकर इन्हे उत्तेजित करती है और स्वेद को प्रवृत्त करती है। स्वेद जीवाणुओ और Fungus का नाशक भी है। बलाडोना, एट्रोपीन स्वेद शामक है।

नख (Nails)

नख के मूल पर विद्यमान त्वचा (Nailfold) की Horny Layer से नख बन गये है या यो कहे कि नख

त्वचा की स्वच्छ स्तर Stratum Lucidum, जिसके सैल Keratin या जेलाटीन से मिलते-जुलते Eleidin नामक स्वच्छ पदार्थ से बने हुए हे, बन गये है। अर्थात् नख-भूमि (Nail matrix) नख के मूल पर विद्यमान त्वचा (Nailfold) की ही Dermis और Epidermis से बनी हैं।

ऊपर कहा गया हे कि त्वचा या रोमो का वर्ण, चर्मजनक स्तर (Germinal Layer) के अन्दर विद्यमान वर्णजनक सैलो (Melanocytes या Melanoblasts) मे बनने वाले Melanin नामक द्रव्य के ऊपर निर्भर रहता है। यह सूर्य की Ultra-violet किरणो के दुष्प्रभाव से हमारे शरीर को बचाने का काम करता हे।

त्वचा का कार्य

त्वचा का वाह्य शुष्क स्तर वाह्य विषो से शरीर को बचाने का कार्य करता है।

त्वचा मे बहुत अधिक रक्तवाहिनियाँ रहती हैं जिनमे लगभग एक सेर रक्त हर समय रहता है जो वाहर से प्रविष्ट विषैले द्रव्यो को नष्ट करने का तथा जब-जब अन्य किसी अग को अधिक रक्त की आवश्यकता होती है, तब-तब उन्हे रक्त प्रदान करने का कार्य करता है। स्वेद के द्वारा शरीरस्थ विष-द्रव्य शरीर से बाहर हो जाते हैं। पारा, सोमल आदि अनेक विष-द्रव्य स्वेद द्वारा शरीर से निकलते है। साधारणत प्रतिदिन २ सेर के लगभग स्वेद त्वचा मे से निकलता है। श्रम करने पर यह कई सेर तक निकलता है। जब-जब शरीर मे अग्नि-कर्म या पचन-कर्म (Metabolism) बढता है, स्वेद की मात्रा भी बढ जाती हे। Sympathetic नाडी-मण्डल की Cholinergic Fibres स्वेद-ग्रथियो मे आती हैं। इनकी उत्तेजना से स्वेद मे वृद्धि हो जाती हे। स्वेद मे नमक, यूरिया, पोटासियम, यूरिक एसिड, लैक्टिक एसिड, अमोनिया, कैल्मियम होते हैं।

जब बाहर शीत अधिक होता है तब त्वचा की रक्त-वाहिनियाँ सकुचित हो जाती हैं जिससे शरीर की ऊष्मा नष्ट हो जाने से बच जाती हे। जब शरीर के अन्दर ऊष्मा की वृद्धि हो जाती हे तब त्वचा की रक्तवाहिनियाँ शिथिल हो जाती हैं जिससे शरीर मे से ऊष्मा के विनाश की मात्रा बढ जाती है एव शरीर उससे होने वाली हानियो से बच जाता हे। इस प्रकार त्वचा शरीर के तापमान को नियन्त्रित रखने मे बडा भाग लेती है। त्वचा मे Cholesterol बनता है जो फिर Ultra-violet किरणो द्वारा विटामिन 'डी' मे परिवर्तित हो जाता है। त्वचा मे Reticulo Endothelial System भी है जिसमे Antibodies उत्पन्न होते हे इस प्रकार त्वचा प्रतिरोध-शक्ति (Immunity) उत्पन्न करने मे भाग लेती है। त्वचा से जो Sebum निकलता है वह जीवाणुनाशक होता है।

पामा (Eczema) (Ek=out, Zes=Boil) Eczematous Dermatitis

त्वचा पर पिन के नक्के जितने चकत्ते, उभार या विस्फोट निकल आये, जिनमे दाह और कण्डू विशेष हो या कण्डू और दाहयुक्त लाल चकत्ता ही निकले, तो उसे पामा कहते हैं। कोई पदार्थ स्वय Antigen हो या ऊर्ध्वत्वक् के सैलो के प्रोटीन से मिलकर Antigen बन जाता हो तो ऐसे पदार्थ त्वचा के सैलो मे आ जाने पर Lymphatics द्वारा वह Reticulo Endothelial सैलो मे पहुँच जाता है जहाँ उसके विपरीत Antibody उत्पन्न हो जाता हे जो वहाँ से रक्त के Lymphocytes के द्वारा शरीर मे तथा त्वचा के सैलो मे भी पहुँच जाता हे जहाँ वह स्थिर रूप मे रहता हे। इसके कारण त्वचा मे Sensitivity उत्पन्न हो जाती हे। अब जब कभी वही Antigen फिर त्वचा मे आता हे उसके और इसके सघर्ष से वहाँ Histamine उत्पन्न हो जाता हे जिसके कारण वहाँ की रक्तवाहिनियाँ फैल जाती हैं और वहाँ त्वचा मे शोथ हो जाता है जिसे पामा कहते हैं। अर्थात् शरीर के खुले प्रदेशो की जैसे चेहरे, शाखाओ के निम्न भाग, ग्रीवा के पिछले पृष्ठ आदि की त्वचा के बहिश्चर्म (Epidermis) के सैलो मे, विशेषत Prickle सैलो मे या इनके नीचे की रक्तवाहिनियो मे जो वाह्य विक्षोभक द्रव्यो को सहन करने की स्वाभाविक शक्ति कम हो जाती है, अर्थात् वे किसी वाह्य द्रव्य के लिये विशेष Sensitive हो जाते हैं तब इनमे जो एक त्वक्-शोथ (Dermatitis या Dermatosis) की प्रतिक्रिया होती है, उसे पामा (Eczema) कहते है। कुछ एक मे पितृ-परम्परा से पामा के होने या श्वास रोग के होने की प्रवृत्ति (Predisposition) आती हे। साधारण त्वचा रासायनिक विक्षोभक द्रव्यो जैसे साबुन, क्षार, गन्धक, बालो पर लगाये जाने वाले पदार्थो आदि या कठोर ऊनी वस्त्रो, धूप, चमडा, रबड, रगयुक्त वस्त्र आदि से विक्षुब्ध नही होती। परन्तु इस रोग मे ये द्रव्य त्वचा के लिये विक्षोभक हो जाते है। इसे Contact Dermatitis भी कहते है अर्थात् रगड या

विक्षोभ के कारण जब बाहर के सैल अर्थात् Horny Layer के सैल क्षत हो जाते हैं और अन्दर के सैल्स Sensitize करने वाले पदार्थ के सम्पर्क में आते हैं तब उनमें शोथ की प्रक्रिया होती है। बहुत सम्भवतः अजीर्ण या मलबन्ध आदि के कारण उत्पन्न हुआ कोई विष-द्रव्य आँत में से या Bacteria, Parasite आदि का विष पहले त्वचा में पहुँचता है जिसे हम Allergen कह सकते हैं उसके कारण त्वचा के सैल पहले ही विक्षुब्ध होते हैं। ऐसी अवस्था में सामान्य बाह्य विक्षोभक द्रव्य का सम्पर्क होने पर भी उनमें शोथ होकर यह रोग प्रकट हो सकता है। दूध, अण्डे, गेहूं के आटे, खट्टे फल आदि के द्वारा भी यह रोग हो सकता है, मधुमेही में मीठे के कारण भी यह हो सकता है अर्थात् Hyperglycaemia भी इस रोग का एक कारण हो सकता है। धूप तथा बाह्य गर्मी से भी यह रोग बढ़ सकता है। शरीर के किसी देश में विद्यमान पूय-भाव (Septic Focus) से भी यह विष त्वचा में पहुँच सकता है, इसीलिए कभी-कभी किसी क्षत के आसपास पामा का रोग हो जाता है। क्रोध आदि तीव्र मानसिक आवेशों से Hypothalamus में विद्यमान Autonomic Nerve सेण्टर्स के विक्षुब्ध हो जाने पर त्वचा की नाडियों (Nerves) में उत्पन्न होने वाले Acetylcholine नामक द्रव्य के दुष्प्रभाव से भी त्वचा के सैल विक्षुब्ध हो सकते हैं। ऐसी अवस्था में साधारण से बाह्य विक्षोभक द्रव्य के द्वारा भी यह रोग प्रकट हो जाता है। अर्थात् नाडीमण्डल (N System) विक्षोभशील हो, विशेष Emotional हो तो भी त्वचा में यह रोग हो सकता है। प्रोकेन, बेन्जोकेन क्लोरम-फिनीकोल, सल्फोनामाइड, स्ट्रेप्टोमाइसीन आदि से भी यह रोग हो सकता है। नाडीमण्डल विक्षोभशील हो तब भी त्वचा में, जो इसी का एक भाग है, यह रोग हो सकता है। बहुधा भोजन में उचित परिवर्तन करने और रेचन दे देने से इस रोग में लाभ हो जाता है, जिससे पता लगता है कि आँतों से ही बहुधा त्वचा में कोई विक्षोभक द्रव्य पहुँचता है और उसे विक्षोभशील करने का कारण होता है। सम्भव है कि आँतों में से भोजन-द्रव्यों के ठीक-ठीक विलीन न होने, Mal absorption से या विटामिन B के भिन्न-भिन्न अंशों के व लोहे आदि की कमी से यह रोग होता हो, कभी-कभी मन में छिपी हुई चिन्ता पामा के रूप में प्रकट होती है, अर्थात् दुःख के आँसू नेत्रों से न निकलकर स्रावी पामा के रूप में बहिश्चर्म से निकलने लगते हैं। वस्तुतः बहिश्चर्म नाडीमण्डल (N System) का वह भाग है जो शरीर को चारों तरफ से ढके हुए है। Procaine Penicillin के लिए भी कुछ-एक में अक्षमता या Allergy होती है। बाह्य पदार्थ के विपरीत असहनशीलता या Sensitivity के उत्पन्न होने का समय Incubation Period प्रत्येक पदार्थ का भिन्न-भिन्न है। सल्फोनामाइड का लगभग ४-५ दिन, पेनिसिलिन का ८-१० दिन है। साधारणतया यह १० दिन से लेकर कुछ सप्ताह तक का होता है।

विकृति-विज्ञान

इस विक्षोभशील प्रदेश में अन्तश्चर्म (Dermis) में विद्यमान रक्तवाहिनियां शिथिल होकर फैल जाती हैं। उनके, स्वेद ग्रन्थियों के तथा Pilosebaceous follicles के आसपास Lymphocytes, Histiocytes तथा Eosinophils बड़ी मात्रा में जमा हो जाते हैं। साथ में रक्त-द्रव का परिस्रवण अधिक मात्रा में होने लगता है। इस बढ़े हुए रक्त-द्रव के बहिश्चर्म के माल्पीजियन सैलों के बीच-बीच के प्रदेशों तथा सैलों के अन्दर अधिक भर जाने से (Inter तथा Intracellular Oedema) में बहिश्चर्म फूल जाता तथा देखने में रक्तवर्ण हो जाता है। अर्थात् उस प्रदेश में रक्त-सञ्चय (Congestion) और शोथ (Oedema) के लक्षण होते हैं। दूसरे शब्दों में, वहां की त्वचा कुछ रक्त-वर्ण एवं उभरी हुई दीखती है। पामा की इस प्रथम रक्त-मण्डल की अवस्था को Erythematous या Papular Stage कहते हैं।

बहिश्चर्म के श्लैष्मिक स्तर या माल्पीजियन स्तर में द्रव के अधिक भर जाने से सैल एक दूसरे से दूर हो जाते हैं, अर्थात् इनके परस्पर जोड़ने वाले सूत्र टूट जाते हैं। कुछ सैल द्रव के भर जाने से द्रव-रूप (Liquified) हो जाते हैं। इस द्रव के भर जाने से यह स्तर स्पंज की तरह हो जाता है इसलिए इसे Spongiosis की प्रक्रिया कहते हैं। इस धुनके में द्रव के वहाँ अधिक भर जाने पर उस प्रदेश पर सूक्ष्म-सूक्ष्म पिडिकायें पृथक्-पृथक् समूहों में दीखने लगती हैं जिनकी छत केवल बाह्य स्तर (Horny Layer) से बनी होती है। इसे इस रोग की पिडिकावस्था (Vesicular Stage) कहते हैं।

बहिश्चर्म के इस द्रव के कण्डूकारक, अर्थात् विक्षोभक, होने से शीघ्र ही इन पिडिकाओं की छत छिल जाती है, जिससे फिर उस पृष्ठ पर से यह द्रव अतिमात्रा में बहने लगता है। इसलिए इस अवस्था को स्रावी पामा (Weeping या Exudative Eczema) कहते हैं। यह स्राव गाढा तथा चिपचिपा होता है। इसके लगने से कपड़ा भी अकड़ जाता है। उपर्युक्त अवस्था कुछ दिन रहती है।

फिर यह स्राव मात्रा में कम हो जाता है तथा निकल कर वहीं पृष्ठ पर सूखकर हलके पीले से रंग के छिलकों

के रूप मे जमने लगता है। जब तक वहिश्चर्म मे उत्पन्न शोथ शान्त नहीं होता, तब तक ये छिलके वहाँ बनते रहते हैं, क्योंकि वहाँ शोथ के रहने मे मालपीजियन सैलो का प्रोटोप्लाज्म केराटीन या जेलाटीन मे जैसे साधारणत. परिवर्तित हो जाना चाहिए, वैसे परिवर्तित नहीं होता, जिससे इन सैलो मे केराटीन कम बनता है। इन सैलो के न्यूक्लिआई भी वने रहते है। अर्थात् वहिस्तर (Horny Layer) के सैलो मे Keratosis की प्रक्रिया ठीक नहीं होती (Horny Cells Nuclea से युक्त रहते हैं)। इसलिए इसे अनुचित कैराटोसिस (Para Keratosis) की प्रक्रिया कहते हैं। इन अनुचित सैलो से वने वहिस्तर मे वाहर की गर्मी को तथा हवा को सहन करने की शक्ति नहीं होती। इस अवस्था को, जिसमे वहिस्तर के सैल गीले और अपूर्ण परिणत होने के कारण परस्पर एक दूसरे से चिपके रहते हे एव एक-एक करके झडने के स्थान पर समूहो या छिलको के रूप मे झडते है, Scaly या Squamous Eczema कहते है। यह अवस्था एक मास तक रहती है। यदि रोग का कारण शान्त न हो, या Steroid का प्रयोग न किया जाये, खुजली वनी रहे, तो खुजलाते रहने से वहिश्चर्म का वाह्य शुष्क स्तर तथा श्लैष्मिक स्तर (Prickle Cell की तह) के सैलो मे अतिवृद्धि हो जाने से यह अधिक स्थूल हो जाती है। साधारणतः इन सैलो मे फिर वृद्धि (Mitosis) नहीं हुआ करती, परन्तु त्वक्-शोथ की अवस्था मे इनमे अतिवृद्धि होती है, इसे Acanthosis की प्रक्रिया कहते हैं। इस अवस्था को, जिसमे वहिश्चर्म स्थूल, शुष्क, कुछ श्याम-वर्ण तथा झडने वाले छिलको से युक्त होता है, चिरस्थायी पामा Chronic या Lichenified या Desquamative Eczema कहते हैं। इस अवस्था मे भी अन्तश्चर्म (Dermis) मे विद्यमान रक्तवाहिनियाँ शिथिल एव अधिक फैली हुई होती हैं। प्रथमावस्था के वाद इसमे सक्रमण हो जाए तो कभी-कभी पूययुक्त स्फोट भी इस रोग मे हो जाते है तब इसे Pustular Eczema कहते हैं।

लक्षण

अत्यधिक कण्डू, दाह या स्रावी पिडिकाओ से युक्त विषम आकृति के रक्त-वर्ण, स्पर्श मे किंचित कर्कश, चकत्तो को देखकर पामा रोग का सन्देह करना चाहिए। कण्डू लगातार रहती हे या ठहर-ठहरकर उठती है तथा खुजलाने से ही शान्त होती है। चिरस्थायी रोग हो तो खुजली और छिलके से उतरने के लक्षणो को देखकर इस रोग का सन्देह होता हे। ये चकत्ते शरीर के वाह्य सघर्ष मे आने वाले पृष्ठो, अग्रवाहुओ के वाह्य पृष्ठ, ग्रीवा के पश्चिम पृष्ठ, मुख और छाती के ऊपर के भाग आदि पर विशेषतः देखे जाते हैं। पर सर्व शरीर की त्वचा पर भी यह रोग होता है। तब सारी त्वचा कुछ रक्तवर्ण, रूक्ष, कण्डू और दाह से युक्त होती है। खुजलाने से या गर्म जल, धूप, साबुन आदि वाह्य विक्षोभो से ये लक्षण और वढ जाते हैं। रोग पुराना हो तो चकत्तो पर रूक्षता और शुष्कता के लक्षण विशेष होते हैं।

करतल पामा (Eczema of the Palms and Soles)

वडी आयु के व्यक्तियो की करतल की त्वचा मे भी यह रोग होता है, जिससे करतल का वाह्य शुष्क स्तर अधिक शुष्क हो जाता है। करतल की लकीरें अधिक स्पष्ट दीखती है। करतल मे स्वेद भी नहीं आता तथा रोगी को करतल मे कण्डू विशेष रहती है। नखो के तल (Matrix) मे रोग के हो जाने से कभी-कभी नखो मे भी रोग हो जाता है। जिससे नख खुरदरे, भगुर तथा वदरग हो जाते है।

शिशु पामा (Infantile Eczema, Atopic Eczema)

एक या दो वर्ष तक के शिशुओ के गाल, मस्तक या ठोडी पर पामा का रोग होकर वहाँ अस्पष्ट रूप मे पिडिकाएँ निकलती हैं। फिर शीघ्र ही वहाँ की त्वचा रक्त-वर्ण, फटी हुई, रूक्ष तथा कर्कश हो जाती है। वालक उसे खुजलाता भी है। जब शिशु का पेट खराव हो तो यह रोग भी वढता है। इसके कारण शिशु रात को वेचैन सा रहता है। वहुत सम्भवत मलाई वाले दूध, खाण्ड या फेंट या घृत के अधिक मात्रा मे अन्दर जाने या अन्न के समय से पहले लेने से इस रोग का कोई विष अन्दर उत्पन्न होता है जो विक्षोभक साबुन, धूप, गर्म जल या ऊनी कपडे की रगड से प्रकट हो जाता हे। कभी-कभी शिशु के सिर पर पामा रोग होता हे जो वडो की Seborrhoeic पामा के सदृश होता है। इसे Eczema Capitis या Dermatitis Seborrhoeica कहते हे। जिन शिशुओ को यह रोग होता हे उनमे से वहुत सो को वडे होने पर श्वास रोग होता हुआ पाया गया हे।

स्पर्शज पामा (Contact Eczema)

नाना रासायनिक द्रव्यो के ससर्ग से होने वाले रोग को स्पर्शज पामा कहते है। Seborrhoeic Eczema सिर पर तथा कान के पीछे होने वाली छिलको से युक्त पामा को, अर्थात् ललाटपामा को, कहते हैं। Infectious

Eczematoid Dermatitis व्रण के समीप मे होने वाली पामा को कहते है।

चिकित्सा

साध्यासाध्य—पामा रोग एक जीर्ण रोग है। अच्छा हो होकर फिर भी समय-समय पर हो जाता है। बडी आयु मे जल्दी ठीक नही होता।

आभ्यन्तर चिकित्सा

कोई बाह्य विक्षोभक या सघर्षक द्रव्य इसका कारण हो तो उसे दूर करना चाहिए। आभ्यन्तर विक्षोभक द्रव्य कारण हो तो उसके निवारण के लिए दो दिन का लघन कर लिया जाये, जल अधिक मात्रा मे पिया जाये, Saline का एक विरेचन ले लिया जाये या क्योकि यह रोग गेहू, दूध या चाकलेट आदि से भी हो सकता है। अत तीन दिन केवल उबले हुए चावल और कम नमक वाले किसी सब्जी के रसे, चाय, कॉफी पर ही रह लिया जाय तो रोग शान्त होने लगता है। शरीर मे कही जीवाणु का केन्द्र हो तो उसे हटाना चाहिए। किसी अवस्था मे भी भोजन मे विद्यमान तीक्ष्ण द्रव्यो जैसे चाय, कॉफी, मद्य, गर्म मसाले, खटाई, गुड, मिठाई आदि तथा धूप का परहेज करना चाहिए। दूध, अण्डे, खाण्ड आदि मे से किससे हानि होती है, पता लगाना चाहिए। कोई नया प्रोटीन पदार्थ लिया गया हो तो उसका पता करना चाहिए। फैट का सेवन भी कम करना चाहिए। दिन मे कण्डू की शान्ति तथा रात को निद्रा के लिए १, १½ ग्रेन Phenobarbitone दैनिक रूप से देना चाहिए। Antihistamine (Phenergan) के २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे २-३ बार देने से भी लाभ होता है क्योकि मन प्रसादक (Sedative) तथा हिस्टामीन-विरोधी (Anti-histamine) दोनो से इसमे लाभ होता है मन शामक तथा कण्डूनाशक होने से Trimeprazine (Vallergan M B) १० मिलि० मात्रा मे भोजन के बाद या दिन मे २ बार देना चाहिए। यह एक ओर Promethazine (Phenergan) और दूसरी ओर Chlorpromazine (Largactil) का भी काम करता है। शुद्ध मन प्रसादक ओषध ही देनी हो तो Chlordiazepoxide १० मिलि० मात्रा मे ३ बार देनी चाहिए या Prednisolone ५ मिलि० या Dexamethasone (Millicorten) ५ मिलि० या Triamcinolone (Kenacort) ४ मिलि० की मात्रा मे ६-६ घण्टे बाद दो-तीन दिन देने से या Betamethasone (Betnelan) ५ मिलि० के दिन मे २-३ बार देने से भी तीव्र तथा व्यापक रोग का वेग तीन दिन मे ही शान्त होता है। फिर इन औषधो की मात्रा दिन मे एक बार कर दी जाती है। चिरस्थायी रोग मे इस औषध का प्रभाव स्थायी नही होता। विस्फोटो मे न्यूनाधिक पूयभाव हो जाये तो किसी उचित Antibiotic जैसे Terramycin २५० मिलि० का मुख द्वारा एक सप्ताह आभ्यन्तर प्रयोग करना चाहिए। पुनर्वेगो को रोकने के लिए Auto-haemotherapy अर्थात् अपना ही रक्त ५ सी०सी० मात्रा मे मास द्वारा प्रति सप्ताह दे दिया जाता है। Calcium (Calci Glucon या Calcibronat, Calciostelin, Ostocalcium) तथा Vitamin 'B' Complex (Becozym, Vibelan, Plebex) के प्रयोग से त्वचा की सहनशीलता बढने पर भी यह रोग शान्त हो जाता है। मानसिक शान्ति या Emotional Tension को दूर करने से भी बहुधा लाभ प्रतीत होता है। इसके लिए रात को Mapiobamate १५०-३०० मिलि० दिया जा सकता है तथा दिन मे Phenobarbitone स्वल्प मात्रा म दिया जा सकता है।

बाह्य चिकित्सा

पामा के कारण त्वचा पर लाल चकत्ता हो गया हो तो रोगग्रस्त अग को ऊँचा रखना चाहिए तथा आराम देना चाहिए। उस पर शीतल चूर्ण (Dusting Powder जैसे Boric Acid १० भाग, Salicylic Acid २ भाग, Talc Powder ८८ भाग मिलाकर बनाया पाउडर या कपूर २ भाग, Zinc Oxide १६ भाग, Starch ८२ भाग मिलाकर बनाया पाउडर) लगाना चाहिए।

चकत्ते मे से कुछ स्राव भी होता हो तो शीतल द्रव लगाने चाहिए जिनमे चिकनाई नही होनी चाहिए। चिकनाई से जल का उडना बन्द हो जाता है। इसके लिए Lead Lotion, अर्थात् उबालकर ठडे किये Distilled वाटर मे १ ५ प्रतिशतक Strong Solution of Lead Subacetate मिलाकर बनाया जल, ६००० मे १ Pot Permanganate डालकर बना शीतल जल २०-३० मिनट दिन मे तीन-चार बार लगाना चाहिए या Aluminium Subacetate १-५ प्र० श० सोल्यूशन (Burow's Solution) या कैलामीन लोशन (कैलामीन ४०, ज़िक ऑक्सा० ४० ग्रे०, ग्लिस० ३० बूद, लाइम वाटर १ औस या Boric Acid ५ भाग, कैलामीन और ज़िक ऑक्साइड १५-१५ भाग, ग्लिसरीन १० भाग, जल या Aqua Calcis १५५ भाग मिलाकर बनाया लोशन या इसी मे ३०-४० भाग Bentonite भी मिलायें) या Crookes Collossol Calamine Lotion या Lead Calamine Lotion अर्थात् Lime Water १ औस मे Liquor

Plumbi Subacetatis Dil १ ड्राम, Prepared Calamine १ ड्राम, ग्लिसरीन १ ड्राम मिलाकर बनाया लोशन या स्टार्च लोशन (Starch २४ भाग, Zinc Ox २४ भाग, ग्लिस० १३ भाग, Lime Water १२० भाग) इसी प्रकार लगाना चाहिए। Calamine Liniment अर्थात् Lime Water १ औंस, जैतून तेल १ औंस मिलाकर उसमे Lanolin ५ ग्रेन Acid Oleic ३ बूँद, Calamine २ ड्राम मिलाकर बनाया लेप या Zinc Ox १०, कुछ जैतून तेल, Lime Water १२० ग्राम तक बनाया लोशन या Zinc Cream अर्थात् Zinc Oxide १ ड्राम, Lanolin १ ड्राम को, Lime Water तथा जैतून के तेल १ औंस के मिक्सचर मे मिलाकर बनाई क्रीम या Zinc Paste अर्थात् Zinc Oxide २ ड्राम, Starch २ ड्राम, Lanolin २ ड्राम, Soft Paraffin १ औंस मे मिलाकर बनाया लेप लगा सकते हैं। अब इस रोग के लिए विशेषत Iodochlorhydroxy Quinoline (Enteroquinol) की २ ५%, Neomycin ५%, Bacitracin ५०० यूनिट प्रति ग्राम, Framycetin १%, Kenacort २५%, Prednisolone २५% आदि किसी का प्रयोग होता है। Betamethasone (Betnelan) Triamcinolone (Kenacort), Fluocinolone acetonide (Sinandone) किसी का १% लेप भी रोग को शीघ्र दूर करता है। इन सबमे भी Betnelan उत्तम है।

जब पामा के चकत्ते मे खुजली विशेष हो तो उसके हटाने के लिए उपर्युक्त लोशन, क्रीम तथा पेस्ट मे Liquor Carbonis Detergens १ औंस मे ३ बूँद (५-६ प्रतिशतक) या Acid Carbolic या Menthol या Ol Menth Pip या Chloretone १ प्रतिशतक के हिसाब से मिला दिये जाते हैं या १ टब (९८ डिग्री जल) मे १ कप सोडे का मिलाकर उससे स्नान कर लेना चाहिए।

चिरस्थायी पामा रोग मे बहिस्चर्म सूजा होता है, छाये हुए छिलको की मात्रा अधिक होती है। इसलिए उस पर केवल शीतल लेप के लगाने से लाभ नही होता। उस पर कुछ गर्म और तीक्ष्ण लेप (Stimulant) तथा छिलके उतारने वाले या लेखन (Keratolytic) द्रव्यो की आवश्यकता होती है। इस अवस्था मे त्वचा रूक्ष होती है। अत स्निग्ध लेप लगाने चाहिएँ। इस प्रयोजन से Sulphur का २-३ प्रतिशतक मात्रा मे, Salicylic Acid का ४-५ प्रतिशतक मात्रा मे, Coaltar Solution या Liquor Picis Carbonis का ४-५ प्रतिशतक मात्रा मे, Ammoniated Mercury तथा Vioform का २-३ प्रतिशतक क्रीम के रूप मे विशेष प्रयोग होता है। उदाहरणत Soft Paraffin ५० भागो मे, Zinc Oxide २४ भाग, Starch २४ भाग, Salicylic Acid २ भाग, या Soft Paraffin १ औं०, जिंक आक्सा० और स्टार्च प्रत्येक १२० ग्रे०, Salicylic Acid १० ग्रे० मिलाकर या उपर्युक्त Zinc Paste के १ औंस मे १५-३० बूँद Liquor Carbonis Detergens या Camphor या Menthol मे से किसी को ५ ग्रेन की मात्रा मे मिलाकर लगा सकते है, या Soft Paraffin १ औंस मे Liquor Carbonis Detergens ३० बूँद, Ammoniated Mercury १० ग्रेन, Liquor Plumbi Subacetatis Fortis ३० बूँद मिलाकर लगा सकते है। खालिस Tar भी बडा लाभ करता है। Prednisone तथा Tar से बने Tarsolon को दिन मे १-२ बार लगाया जा सकता है। Tar के लेप (२-५%) न लगाने हो तो Sterosan अर्थात् Chlorquinaldol Ointment या Cream ३% लगा सकते है। Vioform ३% प्रलेप लगा सकते हैं फिर भी जो पामा ठीक न हो, खुजली कम न हो तो Corticosteroid से बने प्रलेप व लोशन, जैसे Hydrocortisone Acetate ५ प्र० श० लोशन या मलहम, Prednisolone (२५%), Hydrocortisone (Efcorlin-lotion, Oint) Triamcinolone प्रलेप (१%) दिन मे एक बार लगाने से विशेष लाभ होता है। इनके साथ कोई Antibiotic जैसे Neomycin ५ प्र० श० मिला सकते हैं या Bacitracin १ ग्राम मे २५०-५०० यूनिट मिला सकते है या Gramicidin ५ मिलि० प्रति ग्राम मिला सकते है। इसी प्रकार Betamethasone, Dexamethasone भी उपयोगी होते है। तीव्र रोग मे ये जितने उपकारी होते है, उतने जीर्ण पामा मे नही, क्योकि ये रोग को दबाने वाले Suppressive ही है। साथ ही ये हाथ-पाव की मोटी त्वचा पर हुए रोग के लिए उतने उपकारी नही। पामा के विस्फोटो पर Ultraviolet Light का क्रमिक प्रयोग भी किया जाता है। Superficial X-Ray का एक-एक सप्ताह बाद प्रयोग करने से भी कण्डू को आराम रहता है।

शिशु पामा के लिए शिशु को खाण्ड देना बन्द कर देना चाहिए फैट का प्रयोग भी न करें। बालक को ऊन के स्पर्श से भी जहाँ तक हो सके, बचाना चाहिए। साधारण दूध के स्थान पर डब्बे का दूध देना चाहिए ताकि उसमे स्नेह की मात्रा कम हो जाये। अजीर्ण की चिकित्सा से यह रोग शान्त होने लगता है। Burow's Solution ½, ½ घटे के लिए दिन मे ४ बार लगाना चाहिए।

उपर्युक्त Zinc Paste के एक औंस मे Liquor Carbonis Detergens ५-१० बूँद मिलाकर लगाने से या Hydrocortisone १ प्र० श० घोल या मल्हम या क्रीम या Triamcinolone ०१% मलहम या क्रीम लगाने से उसे लाभ होने लगता है। बालक को Betamethasone (Betnelan) १-२५ मिलि० या Dexamethasone (Decadron) इतनी मात्रा मे दिन मे ३ बार देने से १ सप्ताह मे यह रोग शान्त हो जाता है। उसके बाद इस मात्रा को कम करके दे। बालक को रात क समय निद्राजनक औषध जैसे Phenobarbitone या Chloral Hydrate Elixir या Elixir Benadryl ३०-४० बूँद या Elixir Vallergan Forte १ ड्राम या Elixir Phenergan ३०-४० बूँद या Promazine २५ मिलि० दिन मे २ बार दे देनी चाहिए। मुख पर जल या साबुन का प्रयोग न करके उसे दूध या किसी तेल से ही साफ रखना चाहिए। जीवाणु सक्रमण भी हो जाये तो Sulphadimidine आधा ग्राम दिन मे २ बार देना चाहिए। ऐसे बालक को जब तक यह रोग रहे, चेचक का टीका नहीं लगाना चाहिए।

आयुर्वेद मे चम्बल

आयुर्वेद मे चम्बल (Eczema) को पामा कहा गया प्रतीत होता है जैसे कि सुश्रुत ने कहा है कि स्राव, कण्डू और दाह से युक्त सूक्ष्म पिडिकाए हो जायें तो उसे पामा रोग समझना चाहिए।

(सु। नि०, ५। १२)

देहाग्नि की मन्दता या अति तीव्रता से, अर्थात् कफवृद्धि वा पित्त-वृद्धि से शरीर में कुछ विष-पदार्थ उत्पन्न होते हैं या उनमें से जब किसी एक की या दोनो की वृद्धि होती है और उसे जब बहिश्चर्म सहन नहीं कर सकता, एव उससे वह विक्षुब्ध हुआ-हुआ होता है, तब स्वल्प से बाह्य विक्षोभक पदार्थ से भी उस त्वचा में शोथ हो जाता है, इसे पामा कहा जाता है। इस प्रकार, क्योंकि शरीर में कफ की वृद्धि या पित्त की वृद्धि से यह रोग होता है, इसलिए रोगी को कफ-पित्त-वर्धक भावो से बचना चाहिए। पाचकाग्नि की मन्दता को दूर करना चाहिए तथा धूप, अग्नि आदि बाह्याभ्यन्तर सर्व तीव्र विक्षोभक भावो से भी बचना चाहिए।

(च० चि०, ७।२५ तथा ३०)

चिकित्सा

शरीर में कफ-पित्त दोषों की शान्ति के लिए रोगी को लघु सुपच आहार पर रखकर हरीतकी चूर्ण देकर एक मृदु रेचन करायें तथा मञ्जिष्ठादि क्वाथ या उसमें उमवा-गोरखमुण्डी भी मिलाकर कुछ दिन पिलाना चाहिए या आरोग्यवर्धिनी गोली का दिन में ३ बार प्रयोग करना चाहिए या पञ्चनिम्बचूर्ण ३ माशा दे या षट्पल घृत ३ तोला दें या कामदूधा के रूप में कैल्सियम का प्रयोग करें। रोग की प्रथम अवस्था में शीत-रूक्ष लेप अधिक लाभ करते हैं। पञ्चवल्कल क्वाथ या माजूफल के क्वाथ मे भीगे वस्त्र के दिन में कुछ देर के लिए ४-५ बार बाँधने से शान्ति पडती है। या मुरदाशख, माजू, सिंदूर, सफेदा कासगरी, समान भाग मिलाकर इसे दुगुने घृत से मिलाकर लगाने या मुरदाशंख, छोटी इलायची, शीतलचीनी, सफेदा कासगरी समान-समान मिलाकर ३-४ गुना घृत में मिलाकर लगाने से लाभ होता है। शास्त्रोक्त जीरक तेल (जीरा ४ तो०, सिंदूर २ तो०, तेल ३२ तो०, पाक करें) या जात्यादि तेल (जातीपत्र, निम्ब-पत्र, मेंहदी-पत्र, बबूल-पत्र, करज-पत्र के रस एक-एक भाग, तेल ८ भाग, मोम १ भाग के लगाने से भी शोथ शात होता है। चिरस्थायी पामारोग में त्वचा की स्थायी कफ-शोथ की शान्ति के लिए इसमें कुछ उग्र द्रव्यो का भी प्रयोग करना आवश्यक होता है। इसलिए कण्डूयुक्त छिलकों वाली शुष्क पामा में सिन्दूरादि लेप, (सिन्दूर, दोनों जीरे, दोनों हल्दी, मैनसिल, गन्धक, मरिच, पारा समान-समान के चूर्ण को ४ गुना घृत में मिलाकर बना लें) लगाने से या मुरदाशख, सिंदूर, गन्धक, सुहागा, बोरिक एसिड एक-एक भाग, कर्पूर ½ भाग, गिरी का तेल तथा मोम १०-१० भाग मिलाकर बने लेप के लगाने से या गन्धक १ भाग, बोरिक एसिड २ भाग, कपूर और फिटकरी प्रत्येक ½ भाग, मोम ४ भाग, तिल का तेल ८ भाग से बनाया लेप लगाने से बहुधा लाभ हो जाता है। व्रणशामक तेलो जैसे निम्बपत्र-क्वाथ १६ भाग, तिल-तेल ४ भाग, निम्बत्वक् २ भाग, हल्दी, त्रिफला एव दोनों चन्दन सब समान-समान मिलित १ भाग से बनाये तेल से भी शरीर भर में व्यापक पामा में लाभ होता है।

सर्वत्वग्रोगो में सामान्यतया प्रयुक्त होने वाली आभ्यन्तर औषधिया निम्नलिखित हैं —

(१) लघुमञ्जिष्ठादिक्वाथ (शा स) मञ्जिष्ठा, त्रिफला, कटुकी, वचा, दारुहल्दी, गिलोय, नीम की छाल समान-समान के २½ तोला का क्वाथ।

(२) निम्बस्वरस प्रयोग (व से) नीमपत्र ६०-७० का स्वरस निकालकर प्रात काल पिलाए। घृतयुक्त यूष के साथ चावल या रोटी दें। ८-१० दिन इसका प्रयोग करें। चैत्र में निम्बपुष्प स्वरस पीने से सर्वत्वग्रोग दूर होते हैं। (यो चि)

(३) आरोग्यवर्धनी गुटी (र. र. स.) पारा, गंधक, लोह, अभ्रक, ताम्र १-१ भाग, त्रिफला प्रत्येक २ भाग, शिलाजीत ३, गुग्गुलु ४, चित्रमूल ४ भाग, कटुकी सर्वतुल्य, नीम के पत्तों के रस की ३ भावना देकर गोलियां बना लें। २-२ गोली दिन में २ बार दें।

(४) पञ्चनिम्बचूर्ण (भै. र.) निम्बपत्र त्वक् मूल पुष्प फल प्रत्येक २, त्रिफला, त्रिकटु, ब्राह्मी, चित्रक, गिलोय, दोनों हल्दी, अमलतास का गूदा, कुष्ठ, इन्द्रजौ, पाठा, गोखरू, भलादा, बाकुचीबीज, खाण्ड, लोह-भस्म प्रत्येक एक भाग मिला सबको खदिरकाष्ठ असन, निम्बत्वक्, भृंगराज प्रत्येक के क्वाथ की ७-७ भावना दें। मात्रा १-४ माशा।

(५) गंधक प्रयोग (र. र. स.) गंधक १, मरिच १, त्रिफला प्रत्येक २ भाग मिला चूर्ण करें। ३ माशा मात्रा।

(६) गंधक रसायन (वृ. नि. र.) शुद्ध गंधक को गोदुग्ध की ३, चतुर्जातक के फाण्ट, त्रिफला क्वाथ, भृंगराज-रस, आर्द्रकरस, गुडूची स्वरस प्रत्येक की ८ भावना दें। समान मिश्री मिला दें। मात्रा १ माशा (गंधक सेवन काल में व्यायाम, सवारी, अम्ल, लवण, दाल अपथ्य हैं)।

(७) तिक्त घृत (चा. भ. चि. १८) पटोल, कटुकी, नीम, दारुहल्दी, धन्वयास, पित्तपापडा, त्रायमाण, ५-५ तोला। जल १६ सेर में पका ४ सेर शेष। त्रायमाण, मुस्ता, चिरायता, इन्द्रजौ, पिप्पली, चन्दन, १¼-१¼ तोला का कल्क मिला ६० तोला घृत से घृत साधन करें।

(८) पञ्चतिक्त घृत गुग्गुलु (भै. र.) नीमछाल, गिलोय, पटोल, वासा, कटेली, ५०-५० तोला, जल ३२ सेर। चतुर्थांश शेष। गुग्गुलु २५ तोला की पोटली डाल दें। घृत १ सेर। त्रिफला, मजीठ, अतीस, वचा, पाठा, दो क्षार, अजवायन, जीरा, मरिच, देवदारु, सोया, चव्य, कुटकी, विडंग, हल्दी, कुष्ठ, भलावा, चित्रमूल, सोंठ, इन्द्रजौ १¼-१¼ तोला। घृत पाक करें। अर्बुद, गण्डमाला, गलविद्रधि, भगन्दर, सिर की त्वचा के रोगों के लिए भी उपयोगी।

(९) खदिरारिष्ट (ग. नि.) खदिरसार ३ सेर आध पाव, देवदारु ३ सेर आध पाव, त्रिफला १¼ सेर, दारुहल्दी १½ सेर, बावची ३ सेर। जल २५६ सेर में पकाकर ⅛ शेष रखें। छानकर उसमें धातकी १¼ सेर, शहद २५ सेर, खाण्ड ६¼ सेर, कंकोल, लौंग, इलायची, जायफल, दालचीनी, नागकेसर, मरिच, तेजपत्र ५-५ तोला, पिप्पली चूर्ण १¼ सेर मिला आसव बनायें।

(१०) खदिराष्टक क्वाथ (ग. नि.) खदिरकाष्ट, त्रिफला, नीम, पटोल, गिलोय, वांसा समान-समान का क्वाथ।

पामा के लिए उपयोगी आभ्यन्तर प्रयोग :—

(१) पथ्यायोग (वृ. मा.) गोमूत्रपक्वहरीतकी चूर्ण ३ माशा मात्रा।

(२) आरोग्यवर्धनी गुटी अथवा लघु मंजिष्ठादि या निम्ब स्वरस या पञ्चनिम्ब चूर्ण।

(३) गंधक प्रयोग (र. का. धे.) शुद्ध गंधक १ माशा तिल तेल के साथ चटाए। दूध रोटी या दूध चावल का भोजन। ३-४ दिन तक।

नवीन पामा या स्रावी पामा के लिए उपयोगी बहि प्रयोग :—

(१) सिन्दूरादि तैल (भै. र.) सिन्दूर ४, जीरा ८ तोला, कडवा तेल ४० तोला, जल १ सेर। तैल साधन करें।

(२) दूर्वादि तैल (भै. र.) दूर्वास्वरस ४, तेल १ भाग। तैल साधन करें।

जीर्ण या शुष्क पामा के लिए उपयोगी प्रयोग :—

(१) सिन्दुरादि तैल द्वितीय (यो. र.) सिन्दूर, रसौंत, थोथा, गूगल ४-४ तोला, तेल १ सेर, जल ४ सेर। तैल पाक करके मोम ४ तोला मिलाए।

(२) आदित्य पाक तैल (भै. र.) मंजिष्ठा, त्रिफला, लाक्षा, हल्दी, गंधक, कलिहारी समान-समान का कल्क १ भाग। तेल ४ भाग। धूप में २ सप्ताह रख कर छान लें।

(३) हरिद्रादि तेल (र. र.) दोनों हल्दी, हरड, बहेडा, मुस्ता, कुष्ठ, हरताल, मनसिल समान-समान का चूर्ण २० तोला, सरसों तेल १ सेर। धूप में २ सप्ताह रखकर छान लें।

(४) श्वेतकरवीरादि तेल (ग. नि.) कनेर का रस २, गोमूत्र २, तेल सरसों १ सेर, चित्रमूल, विडंग ५-५ तोला। अग्नि पर तैल साधन करें।

(५) मरिचादि तैल (शा. स.) मरिच, हरताल, मनसिल, अर्कदुग्ध, करवीरमूल, इन्द्रायण मूल, कुष्ठ, दोनों हल्दी, लालचन्दन, देवदारु, मोथा प्रत्येक ४, वत्सनाभ ८ तोला, गोमूत्र ४ सेर। तेल १ सेर। तैल साधन करें।

(६) गंधक पिष्टी तैल (र. र. स.) गंधक अमलतास के रस से पिष्ट की हुई १ भाग, तेल ४ भाग। जल १६ भाग। तैल साधन करें।

(७) तुम्वुरु आदि चूर्ण (ग नि) नैपाली धनिया, कुष्ठ, सरसों, चित्रक, पटोल, निम्बपत्र, हरताल, मनसिल, दोनो हल्दी, सैन्धव, तुलसी समान-समान का चूर्ण । तक्र से पीसकर लेप ।

(८) सिन्दूरादि लेप (ग नि) सिन्दूर, मरिच समान-समान मिला ८ गुणा मक्खन से लेप करें ।

वृषणकच्छू अर्थात् Scrotal Eczema के लिए :—

कासीसादि लेप (वृ. नि र) कासीस, तुत्थ, गोरोचना, रसोत समान-समान के चूर्ण को काञ्जी से पीसकर लगाए ।

महासिन्दूरादि तैल (भै. र.) सिन्दूर, चन्दन, मासी, विडग, दो हल्दी, कुष्ठ, मजीठ, खदिरसार, वचा, निम्वत्वक्, वत्सनाभ, लोध्र, पवाड वीज, समान-समान मिलित २० तोला । सर्पप तेल १ सेर । जल ४ सेर । तैल साधन करें । सर्वत्वग्रोगो में भी उपयोगी है ।

वृषणकण्डू में उपयोगी :—

सर्जादिलेप (वृ नि र) राल, कुष्ठ, सुगध वाला, सैन्धव, श्वेत सरसो के चूर्ण का उद्वर्तन करें ।

शीतपित्त Urticaria (Urtica, Nettle)

त्वचा मे अस्थायी रूप मे हुए, स्पष्ट किनारो वाले, उभरे हुए, चक्राकृति रक्तवर्ण कडूयुक्त चकत्तो या उभारो को शीतपित्त कहते है ।

त्वचा गर्मी, आघात तथा कीट-पतग आदि के दश के लगने पर पहले रक्तवर्ण हो जाया करती है, परन्तु यदि उतनी गर्मी, आघात आदि लगते ही रहे तो फिर त्वचा रक्तवर्ण नही होती । इसी प्रकार यदि किसी पदार्थ के खाने से त्वचा पर रक्तवर्ण चकत्ते निकल आयें तो कुछ काल स्वल्प मात्रा मे उस द्रव्य का प्रयोग करने से चकत्ते निकलने बन्द हो जाते हैं। इसी प्रकार रोग-जीवाणु के स्वल्प मात्रा मे शरीर मे प्रवेश करने पर पहले तो रोग होता है, फिर उतने जीवाणु के प्रवेश करने पर भी रोग होना बन्द हो जाता है, अर्थात् सभी नये द्रव्य शरीर के लिए विष के समान एव असात्म्य होते है, परतु कुछ काल के प्रयोग के बाद वे शरीर के लिए निरुपद्रव एव सात्म्य हो जाते हैं। वस्तुतः शरीर इनके विपरीत द्रव्य Antibodies या Reagins को उत्पन्न करके इनको उदासीन कर देता है । ये सदा रक्त मे रहते हैं । इस प्रकार शरीर मे जीवाणुओ के विपरीत Bacteriolysin, दूसरे के रक्त के विपरीत Haemolysin, Cytolysin तथा जीवाणुओ के विपरीत Antibodies उत्पन्न कर देने का एक स्वाभाविक गुण है। जिससे वह सर्व विपरीत एव असात्म्य द्रव्यो के दुष्प्रभाव से अपने को वचा लेता है । इसे शरीर की स्वाभाविक रक्षक शक्ति (Phylaxis या Energy) कहते है ।

परन्तु कभी-कभी इसके विपरीत यह भी पाया जाता है कि किसी-किसी व्यक्ति मे विपरीत द्रव्य के प्रथम वार शरीर मे प्रवेश करने पर शरीर के एक अग की उसको सहन करने की शक्ति वढने के स्थान पर और भी घट जाती है। अर्थात्, उसके वाद शरीर का वह अग उस विपरीत द्रव्य के लिए और अधिक असमर्थ या Sensitized हो जाता है। अर्थात् वह विपरीत द्रव्य उस स्थान के सैलो में Sensitizing Antibodies या Reagins उत्पन्न करने का कारण हो जाता है । इसलिए फिर दुवारा जव वह द्रव्य शरीर मे प्रवेश करता है, तो वह शरीर के असमर्थ (Sensitized) हुए इन सैलो के लिए विनाशक हो जाता है। इस प्रकार शरीर मे Phylaxis के स्थान पर Anaphylaxis या शक्ति (Energy) के स्थान अशक्ति (Allergy, Anergy) या Hyperergy या Hyper Sensitivity असात्म्यता उत्पन्न हो जाती है।

इस प्रकार, जव तो वहिश्चर्म के सैलो मे Antibodies रहते हैं और उन पर उनके विपरीत द्रव्य (Antigen) का विनाशक प्रभाव होता है, तो उपर्युक्त पामा रोग उत्पन्न होता है । जव अन्तश्चर्म की रक्तवाहिनियो पर किसी विपरीत द्रव्य का विनाशक प्रभाव होता है तव शीतपित्त या कण्डू (Neurodermatitis) का रोग होता है । जव अन्तश्चर्म के नीचे के मेदोमय स्तर की रक्तवाहिनियो पर Antigen का दुष्प्रभाव होता है तव 'उदर्द' Angioneurotic Oedema हो जाता है । त्वचा के इन अवयवो के इस विपरीत द्रव्य के द्वारा विनष्ट होने पर Histamine उत्पन्न होता है। जिसके विषैले प्रभाव से उसकी सूक्ष्म रक्तवाहिनिया शिथिल होकर फैल जाती है तथा उन फैली हुई रक्तवाहिनियो मे से रक्त का द्रवभाग अधिक मात्रा मे परिस्रुत (Transude) होने लगता है। अन्तश्चर्म मे ऐसा होने पर वहिश्चर्म के वाहर के स्तर मे उस द्रव के आ जाने से त्वचा पर १ से ४ सेंटीमीटर व्यास के उभरे हुए ऐसे चकत्ते निकल आते है जो किनारे पर रक्तवर्ण, वीच मे फीके रग के होते है। द्रव के अधिक सचित हो जाने पर रक्तवाहिनियो के दव जाने से ये चकत्ते वीच मे फीके पड जाते हैं। वह विष-द्रव्य (Antigen), जो अन्तश्चर्म के अवयवो के लिए घातक होता है, वहुधा आँतो मे से आता है । यह अजीर्णजनित कोई विष-द्रव्य (Antigen) होता है जो रक्त द्वारा त्वचा मे पहुँचकर वहाँ पर विद्यमान

Sensitizing Antibody के साथ प्रवल प्रतिक्रिया करके वहाँ Histamine या Acetylcholine को उत्पन्न करता है एव इस रोग का कारण हो जाता है। दूसरे शब्दो मे, यह Histamine विष से होने वाला एक रोग है। रोगी के रक्त के सीरम मे यह विष पाया जाता है, क्योकि यदि उसके सीरम को दूसरे की त्वचा मे प्रविष्ट किया जाय तो वहाँ पर भी शीतपित्त का चकत्ता निकल आता है। शरीर के किसी प्रदेश मे विद्यमान पूय-जीवाणु या B Coli के रक्त मे सचार कर जाने से भी शीतपित्त रोग हो सकता है। सम्भवत जव Antibodies त्वचा के तापमान के गिरने पर त्वचा के सैलो के लिए विनाशक (Dermatolytic) होते हैं तव शीतल हवा या शीतल जल के लगने पर यह रोग होता देखा जाता है। कभी-कभी अतिशीत जल मे गोता लगाते ही त्वचा मे Histamine इतना उत्पन्न होता है कि व्यक्ति मे Collapse या Shock का लक्षण हो जाता है। सम्भव है, जव किसी अवयव मे Histamine को पचाने वाले Histaminase की न्यूनता होती है, तव उसमे Allergy का रोग होता है एव इस रोग मे त्वचा के अन्दर इसकी न्यूनता होती है। यह रोग १० वर्ष से नीचे या ६० वर्ष से ऊपर की आयु मे प्राय नहीं पाया जाता, युवको या वालको मे यह रोग तीव्र रूप मे तथा वडी आयु मे यह चिरस्थायी रूप मे होता है। तीव्र रूप मे यह किसी भोजन जनित Metabolite से या औषध से होता है चि० स्था० रूप मे वहुधा मानस कारणो से होता है। एव इस रोग का कारणभूत, विष-द्रव्य तो भोजनगत प्रोटीन से जैसे गेहू, अण्डे, दूध, चाकलेट आदि मे से किसी से या वासी भोजन से या किसी आन्त्र कृमि से या Amaebiasis अर्थात् अमीवी से या पूययुक्त दाँत तथा गले से या मूत्रगत B Coli से या Candida albicans से आता है या मानस-विक्षोभ (Emotions) के कारण Autonomic नाडियो के सिरो पर उत्पन्न Acetylcholine के कारण से होता है। Aspirin, Iodides, Serum, Vaccines, Penicillin आदि Antibiotics भी कभी-कभी इसके कारण होते हैं। इस रोग मे सहसा ही शरीर के किसी प्रदेश पर, विशेषत वड पर, ½ से १ इच व्यास के गोलाकार अण्डाकृति या विषमाकृति के हलके, लाल-से, कुछ उभरे हुए चकत्ते निकल आते हैं जो वीच मे फीके, किनारो पर रक्तवर्ण होते हैं जिनमे खुजली विशेष होती है। निकलने के कुछ घण्टो मे ही ये छिप जाते हैं। आमाशय व आँत की अन्दर की झिल्ली मे शीतपित्त रोग हो तो अरुचि का लक्षण भी होता है। वालको मे शाखाओ के Extensor पृष्ठो पर कोठ निकल आते हे जिनमे कण्डू विशेष होती है, पास-पास की त्वचा भी लाल होती है, इसे कोठयुक्त शीतपित्त (Papular Urticaria) कहते हैं। रक्त-परीक्षा करने से उसमे Eosinophilia का लक्षण मिलता है।

उदर्द Giant Urticaria (Angioneurotic Oedema)

कभी-कभी शरीर के किसी प्रदेश के नीचे मेदोमय (Sub-cutaneous) स्तर मे परिस्रवण (Exudation) अत्यधिक हो जाना है जिससे वहिश्चर्म के उठ जाने से त्वचा पर १-२ इच व्यास का एक उभार कुछ घण्टो के लिए प्रकट हो जाता है। नेत्रो के पलक या चेहरे, अग्र वाहु, हाथ, ओष्ठ या जिह्वा की श्लेष्मकला (Mucous Membrane) के नीचे भी ऐसा उभार हो जाता है जिसे उदर्द कहते हैं। वात-प्रकृति के (Neurotic) नवयुवको या नवयुवतियो मे अजीर्ण से, शीत से अथवा किसी प्रकार की चिन्ता करने से प्रकट होता है। शोथयुक्त त्वचा प्राय साधारण रग की तथा कण्डूरहित होती हे अथवा कुछ फीके रग की या कुछ रक्तवर्ण की हो सकती है। स्पर्श मे यह स्थान शीतल ही होता है, पर कुछ गर्म भी हो सकता है। वस्तुत वहाँ की रक्तवाहिनियो मे Antigen Antibodies की परस्पर प्रतिक्रिया मे यह रोग होता है। आमाशय, आत आदि मे यह रोग हो तो आन्त्र-शूल (Cramps) तथा मार्गावरोध होने से वमन के लक्षण होते है। स्पष्ट है कि कण्ठ (Larynx) मे यह शोथ हो तो Tracheotomy के विना मृत्यु हो सकती है।

सघर्षज शीतपित्त (Dermatographism) मे कुछएक मे कठोर कपडे की रगड से ही त्वचा लाल हो जाती है। यदि यह लक्षण अधिक स्पष्ट हो तो उसकी गणना भी इस रोग मे होती हे।

शीतपित्त-चिकित्सा

जव यह रोग तीव्र रूप मे होता है तव एक तीव्र विरेचन जसे Castor Oil १ औस, या Calomel १ ग्रेन, या Saline या Rhubarb तथा Sodabicarb का मिश्रण देने से और रोगी को केवल दूध पर एक-दो दिन रखने से शरीर के अन्दर उत्पन्न इसका विष-द्रव्य (Antigen) नष्ट हो सकता है। मल मे कोई कृमि हो तो उसके कारण भी यह रोग हो सकता है। अत कृमि का पता भी लगाना चाहिए।

परन्तु जव यह रोग वार-वार (Chronic रूप मे) होता है तव इस रोग के कारण का निकालना आवश्यक हो जाता है। तव एक-दो दिन अधिक मात्रा मे जल या

ग्लूकोज और जल लेना चाहिए तथा भोजन का सर्वथा लघन कर देना चाहिए। फिर पहले केवल दूध देना चाहिए। वह अनुकूल प्रतीत हो और उससे यह रोग शान्त रहे तो इसी भोजन मे गेहू का दलिया और मिला देना चाहिए। इस प्रकार तीन-तीन दिन के अन्तर से दूसरे भोजन मिलाकर देखना चाहिए कि कौन से भोजन का अजीर्ण उसमे शीतपित्त को उत्पन्न करता है। वहुधा दूध, अण्डे, चाकलेट, गेहू आदि से रहित चावल, आलू आदि सादे भोजन से प्राय यह रोग शान्त हो जाता है। लवण का प्रयोग कम कर देने से भी इसमे लाभ होता है। इसी प्रकार अधिक सोडियम वाले आहारो का भी प्रयोग कम कर देना चाहिए। अथवा कुछ Allergens, जो सामान्यत रोग के कारण होते हैं, वाजार में (Bencard) मिलते हैं उनमे से त्वचा मे जिसके देने से वडा चक्कर पड जाता है उसे इस रोग का कारण समझा जाता है।

शीतपित्त तीव्र रूप मे हो तो उसे दवाने के लिए कोई Antihistamine औषध जैसे Mepyramine Maleate (Anthisan M B) ·१ ग्राम या १½ ग्रेन, ३ वार, Promethazine HCl (Phenergan M B) २५ मिलिग्राम या ⅜ ग्रेन की मात्रा मे एक वार सोते समय, Diphenhydramine HCl (Benadryl P D) २५-३० मिलिग्राम मात्रा मे दिन मे तीन वार, Antazoline HCl (Antistin Ciba, Histostab Boots) ·१ ग्राम या १½ ग्रेन दो-तीन वार दी जा सकती है। या इतनी मात्रा का इसका इजेक्शन दिन मे दो वार देना चाहिए। वालक को इससे आधी मात्रा पर्याप्त है। Meclozine Hydroch (Ancolan B D H) के निद्राजनक न होने से इसे दिन मे २ वार देना तथा दूसरी औषधो का रात को एक वार देना उचित है। Triprolidine HCl (Actidil) २ ५ मिलि० दिन मे ३ वार दिया जा सकता है। Chlorpheniramine Malate ४ मिलि० दिन मे ३-४ वार इस रोग के लिए एक उत्तम औषध है। Antihistamine, Ascorbic Acid तथा कैल्सियम तीनो (Sandosten आदि अनेक योगो) को शिरा द्वारा भी दिया जा सकता है। तीव्र रोग मे १००० मे १, Adrenaline की १-१० वूँद त्वचा द्वारा देने से लाभ हो जाता है। Ephedrine Hydrochloride ⅜ ग्रेन के मुख द्वारा दिन मे ३-४ वार देने से या इसे Phenobarbitone ⅛ ग्रेन के साथ मिला के देने से या इन दोनो को Cal Lactate १० ग्रेन के साथ मिला के दिन मे तीन वार देने मे या इसके १००० मे १ सोल्यू० के ३-१ मिलिलि० के त्वचा द्वारा देने से भी लाभ हो जाता है। जिनमे रक्तभार अधिक हो, उन्हे एड्रिनेलीन नही देना चाहिए। Prednisolone ५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ४ वार तथा Corticotrophin भी वडी मात्रा मे इस रोग मे तुरन्त लाभ दिखाते है। जिह्वा, गले या श्वास-मार्ग मे यह शोथ हो और यह रोग भयकर रूप मे हो तो Adrenaline (१०००-१) ४ वूद इजेक्शन द्वारा देवें या Isoprenaline (Neoepinine) की गोली जीभ के नीचे रख दे।

चिरस्थायी रोग मे भोजन विलकुल सादा लेने से Nystatin की गोली के दिन मे ३ वार लेने से या Acid Hydrochlor Dil को १५ वूद मात्रा मे तीनो भोजनो के साथ लेने से, जल के अधिक मात्रा मे पीने से अर्थात् मूत्र की मात्रा वढा देने से विटामिन 'वी' कम्पलेक्स, Crude Liverex लोहे तथा अन्य वल्य औषधो के देने से Auto Haemotherapy या Milk Injection से Calcium Lactate या Calcium Gluconate के १५-२० ग्रेन मात्रा मे ३ वार लेने या Calcium Gluconate १० प्रतिशतक के माँस या शिरा द्वारा कुछ दिन लेने से लाभ हो जाता है। कैल्सियम से सूक्ष्म रक्तवाहिनियो की परिस्रवणशीलता घटती है।

कण्डू की शान्ति के लिए Lead Lotion या Calamine Lotion मे २ प्रतिशतक Phenol (वालक मे ५%), या १० प्रतिशतक Liquor Carbonis Detergens या २० औंस गर्म जल मे १½ ड्राम सोडा डालकर लगाना चाहिए। Papular Urticaria वहुधा मानसिक कारणो से होता है। स्थान-परिवर्तन से तथा कण्डूशामक औषधो से लाभ हो जाता है।

आयुर्वेदानुसार शीतपित्त रोग

आयुर्वेद में इसे वात-कफजनित अन्तश्चर्म-शोथ कहते हैं। अन्तश्चर्म मे विद्यमान रक्तवाहिनियो में कफ एव वात के प्रकुपित होने अर्थात् उनमे अजीर्ण के कारण आम-द्रव्य (Metabolite) की उपस्थिति तथा शीतल जल या वायु के स्पर्श के कारण उनकी प्राणशक्ति के न्यून हो जाने एव उनके शिथिल हो जाने या फैल जाने से शीतपित्त रोग की उत्पत्ति होती है। क्योकि इसमें त्वचा पर रक्तवर्ण वरटी-दष्ट स्थान के तुल्य चकत्ते निकलते हैं तथा कभी-कभी इसके साथ कुछ ज्वर भी होता है, इसलिए इस रोग को शीत के कारण होने वाला पित्तरोग या शीतपित्त रोग कहा है। परन्तु साथ ही कहा है कि 'वाताधिक शीतपित्तम्'—अर्थात्, त्वचा की रक्तवाहिनियो में वातिक दुर्वलता के कारण प्रधानत यह रोग होता है। वाह्य शीत इस वातिक

दुर्बलता का तात्कालिक कारण हो जाता है। साथ ही आयुर्वेद में कहा है कि उदर्दस्तु कफाधिकः'—अर्थात् जब चर्म के नीचे की रक्तवाहिनियों में आम-दोष की उपस्थिति विशेष होती है और उसके विषैले प्रभाव से वहाँ परिस्रवण (Transudation) विशेष होता है तब वहाँ एक बड़ा उभार उत्पन्न हो जाता है, जिसे उदर्द कहते हैं।

इसीलिए इस रोग में कफदोष की शान्ति के लिए रोगी को नीम के जल में लवण और मदनफल-चूर्ण मिलाकर उसका एक-आधा गिलास पिलाकर वमन करा देने से लाभ हो जाता है। विरेचन कराने अर्थात् त्रिफला को मधु के साथ देने या त्रिवृत या हरीतकी-खण्ड या ६ माशा हरीतकीचूर्ण कोष्ण जल के साथ पिला देने से भी यह रोग शान्त हो जाता है। पाचन-दीपन औषध, अर्थात् अजवायन ४ माशा को बराबर गुड के साथ मिलाकर दो-तीन बार दे देने से भी यह रोग शान्त हो जाता है। कभी-कभी गैरिक २-३ माशा में थोड़ी खाण्ड मिलाकर उसे जल से २-३ बार पिलाने से यह कष्ट शान्त हो जाता है। अजवायन के चूर्ण में १½ रत्ती रससिन्दूर मिला के भी इस रोग में देते हैं। त्रिकटु-अजवायन चारों को मिला दूध से पिलाना चाहिए।

यह रोग बार-बार होता हो तो रोगी को केवल दूध और पीपल के चूर्ण पर कुछ दिन रखना चाहिए। या बहुत सादे भोजन पर जैसे मूंग की खिचड़ी या उबले दलिये आदि पर रहते हुए तिक्त घृत का या २ तोले मजिष्ठादि क्वाथ का या नीम, कटुकी, गिलोय, हरड, सोंठ, पुनर्नवा समान-समान मिले क्वाथ का २ तोला की मात्रा में दिन में एक बार या आरोग्यवर्धिनी वटी का ३ बार सेवन करना चाहिए या तिक्त घृत रोज देना चाहिए। मुक्ता-शुक्ति भस्म २ रत्ती के रूप में कैल्सियम का प्रयोग करते रहने से भी इस रोग मे लाभ प्रतीत होता है।

सरसो के तेल में अपामार्गक्षार, यवक्षार या कोई क्षार मिलाकर मलने से या दाहघ्न कायफल के कल्क को ४ गुणा तेल मे पका, उस तेल के मलने से कण्डू शान्त हो जाती है।

शीतपित्त उपयोगी प्रयोग :—

(१) अमृतादिक्वाथ (यो र) गिलोय, हल्दी, नीम की छाल, धन्वयास इनमें से किसी एक का क्वाथ कुछ दिन पिलाना चाहिए।
(२) निम्बयोग (यो. र) निम्बपत्रचूर्ण २ माशा घृत के साथ चटाएं।
(३) हरिद्राखण्ड (भै. र.) हल्दी का चूर्ण ४० तोला घृत ३० तोला में भूनें फिर दूध ४ सेर मिलाकर उसे भूनें, अन्त में खाण्ड ३ सेर १० तोला मिलाएं।
(४) सिद्धार्थाद्युद्वर्तन (यो र.) सफेद सरसों, हरिद्रा, कुष्ठ, पंवाड के बीज, तिल, समान-समान को सरसो के तेल में पीसकर शरीर पर मर्दन करें।
(५) दूर्वादिलेप (शा. स.) दूर्वास्वरस में हरिद्रा को पीस कर लेप करें।
(६) त्रिफलापुर कृष्णायोग (यो. र.) त्रिफला, पिप्पली समान-समान गुग्गुलु सर्वतुल्य गोलिया बनाए। ४-६ गोली दिन में दें।
(७) कोई तिक्त घृत दें।
(८) तेल में क्षार और सैन्धव लवण मिलाकर मालिश करें।
(९) यवानी त्रिकटु योग (यो. र.) अजवायन, त्रिकटु चारो समान। ३ माशा।
(१०) गुडदीपक योग (यो. र) अजवायन को २ गुणा गुड में मिलायें। ४ माशा।

पथ्य—चावल, मूग, गेहू, करेला, तथा गर्म जल पथ्य है। शीत स्नान, धूप, खटाई, सर्वगुरु भोजन अपथ्य है।

मंडल (Psoriasis)

लक्षण

१० से ३० वर्ष के आयु के बालको व नवयुवको मे शीत तथा आर्द्र काल मे अधिक पाये जाने वाला तथा ग्रीष्म तथा शुष्क काल में कम हो जाने वाला यह सुलभ रोग है (त्वग्रोगो मे ३%) जिसमे अधिक संघर्ष मे आने वाली त्वचा पर जैसे कोहनी, जानु, शाखाओ के बाह्य (Extensor) पृष्ठो तथा धड, कमर और पीठ पर, और कभी-कभी सिर पर, उठा हुआ, स्पष्ट किनारो वाला, छोटा-सा पिन के नक्के जितना या मसूर के दाने जितना, रक्तवर्ण, शुष्क-सा कोठ (Papule) निकलता है जिस पर श्वेत वर्ण का छिलका चिपका हुआ रहता है। यह गोलाकृति या मुद्राकृति होता है, इसलिए इसे 'मण्डल' कहते है। यह क्रमश आकार मे बडा होकर आधे या एक इंच व्यास का हो जाता है। ऐसे अनेक मण्डल समीप-समीप निकलकर एक-दूसरे से मिल जाते हैं और चित्राकृति हो जाते हैं। इस प्रकार शरीर के एक देश या सारे शरीर पर यह रोग छा सकता है। ये मण्डल शरीर के दोनो ओर आमने-सामने निकला करते है तथा प्रारम्भ से ही उठे हुए तथा एक श्वेत-सी परत से ढके हुए होते हैं। परत को उतारने पर नीचे Stratum Mucosum नंगा हो जाता है जिसके लाल-लाल दाने फैली हुई सिराओ के प्रदर्शक होते हैं। कभी-कभी ये ठीक

होने लगते हे तो ये मण्डल मुद्रिकाकृति (Gyrate, Ring) दीखने लगते हैं। इस रोग मे कण्डू, दाह, स्राव आदि कोई कष्ट नहीं होता पर यह वडा चिरस्थायी तथा ठीक होकर फिर हो जाने वाला रोग हे तथा कुरूपता का कारण होता है, तो भी सौभाग्य है कि चेहरे तथा हाथों पर यह रोग प्राय नही होता। जव ये चकत्ते विन्दुरूप मे होते है तव इसे Psoriasis guttate कहते है। जव सिक्के के आकार के हो तव इन्हें Nummular Psoriasis कहते हैं। सारी त्वचा लाल हो, छिलके झडते हो तो उसे Psoriatic Erythrodermia कहते है।

कारण तथा सम्प्राप्ति अर्थात् विकृति

इस रोग का कारण त्वचा के Epidermis मे इस रोग की सहज पैतृक प्रवृत्ति या किसी निर्वलता का होना है (रोगी के ½ वच्चो मे यह होता हुआ पाया जाता हे माता-पिता दोनों मे हो तो ६५% वच्चो मे होता है) तथापि यह रोग Contagious नही है। प्राचीन लोगों ने इसे कुष्ठ कहा है। यूरोप मे भी पहले इसे कुष्ठ कहते थे पर यह कुष्ठ रोग से सर्वथा भिन्न रोग है तथा उस पर किसी आभ्यन्तर या वाह्य विक्षोभ (Nervous तथा Toxic) का आ पडना ही लगता है। इस रोग के कारण के विषय मे अभी तक कुछ पता नही चला।

इस रोग मे अन्तश्चर्म (Papillae) मे विद्यमान रक्तवाहिनियाँ शिथिल होकर फैल जाती हैं, अर्थात् इनमे शोथ (Oedema) होता है। रक्तवाहिनियो के आसपास Polymorphonuclear तथा Mononuclear नामक सैल अधिक सख्या मे सचित होते हैं। अन्तश्चर्म मे इस प्रकार श्लैष्मिक शोथ (Oedema) के रहने से वहिश्चर्म के श्लैष्मिक स्तर (Prickle Cells) की तह भी मोटी हो जाती हे, अर्थात् उसमें अतिवृद्धि (Acanthosis) की प्रक्रिया हो जाती है अर्थात् वहिश्चर्म के सैलों मे Mitosis की गति तीव्र हो जाती हे। स्वस्थ पुरुष मे Epidermal Cell का विभाजन १९-२० दिन मे होता है। इस रोग मे इस सैल का विभाजन १० दिन मे ही हो जाता हे। इसलिए इस रोग से युक्त प्रदेश का वहिश्चर्म स्थूल होता है। नीरोग स्थान का वहिश्चर्म साधारणत पतला ही रहता हे। इस स्तर के सैलो मे उचित परिवर्तन नही होता, अर्थात् उनमे न्यूक्लियाई या मीगियो के वने रहने तथा इनमे आर्द्रता और स्निग्धता के वने रहने से इससे वाहर के दानेदार तथा स्वच्छ स्तर (Granular तथा Lucid Layers) ता वनते ही नहीं, वाह्य स्तर या शुष्क स्तर के सैल भी ठीक-ठीक नहीं वनते, अर्थात् उनमें जेलाटीन की जैसी उत्पत्ति होनी चाहिये, वह नहीं होती। जिससे वाहर के स्तर के सैल परस्पर एक-दूसरे मे चिपके रहते है। इसी से त्वचा पर छिलके छाये हुए दीखते हैं। दूसरे शब्दो मे, वहिश्चर्म मे Parakeratosis (Horny Layer ठीक न वनने) की विकृति होती है। इस वाह्य स्तर के सैल वाहर की गर्मी से सूखकर सिकुड जाते हैं, पर उनमे जो हवा वन्द हुई होती है उस पर से प्रकाश के प्रक्षिप्त होने के कारण ये छिलके श्वेत वर्ण के दीखते हैं।

नख-मण्डल—Psoriasis Unguium

यह रोग त्वचा के साथ-साथ नखो मे भी हो सकता है, तथा केवल नखो मे ही हो सकता है। नख मे यह रोग दो-तीन रूपो मे होता है। (१) नख क्रमश रूक्ष, खुरदरे, मोटे, पीतवर्ण तथा भगुर होते जाते है। (२) एक या अनेक नख अपने सिरो पर नख-भूमि से पृथक् होकर उठे-से हो जाते हैं। देखने से नख और नख-भूमि के वीच मे श्वेत परतो की तह (Hyperkeratosis) दीखती है जिससे नख ऊपर को उठ-सा जाता हे। यह प्रक्रिया आगे से पीछे की तरफ फैलती है। (३) उनमे छोटे-छोटे पिन के सिरे जितने अनेक समान आकार के गड्ढे (Stippling) पडते जाते हैं जो पहले नख मूल (Lunula) मे पडने आरम्भ होते है। यह रोग एक, दो या सभी नखो मे हो सकता है। नख-दद्रु एक-दो नखो मे होता हे Asymmetrical होता है। इसके कारण नख कुछ मैला, श्यामवर्ण, खुरदरा, धुँधला और भगुर-सा हो जाता है। वह खाया जाता है। Psoriasis दोनों हाथो के नखो मे आमने-सामने एक-सा होता हे। नख-दद्रु मे ऐसा नही होता। यह मण्डल रोग कुछ-एक मे एक वार अच्छा हो जाने पर दुवारा नहीं होता, पर वहुत-सो मे ठीक होकर कुछ काल वाद दुवारा भी हो जाता हे।

चिकित्सा

Tonsillitis हो तो उसका प्रत्युपाय अवश्य करना चाहिए। कोई मानसिक आघात प्रतीत हो तो उसका भी प्रत्युपाय करना चाहिए। औषधो मे से ५ सी०सी० Milk Injection या Autohaemotherapy मे १० सी०सी० रक्त को ४-५ वार देने से इस रोग मे लाभ होता देखा जाता हे। Delta Efcorlin या Prednisolone १५ मिलि० के ३-७ दिन देने से इसमे वडा लाभ होता हे। Triamcinolone (Kenacort, Squibb) से भी ऐसा होता है, इसे १६ मिलि० दैनिक मात्रा मे २ सप्ताह देकर फिर १२ मिलि० दैनिक करके क्रमश कम करना चाहिए। इसके Intralesional injec. से भी लाभ होता है। चार दफा ५ मिलि० Betnelan के अन्त प्रयोग से भी लाभ हो जाता हे। इस रोग की चिन्ता न करने से तथा

प्रसन्न रहने से भी यह ठीक होने लगता । इस प्रयोजन से भोजन के बाद ¼ ग्रेन Phenobarbitone या Diazepam १ गो० को दिन मे २ बार देना चाहिए। Methotrexate २.५ मिलि० १ गोली के ६ दिन देने और फिर १० दिन बाद ६ दिन देने से भी लाभ हो जाता है।

स्थानिक प्रयोग के लिए उपयोगी प्रलेप ये हैं। रोग नया हो, तीव्र रूप मे हो तो Calamine Lotion या स्टार्च लोशन या २० प्र०श० Zinc Ox प्रलेप मे ५ प्र०श० Liquor Picis Carbonis मिलाकर लगाना चाहिए।

जब रोग मध्यम रूप (Subacute) मे हो तब Prepared Coaltar १२, Zinc Ox २४, Starch २४, Glycerin ३६, जल १२० भाग मिलाकर बनाया लोशन लगाना चाहिए या Prepared Coaltar २० ग्रेन, Zinc Ox १२० ग्रेन, Paraffin Soft १ औंस तक का मलहम लगाना चाहिये या जीर्ण (Chronic) रूप के लिए Salicylic Acid ४-६%, Sulphur Precip १-५%, Liquor Picis Carbonis ३-१०%, Ammoniated Merc २-५%, Anthralin ५% या Exolan ५% (Triacetoxyanthracene) किसी एक का प्रयोग किया जा सकता है। रोग अधिक पुराना (Chronic) हो तो Salicylic Acid ६-१०%, Sulphur Precip ६-१०%, Liquor Picis Carbonis १०-२०% Ammoniated Merc. ५-१०%, Anthralin ५-१०%, Chrysarobin ५-१०%, किसी एक का मलहम के रूप मे प्रयोग करना चाहिए। कुछ-एक सामान्य मलहमो का, जिनका इस रोग पर प्रयोग होता है, यहाँ उल्लेख किया जाता है। (१) Ammoniated Mercury Ointment—Paraffin Ointment (B P) १ औंस मे Ammoniated Mercury १० ग्रेन, Liquor Picis Carb १ ड्राम। (२) Benzoinated Lard ६½ ड्राम, Ammoniated Mercury १० ग्रेन, Acid Salicylic २० ग्रेन, Liquor Picis Carbonis १ ड्राम। (३) Chrysophanic Acid २० ग्रेन, Liquid Paraffin २ ड्राम, Lanolin ६ ड्राम (यह कपडे पर दाग लगा देती है)। (४) Anthralin (Dithranol) Ointment ¼ प्रतिशतक (कपडे पर दाग लगाती है)। (५) Sulphur and Salicylic Ointment प्रत्येक २-१० प्रतिशतक। (६) रुग्ण नख पर भी Salicylic Ointment या किसी दूसरे उपयुक्त मलहम का लेप लगाना चाहिए। या इससे बनी Derobin Ointment *Glaxo* का या *Derobin* with Hydrocortisone मलहम का प्रयोग करना चाहिए। (७) Corticosteroids (Betnelan आदि) के २५-५% के स्थानिक प्रलेप भी इस रोग को हटाते है। Triamcinolone (Kenacort) की २५% मलहम से भी ये चकत्ते ठीक हो जाते हैं। Mechlorethanine १० मिलि० को ५० ml जल म घोलकर इसे ब्रुश से चकत्तो पर रोज लगाएँ। ८-१० दिन मे चकत्ते लुप्त हो जाते है।

Suberythema Ultra-violet Light Exposure की चिकित्सा

Coaltar Solu ४ औंस को ३० गैलन गर्म जल मे मिला उससे स्नान करके फिर गर्म जल-साबुन से स्नान करके, शरीर को पोंछकर, Ultraviolet Light का ३ फुट की दूरी से ½ मिनट का ऐक्सपोजर दिया जाता है जितने से कि विशेष लाली न हो। उसके बाद चकत्तो पर Dithranol ½ ग्रे०, Salicylic Acid १० ग्रे०, जिंक ऑक्साइड और स्टार्च बराबर-बराबर १२० ग्रेन Soft Paraffin १ औंस से बना मलहम लगा दिया जाता है। इस चिकित्सा को तब तक जारी रखा जाता है जब तक चकत्ते लुप्त न हो जाये। Dithranol न लगाया जा सकता हो तो Tar के मलहम को तेल से उतारकर रुग्ण प्रदेश को Ultra-violet Light उपर्युक्त विधि से देने और फिर स्नान करा देने से काफी लाभ होता है।

आयुर्वेद में मण्डल कुष्ठ

त्वचा पर उठे हुए, श्वेत परत से छाये हुए, गाढे, चिकने, चिरस्थायी, स्थूल किनारो वाले, लाल रग के, एक-दूसरे के साथ जुडे हुए, कृच्छ्रसाध्य मण्डलाकृति चकत्तो को चरक ने 'मण्डल' कुष्ठ कहा है तथा शरीर में विशेषत कफदोष या आमदोष की अधिकता से उत्पन्न होने वाला रोग कहा है।
(च०।७।१६। निदान ५।८)

आयुर्वेद में रसमाणिक्य १-२ रत्ती की मात्रा में घृत और मधु के साथ, अथवा तालकेश्वर रस अर्थात् पलाशक्षार के मध्य में रखकर १२ घण्टे तक पकाये हरताल का ½ या १ रत्ती की मात्रा में दिन में दो बार कुछ काल प्रयोग इस रोग के लिए लाभदायक कहा गया है।

मण्डल रोगोपयोगी कुछ अन्य प्रयोग —

(१) चित्रकगुटी (ग. नि) चित्रक ५, त्रिवृत २½, पिप्पली १½, गुड ४०, हरड १०० तोला मिलाकर

इसकी २० मात्रा करें। एक मात्रा गर्म जल से १० दिन में १ बार दें।

(२) राजराजेश्वररस (भै र) पारा, गधक, ताम्र, हरिताल, १-१ भाग, भृ गराज रस से १ दिन मर्दन करके त्रिफला, कत्था, गिलोय, वाकुची प्रत्येक १ भाग मिलाए। इसे २ रत्ती मात्रा में मधु घृत से चटाए।

(३) चित्रकादिलेप (वृ नि र.) चित्रमूल को घिसकर उसका लेप करें। सूख जाने पर उसे उतारकर फिर एरण्ड बीजो को पीसकर लेप कर दें।

(४) गण्डीरादि तेल (च द) स्नुही, चित्रमूल, भृंगराज, अर्कमूल, कुष्ठ, कुटजत्वक्, सैन्धव वरावर मिलाकर १ पाव, तेल १ सेर, गोमूत्र ४ सेर। तैल साधन कर लगाए।

(५) गृहधूमादिलेप (ग. नि.) गृहधूम, दो क्षार, पाच लवण, पवाडबीज, वावची, वत्सनाभ, मरिच, चित्र-मूल, दो हल्दी, कुष्ठ, कमीला, हरताल, मनसिल, पारा, सिन्दूर, थोथा, कासीस, समान-समान। गोमूत्र से घोटकर इसका लेप करें।

(६) गोपाल कर्कटी (Kigelia Pinnata) के लटकने वाले कठोर फल को पीसकर उसका स्वरस लगाने से मण्डल कुष्ठ शीघ्र ही ठीक होने लगता है।

चर्म दल (Impetigo Contagiosa Impetere=attack)

यह Cocci के सक्रमण से वहिस्त्वक् मे होने वाले छोटे छोटे छालो वाला रोग हे।

विशेषत शीत ऋतु मे वालको के मुख पर, सिर पर, ग्रीवा पर और कभी-कभी शाखाओ की त्वचा पहले हलकी सी लाल हो जाती ओर उस पर वहुत उथले, समीप-समीप, छोटे-छोटे मटर के दाने जितने विस्फोट (Pox या Pustules) निकलते है, जिनका द्रव एक-दो दिन के अन्दर ही अन्दर जमकर (Coagulate होकर) एक हलके पीले से रग के छिलके के रूप मे परिणत हो जाता हे, जिससे ऐसा लगता हे कि वहाँ का चर्म दलित हो गया या गल गया है। इसलिए इस विस्फोट को चर्म-दल कहा गया है। इस छिलके को रूई से हटाये तो नीचे मे और द्रव (Serum) निकलने लगता हे, और शीघ्र ही फिर वहाँ छिलका (Crust) आ जाता हे। निकलने वाले द्रव का जमकर छिलका-सा छा जाना इस रोग का विशेप लक्षण है। एक विस्फोट होने पर समीप-समीप अनेक विस्फोट निकलते जाते हे। इसलिए इसे Contagiosa (सक्रामक) कहा जाता हे। नासा छिद्र, मुख छिद्र या कान के पीछे गीले से Fissures भी इस रोग के कारण उत्पन्न हो जाते हैं।

जव वहिस्त्वम मे साधारण आघात लगकर क्षत हो जाता है तव आँख, नाक आदि के स्राव मे विद्यमान Stahylococcus Pyogenes Aureus या कभी-कभी Streptococcus Pyogenes के वाह्य शुष्क स्तर (Horny Layer) और दानेदार स्तर (Stratum Granulosum) के वीच मे प्रवेश कर जाने से यह उथला-सा विस्फोट उत्पन्न होता है जो प्राय लोमकूप (Hair Follicle) के मुख पर स्थित होता है, फिर विस्फोट के समीप थोडा-सा क्षत होने पर भी जीवाणु-सक्रमण होकर वहाँ भी विस्फोट वन जाता है। इस प्रकार समीप-समीप अनेक उथले विस्फोट हो जाते है। इन शीघ्र टूट जाने वाले विस्फोटो के समीप की त्वचा मे लालिमा, कण्डू, दाह आदि कोई लक्षण नही होते। प्रारम्भ मे एक लोमकूप के मुख पर वहिश्चर्म के वहिस्तर (Horny Layer) के नीचे उपर्युक्त जीवाणु की वृद्धि होकर जव एक कॉलोनी वन जाती हे तव वहाँ नीचे से अज्ञात रूप मे रिस-रिस कर रक्त का Serum तथा Leucocytes आ जाते हैं जिससे वहिस्तर या उससे नीचे का स्तर ऊपर को उठ जाता है। इस प्रकार वहिश्चर्म मे एक उठा हुआ विस्फोट (Pustule) दिखाई पडने लगता है। शीघ्र ही फिर ऊपर उठा हुआ स्तर गलकर वहता नही, एक छिलका सा वन जाता हे और फिर सूखकर झड जाता हे। नीचे से नया स्तर आ जाता हे एव वहाँ कोई निशान नही रहता।

भेद

श्मश्रु-पिडिका, श्मश्रु-विस्फोट या Sycosis of the Face या Folliculitis Barbae या Beard Impetigo

वडी आयु के व्यक्तियो के चेहरे पर चर्म-दल का रोग होने पर उसमे विद्यमान Staphylococcus का सक्रमण दाढी के वालो की जडो (Follicles) मे हो जाता हे एव दूर तक फैल जाता है। निर्वलता और स्थानिक आघात इसके प्रारभिक कारण प्रतीत होते है। इसलिए जव यह रोग युवक के मुख पर हो तो इसकी रोकथाम जल्दी करनी चाहिए। क्योकि नाई के उस्तरे के द्वारा यह रोग दाढी के वालो मे फैलता हे इसलिए इसे Barber's Rash, Folliculitis Barbae भी कहते हे। यह श्मश्रु-पिडिका का रोग नाक और मुख के वीच के प्रदेश या ठोढी पर आरम्भ होकर दाढी के सारे प्रदेश मे फैल सकता है। इसमे Staphylococcus प्राय Hayfever या Sinusitis

के वाद नासिका मे से आता है। पहले तो कुछ-एक वालो की जडो मे पीले से छिलको से ढके हुए विस्फोट (Pustules) दीखते हैं जो फटकर वहते नहीं और उनमे कण्डू का कुछ कष्ट होता है। फिर नाई के उस्तरे द्वारा इस रोग का सक्रमण पास-पास के वालो मे भी हो जाता है। इन श्मश्रु-पिडिकाओ के आसपास की त्वचा रक्तवर्ण होती है, पिडिका मे दाह, कण्डू और स्पर्श करने पर दर्द का लक्षण होता है तथा साधारण Impetigo की तरह ये शीघ्र ठीक न होकर देर मे ठीक होती है।

चर्म-दल (Impetigo Contagiosa) की चिकित्सा

विस्फोटो पर जमे हुए छिलको को २ प्रतिशतक Sodium Bicarbonate लोशन से या Normal Saline से या गर्म Boric Lotion से या Hydrogen Perox से या हलके सावुन के लोशन से हटाकर निम्नलिखित जीवाणुनाशक कोई लेप लगाना चाहिए

(१) Calamine Lotion या, Calamine Liniment या, Zinc Cream मे Ammoniated Mercury २-५ प्रतिशतक मात्रा मे मिलाकर लगाने से लाभ हो जाता है।

(२) जल मे Proflavine १००० मे १ मिलाकर उसमे Tannic Acid ४ प्रतिशतक मिला सकते है।

(३) Proflavine ½ ग्रेन, Zinc Oxide २० ग्रेन, Liquor Plumbi Subacet Dil १ ड्राम, जल ७ ड्राम।

(४) जल मे Gention Violet २ प्रतिशत।

(५) उवले हुए Distilled जल मे Copper Sulph तथा Zinc Sulphate ४-५ प्रतिशतक।

(६) Zinc Cream मे ५ प्रतिशतक, Sulphadiazine केवल ४-५ दिन ही लगायें। अन्यथा Sensitization का भय रहता है।

(७) २ प्रतिशतक Chlortetracycline Ointment या Erythromycin या कोई Antibiotic Cream स्वय या Hydrocortisone Acetate ½ प्रतिशतक मलहम के साथ।

(८) Vioform Cream ३ प्रतिशतक (या Dermoquinol) Quinolor या Steroxin Ointment (Geigy)

(९) Penicillin १००० Unit प्रति सी०सी० जल या प्रति ग्राम मे मलहम (केवल ४-५ दिन ही लगाये।

(१०) Tetracycline ३ प्रतिशतक लेप।

(११) Neomycin ५ मिलि० प्रति ग्राम मलहम, ५ मिलि० प्रति सी०सी० लोशन भी उपयोगी है। इसके साथ Bacitracin ५००-१००० यूनिट्स प्रति ग्राम मे मिला सकते है।

(१२) Framycetin १½ प्रतिशतक मलहम या लोशन विशेष उपयोगी है।

(१३) Terramycin, Neosporin या Achromycin Topical Powders भी दिन मे १-२ वार लगाये जा सकते है।

(१४) Chlorhexidine (Hibitane) १ प्र०श० Cream भी लगाई जा सकती है।

श्मश्रु-विस्फोट के लिए दाढी को कैंची से ही वनाना चाहिए तथा उपर्युक्त औपधो का प्रयोग करना चाहिए। मुख द्वारा Anti-infective जैसे Sulphadimidine ५ ग्राम मात्रा मे दिन मे ३ वार २ सप्ताह दे सकते हैं या किसी Antibiotic का मुख या त्वचा द्वारा प्रयोग करे। Terramycin cap २५० मिलि० दिन मे ४ वार दे। वालक को Paediatric drops of Terramycin की ४ वूद दिन मे ३-४ वार दें। सादा, फल-प्रधान भोजन कुछ दिन लेने से भी लाभ प्रतीत होता है। नये उत्पन्न वालक मे रोग हो तो Ampicillin की सूचीवेध दें।

आयुर्वेद मे चर्म-दल रोग

शरीर में कफदोष तथा पित्तदोष वढे हुए हो, अर्थात् पाचकाग्नि की न्यूनता के कारण आमदोष वढा हुआ हो, तथा आघात लगने से वहिश्चर्म Epidermis में पित्तदोष की वृद्धि हो, तो वहाँ पूयजीवाणुओ का सक्रमण होकर जो उथले से स्फोट होते हैं, उन्हें 'चर्म-दल' कहा है। इस विस्फोट का चर्म शीघ्र ही गल जाता या दलित हो जाता है, इसलिए इसे चर्म-दल कहा जाता है। वालको के मुख तथा सिर पर ये चर्मदल-स्फोट विशेषत. होते हैं।

(च० चि०।७२।२४।३०)

कफ तथा पित्तदोप की शान्ति के लिए इस रोग में मजिष्ठादि १ तोला का क्वाथ प्रात पीना चाहिए तथा निम्ब-क्वाथ या त्रिफला-क्वाथ से धोकर इन पर जात्यादि तेल, जात्यादि घृत या अन्य कोई व्रणनाशक तेल या उससे वना लेप लगाना चाहिए।

युवान-पिडिका (Acne Vulgaris)

इस रोग मे चेहरे पर कील के से कठोर उभार या Papule निकलते रहते हैं।

१५ से २०-२२ वर्ष की आयु के लडके-लडकियो मे से कुछ-एक के चेहरो के लोमकूपो (Lenugo Hair Follicles) के मुखो पर पिन के नक्के जितनी छोटी-छोटी पिडिकाएँ अधिक मात्रा मे निकली हुई दीखा करती है, जिन्हे युवान-पिडिका कहते हैं। कभी-कभी ये पिडिकाएँ छाती तथा पीठ पर बहुत निकलती है, मुख पर अधिक नही। यो तो युवावस्था मे साधारणत ही लोमकूपो से स्नेह-स्राव (Sebum) अधिक मात्रा मे होता है, अर्थात् उन्हे Seborrhoea की शिकायत रहती है। बहुत सम्भवत जो भोजन मात्रा मे अधिक लेते, व्यायाम कम करते हैं विशेषत जो खाण्ड, मिठाई, अन्न, चिकनाई अधिक लेते है एव जिनके मूत्र मे अम्लीयता (Acidity) अधिक होती है, जिनके रक्त मे खाण्ड की मात्रा कुछ अधिक होती है, साधारणत जिनके शरीर मे पचन (Oxidation) की मात्रा कम होती है, जिनमे कुछ अजीर्ण, मलबन्ध आदि लक्षण प्राय रहते हैं, उनमे यह रोग होता है। इनमे Androgen, Oestrogen का सतुलन ठीक-ठीक नही होता, अर्थात् युवक मे Androgen तथा युवती मे Progesterone की प्रबलता प्रतीत होती है। इनके Pilosebaceous glands मे इनके लिए असहनशीलता होती है। विटामिन 'ए' की न्यूनता भी इस रोग का कारण प्रतीत होती है। युवतियो मे सन्तान की स्थिति होने पर प्राय रोग शान्त हो जाता है।

लोमकूप (H Follicles) मे से स्नेह का अधिक स्राव होते रहने मे लोमकूप की दीवार के सैलो मे अतिवृद्धि (Hypertrophy या Hyperplasia) हो जाती है। लोमकूप, बहिश्चर्म के अन्तश्चर्म मे अन्दर की ओर धस जाने से बना होता है। उसके सैलो मे अतिवृद्धि होने से उनमे उचित परिवर्तन जो होना चाहिए, नही हो पाता। दूसरे शब्दो मे, उनमे Hyperkeratosis या Parakeratosis अर्थात् केराटीन की निर्माण-सम्बन्धी विकृति रहती है। लोमकूपो के मुख, शुष्क स्तर (Horny Layer) के विकृत सैलो के बहुत अधिक मात्रा मे जमा हो जाने से बन्द हो जाते है, जिससे लोमकूप मे उसके बन्द हो जाने से स्नेह-द्रव (Sebum) अधिक मात्रा मे जमा हो जाता है। इस प्रकार लोमकूप के मुख पर एक दाना-सा (Comedo) बन जाता है जो स्तर के सैलो और सूखे हुए सीबम से बना होता है। ऑक्सिजन के प्रभाव से यह काला हो जाता है। इसके अन्दर भरा हुआ स्नेह-द्रव क्योकि एक विक्षोभक या 'फौरिन मैटर' बन जाता है, उसके कारण लोमकूप मे शोथ या सूजन हो जाती है जिससे लोमकूप मे एक कोठ (Papule) बन जाता है। इसी को युवान-पिडिका कहते है। इसके अन्दर Acne Bacillus भी पर्याप्त सख्या मे रहते है। कभी-कभी इसी जीवाणु के समान Staphylococcus Albus का भी इसके मुख मे सक्रमण हो जाता है। जिससे इस पिडिका मे पूयभाव (Suppuration) भी हो जाता है। तो भी ये जीवाणु इस रोग के कारण प्रतीत नहीं होते। कारण तो स्नेह-स्राव (Sebum) के अन्दर किसी विकृति का होना या Seborrhoea प्रतीत होता है। रोगी के हाथो के द्वारा इस युवान-पिडिका के खुल जाने पर वह स्थान स्नायुतन्तु (Scar Tissue) के द्वारा पूर्ण कर दिया जाता है जिससे वहाँ एक गढे का निशान पड जाता है। पर इसके बहिश्चर्म मात्र मे होने से यह निशान कुछ काल बाद मिट जाता है।

साधारणत ये पिडिकायें चेहरे पर नाक के पास, गाल पर, ठोडी पर, नाक पर और मस्तक पर हुआ करती है। कभी-कभी छाती तथा पीठ पर भी निकल आती है। देखने मे रोगी का चेहरा अधिक चिकना, उसके चेहरे की बहिश्चर्म अधिक मोटी और उसके मोटे होने से चेहरे का रग कुछ भद्दा हो जाता है। चेहरे पर देखने से अनेक लोमकूप बाहर की ओर उभरे दीखते है। उसके चेहरे पर स्वेद भी अधिक होता है। चेहरे पर इस विकृति के कारण रोगी मे चिन्ता का लक्षण होता है। यह रोग देर मे अच्छा होता है।

युवान-पिडिका की चिकित्सा

Seborrhoea या स्नेह-स्राव की अधिकता को रोकने के लिए रोगी के भोजन मे पकवान, खाण्ड, अन्न, चिकनाई, चाय आदि गर्म पेयो तथा मसालो की मात्रा कम करनी चाहिए। फल, सब्जी का सेवन अधिक करना चाहिए। रक्त मे खाण्ड कम करने के लिए किसी मधुमेह-शामक औषध का प्रयोग भी करना चाहिए। प्रोटीन की मात्रा बढानी चाहिए। खुली हवा मे व्यायाम करने का आदेश देना चाहिए। अजीर्ण तथा मलबन्ध को दूर करना चाहिए। मन मे अशान्ति रहती हो तो उसे भी दूर करना चाहिए। रोगी यदि जल मे निम्बू का सेवन करे या किसी क्षार औषध का सेवन करे, या लोह का सेवन करे, तो भी लाभ होता है। लडकियो मे Diethylstilboestrol ५-१ मिलि० (Clinestrol) को प्रतिदिन मासिक धर्म से आठ दिन पहले के छोडकर मुख से २-३ मास दे दिया जाय या Ethinyloestradiol (Ethinestryl, Dyloform) को Ethyl Alcohol ७० प्रतिशत के १ मिलिलि० मे ०१-०५ मिलि० मात्रा मे मिलाकर दिन मे २ बार मुख पर मला जाय तो यह रोग अच्छा हो जाता है। Tetracycline

(Terramycin) के २५० मिलिग्राम की मात्रा मे ३ बार प्रतिदिन ३-४ दिन तक, फिर २ बार, फिर १ बार भोजन से १ घ० पहले कुल ३-४ सप्ताह लेने से भी इस रोग मे लाभ होता है। अथवा २५० मिलि० मात्रा मे इसे दो बार १ सप्ताह तक लेकर, १ सप्ताह का अन्तर देकर, फिर १ सप्ताह इसी प्रकार इसे लेने से लाभ हो जाता है या Penicillin का प्रयोग करें। Sulphadimidine आधे ग्राम की गोली दिन मे ३ बार या Orisul १ गोली दिन मे १ बार देने से भी लाभ होता है। एन्टिबायोटिक औषधियो के साथ Prednisolone आदि किसी Steroid का भी प्रयोग करना चाहिए। विटामिन 'ए' ५० हजार यूनिट प्रतिदिन तथा 'सी' १०० मिलि० का २ मास प्रयोग करने से इस रोग मे लाभ होता है।

मुख पर के Seborrhoea को कम करने के लिए मुख को गर्म जल तथा साबुन से दिन मे चार बार मलकर धोना चाहिए। रात को धोने के बाद कोई ऐसा लेप, जो लोम-कूपो पर विद्यमान विकृत सैलो का लेखन करे (Keratolytic या Exfoliative हो) लोम-कूपो के लिए जीवाणुनाशक (Antiseptic) हो मलकर लगाना चाहिए। जैसे (१) Zinc Sulphate १ ड्राम, Sulphurated Potash १ ड्राम, Aqua Rosae ३० ड्राम, (२) या Acne Lotion—Sulphur Precipitated १ ड्राम, Zinc Sulphate १ ड्राम, Zinc Ox १½ ड्राम, Sodium Borate १½ ड्राम, Acetone १ औंस, Camphor Water तथा Rose Water ४-४ औंस, मुख पर मलकर लगाये तथा इसके चूर्ण को रात भर रहने देना चाहिए, (३) या Sulphur Resorcinol Lotion (Sulphur १, Resorcinol ½, Zinc Ox ६, Talc ६, Bentonite १ ड्राम, Alcohol ५०% ४ औंस) रात को लगाकर सवेरे मुख धो लेना चाहिए। या Sulphur Precipitate १ ड्राम, ग्लिसरीन १ औंस, Aqua Rose १० औंस के लोशन को दिन मे २ बार लगायें। या Calamine १०%, Sulphur २% का लोशन लगाये। या Soft Paraffin मे २४% Zinc Ox , Sulphur, Resorcin, Salicylic Acid प्रत्येक ४% मिलाकर रात को चेहरे पर हलका-हलका लगाएँ, प्रात उसे धो दें। अथवा Calamine ३० ग्रेन, Zinc Ox ३० ग्रेन, ग्लिसरीन ३० बूँद, Soft Paraffin १ औंस मुख पर मलना चाहिए। Salicylic Acid Ointment (२ प्रतिशत) तथा Starch Glycerine (स्टार्च ८५ ग्राम, शुद्ध जल १७० सी०सी०, ग्लिसरीन ७४५ ग्राम) समान-समान मिलाकर मुख पर लगाना ठीक है। या Beta Naphthol १०, Sulphur S ५०, Soft Soap और Soft Paraffin प्रत्येक २५ ग्राम रात को लगाये या Kaolin १०, Sulphur १०, Zinc Ox Ointment (१५%) १०० भाग लगावें या Sulphur Resorcinol का बाजार मे मिलने वाला मलहम लगाया जा सकता है। Vioform (२-३ प्रतिशत) Ointment लगायें। Steroids से इस रोग मे कोई लाभ नही होता।

आयुर्वेद मे श्लैष्मिक युवान-पिडिका

आयुर्वेद के अनुसार, चेहरे के लोमकूपो में कफ-दोष या आम-दोष की वृद्धि हो जाने, अर्थात् उनमें विद्यमान स्नेह-द्रव के कफदोष से दूषित हो जाने तथा लोमकूपों की प्राणशक्ति (प्रतिरोधक शक्ति) के गिर जाने, अर्थात् उनकी वायु के दूषित हो जाने से, उनमें पिडिकाएँ निकल आती हैं। युवावस्था में इस रोग के होने से इसे युवान-पिडिका कहा गया है। (सु० नि०, १३।३४)

चिकित्सा

कफ-दोष की शान्ति के लिए रोगी को एक गिलास नीम जल में कुछ लवण मिलाकर पीकर कभी-कभी वमन ले लेनी चाहिए। मधुर-अम्ल रस, कफवर्धक आहार की मात्रा कम कर देनी चाहिए, व्यायाम करना चाहिए। नीम के क्वाथ या मजिष्ठादि क्वाथ या किसी तिक्त घृत का सेवन कुछ दिन तक करना चाहिए। इनके सेवन-काल में थोड़ा घृत भी लेते रहना चाहिए। मुख को प्रात साय नीम के जल से तथा साबुन से भली प्रकार मलकर धोना चाहिए तथा रात को धोने के बाद उस पर निम्नलिखित लेप तेल लगाएँ।

युवान-पिडिका के लिए उपयोगी प्रयोग :—

(१) मञ्जिष्ठादि तैल (व. से) मजीठ, केसर, लाख, सरसो, लोध्र, श्वेत चन्दन, प्रपौण्डरीक, मुलैठी, गेरू, पतंग, वचा, बिनौले, माजूफल २½—२½ तोला का कल्क। तिल तेल आध सेर। दूध २ सेर। तैल साधन करें। फिर उसमे मोम २० तोला मिलाएँ। ७ दिन मलें।

(२) हरिद्रादि तैल (च द.) दोनो हल्दी, मुलैठी, कालीयक, लाल चन्दन, प्रपौण्डरीक, मजीठ, कमल फूल, पद्माक, केसर और बड, पीपल, पिलखन, कैथ तथा तिन्दुक के पत्र समान-समान मिलित, कुल २० तोला का कल्क। तिल तेल १ सेर। दूध ४ सेर। तैल साधन करें। लगायें।

(३) मुख कान्ति कर लेप (र र.) लोध्र, वचा, धनिया समान को दूध से घोटकर लेप करें ।
(४) लोध्रादि लेप (शा स) लोध्र, श्वेत सरसो, वचा, सैन्धव का जल से लेप करें ।
(५) वटादि लेप (भा प्र.) वड के पीले पत्ते, चमेली फूल, लाल चन्दन, काला चन्दन, कुष्ठ, लोध्र समान-समान का जल से लेप या केवल चमेली फूल, चन्दन और लोध्र को जल से घिसकर रात को मुँह पर लगाएँ। (लेपो को १ घ वाद धो दें)।
(६) शाल्मलीकटक लेप (वृ मा.) सेंभल के काटो को ५ गुणा दूध में भिगोकर फिर पीसकर ३ दिन मुँह पर १ घ. के लिए लेप करें ।
(७) माजूफल लेप (वै वल्लभ) माजूफल को चावलो के जल में घिसकर पिडिकाओ पर लगाएँ ।
(८) मुँह पर व्यग या झाईं हो गई हो तो वटाकुरादि लेप (भा प्र) वट के अकुर तथा मसुर की दाल दोनो को जल से पीसकर मुँह पर लेप करें । मञ्जिष्ठादि तेल भी व्यगनाशक है ।
(९) जातीफलादि लेप जायफल, मरिच, चन्दन का चूर्ण वना उसमें से थोडा लेकर थोडे जल में पीसें। उसका लेप करें ।

कक्षा-विस्फोट (Herpes Zoster)

इस रोग मे सुषुम्ना काण्ड की Posterior Root पर विद्यमान Ganglion मे एक Neurotropic Virus का सक्रमण हो जाता है जिससे उससे पोपित प्रदेश मे वेदना के होने तथा वहाँ त्वचा पर पिडिकाओ के निकलने का लक्षण होता है ।

मध्यम आयु तथा विशेपत वडी आयु के व्यक्तियो मे एक ओर की कक्ष मे यज्ञोपवीत की दिशा मे छोटे-छोटे पिडिका-समूह निकल आया करते हैं । कक्षा के नीचे होने से इन्हें कक्षा-विस्फोट कहते हैं । इस रोग का कारण एक सूक्ष्म विप (Neurotropic Virus) है जो या तो Chicken Pox का Pox Virus ही है या उससे वहुत कुछ मिलता-जुलता विप है। वहुवा देखा जाता है कि कक्षा-विस्फोट रोग के सम्पर्क मे आये वालको को, सम्पर्क मे आने के १४ दिन वाद विस्फोटिका रोग (Chicken Pox) हो जाता है। यह भी कभी-कभी देखने मे आता है कि जव वालको मे विस्फोटिका फैल रहा हो तव उसके विप के सक्रमण से वडी आयु के किसी व्यक्ति मे कक्षा-विस्फोट रोग हो जाता है । यह भी देखा गया है कि विस्फोटिका रोग मे अच्छे हुए रोगी के रक्त का Serum कक्षा-विस्फोट रोगी के रक्त मे विद्यमान Virus विप को Agglutinate कर देता है। जिससे दोनो की विप मे एकता या अतिसदृशता स्पष्ट हो जाती है। विस्फोटिका का सूक्ष्म विप विस्फोट के अन्दर विद्यमान द्रव मे होता है तथा इस विप का सूक्ष्म कण १४५-२५० मिलि० माइक्रोन्स व्यास का होता है। इसी तरह कक्षा-विस्फोट का सूक्ष्म विप भी विस्फोटो के सैलो की मीगी तथा प्रोटो-प्लाज़म मे होता है तथा इतना ही सूक्ष्म होता है।

इसलिए दोनो रोगो का एक ही Virus कारण प्रतीत होता है। वालको मे जव इसका सक्रमण होता है तव उनमे इसके विपरीत प्रतिरोधक शक्ति के न होने से यह विप उनके सम्पूर्ण रक्त मे सचार कर जाता है एव विस्फोट सारे शरीर पर निकलते है। परन्तु जव इसी विप का सक्रमण एक वडी आयु के व्यक्ति मे होता है तव क्योकि उसमे इससे विपरीत प्रतिरोधक शक्ति होती है, उसके रक्त मे तो यह सचार कर नहीं पाता, परन्तु कभी-कभी श्वास-मार्ग या अन्न-मार्ग की रुग्ण दीवार मे विद्यमान Sympathetic नाडियो के द्वारा सुपुम्ना म पहुँच जाता है और वहाँ से किसी सौपुम्न नाडी, विशेपत. किसी Thoracic, विशेपत ३-५ Segments या ऊपर की दो-तीन Lumber Spinal Nerves मे और कभी-कभी किसी Cervical Nerves मे या Trigeminal Nerve की तीसरी शाखा मे पहुँचकर उसके Posterior या Dorsal Nerve Root Ganglion मे रोहण कर जाता है। पहले पीठ पर किसी प्रकार की चोट लगने से जिस Posterior Spinal Root मे विशेप चोट पहुँचती है या Arsenic आदि किसी विपैली औपध के सेवन से जिस पर विशेप दुष्प्रभाव पडा होता है, उसी सौपुम्न नाडी के Ganglion मे इस विष को रोहण करने का अवसर मिल जाता है। यद्यपि अव यह माना जाता है कि इस Virus का दुष्प्रभाव सारे Central N System पर होता है।

इस विप के कारण Posterior Root Ganglion मे Mononuclear सैलो का सचय होकर तीव्र शोथ हो जाता है और वाद मे उसके सैलो मे क्षीणता Wallerion Degeneration या Necrosis या Sclerosis की प्रक्रिया हो जाती है। फिर इसमे से निकलकर ऊपर को जाने वाले अर्थात् Posterior Column मे जाने वाले तथा नीचे की तरफ जाने वाले सज्ञावाही नाडी-सूत्रो (Peripheral Afferent Nerves) के Myelin मे भी क्षीणता की प्रक्रिया हो जाती है। ठीक जैसे वाल-पक्षाघात (Polio-myelitis) मे सौपुम्न नाडी (Spinal Nerve) के अग्रिम मूल के सैलो मे अर्थात Anterior Horn Cells मे क्षीणता

होकर उसके परिणामस्वरूप उनसे निकलने वाले चेष्टावाही सूत्रो मे क्षीणता हो जाती एव उनसे सम्वन्धित मासपेशियो मे घात (Paralysis) हो जाता है, वैसे ही इस रोग मे Posterior Root से सम्वन्धित सज्ञावाही सूत्रो मे क्षीणता के हो जाने से तत्पोषित त्वचा मे वेदना का लक्षण हो जाता है। इस रोग का विष भी इन्हीं सज्ञावाही सूत्रो द्वारा त्वचा तक पहुँचता है, जिसकी प्रतिक्रिया के रूप मे त्वचा (Corium) मे शोथ हो जाता है और फिर वहिश्चर्म के श्लैष्मिक स्तर (Prickle Cell Layer) के सैल क्षीण हो जाते तथा क्षीणता होकर अपने अन्दर द्रव के भर जाने से फूल जाते है जिन्हे Balloon Cells कहते है। इन्हीं के कारण वहिश्चर्म मे वने हुए द्रव से भरे हुए स्फोट (Vesicles) दीखते है। विस्फोट का तल क्षीण हुए Prickle Cells से तथा छत वाह्य स्तरो (Corneum तथा Granulosum) से वनी होती है। द्रव मे सैल, श्वेत कण, रक्त-कण तथा Fibrin होते है।

लक्षण

रोग के विष-प्रवेश के ७-१० दिन तक रोग प्रकट होता है। पहले रोगी को कक्ष के नीचे की त्वचा मे किसी नाडी (Inter Costal Nerve) की शाखाओ की दिशा मे, अर्थात् Anterior तथा Lateral Cutaneous शाखाओ पर, भारी दर्द प्रतीत होता है जिसमे दाह या चिमचिमाहट होती है। वृद्धो मे यह तीव्रतर तथा अधिक कालस्थायी होता है। दो-तीन दिन के दर्द और हलके ज्वर के वाद वहाँ एक लाल रग का उठा हुआ चकत्ता निकल आता है जिस पर शीघ्र ही, अर्थात् कुछ घण्टो मे, एक विस्फोटो का समूह प्रकट हो जाता है, जिन्हें देखकर इस रोग का निश्चय हो जाता है। देखने मे ये स्फोट दो मिलिमीटर व्यास के पिन के नक्के जितने छोटे-छोटे वने हुए, जल-सदृश द्रव से भरे होते है और जल्दी नही टूटते। इनके निकलने पर रोगी की वेदना कुछ कम हो जाती है। एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर इनका द्रव धुँधला हो जाता है और तव इनके टूट जाने से ये एक हो जाते है, और इन पर छिलके आ जाते हैं। विस्फोटिका रोग के समान २ सप्ताह मे ये छिलके भी सूखकर झड जाते है। परन्तु वडी आयु के व्यक्तियो मे इनके सूखने के वाद भी उस प्रदेश की त्वचा पर वेदना (Post Harpetic Neuralgia) का कष्ट कई दिनो या महीनो अथवा वर्षों तक वना रहता है। ३ मास के वाद भी यह रहे तो फिर यह प्राय ठीक नही होता। यज्ञोपवीत के आकार मे एक ओर की छाती एव पीठ पर छोटे-छोटे समूहो मे होने वाले विस्फोटो को देखकर इस रोग का निश्चय हो जाता है। ये विस्फोट आगे या पीछे की ओर मध्य रेखा का उल्लघन कभी नही करते। वडो मे इस रोग मे जैसा दर्द होता है, वालको मे इस रोग के होने पर वैसा नही होता।

मस्तक-विस्फोट (Ophthalmic Herpes या Zoster या Herpes Zoster Ophthalmicus या Supra Orbital Zoster)

पहले Jonathan Hutchinson (१८६६) ने इस रोग का वर्णन किया।

पचम मस्तिष्क-नाडी (Trigeminal) के Semilunar या Gasserian Ganglion म भी कभी-कभी इस रोग के सूक्ष्म विष का सक्रमण हो जाता है, जहाँ से इस नाडी की प्रथम नेत्र-सम्वन्धी शाखा (Ophthalmic) मे इसका सक्रमण होकर Supraorbital Nerve के क्षेत्र मे त्वचा पर, अर्थात् एक ओर की आँख के ऊपर मस्तक से लेकर पीछे कपाल के प्रदेश तक, विस्फोट-समूह निकल आते हैं। Supra-trochlear, Infra-trochlear भी प्राय ग्रस्त होती है। Infraorbital प्राय ग्रस्त नही होती। इसमे तेज Neuralgic दर्द होता है। पलको पर श्वयथु, Conjuctiva मे लाली, Keratitis, पुतली का फैलना आदि लक्षण भी होते है। यह रोग प्राय मध्यमायु के वाद होता है तथा इसमे शूल विशेष होता हे। विस्फोटो के सूख जाने के वाद भी बहुत समय तक शूल वना रहता है। यदि इसमे नाक की वगल मे भी विस्फोट निकल आयें तो पहले से ही Cornea पर विस्फोट निकलने की आशका करनी चाहिए, जिससे नेत्र को हानि पहुँच सकती है (Nasociliary शाखा मे रोग होने से)। साधारणतया यह मस्तक-विस्फोट का रोग डेढ मास मे ठीक हो जाता है, कभी-कभी यह महीनो तक सिरदर्द का कारण हो जाता है। इस नाडी की द्वितीय शाखा मे इस रोग का दुष्प्रभाव हो तो तालु मे अन्दर तथा वाहर, गाल, नाक के वाजू, ऊपर के ओष्ठ पर, और तीसरी शाखा मे रोग हो तो जिह्वा के अग्रिम दो-तिहाई भाग पर, गालो के अन्दर तथा ठोडी पर विस्फोट निकलते हे।

इसी प्रकार वाहुओ पर भी जो विस्फोट-समूह एक रेखा मे, अर्थात् नाडी की दिशा मे, निकलते हैं वे भी Herpes ही होते हैं (Zoster Brachialis) ऊपरली जाँघ पर भी निकलते है (Zoster Femoris)। इस रोग के वाद का नाडी-शूल (Neuralgia) इस रोग का एक

बड़ा उपद्रव है, विशेषत Supraorbital, इसमें कभी-कभी चिकित्सा से भी लाभ नहीं होता।

सामान्य विस्फोट (Herpes Febrilis, Herpes Labialis, Herpes Simplex)

अधिक थकावट या मलेरिया आदि ज्वरों के बाद कभी-कभी मुख के छिद्र के आसपास या नासिका-द्वार के समीप रक्तवर्ण भूमि पर विस्फोट-समूह निकलते है जिनमें कुछ कण्डू होती है। १० से १४ दिन में ये सूख जाते और छिलके के रूप मे झड जाते हे। इनका न तो किसी नाडी के साथ सम्बन्ध होता है, न ही इनमें वेदना का लक्षण होता है। इन्हें सामान्य विस्फोट (Erythema multiforme का एक सुलभ भेद) कहते है। इसका कारण एक Virus है जो विस्फोट के द्रव मे रहता है। पहली बार इस रोग के होने पर इस विष का Antibody रक्त मे तो उत्पन्न हो जाता है, तो भी यह रोग बार-बार हो जाता है क्योंकि यह Virus Epithelium के सैलो के भीतर रहता है जहाँ Antibody पहुँच नही पाता, पहले बाल्यावस्था में यह रोग मुख के अन्दर छालो के रूप मे होता हे अर्थात् Herpetic Stomatitis के रूप का होता है जिसमें बालक को ज्वर भी होता है। उनके ठीक हो जाने पर भी मुख के अन्त स्तर मे यह Virus देर तक बना ही रहता है और फिर मुख के पास-पास की त्वचा मे सक्रमण कर जाता है विशेषत जब कि किसी रोग से प्रतिरोधक शक्ति कम हो गई हो। वहाँ के Prickle सैलो और श्वेत कणो की मृत्यु से यह विस्फोट बनता है। कभी-कभी ये छोटे विस्फोट जननेन्द्रिय पर निकलते हैं तब इसे Herpes Genitalis कहते है।

कक्षा-विस्फोट Herpes की चिकित्सा

मृदु रोग हो तो Pituitrin ½, १ मी०सी० के इजेक्शन के दो दिन तक प्रतिदिन एक-दो बार, बाद मे २ दिन में १ बार दे देने से वेदना तथा रोग की दीर्घता कम हो जाती है। विस्फोट-शान्ति के बाद (Post Herpetic) होने वाला दर्द इसके ½ सी०सी० की मात्रा मे २१ दिन देने से शान्त रहता है। Tetracycline पहले ३-४ दिन १ ग्राम दैनिक मात्रा मे और फिर ४-५ दिन कुछ कम मात्रा मे देने से भी लाभ होता है। Phenergan ५० मिलि० के रात को तथा Ancolan २५ मिलि० के दो बार दिन मे देने से दर्द शात रहता है। Prednisolone की ३० मिलि० या Triamcinolone १२ मिलि० दैनिक मात्रा से भी १-२ दिन मे लाभ हो जाता है। Triamcinolone Acetonide (Kenalog) के २०० मिलि० को २% Procaine Hydrochloride के १०० मिलिग्रि० मे मिलाकर इस घोल की १५ मिलिलिटर मात्रा को दर्द वाले प्रदेश मे सप्ताह मे १ बार त्वचा के नीचे डालने से भी लाभ हो जाता हे। Corticotropin Gel के ४०-८० Units की मात्रा मे मास द्वारा ३ दिन तक प्रतिदिन देने से भी वेदना शात होती है। या इसकी आधे से १ मिलि० मात्रा को १ लिटर Dextrose Solution मे मिलाकर धीरे-धीरे घटो मे शिरा द्वारा देने पर भी दर्द शान्त हो जाता है या इसी प्रकार शिरा से प्रतिदिन २५% ग्लूकोज़ सोल्यूशन १०० मिलिलि० को विटामिन 'सी' के साथ दें या Largactil या Sparine २५-५० मिलि० के दिन मे २-३ बार देने से भी दर्द शान्त होता है। दर्द के लिए Aspirin १० ग्रेन ३ बार या Codeine Phosphate ½ ग्रेन या Nembutal Cap. इसी प्रकार दिया जा सकता है। Vitamin B_{12} के १००० माइक्रोग्राम तथा B_1 के १०० मिलि० की मात्रा मे या Neurobion के सप्ताह मे तीन बार कुछ-एक सप्ताह तक देने से भी इस रोग मे लाभ हो जाता है। विस्फोटो के हट जाने पर भी होने वाले दर्द के लिए Vitamin B_1 को ५०० मिलिग्राम की मात्रा मे शिरा द्वारा दे या मस्तक पर Counterirritation का कोई उपाय करें।

विस्फोटो पर १% Mercurochrome Solu लगाये या Zinc Oxide २० ग्रेन, Boric Acid २० ग्रेन, स्टार्च २०० ग्रेन, मिलाकर लगाकर बाँधे या स्फोटो पर Zinc Oxide तथा Talc Powder मिलाकर लगायें या Gauze रखकर Collodion से बन्द कर दे। Calamine Lotion (कैला० २, जिंक ऑ० २, Bentonite ६, ग्लिस० ½ ड्राम, लाइम वाटर ३½ औ०) या Burow's Solution २० मे १ लगा सकते हैं। Hydrocortisone Acetate १%+Neomycin Sulphate ५% प्रलेप के लगाने से लाभ रहता हे। Tetracycline Ointment १% भी लगाई जा सकती हे। नेत्र की रक्षा के लिए Boric Lotion ३-३ घटे पर डालना चाहिए या Tetracycline Oint दिन मे २ बार डाले। Keratitis तथा Iritis हो तो Atropine drop दिन मे २ बार डाले। उपर्युक्त औषधियो का मुख द्वारा प्रयोग करना चाहिए। मुख के आसपास तथा उसी प्रकार शिश्न-मुण्ड (Glans—अग्र-चर्म) पर होने वाले विस्फोट (H Genitalis) के लिए Lead Lotion, Calamine Lotion, Starch Lotion या Prednisolone २५+५% Neomycin (Cambison)

उपयोगी है। Herpes Simplex का रोग Bacitracin ५०० यूनिट १ ग्राम+Corticosteroid प्रलेप से ठीक हो जाता है। Tannic Acid Lotion भी उपयोगी है। कोई Dermatologists इस रोग मे Steroids का प्रयोग उचित नही मानते, वे केवल Antibiotic Creams का प्रयोग ही करते हैं।

आयुर्वेद मे कक्षा-विस्फोट रोग

आयुर्वेदानुसार, किसी सौषुम्न नाडी के पश्चिम मूल में वात-पित्त-प्रकोप-जनित शोथ के हो जाने तथा उससे, सज्ञावाहिनी द्वारा सम्बन्धित त्वचा में निकले विस्फोटो को कक्षा-विस्फोट कहा जाता है। सर्व शरीर में पित्त-प्रकोप होकर विस्फोट हो तो उसे विस्फोट रोग या विस्फोट ज्वर कहते हैं। कक्षा, बाहु, कन्धे, मस्तक आदि के किसी एक देश पर हुए वात-पित्त-जनित या पित्त-जनित विस्फोटो को, जिनके कारण वहाँ पूययुक्त विस्फोट हो जाते और फिर वहाँ की त्वचा कृष्णवर्ण हो जाती है तथा उस प्रदेश मे वेदना भी विशेष होती है, कक्षा-विस्फोट कहा जाता है।

(सु० नि० १३।१३, मा० नि० मे वात-विस्फोट)

इस रोग के लिए वात-पित्त-शामक कषाय, जैसे द्विपचमूलादि कषाय (यो र) (दशमूल, रास्ना, दारुहल्दी, उशीर, धमासा, धनिया, गिलोय, मोथा) पिलाना चाहिए। पित्त-प्रकोप विशेष हो तो तिक्तघृत या त्रिफलाचूर्ण घृत+मधु के साथ दिन में तीन बार चटाना चाहिए, पञ्चनिम्ब-चूर्ण भी उपयोगी है। विस्फोटो पर दशाग लेप, (शिरीष, यष्टी, चन्दन, सूक्ष्मैला, दोनो हल्दी, नेत्रवाला, कुष्ठ, जटामासी, तगर) घृत के साथ या पचवल्कल और दूर्वा-क्वाथ में धोया हुआ घृत लगाना चाहिए। पित्तप्रधान विस्फोटो पर दूर्वादि घृत (दूब, वड, गूलर, जामुन, साल, सप्तपर्ण, पीपल के कषाय तथा कल्क से बना घृत) लगाने से दाह शान्त हो जाता है।

अग्निदग्ध व्रण—राल २½, तिल तेल १० तो, तुत्थ ४ रत्ती, सिन्दूर ½ तो. पिघलाकर मिलावें, छान लें, चूने के पानी से कई वार धोकर मलहम लगावें। मधूच्छिष्टादि तैल (यो र) मोम, मुलैठी, लोध्र, राल चन्दन, मर्जठ, वड की कोपल समान-समान मिलित १ भाग, तेल ४ भाग, जल ४ भाग। तैल साधन करें।

कच्छू (Scabies)

त्वचा के वहिस्तर Stratum Corneum मे Acarus के प्रविष्ट हो जाने को कच्छू कहते हैं।

कच्छू रोग दूसरे रोगी के निकटतम सम्पर्क से अर्थात् छूत से होने वाला रोग हे जिसका कारण एक चर्मयूका (Acarus Scabiei या Sarcoptes Scabiei) नाम का एक सुई के नक्के जितना कृमि है। मादा कृमि (Female Acarus) ४ मिलिमीटर लम्बा, अण्डाकृति का, चार टागो वाला होता है। देखने मे श्वेत विन्दु के सदृश दीखता है। नर कृमि इससे कुछ छोटा होता है। गर्भिणी मादा रोम-कूपो मे प्रवेश करके वहिश्चर्म के वहिस्तर (Horny Layer) के नीचे-नीचे चौथाई इच के लगभग लम्वी-तिरछी सी गुफा वनाकर उसमे प्रतिदिन दो-तीन अडे देती रहती है और लगभग दो मास तक जीवित रहती ह। इन अडो से चार दिन मे Larvae निकल आते है जो त्वचा पर घूमते हुए निकट के रोम-कूपो मे प्रवेश कर जाते हे तथा इनमे जो मादा कृमि होते है वे वहाँ अडे देने लगते हैं। अण्डे से पूर्ण कृमि वनने मे १०-१२ दिन लगते हे। रात को विस्तरे मे पडे हुए रोगी की त्वचा जव गर्म होती है तव ये कृमि गुफाओ मे से वाहर आकर त्वचा पर घूमते हैं। उस समय सम्पर्क मे आये हुए दूसरे व्यक्ति की त्वचा मे गुफा वना लेते है और उसमे धँस जाते हैं। त्वचा मे प्रविष्ट होने के एक मास वाद इनकी गुफाओ के चारो ओर रक्तवर्ण चकते प्रकट होते है जिनमे कोठ (Papules) प्रकट हो जाते हे। गुफाओ के सिरो मे इन चर्म-यूकाओ (Itch Mites) के मल के सचित हो जाने से वहाँ कोठ और फिर द्रव-स्फोट (Vesicles) वन जाते है जिनमें कण्डू का कष्ट रहता है। रात को विस्तरे की गर्मी मे कण्डू विशेष होती है। खुजलाने से ये स्फोट पककर पूय-स्फोट (Pustules) वन जाते है। एक गुफा को खुरचकर उसमे विद्यमान Parasite को सूक्ष्मवीक्षक के द्वारा देखकर इस रोग का निश्चय हो जाता हे।

शरीर के जिन प्रदेशो की त्वचा मृदु तथा पतली होती हे और सघर्प मे अधिक नही आती, उसमे यह कृमि प्रवेश करता हे। इसीलिए कलाई के अग्रिम पृष्ठ पर, आभ्यन्तर पृष्ठ पर, अगुलियो के वीच के आमने-सामने के पृष्ठ पर, दोनो स्फिको के वीच आमने-सामने पृष्ठो पर, दोनो ऊर्ध्व जघाओ के वीच आमने-सामने पृष्ठो पर, शिश्न पर, अण्डकोपो पर तथा वगलो मे यह कृमि विशेप तौर से अपनी गुफा वनाता हे। इसलिए इन्ही प्रदेशो पर इस रोग के कण्डूयुक्त स्फोट विशेप होते है। इन प्रदेशो पर कण्डूयुक्त स्फोट हो, एक घर में कइयो को यह रोग हो, स्फोटो मे से स्राव न हो, पामा रोग होने का इतिवृत्त न हो, तो इसी रोग का निश्चय करना चाहिए। सूक्ष्मदर्शक यत्र द्वारा इस कृमि तथा इसके अडो को देखकर इस रोग का निश्चय हो जाता हे। इस रोग मे रोगी की प्रधान शिकायत खुजली की होती हे।

कच्छू (Scabies) की चिकित्सा

गर्म जल, साबुन तथा मोटे कपडे की सहायता से रोग-ग्रस्त प्रदेश को भली प्रकार साफ करके पोंछकर गंधक-प्रलेप (५-१० प्र०श०) का लेप करके और इस प्रकार फिर तीन दिन विना स्नान के ही इस प्रलेप के रात को १ बार या दिन मे २ बार लगाते रहने से कच्छू-कृमि या Acarus Scabiei ५-६ प्रलेप से ही मर जाते है। १ औंस इस गंधक-प्रलेप मे ६० ग्रेन Balsam of Peru मिलाकर लगाने से भी लाभ होता हे। इसके बाद स्नान करके सब पुराने कपडो को धोने को दे देना चाहिए।

Benzyl Benzoate को २५ ग्राम की मात्रा मे २ ग्राम Emulsifying or Lanette Wax और १०० सी०सी० जल मे मिलाकर बनाये घोल को चौडे ब्रुश के द्वारा स्नान के बाद गीले शरीर पर लगाकर सूखने देना चाहिए और फिर कपडा पहन लेना चाहिए तथा २४-४८ घण्टे बाद साबुन से स्नान कर लेना चाहिए। इसके लगाने पर थोडी देर के लिए चरमराहट होती हे जो शीघ्र हट जाती है। इस प्रकार इस औषध के रात को लगाए एक-दो लेपों से यह रोग निर्मूल हो जाता हे। इस औषध, DDT (१%) तथा Benzocaine (१%) से बने Uniscab Lotion का या इस औषध से बनी मलहम Uniscab Ointment (Unichem) का या Sulphacetamide के साथ बनी इसकी मलहम Uniscab Compound का प्रयोग किया जा सकता है अथवा Tetraethylthiuram Monosulphide (Tetmosol) या Eurax (Geigy) के इसी प्रकार २ बार लगाने से भी लाभ हो जाता है या Gamma Benzene Hexachloride (Gammexane, Kwell) की ५-१% Cream को ३ रात लगाने से इस रोग मे आराम आ जाता है।

यूकालिक्षा Pediculosis के लिए Talcum मे १०% DDT दिन मे २ बार २-३ दिन लगाना पर्याप्त होता है। Dicophane application (Citronella Oil मे २%) अर्थात् DDT के घोल के लगाने से भी ऐसा ही लाभ होता है। इसे हलका ही लगाएँ तथा २४ घ० बाद सिर धोएँ। एक सप्ताह बाद फिर उपर्युक्त औषध का प्रयोग करें।

आयुर्वेद मे कच्छू

सुश्रुत में स्फिक्-प्रदेश तथा हाथ-पांव की अगुलियो के बीच की मृदु त्वचा पर होने वाले स्फोटो को कच्छू कहा है तथा उस पर ८ गुणा कडवे तेल या घृत में मिश्रित गंधक के लगाने का विधान किया है।

(सु० । नि० । ५ । १२)

Pemphigus Vulgaris (विस्फोट रोग)

इस रोग मे त्वचा पर बडे छोटे अनेक विस्फोट हो जाते है जो अपने चारो ओर फैलते है। इनमे खुजली नही होती। मुख के अन्दर की श्लेष्म कला पर भी ये हो सकते हैं। इनकी त्वचा के फट जाने से इनमे से बहुत-सा पतला स्राव बह जाता है और फिर उस प्रदेश पर छिलके से जम जाते है। इनमे Secondary Infection भी हो सकता हे। सीरम के निकलते रहने से रक्त मे अल्ब्यूमिन की मात्रा कम हो जाती हे। यह रोग स्वय अच्छा नहीं होता। Prednisolone २० मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ बार देने से आराम आने लगता हे। इससे लाभ न हो तो Triamcinolone या Betamethasone देकर देखना चाहिए। Infection को रोकने के लिए कोई Antibiotic देना चाहिए। भोजन मे प्रोटीन विशेष दे।

शताव. तथा दारुणक [Seborrhoeic Dermatitis तथा Pityriasis Capitis या Seborrhoea Sicca (Dandruff) Seborrhoea]

त्वचा मे विद्यमान स्नेह-ग्रन्थियाँ, कपाल, भोहे, नाक के समीप के प्रदेश, छाती तथा पीठ के ऊपर के मध्य प्रदेश की त्वचा मे अधिक मात्रा मे पायी जाती हैं। गर्मी या पूय से यह स्नेह पतला होकर बाहर त्वचा-पृष्ठ पर आ जाता है और स्वेद के साथ मिलकर एक घोल सा बनकर त्वचा की गर्मी से रक्षा करता है। इसमे सम्भवत ऐसे Fatty Acids होते है जो जीवाणुओ एव Fungi के लिए घातक होते है जिससे यह स्राव त्वचा की रक्षा का कार्य करता है। साधारणतया इनसे होने वाला स्नेह-स्राव इतना स्वल्प होता है कि वह दृष्टिगोचर नही होता, परन्तु कुछ-एक शिशुओ के सिर मे स्नेह-स्राव की अधिकता से सिर अधिक चिकना रहता है। युवावस्था के आने पर फिर Androgenic Hormone के प्रभाववश स्वभावत स्नेह-स्राव की अधिकता से कुछ-एक युवक-युवतियो का चेहरा अधिक चिकना रहता हे जिसे Seborrhoea oleosa कहते हैं, सभवत जो अधिक सज्ञाशील (Sensitive) होते हैं उनमे ऐसा होता है। सिर मे स्नेह-स्राव की अधिकता से केश कुछ चिकने और भीगे हुए-से रहते हे। मुख पर स्नेह-स्राव की अधिकता से मुख की त्वचा खुरदरी तथा मैली-सी दीखती है। इस स्राव की अधिकता के विषय मे ऐसा प्रतीत होता हे कि जो शिशु अधिक दूध

पीते है या जो युवक प्रोटीन और विटामिन कम लेते, कार्बोहाइड्रेट विशेपत खाण्ड या मिठाई का और स्नेह-द्रव्य का सेवन अधिक करते है, और व्यायाम सर्वथा नही करते एव जिन्हे अजीर्ण तथा मलवन्ध रहता है, उनकी स्नेह-ग्रन्थियो से स्नेह-स्राव अधिक होने लगता है। कुछ-एक, मानसिक द्विविधा (Nervous Tension) से इसकी वृद्धि होती है, ऐसा कहते हैं। यह अति स्नेह-स्राव सामान्य स्नेह-स्राव से विभिन्न प्रकार का होता है। क्योकि सामान्य स्नेह-स्राव त्वचा पर विदग्ध नहीं होता, परन्तु अस्वाभाविक होने वाला यह स्नेह-स्राव विदग्ध हो जाता है। त्वचा पर पाये जाने वाले यीस्ट-सदृश जीवाणु, जिन्हे Pityrosporon कहते है, इस दूषित हुए स्नेह-स्राव मे अतिमात्रा मे वढने लगते हैं। रोम-कूपो, केश-कूपो, (Pilosebaceous Follicles) मे इन कीटाणुओ के वढने पर इनमे श्लैष्मिक (Catarrhal) प्रतिक्रिया होती है जिसके परिणामस्वरूप केश-कूप सूज जाते हैं। कुछ-एक केशो की जड के चारो ओर रक्तवर्ण सूक्ष्म कोठ (Papules) निकल आते है एव आधे या एक इच व्यास के रक्तवर्ण चकत्ते सिर पर निकल आते हैं जिनके फैलने वाले किनारे रक्तवर्ण होते है और जिनके केन्द्र-प्रदेश पर पीले से रग के छिलके चिपके रहते है। ये छिलके वहिश्चर्म के वहिस्तर के सैलो के मृत हो जाने तथा उनमे होने वाले स्नेह-स्राव के सूख जाने से वनते हैं। नवयुवावस्था मे कभी-कभी 'केशभूमि-शोथ' का यह रोग प्रवल रूप मे होता है जिससे केश-भूमि रक्तवर्ण हो जाती है। केश-कूपो से स्नेह-स्राव अधिक होता है। सिर पर छिलके भी अधिक छाये होते है तथा सिर पर न्यूनाधिक खुजली भी रहती है। इस प्रवल रूप को पामा-सदृश शतारु (Seborrhoeic Dermatitis या Dermatosis) कहते हैं। पलको के वालो की जड मे भी यह रोग हो सकता है। इस रोग मे Epidermis तथा Dermis दोनो मे श्वयथु (Oedema) होता है जिससे वहिश्चर्म के सैलो मे Keratin की उत्पत्ति या परिवर्तन ठीक नही होता है। सिर पर से केश-भूमि-शोथ पीछे ग्रीवा पर, आगे मस्तक पर, दाढी प्रदेश पर और कानो के पीछे के गढे मे भी उतर आता है जिससे वहाँ-वहाँ की त्वचा रक्तवर्ण तथा शुष्क छिलको से युक्त दिखाई पडती है।

दारुणक या Pityriasis Capitis या Dandruff या Seborrhoea Sicca का रोग केश-भूमि-शोथ का ही एक उपद्रव है। अर्थात्, उपर्युक्त रोग के चिरस्थायी रूप मे रहने पर शरीर की या शिर के वहिश्चर्म की प्राणशक्ति क्षीण हो जाय तो Pityriasis Sporon तथा Staphylococcus Aureus के सक्रमण का प्रतिकार ठीक-ठीक नही होता। शिर के वहिश्चर्म की प्राणशक्ति के न्यून हो जाने से वहिश्चर्म मे क्षीणता आ जाती है जिससे सिर के वहिस्तर की त्वचा शुष्क होकर झडने लगती है। परीक्षा करने पर पता लगता है कि वालो की जडो के आसपास शुष्क छिलके अधिक छाये होते है। अर्थात्, यह केश-भूमि-शोथ केश-कूपो के आसपास विशेप होता है (अर्थात् Perifollicular होता है) तथा केश-कूपो मे उपर्युक्त जीवाणु-सक्रमण के परिणामस्वरूप हो जाता है। केशो का पोषण मन्द हो जाता है जिससे ३० वर्ष की आयु मे ही केश पतले पडते जाते हैं, वे कुछ रूक्ष और कान्तिहीन होने लगते हैं और अधिकाधिक मात्रा मे गिरने लगते है। सिर की त्वचा मे न्यूनाधिक लालिमा तथा कण्डू के लक्षण भी होते है। खालित्य रोग इसी रोग का एक परिणाम है जो पहले चोटी के प्रदेश से आरम्भ होता है। भोजन मे Vitamin 'A' तथा 'सी' की न्यूनता से भी सिर के वाल गिर सकते है। नेत्रो की पलको के वाल गिरने लगे तो उसे Blepharitis का रोग कहते हैं।

श्मश्रु शतारु

Seborrhoeic Sycosis या Folliculitis of the beard अर्थात् चेहरे पर स्नेह-स्राव की अधिकता के कारण वहाँ के केश-कूपो मे पूयजनक जीवाणु सक्रमण करके उनमे शोथ और पूय (Folliculitis) उत्पन्न कर देते है। या दाढी के प्रदेश मे लाल चकत्ते निकल आते हैं जिनमे से कुछ स्राव होता है या जिन पर छिलके से जमे रहते है।

अरूषिका (Seborrhoeic Dermatitis) की चिकित्सा

मद्यादि तीक्ष्ण द्रव्यो तथा विशेपत फैट्स व खाण्ड व तले हुए पदार्थो का सेवन कम कर देने से, प्रोटीन, विटामिन्स के सेवन से, विशेषत. विटामिन वी कम्पलैक्स के सेवन से, मलवन्ध को हटाने से, मनोविनोद, मानसिक शान्ति, विश्राम तथा निद्रा लेने से, त्वचा से अधिक मात्रा मे होने वाला स्नेह स्राव शान्त हो जाता है। इसके कारण उत्पन्न शोथ तथा पाक के लिए Sulphonamides (Sulphadimidine ५ ग्राम दिन मे ३ वार) या Antibiotics (Terramycin २५० मिलि० दिन मे २ वार) का सेवन लाभदायक रहता है। पर उनसे Seborrhoea पर कोई प्रभाव नही होता। वहुत सभव है कि मधुमेह शामक औषधियो के देने से यह रोग शान्त होता है।

स्थानिक चिकित्सा

सिर को Acid Salicylic १-२ प्रतिशतक लोशन या Cetrimide १% लोशन से या साबुन के जल में आधी स्पिरिट डालकर उससे धोना चाहिए। Salicylic Acid तथा Sulphur प्रलेप, जो एक Oily Cream में दोनों को ३% डालकर बनता है, लगाएँ। या Soft Paraffin १ औंस में ५ ग्रेन गन्धक और २ बूँद Acid Carbolic मिलाकर लगाना चाहिए। या १ औंस जल में ग्लिसरीन १ ड्राम, कैलामीन ३० ग्रेन, जिंक आक्साइड ३० ग्रेन, रिसोर्सिन (Resorcin) ६ ग्रेन, Liqu Carbonis Detergens ८ बूँद मिलाकर लगाएँ। या Selenium Sulfide Suspension (Abbot) या Selsun या Capsebon सप्ताह में १ बार सिर के धोने के बाद लगाना चाहिए या Sodium Sulphacetamide ५-१० प्र०श० सोल्यूशन सिर पर लगाना चाहिए, अथवा नारियल तेल ६ ड्राम, Soft Paraffin २ ड्राम में १५ ग्रेन Acid Salicylic तथा १५ ग्रेन गंधक मिलाकर बालों की जड़ में प्रतिदिन मलना चाहिए अथवा Soft Paraffin १ औंस में Ammoniated Mercury १० ग्रेन, Liquor Carbonis Detergens १ ड्राम मिलाकर उसे भली प्रकार लगाना चाहिए। Chlortetracycline की मलहम या Neomycin (१ ग्राम में ५ मिलि०), Bacitracin (१ ग्राम में ५०० यूनिट) के लोशन तथा प्रलेप भी बड़े उपयोगी होते हैं। Hydrocortisone Acetate १ प्रतिशत मलहम इन्हीं के साथ बराबर मिला सकते हैं। Gramicidin Ointment भी इसी प्रकार इस रोग के लिए प्रयुक्त होता है। Diiodohydroxyquinoline के २ प्रतिशत (Vioform Ciba) क्रीम व मलहम या Cortoquinol Ointment या Dermoquinol E I Pharma Cream इत्यादि लगाये जा सकते हैं। छोटे बच्चों के सिर, ग्रीवा तथा धड़ पर पाये जाने वाले Seborrhoeic Dermatitis के लिये Steroids तथा Antibiotic योग लगाने चाहिए या Zinc Cream में ५% Liquor Carbon Deterg मिलाकर लगायें। या Sulphur और Acid Salicylic १-२% मलहम लगायें। दारुणक रोग (Seborrhoea Sicca, Dandruff) के लिए सिर को Cetrimide Solution ५-१% से सप्ताह में १ या २ बार धोना चाहिए। स्पिरिट १ औंस में एरण्ड तेल ५ बूँद, Mercury Perchloride ½ ग्रेन, Acid Salicylic २० ग्रेन, मिला कर केशभूमि पर लगाना चाहिए। सिर को अच्छी तरह साबुन से धोकर ऐसा नारियल का तेल, जिसमें दो प्रतिशतक Acid Salicylic तथा २% Sulphur मिलाया हो, लगाना चाहिये। या Ol Cadinum (Cade Oil) ३० बूँद, Sulphur १५, Acid Salicyl १० ग्रेन, Ung Emulsificans (Soft Paraffin ५०%, Liquid Paraffin २०%, Wax ३०%) १ औंस मिलाकर लगायें, ५-७ घण्टे बाद सिर धो दें। या Cetrimide (Cetavlon I C I) के १% जलीय घोल में, जिसमें १ प्रतिशत Lanolin हो, सिर को धोना चाहिए। या Selenium Sulphide के जल से धोना चाहिए, जैसे Selsun Suspension (Abbot) Hydrocortisone के १ प्रतिशत घोल या मलहम से भी प्रबल रोग में आराम प्रतीत होता है। नेत्र की पलकों के बालों में रूसी होने पर Neomycin १ प्रतिशत या Aureomycin १ प्रतिशत मलहम या Gentian violet १०००-१ मलहम लगायें। या Sulphacetamide ५ प्रतिशत मलहम लगाना चाहिए। माथे या ग्रीवा पर फैले हुए रोग के लिए Coaltar लोशन (Liquor Picis Carbonis ३ ड्राम, Zinc Ox ६ ड्राम, Starch ६ ड्राम, ग्लिसरीन ९ ड्राम, जल ४ औंस) या Sulphur Lotion (Sulphur Precipitate १, Zinc Ox ६, Talc ६, Bentonite १, Resorcinol ½ ड्राम, Alcohol ५० प्रतिशत, ४ औंस) लगाना चाहिए।

तरुणसुलभ खालित्य (Androgenic Alopecia अथवा Calvities)

कुछ एक परिवारों के पुरुषों में सिर के अगले भाग से बालों के झड़ जाने की प्रवृत्ति जन्म से आती प्रतीत होती है। अर्थात् इनके केश कूपों (Hair Follicles) में जन्म से ही कुछ निर्बलता होती है। फिर युवावस्था में जब इनके रक्त में Androgens की मात्रा बढ़ती है तो इनके निर्बल होने के कारण उनका प्रभाव सिर के केश-कूपों तथा मुख के लोम-कूपों पर पड़ता है, अर्थात् सिर और मुख के केश-कूपों में अतिवृद्धि (Hyper keratosis) हो जाती और इनमें स्नेह स्राव (Sebum) की उत्पत्ति अधिक मात्रा में होती है। पहले ये कूप (Pilo Sebacious Follicles) मोटे हो जाते हैं और फिर धीरे-धीरे कठोर (Sclerosed) होते जाते हैं। यह भी सम्भव है कि जो लोग स्टार्च, फैट आदि का तो अधिक मात्रा में उपयोग करते हैं पर शारीरिक श्रम बहुत कम करते हैं, उनके इन कूपों में स्नेह-स्राव अधिक उत्पन्न होने लगता है, जिससे इनमें अतिवृद्धि होकर युवान-पिडिका अथवा केशों के पोषण में न्यूनता आ जाने का कोई लक्षण हो जाता है। ऐसी अवस्था में Androgens का दुष्प्रभाव केशों पर विशेष

होता है। यह देखा गया है कि Androgens के शरीर मे बढ़ने के साथ-साथ दाढ़ी, कक्ष आदि के शारीरिक बाल तो बढ जाते हैं और सिर के बालो की वृद्धि कम हो जाती है। Androgens की उत्पत्ति अण्ड के अतिरिक्त Adrenal Cortex से भी होती है। इसलिए कई स्त्रियो मे भी ४५ वर्ष की आयु के बाद जब Oestrogen की मात्रा की, जिसके कारण सिर के बालो मे वृद्धि होती है, घट जाती है तब Adrenal Cortex मे उत्पन्न Androgens के कारण सिर के बाल गिरने लगते हैं। सिर के बाल गिरने का यह रोग विशेषत तरुण पुरुषो मे होता है, स्त्रियो मे नहीं होता। उनमे तो यह ४५ वर्ष की आयु के बाद ही हो सकता है।

यह खालित्य ३०-३५ वर्ष की आयु के पुरुषो मे चोटी तथा सिर के अगले भाग मे प्रारम्भ होता है। मोटे बालो के गिर जाने पर पहले पतले और छोटे बाल आते रहते है। पर फिर जब रोम-कूप कुछ कठोर हो जाते हैं, अर्थात् त्वचा का पोषण कम हो जाता है, तब छोटे बालो की उत्पत्ति भी बन्द हो जाती है।

मण्डल खालित्य (Alopecia Areata)

कभी-कभी युवको मे उनके सिर के पिछले भाग या सिर के बाजुओं पर तथा उसके साथ-साथ या दाढी के प्रदेश पर भी सहसा ही छोटे-छोटे मण्डलो मे खालित्य का रोग होता है। ऐसे खालित्य के अनेक मण्डल दिखाई पडते हैं। इन मण्डलो के किनारे के बालो को देखें तो वे ऊपर तो मोटे होते पर जडो की तरफ पतले होते हैं। कभी-कभी तो मण्डलो मे बाल उडते-उडते सारे सिर पर से ही उड जाते हैं। कभी-कभी सारे शरीर पर से भी उड जाते हैं। सिर पर से उड जायें तब इसे पूर्ण खालित्य (Alopecia Totalis) कहते हैं। शरीर पर से उड जायें तब इसे Alopecia Universalis कहते हैं। किसी Endocrine सम्बन्धी या नाडी संस्थान सम्बन्धी विकृति से ऐसा होता लगता है जैसे Thyroid तथा Pituitary ग्रन्थियो की निष्क्रियता (Hypofunction) मे।

ऐसा भी प्रतीत होता है कि किसी मानसिक आघात का दुष्प्रभाव लोम-कूपो मे जाने वाली अनैच्छिक नाडियो (Autonomic Nerves) पर ही विशेष पडता है जिससे उन कूपो का पोषण घट जाता है। अर्थात् उनमे Atrophy हो जाती है। शिरो दद्रु (Tinea Capitis) मे छिलके छाये हुए रहते है तथा उसमे छोटे-छोटे बालो के ठुण्ड भी होते हैं अत उससे इसका भेद करना कठिन नहीं। स्पष्ट है कि यह रोग ऐसे व्यक्तियो मे, जिन्हे वातिक या Sympathicotonic प्रकृति के कहते हैं अर्थात् जिनमे Sympathetic Nervous System के उत्तेजित रहने से Vasoconstriction अधिक रहता है, होता है। R t Kakade का कहना है कि यह रोग पुरानी अमीबिक प्रवाहिका के कारण भी होता है। एक-तिहाई रोगियो मे एक बार होकर यह अच्छा नहीं होता।

खालित्य—इन्द्र लुप्त Alopecia की चिकित्सा

सिर पर हुए रूसी या Seborrhoea Capitis को रोकने के लिए जो औषधियाँ ऊपर दी गई हैं उनका प्रयोग महीनो तक जारी रखने से खालित्य को रोका जा सकता है। तरुण सुलभ खालित्य की कोई सन्तोषजनक चिकित्सा नहीं है। मण्डल खालित्य (A Areata) के लिये ये स्थानिक उपाय किये जाएँ तो लाभ हो जाता है।

(१) Contharadin १ ग्रेन, Sp Rosmarin 24 बूँद, Ol Ricini १२० बूँद, Alcohol ९०%, ६ औंस से बनाया लोशन प्रतिदिन लगाना चाहिए या Acid Lactic २ ड्राम, Ol ricini २ ड्राम, Rectified Spirit ४ औंस मिलाके लगायें।

(२) Castor Oil ३ ड्राम, Methylated Spirit ६ औंस, Lactic Acid ६ ड्राम।

(३) Phenol १%, Lactic Acid ४% मिलाकर या Iodine Solution।

(४) १% Prednisolone Ointment।

(५) १% Triamcinolone Acetonide Ointment या Betamethasone (Betnelan) Ointment या १% Triamcinolone (Kenacort) का ५ मिलिलिटर मात्रा मे त्वचा मे सप्ताह मे १ बार इन्जेक्शन दें।

(६) Ultra-violet Light का साप्ताहिक प्रयोग।

(७) Triamcinolone Acetonide Suspension ०२५% का स्थानिक इजेक्शन।

(८) Sulphur ३%, Salicylic Acid २%, Liq Picis Carbonis ५% की मलहम मे Hydrocortisone ५% मात्रा मे मिलाके लगायें।

आभ्यन्तर प्रयोग के लिए Prednisolone का पहले १ दिन ४० फिर १०-१५ मिलि० मात्रा मे ३-४ बार विभक्त करके दैनिक प्रयोग करने मे लाभ हो सकता है। कुछ लोग तो Total Alopecia के लिए भी इसे उपयोगी कहते हैं। कोई कहते हैं Anti-depressant औषधियो के प्रयोग से इसमे लाभ होता है। इसी प्रकार Calcium Pantothenate के १५० मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन प्रयोग करने मे भी लाभ हो सकता है। बाल समय से अर्थात् ४० वर्ष से पहले

श्वेत (Grey Hair) होने लगें तो उसमें भी इससे लाभ हो सकता है। किसी बलवर्धक औषधि के अन्त प्रयोग से लाभ हो सकता है। कभी-कभी स्त्रियों में पाये जाने वाले व्यापक खालित्य रोग (Diffuse Idiopathic Alopecia of Women) के लिए अभी तक कोई उपाय नहीं निकला।

आयुर्वेद में शतारुः Seborrhoeic Dermatitis तथा दारुणक Pityriasis Capitis

रोम-कूपों तथा केशभूमि में कफदोष की विशेष वृद्धि होने पर न केवल केश चिकने से रहते हैं पर केशभूमि में कृमियों (Pityriosporon) आदि विक्षोभक द्रव्यों के आने पर उनके विपरीत उसमें श्लैष्मिक केश-भूमि-शोथ का रोग हो जाता है। इसमें Stphylococci का संक्रमण हो जाने पर रोमकूपों तथा केशभूमि में पित्त धातु की भी प्रतिक्रिया होती है जिससे सिर में छोटे-छोटे से अनेक स्रावी व्रण निकल आते हैं, जिन्हें "शतारु" Seborrhoeic Dermatitis या Eczema कहते हैं

(च० चि, ७।२६ तथा ३०।, सु०।नि०।१३।३०।।३२)

दारुणक

केशभूमि में कफप्रकोप जनित शोथ चिरस्थायी रूप में रहे तो कालान्तर में केशभूमि की प्राणशक्ति के मन्द हो जाने या वायु प्रकोप से उसके सैल मृत होकर झडने लगते हैं जिसे दारुणक कहते हैं। यह चिरस्थायी केश-भूमि-शोथ रोग का एक उपद्रव है। यह रोग देर तक रहे तो सिर की त्वचा में त्रिदोष प्रकोप के कारण केश झडने लग जाते हैं जिसे इन्द्र लुप्त रोग कहा जाता है। सुश्रुत ने इन्द्र लुप्त रोग को त्रिदोष जनित रोग कहा है। अर्थात् रोम-कूपों में श्लेष्म-पित्त प्रकोपजनित पाक तथा वात वृद्धि जनित क्षीणता की प्रक्रिया के हो जाने से रोम-कूप बन्द हो जाते हैं जिससे नये रोम नहीं होते।

शतारु की चिकित्सा

शतारु रोग कफ दोष प्रधान रोग है। इसलिए इसमे खाण्ड, चिकनाई आदि की मात्रा कम करके रोगी को शारीरिक व्यायाम करना चाहिए। पञ्चनिम्ब चूर्ण खिलाना चाहिए। सिर को लवणयुक्त निम्बजल से या नीम, खदिर, जामन तीनों की छाल से बने कषाय से धोकर या सरसों की खली के जल से धोकर कुष्ठ चूर्ण को दुगने तेल या घृत में मिलाकर या गोबर के रस में सैन्धव मिलाकर सिर पर लगाना चाहिए। इसी प्रकार द्विहरिद्रादि तेल, (दोनों हल्दी, नीम, त्रिफला, चन्दन, चिरायता का तेल) के लगाने से भी रोग शान्त होता है। लशुन से पक्व सरसों के तेल के लगाने से भी इस रोग में लाभ होता है। या निम्बु स्वरस युक्त जल से धोकर विडंग, गृहधूम, मनसिल, वचा, हल्दी, रसौंत के चूर्ण का तेल आदि के साथ लेप करें।

दारुणक तथा इन्द्र लुप्त के लिए कफ वात वर्धक कारणों से जैसे अति लवण, अति चिन्ता से बचना चाहिए। इन्द्र लुप्त रोग में चन्द्रप्रभा का सेवन उपयोगी है—साथ ही त्रिफला मधुयष्टी चूर्ण का घृत मधु के साथ या इसमें एक दो रत्ती लोह भस्म मिलाकर उसका प्रयोग करना चाहिए या त्रैफल घृत का कुछ काल सेवन करना चाहिए। सिर को क्षारीय गर्म जल से भली प्रकार धोने, सिर पर स्वल्प कुष्ठ सरसों तथा सैन्धव से मिश्रित पियाल के बीजों तथा माष की दाल का लेप देने या आम्रबीज और हरड़ का दूध से पीसकर लेप देने से या तीक्ष्ण गुण (Karatolytic) तेल के लगाने से जैसे करवीरादि या मालत्यादि तेल (चमेली पत्र, वरुणपत्र, करवीर पत्र, चित्रक, करंज पत्र १-१ पाव का कल्क, तेल चार सेर, जल तेल से चार गुना) स्नुही दुग्धादि तेल, (स्नुही दुग्ध, अर्क दुग्ध, भांगरा, लागली, वत्सनाभ, गुंजा, इन्द्रवारुणी, सरसों, इनका कल्क मिलित १ भाग, गोमूत्र और अजामूत्र तेल से २ गुना, सरसों का तेल ४ भाग) के कुछ काल लगाने से बालों का गिरना बन्द हो जाता है। ये सब तेल विषैले हैं, मुख को इनसे बचाना चाहिए।

शतारु, दारुणक तथा इन्द्र लुप्त के लिए उपयोगी प्रयोग :—
शतारु के लिए —

(१) काकमाची तैल (र. र) मकोय का रस १ सेर, कडवा तेल १ पाव, मनसिल, बावची, सिन्दूर, गंधक प्रत्येक ३०-३० रत्ती। अग्नि पर तैल साधन करें। मलें।
(२) खदिरादि लेप (वृ. नि. र) खैर, नीम, जामुन, कुडे की छालें, सैन्धव समान-समान के चूर्ण को गोमूत्र में पीसकर लेप करें।
(३) गण्डीरादि तैल (मण्डल रोग में देखें)।
(४) कर्पूर तैल (वै म. र) मुलैठी, महुआ, खस २½-२½ तोला पीस लें। पान का रस ४ सेर। तेल १ सेर। तैल साधन करें। फिर तेल में कर्पूर २½ तो मिलाएँ।

दारुणक तथा इन्द्र लुप्त के लिए :—

(१) त्रिफलादि तैल (भै र) त्रिफला, जटामांसी, भागरा, नीलोफर, सारिवा, सैन्धव लवण समान-समान

मिलित २० तोला, तेल १ सेर, जल ४ सेर। तैल साधन करें। मलें।

(२) चण्ड्यादि लेप (भा. भै. र) शिवलिंगी, मासी, तगर, कुष्ठ, हल्दी, तेजपत्र, मुस्ता समान-समान के चूर्ण को जल से पीसकर सिर पर लगायें या क्वाथ से सिर धोए। यह दारुणहर है।

(३) आम्रबीजादि लेप (वृ. नि. र.) आम्रबीज, हरड़ दोनो के चूर्ण को दूध से पीसकर मलें।

(४) षड्बिन्दु तेल (भै. र.) भृंगराज रस १६ सेर, तिल तेल ४, दूध ४ सेर, एरण्ड मूल, तगर, सोया, जीवन्ती, रास्ना, सैंधव, विडंग, मुलैठी, सोंठ मिलित ½ सेर तैल बनाएँ। नस्य दें।

(५) चन्दनादि तैल (भै. र) भृंगराज रस ४, तेल १ सेर, चन्दन, मुलैठी, त्रिफला, नीलोफर, वटांकुर, कमलनाल, जटामासी, सारिवा, गिलोय, तैल बना कर नस्य दें।

(६) भृंगराज तैल (भै र) भागरे का रस ४, तेल १ सेर, मजीठ, पद्माक, लोध्र, चन्दन, गेरु, बला, दोनों हल्दी, नागकेसर, प्रियंगु, मुलैठी, प्रपौण्डरीक, सारिवा, प्रत्येक ५ तोला। तैल साधन करें। खालित्य, इन्द्र लुप्त, बालो के गिरने को रोकता है।

(७) गुञ्जा लेप (यो त ७३) गुञ्जाफल, देवदारु, मासी समान-समान का कल्क १, भृंगराज रस ८, तेल ४ भाग का तैल साधन कर मलें। इन्द्र लुप्त में लगाएँ।

(८) जात्यादि तैल (वृ नि. र.) चमेलीपत्र, करञ्जपत्र, वरने की छाल, कनेर छाल, चित्रमूल ४-४ तोला। तेल १ सेर। जल ४ सेर। तैल साधन करें। इन्द्र लुप्त में लगाएँ। जातीपत्र स्वरस, चन्दन और त्रिफला के कल्क से बनाया तेल भी बालो को गिरने से रोकता है।

(९) आदित्यपक्व गुडूचीतैल (भै. र.) सरसो का तेल १, गिलोय रस १ सेर, जटामासी, वट जटा का चूर्ण १०-१० तोला डालें। धूप में रखें जब तक जलांश उड जाए। सिर पर मलें।

(१०) अणु तैल (अर्धावभेदक में) का नस्य देना चाहिए। इससे पलित रोग भी रुकता है।

(११) मास्यादि लेप (यो त. ७३) बालछड, कुष्ठ, तिल, नीलोफर, सारिवा समान-समान मिला, इसे दूध में पीसकर दूध सिर पर मलें।

पलित रोग के लिए :—

(१) भृंगराज घृत (भै र) भागरे का रस २ सेर, घृत ४० तोला, मोर का पित्त ५ तोला। घृत पाक कर इसका नस्य एक सप्ताह के लिए दें।

(२) निम्बतैल योग (व. से, वृ. मा) नीम के बीजो को भागरे के रस तथा असनत्वक् कषाय से अनेक बार भावित कर उनका कोल्हू में तेल निकलवा लें। इसके नस्य लेने तथा दूध, रोटी, चावल मात्र पर रहने से पलित ठीक होता है।

(३) काकमाच्यादि तेल (र. र.) मकोय के बीज तथा काले तिल मिलाकर इनका तेल कोल्हू में निकलवा लें। इसका नस्य दें।

(४) जात्यादि तैल द्वितीय—जातीपत्र रस, भृंगराज रस २-२ भाग, तिल तेल १ भाग, त्रिफला कल्क ½ भाग। तैल साधन करें। मलें।

(५) त्रिफला चूर्ण का घृत के साथ या त्रैफल घृत का अन्तः-प्रयोग करें। चन्द्रप्रभा वटी के प्रयोग का भी विधान है। बाल गिरने को भी रोकता है।

(६) असनादि तेल (ग नि.) असन काष्ट २ सेर का कषाय, तेल १ सेर, त्रिफला, मुलैठी कल्क १० तोला, तैल बनाएँ। इसका नस्य दें।

(७) पलितनाशक नस्य (र. र.) गुडहल के फूलो का रस समान शहद से मिला उसका नस्य दें। तथा इसके स्वरस और आंवले के जल को सिर पर मलें।

(८) दशमूल तेल का नस्य भी हितकर है।

(९) चतुर्भुज रस (कप रोग में) का प्रयोग हितकर है।

(१०) चतुर्मुख रस (उन्माद रोग में) का प्रयोग हितकर है।

श्वित्र रोग (Leucoderma)

त्वचा की Melanocytes मे त्वचा के रग Melanin की न्यूनता हो तो उसे श्वित्र कहते हे।

बहिश्चर्म के अन्त स्तर Germinal Layer मे विद्यमान Melanoblasts या Melanocytes (Melanin के बनाने वाले) सैलो मे त्वचा के रग (Melanin) को बनाने की स्वाभाविक प्रक्रिया यह हे कि Tyrosine (एक Amino acid जो दूध के Casein मे रहता हे) से Tyrosinase के द्वारा Copper की उपस्थिति मे Dihydroxyphenyl Alanine (DO PA) बनता हे और उससे तत्सम्बन्धी एक Ferment के द्वारा Melanin का रग बनता है। Oxidising पदार्थ गर्मी तथा सूर्य की Ultra-violet किरणे इसकी उत्पत्ति मे सहायक होती हे। यह प्रक्रिया कभी-कभी Ascorbic Acid आदि के द्वारा मन्द हो जाती है, अर्थात् Melanocytes मे Tyrosinase (A Copper Protein Complex) की कमी हो जाती हे जिससे वहाँ-वहाँ की त्वचा श्वेत वर्ण हो जाती है। Tyrosinase की उत्पत्ति के लिए Copper की उपस्थिति आवश्यक हे। यह रोग बाल्यावस्था या नवयुवावस्था मे ही प्रारम्भ हो

जाता है और इसकी प्रवृत्ति पैतृक परम्परा से आती है। सम्भव है Melanoblasts या Melanocytes को उत्तेजित करके इस रंग की कमी को पूरा किया जा सकता हो, समझा जाता है कि कोई पदार्थ Tyrosinase को निष्क्रिय करके इस रोग का कारण हो जाता है। वस्तुतः रोगी में उसके Melanocytes Tyrosinase का निर्माण नहीं करते या सम्भव है Copper आदि किसी तत्व की कमी से Tyrosinase ठीक-ठीक बन नहीं पाता। Tyrosinase की उत्पत्ति सर्वथा ही न हो तो शरीर जन्म से ही श्वेत वर्ण होता है जिसे Albinism कहते हैं। रोग व्यापक न हो तो उसे ठीक किया जा सकता है। Babchi Ointment (Psoralea Application I P) को चकत्तों पर मलें या Psoreline की गोलियाँ को दें या बावची का तेल, जैतून के तेल में (१० में १) मिलाकर लगायें या Psoreline का सोल्यूशन या मलहम (Grimault) लगाएँ। या इसी बावची और जैतून के Steralised Oil को १-१ बूँद श्वेत दाग की त्वचा के भीतर (Intradermally) डाल सकते हैं। दाग बड़ा होता है तो उसके पृथक् खण्डों में एक साथ नहीं, पर दिन में ३-४ बार ठहर-ठहर कर इंजेक्शन दिये जा सकते हैं। Smith Stanistreet के Ludermol liquid के लेने तथा Ludermol Oint के लगाने से भी लाभ होता है। बावची के अतिरिक्त ग्रीमाल्ट लेबोरेटरी के Meladinine (Ammimajus Linn नामक पौदे से बना) के सोल्यूशन के या मलहम के लगाने तथा गोली के खाने से भी इस रोग में बहुत लाभ होता देखा जाता है। इसकी गोली प्रथम सप्ताह दिन में १ बार भोजन बाद, दूसरे सप्ताह दिन में २ बार और फिर दिन में ३ बार दी जाती है। इसके सेवन-काल में विटामिन बी कम्पलेक्स का सेवन तथा विटामिन 'सी' प्रधान आहारों का त्याग करना चाहिए।

बावची तेल की १० बूँद प्रतिदिन पताशों में या दूध में डालकर मुख द्वारा कुछ काल तक देते रहने से भी इस रोग में आराम आने लगता है या इसकी कुछ बूँदों को मधु से चटाया जा सकता है। जिस घर में इस रोग की प्रवृत्ति हो उस घर के बच्चों को खटाई या Ascorbic Acid नहीं देना चाहिए तथा दूध अधिक देना चाहिए। शीतकाल में धूप का सेवन भी करना चाहिए।

आयुर्वेदानुसार

श्वित्र के लिए उपयोगी प्रयोग —

(१) सोमराजी योग (ग नि) बावची बीजों को गोमूत्र में प्रतिदिन ७ दिन रखकर छाया में सुखा लें। इसका चूर्ण कर लें। २ माशा मात्रा में रोज लें।

(२) सोमराजीबीज घृत (ग नि) बावची १ सेर को भिगो छिलके रहित करके उसे पीस लें। दूध ८ सेर, जल १६ सेर में जल के उड़ने तक पकाएँ। दूध मात्र लेकर उसे जमा दें। मक्खन निकालकर उसका घी बना लें। इसके १ चम्मच को मधु के साथ चटाएँ।

(३) वाकुची प्रयोग (वं भ, भा. भै. र) वाकुची बीजों को बहेड़े के जल में प्रतिदिन ५-७ दिन रखें। उन्हें सुखाकर उनका चूर्ण कर लें। १ माशा मात्रा में घृत गुड़ से चटाएँ।

(४) सोमराजी घृत (भा प्र) खदिरसार ४०, बावची बीज १० तोला। जल १६ सेर में पकाएँ। ¼ शेष रखकर बावची बीज २० तोला, खदिरसार ५ तोला, पटोल, त्रिफला, त्रायमाण, धमासा, त्रिकटु प्रत्येक १¾-१¼ तोला। गूगल १० तोला। घृत २ सेर मिलाकर घृत साधन करें। १–१ तोला दिन में २ बार दें।

(५) ताम्रपात्र में रखे हुए जल के पीने से भी लाभ होता है।

(६) वाकुच्यादिवर्ति (र सा स) बावची ४, चित्रमूल २, हरड़, कासीस, हरताल १-१ भाग, गोमूत्र से पीस कर वर्तियाँ बनाएँ। जल से पीसकर लगाएं।

(७) कुष्ठराक्षस तैल (भै र) पारा, गंधक, कुष्ठ, सप्तपर्ण छाल, चित्रमूल, सिन्दूर, लशुन, हरताल, अमलतास बीज, मनसिल, पुराना तांबा, १¾-१¼ तो, बावची ५ तोला। सबका कल्क करें। तेल १ सेर। जल ४ सेर। इसे धूप में सुखा लें। तेल को छान लें। श्वित्र पर लगाएँ।

(८) मरिचादि तैल को भी श्वित्रहर कहा है।

(९) वाकुचीहरीतकी चूर्ण—बावची चूर्ण को खदिर-त्वक् की ७ भावना दें। हरीत की समभाग मिलाएँ। ४ माशा मधु घृत से दें।

(१०) वाकुच्यादिवर्ति—बावची १०, चित्रक ४, हरताल २, कासीस २, त्रिफला २ तोला, भांगरे रस से मर्दन कर वर्तियां बनायें। लगायें।

पथ्य—वाकुची चूर्ण, घृत या वाकुची तेल (५-१० बूँद) को आंवले और खदिरसार के क्वाथ से लिया जाए तथा दूध रोटी या दूध चावल के आहार पर रहा जाए तो अधिक लाभ होता है।

दद्रु मण्डल (Ring Worm, Tinea)

दद्रु की वह फुई जो सिर की वालो वाली त्वचा मे फैलती है *Microsporum* (छोटी बीजो वाली) श्रेणी की होती है और वहुधा Microsporum Audouini होती है। यह फुई वालको के शिरो दद्रु मे पाई जाती है। दूसरी श्रेणी की फुई Trichophyton (Hair Plant) वडे व्यक्तियो के शिर, श्मश्रु, त्वचा, नख आदि मे पाई जाती है। तीसरी श्रेणी की फुई Epidermophyton वालो वाले प्रदेशो मे न होकर केवल त्वचा मे पाई जाती है। दद्रु की यह फुई छूत के द्वारा रोगी से दूसरे व्यक्तियो मे सक्रमण कर जाती है तथा नमी और गर्मी की उपस्थिति मे रोहण करती है। इसीलिये यह सिर मे, जाघिये के प्रदेश मे, या हाथ पैर की अगुलियो के बीच-बीच के प्रदेश मे अधिकृत सक्रमण करती है। जब Trichophyton नामक फुई, ग्रस्त हुए केश के अन्दर पाई जाये तो उसे Endothrix Trichophyton कहते है। जब यह ग्रस्त केश के वाहर पाई जाये तो इसे Ectothrix Trichophyton कहते है। जब यह ग्रस्त केश के अन्दर-वाहर दोनो ओर पाई जाय तो इसे Ectoendothrix कहते हैं।

शिरोदद्रु (Tinea Tonsurans, Ring Worm of the Scalp Tinea Capitis, Microsporosis)

वालको मे Microsporum Audouini के शिर के वहिस्तर के वाह्य कठोर स्तर (Horny Layer) मे फैलने तथा उससे केशकूपो के वहिस्तर मे नीचे फैलकर केशो मे फैल जाने से और उसकी विष के विपरीत वहिश्चर्म मे प्रतिक्रिया के होने से उत्पन्न होता है। शिर की श्लैष्मिक स्तर (Prickle Cell Layer) मे शोथ होने से सैलो मे केराटीन की उत्पत्ति ठीक नहीं होती (Parakeratosis होता है) जिससे वहिश्चर्म का वहिस्तर शुष्क होकर छिलको मे परिवर्तित हो जाता है, और केशो पर इस फुई के लग जाने से वे पतले, कठोर एव भगुर होकर टूट जाते हैं तथा जिस पर श्वेत छिलको वाले तथा छोटे-छोटे टूटे हुए वालो के ठुन्ड वाले अनेक गोलाकार कण्डूयुक्त मण्डल दिखाई पडते हैं जिन्हें शिरोदद्रु कहते है। T Endothrix से होने वाले दद्रु मण्डल मे सारे वाल ग्रस्त नही होते, जो होते है वे रोम-कूपो के मुख पर से टूटे होते है। शिरोदद्रु वालको मे फैलने वाला रोग है अत रोगी वालक से दूसरे वालको को वचाना चाहिए। नवयुवावस्था मे पहुँचने पर क्योकि त्वचा से होने वाले स्नेह वाले स्राव (Sebum) की उत्पत्ति वढ जाती है और सम्भवत उनके Fatty Acids के इस Fungus के लिए घातक होने से यह वहाँ रोहण नही कर पाता। वालको का शिरोदद्रु वडा जिद्दी रोग है, देर तक रहता है। वहुधा तो युवावस्था के आने तक वना रह सकता है। दद्रु के छिलको को १०% Pot Hydrox मे वनी स्लाइड पर देखने से इस फुई को देखा जा सकता है। Culture या खेती की परीक्षा के द्वारा भी इसका निश्चय हो जाता है।

वक्षण दद्रु (Tinea Cruris, Dhobie Itch)

युवक पुरुषो मे उनके जाघिये के प्रदेश की त्वचा विशेषत ऊर्ध्व जघाओ के अन्दर के पृष्ठो की त्वचा पर जो अण्डकोष के सम्पर्क मे रहती है, Epidermophyton Inguinale नामक फुई के सक्रमण से भूरे, लाल से रग के, गोलाकार चकत्ते निकल आते है जिनके किनारे अधिक लाल, उभरे हुए होते तथा कोठो, द्रव स्फोटो, या पूय स्फोटो से युक्त होते है। इन मण्डलाकृति चकत्तो मे, जो किनारो से वढते जाते है कण्डू प्रवल होती है। ये दद्रु सीवन प्रदेश पर स्फिको के वीच, गुदा के समीप-समीप तथा अण्डकोष पर भी हो जाते हैं। दोनो ओर वक्षण प्रदेश मे फैलकर ऊपर नाभि तक की त्वचा मे फैल जाते है। इन मण्डलो के किनारे स्पष्ट होते है जिससे इनकी पहचान सुगमता से हो जाती है। दद्रु रोगो मे यह अधिक सुलभ है।

त्वग् दद्रु, हस्तपाद दद्रु [Tinea Circinata (Circular) Tinea Corporis या Body Ring Worm Tinea Pedis (पॉव) Tinea Manuum (हाथ)]

वालको तथा युवको मे कभी-कभी छोटे-छोटे मुद्राकृति दद्रु एक-दो की सख्या मे ग्रीवा के पश्चिम पृष्ठ, चेहरे या हाथ-पॉव पर निकल आते है। यह केन्द्र मे अच्छा होता जाता है पर इसके उठे हुए तथा क्षुद्र कोठो या स्फोटो से युक्त किनारे फैलते जाते है। यह त्वग् दद्रु Trichophyton Rubrum या Epidermophyton या Microsporum किसी फुई से हो सकता है। इसमे कण्डू होने का एक लक्षण होता है।

श्मश्रु दद्रु (Tinea Barbae, Tinea Sycosis, Ring Worm of the Beard)

दाढी के वालो मे शुष्क छिलको से छाये हुए मुद्राकृति मण्डल होते हैं जिनमे टूटे हुए वालो के ठुड होते हैं। इन्हें

शुष्क श्मश्रु दद्रु (Dry Scaly Type) कह सकते है। यह Endothrix Trichophyton के गन्दे उस्तरे के द्वारा सक्रमण करने से होता हे। दाढी या श्मश्रु प्रदेश मे पूययुक्त श्मश्रु दद्रु (Suppurative Type) भी होता है जिसमे दद्रु मण्डल के किनारो पर पूययुक्त स्फोट होते है। यह दद्रु Ectothrix Trichophyton के सक्रमण से होता हे जो कि फुई अधिकत पशुओ मे पाई जाती हे।

नख दद्रु, कुनख रोग (Tinca Unguium, Ring Worm of the Nails Onychomycosis Trichophyton या Epidermophyton)

Trichophyton या Epidermophyton किसी फुई के नखभूमि मे सक्रमण कर जाने और फिर उसके नख मे फैल जाने से पहले तो नखभूमि मोटी हो जाती है फिर नख कुछ श्वेत, भूरे रग का, चाक के पिण्ड सा, भूमि से ऊपर उठ जाता है। नख के अग्रिम सिरे के नीचे छिलको का एक श्वेत काला सा ढेर (Hyperkeratotic Mass) दीखता है। देखने मे नख धु वले से रग का, खुर्दरा तथा भगुर हो जाता हे। इस प्रकार एक नख मे आरम्भ होकर अनेक नखो मे यह रोग हो सकता हे। पर दोनो ओर यह रोग एक सा नहीं हुआ करता। यदि नख रोग अग्र भाग से प्रारम्भ होकर पीछे की ओर वढा हो तो उसे नख दद्रु ही समझना चाहिए। Psoriasis मे नख विवर्ण, गढे वाला होता तथा मोटा हो जाता है। उससे नख दद्रु का भेद करना चाहिए। गढे पड जाना उस रोग का भेदक लक्षण है। नख के छिलको को १०% Pot Hydrox. मे डालकर देखने से इस फुई का निश्चय हो जाता है। Culture द्वारा भी निश्चय हो जाता हे।

दद्रु मण्डल की चिकित्सा

शिरो दद्रु (Tinca Capitis) की चिकित्सा

दो-दो सप्ताह वाद कैंची से वाल कटाते हुए सिर को गर्म जल साबुन से धोकर साफ रखना चाहिए। इस प्रकार प्रात, साय दो वार धोने और सुखाने के वाद १ औस Soft Paraffin मे Acid Salicylic २० ग्रेन, Benzoic Acid ४० ग्रेन, मिलाके मलना चाहिए या Whitefield की मलहम (२-६ प्र०श० Benzoic तथा Salicylic Acid) को लगाना चाहिए या Ammoniated Mercury का ५-१० प्रतिशतक की ताकत का प्रलेप मलना चाहिए या Undecylenic Acid ५%, Zinc Undecylenate २०% के बने क्रीम (Mycota या Tineafax Cream) के लगाने तथा Griseofulvin (Grisovin या Fulcin) नामक फुई को मारने वाले Antibiotic Fine Particles (F P) रूप की १२५ मिलि० की गोलियां मिलती हैं ऐसी २ गोलियो के वालको मे घृतयुक्त भोजन के वाद प्रतिदिन दिन मे २ वार (१ पौंड भार १० मिलि० दैनिक) देने से तथा इस चिकित्सा को ६ सप्ताह जारी रखने से दद्रु को नष्ट किया जा सकता है। इस प्रकार छोटो मे ५ ग्राम, वडो मे इसे १ ग्राम दैनिक मात्रा मे अर्थात् इसकी ४ गोलियो को १½-२ मास दिया जा सकता है। इस दवाई के दौरान मे प्रति सप्ताह वाल काटने चाहिएँ तथा Whitefield की मलहम सप्ताह मे एक वार लगानी चाहिए। यह औषधि विलीन होकर Stratum Cornium से निकलती है जहाँ यह इस जीवाणु के सयोग मे आती है, १ सप्ताह मे इससे लाभ दीखने लगता है। १½-२ मास इसका प्रयोग करने से किसी विशेष उपद्रव होने का भय नहीं है। गर्भिणी को या यकृद्रोगी को इसका प्रयोग नहीं कराना चाहिए।

वक्षण दद्रु (Tinca Cruris या Inguinal Ring Worm) की चिकित्सा

स्नान करने के वाद जाघिये के प्रदेश को गीला नहीं रहने देना चाहिए। व्यायाम या धूप मे चलने के वाद स्वेद आने पर भी उस स्वेद को भली प्रकार पोछ देना चाहिए तथा इस प्रदेश पर स्पर्श करने वाला वस्त्र कठोर न होकर मृदु होना चाहिए।

इस पर Sulphur Resorcinol Paste (३७ ५% जिक ऑक्सा०, ६ २५% सल्फर तथा रिसोर्सिनोल Emulsifying Ointment मे) लगाये या इन पर उपर्युक्त Undecylenic Acid ५% तथा Zinc Undecylenate २०% का Emulsifying Oint मे वना प्रलेप लगाना चाहिए या Acid Salicylic ३ प्रतिशतक, Acid Benzoic ५ प्रतिशतक का Soft Paraffin मे वना प्रलेप लगाते रहने से भी लाभ होता है। कोई सा Antibiotic पाउडर या Salicylic Acid ५ ग्राम, Menthol २, Camphor ८, Boric Acid ५०, Starch ३५ ग्राम का पाउडर ३ वार रोज लगाया जा सकता हे। उपर्युक्त Undecylenic Acid का प्रलेप दिन मे २ वार लगाना चाहिए। Phytoderm ointment के लगाने से भी शीघ्र लाभ प्रतीत होता हे।

हस्त पाद दद्रु (Tinea Corporis या Tinea Circinata)

Acid Salicylic तथा Benzoic Acid दोनो की ३-४ प्रतिशतक मात्रा मे वना प्रलेप या Undecylenic Acid से वना उपर्युक्त प्रलेप या Phyto-

derm Ointment लगाना चाहिए। Griseofulvin बालक मे ½ तथा युवक मे १ ग्राम का एक मात्रा मे दैनिक मौखिक प्रयोग भी लाभदायक है। (इस औषधिकाल मे रोगी को Phenobarbitone नही देना चाहिये।)

स्मश्रु दद्रु (Tinea Barbae या Tinea Sycosis) की चिकित्सा

दाढ़ी के बालो मे छाये छिलको को साबुन तथा गर्म जल से अथवा स्टार्च पोल्टीस बाधकर साफ करना चाहिए। बालो को कैंची से काटकर छोटा कर देना चाहिए। इस पर Acid Salicylic तथा Benzoic Acid की ३-४ प्रतिशतक ताकत का बना प्रलेप लाभदायक है, अथवा Ammoniated Mercury का १ प्रतिशतक ताकत का मलहम लगाना चाहिए। Griseofulvin १ ग्राम दैनिक मात्रा मे प्रतिदिन देना चाहिए।

नख दद्रु (Tinea Unguim) की चिकित्सा

Acid Salicylic तथा Acid Benzoic दोनो के ६-६ प्रतिशतक ताकत का प्रलेप नखो पर लगाकर ऊपर Strap लगा देना चाहिए, ताकि प्रलेप का प्रभाव बना रहे और फिर नख के नरम हो जाने पर उसे छील के निकाल देना चाहिए। अथवा इन दोनो को बराबर-बराबर Acetone और Spirit के बने घोल मे १२% मात्रा मे मिलाके दिन मे दो बार नख पर लगा देना चाहिए। ऊपर Soft Paraffin लगा देना चाहिए अथवा Tincture Iodine १ प्र०श० २ बार रोज लगायें या Chrysarobin का २-४ प्रतिशतक ताकत का प्रलेप लगाकर बाध देना चाहिए। या उसका Chloroform मे ४ प्र०श० घोल दिन मे दो बार लगायें या Whitefield's Oint आधी ताकत का दिन मे २ बार लगायें। या Diamthazole Dihydrochloride का ५ प्र०श० (Asterol Dihydrochloride) प्रलेप दिन मे दो बार लगाना चाहिए। Griseofulvin (ग्लेक्सो) ५०० मिलि० की गोलियो के रूप मे दिन मे १ बार भोजनोत्तर ४ सप्ताह तक देने से सब प्रकार के दद्रुओ को मिटाती है। नख दद्रु के लिए इस औषधि का ६ मास प्रयोग जारी रखना चाहिए। यदि नख को छीलकर निकाल दे तो फिर इस औषधि के १ मास देने से ही रोग शान्त हो जाता है। नख को रेगमार से छीलकर दवाई लगाई जा सकती है।

बालक मे Candidiasis या Monilial infection से Dermatitis हो तो Amphotericin Cream २% या Nystatin मलहम ३% या Natamycin २% क्रीम लगायें।

आयुर्वेद में दद्रु

आयुर्वेदानुसार त्वचा मे कफदोष या पित्तदोष की वृद्धि हो और वहाँ पर दद्रु के बीज या फुई का संक्रमण हो जायें तो इस फुई के विपरीत बहिश्चर्म में कफधातु या पित्तधातु की प्रतिक्रिया होकर जो मण्डलाकार रक्त वर्ण कण्डूयुक्त छोटी-छोटी पिडिकायें निकलती हैं उन्हे दद्रु मण्डल कहते हैं।

सिर पर दद्रु मण्डल व्यापक रूप में हो तो चक्रमर्द बीजो में कुष्ठ चतुर्थांश मिला सिरके मे पीसकर उस कल्क को सिर पर बाधना चाहिये। दद्रु मात्र पर लगाने के लिए कुछ उपयोगी योग ये हैं। १. गधक, सुहागा, १-१ तोला, कपूर ३ माशा, मिलाकर बनाया चूर्ण। २. गंधक, सुहागा, कपूर, चन्दन समान-समान का चूर्ण। ३. गधक, सुहागा, तुत्थ का चूर्ण। ४. सिन्दूरादि प्रलेप (सिन्दूर, दोनो जीरे, दोनो हरिद्रा, मनसिल, मरिच, गंधक, पारद)। ५. माहेश्वरलेप (वैद्यामृत) पारा, गंधक, हरताल, मनसिल, मरिच, दोनो हल्दी, दोनो जीरे, सिन्दूर, तुत्थ, पवाड के बीज, बावची समान-समान आदि किसी चूर्ण को दो गुना धोये हुए घृत या वेजलीन म मिलाकर लगाने से दद्रु नष्ट हो जाता है। फिटकरी तथा सुहागे की खील मिलाकर लगाने से दद्रु शान्त होता है। विडगादि लेप (ग नि) विडंग, पवाड, कुष्ठ, हल्दी, सैन्धव, सरसो समान-समान को जौ से पीसकर लेप। लाक्षादि लेप (ग नि) लाख, कुष्ठ, सरसो, हल्दी, पंवाड तथा मूली के बीज, गंधविरोज, मरिच समान-समान तक्र से लेप करें।

(च० चि ७, श्लो० २३; सु० नि० ५)

किटिभ
(Chronic Lichen Planus—Keratosis Pilaris)

कारण तथा लक्षण

पहले पहल William James Erasmus Wilson (१८६७) ने इस रोग का वर्णन किया। अभी तक इसके कारण का ठीक-ठीक पता नही लगा, समझा जाता है कि सभवत नाडी मण्डल के विक्षोभ (Exhaustion) से या सम्भवत अजीर्णजनित किसी विषद्रव्य (Intestinal Toxaemia) या किसी Virus के या किसी विषैली औषधि के अन्तश्चर्म की सूक्ष्म रक्तवाहिनियो मे अधिक मात्रा मे आ जाने से वे शिथिल होकर फैल जाती हैं जिससे कहीं-कहीं पर अन्तश्चर्म मे शोथ हो जाता है क्योकि देखा जाता है कि अन्तश्चर्म के इस प्रदेश (Papillae

मे) Lymphocytes तथा Round Cells बहुत अधिक मात्रा मे सचित हुए होते है। इस शोथयुक्त अन्तश्चर्म के बाहर की श्लैष्मिक स्तर (Mucous Layer) तथा दानेदार स्तर (Granular Layer) स्थान-स्थान पर अधिक मोटी हो जाती हैं (Suprapapillary Acanthosis) इस प्रदेश की बहिस्तर (Horny Layer) भी मोटी हो जाती है अर्थात् उसमे जेलाटीन की मात्रा बढ जाती है (Hyperkeratosis मे युक्त होती है) विष के दुष्प्रभाव से ही अन्तश्चर्म का लचकीला अवयव (Elastic Tissue) नष्ट हो जाता है। बहिश्चर्म के बहिस्तर के अन्दर अतिवृद्धि हो जाने से अग्रबाहु के अग्रिम पृष्ठ, कलाई तथा अधो जघाओं के अग्रिम पृष्ठ, ऊर्ध्व जघाओ के आभ्यन्तर पृष्ठ तथा पिण्डलियो की दोनो ओर की त्वचा पर, गुप्त इन्द्रियो की त्वचा पर, कमर की त्वचा पर तथा चेहरे और सिर को छोडकर शेष किसी भाग की त्वचा पर पिन के नक्के के बराबर के १ मिलिमीटर व्यास के श्यामवर्ण अर्थात् नीले से लाल रग के, चपटे सिरे वाले, अनेक कोण वाले, न अधिक मृदु न अधिक खुरदरे, त्वचा पर उठे हुए, पृथक्-पृथक् दीखने वाले अनेक शुष्क कोठ (Papules) दीखते है। ऊपर से देखने मे इनके ऊर्ध्व पृष्ठ चमकीले से होते हैं। इनमे से कुछ-एक कोठ परस्पर सम्मिलित भी हो जाते है और उनके मिलकर इकट्ठे हो जाने से इनके उठे हुए चकत्ते बन जाते है। त्वचा के Papillae मे सैलो के अति मात्रा मे एकत्रित होने से ये कोठ (Papules) उभरे हुए दीखते तथा बाहर-बाहर के स्तर मे जेलाटीन के अधिक हो जाने से इनमे चमक आ जाती है। इसमे साधारण-सी कण्डू होती है और कभी-कभी वह भी नही होती। ये कोठ एक हाथ पर हो तो दूसरे हाथ पर भी अवश्य होते है अर्थात् शरीर मे दोनो ओर होने वाला यह रोग है। ३०-३५ वर्ष की आयु के बाद ६० वर्ष की आयु के बीच मे जब त्वचा की प्राणशक्ति कुछ हीन होना आरम्भ होती है तब यह रोग अधिकतर स्त्रियो मे होता हुआ देखा जाता है। स्वेद प्रणालियो तथा स्नेह-ग्रन्थियो की प्रणालियो के मुखो पर बहिस्तर मे यह अतिवृद्धि विशेषतया पाई जाती है। अग्रबाहु और कलाई के अतिरिक्त कभी-कभी ये किटिभ या श्याम-रक्तवर्ण कठोर कोठ धड पर, हथेलियो और तलुओ पर भी निकलते है जहा ये अधिक कठोर एव परुष (Hyperkeratotic) होते है। जब केश-कूपो (Hair Follicles) के ऊपर के बहिस्तर मे अतिवृद्धि होकर एक या अनेक कोठ काटे या स्तम्भ के रूप मे दीखते हैं तब उसे Lichen Planopilaris या Follicular Lichenplanus अर्थात् रोमकूप सम्बन्धी किटिभ कहते हैं। इसी प्रकार जब निम्न शाखाओ पर इन कोठो के इकट्ठे हो जाने से कुछ ऊपर उठे हुए, खुर्दरे, कठोर, चपटे से मस्से की शक्ल के चकत्ते बन जाते है तब उन्हे Verrucous या Hypertrophic Lichen Planus अर्थात् मषक सदृश किटिभ रोग कहते हैं। ये ६ मास से लेकर कई वर्षो तक रहते हैं और एक बार हटकर दुबारा भी हो सकते है।

किटिभ (Lichen Planus) की चिकित्सा

नाडी विक्षोभ से यह रोग होता है अत मन प्रसादक औषधि से इसमे लाभ होता है। इस उद्देश्य से कोई शामक द्रव्य जैसे Phenobarbitone $\frac{1}{2}$ ग्रेन दिन मे २ या ३ बार देना चाहिए। दूसरी चित्त शामक Tranquillizer औषधियो से भी लाभ होता है। रोगी की प्राणशक्ति को बढाने के लिए उसे Vitamin B Complex बडी मात्रा मे कुछ काल देना चाहिए। Chloroquine से भी इसमे लाभ होता है इसी प्रकार Hydroxychloroquine Sulphate (Plaquenil) २ ग्राम दिन मे २ बार ४-५ दिन देने स भी लाभ होता है। Corticosteroids के अर्थात् Prednisolone के १५-३० मिलि० मात्रा मे २ सप्ताह तक प्रतिदिन देने से तथा Hydrocortisone १ प्रतिशत मलहम या Cream के या Prednisolone की २५% मलहम या Betamethasone की क्रीम लगाने से भी इसमे शीघ्र लाभ होता है। Liquor Carbonis Detergens ३ ड्राम, Zinc Ox ६ ड्राम, Starch ६ ड्राम, Glycerine ९ ड्राम, जल ४ औस के लगाने से भी यह रोग शान्त होता है।

आयुर्वेद में किटिभ रोग

आयुर्वेदानुसार बहिश्चर्म के कोष्ठको में वात, कफ प्रकोप जनित, जो कुछ श्याम वर्ण, रुक्ष, कोठ समीप-समीप निकल आते हे उन्हें किटिभ कहा गया है। बहिश्चर्म के सैलो में कफ प्रकोप से तो अतिवृद्धि होती है तथा शरीर में वायु दोष की वृद्धि से इन सैलो में रुक्षता, कर्कशता के लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस रोग में पञ्चनिम्बचूर्ण का प्रयोग करें या रसमाणिक्य या मल्ल सिन्दूर का एक रत्ती की मात्रा में कुछ काल तक दिन में दो बार मधु, घृत के साथ प्रयोग करें। लाक्षादि लेप या तुम्बर्वादि उद्वर्तन (ग नि) नेपाली धनिया, सरसो, कुष्ठ, चित्रक, पटोल, नीमछाल, तुलसी, सैन्धव, दोनो हल्दी, हरताल, मनसिल, वचा, चोरक, देवदारु, सारिवा समान-समान का चूर्ण तक्र से पीसकर लगाएँ। आरग्वध पत्र रस के लगाने का भी विधान है।

(च०। चि०। ७।२२, सु०। नि०।५।१२)

कण्डू (Pruritus-Neurodermatosis) तथा गज चर्म अर्थात् Lichenification

व्यापक या नवीन कण्डू रोग को पिडिकायुक्त कण्डू रोग (Papular Pruritus) कह सकते है। शाखाओं के सघर्ष मे आने वाले वहि: (Extensor) पृष्ठो, पेट के निम्न पृष्ठ तथा बैठने के प्रदेश पर कण्डू युक्त सूक्ष्म पिडिकायें निकला करती है। त्वचा के सज्ञावाही नाडी सूत्रो मे चिन्तादि मानसिक कारणो से निर्बलता व विक्षोभशीलता हो, और ऐसी अवस्था मे रक्त के अन्दर कोई विक्षोभक द्रव्य बढ जाये (Toxaemia हो) अथवा वाहर से त्वचा पर कोई विक्षोभ आ पडे तो कण्डू की प्रतीति, Pain Receptors तथा Ascending Anterolateral tract के नाडी सूत्रो की विक्षोभशीलता के बढ जाने से ऊपर Hypothalamus मे पहुचती है, जिनसे Reflex रूप से, Medulla मे विद्यमान Scratch Centre के विक्षुब्ध होने से कण्डू होने लगती है। इस प्रकार यह रोग रोगी की चिन्ताशीलता एव नाडियो की विक्षोभशीलता का सूचक होता है। अजीर्ण के कारण किसी प्रोटीन विष के रक्त मे बढ जाने या Cholesterol के बढ जाने या मधुमेह के कारण रक्त मे तथा त्वचा मे ग्लूकोज के बढ जाने या यकृद्रोग के कारण रक्त मे Bile Salts के बढ जाने या वृक्क रोग के कारण रक्त मे मूत्रजनित किसी विष द्रव्य के जैसे Urea, Phosphates, Sulphates आदि के बढ जाने से जैसे कि चि० स्रा० वृक्क रोग मे होता है या प्रोस्टेट ग्रन्थि की वृद्धि मे भी हो सकता है। शरीर के किसी अग मे कैन्सर के होने पर अथवा स्वेद के त्वचा पर सूख जाने और फिर उसमे किसी जीवाणु के रोहण कर जाने से या कठोर ऊनी वस्त्र के त्वचा पर अधिक सघर्ष से भी कण्डू हो सकती है। किसी रासायनिक पदार्थ या किसी जीवाणु विष की असात्म्यता Allergy से भी कण्डू हो सकती है। ये कण्डू पिडिकायें (Papules) बाजरे के बीज के आकार की सवर्ण या कुछ रक्तवर्ण, एक दूसरे से पृथक् पृथक् होती एव निःस्राव होती हैं। खुजलाने से वहिश्चर्म मे अतिवृद्धि (Acanthosis) हो जाने से ये उत्पन्न हो जाती है। धमनी रोग तथा रक्तभार वृद्धि के कारण वृद्धावस्था मे त्वचा मे (Degenerative Change के कारण) कण्डू होती है। स्थानिक कण्डू, ग्रीवा के पिछले पृष्ठ, उसके सन्मुख या वहि पृष्ठ, कोहनी पर, गोडो के पिछले गढे मे, अण्डकोष पर, गुदा के आसपास, योनि द्वार पर हुआ करती है तथा किसी वाह्याभ्यन्तर विक्षोभक कारण से होती है। गुदा के आसपास मल सम्वन्धी किसी विक्षोभक द्रव्य से या Oxyuris Vermicularis के कारण या अर्श रोग के कारण, योनि के पास मूत्र सम्वन्धी किसी विक्षोभक द्रव्य या Trichomonas या Candida Albicans के सक्रमण के कारण होती है। मधुमेह रोग के कारण भी वहाँ कण्डू होती है। इन स्थानो पर कण्डू दिन मे भी होती पर रात को विशेष होती है। Postmenopausal स्त्रियो मे Female hormone की न्यूनता से कण्डू हो सकती है।

जीर्ण कण्डू, गज चर्म अथवा Lichenification या Prurigo

जब स्थानिक कण्डू रोग पुराना हो जाता है तब वहाँ की त्वचा स्थूल, कठोर तथा कृष्ण वर्ण हो जाती है। त्वचा की खाइयाँ अधिक स्पष्ट हो जाती है। इसे गज चर्म, हस्तिचर्म या Lichenification कहते है। खुजलाते रहने से वहाँ का वहिश्चर्म विशेषत उसका वहि स्तर अधिक स्थूल एव रुक्ष हो जाता है। गज चर्म के ऐसे कण्डूयुक्त चकत्ते जो स्पष्ट किनारो वाले ग्रीवा के पीछे, उसके वहि पृष्ठ या सम्मुख पृष्ठ पर या धोती के प्रदेश तथा ऊर्ध्व जघा तथा गिट्टों पर विशेष होते है। गुदा के आगे सीवन प्रदेश तथा अण्डकोषों पर भी कण्डू से त्वचा मोटी हो जाया करती है। परन्तु वहाँ त्वचा रुक्ष न होकर आर्द्र होती है। इस प्रकार अण्डकोषो पर कण्डू तथा पामा दोनो रोगो के लक्षण चिरकाल तक रह सकते हैं। प्राचीन आयुर्वेद ग्रन्थो मे इसे वृषण कच्छू के नाम से पुकारा जाता है।

अधिक खुजलाते रहने से त्वचा की रक्तवाहिनियाँ फैल जाती है जिसमे वहिश्चर्म को श्लैष्मिक द्रव अधिक मिलता है और उससे वह स्थूल हो जाता है। सम्भवत Basal Layer मे Melanin की उत्पत्ति के अधिक होने से ही वहाँ वहिश्चर्म का रग अधिक काला भी हो जाता है।

कण्डू तथा गज चर्म की चिकित्सा

कण्डू रोग मे रक्तगत विष द्रव्य को दूर करने के लिए विरेचन तथा क्षारीय मूत्रल ओषधियाँ देनी चाहिये। शरीर पर ऊनी वस्त्र को न लगने दे तथा गर्म चाय, कॉफी, मद्य, मसालो का सेवन बन्द कर दे। खाड का प्रयोग भी कम करे। स्नायु मण्डल (Nervous System) की दुर्बलता को दूर करने के लिए रोगी को मुख द्वारा Vitamin B_1 तथा Vitamin B Complex तथा Calcium (शिरा द्वारा Cal Gluconate १० प्रतिशत या Calcibronat ५-१० सी०सी० मास द्वारा) के इजेक्शन देने चाहिएँ। Syrup Calci Lactophosphatis १ ड्राम, Pot Bromide १५ ग्रेन की एक मात्रा रात को सोने से पहले देने से रोगी की बेचैनी जाती रहती है या

Chlorpromazine २५ मिलि० दे देवे। अधिक बेचैनी हो तो Phenobarbitone ½ ग्रेन दिन मे ३ बार दे या रात को Promethazine Hydrochloride (Phenergan) १०-२५ मिलिग्राम मात्रा मे या Benadryl १० मिलिग्राम की मात्रा मे दी जा सकती है। Dexamethasone (Decadron Mercksharp, Deronil, Gammacorten, Millicorten Ciba ७५-५ मिलि० दैनिक), Prednisone, Prednisolone ५-१० मिलि० तीन बार दैनिक देने से भी खुजली तुरन्त शान्त हो जाती है। पर मधुमेह हो, रक्तभार बढा हो तो इनका प्रयोग नही किया जा सकता है। वृद्धो मे इनका प्रयोग करना उचित नही। Trimeprazine (Vallergan, May Baker) या Chlorpheniramine Maleate (Piriton) के जो कि Histamine विरोधी भी है तथा नाडी मण्डल के लिए शामक भी है, कण्डू के शान्त करने के लिए उत्तम औषधि हैं या Hydroxyzine Hydro (Atarax Pfizer) १०-७५ मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन बार मुख से देने से शान्ति रहती है। कुछ लोग Methyltestosterone ५ मिलि० को दिन मे २-३ बार जीभ के नीचे रखने से इस रोग के लिये लाभदायक बताते है। कुछ लोग Stilboestrol को लाभदायक बताते है। भोजन मे तीक्ष्ण मसाले तथा ऊष्ण पेय नही देने चाहिये इनसे त्वचा मे Vasodilatation होता है तथा उससे खुजली और बढती है। गेहूं तथा दूध मे से एक-एक भोजन को ३-४ दिन बन्द करके देखना चाहिए कि इनमे से किसके दोष से कण्डू रोग होता है। इनमे से किसी से या अण्डे से इस रोग के होने की सम्भावना हो सकती है।

कण्डू तथा गज चर्म की स्थानिक चिकित्सा के लिये स्नान को स्वच्छ रखने के अतिरिक्त निम्नलिखित किसी योग का प्रयोग किया जा सकता है —

(१) Calamine Prep १ ड्राम, Zinc Oxide १ ड्राम, Liquor Plumbi Subacet Dil १ ड्राम, Liquor Carbonis Detergens १ ड्राम, Glycerine १ ड्राम, Aqua Calcis मिलाकर कुल १ औस अर्थात् पाचा द्रव्य १२-१० भाग, Aqua Calcis ८० भाग। या Zinc Ox Glycerine, Limewater, Talcum बराबर-बराबर।

(२) Zinc Oxide १ ड्राम, Lanolin १ ड्राम, Acid Carbolic ५ बूंद, Menthol ५ ग्रेन, तथा Olive Oil और Aqua Calcis बराबर-बराबर मिलाकर ७½ ड्राम मिलायें।

(३) Chloral Hydrate तथा Camphor ६० ग्रेन प्रत्येक, Starch १ औस मिलायें।

(४) ६ गैलन हलके से गर्म जल मे १ औस Soda bicarb (३ प्रतिशत सोल्यू० य १ लिटर मे ८ छोटे चम्मच) या ५ मिलिलि० Coltar Solu या ८००० मे १ Pot Permang (३ लिटर मे ५ ग्रेन) मिलाकर उससे नहाने या धो देने से कण्डू शान्त होती है। इसके बाद शरीर को हलके से ही पोछना चाहिये।

(५) एक प्रतिशतक Hydrocortisone Acetate Ointment को १ प्रतिशत Neomycin Ointment मे मिलाके लगाये। गुदा के आसपास जीवाणु सक्रमण भी दूर होता है तथा कण्डू भी शान्त होती है।

(६) Nicotinic Acid का ४ प्रतिशत बिना चिकनाई वाला प्रलेप कण्डूनाशक होता है।

(७) Benzocaine ५ प्रतिशत लोशन व प्रलेप कण्डू शामक होता है।

(८) किसी Anti histamine Cream जैसे Anthisan या Benadryl Cream या Lotion का प्रयोग करने से भी कण्डू शान्त होती है।

(९) Triamcinolone (Kenacort) या Betamethasone (Betnovate) के १% मलहम या Prednisolone के ५%मलहम।

गुद कण्डू तथा योनि कण्डू पर Nystatin प्रलेप (१०-५० हजार यूनिट प्रति ग्राम), Hydrocortisone Acetate क्रीम ½ प्रतिशत या Neomycin और Bacitracin की मलहम (Neomycin ५%) या Vioform १ प्रतिशत (किसी Emulsion Base मे) दिन मे २ बार लगायें या Talc Powder मे १० प्रतिशतक Boric Acid मिलाकर या Zinc Cream मे १ प्रतिशत Phenol मिलाकर लगायें। इनसे भी खुजली शान्त होती है या Paraffin १ औस मे Liquor Carbonis Detergens १ ड्राम तथा Ammoniated Mercury १० ग्रेन मिला कर लगाये या उपर्युक्त २ नम्बर का योग लगायें या Aluminium Subacetate Solu (२० मे १) या Pot Permanganate (१० हजार मे १) सोल्यू० से धोये। Benzocain (Anesthesin) Orthocaine आदि किसी औषधि को किसी तेल या मलहम मे ५ प्रतिशत मात्रा मे मिलाकर लगाने से भी तीव्र कण्डू शान्त होती है। पर सुप्तिजनक तथा Anti histamine औषधियो का

प्रयोग सभल के करना चाहिए क्योंकि इनसे त्वचा Sensitised हो सकती और बाद मे वहाँ त्वक्शोथ Dermatitis हो सकता है। गज चर्म रोगी को गर्म जल के स्नान, आग या धूप के सेकने और क्रोध से बचना चाहिए। इनसे Vasodilatation होकर रोग बढता है।

आयुर्वेद में कण्डू तथा गज चर्म

आयुर्वेदानुसार बहिश्चर्म के वात नाड़ी सूत्रों में वायु दोष की अधिकता हो अर्थात् इन नाडियों की प्राणशक्ति कुछ मन्द हो तथा कायाग्नि की मन्दता के कारण बहिश्चर्म में आम दोष (कफ दोष) भी प्रविष्ट हो जाए तो कण्डू होने लगती है। कण्डू रोग किसी स्थान विशेष पर चिरकाल बना ही रहे तो वहाँ के बहिश्चर्म में कफ धातु की प्रतिक्रिया होने से उसमें स्थूलता भी हो जाती है। वायु की अधिकता के कारण उसमे रूक्षता तथा खरता के लक्षण हो जाते हैं, इस प्रकार वहाँ एक गज चर्म का चकत्ता सा बन जाता है। इसीलिए चरक ने गज चर्म को वात कफजनित त्वग्रोग कहा है। साधारणत आयुर्वेद में कण्डू को कफजनित तथा गज चर्म को वात कफजनित रोग माना जाता है।

इस रोग में कफ दोष की शान्ति के लिए रोगी को वमन, लघन तथा मजिष्ठादि क्वाथ का तथा वात कफ दोनों दोषों की शाति के लिए आराम कराना चाहिये तथा तिक्त घृत या हरिद्राखण्ड या खदिराष्टक क्वाथ का सेवन कराना चाहिए। गर्म जल में क्षार मिलाकर उससे स्नान कराना चाहिए।

कण्डू सारे शरीर पर हो तो चक्रमर्द बीजो के १ छटांक चूर्ण को १ सेर तक्र में दो-तीन दिन भिगोकर पीसकर थोडा लवण मिलाकर तीन दिन तक शरीर पर मलकर प्रतिदिन गर्म जल से स्नान करना चाहिए।

या सरसो के तेल ८ भाग में ४ भाग मोम मिलाकर उसमें ½ भाग कर्पूर तथा एक भाग गधक मिलाकर उसकी मालिश करके गर्म जल से स्नान कर लेना चाहिए।

अथवा उपर्युक्त महासिन्दूरादि तेल के लेप करने से भी कण्डू शात होती है। गज चर्म के लिए भी कण्डू शामक योग उचित हैं। क्योंकि यदि सर्वथा खुजलाया न जाये तो गज चर्म रोग स्वय ठीक हो जाता है। गज चर्म पर सूतादि लेप (यो र) पारा, गधक की कज्जली का घृत से लेप करें या माहेश्वर लेप लगाएं।

अतिस्वेद रोग (Hyperidrosis)

हाथ-पॉव मे अतिस्वेद आने की शिकायत बहुत है। ऐसा किसी मानसिक कारण से होता लगता है। अत Largactil ७५ मिलि० या Amytal १ ग्राम के देने मे या किसी Anticholinergic औषधि जैसे Probanthine १५ मिलि० गोली के दिन मे २ बार देने से लाभ हो जाता है। स्थानिक प्रयोग Talcum Powder का करे। सारे शरीर पर स्वेद की अधिकता निर्बलता, Neurasthenia तथा Septic Fever के कारण होती है।

मुख रक्त मण्डल (Lupus Erythematosus, Chronic Discoid Erythematosus)

यद्यपि इस रोग की गणना Rheumatoid Arthritis जैसे स्नायुतन्तु या Collagen अवयवो में होने वाले रोगो मे की जाती है तथापि इसे त्वग्रोगो मे पढा जाता है।

मध्यम आयु मे विशेषत स्त्रियों मे नासिका के सकुचित भाग पर तथा उसके पास गाल पर तितली के पख के आकार का ५-१० मि०मी० व्यास का कुछ मण्डलाकृति रक्तवर्ण चकत्ता (Ch Discoid Type) निकल आया करता है जो किनारो पर रक्तवर्ण, कुछ उभरा हुआ, बीच मे कुछ फीका तथा दबा हुआ होता है। इस पर भूरे रग के चिपके हुए छिलके भी स्वल्प मात्रा मे दीखते हैं। यह रक्त मण्डल या तो स्थिर रूप मे वैसा ही रहता है या एक तरफ मन्द रूप से बढता भी है एव एक देर तक रहने वाला रोग है। यद्यपि इसमे कोई कष्ट विशेष नही होता तथापि ज्वर, थकावट, क्लम, अरुचि, पाण्डुता (Haemolytic), Leucopenia, के लक्षण हो सकते हैं। Rheumatoid Arthritis भी हो सकता है।

यह वहाँ की त्वचा मे एक प्रकार का शोथ है। अन्तश्चर्म की रक्तवाहिनियाँ फैली हुई होती है। उनके आसपास Lymphocytes का सचय होता है। इस शोथ के कारण बहिश्चर्म के बहिस्तर मे अतिवृद्धि (Hyperkeratosis) की विकृति होती है। फिर बहिश्चर्म की श्लैष्मिक स्तर Prickle Cell Layer मे लघुता (Atrophy) हो जाती तथा बहिश्चर्म की उत्पादक स्तर (Basal Cell Layer) मे भी क्षीणता (Liquefactive Degeneration) हो जाती है और वहाँ के Collagen तथा लचकीले अवयव मे भी क्षीणता (Basophilic Degeneration) हो जाती है। इस रोग के कारण के विषय मे कुछ निश्चय नहीं हो पाया है पर किसी सक्रमणजनित विष या Allergen के वहाँ की रक्तवाहिनियो पर दुष्प्रभाव से यह रोग होता लगता है या Auto-Immune Mecha-

nism इसका कारण है अर्थात् रोगी के ही किसी प्रकार से आहत हुए सैलो के या तो उनके Nuclear Component या Cytoplasmic Component के विपरीत Auto antibodies उत्पन्न हो जाते है जो रोगी के सीरम मे पाये जाते है। थोडे आघात लगने पर जैसे त्वचा पर चोट लगने पर उन सैलो के Antigens से ये Auto antibodies सघर्ष मे आ जाते हैं। रक्त के रक्तकणो, या श्वेतकणो किसी के विपरीत ये Auto antibodies उत्पन्न हो सकते है। इस प्रकार इस रोग की गणना Auto Immune रोगो मे की जाती है। स्थानिक रूप मे जब यह रोग होता है तब इसे Localized Lupus कहते है, जब यह व्यापक रूप मे होता है तब इसे व्यापक या Systemic L E कहते है। उस रूप मे यह रोग मध्यम आयु की स्त्रियो मे ज्वर, स्वेद, पाण्डुता, भार मे कमी से युक्त Polyarthritis बहु सन्धिशोथ या Pleuritis या Peritoneal Serositis के रूप मे होता है जिसमे इन दो प्रदेशो पर दर्द होता है, सधियो मे शोथ Rheumatoid Arthritis से मिलता-जुलता है। सूक्ष्म धमनियों या Serous Fluid की झिल्लियों के Collagen अवयव मे शोथ के या Fibrinoid Degeneration के होने से ये लक्षण होते है। वृक्क धमनियो मे यह रोग हो जाए तो मूत्र मे रक्तकण, अलब्यूमिन आने लगते है। हथेली, पादतल आदि की त्वचा पर लाल चकत्ते भी होते हैं। इस रोग का निश्चय Leucopenia, E S R की वृद्धि, रक्त मे L E Cells की उपस्थिति तथा चेहरे या हाथो पर लाल चकत्ता की उपस्थिति से हो सकता है। रोग वर्षों तक रह सकता है पर यह एक घातक रोग है। वृक्क धमनियो का ग्रस्त होना इस रोग का एक दुर्लक्षण है।

Lupus Vulgaris का रोग, जो त्वचागत क्षय रोग है, एक तो छोटी आयु मे होता है दूसरा उसमे मण्डल के किनारो पर ग्रन्थियाँ (Nodules) होती है, तीसरा वह नीचे नाक की तरुणास्थि तक भी पहुँचता है जब कि यह रोग त्वचा तक ही सीमित रहता है। उससे इस रोग का भेद करना कठिन नही। वह रोग क्षय रोग की चिकित्सा से ठीक होता है।

साध्यासाध्य—यह रोग कष्ट साध्य है पर घातक नही।

चिकित्सा

रोगी को धूप तथा ठण्डी हवा से बचना चाहिए तथा विटामिन्स, लोह, आदि देकर उसके स्वास्थ्य को उन्नत करना चाहिए। रोग तीव्र रूप मे हो तो Prednisolone को १०-२० मिलि० दैनिक मात्रा मे देने से लाभ हो जाता है। रोग पुराना हो तो १% Triamcinolone के १-१ मिलि० के Intralesional Injection से लाभ हो जाता है।

Chloroquine Phosphate को ४ ग्राम दैनिक मात्रा मे १ सप्ताह, फिर २५ ग्राम मात्रा मे प्रतिदिन कुछ दिन देकर देखना चाहिए। सप्ताह मे १-१ ५ ग्राम मात्रा ही रखें। इसी प्रकार Hydroxychloroquine Sulphate (Plaquenil) को २ ग्राम मात्रा मे दिन मे २ बार देने से शीघ्र लाभ होने लगता है। क्लोरोक्वीन से पेट के खराब होने का भय रहता है। व्यापक रूप मे रोग हो, Disseminated Lupus Erythematosus हो, तो उपर्युक्त औषधियो के साथ Corticosteroids का पूर्ण मात्रा मे अर्थात् Prednisolone का ४०-६० मिलि० दैनिक मात्रा मे मुख द्वारा प्रयोग करने से रोग शान्त हो, जाता है। पर इनका बहुत दिनो तक प्रयोग करना उचित नही। दुबारा रोग होने पर फिर इनका प्रयोग किया जा सकता है। उपर्युक्त Discoid Lupus पर Corticosteroids अर्थात् Betamethasone (Betnovate) या Fluocinolone Cream के लेप लगाने से वे लुप्त हो जाते है।

आयुर्वेदानुसार इस रोग मे पञ्चतिक्तघृत गुग्गुलु का प्रयोग करके देखना चाहिए। त्वचा तथा अन्य अवयवो मे वातकफ दोषो के प्रकोप से उत्पन्न होने वाला यह रोग प्रतीत होता है।

शीत जनित शोथ (Chilblains)

शीतकाल मे बाहर के शीत के लगने से नाक, कान अथवा अगुलियो के सिरो पर जो कुछ श्यामतायुक्त, कण्डूयुक्त, रक्त वर्ण शोथ हो जाया करता है उसे शीतजनित शोथ कहते हैं। कुछ-एक युवक-युवतियो के खुले हुए अगो जैसे हाथ-पैरो पर शीत के लगने से उनकी त्वचा की सूक्ष्म धमनियो मे सकोच (Arteriolar Spasm) हो कर त्वचागत अवयवो को उचित मात्रा मे आक्सिजन नही मिल पाती जिससे वह स्थान नीला सा दीखने लगता है अर्थात् वहाँ Cyanosis हो जाता है। लगभग ७७ डिग्री फारनहाइट तक त्वचा का तापमान हो जाने पर ऐसा होता है। सूक्ष्म धमनियो के सकुचित हो जाने से वहाँ की सूक्ष्म सिराओ अर्थात् Venules मे, जो शिथिल होकर फैल जाती है, रक्त रुक जाता है और उनमे से परिस्राव (Exudation) होकर वह स्थान सूज जाता है। वहाँ का Fibrous Tissue भी मोटा हो जाता है। स्पर्श मे वह स्थान कुछ गर्म और कठोर तथा देखने मे श्यामतायुक्त रक्त वर्ण होता है। रोगी को इसमे कुछ खुजलीदार

चुभन की प्रतीति होती है। अग्नि पर सेकने से यह रोग और बढता है। शीतकाल मे यह शोथ बना रहता है। यदि शीत जारी रहे तो व्रणभाव व स्नायुशाव भी हो जाते है। ग्रीष्मकाल के आने पर यह रोग ठीक हो जाता है परन्तु उत्तरोत्तर प्रति वर्ष इन अगो की शीत सहन करने की शक्ति गिरती जाती है।

इस रोग की रोकथाम के लिए शीतकाल मे जुर्राबो व दस्तानो के द्वारा तथा व्यायाम और मालिश के द्वारा इन अगो की त्वचा की सूक्ष्म धमनियों को सकुचित होने से रोका जा सकता है अथवा अगुलियो आदि पर Soft Paraffin मे Menthol १% मिलाकर लगाएँ या Phenol १, Camphor ६, Balsam of Peru २, Paraff Moll २५, Paraff Durum ७५, Anhydrous lanolin १०० तक मिलाके लगाये। इन उपायो के अतिरिक्त Nicotinamide के ५० मिलि० मात्रा मे अथवा Tolazoline (Priscol) के २५ मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन देने से कुछ काल के लिए इन अगो की सूक्ष्म धमनियों को सकुचित होने से रोका जा सकता है। Calcium की गोलियो के विटामिन "डी" के साथ लेने से भी बहुतो को इस रोग मे आराम रहता है, वह किस विधि से आराम करता है यह ठीक-ठीक स्पष्ट नही है।

आयुर्वेदानुसार इस रोग का अन्तर्भाव शीतपित्त उदर्द, रोग मे हो सकता है तदनुसार ही चिकित्सा होनी चाहिए।

विस्फोट (Pemphigus Vulgaris)

यह रोग कभी-कभी देखने मे आता है जिसमे त्वचा मे जगह-जगह पर छालो के समूह निकलते हैं। इनके लिए Prednisolone को ४० मिलि० दैनिक मे शुरू करके क्रमश कम करते जाना चाहिए। इससे लाभ न हो तो Triamcinolone या Betamethasone का प्रयोग करें। Cetrimide lotion के लगाने व Dusting Powder से भी लाभ प्रतीत होता है। Penicillin G का दिन मे २ बार प्रयोग करना चाहिए जिससे ये पकते नहीं। Tetracycline Ointment लगाने से भी लाभ होता है।

आयुर्वेदानुसार विस्फोट रोग को कफ पित्त दोषो के त्वचा मे बढने से उत्पन्न होने वाला कहा जाता है। इसके लिए खदिराष्टक क्वाथ या पञ्चतिक्तघृतगुग्गुलु का आभ्यन्तर प्रयोग करे तथा पद्मक घृत (यो र) पद्मकाष्ट, लोध्र, मुलैठी, नागकेसर, दो हल्दी, इलायची छोटी, विडग, तगर, कुष्ठ, लाक्षा, तेजपत्र, मोम, योथा मिलित २० तोला, घृत १ सेर, घृत पाक करके इसे लगाएँ।

पिडिका रोग [Furunculosis, Boils (Furuncle=कील)

Sebaceous ग्रन्थि मे Staphylococci के सक्रमण हो जाने को Boil या पिडिका कहते हैं।

त्वचा की स्नेह ग्रन्थियो से स्नेह स्राव अधिक होता हो, खाण्ड, अन्न आदि आहार अधिक मात्रा मे किया जाता हो तथा व्यायाम न की जाती हो जिससे रक्त मे खाण्ड की मात्रा अधिक हो गई हो, तो ऐसी अवस्था मे त्वचा पर प्रबल सघर्ष लग जाने या खुजलाने से रोमकूप का मुख क्षत हो जाने पर त्वचा पर या नासिका मे विद्यमान Staphylococcus Pyogenes Aureus या Albus का, उसमे, हाथ से या तौलिये के द्वारा सक्रमण हो जाता है और उसकी वहाँ वद्धि हो जाती है। रोमकूप के मुख से यह जीवाणु Sebaceous ग्रन्थि तथा रोममूल मे अर्थात् रोमकूप के गहरे भाग मे भी सक्रमण कर जाता है। वहाँ उसके विक्षोभक प्रभाव से आसपास के अवयव मे Fibroblasts के अति सचय से तथा वहाँ Fibrin के अति निर्माण से कठोरता उत्पन्न हो जाती है। इस बढे हुए अवयव के Nerves पर दवाव पडने से वहाँ दर्द का लक्षण होता है। रोमकूप मे इसकी वृद्धि होने पर इसको विष के दुष्प्रभाव स रोमकूप और स्नेह ग्रन्थि की प्राणशक्ति नष्ट हो जाती है। स्नेह ग्रन्थि सहित वह निर्जीव या मृत हो जाता है (अर्थात् Follicular Necrosis हो जाता है) इस मृत हुए रोमकूप (Furuncle) के चारो ओर के अन्तश्चर्म मे आसपास के अवयवो से श्वेत कण (Leucocytes और Small Round Cells) बहुत अधिक मात्रा मे जमा हो जाते है जिससे रोमकूप के चारो ओर के प्रदेश मे न्यूनाधिक पूयभाव या विद्रधिभाव हो जाता है एव वह प्रदेश मृदु हो जाता है (Perifollicular Suppuration हो जाता है) अब यह मृत हुआ रोमकूप कुछ-कुछ आसपास के गले हुए अवयव के साथ मिलकर एक कील (Core, Slough) के रूप मे बाहर निकल जाता है। फिर इससे खाली हुआ स्थान स्नायुतन्तु (Granulation या Scar Tissue) के द्वारा भर दिया जाता है एव यह पिडिका या रोमकूप शोथ शान्त हो जाता है। पिडिका, नितम्ब प्रदेश, उरु प्रदेश, कक्ष प्रदेश पर विशेष निकलती है। प्रमेह पिडिका (Carbuncle) मे इस प्रकार की पिडिकाओ का एक समूह होता है तथा यह मृत भाग अधिक चौडा तथा नीचे Subcutaneous स्तर मे भी अधिक गहरा होता है तथा उसका पूय कई मुखो से बाहर त्वचा पर निकलता है।

देखने मे शरीर की किसी मोटी त्वचा पर पहले एक छोटा सा रक्तवर्ण वेदनायुक्त कठोर उभार (Papule)

निकलता है जो बढकर एक इंच व्यास का हो जाता है। फिर ३ दिन तक यह मुख कर लेता है जो २ दिन में नरम होकर खुल जाता है। उसमें पूयस्राव आरम्भ होने पर वेदना कम हो जाती है और अन्त में कील (Core) के निकल जाने पर सर्वथा शान्त हो जाती है। इस प्रकार यह पिडिका ७ से १५ दिन तक रहती है। कभी-कभी एक के बाद दूसरी पिडिका निकलती रहती है। स्फिक् प्रदेश, उरु प्रदेश, कक्ष प्रदेश, अग्रबाहु, ग्रीवा के पश्चिम पृष्ठ पर पिडिकायें विशेषत निकलती हैं। कक्ष में यह रोग, रोमकूप (Pilosebaceous Follicle) में नहीं, पर स्वेद ग्रन्थियों में होता है। ग्रीवा तथा कन्धे के पीछे की मोटी त्वचा पर जहाँ स्नायु सूत्र Trabeculae विशेष मोटे होते हैं प्रमेह पिडिकायें निकलती हैं जो ७-८ दिन में पक जाती हैं। देखने में प्रमेह पिडिका आकार में बडी होती है अर्थात् एक साथ अनेकानेक रोमकूपों के ग्रस्त होने से निकलती है जिसमें त्वचा का बडा भाग मृत या Necrosed हो जाता है। जिससे वह कभी-कभी मारक हो जाती है। प्रमेह पिडिका के कारण दर्द, ज्वर तथा शरीर शैथिल्य Malaise के लक्षण होते हैं।

कान के अन्दर जब पिडिका निकलती है तो बडी कष्टप्रद होती है। नाक पर या उपरले ओष्ठ के मध्य भाग पर पिडिका हो और उसे दबाया जाये तो उसके विषैले अंश का सक्रमण Angular Vein के द्वारा Meninges या मस्तिष्कावरण की शिराओं में भी हो सकता है और Cavernous Sinus Thrombosis होकर उससे मृत्यु भी हो सकती है। रक्त के द्वारा इस विष का सक्रमण होकर Perinephric abscess (वृक्क विद्रधि) या अस्थि विद्रधि (Osteomyelitis) का उपद्रव हो सकता है।

पिडिका रोग (Furunculosis, Boils) की चिकित्सा

Sulphamezathine (Sulphadimidine) के चार-चार घन्टे बाद १ ग्राम मात्रा में दो-तीन दिन या Sulphasomidine (Elkosin) १ गोली के दिन में ३ बार २ सप्ताह देने या Chlortetracycline (Aureomycin) या Terramycin के १ ग्राम दैनिक मात्रा में मुख द्वारा देने या Procaine Penicillin ४-५ लाख यूनिट के दो-तीन दिन मांस द्वारा देने से पिडिकाओं की वृद्धि रुक जाती है। Multivitamin या Vit B Complex की गोलियों से रोगी की प्रतिरोधक शक्ति बढती है। Sodium Cit का प्रयोग भी मूत्र को क्षारीय करके इसमें आराम देता है। बेहतर तो यही है कि रोगी कार्बोहाइड्रेट भोजन बहुत कम लेवे तथा एक सप्ताह पूर्ण विश्राम कर ले। उचित यही है कि पिडिका के प्रारम्भ होने पर ही Antibiotic न दिया जाये। जब पहले रोगी की अपनी प्रतिरोधक शक्ति जागृत हो जाये तब इनका प्रयोग आरम्भ किया जाय अन्यथा इनके हटाते ही दुबारा ये निकलने लगती हैं।

पिडिका को बाह्य सघर्ष से बचाना चाहिये। बार-बार पिडिका निकलती हो तो उस स्थान को सघर्ष से बचाके वहाँ पर Gention Violet १% लगाना चाहिये। नाक से Staphylococci के निष्क्रमण को बन्द करने के लिये उनमें Neomycin Oint लगायें। पिडिका, Iodine के Alcohol में बने १ प्रतिशतक घोल के लगाने या जल में बने २ प्रतिशतक Gention Violet या Crystal Violet १% सोल्यूशन के लगाने या Ichthyol के ग्लिसरीन में १० प्रतिशतक घोल के दो-दो घण्टे पर लगाने या Crystal Violet १, Proflavine ½ ग्रेन, जल १ औंस के लगाने और ऊपर गर्म बोतल द्वारा या गर्म बोरिक लोशन से भिगाकर निचोडे कपडे से या Diathermy या Infra Red लैम्प से सेक देने से बैठती है और बढती नहीं या शीघ्र पक जाती है Vaseline ४ ड्राम में Phenol १० बूँद, Zinc Oxide तथा Starch २-२ ड्राम मिलाकर बना लेप भी लगाना ठीक है। Chlorhexidine HCl, Hexachlorophane या Cetrimide किसी की ५-१% क्रीम के मलने से भी ये ठीक हो जाती हैं।

मुख हो जाने पर उस पर १० प्र०श० Sod Sulph Solution की ड्रेसिंग करे अथवा Magnesium Sulphate Paste (शुष्क Magnesium Sulphate ४५ ग्राम, ग्लिसरीन ५५ ग्राम, Acid Carbolic ½ ग्राम मिला कर बनाया लेप) किसी कपडे में लगाकर लगाना चाहिये। इससे पिडिका का पूय स्रवित होने लगता है तब Proflavine की गाज रखनी चाहिये। पिडिका को चाकू से नहीं खोलना चाहिये। नाक के पास-पास की पिडिका खोलना या दबाना उचित नहीं। ऐसा करने से विष का सक्रमण मस्तिष्क तक पहुँचकर वह कभी-कभी घातक हो जाता है। इस लेप से उसे बहाकर स्वय साफ होने देना चाहिये। अथवा ३-३ घटे बाद गर्म जल से चमचे द्वारा उसकी सिकाई करनी चाहिए। Neomycin Sulphate Ointment (१ ग्राम में ५ मिलि०) या इसी का Solution (१ मी०मी० में ५ मिलि०) पिडिका नाशक उत्तम औषधि है। इसी प्रकार Framycetin Sulphate (Soframycin) या Gramicidin १ प्र०श० मलहम तथा लोशन भी बडे उपयोगी हैं। Bacitracin २५०-५०० यूनिट प्रति ग्राम का प्रलेप भी उपयोगी है।

कान मे Carbolic Glycerine (१ औंस ग्लिसरीन मे १ ड्राम Acid Carbolic) डालने, कान पर सेंक देने, तथा गर्म रूई बाधने से कान मे पिडिका दो-तीन दिन मे वह जाती है। कान व नाक की पिडिका पर उपर्युक्त Antibiotic लेप लगाये। प्रमेह पिडिका हो तो मधुमेह का प्रत्युपाय करना चाहिये। General Anaesthesia देकर सारे को Scrape करना चाहिये तथा १% Terramycin या Neomycin Solution छिडककर पट्टी करनी चाहिये।

आयुर्वेद मे पिडिका रोग

बहिश्चर्म मे आम दोष (कफ दोष) की वृद्धि हो, साथ ही उसकी प्राणशक्ति भी हीन हुई हो तो Staphylococci का रोमकूपों में सक्रमण सुगमता से हो जाता है। रोमकूप में उसके विपरीत श्लैष्मिक प्रतिक्रिया होकर जो रोमकूप शोथ होता है उसे पिडिका कहते हैं। इस जीवाणु की विष से रोमकूप मृत होकर एक कील (Slough) के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस कील के चारो ओर के अवयव मे पित्तजनित मृदुभाव या पूयभाव भी कुछ कुछ हो जाता है जिससे यह कील त्वचा से पृथक् होकर बाहर निकल जाता है। इस प्रकार यह पिडिका रोग बहुधा वात कफ दोष जनित होता है। या कभी-कभी वात पित्त दोष जनित होता है तब इसमें दाह पाक के लक्षण विशेष होते हैं।

पिडिका रोग बार-बार होता हो तो खाण्ड आदि कफ दोषवर्धक आहार बन्द करके मजिष्ठादि क्वाथ या तिक्त घृत या पचतिक्तघृतगुग्गुलु का कुछ काल सेवन करना चाहिए। शरीर की प्रतिरोधक शक्ति बढाने के लिए दो-चार दिन का पूर्ण विश्राम करना चाहिए।

कुष्ठ और हल्दी के चूर्ण को या दशाग चूर्ण को पचमाश घृत में मिलाकर पिडिका पर लेपते रहने से तथा स्वेदन करते रहने से वह बैठ जाती या शीघ्र पककर वह जाती है। पिडिकाओ की रोकथाम के लिए कैशोर गुग्गुलु (भै र) (गूगल १ सेर की पोटली को त्रिफला १, गिलोय २ सेर, जल २४ सेर में लटकाकर पकाएँ। १२ सेर जल रहने पर नितारकर छान लें, फिर उसमे पोटली लटकाकर द्रव को गाढा करें। गाढा हो जाने पर उसमें त्रिफला, त्रिकुट, विडग, त्रिवृत प्रत्येक २½ तोला, गिलोय ५ तोला, घृत ४० तोला मिलाएँ) को १-३ माशा मात्रा में मजिष्ठादि क्वाथ या त्रिफला के अनुपान से देना चाहिए।

Exfoliative Dermatitis या Erythrodermia, Pityriasis Rubra—शरीर के एक प्रदेश या सर्वांग पर लालिमा (Erythema) के चकत्ते होकर भारी मात्रा मे त्वचा से छिलके झडने लगते हे जो विस्तरे पर भी छा जाते हैं इस प्रकार हुआ यह रोग बडी आयु के व्यक्तियो मे होता तथा महीनो या वर्षो तक रहता है। इसका कारण अभी तक ठीक-ठीक पता नही चला। इस रोग मे त्वचा को Soda bicarb lotion (३ प्रतिशत) से धोकर उस पर शामक लेप या पाउडर लगाने चाहिएँ। पौष्टिक भोजन देना चाहिए। निद्राजनक या त्वचा पर होने वाली बेचैनी के लिए भी शामक Sedative ओषधि देनी चाहिए। Prednisolone के पहले ३० मिलि० दैनिक मात्रा मे कुछ काल देने से रोग शान्त हो जाता है, फिर इसकी १० मिलि० दैनिक मात्रा जारी रखे। इसके साथ विटामिन 'सा' ५०० मिलि० दिन मे २ बार दें। हलकी रेचन ओषध भी दें।

सिध्म (Pityriasis Versicolor, Tinea Versicolor)

छाती के प्रदेश, कन्धो तथा ऊपर की पीठ पर कभी-कभी फीके से, श्वेत वर्ण के ४-५ मि० मीटर व्यास के गोल चकत्ते दीखने लगते हे जो बहिश्चर्म के कठोर स्तर (Horny Layer) मे एक प्रकार की फुई Malassezia Furfur या Microsporon Furfur के लग जाने से और इस स्तर के परतो के रूप मे झडने से बनते हे। पसीने के अधिक आने और उसके विदग्ध हो जाने से यह फुई वहाँ लगनी प्रतीत होती है। इसके प्रभाव से कठोर स्तर के सैल मृत होकर झड जाते है। इसके विपरीत बहिश्चर्म मे कोई प्रतिक्रिया (Inflammation) नही होती जिससे त्वचा मे कोई लालिमा आदि लक्षण नही होते। उस प्रदेश मे त्वचा का रग नही आता जिससे वहाँ हलके श्वेतवर्ण का एक प्रदेश रोगी का ध्यान खीचता हे।

सिध्म (Pityriasis Versicolor) की चिकित्सा

गधक तथा Acid Salicylic १५-१५ ग्रेन की मात्रा मे १ औंस Soft Paraffin मे मिलाकर रात को मलने या एक औंस जल मे १ ड्राम Sodium Thiosulphate मिलाकर दिन मे २ बार लगाने या Benzoic Acid (६ प्रतिशत) Salicylic Acid (३ प्रतिशत) का Polyethylene glycol Oint मे बना प्रलेप (Whitefield's Ointment) लगाने से इस रोग की फुई नष्ट होती है। साबुन मलकर स्नान करना चाहिए।

आयुर्वेदानुसार

आयुर्वेद में सिध्म रोग को वहिश्चर्म में कफ वात जनित रोग कहा है अर्थात् वहिश्चर्म में कफ दोष या आम दोष की अधिकता से एक प्रकार की फुई का सक्रमण हो जाता है तथा वहिश्चर्म की प्राणशक्ति की हीनता से वाह्य शुष्क स्तर नष्ट हो जाती है। इस रोग पर ८ गुणा तेल या घृत में गधक मिलाकर मर्दन किया जाता है। सिध्महर लेप (ग नि) गधक, जवाखार वरावर-वरावर आठ गुणा सरसो के तेल में घोटकर लेप करें। या गधक और मूली के वीज पीसकर ८ गुणा तेल से मलें या मूली के वीज तथा पवाड के बीज समान-समान मिला कर निम्बुस्वरस से लेप करें।

(च०।चि०।७।१९।, सु०। नि०।५)

विपादिका—पैरो के फटने के रोग के लिए सैंधवादि लेप (यो त) सैंधा नमक, घृत, गूगल, मोम, राल, शहद, गेरु, गुड समान-समान लेकर घृत गर्म करके उसमें गूगल मिलाएँ, फिर मोम मिलाएँ, फिर राल आदि मिलाएँ। इसका लेप करे। मदनादि लेप (वृ. नि र) मदनफल, समुद्रलवण १-१ तोला, मोम १ तोला, घृत १२ तोला गर्म करके उसमें पहले मोम और फिर दोनो चूर्ण मिला दें। लेप करें।

मषक (Warts, Verruca)

वालकों व युवको के हाथो व अगुलियो, सिर, चेहरे, जननेन्द्रिय पर मस्से हो जाया करते है। जिनका कारण एक Virus है जिसका Incubation period ४ माह के लगभग है तथा जो ५० माइक्रोन व्याम का है। जननेन्द्रिय पर ये Condyloma किस्म के होते हैं हाथो पर चपटे किस्म के होते है। ये त्वचा मे Hyperkeratosis की प्रक्रिया से उत्पन्न होते हैं। उनकी जड मे सज्ञाहर औषधि को प्रविष्ट करके Scalpel या Scissors से निकाल दिया जाता है या चपटा मषक हो तो उस पर Salicylic Acid १ ड्राम, Benzocaine २½ ड्राम, Flexible Collodion १ औंस मिलाके इसे रात को लगा दिया करे। अथवा Salicylic Acid १ ड्राम, Alcohol (८० प्रतिशत) ४ औंस मिलाकर रात को रोज लगाये। या Salicylic Acid Collodion (Flexible Collodion मे १२%) मे १% Brilliant green रोज लगाएं। जननेन्द्रिय पर Wart हो तो Paraffin liquid मे Podophyllin २०% रात को १ दिन लगाए प्रात साफ कर दे। १ सप्ताह वाद दुहरा सकते है।

Corns इसी प्रकार पाव की अगुलियो या तलुओ पर, जहाँ जूते का दवाव अधिक पडता है, हो जाते है। इन पर भी Salicylic Acid १ ड्राम, Acetone १ ड्राम, Collodion ½ औंस मिलाकर रात को रूई भिगोकर लगा दे और क्रमश उस्तरे से काट दे। Lanolin ६० प्रतिशत, Podophyllin तथा Linseed oil २०-२० प्रतिशत मिलाके उसे गाज पर लगा वाध दे १ सप्ताह इसे रहने दे तो भी Warts लुप्त हो जाते हैं। ५% Formalin जल मे १५ मिनट के लिए रात को १½–२ मास तक लगाने से भी Plantar Wart ठीक हो जाते है।

आयुर्वेद ग्रन्थों मे इनके लिए क्षार घृत (भै र) का विधान किया है मोखा वृक्षक, कुडा, गु जा चित्रक, अर्कपत्र, थूहर, चिरचिटा, पलाश, नीम, करञ्ज, कनेर, इनमे से किन्ही ४-५ को सुखा जलाकर इनकी भस्म को ६ सेर जल मे मिला २१ वार कपडे मे से छाने। इस ४ सेर जल मे १ सेर घृत जवाखार, सज्जीखार, सुहागा मिलित १० तोला डाल घृत पाक करे। इसे लगाएँ।

कुष्ठ रोग (Leprosy, Hansen's Disease)

ठीक सौ वर्ष हुए १८७४ सितम्वर मास मे नार्वे के वर्जन (Bergen) नामक शहर के कुष्ठ अस्पताल के एक डाक्टर Gerhard Armauer Hansen ने, जिसने अपने जीवन का वहुत वडा भाग कुष्ठ रोग के अन्वेषण मे लगा दिया, यह प्रकाशित किया कि कुष्ठ रोग जन्म से नही आता अर्थात् यह रोग पैतृक परम्परा जनित नही है यह सक्रमण जनित है और इसके सक्रमण के कारणभूत कुष्ठ जीवाणु Mycobacterium Leprae का उसने पता लगा लिया है। कुछ काल वाद Albert Neisser ने हैन्सन की उस फिल्म को Fuchsin से रगकर कुष्ठ जीवाणु को और स्पष्ट करके दिखा दिया। हेन्सन के प्रयत्नो का यह फल हुआ कि जिस छोटे से नार्वे देश मे हेन्सन के जन्म काल (१८४१) पर २००० से अधिक कुष्ठ रोगी थे उसकी मृत्यु (१९१२) के समय यह रोग वहाँ से लगभग लुप्त हो गया। तथा ससार के देशो को यह पता लग गया। इस रोग का उन्मूलन करना सभव है। यह वात भी कितनी उचित है कि १९७४ की दसवी International Leprosy Congress नार्वे के Bergen शहर के उसी मकान मे हो रही है जहाँ हेन्सन ने वर्षो तक कुष्ठ रोग पर अनुसधान का कार्य किया था।

यह गर्म देशो मे पाए जाने वाला रोग है। यह पैतृक नही सक्रमण जनित होता है। वालको को जल्दी लगता है। सभवत रोगो मे यह सवसे पुराना रोग है तथा

भारत या चीन से यह सर्वत्र फैला है। इस समय लगभग पौने दो करोड रोगी इस रोग के हैं। इनमे से ६४ लाख एशिया के देशो मे है।

त्वचा की प्राणशक्ति हीन हुई हुई हो और ऐसी अवस्था मे कुष्ठ रोगी के साथ अति निकट सम्पर्क मे आने से उसमे कुष्ठ जीवाणु (Mycobacterium Leprae या Lepra Bacillus) का, जिसका पता पहले पहल नार्वे के Gerhard Armauer Hansen (१८७४ मे) ने दिया, सक्रमण या तो सीधा दूसरे की त्वचा मे सघर्ष जनित क्षत के द्वारा हो जाये या रोगी के कुष्ठ जीवाणु युक्त नासा स्राव के द्वारा उसकी नासा की श्लेष्म कला मे हो जाये या अन्न मार्ग मे हो जाये तो रक्त द्वारा कुष्ठ रोग हो जाता है जिसमे शरीर की त्वचा, श्लेष्म कला तथा प्रान्त नाडियाँ ग्रस्त होती है। जीवाणु का सक्रमण तथा प्रसरण त्वचा तथा नासिका की श्लेष्म कला मे विद्यमान लसीका वाहिनियो के द्वारा होता है। जिन प्रदेशो में कुष्ठ रोग होता है उनकी गन्दी वस्तियो मे गन्दे तरीके से भीडभाड मे रहने वाले ऐसे लोगो मे जो एक साथ सोते, एक ही साथ वर्तन मे खाते तथा एक ही हुक्के से तम्बाकू पीते हैं एव रोगियो के साथ अति निकट सम्पर्क मे आते है १० से ३० वर्ष की आयु मे विशेषत वाल्यावस्था मे यह रोग होता है। सम्भवत जिनमे शारीरिक निर्वलता होती है उनमे यह जीवाणु आयु के प्रारम्भिक भाग मे ही प्रवेश कर जाता है तथा अज्ञात रूप मे रहता है। परन्तु रोग रूप मे कई वर्ष वाद प्रकट होता है और कुछ एक मे तो प्रसुप्त रूप मे ही रहता है। कुष्ठ रोगी की सतान मे जन्म से इस रोग के होने की प्रवृत्ति रहती है यह विश्वास मिथ्या है। क्योकि देखा गया है कि यदि कुष्ठ रोगी की सतान को जन्म के वाद शीघ्र रुग्ण माता-पिता से पृथक् करके पाला जाये तो उसमे यह रोग नही होता। जन्म के वाद रुग्ण माता या पिता के अति सम्पर्क मे रहने से उनसे उसमे यह रोग सक्रमण द्वारा आता है। कुष्ठ रोगियो मे काम करने वालो मे सक्रमण होता हुआ नही देखा जाता। हमारे देश मे हिमालय की तराई के प्रदेशो, पश्चिमी वगाल, दक्षिणी विहार, उडीसा, मद्रास, केरल आदि गर्म आर्द्र प्रदेशो मे यह रोग विशेषत पाया जाता है। मद्रास मे लाखो की सख्या मे इस रोग के रोगी हैं। सारे देश मे लगभग २५ लाख रोगी इस रोग के है। एक तिहाई केवल मद्रास मे ही होगे।

कुष्ठ जीवाणु (Mycobacterium Leprae) जैसा ऊपर कहा है जिसका पहले पता Hansen ने १८७४ मे लगाया था क्षय जीवाणु (Tubercle Bacillus) के सदृश एक जीवाणु है। उसी के समान Ziehl Neelsen तरीके से रगा जाता है। पर उससे कम Acid Fast है। उसके समान मन्द वल होता है। यह रोगी के रोगग्रस्त प्रदेश मे तथा उसकी नासिका से होने वाले स्राव मे पाया जाता है। रोगी के यकृत्, प्लीहा, वृक्क, अण्ड, नाडियो, लसीका प्रदेशो तथा रक्त मे भी यह देखा जाता है। इसके Inoculation के द्वारा जन्तुओ मे भी कुष्ठ रोग उत्पन्न किया जा सकता है।

इसके शरीर मे प्रविष्ट होने के तीन-चार वर्ष वाद यह रोग त्वचा पर प्रकट होता है। अत इस रोग का परिपाक काल (Incubation Period) दीर्घ या कई वर्ष का लगभग २-५ वर्ष तक होता है। तथा २०-२५ वर्ष वाद भी यह हो सकता है।

इस रोग के दो भेद है (१) सुप्ति कुष्ठ, (२) काकण कुष्ठ (Nodular Leprosy)।

सुप्ति कुष्ठ (Anaesthetic Leprosy, Neural Leprosy, Maculo Anaesthetic Leprosy, Tuberculoid Leprosy Lepra Nervorum)

त्वचा निर्दोष हो एव उसकी प्रतिरोधक शक्ति पर्याप्त हो तो त्वचा मे प्रविष्ट होते ही त्वचा के श्लेष्म द्रव तथा रक्षक सैलो के द्वारा ये जीवाणु नष्ट कर दिये जाते है। परन्तु यदि त्वचा की प्रतिरोधक शक्ति कुछ कम हो तो जीवाणु पूर्णतया नष्ट नही हो पाता, और उस पर उसका कुछ दुष्प्रभाव हो जाता है। त्वचा (Dermis) के सवसे सुकुमार अवयव वात नाडी सूत्रो पर उसका दुष्प्रभाव विशेष होता है, शेष त्वचा पर कोई दुष्प्रभाव विशेष नही होता। त्वचा मे विद्यमान स्पर्शवाही या ज्ञानवाही नाडी सूत्रो के भीतर जीवाणु प्रवेश करके शरीर के अन्दर की ओर वढने लगता है। जिसके विपरीत वहाँ पर रक्षक श्वेतकण विशेषत Large Mononuclears या Histiocytes या Reticuloendothelial प्रदेशो से उत्पन्न होने वाले सैल जिन्हे Epithelioid या Macrophages कहते हैं अति मात्रा मे एकत्रित हो जाते हैं। जव ये सैल भी इस जीवाणु का पूर्ण प्रतिकार नही कर पाते तो ऐसे कई सैल मिलकर एक वडा सैल वना लेते हैं जिसे अनेक मीगियो वाला वडा सैल Multi nucleated Giant Cell कहते है। इस रोग मे इस प्रकार का जो वडा सैल वनता है उसे Lepra Cell कहते हैं। इसके अन्दर कुष्ठ जीवाणु वहुत अधिक सख्या मे घिरे हुए देखे जा सकते है। रक्षक सैलो की इस प्रतिक्रिया से वहुधा जीवाणुओ का सक्रमण आगे वढना वन्द हो जाता है। सज्ञावाही नाडी सूत्रो

के अन्दर इस जीवाणु के प्रविष्ट हो जाने से सूत्रो के बीच के प्रदेश मे इस प्रकार जो अकुर बनते हैं उन्हे Granuloma कहते हैं। इनके कारण तथा सूत्रो के चारो ओर के स्नायुतन्तु (Endoneurium तथा Fibrous Sheath) के मोटे हो जाने से नाडी सूत्र मोटे हो जाते हैं। त्वचा के केश मूलो को जाने वाले नाडी सूत्रो के जाल सबसे पहले क्षीण होते है। इसलिये रोम या केश क्षीण हो जाते है। सूक्ष्म नाडी सूत्रो मे से क्रमश जीवाणु सक्रमण बडी वात नाडियो मे जैसे Ulnar, Radial, Superficial Peroneal, Tibial Nerves आदि मे होता जाता है और उनमे Granuloma के हो जाने से नाडी सूत्रो (Fibres) के क्षीण हो जाने तथा उनमे स्नायुतन्तु के बढ जाने (Interstitial Fibrosis के हो जाने) से वे भी मोटी हो जाती हैं। Ulnar को कोहनी से ऊपर Medial Epicondyle के पीछे के प्रदेश में, Superficial Peroneal को गोडे के पीछे Fibula के Head पर Radial को Humerus के Sulcus, Nervi Radialis पर Posterior Tibial को अन्दर के गिट्टे के नीचे स्पर्श द्वारा अनुभव किया जा सकता है। इस जीवाणु के द्वारा त्वचा की वात नाडियो मे क्षीणता के आ जाने से त्वचा मे क्षीणता होने लगती है जिससे त्वचा पर विशेषत चेहरे, शाखाओं के बाह्य पृष्ठ, पीठ, नितम्ब पर विवर्णता या अति रक्तिमा युक्त (Hypo या Hyperpigmentation) तथा स्पर्श शून्यता से युक्त चकत्ते (Macules) दीखने लगते है, जिनके किनारे स्पष्ट, कुछ उठे हुए होते है। ये सख्या मे स्वल्प, आकार मे १ से १० सेंटीमीटर तक बडे, दोनो ओर एक से नही होते। इतना बडा चकत्ता एक ही हो सकता है या अनेक भी। इस चकत्ते का रग आसपास की त्वचा से फीका होता है (Hypopigmented)। कभी-कभी चकत्ता कुछ रक्त वर्ण होता और कुछ उठा हुआ होता है। कभी-कभी यह उठा हुआ चकत्ता किनारो पर उठा हुआ, रक्त वर्ण होता, बीच मे फीका तथा चपटा होता है। चकत्ते उठे हुए न हो तो उन्हे Maculo-Anaesthetic Leprosy कहते है। यदि चकत्तो के किनारे उठे हुए हों या चकत्ते सारे ही कुछ उठे हुए हो तो उसे Tuberculoid Leprosy कहते है। इन चकत्तो के फैलते जाने से त्वचा के बडे प्रदेश मे सुप्ति या स्पर्श शून्यता का लक्षण दीखने लगता है। इन चकत्तो पर शीत उष्ण के भेद करने की शक्ति भी कुठित सी हो जाती है। इनमे स्वेद भी नही होता है (Anidrosis) तथा बाल भी नष्ट हो जाते है (Depilation) तथा देखने मे त्वचा कुछ रूक्ष और चमकदार दीखती है। इस प्रदेश पर Sebum भी नहीं निकलता। सज्ञानाश से पहले यह भी सम्भव है कि रोगी को ग्रस्त प्रदेश की नाडियों मे कुष्ठ रोग जनित शोथ के कारण नाडीशूल (Neuralgia या Hyperaesthesia) की शिकायत भी रहे। कुष्ठ रोग से ग्रस्त प्रदेश की त्वचा का पोषण कम हो जाने से उसकी कठोर स्तर Horny Layer का निर्माण ठीक नहीं होता। इसी से उसमे चमक-सी आ जाती है तथा उसमे रोम भी नष्ट होते जाते है। क्योंकि नख भी बहिश्चर्म का एक अग है, इसलिये वे भी रूक्ष, कठोर एव क्षीण हो जाते है। इसीलिये यदि हाथ-पॉव के Ulnar तथा Peroneal Nerves के प्रदेशों मे या Great Auricular Nerve के प्रदेश मे शूल या सुप्ति हो अथवा नाक, भौंहों, कानो, गालों, धड, स्फिक् प्रदेश पर और शाखाओ के बाहर के सघर्ष मे आने वाले पृष्ठो पर कहीं पर भी शूल या सुप्ति की प्रतीति हो तो इस रोग की आशका करनी चाहिये। भौंहों के बाहर के भाग के बाल उड गये हों तो भी इस रोग की आशका होनी चाहिए। रूई का स्पर्श तथा पिन की हलकी चुभन प्रतीत न हो तो इस रोग का सदेह करना चाहिए। चकत्तो के बिना भी नाडियो की क्षीणता से सज्ञानाश का लक्षण हो सकता है। Ulnar N के ग्रस्त होने से छोटी अगुली तथा Ring finger के बाहर के भाग मे सज्ञा नष्ट हो जाती है। Median N ग्रस्त हो तो करतल के बाहर के आधे भाग मे सज्ञा नष्ट हो जाती है। Peroneal (Lateral Popliteal) के ग्रस्त होने से पाँव की त्वचा मे सज्ञा नष्ट होती है। Tibial Posterior के ग्रस्त होने से निम्न जघा की त्वचा की सज्ञा नष्ट होती है। Cranial Nerves मे से पाचवी और सातवीं भी ग्रस्त हो सकती है। इसे Polyneuritic Leprosy कहते है। Ulnar, Median, Peroneal Nerves आदि के रोगग्रस्त होने के कारण पहले सज्ञानाश और फिर हाथ-पाँव की छोटी-छोटी मासपेशियो में लघुता (Atrophy) तथा घात (Paralysis) के लक्षण भी हो जाते हैं। जिससे पाँचे के उभार (Thenar, Hypothenar Eminences) लुप्त हो जाते है। दोनो ओर के हाथो, पावो मे स्पर्श शक्ति की न्यूनता के साथ क्षीणता के लक्षण भी होते हैं। रोग के बढ जाने पर हथेली और अगुलियो के बीच की सन्धियो के फैल जाने (Carpo Phalangeal Joints के Extended हो जाने) से तथा अगुलियो के बीच-बीच की सधियो (Interphalangeal Joints) के सकुचित हो जाने से हाथ, पक्षियो के पजो की तरह (Main En Griffe) हो जाते है। यदि अन्दर की दो अगुलियो मे सकोच हो और हाथ मे कुछ निर्बलता हो तो

अन्दर की ओर की (Ulnar Interossei) मे इस रोग का प्रभाव हुआ समझना चाहिए। Radial नाडी मे इस रोग का दुष्प्रभाव होने से तो हाथ ही शिथिल हो जाता हे (Wristdrop)। निम्न जघा की Common Peroneal (Lat Poplitial) नाडी मे रोग हो तो पॉव को उठाने वाली (Extensor) पेशियो की क्षीणता से पॉव शिथिल हो जाता हे। Post Tibial नाडी मे रोग हो तो पाँव के तलुए मे वातिक (Trophic) व्रण हो जाता हे। इनके अतिरिक्त Supra orbital, Supraclavicular, Femoral Cutaneous, Antibrachial Cutaneous नाडियाँ भी ग्रस्त हो जाया करती हैं। इसके वाद Vasomotor Nerves के ग्रस्त हो जाने से त्वचा तथा अस्थियो का पोषण वन्द हो जाता हे जिससे वे भी क्रमश क्षीण होती जाती हे।

परीक्षा

पिन परीक्षा—रुग्ण तथा स्वस्थ त्वचा पर पिन चुभोकर तथा गर्म ठण्डी वस्तु लगाकर वेदना तथा स्पर्श सज्ञा की परीक्षा की जाती हे। इस रोग मे रुग्ण नाडी स्थूल हो जाती है Ulnar N को कोहनी के जोड पर कोहनी को कुछ सकुचित कर अन्दर के पृष्ठ पर टोहना चाहिए। Great Auricular N. को सिर को दूसरी ओर मोडकर Sternomastoid Muscle के ऊपर अनुभव किया जा सकता है।

Histamine Test—1-1000 हिस्टामीन सोल्यूशन की एक बूँद त्वचा पर रखकर उसे चुभो दे।-यदि वह स्थान रक्तवर्ण न हो तो इस रोग का निश्चय करे।

काकणक कुष्ठ त्वक् कुष्ठ (Nodular Leprosy, Lepromatous Leprosy, Cutaneous Leprosy)

उपर्युक्त सुप्ति कुष्ठ मे त्वचा के अन्दर जीवाणु कम वढ पाते हैं, जो वढते हैं वे भी नाडी सूत्रो मे ही, पर जव त्वचा अधिक सदोष होती हे एव जव उसमे जीवाणु शीघ्र-शीघ्र रोहण कर जाता है अर्थात् प्रतिरोधक शक्ति कम होती है तो अन्तश्चर्म मे तथा अन्तश्चर्म के नीचे के मेदोमय स्तर (Subcutaneous Layer) मे तथा श्लेष्मकलाओ (Mucosa) मे विशेषत नाक तथा गले मे भी जीवाणु के अधिक प्रसरण कर जाने से Large Mononuclears या Epithelioid Cells या Macrophages अधिक सख्या मे एकत्रित हो जाते हैं। इनके साथ Lymphocytes और Fibroblasts नामक श्वेतकण भी जीवाणुओ का प्रतिरोध करने के लिए एकत्रित हो जाते हे। जव पृथक्-पृथक् ये सैल जीवाणुओं का प्रतिकार नही कर पाते तो जैसे ऊपर कहा गया है ये परस्पर मिलकर अनेक मींगियो वाले सैलो को जिन्हे Giant Cells या इस रोग मे Lepra Cells कहते है वना देते है। इनके अन्दर कुष्ठ जीवाणु अत्यधिक मात्रा मे घिरे हुए होते हैं। जीवाणु प्रतिरोधक इन Macrophages के परस्पर मिलकर एक हो जाने से जो स्नायुतन्तु (Scar Tissue) के अकुर या दाने बनते हे उन्हे Granuloma कहते हैं। ये Granuloma अन्तश्चर्म के अन्दर वहुत अधिक मात्रा मे उत्पन्न हो जाते हैं। सुप्ति कुष्ठ मे ये Granuloma वात नाडियो के अन्दर ही वनते हैं परन्तु इस त्वक् कुष्ठ मे ये विशेषत अन्तश्चर्म के अन्दर फैले हुए रहते है। स्वल्प मात्रा मे वात नाडियो मे भी उत्पन्न हो जाते हैं। इस अवस्था मे नाडी सम्वन्धी लक्षण पहले नही होते, वाद मे रोग के वढने पर सज्ञानाश का लक्षण भी होता है। अन्तश्चर्म के अन्दर Granuloma के अधिक मात्रा मे उत्पन्न हो जाने से पहले तो चेहरे, कान पर और फिर स्फिक् प्रदेश, पृष्ठ प्रदेश, शाखाओ के सघर्ष मे आने वाले पृष्ठो पर एक तिहाई इच व्यास के कुछ उभरे हुए हलके लाल से रग के चकत्ते (Macules या Papules) निकल आते है जो वीच मे ऊँचे, चारो ओर त्वचा के लेवल मे होते है। जिनमे स्पर्श ज्ञान और स्वेद दोनो नही होते है। ज्वर के साथ ऐसे चकत्ते समय-समय पर निकलते रहते है और फिर फीके पडकर छिप जाते हे। प्रारम्भ मे ये उभार न होके चकत्ते Macules ही होते हैं तथा त्वचा के समतल होते है। इन्हें Lapromatous Macules कहते हैं। इन्ही प्रदेशो मे फिर छोटे-छोटे उभार (Nodules) जो त्वचा मे विद्यमान Granuloma के कारण होते हे दृष्टिगत होने लगते हैं इन्हे Lapromatous Nodules कहते हैं। नाक, भौहो, कान आदि पर इन उभारो के हो जाने से चेहरा विषम हो जाता है। त्वचा तथा लोमो का पोषण न होने से भौहो के वाल तथा आखो के वाल झडने लग जाते हैं। ये दाने या उभार नाक, मुख, गले, कण्ठ (Larynx) के अन्दर की श्लेष्म कला मे भी हो जाते हे। अर्थात् इस रोग मे जीवाणु त्वचा व नाडियो के अतिरिक्त श्लैष्मिक कला मे भी रोहण कर जाता है, जिससे नासा, गले, कण्ठ सम्वन्धी लक्षण हो जाते हैं नाक से स्राव होता रहता है। Septum के नष्ट हो जाने से नाक वैठ जाती है। गले मे Nodules होने से आवाज वैठ जाती है। Hard या Soft तालु मे छेद हो सकता है। अन्तश्चर्म मे इस रोग के वढ जाने पर वहाँ की नाडियाँ भी ग्रस्त होकर स्थूल हो

जाती है। उदाहरणत ग्रीवा में Great Auricular, हसली की हड्डियों पर Supra Claviculars, कोहनी के अन्दर ऊपर की तरफ Ulnar, निम्न बाहु के आगे Antebrachial Cutaneous, कलाई पर Radial, Median उरुओं के आगे Femoral Cutaneous, गिट्टा के आगे Superficial Peroneals अन्दर के गिट्टे के नीचे, Post Tibial स्पर्श करने से मोटी दीखती है। हाथ में संज्ञा शक्ति कम हो जाती है पर चेष्टा शक्ति कम नहीं होती जिसमे रोगी हाथ-पैर से काम करता रहता है। उन पर दाह या व्रण की प्रतीति कम होने से उनमें क्षत होते रहते हैं। अन्त में चेष्टावाही नाड़ियों में भी रोग फैल जाता है जिससे हाथ-पाँव की मासपेशियों में भी शक्ति जाती रहती है और उनमें विकलता आ जाती है (Main En Griffe) यह महाकुष्ठ रोग एक दीर्घ तथा कष्टसाध्य रोग है। चिकित्सा ठीक-ठीक हो तो सुप्ति कुष्ठ ३ वर्ष तक ठीक हो सकता है तथा कारुणक कुष्ठ ६ से ८ वर्ष तक के समय में ठीक हो सकता है। जीवाणुओं को शरीर में से सर्वथा निर्मूल कर सकते हैं इसमें सदेह है तो भी Maculo Anaesthetic Leprosy सुखसाध्य है। Tuberculoid और Polyneuritic Leprosy को भी यत्नपूर्वक ठीक किया जा सकता है।

कुष्ठ रोग की चिकित्सा (Treatment of Leprosy)

वर्तमान समय में कुष्ठ रोग की चिकित्सा Sulphone औषधियों द्वारा की जाती है। पहले १९३८ में यह पता चला कि Sulphonamide group का ४ ४ Diamino Diphenyl Sulphone (D D S) नामक Compound उत्तम जीवाणुरोधक (Bacteriostatic) है परन्तु इसके विषैले होने से इसके कुछ योग (Derivative) बनाये गये जो कुष्ठ जीवाणु को नष्ट करने के लिए दिए जाने लगे। बाद में १९५२ में इस प्रारम्भिक कम्पाउण्ड का भी स्वल्प मात्रा में प्रयोग कुष्ठ रोग के लिए बड़ा लाभदायक पाया गया। जिस Metabolite या Substrate पर इन जीवाणुओं के Enzymes की क्रिया होकर इनकी वृद्धि होती है वह Para aminobenzoic acid रासायनिक रचना में Sulphones से मिलता-जुलता होता है। Enzyme system इन दोनों में फर्क कर नहीं सकता। लिहाजा वह Sulphones से मिल जाता है एवं इससे जीवाणुओं की वृद्धि रुक जाती है। स्वस्थ त्वचा की अपेक्षा रुग्ण त्वचा में यह १० गुणा अधिक संचित होती है। इसलिए यह औषधि Bacteriostatic है नाशक नहीं। उनका नाश तो शरीर की स्वाभाविक शक्तियों के द्वारा ही होता है। Di-Amino-Diphenyl-Sulphone (D D S या Dapsone) का प्रयोग Dapsone की गोलियाँ (B W ५०-१०० मिलि०) Diphone (B.I) की ५० मिलि० की गोली Avlosulphone (I C I) (५०-१०० मिलि० गोली) तथा Novophone (Bengal Chem) की गोलियों के रूप में होता है। यह औषधि १० मिलिग्राम की मात्रा में प्रतिदिन दो मास तक दी जाती है। परन्तु सप्ताह में ६ दिन देकर एक दिन इसका नागा रखा जाता है। फिर ८ मास तक इसकी दैनिक मात्रा २५ मिलिग्राम कर दी जाती है। सप्ताह में १ दिन नागा रखा जाता है। फिर ५-१० वर्ष तक प्रतिदिन ५० मिलिग्राम मात्रा इसकी दी जाती है जब तक कि रोगी Bacteria Negative नहीं हो जाता। पर बहुधा तो पहले २५ मिलि० मात्रा में सप्ताह में २ बार दो सप्ताह तक, फिर ५० मिलि० मात्रा में सप्ताह में २ बार, दो सप्ताह फिर उसी प्रकार ७५-७५ मिलि० दो सप्ताह तक, फिर १०० मिलि० ४ सप्ताह तक, फिर १०० मिलि० मात्रा में सप्ताह में केवल दो बार इसे दिया जाता है। ६ से १२ वर्ष के बालकों में उपर्युक्त मात्रा से आधी मात्रा में इसे देना चाहिए। तथा १-२ वर्ष इस औषधि को जारी रखना चाहिए। यह कम्पाउण्ड जहाँ सस्ता है वहां कार्यकारी भी है, तथा आंतों में पूर्णतया विलीन भी हो जाता है।

उपर्युक्त प्रारम्भिक कम्पाउण्ड D D S से बनाये गये प्रयोगों Derivatives में से Sulphoxone Sodium या Diasone Sodium (Abbot Labo) अर्थात् जो Diamino Diphenyl Sulphone का Disodium Formaldehyde Sulphoxylate है, मुख द्वारा ⅓ ग्राम की दैनिक मात्रा में दिया जाता है जो पेट में जाकर D D S बन जाता है। ⅓ ग्राम की इसकी एक गोली प्रतिदिन दी जाती है और फिर कुछ सप्ताह बाद इस मात्रा को बढ़ाते हुए १ ग्राम दैनिक मात्रा तक पहुँचाकर उसी को ६ मास कायम रखा जाता है। Diaminodiphenyl Sulphoxide (D D S O I C I) १०० मिलि० की गोलियाँ मिलती है जो Dapsone के समान ही उपयोगी है। Dapsone का Arachis Oil में बना इजेक्शन भी मिलता है जिसे १०० मिलि० मात्रा में मास द्वारा प्रति सप्ताह दिया जाता है। १ मास बाद १०० मिलि० की वृद्धि करते हुए इसे ५०० मिलि० मात्रा में प्रति सप्ताह कर दिया जाता है।

Solapsone (B P C) या Sulphetrone (B W) तथा Novotrone (Bengal Chemical) मास द्वारा देने के लिए उत्तम Sulphones है। इनमें से प्रथम औषधि

Tetrasodium Phenylpropylamino Diphenyl Sulphone Tetrasulphonate है। इनका Distilled Water में ५० प्रतिशतक ताकत का बना हुआ घोल पहले ½-½ सी०सी० की मात्रा में सप्ताह में दो बार मास द्वारा दिया जाता है। ३० दिन बाद ½ सी०सी० बढा देते है। बाद मे यही १ सी०सी० की मात्रा मे सप्ताह में दो बार दिया जाता है और इसी मात्रा को, जब तक रोगी Bacteria से मुक्त न हो जाये, कायम रखा जाता है।

Avlosulfone Soluble (I C I) २०० मिलि० D D S १सी०सी० जल म मिलता है। ½ सी०सी० मात्रा मे सप्ताह मे दो बार दो सप्ताह तक, फिर ½ सी०सी० प्रति दो सप्ताह बाद बढाते हुए २-३ सी०सी० सप्ताह मे दो बार देते हैं।

Promin (Dextrose Sodium Sulphonate) को १ ग्राम (२ ५ सी०सी० एम्प्यूल) मात्रा मे प्रतिदिन सप्ताह मे ६ दिन शिरा द्वारा दिया जाता है। २ सप्ताह देने के बाद १ सप्ताह इसका नागा रखा जाता है। अथवा १०० मिलि० मात्रा में इसे शिरा द्वारा २ सप्ताह दिया जाता है। २०० मिलि० मात्रा मे अगले २ सप्ताह दिया जाता है। इसी प्रकार क्रमश २-२ सप्ताह बाद इसकी मात्रा बढायी जाती है। यह औषधि २ ग्राम मात्रा मे ५ सी०सी० एम्प्यूल मे मिलती है। यह एक निरुपद्रव प्रभावकारी औषधि है। Promizole (Thiazole Sulphone) ५ ग्राम गोली दिन मे २-३ बार एक मास देके क्रमश इसे बढाके इसे ५ ग्राम दैनिक मात्रा मे जारी रखा जाता है।

Diphenyl Thiourea का समास S U १९०६ या Thiambutosine क्षय रोग जीवाणुनाशक औषधि को भी महा कुष्ठ मे बडा उपयोगी पाया गया है। यह ½ ग्राम मात्रा मे प्रतिदिन दी जाती है। १४ दिन बाद ½ ग्राम मात्रा बढाते हुए अधिकतम २ ग्राम दैनिक मात्रा तक अर्थात् ४ गोलियो तक प्रतिदिन दी जा सकती है। बालको को भी आधे, एक या डेढ ग्राम तक दैनिक मात्रा मे दी जाती है। एक वर्ष तक के प्रयोग से रोगी को पर्याप्त लाभ प्रतीत होता है। जिन्हे D D S अनुकूल नही पडती उनके लिए उपयोगी औषधि है।

Sulphones (D D S) के प्रयोग करने पर रक्त पर बुरा प्रभाव पड सकता है अर्थात् Haemolysis की प्रक्रिया बढ सकती है। इसकी रोकथाम के लिए विटामिन बी$_{12}$ मास द्वारा ३० माइक्रोग्राम मात्रा मे सप्ताह मे एक बार या मुख द्वारा १० माइक्रोग्राम मात्रा में प्रतिदिन देते रहना चाहिए। साथ ही Ferrous Sulphate या Gluconate ६ ग्रेन मात्रा मे प्रतिदिन दे देना चाहिए।

इस औषधि के देने से ज्वर (Reaction) हो जाये तो औषधि का प्रयोग बन्द कर देना चाहिए। ज्वर उतरने के बाद फिर इसे थोडी मात्रा में आरम्भ करना चाहिए। ज्वर के लिए १० प्र०श० Calcium Gluconate १० सी०सी० मात्रा मे शिरा द्वारा एक-एक दिन छोड के देना चाहिए। तथा Prednisolone २०-२५ मिलि० मात्रा मे या Dexamethasone ४ मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन देना चाहिये। इन्हे थोडी मात्रा मे तथा थोडे समय के लिये ही देना चाहिए। इसके प्रयोग से Hepatitis हो सकता है जिससे क्षुधा नष्ट हो जाती है।

एक नवीन क्षयरोधक औषधि Thiosemicarbazone जिसका रासायनिक नाम Acetyl Aminobezaldehyde Thiosemicarbzone ($C_{10}H_{12}NO_2S$) है तथा जो Conteben (Bayer) Tibione, Thiacetazone Siocarbazone, Myvizone आदि नामो से बाजार मे मिलते है कुष्ठ रोग के लिए Sulphone के समान ही उपयोगी पाई गई है। १०-२५ मिलिग्राम दैनिक मात्रा मे इसे आरम्भ करके १४ दिन के बाद २५ मिलि० बढाते हुए इसे १०० मिलिग्राम दैनिक मात्रा मे इन रोगियो को जिन्हे Sulphone औषधि अनुकूल नही है, दी जाती है। २ वर्ष से अधिक काल इसका प्रयोग नही करना चाहिए अन्यथा जीवाणु हठी हो जाते हैं। अरुचि, वमन आदि इसके दुर्लक्षण हो सकते हैं।

I N H को ५० मिलि० दैनिक से प्रारभ कर २०० मिलि० दैनिक तक देते रहने से भी इस रोग मे लाभ होता है। इसे D D S के साथ भी देते है। Clofazimine B 663 के १०० मिलि० दैनिक देने तथा क्रमश फिर ६०० मिलिग्राम दैनिक कर देने से Lepromatous Leprosy मे लाभ होता है। Lamprene (B-663 Geigy) के १०० मिलि० मात्रा मे सप्ताह मे २ दिन देने से Lepromatous Leprosy मे शीघ्र लाभ होने लगता है। पर अभी यह औषध देश मे कम मिलती है।

कुष्ठ रोग के नासा, नेत्र तथा कण्ठ सबधी सर्व उपद्रव इनके प्रयोग से कुछ सप्ताहो मे ठीक होने लगते है। त्वचा पर के उभार व्रण आदि भी शान्त होने लगते है। ६ मास की चिकित्सा के बाद रोगी अपने को अधिक स्वस्थ और हलका अनुभव करने लगता है। तो भी रोगी को कुष्ठ जीवाणु शून्य होने के लिए दो-तीन वर्ष तक इन औषधियो का सेवन करना चाहिए और उसके बाद भी शरीर मे कहीं पर जीवाणुओ का कुछ अश रह ही जाता है। इसलिए

इसकी चालू मात्रा जो परम मात्रा की आधी होती है इसके बाद भी जारी रखनी पडती है। इन औषधियो के शरीर मे पहुचने पर कुष्ठ जीवाणु बढ नही सकता जिससे पता लगता है कि ये औषधियाँ Bacteriostatic हैं और फिर धीरे-धीरे जीवाणु नष्ट होने लगता है। लक्षणो पर तो इनका प्रभाव शीघ्र होता है जीवाणु पर उनका प्रभाव मन्दता और विलम्ब से होता है। तो भी कुष्ठ रोग के लिए ये इस समय तक सर्वोत्तम औषधिया है। इनके सेवन मे विशेषत D D S के देते हुए दो-दो मास बाद रक्त की परीक्षा करके देखते रहना चाहिए ताकि उसमे Haemolysis तो नही हो रहा है, तथा रोगी को प्रोटीन प्रधान भोजन पर्याप्त मात्रा मे मिलते रहना चाहिए। इससे इस औषधि का विषैला प्रभाव कम हो जाता है।

तुवरक तेल या चाल मुग्रा तेल Oleum Chaulmoograe तथा Oleum Hydnocarpi (Glycerides of Chalmoogric and Hydnocarpic Fatty Acids) का ५-१५ बूँद की मात्रा मे दिन मे ३ बार और बाद मे ६० बूँद तक दिन मे ३ बार भी चिरकाल से इस रोग के लिये प्रयोग होता रहा है और इसका ४-५ वर्ष प्रयोग करने से कुष्ठ जीवाणु पर घातक प्रभाव भी होता है। परन्तु इसका प्रभाव जो ५-१० वर्ष मे होता था। यह नवीन औषधि के द्वारा दो तीन वर्ष मे हो जाता है। अत इस तेल का प्रयोग अब बहुत कम हो गया है। Hydnocarpus Oil के Fatty Acids के साथ Sodium के बने Sodium Hydnocarpate के १-३ ग्रेन की मात्रा मे मास द्वारा तथा त्वचा द्वारा देने से भी इस रोग मे लाभ होता है। तेल मे ३% Benzocaine मिला उसे १-२ सी०सी० मात्रा से आरम्भ करके ५-१० सी०सी० मात्रा तक सप्ताह मे दो बार मास द्वारा भी दिया जा सकता है। यद्यपि इनका प्रयोग अब विशेष नहीं होता।

आयुर्वेद मे महा कुष्ठ रोग

आयुर्वेदानुसार त्वचा की प्राणशक्ति क्षीण हुई हो तथा उसमें आम दोष की भी वृद्धि अर्थात् कफ दोष की भी वृद्धि हो तो उसमें कुष्ठ जीवाणु के सहज प्रतिकार करने की शक्ति कम हो जाती है जिससे कुष्ठ कृमि वहाँ प्रवेश करके रोहण करने लगता है। फिर इसके विपरीत त्वचा की वात नाडियो में अतश्चर्म में तथा त्वचा के नीचे के मेदोमय स्तर में श्लेष्म धातु की प्रतिक्रिया होकर जो Lepra Cells बन जाते हैं उन्हें महा कुष्ठ रोग कहते हैं। बाद में इसमे पित्त की प्रतिक्रिया होने पर न्यूनाधिक पूयभाव भी हो जाता है। इस प्रकार यह त्रिदोष प्रकोप जनित त्वग्रोग है।

इस रोग के लिए अति प्राचीन काल से तुवरक तेल का ५-१० बूँद की मात्रा से आरम्भ कर ५०-६० बूँद की मात्रा तक पताशो में रखकर दिन में ३ बार प्रयोग होता रहा है। परन्तु इसके अधिक मात्रा में देने से पेट खराब हो जाता है, अतः इसका स्वल्प मात्रा में देना ही ठीक रहता है।

नाड़ी संस्थान के रोग
(Diseases of the Nervous System)

नाडी रचना विज्ञान

मस्तिष्क तथा सुषुम्ना काण्ड, Neurones तथा उनको जोडने वाले अवयव Neuroglia (Glia=जोडने वाला) उन दो अवयवों मे बने हुए हैं। सब मिलकर Neurones की संख्या १० बिलियन के लगभग होती हैं। जिनमे से प्रत्येक एक सैल और उसमे से निकलने वाले कुछ छोटे सूत्रों तथा एक दीर्घ सूत्र (Nerve Fibre) से बना होता है। सैल के अन्दर दाने (Nissl Granules) होते है जो उसमे मुख्य जीवन तत्व प्रतीत होते है। सैल मे से निकले दीर्घ सूत्र (Cell Fibre) के मध्य मे जो सूक्ष्म सूत्र होता है उसे Axon या Axis Cylinder कहते हैं। उस पर वसामय (Lipid) आवरण होता है जिसे Medulla या Myelin का आवरण कहते हैं। इसके बाहर न्यूक्लियस वाला सूक्ष्मावरण होता है जिसे Neurilemma या Schwann का आवरण कहते हैं। बहुत से Axons के मिलने मे Tracts बने है जिनसे मस्तिष्क का श्वेत भाग व Peripheral Nerves अर्थात् प्रान्तीय नाड़ियाँ बनी हैं।

मस्तिष्क तथा सुषुम्ना के अन्दर विद्यमान Neurones पर यह बाह्यावरण नही होता। प्रान्तीय नाडियो (Peripheral Nerves) के सूत्रो पर ही यह पाया जाता है।

Neuroglia—Neurones या नाडी सूत्रों और नाडी सैलों के बीच-बीच के अवयव को Neuroglia या नाडी स्नायु भाग कहते है। इसमे Nuclei की तरह जो दाने दीखते है वास्तव मे ये सौत्रिक सैल (Cells with Fibres) होते है।

(१) इनमे से तारो की तरह के सैलो को Astrocytes कहते हैं जो दो प्रकार के होते है। जिनमे द्रव सा Cytoplasm होता है उन्हे Protoplasmic Astrocytes कहते है। ये अनेकानेक शाखा प्रशाखाओ वाले होते है। दूसरे Fibrous Astrocytes कहाते है। उनके Cytoplasm मे सूत्र दिखाई पडते है। ये भी अनेकानेक शाखा सूत्रो से युक्त होते है। इन दोनो मे से पहले तो मस्तिष्क के काले भाग मे दूसरे श्वेत भाग मे पाये जाते है। इन सैलो की

कुछ एक शाखायें सूक्ष्म रक्तवाहिनियों को घेरे हुए रहती हैं। रक्तवाहिनियों के घेरने वाले सिरों को Vascular Foot Plate कहते हैं। दूसरी ओर इन सैलों की कुछ शाखाएँ नाडी सैलों को घेरे हुए रहती हैं। इस प्रकार ये Astrocytes नामक सैल रक्तवाहिनियों के रक्त और Neurones के बीच तथा मेरुद्रिस्रावादनन द्रव और Neurones के बीच में परदे का काम करते हैं अर्थात् Neurones के अन्दर उत्पन्न होने वाले द्रव्य या Metabolites तथा उपर्युक्त द्रवों में पाये जाने वाले पदार्थ इन्हीं Astrocytes की तह के बीच में से गुजरकर इधर-उधर जाते हैं। मस्तिष्क सुषुम्ना प्रदेश में क्षत हो जाने पर ये ही Fibroblasts के समान वहाँ वृद्धि करके अवकाश को भर देने (या Gliosis) का कारण होते हैं।

(२) Neurones के बीच-बीच के प्रदेश में, श्वेत भाग में तो नाडी सूत्रों के बीच-बीच में, तथा कृष्ण भाग में नाडी सैलों के आसपास उनसे चिपटे हुए, एक दूसरी प्रकार के बावने वाले सैल भी होते हैं, जिनको, उनमें से निकलने वाले प्रवर्धन सूत्रों के सख्या में अतिस्वल्प होने से, Oligodendrite कहते हैं (Oligos=स्वल्प)। ये भी नाडी सैलों व नाड़ी सूत्रों की रक्षा करने का कार्य करते हैं।

(३) नाडी सैलों के बीच-बीच में बहुत छोटे-छोटे पर अनेकानेक शाखा प्रशाखाओं वाले दूसरे सैल भी होते हैं जिन्हें Microglia कहते हैं। ये Reticulo endothelial सैलों का सा काम करते हैं अर्थात् ये मस्तिष्क तथा सुषुम्ना के मलवाहक सैल या Phagocytes होते हैं। ये स्थिर सैल, मस्तिष्क के रुग्ण प्रदेश में, बिना शाखा प्रशाखाओं के गतिशील या Amaeboid सैल बन जाते हैं। यह आश्चर्य की बात है, और वहाँ पर नष्ट हुए Myelin के खण्डों को अपने अन्दर लेकर ये समीप की रक्तवाहिनियों तक चले जाते हैं।

(१) ऊर्ध्व मस्तिष्क का अग्रिम भाग (Prefrontal Area or Prefrontal Lobe) बुद्धि या विचार का स्थान है तथा यह मस्तिष्क के अन्तर्गत निम्न केन्द्र स्थानों Hypothalamus आदि का नियामक भी है। धमनी जरा रोग (Ante Cerebral Artery में Arteriosclerosis) के कारण इस स्थान का पोषण कम हो जाये तो ध्यान-वृत्ति-स्मृति नाश आदि मानस विकार होने लगते हैं। व्यक्ति मन्दबुद्धि सा हो जाता है। उसे अपने शरीर को सजाकर रखने और समाज में ठीक-ठीक व्यवहार करने की पहले जैसी सुध नहीं रहती तथा निम्न केन्द्र स्थानों के स्वतन्त्र हो जाने से उत्पन्न होने वाले लक्षण भी होने लगते हैं। अन्त में बुद्धिनाश (Dementia) हो जाता है।

ऊर्ध्व मस्तिष्क के बाह्यावरण भाग या Cortex में विद्यमान दर्शन-श्रवण-गन्ध-रस-स्पर्श आदि किसी संज्ञावाही भाग में क्षति आ जाय तो रोगी को उस संज्ञा की प्रतीति नहीं होती। इसी भाग में विद्यमान किसी चेष्टा केन्द्र में विक्षोभक कारण के उपस्थित होने पर अपस्मार सदृश वेग हो जाता है। यदि किसी चेष्टा केन्द्र में विनाश या क्षति आ जाये तो उस केन्द्र से सम्बन्धित दूसरी ओर की मांसपेशियों में (Contralateral) घात या Paralysis हो जाता है जिससे एकांगघात Monoplegia हो जाता है। इसके रोग से Jacksonian epilepsy भी हो सकती है। Prefrontal Lobe के क्षेत्रों में क्षति आ जाये तो जैसे ऊपर कहा है निर्णय करने की शक्ति कम हो जाती है। Occipital Lobe में विक्षोभ हो तो नेत्र सम्बन्धी दृष्टि-भ्रम हो जाता है, क्षीणता हो तो दूसरी ओर Homonymous (Nasal half तथा Temporal half) Hemianopia (आधे दृष्टि क्षेत्र में अन्धता) होता है, Frontal तथा Temporal Lobes के कुछ भागों में क्षति आ जाय तो भावों (Emotions) पर नियन्त्रण कम हो जाता है। Temporal में क्षति आने से गंध-स्वाद तथा श्रवण सम्बन्धी भ्रम (Hallucinations) हो सकते हैं। बाह्यावरण (Cortex) के नीचे के, Medulla से ऊपर के भाग में अर्थात् Hypothalamus तथा Reticular Activating System को भाव का स्थान कहा जाता है। यह स्थान तीसरे Ventricle की अगली दीवार तथा फर्श से बना है इसमें अनेक Nuclei हैं जो शरीर के Metabolism, तापमान, निद्रा, जागरण आदि का सचालन करते हैं। इसका Pituitary Gland के साथ निकट सम्बन्ध है जो कि अनेक Endocrine ग्रन्थियों का नियामक है। इस स्थान के उत्तेजित रहने से Cortex तथा उसके उत्तेजित रहने से यह स्थान उत्तेजित रहता है। इस स्थान पर Parasympathetic तथा Sympathetic (वे नाडियाँ जो व्यक्ति के Mood के साथ Sympathise करती हैं) अनैच्छिक नाडियों का Integration होता है तथा दोनों का परस्पर विपरीत प्रभाव पडता रहता है। इन दोनों में से पिछली नाडियों की उत्तेजना में यह स्थान उत्तेजित रहता है जिससे रक्तभार व हृदयगति में वृद्धि होती, उन्निद्रता बढती तथा पाचन संस्थान का कार्य मन्द होता है। पहली नाड़ियों की उत्तेजना में यह स्थान शान्त रहता, जिससे

रक्तभार व हृदयगति मन्द होती, तापमान घटता, निद्रा बढती तथा पाचन संस्थान का कार्य ठीक रहता है। सम्भव है चित्त शामक औषधियो से प्रथम नाडी समूह को बल मिलता है।

(२) चेष्टा सूत्र (Motor Neurones या Effector Organs)—ऊर्ध्व मस्तिष्क के बीच की खाई (Central Sulcus) के आगे की ओर ऊपर नीचे की दिशा मे एक उभार होता है जिसे Ascending Frontal Convolution (Precentral Gyrus of the Frontal Lobe) Premotor व Motor Area कहते है। इसके सैलो मे से ऊर्ध्व चेष्टा सूत्र (Upper Motor Neurones) प्रारम्भ होते है। इसके निचले भाग से जिह्वा और चेहरे, फिर उससे ऊपर के भाग से ऊर्ध्व शाखाओ, फिर धड और फिर उससे ऊपर के भाग से निम्न शाखाओ को जाने वाले सूत्र उतरते हैं (अर्थात् मस्तिष्क मे पाँव का केन्द्र ऊपर और चेहरे का केन्द्र नीचे होता है) और फिर पहले Corona Radiata मे पास-पास आ जाते और फिर Internal Capsule के पिछले भाग के अगले दो तिहाई भाग मे एक गुट्ट के रूप मे नीचे उतरकर मिड ब्रेन के Cerebral Peduncle मे से तथा Pons मे से होते हुए Medulla मे इकट्ठे होकर Pyramid के रूप मे दूसरी ओर क्रास करके सुषुम्ना काण्ड मे Lateral Tract या Indirect Corticospinal Tract के रूप मे नीचे उतरते-उतरते अधिकतर तो उधर के Post Horns के सैलो मे और फिर दूसरे सूत्र Connector Neurones के द्वारा Anterior Horns मे समाप्त होते जाते है। जो १० प्र०श० चेष्टावाही सूत्र क्रास नही करते, वे Anterior या Direct Pyramidal (Corticospinal) Tract के रूप मे उसी ओर सुषुम्ना काण्ड मे नीचे उतरते है और वहाँ Ant White Commissure मे क्रास करके Post Horns मे और फिर दूसरे सूत्र के द्वारा Ant Horns मे समाप्त होते है। जैसे Precentral Gyrus मे ऊपर से नीचे की ओर क्रमश पैर, जाँघ, धड, बाह, हाथ, चेहरे, ओष्ठ और जीभ आदि के केन्द्र होते हैं (जिह्वा और ओष्ठ के चेष्टा केन्द्र के आगे ही बाईं ओर Speech या Brocha's area होता है) ठीक ऐसे ही इन २ के संज्ञा केन्द्र Post Central Gyrus मे ऊपर से नीचे की ओर होते हैं। इस प्रकार चेष्टायें मस्तिष्क मे प्राप्त संज्ञाओ के ऊपर आधारित रहती हैं। मस्तिष्क के पिछले हिस्से Occipital Lobe के Calcarine Fissure के ऊपरले तथा निचले ओष्ठो मे विद्यमान Visual केन्द्र पर भी उपर्युक्त चेष्टायें निर्भर रहती हैं। ओष्ठो तथा जीभ से आई संज्ञायें Cortex मे दोनो ओर एक-सी आती लगती हैं। Internal Capsule के Post Limb के पिछले एक तिहाई भाग मे संज्ञावाही, श्रवणवाही तथा दृष्टिवाही सूत्र ऊपर की ओर चढ रहे होते हैं।

इसी प्रकार मस्तिष्क नाडियाँ Motor Cranial Nerves के जिनमे से तीसरी मस्तिष्क नाडी का Nucleus, Superior Corpora Quadrigemina के लेवल पर, चौथी मस्तिष्क नाडी का Nucleus, Inferior Corpora Quadrigemina के लेवल पर है, पाचवी मस्तिष्क नाडी का Nucleus, Pons के मध्य मे, छठी व सातवी के Nuclei, Pons के निम्न भाग मे तथा ९-१०-११-१२ नाडियो के Nuclei, Medulla मे होते है, इन Nuclei मे भी प्राय दोनो ओर से Upper Motor Neurones आकर समाप्त होते हैं। चेहरे के निचले भाग से सम्बन्धित Facial Nucleus मे तथा १२वी नाडी (Hypoglossal N) के Nucleus मे केवल एक ओर से ही Upper Motor Neurones जाते है।

अब सुषुम्ना काण्ड के Anterior Horns तथा मस्तिष्कान्तर्गत Motor Nuclei से दूसरे निम्न चेष्टावाही सूत्र (Lower Motor Neurones) Mixed Peripheral Nerve द्वारा प्रारम्भ होकर शरीर तथा नेत्र मुख आदि की मासपेशियो मे जाते हैं। इस प्रकार चेष्टा मस्तिष्क मे दो सूत्रो द्वारा शरीर की मासपेशियो तक पहुँचती है। परीक्षक लोग बताते हैं कि Cortex का एक सैल १० Internuncial (Connecting) सैलो और उनमे से प्रत्येक २० Ant Motor Neurones को तथा उनमे से प्रत्येक अनेकानेक मास सूत्रो को नियन्त्रित करता है। ऊर्ध्व चेष्टावाही सूत्र निम्न चेष्टावाही सूत्रो का नियमन (Inhibition) करते है। वे रुग्ण हो जायें अर्थात् उनमे विक्षोभ हो जाये तो ऐच्छिक मासपेशियो मे आक्षेप होने लगते है जैसे कि Jacksonian fits मे होता है जबकि तर्जनी या अगूठे या चेहरे मे आक्षेप होते है। यदि उनका नियन्त्रण मासपेशियो पर न रहे तो Extra Pyramidal सूत्रो के द्वारा मासपेशियो मे अनियन्त्रित चेष्टायें (Tremors) होने लगती हैं। पक्षाघात युक्त अगो मे ऐसी चेष्टायें देखने मे आती है। यदि उनकी पोषक धमनियो मे अवरोध (Thrombosis) हो जाये तो दूसरी ओर की मासपेशियो पर हमारा नियन्त्रण कम हो जाता या नही रहता है अर्थात् उनमे स्तम्भ युक्त पक्षाघात हो जाता है। जिससे उधर की अगुलियो और कलाई या पैर मे फैलने (Extension या Dorsiflexion) की शक्ति नही रहती। टाग की Extensor तथा Adductor

पेशियों मे स्तम्भ बढा हुआ रहता है। बाहु, धड के साथ कुछ सटा हुआ सा रहता तथा अग्रबाहु, अन्दर की ओर विवर्तित (Pronated) रहता है तथा कोहनी पर कुछ सकुचित रहता है कलाई मे भी सकोच रहता है। शाखाओ मे यह स्तम्भ युक्त पक्षाघात विशेषत होता है क्योंकि माथे, नेत्र, छाती, धड आदि मे दोनो ओर से चेष्टावाही सूत्र आते हैं। अत उनमे पक्षाघात का लक्षण नही होता इस रोग मे मासपेशियो मे घात होता है क्षीणता या Wasting नही होती। इस अवस्था मे शाखाओ मे प्रतिक्षेप (Tendon Reflexes) भी तीव्र रूप मे होते हैं उस ओर Abdominal Reflexes लुप्त हो जाते है। तलुए को खुजाने से अँगूठा ऊपर मुड जाता है (Dorsiflexion)। वाम Midd Cere Art मे रोध हो तो भाषण-शक्ति भी नष्ट हो जाती है और कभी-कभी बोले या लिखे शब्द की ग्रहण-शक्ति भी घट जाती है। Post Cere Art मे रोध हो तो दूसरी आँख मे रुग्ण पार्श्व की दृष्टि धुँधली हो जाती है (Homonymous Hemianopia)। अग्रिम मस्तिष्क धमनी मे रोध हो तो मूर्छा के बाद मानसिक लक्षण विशेष होते हैं साथ ही एक टाग मे निर्बलता होती है।

जब निम्न चेष्टावाही सूत्रो (Lower Motor Neurones) मे (या Anterior Horns) मे रोग होता है जैसे कि Poliomyelitis रोग मे होता है या Motor Neurone Disease या Peripheral Neuritis मे होता है तो शाखाओ की मासपेशियो मे पहले दर्द होकर फिर शैथिल्य युक्त पक्षाघात (Flaccid Paralysis) होता है तथा शाखाओ मे प्रतिक्षेप (Tendon Reflexes) लुप्त हो जाते है। मृत मासो मे लघुता (Atrophy) होती जाती है तथा उनमे हलका सा कम्प (Twitching) होने लगता है जो हमे दीखता नही परन्तु रोगी को प्रतीत होता है।

(३) अतिरिक्त सज्ञावाही नाड़ियाँ (Extrapyramidal Motor Neurones)—कुछ एक चेष्टावाही सूत्र Cortex से प्रारम्भ न होकर Basal Ganglia या Corpus Striatum से जैसे मस्तिष्क मे विद्यमान Caudate तथा Putamen, तथा Globus Pallidus से तथा नीचे Mid Brain के Red Nucleus, Substantia Nigra, Subthalamic Body और Pons के Vestibular (Deiter's) Nucleus से निकलकर Ant Horns के सैलो मे जाते हैं जिनमे से मुख्य ये है .

(१) Rubrospinal Tract :—Mid Brain मे विद्यमान Red N से निकल तुरन्त दूसरी ओर क्रास करके Pons तथा Medulla में से सुषुम्ना काण्ड के बाहर के भाग मे नीचे उतर उधर Ant Horns में समाप्त होते हैं Red N में दूसरी ओर के Cerebellar गोलार्ध से Cerebellorubral tract द्वारा सूत्र आते हैं। उनके कारण मासपेशियो में चेष्टा सामूहिक रूप में होती है।

(२) Vestibulospinal Tract —Pons के निम्न भाग मे विद्यमान Deiter's N से निकल उसी ओर नीचे उतरकर उसी ओर के Ant Horns मे समाप्त होते है। इसके सूत्रो के द्वारा मासपेशियो मे सहज बल Tone बना रहता है।

(३) Tectospinal Tract —Mid Brain मे Superior Corpora quadrigemina के लेवल पर से आरम्भ होकर और दूसरी तरफ को क्रास करके Median Longitudinal Bundle के अगले भाग मे नीचे उतरकर Ant Horns मे समाप्त होते हैं और ऐच्छिक मासपेशियो मे इनके नेत्रो की Retinae से प्राप्त सज्ञाओ के कारण अनैच्छिक चेष्टा होती है।

(४) Reticulospinal Tract —मिड ब्रेन और Pons के Reticular Nuclei से आरम्भ होकर Reticulospinal Tract उधर की ओर उतरकर Ant Horns मे समाप्त होता है यह हमारे Postural reflexes मे व सीधा खडे होने मे सहायक होता है।

साराश यह है कि ये Upper Motor Neurones आँख, कान आदि से प्राप्त सज्ञाओ के अनुसार शरीर की परस्पर विपरीत कार्यकारी (Antagonistic) मासपेशियो मे सहयोग करके स्वाभाविक स्वय चेष्टाओ का वहन करते है। कहा जाता है कि इन Basal ganglia पर भी Premotor area से आये Corticostriate सूत्रो द्वारा Cortex का नियत्रण रहता है।

इन Ganglia के सैलो मे क्षीणता के होने से शाखाओ मे स्तब्धता (Hypertonus या Rigidity) हो जाती है जिससे वे हर समय अकडी सी रहती हैं चेहरे पर भी इसी कारण भावहीनता दीखती है। या हाथो मे कम्प

(Tremors या Rhythmic Movements) होने के लक्षण होते है। अर्थात् परस्पर विपरीत कार्यकारी मासपेशियो मे सहयोग नहीं रहने से इन रोगो मे से कोई लक्षण हो जाता है। मासपेशियो मे तनाव (Tone) —पेशियो मे विद्यमान Proprioceptive Receptors तथा अन्त कर्ण के Receptors मे से सज्ञावाहिनियाँ ऊपर मिड ब्रेन के Red Nuclei तथा Reticular Nuclei तक जाती है जहाँ से Reflexes की Efferents उपर्युक्त Extrapyramidal Tracts के द्वारा मासपेशियो तक आके उनमे तनाव उत्पन्न करती है। इस तरह शोर-शराबे व मानसिक आवेशो से पेशियो मे तनाव बढता है। Parkinsonism, Meningitis अपस्मार, Hysteria से भी तनाव बढता है। प्रसन्नता तथा निद्रा से तथा Lower Motor Neuron के रोग मे मासपेशियो का तनाव कम हो जाता है।

(४) सज्ञावाही नाडी सूत्र (Sensory Neurones या Receptor organs) —त्वचा से निकले गर्मी, सर्दी, वेदना तथा स्पर्श की उथली सज्ञाओ का वहन करने वाले सज्ञा सूत्र Cutaneous Sensory Neurones तथा मासपेशियो, कण्डराओ, सधियो तथा Periosteum से निकले गहरी वेदना-दवाव तथा स्थिति Proprioception की सज्ञाओ का वहन करने वाले सज्ञा सूत्र (Deep Sensory Neurones) तथा आशयो से निकले (Enteroreceptive) सज्ञा सूत्र पश्चिम मूलो (Posterior Roots) से सुषुम्ना मे प्रवेश करते हैं। इनमे से पहली प्रकार के सज्ञा सूत्र सुषुम्ना काण्ड मे प्रवेश करके Posterior Horns के सैलो मे समाप्त हो जाते है, और फिर वहाँ से नये सज्ञा सूत्र आरभ होकर शीघ्र Ant White Commissure मे से दूसरी ओर क्रास करके Crossed Pyramidal Tract के आगे की ओर रहते हुए उधर के Spinothalamic Tract के रूप मे ऊपर जाकर Medulla के Reticular Formation मे से गुजरकर Pons मे Medial Lemniscus के साथ मिल जाते और ऊपर Thalamus के Lateral Nucleus मे समाप्त हो जाते हैं।

गहरे सज्ञावाही सूत्र (Deep Sensory Neurones) सुषुम्ना मे प्रवेश करके उसी ओर उसके Posterior Column मे अन्दर की ओर Tract of Gall (Fasciculus Gracilis) तथा बाहर की ओर Tract of Burdach (Fasciculus Cuneatus) के रूप मे सीधे ऊपर चढते जाते हैं। इनमे से Tract of Gall के सूत्र जो निचली शाखाओ से आते हैं, Medulla के नीचे के Nucleus Gracilis मे तथा Tract of Burdach के सज्ञा सूत्र जो बाहुओ से आते हैं, पास ही Nucleus Cuneatus मे समाप्त हो जाते हैं। वहाँ से दूसरे सज्ञा सूत्र आरम्भ होकर शीघ्र ही दूसरी ओर क्रास करके Mesial Fillet (Lemniscus) के रूप मे ऊपर चढकर Pons मे उधर की Trigeminal Nerve के Sensory Nucleus के अन्दर की ओर से होते हुए Thalamus के Anterolateral Nucleus मे समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार सभी सज्ञावाही सूत्र अन्त मे क्रास करके दूसरी ओर Thalamus मे समाप्त होते है। इसलिए Thalamus को शरीर का प्रधान सज्ञा या प्रतीति का केन्द्र समझना चाहिए। जिसमे शीत, उष्ण, वेदना, स्पर्श, स्थिति आदि तथा उनकी प्रियता अप्रियता आदि सज्ञाओ की प्रतीति मनुष्य को होती है। अब Thalamus से तीसरे सज्ञा सूत्र आरम्भ होकर सर्व सज्ञाओ को Central Sulcus अर्थात् ऊर्ध्व मस्तिष्क के बीच की खाई के पीछे के सज्ञा क्षेत्र (या Sensory Cortex या Sensory Association या Post Central Gyrus) के केन्द्रो तक पहुँचा देते हैं, जिन्हे सज्ञाओ के विवेचन (Discrimination) का स्थान कहना चाहिए। क्योकि वहाँ ठीक उस स्थान की प्रतीति होती है जहाँ पर यह सज्ञा आरम्भ होती है तथा वहाँ बाह्य पदार्थ के आकार, प्रकार, भार, बनावट आदि का भी पता चलता है। ये अन्तिम सज्ञा सूत्र निम्न सज्ञा सूत्रो का नियमन (Inhibition) भी करते है। जिससे बहुत सी सज्ञाओ को मस्तिष्क तक पहुँचने से रोक दिया जाता है। स्पर्शवाही कुछ तीसरे सज्ञा सूत्र Medial Thalamic Nucleus मे समाप्त हो जाते हैं जहाँ पर इनके कारण प्रसन्नता या कष्ट की प्रतीति मनुष्य को होती है। आशयो से आने वाली भूख, प्यास आदि सज्ञायें भी Thalamus मे मनुष्य को प्रतीत होती हैं। पाँचवी, सातवी, नौवीं, दसवी मस्तिष्क नाडियो के सज्ञावाही सूत्र भी Lemniscus के साथ ऊपर Thalamus मे समाप्त होते है। साधारणत आभ्यन्तर अगो की हमे कोई प्रतीति नही होती पर उनमे सूजन हो जाने पर हमे वेदना होने लगती है उदाहरणत आत मे से वेदना की प्रतीति Sympathetic नाडी मण्डल द्वारा आती और किसी Spinal N द्वारा सुषुम्ना काण्ड मे प्रवेश करके ऊपर मस्तिष्क मे जाती है। Peritoneum की दर्द उसी मार्ग से जाती है जिससे वहाँ की त्वचा की सज्ञा ऊपर जाती है। इस प्रकार इन नाना प्रकार की सज्ञाओ तथा पीछे की ओर विद्यमान दृष्टि केन्द्र तथा Temporal lobe मे विद्यमान श्रवण केन्द्र से

प्राप्त सज्ञाओ तथा स्वाद और गध से प्राप्त सज्ञाओ का समन्वय वायीं ओर के Angulargyrus मे विद्यमान Integrating Area या Gnostic Area मे होता है अर्थात् इस अवस्था मे क्या करना चाहिए यह निश्चय होता है। इसे Ideomotor Area कहते हैं। आगे की ओर यह केन्द्र Prefrontal lobe से सम्बन्धित रहता हे जहाँ पर विचार-विमर्श के वाद जो निर्णय होता है तदनुसार Premotor तथा Motor Areas के केन्द्रो को आदेश मिल जाता एव तदनुसार चेष्टा हो जाती है।

Post Central Gyrus के सज्ञा केन्द्रो मे जहाँ पाँव की सज्ञा सबसे ऊपर और चेहरे की सज्ञा सबसे नीचे होती हे Bladder ओर Rectum की सज्ञा मध्य मे होती हे Sensory Cortex मे निर्वलता आ जाये जैसे पोपक धमनियो मे Sclerosis से होती है अर्थात् उसका पोषण मद हो जाये तो दूसरी ओर की जाघ तथा वाहु या उनके एक भाग की स्थिति का, उन पर पडने वाले विक्षोभी Stimuli का आदमी को ठीक-ठीक पता नही चलता जिससे उन पर विवशता उत्पन्न हो जाती है । या उघर के हाथ या पैर से छुई वस्तु के आकार आदि का ठीक-ठाक पता नही चलता (Astereognosis) अर्थात् चावी को छूकर उसे यह पता नही चलता कि वह चावी है। Cortex के नीचे के सज्ञा सूत्रो मे रोग हो तो दूसरी ओर चेहरे, जाघ व वाहु मे Hemianaesthesia का लक्षण होता है

सुपुम्ना काण्ड के Post Column मे रोग हो जैसे Subacute combined Degeneration मे या Tabes Dorsalis मे होता है तव स्थिति के ठीक न रहने से Ataxia या अस्थिरता का लक्षण हो जाता हे, आँख वन्द करके दोनो टागें जोडकर रोगी स्थिर खडा नही रह सकता अर्थात् हिलने लगता हे (Romberg's Test) Peripheral नाडियो मे रोग हो तो झनझनाहट-सुप्ति आदि लक्षण होते हे।

लघु मस्तिष्क
(Cerebellum)

लघु मस्तिष्क (Cerebellum)

यह शरीर की ऐच्छिक, अनैच्छिक समस्त चेप्टाओ मे सामजस्य (Coordination) उत्पन्न करने तथा शरीर की ठीक-ठीक स्थिति को कायम रखने का काम करता हे। यह कार्य इसमे शरीर के उसी ओर के भाग से आने वाले सज्ञावाही सूत्रो तथा इसमे से उसी भाग की मासपेशियो मे जाने वाले चेष्टा सूत्रो से सम्पन्न होता है। इसमे आने वाले सज्ञावाही सूत्र समूह (Afferent Tracts) ये हे

(१) Posterior Spinocerebellar Tract (Direct Cerebellar Tract) —मासपेशियो मे से आने वाले सज्ञावाहक सूत्र पहले सुपुम्ना काण्ड के Post Horns मे विद्यमान Dorsal Nuclei मे समाप्त होते हैं वहाँ से दूसरे सूत्र आरम्भ होकर सुपुम्ना काण्ड के Post Spinocerebellar Tract के द्वारा ऊपर Vermis मे समाप्त हो जाते हैं वहाँ से तीसरे सूत्र आरम्भ होकर उसी ओर के लघु मस्तिष्क के Cortex मे समाप्त हो जाते हैं।

(२) Anterior Spinocerebellar Tract (Indirect Cerebellar Tract) Dorsal Nuclei मे समाप्त होने वाले इन सूत्रो से सम्बन्धित कुछ दूसरे सूत्र उपर्युक्त Direct Cerebellar Tract मे न जाके Anterior White Commissure मे से दूसरी ओर क्रास करके Anterior Spinocerebellar सूत्र समूह के रूप मे ऊपर Red Nucleus के लेवल तक चढकर फिर कुछ नीचे उतरकर मध्य रेखा को क्रास करके ऊपर के Peduncle के द्वारा Vermis मे समाप्त हो जाते हे ओर वहाँ से तीसरे सूत्र आरम्भ होके जिधर से ये सूत्र आए थे उधर के ही लघु मस्तिष्क क Cortex मे समाप्त हो जाते है (ये दोनो Proprioceptor स्थिति का पता देते है)।

(३) Cuneate तथा Gracile Nuclei से आने वाले सूत्र समूह या Arcuate Fibres —जो गहरे सज्ञा सूत्र सीधे सुपुम्ना काण्ड के पिछले भाग मे ऊपर चढते है वे Cuneate तथा Gracile Nuclei मे समाप्त हो जाते हे वहाँ से दूसरे सूत्र निकल Inferior Peduncle मे से Vermis मे समाप्त हो जाते है वहाँ से तीसरे सूत्र निकलकर जिधर से ये सूत्र आये थे उधर के लघु मस्तिष्क के Cortex मे समाप्त हो जाते हे।

(४) Olivo Cerebeller Tract — Medulla Oblongata मे विद्यमान Infe Olive से सूत्र आरम्भ हो मध्य रेखा को क्रास करके Infe Peduncle के द्वारा लघु मस्तिष्क के Vermis मे समाप्त हो जाते है वहाँ से दूसरे सूत्र आरम्भ हो अर्थात् जिधर से सूत्र आरम्भ हुए थे उधर से दूसरी ओर के लघु मस्तिष्क मे समाप्त होते हे।

(५) Vestibulo Cerebellar Tract —Vestibular (Deiter's) Nucleus में से आने वाले सूत्र कान के Labyrinth में से आने वाली मज्ञा के वाहक होते है ये Infe Peduncle में से Vermis में विद्यमान Nucleus में समाप्त होते है वहाँ से फिर सूत्र निकल जिधर से ये आए ये उसी ओर के लघु मस्तिष्क के Cortex में समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार कान में शरीर की स्थिति को कायम रखने का जो प्रवन्ध है उससे लघु मस्तिष्क का सम्बन्ध हो जाता है।

(६) Cerebro Cerebellar Tract (Cerebro ponto Cerebellar Tract) —ऊर्ध्व मस्तिष्क के Frontal, Temporal तथा Occipital Lobes से सूत्र आरम्भ होकर Internal Capsule के द्वारा Pons के Nuclei में समाप्त होते है। वहाँ से नए सूत्र आरम्भ होकर मध्य रेखा को क्रास करके Middle Peduncle के द्वारा लघु मस्तिष्क के Vermis में समाप्त होते हैं तथा वहाँ से नए सूत्र आरम्भ होकर दूसरी ओर के लघु मस्तिष्क के Cortex में समाप्त होते हैं। इससे लघु मस्तिष्क को शरीर स्थिति की पूरी जानकारी रहती है।

लघु मस्तिष्क Cerebellum में से बाहर जाने वाले चेप्टावाही सूत्र समूह ये है

(१) Cerebello-Rubrospinal Tract —लघु मस्तिष्क के Cortex में से सूत्र आरम्भ होकर ऊपर के Peduncle में से होते हुए दूसरी ओर के Red Nucleus में जाकर समाप्त हो जाते है। वहाँ से नए सूत्र आरम्भ हो तुरन्त मध्य रेखा को क्रास करके जिधर से पहले ये आए थे उधर ही Rubrospinal Tract के रूप में नीचे उतर Ant Horns में समाप्त होते जाते है फिर वहाँ से नए सूत्र आरम्भ होकर उधर की शरीर की मासपेशियों में जाते हैं।

(२) Cerebello-Cerebral Tract — लघु मस्तिष्क के Cortex से सूत्र आरम्भ होकर इसके Dentate Nucleus में समाप्त होते हैं जहाँ से दूसरे सूत्र आरम्भ होकर ऊपर के Peduncle में से दूसरी ओर के Thalamus में समाप्त होते हैं वहाँ से नए सूत्र निकलकर उधर के ऊर्ध्व मस्तिष्क के Frontal तथा Post Central Cortex में समाप्त होते हैं।

(३) Cerebello Vestibular Tract —लघु मस्तिष्क के Cortex से सूत्र आरम्भ होकर निम्न Peduncle में से उसी ओर के Vestibular Nucleus में जाते हैं वहाँ से नए सूत्र आरम्भ होकर Vestibulospinal Tract के रूप में उसी ओर नीचे उतरकर उधर के Ant Horns में समाप्त हो जाते हैं और वहाँ से नए सूत्र आरम्भ होकर Ant. root के द्वारा उधर की मासपेशियों में पहुँच जाते हैं। Medial Longitudinal Bundle के द्वारा ये सूत्र नेत्र की तीसरी, चौथी तथा छठी नाडियों के Nuclei के साथ सम्बन्धित होने से उसकी चेष्टाओं को तथा Accessory Nerve के सुषुम्नागत भाग के Nuclei के साथ सम्बन्धित होने से ये सूत्र ग्रीवा व शिर की चेष्टाओं को नियन्त्रित करते हैं।

इस प्रकार लघु मस्तिष्क विशेषत अपनी-अपनी ओर की मासपेशियों के वल (Tone), सन्तुलन (Equilibrium) तथा सहयोग (Coordination) को कायम रखता है जिससे हमारी चेष्टाएँ नियमित एव सुचारु रूप से सम्पन्न होती हैं। जब एक ओर के लघु मस्तिष्क में, उसकी धमनियों (Post Inferior Cerebellar Artery की शाखाओं) के Sclerosis या Thrombosis के कारण या Atrophy अथवा Tumour हो जाने से असमर्थता हो जाती है तब उस ओर की मासपेशियों में अशक्ति या निर्बलता (Hypotonia या Asthenia) उत्पन्न हो जाती है। चलने में वह उधर को लडखडा जाता, झुक जाता या गिर जाता है। उसकी चेष्टाओं में भद्दापन (या Asynergia) दीखता है। भाषण में भी शब्द या अक्षर एक दूसरे से पृथक्-पृथक् बोले जाते हैं (Dysarthria या Scanning Speech) नेत्रों में लेटी हुई दिशा में नेत्र कम्प (Nystagmus) का लक्षण दृष्टिगत होता है।

Brainstem अर्थात् मस्तिष्क के काण्ड भाग का, जो Mid Brain (Mesencephalon) Pons तथा Medulla इन तीन भागों में बना है, शरीर विज्ञान —

Mid Brain तथा Pons के पिछले पृष्ठभाग में ऊपर से नीचे की तरफ एक दीर्घाकृति काला भाग है जिसमें

तीसरी से आठवी तक की मस्तिष्क नाडियो के Nuclei रहते हैं। इनमे से तीसरी, चौथी, छठी मस्तिष्क नाडियो के नेत्र सम्वन्धी Nuclei आपस मे सम्वन्धित हैं साथ ही ये Pons मे विद्यमान Vestibular Nucleus के साथ भी Posterior Longitudinal Bundle (Median Longitudinal Fasciculus) के द्वारा कि जो Mid Brain से लेकर नीचे Cervical Segments तक उतरता है सम्वन्धित रहते हैं। इसी सम्वन्ध के ऊपर Oculovestibular तथा Oculocephalic reflexes निर्भर हे। इनके कारण सिर को ऊपर, नीचे, दाएँ, वाएँ घुमाने के साथ-साथ आँख भी उवर को ही फिर जाती है तथा शरीर की सभी ऐच्छिक चेप्टाएँ सतुलित रूप मे सम्पन्न होती हैं। स्पष्ट हे कि Mid Brain और Pons के पिछले भाग के क्षत होने पर उपर्युक्त क्रियाओ में विकृति आ जाती हे।

Pons के अगले पृष्ठ अर्थात् उसके तलप्रदेश मे Corticospinal (Pyramidal) tract रहता है जिस पर शरीर की ऐच्छिक चेष्टाएँ निर्भर हैं। यही पर Cerebrocerebellar tract—जिसके द्वारा एक तरफ का Cerebellum दूसरी ओर के Prefrontal Cortex के साथ सम्वन्वित होता है—रहता है। इसके कारण शरीर की ऐच्छिक चेप्टाओ मे परस्पर सतुलन कायम रहता है। इस प्रदेश के क्षत या रुग्ण होने पर Corticospinal तथा Corticobulbar tract अर्थात् Cortex से Pons तथा Medulla मे विद्यमान Cranial Nuclei तक आने वाले चेप्टा सूत्रों के रुग्ण हो जाने से ऐच्छिक मासपेशियो मे Paralysis हो जाता है जिससे रोगी वोलचल नही सकता पर होश मे होता है।

Pons के ऊर्ध्व देश मे Trigeminal Nerve—पचम मस्तिष्क नाडी—के Motor तथा Sensory Nuclei भी हे। पहला मुख की चवाने वाली पेशियो को सूत्र देता है। दूसरा जो Medial fillet (Sensory Lemniscus going upward to Thalamus) के वाहर की ओर है चेहरे, कपाल की त्वचा तथा Cornea, Conjunctiva, जिह्वा, नाक के अन्दर की श्लेष्मकला की सज्ञा से सम्वन्धित है। Pons का ऊर्ध्व देश रुग्ण हो तो चेहरे के उसी ओर सज्ञानाश होता है।

Pons के निचले भाग मे Facial Nerve या सप्तम मस्तिष्क नाडी का Nucleus भी हे जहाँ से यह नाडी निकलकर Pons और Medulla के सधिस्थल पर से वाहर आती है तथा चेहरे की सव मासपेशियो तथा ग्रीवा की Platysma मासपेशी को चेष्टा प्रदान करती है। इस नाडी के Nucleus को Supra Nuclear Pyramidal सूत्र ऊपर दोनो ओर के Motor Centres से आते है।

Medulla के मध्य मे उसके नीचे से ऊपर दो-तिहाई भाग मे फैला हुआ Hypoglossol Nerve अर्थात् वारहवी मस्तिष्क नाडी का Nucleus रहता है और इसमें से निकली नाडी, जिह्वा को चेष्टा प्रदान करती हे। इस Nucleus को तथा Facial नाडी के Nucleus का वह भाग जो चेहरे की निचली मासपेशियो को सूत्र देता है केवल दूसरी ओर के Cortex से ही सूत्र आते हे। इसी लिए पक्षाघात रोग मे Cranial Nerves मे घात या Paralysis नहीं होता केवल जिह्वा तथा निचले चेहरे मे घात होता है जिससे रोगी अगर जिह्वा वाहर निकाले तो वह मृत भाग की ओर मुड जाती है (दूसरी ओर की Nerve मे घात हो जाने के कारण)।

Pons के पिछले भाग मे वाहर की ओर श्रवण नाडी या अष्टम मस्तिष्क नाडी का Nucleus Cochlear रहता हे जिसमे कान से सज्ञा सूत्र आते है यहाँ से दूसरे सूत्र निकलकर दूसरी ओर Superior Temporal Gyrus मे विद्यमान श्रवण केन्द्र मे जाते हैं। इस Nucleus के क्षत होने पर वधिरता तथा विक्षुब्ध होने पर कर्णनाद Tinnitus का लक्षण होता है।

Medulla मे नवम तथा दशम मस्तिष्क-नाडियो अर्थात् Glossopharyngeal तथा Vagus Nerves के Nuclei भी हैं जो दोनो परस्पर सम्वन्धित है। पहली नाडी के Nucleus का Motor भाग गले, Glossopharyngeal arch तथा जीभ के पिछले तिहाई भाग को चेष्टा प्रदान करता है। इसका Sensory भाग इन प्रदेशो की सज्ञा को ग्रहण करता है। इनमे से दूसरी के Nucleus का Motor भाग तालु, गले तथा कण्ठ की मासपेशियों को चेप्टा प्रदान करता है साथ ही वह हृदय, पुफुस, आमाशय, आत तथा कोष्ठ सम्वन्वी अनैच्छिक मासपेशियो को चेष्टा प्रदान करता है। इसका सज्ञा सम्वन्वी अर्थात् Sensory भाग कण्ठ, श्वासनालियो, पुफुस, अन्नमार्ग और कोष्ठ सम्वन्धी अगो की श्लेष्मकला मे उत्पन्न सज्ञा को ग्रहण करता है।

Brainstem मे कुछ Reflex centres भी हे जिनमे से एक Reticular formation हे जो एक काले भाग के रूप मे Thalamus के नीचे से आरभ होकर Pons और Medulla के पृष्ठप्रदेश मे नीचे उतरता है। इसमे ऊर्ध्व मस्तिष्क के Cortex से, Red Nucleus से तथा Cerebellum से Afferent सूत्र आते हैं तथा इसमें से एक Extra Pyramidal Tract जिसे Reticulospinal Tract कहते हैं Cord के वाहर की ओर के भाग मे नीचे

उतरकर Anterior Horn Cells मे समाप्त होता है जिसमे सर्व ऐच्छिक चेष्टाएं व्यवस्थित रूप मे होती है तथा यह स्थिति को ठीक रखने मे सहायक होता है । चेष्टाओ को नियमित करने के अतिरिक्त यह मस्तिष्क मे जागरूकता को भी कायम रखता है ।

Red Nucleus भी Mid Brain मे रहता है जिसमे Afferent सूत्र Cerebellum से आते है और इसमे से Efferent सूत्र Rubrospinal Tract के रूप मे Cord के बाहर के भाग मे नीचे उतर दूसरी ओर के Anterior Horn मे समाप्त होते है । यह भी एक Extra Pyramidal Tract है ।

Lateral Vestibular Nucleus Pons मे उसके अगले बाहर के भाग मे रहता है जिसमे Afferent सूत्र कान से आते है कुछ सूत्र Cerebellum से भी आते हैं । इसमे से निकलने वाले Efferent सूत्र Vestibulospinal tract के रूप मे Cord के अगले बाहर के भाग मे नीचे उतरकर Anterior Horn Cells मे उतरते हैं । इसके कुछ Efferent सूत्र Medial Longitudinal Bundle के द्वारा नेत्र सम्बन्धी Nuclei मे जाते हैं । इस Nucleus मे क्षति आने से शिरोभ्रम और उधर की ओर के शरीर मे Hypotonia का दुर्लक्षण होता है ।

Diencephalon अर्थात् Thalamus तथा Hypothalamus ऊर्ध्व मस्तिष्क तथा Mid Brain के बीच मे रहता है । इसके बीच के काले भाग का ऊर्ध्व मस्तिष्क पर उत्तेजनात्मक, भावात्मक तथा जागरुकता का प्रभाव होता है । Hypothalamus मे Sympathetic तथा Parasympathetic Autonomic संस्थान के केन्द्र है । इस प्रदेश मे तापमान का नियामक केन्द्र, क्षुधा नियामक केन्द्र, जल नियामक तथा Electrolyte अर्थात् Acid Base तथा Salt नियामक केन्द्र है । इसमे Endocrine नियामक केन्द्र भी है । इसके अन्दर Satiety area अर्थात् भोजन जनित तृप्ति का केन्द्र भी है । जब इसमे खाण्ड को न्यूनता होती है तब इसका Feeding centre उत्तेजित हो जाता है । जब इसमे खाण्ड की वृद्धि होती है तब इसका Feeding centre मन्द पड जाता है । जल नियामक केन्द्र के कारण प्यास की इच्छा या निवृत्ति की प्रतीति होती है । इस प्रकार इस प्रदेश मे शरीर के तापमान को, Metabolism को, स्वप्न तथा जागरण को, क्षुधा-पिपासा को, प्रजननक्रिया को, भावावेश को नियन्त्रित करने के केन्द्र है ।

इस प्रदेश के क्षत होने पर उदासीनता, भावहीनता, तन्द्रालुता, निद्रालुता, Metabolism की मन्दता, Diabetes insipidus, क्लीवता, आर्तवनाश Akinetic Mutism (जिसमे रोगी निश्चेष्ट पड़ा होता है पर उसकी आँखें खुली होती हैं, यद्यपि वह होश मे नही होता) आदि दुर्लक्षण हो सकते है ।

Thalamus (Thalami) तीसरे Ventricle के दोनो ओर के दो बडे भाग कहाते हैं जिनमे अनेकानेक Nuclei है । इसमे संज्ञा सूत्र सारे शरीर से आते हैं और यहां से Thalamo Cortical Radiation के द्वारा ये संज्ञाएं मस्तिष्क के संज्ञा केन्द्रो तक पहुंच जाती हैं । इनमे Afferent सूत्र ऊपर Cortex से Hypothalamus से, और Extra Pyramidal Ganglia से भी आते है और इनके द्वारा उन संज्ञाओ को शरीर की मांसपेशियों तथा आशयों के Glands को देने अर्थात् Effectors पहुंचा देते हैं । Reticular formation से भी इसमे Afferent सूत्र आते है जिन्हें यह ऊपर Cortex तक पहुंचा देता है जिससे मस्तिष्क मे एक जागरूकता का भाव बना रहता है । इसके क्षत होने पर शरीर के दूसरी ओर के भाग मे संज्ञा सम्बन्धी लक्षण होने लगते हैं । अर्थात् संज्ञा की मन्दता या तीव्रता अर्थात् वेदना के दुर्लक्षण होते हैं ।

अनैच्छिक नाड़ी मण्डल की रचना तथा कार्य (Anatomy and Physiology of the Autonomic Nervous System) —Langley (१९२१) ने पहले-पहल इस नाडी संस्थान का वर्णन किया । अनैच्छिक नाडियाँ उन अगो को जैसे पुतलियो, श्वास नालियो, आतो, पाचक ग्रन्थियो, मूत्र मार्ग, स्वेद ग्रन्थियो, हृदय रक्तवाहिनियो आदि को जो हमारी इच्छा के आधीन नही, चेष्टा प्रदान करती है । ये नाडियाँ दो प्रकार की है । एक को Sympathetic (Thoracolumber Division) दूसरी को Parasympathetic (Craniosacral Division) कहते हैं । नार्मल अवस्था मे ये दोनो नाडी मण्डल सन्तुलित विरोध के रूप मे रहते हैं । जब इनमे से एक उत्तेजित होता है दूसरा कुछ अवसन्न हो जाता है ।

प्रथम प्रकार की अनैच्छिक Sympathetic नाडिया

१२ पृष्ठ सम्बन्धी (Thoracic) खण्डो तथा दो ऊपर के कटि सम्बन्धी खण्डो (Lumber Segments) तक के सुषुम्ना काण्ड (Cord) के बीच के काले भाग के Lateral Column (Intermediolateral cells) से चेष्टा सूत्र (Efferent Fibres) आरम्भ होकर इन्हीं स्थानो से निकलने वाली सौषुम्न नाडियो (Spinal N) के अग्रिम मूलो के अन्दर-अन्दर बाहर आते है । (ऊपर ये Hypothalamus के Nuclei से आरम्भ होकर सुषुम्ना काण्ड मे नीचे उतरते हैं) बाहर आते ही ये सौषुम्न नाडी

से पृथक् होकर White (Myelinated) Rami के रूप मे समीपस्थ Sympathetic Trunk के Ganglion मे प्रवेश कर जाते है और वहाँ से अन्दरूनी आशयो मे जाते है । Greyrami (Unmyelinated) वापिस होकर Spinal Nerves के साथ-साथ शरीर की रक्तवाहिनियो की दीवारो व स्वेदग्रन्थियो व लोमहर्षक पेशियो मे जाते है ।

Sympathetic Trunk के ग्रैवेय भाग मे तीन अनैच्छिक ग्रन्थियाँ (Ganglia) Superior, Middle तथा Inferior तीन नामो से होती हैं । इनमे ग्रैवेय सौपुम्न नाडियो से अनैच्छिक सूत्र (White Rami) नहीं आते परन्तु ऊपर की चार पृष्ठ सम्बन्धी नाडियो से उनसे सम्बन्धित Ganglia मे से होकर White Rami आते है ।

(१) Superior Cervical Ganglion (ऊर्ध्व अनैच्छिक ग्रैवेय ग्रन्थि) मे से Internal Carotid Nerve के रूप मे एक अनैच्छिक नाडी इसी नाम की धमनी के साथ-साथ ऊपर मस्तिष्क मे जाती है । इसके कारण इस धमनी पर छाये Internal Carotid Plexus मे से सूत्र Anterior तथा Middle Cerebral Arteries तथा Ophthalmic Artery के साथ-साथ चले जाते हैं । External Maxillary Artery (Facial Artery) के साथ अनैच्छिक सूत्र Submaxillary Ganglion मे तथा वहाँ से Post Ganglionic सूत्र Submaxillary तथा Sublingual लाला ग्रन्थियो मे जाते हैं । Internal Maxillary Artery की Middle Meningeal शाखा के साथ इसके सूत्र Parotid लाला ग्रन्थि मे भी जाते है । इसी प्रकार १ या २ पृष्ठ सम्बन्धी अग्रिम मूलो से निकले Preganglionic सूत्र इस अनैच्छिक ग्रन्थि मे से Post Ganglionic सूत्र के रूप मे निकलकर पचम मस्तिष्क नाडी की Ophthalmic शाखा के साथ-साथ Long Ciliary Nerve मे Iris के Dilator Pupillae नामक मास मे जाते और उसे फैलाने का काम करते हैं । इसी प्रकार Lacrimal Gland को भी अनैच्छिक सूत्र Carotid Plexus मे से Deep Petrosal Nerve तथा वहाँ से Pterygoid Canal की Nerve के द्वारा पहुँचते हैं । Middle Meningeal Art के साथ-साथ इसके सूत्र Otic Ganglion मे जाते हैं । इसी तरह यहाँ से निकले सूत्र Glossopharyngeal के Inferior Ganglion तथा Vagus के Ganglia मे भी जाते है ।

(२) Cervical Plexus (ग्रैवेय नाडी जाल) के बनाने वाली ऊपर की चार ग्रैवेय सौपुम्न नाडियो (Cervical Nerves) मे इस Ganglion से Post Ganglionic सूत्र सिर तथा ग्रीवा प्रदेशो मे जाते है ।

(३) इसमे से Laryngopharyngeal शाखायें Pharyngeal Plexus मे जाती हैं तथा वहाँ से गले के मासो तथा श्लेष्म कला को इसके सूत्र जाते है ।

(४) ऊपर के Thoracic खण्ड या खण्डो से निकले सूत्र इसमे से Post Ganglionic सूत्रो के रूप मे हृदय के Cardiac Plexus को भी जाते हैं ।

Middle Cervical Ganglion से, जो ५-६ Cervical Nerves के Ganglia के स्थान पर है, Post Ganglionic सूत्र ५-६ Cervical Nerves (ग्रैवेय नाडियो) मे उनके साथ जाते हैं । (२) इससे Thyroid शाखायें Inferior Thyroid धमनी के साथ-साथ Thyroid ग्रन्थि में जाती है । (३) इससे Cardiac शाखा Cardiac Plexus मे जाती है ।

Inferior Cervical Ganglion (Stellate Ganglion) —८ Cervical Nerve के तथा प्रथम पृष्ठ सम्बन्धी Ganglion के मिलने से बनी हुई अनैच्छिक ग्रन्थि है । (१) इसका Subclavian धमनी पर एक Plexus बनता है जिसमे Basilar, Post Cerebral, तथा Cerebellar धमनियो के साथ सूत्र ऊपर को जाते हैं, Inferior Thyroid धमनी के साथ-साथ Thyroid ग्रन्थि मे इसके सूत्र जाते हैं । Vertebral धमनी के साथ-साथ एक शाखा जाती है । Axillary तथा बाहु की धमनियो को सिम्पेथेटिक सूत्र ऊपर के Thoracic Segments (२-६) के Intermedio Lateral Column के सैलो से निकलकर Middle तथा Inferior Cervical Ganglia मे समाप्त होते हैं वहाँ से Post Ganglionic सूत्र फिर Brachial Plexus के Median तथा Ulnar Nerves के साथ-साथ बाहु मे जाते है । (२) ७-८ Cervical नाडियो को भी इसमे से सिम्पेथेटिक सूत्र जाते है । (३)

हृदय के Cardiac Plexus को भी एक शाखा, जिसे Cardiac शाखा कहते हैं, जाती है जहां से हृदय पोषक धमनियों के साथ इसके सूत्र हृदय में जाते हैं। इस प्रकार हृदय में Superior, Middle तथा Inferior तीन Cardiac सिम्पेथेटिक शाखायें जाती हैं जिनका प्रारम्भ ३-४ Thoracic Segments में होता है।

कोष्ठगत अनैच्छिक नाड़ियां (Thoracic Sympathetic नाड़ियां) —

(१) छाती में विद्यमान सिम्पेथेटिक २-३-४ Ganglia से Post Ganglionic सूत्र निकलकर Pulmonary Plexus में जाते हैं जहाँ से सिम्पेथेटिक सूत्र श्वासनालियों की मांसपेशियों में पहुँचते हैं।

(२) ऊपर के ५ Ganglia से सूत्र Aortic Plexus में जाते हैं।

(३) ५-१० Thoracic Ganglia से निकले Preganglionic सूत्रों के मिलने से Great Splanchnic Nerve बनती है। ९-१० कभी-कभी ११ Thoracic Ganglia से निकले प्रथम सूत्रों से Lesser Splanchnic Nerve बनती है। १२ Thoracic Ganglion से निकले सूत्रों से Lowest Splanchnic Nerve बनती है। पहली दोनों अनैच्छिक नाड़ियाँ नीचे Coeliac Ganglia और Coeliac Plexus में समाप्त होती हैं। इनमें से Hepatic Plexus तथा उसमें से निकले सूत्र Hepatic Artery तथा Portal Vein की शाखाओं के साथ यकृत् में जाते हैं। इसमें से निकले Splenic Plexus के सूत्र Splenic धमनी के साथ-साथ प्लीहा में जाते हैं। इसमें से निकले Gastric Plexus के द्वारा सूत्र Left Gastric Artery के साथ आमाशय की दीवार में जाते हैं (५-८ Thoracic Roots से निकले सूत्र आमाशय में जाते हैं) इसमें से निकले Supra Renal Plexus में से सूत्र Supra Renal ग्रन्थि को विशेषत उसके Medulla को जाते हैं। इसमें से निकले Renal Plexus में से जिसमें Lowest Splanchnic Nerve भी आ मिलती है सूत्र Renal Artery के साथ-साथ वृक्क में जाते हैं। (ये सिम्पेथेटिक सूत्र वृक्कों के लिये Vasomotor होते हैं) इसमें निकले Superior Mesenteric Plexus तथा Ganglion से सूत्र अग्न्याशय, क्षुद्रान्त्र, तथा वृहदन्त्र के लेटे हुए भाग को उनकी धमनियों के साथ-साथ जाते हैं। इसी प्रकार इस Coeliac Plexus से निकले Abdominal Aortic Plexus में से फिर जो Aorta पर छाया हुआ है उस धमनी से निकलने वाली शाखाओं पर Testicular, Inferior Mesenteric, Iliac तथा Hypogastric Plexuses उत्पन्न हो गये हैं।

इनमें से Inferior Mesenteric Plexus तथा Ganglion में जो इसी नाम की धमनी पर स्थित है सूत्र लेटे हुए वृहदन्त्र के बाईं ओर के आधे भाग को, तथा उतरते हुए वृहदन्त्र को जाते हैं तथा Superior Rectal Artery के साथ-साथ मलाशय को जाते हैं।

कटि प्रदेशीय अनैच्छिक (सिम्पेथेटिक) नाड़ियाँ

प्रथम तीन कटि प्रदेशीय नाड़ियों (L Nerves) के Preganglionic सूत्र अपने तीन Ganglia में से Post Ganglionic सूत्रों के रूप में Lumber Spinal Nerves में चले जाते हैं। निम्न शाखाओं में अर्थात् टांगों में जाने वाले सूत्र १० Thoracic—२ Lumber Segments के Intermediolateral सैलों से निकलकर निचले २—Lumber तथा प्रथम Sacral Ganglion में समाप्त हो जाते हैं। वहाँ से Grey Rami निकल के Lumbosacral Plexus की शाखाओं के द्वारा टांगों की रक्तवाहिनियों तथा स्वेद ग्रन्थियों में जाते हैं। Femoral Artery तथा उसकी शाखाओं को भी यहीं से सूत्र जाते हैं। Lumber Ganglia तथा ऊपर के २ Sacral Ganglia से आये कुछ सूत्रों तथा ऊपर Aortic Plexus से आए सूत्रों के मिलने से दोनों Common Iliac धमनियों के बीच एक Plexus बनता है जिसे Hypogastric Plexus कहते हैं। यही नीचे उतरकर दो Plexuses में विभक्त हो गया है जिन्हें दायां व बायां Pelvic Plexus (Ganglion) कहते हैं तथा जो मलाशय के पार्श्वों में होते हैं। इसमें से सिम्पेथेटिक सूत्र मलाशय, मूत्राशय, शुक्राशय (Seminal Vesiculae), प्रोस्टेट, शिश्नेन्द्रिय, स्त्री जननेन्द्रिय तथा गर्भाशय को जाते हैं। ये सूत्र Inhibitor होते हैं। छाती तथा कोष्ठ की दीवार में सिम्पेथेटिक सूत्र १-१२ Th Segments से निकल Inter Costal Nerves के साथ-साथ जाते हैं।

सिम्पेथेटिक नाड़ी मण्डल का कार्य

ये सूत्र स्वेद ग्रन्थियों के लिए स्वेद प्रवर्तक, लोमों के लिए लोमहर्षक (Pilomotor), मांस के लिये उत्तेजक या

Erector तथा श्वास प्रश्वास के दीर्घ या गहरा करने वाले होते हैं। हृदयमास के लिए उत्तेजक (Accelerator) होने, आमाशय, आत, मूत्राशय, मलाशय आदि के मास को शिथिल करने, उनकी गति को कम करने तथा उनके द्वारो (Sphincters) को सकुचित करने, इन आशयो की रक्तवाहिनियो को सकुचित करने, वृक्को की तथा कोष्ठगत रक्तवाहिनियो को विशेषत. सकुचित करने, एव मूत्र की उत्पत्ति को कम करने, श्वासनालियो को शिथिल करने, रक्त मे ग्लूकोज़ की मात्रा को वढाने (यकृत् में Glycogen से अधिक ग्लूकोज़ वनने से) Suprarenal Gland के Medulla से Adrenaline के स्राव को वढाने का कार्य करते हैं। मासपेशियो तथा हृदय दोनो की रक्तवाहिनियो को (उनके लिए Cholinergic होने से) फैलाने का कार्य करते है। Basal Metabolism की गति को तीव्र करते हैं। पुतलियो को फैलाने तथा ऑख को अधिक खोलने (Palpebral Fissure को वडा करने) का कार्य करते हैं। गर्भाशय के गोलाकृति (Circular) मास सूत्रो के लिए ये सूत्र सकोचक होते हैं। अन्न पाचक स्रावो को भी ये सुखाते हैं। वीर्य के लिये अति प्रवर्तक होते हैं। इन सूत्रो के Post Ganglionic सिरो पर Sympathin Noradrenaline या Adrenaline सदृश द्रव्य के उत्पन्न हो जाने से ये प्रभाव होते है। इसलिए इन्हें Adrenergic भी कहते है। Sympathetic नाडी सूत्र उत्तेजित हो के Ant Pituitary मे से ACTH के तथा Cortex के रसो के प्रवर्तक होते हैं। स्वेद ग्रन्थियो के लिए Sympathetic Post Ganglionic सूत्र Cholinergic होते एव स्वेद-प्रवर्तक होते हे।

इस प्रकार शारीरिक व मानसिक सकट या विक्षोभ के समय यह नाडी मण्डल सक्रिय होता हैं और जव तक सक्रिय रहता हे शरीर की शक्ति का व्यय या विनाश होता रहता है। कष्ट क्लेश श्रम से सवधित नाडी मण्डल को Sympathetic N System कहते है।

पैरा सिम्पेथेटिक नाडी मण्डल

शिर सम्वन्धी सूत्र (Cranial Outflow) Mid Brain तथा Medulla से प्रारम्भ होते है तथा कोष्ठस्थ अगो को जाते हैं।

(१) Oculomotor पैरासिम्पेथेटिक सूत्र —Mid Brain मे तृतीय मस्तिष्क नाडी के Nucleus के अन्दरले भाग के कुछ पीछे और वाहर की ओर विद्यमान Edinger Westphal Nucleus से Preganglionic सूत्र के या Intercalary Neurone के रूप मे निकलकर इसी नाडी के साथ-साथ Ciliary Ganglion मे समाप्त हो जाते है। वहाँ से Post Ganglionic सूत्र या Efferent Neurone प्रारम्भ होकर Short Ciliary Nerve के रूप मे ऑख की Sphincter Pupillae तथा Ciliary मास मे अर्थात् Iris के गोलाकार मास सूत्रो मे जाते हैं तथा उसके सकोचक होते हैं।

(२) मस्तिष्क सप्तम नाडी (Facial Nerve) के चेष्टावाही सूत्रो के साथ-साथ इसके Motor Nucleus के पास पीछे वाहर की ओर विद्यमान Superior Salivary Nucleus से भी कुछ सूत्र निकलकर नीचे उतरते है और उसके सज्ञावाही सूत्रो के साथ मस्तिष्क से वाहर आते हैं। ये सूत्र Chordatympani मे आ जाते हैं जो Tympanic-Cavity मे से गुजरकर Lingual Nerve मे, जो मस्तिष्क पचम नाडी की Maxillary शाखा की एक प्रशाखा है, मिल जाते हे और Submaxillary Ganglion मे जाकर समाप्त हो जाते हे। वहाँ से Post Ganglionic सूत्र प्रारम्भ होकर Submaxillary तथा Sublingual Glands मे जाते हैं एव लाला स्रावक होते हे और उनकी रक्तवाहिनियो के लिए प्रसारक होते है।

(३) **मस्तिष्क नवम नाड़ी** (Glossopharyngeal N) मे Inferior Salivary Nucleus से Parotid Gland के लिए कुछ पेरासिम्पेथेटिक सूत्र उतरकर उसकी Tympanic शाखा के द्वारा (Tympanic-Plexus मे से) Lesser Superficial Petrosal Nerve (जो Facial Nerve की एक शाखा है) के द्वारा Otic Ganglion मे समाप्त होते हे। वहाँ से Post Ganglionic सूत्र आरम्भ होकर Mandibular Nerve की Auriculotemporal शाखा के द्वारा जो कि Middle Menengeal Artery को दोनो ओर से घेरे हुए हे Parotid Gland मे जाते है। ये सूत्र इस लाला ग्रन्थि के लिए लाला स्रावक तथा उसकी रक्तवाहिनियो के लिए प्रसारक होते हैं। यह भी वात याद रखने की हे कि Otic Ganglion मे Chorda tympani मे से स्वाद-वाहक सूत्र आते हे।

आँख के Lacrimal Gland को पेरासिम्पेथेटिक सूत्र ऊपर Facial N मे उसके Lacrimatory Nucleus से उतर के उसकी (Facial N की) Greater Superficial Petrosal Nerve के द्वारा (Pterygoid Canal मे से) Sphenopala-

tine Ganglion में जाते हैं। वहाँ से नये सूत्र Maxillary Nerve की Zygomatic शाखा Zygomatico Temporal Nerve में होकर Lacrimal Nerve (जो Ophthalmic की शाखा है) के द्वारा पहुँचते हैं। गले, तालु तथा नाक की ग्रन्थियों की भी Sphenopalatine में ही Post Ganglionic सूत्र इस ग्रन्थि की Palatine तथा Nasal शाखाओं के द्वारा पहुँचते हैं।

(४) मस्तिष्क दशम नाड़ी (Vagus Nerve) के पैरासिम्पेथेटिक सूत्र इसके Dorsal Nucleus से आरम्भ होकर नीचे नाना आशयों को जाते हैं। उदाहरणतः Pharyngeal Plexus में से होकर इसके सूत्र गले व तालु के मांसों में जाते है। इस दशम नाडी के सूत्र भोजन प्रणाली के मांस में भी जाते हैं। इसके हृदय सम्बन्धी सूत्र Cardiac Plexus में जाकर वहाँ से Auriculoventricular Bundle में जाते हैं। इसके फुफ्फुस को जाने वाले सूत्र Pulmonary Plexus में से Post Ganglionic सूत्रों के रूप में श्वासनालियों के मांस में जाते हैं। आमाशय को जाने वाले सूत्र Gastric Plexus में से आमाशय के मांस तथा ग्रंथियों को जाते हैं। यकृत्, अग्न्याशय, पित्ताशय, आंत आदि को जाने वाले सूत्र Coeliac Ganglion में से स्टेशन करके जाते हैं तथा लेटे हुए बृहदन्त्र तक के आंतों के मांस व ग्रन्थियों में जाते हैं।

(५) पैरासिम्पेथेटिक (Sympathetic से विपरीत) नाडी मण्डल का निम्न भाग (Sacral Out Flow) २-३ Sacral Nerves के अग्रिम मूलों से निकलने वाले Preganglionic सूत्रों के मिलने से Pelvic Splanchnic Nerves या Nervi Erigentes बनती है जो वस्तिगुहा में स्थित सिम्पेथेटिक नाडी जालों (Sympathetic Pelvic Plexuses) के साथ मिल के वस्तिगुहा स्थित आशयों की दीवारों में विद्यमान Ganglia में स्टेशन करते हैं और वहाँ से Post Ganglionic सूत्र निकल के मलाशय, मूत्राशय, गर्भाशय, के मांस में जाते हैं। इन आशयों के लिए ये Detrusor या प्रेरक होते है, Sphincters को ढीला करने वाले होते हैं। ये स्त्री पुरुषों की जननेन्द्रियों के फूलने वाले भाग (Erectile अवयव) की रक्तवाहिनियों में भी जाते हैं। इनके कुछ सूत्र ऊपर Hypogastric Plexus के जाल में चढ़कर Inferior Mesenteric Artery की शाखाओं के साथ-साथ लेटे हुए बृहदन्त्र के निचले भाग के, और उतरते हुए तथा वस्तिगुहा में पड़े हुए बृहदन्त्र के मांस में जाते हैं।

Parasympathetic सूत्रों का कार्य—ये सूत्र पुतली के लिए संकोचक, लाला ग्रन्थियाँ, तालु, नासा तथा स्वेद आदि की ग्रन्थियों के लिए प्रवर्तक (Secretomotor), अश्रुग्रन्थि (Lacrimal) के लिए प्रवर्तक, हृदय के लिए शामक, श्वासनालियों के लिए संकोचक, आमाशय आंत आदि के लिए रस प्रवर्तक तथा मांस चेष्टाप्रवर्तक इनके Sphincters या आशय द्वारों के लिए प्रशामक (Inhibitor), मलाशय, मूत्राशय के लिए चेष्टाप्रवर्तक तथा उनके द्वारों के लिए प्रशामक, जननेन्द्रियों के लिए सिरा प्रसारक (Vasodilator) पुंस्त्ववर्धक होते हैं। गर्भाशय के गोलाकृति मांस सूत्रों के लिए शामक होते हैं। Insulin की उत्पत्ति के बढ़ने से रक्त में खाण्ड की मात्रा घटती है। इन Parasympathetic Post Ganglionic सूत्रों पर Acetyl Choline नामक द्रव्य के उत्पन्न होने से ये प्रभाव होते है जिनसे इन्हें Cholinergic सूत्र कहते हैं।

ऊपर जाने वाले (**Afferent**) सूत्र—कोष्ठस्थ अंगों में से Sympathetic Post Ganglionic सूत्रों के साथ कहीं स्टेशन किए बिना सीधे सौषुम्न नाडियों के पश्चिम मूल में विद्यमान ग्रन्थियाँ (Dorsal Ganglia) में पहुंच जाते हैं।

बाहुओं में से भी Sympathetic सूत्रों के साथ सीधे सौषुम्न नाडियों के Dorsal Root Ganglia में जाते हैं। कुछ सूत्र बड़ी-बड़ी धमनियों के साथ चढ़कर ऊपर Spinal Nerves में ही चले जाते हैं। जांघों से भी इसी प्रकार ऊपर जाते हैं।

हृदय में से Cardiac Nerves के द्वारा Middle तथा Stellate Ganglia में जाते और वहाँ से प्रथम चार Thoracic Spinal Nerves में जाते हैं।

पित्ताशय से ऊपर जाने वाले सूत्र Great Splanchnic Nerve के द्वारा ५-१० Thoracic Spinal Nerves के पश्चिम मूल के Ganglia में चले जाते हैं।

वृक्क में से ऊपर जाने वाले सूत्र Lesser तथा Lower Splanchnic Nerves के द्वारा ११-१२ Thoracic तथा प्रथम Lumber Dorsal Root Ganglia में जाते हैं। पश्चिम मूल में विद्यमान Ganglia में फिर सूत्र आरम्भ होकर सुषुम्ना काण्ड के काले (Grey) भाग में जाते है। वहाँ से Connector Fibre द्वारा यह प्रतीति सुषुम्ना काण्ड से बाहर जाने वाले अनैच्छिक चेष्टा सूत्रों में पहुंच जाती है। यदि शरीर में

स्वभावत सिम्पेथेटिक नाडी मण्डल कुछ अधिक प्रवल हो तो इस अवस्था को Sympatheticotonia कहते हैं। यदि पैरासिम्पेथेटिक नाडी मण्डल कुछ प्रवल हो तो इस अवस्था को Parasympatheticotonia कहते है। साधारणत: सवमे ये दोनो सन्तुलित अवस्था मे रहते है। जव इनमे से एक अधिक प्रवल हो, दूसरा अधिक मन्द हो तव रोग होता है। इनमे से प्रथम का केन्द्र Hypothalamus के पिछले भाग मे तथा दूसरे का नियामक केन्द्र इसके अगले भाग मे है। प्रथम की प्रवलता से रक्तवाहिनियाँ सिकुडती हैं (B P वढता है), Metabolism वढ जाता है, दूसरे की प्रवलता से रक्तवाहिनियाँ फैलती हैं, स्वेद आता, Metabolism घटता है।

औषधियो मे से Adrenaline, Ephedrine, Isoprenaline आदि Sympathetic नाडी मण्डल के उत्तेजक (Sympathomimetic) या Adrenergic होते है तथा Priscol (Tolazoline), Thorazine, Regitine, (Phentolamine) Rauwolfia, Ergotamine आदि इस नाडी मण्डल के अवसादक (Depressant, Sympatholytic) होते हैं। Parasympathetic नाडी मण्डल के लिए Acetyl Choline, Carbachol, Pilocarpine, Physostigmine, Neostigmine उत्तेजक हैं तथा Belladonna, Suavitil (Benactyzine Hyd १-८ मि० ग्राम) Hyoscine, Stramonium आदि अवसादक हैं।

मस्तिष्क धमनियां —Vertebral Arteries के मस्तिष्क मे जाने से पहले दोनो से एक Ant Spinal Art निकल Cord के आगे-आगे नीचे तक उतरती है २ Post Spinal Art इसी के पीछे-पीछे नीचे उतरती हैं और Cord को रक्त देती है। Vertebral A. के मस्तिष्क मे प्रवेश करते ही इनमे से दोनो ओर Post Inferior Cerebellar Arteries निकल लघु मस्तिष्क मे जाती हैं। मस्तिष्क मे पहुचने पर Pons के निचले किनारे पर इन दोनो के मिलने से Basilar Art वन जाती है जिसमे से दोनो ओर Sup Cerebellar Art निकल लघु मस्तिष्क मे जाती हैं। Basilar Art मिड ब्रेन के Crura के लेवल पर दोनो ओर Post Cerebral Arteries मे परिवर्तित हो जाती है। Post Cerebral Artery, Temporal तथा Occipital Lobes, Uncus के अन्दर के पृष्ठ तथा Occipital के पिछले पृष्ठ को रक्त देती है तथा Calcarine Fissure के ऊपर Cuneus तथा Lingual Gyri को तथा इसके नीचे के भाग को तथा Mid Brain को रक्त देती है (इसमे अवरोध होने से दृष्टि मे क्षति पहुँचती है) Internal Carotid Artery के मस्तिष्क मे आते ही उससे Ophthalmic Artery निकलती है (अत: उसमे रोध होने से उस ओर दृष्टिनाश दूसरी ओर Hemiplegia का लक्षण होता है) फिर यह धमनी Anterior तथा Middle Cerebral Arteries मे वँट जाती है। इनमे से Anterior तो ऊर्ध्व मस्तिष्क के अन्दर के पृष्ठ को Parieto Occipital Fissure तक रक्त देती है Frontal Lobe के अगले हिस्से को तथा ऊपर Cortex मे विद्यमान पैर और जाँघ के चेष्टा क्षेत्रो को भी रक्त देती है (अतएव इसके रोध मे Crural Monoplegia का लक्षण होता है) Middle Cerebral या Sylvian Artery ऊर्ध्व मस्तिष्क के वहुत से वाहर के भाग को अर्थात् Motor, Sensory तथा Speech के केन्द्र तथा Optic Radiation को रक्त देती है। इसकी सूक्ष्म शाखायें, जो Terminal या अन्तिम शाखायें है, Internal Capsule, Corpus Striatum, Thalamus को रक्त प्रदान करती हैं (इसमे अवरोध होने से प्राय दूसरी ओर Hemiplegia, Hemianaesthesia, Hemianopia Aphasia आदि लक्षण होते है)।

प्रतिक्षिप्त चेष्टायें (Reflexes)

जव त्वचा तथा मास से सुषुम्ना काण्ड तक आने वाली संज्ञावाहिनिया स्वस्थ हो, सुषुम्ना काण्ड से नीचे मास तक आने वाली चेष्टावाहिनिया भी स्वस्थ हो तथा इन दोनो को सुषुम्ना काण्ड के अन्दर जोड़ने वाले (Connected) सूत्र भी स्वस्थ हो तो प्रतिक्षिप्त चेष्टायें भी ठीक होती हैं। यहा पर दो प्रतिक्षिप्त चेष्टाओ का उल्लेख किया जाता है।

(१) Knee Jerk या जानुविक्षेप—रोगी को पीठ पर लिटाकर उसकी जाँघ को जानु के पीछे हाथ से उठा ढीला लटकाकर जव ऊर्ध्व जाँघ के आगे की वडी मासपेशी Quadriceps की कण्डरा कुछ तन जाती है तथा शेष सारी जघा शिथिल हो जाती है तव टखने और Tibia के Tubercle के वीच के प्रदेश पर Ligamentum petallae को 'परकशन हेमर' के द्वारा कुछ तेज चोट देने पर उपर्युक्त मासपेशी मे सकोच उत्पन्न हो जाता है जिससे निम्न जघा ऊपर को उछल जाती है। इसे Knee Jerk जानुविक्षेप कहते हैं।

जव प्रतिक्षिप्त चेष्टा के Afferent और Efferent मार्ग मे कही पर रोग होता है अर्थात् इस मास की संज्ञावाहिनी (Femoral N) मे रोग हो

(Tabes Dorsalis) या इस मास के निम्न चेष्टावाही सूत्र (Lower Motor Neurone) मे रोग हो Neuritis हो या सुषुम्ना काण्ड के अन्दर रोग (Poliomyelitis) हो तब यह प्रतिक्षिप्त चेष्टा नहीं होती।

जब मस्तिष्क से सुषुम्ना काण्ड के Anterior Horns तक आने वाले ऊर्ध्व चेष्टावाही सूत्रो मे विकृति या रोग हो जैसे कि पक्षाघात रोग मे होता है तब क्योकि निम्न चेष्टावाही सूत्रो का नियत्रण (Inhibition) लुप्त हो जाता है तब यह प्रतिक्षिप्त चेष्टा प्रबलता से होती है। इसी प्रकार जब रोगी का मन विक्षुब्ध होता है (चिन्तारोग) तब भी यह चेष्टा प्रबल रूप मे होती है।

(२) Plantar Reflex—रोगी को पीठ के भार लिटाकर उसकी एक जाँघ को ऐसा रखें कि वह जानु पर कुछ सकुचित हो। अब उसके तलुए पर एडी से अगुलियो की ओर दियासलाई या पेन्सिल से लकीरें खीचने पर स्वस्थावस्था मे उसकी अगुलियाँ तलुए की ओर (Flexor Response) तथा पैर कुछ ऊपर की ओर (Dorsiflexion) मुड जाया करता है।

जब मस्तिष्क मे सुषुम्ना काण्ड तक आने वाले ऊर्ध्व चेष्टावाही मार्ग मे रोग होता है अर्थात् निम्न चेष्टावाही सूत्रो पर नियत्रण कम हो जाता है तब पैर का अगूठा ऊपर की ओर मुडता है तथा दूसरी अगुलियाँ एक दूसरी से दूर हो जाती है (Extensor Plantar Response) तथा जाँघ की पीछे की मासपेशियो (Hamstrings) मे सकोच के हो जाने से सारी जाँघ वक्षण सन्धि तथा जानु सन्धि पर सकुचित हो जाती है।

द्वितीय मस्तिष्क नाडी (Optic Nerve)

प्रत्येक नेत्र से जितना क्षेत्र दिखाई पडता है उसे दृष्टिक्षेत्र (Visual Field) कहते है। इसे एक बाह्य (Lateral) दूसरे आभ्यन्तर (Medial) दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। इसी प्रकार दृष्टिनाडी से बने हुए दृष्टिपटल (Retina) को भी बाह्य आभ्यन्तर दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। स्पष्ट है इसका बाह्य भाग दृष्टिक्षेत्र के आभ्यन्तर और इसका आभ्यन्तर भाग दृष्टिक्षेत्र के बाह्य भाग को देखता है। इस दृष्टिपटल मे से निकले प्रथम दृष्टि सूत्र तो इसी मे रह जाते है वहाँ से दूसरे सूत्र दृष्टिनाडी या Optic Nerve के रूप मे नेत्र से निकल पीछे जाते है। दोनो दृष्टिनाडियो या द्वितीय मस्तिष्क नाडियो से निकलने के बाद जो सगम होता है उसे Chiasma कहते है क्योकि इसमे दृष्टि सूत्रो का Crossing होता है। नेत्रो से पीछे निकलने वाले समूह या Optic Nerve मे तो दृष्टिपटल से आए सारे सूत्र इकट्ठे होते हैं परन्तु इस Chiasma मे आकर प्रत्येक Retina मे से उसके बाह्य भाग (Temporal half) से आए सूत्र तो सीधे उसी ओर निकल जाते है पर आभ्यन्तर (Nasal) भाग से आये सूत्र दूसरी ओर काम कर जाते है। इसी प्रकार Chiasma मे पीछे को निकले Optic Tract मे उस ओर Retina के बाहर के भाग से आए सूत्र तथा दूसरी ओर के Retina के अन्दर के भाग मे आये सूत्र होते है। प्रत्येक आख की Macula मे आए कुछ सूत्र सीधे पीछे को निकल जाते, कुछ काम करके दूसरी तरफ चले जाते है। ये Optic Tracts, Temporal Lobes के आभ्यन्तर पृष्ठ पर पीछे जाकर दोनो ओर अपनी-अपनी ओर के Lateral Geniculate Body मे समाप्त हो जाते हैं। Optic Tract के कुछ सूत्र इसमे जाने के स्थान पर उधर के Superior Colliculus अर्थात् Superior Quadrigeminal Body मे समाप्त होते है, जो कि Colliculo Nuclear सूत्रो के द्वारा तीसरी, चौथी तथा छठी मस्तिष्कनाडियो के Nuclei के साथ सम्बन्धित रहता है। इस प्रकार यह दृष्टिनाडी, नेत्र की चेष्टाप्रवर्तक मासपेशियो से सम्बन्धित हो जाती है। अब Lateral Geniculate Body से तीसरे सज्ञा सूत्र निकलकर Internal Capsule के सज्ञा सूत्रो से बने भाग के पश्चिम भाग मे से Optic Radiation के रूप मे होते हुए पिछले मस्तिष्क खण्ड अर्थात् Occipital Lobe के Calcarine Sulcus के आसपास स्थित Convolutions मे दृष्टिसज्ञा को पहुँचा देते है। क्योकि दोनो Maculae के दाहिनी ओर से आए सूत्र दाहिनी ओर और दोनो के बाई ओर से आये सूत्र बाई ओर Occipital Lobe के सिरे मे समाप्त होते है। अत दोनो नेत्रो की मध्य दृष्टि की प्रतीति दोनो ओर होती है। इससे स्पष्ट है कि दोनो दृष्टिक्षेत्रो (Visual Fields) के दाहिने भागो से प्राप्त दृष्टि की प्रतीति मस्तिष्क मे बाई ओर होती तथा बायें भागो से प्राप्त दृष्टि की प्रतीति मस्तिष्क के दाहिनी ओर होती है। यह भी स्मरणीय है कि Optic Radiation के पिछली ओर के सूत्र दोनो Retinae के ऊर्ध्व भागो (Superior Quadrants) से आए हुए होते हैं वे पीछे Post Calcarine Fissure के ऊपर के ओष्ठ या Cuneus मे समाप्त होते है Optic Radiation के अगले

सूत्रों (Ventral Fibres) का समूह दोनों Retinae के निम्न भागों (Inf Quadrants) से आए होते है ये पहले नीचे (Uncus) की ओर जाते फिर Temporal Knee के ऊपर से घूमकर पीछे Lingual Gyrus मे समाप्त होते है। इस प्रकार Temporal Knee के सूत्र Lower Homonymous Retinal Quadrants का प्रतिनिधित्व करते है।

पश्चिम दृष्टिपटल शोथ (Optic Neuritis, Papillitis, Papilloedema)

कभी-कभी इस पश्चिम दृष्टिपटल के बीच मे Opthalmoscope के द्वारा दिखाई पडने वाली Optic Disc या Papilla कुछ फूला हुआ दिखाई पड़ता है अर्थात् Optic Nerve के खोल मे द्रव के अधिक भर जाने से यह गढा फूलकर कुछ भर सा जाता है। Retina की शिरायें या Veins पीछे से दब जाने से अधिक फूल जाती हैं। धमनियां पीछे दब जाने से कुछ पतली पड जाती है। शिराओं मे रक्त अधिक भर जाये तो उनसे Retina पर कहीं-कहीं हलका सा रक्तस्राव भी हो जाता है। श्वयथु या Oedema के कारण Disc के किनारे अस्पष्ट या धुँधले से दीखते हैं और Disc कुछ रक्तवर्ण दीखती है इस प्रकार Optic Disc के शोथ को Papilloedema कहते हैं। यह Oedema भी Autoimmunity के कारण उत्पन्न होता लगता है।

यह रोग दोनो ओर होता है तथा मस्तिष्क के अन्दर के दवाव के वढ जाने तथा उसके कारण वापिस जाती शिराओं के व दृष्टिनाडी के वहाँ दब जाने से यह शोथ होता है। मस्तिष्क के अन्दर इस दवाव का कारण मस्तिष्क या लघु मस्तिष्क मे किसी प्रकार के अर्बुद या Neoplasm का होना है। क्षयजनित (Tuberculous) Meningitis तथा Hydrocephalus से या Malignant Hypertension से या शिर पर चोट लगने से भी वहाँ इन पर दवाव पड सकता है। मस्तिष्क के अन्दर दवाव के कारण यह रोग हो तो शिरदर्द का लक्षण रोगी को रहता है। दृष्टिमन्दता का लक्षण प्रारम्भ मे नही होता वाद मे होता है। अर्बुद के निकाल देने पर दृष्टि फिर ठीक हो जाती है। दृष्टिनाडी मे तथा Retina मे जीर्ण वृक्क रोग (Chronic Nephritis) Hypertension या मधुमेह रोग के कारण धमनी रोग (Arteriosclerosis) होकर यह रोग (Retinopathy) प्रकट हुआ हो तब भी दृष्टिमन्दता का लक्षण इस रोग मे रहता है तब इसे Optic Neuritis कहा जाता है।

नेत्र पश्चिम दृष्टिनाड़ी शोथ (Retrobulbar Neuritis)

Disseminated Sclerosis का रोग हो अर्थात् नाडी सूत्रो मे Demyelination हो तो नेत्र पश्चिम दृष्टिनाडी मे भी यह रोग हो सकता है। फिरग रोग के इस नाड़ी मे होने से भी यह नाडी रुग्ण हो सकती है। इस प्रकार मध्यमायु मे इस नाडी के रुग्ण हो जाने से एक आँख मे क्रमश दृष्टि मन्द पडती जाती है तथा नेत्र को हिलाने पर उसमे थोडा दर्द प्रतीत होता है। नेत्र के दवाने पर भी उसमे कुछ दर्द लगता है। Fundus की परीक्षा करने पर वह वहुधा नार्मल दीखता है Disc भी नार्मल होता है। पुतली थोडी फैली हुई होती है। Light Reflex मन्द होता है। दो सप्ताह के वाद फिर दृष्टि सुधरने लगती है। तथा १½-२ मास तक पर्याप्त सुधर जाती है। परन्तु इस रोग का फिर भी आक्रमण हो सकता है। इसकी निवृत्ति के लिए देखना चाहिए कि यदि शरीर मे फिरग रोग हो या मधुमेह हो तो इनकी उचित चिकित्सा होनी चाहिए। इस रोग के लिए Pot Iod ५-१० ग्रे०, Sod Salicyl ५ ग्रे०, Sod Bicarb १० ग्रे०, Syrup Aurant २० बूंद, जल १ औ० मिलाकर दिन मे ३ वार देना चाहिए। सामान्यत Optic Neuritis मे सक्रामक विष की निवृत्ति के लिये Achromycin अर्थात् Tetracycline के २५० मिलि० कैप० को ६-६ घ० पर देना चाहिए Disc मे हुए श्वयथु Oedema के दूर करने के लिए Steroids का प्रयोग करना चाहिए उदाहरणत Dexamethasone (Milicorten, Dexacorten) की ५ मिलि० की २-२ गोलियाँ ८-८ घ० पर दे या Triamcinolone (Ledercort, Kenacort) का इसी प्रकार प्रयोग करे। विटामिन्स की कमी से Neuritis होता है अत B_1 B_{12} तथा B Complex तथा Vit C का क्रमश १०० मिलि०, ५०० माइक्रो, २ सी०सी०, तथा ५०० मिलि मात्रा मे मास द्वारा प्रयोग करना चाहिए। एक सप्ताह वाद रोगी को वहुधा लाभ प्रतीत होने लगता है।

दृष्टिनाडी क्षय (Optic Atrophy)

उपर्युक्त रोगो के देर तक रहने से, शरीर मे फिरग रोग का विष रहने से, या शरीर मे किसी दूसरे तीव्र विष के रहने से या Glaucoma के देर तक रहने से या Retina की मध्य धमनी मे Thrombosis के हो जाने से अर्थात् धमनी रोग या मधुमेह रोग के वरावर वने रहने से Optic Disc मे क्षीणता हो जाती है जिससे एक या दोनो आँखों मे दृष्टि नष्ट हो जाती है। पुतली फैल जाती है उसमे

Light Reflex नहीं रहता। देखने पर Disc श्वेत और उसके किनारे उठे हुए दीखते हे । धमनियां पतली दीखती हे। दृष्टिक्षेत्र भी किनारो पर से केन्द्र की ओर घटता जाता है।

उभय पार्श्वीय वहिर्दृष्टिनाश (Bitemporal Hemianopia)

दोनो ओर वाह्य क्षेत्रो मे अधेरा आ जाये तो उसे Bitemporal Hemianopia कहते है। दोनो ओर Retina के आभ्यन्तर भागो से आने वाले सूत्र Chiasma के मध्य मे इकट्ठे होते है अत यदि इस भाग (Chiasma) मे कोई क्षति आ जाये तो दृष्टिक्षेत्रो के वाह्य भाग मे न्यूनाधिक अधेरा हो जाना स्वाभाविक है। Pituitary ग्रन्थि मे अर्बुद के होने और उसके कारण Chiasma पर दवाव पडने से यह रोग हो सकता है। जव इस अर्बुद का दवाव नीचे से आरम्भ होता है तो वाह्य क्षेत्र के केवल उपरले भाग (Upper Quadrant) मे अधेरा होता है। Supra Sellar Tumour की अवस्था मे जव दवाव ऊपर से नीचे की ओर आरम्भ होता हे तव दृष्टिक्षेत्र के वाहर के निम्न भाग मे अन्धेरा आना आरम्भ होता हे (Quadrantic Hemianopia) दृष्टिक्षेत्र के अन्दरले भाग मे अधेरा होने अर्थात् Nasal Hemianopia का रोग वहुत कम पाया जाता है।

समपक्षीय अर्धदृष्टिनाश (Homonymous Hemianopia)

एक तरफ के Optic Tract मे क्षति पहुँचने पर अर्थात् उधर के Retina के वाह्य भाग से आये सूत्रो और दूसरी ओर के Retina के आभ्यन्तर भाग से आये सूत्रो के ग्रस्त हो जाने पर उधर के तो आभ्यन्तर दृष्टिक्षेत्र मे तथा दूसरी ओर के वाह्य दृष्टिक्षेत्रो मे अधेरा हो जाता है। दोनो अधेरो के एक तरफ की ओर को होने से इसे Homonymous Hemianopia कहते है। प्राय एक तरफ अधेरा कुछ कम दूसरी ओर कुछ अधिक क्षेत्र मे होता है। Pituitary ग्रन्थि के अर्बुद के कारण यह Tract दव सकता है।

Optic Radiation के पिछले भाग मे अर्थात् Parietal Lobe के पिछले भाग मे क्षति पहुँचे, अर्थात् वहां Tumour हो या वहाँ धमनी रोग हो तो भी यही Homonymous Hemianopia का लक्षण होता है। हाँ उसके अगले Temporal Lobe के अन्तर्गत भाग मे क्षति हो जैसे कि Middle ear के रोग के उपद्रव के रूप मे वहाँ Abscess के होने से हो सकती है तो इस Radiation के निचले सूत्रो के ग्रस्त होने से Upper Quadrant Homonymous Hemianopia होता हे, अर्थात् दोनो ओर के केवल उपरले एक चौथाई भाग मे अधेरा होता हे। यदि Parietal Lobe के अगले भाग के अन्तर्गत Radiation के सूत्रो मे जो कि दोनो Retinae के ऊपर के भाग से आते है क्षति पहुँचे तो दोनो ओर के आधे निम्न एक चौथाई दृष्टिक्षेत्रो मे अधेरा होता हे इसे Lower Quadrant Homonymous Hemianopia कहते हे।

Central Scotoma—एक Occipital Lobe के Cortex मे व्यापक क्षति पहुँच जाये तव तो उपर्युक्त Homonymous Hemianopia का लक्षण होता है परन्तु यदि क्षति हलकी हो तो क्योकि एक Lobe मे दोनो आँखो के Maculae से सूत्र आते हे इसलिए दोनो ओर ही दृष्टिक्षेत्रो के मध्य मे हलका-सा अधेरा हो जाता हे जिसे Central Scotoma कहते हैं।

तृतीय, चतुर्थ तथा षष्टम मस्तिष्क नाड़ियो के रोग

तृतीय (Oculomotor), चतुर्थ (Troclear) मस्तिष्क नाडियो के Nuclei मध्य मस्तिष्क के Cerebral Aqueduct के फर्श मे रहते हैं। तृतीय मस्तिष्क नाडी Cerebral Peduncle के अन्दर की ओर से और चतुर्थ मस्तिष्क नाडी वाहर की ओर से आगे आकर *Cavernous Sinus* मे से होकर नेत्रास्थि के Superior Orbital Fissure मे से आँख मे प्रवेश करती है। चतुर्थ नाडी, नेत्र की Superior Oblique मासपेशी को गति प्रदान करती है। तृतीय मस्तिष्क नाडी नेत्र की वाहर और अन्दर की उपर्युक्त मासपेशी तथा External Rectus को (जिसे मस्तिष्क षष्टम नाडी चेष्टा प्रदान करती हे) छोडकर शेष सभी को चेष्टा प्रदान करती हे। षष्टम मस्तिष्क नाडी (Abduscent) जिसका Nucleus Pons मे ७वीं मस्तिष्क नाडी के Nucleus के पास ही होता हे Pons के निचले सिरे से निकल उपर्युक्त दोनो नाडियो के साथ ही नेत्र के External Rectus मे आती हे। तृतीय मस्तिष्क नाडी नेत्र गोलक की वाह्य मासपेशियो को शाखाये देने के अतिरिक्त ऊपर के पलक की Superior Palpebral Levator पेशी को भी शाखा देती हे। यह नाडी Ciliary Ganglion को भी शाखा देती है जिसमे से फिर Short Ciliary Nerves (Parasympathetic) निकल

कर Ciliary मासपेशी तथा Pupil Constrict r मासपेशी मे जाती है।

नेत्र गोलक की सचालक पेशिया छ होती हे जो नेत्र गोलक को भिन्न-भिन्न दिशाओ मे खीचती है। साधारणत इनके सन्तुलित अवस्था मे रहने से अर्थात् एक के वल के, उसके विपरीत कार्यकारी मासपेशी के वल के द्वारा उदासीन हो जाने से नेत्र समस्थिति मे रहते है। १ Lateral Rectus कानिया को वाहर की ओर फेरती है। २. Medial Rectus कानिया को अन्दर नाक की ओर फेरती हे। ३ Superior Rectus कानिया को ऊपर तथा ऊपर अन्दर की तरफ फिराती ही नही पर उसे अन्दर की तरफ घुमाती (Rotate करती) भी है। ४ Inferior Rectus कानिया को नीचे ओर अन्दर की तरफ फेरती है तथा वाहर की ओर घुमाती है। ५. Superior Oblique कानिया को नीचे वाहर की ओर फेरती तथा अन्दर की ओर घुमाती है। ६ Inferior Oblique कानिया को ऊपर वाहर की ओर फिराती और वाहर की ओर घुमाती है।

इनमे से जव किसी मासपेशी मे घात या Paralysis होता है तव उसकी विरोधी मासपेशी कानिया को अपनी ओर खीच लेती है जिससे नेत्र मे Squint का लक्षण हो जाता है। External Rectus मे घात होने पर आँख अन्दर की ओर फिर जाती हे। अव दोनो आँखो के Visual Axes समानान्तर नही रहते जिससे दोनो से दीखने वाली वाह्य पदार्थ की मूर्ति दोनो ओर Retina के एक से भागो पर न पडके पृथक् भागो पर पडती हे जिससे एक पदार्थ की दो मूर्तियाँ दिखाई पडती हैं जिसे Diplopia कहते है। स्वस्थ आँख से दीखने वाली मूर्ति जो वास्तविक होती है वह तो स्पष्ट होती है परन्तु अस्वस्थ आँख मे दीखने वाली मूर्ति जो मिथ्या होती हे वह अस्पष्ट होती है। अस्वस्थ आँख के आगे रक्तवर्ण शीशा रख के रोगी इस मूर्ति को देखे तो मिथ्या मूर्ति रक्तवर्ण, वास्तविक मूर्ति श्वेत दिखाई पडती है। उदाहरणत वाम नेत्र के Ex Rectus मे घात हुआ हो और इस आँख के अन्दर की ओर फिर जाने से Medial (Convergent) Squint या Strabismus हो तो मिथ्या मूर्ति वास्तविक मूर्ति के उस ओर जिधर की आँख खराव हे, अर्थात् वाम ओर होती है। इसी प्रकार दक्षिण नेत्र की यही वाहर की मासपेशी मृत हुई हो तो मिथ्या मूर्ति वास्तविक मूर्ति के दक्षिण ओर होती हे। इसके विपरीत यदि नेत्र की अन्दर की मासपेशी मृत हो गई हो जिससे वह नेत्र वाहर की तरफ फिर गया हो तो दृश्यमान पदार्थ की मिथ्या मूर्ति दूसरी तरफ जिधर स्वस्थ आँख हे उधर होती है अर्थात् Lateral (Divergent) Strabismus मे Diplopia ऊपर की तरह समपक्षी अर्थात् Homonymous न होकर प्रतिपक्षी Crossed होता है। यो कह सकते है कि मिथ्या मूर्ति उधर की दिशा मे होती है जिस ओर मृत मासपेशी होती हे। अर्थात् Lateral Rectus के मरने पर यह उसी ओर होती है तथा Int Rectus के मृत होने पर यह उसी की दिशा मे दूसरी ओर चली जाती है।

जैसे ऊपर कहा गया है कि यदि १. Lateral Rectus मे घात हो तो उस आँख को वाहर की ओर फिराने मे कठिनता होती है। अर्थात् वाम नेत्र मे यह रोग हो तो मिथ्या मूर्ति इसी आँख की ओर होती तथा वास्तविक मूर्ति के समानान्तर होती है। देखने मे रोगी का शिर भी मृत हुई मासपेशी की ओर फिरा रहता हे। २ Medial Rectus मे घात हो तो रोगी मे Lateral Strabismus होता है तथा यदि रोगी अन्दर की ओर इस आँख से देखे तो मिथ्या मूर्ति दूसरी तरफ (Crossed) वास्तविक मूर्ति के समानान्तर होती है ३ Superior Rectus मे घात हो तो कानिया को ऊपर, अन्दर की तरफ फिराने मे कठिनता होती है तथा ऐसा करने पर Crossed Diplopia की शिकायत हो जाती है। जिसमे मिथ्या मूर्ति ऊपर और वास्तविक मूर्ति से विमुख तिरछी होती है। ४ Inferior Rectus मे घात हो तो कानिया को नीचे अन्दर की ओर फिराने मे कठिनता होती तथा ऐसा करने पर Crossed Diplopia की शिकायत होती, मिथ्या मूर्ति वास्तविक मूर्ति से नीचे और उसकी ओर को सिर किये तिरछी दीखती हैं। ५ Inferior Oblique मे घात हो तो कानिया को ऊपर वाहर की ओर फेरना ओर आँख को वाहर की ओर घुमाना (Rotate करना) कठिन होता हे। ऐसा करने पर Homonym us Diplopia की शिकायत होती हे जिसमे मिथ्या मूर्ति ऊपर ओर वास्तविक मूर्ति से विमुख तिरछी दीखती हे। ६ Superior Oblique मे घात हो तो कानिया को नीचे वाहर की ओर फिराना ओर उसे अन्दर की ओर घुमाने (Rotate करने) मे कठिनता होती हे जैसे कि सीढियो पर उतरते समय करना पडता है। ऐसा करने पर Homonymous Diplopia की शिकायत होती हे जिससे सिर चकराता सा है, मिथ्या मूर्ति नीचे तथा वास्तविक मूर्ति की ओर को झुकी हुई तिरछी दीखती हे। तृतीय, चतुर्थ, षष्टम नाडियो का चेष्टा केन्द्र दूसरे या Middle Frontal Gyrus मे होता हे अर्थात् वहाँ से चेष्टा सूत्र निकल दूसरी ओर के इनके Nuclei मे आते हैं। इसलिए यदि एक ओर के इन चेष्टा

सूत्रों में Thrombosis या Haemorrhage के कारण क्षति पहुँच जाये तो एक तो दूसरी ओर की शाखाओं में पक्षाघात हो जाता है, दूसरा दोनों आँखें इस मृत भाग से दूसरी ओर फिर जाती हैं अर्थात् दाहिने मस्तिष्क में उपयुक्त क्षति पहुचे तो वाम पार्श्व की ओर को पक्षाघात होता तथा दोनों नेत्र दाहिनी ओर को फिर जाते हैं (Conjugate Deviation of the eye) क्योंकि इसमें दूसरी ओर के षष्टम Nucleus के तथा इसके कारण उधर के नेत्र के Lateral Rectus के मृत हो जाने से यह तो बाईं ओर फिरती ही है पर उस Nucleus के दक्षिण ओर के तृतीय नाडी के साथ सूत्रों द्वारा सम्बन्धित होने से दाहिने नेत्र का Medial Rectus भी मृत हो जाता है जिससे वह भी उधर के ठीक Lateral Rectus के द्वारा खिचकर दाहिनी ओर फिर जाता है। इस प्रकार Nuclei से ऊपर के भाग में रोग होने से नेत्रों की चेष्टा में उपर्युक्त वैषम्य हो जाता है।

इन नाडियों पर Syphilitic Meningitis या Tumour का दबाव पडने या इन पर मधुमेह का दुष्प्रभाव होने से या Internal Carotid Artery में या Posterior Communicating Artery में Atheroma का विकृति के होने से इन नेत्र सचालक नाडियों में रोग हो सकता है। तो भी तृतीय नाडी इन रोगों में अधिक ग्रस्त होती है। इसमें तृतीय नाडी की किसी शाखा में या चतुर्थ षष्टम किसी नाडी में घात हो सकता है। तृतीय नाडी की Ciliary Muscle तथा Iris की Constrictor मासपेशी में जाने वाली शाखाओं में रोग हो तो Internal Opthalmoplegia का रोग होता है। उपरली पलक के Palpebral Levator मासपेशी को जाने वाली शाखा में ही विशेषत दुष्प्रभाव पडा हो तो एक आँख में ऊपर की पलक नीचे गिरी हुई दीखती है जिसे Ptosis का रोग कहते हैं।

वाग्दोष (Aphasia, Dysphasia)

वाम मस्तिष्क गोलार्ध के Central Lobe (Insula) तथा उसके ऊपर चढे Frontal, Temporal और Parietal Lobes के काले भाग या Cortex में भाषणक्षेत्र या Speech Area है। उधर का काला भाग ही नहीं पर उधर का Subcortical white matter भी जो इस काले भाग को मस्तिष्क के दूसरे भागों से जोडता है वह भी भाषणक्षेत्र में सम्मिलित है। स्थूल रूप से ऐसा कह सकते हैं कि वाम मस्तिष्क गोलार्ध के प्रथम तथा द्वितीय Temporal Convolution के मध्य भाग से लेकर पीछे Angular Gyrus तक और आगे की ओर द्वितीय तृतीय Frontal Convolution के पिछले सिरो तक का सारा प्रदेश Speech Area कहाता है।

Motor Aphasia —इस भाषणक्षेत्र में तीसरे Frontal Convolution के पिछले निचले भाग में और कण्ठ तथा जिह्वा के चेष्टाक्षेत्रों (Motor Centres) के समीप ही वाणी का क्षेत्र अर्थात् Spoken Speech का क्षेत्र है इसे Broca's Area भी कहते हैं। इस क्षेत्र के द्वारा ओष्ठ, मुख, जिह्वा, कण्ठ आदि में सहयोगपूर्वक वाणी की चेष्टा सम्पन्न होती है। इसे Motor Centre of Speech भी कहते हैं। विशेषत इसी क्षेत्र में विकृति हो तो उसे Motor Aphasia कहते हैं।

इसी के पास ऊपर की तरफ दूसरे Frontal Convolution के पिछले भाग में और हाथ तथा अगुलियों के चेष्टाक्षेत्रो के समीप ही लेखनक्षेत्र अर्थात् Productive Centre for Writing है अर्थात् इस क्षेत्र के द्वारा हाथ की मासपेशियों में लेखनक्रिया सम्पन्न होती है। इस क्षेत्र में विकृति आने पर लेखन सम्बन्धी विकृति अर्थात् Agraphia या Dysgraphia का रोग होता है। प्राय जब वाणी में विकृति आती है तब लेखन में भी विकृति आ जाती है। इन दोनों विकृतियों को Motor, Executive या Expressive Aphasia कहते हैं या Mixed Variety of Motor Aphasia कहते हैं।

Sensory Aphasia —उपर्युक्त भाषणक्षेत्र के अन्दर गहराई में अर्थात् Superior Temporal Convolution के पिछले भाग में श्रवण केन्द्र या Auditory Centre है। इस केन्द्र में आने वाले सूत्रों में विकृति हो तो शब्द सुनाई नहीं पडता अर्थात् Word Deafness का रोग होता है।

इसी तरह Parietal Lobe के Angular Gyrus में तथा Superior Temporal Convolution के पिछले भाग में लिखे हुए शब्दों को ग्रहण करने का केन्द्र अर्थात् Visual Speech Centre है इसमें Occipital Lobe से आने वाले सूत्रों में विकृति हो तो लिखित शब्दों के पढने में कठिनता होने लगती है इसे Word Blindness या Visual Aphasia कहते हैं इसे Alexia भी कहते है।

यदि Superior Temporal Convolution में ही विकृति आई हो तो Auditory Aphasia या Word Deafness का ही लक्षण होता है। यदि Parieto Occipital क्षेत्र में ही विकृति आई हो तो केवल Visual Aphasia या Word Blindness का ही लक्षण

होता है । हो सकता है कि रोग व्यापक हो तब रोगी बोले तथा लिखे दोनो शब्दो के ग्रहण करने मे असमर्थ होता है। इसे Receptive Aphasia कहते हैं। यदि ऐसा हो तो इसके परिणाम रूप मे Expressive या Motor Aphasia भी हो जाता है ।

यह भी ध्यान रखना चाहिये कि भाषण के समय सारा भाषण क्षेत्र काम कर रहा होता है इसलिए भाषण सम्बन्धी क्षेत्र मे विकृति आ जाए तो सारे भाषण क्षेत्र मे विकृति आ जाती है। अत यद्यपि Pure Motor Aphasia तथा Pure Sensory Aphasia मिलते हैं परन्तु दोनो का मिश्रण कुछ अधिक सुलभ है। Expressive Dysphasia मे रोगी अपने भाव को उचित शब्दो मे ठीक तरह प्रकट नही कर सकता या उन्हें ठीक तरह से लिख नही सकता। अर्थात् उसके भाषण या लेखन की गति मन्द या रुद्ध सी हो जाती है।

कारण—Middle Cerebral Artery को Artery of Aphasia कहते है। बडी आयु मे उसके अन्दर Arherosclerosis होने से बहुधा वाग्दोष उत्पन्न होता है अर्थात् उसके कारण Infarct या Ischaemia के हो जाने से भाषण क्षेत्र विकृत होता है । यह रोग लगभग असाध्य होता है। Malignant tumour के मस्तिष्क मे हो जाने से भी भाषण सम्बन्धी विकृति होती है, बिना शस्त्र कर्म के वह भी असाध्य होती है। चोट लगने के बाद Cerebral Oedema होकर भी भाषण क्षेत्र मे Ischaemia होकर या Infarct बनकर यह रोग होता है । परन्तु एक सप्ताह बाद भाषण क्षेत्र का आहत भाग कुछ कुछ काम करने लगता है। Benign growth या Subdural Haematoma के कारण भी धीरे-धीरे मूकता का रोग होता है पर शल्य कर्म से ये ठीक हो जाते हैं।

Dysarthria या भाषण दोष या उच्चारण दोष

कण्ठ मे उदान वायु के निकलने से आवाज उत्पन्न होती है और उस आवाज को स्वरूप मिलता है जिह्वा, तालु, मुख, ओष्ठ आदि की उचित चेष्टा से। इन अगो की नाडियो या माँसपेशियो मे विकृति उत्पन्न हो जाय तो उसे भाषण दोष या Dysarthria कहते हैं।

ऊपर भाषण क्षेत्र Speech area से चेष्टा सूत्र Upper motor Neurones आरभ होकर नीचे उतरकर Medulla या Bulb के अन्दर विद्यमान Nuclei मे समाप्त होते है और वहा से Lower Motor Neurones आरभ होकर अनेक Cerebral Nerves द्वारा कण्ठ, जिह्वा, मुख, तालु, ओष्ठ, आदि की मासपेशियो मे समाप्त होते हैं। इन चेष्टा सूत्रो द्वारा तो इन अगो मे चेष्टा उत्पन्न होती है पर सबका परस्पर सहयोग Coordination का कार्य Cerebellum तथा Basal ganglia से आने वाले सूत्रो द्वारा सम्पन्न होता है। अब यदि इनमे से किसी मे रोग हो या मासपेशियो मे रोग हो तो भाषण दोष Dysarthria हो जाता है।

Bulb के Nuclei मे ऊपर दोनो गोलार्धों से चेष्टा सूत्र आते है। इसीलिए पक्षाघात मे भाषण का घात पूर्ण रूप से नही होता। हा यदि दोनो ओर के Pyramidal सूत्रो मे क्षीणता आ जाए जैसे उनके रुग्ण होने से शाखाओ मे स्तब्धता Rigidity उत्पन्न हो जाती है वैसे ही भाषण-सम्बन्धी मासपेशियो मे अर्थात् जिह्वा, मुख, तालु, ओष्ठ आदि मे स्तब्धता के आ जाने से भाषण कुछ कष्ट साध्य या यत्न साध्य हो जाता है तथा भाषण की गति मन्द हो जाती है इसे Spastic Dysarthria कहते हैं। मस्तिष्क मे Arteriosclerosis के कारण Pyramidal सूत्रो मे क्षीणता आती है।

यदि दोनो ओर के Lower Motor Neurones मे विकृति हो जैसे Medulla के रुग्ण होने से होता है तब Flaccid या Atrophic type का Dysarthria होता है अर्थात् भाषण सम्बन्धी मासपेशियो की निर्बलता के कारण आवाज निर्बल, पोली या अस्पष्ट हो जाती है, बहुधा आनुनासिक भी हो जाती है।

Cerebellum मे दोनो ओर Disseminated sclerosis हो या उसकी धमनियो मे धमनी रोग Arteroisclerosis हो या उसमे Neoplasm हो तो Coordination के न रहने से भाषण मे विषमता उत्पन्न हो जाती है जिसमे व्यक्ति अक्षरो को अलग-अलग करके बोलता है अर्थात् शब्दो मे परस्पर व्यवधान बढ जाता है, इनमे से पहले भाषण को Scanning speech कहते है, दूसरे को जिसमे कोई शब्द बहुत हलका और थोडा ठहरकर कोई अधिक ऊचा बोला जाता है Staccato speech कहते है। Parkinson's disease मे भी मुख की मासपेशियो मे स्तब्धता के कारण Spastic Speech हो जाती है।

Stammering—हकलाकर बोलने का रोग भी बहुत सुलभ है। जिह्वा, तालु, मुख, ओष्ठ आदि की मासपेशियो मे से किसी मे स्तम्भ या Spasm होकर इनके परस्पर सहयोग मे बाधा पड जाती है जिससे शब्दोच्चारण का प्रवाह बीच मे कुछ देर तक रुका रहता है। क, ज ट, ड, प, ब आदि किसी व्यजन का उच्चारण करते समय ऐसा स्तम्भ विशेष होता है। सभवत मुखसम्बन्धी मासपेशियो

मे आने वाली चेष्टावाही नाडियो मे निर्बलता का होना इसका कारण है।

चिकित्सा—उपर्युक्त रोगी की कोई सफल औषध चिकित्सा नही। कुछ लाभ Vitamin B_{12} के इन्जेक्शन्स से हो सकता है। बालको मे १०० मिलि० Pyrithioxine (Encephabol) की गोली के दिन मे तीन बार कुछ मास तक देने से लाभ हो सकता है। छोटे बालक को इसकी दो गोली दैनिक दी जाती है। ३ वर्ष से छोटे मे १ गोली दैनिक दें। कोई-कोई बल्य या Tonic औषधियों का प्रयोग करते हैं। क्योंकि उनका मत है कि यह रोग Malnutrition के कारण होता है। कोई मानते है कि यह रोग पहले पहल किसी भारी Tension के कारण आरम्भ होता है। अत जब यह रोग आरम्भ हो तभी Tension को रोकने का उपाय करें। ऐसे बालक को धमकाना या उसे छेडना या उसकी मखौल उडाना ठीक नही, इससे यह रोग बढता है।

अब यूरोप मे Haloperidol नामक एक औषधि निकली है जिसे इस रोग की सफल औषध कहा जाता है।

सन्यास मूर्छा—' Cerebral Coma, Cerebral Ischaemia, Hypertensive Cerebral Vascular disease, Strokes, Apoplexy (Plexy=Strike) **तथा मस्तिष्क धमनी रोध** (Cerebral Thrombosis, Cerebral Atherosclerosis) **तथा पक्षाघात** (Hemiplegia due to Carotico-basilar Insufficiency)

हमारी होश Cortex की क्रिया के ठीक-ठीक रहने पर निर्भर है। परन्तु उसकी क्रिया भी Thalamus के तथा Pons के निचले सिरे से Thalamus तक रहने वाले Reticular Formation के ठीक-ठीक रहने पर निर्भर है। इसमे सज्ञावाही सूत्रो तथा Cortex दोनो से आने वाले Collateral सूत्र इकट्ठे होते हैं। अतएव Cortex या Brain Stem मे से कोई सा भाग भी रोगग्रस्त हो तो हमारी होश जाती रहती है अत आक्सीजन और ग्लूकोज की पर्याप्त मात्रा मस्तिष्क को मिलनी चाहिए। होश सर्वथा न रहे तो उसे Coma कहते है वह कुछ-कुछ हो तो उसे Stupor या Semi-coma कहते हैं।

(१) ६०-७० वर्ष की आयु के भारी शरीर के तथा आसनशील व्यक्तियो मे विशेषत पुरुषो मे मस्तिष्क धमनियो मे क्षीणता की प्रक्रिया के हो जाने से ये रोग होते हैं। अर्थात् यदि मस्तिष्क धमनियो की मासमय दीवार मे क्षीणता (Arteriosclerosis या Hyaline Degeneration) विशेष हो तो किसी तीव्र मानसिक आवेश या शारीरिक श्रम के समय उनमे रक्तभार के जो पहले भी नार्मल से अधिक होता है सहसा अत्यधिक हो जाने से कोई सूक्ष्म मस्तिष्क धमनी फट जाती है जिससे मस्तिष्क मे रक्तस्राव हो जाता है। परीक्षक लोग बताते हैं कि यदि किसी सूक्ष्म धमनी मे पहले से मार्गावरोध Stenosis हो और उसपर B P बढ जाए तो उस धमनी मे मार्गविरोध हो जाता है। Spinal Fluid मे रक्तस्राव को देखकर इस रोग का निश्चय हो जाता है। इस Clot या Cyst से समीपस्थ धमनियो के दब जाने से मस्तिष्क के उस स्थान को आक्सिजन का मिलना बन्द हो जाता है और वहाँ Neurones मे Necrosis हो जाता है। (अर्थात् वहा Infarct बन जाता है जो रग मे लाल हो जाता है) जिससे सहसा ही रोगी मूर्छित होकर गिर पडता है। फिर बाद मे Infarct के आस पास वहाँ श्वयथु (Oedema) भी हो जाता है उसके हो जाने से तथा उसके दबाव के कारण वह चिरकाल तक बेहोश (Coma मे) पडा रहता है। इस मूर्छा मे बहुधा वमन भी होती है इसे सन्यास मूर्छा कहते है। फिर २-४ दिन मे जब Medulla मे विद्यमान प्रधान केन्द्रो पर रक्तस्रावजनित फूले हुए मस्तिष्क खण्ड का दबाव पड जाता है तब मृत्यु हो जाती है। कभी कभी सिरदर्द, जो मस्तिष्क-द्रव के अन्दर भार या प्रेशर के (स्वल्प रक्तस्राव के कारण) बढ जाने से होती है इस मूर्छा से पहले होती है जिससे गिरने से पहले रोगी भारी दर्द की शिकायत करते है। इसे Stroke या Apoplexy कहते है।

(२) इस रक्तस्राव जनित मूर्छा (जो २० प्र० श० Cerebrovascular रोग मे होता है) की अपेक्षा भी धमनी रोध जनित मूर्छा (Cerebral Thrombosis या Carotid Thrombosis) का रोग (जो ६० प्र० श० Cerebrovascular रोग मे होता है) अधिक पाया जाता है। मस्तिष्क की सूक्ष्म धमनियो के आभ्यन्तर स्तर के नीचे ही वहीं पर Internal Carotid धमनी के विभक्त होने के प्रदेशो मे स्थान-स्थान पर वसा बैठ जाती है अर्थात् उनमे Fatty Degeneration हो जाता है। जिसमे बाद मे कैल्सियम बैठ जाता है। जितनी आयु बडी होती है उतना ही वहा कैल्सियम सुगमता से बैठता है। उस

कठोर उभार या Subintimal Nodule या Fibrofatty material से धमनी का स्रोत ६०-७०% तक बन्द या तंग हो जाता है। Internal carotid artery के Carotid sinus के प्रदेश पर, Vertebral artery के Basilar artery के साथ सन्धिप्रदेश पर और Middle cerebral artery मे ये Nodules विशेषत पाए जाते हैं। इन Nodules पर रक्त का Thrombus भी बैठने लगता है। बाद में कभी सोते समय जब कि रक्त की गति स्वभावत मन्द होती है या जिस समय हृदय स्वभावत ही निर्बलता से स्पन्दन करता है या Hypotension हो तब धमनी के इस न्यूनाधिक रूप मे अवरुद्ध भाग के आगे विद्यमान मस्तिष्क के एक भाग को रक्त कम पहुँचने लगता है जिससे वहा मस्तिष्क में Infarct बन जाता है जो फीके रंग का होता है अर्थात् वह भाग नरम हो जाता है। इस प्रकार Hypotension भी इस का कारण बन जाता है जिससे रोगी मे धीरे-धीरे मिनटो या घण्टो मे मूर्छा हो जाती है। हो सकता है कि एक दिन एक हाथ सोया हुआ तथा कुछ विकृत हुआ लगे। दूसरे दिन यह विकृति और अधिक लगे, साथ ही वाणी मे भी कुछ विकृति लगे और तीसरे दिन प्रात काल उठने पर आधा अंग ही मरा हुआ लगे। एकतिहाई रोगियो मे यह रोग सहसा हो जाता है। कुछ एक मे निद्राकाल मे यह रोग हो जाता है। इसे धमनीरोधजनित मूर्छा कहते हैं। यह धमनियो मे Atheroma हो जाने के कारण होता है अर्थात् धमनियो मे वसामय काठिन्य (Atherosclerosis या Nodular arteriosclerosis) के कारण होती है। जबकि रक्तस्राव जनित मूर्छा धमनियो के जीर्ण क्षीण हो जाने अर्थात् (Arteriosclerosis या Medial Degeneration) के कारण तथा उच्च रक्तभार के कारण होती है। Atheroma को अधिक वसामय आहार और न्यून शारीरिक श्रम से उत्पन्न Lipaemia के कारण होने वाला कहा जाता है। ऐसी अवस्था मे Thrombosis या Thrombin का निक्षिप्त हो जाना भी अधिक स्वाभाविक होता है। Carotid धमनी मे न्यूनाधिक अवरोध होने पर एक ओर की कनपटी पर दर्द होता है। Basilar धमनी मे अवरोध हो रहा हो तो सिर के पिछले (Occipital or Suboccipital) प्रदेश पर दर्द हुआ करता है।

इन दोनो अवस्थाओ मे ही मस्तिष्क के इस भाग को पोषण मिलना बन्द हो जाता है एव वह मृत (Infarct या Necrosed) हो जाता है। परन्तु शीघ्र ही आसपास की रक्तवाहिनियो मे से रक्त वहा पहुँचने लगता है और उसका पोषण फिर आरम्भ हो जाता है और वहाँ Scar Tissue बन जाता है। अर्थात् वहा Gliosis या Fibrosis हो जाता है। इसीलिए धमनी रोध स्वल्प मात्रा मे हो तो रोगी धीरे-धीरे होश मे आ जाता है और कुछ महीनो मे चलने फिरने योग्य भी हो जाता है। Internal Carotid मे Thrombus के कारण अवरोध हो जाने पर Basilar artery मे से Post या Ant Communicating शाखाओ के द्वारा रक्त आने लगता है या Ex Carotid की Ex Maxillary मे से Ophthalmic Artery मे रक्त आने लगता है। Temporal व Sup Orbital Arteries Ophthalmic से सम्बन्धित हो जाती हैं। Ex Carotid Art की Occipital शाखा Vertebral Art की Muscular शाखा से सम्बन्धित हो जाती है। इस प्रकार Collateral Arteries के बन जाने से मृत हुए भाग मे फिर रक्त जारी हो जाता है। मस्तिष्क के एक भाग को, चिरस्थायी अवरोध (Atheroma) के कारण, रक्त कम मिले तो उसमे Encephalomalacia हो जाने से वह मृदु सा हो जाता है जिससे बाद मे उसमे रक्तस्राव (Vascular Rupture) भी हो जाता है।

यो तो मस्तिष्क की किसी सूक्ष्म धमनी या शिरा मे भी अवरोध और रक्तस्राव के उपद्रव हो सकते हैं तथापि मध्यम मस्तिष्क धमनी (Middle Cerebral Art) की Lenticulo Striate शाखा मे ये उपद्रव विशेषत होते हे और क्योकि यह शाखा Internal Capsule मे विद्यमान चेष्टा सूत्रो को रक्त प्रदान करती है, अत उसके मृत हो जाने से पक्षाघात का लक्षण हो जाता है। ६०-७०% रोगियो मे यह रक्तस्राव Internal Capsule तथा Putamen के समीप होता है। मस्तिष्क मे Atheroma की प्रक्रिया प्राय आधी आयु से पहले ही शुरू हो जाती है परन्तु यदि मधुमेह रोग हो, देह मे स्थूलता हो, रक्तभार अधिक हो तो यह प्रक्रिया अधिक व्यापक रूप मे होती है। उनमे ६०-७० वर्ष की आयु तक यह प्रक्रिया अन्यो की अपेक्षा अधिक उग्ररूप मे होती है। इसलिए रक्तस्राव या धमनीरोध के रोग उन्ही मे होते है जिनका रक्तभार अधिक बढा हुआ होता है तथा जिन्हे मधुमेह होता है तथा इस अवस्था मे दूसरी ओर पक्षाघात होता है। मस्तिष्क रक्तस्राव के रोगियो मे तो रक्तभार सदा बढा होता है।

अवरोध जनित मूर्छा में भी आधे से अधिक रोगियों में रक्तभार बढ़ा होता है तथा मधुमेह होता है। इस धमनी के अतिरिक्त Ant या Post. Cerebral, Internal Carotid, Basilar Artery में भी कभी-कभी अवरोध का रोग होता है। Ant Cerebral में रोध हो तो दूसरे ओर की टाँग में घात (Sensory Motor Paralysis) होता है। Post Cerebral में रोध हो तो Calcarine Cortex का पोषण बन्द होने से एक ओर दृष्टिमन्दता (Contralateral hemianopia) का लक्षण होता है। Basilar में रोध होने से Vertigo Tinnitis तथा थोड़ी देर के लिए मूर्छा हो जाने का लक्षण होता है। Internal Carotid में रोध हो तो उस ओर दृष्टिनाश का लक्षण होता है तथा दूसरी ओर की शाखाओं तथा चेहरे पर घात होता है। Post Inf Cerebellar Art में रोध से देर तक तथा घोर Vertigo का लक्षण रहता है जिसमें वमन (Meniere's disease) भी होती है इस प्रकार शिरोभ्रम का रोग धमनी रोध का सूचक होता है।

Strokes के रोगियों में से १५% २०% रोगियों में यह रोग Embolus या Thrombus के कारण होता है जो हृदय से आता है साधारणतः Atrial Fibrillation रोग के उपद्रव रूप में होता है। यह Embolus प्राय Middle Cerebral Artery में अवरुद्ध होता है। इस अवस्था में मूर्छा सहसा आरम्भ होती है।

पूर्व रूप

मस्तिष्क धमनियों में रक्तस्राव होने की अपेक्षा Carotid या Vertebral धमनियों में अवरोध (Stenosis या Thrombosis) या उनके मोत के तंग होने का रोग बहुत अधिक होता है और क्योंकि यह रोग कभी तो सहसा होता है जिसे Apoplectic type का कहते हैं 35% अवस्थाओं में होता है कभी Subacute Type (४० प्र० श०) में अर्थात् धीरे-धीरे होता है, तब इसके कुछ एक पूर्वरूप होते हैं। अर्थात् कभी-कभी मस्तिष्क के एक भाग में Transient Ischaemia के होने से एक जंघा में निर्बलता आरम्भ हो जाती है। (Monoplegia) या एक ओर दोनों शाखाओं में निर्बलता हो जाती है या एक ओर के पैर या जाँघ में हर्ष या सुप्ति की प्रतीति रहती है। Paraesthesia) या एक आँख में तिमिर (Blindness) रोग हो जाता है (जो Ipsilateral या उसी ओर होता है) या आधे क्षेत्र में तिमिर रोग (Homonymous Hemianopia) हो जाता है अर्थात् अस्थायी पक्षाघात हो जाता है या अस्थायी मूर्छा हो जाती है या कभी-कभी अपस्मार सदृश आक्षेप होते हैं। या शिरोभ्रम होकर गिर जाने की सी प्रतीति होती है या भाषण की शक्ति कम (Aphasia) हो जाती है। यदि दोनों ओर Bilateral thrombosis हो जो Chronic रूप में होता है तो रोगी का हृदय संकुचित हो जाता है, वह अपने में ही केन्द्रित रहता है जहाँ से परिवर्तन को पसन्द नहीं करता। स्वभाव बदल जाता है, क्रोध बढ़ जाता है, विचार-शक्ति मन्द पड़ जाती है या Parkinsonism के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। मस्तिष्क की वृत्ति, स्मृति, एकाग्रता, बुद्धि आदि शक्तियाँ भी निर्बल होती जाती हैं (Dementia)। अन्त में रोगी चंगा-भला सोता है पर सवेरे खड़ा होने पर जब गिर पड़ता है तब पता लगता है कि उसका एक बाजू निर्बल हुआ-हुआ है। हो सकता है कि ये पूर्व रूप या रोग के हल्के-हल्के दौरे कई दिनों या महीनों तक समय-समय पर होते रहें।

लक्षण

Intracerebral Haemorrhage—रक्तस्राव जनित सन्यास मूर्छा, Cerebral Ischaemia के १०% रोगियों में होती है तथा सहसा किसी भारी श्रम के बाद होती है तथा उसके होने से पहले रोगी को छोटी-छोटी मूर्छा के वेग भी हो चुके होते हैं। पहले आध घण्टे तक सिर में भारी दर्द होता है (Sub arachnoid प्रदेश में रक्तस्राव से Meningeal irritation होकर होता है या Intracranial Pressure के बढ़ने से) जिसमें किसी औषधि से आराम नहीं आता, साथ ग्रीवा में स्तम्भ भी होता है। इसके बाद एक-दो मिनटों में जो मूर्छा होती है वह सहसा होती व गहरी होती है तथा इसके पहले शिरोभ्रम तथा स्वेद होकर वमन भी होती है। श्वास प्रश्वास में घुर्राटे की आवाज होती है (मृदु तालु के Paralysis के कारण) तथा वह Cheyne stokes प्रकार का भी होता है तथा उसके साथ एक तरफ का गाल जिस ओर घात होता है दूसरी ओर की अपेक्षा अधिक फूलता है (गाल के मांस में Paralysis होने से वहि श्वास के समय में) अर्थात् यों तो सारा शरीर शिथिल होता है पर जिधर का गाल अधिक फूलता है उधर की शाखायें अधिक शिथिल होती हैं। दोनों पुतलियाँ फैली होती हैं तो भी जिस ओर रक्तस्राव (Subdural Haematoma) होता है उधर की पुतली अधिक फैली होती है। प्रकाश के पड़ने पर पुतलियाँ संकुचित नहीं होतीं। मस्तिष्क में रक्तस्राव के कारण या Subarachnoid रक्तस्राव से ग्रीवा अकड़ी हुई होती है, कभी-कभी आक्षेप भी होते हैं। Cerebrospinal द्रव

या मस्तिष्क द्रव मे रक्त का अश पाया जाता है। यो तो सभी शाखायें शिथिल होती है पर जिधर पक्षाघात होता है उधर की टाग कुछ फैली हुई तथा बाहर की ओर विवर्तित होती है तथा उसमे स्वाभाविक शक्ति या Tone लुप्त होती है। दूसरी टाग कुछ मुडी हुई होती है। मृत भाग अधिक नर्म होता है। उधर की टाग को उठाकर छोडें तो वह धडाम से नीचे गिरती है जबकि दूसरी ओर टाग उठाकर छोडने पर क्रमश नीचे आती है।

जिस ओर शिथिलता अधिक होती है उधर के पैर के तलुए को खुजलायें तो अगूठा ऊपर की ओर मुड जाता है (Plantar Reflex Extensor होता है) उस पर प्रबलता से खुजलाने पर भी उधर की टाग जरा नहीं हिलती जबकि दूसरी ओर के पैर को प्रबलता से खुजलाने पर उधर की टाग हिलती है। Abdom reflex लुप्त होता है। रोगी का सारा शरीर शीतल सा तथा स्वेद से युक्त होता है। तापमान नार्मल से कम, नाडीगति प्रति मिनट घटी हुई होती है, नाडी भरी हुई, दीर्घ, (Full, Bounding) होती है। उसके मूत्र मे अलव्यूमिन मिलता है। उसका रक्तभार बढा होता है। चेहरे पर नीलापन झलकता है। Ventricles मे रक्तस्राव हो तो ज्वर भी ऊचा होता है। मस्तिष्क के जिस ओर रोग होता है उसके दूसरे ओर Corneal Reflex लुप्त होता है।

मस्तिष्क मे विद्यमान Hypothalamus के केन्द्रो तथा Lateral Ventricle मे रक्त के भर जाने के कारण रक्तस्राव जनित मूर्छा अच्छी नही होती। यदि रोगी को २ दिन तक होश न आये और Plantar Reflex दोनो ओर Extensor हो तो मृत्यु निश्चित समझनी चाहिए। इस अवस्था मे मूर्छित रोगी का सिर तथा आखें रक्तस्राव युक्त बाजू की ओर को मुडे हुए होते हैं अर्थात् मृत पक्ष से विपरीत दिशा मे होते है (Conjugate Deviation of the Eye) इस अवस्था मे उसकी मृत्यु २ दिन से लेकर १-२ सप्ताह तक हो जाती है। मूर्छा गहरी हो, सब (Reflexes लुप्त हों, Cheyne stokes श्वास हो, मूर्छा से पहले वमन हुई हो, ज्वर ऊचा हो तो मृत्यु निकट है ऐसा समझना चाहिए। इसके विपरीत धमनीरोध जनित (Cerebral infarction) मूर्छा क्रमश होती है तथा शीघ्र अच्छी हो जाती है। रोगी का यद्यपि रक्तभार बढा हुआ होता है, उस समय इसमे रक्तभार गिरा हुआ होता है। कभी-कभी बिना मूर्छा के भी पक्षाघात होता है जिसमे आधा अग शिथिल हो जाता है। Hemisphere मे Infarct बड़ा हो तो मूर्छा का लक्षण होता है। उसमे सब प्रतिक्षिप्त चेष्टाए (Reflexes) लुप्त हो जाती है। निचले जबडे मे तथा जीभ मे भी घात होता है जिससे जीभ निकालने पर वह मृत अग की ओर फिरी हुई दिखती है। चबाने, निगलने, व धड की मासपेशिया ठीक होती हैं। सिर तथा आँखो को मृत भाग की ओर घुमाने मे कुछ कठिनता होती है। उसके शरीर मे हुआ यह पक्षाघात धीरे-धीरे अच्छा होने लगता है। २-३ दिन मे Extensor, Plantar Reflex होने लगता है। फिर १-२ सप्ताह मे पहले मृत जघा मे फैलाने तथा उसके भार खडे होने की शक्ति आती है। मुख मे हुआ घात भी जाघ के साथ-साथ ठीक होने लगता है। पहले माथे का घात ठीक होता है। भाषण शक्ति भी आ जाती है। अन्त मे बाहु का घात भी धीरे-धीरे ठीक होने लगता है। तो भी बाहु मे न्यूनाधिक अशक्ति रह जाती है। यह कोहनी और कलाई पर सकुचित रहती है और शरीर के साथ कुछ सटी रहती है जैसे जाँघ की मासपेशियो मे स्तम्भ रहता है वैसे बाहुओ की सकोचक माँसपेशियो मे कुछ स्तम्भ रहता है, तथा Extra pyramidal सूत्रो के स्वतन्त्र होने से इनमे Deep Reflexes तीव्र होते है। बाहु मे फैला सकने की शक्ति कम लौटती है। हाथ मे तथा पैरो की अगुलियो मे तो पक्षाघात का लक्षण कुछ न कुछ बना ही रहता है जिससे हस्त कौशल का कोई काम वह नहीं कर सकता। इस रोग मे क्योकि ऊर्ध्व चेष्टा सूत्र (Upper Motor Neurones) कुछ न कुछ रुग्ण रहते ही है, इसलिए दोनो मृत शाखाओं मे न्यूनाधिक स्तम्भ या अकडन का लक्षण रहता है। वाम पक्ष मे पक्षाघात हो तो भाषण शक्ति नष्ट नहीं होती। रोग होने के एक सप्ताह तक मृत अगो मे कुछ शक्ति लौट आये तो रोग के पूर्णतया ठीक होने की आशा करनी चाहिए। यदि एक मास तक भी पर्याप्त शक्ति न लौटे तो वह अपने अगो से ठीक काम ले सकेगा ऐसी आशा नही की जा सकती। वृद्ध मे इस रोग का दूसरा हमला प्राय घातक होता है। इस मूर्छा का भेद Cerebral Malaria व Uraemia की मूर्छा से करना चाहिए। Electro encephalography से इस रोग का निश्चय हो सकता है इससे सिर की धमनियो मे मार्ग रोध देखा जा सकता है।

साध्यासाध्य

रक्तभार अधिक हो, हृदयरोग हो, मधुमेह हो, आयु बडी हो, तो यह रोग असाध्य होता है। ७० वर्ष से ऊपर रोग हो तो ८०% मे मृत्यु हो जाती है। ५० वर्ष से ऊपर ५०% मे मृत्यु हो जाती है।

होश आने पर जितनी अवस्था देर मे सुधरे उतना ही रोग को कष्टसाध्य समझना चाहिए। जितना सुधार होना

होता है उतना ६ सप्ताह तक हो लेता है। उसके वाद प्राय आगे सुधार नहीं होता।

चिकित्सा —

प्रतिरोधक चिकित्सा :—

इस रोग के पूर्व रूपों के प्रकट होने पर यो तो Internal Carotid के Thrombosed Segment के Resection का शल्यकर्म ठीक है पर बहुधा ऐसा करना सम्भव नहीं होता तथापि रोगी के रक्तभार को कम करने की औषधि देनी चाहिए। रोगी को मानसिक आवेशो से बचना चाहिए। मानसिक तथा शारीरिक श्रम भी कम करना चाहिए। निद्रा अधिक लेनी चाहिए। अधिक भोजन तथा तीक्ष्ण उष्ण गुण भोजन से बचना चाहिए। जान्तव फैट का प्रयोग बन्द करके तिल-बिनौले आदि का तेल ही लेना चाहिए। लवण बहुत कम लेना चाहिए। रक्त मे वसा या चर्बी के अधिक होने अर्थात् Hyperlipaemia या Hypercholesterolemia के कारण Angina तथा Cerebral thrombosis होते हैं उसे कम करने के लिये Clofibrate नामक औषधि का प्रयोग भी ठीक रहता है पर यह महगी है। मूर्छा के हलके-हलके वेग हो Transient ischaemic attacks हो, C S F मे रक्त न हो, मूत्र मे अलब्यूमिन न हो, यकृत अधिक रुग्ण न हो, रक्तभार ज्यादा न हो अर्थात रक्तस्राव का भय न हो तो रक्त के जमने की प्रक्रिया को मन्द करने के लिये ५० मिलि० (५ हजार यूनिट्स) Heparin Sodium ४-४ घण्टे पर ४ दिन तक शिरा द्वारा दे देना चाहिए और उसके वाद किसी Anti-Coagulant औषधि (Dindevan, Marcoumar, Sinthrome, Warfarin Sodium या Coumadin मात्रा क्रमश २५ मिलि० दैनिक, १–३ मिलि० दैनिक, ४ मिलि०, ८ मिलि० दैनिक का प्रयोग भी लगातार ५-६ मास तक करते रहना चाहिए कि जितने से Prothrombine Time २८-३६ सेकण्ड हो जाय। इससे Thrombosis की प्रक्रिया रुक जाती है तथा दूसरे दौरे के होने की आशका कम होती है। यदि हृदय से आए Emboli के कारण रोग हो तो यह चिकित्सा विशेष उपयोगी है। Myocardial infarction से रोग हुआ हो तो भी यह उपयोगी है।

प्रतिषेधक चिकित्सा —

मूर्छा से पहले को सिरदर्द तथा बेचैनी के लिए Codeine Sulphate या Phosphate १ ग्रेन मात्रा मे मुह मे या त्वचा द्वारा दें। आक्षेप होते हो तो Phenytoin Sodium १०० mg दे। मूर्छा हो जाने पर रोगी के सारे शरीर को १-१ घ० वाद एक-एक तरफ फेरकर रखना चाहिए ताकि जिह्वा के कारण श्वासरोध न होने पाये। मुख मे तथा नाक मे सचित स्राव को निकालने तथा श्वासरोध को दूर करने के लिये स्वर कैथिटर को २५ सी० सी० सीरिञ्ज मे लगा इससे Aspirate करे तथा आक्सीजन देवें, शरीर को गर्म रखना चाहिए। दो दिन तक मुख से कोई आहार न देना चाहिये। मुख को जल से गीला रखना चाहिये क्यो कि पानी पिलाने से उसके श्वास मार्ग मे जाने का भय रहता है, श्वास मार्ग मे किंचित् मात्र जल के जाने से खाँसी उठने लगती है। २५ प्रतिशतक ग्लूकोज जल १–२ हजार सी० सी० की मात्रा मे प्रतिदिन शिरा द्वारा भी देना चाहिये या नाक द्वारा पेट मे नाली (Ryle's Tube) लगा कर २५% ग्लूकोज जल बूद-बूद करके देते रहना चाहिये। या लवण और ग्लूकोज मिश्रित जल के अनीमा द्वारा देते रहने से पानी भी शरीर मे पहुच जाता है तथा पेट भी साफ हो जाता है। आहार व जल Plastic Stomach Tube के द्वारा ही दिया जा सकता है। वह पेट मे ही गई है, इसका निश्चय पेट से Acid के Aspiration के द्वारा हो सकता है। दूध २ पाइन्ट, सन्तरे का रस ४ औस इमो के द्वारा दिये जा सकते है। Water Soluble Multivitamin भी ग्लूकोज जल मे मिला दे। वाद मे दूध भी कभी-कभी दे दें। मल त्याग के लिये दूसरे तीसरे दिन ट्यूब द्वारा पैराफीन लि० ३० मिलि० दे देना चाहिये। आँखो मे भी इसे डालते रहें। मूर्छा मे मूत्र नही आता, अत मूत्राशय मे १-२ सप्ताह तक केथेटर लगाये रखना चाहिये या ८-८ घन्टे पर Catheter लगाना चाहिये। मूत्र मार्ग मे जीवाणु सक्रमण की रोक के लिये Sulphadimidine ½ ग्राम दिन मे २ वार या Furadantin ५० मिलि० ३ वार दे। पीठ पर स्प्रिट तथा डस्टिंग पाउडर लगाते रहना चाहिये ताकि शय्या व्रण न हो जाय। आक्सिजन के प्रयोग से मस्तिष्क मे Anoxia होने का भय नही रहता। फुफ्फुसो मे रक्त-सचय होकर कोई उपद्रव न हो जाय इसके लिये Penicillin ५ लाख यूनिट्स का मास द्वारा दिन मे दो वार प्रयोग करना चाहिये। मास द्वारा Luminal Sodium का ½ ग्रेन चार वार या Chlorpromazine ५० मिलि० मास मे या Phenytoin Sodium १०० मिलि० जल मे ट्यूब द्वारा ६-६ घण्टे पर दे या इसका Solution मास द्वारा दें। रोगी अच्छा होने लगे तो इसका प्रयोग जारी रखना चाहिये। Angiography (Diodone ३५%-४२% ५-६ सी. सी को Internal Carotid Art मे डालकर तुरन्त

X-ray चित्र लेने की विधि) से जो पक्षाघात से विपरीत दिशा के कपाल की की जाती है, रक्तस्राव के स्थान का पता लगाकर उस रक्त को या जमे हुए क्लाट को निकालने से ही यह मूर्छा हट सकती है। अत साधारणत यह रोग ठीक नहीं होता। अत इस रोग की कोई सफल चिकित्सा नहीं।

यदि **धमनीरोध-जनित मूर्छा** हो तो रोगी की चारपाई का सिर कुछ नीचा रख कर ग्रीवा को मुड़ने न दे ताकि Vertebral धमनी दवे नहीं। मस्तिष्क के एक भाग को रक्त कम मिलने से Shock के कारण स्वेद, हस्तपाद शीतलता के लक्षण होते है अत Dextran के ६% Solution के ५०० मिलिलि० मात्रा मे शिरा द्वारा ३ दिन तक देते रहने से Thrombosis तथा रक्त की वढी हुई Viscosity मे कमी होती है तथा मस्तिष्क के मृतभाग का पोषण भी होता है। साथ ही Dexamethasone ४ मिलि० मास द्वारा ६-६ घण्टे पर देने से Brain oedema शान्त होता है। Prednisolone के पहले वडी और फिर छोटी मात्रा मे (३० से १० मिलि० दैनिक) देने से भी मस्तिष्क Oedema हटता है। या ५०% ५० मिलिलि० ग्लूकोज सोल्यूशन शिरा द्वारा रोज़ दें। या Ephedrin २५-५० मिलि० मात्रा मे ८-८ घण्टे पर दे। या Noradrenaline वूद-वूद करके Glucos Saline के साथ शिरा द्वारा दे। इसमे भी मस्तिष्क के मृत भाग का पोषण होता है। मूत्र रुका हो तो Catheter द्वारा निकालते रहें। किसी शिराप्रसारक औषधि जैसे Priscol को १० मिलिग्राम की मात्रा मे मास द्वारा दिन मे दो वार दे देना चाहिये या Nicotinic Acid का क्रमश वर्धमान मात्रा मे जव तक वह त्वचा पर दाह करे देना चाहिये या रक्तभार कम हो तो Coramine १½ सी० सी० दिन मे दो वार त्वचा द्वारा दे देनी चाहिए, इससे वहा रक्त की न्यूनता मे पूर्ति होती है। Duvadelan ५-१० मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार देने से Vasodilatation होकर मस्तिष्क के ग्रस्त भाग का पोषण होता है ऐसा माना जाता है। पर Dilatation स तो B P गिर जाता है। अत इन ओषधियो से कोई लाभ नही होता हे। हा Xanthinol Nicotinate (Complamina) गोलियो के दिन मे तीन वार देने से हृदय रक्त की निकासी वढती है, हृदय का स्पन्दन प्रवल होता है। Peripheral arteries से रक्त का परिस्रवण वढता है, मस्तिष्क का पोषण वढता है। अत Cerebral Atheroma की यह उत्तम औषध है। इसके ३०० मिलि० के अम्पूल को मास द्वारा दिन मे २ वार भी दिया जाता है। साथ ही दिन मे ३ गोली दे दी जाती है। रोगी यदि मधुमेही हो तो Insulin देवें। B P ऊंचा हो तो उसे कम नहीं करे ताकि Thrombosis वढे नहीं। रोगी के पायते को ऊंचा तथा सिर को नीचा रखे रहना चाहिये। विरेचन से हानि होती है लाभ नहीं। दूध आदि द्रव भोजन थोडा-थोडा देना चाहिए क्योंकि गले का मास असमर्थ होता है। भोजन देते समय सिर को ऊंचा कर ले। वाद मे Colloidal Iod का प्रयोग करें। विटामिन वी$_1$ B$_6$ B$_{12}$ के इन्जेक्शन देते रहने से तथा किसी शामक और निद्राजनक औषधि देने के तथा रक्तभार अधिक हो तो किसी मूत्रल औषधि के देने से लाभ रहता है।

पक्षाघात रोग मे भी रोगी को इसी उपर्युक्त औषधि का सेवन करना चाहिए तथा निर्वल शाखाओ पर उष्ण स्नान तथा मालिश करानी चाहिए। उनसे मृदु व्यायाम करना चाहिए तथा लघु भोजन स्वल्प मात्रा मे लेना चाहिए। भाषण शक्ति नष्ट हो गई हो तो वह कुछ समय वाद फिर आ जाया करती है। Coumarin Anticoagulant औषधि का जव तक मस्तिष्क मे Softening हो तव तक देना Haemorrhage का कारण वन सकता हे अन्यथा इसके प्रयोग से लाभ ही हो सकता है। रक्तभार अधिक न हो तो इसका प्रयोग करना चाहिए। रक्तभार को कम करने वाली Methyldopa आदि तथा मूत्रल औषधि के देते रहने से रोगी को लाभ होता है। पर रक्तभार अधिक न गिराना चाहिये। रक्तभार से ही मस्तिष्क को रक्त मिलता है। Vasodilator औषधियो से भी रक्तभार गिर जाने के कारण मस्तिष्क को रक्त कम पहुँचता है, अत Vasodilator औषधियो के देने का अव रिवाज नही रहा है। हृदय-वल-वर्धक औषधियाँ ठीक हैं।

Endarterectomy — क्योंकि लगभग २५% रोगियो मे कपाल या Skull के वाहर Carotid artery मे अवरोध Stenosis या Thrombosis होने से रोग होता है ऐसी अवस्था मे रस्सी (Cord) की तरह हुई-हुई यह Artery ग्रीवा मे अनुभव की जा सकती है। Arteriography से इनका निश्चय भी किया जा सकता है। इस अवस्था मे शल्यकर्म–Thrombo endarterectomy से लाभ हो जाता हे।

मृत हुई शाखाओ की असमर्थता को दूर करने के लिये निम्नलिखित वातो का ध्यान रखना चाहिए।

मृत हुए पैर के तलुए की तरफ कोई तख्ता या रेत की पोटली रखी रहनी चाहिए ताकि पैर कपड़ो के वोझ से विषम आकृति का न होने पाय। जाघ वाहर की ओर

विवर्तित न हो जाय, इस उद्देश्य से उसके बाहर की ओर रेत की थैली रखनी चाहिए। मृत हुई बाहु अन्दर की ओर धड़ के साथ न सट जाय इसके लिए कक्ष के बीच मे एक तकिया रख कर बाहु को बाहर की ओर खिसका कर रखना चाहिए। दिन मे दो बार बाहु को बाहर की ओर विवर्तित करना तथा उसे धड से दूर हटा देना चाहिए। इसी प्रकार टाग की प्रसारक मासपेशियों को भी दिन मे २-३ बार सक्रिय करना चाहिए। मृत अग पर दिन मे २-३ बार मालिश होनी चाहिए।

कुछ दिन बाद रोगी के शरीर पर मृदु Massage शुरू कर देना चाहिए। तथा रोगी को चाहिए कि वह मृत हुई सन्धियों मे से एक समय मे एक सन्धि मे सकोच व प्रसार करने का यत्न करे। इसी प्रकार अपनी मृत हुई टाग को सकोडने व फैलाने का यत्न करे। पैर को गुल्फ सन्धि पर ऊपर को सकोडने (Dorsi flexion) का यत्न करे।

जब तक कुछ बैठने व खडा होने योग्य हो जाय तब उसे चाहिए कि वह ५-१० मिनट के लिए बैठने को समर्थ हो तो खडा होने का यत्न करे। किसी सहारे से चलने का यत्न करे। मृत अग को आप चलाने या दूसरे के द्वारा चलाने का भी यत्न करे। दूसरे हाथ से मृत बाहु को बाहर की तरफ उठाने एव बाहिर की ओर विवर्तित करने का यत्न करे। कोहनी पर बाहु को फैलाने व अग्रबाहु को अधोमुख (Pronated) और ऊर्ध्वमुख (Supinated) करने का यत्न करे। मृत हाथ को दूसरे हाथ से खोलने तथा उसे चपटे, समतल प्रदेश पर अधोमुख रखने का दिन मे कई बार यत्न करे। हाथ तथा कलाई पर प्लस्तर लगा देने मे भी उन्हें स्तब्ध रहने से बचाया जा सकता है। रात को निद्रा काल मे हाथ शिथिल हो जाता हो, तो समझना चाहिए कि वह ठीक हो जायगा। मृत हुए कन्धे, कोहनी तथा हाथ की सिकाई करने (Diathermy) से तथा उनके द्वारा चेष्टा और व्यायाम करने से उनमे भी पर्याप्त शक्ति आ जाती है। वस्तुत रोगी की रुग्ण नाडिया इतनी निर्बल नही होती जितना उसका चित्त तथा इच्छा शक्ति निर्बल होती है। यदि उसका चित्त बलवान् हो जाय तो हाथ पाँव मे भी बल आ जाता है। वह भावप्रधान होता है उसकी भावुकता को दूर करने का यत्न करना चाहिए।

आयुर्वेद में संन्यास मूर्छा तथा पक्षाघात

मस्तिष्क धमनियो मे वात प्रकोप जनित क्षीणता व कफ प्रकोप जनित अति वृद्धि के कारण ये रोग होते हैं। मस्तिष्क अर्थात् प्राणायतन मे दोषप्रकोप से इन्द्रियों तथा मन की सर्व क्रियाए बन्द हो जाती हैं।

(च० । सू० । २४ । ८३)

इनसे बचने के लिये शिलाजीत, या ब्राह्मी ३ भाग, शख पुष्पी दो भाग, सर्पगन्धा १ भाग मिलाकर बनाया चूर्ण या मुक्ता भस्म या त्रिफला रसायन या घृत मधु के साथ त्रिफला, च्यवनप्राश आदि मे से किसी का या दूध के साथ पिप्पली का अथवा किसी रसायन औषधि का सेवन करना चाहिए। शिर मे, शरीर मे, नासिका, कर्ण आदि मे तेल का प्रयोग करने से भी धमनियों की जीर्णता नहीं बढती। घोर तथा दीर्घ सन्यास मूर्छा को आयुर्वेद मे असाध्य कहा है। त्रिफला कफ पित्त शामक है। सम्भवत. मेदा को कम करके Atheroma की प्रक्रिया को रोकती है। शिलाजतु भी इसी प्रकार प्रभाव करता लगता है। महायोगराज गुग्गुलु सभवत· त्रिफला तथा गुग्गुलु दोनो के कारण Atheroma का रोवक होता है।

(च० । सू० । २४ । ५५-५८)

बाद मे रहे पक्षाघात के लिये कुचलादि वटी (कुचला, १० भाग, रससिन्दूर, लोहा, जायफल, सोठ, मरिच, लोग, जटामासी, तगर एक-एक भाग, केसर आधा भाग, मिलाकर बनाई) दिन मे ३-४ बार दे देनी चाहिये। इसी प्रकार शरीर की शक्ति को बढ़ाने वाले योग जैसे मल्लसिन्दूर, चतुर्मुख चिन्तामणि, बृहद्वात चिन्तामणि, योगेन्द्र रस, जीवनीय घृत, शतावरी घृत, क्षीर बला घृत के सेवन करते रहने तथा माष तेल, नारायण तेल आदि की मालिश करने से निर्बल अंग फिर बलवान् हो जाते हैं। समान-समान बादाम तथा पिस्ते मे चतुर्थांश सन के बीज मिला घी मे भून बराबर खाण्ड मिलाकर बनाया पाक भी बलवृद्धि करता है। (च० । चि० । २८)

पक्षाघातोपयोगी कुछ एक प्रयोग निम्नलिखित हैं:—

(१) माष बलादिक्वाथ (यो० र०) माष, बलामूल, क्रौञ्च बीज, रास्ना, अश्वगन्धा, एरण्डमूल, गधतृण समान-समान के २½ तो० का क्वाथ हींग तथा सैंधव की उचित मात्रा मिलाकर पिलाए।

(२) माषादिक्वाथ (भा० प्र०) माष, क्रौञ्चबीज, एरण्डमूल, बलामूल समान २ के २½ तो० के क्वाथ मे हींग, सैन्धव उचित मात्रा मे मिलाकर पिलाएँ।

(३) रास्नादिक्वाथ (वृ० मा०) रास्ना, एरण्डमूल, पिप्पली, हरड़, सहचर, कटेली, गिलोय, प्रसारणी, मोथा, पुष्करमूल, देवदारु, वचा, ब्राह्मी, हल्दी,

कचूर, कीकर की छाल, पिप्पली मूल, बृहद्दशमूल, (बिल्व, गाम्भारी, पाढल, अरणि, सोनापाठा) हपुषा, धमासा, सोया, अतिविषा, पुनर्नवामूल अजवायन, शतावरी, अमलतासगूदा, असगंध समान २ के २½ तोला के क्वाथ के साथ किसी गुग्गुलु को दें।

(४) पक्षाघातारि गुग्गुलु (वृ० मि० र०) पिप्पली मूल, सोंठ, चव्य, चित्रक, विडंग, इन्द्रजौ, हींग, वचा, भारंगी, रेणुका, दो जीरे, अतिविषा, गज पीपल, सरसो बीज, अजवायन, पाठा १-१ भाग, त्रिफला इन सबसे दो गुना गुग्गुलु सर्वतुल्य मिलाएँ। १½ माशा मात्रा। गर्मजल से या किसी क्वाथ से दें।

(५) द्वात्रिंशक गुग्गुलु (यो० र०) त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विडंग, चव्य, चित्रक, वचा, इलायची, पिप्पली, हपुषा, देवदारु, तुम्बुरु, पुष्करमूल, कुष्ठ, अतिविषा, दोनो हल्दी, कालानमक, सेंधवलवण, दोनो क्षार, १-१ भाग, गुग्गुलु सर्वतुल्य। ३ माशा मात्रा मे किसी क्वाथ से दें।

(६) एकांगवीर (वृ० नि० र०) गधक, रससिन्दूर, कान्तलोह भस्म, तीक्ष्णलोह भस्म, अभ्रक, वग, सीसक, ताम्र के भस्म, त्रिकटु सबको समान-समान मिलाकर त्रिफला, त्रिकटु चित्रक, आर्द्रक, कुष्ठ, सोहांजना, कुचला, धत्तूरा, आवला इनके स्वरस या कषाय की ३-३ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियां वनाएं। दिन मे तीन दें।

(७) शुंठी चूर्ण (वृ० नि० र०) सोंठ चूर्ण ३५ तोला को घृत ३५ तोला मे भून कर उसमे लशुन ३५ तोला मिलाएँ। इसकी ४ माशा मात्रा दें।

(८) नारायण तेल (शा० ध० स०) असगंध, वला, विल्व छाल, पाटला, दोनो कटेली, गोखरू, अतिवला नीम छाल, अरलु छाल, पुनर्नवा, प्रसारणी, अरणि ५०-५० तोला। जल १२८ सेर। पकाकर ३२ सेर शेष रखें। तिल तेल ४ सेर, शतावरी रस ४ सेर, दूध १६ सेर, कुछ इलायची, चन्दन श्वेत, वचा, जटामांसी, असगंध, बलामूल, रास्ना, सोया, देवदारु, चारो पर्णी, तगर १०-१० तोला तैलपाक करें। इसे ६ माशा मात्रा मे पिलाएँ। इसका नस्य दें। इसकी मालिश करें।

(९) महामाषतैल (च० द०) दशमूल ४ सेर को जल ३२ सेर मे पकाकर ८ सेर शेष रखें। उडद ४ सेर को ३२ सेर जल मे पकाकर ८ सेर शेष रखें। असगंध कचूर, देवदारु, बलामूल, रास्ना, प्रसारणी, कुष्ठ, भारगी, विदारी, पुनर्नवा, हींग, जीरा, सोया, शतावर, गोखरु, पिप्पलीमूल, चित्रमल, मुद्गा तथा माषपर्णी, जीवन्ती, मुलैठी, सेंधव, समान २ प्रत्येक १¾ तोला। तिलतेल २ सेर। दूध २ सेर, तैल साधन करें। इसे ६ माषा मात्रा मे पिलाएँ, नस्य दें तथा मालिश करें।

(१०) वृहद्वात चिन्तामणि (भै.र) स्वर्णभस्म ३, रौप्य तथा अभ्रकभस्म २-२, लोहभस्म ५, प्रवाल तथा मुक्ताभस्म ३-३, रससिन्दूर ७ तोला, कुमारीरस से मर्दन २ रत्ती गोली।

(११) माषतैल (च० द०) माष, वला २-२ सेर, जल ३२ सेर पका कर ८ सेर रखें। माष, कौंचबीज, एरण्ड-मूल, अतीस, रास्ना, सोया, सैंधा, मलित, २० तोला, तेल २ सेर। तैल साधन करें। ६ माशा पिलाएँ। मालिश करें। नस्य दें।

लक्ष्मी विलास (भै० र० वायुरोगे) अभ्रक ५ तोला, पारा गँधक २॥-२॥ तोला, वलाबीज, नागवला, शतावरी, विदारी, काला धतूराबीज, हिज्जल, गोखरु, विधारा, भाँगबीज, जावित्री, जायफल, कपूर प्रत्येक १।-१। तोला, स्वर्णभस्म २॥ माशा, पान के रस से २-३ रत्ती की गोली वनायें। दिन मे २ गोली दें।

अपस्मार (Epilepsy Idiopathic) Epilepsia Seizure

मस्तिष्क के रुग्ण होने से जो शारीरिक आक्षेप या विकृत चेष्टाये, मूर्छा या विकृत प्रतीतिया होती है उन्हे अपस्मार कहते है। २०० लोगो के पीछे १ मे यह रोग होता हुआ पाया जाता है। इस हिसाब से हमारे देश मे ३० लाख रोगी इस रोग के है। ६० % रोगियो मे यह वाल्यावस्था मे ही अर्थात् १० वर्ष से नीचे की आयु मे ही आरभ हो जाता है।

कारण :—

अपस्मार रोग के कारण के विषय मे कुछ विशेष नही कहा जा सकता। मस्तिष्क के सेलो मे जाग्रत अवस्था मे साधारणत जो विद्युत गतिया प्रति सेकण्ड ८-१० की सख्या मे होती हैं तथा सदा सन्तुलित (Rhythmic) रूप मे होती हैं, तथा Alpha Waves कहलाती है Hypothalamus मे आरभ होकर Cortex मे फैलती है, किसी-किसी व्यक्ति मे किसी-किसी समय- प्रवल तथा विषम रूप

(Unrhythmic) में होने लगती है। जब मस्तिष्क का कोई भाग सक्रिय होता है तब प्रति सैकण्ड ५० की गति से भी Cortex Waves होने लगती हैं जिन्हें Beta-waves कहते हैं। इस रोग में तो Cortex अति उत्तेजित होता है जिससे उसमें Waves अति तीव्र गति से होती हैं। इस प्रकार इन सेलों में से जब ये गतियाँ (Electric Discharges) तीव्रता से उत्पन्न होने लगती हैं यह रोग प्रकट हो जाता है। फिर तुरन्त ही ये विद्युत् गतियाँ अति मन्द रूप में होने लगती हैं। इसीलिए वेग के समय पहले तो रोगी के अंगों में तीव्र आक्षेप होते हैं और वे फिर बिल्कुल शिथिल हो जाते हैं। उसका मस्तिष्क इतना थक जाता है कि रोगी सो जाता है। क्षणापस्मार (Petit mal) में ये गतियाँ एक तीव्र, एक मन्द इस क्रम से (Alternating Slow and Fast) होती हैं। मन्द गतियाँ ऊपर गोलाकृति होती हैं। (3 Per second Dart dome Waves) मानस (Psychic) अपस्मार में चपटी चतुष्कोण आकार की गतियाँ होती हैं। सामान्य अपस्मार (Grand-mal) में तीखी काँटेदार (Sharp Spiky या fast, large) गतियाँ होती हैं तथापि कुछ एक रोगियों में (२%) Cerebral Dysrhythmia नहीं पाया जाता और कुछ एक स्वस्थ व्यक्तियों में (१२%) भी यह Dysrhythmia पाया जा सकता है। मस्तिष्क के Nerve cells की Electric potential या विद्युद्बल या वायु में जिसके कारण शरीर में चेष्टा उत्पन्न होती है कुछ ऐसा परिवर्तन हो जाता है या उनके Metabolism में कुछ ऐसा परिवर्तन होता है कि उन सेलों से एक प्रबल विद्युत् गति या Discharge उत्पन्न होने लगता है। यह परिवर्तन किस किस्म का होता है इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ Electro encephalogram से इस चेष्टा को देखा या मापा जा सकता है

मस्तिष्क के Neurones में इस रोग की यह निर्बलता (Excitability) जन्म से आती प्रतीत होती है। इसीलिए जिसे यह रोग होना होता है १५-२० वर्ष तक की आयु तक हो जाता है तथा उसे शैशव में Convulsions भी होते हैं। रोगियों में से कुछ एक में कष्ट प्रसव का इतिवृत्त होता है जिसके कारण Temporal Lobe के २-१ Gyri की रक्तवाहिनियों के दब जाने एवं आक्सिजन न मिलने से कुछ एक नाडी सेलों के नष्ट हो जाने एवं वहाँ Astrocytes की वृद्धि होकर वहाँ कठोरता Sclerosis के हो जाने से या वहाँ पर किसी प्रकार की क्षति Injury या क्षीणता Degeneration या किसी विष का प्रभाव होने से यह रोग प्रारम्भ होता प्रतीत होता है। जिन में यह रोग होता है उनमें चिन्ता, दुःख, क्लेश, विषाद, नैराश्य आदि मानसिक भाव भी इस रोग की उत्पत्ति का कारण हो जाते हैं। तथापि बहुधा इस रोग का आक्रमण निद्राकाल में होता है। विषज अपस्मार —मद्य से हो सकता है तथा गर्भिणी विष से (Eclampsia), मूत्र विष (Uraemia) से, यकृद्विष (Cholaemia) से, Carbon Monoxide से हो सकता है। मस्तिष्क में अर्बुद Brain Tumour (विशेषत Astrocytoma, meningioma) मस्तिष्क धमनी रोग—Cerebrovascular Accident तथा Intracranial दबाव के बढने से भी आक्षेप हो सकते हैं। पर यह आक्षेप रोग बडी आयु में ही होता है। Hypocalcaemia,, hypoglycaemia में भी आक्षेप हो सकते हैं।

पूर्व रूप

लगभग चौथाई रोगियों में पूर्व रूप होते हैं। वेग के कुछ घंटे पहले शिरःशूल या शिरोभ्रम (Giddiness) होने लगता है या कहीं-कहीं सहसा कम्प-सा होता है या रोगी कुछ-कुछ क्रोधी एवं चिडचिडा-सा हो जाता है अथवा वह अन्तर्मुख, ध्यानशील विचारशून्यसा दिखाई पडने लगता है। इस प्रकार रोगी के स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है।

वेग प्रारम्भ होने के तत्काल पूर्व जो रूप होते हैं उन्हें Aura कहते हैं जो तीन चौथाई रोगियों में होते हैं रोगी को अपने हाथ पैरों में शून्यता आरम्भ होकर ऊपर को आती प्रतीत होती है या आमाशय प्रदेश पर से बेचैनी (Epigastric sensation) प्रारम्भ होकर ऊपर गले या सिर की ओर बढती प्रतीत होती है। किसी-किसी को श्वासरोध होने या हृत्कम्प की प्रतीति होती है। सिर में चक्कर आने की प्रतीति तो बहुत लोगों को होती है। किसी-किसी को नेत्रसम्बन्धी कोई विचित्र प्रतीति होती है। अर्थात् या तो दीखना बन्द हो जाता है या जलती हुई अग्नि की चिंगारियाँ नजर आती हैं, इन्हें Visual fits कहते हैं। श्रवणसम्बन्धी प्रतीतियाँ भी होती हैं अर्थात् या तो श्रवणशक्ति खत्म हो जाती है या विचित्र वाद्यों की ध्वनि या घंटे की आवाज सुनाई पड़ती है। इन्हें Auditory fits कहते हैं। नासा सम्बन्धी प्रतीतियाँ भी कभी-कभी होती हैं अर्थात् बुरी गन्ध आने लगती है। इसी प्रकार स्वाद सम्बन्धी प्रतीतियाँ भी कभी-कभी होती हैं, इन्हें Uncinate fits कहते हैं। किसी-किसी को विचित्र मानसिक प्रतीतियाँ होती हैं। अर्थात् रोगी अपने को एक विचित्र परिस्थिति में पहुँचा अनुभव करता है। वह भयभीत हो

जाता है और कभी-कभी इस अवस्था मे वह उन्मत्त-सा व्यवहार करता है। किसी-किसी को अलोकिक मायामय दृश्य दीखने लगते हैं (Temporal Lobe Epilepsy)। किसी-किसी मे चेहरे, हाथ, वाहु या किसी किसी मॉसपेशी मे स्तम्भ या कम्पन होने लगता है। इन अनुभूतियो के तुरन्त वाद रोग का वेग आरम्भ हो जाता है। यदि ये सज्ञासम्वन्धी लक्षण ही हो, उनके वाद अपस्मार का वेग न हो तो इसे सज्ञासम्वन्धी अपस्मार (Sensory Fits) कहते है। मस्तिष्क के Cortex के जिस प्रदेश मे Organic lesion या क्षति होती है उसी के लक्षण के साथ इस रोग का वेग आरभ होता है।

रूप —

स्तम्भावस्था (Tonic Phase)

इस रोग मे पहले शरीर की सर्व मॉसपेशियो मे स्तव्वता की अवस्था पैदा होती है। अर्थात् पहले रोगी मे मूर्छा और स्तम्भ ये दो प्रधान लक्षण होते है। स्तम्भ के कारण ग्रीवा, धड, जाघे, सीधी अकडी हुई होती हैं, कण्ठ मे स्तम्भ के कारण श्वासावरोध हो जाता है, चेहरा नीला पड जाता है। ग्रीवा पीछे की ओर मुड जाती है। शरीर मे वहिरायाम (Opisthotonos) भी हो सकता है। दोनो वाहु अकडे हुए, कोहनी पर सकुचित धड के साथ सटे हुए और मुट्ठियाँ वन्द होती है। Metacarpo phalangeal Joints सकुचित Interphalangeal Joints प्रसारित, रोगी मूर्छित और स्तव्ध होकर सहसा जमीन पर पीठ के भार गिर पडता है। उसका सिर, ग्रीवा और दोना आँखें एक पार्श्व की ओर विवर्तित होते हैं (Deviation of the Eyes and Head) अर्थात् मस्तिष्क के जिस पक्ष मे रोग आरम्भ होता है उससे विपरीत दिशा मे उसका सिर और आँखे फिर जाती है। इस प्रकार सिर और ग्रीवा के एक ओर फिरने के वाद उसके जमीन पर गिरने से वह मस्तक के भार गिरता है और उस पर चोट लग जाती है। इस रोग के होते ही कण्ठ (Larynx) और श्वास की मॉसपेशियो मे भी स्तम्भ होता है। यदि कण्ठ की मासपेशियो मे तो स्तम्भ हो जाय और श्वास की मासपेशियो मे अभी स्तम्भ न हुआ हो तो ऐसी अवस्था मे स्तव्ध हुए कण्ठ मे से श्वासवायु के अन्दर जाने से एक चीख की सी आवाज उत्पन्न होती है जो अलौकिक और भयकर होती है (Epileptic Cry)। जव कण्ठ और श्वास नालियो मे से एक साथ स्तव्वता होती है तव श्वास के अवरुद्ध हो जाने से यह चीख उत्पन्न नही होती। जवडे की मॉसपेशियो और जीभ मे स्तम्भ हो जाने से जीभ दॉतो के नीचे आकर कट जाती है। अर्थात् जैसे सिर और ग्रीवा एक ओर को फिर जाते हैं वैसे जीभ भी उधर को फिर जाती है और वह उधर स्तव्ध हुए जवडे के वीच मे आकर जख्मी हो जाती है। एक रोगी की जव जिह्वा कटती है तव जिह्वा का वही एक किनारा कटा करता है। स्पष्ट है कि प्रत्येक रोग मे रोग का प्रारम्भ ऊर्ध्व मस्तिष्क के किसी एक स्थान से आरम्भ हुआ करता है। श्वास मासपेशियो के स्तव्ध हो जाने से रोगी का चेहरा नीला पड जाता है। यह मूर्छा, स्तम्भावस्था, या इस रोग की प्रथम अवस्था लगभग आधा मिनट रहती है। यह प्राणरोध Asphyxia की अवस्था आधे मिनट से ज्यादा नही रह सकती तव आक्षेपावस्था आरभ होती है।

आक्षेपावस्था (Clonic Phase)

स्तम्भावस्था के वाद मूर्छायुक्त आक्षेपावस्था आती है। अर्थात् ज्यो-ज्यो मस्तिष्क के सेलो मे उत्पन्न विकार कुछ ठीक होने लगता है त्यो-त्यो निरन्तर स्तम्भ के स्थान पर "सान्तर स्तम्भ" अर्थात् रह रहकर स्तम्भ होने का लक्षण होने लगता है। इस अवस्था मे रोगी अपनी वाहुओ और जघाओ को वेग से पटकने लगता है। दूसरे शब्दो मे उसकी शाखाओ के वलवत् सकोच प्रसार (Relaxation तथा Spasm) होने लगते है। पलके भी वन्द होती और खुलती है। जवडा भी वन्द होता और खुलता है। श्वास भी रुक-रुक कर आता है जिससे चेहरे पर नीलापन रहता है। श्वास घुर्राटेदार Stertorous होता है। इसी अवस्था मे रोगी की जीभ कटती है। यह आक्षेपावस्था लगभग एक मिनट तक रहा करती है।

इस अवस्था के वाद सम्पूर्ण शरीर शिथिल हो जाता है, श्वास-मासपेशियो के शिथिल हो जाने से श्वासगति फिर आरम्भ हो जाती है। श्वास-गति के आरम्भ होते ही मुख मे सचित थूक मे मन्थन-सा होने लगता है जिससे वहा उत्पन्न झाग नासिका और मुख से निकलती हुई दिखाई पडती है। इस शिथिलावस्था (Relaxation) में रोगी मूर्छित हुआ जमीन पर पडा घुर्राटे ले रहा होता है। इस अवस्था मे मूत्रस्राव भी स्वय हो सकता है। परीक्षा करने पर उसकी पुतलिया फैली हुई होती है। कार्निया पर छूने से भी वह पलक नही झपकता। Deep Reflexes लुप्त तथा Plantar reflex Extensor होता है, पर यह मूर्छा क्षणिक ही होती है। इसके वाद वह घवराये हुए व्यक्ति की तरह आखे खोलकर चकित-सा होकर

चारो ओर देखने लगता है। जो कुछ हुआ होता है उसका उसे कुछ पता नहीं होता। इसीलिए इसे अपस्मार कहते है। पूछने पर वह अपने सिर मे दर्द की शिकायत करता है। तथा कहीं एकान्त मे शान्ति से सोना चाहता है। सोने का स्थान हो तो १-२ घटे की नीद के बाद ठीक उठ खडा होता है। इस प्रकार इस रोग के १-२ मिनट के वेग का यह एक सक्षिप्त-सा चित्र खीचा है। हो सकता है कि उपर्युक्त इन अवस्थाओ मे से कोई एक ही या दो ही अवस्था हो, अर्थात् केवल स्तम्भावस्था ही हो या स्तम्भ और आक्षेप की दोनो अवस्थाये बहुत स्वल्प काल के लिए हो। इसलिए जब कोई नवयुवक सहसा मूर्छित होकर गिर पडे और उसके शरीर मे स्वल्प या अधिक स्तम्भ और आक्षेप के लक्षण हो और शीघ्र ही वह फिर सचेत हो जाय तो इसे अपस्मार रोग ही समझना चाहिये। हो सकता है कि ऐसा वेग साल भर मे २-४ बार ही हो, हो सकता है कि यह वेग जल्दी २ हो। १५-२०% मे दौरा रात्रि मे ही होता है। उपद्रव-अपस्मार रोगियो मे आधे से अधिक व्यक्तियो मे बुद्धिमाद्य का उपद्रव हो जाता है। एक तिहाई व्यक्तियो मे एकाग्रता की शक्ति मन्द पड जाती है। एक चौथाई से अधिक व्यक्तियो मे स्मृतिशक्ति मन्द पड जाती है।

क्षणापस्मार (Petitmal, Minor Epilepsy, Little illness)

जब किसी ३ से १० वर्ष तक के बालक या युवक मे एक आध क्षण अर्थात् ५ सेकिंड के लिए ऐसी अचेतनता होती है जिसमे उसकी चेष्टा रुक जाती है तथा उसकी दृष्टि खाली हो जाती है तब इसे क्षणापस्मार कहते हैं। यह स्मरणीय है कि यह रोग बाल्यावस्था मे ही आरम्भ होता है। कभी-कभी यह अचेतनता इतने थोडे काल के लिए होती है कि दूसरो को इसका पता भी नही चलता। अर्थात् क्षण भर को रोगी का चेहरा फीका-सा पडकर तुरन्त ही ठीक हो जाता है। वह गिरता नही, न ही उसके हाथ की वस्तु गिरती है। रोगी को ऐसा प्रतीत होता है कि उसका सिर चकराया और क्षण भर के लिए उसे कुछ हो गया हो। हो सकता है ऐसा दौरा दिन मे कई बार हो या कभी ही कोई दौरा हो। यदि यह मूर्छा कुछ गहरी हो तो उसका सिर आगे को झुक जाता है या वह गिरकर एकदम खडा हो जाता है अर्थात् सहसा मन्द सी मूर्छा का होना इसका प्रधान लक्षण होता है। इस मूर्छा के बाद रोगी कभी-कभी कोई ऐसा काम कर बैठता है जिसका उसे पता नही होता कि वह क्या कर रहा है। अर्थात् वह अपने कपडे उतारने लगता है या इधर-उधर घूमने लगता है या पास मे पडी किसी पुस्तक आदि को फाड देता है या दूसरे की वस्तु को उठाकर अपनी जेब मे डाल लेता है या जिस आदमी से द्वेष हो उसे हानि पहुँचाता है। अर्थात् जैसा जिसका स्वभाव होता है उसके अनुसार अनजाने मे वह कुछ कार्य कर बैठता है।

निद्रापस्मार (Narcolepsy, Sleep Epilepsy)

निद्रापस्मार १५-२० वर्ष के युवको मे युवतियों की अपेक्षा अधिक होता और वश परपरा से आता है। इसमे युवक रोगी थोडी देर के लिये अर्थात् मिनटो या घटो के लिए अचेत होकर सो जाता है। निद्रा का वेग होने पर रोगी उसे रोक नही सकता (Overwhelming sleep)। न वह बोलता है, न ही हिलता-डुलता है। पर जगाने से उसकी यह निद्रा टूट जाती है। वह निद्रा की Rapid eye movement State मे चला जाता है जब कि मस्तिष्क सक्रिय परन्तु शरीर निष्क्रिय रहता है। यह भी सहसा होने वाली एक मूर्छा है, इसलिए एक प्रकार का अपस्मार है।

Cataplexy —किसी मानसिक आवेश के बाद रोगी सर्वथा अशक्त और अवाक् होकर नीचे गिर पडता है यद्यपि उसे चेतना होती है, इसमे पेशियो की शक्ति जाती रहती है। कुछ क्षणो तक यह अवस्था रहती है और फिर रोगी की पेशियो मे शक्ति आ जाती है।

मानस अपस्मार (Psychic **या** Psychomotor Epilepsy **या** Fugue State **या** Dreamy State)

कभी-कभी कोई नवयुवक बिना बेहोश हुए सहसा ही कुछ मिनटो, घटो या कुछ दिनो या महीनो के लिए कही को निकल जाता है (Cursive Epilepsy) या कुछ अजीब-सा काम कर बैठता है जिसका फिर उसे ज्ञान नहीं रहता। क्रोध मे दूसरो को मार बैठता है (Amnesia)। श्रवण, दर्शन, स्वाद, गध आदि सम्बन्धी किसी भ्रमवश वह ऐसा करता है, अत: इसे Temporal lobe Epilepsy भी कहते है। इस अवस्था मे उसे अपने व्यवहार पर नियत्रण रहता है अथवा व्यक्ति को सहसा ही कोई विचित्र सी प्रतीति होने लगती है।

Jacksonian Epilepsy, Focal or Partial seizures
आक्षेप अपस्मार

जब यह Dysrhythmia एक ओर के Precentral Convolution मे आरम्भ होता है तब एक ओर के पैर

चारो ओर देखने लगता है। जो कुछ हुआ होता है उसका उसे कुछ पता नही होता। इसीलिए इसे अपस्मार कहते हैं। पूछने पर वह अपने सिर मे दर्द की शिकायत करता है। तथा कही एकान्त मे शान्ति से सोना चाहता है। सोने का स्थान हो तो १-२ घटे की नीद के बाद ठीक उठ खडा होता है। इस प्रकार इस रोग के १-२ मिनट के वेग का यह एक सक्षिप्त-सा चित्र खीचा है। हो सकता है कि उपर्युक्त इन अवस्थाओ मे से कोई एक ही या दो ही अवस्था हो, अर्थात् केवल स्तम्भावस्था ही हो या स्तम्भ और आक्षेप की दोनो अवस्थाये बहुत स्वल्प काल के लिए हो। इसलिए जब कोई नवयुवक सहसा मूर्छित होकर गिर पडे और उसके शरीर मे स्वल्प या अधिक स्तम्भ और आक्षेप के लक्षण हो और शीघ्र ही वह फिर सचेत हो जाय तो इसे अपस्मार रोग ही समझना चाहिये। हो सकता है कि ऐसा वेग साल भर मे २-४ बार ही हो, हो सकता है कि यह वेग जल्दी २ हो। १५-२०% मे दौरा रात्रि मे ही होता है। उपद्रव-अपस्मार रोगियो मे आधे से अधिक व्यक्तियो मे बुद्धिमाद्य का उपद्रव हो जाता है। एक तिहाई व्यक्तियो मे एकाग्रता की शक्ति मन्द पड जाती है। एक चौथाई से अधिक व्यक्तियो मे स्मृतिशक्ति मन्द पड जाती है।

क्षणापस्मार (Petitmal, Minor Epilepsy, Little illness)

जब किसी ३ से १० वर्ष तक के बालक या युवक मे एक आध क्षण अर्थात् ५ सेकिंड के लिए ऐसी अचेतनता होती है जिसमे उसकी चेष्टा रुक जाती है तथा उसकी दृष्टि खाली हो जाती है तब इसे क्षणापस्मार कहते हैं। यह स्मरणीय है कि यह रोग बाल्यावस्था मे ही आरम्भ होता है। कभी-कभी यह अचेतनता इतने थोडे काल के लिए होती है कि दूसरो को इसका पता भी नही चलता। अर्थात् क्षण भर को रोगी का चेहरा फीका-सा पडकर तुरन्त ही ठीक हो जाता है। वह गिरता नही, न ही उसके हाथ की वस्तु गिरती है। रोगी को ऐसा प्रतीत होता है कि उसका सिर चकराया और क्षण भर के लिए उसे कुछ हो गया हो। हो सकता है ऐसा दौरा दिन मे कई बार हो या कभी ही कोई दौरा हो। यदि यह मूर्छा कुछ गहरी हो तो उसका सिर आगे को झुक जाता है या वह गिरकर एकदम खडा हो जाता है अर्थात् सहसा मन्द सी मूर्छा का होना इसका प्रधान लक्षण होता है। इस मूर्छा के बाद रोगी कभी-कभी कोई ऐसा काम कर बैठता है जिसका उसे पता नही होता कि वह क्या कर रहा है। अर्थात् वह अपने कपडे उतारने लगता है या इधर-उधर घूमने लगता है या पास मे पडी किसी पुस्तक आदि को फाड देता है या दूसरे की वस्तु को उठाकर अपनी जेब मे डाल लेता है या जिस आदमी से द्वेष हो उसे हानि पहुँचाता है। अर्थात् जैसा जिसका स्वभाव होता है उसके अनुसार अनजाने मे वह कुछ कार्य कर बैठता है।

निद्रापस्मार (Narcolepsy, Sleep Epilepsy)

निद्रापस्मार १५-२० वर्ष के युवको मे युवतियो की अपेक्षा अधिक होता और वश परपरा से आता है। इसमे युवक रोगी थोडी देर के लिये अर्थात् मिनटो या घटो के लिए अचेत होकर सो जाता है। निद्रा का वेग होने पर रोगी उसे रोक नही सकता (Overwhelming sleep)। न वह बोलता है, न ही हिलता-डुलता है। पर जगाने से उसकी यह निद्रा टूट जाती है। वह निद्रा की Rapid eye movement State मे चला जाता है जब कि मस्तिष्क सक्रिय परन्तु शरीर निष्क्रिय रहता है। यह भी सहसा होने वाली एक मूर्छा है, इसलिए एक प्रकार का अपस्मार है।

Cataplexy.—किसी मानसिक आवेश के बाद रोगी सर्वथा अशक्त और अवाक् होकर नीचे गिर पडता है यद्यपि उसे चेतना होती है, इसमे पेशियो की शक्ति जाती रहती है। कुछ क्षणो तक यह अवस्था रहती है और फिर रोगी की पेशियो मे शक्ति आ जाती है।

मानस अपस्मार (Psychic **या** Psychomotor Epilepsy **या** Fugue State **या** Dreamy State)

कभी-कभी कोई नवयुवक बिना बेहोश हुए सहसा ही कुछ मिनटो, घटो या कुछ दिनो या महीनो के लिए कही को निकल जाता है (Cursive Epilepsy) या कुछ अजीब-सा काम कर बैठता है जिसका फिर उसे ज्ञान नहीं रहता। क्रोध मे दूसरो को मार बैठता है (Amnesia)। श्रवण, दर्शन, स्वाद, गध आदि सम्बन्धी किसी भ्रमवश वह ऐसा करता है, अत. इसे Temporal lobe Epilepsy भी कहते है। इस अवस्था मे उसे अपने व्यवहार पर नियत्रण रहता है अथवा व्यक्ति को सहसा ही कोई विचित्र सी प्रतीति होने लगती है।

Jacksonian Epilepsy, Focal or Partial seizures
आक्षेप अपस्मार

जब यह Dysrhythmia एक ओर के Precentral Convolution मे आरम्भ होता है तब एक ओर के पैर

या हाथ के अगूठे या तर्जनी या मुख छिद्र के एक ओर के भाग मे आक्षेप आरभ होकर शीघ्र सारी वाहु या जाँघ या आधे शरीर मे प्रसरण कर जाता है । ऐसे आक्रमण दिन मे कई वार हो सकते है। ऐसा प्रतीत होता है कि शरीर को जागृत अवस्था मे रखने के लिये मस्तिष्क मे जो मशीनरी है आवेश के द्वारा उसमे सहसा भग उत्पन्न हो जाता है। Post Central Convolution मे यह विपम गति आरभ हो तो एक ओर के अग मे सुप्ति या चिमचिमाहट आरम्भ होकर शेष आधे अग मे फैल सकती है । जव यह वेग दूसरी ओर प्रसरण करता है तव मूर्छा भी हो जाती है जिन्हे Sensory Jacksonian Fits कहते है। इसी प्रकार Occipital तथा Temporal Cortex मे रोग हो तो थोडी देर के लिए Hemianopia अर्धदृष्टिनाश का लक्षण होता है। Temporal lobe के रोग के कारण अस्थायी वधिरता या शिरोभ्रम का लक्षण हो सकता है।

दीर्घ अपस्मार ((Status Epilepticus)

यदि एक के वाद दूसरा और इस प्रकार इस रोग के अनेक आक्रमण लगातार होते जाये जिससे रोगी को वीच मे चेतना न हो और ठहर-ठहर कर आक्षेप होते रहे तो उसे दीर्घ अपस्मार कहते है । उसमे ज्वर, स्वेद, नाडी की तीव्रता उसके आकार (Volume) के छोटे होने तथा शरीर के कृश हो जाने तथा रक्त भार वढने के लक्षण भी होते है। यह अवस्था घटो तथा दिनो तक रहती है। यह शान्त न हो तो रोगी को थकाकर यह मृत्यु का कारण हो सकता है ।

Pyknolepsy (Pykno=शीघ्र)

यदि क्षुद्र अपस्मार के वेग शीघ्र-शीघ्र होने लग जायें तो उसे Pyknolepsy कहते हैं।

निद्राकालिक अपस्मार (Nocturnal Epilepsy)

इसमे केवल सोते समय ही Grand mal का वेग होता है।

वेहोशी का किसी प्रकार का दौरा हो, विशेषत' यदि वह निद्राकाल मे आया हो जिसमे रोगी सहसा गिर जाता हो या उसमे जिह्वा कट जाती हो Plantar reflex Extensor हो, शिर और आखें एक तरफ को फिर जाती हो तो उसे अपस्मार ही जानना चाहिए । वडी आयु मे रक्तभारवृद्धि से भी आक्षेप हो सकते है, उससे इस रोग का भेद करना चाहिए।

चिकित्सा

वेग के समय तो रोगी के वटन खोल कर दातो के वीच कपडा रख देना चाहिए । श्वास मे रुकावट न हो, इसकी एहतियात करे।

औषध चिकित्सा

पहले (१८५७) ५० वर्ष तक पोटाशियम ब्रोमाइड को Grand mal मे १०-१५ ग्रेन मात्रा मे Liqu Arsenicalis २ वूँद तथा Tincture Bella ५ वूँद के साथ दिन मे एक दो या तीन वार भोजन वाद सप्ताह मे चार दिन दिया जाता रहा है अव Calcibronat Sandoz दिया जा सकता है परन्तु अव न घुलने वाला Phenobarbitone या Methyl Phenobarbitone जो इस रोग के उत्पादक केन्द्र को Depress करता है (Luminal, Amytal) और जिसका प्रयोग १९१२ से (Hauptman के द्वारा) हो रहा है ½, १ ग्रेन (३०-६० मिलि०) की मात्रा मे दिन मे तीन वार दिया जा सकता है। या दिन मे इसे ३० मिलि० दे, रात को ६० मिलि० मात्रा मे दे। दो वर्ष से छोटे वालक को इसकी ⅛ या ¼ ग्रेन की मात्रा दिन मे तीन वार तक दी जाती है। इतनी मात्रा मे यह औपधि आक्षेपशामक (Anticonvulsant) होती है। इससे अधिक मात्रा मे यह निद्राजनक हो जाती है अथवा Sod Phenobarbitone को २०० मिलि० मात्रा मे त्वचा द्वारा दिन मे १ वार दे । इस औषधि को ३ वर्ष तक जारी रखकर फिर इसकी मात्रा क्रमश कम करते जाये तो इस रोग के होने की आशका नही रहती । रोग का दौरा तीन वर्ष तक न हो तव इस औपधि को वन्द कर सकते है पर इसे सहसा वन्द नही करना चाहिए। इस औषधि के लगातार प्रयोग से यदि रोगी मे कुछ आलस्य रहे तो Amphetamine Sulph (Benzedrine) या Dexamphetamine Sulph (Dexedrine) ५ मिलि० की मात्रा मे प्रातराश तथा दोपहर के खाने से पहले दे देना चाहिए। इस प्रकार यह इस रोग की सस्ती और देर तक देने पर भी विपैला प्रभाव न करने वाली औपधि है, Habit forming भी नही तथापि मस्तिष्क को कुछ मन्द तो करती ही है।

इस रोग की तीसरी औपधि Diphenyl Hydantoin Sodium, Sodium Phenytoin, जो मस्तिष्क मे होने वाले Electric discharge को मन्द करती है दूसरे शब्दो मे Neurones के लिए Depressent है (Dilantin Sodium, Elepsindon, Epanutin,

Eptoin, Antisacer) है जिसका प्रयोग पहले १९३७ मे हुआ, जो १ ग्राम या ३/४-११/२ ग्रेन मात्रा मे तीन वार भोजन वाद जल से दी जाती हे, खाली पेट देने से Gastritics हो सकता है। ८ साल से नीचे के वालक को २५-५० मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन वार दी जाती है एतदर्थ ४ सी० सी० मे १ ग्राम औषधि का Liquid Suspension या Phenytoin Mixture) मिलता है (४ मिलिलि० मात्रा)। साधारणत यह कैप्सूल मे वन्द मिलती है। यदि वालक को केवल रात को ही अपस्मार का वेग होना हो तो २ ग्राम Dilantin को ०५ ग्राम (३/४ ग्रेन) Luminal के साथ मोते समय दे देना चाहिये। १० दिन वाद भी दौरा हो जाय तो दिन मे इसकी १०० मिलि० माना वढा देनी चाहिये। ४०० मिलि० इसकी परम दैनिक मात्रा है। यह औषधि Phenobarbitone के समान निद्राजनक नही होती, अपस्मारशामक है अर्थात् इसके कारण मस्तिष्क अपस्मारजनक विक्षोभो को सहन कर लेता है। इस प्रकार इस समय तक अपस्मार की यह उत्तम औषधि समझी जाती हे। इसके प्रयोग के समय मुख को कई वार साफ करना चाहिये। यदि फिर भी मसूडो मे सूजन हो जाय या Erythema त्वचा पर हो या लडकी मे Hirsutism मुख आदि पर केशोत्पत्ति हो तो इसकी मात्रा कम कर देनी चाहिये तथा मसूडो पर मालिश करनी चाहिये। साधारणत रोगी को Phenobarb ३/४ ग्रेन २ वार तथा Epanutin ३/४ ग्रे० दिन मे २ वार मिलाकर देते रहे तो रोग शान्त रहता है। एतदर्थ Epilan (A French) गोली दी जा सकती है। या Epanutin Cap दे सकते हैं। दिन मे २ वार Phenytoin और एक वार Phenobarbitone दे दें।

इस रोग की चौथी औषधि Primidone (Mysoline I C I) है जिसका प्रयोग पहले १९५० मे हुआ १२५- २५० ग्राम मात्रा (५ मिलिलि० मे २५० मिलि० का Suspension) की गोली मे पहले रात को एक वार से प्रारम्भ कर धीरे-धीरे तीसरे-चौथे दिन १ गोली वढाकर दिन मे ६ वार तक दी जाती है। वालक को इसमे आधी मात्रा दी जाती है। यह भी आक्षेपशामक (Cortex के Electrical विक्षोभ को कम करने वाली) औषधि है। शिरोभ्रम निद्रा, अरुचि व वमन के प्रतीत होने पर इसकी मात्रा कम कर देनी चाहिये। उपर्युक्त औषधियाँ जव अनुकूल नही होती, यह अनुकूल हो सकती है पर यह महगी है। इस रोग की पाचवी औषधि Methoin या Methylphenylethylhydantoin (Mesontoin Sandoz, १ ग्राम गोली) है। उपर्युक्त औषधियो से लाभ न दीखता हो तव इस औषधि को पहले आधी गोली दैनिक मात्रा मे एक सप्ताह देवें, फिर क्रमश वढाते जायें। इसकी अन्तिम दैनिक मात्रा ३-५ ग्राम है। इन्हे Phenobarbitone के साथ मिला कर दे सकते हैं। वालक की मात्रा दैनिक १-३ ग्राम है। Agranulocytosis तथा Aplastic Anaemia के उपद्रवो की आशका इस औषधि मे हो सकती है।

Ethotoin (Peganone ५ ग्राम गोली) जो Hydantoin के समान है पर उससे कम उपद्रवजनक है १ से २ ग्राम दैनिक मात्रा मे ३-४ वार करके देने मे भी इस रोग मे शान्ति रहती है। इसी प्रकार Acetazolamide (Diamox) के ·२५ ग्राम मात्रा मे दिन मे तीन वार देने से भी यह रोग शान्त रहता है। कुछ लोग इसे Petitmal के लिये ही उपयोगी वताते हैं।

अपस्मार का वेग अति तीव्र रूप मे हो (Status Epilepticus) तो रोगी को अधेरे कमरे मे लिटायें। सिर एक तरफ को फिराए। जीभ को कटने से वचाए Phenobarbitone Sodium (Luminal Sod) ३-६ ग्रेन मात्रा मे १०-११ बूँद जल मे मिलाकर त्वचा द्वारा देना चाहिये या १/२, १ ग्रेन (२०० मिलि०) मात्रा मे दिन मे चार वार मास द्वारा देवें। या Phenobarbitone Sodium को ५ ग्राम मात्रा मे शिरा द्वारा धीरे-धीरे देवें अथवा रोगी को वस्ति करके उसकी गुदा मे १/२, ३/४ औस Paraldehyde इतने ही जैतून के तेल मे मिलाकर डाल देना चाहिये या Paraldehyde को ८-१० मिलिलि० मात्रा मे मास द्वारा (४ मिलिलि० एक ओर, इतना ही दूसरी ओर) दे देवे १/२ मात्रा फिर ८ घ० वाद दें। Dilantin Sodium (५० मिलि० प्रति सी० सी०) १ मिनट मे ३/४ ग्रेन के हिसाव से ३-५ सी० सी० शिरा द्वारा देने से भी लाभ हो जाता है। इसकी १५०-२५० मिलि० (२१/२ ४ ग्रेन) कुल मात्रा दी जा सकती है। या इसे २५०-५०० मिलि० मात्रा मे दिन मे एक वार मास द्वारा दे सकते हैं पर इस मार्ग से इसका विलयन कम होता Diazepam को १-१० मिलि० मात्रा मे शिरा द्वारा देने से भी इस रोग का दीर्घ वेग शान्त हो जाता है। रोगी के शरीर मे Acidosis न वढने पाये इसलिए उसे खाने के लिये ग्लूकोज, दूध आदि Stomach tube द्वारा देते रहना चाहिये। वाद मे उसे Phenobarbitone १०० तथा Dilantin Sodium १०० मिलि० दिन मे २-३ वार देते रहे।

क्षणापस्मार के लिए

Diones —Troxidone Cap (Tridione Abbot) Trimethyl oxyzolidine dione (Trimethadione १९४५) ३ ग्राम कैप्स्यूल मे मिलती है जिसका Excitable Neurones पर शामक प्रभाव होता है। दिन में तीन वार दी जाती है वालक को इससे आधी मात्रा मे दी जाती है। Liquid Elixir ५० सी० सी० शीशियो मे मिलता है। किसी-किसी मे इस औषधि का मज्जा पर Depression का दुष्प्रभाव हो सकता है, अत महीने-महीने रक्तपरीक्षा होनी चाहिए। दृष्टि पर धुधलेपन या चौंध लगने का उपद्रव भी हो सकता है। इसकी दैनिक मात्रा २ ग्राम से कम रखें। Para metha-dione (Paradione Abbot १९४७) को भी उसी मात्रा मे दिया जा सकता है। १ मिलिलि० मे ३ ग्राम का Solutions भी मिलता है। इनका मज्जा पर दुष्प्रभाव कम होता है। वालक को इसे ३-६ ग्राम दैनिक मात्रा मे देवे या Amphetamine (Benzedrine) के २½, ५ मिलि० ग्राम मात्रा मे दिन मे तीन वार देने से भी यही लाभ होता हे। Methsuximide १९५१ (Celontin) ३ ग्राम दिन मे ३ वार या Methyl Phenyl Suximide या Phensuximide (Milontin) या Ethosuximide (Zarontin) जिसका प्रयोग १९६२ से हुआ २५० मिलि० कैप्स्यूल्स (या ४ मिलिलि० मे २५० मिलि० का Suspension) मे चार वार दिन मे देने से यही लाभ करता है, वालक मे यह मात्रा कम कर दें। यह औपधि Troxidone से कम विषैली है। ५-६ महीना देने से लाभ हो जाता हे। तन्द्रा, अरुचि इसके विषैले लक्षण है। इसके साथ फिनोवार्बिटोन न दे। यह ६०-७० प्रतिशत मे लाभदायक हे। Succinimides मे Ethosuximide सर्वश्रेष्ठ औपधि है। इसके Troxidone के साथ Methoin का प्रयोग न करें, इससे Aplastic anaemia का डर है। उसके साथ Phenytoin का प्रयोग भी न करें। Glutamic Acid ३-४ ग्राम दिन मे २-३ वार इस अपस्मार मे लाभदायक पाया गया हे। Meprobamate भी इस रोग के लिए उपयोगी है। रोगी के ठीक हो जाने पर भी २-३ मास औपधि को जारी रखना चाहिए।

निद्रापस्मार के लिये

Ephedrine Hydroch २५-५० मिलि० या ($\frac{3}{8}$, $\frac{3}{4}$ ग्रेन) मात्रा मे तीन-वार प्रयोग करने या Amphetamine (Benzedrine या Dexedrine) के ५-१५ मिलिग्राम मात्रा मे प्रात एक या दो वार देने से लाभ होता है। Ritalin के ५ मिलि० मात्रा मे दिन मे दो वार देने से भी लाभ होता है। Spansule १५ मिलि० से भी लाभ रहता है। Cataplexy मे इससे कोई लाभ नही होता। रोगी को आवेश से सदा वचना चाहिए। Narcolepsy भी न्यूनाधिक रूप मे आयु भर रहने वाला रोग है।

साधारण आक्षेपो (Convulsions) के लिये Pyridoxine को २५ मिलि० मात्रा मे दिन में तीन वार मुख से या ५-१० मिलि० मास द्वारा देना लाभदायक कहा जाता है, Phenobarbitone भी इनके लिये उपयोगी है। Phenytoin भी दिया जाता है। Prednisolone १० मिलि० के दिन मे २ वार देने से भी आराम आ जाता है।

मानस (Psychomotor) **अपस्मार** या स्मृति नाश सूचक अपस्मार के लिये भी Mysoline या Mesontoin भी उपर्युक्त विधि से दिये जाते है। Carbamazepine (Tegretol) की १ गोली (२०० मिलि०) दिन मे तीन वार देने से भी लाभ होता है। छोटे बालक मे २ गोली मात्रा है। Phenacetamide Phenurone को मानस अपस्मार के लिये विशेष उपयोगी माना जाता है। इसकी ५ ग्राम की enteric coated गोली दिन मे दो तीन वार भोजन के साथ दी जाती है। २-३ सप्ताह वाद इसकी मात्रा वढाई जा सकती है। Grand mal तथा Petit mal मे भी उपयोगी है। पर इसका मन पर विषैला प्रभाव हो सकता है अर्थात् विषाद रोग (Depression) हो सकता है इसलिए इसका उपयोग नि शक होकर नही किया जा सकता। इसे छोटी मात्रा मे ही Phenobarbitone या Dilantin के साथ मिला कर देते रहना ठीक है। यह Neurones को उत्तेजित होने से रोकता है। इस औषध से यकृत्, वृक्को, मज्जा तथा पेट पर दुष्प्रभाव हो सकता है।

साधारणत अपस्मारी को श्रम करते रहना चाहिये। पढाई जारी रखनी चाहिए। यद्यपि मशीन चलाने या मोटर ड्राइवर या पानी मे जाने, पेड पर चढने का काम कभी नही करना चाहिये। उसे पानी, आग व खतरे के स्थान मे कभी नही जाना चाहिये। उसे चाय, काफी, मद्य, गर्म मसालो से और अति भोजन से, तथा उन्निद्र रहने से तथा मलवन्ध से वचना चाहिये। उसे प्रतिदिन ८-९ घटे की नींद लेनी चाहिए। अपस्मारी की सन्तान मे इस रोग के होने की आशका नो रहती है।

Febrile Convulsions — २-४ वर्ष मे बालको के ज्वर मे जो आक्षेप हो जाया करते हैं उन्हें ज्वरजनित आक्षेप कहते है। इस आक्षेप के एक चौथाई बालक Epiloptic होते हैं। एतदर्थ Phenobarbitone प्रतिकिलो भार के पीछे ५ मिलि० मात्रा मे दे। Phenytoin भी २५ मिलि० मात्रा मे दे सकते है।

चिकित्सा विधि

पहले रोगी को Hydantoin (Dilantin या Eptoin) १ ग्राम दिन मे २ बार उपर्युक्त विधि से देना प्रारम्भ करना चाहिये। रात को Phenobarbitone ०५ ग्राम दे। इससे पूर्ण लाभ होता न प्रतीत हो तो Mysoline की २५० मिलि० की एक गोली, और, इस औषधि के दौरान मे ही देनी प्रारम्भ करनी चाहिये। तथा १-२ सप्ताह के बाद इसे क्रमश बढाते हुए इसकी ३ गोली तक दिन मे दी जा सकती हैं। दौरो के सर्वथा बन्द हो जाने पर Dilantin को क्रमश कम करते-करते बन्द करके रोगी को केवल Mysoline पर रख देना चाहिये। इसमे भी दौरे शान्त न हों तो Mesontoin को आजमा कर देखना चाहिए। औषध की मात्रा को क्रमश बढाना चाहिए जितने से वेग शान्त हो जाए तथा औषध को ३ वर्ष तक जारी रखना चाहिए। उसके बाद क्रमश मात्रा कम करके स्वल्प मात्रा को भी और कुछ काल जारी रखना चाहिए। यदि इस रोग के वेग निरन्तर ३ वर्ष नही होते तो मात्रा को क्रमश कम करते जाना चाहिये तथा देखना चाहिये कि अब दौरा होता है या नही। ३-४ वर्ष तक रोग शान्त रहे तभी रोगी को विवाह करना उचित है। Petit mal के लिए Tridione या Zarontin देवें। इसके साथ फिनोबार्बिटोन कभी न दें। मानस अपस्मार के लिए Primidone दे। Phenytoin भी दे सकते हैं।

अपस्मारी मे मानस रोग

इस रोग के रोगी मे चिन्ताप्रधान या विषादप्रधान मानसरोग के लक्षण प्रकट हो जायें तो Phenothiazine के योगों के प्रयोग के स्थान पर उसे Meprobamate ४०० मिलि० मात्रा मे २-३ बार या Chlordiazepoxide (Librium) १० मिलि० मात्रा मे २-३ बार प्रति दिन देना चाहिये। ये Anticonvulsant या स्तम्भ शामक होने मे उसके लिये उपयोगी रहती हैं।

सत्य तो यह है कि अपस्मार की निर्दोष और कार्यकारी औषधि अभी तक नही मिली।

आयुर्वेद में अपस्मार

आयुर्वेद से १ मस्तिष्क मे वायु, पित्त या कफ किसी एक या तीनो दोषों के विकृत हो जाने तथा मन में जन्म से ही रजोगुण या तमोगुण की वृद्धि होने से तथा चिन्ता, भय आदि किसी मानस आघात से यह रोग उत्पन्न होता कहा गया है। चिन्ता शोकादि की अधिकता मे तथा शरीर के पोषण मे कमी होने से वायुदोष की वृद्धि होती है। देहाग्नि के अधिक बढ जाने से पित्त दोष तथा देहाग्नि के अति मन्द होने से कफ दोष की वृद्धि होती है। इस प्रकार वात, पित्त, कफ तथा इनके सन्निपात से चार प्रकार का अपस्मार हो सकता है। चेष्टा, आक्षेप प्रधान को वातिक, ज्वर सताप स्वेद आदि प्रधान को पैत्तिक, निद्रा प्रधान को श्लैष्मिक अपस्मार कहा है। अत इस रोग की चिकित्सा के लिये वस्ति या विरेचन या वमन और शिरोविरेचन के द्वारा शरीर मे जो-जो दोष अधिक बढ़ा हो तदनुसार उसका शोधन करना चाहिये। चिन्ता, काम, क्रोध, अति मानसिक शारीरिक श्रम, अति लघन, तीक्ष्ण उष्ण गुरु गुण आहारो व अजीर्ण से बचना चाहिये। अधिक जागरण से भी बचना चाहिये। घृत, दूध, चावल, फल आदि हितकर कहे गये हैं। लवण, उड़द, अरहर तथा पत्रशाक को अपथ्य कहा है।

इस रोग के लिये ब्राह्मी का प्रयोग सारस्वतारिष्ट (२ तोला भोजन बाद), ब्राह्मी घृत, सारस्वत चूर्ण (१-२ माशा) के रूप मे बहुत किया जाता है। या सारस्वत चूर्ण १ माशा अथवा ब्राह्मी शखपुष्पी से बनी चाय को वृहद्वात चिन्तामणि १ रत्ती या चतुर्मुख रस १ रत्ती के साथ मिलाकर दिन मे दो बार मधु घृत के साथ दिया जाता है। अपामार्ग बीजादि (च०। सू० २) रेचन नस्य भी दिया जाता है।

भोजन मे रोगी को पेठे, द्राक्षा, आवले, तथा हींग का और ब्राह्मी, शंख-पुष्पी की घृतयुक्त चाय का सेवन कराया जाता है। चरक ने जीवनीय घृत को अपस्मार के लिए हितकर कहा है। सुश्रुत (उ०।६१) ने पुराने हुए घृत के पान तथा मालिश का आदेश किया है।

अपस्मार मे प्रयुक्त होने वाले कुछ एक उपयोगी प्रयोग यहाँ दिये जाते हैं :—

(१) मधुवचायोग (यो र) वचाचूर्ण २ रत्ती को मधु के साथ दिन मे ३ बार दें, रोगी को केवल दूधभात पर रखें।

(२) सारस्वत चूर्ण (भा. प्र.) कुष्ठ, अवगन्धा, अजवायन, दोनो जीरे, शंखपुष्पी, त्रिकटु, पाठा १-१ भाग, वचा

सर्वतुल्य, ब्राह्मी स्वरस की ३ भावना दें। मात्रा १-१ माशा दिन मे ३ बार घृत तथा मधु से मिला कर दें।

(३) सूत भस्म प्रयोग (भै० र०) शखपुष्पी, चवा, कुष्ठ ब्राह्मी, इलायची छोटी समान २ मिलाकर इनके चूर्ण के २ माशा मात्रा का उबलते जल मे फाण्ट बनाकर उसके अनुपान से रससिन्दूर १-२ रत्ती को मधु तथा घृत से मिलाकर चटाए।

(४) ब्राह्मी घृत (वं०म.र.) ब्राह्मी स्वरस ४ सेर। गो घृत १ सेर। कुष्ठ, वचा, शख पुष्पी तीनो मिलाकर ६ तोला। घृत पाक करें। १ तोला दिन मे २ बार।

(५) स्मृति सागर रस (यो र.) रस, गधक, हरताल, मनसिल, ताम्र समान २। वचा क्वाथ तथा ब्राह्मी रस की २१-२१ बार भावना देकर फिर माल कगनी तेल की १ भावना दें। २ रत्ती मात्रा घृत के साथ चटायें।

(६) शख पुष्प्यादि घृत (ग. नि) शख पुष्पी, वचा, कुष्ठ ५-५ तो.। घृत १½ सेर। ब्राह्मी स्वरस या कषाय ६ सेर मिलाकर घृत साधन करें। मात्रा १ तोला २ बार।

(७) शतावरी योग (ग.नि) शतावरी स्वरस, या शतावरी २-३ तोला को दूध मे पकाकर दें या शतावरी चूर्ण ३ माशा दूध के साथ दें। रोगी को केवल दूधभात पर रखें। अथवा केवल ब्राह्मी पत्र रस को ३ चम्मच मात्रा मे मधु से दें।

(८) कूष्माण्ड घृत तथा कूष्माण्ड योग (यो र.) कूष्माण्ड रस १८ सेर, घृत १ सेर, मुलैठी १ पाव। घृत साधन करें। १ तोला दिन मे ३ बार दें।
अथवा मुलैठी को पेठे के रस मे ५-७ दिन पीसकर सुखा लें, उस चूर्ण का ३ माशा मात्रा मे रोज प्रयोग करें।

(९) ज्योतिष्मती आदिनस्य (च स) मालकगनी के बीज चूर्ण को या वचा के चूर्ण को गोमूत्र मे पीसकर छानकर उसकी ६ बूँद नाक मे डालें।

(१०) अश्वगधारिष्ट (भै र) अश्वगधा ३ सेर १० तो, मुसली १०० तोला, मजीठ, हरड, दो हल्दी, मुलैठी, रास्ना, विदारी, अर्जुन, मुस्ता, त्रिवृत ५०-५० तो, अनन्तमूल, काली त्रिवृत, दो चन्दन, वचा, चित्रक प्रत्येक ४० तो।१२८ सेर जल मे पकायें। ३२ सेर शेष रखें। उसमे धातकी १ सेर शहद १८¾ सेर, त्रिकटु १०-१० तो त्रिजातक २०-२० तो. फूलप्रियग १० तो., नागकेसर १० तो.। आसव बनाये। २½ तो. मात्रा।

(११) चिन्तामणि चतुर्मुख (भै. र.) रस सिन्दूर ४ तो. लोह तथा अभ्रक भस्म २-२ तो., स्वर्ण भस्म १तो. कुमारी रस से मर्दन कर एरण्ड पत्रो मे लपेटकर ३ दिन धान्य की राशि मे रखें। २ रत्ती मात्रा त्रिफला चूर्ण तथा मधु से चटायें।

क्षणिक मूर्छा:—Syncope-Vasovagal Attack.—(Cerebral Anaemia or Anoxia or Vasodepressor Syncope or Paroxysmal Hypotension, or weakness of the Vasomotor Control—मूर्छा का अभिप्राय चैतन्य का नाश है जिसका कारण मस्तिष्क मे रक्त की मात्रा का न्यून हो जाना है। यह प्राय अपूर्ण होती है तथा थोडी देर के लिए होती है।

युवावस्था मे क्षणिक मूर्छा का एक रोग पाया जाता है जो सम्भवत सिरा नियामक केन्द्र या सिरा सकोचक (Vasomotor Vas constrictor) शक्ति (Tone) के जिस पर रक्तवाहिनियो की दीवार का वल निर्भर है और जिससे रक्त सचार ठीक चलता है—कुछ देर के लिए सहसा निर्वल हो जाने से अर्थात् सहसा रक्तभार गिर जाने (Hypotension) से या Vagus की उत्तेजना से उत्पन्न होती है। इसमे Systolic रक्तभार ७० M M Hg तथा Arterial B P २५ M M Hg के लगभग हो जाता है। इससे शरीर की सूक्ष्म रक्तवाहिनिया शिथिल होकर फैल जाती है तथा ऐसी सूक्ष्म सिराये (Capillaries) जो साधारणत बन्द ही रहती है वे भी शिथिल होकर फैल जाती है। कोष्ठ सम्बन्धी (Splanchnic) सिराये विशेषत शिथिल हो जाती है। इस प्रकार शरीर का बहुत सा रक्त शरीर की सूक्ष्म रक्तवाहिनियो मे ही इतना अधिक भर जाता है कि हृदय को कम मात्रा मे लौटता हे जिससे हृदय की निकासी (Output) कम हो जाती है, उसकी गति भी मन्द हो जाती है। इसीलिए इससे मस्तिष्क को पहुचने वाले रक्त की मात्रा सहसा गिर जाती है जिससे खडा हुआ युवक सहसा मूर्छित होकर गिर पडता है। इसी से इसे Vasodepressor Faint भी कहते है। इससे पहले उसकी आँखो के सामने अधेरा-सा आ जाता हे और उसका सिर चकरा-सा जाता है। इस रोग मे एक ओर तो मानसिक विक्षोभ से निर्वल व्यक्ति मे Vasomotor centre निर्वल हो जाता है दूसरी ओर Vagus की उत्तेजना से हृदयगति तथा नाडीगति भी मन्द हो जाती हे अर्थात् रक्तवाहिनियाँ और हृदय दोनो की शक्ति गिर जाती हे। अत इसे Vasovagal Attack या

Vasodepressorcyncope कहा जाता है। इसमे नाडी मण्डल पर विक्षोभक या अवसादक प्रभाव होकर शरीर की शिरा सकोचक शक्ति थोडी देर के लिए शिथिल पड जाती है जिससे इसे वातिक सिरा शैथिल्य या Neurogenic Vascular Collapse भी कहा जाता है। सहसा पीडा के होने या भय के आपडने या मानसिक आघात या प्रियजन के वियोग के आघात के लगने पर या Allergy के नाडी मण्डल पर दुष्प्रभाव होने से यह रोग होता है। इसके अतिरिक्त Carotid Sinus पर जो वडा Sensitive है दवाव पड जाने से Vagus के द्वारा हृदयगति मन्द हो जाती है। हृदयगति की मन्दता से रक्तभार गिर जाता है एव मस्तिष्क मे रक्त के न जा सकने से मूर्छा हो जाती है जो ४-२० सेकण्ड की होती है। इसे Vagal किस्म की मूर्छा कहते है। पर जब रोगी गिर पडता है तब एक तो दुख, शोक आदि के कारण या दूसरे वाह्य कारण के विस्मृत हो जाने तथा नीचे गिर पडने से मस्तिष्क को पहुचने वाले रक्त की मात्रा के वढ जाने से मूर्छा शीघ्र ही शान्त हो जाती है। इस मूर्छा को मानसिक (Psychogenic) भी कहते है या सहसा होने वाली होने से Primary या Immediate Syncope, Syncopal Attack भी कहते हैं क्योकि यह उपद्रव रूप न होकर स्वतन्त्र मूर्छा होती है।

किसी ज्वर से या किसी अन्य रोग से निर्वल हुए ऐसे व्यक्ति मे जिसमे Sympathetic नाडी मडल जिसका आरम्भ Hypothalamus के केन्द्रो से होता है विशेषत निर्वल हुआ है, यह मूर्छा होती है। ऊपर ऊर्ध्व मस्तिष्क से शोक, दु ख आदि किसी मानसिक आघात के सहसा लगने से या त्वचा पर किसी दु खद साधारण शल्यकर्म के होने या किसी दूसरे के वहते खून को देखने या भीडयुक्त, हवारहित प्रदेश मे खडे रहने से, या धूप मे रहने के कारण अति स्वेद आ जाने से, सिराशैथिल्य (Vasodilatation) होकर यह मूर्छा आरम्भ हो जाती है। मूर्छा होने से पहले सिर कुछ चकराने लगता है, दृष्टि धुधली पड जाती है तथा रोगी को प्रतीत होता है कि वह डूब-सा रहा है।

परीक्षा करने पर रोगी का चेहरा फीका, स्वेदयुक्त दीखता है। उसकी हृदय तथा नाडी गति मन्द होती, रक्तभार गिरा हुआ होता, पुतलिया फैली हुई होती है। वडी आयु मे पाई जाने वाली अस्थायी या क्षणिक मूर्छा (Senile Syncope) छोटी-छोटी मस्तिष्क धमनियो मे अस्थायी अवरोध या स्वल्प Cerebral Thrombosis के कारण या धमनियो मे विशेषत Basilar artery मे कठोरता Arteriosclerotic cerebro vascular disease के कारण हुआ करती है, जिसमे लेट कर सहसा खडे होने पर Reticular formation को रक्त कम मिलने से चक्कर खा कर वृद्ध व्यक्ति गिर जाता है। उससे युवा-सुलभ मूर्छा का भेद करना चाहिए। हृदय रोगो जैसे Heart Block अर्थात् Atherosclerosis के कारण Bundle of His को रक्त कम मिलने से Atrioventricular conduction सस्थान अव्यवस्थित हो जाना है और उससे ४-५ सैकड को Asystole हो जाती हैं। इससे मस्तिष्क को उचित मात्रा मे रक्त न मिलने से खडा हुआ व्यक्ति मूर्छित होकर गिर जाता है। इसमे आक्षेप का लक्षण भी हो सकता है। (Adams Stokes Syndrome) Aortic Stenosis या Regurgitation तथा हृदय मास में Infarction मे जो मूर्छा होती है उससे इसका भेद करना चाहिए। Infarction मे हृदयमास के निर्वल हो जाने से मस्तिष्क को रक्त कम मिलता है। Paroxysml tachycardia मे भी हृदय गति २०० प्रति मिनट हो तव भी मस्तिष्क को रक्त कम मिलने से न्यूनाधिक मूर्छा हो सकती है। इसी प्रकार रक्तभार गिर गया हो अर्थात् Systolic रक्तभार १०० M M Hg से कम हो तब सहसा खडे होने पर चक्कर आकर मूर्छा हो सकती है।

चिकित्सा

ऐसे व्यक्ति को लिटा कर उसके पायते को ऊँचा कर देना चाहिए (Shock Position)। उसके मुख पर शीतल जल के छीटे देने चाहिए। अमोनिया सु घाना चाहिए या Spirit Ammon Aromatic, सु घाना चाहिए या कुछ होश हो तो आधे गिलास जल मे ३० बू द पिला देना चाहिए या Adrenaline ५ बू द या Ephedrine (३० मिलि०) Coramine या Veritol, Mephentine आदि किसी Vasopressor औषधि का इजेक्शन देना चाहिए या Methedrine का इजेक्शन देना चाहिए। रोगी को कुछ काल लिटाये रखना चाहिए। आगे के लिए मूर्छा की रोकथाम के लिए Ephedrine ३० मिलि० या Amphetamine ५-१० मिलि० या Phenylephrine ५-१० मिलि० दिन मे २-३ वार देवे। ये Vasoconstrictor है।

दीर्घ मूर्छा, उपद्रव रूप मूर्छा—Secondary Shock या Hypovolemic या Oligaemic या Prolonged Shock या Peripheral Circulatory Failure, या Circulatory Collapse—जब कोई रोगी निढाल और उदासीन सा होकर गिर जाता है उसका चेहरा फीका स्वेद-युक्त, उसकी नाडी निर्वल हो, तीव्र हो तो रक्तभार तो गिरा होता है और उसकी यह अवस्था काफी देर तक रहती है तब उसे दीर्घ मूर्छा या Shock कहते है।

कारण

शरीर के एक अग को या मन पर साधारण आघात लगने पर भी नाडी मण्डल को धक्का या Shock लगता है परन्तु तीव्र आघात पहुचने पर यदि शिरा नियामक (Vasomotor) केन्द्र या शिरा सकोचक (Vaso Constrictor) शक्ति अधिक मात्रा मे तथा देर तक निर्बल हो जाय तब ऐसी अवस्था मे होने वाली दीर्घ मूर्छा को Prolonged Shock कहते हैं। किसी रक्तवाहिनी मे से शल्यकर्म आघात आदि द्वारा बहुत से रक्त के बह जाने से (जैसे आमाशय व्रण, Oesophageal Varices, Ectopic Pregnancy मे) या रक्त मे से उसके जल भाग के तथा Electrolytes के बहुत मात्रा मे शरीर मे से निकल जाने से जैसे अतिसार, विषूचिका, अग्निदाह जनित Oligaemia अर्थात् रक्त की न्यूनता से या प्लाज्मा के नष्ट हो जाने से (जैसे Serum Sickness Anaphylactic Shock मे) या स्वेद के अधिक आने से (Heat Stroke) या सिर पर चोट लगकर Concussion हो जाने से, या बिजली के Shock से, किसी दुर्घटना मे शरीर पर भारी चोट लगकर मासपेशियो के कुचले जाने या सधि भग होने से (संभवत उनमे से Histamine के रक्त मे सचार कर जाने से या वहाँ रक्तवाहिनियो मे से बहुत से Plasma के आसपास के प्रदेश मे बह जाने से) या किसी आभ्यन्तर विष (Metabolic विष) के अधिक बढ जाने से या किसी रोग विष के शरीर मे अधिक फैल जाने से या सर्प विष आदि किसी बाह्य विष से या पूय विष (Sepsis) की तीव्रता से (Bacteriemic Shock) या ग्रीष्म ऋतु मे किसी बिगडे हुए भोजन के खाये जाने से या आन्त्र वृद्धि मे आत के नीचे फस जाने से और उसमे से B Coli से उत्पन्न Endotoxin के द्वारा Splanchnic arteries के फैल जाने से या आत मे बाहर या अन्दर से छिद्र हो जाने से (इनमे दर्द से Vasomotor Centre मे Depression होने से) या किसी बाह्यप्रोटीन द्रव्य के शरीर मे प्रविष्ट हो जाने से (Anaphylaxis) या किसी स्त्री मे शस्त्र द्वारा प्रसव कराने मे रक्तवाहिनियो की रक्तवाहक शक्ति (नाडी मण्डल पर आघात से या Toxaemia या Oligaemia या Anoxia से) क्षीण हो जाती है। इसे सर्वाङ्ग शैत्य या Shock या Collapse कहते है। हृदय या मस्तिष्क के पोषण के सहसा बन्द हो जाने अर्थात् उनमे Infarction होने से या मस्तिष्क मे रक्तस्राव हो जाने से भी शरीर की रक्तवाहिनिया फैल जाती या शिथिल हो जाती हैं। बाह्य शीत से भी यह शिथिलता बढती है। रक्त के ५०० ML तक निकल जाने से Shock नही होता। १००० ML निकल जाने पर यह होता है। वृद्ध मे थोड़े रक्तस्राव से भी यह रोग हो सकता है।

इस प्रकार उपद्रव रूप दीर्घ मूर्छा (Secondary Shock) का रोग (१) एक तो रक्तवाहिनियो मे रक्त या द्रव की मात्रा के न्यून हो जाने से अर्थात् Oli_aemia या Hypovolaemia से होता है (Hypovolaemic Shock) जो न्यूनता (क) आभ्यन्तर या बाह्य रक्तस्राव से होती है (ख) या किसी अग के कुचले जाने या किसी अस्थि के भग्न हो जाने पर रक्त मे से बहुत से प्लाज्मा के परिस्रुत हो जाने से होती है (ग) या अग्निदाह के कारण प्लाज्मा के बाहर निकल जाने से होती है (घ) या जलोदर आदि मे बहुत से रक्त द्रव के उदर गुहा आदि मे बह जाने से होती है (ङ) या वृक्क रोग के कारण रक्त के बहुत से जल के अवयवो मे बह जाने से होती है (च) या अतिवमन (Chloride की अति निकासी) अतिसार (सोडियम की अति निकासी) अति स्वेद आदि के कारण रक्त मे से बहुत से सोडियम तथा जल आदि के निकल जाने से होती हे (छ) या मधुमेह में सोडियम और पोटामियम की अति निकासी से Diabetic acidosis होकर होती है। इसे Oligaemic Theory of Shock कह सकते हैं। इस अवस्था मे शिराओ के द्वारा रक्त थोडी मात्रा मे ही हृदय को लौटता है जिससे हृदय मास ठीक भी हो तो आगे जाने वाले रक्त की मात्रा घट जाती है। इसमे हृदयमास को भी रक्त कम मिलता है एव उसे Oxygen न मिलने से उसकी रक्त फैकने की शक्ति गिर जाती है (Forward Failure of the Heart)। इसे हमने मूर्छा कहा है। पर इस अवस्था मे रोगी पूरी तरह होश मे होता है यद्यपि वह शीतल और निढाल होता है। उसमे Dehydration के लक्षण होते है, आखें अन्दर धसी हुई दीखती है व मूत्राघात होता है, उसकी तुरन्त जलपूर्ति न हो तो मृत्यु हो सकती है।

(२) दूसरा यह दीर्घ मूर्छा का रोग रक्त मे किसी तीव्र जीवाणु विष के अधिक मात्रा मे फैल जाने अर्थात् किसी Sepsis (Toxaemia, Septicaemia) या Endo या Exotoxin (Food Pois_n, निद्राजनक या सज्ञानाशक दवा की अधिकता) के प्रसारण कर जाने से होती है। इस विष के कारण सूक्ष्म रक्तवाहिनियो मे Sympathetic Paralysis होकर वे शिथिल हो जाती हे। जब विष थोडा होता है तब पहले रक्तवाहिनियो मे सकोच हुआ करता है, पर जब उसकी मात्रा बढती है या रोगी निर्बल हो जाता है तब रक्तवाहिनियो में शैथिल्य

(Dilatation) हो जाया करता है । सभव है उस विष का प्रभाव सीधा हृदय पर होकर उसमे भी शिथिलता हो जाती है। इसे Toxic Theory of Shock कह सकते हैं। विषजनित होने मे इसमे ज्वर स्वेद तथा पाण्डुता या फीकेपन का लक्षण भी होता है । रक्तभार की न्यूनता व हृत्कम्प (Tachycardia) के लक्षण तो होते ही हैं। भारी चोट लगने के बाद या Dehydration के होने पर उपद्रव रूप मे Infection हो जाता है।

(३) तीसरा कभी-कभी हृदय में पहले रोग होकर अर्थात् उसके मास मे घात Infarction होकर (क्योंकि इससे Vasomotor केन्द्र Depressed हो जाता है) या उसके मास के रुग्ण होने मे हृत्कम्प-हृदयगतिवैषम्य या हृदयनैर्बल्य होकर भी अगो को रक्त की मात्रा कम मिलने लगती है जिससे Shock के लक्षण होने लगते हैं (Cardiogenic) ।

(४) पेट-Solarplexus (celiac तथा sup Mesenteric ganglia) पर या अण्डकोषो पर या किसी अग पर तीव्र वेदनाजनक आघात लगने से या पेट आदि मे Perforation होने पर नाडी मण्डल पर आघात पहुचने पर Splanchnic क्षेत्र मे Vasodilatation होकर भी शरीर की रक्तवाहिनियो मे रक्त कम हो जाता है ।

(५) Anaphylactic या Allergic Shock — **बाह्य प्रोटीन** प्रकृति की औषधियो जैसे Sera से या Penicillin से भी कभी-कभी रोगी इजेक्शन के बाद शीतल सा हो जाता है या Bronchospasm के कारण उसमे श्वासकाठिन्य हो जाता है। उसका रक्तभार गिर जाता है, नाडी निर्बल हो जाती है ।

Adrenal Shock — शरीर पर विस्तृत प्रदेश पर दाह (Burn) हो, किसी ग्राम नैगेटिव जीवाणु का तीव्र विष सचार हो या जो चिरकाल तक Cortisone वर्ग की औषध खाते रहे हो उनमे किसी प्रकार का शल्यकर्म हो तो उनमे Adrenal Cortex के फैल जाने से Shock हो सकता है ।

स्पष्ट है कि मूर्छा या Shock का यह रोग निर्बल व्यक्तियो, बालको तथा वृद्धो मे शीघ्रता से होता है।

सम्प्राप्ति Pathogenesis—

(१) रक्तवाहिनियो मे से रक्त के या प्लाज्मा के अतिमात्रा मे निकल जाने से,

(२) या किसी विषैले द्रव्य के दुष्प्रभाव से शरीर की सूक्ष्म रक्तवाहिनियो के शिथिल हो जाने से, शरीर के अगो को रक्त कम मात्रा मे मिलने लगता है अर्थात् अगो को ऑक्सिजन पूर्ण मात्रा मे नही मिल पाती । विशेषत हृदय मास और मस्तिष्क के सेल्स को ऑक्सिजन कम मिलती है। ऐसी अवस्था मे जब वृक्को को भी रक्त की कम मात्रा मिलती है तब शरीर मे Sympathetic नाडी मण्डल उत्तेजित हो जाता है तथा Epinephrine की उत्पत्ति भी बढ़ जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि ऐसे सकट काल मे शरीर की रक्तवाहिनिया सकुचित हो जाती हैं। (उनमे Compensatory Vasoconstriction हो जाता है)। त्वचा, कोष्ठ आदि की रक्तवाहिनिया अधिक सकुचित होती हैं जिसमे इनमे रक्त की मात्रा बहुत घट जाती है। इसका यह लाभ होता है कि यकृत्, हृदय, मास मस्तिष्क आदि प्रधान अगो को रक्त कुछ न कुछ मिलता रहता है तथा त्वचा मे से ऊष्मा के विनष्ट होने की मात्रा कम हो जाती है। मूत्र की उत्पत्ति भी कम हो जाती है एव शरीर मे जल, सोडियम क्लोराइड ऊष्मा आदि की रुकावट हो जाती है।

परन्तु यदि रक्त की यह न्यूनता (Ischaemia) देर तक रहे और रोगी वृद्ध हो अर्थात् रक्त मे बाहर से और द्रव न डाला जाय तो यकृत्, मास आदि मे भी रक्त की न्यूनता हो जाती है जिससे इनमे कोई विषैला पदार्थ उत्पन्न हो जाता है जिसके रक्त मे जाने के कारण सामान्य शिरायें ही नही पर ऐसी अनेकानेक शिरायें जो साधारणत बन्द ही रहती है वे भी शिथिल होकर फैल जाती हैं। विशेषत कोष्ठगत (Splanchnic) सूक्ष्म शिराओ के शिथिल होकर फैल जाने से उनमे इतना रक्त भर जाता है (६१ प्र०श० के लगभग) कि हृदय मे शिराओ के द्वारा वापिस पहुँचने वाले रक्त की मात्रा बहुत घट जाती है जिससे उनमे से निकलने वाले रक्त की मात्रा भी बहुत घट जाती है। रक्तभार के अत्यधिक घट जाने, प्रधान-प्रधान अगो को रक्त व ऑक्सिजन के न मिलने मे उन्हे हानि पहुँच जाती है। इस अवस्था मे रोगी शीतल होता जाता है। रक्त के देने से ही ऐसी अवस्था मे जीवन बच सकता है। इस प्रकार कुछ तो यह कहते है कि नाड़ी मण्डल के (Neurogenic) Reflex के द्वारा कोष्ठगत सूक्ष्म शिराओ के शिथिल होकर फैल जाने से यह रोग होता है। (यहा स्मरण रखना चाहिए कि हृदयनैर्बल्य या Congestive Heart Failure मे शिराओ मे अधिक रक्तभार होता है जबकि इस रोग मे शिराओ मे रक्त की मात्रा घट जाती है।) आघात जनित मूर्छा (Traumatic Shock) के कारण के विषय मे एक मत यह है कि आहत मासपेशियो मे से Histamine, Choline आदि कोई अवसादक पदार्थ उत्पन्न होकर रक्त द्वारा शरीर मे सचार करता है और वह Vasomotor केन्द्र पर

अपना दुष्प्रभाव करके अर्थात् Peripheral रक्तवाहिनियो को Paralyse करके रक्तसचार को मन्द करने का कारण वन जाता है जिससे मस्तिष्क तथा शरीर के अन्यान्य अवयवो को यथावत् आक्सिजन के न मिलने से रोगी अचेत या अर्धमृत सा हो जाता हे जिससे प्रवल आघात के कारण सम्पूर्ण नाडी मण्डल अवसन्न (Depressed) हो जाता है।

दूसरा मत यह है कि आहत स्थान से उत्पन्न वेदना सम्वन्धी सज्ञाए ही शरीर के रक्तमचार को मन्द कर देने का कारण होती हैं क्योकि यदि वहाँ से जाने वाली सज्ञा-वाहिनियो (Afferent Nerves) को काट दिया जाय तो आघात लगने के वाद भी मूर्छा का लक्षण वहुत हलका ही होता हे।

इसी प्रकार Mental Shock, Electric Shock, Anaphylactic Shock, Anaesthesia Shock भी इसी के भेद है।

लक्षण

ऐसी अवस्था मे रोगी मूर्छित एव उदासीन की तरह पडा होता है (Prostration)। यद्यपि उसमे समझ बूझ होती है (क्योकि मस्तिष्क मे सिरा सकोच नही होता) उसका चेहरा फीका (Pallor), चिन्तित, त्वचा शीत स्वेद से आर्द्र होती है (Perspiration)। रोगी वेचैन होता हे उसकी आखे कुछ अन्दर धसी हुई, पुतली फैली होती है, उस पर प्रकाश का प्रभाव मन्द होता है, हृदयगति तथा नाडी गति निर्वल होती है (Pulselessness)। (हृदय मे भी शिरा सकोच नही होता) नाडी तीव्र होती है, विषम भी हो सकती है, शरीर का तापमान वहुत गिरा हुआ होता है, श्वास प्रश्वास तीव्र एव उथला (Pulmonary Deficiency) मूत्र-मल वन्द होते है। वमन की इच्छा होती है, रक्तभार गिरा हुआ होता है, ओष्ठो, नखो तथा कानो पर नीलिमा (Cyanosis) होती है। ३०% रक्त निकल गया हो तो रक्तभार १०० M M of Hg से नीचे होता है तथा नाडी १०० प्र०मि० के लगभग होती है। २५% तक रक्त निकल जाने पर भी विशेष हानि नही होती यद्यपि पियासा का लक्षण होता है। इससे अधिक निकल जाय तो वृक्को, यकृत्, हृदय आदि को रक्त न मिलने से इन अगो सम्वन्धी उपद्रव हो सकते है। हृदय मास को रक्त कम मिलने से हृदय मे से रक्त की निकासी और कम हो जाती है। वृक्को को रक्त के कम मिलने से मूत्र के वनने की प्रक्रिया मन्द हो जाती है जिससे रक्त मे Nitrogen रुक जाता है अर्थात् Uraemia होने लगता है। मस्तिष्क को O_2 के कम मिलने से मानसिक मन्दता तथा वेचैनी के लक्षण होते हैं। शरीर का कोई अग कुचला गया हो तो वहाँ के क्षत मास मे से उत्पन्न Myoglobin रक्त द्वारा वृक्को की Tubules मे जाकर वहा निक्षिप्त हो जाता है उनके वन्द होने से वृक्क फेल होने लगते है। प्राय रोगी पानी पीने की इच्छा प्रकट करता है।

सन्यास मूर्छा (Coma) गहरी होनी है तथा उसमे रोगी घुर्राटे ले रहा होता है। अत उससे इसका भ्रम नही होना चाहिए।

दीर्घ मूर्छा (Secondary Shock) की चिकित्सा

रक्तस्राव-अतिसार-वमन-अतिमेह आदि मे स्राव को शीघ्र रोकने का यत्न करना चाहिए, तीव्र वेदना को कम करने का उपाय करना चाहिए। इससे इस रोग को पहले ही रोका जा सकता है। जव यह रोग हो जाय तो मूर्छित रोगी को पूर्णत शान्त वातावरण मे पूर्ण विश्राम की अवस्था मे लिटा देना चाहिए। तथा यदि सिर मे चोट न लगी हो तो उसके पाँयते को १-२ फुट ऊँचा और सिर की तरफ शय्या को नीचा रखना चाहिए ताकि मस्तिष्क को रक्त अधिक मिले (Shock Position)। उसे वाहर की शुद्ध वायु एव ऑक्सिजन पर्याप्त मिलनी चाहिए। Oxygen शुद्ध या ५% Co_2 के साथ उसे देने से श्वास को सहायतः मिलती है। उसका शरीर जो शीतल होता है, उसे कम्वल से गर्म करना चाहिए, उसे Coramine १-२ या Cardiazol ½-१ सी० सी० दें या मुख द्वारा व्राण्डी दे। गर्म वोतलो या अग्नि से गर्म करने से रक्तवाहिनिया जो पहले ही शिथिल हैं और शिथिल हो जाती है, अत उनका प्रयोग करना उचित प्रतीत नही होता। शाखाओ पर कस कर पट्टी वाँध देने से प्रान्त भागो का रक्त जो वहाँ रुका होता हे प्रधान अगो को पहुँच जाता है। प्राय उसे तीव्र वेदना हो रही होती है और वेदना से Vasodilatation या शिराशैथिल्य और वढता है। उसकी शान्ति के लिए Phenobarbital Sodium (Nembutal) १½ ग्रेन मुख द्वारा ३ वार दैनिक दे देना चाहिए अथवा २-३ ग्रेन मात्रा मे इसे त्वचा या मास द्वारा दे देना चाहिए। अधिक वेदना के लिए Morphine Sulphate को जीभ के नीचे रखने से या १५ मिलि० मात्रा मे मास द्वारा या शिरा द्वारा धीरे-धीरे देने से तुरन्त शान्ति पड जाती है वाद मे Pethidine ५० मिलि० मुख से दे। परन्तु मूर्छित व्यक्ति को या जिसके सिर पर चोट लगी हो या जिसका श्वास प्रश्वास पहले ही मन्द है यह नहीं दी जा

सकती। रोगी मुख से ले सकता हो तो गर्म चाय या काफी Aromatic Spirit of Ammon ३० बूंद ½ गिलास गर्म जल मे दे। सिर मे चोट हो या अन्दर कहीं रक्तस्राव हुआ है तो गर्म पेय न दे।

इन प्रारम्भिक चिकित्साओ के अतिरिक्त सबसे आवश्यक बात रोगी की घटी हुई रक्त की मात्रा को बढाना है। अत आधा लिटर पानी उसे हर घटे मे ३ घटे तक मिलना चाहिए। या ५०० मि०लि० Isotonic Saline Solu शिरा द्वारा दे देना चाहिए या उसमे बना ५-१० प्र०श० Dextrose Solu उतना दे देना चाहिए। पर रक्तभार १०० से नीचे ७० तक आ जाय तो रक्त, प्लाज्मा, या Serum Albumin का देना अधिक लाभदायक है। Liquid Human Plasma को ५०० सी० सी० मात्रा मे या Dried Human Plasma को २ ५% Dextrose और ४५% Sodium Chlor के सोल्यूशन मे मिलाकर उतनी मात्रा मे या किसी Plasma Substitute या Plasmaexpander जैसे Polyvenyl Pyrrolidone (PVP) के ३ ५% के सोल्यूशन्स जिनमे Sodium, Potassium, Calcium, Magnesium तथा Chloride ions मिले होते हैं (Periston Byer Plasmosan, Plasmex B I) ५०० सी० सी० की बोतलो मे मिलते हैं, शिरा द्वारा दिये जा सकते हैं या Peiston 'N' जो १०० सी० सी० Transfusion bottle मे मिलता है शिरा द्वारा या मास द्वारा या त्वचा द्वारा दिया जा सकता है। मास तथा त्वचा से देने पर इसमे Hyalase ½ सी० सी० मिलाने से वह शीघ्र विलीन हो जाती है। ये न मिल सके तो Dextran (Bengers, Intradex, Dexulate, Gentran, Expandex, Plavolex) का ६ प्र० श० Isotonic Saline Solu मे बना सोल्यूशन ५००-१००० मिलि०लि मात्रा मे शिरा द्वारा एक मिनट मे २० मिलि लि० के हिसाब से दे देना चाहिए यह भी Plasma Expander का सा कार्य करती है। इतना द्रव देना चाहिए जिससे सकोच कालिक रक्तभार ८५ M M Hg हो जाय। शरीर मे से बहुत से द्रव के निकल जाने से यह मूर्छा या शीतलता हो तो उपर्युक्त द्रवो मे से किसी को ५००-१००० मिलि लि. मात्रा मे शिरा द्वारा देना आवश्यक है। मुख से रोगी जल ले सकता है तो मुख से भी गर्म जल देना चाहिए। गुदा से भी केथिटर द्वारा Isotonic Glucose युक्त गर्म सेलाइन देना चाहिए। रोगी पर आप्रेशन करना हो तो उसके रक्तभार के बढ जाने के बाद ही वह रखना चाहिए। परन्तु यदि हृदय निर्बल हो, Toxic Myocarditis हो तो द्रव का ऐसे देना ठीक नही।

यदि विष जनित मूर्छा हो अर्थात् Septic Shock हो तो आगे लिखी Vasopresser औषधियाँ विशेष लाभ करती हैं। यद्यपि वे रक्त की मात्रा के न्यून हो जाने के कारण उत्पन्न Shock मे भी लाभ दिखाती हैं परन्तु यदि हृदय निर्बल हो तो Vasoconstriction करना उचित नही। ऐसा करने से हृदय की निकासी और घट जाती है। इन्हे रक्त या द्रव Transfusion से पहले नही देवें।

शिरासकोचक या रक्तभारवर्धक औषधियो (Vasopresser) का प्रयोग

(१) Adrenal Medulla का स्राव Noradrenaline (Levophed) १००० मे १ के Solution की ४ सी०सी० औषधि (८ मिलि०) को १ हजार सी० सी० शुद्ध जल या ५% ग्लूकोज सेलाइन मे मिला करके २०-४० बूंद प्रति मिनट के हिसाब से शिरा द्वारा देने से रक्तभार बढता है। इसके १ मिलि० मे २ मिलि० के एम्प्यूल (Adrenor) बाजार मे मिलते हैं। ४-६ मिलि० का देना पर्याप्त होता है।

(२) Mephentermine Sulphate (Mephentine या Wyamine Sulphate) १ सी० सी० औषधि (१५ मिलि०) को १०-२० सी० सी० नार्मल सेलाइन मे मिला कर शिरा द्वारा १५ मिनट मे दिया जाता है या २ सी० सी० औषधि को १०० सी० सी० ५०% ग्लूकोज सोल्यूशन मे मिला कर बूंद-बूंद करके शिरा द्वारा दे दिया जाता है। या १५-३० मिलि० मात्रा मे इसे मास द्वारा दे सकते हैं तथा तीन-तीन घण्टे बाद फिर दुहरा सकते हैं जब तक B P ११० M M Hg न हो जाए।

(३) Phenylephrine Hydrochloride (Neosynephrine) के ५ से १ मिलि० मात्रा मे २-२ घण्टे बाद शिरा द्वारा देने से भी घटा हुआ रक्तभार बढ जाता है। ५ मिलि० मात्रा मे त्वचा द्वारा देने से यही लाभ होता है।

(४) Methoxamine Hydrochloride (Vasoxine, Vasoxyl) के १० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा या ५ मिलि० के शिरा द्वारा देने से भी यही प्रभाव होता है। इसे १५ मिलि० मात्रा मे २५०-५०० मिलि लि० Dextrose Solu मे मिला कर बूंद-बूंद करके भी दे सकते हैं।

(५) Metaraminol Acid Tartrate (Aramine Bitartrate, Merck Sharp Dohme) के १५-

१०० मिलि० मात्रा मे २५०-५०० सी० सी० Saline या Glucose Saline मे बूंद-बूंद करके देने या त्वचा या मास या शिरा द्वारा २-१० मिलि० मात्रा मे देने से भी रक्तभार बढता है।

(६) Pholedrine Sulphate (Veritol-Veritain) का २ प्र० श० सोल्यूशन एक सी०सी० मे मिलता है। इसे आधे से एक सी०सी० मात्रा मे २५ सी०सी० ग्लूकोज सोल्यूशन मे मिलाकर धीरे-धीरे शिरा द्वारा २-२ घटे पर दिया जाता है या १ सी०सी० मास द्वारा दिया जाता है अथवा रोग तीव्र रूप मे न हो तो १% सोल्यूशन को १५-३० बूंद मात्रा मे दिन मे कई बार मुख से भी दिया जाता है।

(७) Methedrine की १५-३० मिलि० मात्रा २-२ घटे बाद मास या शिरा द्वारा धीरे-धीरे देने से भी रक्तभार बढता है। इन ओषधियो से रक्तभार को १०० M M of Hg तक करना चाहिये।

(८) रक्तस्राव या Serum के बडी मात्रा मे निकल जाने पर (Burn) या आतो से बहुत जल के निकल जाने से शीतल हुए मूर्छित रोगी मे जब Adrenal Cortex ग्रन्थि का कार्य मन्द होता है Hydrocortisone Sodium Succinate (Solucortef) को १००-३०० मिलि० मात्रा मे ५ प्र०श० सोल्यूशन (Isotonic Saline मे मिला करके) शिरा द्वारा शीघ्र देने से रोगी का बढ़ा हुआ रक्तभार कायम रहता है, गिरता नहीं। बाद मे इसे ५० मिलि० मात्रा मे शिरा द्वारा दिया जा सकता है।

जीवाणु सचार (Infection) जनित रोग हो, ज्वर भी हो, तो Antibiotic औषधियो का जैसे Tetracycline का शिरा द्वारा प्रयोग करना चाहिये तथा हृदयदौर्बल्य या उसका Infarction कारण हो तो Digoxin का या Mephentermine का २५% ग्लूकोज के साथ २० सी०सी० मात्रा मे प्रयोग करना चाहिये। रोगी की नाडी, तापमान, रक्तभार, श्वास-प्रश्वास की परीक्षा ½, ½ घण्टे पर करनी चाहिये। अवस्था सुधरने के लक्षण हो तो फिर Shock की चिकित्सा रोक देनी चाहिये। औषध मूर्छा या Anaphylactic या Allergic Shock मे Adrenaline २ मिलि० को मास द्वारा दें। या Cortisone वर्ग की किसी औषधि को जैसे Dexamethasone (Decadron) को शिरा द्वारा देना चाहिये। Adrenal Shock मे Hydrocortisone Hemisuccinate को ५०-१०० मिलि० मात्रा मे ५% ग्लूकोज सोल्यूशन के साथ शिरा द्वारा बूंद-बूंद देना चाहिये। यदि रक्तभार बहुत गिरा हुआ हो तो Nor adrenaline भी (लिटर मे ८ मिलि०) मिला दे। इस चिकित्सा को स्वल्प मात्रा मे कई सप्ताह तक जारी रखना चाहिए।

आयुर्वेद मे मूर्छा रोग

मस्तिष्क को रक्त या आक्सिजन ग्लूकोज आदि आहार द्रव्य कम मिलें तो मूर्छा होती है। शरीर के प्राणतत्त्व या वायुतत्त्व की निर्बलता के कारण ऐसा हो अर्थात् हृदय में अशक्ति हो या रक्तवाहिनियो की रक्त वाहक शक्ति क्षीण हो Vasomotor inability हो, रक्त भार क्षीण हो, मस्तिष्क में अपस्मार हिस्टीरिया की निर्बलता हो तो ऐसी मूर्छा को अर्थात् Asthenic, Nervous Stupor को तथा आघात जनित मूर्छा को वातिक मूर्छा कहते हैं। मस्तिष्क में रक्त सचय या सताप की अधिकता से ज्वर दाहयुक्त जो मूर्छा होती हैं अर्थात् मस्तिष्क या उसके आवरण में किसी प्रकार के Infection से न्यूनाधिक रक्तस्राव से जो मूर्छा होती है उसे पित्त मूर्छा कहते हैं तथा मस्तिष्क के रक्त वाही स्रोतो में न्यूनाधिक अवरोध या स्रोतोरोध Thrombosis अथवा आम सचय के कारण या मस्तिष्क में किसी प्रकार के अर्बुद के उत्पन्न हो जाने और उससे उत्पन्न श्वयथु Oedema के कारण अथवा रक्त भार वृद्धि के कारण मूर्छा हो तो उसे श्लैष्मिक मूर्छा कहते हैं। किसी बाह्याभ्यन्तर विष जैसे मधुमेह में Acidosis या रक्त में अम्ल वृद्धि से वृक्करोग में uraemia से, यकृत रोग में cholaemia से, गर्भिणी में एक रक्त जनित विष के कारण Eclampsia से जो मूर्छा होती है उसे विषज मूर्छा कहते हैं।

मूर्छा को आगे के वास्ते रोकने के लिये कुछ योग ये है—

(१) मूर्छा हर रस (र का धे) रससिन्दूर २ रत्ती पिप्पली चूर्ण २ माशा। मधु के साथ रोज १ वार दें।

(२) त्रिफला योग (यो र) त्रिफला चूर्ण ३ माशा रात मधु से। प्रातः अदरक का रस तथा मधु मिला कर लें।

(३) त्रिफलादियोग (ग. नि) त्रिफला सोठ चित्रक शिलाजीत चूर्ण समान समान मिलाकर खाण्ड सर्व तुल्य मिला दें। ४ माशा घृत के साथ रोज चटायें।

(४) अश्वगन्धारिष्ट (अपस्मार प्रकरण में) रोज २ वार दें।

(५) मूर्छान्तक रस (भै र) रस सिन्दूर, स्वर्ण माक्षिक, लोह, शिलाजीत चूर्ण समान स्वर्ण

भस्म प्रत्येक द्रव्य का चौथाई भाग मिलाकर शतावरी तथा विदारी स्वरस की कुछ भावनायें देकर २ रत्ती की गोली बनायें। १ गोली दिन में २ बार दें।

अर्धावभेदक —Migraine, Hemicrania

यह एक वेगो मे होने वाला तथा घण्टो तक रहने वाला भारी सिर दर्द है जिसमे उलटी भी हो जाती है।

कारण

१५-२० वर्ष की आयु मे नवयुवावस्था मे विशेषत. नवयुवतियो मे मध्यमायु तक १५-१५ दिन या महीनो के अन्तर से वेगो मे प्रारम्भ होने वाला यह एक सिर दर्द है जो पहले सिर के एक प्रदेश मे आरम्भ होकर आधे सिर मे और कभी-कभी सारे सिर मे और ग्रीवा मे फैल जाता है। यह पितृ परम्परा से आने वाला रोग है।

जिस प्रकार मस्तिष्कान्तर्गत रक्तवाहिनियो (Internal Carotid) के फैल जाने (Vasodilatation) या उनके अन्दर रक्तभार के बढ जाने से या उनके आसपास के अवयव मे श्वयथु (Oedema) के हो जाने से सिर दर्द हो जाता है, वैसे ही मस्तिष्क के बाह्यावरण (Dura) तथा सिर के बाहर कपाल मे आने वाली Ex Carotid Art और उसकी शाखाओ जैसे Supraorbital, Superficial Temporal arteries के शिथिल (Dilated) हो जाने एव उनके अन्दर रक्त के अधिक भर जाने तथा उनकी दीवारो मे वेदना की उत्पत्ति होने तथा उनके आसपास के अवयव मे श्वयथु के हो जाने मे यह अर्धावभेदक नामक का सिर दर्द होता है। Ergotamine का इन पर सकोचक प्रभाव होता है इसीलिए उसके देने पर सिर दर्द शान्त होने लगता है। परीक्षक लोग बताते है कि फैली हुई धमनियो के आसपास के द्रव मे एक Vasodilator पदार्थ मिलता है।

क्रोध, चिन्ता, मानसिक शारीरिक थकावट या आखो के अधिक थक जाने आदि कारणो के आ पडने पर तथा अजीर्ण के होने पर शरीर मे उत्पन्न किसी भोजन सम्बन्धी विष (Metabolite) या किसी Ch Infection के दुष्प्रभाव मे या किसी द्रव्य की Allergy के कारण मस्तिष्क और कपाल की रक्तवाहिनियो (Cerebral, Bacilar) Meningeal, Extracranial) मे पहले तो स्तम्भ (Spasm) हो जाता है, पश्चिम मस्तिष्क के Cortex की धमनियो मे स्तम्भ से Scotoma या तिमिर या अधकार बिंदु के दीखने का लक्षण होता है। Spasm के कारण वहा की मासपेशियो को रक्त कम मिलता है, जिससे उनमे भी स्तम्भ हो जाता है तथा दर्द हो जाता है। रक्तवाहिनियो में स्तम्भ का कारण वहा पर कोई प्रोटीन किस्म का विषपदार्थ है जिससे वहाँ की Nerves के सिरो मे दर्द की Sensitivity बढ जाती है। इसी पदार्थ से रक्तवाहिनियों मे स्तम्भ भी होता है। स्तम्भ के बाद रक्तवाहिनियाँ शिथिल होकर फैल जाती हैं। उनके फैल जाने से विशेषत सिर दर्द आरम्भ होता है। चौडी या फैली हुई धमनियो के स्पन्दन के कारण यह सिर दर्द Throbbing किस्म का होता है। इस प्रकार सिरानियामक शक्ति (Vasomotor Power) की निर्बलता अर्थात् Vosomotor instability इस रोग का कारण प्रतीत होती है जो रोगी मे बहुधा सहज होती है।

लक्षण

प्रात.काल जब रोगी तकिये से सिर उठाने लगता है उसका सिर चकराने लगना (Vertigo) तथा उसकी आँखो के सामने दृष्टि क्षेत्र मे कही अधेरा-सा आ जाता है अथवा उस अधेरे के बीच मे चमकारे से दीखते हैं। दृष्टिपटल (Retina) या दृष्टिकेन्द्र (Visual Cortex) की रक्तवाहिनियो (Post Cere धमनी की शाखाओं) मे स्तम्भ (Vasoconstriction) के हो जाने मे ये लक्षण होते हैं। इसी कारण Hemianopia या आधे दृष्टिक्षेत्र मे अधेरे या Scotoma का लक्षण भी होता है। ये पूर्व रूप (Aura) १०-१५ मिनट तक रहते हैं। इसके साथ रोगी मे अरुचि या वमन आने का लक्षण भी होता है। इसके बाद जब रक्तवाहिनिया फैल जाती हैं तब एक ओर की कनपटी या नेत्र पश्चिम प्रदेश पर चुभने वाला शूल आरम्भ हो जाता है। जिस आँख मे अधेरा-सा आता है उससे विपरीत दिशा की ओर यह दर्द आरम्भ होता है। धीरे-धीरे वह अधिक-अधिक प्रदेश पर फैलता जाता तथा तीक्ष्णतर होता जाता है। हिलने से, प्रकाश पडने से, शोरगुल से यह शूल और बढता है। शूल के साथ अरुचि होकर वमन होने का लक्षण भी होता है। वमन से शूल को कुछ आराम मिलता है। नेत्र और नासिका से जल भी निकलता है। २-३ घण्टो तक शूल बढा हुआ रहने के बाद क्रमश घटने लगता है। जिधर दर्द होता है उधर पुतली बहुधा फैली हुई होती है, शाखाओ मे निर्बलता लगती है। अन्त मे रोगी को नीद आ जाती है और जब वह उससे उठता है तब दर्द समाप्त हो चुका होता है। इस प्रकार यह दर्द लगभग एक दिन रहता है। रोगी को देखने पर उसका चेहरा धमनियो मे स्तम्भ के कारण कुछ फीका दीखता है। रक्तवाहिनिया फैली हो तो चेहरा कुछ लाल दीखता है। रक्त मे Eosinophils की सख्या ५-१५% मिलती

है। ऐसा भी हो सकता है कि रोगी को केवल नेत्र सम्बन्धी पूर्व रूप ही हों या मूकता (Aphasia) ही हो, सिर दर्द न हो, या नेत्र सम्बन्धी लक्षण न हो, केवल सिर दर्द ही हो या केवल वमन और पेट मे बेचैनी के लक्षण हो, ये सिर दर्द के दौरे बहुत वर्षों तक होते रहते हैं। मध्यमायु के बाद हलके पड जाते और बन्द हो जाते हैं, पर आयु पर इनका कोई दुष्प्रभाव नही होता।

चिकित्सा

कपाल पर की रक्तवाहिनियो के फैल जाने से यह दर्द होता है। इसलिये सिर को बाध देने या शीत प्रसेक Cold Compress से इसमे कुछ कमी हो जाती है। इसी प्रकार Ex Carotid Art के दबाने मे भी यह दर्द घट जाता है। आक्सिजन १००% के Nasal Mask द्वारा देने से भी दर्द कम हो जाता है। Phenacetin १० ग्रेन, Aspirin १० ग्रेन, Caffeine ५ ग्रेन की एक पुडिया के लेने से या Luminal १½ ग्रेन के लेने तथा आवश्यकता पडने पर इनके दुहराने से यह दर्द शान्त हो जाता है। मस्तिष्क व सिर के बाहर की धमनियो के लिये सकोचक (Vasotonic) होने से Ergotamine Tartrate gynergen Sandoz) १-२ मिलि० मात्रा मे इस रोग मे प्रयुक्त होता है (गर्भिणी मे यह औषध निषिद्ध है। इसी प्रकार B P अधिक हो या हृदय शूल का रोगी हो तो भी यह ठीक नही)। इसका १ सी०सी० मात्रा का एम्प्यूल जिसमे ½ मिलिग्राम औषधि होती है, मिलता है। इसके ½ सी० सी० की मात्रा मे (२५ मिलि०) मास द्वारा वेग आरम्भ होते ही तुरन्त देने से १ घटे मे आराम आ जाता है। और आवश्यकता हो तो दो घन्टे बाद फिर आधा सी०सी० मात्रा मे दे सकते है। Dihydroergotamine (Migril B W –Cafergot Sandoz तथा Dihydergot Sandoz) उपर्युक्त औषधि की अपेक्षा अधिक निरुपद्रव है। इस गोली के अतिरिक्त इसका एक मिलिलि० का इजेक्शन जिसमे २ मिलि० औषधि होती है, ½ मिलिलिटर मात्रा मे मास द्वारा दिया जाता है। आवश्यकता हो तो १ घन्टे बाद इसे दुहराया जा सकता है। मुख द्वारा भी इसका प्रयोग किया जाता है परन्तु वमन हो जाने की आशका रहती है। इसकी १ मिलिग्राम की गोलियो (gynergen) के जीभ के नीचे रखकर चूमने से और आधे-आधे घटे मे इसी प्रकार १ मिलि० इन गोलियो के ४ तक चूस कर लेने से लाभ हो जाता है। आवश्यकता हो तो ६-७ गोलियो तक लेने से कोई हानि नही है। १०० मिलि० Caffeine (Vasoconstrictor होने से) के साथ देने से इसकी कम मात्रा देनी पडती है (जैसे Migril या Cafergot गोली) वेग आरभ होते ही इस औषधि के लेने से जल्दी आराम आता है। इस औषधि के लेने के बाद रोगी को अधेरे स्थान पर १-२ घन्टे लेटे रहना चाहिये तथा कुछ खाना पीना न चाहिये। पर जहा तक हो मुख द्वारा न देकर मास या त्वचा द्वारा ही इसे देना चाहिये। Ergotamine की गुदवर्ति Suppository भी मिलती है उसके रखने से भी लाभ होता है। दर्द के वेग को हुए देर हो गई हो अर्थात् रक्तवाहिनियो की दीवार मे श्वयथु या Oedema हो चुका हो तो फिर इस औषधि के देने से भी लाभ नही होता। तब Codeine (६० मिलि०) या Sodium amytal ८० मिलि० देने से लाभ होता है। इन औषधियो से अरुचि व वमन का उपद्रव हो तो Dramamine Cyclizine २५ मिलि० या Largactil १० मिलि० से वह ठीक हो जाता है। Ergotamine के समान Prochlorperazine (Stemetil) भी बडा लाभदायक है। बाद मे इसे रोकथाम के लिये भी देते रहना चाहिए।

आगे से इस रोग की रोकथाम के लिए Phenobarbitone या Sodium amytal ½, १ ग्रेन मात्रा मे रात को एक बार कुछ महीनो तक लेते रहना चाहिये या Chlordiazepoxide १०मिलि० या Stelazine २मिलि० दिनमे १ बार लेते रहना चाहिए। परन्तु Methysergide १-२ मिलि० मात्रा दिन मे एक बार देते रहने से भी इस रोग के होने की आशका नही रहती। निद्रा व विश्राम लेने से इस रोग मे आराम पडता है। या Bellargal Sandoz १-२ गोलिया दिन में २-३ बार कुछ मास तक लेनी चाहिए। Nicotinic Acid रक्तवाहिनियो के सकोच को रोकता है (वह Anti-spastic है) उसके १०० मिलिग्राम मात्रा मे दिन मे दो-तीन बार भोजन बाद कुछ मास तक लेते रहने से भी यही लाभ होता है। Riboflavine १० मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन बार ५-६ मास लेने और फिर ५-१० मिलि० एक बार लेते रहने से भी लाभ होता है Carbachol (Doryl) के भी Vasodilator होने से २ मिलि० मात्रा मे २-३ बार लेते रहने से रोग का वेग नही होता। Vitamin B_1 के ५० मिलि० अथवा विटामिन बी$_{12}$ ५०० मा० ग्रा० मात्रा मे त्वचा या मुख से प्रतिदिन लेते रहने से भी लाभ होता है। Calcium Gluconate तथा विटामिन 'डी' के लेते रहने से भी ऐसा ही लाभ हो जाता है। मानसिक आवेश से अति मानसिक तथा शारीरिक श्रम से तथा मलबन्ध और अजीर्ण से बचा जाय अर्थात् कोई सुख विरेचन लेते रहा जाय, घृत, तेल आदि से बने आहारो व मास, चाय, काफी का सेवन न

किया जाय लवण कम लिया जाय और आखो पर अधिक जोर न डाला जाय तो भी उस रोग का वेग नही होता। नियमपूर्वक मृदु व्यायाम व मालिश करते रहने से भी इस रोग का वेग जल्दी नही होता। आर्तव कालिक अर्धावभेदक रोग मे आर्तव मे एक सप्ताह पहले ही Progesteron ५ मिलि०, मास द्वारा तीसरे दिन २-३ वार दे दे। या Ethisterone ३० मिलि० दैनिक मात्रा ४-५ दिन मुख मे दे दे।

आयुर्वेद मे अर्धावभेदक शूल

आयुर्वेदानुसार कपाल की रक्तवाहिनियो में वायु के प्रकुपित होने से अर्थात् उनकी प्राण शक्ति की हीनता से उनमें स्तभ तथा शैथिल्य होकर आधे सिर में यह दर्द उठता है जो कुछ-कुछ दिनो के अन्तर से होता है। सुश्रुत ने इसे वातप्रधान त्रिदोषज शिर:-शूल कहा है। अन्यो ने इसे प्रधानतया वायु वृद्धि और गौण रूप में कफ वृद्धि से होने वाला शिरोरोग कहा है। इसकी वृद्धि अध्यशन, अत्यशन से तथा मलवन्ध, अति शारीरिक-मानसिक श्रम तथा निद्रा के कम लेने से होती है। अर्थात् अग्नि की मन्दता से रक्त में कोई आम द्रव्य उत्पन्न होता है जिससे मस्तिष्क धमनियो की दीवार में वायु प्रकुपित हो उठती है।

(च०। चि०। २६।, सुश्रुत उत्तर २८)

अर्धावभेदक शूल में निम्नलिखित प्रयोग उपयोगी हैं—

(१) षडङ्ग क्वाथ (भा.प्र.) त्रिफला, चिरायता, हरिद्रा गुडूची, नीम की छाल (वैद्यामृत मे इस प्रयोग में नीम के स्थान कुटकी लिखा है) समान २ के २½ तोला का क्वाथ दें। इसे चन्द्रप्रभा के साथ दे सकते हैं।

(२) त्रिफला चूर्ण ३ माशा के लेते रहने से भी लाभ होता है।

(३) अणु तेल (च. सं.) चन्दन, अगर, तेजपत्र, दारु हल्दी, मुलैठी, बलामूल, प्रपौंडरीक, छोटी इलायची, विडग, विल्वछाल, कमल, सुगन्ध वाला, खस, दाल चीनी, मोथा, सारिवा, दोनो पर्णी, जीवन्ती, शतावरी, देवदारु, रेणुका, दो कटेली, पद्म केसर, शल्लकी समान २ कुल ६½ सेर को वर्षाजल १०० सेर में पकाकर २५ सेर जल शेष रखें। तिल तेल २½ दूध २½ सेर मिलाकर तैल साधन करें। इस तेल का नस्य दें।

(४) षड् विन्दु तेल का भी नस्य दें।

(५) मुण्डीयोग (ग नि) गोरख मुण्डी के स्वरस में थोडी काली मिरच डालकर भोजन से पहले दें। भोजन में केवल दूध चावल दें।

(६) नासिका में घृत का नस्य देने तथा दूध के नासा द्वारा पीने से भी लाभ प्रतीत होता है।

(७) दशमूल तैल (भै. र.) दशमूल ४ सेर जल ३२ सेर कषाय ८ सेर तेल २ सेर, दूध ८ सेर दशमूल कल्क एक पाव। तैल साधन करें। सिर पर मलें। (पलित में उस का नस्य भी उपयोगी है)

शिरोरोग—शिर शूल—(Headache)

मस्तिष्क मे वेदना नही होती, केवल कपाल के बाहर मास मे, कपाल के Periostium मे Arteries मे तथा कपाल के अन्दर Venous Sinuses मे, Dura मे, मस्तिष्कगत Arteries मे, पचम नाडी Trigeminal, नवम Glossopharyngeal तथा दशम Vagus नाडी मे सज्ञा की प्रतीति है। इन्ही के कारण Dura तथा Menenges मे वेदना की प्रतीति होती है।

कपालान्तर्गत धमनियो मे रक्त के अधिक भर जाने और उनके फैल जाने व उनके प्रवल स्पदन से अथवा उनमे रक्तभार (B P) के बढ जाने अर्थात् External Carotid artery की शाखाओ के फैल जाने से एव कपाल के अन्दर दवाव के बढ जाने से बहुधा सिर दर्द हुआ करता है जैसे विषम ज्वर, मन्थर ज्वर, Influenza मसूरिका आदि मे होता है। झुकने से यह रक्तभार जनित दर्द बढता है। सामान्यत रक्त मे जीवाणु हो (Bacteriaemia हो) कोई विष द्रव्य हो (Sepsis) हो तो सिर दर्द हो जाता है। अर्थात् ज्वरो का सिरदर्द मस्तिष्कावरणगत धमनियो के फैल जाने या भर जाने से होता है। यह स्मरणीय है कि Tentorium के नीचे के भाग मे, रक्तभार बढे तो पश्चिम कपाल के अन्दर और बाहर दोनो ओर Upper-Cervical Spinal Nerves के व्याप्त होने के कारण दर्द शिर के पिछले भाग मे प्रतीत होता है। रक्तभार, Tentorium (मस्तिष्क की टैन्ट सदृश रचना) से ऊपर के भाग मे बढे तो ऊपर के कपाल के अन्दर बाहर दोनो ओर पाँचवी नाडी की तीसरी शाखा के व्याप्त होने से दर्द अग्रकपाल और शख प्रदेशो पर प्रतीत होता है।

इसी प्रकार कोई सिरा प्रसारक Vasodilator औषधि जैसे Nitrite अधिक मात्रा मे लिया जाय तो भी सिर दर्द हो जाता है। शरीर मे Histamine के बढ जाने या किसी वाह्य तथा प्रतिकूल प्रोटीन के शरीर मे आ जाने से मस्तिष्क के आवरणो (Pia तथा Dura) की धमनियो के शिथिल होकर फैल जाने, मस्तिष्कान्तर्गत रक्तभार के बढने से भी सिर दर्द हो जाता है। क्रोधादि तीव्र

मानसिक आवेश से कपालान्तर्गत धमनियो में शैथिल्य (Dilatation) होकर सिर दर्द होता है। दूसरी ओर चिन्ता आदि मानसिक आवेशो के कारण चेहरे और कपाल की मासपेशियो मे तनाव (Tension) के बढ जाने से और वहाँ रक्त के कम पहुचने से भी सिर दर्द रहता है जो पिछले भाग मे विशेष होता है (Occipital होता है)। रक्तभार के बढ जाने के अतिरिक्त रक्तभार के गिर जाने से मस्तिष्क को रक्त एव ऑक्सिजन के कम मिलने से भी जैसे पाण्डु में सिर दर्द हो जाता है उन्निद्रता Insomnia से भी सिर दर्द हो जाता है।

रक्त मे किसी असामान्य विष के आ जाने से भी जैसे CO_1 CO_2 से या चिरस्थायी वृक्क रोग जनित मूत्र विष (Uraĕmia) से या मलबन्ध और अजीर्ण जनित किसी विष के कारण तथा किसी दूसरे Metabolite के बढ जाने या रक्त मे खाण्ड के बढ जाने से भी सिर दर्द हो जाता है। कुछ मस्तिष्क रोगो जैसे मस्तिष्कावरण शोथ (Meningitis) मस्तिष्क अर्बुद, मस्तिष्क विद्रधि, मस्तिष्क मे जल वृद्धि (Hydrocephalus) मस्तिष्क मे Arteriosclerosis, Thrombosis तथा मस्तिष्क के Subarachnoid प्रदेश मे रक्तस्राव हो जाने से भी शिर मे भारी दर्द होता है। सिर दर्द के साथ स्मृतिनाश, शिरोभ्रम, Syncope स्वल्प मूर्छा के लक्षण भी हो तो मस्तिष्क मे Arteriosclerosis का निश्चय करे। ज्वर, आक्षेप तथा कण्ठकुब्जता के लक्षण हो तो Meningitis का सन्देह करे। रक्तभार से हो तो झुकने से तथा क्रोध करने से बढता तथा प्रात काल विशेष होता हे। इनके अतिरिक्त नेत्र के Iritis, Glaucoma, Eyestrain या Hypermetropia रोगो तथा कान, नाक (Para Nasal Sinuses) गले, दात आदि क रोगो के कारण भी सिर दर्द होता है। नाक और आँख के अन्दर के वेदनावाहक सूत्र ५वी मस्तिष्क नाडी की प्रथम द्वितीय शाखाओ द्वारा ऊपर की ओर जाते हैं। इन्ही से मस्तक की त्वचा को भी सूत्र आते हैं जिससे इनमे होने वाला दर्द मस्तक मे प्रतीत होता है। तो भी सबसे अधिक सुलभ सिरदर्द Tension के कारण होता है अर्थात् मानसिक होता है। जो सिर दर्द दवाइयो से ठीक न हो तीव्र हो तो मस्तिष्कार्बुद का सन्देह करना चाहिए। अर्बुद का दर्द प्राय प्रात काल होता है। खासने, झुकने, जोर लगाने से जब सिर मे प्रेशर बढता है तब बढता है अर्थात् लेटने पर बढता है। चिकित्सा कारणानुसार ही होनी चाहिए। अर्थात् शूलहर Analgesics का या Muscle Tension कारण हो तो Phenobarbitone १५-३० मिलि० दिन मे ३-४ बार या किसी मन शामक Tranquilizer का प्रयोग करना चाहिए। साधारणत Aspirin ५ ग्रेन या Paracetamol ५०० मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ बार दी जाती है। चिन्ता रोग (Tension Headáche) मे इन्हे Meprobamate या Chlordiazchoxide के साथ दे सकते है। वेदना साधारणत तीव्र हो तो इन्हें Codeine के साथ दे। Intracranial pressure की अधिकता से सिर दर्द हो तो मूत्रल औषधि दे। चारपाई का सिरा ऊचा रखे। विरेचन दे।

आयुर्वेद मे शिरः शूल

शिर की रक्तवाहिनियो में स्तम्भ या शैथिल्य होकर अर्थात् उनकी रक्त सचारक (Vasomator) शक्ति की निर्बलता के कारण जो सिर दर्द होता है अर्थात् चिन्ता क्रोध आदि मानसिक कारणो से होने वाले Tension जनित सिर दर्द को वातिक शिरः शूल कहते हैं। सिर की रक्तवाहिनियो में अतिरक्तसचय होकर अर्थात् रक्त में जीवाणु विषो के कारण होने वाले तीव्र ज्वरो की सिर दर्द को पैत्तिक तथा नासा गले आदि स्रोतो में श्लैष्मिक शोथ होने के कारण जो सिर में दर्द होता हे उसे श्लैष्मिक शिर शूल कहते है। बडी आयु में सिर की रक्त वाहिनियो में क्षीणता के उत्पन्न हो जाने तथा रक्त भार के बढ़ जाने से जो सिर दर्द होता है उसे वात कफ जनित शिर-शूल कहते है। सिर की रक्तवाहिनियो मे केवल वायु या कफयुक्त वायु का प्रकोप होने से अर्धावभेदक शूल होता है जिसका ऊपर वर्णन हुआ हैं। सिर के अन्दर पित्त रक्त और वायु तीनो का प्रकोप होकर जो विद्रधिभाव होकर शूल होता है उसे वातपित्तज शिर शूल कहते है। शिर मे अर्बुद होकर जो शूल उठा करता है उसे भी वात कफ प्रकोप जनित ही कहा जाता हे।

वातिक शिर.शूल मे स्वेदन, उष्णस्नेहन तथा मर्दन और बल्य चिकित्सा करनी चाहिए। पैत्तिक शिर.शूल मे शिर पर शीत चिकित्सा होनी चाहिए। श्लैष्मिक शिर-शूल मे रुक्ष स्वेदन होना चाहिए तथा मधुराम्ल लवण रसो का सेवन बहुत कम करना चाहिए। सामान्यतः सर्व शिर शूलो मे त्रिफला को मधु के साथ देवें दशमूल तेल (अर्धावभेदक मे लिखा) या भृंगराज तेल की सिर पर मालिश करनी चाहिए। षड् विन्दु तेल का नस्य देवें या नागरादिनस्य (च से. तथा वृ. मा) अर्थात् सोठ को दूध मे पीसकर उस दूध की बूँद नाक मे डालें। या पिप्पल्यादि नस्य (वृ नि र) अर्थात् थोडी पिप्पली और सैंधव को तेल मे पकाकर छानकर उस तेल का नस्य

दें। सभी शिर:शूलो मे लक्ष्मीविलास (भै र) अभ्रक भस्म ५ तो. गधक पारद २½-२½ तो कपूर जावित्री जातिफल, विधारावीज, धत्तूर तथा भाँगवीज, शतावरी नागवला, अतिवला, गोखरू, हिज्जलवीज, १¾ १¾ तो., पान के रस से गोली वाँधें। १ गोली प्रात जल से दें। नासाकृमि जनित शिर:शूल मे ताम्बूलादिनस्य (हा. स) विडंग, सैंधा, हींग, गुड को सम मात्रा मे मिलाकर पान के पत्तों के रस से गोली वना लें। इसे जल मे घिसकर उसकी बूँदें नाक मे टपकाएँ। सर्व शिर:शूलो मे वादामपाक (वादाम गिरि, चारमगज मिलित, ब्राह्मी चूर्ण, द्राक्षा ५-५ तो पिट्ठी बनाकर उसे २ पाव घृत मे भूनकर १ सेर मिश्री की चासनी मे पकाकर पाक वनायें) १-२ तोला मात्रा मे रोज १ वार दें।

अर्दित —Facial Paralysis, Bell's Palsy, Rheumatic Facial Paralysis

मस्तिष्क सप्तम नाडी (Facial N) का मोटर न्यूक्लियस Pons के निम्न भाग मे होता है। इससे ऊपर के इस नाडी के चेष्टा सूत्रो (Supranuclear भाग मे) मे जो दूसरी ओर से क्रास करके आते हैं जब रोग होता है जैसे कि पक्षाघात रोग मे, मस्तिष्क रक्तस्राव (Haemorrhage) या मस्तिष्क धमनी रोध (Cere Thrombosis) के कारण होता है तब भी एक ओर के चेहरे विशेषत उधर के चेहरे के निचले भाग की माँसपेशियो मे घात (Paralysis) का लक्षण होता है। यह रोग ५०-६० वर्ष की आयु के वाद हुआ करता है तथा इस अवस्था मे उधर की शाखाओं म भी न्यूनाधिक घात होता है।

परन्तु इस नाडी के निचले सिरे मे जो कि Stylomastoid छिद्र के वाहर रहता है अर्थात् Chorda Tympani नाडी के इसमें से निकलने के वाद का है, कभी-कभी सर्दी लगकर शोथ हो जाने का रोग हो जाता है। फिर यह शोथ इसके Facial Canal के अन्दर विद्यमान भाग मे भी प्रसरण कर जाता है। यह शोथ यद्यपि इस नाडी के आवरण (Sheath) मे होता है पर Steloid foramen के अन्दर के प्रदेश पर आवरण के स्थूल हो जाने से तथा उसमें Oedema के हो जाने से वीच के नाडी सूत्र दव जाते (Strangulate हो जाते) हैं। उनके दव जाने से उनका पोषण कम हो जाता है एव उसमे क्षीणता (Degeneration) उत्पन्न हो जाती है जिसमे आधा चेहरा मर जाता है जिसे Infranuclear Paralysis of the Face कहते है। हो सकता है इस नाडी की पोषक धमनियो (Vasa Nervosa) मे अवरोध हो जाने से इसमे घात हो जाता है। जिह्वा के अग्रिम दो तिहाई भाग मे स्वाद का वहन करने वाली Chorda Tympani भी Facial Canal मे इस नाडी के साथ-साथ ही रहती है। इसलिए यदि वह भी दव जाये तो कभी-कभी इस रोग के कारण उत्पन्न लकवे के साथ-साथ उधर की आधी जीभ मे स्वादनाश का लक्षण भी मिलता है। यह लकवे का रोग २०-४५ वर्ष की आयु मे पाया जाता है। इस रोग मे शाखाओं मे घात नहीं होता।

लक्षण

यह लकवा या अर्दित का रोग सहसा आरम्भ होता है। कभी-कभी इसके होने से पहले कान के नीचे वेदना होती है, तथा निचली हन्वस्थि की Ramus के पीछे Steloid प्रदेश पर दवाने मे स्पर्शासहत्ता भी होती है जो Parotid ग्रन्थि के खोल के उस भाग मे जो Foramen मे प्रवेश करता है, शोथ (Fibrositis) के हो जाने के कारण होती है। इसमे आधा चेहरा भावहीन और उसकी मासपेशियाँ शक्तिहीन हो जाती है। रोगी को उधर का चेहरा स्तब्ध या अकडा हुआ अनुभव होता है। उधर के मस्तक पर वल नही पड सकते। उधर की आँख की पलकें पूरी तरह वन्द नही होती। पलकें वन्द करे तो नेत्र गोलक ऊपर और वाहर की ओर मुड जाता है। उधर के ओष्ठ भी परस्पर एकत्रित नही हो सकते, जिससे एक तो पिया हुआ द्रव्य उधर से स्रवित हो जाता है। रोगी का भाषण भी अस्पष्ट हो जाता है। विशेषत होंठ से वोलने वाले अक्षर स्पष्ट नही होते। खाया हुआ भोजन उस ओर मुख के अन्दर सचित हो जाता है। रोगी का चेहरा स्वस्थ पक्ष की ओर फिरा हुआ मालूम होता है। चेहरे की उधर की मासपेशियो मे स्वल्प विक्षोभ भी रोमहर्षक हो जाता है। उधर चेहरे के ऊपर के भाग मे घात निचले चेहरे की अपेक्षा कम होता है। उधर के चेहरे पर स्वेद भी कम आता है।

यदि रोगी की आयु वडी न हो, पलको को झपकने की कुछ शक्ति हो तो यह रोगी १ महीने तक अच्छा होने लगता और २-४ महीनो मे अच्छा हो जाता है। यदि इसमे स्वाद नाश का लक्षण भी हो तो यह कुछ देर मे अच्छा होता है। यदि स्वादनाश का लक्षण न हो तो समझना चाहिए कि नाडी का शोथ ऊपर Chorda Tympani Nerve तक नही फैला है अत वह शीघ्र ठीक हो जाएगा। १५ दिन वाद उधर की Orbicularis Palpebrarum आदि मासपेशियों मे Faradic Response आ जाय तो यह रोग ३-४ मास मे अच्छा हो जाता है। ३ मास तक यह ठीक न हो जैसे बडी आयु

मे होता है तब रोग १-२ वर्ष तक ठीक हो जाता है। इस प्रकार प्राय ८०% रोगियो मे यह ठीक हो सकता है।

मुख स्तम्भ (Chronic Facial hemispasm) — Nucleus से नीचे के इस नाडी के अन्दर Lower Motor Neurone मे किसी प्रकार का विक्षोभक कारण (Degenerative Irritation) होने से आँख की पलको अर्थात् Orbicularis oculi मे तथा पास के प्रदेश के मास मे रह-रहकर प्रवल सक्षिप्त से स्तम्भ (Twitchings) के होने का लक्षण हुआ करता है। इसके कारण रोगी को कोई कष्ट तो नही परन्तु बेचैनी तो होती है। किसी मानसिक आवेश के होने पर ये स्तम्भ शीघ्र-शीघ्र होने लगते हैं।

कर्ण सम्बन्धी कक्षा विस्फोट—Herpes of Geniculate Ganglia

इन नाडी के Geniculate Ganglion मे कक्षा विस्फोट (Herpes) के Virus का सक्रमण होने पर वहि कर्ण, कान, तालु तथा गले मे कक्षा विस्फोट निकल आते है जिससे कान से स्राव निकलता रहता है। मुह अन्दर से लाल हो जाता तथा कान सूज जाता है। इन विस्फोटो के साथ कान तथा उस ओर गले मे दर्द भी होता है। उधर के चेहरे पर Paralysis का लक्षण भी होता हे तथा कर्ण-घोप, शिरोभ्रम, वधिरता के लक्षण भी हो सकते है।

चिकित्सा

जब तक कान के नीचे दर्द रहे रोगी को गर्म स्थान पर पडे रहना चाहिए तथा Stylomastoid छिद्र पर गर्म-गर्म पोल्टीस (Kaolin) बाँधनी चाहिए या वहाँ गीला सेक कर गर्म रुई हर समय बाँधे रखना चाहिए। Infra Red Irradiation या Short Wave Diathremy के उधर देने से भी लाभ होता है। प्रतिदिन किसी विरेचन औपधि का प्रयोग करना चाहिए तथा इस नाडी के शोथ को दूर करने के लिए Pot Iod ३-५ ग्रेन Sod Salicyl १०-२० ग्रेन, Soda Bicarb २० ग्रेन, Syr Aurant २० बूद, जल १ औस मिलाकर ऐसी एक मात्रा दिन मे तीन बार दे देनी चाहिए। Vitamin B_1 १०० मिलिग्राम Vit B_{12} 1000 mcg Vit B_6 २५ मिलि० त्वचा द्वारा प्रतिदिन १ मास तक दे देने से भी इस रोग मे कुछ लाभ होता है। Nicotinic Acid १०० मिलि० दिन मे १-२ बार देना चाहिए। Prednisolone से १० मिलि० मात्रा मे २ बार देने से पहले दिन ही लाभ दीखता है, दूसरे तीसरे दिन भी इसी मात्रा मे देकर फिर थोडी मात्रा मे इसे एक सप्ताह तक देना चाहिए। A C T H के मास मे इजेक्शन से भी इस रोग मे शीघ्र लाभ होता हे। रोग प्रारम्भ होने के एक दो सप्ताह बाद किसी गर्म तेल या लिनेमेट के द्वारा उधर के चेहरे पर ५-१० मिनट के लिए मालिश आरम्भ कर देनी चाहिए। दूसरी तरफ के हाथ के अगूठे से गाल को अन्दर से सहारा देकर तर्जनी से बाहर ५ मिनट के लिए मालिश करनी चाहिए। इस प्रकार दिन मे तीन बार करना चाहिए। उधर के नेत्र की रक्षा के लिए काली ऐनक तथा जिंक बोरिक ड्राप का प्रयोग करना चाहिए।

मुख स्तम्भ के लिए Artane २ मिली० गोली का प्रयोग करना उपयोगी कहा जाता हे। इसी प्रकार कोई शामक (Sedative) औपधि भी उपयोगी हो सक्ती है। अथवा १४-१५ दिन बाद उधर की मासपेशियो को मृदु Faradic Current दो-दो दिन के अन्तर से देकर उत्तेजित करना चाहिए ताकि उसमे Atrophy या क्षीणता न आ जाय विटामीन $बी_{12}$ के २००० मा० ग्रा० मात्रा मे या Neurobion के इजेक्शन के १-२ सप्ताह प्रतिदिन देने से मुख की मास-पेशियो मे शीघ्र शक्ति आ जाती है ऐसा भी कहा जाता है।

आयुर्वेद मे अर्दित रोग

मस्तिष्क सप्तम नाडी मे वडी आयु मे तो वायु का और छोटी आयु मे कफ और वायु का प्रकोप होने से (अर्थात् इस नाडी मे Rheumatic शोथ तथा कुछ Degeneration के होने से) यह रोग होता है।

इस रोग मे अलसी तथा तिलो को पीसकर उस लुगदी मे लवण तथा सरसो तथा तिल का तेल उचित मात्रा मे मिलाकर बनाया हुआ लेप गर्म-गर्म कानो के नीचे के प्रदेश पर बाँध दिया जाता है तथा एक सप्ताह बाद फिर माष तेल या नारायण तेल या सैन्धवादि तेल की मालिश आरम्भ कर दी जाती है।

वायु तथा कफ दोषो की शान्ति के लिए दशमूल, भलावा, गिलोय, हरड, पुनर्नवा, देवदारु, प्रत्येक समान-समान मिलाकर बनाये क्वाथ द्रव्य को २ तोला मात्रा मे लेकर ½ सेर जल मे पका कर २-३ औंस शेष रहने पर दिन मे एक बार पिलाया जाता हे। कटकार्यादि (कटेली गिलो सोठ) क्वाथ पिलाने या माष, कौंच बीज, रास्ना, बला, अश्वगन्धा, गन्ध तृण, एरण्ड मूल के क्वाथ मे कुछ नमक मिला कर इसे कुछ दिन पिलाते रहने से भी लाभ होता है। महायोगराज गुग्गुल की दो गोली दिन मे दो बार दी जाती हे। लशुन को पीसकर उसका मक्खन के साथ

सेवन कराया जाता है। उडद की वडियो के रसे के साथ रोटी खाने को दी जाती है। षडविन्दु तेल या घृत का या अगु तेल, माष तेल, आदि का नस्य दिन मे दो बार दिया जाता है, मुख पर नारायण तेल की मालिश की जाती है। मल्ल सिन्दूर तथा महागन्धक १-१ रत्ती की मात्रा मे शहद के साथ दिन मे दो बार देने से भी इस रोग मे आराम प्रतीत होता है। शतावरी घृत (ग. नि) १ तोला के प्रतिदिन देने से मृत हुई नाडी को बल मिलता है। (शतावर ६$\frac{1}{4}$ सेर जल ६४ सेर। ८ सेर शेष,गोखरु वचा, सोया, कुष्ट, दो चन्दन, तगर, जटामासी, विडग, तुलसी, पिप्पली, सोठ, नीलोफर १$\frac{1}{4}$-१$\frac{1}{4}$ तो.। घृत २ सेर। दूध ८ सेर। घृत साधन करें।

अनन्तवात शूल —Trigeminal Neuralgia, Tic Douloureux या Epileptiform Neuralgia (Tic= Muscular Contraction)

५० वर्ष मे ऊपर की आयु मे मुख पर, मस्तिष्क पञ्चम नाडी (Trigeminal) के प्रदेश पर स्वल्प काल के लिए वेगो मे होने वाला यह एक तीव्र चुभने वाला बिजली की तरह का शूल का रोग है जिसे अनन्तवात शूल कहते हैं।

मस्तिष्क पचम नाडी की नीचे की तरफ आने वाली (Peripheral) तीन सज्ञावाही शाखाओ मे से प्रथम नेत्र गामिनी (Ophthalmic) नाडी (१) Lacrimal ग्रन्थि, Conjuctiva कानिया, नेत्र के अन्दर के कोये, कपालाग्र भाग, मस्तक, ऊपर की पलक, नासा मूल, नासा प्रान्त भाग, नासा की ऊपर-ऊपर की श्लेष्मकला से सज्ञा का वहन मस्तिष्क तक करती है। (२) द्वितीय ऊर्ध्व हनु शाखा (Maxillary) ऊपर के दाँत, निचली पलक, नासा पार्श्व और ऊर्ध्वोष्ठ के बीच की त्वचा, कठोर तथा मृदु तालु, गले के ऊर्ध्व भाग, Tonsil, Uvula और नासिका की निम्न श्लेष्मकला से सज्ञा का वहन मस्तिष्क तक करती है। (३) तृतीय अधोहनु शाखा (Mandibular) निम्नोष्ठ, ठोडी, गाल, कनपटी, कान, कर्ण छिद्र के वाह्य भाग की त्वचा, Parotid ग्रन्थि, मुख की निम्न श्लेष्मकला, गाल की श्लेष्मकला, लाला ग्रन्थियो, निचले दाँतो तथा Lingual नाडी द्वारा जिह्वा के अग्रिम दो तिहाई भाग तथा मुख के फर्श से सज्ञा का वहन मस्तिष्क तक करती है। तथा इसके चेष्टावाही सूत्र चवाने वाली पेशियो Masseter, Temporal, वाहर तथा अन्दर की Pterygoidens, Mylohyoidens, Digastricus (Ant Tensor Tympani और Tensor Veli Palatini Belly) को चेष्टा देते हैं।

इनमे से किसी शाखा के विशेषत Maxillary या Mandibular के चेहरे पर के प्रदेश मे शूल हो सकता है। चेहरे के इस असहनशील प्रदेश को Trigger Zone कहते हैं। यह शूल चेहरे के एक ओर ही होता है, दोनो ओर एक साथ नही होता। अर्थात् कभी तो आँख के ऊपर भ्रू मे यह शूल होता है (Supra orbital Foramen Neuralgia), कभी आँख के नीचे गाल पर होता है (Infra orbital Foramen Neuralgia) या कभी-कभी ठोडी मे यह शूल होता है, (Mental Foramen मे)यह शूल सहसा विद्युद्गति के सदृश आरम्भ होता है और इतना तीक्ष्ण होता है कि रोगी को तप्तशूल या नश्तर चुभता लगता है। रोगी एक दम अवाक् और निश्चेष्ट होकर पड जाता है। थोडा बोलने या हिलने या मुख हिलाने से उसे इसके फिर वेग हो जाने का भय रहता है। यह शूल का वेग कुछ सेकण्ड ही रहता है। और कुछ-कुछ मिनटो के अन्तर से फिर उसी प्रकार का शूल का वेग उठता है और घटो तक ऐसा हो सकता है। यह शूल का वेग महीने मे कभी-कभी या वर्ष मे कभी-कभी होता है तथा रोगी को कार्य करते समय मे होता है आराम करते समय कभी नही उठता। वेग के समय उधर के चेहरे पर स्तब्धता (Spasm) का लक्षण भी होता है। उधर की आख, नाक तथा मुख से स्राव भी कभी-कभी होता है। रोग के चिरस्थायी होने से इसका शरीर तथा मन पर निर्वलताजनक प्रभाव पडता है। वसन्त या पतझड की ऋतुओ मे यह शूल अधिकतम होता है।

कारण

इस रोग के कारण के विषय मे कोई निश्चय नही हो पाया है, अनुमान है कि पचम मस्तिष्क नाडी के पोषण मे न्यूनता के हो जाने से अर्थात् पोषक रक्तवाहिनियो मे सकोच या स्तम्भ या अवरोध के होने से यह रोग होता है। इसके बडी आयु मे होने से भी पता लगता है कि धमनीकाठिन्य Arteriosclerosis भी इसका कारण है। क्योकि ज्वर आदि से जब कोई निर्बल हो जाता है या जब मुख पर सहसा शीत वायु या शीत जल का प्रबल स्पर्श होता है तब इस शूल का वेग आरम्भ होता है अर्थात् शीत के लगने से इस नाडी को रक्त देने वाली रक्तवाहिनियो मे सकोच (Spasm) होकर जब इसे रक्त कम मिलता है तब इसमे शूल आरम्भ होता है। मुख

धोने, कुल्ला करने, हजामत बनाने या खाने के स्वल्प विक्षोभ से भी यह वेग आरम्भ हो जाता है।

अर्ध मस्तक शूल या सूर्यावर्त शूल या Supraorbital Neuralgia

पचम मस्तिष्क नाडी की प्रथम (Ophthalmic) शाखा की Supra Orbital शाखा मे कभी-कभी दर्द होता है पर वह इतना तीव्र नही होता। सम्भवत Frontal Sinus मे शोथ होकर उसके उपद्रव रूप मे वह होता है। इसकी Duramator को जाने वाली शाखा मे रोग होने से सिर दर्द भी होता है।

नेत्रगत कक्षा विस्फोट—Facial या Corneal Herpes

इस नाडी के Ganglion मे कक्षा विस्फोट के Virus का दुष्प्रभाव होकर इसकी प्रथम शाखा से सम्बन्धित त्वचा या कार्निआ पर भी विस्फोट निकल आते हैं। इस नाडी की दूसरी शाखा पर दुष्प्रभाव हो तो तालु पर और तीसरी शाखा पर उसका प्रभाव हो तो जिह्वा, मुख के नीचे की श्लेष्मकला, गाल के अन्दर और ठोडी पर कक्षा विस्फोट निकल आते है।

चिकित्सा

वेदना युक्त प्रदेश पर गर्म सिकाई करने से अर्थात् गर्म रबर की बोतल या गर्म Salt Bag के रखने से आराम प्रतीत होता है। इस रोग का रोगी तीन-चार सप्ताह पूर्ण विश्राम कर ले तथा रात को Nembutal १½ ग्रेन ले या Phenobarbitone ३० मिलि० दिन मे २ बार ले तो भी फिर उसे दर्द नहीं उठता। शरीर की शक्ति बढाने के लिए उसे Vitamin B_{12} के एक हजार माइक्रोग्राम मात्रा मे, विटामिन बी$_1$ (५०-१०० मिलि०) के साथ १०-१४ दिन इजेक्शन दे देने चाहिए। इसके बाद साप्ताहिक दो इजेक्शन कुछ महीनो तक देने से इस रोग के होने का भय शान्त हो जाता है। Phenytoin Sodium (Dilantin, Epanutin) के जो स्तम्भ शामक हैं १ ग्राम के दिन मे तीन बार लेते रहने से भी लाभ रहता है। इसी प्रकार दूसरी अपस्मारहर औषध Tegretol (Carbamazepine) १००-२०० मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन बार देने से भी दर्द शान्त हो जाता है। Nicotinic Acid (Vasodilator) के १०० मिलि० मात्रा मे भोजन देने से पहले रात को एक बार प्रतिदिन दे देने से फिर इस शूल के होने की आशका नही रहती। Tolazoline (Priscol) ५० मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन बार लेने से इसके आक्रमण को रोका जा सकता है। Trichlorethylene (Trilene) के ५, १० या १५ बूदो को रुमाल मे डाल कर भोजन से ½ घ० पहले दिन मे एक बार सूघ लेने से फिर कुछ काल इस दर्द के उठने का भय नही रहता। रोग तीव्र रूप मे हो तो किसी औषधि से लाभ नहीं होता। Posterior Sensory Root Resection का शल्यकर्म इसका अन्तिम इलाज है। यद्यपि इस शल्यकर्म के बाद चेहरे पर सुप्ति (Numbness) का लक्षण रह जाता है।

आयुर्वेद मे अनन्तवात शूल

सुश्रुत ने मस्तिष्क पञ्चम नाड़ी के क्षेत्र जैसे भ्रू, शंख, गण्ड, हनु आदि प्रदेशो मे होने वाले तीव्र शूल को अनन्तवात कहा है। इसे, पचम नाडी मे विशेषतः तो वायु तथा सामान्यत: वात पित्त कफ तीनो दोषो की वृद्धि के कारण उत्पन्न होने वाला शूल कहा है।

इसके लिए पहले पित्त कफ दोषो की शामक और फिर वायु शामक चिकित्सा होनी चाहिए। अर्थात् एरण्ड तेल या अन्य औषधियो द्वारा मृदु रेचन देने तथा कपाल की शिरा मे से कुछ रक्त निकालने के बाद रोगी की बादाम पाक, घृत, जाँगल माँस, दूध आदि द्वारा पोषण चिकित्सा करनी चाहिए। दशमूल क्वाथ, कल्क तथा दूध से बने तेल की सिर पर नित्य मालिश करनी चाहिए। षडबिन्दु तेल या षड्बिन्दु घृत का नस्य लेते रहना चाहिए। दूध मे घृत मिलाकर उसे नाक से पीना चाहिए।

सु०। उत्तर २५।२६ अ०

शिरोभ्रम (Vertigo) **तथा कर्णनाद**—(Tinnitus)

Vertigo=मस्तिष्क अष्टम नाडी या श्रवण नाडी (Auditory Nerve) के सूत्र अन्त कर्ण से Vestibule मे स्थित Scarpa के या Vestibular Ganglion से आरम्भ होकर नीचे को शब्द के ग्रहण स्थान Semicircular Canal, Utricle और Saccule मे समाप्त होते, ऊपर Pons मे स्थित एक तो Medial दूसरे Lateral Vestibular (Deiter's) न्यूक्लियस के मेलो मे समाप्त हो जाते हैं। Semicircular Canals से सम्बन्धित सूत्र शारीरिक चेष्टाओ की प्रतीति का ऊपर मस्तिष्क की ओर वहन करते हैं। Utricle और Saccule (Otolith Organs) से सम्बन्धित सूत्र शारीरिक स्थिति की प्रतीति का ऊपर की ओर वहन करते हैं। Lateral Vestibular Nucleus मे से फिर सूत्र Medial Longitudinal

Bundle (Fasciculus) मे ऊपर की तरफ जाते है जिनमे यह Nucleus ऊपर तीसरी, चौथी तथा छठी Oculomotor नाडियो के Nuclei के साथ भी सम्वन्वित रहता है जिससे शरीर के सन्तुलन का सम्वन्ध नेत्र की चेष्टाओ के साथ कायम रहता है। इसी Bundle के द्वारा इसका सम्वन्ध नीचे ११वी मस्तिष्क नाडी (Spinal Accessory) के जो ग्रीवा की चेष्टा का है-कारण न्यूक्लियस के साथ भी रहता है जिसमे शिर की गतियो तथा शरीर के सन्तुलन का परस्पर सम्वन्ध कायम रहता है। इन Vestibular Nuclei मे Cerebellum से भी सूत्र (Afferent) आते तथा इनमे मे सूत्र (Efferent) Cerebellum मे निचले Peduncle मे से जाते है। Lateral Vestibular Nu मे से चेष्टावाही सूत्र Vestibulospinal Tract के रूप मे सुषुम्ना काण्ड मे नीचे उतरकर Ante Horns मे समाप्त होते हैं जिनमे हाथ-पाव की मासपेशियो का शरीर के सन्तुलन के साथ सम्वन्ध कायम रहता है। इस प्रकार श्रवण नाडी का यह Vestibular System शरीर की स्थिति (Equilibrium) को कायम रखने मे सहायक होता है। शरीर की स्थिति सज्ञा को ग्रहण करने वाली (Proprioceptor) इस इन्द्रिय का सम्वन्ध विशेषत नेत्रो के साथ ग्रीवाजाघ आदि की मासपेशियो के साथ है यह ऊपर के वर्णन से स्पष्ट ही है। हलके रोग को भ्रम Dizziness तथा तीव्र रोग को शिरोभ्रम Vertigo कहते हैं। इसमे आसपास के पदार्थ या अपना सिर घूमता हुआ लगता है।

(१) Hyper या Hypotension या Cerebrovascular disease के कारण —इस नाडी को, अन्त कर्ण मे, Brain Stem मे, या ऊपर Cerebellum में या Cerebral Cortex मे रक्त कम मात्रा मे मिले जैसे कि मस्तिष्क धमनीकाठिन्य या रक्तभार वृद्धि मे होता है या हृदय की सहसा उत्पन्न हुई दुर्बलता अथवा रक्तभार की न्यूनता मे होता या तीव्र पाण्डु रोग मे होता है, अर्थात् बडी आयु मे Basilar artery मे Atherosclerosis या Stenosis या Hypotension हो तो यह रोग होता है।

(२) या इस नाडी (Vestibular N) पर किसी वाह्य या आभ्यन्तर विष, विशेषत श्वासमार्ग या आतो मे से आई किसी विष का दुष्प्रभाव होकर Vestibular Neuronitis हो या Labyrinth मे कोई तीव्र जीवाणु सक्रमण (Infection) जनित नाश हो (Labyrinthitis हो) इसे Central Vertigo कहते हैं। Labyrinth की Artery मे Spasm मे भी यह रोग हो सकता है।

(३) या जुकाम के कारण Eustachian Tube तथा मध्यकर्ण मे शोथ (Otitis Media) हो।

(४) या अन्त कर्ण मे न्यूनाधिक क्षीणता (Corti's Organ मे Degen) हो तथा Membrane से वने Labyrinth मे Endolymph वहुत भर गया हो (Hydrops of the Labyrinth) जैसा कि वहाँ की रक्तवाहिनियो मे स्तम्भ (Sapsm) के होने से होता है तो रोगी जो प्राय मध्यमायु का होता है, स्थिति कायम नही रख सकता एव चक्कर खाकर गिर जाता या गिरने लगता है। रक्तवाहिनियो मे स्तभ के कारण का निश्चय नही हो पाता, स्तभ के कारण वहा O_2 की कमी होकर यह दौरा होने लगता है। इस प्रकार इस नाडी का Brain stem का भाग विशेष रुग्ण हो जिससे शिरोभ्रम के वेग समय-समय पर महीनो, वर्षों तक होते रहे तथा कभी-कभी इसके साथ सहसा कर्णघोष (Tinnitus) अरुचि या वमन (Brain stem मे Vagus के केन्द्र के ग्रस्त होने से) और वधिरता का लक्षण भी हो तो इसे Meniere's Disease कहते हैं। इस रोग मे रोगी गिर पडता है और खडा नही हो सकता। उसका चेहरा फीका तथा स्वेद युक्त होता है। इस रोग का वेग ½ घ० से कुछ घटो तक रह सकता है। रोगी मूर्छित नही होता पर भय से अचल होकर पडा रहता है। इसके वेग समय-समय पर होते रहते है। १८६१ मे एक फ्रेंच डाक्टर Prosper Meniere (१७९९-१८६२) ने इस वधिरता तथा कर्णघोषयुक्त भ्रमरोग का पता दिया था।

चिकित्सा

मध्य कर्ण मे शोथ हो तो उसे हटाये। Endolymph के अधिक भर जाने से यह रोग हो तो लवण वन्द कर दे या Hydrochlorothiazide १०० मिलि० प्रात एक-दो दिन छोड कर दें। Pot Chlor भी दे। रक्त के कम मात्रा मे मिलने से यह रोग हो तो Nicotinic Acid ५०-१०० मिलिग्राम मे ४ वार दिन मे देना चाहिए। Pyridoxine Hyd २५ मिलिग्राम मात्रा मे भी तीन वार देना लाभदायक होता है। Allergy के कारण यह लक्षण होता हो तो किसी Antihystamine जैसे Promethazine (Phenergen) या Diphenhydramine Hydrochloride (Benadryl) Dimenhydrinate (Dramine) या Cyclizine (Marzine) २५, ५० मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन वार दिए जा सकते है।

Diazepam या Chlordiazepoxide जैसे Tranquilizer के दिन मे ३ बार देने से या Phenobarbitone के १५-६० मिलिग्राम मात्रा मे देने से भ्रम शात होता है। Chlorpromazine (Largactil) को ५० मिलि० मात्रा मे मांस से दें, ८-८ घटा पर दुहरा सकते हैं या इसे मुख से दें। मुख द्वारा Stemetil की गोली ५ मिलि० की दिन मे ३ बार देने से भी लाभ होता है। पहले इसी का प्रयोग करके देखना चाहिए। यद्यपि वडी आयु के लोगो मे जिनमे धमनी रोग इस रोग का कारण है लाभ देर मे होता है। छोटी आयु मे जब यह रोग Idiopathic होता है लाभ शीघ्र प्रतीत होता है। सवारी करने से चक्कर आते हो अर्थात् Motion Sickness हो तो Cyclizine Hydrochlor (Marzine) की २५-५० मिलि० की एक गोली ½ घ० पहले ले लें तथा ३-३ घटा पर लें।

Tinnitus—श्रवण नाडी के दूसरे सज्ञावाही सूत्र जो अत कर्ण के Spiral Ganglion मे प्रारम्भ होकर नीचे शब्द गहण स्थान Organ of Corti के Hair Cells मे, ऊपर Pons के एक Dorsal दूसरे Ventral Cochlear Nuclei मे समाप्त होते हैं तथा शब्द ज्ञान का वहन करते हैं Cochlear Nerve या Auditory Nerve कहाते हैं। Pons के इन दोनो Nuclei मे से इसके दूसरे सूत्र आरम्भ होकर मध्य रेखा को क्रास करके एक Dorsal (Striae Acusticae) तथा दूसरे Ventral (Corpus Trapezoidum) दो सूत्र समूहो मे ऊपर जाते हैं। इन दोनो के मिल जाने मे वने हुए चढते हुए सूत्र समूह को Lateral Lemniscus कहते है। Cochlear Nuclei मे से आरम्भ हुए कुछ सूत्र विना क्रास किए उसी ओर के Lemniscus मे ऊपर चढते हैं। Mid Brain मे पहुचकर कुछ सूत्र Inferior Corpus Quadrigeminum मे कुछ Medial Geniculate Body मे जिन्हे Lower Auditory Centres कहते है समाप्त हो जाते हैं। ये दोनो तरफ के Centres आपस मे जोडने वाले (Commissural) सूत्रो द्वारा सम्वन्वित है। कुछ एक सूत्र Medial Longitudinal Bundle मे चले जाते हैं ताकि इस नाडी का सम्वन्व नेत्र की Oculomotor नाडियो के साथ कायम हो जाय। अव इन श्रवण सम्वन्धी निम्न केन्द्रो से नये सूत्र आरम्भ होकर Internal Capsule के पिछले भाग मे से होते हुए Superior Temporal Gyrus (Higher Auditory Centre) मे समाप्त होते है। जैसे किसी सज्ञावाही नाडी की उत्तेजना से उस सज्ञा की प्रतीति तीव्र हो जाती है वैसे ही श्रवण नाडी (Auditory N) की विक्षोभशीलता या उत्तेजना (Paraesthesia) से रोगी को घोष या नाद की प्रतीति होती है (Watkin Thomus १९५३), इस नाडी के सज्ञावाही सूत्रो की उत्तेजना से कर्णघोष का लक्षण होता है तथा इन सज्ञा सूत्रो की उत्तेजना चेष्टा वाही या Efferent सिम्पेथेटिक सूत्रो के द्वारा प्रतीत होती है (Baillie १९५६) अर्थात् प्रधानत इसी नाडी पर किसी प्रकार का विक्षोभक प्रभाव हो तो कर्णनाद (Tinnitus) का रोग होता है जो वडी आयु मे होता है। इस नाडी को रक्त कम मिले अर्थात् धमनीकाठिन्य रोग (Arteriosclerosis) या रक्तभार वृद्धि का रोग हो जिससे इस नाडी मे हलकी Degeneration की प्रक्रिया हो रही हो या जुकाम के कारण Eustachian Tube या मध्य कर्ण मे शोथ हो तो यह नाडी विक्षुव्व हो जाती है। शरीर का स्वास्थ्य गिरा हुआ हो अर्थात् सामान्य विक्षोभशीलता वढी हुई हो तो भी यह लक्षण हो सकता है। Cochlear यन्त्र पर क्विनीन, Streptomycin के प्रभाव से या उसमे शोथ के होने या उसे रक्त कम मिले तो भी यह रोग होता है। रक्तभार वृद्धि इसका प्रधान कारण है। इस रोग के उपद्रव रूप मे वधिरता भी हो सकती है। यह नाद रुक-रुक कर या लगातार हो सकता है, एक कान मे या दोनो कानो मे हो सकता है। रात की शान्ति मे यह अधिक कष्टदायक प्रतीत होता है। Phenobarbitone (Gardenal, Luminal) के ¼, ½ ग्रेन, की मात्रा मे तीन वार प्रतिदिन लेने या किसी चित्त शामक औषधि जैसे Stelazine या Eskazine के लेने से या आराम करने से तथा स्वास्थ्य के सुधर जाने से यह लक्षण शान्त हो जाता है। Pot Iod का प्रयोग भी किया जाता है। Nicotinic Acid (५०-१००) दिन मे ३ वार लेने से भी इस रोग मे कुछ शान्ति मिलती है (Atkinson १९५४) Prostigmin भी Vasodilator प्रभाव के कारण कभी-कभी दिया जाता रहा है। किसी Antihistamine से भी लाभ हो सकता है। कर्णघोष का ध्यान या चिन्ता न करने से भी इसका कष्ट कम हो जाता है।

बाधिर्य Deafness

यह लक्षण एक तो श्रवण नाडी के रोग के कारण (Perceptive Defect) से होता है। अन्त कर्ण मे विद्यमान इस नाडी मे, मध्यकर्ण या गले से या पश्चिम नासा से Eustachian के द्वारा आए शोथ के चिरकाल तक रहने अर्थात् Labyrinthitis के हो जाने और उससे उत्पन्न क्षीणता (Sclerosis) से इसमे कुछ वधिरता आ जाती है। फिरग विष, तमाकू तथा कुछएक तीव्र ज्वरो की विषो से या वृद्धावस्था के कारण भी इस नाडी मे

क्षीणता उत्पन्न हो सकती है। Meningitis होकर भी न्यूनाधिक वधिरता हो सकती है। किसी Allergic विष से भी यह रोग हो सकता है। इस अवस्था मे घडी की टिकटिक बहुत कम या नहीं सुनाई पडती है। Cortex के श्रवण केन्द्र मे रोग हो या क्षति पहुँची हो तो भी वधिरता का लक्षण होता है (Central Deafness)।

दूसरा शब्द मार्ग मे किसी प्रकार का अवरोध होने (Conductive Defect) से जैसे परदे (Tympanic Membrane) मे कान की छोटी-छोटी अस्थियो (Ossicles) मे किसी प्रकार का रोग (Ankylosis) होने से शब्द मार्ग मे रोध होकर वधिरता हो सकती है। इस रोग के लिये Mobilisation of the Stapes का शल्यकर्म हो सकता है। इस अवस्था मे घडी को Mastoid Process पर लगा करके सुनने पर टिकटिक की आवाज साफ सुनी जा सकती है। मध्यकर्ण शोथ Otitis Media की लापरवाही से बालको मे बाधिर्य रोग होता है। यह रोग Staphylococci, Streptococci pyogenes के सक्रमण से होता है, इन्ही से Mastoiditis का रोग होता है। इस रोग के लिये Ephedrine Nasal Drop ३-३ घ० पर डाले। कान पर सिकाई करे। Benzyl-Penicillin ५ दिन तक देना चाहिये। यदि Otitis Media पुराना हो गया हो, कान से पूय आता रहता हो तो Chloramphenicol से या Neomycin से बना कर्ण विन्दु डालना चाहिये। Penicillin के कुछ एक कोर्स लेने चाहियें। Nerve Deafness के लिये श्रवणयन्त्र Hearing Aid का प्रयोग करना चाहिये या Prostigmin का प्रयोग करके देखना चाहिये। बाजार मे जो Hearing Aids मिलते है उनसे बहुत से वधिर रोगियो का बहुत कुछ काम निकल जाता है।

आयुर्वेद में कर्णनाद, बाधिर्य तथा भ्रम

सुश्रुत (उत्तर, २०) ने कहा है कि शरीर मे क्षीणता के हो जाने या अति श्रम करने से यदि शब्दवहा नाडी मे वायु का प्रकोप हो जाय अर्थात् उसकी प्राण शक्ति कम हो जाय तो कर्णनाद का रोग हो जाता है। उसमे वायु का या कफानुगत वायु का प्रकोप हो तो बाधिर्य का रोग होता है।

कर्णनाद तथा बाधिर्य के लिए उपयोगी योग निम्नलिखित हैं—

(१) क्षार तैल (ग.नि.) सूखी मूली का क्षार या सज्जीखार, हींग, सोठ, सोया, वचा, कुष्ठ, देवदारु, सोहाजने की छाल, रसौंत सब मिलित २० तोला। तेल १ सेर। निम्बू रस १ सेर। तैल साधन करें। कान मे डालें।

(२) बिल्वतेल (भै.र.) बेलगिरि २० तोला। तेल १ सेर। गोमूत्र १ सेर। बकरी का दूध १ सेर। जल २ सेर। तैल साधन करें। कान मे डालें।

(३) अपामार्ग क्षार तेल (यो.र.) अपामार्ग क्षार जल २ सेर, दूध २ सेर, तेल १ सेर। अपामार्ग कल्क २० तोला। तैल साधन करें।

(४) नारायण तेल, माष तेल, या दशमूल तेल कान मे डालें।

(५) वस्त मूत्र योग (ग.नि.) कर्णनाद के लिए बकरे के मूत्र को गर्म कर कुछ सैंधव लवण मिलाकर कान मे टपकाएं।

(६) दशमूलादि क्वाथ (ग.नि.) दशमूल, त्रिफला, कायफल, भारगी समान २ के २½ तोला का क्वाथ त्रिकटु चूर्ण २-३ माशा के साथ पिलाने से बाधिर्य मे लाभ होता है।

(७) महायोगराज गुग्गुलु का प्रयोग भी नाद तथा बाधिर्य मे हितकर है।

श्रवण नाडी मे पित्त सहित वायु की वृद्धि होने अर्थात् अन्त कर्ण (Labyrinth) मे पैत्तिक शोथ होने तथा इसका पोषण कम हो जाने से भ्रम रोग भी हो सकता है। शरीर मे हुई पित्त की वृद्धि का प्रभाव इस नाडी पर होकर वात पित्तज भ्रम भी हो सकता है जैसा कि तीव्र ज्वरो मे होता है (Toxic Vertigo)। शरीर मे उत्पन्न किसी आम द्रव्य का दुष्प्रभाव इस नाडी पर होकर वात कफज भ्रम भी होता है (Allergic Vertigo)। इस नाडी मे रक्त की कम मात्रा पहुचने से भ्रम हो तो नीबू और शहद से मिश्रित जल दिन मे १-१ पाव करके तीन बार लेना चाहिये। ब्राह्मी के घृत, अरिष्ट, चूर्ण आदि के प्रयोग तथा सर्पगन्धा के चूर्ण के ४ रत्ती मात्रा मे प्रयोग से तथा मुक्ता या मुक्ताशुक्ति के प्रयोग करने से भी शिरोभ्रम शान्त होता है। पित्त प्रधान भ्रम हो तो शीत गुण औषधि जहरमोहरा, वंशलोचन, छोटी इलायची के चूर्ण को २-४ रत्ती मात्रा मे आवले के मुरब्बे के साथ लेना चाहिए, त्रिफला को दूध से लेना चाहिए। कफाधिक भ्रम हो तो नमक, घृत आदि बद करके रोगी को रूक्षाहार पर रखना चाहिए, गर्म जल अधिक देना चाहिए।

शिरोभ्रम के लिए उपयोगी प्रयोग निम्नलिखित है :—

(१) शतावर्यादिक्षीर (यो.र.) शतावरी, बलामूल,

मुनक्का मिलित ३ तोला। दूध १ पाव, जल २ पाव पका कर दूध मात्र रहने पर उसे मिसरी डालकर पिलाएं।

(२) भ्रमनाशिनी गुटी (व.से.) शतावरी, पिप्पली, शु ठी, हरीतकी १-१ भाग का चूर्ण करें गुड ६ भाग मिलायें। इसे ६ माशा से १ तोला मात्रा तक दिन मे १ वार दें।

(३) दुरालभाकषाय (वं जी. यो र) ६ मासे के ३ तोला के क्वाथ मे थोडा घृत डालकर पिलाए।

(४) ताम्र प्रयोग (भा प्र) ताम्र भस्म १ रत्ती को ६ मासे के २-३ तोला के क्वाथ के अनुपान से दें।

(५) सूतशेखर रस (यो.र) पारा, गधक, स्वर्ण भस्म, सुहागे की खील, वत्सनाभ, अभ्रक, त्रिकटु, धत्तूर बीज, ताम्र भस्म, चतुर्जातक, शख, विल्व, कचूर समान २ मिलायें। भाँगरे के रस से मर्दन करें। २ रत्ती की गोली बाधें, (भ्रम के अतिरिक्त अम्ल पित्त, पुरानी डिसेन्ट्री, हिचकी, श्वास आदि के लिये भी उपकारी है)।

स्तम्भ रोग या हनुस्तम्भ (Tetanus या Lockjaw, Trismus)

चवाने की मासपेशियो तथा धड की मासपेशियो मे स्तम्भ हो तो उसे स्तम्भ रोग कहते है। इस रोग का उल्लेख सुश्रुत चरक आदि ने किया हे पर इसके कारण भूत जीवाणु का पता १८८९ मे Kitasato (१८५२-१९३१ जापानी जीवाणु-विशेषज्ञ) ने दिया। १८९० मे उन्होने तथा Behring (१८५४-१९१७ जर्मन जी० विशेषज्ञ) ने इसके Antiserum से इस रोग को रोका जा सकता है ऐसा सनसनीखेज समाचार ससार को दिया। इसके बाद १९२५ मे Ramon (१८५२-१९३४ स्पेन के Histologist) ने Antitetanus Toxoid का पता दिया। यह एक मारक रोग है। ससार में ५० हजार वार्षिक मृत्यु इससे होती हैं।

कारण

मिट्टी मे रहने वाला एक कृमि Tetanus Bacillus, Gram Positive Anaerobic, दण्डाकृति होता है। उसके बीज (Spores) मुट्ठ वाले दण्डाकृति (Drum Stick) होते हैं। कभी-कभी हाथ-पैर मे कील आदि चुभ जाने से उत्पन्न क्षत के द्वारा या गर्भपातजनित या प्रसवजनित क्षत मे से या कान मे से पूयस्राव होता हो तो वहाँ के क्षत से किसी वाह्य वस्तु के द्वारा यह Clostridium Tetani नामक जीवाणु जो Spore वाला, चलने वाला, Gram positive Anaerobic, शलाकाकार, एक सिरे पर मोटा, गाय, घोडे, भेड, मनुष्य आदि की आतो मे से बाहर मिट्टी मे आकर रहता है, हमारे शरीर मे प्रवेश कर जाता है तथा वहाँ क्षत प्रदेश के मृत हुए अवयव पर ही रोहण करता रहता है। यह उथले व्रण की अपेक्षा गहरे Puncture व्रण मे अधिकत रोहण करता हे। यह जीवाणु शहरी या खेती वाली भूमि मे होता है। मकान की धूल मे भी पाया जाता है। वजर या ऊसर भूमि मे नही होता। यह Antiseptic औषधियो या साधारण उवालने से नही मरता Autoclaves मे ही मरता हे। यह जीवाणु शहरी लोगो की अपेक्षा ग्रामीणो मे अधिक रहता है। उन की त्वचा पर भी हो सकता है। ये जीवाणु क्षत स्थान पर रहते हैं पर एक प्रवल विष (Exotoxin) या Tetanospasmin को—जिसे नाडी विष होने से Neurotoxic कहते है तथा जो इतना विषैला होता है कि इसकी ०००५ मिलि० मात्रा से चूहे की मृत्यु हो जाती है—उत्पन्न करता है जो Motor Nerves के प्रान्त भागो से Affinity के कारण चेष्टावाही नाडी सूत्रो के द्वारा ऊपर चढता-चढता सुषुम्ना काण्ड तथा मस्तिष्क के निम्न भाग तक प्रसरण कर जाता है तथा वहाँ Motor cells मे प्रवेश कर जाता है जिससे Ant Horn-cells विक्षोभशील हो जाते है। जो विष नाडी मण्डल मे प्रविष्ट हो जाता है उस पर A T S का फिर कोई प्रभाव नही होता। स्वतन्त्र स्तम्भ रोग या Idiopathic tetanus मे किसी चोट का इतिवृत्त नहीं होता तव किसी अति साधारण रगड से ही यह जीवाणु अन्दर प्रवेश करता लगता है (Mycroscopic Trauma) अथवा लगता है कि कभी-कभी यह जीवाणु भोजन नाली मे से प्रवेश कर जाता है और किसी क्षत प्रदेश मे से चेष्टावाही नाडी सूत्रो तक पहुचता है। जीवाणुग्रस्त भाग से सम्वन्धित Ventral Horns तक इस विष के पहुचने पर क्रमश स्तम्भ का लक्षण प्रकट होता है। पश्चिम मूल मे विद्यमान Ganglia उधर से इसे ऊपर नही जाने देते। वहुधा चोट लगने के लगभग दो सप्ताह के अन्दर-अन्दर रोगी को अपने जवडे या पश्चिम ग्रीवा की मासपेशियो (Masseter आदि) मे कुछ स्तम्भ-सा प्रतीत होने लगता हे अर्थात् उसे हनुस्तम्भ या Trismus होता है। यद्यपि यह रोग चोट लगने के १ मास के लगभग समय तक हो सकता है। पहले ४ दिन तक कभी नही होता है। इस विष के सुषुम्ना काण्ड पर फैलते हुए दुष्प्रभाव से धीरे-धीरे शरीर की सभी Voluntary मासपेशिया विक्षोभशील हो जाती है जिससे स्वल्प कारण से उनमे स्तम्भ का लक्षण उत्पन्न होता है। रोगी की प्रारभिक अवस्था मे कुछ निगरण

काठिन्य का लक्षण होता तथा कुछ पीठ मे दर्द होने का लक्षण भी होता है। फिर पहले Masseter मासपेशियो मे स्तम्भ होने से मुख का खोलना कठिन हो जाता है (Trismus)। मुख, Oesophagus और ग्रीवा मे स्तम्भ के बाद धड और फिर शाखाओ मे भी स्तम्भ हो सकता है। धड मे स्तम्भ होने से वह पीठ पर अकड जाता है। अर्थात् बहिरायाम या Opisthotonos हो जाता है। गले मे (Dysphagia), कण्ठ मे तथा श्वास मासपेशियो मे भी स्तम्भ हो सकता है। पीठ के अकडने से पेट काष्ठ की तरह कठोर हो जाता है। इस रोग मे स्तम्भ जितना धड मे होता है उतना शाखाओ मे नही होता। यह रोग जब प्रबल रूप मे होता है विशेषत जब चेहरे या कान मे विद्यमान व्रण से इस जीवाणु का प्रवेश हुआ हो तब बडा भयकर और घातक होता है। कठ मे स्तम्भ होकर मृत्यु हो जाती है। इस रोग मे स्तम्भ का एक प्रधान लक्षण होता है जो रोगी को छूने या हिलाने-डुलाने से या उसकी चारपाई को भी हिलाने से और अधिक प्रबल रूप ले लेता है, शोर-गुल या सहसा प्रकाश के पडने से भी हो उठता है अर्थात् यह Reflex से होता है जिससे इसे Hyper Reflexia कहते है। इस रोग मे Deep reflexes बढे हुए होते है, Plantar reflex flexor किस्म का होता है। तापमान, श्वासगति, नाडीगति तथा रोगी के होश मे कोई विशेष विकृति नही होती। स्तम्भ इतना प्रबल हो सकता है कि रोगी पीठ पर पीछे की ओर कमान की तरह अत्यधिक मुड जाता है (Opisthotonos) या आगे की ओर (Emprosthotonos) या बाजू की ओर (Pleurosthotonos) अत्यधिक मुड जाता है। ये स्तम्भ के वेग कष्टदायक ही नही रोगी को अत्यधिक थका देते है। इनसे तापमान भी कुछ ९९ डिग्री तक ऊचा होता है, निगरण मे भी कठिनता होती है। एक बार आरभ हो करके १ सप्ताह के लगभग समय तक बढते जाते हैं। किसी क्षत लगने के बाद १०-१५ दिन के अन्दर-अन्दर ग्रीवा, मुख आदि मे कुछ स्तम्भ प्रतीत होने लगे तो इस रोग की आशका कर लेनी चाहिये। इस रोग मे Polymorpho-nuclear Leucocytosis का लक्षण भी होता है। यह एक घातक रोग है मूत्रावरोध या मलावरोध Sphincters मे स्तम्भ होने से हो सकते है। मृत्यु ३-४ दिन मे हो सकती है जो गले के घुट जाने (Laryngeal Spasm) या श्वासप्रश्वास या हृदय के फेल होने, Pneumonia या थकावट (Exhaustion) से होती है। परिपाक काल (Incubation Period) तथा प्रथम हनुस्तम्भ की प्रतीति और प्रथम शरीरव्यापी स्तम्भ के बीच का समय (Period of Onset) क्रमश १ सप्ताह और २-३ दिन से लम्बा हो तो रोग को सुखसाध्य समझना चाहिये। इससे कम हो तो कष्टसाध्य समझना चाहिये। बडी आयु मे भी यह घातक होता है, शिशुस्तम्भ तथा प्रसूतास्तम्भ भी प्राय घातक होते है। शरीर मे वृक्क, हृदय, फुफ्फुस सम्बन्धी कोई रोग हो तो भी यह कष्टसाध्य होता है। यदि स्तम्भ तीव्र हो जाने के बाद क्रमश मन्द होते जाए तो समझना चाहिए कि रोगी अच्छा हो जाएगा।

सद्योजात स्तम्भ रोग या शिशु स्तम्भ रोग Tetanus Neonatorum

कभी-कभी नाभिच्छेद के पक जाने व Septic हो जाने से वहा से इस जीवाणु का सक्रमण शिशु मे हो जाता है जिससे शिशु के मुख तथा शरीर मे स्तम्भ हो जाता है। उसमे ज्वर का लक्षण भी होता है। यह प्राय घातक होता है।

प्रसूता स्तम्भ Puerperal Tetanus

प्रसव या गर्भपात के बाद भी यह रोग हो सकता है। मास द्वारा इन्जेक्शन देने पर भी यदि त्वचा पर यह जीवाणु हो तो यह रोग हो सकता है।

प्रतिषेधक चिकित्सा

इस रोग के प्रति निवारक शक्ति Active immunity उत्पन्न करने के लिए Tetanus Toxoid या इस रोग की हलकी विष १ मिलिलि० मात्रा से त्वचा या मास द्वारा दे दें। १½ मास मे इसकी दूसरी मात्रा दे दें।

चोट के बाद स्तम्भ की प्रतीति की अवस्था मे इस रोग के प्रतिरोध के लिये रोगी को मांस द्वारा Tetanus Antitoxin (Clostr Tetani को घोडे मे देकर उत्पन्न Anti Body) १५००-३००० Units की मात्रा मे एक-एक सप्ताह छोड कर तीन बार दे देना चाहिये। इसकी पहली मात्रा के बाद व्रण को हाइड्रोजन से साफ करके इसमे २० मे १ ताकत के कार्बोलिक लोशन की भीगी गाज भर देनी चाहिए तथा शीघ्र-शीघ्र ४-६ घण्टे के अन्तर से बदल देनी चाहिए। व्रण के अन्दर बढते हुए बेसिल्लाई तथा स्पोर्स पर इस Antitoxin का कोई प्रभाव नही होता, उनसे उत्पन्न विष (Toxin) पर ही इसका विनाशक प्रभाव होता है। उस विष पर भी जब वह नाडी सेलो (Nerve Cells) मे प्रविष्ट हो जाता है फिर इसका कोई प्रभाव नही होता। इस रोग के लिये पहले ही प्रतिशक्ति (Active Immunity) उत्पन्न करने के लिए Tetanus का हल्का किया हुआ विष Tetanus

Toxoid ½, १ मिलिलिटर मात्रा मे त्वचा के नीचे डाल दिया जाता है। इसके १-१½ मास बाद इसी को फिर १ मिलिलिटर मात्रा मे इसी प्रकार दे दिया जाता है। एक वर्ष से छोटे शिशुओ के लिए यह घातक रोग है अत एक वर्ष से छोटे शिशुओ मे Triple Vaccination (Diph Pertussis Tetanus) दे देना चाहिये।

चिकित्सा

रोगी मे लक्षण प्रकट होते ही A T.S की १ मिलि० लि० की मात्रा त्वचा द्वारा देकर आध घण्टे तक उससे कोई उपद्रव न हो तो Adrenaline की १ सी०सी० मात्रा देने के बाद A T S को ५० हजार यूनिट्स की मात्रा मे मास द्वारा दे दे। इससे कोई उपद्रव न हो तो १ घण्टे बाद इतनी ही मात्रा इसकी शिरा द्वारा धीरे-धीरे करके दे दे। बहुत से परीक्षक लोग इससे छोटी मात्रा को भी इतना ही उपयोगी बताते हैं अर्थात् बालक के लिए १०-२० हजार और बडो के लिये २०-२५ हजार यूनिट की मात्रा पर्याप्त समझी जाती है। इतनी मात्रा से भी Allergy का भय होता है। अत ५-१ मिलिलि० Adrenaline (१००० मे १) को एक सिरिञ्ज मे भरकर रख लेना चाहिए। या जैसे ऊपर कहा है पहले Allergy निवारक किसी औषधि Avil 20 mg in 2 ml) को मास द्वारा दे देना उचित है। Allergy प्रकट होने पर श्वास, छिक्का, खुजली, वमन, अतिसार, मानसिकभयआदि लक्षण होते है। Adrenaline को या Dexamethasone को ५-१ मिलि० मात्रा मे मास या शिरा द्वारा देने से ये शान्त हो जाते है। या इस Antitoxin के देने से पहले Chlorpheniramine Maleate Piriton) १ सी० सी० (१० mg) त्वचा से दें अथवा १ पा० ग्लूकोज सेलाइनमे A T S के ६० हजार यूनिट, Antistin २ सी० सी०, Mag. Sulph २५% सोल्यूशन ४-८ सी० सी०, Myanesin (B D H) या Tolseral (Squibb) १०% १० सी० सी०, Atropine Sulph. $\frac{1}{200}$ ग्रे० Cal Gluco १०% १० सी० सी० मिला करके शिरा द्वारा बूद-बूद करके दे दें। इसे मास द्वारा ही देना हो तो इससे १५ मिनट पहले Antistin २ सी० सी०, Adrenaline ½ सी० सी०, Atropine $\frac{1}{200}$ ग्रेन मास द्वारा देना चाहिए। A T S से केवल रक्त मे विद्यमान विष नष्ट हो सकता है, नाडियो मे व्याप्त हुआ विष नष्ट नही होता। अत रोग आरम्भ हुए नौ-दस दिन हो गये हो तो इससे लाभ नही हो सकता। रोग के आरम्भ होते ही बडी मात्रा के अनुसार २½ से ५ वर्ष मे ३०; ६-१० वर्ष की आयु मे ४०, ११-१३ वर्ष की आयु मे ५०, २० वर्ष तक ७० हजार यूनिट की मात्रा मे इसका मास द्वारा प्रयोग किया जाता रहा है। ११-१२ की आयु के बाद इसका आधे से ज्यादा भाग शिरा द्वारा, शेष मास द्वारा देना ठीक है। २० वर्ष के ऊपर ६० हजार शिरा द्वारा, ४० हजार मास द्वारा देना ठीक है। छोटी मात्रा मे देने वाले इसे बालक मे २० हजार Units की मात्रा मे Hyalase के साथ त्वचा या मास द्वारा देते है। बडों मे इसे वे ५० हजार Units मात्रा मे शिरा द्वारा ५% ग्लूकोज सेलाइन के साथ बूद-बूद करके देते है। सारी मात्रा को शिरा द्वारा न देकर मास से भी दे सकते है।

स्तम्भ शान्ति के लिए Seconal या Luminal १०० मिलि० को ३-४ घण्टे बाद देना या Sodium Phenobarbitone ३ ग्रेन की मात्रा मे प्रति ६ घण्टे पर मास द्वारा दे देना उचित है या Chlorpromazine ५० मिलि० को ५० मिलि० Promethazine (Phenergan) के साथ ८-८ घण्टे पर दे। या Chlorpromazine को Phenobarbitone १०० मिलि० के साथ ८-८ घ० पर दें या Promazine (Spazine) १०० मिलि० तथा Phenobarbitone Sodium को १०० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा ६-६ घण्टे पर दे। या Chloral-hydrate को १५ ग्रे० मात्रा मे दिन मे ३ बार दे सकते है। Basal Anaesthetic Avertin Fluid (Bayer) या Bromethal (Tribromoethanol) ६ सी० सी० (प्रति किलो के पीछे १५-२५ मिलि०) नार्मल सेलाइन २०० सी० सी० (४० डिग्री) मिला करके गुदा मे (४-६ घ० बाद) रोकने से या Myanesin ५ सी० सी० (१ या २%) के धीरे-धीरे शिरा द्वारा देने तथा १० घण्टे के अन्तर से देते रहने से या ५ सी० सी० १० प्र० श० सोल्यूशन के मास द्वारा देने से या Meprobamate ४०० मिलि० (बालक मे २००) के ५ सी० सी० मे मास द्वारा देने से भी स्तम्भ शान्त होता है। कुछ लोग Paraldehyde ४-६ सी० सी० को मास द्वारा (बालक मे २-३ सी० सी०) तथा Largactil को २५ मिलि० मात्रा मे Glucose Saline के साथ शिरा द्वारा या ५० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा देकर स्तम्भ शान्त करते है। ६-६ घटे बाद इन्हे दुहराया जा सकता है। दिन मे ४ बार इन्हे इसी मात्रा मे मुख से भी दिया जा सकता है। कुछ लोग Tetanus Toxoid १ सी० सी० को भी त्वचा द्वारा दे देते है। Proc Penicillin के १० लाख यूनिट्स या Streptomycin ५-१ ग्राम के प्रतिदिन देने से व्रण के रोहण मे तथा Pneumonia की रोक-थाम मे सहायता मिलती है अथवा Erythromycin को ५०० मिलि० मात्रा मे A T S. के साथ शिरा

द्वारा दे देना चाहिए या १ गोली दिन मे ६ बार इसी प्रयोजन से देनी चाहिए। व्रण की दशा खराब हो तो उसे भली प्रकार साफ करना चाहिए। रोग प्रबल हो तो रोगी की शक्ति वृद्धि, स्तम्भ की शान्ति तथा A T S के प्रति Allergy की रोक-थाम के लिए रोगी को ५-१० मिलि० Prednisolone या Dexamethasone ५ मिलि० ३ बार दे देना चाहिए (५ दिन)। रोगी को १५०० केलोरीज़ का भोजन, ग्लूकोज, फल रस, दूध, सूप आदि के रूप में मुख द्वारा प्रतिदिन मिलना चाहिए या Intravenous Drip के द्वारा ग्लूकोज देते रहना चाहिए। रोगी को शान्त, कुछ अंधेरे कमरे मे लिटाना चाहिए तथा उसके पास किसी प्रकार का शोरगुल नहीं चाहिए। उसे अनावश्यक छूना या उसकी बेखबरी मे उसके शरीर पर हाथ रखना सर्वथा वर्जित है, क्योंकि वह इस प्रकार की उत्तेजनाओं से उत्तेजित हो उठता और दौरा शुरू हो जाता है।

कुछ लोग केवल Sedative तथा Penicillin १० लाख दैनिक के द्वारा बिना A T S के ही इस रोग की चिकित्सा करते है। अधिक अच्छा ढंग इसकी चिकित्सा का यह समझा जाता है कि A T S ४० हजार यूनिट्स के साथ Penicillin का प्रयोग किया जाय तथा किसी मांस स्तम्भ शामक (Relaxant) औषधि जैसे Flaxedil को २० या Scoline को १० मिलि० मात्रा मे धीरे-धीरे शिरा द्वारा देकर देखा जाय कि ये औषधियां रोगी को प्रतिकूल तो नहीं पड़तीं, अनुकूल पड़ें तो Gallamine Triethiodide (Flaxedil) के या Succinyl-choline Chloride (Scoline) के सोल्यूशन (क्रमश २ Amp/ Bottle तथा ४ Amp Bottle) को ४० बूंद प्रति मिनट की रफ्तार से शिरा द्वारा देना चाहिए। इससे शरीर मे जल भी पहुंचता तथा स्तम्भ भी शान्त रहता है। शिरा द्वारा देने का प्रबन्ध न हो सके तो २०-३० मिलि० मात्रा मे Flaxedil को मांस द्वारा २-२ घंटा पर दे देना चाहिए। इसके देने से पहले Atropine का प्रयोग कर लेना चाहिए। Bronchopneumonia के लिए आक्सीजन, मूत्राघात के लिए कैथिटर का प्रयोग करना चाहिए। पेडू पर गर्म सेंक करें या मूत्राशय मांस को उत्तेजित करने के लिए Carbachol (Chloryl-Doryl-Moryl) का जो Cholenergic या Parasympathetic नाड़ियों का उत्तेजक है ½, १ मिलि० मात्रा में त्वचा द्वारा या १-४ मिलि० मात्रा में मुख से प्रयोग करना चाहिए। गले में स्तम्भ हो जाने से रोगी को Nasogastric tube के द्वारा १½ पा० दूध, ६ औंस ग्लूकोज, २ अंडे तथा Hydroprotein ६ औंस इन सब में मिला के देना चाहिए। इसके साथ विटामिन सी, बी कम्पलेक्स, कुछ नमक, कैल्सि० क्लोराइड भी दे देने चाहिये। उसे २ लिटर जल रोज़ मिलना चाहिए।

शिशु स्तम्भ के लिए भी A T S को २० हजार यूनिट की मात्रा मे Adrenaline (१०००-१) २ बूंद मिला करके मांस द्वारा दे देना चाहिए। Largactil १० मिलि० को मांस द्वारा देना चाहिए। Paraldehyde ३० बूंद को आधी ताकत के नार्मल सेलाइन तथा ५ प्र०श० ग्लूकोज के १ औंस मे मिला करके कैथिटर के द्वारा बूंद-बूंद करके गुदा द्वारा देते रहने से स्तम्भ को रोका जा सकता है, इसके देते रहने से बालक का पोषण भी होता रहता है। Tetanus-neonatorum के लिए Sod Pheno, १५ मिलि०, Chlorprom. ·५ मिलि० (किलोभार) प्रति ८ घ० A T S २५ हजार युनिट का तथा मांस द्वारा Penicillin का प्रयोग करे।

खल्ली रोग, कर-पाद स्तम्भ :—Tetany, Carpopedal spasm अथवा Hypocalcaemia, Hypoparathyroidism

हमारे रक्त के Serum की १०० सी० सी० मात्रा मे १० मिलि० के लगभग कैल्सियम होता है जो भोजन से हमे प्रतिदिन ½ ग्राम के लगभग मिलता है। रक्तगत कैल्सियम का ⅓ भाग अल्व्यूमिन मे बंधा, शेष ⅔ भाग Ions के रूप मे स्वतन्त्र है। रक्त मे यह कम हो जाय तो Parathyroid उत्तेजित हो जाता है जिससे फिर रक्त मे इसकी मात्रा बढ़ जाती है। सम्भवत यह अस्थियो से रक्त मे आता है। इसके Hormone के अधिक निकलने से वृक्कों मे फास्फोरस का पुनर्विलयन घट जाता है एव रक्त मे फास्फोरस की कमी से अस्थियो मे से कैल्सियम की निकासी होने लगती है। इसके कारण हमारी वात नाड़ियों और मांसपेशियों को बल मिलता है एव उनमे सकोच की क्रिया ठीक-ठीक होती है।

जब भोजन मे कैल्सियम कम हो जाय या उसमे विटामिन "डी" की कमी से या Pancreas के रस के कम निकलने से उसका आंत के उर्ध्व भाग मे विलयन कम हो या Phytic acid या Oxalate की मात्रा भोजन मे अधिक हो अथवा चिरातिसार, अतिवमन या अस्थि शोष (Rickets) या Hypoparathyroidism (जिसमे Serum Phosphorus बढ़ जाता तथा कैल्सियम घट जाता है) या चिर वृक्क रोग के कारण बालक के रक्त में कैल्सियम की मात्रा घट जाय (६ मिलि० प्र० श० प्लाज्मा मे कम हो जाय) तब इसकी मांसपेशियों और सज्ञावाही

वात नाडियो मे अक्षमता या विक्षोभशीलता (Excitability) बढ जाती है। मूत्र मे प्रतिदिन १२५-१५० मिलि० के लगभग कैल्सियम निकलता है, शेष को वृक्क के Tubules फिर से विलीन कर लेते हैं। गुर्दे रुग्ण हो तो उसका पुर्नविलयन घट जाता है और उसकी मूत्र से निकासी बढ जाती है। शरीर मे या सेलो के अन्दर Potassium की न्यूनता के हो जाने से भी नाडी मण्डल विक्षोभशील हो जाता है। इसकी न्यूनता Supra Renal ग्रन्थि के Cortex के Aldosterone की अधिकता (Hyper aldosteronism) के कारण होती है क्योकि उसके कारण शरीर मे Sodium तथा जल अधिक रुक जाता तथा पोटैसियम निकल जाता है। जिससे विशेषत हाथ तथा बाहु की मासपेशियो मे प्रबल स्तम्भ (Contraction) के दौरे होने लगते हैं। इस प्रकार दोनो ओर (Bilateral) हाथ, बाहु या पाव मे रह-रहकर होने वाले इन स्तम्भो को खल्ली या कर-पाद स्तम्भ या Tetany या Carpopedal Spasm कहते हे। पहले ज्वर (Infection) होकर फिर प्राय अस्थि शोष प्रकृति के बालको मे यह कर-पाद-स्तम्भ का रोग होता है।

स्तम्भ के वेग के समय हाथ की अगुलियो मे प्रसार (Extension) होता है पर अगुलियाँ हथेली पर सकुचित (Flexed) होती हैं और एक दूसरे के साथ लगी होती हैं। अगूठा भी अगुलियो के साथ लगा हुआ (Adducted) होता है। पाव मे जब स्तम्भ होता हे तब वह ऊपर और अन्दर को अकडा हुआ (Extended) तथा उसकी अगुलिया तलुए की तरफ सकुचित होती हैं। इस रोग मे स्तम्भ का वेग कुछ सेकड या मिनट के लिए ही रहता हे। इसके बाद फिर मासपेशिया शिथिल हो जाती हे। इस रोग के कारण शरीर की नाना मासपेशियो मे हल्के-हल्के कम्प भी हो सकते हे। इस रोग मे ज्वर बहुत हल्का-सा या नही होता।

छ मास से दो वर्ष की आयु के शिशुओ मे जिन्हे अतिसार भी होता है शिशु-कण्ठ-स्तम्भ या श्वासकृच्छता का जो रोग (Laryngospasm) होता हे वह भी इसी रोग का एक विभिन्न रूप है जिसमे सर्दी लग कर कण्ठ नाली की मासपेशी मे स्तम्भ हो जाता है जिससे Glotis का छिद्र तग हो जाता है एव श्वासरोध (Stridor) होकर बालक का रग नीला पड जाता है। चेहरे की मासपेशियो मे स्तम्भ Twitchings भी कई बार इस रोग के कारण होते है। इसी प्रकार हल्के Tremors या कम्प भी इसी कारण हो सकते हैं

यह कथन भी अप्रासगिक न होगा कि रक्त मे कैल्सियम की न्यूनता देर तक (Chronic) रहे तो नेत्र काच मे धुधलापन (Cataract) बडी आयु से पहले Pre-senile हो जाता हे। मस्तिष्क पर इसकी न्यूनता का दुष्प्रभाव होकर मानसिक अशान्ति, चिन्ताशीलता, उदासीनता (Depression), स्मृति मन्दता, विचार शक्ति की हीनता के लक्षण हो जाते है जो वहा Calcification की अधिकता से होते हैं। Basal ganglia मे ऐसा विशेष होता हे। हृदय पर इसका दुष्प्रभाव होकर उसमे कम्प होने का लक्षण हो जाता है। बालको मे आक्षेप का रोग भी कैल्सियम की न्यूनता से हो सकता हे। इसीलिए अस्थि शोष युक्त शिशुओ मे अपस्मार सदृश आक्षेप भी होते हुए देखे जाते हैं। त्वचा खुश्क तथा छिलकेदार (Hyper-keratosis) हो जाती है, नख पतले, भगुर, लकीरदार हो जाते हे, बाल उड जाते हें या जल्दी श्वेत हो जाते है। पलको के बाल कम हो जाते हे, दातो का Dentine तथा Enamel का निर्माण ठीक नही होता जिससे वे जल्दी गिर जाते है या शिशु मे वे देर से निकलते है।

बालक मे तथा बडी आयु मे खल्ली का रोग हो तो यह कष्टसाध्य होता हे। कण्ठ मे स्तम्भ हो जाने से या मॉसपेशियो के विक्षोभ के कारण व्यापक आक्षेप Convulsions होकर मृत्यु होती है।

वृद्धो के हाथ पावो मे होने वाला स्तम्भ रोग (Cramping pain) जीर्ण वृक्क रोग (Uraemia) जनित कैल्सियम की कमी (Hypocalcaemia) के कारण उनके हाथ पॉव की मासपेशियो के विक्षोभशील हो जाने से होता है तथा रात को बिस्तरे मे पडे हुए विशेष होता हे। Uraemia के कारण Tetany का लक्षण भी होता है। यह रोग प्राय अच्छा नही होता।

परीक्षा—Trousseau's Sign

ट्रूसो का चिह्न ऊर्ध्व बाहु की Nerves अथवा रक्त-वाहिनियो को ३ मिनट ब्लडप्रेशर यन्त्र के द्वारा दबाने से बाहु मे Spasm या स्तम्भ होने लगता हे।

Chvostek's Sign श्वोस्टक का चिह्न

चेहरे के एक तरफ Facial Nerve पर टकोरने से स्थानिक स्तम्भ हो जाता हे। E C G का QT खण्ड कुछ लम्बा होता है।

रक्त परीक्षा मे Hypocalcaemia, Hyperphosphataemia के लक्षण होते हे। मूत्र परीक्षा मे Hypocalciuria, Hypophosphaturia के लक्षण होते हे।

चिकित्सा

रक्त मे कैल्सियम की मात्रा को बढाने के लिए Calcium Gluconate के १० प्र०श० घोल को १० मिलिलि० मात्रा मे या Calc Chloride 10% Solution को ५-१० मिलि० की मात्रा मे शिरा द्वारा प्रतिदिन दे देना चाहिए या इनमे से किसी के १०-५० मि० लि० को ५% ग्लूकोज सोल्यूशन मे मिला कर बूद-बूद करके देना चाहिए या Calcium Glucon ३० ग्रेन मात्रा मे दिन मे चार बार मुख द्वारा देते रहना चाहिए अथवा Calc Lact १०-१२० ग्रेन मात्रा मे या Calc Chlor ३० ग्रे० मात्रा मे दिन मे चार बार दिया जा सकता है। इसके ठीक-ठीक विलयन के लिए Liquor Calciferol Solu of Vit. D को ४० हजार (१२ मिलिलि०) मे २ लाख यूनिट तक प्रतिदिन देना चाहिए। या Calciferol Compound Tab या Dihydrotachysterol (Hytakerol) १ २५ मिलि० की ३ गोली दैनिक या १ सी०सी० सप्ताह मे ५ दिन दे या Antitetanic No १० जो १५ मि० लि० की शीशियो मे मिलती है उसकी ४-१० मिलिलि० मात्रा प्रतिदिन २-४ बार दे देनी चाहिए। फिर १-२ सप्ताह तक उसकी १ मिलिलि० मात्रा प्रतिदिन देनी चाहिये। अथवा बालक को Ostelin की दो गोलियाँ (१ गोली मे ५० हजार यूनिट्स) सप्ताह मे ५ दिन प्रतिदिन दे देनी चाहिए। अतिसार या Sprue के कारण रोग हो तो उसकी चिकित्सा होनी चाहिए।

बालक की आतो को १-२ पाइट नार्मल सेलाइन मे एक-एक दिन छोडकर साफ करते रहना चाहिए। स्तम्भ की शाति के लिए Chloral Hydr ५-१० ग्रेन की मात्रा मे मुख द्वारा तीन बार प्रतिदिन २-३ दिन तक दे देना चाहिए। बालक को इससे आधी मात्रा देनी ठीक है।

रोगी को कैल्सियमप्रधान आहार अर्थात् फल, सब्जी, थोडी रोटी, दूध, घृत, मक्खन आदि पर रखना चाहिए। सवा सेर (१ २ लिटर) दूध मे एक ग्राम कैल्सियम होता है इसलिए वह ठीक आहार है। पर उसमे फास्फोरस भी अधिक होता है और क्योकि इस रोग मे यह १०० सी० सी० रक्त मे ३½ मिलिग्राम से पहले ही अधिक होता है अत उसका तथा दही का अधिक प्रयोग भी ठीक नही रहता। रोग के ठीक हो जाने पर रोगी को ऐसे भोजन पर रख कर उसे Calc Lactate ५-१० ग्रेन प्रतिदिन देते रहना चाहिए।

बडी आयु मे चिरस्थायी वृक्क रोग के कारण मूत्र मे कैल्सियम की अधिक निकासी से हाथ-पैरो मे खल्ली रोग होता है। Albright आदि के अनुसार वृक्को की Acid Radicals (Phosphate, Sulphates) को निकालने की शक्ति कम हो जाती है जिससे Acidosis बढ जाता है तथा कैल्सियम पोटैसियम आदि Base अधिक मात्रा मे बाहर निकलने लगते है। अत लवण, प्रोटीन भोजन बन्द करके रोगी को फल, सब्जी, घृत पर रहना चाहिए। Calcium Gluconate १० प्रतिशत के १० सी० सी० मात्रा मे रक्त द्वारा देने या Calc Lactate के १५ ग्रेन की मात्रा मे मुख द्वारा प्रतिदिन तीन बार देने और सप्ताह मे दो दिन मृदु रेचन देने से आराम रहता है। साथ ही Soda Bicarb ३० ग्रेन दिन मे ३-४ बार तथा Adexolin ४५ बूद (Vit D) दिन मे १ बार देना चाहिए। उसमे Osteoporosis जो इस रोग का एक लक्षण है, शान्त रहता है।

आयुर्वेद मे खल्ली रोग

आयुर्वेद मे कहा है कि हाथ-पैर की माँसपेशियो की प्राण शक्ति के कम हो जाने से उनमे प्रबल सकोच उठने लगते हैं। (चि०।चि०।२८)

उनकी वायु वृद्धि को शान्त करने के लिए हाथ-पैरो पर साथ तेल, नारायण तेल आदि कोई वस्य तेल मलना चाहिए तथा उनका स्वेदन करना चाहिए। रोगी को घृत तथा बादाम रोगन आदि कोई वातशामक स्नेह पिलाना चाहिए। मुक्तापचामृत १-२ रत्ती मात्रा मे मधु के साथ दिन मे तीन बार देना चाहिए।

नाडी शोथ—Neuritis, Polyneuritis, Peripheral Neuritis, Peripheral Neuropathy

हाथ पैर आदि प्रान्त भागो तक जाने वाली वातनाडिया सज्ञावह, चेष्टावह, पोषक तथा अनैच्छिक चेष्टावह सूत्रो के मिलने से बनी होती है। इनके ये सूत्र परस्पर स्नायु तन्तु (Conne Tissue) के द्वारा बधे हुए तथा ढके हुए रहते हे। पहले शोथ इनमे अर्थात आभ्यन्तर (Endoneurium) तथा बाह्य स्नायु तन्तु (Perineurium) मे होता है। बाद मे इनके Myelin आवरण मे क्षीणता होती है और फिर वास्तविक सूत्री (Axis Cylinders) मे भी क्षीणता हो जाती हे। इस प्रकार प्रारम्भिक अवस्था मे जब नाडियो के स्नायु तन्तु मे शोथ होता हे इसे Interstitial Neuritis या आम वातिक नाडी शोथ कह सकते है। इस अवस्था मे पहले तो वहाँ उत्पन्न हुए द्रव (Exudate) से और फिर फूले हुए (Overgrown) स्नायु तन्तु से क्योकि नाडी सूत्र दब जाते हे इसीसे लक्षण उत्पन्न होते हे। शोथजनक कारणो के चिरकाल रहने के बाद जब इन नाडियो मे क्षीणता का लक्षण

भी हो जाता है तो उसे वास्तविक (Parenchymatous Degenerative) नाडी शोथ कहते है। वस्तुत बहुधा तो नाडियो मे शोथ इतना नही होता जितनी क्षीणता होती है। अत इस रोग को नाडी रोग (Neuropathy) कहना अधिक ठीक है। प्राय क्षीणता की प्रक्रिया मन्द रूप मे ही होती है अत रोग के कारण को दूर कर दिया जाय तो इनकी क्षीणता को रोका जा सकता है। नाडियो मे क्षीणता उनके प्रान्त भागो से आरम्भ होती है तथा शरीर के दोनो ओर एक सी होती है। इसीलिये इसे अनेक नाडी शोथ (Peripheral Polyneuritis) कहते है।

किसी वाह्य या आभ्यतर विष अर्थात Bacteria, या Virus द्रव्य के दुष्प्रभाव से यह नाडी शोथ का रोग होता है (जैसे चेष्टा सूत्रो के लिये विष) सखिया, Lead, मद्य, Carbon Monoxide आदि के चिरकाल तक शरीर मे जाते रहने से या मधुमेह (रक्त मे Pyruvate की वृद्धि से) आमवात Rheumatism या Gout जनित या कैन्सर जनित किसी विष से, आत मे उत्पन्न किसी विष से, या शरीर मे विद्यमान पूय विष (Sepsis) से या फिरग रोग, विषम ज्वर, महा कुष्ठ आदि किसी की विष से या Vitamin B या Complex की अतिन्यूनता से जैसे Beri Beri मे या वृद्धावस्था मे धमनीकाठिन्य रोग से नाडियो का पोषण कम हो जाने पर इनमे विशेषत इनके सिरो मे (Terminal branches) मे क्षीणता Ischaemic Degen की प्रक्रिया होने लगती है। वाह्य या आभ्यन्तर विष पदार्थ नाडियो तक रक्तवाहिनियो के द्वारा जाते है और बहुधा इनके विषैले प्रभाव से पहले से ही उनमे क्षीणता (Degen) की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है । W E Adams का कहना है कि मधुमेह, वृद्धावस्था आदि के कारण प्रान्तीय नाडियो मे जाने वाली पोषक धमनियो (Vasa nervosa) मे अवरोध होकर नाडियो के पोषण मे कमी आ जाती है जिससे उनमे क्षीणता होती है, Sciatic Nerve मे ऐसा ही होता है। पर मधुमेह के नियन्त्रित हो जाने पर Neuropathy का लक्षण ठीक हो जाता है। अत Arteriosclerosis उसका कारण नही Metabolism से उत्पन्न कोई विष द्रव्य ही उसका कारण है।

लक्षण

यह रोग २०-४० वर्ष की आयु मे पाया जाता है । इसका आरम्भ क्रमश होता है। शाखागत वात नाडियो के सज्ञावह सूत्रो मे सबसे पहले क्षीणता होती है जिससे दोनो ओर हाथ-पैर आदि मे सुप्ति (Numbness), चिमचिमाहट, झनझनाहट (Paraesthesia) या स्पर्श से बुरा लगने (Hyperaesthesia) का लक्षण होता है अथवा सज्ञावह सूत्रो के ग्रस्त होने से हाथ, पैर, जघा, वाहु आदि मे वेदना का लक्षण होता है, जो नाडी पर खीच पडने से बढती है अथवा रात को आराम करते समय पैरो, पिंडलियो आदि मे उद्वेष्टन (Cramps) की वेदना होती है, पादागुलियो मे सुइया चुभती है, पादतल मे दाह प्रतीत होता है। पिंडलियो व पाद तल की मासपेशियो को दवाने से उनमे दर्द होने का लक्षण भी होता है (Hyperalgesia) या पैर गर्म या अधिक शीतल लगते है । या पैरो मे सुप्ति (Numbness) प्रतीत होती है।

इस अवस्था मे परीक्षा करने पर Tendon Jerks घटे हुए होते तथा Plantar Reflex नीचे की ओर होता है। शाखाओ की नाडियो के चेष्टावाही सूत्र कुछ देर वाद ग्रस्त होते है जिससे पहले उनमे वेदना होने का लक्षण होता है। उसके वाद हाथो, पैरो की मासपेशिया क्षीण होने लग जाती है अर्थात् उनमे मासमय अवयव के स्थान पर वसा आने लग जाती है। पहले अगुलियो की सूक्ष्म मासपेशिया क्षीण होती है जिससे वारीक काम करने या लिखने की शक्ति घट जाती है। फिर अगुलियो तथा कलाइयो को पसारने वाली तथा पैरो को ऊपर की ओर फेरने वाली मासपेशिया (Dorsiflexors) क्षीण हो जाती है जिससे पैर नीचे को ढलक से जाते है (Foot drop) अर्थात् निम्न चेष्टावाही सूत्र (Lower Motor Neurones) क्षीण होने लगते है । इस रोग मे निम्न शाखाओ की मासपेशियो मे निर्वलता विशेष होती है । शाखागत नाडियो मे विद्यमान पोषक (Trophic) सूत्रो के क्षीण हो जाने से हाथ पैर आदि की त्वचा का पोषण कम हो जाता है जिससे त्वचा, नखो तथा वालो का पोषण कम हो जाता है । त्वचा पतली पड जाती, नखो मे लकीरे पड जाती है। इस अवस्था मे हाथ-पैर आदि मे व्रण हो जाये तो उसका रोहण देर से होता है। मधुमेह रोगी के पैर मे ऐसा व्रण वहुधा देखा जाता है जो सम्भवत सिरा (Capillary) नियामक सूत्रो की क्षीणता से होता है। मधुमेह जनित नाडी शोथ वहुत सुलभ रोग है इसमे जघा की मॉसपेशियो को दवाने से दर्द होता है। पैरो तथा जाघ मे दर्द रात के समय विशेष होता है जिससे निद्रा भग हो जाती है । रोगी उठकर थोडा चल-फिर ले तो यह दर्द ठीक हो जाता है। रात को निद्रा के समय पैरो और हाथो मे दर्द विशेष हो तो मधुमेह रोग की आशका करनी चाहिये। रात को विस्तरे मे पावो मे दाह प्रतीत हो, उनमे Paraesthesia हो तो भी मधुमेह रोग का सन्देह करना चाहिये। कैन्सर जनित नाडी शोथ Carcinomatous

Neuropathy का रोग भी बहुत सुलभ है। कैंसर, श्वासनाली मे, प्रोस्टेट मे या मलाशय मे कही हो तो उसकी आरम्भिक अवस्था मे ही बहुत से रोगियो मे Polyneuropathy का लक्षण हो जाता है अर्थात् पावो मे दर्द या Paraesthesia या सुप्ति का लक्षण हो सकता है। इन लक्षणो को देखकर कैन्सर का सन्देह भी हो जाना चाहिये। सेरिब्रोस्पाइनल फ्लूइड मे प्रोटीन की प्रतिशतक मात्रा ५० मिलि० से अधिक हो तो इस रोग का सन्देह दृढ हो जाता है।

शाखागत नाडियो मे विद्यमान अनैच्छिक (Autonomic) नाडी सूत्रो मे क्षीणता हो जाए तो हाथ, पैर, मस्तक आदि पर या तो स्वेद अधिक आने लगता है या उसका आना बन्द हो जाता है।

इन नाडियो मे विद्यमान सिरा नियामक (Vasomotor) सूत्रो मे क्षीणता हो जाय तो पैरो की अगुलिया, कान आदि या तो अधिक लाल और गर्म रहने लगते हैं, या अधिक ठण्डे रहने लगते है।

कुछ एक नाडी शोथ

१ बाहु नाडी शोथ (Brachial Neuritis) बाहु सम्बन्धी नाडी जाल (Plexus) जो ५वी से ८वी ग्रैवेय (Cervical) नाडियो तथा प्रथम Thoracic की अग्रिम शाखाओं के मिलने से बना है इसमे शोथ हो तो कन्धे मे दर्द हो जाता है तथा कन्धे की मासपेशियो मे विशेषत Deltoid, Serratus anterior, Supraspinatus और Triceps के long head मे घात हो जाता है, दर्द १०-१२ दिन रहता है, मध्यमायु मे यह रोग होता है। उसकी Axillary या Circumflex नाडी (C-५-६) में ही जो Deltoid और Teresminor कन्धे की इन पेशियो मे जाती हैं तथा इनके ऊपर की त्वचा को सज्ञा प्रदान करती हैं शोथ हो तो कन्धे मे तथा बाहु के बाहर के ऊपर के भाग मे दर्द होता है तथा बाहु को बाहर की ओर विवर्तित (Rotate) करने और ऊपर उठाने मे कठिनता होती है। रात को बिस्तरे मे पडने पर कन्धे मे दर्द विशेष होता है, कन्धे मे तथा ऊर्ध्व बाहु मे दर्द के कुछ दिन रहने के बाद मासपेशियों मे क्षीणता शुरु हो जाती है। Deltoid के क्षीण हो जाने से कन्धे पर उभार नही दीखता। इस प्रकार Br Plexus के ऊपर के भाग मे रोग हो तो Scapula पख की तरह खडा हो जाता है, बाहु कोहणी पर सकुचित नही होती। बाहु को उठाना या धड से परे करना कठिन हो जाता है। तथा बाहु और अधोबाहु के बाहर-बाहर की आगे पीछे की त्वचा पर Sensory loss का लक्षण होता है। Cervical ५ डिस्क के फिसलने से उत्पन्न दर्द हलके रूप मे आरम्भ होता है और चिरकाल तक रहता है तथा उसमे विश्राम से आराम आता है, इससे उस रोग का भेद करे।

इस नाडी जाल की Median Nerve (C-६-७-८-th-१) जो Flexor Pollicis Longus (अगूठे की सकोचक) Flexor Digitorum Profundus (Distal Phalanges की सकोचक) के बाहर के भाग Pronator Quadratus (बाहु की Pronator) Abductor Pollicis, Flexor Pollicis (अगूठे की सकोचक) तथा बाहर की २ Lumbricales (अगुलियो की हथेली पर सकोचक) मासपेशियो को शाखायें देती हैं रुग्ण हो तो इन मासपेशियो की चेष्टायें मन्द पड जाती हैं, हथेली चपटी हो जाती है, हाथ का Pronation (हथेली का नीचे को मुँह करना) नही हो सकता। इसकी Palmar Cutaneous शाखा अगूठे तथा बाहर की ओर की हथेली की त्वचा को सज्ञा प्रदान करती है। इसके शोथ से बाहर की २½ अगुलियो को सिकोडना तथा अगूठे को सिकोडना व Abduct करना (बाहर की ओर करना) कठिन होता है। उनमे Paralysis हो जाता है, उनमे किसी वस्तु को पकडने की शक्ति नही रहती। अगूठे के नीचे हथेली का उभार लुप्त हो जाता है। अगूठे और बाहर की २½ अगुलियो की सज्ञा शक्ति भी कम हो जाती है। इन प्रदेशो मे झनझनाहट, सुप्ति या दर्द भी हो सकता है Humerus मे सधिभग होने पर यह रुग्ण होती है। Ulnar Nerve (C-७-८-th-१).—Flexor Carpi Ulnaris (कलाई की सकोचक), Flexor Digitorum Profundus (अगुलिसकोचक) के अन्दरले भाग, Palmaris Brevis (मुट्ठी बाँधने मे सहायक), Flexor Brevis Digiti Minimi (छोटी अगुली की सकोचक), Abductor Digiti Minimi (छोटी अगुली की हटाने वाली), Opponens Digiti Minimi (उसकी मोडने वाली), Interossei (अगुलियो को खोलने-बन्द करने वाली) तीसरी चौथी Lumbricales (लिखने मे सहायक) तथा Adductor and Flexor Pollicis Brevis (अगूठे की सकोचक) को शाखाये देती है। यह नाडी करतल और करपृष्ठ के अन्दरले भाग की त्वचा को सज्ञा प्रदान भी करती है। इस नाडी मे शोथ हो तो Metacarpophalangeal सधियो पर अगुलिया स्तब्ध रहती ह। Interphalangeal सधियो पर सकुचित होती हैं। अगूठा अन्दर की ओर नही हो सकता। अगुलियाँ एक दूसरे से जुदा नही हो सकती। मुट्ठी बाँधते समय अन्दर की ओर की दो अगुलियो का सकुचित करना तथा साईड की तरफ फेरना कठिन होता है। हथेली का

अन्दर का भाग मूख-सा जाता है। हाथ के अन्दरले भाग की आगे पीछे दोनो तरफ त्वचा की सज्ञा मे न्यूनता या विपमता आ जाती है कोहणी पर चोट लगने से यह नाडी रुग्ण होती है ।

Radial Nerve (C-५-८)—Triceps, Anconeus (वाहु प्रसारक) Brachio radialis तथा Brachialis (कोहणी सकोचक) Extensor Carpi Radialis Longus (कलाई प्रसारक) Extensor Carpi Radialis Brevis, Extensor Carpi Ulnaris (कलाई प्रसारक) Abductor Pollicis Longus, Extensor Pollicis Brevis, Extensor Pollicis Longus (अगूठे को मध्यरेखा से हटाने वाली तथा अगूठे की प्रसारक) Extensor Indicis (प्रथमागुलि की प्रसारक) को शाखाये देती है। यह नाडी ऊर्ध्व वाहु के वाहर की निचली त्वचा को (Lower Lateral Brachial Cutaneous) अग्र वाहु के पृष्ठ की त्वचा को (Post Antibrachcal Cutaneous) भी सज्ञा देती है। हाथ के वाहर के तथा पीछे के आधे पृष्ठ प्रथम अगुली के दोनो वाजुओं, मध्यमागुलि के वाहर के पृष्ठ की त्वचा को भी सज्ञा देती है। अर्थात् वह हथेली को ऊपर फेरने तथा कलाई और अगुलियो को फैलाने वाली नाडी है अत. Triceps को जाने वाली इसकी शाखा के नीचे की इस नाडी मे रोग हो तो हाथ कलाई पर ढीला हो जाता है (Wrist Drop) अगुलियो को Metacarpophalangeal सधियो पर फैलाना या अग्रवाहु को फैलाना, हथेली का पृष्ठ Brachioradialis के द्वारा ऊपर की ओर फिराना (Supination) कठिन हो जाता है। हाथ की पकड निर्वल पड जाती है। गहरी नीद में इसके दव जाने से या Humerus की ग्रीवा मे भग हो जाने से यह रुग्ण होती है।

वाहुशूल, Brachial pain due to protruding intervertebral disc, Cervical disc-herniation—वडी आयु (५०-७० वर्ष) में निचले ग्रीवा कसेरुओ मे क्षीणता (Degen) के हो जाने से या वृद्धि (Cervical Spondylosis) हो जाने से जैसे ६ और ७ कसेरुओ के बीच की Disc मे वृद्धि Herniation के हो जाने से एक वाहु की चेष्टा शक्ति कम हो जाती है। ग्रीवामूल में दोनो Shoulder-blades के वीच में रोगी को दर्द रहता है जो एक ओर अधिक होता है। ग्रीवा का चेष्टा क्षेत्र भी कम हो जाता हे। नाडियो पर विशेपत 6th Cervical root पर दवाव पडने से दर्द वाहु मे विशेपत उसके वाहर की ओर के भाग मे नीचे अगुलियों तक जाता है, तर्जनी अगुली मे विशेपत और अगूठे मे भी झनझनाहट (Paraesthesia) होती हे उनमें सुप्तता या Numbness का लक्षण भी होता है। उधर की वाहु की मासपेशियो मे निर्वलता होती तथा कृशता भी दीखती है। X-Ray द्वारा रुग्ण हुई Disc पतली दिखाई पडती है।

Lumbosacral Plexus मे Neuritis वहुधा Vertebrae मे कैन्सर के कारण होता है जो प्रोस्टेट या फुफ्फुस के कैन्सर के उपद्रव रूप मे होता है जिसके कारण तीव्र कटिशूल होता है। इस Plexus की Femoral Nerve (L-२-४) .—ऊर्ध्व जघाके अगले पृष्ठ पर विद्यमान Pectineus, Sartorius, Iliacus तथा उसकी सहायक Psoas Major (जो ऊर्ध्व जघा को पेट की ओर सकुचित करती है या अन्दर या वाहर की ओर करती है) और Qudriceps Femoris (जो टाँग को फैलाती है तथा धड को टाँग पर थामती है) को शाखाये देती है। इसलिये इस नाडी मे शोथ होने पर जैसे कि Pelvis मे कैन्सर के कारण या मधुमेह के कारण होता है ऊर्ध्व जघा मे निर्वलता आ जाती है, रोगी को ऐसा लगता है जैसे उसके घुटने उसे सहारा नही देते। इस नाडी के रोग से जघा को फैलाने मे विशेपत और कुछ-कुछ कोष्ठ पर सिकोडने मे भी अशक्ति प्रतीत होती है। सीढी चढना या उतरना कठिन हो जाता है घुटने पर सकोच करते ही जैसे बैठते समय करना पडता है रोगी सहसा नीचे गिर पडता हे। क्योकि यह नाडी ऊर्ध्व जघा के अगले पृष्ठ तथा जघा और पैर के अन्दर की ओर की त्वचा को सज्ञा प्रदान करती है (Medial Cutaneous तथा Saphenous Nerve के द्वारा) अत इसके रुग्ण होने के कारण ऊर्ध्व जघा के अगले पृष्ठ, अधोजघा, तथा पैर के अन्दर की ओर की त्वचा मे सज्ञानाश, झनझनाहट (Paraesthsia) या शूल (Crural Neuralgia) के लक्षण भी हो सकते हे।

गृध्रसी (Sciatic) नाडी (L-४-५, S-१-२-३) जो Lumber और Sacral Plexuses से वनती है अपनी दो शाखाओ Medial तथा Lateral Popliteals मे विभक्त होने से पहले ऊर्ध्व जघा के पीछे की Biceps Femoris, Semimembranosus Semitendinosus तथा Adductor Magnus के Head को जो जानु की सकोचक (Hamstring Muscles) हे शाखाये देती हे। जानु के नीचे सर्वपेशियो को शाखा देती है। इसकी Lateral Popliteal (L-४-S १) शाखा Fibula के शिर के पीछे एक गहरी Anterior Tibial दूसरी उथली Musculo-cutaneous शाखा मे वट जाती है। इनमे से Anterior Tibial शाखा Tibialis Anterior (गुल्फ सकोचक) Extensor Hallucis Longus, Extensor Digitorum

Longus, अगूठे, बीच की अगुलियो व छोटी अगुली को तथा पैर को सकुचित करने वाली या (Dorsiflexors) को शाखाये देती हे। दूसरी Musculocutaneous या Superficial Peroneal शाखा Peroneus Longus तथा Brevis को जो बाहर के गुल्फ पर पैर को बाहर और ऊपर फिराने का काम करती है शाखाये देती है। पैर के ऊपर की त्वचा के अन्दर तथा बाहर के भागो को छोड कर बीच के भाग को तथा अधोजघा के निचले ⅓ भाग के बाहर २ के अगली पिछली त्वचा को सज्ञा प्रदान करती हे। पैर के बाहर के भाग को Sural Nerve, जो Tibial Nerve की Medial Sural Cutaneous तथा Common Peroneal Nerve की एक शाखा के मिलने से बनती है, तथा अन्दर के भाग को Ant Tibial Nerve सज्ञा प्रदान करती हे। टाग के पीछे की Posterior Tibial, नीचे बाहर के गुल्फ पर पहुचकर Medial तथा Lateral दो Plantar (पादतल की) शाखाओ मे विभक्त हो जाती हे। यह Post Tibial नाडी, पिण्डली की Gastrocnemius, Soleus, Plantaris को जो पाव को नीचे पादतल की ओर सकुचित करती है शाखायें देती है। Tibialis Posterior तथा Popliteus को जो पैर को अन्दर की ओर विवर्तित करती है शाखायें देती है। Flexor Digitorum Longus, Flexor Hallucis Longus को भी जो पाव की अगुलियो को नीचे की ओर सकुचित पावको Extend करती है, शाखाये देती है। यह नाडी निचली एक तिहाई जाँघ के पीछे के बाहर के भाग की त्वचा को, एडी तथा पादतल के पिछले भाग की त्वचा को भी सज्ञा प्रदान करती है। Medial Planter Nerve पादतल मे Abductor Hallucis, Flexor Hallucis Brevis, Flexor Digitorum Brevis, प्रथम Lumbricale Muscle को जो पादागुलियो की सकोचक है शाखाये देती है। यही नाडी (L-४-५) पादतल के अन्दर के भाग की ३½ अगुलियो तक की त्वचा को सज्ञा प्रदान करती हे। Lateral Planter Nerve (S-१-२) पाव की शेष बची हुई छोटी मासपेशियो को शाखाये देती हे तथा पादतल के बाहर के १½ अगुलि तक के प्रदेश की त्वचा को सज्ञा प्रदान करती हे। इस गृध्रसी नाडी मे शोथ हो तो उसे गृध्रसी (Sciatica) रोग कहते है। Pelvis मे कैन्सर हो या Femur मे Fracture हो तो इस नाडी मे घात हो सकता हे जिससे Foot drop का लक्षण हो जाता है। गोडे से नीचे की मासपेशियो मे 'घात' हो जाता है।

इस नाडी की Peroneal N (L४-S१) मे मधुमेह के कारण बहुधा रोग होता हे जिससे Anterior Tibial तथा Peroneal मासपेशियो मे 'घात' हो जाता है एव पांव गिर सा जाता है। साथ ही अधोजघा के बाहर का पृष्ठ तथा पाव के ऊपर का पृष्ठ कुछ सोया हुआ लगता है। यदि Posterior Tibial N मे भी मधुमेहजनित रोग हो तो पाव का तलुआ सोया हुआ होता है तथा अधोजघा के निचले ⅓ भाग का पिछला पृष्ठ सोया हुआ लगता है।

गृध्रसी शूल - Sciatica

नितम्ब ऊर्ध्वजघा के पिछले पृष्ठ जघा के बहि तथा पश्चिम पृष्ठ और पाव के बहि-पृष्ठ पर शूल हो तो उसे गृध्रसी शूल कहते है।

कसेरुओ (Vertebrae) तथा उनको परस्पर जोडने वाली तरुणास्थि की बनी टिकियो (Discs) के मिलने से रीढ की हड्डी बनी है। इन टिकियो का बाहर-बाहर का गोल कुछ कठोर होता है (Annulus Fibrosus) और इनका केन्द्रीय भाग अधिक लचकीला होता है (Nucleus Pulposus) रीढ की हड्डी के ऊपर के भाग मे कसेरु तथा उनके बीच की टिकिया पीछे की ओर से Posterior Common Ligament के द्वारा पूरी तरह से ढकी रहती है। परन्तु रीढ की हड्डी के निचले भाग मे अर्थात् Lumber प्रदेश मे यह Ligament कुछ तग होती है एव इन कसेरुओ और टिकियो को पूर्णतया ढकती नही। इसलिये कमर की रीढ पर कभी-कभी भारी दबाव पड जाने से वहाँ की एक टिकिया (Disc) पीछे Vertebral Canal की ओर खिसक जाती है।

छोटी आयु मे ये टिकिया अधिक लचकीली होती है एव ऊपर नीचे के कसेरुओ के साथ दृढतापूर्वक बधी होती है। बडी आयु मे इनका लचकीलापन तथा इनका ऊपर नीचे के कसेरुओ के साथ बन्धन कुछ घट जाता है जिससे रीढ की हड्डी पर भारी दबाव पडने से जैसे आगे की ओर झुक कर किसी भारी बोझ को उठाते समय जब कमर की हड्डी पर जोर पडता है तब या तो एक सारी टिकिया पीछे की ओर खिसक जाती हे या उसके फट जाने से उसके अन्दर का लचकीला भाग (Nucleus Pulposus) पिछली Ligament के एक पार्श्व की ओर खिसक जाता हे। बहुधा पाचवी Lumber कसेरु और Sacrum के बीच की टिकिया (5th Lumber disc) पीछे एक पार्श्व की ओर खिसक जाया करती हे (Lumbosacral Disc Herniation)। कभी-कभी तो साधारण से झटके से ही कसेरुओ के बीच की टिकिया (Disc) खिसक जाती है। इस अवस्था मे पहली Sacral Root दब जाती हे तब दर्द ऊर्ध्वजघा के पीछे-पीछे अधोजघा मे जाती तथा उधर के

पाव के वाहर के भाग मे होती है। इसके अतिरिक्त वृद्धावस्था मे पृष्ठ वशास्थियो मे विशेपत कटि कसेरुओ में वृद्धि (Spondylosis या Hypertrophic Spondylitis या Osteoarthritis of the spine) का रोग होता है जिसमे Vertebrae के Bodies पर Osteophytes या Spurs उत्पन्न हो जाते हे जिसके कारण Intervertebral foramina मे इस नाडी पर दवाव पड सकता है। ठीक जैसे कि ग्रैवेय कसेरुओ और उनके वीच की टिकियो मे क्षीणता जनित वृद्धि से Cervical Rediculitis या ग्रैवेय सौपुम्न नाडियो के Roots के दव जाने से अधिकत तो हाथ के तथा वाहु के वाहर की ओर (Cervical ५, ६, ७, ८) के भाग मे सुप्ति-झनझनाहट के लक्षण होते हैं। कभी-कभी इस Cervical Spondylosis या ग्रीवा सम्वन्धी पृष्ठ वशास्थि रोग के कारण कन्धे, वाहु और अगुल्यियो तक जाने वाली वेदना भी होती हे। इसी प्रकार पृष्ठ वशास्थि के रोग के कारण एक पैर मे झनझनाहट का लक्षण हो सकता है।

सुपुम्ना काड मे से निकलने वाली प्रत्येक सौपुम्न (Spinal) नाडी अग्रिम तथा पश्चिम दो मूलो (Roots) के मिलने से वनती है। इन दोनो का मिलन Intervertebral Foramina के अन्दर हो जाता है। पीछे की तरफ खिसकी हुई उस टिकिया का दवाव पिछली Root पर विशेपत पडता है जिससे उसमे शोथ (Rediculitis) हो जाता है। अव क्योकि पाचवी Lumber तथा विशेपत प्रथम और द्वितीय Sacral Spinal Roots के मिलने से Great Sciatic Nerve वनती हे और वहुवा Lumber कसेरुओ और Sacrum के वीच की टिकिया ही पीछे की ओर खिसकती हे, इसलिये उसके कारण प्रथम Sacral Nerve की पिछली Root पर दवाव पड जाता है। जिसके कारण इस Sciatic नाडी के क्षेत्र मे तथा कटि मे शूल का लक्षण हो जाता है। इसके Root मे शोथ हो जाने के वाद इस गृध्रसी नाडी के स्नायु तन्तु (Connec Tissue) मे भी शोथ प्रसरण कर जाता है जिसे गृध्रसी नाडी शोथ (Sciatic Neuro Fibrositis) कहते है।

क्योकि दूसरे, तीसरे, चौथे Lumber Roots के सयोग मे Femoral Nerve वनती है इसलिये इनमे से किसी मे शोथ (Radiculitis) होने से या Lumber ३ और ४ के वीच की टिकिया खिसक गई हो तो ऊर्ध्वजघा के अगले पृष्ठ पर उस नाडी के क्षेत्र मे वेदना सुप्ति व चिमचिमाहट (Tingling) आदि लक्षण हो जाते हे जो नीचे अन्दरले गिट्टे तक प्रतीत होते है। जव Lumber ४ टिकिया मे रोग हो एव L-५ Nerve root दव जाय तव ऊर्ध्वजघा के वाहर-वाहर से अधोजघा के वाहर के प्रदेश तथा पाद पृष्ठ के अन्दर की ओर के भाग मे वेदना रहती है। अधोजघा के वाहर-वाहर का भाग सोया हुआ सा लगता हे। पाव के अगूठे को ऊपर Extend करना कठिन होता है।

कभी-कभी Lumber Spinal नाडियो के अग्रिम Roots पर इस खिसकी हुई टिकिया का दवाव पड जाता है जिससे उनमे शोथ विशेप होता है तव शूल के वजाय जाघ की माँसपेशियो मे निर्वलता का लक्षण विशेप होता है। इस नाडी के Sciatic Notch के प्रारम्भिक भाग पर विद्यमान माँसपेशियो (Piriformis, Biceps, Hamstrings) तथा Sacrosciatic स्नायु मे यदि आम वातिक शोथ (Fibrositis) हो या उनमे चोट या जोर (Strain) पड जाने से शोथ हो जाय तो क्योकि इनमे Sacral Plexus से शाखाये जाती है, इससे इनकी दर्द गृध्रसी नाडी मे जाती प्रतीत होती है तव इसे आम वातिक Fibrositic या Interstitial गृध्रसी शूल कहते हे।

कारण

Lumber प्रदेश की Intervertebral disc की Nucleus Pulposus के पिछली ओर खिसक जाने से यह रोग होता है। पाचवी Lumber disc के खिसकने से यह होता हे। इसमे वेदना मधुमेह के कारण हो सकती है। रीढ की हड्डी मे शोथ (Spondylitis) हो या वृद्धि (Spondylosis या Hypertrophy) हो या वहाँ की कोई टिकिया स्थान भ्रष्ट हो गई हो या Lumbosacral प्रदेश मे Osteo-arthrosis हो या Lumber Vertebrae मे कैन्सर हो या Pelvis मे कैन्सर हो तो उसके दवाव से भी इस नाडी मे रोग हो सकता है। मध्यम आयु मे यह रोग कटिप्रदेशीय (Lumber) तथा नितम्वदेशीय (Gluteal) मासपेशियो मे आघातजनित शोथ के इसके अन्दर प्रसरण कर जाने से होता है जिनमे आघात किसी आकस्मिक झटके या किसी भारी वोझ को उठाने से लगता हे।

लक्षण

गृध्रसी नाडी की Roots पर विशेपत प्रथम पिछली Sacral Root पर दवाव पडने के कारण एक दम कटि की मासपेशियो मे स्तम्भ होकर कटिशूल (Lumbago) का लक्षण हो जाता है। यह दर्द कटि के मध्य मे एक ओर विशेप होता है। आराम से लेट जाने पर दो दिन मे ठीक हो जाता है। अव कटि पर से वह दर्द स्फिक् प्रदेश

मे और वहाँ मे नीचे उतर निम्न जघा के पिछले तथा वाहर के पृष्ठ पर से होता हुआ पाव के वाहर के पृष्ठ तक जाता हे जो चलने फिरने से वढ जाता है। प्रथम Sacral Root के दवने से ऐसा होता है। पाव का यह वाहर का पृष्ठ सोया हुआ सा होता या उसमे चिमचिमाहट सी होती है पर जव पाचवी Lumber Root मे शोथ होता है तव पाव के अन्दर के पृष्ठ पर दर्द या सुप्ति का लक्षण प्रतीत होता है। कुछ काल वाद एडी मे सुप्तता का लक्षण प्रतीत होता है जो रात को विस्तरे मे उठने पर अधिक स्पष्ट रहता है। फिर ऊर्ध्व जघा के पिछले पृष्ठ पर दर्द का लक्षण प्रतीत होता है जो क्रमश वढता जाता है जिससे चलना-फिरना तथा विस्तरे पर भी करवट वदलना कठिन हो जाता है। गृध्रसी नाडी का यह दर्द यो तो वरावर वना रहता है पर विना गोडे के मोडे आगे झुकने से, खाँसने छीकने से वढता है। टाग को सीधा पेट पर ९० डिग्री तक सिकोडने से भी वढता है। अर्थात् इस नाडी पर खीच पडने से रोगी को दर्द होता है। इसलिये वह अपने स्वस्थ पार्श्व पर, रुग्ण टाग को जानु तथा वक्षणसधि पर सकुचित करके लेटा रहता है। यह रोग १½-२ मास तक ठीक हो जाता हे।

परीक्षा

यदि खडे हुए रोगी के पीठ पीछे देखने पर उसकी कमर का स्वाभाविक खम (Curvature) न दिखाई पडता हो तो समझना चाहिये कि कटि और Sacrum की सधि पर या Sacrum और Ilium के जोड पर खीच पड गई है और एक ओर या दोनो ओर के Sacrospinalis मास रीढ की (Extensor) मे स्तम्भ (Spasm) हो गया है।

यदि देखने से रीढ की हड्डी मे एक पार्श्व की तरफ मोड (Scoliosis) दिखाई पडे और यह गृध्रसी शूल की विपरीत दिशा मे (Contralateral) हो तो समझना चाहिये कि उधर के कसेरुओ के वीच के प्रदेश को वडा करने तथा इस प्रकार उधर की Roots पर फिसली हुई टिकियो के भार को कम करने के लिये यह वक्रता हो गई है। यदि रीढ की हड्डी की वह वक्रता उसी तरफ हो जिधर गृध्रसी शूल है (अर्थात् Homolateral Scoliosis हो) तो उधर की गृध्रसी नाडी पर पडने वाली खीच को कम करने के लिये यह हुई है ऐसा समझना चाहिये।

रोगी को कमर के भार लिटाकर टाग को गोडे पर विना मोडे वक्षण सधि पर सकुचित करने मे यदि थोडी उठाने पर दर्द होने लगे तो उसके पीछे की मासपेशियो (Hamstrings) के ऊपर के भाग मे शोथ (Fibrositis) का सन्देह करना चाहिए अर्थात् Fibrositic Sciatica आमवातिक गृध्रसी शूल का सन्देह करे। अव यदि टाग को और उठाये विना केवल उसके पैर को गुल्फ सधि पर ऊपर की ओर मोडा जाय जिससे गृध्रसी नाडी पर खीच पडे और इससे दर्द हो तो गृध्रसी नाडी मे शोथ का अनुमान करना चाहिए। यदि टाग को थोडा उठाने मे दर्द न हो पर अधिक ऊचा उठाने पर दर्द हो जिससे कि Sacrum और Ilium के सधि स्थान मे चेष्टा हो जाती है तो समझना चाहिये कि उस सधि मे विद्यमान स्नायु तन्तुओ (Sacroiliac Ligaments) मे शोथ है।

Piriformis तथा Fascia Lata मे शोथ के कारण गृध्रसी शूल हो तो Greater Trochanter के ऊपर और पीछे के प्रदेश पर दवाने से स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है तथा इसमे सारी गृध्रसी नाडी मे भी दर्द होता है। किसी कसेरु सम्वन्धी टिकिया के फिसल जाने से रोग हो तो Radiography से इसका निश्चय हो सकता है। इस रोग मे पाव के वाहर के ओर की त्वचा या ऊपर के पृष्ठ की त्वचा मे सुप्ति का लक्षण न्यूनाधिक रूप मे हुआ करता है। उर्ध्व जघा के पिछले पृष्ठ या पिण्डली पर किसी प्रदेश मे स्पर्शाक्षमता का लक्षण भी होता है। टाग की मासपेशियो मे घात या Paralysis का लक्षण प्राय नही होता तो भी जानु सकोचक मास (Hamstrings) मे कुछ निर्वलता हो जाती है। कभी-कभी पाव की अगुलियो को ऊपर की ओर सकुचित (Dorsiflex) करने वाली मासपेशियो मे निर्वलता पाई जाती हे। टिकिया के फिसलने (Disc prolapse) से यह रोग हो तो चौथी या पाचवी Lumber Spine पर टकोरने से स्पर्शाक्षमता प्रतीत होती है तथा ऊर्ध्व जघा के पीछे इस नाडी पर स्पर्शाक्षमता प्रतीत होती हे।

नाडी शोथ की चिकित्सा

यदि रोगी आराम से विस्तरे पर कुछ दिन के लिए पड जाए तो दवाव से ग्रस्त नाडी को भी आराम मिल जाता है और उस पर पडा विक्षोभ शान्त हो जाता हे। इस प्रकार नाडियो मे क्षीणता Neuropathy जनक कारण दूर हो जाता है अत रोगी को २-३ सप्ताह पूर्ण विश्राम करना चाहिए। उसे किसी काम के लिए उठना नही चाहिये। मधुमेह हो तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। नाडी के पोषण को वढाने के लिए स्वेदन (गर्म नमक की थैली द्वारा) तथा मर्दन उपयोगी हे। रुग्ण नाडी की निर्वलता को दूर करने के लिये Vitamin B_1 (Berin) को १०० मिलिग्राम की

मात्रा मे दिन मे दो बार दो सप्ताह तक देने, और उसके बाद ५० मिलि० मात्रा मे दिन मे एक बार कुछ सप्ताहो तक देने, या १०० मिलि० मात्रा मे कुछ सप्ताह तक वी$_{12}$ १००० माइक्रोग्राम के साथ मास द्वारा देने तथा साथ ही Nicotinic Acid को १०० मिलि० मात्रा मे मुख द्वारा दिन मे दो बार देते रहने या Vit B_1 २५ मिलि० Nicotinic acid १० मिलि०, Pyridoxine ५, Pantothenic acid १०, Riboflavin १० मिलि० देने का रिवाज है। इसी प्रकार Vitamin B Complex के बडी मात्रा मे Dextrose saline मे सिरा द्वारा कुछ दिन देने का भी रिवाज है पर इनसे लाभ नही होता है। रोग तीव्र रूप मे हो तो Corticosteroids के प्रयोग से उसमे शान्ति पड जाती है अर्थात् Prednisolone को पहले १० मिलि० मात्रा मे और फिर ५ मिलि० दिन मे ३ बार या Betnesol के २ बार देने से लाभ होता है। मधुमेह के साथ यह रोग बहुत होता है तब Neurobion का इजेक्शन Alternate दिनो पर मास द्वारा देवे। २-३ सप्ताह चालू रखे। Aspirin ग्रेन, १० Amydopyrine (Pyramidon) ५ ग्रेन, Heroin $\frac{1}{12}$ ग्रेन को मिलाकर प्रात साय देने से अथवा Aspirin ३$\frac{1}{2}$ ग्रेन, Phenacetin २$\frac{1}{2}$ ग्रेन, Caffeine $\frac{1}{2}$ ग्रेन और Codeine Phosphate $\frac{1}{8}$, $\frac{1}{4}$ ग्रेन की मात्रा मे मिलाकर दिन मे तीन बार देने से या Compound codeine tablets अर्थात् केवल Aspirin ४ ग्रेन Codeine Phosphate $\frac{1}{8}$, तथा Phenacetin ४ ग्रेन मिलाकर मुख द्वारा दिन मे तीन बार देने से या Saridone की गोली के ३-४ बार देने से या Paracetamol ५ ग्राम के साथ Gardenal ६० मिलि० दे देने से या Sodium amylobarbitone के २०० मिलि० मात्रा मे देने से आराम आ जाता है। बाहु मे शूल हो तो Short Wave Diathermy और बाहु को आराम देने मे आराम आ जाता है।

गृध्रसी शूल की चिकित्सा

आमवातिक कटि शूल तथा गृध्रसी शूल के होने पर रोगी को दो-तीन सप्ताह तक आराम से लेटे रहना चाहिये। टाग पर मालिश नही करनी चाहिए, इससे कष्ट बढता है। वस्ति के द्वारा आतो को साफ रखना चाहिए। मधुमेह हो तो उसकी चिकित्सा तत्परता के साथ करनी चाहिये। किसी दात की जड मे पूय हो तो उसकी उचित चिकित्सा करनी चाहिए तथा स्फिक् प्रदेश और कमर पर गर्म बोतल से या Diathermy द्वारा स्वेदन करना चाहिये। दर्द की शान्ति के लिए Sodium Salicylate १० ग्रेन की मात्रा मे ३-४ बार Codopyrin, Aspirin १० ग्रेन या Butazolidin (Phenyl-butazone) २००-४०० मि० दैनिक का या Irgapyrin का प्रयोग करना चाहिए। कमर के नीचे तकिया देने तथा टाग को कुछ Abduction मे फैला के रखने से दर्द घटता है। जब उठने-बैठने या चलने-फिरने से दर्द न हो तो बिस्तरे से उठना हुई टिकिया से उत्पन्न नाडी शोथ भी ३-४ सप्ताह के आराम से शान्त हो जाता है और Root सकुचित मार्ग के अनुसार अपने को ढाल लेती है।

आयुर्वेद में नाड़ी शोथ

वातिक नाडी शोथ :–

किसी बाह्य या आभ्यतर विष के द्वारा हाथ-पाँव की बात नाडियो की प्राण शक्ति के घट जाने से वहाँ जो मन्द-मन्द शूल या सुप्ति के लक्षण हो जाते है इसे वातिक नाडी शोथ कहते हैं। यह रोग बड़ी आयु मे होता है।
(च०। चि०। २८। श्लो० ३६। सिरागतवायु) तथा (सु०। नि० १। २६ श्लो०)

वात श्लैष्मिक नाडी शोथ :–

शरीर मे आम दोष के बढ जाने से उसके विपरीत प्रतिक्रिया के रूप मे जो वातानुगत श्लैष्मिक शोथ होता है उसे आम वातिक शोथ या वात श्लैष्मिक नाडी शोथ कहते है, यह प्रथम या मध्यमायु मे होता है।

गृध्रसी, विश्वाची अर्थात बाहु नाडी शूल तथा अन्य नाडी शूलो के लिए उपयोगी प्रयोग निम्नलिखित हैं :–

(१) शिवागुग्गुलु (भै र. र सा सं.) त्रिफला प्रत्येक १ पाव, जल ८ सेर मे पका, चतुर्थांश रख, उसमे गुग्गुलु आधा पाव मिला उसे गाढा करें, फिर उसमे एरण्ड तेल १० तोला, गंधक ३।।। तोला। रास्ना, विडग, त्रिकटु, देवदारु चूर्ण १। तोला पृथक्-पृथक् मिलायें मात्रा १।।-२ माशा।

(२) पथ्यादिगुग्गुलु (भा प्र) हरड १०० अदद, उसके बराबर भार मे आवला तथा बहेडा, जल ३२ सेर मे एक दिन रखकर, पकाकर, आधा जल उड जाने पर छान लें। गूगल १ सेर डाल फिर पकाएं। गाढा होने पर विडग, त्रिफला, त्रिकटु, त्रिवृत, गिलोय का चूर्ण २।।-२।। तो. डाल दें। २-३ माशा मात्रा मे दें।

(३) एरण्ड तेल हरीतकी (भा.प्र.) एरण्ड तेल मे भुनी हरडो का चूर्ण ३ माशा मात्रा मे दें।

(४) शुठी चूर्ण युक्त लशुन (वृ नि र.) सोठ ३५ तो. को घृत ३५ तो मे भूनकर उसमे ३५ तो ही लशुन पीसकर मिलाए। इसे १ माशा मात्रा मे दें।

(५) रसोनकल्क (शा ध) लशुन ५, सौवर्चल, अजवायन जीरा श्वेत, हींग, सैंधव, त्रिकटु, प्रत्येक समभाग मिलाकर १। तोला हो। मात्रा १ माशा। कटिशूल के लिए भी उपयोगी है।

(६) लशुनाष्टक (प्रसिद्ध) लशुन, हीग, जीरा, त्रिकटु अजवायन, सैन्धव समभाग, मात्रा १ माशा।

(७) लशुन पाक (वृ.नि र) छिलका रहित लशुन १ सेर, रात भर तक्र मे रख कर धोकर पीसें। ८ सेर दूध मे पकाए। गाढा होने पर घृत आधा सेर मिलाए। रास्ना, शतावर, विधारा, चीतामूल, विडग, अजवायन, पिप्पली सोठ, गिलोय, सोया, लौंग, चतुर्जातक १।-१। तो मिलाए। मिश्री १।। सेर मिलाए।

(८) शु ठी आदि पायस (ग नि) शु ठी तथा एरण्ड बीज समान भाग पीसकर उनकी खीर बना कर खिलाए।

(९) कट्फल तेल (वैद्य रामनारायणजी) कट्फलकल्क से पकाया तेल मलने से गृध्रसी शूल शान्त होता है।

(१०) वातनाशनी वटी या कुचलावटी (र चि म.) कुचला १०, मरिच १ भाग २-३ रत्ती की गोलिया बनाए। अथवा कुचला १०, रस सिन्दूर, लोह, जातिफल, लवग, मरिच, सोठ, तगर, जटामासी १।-१। तो मिलाकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बनाए। दिन मे ३गोली दें।

(११) दशमूलादि क्वाथ (व से) दशमूल, वला, रास्ना, गिलोय, सोठ समभाग के क्वाथ को एरण्ड तेल के साथ दें। अथवा थोडा घृत मिलाकर दें। दशमूल, वला, माष का क्वाथ विश्वाची नाडी के लिए हितकर है (व से)

(१२) महानिम्ब क्वाथ (शा ध) वकायन की जड़ की छाल को पानी से पीसकर छानकर पिलाए।

(१३) शेफालिका क्वाथ (ग नि) सभालू पत्र क्वाथ मन्दाग्नि पर बना पिलाए।

(१४) सैंधवादि तैल (भै र) सैंधव १०, सोठ २५, पिप्पली मूल, चित्रमूल, १०-१० तो। भिलावा १० अदद, सबका कल्क, एरण्ड तैल २ सेर, कांजी ८ सेर। तेल साधन करें। १-२ चम्मच पिलाए।

(१५) श्वदंष्ट्रादि तेल (व से) गोखरुकषाय ८ सेर, दूध ८ सेर, तिल तेल २ सेर, अदरक २५ तो, गुड १०० तो, तेल साधन करें। १-२ चम्मच पिलाए।

(१६) महामाष तेल का अन्त. तथा वहि प्रयोग उपयोगी है (व से)

(१७) विश्वादि गुग्गुलु (वृ नि र) त्रिकटु, पिप्पलीमूल, विडग, देवदारु, सैंधव, रास्ना, चित्रक, अजवायन, वचा, हरड़ समभाग गुग्गुलु सब से २ गुना घृत से मर्दन करें। ३ माशा मात्रा।

बाल पक्षाघात—Poliomyelitis, Acute Anterior Poliomyelitis, Infantile Paralysis

इस रोग मे एक विशेष Virus के द्वारा Anterior Horncells मृत हो जाते हैं जिसमे Lower motor Neurone किस्म का Paralysis हो जाता है। यह बालक मे सक्षिप्त ज्वर, गल शोथ, सिर दर्द तथा वमन के साथ आरम्भ होता है।

कारण

एक अति सूक्ष्म ८-३० मिलिमाईक्रोन का नाडी विष या Filtrable Neurotropic Virus जो केवल मनुष्य तथा बन्दर मे ही वृद्धि करता तथा रोग उत्पन्न करता है। इसके शरीर मे प्रविष्ट हो जाने के कारण दो से पाच वर्ष के छोटे बालको मे कही-कही पर (Sporadic रूप मे) होने वाला तथा कभी-कभी सक्रामक रूप मे होने वाला यह रोग है जिसमे सुषुम्ना काण्ड के अग्रिम शृ गो (Anterior Horns) के लिए विशेष Affinity या आकर्षण रहता है जिससे उनके सेल और कभी-कभी Medulla मे विद्यमान मस्तिष्क नाडियो के चेष्टावाही (Motor Nuclei) के सेल मर जाते है और उनसे सम्बन्धित मासपेशिया शिथिल (Flaccid) हो जाती है। इस प्रकार काली मज्जा मे (Polio=काली, Myelitis=

मज्जा) शोथ हो जाने वाले इस रोग को Poliomyelitis कहते है। यह वाइरस बहुत व्यापक है और सभवत सभी मे इसका प्रवेश होता है परन्तु मन्द प्रवेश होने से उनमें इसके विपरीत Immunity उत्पन्न हो जाती है।

यह वाल पक्षाघात का रोग सक्रामक (Epidemic) है। ऐसा पता १९वी शताब्दी के पिछले भाग मे लग चुका था पर इस बात का ठीक-२ पता पहले-पहल Wickman (१९०८) ने दिया और उसी वर्ष Landsteiner ने इसके सक्रमण के कारण भूत Virus को पृथक् करके दिखा दिया। १९४९ मे Enders, Weller तथा Robins ने इस Virus की खेती (Tissue culture) करके इसका वैक्सीन भी वना लिया जिसमे वच्चो मे इस रोग के होने को पहले से रोका जा सका। इसकी खेती मनुष्य या वन्दर के गुर्दे के सेलो में की जाती है। यह Polio virus ३ किस्म का है जिन्हे १-२-३ टाइप कहते हैं। १ टाइप सवसे अधिक, २ उससे कम तथा ३ उससे कम पाया जाता है। इन्हे Brunhilde, Lansing, तथा Leon Types भी कहते हैं। इनसे उत्पन्न antibodies भी भिन्न २ है। यह रोगी वालक या किसी carrier के मुख, गले के स्राव रक्त तथा पुरीष में रहता है तथा वाहर यह Sewer मे रहता है। इसका प्रवेश मुख से दूषित भोजन या जल के द्वारा होता है तथा मल के द्वारा इसकी निकासी होती है। रोग के आरम्भ काल के ५ दिन पहले से लेकर एक सप्ताह वाद तक यह उसके मुख मे देखा जाता है तथा उसके पुरीष से २-३ सप्ताह पहले से लेकर २-३ मास वाद तक भी देखा जाता है। पहले यह रक्त मे फैलता है अर्थात् Viraemia हो जाता है पर मृत रोगी के सुपुम्नाकाण्ड तथा मस्तिष्क मे और आतो मे मिलता है। ऐसे मृदु रोगियो से जिनमे यह रोग इतने अस्पष्ट रूप मे होता है कि इसका पता ही नही चलता, तथा रोगी के निकट सम्पर्क मे आये व्यक्तियो मे अर्थात् Carriers मे कि जिनमे Virus का प्रवेश अज्ञात रूप मे हो जाता है यह उनके मुख से निकले छीटो के द्वारा तथा उनके पुरीष के कुछ अश के जल और भोजन द्रव्यो मे प्रविष्ट हो जाने से दूसरो मे सक्रमण करता है। मल के अतिस्वल्प अश मे भी इस Virus की सहस्रो सक्रामक मात्राये होती हैं। क्योकि वडे व्यक्तियो के सीरम मे इस Virus के विपरीत क्रमश Antibodies उत्पन्न हो जाते है इसलिए उन्हे यह रोग अधिकत नही होता। छोटे वालको मे जिनमे अभी तक इसके विपरीत ये उत्पन्न नही हो पाये है यह रोग Carriers के द्वारा सुगमता से हो जाता है इसलिए वहुधा यह वालको मे होता दीखता है। और क्योकि वडी आयु के व्यक्तियो के सीरम मे इस Virus के विपरीत Antibodies पाये जाते हैं जिससे पता चलता है कि अनेकानेक व्यक्तियो को यह रोग अज्ञात और अस्पष्ट रूप मे हो चुका होता है। वालको मे जिनमे इस Virus के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति शीघ्र उत्पन्न नही हो पाती उनमे सुपुम्ना तथा Medulla के Anterior horns के सेलो पर इसका दुष्प्रभाव हो जाता है तथा जिनमे यह शक्ति शीघ्र उत्पन्न हो जाती है उनमे यह दुष्प्रभाव नही होता। यह भी कहा जा रहा है कि Coxsacki तथा ECHO ग्रुप के Virus से उत्पन्न रोग का इस Virus से उत्पन्न रोग से भेद नही किया जा सकता।

यह Virus, प्रयुक्त होने वाली अनेक जीवाणुनाशक औषधियो से नही मरता परन्तु ६० सेण्टिग्रेड डिग्री पर ३० मिनट तक रखने से अर्थात् Pasteurization की विधि से मर जाता है। वर्फ की पेटी मे भी महीनो रखने से यह नष्ट नही होता। ऊपर कहा है कि यह एक प्रकार का न होकर तीन किस्म (Type) का पाया जाता है। टाइप १ किस्म का Virus अधिक सुलभ है।

गर्मी मे अर्थात् ग्रीष्म ऋतु तथा शरद काल मे इसका सक्रमण सुगमता से होता है। इस प्रकार गर्मी तथा वालको का अतिसार रोग इस रोग के प्रसरण मे सहायता करते है।

मुख मे या गले मे कोई क्षत हो जैसे कि दात निकाला गया हो या Tonsillectomy का शल्य कर्म हुआ-हुआ हो तथा यदि अतिसार के कारण आत मे शोथ हो तो इस Virus का इन स्थानो की लसीका वाहिनियो द्वारा शरीर मे प्रवेश सुगमता से हो जाता है। क्योकि इसमे नाडियो के लिए विशेष आकर्षण रहता है (यह Neurotropic है) लसीका व रक्त मे से यह विष Neurones मे चला जाता है और उनके द्वारा ऊपर को प्रसरण करता है। परन्तु इसकी वृद्धि नाडी सम्वन्धी सेलो मे ही होती है इसलिए सुपुम्ना काण्ड के चेष्टा सूत्रो से सम्वन्धित Anterior Horns विशेषत Lumber enlargement के सेलो मे ही इनकी वृद्धि होती है। इस Virus के सक्रमण काल मे या रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे जिन मासपेशियो पर अधिक कार्यभार पडता है उनमे ही पक्षाघात के होने की अधिक आशका रहती है।

विकृति

सुपुम्ना काण्ड मे विशेषत उसके कटि प्रदेशीय उभार (Lumber Enlargement) मे और कभी-कभी उसके ग्रीवा प्रदेशीय उभार (Cervical Enlargement) मे

शोथ दृष्टिगत होता है तथा सूक्ष्म वीक्षक द्वारा देखने से काले भाग मे विशेष शोथ होता है। श्वेत भाग मे तथा आवरणो (Pia तथा Arachnoid) मे भी श्वयथु का लक्षण प्रतीत होता है जो सुषुम्ना के Ant Median Fissure पर विशेष होता है। रक्तवाहिनियो मे रक्त सचय भी विशेष होता है। उनके आसपास श्वेत कण Lymphocytes तथा Polymorphs अधिक सख्या मे सचित होते है। अनेकानेक Anterior Horns के सेलो मे मृत्यु (Necrosis, Chromatolysis, Nissl Bodies Dissolution) की प्रक्रिया न्यूनाधिक हो जाती है। प्रारम्भ मे अनेक सेल इस रोग से अर्थात् प्रारम्भिक शोथ से ग्रस्त होते ह पर धीरे-धीरे उनमे से बहुत से सेल ठीक हो जाते है। उनके Neurones भी ठीक हो जाते है। कुछ एक सेल स्थायी तौर से मृत हो जाते है। जो स्थायी तौर से मृत होते ह उनके Neurones नष्ट हो जाते है तथा उनके स्थान पर Neuroglia का अवयव आ जाता है। समीपस्थ रक्तवाहिनियो के आसपास बडी मात्रा मे सचित हुए Microglia (या Amaeboid) सेल तथा Polymorphonuclear श्वेत कण और Lymphocytes इन मरे हुए सेलो को वहा से उठाकर ले जाते हैं।

तीव्र रोग की अवस्था मे Medulla, Pons आदि के Motor Nuclei, Reticular formation, Cerebellum के Cortex और Pre-central Gyrus के सेलो मे भी उपर्युक्त विकृति पाई जाती है। इस रोग मे मस्तिष्क द्रव (Cerebrospinal द्रव) कुछ बढा होता है। उसमे प्रोटीन तथा सेलो (Lymphocytes तथा Polymorphs) की सख्या भी बढी हुई होती है। Lymphocytes की सख्या Polymorphs से कुछ अधिक होती है।

मृत मास की परीक्षा करने पर उसमे लघुता (Atrophy) तथा वसा वृद्धि की विकृति पाई जाती है। इस प्रकार रोगी के शरीर मे यह Virus, Motor Cortex, Diencephalon, Mesencephalon, Medulla-Oblongata, Pons तथा Spinal Medulla सूक्ष्मान्त्र और गले की दीवार मे तथा पुरीष मे पाया जाता है। रोगी के रक्त मे वह नही मिलता।

लक्षण

सुषुम्ना काण्ड सम्बन्धी (Spinal Form of Poliomyelitis) — सक्रमण के लगभग १० दिन बाद उस रोग के लक्षण प्रकट होते हैं। साधारणत इसका परिपाक काल ८ से ३० दिन तक माना जाता है। सम्भवत यह रोग इतना ही व्यापक है जितना खसरा (Measles) परन्तु बहुधा इसके अव्यक्त रूप मे होने से इसकी पहचान नही होने पाती है। इस प्रकार (१) कभी-कभी यह रोग बालक को होता है पर व्यक्त रूप मे नही होता जिससे इस रोग के होने का पता भी नही चलता। (२) कभी-कभी इस विष के रक्त पर दुष्प्रभाव पडने से अर्थात् Viraemia के होने से इस रोग के प्रारम्भिक लक्षण जैसे ज्वर, हडफूटन (Malaise) सिरदर्द, शरीर मे दर्द, गले मे दुखन के लक्षण होते है। इनके साथ अतिसार का लक्षण भी हो सकता है। ये लक्षण एक दो दिन रहकर ठीक हो जाते है। इनको देखकर यह रोग Poliomyelitis है ऐसा नही कहा जा सकता, बहुधा Cold या Gastro intestinal रोग हुआ समझ लिया जाता है पर यदि आसपास यह रोग हो गया हो या हो रहा हो तो इसका अनुमान किया जा सकता है। इसे इस रोग का अव्यक्त या मृदु (Sub-Clinical या Mild या Abortive या Inapparent) रूप ही कह सकते है। इस रूप मे यह रोग ४०% इस रोग के रोगियो मे होता है। उनके गले के स्राव या मल मे परीक्षा करने पर यह Virus मिल सकता है। इस प्रकार Abortive रूप मे यह रोग तीव्र प्रतिश्याय के रूप मे या Influenza के रूप मे या वमन अतिसार के इन तीन रूपो मे होता है। (३) अपने वास्तविक रूप मे जब यह रोग होता है तब उसके क्रमश तीन रूप होते है। प्रथम Non-paralytic रूप मे Virus के गले व नाक मे स्थानिक प्रभाव से जुकाम व गले मे दुखन के लक्षण होते हैं। आत मे उसके दुष्प्रभाव से अरुचि वमन तथा अतिसार अथवा मलबन्ध के लक्षण होते है तथा रक्त पर इसके दुष्प्रभाव से ज्वर १०२-१०३ डिग्री तक हो जाता है। यह सहसा प्रारम्भ होता और सर्दी के साथ चढता है। सिर दर्द, शरीर मे दर्द, तन्द्रा, अरति और क्रोधशीलता के लक्षण भी होते है। ये ज्वर आदि लक्षण दो दिन रहकर शात हो जाते है। इसे इस रोग का प्रारम्भिक रूप (Initial या Prodromal Phase) कहते है। इन लक्षणो के बाद फिर इसका मस्तिष्कावरण सम्बन्धी रूप आरम्भ होता है जिसमे Meninges के ग्रस्त होने के सूचक लक्षण होते हैं। इसे इसका दूसरा मस्तिष्क सम्बन्धी रूप (Meningeal phase) कहते है। इसमे रोगी को तीव्र शिर शूल तथा तन्द्रालुता रहती है। वह उदासीन-सा पडा होता है, स्पर्श प्रकाश आदि को सहन नही करता। क्रोधी हो जाता है, डरता है, उसका चेहरा लाल हो जाता है। उसकी कमर की तथा ग्रीवा की मासपेशियो मे स्तब्धता पाई जाती है। रोगी का सिर कुछ पीछे की

ओर मुडा होता है। इस प्रकार यदि ग्रीष्म ऋतु मे छोटे बालक मे ये लक्षण पाये जाये, उसकी गर्दन को आगे झुकाना कुछ कठिन हो तो इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिए। इन लक्षणो के साथ कुछ-कुछ मूत्राघात (Retention) का लक्षण भी हो सकता है। हो सकता है कि इस अवस्था तक पहुचकर भी यह रोग २-३ दिन मे शान्त हो जाय और इसके बाद का पक्षाघात का रूप न ही हो। उपर्युक्त मृदु रूप या Minor illness के विपरीत इसे इस रोग का प्रधान रूप या Major illness कहते है। सौभाग्य से बहुधा यह रोग इसी पक्षाघात शून्य Non-Paralytic Major रूप मे होकर भी ठीक हो जाता है। पर कभी-कभी (१ से १% रोगियो मे) इसके बाद इसका पक्षाघात का रूप भी आरम्भ होता है जिसे सुषुम्ना सबन्धी पक्षाघात या Spinal Paralytic Polco कहते है जो रोग के आरम्भ होने के दूसरे, तीसरे, चौथे या पाचवे दिन होता है १, १½ दिन वृद्धि करता है, फिर एक सप्ताह तक उसी अवस्था मे रहता है और उसके बाद कुछ सप्ताहो तक पक्षाघात का लक्षण शान्त होता-होता बहुत कुछ ठीक हो जाता है। अर्थात् प्रारम्भ मे जितना पक्षाघात होता है अन्त में उसका एक अशमात्र ही रह जाता है, शेष ठीक हो जाता है जिसका अभिप्राय यह है कि जो सेल अशमात्र में इस Virus के द्वारा प्रभावित होते है उनसे सम्बन्धित मासपेशियाँ क्रमश बहुत कुछ ठीक होती जाती है। जो सुषुम्ना काण्ड के सेल प्रभावित होने से बच गये है उनसे सम्बन्धित मासपेशिया पूर्णतया ठीक हो जाती है। केवल जो सेल पूर्णतया मृत हो गये है उनमे सम्बन्धित मासपेशिया ही ठीक नही हो पाती। तीन सप्ताह बाद भी जिन मासपेशियो पर Faradic बिजली का प्रभाव होता दीखता है वे ठीक हो जायेगी ऐसा समझना चाहिए। जिन मासपेशियो को ठीक होना होता है वे प्राय तीसरे महीने के अन्त तक ठीक हो जाती है। जिन मासपेशियो को ठीक नही होना होता वे प्रारम्भ से ही शिथिल होती, शीघ्र ही आकार मे छोटी हो जाती तथा उनके कारण अग मे सकुचन (Contracture) का लक्षण हो जाता है। अधिकत मासपेशियो मे पहले से ही घात शुरु होता है। कई बार घात से पहले मासपेशियो मे स्तम्भ या Cramp या Spasm होकर उनमे दर्द या दुखन होने का लक्षण होता है।

पक्षाघात प्राय किन्ही मासपेशियो मे होता है सारे अग मे नही होता। तथापि इस रोग के कारण एकाग घात, या दोनो जघाओ मे घात, या चारो शाखाओ मे घात हो सकता है तो भी दोनो टागो मे से किसी एक टाग की कुछ एक पेशियो मे यह रोग विशेष होता है अर्थात् सुषुम्ना काण्ड के Lumber प्रदेश मे यह रोग विशेष होता है जिससे गिट्टे पर पैर को सिकोडने वाली (Dorsiflexor) मासपेशियो (Peroneus Tertius, Tibialis Anterior) मे तथा जानु और वक्षण सधि पर टाग को फैलाने वाली मासपेशियो (Quadriceps) मे पक्षाघात विशेष होता है (Extensors मे रोग विशेषत होता है)। बाहु मे Deltoid नामक कन्धे की मासपेशी मे पक्षाघात विशेष होता है। यह पक्षाघात शिथिलतायुक्त (Flaccid) तथा वेदना और स्पर्शाक्षमता के लक्षण से युक्त होता है। इसमे Deep तथा Superficial सर्व प्रतिक्षेप (Reflexes) न्यूनाधिक लुप्त होते है। जिस अग की मासपेशियो मे यह रोग होता है रोग के अच्छा हो जाने पर भी उसकी वृद्धि यथावत् नही होती अर्थात् एक टाग या बाहु छोटी रह जाती है।

बाहुओ की मासपेशियो मे पक्षाघात हो अर्थात् सुषुम्ना काण्ड के ऊपरले उभार (Cervical Enlargement) मे रोग का दुष्प्रभाव हो तो बाहु की पेशियो के साथ २ पसलियो की पेशियो या Intercostals मे भी पक्षाघात हो सकता तथा Diaphragm मासपेशी मे भी उसका प्रभाव हो सकता है। इन अवस्थाओ मे श्वासकर्म फेल होने लगता है, अर्थात् श्वास तथा प्रश्वास उथला हो जाता है, रोगी गहरा श्वास नही ले सकता, थोडी देर के लिए भी वह श्वास को रोक नही सकता, एक तरफ की Intercostals के निर्बल होने से दोनो तरफ छाती की चेष्टा एक-सी नही होती, अन्त:-श्वास के समय उदर की नीचे की पसलिया तथा पसलियो के बीच के प्रदेश अन्दर को धसते हुए दीखते है।

मस्तिष्क सम्बन्धी पक्षाघात (१) Bulbar Poliomyelitis

इस रोग के सूक्ष्म विष वा Virus के नीचे से ऊपर की ओर प्रसरण कर जाने से या Tonsillectomy के शल्यकर्म के बाद गले मे इस विष के शरीर मे सक्रमण करने से Medulla Oblongata के १०वी मस्तिष्क नाडी के Nucleus Ambiguus पर इसका दुष्प्रभाव हो जाय तो तालु, गले और कण्ठ के एक ओर या दोनो ओर पक्षाघात हो जाता है। परिणामत तालु पीछे गले की ओर शिथिल होकर गिर जाता है, निगलना कठिन हो जाता है (Dysphagia)। गले के प्रदेश मे मुख का स्राव अधिक मात्रा मे जमा हो जाता है। भोजन के कुछ अश के श्वास मार्ग

मे चले जाने और वहा जीवाणु सक्रमण हो जाने का भय भी रहता है। एक या दोनो स्वरतन्त्रियो (Vocal Cords) मे पक्षाघात होने से भाषण अस्पष्ट हो जाता है। तालु के निर्बल हो जाने से मुख मे डाला द्रव नाक से बाहर वापस आ जाता है। Medulla मे विद्यमान Glossopharyngeal या ९वी मस्तिष्क नाडी के Nucleus मे रोग हो जाय तो गले के एक ओर की मासपेशियो मे पक्षाघात हो जाता है। वही पर १२वी नाडी (Hypoglossal Nerve) के केन्द्रीय सेलो पर भी इस विष का दुष्प्रभाव हो जाय तो जिह्वा मे भी पक्षाघात हो जाता है जिससे निगलने व बोलने मे कठिनता होती है। वही पर ११वी मस्तिष्क नाडी (Spinal Accessory) का भी Nucleus है जहा से गले व कण्ठ को चेष्टावाही सूत्र आते है। उसके ग्रस्त होने से भी इन अगो मे निर्बलता हो जाती है। सातवी मस्तिष्क नाडी का Nucleus, Pons के निचले भाग मे है उसके ग्रस्त होने से एक ओर या दोनो ओर चेहरे की मासपेशियो मे पक्षाघात हो जाता है। Medulla तथा Pons मे विद्यमान श्वास केन्द्र तथा रक्त-सचार केन्द्र ग्रस्त हो जाए तो श्वास उथला हो जाता, विषम हो जाता, बीच-बीच मे कुछ देर रुक जाता और अन्त मे बन्द हो जाता है। रक्तसचार केन्द्र के ग्रस्त होने से चेहरा लाल हो जाता, हृदय गति तीव्र हो जाती और नाडी गति विषम हो जाती है।

रोग के आरम्भ मे यदि मनोविभ्रम तथा तन्द्रालुता के लक्षण हो, श्वास प्रश्वास मे विषमता हो, त्वचा व आखो मे लाली हो, नाडी मे विषमता हो तो Medulla के ग्रस्त होने का अनुमान कर लेना चाहिए। इस रूप में यह रोग भयकर होता है।

Brain Stem किस्म के पक्षाघात मे नेत्र सम्बन्धी छठी, चौथी या तीसरी मस्तिष्क नाडियो मे से कोई नाडी इस रोग मे ग्रस्त हो सकती है जिससे किसी नेत्र सम्बन्धी मासपेशी मे पक्षाघात हो जाता है। यदि Cerebellum ग्रस्त हो जाय, तो सिर मे तीव्र शूल, शिरोभ्रम, सिर को हिलाने पर वमन, अव्यक्त भाषण के लक्षण होते है। ऊर्ध्व मस्तिष्क (Cerebrum) के ग्रस्त होने से आक्षेप, पक्षाघात, ऊरुस्तम्भ आदि लक्षण जिनमे Plantar Reflex ऊपर की ओर होता है, हो जाते है। किसी रीढ की हड्डी से सम्बन्धित किसी मासपेशी (Spinal Muscles) मे यह रोग हो तो पृष्ठ वश में आगे-पीछे की दिशा मे या एक बाजू की ओर वक्रता उत्पन्न हो जाती है जिसे कुब्जता (Scoliosis, Kyphosis) कहते है।

रोग विनिश्चय

प्रारम्भिक अवस्था में इस रोग का भ्रम Influenza, Tonsillitis, प्रतिश्याय आदि मे हो सकता है पर ये रोग ग्रीष्म ऋतु में नही होते। यदि ज्वर के साथ तीव्र शिर-शूल तथा बालक की ग्रीवा, पीठ व ऊर्ध्व जघा की Hamstring मासपेशियो में स्तब्धता या खिचाव का लक्षण मिले तो इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिए। उपर्युक्त मासपेशियो के स्तम्भ के कारण उसकी टाग को फैला नही सकते। रक्त की परीक्षा से Polymorph वाला Leucocytosis होता है।

मस्तिष्क द्रव (Cerebrospinal द्रव) की परीक्षा करने से श्वेत कण (अधिकत Lymphocytes) प्रति क्यूबिक मिलिमीटर मे ८ से अधिक हो (५०-१०० हो) और प्रोटीन १०० सी० सी० में ३५ मिलिग्राम से अधिक हो तो इस रोग का सन्देह करना चाहिए। रक्त परीक्षा करने पर श्वेताणु वृद्धि का लक्षण भी पाया जाता है। Cerebrospinal या कण्टकुब्ज ज्वर से इसका सन्देह न होना चाहिए। उसमे पक्षाघात का लक्षण नही होता, उसमे ग्रीवा स्तम्भ भी प्रबल होता है।

साध्यासाध्य तथा उपद्रव

साधारणत यह रोग घातक नही होता। तीव्र रोग में किसी प्रकार के पाद वैषम्य Deformity का उपद्रव हो जाता है।

रोग के आरम्भ मे यदि बालक में व्याकुलता अथवा भयातुरता के लक्षण हो तो ये अशुभ सूचक होते है। चारो शाखाओ मे पक्षाघात हो गया हो तो वह भी असाध्य होता है। श्वास मासपेशियो मे पक्षाघात भी रोग की भयकरता का सूचक लक्षण है। ६ से १२ मास तक बीत जाने पर भी जितना पक्षाघात रह जाता है वह फिर ठीक नही होता। बहुधा मासपेशिया मृत होकर तुरन्त ठीक भी हो जाती है पर जो मासपेशी मृत होकर ठीक नही होती उसमे लघुता एव सकुचन के हो जाने से नाना प्रकार के पाद वैषम्य (Talipes) के उपद्रव हो जाते है। Peroneal मासपेशियो में पक्षाघात होने से एडी ऊपर उठ जाती, रोगी पैर के बाहर के अगले किनारे पर चलता है (Talipes Equino varus) Tibia की मासपेशियो मे पक्षाघात होने से रोगी अगूठे से लेकर एडी तक के पाव के अन्दरले किनारे के भार चलता है। (Talipes Valgus) उस ओर जानु की प्रसारक मासपेशियो मे इस रोग का दुष्प्रभाव होने से इनमे

न्यूनाधिक सकोच रह सकता है। इसी प्रकार कटि की मासपेशियो मे न्यूनाधिक पक्षाघात हो जाने से रीढ की हड्डी एक तरफ मुड जाती है (Scoliosis)।

चिकित्सा

प्रतिरोधक (Preventive) चिकित्सा Salk s Killed या Formalin-inactivated Virus Vaccine—१९४९ मे जब बन्दर के गुर्दे सम्बन्धी सेलो के Tissue Culture मे इस रोग के Virus की खेती करके इसे बडी मात्रा मे प्राप्त किया जा सका तब पिट्स-बर्ग विश्वविद्यालय के डाक्टर Jonas Salk ने इस Virus की तीनो किस्मो की खेती करके उसे Formaldehyde से मृत या निष्क्रिय करके एक Vaccine तैयार किया जिसे Salk का Killed या Inactivated Virus Vaccine कहते है। इसके तैयार करने मे ध्यान रखा गया कि (१) इसमे Virus का कुछ अश जीवित न रहे। (२) उसमे और किसी जीवाणु का मिश्रण न होने पाये। (३) उसमे बन्दर के गुर्दे का कोई Antigen भी न आने पाये पर उसमे केवल Poliomyelitis Virus का Antigen पूर्ण रूप से रहे। इसकी एक सी० सी० की दूसरी मात्रा त्वचा या मास द्वारा १½ मास बाद ८-९ मास के छोटे बालक को दे दी जाती है। ८ मास बाद फिर तीसरी मात्रा दी जाती है। इससे पर्याप्त काल के लिये (लगभग ४ वर्ष के लिये) बालक मे इसके Virus के प्रति प्रतिरोधक शक्ति (Immunity) उत्पन्न हो जाती है। Tonsillectomy के शल्य कर्म से पहले उस वेक्सीन का देना उचित समझा जाता है। इस वेक्सीन की स्थानिक या व्यापक कोई प्रतिक्रिया नही होती। तथापि देखा गया कि यह Virus कही बाहर से आकर फिर भी उस व्यक्ति की आत मे वृद्धि कर सकता है। यद्यपि वह फिर उसमें रोग का कारण तो नही बनता क्योकि उसके रक्त मे Antibodies होते है। परन्तु उसमे से दूसरे बालको मे जिनमें प्रतिरोधक शक्ति नही है पहुँच कर यह रोगोत्पादक बन सकता है।

सेबिन का मुख से दिये जाने वाला निर्बलीकृत वाइरस वेक्सीन, Oral Attenuated Poliovirus Vaccine या Live-Virus Vaccine of Sabin

डाक्टर सेबिन Cox और Koprowski का जिन्होने यह वेक्सीन १९५६-१९५७ मे निकाला है कथन है कि इस जीवित परन्तु निर्बलीकृत वेक्सीन के देने से न केवल शरीर मे प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न होती है जिससे फिर यह रोग नही होता पर साथ ही उसकी आत मे भी ऐसी प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि उसमे कही बाहर से पहुचकर यह Virus फिर वृद्धि नही कर सकता। इस मृदु जीवित वेक्सीन के पेट मे जाने पर हलका-सा रोग उत्पन्न होता है और उसके बाद शरीर मे और आत मे दोनो मे वह प्रतिरोधक शक्ति हो जाती है कि फिर बाहर से आया यह सूक्ष्म विष उसकी आत मे नही रह सकता और वह रोग का वाहक (Carrier) भी नही बन सकता जैसे कि वह Salk के वेक्सीन के लेने के बाद भी रहता था। इस वेक्सीन की जो तीनो किस्मो के Virus से तैयार की जाती है जिसे Trivalent Vaccine कहते हैं तथा जिसे शीतल प्रदेश मे रखा जाता है १½ मास के अन्तर से इसकी ३-३ बूद की दो मात्राओ को खाण्ड मे मिला करके मुख द्वारा खाली पेट पानी के साथ या दूध मे दे देने से फिर इस रोग के होने या इस Virus के आत मे रह जाने दोनो बातो की आशका नही रहती। इसकी तीसरी मात्रा १ वर्ष बाद देनी चाहिए। अब सभी देशो ने इस वेक्सीन की उपयोगिता को स्वीकार कर लिया है। इसके द्वारा उत्पन्न प्रतिरोधक शक्ति या Immunity कम से कम ८ वर्ष तो रहती है तथा रक्त मे antibody की पर्याप्त मात्रा रहती है। इसके प्रयोग से सम्भव है इस रोग को निर्मूल किया जा सके। बाजार के दूध, भोजन व लोगो के पीने के पानी को मक्खियो से बचाना चाहिए क्योकि मक्खियो के द्वारा पुरीष मे से इस रोग के Virus का प्रवेश भोजन पदार्थों मे हो सकता है। रोग के हो जाने पर उसके सम्पर्क मे आये बालको व नवयुवको को Gammaglobulin injection दे देना चाहिए ताकि उन्हे इससे बचाया जा सके।

प्रतिवेधक चिकित्सा

मृदु रूप में रोग हो तो रोगी को ३ सप्ताह और तीव्र रूप मे या पक्षाघात युक्त रोग हो तो रोगी को ६ सप्ताह के लिये दूसरो से पृथक् करके कुछ समय बिस्तरे मे ही रखना चाहिए। रोगी के सम्पर्क में आये व्यक्तियो से बच्चो को ३ सप्ताह तक बचा कर रखना चाहिए। सम्पर्क मे आये बालको को Gammaglobulin ५०० मिलि० (शिशु के लिये) १५०० मिलि० (बालको के लिये) मात्रा मे दे देना चाहिए। रोगी के साथ रहने वाले व्यक्तियो को चाहिये कि वे मल त्याग के बाद हाथो को भली प्रकार और विशेष रूप से साफ करें। थूक को भी Sterilize करे। उन्हे दूसरो को भोजन देने का काम सर्वथा नही करना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में जब यह रोग

आसपास किसी को हो तो जल व दूध उबाल कर लेना चाहिए। फल भली प्रकार स्वच्छ करके लेना चाहिए। बालको को बिना पकाया जल, दूध व भोजन सर्वथा नही देना चाहिए। उन दिनो Tonsillectomy का शल्यकर्म नही करना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु मे छोटे बालक को ज्वर के साथ यदि तन्द्रालुता, चिडचिडापन, ग्रीवा मे स्तब्धता के लक्षण भी हो और इस रोग का स्वल्प सा सन्देह हो तो बालक को ज्वर काल मे तथा २ सप्ताह के लिये बाद मे भी पूर्ण विश्राम के साथ लिटाये रखना चाहिए और उसे सर्वथा चलने फिरने देना नही चाहिए। पडे-पडे ही मल-मूत्र त्याग करना चाहिए। विश्राम से पक्षाघात के लक्षण के होने की आशका कुछ कम हो जाती है। बाद में भी १५ दिन थोडा ही चलना चाहिए। विटामिन बी$_{12}$ के बडी मात्रा मे अर्थात् प्रथम सप्ताह मे प्रतिदिन १,००० माइक्रोग्राम, दूसरे सप्ताह में ५०० मा० ग्रा० प्रतिदिन देने से भी तथा बाद मे भी १-२ सप्ताह थोडी मात्रा मे इसके देने से रोग का वेग मन्द हो जाता है (W-Daur)।

जब यह रोग भयकर रूप मे होता है तब कटि तथा ग्रीवा मे स्तब्धता का लक्षण अधिक स्पष्ट होता है, जिससे उठकर बैठ जाने व अपने गोडो को मस्तक लगा सकने मे रोगी को कठिनता होती है। इस अवस्था मे उत्पन्न हुए पक्षाघात से युक्त टाग तथा पैर के ज्वरकाल मे तथा बाद मे भी १-१½ मास के लिये पूर्ण विश्राम में रखना चाहिये। मृत अग पर किसी प्रकार की खीच न पडे, उसमें विषमता न आ जाय इसके लिये पाव के तलुए पर फट्टे आदि का सहारा रखना चाहिये तथा दोनो ओर तकिये या रेत की थैलिया रखी रहनी चाहिये या फट्टियाँ (Splints) के द्वारा अग को अपनी प्राकृतिक स्थिति मे रखना चाहिए। अग मे तीव्र वेदना या स्तम्भ का लक्षण जब तक हो तब तक उबलते पानी मे से निकाले कपडे को निचोडकर इसके द्वारा ३-३ घन्टे के अन्तर से ½, ½ घन्टे के लिये या Short wave Diathermy के द्वारा उस अग की सिकाई करनी चाहिये। छोटा बच्चा हो तो उसे टब मे नहला देना चाहिए। ग्रस्त अग को गर्म रुई में लपेट कर रखना चाहिये। उसमें रक्त की आमद को बढाने के लिये Priscol का युवको मे २५ मिलि० मात्रा मे दिन में ३ बार प्रयोग भी करना चाहिये। वेदना शामक औषधियो (Aspirin ५-१० ग्रेन ३ बार या Codeine का या Codis) का भी प्रयोग करना चाहिये। श्वास-पेशियो के निर्बल होने की आशका मे निद्रा के लिये Barbitones का प्रयोग नही करना चाहिये। किसी Non-depressing Sedative जैसे Ethchlorvynol (Placidyl) का प्रयोग किया जा सकता है। रोगी को जल पर्याप्त मात्रा मे देना चाहिये ताकि मल-मूत्र खुलकर आते रहे। मलरोध हो तो वस्ति द्वारा या Neo-stigmine (Prostigmin) ½ मिलि० का सूचीवेध द्वारा प्रयोग करना चाहिये। रोगी बेचैन हो तो Oxygen की कमी का सन्देह करना चाहिये तथा उसका प्रयोग करना चाहिये।

कन्धे की मासपेशियो मे पक्षाघात हो तो श्वासपेशियो मे पक्षाघात के होने की आशका कर लेनी चाहिये। यदि बोलने से या एक दो तीन गिनने से उसे सास चढ जाता हो या एक गहरा सास लेकर वह २० तक न गिन सकता हो, यदि श्वास उथला हो, या यदि वह श्वास लेकर पेट को न फुला सकता हो तो श्वासपेशियो की निर्बलता की आशका कर लेनी चाहिये। तब Artificial Respiration का प्रयोग करना चाहिये। Medulla रोग ग्रस्त हो अर्थात् गले मे पक्षाघात होने से गले में श्लेष्म स्राव सचित होने लगा हो, जल देने पर श्वास घुट जाता हो तो रोगी का मुह कुछ नीचे की ओर करके उसकी चारपाई के पायते को १८ इन्च ऊँचा कर देना चाहिये ताकि मुह का कोई द्रव श्वास मार्ग मे न जा सके, वमन हो तो भी उसे लिटाये रखें, बिठाये नही। यदि Medulla के अन्दर रोग होने के साथ-साथ श्वासपेशियो मे भी निर्बलता या पक्षाघात हो तो Tracheotomy का शल्यकर्म आवश्यक हो जाता है जिसमें ग्रीवा को पीछे की ओर फैला (Extend) करके Cricoid के लेवेल पर चीरा देकर उसे क्षत न करते हुऐ Cricoid के नीचे प्रथम Tracheal Ring मे से ट्यूब गले मे गुजारी जाती है। इस ट्यूब पर Rubber Cuff लगा कर Pressure Respirators या Radcliffe Respiration Pump के द्वारा Artificial Respiration दिया जाता है। यह चिकित्सा हस्पताल मे विशेषज्ञो के द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है। जलपान तथा भोजन Nasal Tube के द्वारा दिया जाता है। मूत्राघात के लिये Catheter का प्रयोग या Carbachol (Doryl) का २ मिलि० मात्रा मे मुख द्वारा या ¼, ½ मिलि० मात्रा मे त्वचा द्वारा प्रयोग करना चाहिये। पुफुस को सक्रमण से बचाने के लिये Penicillin का इन्जेक्शन देना चाहिये।

रोग शान्त हो जाने पर अर्थात् रोग के प्रारम्भ होने के १ मास बाद ६ मास के समय के व्यतीत होने से पहले मृत मासपेशियो मे रक्तसचार को बढाने के लिये Radiant Heat तथा मालिश के प्रयोग से लाभ होता है। पर प्रबल रोग की अवस्था मे मालिश का प्रयोग नही

करना चाहिए। मृत अग की मासपेशियो की शक्ति वृद्धि के लिए पहले Passive और फिर Active व्यायाम करने चाहिये। अर्थात् पहले चिकित्सक अपने वल से और फिर रोगी अपने वल से व्यायाम करे। मृत मासपेशियो की शक्ति वृद्धि के लिए Glutamic Acid (प्रति किलो भार के पीछे .१-२ ग्राम मात्रा) को ३-४ सप्ताह देना चाहिए।

स्तम्भयुक्त पक्षाघात, कम्पयुक्त पक्षाघात (Paralysis Agitans, Parkinson's Disease)

उस रोग को जिसमे स्तव्धतायुक्त निर्वलता का प्रधान लक्षण होता है और कभी २ कम्प का लक्षण भी होता है स्तम्भयुक्त पक्षाघात कहते है। इसमें पक्षाघात नही पर ऐच्छिक चेष्टाओ मे कुछ असमर्थता का लक्षण होता है।

पहले-पहल १८१७ मे Shoreditch के एक अग्रेज चिकित्सक James Parkinson (१७५५-१८२४) ने इस रोग की ओर हमारा ध्यान खीचा था।

५०-६० वर्ष की ढलती आयु मे विशेषत पुरुषो में वहुत धीरे-धीरे होने वाला यह एक रोग है जिसमे अगो की सामान्य मृदुता एव लचक क्रमश कम होती जाती हे और उसके स्थान पर उनमे स्तव्धता (Muscular Rigidity) आने लगती है। पहले यह लक्षण चेहरे, ग्रीवा, और धड़ मे अधिक स्पष्ट होता है। चेहरे की मासपेशियो मे स्तव्धता के होने के कारण आँख की पलको और चेहरे पर भावो का आविर्भाव लुप्त हो जाता हे। आवाज मे उतराव चढाव कम हो जाता हे। चेहरे और ग्रीवा के वाद यह स्तव्धता शाखाओं मे आती है और उनमे भी उनके ऊर्ध्व भाग मे पहले आती हे। पहले यह स्तव्धता एक ओर की वाहु मे प्रतीत होती है फिर क्रमश उस ओर की ही टाग मे यह प्रकट होने लगती है। इस प्रकार हो सकता है कि यह स्तव्धता का और उसके कारण उत्पन्न होने वाली निर्वलता का लक्षण वर्षो तक आधे अग मे ही सीमित रहे। पर कुछ काल वाद यह दूसरी ओर की वाहु मे और टाग मे भी आरम्भ हो जाता है। आरम्भ होने से २-३ वर्ष तक धड, ग्रीवा, चेहरे आदि शरीर की सभी मासपेशियो मे न्यूनाधिक स्तव्धता का लक्षण व्याप्त हो जाता है। साधारणत चलते समय जैसे दोनो वाहुएँ झूलती है, रोगी मे स्तव्धता के कारण उनका यह झूलना वन्द हो जाता है। चेहरे पर हर्ष, शोक आदि भावो की सूचक चेष्टाओ के लुप्त हो जाने मे वह भी शून्य-सा दीखने लगता है (Lack of Facial expression)। पलको मे झपकने की चेष्टा कम हो जाती या लुप्त हो जाती है, आखे नार्मल से अधिक खुली रहती हैं जिससे रोगी घूरता हुआ दीखता हे। जीभ, होठो और कण्ठ की मासपेशियो की स्तव्धता से रोगी की आवाज एक-सी चलती है। वह मन्द और अस्पष्ट भी हो जाती है। उसमे पाये जाने वाला उतराव-चढाव लुप्त हो जाता है। ग्रीवा की मासपेशियो की स्तव्धता के कारण रोगी को एक तरफ को मुख मोडना हो तो सारा धड मोडना पडता है। टागो की स्तव्धता के कारण उसकी गति मन्द हो जाती, कदम छोटे-छोटे हो जाते, टागो को पृथ्वी से ऊपर उठाने मे वल लगाना पडता हे तथा उनमे पाये जाने वाली स्वाभाविक स्फूर्ति और लचक जाती रहती है। एक हाथ या दोनो हाथो की अगुलियो के वीच की Interossei मासपेशियो के जो अगुलियो को परस्पर पास लाने तथा दूर हटाने का काम करती है कठोर हो जाने से अगुलिया परस्पर जुडी रहती है। अगूठा भी प्रथम अगुलि के आगे अगुलियो के साथ जुडा रहता है। अगुलिया निचले जोड अर्थात् Metacarpophalangeal जोडो पर सकुचित तथा अपने वीच के Inter Phalangeal सधियो पर फैली हुई रहती है। हाथ के इस तरह कठोर हो जाने के कारण रोगी का अपने वटन लगा सकना या लिख सकना कुछ कठिन हो जाता है। उसके अक्षर छोटे-छोटे होते (Micrographia) तथा अक्षरो की रेखाए कॉपती हुई (Zigzag) होती हे। स्तव्धता के कारण अगो मे चेष्टा कम दीखती है (Akinesia)। देखने मे रोगी का सिर कुछ झुका हुआ, धड आगे की ओर मुडा हुआ, वाहुए सकुचित, घुटने भी कुछ सकुचित हुए-हुए दीखते है। स्तव्धता सभी मासपेशियो मे होती है पर Flexors मे Extensors की अपेक्षा अधिक होती हे। इसीलिये धड आगे की ओर मुडा रहता है, कधे Adduction की स्थिति मे रहते, कोहणियाँ, कलाई, अगुलियाँ Flexed तथा Adducted रहती है। जानु और जघन सधियाँ Flexed या मुडी हुई रहती है। चलते समय अग Flexion मे रहते है (Postural Abnormality)।

स्तव्धता तथा निर्वलता इन दो प्रधान लक्षणो के अतिरिक्त रोगी की मासपेशियो मे कम्प या वेपथु (Tremor) का लक्षण भी होता है। यदि स्तव्धता का लक्षण स्पष्ट हो तो वेपथु का लक्षण कुछ अस्पष्ट-सा रहता है। यदि वेपथु का लक्षण स्पष्ट हो Paralysis agitans हो तो स्तव्धता का लक्षण कुछ अस्पष्ट-सा होता है। अर्थात् कुछ एक मे एक, और कुछ एक में दूसरा लक्षण अधिक स्पष्ट रूप मे रहता है तथा एक दूसरे से कई मास पूर्व प्रकट होता है। इसलिए यहा इस रोग को कम्पयुक्त पक्षाघात या स्तम्भयुक्त पक्षाघात कहा है। यह कम्प का लक्षण एक ओर हाथ

मे या अग्रबाहु मे आरम्भ होता है। अगुलियो के Metacarpophalangeal सधियो में Flexion और Extension की चेष्टा नियमित रूप से होती है। कुछ काल बाद अर्थात् महीनो या वर्षो बाद दूसरी ओर हो जाता है और इन्ही मे अधिक स्पष्ट दिखाई पडता है। पर यह निम्न हनु, ग्रीवा, चेहरे आदि स्थानो पर भी दिखाई पड सकता है, और कभी-कभी तो सारे अगो मे ही न्यूनाधिक कम्प दिखाई पडता है। पहले यह Paroxysms में अर्थात् कभी-कभी होता है फिर बना ही रहता है। इसके कारण अगुलियो तथा अगूठे मे चेष्टा ऐसी होती रहती है कि जैसे हाथ से गोलिया बनाते समय होती है (१ सेकण्ड मे ३-४ बार) अर्थात् अगूठे की Interphalangeal सधिया Extension की अवस्था मे रहती हैं उसके Metacarpophalangeal सधि पर उसमें Flexion और Extension की चेष्टा नियमित रूप से होती है। साथ ही कलाई पर हाथ के सकुचित और प्रसारित होते रहने (Flexion, Extension) या हाथ के अधोमुख ऊर्ध्वमुख होने (Pronation Supination) या अन्दर बाहर की ओर झुकने (Radio Ulnar Deviation) की चेष्टा होती रहती है या अगूठे में Abduction Adduction की क्रिया होती रहती है। जीभ मे भी यह कम्प बहुधा होता है। विश्राम के समय यह नियमित रूप से होने वाला कम्प अधिक हो जाता है। हाथ से काम करते समय या कम्पयुक्त अग से काम करते समय यह कम्प कम हो जाता है। किसी प्रकार के मनोविक्षोभ के होने पर भी इसकी गति स्पष्ट और तीव्र हो जाती है अर्थात् कम्प बढ जाता है पर निद्रा के समय हाथ आदि मे होने वाले ये कम्प (Rhythmic Tremors) सर्वथा शान्त हो जाते है। इच्छा करने पर भी रोगी इन चेष्टाओ को रोक सकता हे। किसी बारीक काम के करते समय हाथो मे जो कम्प होने लगता है जिसे Intention Tremor कहते हैं वे विश्राम के समय न हो कर किसी बारीक काम के करते समय ही होते है। वे नियमित (Rhythmic) नही होते तथा Cerebellum या सुषुम्ना काण्ड मे जगह-जगह Disseminated Sclerosis के कारण उनके नियन्त्रण की शिथिलता के कारण होते हैं। उस कम्प से इस रोग के कम्प मे बहुत विभिन्नता रहती है। धड की मासपेशियो मे स्तम्भ के रहने के कारण रोगी को बिस्तरे मे पडे हुए करवट बदलते समय विशेष कठिनता प्रतीत होती है। कुर्सी मे बैठने के बाद उठने मे भी उसे दिक्कत होती है। कोशिश के बाद ही वह उठ पाता है। मासपेशियो मे हर समय स्तम्भ के रहने से रोगी को शरीर मे हलका-हलका दर्द भी प्रतीत होता है। पाद तल की मासपेशियो मे स्तम्भ के रहने से पादागुलिया कुछ नीचे की तरफ सकुचित रहती है, जिससे चलते समय उनके दब जाने की आशका रहती है। मानसिक दुर्लक्षण इस रोग मे नही होते।

कारण

L-Tyrosine मे Hydroxylase के द्वारा L-Dopa बनता, उससे Decarboxylase के द्वारा Dopamine बनता, उससे Hydroxylase के द्वारा Noradrenaline बनता है। दूसरी ओर Dopamine से Monoamineoxidase के द्वारा Homovanillic acid बनता है। अब Basal Ganglia तथा Substantia Nigra मे Dopamine तथा Homovanillic acid विशेष रहते हैं। Extrapyramidal tract की चेष्टाशीलता इन्ही पर निर्भर है। इस रोग मे परीक्षक लोग बताते है कि Striatum मे इनका सर्वथा अभाव होता है तथा Pallidum और Substantia Nigra मे इनकी बहुत कमी होती है। यह रोग बडी आयु मे होता है परन्तु युवको मे Encephalitis होकर उसके उपद्रव रूप मे भी यह होता है।

यह रोग एक बार प्रारम्भ होकर धीरे-धीरे बढता ही जाता है तथा स्तब्धता का लक्षण क्रमश सभी ऐच्छिक मासपेशियो में उत्पन्न होता जाता है। इसी प्रकार कम्प भी एक अग मे दूसरे अग में प्रसरण करता जाता है। १०-१५ वर्ष तक क्रमश यह रोग उत्तरोत्तर बढता ही जाता है जिससे अन्त में लिखना, बोलना, पढना, कठिन और कठिनतर होता जाता है। परन्तु रोगी में बुद्धि या सज्ञाशीलता अन्त तक पूरी तरह बनी रहती है।

Arteriosclerotic Rigidity या Pyramidal सूत्रो के रोग के कारण स्तब्धता हो तो वह इतनी व्यापक नही होती जितनी Extrapyramidal सूत्रो के रोग मे होती है। वह टागो मे विशेष होती है। उससे स्तब्ध हुए अग को हम हिलाये तो प्रारम्भ मे वह अधिक स्तब्ध लगता फिर क्रमश कुछ मृदु लगने लगता है। इसमे ऐसा नही होता। Senile या वार्धक्यजनित Tremor अगुलियो में (Rhythmic Oscillation) सिर मे व निचले जबडे में होता है उसमे स्तब्धता नही होती। Writer's Cramp रोग मे रोगी साफ-साफ लिख नही सकता, उसका लेख सीधा नही रहता, लकीरे ऊची या नीची हो जाती है। यह रोग उन मध्यमायु के व्यक्तियो मे होता है जो कलाई, कोहणी या कन्धे की मासपेशियो से नही पर केवल हाथ

की Intrinsic मासपेशियो पर ही जोर डालकर लिखते है। उनमे इन मासपेशियो मे स्तम्भ या Cramp (Painful Spasm) के उत्पन्न हो जाने से होता है। यह लक्षण Upper Motor Neurone के रोग के कारण होता प्रतीत होता है। यदि रोगी कलाई आदि पर जोर डाल करके लिखे मालिश करे या ६ मास लिखना वन्द करदे तो ठीक हो सकता है।

चिकित्सा

इस रोग की कोई सन्तोषजनक चिकित्सा नही, गर्मी मे या मालिश के प्रयोग से रोगी ठीक रहता हे। जिन उपायो से नाडी मण्डल का पोषण वढे जैसे पोषक आहार द्रव्यो, विटामिन वी कम्पलेक्स तथा विटामिन वी$_{१२}$ (५००-१००० मा० ग्रा०) के आदि पोषक औषधियो का प्रयोग करना चाहिए। शरीर की मासपेशियो के पोषण को वढाने के लिए नित्य मालिश होनी चाहिए। जितना व्यायाम सहन हो सके उतना नित्य करना चाहिए। यथाशक्ति भ्रमण करना चाहिए। हाथ, कलाई, अग्रवाहु, ग्रीवा, अगुलियो तथा इनकी मासपेशियो का व्यायाम प्रतिदिन होता रहे तो रोग के वेग को रोका जा सकता है। शेष इसकी चिकित्सा केवल लाक्षणिक है। प्रारम्भ मे Amphetamine तथा Amilobarbitone की गोलिया जैसे Drinamyl को दिन मे २-३ वार दे सकते है। शरीर की मासपेशियो मे वढे हुए स्तम्भ को शान्त रखने के लिए कुछ एक औषधियो का प्रयोग हमेशा के लिए जारी रखना पडता है। उदाहरणत Belladonna और उसका Alkaloid Atropine जो स्तम्भशामक (Parasympatholytic, Anticholinergic, Antispasmodic) है अव तक इस रोग मे दिया जाता रहा है। स्तम्भ का लक्षण Antispasmodic औषधि से तथा Tremor का लक्षण Sedative औषधि से नष्ट हो सकता है।

(१) Tr Belladonna १५ वूद दिन मे ३ वार आरम्भ करके क्रमश वढाते हुए इसे ३० वूद मात्रा मे दिन मे तीन वार तक दिया जाता रहा है। परन्तु वडी आयु मे Glaucoma हो तो इसे नही दिया जा सकता। इसके तथा निम्न औषधियो के अति प्रयोग से (Parasympatholytic होने से) दृष्टि मे कुछ धुन्धलेपन, मुख शोष, शिरोभ्रम, अरुचि, मलवन्ध, हृत्कम्प, स्मृतिमन्दता के उपद्रव हो सकते है। Tincture Stramonium को भी पहले १५ तथा अन्त मे ६० वूद तक की मात्रा मे दिन मे तीन वार दिया जाता रहा हे। अव इनका प्रयोग नही होता।

(२) Atropine Solution $\frac{१}{२}$ प्रतिशत, ३ वूद की मात्रा मे दिन मे ३-४ वार प्रारम्भ करके ३-३ दिन वाद १-१ वूद वढा करके इसे १० वूद मात्रा मे दिन मे तीन वार दिया जाता है। इसके अधिक मात्रा मे लेने से भी उपर्युक्त उपद्रव हो सकते हैं। अव Atropine सदृश प्रभाव की जिन कृत्रिम औषधियो का प्रयोग किया जाने लगा है उनमे से कुछ एक निम्नलिखित हे—

(१) Trihexyphenidyl या Benzhexol Hydrochloride (Artane, Lederly Pipanol) जो स्तम्भ शामक, कम्प शामक और निर्वलताहर है पहले २ मिलि० १ वार प्रात दे दी जाती है। एक सप्ताह वाद फिर क्रमश इसे दिन मे तीन वार तक दे सकते है। इस मात्रा को चिरकाल तक जारी रखा जाता है। इसकी २ तथा ५ मिलि० की गोलिया वाजार से मिलती है, परम दैनिक मात्रा २० मिलि० हे। इसे इस रोग की उपयुक्ततम औषधि समझा जाता है। औषधि का प्रयोग दिन मे करना चाहिए। साय या रात को इसके प्रयोग करने से कोई लाभ नही, इस औषधि का एकदम वन्द करना ठीक नही। इसके साथ रात को ५०-१०० मिलि० की एक मात्रा Diphenhydramine (Benadryl) एक Antihistamine औषधि की दे देनी चाहिए। दिन मे इसके साथ ८ वजे Antihistaminic Phenindamine Tartrate (Thephorin) २५ मिलि० दे देनी चाहिए। इस औषधि का प्रभाव Atropine के समान भी है, साथ ही शामक (Sedative) तथा कम्पहर भी है। अन्य औषधियो से यह कम विषैली तथा उनसे सस्ती होने से यह सर्वोत्तम औषधि इस रोग की है। दृष्टि मे धुधलापन या अरुचि के लक्षण हो तो कुछ दिन वन्द करके मात्रा घटायें।

(२) Procyclidine Hydrochloride (Kemadrin B W) यह एक स्तम्भ शामक औषधि है जिससे Atropine से होने वाले उपद्रव भी विशेष नही होते। इसकी २ ५ मिलि० तथा ५ मिलि० गोलिया मिलती है। इसकी ५ से २० मिलि० दैनिक मात्रा हे। ५ मिलि० दैनिक (२ वार करके) से प्रारम्भ करके २ ५ मिलि० मात्रा प्रति दिन वढाई जाती हे, अन्तिम दैनिक मात्रा २० मिलि० है।

(३) Ethopropazine Hydrochloride (Parsidol तथा Lysivane May & Baker) के ५० मिलि०

मात्रा (१ गोली) को दिन मे ३ वार विभक्त करके देने से स्तम्भ मे शान्ति मिलती है। कम्प और अशक्ति को दूर करने के लिए भी यह औषधि लाभदायक है। ३ दिन वाद दैनिक मात्रा मे ५० मिलि० की वृद्धि की जाती है। परम मात्रा ५ ग्राम दैनिक है। इसे क्रमश वढाया या घटाया जाता है।

(४) Trihexyphenidyl Hydrochloride (Pacitane Lederle) के २ मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन वार देने से तथा ३ दिन वाद ५ मिलि० दैनिक मात्रा वढाते रहने से जव तक वह दैनिक २० मिलि० हो जाय Artane के समान ही लाभ होता है। इसके अधिक प्रयोग हो जाने मे भी मुख शोष का उपद्रव नही होता। इसकी २ मिलि० गोलिया मिलती है। इसके साथ भी Benadryl १-२ कैप दैनिक दिये जाते है।

(५) Orphenadrine Hydrochloride (Disipal Antihistamine) ५० मिलि० की गोली दिन मे ३ वार देने से स्तम्भ शामक है। क्रमश इसे ३०० मिलि० दैनिक तक दे सकते हैं।

(६) Caramiphen Hydrochloride (Parpanit Geigy) भी स्तम्भ शामक औषधि है। इसकी ६ २५ मिलि० की गोली मिलती है। दिन मे ६ गोली तक परम मात्रा है।

(७) Diphenhydramine Hydrochloride (Benadryl Antihistamine) के २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन-चार वार देने से कम्प के शान्त होने मे भी सहायता मिलती है। यह कुछ निद्राजनक होती है। अत साय या रात को इसका देना अधिक उपयुक्त है। वाद मे इसे ५० मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार भी दे सकते है। Artane के साथ इसे दे सकते हैं।

(८) Benztropine Methane Sulphonate (Cogentin) की २ मिलि० की गोलिया भी स्तम्भ तथा कम्प शामक मिलती हैं। पहले प्रात एक गोली दिन मे १ वार देनी चाहिए। इसे १-२ मिलि० मात्रा मे Artane से मिलाकर भी देते हैं। इसकी २-६ मिलि० परम दैनिक मात्रा है।

इतनी अधिक औषधियो का होना इस वात का सवूत है कि ये इस रोग की कार्मुक औषधिया नही है। अव तो Stereotoxic Surgery के द्वारा L-dopa नामक औषधि को Basal ganglia मे डाल दिया जाता है जिससे इस रोग मे शीघ्र लाभ हो जाता है। मुख द्वारा L-dopa को ५ ग्राम दैनिक मात्रा मे आरम्भ कर एक-एक सप्ताह वाद ५ ग्राम वढाये। दैनिक मात्रा को ३ वार करके दे। दैनिक मात्रा ३-४ ग्राम तक कर सकते है। औषधि को भोजन के साथ ही खिलाना चाहिए। औषधि को ५ मास तक जारी रख सकते हैं।। अरुचि, वमन, मलवन्ध, निद्रालुता, अथवा कोई मानसिक लक्षण होने लगे या विकृत चेष्टाये Dyskinesia होने लगे तो मात्रा कम कर दे। इस औषधि के साथ Pyridoxine, Phenothiazines, सर्पगधा कभी न दे। यह औषधि Eldopal तथा Larodopa (Roche) ५ ग्राम गोलियो के रूप मे मिलती है पर महगी औषधि है।

शरीर की वेदना की शान्ति के लिए Aspirin १० ग्रेन मात्रा मे दी जा सकती है, इससे निद्रा मे भी सहायता मिलती है, अत रात को इसका या Phenobarbitone के परिवार के अतिरिक्त Meprobamate आदि किसी का प्रयोग किया जा सकता है। Barbiturates का प्रयोग नही करना चाहिए। मानसिक विषाद या अवसाद (Depression) का लक्षण भी हो तो Amphetamines भी दे। मानसिक विक्षोभ का लक्षण हो तो भी शामक Equanil सदृश औषधि दें। कम्प (Tremor) के लिए Largactil २५ मिलि० दिन मे ३ वार या Librium दिन मे २ वार दी जा सकती है। Promazine (Sparine) तथा Tofranil १०-२५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार सहायक औषधियो के रूप मे दिये जा सकते है।

Parkinson's Disease Due to Encephalitis — एक Virus के नासा पश्चिम भाग तथा वहा से Subarachnoid Space तथा वहा से मस्तिष्क मे सक्रमण करने से १५-४० वर्ष की आयु के वीच मे विशेषत शहरियो मे यह रोग होता है। Basal Ganglia तथा Mid Brain के Pia मे विशेषत शोथ होता है उनके सेलो मे क्षीणता भी हो सकती है प्राय यह Sporadic रूप मे होता है। इसके कारण Somnolent सनिद्र, Hyperkinetic (साक्षेप) या Akinetic (चेष्टाहीनता वाला) ज्वर हो जाता है। या Influenza के किस्म का ज्वर होता है। इस रोग मे ४-६ वर्ष वाद लगभग ३०% रोगियो मे Parkinson's Disease के लक्षण हो जाया करते है।

आयुर्वेद मे गात्रकम्प रोग अर्थात् हस्तकम्प शिर कम्प आदि के लिए उपयोगी कुछ प्रयोग निम्नलिखित है —

(१) चतुर्भुजरस (भै.र) रससिन्दूर २, स्वर्ण, मन शिला, हरताल, कस्तूरी १-१ भाग घृतकुमारी रस से मर्दन करके गोले को एरण्ड पत्तो मे लपेट कर अनाज के ढेर मे ३ दिन रखें। निकालकर चूर्ण करें। १-२ रत्ती को मधु और त्रिफला के साथ चटाए।

(२) कम्पवातारि (र.रा सु.) रससिन्दूर, ताम्र भस्म समभाग कटुकी क्वाथ की २१ भावनाए देकर चने बराबर गोलिया बनाएं। त्रिकटु चूर्ण के साथ १ गोली दें।

(३) सर्वांग कम्पारि रस (र.र.) उपर्युक्त प्रकार का ही है। कटुकी के स्थान त्रिकटु क्वाथ की २१ भावनाऐं देनी हैं। चने बराबर गोली।

(४) अर्धांगवातारि (र.र) पारा २५, गधक २५, ताम्र भस्म ५ तोला। पान के स्वरस से, निम्बू के स्वरस से घोटकर एक लघु पुट दें। इसकी २ रत्ती की मात्रा त्रिकटु चूर्ण या कषाय के साथ दें।

(५) पिप्टी रस (र.च) पारा १, गन्धक २, पान के रस मे घोटकर सूक्ष्म ताम्र पत्र पर इसे लेप दें सुखाकर गज पुट दें। २ रत्ती मात्रा त्रिकटु चूर्ण के साथ दें।

(६) वातराक्षस रस (यो.र.) रससिन्दूर, ताम्र, गधक, लोह, अभ्रक, समभाग इन्हे पुनर्नवा, गिलोय, चित्रक तुलसी, त्रिकटु क्वाथ से पृथक्-पृथक् तीन-तीन भावनाए दें। फिर इसे लघुपुट दें। २ रत्ती मात्रा।

(७) विश्वादि गुग्गुलु (वृ.नि र.) त्रिकटु, पिप्पली मूल, विडग, देवदारु, सैन्धव, रास्ना, चित्रक, अजवायन, वचा, हरड समभाग गुग्गुलु सब से दो गुणा। घृत मिलाकर मर्दन करें। ३ माशा मात्रा।

(८) महायोग राज गुग्गुलु का भी इस रोग मे विधान है।

(९) सहचर तैल (ग.नि.) कटसरैया ६। सेर, दशमूल ६। सेर, शतावरी ३। सेर, जल २५६ सेर। पका कर चतुर्थांश शेष। तेल ८, दूध ८ सेर। खस, कुष्ठ, लता, प्रियगु, सुगधवाला, अगर, चन्दन लाल, सौंफ, ५-५ तो.। पका कर तैल साधन करें। इस तेल की मालिश कराएं।

(१०) महामाप तैल (भै र.) उडद का क्वाथ, बला-का क्वाथ, रास्ना क्वाथ, दशमूल क्वाथ, जौ, कोलमज्जा कुलथी मिलित का क्वाथ, बकरे का मास का क्वाथ प्रत्येक १ सेर दूध ४ सेर मिलाकर उसमे रास्ना, कौंचबीज, सैंधव, सोया, एरण्ड, मोथा, जीवनीय औषधिया, बला, त्रिकटु प्रत्येक २½ तोला का कल्क डालकर तैल निर्माण करें। इस तैल का पान करायें, नस्य दें, मालिश करायें।

ऊरुस्तम्भ (Paraplegia)

अभिप्राय

दोनो निम्न शाखाओ मे ही स्तब्धता हो जाए और उनकी चेष्टाशक्ति न्यून हो जाय तो इसे ऊरुस्तम्भ (Paraplegia) कहते है।

सुषुम्ना काण्ड मे रोग हो तो उसके चेष्टा सूत्र प्रधानत ग्रस्त होते हैं —सुषुम्ना काण्ड (Spinal Cord) के किसी प्रदेश पर आघात लग जाने या दबाव (Compression) पड जाने से सबसे पहले उसमे ऊपर से नीचे उतरने वाले ऐच्छिक चेष्टा सूत्रो (Lateral Columns) पर इसका दुष्प्रभाव पडता है और प्राय सुषुम्ना के दोनो ओर इसका असर होता है जिसमे इसे Transverse Myelitis भी कहते हे। अत पहले-पहल टागो से इच्छानुसार चेष्टा करने की शक्ति घट जाती है। यदि आघात गहरा पहुचा हो या बाहर का दबाव अधिक-अधिक होता जाय तो फिर कुछ काल बाद सज्ञावाही सूत्रो के भी दब जाने से टागो मे सज्ञा (सुप्ति या चिमचिमाहट) सम्बन्धी लक्षण भी प्रकट होने लगते है। सुषुम्ना काण्ड (Cord) के ग्रैवेय (Cervical) भाग के उपरले प्रदेश मे दबाव पड जाय तो क्योकि बाहु मे जाने वाले निम्न चेष्टा सूत्र (Lower Motor Neurones) भी ग्रस्त हो जाते है इसलिये बाहुओ की मासपेशियो मे न्यूनाधिक शिथिलता युक्त घात (Flaccid Paralysis) हो जाता है और टागो मे जाने वाले चेष्टा सूत्रो (Upper Motor Neurones) के ग्रस्त होने से टागो मे स्तब्धता युक्त निर्बलता (Spastic Weakness) हो जाती है। इस प्रकार ऊर्ध्व तथा निम्न चारो शाखाओ मे निर्बलता का लक्षण हो जाता है इसे Quadriplegia कहते हे।

सुषुम्ना काण्ड का शरीर विज्ञान

सुषुम्ना काण्ड (Spinal Cord) ऊपर Medulla Oblongata से आरम्भ होकर पृष्ठवशास्थि की गुहा मे नीचे प्रथम कटि कसेरु (Lumber Vertebra) के निचले किनारे तक उतरता है और लगभग १८ इच लम्बा होता है। प्रत्येक कसेरु (Vertebra) मे उपर से नीचे तक इसके दोनो पार्श्वो से एक-एक सौषुम्न नाडी (Spinal Nerve) निकलती है। इनमे से प्रत्येक नाडी एक अग्रिम और एक पश्चिम दो मूलो (Roots) के मिलने से बनती हे। सुषुम्ना काण्ड बीच मे कृष्ण वर्ण और चारो तरफ श्वेत वर्ण होता हे। कृष्ण वर्ण भाग सेलो से तथा श्वेत वर्ण भाग सूत्रों से बना होता है। कृष्ण वर्ण भाग के अगले सिरे

अर्थात् Anterior Horns के सेलो मे से चेष्टावाही सूत्र निकलकर अग्रिम मूल द्वारा शरीर की मासपेशियो मे जाते है। पश्चिम ग्रन्थि (Posterior Ganglion) के सेलो मे से सूत्र निकलकर त्वचा आदि से प्राप्त सज्ञाओ को ऊपर मस्तिष्क तक पहुचाते है। इन दो-दो सौपुम्न नाडियो या दोनो ओर की मिलाकर चार-चार मूलो (Roots) के कारण सुपुम्ना काण्ड ऊपर से नीचे ३१ खण्डो अर्थात् ८ ग्रैवेय (Cervical), १२ पृष्ठ सम्वन्धी (Dorsal), ५ कटि सम्वन्धी (Lumber), ५ जघन सम्वन्धी (Sacral) तथा एक पुच्छ सम्वन्धी (Coccygeal) खण्ड (Segment) मे विभक्त हुआ मान लिया जाता है।

सुपुम्ना काण्ड के वाह्यावरण और पृष्ठवशास्थि के वीच के स्वल्प मे अवकाश (Epidural Space) मे फैट तथा शिरा जाल रहता हे। वाह्यावरण तथा मध्यमावरण (Arachnoid) के वीच के स्वल्प अवकाश (Subdural) Space) मे लसीका सदृश द्रव रहता है फिर इस मध्यमावरण तथा सुपुम्ना पर सटकर चढे हुए अन्तरावरण (Piamator) के वीच के (Subarachnoid) प्रदेश मे Cerebrospinal Fluid रहता है।

पृष्ठ वशास्थि की अपेक्षा सुपुम्ना काण्ड छोटा होता है। इसीलिए पृष्ठवशास्थि के ग्रैवेय भाग मे पाचवें कसेरु के कण्टक (Vertebral Spine) के सामने सुपुम्ना काण्ड का छठा खण्ड (Segment) होता हे तथा छठे कसेरु कण्टक के सामने सातवाँ खण्ड होता है। पृष्ठ प्रदेश पर कसेरु कण्टको तथा सुपुम्ना खण्डो मे परस्पर दो का अन्तर हो जाता है। अर्थात् तीसरे पृष्ठ-कसेरु-कण्टक के आगे पाँचवा पृष्ठ खण्ड (Dorsal Segment) होता है तथा चौथे पृष्ठ कसेरु कण्टक के आगे छठा "पृष्ठ खण्ड" होता है। नीचे आकर इनमे परस्पर ३ का फर्क पड जाता हे अर्थात् १०वें पृष्ठ कसेरु कण्टक (Dorsal Spine) के सामने प्रथम कटि खण्ड (Lumber Segment) होता हे और ११वे पृष्ठ कसेरु कण्टक (Spine) के सामने तीसरा कटिखण्ड (Lumber Segment) होता है। इसी प्रकार १२वे पृष्ठ कसेरु खण्ड के लेवेल पर प्रथम जघन सम्वन्धी खण्ड (Sacral Segment) होता है। सुपुम्ना काण्ड के छोटे होने से यह काण्ड प्रथम कटि कसेरु कण्टक (Lumber Spine) के पीछे ही समाप्त हो जाता है। इनमे से प्रत्येक सुपुम्ना काण्ड के अग्रिम मूल (Ant Root) से जिस-जिस मासपेशी को चेष्टा सूत्र जाते है उन-उन मे शिथिलता और कृशता को देखकर अनुमान लगा लिया जाता है कि सुपुम्ना काण्ड (Cord) का अमुक खण्ड रुग्ण है। **भिन्न-भिन्न खण्डो** (Segments) **मे प्रधानत जिन-जिन मांसपेशियो को चेष्टा सूत्र जाते हैं उनका विवरण यहाँ दिया जाता है** :—

४ ग्रैवेय खण्ड (Cervical Segment) से, Diaphragm, Supraspinatus, Infraspinatus (वाहु की Abductors तथा Outward rotators) तथा Trapezius (कन्धे शिर को पीछे करने वाली पेशी) को,

५ ग्रैवेय खण्ड (Cervical Segment) से, Teres minor (Outward rotator), Biceps, Deltoid, Brachialis anticus, Brachio radialis, Supinator Longus (अग्रवाहु की सकोचक) को (स्पष्ट है कि इन उपर्युक्त दो खण्डो मे रोग हो या वाह्य दवाव हो तो वाहु को वाहर ऊपर को उठाने वाली तथा अग्रवाहु को सकुचित करने वाली पेशियो की मृत्यु से अववाहुक रोग (Brachial Paralysis) होता है),

६ ग्रैवेय खण्ड (Cerv Seg) से, अग्रवाहु को अधोमुख करने वाली मासपेशी Pronator Teres को, तथा Pectoralis Major (Clavicular भाग) Latissimus Dorsi (वाहु की Adductors) को,

७ ग्रैवेय खण्ड से (Cer Seg) से, Triceps, (अग्रवाहु की प्रसारक) और कलाई तथा अगुलियो की प्रसारक (Extensor) मासपेशियो को,

८ ग्रैवेय खण्ड से, कलाई तथा अगुलियो को सकुचित करने वाली (Flexor) मासपेशियो को

१ पृष्ठ सम्वन्धी खण्ड (Dorsal १) से, Interossei तथा हाथ की छोटी-छोटी मासपेशियो को,

२ पृष्ठ सम्वन्धी खण्ड से १० (२ D से १० D) तक पसलियो की पेशियो या Intercostal Muscles को,

७ पृष्ठ सम्वन्धी खण्ड से, १२ (७ D से १२ D) तक, कोष्ठ की दीवार की मासपेशियो को,

१ कटि सम्वन्धी खण्ड (१ Lumber) से, Quadratus Lumborum (कटि देशीय पृष्ठवशास्थि की प्रसारक) को,

२-३ कटि सम्वन्धी खण्डो (२-३ Lumber Segment) से, ऊर्ध्व जघा को अन्दर की तरफ खीचने वाली (Adductor) मासपेशियो तथा Psoas Major तथा Minor, Sartorius (ऊर्ध्व जघा की वड पर सकोचक पेशियो) को,

४ कटि सम्वन्धी खण्ड (४ L-Seg) से, Quadriceps Extensor Femoris जो जानु पर टाग को फेलाती है तथा ऊपर की जाघ को वाहर की तरफ खीचने

वाली (Abductor) मासपेशियो (Gluteus Medius तथा Minimus) और Piriformis (Lateral Rotator) को,

५ कटि सम्बन्धी खण्ड (५-L) से, जानु पर अधोजघा को सकुचित करने वाली मासपेशियो (Flexors of knee अर्थात् Hamstrings तथा अधोजघा के आगे की मासपेशियो Ant Tibial Muscles जैसे Tibialis Anterior (अन्दर के गिट्टे की सकोचक) Extensor Hallucis तथा Ex Digitorum Longus को जो पादागुलियो को ऊपर को सकुचित करती है,

१ जघन सम्वन्धी खण्ड (२-Sacral) से, Gluteus Maximus ऊरु प्रसारक है तथा पिण्डली की मासपेशियो (अर्थात् जानु और गुल्फ सधियो के प्रसारक मासो) को,

२ जघन सम्वन्धी खण्ड (२-Sacral) से, अधोजघा के आगे की पेशियो (अगुलियो व पांव को ऊपर फिराने वाली व Peronei पाव को अन्दर वाहर घुमाने वाली), पाव की छोटी-छोटी अन्दरूनी मासपेशियो को,

३-४ जघन सम्वन्धी खण्ड (३-४-Sacral) से, वस्ति गुहा की मासपेशियो को चेष्टा सूत्र जाते है। (स्पष्ट है कि Dorsal १ से Sacral-२ तक खण्डो मे रोग होने से Paraplegia का लक्षण होता है।)

शरीर मे होने वाली स्वय चेष्टाओ या Reflexes की परीक्षा करके भी यह जाना जा सकता है कि सुषुम्ना काण्ड का कौन सा प्रदेश रुग्ण हुआ अर्थात् आहत हो गया है या दव गया है। क्योंकि सुषुम्ना का जो खण्ड (Segment) रुग्ण होता है उस प्रदेश पर Reflex Arc के खण्डित हो जाने से वहा होने वाली स्वय चेष्टा लुप्त हो जाती है तथा उस प्रदेश से नीचे होने वाली गहरी स्वय चेष्टा (Tendon Reflex) तीव्रतर हो जाती है। उदाहरणत

५-६ ग्रैवेय खण्ड (Cervical Seg) मे रोग हो तो Biceps Jerk लुप्त हो जाता है (Jerc=कोहणी को ६० डिग्री तक मोड के तनी हुई Biceps Tendon को टकोरने से वाहु ऊपर झटका खाती है) साथ ही Supinator Jerk भी लुप्त हो जाता है (Jerc=कोहणी पर अग्रवाहु को कुछ सकुचित करके Ranisu के Styloid Process के ऊपर के प्रदेश पर टकोरने से अग्रवाहु ऊपर उठ जाती है)।

६-७ ग्रैवेय खण्ड (C Seg) मे रोग हो तो Triceps Jerk लुप्त हो जाता है।

७-१२ पृष्ठ सम्वन्धी खण्डो (Dorsal Segments) मे रोग हो तो Abdominal Reflexes—जिनके होने के लिए केवल प्रान्त (Peripheral) नाडियो के Sensory तथा Motor सूत्रो का स्वस्थ होना ही आवश्यक नही पर Cord के अन्दर विद्यमान सज्ञावाही और चेष्टावाही सूत्रो का (Pyramidal Tract सहित) भी स्वस्थ होना आवश्यक है—लुप्त हो जाते है।

२ कटिप्रदेशीय खण्ड (२ Lumber) मे रोग हो तो Cremasteric Reflex लुप्त हो जाता है।

३--४ कटिप्रदेशीय खण्ड (३-४ Lumber) मे रोग हो तो Knee Jerk लुप्त हो जाता है।

१—२ जघन सम्वन्धी खण्डो (१-२ Sacral Seg) मे रोग हो तो Ankle Jerk लुप्त हो जाता है। इसी तरह Plantar Reflex भी लुप्त हो जाता है अर्थात् पादतल पर पेन्सिल या दियासलाई द्वारा खरोचने से अगूठा नीचे या पादतल की ओर जैसे मुड जाना चाहिए और पाव, गुल्फ सधि पर ऊपर की ओर मुड जाना चाहिए वैसा नही होता। हा जानु तथा वक्षण सधि पर जाघ मे न्यूनाधिक सकोच हो जाता है। सुषुम्ना मे रोग अधिक हो तो पाव का अगूठा नीचे की ओर फैलने (Extend) के स्थान पर ऊपर की ओर सकुचित (Flexed) होने लगता है तथापि साधारणत. व्यवहार मे इसे अगूठे का प्रसरण (Extension of the Great Toe या Extensor Plantar Response) कहा जाता है। रोग और भी अधिक हो तो तलुए पर ही नही पर टॉग के किसी प्रदेश पर भी अकस्मात् उत्तेजना के पडने से यह Extensor Response हो जाता है।

मूत्र-मल सम्वन्धी स्वय चेष्टा—Bladder तथा Rectum Reflexes

२-३ जघन सम्वन्धी खण्डो (२-३ Sacral Seg) से प्रारम्भ होकर Parasympathetic सूत्र (Nervi erigentes या Pelvic Splanchnic n के द्वारा) Vesical plexus मे होकर मूत्राशय के मास (Detrusor) तथा उसके द्वार या Sphincter मे आते है और वे मूत्राशय को तो Visceromotor सूत्रो द्वारा सकुचित करते तथा मूत्राशय द्वार (Sphincter) को Inhibitor सूत्रो द्वारा

शिथिल करते है। साथ ही १-२ कटिप्रदेशीय खण्डो (Lumber Seg) मे से Sympathetic सूत्र भी Hypogastric Nerve (Pelvic Plexuses) के द्वारा मूत्राशय के मास तथा उसके द्वार (Sphincter) मे आते है जो उत्तेजित होने पर अपने Inhibitory सूत्रो द्वारा मूत्राशय माग को शिथिल करते एव द्वार को अपने Motoı सूत्रो द्वारा वन्द (Contract) कर देते हैं। इन दोनो प्रकार के सूत्रो के ऊपर मस्तिष्क का नियन्त्रण दोनो ओर से ऊपर मे आये चेष्टा सूत्रो (Upper Motoı, Neurones) द्वारा कायम रहता है जिससे व्यक्ति चाहे तो मूत्र को प्रवृत्त करे चाहे न प्रवृत्त होने दे। यदि एक ओर का Pyramidal Tract भी नार्मल अवस्था मे हो तो मूत्र पर आदमी का नियन्त्रण कायम रहता है। जब कटि-प्रदेशीय-सुपुम्ना मे ऊपर-ऊपर का उसका कोई खण्ड दोनो ओर ही रुग्ण हो जाय तो स्पष्ट हे कि मूत्र पर हमारे मस्तिष्क का नियन्त्रण शिथिल हो जाता है जिससे मूत्र को प्रवृत्त करने का तथा मूत्र को रोकने का स्वाभाविक Reflex अपूर्ण या अधूरा हो जाता है। मूत्र को प्रवृत्त करने का Reflex निर्वल हो जाय तो रोगी मूत्र करना चाहता है पर वह देर से प्रवृत्त होता है। यदि मूत्र को रोकने वाला Reflex निर्वल हो गया हो तो मूत्र विना प्रवृत्त किये भी जल्दी मे निकल पडता है (Precipitancy of Micturition) इनमे से पहला Reflex और भी निर्वल होता जाय तो मूत्राघात (Retention of Urine) का लक्षण हो जाता है। इन लक्षणो से सुपुम्ना काण्ड के रुग्ण होने का अनुमान कर लिया जाता है यदि सुपुम्ना के कटि-प्रदेश Lumber region मे रोग हो तो मूत्राशय द्वार मे Paralysis होता हे जिससे वूद-वूद मूत्र आता रहता है।

इसी प्रकार २-३ जघन सम्बन्धी खण्डो (२-३ Sacral Segments) से निकले सूत्र Pelvic Splanchnic Nerves के अन्दर विद्यमान Visceromotor सूत्रो के द्वारा मलाशय को सकुचित कर तथा मल द्वार को खोलकर मल प्रवर्तन करते है। Hypogastric या Pelvic Plexus के द्वारा आये Sympathetic सूत्रउत्तेजित हो करके मलाशय के मास को शिथिल एव गुदा द्वार (Anal Sphincter) को वन्द कर देने का कार्य करते है, परन्तु ऊपर से इन पर मस्तिष्क का नियन्त्रण रहता हे पर सुपुम्ना काण्ड मे रोग होने पर मलाशय सम्बन्धी (Rectal) Reflex पर मस्तिष्क का नियन्त्रण निर्वल हो जाता है जिससे मलावरोध (Retention) का लक्षण हो जाता है और वाद मे विना इच्छा के ही मल के निकल जाने (Incontinence) का लक्षण भी होने लगता है।

त्वचा पर की संज्ञा या Sensation को देखकर भी यह कहा जा सकता है कि सुपुम्ना काण्ड का कौन सा खण्ड रुग्ण है। त्वचा पर के स्पर्श, वेदना, ऊष्मा तथा शीत सम्बन्धी सज्ञाओं के वहन करने वाले सूत्र पश्चिम मूलो द्वारा सुपुम्ना काण्ड में प्रवेश करते हैं और वहाँ Posterior Horns के Substantia Gelatinosa के सेलो मे समाप्त हो जाते है। वहाँ से दूसरे सूत्र आरम्भ होकर नीचे के भाग मे सो उपरले खण्ड (Segment) तक और ऊपर के भाग मे ५-६ खण्ड तक ऊपर चढकर फिर दूसरी ओर क्रास कर जाते हैं एव उधर के Spinothalamic Tract (Antero-lateral Tract मे) द्वारा ऊपर चढ करके Medial Lemniscus के साथ Thalamus मे समाप्त हो जाते है।

मास, अस्थि आदि के सज्ञा के वहन करने वाले गहरे सज्ञावाही या स्थिति सज्ञावाहक सूत्र (Sense of Position सम्बन्धी सूत्र) सुपुम्ना काण्ड मे प्रवेश करके उसी ओर के Posterior Column या Funiculus मे ऊपर चढ जाते हैं। जाघो के सज्ञावाही सूत्र अन्दर की ओर ऊपर चढते है इन्हे Tract of Gall या Fasciculus Gracilis कहते है। वाहुओ से आये गहरे सज्ञा सूत्र इनके वाहर की ओर ऊपर चढते है उन्हे Tract of Burdach या Fasciculus Cuneatus कहते है। ऊपर Medulla Oblongata मे ये क्रमश Gracile तथा Cuneate Nuclei मे समाप्त हो जाते हैं। निचले पृष्ठ सम्वन्धी खण्डो (Lower Dorsal Segments) तक के सूत्र Gracile मे और इनमे ऊपर के खण्डो से आये सूत्र Cuneate Nucleus मे समाप्त होते है। इनमे से आरम्भ हुए दूसरे सज्ञावाही सूत्र Medulla मे दूसरी ओर Fillet या Decussation of the Lemnisci के रूप मे क्रास करके उधर Medial Lemniscus के रूप मे चढकर Thalamus के Vetral Nucleus मे समाप्त हो जाते हैं। वहाँ से तीसरे गहरे सज्ञावाही सूत्र आरम्भ होकर Internal Capsule के पिछले भाग मे से होते हुए Fissure of Rolando के पीछे के सज्ञा क्षेत्र मे सज्ञा को पहुँचा देते है।

(१)वाहुओ की त्वचा के सज्ञावाही सूत्र २ ग्रैवेय (२-Cervical) खण्ड से २ पृष्ठ सम्वन्धी (Thoracic Segment) खण्ड तक आते हे। (२)धड के सज्ञा सूत्र २ पृष्ठ सम्वन्धी (२-T) से १-कटि सम्वन्धी खण्ड(१-L) तक आते है। (३) जघाओ के सज्ञावाही सूत्र २ कटि सम्वन्धी (२-L) खण्ड से, २ जघन सम्वन्धी (२ Sacral) खण्ड तक आते है। इस प्रकार —

२-३ ग्रैवेय खण्ड (२-३C) मे शिर के पीछे के भाग तथा ग्रीवा के पिछले तो उपरले-उपरले तथा वाहर और आगे के सारे प्रदेश से सज्ञा सूत्र आते है ।

४ ग्रैवेय खण्ड (४-C) मे, Clavicle, प्रथम पर्शुका मध्य देश, Deltoid के प्रदेश, तथा ग्रीवा के पश्चिम प्रदेश से

५ ग्रैवेय खण्ड (५-C) मे ऊर्ध्व वाहु तथा अग्रवाहु के वाहर-वाहर के अगले पिछले प्रदेश से,

६ ग्रैवेय खण्ड (६-C) मे, ऊर्ध्व वाहु तथा अग्रवाहु के आगे पीछे के वाहर-वाहर के तथा हाथ के वाहर-वाहर के अगूठे वाले प्रदेश से,

७ ग्रैवेय खण्ड (७-C) मे, हाथ के आगे पीछे के वीच की अगुलियो वाले प्रदेश से तथा ऊर्ध्ववाहु तथा अग्रवाहु के पिछले केन्द्रीय प्रदेश से,

८ ग्रैवेय खण्ड (८-C) मे, अग्रवाहु के अन्दर से तथा हाथ के अन्दर-अन्दर के १½ अगु-लियो के प्रदेश से,

१ पृष्ठ प्रदेशीय खण्ड (१-D) मे, अग्रवाहु तथा कुछ अश मे ऊर्ध्व वाहु के अन्दर-अन्दर के प्रदेश से,

२-१२ पृष्ठ प्रदेशीय खण्डो (२-१२D) मे, छाती तथा कोष्ठ के ऊपर से नीचे के क्रमश १२ प्रदेशो से,

१ कटि प्रदेशीय खण्ड (१-L) मे, नाभि से नीचे के जघा तथा अण्ड प्रदेश से,

२ कटि प्रदेशीय खण्ड (२-L) मे, ऊर्ध्व जघा के वाहर के भाग उपरले-उपरले अग्रिम भाग से,

३ कटि प्रदेशीय खण्ड (३-L) मे, ऊर्ध्व जघा के निचले अग्रिम तथा सारे आभ्यन्तर प्रदेश से,

४ कटि प्रदेशीय खण्ड (४-L) मे, निम्न जघा, आभ्यन्तर गुल्फ और पैर के अगूठे वाले आगे-पीछे के प्रदेश से,

५ कटि प्रदेशीय खण्ड (५-L) मे, निम्न जघा के वाहर के वहुत से अगले तथा कुछ पिछले भाग से तथा पाद पृष्ठ पर के अन्दर के वहुत से प्रदेश से,

१ जघन सम्वन्धी खण्ड (१-S) मे, अधो जघा के पीछे नीचे के एडी के प्रदेश तथा पादतल के वाहर के १½ अगुलि के प्रदेश से तथा उसके साथ लगते पादपृष्ठ के वीची वाले स्वल्प प्रदेश से,

२ जघन सम्वन्धी खण्ड (२-S) मे, उर्ध्व जघा तथा अधो जघा पर के पीछे के मध्य के वडे प्रदेश से, तथा पादपृष्ठ और पाद तल के स्वल्प से वीची वाले प्रदेश से,

३ जघन सम्वन्धी खण्ड (३-S) मे गुदा, सीवन, जननेन्द्रिय प्रदेश से,

सज्ञावाहिनिया आती है जिससे इन खण्डो मे रोग के होने पर सज्ञा की विषमता (Paraesthesia) या शूल के लक्षण हो जाते हैं ।

सक्षेपत ५-ग्रैवेय खण्ड मे रोग हो तो चारो शाखाओ मे स्तम्भयुक्त निर्वलता Quadriplegia का लक्षण हो जाता है । ७-ग्रैवेय खण्ड मे रोग होने से उरुस्तम्भ का लक्षण होता है । ग्रैवेय ८, पृष्ठ सम्वन्धी खण्ड १ मे, रोग हो तो धड तथा टागो मे स्तम्भ होता है । ६ पृष्ठ सम्वन्धी खण्डो मे रोग हो तो कोष्ठ और टागो मे स्तम्भ का लक्षण होता है । निचले पृष्ठ सम्वन्धी खण्डो तथा उपरले कटि सम्वन्धी खण्डो मे रोग होने से उरुस्तम्भ का लक्षण होता है । जघन सम्वन्धी ३-४ खण्डो मे रोग हो तो मल-मूत्र रोग का लक्षण होता है ।

सुषुम्ना काण्ड (Cord) के रुग्ण होने के प्रधान कारण

(१) अभिघात (Injury)

किसी सवारी या ऊचाई पर से नीचे गिर जाने पर पृष्ठ वश पर चोट लगकर किसी कसेरु की Laminae के दब जाने या कसेरुओ के वीच की किसी टिकिया (Disc) के स्थान भ्रष्ट हो जाने से सुषुम्ना काण्ड (Cord) को क्षति पहुच जाती है । ग्रीवा प्रदेश मे आघात लगकर वहुधा ५-६वे कसेरु को धक्का पहुँचता है तथा उनमे अस्थिभग या सधि भ्रश का रोग हो जाता है । इसी प्रकार दुर्घटनाओ के कारण पृष्ठ वश मे ११-१२वे कसेरु को वहुधा आघात पहुचता और उनमे भग (Fracture) या भ्रश (Dislocation) हो जाता है । इसी प्रकार ऊपर से नीचे गिर जाने पर व्यक्ति पाव के भार गिरे तो कटि प्रदेश पर आघात लगता है और उसका प्रथम कसेरु या उसके पास-पास के कसेरु वहुधा आहत हुआ करते है । दुर्घटनाओ मे ग्रीवा मे सहसा आगे की तरफ खीच पड जाती हे अर्थात् उसमे तीव्र Flexion हो जाता है तव सुषुम्ना काण्ड पर भी खीच पड जाने से उसमे चोट पहुँच जाती है ।

ऊपर कहे गये लक्षणो से यह निश्चय किया जा सकता है कि सुषुम्ना काण्ड के किस प्रदेश पर आघात पहुचा है। उदाहरणत यदि ऐसे रोगी की दोनो बाहुए शिथिल-सी होकर धड के साथ सटी हुई पटी हो तो समझ लेना चाहिए कि ग्रीवा मे सुषुम्ना काण्ड के ५-६वें खण्डो (Segments) पर आघात पहुचा है। यदि बाहे धड से कुछ हट कर(Abducted) और कोहणियो तथा कलाईयो पर सकुचित होकर Pronated अवस्था मे छाती पर पडी हो तो समझना चाहिए कि ग्रीवा के ७वें खण्ड (Segment) पर आघात पहुचा है। चोट लगने के बाद धक्के या Shock के कारण कुछ दिन तक मासपेशिया शिथिल हो जाती हैं। सुषुम्ना काण्ड के क्षत प्रदेश मे नीचे के प्रदेश मे सर्व Reflexes लुप्त हो जाते है। दोनो टागो मे शिथिलता (Flaccidity या Flaccid paraplegia) होती है। मल-मूत्र भी अवरुद्ध हो जाते हैं (Detrusor के Paralysis से) और मूत्राशय के भर जाने पर मूत्र बूद-बूद कर निकलने लगता है क्योकि मल-मूत्र सम्बन्धी Reflexes लुप्त हो जाते है। पर कुछ घण्टे बाद फिर मूत्र आने लगता है। २-३ सप्ताह बाद फिर मृत हुई शाखाओ मे स्तब्धता (Spasticity) का लक्षण हो जाता है और तब Plantar Reflex ऊपर की ओर (Dorsiflexion) होने लगता है। Tendon Reflexes प्रकट हो जाते है और मासपेशिया ठीक होने लगती हैं। Paralysis किन मासपेशियो मे है यह पता लगा करके सुषुम्ना काण्ड के किस खण्ड मे आघात पहुचा है यह पता लग सकता है। रीढ की हड्डी पर स्पर्शाक्षमता जहा है वहा ही चोट का अनुमान कर लेना चाहिए। यदि सज्ञानाशक लक्षण हो तो उसकी ऊपर की सीमा का पता लगाने से सुषुम्ना का कौन-सा खण्ड दब गया है, यह जाना जा सकता है।

(२) सुषुम्ना काण्ड सम्बन्धी क्षय रोग—(Spinal Caries)

पृष्ठ वशास्थि मे क्षय रोग जनित विद्रधि (Cold Abscess) के जो कि बालको मे होती है हो जाने पर कभी-कभी सुषुम्ना काण्ड दब जाता है या उसके कारण सुषुम्ना काण्ड के बाह्यावरण पर (अर्थात् Esidural Space मे) क्षयजनित अकुरो (Granulations) के हो जाने या Pachymeningitis से Cord कुछ दब जाता है और उसमे श्वयथु (Oedema) हो जाता है। ऐसी अवस्था मे वहा की सौषुम्न नाडी के पिछले Root के दब जाने से धड के चारो ओर या किसी शाखा मे तीव्र शूल का लक्षण होता है जो हिलने-डुलने मे बढता है। पृष्ठ वश मे कुछ विषमता या स्पर्शाक्षमता या स्तब्धता का लक्षण भी होता है। बाद मे टागो मे स्तम्भ भी हो जाता है। उनमे सुप्तता, चिमचिमाहट के लक्षण भी होते हैं इसे क्षय जनित ऊरुस्तम्भ कहा जाता है। क्षय रोग के प्रकट होने के बाद इसकी पहचान सुगम है। क्षय रोग के प्रकट होने से पहले ऊरुस्तम्भ का लक्षण हो जाय तो इस रोग का पहचानना कठिन होता है। यदि क्षय रोग ठीक हो जाय, उसके कारण Cord मे उत्पन्न श्वयथु Oedema भी शान्त हो जाय तो सुषुम्ना काण्ड फिर से ठीक हो जाता है। परन्तु जब टागो मे स्तम्भ के स्थान पर शिथिलता आ जाय और उनमे सकोच (Flexion) हो जाय तो फिर यह रोग अच्छा नही होता। सौभाग्य से यह रोग अब कम हो गया है।

(३) सुषुम्ना काण्ड सम्बन्धी फिरग रोग—(Syphilitic Myelitis या Meningomyelitis)

सुषुम्ना काण्ड के किन्ही १-२ खण्डो के आवरणो (Pia तथा Arachnoid) मे फिरग-जनित Gumma के उत्पन्न हो जाने से वहा की रक्तवाहिनियों मे अवरोध (Endarteritis) हो जाता है और काण्ड के बाहर-बाहर के सूत्रो मे कुछ क्षीणता (Degeneration) का लक्षण हो जाता है इसके कारण पीठ मे या धड के चारो ओर शूल होने लगता है जो पश्चिम मूलो (Postc Roots) के ग्रस्त होने का सूचक है। फिर क्रमश ऊरुस्तम्भ का लक्षण प्रकट हो जाता है एव मूत्र पर नियत्रण निर्बल हो जाता है। पैरो मे या उनकी अगुलियो मे सज्ञा सम्बन्धी विकृति के लक्षण भी हो सकते है। फिरग-जनित ऊरुस्तम्भ का रोग छोटी आयु या मध्यम आयु मे ही होता है। सौभाग्य से अब यह रोग भी बहुत कम हो गया है।

(४) पृष्ठ वशास्थि मे कैन्सर—(Vertebral Carcinoma)

बडी आयु के किसी व्यक्ति मे स्तन ग्रन्थि Thyroid या फुफ्फुस या प्रोस्टेट मे कैन्सर प्रारम्भिक अवस्था मे हो या शल्यकर्म द्वारा वहा से उसे निकाला गया हो तो उसके सेल पृष्ठ वशास्थि मे पहुच कर वहा रोहण कर सकते हैं जिससे अनेक कसेरुओ मे शीघ्र-शीघ्र कैन्सर प्रसरण कर जाता है। Lymphoma, Myeloma से भी Cord पर दबाव पड जाता है। जिस कसेरु मे दर्द होता है वहा वह हर समय रहता है। सेकने से या आराम से कम नही होता। वहा से किसी एक Inter Vertebral Foramen के द्वारा यह कैन्सर का अर्बुद अन्दर स्रोत (Canal) मे भी प्रसरण कर जाता है। Duramater इसे रोकता है पर

जिससे वहा का सुषुम्ना मूल (Root) दव जाता है उसके आवरण (Meninges) के दव जाने से तत्सम्वन्धित प्रदेश मे अति तीव्र शूल का लक्षण होता है जो Bilateral होता तथा रात को अधिक होता है। शूलयुक्त प्रदेश पर स्पर्श सज्ञा की न्यूनता भी होती है, हिलने-डुलने से यह शूल अधिक होता है, जिससे रोगी पृष्ठ वशास्थि तनाये हुए (Rigid) रखता है। इस रोग के कारण उरुस्तम्भ अर्थात् टागो मे निर्वलता का लक्षण १-२ दिन के अन्दर-अन्दर ही प्रकट हो जाता है। इस शूलयुक्त उरुस्तम्भ को Paraplegia Dolorosa कहते है। पृष्ठ वशास्थि मे स्पर्शाक्षमता और स्तव्धता हो, हिलने डुलने से Root pain वढती हो तथा रुग्ण व्यक्ति मे कृशता का लक्षण हो तो इस रोग का सन्देह दृढ हो जाता है। इस रोग के कारण पृष्ठ वशास्थि मे कोई विपमता नही होती। पृष्ठ वशास्थियो के गल जाने या Soft हो जाने की प्रक्रिया को X-Ray द्वारा जाना जा सकता है। यह रोग १-२ वर्ष तक घातक हो जाता है।

पृष्ठ वशास्थि की किसी टिकिया का स्थान भ्रश :— (Protrusion या Herniation of the Inter-vertebral Discs)

पृष्ठ वशास्थि के कसेरुओ (Vertebrae) के वीच-वीच की टिकियो (Discs) का वाहर-वाहर का कठोर सौत्रिक भाग Annulus Fibrosus कहाता है तथा वीच का मृदु एव लचकीला भाग Nucleus Pulposus कहाता है। वाहर का कठोर भाग आस-पास के कसेरुओ से वधा होता है। इन टिकियो के वीच का भाग Hyaluronic Acid से वना वहुत चिप-चिपा एव मृदु होता है। उसके कारण कमर मे लचकीलापन रहता है। वडी आयु मे टिकियो का यह मृदु भाग शुष्क होकर कुछ छोटा पड जाता है जिससे टिकियो को कसेरुओ से वाधने वाले सूत्र भी ढीले पड जाते हे। पृष्ठ वश के कसेरु तथा टिकिया पीछे की ओर से Posterior Common Ligament से ढकी हुई एव सुरक्षित रहती हे पर कटि प्रदेश मे यह स्नायु इन्हे पूर्णतया नही ढकती। इसीलिए वडी आयु मे जव कोई व्यक्ति आगे पडे वोझ को झुककर सहसा उठाने का यत्न करता है या किसी प्रकार से भी उसके कटि कसेरुओ पर खीच पड जाती है तो कटि प्रदेशीय कोई टिकिया टूट सकती हे जिससे उसके अन्दर का मृदु भाग (Nucleus Pulposus) पीछे की ओर पृष्ठ वश गुहा (Canal) मे स्थान भ्रष्ट हो जाता है। इससे कटि प्रदेश मे तो वहुधा ५वी L,—कसेरु और Sacrum के वीच की टिकिया के खिसकने से ५वी कटि प्रदेशीय सौषुम्ननाडी (५—Lumber Spinal Nerve) या प्रथम जघन सम्वन्धी नाडी (१—Sacral Spinal Nerve) दव जाती है। इस प्रकार टिकिया के स्थान भ्रष्ट हो जाने से एक तो स्थानिक भारी दर्द होने का लक्षण होता है जिसे कटिशूल (Lumbago) कहते है। दूसरा टाग मे गृध्रसीशूल (Sciatica) होने का लक्षण होता है अथवा (Femoral Nerve (Ant Crural Nerve) के ग्रस्त होने से Anterior Femoral Cutaneous तथा Lateral Femoral Cutaneous नाडियो के क्षेत्र मे अर्थात् ऊर्ध्व जघा के अग्रिम तथा वाह्य पृष्ठो पर सज्ञा सम्वन्धी विकृति (Paraesthesia) के लक्षण होते है। नीचे पैर के वाहर-वाहर के किनारे पर दर्द हो तो १—Sacral Spinal Nerve दवी हुई समझे। यदि दर्द पैर के अन्दर-अन्दर के किनारे पर हो तो ५—Lumber Spinal Nerve दवी हुई समझनी चाहिए।

ग्रीवा मे ५वी तथा ७वी कसेरुओ के वीच मे तथा पृष्ठ कसेरुओ के निचले भाग मे इसी प्रकार झटका लगकर किसी टिकिया के पिछली ओर खिसक जाने से सुषुम्ना काण्ड न्यूनाधिक दव जाता है। जिससे ग्रीवा अथवा पृष्ठ मे पहले तो स्तव्धता (Stiffness) का लक्षण होता और फिर एक या दोनो वाहुओ मे धीरे-धीरे स्तम्भ (Spasticity) या वाहु शूल अर्थात् Brachial Neuritis का लक्षण हो जाता है। पृष्ठ प्रदेश मे इस रोग के होने पर टागो मे स्तव्धता का लक्षण हो जाता है। X-Ray करने पर पृष्ठ वशास्थि मे विपमता (Loss of Curvature) Scoliosis (Lateral curvature) तथा ग्रस्त हुई टिकिया का प्रदेश तग हुआ-हुआ दीखता है।

सुषुम्ना काण्ड के पश्चिम तथा वाह्य स्तम्भो मे क्षीणता :—Combined Degeneration of the Spinal Cord, Postero Lateral Sclerosis)

कभी-कभी ४०-६० वर्ष की आयु के ऐसे व्यक्तियो मे जिनमे घातक पाण्डु (Pern Anaemia) का रोग होता है, या जिनमे आमाशय और आत्र के Achlorhydria आमाशयश्लेष्मकला मे Atrophic-degeneration होने आदि किसी चिर रोग के कारण विटामिन B_{12} का विलयन कम हो जाता हे, सुषुम्ना काण्ड के दोनो ओर के पश्चिम तथा वाह्य स्तम्भो के नाडी सूत्रो के खोलो मे क्षीणता का लक्षण हो जाता है, अर्थात् उन सूत्रो का Myelin से वना खोल फैट मे परिवर्तित होता जाता हे। खोलो मे क्षीणता के वढते जाने के वाद अन्त मे सूत्र (Axis Cylinders) भी क्षीण हो जाते है। क्षीणता की प्रक्रिया पहले-पहले पश्चिम स्तम्भो (Columns) मे होती

और वहा भी पहले जघा सम्वन्धी सूत्रो (Funiculus Gracilis) मे अर्थात् सुपुम्ना के निम्न पृष्ठ सम्वन्धी भाग मे फिर वाद मे वाहु सम्वन्धी सूत्रो (Fasciculus Cuneatus) मे होती है। फिर यही प्रक्रिया वाह्य स्तम्भो (Lateral Columns) मे हो जाती है और फिर शरीर मे जाने वाले नाडी सूत्रो (Peripheral Nerves) मे भी हो जाती हैं। उपर्युक्त विकृति के अनुसार पहले तो पैरो की अगुलियो के सिरो मे तथा पौचो मे सज्ञा सम्वन्धी लक्षण जैसे सुप्ति, चिमचिमाहट (Tingling), दाह या दर्द, शीतलता आदि के लक्षण होते है। पाव मे सज्ञा नाश का लक्षण न्यूनाधिक होता है। चलते समय पादतल मे रुई की गद्दी लगती है। पिंडलियो मे स्पर्शाक्षमता या दवाने से दर्द होने का लक्षण होता है। फिर हाथो की अगुलियो मे भी ये ही सज्ञा सम्वन्धी लक्षण होने लगते है और फिर ये लक्षण टागो मे ऊपर की ओर वढते जाते हैं। पैरो मे स्थिति सज्ञा (S nse of Position) भी घटती जाती है। इससे टागें निर्वल और भारी प्रतीत होती तथा चलने मे लडखडाती सी हैं। अवेरे मे यह अस्थिरता और वढ जाती है। उनमे विजली की सी चसक मारने वाली दर्द भी हो सकती है। वाद मे सुपुम्ना काण्ड के वाह्य स्तम्भो मे क्षीणता की प्रक्रिया के होने के कारण टागो मे स्तव्वता युक्त निर्वलता या उरुस्तम्भ का लक्षण हो जाता है। स्पष्ट है कि यदि टागो मे सज्ञा सम्वन्धी लक्षण या सुप्ति का लक्षण प्रवल हो तो टागो मे शिथिलता (Flaccidity) युक्त निर्वलता होती है तथा गहरे Reflexes मन्द हो जाते हैं। यदि वाह्य स्तम्भो मे रोग प्रवल हो तो टागो मे स्तव्धता युक्त निर्वलता होती है और तव ऐसी अवस्था मे Knee Jerk तथा Ankle Jerk प्रवलता से होते और Plantar Reflex Extensor होता है। वाहुओ मे इस रोग का प्रभाव होने पर हाथ की छोटी-छोटी पेशिया सूखने लगती हैं।

सुपुम्ना काण्ड के पश्चिम तथा वाह्य सूत्रो मे क्षीणता के वढ जाने पर मूत्र पर ऊपर का नियन्त्रण शिथिल हो जाता है। पहले तो उसका रोकना कठिन हो जाता है, जिसमे वह कपडो मे निकल जाता है, वाद मे उसका प्रवृत्त करना कठिन हो जाता है। पुस्त्व शक्ति भी नष्ट हो जाती है। रक्त मे Macrocytic Anaemia (वातिक पाण्डु) का लक्षण होता है। वुद्धि और स्मृति भी मन्द हो जाती हैं। इस प्रकार यदि Achlorhydria, Extensor Plantar Response, टागो की निर्वलता, पैरो मे सुप्ति, चिमचिमाहट तथा विस्कुटी रग की पाण्डुता आदि लक्षण हो तो इस रोग के होने का निश्चय हो जाता है। रक्त-परीक्षा मे Megaloblast प्रधान पाण्डु रोग हो तो भी इस रोग का निश्चय हो जाता है। 'वी' कम्पलेक्स का प्रयोग वढ जाने मे अव यह रोग वहुत कम होता है।

(८) पृष्ठवशार्वुद (Spinal Meningioma, Spinal Neurofibroma) के कारण उरुस्तम्भ

सुपुम्ना के अन्दर होने वाले अर्वुदो मे से जो मध्यमायु मे होते हैं ८० प्र० श० सुपुम्नावरणो मे (Intradural) होते है। २०% Intramedallary (सुपुम्ना मे) होते हैं। सुपुम्नावरणो मे होने वाले अर्वुद अर्थात् Meningioma तथा Neurofibroma धीरे-धीरे वढते हैं। Epidural granuloma अर्थात् Dura के ऊपर भी अर्वुद होते हैं जो T B या Nonspecific दो प्रकार के हैं। ये अधिकत Thoracic प्रदेश मे या ग्रीवा प्रदेश मे होते हैं। इनके कारण रक्तवाहिनिया (Spinal, Intercostal) दव जाती हैं, Cord को रक्त कम मिलता है (Ischaemia) जिसमे उसमे Myelomalacia तथा Necrosis की प्रक्रिया होती है जिसमे Paraplegia अधिकत तथा कभी-कभी Quadriplegia भी होता है। Dura के वाहर के Extradural अर्वुद प्राय कैन्सर होते हैं। और सव अर्वुदो मे ये ५०% के लगभग होते हैं। Intradural अर्वुदो के द्वारा (Cord) के दव जाने से पृष्ठ वश मे मन्द-मन्द शूल रहता है जो खासने, छीकने, हिलने-डुलने या टकोरने मे होता है। फिर किसी (Thoracic) सौपुम्न नाडी के पिछले मूल के दव जाने से कमर या पेट के किसी प्रदेश मे दर्द भी होने लगता है या एक वाहु या जाघ मे दूर तक जाने वाला (Shooting) शूल होने लगता है जो खासने, छीकने से और वढता है। फिर जैसे ऊपर कहा है सुपुम्ना के Pyramidal मार्ग के कुछ दव जाने से पहले एक टाग मे या वाहु मे जिधर अर्वुद होता है स्तम्भ तथा निर्वलता होती और कुछ काल वाद फिर दूसरी मे भी हो जाती है। उधर के स्थिति (Position) वाहक सज्ञा सूत्रो के दव जाने से उधर स्थिति सज्ञा कम हो जाती है जिससे चलने मे तथा खडे होने मे अस्थिरता आ जाती है। साथ ही दूसरी ओर से क्रास करके आए वेदना और तापवाहक सूत्रो (Spinothalamic) के दव जाने से उधर सज्ञा नाश का लक्षण (Brown Sequard Syndrome) होता है। ऐसी अवस्था मे सुपुम्ना द्रव (Cerebrospinal Fluid) की परीक्षा करने से उसमे प्रोटीन की मात्रा ५००% या इससे भी वढी हुई हो (नार्मल १०० सी० मी० मे ३० मिलि०), रग पीला हो, उसमे सेल्स (Froin's Syndrome) न हो तो अर्वुद का सन्देह हो जाना चाहिए। X-Ray से अर्वुद का

निश्चय होता है। बडी आयु मे ग्रीवा के पश्चिम भाग मे दर्द हो, ग्रीवा की चेष्टा मे दर्द हो तो Disc-Protrusion या Neurofibroma (नाडी अर्बुद) का सन्देह करे। सुषुम्ना काण्ड के अन्दर की झिल्ली Ependyma में होने वाले अर्बुदो को Glioma कहा जाता है अधिकत ये Ependymoma होते है। ये बहुत धीरे-धीरे बढते है। सुषुम्ना के निचले सिरे या Cervico-thoracic प्रदेश मे होते हैं इनके कारण सुषुम्ना के दब जाने से (एक जाघ मे निर्बलता और स्तब्धता का लक्षण होता है। बाद मे कुछ-कुछ Brown Sequard Syndrome (एक ओर Anaesthesia दूसरी ओर—Paralysis तथा Hyperaesthesia) भी होता है।

(६) वृद्धावस्था सुलभ पृष्ठ वशास्थि रोग (Spondylosis **या** Hypertrophic Spondylitis, Spondyl-Vertebra)

वृद्ध व्यक्तियो की अधिकत कटिप्रदेशीय और कभी-कभी ग्रीवाप्रदेशीय या पृष्ठप्रदेशीय कसेरुओ के बीच की Discs के पीछे की तरफ बढ जाने या उनमे Osteophyte Formation हो जाने से कसेरुओ के बीच का सोत तग हो जाता है एव सुषुम्ना या नाडी मूल दब जाते हैं। जिससे गृध्रसी शूल का रोग तथा कटिप्रदेश मे शूल या कन्धे और ऊर्ध्व बाहुओ मे शूल होने का रोग हो जाता है जो हिलने से बढता है। रीढ की हड्डी मे स्तब्धता भी होती है। ग्रीवा मे रोग हो तो ग्रीवा की चेष्टा सीमित हो जाती है। टागो मे Spastic Paraplegia का लक्षण होता है। किसी एक बाहु या दोनो बाहुओ मे स्तब्धता का लक्षण हो सकता है। कभी चोट लगी हो तो इस रोग का निश्चय करना चाहिए।

सुषुम्ना काण्ड के रुग्ण होने का प्रधान लक्षण—उरुस्तम्भ (Paraplegia)

सुषुम्ना काण्ड के उपर्युक्त रोगो मे ऊपर से उतरने वाले चेष्टा सूत्रो (Pyramidal Tract) के ग्रस्त हो जाने से हाथ-पाव की मासपेशियो पर मस्तिष्क का नियत्रण उठ जाता है। जितना ये सूत्र अधिक रोगग्रस्त होते जाते है उतना शाखाओ पर नियत्रण निर्बल होता जाता है। शाखाओ मे २ प्रकार की मासपेशिया हैं (१) प्रसारक (Extensors), (२) सकोचक (Flexors)। पैरो मे भी जो मासपेशिया उन्हे तलुए की तरफ मोडती हे वे प्रसारक होती हे, जो पैरो को ऊपर पाद पृष्ठ की तरफ झुकाती हे वे सकोचक (Flexors) होती है। शाखाओ मे उत्पन्न हुई यह निर्बलता सकोचक मासपेशियो मे विशेष होती है। इस प्रकार पहलेपहल रोगी को अपने हाथो, पैरो को सकुचित करने मे कठिनता प्रतीत होने लगती है। अर्थात् पैरो का Dorsiflection कुछ कठिनता से होता है। इसके बाद टागो को सकुचित करने मे कठिनता होती है।

शाखाओ मे निर्बलता की वृद्धि के साथ-साथ मासपेशियो मे स्तम्भ (Tone) की वृद्धि हो जाती है। प्रसारक मासपेशियो मे सकोचक मासपेशियो की अपेक्षा स्तम्भ प्रबल होता है। अत हम यदि रोगी की शाखाओ को सकुचित करना चाहे तो उसकी प्रसारक मासपेशियो मे स्तम्भ के होने के कारण ऐसा करना कठिन होता है। Pre Rolandic (Fissure of Roalndo के आगे के) Area से प्रारम्भ होकर नीचे सुषुम्ना काण्ड के Anterior Horns तक आने वाले चेष्टा (Pyramidal) सूत्रो के ऊपर के नियत्रण के कम हो जाने पर, ऊपर Brain Stem के Nuclei से आरम्भ होकर नीचे Anterior Horns तक आने वाले Extra Pyramidal Tracts के सूत्रो के द्वारा शाखाओ की मासपेशिया सदा स्तम्भ की अवस्था मे रहती है। इस अवस्था को उरुस्तम्भ की प्रथम अवस्था या स्तम्भावस्था (Paraplegia in Extension) कहते है। ऐसी अवस्था मे टागो मे सकोच (Flexion) के कम होने से जमीन से टागो को उठाने मे कठिनता होती है। रिक्शा, टागे, गाडी आदि पर चढने मे भी कुछ कठिनता होने लगती है। टागो के सीधा तथा स्तब्ध रहने से अगूठा जमीन के साथ चोट खाने लगता है। दोनो टागे स्तब्ध ही नही परस्पर समीपस्थ (Adducted) भी हो जाती है। इस अवस्था मे Tendon Reflexes तीव्रतर हो जाते है, Abdominal Reflex लुप्त हो जाता है Plantar Reflex ऊपर को हो जाता है, (जिसके Flexor होने पर भी उसे Extensor कहते है)।

सुषुम्ना काण्ड के जिस ओर के खण्ड मे रोग होता हे उधर की टाग मे पहले उरुस्तम्भ होता है और बाद मे यदि उधर के ऊपर जाने वाले सज्ञावाही सूत्र समूहो पर भी दबाव पड जाय तो ग्रस्त खण्ड से सबन्धित दूसरी ओर की त्वचा मे स्पर्श, वेदना तथा शीतोष्ण की प्रतीति कम हो जाती हे। इस ग्रस्त हुए खण्ड से नीचे के Cutaneous Reflexes भी लुप्त हो जाते है। गहरे सज्ञावाही सूत्र समूह के दब जाने से जिधर रोग होता है उधर की टाग मे स्थिति सज्ञा (Postural Sensation) कम हो जाती हे। जब सारे खण्ड पर ही दबाव बढ जाता है तब दोनो टागो मे स्तब्धता आ जाती है तथा सज्ञानाश का लक्षण भी दोनो ओर (Bilateral) हो जाता है तथा तब मल-मूत्र पर नियन्त्रण भी शिथिल हो जाता है (Loss of Sphincter Control)। सुषुम्ना काण्ड के जिस प्रदेश पर दबाव पड जाता हे उसके

नीचे के भाग मे सुपुम्ना द्रव मे प्रोटीन बढकर ३ प्रतिशत तक हो जाता है (नार्मल २%)।

कुछ काल बाद सुपुम्ना काण्ड के रोग के बढ जाने पर जब ये Extra Pyramidal Tract के सूत्र भी रोग ग्रस्त होने लगते है कि जिनके द्वारा शाखाओ की प्रसारक मासपेशिया ऊपर Brain Stem के साथ सम्बन्धित थी तो इनका स्तम्भ कम होने लगता है। अब सकोचक मासपेशियो का स्तम्भ जो कि Spinal Reflex Arcs के ऊपर निर्भर हे अधिक स्पष्ट प्रतीत होने लगता है जिससे एक तरफ तो Knee तथा Ankle Jerks जो प्रसारक मासपेशियो की स्तब्धता का सूचक होते हे लुप्त हो जाते हे और दूसरी ओर टागे, जानु पर तथा वक्षण पर ऊपर की ओर सकुचित हो जाती हे अर्थात् वे निर्वल, स्तब्ध तथा सकुचित दीखती हे। इस अवस्था मे टागो को फैलाने मे बल लगाना पडता है, फैला भी दे तो वे सकुचित हो जाती है। इस अवस्था को सकोच युक्त उरुस्तम्भ (Paraplegia in Flexion) कहते है। प्रारम्भ मे स्तब्धता युक्त उरुस्तम्भ की अवस्था मे टागो मे किसी प्रकार का विक्षोभ आ पडने पर ही यह स्तब्धता युक्त सकोच (Flexor Spasm) होता है। धीरे-धीरे बाद मे लगातार ही टागे सकुचित अवस्था मे रहने लगती हे। इसका कारण इन सकोचक मासपेशियो मे स्तम्भ Spasticity या Tone) का बढना है इसमे सन्देह नही। इस अवस्था मे सकोचक मासपेशियो मे होने वाले Jerks जैसे Hamstring Jerk बना रहता है।

सज्ञा सम्बन्धी लक्षण

अर्वुद आदि के कारण Spinothalamic सूत्र समूह के दब जाने से दूसरी ओर के जिस प्रदेश से वहा सज्ञावाही सूत्र आते है उसमे दर्द का लक्षण होता है या दोनो ओर टागो मे वहा दर्द का लक्षण पहले होता हे। क्योकि दर्द (Pain) की सज्ञा के वहन करने वाले सूत्र पहले दबते हे, इसलिये दर्द (Root Pain) का लक्षण पहले होता हे।

उरुस्तम्भ की चिकित्सा

आघात जनित उरुस्तम्भ की चिकित्सा—पृष्ठ वशास्थि मे सहसा प्रवल Flexion हो जाने से सुपुम्ना काण्ड आहत होता हे अत रोगी की कमर को १-१½ मास तक के लिये पूर्ण Extension की अवस्था मे रखना चाहिये। रोगी जहा गिरा हो वहा से हस्पताल तक भी उसे मुह के भार लिटाकर ही ले जाना चाहिये। रीढ की हड्डी के जरा मुडने से भी सुपुम्ना काण्ड आहत हो सकता है। अत उसे सीधा रखने का यत्न करना चाहिये। मूत्र-रोध हो तो Cathater को डालकर रखना चाहिए।

कसेरुओ के बीच की किसी टिकिया का स्थान भ्रंश Prolapsed Disc—

कमर की तीव्र शूल की शान्ति के लिये वेदना शामक (Analgesic) औषधि जैसे Heroin या Aspirin आदि का प्रयोग करना चाहिये। रोगी को सीधे विस्तर पर कमर के भार सीधा (कुछ Extension मे रखकर) लिटाना चाहिये। छ सप्ताह इस प्रकार लिटाने तथा वेदना शामक औषधि का प्रयोग जारी रखने से लाभ हो जाता है। बैठने के स्थान तथा उरुओ के नीचे Electric Pad रखने से बहुधा आराम मिलता है। रोग ग्रस्त प्रदेश पर Diathermy के या साधारण सेक से भी कुछ लाभ प्रतीत होता है।

अनेकानेक टिकियो मे क्षीणता (Degeneration) के होने के कारण Spinal Nerves के दब जाने से जो दर्द हुआ करता है (Spondylosis) वह सिकाई तथा मालिश से ठीक हो सकता हे। Deep-X-Ray से भी इसे पर्याप्त लाभ होता है। साधारण उरुस्तम्भ मे जघाओ पर खुश्क मालिश करनी चाहिये तथा चाहिये कि दूसरा आदमी उन्हे हिलाये डुलाये अर्थात् उनमे Passive Movements करे। रोगी समर्थ हो तो स्वय भी उन्हे हिलाये डुलाये।

पृष्ठवश अर्वुद को Laminectomy का शल्यकर्म करने से पर्याप्त लाभ हो जाता हे।

पृष्ठ वश मे कैसर

दर्द के लिये Aspirin १० ग्रेन, Pyramidon ५ ग्रेन, Heroin १/१२, १/६ ग्रेन मिलाकर शाम-सवेरे १-१ मात्रा देनी चाहिये। X-Ray Irradiation से कुछ लाभ अवश्य होता है। Laminectomy के शल्यकर्म से भी लाभ होता हे।

पृष्ठ वश मे फिरग रोग

इसके लिये *Proc Penicillin* का आठ दिन तक प्रयोग करना चाहिये। जिसके पहले २-३ सप्ताह तक Pot Iod १० ग्रेन मात्रा मे दिन मे तीन बार देना लाभदायक होता है।

पृष्ठ वश के क्षय रोग मे

पृष्ठ वश को कुछ मास के लिये स्थिर कर देने तथा Antibiotic चिकित्सा से लाभ हो सकता हे।

सुषुम्ना काण्ड के पश्चिम तथा बाह्य स्तम्भो मे क्षीणता (Subacute Combined Degeneration of the Spinal Cord)

उसके लिये प्रति दूसरे दिन Vit B , १०० माइक्रोग्राम मात्रा मे मास द्वारा देना चाहिये ।

शुश्रूषा

इस रोग मे रोगी के लेटे रहने से उसकी कमर मे शय्याव्रण होने का भय रहता है। अत रोगी को "स्पज रवर वेड" पर लिटाना चाहिये तथा लगातार २-३ घण्टे से अधिक एक पार्श्व पर नही रहने देना चाहिये। शरीर के जिन प्रदेशो पर दवाव पडता हो उनकी Rings, गद्दियो या तकियो के द्वारा रक्षा करनी चाहिये। Bedsore हो जाय तो उसके मृत भाग को निकाल Drainage लगाये Eusol Pack करे, प्रोटीन प्रधान भोजन देवे। शाखाओ की स्थिति या आकृति की रक्षा के लिये रेत की थैलियो का प्रयोग किया जा सकता है, जिससे उनमे विषमता (Contracture) उत्पन्न न हो। पीठ को दिन मे दो वार सावुन से धोना चाहिये तथा मेजिकल स्पिरिट से धोकर उस पर Talcum Powder लगाना चाहिये। शरीर के पोषण को वढाने वाली या Protein Anabolism को वढाने वाली औषधियो Norethandrolone (Nilevar Searle) १० मिलि० २ वार या Nandrolone (Durabolin) २५ मिलि० मास द्वारा सप्ताह मे १ वार प्रयोग करे।

जव मूत्र पर नियत्रण नही रहता तव स्वय लगे रहने वाले Catheter को Clip लगाकर मूत्राशय मे रखना चाहिये तथा ४-४ घन्टे पर उसे खोलकर मूत्राशय को साफ कर देना चाहिये। साथ ही मूत्र मे सक्रमण की रोकथाम के लिये उचित Antibiotic (Sulphadimidine ५ ग्रा० २ वार Furadantin ५० मि० ३ वार) का प्रयोग जारी रखना चाहिये।

मलवन्ध के लिये दूसरे दिन ½, १½ पा० सेलाइन की वस्ति देनी चाहिये और फिर Air Cushion वाला रवर का वेड पेन जव तक जल आता रहे नीचे रखना चाहिये। या Dulcolax Suppository रखनी चाहिये।

आयुर्वेद में उरुस्तम्भ

चरक ने (चि० अ० २७) कहा है गुरु-स्निग्ध शीत गुण आहारो के अति सेवन से यदि कफ दोष और मेदो-वृद्धि हो जाय विशेषत. जघाओ मे नीचे की ओर जाने वाले स्रोतो (सिराओ व नाडियो) मे इनकी वृद्धि हो तो इनके कारण उनमे वायु की गति अवरुद्ध हो जाती है। चेष्टा के अवरुद्ध होने से जघाओ मे स्तब्धता, गुरुता, स्थिरता आदि लक्षण प्रकट हो जाते हैं। सज्ञा के अवरुद्ध हो जाने से जघाओ मे सुप्ति, स्फुरण, तोद, भेद, दाह आदि लक्षण हो जाते हैं। इसे उरुस्तम्भ कहते हैं।

सुश्रुत (चि० अ० ५) ने कहा है कि यदि अधिक बढे हुए कफ तथा मेदो धातु के साथ वायु का प्रकोप जघाओ मे हो जाय तो उनमे स्तब्धता, गुरुता आदि के लक्षण हो जाते हैं जिसे उरुस्तम्भ कहते है।

इस प्रकार सुषुम्ना काण्ड के भीतर जो Microglial Proliferation की विकृति इस रोग मे पाई जाती है जिससे इसे Myelitis कहा जाता है उसे आयुर्वेद मे सुषुम्ना काण्ड की कफ मेदोवृद्धि कहा गया प्रतीत होता है तथा कफवर्धक कारणो को इस रोग का कारण कहा है।

स्पष्ट है कफ मेदःशोषक या रूक्षण लंघन स्वेदन चिकित्सा इस रोग के लिए कुछ लाभदायक हो सकती है। मधुर, अम्ल, लवण रस तथा गुरु शीत स्निग्ध गुण आहारो की मात्रा वहुत कम कर देनी चाहिए। अधिकत' पुराने चावल, जौ, सावक, कोदो आदि हल्के धान्यों तथा लघु रूक्ष गुण, करेला, परवल, सुहाजना, वथुआ आदि शाको तथा चिकनाई रहित दूध या मट्ठे का और मौसमी फलो का, विटामिनो का सेवन करना चाहिये, भोजन मे खाण्ड तथा नमक का सेवन वहुत कम कर देना चाहिये। मासाहारी रोगी को जागलमाँस या पक्षी माँस का विना घी के सेवन कराना चाहिये।

उरुस्तम्भ या सुषुम्ना सम्वन्धी शोथ के लिए उपयोगी प्रयोग निम्नलिखित हैं :—

(१) शिलाजतुयोग (यो र) शिलाजीत या उसकी गोली को दशमूल क्वाथ के साथ दें।

(२) पिप्पली योग या शुण्ठीयोग (यो र) पिप्पली चूर्ण या शुण्ठी चूर्ण या षडूषण चूर्ण अर्थात् पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चित्रक, सोठ, तथा मरिच समभाग के चूर्ण का प्रयोग दूध के साथ कराए।

(३) वृद्धदार्वादिचूर्ण (ग नि) विधारा तथा सोठ समभाग का चूर्ण ३ माशा मात्रा मे दें।

(४) त्रिफलादिचूर्ण (यो र) त्रिफला, कटुकी, चारो समभाग का चूर्ण ३ माशा मात्रा मे गर्म जल से दें।

(५) पुनर्नवादि क्वाथ (वैद्य जीवन) पुनर्नवा, सोठ, देवदारु, हरीतकी, भल्लातकशुद्ध, गिलोय, दशमूल समभाग का क्वाथ दें।

(६) चतुर्मुख रस (भै र) रससिन्दूर २, लोह, अभ्रक, ४-४ भाग, स्वर्ण १ भाग मिलाकर घृतकुमारी, त्रिफला, तुलसी, ब्राह्मी इनके स्वरसो की भावना देकर बनाए गोले को एरण्ड पत्रो मे लपेटकर अनाज के ढेर मे ३ दिन रखें फिर इसे चूर्ण कर इसकी ३-४ रत्ती मात्रा को त्रिफला चूर्ण के साथ शहद से चटाएं।

(७) रास्ना गुग्गुलु (ग नि.) रास्ना ५, गुग्गुलु ६। तोला घृत से मिला कर कूट लें २-३ माशा गर्म जल से दें।

(८) शेफालिका क्वाथ (वृ.नि.र.) सभालू पत्र क्वाथ पिप्पली चूर्ण के साथ दें।

(९) नारायणतेल (शा ध) खाने तथा मलने से लाभ होता हे।

१०) पिप्पल्यादि क्वाथ (भा प्र.) पिप्पली, पिप्पलीमूल शुद्धभल्लातक समभाग मिलाकर १ तोला का क्वाथ बनाकर पिलायें।

मस्तिष्कार्बुद Intracranial Tumours

मस्तिष्क मे अर्वुद का होना कोई दुर्लभ रोग नही है। इगलैड मे १०० व्यक्तियो की मृत्यु मे से एक मृत्यु का कारण यही रोग है। अमरीका मे हर साल ५ हजार मृत्यु इस रोग के कारण होती है। ससार भर की मृत्युओ मे १% मृत्यु इस रोग के कारण होती है। घातक (Malignant) और निरुपद्रव (Benign) दो प्रकार के ये होते है। घातक अर्वुद दो प्रकार के होते हैं। एक प्रारम्भिक (Primary), दूसरे उपद्रव रूप या Secondary Malignant किस्म के।

प्रारम्भिक (Primary) घातक अर्वुद (Tumours) (Glioma) —मस्तिष्क के अन्दर उसके स्नायु तन्तु Glial tissue या Neuroglia मे ये होते है, Neurones मे नही होते तथा वडो की अपेक्षा वालको मे अधिक होते है। इन अर्वुदो को Glioma कहते हैं, जो १०-२० वर्ष की आयु तक तो Cerebellum मे विशेषत (Infratentorial) होते और इसके वाद ४५-६० वर्ष की आयु के लगभग ऊर्ध्व मस्तिष्क या Cerebrum मे अधिक होते हे। ये १४ से ५० की आयु मे होते है, ये मन्द गति से वढते हे पर इनमे से कुछ एक वडी शीघ्रता मे वढने वाले एव शीघ्रमारी होते है। लगभग ७० प्र० श० अर्वुद ऊर्ध्व मस्तिष्क मे ३०% Tentorium से नीचे होते है। ऊर्ध्व मस्तिष्क मे के सेलो की वृद्धि तथा वालको और युवको मे पाये जाने वाला Neuroglia से होने वाला एक Glioblastoma Multiforme है जो एक वर्ष के अन्दर-अन्दर घातक हो जाता है। Epilepsy, Strokes तथा Dementia के लक्षणो से इसका सन्देह होता है। दूसरा वाल्यावस्था मे Cerebellum के Vermis मे होने वाला Medulloblastoma (Medulloblast नामक सेलो की अति वृद्धि से होने वाला) है जो उपर्युक्त अर्वुद की अपेक्षा कम होता है। ये दोनो प्रकार के घातक अर्वुद शीघ्र फैलते (Metastasis करते) वढ जाते, एव घातक हो जाते है।

तीसरा एक और Glioma जो वहुत अधिक होता है तथा २० वर्ष से ऊपर की आयु मे पाया जाता है, Neuroglia के Fibrillary Astrocyte (Star Shaped) सेलो की अति वृद्धि से होता है, वहुत मन्द गति से वढता है। इसमे Glioma के समान रक्त की मात्रा भी अधिक नही होती पर अन्त मे यह Benign Astrocytoma भी Glioblastoma वनकर घातक होता है, इसे Cerebral Astrocytoma कहते हैं। यह Temporal व Frontal lobes मे होता हे। मस्तिष्कार्वुदो मे यह १० प्र० श० पाया जाता है। Cerebellar Astrocytoma भी इसी प्रकार का होता है पर इस प्रकार घातक नही होता, यह वालको मे पाया जाता है। Astrocytoma मे Metastasis का दोप नही है। चौथा Cerebral Ependymoma उस Glioma को कहते है जो Ventricles की दीवार की सूक्ष्म झिल्ली या Ependyma मे होता है तथा Ventricles मे अवरोध उत्पन्न करता है। यह भी ३ वर्ष तक घातक होता है। मस्तिष्कार्वुदो मे यह २ प्र० के लगभग होता है। चतुर्थ Ventricle मे यह हो तो घातक नही होता। इस प्रकार ये घातक मस्तिष्कार्वुद या Glioma सव मस्तिष्कार्वुदो मे ४० प्र० श० के लगभग होते है। इनमे से Astrocytoma सवसे अधिक होता, Glioblastoma या Spongioblastoma Multiforme उससे कम, Medulloblastoma उससे कम और Ependymoma उससे भी कम पाया जाता है।

आगन्तु घातक अर्वुद (Metastatic Tumours या Secondary Malignant Tumours of the Brain) भी मस्तिष्कार्वुदो मे २० प्र० श० के लगभग होते है। ये वहुधा फुफ्फुस कैन्सर (Bronchial Carcinoma) के उपद्रव रूप मे होते है। यहा तक कि यदि मस्तिष्क मे अर्वुद के लक्षण हो और रोगी कृश होता जा रहा हो तो फुफ्फुस मे प्रसुप्त रूप मे विद्यमान कैन्सर का सन्देह हो जाना चाहिए। स्तन ग्रन्थि, प्रोस्टेट ग्रन्थि तथा आमाशय या मलाशय मे कैंसर के रक्त द्वारा उपद्रव के रूप मे भी यह अर्वुद हो सकता है। इस प्रकार आधे से अधिक

मस्तिष्कार्बुद शीघ्र तथा देर मे घातक किस्म के (Malignant) पाये जाते हे जो कि एक वडी शोचनीय वात हे।

निरुपद्रव(Benign) अर्वुद प्रधानत· मस्तिष्क मे ये होते हैं :—

Meningioma, Dural Endothelioma, Meningeal Fibroblastoma —जो अर्वुद Duramater की महाशिराओ (Sinuses) की दीवार मे विद्यमान Arachnoid Mater के प्रवर्धनो (Villi) या Granulations के सेलो की अति वृद्धि से बनते है उन्हे Meningioma कहते हैं। स्पष्ट है कि ये मस्तिष्क की Sinuses या आवरणो की शिराओ के Duramater के साथ प्रवल रूप से सम्वन्धित होते हैं। मस्तिष्कावरणो की रक्तवाहिनियो से ही इन्हे रक्त आता जाता है। ये Superior Sagittal, Lateral तथा Cavernous Sinuses मे विशेप होते हैं। स्पष्ट है, ये मस्तिष्क के अन्दर न होकर उसके पृष्ठ पर होते हैं परन्तु उसके वाद देने का कारण वन जाते है। ये युवावस्था (२० से ५०)मे होते हे। इनकी वृद्धि वहुत धीरे-धीरे होती है। इसीलिये इनके कारण विशेषत स्थानिक लक्षण होते हे और वे भी क्रमश वढते है, सहसा नही। ये वढकर अपने ऊपर की कपालास्थि मे भी प्रसरण कर जाते है जिससे वह वहा मोटी हो जाती है (Hyperostosis) इनमे रक्त की मात्रा अधिक होती है जिससे वहा कपालास्थि मे भी रक्तवाहिनियो की मात्रा वढ जाती है। Tentorium के नीचे की अपेक्षा ऊपर के मस्तिष्क मे ये अर्वुद अधिक पाये जाते है। मस्तिष्कार्बुदो मे ये १५ प्र० श० होते है। इनके कारण आक्षेप या Fits होने का लक्षण होता है।

Neurofibroma, Neurinoma, Acoustic Neurofibroma —

किसी मस्तिष्क नाडी के अधिकत अष्टम मस्तिष्क नाडी (Auditory Nerve) के खोल मे से Cerebello Pontine angle के प्रदेश मे उत्पन्न होकर यह वहुत धीरे-धीरे वढता है तथा ३०-५० वर्ष की आयु मे पाया जाता हे। इसे Acoustic Neurofibroma कहते है। वढकर यह अन्दर के Auditory Meatus को दवा देता है। इसके वढने से आठवी नाडी तो दवती ही हे पाचवी नाडी भी दव सकती है, सातवी नाडी भी कभी-कभी दव जाती है। मस्तिष्कार्वुदो मे यह १० प्र० श० पाया जाता हे। इसीलिये इसके होने पर वाधिर्य, कर्णघोप (Tinnitus) तथा शिरोभ्रम (Vertigo) के लक्षण होते हे और इनके वाद पांचवी नाडी के क्षेत्र मे Paraesthesia या चमचमाहट होने का लक्षण हो सकता है। सातवी नाडी के दवने से चेहरे के एक ओर स्तम्भ (Facial Spasm) या विक्षोभ तथा निर्वलता का लक्षण होता है। X-Ray द्वारा अन्दरला Auditory Meatus खाया हुआ दीखता है।

Pituitary ग्रथि के अर्वुद—Pituitary या Hypothalamic Adenoma

मस्तिष्कार्वुदो मे से १० प्रनिशत इस ग्रन्थि मे आते हैं। इस ग्रन्थि का अग्रिम खण्ड प्रारम्भिक गले (Pharynx) मे से विकसित हुआ है। यह एक ग्रन्थि का सा कार्य करता है एव इसका सूक्ष्म रस सीधा रक्त मे प्रवेश करता है। इसलिये इसमे होने वाले अर्वुद को ग्रन्थि अर्वुद या Adenoma कहते है। इसका पिछला खण्ड (Posterior Lobe) मस्तिष्क के तीसरे Ventricle के फर्श मे से विकसित होता है। इसीलिये यह Nervous और Epithelial अवयवो से बना हुआ है। इसका स्राव सम्भवत Cerebrospinal द्रव मे प्रवेश करता है। अग्रिम खण्ड मे होने वाला Adenoma एक सुलभ रोग है, २०-२५ वर्ष से ऊपर की आयु मे यह होता है तथा वहुत धीरे-धीरे वढता है। यह कपालास्थियो के एक विशेप कमरे मे रहता है और Diaphragma Sella से सीमित रहने के कारण यह ऊपर की ओर भी वढ नही सकता। इसीलिये Sella Turcica की अस्थि को खा कर नीचे की ओर वढता है। इसीलिये Skiagram मे Sella Turcica आगे और नीचे की ओर वढा हुआ या फैला हुआ दीखता है। यह अर्वुद Optic Chiasma के ठीक पीछे की ओर होता है। अत उस पर इसका दवाव पड जाने से दोनो Retinae के अन्दर की ओर या नाक की ओर से आने वाले दृष्टिवाही सूत्र दव जाते है जिससे स्पष्ट है कि Upper Temporal या Bitemporal Hemianopia अर्थात् एक या दोनो दृष्टि क्षेत्रो के वाह्य भाग मे अन्धेरा-सा छा जाता है। वाद मे इस दवाव से एक या दोनो ओर Primary Optic Atrophy का लक्षण भी हो सकता है। उपर्युक्त रोग का आरम्भ Bitemporal Para Central Scotomata (दृष्टि क्षेत्र मे अधकार विन्दु) से होता है। यह अर्वुद अधिकत अग्रिम खण्ड के Chromophobe सेलो मे होता है। इसके कारण इस ग्रन्थि के Acidophil तथा Basophil सेल दव जाते है एव उनके स्राव कम हो जाते हे। परिणामत Hypopituitarism या पिट्यूटरी ग्रन्थि की मन्दता के लक्षण होने लगते है अर्थात् Thy-

roid, Adrenals और Gonads के स्राव मन्द हो जाते हैं। जिससे पुरुष युवक मे मैथुनेच्छा व पुंस्त्वशक्ति का ह्रास होता है। कक्ष चेहरे तथा गुप्त प्रदेश मे बाल लुप्त हो जाते है, स्त्री मे यह रोग हो तो आर्तव नाश (Amınorrhoea) का लक्षण हो जाता है जो Ovarian Hormone के देने से ठीक नही होता। स्त्री-पुरुष दोनों मे त्वचा का रग फीका, कुछ पीत वर्ण लिये होता है। Normocytic Anaemia के कारण ऐसा नही होता। पर त्वचा मे Melanin की ठीक उत्पत्ति न होने से यह पाण्डुता होती है। Capillary Vasoconstriction भी इसका कारण प्रतीत होता है। अर्थात् इस पाण्डुता को Pituitary Anaemia कहा जा सकता है यद्यपि इसे लेखक Pituitary Cachexia कहते है। इन व्यक्तियों मे साधारण सक्रमण (Infection) या आघात के लगने से मूर्छा (Coma) का भी लक्षण हो सकता है क्योंकि इनके रक्त मे खाण्ड की कमी Hypoglycaemia का लक्षण सुगमता से हो जाता है। इस रोगी के ये सब लक्षण Corticosteroid (१२ ५-५० मिलि० दैनिक) चिकित्सा से ठीक हो जाते हैं। इसी प्रकार Androgen के देने जैसे Methyl Testosterone (५-१० मिलि० दैनिक मुख द्वारा देने से Protein Anabolism प्रबलता से होता है और ये लक्षण शान्त हो जाते है।

Eosinophilic Adenoma —Acidophil सेलो से होने वाला अर्बुद कम होता है तथा जब होता है तो उपर्युक्त अर्बुद की अपेक्षा आकार मे छोटा होता है अर्थात् उसके दबाव से नेत्र सम्बन्धी लक्षण जो ऊपर कहे गये हैं विशेष नही होते। इस अर्बुद के कारण इस ग्रन्थि के सूक्ष्मरस (Growth-hormone) की उत्पत्ति अधिक होती है अर्थात् Hyperpituitarism के लक्षण होते है, छोटी आयु मे जब अस्थियो का विकास हो रहा होता है यह रोग हो तो Gigantism का रोग हो जाता है। यद्यपि मासपेशियो मे उचित वृद्धि न हो सकने से वह निर्बल रहता है। युवावस्था मे रोग हो तो Acromegaly का रोग हो जाता है। अर्थात् हाथ, पाव, कान, ओष्ठ, हनु, भौहे आकार मे बडे हो जाते है, त्वचा मोटी तथा भद्दी हो जाती हैं।

Basophil Adenoma— Basophil सेलो मे होने वाली यह अति वृद्धि बहुत कम होती है। युवको मे कभी-कभी होती हुई पाई जाती है। यह अर्बुद आकार मे छोटा होता है। इसमे Cushing Syndrome मे कहे गये लक्षण होते हैं जो Adrenal Cortex की अधिक सक्रियता अर्थात् Glucocorticoids की अधिकता के कारण होते है।

मस्तिष्कार्बुद के लक्षण —मस्तिष्कार्बुद के मस्तिष्क मे दबाव के कारण एक तो स्थानिक (Local या Focal) दूसरे व्यापक या सामान्य (General) लक्षण हुआ करते हैं। स्थानिक लक्षण स्थानानुसार इस प्रकार होते हैं

मस्तिष्काग्रिम खण्ड के अग्रिम भाग (Prefrontal Lobe) —अग्रिम खण्ड का अग्रिम भाग बुद्धि, वृत्ति, स्मृति, ध्यान, एकाग्रता, विवेक कार्यारंभ करने की शक्ति, निर्णय लेने की शक्ति, आवेशो पर नियन्त्रण रखने की शक्ति आदि मानसिक गुणो का तथा भाषण का स्थान है इसमे अर्बुद विशेष होता है और उसका दुष्प्रभाव दोनो ओर हो तो मनुष्य की सामान्य समझ जाती रहती है जिसमे उसका स्वभाव वा व्यक्तित्व ही बदल जाता है। वह अपने दैनिक कर्त्तव्यो के करने मे असमर्थ हो जाता है। जिन बातो से उसे रुचि थी उनमे भी उपरत या उदासीन हो जाता है। औरो के साथ भी वह जिस शिष्टता और सभ्यता से बर्तता था वह भी जाती रहती है, जिनसे प्रेम व आदर का भाव था वह भी नही रहता, अपने शरीर व वस्त्रो को ठीक से रखने की समझ भी उसे नही रहती, रात को मूत्र और कभी मल भी बिस्तरे पर हो जाता है (Incontinence) क्रमश वह भावहीन, बुद्धिहीन और मूर्ख होता जाता है (Dementia) परिचित मनुष्यो के तथा स्थानो के नाम तक भूल जाता है। फिर उसे काल दिशा और व्यक्तियो के पहचानने मे भी भ्रम होने लगता है (Disorientation) तथा स्थान का विचार किये बिना ही निर्लज्ज सा होकर वह मल-मूत्र त्यागने लगता है, इस भाग मे अर्बुद के होने से वह चेष्टाओ मे असमर्थ हो जाता है, अर्थात् रोग एक ओर हो तो उससे सम्बन्धित हाथ मे वह चेष्टा को जो उसे करने को कही जाय नही कर सकता या मन्द रूप से और भद्दे रूप से करता है। दूसरे हाथ से वह उसे ठीक से करता है। अर्थात् रोगी कहे को ग्रहण तो करता है, कहे को कर भी सकता है, पर ग्रहण करने और चेष्टा करने के मस्तिष्क गत भागो को जोडने वाले भाग मे रोग होने से वह चेष्टा मे असमर्थ हो जाता है। (Apraxia) ऐसे व्यक्ति मे Grasping Reflex का लक्षण होता है अर्थात् उसकी दूसरी ओर की हथेली मे कोई वस्तु रखी जाय तो वह उसे भीचकर पकड लेता है। अर्बुद का दुष्प्रभाव दोनो ओर के अग्रिम खण्डो पर हो जाय अर्थात् Corpus callosum के द्वारा वह दूसरी ओर भी फैले तो चेष्टाहीन होकर पडा रहता है (Catatonia) अर्बुद के कारण Orbital Lobule दब जाये तो गन्ध-

नाडी के दब जाने से उस ओर गन्धनाश (Anosmia) हो जाता है। दृष्टिनाडी (Optic N) दब जाय तो उस ओर Optic atrophy तथा दृष्टिमांद्य (Amblyopia) का लक्षण हो जाता है। हो सकता है उस ओर दृष्टिमांद्य हो, दूसरी ओर Papilloedema हो (Foster Kennedy's Syndrome) अग्रिम खण्ड में Glioma तथा Secondary कैन्सर और Meningioma हो सकता है।

अग्रिम खण्ड के पश्चिम भाग Post Frontal या Ascending Frontal Convolution या चेष्टा क्षेत्र Motor Cortex मे अर्बुद (या Arterial Thrombosis) हो तो प्रधानत आक्षेप (Convulsions) के होने का लक्षण होता है जो या तो दूसरी ओर के चेहरे से आरम्भ हो फिर उधर के ही हाथ और पाव मे जाता है या उधर के हाथ के अगूठे से या उधर के पैर के अगूठे से आरम्भ होकर फिर क्रमश चेहरे मे जाता है। स्पष्ट है कि पहली अवस्था मे अर्बुद इस Convolution के तले मे होता है अर्थात् Sylvian Fissure के पास है ऐसा समझना चाहिए। दूसरी अवस्था मे यह इस Convolution के ऊपर के हिस्से मे हैं, यदि हाथ मे आक्षेप हो तो रोग इस Convolution के मध्य मे होता है। हो सकता है कि आक्षेप के दौरान मे रोगी अपनी होश मे रहे, हो सकता हैं कि वह बेहोश होकर गिर जाए, उसका सिर तथा आखे अर्बुद से विपरीत दिशा मे फिर जाये। इस Jacksonian Epilepsy के मन्द एव तीव्र रूप मे होने से इस अर्बुद के छोटे-बडे होने का अनुमान भी लगाया जा सकता है। जब यह अर्बुद केवल विक्षोभ का कारण होता है तभी यह आक्षेप का लक्षण होता है। पर यदि यह अर्बुद इस Convolution के Cortex का विनाशक होने लगे तो उस (Cortex) मे विद्यमान केन्द्रो के एक दूसरे से दूर होने से एकाग घात Monoplegia का लक्षण होता है। यदि इस अर्बुद का दुष्प्रभाव Corona Radiata पर हो तो वहा चेष्टा सूत्रो के समीप-समीप आ जाने से एक बाहु या जाघ की शाखा पर घात (Paralysis) विशेष होता दूसरी शाखा पर हल्का-सा असर होता है। हो सकता है कि Meningioma दोनो गोलार्धो के बीच के Dura मे अर्थात् Falx Cerebri मे हो जिससे आमने-सामने दोनो Motor Areas के ऊपर के सिरे दब जाय तो दोनो टागो मे स्तब्धतायुक्त पक्षाघात हो जाता है। पर दोनो बाहु ठीक रहते है। इस Precentral Gyrus के निचले सिरे पर अर्बुद होकर आगे की ओर बढे तो भाषण के केन्द्र (Speech Centre) के ग्रस्त हो जाने से Dysphasia या भाषण कृच्छ्रता का लक्षण हो जाता है।

सज्ञाक्षेत्र (Sensory Area या Parietal Lobe) **मे अर्बुद या** Vascular Thrombosis **हो**।—तो उनके कारण आगे के चेष्टा क्षेत्र (Motor Area) पर दबाव पड जाने से विक्षोभात्मक लक्षण हो सकते है अर्थात् आक्षेप (Convulsion या Jacksonian Epilepsy) के दौरे होते है। चेहरे से आक्षेप आरम्भ हो तो अर्बुद इस क्षेत्र के निचले भाग मे है, आक्षेप पैर से आरम्भ हो तो अर्बुद इस क्षेत्र के उपरले सिरे पर है, हाथ मे आक्षेप आरम्भ हो तो अर्बुद इस क्षेत्र के बीच के भाग मे है, ऐसा समझना चाहिए। इस स्थान के अर्बुद के कारण जो आक्षेप दूसरी ओर होते है उनमे रोगी के अन्दर उधर सुप्ति चिम-चिमाहट (Tingling) या किसी प्रकार की सज्ञा सम्बन्धी विकृति पहले होती है, हो सकता है कि दूसरी ओर पहले केवल Paraesthesia के सज्ञा सम्बन्धी ही लक्षण हो आक्षेप बाद मे शुरू हो। अर्बुद के कारण इस क्षेत्र मे विनाशात्मक प्रभाव हो तो दूसरी ओर सज्ञानाश सम्बन्धी लक्षण होते है। अर्थात् उसे दूसरी ओर के अगो की प्रतीति नही रहती। प्रत्येक Parietal Lobe के Post central gyrus मे दूसरी ओर की उथली (Superficial) सज्ञाये Spinothalamic Tract से तथा गहरी (Deep) सज्ञाये Posterior Column से प्राप्त होती है। त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रिया सज्ञाओ को तो प्राप्त करती है पर इनका सम्मिलित बोध तो हमे Cortex के द्वारा होता है। जब यह रुग्ण या नष्ट हो जाय तो दूसरी ओर से प्राप्त सज्ञाओ का मिश्रित या पूर्ण बोध व्यक्ति को नही हो सकता। एक ही आकृति के दो भिन्न-भिन्न ठोस पदार्थो की विभिन्नता को वह उधर के हाथ के द्वारा स्पर्श करके नही जान सकता (Astereognosis या Stereoanaesthesia) एक ही समय दो स्थानो पर किये स्पर्श के भेद को भी वह नही बता सकता (Two Point Discrimination) साधारणत वस्तु को स्पर्श करने से उसका सारा चित्र (Body Image) हमारे मन पर आ जाता है पर इस सज्ञा क्षेत्र के नष्ट होने से यह चित्र हमारे सामने नही आता (Agnosia) स्पर्श करने पर यह चित्र न आये तो इसे Tactile Agnosia कहते, श्रवण करने से न आये तो इसे Auditory Agnosia कहते है, देखने पर न आये तो इसे Visual Agnosia कहते है। इसी प्रकार घ्राण और स्वाद से वस्तु का ज्ञान न हो पाये तो Olfactory तथा Gustatory Agnosia भी हो सकते है। Parietal Lobe के अग्रिम खण्ड मे अर्बुद का प्रभाव हो तो क्योंकि वहा पर Retinae के उर्ध्व भाग से आने वाले सूत्र Optic Radiation के रूप मे पीछे जा रहे होते है उनके दब जाने से अर्बुद के

दूसरी ओर के आधे दृष्टि क्षेत्रो के निम्न भागो मे अधेरा सा आने लगता है अर्थात् Contra Lateral Lower Quadrantic Hemianopia का लक्षण हो जाता है। इस Parietal Lobe के पिछले भाग मे अर्बुद हो तो Optic Radiation के ग्रस्त होने से दोनो आखो के दूसरे ओर के आधे क्षेत्रो मे अधेरा आने लगता है अर्थात् Contra Lateral Total Hemianopia हो जाता है।

Temporal Lobes इसमे अर्बुद हो (या Sclerosis की प्रक्रिया हो) तो इसके कारण आक्षेप या Focal fits के दौरे होते है। और क्योकि इसके Uncinate और Hippocampal gyri मे गन्ध (Olfactory) सज्ञा तथा रस सज्ञा (Gustatory) के केन्द्र (Cortical Centres) होते है तथा इसके Upper Convolution मे श्रवण सज्ञा (Auditory) के ग्रहण करने का केन्द्र भी होता है इसलिए रोगी को इस अपस्मार सदृश दौरे के समय किसी बुरे स्वाद (Gustatory) या बुरे गन्ध की मिथ्या प्रतीति (Hallucination) होने का लक्षण रहता है। रोगी के ओष्ठो की चेष्टा से पता लगता है कि उसे कोई बुरा स्वाद प्रतीत हो रहा है। दृष्टि सम्बन्धी और श्रवण सम्बन्धी मिथ्या प्रतीतिया (Auditory Hallucinations) भी उसे हो सकती है। इन प्रतीतियो के साथ रोगी एक स्वप्न सदृश अवस्था मे चला जाता है। इसे Psychomotor Epilepsy मानस अपस्मार या मस्तिष्क विकृति जनित अपस्मार या Psychic Automatism (अनजाने व्यवहार) कहते है। इस स्वप्न सदृश अवस्था मे या मानस अपस्मार मे रोगी को विचित्र दृश्य दीखने या विचित्र शब्द सुनने प्रतीत होते है। इस अवस्था मे रोगी किसी मस्ती (Ecstacy) की अवस्था मे चला जाता या विषाद (Depression) के भाव मे थोडी देर पडा रहता है। इस प्रकार मानस अपस्मार इस खण्ड के विकारो का एक प्रधान लक्षण है।

बाये Temporal Lobe मे भाषण का केन्द्र है। इसके अगले भाग मे रोग हो तो भाषण विकृत हो जाता है, इस खण्ड के रुग्ण होने पर स्मृतिनाश का लक्षण भी होता है।

क्योकि Retinae के निचले भाग से आये दृष्टि सूत्र Temporal Lobe के पिछले भाग मे से होकर पीछे जाते है (इसलिए जिन्हे Temporal Loop of Radiation कहते है) अर्बुद से दब जाये तो Homonymous Upper Quadrant Anopia का लक्षण हो जाता है।

बाई ओर के Superior Temporal Gyrus मे विद्यमान श्रवण सज्ञा का केन्द्र (Auditory Word Area) इस अर्बुद मे ग्रस्त हो तो वह जिस शब्द को बोलता है उसे स्वय ठीक तरह सुनता समझता नही (Word Deafness या Dysphasia of receptive type या Auditory Agnosia) इसी प्रकार लेख मे देखे हुए शब्द को वह देखता व बोलता है, समझता नही (Word Blindness या Visual Dysphasia) अर्थात् वह शब्द जो बोलता, सुनता, व पढता है उसे वह समझता नही क्योकि समझने के स्थान पर ही रोग है तथा जो अन्दर समझा जाता है वही बोला जाता है अत उसमे Dysphasia का लक्षण भी होता है (इस खण्ड मे Glioma, कैन्सर, Meningioma हो सकते है)

Occipital Lobe —इसके अन्दर की ओर Calcarine Fissure के समीप Cortex मे Optic Radiation के सूत्र समाप्त होते है। इस प्रकार एक ओर के Cortex के सेल दोनो नेत्रो के दूसरी ओर के आधे दृष्टि क्षेत्रो को देखने का काम करते हैं। इसलिए यदि दाई ओर सिरे पर अर्बुद या रक्तवाहिनियो का रोग हो और उसके कारण विक्षोभ उत्पन्न हो जाय तो दोनो आखो के वामार्ध दृष्टि क्षेत्रो मे प्रकाश के चमकारे (Flashes of Light) समय-समय पर दिखाई पडने लगते हैं जिसे Jacksonian Visual Hallucination या दृष्टि सम्बन्धी मिथ्या प्रतीति का रोग कहते है। Occipital Lobe के अगले भाग मे जहा वह Temporal Lobe से सन्धि करता है ऐसा विक्षोभकारक अर्बुद हो तो ऐसी दृष्टि सम्बन्धी मिथ्या प्रतीति होती है जिसमे बहुत से मनुष्य या पशु या बडे-बडे स्थान बने हुए दिखाई पडते है। अब यदि इस अर्बुद या रक्तवाहिनी सम्बन्धी रोग के कारण Optic Radiation मे विनाश की प्रक्रिया होने लगे तो दूसरी ओर के आधे दृष्टि क्षेत्रो मे अधेरा हो जाता अर्थात् Contralateral Homonymous Hemianopia या दृष्टि क्षेत्र सम्बन्धित Hemiplegia का लक्षण हो जाता है, पर केन्द्रीय दृष्टि (Central Vision) बनी रहती है। यदि यह विनाशक अर्बुद या रक्तवाहिनी का विनाशक रोग साधारण-सा ही हो तो दोनो आखो के सामने Scotoma या एक अधेरे का बिन्दु दिखाई पडने लगता है। यदि यह रोग एक ओर के पिछले सिरे (Occipital pole) पर हो तो क्योकि वहा दोनो ओर की केन्द्रीय दृष्टिया केन्द्रित होती है अत Contralateral, Central, Homonymous Hemianopic Scotoma का लक्षण होता है अर्थात् जिधर रोग होता है उसके दूसरी ओर की आधी केन्द्रीय दृष्टि मे अधेरा रहता है। अब यदि दोनो सिरे (Poles) नष्ट होने लगे तो Bilateral Central Scotoma का लक्षण होता है। बाये

Occipital Lobe के पृष्ठ पर अर्बुद का रोग हो तो पिछले दृष्टि केन्द्र के Visual Word Area तथा आगे की ओर विद्यमान भाषण केन्द्र (Verbal Speech Centre) का परस्पर सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है जिससे Word Blindness का लक्षण हो जाता है अर्थात् स्वय का बोला हुआ शब्द उसे समझ मे नही आता।

Basalganglia तथा Thalamus—मे अर्बुद हो तो दूसरी ओर स्तम्भ तथा कम्प Tremors के लक्षण होते है। Thalamus मे अर्बुद हो तो दूसरी ओर स्वय दर्द होने का लक्षण होता है। Midbrain—मे अर्बुद हो तो वहा Oculomotor केन्द्रो के होने से नेत्रो के मास घात सम्बन्धी लक्षण होते हैं।

Cerebellum में अर्बुद या रक्तवाहिनी (Vascular) सम्बन्धी रोग हो या उसमे Sclerosis अथवा Atrophy हो तो उसके लक्षण :—

Cerebellum या लघुमस्तिष्क को चेष्टा व्यवस्थापक मस्तिष्क कह सकते हैं। इसके प्रत्येक गोलार्द्ध मे अपनी ओर की शाखाओ, और Vermis मे सिर और धड की चेष्टाओ को व्यवस्थित करने का गुण निहित रहता है। एतदर्थ इसमे प्रेरणा सूत्र Afferent Fibres (१) सुषुम्ना काण्ड के Dorsal तथा Ventral Spinocerebellar Tracts के द्वारा आते हैं। जिनके द्वारा उधर की सधियो व मासपेशियो से प्रेरणा आती है। (२) उधर के अन्तकर्ण Labyrinth से प्रेरणा लाने वाले सूत्र Vestibular Nucleus से इसमे आते है। (३) दूसरी ओर के ऊर्ध्व मस्तिष्क या Cerebral Cortex से भी प्रेरणावाही Afferent सूत्र Pons के द्वारा इसमे आते हैं।

(१) इनके विपरीत इसमे से जाने वाले प्रेरक Efferent सूत्र Rubrospinal Tract के द्वारा उधर के सुषुम्ना काण्ड मे Anterior Horns तक जाते और उधर की मासपेशियो व सधियो को प्रेरित करते है। (२) इसमे से Cerebello Vestibular सूत्र उधर के Vestibular (Deiter's) Nucleus मे जाते और फिर Vestibulospinal Tract के द्वारा उधर के Anterior Horns मे पहुचकर मासपेशियो की स्थिति को कायम रखने का कार्य करते है। (३) Cerebellum मे से आने वाले सूत्र Posterior Longitudinal Bundle के द्वारा ऊपर Oculomotor Nucleus तथा Accessory Nerve के Spinal भाग के साथ भी सवन्वित रहते है जिससे यह (Cerebellum) नेत्र, शिर व ग्रीवा की चेष्टाओ का नियमन करता है। (४) इसमे से प्रेरक सूत्र Cerebellocerebral Efferent Fibres ऊर्ध्व मस्तिष्क के Post तथा Pre Central Cortex मे जाते है। इस प्रकार यह लघुमस्तिष्क, मस्तिष्क के चेष्टा क्षेत्र Motor area के साथ पूर्णतया सम्बन्धित रहता है। शरीर की चेष्टाओ मे सतुलन (Equibration) तथा सहयोग Coordination को बनाये रखता है। इसीलिए इसमे रोग होने पर निम्नलिखित चेष्टा वैषम्य सूचक दुर्लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं जिन्हे Cerebellar Syndrome कहते हैं। अर्बुद या रोग इसके मध्य मे हो तो Ataxia धड मे होता है, रोग इसके एक बाजू मे हो तो Ataxia उसी ओर होता है।

(१) Hypotonia —जिस ओर के Cerebellum मे अर्बुद या रोग होता है उधर की मासपेशियाँ स्पर्श करने से ही शिथिल प्रतीत होती है। उधर की शाखायें दूसरी ओर की अपेक्षा शिथिल दीखती है, जिससे उधर की जाघ को बाहर की ओर दूर तक हटाया या Abduct किया जा सकता है। ऊर्ध्व बाहु को थामकर अग्रबाहु को हिला कर देखा जाय तो वह अधिक शिथिल लगती है। इस प्रकार मासशैथिल्य (Hypotonia) इस रोग का प्रधान लक्षण है। इसलिये उधर शाखाओ मे प्रतिरोधक शक्ति (Resistance) घटी हुई होती है। इस शैथिल्य के अतिरिक्त इन मासपेशियो की शक्ति भी घटी हुई होती है (Asthenia) जिससे उसके हाथ की पकड निर्बल होती अथवा उधर का हाथ स्वल्प श्रम से थक जाता है। Hypotonia के कारण रोग ग्रस्त शाखा मे Reflex मन्द रूप मे होते है। जिधर की मासपेशिया निर्बल होती हैं रोगी उधर की ओर झुका हुआ चलता है, अर्थात् उधर का कधा दूसरे की अपेक्षा कुछ नीचा होता है। यदि लडखडा जाता है तो उधर की ओर ही गिरता है। उधर की बाहु भी चलते समय जैसे हिलनी चाहिये वैसे नही हिलती। इस प्रकार रोगी की चाल या स्थिति से भी इस रोग का पता चलता है।

(२) अव्यवस्थित चेष्टा (Ataxia) रुग्ण भाग की मासपेशियो मे अशक्ति और शैथिल्य के कारण तथा उनमे अर्थात् परस्पर विपरीत कर्मकारी पेशियो मे परस्पर सहयोग के न रहने अर्थात् Incoordination के कारण उनकी चेष्टाओ मे नाना प्रकार की विलक्षणता उत्पन्न हो जाती है, उदाहरणत (१) चेष्टा मे मात्राहीनता (Dysmetria) या अतिमात्रता (Hypermetria) आ जाती है। यदि रोगी को रुग्ण हाथ से मेज पर पडा गिलास उठाना हो तो अपनी अशक्ति के कारण वह उसके उठाने मे अधिक या अनुचित बल का प्रयोग करता है। उसे पकडते समय आवश्यकता से अधिक हाथ को खोलता

है और फिर उसे अधिक बल के साथ पकड़ता है। इसी प्रकार उसे फिर मेज पर रखते समय भी वह हाथ को अधिक मात्रा में खोलता है। हाथ को ठीक जहा तक ले जाना है उससे आगे चला जाता है। कदम जहा रखना है उससे आगे चला जाता है। (२) Rebound Phenomenon —यदि रोगी अपने सामने अपने दोनो बाहुओं को प्रबलता से सकुचित किये हुये हो और हम एक-एक हाथ से उनको अपनी ओर खीचकर एक दम छोड दे तो अस्वस्थ ओर की बाहु छूटकर पीछे झटके के साथ रोगी को जाकर लगेगी जबकि स्वस्थ बाहु अपने आप रुक जायगी। पीछे की तरफ झटके से इस अग के जाने के कारण इसे Rebound Phenomenon कहते है। (३) Dysdiadokokinesis अर्थात् परस्पर विपरीत चेष्टाओं के एक के बाद दूसरी के करने की शक्ति उसमे घट जाती है। उदाहरणत मुट्ठी को बन्द करने और फिर खोलने और फिर बन्द करने की चेष्टा, या हथेली को नीचे ऊपर करने (Pronation Supination) की चेष्टा जैसे स्वस्थ पार्श्व मे होती है वैसी अस्वस्थ पार्श्व मे नही होती प्रत्युत मासपेशियो की अशक्ति के कारण व थक जाने के कारण शनै-शनै व भद्दे तौर से होती है इसे Dysdiadokokinesis) कहते है। (४) कम्प Tremors—उन सूक्ष्म चेष्टाओं के जिनमे मासपेशियो के सकोच व प्रसार (Contraction तथा Relaxation) पर अधिक नियत्रण आवश्यक होता है करने मे रोगी को कठिनता प्रतीत होती है क्योकि उस समय उस अग मे कम्पन होने लगता है। उदाहरणत सूई मे धागा डालते समय जब धागा नक्के के पास पहुचता है और जब पेशियो पर अधिक नियत्रण आवश्यक होता है तब मासपेशियो मे अशक्ति के होने तथा परस्पर सहयोग के ठीक न रहने से हाथ कापने लग जाता है। इसी तरह भरा हुआ प्याला उठाकर जब ठीक मुख के पास आ जाता और उसे वहा ठीक-ठीक लगाना होता है तो हाथ काप जाता है, इसे Intention Tremor कह सकते है।

Ataxic Dysarthria—Cerebellum के रोग के कारण जैसे अन्यान्य मासपेशियो में परस्पर सहयोग की न्यूनता हो जाती है वैसे ही भाषण सम्बन्धी ओष्ठ, तालु, जिह्वा आदि की मासपेशियो मे भी परस्पर जो सहयोग रहना चाहिए वह कम हो जाता है जिससे भाषण मे मन्दता, यत्न साध्यता और अक्षरो के बीच के अन्तर की दीर्घता के लक्षण हो जाते है। इस प्रकार के भाषण को Scanning या Staccato Speech या शनै-शनै भाषित कह सकते हैं। Vascular Sclerosis का रोग अधिक हो और इन मासपेशियो पर नियत्रण और भी हट जाय तो अनेक अक्षरो के मिल जाने और अस्पष्ट हो जाने से Explosive या Slurred Speech का लक्षण हो जाता है।

Nystagmus —विश्राम अवस्था मे आँखों मे लेटी (Horizontal) दिशा मे कोई कम्पन नही होता। परन्तु यदि रोगी जिस ओर अर्बुद है उस ओर किसी वस्तु पर आखो को टिकाये तो नेत्र-मासपेशियो की निर्बलता के कारण गोलक एक स्थान पर टिकते नही और उनमे बड़े-बडे (Amplitudinous) मन्द गति वाले कम्पन होने लगते है। दूसरे पार्श्व की ओर आँखों को घुमाने पर कम्पन छोटे-छोटे और तीव्र गति वाले होते हैं। इस प्रकार यह Nystagmus या नेत्र-मासपेशियो का Hypotonia लघु मस्तिष्क के रोग का सूचक होता है। इस प्रकार Cerebellum मे रोग हो तो शरीर की स्वाभाविक व्यवस्थित चेष्टा अव्यवस्थित हो जाती है। बालको मे Cerebellum मे Astrocytoma होता है। युवको मे Haemangioblastoma होता है। Medulloblastoma भी बालको मे कभी-कभी होता है जो घातक होता है।

मस्तिष्कार्बुद के सामान्य लक्षण या General Symptoms —

मस्तिष्कार्बुद चाहे शीघ्र बढने वाला हो चाहे चिरकाल मे, उसके कारण Ventricles के अन्दर विद्यमान द्रव Cerebrospinal Fluid मे अवरोध उत्पन्न हो जाता है। विशेषत Posterior Fossa मे Cerebellum तथा Mid Brain पर दबाव डालने वाले अर्बुदो से यह अवरोध उत्पन्न होता है। इसमे Hydrocephalus अर्थात् शिर मे जल वृद्धि का रोग होकर मस्तिष्कान्तर्भार (Intracranial Pressure) बढ जाता है। अर्बुद के द्वारा शिराये भी दब जाती है एव उनमे रक्त अधिक मात्रा मे सचित हो जाता है और मस्तिक मे श्वयथु (Oedema) होकर भी यह भार बढ जाता है। इसका परिणाम Papilloedema होता है।

Papilloedema—मस्तिष्क मे भार के बढने से Optic Nerve का खोल दब जाता है जिससे Retina मे विद्यमान Nerve Head के खोल (Sheath) मे द्रव अधिक मात्रा मे रुक जाता है। इसके फूल जाने से Retina की Central Vein भी दब जाती है और उसके बाद शेष शिराये (Veins) भी रक्त से अधिक भरने लगती है। Ophthalmoscope से परीक्षा करने पर Papilla या Disk अधिक लाल दीखती है तथा वहा अतिरक्त सचय तथा खोल मे द्रव के रुक जाने से गढा कुछ भरा हुआ लगता है। फिर गढे के किनारे अस्पष्ट (Blurred) हो

जाते है, और यह गढ़ा, गटा न रहकर उभार का रूप ले लेता है। कुछ काल बाद बाहर निकले हुए द्रव Exudation के द्वारा रक्तवाहिनियों के बाहर आने का यह स्थान छिप जाता है। Macula के प्रदेश पर भी बाहर निकला हुआ यह द्रव जब बढकर Retina की अन्दर की ओर की झिल्ली Membrana Limitans Interna को तोडकर बूंद-बूंद करके बाहर आता और Vitreous Humour के साथ लगता है तो वहा जम जाता है और वहा दीखने वाले Macular Fan का कारण होता है। Retina की शिराओ मे सचित हुआ रक्त स्थान-स्थान पर स्रवित होकर Nerve Fibres के साथ-साथ ज्वालाओ (Flames) के रूप मे दिखाई पडता है। Disc मे द्रव के अधिक रिसने पर वह भी श्वेत वर्ण दीखने लगती है। कुछ काल बाद स्रवित हुए रक्त बिन्दु भी श्वेत से जख्मो के निशान के रूप मे दीखने लगते है। तथापि इस रोग के प्रारम्भ मे पर्याप्त समय तक दृष्टि मे विशेष न्यूनता नही आती। इस श्वयथु (Oedema) के दवाव के बहुत देर रहने से जब Optic Nerve मे लघुता (Atrophy) होती है तब दृष्टिमन्दता (Amblyopia) का लक्षण होता है जो थोडी २ देर के लिए अस्थायी रूप मे होता है। Papilloedema का लक्षण पहले एक तरफ होता है बाद मे दूसरी ओर भी हो जाता है। Optic Neuritis के रोग मे दृष्टिमन्दता का लक्षण अधिक होता है यद्यपि Papilloedema इतना नही होता, उस रोग मे यह Oedema अधिक होता है पर दृष्टिमन्दता का लक्षण विशेष नही होता। Glioblastoma मे Papilloedema जल्दी होता है।

शिर शूल—अर्बुद के कारण या उससे उत्पन्न मस्तिष्कान्तर्भार के बढने से जब Sinuses या उनको बनाने वाली Tributaries के Dura-mater पर खीच (Traction) पडती है तो क्योकि इनमे से सज्ञावाही सूत्र पचम मस्तिष्क नाडी (Trigeminal) मे जाते है इसलिए रोगी को शिर मे दर्द का लक्षण भी रहता है। यह दर्द स्पन्दन या Throbbing किस्म का होता है। रात को लेटने के बाद प्रातःकाल उठने पर या किसी समय भी लेटने के बाद उठने पर या नीचे की तरफ झुकने पर या जोर लगाने, खासने, छीकने पर यह बढ जाता है। प्रारम्भ मे यह हर समय नही रहता। रात को हो सकता है जिसमे नीद टूट जाती है। प्रातः तीव्र होता फिर क्रमशः कम हो जाता है। इस प्रकार दौरो मे होता है। बाद मे कुछ न कुछ हर समय रहता है। हो सकता है कि अन्दर जिस जगह पर अर्बुद हो उस पर कपाल के ऊपर टकोरने से भी स्पर्शाक्षमता प्रतीत हो। Tentorium से नीचे अर्बुद हो तो ६०% रोगियो मे यह लक्षण होता है। धीरे-धीरे बढने वाले अर्बुद मे यह लक्षण विशेष नही होता।

वमन —अर्बुद के कारण मस्तिष्कान्तर्भार के बढ जाने पर Medulla मे विद्यमान वमन केन्द्र (Vomiting Centre) के विक्षुब्ध हो जाने से बिना किसी अरुचि या अजीर्ण के पूर्व रूप के हुए ही सहसा Projectile वमन हो जाती है यह भी प्रातःकाल विशेष होती है। सिर पर किसी प्रकार के आघात लगने या ज्वर के हो जाने पर यह लक्षण प्रकट हो जाता है। इसे Cerebral Vomiting कहा जाता है। अर्बुद के दोतिहाई रोगियो मे यह लक्षण होता है, रोग के प्रारम्भ मे न होकर पिछले हिस्से मे यह लक्षण होता है।

आक्षेप —Convulsions —मस्तिष्क के ऊपर वाले खण्ड मे अर्थात् Tentorium से ऊपर के भाग मे अर्बुद हो तो उसके कारण उत्पन्न विक्षोभ से अपस्मार सदृश आक्षेप का लक्षण बहुधा होता है। यदि किसी मे आक्षेप लक्षण २५ वर्ष की आयु के बाद पहली बार हो तो अर्बुद का सन्देह हो जाना चाहिए। Tentorium के नीचे अर्बुद के होने पर उसके कारण मस्तिष्कान्तर्भार के बढने से भी कभी-कभी आक्षेप का लक्षण हो सकता है।

मन्दता और मूर्छा —Drowsiness — अर्बुद के प्रारभ मे उन्निद्रता का लक्षण होता है पर उसके पुराने हो जाने पर जीवनशक्ति अर्थात् जागरूकता घटती जाती तथा तन्द्रालुता बढती जाती है जो पीछे मूर्छा (Coma) मे बदल जाती है। अर्बुद (या Dura के अन्दर या बाहर रक्तस्राव) के कारण मस्तिष्कान्तर्भार के बढ जाने पर नाडी गति मन्द हो जाती है। वह मन्द और ऊची Bounding होती है। B P बढ जाता है। श्वासगति भी मन्द हो जाती है। श्वास उथला हो जाता है और यदि Cerebrum पर दवाव अधिक हो जाय तो श्वास विषम (Cheyne Stokes) किस्म का हो जाता है, अर्थात् इन दोनो के केन्द्रो के दब जाने से यह दुष्प्रभाव होता है। मस्तिष्कार्बुद के कारण ध्यानशक्ति, स्मृतिशक्ति, निर्णय करने की शक्ति कम हो जाती है।

रोग विनिश्चय—Radiology से अधिक पता तो नही चलता कुछ सहायता मिल सकती है। Meningioma हो उसके कारण कपालास्थि खाई गई हो तो उसका पता चल सकता है। Pituitary Adenoma या Craniopharyngioma हो तो इसका Fossa फैला हुआ तथा गहरा दीखता है या Clinoid Process खाया हुआ दीखता है। मस्तिष्कान्तर्भार बढा हुआ हो तो कपालास्थियो पर के चिह्न (Convolutional Markings) अधिक स्पष्ट होते है अर्थात् कपालास्थि मे

Space मे रहता है एव मस्तिष्क तथा सुषुम्ना काण्ड Spinal Cord को चारो ओर मे घेरे रहता है और उनकी वाह्य आघातो मे रक्षा करता है। यह अधिकत Lateral तथा Third Ventricle अर्थात् मस्तिष्क कोष्ठको मे पडे Choroid plexuses मे उनके Secretion के रूप मे उत्पन्न होता रहता है। ऊपर के दोनो Ventricles से उत्पन्न होकर यह Foramen of Monro के द्वारा तीसरे Ventricle मे उतरता हे और वहा से Sylvius के Aqueduct के सूक्ष्म स्रोत के द्वारा नीचे चौथे Ventricle मे जाता है। वहा से यह उसकी छत मे Cerebellum के सामने के एक छिद्र मे से जिसे Foramen of मेजेन्डी (Majendie) कहते है Subarachnoid Space मे चला जाता अर्थात् Piamater और Arachnoid mater के बीच के Space मे जाकर सारे मस्तिष्क और सुषुम्ना काण्ड को घेर लेता है। वहा Arachnoid Villi के द्वारा जो एक प्रकार के Valvular processes है Subarachnoid अवकाश मे से यह Superior sagittal sinus मे अर्थात् शिराओ के रक्त मे प्रवेश कर जाता है। इस प्रकार यह मस्तिष्क द्रव हर क्षण नया-नया वनता रहता और विलीन होता रहता है। यह द्रव देखने मे जल सदृश, स्वच्छ और निर्वर्ण होता है। आदमी के लेटे हुए इसका भार लगभग १०० मिलिमीटर of water के बरावर होता है। Spe Gr १·००६ होती तथा इसकी सारी मात्रा १००-१५० सी०सी० के लगभग होती है।

इस मस्तिष्क द्रव के स्रोत मे कही अवरोध Obstruction हो जाने मे मस्तिष्क कोष्टक फूल कर वडे हो जाते है। अवरोध प्राय Aqueduct of Sylvius मे होता है। यह विकार या तो जन्मजात होता है या Ventricles के बीच के प्रदेश मे Tumour के हो जाने मे होता है। चौथे Ventricle के ऊपर के छिद्र के तग हो जाने से भी यह रोग हो सकता है। उस द्रव के मार्ग मे अवरोध हो जाने से यह Ventricles मे अधिक सचित हो जाता और उन्हे फैला देता है। कपालास्थियो पर इस दवाव के पडने से वे भी फैल जाती हैं जिससे शिशु या छोटे वालक का सिर क्रमश आकार मे वडा होता जाता है। ६ मास से २-३ वर्ष तक के शिशु का सिर कुछ वडा हो और वृत्ताकार मापने से वह हर महीने कुछ वडा होता जाता हो तो इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिये। आकार मे वढे हुए Ventricles के दवाव से मस्तिष्क कुछ पतला पड जाता है। दवाव के कारण अस्थियाँ भी कुछ खाई सी जाती है X-Ray से उनके अन्दर यह दुर्लक्षण दिखाई पडता हे। Temporal fossa भी लुप्त हो जाता है।

भ्रूण के तीसरे महीने से इस द्रव की उत्पत्ति आरभ होती है। अब यदि इस द्रव के मार्ग मे अवरोध सहज Congenital हो तो गर्भ मे शिशु का सिर आकार मे वडा हो जाता है। ऐसे वालक की उत्पत्ति स्पष्ट है कष्टमय होती है। इस कठिन प्रसव को Dystocia कहा जाता है। ऐसे शिशु को Caesarean Section से ही उत्पन्न किया जा सकता है।

उत्पत्ति के समय हो सकता हे रोग स्पष्ट न हो पर चौथे पाँचवें महीने तक यह रोग प्रकट होने लगता है। क्योकि उस समय कपालास्थियो के Sutures जुडे हुए नही होते अत शिर का कपाल अन्दर के दवाव से फूलकर वडा होता जाता हे।

उत्पत्ति के वाद वालक मे Tubercular meningitis होकर Foramina of Magendie तथा Luscha के अवरुद्ध हो जाने से भी यह रोग हो सकता है।

लक्षण

रोगी शिशु या वालक का सिर देखने मे वडा होता है सिर पर वाल भी कम होते है। कपाल पर की शिराये कुछ फैली हुई होती है। नाडी मण्डल पर दवाव के पडने से शरीर का पोषण कम होता है। वालक का मानसिक विकास ठीक नही होता। सारे शरीर मे आक्षेप होने का लक्षण हो सकता है। शाखाओ मे स्तम्भयुक्त पक्षाघात या निर्वलता का लक्षण होता है। Optic Nerve या Auditory Nerve पर दवाव पडने से दृष्टि सम्वन्धी या श्रवण सवन्धी विकार हो सकते है। शिर के अन्दर दवाव के वढने से शिर दर्द अथवा वमन के लक्षण भी कभी-कभी होते हे। वालक मे Plantar reflex Extensor होता हे।

चिकित्सा

यह रोग गर्भ मे शिशु को आरम्भ न हो इसके लिये गर्भिणी को X-Ray से वचना चाहिये। विटामिन 'ए' का सेवन कभी-कभी करना चाहिये। वालक को Meningitis का रोग हो तो उसे Steroids देने चाहिये। इसके प्रयोग से उसमे इस रोग के होने का भय नही रहता। १५-१५ दिन वाद सिर के Circumference का माप लेना चाहिये। वह वढ रहा हो तो शल्य कर्म कराना चाहिये।

इस रोग की कोई औषध चिकित्सा अभी तक नही हे। इस रोग मे शल्यकर्म से कुछ लाभ होता है। इस शल्यकर्म

मे एक Ventricle मे एक ऐसी सूक्ष्म प्लास्टिक ट्यूब फिक्स कर दी जाती है जिसमे वाल्व लगा होता है जिसके द्वारा इसमे से द्रव बाहर जा सकता है लौटकर वापस नही आ सकता। फिर इस ट्यूब को कपालास्थि के अन्दर-अन्दर से लाकर Jugular vein मे डाल दिया जाता है। इससे मस्तिष्क द्रव को Venous blood मे Shunt कर दिया जाता है। इसे Ventriculo jugular Shunt कहते हे। Ventricles से इस मस्तिष्क द्रव को कई विधियो से Shunt किया जाता हे। इसलिये कई प्रकार के आपरेशन्स किये जाते हे।

मस्तिष्क विद्रधि .—Brain Abscess, Intracerebral Abscess, Suppurative Encephalitis

Pyogenic या Suppurative Meningitis—अर्थात् पूयजनित-मस्तिष्कावरण-शोथ भी एक मस्तिष्कान्त शोथ ह और वह भी कभी-कभी 'कर्णास्थि मे घुणव्रण' या Tegmen Tympani अर्थात् मध्यकर्ण की छत मे Caries के हो जाने पर वहा से पूयजनक जीवाणुओ (Staphylo-Streptococci) के Meninges मे प्रवेश कर जाने से होता है। परन्तु यहा पर तो मस्तिष्क विद्रधि का जो कपालास्थियो मे कही विद्रधि होकर उसमे से पूय जीवाणुओ के मस्तिष्क मे प्रसरण कर जाने से उत्पन्न होती है उसका वर्णन किया जाता है। लगभग दो तिहाई या ६०-७०% रोगियो मे यह मस्तिष्क विद्रधि पुराने कर्ण रोगी या Otitis Media या मध्यकर्ण रोग के रोगी मे Petrous Temporal Bone या Mastoid मे से पूय जीवाणुओ के Dura-mater मे चले जाने और उसके सूजकर ऊपर की तरफ पडे Temporal Lobe के साथ चिपक जाने से मस्तिष्क मे होती है अर्थात् Osteitis के उपद्रव रूप मे होती हे। परन्तु बहुधा Duramater और विद्रधि के बीच मे कुछ स्वस्थ मस्तिष्क भी रहता है जिससे पता चलता हे कि यह जीवाणु-सक्रमण वहाँ पर शिराओ (Emissary Veins) मे शोथ होकर अर्थात् Thrombophlebitis होकर होता है। Temporal Lobe के अन्दर श्वेत भाग मे यह विद्रधि होती है। पाच मे से ३ अवस्थाओ मे विद्रधि इसी Lobe मे होती कभी-कभी Cerebellum मे हो जाती है।

इसी प्रकार $\frac{1}{10}$ अवस्थाओ मे Frontal तथा दूसरे Nasal Sinuses मे पूयभाव देर तक रहे और उसकी अस्थियो मे Caries या Osteomyelitis का रोग हो जाए तो वहा मे Frontal Lobe मे मस्तिष्क विद्रधि बन जाती है $\frac{1}{4}$ या २०% अवस्थाओ मे रक्त के द्वारा कोई पूय जीवाणु फुफ्फुस मे से अर्थात् Bronchiectasis, Empyema या Pulmonary Abscess मे से मस्तिष्क मे पहुचकर विद्रधि उत्पन्न कर देता है। यह विद्रधि ऊर्ध्व मस्तिष्क के श्वेत भाग मे होती हे इसे Haematogenous या Metastatic Abscess कहते हैं।

विकृति

मस्तिष्क के जिस प्रदेश मे Staphylococcus-aureus, Streptococci याक भी-कभी Pneumococci जा पडते हे वह तो मृत Necrosed होकर Infarct बन जाता है, चारो ओर से श्वेताणुओ के आने से इसके आस-पास का भाग पूय रूप या *Pyogenic* Membrane के रूप के परिणत हो जाता है। फिर इसके चारो ओर Fibroblasts के द्वारा एक सूत्रमय तह (Fibrous Capsule बन जाती हे। इस प्रकार मन्दरूप या Subacute रूप मे बनने वाली विद्रधि कोषबद्ध या Encapsulated होती हे। इसके चारो ओर के मस्तिष्क मे थोडे-बहुत श्वयथु Oedema की विकृति भी रहती है और इस भाग पर चढे मस्तिष्कावरण (Meninges) मे भी स्थानिक शोथ रहता है। आकार मे यह अण्डे जितनी होती तथा इसके अन्दर की पूय हरे रग की, कुछ दुर्गंधयुक्त होती हे।

लक्षण

नवयुवको या युवको मे होने वाला यह रोग है। रोगी को चिरकाल से Suppurative Otitis Media या कर्ण पूय रोग होता है या चिरकालिक Frontal Sinusitis का रोग होता है। अब इनमे से स्राव बन्द हो गया हे, ऐसा भी रोगी का इतिवृत्त रहता है। अब मस्तिष्क विद्रधि के आरम्भ होने पर रोगी की हालत बिगडने लगती है, सर्दी लगकर कपकपी के साथ उसे ज्वर होता रहता है जो १००-१०१ डिग्री तक होता है। मस्तिष्काभ्यन्तर भार बढने के कारण अरुचि, वमन, तन्द्रालुता निद्रालुता आदि के लक्षण होते है। परन्तु रह-रहकर होने वाला शिर शूल उसके लिए बडा कष्टदायक होता है। यह शिर शूल शख प्रदेश पर होता है, पर सारे सिर मे होता प्रतीत होता है। बिस्तरे पर से सिर उठाने, खासने, जोर लगाने या झुकने से बढता है। शख प्रदेश पर स्पर्श करने या दबाने से भी दर्द होता है। इस प्रकार सिर दर्द, विक्षोभशीलता, तन्द्रालुता तथा वमन इसके विशेष लक्षण है। तथापि सिर दर्द इस रोग का प्रधान लक्षण है। पिछले भाग मे दर्द, ग्रीवा स्तम्भ तथा वमन के लक्षण Menen-

ges के विक्षुब्ध होने मे होते हैं Leucocytosis भी होता हैं। नाडी देखने में कुछ तेज होती, पर ज्वर की दृष्टि से जितनी होनी चाहिए उतनी नही, जिह्वा मैली होती, मलबन्ध विशेष रहता है। नाडी की मन्दता तथा श्वास-प्रश्वास की भी मन्दता इस रोग के विशेष चिन्ह है। यह अवस्था २-३ दिन ही रहती हे। इस प्रारम्भिक अवस्था (Stage of Onset) के बाद जब विद्रधि विकसित हो जाती है तो कुछ सप्ताहो तक के लिए निम्न-लिखित लक्षण होते हैं अर्थात् Subacute Stage के ये लक्षण होते हैं —

शिर शूल मन्द रूप (Dull Ache) मे होता रहता है। परन्तु शख प्रदेश पर या जहा विद्रधि होती है वहा कपाल पर स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है। कपकपी या तापमान के होने का लक्षण नही रहता। कभी-कभी हल्का-सा ज्वर होता है। नाडीगति मन्द होती पर नाडी भरी हुई होती हैं। श्वासगति मन्द होती है, वमन और मलबन्ध जारी रहते है। रोगी के मुख व श्वास से दुर्गंध आती है। चेहरा फीके रग का मटियाला दीखता है। शरीर कृश हो जाता है। प्रधान लक्षण उसमे मानसिक मन्दता (Mental torpidity) का होता है। मानो वह बाहर से उदासीन होकर जड-सा हो गया हो। वह मूर्छा मे नही होता पर अतिमन्द होता है। अपने भाव को भली प्रकार प्रकट नही कर सकता पर वह चिडचिडा होता हे। इस प्रकार पूय भाव (Sepsis) तथा मस्तिष्कान्तर्भार (Intra-cranial Pressure) के बढने मे उपर्युक्त नाना लक्षण होते हैं। रोग के प्रारम्भ मे Antibiotic औषधियाँ दी गई हो तो Sepsis मे होने वाले लक्षण इस प्रकार नही होते तब शिर शूल और बाद मे आक्षेप (Convulsions) के होने के लक्षण होते है। चिरस्थायी या Chronic अवस्था मे समय-समय शिर शूल हो तो पाण्डुता और कृशता बढते जाते है। विद्रधि के फैल जाने से शिर दर्द प्रबल हो जाता है।

स्थानिक लक्षण

मस्तिष्क विद्रधि के स्थानिक लक्षण भी होते हैं अर्थात् Temporal Lobe के निचले भाग से आरम्भ होकर क्योंकि यह ऊपर और आगे की ओर बढती है और यदि यह बाये Lobe मे होती है तो स्पष्ट है कि (१) उधर आगे की ओर भाषण के केन्द्र के होने के कारण भाषण नैर्बल्य (Dysphasia) का लक्षण हो सकता है अर्थात् रोगी एक वस्तु के नाम को बता नही सकता यद्यपि वह उसे जानता है (Word Blind, Nominal Aphasia) इस Lobe के बाहर के भाग मे श्रवण का स्थान होने से दूसरी ओर बधिरता का लक्षण होता है। (२) जिधर विद्रधि होती है उससे दूसरी ओर के आधे दृष्टि क्षेत्रो के ऊर्ध्व भाग मे अन्धेरा हो जाने अर्थात् Homonymous Upper Quadrantic Hemianopia का लक्षण होता है। विद्रधि गहराई मे हो तो Motor fibres पर दबाव पडने से दूसरे ओर के चेहरे पर निर्बलता लगने लगती है। उसके बाद उधर के बाहु और बाद मे उधर की जाँघ मे भी निर्बलता (Supra-nuclear Type) हो सकती हे। गहरे भाग मे विद्रधि के होने पर मानस अपस्मार (Psychic Epilepsy) के से वेग जिनमे गन्ध और स्वाद सम्बन्धी (Uncinate Hallucinations) मिथ्या प्रतीतियाँ होती है, हो सकते है। इसके पिछले भाग मे विद्रधि हो तथा उससे Cerebellum दब जाय तो Cerebellar किस्म के लक्षण भी हो सकते है। Frontal Lobe मे विद्रधि हो तो बहुधा कोई विशेष लक्षण नही होता तो भी तन्द्रालुता, उदासीनता, बुद्धिभ्रशता तथा विस्मृति के या कभी-कभी मानस अपस्मार के लक्षण हो सकते हे। Cerebellum मे विद्रधि हो तो अन्दर रक्तभार बढने से वमन होने, शिर के पिछले भाग मे दर्द होने तथा ग्रीवा के अकडने के लक्षण प्रमुख होते है। शिर शूल शिर के पिछले भाग मे विशेष (Occipito Frontal) होता है। Nystagmus तथा Papilloedema के लक्षण भी होते है। शिर तथा ग्रीवा पीछे की ओर मुडे हुए रहते है। नाडी मन्द तथा निर्बल होती है। श्वास विषम होता है या Cheyne Stokes किस्म का होता है। जिधर विद्रधि होती है उधर Hypotonia होता है अर्थात् उधर की बाहु शिथिल होती हे।

भेदक लक्षण

इस रोग का Mastoiditis तथा Meningitis से भेद करना चाहिये। मस्तिष्क विद्रधि इन दोनो के साथ भी हो सकती है। पहले रोग का भेद करना सुगम हे। दूसरे का पता प्रलाप की विशेषता, कण्ठ कुब्जता (Neck rigidity) विक्षोभशीलता, प्रकाशासहिष्णुता (Photophobia), तापमान की उच्चता, नाडी की तीव्रता से लगता है। विद्रधि मे इसके विपरीत नाडीमन्दता होती तथा मानसिकमन्दता भी रहती है। मस्तिष्कार्बुद की बढने की गति मन्द होती, तापमान भी उसमे नही होता, उसमे कृशता और पाण्डुता के लक्षण भी कम होते तथा Leucocytosis भी नही होता। वह Frontal तथा Parietal Lobes मे अधिक होता जबकि यह Temporal Lobe मे अधिक होता हे। Papilloedema का लक्षण अर्बुद मे विशेष रूप मे होता है। इसी प्रकार Optic Neuritis

भी अर्बुद का ही विशेषत सूचक होता है।

मस्तिष्क द्रव परीक्षा

मस्तिष्क द्रव (Cerebrospinal Fluid) को केवल ३ सी० सी० मात्रा मे निकालकर उसकी परीक्षा करनी चाहिये। एक तो उसका भार Pressure बढा हुआ पाया जाता है। Total Protein ४० मिलि० प्र० श० से अधिक बढा हुआ होता है। उसमे श्वेत कण या Cells भी अधिक होते है अर्थात् प्रति क्यूबिक मिलिमीटर मे १०-२० के लगभग होते है। Chlorides की मात्रा नार्मल से कम होती है। रक्त की परीक्षा करने पर Leucocytosis १५-२० हजार प्रति क्यूबिक मिलिलिटर तक होता है। कपाल (Scalp) मे Burr hole करके Hollow Blunt Needle से Exploration के द्वारा इसका निश्चय किया जाता है। मृत्यु, इसके बढते जाने के बाद जबकि मूर्छा गहरी होती जाती है, इस विद्रधि के एक Ventricle मे खुल जाने से घटो मे ही हो जाती है। उस समय वमन, गहरी मूर्छा, तापमान की वृद्धि, नाडी की तीव्र गति, श्वासवैषम्य (Cheyne Stokes Type) पुतली के फैल जाने (Dilatation of Pupil), मासपेशियो मे कम्प या स्तम्भ (Twitchings and Contractions) के होने के लक्षण होते हैं। यह विद्रधि Sub arachnoid Space मे बहुधा खुल जाती है जिससे Leptomeningitis होकर अर्थात् वमन, प्रलाप, कम्प, आक्षेप, तीव्र ज्वर, मूर्छा, मन्द पर भरी हुई नाडी और बलपूर्वक लिये गये (Laboured) श्वास प्रश्वास के लक्षण होकर २-३ दिन मे मृत्यु हो जाती है।

विद्रधि कपाल के अन्दर Dura के बाहर हो तो Osteomyelitis के लक्षण होते है। स्थानिक स्पर्शाक्षमता स्थानिक शिर दर्द, उभार युक्त शोथ (Oedema) के लक्षण होते है। यदि विद्रधि Dura के अन्दर की ओर अर्थात् Subdural-abscess हो तो विष सचार Toxaemia, Intracranial pressure, उच्च तापमान, पाण्डुता के लक्षण होते हैं। शिरशूल और Popilloedema के लक्षणो से इसका निश्चय हो जाता है। Sinusitis, या Otitis के उपद्रव रूप मे यह रोग होता है।

चिकित्सा

Otitis Media, Nasal Sinustis तथा Bronchiectasis आदि रोगो की चिकित्सा ठीक-ठीक की जाय तो मस्तिष्क विद्रधि की रोकथाम की जा सकती है। तीव्र मस्तिष्क विद्रधि के लिए Benzyl Penicilin ५ लाख यूनिट्स मात्रा मे ६-६ घटे पर मास द्वारा देनी चाहिये। Acute Abscess मे Burr hole बनाकर Needle Aspiration द्वारा कुछ पूय को निकालकर उसमे Crystalline Sodium Penicillin G को १ सी० सी० मे १ लाख यूनिट मात्रा के हिसाब से Abscess मे डाल देना चाहिये। उसके अन्दर १-२ सी० सी० ऐसा द्रव्य जिससे उसकी Radiography की जा सके (Diodone) जैसा डाल देना चाहिये ताकि विद्रधि के घटने का पता लग सके। इस प्रकार बार-बार Aspiration तथा Penicillin के वहा प्रवेश करने से इसे ठीक किया जा सकता है। साथ ही ६० हजार यूनिट्स मात्रा मे Crystalline Penicillin को ३-३ घन्टे पर मास द्वारा भी एक सप्ताह तक दे दिया जाता है।

पुरानी विद्रधि को तो Drainage करते हुए क्रमश नीचे से भरने दिया जाता है।

Extra तथा Subdural abscess मे स्थानिक Burrhole opening करके पहले मे Suction से पूय को निकाल Penicillin powder को Insufflation से डालकर Drainage tube लगा दी जाती है। दूसरे मे भी Burr hole करके, Dura को खोलकर, पूय को निकाल कर बारीक Catheter को प्रविष्ट करके उसके द्वारा Antibiotic को प्रविष्ट कर दिया जाता हैं। साथ ही मास द्वारा Antibiotic चिकित्सा की जाती है अर्थात् बडी मात्रा मे Penicillin का मास द्वारा प्रयोग किया जाता है।

आयुर्वेद मे सुश्रुत (उत्तर अ० २५) ने इस रोग को शखक शूल कहा है। उसने कहा है कि शख प्रदेश के अन्दर पित्त और रक्त के दूषित हो जाने अर्थात् वहा पूयभाव (Suppuration) के हो जाने, कफ के भी विकृत हो जाने (अर्थात् वहा Oedema के हो जाने) तथा इनके कारण वायु के विकृत हो जाने अर्थात् मस्तिष्क पचम नाडी पर खीच पड जाने से सारे सिर मे रह रह कर शूल का प्रबल वेग होता है। उसने इसे असाध्य एव मारक कहा है। उसने इसका वर्णन आभ्यतर विद्रधियो मे नहीं किया। हृदय विद्रधि जो उसने कही है उससे उसका Cardiac Thrombosis या Infarct से अभिप्राय प्रतीत होता है।

शिरोभिघात—Head Injuries

Concussion —इस अवस्था मे मस्तिष्क का कार्य कुछ स्वल्प काल के लिए बन्द या Paralysed हो जाता है पर मस्तिष्क की रचना मे कोई विशेष क्षति नही होती जैसी Contusion मे होती है। शिरोभ्रम, श्वासमन्दता के लक्षण तो (Brain-stem) पर आघात पहुंचने से होते है। पर स्मृतिनाश, विक्षोभशीलता, क्रोध आदि के लक्षण

Cerebrum के अन्दर नाड़ीसूत्रो के टूटने से होते है। Concussion मे मस्तिष्क के अन्दर केवल सूक्ष्म या Microscopic क्षति ही पहुचती है। सिर पर डण्डे के लगने से (जैसे ग्रामो के झगडो मे होता है) या ऊपर से नीचे गिरकर सिर पर चोट लगने से (जैसे कि अविकत शहरो मे होता है) मस्तिष्क पर धक्का लगकर थोडे मिनटो या घण्टो के लिये इसमे जो मूर्छा हो जाती है उसे Concussion कहते है। मस्तिष्क पर ऐसी चोट लगने पर उसका काम कुछ देर के लिए अति-मन्द पड जाता है या बन्द हो जाता है। ऐसा क्यो होता है इस विषय मे ऐसा अनुमान किया जाता है कि एक ओर के Cerebrum के आगे या पीछे की ओर थोडा खिसक जाने से उसके Thalamus के नीचे के Brain Stem में कुछ खीच पड जाती है जिससे वह कुछ Distort हो जाता है। इसी की विकृति से तापमान, श्वासनाडी सम्बन्धी लक्षण तथा वमन होने का लक्षण होता है तथा मूर्छा भी इसी कारण होती है। Brain Stem मे जितनी अधिक विकृति हो, जितनी अधिक उस पर खीच पडे उतना ही शिरोभिघात अधिक भयकर हो जाता है। बडी-बडी Superior Cerebral veins के कारण कपाल के अन्दर मस्तिष्क के हिलने की जगह होती है। चोट लगने पर मस्तिष्क गोलार्ध आगे पीछे की दिशा मे स्थान भ्रष्ट हो जाते है जिसमे Brain Stem के साथ एक गोलार्ध का सम्बन्ध कुछ विच्छिन्न हो जाता है। धक्के के कारण एक गोलार्ध का Corpus Callosum के द्वारा दूसरे गोलार्ध से जो सम्बन्ध है वह भी कुछ विच्छिन्न हो जाता है। सिर के आगे या पीछे चोट लगने से गोलार्ध के पीछे या आगे की ओर खिसकने से इसका दुष्प्रभाव Brain Stem पर पडता है। चोट अधिक हो तो Medulla न्यूनाधिक आहत हो जाता है। उसके आहत होने से ही वस्तुत मूर्छा का लक्षण होता है। चेतना ऊर्ध्वमस्तिष्क पर नही मस्तिष्क के Base पर और Hypothalamus पर आश्रित है। विना मस्तिष्कान्तर्भार बढे भी यदि Brain Stem पर न्यूनाधिक आघात पडे तो मूर्छा का लक्षण हो जाता है। Brain Stem पर आघात लगने से ही Brain injury, Concussion, Contusion, laceration आदि के सब लक्षण होते हैं। चोट लगने के समय रोगी पीठ के भार जमीन पर बिलकुल अचेत पडा होता है। मुख पाण्डुर तथा शीतल होता है और स्वेद मे आर्द्र होता है। शरीर का तापमान गिरा होता है। दूसरे शब्दो मे रोगी Cerebral Shock की अवस्था मे होता है। पलकें बन्द होती है, आख के अन्दर अगुली लगाने से भी झपकती नही, पुतलियाँ दोनो ओर एक-सी नही होती, प्रकाश डालने से सकुचित होती है। श्वास-प्रश्वास की गति मन्द होती है तथा दोनो उथले होते है। नाडी गति तीव्र होती, प्रत्येक नाडी निर्बल होती है। रक्त भार गिरा होता है। शाखाये शिथिल होती है।

मूर्छा पूर्ण हो तो Corneal और निगलने के Reflexes लुप्त होते है। एक ओर की शाखाए दूसरी ओर की शाखाओ की अपेक्षा अधिक शिथिल होती है। तापमान भी देखना चाहिए जो गिरा होता है। नाडी गति तथा श्वास की प्रति मिनट गणना करनी चाहिए।

सिर पर चोट हल्की लगी हो तो रोगी हक्का-बक्का हुआ-सा दीखता है। यदि वह कुछ थोडी अधिक लगी हो तो उपर्युक्त शीतलता या मन्दता की अवस्था थोडी देर रहकर शीघ्र ठीक हो जाती है। चोट भारी लगी हो तो यह अवस्था पर्याप्त समय तक रहती है, मूर्छा गहरी-गहरी होती जाती है और मृत्यु हो जाती है। अथवा न्यूनाधिक मूर्छा के बाद फिर अवस्था सुधरने लगती है और प्रतिक्रिया या Reaction की अवस्था आरम्भ हो जाती है जो मस्तिष्क पाण्डु के विपरीत मस्तिष्क मे शोथ (Inflammation) के होने तथा शोथ-जनित द्रव के वहा अधिक मात्रा मे सचित हो जाने से अर्थात् Oedema या Compression के कारण होती है अर्थात् मस्तिष्क के विक्षुब्ध हो जाने के कारण यह अवस्था उत्पन्न होती है। इसमे चेहरा कुछ लाल होता, नाडी गति मे तीव्र होती तथा अधिक भरी हुई लगती है। सूक्ष्म रक्तवाहिनियो के फटने या Intracranial रक्त स्राव के कारण श्वास भी गहरे हो जाते है। मस्तिष्क के विक्षुब्ध (Cerebral Irritation) रहने से रोगी को प्रकाश सहन नही होता, शोरगुल भी सहन नही होता, रोगी क्रोधी हो जाता है, सिकुड कर विस्तरे मे पडा रहता है, (Flexion की स्थिति मे), उसे वमन होने, शिर दर्द होने तथा हल्का ज्वर हो जाने का लक्षण भी होता है, ये लक्षण कुछ दिन रहते है ज्वर निकले हुए रक्त के विलीन होने या Meningitis के कारण होता है। इस Reaction या Cerebral Irritation की अवस्था मे यदि ज्वर १०४ डिग्री से ऊपर हो जाय, नाडी निर्बल एव अनियमित होती जाय, एक ओर की शाखाओ मे शिथिलता बढती जाय, एक ओर की पुतली फैलती जाय तो अन्दर Haemorrhage का अनुमान करके इसे घातक समझना चाहिये। परन्तु बहुधा रोगी क्रमश ठीक होने लगता है तथापि उसका मस्तिष्क कुछ काल के लिए विक्षोभशील रहता है अर्थात् कुछ काल वह Meningitis की हालत मे रहता है। कुछ काल के

विश्राम तथा शान्त वातावरण मे रहने से यह विक्षोभावस्था भी जाती रहती है।

Hutchinson's Pupil —जिधर चोट लगी है उधर पुतली पहले सिकुडती है फिर बाद मे कुछ फैल जाती है और बाद मे और अधिक फैल जाती है और प्रकाश डालने से भी सिकुडती नही। दूसरी ओर की पुतली पहले नार्मल होती है, कुछ काल बाद वह भी फैल जाती है पर प्रकाश डालने से सिकुडती है पर और बाद मे वह भी अधिक फैल जाती और प्रकाश से अप्रभावित होती है। ये परिवर्तन तृतीय मस्तिष्क नाडी के पहले विक्षोभ से, बाद मे Paralised हो जाने से होते हैं।

Cerebral Compression—

शिरोभिघात जब प्रबल रूप मे होता है जिससे मस्तिष्क पर कुछ रगड भी लग गई हो अर्थात् उसमे हलका Contusion हो गया हो तो मस्तिष्क मे शोथ होकर सूजे अवयव के कारण वहा की शिरायें दब जाती है जिससे उनमे से स्राव (Exudation) बढ जाता एव वहा द्रव सचय (Oedema) तथा (Swelling) हो जाता है जिसके कारण मस्तिष्कान्तर्भार (Compression) हो जाता है। इसका प्रधान लक्षण गहरी मूर्छा का होना है। यह मूर्छा वैसी ही होती है जैसे रक्तस्राव (Haemorrhage) के कारण होती है जिसमे Vaso Motor केन्द्र तथा Vagus के विक्षुब्ध रहने से नाडी भरी हुई पर मन्द होती है। श्वास घुर्राटेदार, मन्द तथा गहरा होता है रक्तभार बढा हुआ होता है। Medulla के दब जाने से Systolic भार तो बढा हुआ तथा Shock से Diastolic भार कम होता है। अत Pulse Pressure बढा होता है। Motor Area मे स्थानिक Compression हो तो तत्सम्बन्धी मासपेशियो मे पहले आक्षेप (Convulsion) होने का और फिर उनमे पहले स्तम्भयुक्त और फिर शैथिल्ययुक्त पक्षाघात हो जाता है।

Extra या Epidural Haemorrhage—

कनपटी अर्थात् Temporal पर अस्थि के पतले Squamous भाग पर पत्थर या कठोर गेंद के द्वारा भारी चोट के लगने से उसमे Fracture होकर Middle Meningeal Artery की Anterior या Posterior शाखा या Vein फट जाती है, जिससे अस्थि और Dura के बीच मे रक्तस्राव हो जाता है (शिरोभिघात के १-२% रोगियो मे ही यह होता है) इस Extra Dural Haemorrhage या Haematoma मे अर्थात Dura पर एक अण्डे आकार का Intracranial Clot बन जाता एव जो Temporal lobe पर अन्दर की ओर दबाव डालता है। Temporal Muscle के अन्दर उभार हो तो इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिये। इसमे चोट लगने के बाद कुछ काल तक तो रोगी होश मे रहता है या मामूली-सी बेहोशी के ठीक हो जाने के कुछ काल बाद अन्दर रक्तभार बढ जाने पर या निकले रक्त के कारण दबाव या Compression के हो जाने पर पहले तो रोगी मे मति विभ्रम या Confusion का लक्षण होता है और उसमे विक्षोभशीलता का लक्षण भी होता है, इसके बाद उसमे मूर्छा और घुर्राटेदार श्वास का लक्षण हो जाता है। उधर Third Nerve के, इस Clot द्वारा दब जाने से उधर की पुतली फैल जाती है। अत जिधर की पुतली फैली हो और जिधर की Temporal muscle सूजी हो उधर की ओर ही Haematoma हुआ है ऐसा समझना चाहिये। मस्तिष्क पर आघात लगने के कारण C S F द्रव मे रक्त मिश्रित हुआ-हुआ मिलता है तथा उसका भार भी कुछ बढा होता है। इसका तुरन्त शल्यकर्म होने से रोगी बच सकता है।

Acute Subdural Haemorrhage—

बडी आयु के व्यक्ति को जब Brain मे atrophy है, शिर के आगे से या पीछे से शिरोभिघात लगने और उसके कारण Brain सहसा हिल गया हो और उसके कुछ घण्टो, दिनो या सप्ताहो के बाद मूर्छा का दौरा हो जाये अर्थात् Delayed Traumatic Apoplexy या Apathy का दौरा हो तो इसे Acute Subdural Haematoma समझना चाहिये। इसमे Cortex मे से Sagittal sinus मे आने वाली Dura की शिराओ मे से अर्थात् Superior Cerebral Veins मे रक्त फटकर Dura तथा Arachnoid के बीच के Potential Space मे Haematoma के रूप मे जमा हो जाता है और उसके Compression के कारण मूर्छा हो जाती है। हो सकता है कि ६० मिलिलिटर रक्त का बना हुआ यह Clot हो। रोगी पहले तो चोट मे बेहोश होकर अच्छा हो जाता है फिर कुछ घण्टो या दिनो के बाद धीरे-धीरे उत्पन्न Haematoma के दबाव के कारण उसे मूर्छा हो जाती है, जिधर यह रक्तस्राव होता है उधर की पुतली फैली होती है। हो सकता है यह मूर्छा हलकी ही हो, साथ ही शिर दर्द और विक्षोभशीलता के लक्षण हो, Haematoma से दूसरी ओर शाखाओ मे न्यूनाधिक स्तम्भयुक्त या Upper motor Neurone किस्म का पक्षाघात का लक्षण भी होता है। C S F की परीक्षा

करने पर उसका भार बढा हुआ तथा उसमे रक्त मिश्रित हुआ मिलता है। Cerebral Angiography से इस Haematoma का निश्चय हो सकता है। इस Clot का निकाल देना ही इसकी चिकित्सा है। अन्यथा ६०% मे यह घातक होता है क्योकि इसमे मस्तिष्क को अधिक क्षति पहुंची होती है।

Chronic Subdural Haematoma

बडी आयु के लोगो मे जिनमे Brain छोटा हो जाता है आगे की ओर या पीछे की ओर लगे शिरोभिघात के कुछ सप्ताहो या महीनो अर्थात् दीर्घ काल के वाद जब चोट भूल भी जाती है समय-समय पर तीव्र शिरशूल हो जिसकी तीव्रता उत्तरोत्तर बढती जाती हो और वाद मे मस्तिष्क मे विद्यमान इस विक्षोभक कारण से शाखाओ मे आक्षेप या पक्षाघात के लक्षण होने लगें, Cerebral-anoxia के कारण विचार शक्ति भी मन्द होती जाती हो, तन्द्रा, निद्रा, Apathy के लक्षण हो तो Chronic Subdural Haematoma के कारण मस्तिष्क मे Compression है ऐसा सन्देह करना चाहिये। Lumber puncture करने से द्रव का भार घटा हुआ होता है, उसमे प्रोटीन की मात्रा बढी हुई होती है, उसका रग पीला-सा होता है। Arteriography से इस Haematoma का पता लग जाता है। यह बहुधा Parietal प्रदेश मे एक ओर या कभी-कभी दोनो ओर होता है। जिधर पुतली फैली हो उधर इसके होने का निश्चय कर लेना चाहिये। इसे भी Burr hole या Trephining के द्वारा खोलकर Dura को नगा करके उसमे Incisen देकर रवर कैथिटर द्वारा काला रक्त निकालने से रोगी को वचाया जा सकता है अन्यथा यह रोग घातक है।

मस्तिष्काभिघात–Cerebral Contusion तथा Laceration

सिर पर चोट लगने से मस्तिष्क या उसके आवरणो को कुछ क्षति पहुचे अर्थात् कुछ सूत्र खण्डित Ruptured हो जाए तो उसे Cerebral Contusion कहते हैं। इस अवस्था मे रोगी देर तक मूर्छित रहता है तथा Brain stem के केन्द्रो पर अधिक दुष्प्रभाव पडा होता है। कपालास्थि के फटे विना ऐसा हो तो Non-penetrating Contusion कहते हैं। अस्थि भग के साथ हो तो Penetrating contusion कहते हैं। यदि सिर पर चोट लगने के वाद मूर्छा शीघ्र दूर न हो, पाण्डुता हो, श्वास प्रश्वास उथला हो,नाडी तीव्र तथा निर्वल हो, तापमान नार्मल से कम हो, शरीर शिथिल हो, Reflexes घटे हुए हो अर्थात् Cerebral Shock के लक्षण हो तो इस रोग का सन्देह कर लेना चाहिये। Cere Laceration उसे कहते है जव मस्तिष्क का पृष्ठ क्षत हो जाय और Cerebro Spinal द्रव मे रक्त आ जाए। Contusion या Laceration मे मस्तिष्क मे स्थान-स्थान पर न्यूनाधिक रक्त स्राव हो जाता है। Dura के वाहर तथा अन्दर कुछ Clots भी वन जाते हैं। ऐसी चोट के वाद मस्तिष्क मे Oedema हो जाता है। Temporal lobe के दवाव से 3rd Nerve तथा Midbrain दव जाते हैं। Basilar Vein के दव जाने से Oedema और वढता है। Posterior cerebral artery के दव जाने से मस्तिष्क को रक्त तथा आक्सिजन कम मिलती है। उपर्युक्त Haematoma भी इसी रोग के सूचक होते हैं। ऐसी भारी चोट प्राय Frontal या Parietal Lobe पर लगा करती है। Frontal lobe पर चोट लगने से मानसिक या मूकता सम्वन्धी लक्षण होते हैं। Motor Area मे चोट लगने मे तत्सम्वन्धी पेशियो मे आक्षेप या 'घात' होने का लक्षण हो सकता है। Motor Area मे रक्तस्राव हो जाय तो उसके विक्षोभ कारक होने से शिर व आखें जिधर रक्तस्राव हुआ हे उससे दूसरी ओर फिर जाती है (Conjugate deviation of the Head and Eyes) रक्तस्राव अधिक होने से विनाशक हो (विक्षोभक न हो) तो दोनो आखे उधर को जिधर रक्तस्राव हुआ है, मुड जाती है। Occipital Lobe मे चोट लगे तो Homonymous Hemianopia का लक्षण होता है।

Penetrating contusion हो तो जीवाणु सक्रमण तथा Meningitis दो प्रधान उपद्रव होते हैं। यह अवस्था विशेषत घातक होती है। कपालास्थियो मे केवल चीर पड गया हो Fissure ही हो तो वह स्वय जुड जाता है जिसमे कुछ सप्ताह का समय लगता है।

साध्यासाध्य—चोट के वाद का स्मृतिनाश Post Traumatic Amnesia—१-२ मिनट का हो तो चोट थोडी ही लगी समझनी चाहिये। यह स्मृतिनाश १-३ घन्टे रहे तो चोट कुछ अधिक लगी समझनी चाहिये। ऐसा रोगी १½-२ मास के विश्राम से ठीक होता हे। यदि स्मृतिनाश का लक्षण एक-दो सप्ताह या और अधिक समय के लिये रहे तो समझना चाहिये कि रोगी के मन व वुद्धि को पर्याप्त क्षति पहुच गई है और उसे ३-६ मास तक ठीक होने मे लगेगे। यदि Amnesia १ मास से अधिक काल तक रहे तो समझना चाहिये कि मस्तिष्क या Midbrain

मे रक्तस्राव हो गया है। तथा उन्हे ठीक होने मे गया साल लगेगा। Brain stem मे अर्थात् Medulla oblongata, Pons तथा Midbrain मे जहा श्वास तथा रक्त सचार सम्बन्धी बडे-बडे आवश्यक केन्द्र है रक्तस्राव हो जाय तो २४ घटो के अन्दर मृत्यु हो जाती है अर्थात् Reticular formation के ठीक रहने से आदमी जागरूक रहता है। वहा विकृति या Distortion होने से आदमी वेहोश होकर गिर पडता है। Concussion मे वहा खीच हल्की पडती हे इसलिए मूर्छा सामयिक ही होती है। Cerebral contusion मे Thalamus से नीचे के इस प्रदेश मे खीच अधिक पडती हे इसलिए उसमे मूर्छा दीर्घ होती हे। Brain मे Oedema होने से Brain stem मे विकृति हो जाती है उसमे मूर्छा का लक्षण होता है। ऐसे रोगी की पुतली फैली हुई होती है। अच्छा होने के बाद अर्थात् Post traumatic state मे मस्तिष्क पर हुई क्षति के कारण रोगी स्वल्प शारीरिक मानसिक श्रम से थक जाता है। उसकी एकाग्रता की शक्ति कम हो जाती है तथा उसे शिर दर्द, शिरोभ्रम व निद्रानाश के लक्षण होते हे जो Sedative या Tranquilizer औषधियो से कुछ शान्त हो जाते है।

शिरोभिघात की चिकित्सा ----

Concussion के रोगी को अधेरे मे तथा शान्त प्रदेश मे लिटाकर रखे उसे हिलाना डुलाना या कोई उत्तेजक औषधि देना ठीक नही होता। सिर पर बर्फ की टोपी रखना व शीतल शरीर के आसपास गर्म वोतलो का रखना मुनासिब है। साथ ही A T S तथा किसी Antimicrobial औषध का प्रयोग भी करें। यदि श्वास मे अवरोध प्रतीत हो तो रोगी को एक करवट पर लिटा कर ऐसा रखे कि सिर कुछ नीचा रहे, जीभ आगे की तरफ रहे। ऐसा न हो कि वह पीछे गिरकर श्वास को रोक सके, वमन द्रव या मुख मे जमा हुई थूक भी मुख से निकलती रहे, पीछे श्वास मार्ग की तरफ न जा सके। मुख की झाग को कपडे से साफ करते रहना चाहिये। अर्थात् श्वास मार्ग को रुकने न दे। मस्तिष्क को पहले ही रक्त कम मिल रहा है अर्थात् Anoxia का लक्षण है ऐसी अवस्था मे श्वास मार्ग को साफ रखना जरूरी होता है। यदि मूर्छित रोगी थूक नही सकता हो तो Tracheostomy का शल्य कर्म आवश्यक हो जाता हे ताकि आक्सिजन पूर्ण मात्रा मे मिले। रोगी को कोई निद्राजनक औपधि न दे क्योंकि उससे श्वास केन्द्र और भी मन्द हो जाता है। मूर्छित रोगी को मूत्राघात भी होता है। अत केथिटर द्वारा मूत्र निकाल देना चाहिए।

रोगी की नाडी की परीक्षा होती रहनी चाहिये। (वह कम हो तो Compression का ज्ञापक होता है) रक्त-भार देखते रहना चाहिये (कम हो तो Shock का ज्ञापक होता है) इसी प्रकार तापमान तथा श्वास गति का भी रिकार्ड रखना चाहिये। दूसरे दिन Lumber puncture करके देखना चाहिये। उसका भार १५० M M से ऊपर हो तो थोडा द्रव निकाल देना चाहिये। यह मस्तिष्क मे Oedema का द्योतक होता है। ऐसी अवस्था मे Oedema के हटाने के लिए ६०% Mag Sulph सोल्यूशन को ६ औ० की मात्रा में गुदा मे ऊपर एक केथिटर के द्वारा धीरे-धीरे डाल देना चाहिये और उसे २० मिनट तक रोके जिससे रोगी के रक्त मे से जल खिचकर आत मे आ जाय। १२-१२ घटे पर ऐसा कर सकते हैं। C S F का भार १०० M M से नीचे हो तो उसे नही निकालना चाहिये। तब चारपाई के पायते को ६ इ च ऊ चा कर दे अर्थात् सिर को नीचा रखें। Cerebral Oedema के लिये सिरा द्वारा Hypertonic Saline Solution दे देना लाभदायक है। मूत्रल औषधि के देने से भी मस्तिष्क का Oedema दूर होता है। रोगी होश मे हो, सिर दर्द भारी हो तो वेदनाहर औपधि दें तथा सेलाइन का प्रयोग मुख द्वारा करें। Dexamethosone (Decadron) १५-४० मिलि० दैनिक मात्रा मे 5 M मस्तिष्क के Oedema को कम करता है।

Shock के लिये उसके हटाने की चिकित्सा होनी चाहिए। Pholedrine (Veritol) आदि का मास द्वारा प्रयोग होना चाहिए तथा Oxygen का प्रयोग करना चाहिए। मूत्राशय मे केथिटर को स्थिर करके मूत्राशय को साफ रखना चाहिए। रोगी को पहले-पहल ३-४ दिन मल नही आता इसके लिए वस्ति देकर आत को साफ रखना चाहिए। रोगी को आहार नासिका द्वारा प्रविष्ट Ryle's Tube के द्वारा पर्याप्त मात्रा मे देना चाहिए। इस अवस्था के आरम्भ मे शरीर मे Catabolism अधिक होता हे अत उसे १,५०० कैलोरीज का भोजन प्रतिदिन मिल जाना चाहिये। एक किलो भार के पीछे १ ग्राम प्रोटीन होना चाहिए, शेप कार्वोहाइड्रेट होना चाहिए, विटामिन्स तथा जल की मात्रा भी पर्याप्त होनी चाहिए। सिर पर चोट लगने पर वृक्क ठीक काम नही करते अर्थात् मूत्र की Sp Gravity कम हो जाती हे ऐसी अवस्था मे जल तथा प्रोटीन का देना ठीक नही। इस अवस्था मे

५०० सी० सी० २५% ग्लूकोज ५% सेलाइन शिरा द्वारा देना चाहिए इससे मूत्र वढे तो इसे अधिक मात्रा मे दे। Brain Stem मे रक्त की कमी को तथा उससे होने वाले Cheyne Stokes Respiration को दूर करने के लिए Aminophylline २५० मिलि० को धीरे-धीरे शिरा द्वारा देना चाहिए। इससे श्वासनालियो तथा रक्तवाहिनियो दोनो मे Dilatation होता है। Haematoma (Extradural तथा Subdural) के लिये शल्य कर्म ही जरूरी है विशेषत Epidural के लिये।

अति मास शैथिल्य Myasthenia-gravis

धीरे-धीरे अज्ञात रूप मे आरम्भ होने वाले इस रोग मे विशेषत मस्तिष्क नाडियो से पोपित ऐच्छिक मासपेशियो मे थोडे श्रम से शीघ्र ही शिथिल हो जाने की प्रवृत्ति रहती है। स्वल्प श्रम से जहा वे शीघ्र थक जाती है वहा आराम करने के बाद वे फिर ठीक भी हो जाती है। नेत्र, मुखछिद्र, चेहरे, गले, कठ आदि ऊर्ध्व जत्रुगत ऐच्छिक मासपेशियो मे यह रोग विशेषत होता है। अर्थात् इन मासपेशियो का चेष्टीकरण या Innervation ऊपर से आने वाली चेष्टावाही नाडियो द्वारा पूरी तरह नही होता। इसका कारण सभवत Neuromuscular junction मे ऊपर से आने वाली चेष्टा मे किसी प्रकार की रुकावट ही प्रतीत होती है।

कारण

मस्तिष्क से आने वाली चेष्टावाही या Motor नाडियो के उत्तेजित होने पर जहा Neuromuscular junction अर्थात् Motor nerve end plate मे उनके सिरे खतम होते है वहा Acetylcholine की उत्पत्ति होती है। उसके Para Sympathomemetic प्रभाव के कारण ऐच्छिक मासपेशी अर्थात् Somatic या Skelital पेशी मे चेष्टा उत्पन्न हो जाती है और फिर उसके पाचक रस या Cholinesterase के उत्पन्न हो जाने से जव वह Hydrolysed हो जाता अर्थात् अपने वनाने वाले तत्त्वो मे परिवर्तित हो जाता है तो उक्त मासपेशी मे सकोच या चेष्टा भी शान्त हो जाती है। अव इस रोग के रोगी मे या तो ग्रस्त मासपेशी मे आने वाली चेष्टावाही नाडी के सेलो मे Atrophy होने से Neuromuscular junction पर Acetylcholine की उत्पत्ति ही कम होती है जिससे Motor Nerve End Plate मे उत्तेजना कम होती है, या Nerve End Plate मे कुछ ऐसी कमी आ जाती है कि Acetylcholine के उत्पन्न होने पर भी वह पूर्णतया उत्तेजित नही होता अर्थात् Neuromuscular सधि-स्थान पर ऊपर से आई Impulse को नष्ट करने वाला Curare की तरह का कोई विप द्रव्य उत्पन्न हो जाता है जो ऊपर से आई चेष्टा को मास मे जाने से रोकता है और सभव है Curare की तरह का यह विप Thymus gland मे से आता हो जो इस रोग मे प्राय वढा हुआ पाया जाता है। परन्तु वहुत से परीक्षक लोग तो अभी तक इस रोग को Autoallergy के कारण उत्पन्न होने वाला मानते है। वे कहते है कि इस रोग मे ऐच्छिक मासपेशियो मे तथा Thymus gland के अवयवो मे कोई Antigen रहता प्रतीत होता है जिसके विपरीत Anti-muscle Antibodies तथा Antithymus Antibodies उत्पन्न होकर रोगी के सीरम मे रहते है। ये Muscle Fibres के साथ सयुक्त हो जाते है और वहा Complement भी खर्च होता है। इन सबको देखकर यह अनुमान करना ठीक ही है कि यह रोग Auto-allergy या Auto-immunity के कारण होता है। रोगी के रक्त मे Hyper-globulinaemia भी पाया जाता है। इस रोग मे रोगी का Thymus gland भी सूक्ष्म न होकर वडा होता है अर्थात् उसमे Hyperplasia होता है तथा १०% के लगभग रोगियो मे Thymoma भी पाया जाता है। इस प्रकार इस रोग और Thymus मे कोई सम्बन्ध अवश्य है। इस रोग के Allergy द्वारा होने का एक सबूत यह भी है कि इस रोग के होने से पहले नाक या गले मे कोई Infection हो चुका होता है।

लक्षण

यह रोग २०-३० वर्ष के वीच के युवक-युवतियो मे पाया जाता है तथा यह धीरे-धीरे अज्ञात रूप मे आरम्भ होता है। प्रारम्भ मे ऐसा लगता है कि कोई एक मासपेशी थोडा श्रम करने से ही शीघ्र थक जाती है और कुछ काल आराम देने से फिर वह ठीक हो जाती है। सवसे पहले आख की मासपेशियो मे से किसी मे यह शिथिलता प्रकट होती है। प्राय ऊपर के पलको की मासपेशी Levator Pelpebrae मे शिथिलता प्रतीत होती है अर्थात् सायकाल तक थकने के वाद ऊपर की पलके शिथिल होकर नीचे गिर जाती है अर्थात् सुवह आखे ठीक होती हैं सायकाल उनमे Ptosis का रोग हुआ प्रतीत होता है पर रात को आराम करने के वाद सुवह तक यह लक्षण शात हो जाता है और अगले दिन फिर सायकाल तक प्रकट हो जाता है अथवा हो सकता है नेत्रो को ऊपर-नीचे या दाये-वाये घुमाने वाली किसी External Ocular mus-

cle मे यह शिथिलता का रोग प्रकट हो। अगर एक तरफ ऐसा रोग हो तो डबल दृष्टि या Diplopia का लक्षण प्रकट हो जाता है। रात आराम करने के बाद सवेरे यह लक्षण भी ठीक हो जाता है अथवा हो सकता है कि नेत्रों को भीचने या बन्द करने वाली मासपेशी Orbicularis Oculi मे यह रोग प्रकट हो जिससे आख को बन्द करना मुश्किल लगता है और सोते वक्त भी आख खुली रहती है।

आख की मासपेशियो के अतिरिक्त गले की निगरण सम्बन्धी ऐच्छिक मासपेशियो के शिथिल हो जाने से भोजन के निगलने मे कठिनता प्रतीत होने लगती है। भोजन प्रारम्भ करते समय कोई कठिनता नही होती। कुछ देर भोजन करने के बाद कठिनता लगने लगती है और बाद मे तो निगलना मुश्किल हो जाता है। या हो सकता है कि चबाने वाली मासपेशी Mosseter मे यह रोग हो जाये जिससे सुबह चबाना मुश्किल नही लगता पर सायकाल तक चबाना बिलकुल असभव हो जाता है। सायकाल वह द्रव भोजन ही ले सकता है ठोस भोजन नही ले सकता। यदि Soft Palate के माम मे शैथिल्य हो तो यह मृदु भोजन या द्रव भोजन भी ऊपर नाक मे वापस आने लगता है। अथवा हो सकता है कि खाते-खाते निचला जबडा शिथिल होकर लटक सा जाये। मुखछिद्र की मासपेशी अर्थात् Orbicularis Oris मे शिथिलता हो जाने से मुखछिद्र को बन्द करना मुश्किल हो जाता है। उसके लिए सीटी बजा सकना, फूक मारना या मुह मे सिगरेट को थामना कठिन हो जाता है अथवा हो सकता है कि चेहरे के दोनो ओर की मासपेशियो मे शिथिलता आ जाये। ऐसा हो तो सायकाल के वक्त रोगी का चेहरा देखने मे भावहीन सा लगता है और Diplegia अर्थात् दोनो ओर Paralysis सा लगता है अथवा हो सकता है कि कण्ठ की शब्दोच्चारण सम्बन्धी मासपेशियो मे शिथिलता हो जाये जिससे सायकाल तक Aphonia का लक्षण प्रकट हो जाता है अर्थात् बोलना कठिन हो जाता है। रात आराम करने से सुबह तक वह ठीक हो जाता है। हो सकता है कि ग्रीवा की मासपेशियो विशेषत Flexor पेशियो मे शिथिलता हो जाये जिससे सायकाल तक सिर को हाथ से सभालना पडता है अथवा तकिये पर से सिर को ऊपर उठाना कठिन हो जाता है।

इस प्रकार जत्रुओ से ऊपर-ऊपर की ऐच्छिक मासपेशियो मे यह रोग बहुतायत से होता है। इसके बाद हो सकता है यह रोग शाखाओ मे भी प्रसरण कर जाये। पहले यह रोग ऊर्ध्व शाखाओ में आता है और इनमें भी पहले कन्धो की मासपेशियो मे आता है। इन मासपेशियो मे शिथिलता आ जाने से बालो पर कघी करना, हजामत बनाना, कपडो को खूटी पर टागना, वस्तुओ को उठा कर ऊपर रखना कठिन हो जाता है। यह रोग अधिक बढ जाये तो श्वास-प्रश्वास मे भाग लेने वाली ऐच्छिक मासपेशियो मे भी हो जाता है जिससे पहले जोर से खासना और फिर हल्का खासना बलगम थूकना भी मुश्किल हो जाता है। थोडा श्रम करने से श्वास चढ जाता है या बैठे-बैठे भी श्वास चढ जाता है।

इस प्रकार यह रोग बढता-घटता वर्षो तक रहता है और रोगी इस रोग मे १०-१२ वर्ष तक जीवित रह सकता है या इससे भी अधिक काल तक जीवित रह सकता है। केवल १०% रोगियो मे यह रोग बढता जाता और फैलता जाता है एव शीघ्र महीनो मे भी घातक हो सकता है। जब-जब गले, नाक या श्वास नालियो मे कोई Infection होता है तब यह रोग बढ जाता है। मृत्यु इस रोग मे श्वास कृच्छ्रता या Broncho-pneumonia होकर होती है। इसलिये इस रोग को बढने से रोकना चाहिए। १०% रोगियो मे यह रोग स्वयमेव अच्छा भी हो जाता है।

चिकित्सा

विश्राम चिकित्सा

रोगी को अति श्रम से बचना चाहिये और जब रोग बढ रहा हो तब पूर्ण विश्राम मे रहना चाहिये। जब तक रोग ठीक न हो तब तक श्रम नही करना चाहिये। भोजन भी ठोस न लेकर अर्ध द्रव ही लेना चाहिये ताकि मुख को थकावट न हो।

Anticholinesterase औषधियो द्वारा ही रोगी को कुछ आराम लगता है। अन्यथा रोग को पूरा आराम देने की कोई चिकित्सा अभी तक नही निकली (१) Neostigmine Methyl Sulphate (Prostigmine) की १५ मिलि० की गोलिया २-३, छ-छ घण्टे बाद दिन रात मे ४ बार दे सकते है। ५-६ घण्टो के बाद इनका प्रभाव जाता रहता है, अत इन्हे कई बार दुहराना पडता है। (2) Pyridostigmine Bromide (Mestinon) की ६० मिलि० की गोलिया मिलती है। इन्हे भी ६-६ घण्टे के अन्तर से दिन-रात मे ४ बार दिया जाता है। इसका प्रभाव उपर्युक्त दवा की अपेक्षा देर तक रहता है तथा इसमे उपद्रवो की आशका भी कम है। खाने मे कठिनता हो तो इसकी एक गोली आधा घण्टा पहले दे देने से

ges के विक्षुब्ध होने से होते है Leucocytosis भी होता है । नाडी देखने मे कुछ तेज होती, पर ज्वर की दृष्टि से जितनी होनी चाहिए उतनी नही, जिह्वा मैली होती, मलबन्ध विशेष रहता है। नाडी की मन्दता तथा श्वास-प्रश्वास की भी मन्दता इस रोग के विशेष चिन्ह हे । यह अवस्था २-३ दिन ही रहती है। इस प्रारम्भिक अवस्था (Stage of Onset) के बाद जब विद्रधि विकसित हो जाती हे तो कुछ सप्ताहो तक के लिए निम्न-लिखित लक्षण होते हें अर्थात् Subacute Stage के ये लक्षण होते है —

शिर शूल मन्द रूप (Dull Ache) मे होता रहता हे। परन्तु शख प्रदेश पर या जहा विद्रधि होती है वहा कपाल पर स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता हे। कपकपी या तापमान के होने का लक्षण नही रहता । कभी-कभी हल्का-सा ज्वर होता हे। नाडीगति मन्द होती पर नाडी भरी हुई होती है। श्वासगति मन्द होती है, वमन और मलबन्ध जारी रहते हैं। रोगी के मुख व श्वास से दुर्गंध आती हे। चेहरा फीके रग का मटियाला दीखता है। शरीर कृश हो जाता है। प्रधान लक्षण उसमे मानसिक मन्दता (Mental torpidity) का होता हे। मानो वह बाहर से उदासीन होकर जड-सा हो गया हो। वह मूर्छा मे नही होता पर अतिमन्द होता है। अपने भाव को भली प्रकार प्रकट नही कर सकता पर वह चिडचिडा होता है। इस प्रकार पूय भाव (Sepsis) तथा मस्तिष्कान्तर्भार (Intra-cranial Pressure) के बढने से उपर्युक्त नाना लक्षण होते हे। रोग के प्रारम्भ मे Antibiotic औषधियाँ दी गई हो तो Sepsis से होने वाले लक्षण इस प्रकार नही होते तब शिर शूल और बाद मे आक्षेप (Convulsions) के होने के लक्षण होते हैं। चिरस्थायी या Chronic अवस्था मे समय-समय शिर शूल हो तो पाण्डुता और कृशता बढते जाते है। विद्रधि के फैल जाने से शिर दर्द प्रबल हो जाता है।

स्थानिक लक्षण

मस्तिष्क विद्रधि के स्थानिक लक्षण भी होते हे अर्थात् Temporal Lobe के निचले भाग से आरम्भ होकर क्योकि यह ऊपर और आगे की ओर बढती है और यदि यह बाये Lobe मे होती है तो स्पष्ट हे कि (१) उधर आगे की ओर भाषण के केन्द्र के होने के कारण भाषण नैर्बल्य (Dysphasia) का लक्षण हो सकता है अर्थात् रोगी एक वस्तु के नाम को बता नही सकता यद्यपि वह उसे जानता है (Word Blind, Nominal Aphasia) इस Lobe के बाहर के भाग मे श्रवण का स्थान होने से दूसरी ओर बधिरता का लक्षण होता है। (२) जिधर विद्रधि होती है उससे दूसरी ओर के आधे दृष्टि क्षेत्रो के ऊर्ध्व भाग मे अन्धेरा हो जाने अर्थात् Homonymous Upper Quadrantic Hemianopia का लक्षण होता है। विद्रधि गहराई मे हो तो Motor fibres पर दबाव पडने से दूसरे ओर के चेहरे पर निर्बलता लगने लगती है। उसके बाद उधर के बाहु और बाद मे उधर की जाँघ मे भी निर्बलता (Supra-nuclear Type) हो सकती है। गहरे भाग मे विद्रधि के होने पर मानस अपस्मार (Psychic Epilepsy) के से वेग जिनमे गन्ध और स्वाद सम्बन्धी (Uncinate Hallucinations) मिथ्या प्रतीतियाँ होती है, हो सकते हे। इसके पिछले भाग मे विद्रधि हो तथा उससे Cerebellum दब जाय तो Cerebellar किस्म के लक्षण भी हो सकते है। Frontal Lobe मे विद्रधि हो तो बहुधा कोई विशेष लक्षण नही होता तो भी तन्द्रालुता, उदासीनता, बुद्धिभ्रशता तथा विस्मृति के या कभी-कभी मानस अपस्मार के लक्षण हो सकते है। Cerebellum मे विद्रधि हो तो अन्दर रक्तभार बढने से वमन होने, शिर के पिछले भाग मे दर्द होने तथा ग्रीवा के अकडने के लक्षण प्रमुख होते हैं। शिर शूल शिर के पिछले भाग मे विशेष (Occipito Frontal) होता है। Nystagmus तथा Papilloedema के लक्षण भी होते है। शिर तथा ग्रीवा पीछे की ओर मुडे हुए रहते हैं। नाडी मन्द तथा निर्बल होती है। श्वास विषम होता हे या Cheyne Stokes किस्म का होता है। जिधर विद्रधि होती है उधर Hypotonia होता हे अर्थात् उधर की बाहु शिथिल होती हे।

भेदक लक्षण

इस रोग का Mastoiditis तथा Meningitis से भेद करना चाहिये। मस्तिष्क विद्रधि इन दोनो के साथ भी हो सकती हे। पहले रोग का भेद करना सुगम है। दूसरे का पता प्रलाप की विशेषता, कण्ठ कुब्जता (Neck rigidity) विक्षोभशीलता, प्रकाशासहिष्णुता (Photophobia), तापमान की उच्चता, नाडी की तीव्रता से लगता हे। विद्रधि मे इसके विपरीत नाडीमन्दता होती तथा मानसिकमन्दता भी रहती है। मस्तिष्कार्बुद की बढने की गति मन्द होती, तापमान भी उसमे नही होता, उसमे कृशता और पाण्डुता के लक्षण भी कम होते तथा Leucocytosis भी नही होता। वह Frontal तथा Parietal Lobes मे अधिक होता जबकि यह Temporal Lobe मे अधिक होता है। Papilloedema का लक्षण अर्बुद मे विशेष रूप मे होता है। इसी प्रकार Optic Neuritis

भी अर्बुद का ही विशेषत सूचक होता है।

मस्तिष्क द्रव परीक्षा

मस्तिष्क द्रव (Cerebrospinal Fluid) को केवल ३ सी० सी० मात्रा मे निकालकर उसकी परीक्षा करनी चाहिये। एक तो उसका भार Pressure बढा हुआ पाया जाता है। Total Protein ४० मिलि० प्र० श० से अधिक बढा हुआ होता है। उसमे श्वेत कण या Cells भी अधिक होते हैं अर्थात् प्रति क्यूबिक मिलिमीटर मे १०-२० के लगभग होते हैं। Chlorides की मात्रा नार्मल से कम होती हैं। रक्त की परीक्षा करने पर Leucocytosis १५-२० हजार प्रति क्यूबिक मिलिलिटर तक होता है। कपाल (Scalp) मे Burr hole करके Hollow Blunt Needle से Exploration के द्वारा इसका निश्चय किया जाता है। मृत्यु, इसके बढते जाने के बाद जबकि मूर्छा गहरी होती जाती है, इस विद्रधि के एक Ventricle मे खुल जाने से घटो मे ही हो जाती है। उस समय वमन, गहरी मूर्छा, तापमान की वृद्धि, नाडी की तीव्र गति, श्वासवैषम्य (Cheyne Stokes Type) पुतली के फैल जाने (Dilatation of Pupil), मासपेशियो मे कम्प या स्तम्भ (Twitchings and Contractions) के होने के लक्षण होते हैं। यह विद्रधि Sub arachnoid Space मे बहुधा खुल जाती है जिससे Leptomeningitis होकर अर्थात् वमन, प्रलाप, कम्प, आक्षेप, तीव्र ज्वर, मूर्छा, मन्द पर भरी हुई नाडी और बलपूर्वक लिये गये (Laboured) श्वास प्रश्वास के लक्षण होकर २-३ दिन मे मृत्यु हो जाती है।

विद्रधि कपाल के अन्दर Dura के बाहर हो तो Osteomyelitis के लक्षण होते हैं। स्थानिक स्पर्शाक्षमता स्थानिक शिर दर्द, उभार युक्त शोथ (Oedema) के लक्षण होते हैं। यदि विद्रधि Dura के अन्दर की ओर अर्थात् Subdural-abscess हो तो विष सचार Toxaemia, Intracranial pressure, उच्च तापमान, पाण्डुता के लक्षण होते हैं। शिरशूल और Papilloedema के लक्षणो से इसका निश्चय हो जाता है। Sinusitis, या Otitis के उपद्रव रूप मे यह रोग होता है।

चिकित्सा

Otitis Media, Nasal Sinusitis तथा Bronchiectasis आदि रोगो की चिकित्सा ठीक-ठीक की जाय तो मस्तिष्क विद्रधि की रोकथाम की जा सकती है। तीव्र मस्तिष्क विद्रधि के लिए Benzyl Penicilin ५ लाख यूनिट्स मात्रा मे ६-६ घटे पर मास द्वारा देनी चाहिये। Acute Abscess मे Burr hole बनाकर Needle Aspiration द्वारा कुछ पूय को निकालकर उसमे Crystalline Sodium Penicillin G को १ सी० सी० मे १ लाख यूनिट मात्रा के हिसाब से Abscess मे डाल देना चाहिये। उसके अन्दर १-२ सी० सी० ऐसा द्रव्य जिससे उसकी Radiography की जा सके (Diodone) जैसा डाल देना चाहिये ताकि विद्रधि के घटने का पता लग सके। इस प्रकार बार-बार Aspiration तथा Penicillin के वहा प्रवेश करने से इसे ठीक किया जा सकता है। साथ ही ६० हजार यूनिट्स मात्रा मे Crystalline Penicillin को ३-३ घन्टे पर मास द्वारा भी एक सप्ताह तक दे दिया जाता है।

पुरानी विद्रधि को तो Drainage करते हुए क्रमश नीचे से भरने दिया जाता है।

Extra तथा Subdural abscess मे स्थानिक Burr-hole opening करके पहले मे Suction से पूय को निकाल Penicillin powder को Insufflation से डालकर Drainage tube लगा दी जाती है। दूसरे मे भी Burr hole करके, Dura को खोलकर, पूय को निकाल कर बारीक Catheter को प्रविष्ट करके उसके द्वारा Antibiotic को प्रविष्ट कर दिया जाता है। साथ ही मास द्वारा Antibiotic चिकित्सा की जाती है अर्थात् बडी मात्रा मे Penicillin का मास द्वारा प्रयोग किया जाता है।

आयुर्वेद मे सुश्रुत (उत्तर अ० २५) ने इस रोग को शखक शूल कहा है। उसने कहा है कि शख प्रदेश के अन्दर पित्त और रक्त के दूषित हो जाने अर्थात् वहा पूयभाव (Suppuration) के हो जाने, कफ के भी विकृत हो जाने (अर्थात् वहा Oedema के हो जाने) तथा इनके कारण वायु के विकृत हो जाने अर्थात् मस्तिष्क पचम नाडी पर खींच पड जाने से सारे सिर मे रह रह कर शूल का प्रबल वेग होता है। उसने इसे असाध्य एव मारक कहा है। उसने इसका वर्णन आभ्यतर विद्रधियो मे नही किया। हृदय विद्रधि जो उसने कही है उससे उसका Cardiac Thrombosis या Infarct से अभिप्राय प्रतीत होता है।

शिरोभिघात—Head Injuries

Concussion —इस अवस्था मे मस्तिष्क का कार्य कुछ स्वल्प काल के लिए बन्द या Paralysed हो जाता है पर मस्तिष्क की रचना मे कोई विशेष क्षति नही होती जैसी Contusion मे होती है। शिरोभ्रम, श्वासमन्दता के लक्षण तो (Brain-stem) पर आघात पहुचने से होते है। पर स्मृतिनाश, विक्षोभशीलता, क्रोध आदि के लक्षण

Cerebrum के अन्दर नाडीसूत्रो के होने से होते है। Concussion मे मस्तिष्क के अन्दर केवल सूक्ष्म या Microscopic क्षति ही पहुचती हे। सिर पर डण्डे के लगने से (जैसे ग्रामो के झगडो मे होता है) या ऊपर से नीचे गिरकर सिर पर चोट लगने से (जैसे कि अधिकत शहरो मे होता हे) मस्तिष्क पर धक्का लगकर थोडे मिनटो या घण्टो के लिये इसमे जो मूर्छा हो जाती हे उसे Concussion कहते हें। मस्तिष्क पर ऐसी चोट लगने पर उसका काम कुछ देर के लिए अति-मन्द पड जाता है या वन्द हो जाता है। ऐसा क्यो होता है इस विपय मे ऐसा अनुमान किया जाता हे कि एक ओर के Cerebrum के आगे या पीछे की ओर थोडा खिसक जाने से उसके Thalamus के नीचे के Brain Stem मे कुछ खीच पड जाती हे जिससे वह कुछ Distort हो जाता है। इसी की विकृति से तापमान, श्वासनाडी सम्वन्धी लक्षण तथा वमन होने का लक्षण होता हे तथा मूर्छा भी इसी कारण होती हे। Brain Stem मे जितनी अधिक विकृति हो, जितनी अधिक उस पर खीच पडे उतना ही शिरोभिघात अधिक भयकर हो जाता है। वडी-वडी Superior Cerebral veins के कारण कपाल के अन्दर मस्तिष्क के हिलने की जगह होती है। चोट लगने पर मस्तिष्क गोलार्ध आगे पीछे की दिशा मे स्थान भ्रष्ट हो जाते हे जिससे Brain Stem के साथ एक गोलार्ध का सम्वन्ध कुछ विच्छिन्न हो जाता है। धक्के के कारण एक गोलार्ध का Corpus Callosum के द्वारा दूसरे गोलार्ध से जो सम्बन्ध है वह भी कुछ विच्छिन्न हो जाता है। सिर के आगे या पीछे चोट लगने से गोलार्व के पीछे या आगे की ओर खिसकने से इसका दुष्प्रभाव Brain Stem पर पडता हे। चोट अधिक हो तो Medulla न्यूनाधिक आहत हो जाता हे। उसके आहत होने से ही वस्तुत मूर्छा का लक्षण होता है। चेतना ऊर्ध्वमस्तिष्क पर नही मस्तिष्क के Base पर और Hypothalamus पर आश्रित है। विना मस्तिष्कान्तर्भार वढे भी यदि Brain Stem पर न्यूनाधिक आघात पडे तो मूर्छा का लक्षण हो जाता है। Brain Stem पर आघात लगने से ही Brain injury, Concussion, Contusion, laceration आदि के सव लक्षण होते है। चोट लगने के समय रोगी पीठ के भार जमीन पर विलकुल अचेत पडा होता है। मुख पाण्डुर तथा शीतल होता है और स्वेद से आर्द्र होता है। शरीर का तापमान गिरा होता हे। दूसरे शब्दो मे रोगी Cerebral Shock की अवस्था मे होता है। पलके वन्द होती हे, आख के अन्दर अगुली लगाने से भी झपकती नही, पुतलियाँ दोनो ओर एक-सी नही होती, प्रकाश डालने से सकुचित होती हे। श्वास-प्रश्वास की गति मन्द होती है तथा दोनो उथले होते हे। नाडी गति तीव्र होती, प्रत्येक नाडी निर्वल होती है। रक्त भार गिरा होता हे। शाखाये शिथिल होती है।

मूर्छा पूर्ण हो तो Corneal और निगलने के Reflexes लुप्त होते है। एक ओर की शाखाए दूसरी ओर की शाखाओ की अपेक्षा अधिक शिथिल होती है। तापमान भी देखना चाहिए जो गिरा होता है। नाडी गति तथा श्वास की प्रति मिनट गणना करनी चाहिए।

सिर पर चोट हल्की लगी हो तो रोगी हक्का-बक्का हुआ-सा दीखता है। यदि वह कुछ थोडी अधिक लगी हो तो उपर्युक्त शीतलता या मन्दता की अवस्था थोडी देर रहकर शीघ्र ठीक हो जाती है। चोट भारी लगी हो तो यह अवस्था पर्याप्त समय तक रहती हे, मूर्छा गहरी-गहरी होती जाती है और मृत्यु हो जाती है। अथवा न्यूनाधिक मूर्छा के वाद फिर अवस्था सुधरने लगती हे और प्रतिक्रिया या Reaction की अवस्था आरम्भ हो जाती है जो मस्तिष्क पाण्डु के विपरीत मस्तिष्क मे शोथ (Inflammation) के होने तथा शोथ-जनित द्रव के वहा अधिक मात्रा मे सचित हो जाने से अर्थात् Oedema या Compression के कारण होती है अर्थात् मस्तिष्क के विक्षुब्ध हो जाने के कारण यह अवस्था उत्पन्न होती हे। इसमे चेहरा कुछ लाल होता, नाडी गति मे तीव्र होती तथा अधिक भरी हुई लगती हे। सूक्ष्म रक्तवाहिनियो के फटने या Intracranial रक्त स्राव के कारण श्वास भी गहरे हो जाते हे। मस्तिष्क के विक्षुब्ध (Cerebral Irritation) रहने से रोगी को प्रकाश सहन नही होता, शोरगुल भी सहन नही होता, रोगी क्रोधी हो जाता हे, सिकुड कर विस्तरे मे पडा रहता है, (Flexion की स्थिति मे), उसे वमन होने, शिर दर्द होने तथा हल्का ज्वर हो जाने का लक्षण भी होता हे, ये लक्षण कुछ दिन रहते हैं ज्वर निकले हुए रक्त के विलीन होने या Meningitis के कारण होता हे। इस Reaction या Cerebral Irritation की अवस्था मे यदि ज्वर १०४ डिग्री से ऊपर हो जाय, नाडी निर्वल एव अनियमित होती जाय, एक ओर की शाखाओ मे शिथिलता वढती जाय, एक ओर की पुतली फैलती जाय तो अन्दर Haemorrhage का अनुमान करके इसे घातक समझना चाहिये। परन्तु वहुधा रोगी क्रमश ठीक होने लगता हे तथापि उसका मस्तिष्क कुछ काल के लिए विक्षोभशील रहता हे अर्थात् कुछ काल वह Meningitis की हालत मे रहता है। कुछ काल के

विश्राम तथा शान्त वातावरण मे रहने से यह विक्षोभावस्था भी जाती रहती है।

Hutchinson's Pupil —जिधर चोट लगी है उधर पुतली पहले सिकुडती है फिर बाद मे कुछ फैल जाती हे और बाद मे और अधिक फैल जाती हे और प्रकाश डालने से भी सिकुडती नही। दूसरी ओर की पुतली पहले नार्मल होती है, कुछ काल बाद वह भी फैल जाती है पर प्रकाश डालने से सिकुडती है पर और बाद मे वह भी अधिक फैल जाती और प्रकाश से अप्रभावित होती है। ये परिवर्तन तृतीय मस्तिष्क नाडी के पहले विक्षोभ से, बाद मे Paralised हो जाने से होते है।

Cerebral Compression—

शिरोभिघात जब प्रबल रूप मे होता हे जिससे मस्तिष्क पर कुछ रगड भी लग गई हो अर्थात् उसमे हलका Contusion हो गया हो तो मस्तिष्क मे शोथ होकर सूजे अवयव के कारण वहा की शिरायें दब जाती है जिससे उनमे से स्राव (Exudation) बढ जाता एव वहा द्रव सचय (Oedema) तथा (Swelling) हो जाता है जिसके कारण मस्तिष्कान्तर्भार (Compression) हो जाता है। इसका प्रधान लक्षण गहरी मूर्छा का होना है। यह मूर्छा वैसी ही होती है जैसे रक्तस्राव (Haemorrhage) के कारण होती हे जिसमे Vaso Motor केन्द्र तथा Vagus के विक्षुब्ध रहने से नाडी भरी हुई एव मन्द होती हे। श्वास घुर्राटेदार, मन्द तथा गहरा होता है रक्तभार बढा हुआ होता है। Medulla के दब जाने से Systolic भार तो बढा हुआ तथा Shock से Diastolic भार कम होता है। अत Pulse Pressure बढा होता है। Motor Area मे स्थानिक Compression हो तो तत्सम्बन्धी मासपेशियो मे पहले आक्षेप (Convulsion) होने का और फिर उनमे पहले स्तम्भयुक्त और फिर शैथिल्ययुक्त पक्षाघात हो जाता है।

Extra या Epidural Haemorrhage—

कनपटी अर्थात् Temporal पर अस्थि के पतले Squamous भाग पर पत्थर या कठोर गेद के द्वारा भारी चोट के लगने से उसमे Fracture होकर Middle Meningeal Artery की Anterior या Posterior शाखा या Vein फट सकती है, जिसमे अस्थि और Dura के बीच मे रक्तस्राव हो सकता है (शिरोभिघात के १-२% रोगियो मे ही यह होता है) जिसे Extra Dural Haemorrhage या Haematoma कहते है अर्थात् वहा पर एक अच्छे आकार का Intracranial Clot बन जाता एव जो Temporal lobe पर अन्दर की ओर दबाव डालता है। Temporal Muscle के अन्दर उभार हो तो इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिये। इसमे चोट लगने के बाद कुछ काल तक तो रोगी होश मे रहता है या मामूली-सी बेहोशी के ठीक हो जाने के कुछ काल बाद अन्दर रक्तभार बढ जाने पर या निकले रक्त के कारण दबाव या Compression के हो जाने पर पहले तो रोगी मे मति विभ्रम या Confusion का लक्षण होता हे और उसमे विक्षोभशीलता का लक्षण भी होता है, इसके बाद उसमे मूर्छा और घुर्राटेदार श्वास का लक्षण हो जाता है। उधर Third Nerve के, इस Clot द्वारा दब जाने से उधर की पुतली फैल जाती है। अत जिधर की पुतली फैली हो और जिधर की Temporal muscle सूजी हो उधर की ओर ही Haematoma हुआ है ऐसा समझना चाहिये। मस्तिष्क पर आघात लगने के कारण C S F द्रव मे रक्त मिश्रित हुआ-हुआ मिलता है तथा उसका भार भी कुछ बढा होता हे। इसका तुरन्त शल्यकर्म होने से रोगी बच सकता है।

Acute Subdural Haemorrhage—

बडी आयु के व्यक्ति को जब Brain मे atrophy हे, शिर के आगे से या पीछे से शिरोभिघात लगने और उसके कारण Brain सहसा हिल गया हो और उसके कुछ घण्टो, दिनो या सप्ताहो के बाद मूर्छा का दौरा हो जाये अर्थात् Delayed Traumatic Apoplexy या Apathy का दौरा हो तो इसे Acute Subdural Haematoma समझना चाहिये। इसमे Cortex मे से Sagittal sinus मे आने वाली Dura की शिराओ मे से अर्थात् Superior Cerebral Veins मे रक्त फटकर Dura तथा Arachnoid के बीच के Potential Space मे Haematoma के रूप मे जमा हो जाता है और उसके Compression के कारण मूर्छा हो जाती हे। हो सकता है कि ६० मिलिलिटर रक्त का बना हुआ यह Clot हो। रोगी पहले तो चोट से बेहोश होकर अच्छा हो जाता हे फिर कुछ घण्टो या दिनो के बाद धीरे-धीरे उत्पन्न Haematoma के दबाव के कारण उसे मूर्छा हो जाती हे, जिधर यह रक्तस्राव होता है उधर की पुतली फैली होती है। हो सकता हे यह मूर्छा हलकी ही हो, साथ ही शिर दर्द और विक्षोभशीलता के लक्षण हो, Haematoma से दूसरी ओर शाखाओ मे न्यूनाधिक स्तम्भयुक्त या Upper motor Neurone किस्म का पक्षाघात का लक्षण भी होता हे। C S F की परीक्षा

करने पर उसका भार बढा हुआ तथा उसमे रक्त मिश्रित हुआ मिलता है। Cerebral Angiography से इस Haematoma का निश्चय हो सकता है। इस Clot का निकाल देना ही इसकी चिकित्सा है। अन्यथा ६०% मे यह घातक होता है क्योंकि इसमे मस्तिष्क को अधिक क्षति पहुची होती है।

Chronic Subdural Haematoma

बडी आयु के लोगो मे जिनमे Brain छोटा हो जाता है आगे की ओर या पीछे की ओर लगे शिरोभिघात के कुछ सप्ताहो या महीनो अर्थात् दीर्घ काल के बाद जब चोट भूल भी जाती है समय-समय पर तीव्र शिर शूल हो जिसकी तीव्रता उत्तरोत्तर बढती जाती हो और बाद मे मस्तिष्क मे विद्यमान इस विक्षोभक कारण से शाखाओ मे आक्षेप या पक्षाघात के लक्षण होने लगे, Cerebral-anoxia के कारण विचार शक्ति भी मन्द होती जाती हो, तन्द्रा, निद्रा, Apathy के लक्षण हो तो Chronic Subdural Haematoma के कारण मस्तिष्क मे Compression है ऐसा सन्देह करना चाहिये। Lumber puncture करने से द्रव का भार घटा हुआ होता है, उसमे प्रोटीन की मात्रा बढी हुई होती है, उसका रग पीला-सा होता है। Arteriography से इस Haematoma का पता लग जाता है। यह बहुधा Parietal प्रदेश मे एक ओर या कभी-कभी दोनो ओर होता है। जिधर पुतली फैली हो उधर इसके होने का निश्चय कर लेना चाहिये। इसे भी Burr hole या Trephining के द्वारा खोलकर Dura को नगा करके उसमे Incisen देकर रबर कैथिटर द्वारा काला रक्त निकालने से रोगी को बचाया जा सकता है अन्यथा यह रोग घातक है।

मस्तिष्काभिघात—Cerebral Contusion **तथा** Laceration

सिर पर चोट लगने से मस्तिष्क या उसके आवरणो को कुछ क्षति पहुचे अर्थात् कुछ सूत्र खण्डित Ruptured हो जाए तो उसे Cerebral Contusion कहते है। इस अवस्था मे रोगी देर तक मूर्छित रहता है तथा Brain stem के केन्द्रो पर अधिक दुष्प्रभाव पडा होता है। कपालास्थि के फटे बिना ऐसा हो तो Non-penetrating Contusion कहते है। अस्थि भग के साथ हो तो Penetrating contusion कहते है। यदि सिर पर चोट लगने के बाद मूर्छा शीघ्र दूर न हो, पाण्डुता हो, श्वास प्रश्वास उथला हो,नाडी तीव्र तथा निर्बल हो, तापमान नार्मल से कम हो, शरीर शिथिल हो, Reflexes घटे हुए हो अर्थात् Cerebral Shock के लक्षण हो तो इस रोग का सन्देह कर लेना चाहिये। Cere Laceration उसे कहते हैं जब मस्तिष्क का पृष्ठ क्षत हो जाय और Cerebro Spinal द्रव मे रक्त आ जाए। Contusion या Laceration मे मस्तिष्क मे स्थान-स्थान पर न्यूनाधिक रक्त स्राव हो जाता है। Dura के बाहर तथा अन्दर कुछ Clots भी बन जाते है। ऐसी चोट के बाद मस्तिष्क मे Oedema हो जाता है। Temporal lobe के दबाव से 3rd Nerve तथा Midbrain दब जाते है। Basilar Vein के दब जाने से Oedema और बढता है। Posterior cerebral artery के दब जाने से मस्तिष्क को रक्त तथा आक्सिजन कम मिलती है। उपर्युक्त Haematoma भी इसी रोग के सूचक होते है। ऐसी भारी चोट प्राय Frontal या Parietal Lobe पर लगा करती है। Frontal lobe पर चोट लगने से मानसिक या मूकता सम्बन्धी लक्षण होते है। Motor Area मे चोट लगने मे तत्सम्बन्धी पेशियो मे आक्षेप या 'घात' होने का लक्षण हो सकता है। Motor Area मे रक्तस्राव हो जाय तो उसके विक्षोभ कारक होने से शिर व आखे जिधर रक्तस्राव हुआ है उससे दूसरी ओर फिर जाती है (Conjugate deviation of the Head and Eyes) रक्तस्राव अधिक होने से विनाशक हो (विक्षोभक न हो) तो दोनो आखे उधर को जिधर रक्तस्राव हुआ है, मुड जाती है। Occipital Lobe मे चोट लगे तो Homonymous Hemianopia का लक्षण होता है।

Penetrating contusion हो तो जीवाणु सक्रमण तथा Meningitis दो प्रधान उपद्रव होते है। यह अवस्था विशेषत घातक होती है। कपालास्थियो मे केवल चीर पड गया हो Fissure ही हो तो वह स्वय जुड जाता है जिसमे कुछ सप्ताह का समय लगता है।

साध्यासाध्य—चोट के बाद का स्मृतिनाश Post Traumatic Amnesia—१-२ मिनट का हो तो चोट थोडी ही लगी समझनी चाहिये। यह स्मृतिनाश १-३ घन्टे रहे तो चोट कुछ अधिक लगी समझनी चाहिये। ऐसा रोगी १½-२ मास के विश्राम से ठीक होता है। यदि स्मृतिनाश का लक्षण एक-दो सप्ताह या और अधिक समय के लिये रहे तो समझना चाहिये कि रोगी के मन व बुद्धि को पर्याप्त क्षति पहुच गई है और उसे ३-६ मास तक ठीक होने मे लगेगे। यदि Amnesia १ मास से अधिक काल तक रहे तो समझना चाहिये कि मस्तिष्क या Midbrain

मे रक्तस्राव हो गया है। तथा उन्हे ठीक होने मे सवा साल लगेगा। Brain stem मे अर्थात् Medulla oblongata, Pons तथा Midbrain मे जहा श्वास तथा रक्त सचार सम्बन्धी बडे-बडे आवश्यक केन्द्र है रक्तस्राव हो जाय तो २४ घटो के अन्दर मृत्यु हो जाती है अर्थात् Reticular formation के ठीक रहने से आदमी जागरूक रहता है। वहा विकृति या Distortion होने से आदमी बेहोश होकर गिर पडता है। Concussion मे वहा खीच हल्की पडती है इसलिए मूर्छा सामयिक ही होती है। Cerebral contusion मे Thalamus से नीचे के इस प्रदेश मे खीच अधिक पडती है इसलिए उसमे मूर्छा दीर्घ होती है। Brain मे Oedema होने से Brain stem मे विकृति हो जाती है उससे मूर्छा का लक्षण होता है। ऐसे रोगी की पुतली फैली हुई होती है। अच्छा होने के बाद अर्थात् Post traumatic state मे मस्तिष्क पर हुई क्षति के कारण रोगी स्वल्प शारीरिक मानसिक श्रम से थक जाता है। उसकी एकाग्रता की शक्ति कम हो जाती है तथा उसे शिर दर्द, शिरोभ्रम व निद्रानाश के लक्षण होते है जो Sedative या Tranquilizer औषधियो से कुछ शान्त हो जाते है।

शिरोभिघात की चिकित्सा —

Concussion के रोगी को अधेरे मे तथा शान्त प्रदेश मे लिटाकर रखें उसे हिलाना डुलाना या कोई उत्तेजक औषधि देना ठीक नही होता। सिर पर बर्फ की टोपी रखना व शीतल शरीर के आसपास गर्म बोतलो का रखना मुनासिब है। साथ ही A T S तथा किसी Antimicrobial औषध का प्रयोग भी करें। यदि श्वास मे अवरोध प्रतीत हो तो रोगी को एक करवट पर लिटा कर ऐसा रखें कि सिर कुछ नीचा रहे, जीभ आगे की तरफ रहे। ऐसा न हो कि वह पीछे गिरकर श्वास को रोक सके, वमन द्रव या मुख मे जमा हुई थूक भी मुख से निकलती रहे, पीछे श्वास मार्ग की तरफ न जा सके। मुख की झाग को कपडे से साफ करते रहना चाहिये। अर्थात् श्वास मार्ग को रुकने न दें। मस्तिष्क को पहले ही रक्त कम मिल रहा है अर्थात् Anoxia का लक्षण है ऐसी अवस्था मे श्वास मार्ग को साफ रखना जरूरी होता है। यदि मूर्छित रोगी थूक नही सकता हो तो Tracheostomy का शल्य कर्म आवश्यक हो जाता है ताकि आक्सिजन पूर्ण मात्रा मे मिले। रोगी को कोई निद्राजनक औषधि न दे क्योकि उससे श्वास केन्द्र और भी मन्द हो जाता है। मूर्छित रोगी को मूत्राघात भी होता है। अत केथिटर द्वारा मूत्र निकाल देना चाहिए।

रोगी की नाडी की परीक्षा होती रहनी चाहिये। (वह कम हो तो Compression का ज्ञापक होता है) रक्त-भार देखते रहना चाहिये (कम हो तो Shock का ज्ञापक होता है) इसी प्रकार तापमान तथा श्वास गति का भी रिकार्ड रखना चाहिये। दूसरे दिन Lumber puncture करके देखना चाहिये। उसका भार १५० M M से ऊपर हो तो थोडा द्रव निकाल देना चाहिये। यह मस्तिष्क मे Oedema का द्योतक होता है। ऐसी अवस्था मे Oedema के हटाने के लिऐ ६०% Mag Sulph सौल्यूशन को ६ औ० की मात्रा मे गुदा मे ऊपर एक केथिटर के द्वारा धीरे-धीरे डाल देना चाहिये और उसे २० मिनट तक रोके जिससे रोगी के रक्त मे से जल खिचकर आत मे आ जाय। १२-१२ घटे पर ऐसा कर सकते है। C S F का भार १०० M M से नीचे हो तो उसे नही निकालना चाहिये। तब चारपाई के पायते को ६ इ च ऊ चा कर दे अर्थात् सिर को नीचा रखे। Cerebral Oedema के लिये शिरा द्वारा Hypertonic Saline Solution दे देना लाभदायक है। मूत्रल औषधि के देने से भी मस्तिष्क का Oedema दूर होता है। रोगी होश मे हो, सिर दर्द भारी हो तो वेदनाहर औषधि दें तथा सेलाइन का प्रयोग मुख द्वारा करे। Dexamethosone (Decadron) १५-४० मिलि० दैनिक मात्रा मे 5 M मस्तिष्क के Oedema को कम करता है।

Shock के लिये उसके हटाने की चिकित्सा होनी चाहिए। Pholedrine (Veritol) आदि का मास द्वारा प्रयोग होना चाहिए तथा Oxygen का प्रयोग करना चाहिए। मूत्राशय मे केथिटर को स्थिर करके मूत्राशय को साफ रखना चाहिए। रोगी को पहले-पहल ३-४ दिन मल नही आता इसके लिए वस्ति देकर आत को साफ रखना चाहिए। रोगी को आहार नासिका द्वारा प्रविष्ट Ryle's Tube के द्वारा पर्याप्त मात्रा मे देना चाहिए। इस अवस्था के आरम्भ मे शरीर मे Catabolism अधिक होता है अत उसे १,५०० कैलोरीज का भोजन प्रतिदिन मिल जाना चाहिये। एक किलो भार के पीछे १ ग्राम प्रोटीन होना चाहिए, शेष कार्बोहाइड्रेट होना चाहिए, विटामिन्स तथा जल की मात्रा भी पर्याप्त होनी चाहिए। सिर पर चोट लगने पर वृक्क ठीक काम नही करते अर्थात् मूत्र की Sp. Gravity कम हो जाती है ऐसी अवस्था मे जल तथा प्रोटीन का देना ठीक नही। इस अवस्था मे

५०० सी० सी० २ ५% ग्लूकोज ५% सेलाइन शिरा द्वारा देना चाहिए इससे मूत्र वढे तो इसे अधिक मात्रा मे दे। Brain Stem मे रक्त की कमी को तथा उससे होने वाले Cheyne Stokes Respiration को दूर करने के लिए Aminophylline २५० मिलि० को धीरे-धीरे शिरा द्वारा देना चाहिए। इससे श्वासनालियो तथा रक्तवाहिनियो दोनो मे Dilatation होता है। Haematoma (Extradural तथा Subdural) के लिये शल्य कर्म ही जरूरी है विशेषत *Epidural* के लिये।

अति मास शैथिल्य Myasthenia-gravis

धीरे-धीरे अज्ञात रूप मे आरम्भ होने वाले इस रोग मे विशेषत मस्तिष्क नाडियो से पोषित ऐच्छिक मासपेशियो मे थोडे श्रम से शीघ्र ही शिथिल हो जाने की प्रवृत्ति रहती है। स्वल्प श्रम से जहा वे शीघ्र थक जाती हे वहा आराम करने के वाद वे फिर ठीक भी हो जाती हैं। नेत्र, मुखछिद्र, चेहरे, गले, कठ आदि ऊर्ध्व जत्रुगत ऐच्छिक मासपेशियो मे यह रोग विशेषत होता है। अर्थात् इन मासपेशियो का चेष्टीकरण या Innervation ऊपर से आने वाली चेष्टावाही नाडियो द्वारा पूरी तरह नही होता। इसका कारण सभवत Neuromuscular junction मे ऊपर से आने वाली चेष्टा मे किसी प्रकार की रुकावट ही प्रतीत होती हे।

कारण

मस्तिष्क से आने वाली चेष्टावाही या Motor नाडियो के उत्तेजित होने पर जहा Neuromuscular junction अर्थात् Motor nerve end plate मे उनके सिरे खतम होते हैं वहा Acetylcholine की उत्पत्ति होती है। उसके Para Sympathomemetic प्रभाव के कारण ऐच्छिक मासपेशी अर्थात् Somatic या Skelital पेशी मे चेष्टा उत्पन्न हो जाती है और फिर उसके पाचक रस या Cholinesterase के उत्पन्न हो जाने से जव वह Hydrolysed हो जाता अर्थात् अपने वनाने वाले तत्त्वो मे परिवर्तित हो जाता है तो उक्त मासपेशी मे सकोच या चेष्टा भी शान्त हो जाती है। अव इस रोग के रोगी मे या तो ग्रस्त मासपेशी मे आने वाली चेष्टावाही नाडी के सेलो मे Atrophy होने से Neuromuscular junction पर Acetylcholine की उत्पत्ति ही कम होती हे जिससे Motor Nerve End Plate मे उत्तेजना कम होती है, या Nerve End Plate मे कुछ ऐसी कमी आ जाती हे कि Acetylcholine के उत्पन्न होने पर भी वह पूर्णतया उत्तेजित नही होता अर्थात् Neuromuscular सधि स्थान पर ऊपर से आई Impulse को नष्ट करने वाला Curare की तरह का कोई विप द्रव्य उत्पन्न हो जाता है जो ऊपर से आई चेष्टा को मास मे जाने से रोकता है और सभव है Curare की तरह का यह विप Thymus gland मे से आता हो जो इस रोग मे प्राय वढा हुआ पाया जाता है। परन्तु वहुत से परीक्षक लोग तो अभी तक इस रोग को Autoallergy के कारण उत्पन्न होने वाला मानते हे। वे कहते है कि इस रोग मे ऐच्छिक मासपेशियो मे तथा Thymus gland के अवयवो मे कोई Antigen रहता प्रतीत होता है जिसके विपरीत Antimuscle Antibodies तथा Antithymus Antibodies उत्पन्न होकर रोगी के सीरम मे रहते हे। ये Muscle Fibres के साथ सयुक्त हो जाते हे और वहा Complement भी खर्च होता है। इन सवको देखकर यह अनुमान करना ठीक ही हे कि यह रोग Auto-allergy या Autoimmunity के कारण होता है। रोगी के रक्त मे Hyperglobulinaemia भी पाया जाता है। इस रोग मे रोगी का Thymus gland भी सूक्ष्म न होकर वडा होता है अर्थात् उसमे Hyperplasia होता है तथा १०% के लगभग रोगियो मे Thymoma भी पाया जाता है। इस प्रकार इस रोग और Thymus मे कोई सम्वन्ध अवश्य है। इस रोग के Allergy द्वारा होने का एक सवूत यह भी है कि इस रोग के होने से पहले नाक या गले मे कोई Infection हो चुका होता हे।

लक्षण

यह रोग २०-३० वर्ष के वीच के युवक-युवतियो मे पाया जाता है तथा यह धीरे-धीरे अज्ञात रूप मे आरम्भ होता हे। प्रारम्भ मे ऐसा लगता हे कि कोई एक मासपेशी थोडा श्रम करने से ही शीघ्र थक जाती हे और कुछ काल आराम देने से फिर वह ठीक हो जाती है। सवसे पहले आख की मासपेशियो मे से किसी मे यह शिथिलता प्रकट होती है। प्राय ऊपर के पलको की मासपेशी Levator Pelpebrae मे शिथिलता प्रतीत होती हे अर्थात् सायकाल तक थकने के वाद ऊपर की पलके शिथिल होकर नीचे गिर जाती है अर्थात् सुवह आखे ठीक होती हे सायकाल उनमे Ptosis का रोग हुआ प्रतीत होता हे पर रात को आराम करने के वाद सुवह तक यह लक्षण शात हो जाता हे और अगले दिन फिर सायकाल तक प्रकट हो जाता हे अथवा हो सकता है नेत्रो को ऊपर-नीचे या दाये-वाये घुमाने वाली किसी External Ocular mus-

cle मे यह शिथिलता का रोग प्रकट हो। अगर एक तरफ ऐसा रोग हो तो डवल दृष्टि या Diplopia का लक्षण प्रकट हो जाता है। रात आराम करने के वाद सवेरे यह लक्षण भी ठीक हो जाता है अथवा हो सकता है कि नेत्रो को भीचने या वन्द करने वाली मासपेशी Orbicularis Oculi मे यह रोग प्रकट हो जिससे आख को वन्द करना मुश्किल लगता है और सोते वक्त भी आख खुली रहती है।

आख की मासपेशियो के अतिरिक्त गले की निगरण सम्वन्धी ऐच्छिक मासपेशियो के शिथिल हो जाने से भोजन के निगलने मे कठिनता प्रतीत होने लगती है। भोजन प्रारम्भ करते समय कोई कठिनता नही होती। कुछ देर भोजन करने के वाद कठिनता लगने लगती है और वाद मे तो निगलना मुश्किल हो जाता है। या हो सकता है कि चवाने वाली मासपेशी Mosseter मे यह रोग हो जाये जिससे सुवह चवाना मुश्किल नही लगता पर सायकाल तक चवाना विलकुल असभव हो जाता है। सायकाल वह द्रव भोजन ही ले सकता है ठोस भोजन नही ले सकता। यदि Soft Palate के मास मे शैथिल्य हो तो यह मृदु भोजन या द्रव भोजन भी ऊपर नाक मे वापस आने लगता है। अथवा हो सकता है कि खाते-खाते निचला जवडा शिथिल होकर लटक सा जाये। मुखछिद्र की मासपेशी अर्थात् Orbicularis Oris मे शिथिलता हो जाने से मुखछिद्र को वन्द करना मुश्किल हो जाता है। उसके लिए सीटी वजा सकना, फूक मारना या मुह से सिगरेट को थामना कठिन हो जाता है अथवा हो सकता है कि चेहरे के दोनो ओर की मासपेशियो मे शिथिलता आ जाये। ऐसा हो तो सायकाल के वक्त रोगी का चेहरा देखने मे भावहीन सा लगता है और Diplegia अर्थात् दोनो ओर Paralysis सा लगता है अथवा हो सकता है कि कण्ठ की शव्दोच्चारण सम्वन्धी मासपेशियो मे शिथिलता हो जाये जिससे सायकाल तक Aphonia का लक्षण प्रकट हो जाता है अर्थात् वोलना कठिन हो जाता है। रात आराम करने से सुवह तक वह ठीक हो जाता है। हो सकता है कि ग्रीवा की मासपेशियो विशेषत Flexor पेशियो मे शिथिलता हो जाये जिससे सायकाल तक सिर को हाथ से सभालना पडता है अथवा तकिये पर से सिर को ऊपर उठाना कठिन हो जाता है।

इस प्रकार जत्रुओ से ऊपर-ऊपर की ऐच्छिक मासपेशियो मे यह रोग वहुतायत मे होता है। इसके वाद हो सकता है यह रोग शाखाओ मे भी प्रसरण कर जाये। पहले यह रोग ऊर्ध्व शाखाओ मे आता है और उनमे भी पहले कन्धो की मासपेशियो मे आता है। इन मासपेशियो मे शिथिलता आ जाने से वालो पर कघी करना, हजामत वनाना, कपडो को खूटी पर टागना, वस्तुओ को उठा कर ऊपर रखना कठिन हो जाता है। यह रोग अधिक वढ जाये तो श्वास-प्रश्वास मे भाग लेने वाली ऐच्छिक मासपेशियो मे भी हो जाता है जिससे पहले जोर से खासना और फिर हल्का खासना वलगम थूकना भी मुश्किल हो जाता है। थोडा श्रम करने से श्वास चढ जाता है या वैठे-वैठे भी श्वास चढ जाता है।

इस प्रकार यह रोग वढता-घटता वर्षो तक रहता है और रोगी इस रोग मे १०-१२ वर्ष तक जीवित रह सकता है या इससे भी अधिक काल तक जीवित रह सकता है। केवल १०% रोगियो मे यह रोग वढता जाता और फैलता जाता है एव शीघ्र महीनो मे भी घातक हो सकता है। जव-जव गले, नाक या श्वास नालियो मे कोई Infection होता है तव यह रोग वढ जाता है। मृत्यु इस रोग मे श्वास कृच्छ्रता या Broncho-pneumonia होकर होती है। इसलिये इस रोग को वढने से रोकना चाहिए। १०% रोगियो मे यह रोग स्वयमेव अच्छा भी हो जाता है।

चिकित्सा

विश्राम चिकित्सा

रोगी को अति श्रम से वचना चाहिये और जव रोग वढ रहा हो तव पूर्ण विश्राम मे रहना चाहिये। जव तक रोग ठीक न हो तव तक श्रम नही करना चाहिये। भोजन भी ठोस न लेकर अर्ध द्रव ही लेना चाहिये ताकि मुख को थकावट न हो।

Anticholinesterase औपधियो द्वारा ही रोगी को कुछ आराम लगता है। अन्यथा रोग को पूरा आराम देने की कोई चिकित्सा अभी तक नही निकली (१) Neostigmine Methyl Sulphate (Prostigmine) की १५ मिलि० की गोलिया २-३, छ-छ घण्टे वाद दिन रात मे ४ वार दे सकते हैं। ५-६ घण्टो के वाद इनका प्रभाव जाता रहता है, अत इन्हे कई वार दुहराना पडता है। (2) Pyridostigmine Bromide (Mestinon) की ६० मिलि० की गोलिया मिलती है। इन्हे भी ६-६ घण्टे के अन्तर से दिन-रात मे ४ वार दिया जाता है। इसका प्रभाव उपर्युक्त दवा की अपेक्षा देर तक रहता है तथा इसमे उपद्रवो की आशका भी कम है। खाने मे कठिनता हो तो इसकी एक गोली आधा घण्टा पहले दे देने से

रोगी भोजन चवा सकना हे ।

सहायक औषधियाँ—

Ephedrine १५ मिलि० की गोली दिन मे ३ वार । इन औपधियो के साथ देने से उनका वल वढ जाता हे ।

Potassium Chloride—१-२ ग्राम दिन मे ४-५ वार देने से भी उपर्युक्त औपधियो का प्रभाव देर तक रहता है तथा उनकी मात्रा वढानी नही पडती ।

Pyridoxine या Vit B के इंजेक्शन्स से भी इस रोग मे कुछ लाभ होता है ।

आयुर्वेद मे अति मास नैर्वल्य की चिकित्सा का अभी तक कोई निर्णय नही हो पाया है । सभव है कफशामक अग्निवर्धक चिकित्सा से लाभ हो । औषधि के लिए समशर्कर चूर्ण या समशर्कर लोह का प्रयोग हो सकता है । कफशामक चिकित्सा के साथ वातशामक वल्य औपधियो मे से किसी का प्रयोग भी लाभ कर सकता हे ।

सामान्य वातव्याधिहर औषधियाँ

शरीर के प्रत्येक अवयव मे जो जीवनीय या प्राणतत्त्व रहता है जिसे वायु तत्त्व या वायुधातु कहा जाता है। उसके ह्रास के कारण जो रोग होते हे उन्हे आयुर्वेद मे वातव्याधि कहा जाता हे । साधारण शब्दो मे निर्वलता जनित या Asthenia Diseases को वायु रोग कहते हैं । इन सबके लिए जो प्राणवर्धक औषधियाँ दी जाती हैं उन्हे वातव्याधिहर कहा जाता है । इस प्रकार की औपवियो का ऊपर उल्लेख हुआ है । सर्वसामान्य वात रोगो मे प्रयुक्त होने वाली कुछ औषधियो का यहाँ उल्लेख किया जाता है ।

(१) योगेन्द्र रस—रससिन्दूर २, स्वर्ण, लोह, अभ्रक, मुक्ता वग १-१ भाग घी कुवार के रस से मर्दन । सुखा कर एरण्ड पत्र मे रखकर अनाज के ढेर मे ३ दिन दवा दें । सुखा कर २-२ रत्ती की गोली करें । १ गोली मात्रा । शरीर की सर्व निर्वलताओ मे अर्थात् ज्ञान-कर्मेन्द्रियो की निर्वलताओ मे प्रयोग करें । मानस निर्वलताओ मे भी उपयोगी है ।

(२) चतुर्मुख चिन्तामणि (भै. र) पारा, गन्धक, लोहा, अभ्रक, प्रत्येक १ तोला, स्वर्ण भस्म ३ माशा घी कुवार रस से मर्दन । एरण्ड पत्तो मे लपेट कर ३ दिन अनाज के ढेर मे रखें । शुष्क करके गोलियाँ वनायें । १ रत्ती मात्रा त्रिफला तथा मधु के साथ लें । भिन्न २ निर्वलताओ मे जरा रोग मे, श्वासहिक्का मे, मानस नैर्वल्य, तथा अम्ल पित्त मे दें ।

(३) रसराज (भै र.), रस सिन्दूर ५ तोला, अभ्रक १। तोला, स्वर्ण १ तोला । घृतकुमारी से मर्दन लोहा, रजत, बग, अश्वगधा, लौंग, जावित्री, शतावरी ७-७ माशा । मकोय रस से मर्दन । २ रत्ती की गोलियाँ करें ।

सर्व निर्वलताओ विशेषत. पक्षाघात, अर्दित, सर्वांग नैर्वल्य, हृदयनैर्वल्य, मनोनैर्वल्य, मनोविभ्रम, कम्प मे उपयोगी है ।

(४) बलारिष्ट खरैंटीमूल अश्वगंधा ६।-६। सेर लेकर दोनो को पृथक्-२ ६४-६४ सेर जल मे पकाकर १६-१६ सेर शेष रखें । फिर दोनो को मिला दें । गुड १८ सेर, धातकी १ सेर, क्षीरविदारी एरण्डत्वक् १०-१० तोला, रास्ना, बडी इलायची, लौंग, उशीर, गोखरू, प्रसारणी ५-५ तोला डालें । आसव बनायें । सर्व प्रकार की निर्वलताओ मे प्रयोग ।

मानस रोग

Mental Diseases या Psychiatric Disorder

मानस दौर्वल्य —Psychoneurosis, Melancholia या Affective Disorder, Affective Psychosis, Manic Depressive Psychosis, Disorder of Emotion

ऊर्ध्व मस्तिष्क का अग्रिम खण्ड (Frontal Lobe) विवेक, वुद्धि, धृति (Control) तथा स्मृति का स्थान हे । इसी पर मनुष्य का अपना व्यवहार व स्वभाव निर्भर है अर्थात् इसकी प्रकृति व विकृति पर उसमे प्रसाद या विपाद, शान्ति या अशान्ति, निर्भयता और भय के भाव रहते हे । Thalamus के ठीक नीचे तथा मिड ब्रेन के ठीक ऊपर के प्रदेश को Hypothalamus कहा जाता है जो भाव (Emotion) का तथा अनैच्छिक नाडी मण्डल (Autonomic Nervous System) का नियामक स्थान है । Thalamus के Anterior तथा Medial Nuclei के द्वारा यह स्थान मस्तिष्क के Frontal Area के साथ सम्वन्धित रहता है । इस प्रकार हमारा मस्तिष्क (Cortex) हमारी अनैच्छिक चेष्टाओ (Autonomic Activities) पर तथा अनैच्छिक नाडी-मण्डल हमारे मस्तिष्क पर अपना प्रभाव

डालते रहते हैं। स्वस्थावस्था में यह स्थान अर्थात् हमारे चिन्ता, भय आदि भाव अग्रिम खण्ड अर्थात् बुद्धि के नियन्त्रण में रहते हैं। एवं बुद्धि की प्रधानता में मनुष्य में प्रसाद का भाव न्यूनाधिक रहता है। जब अग्रिम खण्ड का पोषण कम हो जाता है अर्थात् हमारी बुद्धि दूसरे शब्दों में हमारी यथार्थदर्शिता और यथार्थकारिता की शक्ति, एवं धृति शक्ति या रोकने वाली नियामक शक्ति कम हो जाती है तब Hypothalamus पर का नियत्रण शिथिल हो जाता है। ऐसी अवस्था में हमारे चिन्ता, विषाद आदि मानस भाव तथा हमारे शरीर का अनैच्छिक नाडीमण्डल Sympathetic तथा Para sympathetic-- दोनों न्यूनाधिक रूप में उच्छृंखल या उत्तेजित हो जाते हैं जिससे शरीर तथा मन में या तो अति मन्दता (Inhibition, Retardation) या अति चेष्टा (Over-Excitement) का भाव दीखने लगता है।

स्वस्थ अवस्था में हमारे चिन्ता, क्रोध, भय आदि मानसिक भाव तथा हमारे शरीर में होने वाली अनैच्छिक नाडी मण्डल की उत्तेजना हमें बाहर से आने वाले खतरे से बचाने का काम करती है। परन्तु जब बुद्धि स्थान की निर्बलता हो जाय, भावों का स्थान (Hypothalamus) प्रबल हो जाय, जिससे चिन्ता, शोक, भय आदि भाव थोडी देर के लिए होने के स्थान पर अनुचित रूप से निरन्तर बने ही रहें तथा जब हमारी अनैच्छिक नाडिया निरन्तर उत्तेजित रहने लगें तब इसे मानस रोग (Psychoneurosis) कहा जाता है। चिन्ता भावों आदि के उग्र रूप में रहने से इस अवस्था को भावोन्माद, भाव प्रधान मानस रोग या Affective Pyschosis भी कहते हैं।

कारण

कुछ एक व्यक्तियों के ऊर्ध्व मस्तिष्क के अग्र भाग में जन्म से ही निर्बलता (Asthenia) की प्रवृत्ति रहती है। ऐसे व्यक्तियों में युवावस्था में किसी रोग से शरीर के निर्बल हो जाने पर या प्रबल मानसिक आघात के लगने पर जैसे घोर नैराश्य या किसी तीव्र चिन्ता के आ जाने पर यह रोग प्रकट हो जाता है। मध्यम आयु के बाद धमनीकाठिन्य रोग के कारण जब मस्तिष्क का पोषण कुछ कम हो जाता है या किसी रोग, शल्यकर्म या प्रसव के कारण शरीर निर्बल हो जाता है या Climacteric के काल में भी किसी मानसिक आघात के लगने पर यह रोग हो जाता है तब इसे Involutional melancholia कहते हैं। तब इसमें कुछ उत्तेजना Agitation के लक्षण भी होते हैं। इस प्रकार सहज मानस दौर्बल्य, प्रबल मानस आघात और किसी शारीरिक रोग या ढलती उमर के कारण मानस रोग होता है। परन्तु बहुधा मानस रोग का कारण पैतृक परम्परागत कोई निर्बलता है अर्थात् genes में ही कोई विकृति होती है ऐसे व्यक्ति के सामने यदि परिस्थितियां भी ऐसी आ जाएं जो मानस रोग की उत्पादक हों तो यह रोग प्रकट हो जाता है। यदि रोगी का पोषण ठीक न हो तो भी रोग प्रकट हो सकता है। परिवर्तनकाल में अर्थात् युवावस्था के प्रारम्भ में १६ से २० वर्ष की आयु में या प्रजनन काल की समाप्ति पर इस रोग के होने की आशंका अधिक रहती है। साधारणत जब तक हमारी इच्छाएं और आशाएं पूर्ण होती रहती हैं अर्थात् उनका कहीं विघात नहीं होता है तब तक हम पूर्ण संतुष्ट रहते ही हैं। पर जब हम यह देख लेते हैं कि परिस्थिति हमारे नितान्त विपरीत है जिससे हमारी इच्छा और आशा पूर्ण हो ही नहीं सकती तो हम अपनी समझ-बूझ और शारीरिक शक्ति से काम काम लेकर अर्थात् अपनी इच्छा का परित्याग करके इस कठिन स्थिति का सामना करते हैं और परिस्थिति के अनुसार अपने को ढाल लेते हैं (Theory of adjustment to environment) और उससे उत्पन्न दुःख, निराशा हानि आदि को सह लेते हैं एवं फिर हम संतुष्ट हो जाते हैं। मानसिक दृष्टि से वही स्वस्थ कहलाता है जो प्रत्येक प्रकार की कठिन से कठिन बाह्य परिस्थिति में भी अपने को तदनुसार ढाल लेता है और उससे सामञ्जस्य कर लेता है। जितने अंश में हम इस कार्य में विफल होते हैं उतना मानसिक विभ्रंश या Nervous breakdown हम में प्रकट हो जाता है। जितनी ही यह मानसिक निर्बलता जन्म से अधिक होती है उतनी इस रोग के होने की सम्भावना अधिक रहती है। जो व्यक्ति विपरीत अवस्था के साथ अपने को ढाल लेता है उसे पूर्णतया Compensated या Mature व्यक्ति कहते हैं। जो व्यक्ति बाहर की प्रतिकूल अवस्थाओं के साथ अपने प्रतिकूल व्यक्तियों के साथ निभाव नहीं कर सकता अर्थात् जो Immature व्यक्ति है एवं उनके साथ निभाव करने का कोई हल न निकालकर मन के अन्दर एक तनाव या Tension की अवस्था में रहता है, ऐसी अवस्था में अज्ञात रूप से या Unconsciously जो वह व्यवहार करता है, उसे मानसिक रोग कहते हैं। इसीलिए यदि हमारे मस्तिष्क के अग्र भाग में निर्बलता हो, हमारी धृति-शक्ति तथा बुद्धि निर्बल हो, हम समझ-बूझ से काम न ले सकें, दूसरे शब्दों में हम अपने को पूर्णतया

Compensated न कर सके, अपने को Mature न बना सकें तो हम अपनी प्रबल इच्छा और अपनी पूर्व धारणाओ (Prejudices) या आशा का परित्याग कर ही नही पाते जिससे वह इच्छा या आशा का हमारा प्रबल मोह (Complex) अचेतन चित्त (Subconscious Mind) मे पडा दिन-रात हमे दुखी रखता है जिसे हम Decompensation की अवस्था कहते है। यह मोह भी कभी-कभी तो सत्य होता है, जैसे पुत्र, पद, धन, स्थान, स्वास्थ्य, प्रजनन शक्ति आदि की हानि से होता है। परन्तु बहुधा यह मिथ्या भी होता है। जैसे किसी-किसी व्यक्ति के हृदय मे मिथ्या ही क्षय रोग, कैन्सर रोग, क्लीब रोग, हृद्रोग, उदर रोग आदि का या किसी दूसरी चीज का भय बैठ जाता है और अन्दर अचेतन चित्त मे से निकलने मे ही नही आता और वहा पडा हुआ अजीर्ण, मलबन्ध, हृत्कम्प, उन्निद्रता, अतिस्वेद आदि अनैच्छिक नाडी मण्डल से उत्पन्न रोगो का कारण बनता है। इस प्रकार समझ-बूझ कर या धृति शक्ति की निर्बलता (Intellectual inadequacy) ही इस रोग का प्रधान कारण है। भय, चिन्ता, दुख, हिंसा आदि भावो से अभिभूत हो जाने या प्रिय वियोग से विह्वल हो जाने की यह मानस निर्बलता Emotional Instability जन्म से ही आती है। और ऐसे व्यक्ति जन्म से ही शरीर मे कृश, दुर्बल मन्दाग्नि, वातिक प्रकृति (Asthenic Temperament) के स्वभाव मे अन्तर्मुख (Introverted) और शक्ति की जमा पूजी के कम होने के कारण कम क्रियाशील होते हैं।

मोटे तौर मे यह मानस-दौर्बल्य या Decompensation की अवस्था १—विक्षोभ प्रधान २—विषाद प्रधान दो प्रकार की होती है तो भी मानस-दौर्बल्य का रोग चार प्रकार का है —

१ चिन्ता प्रधान मानस रोग, (Anxiety Neurosis)
२ विषाद प्रधान मानस रोग, (Depressive Psychoneurosis Melancholia)
३ उन्माद प्रधान मानस रोग, Hypomanic या Manicneurosis या Psychosis
४ विद्रोही विचार युक्त मानस रोग (Obsessive Psychosis or Obsessive Compulsive Neurosis)

यह ध्यान रखने की बात है कि इन रोगो को Psychoneurosis या Neurosis कहा जाता है। मानस रोग तीव्र रूप मे हो जिसमे व्यक्तित्व ही रोगी का बदल गया हो, वह बाह्य ससार या वास्तविकता से हट कर अपने मे ही गुम हो गया हो तो ऐसे मानस रोगो को Psychoses कहते है।

१ चिन्ता प्रधान मानस रोग (Anxiety Neurosis, या Anxiety Reaction)

किसी भय की आशका बनी रहे तो उसे चिन्ता कहते है। चिन्ता भय से या किसी आशकित भय से उत्पन्न होती है। मानसिक दुर्बलता मे यह चिन्ता शीलता और बढी होती है। अत मानस रोगो मे यह सबसे सुलभ रोग है। परीक्षा मे जाने से पहले या पब्लिक स्पीच देने से पहले चिन्ता अधिक रहती है। चिन्ता थोडी हो तो परीक्षा और स्पीच मे कुछ सहायता ही मिलती है पर चिन्ता तीव्र रूप मे हो तो परीक्षा और स्पीच दोनो मे खराबी आ जाती है। स्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति बडे भय से भी भयभीत नही होता पर अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति स्वल्प भय से भी अति भयभीत एव चिन्तित हो जाता है। अति चिन्ता की अवस्था मे एकाग्रता, विचार-शक्ति, निर्णय शक्ति तथा स्मृति शक्ति सब जाती रहती है। २०-४० वर्ष के व्यक्तियो मे यह अधिक देखने मे आता है। इस रोग मे थोडे- थोडे कारणो से भी अधिक भयभीत या चिन्तित हो जाने की मानसिक निर्बलता बहुधा पाई जाती है जो स्त्रियो मे पुरुषो की अपेक्षा अधिक होती है। बहुधा रोगी या रुग्णा को किसी रोग का जैसे हृदय रोग, रक्तभार रोग, क्षय रोग, क्लीव रोग आदि किसी का या किसी बात का भय सदा बना रहता है। एक चिकित्सक से दूसरे के पास जाता है, बहुत-सी परीक्षाएँ कराता है या यो कहना चाहिए उसे कई प्रकार के भयो का भ्रम (Delusion) बना रहता है जिससे उसका चित्त दिन-रात अशात, व्याकुल और घबराया हुआ रहता है या किसी आर्थिक सकट से या नौकरी सम्बन्धी समस्या से वह व्याकुल रहता है। विषाद रोगी के समान वह मन्द नही पर भयसूचक चेष्टाओ से युक्त रहता है, बोलता भी अधिक है, यद्यपि अपने भय के विषय मे ही बोलता है। रात को चिन्ता बढती है। लेट जाने पर भी उसे चिन्ता के कारण नीद नही आती या देर से आती है तथा निद्रा आ भी जाय तो इसके टूटते ही फिर चित्त की व्याकुलता आरम्भ हो जानी है। इससे उसे अच्छी नीद नही आती अर्थात् वह सदा चिन्ता या भय मे रहता है। चित्त दुर्बल हो तो तुच्छ-सी बातो पर भी मनुष्य भयभीत एव चिन्तित रहता है। चित्त के थके हुए रहने से चिन्ताशील व्यक्ति स्वभाव मे विक्षोभशील या चिडचिडा हो जाता है। इस प्रकार निरन्तर- चिन्ता

ग्रस्त या अशान्त रहने से वह किसी कार्य को लगकर नही कर सकता और अन्त मे उसे अपना दैनिक कार्य छोडना पडता है। बेचैनी, उन्निद्रता, किसी बात या काम मे ध्यान न लगना, हृत्कम्प का रहना, सिर दर्द रहना इस रोग के प्रधान लक्षण होते है।

इस रोग मे अनैच्छिक नाडी मण्डल (सिम्पेथैटिक तथा पैरासिम्पेथैटिक) के विक्षुब्ध (Tension मे) रहने के कारण रोगी की हृदयगति व नाडी गति व श्वास गति तीव्र होती है। स्वेद अधिक आता है। विशेषत कर-पाद तलो या कक्ष प्रदेश मे, उसका रक्तभार बढा होता है, वीर्य का पतन शीघ्र हो जाता है तथा मूत्र भी जल्दी-जल्दी आने लगता है। पुतलिया फैली होती हैं। चिन्ता के कारण शरीर की सर्व मासपेशियो मे तनाव (Tension) रहता है, जिससे शरीर मे वेदना रहती या शिर भारी रहता है या शिर पर कसकर पट्टी बाध देने के समान दर्द रहता है। हाथो मे कम्प (Fine Tremor) रहता है, अनैच्छिक मासपेशियो के अधिक क्रियाशील रहने से मलमूत्र बार-बार आते है। Hypothalamus के धात्वीय पचन (Metabolism) का केन्द्र होने से शरीर का धातु बढ जाता है, जिससे Adrenaline की उत्पत्ति अधिक होती एव शरीर का भार घट जाता है। नेत्र थके हुए रहते है, थोडा पढने से ही थक जाते है। मुख सूखा रहता है, आमाशय स्राव घट जाता है जिससे क्षुधा घट जाती, अरुचि, आध्मान आदि लक्षण रहते है, मलबन्ध रहता है। इस अवस्था मे शरीर के Deep Reflexes बढे हुए रहते है। वह बात अर्थात् प्रिय वियोग या आर्थिक हानि की जिसके कारण चिन्ता लगी है अचेतन चित्त मे छिपी हुई रहती है। पर रोगी अपने पेट व हृदय सम्बन्धी किसी लक्षण को ही अपने रोग का कारण समझता है। उसका मन, केन्द्रीय नाडी मण्डल (Central Nervous System) थके हुए एव निर्बल, विक्षोभशील रहते है इसे कोई Neurasthenia नाम से पुकारते है। मकान या कमरे मे अकेला रहने से भय होता हो तो इसे Claustrophobia, बडे मैदान मे अकेला हो जाने पर भय लगता हो तो Agarophobia कहते है। इस प्रकार अनेक Phobia पाये जाते है। हल्की शामक Sedative औषधियो से रोगी मे कुछ आराम लगे तो इस रोग का निश्चय हो जाता है। जननेन्द्रिय सम्बन्धी चिन्ता रोग Sexual Neurasthenia भी बहुत सुलभ रोग है। बहुत से युवको को मिथ्या भ्रम हो जाता है कि हस्तमैथुन तथा स्वप्नदोष Night discharge से उनकी प्रजनन शक्ति नष्ट हो गई है तथा इसी कारण से वे निर्बल एव पाण्डुर हो गए है। ऐसे रोगी मे चिन्ता रोग उत्पन्न हो जाता है जो प्राय निराधार होता है। प्रजनन सम्बन्धी शिकायतें प्राय Neurotic किस्म की होती है। पुरुषत्व शक्ति की निर्बलता की आम शिकायत की जाती है।

२ विषाद प्रधान मानस रोग—Depressive Reaction या Melancholia

भाव प्रधान (Affective) मानस रोगो मे सबसे अधिक यही रोग होता है। जब मनुष्य का किसी काम मे जी न लगे, वह किसी खुशी मे शामिल न हो, किसी वस्तु मे दिलचस्पी न रखे और उदास-सा रहने लगे तो उसके रोग को विषाद रोग कहते है। इस विषाद प्रधान मानस रोग मे जो किसी विफलता, धनहानि या वियोग की प्रतिक्रिया के रूप मे होता है इसलिये जिसे Reactive depression कहते है जो ४०-६० वर्ष की आयु मे होता है और जो धीरे-धीरे क्रमश आरम्भ होता है अर्थात् जो Climacteric के काल मे होता है उसे Involutional Melancholia कहते है। उसमे विषाद के साथ बेचैनी का लक्षण भी होता है जो बिना किसी बाह्य कारण के Manic depressive psychosis के रूप मे होता है। जिसमे निश्चेष्टता और विषाद के लक्षण होते है उसे Endogenous Psychosis या Depression कहते हैं जो मस्तिष्क मे Arteriosclerosis के कारण होता है उसे Neurotic depression कहते है। इन सब मे रोगी क्लिष्ट, निराश, उत्साहहीन और दुखी रहता है। उसके सब विचार दुखमय होते हैं। उसके चेहरे पर दुख का स्थिर भाव दृष्टिगत होता है। उसे अपना भूत, भविष्य, वर्तमान सब दुखमय लगता है। अपने दुख या क्लेश के सिवाय और उसे कोई बात ही नही सूझती। उसे हर वस्तु का बुरा पहलू ही दीखता है। जीवन मे हुई पिछली बातो पर उसे पछतावा ही रहता है। इस प्रकार वह सदा स्वशरीर सम्बन्धी या जीवन सम्बन्धी किसी विषाद मे ही रत रहता है। दूसरो को जिन बातो से प्रसन्नता होती है उसे उनसे कोई प्रसन्नता नही होती। दुखी रहने के कारण वह दूसरो के दुख की बात या दुख की कहानी सुन नही सकता। दुखी रहने से वह शीघ्र रो भी पडता है या सिर को दीवार से मारता है। उसे नीद देर से आती है तथा सवेरे शीघ्र टूट जाती है तथा उठने पर भी उसे अपना शरीर हलका प्रतीत न होकर भारी प्रतीत होता है। वह किसी शरीर रोग

अजीर्ण, मलवन्ध आदि की शिकायत करता है परन्तु इसके पीछे वस्तुत उसका विषाद ही छिपा हुआ रहता है, उसमे उदासीनता का भाव वढ जाता है। कार्यो मे प्रवृत्त होने की इच्छा तक नष्ट हो जाती है। उसे अपने दैनिक कार्य मे, सामाजिक कार्यो मे, शरीर के वस्त्राभरण तक मे कोई रुचि नही रहती, अपने जीवन मे ही रुचि नही रहती। उसे मृत्यु ही अपने दु ख की एकमात्र औषध प्रतीत होती है जिससे वहुधा वह आत्मघात (Suicide) की सोचता है और कभी-कभी कर भी लेता है या तो नीद की गोलिया खा लेता है या छत पर से नीचे कूद पडता है। कैन्सर, क्षय आदि घातक रोगो से ग्रस्त चिर रोगियो मे भी विषाद रोग का हो जाना स्वाभाविक है। विषाद रोगी वोलता नही, चुप रहता है। इसलिए चिकित्सक को उसमे उत्पन्न विषाद भाव का पता नही चलता, पर उसमे विषाद का भाव प्रवल रूप मे होता है। ऐसे रोगी को उसकी वास्तविक स्थिति मे अवगत करा देना भी गलत है और उसे झूठा आश्वासन देना कि वह ठीक हो जायेगा गलत है। उसके लिये जो कुछ सभव है वह सव कुछ किया जा रहा है और किया जायेगा ऐसा कह कर उसका आश्वासन करना चाहिए और उसे कोई शामक औषधि देते रहना चाहिए, उसके अन्दर जीवन की आशा को वनाए रखना चाहिए, उसकी हिम्मत को गिरने न देना चाहिए। चिकित्सक जानता है कि वह नही वचेगा तो भी चिकित्सक को उस रोगी पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उसे वार-वार आकर देखना चाहिए। उसे अकेला न छोडे और मिलने वालो को उसके पास आने देना चाहिए।

वस्तुत अनैच्छिक नाडी मण्डल के विषाद के कारण, विक्षुव्ध रहने से उसे भूख नहीं लगती मुह भी सूखा रहता है। उसकी त्वचा रुक्ष और रग पाण्डुर हो जाता है, पेट मे भारीपन तथा मलवन्ध के लक्षण (Hypochondriacal delusions) रहते है अत वह भोजन लेना नही चाहता। उसका शारीरिक भार घट जाता है, शिर के पिछले भाग मे दर्द रहता है, उसका रक्तभार भी वढा हुआ रहता है। पुस्त्व शक्ति वहुत घट जाती है। वह समाज से उपरत-सा होकर वहुत देर अकेला चुपचाप वैठा रहता तथा कभी-कभी रोता रहता है और उसकी चेष्टाओ मे मन्दता (Retardation) पाई जाती है। किसी वात का निर्णय करने मे भी वह अति मन्द हो जाता है। एकाग्र होकर किसी काम मे लगने या विचार कर सकने की शक्ति नही रहती। रोग अधिक हो तो निष्क्रियता का यह लक्षण और अधिक स्पष्ट हो जाता है। इस रोग मे रोगी के मन और शरीर दोनो थके-थके तथा अवसन्न (Depressed) होते है। यह रोग प्रात अधिक प्रवल रूप मे होता है, सायकाल इसका वेग कुछ मन्द हो जाता है। यह रोग चिन्ता प्रधान मानस रोग की अपेक्षा अधिक कष्ट साध्य होता है। इसका दौरा एक वार प्रारम्भ होकर ४-५ मास तक रहता है। इस रोग के २ भेद किये जाते है जैसे यदि किसी वाह्य कारण से अर्थात् दु ख और भारी निराशा या हानि के कारण हो तो इसे Exogenous, Reactive या Primary depression कहा जाता है। यदि यह विषाद रोग आभ्यन्तर किसी कमी या रोग या निर्वलता या Involution की प्रक्रिया के हो जाने से हुआ हो तो इसे Endogenous या Secondary Depression कहते है। इनमे से पहला सहसा आरम्भ होता है। उसमे निद्रा देर से आती है। उदासीनता का लक्षण सायकाल को विशेष रहता है। Obsession तथा Hypochondriasis के लक्षण रहते हैं। दूसरे भेद मे रोग क्रमश होता है। उदासीनता प्रात काल विशेष रहती है और रोग देर तक रहता है। ध्यान लगाने की शक्ति नष्ट हो जाती है तथा रोग पहले भी हो चुका होता है। विषाद प्रधान मानस रोग सुख साध्य नही होता, प्राय दु ख साध्य होता है। यदि वह भोजन की मात्रा को वढा सके, नीद लेने लगे तो धीरे-धीरे वह अच्छा होने लगता है। यह रोग अच्छा हो हो कर भी फिर फिर हो सकता है। इस रोग के रोगी को वडी सावधानी से रखना चाहिये ताकि वह आत्महत्या न कर सके।

3 उन्माद प्रधान मानस रोग (Manic Psychosis)

विषाद प्रधान मानस रोग के विपरीत जिसमे कि निश्चेष्टता का लक्षण होता है यह एक चेष्टा या क्रिया प्रधान मानस रोग है जिसका प्रारम्भ १५ से २५-३० वर्ष की आयु मे ही अर्थात् ३० वर्ष की आयु से पहले ही हो जाया करता है तथा जिसमे रोगी अति क्रियाशील, अति भाषणशील, अति गायनशील या भ्रमणशील हो जाता है। रात थोडी देर ही सोता है। वहुत सवेरे उठकर वह कार्य मे लग जाता है। सारा दिन किसी-न किसी कार्य मे लगा ही रहता है। एक कार्य से दूसरे मे, दूसरे से तीसरे मे, अनथक होकर लगा रहता है। उसका शक्ति का भण्डार असीम प्रतीत होता है परन्तु उसके सारा दिन कार्यो मे लगे रहने पर भी उसके कार्यो का परिणाम विशेष कुछ नही होता। क्योकि उसके कार्यो मे परस्पर मेल न होने से तथा उसकी वढी हुई चेष्टा पर किसी नियामक विचार शक्ति के न रहने से उसके कार्यो का परिणाम हो भी क्या सकता है।

इस वढी हुई चेष्टा के अतिरिक्त रोगी मे उल्लास या उमग का भाव विशेष रूप मे पाया जाता है। वह

सकोचहीन होकर अपने पराये सबसे आगे बढकर अति भाषण या रोबदार भाषण करता है। ढीली ब्रेक वाली मशीन या बे-लगाम घोडे की तरह उसका व्यवहार हो जाता है। देखने वालो को उसका व्यवहार अजीब-सा लगता है। परन्तु क्योंकि उसमे विवेक नही होता, निर्णय करने की शक्ति नही होती इसलिये उसे नही समझाया जा सकता कि उसका व्यवहार अजीब है। उसे निग्रह किया जाए या समझाया जाए तो वह क्रुद्ध हो जाता या दुर्विनीत हो जाता है। यह रोग केवल साधारण रूप मे ही रहे तो इसे सामान्य उन्माद या Hypomanic Psychoneurosis कहते है। ऐसा व्यक्ति बिना विशेष विचारे अति भाषण करता है, भाषण मे एक विषय मे झट दूसरे विषय पर चला जाता है या एक बात को बार बार दुहराता है या अति चेष्टाशील रहता है या अतिक्रोध दिखाता है तथापि घर मे या समाज मे विशेष दुखदायी न होने से खप जाता है। पर यदि चेष्टाशीलता और अधिक बढ जाए, वह अत्यधिक भाषण, गायन, नर्तन आदि निरुद्देश्य चेष्टाये करने लगे, चीजो को तोडने-फोडने लगे या अपने निरर्थक कार्यो को रोकने वाले व्यक्ति पर क्रुद्ध होकर आक्रमण करने लगे, दूसरो के लिए असह्य एव अवश्य हो जाए तो फिर इस रोग को उन्माद प्रधान मानस रोग Acute Mania या Manic Psychosis कहते है। ऐसे रोगी का निग्रह करना आवश्यक हो जाता है। हो सकता है कि रोगी दूसरो को हानि पहुचाने लगे, घर का सामान फाडने या तोडने लगे और उसकी Psychomotor activity बहुत बढ जाए और उसका घर मे रखना कठिन हो जाए।

यह रोग भी वेगो मे होता है। कुछ महीनो या सप्ताहो के बाद प्रत्येक वेग-स्वयमेव शान्त हो जाता है, दुबारा उसके होने का भय तो रहता है। इस रोग का भेद चित्त विक्षेप (Catatonia) से करना चाहिये। चेष्टा प्रधान मानस रोगी के कार्य, भाषण आदि देखने मे अजीब तो होते है पर तो भी कुछ-कुछ अवस्थानुकूल होते है। परन्तु चित्त विक्षेप रोगी की अति चेष्टा अवस्थानुकूल नही होती तथा सदा एक ही किस्म की होती है। उन्माद प्रधान मानस रोगी के साथ हम कुछ न कुछ सम्पर्क कायम कर सकते है, पर चित्त विक्षेप रोगी के साथ हम किसी प्रकार का सम्पर्क कायम नही कर सकते।

Manic Depressive Psychosis या उन्माद विषाद प्रधान मानस रोग भी होता है जिसमे रोगी मे विषाद तथा उन्माद अर्थात् उत्तेजना के दौरे होते रहते है। विषाद के समय वह उदासीन हो जाता तथा उत्तेजना के समय वह अपने को सर्वशक्तिमान् समझता है।

४ विद्रोही विचार सम्बन्धी मानस रोग (Obsessional Neurosis या Obsessive Psychoneurosis)

जब आदमी का मन निर्बल विक्षोभशील होता है तब कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई ऐसा विचार या ध्यान या चित्र या आवेग (Impulse) या भय जिसे वह हटाना चाहता है उसके अचेतन चित्त मे से निकलकर उसके चेतन चित्त मे बारम्बार आता है। क्योंकि यह मन पर हावी हुआ-हुआ होता है इसे Obsession कहते हैं तथा क्योंकि यह विचार या आवेग या भय प्राय गदा होता है या प्रजननेन्द्रिय सम्बन्धी होता है या दूसरे को हानि पहुचाने सबधी होता है या आत्महत्या सम्बन्धी होता है, आदमी नही चाहता कि वह उसके सामने आये परन्तु वह विचार या आवेग इतना विद्रोही और जिद्दी होता है कि जितना उसे रोका जाय उतना ही वह अधिक सामने आने लगता है। कभी-कभी तो आदमी उससे डरा हुआ या घबराया रहता है कि वह न आवे परन्तु वह जितना उससे डरता है वह उतना ही प्रबल होकर बार-बार उसके चेतन चित्त मे आता है। विशेषत जब आदमी कोशिश करके मन को एकाग्र करना चाहता है या उसे किसी जरूरी काम की ओर लगाने का यत्न करता है तब यह विद्रोही या उपद्रवी विचार और अधिक उसके सामने आता है। वह जानता है कि यह विचार बुरा या निरर्थक है तो भी वह उसे हटा नही पाता, उल्टा उसके हटाने की कशमकश मे वह थक-सा जाता है तथा क्योंकि वह इस पीछा करने वाले विचार से बच नही पाता इससे वह विषण्ण (Depressed) हो जाता है। इसे विद्रोही या उपद्रवी विचार सम्बन्धी मानस रोग Obsessive Neurosis कहते है। ऐसा रोगी प्राय विषाद Depression का रोगी भी होता है और वह चिन्ता रोग से भी युक्त होता है। यदि यह प्रबल रूप मे होता है उन्माद या Schizophrenia से युक्त होता है तो इसे Obsessive Psychosis कहते है। जब रोगी के किसी विचार मे तो Compulsion हो और रोगी के अन्दर उसके लिये Resistance हो तो उसे Obsessional Neurosis ही जानना चाहिये। जब रोगी का मन इस विचार के साथ लडना छोडकर शान्त, स्थिर, बेपरवाह व दृढ हो जाता है तब यह विचार आप ही उसका पीछा करना छोड देता है। विचार के स्थान पर यदि कोई चेष्टा आदमी पर हावी हो गई हो तो उसे Compulsion या विद्रोही चेष्टा कहते हैं।

रोगी से यह कहना कि वह अपनी इच्छा शक्ति को प्रबल करे और उस विचार या चेष्टा को हटाये निरर्थक है। हा उसे इस विचार या चेष्टा को उत्तेजित करने वाली परिस्थितियों से बचना चाहिये। इस रोग के आधे के लगभग रोगी कुछ काल बाद ठीक हो जाते हैं। कुछ एक मे थोडी-थोडी देर के लिये इस रोग का वेग होता है फिर वह भी ठीक हो जाता है।

मानस रोगों का साध्यासाध्य :—

यदि रोगी पहले भी चिरकाल से वातिक (Neurotic) प्रकृति का रहा हो, वह कारण जिनसे उसका रोग आरम्भ हुआ है विशेष प्रबल हो तो ये रोग सुखसाध्य नही होते।

मृदु मानस रोगों (Psychoneurosis, Minor Psychiatric Diseases) की चिकित्सा :—

मन शामक (Tranquiliser) औषधियों को Ataractic Pacific या Neurosedative कहते हैं ये Depressant (अवसादक) या Stimulant (उत्तेजक) दो प्रकार की होती हैं। Rauwolfia, Chlorpromazine, Meprobamate आदि पहले किस्म की, Amphetamine आदि दूसरे किस्म की हैं।

(क) चिन्ता, उन्निद्रता (Insomnia) प्रधान तथा हृत्कम्प, स्वेद आदि लक्षणों से युक्त मानस रोग (Anxiety Neurosis) के लिये Anxiolytic औषधियाँ —

रोगी की बलवर्धक चिकित्सा, उसे किसी कार्य मे लगाये रखने (Occupational Therapy) तथा विटामिन्स की चिकित्सा के अतिरिक्त निम्नलिखित शामक औषधिया हितकर हैं—

(१) Meprobamate - Equanil (Wyeth), Miltown Lederle, Mepavlon —यह 2-Methyl-2N-Propyl-1, 3-Propanediol है जो पहले १९५० मे बना। इसका मस्तिष्क (C N. System) पर विशेषत Thalamus पर शामक प्रभाव (Sedative) विशेषत मास स्तम्भ शामक (Anti Convulsant) प्रभाव होता है क्योंकि यह भी Mephenesin की तरह Internuncial (Connecting Neurones पर प्रभाव करती है। यह मृदु निद्राजनक (Hypnotic) भी है। चिन्तादियुक्त मानस रोग तथा Obsession के लक्षण के लिये भी ४०० मिलिग्राम मात्रा मे दिन मे ३-४ बार देने से बडा लाभप्रद होता है। बहुत दिन लेने के बाद इसके सहसा छोड देने से कुछ उन्निद्रता, भय, अन्नारुचि आदि लक्षण हो सकते हैं। Meprobamate २००, Butobarbitone १०० मिलि० (Meprotone Indopharma) मिलाकर भी दिये जा सकते हैं।

(२) Mephenesin (Myanesin Tablets, Elixir तथा Ampoules १०% १० सी० सी०, Tolseram (Squibb) Seconesin अर्थात् Mephenesin ४०० मिलि० Quinalbarbitone ३० मिलि० तथा Halabak अर्थात् Mephen. ३०० मिलि० Butobarbitone १६ मिलि० की गोलियाँ) ½–१ ग्राम मात्रा मे भोजन के बाद मुख द्वारा तीन बार देने से (Cerebral Depressant होने से) चिन्ता, उन्निद्रता, स्तम्भ (Muscular Spasm, Parkinsonism) आदि लक्षण शान्त होते हैं। यह सुषुम्ना काण्ड के Inter Nuncial Neurons को अवसन्न करके सज्ञावाहिनियों के चेष्टावाहिनियों पर पडने वाले प्रभाव को मन्द कर देती है जिससे यह मासपेशियों मे स्तम्भ को रोकती है (इसीलिये स्तम्भ रोग मे भी उपयोगी है), मस्तिष्क के (Reticular Formation) लिये भी शामक है।

(३) Oxazepam (serepax) १५ मिलि० मात्रा मे ३ बार दिन मे देने से भी लाभ होता है।

(४) Hydroxyzine Hydrochloride (Atarax Pfizer) यह भी Benzhydrol का योग है। इसके १० से २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन बार देने से मस्तिष्क (C N System) पर शामक प्रभाव पडता है एव चिन्ता (या Tension) रोग के लिये इसका प्रयोग होता है। इससे कुछ मन्दता-सी शरीर मे प्रतीत हो सकती है। परन्तु प्रबल मानस रोगों के लिये विशेष उपयोगी नही है।

(५) Reserpine (Reserpex I C I, Serpasil Ciba के २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ बार लेने से भी चिन्ता रोग मे लाभ प्रतीत होता है।

(६) Chlorpromazine (Largactil) के २५ मिलि० मात्रा मे या *Promazine* ५० मिलि० दिन मे तीन बार लेने से भी चिन्ता रोग मे कमी होती है। तीव्र चिन्ता रोग मे इसका प्रयोग मास द्वारा करना चाहिये।

(७) Phenothiazine के अन्य योगो के जैसे Promazine Hydrochloride (Sparine-Wyeth) के २५-५० मिलि० मात्रा मे या Prochlorperazine (Stemetil) या Pecazine (Pacatal) के २५-५०

मिलि० मात्रा मे या Thioridazine hyd (Melleril) १० मिलि० दिन मे ३ वार देने से इस रोग मे लाभ होता है। Amargyl (May & Baker) मे Chlorpromazine Hydrochloride २५ मिलि० के साथ Amylobarbitone ५० मिलि० भी मिला हुआ रहता हे। इसका भी दिन मे २-३ वार प्रयोग किया जा सकता है । रोग तीव्र रूप मे हो तो इसे मास द्वारा देना चाहिए।

(८) Barbiturates —Amylobarbitone (Amytal Lilly) ५०-१०० मिलि० (⅔, १⅔ ग्रे०) मात्रा मे दिन मे ३ वार देने मे शायद इस रोग मे सबसे अधिक लाभ होता हे, साथ ही यह कम खर्च भी है। Phenobarbitone (Gardenal-Luminal) भी ½ ग्रेन मात्रा मे दिन मे ३ वार दिया जाता है। इसे Methylpentynol (Oblivon) ५०० मिलि० के साथ भी ३ वार दे सकते है। परन्तु मन और शरीर के लिये कुछ अवसादक होने से बडी आयु के व्यक्तियो के लिये उपयुक्त नही रहती। Amylobarbitone Sodium (Sodium Amytal) १ ग्रेन या Quinalbarbitone Sodium (Seconal Sodium, Lilly) ¾ ग्रेन या Cyclobarbitone (Phanodorm १½ ग्रेन के दिन मे ३ वार देने से या Sodium Amytal २०० मिलि० के ४-४ घ० पर देने से भी Cerebral Cortex पर प्रभाव होकर तुरन्त चिन्ता शामक प्रभाव होता है पर प्रभाव थोडी देर ही रहता हे। इनका महीनो तक प्रयोग किया जाना है। रात निद्रा के लिये Butabarbitone (Soneryl)की गोली दे। ये चिन्ता तथा भय अर्थात् Phobic States की शान्ति के लिये उत्तम औषधिया है पर इनकी आदत पड जाने का डर है । वृद्धो मे Arteriosclerosis से मनोविभ्रम Confusion का रोग रहता है इस औषधि से वह बढ जाता है। अत १, १½ महीने से अधिक काल के लिये एक साथ इन्हे जारी न रखना चाहिए । बीच-बीच मे १ सप्ताह के लिये या सप्ताह मे १ दिन के लिये बन्द करके फिर इनका प्रयोग आरम्भ कर सकते हे। रात को निद्राजनक प्रयोग के लिये इन्हे देना आवश्यक हो तो १⅔, ३ ग्रेन की मात्रा मे रात भोजन मे पहले देना चाहिये। तीव्र रोग मे Amylobarbitone Sod को ३⅔-७½ ग्रेन मात्रा मे शिरा द्वारा दे सकते हैं। इससे तुरन्त शान्ति हो जाती है। Nealbarbitone (censedal) को ६० मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार देने मे भी लाभ होता है।

(९) Chlordiazepoxide (Librium, Equibrom) भी चिन्ता, भय, वेचैनी तथा N Tension के लिये १९६० मे दिया जा रहा है। यह कुछ निद्राजनक भी है। १० मिलि० मात्रा मे इसे दिन मे ३-४ वार दिया जाता है।

(१०) Lorazepam – प्रथम सप्ताह १ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार फिर २ मिलि० मात्रा मे दिन मे २ या ३ वार ४ सप्ताह तक इसके देने से चिन्ता रोग मे वहुत लाभ होता है। इससे चिन्ताशीलता, निद्रानाश, शरीर सबन्धी शिकायतो तथा Tension को विशेष लाभ होता हे।

(११) Fluphenazine (Anatensol) को भी १ मिलि० मात्रा मे दिन मे २-३ वार इस रोग के लिये हितकर पाया गया हे। इसी प्रकार Trifluoperazine (Eskazine या Stelazine) १ मिलि० मात्रा मे ३-४ वार या ५ मिलि० मात्रा मे एक वार दिया जा सकता हे।

(१२) Diazepam (calmpose) २ ५-५ मिलि० को दिन मे ३ वार २-४ सप्ताह देने से भी यही लाभ होता है अर्थात् चिन्ता और Tension दूर होती है। यह आदमी को सुस्त नही करती। यह मास स्तम्भ को शान्त करती हे। निद्रानाश, स्मृतिनाश, एकाग्रतानाश, नाना प्रकार के भयो, हृदयकम्प, क्रोधशीलता असहनशीलता तथा चिन्ता के साथ मिश्रित विषाद को भी इस औषधि से विशेष लाभ होता हे। चिन्ता और Agitation के साथ Depression हो तो पहले इसी औषध को दे। जननेन्द्रिय सबन्धी चिन्ता रोग अर्थात पुस्त्व शक्ति की हीनता की शिकायत नवविवाहित पुरुषो मे अधिक पाई जाती है उन्हे आश्वासन देना चाहिए कि उनकी यह शिकायत स्वयमेव कुछ काल वाद दूर हो जायेगी। Ejaculatio-praecox की शिकायत भी स्वयमेव दूर हो जायेगी या Sodium या Pot Bromide १५ ग्रेन के दिन मे २-३ वार २-३ सप्ताह देने से भी वह ठीक हो जायेगी। Phenobarbitone के छोटी मात्रा मे कुछ सप्ताह देने से भी लाभ हो जाता है।

(ख) विषाद प्रधान मानस रोग (Depressive Psycho-neurosis के लिये विषाद) शामक (Anti Depressive) औषधियाँ —

रोगी को किसी काम मे लगाये रहने के अतिरिक्त ये औषधिया देनी चाहिएँ जो Anti depressant कहलाती है।

(१) Imipramine (१६५७) (Tofranil, Geigy) यह Iminodibenzyl का एक योग है जो मस्तिष्क मे Serotonin की मात्रा को वढाता है, यद्यपि यह Monoamine Oxidase का कम करने वाला नही है। इसे पहले २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ४ वार प्रारम्भ करके क्रमश वाद मे इसके १५०-२५० मिलिग्राम मात्रा तक प्रतिदिन देने से और वाद मे मात्रा कम कर देने या इससे आधी मात्रा मे इ जेक्शन के द्वारा प्रतिदिन २-४ सप्ताह देने से विपाद प्रधान मानस रोग मे रोगी को पर्याप्त लाभ प्रतीत होता है, विशेषत Endogenous भेद मे। इससे कुछ निद्राजनक प्रभाव भी होता है। निद्राजनक प्रभाव कम हो तो किसी दूसरी निद्राजनक औपधि के साथ इसे दे सकते है। पूर्ण लाभ इसमे न हो तो Equibrom १० मिलि० या Largactil २५ मिलि० इसके साथ ही दिन मे ३ वार देवे। वृद्धावस्था (Involutional) के विपाद रोग मे भी इससे लाभ होता है, पर इतना अच्छा लाभ प्रतीत नही होता। इसी प्रकार चिन्ता रोग, चित्त विक्षेप या भ्रम प्रधान मानस रोग (Schizophrenia) मे भी इससे कोई लाभ नही लगता। यदि ३ सप्ताह तक के प्रयोग से भी लाभ न हो तो उसे वन्द कर दे। अव तक तो विपाद रोग की यह उत्तम औपधि प्रतीत होती है जो इससे भी ठीक न हो उसकी विद्युच्चिकित्सा (E C T) करनी चाहिए। मुख शोप, मलवन्ध, अतिस्वेद, चेहरे पर गर्मी, हृत्कम्प, शिरोभ्रम, तन्द्रा के उपद्रव हो सकते है पर यह औपधि दूसरी आगे कही गई Mono-amine oxidase unhibitor औपधियो से कम विपैली है। इसके प्रयोग से चेष्टा प्रधान मानस रोग के लक्षण हो तो इसे वन्द कर देना चाहिए। ऐसे असाध्य रोग से ग्रस्त रोगी मे कि जिसका मरना निश्चित है उत्पन्न विपाद रोग की शान्ति के लिये इस औपधि को २५-५० मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार देते रहना चाहिए।

(२) Amitriptyline (Elavil, Tryptizol, Tryptanol, Sarotina, Laroxyl) भी इसी प्रकार की औपध है रासायनिक दृष्टि से शामक औषधियो के समान है। यह स्तम्भ शामक भी है। इस औपधि को Imipramine से अधिक लाभदायक पाया गया है। एक मास तक रोगी को पर्याप्त लाभ प्रतीत होता है। Nortriptyline (Aventyl, Sensival) भी विपाद रोग, उन्निद्रता, वेचैनी के लिये उत्तम औपधि है। इसी प्रकार Trimipramine (Surmontil) भी अच्छी औपधि है। इन्हे २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार दिया जाता है। वाद मे ५० मिलि० मात्रा मे ३ वार दिया जाता है। Amitriptyline का शर्वत Tryptizol Syrup के नाम से मिलता है। २ चम्मच मात्रा मे दिन मे २ वार दे। वालको के Enuresis रात्रिमेह मे भी इसे १ चम्मच मात्रा में रात को दे दिया जाता है। २-३ सप्ताह के प्रयोग से लाभ न हो तो इसका प्रयोग वन्द कर दे।

(३) Trimipramine (Surmontie) इस रोग के लिये उत्तम औपध है। पहले, सोने से पहले २५ मिलि० की इसकी मात्रा दी जाती है। इससे नीद आने लग जाये तो फिर दिन मे ३ मात्रा सुवह, मध्याह्न तथा रात को इसी प्रकार दी जाती है। इस औपध से ४-५ दिन मे ही लाभ होने लगता है। रोग कुछ तीव्र हो तो दिन मे २ गोली रात मे २ गोली दें। कुछ और अधिक तीव्र रोग हो तो इसे दिन मे १५० मिलि० दे सकते है। जव रोगी को आराम मालूम होने लगे तो क्रमश इसकी मात्रा कम की जाती है और फिर २५ या ५० मिलि० मात्रा को कुछ काल वरावर जारी रखा जाता है। इसकी परम मात्रा २०० मिलि० दैनिक की है। इस औपध के साथ किसी Sedative औपध के देने की जरूरत नही रहती।

(४) Chlordiazepoxide (Equibrom) १० मिलि० दिन मे ३ वार देने से ऐसी ही लाभदायक है तथा अधिक निरुपद्रव भी है। इन चिन्ता निरोधक औपधियो को उपर्युक्त औपधियो के साथ सहायक रूप मे दिया जाता है।

(५) Meprobamate ४०० मिलि० दिन मे ३ वार देने से भी विपाद शामक होता है।

(६) निद्राजनक औपधिया जैसे Sod Amylobarbitone (Amytal Sodium) ६ ग्रे० के दिन मे ३ वार

देने से या विद्युच्चिकित्सा से इस रोग मे विशेप लाभ होता है।

(७) Methylamphetamine Hcl (Methedrine) Dexamphetamine Sulphate (Dexedrine) २ ५-१० मिलि० मात्रा मे प्रात तथा दोपहर २ वार देने से भी इस रोग मे लाभ होता है। इसे बहुत दिन जारी न रखे। क्योकि इन सब औषधियो की आदत पड जाने का भय है।

(8) Diazepam (Calmpose) विषाद रोग की उत्तम औषधि है। Oxazepam (Serepax) १५ मिलि० के ३ वार दिन मे देने से भी लाभ होता है। पर Calmpose अधिक प्रवल औषध है।

(ग) उन्माद प्रधान मानस रोग (Excitement व Psychotic Episodes) **की चिकित्सा** —

निम्नलिखित Neuroleptic औषधिया मस्तिष्क (Cortex) को निचले केन्द्रो से आये विक्षोभो के द्वारा विक्षुब्ध होने से बचाने का कार्य करती है। ये निद्राजनक नही है। तीव्र उन्माद मे रोगी को ५-६ व्यक्तियो से पकडवा कर (१) Chlorpromazine Hcl ५०-१०० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा देने से बडा लाभ होता है। वडी आयु के व्यक्ति मे ५० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा देना उचित है। २-४ घटे के अन्तर से इसे दुहरा सकते है। जब रोगी मुख से ले सके तो ५०-१०० मिलि० मात्रा मे इसे ६-६ या ८-८ घटे पर देवे। फिर थोडी मात्रा मे कुछ दिन दे। (२) Reserpine २-५ मिलि० मात्रा मे मास द्वारा प्रतिदिन देने से भी उन्माद का वेग शान्त हो जाता है। परन्तु प्रथम औषधि के समान इसका प्रभाव निश्चित नही। आवश्यकता हो तो ४-४ घटे पर इसे दुहरा सकते है। जब तक कि रोगी मुख मे औषधि न ले सके तब तक १ मिलि० मात्रा मे इसे दिन मे २ वार देने से यह रोग शान्त रहता है। यह औषधि मस्तिष्क के Hypothalamus जहा Autonomic केन्द्र हैं तथा Emotion के केन्द्र तथा Reticular System में से Adrenaline, Noradrenaline तथा Serotonin की मात्रा को कम करके उसकी उत्तेजना को शान्त करती है। इनके अतिरिक्त Sodium Amylobarbitone को ६ ग्रेन मात्रा मे ८-८ घ० वाद मास द्वारा दे सकते है। इनके अतिरिक्त विद्युच्चिकित्सा (E C T) से भी लाभ होता है। उसके साथ उपर्युक्त औषधियो का प्रयोग जारी रखना चाहिये। Paraldehyde ८-१० मिलिलि० के मास द्वारा देने से भी उन्माद का वेग शान्त हो जाता है। रोगी तीव्र उन्माद रोगी हो तो उसे २ डाक्टरो के सर्टिफिकेट के साथ और मजिस्ट्रेट के Reception Order के साथ Mental Hospital मे दाखिल कर देना चाहिये।

(घ) मृदु तथा चिरस्थायी उन्माद रोग (Chronic Psychotic Disease) **के लिये** —

(१) Chlorpromazine, (२) Reserpine ये दो औषधिया विशेषत उपयोगी पाई गई है। मस्तिष्क मे नीचे से (Ascending Reticular Activating System के द्वारा) पहुचने वाले प्रभाव Chlorpromazine के कारण मन्द कर दिये जाते है (Serotonin Blocking Agent)। इसका Hypothalamus पर भी शामक प्रभाव होता है। इस प्रकार इसके कारण चेतना के कम न होने पर भी मस्तिष्क बहुत कुछ शान्त हो जाता है। इस औषधि को या तो २५-५० मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन वार या ५० मिलि० मास द्वारा दिन मे २ वार दिया जाता है। रोग की प्रवलता को देखते हुए यह औषध १००-१५० मिलि० की मात्रा मे दिन मे तीन वार या मास द्वारा १०० मिलि० मात्रा मे दिन मे एक वार (२% Percaine Solu के साथ) भी दी जा सकती है। यह Sympatholytic औषध भी है जिससे यह रक्तभार कम करती है। Reserpine (Serpasil Ciba) के कारण चेतना के कम न होने पर भी उन्मत्त चेष्टा मे कमी आ जाती है। ½ से १ मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन वार या १ से ५ मिलि० मात्रा मे पहले रोज फिर एक दिन छोड कर इसका प्रयोग आरम्भ करना चाहिये। क्रमश वढाते हुए इसे ५-१० मिलि० दैनिक मात्रा मे भी दिया जा सकता है। Morphine Hydrochloride ⅙ ग्रेन तथा Hyoscine Hydrobromide $\frac{1}{100}$ ग्रेन को मिलाकर मास द्वारा देने से रोगी का वेग शान्त होता है। रोगी मुख से दवा ले लेता हो तो प्रथम औषधि को १५० मिलि० दैनिक मात्रा मे दिन मे ३ वार दें।

इन दो औषधियो के प्रयोग करने पर उपद्रव विशेष हो या इनका अभीष्ट प्रभाव न हो तव तो किसी दूसरे Phenothiazine वर्ग की औषधि का प्रयोग करना चाहिये। अर्थात् इनके वाद पहले Prochlorperazine (Stemetil) को १०-३० मिलि० मात्रा मे मुख द्वारा ३ वार देना चाहिये या Trifluoperazine (Stelazine) को ५-१० मिलि० दैनिक मात्रा मे मुख द्वारा (या १ मिलि० मात्रा मे इन्जेक्शन द्वारा) देना चाहिये। या Triflupromazine (Vespral) १०-५० मिलि० मात्रा मे दिन

मे तीन वार मुख से देना चाहिये। Barbiturates वर्ग की औषधिया इस रोग के लिये निरर्थक है।

विद्रोही विचार सम्बन्धी मानस रोग (Obsessive Compulsive Psychoneurosis) के लिये तथा चिन्ता प्रधान और चेष्टा प्रधान मानस रोगो के लिये भी Chlordiazepoxide (Equibrom) को १० मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन वार या Valium को इसी 'मात्रा मे ३ वार दिया जाता है। इन्हे वढाकर दैनिक ६० मिलि० मात्रा तक भी दिया जा सकता है। या Meprobamate ४०० मिलि० दिन मे ३ वार दे। विपाद युक्त यह रोग हो तो Tofranil ७५-१५० मिलि० के प्रति दिन देने से तुरन्त लाभ लगता है। यदि यह Schizophrenia से सम्वन्धित हो तो इसके साथ Stelazine या Eskazine ५ मिलि० के २ वार देने से लाभ हो जाता है।

मानस रोगो की सामान्य चिकित्सा

क्योकि मानस रोगी का रोग उसको मानस दुःख से वचाने का एक साधन होता है। रोगी से यदि यह कहा जाय कि यह कोई रोग नही है वहम है तथा उसे इसे मन से हटाने के लिये कहा जाय तो इससे रोगी की अवस्था और अधिक खराव हो जाती है क्योकि इससे उसे दुःख से वचाने वाली दीवार भी गिर जाती है। इसलिये रोगी की मन की चिकित्सा करने का यत्न, औषधि चिकित्सक को नही करना चाहिये। यह काम मानस चिकित्सक (Psychiatrist) का है। तुम्हारे मानस जगत मे एक प्रबल विक्षोभ हुआ है उससे हृदय, पेट, मस्तिष्क आदि सम्वन्धी अनेक लक्षण उत्पन्न हो गये हे, इस प्रकार की कुछ वात रोगी से कही जा सकती है ताकि उसका यह भ्रम कि उसे शारीरिक कोई रोग है दूर हो, सके। पर रोगी को समझाने व उपदेश देने मात्र से उसके मानसिक विप्लव (Emotional Tension) मे कोई कमी नही होती। कहा जाता है कि रोगी को एक वन्द कमरे मे विठा कर जहा से आवाज वाहर न जाये कहा जाये कि वह जोर से एक वार खुलकर रो लेवे तो इससे उसका रोग हल्का पड जाता है।

आहार

इस प्रकार सान्त्वना देने तथा खुलकर रो लेने के अतिरिक्त मानस रोगी को उत्तम पोपक आहार पर्याप्त मात्रा मे मिलना चाहिये। उसे भूख न लगती हो एव वह भोजन न लेता हो तो कृत्रिम तौर से भूख लगाकर अर्थात् प्रात १० यूनिट Insulin त्वचा द्वारा देकर ३ घटे वाद दिन भर रोगी को पर्याप्त मात्रा मे भोजन देना चाहिये। इन्सूलिन को धीरे-धीरे ३०-४५-५० यूनिट तक करते हुये इसे दो-तीन सप्ताह तक दे सकते है। इसे सप्ताह मे ६ दिन ही दिया जाता है। इसके द्वारा रोगी का पोषण वढ जाता है और उसका मानस-दौर्बल्य भी दूर होता है। उसे विटामिन बी कम्पलेक्स विशेषत Nicotinic Acid, Pyridoxine का प्रयोग भी करना चाहिये। कोई लघन द्वारा मानस रोग की चिकित्सा करते है।

मानस रोग की विद्युच्चिकित्सा (Electro-convulsive Treatment (E C T) इस चिकित्सा का आरम्भ पहले १९३८ मे Bini और Cerlitti ने किया। फिर तुरन्त यह विधि सर्वत्र होने लगी।

जव रोगी को Phenothiazine औषधि Reserpine आदि न दिया जा रहा हो तभी यह चिकित्सा करनी चाहिए। मानस रोगी की दोनो कनपटियो (Bitemporal-region) पर Head gear इलेक्ट्रोड्स को Saline से गीलाकर लगाकर सिर मे २-४ सेकेन्ड के लिये विद्युत् की १००-१५० Volts (५०० Milliamperes) की करन्ट गुजारने से रोगी मे अपस्मार सदृश आक्षेप होते तथा कुछ मिनट के लिये मूर्छा भी हो जाती है। करेन्ट गुजारने से पहले मुह मे कपडा भर देते है जिससे जीभ न कटे तथा दो आदमी उसे पकड कर रखते है ताकि आक्षेप मे Spinal fracture न हो। इससे पहले रोगी का पेट खाली होना चाहिये, मल मूत्र त्याग किया होना चाहिये। रोगी वस मे न आने वाला हो तो १ घटा पहले उसे Diazepam ५ मिलि० या Seconal Sodium दे दे। पहले सप्ताह मे २-३, दूसरे तीसरे सप्ताह मे २-२ करट देने से अर्थात् कुल ६-७ करट देने से रोगी का मानस रोग शान्त हो जाता है। विषाद प्रधान मानस रोग मे यह विशेष लाभदायक है। इसके देने के बाद रोगी अपने काल्पनिक जगत से निकलकर वास्तविक जगत मे आ जाता है। उसे इसके ४-१० वार देने से लाभ हो जाता है। उन्माद प्रधान मानस रोग मे यह चिकित्सा शीघ्र-शीघ्र की जाती है। उसे १०-२० वार देने से लाभ प्रतीत होता है तथापि इसमे इसके परिणाम इतने अच्छे नही मिलते। विद्युच्चिकित्सा (E C T) से लाभ क्यो होता है यह स्पष्ट नहीं हो पाया या तो इससे जो स्मृतिनाश कुछ-कुछ समय के लिये होता है उससे या इससे मस्तिष्क के सेलो को नवीन शक्ति प्राप्त होती है उससे लाभ होता लगता हे। अर्थात् Cortex पर इसका ऐसा प्रभाव होता है कि जो नई वात या नई आदत आदमी मे आ गई हो तो वह इससे नष्ट की जा सकती

है। चित्त की नई आई हुई विक्षोभावस्था दूर हो जाती है और पुरानी चित्त की शान्ति की अवस्था फिर प्रवल हो जाती है। वडी आयु मे होनेवाले विषाद (Involutional Melancholia) मे ४-६ Shocks देने से लाभ लगने लगता है। ऐसे रोगी को १२-१५ तक ये दे दिये जाते हे। जब विषाद या उन्माद के वेग एक ही व्यक्ति मे समय-समय पर हो अर्थात् Manic Depressive Psychosis हो तो भी ४-६ Shocks के देने से लाभ प्रतीत होने लगता है। उसे भी दोनो अवस्थाओं मे इससे लाभ होता है। १२-२० वार देने से पर्याप्त लाभ हो जाता है। चाहे आयु वडी हो, रक्तभार बढा हुआ हो तो भी इस चिकित्सा मे लाभ होता है। Obsessive Compulsive Neurosis मे भी इस विधि से लाभ होता है। इस विधि के वाद न्यूनाधिक स्मृतिनाश Amnesia हो सकता है जो थोडी देर ही रहता है। इस चिकित्सा के साथ-साथ विषाद-शामक निद्रा जनक Antipsychotic औषधिया भी जारी रखनी चाहिए।

मानस रोगी की निद्रा चिकित्सा (Continuous Narcosis या Sleep Treatment)

चिन्ता, विषाद या मृदु उन्माद युक्त मानस रोगी के मन में विद्यमान द्वन्द्व (Conflict) को शान्त करने के लिए ५ मे १४ दिन तक की निद्रा भी सहायक होती है। इस दीर्घ निद्रा के बाद उसका अस्वस्थ चित्त वहुत कुछ स्वस्थ हो जाता है। यद्यपि विद्युच्चिकित्सा के आविष्कार (१९३८) के वाद मे इस चिकित्सा पर अव वल नही दिया जाता। किसी दुर्घटना मे नाडी मण्डल आहत हो गया हो तो १२ घंटे की निद्रा देने मे उसे भी आराम मिल जाता है।

इस निद्रा चिकित्सा मे रोगी को मृदु रेचन देकर अगले दिन वस्ति के द्वारा उसकी आतो को स्वच्छ करके तीसरे दिन उसे एक शान्त हलके अंधेरे कमरे मे शय्याशायी करके Sodium Amytal (Amylobarbitone-Sodium) ३ ग्रेन की मात्रा मे प्रति ४ घंटे वाद मुख से दिया जाता है जिसमे यह औषधि १८ ग्रेन की मात्रा मे २४ घंटे मे उसके अन्दर पहुच जाती है और इससे वह १६ घंटे की पूर्ण और ८ घंटे की अपूर्ण निद्रा मे रहता है। यदि रोग की तीव्रता के कारण यह औषधि उचित मात्रा मे निद्राजनक न हो तो साय मास द्वारा Somnifune २ मिलिलिटर मात्रा मे दे दिया जाता है। इससे भी उचित निद्रा न हो तो प्रात काल के सूची वेध से १ घंटे पहले Hyoscine $\frac{1}{100}$ ग्रेन का एक सूची वेध दे दिया जाता है अथवा उपर्युक्त औषधि के साथ-साथ Sodium Amytal भी ३ ग्रेन की मात्रा मे प्रति ६ घंटे वाद मुख से दे दिया जाता है। इससे रोगी २० घंटे पूर्ण निद्रा तथा ५ घंटे अपूर्ण निद्रा मे रहता है। इसी प्रकार Dial, Luminal, Soneryl आदि Barbitone के योग २४ घंटे मे ६ से १२ ग्रेन की मात्रा मे दे दिये जाये, तो रोगी दिन रात के पर्याप्त भाग मे सोया रहता है। इस प्रकार इस चिकित्सा को ५ से १४ दिन तक जितना उचित हो जारी रखा जाता है।

भोजन रोगी को पर्याप्त मात्रा मे, जब वह कुछ जाग्रत अवस्था मे होता है, दिया जाता है। इस प्रयोजन से उसे दूध, दूध के बने पतले पेय, पतले रसे आदि दिये जाते हे। विटामिन 'बी' कम्प्लेक्स तथा विटामिन 'सी' भी भोजन के साथ दिये जाते है। यदि पानी उसे दिन भर मे पर्याप्त मात्रा मे पिलाया जाय, १-१½ औंस ग्लूकोज़ प्रतिदिन, फलरस या शिकन्जवी मे मिला कर दिया जाय तो Barbitone औषधि का कोई दुष्प्रभाव नही होता। इस चिकित्सा को क्रमश ३ दिन मे धीरे-धीरे समाप्त किया जाता है। इसके वन्द करने के वाद भी निद्राजनक औषधि दो दिन, रात को और दे दी जाती है तथा तीन दिन तक रोगी को दिन मे शय्याशायी ही रखा जाता है।

आयुर्वेद मे मानस रोग

मन को सत्त्व, रजस्, तमोमय कहा है। सत्त्व के कारण उसमे प्रकाश अर्थात् समझ बूझ का भाव, प्रसाद, प्रसन्नता का भाव, धृति अर्थात् भावो पर नियन्त्रण का भाव तथा समाधि अर्थात् एकाग्रता, निश्चलता और शांति का भाव रहते हैं। रजोगुण के कारण उसमे उचित प्रवृत्ति या कर्मण्यता का भाव तथा तमोगुण के कारण उसमे उचित अप्रवृत्ति या स्थिति का भाव रहते हैं। इन तीनो गुणो के सम अवस्था मे रहने से मन सम अवस्था मे रहता है।

कभी-कभी किसी तीव्र मानसिक अभिघात के लगने से मन का सत्त्व गुण या दूसरे शब्दो मे मस्तिष्क का वुद्धि स्थान निर्बल हो जाता है जिससे रजोगुण तथा तमोगुण दूसरे शब्दो मे प्रवृत्ति या अप्रवृत्ति के लक्षण तीव्रतर हो जाते हैं। चिन्ता, भय, शोक आदि अति कार्य भार के कारण तथा शरीर के आहार और आराम के कम हो जाने के कारण मस्तिष्क का पोषण कम हो जाता है। उसकी प्राण शक्ति या धृति शक्ति कम हो जाती है अर्थात् उसमे वायु या रजोगुण की वृद्धि हो जाती है। रजोगुण की वृद्धि से चिन्ता प्रधान तथा चेष्टा प्रधान मानस रोग होते हैं। तमोगुण की वृद्धि से सम्भवत विषाद प्रधान या निद्रा प्रधान मानस रोग होते हैं।

इस प्रकार बुद्धि या सत्त्व गुण के सहसा हीन हो जाने से मानस रोग की उत्पत्ति होती प्रतीत होती है। (१) चरक ने कहा है कि मस्तिष्क मे वायु, पित्त, कफ दोषो में से किसी या किन्हीं की वृद्धि हो जाने से जब रजोगुण वा तमोगुण (मोह) बढ़ जाता है, सत्त्व गुण की कमी हो जाती है तो रोगी अयथार्थदर्शी या विपरीतदर्शी हो जाता है। चरक ने ऐसे रोग को अतत्त्वाभिनिवेश या मिथ्याभिनिवेश रोग कहा है। इसके लिये मेध्य औषधियो का विधान किया है। (चि०। १० अ०। ५८-६०), (२) योग वाशिष्ठ मे भी कहा है कि बुद्धि की हीनता ही शारीरिक, मानसिक रोगो का कारण है। मन मे प्रसन्नता हो, शरीर का पोषण ठीक हो तो बुद्धि ठीक रहती है। मन मे चिन्ता, शोक आदि तीव्र रूप मे हो, शरीर का पोषण कम हो तो बुद्धि हीन हो जाती है। केवल तीव्र चिन्ता या चिरस्थायी चिन्ता के होने पर भी शरीर का पोषण कम हो जाता एव बुद्धि हीन हो जाती है। जैसे कहा है—

(१) समग्र दु.खमायत्तमविज्ञाने द्वयाश्रयम्
सुख समग्र विज्ञाने विमले तु प्रतिष्ठितम्।
(च०। सू० ३०। ८४)

(२) देहदु ख विदु र्व्याधिमाध्याख्य वासनामयम्।
मौर्ख्यमूले हिते विद्यात्तत्वज्ञाने परिक्षय।
(यो० वा)

(१) योग वाशिष्ठ मे कहा है कि चिन्ता आदि के द्वारा चित्त के विक्षुब्ध होने पर सारा शरीर ही विक्षुब्ध हो जाता है। प्राणवायु विषम हो जाती है। उसकी विषमता से कुछ एक नाडियो मे प्राणवायु ठीक नहीं वहता, इसी से अजीर्ण हो जाता है। खाया हुआ अन्न दोष रूप मे परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार मन के रुग्ण होने से सम्पूर्ण शरीर ही रुग्ण हो जाता है। फिर जब चित्त चिन्ताहीन, शान्त और प्रसन्न हो जाता है तब शरीर मे प्राणवायु ठीक चलने लगती है। अन्न का ठीक पचन होने लगता है एव रोगी फिर स्वस्थ हो जाता है।

अत इसीलिये मानस रोग से मुक्ति प्राप्त करने के लिये चित्त प्रसन्न रखने का यत्न करना चाहिये तथा यदि रोगी दृढ निश्चय कर ले कि वह चिन्ता और दु.ख को पास नहीं आने देगा तो फिर कोई दु ख उसके पास फटक नहीं सकता। साथ ही उसे बुद्धि को पकड़े रखना चाहिये। योग वाशिष्ठ मे कहा है।

(१) चित्ते विधुरिते देह. सक्षोभमनुयात्यलम्।
सक्षोभात्साम्यमुत्सृज्य वहन्ति प्राणवायव ॥
असम वहति प्राणे नाड्यो यान्ति विसस्थितिम्
काश्चिन्नाड्य प्रपूर्णत्व यान्ति काश्चिच्च रिक्तताम् ॥

कुजीर्णत्वमजीर्णत्वमतिजीर्णत्वमेव वा।
दोषायैव प्रयात्यन्न प्राणसचार दुष्क्रमात् ॥
एवमाधेर्भवेद्व्याधिस्तस्याभावाच्च नश्यति ॥
आनन्दो वर्धते देहे शुद्धे चेतसि राघव ॥
सत्त्व शुद्ध यावहन्त्येते क्रमेण प्राणवायव।
जरयन्ति तथान्नानि व्याधिस्तेन विनश्यति ॥

(२) न मनोनिश्चयकृत कश्चिद्रोधयितु क्षमः
पौरुष स्वमवष्टभ्य धैर्यमालम्ब्य शाश्वतम् ॥
यदि तिष्ठत्यगम्योऽसौ दु.खाना तदनिन्दित.
आधयो व्याधयश्चैव, शापा, पापदृशस्तथा
न खडयन्ति तच्चित्त पद्माघाता. शिलामिव ॥
(यो० वा०)

मेध्य या मन शामक कुछ औषधियाँ यहाँ दी जाती हैं।

१ ब्राह्मी घृत, (ब्राह्मी रस १½ सेर, गो घृत २ पाव, ब्राह्मी, शखपुष्पी, विडग, त्रिवृत, त्रिकटु, आरग्वध, सप्तला १-१ तोला) ६ माशा मात्रा मे दिन मे दो वार तथा सर्पगन्धा चूर्ण ½ माशा, मकरध्वज ½ रत्ती मिलाकर दिन मे तीन वार देने से रोगी का चित्त शान्त रहता है।

२. अथवा ब्राह्मी ३, शखपुष्पी २, सर्पगन्धा १ भाग मिलाकर बनाये चूर्ण को तीन माशे की मात्रा मे दिन मे तीन बार देने से भी यही लाभ होता है।

३. अथवा सर्पगन्धा चूर्ण ५ तोला मे जवाहरमोहरा पिष्टी ½ तोला मिलाकर इस चूर्ण के ½, ½ माशे की मात्रा मे दिन मे तीन बार देने से भी मन शान्त रहता है।

४ या सर्पगन्धा के घन सत्त्व मे समान भार ब्राह्मी तथा शखपुष्पी का चूर्ण मिलाकर बनाई दो-दो रत्ती की गोलियाँ दिन मे तीन वार देने से भी यही प्रभाव होता है।

५ अथवा ज्योतिष्मती बीज, जटामाँसी, सर्पगन्धा समान-समान मिलाकर इस चूर्ण के दो या तीन माशा मे ½ रत्ती मकरध्वज मिलाकर दिन मे तीन बार देने से भी मन शान्त होता है।

इनमे से किसी औषधि के साथ-साथ शतावरी घृत या बादाम पाक के खिलाने, सिर तथा नासिका मे बादाम रोगन

या घृत के अभ्यग और आश्च्योतन से भी मस्तिष्क की निर्वलता दूर होती है।

अपतन्तक रोग.—Hysteria Dissociative reaction, Conversion-reaction —

पहले कालो मे यह भ्रम था कि इस रोग का सबध गर्भाशय से है इसीसे उन्होने इसे हिस्टीरिया (Hysteria-=गर्भाशय) कहा पहले पहल Jean Martin Charcot (१८२५-९३) एक फ्रान्सीसी Neurologist ने बताया कि यह Neuropathy के कारण होता है। उसके शिष्य Pierre Janet (१८५०-१९०७) ने इसे एक मानसिक रोग सिद्ध किया।

साधारणत जब कोई व्यक्ति अपनी इच्छा या चिर-पालित आशा के विघात को यह समझकर कि उसका सह लेना ही ठीक है, सह लेता है तो उसे हिस्टीरिया नही होता। पर यदि वह विवेक और समझदारी से काम न ले पर अपनी प्रवल इच्छा या भय के वशवर्ती होकर एक अजीव आवेशपूर्ण अथवा नाटकीय ढग का या वालको का सा व्यवहार करे कि जैसे साधारण व्यक्ति कभी नही करता तो उसके इस व्यवहार या असाधारण प्रतिक्रिया को हिस्टीरिया कह दिया जाता है अर्थात् असह्य परिस्थिति मे यदि कोई वालको का सा व्यवहार करे उसे हिस्टीरिया कहते है। ऐसा प्रतीत होता है कि जन्म से निर्वल चित्त के २०-३० वर्ष की आयु के भाव प्रधान व्यक्तियो, विशेषत स्त्रियो मे किसी निराशा या प्रवल इच्छा-विघात, वियोग या भय के आ पडने पर, जव इनको अपना यह आभ्यन्तर या मानसिक दु ख असह्य हो उठता है, तो यह उनके अनजाने मे (Unconsciously) उनसे ऐसा विचित्र व्यवहार कराता है कि जिसमे वे उस क्लेश से वच जाते है (वैसे तो सारे रोग किसी क्लेश से वचाने वाले है) या उनका क्लेश जाता रहता या वह भूल जाता है। उनका अपनी कठिन स्थिति को हल करने या आ पडे भय से या दु ख से वचने का वालको का सा यह व्यवहार (या हिस्टारिया) उनके मानस दु ख को दूर करने का एक साधन वन जाता है। दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो जब एक व्यक्ति के अन्दर छिपी हुई उसकी वेदना या किसी असह्य स्थिति से वचने की उसकी इच्छा उसके अनजाने मे किसी अजीव से मानसिक (मूर्च्छा, स्मृतिनाश) या शारीरिक (आक्षेप सज्ञानाश आदि) रूप को धारण करके वाहर आ जाये तो उसे हिस्टीरिया कहते है। उदाहरणत जब एक सिपाही को घर से वहुत दूर पहाडो पर एक तरफ तो कठोर ड्यूटी देने और दूसरी ओर घर लौटने की प्रवल इच्छा इन दो वातो मे परस्पर द्वन्द्व Conflict हो जाता है और वह समझदारी से इसका कोई समाधान नही कर पाता तो उसे हिस्टीरिया हो जाता है। इसी प्रकार एक कन्या की आगे पढने की प्रवल इच्छा और माता-पिता द्वारा उस के विवाह के प्रस्ताव मे उसके मन मे द्वन्द्व उत्पन्न होकर उसे भी हिस्टीरिया हो सकता है। वालक माता-पिता मे दूर स्कूल मे रह कर उनके वियोग मे अति व्याकुल हो जाना है तो वह रोगी पड जाता है जिससे उसे घर पहुचा दिया जाता है और वहा जाकर वह एकदम ठीक हो जाता है। यह उसका रोग या उसे वमन आदि का होना शारीरिक रोग न होकर एक मानसिक रोग होता है जो माता मे दूर हो जाने से उत्पन्न कष्ट से वचने के लिए वालक मे उसके अनजाने मे उत्पन्न हो जाता है अर्थात् जब एक सिपाही के लिए युद्ध-क्षेत्र, विद्यार्थी के लिए स्कूल और एक गृहस्थी के लिये परिवार असह्य हो जाता है तब उसमे एक शारीरिक कष्ट उत्पन्न हो जाता है जिससे वह अस्पताल मे जा पडता है एव वह कष्ट से वच जाता है। इस प्रकार इस रोग मे रोगी की चेष्टा का कोई मोटिव होता है। हा यदि उसकी इच्छा ऐसी हो जिसे पूर्ण किया जा सकता हो तो उसके पूर्ण कर देने पर रोगी अच्छा हो जाता है। इसी प्रकार आदमी का आभ्यन्तर दु ख भय या चिन्ता का विकार शारीरिक आक्षेप Convulsion मे, दृष्टि के नष्ट हो जाने Blindness मे, या मूक रोग Mutism मे, या एकागघात Paralysis मे प्रकट हो सकता है। इसलिए इस रोग मे मानस भाव के रूपान्तर ले लेने से इसे Conversion reaction कहते है। ऐसा अनजाने मे या Sub-Consciously होता है। इस प्रकार कुछ लोग तो आभ्यन्तर वेदना या किसी भयकर स्थिति से अर्थात् इच्छा के नितान्त विपरीत किसी वात के हो जाने पर उससे वचने की इच्छा के वाह्यरूपान्तरीकरण (या Conversion Mechanism) की विधि से इस रोग की व्याख्या करते है। वे कहते है कि रोगी को वह आभ्यन्तर वेदना तो असह्य थी पर उसके रूपान्तर से उत्पन्न रोग उसे उतना असह्य नही रहता। इस प्रकार ऐसे लगता है कि जैसे अन्य रोग शरीर के अन्दर उत्पन्न किसी कमी या ज्यादती का इलाज होते है वैसे ही हिस्टीरिया रोग भी रोगी के लिए एक इलाज का काम करता है। इसीलिए कुछ व्यक्ति विना न्यूनाधिक हिस्टीरिया रोगी रहते हुए जीवन-यापन ही नही कर सकते। इसीलिए उन्हे हिस्टीरिया से मुक्त करना कठिन होता है। हिस्टीरिया रोगी Unconsciously वहाना करता है जबकि Malingerer Consciously वहाना करता है।

दूसरे लोग कहते है कि दुर्बल चित्त, भाव प्रधान और विवेकहीन व्यक्तियो मे उनकी प्रवल इच्छा या भय जो उनकी आभ्यन्तर वेदना का कारण होते हे उनके प्रकट व्यक्तित्व या चेतन चित्त से कुछ देर के लिए पृथक् होकर उनसे जो अजीव सा व्यवहार कराते है उसे हिस्टीरिया कहा जाता है। दूसरे शब्दो मे इस रोग मे रोगी के एक भाव या एक चेष्टा (Motor function) का वाकी व्यक्तित्व से पृथक्करण हो जाता है जिससे इसे चित्त विभजन (Mental Dissociation) या Splitting of Personality तथा Amnesia अर्थात् स्मृतिभ्रंश या Dissociative reaction का सिद्धान्त कह सकते हैं। यह पृथक्करण तथा स्मृतिभ्रंश कुछ काल के लिए ही होता है। इसीलिए हिस्टीरिया के दौरे के समय वह व्यक्ति जैसे किसी दूसरे व्यक्तित्व के द्वारा प्रेरित हुआ काम कर रहा हो ऐसा लगता हे। यह पृथक्करण सदा के लिए नही होता जैसे कि चित्त विक्षेप Schizophrenia मे होता है। व्यक्ति के एक हिस्से के, सम्पूर्ण व्यक्ति से पृथक् हो जाने के सिद्धान्त पर ही वे लोग रोगी के आगे कहे जाने वाले लक्षणो की व्याख्या करते है। व्यक्ति अपने सारे व्यक्तित्व से हटकर उसके एक हिस्से मे ही सीमित इसलिये हो जाता है ताकि वह आये हुए मानसिक कष्ट या भय से वच जाये, ऐसा वह सर्वथा अनजाने मे करता है, हम देखते है जो पेड पर जरा चढ नही सकता था, भारी भय पडने पर वही दसो फुट ऊपर चढ जाता हे।

निर्वल चित्त व्यक्तियो के मन का वाह्य प्रभावो से शीघ्र प्रभावित हो जाना भी इस रोग का एक कारण प्रतीत होता है। यदि प्रामाणिक कहाने वाला कोई व्यक्ति ऐसे व्यक्ति को गल्ती से कह दे कि उसे अमुक रोग है या हो सकता है, तो उस पर ऐसा दुष्प्रभाव पडता है कि उसे अपने अन्दर रोग दीखने लगता है अर्थात् इस प्रकृति के व्यक्ति की अपनी इच्छा शक्ति निर्वल होती हे। वह अनायास ही दूसरो के अच्छे वुरे प्रभाव मे आ जाता है तथा ऐसे व्यक्तियो मे स्वल्प कारण मे ही प्रवल मानसिक प्रतिक्रिया हो सकती हे जिससे वह अपना नियत्रण खो वैठता एव आपे से वाहर हो जाता हे। इसीलिये ऐसे व्यक्ति पर Hypnosis शीघ्र हो जाता हे। इसी कारण कुछ लोग इस रोग को अपने द्वारा या किसी दूसरे द्वारा डाले हुये प्रभाव (Auto या Heterosuggestion) से उत्पन्न होने वाला रोग कहते है जिससे कुछ लोग इसे अज्ञानवश "ओपरा" कहकर उसकी मन्त्र-तन्त्र आदि द्वारा चिकित्सा करते हे।

पैतृक परम्परागत प्रवृत्ति इस रोग का प्रधान कारण है। इस रोग की निर्वलता माता-पिता से आती है। कठिन या असह्य परिस्थिति के उपस्थित होने पर यह परम्परागत निर्वलता हिस्टीरिया के रूप मे प्रकट होती है। इस प्रवृत्ति वाले वालक या वालिका मे हिस्टीरिया के सूचक लक्षण वाल्यकाल मे ही प्रकट हो जाते है। थोडी प्रतिकूल परिस्थिति मे भी ये वच्चे अजीव सा व्यवहार करते हे। स्त्री मे विवाह सम्वन्धी कोई कष्ट, आदमी मे कोई आर्थिक हानि या समस्या इस रोग का कारण होती है।

लक्षण

इस रोग के मानसिक लक्षणो मे से एक तो मूर्छा (Fit) का लक्षण होता है जिसमे वेहोशी मे उसका शरीर अपस्मार रोगी की तरह आक्षेप और स्तम्भयुक्त भी हो सकता है। पर वहुधा नही होता। इसी प्रकार स्वल्प कालिक स्मृति नाश (Amnesia) का लक्षण भी हो जाता है, ये लक्षण स्वल्प काल के लिए ही होते है। दीर्घकालिक स्मृति नाश (Hysterical Fugue) का लक्षण भी कभी-कभी होता है जिसमे रोगी या रुग्णा घर से भाग खडी होती, घटो या कुछ दिनो तक घर से मीलो दूर चली जाती और एक विभिन्न व्यक्ति की तरह व्यवहार करती है। उसे यह पता नही रहता कि वह कौन है, कहा से आई है। उसके वाद जव उसे स्मृति आती हे जो सहसा आती है तो उसे यह पता नही रहता कि उसने इस बार विस्मृति काल मे क्या किया। इस प्रकार एक व्यक्ति के अन्दर दो भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व प्रतीत होने लगते है। परन्तु एक ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का एक अश पृथक् होकर थोडी देर व्यक्ति का सचालन कर सकता है। उसके बाद उस व्यक्ति को यह पता नही रहता कि उसके अश ने पृथक् होकर क्या किया था। ऐसा भी हो सकता है सोते हुए रोगी के व्यक्तित्व का एक अश पृथक् होकर कुछ-कुछ प्रलाप करने लगे (Delirious State)। उसका यह प्रलाप अच्छे वुरे किसी प्रकार का हो सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि रात को सोते हुए वीच मे उठकर रोगी कोई काम कर आये जो करने मे कठिन भी हो पर रोगी को दिन के समय यह पता नही रहता कि उसने रात वह कार्य किया था (Somnambulism)। यह भी उपर्युक्त Fugue की तरह का ही एक लक्षण है अथवा रोगी निद्रावस्था (Stupor या Catalepsy) मे कुछ देर सर्वथा निश्चल पडा रहता है जिसमे उसके अग एक ही स्थिति मे रहते है तथा स्तब्ध होते है।

सज्ञा सम्वन्धी लक्षणो मे से रोगी को अर्धदृष्टि नाश या पूर्णदृष्टिनाश का लक्षण हो सकता हे। पर Pupillary reflex कायम रहता हे। दृष्टि नाश सहसा आरभ

होता है व्यवहार मे रोगी पूर्ण अथा नही दीखता। रोगी मे Light reflex होता है दृष्टि मन्दता ६।२४ या ६।३६ हो सकती है। वधिरता का लक्षण, सिर मे शूल, चुभने वाला भारी दर्द या शिर शूल (Paraesthesia या Clavus Hystericus) या एक हाथ मे या दोनो हाथो मे सज्ञानाश का लक्षण हो सकता है परन्तु इसमे सज्ञानाश अपूर्ण होते है। गूगेपन का लक्षण भी हो सकता है पर खासने मे आवाज होती है। चेष्टा सम्वन्धी लक्षणो मे से गले की मासपेशियो मे स्तम्भ के होने मे गलावरोध (Globus Hystericus) का लक्षण वहुधा हुआ करता है जिससे खाते समय गले मे अवरोध प्रतीत होता है। आत मे स्तम्भ होने से आध्मान या आन्त्रशूल का लक्षण या श्वास मार्ग मे स्तम्भ होने से श्वासरोध या श्वासकृच्छता का लक्षण होता है। मूत्रमार्ग मे स्तम्भ होने से मूत्राघात का लक्षण हो सकता है। Diaphragm मे स्तम्भ होने से हिक्का का लक्षण भी हो सकता है। इसी प्रकार हृदय मास मे विक्षोभ से हृदय कम्प (Palpitation) का लक्षण हो सकता है। मूर्छा के साथ शरीर मे लगातार रहने वाला या रह-रहकर होने वाला स्तम्भ का लक्षण हो सकता है। हनुस्तम्भ का लक्षण वहुधा होता है। आखो की पलको (Orbicularis Oculi) मे स्तम्भ होने से आख मे निमीलक रोग हो सकता है (Ptosis)। परन्तु विचित्र वात यह है कि रोगी को इन कष्टो के होने पर भी इनके लिए कोई चिन्ता नही होती।

इसी प्रकार रुग्णा को वेदना (Hysterical pain) का लक्षण भी हो सकता है। वेदना का लक्षण सिर, ग्रीवा और कमर मे वहुधा होता है। यह मन्द वेदना या तीव्र शूल किसी रूप मे हो सकता है जैसा कि ऊपर कहा है।

ऐच्छिक मासपेशियो मे से दोनो टागो मे या एक टाग मे या एक ओर की टाग और वाहु मे या एक वाहु मे पक्षाघात का लक्षण हो सकता है जो शिथिलता युक्त (Flaccid) या स्तम्भयुक्त होता है। इसके कारण रोगी चल-फिर नही सकता, हा निद्रा मे वह अपनी टाग को हिला सकता है, उसमे Tendon Reflex लुप्त नही होते। Plantar Reflex भी Extensor किस्म का नही होता, मृत अग की मासपेशियो मे क्षीणता भी नही होती। इसी प्रकार कण्ठ मासपेशियो मे घात का लक्षण होने से भाषण शक्ति नष्ट हो जाती है (Aphonia)। या रुग्णा अतिभाषण या अतिप्रलाप करने लगती है या शरीर के अगो मे कई प्रकार की चेष्टायें (Fits) या कम्प (Twitchings) हो सकते है या हास्य और रुदन के दौरे हो सकते है। लगातार हिचकी, डकार आने के लक्षण हो सकते है।

इस प्रकार यदि कोई व्यक्ति पहले से हिस्टीरिया की प्रकृति का हो अर्थात् पहले भी उसे Nervous Breakdown हो चुका हो और अव भी उसके रोग का कोई शारीरिक कारण न मिलता हो और यह पता लग सके कि वह किसी विकट या व्याकुलताजनक परिस्थिति मे रहा है तो उसके रोग को हिस्टीरिया से उत्पन्न कहा जा सकता है। अच्छा हो जाने पर यह रोग जिसे होता है वार-वार होता है।

चिकित्सा

उस वातावरण से रोगी को हटाकर उचित वातावरण मे रखने तथा औषधियो के द्वारा रोगी के तन व मन को शान्त रखने का यत्न करना चाहिए। वेग के समय सर्व व्यक्तियो से पृथक् करके उसे रखना चाहिए। उसे हर तरह से विक्षोभ से वचाना चाहिए। शिर तथा ग्रीवा पर गीला, ठण्डा कपडा रखना चाहिए। इसके लिए Pot Brom १५ ग्रेन, Tinct Valerian १५ वूद, Tinct Asafoetida १० वूद मिलाकर दिन मे २ वार दिया जा सकता है। या Bromalin elixir, A french Elixir Valerian Brom Alemb Brom Elixir Smith Stanist दे अथवा Gardenal, Largactil, Equanil आदि शामक औषधियो को हल्की मात्रा मे दिन मे दो वार दिया जा सकता है। अच्छे Suggestions का भी उसपर अनुकूल प्रभाव पडता है। मन और शरीर को शान्त एव वलवान् वनाने का हर उपाय करना चाहिए ताकि रोगी वास्तविकता का सामना करने के योग्य हो जाय।

आयुर्वेद में हिस्टीरिया

चरक (सिद्धि। ६। १२-१५) तथा सुश्रुत (नि०।१। ६३-६५) ने कहा है कि वायुवर्धक कारणो से जब जब मस्तिष्क मे वायु प्रकुपित होता है, सज्ञानाश, गात्र स्तम्भ, नेत्र स्तम्भ, श्वास स्तम्भ आदि का एक वेग हो जाता है, जव वहाँ वायु का प्रकोप शान्त हो जाता है, यह वेग भी शान्त हो जाता है। इस प्रकार के वेगो को अपतन्त्रक कहा गया है। इस नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि वे लोग ऐसा मानते थे कि इस रोग के समय रोगी के व्यक्तित्व पर उसका अपना तन्त्र नहीं रहता, किसी दूसरे का हो जाता है अर्थात् थोडी देर के लिए उस व्यक्ति पर किसी विशेष का तन्त्र कायम हो जाता है। सुश्रुत ने इस रोग को कफानुगत वायु से होने वाला कहा है अर्थात् शक्ति की कमी के अतिरिक्त अग्नि की कमी भी इस रोग का सहायक कारण होती है। इस रोग के

लिए चरक, सुश्रुत दोनो ने हींग, तुम्बुरु, पुष्करमूल, अम्लवेतस, हरड तथा तीनो लवणो से बने चूर्ण के देने या त्रिकटु, हरड़, सौवर्चल से साधित घृत के पिलाने का विधान किया है तथा रोगों की संतर्पल चिकित्सा करने को कहा है। हींग, खुरासानी अजवायन, कपूर तथा जटामासी समान-समान मिलाकर बनाई गोली आधा माशा की मात्रा मे दिन मे दो तीन बार मधु के साथ देने से या हींग और एलुवा समान मिलाकर बनाई गोली के देने से या ब्राह्मी के किसी योग जैसे ब्राह्मीघृत, सारस्वतारिष्ट के देने से या वृहद्वात चिन्तामणि, चतुर्मुख चिन्तामणि आदि किसी बल्य अर्थात् वायु शामक औषधि मे केसर, जायफल, कस्तूरी आदि मिला कर कुछ मास तक देने से भी इस रोग मे लाभ हो जाता है।

युवा सुलभ उन्माद :—(Hebephrenia) चित्तविक्षेप या विक्षिप्तता :—(Schizophrenia, Chizo=Split, Phrenia=Mind) :—

इस रोग को पहले Dementia praecox बुद्धिभ्रंश कहते थे परन्तु अब Schizophrenia कहते हैं क्योंकि वह वास्तविक जगत् से फट जाता है।

यह एक अति सुलभ मानस रोग है जिसमे बुद्धि की विभिन्न शक्तिया युवावस्था मे ही क्षीण हो जाती हैं। Mental Hospitals मे आधे से अधिक रोगी इसी रोग के पाए जाते हैं। बुद्धि के क्षीण होने के कारण Emil Kraepelin एक Berlin Psychiatrist (१८५६-१९२६) ने (१८९६) मे इसे युवा सुलभ बुद्धि विभ्रंश (Dementia Praecox) का नाम दिया था। फिर Bleuler (१९११) ने यह कहा कि इस रोग मे मन के विभिन्न कार्यों मे जो पारस्परिक सम्बन्ध रहना चाहिए वह नही रहता। जिससे रोगी के विचार, भाव और व्यवहार मे परस्पर अनुरूपता नही रहती अर्थात् रोगी मे जो भाव दीखता है तदनुसार उसका विचार नही होता, जो उसका विचार होता है तदनुसार उसका भाव नही होता तथा विचार और भाव के अनुसार व्यवहार नही होता। इस प्रकार मन के एक कार्य के दूसरे कार्य से विभक्त हो जाने या फट जाने से उसने इस रोग को Schizophrenia (विक्षिप्त-चित्त Split mind) का नाम दिया। इसलिए इसे चित्त विक्षेप कह सकते है।

कारण

इस रोग की दुष्प्रवृत्ति जन्म से आती प्रतीत होती है। रोगी का शरीर, व मन जन्म से ही निर्बल होते हैं। बहुधा उसके पूर्वजो मे मानस रोग के होने का इतिवृत्त पाया जाता है। रोगी का शरीर भी सुकुमार और अविकसित दीखता है। मन मे इस रोग की प्रवृत्ति के कारण ऐसे बालक मे किसी कार्य के लिए बाल सुलभ उत्साह नही होता। हर्ष, शोकादिभाव भी मन्द रूप मे होते है। वह मिलनसार न होकर लज्जालु, शान्त और एकान्तप्रिय होता है। वास्तविक जगत् मे न रहकर काल्पनिक जगत् मे रहता है औरो से अलग-थलग रहता है। इस रोग के पैतृक परम्परा से आने के कारण ही यह रोग १५-२० वर्ष की युवावस्था मे प्रकट होने लगता है। ऐसा लगता है कि मन की निर्बलता के कारण जब कोई नवयुवक बाह्य कठिन परिस्थितियों का सामना नही कर सकता एव उनके अनुसार अपने को ढाल नही सकता तब वह बाह्य वास्तविक जगत् से भागकर अपने काल्पनिक जगत् मे चला जाता है और वहाँ शान्ति अनुभव करने लगता है। ऐसा व्यक्ति आस-पास के वास्तविक जगत् से कटा हुआ या अलग हुआ-हुआ दीखता है। ऐसे व्यक्ति मे इस रोग के लक्षण प्रकट होने लगते है। किन Metabolic परिवर्तनो के कारण यह रोग होता है इस बात का अभी तक निर्णय नही हुआ। हा इस रोग का प्रारभ किसी प्रकार की दुखद परिस्थिति से जैसे किसी काम मे फेल हो जाने, किसी प्रकार की बडी हानि या किसी मृत्यु के धक्के से होता है। रोग का आरभ क्रमश होता है। एक युवक आसपास की परिस्थिति से उपरत हो जाता है, सासारिक कार्यो मे दिलचस्पी नही रखता, खुशियो मे खेलो में कोई भाग नही लेता। एक जगह पर खडा रहता है, एक तरफ को देखता रहता है, उदास सा रहता या निष्कारण ही कभी-कभी हंस पडता है। हर समय अपने मे ही मस्त रहता है (Autism)।

लक्षण

(१) विचारहीनता

मन की विभिन्न प्रक्रियाओ के विभिन्न हो जाने या मन के विभिन्न भागो के परस्पर विच्छिन्न हो जाने (Association की शिथिलता) से रोगी की विचार-शक्ति नष्ट हो जाती है। जैसे स्वस्थ व्यक्ति किसी एक आशय को लक्ष्य मे रखकर अपने विचार स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त करता है यह रोगी वैसा नही कर सकता। उसकी बात का कोई एक लक्ष्य नही होता, उसके वाक्य परस्पर असम्बद्ध होते है अर्थात् आगे तथा पीछे कहे उसके वाक्यो मे परस्पर मेल नही होता, वे कभी-कभी परस्पर विरोधी भी हो सकते है। उससे बात करके किसी बात का पता लगाना असम्भव है। वह बोलता भी कम है इसलिए

उसे असम्बद्ध भाषी कहते है असम्बद्ध प्रलापी नही, हो सकता है, किसी प्रश्न के पूछने पर उसका उत्तर नितान्त असम्बद्ध हो । रोग के बढ जाने पर तो वह केवल मिन्मिनभाषी या अव्यक्तभाषी रह जाता है। यदि कोई नवयुवक विचारहीन या सारहीन या असम्बद्ध (Incoherent) भाषण करने लगे जिससे मतलब कुछ न निकले तो उसमे इस रोग का प्रारम्भ समझना चाहिए ।

(२) भावहीनता —(Loss of Emotion)

मन के भ्रष्ट हो जाने के कारण रोगी मे हर्ष, शोक आदि भाव, अतिमन्द हो जाते है । वह सुख मे सुखी व दुख मे दुखी नही होता । अपने निकटतम की मृत्यु या दुख को सुनकर भी विचलित नही होता । माता-पिता, गुरु आदि मे उसकी प्रीति या आदर की वृद्धि नही रहती प्रत्युत उनसे घृणा करने लगता है या एक सम्बन्धी की मृत्यु का सुनकर हसने लगता हे। उसमे Emotional incongruity आ जाती है । धीरे-धीरे उसका चेहरा भावहीन, उदासीन सा होता जाता है। उसमे शरीर की रक्षा करने और उसको सजा के रखने का भाव नही रहता जिससे वह मैला-कुचैला सा रहने लगता हे। उसके चेहरे पर कभी-कभी हसी का भाव दीखता है परन्तु वह भाव भी सर्वथा उथला होता और निष्कारण होता है। इस प्रकार उदासीन हो जाने का भाव इस रोग का सूचक लक्षण होता है। हो सकता है कि एक रोगी मे भाव (Emotion) ही नष्ट हो बुद्धि कुछ-कुछ कार्य करती हो इसे Simple Schizophrenia कहते है।

(३) इच्छाहीनता

रोगी की इच्छा-शक्ति हीन हो जाती है जिससे रोगी युवको मे अपनी पढाई-लिखाई या अपने काम-धन्धे के करने की भी इच्छा नही रहती । प्रात देर तक बिस्तरे मे पडा रहता हे और फिर उठकर भी निरुद्देश्य उधर-इधर फिरता रहता है। एक स्थान पर बैठा-बैठा या खडा-खडा एक ओर ही देर तक देखता हे । इच्छा-शक्ति के नष्ट हो जाने से ही वह साधु-सा बन कर घर से निकल जाता या आवारा-सा हो जाता है। यह शक्ति अधिक मात्रा मे हीन हो जाए तो रोगी अति स्वप्नशील होकर निद्रा मे ही पडा रहता है। उसने पढना-लिखना या अपना काम छोड दिया है इसीलिये उसके माता-पिता उसे डाक्टर के पास लाते है।

(४) मनोविभ्रम, भ्रान्तचित्तता

रोगी के चित्त मे जब कोई ऐसा मिथ्या विश्वास बैठ जाय जिसे हम युक्तियो से दूर नही कर सके तो उसे भ्रान्ति या विभ्रम (Delusion) कहते है। इस रोग मे जब विचार शक्ति, भाव शक्ति तथा इच्छा-शक्ति हीन हो जाती है तो रोगी मे किसी भ्रान्ति का हो जाना स्वाभाविक ही हे। विचार हीन होने से उसे दूसरे निरपराध व्यक्तियो की बातो मे ऐसा भ्रम हो जाता हे कि वे उसे लक्ष्य मे रखकर की जा रही है। उसे अधिकत यही भ्रम होता हे कि दूसरे लोग उसे हानि पहुचाने का यत्न कर रहे है। अपनी भावहीनता को देखकर उसे यह भ्रम हो जाना स्वाभाविक है कि उसमे हृदय या मस्तिष्क नही है या कि वह मरने वाला हे। अपनी इच्छा-शक्ति के हीन हो जाने से उसे यह भ्रान्ति हो जानी स्वाभाविक हे कि दूसरे आदमी अपनी इच्छा मे उसे चला रहे या उसे काम करा रहे है। जब किसी को अजीब से भ्रम होने लगे तो उसमे इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिये।

(५) मिथ्याप्रतीति (Hallucination)

जब कोई वस्तु न हो, वह दिखाई पडे, या जो शब्द न हो रहा हो वह सुनाई पडे और इसी प्रकार जो इन्द्रिय का विषय न होने पर भी इन्द्रिय गोचर होने लगे तो उसे मिथ्या प्रतीति कहते है। (कर्ण-घोष का होना या आँखो के सन्मुख ज्योति का दीखना आदि ज्ञान नाडियो के रोग के कारण होने वाले भाव मिथ्या प्रतीति नही कहलाते) इस रोग मे श्रवण सम्बन्धी अथवा दृष्टि सम्बन्धी मिथ्या प्रतीति बहुधा होती है। अपने लिये दुर्वचन या हसी उडाने के शब्द सुनाई पडते है या जननेन्द्रिय सम्बन्धी (Sexual) बुरी बाते सुनाई पडती हे। बाहर के वास्तविक जगत् से हटकर जब वह अपने काल्पनिक जगत् मे रहने लगता है तब उसे मिथ्या प्रतीतियो का होना स्वाभाविक हे।

भेद

(१) युवासुलभ उन्माद, युवासुलभ चित्तविक्षेप (Hebephrenia)

यह इस रोग का सबसे सुलभ भेद है। १५-२० वर्ष का एक युवक विचारहीन, भावहीन, इच्छाहीन, उदासीन, विषण्णवदन, मलिन गात्र, मलिन वस्त्र और सर्व कार्यो से उपरत होकर अपने काल्पनिक जगत् मे रहने लगता हे, किसी व्यर्थ से ध्यान, पूजा-पाठ कामो मे लग जाता हे। रोगी के निष्प्रयोजन कार्यो तथा उसके अस्थानिक भावो से इसका पता चल जाता हे कि यह रोग धीरे-धीरे अज्ञात रूप मे उत्पन्न हो रहा हे। इस उपरति

के अतिरिक्त रोगी को कोई भ्रम (Delusion) रहता है या उसे दृष्टि सम्बन्धी विशेषत श्रवण सम्बन्धी कोई मिथ्या प्रतीति (Hallucination) रहती है।

(२) तारुण्यसुलभ उन्माद —चेष्टाशून्यता या व्यर्थ-चेष्टता :—(Catatonia Cata=Down, Tone = Tension).

२५ से ३५ वर्ष की आयु मे जब यह रोग सहसा आरम्भ होता है तो शून्योन्माद, ध्यानोन्माद, मोहोन्माद या निद्रोन्माद (Catatonia) के रूप मे होता है। भावहीन, इच्छाहीन, मौन-सा होकर रोगी एक ही परिवर्तन न होने वाली स्थिति मे चिरकाल तक खडा रहता है या पडा रहता है। मुख मे सचित हुई लार को थूकने की इच्छा भी नही करता जिससे वह मुख से चूती रहती है। रोग थोडा हो तो कभी-कभी थोडी देर को बीच मे खडा हो जाता है या एक ओर को देखता रहता है। रोग अधिक हो तो सर्वथा निश्चेष्ट होकर एक ही अवस्था मे पडा रहता है या चुपचाप बैठा रहता है (Mutism)। उसके अग उलटे-सीधे भी पडे हो तो भी उन्हे हिलाता नही है। कई दिन तक खाता-पीता नही। इसे निद्रोन्माद या मोहोन्माद (Catalepsy या Akinesis या Stupor) कह सकते है। या वह अपने शरीर को एक कठिन सी स्थिति मे करके उसी मे देर तक खडा रहता है (Flexibilitas cerea, अगो मे अप्राकृतिक लचक) या जिस छोटी-सी चेष्टा करने को उसे कहा जाए उसी को बार बार किये जाता है (Automatism) या जिस शब्द या पद को सुन ले उसे ही दुहराता जाता है (Echolalia) या जिस चेष्टा को दूसरे मे देख ले उसी को बार-बार किये जाता है (Echopraxia) या बैठा-बैठा आख, भौहो, चेहरा आदि से किसी चेष्टा को करता रहता है। या कभी-कभी हलकी सी हंसी का भाव प्रकट करता है यद्यपि रोगी सर्वथा भावो से शून्य होता है।

कोई-कोई रोगी इस प्रकार सर्वथा शून्य होकर बैठे रहने के दौरान मे बीच-बीच मे उत्तेजित होकर कोई एक प्रबल चेष्टा करने लगता है जैसे क्रोध मे वह ऐसा कर रहा हो (Impulsiveness) सर्वथा निश्चेष्ट रहने के स्थान पर कोई-कोई रोगी हर समय एक नियत क्षेत्र के अन्दर-अन्दर या अपने कमरे के अन्दर ही घूमता रहता है। उसका यह घूमना सर्वथा निरुद्देश्य होता है (Hyperkinesia) या वह अपने शरीर मे इसी प्रकार की कोई दूसरी चेष्टा लगातार उसी प्रकार (Stereotyped) की करता रहता है या उसी प्रकार के शब्द को समय-समय पर बोलता रहता है या उदासीन-सा दीखता हुआ भी बीच-बीच मे आवेशपूर्वक एक प्रबल सी निरुद्देश्य चेष्टा करता रहता है। यदि कोई युवक सहसा अशिष्टसी चेष्टा करने लगे तो उसमे इस रोग की आशका करनी चाहिए।

(३) मध्यमायु सुलभ उन्माद, भ्रमोन्माद—Paranoia Para=Beside, Noia=Mind, (Paranoid Schizophrenia) —

४०-५० वर्ष की आयु मे धीरे-धीरे अज्ञात रूप मे जब यह रोग होता है तो विचारहीनता, भावहीनता, इच्छाहीनता के लक्षण तो गौण रूप मे होते है पर इनके कारण उत्पन्न किसी प्रकार की भ्रान्ति के लक्षण की प्रधानता होती है। दूसरे, विशेषत उसके सम्बन्धी उसे कष्ट पहुचाना चाहते है इस तरह की भ्रान्ति (Delusion of persecution) उसे बहुत होती है। भोजन मे विष मिलाया गया है इसीलिए वह भोजन नही लेता। जिन पर उसे हानि पहुचाने का भ्रम होता है उन पर वह हमला भी कर सकता है। उसके भाषण तथा व्यवहार से पता चलता है कि उसे श्रवण सम्बन्धी मिथ्या प्रतीति भी होती है। कभी-कभी रोगी को Grandiose delusions भी होते है, उसे अपने मे किसी प्रकार की महानता की प्रतीति होने लगती है।

पहचान

जब कोई रोगी विचारहीन, भावहीन, इच्छाहीन-सा हो जाय, समाज से दूर होता जाय, अपने मे मस्त रहने लगे (Autism), उसका भाषण, व्यवहार तथा रहन-सहन अजीव-सा हो जाय, उसे भ्रम होने लगे या वह एक ही स्थिति मे देर तक खडा रहे या उसका स्वभाव एक दम विपरीत हो जाय तो इससे चित्तविक्षेप रोग का ही सन्देह होना चाहिए।

भेदक लक्षण .—

चेष्टाप्रधान मानस रोग (Mania, Hypomania) **से भेद.—**

चेष्टा युक्त मानस रोग मे रोगी रात-दिन अत्यधिक चेष्टाशील और जागरूक रहता है। हर समय एक उमग पर सवार रहता है। सदा अति प्रसन्न दीखता है (यद्यपि प्रसन्नता के पीछे विषाद का भाव छिपा हुआ रहता है) वह किसी न किसी कार्य मे तत्पर रहता है, यद्यपि उसकी चेष्टाओ और कार्यो का उद्देश्य शीघ्र-शीघ्र बदलता

रहता है और उसे प्रेरणा करके कोई कार्य कराया जा सकता है। वातचीत करके स्वल्पकाल के लिए उसके साथ सम्पर्क कायम किया जा सकता है। उसमे भ्रम या किसी प्रकार की मिथ्या प्रतीति के होने का लक्षण भी नही होता। थोडी देर के लिए तो वह सर्वथा नार्मल व्यक्ति ही लगता है। परन्तु इस चित्तविक्षेप जनित उन्माद या चित्त-विक्षेप रोग मे रोगी साधारणत मन्द और निश्चेष्ट-सा रहता है। हा, कभी-कभी उसमे चेष्टाशीलता फूट पडती है, पर उस चेष्टा के वाद फिर वह मन्द-सा ही हो जाता है। उसकी यह चेष्टा भी सर्वथा निरुद्देश्य होती है और अनुमान लगाया जाता है कि किसी भ्रमवश या किसी मिथ्या प्रतीति वश उसमे यह चेष्टा होती है। सामान्यत यह रोगी अपने रुग्णविचारो और भावो मे गुम हुआ-हुआ रहता है। इसलिए उसके साथ सम्पर्क करना या उससे कोई काम लेना या उसके ध्यान को अपनी ओर खीचना असम्भव होता है।

विषादयुक्त मानस रोग से भेद :—

उस रोग मे भी मन्दता और चेष्टाशून्यता का लक्षण होता है पर इतना गहरा नही, जितना इस रोग मे। सहानुभूतिपूर्ण वार्तालाप से उस रोगी के चेहरे पर प्रसन्नता का भाव लाया जा सकता है, इस रोगी मे नही।

साध्यासाध्य —

इस रोग के आरम्भ होने के दो वर्ष के अन्दर-अन्दर उचित चिकित्सा करा लेने पर ५० प्रतिशत रोगी अच्छे हो सकते है, ६ मास के अन्दर-अन्दर चिकित्सा से और अधिक अच्छे हो जाते है। पर यदि रोग ४-५ वर्ष पुराना हो जाय तो प्राय असाध्य हो जाता है। वालकपन मे ही यह रोग हो जाय तो अधिक गम्भीर रूप मे होता है। मध्यमायु मे हो तो चिरस्थायी होने पर भी अधिक गम्भीर रूप नही लेता। इस रोग के ठीक हो जाने पर भी दुवारा इसका आक्रमण हो सकता है। इस रोग मे मृत्यु किसी आगन्तु रोग से, जैसे क्षय रोग आदि से होती है। इस रोग के रोगी वहुत से पागलखानो मे ही जा पडते है। कुछ जो घरो मे रहते है वे भी असामान्य स्वभाव के ही रहते है। चिकित्सा करने पर पुराने रोगी भी वहुत कुछ ठीक हो जाते है तो भी इस रोग के सूचक चिह्न उनमे कुछ रह ही जाते है।

चित्तविक्षेप की चिकित्सा :

विद्युच्चिकित्सा (Electric Shock)

२ सेकण्ड के लिए १००-१५० Volts की विद्युत् के द्वारा ३-३ दिन के अन्तर से १०-२० आघात देने से अशान्त रोगी शान्त हो जाता है। विशेषत Catatonic और Paranoid भेद मे लाभ हो जाता है। इतने पर भी लाभ न हो तो आगे इस चिकित्सा मे लाभ की आशा न रखनी चाहिए। तदुपरान्त उसकी इन्सुलिन मूर्च्छा चिकित्सा करनी सुलभ हो जाती है। इन्सुलिन चिकित्सा के वाद विद्युच्चिकित्सा से रोगी मे विद्यमान मन्दता और उदासीनता का लक्षण जाता रहता है। पर फिर भी दुवारा इस रोग का वेग हो जाता है। यह भी आदर्श चिकित्सा नही।

इन्सुलिन मूर्च्छा (Insulin Coma या Insulin Shock)

चिकित्सा

रोग को एक वर्ष से अधिक समय न वीता हो तथा रोगी ३०-३५ वर्ष की आयु से ऊपर का न हो उसे हृदय, यकृत्, वृक्क तथा फुफ्फुस सम्वन्धी कोई रोग विशेष न हो तो इस चिकित्सा से पर्याप्त लाभ हो जाता है। इस चिकित्सा के लिए रोगी को १०-१२ घटे निराहार रहने के वाद प्रात १०-१५ यूनिट Soluble Insulin मास द्वारा दे दी जाती है और अगले दिन इतनी मात्रा और वढा दी जाती है। इस प्रकार जव यह मात्रा ६०-८० यूनिट तक पहुच जाती है तव रोगी इस मात्रा के देने के ३ घण्टे वाद मूर्च्छित हो जाता है। डेढ घण्टे तक की मूर्छा के वाद ७ औंस ग्लूकोज को १ पाइंट चाय या गर्म जल मे मिला कर Nasal Tube द्वारा उसके पेट मे पहुचा दिया जाता है या ३३ प्र० श० ग्लूकोज़ सोल्यूशन को ५० सी० सी० मात्रा मे शिरा द्वारा उसे दे दिया जाता है। इससे २०-३० मिनट मे उसकी मूर्च्छा टूट जाती है। फिर सप्ताह मे ६ दिन तक इसी मात्रा के द्वारा उसमे मूर्च्छा उत्पन्न की जाती है और इसी विधि से उसे तोडा जाता है। इस प्रकार कम से कम ५-६ सप्ताह या अधिक से अधिक १०-१२ सप्ताह तक मूर्च्छा उत्पन्न करने के इस क्रम को जारी रखा जाता है। इस चिकित्सा से क्यो लाभ होता है, इस विषय मे निश्चय से कुछ नही कहा जा सकता। चिन्ता रोग भी औषधियो तथा विद्युत् चिकित्सा से ठीक न हो तो उसके लिए भी यह चिकित्सा उपयोगी हो सकती है। पर एक तो यह एक लम्वी चिकित्सा है और दूसरे खतरे से खाली नही है।

निम्नलिखित नवीन औषधियो से इस रोग की चिकित्सा की जाती है —

(१) Reserpine (Serpasil)

भ्रमणशील, भ्रमप्रधान (Catatonia तथा Para-

noid) रोगी मे रोग मृदु हो तो १ मिलिग्राम, तीव्र हो तो २½ से १० मिलिग्राम तक की मात्रा मे मास द्वारा या शिरा द्वारा प्रतिदिन या प्रति दूसरे दिन इसका प्रयोग करना चाहिए। इन्जेक्शन के एक दो घण्टे पश्चात् इसका प्रभाव प्रतीत होने लगता है। इसके साथ १ मिलि० मात्रा मे मुख द्वारा भी इसका प्रयोग प्रतिदिन तीन वार करना चाहिए। एक सप्ताह के लगभग समय मे इससे लाभ हो जाता है। लाभ कम हो तो मौखिक मात्रा ४-१५ मिलि० दैनिक वढा सकते है तथा ५-७ दिन और इसे जारी रखा जाना चाहिए। १, १½ मास के प्रयोग से तो प्राय रोगी ठीक हो ही जाता हे।

१-१½ मास तक इस औपधि के साथ Chlorpromazine का प्रयोग करने से अधिक लाभ होता है। वीच मे रोगी कुछ विक्षुब्ध-सा भी हो जाय पर फिर वह शान्त और स्वस्थ हो जाता है। तो भी यह औपधि मन्दता (Depression) का दुर्लक्षण उत्पन्न करती हे। इस औपधि के कारण Synapses मे Noradrenaline तथा तत्सम्बन्धी द्रव्यो की न्यूनता हो जाती हे जिससे मस्तिष्क की उत्तेजना कम हो जाती है अर्थात् मस्तिष्क मे पहुचने वाली Impulses की मात्रा घट जाती हे जिससे मस्तिष्क शान्त हो जाता है। इसमे Apathy और Depression तथा Peptic ulcer उत्पन्न करने का दोप है। अत यह भी आदर्श चिकित्सा नही।

(२) Chlorpromazine Hydrochloride, Largactil (May & Baker)

यह Phenothiazine का एक योग है जिसकी खाड से लिपटी गोलिया तथा इजेक्शन भी मिलते हे। ५० मिलिग्राम मात्रा मे दिन मे ३ वार मुख से या मास द्वारा या शिरा द्वारा ६-१२ घण्टे के वाद इसका प्रयोग करने से विशेपत तीव्र चेष्टा प्रधान, भापण प्रधान या भ्रम प्रधान (Catatonia, Paranoia, Hallucination) रोगी और सावारणत भय प्रधान, मूक, निद्रित और विचित्र स्थितियो मे निश्चल पडे रहने वाला रोगी (Mute-Stuporose Flexibilitas Cerea) भी ठीक होने लगता है। एक सप्ताह वाद इसकी मात्रा १००-१५० मिलि० दिन मे तीन वार मुख से या ५० मिलि० मास द्वारा तीन वार कर दी जाती है और १½ महीना इसका प्रयोग करके देखना चाहिए। ५० मिलि० को १० सी० सी० शुद्ध जल मे मिलाकर धीरे-धीरे शिरा द्वारा भी दिया जाता है। वेचैनी तथा Obsession मे भी यह औपधि कुछ लाभ करती प्रतीत होती है। पुराने रोगो मे इसे महीनो तक जारी रखना चाहिए। इस प्रकार Schizophrenia के लिए यह एक उत्तम औपधि हे। इसमे कामला उत्पन्न करने का दोष हे। ३०० मिलि० दैनिक देने पर Parkinsonism भी हो सकता हे।

(३) Promazine (Sparine Wyeth)

यह भी Phenothiazine का योग हे। चेष्टा प्रधान तथा भ्रम प्रधान रोगी मे इसके १०० मिलि० मात्रा मे ६-८ घण्टे पर मुख द्वारा या मास द्वारा देने से उपर्युक्त औपधि के समान ही लाभ होता हे। इसके देने से उतना रक्तभार नही गिरता, कामला का भय भी नही रहता जितना उपर्युक्त औपधि से तथा मास द्वारा देने से यह वेदना जनक भी नही है। Meprobamate २०० मिलि० के साथ वनी गोली (Prozine) भी मिलती है। Blood dyscrasia (दुष्प्रभाव) का कारण हो सकती है।

(४) Triflupromazine —(Vesprin, Squibb, Siquil) —

Chlorpromazine के Chlorine एटम के स्थान पर Triflour Methyl के आ जाने पर Triflupromazine एक औपधि वन जाती है जो १०-२५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३-४ वार देने पर भ्रम पूर्ण चित्तविक्षेप (Delusion, Hallucination, Senile dementia, Mania) पर और भी अधिक प्रभाव करती है परन्तु इसे अधिक काल तक जारी रखने से Blood dyscrasia आदि दुर्लक्षण होने लगते हैं। यह औपधि साधारण चिन्ता तथा Tension के लिए भी उपयोगी है।

(५) Prochlorperazine maleate (Stemetil, May & Baker)

Prochlorpromazine मे Dimethylaminopropyl के स्थान पर Methyl Piperazinyl आ जाने से Prochlorperazine नामक औपधि वन जाती है। यह भी Adrenergic blocking औपधि है जिसके ५-१० मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन वार या इसके इजेक्शन के दिन मे दो वार देने से भ्रमयुक्त (Paranoid) चित्तविक्षेप मे और भी अधिक तथा शीघ्र लाभ होता है। तीक्ष्ण तथा चेष्टा प्रधान रोगी के अतिरिक्त, ससार से विरत हुए रोगी मे भी यह औपधि शीघ्र लाभ दिखाती हे। सवारी मे होने वाले वमन तथा शिरोभ्रम (Dizziness) के लिये यह विशेप उपयोगी हे।

(६) Trifluoperazine—(Stelazine, Eskazine Smith Kline and French, Terfluzin M B)

Prochlorperazine के Chlorine एटम के स्थान

पर Trifluoromethyl के आ जाने से Trifluoperazine नामक औषधि बनती है जिसकी ५ मिलि० गोली के पहले २ और फिर ३ गोलियो के प्रतिदिन मुख द्वारा देने से और फिर १० मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन वार २ मास तक देने से Hallucination (मिथ्या प्रतीति) तथा Delusion (भारी भ्रम) मे वडा लाभ होता है। भ्रमपूर्ण (Paranoid) चित्तविक्षेप मे तथा ससार मे विरत हुए या निद्रित रहने वाले या मूक हो गए चित्तविक्षेप के रोगी मे भी लाभ विशेष होता है। ठीक होने पर इसे क्रमश कम करे तथा दिन मे ५ मिलि० दैनिक मात्रा मे इसके अनिश्चित काल के लिये देते रहने से रोगी अपने काम मे लग सकता है। ससार से उपरत रोगी के लिये यह सर्वोत्तम औषधि है। सामान्य चिन्ता रोग तथा औदासीन्य रोग के लिये भी यह उपयोगी औषधि है। इस औषधि के दीर्घ प्रयोग मे Extra pyramidal system के से लक्षण अर्थात् Rigidity के लक्षण हो जाते हैं। अत Pacitane १ मिलि० २-३ वार दैनिक भी दे दे।

(७) Thioridazine Hcl (Melleril)

आवेश प्रधान तथा वश मे न आने वाले रोगी के लिये उत्तम है।

यह भी Phenothiazine का ही एक योग है जिसे १०० मिलि० मात्रा मे ६-६ घटे पर मुख से देने से भ्रम-युक्त (Paranoid) तथा मन्दचेष्टा (Catatonia) चित्तविक्षेप मे लाभ होता है। इसे ३-४ मास तक जारी रखना चाहिये। यह औषधि भी इस योग के लिये विशेष सहायक सावित हुई है। इसमे Extra pyramidal सवन्धी उपद्रव नही होते। इसमे कामला का भय भी नही।

(८) Thiopropazate Dihydrochloride (Dartalan Searle)

यह भी Phenothiazine का एक प्रवल योग है। इसे ५—१० मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन वार देने मे भ्रमपूर्ण चेष्टायुक्त, आक्रमणकारी विपरीतकारी (Negativism) या Lethargic या सुस्त रोगी मे लाभ हो जाता है।

(९) Perphenazine (Fentazin-Trilafon)

यह Chlorphenothiazine का Aminoderivative है। Chlorpromazine से प्रवल पर उससे कम विषैला हो जाता है अर्थात् कम Hepatotoxic है। ८ मिलि० मात्रा मे दिन मे तीन वार देने से चित्तविक्षेप रोग के उपर्युक्त लक्षणो को शान्त करता है। प्रभाव हो जाने पर फिर इसे २ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार दिया जाता है। साधारण मानस रोगो मे भी यह चित्त की शान्ति के लिये दी जा सकती है। स्थायी मात्रा २-४ मिलि० दिन मे ३ वार है।

(१०) Fluphenazine (Prolixin, Anatensol, Permitil)

इसको १ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३-४ वार आरम्भ करना चाहिये। अधिकतम मात्रा इसकी १० मिलि० दैनिक है। Tension के लिये उत्तम है।

(११) Azacyclonol Hydrochloride (Frenquel Riker)

Benzhydrol से वने इस योग के १० मिलि० से २० मिलि० तक दिन मे तीन वार रोग की तीव्रता के अनुसार देने मे १५ दिन के अन्दर-अन्दर चित्तविक्षेप रोगी के चेष्टाशीलता, मनोविभ्रम, उदासीनता, मलिनता, आदि लक्षण कम हो जाते है और वह दूसरो से मेल-मिलाप करने लगता है। यह निद्राजनक नही है। वृद्धो के मानसिक विभ्रम (Senile Confusion) के लिये भी उपयोगी है।

इन औषधियो का प्रयोग चिरकाल और सम्भवत आयु भर करना पडता है। एक वार जव रोगी वहुत कुछ ठीक हो जाय तव धीरे-धीरे औषधि की मात्रा कम करके उसकी चालू (Maintenance) मात्रा जारी रखनी चाहिए। औषधि को सर्वथा वन्द न करना चाहिये। Stereotoxic surgery के द्वारा भी अव Schyzophrenia, Obsession, Compulsive Neurosis आदि की चिकित्सा की जा रही है।

आयुर्वेद मे उन्माद या चित्तविक्षेप रोग

आयुर्वेद मे तीव्र चेष्टा प्रधान मानस रोग (Manic Psychosis) तथा इस चित्तविक्षेप रोग दोनो को उन्माद रोग कहा प्रतीत होता है। चरक (नि०।७) तथा सुश्रुत (उ०।६२) ने कहा है कि जव वायु, पित्त कफ दोष मस्तिष्क मे मन के स्थान को व्याप्त करके मनुष्य को मनन या चिन्तन के अयोग्य वना देते है तो इस अवस्था को उन्माद कहते है। (उत्-ऊपर, मदयन्ति इति उन्माद) तथा उन्होने इसके कारण के विषय मे कहा है कि जो मनुष्य जन्म से ही निर्वल, क्षीण देह का होता तथा जिसके मन मे जन्म से ही सत्त्व गुण की मन्दता, रजोगुण या तमोगुण की विशेषता होती है, जिसका आहार मलिन एव अनुचित होता है और फिर किसी रोग वश

या किसी भारी चोट के लगने से जिसका मन पहले ही पीडित हो, अब यदि उस पर कोई काम, शोक, भय, चिन्ता आदि का मानसिक आवेश भी आ पड़े और उसकी बुद्धि को विचलित कर दे अर्थात् उसकी समझ-बूझ को नष्ट कर दे तो शरीर में बढे हुए वायु, पित्त कफ दोष पृथक्-पृथक् या मिलकर उसके मन के स्थान को दूषित कर देते हैं और इस उन्माद रोग को उत्पन्न कर देते हैं।

(१) इस रोग मे मनो विभ्रम हो जाता है। मनुष्य को नाना प्रकार की भ्रान्तिया (Delusion) रहने लगती है। उसे नाना प्रकार के कष्टो के दिये जाने की भ्रान्ति विशेष रहती है (जैसे चरक ने तिल पीडन चक्राधिरोहण, जलनिमज्जन, वायु के आवर्त्त मे घिर जाने आदि का उल्लेख किया है)।

(२) बुद्धि विभ्रम हो जाता है जिससे वह ठीक-ठीक विचार करने के अयोग्य हो जाता है। चरक के अनुसार वह अवद्ध वाक् हो जाता है अर्थात् उसका भाषण सम्बद्ध नहीं रहता। रोग के कुछ बढने पर तो उसका मस्तिष्क शून्य या विचारहीन हो जाता है। चरक ने इसे "शून्य" कहा है।

(३) उसके सज्ञा व ज्ञान की शक्तियाँ विपरीत हो जाती हैं। अर्थात् उसकी प्रतीति विकृत हो जाती है जो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द नही है उसकी उसे प्रतीति होने लगती है (Illusion)।

(४) स्मृति विभ्रम, दूसरे शब्दो मे नवीन अनुभवो को मन मे अकित कर लेने, पूर्वकृत अनुभवो को फिर उद्धृत (Recall) करने की शक्ति भी उसकी विकृत हो जाती है।

(५) शील-विभ्रम अर्थात् स्वभाव मे भी परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणत सुशील-दुःशील हो जाता, सयमी असयमी हो जाता है।

(६) उसमे चेष्टा विभ्रम के लक्षण भी पाये जाते हैं अर्थात् उसमे ओष्ठ, कन्धे, हनु, हाथ, पांव आदि मे विक्षेप (Grimacing) असयत भाषण, अति परिसरण, अस्थान—हास्य गीत नृत्य आदि विकृत चेष्टायें पाई जाती है। वह एक ही चेष्टा या वाक्य को वार-वार दुहराता है (Echopraxia तथा Echolalia)।

(७) उसमे आचार विभ्रम के लक्षण अर्थात् उसके व्यवहार मे भी परिवर्तन हो जाता है, अपना दैनिक कार्य छोड़कर उदासीन हो जाता है, मेहनत छोड़कर साधु हो जाता या आवारा हो जाता है।

भेदः इस प्रकार मन के स्थान मे वायु की वृद्धि हो तो रोगी का शरीर अधिक कृश होता, त्वचा रुक्ष होती है, उसके शरीर और मन मे चेष्टा वृद्धि (Hyperkinesia) के सूचक लक्षण पाये जाते है। मन के स्थान मे कफ दोष की वृद्धि हो तो रोगी के शरीर, मन, वाणी आदि मे मन्दता (Akinesia Lethargy) के सूचक लक्षण पाये जाते हैं। मस्तिष्क मे पित्त दोष की वृद्धि हो तो रोगी मे असहनशीलता, क्रोध, व्यग्रता, तीव्रता और शरीर मे ताप की अधिकता के सूचक लक्षण पाये जाते हैं।

चिकित्सा

आयुर्वेदानुसार इस तीव्र मानस रोगी का अन्दर वाहर स्नेहन करके पहले उसे विरेचन औषधि दी जाती है और फिर समय-समय पर निरुहवस्तियो, स्निग्ध वस्तियो, विरेचन नस्यो तथा स्नेहन नस्यो के द्वारा उसका मृदु शोधन जारी रखा जाता है। जब तक उसे प्रवल वेग होता है तीक्ष्ण नस्य तथा तीक्ष्ण अजन का प्रयोग किया जाता है। दोष शोधन के साथ-साथ तेलो से मालिश कराई जाती है और घृत दिन मे २-३ बार पिलाया जाता है। कोई लोग पुराने घी को इस रोग के लिये विशेष हितकर बताते है। चरक ने भी पुराने घी को मेध्य और उन्माद रोग के लिये अति हितकर कहा है।

सर्पगन्धा

सर्पगन्धा का प्रयोग इस रोग मे बहुत प्राचीन काल से होता आ रहा है। इस चूर्ण को ४०० मिलि० मात्रा दिन मे तीन बार प्रतिदिन या १५०० मिलि० सर्पगन्धा को काली मिर्च के साथ पीसकर, छानकर दिन मे एक बार प्रतिदिन पिला दिया जाता है। इस तरह रोगी के अन्दर ३ मिलिग्राम के लगभग Reserpine प्रतिदिन पहुँच जाता है जिससे उसका चित्त शान्त होने लगता है। कुछ दिन इसकी दैनिक मात्रा ४००-५०० मिलि० तक कर दें, अधिक मात्रा विषाद रोगजनक हो जाती है।

वचा चूर्ण का प्रयोग भी इस रोग मे चिरकाल से होता आ रहा है। उसके ५०० मिली० चूर्ण को कुछ घृत युक्त दूध के २-४ घूंट के साथ प्रतिदिन १-२ बार दिया जाता है जिससे रोगी का चित्त शान्त होने लगता है।

चित्तविक्षेप या उन्माद रोग के लिए उपयोगी प्रयोग :—

(१) उन्मादगजकेसरी (र रा सु) पारद, गधक, मनसिल, धत्तूर बीज समभाग मिलाकर वचा तथा ब्राह्मी स्वरस या इनके फाण्ट की ७-७ बार भावना देवें। १ माशा मात्रा घृत से।

(२) ब्राह्मीघृत (भा प्र) ब्राह्मी स्वरस ४ सेर। घृत १ सेर। वचा, कुष्ठ, शखपुष्पी समभाग मिलित १ छटाक। जल ४ सेर घृत साधन करें। १ तोला २ वार।

(३) उन्मादहरघृत (च स चि.) हींग सौवर्चल लवण त्रिकटु १०-१० तो० घृत ४ सेर। गोमूत्र १६ सेर। घृत साधन करें। १ तो० २ वार।

(४) ब्राह्मी आदि स्वरस योग (शा.ध) ब्राह्मीस्वरस, कूष्माण्डरस, वचास्वरस, शखपुष्पीस्वरस किसी के २½ तोला मे कुष्ठ चूर्ण १ माशा मधु २ तोला मिलाकर दें दिन मे २ वार।

(५) चिन्तामणिचतुर्मुख (भै र) पारा, गधक, लोह, अभ्रक प्रत्येक ४, स्वर्ण भस्म १ भाग मिलाकर घृत कुमारी रस, त्रिफला क्वाथ, तुलसी स्वरस, ब्राह्मी स्वरस से मर्दन करके गोले को सुखाकर फिर एरण्ड पत्रो मे लपेटकर अनाज के ढेर मे ३ दिन रखें। फिर उसे पीसकर २ रत्ती मात्रा मे मधु तथा त्रिफला से चाटें।

(६) ब्राह्मी आदि कल्क (यो र) ब्राह्मी स्वरस मे वचा, कुष्ठ, शखपुष्पी समभाग के वने चूर्ण को १ माशा मात्रा मे दिन मे २ वार दें।

(७) सारस्वत चूर्ण (भै र) कुष्ठ, अश्वगधा, सैधव, अजवायन, दो जीरे, त्रिकटु, शखपुष्पी, पाठा प्रत्येक एक भाग वचा सर्वतुल्य। ब्राह्मी स्वरस से इसको ३ दिन भावना दें। इस चूर्ण को ३ माशा की मात्रा मे दें।

(८) चतुर्भुज रस (रसा स) कप रोग मे देखें, २-२ रत्ती दें।

(९) पुराण घृत प्रयोग (ग नि) वहुत पुराना घी नस्य द्वारा तथा थोडी सी मात्रा मे खाने के लिए भी दें।

(१०) कृष्णाञ्जन (भा प्र) पिप्पली, मरिच, गोरोचना समभाग मिलाकर उसका शहद द्वारा अजन भी करें।

पथ्य—दूध-घी नया पुराना दोनो, पेठा, ब्राह्मी, मुनक्का।

अपथ्य -मद्य, तीक्ष्णद्रव्य, तिक्तद्रव्य, अतिजागरण।

उन्निद्रता Insomnia—

नीद क्यो आती है और कुछ घण्टो के वाद वह स्वय क्यो टूट जाती हे, इसकी व्याख्या विज्ञान ने अभी तक नही की है। क्या मस्तिष्क मे कोई Hypnogenic centre हे जिसके Cortex पर प्रभाव से या Brain stem मे विद्यमान Ascending reticular formation के Thalamus के Nuclei पर जागरूकता या Wakefulness का जो प्रभाव रहता है उसके मन्द हो जाने से निद्रा आती है इस विषय मे निश्चय से अभी कुछ नही कहा जा सकता। अभी तक इस Reticular formation को ही नीद का कारण कहा जाता है।

यह देखने मे आता है कि जवान आदमी २४ घण्टो मे से एक-तिहाई समय नींद मे रहता है। छोटा बच्चा २४ घण्टो मे से तोड-तोडकर दो-तिहाई समय नींद मे रहता है। १३ वर्ष तक का वालक युवको की अपेक्षा अधिक देर तक नीद मे रहता है। वृद्ध व्यक्ति की नीद घट जाती हे और प्रात तीन वजे के लगभग टूटकर फिर नही आती। सभवत मस्तिष्क के पोषण मे कमी आ जाने से ऐसा होता हे। प्रारम्भ मे अर्थात् मध्य रात्रि से पहले नीद गहरी होती है। मध्य रात्रि के वाद क्रमश नीद उथली होती जाती हे।

मनुष्य आख वन्द करके, निश्चेष्ट होकर चुपचाप लेट जाय तो उसके मस्तिष्क सेलो मे होने वाली Alpha-rhythm of Electroencephalogram लगभग १०-१२ गति प्रति सेकण्ड होती है तथा उसकी प्रत्येक Wave लगभग ५० माइक्रोवोल्ट ताकत की होती हे। परन्तु जव मनुष्य आख खोल लेता है, किसी कार्य मे लग जाता है तो E E G की Waves छोटी-छोटी तीव्र Oscillations की सी हो जाती ह तथा परस्पर विसदृश और कम Voltage की हो जाती हे। इसीलिए निद्रा मे प्रवेश करने की प्रथम अवस्था मे Alpharhythm की गति जागृत अवस्था की अपेक्षा मन्द हो जाती है। निद्रा के कुछ गहरा हो जाने पर अर्थात् उसकी द्वितीय अवस्था मे Waves की गति और भी ज्यादा मन्द हो जाती है और प्रत्येक Wave की voltage ५० माइक्रोवोल्ट से वढ जाती है। निद्रा के और गहरा हो जाने पर अर्थात् उसकी तृतीय अवस्था मे E E G की प्रति सेकण्ड एक ही Wave रह जाती है जो वडी होती और अधिक Voltage की होती है। इस तृतीय अवस्था मे Parasympathetic नाडी मण्डल प्रवल हो जाता है जिससे हृदयगति तथा श्वासगति मन्द हो जाती है। पुतली सकुचित हो जाती है। रक्तवाहिनिया फैल जाती हे। रक्तभार तथा तापमान गिर जाते ह। मासपेशिया शिथिल हो जाती है। मस्तिष्क को रक्त तथा आक्सिजन कम मिलते ह। इस अवस्था मे व्यक्ति हलकी उत्तेजना से नही जगता। इसके वाद चतुर्थ अवस्था मे निद्रा और गहरी हो जाती हे जब वह किसी वड़ी उत्तेजना से भी

नही जगता। E E G की गति उत्तरोत्तर क्रमश मन्द और अधिक Microvolt की होती जाती है। उपर्युक्त निद्रावस्था के बीच-बीच मे ६०-७० मिनटो के अन्तर से सोया हुआ व्यक्ति कभी-कभी निद्रा की प्रथम अवस्था मे प्रवेश कर जाता है तब उसकी E E G की Waves की गति तीव्र हो जाती है, वे परस्पर सदृश न रहकर विसदृश (Desynchronized) हो जाती और कम Voltage की हो जाती हैं। इस अवस्था मे श्वास गति और नाडी गति कुछ तीव्र हो जाती हैं। इस अवस्था को स्वप्नावस्था कहते है। इसी अवस्था मे स्वप्न होते है। इसे उत्तेजित निद्रा या Activated sleep की अवस्था कह सकते है। इस प्रकार निद्रावस्था की दो अवस्थाये है— एक को Rapid eye movement की अवस्था, दूसरी को Non-rapid eye movement की अवस्था कहते है। उत्तेजित निद्रावस्था को जो सारी नीद का चौथा भाग होती है Rapid eye movement की अवस्था कहते है। इस अवस्था मे यद्यपि शरीर पूर्णतया शिथिल होता है पर मस्तिष्क पूर्णतया जागृत रहता है। उन्निद्र रोग या उन्निद्रता उसे कहते है जब लेट जाने पर भी नीद बहुत देर मे आए, या नीद के दौरान मे नीद बार-बार टूटे, या प्रात तीन बजे के लगभग टूट कर फिर सर्वथा न आए तथा रात को उन्निद्र रहने के कारण व्यक्ति बेचैन रहे और अति दुःख को अनुभव करे। उन्निद्रता का कारण प्राय चिन्ता, विषाद, प्रियजन वियोग या किसी प्रकार की हानि का हो जाना होता है। बडी आयु के लोगो को Cerebral Arteriosclerosis के कारण मस्तिष्क को रक्त के कम मिलने से नीद कम आती है तथा नीद आ भी जाय तो वह स्वल्प विक्षोभक कारण से टूट जाती है। चिन्ता प्रबल हो तो नीद देर से आती है। विषाद या दुःख बढा हुआ हो तो सुबह नीद जल्दी टूट जाती है और फिर नही आती। नीद न आने से शरीर और मन थके हुए से रहते है, कार्य-शक्ति घट जाती है।

उन्निद्र रोग की चिकित्सा :

यदि आसपास शोरगुल न हो, स्थान अंधेरा हो, सर्दी या गर्मी विशेष न हो, चित्त मे किसी प्रकार की अशान्ति न हो, मस्तिष्क की संज्ञाशीलता घटी हुई हो, रात का खाना हलका खाया हो, दोपहर बाद चाय, काफी आदि उत्तेजक पेय का प्रयोग न किया हो, सायकाल कोई शारीरिक श्रम किया हो, पैरो को गर्म जल से धोया हो तो नीद अच्छी आती है। शारीरिक श्रम सर्वोत्तम निद्राजनक है।

अच्छी निद्रा लाने के लिए किसी Barbiturate औषधि का प्रयोग किया जाता है। रात के भोजन के २-३ घ० बाद जब पेट खाली हो जाए तब सोने से पहले इनका प्रयोग करना चाहिए, ये औषधिया Cortex तथा Thalamus के लिए शामक है। आध घटे मे इनका प्रभाव आरभ होकर ६ घटे तक रहता है। ये केवल निद्राजनक या मस्तिष्क शामक (Sedative) है, वेदना नाशक नही है। वेदना की उपस्थिति मे इनसे लाभ नही होता। इनका Metabolism या Detoxication विश्लेषण-यकृत् मे होता है, अत यदि यकृत् रुग्ण हो तो इनका प्रयोग नही करना चाहिए। इनकी शरीर से निकासी मूत्र द्वारा होती है। किसी-किसी मे इनके लिए Allergy भी रहती है। उचित मात्रा से १० गुणा मात्रा मे ये घातक हो जाते है। वृद्धो मे इनका प्रयोग अधिक मात्रा मे नही करना चाहिए।

Phenobarbitone (Gardenal, Luminal) का प्रयोग बहुधा होता है। इसे ३० से १२० मिलि० मात्रा मे सोने से पहले दिया जाता है। साधारण मात्रा १०० मिलि० है। Butobarbitone (Soneryl) को १०० मिलि० मात्रा मे दिया जाता है। Amylobarbitone (Amylal) को १०० मिलि० मात्रा मे दे सकते है। इसी प्रकार Cyclobarbitone (Phenodorm) को २०० मिलि० मात्रा मे Secobarbitone (Seconal) को १०० मिलि० मात्रा मे या Pentobarbitone (Nembutal) को १०० मिलि० मात्रा मे दे सकते है।

Nonbarbiturate औषधियो मे से एक तो Glutethimide (Doriden) ५०० मिलि० मात्रा मे दी जा सकती है। इसकी निद्रा भी ६ घ० तक रहती है। दूसरी Methylpentinol (Oblivon) २५० मिलि० मात्रा मे दी जा सकती है। Nitrozepam (Magodon) ५-१० मिलि० मात्रा मे दी जा सकती है। वृद्ध मे इसे २ ५ मिलि० मात्रा मे दे। Calmpose, Vesparax तथा Siquil भी निद्रा जनक है। ये सब चिन्ता रोग के लिए भी उपयोगी है। Sonergan (Phenergan १५, Butobarbitone ७५ मिलि०) १ गोली तथा Calcibronat (Sandoz) ३ ग्राम मात्रा मे भी हलकी निद्राजनक है। एक कप गर्म दूध रात को लिया भी निद्राजनक होता है। रात को नीद न आये तो पडे न रह कर किसी अच्छे ग्रन्थ का अध्ययन आरभ कर देना चाहिए।

वार्धक्यसुलभ मानस रोग—वार्धक्यसुलभ बुद्धिभ्रंशः—Senile Psychosis, Senile Dementia, Presenile Dementia

मस्तिष्क को किसी कारण से भी क्षति पहुच जाए बुद्धि

की मन्दता का लक्षण हो जाता है। क्षति पहुचती है आघात से, Subdural Haematoma मे, मस्तिष्कगत ट्यूमर मे, T B Meningitis से, Atherosclerosis से तथा विटामिन्स और प्रोटीन्स के अभाव से, परन्तु यहा तो Primary Dementia का ही वर्णन किया जाता है, Secondary का नही।

कारण

७०-७५ वर्ष की आयु मे पहले से ही जो व्यक्ति वायु प्रकृति (Psychopathic Temperament) के होते है उनमे किसी मानसिक आघात जैसे, स्त्री, पुत्र, धन आदि के वियोग से उत्पन्न होने वाला यह मानस रोग है। जिसमे बुद्धि तथा स्मृति की मन्दता हो जाती है, साथ ही शील और स्वभाव के बदल जाने के लक्षण हो जाते हैं। ६० वर्ष की आयु से पहले ही यह रोग हो तो इसे Presenile Dementia कहते है।

विकृति

इस रोग मे ऊर्ध्व मस्तिष्क के अन्दर विशेषत Frontal और Parietal Lobes मे लघुता (Atrophy) की विकृति विशेष होती है अर्थात् उसमे नाडियो के सेलो तथा सूत्रो की सख्या कम हो जाती हैं। नाडियो पर चढे आवरण (Neuroglial Tissue) की मात्रा बढ जाती है। मस्तिष्क धमनियो मे कुछ-कुछ काठिन्य (Sclerosis) की विकृति भी होती है। यह विकृति धीरे-धीरे होती है, लक्षण भी धीरे-धीरे आरम्भ होते है।

लक्षण

मस्तिष्क के Nerve cells तथा Nerve fibres के सख्या मे कम हो जाने तथा Convolutions आदि मे लघुता Atrophy के आ जाने से मनुष्य का स्वभाव तथा शील बदल जाता है अर्थात् बालको के समान स्वार्थ, क्रोध, हठ आदि दुर्गुण उसमे आने लग जाते हे। स्वल्प कारण से क्रोध हो जाता है। बुद्धि के न्यून हो जाने के कारण उसकी ग्रहण करने की, किसी बात का निर्णय करने, तर्क-वितर्क करने तथा किसी बात पर देर तक एकाग्र रहने की शक्ति नही रहती। स्वभाव मे भी वह कुछ विषाद प्रधान हो जाता है। उसके चित्त का क्षेत्र सकुचित हो जाता है जिससे वह दूसरो की नही सोचता, केवल अपने स्वास्थ्य, खाने-पीने, आराम और धन के विषय मे ही सोचता है, वह आसपास के लोगो मे, आसपास हुई घटनाओ मे कोई दिलचस्पी नहीं लेता। युवावस्था मे विकसित हुए अन्यान्य गुणो के नष्ट होते जाने से वह क्रमश नकवत व्यवहार करने लगता है। उसका मिजाज भी खराब हो जाता है, थोडे अपमान मे ही क्रुद्ध हो उठता है, यद्यपि उसमे साधारणत भावहीनता अर्थात् हर्ष, शोक आदि के भाव की मन्दता का लक्षण होता है। वह परिवर्तन को पसन्द नही करता, क्योकि नई अवस्थाओ के अनुसार जैसे युवक अपने को ढाल लेता है वह ऐसा कर नही सकता, प्रत्युत नई अवस्थाओं मे उसे रख देने पर वह व्याकुल-सा हो जाता है। उसकी स्मृति-शक्ति भी बहुत कम हो जाती है, कल की बाते भूल जाती हैं, सम्बन्धियो और परिचित व्यक्तियो के नाम तक भूल जाते है, कुछ एक बहुत पुरानी बातो को वह याद करके उन्ही को दुहराते ह, सुनने वाले उन्हे सुनते-सुनते तग हो जाते है। नवीन घटनाओ या बातो को भूल जाना इसका प्रधान लक्षण है। जो काम करने वह चलता है उसे भूल जाता है कि वह क्या काम करने चला था। बाद मे तो उसे ठीक-ठीक प्रतीति (Perception) भी नही होती, काल तथा दिशा तक का भी ज्ञान उसे नही रहता (Disorientation of time and place)। उसमे अपने शरीर तथा वस्त्र आदि को स्वच्छ एव ठीक रखने की तमीज भी नही रहती जिससे उसके कपडे-लत्ते मैले-कुचैले, बेढगे हो जाते है। इसका कारण उसे अपने शरीर के ज्ञान का न रहना है, जिस कारण उसका शरीर तथा स्थान गदे रहने लगते हे। यदि वह पहले से ही शकाशील प्रकृति का हो तो अब बुद्धि या विवेक के न रहने से उसमे सन्देहशीलता का दोष उत्पन्न हो जाता है जिससे उसे दूसरो के विषय मे नाना प्रकार के भ्रम होने लगते हैं। दूसरे उसे विष देने या कष्ट देने या उसकी सपत्ति को छीन लेने की सोच रहे हे, यह भ्रम उसे बहुधा होता है। इस रोगी की निद्रा भी बहुत घट जाती हे जिससे रात को बेचैन रहता है। इस प्रकार वृद्धावस्था मे पाये जाने वाला यह मानस रोग या तो विषाद प्रधान (Depressive किस्म का) होता है, इसे Involutional Psychotic Reaction या Melancholia कहते हैं या Depressed Agitated किस्म का होता हे जिसमे विषाद के साथ चिडचिडेपन या क्रुद्ध हो जाने का लक्षण भी मिला रहता हे या उसका मानस रोग 'भ्रम-प्रधान' (Paranoid किस्म का) होता हे अर्थात् उसे सुनाई कम पडता हो या नजर कम आता हो तो उसे नाना प्रकार के सन्देह और भ्रम होने लगते हे। बुद्धि भी नष्ट हो रही हो तो बेहूदा तथा निराधार भ्रम होने लगते हैं। कभी-कभी चेष्टा प्रधान (Manic) मानस रोग भी उसे होता हे जो चेष्टा कभी-कभी रात को भी जारी रहती है। यदि यह रोग ४५-५० वर्ष की आयु मे हो तो इसे Presenile Psycho-

sis कहते हे। इस रोग मे कुछ शारीरिक लक्षण भी होते हे जैसे, चेष्टाएं मन्द, आवाज मन्द, चलने मे अस्थिरता, हाथो मे कप का लक्षण होता हे। शरीर तथा शाखाओ मे Flexion झुकाव तथा स्तब्धता अर्थात् Rigidity का लक्षण भी दीखता हे।

इस रोग की चिकित्सा—वृद्ध व्यक्ति को अपने स्थान पर ही रहकर किसी काम मे लगे रहना चाहिए। वेकार नही रहना चाहिए। विषाद Melancholia प्रधान लक्षण हो तो निद्राजनक Chloral-hydrate या Barbiturates आदि का या Tofranil का या Surmontil का प्रयोग करना चाहिए, वलप्रद औषधिया या विटामिन्स भी दिये जाते हैं पर वे निरर्थक ही होते है। चेष्टा प्रधान या भ्रम प्रधान रोगी हो तो Siquil 10 मिलि० २-३ वार दें। विद्युच्चिकित्सा से भी तुरन्त लाभ होने लगता है। भूख के वढाने के लिए Insulin का प्रयोग भी करना चाहिए।

मस्तिष्क धमनी रोग जनित मानस रोग, चि० मस्तिष्क रोग :—Arteriosclerotic Dementia या Chronic Brain Syndrome या Cerebral arterial disease

यह रोग ५५-६० वर्ष की आयु के पुरुषो मे होता है तथा उपर्युक्त रोग के समान ही है अर्थात् विशेषत Frontal Temporal तथा Parietal मस्तिष्क धमनियो मे ही धमनीकाठिन्य रोग (Sclerosis) के धीरे-धीरे आरम्भ हो जाने से मस्तिष्क मे Neuroglia के वढ जाने से उनमे क्रमश वुद्धि भ्र श का लक्षण दीखने लगता है। मस्तिष्क धमनियो मे काठिन्य होने की प्रवृत्ति कुछ एक परिवारो मे होती हे जो शारीरिक विषो (Infections), मद्यादि विषो, मधुमेह, रक्त मे Cholesterol की वृद्धि (Cholesterolaemia) और आवेशपूर्ण मानसिक श्रम से प्रकट हो जाती हे। मस्तिष्क मे कही-कही धमनियो मे Asthe-roma की प्रक्रिया के होने से वहा मृदुता (Softening) तथा लघुता (Atrophy) की विकृति भी हो जाती हे। सारे मस्तिष्क मे लघुता (Atrophy) की विकृति नही होती जिससे मनुष्य का व्यक्तित्व वैसे नही वदलता हे जैसे उपर्युक्त रोग Dementia मे। इस रोग मे स्थानिक विकृति के लक्षण पाये जाते हे। उपर्युक्त रोग मे व्यक्ति का व्यक्तित्व वदल जाता है इसमें वैसा नही होता। इस रोग मे सिर दर्द, मूर्छा के वेग हो जाने का लक्षण, हृदय सम्वन्धी लक्षण विशेष होते हैं। इसमें लक्षण हो जाते ह और शात भी हो जाते है। उपर्युक्त रोग के समान इसमे रोगी की अवस्था गिरती नही जाती। स्मृति नाश का लक्षण इसमे भी पावा जाता ह जिससे कल की वाते भूल जाती है। रोगी का स्वभाव वडा परिवर्तनशील हो जाता है अर्थात् क्षण मे ही रुष्ट, क्षण में तुष्ट होने वाला हो जाता है, असहनशीलता या विक्षोभशीलता वहुत वढ जाती है जिससे शीघ्र क्रोध का आवेश हो जाता है या शीघ्र आसू आ जाते है। शरीर की तरह उसके स्वभाव मे भी कठोरता अर्थात् हठ या आग्रह वढ जाता है। उसके मन का क्षेत्र सकुचित होकर अपने तक सीमित हो जाता है जिसमे उसे दूसरो के सुख-दुख का कोई ख्याल नही होता। उन्निद्रता का लक्षण विशेषत रात को रहता है। कई वार यही प्रारम्भिक लक्षण होता है। इसके विपरीत दिन के वहुत से भाग मे वह ऊघता रहता है। वह या तो सदा दुखी या विषण्ण वदन (Depressed) रहता है (Depressed type of Dementia) या विवेक की न्यूनता के कारण शकाशील हो जाता है। उसे दूसरो पर यह शंका वनी रहती है कि वे उसे हानि पहुचाना चाहते है। उसे कई प्रकार के Hallucinations और Delusions रहते हे। इसे Deluded या Paranoid type of Dementia कहते है। स्वभाव उसका वालको का-सा हो जाता है। मस्तिष्क मे रक्तभार वृद्धि के कारण सिर दर्द, शिरो भ्रम, कर्ण-घोष, उन्निद्रता आदि लक्षण भी होते हे।

ऊर्ध्व मस्तिष्क मे विकृति के कारण ऐसे शारीरिक लक्षण जैसे भाषण सवधी निर्वलता (Dysphasia) दोनो जाघो मे स्तब्धतायुक्त निर्वलता (Paraplegia), जिह्वा, गले, कण्ठ आदि पर विवशता के कारण वह जीभ को वाहर नही निकाल सकता, भाषण उसका अस्पष्ट हो जाता, चर्वण और निगरण मे उसे कुछ कठिनता (Dysphagia) होने लगती हे। यदि किसी को पहले Depression न हुआ हो ६० वर्ष की आयु के वाद हुआ हो तो इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिए।

धमनी रोग जनित मानस रोगी इसी अवस्था मे कई वर्षो तक जीवित रह सकता है यद्यपि देश व काल का ठीक-ठीक ज्ञान न रहने से वह किसी ओर चल सकता एव नीचे गिर सकता है। परन्तु अन्त मे मूर्च्छा तथा पक्षाघात (Cerebral Thrombosis) के उपद्रव होकर मृत्यु होने का भय रहता हे। यह रोग आरम्भ होकर वीच-वीच मे ठीक होकर भी वढता जाता है।

व्यापक Generalized Cerebral Atheroma का रोग हो जो ६०-७० वर्ष के पुरुषो मे विशेष होता हे तो वुद्धिमाद्य, स्मृतिमाद्य, परिवर्तन के लिए असहनशीलता, भाषण दोष Dysphasia—के अतिरिक्त मासपेशियो मे स्तब्धता का लक्षण विशेष होता हे। जाघो की स्तब्धता से कदम छोटे-छोटे हो जाते हैं। मुख, जिह्वा, तालु, कंठ

आदि मे स्तब्धता के होने से Dysarthria, चबाने निगलने मे कठिनता के लक्षण होते है।

चिकित्सा

धमनी रोग जनित मानस रोग मे आहार की विशेषत स्निग्ध आहार की मात्रा कम कर देनी चाहिए तथा रोगी को सर्व प्रकार के मानसिक आवेशो से बचाना चाहिए। उसका B P बढा हुआ है या उसे धमनी रोग है ऐसा उसे नही बताना चाहिए, उन्हे किसी न किसी काम मे लगाये रखना चाहिए। इस प्रयोजन मे मन शामक औषधियो जैसे, Hydroxyzine Hydrochloride (Atarax) १०-२५ मिग्रा० दिन मे तीन बार या Chlorpromazine (Largactil) २५-५० मिग्रा० दिन मे तीन बार या Promazine ५०-१०० मिलि० या Sparine २५ मिलि० ३ बार या Reserpine २५ मिलि० दिन मे २-३ बार या Meprobamate (Equanil) ४०० मिलि० दिन मे तीन बार या Amytal स्वल्प मात्रा मे या Nembutal ५० मिलि० देने से लाभदायक हो सकती है। यह स्मरणीय है कि Barbiturates वृद्ध के लिए निद्राजनक नही होते। Largactil भी वृद्ध को थोडी मात्रा मे दे। विषाद मे इनसे लाभ नही होता विक्षुब्ध रोगो मे ये उपयोगी है। रोगी अति विक्षुब्ध हो तो इन औषधियो को बडी मात्रा मे दे। सिरा प्रसारक (Vasodilator) औषधिया जैसे Priscoline २५ मिलिग्राम मात्रा मे अथवा Nicotinamide ५० मिलि० मात्रा मे दिन मे २-३ बार दी जा सकती है। चेष्टा (Agitation) बढी हुई हो तो Sparine देवे। विषाद का लक्षण विशेष हो तो Tofranil को स्वल्प मात्रा मे देने से लाभ हो जाता है। उन्निद्रता के लिए Barbiturates की अपेक्षा Doriden या Chloral का प्रयोग अधिक लाभदायक रहता है। Cerebral atheroma व्यापक हो तो रक्तभार को कम करने के उपाय करे।

तीव्र मस्तिष्क रोग (Acute Brain Syndrome)—तीव्र बुद्धि विभ्रम का रोग किसी विष के सेवन से जैसे मद्य, Belladonna, Barbitones आदि के अति मात्रा मे सेवन मे या Uraemia, Diabetic Acidosis अर्थात् किसी आभ्यन्तर विष के दुष्प्रभाव से होता है या किसी तीव्र ज्वर से होता है। रोगी मे बुद्धिविभ्रम, प्रलाप, उन्माद, चिन्ता, भय आदि के लक्षण होते है। इस अवस्था मे रोगी को Promazine (Sparine) ५०-२०० मिलि० मात्रा मास द्वारा दिन मे ४ बार देना चाहिए या Prochlorperazine (Stemetil) ५-१० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा दिन मे ३ बार दें। Chloral Hydrate ३० ग्रे० मात्रा मे दे। वृद्ध को मतिविभ्रम (Confusion) का रोग हो तो Siquil, Nicotinamide को तथा विटामिन बी$_1$ बी$_{12}$ बी$_6$ को बडी मात्रा मे दें।

स्मृतिभ्रंश या स्मृतिनाश — Amnesia

स्मृति-शक्ति मस्तिष्क की एक बडी शक्ति है। दृष्टि द्वारा, श्रुति द्वारा जो ज्ञान हो, उसे अपना बना लेना तथा फिर उसे दुहरा देना इसे स्मृति शक्ति कहते है। पढे या सुने वाक्य को मन से या जोर से कई बार दुहरा लिया जाये तो उसकी स्मृति दृढ हो जाती है। जिस वाक्य को समझ लिया जाए तथा उसमे दिलचस्पी ली जाए उसकी स्मृति दृढ होती है। पढ लेने के १५ मिनट बाद उसे फिर बिना देखे दुहराना चाहिए। तीन मिनट तक कोशिश करनी चाहिए। स्मरण न हो तभी उसे फिर देखना चाहिए। आठ घटे बाद फिर उसे दुहराना चाहिए या प्रात काल उठने पर फिर उसे दुहराना चाहिए। तथा जिसे याद करना है उसे अच्छी तरह पढने के बाद फिर दूसरा कुछ न पढा जाय और आराम कर लिया जाय तो आराम के बाद वह पढा हुआ अधिक स्मरण रहता है।

स्मृति शक्ति मस्तिष्क की शक्ति है। जब तक शरीर स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट रहता है यह शक्ति भी ठीक रहती है। अत स्मृति शक्ति की वृद्धि के लिए शरीर को मृदु व्यायाम, उचित भोजन आदि से स्वस्थ रखने का यत्न करना चाहिए। मस्तिष्क शरीर का २ ५ प्रतिशत भाग है पर किए हुए आहार का २०% भाग मस्तिष्क मे खर्च होता है। मस्तिष्क के पोषण के लिए एक तो ग्लूकोज आवश्यक है, दूसरे बढिया किस्म के Aminoacids जैसे Methionene, Glutamic acid आदि आवश्यक है। इसीलिए दूध, बादाम आदि स्मृति के लिए उपयोगी है। विटामिन बी$_1$ बी$_2$ बी$_6$ भी आवश्यक है।

मस्तिष्क का स्मरण करने का बल सुबह १२ बजे तक अच्छा रहता है। फिर २ से ५-६ बजे तक भी अच्छा रहता है। मस्तिष्क की यह शक्ति २५ वर्ष की आयु तक बढती जाती है। फिर ४०-४५ की आयु तक कायम रहती है, इसके बाद उत्तरोत्तर घटती जाती है। श्लोको, पोयम आदि को याद करते रहने से स्मृति-शक्ति बढती है।

मस्तिष्क की स्मृति-शक्ति तथा बुद्धि-शक्ति मस्तिष्क मे किसी विकृति के हो जाने अर्थात् क्षीणता Degeneration की प्रक्रिया के आरम्भ होने पर या मस्तिष्क के अन्दर Intracranial pressure के बढ जाने से मन्द पडने

लगती है। अत बडी आयु मे रक्तभार वृद्धि तथा धमनी स्रोतो रोध (Atherosclerosis) को रोकने के उपाय से स्मृति ठीक रहती है। वल्य तथा रसायन गुण ओषधियो से भी स्मृति वनी रहती है।

स्मृति या पढे और सुने को ग्रहण करने की शक्ति जिसे मेधा भी कहते हैं, स्वभावत चालीस वर्ष तक अपनी पराकाष्ठा पर हो जाती है। उसके वाद क्रमश उसमे ह्रास होने लगता है। जैसे एक पुरानी लोकोक्ति मे कहा है "बाल्य, वृद्धि र्वपु र्मेधा, त्वक् दृष्टि शुक्रविक्रमौ, बुद्धि कर्मेन्द्रियम् चेतो, जीवितम्, दशतो ह्रसेत्" अर्थात् मनुष्य मे वाल्यावस्था दसवे वर्ष मे अपनी पराकाष्ठा पर होती है। शरीर की वृद्धि बीसवे वर्ष तक अपनी पराकाष्ठा पर होती है। वपु अर्थात् शरीर का डील-डोल तीसवे वर्ष तक अपनी पराकाष्ठा पर पहुच लेता है। मेधा अर्थात् पढे, सुने, देखे विषयो को ग्रहण करने की शक्ति चालीसवे वर्ष तक अपनी पराकाष्ठा पर पहुच लेती है। त्वचा की आभा या प्रभा ५० वर्ष तक ठीक रहती है। दृष्टि शक्ति साठ वर्ष तक ठीक रहती है। शुक्र की पुस्त्व शक्ति सत्तरवर्ष तक ठीक रहती है। विक्रम अर्थात् शारीरिक श्रम या पराक्रम की शक्ति अस्सी वर्ष तक' ठीक रहती है। बुद्धि या विचार शक्ति नव्बे वर्ष की आयु तक वनी रहती है। कर्मेन्द्रियो की शक्ति सौ वर्ष तक वनी रहती है। चेतना शक्ति एक सौ दस वर्ष तक वनी रहती हैं, और जीवन एक सौ वीस वर्ष तक वना रहता है। इस-इस मर्यादा के वाद उपर्युक्त उस-उस शक्ति का क्रमश ह्रास होने लगता है। इस प्रकार स्मृति या ग्रहण करने की शक्ति चालीस वर्ष तक ठीक रहती है। इसके बाद क्रमश उसमे ह्रास होने लगता है। हा बुद्धि या विचारशक्ति नव्बे वर्ष तक भी रहती है।

बुद्धिमान्द्य तथा स्मृतिमान्द्य के लिए उपयोगी प्रयोग —

(१) ब्राह्मी घृत (च द.) ब्राह्मी पत्र रस ४, घृत १ सेर, हल्दी, कुष्ठ, हरड, त्रिवृत, चमेली के फूल १-१ छटॉक, वचा सैन्धव खाड १।-१। तोला। घृत साधन करें।

(२) सारस्वतारिष्ट (भै र) ब्राह्मी पत्र १।। सेर, शतावरी विदारी, हरड, उशीर, सौंफ, अदरक २५-२५ तोला, जल ३२ सेर मे पकायें। ८ सेर शेष रख कर खाड १।। सेर, शहद १। सेर, धातकी २५ तोला, रेणुका, लौंग, त्रिवृत, वचा, कुष्ठ, असगध, पिप्पली, इलायची छोटी, विडग, दालचीनी, गिलोय, वहेडा १।-१। तोला मिलाकर आसव वनाएं।

(३) वचादिघृत (वाग्भट) वचा, गिलोय, कचूर, हरड, शखपुष्पी, विडग, शुण्ठी, अपामार्ग १-१ पाव सेर। जल १६ सेर मे पकाकर ४ सेर शेष रखें। उपर्युक्त द्रव्यो के १।-१। तोला का कल्क डालकर घृत १ सेर का पाक करें।

(४) वचारसायन (वृ मा) वचाचूर्ण २-३ रत्ती दूध के साथ १ मास तक १ बार रोज दें।

(५) वादामपाक (प्रसिद्ध) वादामगिरि आधा सेर, पीस कर घृत २ छटॉक मे भून लें। खाड १ सेर की चासनी मे मिलाए। छोटी इलायची, लौंग, जायफल, दालचीनी, केसर १।-१। तोला पिस्ता-चिरौंजी १-१ छटॉक पीसकर मिलाए। मात्रा २।। तोला।

(६) ज्योतिष्मतीरसायन (र र स) ज्योतिष्मती तैल, गोघृत, गधक समभाग मिलाकर रखें। १ रत्ती की मात्रा। मात्रा क्रमश बढाए। १ मास केवल सेवन करें।

(७) गुडूच्यादिरसायन (बं से) गिलोय, अपामार्ग, शखपुष्पी, विडग, वचा, शतावरी, हरड, सोठ, समभाग का चूर्ण। २-३ माशा की मात्रा १ तोला घृत के साथ लेकर दूध लें।

(८) वृद्धदारु रसायन (च द) विधारामूल चूर्ण को शतावरी स्वरस की सात भावना देवें। १ माशा मात्रा मधु से दें।

(९) सप्ताग घृत (ग नि) शखपुष्पी, ब्राह्मी, वचा, गिलोय, शतावरी, कठूमर की छाल, हुलहुल समान-समान मिलित आधा सेर का कल्क। घृत २ सेर। दूध ८ सेर। घृत साधन करें।

मानस रोग शामक औषध —सर्व मानस रोगो मे सारस्वतचूर्ण, सारस्वतारिष्ट, ब्राह्मीघृत, चिन्तामणि चतुर्मुख, योगेन्द्र रस, रसराज रस, वादामपाक, अश्वगधारिष्ट आदि उपयोगी है।

मन शामक औषधिया —(Ataraxic Drugs)

अनैच्छिक नाडी मण्डल की शामक अथवा मस्तिष्क के खोल (Cortex) के नीचे के Hypothalamus सवधी प्रदेश पर शामक प्रभाव करने वाली औषधिया — (Autonomic Suppressant) —

Phenothiazine के योग —

गुण —चेष्टा प्रधान मानस रोग, चित्तविक्षेप या उन्माद, मास स्तम्भ, वमन, हिक्का, श्वास, प्रलाप, शिरोभ्रम (Adrenolytic Parasympatholytic)।

दोष —मुख शोष, मलबन्ध, तन्द्रा, खडे होने पर रक्तभार का गिर जाना, हृत्कम्प, धमनी रोग (A Sclerosis) मे अपथ्य है। Parkinsonism, कामला विशेषत Largactil के दोष है।

(१) Chlorpromazine Hydrochloride (Largactil M & B Thorazine) — मात्रा २५-५० मिलि० दिन मे ३-४ वार। चेष्टाप्रधान मानस रोग मे विशेष हितकर।

(२) Prochlorperazine (Stemetil M & B Compazine Dimaleate) — मात्रा ५-१० मिलि० सुस्त उन्माद रोग शिरोभ्रम, वमन, अरुचि मे दिन मे ३-४ वार भोजन से पहले।

(३) Promazine Hydrochloride (Sparine Wyeth) (Promazine २५ मिलि० Meprobamate २०० मिलि० से बना Prozine Wyeth) — मात्रा २५-२०० मिलि० ३-४ वार।

(४) Trifluopromazine Fluopromazine (Siquil, Vesparin, Squibb) — मात्रा १०-२५ मिलि० ३-४ वार।

(५) Trifluoperazine (Stelazine, Smith Kline & French, Eskazine) — मात्रा २-१० मिलि० ३-४ वार।

(६) Perphenazine (Trilafon, Fentazin, Allen Hanbury) — मात्रा २-८ मिलि० ३ वार।

(७) Thiopropazate Dihydrochloride (Dartalan Searle) — मात्रा ५-१० मिलि० ३-४ वार।

(८) Acepromazine Maleate या Acetyl Promazine (Notensil Benger) — मात्रा १५-३० मिलि० ३ वार।

(९) Thioridazine Hydrochloride (Melleril, Sandoz) — मात्रा १०-२५ मिलि० ३-४ वार।

(१०) Trimepiazine (Temaril) — मात्रा २ ५ मिलि० ३-४ वार।

(११) Flufenazine (Anatensol) — मात्रा १ मिलि०—यह निद्राजनक नही।

सर्पगन्धा के योग Rauwolfia Alkaloids —

गुण —चेष्टा प्रधान मानस रोग, भ्रम प्रधान मानस रोग, चिन्ता, तनाव शामक, रक्तभार शामक।

दोष —विषाद रोग तथा आमाशय व्रण मे अपथ्य।

(१२) Reserpine (Serpasil Ciba) — मात्रा २५-५ मिलि० दैनिक मात्रा मुख से या त्वचा से। रक्तभार वृद्धि मे। १-४ मिलि० मानस रोग मे।

(१३) Syrosingopine (Alkaloids) (Singoserp Ciba) — मात्रा ५-३ मिलि० दैनिक।

(१४) Rescinnamine (Moderil) — मात्रा २५-५ मिलि० दिन मे २ वार।

Diphenylmethane **के योग** या Benzhydrol **के योग** —

(१५) Azacyclonol Hydrochloride (Frenquel Riker) — मात्रा १०-२० मिलि० ३ वार।

गुण —मनोभ्रम तथा प्रतीतिभ्रम प्रधान मानस रोग (Delusions + Hallucinations), प्रलाप (Deliria), मृदु चित्तविक्षेप (Schizophrenia mild type)

दोष —तीव्र मानस रोगो मे अनुपयोगी।

(१६) Hydroxyzine Hydrochloride (Atarax Pfizer) कुछ निर्बल औषधि है। — मात्रा १०-२५ मिलि० दिन मे ३ वार।

गुण —चिन्ता, तनाव, चेष्टाप्रधान मानस रोग, हृत्कम्प, स्वेद।

दोष —तन्द्रा दोष कर सकता है।

(१७) Benactyzine Hydrochloride (Suavitil Glaxo, Nutinal) — मात्रा १-५ मिलि० ३ वार।

गुण —चिन्ता रोग, तनाव, हृत्कम्प, स्वेद।
दोष —तीव्र मानस रोग, हिस्टीरिया, बुद्धिमन्दता मे अनुपयोगी।

विषाद शामक (Anti depressive) औषधिया

गुण —विषाद प्रधान मानस रोग। Imipramine (Tofranil Geigy) मात्रा २५-५० मिलि० तीन (मस्तिष्क मे Serotonin वर्धक) वार।
गुण —विषाद शामक उत्तम औषधि है।
दोष —शिरोभ्रम, मुखशोष, स्वेद, चेष्टा, तनाव, कम्प, उन्निद्रता।

मस्तिष्क उत्तेजक (Cerebral Excitant)
Amphetamine के योग

गुण —मस्तिष्क (उसके Cortex तथा Medulla) के लिये उत्तेजक, मृदु-विषाद रोगहर, मानसिक श्रान्ति हर।
निद्रापस्मार (Narcolepsy) औषधमूर्च्छा (Narcosis) मे उपयोगी। अन्तिम दोनो अवस्थाओ मे मात्रा अधिक देनी चाहिये पर इन की आदत पड जाने का भय है। अत इनका प्रयोग न करना ही उचित है।
दोष —अति विषाद मे अनुपयोगी।

(१)	Amphetamine Sulphate (Benzedrine)	मात्रा ५ मिलि० २-३ वार दोपहर तक।
(२)	Dexamphetamine Sulphate (Dexedrine, Smith Kline and French)	मात्रा २ ५-५ मिलि० दिन मे २ वार।
(३)	Methyl-amphetamine या Methamphetamine Hydrochloride, Methedrine B W Co)	मात्रा २ ५-१० मिलि० दिन मे २ वार।
(४)	Drinamyl (Dexamphetamine Sulphate ५, Amylobarbitone ३२ मिलि० Smith Kline French)	मात्रा दिन मे २ गोली।
(५)	Pipradol Hydrochloride (Meratran, Riker)	मात्रा १-२ मिलि० दो वार।

ऊर्ध्व मस्तिष्क शामक (Central Relaxant) औषधिया —

गुण —चिन्ता, तनाव, उन्निद्रता, स्तम्भ, विद्रोही विचार सम्बन्धी मानस रोग।
दोष —तन्द्रालुता, अस्थिरता।

(१)	Meprobomate (Miltown Lederle Equanil, Wyeth Mepavlon)	मात्रा २००-४०० मिलि ३ वार।
(२)	Mephenesin —(Myanesin B D H Tolseram Squibb) Seconesin जिसमे यह ४००, Quinalbarbitone ३० मिलि० है, Halabak जिसमे यह २००, दूसरी दवा १५ मिलि० है)।	मात्रा ½, १ ग्राम, २-३ १ वार।
(३)	Methylpentinol (Oblivon B Schering Somnesin ½ ग्राम कैप्स्यूल B D H)	मात्रा ¼, ½ ग्राम २-३ वार।

Barbitone औषधियाँ

(४)	Amylobarbitone (Amytal Lilly)	मात्रा ½, ¾ ग्रेन २-३ वार।
(५)	Sodium Barbitone (Medinal)	मात्रा २ ग्रेन २-३ वार।
(६)	Phenobarbitone या Phenobarbital (Gardenal M B Luminal, Bayer)	मात्रा ¼, ½ ग्रेन २-३ वार।
(७)	Quinalbarbitone Sodium (Seconal Sodium Lilly)	मात्रा ¾ ग्रेन २-३ वार।
(८)	Cyclobarbitone (Phanodorm Bayer	माना १½ ग्रेन २-३ वार।

(९) Butobarbitone Sodium (Soneryl M B) — मात्रा ½-¾ ग्रेन २-३ बार।

(१०) Ethchlorvynol (Placidyl) — दिन मे ३-४ बार १००-२०० मिलि०।

(११) Chlordiazepoxide (Equibrom) — ५-१० मिलि० दिन मे ३-४ बार।

(१२) Phenaglycodol (Ultran) — २०० मिलि० दिन मे ३-४ बार।

(१३) Diazepam (Calmpose) — २ ५-५ मिलि० दिन मे ३ वार।

निद्राजनक (Hypnotic) औषधिया --

गुण —उन्निद्रता मे।

(१) Amylobarbitone या Amylobarbitone Sodium (Amytal या Sodium Amytal Lilly Dorminal Boots) — मात्रा १½-६ ग्रेन रात भोजन से पहले।

(२) Pentobarbitone Sodium (Nembutal Abbot) — मात्रा १½, ३ ग्रेन रात भोजन से पहले।

(३) Butobarbitone Sodium Soneryl M B) — मात्रा ¾, ३ ग्रेन रात भोजन से पहले।

गुण —६-८ घ टे की नीद।

(४) Carbromal (Carbrital-P D मे इसका तथा Pentobarbital Sodium का मिश्रण) — मात्रा ५-१५ ग्रेन रात को एक वार भोजन से पहले।

(५) Quinal barbitone sodium (Seconal Sodium) — मात्रा ¾, ३ ग्रेन रात एक वार भोजन से पहले।

गुण —५-६ घटे की निद्रा, वाद मे सुस्ती नही रहती।

(६) Ethchlorvynol (Placidyl) कैप्स्यूल। — मात्रा ५०० मिलि० एक वार भोजन से पहले।

(७) Glutethimide (Doriden Ciba) — मात्रा ५ ग्राम एक वार भोजन से पहले।

गुण —½ घटे मे निद्राजनक ६-७ घटे निद्रा देता है।

(८) Cycloheptenyl Ethyl Malonylurea (Medomin Geigy) — मात्रा ३ ग्रेन एक वार भोजन से पहले।

गुण —८ घटे निद्रा देता है, वाद मे कुछ सुस्ती रहती है।

(९) Sonergen (M B) (Butobarbitone ७५ मिलि० + Promethazine १५ मिलि०)। — मात्रा १ गोली भोजन से पहले।

(१०) Cyclobarbitone, (Phanodorm Bayter) — २ ग्राम गोली।

(११) Butobarbitone (Soneryl) — १००-२०० मिलि० १ वार रात को।

(१२) Tab Mandrax या Vesparax भी रात सोने से पहले दी जाती हैं।

अभाव रोग

(Deficiency Diseases)

अस्थि शोथ :—(Rickets या Rachitis)

विटामिन "डी" की न्यूनता, Avitaminosis D

विटामिन "डी" जो Sterol किस्म का पदार्थ है, अर्थात् एक स्निग्ध तत्त्व हे जान्तव फैट मे विशेषत तथा वानस्पतिक फैट मे स्वल्प मात्रा मे होता है। हमे यह विशेषत दूध की चिकनाई और अण्डे से मिलता है। सूर्य की Ultra Violet किरणो के द्वारा हमारी त्वचा के Sterol से भी यह उत्पन्न होता है। अण्डे की भी जर्दी मे यह बहुत मात्रा मे होता है। बहुत से प्राणी इसे अपने यकृत् मे जमा कर लेते है। इसलिए Cod Liver Oil मे बहुत होता हे । दूध तथा अण्डे को गर्म करने से भी यह विटामिन नष्ट नही होता। इस विटामिन का अति क्रियाशील रूप Calciferol या Vit D_2 है जिसे शुद्ध Crystalline रूप मे बना लिया गया हे। युवक को इसके २५० के लगभग तथा शिशु और बालक को उसके ५०० के लगभग, गर्भिणी को इससे भी अधिक यूनिट प्रतिदिन आवश्यक होते है। समय से पहले हुए शिशु को इससे दुगुनी मात्रा मिलनी चाहिए। (१ यूनिट = ०२५ माईक्रोग्राम आफ Calciferol) Halibut Liver Oil के एक बूद मे तथा Cod Liver Oil के ६ बूद मे ५० यूनिट इस विटामिन के होते है। इसलिए शिशु के लिए Halibut Liver Oil की १० बूद तथा Cod Liver Oil की ५० बूद की मात्रा प्रतिदिन पर्याप्त होती है। आधा किलो दूध मे ५० तथा एक अण्डे की जर्दी मे ६० u इस विटामिन के है। Ergosterol मे Ultra Violet किरणो को गुजारा जाय तो Calciferol (Vit D.) बनता है। यह एक कृत्रिम विटामिन "डी" है। जैसे ऊपर कहा है त्वचा के ७—Dehydrocholesterol पर सूर्य की Ultra Violet किरणो के पडने से विटामिन "डी" (D_3) एक Provitamin बनता हे जो विटामिन डी$_2$ मे शीघ्र परिवर्तन हो सकता है और शरीर मे फैल जाता हे। मछली के तेल, दूध, मक्खन, अण्डे मे यही विटामिन D_3 होता हे। गर्म करने से यह नष्ट नही होता।

कारण

विटामिन "डी" आत मे से विशेषत कैल्सियम तथा गौण रूप मे फॉस्फोरस या फास्फेट के विलयन मे सहायक होता है। मूत्र मे विद्यमान कैल्सियम तथा फॉस्फेट के, Tubules के अन्दर पुर्नविलयन के लिये भी इस विटामिन का होना आवश्यक है क्योकि इसके कारण कैल्सियम के रक्त मे बढे रहने से Parathyroid अवसन्न (Depressed) रहता है जिससे मूत्रगत फॉस्फोरस (Sodium Pot Mag Phosphate के रूप मे) का मूत्र स्राविणियो मे पुर्नविलयन अधिक होता है और रक्त मे उसकी मात्रा ठीक बनी रहती हे। इसके अभाव मे फास्फेट मूत्र द्वारा अधिक निकल जाता हे (Glomeruli से इसकी निकासी के बढने तथा मूत्र स्राविणियो मे पुर्नविलयन के घटने से) एव रक्त के अन्दर कैल्सियम (Serum Calcium Level) और फॉस्फोरस की मात्रा (Serum Phosphorus Level) जो क्रमश ९-११ मिलि० तथा २३, ५ मिलि० प्रतिशत होती हैं, घटकर ६ तथा २ मिलि० प्रतिशत के लगभग रह जाती है। रक्त मे इनकी न्यूनता से अस्थियो मे कैल्सियम फॉस्फेट जो साधारण ६३% के लगभग होता है, घटकर २१-२५ प्र० श० रह जाता हे जिससे शिशु मे Rickets रोग हो जाता है और बडो मे Osteomalacia हो जाता हे। जिन शिशुओ को माता का या गाय का दूध नही मिलता, जिन्हे अधेरे मे ही सदा रखा जाता हे या जिन्हे शीघ्र ही अन्न प्रारम्भ करा दिया जाता हे और दूध बहुत थोडा मिलता है उनमे विटामिन "डी" की न्यूनता हो जाती है। क्योकि गाय के दूध मे भी यह स्वल्प ही होता है (आधे पौंड मे ५-४० यूनिट)। अनपच अन्न मे फॉस्फोरस से युक्त एक Phytic Acid होता है जो भोजन के कैल्सियम को पकडकर Calcium Phytate के रूप मे बिना विलीन हुए मल के द्वारा बाहर निकल जाता है। इस प्रकार अन्न के अजीर्ण तथा अतिसार से भी शिशु को कैल्सियम कम मिलता है। विटामिन डी फैट मे रहता है। अतिसार रोग मे फैट के निकलते रहने से यह विटामिन भी शरीर मे कम हो जाता है।

विकृति

दीर्घास्थि के शरीर (Diaphysis) तथा सिरे (Epiphysis) के बीच मे तरुणास्थि रहती है जिसका निचला सिरा बढता जाता है, पर ऊपर का सिरा न बढकर क्रमश अस्थि मे परिणत ही होता है अर्थात् उसमे Calcium Phosphate बैठता जाता है जिससे ऊपर के

भाग को Resting—स्थिर तथा निचले भाग को Proliferative Zone—वृद्धि शील कहते है।

इस रोग मे अस्थियो के निर्माण मे ये तरुणास्थिया (Osteoid Tissue) तो साधारण से अधिक स्थूल हो जाती है और नीचे की ओर वढती जाती है। पर ऊपर के भाग मे वास्तविक अस्थि (Osseous Tissue) का निर्माण अपूर्ण ही रह जाता है। उसमे Osteoblasts तो होते हे पर Cal Phosphate का नि क्षेप नही होता। उसमे ३०-५० प्र० श० ही कैल्सियम होता है (नार्मल ६० प्र० श०)। उसके निचले भाग के साथ-साथ ऊपर के भाग के भी वढते जाने से वह मोटी (Rachitic) दिखाई पडती है। वैसे भी अस्थियो मे कैल्सियम की कमी हो जाने से वे मुलायम हो जाती हे और भार पडने से मुड जाती हे। अर्थात् इस रोग मे तरुणास्थि मे कैल्सियम का नि क्षेप या Calcification की प्रक्रिया ठीक-ठीक नही होती जिससे उसमे अस्थि मृदुता या Osteomalacia का रोग हो जाता है तथा रक्त मे एक Enzyme जिसे Serum Alkaline Phosphatase कहते है, वढ जाता है जिसकी उत्पत्ति अस्थियो मे होती है और जिसके कारण घुलनशील कैल्सियम अनघुलनशील कैल्सियम फॉस्फेट के रूप मे वहा निक्षिप्त होता है। रक्त मे इसकी नार्मल मात्रा ३-१३ King Arm Strong यूनिट होती है। रोग के अच्छे होते समय फिर रक्त मे कैल्सियम तथा फॉस्फोरस की मात्रा वढ जाती है तथा Phosphatase Enzyme की मात्रा घट जाती है। Frontal तथा Parietal अस्थियो पर Osteoid अवयव के वढ जाने से उभार हो जाते हैं।

लक्षण

अस्थि निर्माण के ठीक-ठीक न होने से पसलियो के अगले सिरे, जो तरुण पसलियो (Cartilages) के साथ सवि करते है, देखने मे मोटे होते हे जिससे उरोस्थि (Sternum) के दोनो ओर पसलियो मे गाठे-सी दिखाई पडती है (Rickety Rosary)। रोगतीव्र हो तो पसलियो के अगले सिरे मृदु होने के कारण तथा फुफ्फुस के अन्दर प्रेशर के कम होने के कारण अन्दर की ओर धस जाते है जिससे उरोस्थि के (जो आगे को उभरी हुई होती है Pigeon-breast) दोनो ओर ऊपर से नीचे वक्ष की दिशा मे एक खाई (Sulcus) सी दिखाई पडती है। पसलियो के निचले किनारे के साथ-साथ दोनो ओर लेटी हुई खाई Harrison's Sulcus) भी होती है। Radius के निचले सिरे (Epiphysis) के (Osteoid Overgrowth के कारण) मोटे हो जाने से कलाई कुछ मोटी दिखाई पडती है।

ऊर्ध्व जघा अस्थियो के निचले सिरो के मृदु रह जाने पर जव उन पर एडी की कण्डरा अर्थात् Tendo Achilles की खीच पडती है तो इनके पीछे की ओर खिच जाने से टाग आगे की ओर मुडती जाती हे। अधो जघा अस्थियो के मृदु होने से वे कुछ आगे और वाहर की ओर मुड जाती है जिससे गोडे एक दूसरे से दूर हो जाते हे (Bow Legs)। या उनके अन्दर की ओर मुड जाने से दोनो गोडे आपस मे टकराने लगते हे (Knock Knees)। शिशु के हाथो के भार चलने से दोनो वाहुए भी वाहर की ओर मुड सकती हैं। अस्थि निर्माण की न्यूनता से वालक मे जो दन्तोद्गम ६-८ महीने मे होता है वह देर से होता हे या उनका Enamel ठीक नही वनता जिससे Caries का रोग हो जाता है तथा सिर पर ब्रह्मरन्ध्र का छिद्र (Anterior Fontanelle) १८ महीने की आयु के वाद भी वना रहता है।

रक्त मे हीमोग्लोविन की न्यूनता से पाण्डुता का लक्षण होता हे, रक्त मे कैल्सियम तथा फॉस्फोरस की न्यूनता के कारण उसकी मासपेशिया निर्वल एव शिथिल होती है जिससे उसका पेट लटका हुआ दीखता है। उसकी अग्नि भी मन्द होती है जिससे उसे वदवूदार फीके रग के दस्त होते रहते है। इससे भी उसका पेट कुछ अफरा हुआ होता है। नाडी मण्डल को कैल्सियम की पूर्ण मात्रा न मिलने से वालक मे आक्षेप (Convulsion), खल्ली (Tetany), कण्ठ स्तम्भ (Laryngismums Stridulus) तथा चिडचिडेपन के लक्षण हो सकते है। चिडचिडेपन के कारण शिशु रात को टाग मारकर कपडे फेक देता है। रात को उसके सिर पर स्वेद भी प्रतीत होता है। वालक कृश नही होता कुछ स्थूल होता हे पर पाण्डुर होता हे। इन लक्षणो से इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिए। कभी-कभी स्पजाकार अस्थियो जैसे कपालास्थियो विशेषत Frontal तथा Parietal अस्थियो के (Osteoid Overgrowth के कारण) मोटे हो जाने से उनमे उभार हो जाते है जिससे वालक का सिर कुछ वडा और विषम आकृति का हो जाता हे। कूल्हे की हड्डियो मे भी विषमता हो सकती हे अर्थात् Sacrum के उपरले किनारे (Promontary) के आगे वढ जाने या Coccyx के आगे वढ जाने से क्रमश प्रवेश व निर्गम द्वार तग हो जाते है और उसके कारण ऐसी लडकी के वडे होने पर उसमे प्रसव सम्वन्धी कठिनता का लक्षण हो सकता है। रीढ की हड्डी मे इस रोग के होने से

उसमे पश्चिम कुब्जता (Kyphosis), पार्श्व कुब्जता (Scoliosis) या अग्र कुब्जता (Lordosis) का लक्षण हो सकता है।

जब किसी शिशु मे देर तक दन्तोद्गम न हो, दातो मे अस्थि निर्माण ठीक-ठीक न हो, उसके ब्रह्मरन्ध्र का छिद्र समय पर बन्द न हो, वह समय पर उठने-बैठने और चलने के लिए समर्थ न हो तो इस रोग का सन्देह करना चाहिए। यह रोग साध्य है, ६० प्र० श० मे ठीक हो जाता है। कुछ एक का कथन है कि बालको के Myopia मे इस विटामिन का २५० Units दैनिक मात्रा मे प्रयोग लाभदायक है। आख के Phlyctenulae के लिए भी इसका प्रयोग होता है।

चिकित्सा

प्रतिरोधक शिशु को इस रोग से बचाने के लिए उसे ६ मास तक माता का दूध मिलना चाहिए। उसके बाद भी कैल्सियम के कारण गाय के दूध, मक्खन, आदि की पर्याप्त मात्रा उसे मिलनी चाहिए तथा अन्न उसे थोडा ही मिलना चाहिए। शिशु को शीतकाल मे थोडी देर धूप मे ले जाना चाहिए। साथ ही उसे एक चम्मच Cod Liver Oil प्रतिदिन या १० बूद Halibut Liver Oil ५०० यूनिट विटामिन 'डी' २ वर्ष की आयु तक प्रतिदिन दे देना चाहिए अथवा दो-तीन मास की आयु तक अण्डे की आधी जर्दी और इस आयु के बाद पूरी जर्दी प्रतिदिन दे देनी चाहिए।

प्रतिषेधक-रोगी बालक को आधा किलो दूध रोज मिलना चाहिए। विटामिन "डी" जिसे Antirachitic विटामिन कहते हैं, १०००-५००० यूनिट मात्रा मे प्रतिदिन देना चाहिए अर्थात् Halibut Liver Oil १० बूद या Cod Liver Oil ८-१० चम्मच या Adexolin २०-३० बूद प्रतिदिन उसे पिला देना चाहिए (Cod Liver Oil १ चम्मच छोटा=३००-४०० यूनिट) साथ ही कैल्सियम प्रधान भोजन तथा कैल्सियम बढाने वाली औषधि जैसे Calc Gluconate १ गोली (५०० मिलि०) या Lactate या Chloride प्रतिदिन १-५ ग्राम मिलना चाहिए (Callo-Cal D, Crookes, Alcalzium-D Syrup Alemb, Calcium Syrup Sandoz, Calciostelin injection) जब तक Phosphatase लेवल ऊँचा रहे तब तक ये औषधियाँ दे। जब Tetany का उपद्रव हो तो पहले कैल्सियम का प्रयोग करना चाहिये और उसके बाद विटामिन 'डी' का प्रयोग करे।

Ergosterol मे Ultra Violet किरणो को गुजारकर अर्थात् उसे Irradiate करके उसमे विटामिन "डी" की मात्रा बढा दी जाती है। इस प्रकार Halibut Liver Oil मे से इन किरणो को गुजारकर Haliverol बनाया जाता है। वह भी इस रोग के लिए उत्तम औषधि है। Liquor Calciferol भी जिसके ५ बूद मे १००० यूनिट इस विटामिन के होते है, इस रोग की उत्तम औषधि है, इसकी ५ बूद दिन मे ३ बार दी जाती है। Calciferol Tab मे इसके ५०० यूनिट होते है। Adexolin Glaxo प्रति सी० सी० मे "डी" २०००, यूनिट तथा "ए" विटामिन १२,००० यूनिट होते है। Ostelin Glaxo प्रति सी० सी० मे ५००० यूनिट "डी" विटामिन के होते है। Radiostoleum Liquid B D H १ मिलिलि० मे "डी" ३,००० "ए" विटामिन १५,००० यूनिट होता है। Unichem AD Vit —१ सी० सी० मे "ए" १४,००० "डी" ५,००० यूनिट होता है। प्रबल रोग की अवस्था मे १० हजार यूनिट की मात्रा रोगी को रोज मिलनी चाहिए।

आर्द्र तथा शुष्क बेरि बेरि (Beri Beri)—(Beriberi=चल नही सकता)

विटामिन बी$_1$ अर्थात् Aneurine या Thiamine का इतिहास

पहले-पहले जावा मे विद्यमान हालैण्ड के एक डाक्टर Eijkmann (१८९७) ने पक्षियो पर परीक्षण करके यह बताया कि मशीन मे साफ किये चावलो पर पाले गये पक्षियो मे जो Polyneuritis का रोग हो जाता है वह बिना पालिश किये चावलो के खिलाने से ठीक हो जाता है। इसलिए उसने कहा कि चावलो के छानस मे इस Beriberi रोग को दूर करने वाला एक पदार्थ है जिसे उसने जल तथा अल्कोहल के द्वारा पृथक् भी कर लिया। इसके बाद Funk (१९१२) ने इस Anti Beriberi पदार्थ को पृथक् करके पहले-पहल इसे एक Amine होने से Vitamine (Life-Amine) का नाम दिया (अन्य विटामिन्स सारे Amine नही है। अत उन्हे अब Vitamins ही कहते है)। फिर Gold Berger (१९२५) ने बताया कि McCollum ने जिस जल मे घुलनशील तत्त्व को B-Factor कहा है वह एक न होकर दो प्रकार का है। एक तो Anti Neuritic B है, दूसरा Pellagra Preventing B है। फिर १९२७ मे इग्लैड की मैडिकल रिसर्च कौन्सिल ने इनमे से पहले को तो

विटामिन B_1 दूसरे को विटामिन B_2 का नाम दे दिया। फिर Jansen तथा Donath ने इस विटामिन B_1 को शुद्ध स्फटिक रूप मे भी पृथक् कर लिया और इसे उसने Aneurin का नाम दिया और फिर Williams (१९३५-३६) ने इसके पेचीदे (Complex) फार्मूले का पता लगाकर इसे लैबोरेटरी मे कृत्रिम विधि से बना भी लिया। इसके बाद Lohman (१९३७) ने यह पता लगा लिया कि यह विटामिन शरीर मे ग्लूकोज पाचन या Co-Carboxylase का काम करता है। Vitamin B Complex-Thiamine, Riboflavin (B_2), Nicotinic acid, Pyridoxine (B_2), Pantothenic acid (B_5) Vitamin B_{12}, Biotin Choline, Paraminobenzoic acid, Inosital, Folic acid आदि इसके अश है जो प्राणियो के प्रत्येक सेल मे रहते है और Enzymes हैं तथा भोजन तत्त्वो के Oxidation मे भाग लेते है इसलिये ये प्राणियो के लिए आवश्यक है। कुछ तो आहार से तथा कुछ आन्त्रगत जीवाणुओ से प्राणी को ये मिलते है।

बेरि बेरि नामक रोग जिसमे जघागत नाडियो मे क्षीणता का लक्षण विशेष रूप मे पाया जाता है इस विटामिन बी$_1$ की न्यूनता या अभाव के कारण होता है। विटामिन बी काम्प्लैक्स के Nicotinic Acid तथा Riboflavine की न्यूनता भी कुछ अशो मे इस रोग का कारण होती है। विटामिन बी$_1$ (Thiamine या Aneurine Hydrochloride) अन्दर फास्फोरस के साथ मिलकर अर्थात् Phosphorylated होकर या Thiamide Pyrophosphate या diphosphothiamine बनकर अवयवो मे पहुचकर वहा Co-carboxylase या पाचक रस या Coenzyme का काम करता है जिसका अभिप्राय यह है कि वह ग्लूकोज की पाचन प्रक्रिया मे एक पाचक रस है। ग्लूकोज से बनने वाले Pyruvic, Citric तथा Lactic Acids का आगे परिपचन करने का काम करता है। दूसरे शब्दो मे स्टार्च भोजन के परिपचन मे जो ये विषैले द्रव्य बन जाते है उनका CO तथा H_2O मे ठीक-ठीक आक्सिडेशन करने का काम करता है। जो लोग मशीनी चावल पर ही अधिकत निर्वाह करते है अर्थात् स्टार्च तो बहुत लेते है पर जिनको विटामिन बी$_1$ कम मिल पाता है या कुछ महीनो तक बिल्कुल नही मिलता या ज्वर आदि के कारण जिनके शरीर मे पाचन या Metabolism की प्रक्रिया तीव्रतर होती है उनके शरीर मे इनके परिपचन Breakdown से उत्पन्न Pyruvic Acid तथा Alpha Ketoglutaric Acid अर्थात् Pyruvate आदि शरीर मे अधिक मात्रा मे सचित हो जाते है (७ मिलि०% हो जाते है नार्मल ५ मिलि%)। स्टार्च का ठीक-ठीक पाक न होने (Kreb के Citric Acid के चक्र के ठीक-ठीक न होने) से उनके नर्व सेलो, नाडियो, मासपेशियो को ग्लूकोज कम पहुंच पाता है जिससे टागो को जाने वाली नाडियो का पोषण न होने से उनका Myelin से बना खोल क्षीण होने लगता है। नाडी सूत्रो (Axis Cylinders) मे भी वसामय क्षीणता होने लगती है जिससे शीघ्र थकावट हो जाती है। Sympathetic सूत्रो तथा Anterior Horns मे भी ऐसी क्षीणता होने लगती है। अभिप्राय यह है कि यह विटामिन नर्व सेलो तथा नाडियो का पोषण करता है। आमाशय तथा अग्न्याशय (Duodenum) की आभ्यन्तर श्लेष्म कला मे भी शोथ के लक्षण हो जाते है। आतो की मासपेशियो मे निर्बलता और पाचक रसो की न्यूनता हो जाती है जिससे क्षुधा-नाश का लक्षण होता है तथा पाचन ठीक नही रहता। इस प्रकार यह विटामिन पाचन सस्थान को शक्ति प्रदान करता और क्षुधावर्धक होता है। बाहुओ विशेषत टागो की मासपेशियो का पोषण ठीक न होने से उनमे वसामय (Fatty) तथा काच सदृश (Hyaline) क्षीणता हो जाती है तथा वे कृश एव निर्बल हो जाती है। रोगी के हृदय-मास मे विशेष तौर से क्षीणता व निर्बलता होती है। रोगी का रक्तभार गिर जाता है। कार्य करने की शक्ति कम हो जाती है। नाडियो को ग्लूकोज न मिलने से पैरो मे सुप्ति और Tingling के लक्षण होते है। विटामिन B_1 की न्यूनता से व्यक्ति क्रोधी, झगडालू और भय की आशका वाला और कुछ उन्निद्र हो जाता है। इन मानसिक लक्षणो के अतिरिक्त, Peripheral Neuritis का लक्षण भी होता है। किसी कारण दस्त आते रहते हो, यकृत् वृद्धि हो, सग्रहणी हो, अम्लपित्त रहता हो मलबध से क्षय रोग हो तो भी विटामिन बी$_1$ देना चाहिये।

शुष्क या Polyneuritis या Peripheral Neuropathy किस्म का रोग

यह रोग शुष्क (Dry) और आर्द्र (Wet) दो रूपो मे पाया जाता है। शुष्क बेरि बेरि एक चिरस्थायी रोग है जिसमे Peripheral Nerves सुषुम्नाकाण्ड, Pons और Medulla मे क्षीणता आ जाती है। सुषुम्नाकाड के Post columns मे Nerve roots मे क्षीणता विशेष

होती है। Sciatic N. ulnar और Median मे भी क्षीणता होती है। यह रोग बडो में होता है। इसमे टागे व बाहुएं कृश और निर्बल होती जाती है। उनमे कहीं-कहीं सुप्ति, चिमचिमाहट (Hyperaesthesia) के लक्षण होते है। पहले-पहल पावो के तलुओ मे सुप्तिदाह तथा चिमचिमाहट के लक्षण हुआ करते है। थकावट शीघ्र हो जाती है, टागे अकड सी जाती है। रोग के बढने पर Knee तथा Ankle Jerk मन्द हो जाता है। टागो की निर्बलता के कारण रोगी से चला-फिरा नही जाता। पिण्डलियो मे स्पर्शाक्षमता या दबाने से दर्द होने का लक्षण भी हो सकता है। उपर्युक्त अम्लो के अधिक मात्रा मे जमा हो जाने से यह दर्द का लक्षण होता प्रतीत होता है। चलते समय भी रोगी की टागो मे दर्द होता है। उसकी त्वचा मे भी शुष्कता होती है। दोनो टागो मे Ascending Peripheral Neuritis बढता जाता है। Polyneuritis तथा मासनैर्बल्य इसके प्रधान लक्षण है।

Cardiovascular किस्म का रोग या Wet Beri beri

आर्द्र बेरि बेरि या बाल सुलभ Infantile Beri beri मे टागो मे हलका-सा श्वयथु (Oedema) होता है जो ऊपर को बढता-बढता सारे शरीर मे फैल जाता है। हृदय-मास के शिथिल हो जाने से हृदय दक्षिण की ओर कुछ बढा हुआ होता है (Dilatation of the right heart)। दक्षिण हृदय-मास मे जल के अधिक भर जाने से ऐसा होता है। नाडी निर्बल कम Tension वाली और शीघ्रगामी हो जाती है। थोडा चलने से हृत्कम्प होने लगता है। टागो की नाड़ियों मे क्षीणता के होने से टागो मे निर्बलता विशेष होती है। स्टार्च के परिपचन से उत्पन्न होने वाले उपर्युक्त अम्ल द्रव्य सिरा प्रसारक (Vasodilator) होते हैं जिनसे जघाओ के सिरो पर की सूक्ष्म सिराओ के फैल जाने से वहा पर श्वयथु (Peripheral Oedema) हो जाता है जो कुछ कठोर सा होता है। इस शोथ युक्त प्रदेश मे रक्त-वाहिनिया फैली होती है। अत यह शोथ स्पर्श करने मे कुछ गर्म प्रतीत होता है। यो तो इस रोग मे Polyneuritis के भी लक्षण होते है पर हृदय की नाडियो मे भी रोग होने से हृदय विशेषत निर्बल होता है। उससे भी श्वयथु होता प्रतीत होता है अर्थात् Congestive cardiac failure का लक्षण होता है।

हृदय के मास को शक्ति न मिलने से वह निर्बल एव शिथिल (Dilated) हो जाता प्रतीत होता है जिससे नाडी मृदु तथा कुछ तीव्र होती है। रक्तभार विशेषत Diastolic घटा हुआ होता है। स्वल्प श्रम से श्वास चढ जाता है। इस प्रकार हाथ, पाव मे सुप्ति व चिमचिमाहट, हलका श्वयथु व हृदयनैर्बल्य इस रोग के तीन प्रधान चिन्ह होते है। सक्षेप मे कहा जाए तो जब इस विटामिन की कमी का दुष्प्रभाव प्रान्तीय (Peripheral) नाडियो पर विशेष होता है तब हाथ, पाव मे नाडी शोथ (Neuritis) के लक्षण अर्थात् उनकी त्वचा मे चिमचिमाहट व सुप्ति तथा उनकी मासपेशियो मे निर्बलता और कृशता के लक्षण प्रधान रूप मे होते हैं तब इस रोग को शुष्क (Dry) बेरि बेरि या उरुस्तम्भ युक्त (Paraplegic) बेरि बेरि कहते हैं। इसमे रोगी का चलना-फिरना कठिन होता है परन्तु जब इस कमी का दुष्प्रभाव हृदय तथा रक्तवाहिनियों पर विशेष होता है अर्थात् इनमे शिथिलता (Dilatation) हो जाने के कारण चेहरे पर और शाखाओं मे श्वयथु (Oedema) का लक्षण हो तो इसे आर्द्र (Wet) बेरि बेरि या हृदय जनित (Cardiac) बेरिबेरि कहते है। स्पष्ट है कि इस अवस्था मे भी रोगी चल-फिर नही सकता क्योकि थोडा चलने से भी सास चढ जाता है।

रोग विनिश्चय —इस रोग मे रक्त के अन्दर Pyruvic Acid या Pyruvates की मात्रा बढ जाती है और २ मिलि० प्रतिशतक हो जाती है जो विटामिन बी१ के देने से फिर ५ मिलिग्राम तक आ जाती है अर्थात् इसके देने से सेलो को ग्लूकोज ठीक-ठीक मात्रा मे मिलने लगता है। इसी प्रकार खाली पेट एक लिटर पानी पीने के बाद चार घटे तक यदि वह मूत्र से सारा न निकले, कुछ अन्दर रुका रहे तो भी बेरि बेरि की आशका करनी चाहिए (Diuresis Test)। इस रोग से, मृदु रोगियो मे मृत्यु ५ प्रतिशत तथा तीव्र रोगियो मे मृत्यु ५० प्रतिशत मे होती देखी जाती है। इस रोग का भेद हृदयनैर्बल्य से तथा वृक्क रोग (Nephritis) से करना चाहिए।

चिकित्सा

विटामिन बी$_1$ ($C_{12}HO_{17}ON_4S$) प्रकृति मे अनाजो के Germ मे तथा बाहर के खोल (Endosperm की बाहर की स्तर) चीरट, दालो, आलू आदि सब्जियो मे तथा सूखे मेवो मे होता है, Whole Meal मे अधिक होता है, श्वेत आटे मे कम होता है, अग्नि पर पकाने से नष्ट नही होता। सब्जी को पानी मे पका, पानी फैकने से नष्ट हो जाता है। शरीर मे यह मास, यकृत् वृक्को, हृदय आदि मे विशेष रूप मे पाया जाता है। शरीर मे से इसकी

निकासी मूत्र द्वारा होती है। शरीर को इसकी प्रतिदिन १ मिलि० (३३० International Units) के लगभग की आवश्यकता होती है (१ यूनिट=३ माइक्रोग्राम)। मूत्र मे प्रतिदिन इसकी १२ I U निकलती है। शरीर मे इसकी कमी हो जाने पर मूत्र मे भी इसकी निकासी कम हो जाती है। बेरि बेरि रोग के होने पर इसकी (Berin Glaxo, Benerva Roche, Betabion E merck Aneuvit B D H Bedome M S Dohme आदि) २०-५० मिलि० दैनिक मात्रा मे मुख द्वारा या मास द्वारा १५ दिन तक दी जाती है। उसके बाद इसकी १० मिलि० मात्रा या Marmite की २ औंस मात्रा मुख द्वारा प्रतिदिन कुछ सप्ताह तक दी जाती है। हृदय सम्बन्धी निर्बलता विशेष हो तो ५०-१०० मिलि० मात्रा मे यह मास द्वारा १५ दिन दिया जाता है या शिरा द्वारा इतनी मात्रा को धीरे-धीरे १५ मिनट मे दे, बाद मे मुख से दे। Brewer's Yeast के औंस मात्रा मे दिन मे ३ बार देने से भी उपर्युक्त लाभ होता है। रोगी को आराम से बिस्तरे पर रखा जाता है। Digoxin की १ गोली ६-६ घटे पर जब तक नाडी ठीक न हो, दे दे। भोजन मे चोकर वाला आटा, दूध, अण्डा, सोयाबीन, फलिया, सब्जियाँ दी जाती है। Diabetic Neuritis मे इसे Neurobion के रूप मे मास द्वारा दिया जाता है। पाचनस्थान की निर्बलता (Atony) तथा मानसिक निर्बलता (Instability) के लिए भी यह विटामिन उपयोगी है। (गेहूं के १ हजार मे ६ भाग, Dry Brewer's यीस्ट १०० ग्राम (३ औंस) मे इसके १-२ हजार I U होते है)। Beri beri की पाण्डुता के लिए लोह, Liver Ex Folic Acid का प्रयोग करना चाहिए।

पिलाग्रा —Pellagra

अभाव जनित त्वग्रोग —(Pellis = त्वचा, Agra=खर) Rough Skin disease

Niacin या Nicotinic Acid या विटामिन बी$_7$ (B_7) या इसके Amide (Nicotinamide) जिसके विषय मे Eivehgem (१९३८) ने बताया है कि इसके देने से Pellagra ठीक हो जाता है तथा जिसे कि उसने पहले-पहल Crystalline रूप मे पृथक् करके भी दिखाया, Nicotinamide के रूप मे हमारे शरीर के सब सेलो मे विद्यमान एक पाचक रस (Enzyme) है कि जिसके बिना शरीर के सेलो मे होने वाला परिपचन या Cell oxidation ठीक-ठीक नही हो पाता। यह पाचक तत्त्व हमे दूध, अनाज, हरी सब्जियो आदि मे विद्यमान एक Amino Acid, Tryptophane से आतो मे विद्यमान Bacteria के द्वारा मिलता है Tryptophone, Nicotinamide मे परिवर्तित हो जाता है। जो लोग महीनो तक दूध, मांस, गेहू आदि प्रोटीन भोजन बिल्कुल नही ले पाते, केवल मक्की के आटे पर ही रहते है उनमे इस विटामिन की कमी हो जाती है क्योंकि उसमे Tryptophane बिल्कुल नही होता। इसकी आवश्यक दैनिक मात्रा लगभग १० मिलि० है। शरीर मे इसकी निकासी मूत्र द्वारा होती है।

यह विटामिन कार्बोज भोजन के परिपचन मे विशेष सहायक है। Nicotinic acid का एक विशेष गुण है कि इससे Serum cholesterol की मात्रा घटती है अत Atherosclerosis के लिये यह उपयोगी है। Nicotinamide मे यह गुण नही।

इस विटामिन की न्यूनता ग्रहणी रोग तथा जीर्ण अतिसार के कारण होती है। इसका अभाव महीनो तक रहे तो इस रोग के लक्षण धीरे-धीरे अज्ञात रूप से प्रकट होने लगते है। आहार मे कोई प्रोटीन भोजन न हो अर्थात् Tryptophane न हो तो भी ये होते है। विशेषत मध्यमायु (२०-४० वर्ष) के व्यक्तियो मे, गर्मी की ऋतु के आने पर वसन्त काल मे प्रारम्भ होते है। इस विटामिन की न्यूनता के कारण शरीर मे Nucleic acid का निर्माण ठीक नही होता जिसकी उपस्थिति Tissue oxidation के ठीक होने के लिए आवश्यक है अर्थात् यह भी Coenzyme का कार्य करता है। इसके अभाव मे पहले टागो मे अशक्ति प्रतीत होने लगती है। शरीर मे कृशता एव निर्बलता प्रतीत होने लगती है। चित्त कुछ उदासीन-सा रहने लगता है। यदि ये लक्षण अधिक हो तो व्यक्तित्व ही कुछ बदल जाता है या पेट सम्बन्धी लक्षण या त्वक् शोथ (Dermatitis) सम्बन्धी लक्षण प्रकट होने लगते हैं अर्थात् इस रोग मे या तो पेट सम्बन्धी या त्वक् शोथ सम्बन्धी या नाडी सस्थान सम्बन्धी लक्षण होते है या इनमे से किन्ही दो या तीन सस्थानो के लक्षण साथ-साथ रहते है।

पाचन सम्बन्धी लक्षण

इस विटामिन की न्यूनता या अभाव के कारण भोजन प्रणाली अर्थात् मुख, जिह्वा, आमाशय, आत के मास तथा श्लेष्मकला मे लघुता सूचक (Atrophic) क्षीणता और कुछ शोथ सूचक लालिमा के हो जाने का लक्षण होता है। रोगी की जीभ व मुह आ जाते है। मसाले मुख मे लगते है। दूसरे शब्दो मे उसे Glossitis व Stomatitis व Cheilosis (मुह के किनारे आ जाना तथा Fissures हो जाना) के रोग हो जाते है। इस मार्ग की श्लेष्मकला की बहिस्तर (Epithelium) क्रमश लुप्त होने लगती है

जिससे उसमे व्रणभाव हो जाता है। आमाशय शोथ के कारण पाचक रसो (एसिड, व पेप्सिन, Rennin) की उत्पत्ति बन्द हो जाती है (Achlorhydria हो जाता है)। इससे उसकी भूख मर जाती है। अरुचि व वमन का लक्षण रहता है। भोजन के वाद पेट मे दर्द व अफारे का लक्षण रहता है। स्वाद की प्रतीति भी जाती रहती है। आँत मे Enteritis, Proctitis के कारण हवा रहती है। दर्द या आध्मान रहता है, मलवन्ध रहता है। रोग के वढने पर अतिसार भी होने लगता है। उसमे Free fat रहती है। ग्रहणी रोग से इसके ये लक्षण मिलते है। पर उससे यह एक विभिन्न रोग है।

त्वचा सम्वन्धी लक्षण

त्वचा की वहिस्तर (Epithelium) के सेलो का ठीक-ठीक पाक न होने एव उनका पोषण न होने से त्वचा मे लघुता सूचक क्षीणता व रक्तिमा युक्त शोथ के लक्षण हो जाते है। विशेषत हाथ, अग्रवाहु के पृष्ठ प्रदेश, कोहनियो, पैरो के ऊपर की त्वचा पर, नाक पर, दोनो ओर के गालो पर, कानो के पीछे तथा ग्रीवा की खुली त्वचा पर, स्तनो के बीचे की त्वचा, सीवन प्रदेश की त्वचा पर स्पष्ट किनारो वाले शोथ कण्डू तथा दाह से युक्त चकत्ते (Pellagious Dermatitis के चकत्ते) निकल आते है। अण्डकोशो की त्वचा पर भी खुर्दरापन इस रोग के कारण हो सकता है। ये शरीर पर दोनो ओर आमने-सामने होते हैं। पहले इनमे धूप के लगने की सी लालिमा होती है। फिर क्रमश वहा की त्वचा कुछ खुर्दरी (Keratotic) लाल, भूरी एव मोटी हो जाती है। उसमे से छिलके भी झड सकते है अर्थात् वह Exfoliative हो जाता है। पुराने हो जाने पर इसमे लकीरे (Fissures) भी पड जाती है। दवाने से उस समय के लिए उसकी लाली छिप जाती है। इन चकत्तो के कारण ही इस रोग को खुर्दरी या खर-त्वचा का रोग (Pellagra) कहा जाता है।

नाडी मण्डल सम्वन्धी

ऊर्ध्व मस्तिष्क, मस्तिष्क के Ganglia, Sympathetic Ganglia के सेलो मे भी क्षीणता हो जाती है। सुषुम्ना काण्ड के पश्चिम तथा पार्श्वीय नाडी सूत्रो (Posterior, Lateral Columns) तथा Anterior Horns के सेलो मे भी क्षीणता हो सकती है। इनके कारण मानसिक लक्षण जैसे विषाद, व्याकुलता, शिरोभ्रम, उन्निद्रता, शिर शूल, बुद्धि विभ्रम (Confusion), प्रतीति विभ्रम (Hallucination), एकाग्रता की शक्ति का नाश, विक्षोभशीलता, बुद्धिनाश (Dementia) के लक्षण हो सकते है। नाडी-दौर्वल्य या (Neurasthenia) भी हो सकता है। सुषुम्ना काण्ड के सूत्रो मे रोग के होने से टाँगो मे स्तब्धतायुक्त निर्वलता हो जाती है। टागो मे सुप्ति व चिमचिमाहट व वेष्टन (Cramps) के लक्षण भी हो सकते है। नाडी शोथ (Poly neuritis) के कारण हाथो मे कम्प का लक्षण हो सकता है। सिर मे भी इसी कारण कम्प हो सकता है। इस प्रकार इसके अभाव मे 3D अर्थात् Dermatitis, Diarrhoea और Dementia ये तीन रोग हो सकते है।

यदि किसी रोगी में कुछ काल तक केवल किसी एक अन्न पर या हीन गुण आहार पर रहने का इतिवृत हो तथा उपर्युक्त त्वचा सम्बन्धी चकत्ते हो, पेट सम्वन्धी अतिसार आदि लक्षण हो, नाडी सस्थान सम्बन्धी वुद्धि माद्य, जघानैर्वल्य आदि लक्षण हो तो इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिए। नाडी मण्डल की निर्वलता के लिए शरीर मे Nicotinic Acid की कमी के अतिरिक्त विटामिन बी$_1$ तथा Riboflavin की कमी भी सहायक होती है। यह एक चिरस्थायी रोग है इसकी चिकित्सा न हो तो ३-१५ वर्ष मे यह घातक हो जाता है।

इसके प्रयोग से मस्तिष्क धमनिया फैल जाती है। अत मानस रोगो मे मस्तिष्क के पोषण को वढाने के लिए भी इसका प्रयोग उपयोगी है। इस गुण के कारण Angina मे भी इसका प्रयोग होता है। शिरोभ्रम मे भी इसी कारण प्रयोग होता है। १० मिग्रा० मात्रा मे Nicotinic acid को दिन मे २-३ वार दिया जाता है।

चिकित्सा

Anti Pellagra विटामिन या Nicotinamide (Pelonin Glaxo, Pelonin Amide Nicotinic acid ५० मिलि० गोली) के ५०/१०० मिलि० मात्रा मे भोजन वाद मुख द्वारा दिन मे ५ वार देने या इसके दिन मे दो वार नार्मल सेलाइन मे मिलाकर शिरा द्वारा देने से, साथ ही Riboflavin के १० मिलि० मात्रा मे दिन मे २-३ वार देने से, अग्निमन्दता, अतिसार आदि पाचन सस्थान सम्बन्धी लक्षणो के लिए हाइड्रोक्लोरिक एसिड डाइल्यूट के ३०-६० वूद की मात्रा मे ४ औंस जल मे मिलाकर भोजन के साथ पिलाने से, तथा वाहुओ और जघाओ मे नाडी शोथ (Poly Neuritis) के लिए विटामिन वी$_1$ के ५०-१०० मिलि० मात्रा मे मॉस द्वारा देने से एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर यह रोग शान्त हो जाता है। इस चिकित्सा के दौरान मे रोगी को लिटा कर रखना चाहिए। इसके वाद रोगी को दूध, अण्डे, फल आदि पर

रखने तथा Nicotinamide को मुख, मास या शिरा द्वारा दिन मे एक बार स्वल्प मात्रा मे देते रहने से इनके पुन प्रकट होने का भय नही रहता। प्रत्येक १०० ग्राम, Yeast मे २५-५० मिलि०, दूध मे १ मिलि०, गेहू के आटे मे ५ मिलि० Nicotinic Acid होता है।

बालसुलभ रक्तपित्त Infantile Scurvy

६ मे १८ महीने के बीच की आयु के शिशुओ मे जघास्थियो के ऊपर तथा उनके आवरण (Periosteum) के नीचे रक्तस्राव हो जाने मे शिशु को दर्द रहता है। टागो को छूने से वह विशेष चीखता है। वह बिना हिले-डुले पडा रहना पसन्द करता है। ऊर्ध्व जघास्थि के निचले सिरे ऊर्ध्व बाहुअस्थि के ऊपर के सिरे पर ये स्राव विशेष होते है। देखने मे बालक कुछ पाण्डुर होता है तथा दूध कम पीता है। उसे हलका सा ज्वर भी रहता है। इसे Infantile Scurvy का रोग कहते है जो विटामिन "सी" के अभाव मे होता है।

विटामिन "सी" का इतिहास

पहले-पहल इग्लैण्ड के एक जहाजी अफसर James Lind (१७५३) ने बताया कि Scurvy का रोग किसी भोजन तत्त्व की न्यूनता या अभाव से होता है जो फलो के देने से ठीक हो जाता है। उसने यह भी कहा कि इसमे थकावट नही होती, Infection भी नही लगता। फिर Szent-Gyorgyi ने प्राणियो के अवयवो तथा पौदो मे से एक कम्पौण्ड को पृथक् करके दिखाया जिसका फार्मूला $C_6H_8O_6$ था। इसे उसने Hexuronic Acid का नाम दिया था। पर बाद मे १६३२ मे उसी ने कहा कि यही पदार्थ Antiscorbutic अर्थात् स्कर्वी प्रतिरोधक है, और विटामिन "सी" या Ascorbic Acid ही है। इस प्रकार १६३२ मे इस विटामिन का पता चला है। यह Oxidize शीघ्र हो जाता है एव पकाने से नष्ट हो जाता है।

यह पदार्थ हमारे मूत्र मे प्रतिदिन ५ से ५० मिलि० मात्रा मे निकलता रहता है। जब यह विटामिन अन्दर कम हो जाता है तो मूत्र मे भी इसकी निकासी घटती जाती है और इसके न मिलने से मूत्र मे से यह लुप्त हो जाता है। सन्तरे तथा नीबू मे यह विशेष होता है, सेब मे कुछ कम होता है। माता के दूध मे विशेष होता है। गाय के दूध मे बहुत कम। अत गाय के दूध पर रहने वाले बच्चे को फल रस कुछ देना चाहिए। रोटी, मक्खन, मेवो, अण्डे, माग आदि मे यह बिलकुल नही होता।

कारण

शरीर के सेलो को परस्पर जोडने वाले अवयव (Intercellular पदार्थ) या स्नायु तन्तु (Fibrous या Collagen Tissue) का निर्माण Fibroblasts के द्वारा होता है। परन्तु इस प्रक्रिया के ठीक-ठीक होने के लिए शरीर मे Ascorbic Acid विटामिन "सी" नामक एक पाचक रस का होना आवश्यक है। Nicotinic Acid तथा Riboflavin के समान यह भी Cell oxidation मे सहायक है। इसके अभाव मे Tyrosine नामक Amino Acid का परिपचन भी ठीक-ठीक नही होता। Tyrosine का होना Epinephrine, Thyroxine और Melanin की उत्पत्ति के लिए आवश्यक है। सिराओ के सेलो के सीमण्ट के लिए भी यह आवश्यक है अर्थात् उसके बनाने वाले Hyaluronic Acid के निर्माण अर्थात् Capillary lining के लिए यह आवश्यक है। अस्थि तथा दात के निर्माण मे Osteoblasts तथा Odontoblasts का भी यह सहायक होता है। इसके अभाव मे Osteoid तथा Dentine नही बनते, दत रोग हो जाते है, अस्थिया भगुर हो जाती है अर्थात् यह Bone matrix के लिए आवश्यक है। गिनीपिग मे उसके अभाव मे Atherosclerosis भी उत्पन्न होता देखा गया है। यह प्राणियो को फलो विशेषत Citrus फलो, हरी सब्जियो, आलू, अकुरित हुए चनो या दालो या बिना उबाले दूध या बिना पकाये मास मे प्राप्त होता है। हमारे शरीर मे कुल मिलाकर यह पाच ग्राम मात्रा मे होता है। तथा यो तो सर्व अवयवो मे होता है। रक्त के प्लाज्मा मे ५ मिलिग्राम प्रतिशतक से अधिक होता है। १४ हो जाने पर मूत्र से निकलने लगता है। श्वेताणुओ मे २५ मिलि० प्रतिशतक होता है और Adrenal Cortex पिट्यूटरी या Hypophysis, नेत्रो के Aqueous Humour, Lens, आतो की दीवार तथा मस्तिष्क आदि मे भी पर्याप्त मात्रा मे रहता है एव जीवाणु सक्रमण के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति प्रदान करता है। शरीर मे उत्पन्न व्रण के रोहण के लिए अर्थात् वहा Scar Tissue बनने या Collagen fibres के निर्माण के लिए इसकी आवश्यकता रहती है। इसके अभाव मे व्रण का रोहण अर्थात् नई सिराओ का बनना, Fibroblasts की उत्पत्ति, Reticulin का बनना नही हो पाता, भग्न हुई अस्थि जुड नही पाती। शिशु को इसकी २५ मिलि० मात्रा, युवक को ७०-७५ मिलि०, गर्भिणी तथा प्रसूता को १००-१५० मिलि० प्रतिदिन आवश्यक होती है। T B, Hyperthyroidism, कैन्सर, आमाशयव्रण, Rheumatic fever मे इसे १०० मिलि० मात्रा मे प्रति

दिन देना चाहिए । इसे श्वास, रक्तपित्त, Psoriasis, Rheumatoid Arthritis, Allergy काली खासी मे भी उपयोगी पाया गया है । शिशुसुलभ रक्तपित्त (Infantile Scurvy) ऐसे शिशुओ मे जिन्हे उवले हुए दूध या डब्बो के दूध पर ही पाला जाता है इसकी मात्रा घट जाती है । ५-६ मास तक इस प्रकार के आहार रहने के वाद ६-१२ महीने की आयु के शिशुओ मे इस विटामिन के अभाव होने के लक्षण उत्पन्न होने लगते है । सूक्ष्म रक्तवाहिनियो की दीवार के सेलो को जोडने वाले सीमेण्ट पदार्थ के ठीक-ठीक न बनने से सिराओ की परिस्रवणशीलता (Permeability) के बढ जाने मे शिशु की जाघ मे जहा आघात लगने का अधिक अवसर रहता है अस्थियो के आवरण के नीचे रक्तस्राव हो जाता हे । गोडो के अन्दर या आस-पास की अस्थियो उरुअस्थि के निचले सिरे, जघास्थि के ऊपर नीचे के सिरो मे रक्तस्राव होकर अर्थात् वहा उभार (Swelling) सा उत्पन्न होकर शिशु को दर्द होता है जिसके कारण शिशु अपने को छूना पसन्द नही करता और छूने पर चीखने लगता हे । परीक्षा करने पर गोडो के ऊपर या नीचे की त्वचा मे कुछ उभार और तनाव का पता चलता है । इस शोथ के कारण शिशु चिड-चिडे स्वभाव का हो जाता हे । अस्थि मज्जा के अन्दर रक्तकणो के निर्माण के लिए तथा रजक द्रव्य के लिए भी विटामिन "सी" की आवश्यकता होती हे । उनमे यह लोह को विलीन करने तथा वी$_{१२}$ और Folic Acid को उसके क्रियाशील रूप Folinic acid मे परिवर्तन कर उसे विलीन करने का कार्य करना प्रतीत होता है जिससे रक्तकणो का निर्माण होता है । (आत मे Ferric Salt के Ferrous अवस्था मे लाने के लिए यह Reducing Agent का कार्य करता हे) । उनका यथोचित निर्माण न होने से शिशु मे पाण्डुता का लक्षण भी होता है । रक्त-स्राव पहले गुर्दो मे होता हे अत मूत्र मे सूक्ष्म परीक्षा करने पर रक्त मिलता है, नाक से भी रक्तस्राव हो सकता है, त्वचा मे भी रक्तपित्त चकत्ते (Ecchymoses) निकल सकते हैं, मसूडे भी कुछ फूल जाते है ।

तरुण सुलभ-हीनभोजन जनित रक्तपित्त (Adult Scurvy)

वडे व्यक्तियो को भी जिन्हे विटामिन "सी" की २५-४५ मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन आवश्यकता रहती है और गर्भावस्था तथा स्तन्यपान कराते समय और भी अधिक आवश्यकता रहती है, यदि महीनो तक फल, सब्जियो के विना कृत्रिम आहार पर ही गुजारा करना पडे तो ४, ५ मास के वाद जव उनके रक्त मे Ascorbic acid वहुत घट जाता है तो उनमे भी Scurvy या हीन भोजन जनित रक्तपित्त का रोग हो जाता है । रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे जव यह प्रसुप्त अवस्था मे होता है तो इसके अभाव मे शरीर और मन की शक्तिया क्षीण हो जाती है अर्थात् रोगी का शरीर निर्वल, असमर्थ, मन्द, कृश तथा पाण्डुर दीखता हे, स्वल्प श्रम से सास चढ जाता है, मन उदासीन या विषण्ण रहने लगता है, मनुष्य मे सक्रियता के स्थान पर निष्क्रियता आ जाती है, भूख मर जाती हे ।

रोग के कुछ प्रकट रूप मे होने पर टागो की त्वचा पर रोम कूपो (Hair Follicles) के आस-पास की सूक्ष्म शिराओ मे से हलका-हलका रक्तस्राव होने से वालो के चारो ओर त्वचा के नीचे छोटे-छोटे लाल चकत्ते (Petechiae) निकलने लगते हे । फिर धड की त्वचा पर भी रोम कूपो के आसपास ऐसे वडे-वडे चकत्ते (Ecchymoses) निकलते हे । त्वचा देखने मे खुश्क, खुर्दरी तथा उसकी वाहर की शुष्क स्तर अधिक स्पष्ट हो जाती है, दूसरे शब्दो मे Horny layer मोटी हो जाती है अर्थात् Hyperkeratosis हो जाता है । ऊर्ध्व वाहु के वहिपृष्ठ, पीठ, ऊर्ध्व जघा और जघा के पीछे की त्वचा पर ये लक्षण होता हे । रोगी के दन्त मास पहले से ही सूजे हुए होते हे और उनमे सुगमता से रक्तस्राव हो जाता है । वाद मे रोग के वढने पर टागो की मासपेशियो, विशेपत प्रसारक (Extensor) पेशियो मे रक्तस्राव होकर उनमे वेदनायुक्त तथा स्पर्शाक्षम ग्रन्थिया भी वन जाती है । हृदय-मास मे भी स्राव होकर हृदय शूल का रोग हो सकता है । नासिका आदि से खुला रक्तस्राव भी हो सकता है । Caries तथा Pyorrhoea का रोग भी वहुधा इस विटामिन की न्यूनता के कारण होता प्रतीत होता है ।

रोग विनिश्चय

Sphygmomanometer को ६० मिलीमीटर पर ३ मिनट रखने से शिराओ के वन्द हो जाने पर वाहु मे चकत्ते दीखने लगे तो इस रोग का निश्चय कर लेना चाहिए । रक्त मे प्लाज्मा मे Ascorbic Acid ५ से १ ५ प्र० श० तक होता हे । पर इस रोग मे इससे वहुत कम होता या सर्वथा नही होता । X-Ray से अस्थियो मे घनता के कम हो जाने के लक्षण पाये जाते हैं ।

चिकित्सा

नेत्र गत तथा शारीरिक नानाव्रणो (Ulcers) के रोहण के लिए इसे २०० मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन दिया जाता हे । दीर्घ रोगो मे जैसे उर क्षय मे भी इसके इतनी

मात्रा मे देने से रोग मुक्ति मे सहायता मिलती है। नीबू या सन्तरे के ३ औंस रस मे २५-५० मिलि० Ascorbic Acid होता है। यदि तीन महीने से ऊपर शिशु को ६ छोटे चम्मच तथा इससे बडे बच्चे को एक बडे सन्तरे का रस दिन मे दे दिया जाय तो उसकी विटामिन "सी" की आवश्यकता पूर्ण हो जाती है।

रोग के हो जाने पर २-४ औंस सन्तरे का या टमाटर का रस दिन मे दे देने या ५०० मिलिग्राम Ascorbic acid (Celin, Glaxo, Cebion E Merck, Redoxon Roche, Uni-c) दिन मे एक या दो बार देने मे एक सप्ताह मे रोग शान्त हो जाता है। तीन औंस सेव, केले, अगूर मे ५-५ मिलि०, टमाटर मे २५ मिलि०, गाजर, प्याज मे १० मिलि० होता है। सन्तरे तथा नीबू के रस ३ औंस मे १०० मिलि० के लगभग यह होता है। १० छ० दूध मे जो हलका गर्म किया हो ५ मिलि० तथा ताजे दूध १० छ मे १४ मिलि० होता है।

बडे व्यक्ति मे ४०-१०० मिलि० Ascorbic acid के शिरा द्वारा प्रतिदिन १० दिन देने से भी लाभ हो जाता है। या १०-१२ औंस टमाटर के रस के देते रहने से भी लाभ हो जाता है। ताजे फल न मिल सके तो दो दिन भीगे हुए चने खिलाने से भी लाभ होता है। गाजर-पत्ता गोभी, पत्रशाक, आलू, प्याज, मूली तथा सेव, नाशपाती आदि फलो से यह विटामिन हमे मिलता है।

विटामिन 'P' citrin भी विटामिन "सी" के साथ मिला हुआ नीबू, सन्तरे, लाल मिर्च आदि मे होता है तथा उसी के समान रक्तवाहिनियो के सेलो को भली प्रकार जोडने का काम करता है जिससे रक्तस्राव को रोकता है।

विटामिन "ए" के अभाव रोग

विटामिन "ए" एक फीका पीला-सा फैट मे घुलने वाला अलकोहल पदार्थ है जो पत्रशाक, गाजर, टमाटर आदि शाको मे पाये जाने वाले Beta Carotene (एक Hydrocarbon तथा Provitamin A) से आतो की श्लेष्मक कला Mucosa के द्वारा या हमारे यकृत् मे विद्यमान Carotenase के द्वारा तैयार होता है तथा यह यकृत् मे सचित होता रहता है। इसीलिए यकृत् इसका बडा स्रोत है तथा यकृत् रोग मे इसकी कमी हो जाना स्वाभाविक है। बना बनाया यह विटामिन हमे दूध की चिकनाई, अण्डे की जर्दी तथा Cod Liver Oil से मिलता है जो छोटी-छोटी मछलिया पौंदे (Algae) खाती है उनको खाने वाली बड़ी मछलियो के यकृत् मे यह बनता है। वानस्पतिक तेलो मे भी यह स्वल्प मात्रा मे होता है। दूध आदि को गर्म करने से यह नष्ट नही होता। इसके २०००-४००० Units (१ यूनिट = ६ माइक्रोग्राम Carotene) के लगभग प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन आवश्यक होते है। यह हमारे आवरण स्तरो (Epithelia) अर्थात् त्वचा और श्लेष्म कलाओ के निर्माण तथा उनके कार्य के ठीक-ठीक होने के लिए अत्यावश्यक है। चिर अतिसार, ग्रहणी रोग के होने पर तथा यकृत् के रुग्ण होने पर Carotene मे इसकी उत्पत्ति तथा सचय का कार्य बन्द हो जाता है अथवा उसका विलयन बन्द हो जाता है। विलयन के बाद यह Lymph द्वारा यकृत् मे सचित होता है, एव इसके अभाव मे श्लेष्मकलाओ के स्तम्भाकृति सेल क्षीण होकर चपटे से हो जाते है, एव उनमे कठोर (Horny Layer) स्तर उत्पन्न हो जाती है। नेत्र तथा श्वास मार्ग के सेलो मे यह क्षीणता देखी जाती है जिसमे Conjuctiva मे कठोरता Xerosis (Betot spots) हो जाता है। उनकी इस अवस्था मे उन पर जीवाणुओ का आक्रमण सुगमता से हो जाता है (यह Infection resistant है) तथा तीव्र रोग मे Keratomalacia होकर Cornea पर व्रण हो सकता है। पश्चिम नेत्र पटल (Retina) के Rods मे विद्यमान Visual Purple के लिये भी आवश्यक तत्त्व है। वहा यह Retinene नामक तत्त्व के रूप मे रहता है। इस विटामिन के अभाव मे त्वचा (Epithelial Cells) मे भी शुष्कता (Hyperkeratosis) आ जाती है। इसके अभाव मे आतो के अन्दर की तथा श्वासवाहिनियो के अन्दर की झिल्ली मे भी क्षीणता हो जाती है जिससे उनमे जीवाणु सक्रमण सुगम हो जाता है। अस्थियो की ठीक वृद्धि के लिए भी यह विटामिन आवश्यक है। इसके २,००० यूनिट हमे १० छटाक दूध या आधी छटाक मक्खन से या आधा सेर गाजर या बन्दगोभी से या ३-४ अण्डो से मिल जाते है। एक चम्मच Cod Liver Oil मे ६,००० से अधिक यूनिट होते है, Halibut Liver Oil की एक बूंद मे इसके ३,२०० यूनिट्स होते है। इस विटामिन के कारण नवजात प्राणी की वृद्धि होती है। अत इसे वृद्धि कारक विटामिन (Growth Vitamin) कहते है। Carotenoid १०० माइक्रोग्राम तथा Vitamin A ११६ Units के लगभग १०० मिलिलि० सीरम मे होता है (कृष्णास्वामी)।

रात्र्यन्धता —Night Blindness, Nyctalopia

Retina के Cones नामक सेल्स प्रकाश मे देखने का काम करते है, Rods नामक सेल अन्धेरे मे देखने का काम

करते है। Rods मे विद्यमान Visual purple या Rhodopsin एक रक्त वर्ण Carotene सदृश पदार्थ हे जो एक प्रोटीन से मिला हुआ है। जव Rods पर प्रकाश पडता है तो यह एक निर्वर्ण प्रोटीन (Opsin) और पीतवर्ण कम्पौण्ड Retinene मे जो Vitamin A का Aldehyde है फट जाता हे। वाद मे यह Vitamin A मे वदल जाता हे और उक्त प्रोटीन से मिलकर फिर Visual purple वन जाता है। Dark adaptation अर्थात् प्रकाश मे से अन्धेरे मे आने पर वहा वस्तुओ को अच्छी तरह देखने की जो शक्ति आ जाती हे वह इसी Purple के टूट जाने पर और शीघ्र फिर मे वन जाने पर निर्भर हे। यदि Rods मे विटामिन A न हो या कम हो तो यह Dark adaptation नष्ट हो जाता है।

Retina के Rods मे Visual purple के सूर्य के प्रकाश के द्वारा क्षीण हो जाने पर पहले-पहल तो रोगी की रात को मध्यम प्रकाश मे देखने की शक्ति नष्ट हो जाती है क्योकि विटामिन "ए" की अनुपस्थिति मे यह रग फिर आता नही है। इसके वाद कोहणियो तथा कलाइयो के पृष्ठ प्रदेश की त्वचा के रोम कूपो (Hair-Follicles) मे शुष्कता और कठोरता (Keratosis या Hyperkeratosis) के लक्षण होने लगते हे अर्थात् वहा की त्वचा शुष्क या रुक्ष दीखने लगती है। फिर Xerophthalmia (Xero=शुष्क) का रोग हो जाता हे अर्थात् नेत्रो के Conjunctiva मे शुष्कता और कठोरता का लक्षण उत्पन्न हो जाता है (Xerosis-conjunctivae) उस पर चाक के से कण दीखते हे (Bitot's Spots हो जाते हे)। नेत्रो के आवरण स्तर मे अपने को आर्द्र और मृदु रखने की जो सहज शक्ति हे वह कम हो जाती हे। स्पष्ट हे ऐसे नेत्रो मे जीवाणु सक्रमण सुगमता से हो जाता है। Cornea भी शुष्क हो सकता है (Xerophthalmia) जिससे Corneal ulcers हो सकते है। त्वचा के Psoriasis रोग की रुक्षता मे भी इसकी न्यूनता कारण हो सकती हे। श्वास नालियो के अन्तरावरण मे भी मृदुता और आर्द्रता के कम हो जाने से (Xerosis से) खासी तथा उर क्षय जनक जीवाणुओ का सक्रमण सुगमता से हो जाता है अत जीर्णकास मे इसे २४ हजार यूनिट मात्रा मे कुछ देना चाहिए। वृक्को के अन्दर Epithelium के अवयवो के झडने लगने से उन पर पथरियो के वनने की प्रक्रिया होने लगती है अर्थात् वृक्काश्मरियो या Renal Calculi के वनने का भय भी इस विटामिन के अभाव मे वढ जाता है। युवा-पिंडिका रोग मे इसे ५० हजार यूनिट मात्रा मे २-३ सप्ताह देने से लाभ होता है मुखशोथ या पाक (Stomatitis) मे इसे २४ हजार यूनिट मात्रा मे कुछ दिन देना चाहिए।

चिकित्सा

२५ हजार यूनिट विटामिन ए (Adexolin, १ सी० सी० १२,०००, यूनिट A-Vit १ ला० यू०, Radio-Stolcum १ सी० सी० १५,०००, Arovit १ सी० सी० १५,००००, Ampoules, Tablets, Cap) के प्रतिदिन १-२ वार कुछ दिन देने से उपयुक्त सर्व रोग शान्त हो जाते है। Prepalin नामक ओषधि की १ सी०सी० अम्प्यूल मे इसके १ लाख यूनिट्स होते है, कैप० मे २४०० यूनिट। तीव्र रोग मे इतनी मात्रा दैनिक देने से शीघ्र लाभ हो जाता है। रात्र्यन्धता मे, वाद मे, विटामिन 'ए' तथा 'डी' दोनो का प्रयोग कुछ काल जारी रखे।

रिवोफ्लेविन Riboflavin **या** B **की न्यूनता,** Ariboflavinosis (Ribos=**खाण्ड,** Flavus=**पीला**)।

विटामिन B_2 अवयवो मे Flavin-e-dinucletide के रूप मे रहता है तथा प्रोटीन्स के साथ मिलकर शरीर के वहुत से Enzymes मे रहता है।

Riboflavin **का इतिहास** —

Funk ने १९१२ मे जव चावलो के चोकर मे से Anti beri beri नामक तत्त्व को निकालने की घोषणा की थी तव उसने यह कहा था कि हो सकता है कि कोई Antipellagra और इसी प्रकार कोई Anti Scurvy नामक तत्त्व भी हो। इसके वाद Gold Barger (१९२५) ने जिन्होने पहले यह कहा था कि Pellagra, प्रोटीन भोजन के अभाव मे होता हे, यह घोषणा की कि यह रोग प्रोटीन भोजन के अभाव मे नही पर विटामिन "वी" के एक अश के अभाव मे होता हे। फिर १९२७ मे इंग्लैड की एक रिसर्च कमेटी ने इस अ श को विटामिन वी$_2$ का नाम दे दिया। उसी साल Sharman ने इस B_2 को दूध मे पाये जाने के कारण Lactoflavin का नाम दिया। फिर Warburg तथा Christian (१९३२) ने इसे (या B_2 को) Yeast मे से पृथक् कर लिया और क्योकि इसकी रचना मे इन्होने Ribose नामक खाण्ड को पाया और इसका रग उन्होने पीला पाया और इसलिए उन्होने इसे Riboflavin कह दिया। देखने मे यह एक चमकीला पीला पदार्थ हे जिसे अव Synthetic रूप मे वनाया जा रहा है।

इस प्रकार वाहर तो दूध, अण्डे, Yeast तथा कुछ एक वनस्पतियो के हरे पत्तो मे पाया जाने वाला आत मे Bacteria के द्वारा उत्पन्न होने वाला अग्नि से उतना

नष्ट नही होता जितना सूर्य के प्रकाश से होता है (धूप मे २ घ० पडा रहने से ८५% नष्ट हो जाता है, हलका उबालने से उतना नष्ट नही होता) तथा शरीर के सर्व अवयवो मे विशेषत मास, यकृत्, वृक्क आदि मे पाया जाने वाला यह रिवोफ्लेविन नामक विटामिन एक सहायक पाचक रस या Coenzyme का सा कार्य करता है अर्थात् सेलो मे पाये जाने वाले Enzymes की सहायता करता है एव प्लाज्मा मे से सेलो तक आक्सिजन को पहुचाने और उनके पाचन (एव Cell Respiration) का काम करता है। शरीर के कुछ एक मौलिक पाचक रसो जैसे Aminoacid Oxidase, Xanthine Oxidase और अन्यान्य Enzymes मे यह विटामिन पाचक रस के रूप मे रहता है। इस प्रकार यह Carbohydrates Aminoacids, aldehydes आदि का पाचन करके शरीर वृद्धि करने का काम करता है। अत इसे Growth Promoting विटामिन भी कहा जाता है। आत मे यकृत् आदि अगो मे यह पहले फास्फोरस से मिलकर अर्थात् Phosphorylated होकर फिर पाचक रस का सा कार्य करता है। Plasma मे यह ८ मा ग्रा प्रतिशतक स्वतन्त्र रूप मे पाया जाता है। W B C मे २५२ मा ग्रा प्र मिलिलि पाया जाता है। साधारणत हमे इसकी ६ मिलि० से २ मिलिग्राम तक प्रतिदिन आवश्यकता रहती है। उत्तम प्रोटीन आहारो विशेषत दूध के सर्वथा न मिलने या सग्रहणी के कारण आत मे से इसके विलीन न हो सकने से या यकृत् रोग के कारण इसके Phosphorylated न होने से, या भोजन के अग्नि पर अतिपचन के द्वारा, उसमे इसके नष्ट हो जाने से जब शरीर को यह ३-४ मास तक नही मिलता तब इसके अभाव सूचक लक्षण होने लगते है। क्योकि यह विटामिन अवयवो तक विशेषत जहा-जहा रक्तवाहिनिया नही होती वहा के सेलो को आक्सिजन पहुचाने का काम करता है तो इसके अभाव मे वहा-वहा नई रक्तवाहिनिया आ जाती है। उदाहरणत कार्निया मे जहा रक्तवाहिनिया नही होती वहा ये उत्पन्न हो जाती हैं जिससे वह लाल हो जाता है अर्थात् Keratitis का लक्षण हो जाता है। नेत्रो के Sclera मे भी लाली आ जाती है। नेत्र दाह और उनमे प्रकाश के लिए अक्षमता (Photophobia) हो जाती है। मुखछिद्र का तथा ओष्ठो की श्लेष्मकला पोषण के कम होने से पतली वह पड जाती है उनमे फीकापन अर्थात् रक्त की कमी हो जाती है और फिर मुखछिद्र के कोणो मे विपादिका फूट जाती है जिसे Angular Stomatitis कहते हैं। ओष्ठो के परस्पर टकराने वाले प्रदेश की श्लेष्मकला की बहिस्तर भी पोषण की कमी से पतली पड जाती है तथा फूट जाती है जिसे ओष्ठ शोथ या Chilitis या Cheilosis कहते हैं। जिह्वा की झिल्ली भी पतली व रक्त वर्ण होकर लुप्त हो जाती है जिसे जिह्वा शोथ Glossitis कहते हैं। जिह्वा पर Fissures भी हो सकते है। मुख, नाक, आख के पास-पास की त्वचा का बहिस्तर कुछ लाल होकर फिर मरकर झडने लग जाता है। मुख तथा नाक के समीप की त्वचा मे होने वाले इस त्वक् शोथ (Dermatitis of Seborrhic type) को Stannus (१९१२) ने Orogenital Syndrome कहा था क्योकि इस मुख त्वक्शोथ के साथ-साथ बहुधा अण्डकोश या भगोष्ठ पर भी शुष्क, रक्त वर्ण, कण्डू युक्त शोथ देखा जाता है (Vulval या Scrotal Dermatitis)। रोगी मे इस विटामिन की कमी से मासपेशियो का पोषण ठीक नही होता जिसमे उनमे निर्बलता तथा कृशता का लक्षण भी होता है। पाद-नाडी-शूल या Nutritional Polyneuritis का लक्षण भी रिवोफ्लेविन के अभाव मे वहा की प्रान्तीय नाडियो का पोषण न होने, दूसरे शब्दो मे उनके वसामय आवरण (Myelin Sheath) मे क्षीणता के हो जाने से उन पर सम्भवत किसी शारीरिक विष का दुष्प्रभाव होकर दर्द, दाह व निर्बलता के लक्षण हो जाते हे (Burning feet syndrome)। इस विटामिन के अभाव मे शारीरिक और मानसिक निर्बलता के लक्षण भी होते है। इस विटामिन की न्यूनता के साथ-साथ Aneurine और Nicotinic acid की भी न्यूनता प्राय होती है।

उपर्युक्त इन लक्षणो की शान्ति के लिए दैनिक १० मिलि० मात्रा मे Riboflavin (B flavin Roche Flavin B, B 1) का प्रयोग करना चाहिए या Brewer's Yeast का १ औंस मात्रा मे ३ बार दैनिक प्रयोग करना चाहिए। इस चिकित्सा से १ सप्ताह के अन्दर-अन्दर ये लक्षण शान्त हो जाते हे। आत के अन्दर विद्यमान स्वाभाविक जीवाणु वहा इसके निर्माण मे सहायक होते ह। अत यदि जीर्ण आन्त्र रोग हो या यकृद्रोग हो तो इसे ५-१० मिलि० दैनिक मात्रा मे देना जरूरी हो जाता है। जो Wide Spectrum antibiotic ले रहे हैं उनके लिए भी इसका लेना आवश्यक है।

Pentothenic Acid की न्यूनता :—

यह भी विटामिन "बी" काम्पलैक्स का अग है। इसे Antidermatitis या Anti grey hair Factor भी कहते है। १९४० मे इसे कृत्रिम विधि से बना लिया गया। यह Organic एसिड, Calcium Pantothenates के

रूप मे जो एक श्वेत Crystalline वर्ण है उपलब्ध होता है तथा हमारे रक्त मे १०० सी० सी० मे ३३ ३ माईक्रोग्राम मात्रा मे होता है। तथा हमे गेहू के आटे, दूध, अण्डे की जर्दी, मास Yeast आदि से मिलता है। यह विटामिन हमारे शरीर मे व्याप्त हृदय, यकृत्, वृक्को और Adrenals मे विशेष पाया जाता है। Colon मे Bacteria भी इसे बनाते है। फैट को पचाने (उसके Acetylation Coacetylase का) मे तथा कार्बोहाईड्रेड और प्रोटीन के कुछ अ श को फैट बनाने मे सहायक पाचक द्रव (Co-enzyme) का कार्य करता एव शरीर का पोषक होता है। हमारे मूत्र द्वारा ३ मिलि० के लगभग प्रतिदिन निकलता है। यह भोजन द्रव्यो मे बहुत होता है। अत इसका अभाव प्राय नही होता। इसके अभाव मे शरीर की वृद्धि ठीक-ठीक नही हो सकती। मुख, जिह्वा तथा आत मे ग्रहणी रोग के सदृश लक्षण होते है, व्यक्ति की उत्पादक शक्ति कम हो जाती है (Sterility हो जाती है), बाल असमय मे श्वेत हो जाते हैं व कपाल पर से उडने लगते है (Alopecia) तथा नाडी मण्डल मे निर्बलता आ जाती है अर्थात् Peripheral Neuritis हो जाता है। टागो, पैरो मे दाह (Burning feet syndrome) का लक्षण होता है। इसकी दैनिक आवश्यकता ५-१० मिलिग्राम की होती है। अभाव जनित रोगो मे Calcium-Pantothenate (Pantothindon Indopharma 10 Mg tablets, Behpanthen, Roche) १०-५० मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन दिया जाता है।

Pyridoxine या Vitamin B एक श्वेतसा Chrystalline चूर्ण है जो स्वभावत अनाजो, दालो और अण्डो के भीतर पाया जाता है। बडे व्यक्ति मे प्रतिदिन इसकी १ मिलिग्राम की आवश्यकता रहती है। अनाजो मे से इतनी मात्रा प्राय मिल ही जाती है अत इस विटामिन की न्यूनता के होने की कोई सम्भावना नही। यह Phosphorelated होने के बाद रक्त मे विशेषत सेलो मे Pyrodoxal Phosphate के रूप मे विशेषत रक्तकणो मे रहता है। रक्त के १०० मिलिलिटर मे ५ माइक्रोग्राम मात्रा मे पाया जाता है। सेलो के अन्दर यह दूसरे Enzymes के सहायक रूप मे काम करता है। अर्थात् Glycogen के ग्लूकोज मे परिपचन के लिए यह Glycogen phosphorylase का सहायक होता है। प्रोटीन्स के परिपचन मे भी यह सहायक या Coenzyme का काम करता है। Tryptophane जो शरीर की वृद्धि के लिए आवश्यक Amino-acid है उससे Nicotinamide के निर्माण मे तथा उसी से Serotonin के—जो मस्तिष्क मे एक Hormone का कार्य करता है और Vasoconstrictor है—निर्माण का कार्य करता है। Essential fatty acids के सेलो के अन्दर परिपचन मे भी, यह सहायक होता है जिससे इसके अभाव मे Atherosclerosis के होने की आशका रहती है।

इसके अभाव मे Peripheral Neuropathy के होने का दुर्लक्षण होता है। Isoniazid के कुछ काल देने पर भी इस विटामिन की कमी होकर Neuropathy के होने का भय रहता है अत उसके देने के साथ इस विटामिन का प्रयोग भी करना चाहिए। गर्भिणी स्त्रियो मे भी कभी इसकी कमी के कारण वमन या अरुचि (Morning Sickness या Hyperemesis gravidarum) के होने का लक्षण होता है। इसकी न्यूनता से बडे व्यक्तियो मे विषादरोग या Depression का दुर्लक्षण हो सकता है। छोटे बच्चो को जिनको केवल कृत्रिम दुग्धचूर्ण पर पाला जाता है उनमे इसकी न्यूनता हो जाने से कभी-कभी आक्षेप या Convulsions के होने का लक्षण हो सकता है। इन सब अवस्थाओ मे इस विटामिन की १०-२५ दैनिक मात्रा देने से लाभ हो जाता है। मासपेशियो की निर्बलता मे भी इसका प्रयोग होता है। अत Myasthenia gravis मे तथा Muscular Dystrophy अर्थात् मास शोथ रोग मे भी इसे उपयोगी पाया गया है। इन रोगो मे इसे १ मास के लगभग देकर देखना चाहिए। Atherosclerosis का निवारक होने से इसका जरावस्था की शान्ति के लिये भी प्रयोग होता है। पाण्डु रोग मे विटामिन बी$_{१२}$ के साथ इसका भी प्रयोग होता है। यह Gladoxin ५० मिलि० Benadon ४० मिलि० गोली के रूप मे मिलता है।

Choline की न्यूनता

यह भी विटामिन 'बी' काम्प्लैक्स का एक भाग है तथा Phospholipides का एक आवश्यक अग है। पहले-पहल क्योकि बाइल मे देखा गया इसे Choline नाम दे दिया गया। Yeast मे यह विशेषत पाया जाता है। यह हमारे रक्त के द्रव या प्लाज्मा के एक लिटर मे २०० मिलिग्राम के लगभग मात्रा मे प्रधानत Lecithin नामक Phospholipide मे होता है। Choline हमे सीधा अण्डे की जर्दी से मिलता है तथा दूध के प्रोटीन (Casein) से पहले Methionine नामक एमिनो एसिड और उससे फिर Choline बनकर हमे मिलता है। साधारणत यकृत् मे से Fatty Acids शरीर के अवयवो तक Lecithin (एक Phospholipide) के रूप मे जाते है। इस प्रक्रिया के ठीक-ठीक होने के लिए Best ने पहले-पहल बताया कि Choline आवश्यक होता है। इसकी ३ ग्राम मात्रा प्रति-

दिन आवश्यक होती है। इसलिये यह भी अन्य विटामिन 'बी' के अंशों के समान शरीरवर्धक या Growth के लिए आवश्यक तत्त्व है। जब हमारे भोजन में गंधक वाले Amino-acids न हों अर्थात् दूध का प्रोटीन या अण्डे का प्रोटीन सर्वथा न हो तो यकृत् तथा वृक्कों में फैट अधिक मात्रा में जमा होता जाता है जिससे यकृत् में वसामय क्षीणता (Fatty Degeneration) की प्रक्रिया होकर यकृद्वृद्धि (Fatty liver of Kwashiorkor या Cirrhosis) का रोग हो जाता है। ऐसी अवस्था में प्रोटीन भोजन या Skimmed Milk के तथा Choline Chloride या Choline Gluconate किसी के कैप्स्यूल (½ ग्राम के कैप्स्यूल मिलते हैं) के १-२ ग्राम की मात्रा में या Neomethidin syrup Neopharma, के या Lipotropic Compound (T C F.) के दो चम्मच मात्रा में या Choline dihydrogen citrate १० ग्रे० के दिन में २-३ बार देने से फैट यकृत् में से Lecithin के रूप में रक्त में जाने लगता तथा इससे यकृत् वृद्धि या Kwashiorkor में लाभ होता है। क्योंकि मुख द्वारा देने में उसका कुछ भाग Trimethyl-amine में बदल जाता है अतः मुख द्वारा देने की अपेक्षा इसे इन्जेक्शन द्वारा देना अधिक लाभदायक है। Choline के देने से रक्त में भी Cholesterole की मात्रा घटती है जिससे बड़ी आयु में होने वाले Arteriosclerosis या Atheroma में भी यह लाभदायक है।

Kwashiorkor वाल यकृत् वृद्धि, Fattyliver disease

Cicely William ने पहले-पहल १९३३ में इस रोग का वर्णन किया—

६ मास से ऊपर २-४ वर्ष तक के उन बच्चों को यह रोग होता है जिन्हें प्रोटीन युक्त आहार नहीं मिलता। इस रोग में एक तो यकृत् बड़ा हो जाता है जिससे पेट उभर जाता है, दूसरा शरीर के अंगों को प्रोटीन न मिलने से पोषण के अभाव में उनमें लघुता Nutrition distrophy आ जाती है। यकृत् की वृद्धि का कारण आहार में प्रोटीन या Aminoacids का विशेषतः Choline का अभाव है। परीक्षक लोग बताते हैं कि यदि किसी पशु को प्रोटीन से रहित विशेषतः Choline से रहित आहार पर रखा जाय तो कुछ काल बाद उसमें यकृत् वृद्धि हो जाती है। यकृत् के सेलों के अन्दर फैट के बैठते जाने से यह वृद्धि होती है। बालक के भोजन में प्रोटीन के न होने से उसके रक्त के सीरम् में अलब्यूमिन की मात्रा भी घट जाती है जिसके कारण उसमें श्वयथु Oedema का लक्षण भी न्यूनाधिक होता है। यह विशेषतः पैरों, हाथों तथा चेहरे पर होता है। यकृत् वृद्धि के कारण पेट भी उभरा हुआ दीखता है। प्रोटीन के अभाव में उसके सेलों के Cytoplasm में भी प्रोटीन की कमी रहती है जिससे नए सेलों के बनने की प्रक्रिया मन्द पड़ जाती है एवं बालक की वृद्धि रुक जाती है, क्योंकि सेलों की ठीक वृद्धि होने पर ही बालक की वृद्धि निर्भर है। प्रोटीन की कमी होने के कारण शरीर की मांसपेशियों में भी लघुता आ जाती है। आमाशय और आंत की श्लेष्म कला में भी लघुता की प्रक्रिया हो जाती है। लाला ग्रन्थियाँ, अग्न्याशय Pancreas के सेलों में भी लघुता आ जाती है। इनसे निकलने वाले Proenzymes या Enzymes की निकासी में कमी आ जाती है। इसीलिए ग्रहण्याशय (Duodenum) में Trypsin, Amylase तथा Lipase की मात्रा कम पायी जाती है। रक्त के सीरम में पाये जाने वाले Enzymes जैसे Esterase आदि में भी न्यूनता आ जाती है। अस्थियों की निर्माण प्रक्रिया भी मन्द हो जाती है। इसीलिए निर्बलता और मन्दता इस रोग के प्रधान लक्षण होते हैं।

लक्षण—बालक १ वर्ष की आयु तक तो ठीक सा ही रहता है। इसके बाद पहले उसकी भूख कम हो जाती है। खेलना छोड़कर वह चुपचाप पड़ा रहता है चिड़चिड़े स्वभाव का हो जाता है, निर्बलता के कारण जोर से रो भी नहीं सकता। आमाशय तथा आंत की श्लेष्म कला में लघुता के हो जाने से उसे अतिसार होते हैं जो मात्रा में बड़े, अर्धद्रव तथा बदबूदार होते हैं, जो ग्रहणी रोग (Steatorrhoea) के समान होते हैं। रक्त-निर्माण में जो कमी आ जाने से उसमें पाण्डुता का लक्षण भी होता है Macrocytic किस्म का होता है। यकृत् में फैट के सेलों में विकृति के आ जाने से उसमें हल्की सी कामला का लक्षण भी हो सकता है। यकृत् में फैट के संचित हो जाने से और उसके आकार में बड़ा हो जाने से पेट उभर जाता है। त्वचा की Epidermis में पोषण की न्यूनता से वह पतली पड़ जाती है। Dermis में फैट के जमा हो जाने से देखने में बालक मोटा सा दीखता है। Oedema के कारण भी पतला नहीं दीखता यद्यपि वास्तव में वह बहुत निर्बल होता है। परीक्षा करने पर यकृत्, पसलियों से २-३ इन्च नीचे स्पष्ट किनारों वाला अनुभव होता है। उसके रक्तकण २½-३½ मिलियन के लगभग होते हैं। रक्त के सीरम में अलब्यूमिन की मात्रा कम हो जाती है।

चिकित्सा

इस रोग की चिकित्सा न हो तो यह घातक हो जाता

है। चिकित्सा के लिए वालक को कोई प्रोटीन भोजन देना चाहिए। उदाहरणत दिन मे ४-५ औन्स Skimmed milk powder दे देना चाहिए। इतनी मात्रा को ५-६ हिस्सों मे वाट कर, चूर्ण को थोड़े जल मे मिलाकर पेस्ट वनाकर, उसमे अधिक जल मिलाकर, उसे उवालकर ठण्डा करके पिलाये या दिन भर मे २ पाइन्ट Skimmed milk वाट कर कई वार दे या सोयावीन का दूध वनाकर भी दिया जा सकता है। विटामिन की न्यूनता पूर्ण करने के लिए उसे किसी सब्जी या फल का रस भी दिन मे २ वार मिलना चाहिये। विटामिन B Complex का प्रयोग भी करना चाहिए। विटामिन B_{12} का प्रयोग पाण्डुता मे लाभ करता है। Choline को १ ग्राम मात्रा मे प्रतिदिन देने से यकृत वृद्धि मे विशेष लाभ होता है। विटामिन 'ए' ४०० I u की मात्रा मे तथा Ascorbic acid २० मिलि० मात्रा मे उसे प्रतिदिन मिलना चाहिए। अतिसारो के द्वारा शरीर मे से पोटासियम अधिक मात्रा मे निकलता है अत Pot Chloride १ ग्राम मात्रा मे उसे देना चाहिए।

Folic Acid या Pteroyl Glutamic acid की न्यूनता

यह भी पीले रग का Crystalline चूर्ण है जो विटामिन "वी" काम्प्लैक्स का एक भाग है जिसका पूरा-पूरा फार्मूला वन चुका हैं। यह शरीर की वृद्धि के लिये एक आवश्यक तत्त्व हैं। प्रतिदिन हमे ५० माइक्रोग्राम आवश्यक होता है। पहले (१९४५ मे) Angier के द्वारा पालक आदि के पत्तो मे से निकाले जाने से इसे Folic Acid कहा गया। प्रकृति मे यह Glutamic Acid से मिला हुआ मिलता है। आत मे Bacteria इसे पृथक् करने का कार्य करते है। Antibiotic औषधि के प्रयोग से इसकी शरीर मे न्यूनता हो सकती है। यह हमे पत्तो, अनाजो, दूध, यकृत् Yeast तथा मास से मिलता है। भोज्य द्रव्यो के घी तेल मे तलने मे इसका कुछ अ श नष्ट हो जाता हैं। आन्त्रगत कृमि भी इसे तैयार करते है। शरीर मे यकृत् तथा वृक्को मे विशेष रहता है। ग्रहणीआशय मे इसका विलयन होता है। यह यकृत् तथा मज्जा मे एक पाचक रस (Xanthine Oxidase) के द्वारा तथा विटामिन 'वी'$_{12}$ और विटामिन 'सी' की सहायता से अपने क्रियाशील रूप Folinic Acid (Citrovarum Factor) मे वदल जाता है और शरीर मे Thymine के वनाने का कि जिसकी Nucleic Acid तथा Nucleoproteins वनाने मे आवश्यकता होती है काम करता है। विटामिन वी$_{12}$ तो Desoxy ribonucleic acid तथा Ribo nucleic acid दोनो के निर्माण मे भाग लेना है जवकि Folic acid, folinic acid के रूप मे केवल दूसरे (RNA) के निर्माण मे भाग लेता है। इसलिए यह नाडी सम्वन्धी लक्षणो के लिए विशेष उपयोगी न होकर रक्तकण निर्माण मे विशेष उपयोगी होता है। इसके अभाव मे सेलो का विशेषत मज्जा के अन्दर वनने वाले रक्तकणो का Normoblast के रूप मे विकास ठीक-ठीक नही होता, जिससे वहा अविकसित सेलो अर्थात् Megaloblasts की वृद्धि हो जाती है एव रक्त मे अपरिणत रक्तकणो की वृद्धि से होने वाला पाण्डु, वात पाण्डु (Macrocytic Anaemia) हो जाता है। इस प्रकार Folic Acid तथा विटामिन "सी" दोनो रक्तकणो की उत्पत्ति मे सहायक होते है। ग्रहणी रोग Sprue या Malabsorption state or steatorrhoea मे होने वाला पाण्डु इस विटामिन के अभाव के कारण होता है। गर्भ की पश्चिम अवस्था मे होने वाला Megaloblastic anaemia of Pregnancy का रोग तथा सूखे दुग्ध चूर्ण पर पाले जाने वाले शिशुओ मे होने वाला Megaloblastic anaemia of infancy भी इस विटामिन की न्यूनता से होता है। इसीलिए गर्भिणी मे Folic acid की अधिक आवश्यकता रहती है। इसी प्रकार Dilantin तथा Phenobarbitone के प्रयोगकाल मे इसकी सम्भावना रहती है। प्रोटीन भोजन के अभाव (Nutritional macrocytic anaemia) मे भी उपयोगी है। ऐसी अवस्था मे ५-१५ मिलिग्राम Folic Acid (Folvite Lederle, Folicindon Indopharma T C F Folic acid) के प्रतिदिन एक वार १०-१२ दिन देने से लाभ हो जाता है (Ascorbic acid भी इसमे सहायक होता है)। इसके अभाव मे श्वेत कणो की उत्पत्ति भी कम होती है (Leucopenia होता है) जिससे मुख आदि की श्लेष्म कलाओ की प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है और वहा शोथ व व्रण हो जाते है। Liver Ex से भी Folic Acid मिलता है। Folvite Solution १० सी० सी० फायल भी इन्जेक्शन के लिए मिलती है। Hepafolin जिसमे यह B_{12} तथा Liver Ex से मिला हुआ है २ सी० सी० मात्रा मे प्रतिदिन मास द्वारा दिया जाता है। Lederplex मे B Complex, Liver Ex के साथ मिला हुआ यह मिलता है।

Inositol —

Hexa-hydroxy-cyclohexane (Phytin या Phosphoric Acid, कैल्सियम, तथा मैगनीशियम का कम्पौण्ड) या $C_6H_6(OH)_6$ भी विटामिन 'वी' कॉम्पलैक्स का एक अश है। जो सन्तरे, नीबू आदि साइट्रस फलो, अनाजो,

पत्रो, यीस्ट से हमे मिलता है तथा यकृत् वृक्क और मास-पेशियो मे भी होता है। मनुष्य मे इसकी न्यूनता के विषय मे अभी कुछ पता नही। पशुओ मे इसकी कमी से शारीरिक वृद्धि मे कमी होती हुई देखी गई है। उनके आखो मे विकृति तथा वाल उडते देखे गये है। यकृत् मे वसा वृद्धि का लक्षण भी देखा गया है। इसकी दैनिक मात्रा ३ ग्राम है। इसके लिए Delphicol Solution Lederle, Lipovit Syrup Geo manners, Neomethidin, या T C F Lipotropic compound का सेवन कर सकते है।

विटामिन बी$_{12}$ अथवा Cyanocobalamin की न्यूनता

अमरीका मे Rickes (१९४८) ने तथा Lester-Smith ने, दोनो ने स्वतन्त्र रूप से यकृत् मे से एक रक्त-वर्ण स्फटिक योग (Crystalline Compound) पृथक् किया। उसमे यह इतना स्वल्प मात्रा मे होता है कि ४० मन यकृत् मे से यह केवल २० मिलि० मिला और वाद मे West ने हमे वताया कि यह पदार्थ १ माइक्रोग्राम मात्रा मे उतना प्रभाव करता है जितना एक U S P Unit Liver Extract करता है। यही Castle (१९३१) का भोजन मे विद्यमान Extrinsic Factor है जो आमाशय के प्रथम भाग की श्लेष्म कला मे विद्यमान Intrinsic Factor (Haemopoietin एक Mucoprotein) के साथ मिलकर Haemopoietic Factor के रूप मे आत के निचले भाग (Ileum) मे से विलीन होकर यकृत् मे सचित होता रहता हे (पशुओ के १०० ग्राम यकृत् मे ५०-१२५ माइक्रोग्राम तक होता है)। यकृत् के इस क्रियाशील तत्त्व को विटामिन बी$_{12}$ कहा जाता है। अभी तक इसके फार्मूले का ठीक-ठीक तो पता नही चला पर यह Cobalt का योग है। इसी से इसे Cyanocobalamin भी कहा जाता हे। साधारण मात्रा मे यह शरीर के सर्व अवयवो मे होता है। रक्त के एक मिलिलि० मे ४०० माइको माइक्रोग्राम के लगभग मिलता है। हमारे यकृत् के एक ग्राम मे २ मा० ग्रा० के लगभग होता है। अव यकृत् के स्थान पर इसे Streptomyces Griseus तथा Aureofaciens नामक जीवाणुओ मे से जिनमे से Streptomycin वनता हे वनाया जाता है। यह पदार्थ हमे दूध, पनीर, मास, आटे, अण्डे आदि प्रोटीन भोजनो से स्वल्प मात्रा मे प्राप्त होता है और आँतो के Proteolytic enzymes इसे प्रोटीन्स से पृथक् करते हे तथा आतो मे विद्यमान जीवाणु इसके वनाने का काम भी करते हैं। मास को आमाशय रस अथवा आमाशय की झिल्ली के साथ हलकी गर्मी पर कुछ काल रखकर इस Anti-anaemic Principle को तैयार किया जा सकता है। स्पष्ट है जो शाकाहारी सर्वथा दूध नही लेते या अण्डे, पनीर आदि को तल कर लेते है उनमे इसकी न्यूनता हो जाती हे। ग्रहणी रोग मे तथा वृद्धावस्था मे भी इसका आत से विलयन कम होता है। (रक्त के प्रति मिलिलि० मे ९० मा० माइक्रोग्राम से कम)। ऐसे वालको की जो दूध या अण्डा नही लेते उचित वृद्धि नही होती, यकृत् रोगो मे भी यकृत् मे इसका सचय कम हो जाता है। यह द्रव्य शरीर के सेलो के Nuclei के निर्माण मे अर्थात् Nucleic Acid तथा Nucleoprotein के निर्माण मे सहायक होता अर्थात् Folic Acid, यकृत् तथा मज्जा मे Ascorbic Acid या विटामिन 'सी' की सहायता से Folinic Acid मे परिवर्तित होकर Uracil को Thymine मे परिवर्तित करने का काम करता है। जो फिर विटामिन B_1 के द्वारा Thymidine मे परिवर्तित होता है और वह फिर Nucleic Acid के निर्माण मे काम आता है जो Desoxyribonucleic Acid (DNA) तथा Ribonucleic Acid (R N A) दो प्रकार का है जो दोनो Chromosomes तथा Cytoplasm मे प्रोटीन द्वारा निर्माण कार्य करते है। D N A के अभाव मे Nerve axons या Cytoplasm का निर्माण ठीक-ठीक नही होता। R N A के अभाव मे Cell Nuclei का निर्माण ठीक नही होता विशेषत रक्तकणो को वनाने वाले मज्जा के सेलो, वात नाडियो के सेलो और भोजन मार्ग सम्वन्धी सेलो के Nuclei का। इसीलिए इसके अभाव मे अथवा आमाशय के Intrinsic Factor के अभाव मे जव यह यकृत् मे जमा नही होता तव मज्जा के अन्दर वडी मीगियो वाले सेल (Megaloblasts) छोटी मीगी वाले सेलो और साधारण रक्त कणो (Erythro-Blasts) मे यथावत् परिणत नही हो पाते जिससे वातिक पाण्डु (Macrocytic Anaemia) हो जाता है। इसीलिए इसे Erythrocyte Maturation Factor कहते है। Folic Acid या Folinic Acid इस वातिक पाण्डु रोग मे विटामिन वी$_{12}$ के विना सेलो मे कार्यकारी नही हो पाता। Epithelia के सेलो विशेषत महास्रोतस् के Epithelial सेलो के निर्माण मे भी यह सहायक होता हे। सुषुम्ना काण्ड (Cord) के सेलो तथा दीर्घ सूत्रो (Neurones) के लिए भी विटामिन वी$_{12}$ विशेषत पोषक एव वर्धक होता है। इसके अभाव मे उसके पश्चिम सज्ञा सूत्रो तथा पार्श्वीय चेष्टा सूत्रो (Post तथा Lateral Columns) के पहले तो Myelin Sheaths अर्थात् आवरण मे और वाद मे उनके सूत्रो (Axis Cylinders) मे भी क्षीणता हो जाती हे। इसे Sub Acute Combined

Degeneration of the Spinal Cord कहते हैं। सुषुम्ना काण्ड के मज्जा सूत्रों (Post Column) में क्षीणता हो तो हाथों पावों में सुप्ति (Numbness), चिमचिमाहट (Tingling या Paraesthesia) और अस्थिरता के लक्षण होते हैं, पादतलों में सज्ञाहीनता प्रतीत होती है। पावों के नीचे रुई की गद्दी रखी प्रतीत होती है। निम्न शाखायें निर्बल तथा अस्थिर हो जाती है। पाण्डुता के साथ ये लक्षण हों तो इसी रोग का सदेह होना चाहिए। Peripheral Nerves के मज्जा सूत्रों में रोग का प्रभाव हो तो पाव तथा निम्न जघाओं में दर्द होने का लक्षण भी होता है। इनकी मासपेशिया शिथिल तथा कृश हो जाती है। ऐसी अवस्था में पाव तथा उनकी अगुलियों को ऊपर की तरफ उठाना कठिन होता है तथा रोगी को चलने-फिरने पर टागों में दर्द होता है। सुषुम्ना काण्ड के चेष्टा सूत्रों (Lateral Column) में रोग का प्रभाव अधिक हो तो जघाओं में निर्बलता के साथ स्तब्धता और चलने में अस्थिरता का लक्षण भी होता है। (Upper Motor Neurone Disease के कारण) तब पावों तथा अधोजंघाओं में सज्ञानाश का लक्षण विशेष नही होता। विटामिन की न्यूनता विशेष हो तो टागों में स्तब्धता, निर्बलता, अस्थिरता बढ़ती जाती है (Paraplegia)।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि D N A के अभाव मे नर्व सेलों का पोषण ठीक न होने से नाडी सम्बन्धी (Neurological) लक्षण विशेष होते है। Vit B_{12} विशेषत D N A का पोषक होता है। अत नाडी सम्बन्धी लक्षणों के लिए Vit B_{12} उपयोगी रहता है।

विटामिन बी$_{12}$ के अभाव मे उत्पन्न वातिक पाण्डु रोग तथा सुषुम्ना काण्ड की क्षीणता मे २५० माइक्रोग्राम की मात्रा मे इसे मास द्वारा प्रति दूसरे दिन १० मात्राओं तक देने से पर्याप्त लाभ प्रतीत होता है। इसके बाद २५० मा० ग्राम मात्रा मे सप्ताह मे २ बार और इसके बाद १-२ सप्ताह मे १ बार इसे इसी मात्रा मे दे दिया जाता है। इन रोगों के अतिरिक्त नाडी क्षीणता जनित (Neuropathic) ऐसे रोगों मे जैसे Neuritis, नाडीनैर्बल्य (Neurasthenia), नाडी शूल (Neuralgia) विशेषत Trigeminal Neurolgia, Diabetic Neuropathy, कक्षा रोग (Herpes), मस्तिष्क सप्तम नाडी रोग (Bell's palsy) उरुस्तम्भ (Paraplegia), बुद्धिभ्र श (Dementia), विषाद रोग (Depression), चेष्टाप्रधान मानस रोग, मनोविभ्रम (Delusion), मनोनैर्बल्य (Mental Excitability) मे Viral Hepatitis, तथा Psoriasis मे, सुषुम्ना काण्डगत क्षीणता के कारण उत्पन्न अनैच्छिक मूत्र स्रवण (Incontinence) मे, तथा नाडी रोग जनित दृष्टि नाश (Optic Atrophy) मे तथा मस्तिष्क सुषुम्ना गत नाडी सूत्रों की क्षीणता (Central Nervous System Degen) से होने वाले स्तम्भ, कप (Spasm Tremor) आदि अनेक रोगों मे तथा Allergy से होने वाले Dermatitis मे इसके प्रयोग से लाभ होता हुआ देखा जाता है। Facial palsy अर्दित रोग मे तथा Diabetic Neuritis मे इसे Neurobion इजेक्शन के रूप मे २ सप्ताह देना चाहिए। साधारण व्यक्तियों को इसकी १ माइक्रोग्राम मात्रा प्रतिदिन आवश्यक होती है। ग्रहणी (Sprue) रोग मे ५०-१०० मा० ग्राम मात्रा मे Neurobion Forte गोली के रूप मे प्रतिदिन १ सप्ताह तक और बाद मे सप्ताह मे एक बार इसके देने से लाभ हो जाता है। Nutritional Anaemia मे भी इसी मात्रा में इसे सप्ताह मे २ बार देकर फिर १५ दिन मे एक बार कुछ मास देने मे बडा लाभ प्रतीत होता है। वात रोगों (Nervous diseases) मे इसे ५००-१००० मा० ग्राम मात्रा मे एक दिन छोडकर २-४ सप्ताह तक देना चाहिए। Lipotropic प्रभाव के लिए भी इसका प्रयोग होता है।

बाजार मे मिलने वाले योग

(१) Macrabin Ampoules (५० से १००० मा० ग्राम प्र० सी० सी०)
(२) Macrabin Oral Liquid (प्रति चम्मच मे २५ म० ग्रा०) Glaxo
(३) Macrafolin (B_{12}, Folic Acid, Nicotinamide)
(४) Rubraton Elixir (B_{12}, Folic Acid Iron) मा० ग्रा० सी० सी०।
(५) Anacobin Inje B D H (५०-१००० मा० ग्रा० सी० सी० तथा Elixir)
(६) Triredisol (१००-१००० मा०ग्रा० सी०सी०) M S Dohme
(७) Rubramin Solu Squibb

विटामिन बी काम्पलेक्स

इस प्रकार विटामिन बी$_1$, Riboflavin, Niacin, Pyridoxine आदि शरीर के सभी सेलों मे रहते है और उनको आक्सिजन पहुचाने (Cellular Oxidation) के लिए उपयोगी होने से Coenzyme होने से शरीर की धातुओं के लिए पोषक व वर्धक होते हैं। इस प्रकार ये बल्य है। परीक्षक लोग बताते है कि इनके अभाव मे शरीर की सक्रामक रोगों के प्रति रोग-निरोधक शक्ति भी गिर

जाती है क्योकि ये Antibodies के निर्माण मे कुछ भाग लेते है।

विटामिन "ई" की न्यूनता — (Antisterility Vitamin)

गेहू और जैतून मे तथा अन्य बीजो के फूटते अकुरो के अन्दर विद्यमान स्नेह मे एक फैट सोल्युवल, पीले से रग के तेल के समान, पेचीदे फार्मूले का विटामिन होता है जिसे विटामिन "ई" कहते हैं। कोमल पत्तो से भी यह हमे मिलता है, दूध, अण्डे, सोयावीन तथा विनौलो मे भी होता है। Wheat Germ Oil से विशेषत हमे मिलता है, मास मे भी मिलता है। यह गर्मी से नष्ट नही होता। Seed Germ Oil के विदग्ध हो जाने से यह नष्ट हो जाता है। कृत्रिम तौर से यह Alpha, Beta, Gamma Tocopherol है। इनमे से प्रथम ही उपयोग मे आता है। हमे इसकी ५ मिलि दैनिक की आवश्यकता होती है जो साधारण भोजन से हमे मिल जाती है।

कहा जाता है कि इम विटामिन के अभाव मे स्त्री मे गर्भ अर्थात् Foetus तथा Placenta घुल कर नष्ट हो जाते हैं। पुरुष मे शुक्रोत्पादक झिल्ली (Seminiferous Epithelium) नष्ट हो जाती है, जिससे शुक्र कणो मे क्षीणता आ जाती है और उत्पादक शक्ति नष्ट हो जाती है। स्त्री मे गर्भाशय की ठीक-ठीक वृद्धि नही होती (Uterine Hypoplasia) तथा आर्तव ठीक-ठीक नही होता। परन्तु इम कथन मे कितना तथ्य है इम विषय मे अभी तक कुछ नही कहा जा सकता, तथापि वार-वार हो जाने वाले गर्भपात रोग (Habitual Abortion) मे इसका प्रयोग लाभदायक पाया गया है। गर्भपात की आशका मे भी इसका प्रयोग किया जाता है। आर्तव समाप्तिकाल मे होने वाले कष्टो (Menopausal Complaints) के लिए भी इससे लाभ होता देखा जाता है। इसके अतिरिक्त हृदयपोषक धमनियो तथा जाघो की पोषक धमनियो मे न्यूनाधिक अवरोध (Coronary Insufficiency) की अवस्था मे भी उनके स्रोत को चौडा करने के लिए इसका प्रयोग लाभदायक पाया जाता है अत Angina और Intermittent claudication अर्थात् चलने पर जघाशूल हो जाने पर इसका प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार हाथ, पाव मे शीत लगकर उत्पन्न होने वाले सिरावरोध रोग (Raynaud's Disease) मे जो नवयुवक स्त्रियो मे अधिक पाया जाता है जिसमे शीत से अगुलिया श्वेत तथा कुछ नील वर्ण-सी हो जाती है इसमे लाभ होता हुआ देखा जाता है। मासशोष (Muscular Dystrophy) रोग मे पशुओ मे इसे लाभदायक पाया गया है। प्रोटीन की न्यूनता से होने वाले वातपाण्डु (Megaloblastic Anaemia मे) विशेषत शिशुओ के इस पाण्डु रोग मे इस विटामिन के प्रयोग से पूर्ण आराम होता हुआ भी देखा गया है। चिर अतिसार, ग्रहणी रोगातिसार मे इसकी न्यूनता हो सकती है।

इन कष्टो मे विटामिन "ई" का ३० मिलिग्राम दैनिक मात्रा मे कुछ दिनो तक प्रयोग मुख द्वारा किया जाता है। आर्तव समाप्तिकाल (Menopaus)के कष्टो की शान्ति के लिए १० मिलिग्राम दैनिक मात्रा पर्याप्त समझी जाती है। हृदयपोषक धमनियो के अवरोधजनित रोग मे इसकी वडी मात्रा अर्थात् ७५ मिलिग्राम मात्रा प्रतिदिन दी जाती है। Intermittent claudication अर्थात् चलने पर होने वाले अवोजघाशूल मे इसे लाभदायक पाया गया है। इस उद्देश्य से Alpha Tocopherol Acetate ७५ मिलिग्राम, Priscoline २० मिलिग्राम के साथ दिन मे ४ वार दिया जाता है। शुक्र सम्वन्धी निर्वलताओ मे इसे १०० मिलि० दैनिक मात्रा मे २-४ मास देने से बहुधा लाभ देखा जाता है। Femoral Vein मे अवरोध के होने पर जिसे White Leg का रोग कहते है इसके प्रतिदिन १००-२०० मि० मात्रा मे देने से २-३ दिन मे दर्द शान्त होता देखा जाता है।

इस विटामिन के देने के लिए Wheat Germ Oil (Lilly) १-२ चम्मच की मात्रा मे दिया जा सकता है। Vitcolin Capsules Glaxo (६ मि०) या Gelseal Eprolin (५० मिलि०) दिये जा सकते हे। Ephynal (Roche) की गोलियॉ (१०मिलि) या Tocopherex के कैप्स्यूल (५० मिलि०) या Phytopherol (३० मि०) कैप्स्यूल या इसके और "ए" विटामिन के मिश्रण (Rovigon Roche) दिये जा सकते है।

विटामिन "के" (Vitamin "K") "Koagulation या Anti Haemorrhagic Vitamin" की न्यूनता

विटामिन "के" स्नेह मे घुलने वाला विटामिन है जो हमे प्रकृति मे हरी सब्जियो से, सोयावीन मे विद्यमान तेल से, दूध के Casein से, विनौलो, अण्डे, मास आदि से मिलता है। हमारे साधारण भोजन मे यह इतना है कि इसकी न्यूनता की सम्भावना बहुत कम है। यह आत मे से Lacteals के द्वारा Thoracicduct मे पहुचता और वहा से यकृत् मे जाता हे और वहाँ Prothrombin के निर्माण मे काम आता है। Copenhagen के Dam (१९३५) ने यकृत् के स्नेह मे से इसे पृथक् किया और वताया कि यह रक्त के जमने की प्रक्रिया मे सहायक होता है। आत मे

रहने वाले जीवाणु भी इसे बनाते हैं और उनसे हमें यह विशेष मात्रा में मिलता है। इसीलिए Antibiotic औषधियों के दीर्घ प्रयोग में इसकी न्यूनता हो सकती है। इसके स्नेह के अन्दर घुलनशील होने से कामला रोग Jaundice में जब Bile Salts आंत में कम आते हैं, इसका विलयन कम हो जाता है। इसीलिए कामला रोगी को चोट लगने पर अधिक रक्तस्राव हो जाता है। पुराने अतिसार में तथा यकृद्रोग में इसकी एवं Prothrombin की न्यूनता हो जाती है। हरी वनस्पतियों से मिलने वाले विटामिन को K_1 तथा जीवाणुओं और जान्तव जगत् से मिलने वाले विटामिन को K_2 कहते हैं। इसके फार्मूले मिलते-जुलते हैं तथा पेचीदा(Complex) हैं। अब इसका कृत्रिम भेद Naphthaquinone या Menaphthone जो इनसे तीन गुणा क्रियाशील है तथा सस्ता पड़ता है, काम आता है। यह Menadione के नाम से ५% तेल में घुला मिलता है तथा मांस द्वारा दिया जाता है। Menadione Sodium Diphosphate के रूप में जल में घुलने वाला यह Synkavit, Kapilin आदि नाम से मिलता है जो मुख व मांस से दिया जाता है। इस विटामिन के अभाव में यकृत् से Prothrombin तथा Factor VII का निर्माण भली प्रकार नहीं हो पाता जिससे रक्त के जम जाने का समय (Clotting Time) जो साधारणत ३-१० मिनट तक होता है, दीर्घ हो जाता है अर्थात् रक्तस्राव हो जाने की आशंका बढ़ जाती है। यदि Prothrombin नार्मल मात्रा के १५ प्र०श० कम हो जाय तो अकस्मात् रक्तस्राव होने का भय रहता है। पहले रक्तस्राव मूत्र द्वारा होता है। इसके विलयन के लिए आंत में बाइल का होना जरूरी है अत यदि यकृद्रोग हो, कामला हो तो इस विटामिन का विलयन नहीं होता।

प्रसव के समय माता में विटामिन "के" के कम होने से शिशु में जब यह नहीं आता तो उत्पन्न होने के दूसरे-तीसरे दिन तक उसकी नाभि या आंत या नाक आदि में से कभी-कभी रक्तस्राव हो जाता है (Haemorrhage of the New Born)। इसकी रोकथाम के लिए बहुधा माता को प्रसव से एक सप्ताह पहले विटामिन 'के' या Menaphthone (Menadione, Synkavit Roche या Kapilon Oral Glaxo या Prokayvit B D H) ५-१० मिलिग्राम मात्रा में (१ सी० सी०) मांस द्वारा दे दिया जाता है या इतनी मात्रा की गोली मुख द्वारा प्रसव से पहले कुछ दिन दे दी जाती है। यदि शिशु को रक्तस्राव होने लग जाय तो Synkavit १ मिलि० मात्रा में मांस द्वारा ८-१० घंटे के अन्तर से २-३ बार देने से वह रुक जाता है। इसके साथ Ascorbic acid ५० मिलिग्राम मात्रा में दिन में २ बार दे देना उचित है। शल्यकर्म में रक्तस्राव अधिक न हो एतदर्थ इसे पहले दे दिया जाता है। कामला रोग में भी रक्तस्राव के उपद्रव को रोकने के लिए इसे दे दिया जाता है। ग्रहणी रोग (Sprue) में भी इस विटामिन की न्यूनता होती है। एतदर्थ भी ३-४ मिलि० दैनिक मात्रा में इसे दे दिया जाता है। यकृत वृद्धि तथा Hepaticcoma में १० मिलि० मात्रा में इसे इंजेक्शन द्वारा दे दिया जाता है—Viral Hepatitis में ५ मिलि० मात्रा में दिन में ३ बार इसे देना चाहिए।

जब रक्त में जमने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है जैसे कि प्रसव के बाद एक Femoral Vein में Thrombosis की अवस्था में होता है अथवा हृदयपोषक रक्तवाहिनियों में सिरावरोध (Thrombosis) की अवस्था में होता है तब वहां रक्त की जमने की प्रवृत्ति को कम करने के लिए Anti-coagulant औषधि अर्थात् जो रक्त में Prothrombin की मात्रा को कम करने का काम करती है (जैसे Coumarins, Phenindion) दी जाती है। यदि उस औषधि के कारण रक्त में Prothrombin की मात्रा अधिक घट जाय जिससे Prothrombin Time लम्बा हो जाए तथा मूत्र में रक्तकण (Red Cells) आने लगे या कहीं से रक्तस्राव होने लगे तो Anti-coagulant औषधि को सर्वथा बन्द करके विटामिन "के" Phytomenadione Capsule को १०-२० मिलि० मात्रा में मुख से या शिरा द्वारा (Phytomenadione Injection ५-२० मिलि०) दे दिया जाता है। यदि Prothrombin की न्यूनता बनी रहे Prothrombin Time दीर्घ ही हो तो ८-१० घंटे बाद इसकी उचित मात्रा दुबारा भी दी जा सकती है।

विटामिन्स की सूची

विटामिन बी१ (Thiamine Hydrochloride)

उपस्थिति—यीस्ट, अनाजों के चोकर, सेम आदि फलियों, अण्डे की जर्दी, आलू में होता है। नाड़ियों और आंतों की Tone बढ़ाता है। इन्हें बहुत देर तक या क्षार के साथ थोड़ी देर पकाने पर नष्ट हो जाता है। १ हजार कैलोरी के भोजन के पीछे इसकी ५ मिलि० मात्रा आवश्यक होती है। इस प्रकार १२ से १६ मिलि० इसकी दैनिक आवश्यक मात्रा है। इसके अभाव में बेरि बेरि, अन्नारुचि, Calitis, Constipation, नाड़ीशोथ (Peripheral Neuritis) रोग होते हैं। मात्रा दैनिक २०-४० मिलि०।

विटामिन बी२ (Reboflavin)

उपस्थिति—दूध, पत्रशाक, अण्डे, अंकुरित अन्न में। २ मिलि० मात्रा दैनिक आवश्यकता Growth में सहायक

है। अभाव मे मुख के किनारो तथा ओष्ठो मे शोथ, नाक के पास त्वक्शोथ, जिह्वा शोथ, नेत्रशोथ Impaired growth दैनिक मात्रा १०-५० मिलि०।

Niacin (विटामिन बी, का पिलाग्रारोधक तत्त्व)

यीस्ट, दूध, दालो, मास, अण्डे से मिलता है। गर्म करने से नष्ट नही होता Growth मे सहायक आता तथा त्वचा का रक्षक है।। दैनिक आवश्यकता १०-१६ मिलि०, बालक मे ५ मिलि०। अभाव मे पिलाग्रा अर्थात् त्वचा पर कही-कही लाल खुर्दरे से चकत्ते, जिह्वाशोथ, मुखशोथ, अतिसार, आध्मान, विषाद आदि युक्त मानस रोग, उरुस्तम्भ (Paraplegia) होते है। चिकित्सा की मात्रा ५०-२५० मिलि० दैनिक।

विटामिन बी$_6$ (Pyridoxine)

शरीर मे यह भी Amino Acids के पाचन (Decarboxylation) मे काम आता है। Physical Mental growth का कारण है। अन्न, मास, दालो, पालक मे उपस्थित है। यीस्ट, दूध अण्डे, चुकन्दर, दैनिक आवश्यकता २ मिलि०। नाक, आख, मुख के आस-पास स्निग्ध त्वक्शोथ (Seborrhoea), ओष्ठशोथ, जिह्वाशोथ में Riboflavin के समान उपयोगी है। मानसिक विषाद तथा उन्निद्रता (Insomnia), मासशोष (Muscular atrophy) Parkinson के स्तम्भ रोग (Parkinsonism) तथा गर्भिणी वमन के लिए यह उपयोगी द्रव्य है। मात्रा १०-२५ मिलि० दिन मे ३ बार (Benadon Tab Roche, Gladoxin Glaxo)

Pantothenic Acid

दूध, अण्डे, अनाज, मास मे उपस्थित। दैनिक आवश्यकता ४-१० मिलि०। इसे Antidermatitis factor भी कहते है। यह भी धातुओ के पचन मे सहायक होता है अर्थात् Coenzyme है, कार्बोज, फैट्स तथा प्रोटीन्स के धातुपाक Metabolism मे सहायक है। अभाव मे पैरो, टागो मे दाह, बूढो मे इसके अभाव मे केशनाश तथा पलित (Alopecia Grey Hair) के लक्षण होते है। Calcium Pantothenate १००-१५० मिलि० दैनिक। 'Burning foot Syndrome' के रोग में पैरो मे जलन, दर्द के लक्षण रहते है। Calcium Pantothenate २० मिलि० के मास मे इन्जेक्शन देने और B Complex के मुख से देने से आराम आता है—प्रोटीन्स भी देवे।

अण्डे की जर्दी, मास में उपस्थित। २ ग्राम दैनिक आवश्यकता। अभाव मे यकृद्वृद्धि, यकृत् मे वसावृद्धि, वृक्को मे वसावृद्धि मे रक्तमेह, रक्तवाहिनियो मे अवरोध (Atherosclerosis) ३-६ ग्राम मात्रा मे चिकित्सार्थ प्रयोग।

Folic acid

यीस्ट, ताजी सब्जियो, मास, अन्न से मिलता है रक्तकणो के निर्माण मे सहायक है। ग्रहणीरक्षक है। दैनिक आवश्यकता १ मिलि०। अभाव मे वातिक (Macrocytic) पाण्डु, ग्रहणी रोग। १०-१५ मिलि० दैनिक मात्रा।

विटामिन बी$_{12}$

दूध, अण्डे, आटे, प्रोटीन्स मे स्वल्पाश मे उपस्थित Haemopoitic, Neurotropic, Growth promoting, Coenzyme है। दैनिक आवश्यक मात्रा १-२ माइक्रोग्राम अभाव मे वातिक (Macrocytic) पाण्डु, Subacute Combined Degeneration of the Spinal Cord, नाडी सस्थान के रोग (Neuropathy), मधुमेह जनित नाडी रोग, बालको मे वृद्धि की कमी। मात्रा ५०-१०० माइक्रोग्राम एक-एक दिन छोडकर।

विटामिन "ए" ($C_{20}H_{30}$)

दूध, मक्खन, अण्डे की जर्दी, काड-लिवर आयल तथा गाजर, पालक मे विद्यमान Carotene ($C_{40}H_{56}$) के पूर्व रूपो से उपलब्ध होता है Growthpromoting Infection resistant in the tissues, नेत्रज्योति-रक्षक। दैनिक आवश्यकता बालको को १,५००, बडो को ३०००, यूनिट (B-Carotene ३ माइक्रोग्राम=१ यूनिट) अभाव में रात्र्यन्धता, शारीरिक वृद्धि की न्यूनता, वृक्काश्मरी, "अन्न मार्ग" तथा "श्वास मार्ग" मे सक्रमण जनित रोग, दातो के इनेमल की निर्बलता, त्वचा की शुष्कता Xerophthalmia-Keratomalacia, चिकित्सा की मात्रा १५,०००-५०,००० यूनिट्स।

विटामिन "डी" (Antirachitic **विटामिन**)

दूध, अण्डे की जर्दी, मक्खन, यीस्ट, वानस्पतिक तेल, काड-लिवर आयल मे उपस्थित है, बालको युवको के लिये अस्थिनिर्माण मे आवश्यक। दैनिक आवश्यकता बडो को १५० यूनिट्स, शिशुओ को ४०० यूनिट्स (काड-लिवर आयल १ चम्मच या हेलीबुट-लिवर आयल ६ बूद =४०० यूनिट्स से) अभाव मे अस्थि शोष (Rickets) दन्तकृमि, सल्ली (Tetany)। चिकित्सा मात्रा ५,०००-२०,००० यूनिट्स।

विटामिन "सी" —(Ascorbic Acid)

साइट्रस श्रेणी के फल जैसे सन्तरे, नीबू तथा टमाटर स्ट्राबेरी, हरी सब्जियो, अकुरित धान्यो, दालो, आलू, प्याज हरी मिर्च में उपस्थित। खुली हवा मे देर तक इनके पकाने

मे नष्ट हो जाता है। दैनिक आवश्यक मात्रा बडो मे ५०-७५ मिलि०, शिशुओ में १५-५० मिलि०। अभाव मे दातो के इनेमल की निर्बलता, व्रणो का शीघ्र न भरना, मासपेशियो का ठीक-ठीक न बनना जिससे निर्बलता व कृशता का हो जाना। पाण्डुता (Microcytic), रक्तपित्त (Scurvy) दीर्घ रोगो जैसे क्षयरोग, आमवात, Rheumatoid Arthritis आदि की दीर्घता। चिकित्सा की मात्रा शिशुओ के लिए १००-३०० मिलि० दैनिक, बडो के लिए २००-१००० मिलि० दैनिक।

विटामिन 'ई'

गेहू, मक्का, चावल आदि के बीज, मास, Alfalfa मे उपस्थित। आवश्यक मात्रा निश्चित नही। अभाव मे उत्पादक शक्ति की निर्बलता, गर्भस्राव, दूध की अनुत्पत्ति तथा हृदयशूल (Angina) और शिरावरोध (Thrombo Angitis Obliterans) की सम्भावना। प्रतिरोधक मात्रा ५ मिलि० एक बार, प्रतिषेधक मात्रा (A-Tocopherol) २५ मिलि० २-३ बार। १० मिलि० एक बार चालू मात्रा।

विटामिन 'के'

हरी सब्जियो जैसे पालक, पत्तागोभी, Alfalfa तथा टमाटर, सोयाबीन, अण्डे की जर्दी मे होता है। आतो मे जीवाणु भी इसे तैयार करते है। अभाव मे रक्तस्राव होने की प्रवृत्ति रहती है, क्योकि इसके अभाव मे यकृत् मे Prothrombin कम बनता है। यकृत् रोग मे भी इसकी कमी होती है। ग्रहणी रोग मे भी कमी होती है। स्कन्दावरोधी (Anticoagulant) औषधियो के देते रहने से भी इसकी कमी हो सकती है। प्रतिरोधक मात्रा—१-२ मिलि० तीन बार मुख द्वारा या २ मिलि०मास द्वारा १-१ दिन छोडकर। प्रतिषेधक मात्रा १० मिलि० मुख, मास या शिरा द्वारा एक बार।

Glutamic Acid

प्रोटीन्स से उत्पन्न होने वाला एक Amino Acid भी हमारे शरीर के सब अवयवो मे पाया जाता है। मस्तिष्क तथा हृदयमास मे विशेषत पाया जाता है। अगो मे होने वाले प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट के परिपचन (Metabolism) के लिए यह एक आवश्यक तत्त्व है इसीलिए यह मस्तिष्क आदि के सेलो को शक्ति (Energy) प्रदान करता है। मानसिक निर्बलता (Neurasthenia) विषाद, (Depression), उन्निद्रता आदि मे इसका २-४ ग्राम मात्रा मे दिन मे ३ बार प्रयोग किया जाता है। बीच मे १-१ मास ठहरकर एक-एक मास इसका प्रयोग करना चाहिए या इसके १० प्र०श० सोल्यूशन को १० मिलि० मात्रा मे एक-एक दिन छोडकर शिरा द्वारा दिया जाता है। मस्तिष्क धमनियो मे कठिनता (Sclerosis) की प्रक्रिया को भी रोकता है। मस्तिष्क मे Nitrogen के परिपचन का वर्धक होने तथा वहा Ammonia को Glutamine मे परिवर्तन कर देने के कारण बालको के आक्षेप (Convulsions) मे भी विशेष उपकारी होता है। २ से ५ ग्राम मात्रा मे दिन मे ३ बार २-३ मास तक दिया जा सकता है। बालको के पक्षाघात (Polio) मे भी मृत मासपेशियो को बल प्रदान करता है। ३ सप्ताह तक के लिए एक-एक मास ठहरकर इसका प्रयोग किया जाता है। इसकी गोलिया Glutaneurol, Franchoindian या Glutavit, Geomanners की विटामिन 'बी' के साथ बनी हुई मिलती ह जिनमे आधा-आधा ग्राम मात्रा मे यह होता है।

सक्रामक रोग (Infectious Diseases)

विषम ज्वर :—Malaria

Mal=मलिन, Area=हवा

प्रारम्भिक वचन

पहले Hippocrates (५०० बी०सी०) ने रोजाना, दूसरे दिन, तीसरे दिन होने वाले ज्वर का वर्णन किया था, आयुर्वेद के प्राचीनतम ग्रन्थो मे भी विषम ज्वर का वर्णन हुआ है तथा इसे आगन्तुज्वर या भूताभिषगोत्थ ज्वर कहा है अर्थात् उन्होने अनुभव किया था कि यह ज्वर किसी बाह्य कारण से होता है। रोमन लोग भी समझते थे कि दलदल वाले प्रदेशो की बुरी हवा मे यह रोग होता है। वैज्ञानिक विधि से इस रोग की छानबीन १८८० से होने लगी है जब एक फ्रासीसी मिलिटरी डाक्टर Laveran (१८४५-१९२२) ने अल्जीरिया मे एक सिपाही के खून की परीक्षा करते समय रक्तकणो के अन्दर इस रोग के पैरासाइट्स देख लिये। फिर जर्मन जीवाणु विशेषज्ञ Koch (१८४३-१९१०) ने इन पैरासाइट्स की तीनो श्रेणियो का पता लगा लिया। फिर इग्लिश डाक्टर Manson (१८४४-१९२२) ने पहले-पहल यह घोषणा (१८९४) की कि इस रोग का प्रसरण मच्छरो द्वारा होता है। फिर इग्लिश जीवाणु विशेषज्ञ Ross (१८५७-१९३२) ने पहले-पहल Anophelese नामक मच्छर को, जिसको उसने इस रोग से ग्रस्त रोगी के रक्त पर रखा, आमाशय की दीवार के भीतर इसके जीवाणु (इसके Oocyst) को वृद्धि करते हुए देख लिया। इन मच्छरो से उसने स्वस्थ पक्षी मे इस रोग को उत्पन्न भी कर दिया। इस प्रकार सन्

१६०० तक इस रोग के विषय मे आवश्यक जानकारी प्राप्त कर ली गई थी। यह रोग इतना विनाशक है कि इसने यूनान मे यूनानी जाति को, रोम मे रोमन जैसी प्रवल जाति को और भारत मे आर्य जाति जैसी प्रवल जाति को अपने हमलो मे निर्वल दीन-हीन बना दिया। सरकार के प्रयत्नो से अब यह रोग करीब-करीब नष्ट कर दिया गया है।

विषमज्वर जीवाणु —Malarial Parasite

प्रधानत तीन है। एक तृतीयक जीवाणु Plasmodium Vivax (1890) जो तृतीयक ज्वर (Benign Tertian Malaria) का कारण है। दूसरा चतुर्थक जीवाणु Plasmodium Malariae (1881) जो चतुर्थक ज्वर (Quartan Malaria) का कारण है। तीसरा सतत ज्वर जीवाणु Plasmodium Falciparum (1887) जो सतत ज्वर Malignant Tertian Malaria का कारण है। क्योकि ये सूक्ष्म प्राणी है ये Protozoon (Protozoa बहुवचन) कहाते है। तथा क्योकि ये खण्डित होकर बढते है ये Sporozoon (Sporozoa बहुवचन) कहाते है।

विषमज्वर जीवाणु की अमैथुनी वृद्धि, नर शरीर मे वृद्धि —(Asexual Cycle) Schizogony) —Exoerythrocytic Schizogony)

मच्छर काटते समय अपनी लाला के साथ विषमज्वर जीवाणु बीजो (Sporozoites) को रक्त मे डाल देता है। पर ये रक्त मे १ घण्टे से अधिक नही रहते। रक्त मे से यकृत् के सेल इन्हे पकड लेते है। सक्रमण के पाचवें दिन यकृत् के सेलो के भीतर, गोलाकृति कृमि, जिनके अन्दर Chromatin के अनेक खण्ड होते हैं, देखे जा सकते है। इन्हे Cryptozoites या छिपे हुए जीव कहते है। ८वें, ६वे दिन तक इनमे से प्रत्येक की मीगी कई सौ खण्डो मे विभक्त हो जाती है और इस प्रकार फिर मीगी के साथ-साथ प्रोटोप्लाज्म के भी विभक्त हो जाने से प्रत्येक जीवाणु १ हजार के लगभग खण्डो मे विभक्त हो जाता है, जिन्हे Cryptomerozoites कहते है, जो यकृत् के कोष्ठको मे से निकलकर रक्तसचार मे चले जाते है। उनमे से बहुत-सो को Phagocytes पकड कर नष्ट कर देते है तो भी इनमे से कुछ एक यकृत् के दूसरे सेलो मे प्रवेश करके फिर पूर्ववत् वहा वृद्धि करने लगते है और वहा से फिर रक्तसचार मे प्रवेश कर जाते है। रक्तकणो मे वृद्धि करने से पूर्व यकृत् के सेलो मे होने वाली विषमज्वर जीवाणु की इस वृद्धि को Pre Erythrocytic Schizogony कहते है। परन्तु जो जीवाणु यकृत् के कोष्ठको मे ही बढते है और फिर कभी बाद मे इस ज्वर की पुनरावृत्ति (Relapse) का कारण होते है उनकी इस वृद्धि को Exoerythrocytic Schizogony कहते है। इस प्रकार यकृत् के सेलो मे से बाद मे जो Merozoites रक्त मे आते रहते हैं उन्हे Metacrypto Merozoites कहते है। इस प्रकार मच्छर काटने के बाद लगभग ६ दिन तक विषमज्वर जीवाणु यकृत् मे बढकर फिर रक्त-कणो मे अपनी वृद्धि आरम्भ करता है। P Falciparum से सक्रमण हो तो सारे जीवाणु एक साथ ही पूर्णता को प्राप्त कर रक्त मे प्रविष्ट होते हैं। दूसरे दोनो जीवाणु ऐसा नही करते। एव महीनो तक उसके सेलो मे पडे रहते है, जहा विषमज्वरनाशक दवाइया बहुत-सी नही पहुचती, इसीलिए प्रथम अवस्था मे एक बार रोग नष्ट होकर फिर नही होता, पिछले दिनो मे होने वाला ज्वर अच्छा हो जाने पर भी बार-बार होता रहता है। यकृत् के सेलो मे होने वाली विषमज्वर जीवाणु की वृद्धि का पता लगाने का श्रेय Shortt और Garnham (१६४८) को है।

विषमज्वर जीवाणु की रक्त-कणो मे वृद्धि—अमैथुनी वृद्धि —(Asexual Cycle, Erythrocytic Schizogony या Intracorporeal Cycle)

रक्तकणो को लीशमेन के रग से रगने पर प्रारम्भिक अवस्था मे विषमज्वर जीवाणु या Cryptomerozoites अर्थात् उनके Cytoplasm नील वर्ण की मुद्रा के रूप मे दीखते है, जिनकी मीगिया (Chromatin Nuclei) रक्तवर्ण की होती है, और मुद्रा के पतले साइड पर दीखती हैं। यह जीवाणु क्योकि रक्तकण के हीमोग्लोबिन को खाकर बढता है इसलिए इसे पराश्रयी जीवाणु या Trophozoite (Nutrition Animal) कहते है।

चातुर्थिक ज्वर जीवाणु का Trophozoite अडाकृति का या चौडे फीते के आकार का होता है, जिसकी मीगी उसके मध्य भाग मे होती है। जीवाणु मे उत्पन्न होने वाला मल जो काले भूरे दानो के रूप मे होता है (Haemozoin) इस जीवाणु के एक किनारे पर बिखरा हुआ दीखता है। यह Trophozoite अपना आकार ऐसे बदलता रहता है जैसे अमीबा किया करता है। जब यह पूर्ण परिणत हो जाता है तो लगभग सम्पूर्ण रक्त-कण को भर लेता है। इस पूर्ण परिणत Trophozoite को Schizont (Dividing Parasite) कहते है। अब इसकी मीगी (Nuclear Chromatin) ६-१२ खण्डो मे विभक्त हो जाती है और इसके साथ-साथ जीवाणु का प्रोटोप्लाज्म

भी उतने ही खण्डो मे विभक्त हो जाता है। जीवाणु का मल या काले भूरे दाने (Pigment) इन खण्डो के मध्य भाग या केन्द्र भाग मे जमा हो जाते है। इस प्रकार एक जीवाणु पूर्ण परिणत होकर ६-१२ नये जीवाणुओ को, जिन्हे Merozoites या Part Animal कहते है, उत्पन्न करता है। इनके उत्पन्न हो जाने पर रक्त कण टूट जाता है और उसमे उत्पन्न हुए Merozoites और मल (Pigment) रक्त के प्रवाह मे सचार कर जाते हैं। रक्त प्रवाह मे विद्यमान श्वेत कण इन Merozoites तथा मल को खा लेते है। परन्तु जो Merozoites बच जाते है, वे दूसरे नये रक्त कणो मे प्रवेश करके वहा बढने लगते है और पूर्ववत् Merozoites मे परिवर्तित होकर फिर रक्त मे सचार कर जाते है। इस प्रकार एक जीवाणु यदि १० नये जीवाणुओ मे विभक्त हो तो वे १० फिर १०० जीवाणुओ मे विभक्त हो जाते है और वे १०० फिर १००० जीवाणुओ मे परिवर्तित हो जाते है। शरीर मे होने वाले विषमज्वर जीवाणु के इस विभाजन को Schizogony कहते है। चातुर्थिक ज्वर जीवाणु को रक्त कण के अन्दर पूर्ण परिणत होकर नये Merozoites के रूप मे आने मे ७२ घण्टे लगते हैं। सभी ग्रस्त हुए रक्त कणो मे से पूर्ण परिणत हुए Merozoites ७२ घण्टो के बाद एक साथ ही रक्त-प्रवाह मे प्रवेश करते है और इनके साथ कोई विषैला बाह्य प्रोटीन पदार्थ भी रक्त मे सचार करता है, जिससे ज्वर का वेग आरम्भ होता है। इसीलिए चातुर्थिक ज्वर जीवाणु के कारण प्रति ७२ घण्टो के बाद या प्रति चौथे दिन ज्वर का वेग प्रारम्भ होता है। जब बहुत से रक्त कणो मे यह जीवाणु प्रवेश कर जाता है तब यह ज्वरकारक होता है। कहा जाता है कि एक क्यूबिक मिलीमीटर रक्त में कई सौ Parasites हो जाने पर ज्वर के वेग आरम्भ होने लगते है। Ross का कथन है कि जब बाहर के रक्त मे १५० मिलियन विषम ज्वर जीवाणु हो जाते हैं तब ज्वर होता है। Merozoites के स्वतन्त्र होकर बाहर रक्त के अन्दर आने की प्रक्रिया को Sporulation कहते हैं।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि चातुर्थिक ज्वर जीवाणु का एक समूह Sporulation करे तो प्रति चौथे दिन ज्वर होता है। यदि एक समूह एक दिन, दूसरा समूह दूसरे दिन Sporulation करे तो दो-दो दिन ज्वर आता है, एक दिन बीच मे आराम रहता है। यदि लगातार तीन समूह प्रतिदिन Sporulation करे तो प्रतिदिन ज्वर चढता है।

तृतीयक ज्वर जीवाणु:—(Plasmodium Vivax)

यह तीनो प्रकार के विषमज्वर जीवाणुओ मे अधिक सुलभ है। इसका प्रारम्भिक Trophozoite या Ring रक्त कण के एक-तिहाई भाग जितना होता है। बढ जाने पर यही विषमाकृति के अमीबा जैसा होता है जिसके बीच में रिक्त प्रदेश (Vacuoles) होते है। बढकर यह सारे रक्त कण को भर लेता है। जिन रक्त कणो मे ये जीवाणु होते है वे कुछ फूले हुए, मोटे तथा रग मे फीके होते हैं। इनके प्रोटोप्लाज्म में गहरे लाल दाने (Schunner's dots) बिखरे हुए होते है। जीवाणु के अन्दर विद्यमान काले दाने रग मे फीके और सूक्ष्म होते है। अन्त मे पूर्ण परिणत Schizont १५-१६ खण्डो या Merozoites मे विभक्त हो जाता है। इस प्रकार इसके पूर्ण परिणत होकर खण्डो मे विभक्त होने मे (Schizogony मे) ४८ घण्टे लगते है। अनेकानेक रक्त कणो मे से एक साथ इनके बाहर आने से रोगी को ज्वर प्रति ४८ घण्टे बाद या तीसरे दिन चढता है। यदि तृतीयक ज्वर के जीवाणु का एक समूह एक दिन, दूसरा समूह दूसरे दिन Sporulation करे तो इसी के कारण प्रतिदिन ज्वर चढता है।

सतत ज्वर जीवाणु Plasmodium Falciparum (Subtertion Parasite)

यह दूसरे नम्बर पर इस रोग का कारण होता है। इसका मुद्राकृति (Trophozoite) अपेक्षया छोटा होता है, तथा पूर्ण बढकर अर्थात् Schizont बनकर भी रक्त कण के ⅔ भाग को ही घेरता है। बाहर के रक्त मे विद्यमान रक्त कणो मे न बढकर यह जीवाणु प्लीहा, मस्तिष्क, हृदय, आत आदि आभ्यन्तर अगो की सूक्ष्म रक्तवाहिनियो के भीतर वृद्धि करता है। जीवाणु युक्त रक्त कण अपने बाहर Fibrin के स्तर के जम जाने से परस्पर चिपक कर इन अंगो की सूक्ष्म रक्तवाहिनियो मे अवरोध उत्पन्न कर सकते है। इस जीवाणु के अन्दर मल, स्वल्प और सूक्ष्म दानो के रूप मे होता है। पूर्ण परिणत होकर यह Schizont ६-२० जीवाणु खण्डो (Merozoites) मे विभक्त हो जाता है। इन (Merozoites) के रक्त-प्रवाह मे प्रवेश करने पर ज्वर चढता है, जो दीर्घतर होता है अर्थात् तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर वेगो के समान ५-६ घटो तक ही नही पर २०-३० घटो तक चलता है अर्थात् दो वेगो के बीच थोडे काल के लिये ही उतरता है। यह जीवाणु अत्यधिक मात्रा मे शाखाओ के रक्त मे भी रक्त कणो के अन्दर मुद्राकृति Rings मे पाया जा सकता है। यदि इस जीवाणु के दो समूह हो जिनमे से एक दिन एक

और दूसरे दिन दूसरा, रक्त-प्रवाह में प्रवेश करे तो दैनिक ज्वर चढता है, जिसमे इससे पहले कि पहले दिन का ज्वर पूर्णतया उतरे, दूसरे का ज्वर चढ जाता है। इस प्रकार एक ज्वर मे दूसरे ज्वर के वेग के हो जाने से ज्वर लगभग लगातार रहता प्रतीत होता है। उस प्रकार के सतत ज्वर (Remittent Continuous Fever) को भी वीच-वीच मे पर्याप्त कम हो जाने के कारण अथवा इसकी न्यूनता और उच्चतम ज्वर की डिग्रियो मे पर्याप्त भेद होने के कारण विषम ज्वर ही कहते है। वीच-वीच में कम (Remittent) होने से इसे विषम ज्वर और निरन्तर चढे रहने से इसे सतत ज्वर कहा जाता है। इसलिये सतत विषम ज्वर, यह नाम दो परस्पर-विरोधी शब्दो से वना हुआ होने पर भी इस रोग के लिये सर्वथा सार्थक है।

लिंगी विषमज्वर जीवाणु (Sexual Malarial Parasites Gametocytes)

रोगी के कुछ काल, इस रोग से ग्रस्त रहने के वाद रक्त मे पाये जाने वाले कुछ Trophozoites अन्यों की तरह बढते तो हैं परन्तु उनकी मीगिया और प्रोटोप्लाज्म विभक्त नही होते। ये पूर्ण परिणत होकर सारे रक्त कण को घेर लेते है और देखने मे गोलाकृति होते है। इनकी मीगी का Chromatin केन्द्र मे रहता है और टुकड़ो में विभक्त नही होता, जवकि दूसरे Trophozoites का Chromatin पृथक् टुकडो मे विभक्त हो जाता है। इनमे काले दाने भी उनकी अपेक्षा अधिक होते है। ये जीवाणु, खण्डो (Merozoites) मे विभक्त न होने के कारण ज्वर का कारण नही होते है, जिससे इन्हें Non-febrile Parasites कह सकते हैं। इन्हें लिंगी विषमज्वर जीवाणु (Gametocytes) भी कहते ह। नये Gametocyte को मुद्राकृति रूप मे देखें तो उसका Chromatin या मीगी किनारे पर न होकर मध्य मे होती है। ये लिंगी जीवाणु दो प्रकार के होते है, एक पुल्लिगी, दूसरे स्त्रीलिंगी। पुल्लिगी जीवाणु हलका-सा नीला और स्त्रीलिंगी जीवाणु गहरा नीला होता है। पुल्लिगी मे Chromatin या मीगी मध्य में होती है, जब कि स्त्रीलिंगी की मीगी किनारे पर होती है। पुल्लिगी में काले दाने अस्पष्ट होते है, स्त्रीलिंगी में काले दाने अधिक स्पष्ट होते है। पुल्लिगी विषम ज्वर जीवाणु अपेक्षया छोटा होने से Microgametocyte और स्त्रीलिंगी कुछ वडा होने से Macrogametocyte कहलाता है। तृतीयक, चतुर्थक ज्वर के लिंगी जीवाणु लगभग इसी प्रकार के होते है।

परन्तु सतत ज्वर जीवाणु के लिंगी जीवाणु Subtertian Gametocytes रक्त कणो के अन्दर अर्ध चन्द्राकृति रूप मे दीखते हैं जिनसे इन्हें Crescents कहते हैं। पुल्लिगी सतत ज्वर जीवाणु आकार मे अपेक्षया छोटा, फीके नीले रग का होता है। इसके काले दाने (Pigment) प्रोटोप्लाज्म मे विखरे हुए रहते है। उसकी मीगी (Chromatin) केन्द्र मे कुछ विखरी हुई होती है। स्त्रीलिंगी सतत ज्वर जीवाणु (Macrogametocyte) आकार मे वडा, गहरे नीले रग का होता है तथा उसकी मीगी ठोस तथा केन्द्र मे होती है, और काले दाने भी केन्द्र मे सचित हुए पडे होते है। ये अर्धचन्द्राकृति लिंगी जीवाणु (Crescents) लगभग सारे रक्त कण को घेरे हुए होते है। लिंगी जीवाणु क्योंकि रक्त कणो में वन्द ही रहते है, स्वतन्त्र नही होते, इसलिये शरीर के अन्दर रहते हुए इनकी आगे वृद्धि नही हो सकती। शरीर मे इनका जीवन एक से दो मास तक रहता है। स्त्रीलिंगी-जीवाणु पुल्लिगी-जीवाणुओं की अपेक्षा रक्त मे अधिक सख्या मे पाये जाते है।

विषम ज्वर जीवाणु की मैथुनी वृद्धि (Sexual Cycle of Malarial Parasites or Sporogony या Extracorporeal Cycle)

मादा Anophelese मच्छर के पेट के अन्दर पहुँचने पर, लिंगी विषम ज्वर जीवाणुओ मे मैथुनी वृद्धि होती है। पुल्लिगी जीवाणु (Microgametocyte) का न्यूक्लियस कई खण्डो मे विभक्त हो जाता है। फिर ये खण्ड इस जीवाणु के किनारे पर पहुचकर सूक्ष्म सूत्रो के Nuclei वन जाते है अर्थात् इन पुल्लिगी जीवाणुओ मे से जो सूक्ष्म सूत्र (Flagella) निकलते है वे इस जीवाणु की मीगी और प्रोटोप्लाज्म के विभक्त होने से वनते है। इन गतिशील सूत्रो को Microgamete या Male Gamete कहते है। स्त्रीलिंगी जीवाणु गोलाकृति ही रहते है। उनमे से कोई Flagella नही निकलते। इसके पृष्ठ पर उभार या Papilla प्रकट होता है। इस अवस्था मे इसे Macrogamete या Female Gamete कहते है। पुल्लिगी जीवाणु से उत्पन्न हुआ एक सूत्र (Spermatozoa की तरह) स्वतत्र होकर स्त्रीलिंगी जीवाणु के इस उभरे हुए प्रदेश मे प्रवेश करके इसे गर्भित कर देता है। यह गर्भित पिण्ड जिसे Zygote कहते है, स्वय गति करने लगता है और एक कृमि का सा रूप ले लेता है अर्थात् लम्बा हो जाता है। इसे गतिशील कृमि या Ookenete कहते है। यह आमाशय की आभ्यन्तर स्तर (Epithelium) को छेदकर उसके वाहर की सतह के नीचे एक थैली के रूप मे बढने लगता है। मच्छर के

आमाशय की दीवार मे विद्यमान इस थैली या विषम ज्वर ग्रन्थि को Oocyst कहते है। इस थैली का न्यूक्लियस तथा प्रोटोप्लाज्म विभक्त हो-हो कर अनेकानेक सेलो मे बट जाता है और इस प्रकार उत्तरोत्तर इन सेलो के भी विभक्त होने से सहस्रो की सख्या मे जो तर्कु या तकले के आकार के ६ माइक्रोन लम्बे विषम ज्वर-जीवाणु बीज बनते हैं उन्हें Sporozoites कहते है। अन्त मे यह थैली फट जाती है और ये तकले के आकार के सूक्ष्म-सूक्ष्म विषम ज्वर जीवाणु बीज स्वतत्र हो जाते है। इनमे से कुछ मच्छरो के अन्य अगो की तरह उसकी लाला ग्रन्थियो मे भी पहुच जाते है। जब यह मादा मच्छर जिसके लाला ग्रन्थि मे विषम ज्वर जीवाणु होते है, किसी व्यक्ति को काटता है तो अपनी लाला के साथ इन जीवाणु बीजो Sporozoites को भी दष्ट व्यक्ति के रक्त मे प्रविष्ट कर देता है जहा से यकृत् के सेल (Parenchymal Cells) इन्हे पकड लेते है, और वहा ये Pre erythrocytic वृद्धि प्रारम्भ कर देते है। इस प्रकार मच्छर के अन्दर होने वाली यह मैथुनी वृद्धि (Sporogony) १० दिन मे पूर्ण होती है अर्थात् रुग्ण व्यक्ति का रक्त पीने के दस दिन बाद मच्छर विषैला हो जाता एव विषम ज्वर रोग का सक्रामक तब तक बना रहता है जब तक जीता है। मच्छर को स्वय इन जीवाणुओ से कोई हानि नही होती।

विषमज्वर-जनित विकृति

विषम ज्वर मे शरीर के नाना अगो की सूक्ष्म रक्तवाहिनियो मे होने वाला रक्त-संचार मन्द हो जाता है। विषम ज्वर जीवाणु मे ग्रस्त रक्त कण क्योकि अधिक चमकीले हो जाते है, वे सूक्ष्म रक्तवाहिनियो मे बहते समय बहुधा रक्तवाहिनियो की दीवार से तथा परस्पर एक-दूसरे से चिपक जाते हैं। इस प्रकार सूक्ष्म शिराओ (Capillaries) मे रक्त कणो के छोटे-छोटे कणो (Thrombi) के बन जाने से रक्त मार्ग मे अवरोध उत्पन्न हो जाता है। यकृत् प्लीहा आदि की रक्तवाहिनियो की दीवारो मे विद्यमान Reticulo Endothelial Cells भी इस रोग मे मात्रा मे अधिक बढ जाते हैं अर्थात् उनमे अति वृद्धि हो जाती है तथा इन फूले हुए सेलो मे इस रोग से उत्पन्न Pigment या काले दाने भी बहुत अधिक भरे होते है। इस प्रकार इन सेलो के बढ जाने से भी रक्त मार्ग मे अवरोध हो जाता है। इस तरह किसी आभ्यन्तर अग की रक्तवाहिनियो मे विषम ज्वर जीवाणु अधिक मात्रा मे सचित होकर उस अग के पोषण मे बाधक हो सकते है। इस कारण से इस रोग मे नाना प्रकार के लक्षण और उपद्रव होते है।

प्लीहा की सूक्ष्म रक्तवाहिनियो मे विषम ज्वर जीवाणुओ का सचय या जमघट विशेषत होता है, जिससे इसकी रक्तवाहिनियो मे रक्त अधिक मात्रा मे अवरुद्ध रहता है। इसके Reticulo Endothelial Cells मे भी विशेषत Mononuclear सेलो मे काले दाने अधिक मात्रा मे भर जाते है, और ये सेल भी मात्रा मे बहुत बढ जाते है। इस प्रकार रक्त के अधिक भरे रहने तथा इन सेलो के बढ जाने से प्लीहा रग मे स्लेटी और आकार मे बडी हो जाती है।

यकृत् की सूक्ष्म रक्तवाहिनियो (Sinusoids) मे भी विषम ज्वर जीवाणु अति मात्रा मे सचित हो जाते हैं। इनके Reticulo Endothelial Cells या Kupffer सेलो मे अति वृद्धि हो जाती है और उनमे विषम ज्वर का Pigment भरा होता है, जिससे वहा भी रक्त मार्ग मे अवरोध आ जाता है एव यकृत् मे रक्त अधिक मात्रा मे भर जाता है। इसी से यकृत् भी आकार मे कुछ बडा हो जाता है। रक्त कणो के अधिक टूटने से यकृत् की पित्त स्राविणिया (Bile Canaliculi) भरी रहती है। आमाशय तथा आँतो का श्लेष्मकला तथा बाह्यावरण (Mucous and Serous Coats) की रक्त-वाहिनियो मे भी विषम ज्वर जीवाणुओ के अति मात्रा मे भर जाने से इनमे रक्तावरोध या रक्त सचय हो जाता है जिससे इन पर श्लेष्मा (Mucus) छायी रहती है। आमाशय मे एसिड की निकासी घट जाती है। बडी आत मे ऐसा होने से प्रवाहिका (Dysentery) का लक्षण हो जाता है।

मस्तिष्क तथा मस्तिष्कावरण (Meninges) की सूक्ष्म रक्तवाहिनियो मे भी विषम ज्वर जीवाणुओ से सयुक्त रक्त कणो का सचय होकर उनमे रक्त अधिक मात्रा मे रुक जाता है और ज्वर तथा मूर्छा का कारण हो जाता है। Cortex का रग भी भूरा गहरा हो जाता है। Cortex के नीचे के प्रदेश मे छोटे-छोटे रक्तस्राव हो जाते है जिससे मूर्छा आदि मानस लक्षण हो जाते है। इसी प्रकार फुफ्फुसो के वायु कोष्ठको की दीवारो मे विद्यमान सूक्ष्म शिराओ (Alveolar Capillaries) मे हृदय की हृदय पोषक शिराओ (Coronary Vessels) मे विषम ज्वर जीवाणुओ द्वारा अवरोध होकर इनमे रक्तसचय हो जाता है जिससे उन-उन अवरोध के स्थानो पर इनका पोषण कम हो जाता है। हृदय मे वसामय क्षीणता हो जाती है। Placenta की रक्तवाहिनियो मे विषम ज्वर जीवाणुओ द्वारा अवरोध होने से गर्भस्थ शिशु का पोषण कम हो जाता है। वृक्को की पोषक सूक्ष्म रक्तवाहिनियो मे जीवाणुओ द्वारा अवरोध हो जाने से उनकी मूत्र स्राविणियो (Nephrons) का पोषण कम हो जाता है जिससे मूत्र मे

Albumin आने लगता है, और मूत्र के कम हो जाने से उग्र वृक्क रोग हो जाता है। इस रोग में रक्त में Urea की वृद्धि (Azotaemia) भी हो सकती है। Suprarenal Cortex की रक्तवाहिनियों में भी कभी-कभी अवरोध हो जाता है जिससे उसमें Lipoids की कमी हो जाती है।

विषमज्वर का रक्त पर प्रभाव

विषम ज्वर जीवाणु रक्त कणों के Haemoglobin के ग्लोबिन को तो खा लेता है और उसमें से शेष बचे Haematin अंश को एक Pigment या काले दानों (Haemozoin) के रूप में बदल कर प्लाज्मा में छोड़ देता है। इसमें लोहांश होता है पर Haemosiderin की तरह यह फिर हीमोग्लोबिन के बनाने में काम नहीं आता। शरीर के Reticulo Endothelial Cells इन काले दानों को पकड़कर अपने अन्दर जमा कर लेते हैं। इस प्रकार जीवाणुओं से ग्रस्त रक्त कण तो इस रोग में नष्ट होते ही हैं पर दूसरे रक्त कण भी इस रोग में विषम ज्वर से उत्पन्न किसी विष द्रव्य या Pigment के दुष्प्रभाव से बहुत अधिक मात्रा में नष्ट होते हैं। इन टूटे कणों से मुक्त हुए Oxyhaemoglobin तथा उसी का रूपान्तर Methaemoglobin को साधारणतः तो Reticulo Endothelial Cells अपने अन्दर विलीन कर लेते हैं। यदि ये अधिक मात्रा में टूटे तो ये रंग या Pigment मूत्र में निकलने लगते तथा इन सेलों से, प्लीहा के इन सेलों और यकृत् के Kupffer Cells से उत्पन्न होने वाले Bilirubin की मात्रा भी बहुत बढ़ जाती है। यकृत् के Polygonal Cells इसे पृथक् करके Bile Canaliculi तथा Gall Bladder में डालते हैं। अतः इस रोग में इन स्थानों पर पित्त की मात्रा बहुत अधिक रहती है। पित्त के अधिक उत्पन्न होने के कारण वमन में भी यह अधिक निकलती है। मल के द्वारा भी Stercobilin के रूप में यह अधिक मात्रा में निकलती है। यकृत् के सेल इस Bilirubin को रक्त में से पूर्णतया पृथक् न कर सकें तो रक्त में इसकी मात्रा बढ़ जाती है (Hyper Bilirubinaemia हो जाता है) जिसके कारण रक्त के Serum में पीलापन बढ़ जाता है अर्थात् Icterus Index जो साधारणतः १०० सी०सी० में २ ८ मिलिग्राम होता है, बढ़कर ४-५ गुणा हो जाता है जिससे त्वचा पर पीलापन झलकने लगता है। Serum का vanden Bergh test indirect होता है। मूत्र में इसकी वृद्धि होकर Urobilin तथा Urobilinogen की मात्रा बढ़ जाती है जिससे उसका रंग गहरा भूरा हो जाता है। इस प्रकार इस रोग में पित्त की अत्यधिक होने वाली वृद्धि को Polycholia कहते हैं।

इस रोग में रक्त कणों तथा रक्त-रंजक द्रव्य दोनों की मात्रा घट जाती है जिससे पाण्डु हो जाता है। रक्त में आक्सिजन की मात्रा बहुत कम मिलती है अर्थात् इस रोग में Haemolytic Anaemia होता है जो Normocytic Hypochromic किस्म का होता है। रक्त की परीक्षा करने पर उसमें रक्त कण विविध रंग के होते हैं अर्थात् गुलाबी होने के स्थान पर कोई-कोई हलके नीले या बैंजनी होते हैं (Polychromasia)। दूसरे विषम आकार के अर्थात् छोटे या बड़े रक्त कण भी देखने में आते हैं (Anisocytosis)। तीसरे विविध आकृति के रक्त कण भी पाये जाते हैं (Poikilocytosis)। इस ज्वर में श्वेत कण (Leucocytes) घटे हुए होते हैं परन्तु Large Mononuclear Leucocytes १०-१५ प्रतिशत तक बढ़ जाते हैं। सम्भवतः ये इस रोग के Pigment को ग्रस्त करने के लिये बढ़ते हैं।

इस रोग में रक्त के प्लाज्मा में प्रोटीन की मात्रा घट जाती है तथा अल्बुमिन और ग्लोब्युलिन का परस्पर अनुपात बदल जाता है। दूसरे शब्दों में, प्लाज्मा में अल्बुमिन विशेषतः कम हो जाता है। इसका कारण स्पष्ट नहीं है। सम्भवतः यकृत् के रुग्ण होने से ज्वर में इसकी मात्रा घट जाती है। इससे प्लाज्मा का भार (Osmotic Pressure) गिर जाता है। रक्त का स्वाभाविक Erythrocytic Sedimentation Rate भी इस रोग में बढ़ जाता है। रक्त कणों में विषम ज्वर जीवाणु, मुद्रा (Rings) या चन्द्र (Crescents) के रूप में देखे जाते हैं।

विषम ज्वर का लक्षण

साधारण विषम ज्वर (Plasmodium Vivax) मच्छर काटने के लगभग १२ दिन बाद तथा सतत विषम ज्वर (M T) मच्छर काटने के १० दिन बाद तथा Plasmodium malariae के काटने के २८ दिन बाद प्रारम्भ होता है।

विषम ज्वर वेगों (Paroxysms) में होता है और इसका वेग प्रायः प्रातःकाल, मध्याह्न से पहले आरम्भ हो जाता है। वेग के आरम्भ होने से पहले पूर्व रूप भी होते हैं। अन्नारुचि, हस्त-पाद-शिर आदि अंगों में हलका दर्द, थकान, ग्रीवा में स्तब्धता, अंगड़ाइयां, जंभाइयां होती हैं तथा हवा कुछ बुरी और ठंडी प्रतीत होती है। इन पूर्व रूपों के बाद रोगी को हवा अधिक ठंडी प्रतीत होने लगती है। वह जाड़े से कांपने लगता है, सर्दी के कारण दांत किटकिटाने लगता है। त्वचा की रक्तवाहिनियों के संकुचित हो जाने

मे उसका रग फीका पड जाता है तथा स्पर्श मे भी उसकी त्वचा शीत होती है। शीत जल स्पर्श से जैसे अगुलियो की त्वचा सकुचित हो जाती है वैसे ही रोगी की अगुलिया झुर्रीदार हो जाती है। उसके ओष्ठ, नख आदि नीले से दिखाई पडते है। यद्यपि उसे कम्वलो मे ढक दिया जाता है तो भी उसकी सर्दी दूर नही होती। शरीर की त्वचा के इस प्रकार शीत होने पर भी उसका अन्दर का तापमान ऊचा होता है अर्थात् वह १०१-१०२ डिग्री तक होता है। नाडी-गति तीव्र होती है। इस शीत और कम्प के साथ रोगी को वमन भी होती है जो रग मे कुछ पीली होती है। वाहर से रक्त के अन्तरावयवो मे चले जाने से वृक्क मे भी रक्त अधिक पहुचता है जिससे पानी की तरह का मूत्र अधिक मात्रा मे आता है। यह शीतावस्था एक घटे के लगभग समय तक रहती है। शिशुओ और वालको मे शीत लगने के स्थान पर बहुधा आक्षेप होकर यह ज्वर चढता है। जैसा ऊपर कहा है विपैले मच्छर काटने के लगभग एक पक्ष वाद जव इस रोग का जीवाणु पर्याप्त वृद्धि कर लेता है तव उसके रक्त कणो से निकल, प्लाज्मा मे फैल जाने या उसके Sporulation के साथ यह वेग आरम्भ होता है।

इस प्रारम्भिक शीत के वाद क्रमश शरीर का तापमान वढने लगता है। वढते-वढते वह १०४ या १०५ डिग्री तक पहुच जाता है। त्वचा और मुख की रक्तवाहिनिया जो पहले सकुचित थी फैल जाती है जिससे चेहरा लाल हो जाता है, त्वचा भी रक्तवर्ण, गर्म और स्पर्श मे खुश्क होती है। त्वचा को स्पर्श करने से वह अधिक उष्ण प्रतीत होती है। रोगी को दाह अत्यधिक प्रतीत होता है, जिससे वह कम्वलो को उतार कर फेकने लगता है। त्वचा के समान उसकी श्लेष्मकला भी शुष्क हो जाती है। कण्ठ के शुष्क होने से वह वोलना पसन्द नही करता। जिह्वा, तालु आदि के शुष्क हो जाने से उसे पिपासा रहती है। मस्तिष्क की रक्तवाहिनियो मे रक्त के अधिक मात्रा मे भर जाने से शिर मे भारी दर्द रहता है। यदि मस्तिष्क की प्राण शक्ति पहले निर्वल हो और इस ज्वर के विष के दुष्प्रभाव से वह और क्षीण हो जाये तो प्रलाप का लक्षण भी हो जाता है। प्राय तापमान १०५ से ऊपर हो तो प्रलाप हो जाता है। इस अवस्था मे रोगी की नाडी तीव्र, प्रवल (Full) दीर्घ तथा Dicrotic (सर्पगति) होती है। कारण यह है कि इसमे हृदय तो उत्तेजित होता है और उसके सामने रक्तवाहिनियों मे तनाव (Tension) कम होता है। श्वास गति भी इस रोग मे तीव्र होती है। इस अवस्था मे मूत्र कम आता है पर Urobilin के कारण गहरे रग का होता है। यह उष्णावस्था लगभग ३ घटे रहती है।

इसके उपरात सहसा स्वेदावस्था आरम्भ हो जाती है। पहले मस्तक और शिर पर प्रारम्भ होकर सारा शरीर स्वेद से भर जाता है। कभी-कभी इतना स्वेद आता है कि पहने हुए वस्त्र गीले होने के कारण वदलने पडते है। जिह्वा, गले, कण्ठ आदि की श्लेष्मकलाए भी आर्द्र, हो जाती है। स्वेद के आने के साथ-साथ ज्वर, दाह, पिपासा, शिर दर्द, वेचैनी आदि लक्षण शान्त हो जाते है। इस २-३ घटे की स्वेदावस्था के वाद निद्रा आने लगती है जिससे उठने पर रोगी फिर अपने दैनिक कार्य मे लग जाता है।

चतुर्थक ज्वर जीवाणु के कारण ज्वर हो तो मच्छर काटने के तीन-चार सप्ताह वाद वेग आरम्भ होता है। इसके ज्वर का वेग तृतीयक ज्वर के वेग से जो ८ घटे के लगभग होता है कुछ छोटा होता है। परन्तु इसमे ज्वर उच्चता १०५-१०६ तक हो जाती है। चतुर्थक ज्वर एक वार होकर सुगमता से नही निकलता। इसमे Parasites रक्त के अन्दर चिरकाल रहते है जिससे कभी-कभी वर्षो तक ज्वर आता रहता है।

तृतीयक चतुर्थक ज्वरो के वेग के कारण, या इनके वारम्वार होते रहने से मृत्यु कभी नही होती। परन्तु इनके शरीर मे वने रहने से विपम ज्वर जनित शिथिलता (Cachexia) हो जाती है अर्थात् प्लीहा वृद्धि, यकृत् वृद्धि, पाण्डुता, अरुचि, अजीर्ण, कृशता, अशक्ति आदि लक्षण कई महीनो तक रहते है।

सतत विषमज्वर (Subtertion Malaria, Malignant Malaria) **के लक्षण**

Plasmodium Falciparum से होने वाला विपैले विपम ज्वर का वेग मच्छर काटने के १०-१२ दिन वाद प्रारम्भ होता है। इसके वेग के समय ज्वर शीत लगकर नही चढता या शीत लगने का लक्षण स्पष्ट नही होता। इसमे स्वेदावस्था भी स्पष्ट नही होती। इसकी उष्णावस्था भी क्रमश आरम्भ होती है और २०-३० घटे तक की लम्बी होती है जिससे तापमान स्वल्पकाल के लिए उतरकर फिर पहले की तरह चढ जाता है। यदि इस जीवाणु के दो समूह शरीर मे वारी-वारी से Sporulation या Segmentation करते हो तो ज्वर पूर्णतया कभी भी नही उतरता। तव यह सतत विपम ज्वर (Remittent Continuous Malaria) के रूप मे होता है। मन्थर ज्वर से इसका सदेह हो सकता है, परन्तु यदि न्यूनतम

और अधिकतम दैनिक तापमानो मे दो डिग्री से अधिक का अन्तर हो तो उसे सन्तत विषम ज्वर ही समझना चाहिए। साथ ही यदि ज्वर के वेग के साथ सिर मे, शाखाओ मे अधिक दर्द हो, शरीर मे शिथिलता अधिक हो, पैत्तिक वमन (Bilious Vomiting) हो, अरुचि हो, प्लीहा वृद्धि, पाण्डुता, मूत्र के गहरेपन के लक्षण हो तो इसे विषम ज्वर ही जानना चाहिए। इस किस्म के विषम ज्वर मे लक्षण अधिक तीव्र रूप मे होते है, नाडी तीव्र होती, मूत्र अधिक गहरा होता, नेत्रो मे पीलापन होता, रक्त कणो मे मुद्राकृति पैरासाइट्स होते, त्वचा मे फीकापन अधिक होता है।

इस ज्वर के कारण शरीर के किसी अग की सूक्ष्म रक्तवाहिनियो मे विषम ज्वर जीवाणुओ या इनके उत्पन्न मल (Pigment) के द्वारा अवरोध (Thrombosis या Embolism) हो सकता है जिससे इस ज्वर मे नाना प्रकार के इतने लक्षण होते है कि इनकी गणना करना कठिन है और अब अनावश्यक भी है।

विषमज्वर की पहचान

ज्वर मध्याह्न से पहले चढा हो, तथा वह वमन, अगो तथा सिर मे दर्द के साथ हो, न्यूनाधिक प्लीहा वृद्धि का लक्षण हो, यकृत् पर दबाने से दर्द होता हो, शरीर मे पाण्डुता, या नेत्र, त्वचा आदि मे हलका-सा नीबू का सा पीलापन हो (Hyperbilirubinaemia हो), मूत्र गहरे रग का हो (Urobilinuria हो), मुख का स्वाद फीका-सा रहता हो, या मुख मे साबुन-सा घुला हुआ प्रतीत होता हो, पिपासा हो, ओष्ठ, मुख, नेत्रो के आसपास स्फोट (Herpes) हो, प्रात और साय के तापमानो मे अर्थात न्यूनतम और उच्चतम दैनिक तापमानो मे दो डिग्री से अधिक का अन्तर हो, नाडी-गति कुछ तीव्र हो, जिनमे से प्रत्येक नाडी देखने मे निर्बल हो, रक्त की परीक्षा करने पर उसमे श्वेत कणो की न्यूनता (Leucopenia) हो पर Monocytes १२-१५ प्रतिशतक तक हो, रक्त कणो मे मलेरिया जीवाणु दिखाई पडे, विषम ज्वर नाशक औषधि के देने मे लाभ प्रतीत हो, मूत्र आते समय मूत्र मार्ग मे जलन प्रतीत हो, गालो पर कृष्ण वर्ण व्यग हो, तो विषम ज्वर का ही सन्देह करना चाहिए।

विषम ज्वर की चिकित्सा

अति प्रसिद्ध विषम ज्वर नाशक (Antimalarial) औषधियाँ ये हैं।

(१) Quinine
(२) Chloroquine

(१) क्विनीन

सिनकोना नामक वृक्ष की छाल के Alkaloid से Sulphate, Bisulphate, Hydrochloride तथा Dihydrochloride नामक साल्ट बनाये जाते है। इनके देने से विषम ज्वर जीवाणु (Schizonts) मृत हो जाते है तथा Plasmodium Falciparum के अतिरिक्त दूसरे विषम ज्वर जीवाणुओ के Gametocytes भी नष्ट हो जाते है। ज्वर का वेग उतर जाने पर अर्थात् स्वेदावस्था के बाद ५-१० ग्रेन Bisulphate को कैप्स्यूल मे बन्द करके दिन मे ३-४ बार देने मे अग्रिम वेग नही होता। ३-५ दिन इसी प्रकार उसके लेते रहने से और उसके बाद स्वल्प मात्रा मे या ५ ग्रेन मात्रा मे इसके कुछ दिन तक लेते रहने से यह ज्वर फिर नही होता।

क्लोरोक्विन Chloroquine Diphosphate (Avloclor I C I Resochin, Bayer) Chloroquine Sulphate (Nivaquine, M B) Uniquin

यह एक सर्वोत्तम विषम ज्वर नाशक औषधि है जिसने क्विनीन तथा मेपाक्रीन का स्थान ले लिया है जो Plasmodium Vivax तथा Falciparum के Schizonts तथा Gametocytes के लिए घातक है, पर तीव्र विषम ज्वर (M T) के Gametocytes पर इसका विशेष प्रभाव नही। इसका प्रभाव Exoerythrocytic Parasites पर भी विशेष नही। Chloroquine Diphosphate की १ गोली २५ ग्राम (३०० मिलि० Base) की मिलती है। इस औषधि की प्रथम मात्रा १ ग्राम की दी जाती है अर्थात् इसकी दो गोलिया देकर ६ घटे बाद फिर दो गोलिया दे दी जाती है जिससे प्रथम मात्रा १ ग्राम की पूर्ण हो जाती है। इस मात्रा के ८ घटे बाद फिर दो गोलिया अर्थात् ५ ग्राम मात्रा मे दे दी जाती है। फिर दूसरे दिन आधा ग्राम और तीसरे दिन भी आधा ग्राम की मात्रा मे यह औषधि दी जाती है। इस प्रकार तीन दिन मे कुल ढाई ग्राम या ८-१० गोली की मात्रा दे दी जाती है। इससे रक्त मे से जीवाणु लुप्त हो जाते हैं तथा रोगी ठीक हो जाता है। फिर सप्ताह मे १ बार २ गोली रोकथाम के लिए दे सकते है। रोग के प्रतिषेध या रोकथाम के लिए इसकी दो गोलिया सप्ताह मे एक दिन दे दी जाती हैं। Nivaquine (Chloroquine Sulphate) २ ग्राम की गोलिया मिलती है। इसकी दो-दो गोली

प्रथम दिन दो बार दी जाती है। दूसरे दिन दो और तीसरे दिन दो गोली दी जाती है।

इन औषधियो की मात्रा ६ से ९ तक की आयु के वालको के लिए वडी मात्रा की ¾ है। ३ से ६ वर्ष तक यह मात्रा उसकी ½ है। १-३ वर्ष तक के लिए यह ¼ है और १ वर्ष तक के वालको के लिए ⅛ भाग है।

यह औषधि मुख से न दी जा सकती हो तो २ ग्राम Chloroquine Base का ५ सी० सी० जल मे घुला हुआ इजेक्शन भी मिलता है जो मास द्वारा दिया जाता है। आवश्यकता प्रतीत हो तो ६-८ घटे वाद दूसरा इजेक्शन भी दे सकते हैं। मास द्वारा देने से शीघ्र यह शरीर मे व्याप्त हो जाता है। इसे शिरा द्वारा देने की आवश्यकता नही होती। शिरा द्वारा देना हो तो इसे (४० मिलि० Base) १०० सी० सी० नार्मल सेलाइन या शुद्ध जल मे मिला कर वूद-वूद करके देना चाहिए। तीव्र रोग मे इसे Hydrocortisone के साथ दे सकते है। कुछ एक तो इसे थोडी मात्रा मे भी लाभदायक वताते है। पहले दिन पहली मात्रा २ गोली की देकर ६-६ घटे वाद, १-१ गोली २४ घटे तक दी जाती है। फिर ३ दिन तक रोज १-१ गोली दी जाती है। उसके वाद सप्ताह मे २ गोली की १ मात्रा देते रहने से फिर ज्वर के होने की आशका नही रहती।

Camoquin (१९४४) उपर्युक्त वर्ग की ही एक और औषधि है जो Amodiaquine Hydrochloride है। रासायनिक दृष्टि से तथा शारीरिक प्रभाव मे यह क्लोरोक्विन के सदृश ही है। प्रथम दिन इसकी २ ग्राम की गोलिया दिन मे तीन (६०० मिलि० Base) दी जाती हैं। दूसरे-तीसरे दिन दो-दो गोलिया दी जाती हे। फिर सप्ताह में १ दिन २ गोलिया दी जाती हे (१ गोली मे २०० मिलिग्राम औषधि होती है)। वालक के प्रति किलोग्राम भार के पीछे १० मिलिग्राम की मात्रा मे यह देनी चाहिए। ५-१५ वर्ष की आयु के वालको की २ ग्राम दैनिक मात्रा है। रोग की रोक थाम के लिए देनी हो तो इसकी २ गोलिया सप्ताह मे १ वार दी जाती है। विषम ज्वर के लिए इस समय ये दोनो उत्तम औषधिया मानी जाती है।

क्लोरोक्विन एक निरुपद्रव औषधि है। कभी-कभी हलकी-सी सिर दर्द या दृष्टि मे धुधलापन आ जाने या वमन या अरुचि होने की शिकायत हो सकती है। भोजन के वाद तथा अधिक जल से लेने से यह आमाशय विक्षोभक नही रहती।

आयुर्वेद मे विषम ज्वर निदान

जैसे ऊपर कहा गया है, चरक, सुश्रुत दोनो ने इस ज्वर को आगन्तु ज्वर कहा है तथा उन्होने कहा कि शरीर मे वायु प्रकोप के होने पर अर्थात् नाना कारणो से शरीर के प्राण तत्त्व के कम हो जाने पर इसका आक्रमण होता है। आयुर्वेद मे कहा हे, सन्तत विषम ज्वर दिन मे दो वार चढता है। अन्येद्युष्क विषम ज्वर दिन मे एक वार चढता हे। तृतीयक विषम ज्वर तीसरे दिन चढता है। चतुर्थक विषम ज्वर दो दिन छोडकर चढता है। सन्तत विषम ज्वर सात दिन, दस दिन, वारह दिन वरावर वना रहता है। क्योकि उसमे उतराव चढाव विशेष होता है अत उसे विषम सन्तत ज्वर कहते हैं।

(सु० । उ० । ३९ । ५३ । ६५)

सर्व विषम ज्वरो की निवृत्ति के लिए निम्नलिखित प्रयोग हितकर हैं पर नवीन औषधियो के आ जाने पर इनका प्रयोग वहुत कम हो गया है।

(१) गुडूच्यादि क्वाथ
गुडूची, मुस्ता, चिरायता, त्रिफला, दारु हल्दी, अतिविषा, कटुकी, करंजवीज, सप्तपर्ण, पर्पट, धमासा, कण्टकारी, सिनकोना, समान-समान का दो तोला क्वाथ दिन मे दो वार पिप्पली चूर्ण आधा माशा के साथ।

(२) लाल फिटकरी की खील ४ रत्ती की मात्रा मे थोडी मिश्री के साथ मिलाकर दिन मे तीन वार पिलायें।

(३) गोदन्ती भस्म ४ रत्ती की मात्रा मे मिश्री के साथ दिन मे तीन वार देवे।

(४) सोमल का प्रयोग आयुर्वेद मे मलेरिया के लिए चिरकाल से होता आ रहा है, उदाहरणत हरिताल १ तोला को लाल फटकरी ५ तोला के चूर्ण के वीच मे रखकर सम्पुट कर, गजपुट देकर वनाई भस्म १ रत्ती की मात्रा मे तुलसी स्वरस से दिन मे तीन-चार वार देने से विषम ज्वर शान्त होता है। सोमल Schizonts तथा Gametocytes के लिए घातक पाया गया है।

(५) दार्वी रस क्रिया तथा दिवनीन समान-समान मिला कर वनी गोलियाँ भी विषम ज्वर के लिए उपकारी होती हैं।

(६) वार-वार आने वाले मन्द ज्वर के लिए गुडूची ४इच लम्वी, पिप्पली ३ अदद, हरीतकी १ अदद, अजवायन ४ माशा, वादाम ७ अदद, दिन रात

भिगोकर छानकर थोडा लवण मिलाकर प्रात १ बार १५ दिन तक पिलाते है।

(७) निम्बादि चूर्ण (भा.प्र.), अरिष्टादिचूर्ण (योग-चिन्तामणि)—नीम के पत्ते १०, त्रिकटु, त्रिफला, त्रिलवण, द्विक्षार प्रत्येक १ तोला अजवायन ५ तोला मिलाकर चूर्ण बनायें। मात्रा ३-४ माशे दिन मे २-३ बार।

मसूरिका —Variola, Small Pox

फिरग का Pox बडा होता है, उसमे इसके छोटे होने से इसे Small Pox कहते है। पहले-पहल दूसरी शताब्दी मे एक यूनानी चिकित्सक Galen ने इस रोग का वर्णन किया था। बाद मे वह रोम चला गया। उसने बहुत से ग्रन्थ भी लिखे।

मसूरिका रोग यो तो शीत देशो मे भी फैलता है परन्तु यह गर्म देशो मे फैलने वाला एक महासहारी रोग है। यह इतना सहारी है कि मसूरिका वेकसीन के प्रचार से पहले गर्म देशो मे उत्पन्न होने वाले बालको मे से आधे से अधिक बालक इस रोग के आक्रमण से काल के ग्रास हो जाया करते थे। यह रोग बडी-बडी जातियो के इतिहास को बदलने और उनके अध पतन का कारण बना है। यह बात सर्वसम्मत है कि बिना टीके के किसी का इस रोग से बच सकना कठिन कार्य है। १०० वर्ष हुए, ग्रेज अनाटोमी के लिखने वाले महान् विद्वान् 'ग्रे' महोदय ३५ वर्ष की आयु मे ही इस रोग के कारण मृत्यु के ग्रास हो गए। यह सब देखते हुए ससार वस्तुत जेनर का अत्यन्त अनुगृहीत है क्योकि पहले-पहल इगलैण्ड के एडवर्ड जेनर (१७४०-१८२३) ने १७९८ मे यह बात देखी कि जिन ग्वालो को गौओ के थनो के पास निकले Vaccinia Cow-Pox के साथ सघर्ष मे आने से Vaccinia के स्फोट निकल आते थे, उन्हे मसूरिका रोगियो के साथ रहने पर भी मसूरिका रोग नही होता। इस बात का निश्चय करने के लिए कि यह बात यथार्थ है, उन्होने एक बालक मे Vaccinia का विष प्रविष्ट कर दिया और उसमे यह रोग उत्पन्न कर दिया। इसके बाद उन्होने मसूरिका के स्फोट का विष प्रविष्ट किया तो उसे मसूरिका नही निकली। जिससे उन्हे निश्चय हो गया कि ये दोनो रोग समानधर्मा है, और Vaccinia हो जाने पर फिर मसूरिका का सक्रमण नही होता। वर्तमान समय मे Vaccinia रोग तो प्राय लुप्त हो गया है परन्तु देखा गया कि यदि मसूरिका का विष खरगोश या बछडे आदि पशुओ मे प्रविष्ट कर दिया जाय तो उनमे जाकर यही विष मृदु हो जाता और Vaccinia का रूप ले लेता है और उनमे से विष को लेकर मनुष्य मे प्रविष्ट किया जाय अर्थात् मनुष्य को Vaccinia रोग, जो मृदु रोग है, कर दिया जाय तो उसमे मसूरिका के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि पशु मसूरिका तथा मनुष्य मसूरिका अर्थात् Vaccinia और मसूरिका रोग का विष एक ही है। यह एक Virus है जिसके सूक्ष्म कण (Variola Virus Particle) को Elementary Body of Small Pox कहते है। यह इतना छोटा है कि इसका व्यास २१०-२३९ मिलिमाइक्रोन का होता है। इसे Paschen ने १९०६ मे देखा था इसलिए इसे Paschen Body भी कहते है। यह जीवित माध्यम मे ही बढता है, लेबोरेटरी के मृत माध्यमो मे नही बढता। इसलिए खरगोश मे या बछडे मे या Egg Membranes मे या Chick embryo के Chorio allantoic Membranes पर क्षत करके इसे प्रविष्ट कर दिया जाता है और वहा खेती करके उनमे उत्पन्न स्फोटो मे से इस रोग के Virus का शुद्ध घोल (Suspension) बनाया जाता और विधिपूर्वक इसे रगकर Dark Ground माइक्रोस्कोप के द्वारा इसमे विद्यमान Elementary Bodies of Paschen को देखा जा सकता है। ये Bodies इसके Virus के कणो के ढेर से बनते है। इनका व्यास २०० मिलिमाइक्रोन का होता है।

Virus के इस घोल को बलपूर्वक त्वचा पर मला जाय तो, क्योकि इस विष मे त्वचा तथा श्लेष्मकला के सेलो मे प्रविष्ट होकर बढने का विशेष गुण होता है, (अर्थात् यह विष Epitheliotropic होता है), इसमे विद्यमान Elementary Bodies बहिस्त्वक् के सेलो के Cytoplasm मे प्रविष्ट होकर वहा उसके खर्च पर बढने लगते है। इससे सेल के अन्दर एक बडा कण बन जाता है जिसे सेल के अन्दर होने से Inclusion Body of Small Pox या Cytoplasmic Inclusions भी कहते है। Guarnieri महोदय ने इसे पहले देखा था इसलिए इसे Guarnieri Body भी कहते है। इसका व्यास १० माइक्रोन का होता है। ये Bodies मसूरिका स्फोटो के अन्दर बहुत अधिक मात्रा मे होते है। स्फोट के द्रव को स्लाइड पर रख कर Paschen के तरीके से रगा जाय तो इन्हे देखा जा सकता है। वस्तुत यह Elementary Bodies या Paschen Bodies के समूहो मे मिलकर बना हुआ एक बडा कण होता है। इन कणो के घोल (Suspension) को यदि मसूरिका रोग या मसूरिका रोग मुक्त व्यक्ति के सीरम से मिलाया जाय तो ये कण Agglutinate हो जाते

है। यह Virus एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य मे ही सक्रमण करता है, किसी दूसरे प्राणी मे नही।

मसूरिका रोगी की त्वचा मे स्फोटो के निकलने के साथ नासिका, गला, मुख आदि की श्लेष्मकला मे भी ये निकल आते है और शीघ्र फटकर व्रण रूप ले लेते है। रोगी के श्वास प्रश्वास कर्म, छीकने, खासने, बोलने आदि के समय Saliva की बूदो के साथ ये Small Pox Bodies भी प्रभूत मात्रा मे जब बाहर आते हैं तब यह रोग सक्रामक हो जाता है। जल भाग तो वायु मे शुष्क हो जाता है परन्तु ये मसूरिका कण वायु मे चिरकाल तक लटके रहते है और वायु के प्रवाह के द्वारा दूर-दूर तक जाते है। इसी प्रकार रोगी की त्वचा के गीले छिलके भी रोगी के वस्त्रो तथा उसके सम्पर्क मे आई अन्य वस्तुओ के द्वारा दूर-दूर जा सकते है। इनमे से किसी प्रकार से भी ये मसूरिका कण जब किसी दूसरे व्यक्ति के, जिसमे इस रोग की प्रतिरोधक शक्ति न हो श्वास मार्ग द्वारा अन्दर प्रवेश कर जायें, तो उसके जीवित अवयवो पर यह Virus वृद्धि करने लगता है। प्रवेश के प्रथम दिन ही श्वास मार्ग मे क्षत हो जाता है जहा से Virus लसीका ग्रन्थियों मे जाता है। वहा पर इसे वृद्धि करने मे १२ दिन के लगभग लग जाते है। वहा से फिर यह रक्त मे जाता है (Primary Viraemia), रक्त मे इसके रहने मे ज्वर अधिक रहता है। तब रक्त द्वारा उस व्यक्ति के त्वचा तथा श्लेष्म कलाओ के सेलो मे पहुचकर वहा रोहण करने लगता है। यकृत्,प्लीहा, मज्जा मे भी यह विष बढता है। वहा इसके चले जाने और रक्त मे कम हो जाने से ज्वर हलका पड जाता है। त्वचा तथा श्लेष्म-कलाओ के जिन सेलो पर सघर्ष या विक्षोभ अधिक रहता है अर्थात् जहाँ शिराये फैली होती है (Capillary Stasis होता है) उनमे यह विशेषत वृद्धि करता है। यकृत आदि स्थानो मे भी यह बढता है, और वहा बढने पर जब यह फिर रक्त मे प्रवेश करता है (Secondary Viraemia) तब १२वे दिन फिर ज्वर चढता है। इस Virus के विक्षोभक होने के कारण बहिस्त्वक् (Epidermis) के सेल एक ओर तो आकार मे बडे हो जाते, दूसरी ओर सख्या मे भी बढ जाते है। Virus के कारण ही नीचे की अन्तस्त्वर्म (Dermis) मे रक्त सचय बढता है। (अर्थात् Hyperaemia हो जाता है) इसीलिए त्वचा का रोग ग्रस्त प्रदेश फूल जाता तथा रक्त वर्ण हो जाता है एव Macules तथा Papules के रूप मे परिणत हो जाता है। इस रोग विष (Virus) के दुष्प्रभाव से बहिश्चर्म के निम्न स्तर के सेल क्षीण होकर या गलकर द्रव रूप मे परिणत होने लगते है। किनारे के सेल अधिक गलते है, केन्द्रीय सेल कुछ धीरे-धीरे तथा विलम्ब से गलते है। इनके गलने से स्थान-स्थान पर रिक्तता(Vacuolation) उत्पन्न हो जाती है, इसीलिए यद्यपि स्फोट स्वच्छ द्रव से भरकर तन जाता है, पर बीच-बीच मे अनेकानेक सेलो के पूर्णतया न गलने से स्फोट की छत नीचे की भूमि से जुडी रहने के कारण स्फोट मध्य मे निम्न (Umbilicated) होता है तथा कुछ एक सेलो के द्रव रूप मे परिणत न होने के कारण स्फोट अनेक कोष्ठक (Multiloculated) होता है। त्वचा पर उत्पन्न इन स्फोटो के द्रव मे इस रोग के Elementary Bodies बहुत अधिक मात्रा मे रहते है, बाद मे श्वेत कणो के वहा आ जाने से यह द्रव धुधला हो जाता है। स्फोटो मे उत्पन्न हुआ यह धुधला द्रव Staphylococci तथा Streptococci की वृद्धि के लिए एक उत्तम माध्यम है, इसलिए वे इसमे सक्रमण कर जाते है और उसमे वृद्धि करने लगते है। इन्हे आगन्तु जीवाणु (Secondary Infection) कह सकते है। इनके सक्रमण होने पर अन्तश्चर्म मे से Polymorphonuclear Leucocytes भी अधिक मात्रा मे आते है जिससे द्रवस्फोट पूयस्फोट (Pustules) मे परिवर्तित हो जाते है, इनके सूखने पर वहा छिलके या Crusts आ जाते है। श्लेष्मकला पर Horny Layer या कठोर स्तर के न होने से स्फोट नही बनते पर उथले व्रण उत्पन्न होते है जो मुख, गले, नाक मे हो जाते है। कभी-कभी कठ, कठनाली, श्वास-नालियो (Bronchi), भोजन प्रणाली (Oesophagus), क्षुद्रान्त्र, गुदा, योनि मार्ग आदि की श्लेष्म कला मे भी निकलते है। इस रोग मे यकृत् तथा प्लीहा आकार मे बडे हो जाते है। फेफडो मे भी शोथ होता है (Bronchopneumania)।

लक्षण

शीत काल के अन्त मे, ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ होने से पहले, इस रोग के लिए अनुकूल समय होता है। जिनको मसूरिका का टीका नही लगा या जिनको टीका लगे बीस-तीस वर्ष हो चुके हो, उन सब मे इस रोग के सक्रमण की अनुकूलता होती है। तथापि जिनको शैशव मे टीका नही लगा ऐसे बालको मे ही प्रधानत यह रोग फैलता है। रोग-बीज के सक्रमण हो जाने के १२-१४ दिन बाद (Secondary Viraemia के कारण) सर्दी लगकर सहसा ज्वर चढकर १०३-१०४ डिग्री तक पहुच जाता है। तीव्र सिर दर्द (Frontal), कटि शूल, शाखा शूल, सर्दी लगकर

कम्पन होने, गले के अन्दर दुखन, कुछ खासी का होना Photophobia और वमन ये प्रधान लक्षण होते है जो इस रोग के विष के सचार (Toxaemia, Viraemia या Septicaemia) के सूचक होते है। रोग प्रवल हो तो वह प्रलाप के लक्षण के साथ आरम्भ होता है। रोगी की परीक्षा करने पर उसकी जिह्वा मलिन, क्षुधा नष्ट, श्वास दुर्गन्धित, नाडी भरी हुई तथा दीर्घ (Bounding), गले मे दानो के होने मे आवाज कुछ वैठी हुई, तथा कोष्ठ के निम्न प्रदेश पर और मुख तथा तालु की श्लेष्म कला पर कभी-कभी लाल चकत्ते (Erythematous Rashes) की उपस्थिति प्रतीत होती है। यह रोग फैला हुआ हो तो इन लक्षणो को देखकर इस रोग का सदेह हो जाना चाहिए।

पर ज्वर चढने के तीसरे दिन माथे तथा शख प्रदेश पर वालो के पास-पास जहा-जहा Virus ने स्थान कर लिया होता है, लाल रग के उभरे हुए चकत्ते (Macules) निकल आते है जो कुछ घटो मे ही कठोर कोठ (Papules) वन जाते है। परीक्षा करने पर ये २-४ मिलिमीटर व्यास के गहरे गुलावी रग के कोठ दृढ तथा त्वचा मे वसे हुए प्रतीत होते है। ये २-३ दिन तक निकलते है। इनके निकलने पर ही रोगी मे यह रोग दूसरो मे सक्रमण करता है क्योकि मुख और गले की श्लेष्मकला मे उत्पन्न कोठो से इसका Virus Saliva मे आ जाता है। इनके चारो ओर रक्त मण्डल (Areola) होता है। इनके निकलते ही रोगी का कष्ट तथा ज्वर शान्त हो जाते है या वहुत घट जाते है। रक्त मे Secondary Viraemia के वाद उसके विपरीत Antibodies के उत्पन्न हो जाने और विष का निराकरण हो जाने से ऐसा होता है। मसूरिका के दाने माथे पर निकलने के वाद हाथ और कलाई की पीठ पर निकलते है, फिर पावो और गिट्टो पर प्रकट होते है। शरीर के दोनो तरफ एक सदृश निकलते है। शरीर के ऊपरी भाग पर प्रवलता से घने रूप मे निकलते है। शरीर के मध्य देश मे मृदु रूप मे तथा सख्या मे स्वल्प होते है (Centrifugal होते हैं)। पेट तथा वक्षण प्रदेश पर होते ही नही, छाती पर वहुत कम होते, पीठ पर कन्धो के आसपास कुछ-कुछ होते है। चेहरे के उभरे हुए पृष्ठो पर विशेषता से निकलते है तथा शरीर के दवे हुए और छिपे हुए पृष्ठो पर विलकुल नही निकलते। अर्थात् शरीर के जिस पृष्ठ पर सघर्ष अधिक पडता है या प्रकाश अधिक पडता है वहा सम्भवत रक्त का और उसके द्वारा मसूरिका विष का अति सचय होता है और वही कोठ अधिक घने निकलते है इसीलिये ये शाखाओ के Extensor पृष्ठो पर Flexor पृष्ठो की अपेक्षा अधिक निकलते है। Antibody की उत्पत्ति के वाद Virus का और विस्तार तो रुक जाता है पर जहा-जहा उसके कारण जो दाने वनते है उनकी परिपाक प्रक्रिया तो जारी रहती है।

निकलने के २ दिन वाद या रोग होने के पाचवें दिन ये कोठ, वृत्ताकार द्रव स्फोट (Vesicles) का रूप ले लेते है जो मसूर की दाल के सदृश स्पर्श मे कठोर तथा त्वचा मे घसे हुए होते है। इनके चारो ओर रक्त मण्डल (Areola) होता है। छठे दिन कोठ द्रवस्फोट मे परिवर्तित हो जाते है जो मध्य मे निम्न होते है। अव चौथे से सातवे दिन तक जो ज्वर होता है वह त्वचा मे Virus की वृद्धि से दुवारा Viraemia के कारण होता है। सातवे दिन इन स्फोटो का द्रव धुधला होने लगता है और आठवे दिन ये सभी पूयविस्फोटो (Pustules) मे परिवर्तित हो जाते है। स्फोटो के अन्तर्गत सेलो के गल जाने से इन स्फोटो की मध्य निम्नता दूर हो जाती है। ये तने हुए न रहकर मृदु एव चपटे से हो जाते हैं और आकार मे कुछ वडे, ६ मिलीमीटर व्यास तक के हो जाते हैं। इनमे कुछ पीलापन झलकने लगता है। इनके चारो ओर के रक्त मण्डल (Ariolae) क्रमश लुप्त हो जाते है। द्रव स्फोटो के पूय स्फोटो मे परिवर्तित हो जाने पर फिर कुछ ज्वर चढ जाता है, और जव तक पूय भाव रहता है वना रहता है। प्रथम ज्वर, विष-सचार या (Toxaemia या Viraemia) के कारण होता है। यह ज्वर पूय (Sepsis) के कारण होता है। इसका कारण त्वचा मे विद्यमान जीवाणुओ का सक्रमण होता है अर्थात् यह Teritary Fever पूय जीवाणुजनित या त्वचा के सेलो मे हुए विनाश Necrosis के कारण उत्पन्न विषैले तत्त्वो के रक्त मे सचार कर जाने से होता है। इस अवस्था मे चेहरा इतना फूल जाता है कि रोगी को पहचानना भी कठिन हो जाता है। इस दशा मे रोगी से एक दुर्गंध निकलने लगती है। उसमे प्रलाप और उन्निद्रता के लक्षण भी हो जाते है। इसी पूय विस्फोटावस्था (Pustular Stage) मे इस रोग के उपद्रवो मे से किसी उपद्रव के होने का भय रहता है जिससे मृत्यु भी इसी अवस्था मे होती है। इस अवस्था मे श्वास सम्वन्धी, हृदय सम्वन्धी या मस्तिष्क सम्वन्धी कोई दुर्लक्षण हो तो रोगी की अवस्था चिन्ताजनक समझनी चाहिये।

पूय विस्फोटावस्था चार दिन के लगभग रहती है। १२वें दिन मे पूय विस्फोट सूखने लगते है और ज्वर उतर जाता है। ये सूखे हुए गहरे भूरे या काले छिलके (Scabs या Crusts) एक सप्ताह या १८वें दिन तक

झड जाते हे। पादतल या करतल के विस्फोट जो अन्दर ही सूख जाते हे उन्हे वाहर निकलने मे कई सप्ताह लगते हे। इस प्रकार एक मास तक शरीर साफ हो जाता है। यदि विस्फोट (Pustules) गहरे हुए हो, वहिश्चर्म (Epidermis) के सेल नष्ट हो गये हो और उनके स्थान पर स्नायु तन्तु (Scar Tissue) ने उस गढे को भरा हो तो इसके सुकड जाने से वहा स्थायी रूप मे गढे रह जाते हे। चेहरे पर Sebacious glands के नष्ट हो जाने और वहा Fibrous tissue के आ जाने से चेहरे पर गड्ढे पड जाते है। इस रोग मे मुख, नासिका गले, कण्ठ आदि मे स्फोट-जनित व्रणो के हो जाने से श्वास प्रश्वास लेने, वोलने (Aphonia) या खाने पीने मे कठिनता (Dysphagia) हो जाती है। मृत्यु, रोगी मे प्रतिरोधक शक्ति (Immunity) के न होने से या तो प्रथम ज्वर मे (Secondary Viraemia से) या दुवारा हुए ज्वर मे Virus के प्रवल सचार (Toxaemia) से होती है। इस विप के कारण हृदय मास मे क्षीणता होकर हृत्कम्प और हृदयनैर्वल्य से मृत्यु होती है। रक्त परीक्षा करने पर पहले ५ दिन तो Leucopenia मिलता और वाद मे Lymphocytes प्रधान Leucocytosis मिलता है। मूत्र मे अलव्यूमिन मिलता है।

उपद्रव

नेत्राभिष्यन्द (Conjunctivitis) इस रोग मे प्राय होता है। कभी-कभी नेत्र श्लेष्मकला (Conjunctiva) मे पलको के अन्दर या नेत्र गोलको पर पूय विस्फोट (Pustules) भी हो जाते हैं। इस प्रकार पलको के अन्दर कोठ हो जाने के कारण पलके सूज जाती है जिससे उनका खोलना कठिन हो जाता है। कानिया के सूज जाने (Keratitis) के कारण या Corneal Ulcer से उसमे पूय भाव होकर दृष्टि नष्ट हो सकती है।

वडी श्वास नालियो मे मसूरिका व्रण-जनित शोथ होने के वाद शिशुओ तथा वृद्धो मे सूक्ष्म श्वास नालियो मे भी Pneumococci या Streptococci के सक्रमण के कारण शोथ (Broncho Pneumonia) हो सकता है जो पहले प्राय घातक होता था पर अव Antibiotics से इसका प्रतिकार किया जा सकता है। हृदय शोथ Myocarditis तथा रक्त सचारक शक्ति के नाश या Peripheral Vascular Failure का उपद्रव भी होता है। कान सम्वन्धी उपद्रव मध्य कर्ण शोथ (Otitis Media, Mastoiditis) अण्डशोथ (Orchitis) के उपद्रव भी हो सकते है। रोग प्रवल हो तो Albuminuria भी होता हे।

इस रोग के अच्छे होते समय या वाद मे पूय जनक जीवाणुओ के सक्रमण से पिडिकाये (Boils) तथा विद्रधिया भी हो जाया करती है।

भेदक लक्षण अथवा रोग की पहचान

जव यह रोग फैला हो, कटि शूल तथा सर्वांगशैथिल्य, इन दो लक्षणो से युक्त ज्वर को देखकर इस रोग का सन्देह कर लेना चाहिए।

प्रारम्भिक दानो के निकलते समय रोमान्तिका (Measles) से इस रोग का सन्देह होता है। परन्तु उसके दाने उथले-उथले होते है, इस रोग के दाने त्वचा मे घसे हुए होते है। उस रोग मे चकत्ते या दाने निकलने पर ज्वर आदि लक्षण तीव्र हो जाते हे, इसमे कम हो जाते हैं। उस रोग मे खासी का लक्षण वहुत स्पष्ट होता है। यदि मसूरिका मृदु रूप मे हो (Variola-minor), दाने थोडे हो, ज्वर स्वल्प हो तो इस रोग का विस्फोटिका ज्वर (Varicella) से सन्देह हो सकता है। पर उस रोग के दाने मसूरिका के स्फोटो से आकार मे छोटे होते है। उसके स्फोट पहले धड पर निकलकर फिर सिरो की ओर है, तथा वे सिरो पर निकलते ही नही है (अर्थात् वे Centripetal होते हे जब कि मसूरिका के दाने Centrifugal होते हे)। विस्फोटिका स्फोट प्रथम से ही द्रवयुक्त होते हैं, त्वचा पर उथले-उथले होते है, Unilocular या एक कोष्ठक होते हे, निम्न मध्य नही होते। उस रोग के दाने पृथक्-पृथक् समूहो मे निकलते है। एक समूह निकल कर सूखने लगता है, तव दूसरे स्थान पर दूसरा समूह-नया निकल आता है। अर्थात् शरीर के सभी स्फोट एक सी स्थिति मे नही होते। इस रोग मे एक समय मे सभी स्फोट एक ही स्थिति मे होते हे। विस्फोटिका मे ज्वर, सर्वा ग-शैथिल्य, कटि शूल आदि तीव्र लक्षण भी नही होते। प्रयोगशाला मे इसके द्रव मे Inclusion Bodies को देखने या Complement Fixation test से इस रोग का निश्चय हो जाता है।

साध्यासाध्यता

यदि कटि-शूल तीव्र हो, दाने निकल आने पर भी ज्वर न उतरे या पर्याप्त कम न हो, पूय विस्फोट घने तथा प्रवल रूप मे निकले, मुख व गले मे स्फोटो के कारण मुख से पानी आता हो, उन्निद्रता और प्रलाप के लक्षण अधिक हो, श्वास तीव्र हो जाय (अर्थात् Broncho Pneumonia हो जाय) तो यह रोग कष्ट साध्य होता है। प्रथम ५ वर्ष की आयु तक इस रोग से ४०% तक मृत्यु हो जाती है। इसके वाद २०% तथा वृद्धो मे फिर

४०-५०% तक इस रोग से मृत्यु हो जाती है।

मसूरिका रोधक चिकित्सा—Glycerinated Lymph

मसूरिका विष को स्वस्थ बछडे की त्वचा मे प्रविष्ट करके उस स्थान पर उत्पन्न Vaccinia के स्फोटो मे से Lymph को इस प्रकार लिया जाता है कि उसमे दूसरे जीवाणुओ का मिश्रण न हो। फिर इसमे ग्लिसरीन का मिश्रण कर देते है जिससे इसमे पूयजनक जीवाणु उत्पन्न न हो। Virus पर इस ग्लिसरीन का कोई दुष्प्रभाव नही होता। मनुष्य शरीर मे त्वचा द्वारा इसके प्रविष्ट कर देने से उस स्थान पर स्थानिक रोग होकर मसूरिका रोग के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार Vaccinia रोग उत्पन्न करने की इस प्रक्रिया को Vaccination (Vac=सस्कृत, लैटिन मे गो) कहते है। इस Lymph को सूक्ष्म ट्यूबो मे भरकर रेफ्रिजरेटर के अन्दर सुरक्षित रखा जाता है। Vaccine Institute से निकलने के बाद रेफ्रिजरेटर मे रखने पर भी इसे १५ दिन के अन्दर-अन्दर काम मे ले आना चाहिये। इसके बाद यह निष्क्रिय हो जाता है तथा जब एक ट्यूब खोल ली जाये तो उसे खर्च कर देना चाहिए, खुली हुई ट्यूब रखने से निष्क्रिय हो जाती है।

Vaccination —बाई बाहु के Deltoid नामक पेशी के बन्धने के स्थान पर बाहर की ओर की त्वचा को साबुन और जल से धोकर तीन बार उबले जल और उबली हुई रुई से साफ करना चाहिये अथवा ईथर या शुद्ध अलकोहल लगा कर उसे उबले जल से धोकर सुखाकर वहा के स्वच्छ प्रदेश पर एक इच दूरी पर दो स्थानो पर केपिल्लरी ट्यूब मे से एक-एक बूद लिम्फ की गिरानी चाहिये। फिर एक छोटे Scalpal या गोलाकार धार वाली सुई से इन बूँदो वाली त्वचा मे $\frac{1}{8}$ इच लम्बे दो तीन उथले चीरे (Scraches) दे देने चाहिये। अर्थात् चाकू या सुई की धार बहिश्चर्म के अन्दर ही प्रविष्ट होनी चाहिये। ये चीरे समानान्तर होने चाहिये। एक दूसरे को परस्पर काटने वाले नही होने चाहिये। फिर Scalpal या सुई को त्वचा पर समानान्तर लिटाकर लिम्फ को उन चीरो पर रगड देना चाहिये। इसे टीका लगाने का तरीका (Scratch Method) कहते हैं। अथवा सुई को बूँदो पर ९० डिग्री पर रखकर ४-५ बार उथले-उथले चुभो भी सकते है जिससे ४-५ छिद्र होकर उनमे लिम्फ विलीन हो जाये। इस टीके को Drill Method कहते है। टीका लग जाने के बाद उस स्थान को धूप से तथा जल से कुछ काल बचाना चाहिये। या सुई के किनारे से १०-१२ प्रबल Pressure दे देने चाहिए, इसे Pressure method कहते है।

तीसरे दिन टीको के प्रत्येक क्षत पर एक छोटा सा कोठ (Papule) प्रकट होता है जो चौथे दिन स्पष्ट हो जाता है। पाचवे दिन यह बीच मे झुका हुआ $\frac{1}{8}$ इच व्यास का स्फोट (Vesicle) बन जाता है जिसके चारो ओर रक्त मण्डल (Areola) होता है। आठवें दिन अर्थात् टीका लगा था उस दिन यह स्फोट पूय विस्फोट (Pustule) मे परिवर्तित हो जाता है, उसके चारो ओर का रक्त मण्डल भी बढ जाता है। १०वे दिन यह कुछ-कुछ सूखने लगता है। १४वे दिन सूख कर झड जाता है और उसके स्थान पर एक गढा सा रह जाता है। पूय विस्फोट के समय बालक को ज्वर का कष्ट भी दो तीन दिन तक रहता है। इस प्रकार की प्रतिक्रिया को Primary Reaction कहते है। ऐसा होने पर निश्चय से कहा जाता है कि व्यक्ति मे मसूरिका रोग के लिए प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो गई है।

प्रत्येक शिशु को चौथे से छठे महीने के बीच मे मसूरिका टीका लगा देना चाहिए। एक महीना या एक वर्ष की आयु से पहले-पहले ही इसका लगाना आवश्यक है। इससे सात आठ वर्ष के लिए मसूरिका रोधक शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इसके बाद फिर नवयुवावस्था मे एक बार यह टीका लगा देने पर फिर चिरकाल के लिए इस रोग के होने का भय नही रहता। यदि त्वचा पर पामा (Eczema या Dermatitis) हो या कोई चकत्ते निकल रहे हो, या कोई ज्वर हो, या बालक अभी-अभी ज्वर से मुक्त हुआ हो, अति निर्बल हो या स्त्री गर्भिणी हो तो उसे टीका नही लगाना चाहिए। कोई उपद्रव हो जाये तो Anti-vaccinial gamma globulin देना चाहिए, Encephlomyelitis हो जाय तो Steroid चिकित्सा होनी चाहिए। बडी आयु मे जब दुबारा टीका लगाया जाता है तो प्रतिक्रिया शीघ्र होती है अर्थात् चौथे दिन तक स्फोट पूर्ण होकर पूय विस्फोट (Pustule) मे परिवर्तित हो जाता है और शीघ्र ही शुष्क हो जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति मे रोग प्रतिरोधक शक्ति कुछ-कुछ बनी हुई है।

जब किसी घर मे मसूरिका रोग हो जाये तो अन्य व्यक्तियो को, यदि, १० वर्ष से अधिक समय टीका लगाये हो गया हो, तो रोग होने के तीन चार दिन के अन्दर अन्दर टीका लगा देना चाहिए। Vaccinia का परिपाक काल (Incubation) तीन दिन है जबकि मसूरिका १४ दिन के लगभग होता है। अत इस टीके से मसूरिका रोग होने से पहले ही उस व्यक्ति मे प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो जाती है। अथवा Marboran जो एक

Antiviral Agent है उसके चार कैप्स्यूल दिन मे दे देने चाहिये, दो प्रात ,दो साय, बालक को १-१ कैप्स्यूल देना पर्याप्त है। इससे रोग के होने का भय नही रहता या Thiosemicarbazone को रोज ४ दिन तक ३ ग्राम मात्रा मे दें या Anti-vaccinial gamma globulin देवें।

मसूरिका रोग की चिकित्सा

रोगी को दूसरो से पृथक् करके, प्रकाश से बचाते हुए एक कुछ अ धेरे से कमरे मे आराम से नर्म बिस्तरे पर लिटाये रखना चाहिए। उसके हृदय मास की प्राण शक्ति को, जो इस रोग के विष के दुष्प्रभाव से पहले ही निर्बल होती है, उठने बैठने से और निर्बल नही होने देना चाहिए। जल उसे अधिक मात्रा मे देना चाहिए। भोजन के लिए उसे दूध या Peptonised दूध, ग्लूकोज और किसी फल के रस पर रखना चाहिए। इसके देने के बाद जल मे थोडा ग्लिसरीन और Rose Water मिलाकर मुख को अन्दर से साफ कर देना चाहिए क्योंकि स्फोटावस्था मे Secondary Infection होकर उपद्रवो के होने की आशका रहती है। उसके निवारण के लिए Crystalline Pencillin ५ लाख Units की मात्रा मे चौथे दिन से प्रति १२ घन्टे पर मास द्वारा १० दिन तक देते रहना चाहिए या Pentids दिन रात मे ४ बार दे या Chloramphenicol २ ग्राम या Tetracycline इतनी मात्रा मे प्रतिदिन मुख द्वारा देना चाहिए, या Erythromycin एक ग्राम दैनिक मात्रा मे २-४ बार करके मुख से देना चाहिए। Prednisolone के देने से रोग की तीव्रता तथा उपद्रवो के होने मे कुछ कमी हो जाती है।

रोग की Papular अवस्था मे Calamine lotion त्वचा पर लगाये उसमे थोडा Dettol भी मिला ले। Pot Permanganate का ५-१० हजार मे १ का द्रव भी इस रोग के विष के लिए घातक होता है। अत इस औषधि के ५ प्रतिशत द्रव को रुई के साथ सर्व स्फोटो पर दिन मे तीन बार लगाना चाहिए, अथवा चार हजार मे एक की ताकत के इसके द्रव से दिन मे दो बार सारे शरीर को स्पज करके शरीर पर Boric Talc Powder लगा देना चाहिए। इसी प्रकार Dettol के हलके घोल से शरीर को स्पज कर सकते है। इससे दुर्गन्ध भी मिटती है अथवा १०० मे १ की ताकत के Carbolic Acid के द्रव मे शरीर को स्पज कर सकते है। या तीन प्रतिशत कार्बोलिक वेजलीन लगा सकते है। इससे खुजली तथा दुर्गन्ध भी मिटती है या जैतून तेल मे Eucalyptus Oil, Thymol, Acid Boric मिलाकर लगाये। चेहरे पर बर्फ मे भीगी लिन्ट रखकर उसे Oild Silk से ढक देना चाहिए। बिस्तरे पर यूकेलिप्टस आयल के छिडकने पर शरीर से आने वाली दुर्गन्ध का निवारण होता है। स्फोटो पर Neomycin ५ प्र० श० मलहम या Vioform ३ प्रतिशत या Acromycin ३ ग्राम मे ५ मिलि० या Bacitracin ५०० यूनिट प्रतिग्राम ताकत की बनी किसी मलहम का प्रयोग कर सकते है।

मुख की रक्षा के लिए ५ प्रतिशत Potassium Permanganate का द्राव लगाकर ऊपर ग्लिसरीन का भीगा लिण्ट रख सकते है। इसी प्रकार हाथो पर भी ग्लिसरीन की लिण्ट बाँधी जा सकती है। चेहरे तथा हाथो पर बर्फ का भीगा कपडा रखा जा सकता है।

नेत्रो को उपद्रवो से बचाने के लिये एक औस मे १० ग्रेन की ताकत के बनाये Boric Lotion से चार-चार घटे पर धोना चाहिये, तथा या तो Sulphacetamide Solution २० प्रतिशतक दिन मे चार-चार घटे पर डाले या Terramycin Ointment १ % या Yellow Oxide of Mercury ८ ग्रेन, Atropine Sulphate १६ ग्रेन, वेजलीन १ औंस मिलाकर बनाई मलहम लगाते रहना चाहिये। या Prednisolone ५ % + Neomycin ५% की मलहम दिन मे २ बार लगाये।

गले की रक्षा के लिये पाच हजार मे एक की ताकत के पोटासियम परमेगनेट द्रव से अथवा हाइड्रोजन पर-ऑक्साईड को दुगुने जल मे मिलाकर उससे कुल्ले कराने चाहिये या Glycerin thymol ६० बून्द को ५ औंस जल मे मिला कर खाने के बाद उसके कुल्ले कराने चाहिए।

कण्ठ (Larynx) तथा श्वास नालियो की रक्षा के लिये Tr Benzoin Co ६० बून्द को १ पाइन्ट उबलते जल मे मिलाकर उसकी वाष्प कमरे मे देनी चाहिये।

बेचैनी तथा उन्निद्रिता हो तो Potassium Bromide ३० ग्रेन, Chloral Hydrate १५ ग्रेन, कुछ सीरप और जल मे मिलाकर दिन मे दो बार दे या Sodium Amytal ३ ग्रेन या Soneryl दे। कटि तथा सिर मे दर्द हो तो Aspirin १० ग्रेन की मात्रा मे देनी चाहिये।

दानो के छिलको को हटाने के लिये सोडे के गर्म जल से धोना चाहिये। गहरे छिलको को निकालने के लिये स्टार्च की गर्म पोल्टीस बाधनी चाहिये या ५ प्रतिशतक Sulphathiazole और १ प्रतिशतक Carbolic Acid की बनी मलहम लगानी चाहिये या कपूर १ ड्राम Eucalyptus Oil, menthol, Thymol, Salicylic Acid प्रत्येक २० ग्रेन नारियल का तेल ८ औस मिलाकर यह

तेल लगाना चाहिये। छिलको के उतर जाने पर Zinc Oxide की Sterile मलहम मुख पर मलनी चाहिये।

विस्फोटिका, विस्फोटक ज्वर:—Varicella, Chicken Pox

विस्फोटक ज्वर विशेषत ५-१० वर्ष तक की आयु के वालको और कभी-कभी युवको मे सक्रमण करने वाला एक रोग है जिसमे मन्द ज्वर के साथ थोडे या वहुत छोटे-छोटे स्फोट शरीर पर निकलते है। इस रोग का सूक्ष्म विप कण (Virus) स्फोटो मे रहता है। पहले-पहल ये रोगी के नासा पश्चिम प्रदेश (Nasopharynx) मे निकलते है तथा शीघ्र फटकर व्रण रूप ले लेते है। जहा से रोगी के छीकने, खासने, वोलने के द्वारा जो थूक के कण वाहर वायुमण्डल मे आते है उनमे से यह समीपवर्ती दूसरे वालको के श्वास मार्ग मे प्रवेश कर जाता है। रोगी की त्वचा पर निकले स्फोटो से भी रोगी के वस्त्र आदि द्वारा यह दूसरे वालको के श्वास मार्ग मे प्रवेश कर सकता है। इस रोग का Virus मसूरिका के Elementary Body या Paschen Body के सदृश ही १४४ से २५० मिलिमाइक्रोन व्यास का ईट (Cube) के आकार का सूक्ष्म कण है पर उससे विभिन्न जाति का है, यह केवल मनुष्य शरीर मे वृद्धि करता है, उसके Virus के समान वछडे, खरगोश आदि प्राणियो के शरीर मे रोहण नही करता। उसके समान इसमे भी त्वचा तथा श्लेष्मकला के सेलो के लिये विशेष आकर्षण होता है (अर्थात् यह भी Dermatotropic है)। जिस शरीर मे इसके लिये प्रतिरोधक शक्ति नही होती उसके नासा मार्ग द्वारा रक्त मे प्रवेश करके यह त्वचा तथा श्लेष्मकलाओ के सेलो मे पहुचकर रोहण करता है, परन्तु यदि किसी व्यक्ति मे इसके विपरीत प्रतिरोधक शक्ति तो होती है पर पूर्ण परिणत नही होती तो यह कभी-कभी Nerves के सेलो मे रोहण कर जाता है (Neurotropic)। इस प्रकार यह Posterior Nerve Roots मे अथवा पचम मस्तिष्क नाडी (Cranial Nerve) की शाखाओ या सप्तम मस्तिष्क नाडी मे रोहण करता है तो माथे तथा मुख पर जहा-जहा नाडिया त्वचा मे होती है इसके कारण विस्फोट निकल आते है जिसे Herpes Zoster या कक्षा विस्फोट रोग कहते है अर्थात् Varicella और Herpes दोनो के Virus या तो एक ही है या सर्वथा सदृश है। Herpes रोगी के सम्पर्क मे आने वाले वालको को कभी-कभी विस्फोटक ज्वर होते हुये देखा भी जाता है और वहुत कम कभी-कभी Chicken Pox रोगी के सम्पर्क मे आये वडे व्यक्ति को Herpes हो जाता है। इसी प्रकार विस्फोटिका रोग से मुक्त वालक का Serum, लेवोरेटरी मे विद्यमान Herpes Zoster के Virus के Suspension को तथा Herpes से मुक्त व्यक्ति का Serum लेवोरेटरी मे विद्यमान Varicella Virus के Suspension को Agglutinate कर देता या जमा देता है। अर्थात् इन दोनो की Morphology तथा Antigenic गुण एक से है।

सम्प्राप्ति

नासा पश्चिम प्रदेश के Lymphatic अवयव मे वढकर रक्त मे फैलकर (Viraemia) करता है और फिर त्वचा मे पहुचता है। इस विप (Virus) के, जो कि Papillary Layer की रक्तवाहनियो द्वारा त्वचा मे पहुचती है, प्रभाव से वहिश्चर्म के Prickle Cells की स्तर के वाहर के कुछ एक सेल फूल जाते है। कुछ एक सेल विभक्त होकर Giant Cells या वडे-वडे सेल हो जाते है। इन सेलो के इस फूल जाने की क्षयात्मक (Degenerative) प्रक्रिया को Ballooning या Vaccuolation की प्रक्रिया कहते है। फिर इन गले सेलो मे द्रवीभाव (Liquefaction) हो जाता है जिससे त्वचा की वहिस्तर (Horny Layer) के नीचे कही-कही द्रव भर जाने से वह ऊची उठ जाती है। इन्हे ही विस्फोट (Vesicles) कहते है। इनकी छत Stratum Corneum तथा Str Lucidum से तथा फर्श Prickle Cell layer की गहरे भाग से वनी होती है। इस द्रव मे Mononuclears तथा Polynuclears के आ जाने से यह धुधला भी हो जाता है। त्वचा के अतिरिक्त जव यह फुफ्फुस, यकृत Pancreas Suprarenals आदि मे भी वढता है तव यह घातक हो सकता है।

लक्षण

रोग के सक्रमण के १२-१४ दिन वाद वालक मे मृदु ज्वर, शिर दर्द, अन्नारुचि के साथ ही शरीर पर विस्फोट निकल आते है। वस्तुत पहले तो ये मुख, गले, नासा के पश्चिम प्रदेश मे निकलते है और फटकर क्षुद्र व्रणो का रूप ले लेते है। देखा जाये तो वाहु पर भी रक्तमण्डल से युक्त ये व्रण देखे जा सकते है। परन्तु पहले-पहल ये स्फोट चेहरे पर दीखते है तथा १-२ मिलिमीटर व्यास के दूर-दूर त्वचा पर पानी की वूद की तरह पडे हुए स्वच्छ द्रव से भरे हुए होते हैं। इनके चारो ओर कभी रक्तमण्डल होता है, कभी नही होता। कभी-कभी इनके निकलते समय ज्वर भी नही होता। कभी-कभी तो ये सव मिलकर १०-२० ही होते है। कभी सौ या इससे अधिक भी होते है। ये

पीठ, छाती और मुख पर अधिक होते है। बहुधा पहले छाती या धड पर निकलते है। फिर मुख पर तथा शरीर के सिरो पर तो बहुत कम होते है। छाती पर Inter Costal Nerves की दिशा मे होते है। शाखाओ पर भी उनके ऊपर के भाग पर निम्न भाग की अपेक्षा अधिक होते है, बगल मे भी हो सकते है, मसूरिका का दाना बगल मे कभी नही होता। पहले इनका एक समूह निकलता है फिर दूसरा समूह, इस प्रकार ४-५ दिन तक ये ३-४ समूहो मे निकलते है। इनकी Macule तथा Papule की अवस्था कुछ एक घंटे ही रहती है, अर्थात् ये निकलने के बाद शीघ्र २४ घंटो के अन्दर-अन्दर स्फोट (Vesicle) बन जाते है और ४८ घंटो के अन्दर-अन्दर धुंधले से होकर (Pustules बनकर) सूखने भी लग जाते हैं, और एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर झड जाते है। यह रोग लगभग एक सप्ताह तक रहता है। इनमे खुजली के अतिरिक्त दूसरा कोई कष्ट नही होता। रक्त परीक्षा करने पर Leucopenia पाया जाता है।

विस्फोटिका के विस्फोट शरीर के मध्य भाग से सिरो की ओर प्रसरण करते है (Centripetal होते है) शरीर के ढके हुए भागो पर होते, नग्न भागो पर नही अर्थात् हाथो, पावो पर बहुत कम होते है। मृदु त्वचा पर होते है Extensor पृष्ठो पर नही होते। शीघ्र ही द्रव स्फोट (Vesicle) का रूप ले लेते है, बहुत उथले होते है। निम्न मध्य (Umbilicated) नही होते। आकार मे भी स्फोट छोटे-छोटे होते हैं। एक-दूसरे से दूर होते है। इनके निकलते समय ज्वर, अशक्ति आदि कोई तीव्र लक्षण नही होते। शरीर पर निकले सभी स्फोट एक ही अवस्था मे न होकर विभिन्न अवस्थाओ मे होते है। इन लक्षणो के कारण मसूरिका से इस रोग का भेद करना कठिन नही होता। कभी-कभी यह तीव्र एव घातक रूप मे भी होता है। (१) रक्त विस्फोट Varicella Hemorrhagica उसे कहते है जिसमे स्फोटो के अन्दर, त्वचा मे, नेत्रो के Conjunctiva मे रक्तस्राव हो जाता है या आतो से रक्तस्राव हो जाता है। (२) वात प्रधान विस्फोट या Gangrenous Varicella मे विप सचार के कारण विस्फोटो मे मृत्यु (Necrosis) की प्रक्रिया हो जाती है। (३) पित्तप्रधान विस्फोट Bullous Varicella, Varicella Bullosa विस्फोट बडे-बडे होते तथा व्रण का रूप ले लेते है। Larynx के आसपास कभी यह हो जाय तो Glottis के सूज जाने से श्वास मे कष्ट हो जाता है।

चिकित्सा

जब तक छिलके न उतर जायें, रोगी को दो सप्ताह के लिए पृथक् करके रखना चाहिए, तथा जब तक स्फोट हो, बिस्तरे मे लिटाये रखना चाहिए। उसे Potassium Acetate १५ ग्रेन, Potassium Citrate १५ ग्रेन, Liquor Ammonium Acetate Dilute ६० बूंद, Aqua Menthae Pip १ औस मे मिलाकर दिन मे दो तीन बार दे। स्फोटो पर १ प्र० श० Gention Violet लगाना चाहिए। या १०० Collodion मे Cresol ½ Tannic Acid १२½ भाग या Calamine Lotion मे १ प्र०श० Phenol लगाये या Phenol के स्थान पर Dettol डाले। शरीर को गर्म Potassium Permang Lotion ४००० मे १, से स्पज करके Boric, Zink, Talc. बराबर-बराबर मिलाकर बनाया Dusting Powder उस पर लगाये। पूयभाव हो जाय तो Crystalline Penicillin २ लाख यूनिट दिन मे २ बार मास द्वारा देना चाहिए। खुजली की शिकायत हो तो किसी Anti histamine औषधि का जैसे Promethazine २५ मिलि० या Diphenhydramine (Benadryl) २५ मिलि० दिन मे ३ बार प्रयोग करे। छिलके उतारने के लिए नारियल का तेल जिसमे युक्लिप्टस तेल ५० मे १ मिला हो लगाना चाहिए। रोगी के सपर्क मे आये सब कपडो को तथा सामान को Sterilise कर देना चाहिए।

रोमान्तिका —-Measles-Rubeola-Morbilla

कारण

प्राचीन ग्रन्थो मे रोमान्तिका का पृथक् रोग के रूप मे वर्णन नही मिलता। वे लोग इसे मसूरिका का एक भेद समझते थे। १७वी शताब्दी मे Thomus Sydenham (१६२४-१६८०) ने इसे स्वतन्त्र रोग सिद्ध किया। १९०५ मे Hectoen ने पहले-पहल इस रोग को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति मे उत्पन्न करके बिलकुल सिद्ध कर दिया है कि यह एक स्वतन्त्र रोग है। १९१८ मे यह पता लगा कि इस रोग के रोगमुक्त व्यक्ति के Serum मे इस रोग के विप के विपरीत Antibody उत्पन्न हो जाता है जिसके सूचीवेध द्वारा देने से इस रोग को रोका जा सकता है। इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति के नासिका, नासा पश्चिम भाग, नेत्रो और गले मे से निकले हुए स्राव मे तथा उसके रक्त मे १४० मिलि० माइक्रोन व्यास का एक Virus रहता है जो उसके छीकने, खाँसने, बोलने आदि से निकले छीटो के बिन्दुओ मे होता है जो यदि ऐसे बालको के नाक मे कि जिन्हे पहले यह रोग नही हुआ, प्रविष्ट हो जाए तो उन्हे यह रोग अवश्य हो जाता है। इस प्रकार रोगी से २-३ गज तक के अन्दर के बालकों मे इसका सक्रमण हो सकता है। अर्थात् जैसे

मसूरिका और विस्फोटिका रोग प्रबल संक्रामक हैं वैसे ही यह भी एक प्रबल संक्रामक ज्वर है। यद्यपि इसकी संक्रामकता उनकी अपेक्षा निर्बल है। एक बार हो जाने के बाद क्योंकि Serum में इस रोग के विष के प्रति स्थायी प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो जाती है, यह रोग दुबारा नहीं होता। ज्वर उतरने के एक सप्ताह बाद Serum में यह प्रतिरोधक तत्त्व अपने उच्चतम शिखर पर होता है।

यह रोग बड़े शहरों, घनी बस्तियों में अधिक फैलता है तथा शीतकाल के अन्त में और वसन्त काल के प्रारम्भ में होता है। बहुत छोटे शिशुओं में अर्थात् लगभग ८ मास की आयु तक माता से रक्त द्वारा प्राप्त Antibody से इस रोग की रोगरोधक शक्ति आती है इसलिए उनमें यह रोग नहीं होता। उसके बाद १० वर्ष की आयु तक यह रोग प्राय प्रत्येक बालक को मृदु या तीव्र रूप में होता है। आधे से अधिक बालकों को ८ मास की आयु के बाद ५ वर्ष की आयु से पहले-पहले हो लेता है। ३ वर्ष से नीचे की आयु में जब यह रोग होता है तो कभी-कभी यह उपद्रवकारी ही नहीं, घातक भी हो जाता है। विशेषत निर्बल प्रकृति के शिशुओं के लिए उपद्रवजनक होता है। बड़े शहरों में प्रति तीसरे-चौथे वर्ष इस रोग का संक्रमण प्रबलता से होता है अर्थात् जब-जब नये जन्मे हुए ऐसे बालकों की कि जिनमें इसके विपरीत प्रतिशक्ति उत्पन्न नहीं हुई है, संख्या बढ़ जाती है तब-तब यह रोग प्रबल संक्रामक रोग के रूप में फैलता है। सम्भवत निर्बल प्रकृति के बालकों को यह तीन वर्ष की आयु से पहले और बलवान् प्रकृति के बालकों को दस वर्ष की आयु तक यह रोग ग्रस्त करता है। रोगी में प्रथम दिन से लेकर दाने निकलने के बाद एक सप्ताह तक संक्रामकता रहती है। १० वर्ष से बड़े सभी बालकों में इस रोग के विपरीत प्रतिशक्ति उत्पन्न हो जाती है, अत यह रोग बालकों में ही होता है।

सम्प्राप्ति

इस रोग के Virus के रक्त में प्रवेश करने पर अन्तश्चर्म की शिराओं का अन्दर का स्तर (Endothelium) फूल (Proliferated) जाता है जिससे शिराओं में से परिस्रवण (Exudation of Serum) अधिक मात्रा में होने लगता है। इसी कारण त्वचा पर रक्तवर्ण उभार दीखने लगते हैं। इन शिराओं के आसपास Lymphocytes भी अधिक मात्रा में संचित होते हैं। बहिश्चर्म के सैलों में इस Virus के दुष्प्रभाव से पहले Colloid (जैलाटीन सदृश) Degeneration होती और फिर उनमें Coagulation होकर उनकी मृत्यु (Necrosis) हो जाती है, और ये मृतं से बनकर झड़ जाते हैं। अथवा इस रोग में Pneumonia की स्थिति भी होती है। इस रोग में Epithelia के सैलों में Cytoplasms तथा Nuclei के अन्दर इसके Virus के Inclusions मिलते हैं।

जैसे त्वचा पर इस Virus का दुष्प्रभाव होता है वैसा ही श्वास मार्ग, अन्न मार्ग आदि की श्लेष्मकला पर भी शोथ (Catarrh) जैसा प्रभाव होता है, फिर कुछ ही समय में स्थान-स्थान पर श्लेष्मकला के बहिस्तर (Epithelium) में क्षीणता या Fatty Degeneration हो जाती है जिससे वहां लगी हुई लाल श्लेष्मकला पर पिन के नोक जितने श्वेत धब्बे से दीखते हैं जिन्हें Koplik's Spots कहते हैं अर्थात् इस रोग की Virus के कारण पहले तो श्वास मार्ग, अन्न मार्ग आदि की श्लेष्मकला में शोथ फिर त्वचा में शोथ (Catarrh) होता है और बाद को सैलों में क्षीणता हो जाती है। जब यह शोथ श्वास मार्ग या अन्न मार्ग में अधिक प्रबलता से होता है तब यह रोग तीव्र रूप में होता है। श्वास नालियों में शोथ होने पर उनमें तथा रक्तवाहिनियों के आस-पास स्राव बढ़ जाता है जिससे Broncho Pneumonia हो जाता है। इस रोग में शरीर के सभी लसीका प्रदेश (Lymphoid Tissues) सूजे हुये होते हैं। उदाहरणतया Tonsils में, Appendix में, Nasopharynx में तथा आंतों के अन्दर लिम्फप्रदेशों में Lymphocytes अधिक मात्रा में संचित होते हैं तथा उनमें न्यूक्लियस वाले Giant Cells भी अधिक मात्रा में देखे जाते हैं।

लक्षण

रोग के संक्रमण के ११वें दिन रोगी को साथ ज्वर चढ़ता है जो उसी दिन सायंकाल तक १०२-१०३ तक हो जाता है। नासिका, गले, नेत्र आदि की श्लेष्मकला में शोथ (Catarrh) के कारण शुष्क खांसी उठती रहती है, आंखों में पानी आता है, चौंध लगती है और शरीर में दर्द (Myalgia) के लक्षण रहते हैं। इसी प्रकार दूसरे-तीसरे दिन भी श्वास मार्ग में शोथ के कारण खांसी और ज्वर के लक्षण रहते हैं यद्यपि ज्वर प्रात कुछ कम हो जाता है। इस प्रकार प्रारम्भ में यह रोग साधारण प्रतिश्याय रोग से मिलता-जुलता है पर इसमें तन्द्रा का लक्षण होता है तथा तापमान अधिक होता है, तथा नेत्र शोथ विशेषत निचली पलक के अन्दर शोथ तथा नेत्रस्राव का लक्षण विशेष होता है। इसके अतिरिक्त यदि रोगी के मुख के अन्दर की परीक्षा की जाय तो Molar दांतों के सामने

वाली अन्दर की श्लेष्मकला पर पिन के नक्के जितने छोटे-छोटे श्वेत कण धव्वे कभी थोडे, कभी अनेक छोटे-छोटे मण्डलो के ऊपर मध्य मे दिखाई पडते है। यदि ये रक्त मण्डल परस्पर मिल जाये तो मुख की श्लेष्मकला का एक विस्तृत प्रदेश रक्तवर्ण होता है और उस पर छोटे-छोटे श्वेत वर्ण धव्वे नमक के कण के समान पडे दिखाई पडते है। पहले १९२६ मे अमरीका के Henry Koplik (१८५८-१९२७) ने इनका वर्णन किया था इसलिए इन्हे Koplik's Spots कहते है। ये दोनो तरफ गालो के अन्दर की ओर होते है। ९० प्रतिशत रोगियो मे ये धव्वे निकलते है और दूसरे दिन निकल आते है। इसलिए इन्हे देखकर तो निश्चय कर लेना चाहिए कि यह रोमान्तिका रोग है। जिह्वा मध्य मे मैली होती है तथा उसके किनारे लाल दिखाई पडते है। तीसरे दिन ज्वर-कास आदि लक्षण कम हो जाते है। इसके वाद रोग सक्रमण के १४ वे तथा ज्वर होने के चौथे दिन इस रोग के दाने निकल आते है जो पहले माथे पर वालो के पास-पास तथा कान के पीछे मच्छर के काटे जैसे, दाल के दाने जितने आकार के रक्त वर्ण के होते है। पहले ये केवल चकत्ते (Macule) होते है फिर कुछ उठे हुए दो चार मिलिमीटर व्यास के उभरे हुए चकत्ते (Papule) वन जाते है। माथे तथा कान के पीछे से ये चेहरे पर आते है। वहा से पहले ग्रीवा, धड पर फैलते और वाद मे शाखाओ, हाथ, पैर, तलुओ तक फैल कर पाचवे दिन तक सारे शरीर पर प्रकट हो जाते है। चेहरे तथा धड पर अन्य स्थानो की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होते है। प्रारम्भ मे ये पृथक्-पृथक् होते है। पीछे से परस्पर मिल जाते है और कुछ उठ जाते है जिससे मुख कुछ फूल सा जाता है। इनके सारे शरीर मे फैलने मे २४-३६ घटे लगते है, जिससे मुख तथा शरीर रक्त वर्ण हो जाता है और उसके वाद ही अर्थात् ४८ घटे वाद ये जिस क्रम से निकले थे उसी क्रम से फीके पडने लगते हैं। रक्त वर्ण उभार (Papules) स्पर्श मे मृदु होते हैं, तथा दवाने पर फीके पड जाते है। मसूरिका के Papules इस प्रकार दवाने से फीके नही पड सकते। प्रकट होने के चौथे दिन ये लुप्त हो जाते है। अर्थात् रोग प्रारम्भ होने के नौवें दिन ये पूर्णतया लुप्त हो जाते है और इनके स्थान पर भूरा सा रग ६-७ दिन तक रह जाता है। ऐसा भी हो सकता है कि ये दाने कभी तो अधिकत चकत्तो या Macules के रूप मे हो और कभी अधिकत कोठो या Papules के रूप मे हो।

चौथे दिन दानो (Macules) के प्रकट होने के साथ ज्वर क्रमश वढ जाता है तथा १०३-१०४ डिग्री तक पहुच जाता है और क्रमश ही घटता तथा ५-६ दिन रहता है। खासी का कष्ट भी वढ जाता है। जव तक दाने निकलते है अर्थात् पाचवे दिन भी ज्वर वढा रहता है। ज्वर के साथ खासी Bronchiolitis का कष्ट भी वढा रहता है। छठे दिन दानो के उतरने के साथ ज्वर भी सहसा उतरने लगता है तथा सातवें, आठवे दिन पूर्णतया उतर जाता है। खासी का लक्षण ज्वर के उतरने के वाद जाता है।

इस रोग मे नाडी गति तो तापमान के अनुसार ही वढती है अर्थात् प्रति डिग्री के पीछे १० प्रति मिनट वढती है और श्वासगति प्रति डिग्री ३ प्रति मिनट न वढकर अधिक वढती है। रक्त की परीक्षा करने पर श्वेत कण वृद्धि (Leucocytosis) का लक्षण जिसमे Polymorphs विशेष होते हैं पाया जाता है। वाद में श्वेत कण-न्यूनता (Leucopenia) का लक्षण पाया जाता है। जिसमे Large Lymphocytes अधिक होते है। मूत्र परीक्षा करने पर उसमे वहुधा अलव्यूमिन मिलता है।

उपद्रव

३ वर्ष से छोटी आयु के निर्वल प्रकृति के वालको मे उपद्रवो के होने की आशका अधिक होती है। यदि सातवे दिन दानो के मुरझाने के साथ ज्वर कम न हो, नाडी गति और श्वास तीव्र ही रहे तो Broncho Pneumonia का सन्देह करना चाहिए। अर्थात् श्वास नालियो, प्रणालिकाओ और वायु कोष्ठको की दीवार मे शोथ और इसके कारण कोष्ठको मे स्राव Exudation हो जाता है जो वाहर से Beta Haemolytic Streptococcus के या Pneumococcus के सक्रमण से होता है। सभवत ये जीवाणु किसी खासी से ग्रस्त दूसरे व्यक्ति से उसमे सक्रमण करते है। एक सप्ताह या १० दिन मे यह भी ठीक हो सकता है, पर वहुधा इससे दीर्घकाल तक भी ज्वर उतरता-चढता रहता है। यह उपद्रव प्रवल रूप मे हो तो धातक होता है। इस रोग के वाद चिरकाल तक फुफ्फुसो मे शोथ वना रहे तो किसी एक Lung मे Fibrosis का उपद्रव हो सकता है तथा उसमे Bronchiectasis का उपद्रव भी हो सकता है जो चिरस्थायी रूप मे रह जाते है। मध्य कर्ण मे शोथ (Otitis Media) का उपद्रव भी Haemolytic Streptococcus के सक्रमण से हो जाता है जिसमे वालको मे चिरस्थायी वहरापन हो सकता है। कभी-कभी Encephalitis होने का भी भय रहता है। वालक क्षय प्रकृति का हो तो इस रोग के कुछ मास वाद मस्तिष्कावरण के क्षय होने का भय भी रहता है। इस रोग के दौरान अतिसार (Enteritis) का उपद्रव भी हो सकता है जिसे Pneumonia के समान ही भयकर समझना चाहिए। Peyer's-

Patches में विद्यमान लसीका सम्बन्धी अवयव के ग्रस्त हो जाने से अतिसार होता है।

साध्यासाध्य

बालक ३ वर्ष से छोटा हो, फुफ्फुस या आंत सम्बन्धी उपद्रव हो या मस्तिष्क सम्बन्धी कोई उपद्रव हो तो यह रोग कष्टसाध्य होता है। ४०% रोगी इन उपद्रवो के बावजूद ठीक हो जाते हैं। २०% मे ये उपद्रव घातक होते हैं।

चिकित्सा

रोमान्तिका रोगी बालक को दूसरों से पृथक् करके एक ऐसे कमरे मे जो कुछ गर्म हो अर्थात् जिसका तापमान रात दिन ६०-६५ फा० हो दो सप्ताह तक के लिए आराम से लिटा कर रखना चाहिए। वह प्रकाश को सहन नही करता। अत उसके सामने दरवाजा व खिड़की नहीं होनी चाहिए। जो बच्चे उसके साथ रहे हो उन्हे दूसरे बालकों से दो सप्ताह के लिए पृथक् रखा जाय तो रोग को फैलने से बचाया जा सकता है। ३ वर्ष या ५ वर्ष से छोटी आयु के बालकों को, रोगी या रोगी के सम्पर्क मे रहे बालकों से पूर्णतया बचाना चाहिए। क्योंकि इस आयु के बालको के लिए यह रोग उपद्रवकारी होता है। रोगी बालक के पास खासी, प्रतिश्याय या गल रोग के किसी छोटे या बड़े रोगी को नहीं आने देना चाहिए, ताकि उसे Secondary Infection बाहर से न हो सके। यदि बालक को दाने पूरी तरह न निकले हो तो गर्म बोतले रखकर अथवा गर्म पानी से स्पंज करके दानों को बाहर करना चाहिए। रोगी को प्रतिदिन एक बार गर्म जल से स्पंज करना चाहिए। रोगी के कमरे मे यदि गर्म वाष्प रहे तो उसे आराम रहता है। एक सेर पानी मे १ चम्मच Tr Benzoin Co डालकर उसकी भाप कमरे मे दी जा सकती है। ज्वर काल मे बालक को हलका दूध, यवोदक, ग्लूकोज तथा फल रस ही मिलना चाहिए।

स्वेदक, मूत्रल और रेचक औषधियों के द्वारा बालक के शरीर में से विष द्रव को निकालने का यत्न करना चाहिए अर्थात् Liquor Ammonium Acetate २० बूद, Spirit Aether Nitrosi ५ बूद, Potassium-Citrate १० ग्रेन, Syrup ३० बूद, मिलाकर ऐसी दो-तीन मात्रा बालक को दे सकते हैं। साथ ही Milk of Magnesia १ ड्राम मृदु विरेचनार्थ दे सकते हैं। खासी के लिए बालक को गर्म जल ही देना चाहिए या Amidopyrine की प्रति वर्ष के पीछे $\frac{1}{2}$ ग्रेन मात्रा मे ३ वार प्रति दिन देना चाहिए या Codeine Phosphate १ ग्रेन या Syrup Codeine Phosphate २ मिलिलि० दिन मे ३ वार दे अथवा Tincture Camphor Co १० बूद, Potassium Bromide १० ग्रेन, Syrup Tolu १० बूद मिलाकर ऐसी दो-तीन मात्रा दी जाती है। छाती पर तारपीन का सफेद तेल मलने मे या Caolin पोल्टीस आदि का पलास्तर बांधने से भी खासी मे आराम रहता है। बालक छोटी आयु का हो तो उसे दाने निकलने के साथ ही Benzyl Penicillin ३ लाख यूनिट प्रतिदिन या Penicillin V १२० मिलि० के दिन मे ४ वार तथा Sulphadiazine का चार-पाच दिन प्रयोग करते रहने से उपद्रवो का प्रतिरोध हो जाता है। दो वर्ष के बालक के लिए $\frac{3}{4}$ गोली प्रति ६ घटे पर तथा ३ वर्ष के बालक के लिए १ गोली प्रति ६ घटे पर तथा ५ वर्ष के बालक के लिए १ गोली प्रति चार घटे पर दूध मे मिलाकर दें।

आखो को Boric Lotion से दिन मे दो तीन वार धोना चाहिए तथा Boric Ointment लगाना चाहिए। अथवा आखो मे Sulphacetamide Solution १० प्रतिशतक दिन मे तीन-चार वार डाले।

उपद्रवो मे से Broncho Pneumonia के लिए Sulphadimidine या Sulphadiazine या Sulphatriad ३-४ ग्राम दैनिक मात्रा मे ३-४ दिन के लिए उत्तम औषधि है। Pro Penicillin उसकी सहायक के रूप मे दी जा सकती है। १-२ दिन मे इनसे लाभ न दीखे तो Tetracycline या Chloramphenicol का प्रयोग करे। Otitis Media के लिए Penicillin उत्तम औषधि है। छोटी आयु के बालक मे इसका कारण B Coli भी हो सकता है। उस अवस्था मे Chloramphenicol अधिक लाभदायक है।

रोगी के नासा, गला आदि से निकले मल को कपडे मे लेकर जला देना चाहिए ताकि वह दूसरे बालको के सम्पर्क मे न आए।

रोग निरोधक चिकित्सा

जिस बालक को रोगी के सम्पर्क मे आए ६ दिन से अधिक न हुए हो, उसे रोग से निवृत्त हुए बालक के प्लाज्मा मे से तैयार किया Gamma Globulin या Convalescent Syrum १ वर्ष से छोटे बालक को २५० मिलि० मात्रा मे ३ मिलिलि० जल मे मिलाया हुआ मास द्वारा दे दिया जाता है। ३ वर्ष तक के बालक के लिए इसकी मात्रा ५०० मिलि० (६ मिलिलि० जल मे) है।

इससे ऊपर की आयु के बालक के लिए ७५० मिलि० (६ मिलिलि० जल मे) है।

आयुर्वेद मे मसूरिका विस्फोटिका तथा रोमान्तिका रोग

त्वचा मे धसे हुये मसूर आकृति के रक्त वर्ण कोठ जिस रोग मे निकलते हैं उसे मसूरिका कहा जाता है। यह रोग शीत ऋतु या उसके अन्तिम भाग मे होता है, इससे इसे शीतला भी कहा जाता है। इस काल मे देह मे सम्भवतः कफ दोष की वृद्धि होती है जिससे मसूरिका रोगी से रोग बीज का सक्रमण सुगमता से हो जाता है। यदि इस रोग के विष के सक्रमण हो जाने पर उसके विपरीत शरीर मे कफ का प्रकोप विशेष हो अर्थात् रक्षात्मक प्रतिक्रिया प्रबलता से हो जिससे द्रव विस्फोट ही निकलें जिनमे से कुछ एक ही पकें, शेष विना पके सूख जायें तथा त्वचा, श्लेष्मकला आदि मे कफस्राव (Exudation) की अधिकता के लक्षण हो तो उसे कफ मसूरिका कहते हैं।

जब इस रोग की विष के विपरीत शरीर मे पित्ताग्नि की प्रतिक्रिया तीव्र रूप से होती है जिससे स्फोटो मे त्वचा तथा श्लेष्मकला आदि मे पाक प्रक्रिया विशेष होती, ज्वर अधिक होता है तो उसे पित्त मसूरिका कहते हैं।

जब इस रोग की विष के प्रभाव से शरीर के वायु पर विशेष प्रभाव हो अर्थात् शरीर की प्राण शक्ति पहले से न्यून होने के कारण और न्यून हो जाय तो स्फोट शीघ्र बाहर नहीं निकलते, श्याम वर्ण होते, शरीर मे वेदना तथा निर्बलता के सूचक लक्षण विशेष होते हैं तब इसे वातप्रधान मसूरिका कहते हैं।

जब शरीर के कफ, अग्नि तथा वायु तीनो ही तत्त्व इस रोग के विष के द्वारा प्रकुपित हो गये हो जिससे अवयवों मे कफ द्रव की वृद्धि, पित्ताग्नि की वृद्धि तथा शरीर की प्राण शक्ति की हीनतासूचक लक्षण हो तब इस बड़े-बड़े पूय युक्त, घने स्फोटो से युक्त मसूरिका को त्रिदोषज मसूरिका कहते हैं।

विस्फोटिका

न्यूनाधिक ज्वर के साथ निकलने वाले विस्फोटो को विस्फोटक ज्वर कहते हैं। इस ज्वर के विष के कारण शरीर का रक्षक तत्व या कफ तत्त्व ही विशेषत प्रकुपित हो अर्थात् अवयवो मे कफ द्रव की वृद्धि हो जिससे विस्फोट, द्रव प्रधान हो, पाक प्रधान न हों तथा अरोचक, छर्दि और शारीरिक मन्दता के लक्षण विशेष हो तो उन्हे श्लैष्मिक विस्फोट कहते हैं।

जब इस रोग की विष के प्रभाव से शरीर की पित्ताग्नि विशेष उत्तेजित हो जिससे विस्फोटो मे पाक की प्रक्रिया विशेषता से हो, ज्वर का लक्षण भी विशेष हो तब इसे पित्त विस्फोट कहते हैं (Varicella Bullosa)।

जब इस रोग की विष का दुष्प्रभाव शरीर की प्राण शक्ति पर विशेष हो जिससे वह क्षीण हो जाए, जिससे विस्फोटो मे मृत्यु (Necrosis) की प्रक्रिया होकर उनमे श्यामता आ जाय, अगो मे वेदना का लक्षण विशेष हो तो इसे वात प्रधान विस्फोट कहा जाता है (Varicella Gangrenosa)।

यदि स्फोट आकार में बड़े हो, उनमे पूय या रक्त भी हो तथा उनमे कुछ-कुछ मृत्यु (Gangrene) की प्रक्रिया भी हो जाय तथा ज्वर, अशक्ति, तन्द्रा, निद्रा आदि लक्षण भी हों तब इसे त्रिदोषज विस्फोट ज्वर कहते हैं।

रोमान्तिका

इस रोग के विष के कारण त्वचा तथा श्लेष्मकलाओ मे कफ तत्त्व का प्रकोप होता है तथा शरीर मे पित्त तत्त्व भी प्रकुपित होता है। जिससे इस रोग मे कफ प्रकोप-सूचक त्वक् शोथ तथा श्लेष्मकला शोथ होकर त्वचा मे कोठ, प्रतिश्याय, कास, अरोचक आदि लक्षण होते है। शरीर मे पित्ताग्नि के प्रकोप के कारण ज्वर, दाह आदि लक्षण होते है। जब कभी इन दोनो के साथ वायु का प्रकोप भी हो जाता है अर्थात् शरीर का प्राण तत्त्व भी निर्बल हो जाता है तब यह रोग तीव्र रूप ले लेता है।

मसूरिका चिकित्सा

मसूरिका रोगी को पहले लघन करके केवल फल रस दिया जाता है। बाद मे निर्बलता की वृद्धि की आशका हो तो गाय का दूध दिया जाता है। रोगी के कमरे मे गुग्गुलु, अगर या लोबान का या रालादि धूप (बृ० नि० र०) राल हींग लशुन मिश्रित या तुलसी, कपास बीज, वचा, ब्राह्मी, मसूर (व० से०) का धूम्र दिया जाता है या निम्ब पत्रो का वाष्प दिया जाता है। स्फोटो को नीम, खदिर, गूलर, सिरस की छालो के गर्म क्वाथ से पोछकर उन पर निम्ब बीज तेल या पञ्चवल्कल क्वाथ मे धोया घृत या दशाग लेप (सिरस, मधुयष्टी, चन्दन, तगर, एला, जटामांसी, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, कुष्ठ, नेत्रबाला, के शीत फाट मे कई बार धोया हुआ घृत) लगाना चाहिये। नेत्रो

को त्रिफला, दारुहल्दी, लोध्र, मधुयष्टी के फाट तथा कण्ठ को चमेली पत्र, दारुहल्दी, मधुयष्टी, क्वाथ के गड्डूषो के द्वारा धोना चाहिये। रोगी की निर्बलता के लिये मुक्तावटी (मुक्ता, वंशलोचन, रससिन्दूर, तथा मरिच समान-समान की १-२ रत्ती की वटी) दिन मे दो बार देनी चाहिये। निम्ब पत्र रस १ ड्राम, मधु १ तो० के साथ या कच्ची हल्दी का चूर्ण ३ माशा दिन मे कई बार देना चाहिये। निम्बादि क्वाथ, (नीम छाल, गिलोय, कटुकी, मोथा, पापडा, पटोल, वासा, उशीर, धमासा, चन्दन समान समान को पकाकर) या खदिराष्टक क्वाथ एक-एक चम्मच दिन मे अनेक बार देते रहने से भी मसूरिका का वेग बढता नहीं। मुख पर के दागो को मिटाने के लिये मसूर की दाल तथा खरबूजे की गिरियो का उबटन दो-चार सप्ताह कराया जाता है। एलाद्यरिष्ट (भै० र०) इलायची २५०, वासा १००, मंजिष्ठा, इन्द्रयव, गिलोय, दो हल्दी, रास्ना, खस,मुलहटी, सिरस छाल, खदिर, अर्जुन, चिरायता, नीम, कुष्ठ, चित्रमूल, सौंफ ५०-५० तोला जल २५६ सेर मे पका कर ३२ सेर शेष रखें। धातकी १ सेर, शहद ३८ सेर, चतुर्जातक, त्रिकटु, दो चन्दन, जटामासी, शैलेय, मोथा, दो सारिवा ५-५ तोला मिला कर आसव बनायें। इसका प्रयोग मसूरिका, विस्फोटिका, रोमान्तिका सब मे उपयोगी है।

विस्फोटिका चिकित्सा

वात प्रधान विस्फोटो के लिये दशमूल की औषधियो के साथ रास्ना, गुडूची, दारुहल्दी मिलाकर क्वाथ देना चाहिये। पित्त प्रधान विस्फोटो मे कटुकी २ तोले के क्वाथ के द्वारा विरेचन देकर पचतिक्त घृत देना चाहिये तथा कफ प्रधान विस्फोटो मे त्रिफला चूर्ण का प्रयोग करना चाहिये अथवा कफ पित्त प्रधान विस्फोटो मे खदिराष्टक क्वाथ, (खदिर, त्रिफला, गुडूची, पटोल, नीम, वासा समान-समान) या अमृतादि क्वाथ, (गुडूची, खदिर, दोनो हरिद्रा, नीम, पटोल, वासा, मुस्ता समान-समान) देवें अथवा मजिष्ठादि क्वाथ देवें या एलाद्यरिष्ट देवें। स्फोटो पर लगाने के लिये पचवल्कल क्वाथ मे धोया घृत या दशाग लेप उपयोगी हैं।

विस्फोट रोग मे लघन कराने के बाद उसे पहले केवल फल रस या ग्लूकोज और जल पर और फिर दूध पर तब तक रखना चाहिये जब तक रोग रहे।

रोमान्तिका ज्वर मे भी कफ पित्त की शान्ति के लिये बालक को खदिराष्टक क्वाथ से कफकेतु का प्रयोग कराना चाहिये। खासी के लिये अलसी की खली मे १६ वा भाग राई या सोठ का चूर्ण मिलाकर उसकी गर्म पोल्टीस छाती पर बाधनी चाहिये। लघु लघन के बाद रोगी बालक को देसी चाय के साथ मिश्रित दूध पर ही रखना चाहिये।

श्लैष्मिक ज्वर, संक्रामक श्लैष्मिक ज्वर — Influenza, Epidemic-Catarrhal Fever, Fluc

कारण तथा सक्रमण विज्ञान

यह एक ३ दिन का ज्वर है जिसमे अगवेदना, मासशूल, प्रतिश्याय तथा कास के प्रधान लक्षण होते है। सहसा शरीर की अनेक मासपेशियो मे दर्द के साथ होने वाला यह ज्वर सदा सक्रमण के द्वारा उत्पन्न होता है। परन्तु इसकी सक्रमणशीलता और इसके स्वरूप विभिन्न प्रकार के होते है। कभी तो यह इतने मन्द रूप में होता है कि इसका विशेष पता भी नही चलता। इसे मन्द श्लेष्म ज्वर (Sub clinical Infu) कह सकते है। प्रबल रूप मे होकर कभी यह प्रादेशिक (Endemic) रूप मे भी होता है, कभी व्यापी सक्रामक (Epidemic) रूप मे फैलता है। अर्थात् कभी तो यह किसी बस्ती मे एक दो प्रतिशत व्यक्तियो को ही होता है, कभी-कभी तो यह बीस पच्चीस प्रतिशत व्यक्तियो को होता है। यो तो प्रतिवर्ष सर्दी या वसन्त काल मे यह फैलता है और कुछ एक ही व्यक्तियो को होता है जिसे इसका Sporadic रूप कह सकते हैं। पर कभी-कभी शहरो और घनी बस्तियो मे प्रबल रूप मे फैलता है। तथा कभी-कभी लगभग बीस, तीस या चालीस वर्षो के अन्तर से तो यह विश्वव्यापी और आशुचारी रूप मे फैलता है १५१० के बाद से इतिहास मे इस रोग के ३१ विश्व व्यापी रोगो का उल्लेख मिलता है। इसे दैवी प्रभाव (Influence) जनित समझकर लोग इसे Influenza कहने लगे। निकटभूत मे १८४७-१८४८, १८८९-१८९२, १९१८-१९१९ तथा १९५७ मे क्रमश यह इसी विश्वव्यापी रूप मे फैला था। १९६९ मे हागकाग फ्लू के नाम से हुआ। अभी १९७० मे यह यूरोप मे उग्ररूप मे फैला है। १८८९ वाला रोग भी तीन वेगो मे हुआ था जिनमे से दूसरा महाभयकर था। इस रोग मे शिशु और वृद्ध व्यक्ति ही अधिक रुग्ण हुए और मरे थे। इस रोग का कारणभूत विष मनुष्य समाज मे सदा ही रहता है। परन्तु अग्नि के समान कभी तो वह प्रसुप्त होकर रहता है, कभी न्यून और कभी उग्र रूप मे प्रज्वलित हो जाता है और कभी-कभी तो दावानल या नरमेध यज्ञ की

अग्नि का रूप ले लेता है। क्योकि १९१८ मे यह रोग कुछ महीनो के अन्दर-अन्दर तीन वेगो मे फैला था और ५० करोड व्यक्तियो को हुआ था और उनमे से लगभग $१\frac{१}{२}$ करोड व्यक्तियो के लिए सहारक हुआ था। इनमे से दूसरा वेग वडा ही सहारक था।

मृत्यु Streptococcal Pneumonia के कारण हुई थी, इस दौर मे नौजवान व्यक्ति ही अधिक मरे थे। १९५७ मे भी यह प्रधानतया एशिया खण्ड मे फैला। लाखो व्यक्ति शय्याशायी हो गये थे और सहस्रो के लिए सहारक हुआ। यह अपेक्षाकृत मृदु रूप मे फैला। इसमे भी मृत्यु Streptococcal Pneumonia के कारण हुई थी।

१९३३ मे इगलैंड के Andrews, Smith तथा Laidlaw ने इस रोग के कारणभूत सूक्ष्म विप (Virus 'A') का आविष्कार किया। उन्होने इस रोग के रोगी की नाक तथा गले की धोन को Ferrets की अर्थात् एक प्रकार की विल्ली की नासिका मे प्रवेश करके उसमे यह रोग उत्पन्न किया और उनसे फिर इसे मनुष्यो मे फैलते हुए देखा। क्योकि Virus लेवोरेट्री के मरे हुए माध्यमो (Media) पर रोहण नही कर सकता इसलिए उन्होने इसे जीवित माध्यम पर फैलाया। चूहो की नासिका मे भी इस विप को वढते हुए देखा गया। अब १९४० से Burnet के आविष्कार के अनुसार इस विप की खेती पक्षी भ्रूण (Chick Embryo) की Amniotic Sac मे इस रोग के रोगी के गले की धोन को सूचीवेध द्वारा प्रविष्ट करने (Inoculation) के द्वारा की जाती है, जहा से फिर इस सूक्ष्म जीवाणु का घोल (Vaccine) वनाया जाता है। (यह Virus रोगी के गले के धोन मे प्रथम दिन ही मिल सकता है, वाद मे नही। इसलिए रोगी से पहले १-२ दिन ही यह रोग दूसरो मे फैलता है वाद मे नही। यह Virus १०० मिलिमाईक्रोन्स के व्यास का एक सूक्ष्म जीवाणु कण है जो रोगी के नाक, गला, मुख आदि से छीकने, खासने आदि के द्वारा थूक के कणो के साथ वाहर वायुमण्डल मे आता है (रोगी के रक्त मे यह Virus नही मिलता)। अति निकट सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियो के नाक, गला आदि मे प्रवेश करके वहा जीवित अवयवो के माध्यम पर वृद्धि करने लगता है। वृद्धि करने के २४ घण्टे के अन्दर अपने विप (Toxaemia) के कारण ज्वर का उत्पादक हो जाता है। यह जीवाणुकण गले की तथा श्वास मार्ग की झिल्ली से आगे रक्त आदि अवयवो मे नही जाता है, केवल इसका विप ही आगे शरीर मे जाता है। इस विष के प्रभाव से शरीर की प्राण शक्ति सहसा क्षीण हो जाती है अर्थात् नाडी सस्थान (N System) पर इसका दुष्प्रभाव विशेप होता है। अत अशक्ति इस ज्वर का एक प्रधान चिह्न होता है। इस विप के प्रभाव से फुफ्फुसो की प्राण शक्ति भी विशेप क्षीण हो जाती है। उनकी स्वाभाविक जीवाणु प्रतिरोध शक्ति जाती रहती है। जिससे उनमे Pfeffer's Bacillus (Haemophilus Influenzae) Haemolytic Streptococci, Pneumococci, Neisseria Catarrhalis, Staphylococcus aureus या Pyogenes आदि का आगतु सक्रमण (Secondary Infection) Nasopharynx मे से हो सकता है अर्थात् इनमे से किसी एक का विशेप आक्रमण हो सकता है। Virus A के दूसरे भेदो A_1, A_2 का भी वाद मे पता चला। १८८९, १९१८ १९४७ मे यह रोग Virus A 1 के कारण फैला था। परन्तु १९५७ मे जो एशियनफ्लू फैला वह A_2 Virus के कारण फैला। हागकागफ्लू A_2 Virus के कारण था। १९६८ का फ्लू भी इसी के कारण था। Influenza Viru का व्यास ८५ मिलिमाइक्रोन का गोलाकार होता है। इसका वाहर का खोल प्रोटीन, कार्वोहाइड्रेड तथा Liqoid से वना है अन्दर का भाग Ribonucleic acid से वना है।

१९४० मे अमरीका मे Francis ने इस रोग के एक-दूसरे Virus का पता लगाया जिसे उसने प्राणियो की नासिका मे वढाकर उनसे फिर मनुष्य मे इस रोग को उत्पन्न होते देखा। इसे Influenza B Virus कहा जाता है। वाद मे १९५४ मे Virus B_1 तथा B_2 का भी पता चला। A Virus की अपेक्षा इससे उत्पन्न होने वाला रोग मन्द होता है, इसमे Pneumonia कम होता है। १९४९ मे Taylor ने G Virus का भी पता लगा लिया जिसके कारण यह रोग अधिकत वालको मे होता है। वाइरस B तथा C के कारण Pandemic रूप मे यह रोग नही होता। परीक्षक लोग वताते है कि कई Influenza रोगियो मे A या B या C तीनो मिश्रित Viruses भी होते है। इनमे मे किसी भी प्रकार के Virus का सक्रमण होकर इस रोग के हो जाने के अथवा इनके Vaccine या जीवाणु घोल के शरीर मे प्रविष्ट कर देने के, एक सप्ताह वाद रोगी के, या Vaccine लेने वाले व्यक्ति के, रक्त या सीरम मे इसके या इनके विपरीत एक प्रतिरोधी द्रव्य Antibody उत्पन्न हो जाता है जो एक मास तक पर्याप्त मात्रा मे वढ जाता है। परन्तु जैसे अन्य Viruses के कारण होने वाले पोलिओ या Poliomyelitis, रोमान्तिका, मसूरिका आदि मे उन रोगो के Antibody वहुत वर्षो तक स्थायी होते है, A टाइप Virus से इस रोग के होने पर Antibody २४ मास या B टाइप Virus से होने वाले रोग के वाद प्रतिरोधक शक्ति ३ वर्प के लगभग

रहती है। अर्थात् इस रोग के बाद उत्पन्न होने वाली रोग-रोधक शक्ति अधिक दीर्घकाल स्थायी नही होती। सम्भव है दूसरे Viruses शरीर के किसी देश मे पड़े रहते है और प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न करते रहते है और यह Virus शरीर मे पड़ा नही रहता।

दूसरे, यह रोग एक प्रकार का न होकर Virus भेद से कई प्रकार का है अर्थात् जिस Virus का सक्रमण एक बार होता है दूसरी बार उससे भिन्न Virus या उसी Virus के दूसरे Antigenic Strain का सक्रमण हो सकता है। जिस प्रकार के Virus से रोग होता है उसी एक के प्रति शरीर मे प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो सकती है। इसी प्रकार Vaccine भी जिस Virus का दिया जाता है उसी के विपरीत ही Vaccine लेने वाले मे प्रति-रोधक शक्ति उत्पन्न हो सकती है। Living Anti Influenza Vaccine के देने के बाद अर्थात् A टाइप के बाद १ वर्ष तथा B टाइप के बाद १½ वर्ष रहती है। इसलिए यह बहुत सम्भव है कि प्रति दो-तीन वर्षों के बाद जब एक नये Virus के कारण कि जिसके विपरीत प्रति-रोधक शक्ति सर्व साधारण लोगो मे बहुत कम हो गई है या सर्वथा समाप्त हो चुकी है या लगभग ३० प्र० श० जनता मे ही रह गई है। यह रोग फैले तो सूखे फूस मे आग की तरह इसका फैलना स्वाभाविक ही है। यह भी बहुत सम्भव है कि जब एक प्रकार का Influenza २०-३० वर्षों तक न हुआ हो, इसलिये जिसके प्रति प्रतिरोधक शक्ति सर्व साधा-रण लोगो मे समाप्त हो गई है, फिर वह एक बार किसी रोगवाहक के द्वारा फैलने लगे तो वह विशेषत नवयुवको मे जिनमे प्रतिरोधक शक्ति नही है ऐसे वेग से फैल सकता है जैसे शुष्क जगल मे दावानल, अर्थात् इस रोग के Epidemic या Pandemic रूप मे होने का कारण जनता मे इस रोग के Antibody का सर्वथा अभाव ही कहा जा सकता है तब यह स्कूल जाने वाले लड़को मे जिनमे प्रतिरोधक शक्ति सर्वथा नही, पहले फैलता है फिर युवको मे और बाद मे वृद्धो मे फैलता है। रोग के फैलते ही उसके Virus का पता लगाकर उसका Vaccine दे दिया जाय तो ८-१० मास के लिए लोगो को इस रोग के आक्र-मण से बचाया जा सकता है।

विकृतिविज्ञान

नासिका की श्लेष्म कला मे आरम्भ होकर यह Virus नीचे श्लेष्म कला द्वारा ही फैलता है।

इस रोग मे नासा मार्ग, नासा पश्चिम देश Nasopharynx, नासा स्रोतसो (Sinuses) तथा गले (Pharynx) मे श्लैष्मिक (Catarrhal) शोथ होता है तथा इन अगो की आभ्यतर स्तर (Ciliated Epithelium) इस Virus के कारण स्थान-स्थान पर मृत होकर झड़ जाती है, Basal Cells की तह ठीक रहती है। इस प्रकार Cilia या रोगटो के झड़ जाने मे दूसरे आगन्तु जीवाणुओ का फुफ्फुस मे सुगमता से सक्रमण हो जाता है अर्थात् यह रोग Viral bacterial Pneumonia हो जाता है। यदि Staphylococci का सक्रमण हो तो यह रोग गभीर रूप ले लेता है। नाक की झिल्ली के झड़े हुए सेलो के अन्दर Basophilic Inclusions देखे जा सकते है तथा इनके Nuclei के अन्दर Vacuoles भी मिलते हैं। रोग के अच्छा होने पर २ सप्ताह तक फिर Ciliated सेलो की नई तह आ जाती है।

रोग तीव्र हो जाय तो ऊपर के स्रोतो से यह शोथ नीचे कण्ठ नाली (Trachea) तथा श्वास नालियो (Bronchi) तथा सूक्ष्म श्वास प्रणालियो (Bronchiales) मे भी उतर जाता है तथा इस शोथ के कारण वहा की आभ्यन्तर स्तर भी इसी प्रकार स्थान-स्थान पर मृत (Necrosed) सी हो जाती है जिससे Influenza Virus Broncho pneumonia होने की प्रवृत्ति बढ जाती है और श्वास नालियो तथा श्वास कोष्ठको मे पूय मिश्रित स्राव Oedema fluid जमा हो जाता है जिसमे श्वेत कण (Leucocytes) तथा Fibrin होते है (Oedema and redness of the lung)। इस रोग मे रक्त के श्वेत कण घट जाते है अर्थात् चार-पाच हजार प्रति क्यूबिक मिलीमीटर हो जाते है (Leucopenia)। E S R बढा हुआ होता है।

लक्षण

रोग सक्रमण होने के एक दो दिन के अन्दर ही ज्वर हो जाता है अर्थात् इस रोग का परिपाक काल (Incubation Period) १-२ दिन है।

दिन के समय ज्वर सहसा अकस्मात् कुछ शीत के साथ चढकर पहले दिन ही १०२ या १०३ डिग्री तक पहुच जाता है। ज्वर के साथ तीव्र शिर शूल विशेषत मस्तकशूल, कटिशूल, सूखी खासी और अरुचि के लक्षण होते है, पर अशक्ति इसका प्रधान लक्षण होता है। इस रोग के विष (Virus) के कारण शरीर की प्राणशक्ति क्षीण हो जाती है। वातनाडी-मण्डल पर इनका विषैला प्रभाव होता है। शरीर की मासपेशियो पर भी इनके विष का प्रभाव विशेष होता है। जिससे कटि शाखा आदि की मासपेशिया दुखती है अर्थात् Myalgia होता है। नेत्रो को घुमाने

वाली मासपेशियो मे भी दर्द होता है (Extra-ocular myalgia)। हृदयभाग पर इस विष का प्रभाव होने से उसमें अशक्ति हो जाती है अर्थात् उसमे कुछ शैथिल्य (Dilatation) हो जाता है जिससे उठा बैठा नही जाता। रोगी बिस्तरे मे चुपचाप लेटना चाहता है। Trachea व श्वास नालियो की Epitheleum के सूजकर मर जाने के कारण Sternum के पीछे दाहयुक्त वेदना और गल शोथ, नामक शोथ लक्षण भी होते हैं।

परीक्षा

रोगी की परीक्षा करने पर उसका तापमान ऊचा होता है। नाडी की गति तापमान की अपेक्षा कुछ मन्द होती है। जिह्वा मलिन होती है। नासा, गल, तालु रक्त-वर्ण तथा शुष्क होते है। नेत्र भी कुछ रक्त वर्ण होते है। चेहरा भी कुछ रक्त वर्ण होता है। खासी शुष्क होती है। स्पर्श करने मे त्वचा भी शुष्क प्रतीत होती है। यह ज्वर तीसरे, चौथे दिन या पाचवे दिन तक उतर जाता है। पर इसकी निर्बलता इसके उतरने के एक सप्ताह बाद तक रहती है। स्पष्ट है कि यह रोग साधारणत साध्य होता है। वृद्ध व्यक्ति मे Br Pneumonia का उपद्रव हो जाय तो यह रोग असाध्य हो जाता है।

रोग की पहिचान

तीव्र प्रतिश्याय रोग मे इसका सन्देह हो सकता है। परन्तु उसमे नासा, गले आदि के लक्षण छीकना, खासना, नाक बहना, गला बैठना इत्यादि लक्षण विशेष होते है और ये भी धीरे-धीरे १-२ दिन मे आते है। पर इस रोग मे शरीर व्यापी लक्षण जैसे ज्वर, मास शूल, अशक्ति (Prostration) आदि लक्षण प्रधान होते है और ये भी सहसा उत्पन्न हो जाते है अर्थात् वह एक स्थानिक रोग है यह एक शरीर व्यापी रोग है। वह छीको से आरम्भ होता है, इसमें छीको का लक्षण नहीं होता या गौण रूप से होता है। यदि बस्ती मे यह रोग फैल रहा हो, सहसा ज्वर के साथ मास शूल और गले के लाल हो जाने तथा शरीर व्यापी अशक्ति का लक्षण हो तो इस रोग का सन्देह करना चाहिये।

उपद्रव

यहा पर इस रोग के मृदु रूप का वर्णन हुआ है, पर जब यह रोग तीव्र सक्रामक रूप मे या विश्वव्यापी रूप मे फैलता है तब कभी-कभी किसी-किसी व्यक्ति पर इसका विष इतना चढता (Toxaemia होता) है कि इसके होते-ही रोगी को तीव्र विष सचार हो जाता है अर्थात् ज्वर ऊचा हो जाता, हृदय और रक्त सचार फेल हो जाते तथा शीघ्र मृत्यु हो जाती है। इसे घातक (Malignant) Influenza कहते है।

कभी-कभी रोग के चौथे-पाचवे दिन, विशेषत पुरानी खासी या हृदय रोग से युक्त व्यक्तियो मे ज्वर कम हो जाने के बाद दूसरे जीवाणुओ का सक्रमण होकर पहले बडी श्वास नालियो फिर सूक्ष्म श्वास नालियो मे और फिर श्वास कोष्ठको मे भी शोथ हो जाता है। Virus के कारण तो पहले इनकी आभ्यन्तर कला मे Necrosis की प्रक्रिया होती और फिर शीघ्र ही जीवाणु सक्रमण कर जाते हैं (अर्थात् Bronchitis, Bronchiolitis तथा Alveolitis भी हो जाते है)। श्वास कोष्ठको मे रक्त कणो से मिश्रित कफ द्रव (Oedema Fluid) भर जाता है, Fibrin व श्वेत कण प्राय नही होते, जिसके कारण रक्त को प्राय वायु नही मिल पाती जिससे श्वास गति तीव्र हो जाती है, अर्थात् मिनट मे ५०-६० हो जाती है तथा श्वासकाठिन्य का लक्षण होता है। नाडी गति वैसी नहीं बढती, यह ११० के लगभग रहती है। प्राण वायु के बहुत कम मिलने से नाक-कान मे नीलापन (Cyanosis) झलकने लगता है। सूक्ष्म श्वास नालियो मे शोथ के फैल जाने से खासी हो जाती है जो गीली होती है। निकलने वाली बलगम या तो झागदार श्वेत होती या पूय मिश्रित होती या रक्त मिश्रित चेपदार होती है। इसे Respiratory Influenza या Influenza Virus Pneumonia कहते है। इसके होते ही ज्वर बढ जाता है, थूक मे रक्त आता है। परीक्षा करने पर व्यापक Rhonchi या Wheezing या किसी एक स्थान पर Moist Rales सुनाई पडते है। रक्त परीक्षा करने पर श्वेत कणो की कमी (Leucopenia) मिलती है। मूत्र मे अलब्यूमिन हो सकता है। यह भी रूप एक सप्ताह के अन्दर घातक होता है। निर्बल प्रकृति के व्यक्तियो मे ज्वर उतरने के बाद भी निर्बलता अर्थात् श्रम शक्ति के नष्ट हो जाने (Post Influenzal asthenia) का उपद्रव भी हो सकता है। ज्वर के दौरान मे Toxaemia के कारण Hypotension हो सकता है या Toxic-Myocarditis होकर हृदय फेल हो सकता है। हृदय पर दुष्प्रभाव करने वाला रोग प्राय मारक होता है। इस रोग मे अरुचि या वमन का लक्षण तो प्राय होता ही है पर कभी-कभी वमन, आमाशय प्रदेश पर शूल, अतिसार के लक्षण अधिक स्पष्ट रूप मे होते है। साथ ही ज्वर भी होता है। इसे आन्त्र सम्बन्धी श्लेष्म ज्वर Gastro Intestinal Influenza कहते है।

साध्यासाध्य

मृदु रोगी साध्य होते हैं। श्वास प्रश्वास संख्या प्रति मिनट ५० से ऊपर हो जाए, चेहरे पर नीलापन Cyanosis हो तो रोगी को असाध्य समझना चाहिये। हृदय तथा फुफ्फुस के रोगियों में भी यह रोग बहुधा घातक होता है। मधुमेही में भी यह रोग भयंकर रूप ले सकता है।

चिकित्सा

रोग प्रतिरोध के लिये आवश्यक है कि जब यह रोग फैला हुआ हो, गाड़ियों, सिनेमा, क्लासरूम, होटल आदि सब भीड़ वाले प्रदेशों में सर्वथा दूर रहा जाय और खुली हवा में रहा जाय क्योंकि जहां भीड़ होती है वहां यह Virus फैला रहता है। उस समय थकान से भी बचना चाहिये परन्तु हलके इनफ्लूएंजा रोगी काम में लगे रहते हैं जिसमें उनसे बचना कठिन ही होता है। A तथा B Viruses के निर्बलीकृत Antigenic Variants के द्वारा बने Polyvalent Living Influenza Virus Vaccine—जिसमें A, A_1 A_2 B होते हैं—के १ सी०सी० की मात्रा में १ या २ बार त्वचा द्वारा लेने से एक सप्ताह तक इस रोग के विपरीत Antibodies रक्त के अन्दर उत्पन्न हो जाते हैं जिससे फिर कुछ मास तक इस Virus का दुष्प्रभाव नहीं हो सकता (श्वास के द्वारा अन्दर जाने वाले सभी Viral Infections के विरुद्ध एक Combined Living Virus Vaccine के बनाने की ओर यत्न हो रहे हैं जिसके बन जाने पर इस रोग से बचना शक्य हो जायगा)। अथवा पोटासियम परमगनेट ४ हजार में १ के घोल के दिन में तीन चार बार कुल्ले करते रहने से अथवा मेन्डल्स पेन्ट के गले में स्प्रे करने से इस रोग के संक्रमण से बचा जा सकता है।

रोग हो जाने पर रोगी को जब तक ज्वर न उतरे और उसके बाद भी दो दिन के लिये दूसरों से पृथक् आराम में लिटाये रखना चाहिये। रोग में या बाद में भी शीघ्र उठ जाने और श्रम करने से हृदय के शिथिल Dilated होने का भय रहता है। ज्वर उतरने पर यह रोग संक्रामक नहीं रहता। रोगी के रक्तस्थ विष को कम करने के लिये दिन में ३ सेर जल पिलाना चाहिये। जिसमें से कुछ भाग में २-३ छटांक ग्लूकोज मिलाकर देना चाहिये ताकि विष के कारण न्यून हुई प्राण शक्ति की सहायता हो अथवा ५ प्रतिशतक ग्लूकोज सेलाईन एक दो पाइन्ट की मात्रा में शिरा द्वारा १२-१२ घण्टे बाद देते रहना चाहिये। मृदु विरेचक औषधि जैसे Phenolphthalein २ ग्रेन, Calomel २ ग्रेन मिलाकर एक मात्रा देकर आंतों को साफ कर देना चाहिये। इसके बाद वस्तियों के द्वारा आन्त्रगत विष को बाहर करते रहना चाहिये। इस रोग की सूक्ष्म विष पर Antibiotic औषधियों का कोई प्रभाव नहीं है तो भी आगन्तु जीवाणुओं के निरोध के लिये इनका प्रयोग होता है। Tetracycline १½ ग्राम की मात्रा में प्रथम दिन दे दें। Ampicillin २५० मिलि० कैप्स्यूल ४-४ घंटे पर दें। Streptomycin को एक ग्राम मात्रा में Penicillin के साथ मांस द्वारा दिन में दो बार तीन दिन तक देने और फिर १ बार दिन में देने से ज्वर उतर जाता है। या Methicillin (Celbenin) का १ ग्राम मात्रा में इञ्जे० दिन में ३ बार या Erythromycin १ ग्राम दिन में ४ बार करके या Chloromycetin के २५० मिगि० के कैप्स्यूल दिन में ४ बार देने से ज्वर उतर जाता है।

इस रोग में मांस शूल विशेष हो तो Aspirin ४ ग्रेन, Phenacetin ४ ग्रेन, Codeine Phosphate ½ ग्रेन, मिलाकर ऐसी ३ पुड़िया दिन में दे सकते हैं। शुष्क खांसी के लिये Tincture Camphor Co ३० बूंद, Codeine ⅓ ग्रेन, Syrup Tolu १ ड्राम जल १ औंस में मिलाकर ऐसी २ मात्रा दिन में दे सकते हैं अथवा Syrup Codeinae को १ ड्राम की मात्रा में दें। कफ बहुत निकलता हो तो Pot Bi carb १५ ग्रेन, १ औंस केम्फर वाटर में तीन बार पिलाना चाहिये। हृदय-दौर्बल्य के लिये Coramine १-२ सी० सी० त्वचा द्वारा देते रहना चाहिये। भोजन के रूप में २-३ दिन ग्लूकोज-युक्त जल, फल रस बार्ले, जल, सादी चाय आदि ३ सेर मात्रा में देते रहना चाहिये। ज्वर उतरने के बाद भी २-३ दिन तक पूर्ण विश्राम करना चाहिये।

इस रोग के Cyanosis के लिये Oxygen दें। फुफ्फुस सम्बन्धी उपद्रवों या Fulminating Pneumonias के लिए जिसमें Staphylococci का संक्रमण भी होता है रक्त युक्त कफ, अति शैथिल्य, श्वासकाठिन्य आदि भयंकर लक्षण होते हैं, Celbenin १ ग्राम ४-४ घंटे पर मांस द्वारा देना चाहिये। Procaine Penicillin ६ लाख की मात्रा में १२-१२ घंटे बाद मांस द्वारा या Streptomycin १ ग्राम का १२-१२ घंटे पर तथा Oxygen का प्रयोग करना चाहिए। या Sulphadiazine २-२ गोली का ४-४ घंटे बाद प्रयोग करना चाहिए पर H Influenza के लिए Chloramphenicol ५०० मिलि० ४-४ घंटे पर देना भी बड़ा हितकर है। रोग में उत्पन्न निर्बलता के लिए Hydrocortisone Hemisuccinate २ सी० सी० जल

मे, १०० मिलि० मात्रा मे शिरा द्वारा तथा Cortisone Acetate १०० मिलि० माम द्वारा पहले ४-४ फिर ६-६ घटे पर दिया जाता है। अवस्था के सुधरने पर फिर इस औषधि को मुख मे दिया जा सकता है।

आयुर्वेद मे श्लेष्म ज्वर या वातश्लेष्म ज्वर

दूसरे व्यक्ति से इस रोग के विष का सक्रमण हो जाने पर शरीर के श्लेषक तत्त्व या कफ धातु के प्रकुपित होने से प्रतिश्याय, कास, अन्नारुचि, गुरुता, तन्द्रा, आलस्य आदि लक्षण होते हैं। इस तत्त्व द्वारा विष के नष्ट हो जाने पर ४-५ दिन मे रोग शान्त हो जाता है। इसमे वायु का भी मन्द रूप से प्रकोप होता है। परन्तु उसका विशेष प्रकोप हो अर्थात् प्राण तत्त्व विशेष रूप से हीन हो जाय तो शाखाओ की मासपेशियो, शिर आदि अगो मे दर्द के अतिरिक्त हृदय आदि मे अशक्ति के उत्पन्न हो जाने का भी लक्षण हो जाता है। वायु का प्रकोप विशेष हो जाने पर या फुफ्फुस मे पित्त प्रकोप या पूय भाव हो जाने पर यह रोग भयकर रूप ले लेता है।

इस रोग की प्रधानतया कफवात-शामक अर्थात् रूक्ष उष्ण, वल्य चिकित्सा की जाती है। रोगी को दशमूल क्वाथ के साथ कफकेतु वटी,(भै०र०—शख, त्रिकटु सुहागा, वत्सनाभ समान २ को अदरक रस मे बनी गोली), सजीवनी वटी (विडग, सोंठ पिप्पली, त्रिफला, वचा, गिलोय, भिलावा वत्सनाभ समभाग गोमूत्र से मर्दन करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बनायें), सूतशेखर(पारा, गधक, सुहागा, वत्सनाभ, सुवर्ण, ताम्र, त्रिकटु, धतूरबीज, चतुर्जातक, शख, कचूर, बेलगिरी भृगराजरस मे मर्दन (यो० र०), महालक्ष्मीविलास, लक्ष्मीविलास (अभ्रक ५, गवक-पारद, कजली ५, कपूर जावित्री, जायफल, विधारावीज, धतूरबीज, भाँगबीज, विदारी, शतावरी, नागवला, अतिवला, गोखरू, हिज्जल-बीज १।-१। तोला पान के रस से मर्दन कर गोलियाँ बनाए) त्रिभुवनकीर्ति रस (हिंगुल, वत्सनाभ, त्रिकटु, सुहागा, पिप्पलीमूल समभाग। तुलसी, अदरक एव धत्तूररसो की ३-३ भावना देते आधी रत्ती की गोली) या कट्फलादि लेह (कट्फल, शृगी, पिप्पली सम भाग मे, तुल्य शहद) मे से किसी को दो रत्ती की मात्रा मे दिन मे ३-४ बार दिया जाता है। उसे दूध या देशी चाय के साथ मिलाकर दिन मे थोडा-थोडा कई बार देना चाहिये, ताकि वायु का प्रकोप बढ़ने न पाए।

कर्णक ज्वर, कर्णमूल-ग्रन्थि-ज्वर — Mumps, Epidemic Parotitis

Parotid ग्रन्थि के शोथ को Mumps कहते हैं।

कर्णमूल ग्रन्थि (Parotid Gland) कान के छिद्र के नीचे अधोहन्वस्थि (Mandible) की Ramus के पीछे, शखास्थि के Mastoid Process तथा Sternocleido mastoid मासपेशी के आगे, ऊपर Zygomatic Arch तक फैली हुई और अन्दर की दिशा मे गले की दीवार से मिली हुई एक बडी लाला-ग्रन्थि है जो अनेकानेक सूक्ष्म सेलो और उनके बीच सूक्ष्म लाला-प्रणालियो के मिलने मे बने हुए अनेक अगूराकार गुच्छो से बनी हुई है। इसके बडे-बडे गण्ड (Lobes) छोटी-छोटी खण्डिकाओ (Lobules) से बने है जिनके बीच-बीच मे स्नायुतन्तु पर्याप्त मात्रा मे होता है। इस ग्रन्थि मे रक्त की नालिया बहुत अधिक होती है तथा इसके सेल लाला रस बनाकर उसे Parotid Duct मे से, जो कि ऊपर के दूसरे Molar दाढ के सामने गाल की श्लेष्मकला पर एक Papilla (Stenson's duct) पर खुलती है, मुख मे डालते रहते है।

पाच से पन्द्रह वर्ष तक की आयु के बालको और युवको मे विशेषत वसन्त ऋतु मे यह ग्रन्थि फूल जाया करती है। तथा रोगी के थूक और नाक के स्रावो के द्वारा इस रोग का सूक्ष्म विष (Virus) जो Myxoviruses समूह मे से एक है, दूसरो के श्वासमार्ग और मुख मे प्रवेश करके वहा रोहण कर जाता है और सम्भवत रक्त के द्वारा शरीर मे सचार कर जाता है (Viraemia हो जाता है) इसे Myxovirus parotidis कहते है। पहले यह थूक मे रहता है। फिर यह कुछ एक दिन तक रक्त मे भी पाया जाता है। यह सूक्ष्म विष लालाग्रन्थियो मे विशेषत रोहण करता है। कभी-कभी अण्डग्रन्थि अथवा अग्न्याशय ग्रन्थि (Pancreas) मे भी रोहण करता है। रोगी के मूत्र मे भी यह Virus पाया जाता है। इस रोग के रोगी की लाला को बन्दर के Parotid Glands मे डालकर उसमे भी यह रोग उत्पन्न किया गया है। पक्षी भ्रूण (Chick Embryo) मे खेती करके इसके विष को बढाया गया है। इसका विष कण ९० से १३५ मिलिमाइक्रोन व्याम का होता है। इस ग्रन्थि मे Virus के बढ जाने पर इसकी रक्तवाहिनियो मे रक्त अधिक भर जाता (Hyperaemia हो जाता) है, जिससे Lobules के बीच के स्नायुतन्तु मे परिस्रवण (Exudation) होकर वह फूल जाता है (अर्थात् Interstitial Oedema के कारण यह ग्रन्थि बडी हो जाती है, इस रोग मे असली सेल Paren-

chyma ग्रस्त नही होता)। इस विष के दुष्प्रभाव से इस ग्रन्थि के कुछ लालास्रावी सेल भी क्षीण होकर लाला के साथ बाहर आ जाते है। ग्रन्थि के सूजने से दो-तीन दिन पहले से ही उसकी थूक मे यह Virus पाया जाता है। तब से लेकर जब तक यह ग्रन्थि सूजी हुई रहती है उसकी थूक से रोग का सक्रमण दूसरो मे हो सकता है। जब यह रोग फैला होता है तो कुछ एक की थूक मे यह Virus पाया जाता है यद्यपि उन्हे Mumps नही होते। इसे Sub-clinical सक्रमण कहते है।

लक्षण

इस रोग के सक्रमण होने के दो-तीन सप्ताह बाद एक ओर की ग्रन्थि (प्राय बाई ओर की) कुछ फूलने लगती है तथा ३ दिन मे पूरी फूल जाती है। २ दिन इसी तरह फूली रहती है। इस रोग के होने के साथ ही मन्द ज्वर, सिर दर्द, अरोचक, सर्वांग ग्रह (Malaise) के लक्षण भी मन्द रूप मे होते है। मुख खोलने मे इस ग्रन्थि मे वेदना होती है। खाने मे कठिनता होती है। उसमे शोथ आरम्भ होने के एक-दो दिन बाद दूसरी ओर की ग्रन्थि भी फूल जाती है। उसके सूजने से उसके ऊपर की त्वचा तन जाती तथा लाल हो जाती है जिससे कान कुछ ऊपर और कुछ बाहर की ओर उठ जाता है। अधोहनु ग्रन्थि के Ramus तथा Mastoid के नीचे का गढा भर जाता है। लाला-स्राव की मात्रा घट जाती है जिससे मुख सूख सा जाता है। मुख के अन्दर देखने से इसकी नाली (Stenson's Duct) का मुख सूजा हुआ दीखता है। रोगी की जीभ मैली दीखती है। सात से दस दिन तक इस ग्रन्थि का शोथ उतर जाता है।

कभी-कभी (१५-२० %) विशेषत युवको मे इसके ठीक होते ही अर्थात् रोग के होने के ७-८ दिन बाद एक ओर की अण्ड-ग्रन्थि मे शोथ हो जाता है (Orchitis या Epididymo-orchitis हो जाता है), जिसके साथ फिर सर्वांग-ग्रह होता तथा ज्वर भी बढ जाता है। इस ग्रन्थि के भी स्नायु-तन्तु मे परिस्रवण बढ जाता है अर्थात् उसमे Interstitial Oedema हो जाता है, जिससे वह तन जाती है और उसमे भारी दर्द होता है। इस ग्रन्थि पर चढे आवरण कोष (Tunica Vaginalis) मे भी स्राव (Exudation) हो जाता है। एक सप्ताह तक यह भी ठीक हो जाता है। इसके ठीक होने के साथ ज्वर भी उतर जाता है। यह रोग दुबारा नही होता। सहस्रो मे इस रोग का विष सक्रमण तो करता है पर उन्हे प्रकट रूप मे रोग नही होता। कभी-कभी इस रोग मे उपद्रव के रूप में दूसरे सप्ताह मे अग्न्याशय (Pancreas) मे शोथ हो जाता है जिससे पेट (Epigastrium) मे दर्द, स्पर्शाक्षमता तथा वमन होने से तथा ज्वर के लक्षण हो जाते है। कभी-कभी मस्तिष्क अष्टम नाडी पर इसका दुष्प्रभाव होने से स्थायी कर्ण-बाधिर्य या Tinnitus का उपद्रव हो सकता है। कभी-कभी Parotid ग्रन्थि के स्थान Submaxillary या कभी-कभी Sublingual लाला-ग्रन्थि मे यह रोग हो जाता है। Typhoid मे उपद्रव रूप मे एक ओर ग्रन्थि सूजती है तथा पक भी जाती है। इस रोग मे यह दोनो ओर होती है तथा पकती कभी नही।

चिकित्सा

रोगी तथा उसके साथियों को तीन सप्ताह तक औरो से पृथक् रखना चाहिये। उसके सम्पर्क मे आये व्यक्तियो को रोग से बचाने के लिये Mumps Convalescent Serum २० मिलिलि० या Mumps Convalescent Gamma Globulin २.५ मिलिलि० मास द्वारा दे देना चाहिये। Mumps Virus Vaccine के १ सी० सी० के १ सप्ताह के अन्तर से त्वचा मे २ बार दे देने से लगभग ६ से १२ मास तक इस रोग के लिये प्रतिरोधक शक्ति बनी रहती है।

कर्णक ज्वर के रोगी का ज्वर तथा शोथ जब तक उतर न जाये, उसे बिस्तरे पर लिटाये रखना चाहिये। उससे अण्डकोष के उपद्रव होने की आशका नही रहती। चबाने से दर्द होता है। अत नलकी से केवल दूध या फल रस पिलाना चाहिये। शोथयुक्त ग्रन्थि पर Kaolin पोल्टीस दिन मे दो बार बदल कर बाधने या Belladonna Glycerin लगाकर सेकने से दर्द को कुछ आराम आता है। Aspirin ३ ग्रेन या Codeine Phosphate ½ ग्रेन दिन मे दो तीन बार देने से भी दर्द शान्त होता है। Glycerin Thymol Co के अथवा Potassium Permaganate के ४ हजार मे १ के द्राव से या Potassium Chloride के १०० मे १ के द्राव से कुल्ले दिन मे चार बार करने चाहिए, इससे इसका विष निकलता रहता है। Albamixture (Mag Sulph १ ड्राम, Magn Carb Light १० ग्रेन, Peppermint Water ½ औंस) या Elixir Cascara Sagrada ½ ड्राम दिन मे एक बार देकर पेट साफ रखना चाहिये। Soda Salicyl ७½ ग्रेन, Soda Bicarb १५ ग्रेन, Pot Acet १५ ग्रेन मिलाकर दिन मे ३-४ बार देने से भी दर्द शान्त होता है।

अण्ड शोथ के लिये भी Belladonna Glycerin का लेप तथा गर्म सेक देना चाहिए तथा Codeine का मुख द्वारा प्रयोग करना चाहिये। उसके हिलने से दर्द अधिक होता है। अत उसे बाँध कर गर्म रुई मे लपेट कर रखना चाहिये या उसके नीचे गर्म रेत की थैली रखनी चाहिये। Corticotrophin १०० यूनिट्स के लगातार २ दिन तक इन्जेक्शन देने से दर्द मे आराम आ जाता है। Prednisolone के ५ मिलिग्राम मात्रा मे दिन मे ४ वार २-३ दिन देने मे अण्डशोथ शान्त हो जाता है या Betamethasone या Dexamethasone ५ मिलि० दिन मे २ वार २-३ दिन दें। स्त्री मे Oophoritis का उपद्रव हो जाय तो कोष्ठ के निम्न प्रदेश पर सेक देना चाहिये। वृद्धो मे रोग हो तो Pancreatitis का उपद्रव हो सकता है जिससे वमन तथा Shock के लक्षण हो जाते है। इसके लिये पेट पर सेक, Tetracycline का दिन मे ४-६ वार देना, Morphine का इन्जेक्शन देना तथा शिरा द्वारा Saline का देना हितकर है। Hydrocortisone या Prednisolone भी शीघ्र लाभ करता है।

आयुर्वेदानुसार इस रोग के विष का सक्रमण होने पर लाला-ग्रन्थि मे कफप्रकोप-जनित शोथ हो जाता है। उसमे शोथ हो जाने पर उस पर कुष्ठ, हरिद्रा, चित्रकमूल, वच, सरसो, सौहजना आदि मे से किन्हीं १-२ को धतूरे के रस से पीसकर लेप वनाकर लगा दिया जाता है तथा ऊपर गर्म रुई बांध दी जाती है। मरिचादिक्वाथ (वृ नि र) त्रिकटु, त्रिफला, हल्दी, कटुकी, चिरायता का क्वाथ) मे संघव डालकर दें।

मन्थर ज्वर, आन्त्र ज्वर, तन्द्रिक ज्वर, मोतीझारा, मियादी बुखार (Typhoid Fever—Typhos=**वादल**) Entric fever

यह एक दीर्घ सक्रामक ज्वर है जिसमे आत लसीका सम्वन्धी अवयवो (Lomphatic tissue) तथा आन्त्र-वन्धनी की लसीका-ग्रन्थियो मे शोथ का लक्षण विशेष रूप मे रहता है, जिससे इसे आन्त्रिक ज्वर कहते है।

कारण

१०-३० वर्ष की आयु के व्यक्तियो मे ग्रीष्म ऋतु मे या उसके अन्तिम भाग मे फैलने वाला तथा कई दिन तक निरन्तर चलने वाला एक सक्रामक ज्वर है जो छात्रावासो या वस्तियो मे एक साथ अनेकानेक नौजवान व्यक्तियो मे हो जाया करता है। कुछ वर्ष पहले अर्थात् २० या ३० वर्ष पहले, जव जल-सप्लाई का प्रवन्ध ठीक नही था, यह जिस प्रवलता से फैला करता था वैसा अव देखने मे नही आता। सम्भवत शहरो मे पीने के जल को स्वच्छ रखने के लिए जो प्रवन्ध किये गये है उन्ही का यह शुभ परिणाम है। रोगी के मल मे से इस रोग के जीवाणु के पीने वाले पानी मे प्रविष्ट हो जाने से यह रोग दूसरो को हुआ करता है। रोगी के अच्छे हो जाने पर उसके मल मे इस जीवाणु का आना वन्द हो जाता है। बहुत थोडे रोगियो मे लगभग ५ प्रतिशतक मे यह जीवाणु अच्छा हो जाने के वाद भी कुछ मास तक मल मे निकलता रहता है। इसमे से २-३ प्रतिशतक मे तो १२ मास तक भी यह जीवाणु मल द्वारा आता रहता हे। रोगियो मे से किसी-किसी मे, जिनके पित्ताशय मे स्थायी शोथ रह जाता है अर्थात् जिन्हे पित्ताशय शूल (Cholecystitis) का रोग होता है, चिरकाल के लिए यह उनके मल मे आता रहता है। जिनको इस रोग मे पित्ताशय शूल का उपद्रव होता है उनके मल मे इस रोग का जीवाणु चिरकाल तक आता रहेगा, इस बात की आशका कर लेनी चाहिए। इस प्रकार के व्यक्तियो को आन्त्रज्वर-जीवाणुवाहक कहते है। इनके अतिरिक्त कभी-कभी आन्त्र ज्वर इतने मृदु रूप मे होता है कि इस रोग का पता नही चलता। ऐसा रोगी वस्तुत आन्त्रिक ज्वर से ग्रस्त होता है पर उसे एक साधारण रोगी समझा जाता है। उसके मल के पेय जल मे सक्रमण के द्वारा यह रोग दूसरो मे फैल जाता है। इस प्रकार प्राय. इस रोग के सक्रमण का कारण कोई रोगवाहक व्यक्ति हुआ करता है। यदि ऐसा व्यक्ति भोजनालय मे काम करता हो तो स्पष्ट है कि वह दूसरो मे रोग के सक्रमण का कारण हो जाता है।

यह ज्वर हमारे देश मे शहरो मे ही पाया जाता है, विशेषत जिन शहरो मे पीने के पानी की सफाई का प्रवन्ध अत्युत्तम नही है। ऐसी अवस्था मे रोगवाहक से पीने के पानी के द्वारा यह जीवाणु दूसरो मे प्रवेश कर जाता है। देहातो मे यह रोग प्राय नही होता, जिससे पता लगता है कि यह रोग वाहर (योरोपियन्स) से आया है। उनसे यह मिलिटरी मे आया और वहा से वडे-वडे नगरो मे इसका वीज फैला है। चरक-सुश्रुत आदि प्राचीनतम ग्रन्थो मे जैसे वर्तमान विषूचिका या Dysentery (Amaebic) का वर्णन नही है, वैसे ही मन्थर ज्वर का वर्णन भी नही मिलता।

आन्त्रज्वर-जीवाणु

Salmonella Typhi या Bacillus Typhosus (१८८४) by Karl Joseph Eberth (१८३५-१९४६) ३-४ माइक्रोन लम्बा, शलाकाकृति, ग्राम नेगेटिव, - गतिशील, Flagella सयुक्त, कृमि है जो रोगी के रक्त, मल और मूत्र मे रहता है। Sal Para-

typhi या Paratyphoid Bacilli A B C (१९०७-१८) भी जो अधिक सुलभ हैं, इसी से मिलते-जुलते तथा इनसे मृदु ज्वर का कारण होते हैं। Bacteriophages (रोगमुक्त की आंत में बैक्टीरिया नामक Virus) के द्वारा lysis के आधार पर ये भेद पाये गये हैं। ये सभी जल, दूध, आइसक्रीम, बर्फ आदि भोजनों में पर्याप्त समय तक जीवित रह सकते हैं। इन्हीं के द्वारा ये हमारी आंत में पहुंचते हैं। आमाशय रस इन्हें नष्ट करता है पर ये अधिक हों तो कुछ बचकर आंत में पहुंच जाते हैं। वहां पहुंचने के दो सप्ताह समय के बाद इस रोग के लक्षण प्रकट होते हैं, अर्थात् इसका परिपाक काल (Incubation Period) २ सप्ताह है। आंत में Mononuclear Phagocytes इन्हें पकड़कर Peyer's Patches में अर्थात् लसीका-ग्रन्थियों में पहुंचा देते हैं, जहाँ ये परिपाक-काल में वृद्धि करते रहते हैं। यदि मलमूत्र-वाहिनी नालियाँ Disinfect कर दी जाए तो इस जीवाणु का प्रसरण रुक जाता है।

विकृति

इस प्रकार इस जीवाणु के आँत में पहुंचने और उसकी दीवार में प्रवेश करने पर वहां इसके विपरीत तीव्र प्रतिक्रिया होती है, विशेषत लसीका ग्रन्थियों (Peyer's Patches तथा Lymph Follicles) में। क्षुद्रान्त्र का निम्न १ फुट का भाग या Iliocaecal Valve के पास की ग्रन्थियां विशेष ग्रस्त होती हैं अर्थात ये ग्रन्थियाँ इस जीवाणु को पकड़ लेने के कारण आकार में फूल जाती हैं। वहाँ यह जीवाणु नष्ट न हो पाए तो यह आन्त्र बन्धनी की तथा पिछले कोष्ठ (Post abdomen) की लसीका ग्रन्थियों (Mesenteric Glands) में पहुंच जाता है जिससे वे भी सूज जाती हैं। वहाँ पर भी यह नष्ट न हो पाए तो यह महा लसीकावाहिनी (Thoracic duct) द्वारा रक्त में पहुंच जाता है। रक्त में श्वेत कण इसे बढ़ने नहीं देते तो भी Mesentery की ग्रन्थियों, प्लीहा, यकृत्, पित्ताशय तथा अस्थि-मज्जा में यह जीवाणु बढ़ने लगता है। इन अंगों की रक्तवाहिनियों में विद्यमान Reticuloendothelial सैल मात्रा में बहुत अधिक बढ़ जाते हैं (Cellular Hyperplasia)। इनकी यह वृद्धि इनको नष्ट करने के लिए ही होती है। इन सैलों में उत्पन्न होने वाले Large Mononuclear नामक श्वेत कण इन अंगों की रक्तवाहिनियों में बहुत अधिक संख्या में भरे होते हैं। इनसे अधिक भर जाने से इन अंगों की रक्तवाहिनियों में रक्तावरोध हो जाता है। इसलिए इस रोग में आन्त्र की ग्रन्थिया, यकृत, प्लीहा आदि आकार में कुछ बढे हुऐ दीखते हैं। Sinusoids में इसके कारण यकृत् के कुछ सैल मृत Necrosed हो जाते हैं। पित्ताशय से पित्त (Bile) के द्वारा यह जीवाणु दुबारा आंत में प्रवेश करता है और वहां लसीका ग्रन्थियों में शोथ का कारण होता है तथा मल में बाहर भी आता है। इस प्रकार आंत की लसीका ग्रन्थियों, अस्थि-मज्जा तथा पित्ताशय में इसकी वृद्धि की प्रतिक्रिया रूप में Large Mononuclear Phagocytes अधिक बढ जाते हैं जो जीवाणुओं को खा लेते हैं। इस जीवाणु की प्रतिक्रिया रूप में दूसरे श्वेतकणों में न्यूनता ही होती है।

पहले जब तक यह जीवाणु आंत की विशेषत Ileocaecal छिद्र के २ फुट प्रदेश की लसीका ग्रन्थियों (Peyer's Patches, Mesent Glands) में बढ़ता है तब तक इस रोग के पूर्व रूप होते हैं। इस समय को इस रोग का Incubation period कहते हैं। फिर जब यह जीवाणु रक्त में प्रसरण करके प्लीहा, यकृत, मज्जा, पित्ताशय में बढता है तब (Bacteraemia की अवस्था में) ज्वर का लक्षण आरम्भ होता है। जब यह ज्वर एक सप्ताह रह लेता है तब १०वें दिन तक रक्त में Antibodies उत्पन्न हो जाते हैं और तीसरे सप्ताह के अन्त तक बढते जाते हैं, इससे फिर यह जीवाणु रक्त में बढ नहीं सकता, तथापि दूसरे सप्ताह में ज्वर कुछ न कुछ जारी रहता है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि आंत की लसीका ग्रन्थियों, प्लीहा, यकृत्, पित्ताशय आदि के सैलों के अन्दर जहां Antibodies तथा श्वेत कण नहीं पहुंच पाते, यह जीवाणु वृद्धि करता ही रहता है। फिर इनके नष्ट होने पर इनके अन्दर से जो विष (Exotoxin) निकलकर रक्त में फैलता है उसके कारण इस रोग के लक्षण होते हैं।

अर्थात् पहले तो इस जीवाणु के विष के विपरीत आंतों में श्लैष्मिक शोथ (Catarrh) होता है जिससे रोगी को मलबन्ध तथा आध्मान रहता है। फिर इस जीवाणु के विरोध में उत्पन्न Bacteriolysin से जब यह नष्ट होता है तब इससे उत्पन्न Endotoxin के मस्तिष्क पर दुष्प्रभाव से तन्द्रा, मोह आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। आंत में विशेषत Ileum की लसीका ग्रन्थियों में शोथ १०वें दिन तक अधिकतम हो जाता है और फिर ८-१० ग्रन्थियों में उनकी रक्तवाहिनियों के अवरुद्ध हो जाने और फिर इनकी श्लेष्मकला के मृत Necrosed होकर झड जाने से व्रण भाव होकर वहाँ की Submucous तह नंगी हो जाती है। वह भी क्षत हो जाय तो Slough के झड जाने के कारण वहां पर विद्यमान कोई रक्तवाहिनी क्षत हो जाती है जिससे इस रोग के दूसरे सप्ताह के अन्त में रक्ता-

तिसार का लक्षण हो जाता है (साधारणत वहा की रक्तवाहिनियो के पहले ही अवरुद्ध Thrombosed हो जाने से ऐसा नही होता)। इसके बाद वहा की मांसमय स्तर और उसके बाहर की Peritoneum की तह भी क्षत हो जाय तो छिद्रोदर (Perforation) का उपद्रव हो सकता है जो क्षुद्रान्त्र के निम्न भाग मे हुआ करता है। मृदु रोग मे केवल ग्रन्थि शोथ ही होता है, तीव्र रोग मे व्रण भाव होता है तथा अतिसार का लक्षण तीव्र होता है। चौथे सप्ताह मे व्रण ठीक होने लगते है, उनके किनारे नगे हुए मांसमय स्तर से जुड जाते है और इन स्थानो पर मरी हुई Epithelium के स्थान पर नई Epithelium आ जाती है पर ग्रन्थियां (Glands) द्वारा नही आती है।

अस्थि-मज्जा मे इस जीवाणु की वृद्धि मे वहां श्वेत कणो की उत्पत्ति कम हो जाती है (Leucopenia), श्वास-नालियो की, इस रोग के विष के दुष्प्रभाव से, शक्ति गिर जाती है जिससे वहा Pneumococci का संक्रमण होकर कास का लक्षण हो जाता है। हृदय-मांस की प्राण-शक्ति भी इस रोग के विष से कम हो जाती है (Toxic Myocarditis)। हृदय मे क्षीणता (Fatty तथा Granular Degen) हो जाती है। इससे फुफ्फुस मे भी श्वयथु (Hypostatic Congestion) हो जाता है। धमनियो की भी शक्ति घट जाती है जिससे उनका रक्त-भार गिर जाता है। सिराओ की प्राणशक्ति के कम हो जाने से Femoral Vein मे विशेषत बाईं ओर की जाघ की शिरा मे अवरोध (Thrombosis) हो जाता है। वृक्को के सेलो पर इस विष के दुष्प्रभाव से क्षीणता (Cloudy Swelling) हो जाती है। वृक्को मे ये जीवाणु पाये जाते है एव तीसरे सप्ताह मे और बाद मे मूत्र द्वारा बाहर भी आते है। इस प्रकार पित्ताशय तथा वृक्को मे ये जीवाणु देर तक रह सकते हैं।

मन्थर ज्वर के लक्षण

रोग के सक्रमण के १२-१४ दिन के बाद इस रोग के लक्षण व्यक्त होते हैं। इस बीच (Incubation period) मे शरीर मे आलस्य, शिर मे दर्द या मस्तक-शूल, अरुचि, रात को भयकर स्वप्नो से निद्रा भग होने के पूर्वरूप होते हैं। इनके बाद शरीर का तापमान स्वल्प सा बढता है। शिर-दर्द, अन्नारुचि, कार्य करने मे अशक्ति के लक्षण रहते है तो भी रोगी गिरता-पडता अपना कार्य किये जाता है, इसे इसका Ambulatory phase कहते हैं। पर दो-तीन दिन मे उसे शय्याशायी होना पडता है। देखने मे पता लगता है कि उसे हर समय ज्वर रहता है जो प्रति सायकाल प्रथम सायकाल से ऊचा होता जाता है। प्रति प्रात यह ज्वर कुछ उतरता तो है पर प्रथम दिन की प्रात की अपेक्षा कम उतरता है। इस प्रकार बढता-बढता ज्वर क्रमश एक सप्ताह के अन्त तक १०३ डिग्री फार्नहाइट के लगभग तक पहुच जाता है। देखने से रोगी मे आलस्य, तन्द्रालुता और मांसशैथिल्य (Prostration) के लक्षण विशेष होते है, अर्थात् रोगी की गतिविधि और वुद्धि मे मन्दता छाई हुई होती है। दिन मे तो वह सोया पडा रहता है, पर रात्रि के समय शान्ति से नही सोता, प्रत्युत मन्द-मन्द प्रलाप करता रहता है। रोगी मे Meningismus के कारण शिर-दर्द तथा निद्रालुता के लक्षण होते हैं। परीक्षा करने पर उसका पेट कुछ अफरा हुआ होता है तथा स्पर्श मे अधिक गर्म होता है। पेट के निम्न दाहिने भाग (Caecum) पर दबाने से गडगडाहट की ध्वनि सुनाई देती है तथा रोगी को कोष्ठ के निम्न भाग मे वेदना भी प्रतीत होती है। यह वेदना का लक्षण लगभग $\frac{1}{3}$ रोगियो मे होता है। रोगी को मलबन्ध रहता है। उसकी जिह्वा मैली, खुश्क होती है। जिह्वा के किनारे लाल होते हैं। ओष्ठ और त्वचा भी शुष्क होते है। चेहरा फीका या पीला नही होता, नेत्रों मे चमक होती है। पिपासा अधिक रहती है। नाडी, ज्वर के कारण यद्यपि देखने मे भरी हुई मालूम होती है, पर दबाने से शीघ्रता से दब जाती है। ज्वर के कारण तीव्र गति होती है पर जितनी तापमान की वृद्धि होती है उस मात्रा मे उसकी गति की वृद्धि नही होती। साधारणत ९८ तापमान मे वह ७० होती है। ९९ मे ८०, १०० मे ९०, १०१ मे १०० तथा १०३ मे १२० हुआ करती है। परन्तु इस रोग मे १०३ तापमान मे भी नाडी गति १०० प्रति मिनट के लगभग हो सकती है। धमनी का भार (Tension) कम होता है अर्थात् उसकी Tone कम होती है। वह शिथिल (Relaxed) होती है। ज्वर के कारण हृदय प्रबलता से रक्त फेकता है अत नाडी सर्पगति (Dicrotic) प्रतीत होती है। रोगी की श्वास गति भी कुछ तीव्र होती है, उसे कुछ शुष्क कास भी होता है। प्लीहा पसलियो से एक आधा अगुल नीचे बढी हुई होती है परन्तु कठोर न होकर मृदु होती है। मूत्र मात्रा मे थोडा हो जाता है, गहरे रग का तथा वृक्को पर इस रोग का विषैला प्रभाव हो जाने पर अलब्यूमिन से युक्त होता है। रक्त-परीक्षा करने पर उसमे श्वेत कणो (Leucocytes) की सख्या कम पाई जाती है, विशेषत Polymorphs कम होते हैं। यह सख्या प्रति क्यूबिक मिलिमीटर मे ४-५ हजार के लगभग होती है। अस्थि-मज्जा मे इन जीवाणुओ की वृद्धि से उनकी

उत्पत्ति कम होती है।

प्रथम सप्ताह के अन्त मे इस रोग मे पेट तथा छाती की त्वचा पर मोती सदृश सूक्ष्म-सूक्ष्म दाने स्वेद-प्रणालियो के मुख पर विस्फोट (Sudaminal Vesicles) के रूप मे निकलते है जो इस रोग के विशेष सूचक लक्षण होते है। यूरोपियन व्यक्तियो मे ये सूक्ष्म, दो मिलिमीटर के लगभग व्यास के कुछ उठे हुए, रक्तवर्ण कोठो (Rose Spots) के रूप मे निकलते है। त्वचा की सूक्ष्म रक्तवाहिनियो मे इस रोग के जीवाणुओ के अवरोध (Emboli) के कारण वहा रक्त के सचित हो जाने से ये कोठ निकलते है। इन कोठो के शिखर पर जो Vesicles बनते है उन्ही को मोतीझारा (Roseola Vesiculosa) कहते है। एक कोठ समूह के बाद दूसरा समूह १०-२० तक का निकलता रहता है। एक समूह २-३ दिन तक रहता है। $\frac{1}{3}$ रोगियो मे ये दाने दृष्टिगत नही होते।

इस रोग की द्वितीय अवस्था को व्रणावस्था (Stage of Ulceration) या रोग की प्रधानावस्था कहते है। इस अवस्था मे रोग के द्वितीय सप्ताह मे ज्वर उच्चतम डिग्री, १०३ फार्नहाइट के लगभग तक पहुच जाता है और वही टिका रहता है। प्रातकाल उतना ही कम हो जाता है जितना कि स्वस्थावस्था मे कम हुआ करता है। रोगी अधिक तन्द्रालु, शिथिल और उदासीन हो जाता है। उसकी सर्व मासपेशियो मे वातिक शिथिलता बढ जाती है। देखने पर रोगी पीठ के बल सुस्त और उदासीन होकर पड़ा रहता है। शिथिलता के अतिरिक्त हरे व पीले रग के पतले अतिसार दिन मे कई बार होने लगते है जो क्षारीय प्रतिक्रिया के तथा दुर्गन्धयुक्त होते है पर बिना दर्द के होते है। पेट मे अफारा विशेष रहता है। ५० प्र०श० रोगियो मे अतिसार का लक्षण होता है, शेष मे मलबन्ध रहता है। जिह्वा बीच मे शुष्क तथा मलिन और किनारो पर साफ पर लाल होती है। नाडी निर्बल और कम दबाव की और Dicrotic होती है, मिनट मे १२० के लगभग होती है। रक्तभार सकोचकालिक १०० या इससे भी कम होता है। हृदय का प्रथम शब्द मास की शिथिलता से दूसरे शब्द के समान होता है। रोगी को खासी प्रारम्भ से ही होती है क्योकि श्वास की नालियो मे शोथ रहता है। द्वितीय सप्ताह मे यह शोथ कुछ नीचे फुफ्फुस मे भी प्रसरण कर जाता है इसलिये कास बढ जाती है। हृदयनैर्बल्य से भी फुफ्फुस मे श्वयथु (Oedema) हो जाता है। रोगी के पीठ के बल पडे रहने से वहा फुफ्फुस मे कुछ कफ द्रव सचित होता है जिससे वहा Rales सुनाई पडते है। इसी कारण श्वास-सख्या भी बढ जाती है। प्लीहा तथा यकृत् दोनो मे रक्त संचय के बढ जाने पर इनके आकार मे एक अगुल के लगभग वृद्धि हो जाती है जो स्पर्शन से अनुभव होती है। स्पर्श मे वे मृदु होते है। वृक्को के ग्रस्त होने से मूत्र की मात्रा कम, मूत्र का गुरुत्व अधिक हो जाता है, वह अम्लीय तथा अलब्यूमिन से युक्त होता है। शरीर मे Metabolism के बढ जाने से Urea, Uric Acid भी उसमे बढ जाते है। रात्रि को प्रलाप रहता है और नीद कम हो जाती है। रोगी मे प्रलाप का लक्षण अधिक स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार द्वितीय सप्ताह के अन्त मे यह रोग अपने पूर्ण रूप मे होता है।

तृतीय सप्ताह मे प्राय रोगी की अवस्था सुधरने लगती है। ज्वर क्रमश कम होने लगता है (By lysis) प्रातकाल का तापमान सायकाल के तापमान की अपेक्षा अधिकाधिक नीचे गिरने लगता है। साय का तापमान धीरे-धीरे गिरता है (Remittent तथा Intermittent हो जाता है), पेट का अफारा कम होने लगता है, अतिसार कम होने लगता है, जिह्वा स्वच्छ होने लगती है, मोह तथा तन्द्रालुता के लक्षण भी कम होने लगते है, मूत्र की मात्रा भी बढने लगती है। मूत्र का बढ जाना रोग-निवृत्ति का सूचक है।

यदि रोग अच्छा होने के स्थान पर तीव्र हो जाय तो तृतीय सप्ताह मे भी रोगी अधिकाधिक शिथिल और उदासीन अवस्था मे पीठ के बल असहाय-सा पडा रहता है। बेहोशी मे मन्द-मन्द प्रलाप करता रहता है। नाडी तथा हृदय शब्द निर्बलतर हो जाते है जिससे हाथ-पाव शीतल हो जाते है। उसकी अगुलियो मे कम्प (Tremor) होता है अथवा वह अपनी अगुलियो से बिस्तरे के कपडो को पकडने या उठाने का यत्न करता रहता है (Carphologia)। उसकी आँखे खुली तो रहती है पर शून्य मे देख रही होती है जिसे अर्ध चेतना (Coma Vigil) कहते है या रोगी बेहोशी मे बिस्तरे पर ही मल-मूत्र कर देता है या उसका पेट अफर जाता है। इसे परम शिथिलावस्था या Typhoid State कहा जाता है। यह शैथिल्य (Asthenia) रोगी के हृदय-शैथिल्य एव मृत्यु का कारण बन सकता है।

इस रोग के तृतीय सप्ताह के अन्त तथा चतुर्थ सप्ताह के प्रारम्भ मे क्रमश रोग-निवृत्ति (Convalescence) प्रारम्भ हो जाती है। ज्वर प्रातकाल क्रमश अधिकाधिक उतरने लगता है। प्रति साय ज्वर की वृद्धि न्यून एव न्यूनतर होती है जिससे कुछ एक दिन मे यह नार्मल हो जाता है। इस अवस्था मे रोगी की नाडी और हृदय अति निर्बल होते है एव नाडी कुछ तीव्र रहती है

यद्यपि रोग के लक्षण शान्त होने लगते है । इस रोग मे रोग-निवृत्ति काल तीन-चार सप्ताह के लगभग लम्बा होता है, क्योंकि इसमे आन्त्र व्रणो का रोहण हो रहा होता है इसलिए भोजन-सम्बन्धी पथ्य का ध्यान रखना पडता है ।

जिनमे रोग मृदु रूप मे हुआ हो उनमे एक सप्ताह तक ज्वर के उतरे रहने के वाद कभी-कभी इस ज्वर का पुनराक्रमण (Relapse) हो जाया करता है (१५% रोगियो मे होता है) जो Immunity के कम उत्पन्न होने से होता लगता है, जिसमे उपर्युक्त रोग के लक्षण फिर एक मृदु रूप मे हो जाते है । यह पुनराक्रमण एक सप्ताह के लगभग समय के लिए होता है । इस रोग के प्रारम्भिक एक-दो सप्ताह तक जीवाणु रक्त मे पाया जाता है, प्रथम सप्ताह वाद जीवाणु पुरीष मे पाया जाता है, प्रथम सप्ताह वाद यह मूत्र मे भी मिल सकता है ।

उप मन्थरज्वर—Paratyphoid

यह ज्वर प्रधानतया Salmonella Paratyphoid A तथा B के सक्रमण के कारण होता है । हमारे देश मे यह Paratyphoid A के कारण ही होता है, इगलैण्ड मे Salmonella Paratyphi B के कारण । उपर्युक्त मन्थर ज्वर से यह मिलता-जुलता ज्वर है । पर इसमे आत की लसीका ग्रन्थियो मे व्रण भाव मन्द रूप मे होता है । इस जीवाणु के मुख द्वारा सक्रमण करने के लगभग १ सप्ताह वाद आरम्भ होता है । पुरीष के ससर्ग मे आए जल से ही प्राय उसका सक्रमण होता है । यह ज्वर क्रमश आरम्भ न होकर विषम ज्वर के समान सहसा शीत के साथ चढता है और दूसरे-तीसरे दिन १०१ डिग्री तक या उच्चतम शिखर तक पहुच जाता है । इसका प्रारम्भ वहुधा श्वास की तीव्रता के लक्षण के साथ होता है, अर्थात् वालक या नवयुवक को Broncho Pneumonia के होने का सन्देह हो जाता है । साय और प्रात तापमानो मे अन्तर भी दो डिग्री के लगभग होता है अर्थात् इसका तापमान विषम-ज्वर के तापमान से मिलता-जुलता होता है जो दो सप्ताह के अन्त मे क्रमश उतर जाता है । ज्वर चढते समय तथा वाद मे भी रोगी वालक को शाखाओ मे, कमर मे, सिर तथा मासपेशियो मे दर्द की शिकायत रहती है ।

परीक्षा करने पर वालक या नवयुवक का पेट अफरा हुआ होता है । उसे प्राय मलवन्ध रहता है । उसकी छाती-पेट आदि मे त्वचा पर मोती के से दाने प्रभूत मात्रा मे निकल आते है जो प्रथम सप्ताह के अन्त मे स्पष्ट हो जाते है । ये दाने साधारण मन्थर ज्वर के दानो की अपेक्षा कुछ वडे होते है । नाडी की गति तापमान की अपेक्षा मन्द होती है । धमनी-भार भी कम होता है ।

उपद्रव

(१) रक्त स्राव—तृतीय सप्ताह के अन्त मे जब Iliocaecal Valve के समीप का कोई व्रण गहरा हो जाता है तथा जब रोगी के रक्त के जमने (Coagulation) की शक्ति घट जाती है तब (३-४ प्र० ग० मे) अधिक उठने बैठने या अनुचित भोजन से उस व्रण मे से रक्तस्राव हो जाता है जो बहुत स्वल्प या अत्यधिक मात्रा मे हो सकता है । यह अधिक हो तो रोगी का तापमान गिर जाता, चेहरा फीका पड जाता, नाडी तीव्र तथा अस्पष्ट हो जाती तथा शैथिल्य या Collapse से रोगी की मृत्यु हो जाती है ।

(२) छिद्रोदर (Perforating Peritonitis)—तृतीय सप्ताह के अन्त मे यदि रक्त मे विष की अधिकता (Toxaemia) के कारण आतो की दीवार मे विद्यमान नाडियो के विषाक्त हो जाने से आतो के मास की शक्ति (Tone) गिर जाय तो वे फैल-सी जाती है । आत की दीवार पर अन्दर की गैस का दवाव पडने से उसमे छिद्र (Perforation) हो जाता है, ऐसा होते ही दाए Iliac Fossa मे भारी दर्द होता है । वहा स्पर्शाक्षमता होती है, शरीर का तापमान गिर जाता है, श्वास भी तेज हो जाता है, रोगी टागो को सिकोडकर पीठ के वल पडा रहता है । यह उपद्रव दो दिन तक घातक हो जाता है । साधारण Peritonitis का उपद्रव हो तो वमन, नाडी की तीव्रता, पेट पर आध्मान, Leucocytosis के लक्षण हुआ करते है ।

(३) जघा शिरा शोथ (Femoral Thrombosis)—बाई ओर की जघा शिरा मे Thrombosis या Thrombophlebitis हो जाने से उधर का पैर तथा सारी जाघ मोटी हो जाती है । हृदय के निर्वल व रक्त भार के कम हो जाने के लक्षण भी होते है ।

(४) Parotitis अर्थात् एक ओर के कर्णमूल की लाला ग्रथि Parotid मे पूययुक्त शोथ हो जाता है । ज्वर उतरने के वाद हो तो यह पकने पर ठीक हो जाता है । ज्वर के वीच मे हो तो पूय विष Sepsis के फैल जाने से यह घातक होता है ।

इनके अतिरिक्त Pneumonia, Post-typhoid Periostitis (Hip) Osteomyelitis, Cholecystitis भी वहुधा इसके उपद्रव होते हुए देखे जाते हैं । Meningitis,

Cerebral Thrombosis या Embolus तथा Nephritis (Albuminuria) के उपद्रव भी कभी-कभी होते हुए देखे जाते है। Toxic myocarditis हो तो Tachycardia, systolic दबाव की न्यूनता के लक्षण होते है।

साध्यासाध्यता

अति अतिसार, अत्याध्मान, निद्रा, प्रलाप, नाडी की तीव्रता, फुफ्फुस के तले पर श्वयथु (Hypostatic Congestion) के लक्षण हो तो यह रोग कष्टसाध्य है, ऐसा समझना चाहिए। रक्तस्राव अधिक मात्रा मे हो तो भी घातक होता है। छिद्रोदर सदा घातक है, शीघ्र शल्यकर्म हो जाने से रोगी बच सकता है। गर्भिणी मे यह रोग गर्भघातक होता है। ६० वर्ष से ऊपर की आयु मे रोग अधिक कष्टसाध्य होता है।

भेदक लक्षण

ज्वर क्रमश, हलके सिर दर्द वा हलके नासा रक्तस्राव या खासी या मलबन्ध और अरुचि के साथ आरम्भ होकर चार-पाच दिन तक नार्मल न हो, रोगी शिथिल और उदासीन होकर बिस्तर पर पडा रहे, पेट और छाती पर मोतीझारा हो, जिह्वा श्वेत, मलिन हो, किनारो पर रक्तवर्ण हो, नाडी की गति तापमान की अपेक्षा मन्द हो, तथा Dicrotic हो, पेट मे न्यूनाधिक अफारा हो, प्लीहा कुछ बढी हुई पर स्पर्श मे मृदु हो, श्वेत कण न्यून अर्थात् Polymorph Leucopenia हो (प्रथम सप्ताह मे ही), Widal का Test पाजिटिव हो (दूसरे सप्ताह मे ऐसा होता है) Polymorphs की न्यूनता तथा Lymphocytes की आपेक्षिक वृद्धि हो तो मन्थर ज्वर का सन्देह करना चाहिए। Sterile तरीके से रक्त लेकर उसे Culture करने से रोग के प्रारम्भ मे १ सप्ताह तक इस रोग का निश्चय हो सकता है। रोगी के मल के २ ग्राम हिस्से को लेकर उसमे Coliform Bacilli को नष्ट करके Salmonella जीवाणुओ की खेती के Medium पर Culture करके भी ये जीवाणु मिले, तो इस रोग का निश्चय हो जाता है। एक सप्ताह बाद मल मे ये जीवाणु मिलते है, मूत्र मे ये १० १२ दिन बाद मिलते हैं।

सन्तत विषम ज्वर (Malignant Malaria) से इसका सन्देह हो सकता है। परन्तु सन्तत विषम ज्वर मे प्रात और साय के तापमानो मे अन्तर अधिक होता है। उप मन्थर ज्वर (Paratyphoid) मे भी प्रात साय के तापमानो मे अन्तर अधिक ही होता है। उसमे रोगी को क्षुधा लगती है, इसमे अन्न के लिए पूर्ण अरुचि रहती है। उसमे मुख विवर्ण या पाण्डुर तथा नेत्र कुछ पीतिमा से युक्त होते है, मूत्र भी गहरे रंग का होता है; इस रोग मे मुख रक्त वर्ण रहता है, नेत्र और मूत्र श्वेतवर्ण होते है। उसमे वमन या पीतिमा युक्त वमन होती या उबकाई आती है, इस रोग मे यह लक्षण नही होता, उस रोग मे नाडी तीव्र होती है, इस रोग मे तापमान की अपेक्षा वह मन्द होती है।

तीव्र रूप मे होने वाले क्षय ज्वर मे भी मन्थर ज्वर का सन्देह होता है। परन्तु उस रोग मे रोगी के प्रात -साय के तापमानो मे अन्तर अधिक होता है। नाडी की गति भी तापमान की अपेक्षा तीव्रतर होती है। क्षय के कारण उस रोग मे रोगी का मास शुष्क हो जाता है जिससे रोगी अधिक कृश दीखता है, मन्थर ज्वर मे रोगी उतना कृश और शुष्क नही होता। क्षय मे श्वास गति भी अधिक होती है तथा श्वासकृच्छ्रता भी होती है। उस रोग में रोगी के माथे पर स्वेद दीखता है, इस रोग मे ये लक्षण नही होते। क्षय ज्वर मे ज्वर की मर्यादा नही होती। वह २१ दिनो के बाद भी रहता है। क्षयोदर रोग (Tubercular Peritonitis) मे जलोदर (Ascites) होता है, जिससे इस रोग का सन्देह भी दूर हो जाता है। सक्रामक मस्तिष्क ज्वर तथा क्षयजनित मस्तिष्क ज्वर Cerebrospinal Fever और Tuberculous Meningitis) से भी इस रोग का भ्रम हो सकता है। परन्तु उन रोगो मे वमन होने और अगो मे आक्षेप होने के लक्षण होते है तथा कण्ठकुब्जता (सिर के पीछे की ओर अकड जाने) का लक्षण होता है। इस रोग मे ये लक्षण नही होते, तथा उस रोग मे रोगी बालक का पेट उभरा हुआ न होकर पिचका हुआ होता है। उस रोग मे रोगी बालक की स्थिति भी एक विशेष प्रकार की होती है, अर्थात् वह दोनो टागो को पेट पर समेटकर एक बाजू पर पडा रहता है और प्रकाश को तथा किसी प्रकार की छेड-छाड को सहन नही करता। पर इस रोग मे रोगी पीठ के बल सीधा पडा रहता है तथा उदासीन रहता है।

शरीर मे कही पर पूयभाव होने से अर्थात् फुफ्फुसावरण मे पूय उत्पन्न हो जाने से या गर्भाशय या पित्ताशय मे पूयभाव होने से ज्वर हो तो भी मन्थर ज्वर का सन्देह हो सकता है। परन्तु उनमे कम्प होकर ज्वर चढता है तथा स्वेद आकर उतरता या कम होता है। उनमे श्वेत कण वृद्धि (Leucocytosis) का लक्षण भी होता है। इस रोग मे ये लक्षण नही होते। B Coli के सक्रमण से उत्पन्न वृक्काशय-शोथ (Pyelitis) से भी इसका भ्रम हो सकता

है पर उसमे Leucocytes की वृद्धि होती है, वृक्क-शोथ प्रदेश पर दर्द होता है, मूत्र मे पूय की उपस्थिति होती है।

मन्थर ज्वर चिकित्सा—

आहार—

इस रोग मे रोगी अति कृश न हो जाय, इसलिए ३-४ हजार कैलोरीज देने वाला कुछ आहार देते रहते है, इससे रोगी दुर्बल नही होता। परन्तु इस रोग मे आत रुग्ण होती है इसलिए उनमे भोजन-सम्बन्धी फोक (Residue) अधिक नही जाने देना चाहिए। इसलिए उचित है कि रोगी को दिन-भर मे २½ लिटर के लगभग गाय का दूध तथा दिन भर मे चार औस ग्लूकोज (४५० कैलोरीज) मिलाकर दिया जाय, साथ ही विटामिन्स भी दिये जाए। ५ औस दूध, २ चम्मच ग्लूकोज तथा २ औंस जल के साथ मिलाकर प्रति दो घंटे बाद प्रात ७ बजे से साय ६-१० बजे तक सात बार दे दिया जा सकता है। किसी समय गाय के दूध के स्थान पर Horlicks का दूध दे सकते है या प्रोटीन का बना बाजार मे मिलने वाला कोई योग (Bengers food) दे सकते है। रात को भी जब रोगी जागे, एक बार इतना ही दूध दे दिया जाय, इस प्रकार २-२½ लिटर दूध मिल जाता है। दूध की फुट्टिया बडी-बडी न बने और आत के लिए विक्षोभक न हो, इसके लिए १ औस दूध मे २ ड्राम Lime water या जौ का पानी मिला सकते हैं या २ ग्रेन सोडियम साइट्रेट मिलाकर दे सकते है या दूध को Peptonise करके दे। १ लिटर दूध मे ६५० कैलोरीज तथा ८-१० चम्मच (२५ ग्राम) खाण्ड से १०० कैलोरीज शरीर को मिलती है, या पहले से हजम किया हुआ (Predigested) भोजन (जैसे Benger का भोजन) दिया जा सकता है। दूध के समयो के बीच मे रोगी को उबालकर ठडा किया जल अकेला या ५ प्रतिशतक ग्लूकोज मिलाकर या १० छटाक मे १ औस ग्लूकोज मिलाकर आध-आध पाव करके दे देना चाहिए, जिससे दिन भर मे उसके अन्दर दो सेर जल तथा पर्याप्त ग्लूकोज चला जाय। ज्वर मे स्वेद, मूत्र आदि के प्रवर्तन के लिए इतने जल का देना आवश्यक होता है। ग्लूकोज के साथ मे नीबू या सन्तरे का रस भी दे सकते है। इस प्रकार ज्वरावस्था मे रोगी के अन्दर लगभग एक हजार कैलोरीज का आहार पहुच जाता है। यदि अफारा अधिक न हो तो मौसमी का रस या अगूर का रस एक-एक छटाक की मात्रा मे दिन मे दो बार दिया जा सकता है। ये सब आहार फीडिंग कप के द्वारा देने चाहिए। ज्वर के उतरने पर दूध की मात्रा दो-ढाई सेर कर देनी चाहिए। रोगी दिन मे दो-तीन सेर जल या ग्लूकोज न लेवे तो ज्वरजनित विषो का मूत्र द्वारा निर्हरण करने के उद्देश्य से ४-५ पाइण्ट ५ प्रतिशतक ग्लूकोज वाला नार्मल सेलाइन जल बूद-बूद करके शिरा द्वारा दे देना चाहिए। अभिप्राय यह है कि जितना मूत्र आता हो उतना और उससे १½ सेर और अधिक कुल द्रव उसके शरीर मे प्रतिदिन पहुच जाना चाहिए।

रोगी के मुख तथा त्वचा को साफ रखने का पूरा-पूरा प्रबन्ध रखना चाहिए। ज्वर उतरने के ४ दिन बाद दूध मे भिगोया टोस्ट या सब्जी का जल या उबाल कर पीसा हुआ आलू दे सकते है।

औषधि चिकित्सा—Chloramphenicol (Chloromycetin 1947)

Chloromycetin २५० मिलि०के कैप्स्यूल्स, Syrup Palmitate १ ड्राम मे १२५ मिलि०, इजेक्शन १०० मिलि०, Synthomycetin कैप्स्यूल, २५० मिलि० तथा Enteromycetin आदि रूपो मे यह औषधि मिलती है। Chloramphenicol succinate इजेक्शन भी मिलता है।

इस रोग के लिए इस समय यह मानी हुई औषध है। मुख के द्वारा देने से दो घटे के अन्दर-अन्दर सारे शरीर मे प्रसार कर जाती है। यहा तक कि पित्त और Cerebrospinal Fluid मे भी पर्याप्त मात्रा मे सचित हो जाती है और ६-७ घटे के बाद क्रमश मूत्र द्वारा निकल जाती है। बहुधा तो ६-६ या ४-४ घटे पर १ कैप्स्यूल देते रहने से अथवा जब तक ज्वर न उतर जाय, तब तक दिन मे ६ कैप्स्यूल देते रहने से तीसरे दिन तक कुल १२-१६ कैप्स्यूल देने पर यह ज्वर उतर जाता है। इसके बाद १ ग्राम औषधि या ४ कैप्स्यूल प्रतिदिन ६ दिन तक देते रहने से ज्वर के पुनरावर्तन का भय नही रहता। अधिक उचित होगा कि लगभग १० दिन तक दिन मे ४ कैप्स्यूल मात्रा मे इसे जारी रखना चाहिए। अति तीव्र रोग मे ½ ग्राम मात्रा मे इसका इन्जेक्शन ६-६ घटे पर दे। यह औषध केवल जीवाणुओ को निष्क्रिय करने वाली (Bacteriostatic) है, उनके लिए घातक नही है। उनका असली निवारण तो शरीर के अन्दर उत्पन्न होने वाले जीवाणु-निवारक तत्त्वो से होता है, अत रोगी की अन्य चिकित्सा या उसकी यथावत् परिचर्या जारी रहनी चाहिए ताकि औषधि बन्द करने पर फिर जीवाणुओ को रोहण करने की भूमि न मिले, अर्थात् रोगी को ज्वर उतर जाने पर भी १५ दिन तक शय्याशायी होकर ही रहना चाहिए, ताकि आन्त्रगत

व्रण सर्वथा ठीक हो जाए, इस प्रकार ३ सप्ताह तक रोगी को निगरानी मे रखना चाहिए। इस औषधि के १ सप्ताह मे बन्द कर देने मे ज्वर का पुनराक्रमण हो सकता है। २ सप्ताह तक उसके देने से पुनराक्रमण का चांस कम है तथा किसी उपद्रव का भय भी नही रहता।

जैसा ऊपर कहा है, बाजार मे Chloromycetin Palmitate suspension द्रव रूप मे ६० सी० सी० की शीशियो मे मिलता है। इसके ४ सी० सी० मे १२५ मिलिग्राम औषध होती है। बच्चे के प्रति किलो भार के पीछे भी इस औषध की ३० मिलिग्राम दैनिक मात्रा है। उसका १ चम्मच ६-६ घटे पर दे देना चाहिए। इन गोलियो व शर्वत के प्रयोग के समय रोगी को Vitamin B Complex की गोलिया या उसके सूचीवेध मास द्वारा देते रहना चाहिए, क्योकि जो जीवाणु आन्त्र मे इसे बनाते है वे उपर्युक्त औषधि के द्वारा नष्ट हो जाते है। रोग तीव्र हो और रोगी बेहोश हो तो उपर्युक्त औषधि को इन्जेक्शन के रूप मे अर्थात् Enteromycetin Succinate suspension १ ग्राम मास द्वारा ८-६ घटे पर दिया जाता है तथा इसके साथ Hydrocortisone भी ५-१० मिलि० मात्रा मे ६-६ घटे वाद दे देने से विशेष लाभ प्रतीत होता है। शरीर मे विद्यमान जीवाणुओ के आसपास बनने वाली Fibrinous दीवारो को यह नही बनने देता, जिससे औषधि का प्रभाव उन पर सुगमता से होने लगता है। इस औषधि को धीरे-धीरे १ सप्ताह तक बन्द करना चाहिए।

Ampicillin ५०० मिलि० कैप० के ६ ६ घटे पर दिन मे ४ बार देने से भी यह ज्वर शीघ्र उतर जाता है। जिन्हे क्लोरमफिनेकोल अनुकूल नही, उनके लिए ही यह उपयोगी है।

इस रोग के प्रारम्भ मे मलबन्ध रहता है। वह अधिक हो तो Calomel ½ ग्रेन, Pulv Rhei २ ग्रेन, Soda bi carb ६ ग्रेन की एक पुडिया आधे-आधे घटे के बाद तीन-चार बार दे सकते है। इस रोग के तृतीय सप्ताह मे मलबन्ध हो तो ४ औंस साबुन वाले जल (९८°F) मे २ औंस ग्लिसरीन डालकर Catheter युक्त अनीमा सिरिंज से धीरे-धीरे इसकी वस्ती कर देने से मलशुद्धि हो जाती है। अतिसार अधिक हो तो दूध कम करके दूध का पानी या चावलो का पानी तथा अनार का रस देवें। खाण्ड की मात्रा कम कर दे तथा Camphorated Tincture of opium देवे। स्पष्ट है कि इस रोग मे रोगी के पेट, मूत्र, मल, पीठ, नाड़ी-तापमान तथा दिन मे पिये हुए जल की मात्रा का पूरा-पूरा ब्यौरा रखना चाहिये।

रक्तातिसार के लिये आहार सर्वथा बन्द करके ठण्डा जल घूट-घूट देना चाहिए तथा निचले दाहिने पेट पर (Right Iliac Fossa पर) हलके-हलके बर्फ की टकोर करनी चाहिए। रोगी के पायते को ऊचा कर दें। मार्फीन ¼ ग्रेन, अट्रोपीन सल्फेट ₁/₁₀₀ ग्रेन का सूचीवेध भी रक्तरोधक होता है। Menaphthone १० मिलि० के मास द्वारा ८-८ घटे बाद देने से भी रक्तावरोध होता है। १० औंस Saline Solution त्वचा मे डाल देना चाहिये या उसे ग्लूकोज सोल्यूशन के साथ धीरे-धीरे शिरा द्वारा दें। *Chloromycetin* के कारण रक्तभार गिर जाय तो शिरा द्वारा Noradrenaline तथा Efcorlin बूद-बूद करके देना चाहिये।

छिद्रोदर (Perforation) के लिये Chloramphenicol को जारी रखना चाहिये। २४ घटे मे ४-८ बार तक इन्जेक्शन द्वारा दें। इस उपद्रव के होने से पहले रोगी मे Shock का कोई लक्षण हो तो Glucose Saline या Dextran ५०० सी० सी० मात्रा मे Efcorlin (Hydrocortisone sodium succinate) १०० मिलि० मिलाकर शिरा द्वारा देना चाहिये। अन्यथा शल्यकर्म मे जीवन नही बचता, क्योकि रोगी निर्बल होता है। रोग के अच्छा होते समय जघा-शोथ (Phlebitis) हो जाय तो जघा को तकिये पर रख कर ऐसा स्थिर रखें कि वह हिले नही, तथा बैलाडोना ग्लिसरीन लगा कर उस पर गर्म बोतलों मे सेक देना चाहिये। दो-तीन सप्ताह बाद हलकी-हलकी मालिश कर सकते है, उससे पहले मालिश नही करनी चाहिये। ३ प्रतिशत Sod Cit Solution के ५ ७ औंस मात्रा मे शिरा द्वारा देने मे या Heparin शिरा द्वारा देकर Dindevan के देने से भी लाभ होता है। Pneumonia हो जाय तो Penicillin तथा Tetracycline (Enterocycline १२५ मिलि० कैप्स्यूल्स) दें। पेट मे अफारा हो तो भोजन बन्द करके पेट पर Kaolin पोल्टीस बाधे। हृदयदौर्बल्य के लिये Nikethamide तथा Parotitis और Periostitis के लिए सेक तथा आपरेशन करना चाहिये। रोगमुक्त व्यक्तियो मे से २ प्रतिशत के लगभग इस रोग के वाहक (Carrier) हो जाते है अर्थात् उनके मल मे इस रोग के जीवाणु आते रहते है। कुछ एक के केवल मूत्र मे ही ये जीवाणु आते रहते है। इनके Gall bladder मे यह जीवाणु रह जाता है। इसके लिये जब कि

V_1 Antigen सीरम मे ऊचा होता है Ampicillin १ ग्राम दिन मे ३ बार ३ सप्ताह तक देना चाहिए।

रोगरोधक चिकित्सा

मन्थर ज्वर कभी–कभी छात्रालयो मे फैल जाता है तब स्वस्थ व्यक्तियो को इस रोग मे बचाने के लिये T A B Vaccine जिसके १ सी० सी० मे १ हजार मिलियन Salmonella Typhi, ५०० मिलियन Paratyphoid A तथा B दोनो बराबर-बराबर मिले होते है प्रथम ½ सी० सी० की मात्रा मे और फिर १५ दिन बाद १ सी० सी० की मात्रा मे त्वचा द्वारा दे दिया जाता है। इस सूचीवेध से लगभग २ वर्ष तक फिर इस रोग के होने का भय नही रहता। इस सूचीवेध के बाद व्यक्ति को दो दिन सिर-दर्द और अगो मे दर्द के साथ मन्द ज्वर होता है, इसलिये उसे एक-दो दिन विश्राम करना चाहिये।

आयुर्वेद मे मन्थर ज्वर या तद्रिक ज्वर

क्षुद्रान्त्र मे आन्त्र ज्वर जीवाणु का सक्रमण हो जाने पर उसके विपरीत वहा कफ धातु, वायु धातु तथा पित्त धातु की जो प्रबल प्रतिक्रिया होती है उसके परिणाम रूप मे यह रोग उत्पन्न होता है। अर्थात् आंत मे रक्षक तत्व या कफ तत्व की शोथात्मक प्रतिक्रिया, वायु की चेष्टात्मक या प्राणक्षयात्मक प्रतिक्रिया तथा पित्त की पाकात्मक प्रतिक्रिया से यह रोग उत्पन्न हो जाता है। साधारणत इसमे कफ की प्रतिक्रिया ही विशेष होती है जिससे अरुचि, अतिसार आदि लक्षण होकर कुछ काल बाद इस रोग का विष नष्ट हो जाता है। वायु का प्रकोप विशेष हो जाए अर्थात् शरीर की प्राणशक्ति अधिक निर्बल हो जाए तो वातिक लक्षण होकर रोग तीव्र हो जाता है। यदि पित्त की प्रतिक्रिया अर्थात् पाकात्मक प्रतिक्रिया आत मे विशेष हो तो भी आंतो मे व्रणभाव हो जाने से यह रोग तीव्र रूप ले लेता है। पर वायु का विशेष प्रकोप न हो तो यह रोग साध्य ही होता है। कफपित्त तथा वायु के साधारण प्रकोप या प्रतिक्रिया से यह रोग ठीक हो जाता है।

सामान्यत इस रोग मे रोगी की कफवात-शामक चिकित्सा होनी चाहिये। अर्थात् दीपन-पाचन तथा बल-वर्धक औषधियो का प्रयोग होना चाहिये। सजीवनी वटी २ रत्ती मे मुक्ता ½ रत्ती या अतिसार भी हो तो शुक्ति, जहरमोहरा पिष्टी १-१ रत्ती मिलाकर दिन मे ४ बार देते रहने से रोग शान्त रहता है। चन्दनादि क्वाथ (बृ० नि० र०) चन्दन, उशीर धनिया, बालक पित्तपापडा, मोथा, शुण्ठी समभाग का प्रयोग भी रोग को शान्त करता है। पीने के लिये उबालकर ठंडा किया या षडंगोदक नामक जल पर्याप्त मात्रा मे देना चाहिये। वायु की वृद्धि को रोकने के लिये दूध थोडा-थोडा करके पर्याप्त मात्रा मे देना चाहिये तथा रोगी को पूर्ण आराम मिलना चाहिये।

कण्ठकुब्ज ज्वर, मस्तिष्क सुषुम्ना ज्वर.—Cerebrospinal Fever, Meningococcal Meningitis — **मस्तिष्कावरण तथा मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव**

मस्तिष्क तथा सुषुम्ना पर सटकर चढे हुए आवरण को Piamater (Tender Cover) तथा ढीले-ढीले चढे हुए आवरण को Arachnoid (Spider Weblike) Mater कहते है। इन दोनो के बीच स्वल्प से अवकाश (Sub arachnoid Space) मे एक द्रव रहता है जिसे मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव (Cerebrospinal Fluid) कहते है, देखने मे यह स्वच्छ जलसदृश है। इस द्रव की उत्पत्ति मस्तिष्क गोलार्द्धों (Cerebral Hemispheres) के आभ्यन्तर एव निम्न भागो मे मध्य रेखा के दोनो ओर विद्यमान Lateral Ventricles मे—जो कि Foramen of Monro के द्वारा दोनो Thalami के बीच मे स्थित तीसरे Ventricle से सम्बन्धित रहते है—होती है। इन Ventricles मे एक रक्तवाहिनियो का जाल (Choroid Plexus) रहता है जिसमे से एक द्रव रिस-रिसकर Ventricles मे भरता रहता है। तीसरा Ventricle नीचे एक सूक्ष्म प्रणाली (Sylvian Aqueduct) के द्वारा Pons और Medulla के ऊपर के भाग के पीछे तथा Cerebellum के आगे विद्यमान चौथे Ventricle से सम्बन्धित रहता है। चौथा Ventricle नीचे सुषुम्ना के मध्य मे विद्यमान प्रणाली (Spinal Canal) के साथ सम्बन्धित है। इस प्रकार यह मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव Ventricles मे उत्पन्न होकर नीचे Spinal Canal तक चला जाता है तथा मस्तिष्क और सुषुम्ना के अन्दर की ओर रहता है और पानी का गद्दा बनाकर मस्तिष्क तथा सुषुम्ना को धक्के से बचाता है।

चतुर्थ Ventricle की छत मे विद्यमान दो छिद्रो मे से, जिन्हे Foramen of Majendii तथा Foramen of Luschka कहते है, यह द्रव Subarachnoid Space के साथ सम्बन्धित रहता है अर्थात् वहा से यह द्रव मस्तिष्क तथा सुषुम्ना के चारो ओर छाये हुए Sub arachnoid Space मे जाता रहता है। जहा से यह द्रव Arachnoid के Villi के द्वारा Cranial Venous Sinuses अर्थात्

मूर्धास्थियों के अन्दर Duramater में विद्यमान शिराओं में विलीन होता रहता है। इस प्रकार यह मस्तिष्क-तर्पक द्रव या तर्पक श्लेष्मा, मस्तिष्क और सुषुम्ना के अन्दर तथा बाहर, दोनों ओर व्याप्त होकर उनका तर्पण करता तथा सम्भवत उनके मलों को लेकर शिराओं में डालता रहता है। शरीर में इस द्रव की मात्रा १५० सी० सी० के लगभग होती है तथा रचना में यह Plasma से मिलता जुलता है। इसके प्रति १०० सी० सी० में २०-३० मिलिग्राम प्रोटीन (अल्ब्यूमिन होता है, ग्लोब्युलिन के Molecule के बड़े होने से वह इसमें नहीं होता है), ७००-७५० मिलिग्राम Chlorides (T B Meningitis में कम), ५० ८० मिलिग्राम ग्लूकोज (पूयजीवाणु सङ्क्रमण में कम होता) तथा २० मिलिग्राम यूरिया होता है। साधारणत इसमें सेल्स नहीं होते, प्रति क्यूबिक मिलिमीटर में २-४ Lymphocytes मिल जाते हैं। इसका भार लेटे हुए ६०-१५० M M of Water और बैठे हुए २००-२५० होता है।

कारण

मस्तिष्क तथा सुषुम्ना के सूक्ष्म आवरणों (Pia और Arachnoid) में शोथ हो जाय तो उसे मस्तिष्क सुषुम्नावरण शोथ (Meningitis) कहते हैं। यह शोथ किसी जीवाणु के सङ्क्रमण से भी हो सकता है, पर बहुधा यह Tubercle Bacillus, Pneumococcus, Haemolytic Streptococcus, Influenza Bacillus तथा Meningococcus से हुआ करता है। इस प्रकार जब यह Meningococci के सङ्क्रमण से होता है तब इसे Meningococcal Meningitis कहते हैं। यह एक तीव्र रूप का ज्वर है जो विशेषत ४–५ वर्ष से छोटे बालकों में पाया जाता है तथा एक सङ्क्रामक ज्वर है और कभी-कभी प्रबल रूप में फैलता भी है। पर साधारणत इक्के दुक्के बालकों में पाया जाता है। परिवार में एक से अधिक बालक को नहीं होता। क्योंकि यह रोग प्रत्यक्ष या सीधा सङ्क्रामक न होकर अप्रत्यक्ष रूप से सङ्क्रामक है अर्थात् इस रोग के रोगी के खासने-छींकने से दूसरे बालकों के नासा पश्चिम प्रदेश में पहुच जाता है और उसमें पनपता रहता है। इस प्रकार बहुत से बालक जो रोगी के सम्पर्क में आते हैं, इस रोग-जीवाणु के वाहक बन जाते हैं यद्यपि उन्हें रोग नहीं होता। स्वस्थ बालक तो इस जीवाणु का वाहक स्वल्प समय के लिये ही होता है, पर अस्वस्थ या दोषयुक्त गले वाला बालक इस रोग-जीवाणु का वाहक कुछ काल तक बना रहता है तथा उसमें जीवाणु प्रबलता से पनप सकता है। शीत काल के पिछले भाग या वसन्त काल में गले की अस्वस्थता विशेष रूप से हुआ करती है, अत इस समय यह विशेषत पाया जाता है। बन्द कमरों में इकट्ठे सोने वाले लड़कों में इस जीवाणु का सङ्क्रमण रोगवाहक बालकों से सुगमता से हो जाता है। इस रोग के सङ्क्रमण का कारणभूत जीवाणु Meningococcus, Gonococcus से मिलता-जुलता Gram Negative Diplococcus है। इसे Ausitria के Pathologist Weichselbaum (१८४५–१९२०) Neisseria Meningitidis (१८८७) कहते हैं जिसकी ४ किस्में (Serological) हैं। किस्म १ तथा ३ से ग्रुप १ बनता है तथा किस्म २ और ४ से ग्रुप २ बनता है। प्रथम ग्रुप से तो व्यापक (Epidemic) रूप में होने वाला तथा द्वितीय ग्रुप से इक्के-दुक्के को होने वाला (Sporadic) रोग होता है। शरीर से बाहर शरीर की गर्मी से कम गर्मी में यह जीवित नहीं रह सकता। यह जीवाणु रोगवाहक व्यक्ति के तो नासा पश्चिम प्रदेश में तथा रोगी के Cerebrospinal Fluid में मिलता है। अभिप्राय यह है कि बहुतों के तो यह जीवाणु गले तक ही सङ्क्रमण करता है, कुछ एक में वहां से रक्त में भी सङ्क्रमण कर जाता है और किसी-किसी के रक्त में से मस्तिष्कावरण में भी सङ्क्रमण कर जाता है।

सम्प्राप्ति

नासा पश्चिम प्रदेश या गले के ऊर्ध्व भाग में जब यह पर्याप्त वृद्धि कर लेता है तब यदि बालक के रक्त में रोगरोधक शक्ति कम हो तो यह जीवाणु रक्त में भी सञ्चार कर जाता है। अर्थात् जिसे अब तक Meningococcal Nasopharyngitis था, अब उसे Meningococcal Septicaemia भी हो जाता है। रक्त में से यह मस्तिष्क पर ही क्यों स्थान-संश्रय करता है यह स्पष्ट नहीं, पर मस्तिष्क में पहले उसकी प्रतिरोधक शक्ति के न्यून हो जाने से ही यह वहां सङ्क्रमण करके रोहण करने लगता है, ऐसा प्रतीत होता है। बहुत सम्भवत यह Ventricles के अन्दर विद्यमान रक्तवाहिनी जाल (Choroid Plexus) में रोहण करता है जिससे यह सिरा-जाल रक्तवर्ण (Hyperaemic) हो जाता है। उसमें से यह जीवाणु Ventricles में प्रवेश कर जाता है जिससे उसकी श्लेष्मकला (Ependyma) में शोथ हो जाता है। वहां से सुषुम्ना द्रव के द्वारा यह जीवाणु चतुर्थ Ventricle में जाता है। वहां से एक ओर तो नीचे Spinal Canal में प्रसरण कर जाता है, दूसरी ओर Foramen of Majendii तथा Luschka में से यह Sub arachnoid Space (मस्तिष्क सुषुम्नावरण

मध्य प्रदेश) मे सक्रमण करके सम्पूर्ण मस्तिष्क सुषुम्नावरण मे शोथ (Leptomeningitis) का कारण बन जाता है। मस्तिष्क के इन मृदु आवरणो की रक्तवाहिनिया रक्त से भर जाती है। इन आवरणो मे तथा Ventricles मे शोथ के कारण इनमे से एक स्राव (Exudate) उत्पन्न होकर इनमे विद्यमान द्रव की मात्रा को वढा देता है जिससे इस रोग मे मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव (Cerebrospinal Fluid) धुधला-सा हो जाता है, जिसका कारण उसमे Polymorphonuclear Leucoytes की वृद्धि है तथा वह मात्रा में भी अधिक हो जाता है। मस्तिष्क तल (Base) पर Pons, Medulla के आसपास तथा Cerebellum के निम्न पृष्ठ पर विद्यमान बडे-बडे Subarachnoid प्रदेशो मे, जिन्हे Cisterns (Medulla Oblongata तथा Cerebellum के तल के बीच Cisterna Magna, Pons के सामने Cisterna Ponta तथा दोनो Temporal Lobes के बीच मे Cisterna Inter Peduncularis) कहते है, यह द्रव अधिक मात्रा मे भर जाता है। अतएव इस रोग मे सिर के अन्दर का भार (Intracranial Pressure) वढ जाता है जो मस्तिष्क को ऊपर की ओर कपालास्थियो की तरफ उठा देता है तथा जिससे इस रोग मे मस्तिष्क के अन्दर अधिक जल भर जाने से उत्पन्न Hydrocephalus रोग की विकृतिया होती है। इस रोग मे मस्तिष्क सुषुम्नावरणो मे शोथ हो जाने का लक्षण तो होता है पर मस्तिष्क के अन्दर शोथ नही होता। मस्तिष्कावरण मे शोथ हो जाने से मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव के सिराओ मे वापिस जाने का मार्ग भी सम्भवत अवरुद्ध हो जाता है जिससे इस द्रव की उत्पत्ति तो वढ जाती है पर इस द्रव का विलयन कम हो जाता है। परिणामत मस्तिष्क के अन्दर का भार वढ जाता है और आसपास के प्रदेश पर दवाव पड जाता है तथा सिर पर के छिद्रो Fontanelles मे तनाव का लक्षण प्रतीत होता है।

लक्षण

जीवाणु सक्रमण के पाच दिन के अन्दर-अन्दर यह रोग हो जाता है (Incubation Period १-५ दिन)। Nasopharyngitis की अवस्था मे जब तक यह जीवाणु गले तथा नासा पश्चिम भाग मे रहता है नासाशोथ व गलशोथ के सिवाय कोई लक्षण नही रहता। इसके बाद रक्त मे इस जीवाणु के पहुचने पर बालक को ज्वर, सहसा शीत लगकर या आक्षेप के साथ १०२ या १०३ डिग्री तक हो जाता है। शिर के पश्चिम प्रदेश तथा जघाओ मे दर्द का (Myalgia) तथा उदासीनता का लक्षण विशेष रहता है। इस दर्द के साथ वमन का लक्षण भी होता है। तीव्र ज्वर की यह अवस्था, अथवा इस रोग की Septicaemic stage एक-दो दिन रहती है। रक्त मे इस विष के रहते हुए त्वचा और श्लेष्मकलाओ के नीचे कही-कही रक्तस्राव भी हो सकता है- जिससे लाल रग के छोटे-छोटे चकत्ते भी शरीर पर निकल आते है। इस अवस्था मे यदि यह रोग सक्रामक रूप मे न फैला हुआ हो तो इसका दूसरे तीव्र ज्वरो (Influenza, Malaria) से भेद करना कठिन होता है। यदि यह रोग आगे न वढे, यहा पर ही रुक जाय तो इस रोग का ठीक-ठीक पता भी नही चलता कि यह रोग हुआ है। रक्त की परीक्षा करने पर Leucocytosis का लक्षण मिलता है।

पर जब यह आगे वढता है तब तीसरे-चौथे दिन मस्तिष्क सुषुम्नावरण मे शोथ (Meningitis) के सूचक लक्षण स्पष्ट होने लगते है, अर्थात् सुषुम्ना द्रव के वढ जाने एव सिर के अन्दर के भार वढ जाने से एक तो सिर मे भारी दर्द होता है जो सिर के पिछले भाग मे तथा ग्रीवा मे विशेष होता है, इससे कभी-कभी वालक चीख मार उठता है। इसी प्रकार सिर के अन्दर के भार के वढ जाने से वमन भी इस रोग मे जारी रहती है। इन तीन प्रधान लक्षणो के अतिरिक्त कुछ-कुछ प्रलाप तथा कुछ नासिका और गले मे शोथ के लक्षण भी गौण रूप मे हो सकते हैं।

मस्तिष्क का एक कार्य सज्ञाओ के ग्रहण करने का होता है। इस रोग मे मस्तिष्कावरण मे शोथ होने से वालक के लिए सभी सज्ञाए विक्षोभक हो जाती है, अर्थात् इस रोग का रोगी अति असहनशील (Hyperaesthenic) हो जाता है। वह स्पर्श को या किसी प्रकार की छेड-छाड को सहन नहीं करता। किसी प्रकार का शोर या प्रकाश उसके लिए असह्य होता है। वह कपडा लेकर एक पार्श्व पर सिमटा हुआ अधेरे मे चुपचाप पडा रहना पसन्द करता है अर्थात् दोनों उरुओ को पेट पर और जाघो को जानु पर सिकोडकर एक पार्श्व पर सिमटकर पड़ा रहता है। स्वभाव मे चिडचिडा और क्रोधी हो जाता है।

मस्तिष्क का दूसरा कार्य चेष्टावाही सूत्रों के द्वारा चेष्टा का प्रजनन होता है। मस्तिष्कावरण मे, विशेषत मस्तिष्क तल के पिछले भाग मे, शोथ के कारण अथवा उसके विक्षुब्ध होने के कारण शरीर की चेष्टावाहिनिया विक्षुब्ध हो जाती है। ग्रीवा की चेष्टावाहिनियो के विक्षुब्ध होने से (सम्भवत Spinal Accessory के) ग्रीवा की मासपेशिया तन जाती है जिससे सिर कुछ पीछे की ओर कुब्जित हो जाता है, जिस लक्षण की विशेषता से इस रोग को पहले काल मे 'कण्ठ-कुब्ज' ज्वर कहते थे। सिर को एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व

की ओर या आगे की ओर झुकाना चाहें तो ग्रीवा की यह स्तब्धता स्पष्ट हो जाती है। रोगी को पीठ पर लिटाकर उसका सिर आगे को झुकाना चाहे तो ऐसा करने पर उसके उरु पेट पर तथा जंघाए जानु पर सकुचित हो जाती है (Brudzinski's Sign)। पीठ की मासपेशियो के तन जाने से न्यूनाधिक वाह्यायाम (Opisthotonos) का लक्षण भी इस रोग मे रहता है। उरुओ के पीछे की मासपेशियो अर्थात् (Biceps femoris, Semitendinosus, Semimembranosus) के तन जाने से जघाए जानु प्रदेशो पर सकुचित रहती हैं जिससे टागो को पेट पर ९० डिग्री तक सकुचित करना असम्भव होता है अर्थात् उरुओ को पेट पर ९० डिग्री तक सकुचित करके जघाओं को जानुओ पर पूरा फैलाना चाहे तो ऐसा करना कठिन होता है (Kernig' Sing)। कोष्ठ मासपेशियो के सकुचित हो जाने या तन जाने से रोगी का पेट पिचका हुआ दीखता है जिसे Scaphoid Abdomen अर्थात् नावाकृति कोष्ठ कहते है। स्रोतो-द्वारो या Sphincters की मासपेशियों के सकुचित होने से मूत्रावरोध हो सकता है।

मस्तिष्कावरण में शोथ के कारण ऊर्ध्व चेष्टा-सूत्रो (Upper Motor Neurones) के रुग्ण हो जाने से Abdominal Reflexes लुप्त हो जाते हैं अर्थात् पेट पर हल्की गुजलाहट मे पेट की मासपेशियो मे सकोच हो जाने का स्वाभाविक लक्षण इस रोग मे लुप्त हो जाता है या विपरीत हो जाता है। इसी प्रकार Plantar Reflex भी लुप्त हो जाता है या विपरीत हो जाता है, अर्थात् साधारणत तलुए को खुजलाने से पैर की अगुलियाँ, तलुए की तरफ झुकती हैं परन्तु इस रोग मे ऐसा नही होता, उल्टे अगुलियाँ पाद पृष्ठ की ओर झुकती है (Extensor Plantar Reflex)।

Medulla के आवरण मे शोथ होने से इस रोग मे तत्सम्बन्धी लक्षण भी होते है अर्थात् श्वास-केन्द्र (Respiratory Centre) तथा हृदय सम्बन्धी केन्द्र (Cardiac Centre) के ऊपर विक्षोभक प्रभाव होने से श्वासविषमता तथा नाडीविषमता के लक्षण भी पाये जाते हैं अर्थात् नाडी ताप की अपेक्षा मन्द होती है या तीव्र होती है। Medulla में विद्यमान सिरा-नियामक केन्द्र (Vasomotor centre) के विक्षुब्ध होने से कभी-कभी रोग के प्रारम्भ मे शाखाओ तथा धड पर रक्तवर्ण धब्बे दिखाई पडते है या रोगी के मूत्र के रक्तवर्ण हो जाने का लक्षण होता है तथा रोगी की त्वचा पर नख से या पैंसिल से दबाकर रेखा खीची जाय तो वहा लाल रग की रेखा पड जाती है जो एक मिनट तक बनी रहती है (Taches Cerebrales)। इसी प्रकार Sympathetic Centre के विक्षुब्ध होने से इस रोग मे पुतलियाँ फैली हुई हो सकती है जिससे प्रकाश डालने पर वे मदता से सकुचित होती है।

मस्तिष्क मे मन का स्थान होने से रोग के प्रारम्भ मे रोगी का मन विक्षुब्ध व बेचैन रहता है। प्रलाप तथा उन्निद्रता के लक्षण रहते है। परन्तु जब मस्तिष्कसुषुम्ना-द्रव अधिक बढ जाता है तब मस्तिष्क मे विक्षोभ के स्थान पर अवसन्नता (Depression) उत्पन्न हो जाती है। इससे रोगी मे तन्द्रा, निद्रा तथा मूर्छा के लक्षण दीखते है और बालक का मल-मूत्र पर नियन्त्रण नही रहता (Incontinence), वे बिस्तरे पर निकल जाते हैं। शरीर मासपेशियो मे स्तब्धता बढ जाती है जैसा ऊपर कहा है श्वास-गति तीव्र एव विषम होती है। रोगी का तापमान बढा हुआ रहता है। देखने मे उसका शरीर सूख-सा जाता है। एक सप्ताह के अन्त तक रोगी की ऐसी अवस्था रहती है।

उचित चिकित्सा मिलने से और कभी-कभी चिकित्सा के बिना भी रोगी ठीक होने लगे तो तापमान और प्रति-मिनट नाडीसख्या क्रमश घटने लगती है। शिर-दर्द, तन्द्रा, निद्रा के लक्षण भी क्रमश घटते जाते है। अवस्था खराब होती जाय तो मूर्छा गहरी होती जाती, नाडी तथा श्वास-गति बढती जाती और अन्त मे Medulla गत केन्द्रो के फेल होने से मृत्यु हो जाती है। पर जब यह तीव्र रूप मे होता है तब प्रलाप, आक्षेप, मूर्छा और निर्बलता के लक्षण प्रबल रूप मे होते है। इस भेद को Water house Friderichsen Syndrome कहते हैं। इसमे हृदय निर्बल हो जाता है, Purpura हो जाता एव शीघ्र मृत्यु हो जाती है।

उपद्रव

Hydrocephalus —Pia Arachnoid मे शोथ की तीव्रता से अर्थात् उस Space या अवकाश के रुद्ध हो जाने अर्थात् Fibrin के बैठ जाने से यह उपद्रव होता है। यदि इस रोग मे ज्वर तीव्र हो, शरीर पर चकत्ते (Purpuric Rash) निकल आए, Broncho pneumonia हो जाए अथवा प्रलाप, आक्षेप, नाडी की तीव्रता तथा उसमे भार (Tension) की न्यूनता, स्थिरता (Volume) की न्यूनता, निद्रा, मूर्छा, वमन आदि लक्षण हो तो मस्तिष्क द्रव की वृद्धि (Hydrocephalus) का सन्देह करना चाहिये जो घातक होती है।

परीक्षा

रोगी के रक्त की परीक्षा करने से उसमे Polymorphonuclear Leucocytes १० से २० हजार प्रति-क्युविक मिलिमीटर मे मिलते है।

मस्तिष्क के सुषुम्ना द्रव की परीक्षा करने पर उसका भार (Pressure) बढा हुआ होता है। वह Pus cells के कारण धुंधला होता है। उसमे Polymorphonuclear Leucocytes बहुत अधिक पाए जाते है, जिनके अन्दर पडे हुए Meningococci भी देखे जा सकते है। द्रव मे प्रोटीन की मात्रा बढी हुई होती है (३ प्र० श० से ऊपर), ग्लूकोज उसमे लुप्त हो जाता है तथा Chlorides की मात्रा भी उसमे घट जाती है। मूत्र मे प्रोटीन, Casts, तथा रक्तकण वहुधा मिलते है।

रोग विनिश्चय तथा भेदक लक्षण

विषजनित मस्तिष्कीय सुषुम्नावरण विक्षोभ (Meningism) मे जैसेकि तीव्र विषम ज्वर, मन्थर ज्वर आदि मे होता है, विष के दुष्प्रभाव से यह द्रव मात्रा मे कुछ बढ जाता है जिससे इनमे भी शिर दर्द का लक्षण होता है। परन्तु इन रोगो मे यह द्रव धुधला, पूययुक्त तथा Polymorph नामक श्वेताणुओ से युक्त नही होता। मस्तिष्कावरण मे शोथ के होने के लक्षण भी नही होते। इनमे शिर दर्द के साथ-साथ प्रलाप का लक्षण नही होता अर्थात् दोनो साथ-साथ नही होते। ना ही उनमे ग्रीवा-स्तब्धता एव उरुपश्चिम पेशियो (Hamstrings) के स्तब्ध होने का लक्षण होता है। इसी प्रकार उनमे ज्वरारम्भ मे वमन हो सकती है, पर वाद मे वमन जारी नही रहती, पर इस रोग मे तो वाद मे भी वमन होती रहती है। रोगी की क्रोधशीलता, असहनशीलता, उन्निद्रता या निद्रा-शीलता के लक्षण विषजनित मस्तिष्कावरण विक्षोभ (Meningism) मे भी हो सकते है, इसलिए इनको इस रोग का भेदक लक्षण नही कहा जाता।

श्लेष्म ज्वर (Influ) से इसका सन्देह हो सकता है पर उसमे फुफ्फुस शोथ (Pneumonia) के उपद्रव की अनुपस्थिति मे ज्वर चौथे दिन के वाद नही रहता।

इसका सन्देह मन्थर ज्वर से हो सकता है पर वह धीरे-धीरे आरम्भ होता है। उसमे श्वेतकण वृद्धि (Leucocytosis) भी नही होती। Tuberculous Meningitis से इस ज्वर का सन्देह हो सकता है, पर वह रोग भी धीरे-धीरे वढता है, सहसा नही होता एव उसमे ज्वर भी मन्द रहता है। शरीर-शैथिल्य (Prostration) का लक्षण भी मन्द होता है। उसमे ज्वर दीर्घ काल तक रहता है, उसमे Abdominal Reflex लुप्त होता, तथा ग्रीवा की स्तब्धता लगातार नही रहती, और मस्तिष्क द्रव मे Lymphocytes तथा क्षय जीवाणु पाये जाते है।

परिणामी उपद्रव

इस रोग के शान्त होने पर कभी-कभी मस्तिष्क सम्वन्धी उपद्रव रह जाते है जैसे कि कभी-कभी अष्टम मस्तिष्क नाडी के ग्रस्त होने से वधिरता का लक्षण चिर-काल के लिए रह जाता है अथवा नेत्र सम्वन्धी किसी नाडी जैसे छठी मस्तिष्क नाडी के रोग के कारण Squint का लक्षण रह जाता है अथवा वालक की मानसिक शक्ति चिरकाल के लिए मन्द (Mental Deficiency) हो जाती है।

साध्यासाध्यता

वालक २ वर्ष से छोटा हो या रोगी वडी आयु का हो, ज्वर ऊचा हो, मूर्छा, नाडी की तीव्रता, अति प्रलाप, त्वचा पर रक्तपित्त के चकत्ते होने के लक्षण हो, तो यह रोग कष्टसाध्य समझना चाहिये।

चिकित्सा

रक्त तथा मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव (Cerebrospinal Fluid) मे Meningococcus की वृद्धि को रोकने के लिये Sulphonamides प्रधान औषधिया है। रोग तीव्र रूप मे हो तो Sodium Sulphadiazine या Sulphadimidine या Sodium Sulphamerazine का या इनके वरावर-वरावर मिश्रण का या Sulfisoxazole (Gantrisin, Roche) का रोगी के प्रति किलोग्राम भार के पीछे ०५ से १ ग्राम दैनिक मात्रा मे नार्मल सेलाइन मे या Ringer's Lactate Solution मे ५ प्र०श० मात्रा मे मिलाकर शिरा द्वारा, मास द्वारा या त्वचा द्वारा या गुदा द्वारा प्रयोग करना चाहिए। साधारण तौर से ३ से ५ ग्राम मात्रा मे इनमे से किसी औषधि को १००० मिलिलि० उपर्युक्त किसी द्रव मे मिलाकर शिरा द्वारा वूद वूद करके या त्वचा द्वारा दे देना चाहिए। जब तक रोगी इस औषधि को मुख से लेने के योग्य न हो उसे १२-१२ घटे वाद फिर भी ३ ग्राम मात्रा मे देते जाना चाहिए या २ ग्राम मात्रा मे ४-४ घटे २-३ दिन मास द्वारा दे, फिर १ २५ ग्राम मात्रा मे इसी तरह ३-४ दिन मास द्वारा दे। ३ वर्ष से छोटे बालक को ५ ग्राम मात्रा मे ४-४ घटे पर मास द्वारा २-३ दिन दे, फिर ५ ग्राम दिन मे ४ वार दे। Penicillin को १० हजार यूनिट मात्रा मे Intrathecally

भी दिन मे एक बार दो दिन तक देना चाहिए। इस विधि से तीव्र रोगी को भी बचाया जा सकता है। E Coli, Meningo coccus, H influenzae का सक्रमण हो तो Ampicillin भी उत्तम ओषधि है। बडो मे दैनिक मात्रा ६ ग्राम, ७ वर्ष तक ३ ग्राम, १ वर्ष से छोटे मे १ ५ ग्राम मात्रा विभक्त करके ६-६ घटे पर मास द्वारा दी जाती है। १०-४० मिलिलि० मात्रा मे इसे Intrathecally भी २ दिन दे सकते हैं। Pneumococcal meningitis के लिये Penicillin को I V विधि से Sulphonamide के साथ-साथ दे।

रोग मृदु रूप मे हो तो Sulphadiazine, Sulphamerazine, Sulphamethazine या इनके सम्मिश्रण को या Sulphasoxazole को पहले ३ ग्राम मात्रा मे और फिर ६-६ घटे पर १ ग्राम मात्रा मे मुख द्वारा देते रहे। बडो मे प्रति किलो भार के पीछे जब इनकी दैनिक मात्रा १ ग्राम है तो ६ मास की आयु तक ३, २ वर्ष की आयु तक ४½, ५ वर्ष की आयु तक ६, १० वर्ष की आयु तक ७½ तथा १५ वर्ष की आयु तक ९ ग्राम दैनिक है। दैनिक मात्रा को ६ वार बाटकर दिया जाता है। इस प्रकार ५ दिन पहले भारी फिर हलकी मात्रा मे इस औषधि के जारी रखने से बहुधा लाभ हो जाता है। इस औषधि के सेवन काल मे रोगी को जल २-३ लिटर मात्रा मे प्रतिदिन पिला देना चाहिए ताकि इस औषधि के स्फटिक वृक्को मे न बैठे तथा मूत्र की मात्रा १०००-१५०० मिलिलि० बनी रहे। दूध भी Peptonise करके उसे ३-४ पाव प्रतिदिन मुख से या आमाशय (Stomach Tube) के द्वारा पिला देना चाहिए। मूत्र को क्षारीय रखने के लिए Soda-bicarb तथा Potassium Citrate १५-१५ ग्रेन का मिश्रण इस विधि से उसे दिन मे ४ बार दे देना चाहिए।

Sulphonamides के साथ-साथ, या उसका प्रयोग पूर्ण मात्रा मे न किया जा सकता हो, तो उसके सहायक के रूप से, Procaine Penicillin को ६ लाख यूनिट की मात्रा मे १२-१२ घटे बाद मास द्वारा दे देना चाहिये। या Crystalline Penicillin को बालक मे २ लाख यूनिट की मात्रा मे ६-६ घटे पर देते रहना चाहिए। Hydrocephalus के कारण वमन हो, तीव्र शिर-दर्द हो, Spinal Fluid का भार (Pressure) गिर गया हो तो Prednisolone ५ मिलि० ६-६ घटे पर देना चाहिए, इससे Fibrin का बैठना रुक जाता है। तीव्र (Fulminant) रोगियो मे जिनमे रक्त सञ्चार प्राय निर्बल हो जाता है, Hydrocortisone १०० मिलि० १२-१२ घटे बाद शिरा द्वारा दे देना चाहिये या Noradrenaline को ५% Dextrose गोल्यूशन मे, जो आधी ताकत के नार्मल सैलाइन मे बना हो, शिरा द्वारा दे देना चाहिये। साथ ही Soluthiazole भी शिरा द्वारा देना चाहिए। रोगी को एक शान्त और प्रकाशहीन कमरे मे रखना चाहिए। वह मुख मे जल न लेता हो तो त्वचा द्वारा नार्मल सैलाइन विटामिन "सी" ५०० मिलि० के साथ १-१½ लिटर मात्रा मे दे देना चाहिए। शिर दर्द के लिए उसके शिर पर बर्फ की टोपी रख सकते हैं या Aspirin ५ ग्रेन दिन मे ३ बार दे। वमन के लिए Largactil २५ मिलि० दिन मे ३ बार दे। रात्रि की बेचैनी तथा Fits को कम करने के लिये Chloral hydrate तथा Bromide २०-२० ग्रेन दे या Hyoscine Hydrobromide $\frac{1}{100}$ ग्रेन दें या Amylo barbitone Sodium (Sod Amytal) १ ग्रेन का इजेक्शन दिन मे २-३ बार दे। छोटे बच्चो को ३० मिलि०, शिशु को १५ मिलि० मात्रा मे दें। कटिशूल के लिए गर्म बोतल लगायें। मलबन्ध के लिए बस्ति दें या Cascara Sagrada दें। मूत्राघात के लिए Catheter का प्रयोग करें या Carbachol दे। Purpura की रोक थाम के लिए Prednisolone २० मिलि० दैनिक दें। वह प्रकट हो जाय तो Hydrocortisone Sodium Succinate (Efcorlin) को १०० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा दे। Shock के लिए भी Hydro cortisone १०० मिलि० मास द्वारा ६-६ घ० पर दें।

रोगी के सम्पर्क मे आये बालको को रोग से बचाने के लिए एक ग्राम Sulphadiazine दिन मे २ बार दो दिन देना चाहिए। या १००० यूनिट्स इसके Antitoxin के मास द्वारा दें जिससे उनमे Passive immunity उत्पन्न हो जाए।

Pneumococci तथा पूयजनक जीवाणुओ के कारण होने वाला मस्तिष्कावरण शोथ

Pneumococcal तथा Pyogenic Meningitis—इन जीवाणुओ से होने वाला मस्तिष्कावरण शोथ (Leptomeningitis) तरुण तथा बडी आयु के व्यक्तियो मे भी पाया जाता है। Septicaemia मे रक्त द्वारा Leptomeninges मे जीवाणु सक्रमण करते है। Pneumococci का सक्रमण मध्यकर्ण शोथ (Pneumacoccal Otitis media) मे से या कान के पीछे के प्रवर्धन (Mastoid) मे से या Frontal Sinus के रोग मे से इस जीवाणु का सीधा Sub arachnoid प्रदेश मे सक्रमण हो जाने से यह रोग होता है। बहुत सम्भवत शिर पर चोट लगने से कपाल के तल के Duramater मे फटाव पड जाने से वहा इस जीवाणु

का सक्रमण होता है। इसीलिए सिर पर चोट लगने के कई महीनो बाद भी यह रोग होता देखा जाता है। कपालास्थियो मे पूयभाव या अस्थिघुण (Caries) का रोग हो तो वहा से पूयजनक जीवाणुओ (Strepto, Staphylococci) का सक्रमण इसी प्रकार हो सकता है। शिराओ (Veins) के द्वारा भी यह सक्रमण हो सकता है। फुपफुसावरण मे पूयभाव (Empyema) होने पर वहा से रक्त द्वारा भी यह रोग हो सकता है। इस रोग मे यह द्रव Albumin तथा Polymorphs की वृद्धि के कारण धुधला और गाढा हो जाता है। मस्तिष्काभ्यन्तरावरण मे शोथ एव पूयभाव हो जाने पर जब Sub arachnoid space मे दबाव बढ जाता है तब उससे शिर शूल, अरुचि, वमन, आक्षेप (Seizures) और नेत्रो मे लालिमा के लक्षण हो जाते हैं। Photophobia का लक्षण भी होता है। मस्तिष्कावरणो के विक्षोभ के कारण ग्रीवा पृष्ठ तथा ऊर्ध्व जघा के पीछे की मासपेशियो (Erectors Spinae Hamstrings) मे स्तम्भ का लक्षण होता है। ग्रीवा स्तम्भ का लक्षण बहुत स्पष्ट होता है। रोगी मे ज्वर, निद्रा (Stupor) तथा मूर्छा(Coma) के लक्षण होते है। मस्तिष्कावरण की शिराओ मे Thrombosis होकर उससे उत्पन्न Infarction के कारण ये लक्षण होते हैं। मस्तिष्क सुषुम्ना-द्रव पूययुक्त होता है, उसमे Leucocytes होते हैं, प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है, खाण्ड की मात्रा कम हो जाती है। मस्तिष्क द्रव देखने मे पूययुक्त होता है। Kernig, Brudzinski के Signs होते हैं।

चिकित्सा

यह रोग घातक है, अत. तुरन्त चिकित्सा होनी चाहिए। Tetracycline Hcl (Achromycin) को ५०० मिलि० मात्रा मे शिरा द्वारा १२-१२ घटे पर दो बार देकर फिर २५० मिलि० मात्रा मे ८-८ घटे पर शिरा द्वारा देना चाहिए। जब रोगी होश मे आ जाय तो ५०० मिलि० मात्रा मे इसे मुख द्वारा दिन मे ४ बार देना चाहिए। अथवा Penicillin Sodium Crystalline को १० लाख यूनिट्स मात्रा मे २-२ घटे पर मास द्वारा देना चाहिए। १० हजार यूनिट्स मात्रा मे इसे ५ सी० सी० Pyrogen Free Saline मे मिलाकर सुषुम्ना काण्ड के Sub arachnoid प्रदेश मे भी प्रतिदिन ५ दिन तक देना चाहिए। पर आवश्यक है कि इससे पहले ५ सी० सी० मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव निकाल लेना चाहिए, साथ ही Delta Efcorlin को ३०-४० मिलि० या Ledercort को १२-१६ मिलि० या Decadron १ ५—२ २५ मिलि० दैनिक मात्रा मे दिन मे ३ बार करके दे सकते हैं। अथवा Sulphamezathine की पहली मात्रा ६-८ ग्राम की देकर फिर २-२ ग्राम मात्रा ६-६ घटे पर देनी चाहिए जब तक रोगी अच्छा न हो जाए। H Influenzal Menigitis के लिए Chloramphenicol या उसके Succinate या Tetracycline ५ ग्रा० का प्रयोग मुख या मास द्वारा या Streptomycin का प्रयोग ६-६ घटे पर करना चाहिए। Staphylococci से होनेवाला रोग अधिक घातक होता है। इसके लिए Erythromycin (Ilotycin) २५० मिलि० को २५० या ५०० मिलिलि० Sod Chlo Solu मे शिरा द्वारा या १०० मिलि० को २ सी० सी० मे मास द्वारा ६-६ घटे पर देना चाहिए। Bacitracin इञ्जेक्शन के १० हजार यूनिट्स को २% Procaine-hydro chloride के साथ मास द्वारा दिन रात मे ३ बार दिया जा सकता हे। Methicillin (Celbenin) को १ ग्राम मात्रा मे मास द्वारा ४-४ घटे पर दिया जा सकता है। Enteromycetin ५०० मिलि० को मास द्वारा ४-४ घटे पर दे सकते हे।

आयुर्वेद मे कण्ठकुब्ज ज्वर

मस्तिष्कावरण मे होने वाले त्रिदोषज शोथ को तथा उससे होने वाले ज्वर को कण्ठकुब्ज ज्वर कहा जाता है। योगरत्नाकरकार के अनुसार इस शोथ से शिर.शूल, तन्द्रा, मूर्च्छा, प्रलाप, ज्वर, त्वचा पर रक्तवर्ण के चकत्ते, कण्ठकुब्जता आदि लक्षण होते है। उसने इसे कष्टसाध्य कहा है तथा इसकी दिन मर्यादा १३ दिन की कही है।

इस रोग के लिए योगरत्नाकर में कटुकी, हरीतकी, आमलकी, बिभीतक, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, इनके क्वाथ के साथ त्रिकटु चूर्ण देने या शृंग्यादि (शृंगी, कुटजत्वक्, हरड, मुस्ता, कचूर, कटेली, वासा, चिरायता, भारगी, दो हल्दी, कुटकी, पुष्करमूल, त्रिकटु, कायफल, चव्य) समभाग का क्वाथ देने का विधान किया है। इस विरेचन गुण औषधि के अतिरिक्त ग्रीवा पर जोकें लगाकर कुछ रक्त निकलवाने तथा नासा द्वारा अपामार्ग बीज और पिप्पलीचूर्ण के अथवा त्रिकटु और कटुतुम्बी बीज के चूर्ण की नस्य देने का भी विधान किया है। इस ऊर्ध्व-अध शोधन चिकित्सा से इस रोग के जीवाणु की वृद्धि होनी बन्द हो जाती है। मस्तिष्क की नाडियो की निर्बलता के लिये चतुर्मुख रस २-२ रत्ती दिन मे दो बार दे सकते हैं।

सक्रामक कास (Pertussis, Per=अधिक, Tussis=खासी, या Whooping Cough)

घनी बस्तियो मे पाच वर्ष से छोटी आयु के बालको, विशेषत २-३ वर्ष से नीचे के शिशुओ मे शीतकाल तथा वसन्त काल (अर्थात् फरवरी मार्च) मे फैलने वाला यह न केवल दीर्घरोग है बल्कि कभी-कभी घातक एव महा उपद्रवकारी भी हो जाता है। इस रोग के होने के बाद Serum मे इस रोग के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो जाती है अत यह रोग दुबारा नही होता।

रोग की प्रथम अवस्था मे रोगी बालक के खासने से उसके नाक, मुख से जो छीटे वायुमण्डल मे आते है उनके द्वारा यह रोग ३-४ फुट के अन्दर विद्यमान दूसरे बालको मे फैलता है, यद्यपि रोग आरम्भ होने के तीन चार सप्ताह बाद रोगी से उसके सक्रमण का विशेष भय नही रहता। रोगी के मुख से निकले छीटो मे Haemophilus Pertussis नामक एक ½ माइक्रोन व्यास का Gram Negative Bacillus होता है जो श्वासमार्ग द्वारा प्रवेश करके दूसरे बालको के श्वास स्थान मे रोहण कर जाता है। इसे रोगी के थूक मे से लेकर बन्दर मे प्रवेश करके उसमे भी इस रोग को उत्पन्न होते देखा गया है। १६०६ मे बेलजियम के Bordet तथा फ्रास के Gengou ने इस जीवाणु का पहले पहल पता लगाया। तथा इसके कारण रोगी के सीरम मे उत्पन्न होने वाले Agglutinins तथा Complement Fixing Antibodies का भी पता लगाया। रोगी के श्वास मार्ग की श्लेष्म कला पर यह जीवाणु प्रभूत मात्रा मे रहता है। यह स्वय रक्त मे प्रवेश नही करता परन्तु इसके विष (Endotoxin) से श्वास नालियो की श्लेष्मकला अथवा उसमे छाई हुई Vagus Nerve की शाखाये विक्षोभशील एव निर्बल हो जाती है जिससे वहा Mucus के ढेर के विक्षोभ के कारण कण्ठ तथा ऊपर-ऊपर की श्वास नालियो मे कासकारक वेग (Paroxism) उत्पन्न हो जाता है, अर्थात् उनमे एक स्तम्भ (Spasm) उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण खासी का दौरा होता है और फिर सचित Mucus का ढेर निकल जाता है।

इस रोग मे गले, कण्ठ, कठ-प्रणाली, श्वासनालियो की श्लेष्मकलाओ मे श्लैष्मिक शोथ (Catarrh) रहता है। रोग के प्रारम्भ मे इन श्लेष्म कलाओ पर Haemophilus Pertussis भी अत्यधिक सख्या मे पाया जाता है। श्लेष्मकलाओ पर Polymorphs तथा Mononuclear सेल्स भी बहुत अधिक मात्रा मे जमा हो जाते है। नालियो मे Mucus भी बहुत जमा हो जाती है। इस चिपकीली Mucus के विक्षोभ के कारण खासी उठती है। इस Mucus मे रोग के Bacteria बहुत अधिक रहते है। श्वास नालियो के आस-पास के अवयवो (Peribronchial Tissues) मे भी शोथ होता है। निम्न श्वास नालियो मे श्लेष्मा के कारण अवरोध हो जाने से उन श्वास नालियो मे सम्बद्ध वायुकोष्ठक निष्क्रिय (Collapsed) हो जाते है (Atelectasis का लक्षण हो जाता है) जिसके कारण रक्त को आक्सिजन कम मिलती है। रक्त मे कार्बन डाइआक्साइड के बढ जाने से अम्लीयता की वृद्धि (Acidosis) भी हो जाती है। तीव्रतर रोग मे Bronchopneumonia हो जाता अर्थात् कुछ खण्डिकाये Mucus या Mucopus के कारण ठोस हो जाती है।

लक्षण

रोग के सक्रमण के १० या १४ दिन (Inc Period) के बाद मृदु ज्वर अर्थात् ९९ या १०० डिग्री के ज्वर के साथ खासी या छीक आने का लक्षण आरम्भ होता है। प्रारम्भ मे कुछ दिन यह शुष्क खासी रात्रि के समय ही उठती है और वेगो मे उठती है। फिर बढते-बढते दिन मे भी होने लगती है। खासी के साथ बालक के मुख, नाक तथा आखो से कुछ श्लेष्म-स्राव भी होता है। यह खासी दो तीन-दिन बाद भी घटने के स्थान पर बढती जाय तो इस रोग का सन्देह करना चाहिये। साधारण जुकाम तथा Influenza की खासी इतनी देर तक नही रहती। इस रोग की यह अवस्था एक या डेढ सप्ताह तक रहती है। इसे ज्वर युक्त कासावस्था (Febrile Catarrhal Stage) कहते हैं। इस अवस्था मे यह रोग प्रबल सक्रामक होता है तथा इस अवस्था मे श्वेत कणो की वृद्धि १५-२० हजार तक रहती है, जिसमे Lymphocytes ५०-६० प्रतिशत होते हैं। शिशु मे खुश्क खासी कुछ दिन रहे, रात को अधिकता से उठे, तो इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिये। नाक के द्वारा Nasopharynx से लिये Swab पर से H Pertussis को पृथक् किया जा सके तो इस रोग का निश्चय हो जाता है।

इसके बाद इस रोग की द्वितीय अवस्था, जिसे ज्वर रहित कासवेगावस्था (Afebrile Paroxysmal Stage) कहते हैं, आरम्भ होती है। इस अवस्था मे रोगी बालक को दिन-रात मे दो-चार बार या १०-१५ बार कास के वेग (Paroxysm) उठते है। रात को सोते समय Trachea मे Mucus के अधिक जमा हो जाने से इस रोग का वेग पहले रात को ही होता है। प्रत्येक वेग को तीन भागो मे बाट सकते है अर्थात् वेग के प्रथम भाग मे बालक एक छोटा-सा अन्त श्वास लेता है, फिर दूसरे भाग मे वह

छोटी-छोटी ५-७ खासियो का एक ताता-सा बाधकर खासता हे, जिसमे प्रत्येक अगली खासी पहली खासी की अपेक्षा गति मे तीव्रतर तथा प्रवलता मे भी तीव्रतर होती हे। उसकी खासियो का यह एक ताता आधे या १ मिनट तक चलता है। यहा तक कि उसके फेफडो में से सब हवा निकल जाती है और उसका दम घुटता-सा लगता है। उसके चेहरे तथा ग्रीवा की शिराये नीले रक्त से भर जाती है जिससे चेहरा नीला-सा हो जाता है और फूलता जाता है, आखे लाल हो जाती है, उसकी जीभ बाहर निकली होती है। इसके बाद वेग का तीसरा भाग होता है अर्थात् श्वास केन्द्र के उत्तेजित हो जाने से तुरन्त ही रोगी बालक एक अन्त श्वास लेता है जिसके स्तम्भ (Spasm या Adduction) के कारण Glottis के द्वारा कुछ-कुछ बन्द हुए कण्ठ Larynx मे से गुजरने मे हूप (Whoop) जैसी एक कठोर अत श्वास की आवाज उत्पन्न होती है जिसके कारण इसे Whooping Cough कहते है। इस लम्बे 'हूप' की आवाज वाले अन्त श्वास के साथ यह कास का वेग (Paroxysm) समाप्त होता है। इस कास वेग के बाद श्वास नालियो मे से चिपचिपी गाढी, तन्तु सदृश बलगम बाहर निकलती है। खासी के वेग के साथ कभी-कभी आमाशय मे विद्यमान आहार द्रव्य भी बाहर आ जाता है अर्थात् वमन हो जाती है। शिशु मे खासते-खासते मुख फूल जाता हो, जीभ बाहर निकलती हो, तालु मे क्षत दीखता हो तो इस रोग का सन्देह करे। इस प्रकार खासी का यह एक वेग लगभग २ मिनट के समय तक रहता है। इस वेग का आरम्भ भय से, भोजन लेने से, धुआ लगने से या किसी प्रकार के विक्षोभक कारण से, श्वास मार्ग के सहसा विक्षुब्ध हो जाने (Nerve Reflex) से होता है। कास वेग के समय तो रोगी अति व्याकुल दीखता है परन्तु वेग के बाद फिर वह यथापूर्व अपनी साधारण अवस्था मे आ जाता है। उसके चेहरे का रग ठीक हो जाता है। एक सप्ताह तक तो वेगो की सख्या बढती जाती है, फिर दो सप्ताह तक न्यूनाधिक एक समान ही रहती है, और फिर वेगो की सख्या घटने लगती हे। इस प्रकार २ सप्ताह तक तो ज्वर सहित कासावस्था रहती है और १ मास के लगभग ज्वर रहित कास वेगावस्था रहती है अर्थात् रोगी बालक ४-६ सप्ताह तक सक्रामक रहता है। जब दैनिक कास-वेगो की सख्या जो एक दर्जन से लेकर अनगिनत हो सकती है कम हो जाय तथा तीव्रता भी कम हो जाए तब इस रोग को ठीक होता हुआ समझना चाहिये। परीक्षा करने से फुफ्फुस मूलो पर तथा कक्ष प्रदेश पर खासी के चिह्न Rhonchi तथा Rales सुनाई पडते है। रक्त परीक्षा करने पर श्वेत कण वृद्धि (Leucocytosis) (१५ हजार के लगभग) का लक्षण पाया जाता है जिसमे Lymphocytes की विशेष वृद्धि होती है। Pneumonia होने पर Polymorphs बढ जाते है। E S R इस रोग मे घटा होता है।

१-१½ वर्ष के छोटे शिशुओ मे जब यह रोग प्रबल रूप मे होता है तब Broncho Pneumonia होकर उनकी मृत्यु हो जाती है। Secondary Infection होकर यह उपद्रव होता है, Paroxismal Stage के आरम्भ होने के बाद ५ दिन तक भी ज्वर शान्त न हो तो Broncho-pneumonia का सन्देह करे। अनेकानेक सूक्ष्म श्वास-नालियो के श्लेष्मस्राव द्वारा अवरुद्ध होने से Atelectasis (Pulmonary Collapse) हो जाता है, अर्थात् बन्द हुई-हुई श्वास-नालियो से सम्बन्धित श्वास-कोष्ठको की वायु के विलीन हो जाने पर वे शिथिल (Collapsed) हो जाते है जिससे फुफ्फुस का वह भाग ठोस हो जाता है। इससे श्वासकाठिन्य तथा Cyanosis के लक्षण होते हैं। वहा श्वास-ध्वनिया नही सुन पडती। X-Ray मे वह प्रदेश धु धला दीखता है (Collapse के कारण)। बालक के मस्तिष्क को आक्सिजन कम मिले तो आक्षेप (Convulsion) का उपद्रव भी हो जाता है। Oxygen देने से इस अवस्था मे आराम रहता है। बडे-बडे बालको मे यह रोग सुख-साध्य होता है। सत्य तो यह है कि H Pertussis के कारण चाहे यह रोग होता है, पर इस रोग के बहुत से उपद्रव तो इन वेगो की अधिकता से उत्पन्न Anoxia तथा श्वास-नालियो पर पडने वाले भार के कारण होते है।

चिकित्सा प्रतिरोधक—(Prophylaxis)

Whooping Cough Vaccine (१ सी० सी० मे १० से २० हजार मिलियन Whooping Cough Bacilli) २० हजार मिलि० Bacilli के १-१ महीने के अन्तर से ३ सूचीवेध मास द्वारा या त्वचा के नीचे देने से फिर इस रोग के होने का भय नही रहता, अथवा प्रथम वर्ष मे Triple Vaccine (Diph Pert, Teta) दे देना चाहिए। रोगी के सम्पर्क मे आये बालको को २ ५ मिलिलि० Hyperimmune Gamma Globulin मास द्वारा दे देना चाहिए।

चिकित्सा निवारक

रोगी बालक को ६ सप्ताह के लिए दूसरे बालको से पृथक् रखना चाहिए। जब तक ज्वर युक्त कास की अवस्था रहती है तब तक उसे शान्त वातावरण मे गर्म स्थान पर आराम से रखना चाहिए। Ampicillin Syrup

डिफ्थीरिया—Diphtheria, Faucial Diphtheria—(Diphthere=चमडा)

पहले पहल १८२६ मे फ्रान्स के Pierre Bretonneau (१७७८-१८६२) ने इस रोग का वर्णन किया था। १८८३ मे इस रोग के जीवाणु का पता जर्मनी के Klebes (१८३४-१९१३) ने दिया। १८९० मे जर्मनी के Behring (१८५४-१९१७) ने इसका Antitoxin बना लिया।

Corynebacterium Diphtheriae या Diphtheria Bacillus नामक जीवाणु के जो कि Grampositive, Nonmotile है Gravis (Epidemic मे) Intermedius तथा Mitis (Endemic मे) अर्थात् तीव्र मध्य मृदु भेद से यह ३ प्रकार का होता है इसके वाहक किसी व्यक्ति के छीकने, खासने से इस जीवाणु का सक्रमण २-७ वर्ष की आयु के छोटे बालको के गले मे हो जाता है। यदि बालक के Tonsils या Fauces या मृदुतालु मे पहले से ही शोथ या क्षत हो तो वहा इसे रोहण करने के लिए उचित भूमि भी मिल जाती है। इसके रोहण करने से इस जीवाणु मे से एक बहिर्विप (Exotoxin) निकलता है जिसके दुष्प्रभाव से Tonsil की बाहर-बाहर की झिल्ली (Epithelium) के सेल मृत (Necrosed) होते जाते हैं। इस झिल्ली के सेल जितने ही अधिक मृत होते जाते है उतना ही इस जीवाणु को रोहण करने के लिए और उचित भूमि मिलती जाती है और उतनी ही बहिर्विप की उत्पत्ति अधिक होती है। फिर इसके बहिर्विप के विपरीत वहा के नीचे के तथा आस-पास के स्वस्थ अवयवो मे से प्रतिक्रिया होकर श्लेष्मस्राव (Exudation) निकलता है जिसके Fibrin के और मरी झिल्ली (Epithelium) के सेलो तथा रक्त कणो और श्वेत कणो और C Diphtheriae तथा अन्य Streptococci, Staphylococci तथा Vincent bacilli आदि जीवाणुओ के परस्पर मिलने से वहा एक श्वेत मोतिये से रग की दीखने वाली तह बन जाती है जो इस रोग का एक विशेष चिह्न होती है। इस झिल्ली के चारो ओर की श्लेष्मकला मे शोथ (Oedema) होता है। इस झिल्ली मे विद्यमान जीवाणुओ मे से निकला विप लसीका वाहिनियो (Lymphatics) मे चला जाता तथा वहा से रक्त मे पहुच जाता और फिर सारे शरीर मे प्रसरण कर जाता है। इसी के कारण ज्वर तथा सर्वांग शैथिल्य के लक्षण होते है। इस विप का विशेष दुष्प्रभाव इस रोग के द्वितीय सप्ताह मे रक्तवाहिनियो पर होता है जिससे वे शिथिल हो जाती है, उनका रक्तभार गिर जाता है। हृदय मास मे इस विप के दुष्प्रभाव से वसामय (Fatty) क्षीणता होने लगती है जिससे हृदय शिथिल (Dilated) हो जाता है। मस्तिष्क (Cerebral) नाडियो तथा हाथ पावो की (Peripheral) नाडियो के वसामय आवरण (Medullary Sheaths) मे भी इससे क्षीणता होने लगती है और Polyneuritis हो जाने से शाखाओं मे निर्बलता आ जाती है। वृक्को की मूत्रस्राविणियो तथा यकृत् के सेलो पर भी इस विप का वसामय क्षीणताजनक (Fatty Degen) प्रभाव पडता है। स्थानिक शोथ के गले (Pharynx) या कण्ठ (Larynx) मे फैलने से श्वास मे रोध का लक्षण हो जाता है।

रोगी के पास रहने वाले व्यक्ति इस जीवाणु के वाहक हो सकते है। यह रोग शीतकाल मे होता है। जीवाणु के प्रवेश करने के दो दिन तक रोग शुरू हो जाता है (Incuba Period २ से ७ दिन)।

Faucial (Tonsillar) या गले के रूप मे जब यह होता है तब इस विष के कारण रोगी बालक क्रमश हलकी गले की दुखन के साथ निढाल एव सुस्त हो जाता है, उसे इसके कारण शिरदर्द रहता है। उसका रग फीका पड जाता है। उसका तापमान थोडा ही होता है अर्थात् १०० डिग्री के लगभग, परन्तु नाडी तीव्र एव मृदु (थोडे Volume की) होती है। हृदय का प्रथम शब्द छोटा तथा ध्वनि मे हलका होता है। एक Tonsil पर या दोनो पर, सारे पर अथवा एक हिस्से पर या गले के Pillars (अगला Glossopalatine पिछला Pharyngopalatine) (तोरणो) पर भी एक श्वेतवर्ण झिल्ली छाई दीखती है जो स्पष्ट किनारो वाली तथा लाल भूमि पर कुछ उठी हुई होती है जिसे पृथक् नही कर सकते है, करे तो रक्तस्राव होने लगता है (Streptococci से उत्पन्न पूय को पृथक् कर सकते है)। इसके कारण बालक खाता नही। इसी के कारण अधोहनु अस्थि के नीचे (Sub maxillary) तथा ग्रीवा मे ग्रन्थिया (Cervical glands) भी कुछ फूली हुई होती है, जिह्वा मैली होती है, बालक बेचैन एव उन्निद्र रहता है। उसके मूत्र मे कुछ अलब्यूमिन भी हो सकता है। इस विप का हृदय तथा रक्तवाहिनियो पर दुष्प्रभाव होकर नाडी तीव्र, निर्बल (Compressible) प्रति मिनट ११० के लगभग होती है। चेहरे पर पाण्डुता होती है। रक्तसचार के फेल हो जाने से, रक्तभार के गिर जाने से नाडी के निर्बल, तीव्रगति और शरीर के शीत हो जाने से, अन्त मे मृत्यु होती है। यदि यह श्वेत झिल्ली टान्सिलो पर तथा आस-पास Uvula और तालु पर अधिक फैली हुई हो, इसके चारो ओर की श्लेष्म कला लाल हो, मुख से बदबू भी आती हो, ग्रीवा ग्रन्थिया बहुत सूजी हो, शरीर मे शिथिलता विशेष हो, नाडी तीव्र हो, श्वास

प्रश्वास तीव्र एव उथला हो, चेहरे पर पाण्डुता और बेचैनी हो तो रोग को तीव्र रूप का समझें। बालक की आयु जितनी कम हो उतना ही यह रोग असाध्य होता है। रक्त-परीक्षा करने पर Leucocytosis (Polymorphonuclear) तथा मूत्र मे अलब्यूमिन मिलता है।

साधारण Tonsillitis से इसका भेद करना चाहिए। उसमे शोथ दोनो Tonsils मे होता है तथा पूयभाव उसके छिद्रो (Follicles) पर ही होता है। उसमे श्लेष्मा छाई हुई हो सकती है, पर इस रोग के सदृश श्वेत झिल्ली छाई हुई नही होती। उसमे ज्वर भी अधिक होता है, जिह्वा भी अधिक मैली होती है। उसमे गला दुखता है, इसमे विशेष दुखता नही। रोग तीव्र हो तो सप्ताह के अन्दर-अन्दर Toxic Myocarditis के कारण नाडी अधिक तीव्र गति एव छोटी Volume की होकर तथा मस्तिष्क को रक्त न पहुच सकने से बेचैनी, तन्द्रालुता, मूर्छा आदि लक्षण होकर मृत्यु हो जाती है। Cyanosis तथा नाडी-वैषम्य असाध्यता के सूचक होते है।

उपद्रव

(१) पश्चिम नासिका (Nasopharynx) मे भी डिफ्थीरिया हो जाय तो नाक से रक्त मिश्रित द्रव परिस्रुत होता है।

(२) कण्ठ मे डिफ्थीरिया हो जाय तो आवाज बैठ जाती है, खासी की आवाज बैठी होती है। श्वास के मार्ग मे अवरोध हो जाने से अन्त श्वास के समय छाती फूलने के स्थान पर दब जाती है। श्वासावरोध के कारण बेचैनी का लक्षण रहता है। श्वासकाठिन्य (Laryngeal Stridor) का लक्षण होता है।

(३) हृदय शोथ (Toxic Myocarditis) दूसरे सप्ताह मे या बाद मे इस रोग के विष के कारण होता है। उसका प्रथम शब्द निर्बल हो जाता है, नाडी तीव्र गति या मन्द गति हो जाती है। चेहरा श्वेतवर्ण या फीका दीखता है। हृदय नैर्बल्य के कारण वमन का लक्षण होता है।

(४) हस्तपाद शैत्य (Peripheral Circulatory Failure)—प्रथम सप्ताह मे ही रक्तभार गिर जाता, रोगी का रग फीका पड जाता, त्वचा गीली, ठडी सी हो जाती है। Vasomotor केन्द्र पर या प्रान्तीय रक्तवाहिनियो पर विष के दुष्प्रभाव से यह उपद्रव होता प्रतीत होता है।

(५) घात (Paralysis)—इस रोग के विष का नाडियो पर दुष्प्रभाव होकर दूसरे सप्ताह मे तालु घात (Palatal palsy) हो सकता है जिससे स्वर आनुनासिक हो जाता है। भोजन द्रव नाक मे बाहर आ जाते है। तीसरे-चौथे सप्ताह मे नेत्र की किसी पेशी मे घात (Squint) हो सकता है। Accommodation के मृत हो जाने से पढना कठिन हो जाता है, गले मे घात होकर निगरण-काठिन्य Dysphagia हो सकता है, पर ये उपद्रव शीघ्र ठीक हो जाते है।

(६) Broncho Pneumonia, इस मृत हुई श्लेष्मकला (Membrane) के श्वास द्वारा श्वास मार्ग मे चले जाने से होता है।

(७) Albuminuria भी हो सकता है।

साध्यासाध्यता

Serum शीघ्र मिल जाने पर यह रोग ठीक हो जाता है। पर यह श्वेत झिल्ली अधिक विस्तृत हो, आयु छोटी हो, रक्तभार गिर गया हो, मूत्र मे Albumin हो, ग्रीवा ग्रन्थियां फूल गई हो, तो यह रोग घातक होता है।

चिकित्सा

Diphtheria Antitoxin (Antitoxic Serum) मे रक्त के अन्दर विद्यमान इस रोग के विष (अर्थात् Corynebacterium Diphtheriae के विष) को नष्ट करने की विशेष शक्ति है, यद्यपि अवयवो मे धसे हुए विष को यह नष्ट नही कर सकता। क्योकि यह औषधि घोडे का Serum है एव एक बाह्य जान्तव प्रोटीन है, इससे तुरन्त Anaphylaxis की प्रतिक्रिया हो सकती है अर्थात् श्वास-काठिन्य का वेग हो सकता है। अत पूछने से पता लगे कि उसके परिवार मे श्वास रोग (Asthma, Hayfever) Infantile Eczema) हो चुके है तो एहतियात के साथ इसका प्रयोग करना चाहिए। तथापि शीघ्र मे शीघ्र इस प्रतिविष को रक्त मे प्रविष्ट करने का यत्न करना चाहिए। शिरा द्वारा देने से इसका तुरन्त प्रभाव होता है। परन्तु बहुधा छोटे बालक मे इसको शिरा द्वारा देना सुगम नहीं होता। मास द्वारा देने से इसे रक्त तक पहुचने मे १२-१६ घटे के लगभग का समय लग जाता है। अत यदि रोग हुए एक-दो दिन हो गये हो तो इसे शिरा द्वारा देना उचित है। परन्तु यदि पहले-दूसरे दिन ही इस रोग का पता लग गया हो और रोग मृदु रूप मे हो तो इस प्रतिविष को रोगी बालक मे १० हजार यूनिट्स (एक सी० सी० औषध मे प्राय ५ हजार यूनिट्स के लगभग होते है) की मात्रा मे मास द्वारा दे देना चाहिए। पहले त्वचा मे उसकी २-३ बूद डालकर देखना चाहिये कि इसका कोई Reaction तो नही होता। आध घण्टे तक वह न हो तो

इसकी पूर्ण मात्रा मांस द्वारा दे देनी चाहिए। यदि रोग का वेग कुछ अधिक हो तो इस प्रतिविष को २० हजार यूनिट्स की मात्रा मे देना चाहिए तथा यदि वेग अधिक तीव्र हो तो ४० हजार यूनिट्स की मात्रा मे देना चाहिए। यदि रोगी बालक न होकर युवक हो तो मृदु रोग मे उसे २० हजार, मध्यम रोग मे ४० हजार और तीव्र रोग मे ८० हजार यूनिट्स की मात्रा मे इसे देना चाहिए। तीव्र रोग की अवस्था मे आधी औषधि मास द्वारा देकर आधे घटे बाद इसे शरीर के बराबर गर्म करके बिना हलके किये हुए बहुत धीरे-धीरे शिरा द्वारा दे देना चाहिए। शिरा द्वारा देने मे कुछ कठिनता हो तो Intraperitoneal विधि मे दे देना चाहिए। एड्रिनलीन को सूई मे भर कर पहले रख लेना चाहिये ताकि Reaction होने पर उसे तुरन्त दिया जा सके या Hydrocortisone hemisuccinate मास द्वारा ५० मिलि० मात्रा मे या १०० मिलि० मात्रा मे ५०० सी० सी० ग्लूकोज़ सेलाइन के साथ शिरा द्वारा दे।

Purified Antitoxin की अवस्था मे किसी घोर प्रतिक्रिया (Anaphylaxis) के होने की आशका नही होती परन्तु तो भी इसे मास द्वारा तथा शिरा द्वारा देने से पहले इसके १० मे १ घोल या सोल्यूशन को १ या २ मिलिलि० मात्रा मे अग्रबाहु के अग्रिम पृष्ठ की त्वचा में डालकर देखना चाहिये कि उसकी कुछ स्थानिक प्रतिक्रिया होती है या नही। यदि आधे घटे तक वहा एक चकत्ता बन जाय या इसके १० मे १ के घोल की १ बूद के आख मे डालने से आधे घटे मे आख लाल हो जाय तो Adrenaline (१०००-१) १ सी० सी० का इजेक्शन दे देना चाहिये। अथवा इस उपर्युक्त प्रतिक्रिया के होने के आधे घटे बाद २ मिलिलि० मात्रा मे Antitoxin को मास के द्वारा देना चाहिये। आधे घटे तक इसकी कोई प्रतिक्रिया न दिखाई पडे तो फिर इसकी पूर्ण मात्रा दे देनी चाहिये। अथवा प्रतिक्रिया होने की कुछ भी आशका रहे तो १० मे १ के घोल के २ मिलिलि० के देने के आध घटे बाद इसी घोल की २ मिलिलि० मात्रा मास द्वारा दे। आध घटे बाद इसी घोल की ५ मिलिलि० मात्रा दें। फिर आधे घटे बाद शुद्ध Antitoxin की ही २ मिलिलि० मात्रा दे। आधे घटे बाद २ और फिर ५ मिलिलि० मात्रा दें और इतने समय बाद १ मिलिलि० मात्रा दे दे, इस प्रकार सम्पूर्ण मात्रा दे। अथवा जब भी प्रतिक्रिया होनी बन्द हो जाय सम्पूर्ण मात्रा एक बार मे ही दे दे अथवा इजेक्शन देने से आध घण्टा पहले Anthisan गोली (Mepyramine maleate) १०० मिलिलि० मात्रा मुख से दे। शिरा द्वारा देने मे पहले मास द्वारा Adrenaline (१००० मे १) २ मिलिलिटर देना उचित है। शिरा द्वारा Antitoxin दे देने के बाद देखते रहना चाहिये कि रोगी का रक्तभार गिरता तो नही। यदि वह गिरे तो Pitressin १ मिलिलि० मास द्वारा दे देना चाहिये, शिरा द्वारा देने से पहले इसे १०% ग्लूकोज मे हलका करे तथा धीरे-धीरे दे। गले को Benzoin की भाप देनी चाहिए तथा ३० प्रतिशत ग्लूकोज सोल्यूशन से दिन मे ३-४ बार धोना चाहिए। दर्द के लिये Codeine दिया जा सकता है।

Antitoxin के देने के बाद रोगी को १-१½ दिन तक पर्याप्त लाभ हो जाता है। तो भी यदि लाभ प्रतीत न हो तो १२ घटे बाद दुबारा भी Antitoxin का प्रयोग करना चाहिये। इसके साथ-साथ Procaine Penicillin २ लाख या ४ लाख यूनिट्स की मात्रा मे २ बार प्रतिदिन ८-१० दिन तक मास द्वारा देना चाहिये। Penicillin अनुकूल न हो तो Tetracycline को ५० मिलि० मात्रा मे ४ बार देते रहें अथवा Erythromycin (Erythrocin) को २५० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा ८-८ घटे पर देते रहना चाहिए। इनसे गले के अन्दर विद्यमान दूसरे जीवाणुओ का प्रतिकार हो जाता है तथा रोगी मे रोगवाहकता का दोष भी नही रहता। बेचैनी दूर करने के लिए कोई शामक औषध दे। Oxygen का प्रयोग भी रोगी के लिए आवश्यक समझना चाहिए।

विश्राम तथा ग्लूकोज

पहले दिन से ही, जब से रोग का पता चले, रोगी के हृदय को विष के प्रभाव से बचाने के लिये उसे पूर्ण विश्राम मे बिस्तरे पर लिटाये रखना चाहिये तथा एक डेढ मास तक इसी प्रकार विश्राम मे रखना चाहिए। उसे पडे-पडे ही मल-मूत्र त्यागना चाहिए तथा बिना हिले-डुले जल, दूध, फलरस आदि मिलना चाहिए। Dextrose का २० प्र० श० सोल्यूशन ५० सी० सी० की मात्रा मे शिरा द्वारा देना चाहिये या ५ प्र० श० सोल्यूशन २० सी० सी० की मात्रा मे त्वचा, मास या गुदा द्वारा उसे प्रतिदिन मिलना चाहिए। या मुख से ३-३ घटे बाद देना चाहिये, ताकि Toxaemia कम हो। हृदयनैर्बल्य के लक्षण हो तो शय्या के पायते को ऊचा कर देना चाहिये या Noradrenaline या Mephentermine Sulphate (५ मि० लि०) आदि किसी Pressor औषधि का दिन मे २ बार प्रयोग करना चाहिए या Coramine का इञ्जेक्शन दिन मे ३ बार दे। घात (Paralysis) के लिए Tincture Nuxvomica १०

बूंद तीन बार दें या Strychnine $\frac{1}{120}$ ग्रेन त्वचा से दें। Vitamin B_1 ५० मिलि० का इंजेक्शन भी दें। गले में घात हो तो पायते को १८ इंच ऊंचा रखें तथा मुंह नीचा करके लिटाए।

रोग प्रतिरोधक (Prophylaxis) के लिए

डिफ्थीरिया विष को लगभग निर्विष कर दिया जाय तो उसे डिफ्थीरिया Toxoid कहते है।

Alum (Precipitated Toxoid (A P T) या Diphtheria Toxoid (Detoxified diphtheria toxin) ५ मिलिलि० मात्रा मे ६ महीने के बालक को मांस द्वारा दे दिया जाता है तथा ४ सप्ताह बाद फिर इसी प्रकार का एक इंजेक्शन दे दिया जाता है। इसके बाद ६-७ वर्ष की आयु मे फिर इसी प्रकार इसके दो इंजेक्शन देने से इस रोग के होने का भय नही रहता।

इससे बडी आयु के बालकों तथा युवकों के लिए Toxoid Antitoxin Floccules (T A F को) या Purified toxoid aluminium phosphate (P T A P) को ५ मिलिलि० मात्रा मे इसी प्रकार १ महीने के अन्तर से २ बार देने से इस रोग के होने का भय नही रहता। Alum precipitated toxoid (A P T) भी मिलता है, जिसे पहले $\frac{1}{2}$ सी० सी० मात्रा मे, १ मास बाद १ सी० सी० मात्रा मे दिया जा सकता है। Diphtheria-Pertussis-Tetanus Toxoids मिश्रित हुए-हुए भी मिलते हैं। इसकी ५ मिलिलि० मात्रा १-१ मास के अन्तर से मांस द्वारा ३ बार दे देने से बालक इन तीनों रोगों के आक्रमण से बच जाता है। प्रथम वर्ष मे ही Vaccination की तरह इनका प्रयोग करना चाहिए। इंगलैण्ड आदि देशों ने इसके प्रयोग से इस रोग को देश से सदा के लिए निकाल दिया है। १९६० में इंगलैण्ड मे इस रोग से एक भी मृत्यु नही हुई।

आतप ज्वर (Heat Hyperpyrexia, Sun Stroke, Heatstroke) :—

स्वस्थ व्यक्ति मे शारीरिक ऊष्मा को नियन्त्रित रखने की व्यवस्था (Heat Regulating Mechanism) —

Heatregulating centre के रुग्ण हो जाने से उत्पन्न आतप-ज्वर को Heat Stroke कहते है।

ऊष्मा की उत्पत्ति

शरीर मे चल रहे धातुपाक (Metabolism) के परिणाम रूप मे जो ऊष्मा उत्पन्न हो रही है, वही शरीर के तापमान तथा उसकी कार्य करने की शक्ति के रूप मे दिखाई पडती है। बाहर सर्दी हो तो शरीर मे ऊष्मा की उत्पत्ति बढती है, बाहर गर्मी हो तो शरीर मे ऊष्मा की उत्पत्ति घटती है। ज्वर या तापमान की वृद्धि का लक्षण, *जीवाणु-सङ्क्रमण जनित या आघात जनित धातुपाक वृद्धि* के परिणाम रूप मे उत्पन्न होता है। सम्भव है, जब किसी भी कारण से धातुपाक बढता है तब उससे उत्पन्न Catabolites के विषैले प्रभाव मे यह ऊष्मा की उत्पत्ति और अधिक हो जाती है।

ऊष्मा का विनाश

परन्तु तो भी ज्वर की उत्पत्ति अधिकतर ऊष्मा की अधिक उत्पत्ति के कारण नही, प्रत्युत उसके भली प्रकार विनष्ट न होने से होती है। उसका विनाश ७० प्र०श० तो त्वचा मे प्रसरण (Radiation) के द्वारा होता है, शेष ३० प्र० श० स्वेद, श्वास प्रश्वास (Evaporation) द्वारा होता है। यह ऊष्मा विनाश इतना नियमित रूप से होता है कि शरीर का तापमान सदा एक जैसा ९८ ४ फा० डि० के आसपास ही रहता है। इसके लिए Hypothalamus मे एक ऊष्मानियामक केन्द्र है जो अपने अन्दर आए रक्त के तापमान के द्वारा प्रभावित होकर त्वचा मे विद्यमान रक्तवाहिनियों तथा स्वेदग्रन्थियों को नियन्त्रण मे रखता है। जब बाहर का वायुमण्डल शरीर की अपेक्षा अधिक शीतल होता है तब यह केन्द्र त्वचा की रक्तवाहिनियों मे रक्त की मात्रा को कम कर देता है। जब बाहर का वायुमण्डल शरीर की अपेक्षा अधिक गर्म होता है तब क्योंकि शरीर मे से ऊष्मा का प्रसरण बन्द हो जाता है, उल्टे बाहर की गर्मी अन्दर शरीर मे आने लगती है तब यह केन्द्र त्वचा की रक्तवाहिनियों को फैलाकर चौडा कर देता है (Vasodilatation करता है) तथा स्वेद ग्रन्थियों के कार्य को बढा देता है। सामान्यत हमे दिन रात मे ६०० मिलिलि० स्वेद आता है, परन्तु गर्मी के मौसम मे छाया मे श्रम करने पर एक घंटे मे ही ५०० मिलिलि० के लगभग स्वेद आ जाता है। क्योंकि १ मिलिलि० स्वेद के द्वारा शरीर की आधी कैलोरी ऊष्मा निकल जाती है, अत गर्मी मे भी शरीर का तापमान बढने नही पाता और ९८ ३ फा० डि० के आसपास ही रहता है।

परन्तु तेज धूप मे श्रम करने के योग्य बनने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति पहले अपने को धूप का आदी बना ले, दूसरे शब्दों मे क्रमश पहले कम और फिर कुछ अधिक समय के लिए धूप मे श्रम करते हुए अपने को धूप मे श्रम करने के योग्य बना ले। धूप के सात्मीकरण की

इस प्रक्रिया (Acclimatization) मे क्रमश Adrenocorticosteroids की उत्पत्ति बढती जाती है जिससे त्वचा मे रक्त की मात्रा तथा स्वेदोत्पत्ति की मात्रा बढती है। व्यक्ति के हृदय तथा रक्तवाहिनियो की शक्ति भी प्रबल होनी चाहिए ताकि त्वचा मे रक्त पहुचाने के लिए हृदय और नाडी की गति उचित रूप से बढ सके। इस Temperature regulatory mechanism के फेल होने पर Heat stroke का रोग होता है।

अब यदि कोई व्यक्ति धूप मे श्रम करने का अभ्यासी न हो, उसमे प्रसुप्त रूप से विषम ज्वर (Malaria) रहता हो, या किसी दूसरे रोग के कारण पहले से ही उसका हृदय और नाडी बल (Vasomotor शक्ति) निर्बल हो, जिससे वे त्वचा मे अधिक रक्त पहुचाने के योग्य न हो या अतिसार के कारण रक्त मे द्रव भाग कम (Dehydration) हो, या कोई व्यक्ति मद्य, Belladonna, Atropine (Anhydratic या स्वेदनिवारक) मे से किसी दवाई का सेवन करता हो जिससे स्वेद की उत्पत्ति कम होती है तथा दूसरी ओर बाहर का वायुमण्डल १०० फा० डि० (३८ सेन्टीग्रेड) या १०४ फा० अर्थात् ४० सेन्टी ग्रेड से अधिक गर्म हो, ८५ प्र० श० से अधिक आर्द्र हो, हवा भी बन्द हो तथा शरीर पर कपडे भी भारी हो तो शरीर की बढी हुई ऊष्मा को विनष्ट करने की उपर्युक्त व्यवस्था फेल हो जाती है, अर्थात् स्वेद का आना कम होते-होते अन्त मे सर्वथा बन्द हो जाता है, परिणामत शरीर के अन्दर ऊष्मा बढ जाती है। जब यह उष्मा ४१° सेन्टी० अर्थात् १०५८ फा० तक हो जाती है तो Heat stroke का आक्रमण हो जाता है। वस्तुत उस समय अन्दर का या गुदा का तापमान ४५° सेन्टि० (११३° फा०) होता है। इस प्रकार स्वेदावरोध का रोग मस्तिष्क गत Sympathetic Nervous System के जिसके आधीन Sweat Secreting fibres है फेल हो जाने से हो जाता है। Thermoregulation ठीक हो तब भी धूप या गर्मी मे अतिश्रम करने मात्र से यह रोग हो सकता है। धूप मे श्रम के समय बहुत सा रक्त मासपेशियो मे खपता है। त्वचा मे रक्त कम पहुचता है जिससे स्वेद कम हो जाता है। साथ ही धूप मे श्रम करने से इतना स्वेद निकल जाता है कि रक्त मे Dehydration हो जाता है और फिर स्वेद आना बन्द हो जाता है। इस प्रकार Dehydration से रक्तसचार कम होकर भी Heat Stroke होता है।

यद्यपि रोगी को कुछ घटो तक स्वेद नही आया होता, पर उसे इसका पता नही होता। उस समय उसे अपने अन्दर दाह अधिक प्रतीत होता है, श्रम करने को इच्छा नही करती, तन्द्रा-सी प्रतीत होती है। अन्दर बढती हुई ऊष्मा का दुष्प्रभाव सबसे अधिक मस्तिष्क (C N System) पर पडता है जिससे शिर मे दर्द, शिर मे चक्कर और मनोविभ्रम (Confusion) के लक्षणो के साथ वह गिर पडता है और अर्ध मूर्च्छित या पूर्ण मूर्च्छित अवस्था मे हमे मिलता है। वह कुछ होश मे हो तो बेचैन और विभ्रान्त-सा होता है। मूर्च्छित हो तो उसमे प्रलाप का लक्षण होता है। इस प्रकार इसमे आक्षेप, शाखाओ मे से स्तम्भ (Witchings) प्रलाप, वमन व अतिसार के लक्षण भी हो सकते है।

परीक्षा करने पर उसका चेहरा लाल दीखता है, स्वेदावरोधक के कारण त्वचा गर्म और बिल्कुल खुश्क होती है, नेत्र लाल दीखते हैं, पुतलिया फैली होती है, नाडी भरी हुई (Full) दीर्घ (Bounding) तथा तीव्र १२५-१३० तक होती है। श्वास गति तीव्र होती है, मुख मे तापमान १०६° फा० (४१° १ सेन्टी०) गुदा मे तापमान बहुत ऊचा होता है। कोष्ठ पर के तथा कडराओ (Tendons) के Reflexes लुप्त होते है। Plantar Reflex ऊपर की ओर (Extensor) होता है।

यदि शीघ्र तापमान घटाने के उपाय न किए जाए, घटो तक रोगी का तापमान इसी प्रकार बढा हुआ रह जाय, नाडी तीव्र गति की एव निर्बल हो जाय, श्वास गति विषम हो जाय, पुतलिया सुकड जाए, तो यह असाध्य हो जाता है क्योकि शरीर मे तापमान के अधिक बढे रहने से मस्तिष्क के अवयवो पर उसका दुष्प्रभाव पड जाता है। वृद्धो मे भी यह रोग हो तो भयकर ही समझना चाहिए।

Heat Hyperpyrexia से मृत रोगी की मृत्यूत्तर परीक्षा मे पता लगता है कि उसके cerebrum तथा cerebellum के सेलो मे क्षीणता (Degeneration) की प्रक्रिया हो गई है जिससे उनसे निकलने वाले Neurones मे भी क्षीणता हो गई है। स्वेद नियामक केन्द्र के रोगग्रस्त होने से स्वेदावरोध होकर यह प्रक्रिया और तीव्र होती है।

आतप मूर्छा तथा आतप विष्टम्भ (Heat Exhaustion तथा Heat Cramps)—

जब कोई व्यक्ति तेज धूप मे या इजन, भट्टी आदि के पास ऐसे वायुमण्डल मे जहा का तापमान ११५ फा० डि० (४६ सेण्टी०) का या इससे भी ऊपर हो, काम करता रहता है तब उसका बहुत-सा रक्त त्वचा की रक्तवाहिनियो की तरफ जाने लगता है ताकि स्वेद

अधिक बन सके और उसके द्वारा शरीर की बढी हुई ऊष्मा बाहर निकल सके। साधारणत धूप मे श्रम करते समय हमारी त्वचा मे से १ घटे मे ½ लिटर के लगभग स्वेद शरीर से बाहर निकलता है। भारी श्रम करने पर उससे भी अधिक मात्रा मे स्वेद निकल सकता है। २४ घटे ऐसे गर्म स्थान पर श्रम करने पर १४ लिटर तक स्वेद शरीर मे से निकल सकता है। इस प्रकार ऐसे गर्म वायुमण्डल मे घटो तक श्रम करने से रक्त का द्रव भाग बहुत-सा निकल जाय तो रक्त गाढा हो जाता है। दूसरे शब्दो मे उसकी मात्रा घट जाती है (Dehydration हो जाता है)। यह ठीक है कि स्वेद के अधिक निकलते ही प्यास लगने लगती है और व्यक्ति पानी पीने लगता है जिससे रक्त मे जल की न्यूनता पूर्ण हो जाती है। परन्तु स्वेद के साथ २५ प्रतिशतक सोडियम क्लोराइड भी शरीर मे से निकलता है। इस प्रकार यदि २४ घटे मे १४ लिटर स्वेद शरीर से निकल जाय तो २½ ग्राम प्रति लिटर के हिसाब से ३५ ग्राम सोडियम क्लोराइड शरीर मे निकल जाता है। मूत्र भी ऐसी गर्मी मे यद्यपि कम निकलता है तो भी ८०० सी० मी० के लगभग निकलता ही है। इस प्रकार उसके द्वारा भी ७ ग्राम के लगभग लवण निकल जाता है। कथन का अभिप्राय यह है कि तीव्र धूप या अग्नि के पास घोर श्रम करने पर शरीर से जल तथा सोडियम क्लोराइड अधिक मात्रा मे निकल जाते है।

शारीरिक सेलो के आभ्यतर द्रव मे Potassium और Phosphate के Ions होते हैं तथा बाह्य द्रव मे Sodium और Chloride के Ions रहते है। इनके कारण सेलो के अन्दर तथा बाहर का भार या दबाव समान बना रहता है या Osmotic Equilibrium बना रहता है। अति स्वेद के द्वारा Sodium तथा Chloride के Ions के बाहर निकल जाने से सेलो का बाह्य भार (Extracellular Pressure) कम हो जाता है। तब वृक्क जल को इसलिए और अधिक फेंकने लगते है ताकि सेलो का भार आभ्यन्तर भार के बराबर हो जाय। इसीलिए जल के पीते रहने से भी उसके मूत्र द्वारा निकल जाने से रक्त के अन्दर हुई उसकी न्यूनता पूर्ण नही हो पाती (अर्थात् रक्त की मात्रा की न्यूनता या Oligaemia बनी ही रहती है)। रक्त मे जल की कमी के अतिरिक्त Sodium के निकल जाने से उसमे अम्लीयता (Acidosis) की भी वृद्धि हो जाती है। इन कारणो से या सम्भवत किसी दूसरे कारण से रक्तवाहिनियो की रक्तसचार शक्ति (Vasomotor Activity) फेल होने लगती है। इस रोग अर्थात् Heat-exhaustion मे स्वेदावरोध से या उसके कारण ऊष्मा-विनाश के ठीक-ठीक न होने के कारण दुर्लक्षण नही होते, प्रत्युत अति स्वेद के परिणाम रूप मे उत्पन्न हृदयदौर्बल्य या रक्तवाहिनियो की रक्तसचारक शक्ति के दौर्बल्य या रक्त मे अम्लीयता (Acidosis) के बढ जाने से लक्षण होते हैं।

त्वचा को ठीक रक्त न पहुचने से वह कुछ शीतल एव पाण्डुर होती है। यद्यपि स्वेद के बन्द न होने के कारण वह गीली होती है। दूसरे शब्दो मे वह ठडे पसीने से युक्त प्रतीत होती है। त्वचा मे लचकीलापन कम होता है। दिमाग और चेहरे को रक्त के उचित मात्रा मे न मिलने से सिर चकराने लगता है अर्थात् शिरोभ्रम होता है और कुछ मूर्छा (Syncope) सी होने लगती है। शरीर मे जल के कम हो जाने से अर्थात् सेलो के बाहर के जल की मात्रा के घट जाने से आखें अन्दर धसी हुई दीखती है। हृदय-मास को रक्त कम मिलने से हृदय का स्पन्दन निर्बल हो जाता है अर्थात् प्रत्येक नाडी छोटे आकार की, निर्बल व तीव्र गति वाली होती है। रक्तवाहिनियो मे बल के गिर जाने से रक्तभार गिर जाता है। सकोच-कालिक भार ११० के लगभग तथा विश्रामकालिक रक्तभार ८० के लगभग रहता है। स्पष्ट है कि अगो को रक्त कम मिलता है। मासपेशियो को रक्त के कम मिलने से निर्बलता लगने लगती है। रक्त मे सोडियम की न्यूनता और अम्लीयता की वृद्धि से भी मूर्छा, शिरदर्द, अरुचि, वमन, श्वास गति के उथले और तीव्र हो जाने (Air Hunger) या पिंडलियो मे उद्वेष्टन (Cramps) के हो जाने या कभी-कभी पेट की अन्दर की मासपेशियो मे उद्वेष्टन हो जाने से पेट मे दर्द के लक्षण हो सकते है। मुख मे तापमान नार्मल से कम होता है, गुदा के अन्दर नार्मल से कुछ ऊपर होता है। मूत्र की मात्रा बहुत कम हो जाती है (Oliguria), उसमे Chloride की मात्रा घट जाती है। इस प्रकार धूप मे या आग के पास के गर्म वायुमण्डल मे श्रम करते हुए कोई व्यक्ति मूर्छित हो जाय, उसकी त्वचा खुश्क न होकर गीली हो या आतप-ज्वर के समान सुरख न होकर पाण्डुवर्ण हो, तो आतप जन्य मूर्छा (Heat Exhaustion, Heat Syncope) रोग का ही सन्देह करना चाहिए। यह रोग सुखसाध्य है जबकि आतप ज्वर दु खसाध्य है। Heat Cramp का रोग गर्म कारखानो मे मेहनत करने वालो मे होता है जिसमे अति स्वेद के साथ बहुत सा लवण शरीर मे से निकल जाता है। रोगी पानी पीता है पर १ लिटर स्वेद के साथ ४ ग्राम लवण के निकलते रहने से शरीर मे लवण कम हो

जाता है। लवण की कमी से हाथ-पैरो, पिंडलियो तथा पेट पर Crapms या विष्टम्भ होने लगते हैं। पहले अरुचि और वमन के लक्षण होते है, बाद मे Cramps होते है। देखने मे आखे अन्दर धसी हुई एव त्वचा शीतल गीली होती है, नाडी तीव्र, छोटी, रक्त भार गिरा हुआ होता है। **Heat Syncope** या गर्मी मे मूर्च्छित हो जाने का एक रोग भी Heat Exhaustion के कारण होता है जिसमे ज्वर नही होता। यह Vasomotor मशीनरी के निर्बल होने से बाह्य रक्तवाहिनियो के अन्दर अधिक रक्त के भर जाने और उनके फैल जाने या शिथिल हो जाने से होता है। इससे मस्तिष्क को रक्त कम मिलता है जिससे सिर मे चक्कर आता है। दृष्टि मे धुधलापन और अरुचि के लक्षण होते हे। मल-त्याग की इच्छा भी होती है। त्वचा पर ठडा सा पसीना होता है। चेहरा फीका होता है। यह एक प्रकार का Shock है, इसमे नाडी तीव्र होती, उसकी Volume कम होती है, B P कम होता है। इसमे रोगी मूर्च्छित होकर गिर पडता है। यह अति सुखसाध्य रोग है।

आतप-ज्वर (Sun Stroke) चिकित्सा

आतप ज्वर एक घातक रोग है। इसकी चिकित्सा तुरन्त होनी चाहिए। (१) शरीर की ऊष्मा को घटाने, (२) त्वचा के रक्तसचार को प्रवृत्त करने, (३) पहले विषम ज्वर रहा हो या हुआ हो तो उसका प्रतिकार करने का यत्न करना चाहिए।

रोगी की बढी हुई ऊष्मा को कम करने के लिए उसे ५० डिग्री के लगभग जल के टब मे बिठाकर या लिटाकर उसकी शाखाओ और धड को स्पज से मलना चाहिए, ताकि गर्मी कम हो और त्वचा मे रक्तसचार बढे और स्वेद ग्रन्थिया फिर पसीना बनाने लगे। या रोगी के कपडे उतारकर उसे एक शय्या पर मोमजामे के ऊपर डाल कर शीतल जल से उसके सारे शरीर पर स्पज करें। साथ ही पखे से हवा भी करते रहे ताकि त्वचा पर से पानी उडता रहे। त्वचा पर से १ सी० सी० पानी के उडने पर ५६ कैलोरी गर्मी शरीर से निकल जाती है। सिर पर बर्फ की टोपी रख सकते है। परन्तु बर्फ से शरीर को स्पज किया जाय तो रक्तवाहिनियो के और सुकडने (Vasoconstriction) का भय रहता है। इस प्रकार शीतल जल के स्नान व मर्दन से जब गुदा का तापमान १०२ फा० डि० तक आ जाय तब उसके शरीर को पोछकर और कम्बल ओढाकर उसे लिटा देना चाहिए ताकि उसका रुद्ध हुआ स्वेद प्रवृत्त हो। स्वेद की प्रवृत्ति को इस रोग मे एक शुभ लक्षण समझना चाहिए।

रोगी मे Dehydration को दूर करने के लिये २५ प्र० श० लवणयुक्त जल उसे पहले से ही पिलाना चाहिए। मूर्छा के कारण वह मुख से न पी सकता हो तो वस्ति-यन्त्र मे Catheter लगाकर उसके द्वारा नार्मल सेलाइन को शीतल ही आत मे डाल देना चाहिए। अथवा उसे Isotonic Saline मे ५% ग्लूकोज धीरे-धीरे शिरा द्वारा देना चाहिए। इससे Shock दूर होता है। एक के बाद दूसरी बोतल इसकी देनी चाहिये जब तक होश न आये।

इस रोग मे बहुधा पहले विषम ज्वर भी रहा होता है, अत ७-१० ग्रेन Quinine Hydrochloride को २०-२५ सी० सी० नार्मल सेलाइन मे मिलाकर धीरे-धीरे इस रोग के आरम्भ मे ही शिरा द्वारा दे देना चाहिए। निर्बल हो तो Coramine का भी प्रयोग करना चाहिए। उसके अच्छे हो जाने पर भी ३ सप्ताह तक Barbiturates आदि शामक दवाओ का सेवन कराते हुए उसे शान्त वातावरण मे ही विश्राम कराना चाहिए।

प्रतिरोधक (Prophylactic) उपाय

धूप मे काम करने वाले व्यक्ति को पेट साफ रखने का यत्न करना चाहिए। उसे जल पीते रहना चाहिए, मद्य का प्रयोग नही करना चाहिए। सिर, ग्रीवा तथा कटि प्रदेश को धूप से बचाना चाहिए। या नीबू की शिकजवी थोडे नमक के साथ पीते रहना चाहिये।

आतप-मूर्छा व आतप-विष्टम्भ की चिकित्सा

धूप मे से या अग्नि के पास के गर्म प्रदेश से रोगी को हटा कर छाया मे एक चारपाई पर लिटाकर उसके पायते को ऊचा करके उसके ठडे हो गए हाथ-पावो तथा शाखाओ को मलना चाहिए। या गर्म जल मे भिगोकर, निचोडकर गर्म किए तौलियो से उसकी मालिश करनी चाहिए तथा Ammonia मिश्रण उसे पिलाना चाहिए। १ लिटर मे २ ग्राम या १ पाइण्ट मे १० ग्रेन लवण (१ से २५%) मिलाकर बनाया जल ठण्डा करके थोडा-थोडा पिलाते हुए २४ घटो मे ८ सेर जल पिला देना चाहिए। अरुचि और वमन के कारण इतना जल न पिलाया जा सके तो Isotonic 5% Glucose Saline १-२ लिटर मात्रा मे बूद-बूद करके उसकी शिरा मे या गुदा मे डाल देना चाहिए। इससे अम्ल वृद्धि (Acidosis) का लक्षण भी शान्त होता है। या नीबू आदि फल रसो और ग्लूकोज, खाण्ड, शहद आदि से युक्त जल के साथ १-१ ग्राम की

नमक की गोलिया देते रहने से पिण्डलियो के उद्वेष्टन आदि के लक्षण शान्त हो जाते हैं। हृदय व नाडी निर्बल हो तो Pholedrine (Veritol) को २० मिलि० मात्रा मे या Mephentermine Sulphate को १० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा दे। अथवा Nor adrenaline को N Saline के साथ शिरा द्वारा दे।

प्रतिरोधक (Prophylactic) चिकित्सा

जिनको धूप मे या आग के पास श्रम करना होता है, उन्हे दिन भर मे ८-१० सेर जल तथा ४-६ ड्राम लवण का सेवन अवश्य करना चाहिए। अथवा १ लिटर जल मे ६ ग्रेन Sodium Chloride, ४ ग्रेन Pot Chloride मिलाकर इसके आधे लिटर को पीने के ३ गैलन पानी मे मिला देना चाहिए, अथवा नमक १ पौंड, Pot Chloride १०½ ग्रेन, Citric Acid ५½ औंस, Saccharin ४५ ग्रेन, Oil of Lemon ६ २ ड्राम, Lemon Squash स्वल्प मात्रा मे, जल ३ लिटर मे मिला दें। इसके १ भाग को पीने के जल के ३० भाग मे मिलाकर रख लेना चाहिए और उसे पीते रहना चाहिए।

Hypothermia (शीताग सन्निपात)

बाह्य उष्णता को सहन करने के लिये अर्थात् उष्णकाल मे अन्दर की उष्णता को बाहर कर सकने की शक्ति के सपादन के लिए जैसे अभ्यास की आवश्यकता है वैसे ही शीत वायुमण्डल मे रहने पर अपने अन्दर अधिक उष्णता उत्पन्न करने तथा उसे विनष्ट होने से बचाने के लिये भी अभ्यास की आवश्यकता है। जिस व्यक्ति को शीत सहन करने का अभ्यास न हो, अर्थात् जो शीत के लिये Acclimatized न हो यदि वह सहसा शीतवायु मडल मे जाये विशेषत यदि वह वृद्ध हो, मद्यपी हो, तमाखू पीने वाला हो तो उसके शरीर का तापमान जल्दी गिर सकता है। तापमान ९५ फा० या ३५ सेण्टीग्रेड से नीचे चला जाय तो उसे Hypothermia कहते हैं। शरीर जैसे-जैसे शीतल होता है वैसे ही वैसे उसका Metabolism मन्द हो जाता है। तापमान और गिरकर ८६ फा० या ३० सेण्टिग्रेड तक आ जाए तथा और गिरने लगे तो रोगी की सज्ञा नष्ट हो जाती है, वह तन्द्रालु, निद्रालु या मूर्छायुक्त हो जाता है। उसका रक्तभार भी गिर जाता है तथा उसके खून मे CO_2 के अधिक रहने से Acidosis होकर श्वास गहरे हो जाते हैं। श्वासगति तथा रक्तसचार की गति मन्द हो जाती है। श्वास-सम्बन्धी तथा रक्तसचार सबधी अगो द्वारा या Oxygen के ठीक न मिलने से इन अगो के निर्बल हो जाने पर मृत्यु हो जाती है। शरीर के शीतल हो जाने पर फुफ्फुसो की जीवाणु रोधक शक्ति घट जाती है जिस कारण फुफ्फुस सम्बन्धी कोई रोग हो जाता है। अत इस रोग के रोगी को एक तो गर्म जल (१०४ ११३ फा० या ४०-४५ सेन्टीग्रेट तक) मे स्नान कराये, दूसरा ओक्सिजन दें। कोई Antibiotic दे तथा आवश्यकता हो तो ५ प्र० श० ग्लूकोज मोल्यूशन शिरा द्वारा दे।

आयुर्वेदानुसार आतप ज्वर की चिकित्सा

आतप ज्वर मे स्वेदावरोध तो वायु की विकृति का और अति ज्वर पित्त वृद्धि का सूचक होता है। अत इस रोग की चिकित्सा मे वायु और पित्त दोनो की चिकित्सा होनी चाहिये। बढे हुए पित्त कर्म की शान्ति के लिये सुश्रुत ने कहा है कि उत्पलादि शीत द्रव्यो मे से किसी के शीत कषाय मे रोगी को गर्दन तक बिठाकर उसे मलकर स्नान कराना चाहिये (उत्तर० अ० ३९, श्लो० २६५)। चरक ने (चि० स्थान अ० ३, श्लोक २६०) कहा है कि आतप ज्वर के रोगी के शरीर पर शीतल जल की फुहार डालते हुए शीतल पखो के द्वारा हवा करनी चाहिए। द्राक्षा, काश्मरी फल के क्वाथ मे गुड डालकर ऐसे रोगी को पर्याप्त मात्रा मे यह जल देना चाहिए। इससे वात दोष की शान्ति होती है। आतप मूर्छा के रोग मे रक्तसचार का फेल हो जाना शरीर मे वायु की विकृति का सूचक है। इसलिये इस वातज मूर्छा मे रोगी की बलवर्धक चिकित्सा होनी चाहिये। आतप विष्टम्भ (Cramps) मे वात की शान्ति के लिये शीतल जल के साथ लवण देना चाहिये अथवा लवणोदक को गुदा द्वारा देना चाहिये। गर्मी की ऋतु मे धूप मे काम करने से पहले भोजन कम किया जाय, जलपान अधिक किया जाय, प्याज का सेवन किया जाए, तो तीव्र धूप के दुष्प्रभाव से बचा जा सकता है। लू लग जाने पर भी प्याज का रस पिलाया जाता है।

आमवातिक ज्वर, सन्धिक ज्वर (Rheumatic Fever, Acute Rheumatism, Rheumatic Polyarthritis)

शरीर के सयोजक तन्तुओ विशेषत सन्धियो, हृदय, रक्तवाहिनियो और अन्त त्वचा के स्नायुतन्तुओ मे शोथ से जो ज्वर होता है उसे सधिक ज्वर कहते हैं। Arthritis के लिये Rheumatism इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले Baillov (१५३८-१६१६) ने किया।

हमारा शरीर १ सेलो से, २ Collagen (स्नायु) सूत्रो से तथा ३ सेलो और इन सूत्रो को परस्पर जोडने वाले

एक श्लेपक पदार्थ से, जिसे Cement या Ground Substance या Matrix कहते हे, बना है। इन तीनो मे से पिछले दोनो पदार्थों (Collagen सूत्र तथा Cement) को स्नायुतन्तु या सयोजक तन्तु (Connective Tissue) कहते हैं। इन्हीं स्नायुतन्तु रोग का यहा वर्णन किया जाता है।

इस सयोजक तन्तु मे इसके कुछ अपने सेल भी होते हैं। (१) Fibroblasts तथा तत्सदृश Osteoblasts और Chondroblasts अर्थात् अस्थि और तरुणास्थि निर्माणक सेल जो इस सयोजक तन्तु के सूत्रो के निर्माण मे प्रमुख भाग लेते है। (२) Histiocytes या Macrophages या Large Mononuclear नामक सेल जो सयोजक तन्तु मे उत्पन्न मलो को खा लेते हैं या Phagocytosis का कार्य करते है। (३) Plasma Cells, जिनमे Gamma Globulin विशेष होता ह जिसके कारण ये किसी विप या Antigen या जीवाणु के आने पर उसके विरुद्ध Antibodies को उत्पन्न करके Immunity को उत्पन्न करने का कार्य करने है। किसी अग के Allergy रोग मे ये विशेष बढ जाते है। (४) Mast Cells बहुत अधिक मात्रा मे होते हैं जो श्लेपक पदार्थ (Cement या Acid Mucopolysaccharide) के उत्पादक प्रतीत होते हैं। इनमे से रक्त को जमने से रोकने वाला पदार्थ Heparin उत्पन्न होता है। चोट लगने पर इनमे से एक पदार्थ Histamine भी उत्पन्न होता हैं जिससे वहा की रक्तवाहिनियो मे शैथिल्य (Dilatation) हो जाता है। इसी प्रकार इनमे से Serotonin (5-Hydroxytryptamine) एक पदार्थ निकलता है जिसके अनैच्छिक मासपेशियो के लिये विक्षोभक होने के कारण रक्तवाहिनिया फैल जाती हे। इस प्रकार इन दोनो पदार्थों के कारण इन सूक्ष्म शिराओ की परिस्रवणशीलता या सच्छिद्रता (Permeability) बढ जाती है। (५) Lymphocytes, Immunity उत्पन्न करने मे भाग लेते हैं।

Collagen नामक प्रोटीन—जो कि सारे शरीर की प्रोटीन का $\frac{1}{3}$ भाग है—मे बने स्नायु-तन्तु के सूत्र, जो उबालने से Gelatin अर्थात् सरेस मे बदल जाते है, सूक्ष्म-सूक्ष्म सूत्रो (Fibrils) के परस्पर सीमेन्ट या श्लेपक पदार्थ के द्वारा एकत्रित होने मे बने हुए है। Fibroblast Cells मे से एक घुलनशील पदार्थ निकलकर सीमेन्ट मे आता हे और एक अघुलनशील पदार्थ (Collagen) मे बदलकर सूत्र रूप ले लेता है। ये सूत्र एक तो श्वेत वर्ण दूसरे पीत वर्ण होते है। पहले अधिक दृढ, दूसरे अधिक लचकीले होते हैं। Elastic सूत्र Ligaments मे तथा धमनियो की लचकीली दीवार मे पाये जाते है। दूसरा श्लेपक द्रव्य या सीमेन्ट वा Ground Substance या Matrix एक Mucoprotein (जिस प्रोटीन मे कार्बोहाइड्रेट ४ प्रतिशत मात्रा से अधिक हो) हे जो प्रोटीन तथा Acid Mucopolysaccharides से बना हुआ हे और एक अर्ध द्रव सा पदार्थ है। इसमे Hyaluronic Acid तथा Chondroitin Sulphuric Acid तथा Sulphuric Acid Esters भिन्न-भिन्न अनुपातो मे होते हे। इनमे से पहला पदार्थ सन्धियो मे तथा Synovial द्रव में स्नेहन व श्लेपण का काम करता हे, दूसरा पदार्थ जिसे Sulphate Mucopolysaccharide भी कहते है तरुणास्थियो तथा कण्डराओ को दृढता प्रदान करता है। सूक्ष्म शिराओ (Copillaries) की दीवार के सेलो को परस्पर जोडने वाले इसी श्लेषक पदार्थ मे से रक्त का द्रव भाग बाहर के अवयवो Tissues मे परिस्रवित होता हे तथा अवयवो मे उत्पन्न द्रव्य (Metabolites) इसी मे से होकर रक्त मे प्रवेश करता है, इसीलिये इस Ground Substance मे जल, सोडियम क्लोराइड आदि के Ions, ग्लूकोज, प्लाज्मा-प्रोटीन्स भी पाये जाते हैं। Streptococci जैसे जीवाणुओ या कैन्सर सेलो के सक्रमण होने पर उनसे उत्पन्न Hyaluronidase (Enzyme) के द्वारा इसमे ऐसा परिवर्तन (Depolymerization) होता हे कि इसकी श्लिष्टता कम हो जाती है। इसी प्रकार कुछ एक जीवाणुओ से उत्पन्न Collagenase के द्वारा भी यह सीमेन्ट पदार्थ Basement Membrane तथा Collagen सूत्रो मे परिवर्तित हो जाता है। परिणाम रूप मे रक्त-वाहिनियो मे से रक्त का द्रव भाग अधिक मात्रा मे बाहर निकलने लगता है। इसी सीमेन्ट मे से जीवाणु या कैन्सर के सेल रक्त व लसीका मे प्रवेश करते हे। Streptococci, Pneumococci आदि जीवाणुओ के Hyaluronidase (Enzyme) के विपरीत इस श्लेपक अवयव के Gamma Globulin (Serum globulin का वह भाग जो शायद Plasma सेलो से उत्पन्न होता हे) मे Antihyaluronidase, Antienzyme या Antibodies उत्पन्न हो जाते है। सन्धिक ज्वर मे इनकी वृद्धि हो जाती है जबकि स्वस्थ स्नायुतन्तु मे ये दोनो (Enzyme, Antienzyme) सतुलित अवस्था मे रहते हं। छोटी आयु मे यह सीमेन्ट पदार्थ मृदु गाढे गोद की तरह का होता हे। बडी आयु मे यह शुष्क एव कठोर हो जाता है। शरीर मे विटामिन 'सी' की विशेप न्यूनता हो जाय तो इस सीमेन्ट पदार्थ तथा स्नायु सूत्रो का ठीक-ठीक श्लेपण नही हो पाता जिससे स्नायु तन्तु निर्बल हो जाता हे।

इसी स्नायु तन्तु मे शोथ हो जाय, जिससे फूलकर पहले तो वह मोटा हो जाय और बाद मे क्षीणता (Fibrinoid Degen) के हो जाने से वह सूत्रमय न रहे तो इस रोग को आमवातिक रोग (Rheumatism) कहते है। इस Connective Tissue के रोगो को बहुधा Collagen सम्बन्धी रोग कहा जाता है क्योकि Klemperer (१९४२) ने यह कहते हुए कि Collagen सूत्रो मे क्षीणता के होने तथा वहा Polysaccharide प्रधान द्रव्य के बैठ जाने से यह रोग होता है इसे तथा एतत्सदृश दूसरे रोगो को Collagen Disease कहा था। इन रोगो मे इस Tissue के सूत्रमय तथा ground substance मे Fibrin के बैठ जाने या Fibrinous degeneration की विकृति होती है या Hyaline formation अर्थात् इस वस्तु के काच सदृश हो जाने की विकृति होती है अथवा इसमे sclerosis अर्थात् इसके मोटे हो जाने पर उसमे कठोरता के आजाने की विकृति होती है।

यह स्नायु तन्तु शरीर मे सन्धियो के अन्तरावरण तथा बाह्यावरण मे, मासपेशियो मे, हृदय के मास मे, हृदय के अन्तरावरण तथा बाह्यावरण मे, कडराओ (Tendons) मे, रक्तवाहिनियो के बाह्यावरण मे, वातनाडियो के खोलो मे, त्वचा के नीचे के अवयवो (Subcutaneous) मे, आशयो के बाहर के आवरण (Serous Membranes) मे, विशेषत होता है। इनमे से किसी मे भी आमवातिक शोथ हो सकता है। विशेषत सन्धियो तथा हृदय के स्नायुतन्तुओ मे यह रोग होता है।

कारण —सधियो, हृदय रक्तवाहिनियो, त्वचा आदि के connective tissue मे व्यापक शोथ हो जाय तो उसे आमवातिक ज्वर कहते है।

अक्षमता या असात्म्यता (Allergy) के कारण यह रोग होता है

कुछ एक बालको के स्नायुतन्तु मे जन्म से ही जीवाणु-प्रतिरोधक शक्ति कम होती है या भोजन मे Vit C आदि किसी तत्त्व की न्यूनता के कारण Group A Streptococcus Haemolyticus या पूयजनक जीवाणु को या उसके विष को सहन करने की शक्ति बहुत कम होती है अर्थात् उसमे उसके लिए अक्षमता या Allergy होती है। Streptococcal infection के १०० मे से ३ मे ही ऐसा होता है। सहसा आर्द्रता युक्त शीत के लग जाने पर यह शक्ति और भी कम हो जाती है जिससे स्नायु तन्तु मे शोथ हो जाता है। अर्थात् पहली बार जब Group A Streptococcus Haemolyticus या उसका विष शरीर मे प्रवेश करता है तो कुछ एक मे उसके और सन्धियो व हृदय के स्नायुतन्तु प्रोटीन्स (Synovial Proteins) के मिलने से वह एक बाह्य अजनबी पदार्थ बन जाता है एव Antigen बन जाता है जिसके विरुद्ध इस स्नायुतन्तु मे एक प्रतिविष या Streptococcal Antibodies या Antihaemolysin या Complement fixing antibodies या Anti streptolysin जिसका ऊपर वर्णन किया है उत्पन्न हो जाता है। जब पुन यही विष या Streptococcal poison या जीवाणु प्रवेश करता है तो उस विष या Antigen (या Allergen) तथा वहा से पहले ही उत्पन्न हुए प्रतिविष (Antistreptolysin) के बीच मे एक प्रबल प्रतिक्रिया होती है और वहा पर हुए विनाश (Necrosis) से कोई हिस्टामीन सदृश तत्त्व उत्पन्न होकर इस शोथ का कारण बनता है—अर्थात् हृदय मास के विपरीत एक Autoimmune Process के होने से आमवातिक हृद्रोग होता है। रोगी मे इस जीवाणु के लिए Hypersensitivity होती है। Streptococcus के अनेक types है जिस Type से यह रोग हुआ है उसी के विरुद्ध Antibodies उत्पन्न होते है। यह भी ज्ञातव्य है कि Penicillin के देने से भी बहुधा लाभ नही होता। इतना निश्चय है कि इस जीवाणु के किसी Product से यह रोग होता है। Streptococcal infection अधिकत बाल्यावस्था मे ही होता है इस लिये यह रोग बालको मे ही अधिकत होता है। तथा जिस बालक को एक बार यह रोग होता है अच्छा होने के बाद दुबारा भी इसके होने की सभावना रहती है। अतएव गल-ग्रन्थि शोथ (Tonsillitis) या गल-शोथ (Pharyngitis) होने के २-३ सप्ताह बाद ५-१५ वर्ष के बालको मे या कभी-कभी २० वर्ष तक के नवयुवको मे विशेषत शीतकाल मे यह आमवातिक शोथ तथा आमवातिक ज्वर का रोग होता हुआ देखा जाता है। उनमे Streptococcal विष का कोई केन्द्र कायम हुआ रहता है। साथ ही परीक्षक लोग बताते है कि इस रोग से ग्रस्त व्यक्तियो के Serum मे Antihyaluronidase की मात्रा (Titre) बढी हुई होती है तथा Haemolytic Streptococci के सक्रमण मे Hyaluronidase की शरीर मे उत्पत्ति होती है और इस पाचक रस (Enzyme) के द्वारा स्नायुततु का Hyaluronic Acid पच जाता है (Hydrolysed होता है)। अत यह भी सम्भव है कि यह रोग Streptococci के सक्रमण तथा उससे उत्पन्न Antigen के कारण होता है तो भी Streptococcal

sore throat के किसी किसी रोगी मे ही यह रोग होता है, अत इस रोग के लिए कोई Host factor भी कारण है।

विकृति

जिस स्नायु तन्तु मे इस रोग का विष होता है वहा रक्तवाहिनिया मे से रक्त का द्रव भाग (Plasma) अधिक मात्रा मे बाहर आने लगता है जिससे उस (स्नायुतन्तु) मे द्रव के भर जाने से वह सूज जाता है (Exudative या Mucinous Oedema)। सन्धियो के अन्तरावरण (Synovial Membranes) मे मे ऐसे आमवातिक शोथ के होने से सन्धि मे द्रव भर जाता है जिसमे Fibrin, Lymphocytes, Plasma Cells होते हैं जिससे सधि सूज जाती है। वहा की मज्जावाहिनियो पर इस द्रव का दबाव पडने से सन्धिशूल का लक्षण भी हो जाता है। सन्धि के अन्दर तथा आसपास का Collagen युक्त अवयव या स्नायु तन्तु फूलकर मोटा हो जाता है (Periarticular Oedema) रक्तवाहिनियो मे से निकले प्लाजमा का Fibrinogen उस खडित अवयव के Thromboplastin के द्वारा उत्पन्न Thrombin के साथ मिलने से, Fibrin या उसके समान एक Clot का सा पदार्थ बन जाता है और वहा निक्षिप्त हो जाता है। इसके निक्षिप्त होने से स्नायुतन्तु क्षीण-सा होता जाता है जिससे इसे स्नायुतन्तु की Fibrinoid Degeneration या Change of collagen कहते हैं। रोग के अन्त मे बहुधा यह शोथ ठीक हो जाता है तथा इसमे पूयभाव भी कभी नही होता।

प्लाजमा के एकत्रित होने के अतिरिक्त १०-१२ दिन तक इस रोग मे सन्धियो (Synovial प्रदेश), हृदय विशेषत वाम हृदय (Endo तथा Myocardium) धमनियो, subcutaneous प्रदेश आदि के सूजे हुए स्नायुतन्तु मे बडे आकार के श्वेताणुओ या Histiocytes से बने Epitheloid सेलो के एकत्रित हो जाने से एक प्रकार के बडे-बडे सेल (Giant सेल) बन जाते हे, जिन्हे उनमे Fibrous Tissue के आ जाने से Granuloma या Aschoff Nodules कहते है, ये नगी आख मे देखे जा सकते है। एक ग्रन्थि (Nodule) की परीक्षा करने पर उसके केन्द्र मे एक छोटा-सा खण्ड सर्वथा मृत (Necrosed) होता हे, उसके आस-पास एक या अनेक बडे-बडे सेल होते ह, उनके चारो ओर छोटे-छोटे गोलाकार Histiocytes होते है तथा बाहर किनारो पर Fibroblasts होते हैं। पहले ये अण्डाकृति होती फिर तकुए के आकार की हो जाती हैं। हृदय मास तथा Valves के सूजे हुए स्नायुतन्तु मे उसकी रक्तवाहिनियो के पास पास ये बडे बडे पिण्ड या ग्रन्थिया विशेष तौर मे पाई जाती है। इन्ही के कारण कपाटियो पर अकुर Vegetations उत्पन्न होते है। क्षय रोग ग्रस्त अवयव मे जैसे Tubercles पाये जाते है वैसे ही आमवात रोग से ग्रस्त अवयव मे ये पिण्ड या ग्रन्थिया पाई जाती है।

आम वात रोग चिरकाल तक रहे तो स्नायु तन्तु क्षीण और शुष्क होकर Scar Tissue मे बदल जाता है। हृदय विशेषत वाम हृदय की कपाटियो मे तथा कपाटी छिद्रो मे (७०-८०% रोगियो मे) इस स्नायुतन्तु की वृद्धि (Fibrosis) की प्रक्रिया के हो जाने से एव उनके विषम आकृति का हो जाने से कपाटी (Valvular) रोग हो जाते है, हृदय कपाटियो पर सूक्ष्म भूरे लाल से रग के अकुर Vegetations उत्पन्न हो जाते हैं Mitral valve के Atrial पृष्ठ पर और Aortic Valve के Ventricular पृष्ठ पर होते हे। Mitral Valve पर Aortic की अपेक्षा अधिक होते हैं। ये अकुर Blood platelets के बैठने तथा Fibrin के उत्पन्न हो जाने से बनते हैं। हृदय की धमनियो के आभ्यन्तर स्तर, मध्यम स्तर या बाह्य स्तर किसी मे इस रोग के कारण स्नायु तन्तु वृद्धि की प्रक्रिया हो जाय तो उनका स्रोत तग हो जाता है। परिणामत हृदयमास मे क्षीणता (Fatty, Hyalinisation, Granular कोई सी) हो जाती है। इस प्रकार इस रोग का आक्रमण बार-बार होता रहे तो हृदय कपाटियो मे या हृदयमास मे स्नायुभाव Fibrosis का उपद्रव हो जाता हे।

लक्षण

जब एक नवयुवक मे आमवातिक ज्वर होता है तो जानु, गुल्फ, कूर्पर स्कन्ध आदि शाखाओ की बडी सन्धियो मे उनके अन्दर जल उत्पन्न हो जाने या सन्धि के आसपास अवयवो मे (Peri articular Tissue) मे द्रव उत्पन्न हो जाने से शोथ तथा वेदना का लक्षण विशेष होता है तथा ये शोथ और वेदना के लक्षण सहसा होते हे। शोथ एक सन्धि मे ४-५ दिन रहकर उससे दूसरी सन्धि मे प्रसरण करता है (Polyarthritis)। शोथ युक्त सन्धि की त्वचा का रग नार्मल होता या लाल होता है। स्पर्श मे सन्धि गर्म होती है। रोग ग्रस्त सन्धि को थोडा हिलाने से भी तीव्र वेदना उत्पन्न होती है। ज्वर १०० से १०१ डिग्री तक होता है तथा कुछ एक

दिन से लेकर कई सप्ताह तक रहता है। एक ही बड़ी सन्धि के शरीर के दोनों ओर ग्रस्त होने से उस रोग के पहचान में कोई कठिनता नहीं होती। सन्धिशूल या शोथ का लक्षण १ सप्ताह से १ महीने तक के लिए रहता है। उससे कुछ पहले Sorethroat का लक्षण भी प्रायः रहा होता है।

परन्तु बालकों में आमवात ज्वर होने पर सन्धि शूल का लक्षण विशेष नहीं होता। उनमें जघाओं या पेट पर दर्द होने का लक्षण विशेष होता है। इस रोग के कारण उनमें हृदय प्राय न्यूनाधिक ग्रस्त होता है (Myocarditis)। हृदयमास में शोथ होने के कारण बहुतों को हृत्प्रदेश पर दर्द प्रतीत होता है, Myocarditis के कारण हृदय गति तीव्र होती है। रोगी को धड़कन की शिकायत रहती है। हृदय शोथ के कारण ही बालक में उठने बैठने या स्वल्प श्रम करने की भी शक्ति नहीं रहती। उसकी गल ग्रन्थियाँ सूजी होती हैं। शरीर कृश हो जाता है अतिस्वेद, क्षुधानाश मलबन्ध आदि लक्षण भी होते हैं। Hypochromic किस्म की पाण्डुता भी होती है। हो सकता है कि इस रोग में सन्धि-शूल न हो, केवल यह रोग हृदय में ही (Rheumatic carditis ही) हो तब ज्वर-पाडुता तथा कृशता के लक्षण होते हैं। इस रोग में Endocarditis हो जाने के कारण हृदय कपाटियों में विषमता उत्पन्न हो जाती है। यह विषमता इस रोग का उपद्रव है।

इस रोग में रोगी को स्वेद अधिक आता है। उसकी क्षुधा नष्ट हो जाती है। मलबन्ध रहता है। कुछ एक में कोष्ठ प्रदेश पर भी शूल होता है जो Sterile Rheumatic Peritonitis में होता लगता है। चिकित्सा होने पर ३०% में रोग ठीक हो जाता है, परन्तु ५० % में यह रोग फिर भी बार-बार हो सकता है। इस रोग की चिकित्सा हो तो यह ४ सप्ताह तक ठीक हो जाता है। कई बार यह रोग महीनों तथा वर्षों तक होता रहता है। ऐसी अवस्था में ८-१० वर्ष तक हृदय रोग से मृत्यु होती है।

परीक्षा

इस रोग में हृदय प्राय सदा ही न्यूनाधिक रूप से ग्रस्त होता है अर्थात् Myocarditis होता है, विशेषत Endocarditis होता है—हृदय की निर्बलता तथा पाण्डुता (Microcytic Anaemia) के कारण रोगी का चेहरा फीके रंग का होता है। नाड़ी आकार (Volume) में बड़ी हो सकती है पर तीव्र तथा मृदु होती है Tachycardia बहुत स्पष्ट होता है। स्वल्प श्रम से और भी तीव्र हो जाती है, नींद में भी तीव्र होती है। क्षेपक कोष्ठ कुछ शिथिल (Dilated) आकार में बड़े होते हैं जिससे वाम (Mitral) छिद्र कुछ चौड़ा हो जाता है। अतः हृदय सकोच के समय कुछ रक्त के वापस ग्राहक कोष्ठ में चले जाने से Apex पर प्रथम शब्द छोटा एवं अस्पष्ट हो जाता या कुछ-कुछ फुत्कार (Murmur) से युक्त या Muffled होता है और कुछ बाहर की ओर खिसका हुआ होता है तथा Blowing Systolic murmur कक्ष की ओर जाता लगता है, वाम क्षेपक कोष्ठ की निर्बलता के कारण फुफ्फुस में रक्तभार बढ़ जाता है जिससे द्वितीय शब्द Pulmonary Area पर Aortic-area की अपेक्षा ऊंचा हो जाता है। Diastole के समय उरोस्थि के वाम पार्श्व पर भी फुत्कार सुनाई पड़े तो महाधमनी द्वार (Aortic ring) भी कुछ शिथिल हुआ समझें। मूत्र मात्रा में थोड़ा तथा गहरे रंग का होता है। उसमें स्वल्प-सा अल्ब्युमिन भी होता है। रक्त में श्वेत कणों (Polymarphonuclar) की संख्या बढ़ जाती है (१०-१५ हजार), तथा B S R भी बढ़ा हुआ होता है, तीव्र रोग में १०० M M के लगभग हो सकता है। E c g में P R अन्तर लंबा होता है अर्थात ग्राहक से क्षेपक कोष्ठक तक Wave की गति मन्द होती है। Conduction की विकृति से कोई स्पन्दन लुप्त भी हो सकता है। Myocarditis अधिक हो तो X-Ray में हृदय का आकार बड़ा होता है। रक्त में प्लाज्मा की मात्रा बढ़ जाती है इससे भी पाण्डुता होती है। तथा उसमें Gamma Globulin की मात्रा भी बढ़ जाती है जिससे Streptococcus या उससे उत्पन्न Streptolysin (Haemolysin) या Streptococcal Hyaluronidase (उससे उत्पन्न Enzyme) के विरोध में उत्पन्न Antibodies होते हैं। Streptococcus से उत्पन्न Fibrinolysin (Streptokinase) Fibrin का तथा उसी से उत्पन्न Desoxyribonuclease स्नायु-तन्तु में विद्यमान Nucleic acids का पचन करता है। C-reactive protein—Pnumococci के Carbohydrate को Precipitate करने वाला प्रोटीन जो न्युमोनिया में पाया जाता है—की उपस्थिति सीरम में पाई जाती है। Antistreptolysin, Antihyaluronidase Antifibrinolysin आदि की वृद्धि (Titres above 200 Units/ML) भी सीरम में मिलती है जो सब Streptococcal-antigens के विरोध में उत्पन्न होते हैं। हृदयमास या हृदय कपाटियों में क्षीणता जनित विकृति का हो जाना इसका मुख्य उपद्रव है। बालकों में ५ वर्ष तक यह रोग फिर भी हो सकता है तथा उसमें Mitral Stenosis और Insufficiency का उपद्रव हो

सकता है। बालक की शाखाओं में दर्द हो, हलका ज्वर हो तो इस रोग की आशंका कर लेनी चाहिये और हृदय की परीक्षा करनी चाहिये।

सन्धिक ज्वर (Rheumatic Fever) की चिकित्सा

औषधि चिकित्सा

बालक में Sodium Salicylate को १५ ग्रेन मात्रा में ३० बून्द Syrup Aurant जल ½ औंस के साथ मिलाकर ३-४ घंटे के अन्तर से दिन रात में ६ वार देने से रोगी के ज्वर, सन्धिशूल, सन्धिशोथ आदि लक्षण घटने लगते हैं (बालक में दैनिक मात्रा ४-६ ग्राम)। Soda Bicarb के साथ देने से यह औषधि आमाशय के लिए विक्षोभक नहीं रहती जिससे इसके कारण होने वाले अरुचि, वमन आदि दुष्प्रभाव नहीं होते। पर इसके साथ देने से यह शीघ्र शरीर से निकल जाती है, अतः उसे इसके साथ नहीं दिया जाता। युवक में इसकी मात्रा इससे दो गुणा है, कुल दैनिक मात्रा ६-१२ ग्राम है। शरीर के १ पौण्ड भार के पीछे २४ घंटों में इसकी एक ग्रेन मात्रा होनी चाहिए और इस कुल मात्रा को ६ मात्राओं में विभक्त करके दे देना चाहिए। इस प्रकार जब १०० मिलिलिटर रक्त में ३० मिलिग्राम की मात्रा में यह रहती है इससे शूल आदि लक्षण तुरन्त शान्त होने लगते हैं। इनके शान्त होने पर औषधि को उसी मात्रा में पहले ६-६ घंटों तथा इनके और शान्त हो जाने पर ८-८ घंटों पर देना चाहिए। जब १ सप्ताह तक इस रोग का कोई लक्षण प्रकट न हो, इसे बन्द कर सकते हैं। पहले २ दिन में इससे लाभ न हो तो इसका प्रयोग बन्द कर देना चाहिए। यह औषधि कारण को दूर नहीं करती केवल शरीर में हुए शोथ को शान्त करती है। तब तक शरीर अपने आप रोग के कारण को बाहर करने में समर्थ हो जाता है। इस औषधि के द्वारा अरुचि, वमन के अतिरिक्त कर्णघोष (Tinnitus), बाधिर्य, शिरोभ्रम, शिरःशूल आदि दुर्लक्षण भी हो सकते हैं। ऐसी अवस्था में भी इसे बन्द कर देना चाहिए। यदि Myocarditis या Endocarditis हो तो इस औषध का प्रयोग नहीं करना चाहिए। यह औषध अनुकूल न हो तो Indomethacin (Indocid) का कैपसूल २५ मिलि० दिन में २ वार खाने के बाद दें।

Adrenocorticosteroids—A C T H Gel को रोगी के भार के अनुसार प्रतिदिन ४०-६० मिलि० मात्रा में मांस द्वारा देने से या Prednisone या Prednisolone को पहले १ या २ दिन तो १५ मिलि० मात्रा में २४ घंटे में चार बार और फिर १-१½ सप्ताह ५-१० मिलि० मात्रा में ४ बार देने से (अर्थात् रोगी के प्रति पौण्ड भार के पीछे १½ मिलि० दैनिक मात्रा में) इस रोग में शीघ्र लाभ प्रतीत होता है। २ सप्ताह के बाद ७ दिन २½ मिलि० मात्रा में दिन में १ बार देना ही इसका पर्याप्त होता है। सन्धिक ज्वर में हृदय भी ग्रस्त हो तो उपर्युक्त औषधियों की अपेक्षा यह औषधि विशेष उपयोगी है। तब उपर्युक्त औषधियों को थोड़ी मात्रा में देते हुए उसके साथ भी इस औषधि का प्रयोग किया जा सकता है। इसी तरह Triamcinolone (Kenacort, Ledercort) के दिन में ४-६ मिलि० मात्रा में तथा Dexamethasone (Decadron) के १.५-२.५ मिलि० दैनिक मात्रा में बाँट के (.५ मिलि० ३ बार) प्रयोग करने से और भी शीघ्र लाभ हो जाता है। इन औषधियों से सोडियम अन्दर रुकता तथा पोटाशियम अधिक निकल जाता है। अतः इनके देने के काल में सोडियम के भोजन कम कर दें और पोटाशियम वाले भोजन अधिक दें। इनके देने के काल में Infection की आशंका रहती है अतः Tetracycline का प्रयोग थोड़ा २ करना चाहिये।

Penicillin—इस रोग के आरम्भ में जबकि Streptococcal Pharyngitis होता है ८ दिन Procaine Penicillin ४ लाख युनिट्स की मात्रा में प्रतिदिन १ वार मांस द्वारा देने से भी गले में से इस जीवाणु का निराकरण हो जाता है तथा इस रोग के उपद्रवों के होने या इसके चिरस्थायी रूप में रह जाने का भय नहीं रहता अथवा दो लाख यूनिट इसके मुख से दिन में ४ वार दें। जीवाणु Penicillin से प्रभावित न हो तो Erythromycin का प्रयोग करना चाहिए या Tetracycline का प्रयोग किया जा सकता है। अच्छा हो जाने के बाद भी Prophylactic रूप में इसका प्रयोग समय २ पर होते रहना चाहिए। या १-१ मास बाद Penidure का इञ्जेक्शन दें।

विश्राम चिकित्सा

जब से रोग का पता चले तब से जब तक यह रोग सर्वथा न शान्त हो जाए रोगी को बिस्तर पर गर्म कपड़ों के अन्दर पूर्ण विश्राम से पड़ा रहना चाहिए। ज्वर उतर जाने के बाद भी ३ सप्ताह तक उसे इसी प्रकार पूर्ण विश्राम में रहना चाहिए। इसी प्रकार जब तक भूख की कमी रहे, नाड़ी गति तीव्र रहे, प्र० मि० १०० से नीचे न आ जाय तथा रक्त का Sedimentation Rate नार्मल न हो जाय तब तक विश्राम चिकित्सा जारी रखनी चाहिए।

यह रोग डेढ मास के लगभग रहता है। परन्तु इस रोग के कारण हृदय पर दुष्प्रभाव होने के लक्षण हो (Rheumatic endocarditis हो) तो कम से कम ३ महीने के लिए रोगी को बिस्तर पर ही रखना चाहिए। भोजन मे उसे दूध, वार्ले, फलरस, Dextrose आदि ही मिलना चाहिए। ज्वर उतर जाने पर फिर उसे कुछ ठोस भोजन दिया जा सकता है। हृदय सम्बन्धी उपद्रव हो तो अधिक सोडियम वाले आहारो के स्थान पर कम सोडियम वाले आहार देते हुए उसे मूत्रल औषधिया (Mercurial या Non-mercurial या Thiazides) देनी चाहिए। उपर्युक्त Cortisone औषधियो का प्रयोग करना चाहिए। Salicylate के स्थान पर Aspirin का प्रयोग करना चाहिए। इस चिकित्सा को दो मास के लगभग जारी रखना चाहिए। साथ ही Digoxin का प्रयोग भी करना चाहिए।

प्रतिरोध (Prophilactic) चिकित्सा

बालक का गला पका हो Tonsillitis हो या Throat Swab culture इस जीवाणु के लिए पाजिटिव हो या Serum मे Antihyaluronidase, या Antistreptokinase या Antistreptolysin O पाजिटिव हो तो Benzathine Penicillin Gel को जिसका प्रभाव चिरकाल तक रहता है ६-१२ लाख (अर्थात् १० वर्ष तक ६ लाख इससे ऊपर १२ लाख) यूनिट्स की मात्रा मे मास द्वारा मास मे एक वार बालक को दे देना चाहिए। इसकी आधी मात्रा एक ओर तथा शेष आधी मात्रा दूसरी ओर मास मे डाल देनी चाहिए। इस प्रकार महीनो तक इसका प्रयोग जारी रखना चाहिए तथा प्रति वर्ष शीत काल के महीनो मे इसका १-१ इजेक्शन देते रहना चाहिए। या Penicillin V की ६०-१२० मिलि० (१-२ लाख यूनिट्स) की गोलिया दिन मे २ या ३ वार भोजन से ½ या १ घटे पहले महीनो तक देते रहना चाहिए। Sulphadiazine, Sulphadimidine, Sulphisoxazole (Gantrisin) या Sulphaphenazole (Orisul) Sulphamethoxypyridazine (Lederkyn, Midicel) या Madribon (Sulphadimethoxine) किसी के ½ ग्राम मात्रा मे महीनो तक लेते रहने से भी इस रोग से बचा जा सकता है। इसी प्रकार Rheumatic heart disease का सन्देह हो तो भी यह प्रतिरोधक चिकित्सा जारी रहनी चाहिए।

आयुर्वेद मे आमवातिक ज्वर या सन्धिक ज्वर

जब बालक के शरीर मे आम दोष (Metabolites) की वृद्धि हुई होती है तब कुछ एक के स्नायुतन्तु मे पूय विष (Streptococcal Toxin) को सहन करने की शक्ति बहुत घट जाती है, जिससे उसमें कफ धातु का प्रकोप होकर एक शोथ (Oedema तथा Proliferation) उत्पन्न हो जाता है जिसे आम वातिक रोग कहते हैं। इसमे आम दोष के कारण प्रधानत शूल के लक्षण के होने से इसे आमवात कहा है, जब यह तीव्र रूप मे होता है तब ज्वर भी होता है तथा क्योकि यह शोथ विशेषतया सन्धियो के स्नायुतन्तु मे होता है इसलिए इसके तीव्र रूप को सन्धिक ज्वर कहा जाता है। योग रत्नाकर (सन्निपात ज्वर) मे कहा है कि जिस ज्वर मे शरीर के अन्दर कफ की वृद्धि, वातिक शूल, तापमान की वृद्धि, अशक्ति आदि लक्षण होते हैं उसे सन्धि ज्वर कहते है तथा उसमे इसकी मर्यादा ७ दिन की कही है।

इस ज्वर मे रोगी को उचित लघन करा कर मसूर, कुलथी, मूली, यव आदि के अस्निग्ध रसो पर रखना चाहिए या देसी चाय मे दूध मिलाकर पिलाना चाहिए।

महायोगराज गुग्गुलु २-२ गोली मात्रा मे दिन मे ४ वार रास्नादिपचक, या सप्तक या द्वादशक क्वाथ के अनुपान से देना चाहिए या दशमूल और रास्नादि क्वाथ दोनो के अनुपान से देना चाहिए या देवदार्वादि-क्वाथ (भा प्र) देवदारु, कचूर, रास्ना, सोठ १-१, गिलोय २ भाग क्वाथ से दें या रास्ना, गिलोय, शठी विधारा, देवदारु, सोठ, त्रिफला, शतावरी के क्वाथ के साथ दें। या सधिकारिरस (र० का० धे०, वृ० नि० र०) पारा, गधक, अभ्रक, सुहागाखील, दो क्षार, जीरा, त्रिकटु त्रिफला, पाचनमक १-१ भाग। चित्रक क्वाथ से मर्दन कर ४-४ रत्ती की गोली दें। रेचनार्थ एरण्ड तेल कभी-कभी देना चाहिए। वेदनायुक्त सन्धियो पर रुक्ष स्वेदन देना चाहिये। हृदय रोग के शमन के लिए मुक्ता पचामृत २ रत्ती दिन मे तीन वार मधु से देना चाहिये तथा अर्जुन, वरुण त्वक्, गोक्षुरु, कुष्ठ, विडग समान-समान मिलाकर १ तोला का ८ गुणा जल मिश्रित दूध मे क्वाथ बनाकर छानकर पिलायें।

आमवातिक शूल या मासशूल—Myalgia, Muscular Rheumatism, Fibrositis, Non-articular Rheumatism

इस रोग मे धड या शाखाओ के किसी भाग मे शूल का लक्षण होता है।

मास के संयोजक तन्तु तथा आवरण (Fascia), सन्धियों के आवरण (Capsules) मास के सिरो अर्थात् कण्डराओ (Tendons तथा Aponeurosis) वातनाडियो के आवरण (Nerve Sheaths) सन्धि बन्धन करने वाली रज्जुओ (Ligaments) के स्नायुतन्तु (Fibroustissue) मे जो शोथ होता हे उसे आमवातिक शोथ (Fibrositis) कहते हे। इसमे पहले शोथ और फिर Hyperplasia हो जाने के कारण ये मोटे हो जाते हे। वहा पर उत्पन्न Serofibrinous स्राव या Exudate के नाडी प्रान्तो पर दवाव पडने से उनमे भारी दर्द प्रतीत होने लगता है जो प्राय सहसा प्रारम्भ होता है। सम्भवत वहा विद्यमान वात नाडियो मे भी शोथ होता है जिसके कारण यह दर्द उठता है, या वहा की मासपेशी मे स्तम्भ (Spasm) हो जाने से दर्द उठता है। कटि और पृष्ठ प्रदेशो की Nodules की परीक्षा करने वाले यह भी कहते हे कि स्नायु तन्तु से वने आवरण के वीच के अवकाशो मे से फैट के अन्दर चले जाने या Herniation से इस रोग के लक्षण उत्पन्न होते है। एक तो कटि प्रदेश की विस्तृत कण्डरा (Aponeurosis या Lumber Fascia) मे यह दर्द विशेपता से होता है जिसे कटिशूल (Lumbago) कहा जाता है। इस कण्डरा पर या कमर की Ligaments पर खीच पड जाने से यह शोथ होता है। इस अवस्था मे आगे झुकने तथा झुककर फिर सीधा होने में कठिनता प्रतीत होती है। वहा की मासपेशियो में शोथ होने से भी कटिशूल और कटिस्तब्धता Stiffness का लक्षण होता है। Erectors Spinae नामक मासपेशियो मे स्तम्भ हो जाने से कमर अकड जाती है, कटि की मासपेशियो मे से शोथ गृध्रसी के खोल मे फैल जाए तो गृध्रसी शूल हो सकता है या Gluteal प्रदेश मे Fibrositis होने से यह रोग हो सकता है। कभी-कभी ग्रीवा के पीछे की ओर की मन्यापेशी (Sternomatsoid या Trapezius) में यह शोथ होता है, तव उसे मन्यास्तम्भ (Rheumatic Torticollis) कहते हैं। कभी-कभी कन्धे पर की Supra Spinatus की कण्डरा मे जो ऊपर के Acromian Process और नीचे के Capsule के वीच मे विद्यमान स्नेह कोप (Sub acromial Bursa) मे से गुजरती है और Humerus पर बधती है, शोथ हो जाता है अर्थात् Calcific tendinitis हो जाता है जिससे कन्धे पर दर्द होता है। इस Bursa मे तथा Capsule मे भी आमवातिक शोथ होता है, इसमे वाहु को वाहर और ऊपर उठाने मे जव कण्डरा ऊपर Acromian से टकराती है तो उसमे कष्ट होता है, इसे स्कन्धशूल Shoulder Fibrositis या Painful shoulder कहते हे। यह दर्द ऊर्ध्व वाहु के ऊपर के भाग मे होती है। Deltoid के Insertion मे होती है। वाहु को वाहर उठाना कठिन होता है। कभी-कभी पादतल कण्डरा (Plantar Aponeurosis) जो पीछे एडी की हड्डी (Calcaneus) मे बन्धी है उसके वधने के स्थान मे शोथ होता हे जिससे एडी को पृथ्वी पर टिकाने मे दर्द होता है, इसे वात कन्टक (Plantar Fascitis) कहते है। इसी प्रकार हथेली के Fascia मे भी उसके विशेपत वाहर की दो Metacarpophalangeal सन्धियो के आगे के भाग मे शोथ होकर हथेली अकड सी जाती है, इसमे दर्द नही होता। केवल वाहर की दो अ गुलिया कुछ सकुचित हो जाती हे। जानु (Knee) को वाधने वाली स्नायु रज्जुओ (Ligaments) मे दर्द हो जाता है, जिसे जानुशूल कहते हैं। कभी-कभी कन्धो या कमर के पीछे त्वचा के नीचे के वसामय स्तर मे या ऊर्ध्व वाहु और ऊर्ध्व जघाओ के वाहर की त्वचा के नीचे शोथ होकर शूल होने लगता है, इसे Panniculitis कहते है, वैठने के अर्थात् Gluteal प्रदेश मे भी ऐसा शूल होता है। कलाई को सकोडने वाली कण्डराओ मे से किसी में शोथ होकर कलाई मे दर्द हो सकता है, इसे Tenosynovitis कहते हे। सन्धि वहि शोथ (Periarthritis) मे सन्धियो के Capsule आदि वाह्यावरण मे शोथ होता है। Pleurodynia (पर्शु का मासशूल) मे पसलियो के वीच की Intercostal मासपेशियो मे शोथ होता है जिससे खासने मे या दवाने से छाती मे दर्द होता है। Bursa मे शोथ हो तो Bursitis कहते है जैसे Subacromial Bursa मे तथा Tendoachillis और Calcaneus के वीच के Bursa मे शोथ होता है जिसे Subachilles bursitis कहते है। कण्डरा मे शोथ हो तो Achilles Tendinitis या Painful heel कहते है। सिर या कपाल की मासपेशियो मे आमवातिक शूल होने से सिर दर्द हो सकता है। ग्रीवा प्रदेश मे इस रोग के होने से Brachial Neuritis हो सकता हे।

कारण

खाण्ड तथा घृत आदि से बने गुरुतर आहारो का सेवन अधिक करने तथा व्यायाम कम करने एव मलवन्ध रहने से आतो मे से कोई विप (Metabolite) द्रव्य उत्पन्न होकर रक्त मे जाता हे जिसके दुष्प्रभाव से, या शरीर के किसी भाग, दात, आत, गले, नाक आदि मे विद्यमान पूय विप (Sepsis) के रक्त द्वारा स्नायु तन्तु पर दुष्प्रभाव होकर यह रोग होता है, ऐसा अनुमान है। उस स्थान पर शीत के लग जाने

या आघात (Trauma) के लगने से शरीर का जो स्नायु तन्तु पहले से निर्बल होता है उसी पर उनका दुष्प्रभाव होता है। इस रोग मे रक्त के अन्दर Uric Acid की मात्रा की वृद्धि या Gouty diathesis मे भी इस अनुमान की पुष्टि होती है या Immunity Mechanism की विकृति मे यह रोग होता है। मानसिक व्याकुलता (Tension) भी इस रोग का एक कारण प्रतीत होती है। प्रौढ स्त्रियो मे (४०-६० के बीच की आयु मे) Psychogenic Rheumatism मानस आमवात का रोग पाया जाता है। अर्थात् स्त्रियो मे उनके मास मे Tension के बने रहने से थकावट के कारण मासशूल होता है।

लक्षण

४० के बाद मध्यम आयु तथा बडी आयु के विशेषत पुरुषो मे मासशूल का यह रोग होता है जिसमे विशेषत कधे, कटि, ग्रीवा आदि के स्थान पर वेदना, स्तब्धता और स्पर्शाक्षमता के लक्षण होते हैं जो लगभग ३ सप्ताह तक बने रहते है, फिर प्राय शान्त हो जाया करते है। रोगी के साधारण स्वास्थ्य पर इस रोग का विशेष दुष्प्रभाव नही होता। जैसे ऊपर कहा है कि चिन्ता आदि मानसिक कारणो से भी मास शूल हो सकता है। मानसिक शूल सहसा शुरु न होकर धीरे-धीरे शुरु होता, बहुत महीनो रहता, स्थान बदल-बदलकर होता, रोगी अपने को इसमे अत्यधिक दुखी प्रकट करता है, स्पर्शाक्षमता का लक्षण एक व्यापक स्थान पर होता, दर्द के स्थान को वह हिला-जुला सकता है। इन लक्षणो को देखकर Psychogenic pain ही समझना चाहिए।

चिकित्सा

प्रारभ मे दर्द वाले प्रदेश को पूर्ण विश्राम देना चाहिये। साथ ही Analgesic औषधियाँ देनी चाहिये। दर्द के हटने पर व्यायाम कराना चाहिये। सब्जी, फल तथा दूध प्रधान, लवण रहित भोजन करने तथा खुली वायु मे भ्रमण करने से प्रतिदिन मृदु विरेचन लेने या किसी मूत्रल औषधि लेने या दो-तीन सप्ताह तक सप्ताह मे दो बार वस्ति लेने या भार घटाने वाला भोजन लेने से, इस रोग मे लाभ रहता है। Gout मे कहे भोजन लेने से भी आराम रहता है। आमवात युक्त प्रदेश पर Diathermy या Infra red rays द्वारा या गर्म बोतलो द्वारा या Kaolin Poultice या गर्म रुई आदि द्वारा सेक देने से भी दर्द मे आराम पडता है या Arachis Oil १ औंस मे, कर्पूर १५ ग्रेन, मेन्थोल ५ ग्रेन, आयल काजुपुट, Oil Gaultheria २-२ ग्राम मिलाकर मलने से भी आराम आता है, अर्थात् वहां मास मे विद्यमान स्तम्भ शान्त हो जाता है या वहां पर एकत्रित स्राव विलीन हो जाता है। वेदनाशामक औषधियो जैसे Salicylate के १ ग्राम मात्रा मे दिन मे ६ बार देने से या Aspirin ५-१० ग्रेन को ४-४ घटे बाद के बाद देने से Aspirin ३½ ग्रेन, Phenacetin २½ ग्रेन, Caffeine ½ ग्रेन तथा Codein Phosphate ⅛ ग्रेन मिलाकर बनाए चूर्ण को ४-४ घटे पर देने से या Tab Codein Co. १ को ३ बार देने से या Paracetamol ५ ग्राम गोली को ३-४ बार देने से या Amidopyrine (Pyramidon) के ५ ग्रेन की मात्रा मे ३ बार देने से या Phenylbutazone (Butazolidin) के १½ ग्रेन या १०० मि०ग्रा० की मात्रा मे दिन मे ४ बार भोजन बाद देने से भी दर्द शान्त हो जाता है। इसे ४ दिन तक ही देना चाहिए ताकि इसके दुष्प्रभाव न हो। इन औषधियो से बने Irgapyrine के मास मे सूचीवेध से भी यह शूल शान्त होता है। इसके साथ किसी शामक औषधि का प्रयोग ठीक है। इस रोग के कारण का पता लगाकर उसका अर्थात् किसी प्रकार के Sepsis का भी निवारण करना चाहिए Toxaemia के लिए Penicillin से लाभ हो सकता है। Milk-Protein के ५-१० सी० सी० के मास द्वारा सप्ताह मे २ इंजेक्शन देने से या Iodine के Organic Compounds, Entodon आदि १-२ सी० सी० मात्रा मे सप्ताह मे २ बार मास द्वारा देने मे भी इस रोग मे कुछ लाभ प्रतीत होता है। मानसिक आमवात मे कोई शामक (Sedative) औषधि देनी चाहिये।

आयुर्वेद मे चिरस्थायी श्लैष्मिक आमवात या मासशूल

देहाग्नि की मन्दता के कारण शरीर मे आम दोष (कफ दोष) बढा हुआ हो अर्थात् उसकी क्षमता या सहनशीलता घटी हुई हो और ऐसी अवस्था मे किसी मास या सन्धि आदि के स्नायु तन्तु मे सहसा शीत लग जाने या आघात लग जाने या खींच पड जाने से उसकी प्राणशक्ति कम हो जाय अर्थात् उसमे वायु का प्रकोप भी हो जाय तो उसमे इस आमदोष का दुष्प्रभाव होकर शोथ हो जाता है जिससे उसमे दर्द होने लगता है। इस स्नायु सूत्रो मे हुए दर्द को आमजनित तथा वातजनित होने के कारण आमवात कहा जाता है।

(च०।चि०।२८।३२)

चिकित्सा

आमवात रोग मे लघुलघन लघुविरेचन के बाद लघु रुक्ष उष्ण गुण भोजनो का प्रयोग करना चाहिये उदाहरणत जौ मिश्रित गेहू, साठी चावल, सावक, कोदो आदि का प्रयोग करें। शाको मे बथुआ, सुहाजना, अदरक लशुन, करेला, परवल, मोठ, मसूर, कुलथी आदि का बिना स्नेह या स्वल्प स्नेह के साथ प्रयोग करें। कफ वर्धक दूध, दही, घृत, खाण्ड, गुड, माष, तिल तथा शीत पेयो का प्रयोग अपथ्य है।

निम्नलिखित आमवातहर औषधियो मे से किसी औषधि का प्रयोग करना चाहिये—

(१) महौषधादिक्वाथ (वृ मा) सोठ, गिलोय समभाग का क्वाथ करके उसे पिप्पली चूर्ण एक माशा के साथ पिलायें।

(२) रास्ना सप्तक क्वाथ (शा स) रास्ना, गिलोय, एरण्डमूल, गोखरु, अमलतास, पुनर्नवा, देवदारु समभाग २॥ तोला के क्वाथ को सोठ के चूर्ण के साथ पिलायें।

(३) रास्नादि क्वाथ (वृ नि र) रास्ना, गिलोय, एरण्डमूल, दारु हल्दी, क्वाथ मे एरण्ड तेल मिला कर पिलायें।

(४) रास्ना द्वादश क्वाथ (ग नि) रास्ना, एरण्डमूल, शतावरी, धमासा, गिलोय, वासा, देवदारु, हरीतकी, सोठ, अतीस, कचूर, मोथा २॥ तोला का क्वाथ।

(५) महारास्नादि क्वाथ (यो र) रास्ना २ भाग, एरण्डमूल, वासा, धमासा, कचूर, सोठ, गोखरु, अमलतास, सौंफ, पुनर्नवा, अश्वगधा, गिलोय, विधारा, शतावरी, वचा, चव्य दोनो कटेरी, बला, देवदारु, सोया, अतीस, पिप्पली, हरड, धनिया, पियावासा १-१ भाग के २॥ तोला के क्वाथ साथ सोठ का चूर्ण या अजमोदादि चूर्ण या अलम्बुषादि चूर्ण देवें। यह आमवात शूलो के अतिरिक्त अर्दित, पक्षाघात कम्परोग आदि मे भी दिया जाता है। पाद कण्टक मे, कटि शूल मे एरण्ड तेल के साथ दें।

(६) अजमोदादि चूर्ण (शा. स.) अजवायन, विडग, सेंधव, देवदारु, चीतामूल, सोया, पिप्पली, मरिच प्रत्येक १। तोला। हरड ६। तोला, विधारा १२॥ तोला, सोठ १२॥ तोला, चूर्ण करें। गर्म जल से दें। ३ माशा, अजमोदादि-वटक (वृ नि. र) उपर्युक्त चूर्ण को आधासेर गुड की चासनी मे मिलाकर १-१ तोला के वटक बनालें।

(७) वैश्वानर चूर्ण (भै र) सेंधव २, अजवायन ५, सोठ ५, हरड १२भाग का चूर्ण बनायें ३-४ माशा मात्रा गर्म जल से।

(८) फल त्रिकादि चूर्ण (यो र) त्रिफला सोठ चारो तुल्य भाग का चूर्ण। मात्रा ३-४ माशा।

(९) पञ्चसमचूर्ण (शा स) हरड, सोठ, पिप्पली, त्रिवृत, काला नमक समभाग का चूर्ण।

(१०) अलम्बुषादि चूर्ण (भा प्र) गोरखमुण्डी १, गोखरु २, हरड, ३, बहेडा ४, आवला ५, सोठ ६, गिलोय ७, त्रिवृत २८ भाग, चूर्ण बनायें। ३-४ माशा गर्म जल से दें।

(११) महायोगराजगुग्गुलु (शा स) सोठ, पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चित्रक, हीग, अजवायन, दोनो जीरे, रेणुका, इन्द्रयव, पाठा, विडग, कुटकी, गजपीपल, सरसो, अतीस, भारगी, वचा, भूर्वा प्रत्येक १ भाग। त्रिफला मिलित इन सबसे दो गुणा (४० भाग), गुग्गुलु सबके तुल्य (६० भाग) वग, रौप्य, नाग, लोह, अभ्रक भस्मे तथा मण्डूर ५-५ भाग मिला कर बडी-बडी गोली बनायें। मात्रा २-३ माशा, रास्नादिक्वाथ के साथ। वात रक्त मे गुडूची क्वाथ से। नेत्र रोगो मे त्रिफला क्वाथ से। पुनर्नवाष्टक क्वाथ से उदर रोगो मे। कुष्ठ रोगो मे मञ्जिष्ठादि से दें।

(१२) वातारि गुग्गुलु (भै. र) एरण्ड तेल मे भुना हुआ त्रिफला ३ भाग, गुग्गुलु १ भाग, गंधक शुद्ध १ भाग कूट कर मिलायें। २-३ माशा मात्रा गर्म जल से।

(१३) सिंहनाद गुग्गुलु (भै र) एरण्ड तैल १ पाव मे गुग्गुलु शुद्ध ५ तोला पकायें। मिल जाने पर त्रिफला क्वाथ १ पाव मिला कर फिर पकायें। अवलेह सा हो जाने पर ठण्डा करके उसमे शुद्ध गधक ५ तोला मिलायें। इसे १-२ माशा मात्रा मे दें। (वातरक्त, श्वास, Appendicitis मे भी उपयोगी है।

(१४) हरीतक्यादि गुग्गुलु (वृ नि. र.) हरड, सोठ, विधारा मूल १-१ भाग। गुग्गुलु ६ भाग। थोड़ा

एरण्ड तेल डाल कर मर्दन करें। मात्रा ३ माशे गर्म जल से।

(१५) खडशुण्ठी अवलेह (यो र) सोठ ६। सेर, घृत २॥ सेर, भून लें। दूध ८ सेर। खाण्ड ३ सेर १० तोला। पकाकर गाढा करें। उसमे त्रिकटु, चतुर्जातक, पिप्पलीमूल, जाविश्री, जायफल, अगर, चोरक, पाषाण भेद, ताम्र, वग, अभ्रक, दोनो लोह की भस्मे, मण्डूर, स्वर्णमाक्षिक प्रत्येक ५-५ तोला मिलायें। भावप्रकाश ने खण्डशुण्ठी अवलेह दिया है। उसमे धातुओ का प्रयोग नहीं है। कल्क द्रव्यो मे से भी केवल त्रिकटु त्रिजातक ये ६ ही हैं।

(१६) पुनर्नवादिचूर्ण (भा प्र) पुनर्नवा गिलोय सोठ सोया विधारा कचूर गोरखमुण्डी का चूर्ण। गरम-जल से ३-४ माशा दें।

(१७) रसोनपिंड (भै र) लशुन ६ सेर लेकर उनकी गोलिया लें। निस्तुष तिल १ पाव लें। हींग, त्रिकटु, दोनो क्षार, पाच लवण, सोया, कूठ, पिप्पलीमूल, चीता मूल, दोनो अजवायन के भेद, धनिया प्रत्येक ५-५ तोला मिलाकर इनके वटक या पिंड बनायें। ६ माशा मात्रा मे दें, शीतल जल से। (औषध मे तिल प्रयोग वर्जित नहीं)।

(१८) सैन्धवादि तैल (भा प्र, भै र.) सोया १ सेर, जल ८ सेर पकाकर २ सेर शेष रखें। एरण्ड तेल सेर १। सैधव, रास्ना, गजपिप्पली, सोया, दोनो अजवायन मर्जक्षार, त्रिकटु, कूठ, सोठ, कालानमक, विडलवण, वचा, मुलैठी, पुष्करमूल, जीरा २॥-२॥ तोला दही का पानी २ सेर, काजी सेर २। तैल साधन करें। इसे पिलायें, कटि, जानु, सधि हृदय आदि के शूलो मे तथा आन्त्र वृद्धि मे इस का प्रयोग करें। पादकण्टक रोग या एडी मे आमवातिक शूल के लिये भी उपयोगी है।

लघु सन्धिवात, वैषम्ययुक्त लघुसन्धिवात, लघु सन्धिशोथ, या लघु सधिशूल, मध्यमायु सन्धिशोथ Rheumatoid Arthritis, (Atrophic Arthritis)

सबसे पहले इस रोग का वर्णन लडन के डा० Garrod (१८५७-१९३७) ने किया। दोनो ओर के हाथ या पाव की अगुलियो की छोटी सन्धियों मे क्षीणता (Degen) के लक्षणो मे युक्त शोथ होकर क्रमश: ऊपर की अन्यान्य सन्धियो मे भी फैल जाने वाला यह एक चिरस्थायी बहु सन्धिशोथ सविवात का रोग है जो शीत देशो के ३०-४० वर्ष की आयु के मध्यम श्रेणी के व्यक्तियो मे विशेषत स्त्रियो मे (१ ३) पाया जाता है। इगलैण्ड मे (१९६१) १७ लाख से अधिक व्यक्ति इस रोग से पीडित पाए गए। इसके कारण के विषय मे कोई निश्चय नही हो पाया, अनुमान किया जाता रहा है कि यदि शारीरिक मानसिक आघातो से या भोजन मे विटामिन्स के अभाव से या शरीर की Endocrine अर्थात् निस्स्रोतस् ग्रन्थियो जैसे Adrenal Cortex आदि की किसी विकृति से सन्धियो के स्नायु तन्तु मे पहले मे ही निर्बलता हुई-हुई हो और इस पर शरीर के किसी रोग ग्रस्त अग जैसे दन्तमूल, गले, नासिका, श्वास स्थान, आत, मूत्र मार्ग, गर्भाशय आदि कही पर पूय विद्यामान हो तो उस Streptococcus Haemolyticus के प्रति इन सन्धियो के तथा शरीर के सारे स्नायुतन्तु (Conne tissue) मे असहनशीलता (Allergy) के उत्पन्न हो जाने से यह रोग होता है। परन्तु अब प्राय इस विचार को माना नही जाता क्योंकि रोगी के सीरम के कुछ असामान्य Globulins पाए जाते हैं जो Auto-antibody Macraglobulins i, ii, iii, iv और v कहाते है। इन सबको Rheumatoid factor कहते हैं। यह फैक्टर रोगी के रक्त मे पाया जाता है जिससे अनुमान है कि यह शरीर मे विद्यमान किसी Antigen के विपरीत उत्पन्न होता है। इस Antigen-Antibody की प्रतिक्रिया अगुलियो की छोटी-छोटी रक्तवाहिनियो मे होती हे जिससे उनके अन्दर की झिल्ली Endothelium सूज जाती हे जिससे Arteritis या Vasculitis होकर यह रोग होता है। अत इसे अपने ही किसी प्रोटीन के प्रति Hypersensitivity से उत्पन्न एक Auto immune रोग ही माना जाता है।

सम्प्राप्ति

हाथो की अगुलियो की ओर से प्रथम (Metacarpophalangeal) तथा द्वितीय (Proximal Interphalangeal) सन्धियो मे धीरे-धीरे एक तकुए के आकार का शोथ दीखने लगता है। सन्धियो मे लालिमा नही दीखती परन्तु रोगी को उनमे दर्द लगता है जो रात को अथवा हिलाने पर विशेष प्रतीत होता है। सवेरे उठने पर ये सूजी हुई सन्धिया स्तब्ध या अकडी हुई लगती है जिससे मुट्ठी एकदम नही खुलती। एक सूजी हुई सन्धि की परीक्षा करने पर पता लगता है कि सन्धि के स्नायुतन्तु के सरेस सदृश पदार्थ (Collagen Substance of Connective Tissue) मे शोथ हुआ है अर्थात् वहा पर रक्त

के अति मात्रा मे सचित होने (Hyperaemia) मे सन्धि कोष (Capsule) मे जल अधिक बढ गया है, पहले सन्धि के आसपास के अवयवो मे शोथ हो गया है और Macrophages, Lymphocytes तथा Polymorphs का सचय अधिक हुआ होता है। इस प्रारम्भिक अवस्था मे यह जोड अच्छा हो सकता है। क्रमश फिर सन्धि के बीच की श्लेष्मकला (Synovial Membrane) अधिक रक्त सचय के कारण ही रक्तवर्ण कुछ स्थूल हुई-हुई तथा कुछ उठे हुए प्रवर्धनो (Villous and Fibrinous Projections or overgrowth) से युक्त दिखाई पडने लगती है अर्थात् उसमे स्रावी और स्थूलता युक्त शोथ होता है। उसमे से होने वाला श्लेष्मस्राव जिसका Mucin ऊपर कहे गए Cement के सदृश एक पदार्थ होता है, अति मात्रा मे उत्पन्न होता है तथा खण्डित हुए Mast Cells के कारण वह स्राव धु धला-सा दीखता है। सन्धि कोष (Capsule) का बाह्यावरण (Fibrous Stratum) भी उसी प्रकार सूजा हुआ स्थूल हुआ-हुआ (Hypertrophied) दीखने लगता है। इस प्रकार इस रोग की इस प्रथम श्लैष्मिक शोथ (Synovitis) की अवस्था मे सन्धि-कोष (Capsule) तथा उसके चारो ओर अवयवो मे शोथ तथा अतिवृद्धि होती है तथा इनके हो जाने से सन्धि देखने मे तकुए के आकार की मोटी दिखाई पडती है तथा रोगी को उसमे वेदना का लक्षण विशेष प्रतीत होता है (इसे Synovitis with effusion की अवस्था कह सकते हैं)। इस अवस्था तक यह रोग ठीक हो सकता है अर्थात् सधि फिर अपनी साधारण अवस्था मे आ सकती है।

इसके बाद यदि यह शोथ सन्धियो मे देर तक बना रहे तो सन्धियो के अन्दर की श्लेष्मकला मे स्नायुतन्तु (Scar Tissue या Granulation) अधिक-अधिक उत्पन्न होता जाता है और बढकर आमने-सामने की तरुणास्थियो के आभ्यन्तर पृष्ठ पर भी यह तन्तु फैलता जाता है। इससे तरुणास्थियो के पृष्ठ कुछ क्षत हुए प्रतीत होने लगते है और क्रमश वे क्षीण होने लगती हैं अर्थात् उनमे Vascular Granulation Tissue आ जाता है और फिर इन क्षत हुई तरुणास्थियो के परस्पर न्यूनाधिक जुड जाने और Granulation Tissue के Fibrosis हो जाने और Ossification (Fibrous Adhesion) हो जाने से सन्धिया निश्चेष्ट (Ankylosed with Fibrosis)हो जाती हैं, एव उनका सन्धिकोप लुप्त हो जाता है तथा सधि का Cartilage Scar-tissue मे बदल जाता है। इसीलिए जीर्ण रोग मे अगुलि सधिया स्तब्ध हो जाती है और हिलाने से वेदनाजनक होती है। अब उनमे शोथ नही रहता है, स्थूलता तो रहती है। इस अवस्था मे सन्धिया फिर अच्छी नही हो सकती, उनमे जो क्षति हो जाती है वह स्थायी होती है। धीरे-धीरे आमने सामने की अस्थियो के सिरो मे भी पोलापन या भगुरता (Osteoporosis या Decalcification) हो जाती है। तरुणास्थिया नष्ट हो जाती है (X-Ray से इसका पता चलता है)। सन्धियो के बाधने वाले स्नायुतन्तु (Ligaments) मोटे एव सकुचित हो जाते है। सधियो के Tendons मे भी Granulation Tissue के आ जाने से दर्द होता है। आसपास की मासपेशिया क्षीण हो जाती हैं तथा लघु (Atrophied) हो जाती है। प्रसारक मासपेशियो मे पहले यह लघुतायुक्त क्षीणता होती है। अत अगुलि सधियो मे सकोच (Flexion) उत्पन्न हो जाता है। अन्त मे दोनो अस्थियो के सिरो के परस्पर जुड जाने (Bony Ankylosis) से अर्थात् Fibrous Adhesion के अन्दर भी Osteoid Tissue के आ जाने और वहा Ossification हो जाने से सधिया स्तब्ध एव असमर्थ हो सकती है। करागुलिया सकुचित ही नही किन्तु Metacarpophalangeal सधियो पर अन्दर Ulna की ओर को मुड-सी जाती है। अगुलियो की स्थिति की यह विषमता इस रोग का प्रधान लक्षण है। सधियो के ऊपर की त्वचा, त्वचा के नीचे का Subcutaneous अवयव, मास, कण्डराये सब Atrophied या लघु हो जाते है। २०% रोगियो मे त्वचा के नीचे ग्रन्थिया Subcutaneous Nodules या Granuloma भी पाए जाते हैं जो अग्रबाहु के पश्चिम पृष्ठ पर होते है।

लक्षण

यह एक व्यापक रोग है जो अस्थियो, पेशियो, कण्डराओ, आवरणो, फुफ्फुसावरण, हृदयावरण आदि सब के स्नायुतन्तु मे होता है तथा अज्ञात रूप मे बहुत धीरे-धीरे बढता है। जब हाथ की अगुलियो विशेषत बीच की दो अगुलियो की Proximal सधियो मे शोथ हो जाता है तब रोगी को इसका पता लगता है। इसके बाद हाथ की Metacarpophalangeal सधियो और फिर कलाई, कोहणी, जानु आदि सधियो मे शोथ होता है। पहले शरीर मे थकावट या श्रम का लक्षण रहता है, शरीर कृश होता जाता प्रतीत होता है, भार घट जाता है। ज्वर भी बहुत दिनो तक न्यूनाधिक रूप मे होता रहता है, शरीर मे पाण्डुता (Hypochromic) रहती है, नाडी गति या हृदयगति तीव्र रहती है, मासपेशियो मे शूल होने की शिकायत

रहती है, हाथ सो जाते और उनमे चमचमाहट (Tingling) रहती है, भूख कम हो जाती है, रक्तभार घटा हुआ रहता है, चित्त विषण्ण या विक्षोभशील रहता है। परन्तु इस रोग का पता तो महीनो या वर्षो वाद तभी चलता है जब अगुलियो की छोटी-छोटी सधियो मे विशेषत अगुलियो की Proximal सधि मे शोथ हो जाता है। तब रोगी की परीक्षा करने पर उसकी हाथ की या हाथ पैरो की अगुलियो की सधियो मे तकुए के आकार का शोथ मिलता है जिसको दवाने व हिलाने मे रोगी को दर्द प्रतीत होता है। आराम करने पर दर्द नही होता। सधि मे शोथ होने तथा आसपास की मासपेशियो के कृश हो जाने से यह शोथ तकुए के आकार का दीखता है जो हल्का सा नर्म तो होता है पीला नही होता —यह उल्लेखनीय है कि अगुली की Terminal सधि मे यह शोथ नही होता। पैरो की अगुलियो और तलुए की अस्थियो के बीच की (Metatarsophalangeal) सन्धियो मे शोथ हो तो उनमे स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है। शोथयुक्त सधि की त्वचा पतली पाण्डुर तथा अर्धपारदर्शक-सी होती है। हाथ तथा पैर के तलुओ पर पसीने मे गीलापन भी रहता है। हाथ-पैर ठण्डे से रहते है। रोगी अपनी मुट्ठी को पूरी तरह बन्द नही कर सकता। ग्रस्त सधियो मे स्तव्धता Stiffness रहती है। प्रात उठने पर स्तव्धता विशेष लगती है। रक्त परीक्षा करने पर जब रोग तीव्र रूप मे हो तो श्वेत कण वृद्धि Polymorph Leucocytosis १२-२० हजार तक का लक्षण रहता है। रक्त मे अलव्यूमिन कुछ घटा हुआ Globulin तथा Fibrinogen कुछ वढे हुए होते है। रोगी के सीरम मे एक तत्त्व होता है जो Sensitised भेड के रक्तकणो को Agglutinate कर देता है अर्थात् Sensitised-Sheep-Cell Test (S S C T) तथा C-reactive protein-test, antiserum के द्वारा पाजिटिव होता है। B S R वढा हुआ (30-40 MM Per hour) होता है, प्रारम्भ मे X-Ray परीक्षा मे सधि प्रदेश तग हुआ दीखता तथा अस्थियो के सिरो मे Osteoporosis मिलता है। रोग के वढने पर सधि मे Osteo arthritis का-सा Skiagram मिलता है।

हाथो मे यह रोग कलाई की सन्धि तथा पैरो मे तलुए और अगुलियो की वीच की सधियो से गुल्फ सधि (Ankle) मे तथा जानु सधि मे आ सकता है। ग्रीवागत पृष्ठवश की सन्धियो, स्कन्ध तथा हनुसन्धि (Temporomandibular) और उरोस्थि तथा हसली की सधि Sternoclavicular मे भी यह रोग हो सकता है। जिस सन्धि मे यह रोग होता है उससे चेष्टा करने पर उसमे वेदना होती है जो रात को अधिक होती है जिसमे नीद भी टूट जाती है। प्रात काल या आराम करने के वाद ग्रस्त सन्धियो मे स्तव्धता विशेष रहती है जो दिन मे ठीक हो जाती है। जानु सन्धिया भी वहुधा ग्रस्त हो जाती है जिसमे उनको सकुचित करते समय वेदना प्रतीत होती है। हनु सन्धि मे शोथ हो तो चवाने मे वेदना होती है। पृष्ठ वशास्थि के निचले भाग मे इस जीर्ण सन्धि रोग (Rheumatoid Spondylitis) के हो जाने मे Sacroiliac सन्धि मे निश्चेष्टता हो जाती है। इस रोग के कारण इसी प्रकार पृष्ठ वशास्थि और पसलियो की सन्धियो मे भी निश्चेष्टता हो जाया करती है। इस रोग से सारी पृष्ठ वशास्थि कठोर हो जाती है (Ankylosis of the spine)। X-Ray द्वारा परीक्षा करने से पृष्ठ वशास्थि के सन्धि प्रदेश तग दीखते है अर्थात् कसेरुओ के वीच की Discs की Annulus fibrosus मे कठोरता या Calcification हो जाती है तथा Intervertebral Ligaments मे भी कठोरता (Calcification) के उत्पन्न हो जाने का लक्षण मिलता है। रोगी को कटि प्रदेश पर वेदना तथा स्तव्धता की प्रतीति विशेषत प्रात उठने पर होती है। देखने से रोगी की कमर स्तव्ध दीखती है। आगे पीछे मुडना या गोलाकार मुडना कठिन होता है। Lateral Spinous Processes पर टकोरने से रोगी को दर्द होता है तथापि वहुत-सों का यह विचार है कि Ankylosing Spondylitis एक विभिन्न रोग है और वह Rheumatoid Arthritis नही है।

जब यह रोग जीर्ण हो जाता है तब ग्रस्त सन्धियो मे सकोच (Flexion) उत्पन्न हो जाता है। अर्थात् अगुलियो, कलाइयो, कोहनियो, जानु आदि ग्रस्त सन्धियो मे स्थायी रूप से सकोच उत्पन्न हो जाता है जिससे उनकी गतिशीलता घट जाती है और रोगी लूल्हा-लगडा-सा तथा शरीर मे कृश हो जाता है।

कभी-कभी तो यह रोग एक वार प्रारम्भ होकर फिर स्वयमेव मोडा खा लेता है और फिर दुवारा नही होता। कभी-कभी ठीक होकर फिर भी होता रहता है और हर वार सधियो को अधिक क्षति पहुचा देता है और कभी जैसे ऊपर वर्णन किया है एक वार होकर फिर यह वढता ही जाता है।

भेद

सन्धिक ज्वर (Rheumatic Fever) से इसका भेद करना सुगम है। क्योकि उसमे तापमान ऊचा रहता

है, उसमे स्वेद आने का लक्षण तथा हृदय के ग्रस्त होने का भय अधिक रहता है तथा उसमे Salicylate से शीघ्र लाभ प्रतीत होने लगता है। इस रोग मे इनमे से कोई लक्षण स्पष्ट रूप मे नही पाया जाता है। Osteo arthritis वडी आयु मे होता, उसमे सधि मे शोथ या उभार का लक्षण नही होता, वह वडे जोडो मे होता, उसमे सधि-वैषम्य और Ankylosis के लक्षण नही होते।

साध्यासाध्य

नवयुवावस्था या मध्यमायु से पहले होने वाला यह एक दीर्घ रोग है। यदि प्रारम्भ मे ही इसकी उचित चिकित्सा कर ली जाय और रोगी के शरीर व मन को वलवान् वनाने का हर उपाय किया जाय तो इस रोग के वेग को रोका जा सकता है। रोगी का स्वास्थ्य गिरता जाय तो यह रोग ठीक होकर फिर हो सकता है। अनुमान से कहा जा सकता है कि एक वार रोग होने पर १०-२५ प्र०श० रोगी इससे अच्छे हो जाते है, ३५ प्र०श० मे रोग का वेग रुक जाता है, शेष ५० प्र०श० मे यह रोग एक वार होकर वढता ही जाता है। अत्यधिक असमर्थता १० प्र०श० रोगियो मे ही होती है।

लघु सन्धि वात (Rheumatoid Arthritis) की चिकित्सा

विश्राम चिकित्सा

शारीरिक तथा मानसिक थकावट से यह रोग वढता है। इसलिये रोगी को मानसिक विक्षोभो से वचाना चाहिए। शारीरिक विश्राम से भी इस रोग मे विशेष लाभ होता है। अत रोगी को २-४ सप्ताह के लिए विस्तरे पर पडे रहकर पूर्ण विश्राम करना चाहिए। मलमूत्र विसर्जन तथा मुख आदि के धोने के सिवाय उसे विस्तरे से उठना नही चाहिए। रोग ग्रस्त सन्धियो को भी पूर्ण विश्राम (Immobilization) देने के लिए उन्हे भी २-४ सप्ताह के लिए पेरिस प्लास्टर से वनी Splints वाधकर रखना चाहिए। उन्हे इस प्रकार विश्राम मिलने से उनकी अस्थियो के सिरे परस्पर नही जुडते और सन्धिया सचेष्ट वनी रहती है। २-३ सप्ताह वाद Splints को दिन मे खोल दें परन्तु प्रत्येक रात्रि को वाध देवे। इस प्रकार कुछ सप्ताह रात को उन्हे पूर्ण विश्राम मे रखने से भी उनमे क्षीणता की प्रक्रिया वढती नही। २-३ सप्ताह वाद उसे अपने शारीरिक श्रम को बहुत धीरे-धीरे बढाना चाहिए। इस प्रकार कम से कम ३-४ मास के लिए विश्राम करने से रोग के वेग को रोका जा सकता और शरीर के स्वास्थ्य को उत्तम वनाया जा सकता है। गुल्फ गोडे आदि जोडो मे यह रोग हो तो इस विश्राम चिकित्सा की उपयोगिता और वढ जाती है।

इस विश्राम चिकित्सा के वाद भी रोगी को कम से कम १० घटे विस्तर पर तथा दिन मे भोजन के वाद १ घटे तक के लिए विस्तर पर पडे हुए आराम लेते रहना चाहिए। इस विश्राम से अगुलि सधियो के शोथ और वेदना के लक्षण जव शान्त हो जाते है तव हाथो और उसकी अगुलियो को हिलाने-डुलाने से हानि नही, प्रत्युत लाभ ही होता है अर्थात् विश्राम के समान व्यायाम चिकित्सा से भी इन सधियो के मास की शक्ति वढती है। चौवीस घटे दिनो तक विश्राम करने से पीठ और टागो की मासपेशिया शुष्क हो जाती है और सधियो मे Ankylosis की प्रवृत्ति वढती है। अत लेटकर या सीधे खडे होकर किये जाने वाले आसनो के कुछ देर रोज करने से रोगी को आराम मालूम होता है। इस प्रकार कुछ दिन के विश्राम के बाद विश्राम और व्यायाम दोनो के करने से इस रोग मे आराम प्रतीत होता है। रोज गर्म पानी से स्नान करके शरीर को तौलिये से भली प्रकार पूछना तथा मलना चाहिये। विपरीत स्नान (Contrast Bath) अर्थात् हाथो को पहले गर्म (१०५-११० फा०) जल मे १½ मि० के लगभग रख कर फिर शीतल जल (६० फा०) मे ½ मि० के लगभग रखे और, इस प्रकार दिन मे १ वार २०-३० मिनट तक विपरीत स्नान कराये। इससे सन्धियो मे रक्तसचार की वृद्धि होती है। स्वेदन से अर्थात् गर्म जल मे हाथ पाव के सेकने Infra red rays, short wave therapy से भी हाथ पाव की छोटी मासपेशियो का स्तम्भ तथा शूल हटता है।

रोगी मे अशक्ति और निर्वलता विशेष होती है, अत उसे भोजन पर्याप्त और प्रोटीन प्रधान मिलना चाहिए। परन्तु साथ ही उसकी पाचकाग्नि मन्द होती और प्राय उसे अजीर्ण की शिकायत रहती है अत भोजन अति सुपच होना चाहिए तथा विटामिनयुक्त भी होना चाहिए। अत दूध सब्जिया व फलरस जैसे टमाटर, सन्तरे, मौसमी, गाजर, मूली आदि किसी का रस उसे प्रतिदिन पर्याप्त मात्रा मे मिलना चाहिए। भोजन की मात्रा या Calories का हिसाव रोगी के भार के अनुसार करना चाहिए। साधारणत २-२½ हजार केलोरीज का भोजन होना चाहिए। Insulin के द्वारा यह खपाया जा सकता है। यद्यपि किसी विटामिन विशेष से इस रोग मे कोई खास फायदा होते नही देखा गया तो भी रोगी की साधारण प्रतिरोधक शक्ति को वढाने के लिए उसे Multivitamin का प्रयोग देना ठीक ही है। विटामिन

"डी" को दैनिक ५० हजार यूनिट्स से २ लाख यूनिट् मात्रा मे बाटकर कुछ काल देने मे इस रोग मे विशेष लाभ होता है ऐसा कुछ एक का मत है। परन्तु दूसरे परीक्षक लोग ऐसे भी है जो इसे स्वीकार नही करते। प्राय इस रोग का रोगी विपरीत स्थितियो मे रहता है जहा उसे चिन्ता, क्रोध या किन्ही किसी प्रकार के विरोध के वायुमण्डल मे रहना पडता है। अत उसे इस प्रकार के वातावरण से मुक्त करना भी आवश्यक है तथा उसे प्रेरणा देनी चाहिए कि हर हालत मे वह अपने को शान्त और प्रसन्न रखने का यत्न करे। यदि वह दु खी और निराश हो तो उसे आशावादी बनाने का यत्न करना चाहिए।

रोगी को मलबन्ध रहता हो तो उसे कोई मृदु विरेचन औषधि भी मिलनी चाहिए या प्रति सप्ताह उसे Isotonic Saline के द्वारा एक बार वस्ति ले लेनी चाहिए।

यदि शरीर मे कही पर पूयभाव हो, उदाहरणत दन्त-मूल मे Tonsil या शरीर के किसी दूसरे अग मे चिरस्थायी शोथ या पूयभाव हो उसके दूर करने का उपाय भी करना चाहिए। उसके लिए Penicillin आदि Antibiotic औषधियो का प्रयोग भी किया जा सकता है।

औषध चिकित्सा

सन्धियो की वेदना को दूर करने के लिए —

(१) Aspirin—को ५-१० ग्रेन मात्रा मे प्रति २-४ घटे बाद देना चाहिए (१-१½ ड्राम दैनिक मात्रा)। यह आमाशय के लिए क्षोभक होती है अत दूध, चाय आदि के साथ या भोजन के बाद देना चाहिए। जो व्यक्ति किसी Anticoagulant औषध का सेवन करता हो उसे भी यह औषधि नही देनी चाहिए क्योकि इससे भी Prothrombin Time कुछ दीर्घ होता है। स्पष्ट है इसीलिए यकृद्रोग मे भी इसका प्रयोग नही करना चाहिए। घुलनशील Aspirin (Dispirin) अधिक उपयोगी रहती है। इससे दर्द को पूर्णतया आराम न मिले तो दिन मे १ वार Tablet Codeine Co भी देनी चाहिए। पर Codeine की ½ ग्रेन मात्रा भी मलबन्धक तो होती है। इतनी Aspirin अनुकूल न हो तो Phenacetin को १५-२० दैनिक मात्रा मे देकर उसकी मात्रा कुछ कम कर देनी चाहिए। अथवा दूसरी Analgesic औषधिया जैसे Darvon को ६० मिलि० मात्रा मे Aspirin या Phenacitin के साथ दिन मे ४ वार दे सकते है या Sodium Salicylate को १०-१५ ग्रेन मात्रा मे दिन मे ४ वार दे सकते है। Aspirin अनुकूल न हो तो Paracetamol (Panadol) का १५ ग्रेन मात्रा मे प्रयोग दिन मे चार वार किया जा सकता है। निद्रा ठीक न हो तो Amytal को १०० मिलि० मात्रा मे दे।

(२) Phenylbutazone (Butazolidin) भी जिसका पहले प्रयोग १९५१ मे हुआ एक उत्तम वेदना-शामक औषधि है, विशेषत चिरस्थायी वेदना मे ठीक है। परन्तु बडी मात्रा मे देर तक लेने से अजीर्ण Gastric-ulcer पाण्डुता, शोथ (Oedema) त्वचा पर चकत्तो का कारण हो जाती है। साथ ही हृदय रोग, रक्तभार वृद्धि, यकृद्रोग, वृक्क रोग, Drug-allergy आदि मे इसका देना ठीक नही रहता। इसके देने से सोडियम और जल अन्दर अधिक रुकते है। अत इसे देना हो तो १००-१५० मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ बार ३ दिन तक देकर उसके बाद इसे दिन मे केवल १ बार ही २-४ सप्ताह तक देना चाहिए। इसकी परम दैनिक मात्रा ५००-६०० मिलि० है। उसके बाद ३ सप्ताह के लिए इसे बन्द करके फिर इसे इसी तरह २-४ सप्ताह के लिए दिया जा सकता है। इसे Amidopyrine के साथ (Irgapyrine) भी दिया जाता है (२५० मिलि० ३ बार दैनिक) Oxyphenbutazone (Tenderil) १०० मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ बार देने से भी आराम आता है। शरीर मे विद्यमान पाण्डुता के लिए Ferrous Sulph ३ ग्रेन मात्रा मे दिन मे ३ बार देना चाहिये। Indomethacin (Indocid १९६५) एक उत्तम-शोथ शामक औषध है इसकी १५ मिलि० केपस्यूल के दिन मे २ वार देने से इस रोग मे बडा लाभ प्रतीत होता है। यह औषध इस रोग मे Ankylosing Spondylitis तथा Gout मे बडी उपयोगी है। तीन चार दिन बाद इसे दिन मे तीन वार दे सकते है। आमाशय प्रदेश पर दर्द अरुचि, वमन आदि दुर्लक्षण इससे हो सकते है। अत Gastric-ulcer मे इसे न दे।

(३) Corticosteroids उपर्युक्त विश्राम चिकित्सा तथा वेदना शामक (Analgesic) औषधियो तथा बलवर्धक चिकित्सा और आहार से लाभ न हो तो इन औषधियो का प्रयोग करना चाहिए। ये लक्षणो

को तुरन्त शान्त करती है, परन्तु रोगनिवारक नही है, साथ ही महगी और उपद्रव-जनक भी हैं। इन औषधियो के Collagen tissue के अन्दर जीवाणु सक्रमण या Hypersensitivity या किसी Antigen के कारण उत्पन्न हुए शोथ के शीघ्र शामक होने से क्योकि एक दम लाभ प्रतीत होता है, रोगी उनका इतना कायल हो जाता है कि वह इन्हे छोड नही सकता जिससे इनके दुष्प्रभाव पडने की अधिक सम्भावना रहती है। इनके कारण जहा रक्तवाहिनियो के अन्दर की झिल्ली मे हुआ शोथ तुरन्त शान्त होता है, शरीर मे Sodium की अधिक मात्रा भी रुकने लगती है जिससे श्वयथु (Oedema) हो सकता है। इनसे Potassium तथा Calcium की निकासी भी बढ जाती है। मन मे विषाद या विक्षोभ-शीलता का भाव बढ जाता है। इनसे फैट, प्रोटीन, स्टार्च सब का पचन (Metabolism) तीव्र हो जाता है (Hyperglycaemia, Glycouria हो सकते है)। इसलिये रक्तभार वृद्धि, मधुमेह, आमाशय व्रण का रोग, हृदय रोग, वृक्करोग, यकृत् रोग हो तो इनका प्रयोग नही करना चाहिए।

इनका प्रयोग तीव्र रूप के रोग मे ही जब उपर्युक्त चिकित्साओ से लाभ न हो तभी करना चाहिए। जीर्ण रोग मे इनके प्रयोग से कोई लाभ नही हो सकता। इन औषधियो मे से इस समय Prednisone या Prednisolone का ५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार भोजन के बाद या दूध के साथ प्रयोग किया जा सकता है, भोजन के बाद देने या Enteric coated गोलियो के देने से इससे पेट सम्बन्धी विकार नही होते। लक्षणो के शान्त होने के साथ-साथ क्रमश इनकी मात्रा मे १-२ सप्ताह के अन्तर से प्रत्येक मात्रा मे ½ मिलिग्राम की कमी करते जाना चाहिये और फिर केवल इनकी एक छोटी मात्रा रात को ही देनी चाहिये। इस प्रकार क्रमश इस औषधि को समाप्त करना चाहिए। अन्यथा सहसा इस औषधि को बन्द कर देने पर रोग फिर सहसा फूट पडता है या Adrenal Exhaustion (निर्बलता, अशक्ति, रक्तभारहीनता, अरुचि, मानसिक रोग) के लक्षणो के होने का भय रहता है। रोग मृदु रूप मे हो तो इनकी १ मात्रा रात को देना ही पर्याप्त है। Triamcinolone (Kenakort Squibb Ledercort) या Dexamethasone (Decadron या Millicorten Ciba) या Betamethasone को देना हो तो इन्हे पहले क्रमश ४ तथा ५, ५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार १ सप्ताह तक देना चाहिये और फिर क्रमश इनकी मात्रा भी कम करते जाना चाहिये। (इनके चिरकाल प्रयोग से Osteoporosis की आशका रहती है) इन औषधियो के प्रयोग के साथ-साथ Aspirin का उचित मात्रा मे तथा Ascorbic Acid (५० मिलि०) का प्रतिदिन प्रयोग करना चाहिए। Corticotrophin या ACTH के २० यूनिट के प्रतिदिन इ जेक्शन से Adrenal ग्रन्थि की उत्तेजना होकर भी यह रोग ठीक हो जाता है। जो Steroids को मुख द्वारा सहन नही करते उनके लिये उपयोगी है।

(४) सुवर्ण, Gold Salts —Sodium Aurothiomalate (Myochrisin) Gold Sodium thiosulphate (Sanochrysin) Gold Thioglucose, Gold Sulphate को पहले १०, फिर २७, फिर ५० मिलि० मात्रा मे और फिर आगे इसे ५० मिलि० मात्रा मे ही एक-एक सप्ताह बाद मास के द्वारा दिया जाता है, और यदि इन ४ इ जेक्शन से लाभ प्रतीत हो तो फिर इसे ५० मिलि० मात्रा मे २-२ सप्ताह बाद ६-१२ वार दे दिया जाता है। इससे लाभ ही लगे तो ३-३ सप्ताह बाद कुछ मास तक दे दिया जाता है। इस प्रकार एक कोर्स मे इसे १ ग्राम तक ही दिया जा सकता है। इसी प्रकार Sodium Aurothio Sulphate को पहले ५, फिर १५, फिर २० मिलि० मात्रा मे इसी क्रम से बढाते हुए ५० मिलि० मात्रा मे दे सकते है। इस कोर्स के बाद या तो मास मे १ वार ५० मिलि० मात्रा कई मास देते रहे या २-६ महीने का अन्तर देकर आवश्यकता हो तो इस सुवर्ण औषधि का दूसरा कोर्स शुरु किया जा सकता है। इसके बन्द करने के एक वर्ष बाद तक भी रोगी मे आराम पाया गया है। इसका तीव्र रोग की अवस्था मे या रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे ही प्रयोग करना लाभदायक है। इसके दुष्प्रभाव अर्थात् त्वक्शोथ (Dermatitis), वृक्क-शोथ (Albuminuria, Nephritis) यकृद्रोग अर्थात् कामला, मुखशोथ (Stomatitis), तथा

रक्त पर दुष्प्रभाव होकर रक्तपित्त (Purpura, Blood Platelets की कमी) या तीव्र पाण्डु (Aplastic-Anaemia, Agranulocytosis) आदि हो सकते है। क्योकि ये तीव्र उपद्रव है इसलिए बहुत से परीक्षक Gold Salt के विरोधी है। परन्तु कुछ एक परीक्षक उसके प्रशंसक भी है। इसलिए इसके देने मे बडी सावधानता वर्तनी चाहिए। जब रोगी के लक्षण शान्त हो जाए और Blood Sedimentation Rate भी नार्मल हो जाए तो इस औषधि को स्वल्प मात्रा मे तथा ३-४ सप्ताह के अन्तर से देना चाहिए। रोगी के मूत्र की परीक्षा प्रारम्भ से ही करते रहना चाहिए। यदि मूत्र मे अल्ब्यूमिन हो या रक्त हो तो इसका प्रयोग नही करना चाहिए। २-२ सप्ताहो मे रक्त मे श्वेत कणो W B C (White Blood Corpuscles) रक्त रजक द्रव्य (Haemoglobin) तथा Differential Count की परीक्षा करते रहना चाहिए। इसके इंजेक्शन के दौरान मे रोगी को धूप मे नही जाना चाहिए। यदि उपर्युक्त कोई दुष्प्रभाव प्रकट हो तो औषधि को कुछ समय के लिए बन्द रखना चाहिए। दुर्लक्षण प्रकट हो तो Cortico Steroids के प्रयोग से वे शान्त हो जाते हैं। बहुत जरूरी हो तो Dimercaprol B A L (British Anti Lewisite) को ३ मिलि० प्रति किलो भार मात्रा मे प्रति छ घण्टे पर ३ दिन मास द्वारा देना चाहिए। Agranulocytosis का लक्षण हो तो Penicillin का पूर्ण मात्रा मे प्रयोग करे।

(५) विषम ज्वर विरोधी (Antimalarial) औषधिया Choroquine Phosphate या Sulphate या Hydroxychloroquine (Plaquenil) को क्रमश २५० मिलि० तथा २०० मिलि० मात्रा मे दिन में १ या २ बार महीनो तक देते रहने से इस रोग मे पर्याप्त लाभ प्रतीत होता है जो १ महीने के बाद मालूम होने लगता है। परन्तु इसके बाद रोग के ठीक हो जाने पर फिर भी यह रोग दुबारा हो सकता है। सुवर्ण के समान इस औषधि के विषय मे भी यह नही कहा जा सकता है कि इसमे क्यो और कैसे लाभ होता है। इस औषधि से ऐसे दुष्प्रभाव जैसे शिरोभ्रम, शिरशूल, आलस्य, कण्डू, अरुचि, अजीर्ण, त्वक्शोथ (Dermatitis), दृष्टि मे धुंधलापन आदि हो सकते है। इनके होने पर औषधि की मात्रा कम कर देनी चाहिए।

चिरस्थायी बृहत् सन्धिशोथ, बृहत् सधिवात, वार्धक्य सुलभ सन्धिशोथ या सधिवात, क्षीणता प्रधान सन्धिशोथ Osteo Arthritis, Degenerative Arthritis, Senescent Arthritis

कारण

आयु के बढने के साथ-साथ जैसे अन्य अगो मे क्षीणता होती है वैसे ही सन्धियो मे भी क्षीणता होती है, अर्थात् उनकी तरुणास्थियो और अस्थियो के सिरो मे तथा उनके बीच की श्लेष्मकला (Cynovial Membrane) मे क्षीणतासूचक लक्षण होते जाते है। परन्तु किसी-किसी वृद्ध व्यक्ति की अनेक सन्धियो या किसी एक सन्धि मे क्षीणता की यह प्रक्रिया विशेष रूप मे होती है। जब यह प्रक्रिया किन्ही एक दो सन्धियो मे प्रकट होती है तो प्राय जानुओ, वक्षण सन्धियो, पृष्ठवशास्थि सन्धियो तथा अंगुष्ठ मूल की Carpometacarpal सन्धि मे या अन्तिम अगुलि सधियो Terminal Phalangeal Joints मे या कभी-कभी कन्धे की सधि तथा Sacro-Iliac सधि और पैर के अंगूठे की बडी सधि मे यह रोग हुआ करता है। ५०-६० वर्ष के व्यक्तियो विशेषत. पुरुषो की जिस सन्धि पर अनुचित कार्य-भार पडता रहता है या जिस पर किसी प्रकार का आघात अधिक लगता रहता है इसलिये जिसमे वृद्धि और क्षति (Wear and Tear) इन दोनो मे से क्षति की प्रक्रिया अधिक हो जाती है उसमे यह रोग प्रकट हो जाता है। नाना प्रकार के कार्यो के करने वाले व्यक्तियो के किसी सन्धि विशेष पर अनुचित कार्य भार पडना स्वाभाविक है। सम्भव है धमनीकाठिन्य (Arteriosclerosis) के कारण वहा पहुचने वाले रक्त की मात्रा मे कुछ कमी आ जाती है (Ischaemia) या किसी प्रकार की दुर्घटना से जिस सन्धि को भारी झटका या आघात लगा होता है उसमे क्षीणता की यह प्रक्रिया प्रबलता से होती है। स्थूल काय व्यक्ति का अपने जानुओ पर अत्यधिक बोझ पडते रहने से उनमे यह रोग हो सकता है। यह एक सुलभ रोग है। इंगलैंड मे १९६१ मे ३७ लाख व्यक्ति इस रोग से ग्रस्त पाये गये।

सम्प्राप्ति

सबसे प्रथम सन्धिगत तरुणास्थियो के प्रबलता के साथ परस्पर रगडते रहने से उनका पृष्ठ मुलायम हो जाता है

अर्थात् उनमे Chondromalacia (Soft cartilage) हो जाता हे। उनके सिरो या प्रान्त भागो मे कुछ ओष्ठ समान प्रवर्धन (Spurs) वन जाते हैं। इस प्रकार उनके Chondroitin Sulphate के क्षीण हो जाने से तरुणास्थियां तो क्रमश क्षीण होती हे और उनके किनारे Osteoblasts नामक सेलो के द्वारा Hypertrophied होकर तथा Calcified होकर अस्थि प्रवर्धनो के रूपो मे परिणत हो जाते ह जिन्हे Osteophytes या Bone-lipping कहा जाता है। वीच की तरुणास्थियो के क्रमश क्षीण होते जाने से अस्थियो के आमने-सामने के सिरे परस्पर निकट आ जाते है और परस्पर सघर्ष के कारण आकार मे वडे (Hypertrophy के कारण) चिकने, कठोर और हाथी दात की तरह ठोस (Eburnated या Sclerosed) हो जाते है। इस प्रकार तरुणास्थियो तथा अस्थियो के सिरो दोनो मे क्षीणता की प्रतिक्रिया जारी रहती है। सन्धिगत सन्धिवधनियो (Ligaments) मे भी इसी प्रकार कठोरता (Sclerosis) की प्रक्रिया जारी रहती है। सन्धि के वीच विद्यमान सधि कोष (Capsule) पहले तो ठीक ही रहता है परन्तु वाद मे अस्थियो के सघर्ष के कारण उसकी श्लेष्म कला (Synovial Membrane) भी मोटी और कठोर (Fibrosed) होने लगती है। उसके अ कुर (Villi) आकार मे वडे-वडे हो जाते है और उनमे कैल्सियम के वैठ जाने से कठोर भी हो जाते है। इस सन्धि कोप के वने रहने के कारण रोग ग्रस्त सन्धि मे निश्चेष्टता (Ankylosis) का लक्षण नही होता है। इस रोग मे सन्धि मे शोथ, लालिमा, सन्धि कोप मे द्रव सचय, आदि कुछ नही होता केवल क्षीणता होती है।

लक्षण

इस रोग मे सन्धि के अन्दर शोथ नही होता परन्तु क्षीणता होती है जो वहुत धीरे-धीरे अज्ञात रूप मे वढती है। पहले रोगी को एक सन्धि मे जैसे जानु या वक्षण सन्धि मे स्तव्धता (Stiffness) का लक्षण प्रतीत होने लगता हे जो वैठकर उठते समय तथा चलते फिरते या सन्धि को हिलाते समय विशेप प्रतीत होता है। परन्तु तो भी कुछ देर चलने पर यह स्तव्धता कम लगने लगती है, विस्तरे पर पडे रहने के वाद उठने पर जोड स्तव्ध लगता है, पर चलने पर यह स्तव्धता ठीक हो जाती है। फिर कुछ काल वाद उस सन्धि मे कुछ दर्द भी लगातार रहने लगता है जो चलने फिरने से तथा शीत लगने से वढ जाता है, जोड के आस-पास होता है या Nerve Roots के द्वारा दूर तक भी जाता है पर आराम से ठीक हो जाता है। जानुओ मे रोग हो तो चलने फिरने से दर्द वढता हे, कभी-कभी तो आगे चलना कठिन हो जाता है। सीढियाँ चढने की अपेक्षा सीढियो से उतरने पर अधिक लगता है। दर्द हल्का भी हो सकता और तीव्र शूल के रूप मे भी हो सकता है। जव एक वक्षण सन्धि मे यह रोग होता है तव उसका चेष्टा क्षेत्र कम हो जाता है, रोगी लगडा कर चलने लगता है, अपने शरीर के वोझ को स्वस्थ वक्षण की ओर रखता हे। इसकी दर्द रोगी को आगे Anterior Crural Nerve या पीछे Sciatic Nerve की ओर प्रतीत होती है। इस प्रकार वक्षण सन्धि मे या कटि प्रदेशीय कशेरुओ मे यह रोग हो तो Sciatica इसका एक लक्षण हो सकता है वक्षण सन्धि के रोग मे उधर की टाग को वाहर की तरफ उठाना (Abduct करना) या उस टाग को वाहर की ओर विवर्तित (Rotate) करना कठिन होता है। कुर्सी पर वैठे हुए एक जाघ को दूसरी जाघ पर रखना भी कठिन होता है। इसी प्रकार जमीन पर टिके पाव के तस्मे को वाधने मे रोगी को कठिनता प्रतीत होती है। रोग के शोथ जनित न होने से Sedimentation Rate वढा हुआ नही होता। सधिगत Cartilage के क्षीण हो जाने से X-Ray परीक्षा से दोनो अस्थियो के वीच का सन्धि प्रदेश का अवकाश तग हुआ दीखता है, सधिगत अस्थियो के किनारे तीखे हुए-हुए दीखते है, तथा अस्थि प्रवर्धन या Osteophytes दिखाई पडते है। रुग्ण सधि मे रोगी को रगड की आवाज भी अनुभव होती है।

Osteoarthritis of the Spine—पृष्ठवश मे ग्रीवागत (c-५-६ तथा c-६-७ के वीच के) कशेरुओ के विशेपत तथा कटिगत कशेरुओ (L-३-५ Vertebrae) की सन्धियो मे यह रोग हुआ करता है जिसे Osteoarthritic Spondylitis या Spondylosis या वृद्धावस्था सुलभ पृष्ठ-वश-सधि शोथ कहते है। इससे Spine की गतिशीलता घट जाती है, कमर के हिलाने पर दर्द भी होता है। कशेरुओ के वीच की टिकियो (Discs) के अस्थि रूप मे क्षीण हो जाने (Ossified हो जाने) तथा उनके खिसक जाने या Protrusion से तथा कशेरुओ के Bodies मे Osteophytes के उत्पन्न हो जाने से कशेरुओ के मध्य के छिद्र Intervertebral Foramen तथा सुपुम्ना काण्ड (Spinal Canal) के स्रोत तग हो जाते हैं। ग्रीवा मे ये छिद्र पहले ही तग होते है जिससे वहा Spinal Roots के दव जाने (Radiculitis) का लक्षण हो जाता हे। इसलिये इस रोग मे ग्रीवागत पृष्ठ वश मे स्तव्धता के लक्षण के अतिरिक्त ग्रीवा की Spinal Roots (विशेपत ६-७ Cervical Roots) के दव जाने से और उन्हे रक्त कम मिलने से ग्रीवा, कन्धे और वाहु मे विशेपत अग्रवाहु

और हाथ के बाहर की ओर दर्द (Neuritis) या Paraesthesia का लक्षण हो जाता है तथा बाहु की मासपेशिया कृश हो सकती है। यदि इस रोग के कारण सुषुम्ना काण्ड (Spinal Cord) पर कुछ दबाव पड़ जाए तो Upper Motor Neurones पर दबाव पड़ जाने से टागों मे ऊरुस्तम्भ (Paraplegia) का लक्षण हो सकता है।

Lumber Osteo arthritis—मे कमर मे दर्द होता तथा Sciatica का रोग होता है L-४ Disc मे रोग हो तो L-५ Root दब जाती है जिससे दर्द ऊर्ध्व तथा अधोजघा के बाहर-बाहर से होकर पाद पृष्ठ पर अगूठे तक जाता है। उस पृष्ठ पर स्पर्श सज्ञा मन्द होती है। रोग L-५ Disc मे हो तो S-१ Root दबती है तब दर्द टाग के पीछे-पीछे से पाव के बाह्य पृष्ठ मे जाता है। X-Ray परीक्षा करने पर कटिसधियो—Sacro iliac सधियो मे Sclerosis मिलता तथा Ant और Lateral Spinal ligaments मे Calcification का लक्षण मिलता है। Vertebral bodies मे Osteophytes दिखाई पड़ते हैं। बीच-बीच का अन्तर तग हुआ-हुआ दीखता है क्योंकि कशेरुओं की सधि मे Synovitis होकर यह रोग होता है। कई लोग इस Ankylosing Spondylitis को ऊपर कहे गये रोग (Rheumatoid) का भेद मानते है। पर एक तो यह रोग पुरुषो मे होता तथा बड़ी आयु मे होता है इसलिये हमने इसे Osteoathritis का भेद कहा है।

रोगी की परीक्षा करने पर वह साधारणतया स्वस्थ प्रतीत होता है जिससे पता लगता है कि यह रोग स्थानिक रोग है। Rheumatoid Arthritis के समान व्यापक रोग नही है। सन्धि को देखने से उसमे स्थूलता कुछ विशेष नही होती, लालिमा, गर्मी आदि का लक्षण भी नही होता। आयु बड़ी हो, सधि पर चोट लगने का इतिवृत्त हो, श्रम से दर्द होता हो, विश्राम से आराम आ जाता हो तो इसी रोग का सन्देह करना चाहिये। एक बार होकर यह सन्धि रोग या तो थोड़ा-थोड़ा बना ही रहता है या उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है पर अति मन्द गति से बढ़ता है। यह रोग गोडे म हो, कूल्हे मे हो या ग्रीवागत पृष्ठवश मे हो, रोगी की गतिशीलता काफी कम हो जाती है। चिकित्सा से रोग को ठीक नही किया जा सकता। केवल रोग की गति को मन्द किया जा सकता है।

चिकित्सा

शरीर की स्थूलता को कम करना इस रोग की [illegible] चिकित्सा है। एक घण्टा के भ्रमण से २०० कैलोरी खर्च हो जाती है अतः [illegible] जितना भ्रमण हो सके करना चाहिए। साथ ही Dieting भी करना चाहिए अर्थात् भोजन की कैलोरी कम करनी चाहिये। अधिक कैलोरी वाले भोजन जैसे शक्कर आदि का सेवन बहुत कम कर देना चाहिये। १००० या १२०० कैलोरी का दैनिक भोजन ही इसके लिए पर्याप्त समझना चाहिये। अथवा सप्ताह में १ दिन पूर्ण उपवास कर लेना चाहिये, केवल चाय काफी पर ही रह जाना चाहिए।

अधिक विश्राम की चिकित्सा—क्षीण हो रही सन्धि को विश्राम देने से रोग की प्रगति रुक जाती है। रात के विश्राम के अतिरिक्त दिन में भी घोंटू या कूल्हे के जोड़ को आराम देने के लिए १-२ घंटे आराम से लेट जाना चाहिये। इस प्रकार ग्रस्त सन्धि को विश्राम देते रहने का ध्यान रखना चाहिये। चलने फिरने के समय भी ऊंची-नीची या ऊबड़-खाबड़ जमीन पर सम्भल के चलना या सीढ़िया पर सम्भल के चढ़ना चाहिये ताकि उस रुग्ण सन्धि पर आघात न पहुँचे। लगातार ½, १ घंटे से अधिक काल के लिये उस जोड़ से काम नहीं लेना चाहिये, अर्थात् चलना पड़े तो इस समय से अधिक एक साथ न चलें। इतना समय हो जाने के बाद उस जोड़ को कुछ काल विश्राम दे देना चाहिये। शरीर भारी हो और उसका बोझ गोडे आदि पर पड़ता हो तो एक साथ आधे घंटे से अधिक नही चलना चाहिये। बीच मे विश्राम लेना चाहिये। परन्तु लगातार घंटो तक बैठे रहने या पड़े रहने से भी रोग ग्रस्त सधि अकड़ जाती या स्तब्ध हो जाती है। इसी लिये प्रति आधे पौने घंटे बाद उस सधि को जरा हिला लिया जाय तो घंटों बैठे रहने पर भी वह स्तब्ध नहीं होती। इस प्रकार इस रोग मे अति श्रम से तो सधि रोग बढ़ता ही है, पर अति विश्राम करने पर भी उस सधि को कभी-कभी बीच मे हिला लेना अर्थात् गोडे मे रोग हो तो खड़े होकर पाच-सात कदम चल लेना पृष्ठ वशास्थि मे रोग हो तो कमर को कभी-कभी सीधा कर लेना, रोग के लिये हितकर रहता है। जिनका बैठे रहने का काम है उन्हे रोग ग्रस्त जोड़ को दिन मे कई बार पूर्णतया सचेष्ट करते रहना चाहिये। परन्तु उन पर अधिक कार्य भार डालना सदा ही हानिकारक होता है। इस प्रकार व्यायाम तथा विश्राम का कितना-कितना मिश्रण उसके लिये ठीक रहता है इस बात का निर्णय रोगी को स्वय करके वैसा ही करना चाहिए। शरीर भारी हो और उसका बोझ गोडे आदि पर पड़ता हो तो भोजन की मात्रा कम करके बोझ को घटाना चाहिए। पर बहुधा रोगी का चलना फिरना तो बन्द हो जाता है पर उसकी खुराक घटती नही जिससे

उसका बोझ बढ जाता है। अत खुराक में कमी कर देना आवश्यक हो जाता है।

स्वेदन

रोग ग्रस्त सन्धि पर स्वेदन देने या सेकने विशेषत गीले सेक के देने से भी सन्धि के आसपास के अवयवो की रक्तवाहिनियो मे रक्त की वृद्धि हो जाती है जिससे सधि शूल को आराम मिलता है क्योकि सरदी लगने से दर्द की प्रतीति जल्दी होती है अर्थात् Pain threshhold नीचा हो जाता है। अत स्वेदन से शूल स्तभ और शोथ शान्त होते हैं। सेकने के साथ ग्रस्त सधि की हलकी व्यायाम से भी लाभ रहता है उदाहरणत जितना हो सके उतना पद्मासन लगाने का यत्न करना चाहिये। हलकी मालिश और हलके व्यायाम से तथा जल मे तैरने से इस सधि रोग को आराम आने लगता है। गर्म बोतल, गर्मजल मे भिगोकर निचोडे कपडे Kaolin पोल्टीस, बिजली के लैम्प या हीटर या Electric Heating Pad से या गर्म गीले कपडे से या Infra red Rays या Diathermy या Short Wave Theropy या Deep X Rays किसी के द्वारा सेक देने से सन्धि शोथ और शूल के लक्षण शान्त होते है। अगूठे की जड मे शोथ हो तो गर्म जल मे हाथ को रखना चाहिये। रोग ग्रस्त सधि पर किसी गर्म तेल या लेप की मालिश से भी आराम मिलता है। Olive Oil १ औंस में Gaultheria Oil २ ड्राम, Menthol ५ ग्रेन Camphor १० ग्रेन मिलाकर इसे मल सकते है। सधि की वेदना के लिये वेदना शामक औषधियों का प्रयोग करना चाहिये। उदाहरणत Paracctamol, Aspirin, Compound Codeine Tablet उपयोगी है या Phynyl Butazone (Butazolidin) को १०० मिलि० मात्रा मे दिन मे २-३ वार दे देना चाहिए। ३ दिन इस मात्रा मे देने के बाद इसे इतनी ही मात्रा मे दिन मे १ वार ३ सप्ताह तक दिया जा सकता है। उसके बाद इस औषधि को ३ सप्ताह के अन्तर के बाद इसी प्रकार फिर दुहराया जा सकता है। अन्यथा अजीर्ण के उपद्रव के होने का डर रहता है (इस औषध के दौरान मे Blood Count प्रति सप्ताह होना चाहिए। यह औषधि अनुकूल न पडती हो तो Hydroxy-phenyl-butazone (Tanderil) को इसके स्थान पर दे सकते है इसकी ३-६ गोली दैनिक मात्रा मे भोजन के बाद विभक्त करके देनी चाहिए। Corticosteroids इस रोग मे नही दिये जाते ना ही Antimalarial औषधिया। इस रोग के लिये Indomethacin (Indocid) सभवत सर्वोत्तम औषधि है। उसका एक कैपसूल दिन मे ३-४ वार भोजन के बाद देना चाहिये। बाद मे १-२ से ही दर्द शान्त रहता है। ग्रीवागत पृष्ठ वशास्थि मे यह रोग हो तो इस औषधि के साथ-साथ रोगी को कोई Sedative भी देना चाहिए तथा उसे शय्या पर ही कुछ समय पडे रहना चाहिए। १-२ मास के विश्राम से भी पर्याप्त लाभ होता है। इसी प्रकार पृष्ठ-वशास्थि के कटि प्रदेश की कशेरुओ की सधि मे यह रोग हो तो भी रोगी को वेदना शामक औषधियो के लेने के साथ विस्तरे पर पडे-पडे कुछ काल तक पूर्ण विश्राम लेना चाहिए। मल मूत्र का त्याग भी बैड पैन मे ही करना चाहिए। रोग के प्रारम्भ मे ही विश्राम चिकित्सा की जाए तो रोगी को पर्याप्त लाभ हो जाता है। सधिगत स्तब्धता को हटाने के लिये Myanesin (Mephenesin) Carisoprodol (Soma) Chloroxazone (Paraflex) किसी का प्रयोग करे रोगी तखत पर या Hardbed पर सोये, थोडी-थोडी देर के लिये दोनो हाथो के भार लटकने का व्यायाम करे, पीठ पर स्वेदन ले, अपने भार को कम करे तो इस रोग मे आराम प्रतीत होता है। २-३ मास के अन्तर से Hydrocortisone tertiary butyl Acetate तथा Prednisolone trimethyl Acetate के कम घुलने वाले कम्पौण्डस २५ मिलि० मात्रा मे १-१ मास बाद गोडे या वक्षण सधि मे डालने से (Intra Articular Injection से) भी इस रोग के लक्षण शान्त रहते है।

आयुर्वेद मे सधिवात रोग Degenerative Arthropathy —

मध्यमायु मे छोटी सधियो के अन्दर होने वाले संधिवात रोग (Rheumatoid Arthritis) **मे सधिगत तरुणास्थियो, सधि पर चढे मास, वसा त्वचा आदि सब मे क्षीणता की प्रक्रिया होती है और रोग के बढने पर तो सधि करने वाली अस्थियो के सिरो मे सुषिरता** (Osteoporosis) **की प्रक्रिया भी हो जाती है। अत. आयुर्वेद मे इस रोग को सधिवात, या छोटी सधियो मे होने के कारण लघु सधिवात कह सकते है। इस रोग मे सधियो मे ही नही, शरीर के सभी अगो मे जैसे त्वचा, मास, वात नाडियो, सुषुम्ना हृदय, रक्तवाहिनियो आदि मे क्षीणता की प्रक्रिया होती है। इसलिये इस रोग की वात शामक चिकित्सा होनी चाहिये।**

इसी प्रकार बडी आयु मे होने वाले Osteoathritis **वृहत्सधिवात रोग मे भी सधिगत तरुणास्थियो मे क्षीणता**

की प्रक्रिया होती है तथा संधि करने वाली अस्थियों के सिरे भी अधिक कठोर या Sclerosed हो जाते हैं अर्थात् संधि मे वायु प्रकोप विशेष होता है इसी लिये इसे वृहत्संधिवात रोग कहा जाता है। इसमे जानु संधि मे जब यह रोग होता है तब उसे ही क्रोष्टुशीर्ष नाम से पुकारा गया लगता है। इस वृहत्संधिवात रोग मे भी वात शामक चिकित्सा ही लाभदायक हो सकती है। भोजन उष्ण स्निग्ध गुण तथा सुपच और वल्य होना चाहिये। संधि-वात रोग के लिये उपयोगी प्रयोग निम्नलिखित हैं -

(१) रास्नादिक्वाथ (यो र, ग. नि) रास्ना, गिलोय, अमलतास, सोया, सोठ, शतावरी, हरड, देवदारु, कुटकी, कचूर, वासा, एरण्डमूल, पिया-वासा, दशमूल प्रत्येक समान २-३ तोला का क्वाथ दें।

(२) महारास्नादि क्वाथ (आमवात मे) दें।

(३) व्योषादि गुग्गुलु गुटी (ग नि) त्र्यूषणादि गुग्गुलु (र र) स्वायम्भुव गुग्गुलु (च से) त्रिकटु, पिप्पली, मूल, हरड, चित्रक, दोनो जीरे, अजवायन, वचा, चव्य, वावची, तीन नमक (सेंधा, विड, सौवर्चल) दोनो क्षार १-१ भाग गुग्गुलु १८ भाग, अम्लवेतस ४ भाग। सबको वारीक कर घी मिलाकर कूटें। घी के साथ सबके एक जान होने पर इसकी ३ माशा मात्रा दें।

(४) आदित्य पाक गुग्गुलु (व० से) त्रिफला चूर्ण, पिप्पली चूर्ण ५-५ तोला। इलायची, दालचीनी २।-२। तोला शुद्ध गुग्गुलु २५ तोला। इन्हें मिलाकर इसमे इनसे दो गुणा मात्रा मे दशमूल क्वाथ मिला दें। धूप मे रखकर इसे सुखा लें। इसी प्रकार ७ वार दशमूल क्वाथ डालकर उसे सुखा लें। फिर इस गुग्गुलु की गोलिया कुछ वडी-वडी वनालें। इनका सेवन करायें।

(५) गुडूचीत्रिफला इन चारो के क्वाथ से शिलाजीत का या किसी गुग्गुलु का सेवन करायें (यो. र क्रोष्टुशीर्ष रोग मे)।

(६) अश्वगधापाक (यो त) असगध १ सेर। निस्तुष तिल ½ सेर। उडद की दाल धोई हुई ½ सेर। घृत २ सेर, गाय या वकरी का दूध ४ सेर, खाण्ड ३ सेर. पाक वना कर गाढा करें। इसमे त्रिकटु, चतुर्जातक, हपुषा, सौंफ, शतावरी, जीरक, पुष्करमूल, जावित्री, कचूर, गोखरु, वलामूल, अजवायन, पिप्पलीमूल, लोहा, नाग, ताम्रभस्मे ५-५ तोला मिलायें। मात्रा १ तोला। यह सभी वात रोगों मे, क्षयरोग में श्वास मे भी हितकर है।

(७) रास्नादि चूर्ण (ग. नि.) रास्ना, शतावरी, देव-दारु, ककोल, पिप्पली, असगध, वृद्धि, इलायची छोटी, लालचन्दन, मजीठ, शालिपर्णी, सोया, अजवायन, सोंठ, कुष्ठ, सोया, गिलोय, सैन्धव, पाठा, पद्माख, सम भाग चूर्ण करे। २ माशा घृत के साथ चटायें।

(८) सिद्धार्थक तैल (भै र) तिल तैल १ सेर, शतावरी स्वरस २ सेर, अदरक का रस १ सेर, सोया, देवदारु, मासी, छैलछरीला, सरैटी, सफेद चन्दन, तगर, इलायची बडी, रास्ना, शालिपर्णी, असगध, मजीठ, सारिवा दोनो, पृश्निपर्णी, वचा, एरण्ड मूल, सोंठ, सैन्धव मिलित १० तोला। तैल साधन करें। संधिवात पर मलें भी, पिलायें भी। वृद्धों मे श्रवण शक्ति मस्तिष्क शक्ति, चेष्टा शक्ति, तथा अन्य इन्द्रियों की क्षीणता को रोकता है।

वातरक्त

Gout, Podagra, Hyper uricaemia—इस रोग मे रक्त के अन्दर यूरिकाम्ल की मात्रा बढ़ जाती है जिससे Sod biurate पाव के अगूठे के बडे जोड के Cartilage पर बैठ जाता है और वह सूज जाता है।

देश तथा विदेश दोनो के चिकित्साशास्त्रो का यह एक अति प्राचीन रोग है। यहा और वहा भी इसे अति धनी मानियों का रोग कहा गया है आयुर्वेद मे इसीलिए इसे आढ्यवात का नाम दिया है। विदेशो मे भी इसे Disease of Kings तथा King of diseases ऐसा पुकारा गया है पहले पहल लण्डन के एक डाक्टर A. B Garrod ने यह बताया कि वातरक्त के रोगी के रक्त मे Uric Acid अधिक मात्रा मे जमा होता है। Purine युक्त आहारो जैसे मास, मछली आदि भोजनो (Exogenous) तथा अपने शरीर सम्बन्धी सेलो की मीगियो (Nuclei) के पचन से (Endogenous) Nucleoproteins की उत्पत्ति होती है। उससे उत्पन्न Nuclein मे Nucleic Acid की उत्पत्ति होती है जिसमे Purin Ring (C_5 N_4) पाया जाता है। आन्त्रिक रस के Nuclease से यह पदार्थ Adenine (Aminopurin) तथा Guanine (Diaminopurin) इन दो Nucleotides मे परिवर्तित हो जाता है, जो आंत मे से विलीन हो

कर यकृत् तथा शरीर के अवयवो मे Oxidation के द्वारा क्रमश Hypoxanthine (Oxypurin) तथा Xanthine (Dioxypurin) मे वदल जाते है और फिर Oxidation के द्वारा Uric Acid (Trioxypurin) वन जाते है।

इस यूरिकाम्ल (Uric Acid) की कुल मात्रा १००० मिलि० के लगभग हमारे शरीर मे होती है। इसका छठा भाग तो रक्त मे तथा शेप पाच भाग अवयव रस (Tissue Fluid) मे रहते हैं। रक्त के सीरम मे उसके प्रति १०० मिलिलि० के पीछे २-४ मिलि० के लगभग यह होता है। इस प्रकार रक्त मे इसकी कुल मात्रा १५० मिलि० के लगभग होती है।

इस रोग मे शरीर के अन्दर इस (Uric acid) की मात्रा इससे २-३ गुणा या इससे भी अधिक हो जाती है। सभवत इसकी उत्पत्ति अधिक होती है। देखने से रक्त के अन्दर ५-९ मिलि० प्रतिशतक हो जाती है (Hyper Uricaemia)। यद्यपि इसकी विशेप वृद्धि अवयवो (Extra Vascular Fluid) मे होती है तथापि रक्त मे भी इसकी वृद्धि होती हे। इसकी मात्रा शरीर मे वढती ही नही पर शरीर द्रव मे घुले रहने के स्थान पर यह अपने कुछ कम घुलनशील रूप Sodium Urate मे वदलकर अवयवो मे वैठने भी लग जाता है। यूरिकाम्ल की शरीर मे से निकासी मूत्र द्वारा आधा ग्राम दैनिक मात्रा मे Sodium व Potassium के Urate रूप मे होती रहती है। शेप वचा Uric acid आत द्वारा निकल जाता है। इस रोग के वेग के समय इसकी निकासी वढ जाती हे। ६०० मिलि० दैनिक से ज्यादा हो तो इस रोग का निश्चय हो जाता है यद्यपि रोग के होने से कुछ पहले इसकी यह निकासी घट जाती है। Hyperuricaemia की प्रवृत्ति कुछ एक परिवारो मे परम्परा से आती है तथा वहा भी स्त्रियो मे नही, पुरुपो मे प्रकट होती है।

विकृति

पाव के अगूठे की वडी (Metacarpophalangeal) सन्धि के अन्दर की तरुणास्थियो के पृष्ठ के अन्दर Sodium Biurate के सुई की आकृति के स्फटिको Microcrystals के अनेकानेक ढेर धव्वो के रूप मे वैठे हुए मिलते है जिन्हे (Gutta=धव्वे—वूद) देखकर इस रोग का नाम Gout रख दिया गया। सन्धि की श्लैष्मिक कला (Synovial Membrane) मे भी ये स्फटिक वैठे हुए मिलते है। इसी प्रकार सन्धिगत अस्थियो, तरुणास्थियो, सन्धि की वधनियो (Ligaments) तथा कडराओ (Tendons) के खोल मे भी ये स्फटिक वैठ जाते है। इस विरोधी द्रव्य के विपरीत इन अवयवो मे स्नायुभाव (Gouty Granuloma) की प्रक्रिया होकर अतिवृद्धि (Hypertrophy) हो जाती है जिससे सन्धिगत अवयव सूजकर मोटे हो जाते हैं।

रोग के पुराने हो जाने पर यह स्नायुभाव की प्रक्रिया सन्धि के अन्दर ही नही पर आसपास की सन्धिवन्धनी स्नायुओ (Ligaments) Bursae, कण्डरावरणो (Tendon Sheaths) मे इस विरोधी द्रव्य के विपरीत Fibroblasts, Polymorphs, Lymphocytes, Foreignbody Giant सेलो के अति मात्रा मे सचित हो जाने से इतनी अधिक होती है कि उससे वह सन्धि चेष्टा मे असमर्थ हो जाती है अर्थात् उसमे Osteoarthritis जैसी विकृति हो जाती है।

सन्धि के आसपास की त्वचा के नीचे इस द्रव्य के वैठ जाने तथा उसके विपरीत उपर्युक्त स्नायुभाव की प्रक्रिया के होने से छोटे-छोटे अर्वुद (Nodules) वन जाते हे जिनमे दर्द विशेप नही होता। इन्हे Tophi (Tophus) या चाक के अर्बुद कहते है। ये वहुवा कान, नेत्र पलक, नाक की तरुणास्थियो, कोहणी के Olecranon Bursa, कडराओ तथा स्नायु सूत्रो (Ligaments) मे भी हो जाया करते हे।

कारण

१०० वर्ष पहले हमारे देश तथा यूरोप मे यह रोग जितने प्रवल और व्यापक रूप मे होता था वैसे इस काल मे नही होता इस समय तो यह एक दुर्लभ रोग ही है। सम्भवत पहले कालो मे उत्तम आहार द्रव्य अधिक सस्ते और सुलभ होने से अधिक मात्रा मे लिए जा सकते थे अथवा खाण्ड, गुड या जौ से वनने वाली मद्यो का व्यवहार भी अधिक मात्रा मे होता था अथवा दात, गले आदि मे Infection वहुत अधिक हो जाया करता था।

ऐसा प्रतीत होता है कि मास, मछली आदि Purine उत्पादक आहारो के तथा (२) कार्वोहाइड्रेट्स, फैट्स तथा प्रोटीन आहारो के अति मात्रा मे सेवन से यह रोग हो सकता है क्योकि इनके अन्दर विद्यमान Nitrogen Compounds तथा कार्वन के मिलने से भी युरिकाम्ल की उत्पत्ति तो होती ही है (३) इसी प्रकार कार्वोहाईड्रेट्स तथा खाण्ड की सहायता से वनी मद्यो जैसे Bear, Port Wine, Sweet Wine, Sherry, Madeira, Malt Liquor, Claret, Champaigne आदि के अति सेवन से भी यूरिकाम्ल की अधिक उत्पत्ति होती है। मध्यमायु या ४० वर्ष से ऊपर की आयु के स्थूल शरीर के जो धनी मानी

व्यक्ति विशेषत पुरुष इनका सेवन विशेष करते परन्तु शारीरिक श्रम विशेष नही करते उनमे शीतकाल मे विशेषत वसन्त ऋतु मे यह रोग होता है। शरीर मे कही पर जैसे गले, दात, आत आदि मे पूयभाव (Infection) हो और अगूठे आदि मे चोट भी लग जाय तो वहा पर इस रोग के प्रकट होने की अधिक सम्भावना रहती है। यह रोग जब होना होता है तो ५० वर्ष की आयु से पहले ही आरम्भ होता है।

बहुत सम्भव है कि पितृपरम्परा से ही कुछ एक व्यक्तियो मे यूरिकाम्ल के बढ जाने (Hyperuricaemia) की प्रवृत्ति आती है और उन्ही मे उपर्युक्त कारणो के होने पर यह रोग होता है पर यह भी स्मरणीय है कि कुछ एक के सीरम मे यूरिकाम्ल तो अधिक होता है पर उनमे यह रोग नही होता। आधे से पौने रोगियो मे इस रोग का कारण पितृपरम्परा को पाया जाता है। देखने मे आता है कि रोग के वेग के समय यूरिकाम्ल की मात्रा अन्य कालो की अपेक्षा कम होती है अत उसके ठीक २ कारण का पता नही चला।

यह भी सम्भव है कि शरीर मे यूरिकाम्ल को (Uricase आदि के द्वारा) नष्ट करने की जो स्वाभाविक प्रक्रिया होती है उसके मन्द हो जाने से या वृक्को के रुग्ण होने के कारण उनमे इसकी ठीक-ठीक निकासी न होने पर ही यह रोग हो जाता हो, अर्थात् वृक्क रोग (Primary Renal Dysfunction) इस रोग का कारण हो।

लक्षण

रोग के वेग के होने से पहले कुछ पूर्व रूप होते है। मूत्र गहरे रग का मात्रा मे थोडा, रखने पर Urates के नि क्षेप से युक्त होता है। रोगी के मुख का स्वाद खराब हो जाता है। छाती मे जलन या अम्ल पित्त की शिकायत रहती है या पेट मे हवा बहुत रहती है अर्थात् विष्टम्भ रहता है। मलबध रहता है। भूख मर जाती है या अधिक लगने लगती है। चित्त मे विषाद का भाव हो जाता या चिडचिडापन बढ जाता है। इन पूर्व रूपो के बाद एक दिन रात के पिछले भाग मे सोते-सोते सहसा अकस्मात् पैर के अगूठे के बडे जोड (Metatarsophalangeal Joint) मे दाह युक्त तीव्र शूल होने लगता है जो बडा ही कष्टदायक होता है। यह जोड सूजकर तना हुआ, चमकदार, लाल दिखाई पडता है। यद्यपि इस जोड मे पूयभाव कभी नही होता, यद्यपि देखने मे जीवाणु सक्रमण जनित शोथ के समान दीखता है। रोगी हिलजुल नही सकता। सर्दी लगकर तथा शरीर मे बेचैनी होकर ज्वर भी १००-१०२ फा० डि० तक हो जाता है। स्वल्प स्पर्शन करने से भी जोड मे दर्द बढ जाता है। रोगी के सिर मे दर्द, अरुचि, नाडी की तीव्रता के लक्षण भी होते है। कुछ घटो के कष्ट के बाद सवेरे तक दर्द कम हो जाने से रोगी को फिर कुछ नींद आ जाती है। परन्तु सवेरे देखने मे जोड लाल वर्ण, गर्म और सूजा हुआ मिलता है। दर्द कम होता है यद्यपि शोथ बना रहता है। कुछ ज्वर भी बना रहता तथा रोगी का स्वभाव चिडचिडा रहता है। अगले आने वाली २-३ रातो मे फिर उसी प्रकार शूल के वेग होते रहते है। रोगी की भूख मरी रहती है तबियत गिरी रहती है। हो सकता है कि दूसरे पैर के अगूठे के बडे जोड मे भी उसी प्रकार शोथ और शूल हो जाय। परीक्षा करने पर रोगी मे B S R बढा हुआ पाया जाता है। श्वेत कण वृद्धि (Polymorphonuclear Leucocytosis) का लक्षण २०-२५ हजार तक पाया जाता है। मूत्र मे २-३ दिन यूरिकाम्ल की मात्रा घटी हुई पाई जाती है उसका रग भी गहरा होता और उसमे थोडा अल्ब्यूमिन भी होता है। प्लाज्मा मे Uric अम्ल बढा होता है (२-६ मिलि० १०० मिलिलि० नार्मल) परन्तु रोगी १ सप्ताह तक बिल्कुल ठीक हो जाता है। हो सकता है कि अंगूठे के जोड के स्थान पर पैर या हाथ की किसी दूसरी छोटी सन्धि मे या गिट्टे या एडी मे यह रोग प्रारम्भ हो। रोग के ठीक हो जाने पर रोगी का स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक हो जाता है। इसके बाद हो सकता है कि फिर रोग का पुनराक्रमण कभी भी न हो परन्तु आधे से अधिक रोगियो मे १ वर्ष के अन्दर-अन्दर फिर भी इस रोग का आक्रमण होता है और कुछ एक मे २ वर्ष तक इस रोग का पुनराक्रमण होता है। यदि इस प्रकार इसके वेग फिर भी कुछ-कुछ समय बाद होते रहे और एक एक साथ से अधिक सधि मे हो तो यह पुराने या जीर्णवात रक्त (Chronic Gout) का रूप ले लेता है। बहुधा इस रोग के दौरो के बीच का अन्तर कम होता जाता है। पहले जो रोग पैरो तक सीमित था वह गोडे, कलाई, कोहणी और हाथ के जोडो मे भी हो जाता है तथा दौरे शीघ्र-शीघ्र होने लगते है।

जीर्ण वातरक्त (C Gout)

इस प्रकार समय-समय पर इस रोग के वेग होते रहे तो कुछ काल बाद रोग के शान्त हो जाने पर भी सन्धि मे शोथ बना ही रहता है अर्थात् सधि के Cartilage, Synovial-membrane, सधि के द्रव, सधि के ऊपर के Subcutaneous अवयव

सब पर Urate के क्रिस्टल बैठ जाते हे और क्रमश सधि की आकृति विपम होती जाती है, उसमे दर्द और स्पर्शाक्षमता के लक्षण रहने लगते हैं तथा इस सन्धि के अतिरिक्त हाथ-पैर की दूसरी सन्धियो मे तथा जानु, कोहनी, कन्धे, वंक्षण सधियो मे भी चिरस्थायी सन्धि शोथ हो सकता है। सन्धियो के आसपास या कान के Cartilage पर Tophi भी हो सकते हैं। Fibrous tissue के बढ जाने से सधि मोटी तथा विपम आकृति की हो जाती है।

शरीर के प्लाज्मा मे यूरिकाम्ल की वृद्धि बनी रहे तो इस वातरक्त जनित सन्धिशोथ या गठिया के अतिरिक्त धमनियो की आभ्यन्तर स्तर (Intima) मे क्षीणता के हो जाने मे उनमे कठोरता (Arteriosclerosis) उत्पन्न होने लगती है। उनकी कठोरता से रक्तभार बढ जाता है जिससे वाम हृदय के आगे रुकावट के बढ जाने से वह आकार मे बडा होता है। टागो की धमनियो मे कठोरता हो जाय तो रात को पिण्डिलियो मे उद्वेष्टता (Cramps) के होने की शिकायत रहती है। हृदय पोपक धमनियो के कठोर हो जाने से हृदयमास को रक्त कम मिलने लगता है जिससे हृदय शूल या तीव्र हृदय शूल (Infarction) का लक्षण हो सकता है। मस्तिप्क की धमनियो के कठोर हो जाने मे मस्तिप्क सम्बन्धी उपद्रव हो सकते है। वृक्को की मूत्र स्राविणी नालियो (Tubules) तथा उनके स्नायु-तन्तु (Interstitial Tissue) मे इसके स्फटिको के बैठ जाने तथा इनके विपरीत वहाँ स्नायुभाव (Fibrosis) की वृद्धि हो जाने से चिरस्थायी वृक्करोग (Chronic Glomerulo Nephritis) हो जाता है जिससे मूत्र का निर्माण ठीक-ठीक नही हो पाता। वृक्को की रक्तवाहिनियो मे भी इस रोग के कारण कठोरता होकर चिरस्थायी वृक्क रोग Nephrosclerosis हो सकता है और रक्त भार की वृद्धि हो जाती है। मूत्र की स्पेसिफिक ग्रेविटी घट जाती हे। मूत्र की मात्रा बढ जाती है, उसमे अल्व्यूमिन Casts (Cylindruria) तथा रक्त के अ श आने लगते है, अलव्यूमिन और पूय हो तो Infection का निश्चय करे। मूत्र के ठीक-ठीक न वनने से Urea की निकासी कम हो जाती हे जिसमे Uraemia के लक्षण प्रकट हो सकते है। वृक्को की वस्ति गुहा (Renal Pelvis) मे Urates के बैठने से वृक्काश्मरिया (Calculi) वन सकती हे अर्थात् Uric Acid Urolethiasis का रोग हो सकता है, Pyelonephritis तथा वृक्काश्मरी के रोग हो सकते हैं जिससे वृक्क शूल (Renal Colic) हो सकता हे (१०-२०% रोगियो मे यह लक्षण होता हे)। इस रोग के उपद्रव रूप मे अर्थात् Arteriosclerosis से चिरस्थायी कास (C Bronchitis), चिरस्थायी अजीर्ण (C Dyspepsia), नखो मे रूक्षता (Fissures), तथा त्वचा मे विशेपत माथा, चेहरे, ग्रीवा आदि पर पामा रोग (Dermatitis) आखो मे Glaucoma, Iritis, Retinitis, के उपद्रव हो सकते हे।

रोग निर्णय

मध्यमायु के किसी व्यक्ति के अ गूठे के मूल के बडे जोड मे एक ओर या दोनो ओर तीव्र शूल युक्त शोथ हो तो इसी रोग का सन्देह करना चाहिए। रक्त मे यूरिकाम्ल की परीक्षा, X-Ray द्वारा अस्थियो के सन्धिगत सिरो पर Urates के स्फटिको को देखकर इस रोग का निश्चय किया जा सकता है। हाथ की अस्थियो Metacarpals तथा Phalanges मे अस्थियो के पोले हो जाने या उनमे Decalcification हो जाने का लक्षण मिलता है।

साध्यासाध्य

तीव्र रूप मे यह रोग सदा साध्य हे। पर यह रोग एक वार होकर शरीर मे छिपा हुआ वना रहता है। इस वात का ध्यान रखते हुए रोगी पथ्यापथ्य की सावधानता वर्तता रहे तो इस रोग से कोई हानि नही होती। रोग चिरस्थायी हो जाय तो इसके धमनियो, हृदय, वृक्को आदि पर जो दुष्प्रभाव पडते हैं उनसे रोगी की मृत्यु हो सकती है अर्थात् मृत्यु रक्तभार वृद्धि, Angina pectoris, Coronary ischaemia, हृदय मास की निर्वलता या वृक्को के फेल हो जाने से होती हे।

चिकित्सा

तीव्र वातरक्त (Acute Gout)—

(१) Colchicine— ५ मिलि० की एक गोली को पहले १-१ घटे पर चार घटे तक और फिर ३-३ घटे पर तव तक देना चाहिए जब तक दर्द शान्त न हो या दस्त न लग जाए क्योकि इसकी मात्रा के अधिक होते ही पहले दस्त आने लगते है। इस प्रकार अधिक से अधिक ८-१२ गोलियो के देने या इस औपधि को ६ मिलि० तक देने से रोग शान्त हो जाया करता है। एक सिलसिले मे इस औषधि को इससे अधिक मात्रा मे नही देना चाहिए। दर्द शान्त हो जाने के वाद इस औषधि को इसी मात्रा मे दिन मे २ वार भोजन के वाद ८-१० दिन ले लेना चाहिए जिससे दर्द के फिर होने का भय न रहे (रोग की आगे रोकथाम Prevention के लिए भी १ मिलि० दैनिक मात्रा मे महीनो

तक इसे दिया जा सकता है)। यह औषधि रक्त मे यूरिकाम्ल को कम नही करती। न ही मूत्र मे उसकी निकासी को बढाती है। यह कैसे रोग को शान्त करती है स्पष्ट नही हुआ।

(२) Phynyl butazone (Butazolidin) या Hydroxy-phenyl-butazone (Tanderil)—इसमे से पहली औषधि की Enteric Coated गोली को १०० मिलि० मात्रा मे पहले दिन ६-६ घटे बाद (४ बार), दूसरे दिन इसी मात्रा मे ८-८ घटे बाद (३ बार) और उसके बाद जब तक दर्द रहे दिन मे २ बार इसी मात्रा मे इस औषधि को देने से बडा लाभ होता है। अथवा कोई पहले दिन इसे १०० मिलि० मात्रा मे ६ बार, दूसरे दिन इसी मात्रा मे ५ बार, तीसरे दिन ४ बार, चौथे दिन ३ बार, पांचवें दिन २ बार, छठे दिन तथा सातवें दिन १ बार देते हैं। इससे भी शीघ्र रोग शान्त हो जाता है।

अथवा Hydroxy-phenyl-butazone (Tanderil) को १०० मिलि० मात्रा मे पहले दिन ३-३ घटे बाद ८ बार, दूसरे दिन इसी मात्रा मे ७ बार, तीसरे दिन ६ बार, चौथे दिन ५ बार, पाचवें दिन ३ बार छठे व सातवें दिन २-२ बार देते हैं। इस समय के बाद इनमे से किसी औषधि की भी १ मात्रा एक सप्ताह तक दी जा सकती है ताकि रोग फिर न उभरे। इन औषधियों को भोजन के बाद देना चाहिये, खाली पेट नही।

(३) Prednisolone—उपर्युक्त दोनो औषधियो से लाभ प्रतीत न हो तब इसका प्रयोग करना चाहिये। पहले इनमे से किसी को २० मिलि० मात्रा मे ३-४ दिन तक प्रतिदिन २ बार, फिर १० मिलि० मात्रा मे ४-८ दिन तक २ बार देने से भी इस रोग मे पूर्ण आराम आ जाता है। अथवा इनमे से किसी औषधि को पहले दिन ५०, दूसरे दिन ४५, तीसरे दिन ४०, चौथे दिन ३५, पाचवें दिन ३०, छठे दिन २५, सातवें दिन २०, आठवें दिन १० मिलि० मात्रा मे दिन मे २-४ बार विभक्त करके भोजन के बाद देने से भी इस रोग मे इसी तरह आराम पड जाता है।

इन औषधियो के बन्द करने के बाद ५ मिलि० गोली Cholchicine की दिन मे २ बार देने से इस रोग के दुबारा होने का भय नही रहता।

(४) Corticotrophin—(A. C T H) इसको १०-१५ मिलि० मात्रा मे ७-८ घटे के अन्तर से ३-४ इंजेक्शन मांस द्वारा दे देने से तथा साथ ही ३० मिलि० मात्रा मे Corticotrophin Gel. (Long-acting) के मांस द्वारा दे देने से यह रोग शान्त हो जाता है। इसके बाद Corticotrophin Gel को ५०-४०-३०-२०-१० मिलि० इस क्रमश घटती हुई मात्रा में ५-७ दिन मांस द्वारा दे देना चाहिए।

तीव्र वेग के दौरान मे रोगी को हल्का गर्म जल ४-८ पा० प्रतिदिन पिलाना चाहिए, बार्ले का जल, हल्की चाय, दूध, फलरस, आदि हल्के भोजन पर रखना चाहिए।

शोथ युक्त सन्धि पर शीतल Lotio plumbi cum opio मे भीगी लिन्ट को ४-४ घंटे पर रखते रहना चाहिये अथवा Sodabicarb १ औंस, Tr Opii, १ औं०, मे भिगोई लिन्ट को रखते रहना चाहिये।

इस रोग के बाद इसके पुनराक्रमण से बचने के लिए मांस, मछली, विशेषत लिवर, किडनी, हार्ट आदि Purine प्रधान मांस तथा माण्ड से बनी मद्यो, दालो, चौकोलेट, कोको, तेज काफी, चाय, मिठाइयो, चटनियों, मसालो, फलियों आदि का सेवन बहुत कम करते हुए अन्न, सब्जी (फलियों के बिना), अण्डे, फल, फलरस, दूध, पनीर, मक्खन, दही, तक्र, साबुदाना, अरारुट, माण्ड, सूखे मेवे, हलकी चाय, काफी आदि पर रहना चाहिये। भोजन या केलोरीज की मात्रा मर्यादित रहनी चाहिए। ओक्जेलेट प्रधान आहार भी नही लेने चाहियें। चिकनाई का सेवन भी कम करना चाहिये। इनसे भी यूरिकाम्ल की वृद्धि होती है। कार्बोहाईड्रेट्स का सेवन इतना करना चाहिये जिससे शरीर का भार न बढे। प्रोटीन भोजन भी ७५ ग्राम दैनिक से अधिक नही होना चाहिये। थोडा व्यायाम प्रतिदिन होना चाहिये। तथा भोजन के स्वल्प मात्रा मे लेने से रोगी इस रोग के पुनराक्रमण से बचा रहता है। हमारे दैनिक भोजन मे ६००-७०० मिलि० Purines होते ही है। अधिकत ये मासाहार से आते है। यदि मासाहार को कम कर दिया जाय और दूसरे भोजनो को भी मर्यादा मे ही दिया जाये विशेषत दूध, सब्जी, फल पर ही रहा जाय जिससे भोजन

मे Purines की दैनिक मात्रा २०० मिलि० से न वढने पाय तो भी इस रोग से वचा जा सकता है। इस प्रकार रोगी को चाहिये कि वह भोजन की मात्रा कम कर दे तथा पीने के जल की मात्रा को वढा दे या प्रतिदिन किसी वाजार मे मिलने वाले क्षारीय जल (Carlsbad, Vichy आदि Mineral Water) का या Pot Citrate, Soda bi carb के सोल्यूशन का पान करते रहना चाहिए और मूत्र की मात्रा को २ लिटर से कम न होने देना चाहिये। महीने मे १-२ वार हल्की मृदु रेचक औषधि लेकर पेट को साफ कर लेना चाहिए।

यूरिकाम्ल की निकासी को वढाने वाली औषधियाँ (Uricosuric Drugs)

(१) Probenecid (Benemid Capsule)—पहले १ सप्ताह तक इस औषधि की २५ ग्राम मात्रा को दिन मे २वार सप्ताह तक भोजन वाद लेते रहने से यूरिकाम्ल की शरीर मे से निकासी वढती है क्योकि इस औषधि के द्वारा वृक्को की (Tubules) मे से इसका पुनर्विलयन वन्द हो जाता है। इसके साथ क्षारीय जल या Sodium Bicarbonate या Sodium Citrate का प्रयोग भी करते रहना चाहिये तथा जल का अधिक प्रयोग करना चाहिए। इस औषधि की चालू मात्रा (Maintenance Dose) ५ ग्राम मे २ ग्राम दैनिक है। इसे ३-४ मास जारी रखना चाहिये।

(२) यदि उपरोक्त औषधि से लाभ न हो तव Sulphinopyrazone एक Pyrazolidine कम्पौण्ड (Anturan) का प्रयोग करे। इस औषधि को पहले १०० मिलि० मात्रा मे दिन मे ४ वार भोजन वाद देते हुए या तीन वार भोजन वाद और १ वार सोने से पहले अधिक जल के साथ देते हुए धीरे-धीरे इसे २००-४०० मिलि० दैनिक मात्रा मे देते रहना चाहिए। इस औषधि का प्रयोग करते समय भी अधिक जल तथा Sod bicarb का प्रयोग रहना चाहिये। Peptic-ulcer मे इसका प्रयोग ठीक नही।

(३) Salicylate—के ६०-६० ग्रेन दैनिक मात्रा मे देने से भी यही प्रभाव होता है अर्थात् Tubules मे यूरिकाम्ल का पुनर्विलयन मन्द हो जाता है यद्यपि यह उपर्युक्त औषधियो से निर्वल औषधि है तथा पेट के लिए विक्षोभक भी है। इसका Probenecid या Sulphipyrazone के साथ-साथ प्रयोग नही करना चाहिए।

इनमे से किसी औषधि को एकवार प्रारम्भ करके फिर उसे उचित मात्रा मे जारी रखना चाहिए। कभी-कभी ले लेने या वीच-वीच मे छोड-छोडकर लेने से कोई विशेष लाभ नही होता क्योकि यूरिकाम्ल की निकासी गुर्दो से होती है अत वे स्वस्थ होने चाहिए। इन औषधियो का हाजमे पर दुष्प्रभाव हो सकता है, ऐसा हो तो मात्रा कुछ कम कर देनी चाहिए।

आयुर्वेद मे वात रक्त रोग

चरक तथा सुश्रुत दोनो ने (च० चि० २६, सु० चि० ५) कहा है कि आराम से रहने वाले जो धनी मानी पुरुष गुरु, स्निग्ध, उष्ण गुण भोजनो का जैसे जलज व आनूप मास, खाण्ड से वनी मद्यो, दालो, फलियो का अति मात्रा मे सेवन करते हैं, व्यायाम या शारीरिक श्रम नहीं करते, शरीर का शोधन भी नहीं करते तथा जव उनके शरीर पर किसी प्रकार का भारी अभिघात Trauma लग जाता है तो उनके रक्त मे एक विशेष दोष या मल की वृद्धि हो जाती है। जन्म से ही या नाना प्रकोपक कारणो से शरीर मे वायु के प्रकुपित रहने से रक्त मे इस दोष की वृद्धि होती है। फिर जव सन्धियो में यह रक्तगत दोष अधिक मात्रा मे सचित (सञ्चित) हो जाता है तव उसके द्वारा वायु के मार्ग अवरुद्ध हो जाने से उनमे दर्द होने लगता है। पहले तो हाथ पाव की छोटी सन्धियो मे दोष का सचय होता एव दर्द होता है। वाद मे सारे शरीर मे यह दोष व्याप्त हो जाता है। इस प्रकार क्योकि वायु की विषमता से रक्त दूषित होता है और दूषित रक्त के द्वारा वायु के मार्ग मे अवरोध हो जाने से यह दर्द होता है इस लिये इसे "वातरक्त" रोग कहा जाता है। धनाढ्य लोगो का रोग होने से इसे 'आढ्य वात' भी कहा जाता है। जव सन्धि मे त्वचा मास आदि वाह्य अवयवो तक यह रोग सीमित रहता है उसे उत्तान वात रक्त कहते हैं। जव सधि की अस्थि मे विकृति हो जाती है सधि मे Deformity हो जाती है तव इसे गंभीर वात रक्त कहते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि पहले जन्म से या आगन्तुक कारणो से धात्वीय परिपचन (Metabolism) के सचालक वायु मे कोई विषमता आती है। फिर धात्वीय परिपचन

के मन्द हो जाने से रक्त में एक दोष या मल की वृद्धि हो जाती है। फिर उस दोष के कारण सधियों मे वायु के मार्ग या चेष्टा मे अवरोध हो जाने से दर्द हो जाता है। वातप्रधान रोग मे शूल, सकोच कृष्णवर्णता के लक्षण होते हैं। पित्ताधिक मे रक्तवर्णता तथा पाक के लक्षण होते हैं कफाधिक रोग मे श्वयथु गुरुता और वेदना की मन्दता के लक्षण होते हैं।

तीव्र रूप मे यह पित्तवात प्रधान रोग कहाता है। इस अवस्था मे रक्त तथा वात की प्रतिक्रिया होने से पाव के अंगूठे के बड़े जोड मे किसी आघात के लगने के बाद तो दाह युक्त ताम्रवर्ण शोथ हो जाता है जो हो-होकर फिर ठीक हो जाता है। रोग के जीर्ण हो जाने पर बहुधा तो पाव की सधियो मे कभी-कभी हाथ की सधियो मे कफ वात प्रकोप जनित शोथ होता है जो मन्द वेदना युक्त, शीत एव सवर्ण होता है। सन्धि मे वैकल्य होता है, त्वचा पर चाक वाली पिण्डिकायें भी हो सकती हैं।

इस रोग के गम्भीर रूप मे होने पर अर्थात् भिन्न २ अगो की रक्त वाहिनियो के कठोर हो जाने या उनमे Arteriosclerosis हो जाने से अन्नारुचि, श्वासकाठिन्य, कास, शिर दर्द, हृदय ग्रह, हिक्का, मोह या मूर्छा आदि उपद्रव भी हो सकते हैं। तीव्र रूप मे इसे साध्य, १ वर्ष के पुराने हो जाने पर इसे याप्य और बहुत अधिक पुराना हो जाने तथा उपद्रवो के प्रकट हो जाने पर इसे असाध्य कहा गया है। सभवत वृद्धावस्था के अनेक कष्ट वात-रक्त रोग के पुराने हो जाने के कारण होते हैं।

रोग प्रतिरोधक शक्ति Immunity तथा Allergy

Behring एक जर्मन बैक्टीरियोलोजिस्ट ने पहले पहल १८९० मे यह प्रकट किया कि यदि किसी पशु मे एक जीवाणु विष Toxin की इतनी मात्रा जो घातक न हो प्रविष्ट कर दी जाये और फिर उसकी बढती हुई मात्रा क्रमश उसके शरीर मे प्रविष्ट कर दी जाये तो बाद मे वह घातक मात्रा को भी सहन कर लेता है और मरता नही। उसने कहा कि उस पशु मे उस जीवाणु विष के लिये एक प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो जाती है। यह शक्ति पशु ने स्वय उपार्जित की है। अत इसे उसने Active Immunity का नाम दिया। उसने यह भी बताया कि ऐसे प्रतिरोधक शक्ति सम्पन्न या Immunised प्राणी के रक्त के द्रव भाग को निकालकर यदि दूसरे प्राणी मे प्रविष्ट कर दे तो उसमे भी उस विष के लिये प्रतिरोधक शक्ति आ जाती है। इस प्रकार गृहीत प्रतिरोधक शक्ति को उसने Passive Immunity कहा। यही कारण है कि मसूरिका, Typhoid, Whooping Cough, Measles आदि रोग जीवन मे एक बार ही होते है दुबारा नही होते क्योंकि ज्वर के बाद उनके प्रति एक रोधक शक्ति उत्पन्न हो जाती है जो प्राय आयु भर रहती है।

यही कारण है कि यदि एक बालक की त्वचा मे Tuberculin प्रविष्ट करके देख लिया जाये कि उसकी त्वचा मे उसके प्रति कोई प्रतिक्रिया नही होती अर्थात् यह पता लग जाये कि उस बालक मे आज तक टी०बी० ने प्रवेश नही किया और तब उसकी त्वचा मे BCG वेक्सीन लगाकर उसमे हलके से रूप मे टी० बी० रोग को उत्पन्न कर दिया जाये तो अनेक वर्षों के लिये उस उस रोग के होने के भय से मुक्त किया जा सकता है।

इसी प्रकार Small Pox Vaccine त्वचा द्वारा शरीर मे प्रविष्ट करके बालक को उस रोग के होने के भय से बचाया जाता है। Typhoid AB Vaccine (TAB Vaccine) त्वचा मे प्रविष्ट करके लोगो को इस रोग के भय से बचाया जाता है। Cholera Vaccine त्वचा द्वारा देकर मेलो मे उस रोग को फैलने से रोका जाता है। पागल कुत्ता काटा हो तो उससे होने वाले भयकर Rabies रोग से बचाने के लिये Antirabic Vaccine के चौदह इन्जेक्शन लगा दिये जाते हैं। बालकपन मे Polio की विष के सक्रमण से बहुत से बालक लगडे हो जाते हैं। उस रोग से बचाने के लिये बालकों को Poliomyelitis Living Vaccine की दो मात्रा कुछ २ समय के अन्तर से मुख द्वारा दे दी जाती है जिससे इस रोग के होने का भय नही रहता। इस प्रकार न मालूम होने वाले हलके से रूप मे रोग को उत्पन्न करके आगे के लिये उस रोग से आदमी को बचाया जा सकता है। Common Cold, Influenza आदि कुछ रोग ऐसे हैं जो एक बार होकर फिर भी दुबारा हो जाते हैं क्योंकि इनके Virus बहुत किस्म के हैं ये हर बार किसी नयी किस्म के सक्रमण से होते हैं।

Antitoxins तथा Toxoids—के द्वारा Tetanus Diphtheria आदि रोगो से बचा जा सकता है। इन जीवाणुओ के Toxins को लेकर Formalin से मिलाकर ३ सप्ताह तक Incubator मे रखा जाता है जिससे ये Toxoids मे (जो हलके Toxins हैं) परिवर्तित हो जाते है। ये मारक नही रहते। परन्तु इनका प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न करने का गुण बना रहता है। अब इस Toxoid की हलकी मात्रा २-३ मास तक एक घोडे मे प्रविष्ट की जाती है जब तक कि उसके रक्त मे इस विष का प्रति-रोधक तत्त्व Antitoxin पर्याप्त मात्रा मे उत्पन्न न हो

जाये। जब उसके सीरम मे यह Antitoxic Titre पर्याप्त मात्रा मे उत्पन्न हो जाता है तब उसके रक्त मे से सीरम को पृथक् कर, गाढा कर, स्वच्छ कर, शीशियो मे सुरक्षित कर लिया जाता है और उसे मनुष्य मे प्रयोग योग्य बना लिया जाता है। इनके प्रयोग से उत्पन्न प्रतिरोधक शक्ति को Passive Immunity कहते है। चोट लगने के कुछ काल बाद जो Tetanus रोग होता है उसके रोकने के लिये जो Horse Serum तैयार होता है उसे Tetanus Antitoxin या Tetanus Antitoxic Serum कहते हैं। इसी प्रकार बालको को Diphtheria रोग से बचाने के लिए उसके Toxoid से जो सीरम बनाया जाता है उसे Diphtheria Antitoxin कहते है। इनकी Preventive मात्रा थोडी ही होती है। यदि Tetanus या Diphtheria हो गये हो तो इनका प्रयोग अधिक मात्रा मे करने से ही लाभ हो सकता है और कई बार उससे भी कोई लाभ नही होता। इसी प्रकार सर्प विष के द्वारा बनाये गये सीरम को Antivenum Serum कहते हैं। उसका भी बडी मात्रा मे शिरा द्वारा प्रयोग करके सर्प दष्ट रोगी को बचाया जा सकता है।

Antigens —त्वचा रक्त आदि द्वारा शरीर मे प्रविष्ट होकर जो पदार्थ अपने प्रतिरोधक पिण्ड या Antibody को उत्पन्न करने का कारण बनता है उसे Antigen कहते है। बैक्टीरिया और उनके विष तो Antigen हैं ही पर कोई भी बाह्य प्रोटीन जो शरीर मे प्रविष्ट होता है Antigen का काम करता है अर्थात् अपने Antibody को उत्पन्न करता है। अण्डे का अलब्यूमिन, दूध, दूसरे के रक्तकण, सीरम, वानस्पतिक जान्तव सभी प्रोटीन्स, सर्पविष आदि जो भी त्वचा द्वारा अन्दर प्रविष्ट होते है Antigen का काम करते है। जो प्रोटीन्स शरीर के लिये विधर्मी है घुलनशील है वे त्वचा द्वारा दिये गये Antigen का काम करते हैं।

Haptens (Partial Antigens)—जो बाह्य Polysaccharides, Lipoids, Glucosides तथा कोई भी रासायनिक पदार्थ जो शरीर मे प्रविष्ट होकर अन्दर शरीर के प्रोटीन के साथ सयुक्त होकर एक पिण्ड या Compound बना लेते हैं उन्हे Partial Antigens Conjugated Antigens या Haptens कहते है। ये भी शरीर मे प्रविष्ट होकर अपने विरोधी Antibody को उत्पन्न करते है। इस प्रकार सैकडो Antigens हैं जो शरीर मे अपने विरोधी Antibody को उत्पन्न करते है।

Antibodies —किसी Antigen के शरीर मे प्रवेश कर जाने पर उसके प्रतिरोध के लिये रक्तगत सीरम के Globulins मे जो पिण्ड उत्पन्न हो जाते है उन्हे Antibodies कहते है। इन्ही के कारण शरीर मे रोग रोधक शक्ति Immunity उत्पन्न होती है। एक Antibody उसी Antigen का प्रतिरोधक होता है जिसके विरोध मे वह उत्पन्न हुआ है दूसरे का नही। इस प्रकार सैकडो जीवाणुओ और Viruses और Foreign Proteins के विरोध मे उत्पन्न हुए सैकडो प्रकार के Antibodies हमारे शरीर मे रह सकते है। बहुत सभव है कैन्सर के सेलो के विरोध मे उत्पन्न हुए Antibodies भी हमारे शरीर मे रहते हो जिससे हजारो लोग जिनमे यह रोग नही उस रोग के आक्रमण से बचे हुए हो और सभव है कि शरीर की प्रतिरोधक शक्ति को बढाने के द्वारा आदमी को इस भयकर रोग से बचाया जा सकता हो।

शरीर मे विद्यमान Antibodies दो काम करते है एक तो वे बाहर से शरीर मे प्रविष्ट हो गये अपने विरोधी पदार्थ के कणो Molecules को भाप लेते और उन्हे जकडकर पकड लेते है, दूसरे वे उन्हे नष्ट कर देते या Neutralised कर देते हैं।

एक Antibody की परीक्षा की जाये तो वह अनेकानेक Aminoacids का बना हुआ २००० अणुओ का एक Molecule होता है तथा Hydrogen के एक अणु से १ लाख ५० हजार गुणा भारी होता है।

Antibodies मुख्यत निम्नलिखित प्रकार के है —

(१) Anti Toxins या Anti Toxic Antibodies —उन प्रतिरोधक पिन्डो को कहते है जो बाहर से आये घुलनशील Toxins को निरुपद्रव कर देते है। क्योकि कुछ ऐसे जीवाणु है जैसे Clostridium Tetani, Klebs-loefflerbacillus of Diphtheria, Shiga Shigae of Dysentery, Snake Venom जिनके जीवाणु नही पर जीवाणुओ मे से निकले Exotoxins, Antigen का काम करते है। उनके प्रतिरोध मे उत्पन्न पिन्डो को Antitoxins कहते है। उपर्युक्त Toxins के सेलो मे प्रविष्ट हो जाने से पूर्व उनके Antitoxins शरीर मे डाल दिये जाये तो ये विशेप कार्यकारी होते है। इसीलिये इनका विशेप प्रयोग Prophilactic रूप मे होता है। यदि रोग पहले उत्पन्न हो जाये तो इनके बहुत बडी मात्रा मे देने से ही लाभ हो सकता है यद्यपि कई बार लाभ नही भी होता।

Bacteriolysins या Agglutinins—ऐसे जीवाणुओ की जिनकी विष उनके अन्दर ही रहती है और उनके नष्ट होने पर ही वह बाहर निकलती है अर्थात् जिनकी विष Endotoxin है उनके शरीर मे प्रविष्ट होने पर

उनके प्रतिरोध मे जो पिन्ड उत्पन्न होते हैं उन्हे Bacteriolysin कहते है। ये पिन्ड जीवाणुओं को एक ढेर के रूप मे बदल देते है इसलिये इन्हे Agglutinins भी कहते हैं। रक्त मे स्वभावत विद्यमान Complement फिर इनको नष्ट कर देता या इनके Lysis का कारण बनता है। Typhoid मे रोगी के सीरम मे विद्यमान Agglutinin हमारे Antigen के सोल्यूशन मे Agglutination उत्पन्न कर देता है जिसे Widal's Test कहते हैं।

Precipitin Antibody—जब एक घुलनशील प्रोटीन Antigen त्वचा द्वारा शरीर मे प्रविष्ट कर दिया जाये तो रक्त के सीरम मे उसे Precipitate करने वाला Antibody उत्पन्न हो जाता है जिसे Precipitin कहते है। उदाहरणत Vibrio Cholerae के लवण युक्त सोल्यूशन मे इस जीवाणु के द्वारा Immunised प्राणी से लिये Antiserum को मिलाया जाये तो वह धुधला हो जाता है। इसी तरह रोगी से लिये Diplococcus Pneumoniae के सोल्यूशन मे इस जीवाणु से तैयार किया हुआ Antiserum मिलाया जाये तो Precipitin reaction आता है।

Opsonin or Bacteriotropin Antibody—रक्त के सीरम मे स्वभावत एक Opsonin नामक पदार्थ है जो शरीर मे वाहर से प्रविष्ट हुए जीवाणुओ से मिल जाता है और उन्हे Phagocytes के लिए अधिक आकर्षक बना देता है जिससे Phagocytes उनकी ओर प्रबलता से आते और उनको खा लेते है। इस प्रकार सामान्य Opsonin को Non Specific Opsonin कहते है। परन्तु कुछ ऐसे जीवाणु है जिनके शरीर मे प्रविष्ट होने पर विशेष Opsonin उत्पन्न होते है जैसे Pneumococci और Streptococci के विरोध मे उत्पन्न सीरम अर्थात् Antipneumococcal और Antistreptococcal Serum के अन्दर क्रमश इनके विरोधी Opsonin उत्पन्न हो जाते हैं जो इन जीवाणुओ को Phagocytes की ओर खीचने का काम करते है। इस सोल्यूशन मे यदि Complement भी मिलाया जाये तो ये जीवाणु और भी तीव्रता से Phogocytes का शिकार हो जाते है।

Antibodies की उत्पत्ति—

बच्चा जब गर्भ से बाहर आता है तो बाहर से जीवाणु भी उसकी आत मे आने लगते है। फिर जब वह बाह्य आहार लेने लगता है तब Protein Antigens भी बाहर से आने लगते हैं। इनके अन्दर आने पर आत की दीवार मे Lymphatic Tissue भी बढने लगता है और उसमे Immunity उत्पन्न करने वाले सेल उत्पन्न होने लगते है।

गर्भस्थ शिशु के अन्दर ही Phagocytes उत्पन्न हो जाते है। इनके अन्दर ऐसे Enzymes होते हैं जो बाहर से आने वाले Antigens को Digest कर लेते हैं और नष्ट कर देते हैं। इस प्रकार बहुत से Antigens का नाश बिना Antibodies के ही हो जाता है।

शरीर के अगो मे दूसरे ऐसे सेल भी है जो शरीर में आये बाह्य पदार्थों को पकड लेते हैं इन्हे Stem-cells कहते है। ये शिशु के Thymus Gland मे पहुचकर वहा बडे होकर Lymphocytes बन जाते हैं। इस प्रकार (Thymus मे तैयार हुए Lymphocytes को Thymus Lymphocytes कहते है। कुछ Stem-cells अस्थि मज्जा मे रहते है उनसे जो Lymphocytes उत्पन्न होते हैं उन्हे Bone marrow derived Lymphocytes कहते हैं। ये दोनो ही Immunity उत्पन्न करने का काम करते हैं। ये परिवर्तित होकर Plasma-cells बन जाते है जो Lymphatic glands प्लीहा, फुफ्फुस, अस्थि, मज्जा तथा रक्त के Plasma मे पाये जाते है। ये जब Antigen के सपर्क मे आते हैं तो विभक्त होकर अनेकानेक हो जाते है और Antibody Producing Cells बन जाते है। इन सेलो से Antibodies निकलकर Antigens के विरुद्ध शरीर की रक्षा करते है। इस प्रकार Antibodies की उत्पत्ति Lymphocytes और Plasmacells से होती है। इनमे Ribonucleic Acid की अधिकता ही सभवत इनकी उत्पत्ति का कारण है।

रक्त मे तीन प्रोटीन्स है एक अलव्यूमिन तो यकृत के सेलो से उत्पन्न होता है, दूसरा Fibrinogen है, तीसरा Globulin है। Serumglobulin के उस अश को जिस पर शरीर की Immunity निर्भर है Gamma Globulin कहते है। इसी मे Antibodies के Molecules रहते है। बाहर से शरीर मे आने वाले Viruses, जीवाणुओ, Exotoxins, Agglutinogens और Foreign Proteins जिनसे शरीर को हानि पहुच सकती है और जो Antigens है उनके विपरीत उत्पन्न हुए Antibodies इसी Gammaglobulin मे रहते है।

Antibodies से युक्त Gammaglobulin को Immunoglobulin कहते है इसमे Jaundice Measles, Mumps, Chickenpox, Whooping Cough आदि बाल्यकाल मे होने वाले रोगो के विपरीत Antibodies रहते है। अत शिशुओ मे इन रोगो की Immunity उत्पन्न करने के लिये यह उपयोगी है। इस Immu-

noglobulin को अव Human Placenta से तैयार किया जा रहा है। यदि इसे प्रसव से पहले मा को दे दें तो होने वाला वालक आगे के लिए इन रोगो से वच जाता है।

रक्त के सीरम मे रहने वाले Antibodies को Humoral Globulin और Plasmacells के पृष्ठ पर लगे Antibodies को Cellular Antibodies कहते है।

Antigen के शरीर मे प्रवेश के वाद १०-१४ दिन के अन्दर ये Antibodies उत्पन्न हो जाते है और वढते हे और कुछ दिनो वाद ये फिर धीरे धीरे कम हो जाते हे। Passive Immunity से उत्पन्न Antibodies वहुत दिन नही रहते। Antiserum के अन्दर Antibodies वाहर रखे निष्क्रिय हो जाते हं अत उन्हे शीतल प्रदेश मे रखना चाहिए।

ये Antibodies कई किस्म के कहे जाते हैं M G A E D भेद से ये कई प्रकारके हं।

सेलो के Genes इन भिन्न २ प्रकार के Antibodies को कैसे तैयार कर लेते ह इसका उत्तर अभी तक नही मिला।

शरीर के स्वाभाविक Nonspecific प्रतिरोधक पदार्थ —

Complement—Fherlich (१८५८-१९१५) ने पहले पहल इस पदार्थ का पता दिया। रक्त के अन्दर यह एक पिण्ड है जो अपने मे से निकले एक Antibody (Amboceptor) के द्वारा शरीर मे आये Antigen को पकड कर उसके साथ जुड जाता है और इसके पृष्ठ से विलीन होकर उसके विनाश या Lysis का साधन हो जाता है। यह पदार्थ रक्त मे स्वभावत हे Immunisation से वढता हो ऐसा नही।

इसी प्रकार जव शरीर मे Antigen Antibody का एक सयुक्त पिण्ड Complex वन जाता हे तो यह भी उसमें आ मिलता है। यह भी समव है कि जीवाणु मे विलीन होकर उसके Phagocytosis को आसान कर देता हो।

Properdin (1954)—Complement के समान ही सीरम मे एक और प्रोटीन या Euglobulin पदार्थ है जिसे Properdin या जीवाणु विनाशक द्रव्य कहते है यह वाहर से आये जीवाणुओ तथा Viruses को नष्ट करने का एक सावन है।

Opsonin (1903) — रक्त मे एक स्वाभाविक द्रव्य है जो वाहर से आये जीवाणुओ आदि के साथ लग कर उन्हे Phagocytosis के लिये अधिक उपयुक्त वना देता है।

Lysozyme—Fleming (१९२२) ने पहले पहल इस Mucolytic (श्लेष्मपाचक) Enzyme का पता दिया जो एक हलके भार का (१४४००) एक प्रोटीन पिण्ड है तथा सीरम मे रहता है। यह क्षत हुए Polymorphs के पिण्डो से उत्पन्न होता है और जीवाणु विनाशक द्रव्य है। आसुओ तथा नासाद्रव मे यह मिलता है Strepto तथा Staphylococci के लिये घातक है। Gramme Negative जीवाणुओ के लिये भी विनाशक हे।

Phagocytes — हमारे रक्त मे Micro और Macrophages नाम के दो प्रकार के ऐसे सेल है जो रक्त मे विद्यमान सर्व कणो अर्थात् जीवाणुओ आदि को अपने Pseudopodia द्वारा घेरा डालकर पकड लेते और अपने Cytase नामक Enzyme के द्वारा हजम कर लेते ह। छोटे आकार के सेलो मे से मुख्य Polymorphonuclear Leucocytes हे। वे रक्त मे से वाहर आकर Chemotaxis की प्रेरणा से प्रेरित हुए, अपनी Amaeboid गति से वहा पहुच जाते है जहा जीवाणु शरीर के अन्दर प्रविष्ट हो गया है। वहा पहुचकर ये जीवाणु को चारो ओर से घेर कर अपने से उत्पन्न (Phagocytin आदि) Enzymes के द्वारा उन्हे नष्ट कर देते है। वहा पर भरे हुए स्राव (Exudate) मे विद्यमान Opsonin इस कार्य मे इन Phagocytes की सहायता करता है। जीवाणुओ की विप के दुष्प्रभाव से जो Leucocytes मर जाते है उनसे पूय वन जाती है। पूय मे Trypsin आदि प्रोटीन पाचक Enzymes होते हे जो वहा के मरे हुए सारे अवयव को द्रव रूप मे परिणत कर देते हे जिसके निकल जाने पर वहा का शोथ शान्त हो जाता हे।

इन Polymorphs के वाद उस जीवाणु ग्रस्त स्थान पर Macrophages (Mononuclear Leucocytes, Histiocytes आदि) आकर वहा की सफाई का काम करते हें अर्थात् वहा पर सव भरे हुए मलवे को इकट्ठा कर उसे अपने Proteolytic Enzyme (Macrocytase) के द्वारा नष्ट कर देते हैं।

अक्षमता-असात्म्यता — Allergy-Hypersensitivity

किसी पदार्थ के विशेपत त्वचा द्वारा और कभी कभी मुख द्वारा देने से भी साधारण व्यक्तियो मे कोई प्रतिक्रिया न हो पर किसी एक व्यक्ति मे प्रवल अथवा भयकर प्रतिक्रिया हो जाये तो उसके इस रोग को Allergy या अक्षमता का रोग कहते है। Von Pirquet ने पहले

पहल १९०६ मे इस रोग का पता दिया। साधारणत वाह्य या Foreign प्रोटीन्स के देने पर शरीर मे उसके विरोधी पिण्ड या Antibodies पूर्ण रूप से उत्पन्न हो जाते है जिनके अवरोधक होने से जब दुबारा फिर वही प्रोटीन दिया जाता है तो उसका शरीर पर कोई दुष्प्रभाव नही होता अर्थात् साधारणत सर्वव्यक्ति वाह्य प्रोटीनो के लिये Immune हो जाते है। परन्तु जब किसी Antigen या वाह्य प्रोटीन के पहली बार शरीर मे प्रवेश करने पर उसके विरोधी Antibodies सीरम मे अपूर्ण रूप से उत्पन्न हो और उनमे से कुछ Cellbound हो जाये अर्थात् अगो के सेलो से चिपक जाये तो जब यही वाह्य प्रोटीन फिर दुबारा अधिक मात्रा मे शरीर मे प्रवेश करता है तो सीरम मे उनके Blocking Antibodies की मात्रा मे कमी के कारण उनका पूर्णत प्रतिकार नही हो पाता। परिणामत वे Cell Bound Antibodies के साथ जो मात्रा मे थोडे ही होते है सयोग मे आते है। Antigen Antibody की इस प्रकार की प्रतिक्रिया के परिणाम रूप मे बहुत मे सेल टूट जाते है। विशेषत Connective Tissue मे विद्यमान Mast Cells जो दानेदार होते है और धमनियो के आसपास के अवयव मे बहुत मात्रा मे होते है, अधिक टूटते है। इनके टूटने से उनके दानो मे से Histamine, Acetyl Choline, Heparin आदि द्रव्य अधिक मात्रा मे उत्पन्न होकर रक्त मे सचार कर जाते है। इनके रक्त सचार करने से ही Allergy के लक्षण उत्पन्न होते है। हा यदि उसी Antigen के जिससे Allergy होती है क्रमिक कुछ इजेक्शन दे दिये जायें तो Allergy के स्थान पर Immunity उत्पन्न हो जाती है। साधारणत २-१०% लोगो मे अलर्जी का रोग पाया जाता है। इसीलिये यह प्रधान रोगो मे मे एक रोग है।

Allergy अथवा Histamine आदि द्रव्यो के सचार मे होने वाले लक्षण — इन द्रव्यों के रक्त मे सचार कर जाने से एक तो धमनियो और सूक्ष्म सिराओ अर्थात् Capillaries की दीवारो की मासपेशियो मे शैथिल्य Vasodilatation उत्पन्न हो जाता है। त्वचा मे ऐसा हो तो वहा लालिमा का लक्षण उत्पन्न हो जाता है। फैली हुई धमनियो और सिराओ मे रक्त द्रव का परिस्रवण (Permeability) भी बढ जाता है जिससे सिराओ के आस पास के प्रदेश मे श्वयथु (aedema) उत्पन्न हो जाता है। रक्तवाहिनियो की शिथिलता व्यापक रूप मे हो जैसा कि Anaphylaxis मे होता है तो हाथ-पाव ठण्डे हो जाते है ठण्डा पसीना आता और Shock का लक्षण भी हो जाता है। रक्त वाहिनियो के फैल जाने से हृदय गति तीव्र पर उसका बल मन्द हो जाता है। हृदय पोषक धमनियो (Coronary Arteries) के स्रोत के सकुचित हो जाने से हृदय का पोषक घट जाता है। श्वास-वाहिनियो की अन्दर की झिल्ली मे रक्त वाहिनियो के शैथिल्य और उनसे पारिस्रवण के बढ जाने से श्वास-कृच्छ्रता (Dyspnoea) का लक्षण हो जाता है। Menenges तथा Cerebrum की रक्त वाहिनियो के फैल जाने से और उनके आस पास रक्त द्रव के अधिक भर जाने से शिर दर्द का लक्षण होता है। श्वास नालियो की मास-पेशियो (Smooth Muscles) मे सकोच या स्तम्भ के उत्पन्न हो जाने से भी श्वासकृच्छता का लक्षण होता है। Retina मे धमनियो के फैल जाने से आख के अन्दर भार के बढ जाने से आख मे दर्द हो सकता है तथा दृष्टि मे मन्दता आ सकती है। Post Gangleonic Parasympathetic सूत्रों की उत्तेजना से आमाशय मे Acid की उत्पत्ति बढती है, Peptic Ulcer हो तो उसमे वृद्धि हो जाती है।

Allergy से उत्पन्न होने वाले रोग —

Anaphylaxis (Prophylaxis या Protection का अभाव) अति अक्षमता —

एक घुलनशील वाह्य प्रोटीन द्रव्य के एक इन्जेक्शन देने के कम से कम १० दिन बाद यदि उसी द्रव्य का दूसरा इन्जेक्शन दे दिया जाये तो किसी २ व्यक्ति मे भारी उपद्रव हो जाता है। यह उपद्रव हलके रूप मे हो तो त्वचा पर Urticaria होकर खुजली होने लगती है। तीव्र रूप मे हो तो श्वास नालियो की मास पेशियो मे स्तम्भ होकर श्वास कृच्छ्रता और खासी होने लगती है, नाडी निर्बल हाथ पैर ठण्डे होकर Collapse या Shock के लक्षण हो जाते है और Antigen अधिक मात्रा मे दिया गया हो तो मृत्यु भी हो सकती है। Antigen की प्रथम मात्रा के देने पर Antibodies उत्पन्न हो जाते है पर वे अपूर्ण मात्रा मे होते है। Antigen की दूसरी मात्रा के देने पर सीरम मे उनकी मात्रा के पूर्ण न होने से वे Antigen को Block नही कर सकते जिससे अवयवो के सेलो पर चिपके हुए Antibodies के साथ वाहर से आये Antigen का सयोग होने पर सेलो पर Antigen Antibody का एक प्रबल सघर्ष या Reaction होता है जिससे Mast Cells मे से Histamin आदि द्रव्यो की बडी मात्रा उत्पन्न होकर रक्त मे सचार कर जाती है और उससे Anaphylaxis का उपद्रव होता

हे। Antigen की पहली मात्रा को Sensitising Dose कहते हैं। उसकी दूसरी मात्रा को Shocking या Reacting dose कहते हैं। हा यदि किसी भी प्रोटीन द्रव्य के दूसरे इन्जेक्शन को २-३ भागो मे विभक्त करके आधे-घण्टे के अन्दर दे दिया जाये तो रोगी को Anaphylaxis से वचाया जा सकता हे। Anaphylaxis हो जाये तो तुरन्त Adrenalin का इन्जेक्शन देना चाहिये।

श्वासरोग, शीतपित्त, Hay Fever अर्थात् Allergic Rhinitis आदि रोगो को भी Local Anaphylaxis ही कहना चाहिये क्योकि इनमे श्वास नालियो, त्वचा या नासिका की झिल्ली के सेलो पर चिपके Antibodies के साथ वाहर से आये तत्सम्वन्धी Antigens के सपर्क मे आने पर वहा प्रवल प्रतिक्रिया हो कर जो सेल्स टूटते हे उसी के कारण उत्पन्न हिस्टामीन आदि द्रव्यो के वहा के Tissuefluid मे तथा रक्त मे फैल जानेसे ये रोग उत्पन्न होते है।

Serum Sickness — कभी कभी Tetanus, Dyphtheria आदि के सीरम के वडी मात्रा मे देने से या Blood Transfusion के देने से थोडी देर वाद ही त्वचा पर Urticaria निकल आता है जिससे भारी खुजली होने लगती है। अथवा चेहरे, पलको, हाथ पाव आदि पर श्वयथु प्रकट हो जाता हे। सीरम के थोडी मात्रा मे देने पर यह उपद्रव प्राय नही होता अर्थात् सीरम की एक मिलिलिटिर मात्रा ही दी गई हो तो ५% रोगियो मे ही Serum Sickness का रोग होता है। १० मिलिलिटर की मात्रा दी गई हो तो १०% मे ही यह रोग होता है। १०० मिलिलीटर मात्रा के देने पर ६०% रोगियो मे यह रोग हो जाता है। सीरम की प्रथम मात्रा के देने पर भी कई वार Allergy का यह रोग हो जाता है। क्योकि इन्जेक्शन के आरम्भ करने के कुछ देर के अन्दर ही Antibodies उत्पन्न होने आरभ हो जाते ह। वे अवयवो के सेलो को शीघ्र Sensitise करने का कारण वन जाते हैं और वाद मे जो Antigen अधिक मात्रा मे दिया जाता है उसका रक्त के अन्दर पूरा Blocking नही हो पाता। परिणामत उनका और सेलो पर लगे Antibodies का सपर्क होने पर जो Reaction होता है उससे वहुत से Mast Cells टूट जाते है और Histamine आदि की उत्पत्ति होकर Serum Sickness का रोग हो जाता है। अत सीरम देने से पहले पता लगा लेना चाहिये कि रोगी ने पहले कभी सीरम तो नही लिया तथा उसके घर मे किसी को श्वास रोग, Urticaria आदि रोग तो नही। सीरम की वडी मात्रा देनी हो तो पहले रोगी को Benadryl ५० मिलि या Mepyramine Maliate १०० मिलि० की एक मात्रा दे दे। उसके थोडी देर वाद सीरम की २ मिलिलिटर मात्रा त्वचा द्वारा दे। यदि आधा घण्टा तक उसकी कोई प्रतिक्रिया न हो तो शेप सारे सीरम को मास द्वारा दे सकते है। यदि कुछ प्रतिक्रिया हो तो २ मिलिलि० मात्रा सीरम की आधे-आधे घ० वाद देते रहे जव तक सारा सीरम समाप्त हो जाये। यदि रोगी के घर मे किसी को कोई Allergy सवन्धी रोग है तो सीरम के दस मे एक डाइल्यूशन की २ मिलिलि० मात्रा पहले त्वचा द्वारा देकर आधा घण्टा तक देखना चाहिये कि कोई प्रतिक्रिया तो नही होती। यदि इसकी कोई प्रतिक्रिया न हो तो दूसरी मात्रा जैसा सीरम है उसकी २ मिलिलि० मात्रा त्वचा द्वारा दे दे। यदि आधा घ० तक इसकी भी कोई प्रतिक्रिया न हो तो शेष सीरम मास द्वारा दिया जा सकता है। यदि दूसरी मात्रा पर कोई प्रतिक्रिया हो तो शेप सीरम को २ मिलिलि० मात्रा मे आधे-आधे घटे पर त्वचा द्वारा देकर समाप्त कर सकते है। यदि Intravenous तरीके से सीरम देना हो तो पहले थोडी मात्रा सीरम की मास द्वारा देकर आधा घण्टा तक देखना चाहिये कि कोई प्रतिक्रिया तो नही होती। न हो तो आधा या एक घ० वाद सीरम को शिरा द्वारा दे सकते है। शिरा द्वारा देने से प्रतिक्रिया हो तो तुरन्त १ मिलिलि० Adrenaline देना चाहिये। अथवा Hydrocortisone Succinate का इन्जेक्शन दे। जिसे पहले Allergy सम्वन्धी कोई रोग हो चुका हो तो उसे सीरम कभी भी शिरा द्वारा नही देना चाहिये।

Serum Sickness हो जाये तो Adrenaline का इन्जेक्शन तुरन्त देना चाहिये। Pyribenzamine या Phenergan ५० मिलि० दिन मे ३ वार देने से भी लाभ हो जाता हे।

Allergic Rhinitis (क्षवथुयावातिक प्रतिश्याय)

नासिका के अन्दर की झिल्ली सेलो मे किसी वाह्य प्रोटीन या Allergen के विपरीत उत्पन्न हुए Antibodies या Reagins उपस्थित हो और उनके कारण सेल्स Sensitised हुए हो तो फिर उसी Allergen के वाहर से वहा आने पर Antigen Antibody Reaction होकर वहा श्वयथु Oedema उत्पन्न हो जाता है, छीके वहुत आती हैं, नासिका से स्राव भी वहुत होता हे, आँखो मे भी खुजली होती हे। रक्त मे Eosinophil अधिक पाये जाते हैं, —

किसी Antihistamine औषधि जैसे Chlorpheniramine Maliate ४ मिलिलि० की गोली के दिन मे

३ वार देने या Meclozine hydrochloride (Ancolan) के २५ मिलि० के एक वार प्रात देने से आराम आ जाता है।

श्वास रोग Asthma—वहुधा श्वासरोग श्वास मार्ग मे किसी वाह्य प्रोटीन द्रव्य की असहनशीलता के कारण उत्पन्न होता है। वाह्य प्रोटीन, भोजन सम्वन्धी हो, धूल सम्वन्धी या वैक्टीरिया सम्वन्धी किसी प्रकार का हो सकता है। अर्थात् वाहर से श्वास मार्ग द्वारा आये किसी प्रोटीन के या थूक मे पाये जाने वाले किसी जीवाणु गत प्रोटीन के Antigen के श्वासनलियो मे Cell Bound Antibodies या Reagins के साथ परस्पर सपर्क मे आने पर जो प्रतिक्रिया होती है उसके परिणाम रूप वहा उत्पन्न हुए Histamine के रक्त द्वारा प्रसरण कर जाने से यह रोग उत्पन्न होता है। रक्त मे तथा श्वास नालियो मे परिस्रुत हुए द्रव्य मे Eosinophils की सख्या भी अधिक होती है। किसी Antihistamine औषधि के देने से लाभ भी होता है।

Eczema (पामा)—

पामा या वहिस्त्वक् शोथ Dermatitis का कारण भी कोई आभ्यन्तर या वाह्य Allergen ही है जिसके विरोध मे उत्पन्न हुए Antibodies वहिस्त्वक् के सेलो मे लगे रहते है। जव वाहर से फिर वही Antigen प्रवेश करता है तो वहा Antigen Antibody प्रतिक्रिया होकर वहा के Connective Tissue Cells खण्डित होते है जिसके परिणाम रूप त्वचा पर लालिमा श्वयथु स्राव आदि लक्षण हो जाते है। इस रोग मे भी Antihistamine औषधि से लाभ हो जाता है अर्थात् Phenergan २५ मिलि० या Betamethasone (Betnelan) की गोली के दिन मे ३ वार लेने तथा Beta Methasone की मलहम के लगाने से आराम आ जाता है।

Urticaria (शीत पित्त) का रोग भी किसी भोजन विशेष से या घर की धूल के नाक द्वारा आने से या Tonsil, Nasal Sinus, दात आदि मे विद्यमान पूय के आत मे विद्यमान किसी कृमि के प्रोटीन के विरोध मे उत्पन्न Antibodies के Dermis के सेलो मे लगे रहने के वाद फिर जव वही Antigen रक्त द्वारा त्वचा मे पहुचता है तो वहा Antigen Antibody Reaction होकर उत्पन्न Histamine आदि के वहा के द्रव मे सचार कर जाने से उत्पन्न होता है।

Subcutaneous Tissue मे यही शीत पित्त का उपद्रव हो तो उसे Angioneurotic Oedema कहते है।

दो दिन केवल चाय तथा फलो पर रहकर फिर एक सप्ताह केवल एक भोजन द्रव्य लें, दूसरे सप्ताह एक दूसरा भोजन द्रव्य भी ले लें, तीसरे सप्ताह एक और भोजन द्रव्य भी लेना शुरू करे तो पता लगाया जा सकता है कि किस भोजन द्रव्य से यह रोग होता है। दवाइयों मे से यह पेनिसिलिन, Aspirin आदि से हो सकता है। रोग मृदु हो तो Benadryl ५० मिलि० के दिन मे ३ वार देते रहने से यह ठीक हो जाता है तीव्र हो तो Adrenaline का इन्जेक्शन दें या Prednisolone १० मिलि० दिन मे तीन वार दें।

Drug Allergy—औषधियो मे से Penicillin, Sulphonamides आदि की घोर प्रतिक्रिया कभी कभी देखने मे आती है। रक्त के या किसी अवयव के प्रोटीन से मिलकर अर्थात् इनके Hapten वन जाने से ये Antigen का काम करती हैं। एक वार होने के वाद दुवारा इनके लेने पर इनसे Allergy होती है तथा उन्ही मे होती है जो Allergy की प्रकृति के होते हैं। पेनिसिलिन के वाद तो कभी कभी Anaphylaxis की घोर प्रतिक्रिया भी हो सकती है लगभग २-३ प्रतिशतक व्यक्तियो मे इसके लिये Allergy पाई जाती है। इसके देने पर घोर प्रतिक्रिया हो तो तुरन्त Adrenaline आधा या एक सी० सी० का मास द्वारा इन्जेक्शन देना चाहिये। Hydrocortisone Hemisuccinate का १०० मिलिग्राम मात्रा मे शिरा द्वारा देना और अधिक अच्छा है

Auto Allergy or Autosensitivity —

कभी कभी किसी व्यक्ति के अन्दर Streptococcus आदि किसी जीवाणु के सक्रमण से उसके एक अग को ऐसी क्षति पहुचती है कि उस अग का अपना ही प्रोटीन एक Antigen वन जाता है और उस Antigen के विरोधी पिण्ड Antibodies भी सीरम मे उत्पन्न हो जाते हैं और फिर समय समय पर उस Antigen और Antibody के मिलने से जो प्रतिक्रिया होती है उससे उस अग मे शोथ हो जाता है जिसे उस अग का Autoallergic रोग कहते है।

उदाहरणत

Rheumatic Fever (सधिकज्वर) मे वालक के टान्सिल्स मे से Haemolytic Streptococcus का सधियो तथा हृदय के Connective Tissue मे सक्रमण होकर वहा के प्रोटीन्स मे कोई ऐसा परिवर्तन हो

जाता है कि वहा का प्रोटीन Antigen का सा व्यवहार करता है अर्थात् उसके विरोधी पिण्ड Streptococcal Antibodies (Anti Haemolysin, या Antifibrinolysin या Complement Fixing Antibodies) सीरम मे उत्पन्न हो जाते हैं। Connective Tissue के सेलो मे इन दोनो के सघर्ष से जो विकृति उत्पन्न होती है वह Horseserum आदि वाह्य प्रोटीन्स के इन्जेक्शन से भी उत्पन्न होती हुई देखी गई है। इन्ही के सघर्ष के कारण यह रोग बना रहता है। इसी कारण Penicillin तथा Sulpha औषधियो से इस रोग मे कुछ लाभ भी होता है।

Rheumatoid Arthritis रोग मे भी जो २५-४० वर्ष की आयु के रोगियो मे छोटे जोडो के अन्दर शोथ के रूप मे होता है एक Rheumatoid Factor पाया जाता है जो एक Gamma Globulin होता है और अपने ही Globulin के प्रति Antibody का सा व्यवहार करता है। इसलिये यह रोग भी जोडो मे Autoallergy के परिणाम रूप मे होता प्रतीत होता है।

Systemic Lupus Erythematosus रोग के रोगी के सीरम मे भी (जो १५-३० वर्ष की स्त्रियो मे अधिकत होता है जिसमे सधिशोथ शूल, पाण्डुता, कृशता, मुख पर गालो पर दोनो ओर लाल सा चकत्ता होता है Endocarditis और Hypertension के लक्षण भी होते है) Antinuclear Antibodies पाये जाते है जो Deoxyribonuclic acid के विपरीत उत्पन्न होते प्रतीत होते हैं। इसे Erythematosus Factor कहते हैं। इसका कुछ अगो के Connective Tissue Cells के Nuclei पर विनाशक प्रभाव पडता है तथा Nuclei के विनाश मे उत्पन्न Nucleoprotein के Intercellular Connective Tissue पर बैठ जाने से उसमे Fibrinoid Degeneration की प्रक्रिया होने लगती है। रोगी के वृक्को, हृदय, त्वचा सधियो के Connective Tissue Cells के Nuclei मे कोई Antigen रहता प्रतीत होता है जिसके और Antibodies के सघर्ष से उनमे शोथ होने लगता है।

Acute Glomerulonephritis—एक वालको मे होने वाला रोग है जिसमे पहले गले मे Haemolytic Streptococcal infection होता है जिसकी विष के मूत्र द्वारा निकलते रहने से Glomerular basement membrane पर कोई ऐसा दुष्प्रभाव पडता है कि वह एक Antigen वन जाता है और उसके विरुद्ध सीरम मे Antikidney Antibodies उत्पन्न हो जाते है जो एक Gammaglobulin है। इनके तथा Glomeruli के ग्रस्त अगो के संघर्ष से Glomeruli को हानि पहुचकर Glomerulonephritis रोग उत्पन्न हो जाता है।

Autoimmune Haemolytic Anaemia—रोग मे भी जो मध्यमायु की स्त्रियो मे होता है, जिसमे रोगी के अपने Erythrocytes के विपरीत Antibodies या Haemaggutinin उत्पन्न हो जाते हैं, जिनके रक्त कणो पर चिपकने से उनका Agglutination हो जाता है। यह रोग बिना किसी पूर्ववती रोग के हो तो इसे Primary या Idiopathic कहते है। किसी पूर्ववर्ती रोग के कारण हो तो इसे Secondary कहते हैं। रक्त परीक्षा मे इनके अन्दर Reticulocytes की वृद्धि मिलती है।

Idiopathic Thrombocytopenic Purpura मे भी जिसमे प्लाज्मा मे Platelet Antibodies पाये जाते हैं जो अपने ही Platelets को Agglutinate करके रक्त स्राव की प्रवृत्ति को उत्पन्न करते है। इस रोग मे त्वचा पर लाल रग के चकत्ते निकलते रहते है। किसी किसी श्लेष्मकला से भी रक्त स्राव हो सकता है। रक्त परीक्षा करने पर Platelets की सख्या कम मिलती है (नार्मल २ लाख ५० हजार)

Ulcerative Colitis —रोग भी Autoallergy का ही एक रोग प्रतीत होता है। इसमे रक्त मिश्रित अतिसार होते रहते हैं। रोगी के Colon के Mucous membrane के सेलो के विपरीत विरोधी पिण्ड(Antibodies) रोगी के सीरम मे मिलते हैं। रोगी के सीरम को Human Colon के Extract से मिलाने पर Precipitation test पाजिटिव होता है। Cortisone औषधियो से इसमे लाभ भी होता है।

आयुर्वेद मे अलर्जी

सात्म्य असात्म्य विषय पर लिखते हुए चरक ने कहा है 'सात्म्यमपि क्रमेण अनुपयुज्यमानमदोष भवति तथा असात्म्यमपि क्रमेण उपयुज्यमानमदोष भवति'। अर्थात् मद्य अफीम तमाखू भाग आदि कोई विष पदार्थ प्रयोग करते रहने से सात्म्य हो गया हो तो क्रमश उसका त्याग करने से कोई उपद्रव नहीं होता। इसी प्रकार कोई वस्तु सबको नितान्त असात्म्य है उसका क्रमश: प्रयोग किया जाये तो वह भी सात्म्य हो जाती है। चरक के इस कथन पर 'इम्युनिटी' का सिद्धान्त आश्रित है अर्थात् क्रम से किसी वस्तु का सेवन करने से वह दोषवान् होती हुई भी अदोष हो जाती है। सहसा किसी वस्तु का सेवन

किया जाये तो वह निर्दोष होती हुई भी किसी के लिये बहुत हानि कारक हो सकती है इसी को अलर्जी कहते हैं।

इस अलर्जी का प्रधान कारण तो अग्नि की मन्दता प्रतीत होती है। अर्थात् यदि भोजन के प्रोटीन्स का पूर्ण पचन न हो दूसरे शब्दो मे वे 'अमीनोएसिड्स के रूप' मे रक्त मे न जाकर 'पैप्टोन' या 'पैप्टाइड', के रूप मे रक्त मे चले जायें तो भी अलर्जी हो सकती है।

दूसरे, हिस्टामीन विष के शरीर मे उत्पन्न हो जाने पर शरीर हिस्टामिनेज नामक अन्जाइम को उत्पन्न कर देता है जिससे हिस्टामीन नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार 'एसेटिल कोलीन' नामक विष के उत्पन्न हो जाने पर शरीर 'कोलीन ईस्टरेज' नामक अन्जाइम को उत्पन्न कर देता है जिससे शीघ्र ही 'ऐसेटिल कोलीन' नष्ट हो जाता है। परन्तु यदि देहाग्नि की मन्दता के कारण उपर्युक्त अन्जाइम्स उत्पन्न न हो या स्वल्प मात्रा मे उत्पन्न हो तब अलर्जी का कष्ट देर तक जारी रहता है। इससे अनुमान होता है कि अलर्जी का प्रधान कारण अग्नि की मन्दता है।

माधवनिदान मे कहा भी है कि 'रोगा सर्वेपि मन्देग्नौ' अर्थात् सारे रोग अग्नि की मन्दता के कारण उत्पन्न होते हैं। वाग्भट ने भी कहा है कि 'प्रतिज्ञा वाग्भट्टस्य न मन्दाग्नि विना रुज ,अर्थात् वाग्भट्ट का मन्तव्य है मन्दाग्नि के विना रोग नहीं होते। इनका यह कथन अलर्जी के विषय मे भी ठीक घटता है।

अलर्जी का दूसरा प्रधान कारण यकृत के कार्य का कुछ मन्द हो जाना है। यकृत का एक बड़ा कार्य रक्तस्थ विष द्रव्यो को पकड कर उन्हें पित्त द्वारा बाहर निकालना है। इसे यकृत का 'डिटौक्सिकेटिड-फन्क्शन' कहते हैं। इस कार्य के मन्द हो जाने से भी अलर्जी का रोग होता है। अत एकतः अग्निदीपक औषधियो से अलर्जी को लाभ होता है, दूसरे यकृच्छोधक या यकृदुत्तेजक औषधियो से भी अलर्जी मे लाभ होता है। अग्निदीपक औषधियो मे प्रधान औषधिया त्रिकटु चतुर्जातक पञ्चकोल अजवायन हींग आदि हैं। यकृदुत्तेजक औषधियो मे प्रधान औषधिया त्रिफला, कटुकी, गिलोय, दारुहल्दी, त्रिवृत आदि हैं।

उदाहरणतया श्वासरोग एक अलर्जी से होने वाला रोग है। उसके लिए जो प्रयोग आयुर्वेद ग्रन्थो मे आए हैं वे प्राय· अग्निदीपक तथा यकृच्छोधक औषधियो से ही वने हैं। जैसे समशर्कर चूर्ण, वृहत् समशर्कर चूर्ण, त्रिकटु-कादि चूर्ण, मरिचादिचूर्ण, पिप्पलीचूर्ण, समशर्कर लौह, अगस्त्य हरीतकी, हरीतकी अवलेह आदि आदि।

इसी प्रकार शीत पित्त छिपाकी का रोगी भी अलर्जी से होने वाला है। उसके लिये ग्रन्थो मे जो प्रयोग आये हैं वे सव अग्नि दीपन औषधियो और यकृच्छोधक औषधियो से वने हैं जैसे गुडदीप्यक योग, यवान्यादियोग, त्रिफलादि विरेचनम्, हरिद्राखण्ड, आर्द्र कखण्ड आदि आदि।

इसी प्रकार पामा अक्जीमा या चबल का रोग भी अलर्जी का रोग है। ग्रन्थो में लिखे हुए उसके प्रयोग भी अग्निदीपक और यकृच्छोधक औषधियो से वने हैं। जैसे लघु मजिष्ठादि, अमृतागुग्गुलु, सप्तसम अवलेह, विडगादि-चूर्ण, विडगाद्यवलेह, वरादि चूर्ण आदि।

इसी प्रकार आमवातरोग भी अलर्जी रोग है। उसके लिये शास्त्र मे जो योग मिलते हैं जैसे अजमोदादिचूर्ण हिंग्वादिचूर्ण, पञ्चसमचूर्ण, पथ्यादिचूर्ण, वैश्वानर चूर्ण सिंहनादगुग्गुलु, शिवागुग्गुलु आदि आदि सव अग्निदीपक तथा यकृच्छोधक औषधियों से वने हुए हैं।

अत सारे अलर्जी रोगो की आयुर्वेदिक चिकित्सा यही है कि उनमे अग्निदीपक और यकृत के शोधन के उपाय किये जायें।

परिशिष्ट

ऊपर कहे गये योगो का विवरण नीचे दिया जाता है।

श्वासरोगोपयोगी आयुर्वेदिक योग —

(१) समशर्कर चूर्ण (योगरत्नाकर) इलायची १, दाल-चीनी२, तेजपत्र३, नागकेसर४, मरिच५, पिप्पली६, सोठ ७ भाग खाण्ड सारे के समान भाग। मात्रा ३ माशा।

(२) वृहत् सम शर्करचूर्ण (वगसेन) लौंग, जायफल, पिप्पली १।-१। तोला। मरिच २॥ तोला। सौंठ २० तो०। खाण्ड सर्वतुल्य। मात्रा ३ माशा।

(३) मरिचादिचूर्ण (योगरत्नाकर) मरिच खाण्ड वरावर २ का चूर्ण। मात्रा ३ माशा।

(४) त्रिकटुकादिचूर्ण (वैद्यजीवन) त्रिकटु गुड या खाण्ड समान २, घृत शहद के साथ ३ माशा मात्रा।

(५) सितादिलेह (वृहन्निघण्टुरत्नाकर) मिश्री पिप्पली समान २, मात्रा ३ माशा।

(६) कटुत्रिकलेह (वृहन्निघण्टुरत्नाकर) त्रिकटु, पुष्करमूल, काकडासिगी समान २ का चूर्ण। मात्रा ३ माशे। शहद से।

(७) मागध्यादि चूर्ण (गदनिग्रह) पिप्पली, त्रिफला चारो समान २, ३ माशा मात्रा शहद से।

(८) विडगादिचूर्ण (रसरत्नाकर) विडग, पिप्पली, इलायची, दाल चीनी १।-१। तोला। मरिच २॥ तोला। सोठ २० तोला। मिश्री सर्वतुल्य। मात्रा ४ माशा।

(९) पिप्पलीचूर्णम् (भावप्रकाश) पिप्पलीचूर्ण २ माशा मधु से।

(१०) नागरादिचूर्ण (वृन्दमाधव) सोंठ, हरड समान २ का चूर्ण, ३ माशा मात्रा। मधु से।

(११) समशर्करलोह (भैषज्यरत्नावली) लौंग, कट्फल, कुष्ठ, अजवायन, त्रिकटु, चित्रक, पिप्पलीमूल, चतुर्जातक, हरड, कचूर, कंकोल, मोथा, चव्य, वासा, कचूर, लोहा, अभ्रक, जवा खार—१-१ भाग। खाण्ड सर्व तुल्य। २ माशा।

(१२) शृंग्यादि चूर्ण (योगरत्नाकर) काकडासिंगी, त्रिकटु, त्रिफला, भारंगी, पुष्करमूल, पांच नमक समान २। ३ माशा।

(१३) हिंग्वादिचूर्ण (वैद्यमनोरमा) हींग १, वच २, चित्रक ३, सोंठ ४, अजवायन ५, हरड ६, पिप्पली ७ भाग, त्रिवृत ८ भाग। चूर्ण करें। २ माशा घृत से।

(१४) त्रिफलाप्रयोग (योगसमुच्चय) त्रिफला, त्रिकटु, भारगी कुष्ठ समान २, पञ्चलवणचूर्ण सर्व तुल्य। १ माशा मात्रा।

(१५) हरीतक्यावलेह (गदनिग्रह) दशमूलक्वाथ ८ सेर। हरड १००। पका कर, कपडछन कर घृत मे भून कर मिलायें। गुड ६। सेर। त्रिजातक, त्रिकटु, यवक्षार १।-१। तोला। शहद ½ सेर। १ तो० मात्रा।

शीतपित्तोपयोगी कुछ शास्त्रीय योगः—

(१) गुडदीप्यक्क योग (योगरत्नाकर) अजवायन चूर्ण को २ गुणा गुड मे मिलायें। मात्रा ४ माशा।

(२) यवानी त्रिकटु योग। (योगरत्नाकर) अजवायन त्रिकटु चारो समान समान मिलाकर दूध से दें। मात्रा ३ माशा।

(३) त्रिफला विरेचनम् (वृन्दमाधव) त्रिफला ४ माशा शहद से दें। या त्रिफला क्वाथ के साथ पिप्पली चूर्ण १माशा दें।

(४) हरिद्रा खण्ड (भैषज्य रत्नावली) हल्दी चूर्ण ४०, घृत ३० तोला, गोक्षीर ३ सेर, खाण्ड ३ सेर। पका कर गाढा करें। त्रिकटु, चतुर्जातक, त्रिफला, विडग, मोथा ५-५ तोला का चूर्ण मिलायें। मात्रा १ तोला।

पामा या एक्जिमा के लिये कुछ शास्त्रीय योग ये हैं :—

(१) लघुमजिष्ठादिक्वाथ (शार्ङ्गधर) मंजीठ, त्रिफला, वच, दारु हल्दी, गिलोय, नीम, कुटकी समान-समान का क्वाथ।

(२) विडगादिचूर्ण (भैषज्य रत्नावली) विडंग, पिप्पली त्रिफला समान समान। शहद से ३ माशा।

(३) पथ्यायोग (वृन्दमाधव) गोमूत्र साधित हरडो को सुखाकर चूर्ण करें, मात्रा ३ माशा।

(४) धात्र्यादिस्वरस (शार्ङ्गधर) आवले, हरड या वहेडे के स्वरस को शहद से दें। या तीनो का स्वरस शहद से दें।

(५) सप्तसमअवलेह (गदनिग्रह) त्रिफला, त्रिकटु, शुद्ध भिलावा सातो का चूर्ण वना कर उसे खाण्ड शहद तिल और घी साथ मिलाकर चटायें।

आमवातरोग के उपयोगी कुछ शास्त्रीय योग ये हे —

(१) अजमोदादिचूर्ण (शार्ङ्गधर) अजवायन, विडग, सेंधव चित्रक, पिप्पलीमूल, सोया, पिप्पली, मरिच, १।-१। तोला। हरड ६। तोला। सोठ १२॥ तोला। विधारा १२॥ तोला। चूर्ण बना कर ४ माशा मात्रा मे दें।

(२) हिंग्वादिचूर्ण (भैषज्यरत्नावली) हीग १, चव्य २, विडलवण ३, सोठ ४, कालाजीरा ५, पुष्करमूल ६ भाग, चूर्ण। ३ माशा मात्रा।

(३) पञ्चसम चूर्ण (शार्ङ्गधर) सोठ, पिप्पली, हरड त्रिवृत, सौवर्चल, समान समान। मात्रा ४ माशा।

(४) सिंहनादगुग्गुलु (भैषज्य रत्नावली) गुग्गुल ५ तो०। एरण्डतेल २० तोला। गर्म करके मिलायें। त्रिफला क्वाथ १५ तोला मिलाकर गर्म करें। ठडा होने पर गधक ५ तोला मिलायें। मात्रा ३-६ माशा।

Antibiotics जीवाणुनाशक औषधिया

पहले पहल Louis Pasteur (१८२२-१८९५) एक फ्रान्सीसी बैक्टीरियोलोजिस्ट तथा Lord Joseph Lister (१८२२-१९१२) एक अग्रेज डाक्टर तथा Paul Ehrlick (१८५४-१९१५) एक जर्मन डाक्टर ने रक्त आदि धातुओ मे सक्रामक रोगो के कारणभूत जीवाणुओ को कैमिकल औषधियो के द्वारा मारने का तरीका चलाया। परन्तु उन औषधियो से सक्रामक रोग तो ठीक हो जाते थे पर उनका शरीर पर पर्याप्त दुष्प्रभाव भी पडता था। इसके वाद जव Domagk (१९३५) ने Sulphonamide अर्थात् M B 693 Prontosic (१९३८) आदि का आविष्कार किया और Fleming ने १९२८-२९ मे Penicillin का पता लगाया तो जीवाणुनाशक औषधियो का एक नया युग आरम्भ हो गया जिसे हम आश्चर्यकारी औषधियो का युग कह सकते हे। प्रारम्भ मे तो ऐसा लगा कि

आदमी ने अनेक घातक रोगो पर विजय पा ली है । पर दुःख की बात है कि प्रारम्भ मे उन औषधियों से जो आशाये की गई थी अब वे कुछ धुंधली पड़ गई है। प्रारम्भ मे जो इनका बल था वह प्रयोग के बाद वह आज कुछ निर्बल पड़ गया। कई जीवाणु विशेषत Staphylococcus aureus तथा Gram Negative Bacteria इन औषधियों के प्रति Resistant हो गए है। जनता की एक बड़ी प्रतिशतक मात्रा मे इन मे Allergy उत्पन्न हो जाने का दोष भी उत्पन्न हो गया है। ऐसा पता लगता है कि इन औषधियों का तभी प्रयोग करना चाहिये जब रोग भयकर हो या रोगी बालक अथवा वृद्ध हो। स्वल्प से रोग मे इन औषधियो के प्रयोग के लालच मे बचना चाहिये। साधारण रोगो को अपनी शारीरिक Immunity से ही ठीक होने देना चाहिये। क्योकि जिन २ देशो मे इन औषधियो का अधिक प्रयोग हुआ है उन २ देशो मे जीवाणु अधिक Resistant हो गये है और जितने जीवाणु अधिक Resistant हो जायेंगे उतना ही ये औषधिया निरर्थक हो जायेंगी। जिस व्यक्ति मे एक जीवाणु इनके लिये Resistant हो जाता है तो वह सारी आयु भर Resistant रहता है।

Sulphonamides—

जीवाणु के मेलो की वृद्धि के लिये Folic acid (Pteroyl Glutamic Acid) आवश्यक होता है। इसका पूर्वरूप या Precursor Para Aminobenzoic acid है। अब Para Aminobenzene Sulphonamide उसके सदृश ही कपौण्ड है। जब इसकी मात्रा रक्त मे पर्याप्त हो जाती है तो जीवाणु इसी को लेने लगते है पर इससे Folic acid बनता नही जिससे जीवाणु की आगे वृद्धि रुक जाती है। अर्थात् Sulphonamide औषधिया Bacteriostatic वृद्धि रोधक औषधिया है Bactericidal (घातक) नही है। जब जीवाणु की वृद्धि रुक जाती है तो उनका विनाश शरीर रक्षक तत्वो (Phagocytes, Antibodies आदि) द्वारा सुगमता से हो जाता है।

शरीर के किसी अग मे Infection का केन्द्र हो Sulphonamide के घुलनशील साल्ट्स का प्रयोग होना चाहिये। अर्थात् Sulphadimidine या Sulphadiazine का प्रयोग करना चाहिये। इनकी पहली मात्रा ४ गोलियो की और फिर ६-६ घण्टा पर इसकी २-२ गोलिया ३-४ दिन देने मे सारे सक्रमण जनित रोग ठीक हो जाते है। मूत्र थोड़ा हो और वह Acidic हो तो इस औषधि के गुर्दों मे बैठ कर crystalluria रोग के करने का भय रहता है। अत रोगी को जल अधिक पिलाना चाहिये तथा मूत्र को Alkaline करने के लिये कुछ Sodabicarb भी रोगी को पिलाना चाहिये। बालक को एक-एक गोली छ-छ घण्टो पर दिन रात मे ४ बार दें। Meningococcal Meningitis मे इसका प्रयोग विशेष लाभदायक है। उसमे पहली मात्रा ४-६ गोली की दी जाती है। रोगी बेहोश हो तो इसका Sodium Salt १ ग्राम मास द्वारा दिया जाता है। फिर दो दिन ४-४ घटे पर ३-३ गोली दी जाती है। फिर २-२ गोलिया ६-६ घटो पर दी जाती है। साधारणत इसके घुलनशील योगो का प्रयोग Pneumococcus, B Coli, Bacillary Dysentery आदि सक्रामक रोगो मे होता है। मूत्र मे पूय आता हो तो Sulphamethizole (Urolucosil) या Sulphasomidine (Elkosin) या Sulphafurazole (Gantrisin) की २५० मिलि० की गोलिया ६-६ घण्टो पर ६-७ दिन दे। कुछ सल्फा औषधिया मूत्र द्वारा धीरे धीरे निकलती है जैसे Sulphadimethoxine (Madribon) है। उसे पहले दिन २ गोली की एक मात्रा मे देकर फिर उसकी १ गोली दैनिक कुछ दिन देवें। अथवा Sulphaphenazole (Orisul) की एक दिन ४ गोली की एक मात्रा दे कर कुछ दिन उसकी २ गोली की एक मात्रा देवें।

इसके अनघुलनशील योगो मे से Thalazole की २-२ गोली दिन मे ४ बार देने से या Sulphasuccidine या Sulphaguanidine को भी इसी तरह २-२ गोली ४-६ बार देने से Bacillary Dysentery ठीक हो जाती है।

नेत्रो के Streptococcal Infection तथा Trachoma के लिये Sulphacetamide १०-३०% सोल्यूशन लाभदायक रहता है। ६% मलहम भी इनके लिये बहुत उपयोगी है। बालको के Otitis media मध्यकर्ण शोथ के लिये इसका पेनिसिलिन के साथ बना Pentid sulphas योग अधिक उपयोगी है।

किसी किसी व्यक्ति मे इससे त्वचा पर Rashes उत्पन्न हो जाते है। दूसरे कईओ मे Staphylococcus aureus, Gonococcus आदि इसके लिये Resistant हो गये है। इसलिये Sulphonamide औषधियो का प्रयोग अनावश्यक तौर से तथा देर तक नही करना चाहिये। उपद्रव से बचने के लिये यदि पहले १ गोली देकर ३-४ घटे देख लिया जाये कि कोई उपद्रव तो नही होता तो फिर बेखटके औषधि दे देनी चाहिये।

Penicillin (Fleming ने १९२८ मे इसका पता दिया। १९४२ के बाद यह बाजार मे सुलभ हुआ)

Gram-positive जीवाणुओ के कारण उत्पन्न रोगो के लिये यह उत्तम Bactericidal औषधि है। अर्थात् Haemolytic Streptococcus, Staphylococcus, Neisseria Meningitidis, Neisseria gonorrhoeae, Corynebacterium diphtheriae, Diplococcus pneumoniae, Clostridium tetani, Spirochaeta Pallida, पर इसका विनाशक प्रभाव होता है। १०% ऐसे Staphylococci हे जो इसके विरुद्ध Penicillinase enzyme उत्पन्न करते हैं। उन पर इसका प्रभाव नही होता। Penicillin का अनावश्यक तौर से प्रयोग करने या आख आदि मे स्थानिक प्रयोग करते रहने से भी फिर इनमे से भी वहुत से जीवाणु इसके लिये 'Resistant हो जाते है। अत इस औषधि का प्रयोग यथासभव अत्यावश्यक अवसरो पर ही करना चाहिये।

Benzylpenicillin या Penicillin या Crystalline Penicillin के रूप मे प्रधानत इसका प्रयोग मास द्वारा होता है। मास द्वारा देने से यह शरीर के सर्व अगो मे व्याप्त हो जाती है। ढाई लाख से ५-१० लाख यूनिट्स तक की मात्रा मे ६-६ घ पर इसके देने से सारे सक्रमण जनित रोग ठीक हो जाते हे। Bacterial Endo-Carditis मे १० लाख यूनिट मात्रा मे ६-६ घ पर दे तथा १½ मास तक दें। Tetanus, Rheumatic fever, Acute Nephritis मे, चोट लग जाने पर भी इसका प्रयोग ठीक है। Procaine Penicillin का प्रभाव देर तक रहता है। इसको ४ लाख यूनिट्स की मात्रा मे देने से इसकी रक्त मे उपस्थिति २४ घ० तक वनी रहती है। परन्तु इसमे Penicillin G की अपेक्षा Allergy उत्पन्न करने का दोप अधिक है। इसलिये इसे अव साधारण रोगो मे प्राय नही दिया जाता, वालकों मे इस औपधि की २-३ लाख दैनिक मात्रा पर्याप्त है। Procaine Penicillin, crys-4, Omnacillin आदि नामो से मिलती है।

P A M या Procaine penicillin G in oil with 2% Allumenium monostearate को ६-१० लाख यूनिट्स की दैनिक मात्रा मे मास द्वारा Syphilis मे दिया जाता हे।

Benzathine Penicillin (Penidure) को १२ लाख यूनिट्स की मात्रा मे मास द्वारा १५-३० दिन के अन्तर से पुरानी Syphilis तथा पुराने Rheumatic Fever के रोगो मे दिया जाता है। 20 Gauge needle से इसे दें तथा देखले कि वह किसी रक्त वाहिनी मे तो नही। इससे कोई प्रतिक्रिया हो तो तुरन्त Adrenaline hydrochloride १ मिलिलि० मास द्वारा दे।

Penicillin के उपद्रव—Urticaria, Anaphylaxis इसके वडे उपद्रव है। पिछले उपद्रव के कारण कभी २ Collapse होकर कुछ मिनटो के अन्दर ही मृत्यु हो जाती है। इसीलिये पहले इसकी २ वून्द की मात्रा देकर Test कर लिया जाता है कि यह अनुकूल है या नही २०-३० मिनट वाद इसका पूरा इजेक्शन दिया जाता हे। यदि भयकर उपद्रव हो तो Decadron को मास या शिरा द्वारा दे।

कृत्रिम Penicillin मे से प्रधान औपधि Phenoxy-methyl penicillin या Penicillin V (Pentids) है जिसकी १२५ तथा २५० मिलि० की गोलिया मिलती हे। यह Acid Resistant हे अत इसे मुख से दिया जा सकता है। इसके Suspensions भी मिलते है जिनके ५ मिलिलि० मे १२५ मिलि० Penicillin होती है। इसे १ ग्राम दैनिक मात्रा मे ६-६ घ० पर वाटकर दिया जाता है। वालक को इससे आधी और शिशु को चौथाई मात्रा दी जाती है। वालको के Pneumonia, Otitis Media, Cough, Acute Nephritis, Tonsillitis, Rheumatic Fever, Boils आदि मे इसे दिया जाता है। इनका ५-६ दिन तक देना पर्याप्त होता हे। Allergy के रोगियो मे इससे भी दुष्प्रभाव हो सकता है। दूसरी कृत्रिम Penicillin, Methicillin है। ऐसे Staphylococci के रोगी के लिये जो Penicillinase उत्पन्न करके Penicillin को निष्क्रिय कर देते हे यह उपयोगी हे। इसकी १ ग्राम मात्रा ६-६ घटे पर मास द्वारा दी जाती है। तथा एक सप्ताह तक देना पर्याप्त होता है।

तीसरी कृत्रिम Penicillin, Cloxacillin (Orbenin) है। इसे भी Methicillin के समान गुण होने तथा मुख से देने योग्य होने के कारण Staphylococcal सक्रमण मे ५०० मिलि० मात्रा मे दिन मे ४ वार दिया जाता है। इसके २५० मिलि० के कैपसूल मिलते है।

Ampiciltin (Penbritin) के २५० मिलि० के कैपसूल मिलते है। ये मुख से देने पर विलीन हो जाते हे और ६ घ० तक इसका प्रभाव वना रहता है। मूत्र द्वारा यह औषध वाहर निकलती है। एक ग्राम दैनिक मात्रा मे इसका एक कैप० ६-६ घण्टो पर १० दिन तक दिया जाता है। Gram positive जीवाणुओ के अतिरिक्त Gram-Negative जीवाणुओ जैसे E Coli, H Influenzae, Salmonellae, Shegellae, Proteus Vulgaris आदि से उत्पन्न फुफुस, आत, मूत्रमार्ग, पित्तमार्ग आदि मे विद्यमान

रोगों के लिये उपयोगी है। इसीलिये पुरानी खासी, Bronchiectasis, Lung abscess, Gall bladder, वृक्क रोगो मे इससे लाभ होता है। पर Penicillinase Enzyme से यह Antibiotic नष्ट हो जाता है। अत Staphylococcus aureus के लिये ठीक नही। जिन्हे Penicillin अनुकूल नही उन्हे यह भी अनुकूल नही होती। Gonorrhoea के लिये यह उत्तम औषधि है।

Erythromycin estolate(१९५२)—Gram positive जीवाणुओ के लिये Bacteriostatic औषध है। जिसके कैपसूल २५० मिलि० के ६-६ घ० पर, दिन के लिये मुख से दिये जाते है। जिन्हे Penicillin अनुकूल नही पडती उनके लिये इसका प्रयोग किया जाता है। Staphylococcus aureus मे उत्पन्न होने वाले रोग मे जिसमे Penicillin का देना निरर्थक हो जाता है उसमे भी इसका प्रयोग किया जाता है। यह Anti staphylococcal antibiotic है। जिनके गुर्दे ठीक Function नही करते उनमे देने योग्य Antibiotic है। डिप्थीरिया में भी यह उपयोगी है। मूत्र मे Infection हो तो भी क्षारीय औषधि के साथ इसके प्रयोग से वडा लाभ होता है।

Streptomycin Sulphate (१९४४)—यह Gram negative bacteria के लिये Bacteriostatic और Bactericidal औषधि है। विशेषत यह Micobacterium Tuberculosis के लिये उपयुक्त होता है। इसके १ ग्राम औषध को प्रतिदिन मास द्वारा ३-४ मास तक दिया जाता है। इमे कुछ मास देने के वाद Bacteria इसके प्रति Resistant हो जाते है। यदि इसे Isoniazid या PAS के साथ दिया जाय तो वहुत मास तक वे Resistant नही होते। मूत्र मे पूय हो तो वह भी इसके इन्जेक्शन से ठीक हो जाती है। पर तव इसके साथ किसी क्षार का प्रयोग करना चाहिये पर मूत्र सम्वन्धी जीवाणु वहुत शीघ्र इसके प्रति Resistant हो जाते है। मुख द्वारा देने से यह विलीन नही होती, इसी लिये Bacillary Dysentery को ठीक करती है। इसके लिये इसकी २५० मिलि० मात्रा मुख द्वारा जल से ६-६ घटे पर दी जा सकती है।

दोष

-- अष्टम मस्तिष्क नाडी 8th Nerve की Vestibular नाडी को इससे क्षति पहुच सकती है। ऐसा हो तो शिरोभ्रम, शिरदर्द, अरुचि, वमन के दुर्लक्षण हो सकते है। यह दुर्लक्षण युवको मे नही, वडी आयु के व्यक्तियो मे ही होता है। गुर्दे ठीक हो तो यह दुर्लक्षण नही होता। इस दुर्लक्षण के होते ही इसका प्रयोग कुछ काल रोक देना चाहिये।

Streptomycin with Penicillin, Dicrysticin, Combiotic, Streptopenicillin आदि नामो से मिलता है।

Tetracyclines

Oxytetracycline (Terramycin Hostacycline, Subamycin) को एक मट्टी मे पाये जाने वाले जीवाणु Streptomyces rimosus से, Chloratetracycline Hydrochloride (Aureomycin) को Streptomyces Aureofaciens से तथा Tetracycline Hydrochloride (Tetracyn, Achromycin) को दोनो जीवाणुओ से तैयार किया जाता है। Demethyl Chlortetracycline Hydrochloride (Leder mycin) ये सव Gram Positive तथा वहुत से Gram Negative जीवाणुओ के लिये Bacteriostatic है। इसलिये इन्हे Broad Spectrum-Antibiotics कहते हैं। Staphylococcus Aureus, Streptococcus Pyogenes, Diplococcus Pneumoniae, Haemophilus influenzae, Neisseria Meningitidis, Neisseria Gonorrhoeae, Esch Coli, Salmonellae तथा Secondary Syphilis के लिये उपयोगी औषधि है। Penicillin जिन्हे अनुकूल नही उनके लिये इस औषधि का प्रयोग किया जा सकता है। Acute Amaebiasis के लिये भी यह उपयोगी है। इन औषधियो मे मे Terramycin का अधिक प्रयोग होता है २५० मिलि० के कैपसूल ६-६ घ० पर १ सप्ताह तक ही दिये जाते है। (वालको के लिये Subamycin Pediatric Syrup भी मिलता है)। अथवा १०० मिलि० या २५० मिलि० के दैनिक इन्जेक्शन ७ दिन दिये जाते है। Ledermycin के १५० मिलि० के कैपसूल मिलते है जो ६-६ घटे पर दिये जाते है। Ch Bronchitis के लिये जो Streptococcus Pneumonae तथा Haemophilus influenzae के कारण होती है यह वहुत उपयोगी है। उसके दौरे मे १ सप्ताह इसका प्रयोग कर लेना चाहिये।

Bile तथा मूत्र मार्ग मे पूय हो तो भी इससे लाभ होता है। परन्तु इसका अति प्रयोग करने से Gram Negative जीवाणु तथा Staphylococcus Aureus Resistant हो सकते हैं। अत इनका अतिप्रयोग उचित नही। इस औषधि के साथ २ Vitamin B Complex का प्रयोग करना चाहिये क्योकि इन विटामिन के वनाने वाले आन्त्रगत जीवाणु इस औषधि के प्रयोग से नष्ट हो जाते हैं। गर्भिणी

मे भी इनका प्रयोग न करना चाहिये क्योकि इनसे गर्भ पर दुष्प्रभाव पडता है। इस औषधि के मुख द्वारा अधिक मात्रा मे देने से अरुचि और वमन के दुर्लक्षण हो सकते है। Dimethyl chlor Tetracycline इसका एक नया योग है। इसकी दैनिक मात्रा ६ ग्राम है जिसे २ मात्राओ मे करके दिया जाता है। यह देर तक रक्त मे रहता है। Roli-tetracycline को जो एक नया योग है १५० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा १२-१२ घ० पर दिया जाता है।

Chloramphenicol (Chloromycetin Entero-mycetin) १९४७—इसे Streptomyces Venezuelae नामक मट्टी के एक जीवाणु से तैयार किया गया है। अव यह Synthetically तैयार की जाती है। यह भी एक Broadspectrum Antibiotic औषधि है जो Gram-positive तथा Negative दोनो के लिये Bacteriost-atic है। तो भी Gram Negative जीवाणुओ से होने वाले रोगो मे इसका उपयोग होता है। विशेपत Salmo-nella Infections मे जैसे Typhoid ज्वर मे वहुत उप-योगी है। इसके २५० मिलि० के कैपसूल मिलते है। एक कैपसूल को ४-४ घ० पर ४-५ दिन देने से यह ज्वर उतर जाता है। उसके वाद थोडी मात्रा मे ३ से ४-५ दिन और देते है। वालको के लिये इसका Suspension, Chlora-mphenicol Palmitate के नाम से मिलता है जिसके ४ मिलिलि० मे १२५ मिलि० औपधि होती है। इतनी मात्रा उन्हे ४-४ घ० वाद दी जाती है। वह औपधि Typhoid के अतिरिक्त Bacillary Dysentery मे भी उपयोगी है H Influenzae के सक्रमण से होने वाली खासी तथा काली खासी या Whooping Cough के लिये भी उप-योगी है। सर्दियो मे होने वाली पुरानी खासी के लिये भी यह हितकर है।

इस औषध का विपैला प्रभाव अस्थि मज्जा पर हो सकता है अर्थात् रक्त निर्माण कर्म वन्द हो सकता है (Aplastic anaemia) या Thrombocytes के निर्माण की कमी से Purpura हो सकता है। अत इसे ८-१० ग्राम से अधिक मात्रा मे एक वार मे न दे। तथा इसे जल्दी २ न दुहराये।

Kanamycin (१९५७)— Streplomyces Kana-myceticus से इसे वनाया गया है। Streptomycin के समान यह भी Gram negative जीवाणुओ के लिये Bactericidal है, मूत्र तथा Bile मे विद्यमान E Coli तथा Protius जीवाणुओ के सक्रमण से उत्पन्न Pyelone-phritis के लिये यह विशेपत उपयोगी है। इसे वहुत दिन तक नही दे सकते क्योकि वैसा करने से 8th Nerve पर तथा वृक्को पर इसका दुष्प्रभाव पड सकता है। इसीलिये क्षयरोग मे लाभदायक होते हुए भी इसे अधिक काल जारी नही रखा जा सकता। एक किलो भार के पीछे १५ मिलि दैनिक मात्रा मे दिन मे दो वार करके, वडो मे आधा ग्राम दिन मे २ वार कर के मास द्वारा दिया जाता है।

Bacitracin (१९४५)—Bacillus Subtiles से मिलते जुलते एक Bacillus से इसे तैयार किया गया तथा वह Bacillus एक Tracy नामक रोगी से लिया गया इसलिये इस Antibiotic का नाम Bacitracin रखा गया। Gram Positive जीवाणुओ जैसे Staphylococci, Streptococci आदि से होने वाले Pustules पिडिको आदि मे वहि प्रयोग मे यह Antibiotic काम आता है। १ सी सी द्रव या एक ग्राम वेजलीन मे इसके ५०० यूनिट्स के लोशन, क्रीम, नेत्र विन्दु आदि वनाये जाते है। २५ मिली लिटर Saline मे २५ हजार यूनिट्स डाल कर धोने के सोल्यूशन भी वनते है। Nephrotoxic होने से इसे इन्जेक्शन से नही दिया जाता।

Neomycin (१९४९)—इसे Streptomyces Fradiae जीवाणु से तैयार किया गया। Gram Negative जीवाणुओ के लिये Bactericidal Antibiotic है। आत पर शल्यकर्म करने से पहले इसे ५०० मिलि गोलियो की मात्रा मे ६-६ घटे पर दो तीन दिन मुख से दिया जाता है। वच्चो के लिये Neomy-cin Mixture मिलता है जिसके प्रति मिलिलिटर मे २० मिलि यह दवा होती है जिसकी १-४ चम्मच मात्रा ६-६ घण्टे पर दी जाती है। इसे Bacitracin के साथ मिला कर भी देते है। Hepatic-coma मे इसका प्रयोग विशेष लाभदायक है। इस Antibiotic का विशेष प्रयोग Infected wound, Ulcers, Impetigo, Boils, Eczema तथा नेत्र रोगो मे होता है। इसका ५% का मलहम या इसकी मलहम के एक ग्राम मे Bacitracin २५० यूनिट्स मिला कर वनाया मलहम वहि प्रयोग के लिये उपयोगी है या Neomycin Sulphate ५ मिलि Bacitracin ५०० यूनिट्स पेराफीन १ ग्राम मिलाकर वनाई मलहम उपर्युक्त रोगो के लिये उपयोगी है, या Neomycin Sulphate ५ मिलि Bacitracin २५० यूनिट्स, Sulphacetamide ६० मिलि मिला कर वनाया पौडर भी उपयोगी है। आखो के लिये १ मिलि लिटर शुद्ध जल मे Neomycin Sulphate ५ मिलि Bacitracin २५० यूनिट्स तथा Sulphacetamide

६० मिलि मिलाकर बनाया नेत्रबिन्दु बहुत उत्तम है।

Framycetin (Soframycin) —इसे Streptomyces Decaris नामक जीवाणु से १९५३ में तैयार किया गया। Neomycin की तरह यह Gram Positive तथा Negative दोनो के लिये अच्छा Bactericidal Antibiotic है। इन्जेक्शन द्वारा देने से यह Nephrotoxic तथा 8th Nerve के लिये विषैला है। इसका बहि प्रयोग १% सोल्यूशन या Spray या Cream के रूप मे तथा १–५% Powder के रूप मे स्फोटों, पिडिकाओं, क्षतो, Otitis, Rhinitis आदि मे प्रयोग के लिये होता है।

Paromomycin (Humatin)

१९५९ मे Streptomyces Rhimosis नामक जीवाणु से इसे तैयार किया गया। Intestinal Amaebiasis के लिये १-१½ ग्राम दैनिक मात्रा मे इसे दिया जाता है। इसी रोग के लिये यह विशेष उपयोगी है। Acute Bacillary Dysentery के लिये भी दैनिक दो ग्राम मात्रा मे इसे देने से लाभ होता है। प्रयोग केवल ५ दिन तक ही किया जाता है। Fumagillin, E Hystolytica के लिये घातक है। ४० मिलि दैनिक मात्रा मे १० दिन तक इसका प्रयोग होता है। Griseofulvin (१९५९)—इसे Penicillium Griscofulvin मे तैयार किया गया है। मुख से देने पर यह त्वचा की बहिस्तर मे सचित हो जाती है और वहा नखो मे तथा Hair follicles मे भी फैल जाती है। इसकी १२५ मिलि० की गोलिया मिलती है जिन्हे दिन मे ६-६ घ पर ४ बार दिया जाता है। १-२ मास तक इसे देना चाहिये। नख दद्रु के लिये महीनो तक भी दे सकते हैं। यह Fungistatic है, Cidal नही। Grisovin नाम से मिलती है। बालक मे इसकी १ या २ गोली दैनिक मात्रा है।

Fucidin (A Crystalline Sodium Salt of Fucidin acid) Staphylococcus Aureus) की सहारक मुख से दी जाने वाली औषध है। जिन्हे Penicillin अनुकूल नही उनके लिये उपयोगी है। २५० मिलि के कैपसूल्स दिन मे ३ बार २ सप्ताह तक दिये जाते हैं।

Ethambutol (Myambutol) क्षयरोग के लिये PAS का एक Substitute है। इसकी १०० मिलि० की गोली मिलती है। रोग मे प्रारभ मे देने मे विशेष लाभ होता है। इसका दिन मे एक बार देना ही पर्याप्त है।

Cephalexin—Cephalosporin Group की एक Broad Antibacterial Spectrum वाली औषधि है। ५०० मिलि० मुख द्वारा १२-१२ घण्टे पर दी जाती है। मूत्र मे जीवाणुओं की उपस्थिति को रोकने के लिये उत्तम औषधि है।

Nalidixic Acid—E coli, Proteus श्रेणी के जीवाणुओं के लिये घातक है। अत चिरस्थायी मूत्रगतपूय (Urine Infection) के लिए उपयोगी है। एक किलो भार के पीछे ५० मिलि मात्रा दैनिक।

Gentamycin (१९६३) Micromonospora purfura नामक Fungus मे बना यह Staphylo, Streptococci, Diplococcus Pneumoniae, Haemophilus influenza तथा Klebsiella के सक्रमण के लिये घातक है। यह E Coli, Proteus और Pseudomonas के लिये भी घातक है। इसका ३% Gentamycin (Genticyn) Eye Drop, Cornea के व्रण के लिये उत्तम औषध है। इसके प्रयोग से लालिमा तथा पानी बहना शीघ्र शान्त हो जाते हैं। नेत्रो के Infection इसके प्रयोग से १० दिन के अन्दर ठीक हो जाते हैं।

आयुर्वेद मे ज्वर

बाहर गर्मी हो, सर्दी हो, ऊष्ण स्नान करें या शीत स्नान, विश्राम करें या व्यायाम, शरीर का तापमान सदा ९८.४ डिग्री फा० ही रहता है। क्योंकि मस्तिष्क के Hypothalamus मे विद्यमान ऊष्मानियामक केन्द्र (Thermostat) Thermo regulatory केन्द्र है। इसका पिछला भाग ऊष्मोत्पत्ति तथा अग्रिम भाग ऊष्मा विनाश का नियामक है। एक ओर धातुओ मे विशेषत मास तथा यकृत् आदि ग्रन्थियो मे धातु पाक (Combustion) के कारण ऊष्मा उत्पन्न होती रहती है, दूसरी ओर त्वचा मे हवा के लगने से, स्वेद से, श्वास वायु द्वारा, मल-मूत्रादि स्रावो द्वारा वह नष्ट होती रहती है। स्वेद से ६००, श्वास मे २०० कैलोरीज की ऊष्मा प्रतिदिन नष्ट होती है। ऊष्मा नियामक केन्द्र (Thermo Regulatory Centre) के द्वारा इन दोनो मे सामञ्जस्य बना रहता है।

जब-जब कोई रोग जीवाणु (Bacteria या Virus) शरीर की धातुओ मे वृद्धि करने लगता है और शरीर का एक अवयव खडित हो जाता है तो वहा शोथ हो जाता है। श्वेताणु वहा आकर खडित अवयव को उठा कर साफ करने लगते हैं। इस प्रक्रिया मे बहुत से श्वेताणु मर जाते है तब-तब Polymorph आदि श्वेताणुओं से

एक ज्वरजनक (Pyrogen) पदार्थ उत्पन्न हो जाता है (Leucocyte Pyrogen) जिसके Thoracic Duct तथा रक्त द्वारा मस्तिष्क के उपर्युक्त ताप नियामक केन्द्र पर दुष्प्रभाव होने से एक ओर तो धातुओ मे ऊष्मोत्पत्ति बढ जाती है, अर्थात् शरीर का पचन कर्म (Basal Metabolism) बढ जाता है, अर्थात् फैट तथा प्रोटीन का परिपचन विशेष होने लगता है। पूय मे एक Euglobin है जिसे Pyrexine कहते हैं। उसके त्वचा मे डालने से ज्वर हो जाता है। जीवाणुओ मे भी एक Pyrogen होता है जो Lipidopolysaccharide है। १ डिग्री तापमान बढने से धातु पाक मे ७ प्रतिशत तक वृद्धि हो जाती है। तापमान बढने से Adrenal Cortex तथा Pituitary ग्रन्थिया भी उत्तेजित हो जाती हैं। रक्त मे श्वेत कण भी बढ जाते (Phagocytosis) नाइट्रोजन और फास्फोरस दोनो सैलो मे कम हो जाते हैं तथा शरीर मे Antibodies तथा Agglutinins भी उत्पन्न होने लग जाते हैं। हृदयगति के तीव्र हो जाने से क्षत प्रदेश मे रक्त अधिक मात्रा मे पहुचता है जिससे वहा नया अवयव जल्दी बने। ज्वर से श्वेताणुओ की उत्पत्ति अधिक होने लगती है तथा Antibodies के कारण जीवाणु नष्ट हो जाते हैं एवं ज्वर शरीर के बल का चिन्ह है।

दूसरी ओर उसी विष के प्रभाव से मस्तिष्क के ताप नियामक Thermoregulator केन्द्र पर प्रभाव होकर त्वचा तथा श्लेष्म कलाओ मे सिरा सकोच (Vasoconstriction) की प्रक्रिया हो जाती है, जिससे त्वचा तथा श्वास आदि द्वारा ऊष्मा विनाश की मात्रा घट जाती है, स्वेदावरोध होने से त्वचा शुष्क हो जाती है। परिणामत शरीर का तापमान बढ जाता है, जिसे ज्वर (धातून् ज्वलयतीति ज्वर) कहते हैं। परीक्षक लोग बताते हैं कि इस बढी हुई अग्नि से जीवाणु नष्ट (Agglutinate) हो जाते या निर्बल हो जाते हैं। शरीर मे बढे हुए आम द्रव्यो या कफ दोष (Metabolites) का परिपचन हो जाता है। ज्वरों मे ऊष्मोत्पत्ति की अधिकता की अपेक्षा 'ऊष्माविनाश' की न्यूनता अधिक कारण बनती है। शरीर के किसी अवयव मे भारी क्षत हो जाने से सिर पर, Spinal Cord पर भारी चोट लगने से, शल्य कर्म से, हृदय आदि मे रक्त के न्यून मात्रा मे पहुचने के कारण Infarction हो जाने अर्थात् मास मे मृत्यु हो जाने से, दूसरे शब्दों मे प्रोटीन पदार्थ के पचने पर वहा से कोई ज्वर जनक Pyrogen पदार्थ (पित्तदोष) निकलता है जो ज्वर का कारण हो जाता है। इसी प्रकार यकृत–फुफ्फुस आदि मे कैंसर हो जाने से, या शिरा द्वारा अधिक जल के देने के बाद भी किसी Endogenous Pyrogen पदार्थ की उत्पत्ति होने से ज्वर हो जाया करता है। Rheumatic Fever अर्थात् आमवातिक ज्वर मे तथा दूसरे Collagen अवयव के रोगो मे भी ज्वर हो जाता है जिसका कारण स्पष्ट नहीं है। ज्वर मे आहार दें या न दें इस विषय मे इतना कथन पर्याप्त है कि ज्वर मे शरीर से जल अधिक निकल जाता है अत. जल अधिक देना ही चाहिए, साथ ही शरीर के अन्दर ग्लूकोज, फैट और प्रोटीन का ज्वलन बढ जाता है, अत सुपच आहार भी अधिक देना चाहिए विश्राम तथा आहार से उसकी शक्ति को बढाना चाहिए।

आयुर्वेद मे ज्वर आठ प्रकार का कहा गया है।

वातिक ज्वर.—

शरीर के प्राण तत्त्व के न्यून हो जाने अर्थात् जीवाणु प्रतिरोधक शक्ति के कम होने से प्रधानत जो ज्वर होता है उसे वातिक ज्वर (Asthenic Fever) कहा गया प्रतीत होता है। शरीर के नाडी मण्डल के निर्बल होने से सिरा नियामक वायु (Vasomotor) सस्थान विक्षोभ शील एव निर्बल होता है। उसके विक्षोभशील होने से त्वचा तथा श्लेष्मकलाओ (Mucous Membranes) मे सिरा संकोच (Vasoconstriction) कर्म शीघ्रता से हो जाता है, जिससे शरीर मे से होने वाली ऊष्मा विनाश की प्रतिक्रिया मन्द हो जाती है।

इसीलिए वातिक ज्वर मे त्वचा तथा श्लेष्म कलाओ मे रूक्षता, सर्दी सी लगने और मल के शुष्क होने तथा उष्णाभिलाषा के लक्षण होते हैं। मुख के शुष्क हो जाने से उसमे विरसता का लक्षण रहता है। नाडी मण्डल की निर्बलता के कारण ही गात्रो मे दर्द होने का लक्षण होता है। मस्तिष्क की निर्बलता से निद्रा कम हो जाती है, विषाद का भाव रहता है। इस प्रकार शरीर के नाडी मण्डल की निर्बलता के कारण प्रधानत जो ज्वर होता है उसे वातिक ज्वर (Nervous Temperature) कहते हैं। (मा० नि०)

पैत्तिक ज्वर — Fever due to Excessive Metabolism, Suppurative Fever) —

जैसे किसी एक अग या शरीर पर आघात के लगने से उसके अन्दर एक दोष उत्पन्न हो जाता है जिससे उसका प्राणतत्त्व या उसकी प्राण शक्ति कम हो जाती है और आयुर्वेदानुसार कहा जाता है कि उस अग मे वायु

दोष की वृद्धि हो गयी है जिससे उस पर जीवाणुओं या किसी विरोधी द्रव्य का प्रभाव सुगमता से हो जाता है, वैसे ही शरीर का कोई अग आघात या जीवाणु द्वारा क्षत हो जाये जिससे स्वभावत उसमे पक्तिकर्म (Combustion) की वृद्धि हो जाए तो वहा भी एक दोष उत्पन्न हो जाता है (सम्भवत· जिसे Pyrogen पदार्थ कहा जाता है तथा जो Peptide प्रकृति का होता है) उसे पित्त दोष कहते हैं। जिस अग मे यह दोष अधिक उत्पन्न हो जाता है वहा जीवाणु सक्रमण सुगमता से हो जाता है। फिर उस जीवाणु के नष्ट करने के लिये शरीर मे ऊष्मा की उत्पत्ति अधिक होने लगती है। इस प्रकार शरीर मे ऊष्मा की उत्पत्ति की अधिकता के कारण ही विशेपत जो ज्वर होता है उसे पैत्तिक ज्वर कहते हैं।

इसीलिये पित्त ज्वर मे शरीर के किसी अग मे तीव्र शोथ या पाक का लक्षण होता है, शरीर का तापमान तीव्र होता है, दाह और पिपासा के लक्षण होते हैं। स्वेद अधिक आता है, शीताभिलाषा रहती है। रक्तादि धातुओ का अधिक मात्रा मे पाक होने से Bilirubin, Urea, Urates, Urobilin, Stercobilin आदि मल अधिक मात्रा मे उत्पन्न होते हैं, जिससे मल, मूत्र, नेत्र, त्वचा आदि मे पीलापन झलकता है। Bile Salts के अधिक उत्पन्न होने से मुख का स्वाद कडवा सा लगता है। मस्तिष्क मे ऊष्मा की अधिकता से मूर्छा, मद (Intoxication), प्रलाप, निद्रा की न्यूनता के लक्षण होते हैं। (मा० नि०)

श्लैष्मिक ज्वर (Fever due to Decreased Metabolism) —

जैसे किसी अग मे धात्वीय पचन के बढ जाने से वहा पित्त दोष बढ जाता है वैसे ही किसी अग मे धात्वीय पचन या देहाग्नि के कम हो जाने से वहा आम दोष या कफ दोष (Product of Incomplete Combustion) की मात्रा बढ जाती है जिससे वहा जीवाणु सक्रमण सुगमता से हो जाता है। फिर इस जीवाणु के विपरीत वहा कफ धातु भी बढता है। अर्थात् उस-उस अग मे भिन्न-भिन्न रूपों मे कफस्राव (Exudation) होने लगता है तथा वहा पित्त दोष (Pyrogen पदार्थ) की वृद्धि से पित्ताग्नि भी कुछ उत्तेजित हो जाती है जिससे मन्द ज्वर भी हो जाता है और इसके द्वारा जीवाणु का निराकरण तथा आम दोष का परिपचन होकर शरीर फिर स्वस्थ हो जाता है।

इसीलिये कफ ज्वर मे ऊष्मोत्पत्ति के कम होने से ज्वर का वेग मन्द होता है। नासा, मुख, श्वास मार्ग आदि की श्लेष्मकलाओ से श्लेष्म स्राव विशेष होता है अन्नारुचि छर्दि के लक्षण होते हैं। शरीर के अवयवो मे आम दोष की अधिकता से वहा कफ द्रव (Tissue Fluid) अधिक जमा हो जाता है, जिससे नेत्र, त्वचा आदि मे श्वेतिमा झलकती है। देहाग्नि की मन्दता तथा आम दोष की अधिकता के कारण शरीर मे गुरुता, अन्नारुचि तथा आलस्य के लक्षण होते हैं, उष्णाभिलाषा रहती है। मस्तिष्क मे कफ दोष या आम दोष की वृद्धि से तन्द्रा या निद्रा का लक्षण होता है। इस प्रकार आयुर्वेदिक दृष्टि से ज्वर प्रधानत वातज, पित्तज, कफज तीन प्रकार का हो सकता है।

वात पित्त ज्वर

जब एक ओर शरीर मे पक्तिकर्म की अधिकता (Excessive Metabolism) से, दूसरी ओर नाडी मण्डल की निर्वलता एव सिरा संकोच कर्म (Vasoconstriction) की प्रबलता से ज्वर हो तो उसे वात पित्त ज्वर कहते हैं। स्पष्ट है कि इसमे तापमान की तीव्रता, मूर्छा, भ्रम आदि के साथ त्वचा तथा श्लेष्म कलाओ मे शुष्कता का लक्षण रहता है। शरीर मे अशक्ति शूल अथवा वेदना का लक्षण भी रहता है।

वात कफ ज्वर

जब एक ओर देहाग्नि की मन्दता (Depressed Metabolism) और दूसरी ओर नाडी मण्डल की निर्वलता एव सिरा सकोच की अधिकता के कारण ज्वर हो तो उसे वात कफ ज्वर कहते हैं। इसमे आम दोष की अधिकता के कारण होने वाले प्रतिश्याय, कास, निद्रा, गुरुता, सधिशूल, मन्दता, शिरदर्द क्षुधानाश, अरुचि आदि लक्षण होते है। दूसरी ओर सिरा संकोच की अधिकता के कारण त्वचा मे शुष्कता का लक्षण होता है। इसमे ज्वर का वेग मन्द ही होता है।

कफ पित्त ज्वर

जब किसी अग मे आम दोष(Metabolic Malproduct) की वृद्धि के कारण जीवाणु सक्रमण हो और फिर उसके विपरीत वहा कफ धातु के साथ पित्ताग्नि की भी प्रतिक्रिया होकर ज्वर हो तो उसे कफ पित्त ज्वर कहते है। इसमे कफ की प्रतिक्रिया (Exudative Reaction) के कारण मुख, नाक, श्वास मार्ग आदि से कफ स्राव होने

के लक्षण होते हैं और शरीर मे देहाग्नि (Metabolism) की प्रतिक्रिया के कारण पिपासा, दाह और तापमान होने के लक्षण भी होते हैं। कफ और पित्त कर्म परस्पर विपरीत हैं तथापि कफ पित्त ज्वर मे दोनो के लक्षण वारी वारी से हो सकते हैं। साधारणत वातकफज्वर तथा वातपित्तज्वर ही अधिकत पाये जाते हैं।

त्रिदोष ज्वर

जव (१) प्राण शक्ति Vitality या नाडी मण्डल की निर्वलता एव सिरा सकोच (Vasoconstriction) की अधिकता, (२) शरीर के किसी अग मे पक्तिकर्म (Combustion) की अधिकता तथा (३) देहाग्नि की मन्दता एव आम दोष की अधिकता (Low Metabolism) तीनो के कारण जीवाणु सक्रमण होकर ज्वर हो तो उसे न्यूनाधिक रूप मे वायु दोष, पित्त दोष तथा कफ दोष तीनो दोषों मे उत्पन्न होने के कारण त्रिदोषज या सन्निपात ज्वर कहते हैं। इन तीनो की न्यूनाधिकता के कारण यह त्रिदोष ज्वर वाताधिक पित्ताधिक कफाधिक भेद से कई प्रकार का हो जाता है। इसी प्रकार ज्वरो मे वायु के प्रकोप के कारण त्वचा तथा श्लेष्म कलाओ मे शुष्कता अंगो मे वेदना, अशक्ति, क्षुधानाश, निद्रानाश आदि लक्षण, पित्त के प्रकुपित होने से तापमान, दाह, पाक, पिपासा, मूर्छा स्वेद आदि लक्षण; कफ धातु के प्रकुपित होने के कारण नासा, श्वास मार्ग आदि से श्लेष्म स्राव तथा अन्नारुचि, अग गुरुता, छर्दि आलस्य, मन्दता, तन्द्रा, निद्रा आदि लक्षण होते हैं। इस प्रकार आयुर्वेद जीवाणु सक्रमण पर वल न देकर जीवाणु सक्रमण के कारण (Predisposition) पर या उसके कारण होने वाले दोषो की प्रतिक्रिया पर वल देता है।

आगन्तु ज्वर

जव वाह्याभिघात या प्रवल जीवाणु सक्रमण के कारण ही प्रधानतया ज्वर हो, शारीरिक किसी दोष की अधिकता के कारण न हो तो उसे आगन्तु ज्वर कहते हैं। इसमे आगन्तु कारण वश वायु, पित्त तथा कफ मे किसी एक, दो या तीन का प्रकोप होकर फिर ज्वर होता है।

ज्वर की सामान्य चिकित्सा

ज्वर दोषो अर्थात् किसी प्रकार के मल की वृद्धि से होता है। अत दोष के पाचन के लिये उष्ण गुण, दीपन, पाचन, स्वेदन गुण उपाय करने चाहियें। लघन भी दोष पाचन का कार्य करता है, अत ज्वर मात्र मे न्यूनाधिक लघन कराना चाहिये। वात ज्वर मे लघु, पित्त ज्वर मे दीर्घ तथा कफ ज्वर मे दीर्घतर लघन, एक दो दिन से एक सप्ताह तक का लंघन कराना चाहिए। लघन काल मे दोष कालानुसार शीत या उष्ण जल दिन भर मे ३ सेर तक पिलाना चाहिये जिससे स्वेद, मूत्र आदि खुलकर आयें। दोष पाचन के लिये किसी उष्ण, दीपन पाचन, स्वेदन, मूत्रल औषधि का जैसे मृत्युंजय, कफकेतु, आनन्द-भैरव, सजीवनी वटी, आर्द्रक रस मधु, शुठी क्वाथ, पचमूली क्वाथ, दशमूली क्वाथ, त्रिकटु, पचकोल, तालीशादि चूर्ण किसी का प्रयोग दिन मे ३-४ वार किया जाता है।

दोष के पच जाने पर जव ज्वर कुछ मृदु होने लगे तव दोष शोधनार्थ वात ज्वर मे वस्तियो या एरण्ड तेल आदि मृदु स्निग्ध औषधियो से, पित्त ज्वरो मे शीत औषधियो, त्रिवृत ६ माशे, कटुकी २ तोला के क्वाथ द्वारा तथा कफ ज्वर मे रूक्ष औषधियो त्रिफला, हरीतकी (६ माशा) आदि द्वारा शोधन किया जाता है।

दोष पाचन के वाद वात ज्वर रोगी को स्निग्ध यूष, दूध, फल रस, पित्त ज्वर रोगी को स्वल्प स्नेह युक्त शीतगुण यूष, दूध तथा कफ ज्वर रोगी को अस्निग्ध यूष तथा देसी चाय आदि रूक्ष द्रव्य आहारार्थ दिये जाते हैं। दोष का पाचन तथा शोधन हो जाने से शरीर मे जीवाणु का रोहण स्वयमेव वन्द हो जाता है, जो जीवाणु वचते हैं वे श्वेत कणो तथा शरीर मे उत्पन्न Antibodies के द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं। इस प्रकार आयुर्वेद मे दोष पाचन तथा दोष शोधन और शरीर वलवर्धन पर ही वल दिया जाता है।

आगन्तु ज्वर मे ज्वर जनक पूय अभिघातादि का निराकरण करना चाहिये तथा रोगी के वल को, पूर्ण विश्राम, पोषक आहार तथा मधु, जल आदि अधिक मात्रा मे देकर, एव उसकी जीवाणु प्रतिरोधक शक्ति को वढ़ाना चाहिये ताकि शरीर स्वयमेव आगन्तु जीवाणु का निराकरण कर सके।

वाताधिक ज्वरोपयोगी औषधिया —

(१) किरातादि क्वाथ (भै० र०) चिरायता, मोथा, गिलोय, सोठ, सुगंधवाला, लघुपचमूल समान समान का क्वाथ।
(२) शालिपर्ण्यादिक्वाथ (यो० र०) शालिपर्णी, वला, मुनक्का, गिलोय सारिवा समान समान क्वाथ गुड डाल कर दें।
(३) गुडूच्यादिस्वरस या कषाय (भै० र०) गिलोय शतावरी के स्वरस या कषाय को गुड मिलाकर पिलायें।

(४) मृत्युञ्जय रस (भै० र०) मीठाविष, मरिच, पिप्पली, गधक, सुहागा १-१ भाग हिंगुल २ भाग अदरक रस से ३ दिन घोटकर आधी रत्ती की गोलिया बनायें। १ गोली अदरकरस मधु से दिन मे ३ बार द।

पित्ताधिक ज्वरो के लिये उपयोगी औषध.—

(१) द्राक्षादिक्वाथ (यो० र०) द्राक्षा, हरड, कटुकी, अमलतास, मुस्ता, पित्त पापडा समान समान का कषाय खाण्ड मिलाकर दें।
(२) ह्रीवेरादि क्वाथ (ग० नि० भै० र०) सुगधवाला, पित्त पापडा, लाल चन्दन, खस, मोथा, सोठ समान समान का क्वाथ शीतल करके दें।
(३) गुडूच्यादि क्वाथ (वृ० नि० र०) गिलोय, पद्माक, लोध्र, सारिवा नीलोफर का कषाय खाण्ड डालकर पिलायें।
(४) मृद्वीकादिक्वाथ (भै० र०) द्राक्षा, मुलहटी, नीमछाल कटुकी के कषाय को शीतल करके खाण्ड मिलाकर दें।
(५) मृत्युञ्जयवटी खाण्ड के साथ दें।

कफाधिक ज्वरो के लिये उपयोगी प्रयोग.—

(१) त्रिफलादि क्वाथ (भै० र०) त्रिफला, पटोल, वासा, गिलोय, कटुकी, पिप्पलीमूल समान समान का क्वाथ मधु मिलाकर दें।
(२) कटुरोहिण्यादिक्वाथ (ग० नि०) कटुकी, अमलतास, सोठ, चीतामूल, पिप्पलीमूल के क्वाथ को पिप्पली चूर्ण के साथ दें।
(३) शट्यादिक्वाथ (ग० नि०) कचूर, पुष्करमूल, भारगी, कायफल, नीमछाल, पित्तपापडा, काकडासिंगी क्वाथ मधु से दें।
(४) कट्फलादि चूर्ण (च० द०) कायफल, पुष्करमूल, काकडा सिंगी, पिप्पली समान समान का चूर्ण मधु से दें १ माशा २-३ बार। मधुपिप्पली (भै० र०) केवल पिप्पली चूर्ण को मधु से चटायें।

कफवात प्रधान ज्वरोपयोगी प्रयोग —

(१) पञ्चकोल क्वाथ या पञ्चकोलचूर्ण (भै० र०) पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चीतामूल, सोठ के क्वाथ या चूर्ण को मधु से दें।
(२) क्षुद्रादिक्वाथ (च० द०) कटेरी, गिलोय, सोठ, पुष्करमूल का क्वाथ मधु डालकर दें।
(३) त्रिफलादिक्वाथ (ग० नि०) त्रिफला, त्रिकटु, गिलोय, कुटकी, नीमछाल, मोथा, पटोल, चिरायता, इन्द्रजौ का क्वाथ।

वातपित्ताधिक ज्वरोपयोगी प्रयोग.- –

(१) पञ्चमूली आदिक्वाथ (वै० जी०) लघुपचमूल, गिलोय, मोथा, सोठ, चिरायता का क्वाथ।
(२) पञ्चभद्र क्वाथ (भा० प्र०) गिलोय, सोठ, पित्त पापडा, मोथा, चिरायता का क्वाथ खाण्ड डाल कर दें।
(३) किरातादिक्वाथ (भै० र०) चिरायता, आवला, द्राक्षा, गिलोय, कचूर के क्वाथ मे गुड मिलाकर दें।

कफपित्ताधिक ज्वरोपयोगी प्रयोग -

(१) कटुकीचूर्ण (भै० र०) कुटकी चूर्ण मे बराबर खाण्ड मिलाकर ३ माशा दिन मे २ बार गर्म जल से दें।
(२) वासास्वरस (भै० र०) वासे के रस को मधु मिला कर एक बडे चम्मच की मात्रा मे दें।
(३) अमृताष्टक (भै० र०) गिलोय, नीम छाल, पटोल, कुटकी, लाल चन्दन, मोथा, सोठ, इन्द्र जौ का क्वाथ पिप्पली चूर्ण के साथ दें।
(४) पञ्चतिक्त क्वाथ (भै० र०) गिलोय, चिरायता, सोठ, पुष्करमूल, कटेरी का क्वाथ पिलायें।

त्रिदोष जनित ज्वरो के लिये उपयोगी प्रयोग.—

विशेषत कफवात प्रधान त्रिदोष ज्वरो के लिये —

(१) अष्टागावलेह (भै० र०) कायफल, पुष्करमूल काकडासिंगी, त्रिकटु, धमासा, कालाजीरा समान समान का चूर्ण मधु से मिलाकर चटायें।
(२) दशमूली क्वाथ (भा० प्र०) दशमूल क्वाथ को पिप्पली तथा पुष्कर मूलचूर्ण के साथ दें।
(३) शट्यादि कषाय (भै० र०) शटी, पुष्करमूल, कटेरी, काकडा सिगी, धमासा, गिलोय, सोठ, चिरायता, कटुकी का क्वाथ मधु डालकर पिलायें।
(४) लघु सुदर्शनचूर्ण (यो० र०) गिलोय, पिप्पलीमूल, पिप्पली, कुटकी, हरड, सोठ, नीमछाल, सफेद चन्दन, लौंग समान समान का चूर्ण।
(५) अमलादिक्वाथ (शा० ध० स०) हरड, अमलतास, कुटकी, मोथा, धनिया, लालचन्दन, पद्माक, इन्द्रयव, वासा, उशीर, गिलोय, सोठ का क्वाथ पिप्पली चूर्ण के साथ दें।

क्षय रोग
(Tuberculosis, Consumption)

क्षय रोग एक प्राचीनतम काल से चला आता रोग है। हिप्पोक्रेट्स (४६० बी० सी० एक यूनानी चिकित्सक जिसे Father of Medicine कहते हैं) ने भी इसका उल्लेख किया है। सदियों तक यह एक महान् जन विध्वसक रहा है और अब भी यह हमारे देश का एक महाविध्वसक रोग है। ससार उन अन्वेषकों का सदा ऋणी रहेगा जिनके उद्योग से अब इस रोग की विध्वसकता कुछ कम हुई है। इन औषधियो से पहले एक चौथाई के लगभग मृत्यु इस रोग मे होती थी। अब आधा या एक प्रतिशतक मृत्यु इस रोग से होती है। तो भी देश मे लगभग १० लाख लोग प्रति वर्ष इस रोग के कारण मृत्यु को प्राप्त होते है। तथा १,०० के पीछे १ या २ व्यक्ति इस रोग से ग्रस्त है। तथा सारे ससार मे तो डेढ करोड से ज्यादा लोग इस रोग से ग्रस्त हैं। बडे-बडे मारक रोगो जैसे धमनी स्रोतोरोध, कैन्सर, सडक दुर्घटना आदि मे से इस रोग का तीसरा चौथा नम्बर होगा।

क्षय जीवाणु :—(Tubercle Bacillus)

क्षय जीवाणु मुख्यतया दो प्रकार का है। मनुष्य सुलभ क्षय जीवाणु को मानव क्षय जीवाणु (Mycobacterium Tuberculosis Hominis) कहते है जो ६५ प्र० श० मे फुफ्फुस रोग का कारण होता है, थूक के कणो के वायु द्वारा अन्दर जाने से होता है। Robert Koch ने १८८२ मे इसका पता ही नही लगाया, जिसमे यह बढ सके उस माध्यम का तथा उसके द्वारा पशुओ मे रोग उत्पन्न करके भी दिखाया। उन्होने यह सिद्ध कर दिया कि यह धातु क्षय से होने वाला रोग नही, पर एक जीवाणु के सक्रमण से होने वाला रोग है। पशु सुलभ क्षय जीवाणु को जान्तव क्षय जीवाणु (Mycobacterium Tuberculosis Bovis) कहते है। अस्थियो, सन्धियो के क्षय रोगियो मे से ३० प्र० श० मे तथा ७५ प्र० श० ग्रन्थि क्षय Grandular रोगियो मे उनके रोग का यह कारण होता है, दूध के द्वारा इसके अन्दर जाने से होता है। इसका पता Thomus Smith ने १८९६ मे लगाया। मानव क्षय जीवाणु पतला, २.५ माईक्रोन लम्बा शलाकाकृति, अगतिशील, कृमि होता है, जो रोगी की थूक से बनी स्लाइड पर देखने से परस्पर एक दूसरे से कोण बनाते हुए अथवा जहा इनके ढेर होते हैं वहा एक दूसरे के समानान्तर पडे हुए मिलते है। Ziehl-Neelsen के तरीके से रगे जाते हैं अर्थात् Hot Carbolfuchsin से रगे जाने पर इनका रग २० प्रतिशत तक सल्फ्यूरिक एसिड (H_2SO_4) से या अल्कोहल मे ३ प्रतिशत तक मात्रा मे घुले हाइड्रोक्लोरिक एसिड (Hcl) से नही उतरता, इसलिए इसे Acid Fast भी कहते है। धूल मे विद्यमान थूक के बिल्कुल सूख जाने पर भी धूल मे जीवाणु महीनो तक जीवित रहता है। इसी प्रकार यह जीवाणु बर्फ के टेम्प्रेचर पर भी जीवित रहता है Antiseptic औषधि से भी नही मरता। परन्तु सूर्य की किरणो या धूप से या Heat से यह जीवाणु शीघ्र मर जाता है। यह जीवाणु शरीर के किसी भी अग मे रोग उत्पन्न कर सकता है, पर तो भी फुफ्फुस मे सब से अधिक यह प्रवेश करता है।

यह जीवाणु एक तो वसामय पदार्थ (Lipid) से जो इसमे ५० प्र० श० होता है, बना है। इसी पदार्थ से इसका बाह्यावरण बना है। इसी के कारण यह (१) Acid Fast होता है (२) औषधियो से जल्दी प्रभावित नही होता (३) Phagocytes के अन्दर पडा हुआ भी चिरकाल तक हजम नही होता (४) अवयवो के लिए अधिक विक्षोभक नही होता जिससे आसपास के सेलो की प्रतिक्रिया मन्द रूप मे ही होती है।

दूसरा यह एक प्रोटीन से बना है जिसे Tuberculin या Tuberculo protein कहा जाता है, यही इसका विष पदार्थ है। इसी के कारण ग्रस्त अवयव मे इसके लिए एक असात्म्यता या Allergy या असहिष्णुता (Sensitivity) उत्पन्न हो जाती है।

तीसरा इसमे एक कार्बोहाइड्रेट या Polysaccharide पदार्थ है जिसके कारण इसके शरीर मे प्रविष्ट होने पर इसके आसपास Polymorphs अधिक मात्रा मे एकत्रित हो जाते है।

Tuberculin

मासरस, पेप्टोन, माल्ट और ग्लीसरीन के माध्यम मे बढाए हुए, गाढे किए, Sterilise किए तथा छने हुए (Filtered) मृत क्षय जीवाणुओ के घोल को Koch ने Tuberculin का नाम दिया था जिसे Old Tuberculin (O T) कहते हैं। इसमे मृत हुए जीवाणुओ मे से उत्पन्न होने वाले Endotoxins होते हैं। Koch का कहना था कि इसमे विद्यमान Proteins ही इसका क्रियाशील पदार्थ है, वे ही इस रोग का कारण है। इसलिए १९३४ मे मृत हुए क्षय जीवाणुओ मे से उत्पन्न होने वाले Tuberculo Protein को विशुद्ध रूप मे पृथक् किया गया और इसे

Purified Protein Derivative of Tubercle Bacillus (P P D) का नाम दिया गया। यह चूर्ण रूप में मिलता है तथा कई वर्ष तक रखा हुआ भी वीर्यहीन नही होता है। Koch ने इसे अन्य Vaccines के समान क्षय रोग के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न करने के लिये तैयार किया था। परन्तु परीक्षण ने सिद्ध किया कि मृत हुए क्षय जीवाणुओ के घोल से क्षय रोग प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न नही की जा सकती। हा, अति मृदु किए हुए जीवित जीवाणुओ के घोल से यह शक्ति उत्पन्न की जा सकती है। इसलिए फिर जान्तव (Bovine) क्षय जीवाणुओ को अति मृदु करके उनका घोल बनाया गया जिसे B C G कहते हैं। उसके द्वारा अब प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न करने का काम लिया जाता है। इस समय Tuberculin से क्षय रोग के पहचानने का काम लिया जाता है। जिस व्यक्ति के शरीर मे क्षय जीवाणु ने कभी प्रवेश नही किया अर्थात् जिसके शरीर मे न प्रसुप्त रूप मे न ही जागृत रूप मे यह जीवाणु हैं, उसकी त्वचा मे इसके प्रविष्ट करने पर कोई प्रतिक्रिया नही होती। परन्तु जिस व्यक्ति के शरीर मे इस जीवाणु ने कभी प्रवेश किया हो अर्थात् जिस शरीर मे यह प्रसुप्त या जागृत रूप मे विद्यमान हो उसकी त्वचा मे इसके प्रविष्ट करने पर, प्रवेश स्थान पर दो-तीन दिन मे एक छोटा कठोर लाल रग का कोठ Inflammatory Papule निकल आता है अर्थात् एक तो रक्त की प्रतिक्रिया (Vascular Reaction) होती है, दूसरा सेलो की प्रतिक्रिया (Cellular Reaction) होती है। रक्त प्रतिक्रिया या Vascular Reaction अर्थात् लाली (Erythema) २४-४८ घटो के अन्दर-अन्दर प्रकट हो जाती है और तीसरे दिन के बाद लाली रहती है। परन्तु अत्यधिक सेलों का जो वहा जमाव (Infiltration) होता है अर्थात् वहा पर जो कठोरता उत्पन्न होती है वह ४८ घटो बाद आरम्भ होती है और उत्पन्न होकर ४ दिन तक रहती है। जब यह कठोर चकत्ता ५ से १० मिलिमीटर व्याम का होता है तो एक Plus, १० से २० मिलिमीटर का होता है तो दो Plus, और इससे बडा हो तो तीन Plus लगाकर उसका उल्लेख किया जाता है।

फुफ्फुस के अन्दर या अन्यत्र जहा कोई क्षय रोग का पुराना क्षत (Lesion) प्रसुप्त रूप मे हो तो उसके आस-पास के सेलो मे भी प्रतिक्रिया की यह प्रक्रिया (Hyperaemia एव Cellular Proliferation) की प्रक्रिया हो जाती है, अर्थात् उसके चारो ओर भी एक घेरा पट जाता है (Encapsulation हो जाता है) ऐसा प्रतीत होता है कि जब क्षय जीवाणु प्रथम बार शरीर मे प्रविष्ट होता है तो शरीर मे एक ऐसा पदार्थ जिसे Antibody कह सकते है, उसके विपरीत उत्पन्न होता है और अवयवो के सेलो मे पडा रहता है। अब ये साधारण सेल्ल नही रहते, अब ये परिवर्तित सेल या क्षयग्रस्त सेल (Tuberculous Cells) कहा सकते है। जब Tuberculin दिया जाता है इसके इन सेलो के साथ मिलते ही कोई विषैला पदार्थ उत्पन्न होता है जिसके विपरीत उपरोक्त प्रतिक्रिया होती प्रतीत होती है।

Tuberculin की मात्रा

Standard Tuberculin को १० हजार मे १ की मात्रा मे हलका करके (1-10,000 Dilution) उसकी १ सी० सी० मे जितनी इसकी मात्रा होती है, उसे Tuberculin की एक मात्रा (Unit) कहते है। इस प्रकार Standard Tuberculin को एक हजार मे एक की मात्रा मे हलका किया जाय तो उसके १ मिलिलि० मे १० Tuberculin Units आ जाते हैं तथा यदि Standard Tuberculin को १०० मे १ की मात्रा मे हलका किया जाय तो उसके १ सी० सी० मे १०० Tuberculin Units आ जाते हैं। १०० Tuberculin Units १ मिलिग्राम Tuberculin के बराबर होते है। इसलिए १० Tuberculin Units १ मिलिग्राम Tuberculin तथा १ Tuberculin Unit ०१ मिलिग्राम Tuberculin के बराबर होता है। Protoderm (Allen and Hanburys) P P D का योग है।

Tuberculin देने की विधि

Intracutaneous Method अथवा The Mantoux Test अथवा Intradermal Test —अग्रबाहु के बन्द होने वाले पृष्ठ (Flexor Surface) पर एक प्रदेश को ईथर या अल्कोहल से कृमिहीन करके १ Tuberculin Unit अर्थात् Tuberculin के १० हजार मे १ की मात्रा मे बने घोल की १ मिलिलि० मात्रा त्वचा की बहिस्तर मे दी जाती है १ Tuberculin Unit=० ००००२ मिलि P.P D। सिरिंज मे इतनी मात्रा ले ली जाती है अथवा त्वचा मे इतनी मात्रा दे दी जाती है जिससे ८-१० मिलिमीटर व्यास का उभार हो जाए। दो तीन-दिन बाद उपरोक्त विधि से जितना बडा चकत्ता बना हो उसका उल्लेख कर लिया जाता है। परन्तु यदि कठोर चकत्ता न उत्पन्न हो अर्थात् परिणाम Negative हो तो ५ या १० Tuberculin Units या १०० Tuberculin Units

की मात्रा अर्थात् १००० मे १ की मात्रा के Tuberculin या १०० मे १ की मात्रा के Tuberculin की १ मिलिलि० की मात्रा त्वचा के अन्दर पूर्ववत् दे दी जाती है। यदि १०० Tuberculin Units देने पर भी परिणाम नैगेटिव (Negative) हो तो ऐसे व्यक्ति को क्षय रोग के लिए नैगेटिव (Negative) घोषित कर दिया जाता है। क्योंकि जिस किसी के अन्दर क्षय जीवाणु होता है वह यदि सर्व प्रथम हल्की मात्रा मे पोज़िटिव न भी हो तो इस परम मात्रा मे Tuberculin देने पर अवश्य ही पोज़िटिव हो जाता है।

Cutaneous Test—Von Pirquet Test अग्र-बाहु के अग्र पृष्ठ के एक प्रदेश को ईथर या अलकोहल से कृमिहीन करके उसके दो मिलीमीटर प्रदेश पर Tuberculin की एक बूद डाल दी जाती है। इस प्रदेश से २ इच दूरी पर एक बूद Normal Saline की भी डाल दी जाती है। फिर एक Rotary Lancet के द्वारा पहले Normal Saline वाले प्रदेश पर फिर Tuberculin वाले प्रदेश मे लेखन कर्म (Scarification) करके उस द्रव को वहा १० मिनट रहने दिया जाता है। Normal Saline का बूद केवल तुलना (Control) के प्रयोजन से डाला जाता है। Imflammatory Papule दो दिन वाद निकले तो इसे पोजिटिव कहा जाता है। इस टेस्ट मे पिछले टेस्ट से यह भेद हे कि इसमे Tuberculin को हल्का किया ही नही गया है, उसके गाढे घोल की ही १ बूद त्वचा पर रख दी जाती है। पर इस टेस्ट का प्रयोग अब नही होता है।

Tuberculin का प्रयोजन

जिन व्यक्तियो मे क्षय जीवाणु कभी भी प्रविष्ट नही हुआ होता है एव जिनमे इस जीवाणु के प्रति 'असात्म्यता (Allergy) उत्पन्न होने का अवसर ही नही हुआ है, उनमे Tuberculin Test Negative होता है अर्थात् जिन व्यक्तियो मे यह टेस्ट नेगेटिव हो उनमे क्षय जीवाणु इस समय नही है, तथा पहले भी कभी नही रहा है, ऐसा निश्चय किया जाता है। यदि टेस्ट पोजिटिव हो तो समझना चाहिये कि उसमे या तो क्षय जीवाणु अब भी विद्यमान है अथवा क्षय जीवाणु पहले उसके शरीर मे कभी प्रविष्ट हो चुका है। इस जीवाणु के प्रवेश के १-१½ महीने के अन्दर यह पाजिटिव हो जाता है यद्यपि तब तक कोई लक्षण प्रकट नही होते। क्षय जीवाणु का प्रवेश तो मनुष्यो की एक वहुत वडी सख्या मे होता है, यद्यपि व्यक्त रूप में क्षय रोग उनमे से वहुत स्वल्प व्यक्तियो मे ही प्रकट होता हे। परीक्षा करने वाले वताते हे कि क्षय जीवाणु मनुष्य समाज मे इतना अधिक व्याप्त (Ubiquitous) है कि वहुत कम व्यक्ति ही ऐसे होगे जिनके अन्दर इसने कभी-न-कभी प्रवेश न किया हो अर्थात् अज्ञात (Subclinical) रूप मे प्रवेश न किया हो। कहा जाता है कि ५ वर्ष तक की आयु के वालको मे से चतुर्थांश मे Tuberculin Test Positive पाया जाता है। १०-१५ वर्ष तक की आयु के वालको मे आधे से अधिक मे यह टेस्ट पोजिटिव होता है तथा ४५ वर्ष तक पहुचते-पहुचते तक तो ९५ प्रतिशतक व्यक्तियो मे यह टेस्ट पोजिटिव हो जाता है। घनी वस्तियो या कारखाने वाली वस्तियो मे तो यह सख्या इनसे भी अधिक होती है अर्थात् १५ वर्ष की आयु तक ७५% मे यह जीवाणु होता है। कथन का अभिप्राय यह है कि क्षय जीवाणु के सक्रमण से वच सकना असम्भव प्रतीत होता है पर सौभाग्य की वात हे कि यदि क्षय जीवाणु का सक्रमण भारी मात्रा मे और वार वार न हो तो शरीर मे यह वढ नही पाता तथा शारीरिक रक्षक तत्त्वो Immune Bodies के द्वारा नष्ट कर दिया जाता है। वस्तुत Host Factor इस रोग का प्रधान कारण है। इसलिये जितने व्यक्तियो मे इस जीवाणु का सक्रमण है उनके एक प्रतिशतक से भी कम मे क्षय रोग प्रकट हो पाता है। Immune Bodies की न्यूनता से ऐसा होता लगता है। जितना ही ये Bodies देर से उत्पन्न होते है उतना ही इस रोग के होने की आशका होनी चाहिये। जन्मजात रोगप्रतिरोधक शक्ति की न्यूनता इस रोग का कारण है। तथापि यह रोग इतना अधिक होता है कि सभी के लिए यह एक महान् चिन्ता का विषय वना हुआ है। सभी विचारशील लोग मनुष्य जाति के इस महान्तम शत्रु का सामना करने के उपाय सोच रहे है। हमारे देश मे होने वाली प्रत्येक १० मृत्युओ के पीछे एक क्षय रोग के कारण होती है। ससार मे प्रतिवर्ष ३० से ५० लाख व्यक्ति केवल इसी रोग के द्वारा अकाल मे काल कवलित हो रहे है। वडे-वडे शहरो मे सहस्रो इस रोग के कारण शय्याशायी होकर पडे हे, और सहस्रो यद्यपि चल फिर रहे है, पर इस रोग के दुख और चिन्ता मे ग्रस्त रहते है तथा लाखो व्यक्तियो मे इस रोग या इस रोग के जीवाणु ने अपना अड्डा (Focus) तो वनाया हुआ है पर वहा यह प्रसुप्त रूप मे पडा हुआ है और न जाने कव किसी स्वल्प कारण से जागृत हो जाय। इसीलिये Tuberculin टेस्ट मनुष्यो की एक भारी सख्या मे पाजिटिव पाया जाता है। वार-वार इस जीवाणु का स्वल्प मात्रा मे सक्रमण होने से यह टेस्ट पाजिटिव वना रहता हे। प्रतीत होता हे कि

जब शारीरिक प्रतिरोधक शक्ति अधिक हीन हो जाए और किसी रोगी से जीवाणु का सक्रमण भारी मात्रा मे हो या बार-बार हो तब इसे शरीर मे वृद्धि करने का अवसर मिल जाता है ।

बालको मे Tuberculin Test का विशेष महत्त्व है। क्योकि यदि ४-५ वर्ष के नीचे की आयु के बालको मे यह टेस्ट पाजिटिव हो तो बहुत कुछ इस बात की आशका करनी चाहिये कि उनमे इस जीवाणु ने प्रवेश किया है तथा इसके कारण उनमे यह रोग जागृत (Clinical) या Primary Infection अर्थात् प्राथमिक सक्रमण रूप मे विद्यमान है। जितनी ही छोटी आयु के बालक मे टेस्ट पाजिटिव हो उतनी ही उसमे रोग की उपस्थिति की आशका अधिक होनी चाहिए। इसी प्रकार जितनी ही हल्की मात्रा से यह टेस्ट पाजिटिव हो उतनी ही रोग की आशका अधिक होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त बालको मे इस टेस्ट का और भी महत्त्व है। उनमे जो नेगेटिव होते है उनमे क्योकि इस रोग के प्रति प्रतिरोधक शक्ति नही होती, इसलिये उन्हे यदि क्षय जीवाणु का भारी सक्रमण हो जाए तो इस रोग के होने का भारी भय रहता है। अत उनमे BCG के रूप मे इस जीवाणु का मृदुतर प्रवेश करके उनमे इसके विपरीत शक्ति उत्पन्न कर दी जा सकती है। BCG के द्वारा नेगेटिव बालको को पोजिटिव कर दिया जाता है। क्योकि यदि कोई बालक या युवक Tuberculin के लिए पोजिटिव हो पर X-Ray की परीक्षा के द्वारा उसके फुफ्फुस मे यह रोग जागृत रूप मे नही हो तो समझना चाहिए कि क्षय जीवाणु के स्वल्प सक्रमण होने पर भी वह बच जायगा।

क्षय प्रतिरोधक शक्ति

ऊपर कहा गया है कि शरीर मे एक बार क्षय जीवाणु प्रविष्ट हो जाय तो अवयवो मे इसके लिए एक प्रकार की असात्म्यता (Allergy) उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण Tuberculin Test Positive हो जाता है। परन्तु Koch ने यह भी देखा कि यदि किसी प्राणी मे पहले-पहल क्षय जीवाणु स्वल्प मात्रा मे प्रविष्ट किया जाय तो दो सप्ताह तक उस स्थान पर कोई विशेष प्रभाव दृष्टिगत नही होता। पर इस समय के अन्त मे वहा एक Nodule गाठ सी निकल आती है जिसमे कुछ देर बाद बहुधा व्रण भाव भी हो जाता है। फिर वहा से क्रमश यह जीवाणु लसीका वाहिनियो (Lymphatics) के द्वारा प्रादेशिक लसीका ग्रन्थियो (Regional Lymph Glands) मे सक्रमण कर जाता है जिनसे वे सूज जाती है और बाद मे नरम भी हो जाती है अर्थात् उनमे पनीर भाव या मृदुभाव (Caseation) भी हो जाता है। इसीलिए ग्रन्थियो (Lymph Glands) के शोथ को देखकर जान लिया जाता है कि सक्रमण कहा से हुआ है अर्थात् यदि कठ प्रणाली और श्वास प्रणालियो के समीपवर्ती ग्रन्थियो (Tracheo bronchial Glands) मे शोथ हो और खासी हो तो फुफ्फुस के किसी प्रदेश मे से क्षय जीवाणु आया है, ऐसा समझना चाहिए। यदि कोष्ठ गत लसीका ग्रन्थियो (Mesenteric Glands) मे शोथ हो तो आतो के विशेषत Iliocaecal प्रदेश मे क्षय जीवाणु के सक्रमण होने का सन्देह करना चाहिए जिनमे आतो के इस प्रदेश से सबन्धित ग्रन्थिया सूज जाती है। ग्रीवा मे लसीका ग्रन्थिया सूजी हो तो मुख (Tonsil) से सक्रमण होने का सन्देह करना चाहिए। फिर इन ग्रन्थियो मे से क्षय जीवाणु क्रमश शरीर के सब विभिन्न अगो मे प्रसरण कर जाता है। इस प्रकार ऐसा पता लगता है कि उस प्राणी मे इस जीवाणु के प्रतिरोध कर सकने की शक्ति नही है। दूसरे शब्दो मे २ सप्ताह बाद इस जीवाणु के लिए एक असात्म्यता (Allergy) उत्पन्न हो गई लगती है। अब यदि इसी प्राणी मे प्रथम जीवाणु सक्रमण से २०-३० दिन बाद दोबारा क्षय जीवाणु प्रविष्ट किया जाय तो इसके एक दो दिन के अन्दर-अन्दर ही उस प्रदेश का ½, १ सेन्टीमीटर का अवयव कठोर हो जाता है। उसमे व्रणभाव हो जाय तो वह तुरन्त भर भी जाता है। वहा से जीवाणु प्रदेशिक लसीका ग्रन्थियो मे जाता है पर वहा भी वह रोहण नही कर पाता जिससे उनमे कोई शोथ की प्रक्रिया नही होती और वहा से आगे यह शरीर मे भी प्रसरण नही करता। इससे पता लगता है कि शरीर मे प्रथम सक्रमण के बाद कोई ऐसी प्रतिरोधक शक्ति (Resistance) आ गई है कि जीवाणु प्रवेश स्थान मे ही रोक दिए गए है। जो कुछ एक लसीका ग्रन्थियो तक पहुचे भी है, वे वहा वृद्धि नही कर पाए। जीवाणुओ के प्रवेश स्थान पर भी Polymorphonuclear Cells तथा Mononuclear Cells का तथा रक्त के द्रव भाग का सचय विशेष होता है। इस प्रतिक्रिया को Koch's Phenomenon कहते है। अत क्षय जीवाणु का शरीर मे एक बार मृदु-सा सक्रमण हो जाय तो शरीर मे उसके विपरीत एक प्रतिरोधक शक्ति (Immunity) उत्पन्न हो जाती प्रतीत होती है। यद्यपि व्रणभाव इस जीवाणु के प्रति Allergy उत्पन्न होने का सूचक होता है। शहरो तथा घनी बस्तियो मे रहने वाले व्यक्तियो मे जिनमे पहले कभी न कभी क्षय जीवाणु का मृदु सक्रमण हो चुका होता है बाद मे इसका

वार-वार सक्रमण होने पर भी क्षय रोग नही होता क्योकि उनमे पर्याप्त प्रतिरोधक शक्ति होती है। प्रतीत होता है कि यदि इसके सक्रमण से प्रतिरोधक शक्ति तो उत्पन्न हो, इसके प्रति असात्म्यता Allergy उत्पन्न न हो तो इस जीवाणु के प्रवेश होने पर भी रोग नही होता। इस प्रकार बहुत से व्यक्तियो मे तो इस रोग का सक्रमण होने पर उनमे इसके प्रति प्रतिरोधक शक्ति (Acquired Immunity) उत्पन्न हो जाती है जो उनके शरीर की शक्ति का सूचक होती है। इसके विपरीत कुछ एक व्यक्तियो मे इसके सक्रमण होने पर इसके प्रति असात्म्यता Allergy या Hypersensitivity उत्पन्न हो जाती है जो उनकी निर्वलता का सूचक होती है और इस रोग की उत्पत्ति का कारण हो जाती है। सम्भवत उनमे वश परम्परागत किसी असहनशीलता के कारण यह Allergy उत्पन्न होती है या जिनमे पहले इसके लिए प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न नही हो पाई उनमे इस रोग का अति सक्रमण होने पर Allergy ही उत्पन्न हो जाती है। अर्थात् उनके कुछ अवयव इस Allergen के लिए Sensitized हो जाते है जिससे वे रोग ग्रस्त हो जाते है। देखा जाता है कि पहाडो या दूरवर्ती जगलो या छोटे-छोटे ग्रामो या द्वीपो मे रहने वाले व्यक्ति जब सहसा एक वडे घने बसे शहर मे आ बसते है तो उनको कई बार यह रोग जल्दी पकड लेता है क्योकि उन्हे अपने अन्दर पहले प्रतिरोधक शक्ति के उत्पन्न करा लेने का अवसर कभी नही मिला होता है। उनमे इसके लिए Allergy या अनुशयिता ही उत्पन्न होती है, प्रतिरोधक शक्ति नही होती।

वाल सुलभ क्षय रोग Primary Tuberculous Infection

यद्यपि नये उत्पन्न शिशु मे क्षय जीवाणु कभी नही पाया जाता तथा फिर माता का दूध पीते समय भी सम्भवत माता से प्रतिरोधक शक्ति मिलते रहने के कारण इसमे यह रोहण नही कर पाता परन्तु दूध छोडने के वाद की आयु मे अर्थात् दो तीन वर्ष की आयु तथा इससे वडी आयु के वालको मे भी और मध्यमायु तक पहुचते-पहुचते तो ९०-९५ प्रतिशत तक व्यक्तियो के फुफ्फुस मे क्षय रोग से उत्पन्न हुआ चिह्न पाया जाता है। यद्यपि इन्हे क्षय रोग नही होता परन्तु ऐसा लगता है कि अति मन्द रूप से इस जीवाणु का सक्रमण वाल्यकाल मे ९० प्रतिशत व्यक्तियो को हो जाता है जिसे इस रोग का प्रारम्भिक सक्रमण या Minimal Infection या Primary Infection कहते है।

श्वास के द्वारा रोगियो के थूक मे विद्यमान क्षय जीवाणु किसी सूक्ष्म श्वास नाली (Bronchiole) मे पहुच जाता है। वहा से Phagocytes इसे पकडकर समीपस्थ Lymphoid Tissue मे पहुचा देते है जहा वह रोहण करने लगता है क्योकि वालक मे इसके लिए प्रतिरोधक शक्ति सर्वथा नही होती है, वहा क्षयाकुर (Tubercles) वनते तो है परन्तु यह प्रतिक्रिया अपर्याप्त होती है, जिससे वहा का प्रदेश शीघ्र मृदु हो जाता है (Caseation हो जाता है)। प्राय दक्षिण फुफ्फुस के ऊपर के खण्डो (Lobes) के निम्न भाग मे विशेषत मध्य खण्ड मे Pleura के साथ लगते Alveolar प्रदेश मे पिन के नक्के से लेकर एक वडे आकार (½, १ सेन्टीमीटर) तक का यह व्रण होता है इसमे कुछ पास पास के Alveoli Fibrin, Polymorphs Mononuclear cells और क्षय जीवाणुओ से भर जाते है। इस लघु क्षय जनित फुफ्फुस शोथ (Tuberculous Broncho Pneumonia) को प्रारम्भिक क्षय Primary Focus कहते है। यह वहुधा अति स्वल्प जीवाणु सक्रमण से होता है। इसलिये प्राय स्नायु तन्तु की वृद्धि (Fibrosis और अविकत Calcification या Encapsulation) होकर इस व्रण का रोहण हो जाया करता है। केवल X Ray के द्वारा एक गोलाकृति सी वदली या छोटी सी Opacity रूप मे इसका पता लगता है। प्रारम्भिक क्षत का रोहण हो जाता है और रोग नही होता। इसका कारण शरीर की Natural Resistance ही है।

इस प्रारम्भिक क्षत (Primary Focus) के उत्पन्न होने के दो मास के वाद इस स्थान की श्वास नाली (Bronchus) से सम्वन्धित फुफ्फुस मध्यलसीका ग्रन्थियो (Mediastinal Glands या Hilar Nodes) मे लसीका वाहिनियो के द्वारा जीवाणु सक्रमण कर जाता है अर्थात् ये ग्रन्थिया सक्रमण को रोक लेती है और आगे शरीर मे नही जाने देती जिससे वहा पर एक या दो ग्रन्थियो मे भी मृदुता (Caseation) की प्रक्रिया हो जाती है और फिर प्राय कुछ महीनो या वर्षो मे रोहण (Fibrosis और अविकत Calcification) की प्रक्रिया होकर ये ग्रन्थिया भी ठीक हो जाती है। एक प्रारम्भिक क्षत (Primary Focus) से अनेक लसीका ग्रन्थिया (Tracheo Bronchial Glands) जो कण्ठ नाली (Trachea) के विभक्त होने के स्थान पर रहती है सूज सकती है या Paratracheal ग्रन्थिया सूज सकती है। वालको मे इन लसीका ग्रन्थियो (Mediastinal Glands) मे क्षय जनित शोथ विशेषता से होता है। व्यवहार मे क्षय रोग के प्राथमिक

अड्डे (Primary Focus) और लसीका ग्रन्थियों, (Mediastinal Glands) के शोथ दोनो को मिलाकर Primary या Ghons Complex के नाम से बोलते हैं तथा केवल प्रारम्भिक क्षत को Pulmonary Component of the Primary Complex कहते तथा केवल लसीका ग्रथियो (Glands) के शोथ को Glandular Component of the Primary Complex कहते हैं। समीपस्थ कई ग्रथियो के सूज जाने से यह Component बालको मे बहुत बडा भी हो सकता है। इन दोनों क्षतो के ठीक हो जाने से Calcified Primary Complex बन जाता है। X-Ray द्वारा लिए चित्र मे उन शोथ युक्त ग्रथियो Hilar Glands की छाया Hilum मे स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इनके अन्दर क्षय जीवाणु जीवित नही रहते। परीक्षक लोग बताते है कि १४-१५ वर्ष की आयु तक के बालको मे लगभग ६-७% मे Primary Complex का Test Positive होता है।

बालको मे फुफ्फुस मे पाए जाने वाले प्रारम्भिक क्षत (Primary Focus) को पहले-पहल Ghon ने १६१२ मे देखा था। इसलिये इसे Ghon का क्षत (Ghon Lesion) भी कहते है। इसके उत्पन्न होने के दो मास के लगभग समय के बाद जब फुफ्फुस मूल Hilum मे विद्यमान लसीका ग्रन्थियो मे भी यह रोग हो जाता है तब बालक Tuberculin के लिए पाजिटिव हो जाता है तथा इसके अतिरिक्त कभी-कभी उसमे इस जीवाणु की Allergy के कारण Phlyctanular Conjunctivitis होने का लक्षण भी पाया जाना है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी बालक मे Erythema Nodosum या Nodal Fever भी होता है। यह लक्षण ५-१० वर्ष की आयु के निर्बल बालको या नवयुवको मे देखा जाता है। इसमे अधो जघा की त्वचा पर आधे इञ्च से दो ढाई इच तक के व्यास के उठे हुए रक्त वर्ण कठोर से उभार (Nodules) निकल आते है जिनका दीर्घ व्यास ऊपर नीचे की दिशा मे होता है। ये एक सप्ताह तक लुप्त हो जाते है। त्वचा पर इनका भूरा-सा रग रह जाता है। एक समूह के बाद दूसरा समूह भी इन चकत्तो का निकल सकता है। ये चकत्ते बहुधा Tuberculo Protein के प्रति असात्म्यता (Allergy) के सूचक होते हैं। कभी-कभी ये पूय सक्रमण या Streptococcal Infection के द्योतक भी होते हैं। इसलिए Phlyctanular Conjunctivitis अथवा Erythema Nodosum को देखकर बालक मे क्षय रोग के Primary Infection का सन्देह करना चाहिए और छाती की X-Ray परीक्षा करनी चाहिए।

Mediastinal Glands मे क्षय जनित शोथ बहुधा स्वयमेव रोहण प्रक्रिया (Fibrosis) के द्वारा ठीक हो जाता है। परन्तु यदि इनमे शोथ (Mediastinal Adenitis) का रोग बढ जाय जैसे कि कई बार बालको मे होता है तो किसी एक ग्रन्थि समूह के फूल जाने से उसके साथ सम्बन्धित श्वास नाली (Bronchus) दब जाती है जिससे उसके साथ सम्बन्धित फुफ्फुस का भाग वायु रहित हो जाता या बन्द हो जाता है (Atelectasis) अर्थात् वह श्वास प्रश्वास मे भाग नही लेता। उसमे या तो फिर स्नायुभाव (Fibrosis) हो जाता है या उसमे श्वास प्रणाली शैथिल्य (Bronchiectasis) का विकार हो जाता है। ऊपर अवरोध अपूर्ण होने से नीचे फुफ्फुस मे Emphysema भी हो सकता है।

बालको मे आत के निचले भाग (Ileoccacal भाग) मे से क्षय जीवाणु शरीर मे प्रवेश कर सकता है। आत से किसी लसीकामय प्रदेश (Lymphoid Tissue) मे उत्पन्न यह क्षय व्रण तो स्नायुभाव (Fibrosis) से ठीक हो जाता है पर आत के उस भाग से सम्बन्धित ग्रन्थियो (Mesenteric Glands) मे क्षय जीवाणु के सक्रमण के कारण जो कठोर शोथ होता है अर्थात् जो Glandular Component of the Primary Complex होता है वह बडा भी हो सकता है। उसे Cacified Mesenteric Gland कहते है। उसे स्पर्श द्वारा अनुभव किया जा सकता है।

बाल सुलभ क्षय रोग या Primary Tuberculous Infection के लक्षण

बहुधा तो इस प्रारम्भिक क्षत के कारण इतना मन्द-सा (Subclinical) रोग या ज्वर होता है कि वह बालक के लिए विशेष कष्टदायक नही होता जिससे इस रोग का किसी को पता नही चलता। परन्तु कभी-कभी तीन-चार वर्ष के ऐसे बालक का इतिवृत्त यह होता है कि कुछ काल से उसका भार घटता जाता है। वह उदासीन-सा रहता है। पाण्डुर होता जाता है, उसकी भूख कम होती जाती है, तथा उसे ९९ या १०० डिग्री का मन्द ज्वर हो जाता है जो सप्ताहो या महीनो तक चलता है। उसे रात्रि स्वेद भी होता है। परन्तु उसका प्रधान लक्षण खासी का होता है जो Chronic होती है। किसी Mediastinal Gland के फूल जाने से इतनी छोटी आयु के बालक मे एक बडी श्वास नाली (Bronchus) के दब जाने अर्थात् उसके विक्षोभ से घोष या शब्द के साथ खासी होती है तथा अन्त श्वास के साथ सीटी की सी आवाज (Stridor)

होती है। एक दो वर्ष की आयु के बालक मे अन्त श्वास के साथ सीटी की आवाज कुछ काल जारी रहे तो Mediastinal Glands मे क्षय जनित शोथ का सन्देह करना चाहिये। इन ग्रन्थियो के सूजकर फूल जाने से तथा इनके द्वारा किसी श्वास नाली के दब जाने से फुफ्फुस का एक भाग बन्द (Collapsed) हो जाता है। इसके कारण उरोस्थि के Manubrium पर तथा पीछे Scapulae के बीच के प्रदेश पर टकोर की आवाज मन्द हुई-हुई प्रतीत होती है। श्रवण यन्त्र द्वारा पीठ पर सुनने से श्वास प्रश्वास की आवाज दूसरे Thoracic Spine तक ही Tracheal या Broncheal किस्म की होती है। पर यदि कोई Mediastinal Gland फूला हुआ हो तो चौथे Thoracic Spine तक भी वह इसी प्रकार सुनाई पडती है। यदि एक तरफ Clavicle के नीचे या पीछे Spine और Scapula के बीच मे टकोर की आवाज मन्द हो तो वह भी बालक मे फुफ्फुस मध्य क्षय रोग या Intrathoracic Toberculosis का सूचक होती है। एक बाजू से X-Ray परीक्षा करने पर Trachea के विभक्त होने के स्थान पर Posterior Mediastinum में एक बडी बदली (Opacity) दिखाई पडती है। X-Ray में Mediastinal-enlargement होता है, Hilar या Apical Infiltration का चिह्न भी होता है। इनके पेट के द्रव (Gastric Lavage) तथा कण्ठ द्रव (Laryngeal Swab) से T B की खेती (Culture) परीक्षा भी करनी चाहिए। ESR सदा बढा हुआ मिलता है। ऐसे बालक की चिकित्सा तुरन्त होनी चाहिये। Isoniarid एक वर्ष तक दें।

बालक मे इसी प्रकार यदि Primary Infection आत से हुआ हो जैसे दूषित दूध से होता है तो कोई कोष्ठ ग्रन्थि (Mesenteric Gland विशेषत Iliocecal क्षय रोग के कारण कठोर हुई अनुभव होती है जिसके कारण बालक का भार नही बढता, कभी-कभी निष्कारण अतिसार हो जाते है तथा पेट मे दर्द भी रहता है। यदि सक्रमण Tonsil से हुआ हो तो Cervical Lympha Adenitis का लक्षण होता है। इसे इस जीवाणु का Lymphatic Dissemination कहते हैं।

कभी-कभी Mediastinal Adenitis का रोग बढता जाता है अर्थात् एक ग्रन्थि मे पूय भाव हो जाता है। अब यदि यह ग्रन्थि एक श्वास नाली (Bronchus) मे खुल जाती है जिसे Bronchial Dissemination कहते है फुफ्फुस के एक भाग मे क्षय जीवाणुओ के प्रसरण कर जाने से Tuberculous Broncho Pneumonia का रोग हो जाता है, जो प्राय घातक होता है। यदि यह पूय युक्त ग्रन्थि, समीप की रक्तवाहिनी मे फटती है। तो क्षय जीवाणु मस्तिष्क, प्लीहा, वृक्क, अस्थि, सन्धि आदि नाना अगो मे प्रसरण कर जाता है। सर्वत्र छोटे-छोटे क्षयाकुर (Tubercles) उत्पन्न हो जाते हैं। ये अंकुर बाजरे के बीज के तुल्य होते है अत इसे Miliary Tuberculosis कहते हैं। तो भी बहुधा यह रोग या तो फुफ्फुस मे या Meninges मे या पेट (Peritoneum) मे से कही पर प्रकट हो सकता है। इसे व्यापक क्षय रोग (Generalized Miliary Tuberculosis) कहते है। यह रोग भी प्राय घातक होता है। Mesenteric Glands मे से भी क्षय जीवाणु रक्त द्वारा सक्रमण करके व्यापक क्षय रोग Miliary Tuberculosis का कारण हो जाता है जो ४-५ वर्ष के बालको मे होता है। यह चढने उतरने वाला ज्वर होता है। नाडी की तीव्रता, रात्रि स्वेद, सिर दर्द आदि लक्षण इसमे होते है। यह उदर मे Peritonium मे आश्रय करे तो पेट उभरा होता है, मलबन्ध रहता है। फुफ्फुस मे आश्रय करे तो श्वासकृच्छ्रता का लक्षण होता है, सिर मे आश्रय करे तो Meningitis के लक्षण होते है। Leucocytosis, E S R की वृद्धि के लक्षण होते हैं। फुफ्फुस के X-Ray मे सफेद धब्बे-Mottling के चिह्न होते है। रक्त परीक्षा मे Neutrophil Leucocytosis २० हजार प्रति मिलिमीटर हो सकता है। इससे मन्थर ज्वर से इसका भेद हो जाता है।

इस प्रकार ३-४ वर्ष की आयु तक होने वाला बाल सुलभ क्षय रोग (Primary Infection) या तो शीघ्र ही ठीक हो जाता है या रोमान्तिका, सक्रामक कास, श्लेष्म ज्वर आदि के द्वारा बढकर बालक के लिए मारक हो जाता है। क्योकि इससे व्यापक क्षय रोग (Miliary T B) या मस्तिष्क क्षय (Meningitis) हो सकते है इसीलिए इस आयु के बालको मे क्षय रोग जीर्ण (Chronic) रूप मे नही होता। थोडा काल रहकर या ठीक हो जाता है या बढकर घातक हो जाता है। ३-४ वर्ष से ऊपर की आयु के बालको मे जब क्षय रोग के लिए कुछ प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो जाती है तब क्षय रोग केवल Lymph Gland मे या अस्थि मे या सन्धि मे या त्वचा मे किसी एक प्रदेश मे सीमित रह जाता है, व्यापक रूप मे नही होता तथा इस नवयुवावस्था मे क्षय रोग वैसा शीघ्रकारी नही होता जैसा कि वह प्रथम ३-४ वर्षों मे होता है। इस बाल सुलभ तीव्र क्षय रोग का सक्षिप्त वर्णन आगे किया जायगा। यहा इतना कथन पर्याप्त है कि यदि छोटे बालक को सहसा सर्दी से ज्वर चढ कर रात को पसीना

आता हो, सिर दर्द हो, बालक बहुत ही निढाल हो, खुश्क सी थोडी खासी भी हो Cervical Glands हाथ को लगते हो तो इसी रोग का निश्चय करना चाहिये।

क्षय रोग के कारण

यह रोग नगरो मे और उनमे भी बडे नगरो मे अधिक होता है, ग्रामो मे कम, जगलो मे रहने वाले लोगो मे होता ही नही। यहा तक कि क्षय जीवाणु हमारी घनी बस्तियो मे इतना अधिक व्यापक है कि इसके सक्रमण से बच सकना कठिन है। प्रत्युत इसका अति स्वल्प मात्रा मे सक्रमण (Minimal Infection) होने से करोडो सक्रान्त व्यक्तियो मे न्यूनाधिक प्रतिरोधक शक्ति ही उत्पन्न होती है जिसके बल पर फिर बडी मात्रा मे इसका सक्रमण होने पर भी व्यक्ति इस रोग से बचे रहते है। तथापि जो यह रोग हो जाता है उसका प्रधान कारण मनुष्य की सामान्य रोगक्षम शक्ति (Resistance) की न्यूनता है। उदाहरणत घृत, दूध, फल आदि द्वारा प्रोटीन्स, Vitamin "A" तथा "C" और कैल्सियम बहुत कम मात्रा मे मिलें जैसे कि अन्न सकट काल मे बहुधा होता है तब यह रोग अधिक होता है। इसी प्रकार चिन्ता, निराशा, दुख, क्लेश, तथा प्रबल मानस आघातो के कारण भी जब शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है, इस रोग के होने का भय रहता है। जब बाल्यावस्था मे शुद्ध वायु, सूर्य का प्रकाश, उचित मात्रा मे न मिल सकें जैसे कि बडे नगरो की अन्धेरी गलियो मे रहने वाले निर्धन लोगो के परिवारो मे होता है या शुद्ध वायु से हीन बन्द कमरो मे काम करने वालो मे होता है तो उनमे भी इस जीवाणु के विपरीत रोधक शक्ति कम होती है। छोटे बालको मे रोमान्तिका (Measles) तथा सक्रामक कास (Whooping Cough) के कारण Mediastinal Glands मे शोथ हो जाता है। यदि उनमे पहले ही Tuberculous Adenitis हो तो वह इन रोगो के कारण से पुन जागृत हो उठता है। बडे व्यक्तियो मे मधुमेह हो तो उसके कारण भी क्षय जीवाणु की प्रतिरोधक शक्ति विशेष घट जाती है। इसलिये मधुमेह का प्रतिकार न करने पर मधुमेही मे यह रोग सुगमता से सक्रमण कर जाता है। छाती पर प्रबल आघात लगने के बाद भी कई बार यह जीवाणु सम्भवत Primary Infection मे पुन जागृत हो उठता है। पत्थर का काम करने वालो मे पत्थर की धूल (Cilica) के अति मात्रा मे श्वास मार्ग मे जाने (Silicosis) से भी फुफ्फुस मे कोई क्षति पहुचती है जिससे ऐसे व्यक्तियो मे यह रोग अधिक होता है। अन्त मे यह भी प्रतीत होता है कि कुछ एक परिवारो मे स्वभावत यह रोग अधिक होता है उनमे इस रोग की प्रवृत्ति (Tuberculous Diathesis) जन्म से आती है, उन परिवारो को क्षय प्रकृति के परिवार कह सकते है। निर्बल शरीर की स्त्री मे बारम्बार या शीघ्र-शीघ्र गर्भ स्थिति एव प्रसव होने के कारण भी क्षय जीवाणु का सक्रमण सुगमता से हो जाता है। Schizophrenia नामक मानस रोग मे—कि जिसमे व्यक्ति बाहर के वास्तविक जगत् से हटकर अपने काल्पनिक जगत् मे रहता है तथा जो १५-३० वर्ष की आयु मे होता है—ग्रस्त व्यक्तियो मे भी यह रोग अधिक होता है। परन्तु इस रोग का सबसे प्रधान कारण घर मे या कारखाने आदि मे काम करने के स्थान पर चिरकाल तक किसी खुले क्षय रोगी के सम्पर्क मे निवास करना है। एक तग घर मे एक क्षय रोगी के सम्पर्क मे रहने वाले छोटे बालक मे यह शीघ्र आ जाता है। कहा जाता है कि एक क्षय रोगी के थूक के द्वारा एक दिन मे १ हजार मिलियन क्षय जीवाणु फुफ्फुस मे से बाहर आते है। (एक मिलिलि० थूक मे २५ हजार जीवाणु होते है)। क्षय रोगियो के हस्पताल की हवा तथा धूल मे भी यह जीवाणु रहता है। ऐसे खुले क्षय रोगी के सम्पर्क मे यदि कोई Tuberculin Negative बालक जिसमे इस रोग के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न नही हो पाई है तथा जिसमे किसी प्रकार की शारीरिक निर्बलता भी हो तो उसमे इस रोग के सक्रमण हो जाने का भय रहता है। कारखाने आदि मे चलने फिरने वाले खुले क्षय रोगियो के सम्पर्क मे आते रहने से वहा यह रोग अधिक होता है। श्वास द्वारा सक्रमण हो तो उर क्षय होता है, क्षय रोग का गाय के दूध से सक्रमण हो तो ग्रीवा तथा आत की ग्रन्थियो मे होता है, अस्थियो मे भी इसी कारण होता है।

बाल्यावस्था मे क्षय जीवाणु का सक्रमण बहुत होता है पर यदि वह अधिक मात्रा मे न हो तो उससे प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो जाने से फिर १५-१६ वर्ष की आयु तक इस जीवाणु का सक्रमण प्रायः नही होता। उसके बाद लगभग २५ वर्ष की आयु तक जब फिर सम्भवत प्राप्त की हुई प्रतिरोधक शक्ति घट जाती है तो Primary Complex के Glandular Component से अर्थात् फुफ्फुस मूल मे विद्यमान किसी रुग्ण ग्रन्थि से रक्त द्वारा चिरकाल से प्रसुप्त रूप मे विद्यमान इस जीवाणु का सक्रमण हो जाता है। इसे Endogenous Theory of Reinfection कहते है अथवा बहुधा तो बाहर से किसी रोगी मे से अति मात्रा मे जीवाणु के सक्रमण करने (Exogenous Reinfection) से यह रोग हो जाता है। क्षय

रोगी माता या पिता से बालक मे इस रोग की प्रवृत्ति मात्र आती है, रोग जीवाणु कभी नही आता।

विकृति

जीवाणु सक्रमण

श्वास वायु के द्वारा जब दुबारा इस जीवाणु का सक्रमण होता है अर्थात् Post Primary Infection होता है तब यह जीवाणु पहले श्वास नाली (Bronchus) फिर श्वास प्रणालिका (Bronchiole) के सिरे तक पहुच जाता है क्योकि यह झिल्ली के अन्दर प्रवेश नही कर सकता, परन्तु इन सूक्ष्म प्रणालियो के सिरे इतने सकुचित होते हैं कि वहा १० माईक्रोन का कण ही ठहर सकता है। इतने कण मे दो क्षय जीवाणु ही रह सकते हैं। वहा से फिर यह समीपस्थ फुफ्फुस के Interstitial Tissue मे विद्यमान Lymphoid Tissue मे पहुच कर रोहण करने लगता है। प्राय Apex या फुफ्फुस शिखर के नीचे के प्रदेश या Sub apical प्रदेश मे यह रोहण करता है। इसे Assman Focus कहते हैं। इसके आसपास भी सेलो की वही प्रतिक्रिया जिसका ऊपर वर्णन हुआ है होती है अर्थात् द्रवसचय (Exudation) Epithelioid Cells, Lymphocytes, Plasma Cells और Fibroblasts का क्रम से सचय होता है, हा Hilar Lymph Glands मे इसका वैसे सक्रमण नहीं होता जैसे Primary Lesion मे होता है। यहा से सक्रमण श्वास नालियो द्वारा होता है Lymph glands द्वारा नही होता। इससे कोई स्पष्ट लक्षण भी नही होता यद्यपि X-Ray परीक्षा से यह देखा जा सकता है। हो सकता है कि स्नायुतन्तु के आ जाने अर्थात् Fibrosis के हो जाने मे यह भी शात हो जाय परन्तु कभी-कभी यह इस रोग के प्रसरण का Focus बन जाता है। अथवा हो सकता है बाहर से आया जीवाणु धूल आदि के द्वारा Tonsils मे प्रवेश कर जाता है। वहा से यह Cervical Glands मे और वहा से फिर Mediastinal Glands में पहुच जाता है। इस प्रकार यह जीवाणु विशेषत Lymphoid Tissue मे रहता है और यदि फुफ्फुस आन्त्र आदि के सूक्ष्म लसीका स्थान (Lymphoid Tissue) इसे नष्ट न कर सकें तो लसीका ग्रन्थिया (Lymph Glands) इसे नष्ट कर देती हैं। वहा भी यह नष्ट न हो तो शिराओ (Veins) द्वारा यह शरीर मे प्रसरण करता है और दूर-दूर के अंगो जैसे अस्थियों, सन्धियो आदि मे प्रकट हो सकता है।

क्षयाकुर (Tubercle)

अब जिस व्यक्ति मे इस जीवाणु के लिये पूर्ण प्रतिरोधक शक्ति नही है उसके फुफ्फुस, कोष्ठ आदि किसी अग के Interstitial Tissue मे विद्यमान लसीका प्रणालियो (Lymph Space) मे जब यह पहुचता है तो जैसे फिरग जीवाणु अथवा कुष्ठ जीवाणु के विपरीत स्थानिक प्रतिक्रिया होकर वहा Granuloma बनता है वैसे ही इस क्षय जीवाणु के विपरीत स्थानिक प्रतिक्रिया होकर जो अर्ध पारदर्शक, श्वेत वर्ण, बाजरे जितना दाना बनता है उसे श्वेत क्षयाकुर (Grey Miliary Tubercle) कहते हैं। यह बाजरे जितना या पिन के नक्के जितना दाना अनेक Giant Cell Systems के, जिनका वर्णन आगे किया जाता है, मिलने से बना होता है। कुछ काल बाद जब इस दाने का केन्द्र भाग नरम (Caseated) हो जाता है तब इसे पीत क्षयाकुर (Yellow Tubercle) कहते हैं। इस क्षयाकुर के अन्दर की सूक्ष्म रक्तवाहिनी की आभ्यन्तर श्लेष्मकला (Vascular Endothelial Layer) मे अतिवृद्धि (Hyperplasia) होकर रक्तवाहिनी का स्रोत बन्द हो जाया करता है, इसलिए क्षयाकुर मे रक्त नही होता।

सेलो की प्रतिक्रिया तथा क्षयाकुर का बनना, Cellular Reaction तथा Tubercle Formation

जब प्रथम बार क्षय जीवाणु, अवयव (Lymph Space) या किसी सिरा की अन्तस्तर (Endothelium) मे प्रवेश करता है तब भी Polymorphonuclear Leucocytes वहा एकत्रित हो जाते हैं और उसे अपने अन्दर घेरकर उसके प्रसार को रोक देते है। परन्तु उनकी यह प्रतिक्रिया निर्बल रूप मे होती है, जीवाणु नष्ट नही होता जिससे Primary Infection मे वह स्थान जीवाणु के दुष्प्रभाव से शीघ्र नरम पड जाता है। परन्तु जब यही जीवाणु दुबारा सक्रमण करता है (Reinfection होता है) तब Polymorphs की प्रतिक्रिया प्रबल रूप मे होती है, जिससे सक्रमण रुक जाता है। दोनो अवस्थाओ मे ही इनके वहा जमा हो जाने के २८ घटे के अन्दर अन्दर इनके स्थान पर Mononuclear Cells जिन्हे Monocytes, Macrophages या Large Lymphocytes कहते है तथा जिनकी उत्पत्ति लसीका वाहिनियो, रक्तवाहिनियो के अन्तस्तर (Endothelial Layer) या Reticulo endothelial Cells मे से होती है वहा एकत्रित होने लगते हैं। इनका अति मात्रा मे एकत्रित होना इस रोग की एक विशेषता है। परीक्षक लोग बताते है कि क्षय जीवाणु के इन्जेक्शन देने के एक

मिनट के अन्दर-अन्दर ये सेल वहा पर भारी मात्रा मे जमा होने लगते है और पांच मिनट के अन्दर-अन्दर इनके जमा हो जाने के कारण वहा एक Tubercle भी बन जाता है। जीवाणु के विपरीत होने वाली उनकी यह प्रतिक्रिया जीवाणु पर चढे हुए वसामय खोल (Fatty Envelop) के विपरीत होती है। Reticulo Endothelial System के ये सेल प्रबल जीवाणु भक्षी (Phagocytic, Phagoin=खा लेना) होते है। इसीलिए ये वहा पर आये क्षय जीवाणुओ को और उन Polymorphs को जिनमे जीवाणु पकडे हुए पडे होते है, खा लेते है। इनके द्वारा जीवाणुओ के खण्डित(Break Down) होने से उनमे से जो वसामय पदार्थ (Lipid) निकलता है वह इन Monocytes के Cytoplasm मे बिखर जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि ये Monocytes लसीका वाहिनियो की अन्दर की भिल्ली की सेलो की तरह के (Endothelial Cells की तरह) बडे-बडे प्रोटोप्लाज्म वाले दीखने लगते हैं जिनसे इन्हे हम Epithelioid Cells कहते है। इन सेलो का बन जाना इस रोग का विशेष लक्षण है। देखने मे यह Epithelioid Cell फीके रग का बडे आकार का और एक बडे न्यूक्लियस वाला सेल होता है। Epithelial सेलो के Cytoplasm जैसे Reticuli या सूत्रो द्वारा जुडे होते हैं वैसे ही ये Epithelioid Cells भी Reticuli या सूत्रो द्वारा परस्पर जुडे होते हैं। जब रोगी मे प्रतिरोधक प्रक्रिया विशेष होती है तब ये सेल भी प्रभूत मात्रा मे उपस्थित होते हैं तथा इनके आ जाने के बाद इनके जीवाणु भक्षी या Phagocytic हो जाने के कारण क्षय जीवाणु इतने नष्ट हो जाते है कि सक्रान्त स्थान पर उनका देख सकना कठिन हो जाता है। कुछ एक Epithelioid Cells के मिलकर एक हो जाने मे कुछ बडे-बडे सेल भी बन जाते हैं जो इस स्थान पर दिखाई पडते है, इन्हे Giant Cells कहते है जिन सेलो के मिलने से ये सेल बनते है उनके Nuclei भी इसके किनारे-किनारे पर पडे हुए देखने मे आते है। ये बडे सेल तब बनते हैं जब इस प्रदेश मे कुछ अवयव मृत (Necrosed) हो जाता है। ये बडे-बडे सेल उस मृत अवयव को तथा जीवाणुओ को पकडकर हजम कर लेते या वहा से हटा लेते हैं। इसलिए इन सेलो का उत्पन्न हो जाना रोगी की प्रतिरोधक शक्ति का द्योतक होता है। Miliary Tuberculosis या बाल सुलभ क्षय रोग मे जब क्षय जीवाणु के विपरीत बालक की प्रतिरोधक शक्ति कम होती है तब ये Giant Cells नही मिलते।

क्षय जीवाणु के सक्रमण के एक सप्ताह बाद रक्त वाहिनी के आसपास के (Perivascular) Lymph Space मे Lymphocytes वहा आने लगते और उस स्थान के चारो ओर घेरा डाल देते है। देखने मे ये छोटे-छोटे सेल होते है पर काले रग के बडे-बडे Nuclei के कारण ये काले-काले दीखते है। रक्त के Lymphocytes की तरह के ही होते है। इन सेलो मे से जो Gamma Globulins उस स्थान पर मुक्त होते है उन्हे प्रतिरोधक पिड (Immune Bodies) माना जाता है। Lymphocytes के साथ-साथ कुछ Fibroblasts भी जमा हो जाते हैं जो स्नायुभाव की प्रक्रिया का कारण बनते है।

इस प्रकार के अनेक अनेक अदृश्य Giant Cells Systems के मिलने से जो एक दृश्यमान बाजरे के दाने जितना अकुर बनता है उसे ही Tubercle कहते हैं। प्रत्येक Giant Cell System मे केन्द्र प्रदेश मे एक अनेक न्यूक्लिआई वाला Giant Cell होता है। उसके चारो ओर Epithelioid Cells का घेरा होता है उसे ट्यूबर्कल कहते है और उनके बाहर की ओर शोथ सूचक सेल या Inflammatory Cells अर्थात् Monocytes, Lymphocytes Plasma Cells और Fibroblasts होते है। Mononuclear Phagocytes क्षय जीवाणु को खाने के बाद Epithelioid सेल बन जाते है और ये ही Giant Cells बन जाते है। ऐसे छोटे २ अनेक Tubercles के मिलने से एक दृश्यमान Tubercle बन जाता है।

Caseation मृदु भाव, पनीर भाव

क्षय जीवाणु के सक्रमण के लगभग १५ दिन बाद यदि शरीर की प्रतिरोधक शक्ति कम हो अथवा जीवाणु का सक्रमण अधिक मात्रा मे हुआ हो तो इस क्षयाकुर के केन्द्र भाग मे क्षय जीवाणु के विष या Tuberculo-Protein या Exotoxin के दुष्प्रभाव से मृत्यु (Coagulation या Necrosis या Fat Necrosis) की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। अर्थात् इन सेलो के प्रोटोप्लाज्म के टूटने से उत्पन्न पाचक तत्त्व (Intracellular Enzymes) के द्वारा इनका प्रोटोप्लाज्म पनीर जैसे पदार्थ मे परिवर्तित हो जाता है, सेलो की परस्पर पृथक्ता लुप्त हो जाती है, उनकी सीगिया नष्ट हो जाती है और उनके स्थान पर पनीर जैसे पदार्थ का एक ढेर दीखने लगता है। क्षय विष के कारण ही सूक्ष्म रक्तवाहिनियो के अवरुद्ध हो जाने से उसमे आक्सिजन के न जा सकने से वहा क्षय जीवाणु न बढ सकता, न जीवित रह सकता है, अत. वह वहा अब नही मिलता। साधारण शोथ से युक्त प्रदेश मे तो श्वेत कणो (Leucoytes) को अपनी ओर खीचने का गुण होता है। (वह Chemotactic होता है) जिससे उनके

मृत हुए शरीर मे मे उत्पन्न Proteolytic Enzyme के द्वारा शोथ युक्त अवयव पककर पूय रूप मे परिवर्तित हो जाता है। परन्तु क्षय जनित मृदु भाव (Caseation) से युक्त प्रदेश वैसा Chemotactic नही होता, इसलिए वह पूय मे परिवर्तित नही होता। इस प्रकार अब क्षयाकुर के केन्द्र भाग मे मृदुभाव (Caseation) की अवस्था होती है, उसके आगे और पहले फीके से रग का Epithelioid Cells तथा Giant Cells का घेरा होता है, और उसके बाहर गहरे रग के Lymphocytes का घेरा होता है। यह Fibrous Tissue से घिरा होता है इस प्रकार इस रुग्ण क्षयाकुर मे जीवाणु कैद हो जाते है और श्वासनाली के साथ सबन्धित न होने से ये हानिकारक नही रहते, ना ही थूक के द्वारा बाहर जा सकते है। अन्दर पडे पडे ये Sterilized भी हो सकते है। यह अवस्था वर्षो तक भी रह सकती है।

अब यदि यह रोग यहीं समाप्त हो जाता अर्थात् Caseation के बाद कोई परिवर्तन न होता तो भी वहा जीवाणुओ के न रह सकने से यह रोग रोगी तथा दूसरो के लिये आपत्तिजनक न होता परन्तु बहुधा यह पनीर सदृश पदार्थ (Caseated Matter) बाद मे द्रव रूप हो जाता है और जब यह द्रव रूप होता है तब वहा क्षय जीवाणु की वृद्धि भी अधिक होती है। यह पनीर सदृश घना पदार्थ Autolysis के द्वारा द्रव रूप क्यो होता है अर्थात् उसमे मृदुता (Softening) क्यो होती है इसका कोई समाधान अभी तक नही मिला, शारीरिक मानसिक थकावट Viral Influenza से शायद ऐसा होता है। यह क्षयाकुर फुफ्फुस मे हो तो यह मृदु हुआ द्रव किसी श्वास प्रणालिका मे खुलकर बहने लगता है जिसके साथ क्षय जीवाणु फिर दूर तक प्रसरण कर जाता है। क्षयाकुर के अन्दर मे इस द्रव भाग के बहने से उसमे एक रिक्त स्थान उत्पन्न हो जाता है जिसे गुहा भाव (Cavitation) की प्रक्रिया कहते है। इस गुहा के खुल जाने से अब उसमे Oxygen जाने लगती हे जिससे वहा जीवाणुओ को वृद्धि करने का अवसर मिल जाता है। जब तक गुहा चारो ओर से बन्द थी वहा जीवाणु बढ नही सकते थे प्रत्युत धीरे धीरे मृत हो रहे थे। इसीलिए यदि थूक के द्वारा पतला पूय सदृश द्रव निकलने लगता हे तो समझा जाता है कि फुफ्फुस मे कही पर पनीर सदृश पदार्थ द्रव हो गया है और गुहा (Cavity) बन गई है। गुहा भाव न हो तो रोग भयकर नही होता। उसके प्रसरण से जीवाणु फुफ्फुस मे फैलने लगते है।

Tuberculous Abscess or Cold abscess — इस वेदना रहित चिरस्थायी विद्रधि को जिसके अन्दर पनीर जैसा यह पदार्थ होता है जिसके चारो ओर की दीवार मे Grey Tubercles छाये होते है क्षय विद्रधि (Tuberculous Abscess) कहते है। यह Lymphglands तथा Spine और अस्थियो मे होती हे। यह त्वचा के नीचे हो तो अत मे त्वचा से जुड जाता है, तथा त्वचा रक्तवर्ण हो जाती है। इस रक्तवर्ण प्रदेश मे इस विद्रधि के खुल जाने से एक नाडी व्रण (Sinus) बन जाता है। यह विद्रधि गहराई मे हो तो इसका पूय किसी मासावरण Fascia पर से बहता-बहता दूर तक चला जाता हे और कही त्वचा पर खुलता हे। परन्तु बहुधा क्षयाकुर मे द्रव भाव नही होता Epithelioid Cells के सूत्राकार प्रवर्धन (Reticuli) ही, स्नायु तन्तु (Connective Tissue) मे परिवर्तित होकर इसके चारो ओर घेरा डाल लेते है और इस प्रकार उसके चारो ओर एक दृढ आवरण (Fibrous Capsule) बन जाता है तथा फिर इसमे लाइम के साल्ट निक्षिप्त हो जाते है जिससे वह कठोर (Calcified) हो जाता है, यद्यपि फिर भी कभी-कभी उसके अन्दर कोई जीवाणु जीवित रह सकता है। इसके कारण विष सचार Septic-toxaemia, Hectic fever के लक्षण होते है।

जब इस रोग मे जीवाणु द्वारा मृत्यु (Necrosis) की प्रक्रिया अधिक होती है तब पनीर भाव (Caseation) अधिक होता है। इसके विपरीत जब सेलो की प्रतिक्रिया प्रबल होती है तो रोहण कर्म (Fibrosis) अधिक होता है।

जीर्ण उरःक्षय रोग—(Chronic Fibrocaseous Tuberculosis, Adult Phthisis, Consumption)

क्षय रोग, शरीर के अगो मे, सबसे अधिक फुफ्फुस मे होता है। तथा वहा भी जीर्ण उर क्षय के (Chronic Fibrocaseous) रूप मे अधिक होता है। यह १५ से २५ वर्ष की आयु मे विशेषत पाया जाता हे। सम्भव हे प्रथम सक्रमण (Primary Infection) से उपार्जित प्रतिरोधक शक्ति तब तक घट जाती है तथा इस आयु मे स्वभावत दूसरो से इस रोग के भारी सक्रमण (Reinfection) का अवसर भी अधिक रहता है। सम्भव है बलवान् सक्रमण से निर्बल प्रतिरोधक शक्ति नष्ट कर दी जाती हे। अथवा प्रारम्भिक क्षत या प्रारम्भिक क्षय ग्रन्थि (Gland) मे से इस जीवाणु का सक्रमण शरीर मे या फुफ्फुस के शिखर मे हो जाता है (Endogenous Reinfection)।

बाहर से जीवाणु सक्रमण होने के कितने दिन बाद यह रोग आरम्भ होता है इस विषय मे Boyd साहब का

कथन है कि सक्रमण होने के एक-डेढ मास वाद इस रोग के पार्श्व शूल आदि लक्षण आरम्भ हो जाते है तथा Tuberculin Test भी नैगेटिव से पाजिटिव होता है।

फुफ्फुस के अन्दर श्वास नाली या लसीकावाहिनी या रक्तवाहिनी द्वारा आया हुआ क्षय जीवाणु उसके अन्य भागो मे उस तरह नही पनपता जैसा कि वह फुफ्फुस शिखर (Apex) मे पनपता है। यह रोग प्राय फुफ्फुस शिखर के पिछले भाग मे आरम्भ होता है। वहाँ ही यह रोग क्यो आरम्भ होता है इसके लिए Dock ने जो समाधान दिया है वह उचित प्रतीत होता है। वह कहता है कि फुफ्फुस मे रक्त, दक्षिण हृदय से Pulmonary Artery के द्वारा पहुचता है। फुफ्फुस की रक्तवाहिनियो मे सब से कम भार (B P) शिखर की रक्तवाहिनियो मे होता है। विशेषत जब तक मनुष्य खडा हुआ श्रम करता रहता है वहा भार रहता ही नही। इसीलिए लसीका वाहिनियो (Lymphatics) के द्वारा शिखर मे पहुचे हुए जीवाणुओ को शिखर की रक्तवाहिनियो के आसपास लसीका (Tissue Fluid) के न रहने मे वृद्धि करने का अवसर मिल जाता है। दोनो फुफ्फुस शिखरो मे से दक्षिण फुफ्फुस शिखर मे यह रोग क्यो अधिक होता है इस विषय मे उसका कथन है कि दाई Pulmonary Artery वाई की अपेक्षा लम्बी तथा तग होती है। जब तक व्यक्ति श्रम करता या चलता-फिरता है, दक्षिण शिखर मे रक्तभार सर्वथा नही रहता, जिससे वहा जीवाणु को रोहण करने का सुअवसर और भी अधिक रहता है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि रात को ८ घटे तथा दिन मे भी कुछ समय लेटकर आराम करने वालो मे इस रोग के होने का भय कम रहता है।

सम्प्राप्ति

एक फुफ्फुस दो-तीन खण्डो Lobes से बना होता है। इनमे से प्रत्येक खण्ड अनेक खण्डिकाओ (Lobules) से बना हुआ है तथा प्रत्येक खण्डिका अनेकानेक श्वास प्रणालिकाओ (Bronchioles) तथा उनके सिरे पर सम्वन्धित श्वास कोष्ठक गुच्छो (Acini अथवा Alveoli) के द्वारा बना है। इसे फुफ्फुस की इकाई कहा जा सकता है। यह रोग भी फुफ्फुस की एक इकाई मे प्रारम्भ होता है। अर्थात् फुफ्फुस की किसी एक Bronchiole के सिरे के लसीकामय प्रदेश (Peribronchial Lymphoid Tissue) मे यह रोग आरम्भ होता है जिससे फुफ्फुस का एक वायु कोष्ठक (Acinus या Alveolus) पहले रोग ग्रस्त होता है और फिर अनेक कोष्ठको (Acini) के रोग ग्रस्त होने से फुफ्फुस का एक सेण्टीमीटर के लगभग का भाग रोग ग्रस्त हो जाता है। युवक मे क्षय जीवाणु का सक्रमण वहुधा वाहर से होता है (Exogenous)। कभी-कभी जैसे ऊपर कहा है फुफ्फुस मे विद्यमान Primary Infection मे से विशेषत उसके Glandular Component अर्थात् किसी जीवित जीवाणुओ से युक्त Mediastinal Gland मे से होता है। यह क्षय जीवाणु लसीकावाहिनी (Lymphatic) के द्वारा एक श्वास प्रणालिका (Bronchiole) की दीवार मे उसके Peribronchial Lymphoid Tissue मे वृद्धि करना प्रारम्भ करता है। क्योकि फुफ्फुस शिखर मे इसे रोहण करने की अनुकूल परिस्थिति मिलती है, इसलिए पहले-पहल यह वहा ही रोहण करता है। फिर इसके विपरीत वहा Monocytes तथा लसीका द्रव (Lymph) पर्याप्त मात्रा मे जमा हो जाते है। इनके जमा होने से वहा Tubercles वन जाते है, अर्थात् Tubercular Granuloma सा वन जाता है जिसमे कुछ एक प्रणालिकाओ के सिरे तथा उनसे सम्वन्धित वायु कोष्ठक (Acini या Alveoli) एकत्रित हुए सेलो तथा एकत्रित हुई लसीका (Lymph) के जम जाने से ठोस से हो जाते है। इसे क्षय जनित स्थानिक फुफ्फुस शोथ (Local Tuberculous Broncho Pneumonia) कह सकते है। अर्थात् रोगी के रोग ग्रस्त फुफ्फुस का यह एक भाग श्वास प्रश्वास मे भाग लेना वन्द कर देता है। यह अवस्था महीनो तक ऐसी ही रह सकती है। यदि रोग वढता जाय तो श्वेत कणो और लसीका (Lymph) के सचित होने से वने हुए इस भाग मे इन्ही श्वेतकणो मे से उत्पन्न Intracellular Enzyms के द्वारा मृत्यु (Coagulation Necrosis तथा Fatty Degeneration) की प्रक्रिया होने लगती है जिससे यह स्थान अर्थात् वहा भरा हुआ द्रव (Exudation) एक पनीर जैसे पदार्थ मे परिवर्तित हो जाता है जिससे इसे Caseous Broncho Pneumonia कहा जाता है। इस प्रकार फुफ्फुस शिखर की अनेकानेक खडिकाए (Lobules) निष्क्रिय (Collapsed) हो जाती है। रोग शीघ्र वढे फुफ्फुस का एक वडा भाग ठोस हो जाये अर्थात् Tuberculous Pneumonia हो जाये तो Consolidation के लक्षण सुनाई पडते है तथा Crepitant rales सुनाई पडते है।

इसके वाद भी यदि वहा की रोकथाम पर्याप्त न हो अर्थात् वहा स्नायुतन्तु की वृद्धि (Fibrosis) की प्रक्रिया भली प्रकार न हो, जीवाणु वृद्धि करना ही जाय, विशेषत उस स्थान मे Pyococci प्रवेश कर जाए तो उनके कारण वहाँ Leucocytes खिचकर आने लगते है और उनके मृत

शरीरो मे से निकले Enzymes के द्वारा इस पनीर सदृश पदार्थ को बांधकर रखने वाला Elastic Tissue पचने या गलने लगता है जिससे पनीर जैसा पदार्थ फिर द्रव रूप होने लगता है (उसमे Sloughing या Liquefaction होने लगता है) जिससे वहा शीत विद्रधि या Cold Abscess बन जाता है। फिर यह विद्रधि निकटस्थ श्वास मार्ग (Bronchus या Bronchiole) मे खुल जाती है, और उसका पूय सदृश द्रव पदार्थ थूक के साथ बाहर निकलने लग जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि पनीर सदृश पदार्थ के द्रव रूप होकर निकलते रहने से इस रोग ग्रस्त भाग के केन्द्र मे एक गुहा (Cavity) बन जाती है जो क्रमश बडी होती जाती है। यह गुहाभाव (Cavitation) उर क्षय रोग का एक विशेष लक्षण है। बहुधा इस गुहा के बीच मे पर्दे (Stroma या Trabeculae) भी हो सकते है जिनमे चलने वाली श्वास नालिया तथा रक्तवाहिनिया भी होती है, परन्तु प्राय वे अवरुद्ध (Thrombosed) हुई-हुई होती हैं। इन पर्दो मे यदि रक्तवाहिनी अवरुद्ध हुई न हो तो उसमे क्षत हो जाने से थूक मे रक्त की न्यूनाधिक मात्रा भी आ सकती है। रोग के अन्त मे जब बडी-बडी श्वास नालिया रोग ग्रस्त हो जाती है तो उनकी दीवार मे विद्यमान बडी रक्तवाहिनियो मे शैथिल्य (Dilatation) होकर उनमे सिरा ग्रन्थिया Aneurism भी बन सकती है तथा यदि कोई ऐसी ग्रन्थि (Aneurism) फट जाये तो फिर मुख द्वारा महान् रक्तस्राव होकर तुरन्त मृत्यु हो सकती है। एक बार गुहा भाव हो जाय तो आस-पास के स्वस्थ फुफ्फुस के श्वास प्रश्वास के साथ फैलने सुकडने से उस गुहा पर और खीच पडती रहती है जिससे वह फैलती ही जाती है। परन्तु यदि पूर्ण विश्राम के द्वारा रोग ग्रस्त फुफ्फुस को निष्क्रिय बना दिया जाय तो यह गुहा भरने लग जाती है।

जब फुफ्फुस मे क्षयाकुर उत्पन्न होते है तो प्राय वे फुफ्फुसावरण (Pleura) पर भी प्रसरण कर जाते है और वहा इनके विपरीत लसीका (Lymph) का जो स्राव होता है उसमे Fibrinogen भी होता है जो वहा पर एकत्रित हुए Polymorphonuclears के मृत शरीरो मे से निकले Thrombin के द्वारा Fibrin मे परिवर्तित होकर शुष्क पार्श्व शूल (Fibrinous Pleurisy) का कारण बन जाता है। इसका यह परिणाम होता है कि फुफ्फुस पर चढा हुआ अन्दर का Pleura सामने के बाहर के (Parietal) Pleura से जुड जाता है। Pleura के विस्तृत प्रदेश मे क्षयाकुर निकल आए तो वहा पतले Lymph (Serofibrinous Fluid) का स्राव इतना होता है कि Pleural Cavity का एक भाग उससे भर जाता है। तब इसे द्रवयुक्त पार्श्व शूल (Pleurisy with Effusion) कहते है।

आराम से या चिकित्सा से रोगी की प्रतिरोधक शक्ति बढ जाय तो Caseation की प्रक्रिया के होने से पहले वहा स्नायुतन्तु (Fibrous Tissue) का आवरण छा जाता है और रोग की गति अवरुद्ध हो जाती है अथवा पनीर भाव या Caseation के बाद भी वहा स्नायुभाव (Fibrosis एव Calcification) होकर रोग की वृद्धि रुक जाती है। ऐसा होने पर फुफ्फुस का यह रोग ग्रस्त भाग सुकडकर छोटा हो जाता है तथा इस प्रक्रिया के द्वारा उत्पन्न हुई क्षति को पूर्ण करने के लिए चारो ओर के स्वस्थ फुफ्फुस मे हवा अधिक भर जाती है (अर्थात् उसमे Compensatory Emphysema हो जाता है)।

जीर्ण उर क्षय मे फुफ्फुस के रोग ग्रस्त भाग मे स्नायुभाव (Fibrosis) तथा पनीर भाव (Caseation) दोनो प्रक्रियाए न्यूनाधिक रूप मे साथ-साथ चलती है। उसी ओर के फुफ्फुस या दूसरी ओर के फुफ्फुस मे रोग का प्रसरण या तो सीधा होता है या श्वास नालियो मे से Aspiration अर्थात् पूय खण्ड के श्वास द्वारा खिच जाने मे होता प्रतीत होता है।

जीर्ण उर क्षय Chronic Fibrocaseous Tuberculosis के लक्षण

फुफ्फुस मे क्षय जीवाणु के सक्रमण के कारण दो प्रकार के लक्षण होते है। एक व्यापक, दूसरे स्थानिक। क्षय जीवाणु के विष (Tuberculoprotein) के रक्त मे सचार करने के कारण तो ऐसे व्यापक लक्षण जैसे ज्वर, कृशता, अशक्ति आदि लक्षण होते है तथा खासी, बलगम, पार्श्व शूल आदि लक्षण श्वास प्रणालियो मे या फुफ्फुस या फुफ्फुसावरण (Pleura) में क्षय जनित शोथ के कारण होते है।

प्रारम्भिक लक्षण :—अथवा अव्यक्त उर क्षय के लक्षण

उर क्षय रोग इतने अज्ञात रूप मे और धीरे-धीरे आरम्भ होता है कि प्रारम्भ मे इस रोग का पहचानना सुगम नही होता। परन्तु कुछ एक लक्षणो को देखकर इस रोग का सन्देह हो जाता है। क्षय जीवाणु के विष (Tuberculoprotein Toxaemia) के कारण शरीर की प्राण शक्ति पर बडा दुष्प्रभाव पडता है। उसके क्षीण हो जाने से शारीरिक और मानसिक अशक्ति या दौर्बल्य का लक्षण उत्पन्न हो जाता है। स्वल्प श्रम से भी शरीर और मन

कथन है कि सक्रमण होने के एक-डेढ मास वाद इस रोग के पार्श्व शूल आदि लक्षण आरम्भ हो जाते है तथा Tuberculin Test भी नैगेटिव से पाजिटिव होता है।

फुफ्फुस के अन्दर श्वास नाली या लसीकावाहिनी या रक्तवाहिनी द्वारा आया हुआ क्षय जीवाणु उसके अन्य भागो मे उस तरह नही पनपता जैसा कि वह फुफ्फुस शिखर (Apex) मे पनपता है। यह रोग प्राय फुफ्फुस शिखर के पिछले भाग मे आरम्भ होता है। वहाँ ही यह रोग क्यो आरम्भ होता है इसके लिए Dock ने जो समाधान दिया है वह उचित प्रतीत होता है। वह कहता है कि फुफ्फुस मे रक्त, दक्षिण हृदय से Pulmonary Artery के द्वारा पहुचता है। फुफ्फुस की रक्तवाहिनियो मे सब से कम भार (B P) शिखर की रक्तवाहिनियो मे होता है। विशेषत जब तक मनुष्य खडा हुआ श्रम करता रहता है वहा भार रहता ही नही। इसीलिए लसीका वाहिनियो (Lymphatics) के द्वारा शिखर मे पहुचे हुए जीवाणुओ को शिखर की रक्तवाहिनियो के आसपास लसीका (Tissue Fluid) के न रहने से वृद्धि करने का अवसर मिल जाता है। दोनो फुफ्फुस शिखरो मे से दक्षिण फुफ्फुस शिखर मे यह रोग क्यो अधिक होता है इस विषय मे उसका कथन है कि दाई Pulmonary Artery वाई की अपेक्षा लम्वी तथा तग होती है। जब तक व्यक्ति श्रम करता या चलता-फिरता है, दक्षिण शिखर मे रक्तभार सर्वथा नही रहता, जिससे वहा जीवाणु को रोहण करने का सुअवसर और भी अधिक रहता है। इससे यह वात स्पष्ट हो जाती है कि रात को ८ घटे तथा दिन मे भी कुछ समय लेटकर आराम करने वालो मे इस रोग के होने का भय कम रहता है।

सम्प्राप्ति

एक फुफ्फुस दो-तीन खण्डो Lobes से वना होता है। इनमे से प्रत्येक खण्ड अनेक खण्डिकाओ (Lobules) से वना हुआ है तथा प्रत्येक खण्डिका अनेकानेक श्वास प्रणालिकाओ (Bronchioles) तथा उनके सिरे पर सम्वन्धित श्वास कोष्ठक गुच्छो (Acini अथवा Alveoli) के द्वारा बना है। इसे फुफ्फुस की इकाई कहा जा सकता है। यह रोग भी फुफ्फुस की एक इकाई मे प्रारम्भ होता है। अर्थात् फुफ्फुस की किसी एक Bronchiole के सिरे के लसीकामय प्रदेश (Peribronchial Lymphoid Tissue) मे यह रोग आरम्भ होता है जिससे फुफ्फुस का एक वायु कोष्ठक (Acinus या Alveolus) पहले रोग ग्रस्त होता है और फिर अनेक कोष्ठको (Acini) के रोग ग्रस्त होने से फुफ्फुस का एक सेण्टीमीटर के लगभग का भाग रोग ग्रस्त हो जाता है। युवक मे क्षय जीवाणु का सक्रमण वहुधा वाहर से होता है (Exogenous)। कभी-कभी जैसे ऊपर कहा है फुफ्फुस मे विद्यमान Primary Infection मे से विशेषत उसके Glandular Component अर्थात् किसी जीवित जीवाणुओ से युक्त Mediastinal Gland मे से होता है। यह क्षय जीवाणु लसीकावाहिनी (Lymphatic) के द्वारा एक श्वास प्रणालिका (Bronchiole) की दीवार मे उसके Peribronchial Lymphoid Tissue मे वृद्धि करना प्रारम्भ करता है। क्योकि फुफ्फुस शिखर मे इसे रोहण करने की अनुकूल परिस्थिति मिलती है, इसलिए पहले-पहल यह वहा ही रोहण करता है। फिर इसके विपरीत वहा Monocytes तथा लसीका द्रव (Lymph) पर्याप्त मात्रा मे जमा हो जाते है। इनके जमा होने से वहा Tubercles वन जाते है, अर्थात् Tubercular Granuloma सा वन जाता है जिसमे कुछ एक प्रणालिकाओ के सिरे तथा उनसे सम्वन्धित वायु कोष्ठक (Acini या Alveoli) एकत्रित हुए सेलो तथा एकत्रित हुई लसीका (Lymph) के जम जाने से ठोस से हो जाते है। इसे क्षय जनित स्थानिक फुफ्फुस शोथ (Local Tuberculous Broncho Pneumonia) कह सकते है। अर्थात् रोगी के रोग ग्रस्त फुफ्फुस का यह एक भाग श्वास प्रश्वास मे भाग लेना वन्द कर देता है। यह अवस्था महीनो तक ऐसी ही रह सकती है। यदि रोग वढता जाय तो श्वेत कणो और लसीका (Lymph) के सचित होने से वने हुए इस भाग मे इन्ही श्वेतकणो मे से उत्पन्न Intracellular Enzyms के द्वारा मृत्यु (Coagulation Necrosis तथा Fatty Degeneration) की प्रक्रिया होने लगती है जिसमे यह स्थान अर्थात् वहा भरा हुआ द्रव (Exudation) एक पनीर जैसे पदार्थ मे परिवर्तित हो जाता है जिसमे इसे Caseous Broncho Pneumonia कहा जाता है। इस प्रकार फुफ्फुस शिखर की अनेकानेक खडिकाए (Lobules) निष्क्रिय (Collapsed) हो जाती है। रोग शीघ्र वढे फुफ्फुस का एक वडा भाग ठोस हो जाये अर्थात् Tuberculous Pneumonia हो जाये तो Consolidation के लक्षण सुनाई पडते है तथा Crepitant rales सुनाई पडते है।

इसके वाद भी यदि वहा की रोकथाम पर्याप्त न हो अर्थात् वहा स्नायुतन्तु की वृद्धि (Fibrosis) की प्रक्रिया भली प्रकार न हो, जीवाणु वृद्धि करता ही जाय, विशेषत उस स्थान मे Pyococci प्रवेश कर जाए तो उनके कारण वहाँ Leucocytes खिचकर आने लगते है और उनके मृत

शरीरो मे से निकले Enzymes के द्वारा इस पनीर सदृश पदार्थ को बाधकर रखने वाला Elastic Tissue पचने या गलने लगता है जिसमे पनीर जैसा पदार्थ फिर द्रव रूप होने लगता है (उसमे Sloughing या Liquefaction होने लगता है) जिससे वहा शीत विद्रधि या Cold Abscess बन जाता है। फिर यह विद्रधि निकटस्थ श्वास मार्ग (Bronchus या Bronchiole) मे खुल जाती है, और उसका पूय सदृश द्रव पदार्थ थूक के साथ बाहर निकलने लग जाता है। इनका परिणाम यह होता है कि पनीर सदृश पदार्थ के द्रव रूप होकर निकलते रहने से इस रोग ग्रस्त भाग के केन्द्र मे एक गुहा (Cavity) बन जाती है जो क्रमश बडी होती जाती है। यह गुहाभाव (Cavitation) उर क्षय रोग का एक विशेष लक्षण है। बहुधा इस गुहा के बीच मे पर्दे (Stroma या Trabeculae) भी हो सकते है जिनमे चलने वाली श्वास नालिया तथा रक्तवाहिनिया भी होती है, परन्तु प्राय वे अवरुद्ध (Thrombosed) हुई-हुई होती है। इन पर्दो मे यदि रक्तवाहिनी अवरुद्ध हुई न हो तो उससे क्षत हो जाने मे थूक मे रक्त की न्यूनाधिक मात्रा भी आ सकती है। रोग के अन्त मे जब बडी-बडी श्वास नालिया रोग ग्रस्त हो जाती है तो उनकी दीवार मे विद्यमान बडी रक्तवाहिनियो मे शैथिल्य (Dilatation) होकर उनमे सिरा ग्रन्थिया Aneurism भी बन सकती है तथा यदि कोई ऐसी ग्रन्थि (Aneurism) फट जाये तो फिर मुख द्वारा महान् रक्तस्राव होकर तुरन्त मृत्यु हो सकती है। एक बार गुहा भाव हो जाय तो आसपास के स्वस्थ फुफ्फुस के श्वास प्रश्वास के साथ फैलने सुकडने मे उस गुहा पर और खीच पडती रहती है जिससे वह फैलती ही जाती है। परन्तु यदि पूर्ण विश्राम के द्वारा रोग ग्रस्त फुफ्फुस को निष्क्रिय बना दिया जाय तो यह गुहा भरने लग जाती है।

जब फुफ्फुस मे क्षयाकुर उत्पन्न होते है तो प्राय वे फुफ्फुसावरण (Pleura) पर भी प्रसरण कर जाते हैं और वहा इनके विपरीत लसीका (Lymph) का जो स्राव होता है उसमे Fibrinogen भी होता है जो वहा पर एकत्रित हुए Polymorphonuclears के मृत शरीरो मे से निकले Thrombin के द्वारा Fibrin मे परिवर्तित होकर शुष्क पार्श्व शूल (Fibrinous Pleurisy) का कारण बन जाता है। इसका यह परिणाम होता है कि फुफ्फुस पर चढा हुआ अन्दर का Pleura सामने के बाहर के (Parietal) Pleura मे जुड जाता है। Pleura के विस्तृत प्रदेश मे क्षयाकुर निकल आए तो वहा पतले Lymph (Serofibrinous Fluid) का स्राव इतना होता है कि Pleural Cavity का एक भाग उससे भर जाता है। तब इसे द्रवयुक्त पार्श्व शूल (Pleurisy with Effusion) कहते है।

आराम से या चिकित्सा से रोगी की प्रतिरोधक शक्ति बढ जाय तो Caseation की प्रक्रिया के होने से पहले वहा स्नायुतन्तु (Fibrous Tissue) का आवरण छा जाता है और रोग की गति अवरुद्ध हो जाती है अथवा पनीर भाव या Caseation के बाद भी वहा स्नायुभाव (Fibrosis एव Calcification) होकर रोग की वृद्धि रुक जाती है। ऐसा होने पर फुफ्फुस का यह रोग ग्रस्त भाग सुकडकर छोटा हो जाता है तथा इस प्रक्रिया के द्वारा उत्पन्न हुई क्षति को पूर्ण करने के लिए चारो ओर के स्वस्थ फुफ्फुस मे हवा अधिक भर जाती है (अर्थात् उसमे Compensatory Emphysema हो जाता है)।

जीर्ण उर क्षय मे फुफ्फुस के रोग ग्रस्त भाग मे स्नायुभाव (Fibrosis) तथा पनीर भाव (Caseation) दोनो प्रक्रियाए न्यूनाधिक रूप मे साथ-साथ चलती है। उसी ओर के फुफ्फुस या दूसरी ओर के फुफ्फुस मे रोग का प्रसरण या तो सीधा होता है या श्वास नालियो मे से Aspiration अर्थात् पूय खण्ड के श्वास द्वारा खिच जाने से होता प्रतीत होता है।

जीर्ण उर क्षय Chronic Fibrocaseous Tuberculosis के लक्षण

फुफ्फुस मे क्षय जीवाणु के सक्रमण के कारण दो प्रकार के लक्षण होते है। एक व्यापक, दूसरे स्थानिक। क्षय जीवाणु के विष (Tuberculoprotein) के रक्त मे सचार करने के कारण तो ऐसे व्यापक लक्षण जैसे ज्वर, कृशता, अशक्ति आदि लक्षण होते है तथा खासी, बलगम, पार्श्व शूल आदि लक्षण श्वास प्रणालियो मे या फुफ्फुस या फुफ्फुसावरण (Pleura) में क्षय जनित शोथ के कारण होते है।

प्रारम्भिक लक्षण .—अथवा अव्यक्त उर क्षय के लक्षण

उर क्षय रोग इतने अज्ञात रूप मे और धीरे-धीरे आरम्भ होता है कि प्रारम्भ मे इस रोग का पहचानना सुगम नही होता। परन्तु कुछ एक लक्षणो को देखकर इस रोग का सन्देह हो जाता है। क्षय जीवाणु के विष (Tuberculoprotein Toxaemia) के कारण शरीर की प्राण शक्ति पर बडा दुष्प्रभाव पडता है। उसके क्षीण हो जाने से शारीरिक और मानसिक अशक्ति या दौर्बल्य का लक्षण उत्पन्न हो जाता है। स्वल्प श्रम से भी शरीर और मन

अधिक गिरे तो फुफ्फुस मे Caseation का अनुमान करना चाहिए। रोग Pleura में ही हो तो खासी खुश्क ही उठती है।

(२) मल भूत कफ या बलगम का पडना —(Expectoration)

इस रोग के बढने पर पहले खासी के साथ पतली बलगम आती है। परन्तु उस Mucus मे पिन के नक्के जितने छोटे-छोटे पूय कण (Caseous पदार्थ के खण्ड) आने लगते हैं। ज्यो-ज्यो गुहाभाव (Cavitation) की वृद्धि होती है ये पूय खण्ड बडी मात्रा मे आने लगते हे। इस पूय मिश्रित थूक (Purulent-Sputum) की परीक्षा करने पर उसमे क्षय जीवाणु मिलते है तथा उसमे Caseous पदार्थ को जोडकर रखने वाले Elastic Tissue के सूत्र (Fibres) भी मिलते है। जितनी ही इस पूय वाली थूक (Purulant एव Nummular Sputum, Mucopus) के गोलाकार ढेर की मात्रा बढे उतनी ही रोग की वृद्धि हो रही है ऐसा समझना चाहिए। यदि इसकी मात्रा घटने लगे फिर वह पतली (Mucoid) हो जाय तो रोग अच्छा होता हुआ समझना चाहिए। Bronchiectasis की थूक मात्रा मे बडी, पूय युक्त, दुर्गन्धित होती हे, साथ ही उसमे अगुलियो के सिरे मोटे भी होते है। इस रोग मे ये दोनो लक्षण साथ-साथ मे नही मिलते।

(३) ज्वर

इस रोग का प्रधान लक्षण हे। जो इस रोग के विप की न्यूनता या अधिकता (Toxaemia) का सूचक होता हे। प्रारम्भ मे दिन भर के श्रम करने के बाद विप सचार की वृद्धि केवल कुछ समय अर्थात् सायकाल के समय ही होती है। ज्यो-ज्यो यह विप सचार बढता जाता है रोगी का तापमान मध्याह्न मे ही बढने लग जाता है। इस रोग मे रोगी का तापमान रात के विश्राम से उतर जाता है। प्राय प्रात काल का तापमान नार्मल से नीचे होता है तथा दैनिक श्रम के कारण वह सायकाल नार्मल से एक दो डिग्री बढ जाता है। प्रात साय के तापमानो मे जितना-जितना अन्तर बढता जाय उतना ही रोग के विप सचार मे वृद्धि समझनी चाहिए। इस क्षय विप के अधिक बढ जाने पर प्रात साय के तापमानो मे चार-पाच डिग्री का अन्तर हो जाता है। अन्त मे जब दूसरे पूय जनक जीवाणुओ का सक्रमण (Pyogenic Infection) हो जाता है प्रात शीत लगकर ज्वर चढता है और रात को अति स्वेद के साथ उतरता हे, इसे Hectic Temperature कहा जाता है।

(४) अति स्वेद तथा रात्रि स्वेद

सायकाल को ज्वर चढता है वह रात्रि को सोते समय जब उतरता है तब भारी स्वेद आता है। यह रात्रि स्वेद इस रोग का एक विशेप लक्षण हे, अर्थात् क्षय विप का यह एक सूचक लक्षण प्रतीत होता है। कई बार तो उर क्षय की प्रारम्भिक अवस्था मे भी यह लक्षण हो सकता है। अर्थात् यदि किसी को शीत ऋतु मे रात्रि स्वेद हो तो इस रोग की आशका होनी चाहिए। किसी-किसी रोगी मे शीतकाल के दिनो मे दिन मे भी कक्षा प्रदेश पर भारी स्वेद आता है। त्वचा पर आए स्वेद के सचित हो जाने पर उसमे Saprophytic organisms बहुत बढते है जिससे त्वचा पर से एक मीठी पर घृणाजनक दुर्गन्ध आने लगती हे जो कि प्राय क्षय रोगी के शरीर मे से आया करती है।

(५) रक्त निष्ठीवन तथा रक्त वमन (Haemoptysis)

लगभग १० प्रतिशत तक उर क्षय रोगियो मे इस रोग का पता पहले-पहल रक्त निष्ठीवन या रक्तवमन से लगता है। एक सर्वथा स्वस्थ प्रतीत होने वाले व्यक्ति को सहसा मुख मे एक गर्म द्रव आता प्रतीत होता हे और जब वह उसे थूकता है तो वह रक्त निकलता है। इस प्रकार एक व्यक्ति को चार-पाच छटाक तक के रक्त की उल्टी हो सकती हे। इस लक्षण को देखकर फुफ्फुस मे इस रोग का निश्चय हो जाना चाहिए। इस रक्त वमन के बाद भी एक दो दिन तक थूक के साथ मिश्रित रक्त आता रहता है तथा ज्वर भी बढ जाता है जो सक्रमण के फैलने से होता है। जब रक्त निष्ठीवन दीर्घ रोग के दौरान मे होता है तब यह गुहा भाव (Cavitation) की अधिकता का सूचक होता है अर्थात् एक Cavity की दीवार मे विद्यमान रक्त-वाहिनी की दीवार के शिथिल होकर फैल जाने से उसमे से यह रक्त आता है तथा कभी-कभी तो रोग के अन्त मे यह रोगी के अन्तकाल का सूचक होता है, क्योकि भारी रक्त वमन होने के साथ ही रोगी की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु अधिक रक्त स्राव के कारण नही पर श्वास नालियो के रक्त से भर जाने पर दम घुटने से होती है। आधे से अधिक रोगियो मे बलगम के साथ मिला हुआ रक्त आता हे। रक्त मिश्रित बलगम आये तो इस रोग का निश्चय करना चाहिये।

(६) कृशता और अशक्ति

रोग की वृद्धि के साथ-साथ भार घटता जाता है। फुफ्फुस के रुग्ण होते जाने से थोडे श्रम से श्वास चढ जाता है। शरीर कृश होता जाता है। अशक्ति वढती जाती हे। Toxaemia के कारण भूख कम होती जाती है। नाडी गति तीव्रतर होती जाती है। नाडी या हृदय गति की तीव्रता का लक्षण इस रोग के प्रारम्भ से अन्त तक रहता है। इस क्षय विष के दुष्प्रभाव से ही हृदय तथा धमनियो की प्राण शक्ति घट जाती हे। रोग के प्रारम्भ मे भी यदि नाडी प्रति मिनट ८०-६० के लगभग रहे, सकोच कालिक रक्त भार घटा हुआ हो तो उरक्षय का सन्देह करना चाहिये।

(७) उरशूल :

छाती के एक तरफ गहरे श्वास के साथ दर्द होने का लक्षण भी होता है जो Pleura मे इस रोग के कारण शोथ के होने से होता है।

(८) श्वास की तीव्रता :

पहले हृदय की निर्वलतावश Diaphragm की निर्वलतावश (Spasm) श्वास गति तीव्र होती है। फिर फुफ्फुसो के कुछ भाग के नष्ट एव असमर्थ हो जाने तथा Pleura मे जल के हो जाने से श्वास गति तीव्र रहती है। फिर फुफ्फुसो मे स्नायु भाव (Fibrosis) हो जाने से वह तीव्र रहती है। Vital-capacity के घटने से Hypoxia तथा Hypercapnial (CO_2 की रक्त मे अधिकता) का लक्षण होने से भी श्वास तीव्र होता हे।

वृद्धावस्था मे उरक्षय :

वडी आयु मे सभवत Lymphoid Tissue की क्षीणतावश या प्रथम आयु मे उपार्जित प्रतिरोधक शक्ति या Antibody response के ठीक न रहने से या उसके क्षीण हो जाने से यह जीवाणु फिर रोहण कर सकता है अत यदि वडी आयु मे खासी, वलगम गिरने, अशक्ति, मन्दज्वर के लक्षण होने लगे तो छाती की Radiology परीक्षा करनी चाहिये।

रोग परीक्षा

रोग की शारीरिक परीक्षा करने पर पता लगता हे कि रोगी का Basalmetabolic rate वढ गया है उसका भार घटता जाता है, उसकी नाडी तीव्र हे, श्वास तीव्र है, रक्त की कमी से रंग फीका है, सायकाल उसका तापमान नार्मल से कुछ अधिक होता है, आखे श्वेत वर्ण, पर कुछ धसी हुई है, अगुलियो के विशेपत अगूठे की तरफ तीन के सिरे मोटे है। (Clubbing है)। इनका यह मोटापन Bronchietasis नामक रोग मे भी होता है, पर दोनो रोगो के अन्दर नखो मे विभिन्नता होती है। इस रोग मे नख पतले, चमकरहित तथा तोते की चोच की तरह खम खाए (Curved) होते है। परन्तु Bronchietasis रोग मे नख अधिक मोटे, चमकदार (Polished) होते हैं तथा खम खाए हुए नही होते (Drum Stick-clubbing) निरन्तर चिरकाल तक फुफ्फुसो मे शिरागत रक्त को आक्सिजन की पूर्ण मात्रा न मिले तो उसमे एक ऐसा द्रव्य (सम्भवत Ferritin) रह जाता है जिससे अगुलियो के सिरो पर धमनियो और शिराओ के वीच की नालिया फैल जाती हे एव सिरे स्थूल हो जाते हे। इस रोग मे खासी और वलगम की निकासी किसी एक स्थिति विशेप से ही होती है।

इस रोग का छाती के कैन्सर से सन्देह हो सकता है। पर उसमे X Ray छाया Hilum मे होती है, वहा से छाया Radiate करती हे। Tropical Eosinophilia से इस रोग का भ्रम हो सकता है। पर उसकी खासी प्राय सायकाल उठती है। उसमे Rhonchi सुनाई पडते है जो इस रोग मे प्राय नही होते। W B C से उस रोग का भेद हो जाता है।

छाती की परीक्षा करने पर रुग्ण हुए फुफ्फुस शिखर के आस-पास की मासपेशिया विशेपत Supraspinatus सूखी हुई प्रतीत होती हे। इस कन्धे की पीछे की तथा ग्रीवा की मासपेशियो के सूखने से (Sternomastoid) उभरी हुई दीखती हे। कुछ काल वाद उस ओर Clavicle के ऊपर नीचे के गढे भी कुछ गहरे से दीखने लगते है, जिससे यह अस्थि आगे और Scapulae पीछे की ओर उभर-सी जाती हे। उधर Scapula के Spine के ऊपर की Trapezius मासपेशी कृश हुई दीखती है। एक तरफ की ऊपर की छाती दवी हुई होती या श्वास प्रश्वास के साथ उसकी गति कम होती दीखती है अर्थात् श्वास के साथ छाती ऊपर की ओर कम उठती है। निचली छाती वाहर की ओर कम फैलती हे। रोग के वढने पर तो श्वास लेने पर भी छाती फूलती नही, Vital Capacity घटी होती है। रोग ग्रस्त भाग की ओर का स्कन्ध कुछ नीचा दिखाई पड़ सकता है।

टकोर परीक्षा (Percussion)

जब रोगी ने अन्त श्वास लेकर छाती को फुलाया

हुआ हो ऐसी अवस्था मे फुफ्फुस-शिखर के पीठ पर अर्थात् Scapula के अन्दर के किनारे और रीढ की हड्डी के बीच के प्रदेश पर टकोर कर दोनो ओर के घोष (Resonance) की तुलना करनी चाहिए। रोग ग्रस्त फुफ्फुस शिखर के ठोस (Consolidated) होने के कारण उधर की टकोर दूसरी ओर की अपेक्षा मन्द (Dull) होती है। पीछे Scapulae के ऊपर के तथा दोनो के बीच के प्रदेश, आगे Clavicle के ऊपर के प्रदेश मे या Clavicle पर टकोरने से फुफ्फुस-शिखर मे उत्पन्न हुए ठोसपने (Consolidation) की परीक्षा की जा सकती है। फुफ्फुस गुहा (Cavity) प्रारम्भिक हो तो उस पर भी टकोर की आवाज मन्द होती है।

स्पर्शन करने पर हाथ को वाचिक ध्वनि का कम्पन (Tactile Vocal Fremitus) बढा हुआ लगता है।

Biopsy परीक्षा मे लसीकाग्रन्थि आदि के द्रव मे क्षय-जीवाणु का पता लगाया जाता है।

श्रवण परीक्षा (Auscultation)

(१) फुफ्फुस शिखर का पश्चिम प्रदेश कुछ ठोस हो गया हो तो वहा पर (Interscapular, Infraclavicular प्रदेशो पर) श्रवण करने मे श्वास प्रश्वास की ध्वनि कुछ Tubular या Bronchial किस्म की सुनाई पडती है तथा साधारणत: तो अन्त श्वास ऊचा तथा लम्बा होता है परन्तु फुफ्फुस के इस भाग के ठोस तथा Fibrosed होने पर वहि श्वास उससे भी ऊचा और लम्बा सुनाई पडने लगता है। रोगी की वाचिक ध्वनि (Bronchophony या Vocal Resonance) ऊची सुनाई पडती है। रोग कुछ स्पष्ट रूप मे हो तो अन्त श्वास के अन्त मे Crepitations अर्थात् कानो के पास होने वाली वालो की रगड की सी आवाज, या Fine Rales अर्थात् बुलबुलो के फटने की मुलायम आवाज सुनाई पडती है। फुफ्फुस के ठोस हुए प्रदेश पर मुह मे वोली हुई आवाज जैसे एक, दो, तीन की आवाज अर्थात् Whispering Pectoriloquy स्पष्ट सुनाई पडती है। रक्त की परीक्षा करने पर Blood Sedimentation Rate वढा हुआ पाया जाता है। इसकी घटती-वढती से रोग की घटती-वढती का पता चल जाता है। X-Ray परीक्षा करने पर फुफ्फुस के शिखर के पास अस्पष्ट किनारो वाला धुधला-सा श्वेत वदली का प्रदेश (Sub Apical Infiltration) दिखाई पडता है। Tubercular Broncho Pneumonia हो जाने से उत्पन्न स्नायु तन्तु या Fibrous अवयव की लाइने दिखाई पडे तो भी इस रोग का सन्देह करे। इस प्रदेश मे विखरी हुई छायायें भी दीख सकती है। थूक या आमाशय से लिए द्रव की परीक्षा करने पर उसमे Acid Fast जीवाणु (AFB) दिखाई पडते है।

ज्यो-ज्यो फुफ्फुस मे ठोसपन और पनीर भाव (Consolidation तथा Caseation) वढते है, रोग की वृद्धि हो जाती है। उपरोक्त लक्षण अर्थात् Bronchial श्वास-प्रश्वास ध्वनि Bronchophony, Pectoriloquy, Coarse Rales अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। जव गुहा भाव (Cavitation) हो जाता है तव वहा पर छाती चपटी हो जाती है। वहा हवा भरी हो तो वहा की टकोर ध्वनि ऊची होती है। श्रवण करने मे वहा Amphoric ध्वनि (वोतल मे फूक) सुनती है तथा कर्कश (Coarse) Rales सुनते है। Bronchophony तथा Pectoriloquy की ध्वनिया स्पष्ट हो जाती है। Pleura मे जल हो गया हो तो वहा टकोर मन्द हो जाती, श्वास प्रश्वास ध्वनिया नही सुनती।

साध्यासाध्य

चिकित्सा से Fibrosis होकर इसके साथ Calcification होकर रोग सदा के लिये शान्त हो सकता है या हलके Fibroid रूप मे अच्छा होकर रोग महीनो या वर्षो तक मृदु रूप मे रह सकता है।

रोगी को मधुमेह हो, फुफ्फुस मे Cavity हो तापमान ऊचा हो जाता हो, नाडी सख्या अधिक हो, भार और वल घटता जाता हो तो उसे कष्टसाध्य समझना चाहिए। इलाज तुरन्त शुरू हो जाये और तत्परता के साथ उसे १-२ वर्ष वरावर विना तोडे जारी रखा जाये तो रोग अच्छा हो जाता है।

टिप्पणी

(१८१८-१८१९ मे Laurant Boyle तथा उसके साथी Lannec (१७८१-१८२६) ने पेरिस मे फुफ्फुस की श्रवण परीक्षा विधि का आविष्कार ही नही किया, प्रत्युत ये दोनो महापुरुष इस रोग की स्थापना करने वाले हुए है। Lannec ने ही इस रोग की इकाई Tubercle का पता लगाया और पहले-पहल इस रोग का Tuberculosis यह नाम रखा। पर कितने दु ख का विषय है कि ये दोनो महापुरुष अन्त मे क्षय रोग से मृत्यु को प्राप्त हुए।

Radiology—इस रोग की सर्वोत्तम परीक्षा है। इससे रोगी की घटती-बढ़ती का सही-सही पता चलता है। पहले तो Apex में एक छोटी बदली दीखती है जो कि फिर फैलती जाती है। एक सम्पूर्ण खण्ड में यह हो तो Pneumonic T B कहते हैं। छोटी-छोटी अनेक बदलियां हों तो Broncho Pneumonic T B कहते हैं। बदली के बीच पारदर्शक Translucent प्रदेश हो तो वह गुहा का सूचक होता है। इस रोग के अच्छे होने पर बदलियां घटती जाती हैं।

(१) तीव्रतर उरःक्षय Phthisis Florida (Swift) Acute Phthisis, Tuberculous Pneumonia or Tuberculous Broncho Pneumonia, Acute Caseous Pneumonia.

जब शरीर में क्षय जीवाणु के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति नहीं होती जैसे कि छोटे बालकों में वह नहीं होती, यदि प्रारम्भिक क्षत (Primary Infection) के कारण सूजा हुआ कोई Mediastinal Gland एक श्वास नाली (Bronchus) के साथ जुट जाय और फिर वह उसी में खुल जाय तो उसमें निकले क्षय जीवाणु फुफ्फुस के एक खण्ड या दोनों फुफ्फुसों के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में फैल जाते हैं जिससे एक खण्ड में या फुफ्फुसों के भिन्न-भिन्न भागों में Mononuclears का स्राव (Exudation) भर जाता है। फिर वायु कोष्ठकों (Alveoli) में भरा हुआ यह द्रव पनीर जैसे पदार्थ में परिवर्तित हो जाता है अर्थात् एक खण्ड में या फुफ्फुस के भिन्न-भिन्न भागों में पनीर भाव (Caseation) हो जाता है। बालक में प्रतिरोधक शक्ति के न होने से स्नायु भाव (Fibrosis तथा Calcification) या Giant Cells बनाने की प्रतिक्रिया होती ही नहीं। इस प्रकार दक्षिण फुफ्फुस के ऊपर के खण्ड में Tuberculous Lobar-Pneumonia या दोनों फुफ्फुसों में Broncho Pneumonia कोई सा भी रोग हो सकता है। फिर इन ठोस हुए भागों का Elastic Tissue नष्ट हो जाता है और उनमें मृदुता (Softening) उत्पन्न हो जाती है।

लक्षण

प्रारम्भ में बालक में साधारण Pneumonia या Broncho Pneumonia के लक्षण होते हैं। सर्दी लगकर ज्वर चढ़ता है। पार्श्व शूल और खांसी के लक्षण भी होते हैं। ज्वर ऊंचा होता है पर प्रातः सायं के तापमानों में अन्तर अधिक होता है। श्वास गति और नाड़ी गति की शीघ्रता, अनिद्रता, रात्रि स्वेद, मुख में रक्त की लालिमा तथा ज्वर के तीन-चार सप्ताह बने रहने से निदान हो जाता है कि यह साधारण Pneumonia या Broncho Pneumonia नहीं है, प्रत्युत क्षय रोग का आक्रमण है। थूक में रक्त मिश्रित (Blood Stained Nummular) थूक होता है। परीक्षा करने पर प्रारम्भ में Rhonchi और Rales या Crepitations कहीं कहीं सुनाई पड़ते हैं। रोग एक-दो मास में घातक हो जाता है।

(२) वार्धक्यसुलभ उरःक्षय, क्षयजनित फुफ्फुस काठिन्य - Senile Phthisis Fibroid Pulmonary Tuberculosis, Tuberculo Fibroid Disease of the Lung.

५० वर्ष से ऊपर के व्यक्तियों में पाया जाने वाला यह एक मृदु पर चिरस्थायी उरःक्षय रोग है जो १५-२० वर्षों तक या और भी अधिक समय तक चला जाता है। फुफ्फुस में सौत्रण (Fibrosis) की प्रक्रिया विशेष रूप से होती है जिस कारण इसे Fibroid Phthisis कहते हैं। इसका पहचानना कठिन नहीं है। क्योंकि उरःक्षय के कारण चिरस्थायी कास का लक्षण जो कि प्रातःकाल के समय विशेष होता है अर्थात् फुफ्फुस में स्नायु तन्तु की वृद्धि की अधिकता के कारण श्वास नाली विस्तृति या Bronchiectasis न्यून या अधिक रूप में होना ही है। इसके कारण रात भर संचित हुआ बलगम प्रातः जब निकलता है तो रोज प्रातः रोगी उठती है। दूसरा लक्षण इस रोग में श्वासकाठिन्य का होता है। क्योंकि फुफ्फुस के प्रधान अवयव (Parenchymatous tissue) के स्थान पर स्नायु तन्तु आ जाता है, अतः श्रम करने पर श्वास चढ़ जाता है। क्षय रोग के कारण कृशता तथा अशक्ति के लक्षण भी होते हैं। ज्वर का लक्षण नहीं होता या कभी-कभी ज्वर हो जाता है, पर उसे लक्षण नहीं कहते। थूक में कभी-कभी रक्त आने तथा उसमें क्षय जीवाणु मिलने के ये दो लक्षण भी इस रोग में होते हैं। दोनों फुफ्फुसों में से एक फुफ्फुस में विशेषतः उसके उपरले एक तिहाई भाग में स्नायु तन्तु की वृद्धि विशेष होती है, दूसरे में मन्द रूप में होती है। जिस ओर के फुफ्फुस में यह प्रक्रिया विशेष होती है देखने में उधर की छाती दबी हुई होती है क्योंकि दोनों Pleurae के परस्पर चिपक जाने से पसलियां कुछ अन्दर धस जाती हैं, श्वास प्रश्वास के समय छाती का फुलाव या विस्तार बहुत कम होता है। टकोरने पर घोष (Resonance) घटा हुआ, स्पर्श करने पर वाचिक कम्पन (Vocal Fremitus) घटा हुआ, श्रवण करने पर वाचिक

(Vocal) तथा श्वास सम्वन्धी (Respiratory) घोप (Resonance) घटा हुआ मिलता है। जिस फुफ्फुस मे स्नायुभाव विशेप होता है, हृदय उस ओर को खिसक जाता है। इसका निश्चय X-Ray के द्वारा हो जाता है।

साधारण फुफ्फुस काठिन्य (Non Tuberculous Pulmonary Fibrosis) —जो ३०-४० या ५० वर्ष की आयु के व्यक्तियो मे पहले कभी हुए Broncho Pneumonia के उपद्रव के रूप मे होता है जिसका वर्णन श्वास रोगो मे हुआ है उससे इस रोग का भ्रम हो सकता है। पर वह एक ही फुफ्फुस मे होता है तथा उस रोग मे थूक मे रक्त नही आता, उसमे कृशता, अशक्ति तथा थूक मे क्षय जीवाणु दीखने के लक्षण नही होते।

(३) वाल सुलभ तीव्र उर.क्षय —Pulmonary Miliary Tuberculosis या Acute Miliary Tuberculosis of the Lungs

जिन २-४ वर्ष के शिशुओ और छोटी आयु के वालको या युवको मे क्षय रोग प्रतिरोधक शक्ति नही होती है उनमे फुफ्फुस मे विद्यमान किसी क्षय ग्रस्त लसीका ग्रन्थि (Caseous Gland) के समीप की शिरा के साथ चिपक जाने और वाद मे उसमे खुल जाने से क्षय जीवाणु सर्व अ गो मे सक्रमण कर जाते है। इससे विशेपत या तो फुफ्फुस मे या उदरावरण कला (Peritoneum) मे या मस्तिष्कावरण (Meninges) मे लक्षण उत्पन्न हुआ करते है। इसके शिरा द्वारा दक्षिण हृदय मे चले जाने और वहा से फुफ्फुसो मे चले जाने से जव फुफ्फुस के लक्षण विशेप रूप मे स्पष्ट हो तो उसे फुफ्फुस-प्रधान व्यापक क्षय रोग (Pulmonary Type या Broncho Pneumonic Type of Miliary Tuberculosis कहते हे। इस रोग मे फुफ्फुस के Interstitial Tissue मे व्यापक रूप मे पिन के नक्के जितने क्षयाकुर उत्पन्न हो जाते है। वालक पहले से ही क्षय प्रकृति का होना हे या खसरे (Measles) अथवा काली खासी (Whooping Cough) के रोग के वाद उसमे फिर क्षय रोग जागृत हो जाता हे।

प्रारम्भ मे इस रोग मे प्रात तापमान नार्मल पर सायकाल का तापमान १०२ या १०३ तक हो जाता है। फिर जितना-जितना फुफ्फुस मे क्षय रोग वढता है प्रात का ताप मान भी ऊचा हो जाता है। इस प्रकार तापमान निरन्तर (Continuous Remittent) हो जाता है जिससे मन्थर ज्वर (Typhoid) का भ्रम हो जाता है जिससे इसे Typhoid Type of general tuberculosis कहते है। पर इस रोग मे तापमान एक-सा न होकर ऊचा-नीचा होता है। कभी-कभी प्रात काल का तापमान सायकाल के तापमान से ऊचा भी हो सकता है (Inverted Type)। फुफ्फुस मे शोथ (Broncho Pneumonia) के कारण श्वास गति तीव्र होती है। एक Apex पर श्वास ध्वनि तथा वाचिक ध्वनि ऊची सुनाई पडती है। क्षय रोग के सामान्य लक्षण जैसे खासी, रात्रि स्वेद, अशक्ति, नाडी गति की तीव्रता प्रात साय के तापमानो मे अधिक अन्तर तथा फुफ्फुस पर सुनाई पडने वाले Fine Rales, Lungs का X-Ray और E S R परीक्षा को देखकर निश्चय हो जाता है कि यह तीव्र उर क्षय रोग है। यह रोग १० दिन से ४५ दिन तक रहकर घातक हो जाता है यद्यपि अव नई औपधियो से लाभ भी हो जाता है। पूय ज्वर (Septic fever) से इसका भेद Leucocytosis द्वारा किया जा सकता है।

(४) फुफ्फुसावरण Pleura मे क्षय रोग —Dry Pleurisy, Tuberculous Pleurisy, Tuberculous Pleuritis क्षय जनित पार्श्व शूल

जव उर क्षय रोग मे फुफ्फुस शिखर के फुफ्फुसावरण (Pleura) के नीचे के प्रदेश मे क्षयाकुर निकलते है तो वहा से वे फुफ्फुसावरण (Visceral Pleura) पर भी प्रसरण कर जाते हैं तथा वहा से यह रोग सामने के Parietal Pleura मे भी हो जाता है अर्थात् Pleura मे Granuloma युक्त Inflammation हो जाती हे और फिर वहा Fibrosis की प्रक्रिया हो जाती है। इसलिए उर क्षय मे फुफ्फुसावरण क्षय भी वहुधा हो जाता है जिससे इसे उसका उपद्रव ही कहा जाता है। Pleura के रुग्ण प्रदेश पर जो चिपचिपा सा Lymph का स्राव होता है उसमे Fibrin की मोटी तह जम जाती हे। जिससे वह पृष्ठ खुर्दरा हो जाता है, इसीलिए इसे Fibrinous Pleurisy कहते है। फिर इस शोथ के अच्छे होने पर यह Fibrin की तह Fibrous Tissue मे परिवर्तित हो जाती है, जो आमने-सामने की Pleura की दोनो तहो को जोड देती है। इसीलिए पुराने उर क्षय रोग मे Pleura की दोनो तहे परस्पर जुड जाती हे। इस प्रकार Pleura का एक वडा प्रदेश इस रोग मे सदा ही सूजता हे। परन्तु जव यह शोथ Pleura के अधिक हिलने वाले प्रदेश मे जैसे उसके कक्ष गत भाग (Axillary Pleura) मे या Diaphragm पर चढे भाग Diaphragmatic Pleura) मे होता है तो रोगी को गहरा श्वास लेने या खासने पर, जव इस आवरण के शोथ युक्त प्रदेश आमने-सामने परस्पर सघर्प मे आते है, तो तीव्र शूल प्रतीत होता है। Visceral pleura मे

दर्द की प्रतीति नही होती। पसलियो के अन्दर की ओर बढे Parietal Pleura मे और छाती की दीवार मे Intercostal Nerve की शाखाये आती है। Parietal Pleura की दर्द छाती की दीवार मे होती लगती है। फुफ्फुस शिखर के ऊपर के आवरण पर शोथ हो तो स्कन्ध प्रदेश पर विशेष शूल नही होता, केवल मन्द-सी व्यथा रहती है। परन्तु पार्श्व गत Pleura मे शोथ होने पर विशेष शूल होता है। इसीलिए उसे पार्श्व शूल कहा जाता है। Diaphragm पर चढे Pleura मे शोथ हो तो भी रोगी को तीव्र शूल होता है। परन्तु क्योकि उसके बाहर के दो तिहाई भाग मे नीचे की छ Intercostal Nerves आती है जो कि कोष्ठ की दीवार की मासपेशियो को भी शाखाए देती है, इसीलिए Diaphragm के Pleura मे होने वाला तीव्र शूल कोष्ठ की दीवार मे प्रतीत होता है जिससे चिकित्सक को आन्त्रगुल्म (Appendicitis) आदि कोष्ठ गत शूलो का सन्देह हो सकता है। इस अवस्था मे रोगी के हसने, जम्भाई लेने, छीकने आदि से Diaphragm मे जो शूल उत्पन्न होता है वह कोष्ठ के ऊपर के भाग मे चुभने के रूप मे प्रतीत होता है। यदि रोग Diaphragm के मध्यम एक तिहाई भाग मे ही हो तो क्योकि उसमे Phrenic Nerve आती है जो कि चौथी Cervical Nerve से निकलकर आती है इसलिए वहा उत्पन्न हुआ शूल ग्रीवा मूल मे या कन्धे मे होता हुआ प्रतीत होता है। जहा का Innervation तीसरी चौथी Cervical Nerves से होता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि Diaphragm के इस भाग मे क्षय रोग हो तो इसके कारण हिक्का हो सकती है। यह हिक्का महीनो तक हलकी-हलकी उठती रहती है। पार्श्व शूल के अतिरिक्त Pleura मे शोथ के होने के कारण मन्द ज्वर भी होता है। श्रवण परीक्षा करने पर अन्त श्वास के अन्त मे या बहि श्वास के प्रारम्भ मे श्रवण यन्त्र की टोपी (Chest Piece) के ठीक नीचे ही एक सघर्ष की ध्वनि (Friction Sound) सुनाई पडती है जो फुफ्फुसावरण के खर्दरे हुए पृष्ठो की रगड से उत्पन्न होती है।

यदि पार्श्व शूल की शिकायत दो सप्ताह तक रहे तो क्षय रोग जनित समझा जाता है। प्राय शूल, ज्वर, कास के लक्षण १५-२० दिन मे ठीक हो जाते है। परन्तु Friction या सघर्ष की ध्वनि महीनो तक सुनाई पडती है। दुबारा फिर कभी इसका दौरा हो सकता है। Pleurodynia मे इसका भेद करना चाहिए।

द्रवयुक्त पार्श्व शूल—Serofibrinous Pleurisy, Pleurisy with Effusion

प्रारम्भिक क्षत (Primary Infection) होने के कुछ मास के अन्दर उसके द्वारा ग्रस्त फुफ्फुस ग्रन्थि (Glandular Component) म से या फुफ्फुस पृष्ठ मे उत्पन्न परन्तु लक्षण रहित एव प्रसुप्त पडे हुए क्षयाकुरो मे से प्रतिरोधक शक्ति की कमी से Pleura के एक विस्तृत प्रदेश मे क्षयाकुर उत्पन्न हो जाये तो न केवल वहा से चिपचिपा (Fibrinous) स्राव ही होता है जिससे वहा एक मोटी तह छा जाती है, पर एक पतला द्रव भी रिस-रिसकर फुफ्फुसावरण कोष (Pleural Sac) मे भरता जाता है। इसीलिए इसे Sero fibrinous Pleurisy कहते है, बहुधा तो फुफ्फुस पृष्ठ पर उत्पन्न एक छोटा T B का Nodule, Pleura मे फट जाता है। Pleura मे उत्पन्न यह द्रव कुछ औंस से लेकर ४० औंस तक हो सकता है। यद्यपि कई बार रोगी के फुफ्फुस मे क्षय रोग का कोई चिन्ह नही मिलता परन्तु यह रोग सदा फुफ्फुस मे प्रसुप्त रूप से विद्यमान क्षय रोग से ही होता है। परीक्षण मे सिद्ध हुआ है कि Pleura मे Allergy विशेष हो तो उस रोग का इसी अवयव पर विशेष दुष्प्रभाव होता है। यदि किसी युवक मे Pleura मे जल भर जाये तो इसी रोग का निश्चय करना चाहिये।

कभी तो यह रोग शुष्क पार्श्व शूल (Dry Pleurisy) के बाद होता है और कभी उसके बिना अज्ञात रूप से ही एक २०-२५ वर्ष के युवक के फुफ्फुसावरण कोष मे द्रव भर जाता है। बालको व वृद्धो मे यह रोग नही होता। Pleura मे शोथ के कारण १०० से १०२ डिग्री तक का ज्वर कुछ सप्ताहो तक होता रहता है जो सर्दी लगकर होता है। उसकी नाडी गति तथा श्वास गति भी नार्मल से अधिक होती है। यदि द्रव की मात्रा अधिक हो तो ज्वर के अतिरिक्त शारीरिक श्रम के समय कुछ-कुछ श्वासकृच्छ्रता का लक्षण भी होता है। रोगी के लिए स्वस्थ फुफ्फुस के भार सोना कठिन होता है। वह जल युक्त पार्श्व के भार ही सोता है, ताकि स्वस्थ फुफ्फुस अच्छी तरह फैल सके। खासी उठने तथा बलगम गिरने का लक्षण भी हो सकता है। कृशता, क्षुधानाश मन्दज्वर के लक्षण भी हो सकते है। जल के अधिक भर जाने पर जितने प्रदेश मे जल होता है उतने पर स्पर्शन द्वारा वाचिक कम्पन (Vocal Fremitus) घटा हुआ प्रतीत होता है। स्पर्शन द्वारा देखने से उधर की छाती फैलती भी बहुत कम है। टकोर की आवाज अति मन्द (Dull) होती है। रोगी को बैठाकर टकोरे तो पीठ पर जल का लेवल नीचा होता, मध्य कक्ष रेखा (Mid Axillary Line) मे ऊचा होता है और आगे की ओर मध्य रेखा मे फिर जल का लेवल नीचा हो जाता है। इस जल युक्त प्रदेश पर श्रवण

(Auscultation) करने से श्वास प्रश्वास ध्वनिया नही सुनाई पडती। वाचिक ध्वनि (Vocal Resonance) बहुत कम या नही सुनती। Skiagram मे एक ओर फुफ्फुस तल में द्रव की त्रिकोण घनी छाया दिखाई पडती है।

जब द्रव की मात्रा अधिक होती है तब इसे स्थान देने के लिए फुफ्फुस अपने मूल (Hilum) की ओर अर्थात् ऊपर और अन्दर की ओर सुकड जाता है। इस जल की अधिकता के कारण Mediastinum मे पडे हृदय आदि अग भी दूसरे स्वस्थ पार्श्व की ओर खिसक जाते है।

Thoracentesis के द्वारा निकला द्रव देखने मे साफ-सा थोडा-सा धुन्धला १ ०१८ स्पेसिफिक ग्रेविटी का Lymphocytes नामक सेलो मे युक्त Tubercle Bacilli तथा 4% Serum Albumin, Serum Globulin और Fibrinogen नामक Proteins से युक्त होता है। Sedimentation Rate ऊचा होता है।

आराम करने तथा उचित चिकित्सा करने से जल कुछ सप्ताहो मे विलीन हो जाता है, ज्वर भी शान्त हो जाता है, हा, Fibrin के बैठने से रुग्ण Pleura मोटा तथा कठोर हो जाता है। दबा हुआ फुफ्फुस फिर फैल जाता है, पर इनमे से लगभग तिहाई रोगियो मे ४ वर्ष तक उर क्षय रोग होता हुआ देखा जाता है। यदि फुफ्फुस मे स्नायु भाव या Fibrosis होकर वह ठीक हो जाय तो भी उसमे Bronchiectasis का उपद्रव हो जाता है।

श्वास ज्वर जनित पार्श्व शूल—Post Pneumonic Effusion से इस रोग का भेद करना चाहिए। वह Pneumonia के बाद होता है। उसमे रक्त के अन्दर Polymorphic Leucocytosis होता है, द्रव के अन्दर भी ये श्वेत कण मिलते हैं।

(४) कण्ठ क्षय, क्षय जनित स्वर भग (Laryngeal Tuberculosis) —

कण्ठ मे क्षय रोग २० से ४० वर्ष के, क्षय रोग से ग्रस्त व्यक्तियो मे विशेषत पुरुषो मे इस रोग के उपद्रव रूप मे होता है। थूक से निकलने वाले क्षय जीवाणुओ के, कण्ठ (Larynx) की किसी कारण से क्षत हुई श्लेष्म कला मे सक्रमण कर जाने से आरम्भ होता है। जीवाणु के वहा सक्रमण कर जाने पर श्लेष्म कला के नीचे के (Subepithelial) अवयव से इस जीवाणु के विपरीत प्रतिक्रिया होकर क्षयाकुर बन जाते हैं तथा वहा पर लसीका (Lymph) और सेलो का सचय हो जाने से श्लेष्म कला उभर जाती है। कण्ठ परीक्षा करने पर यह उभार पहले-पहल स्वर तन्त्रियो (Vocal Cords) के पिछले भाग तथा दोनो Arytenoid Cartilages के बीच के प्रदेश (Inter Arytenoid Space) अथवा Posterior Commissure की श्लेष्म कला पर दीखता है, या कण्ठच्छद (Epiglottis पर होता है। देखने मे यह प्रदेश फूला हुआ पर फीके रग का दीखता है। तालु तथा गले की श्लेष्म कला देखने मे फीकी होती है। बाद मे क्षयाकुरो मे पनीर का सा पदार्थ बन जाने (Caseation) से वहा पर अस्पष्ट से एव मृदु दीवारो वाले फीके से रग के व्रण हो जाते हैं।

कण्ठ मे क्षय रोग के होने पर पहले तो रोगी की आवाज कुछ निर्बल हो जाती है। थोडा बोलने से भी थक एव बैठ जाती है। बाद मे स्वर भग हो जाता है जो इस रोग का प्रधान लक्षण होता है। यदि कण्ठछद (Epiglottis) मे भी रोग हो तो दूध आदि के निगलने मे दर्द होने का लक्षण भी होने लगता है, जो कान तक जाता है तथा निगलने पर खासी उठ जाती है। Chest X-Ray और थूक की परीक्षा से इस रोग का निश्चय होता है। कैन्सरजनित स्वर भग ४५-५० वर्ष से ऊपर की आयु मे होता है।

कण्ठ मे फिरग जनित व्रण भी होता है। पर वह कण्ठ के अग्रिम भाग मे होता है तथा कठोर एव स्पष्ट दीवार का होता है।

(६) क्षयोदर (Tuberculous Peritonitis-Abdominal Tuberculosis)

उदरावरण (Peritoneum) मे क्षय रोग छोटे बालको और नवयुवको (३-२० वर्ष) मे पाया जाता है। प्राय फुफ्फुस या Pleura मे मे क्षय जीवाणु लसीका वाहिनियो (Lymphatics) के द्वारा Retroperitoneal तथा Mesenteric Glands मे पहुचता है और उनमे से Peritoneum मे प्रसरण कर जाता है, या दूध आदि के द्वारा प्रवेश करे तो आत मे से होकर वहा पहुचता है। नवयुवतियो मे Fallopian Tubes से भी आ सकता है।

क्षयोदर दो प्रकार का होता है। एक आर्द्र या जलयुक्त क्षयोदर (Moist or Ascitic Tuberculous Peritonitis) दूसरा शुष्क क्षयोदर (Dry या Non-Exudative Tubercular Peritonitis)।

(१) आर्द्र क्षयोदर, जलयुक्त क्षयोदर (Exudative या Ascitic Tuberculous Peritonitis)

यह भेद फिर दो प्रकार का होता है। एक सहसा तीव्र रूप मे उत्पन्न होने वाला जलयुक्त क्षयोदर, दूसरा अधिक

पाया जाने वाला धीरे-धीरे मन्द रूप से उत्पन्न होने वाला जलयुक्त क्षयोदर (Acute तथा Chronic Ascitic Tuberculosis)।

इनमे से प्रथम अर्थात् तीव्र जल युक्त क्षयोदर मे अन्दर सारे Peritoneum पर सहसा क्षयाकुर उत्पन्न हो जाते है। बालक के फुफ्फुस मे विद्यमान किसी पूय युक्त लसीका ग्रन्थि (Caseous Gland) के रक्तवाहिनी मे फट जाने पर सारे शरीर मे क्षय जीवाणु का सचार हो जाने से (Generalised Miliary Tuberculosis के उपद्रव मे) यह तीव्र क्षयोदर का रोग होता है। इसमे जीवाणु के विपरीत प्रतिक्रिया होकर Peritoneum मे से Serofibrinous Fluid पर्याप्त मात्रा मे निकलता है जिससे उदरावरण कोष मे पतला द्रव भर जाने से तथा Peritoneum के सूज जाने से कोष्ठ उभर जाता है। जल के द्वारा Inferior Vena cava के दब जाने से पैरो मे श्वयथु हो जाता है। Diaphragm के दब जाने से श्वास प्रश्वास उथला हो जाता है। इस तीव्र शोथ के कारण ज्वर ऊचा होता तथा निरन्तर बना रहता है। बालक को मलबन्ध रहता, भूख नष्ट हो जाती, पेट मे दर्द, अफारा रहता है जिससे इसका सन्देह Typhoid से होता है, पर साय प्रात के तापमानो मे अन्तर अधिक होता है। क्षय रोग के अन्य लक्षणो को देखकर उसकी पहचान हो सकती है। पेट मे भरे जल मे Lymphocytes को तथा कभी-कभी वहा रक्त को देखकर भी यह क्षय रोग जनित जलोदर है, ऐसा निश्चय किया जा सकता है। रक्त परीक्षा मे Leucopenia तथा अपेक्षाकृत Lymphocytosis होता है। यह रोग प्राय घातक होता है।

चिरस्थायी जलयुक्त क्षयोदर (Chronic Ascitic Peritonitis)

यह उपरोक्त तीव्र क्षयोदर की अपेक्षा अधिक सुलभ है। इसमे उत्पन्न हुए क्षयाकुर आकार मे बडे होते है। उनमे स्नायुतन्तु की वृद्धि भी विशेष होती है। Peritoneum मोटा हो जाता है। आन्त्र बन्धनी (Mesentery) सकुचित होकर छोटी हो जाती है तथा स्नायु तन्तु की वृद्धि के कारण Visceral Peritoneum पिछली कोष्ठ की दीवार के साथ जुड जाती है। इसमे विष सचार (Toxaemia) के लक्षण मृदु होते है। सायकालिक ज्वर, पाण्डुता, कृशता, मलबन्ध, अन्नारुचि, कभी-कभी उदर शूल के होने के साधारण लक्षणो के अतिरिक्त धीरे-धीरे बालक का पेट उभरता जाता है। पेट तो उभरता जाता है पर शाखाये और चेहरा कुम्हलाते जाते है। जलोदर के कारण पेट पर की शिरायें स्पष्ट दीखती है। पेट के दोनों पार्श्वों पर नीचे की तरफ जल के कारण उभार विशेष होता है तथा वहा की टकोर भी मन्द होती है। धीरे-धीरे यह जल विलीन हो जाता है तथा फिर यह शुष्क क्षयोदर का रूप ले लेता है। जल को निकालकर देखा जाय तो उसका आपेक्षिक भार १०१८ होता तथा इसमे अलब्यू-मिन ४ प्रतिशत मात्रा मे होता है।

शुष्क क्षयोदर Fibrocaseous अथवा Fibrous अथवा Adhesive अथवा Obliterative अथवा Plastic Abdominal Tuberculosis या Tubercular Peritonitis

शुष्क क्षयोदर उपर्युक्त क्षयोदर की अपेक्षा अधिक पाया जाता है तथा जलयुक्त क्षयोदर भी बाद मे शुष्क क्षयोदर मे परिवर्तित हो जाता है। इस अवस्था मे Peritoneum पर गाढा चिपचिपा स्राव या Plastic Exudation निकलकर स्थान-स्थान पर जम जाता है जिसके स्नायु तन्तु (Fibrous Tissu) मे परिवर्तित होने पर Visceral Peritoneum वहा-वहा चिपक जाना एव आते परस्पर स्थान-स्थान पर जुड जाती है। यदि किसी-किसी स्थान पर स्राव (Exudation) के चारो ओर स्नायु तन्तु के घिर जाने से यह स्राव वही बन्द हो जाय तो आतो के बीच-बीच मे द्रव की थैलिया (Cysts of Effusion) बन जाती है। कभी-कभी पनीर जैसे पदार्थ (Caseous Material) की थैलिया भी बन जाती है। इस प्रकार के क्षयोदर को Loculated Type of Tuberculous Peritonitis कहते है। ये थैलिया स्पर्शन से, गुथे हुए आटे या मास खण्डो की सी प्रतीत होती है।

यह शुष्क या थैलियो वाला क्षयोदर, धीरे-धीरे उत्पन्न होता है। रोगी बालक मे सायकालिक ज्वर, कृशता, आध्मान, (Flatulence) क्षुधा नाश, मलबन्ध तथा विशेषत पेट मे दर्द होते रहने के लक्षण होते हैं। कोष्ठ ग्रन्थिया (Mesenteric Glands) सूजी हुई हो (Tabes Mesenterica हो) तथा Caseous हो तो भोजन का स्नेह रसवाहिनियो या Lacteals के मार्ग अवरुद्ध हो जाने से शरीर मे नही पहुचता, जिससे एक ओर तो शरीर की चर्बी सूखती जाती है, दूसरी ओर मल मे अति स्नेह के निकलने से मात्रा मे बडे दुर्गन्धित अतिसार आने लगते है।

बच्चे मे जलोदर हो, खासी हो, उदर कोष के जल की Specific Gravity १०१५ या इससे अधिक हो, उसमे Lymphocytes अधिक हो, ज्वर हो, पेट दर्द हो तो क्षयोदर का ही निश्चय करना चाहिए।

साध्यासाध्य

आर्द्र क्षयोदर साध्य रोग है। पर शुष्क क्षयोदर कष्ट-साध्य तथा दीर्घ रोग है। यदि ज्वर बना ही रहे, बालक छोटी आयु का हो, कृशता अधिक हो गई हो, फुफ्फुस मे भी क्षय रोग के लक्षण हो, Peritoneum मे पूयभाव (Sloughing) हो गया हो तो यह असाध्य हो जाता है।

आन्त्रबधनी क्षय T B of Mesenteric Glands — आत मे T B हो तो शिशुओ बालको और युवको मे Mesenteric Glands मे यह रोग हो जाता है। Primary Abdominal Complex के रूप मे इसका वर्णन ऊपर हुआ है। युवको मे हो तो रोगी देर से बीमार चला आ रहा होता है Right ilioe fossa मे दर्द तथा स्पर्शा-क्षमता के लक्षण होते हे। बहुधा रोग इतना हलका होता है कि इसका विशेष पता नही चलता Malaise, हलका ज्वर और दाई ओर नीचे के गढे मे दर्द, ये इसके लक्षण होते हैं।

(७) आन्त्र क्षय, क्षय जनित आन्त्रिक व्रण Tuberculous Enterocolitis

बालको मे आन्त्रिक क्षय अथवा आत मे होने वाले क्षय व्रण क्षय जीवाणु के अति मात्रा मे मुख द्वारा प्रविष्ट होने से होते हे अर्थात् उनमे यह रोग Primary रूप मे होता है। उनमे यह जीवाणु भोजन, मिट्टी आदि के द्वारा प्रवेश करता है।

पर १५-३० वर्ष के युवको तथा युवतियो मे यह आन्त्र क्षय का रोग फुफ्फुस क्षय के उपद्रव के रूप मे होता है। क्योकि देखा जाता है ५८ प्रतिशत तक उर क्षय रोगियो मे आत के अन्दर भी क्षय व्रण कभी-न-कभी हो जाते हैं। यो तो थूक द्वारा फुफ्फुस से निकले जीवाणु मुख मे आकर कुछ न कुछ आतो मे पहुचते ही है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ये सब मल द्वारा बाहर हो जाते हे। जब आत की प्रतिरोधक शक्ति कारणवश घटी हुई हो तथा फुफ्फुस से जीवाणु भी अत्यधिक मात्रा मे पेट मे जा रहे हो तभी वे आत मे क्षय व्रण उत्पन्न कर सकते है। सारे क्षुद्रान्त्र मे तो अन्न द्रव तीव्र गति से चलता है जिससे वहा इस जीवाणु को रोहण करने का अवसर मिल नही सकता परन्तु Ileum तथा Caecum मे अन्न द्रव कुछ समय के लिए रुकता हे, इसीलिए वहा ही इसे रोहण करने का अवसर मिल पाता है। यह वहा की श्लेष्म कला (M M) के Mucous Glands या Tubular Glands के मुखो से प्रवेश करके तले पर पहुचकर वहा रोहण करता है। जिससे वहा इसके विपरीत एक स्राव (Exudate) एकत्रित हो जाता है और श्लेष्म कला मे शोथ हो जाता है। वहा एकत्रित हुए श्वेत कण (Phagocytic Cells) जीवाणु को पकड लेते है और फिर उनके बहिस्तर (Epithelial Layer) मे से नीचे चले जाने से ऊपर से आये ये जीवाणु श्लेष्म कला से नीचे की तह (Sub-mucous Layer) मे चले जाते है और वहा रोहण करते है जिससे वहा पर ही क्षयाकुर बनते है। क्षय जीवाणु सर्व शरीर मे पहले पहल लसीका युक्त प्रदेश (Lymphoid Tissue) मे ही रोग उत्पन्न किया करते हैं। इसीलिये आत मे अर्थात् Ileum और Caecum मे भी उनके Lymphoid प्रदेशो (Peyer's Patches) तथा Solitary Lymph Follicles मे ही यह रोग पहले आरम्भ होता है। वहाँ श्लेष्म कला के नीचे बने क्षयाकुरो मे पनीर जैसा पदार्थ बनकर, भरकर वह जाता हे अर्थात् श्लेष्म कला के नीचे वहा पनीर भाव Caseation) और पूय भाव (Sloughing) होकर व्रण बन जाते हे। श्लेष्म कला वैसे ही ठीक रहती है पर उसके नीचे के प्रदेश Submucous Layer मे व्रण होते हे। श्लेष्म कला के नीचे बने हुए इन व्रणो मे से क्षय जीवाणु Ileum और Caecum से सबधित लसीका ग्रन्थियो (Ileo-caecal Lymph Glands) मे सक्रमण करके उनमे भी शोथ का कारण हो जाते है। Ileum मे उत्पन्न ये व्रण Submucous Layer से मासमय स्तर और वहा से बाह्यावरण (Peritoneal Layer) तक भी फैल जाते है, इसलिये इन्हे आतो के गहरे क्षय व्रण कहते हे। कुछ उथले-उथले क्षय व्रण भी होते हे जो Submucous Layer मे नीचे नही जाते। पर गहरे व्रण लसीका वाहिनियो के साथ-साथ फैलते हे और क्योकि आतो की लसीका वाहिनिया आत मे वृत्ताकार (Circular) होती हैं इसलिये आत मे गहरे व्रण भी वृत्ताकार (Girdle Ulcers) रूप मे होते हैं। Ileum मे से आरम्भ होकर ये व्रण क्षुद्रान्त्र और बृहदन्त्र दोनो ओर को फैलते जाते हे। इनके कारण श्लेष्म कला के नीचे के अवयव मे मृदुभाव (Caseation) और पूय भाव होकर आतो की दीवार का बहुत-सा अवयव नष्ट हो जाता हे। फिर इस नष्ट हुए प्रदेश मे स्नायु तन्तु (Fibrous Tissue) बनकर ये व्रण अच्छे हो जाते हैं तो इस तन्तु के छोटे हो जाने से आत गोलाकार रूप मे सुकड जाती है (Ring Stricture)। इस तरह आतो मे स्थान-स्थान पर मार्ग तग (Stenosed) हो जाता है एव मल मार्ग मे अवरोध उत्पन्न हो जाता है। आत के बाह्यावरण (Peritoneum) मे शोथ होकर वहा चिपचिपे स्राव के जम जाने से आते एक-दूसरे से चिपक जाती हे (Peritoneal Adhesions उत्पन्न

हो जाते है) इससे भी अन्न मार्ग या मल मार्ग मे अवरोध उत्पन्न हो जाता है। बालकों मे मल मार्गावरोध का यह लक्षण विशेष होता है।

आन्त्र क्षय रोग युवतियो मे अधिक होता है। इसके होने पर भी बहुत से रोगियो मे कोई विशेष लक्षण नही होता। कुछ काल बाद जब व्रण भाव अधिक हो जाता है तब इस रोग का सूचक लक्षण अतिसार होने लगता है अर्थात् Ileum की मासमय स्तर मे विद्यमान Aurbach के Sympathetic Plexus मे क्षय व्रण जनित क्षीणता के हो जाने से आत मे जो असहनशीलता, अक्षमता (Hypermotility) उत्पन्न हो जाती है उसके कारण खाया हुआ अन्न वहा पर से शीघ्र आगे बह जाता है, इसीलिये अतिसार होते है। दिन-रात मे अनेक दस्त होते है तथा पहले पतले होने के अतिरिक्त दुर्गन्धित भी होते है जो साधारण औषधियो से ठीक नही होते। अतिसार के अतिरिक्त कोष्ठ या पेट मे विशेषत दक्षिण निम्न भाग मे शूल Colic की किस्म का दर्द भी होता है जो बिना खाये भी होता है पर खाने से बढता है, यह इस रोग का बडा लक्षण है, यह दर्द Peritoneum मे शोथ के होने तथा आत मे स्तम्भ (Spasm या Cramp) के उठने से तथा आन्त्र ग्रन्थि शोथ (Lymphadenitis) के कारण होता है, व्रण के कारण नही होता। नाभि के आसपास या Ileocaecal प्रदेश पर स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है। कहा जाता है कि क्षुद्रान्त्र मे ही व्रण हो तो मलबन्ध का लक्षण विशेष होता है और Caecum तथा बृहदन्त्र मे व्रण विशेष हो तो (Hypermotility के कारण) अतिसार का लक्षण विशेष होता है या कभी मलबन्ध कभी अतिसार रहता है। मलबन्ध का कारण क्षुद्रान्त्र मे उत्पन्न अवरोध (Stenonsis) है जो वहा Scar Tissue के बनने से होता है, पेट मे Flatulence भी होता है। अतिसार के अतिरिक्त सायकालिक ज्वर, रात्रि स्वेद, कृशता, अन्नारुचि, पाण्डुता आदि क्षय रोग सूचक लक्षण भी होते है।

Barium को देकर X-Ray परीक्षा करने पर रोग ग्रस्त आत मे से Barium शीघ्र आगे निकल जाता है, अर्थात् वहा Barium की छाया नही होती (Filling Defect)।

बालक मे आन्त्र क्षय (Tubercular Enterocolitis) हो तो उसे सायकालिक ज्वर रहता है। व्रणो के कारण भोजन रस के भली प्रकार विलीन न हो सकने से कृशता और भी अधिक हो जाती है। पेट अफरा हुआ होता है। उसमे ग्रन्थिया सूजी हुई स्पर्श होती है विशेषत निम्न दक्षिण कोष्ठ या Right Ileac Fossa मे तथा अतिसार जो दवाईयो से अच्छा नही होता, बना ही रहता है। इस रोग का भेद Typhoid तथा Appendicitis मे करना चाहिये।

क्षय जनित आन्त्र गुल्म या क्षुद्रान्त्र शोथ — (Hyperplastic या Hypertrophic Ileocaecal Tuberculosis या Tuberculous Caecal Tumour, Tuberculous Ileitis)

कभी-कभी क्षय प्रकृति की २०-४० वर्ष की नवयुवती स्त्रियों मे विशेषत क्षय जीवाणु के Ileum की श्लेष्मकला के नीचे के अवयव (Submucous Tissue) मे बढने पर वहाँ विनाशात्मक प्रतिक्रिया होने के स्थान पर रोहणात्मक प्रतिक्रिया विशेष होती है अर्थात् वहा न केवल श्लेष्मकला मे ही पर उसके नीचे के अवयव Submucous Layer तथा मासमय स्तर मे भी स्नायुतन्तु तथा Fatty Tissue की अतिवृद्धि हो जाती है। Enlargement of Fibro-fatty Tissue) जिससे वहा की आत मोटी हो जाती है (उसमे Hypertrophy हो जाती है) वहाँ की Peritoneum भी मोटी होकर आसपास के अवयवो से चिपक जाती है। यह प्रतिक्रिया Caecum मे भी होती है अर्थात् Ileum और Caecum दोनो मे Hypertrophy होती है। इससे सम्बधित Lymph Glands तथा आन्त्रबन्धनी (Mesentery) भी सूजकर मोटी हो जाती है। पर इन ग्रन्थियो मे पनीर भाव (Caseation) की प्रक्रिया नही होती तो भी इस रोग ग्रस्त आत के अन्दर का, मार्ग तग हो जाता है। स्पर्श करने पर Right Fossa मे एक ढेर (Hard tender mass) सा प्रतीत होता है जिसको दबाने से उसमे स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता तथा हवा की गडगडाहट होती हुई सुनाई पडती है। वहाँ आत के स्रोत के क्रमश. तग होते जाने से नाभि के पास कभी-कभी शूल के दौरे होते रहते है जो आत मे Spasm होने से होते हैं, ये भोजन लेने के बाद होते है तथा रोगी को अफारे या वायुगोले की (जो बढता घटता है) शिकायत रहती है। रोगी को अतिसार तथा मलबन्ध दोनो की या किसी एक की शिकायत भी रहती है। शरीर मे अति कृशता या सायकालिक ज्वर के क्षय रोग सूचक लक्षण भी होते है। Appendicitis मे ये लक्षण नही होते। यह रोग २-३ वर्षो तक रह सकता है परन्तु वहा क्षयाकुर नही होते, न ही वहा क्षय जीवाणु मिलते है। अत कोई-कोई लोग इसे क्षय जनित नही मानते।

गुद क्षय —(Tuberculous Ischiorectal Abscess या Perianal Abscess)

गुदा की श्लेष्मकला के नीचे (Submucous) के अवयव

मे उत्पन्न हुई विद्रधि प्राय इसी प्रकार आत मे से आए क्षय जीवाणु के कारण होती है। उसके घुल जाने पर वहा एक व्रण रह जाता है। फुफ्फुस मे क्षय रोग हो तो इस विद्रधि को क्षय जीवाणु के कारण ही उत्पन्न हुआ समझना चाहिए। जब नवयुवावस्था मे किसी को वह विद्रधि निकले तो फुफ्फुस की परीक्षा करनी चाहिए।

अस्थि क्षय रोग —(Tuberculosis of the Bone, Tuberculous Osteitis)

अस्थियो मे क्षय रोग बालको व नवयुवको मे विशेष होता है। सछिद्र अस्थियो जैसे पृष्ठवशास्थियो (Vertebral) हाथ-पाव की क्षुद्रास्थियो (Carpus, Tarsus) मे क्षय रोग विशेषत देखा जाता है। अस्थि पर आघात लगने पर वहा फुफ्फुस के किसी नर्म हुई लसीका ग्रन्थि (Caseous Lymph Gland) या प्रारम्भिक क्षय रोग (Primary Infection) मे सम्बन्धित रोग ग्रस्त ग्रन्थि (Glandular Component) से रक्तवाहिनी (Nutrient Artery) के द्वारा क्षय जीवाणु पहुचता है, जिसके विपरीत अस्थि के अन्दर के मृदु भाग मे क्षयाकुर बनने की प्रतिक्रिया होती है और फिर उसमे पनीर भाव Caseation तथा पूयभाव (Softening) होकर वहा शीत विद्रधि (Cold Abscess) बन जाती है। पृष्ठ-वशास्थियो मे यही प्रतिक्रिया देखी जाती है। इसे पूय युक्त अस्थि क्षय (Suppurative Tuberculous Caries कहते है।

अथवा क्षय जीवाणु के सक्रमण के कारण जब अस्थि का विनाश तो अधिक होता और रक्षण की प्रक्रिया अर्थात् Exudation कम होता है, अस्थि के अन्दर का पृष्ठ तथा बाहर का पृष्ठ भी खाया जाता है जिसमे अन्दर का स्रोत चौडा हो जाता और अस्थि का पृष्ठ या उसकी स्तर (Plate) पतली हो जाती है अर्थात् अस्थि पोली-सी हो जाती है इसे शुष्क अस्थि क्षय Osteoporosis या Tuberculous Caries कहते है। इस प्रकार अस्थियो मे क्षय प्रधानत एक तो आर्द्र (Suppurative) और एक शुष्क (Dry) दो रूपो मे होता है। Caries का रोग किसी लम्बी या चपटी अस्थि मे हो सकता है जब पृष्ठ पर Cold abscess बनता है तब इसका पता लगता है।

अगुल्यस्थि क्षय —(Tuberculous Dactylitis of the Hand)

हाथ की किसी ऊपर से प्रथम (Proximal) अगुल्यस्थि मे यह रोग विशेष होता है। अगुली की शरीर की ओर पहली पोर धीरे-धीरे तकुए की तरह फूली हुई दीखती है। उसकी त्वचा सवर्ण सा श्वेत वर्ण ही होती है, लाल नही होती। उसमे थोडा-थोडा दर्द भी होता है, पर साधारण विद्रधि की तरह विशेष नही होता, न ही छूने या दबाने से उसमे दुखन होती है। अन्त मे जब अन्दर बनी हुई पूय मुख करती है तब एक स्थान रक्तवर्ण हो जाता है, अन्दर से अर्थात् अस्थि से स्पज सदृश भाग Cancellous Tissue तथा अन्दर के स्रोत Medulla मे रोग आरम्भ होने के कारण अस्थि खाई जाती है परन्तु Periosteum के नीचे नई अस्थि के बन जाने अर्थात् वहा स्नायु तन्तु की वृद्धि हो जाने से Osteosclerosis हो जाने से अगुली मोटी हुई-हुई दीखती है।

पादास्थि क्षय (Tuberculous Dactylitis of the Foot)

पाव की किसी भी क्षुद्रास्थि (Tarsus) मे क्षय रोग हो सकता है जिससे उस अस्थि के अन्दर के स्पज सदृश भाग तथा अन्दर के स्रोत मे तो Caries हो जाता है और बाहर-बाहर की प्लेट स्नायुभाव के बढने से फूलकर मोटी हो जाती है। जिस अस्थि मे यह रोग होता है वहा पर पाव मे शोथ दिखाई पडता है। Os Calcis मे बहुधा यह रोग होता है। इसमे रोग होने पर एडी के एक ओर या दोनो ओर उभार हो जाता है। रोगी एडी को बचाकर चलता है। इस अवस्था मे गुल्फ सधि (Ankle Joint) मे कोई विकृति नही होती।

Astragalus मे क्षय रोग हो तो गिट्टे के आगे या पीछे की ओर पाव पर उभार होता है। इस अस्थि पर दबाव पडने से दर्द होता है। इसीलिए रोगी पौचो के भार (अर्थात् Talepes Equinus की अवस्था मे) चलता है। पाव को अन्दर या बाहर विवर्तित करना (Adduct या Abduct करना) कठिन होता है। इसी प्रकार पाव के अन्दर-बाहर विवर्तित करने (Inversion तथा Eversion) मे भी कठिनता होती है। इस अस्थि मे से क्षय रोग गुल्फ सन्धि (Ankle Joint) मे तथा Os Calcis तथा Scaphoid मे प्रसरण कर सकता है।

पृष्ठवश क्षय (Spinal Caries, Tuberculous Spondylitis)

अस्थि क्षय रोगियो मे से आधे से अधिक मे पृष्ठ-वशास्थि क्षय का रोग पाया जाता है जिसका पता पहले-पहल Pott (१७७९) ने लगाया था। पृष्ठ वश मे भी आठवे Thoracic Vertebra से लेकर चौथे Lumber Vertebra तक के प्रदेश मे क्षय रोग विशेषत होता है

तथा वहा पर फुप्फुस मे से या Hilar ग्रन्थियो मे से इस रोग का जीवाणु आता है। आयु की दृष्टि से पृष्ठवशास्थि क्षय रोग बालको तथा २५ वर्ष से नीचे के युवको मे अधिकतर पाया जाता है। इनमे भी लडको की अपेक्षा लडकियो मे कुछ अधिक होता हुआ देखा जाता है।

कसेरु (Vertebra) मे भी उसके पिण्ड (Body) मे यह रोग अधिकतर होता है जिससे इसे पृष्ठवशास्थि क्षय का Osteitic Form कहते है। बालको मे पिण्ड (Body) के केन्द्र भाग मे अर्थात् उसके सछिद्र भाग मे (Osteomyelitis के रूप मे) होता है जिससे कसेरु पिण्ड का अगला भाग बीच मे से खाया जाता है तो ऊपर का कसेरु नीचे और आगे की ओर झुक जाता है। जिससे धड आगे की ओर झुक जाता है तथा पीठ पर उभार या कुबडापन दीखने लगता है। इस अवस्था मे कुबडेपन का लक्षण बहुत स्पष्ट होता है। परन्तु सुषुम्ना काण्ड पर दबाव पडने का कोई भय नही होता। यदि २-३ पिण्ड ही रोग ग्रस्त हो तो पीछे का उभार एकदम स्पष्ट होता है। पर यदि कई एक कसेरु पिण्ड रोग ग्रस्त हो तो पीछे के उभार के क्रमिक होने से वह अधिक स्पष्ट नही होता। पृष्ठ-वशास्थि के इस प्रकार पीछे की ओर मुड जाने से पृष्ठ-वशास्थि के इसमे उपरले भाग मे कुछ पीछे की ओर स्तब्ध हो जाने या Lordosis की प्रक्रिया हो जानी स्वाभाविक ही है। भली प्रकार चिकित्सा हो तो फिर कसेरु पिण्डो की खाई हुई (Rarefied) अस्थि तथा उनके Granulations के स्थान पर स्नायु तन्तु आता जाता है और वह रोग ग्रस्त कसेरुओ को परस्पर जोडकर एक कर देता है अर्थात् वहा Fibrous Ankylosis हो जाता है फिर इस स्नायु तन्तु के स्थान पर अस्थि भाव (Ossification) के हो जाने से पूय भाव सर्वथा शुष्क हो जाता है और सर्व रुग्ण कसेरुओ मे अस्थिभाव होकर रोग समाप्त हो जाता है। परन्तु कुछ कुब्जता तो सदा के लिये रह जाती है।

युवको मे यह रोग कसेरु पिण्ड के Epiphysis मे अर्थात् उसके Inter Vertebral Disc के समीप के Anterior Longitudinal Ligament के पीछे Periosteum के अन्दर आरम्भ होता है। इसलिए इसे Periosteal Form का पृष्ठवशास्थि क्षय कहते है। दूसरे शब्दो मे केन्द्र मे न होकर उसकी अगली दीवार मे होता है। इसलिए सन्धिगत टिकिया (Disc) शीघ्र ही नष्ट हो जाती है तथा वहा पर पनीर भाव (Caseation) होकर Ant Ligament के पीछे एक पूय युक्त क्षय-विद्रधि बन जाती है। जहा से पूय दूसरी कसेरु अस्थियो के आसपास ऊपर नीचे की ओर फैल जाती है। इस विद्रधि के कारण सुषुम्ना काण्ड (Cord) पर दबाव पड जाने की आशका विशेष रहती है।

इस विभिन्नता का कारण यह है कि बाल्यकाल मे कसेरु पिण्ड (Body) को रक्त, जिसके द्वारा क्षय जीवाणु कसेरु मे आता है, पीछे की ओर से Posterior Spinal Artery की एक शाखा के द्वारा प्राप्त होता है और युवावस्था मे कसेरुओ को रक्त आगे की ओर से Intercostal Arteries तथा Lumber Arteries की शाखाओ के द्वारा प्राप्त होता है, इसलिए इनमे यह रोग कसेरु के अग्रिम भाग मे होता है।

प्रारम्भिक लक्षण

बालक या युवक को पृष्ठवश मे क्षय रोग आरम्भ हो जाय तो उसे कमर मे दर्द की शिकायत होती है। यदि बालक मे कमर दर्द १५ दिन से अधिक रहे और किसी युवक मे कमर दर्द तीन मास तक रहे तो इस रोग की आशका करनी चाहिए। या रीढ की हड्डी की गतिशीलता मे कुछ कमी आ जाय अर्थात् कमर अकड जाय Rigid हो जाय या कमर मे विषमता Deformity हो जाये तो भी इस रोग की ओर ध्यान जाना चाहिए। तथा यदि बालक क्रोधी, चिडचिडे स्वभाव का हो जाय, थोडे श्रम से थक जाता हो, रात को कुछ ज्वर हो जाता हो तो X-Ray द्वारा परीक्षा करनी चाहिए। उसमे कोई Disc Space अर्थात् टिकिया वाला प्रदेश तग हो तो भी शका करनी चाहिए। यदि किसी युवक को अपनी टागे कमजोर लगने लगे तो उसमे भी इस रोग के कारण अर्थात् कसेरु के पिण्ड के द्वारा या अधिकतर तो सुषुम्नावरण के सूज जाने और उसके कारण Cord के दब जाने से ऊरुस्तम्भ (Spastic Paraplegia) उत्पन्न हुआ समझना चाहिए। या पृष्ठवशास्थि के पास या दूर कोई सवर्ण गोल सा उभार हो जाय तो भी इस रोग का सन्देह करके X-Ray द्वारा परीक्षा करनी चाहिए।

रोग वृद्धि लक्षण

रोगी को झुकते समय या एक पार्श्व की ओर धड को मोडते समय या शरीर को झटका लगते समय कटि प्रदेश मे दर्द होता है। इसी प्रकार रुग्ण कसेरु को पीछे से ठकोरा जाय तो भी उस पर दर्द होता है। रुग्ण कसेरु पर ऊपर के धड के बोझ को बचाने के लिए रोगी बालक या युवक खेलना और चलना छोडकर लेट जाता है क्योकि चलने-फिरने पर उसे दर्द अधिक प्रतीत होता है।

दर्द के अतिरिक्त प्रारम्भ मे एक तो रुग्ण कसेरुओ के

आसपास की मासपेशियो मे स्तम्भ के उत्पन्न हो जाने से तथा कुछ काल व्यतीत हो जाने के बाद रुग्ण हुए दो-तीन कसेरुओ के परस्पर न्यूनाधिक जुड जाने से पृष्ठवंश का लचकीलापन कम होता जाता है तथा स्तब्धता (Rigidity) का लक्षण उत्पन्न होता जाता है। कटि (Lumber) प्रदेश मे यह रोग हो तो पीठ इतनी अकडी हुई हो जाती है कि धड को भुकाना (Flexion) या पीछे को फैलाना (Extension) या एक बाजू की ओर फिराना कठिन हो जाता है। ग्रीवा कसेरुओ मे रोग (Cervical Caries) हो तो एक ओर को देखने के लिए रोगी को अपना सारा शरीर फिराना पडता है, क्योकि ग्रीवा मे स्तब्धता (Rigidity) होती है, वह उस ओर फिर नही सकती। अभिप्राय यह है कि रोग के प्रारम्भ मे तो दुखने वाले कसेरुओ के पास के मास प्रदेश मे स्तम्भ होने से स्तब्धता होती है परन्तु बाद मे रुग्ण कसेरुओ मे अस्थि सयोग (Ankylosis) हो जाने से स्तब्धता होती है।

पृष्ठवश की परीक्षा करने पर उसमे न्यूनाधिक विषमता (Deformity) का लक्षण भी रोगी मे होता है। पृष्ठवश के वक्ष प्रदेश (Thoracic Vertebrae) मे रोग हो और एक दो कसेरुओ मे ही रोग हो तो विषमता का लक्षण अधिक स्पष्ट होता हे जो पीछे की ओर एक दम हुई कुब्जता (Kyphosis) के रूप मे होता हे। दो-तीन वडे-वडे कसेरुओ के परस्पर सयुक्त हो जाने से रोगी की ऊचाई भी छोटी हो जाती हे। देखने से पीठ पीछे की ओर खम खाए हुए (Hunch Back) दीखती है। स्पष्ट है कि उरोअस्थि (Sternum) के आगे की ओर खम खा जाने से और पसलियो के एक स्थान इकट्ठे हो जाने से छाती भी आगे की ओर उभरी हुई होती है। X-Ray चित्र मे एक टिकिया (Disc) तग हुई २ तथा समीपस्थ कसेरु कुछ खाया हुआ दीखता हे, Perispinal Abscess भी दिखाई पडता है।

उपद्रव (Tuberculous Abscess)

क्षय विद्रधि (Tuberculous Abscess) की उत्पत्ति इस रोग का एक उपद्रव है। वालको मे यह उपद्रव नही होता, युवको मे अधिक होता है। रोग ग्रस्त कसेरु पिण्ड के अग्र भाग मे उत्पन्न हुआ पूय Anterior Common Ligament को आगे धकेलकर उसके पीछे जमा होता रहता है। मात्रा मे बढ जाने पर उसमे रास्ता करके फिर यह कसेरु के पार्श्व मे सचित होने लगता हे। वहा अधिक पूय के सचित हो जाने पर भी कोई विशेष लक्षण प्रकट नही होता। पहले पहल पृष्ठवशास्थि के बाजू पर पास व दूर एक शीतल विद्रधि (Cold Abscess) उठी हुई दिखाई पडती हे। रोगी को कोई विशेष दर्द भी नही होता। सायकालिक तापमान की वृद्धि का एक लक्षण होता है। किसी Thoracic Spine मे रोग हो तो यह पूय वहा से निकलने वाली Spinal Nerve के साथ-साथ पसली के अन्दर की ओर चलकर बाजू मे जहा Lateral Cutaneous Nerve त्वचा मे आती है वहा, इसके कारण एक पसली (Rib) मे क्षय रोग (Caries) का उपद्रव हो सकता है और वहा त्वचा के नीचे क्षय विद्रधि प्रकट हो सकती है।

निचले कसेरुओ (Thoracic Vertebrae तथा Lumber Vertebrae) मे रोग हो तो कभी-कभी Lumber Nerves तथा Vessels की Posterior Branches के साथ चलकर यह पूय Erector Spinae (Sacrospinalis) के बाहर के किनारो के समीप मध्यरेखा से २-३ इच की दूरी पर कही पर Lumber Abscess के रूप मे प्रकट होती है अथवा इस प्रदेश के कसेरुओ मे उत्पन्न हुआ पूय Psoas Muscle के आवरण (Sheath) मे प्रवेश कर उसके अन्दर-अन्दर दूर तक चला जाता है (जिससे इसे Psoas Abscess कहते हैं)। इससे इस मासपेशी मे स्तम्भ के हो जाने से और इस कारण वक्षण सधि (Hip Joint) मे सकोच के रहने से रोगी को उधर की टाग फैलाने मे कठिनता होती है। कुछ काल बाद Iliac Fossa iliacus के खोल मे इस पूय के कारण एक गोल कठोर उभार अनुभव होने लगता है या फिर यह पूय Inguinal Ligament के पीछे से इसके नीचे वहा की रक्तवाहिनियो के बाहर की ओर एक उभार के रूप मे प्रकट होती है या Iliopsoas की Tendon के साथ-साथ चलकर नीचे Lesser Trochanter के पास उर्ध्व जघा (Thigh) के अन्दर की ओर Adductor पेशियो के बीच मे से एक बडे उभार के रूप मे प्रकट होती है। यदि यह पूय पीछे Internal या Medial Circumflex Artery के साथ-साथ चली जाय तो Greater Trochanter के पीछे त्वचा के नीचे विद्रधि के रूप मे प्रकट होती है। या Iliac Fossa मे से यह Ischio rectal Fossa मे आकर प्रकट होती है।

इस क्षय विद्रधि (Tuberculous Abscess) के प्रकट होने पर सायकाल या रात को ज्वर होने का लक्षण होता है। इसमे वेदना आदि होने का कोई लक्षण नही होता। कुछ काल तक पूर्ण विश्राम करने से यह विद्रधि कम होने

लगती है। प्राय पृष्ठ कसेरुओ के अन्दर इस विद्रधि (Cold Abscess) के होने से तथा Articular Discs के भी ग्रस्त होने से सुपुम्ना काण्ड (Cord) के अग्रभाग पर दवाव पड जाता है जिससे उसके अग्रिम तथा पार्श्वीय प्रदेश (Antero-lateral) पर विद्यमान Motor tracts ही दवते है। इसी प्रकार Pedicles मे या Laminae मे रोग हो तो भी सुपुम्ना काण्ड (Spinal Cord) दव जाता है, जिससे ३० प्र० श० रोगियो मे दोनो टागो मे अशक्ति या ऊरुस्तम्भ (Paraplegia) का लक्षण हो जाता है अर्थात् धीरे-धीरे करके दोनो टागे कुछ निर्वल एव स्तव्ध होती जाती हे। कभी-कभी विशेपत युवको मे ऊरुस्तम्भ इस रोग के पूर्व रूप के तौर पर होता हे, कभी-कभी इस रोग के उपद्रव के रूप मे होता हे। जव यह पूर्व रूप के तौर पर होता हे तव इसके प्रकट होने के कुछ काल के वाद पृष्ठवश मे क्षय रोग स्पष्ट हो जाता है। पृष्ठ कसेरुओ (Thoracic Region) मे यह रोग हो तो Deep Reflexes (जैसे Knee Jerk) तीव्र हो जाते है। किसी-किसी रोगी मे Spinal Foramena मे दवाव के अधिक पड जाने से सुपुम्ना मे से निकलने वाले नाडी मूल (Nerve Roots) दव जाते हैं जिससे धड मे दूर तक जाने वाला दर्द (Girdle Pain) हो जाता है। तो भी कैन्सर के कारण जैसे तीव्र Root-pain होती है वैसे इस रोग मे प्राय नही होती।

साध्यासाध्यता

कटि कसेरुओ (Lumber Vertebrea) के आकार मे वडे व दृढ होने से उनमें यह रोग हो तो अधिक कष्टदायक नही होता। वेदना यथा स्तव्धता के लक्षण विशेप होते है। ऊपर के पृष्ठ कसेरुओ (Thoracic Vertebrea) मे रोग हो तो वहा Spinal Canal के अधिक तग होने से Spinal Cord पर दवाव पड कर दोनो टागो मे अशक्ति (Paraplegia) होने का भय रहता है। इस रोग की साध्यासाध्यता रोगी के इन लक्षणो जैसे तापमान, विप-सचार (Toxaemia) Intra Spinal Cold Abscess के Cord पर दवाव पडने से दोनो टागो की अशक्ति (Paraplegia) की उत्पत्ति तथा इस रोग के कारण विद्रधि या नाडी व्रण (Sinus) के हो जाने या न होने पर निर्भर है।

सन्धि क्षय (Tuberculous Arthritis)

क्षय प्रकृति के वालको तथा युवको मे फुफ्फुस मे से या किसी Bronchial अथवा Mesenteric Gland मे से रक्त के द्वारा क्षय जीवाणु किसी आहत हुई सन्धि मे सक्रमण कर सकता है। वालको मे सन्धि के निकट अस्थि के सिरे (Epiphysis) मे यह रोग आरम्भ हुआ करता है। युवको मे यह सन्धि की Synovial Membrane मे आरम्भ होता है। युवको मे जव किसी सन्धि मे क्षय रोग होता है तो पहले Membrane मे पिन के नवके जितने जेलाटिन सदृश क्षयाकुर छा जाते है जिसके कारण यह झिल्ली फूलकर मोटी हो जाती है फिर क्षयाकुरो मे पनीर भाव (Caseation) होकर व्रण भाव हो जाता है। इस प्रकार सूजकर या Tuberculous Granulation Tissue मे परिवर्तित होकर यह Membrane, सन्धि की तरुणास्थि (Articular Cartilage) के साथ जुड जाती है जिससे वह भी इस रोग के कारण खाई जाती है। सन्धि की तरुणास्थि मे रोग अस्थि के सिरे पर प्रसरण कर जाता है, अर्थात् उसमे भी Caries या घुणास्थि का रोग हो जाता है। सन्धि के वीच के प्रदेश मे द्रव नही भरता प्रत्युत वह सन्धि इस फूली हुई झिल्ली से भरी हुई रहती है। सन्धि के आसपास की मासपेशियो तथा कण्डराओ (Tendons) मे क्षीणता होकर जेलाटीन जैसा द्रव उत्पन्न हो जाता है (उनमे Gelatinous Degeneration हो जाता है) इसी कारण सारी सन्धि फूली हुई तथा श्वेत वर्ण दीखती हे। इसे श्वेत शोथ (White Swelling) कहते है। जव तक क्षय रोग Synovial Membrane रहता है इस झिल्ली के मोटे हो जाने से सन्धि कुछ मोटी और स्पर्श मे गर्म तो हो जाती हे पर सन्धि की चेष्टा मे कोई न्यूनता प्रतीत नही होती ना ही कोई वेदना होती है। पर जव इसके साथ अस्थि के सिरे पर भी शोथ प्रसरण कर जाता है तव सन्धि की चेष्टा मे वेदना का लक्षण भी हो जाता हे जो रात को अधिक होती हे। सन्धि के आसपास की मासपेशियो मे विप-सचार (Toxaemia) के कारण शोथ के हो जाने से सन्धि कुछ फूली हुई दीखती हे, सन्धि मे द्रव की मात्रा के वढने से वह स्थूलता नही होती। रोगी मे ज्वर या फुफ्फुस क्षय रोग के लक्षण नही होते पर ग्रीवा या उदर की लसीका ग्रन्थियो मे शोथ पाया जाता है।

उचित चिकित्सा मिलने पर यह रोग अस्थि तक प्रसरण नही करता। जिससे सन्धि का केवल लचकीलापन ही कम होता है और कोई लक्षण नही होता। पर यदि कोई सन्धिगत तरुणास्थि मे रोग हो जाय तो सन्धि मे स्तव्धता (Fibrous Ankylosis) होकर सन्धि की चेष्टा नष्ट हो जाती है। यदि रोग शान्त न हो कर वढता जाय तो वहा पूय भाव होकर वहा से विप सचार

(Toxaemia) वढता है तथा इसके कारण व्यापक क्षय रोग (General Miliary Tuberculosis) होकर मृत्यु हो जाती हे।

वंक्षण सन्धि क्षय (Hip Joint Tuberculosis)

१००० ग्रस्थि क्षय रोगियो मे से ८-१० मे वक्षण सन्धि (Hip Joint) मे यह रोग देखा जाता है तथा वालको मे यह रोग ग्रधिकत पाया जाता है। इस सन्धि मे Acetabulum के वाहर के ग्राधे भाग तथा Femur के मु ड (Head) के ऊपर के सिरे पर Synovitis के रूप मे यह रोग ग्रारम्भ होता है। जिससे सन्धि मे Effusion वढता है। इसके ग्रारम्भ होने पर सन्धि के ग्रन्दर विनाशात्मक (Caseative) तथा रचनात्मक (Fibrotic या Proliferative) दोनो प्रकार की क्रियाये होती हे। वालक मे विनाशक प्रतिक्रिया प्रवल होती है जिसमे Femur के मुण्ड, तथा Acetabulum दोनो के कुछ भागो के नष्ट हो जाने से सन्धि का गढा (Socket) कुछ वडा हो जाता हे। इससे इस सन्धि मे कुछ-कुछ भ्र श (Dislocation) हो जाता हे। युवक मे विनाशात्मक प्रक्रिया कम तथा रचनात्मक (Fibrotic or Proliferative) प्रक्रिया विशेप होती है।

जव विनाशात्मक प्रक्रिया विशेप होती ह (Caseation विशेप होता हे) तव सन्धि के वीच मे शीत विद्रधि (Cold Abscess) वन जाती है जिसमे पूय वढ जाय तो Capsule को किसी निर्वल स्थान पर फाडकर वह वाहर त्वचा पर विद्रधि के रूप मे प्रकट हो सकती है। Capsule के निचले प्रदेश से निकलकर यह सामने ग्रा सकती हे। Iliopsoas ग्रौर Pectineus के वीच-वीच मे चलकर Scarpa's (Femoral) Triangle मे त्वचा पर प्रकट होती है। इसी प्रकार यह मासपेशियो के वीच मे चलकर Lesser Trochanter के पास या कठोर Fascia Lata के नीचे उभार रूप मे प्रकट हो सकती है। पीछे की तरफ, सन्धि मे से यह पीछे की ग्रोर निकले तो Gluteal Muscles के नीचे-नीचे चलकर यह Greater Trochanter के समीप विद्रधि के रूप मे प्रकट होती हे।

जव पनीर भाव (Caseation) या विनाशात्मक प्रक्रिया विशेप नही होती प्रत्युत रोहणात्मक प्रक्रिया विशेप होती है तव सन्धि से ग्राए क्षय जीवाणु के विपरीत स्नायु तन्तु (Granulation Tissue या Scar Tissue) उत्पन्न होने लगता है जो दो प्रकार का होता है। एक तो Tuberculous Granulation Tissue सन्धि के किनारे-किनारे पर Synovial Membrane मे उत्पन्न होता हे। किनारो से प्रारम्भ होकर Membrane के केन्द्र तक फैलता हुग्रा यह सन्धि की तरुणास्थि (Articular Cartilage) को नष्ट कर देता है।

सन्धि मे विद्यमान क्षय जीवाणु के विपरीत तरुणास्थि के पीछे ग्रस्थियो मे एक ग्रौर साधारण प्रकार का Granulation Tissue भी वनता है जिसे Non Tuberculous Sub chondral Granulation Tissue कहते हे। इसमे क्षयाकुर नही वनते, यह केवल Lymphocytes तथा Plasma Cells से ही वनता है। जव इस रोग के कारण सन्धि की तरुणास्थि (Articular Cartilage) नष्ट हो जाती हे तो ग्रस्थियो मे ग्रामने-सामने उत्पन्न हुए Granulation Tissue मिलकर Fibrous Tissue वन जाते हे। इस प्रकार सन्धि की दोनो ग्रस्थिया परस्पर जुडकर स्थिर-सी हो जाती हे ग्रौर रोहण प्रक्रिया होकर रोग शान्त हो जाता है। (ग्रर्थात् इस सन्धि मे Fibrous Ankylosis हो जाता हे) जिससे जोड की गतिशीलता वहुत घट जाती है।

लक्षण

वालक इस रोग के कारण एक टाग से लगडाने लगता हे तथा उसे एक ऊरुप्रदेश (Hip) मे दर्द रहने लगता है। क्योकि चलने-फिरने से उस सन्धि मे दर्द होता है ग्रत वालक वहुत-सा समय लेटा रहता है तथा स्वस्थ पार्श्व पर ही लेटता है रुग्ण पर नही। जव कभी किसी वालक मे ये लक्षण कुछ दिन तक रहे तो इस रोग की ग्राशका करनी चाहिए। इसलिए देखना चाहिए कि वालक की वक्षण सधि की गतिशीलता घट तो नही गई है क्योकि सधि की मास-पेशियो मे स्तम्भ के होने से सधि मे स्तव्धता उत्पन्न हो जाती है ग्रौर गतिशीलता घट जाती है। वालक की परीक्षा करने पर वक्षण देश (Pelvis) रोग ग्रस्त सधि की ग्रोर मुडा हुग्रा (Tilted) दीखता है। वक्षण के उस ग्रोर को मुड जाने से वालक की यह टाग देखने पर दूसरी स्वस्थ टाग की ग्रपेक्षा कुछ लम्वी वाहर की ग्रोर rotated तथा मासपेशियो के सूख जाने से ग्रधिक कृश भी दिखाई पडती है। रोगी की कमर भी एक वाजू की ग्रोर कुछ खम खा जाती है ग्रौर रोगग्रस्त टाग की ग्रोर उन्नतोदर हुई-हुई दिखती है तथा कुछ ग्रागे को भी खम खा जाती है जिससे Lordosis की विकृति भी हो जाती है। टाग को झटकाने या Trochanter पर टकोरने से वालक को सधि मे दर्द प्रतीत होता है। Femur की Neck पर दवाने से ग्रर्थात् Anterior Superior Spine के ग्रन्दर तथा नीचे की ग्रोर दवाने से वालक को दर्द प्रतीत होता है। वालक

अपनी इस टाग को कुछ-कुछ Abduction, Eversion तथा Flexion की अवस्था मे रखता है, क्योकि ऐसा रखने से Iliofemoral Ligament पर का तनाव घट जाता है। एव रोगी को दर्द मे आराम रहता है। रोगी कमर के भार सीधा लेटे तो रुग्ण सधि की ओर की टाग कुछ सकुचित रहती है तथा रोगी की कमर टेवल से कुछ उठी हुई रहती है। इस रोग का निश्चय करने के लिए X-Ray परीक्षा भी करनी चाहिए। B S R परीक्षा भी करनी चाहिए। तथा Synovial Biopsy अर्थात् Synovial tissue का एक सूक्ष्म खण्ड निकालकर उसकी सूक्ष्म (Microscopic) परीक्षा करने से प्रत्यक्ष रूप से इस रोग का निश्चय हो सकता है। वक्षण सधि की लसीका ग्रन्थियो पर रोग जीवाणुओ का प्रभाव होने से वे भी सूज जाती हैं। उनकी Biopsy से भी रोग का निश्चय हो जाता है।

जानु सन्धि क्षय Tuberculosis of the Knee Joint

वक्षण सन्धि की अपेक्षा भी किसी एक जानु सधि मे क्षय रोग अधिक होता है तथा उसी के समान वालको और २५ वर्ष तक के युवको मे विशेष पाया जाता है। इस सन्धि मे क्षय रोग अधिकत तो Synovial Membrane मे प्रारम्भ होता है और कभी-कभी सन्धि वनाने वाली अस्थियों के सिरो मे विद्यमान Epiphysis मे प्रारभ होता है। इस प्रकार Synovial किस्म के रोग मे Synovial Membrane सूज जाती है एव फूल जाती है (उसमे Hypertrophy और Oedema हो जाते है)। इस Membrane मे शोथ होने पर धीरे-धीरे वह Granulation Tissue मे वदल जाती है। सन्धि शोथयुक्त और स्पर्श करने मे गर्म प्रतीत होती है, देखने मे पाण्डुर होती है, लाल नही। दवाने से उसमे स्पर्शाक्षमता होती है। आस-पास की मासपेशियो के तो कृश हो जाने तथा Synovial Membrane के स्थूल हो जाने से यह सधि दूसरी ओर की स्वस्थ जानु सधि की अपेक्षा अधिक स्थूल हुई प्रतीत होती है। सधि मे चेष्टा की अति न्यूनता नही दिखाई पडती। रोगी को लिटाकर देखने पर इस सधि मे कुछ सकोच (Flexion) दिखाई पडता है। इसे Proliferative Type of Tuberculous Synovitis of the Knee कहते हैं या White swelling of the Knee कहते हैं।

कभी-कभी, पर वहुत कम अवस्थाओ मे Synovial Membrane मे (स्राव Exudation) विशेष होता है, वृद्धि विशेष नही होती। इसे Hydropic Type of Tuberculous Synovitis of the Knee कहते हैं।

कभी-कभी क्षय रोग Femur या Tibia के सन्धि करने वाले सिरो मे उनके Epiphyses मे प्रारम्भ होता है अर्थात् जहा उनमे Articular Capsule वन्धा हुआ है तथा उनमे जो भाग Synovial Membrane मे ढके हुए है उन सिरो मे अस्थि के अन्दर क्षय विद्रधि वनती है। इस अवस्था मे सन्धि मे जल (Serous Effusion) उत्पन्न हो जाता है। सन्धि के मास सूजने लगते हैं। चलने पर जोड मे दर्द होता है जिससे रोगी लगडाकर चलता है। ग्रस्त अस्थि पर टकोरने मे स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है। सधि क्षय रोग मे ज्वर नही होता। फिर मृत (Carious) अस्थि पर से पृथक् होकर तरुणास्थि भी नष्ट हो जाती है और दोनो अस्थियो के सिरो पर उत्पन्न Granulation Tissues के परस्पर मिल जाने मे Fibrous Ankylosis होकर सन्धि मे स्थिरता उत्पन्न हो जाती है। इसे Osseous Type of Tuberculosis of the Knee कहते है। जव तक क्षय रोग का प्रभाव अस्थि के सिरे पर ही रहता है अर्थात् जव तक श्रम करने पर दर्द होने का या वहा की मासपेशियो मे कृशता का लक्षण आरम्भ होता है तव तक यह रोग सुख साध्य है। परीक्षा—सधि के अन्दर द्रव की परीक्षा करने पर T B मिलते हैं। उसमे Polymorphonuclear Leucocytosis भी मिलता है। उसमे खाण्ड की मात्रा कम होती हैं। X-Ray परीक्षा से सधि गत मृदु अवयव अधिक फूला हुआ दीखता है। सन्ध्यस्थिशिरो मे पोलेपन या Demineralization का लक्षण दीखता है। फुफ्फुस मे भी क्षय रोग के सूचक लक्षण मिलते हैं। यदि शरीर की किसी एक वडी सधि मे शोथ व दर्द धीरे-धीरे आरम्भ हो, रोगी कृश होता जाए, उसके फुफ्फुस मे भी क्षय रोग सूचक लक्षण मिलें तो इस रोग की शका कर लेनी चाहिए। जानु तथा जाघ की किसी सधि मे क्षय रोग हो तो Inguinal ग्रन्थियो मे Biopsy करने से इस रोग का निश्चय हो जाता है, अर्थात् वहा इसका जीवाणु मिलता है।

(१०) मस्तिष्क क्षय, क्षय मूर्छा Tubercular Meningitis **अथवा** Meningeal Type of General Miliary Tuberculosis

कारण

वालको या नवयुवको मे मूर्छा या निद्रालुता के साथ होने वाला ज्वर प्राय क्षय रोग जनित होता है। पाच-छ वर्ष से नीचे की आयु के वालको मे कभी-कभी या तो फुफ्फुस मे विद्यमान किसी व्यक्त या अव्यक्त रूप से क्षय रोग ग्रस्त

लसीका ग्रन्थि (Peritracheal Caseous Lymph Gland) से या कभी-कभी किसी क्षय रोग ग्रस्त आन्त्र ग्रन्थि (Mesenteric Gland) या अस्थिगत क्षय प्रदेश से क्षय-जीवाणु रक्त के द्वारा मस्तिष्क मे पहुचकर मस्तिष्क क्षय का कारण हो जाता है। फुफ्फुस गत कोई लसीका ग्रन्थि क्षय के कारण सूजकर समीपस्थ सिरा के साथ जुड जाती है। फिर रोमान्तिका (Measles) या सक्रामक कास (Whooping Cough) के कारण जब इस ग्रन्थि मे क्षय रोग बढता है तो वह उस सिरा मे गुल जाती है जिससे क्षय जीवाणु रक्त द्वारा सर्व अगो मे प्रसरण कर जाता है। परन्तु कभी-कभी इन्हे सिर मे रोहण करने का अवसर मिल जाता है। सम्भवत सिर पर किसी चोट लगने के बाद ऐसा होता है। तब पहले तो ये वहा रक्तवाहिनियो के अन्दर रोग उत्पन्न करते है। फिर आसपास Piamater तथा Arachnoid Mater पर क्षयाकुर उत्पन्न करते है अर्थात् मस्तिष्क मे क्षय रोग जनित Lepto-meningitis हो जाता है। इस रोग मे सूक्ष्म रक्तवाहिनियो के अन्तस्तर मे शोथ या Endarteritis की विकृति होती है जिसमे आसपास के मस्तिष्क का पोषण बन्द हो जाता है, एवं वह मृदु (Soft) हो जाता है।

विकृति

छोटे बालको और नवयुवको मे होने वाले इस मस्तिष्क क्षय रोग मे मस्तिष्क के तले (Base) पर दोनो Cerebral Peduncles के बीच के प्रदेश मे आगे Chiasma से लेकर पीछे Cerebellum तक के प्रदेश मे Pia Arachnoid Membranes पर छोटे-छोटे क्षयाकुर से निकलते है जो मस्तिष्क के तले पर विद्यमान धमनियो के आस-पास मे बहुत अधिक होते है। Ventricles की दीवार मे तथा Choroid plexus पर भी ये निकलते हैं। Ventricles मे तथा Pia Arachnoid मे क्षय जनित शोथ के कारण Ventricles तथा Subarachnoid Space मे चिप-चिपा स्राव (Fibrinous Exudate) बहुत अधिक मात्रा मे उत्पन्न होता है जिनमे Lymphocytes, Polymorphs, Plasma Cells होते है, मस्तिष्कावरण सूज कर मोटा हो जाता है। सिर के अन्दर का भार (Intracranial Pressure) कुछ बढ जाता है। Optic Chiasma, Sylvius के Fissures (Lateral Sulcus) तथा पीछे Cerebellum और Pons के बीच के प्रदेश मे यह द्रव बहुत अधिक भर जाता है। मस्तिष्क मे मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव के बढ जाने से Hydrocephalus का रोग भी कुछ-कुछ होता है Base मे विद्यमान Cisterns तथा Sub-arachnoid Space मे स्थान-स्थान पर अवरोध भी हो जाता है। द्रव के कारण मस्तिष्क नाडियो जैसे Optic Nerve, Oculomotor Nerve छटी मस्तिष्क नाडी, किसी के दब जाने के लक्षण हो सकते है। सुषुम्ना काण्ड (Spinal Cord) तथा सुषुम्ना के आवरणो (Meninges) मे भी इस रोग के कारण क्षय जनित अकुर उत्पन्न हो जाते है।

लक्षण

शिशु मे यह रोग शीघ्रकारी (Acute) रूप मे तथा नवयुवको मे चिरकारी (Chronic) रूप मे होता है।

दोनो मे ही इसका प्रारम्भ धीरे-धीरे ऐसे अज्ञात रूप मे होता है कि इसका पता ही नही चलता। मस्तिष्क मे क्षय जनित शोथ होकर मस्तिष्क सम्बन्धी लक्षण एक दो सप्ताह तक दिखाई पडे तो इस रोग का सन्देह कर लेना चाहिए। अर्थात् यदि बालक या युवक अपने खिलौनो या बाहर की वस्तुओ मे रुचि तथा खाने-पीने की इच्छा का परित्याग कर उदासीन होकर बिना बोले तन्द्रा या अर्ध निद्रा मे चिरकाल तक पडा रहता दीखता हो अर्थात् उसमे मानसिक परिवर्तन हो गया हो तो मस्तिष्क क्षय रोग की आशका हो जानी चाहिए। इसी प्रकार नवयुवक मे ग्रीवास्तम्भ का लक्षण हो तो भी इस रोग का सशय करना चाहिए। इस रोग मे मस्तिष्क के अन्दर क्षय जनित शोथ होने से मस्तिष्क के सभी केन्द्र (Sensory, Motor, Medullary, Vasomotor, Mental) न्यून या अधिक रूप मे विक्षुब्ध (Irritated) रहते हे। इसलिये मस्तिष्क सम्बन्धी विक्षोभ को देखकर इस रोग की आशका कर लेनी चाहिये। इस रोग के प्रारम्भ मे ही शिशु या युवक स्पर्श, शब्द, प्रकाश आदि से शीघ्र विक्षुब्ध हो जाता है। हमारे स्पर्श करने या उसके मुख पर से कपडा हटाने या बुलाने को भी पसन्द नही करता। वह क्रोधी, चिडचिडा, असहनशील हो जाता है। क्षय रोग के विष (Tuberculoprotein) के दुष्प्रभाव से उसे न्यूनाधिक ज्वर, कृशता, और क्षुधा नाश के लक्षण तो होते ही है इनके साथ-साथ मस्तिष्क मे भार के बढ जाने अर्थात् (Intracranial Pressure) के बढ जाने से सिर दर्द रहता है तथा चौथे Ventricle के तले मे विद्यमान वमन केन्द्र (Vomiting Centre) के विक्षुब्ध हो जाने से बिना खाये भी सहसा वमन हो जाने का लक्षण रहता है। मस्तिष्क के चेष्टा केन्द्रो (Motor Center) के विक्षुब्ध रहने से ग्रीवा, कटि शाखाओ की मासपेशियो मे स्तब्धता (Spasm, Rigidity) का लक्षण रहता है। सम्भवत आतो मे स्तब्धता के कारण मलबन्ध होता है। शिशु सिर दर्द के

कारण कभी-कभी चीख उठता है (Meningeal cry)। ऐसी चीख सुनकर सिर दर्द का सन्देह करना चाहिए। मस्तिष्क के Cortex मे विद्यमान चेष्टा क्षेत्र (Motor Area) मे विक्षोभ होने के कारण बालक या युवक रोगी मे आक्षेप (Convulsions) भी हो सकते है। यह आक्षेप किसी एक अग मे होता या सारे शरीर मे हो सकता है। मस्तिष्क मे विक्षोभ के कारण जहाँ बालक चिडचिडा हो जाता है वहा रात को दात कटकटाने का लक्षण भी होता है।

इस प्रकार एक बालक या युवक मे जो किसी क्षय रोगी माता-पिता की सन्तान हो या जिसे रोमान्तिका (Measles) का रोग हो चुका हो या जिसे क्षय रोग होने की आशका हो यदि ये अर्ध निद्रा या तन्द्रा मे चुपचाप पडे रहने, सिर दर्द से चीख उठने, वमन, मलबन्ध, ग्रीवा या पीठ आदि अगो के कुछ स्तब्ध होने तथा आक्षेप के लक्षण दो तीन सप्ताह से चले आते हो तो शीघ्र मस्तिष्क क्षय रोग का सन्देह करना चाहिए। इस प्रारम्भिक अवस्था मे चिकित्सा करने से वह ठीक हो सकता है। विलम्ब हो जाने पर जब यह रोग एक-दो मास रह जाए तो उसे बचाना कठिन हो जाता है, बच भी जाए तो कोई न कोई स्थायी उपद्रव रह जाता है।

इस रोग की इस प्रथम अवस्था को विक्षोभावस्था (Irritative Stage of Tuberculous Meningitis) कहते है। इस अवस्था मे बालक या युवक कपडा लेकर, पेट मे गोडो को सकोडकर ग्रीवा को कुछ पीछे की ओर अकडाकर, बाजू पर, अर्ध निद्रावस्था मे, चुपचाप पडा रहता है। मस्तिष्क के तले (Base) पर शोथ होने के साथ-साथ Cervical Spinal Cord के आवरणो (Meninges) मे क्षय शोथ होने से ग्रीवा की मासपेशियो मे स्तम्भ रहता है। रोगी की ऊरु पश्चिम पेशियो या Hamstrings मे भी स्तम्भ रहता है। इसलिए यदि टाग को गोडे पर सीधा करके पेट पर सकोडना चाहे तो रोगी ऐसा करने नही देता (Kernig's Sign) इसी प्रकार यदि उसकी ग्रीवा को आगे की ओर झुकाये तो रोगी के एक या दोनो उरुओ और गोडो मे भी सकोच (Flexion) की क्रिया हो जाती है (Brudzinski's Sign)। शरीर की मासपेशियो मे तनाव के रहने के कारण गहरे प्रतिक्षेप (Tendon Reflexes) बढे हुए होते है। (Hyper reflexea)। Plantar Reflex भी नीचे की तरफ न होकर Extensor हो जाता है। अर्थात् Babinski Sign मिलता है, कोष्ठ की दीवार की मासपेशियो मे स्तम्भ होने से पेट बीच मे पिचका हुआ (Scaphoid) होता है। पुतली की मासपेशी मे स्तम्भ होने से दोनो पुतलियां सकुचित होती है। सिरा नियामक केन्द्र (Vasomotor Centre) के विक्षोभ के कारण Tache Cerebrals का लक्षण अर्थात् त्वचा को जहा पर प्रबलता से टकोरा जाय वहा लाल चकत्ते के पड जाने का लक्षण होता है।

द्वितीय अवस्था Stage of Paralysis —यदि दो मास रोग की उपेक्षा की जाय एव वह बढता जाय तो मस्तिष्क के Ventricles तथा Sub Archnoid Space मे द्रव बढ जाने से मस्तिष्क नाडिया (Cerebral Nerves) दब जाती है। दृष्टि नाडी (Optic Nerve) के दब जाने से दृष्टि की क्षीणता (Optic Atrophy) का उपद्रव हो जाता है। Optic Nerve के खोल मे मस्तिष्क द्रव के अधिक बढ जाने से उस Nerve की सिरायें भी दब जाये तो नेत्र के Fundus मे श्वयथु (Oedema) भी हो जाता है, जिसे Papilloedema कहते है। Oculomotor Nerve पर दबाव पडने से आखो की अन्दर की मासपेशियो मे घात (Paralysis) हो जाता है जिससे Squint तथा ऊपर पलक गिर जाने (Ptosis) के उपद्रव हो सकते हैं।

ज्यो-ज्यो Meningitis बढता है, निद्रालुता का लक्षण, मूर्छा (Coma) मे परिवर्तित होता जाता है। पुतली फैल जाती है। बालक घटो तक एक ही अवस्था मे बेसुध पडा रहता है। नाडी गति तथा श्वास गति तीव्र हो जाती है। मल-मूत्र बिस्तरे पर ही निकलने लग जाते है। शरीर के अग कुछ शिथिल (Flaccid) हो जाते है, इसे Paralytic Stage, घात की अवस्था कहते है। यह अवस्था मृत्यु की सूचक होती है। ५०-७० प्र०श० के लिए यह रोग घातक होता है। बालक मे दीर्घ ज्वर, तीव्र विष सचार, मासपेशियो मे स्तम्भ, कृशता को देखकर इस रोग का निश्चय किया जा सकता है।

मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव (Cerebrospinal Fluid) की परीक्षा करने पर उसका भार १५० M M.H O से बढा हुआ होता है। द्रव को थोडी देर रखने पर सूक्ष्म सूत्र-जाल आ जाता है जो इस रोग का सूचक लक्षण होता है। इस जाल की परीक्षा करने से इसमे रोग जीवाणु देखे जा सकते है। रक्त का Total Leucocyte count ७ हजार के लगभग Differential count P 60, L 35, E 5 के लगभग होता है E S R कुछ बढा होता है। सेल्स जिनमे प्रधानता Lymphocytes की होती है प्रति Cubic M M मे ५-१० से अधिक (५०-५०० तक) होते हैं। Chlorides की मात्रा ७२५ मिलिग्राम प्रति १०० सी०सी० से गिर जाती है तथा घटकर ६०० मिलिग्राम तक भी हो सकती

है। खाण्ड या ग्लूकोज की मात्रा घट जाती है अर्थात् प्रति १०० सी० सी० द्रव मे ५० से ८० मिलिग्राम के स्थान पर १५-२० मिलिग्राम रह जाती है। द्रव मे प्रोटीन की वृद्धि (१०० मे ५० मिलि० से अधिक) इस रोग मे विशेष रूप मे होती है। इस प्रकार इस द्रव की परीक्षा करने से इस रोग का निश्चय हो सकता है। इस द्रव की परीक्षा के द्वारा Typhoid से इसका भेद हो जाता है। यह एक घातक रोग है, ३-६ मास तक चल सकता है तथा ४-८ सप्ताह तक मृत्यु हो जाती है। शीघ्र चिकित्सा प्रारम्भ करने पर ९०% रोगी वच सकते हैं। रोग के वढ जाने के वाद भी चिकित्सा प्रारम्भ करने पर २५ प्रतिशत रोगी वचाये जा सकते है। स्थायी उपद्रव Sequelae —वधिरता, Squint, मानसिक दुर्वलता हो सकते ह।

(११) क्षय व्रण, चर्म क्षय Cutaneous Tuberculosis, Tuberculids

प्रारम्भिक क्षय व्रण Primary Tuberculous Complex in the Skin

ऐसे वालको की त्वचा मे जिनमे क्षय जीवाणु का सक्रमण कभी नही हुआ हे जव पहले-पहल त्वचा मे विशेषत हाथो या गोडो की या मुख की त्वचा मे ही इस जीवाणु का सक्रमण होता है तो सक्रमण स्थान पर एक कोठ (Papule) या छोटी ग्रन्थि (Nodule) निकल आती है जिसके केन्द्र मे मृत्यु (Necrosis) होकर व्रण-सा या Boil हो जाता है क्योकि यह व्रण फिरग के प्रारम्भिक व्रण के समान होता है, इसे Tuberculous Chancre कहते हैं। इस प्रदेश का Lymph जिन लसीका ग्रन्थियो मे जाता है उनमे से एक लसीका ग्रन्थि कुछ सप्ताहो के अन्दर-अन्दर सूज जाती और पक जाती हे। वहुधा इस पकी हुई ग्रन्थि को देखकर अर्थात् Primary Complex के Glandular Component को देखकर त्वचा मे विद्यमान प्रारम्भिक व्रण (Primary Focus या Tuberculous Chancre) का पता लगता है। यह प्रारम्भिक व्रण (Primary Focus) कई महीनो के वाद या तो स्वयमेव अच्छा हो जाता है या यह छोटा Papule आगे कहे जाने वाले Lupus Vulgaris मे परिवर्तित हो जाता हे। इससे होने वाला ग्रन्थि शोथ (Adenitis) तो स्वयमेव ठीक हो जाता है।

[illegible] (Lupus Vulgaris)

वहुत धीरे-धीरे वढ़ने वाले त्वचा पर कुछ उठे हुए लाल, भूरे रग के सेव के, गूदे (Apple Jelly) की तरह छोटी-छोटी ग्रन्थियो (Nodules) से वने हुए, किनारो पर वढने वाले, क्षय जीवाणु जनित व्रण को जीर्ण क्षय व्रण (Lupus Vulgaris) कहते हैं। Lupus का शव्दार्थ भेडिया होता है, अर्थात् जो व्रण भेडिये की तरह मास को खा जाए उसे Lupus Vulgaris कहा गया हे।

कारण

यह चिरस्थायी क्षय व्रण निर्धन परिवारो के निर्वल प्रकृति के वालको या नवयुवको मे प्राय चेहरे पर, नाक, गाल, कान, ग्रीवा या छाती के ऊपर के प्रदेश की या कभी-कभी शाखाओ की त्वचा पर आरम्भ होकर वहुत धीरे-धीरे वढता हे। यह रोग प्राय १०-३५ वर्ष की छोटी आयु मे आरम्भ होता है।

क्षय जीवाणु नाक की श्लेष्मकला मे उसके किसी क्षत प्रदेश से अन्दर प्रवेश करता है और लसीकावाहिनियो (Lymphatics) के द्वारा चेहरे की त्वचा मे प्रसरण कर जाता है अथवा ग्रीवा मे उत्पन्न किसी क्षय ग्रन्थि (Cervical Gland) के पककर खुल जाने से लसीकावाहिनियो के द्वारा ग्रीवा की त्वचा मे प्रसरण कर जाता हे। पृथ्वी पर घिसटकर चलने वाले शिशुओ मे पृथ्वी पर पडा हुआ क्षय जीवाणु वैठने की जगह या गोडो की त्वचा के क्षत प्रदेश मे से सीधा अन्दर प्रवेश कर जाता हे। इस अवस्था मे क्षय व्रण शाखाओ पर होता है। यदि वालक की प्रतिरोधक शक्ति क्षीण हुई-हुई हो तो फुफ्फुस के अन्दर की किसी क्षय ग्रन्थि के पककर किसी शिरा मे खुल जाने से क्षय जीवाणु जैसे सारे शरीर मे प्रसरण करता है वैसे ही त्वचा में भी प्रसरण कर जाता है। जिससे त्वचा मे अनेक क्षय व्रण (Disseminate या Multiple Lupus Vulgaris) हो जाते हैं।

विकृति

क्षय जीवाणु के अन्तश्चर्म (Dermis या Cutis) मे आ जाने पर उसके विपरीत प्रतिक्रिया होकर त्वचा की सूक्ष्म शिराओ के आसपास वहा १-२ मिलिमीटर व्यास की अर्थात् पिन के नक्के के आकार की ग्रन्थिया (Nodules या Lupoma) वन जाती है। ये ग्रन्थिया अनेक क्षयाकुरो के मिलने से वनी होती हैं जिनमे से प्रत्येक क्षयाकुर ऊपर कहे गए Giant Cell Systems से वना होता है। एक ग्रन्थि के निकलने पर लसीकावाहिनियो (Lymphatics) के द्वारा आसपास सक्रमण होकर दूसरी ग्रन्थिया भी निकलती आती हे। इस प्रकार इनके समूह के कारण यह लाल, भूरे

रग का कुछ उठा हुआ एक क्षय जनित चकत्ता (Patch) बन जाता है। इस चकत्ते के चारो ओर की त्वचा कुछ रक्त-वर्ण होती है। यदि शीशे या Watch Glass से उस चकत्ते को दबाकर रक्तवाहिनियो मे से रक्त को हटा दिया जाय तो त्वचा मे विद्यमान श्वेत भूरे रग की सेव के गूदे की सी अर्ध पारदर्शक ये ग्रन्थिया (Nodules) स्पष्ट देखने मे आती हैं।

लक्षण

Lupus या क्षय व्रण के कारण कोई विशेष कष्ट नही होता। परन्तु एक बार प्रारम्भ होकर धीरे-धीरे किनारो पर ग्रन्थियो के निकलते जाने से यह बढता ही जाता है। प्रधानतया यह व्रण दो प्रकार का होता है। एक शुष्क क्षय व्रण (Fibrotic Lupus Vulgaris) होता है जो किनारो पर फैलता जाता है पर केन्द्र भागो मे ठीक होता अर्थात् वहा घना Scar Tissue बन जाता है (Agminate Lupus)। यह चकत्ता (Patch) उभरा हुआ या व्रण युक्त नही होता। दूसरा आर्द्र क्षय व्रण (Exudative Lupus Vulgaris) होता है। उसमे शोथ, उभार, लालिमा तथा व्रणभाव के लक्षण होते हैं। इसमे रोहण करने (Scar Tissue बनने) की प्रक्रिया बहुत कम तथा विनाशात्मक प्रक्रिया विशेष होती है। जब नाक, कान आदि के पास यह रोग होता है तब व्रणभाव के कारण इनके Cartilages खाये जाते है। एव चेहरे पर विकलता (Deformity) हो जाने का लक्षण हो जाता हे (Ulcerative Lupus)।

नासिका तथा मुख के आसपास यह रोग हो तो इनकी श्लेष्मकलाओ मे भी अर्थात् नासा, दन्तमास, गालो, जिह्वा, तालु, आदि की श्लेष्मकला पर भी काले भूरे से रग के चकत्ते के रूप मे या अकुरो (Vegetation) के समूह के रूप मे होता है, जिन पर कुछ-कुछ व्रणभाव भी होता हैं। (Lupus of Mucous Membranes)

यह रोग बाल्यकाल मे आरम्भ होकर चिरकाल तक रहता है। इनके क्षय जीवाणु जनित होने से युवक निर्बल रहता है। अन्त मे इसके उपद्रव के रूप मे उर क्षय होकर मृत्यु हो सकती है। परन्तु कुरूपता और अग विकलता इस रोग के स्पष्ट उपद्रव होते है।

इस रोग का भ्रम फिरग रोग के Gumma से हो सकता है पर वह रोग ३० वर्ष से ऊपर की आयु मे होता है। वह अधिक शीघ्रकारी होता है। वह त्वचा, अस्थि, तरुणास्थि सभी को खाता है। उसके विपरीत यह रोग २० वर्ष से पहले होता है। चिरकारी होता तथा केवल तरुणास्थियो को खाता है। महाकुष्ठ (Leprosy) से भी इसका सन्देह नही होना चाहिए क्योंकि उस रोग मे त्वचा पर स्पर्श ज्ञान, तथा शीतोष्ण का भेद भी नष्ट हो जाता है। Lupus Erythematosus का रोग जिसमे नाक के दोनों ओर गालो पर लालिमा होती है तथा कहीं-कहीं बीच मे Scar Tissue भी बना होता है इससे विभिन्न रोग है। वह दोनों ओर आमने-सामने (Symmetrical) होता है, Lupus एक ओर ही हो सकता है। वह रोग वर्षो रहकर भी अग विकलता (Deformity) उत्पन्न नहीं करता। उसमे Watch Glass से देखने पर सेव के गूदे जैसे छोटे-छोटे उभार या Nodules दिखाई नही पडते।

इसका भ्रम Rodent Ulcer से भी नही होना चाहिए क्योंकि यद्यपि वह नाक के पास के प्रदेश मे होता है। पर वह बडी आयु के व्यक्तियो मे ही अधिकतर पाया जाता है। कभी-कभी नवयुवको मे भी हो सकता है तथापि उसका पृष्ठ अधिक कठोर होता है। उसके किनारे भी कठोर होते है। Lupus Vulgaris बीच मे कुछ-कुछ शुष्क भी हो तो भी उसके किनारो पर मृदु उभार या Nodules होते ही हैं। वह रोग क्षय जीवाणु जनित नही होता। चर्म क्षय चिरस्थायी, लक्षणहीन, आभ्यन्तर या बाह्य सक्रमण से उत्पन्न तथा Mantoux टेस्ट देने वाला होता है।

Lupus Verrucosus —क्षय रोग के कारण युवको की त्वचा मे विशेषत हाथो बाहो बैठने के प्रदेश की त्वचा मे गूदेदार मस्सो के सदृश मपक निकल आते हैं। उनके पास की त्वचा भी कुछ रक्तवर्ण होती है Infection कभी तो बाहर से आता है कभी-कभी Autogenous होता है। जब यह बाहर से आता है तब Isoniasid चिकित्सा से लाभ हो जाता है। जब यह चर्म क्षय अपने अन्दर से होता है तब क्षय रोग की तीनो दवाइयो के देने से लाभ होता है।

(१२) ग्रन्थि क्षय, गण्डमाला (Glandular Tuberculosis, Tuberculous Lymphadenitis)

३ से १५ वर्ष तक की आयु मे लसीका गन्थियो मे क्षय रोग होता हुआ पाया जाता है। Mediastinum तथा Mesentery मे विद्यमान लसीका ग्रन्थियो के क्षय रोग का वर्णन ऊपर हुआ है। सब लसीका ग्रन्थियो मे से Mediastinum की ग्रन्थियो मे यह रोग सबसे अधिक होता है। परन्तु उसका प्रत्यक्ष पता X-Ray के द्वारा Hilum की छाया के बडे और घने हो जाने से लगता है। कभी-कभी Mesentery की ग्रन्थियो मे भी यह रोग होता है उनमे रोग हो तो कुक्षि शूल के लक्षण के अतिरिक्त

पाण्डुता, कृशता, अशक्ति, भार की कमी के लक्षण रहते है। दाहिने Iliac Fossa मे एक स्पर्शाक्षम ढेर-सा प्रतीत होता है।

परन्तु दूसरे नम्बर पर यह रोग ग्रैवेय लसीका ग्रन्थियो मे गण्डमाला (Tuberculous Cervical Lymphadenitis) के रूप मे होता है। जिन वालको के Tonsils मे चिरस्थायी शोथ रहता है एव इनसे सम्वन्धित ग्रैवैय लसीका ग्रन्थियो मे भी कुछ-कुछ शोथ रहता है उनके गले मे श्वास वायु के द्वारा प्रविष्ट हुआ क्षय जीवाणु Tonsils मे आकर नष्ट होने के स्थान पर इन्ही को क्षय रोग ग्रस्त कर देता है अर्थात् रुग्ण Tonsils मे तथा इनसे संवधित ग्रैवेय ग्रन्थियो मे क्षय जीवाणु को वृद्धि करने के लिए उचित भूमि मिल जाती है। ऐसे Chronic Tonsillitis वाले वालक को रोमान्तिका (Measles) या सक्रामक कास (Whooping Cough) आदि कोई रोग हो जाय तो उसके कारण उसकी प्रतिरोधक शक्ति इतनी घट जाती है कि उसके Tonsils मे क्षय जीवाणु सुगमता से वढ जाता है और फिर लसीका वाहिनियो के द्वारा Tonsillar Lymph Gland या Sternomastoid के अगले किनारे पर विद्यमान ग्रैवेय ग्रन्थियो मे साधारणत Upper Deep ग्रैवेय ग्रन्थियो मे विशेपत Digastric मासपेशी के पश्चिम भाग और Jugular Vein के वने कोण मे विद्यमान Jugulodigastric ग्रन्थि मे भी क्षय जीवाणु सक्रमण कर जाता है। इसके कारण इस लसीका ग्रन्थि में उसके Lymphoid Corpuscles तथा स्नायु तन्तु या Fibrous Trabeculae मे पर्याप्त वृद्धि हो जाने से वह आकार मे वडी हो जाती है। फिर रोग वढता जाय तो कुछ काल वाद ग्रन्थि मे कई स्थानो (Foci) पर पनीर भाव या मृदु भाव (Caseation) की प्रक्रिया प्रारम्भ होकर वह वढती जाती है। यहा तक कि कुछ महीनो वाद सारी ग्रन्थि मे ही यह प्रक्रिया छा जाती है। फिर गलने (Softening) की प्रक्रिया होकर सारी ग्रन्थि पक जाती है। पर उसका खोल (Capsule) स्नायु भाव की वृद्धि के कारण मोटा हो जाता है। अव कुछ काल वाद उस ग्रन्थि के खोल मे भी शोथ हो जाता है। जिसके कारण वह दूसरी ग्रन्थियो तथा त्वचा, रक्तवाहिनियो आदि के साथ जुड जाती है। फिर इसका पूय Deep Fascia तथा Platisma मे से रास्ता करके त्वचा के नीचे आ जाता है जिससे ग्रीवा की त्वचा मे उभार हो जाता है (Cold Abscess)। त्वचा मे मृत्यु (Necrosis) की प्रक्रिया के प्रसरण कर जाने से वह श्याम वर्ण हो जाती है और वाद मे ग्रन्थि के अन्दर वन्द पनीर के द्रव होकर त्वचा पर खुल जाने से वहा नाड़ी व्रण (Sinus) वन जाता है। यदि रोहणात्मक प्रक्रिया विशेप हो, पनीर भाव (Caseation) न हो तो ग्रन्थि मे वृद्धि (Hyperplasia) ही होती है या उसमे Calcification होकर वह कठोर हो जाती है। इन दोनो अवस्थाओ मे ग्रन्थि निरुपद्रव रहती है। व्रणभाव हो जाने पर भी यह रोग रोगी के लिए उपद्रवकारी नही होता। यहा से क्षय जीवाणु के फुपफुस मे प्रसरण कर जाने का भय तो रहता है पर इन ग्रैवेय ग्रन्थियो मे शूल या स्पर्शाक्षमता (Tenderness) का या ज्वर उत्पन्न करने का कोई लक्षण नही होता। अधिकतर यह रोग ग्रीवा ग्रन्थियो मे होता है पर कभी-कभी कक्ष और वहुत कम अवस्थाओ मे वक्षण ग्रन्थियो मे भी होता है। कोष्ठ ग्रन्थियो मे भी होता है पर वहुत कम।

Scrofulodermia —पहले ग्रीवा की लसीका ग्रन्थिया रोग ग्रस्त होती है वे त्वचा से चिपक जाती हे। फिर वे पक कर त्वचा पर फूट जाती हे इस तरह Fistulae तथा Sinustracts वन जाते हे। त्वचा पर पूय स्राव होता रहता है। ये व्रण वहुत चिरस्थायी होते है। यह भी एक त्वचा का क्षय रोग है।

क्षय की रोग चिकित्सा

विश्रान चिकित्सा (Bed Rest Treatment)

पहले काल मे इस रोग की यही प्रधान चिकित्सा थी परन्तु अव इस पर विशेप वल नही दिया जाता। तथापि इसका यहा उल्लेख किया जाता है।

इस रोग का रोगी विशेप वार्तालाप तथा उठने-वैठने आदि सव प्रकार की शारीरिक चेष्टाओ का परित्याग करके शान्त भाव से शय्याशायी होकर पड जाय और इसी प्रकार कई सप्ताहो तक पडा रहे, मल-मूत्र आदि का विसर्ग तथा आहार जलपान आदि भी विस्तरे पर लेटे हुए करे तो क्रमश उसकी हृदय गति तथा श्वास गति मन्द एव मन्दतर होती जाती है। रोगी अधिक निर्वल न हो तो मल-मूत्र त्याग के लिए उठ सकता है। फुपफुस की गतियो के घट जाने से उसमे होने वाले रक्त सचार की गति भी मन्द हो जाती हे जिससे वहा रुग्ण स्थान से क्षय विप की जो मात्रा पहले रक्त मे सचारित होती थी, वह क्रमश घटती जाती हे और उसकी असात्म्यता (Allergy) से या विप सचार से होने वाले ज्वर, कृशता, अन्नारोचक आदि लक्षण क्रमश शान्त होने लगते है। जितना ही विश्राम पूर्ण और पूर्णतर होता है उतना ही इन लक्षणो की शान्ति शीघ्रतर होती है। इस चिकित्सा मे दो-तीन सेवक भृत्यो की

आवश्यकता होती है जो विस्तर पर पडे हुए रोगी की सर्व आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं। लगभग दो मास तक शय्याशायी होकर रहने पर तापमान, नाडी गति तथा श्वास गति नार्मल हो जाते है, भूख वढ जाती है। रक्त कणो का Sedimentation Rate १० मिलिमीटर प्रति घटा के रेट के नीचे आ जाता है। लेटे-लेटे शरीर मे १७०० तथा साधारण श्रम करने पर शरीर मे २५०० के लगभग कैलोरी प्रतिदिन उत्पन्न होती हैं, इससे विश्राम का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

रोग साधारण हो तो १ या १½ मास के पूर्ण विश्राम से ज्वर शान्त हो जाता है। यदि रोग अधिक हो तो ३ मास के पूर्ण विश्राम से ज्वर आदि लक्षण शान्त हो जाते है। विश्राम से शरीर की प्राण शक्ति वढ जाती है। फुफ्फुस मे उत्पन्न हुए क्षत को रोहण करने और उसे भरने की प्रक्रिया तीव्रतर हो जाती है अर्थात् विश्राम काल मे शरीर की जीवन शक्ति और भरण शक्ति को निर्विघ्न होकर अपने कार्य करने का अवसर मिलता है जिससे शरीर मे होने वाला क्षति-पूर्ति का कार्य दिन-रात जारी रहता है। औषधिया तो केवल इस शक्ति की सहायता करती है, वस्तुत फुफ्फुस के क्षत हुए प्रदेश का रोहण तो शरीर की अपनी प्रतिरोधक शक्ति के वढ जाने से होता है। अत विश्राम चिकित्सा इस रोग की प्रधान चिकित्सा है। यहा तक कि वढा हुआ रोग भी केवल विश्राम से ठीक हो सकता है।

डेढ-दो महीनो के पूर्ण विश्राम के वाद जव ज्वर आदि लक्षण शान्त हो जायें तव उसे पुस्तक आदि के अवलोकन करने और आधे घण्टे के लिये वैठकर भोजन करने की छुट्टी दे देनी चाहिये। ऐसा करने से ज्वर आदि लक्षण न वढे तो फिर आधे घण्टे के स्थान पर एक घण्टे के लिये उठकर वैठने और इसी समय मे वैठकर मल त्याग करने की छुट्टी भी दे देनी चाहिये। इस पर भी यदि ज्वर, कास, अन्नारुचि आदि कोई लक्षण प्रकट न हो तो इस उठकर वैठने के समय को क्रमश दो, तीन, चार, पाँच, छ घण्टो तक वढा देना चाहिये। इसे अर्ध विश्राम या अपूर्ण विश्राम चिकित्सा कह सकते हैं। इसे भी दो मास तक जारी रखना चाहिये। इस प्रकार यदि रोगी को किसी प्रकार की कौटुम्बिक चिन्ता या आर्थिक कष्ट न हो तो ४-५ मास की विश्राम चिकित्सा से उसको अवश्य आराम आ जाता है।

विश्राम चिकित्सा के वाद रोगी को क्रमश चलने-फिरने की छुट्टी दी जाती है जिससे उसे लाभ ही होता है। ज्वर आदि कोई लक्षण फिर नही होता।

रोगी के थूकदान मे ५% कार्वोलिक लोशन रहना चाहिये तथा वाद मे थूक समेत वर्तन को उवलते हुए पानी के वडे वर्तन मे आध घण्टा उवाल लेना चाहिये। रोगी के कमरे के फर्श को रोज फिनाइल से गीले किये कपडे से पूछ देना चाहिये। वहा झाडू लगाकर सफाई करना उचित नही। रोगी के वस्त्रों को पहले Disinfect करके फिर धुलाना चाहिये। उसके काम आई अखवारो को या पुस्तको को दूसरो के हाथ मे नही देना चाहिये।

विश्राम तथा औषधि चिकित्सा से अच्छा हो जाने के वाद भी रोगी को दिन मे ३-४ घ० काम करना चाहिये। इस काम के समय को वहुत धीरे-धीरे वढाना चाहिये। ऐसा पेशा जिसमे कम एनर्जी खर्च हो करना चाहिये। कहा जाता है कि लिखने पढने के काम मे १घ० मे २० कैलोरीज खर्च होती हैं। टाइपराईटिंग मे १घ० मे ५० के लगभग, वोलने के काम मे ७०-७५ के करीव, हलकी मेहनत मे १५०-१६० के लगभग, भारी मेहनत मे लगभग १घ०मे ४०० के लगभग कैलो० खर्च होती ह। जिस काम मे कम Energy खर्च हो वही काम उसे करना चाहिये।

सेनिटोरियम चिकित्सा

विश्राम, खुली हवा, शीतल प्रदेश तथा पर्याप्त पौष्टिक आहार, ये सभी शरीर मे उत्पन्न क्षति को पूर्ण करने वाले, रोग प्रतिरोधक शक्ति को वढाने वाले तथा निद्रा को वढाने वाले भाव हैं। सेनिटोरियम मे ये सभी रोगी को सुलभ होते हैं। इसलिये सेनिटोरियम चिकित्सा इस रोग की प्रधान चिकित्सा मानी जाती रही है। वन्द कमरे मे विश्राम करने की अपेक्षा खुली हवा मे शय्याशायी होकर रहना अधिक स्वास्थ्यवर्धक है। हवा, भूख को वढाने वाली होती है। क्षय रोग मे शरीर मे हुई क्षति की पूर्ति के लिये प्रोटीन भोजन जैसे मास रस, दही, पनीर, दाल, अण्डे आदि पर्याप्त मात्रा मे देने चाहिये। दूसरे नम्वर पर स्निग्ध तत्त्व अर्थात् घृत या मक्खन की आवश्यकता होती है। क्योकि वह भी शरीर मे हुई क्षति को पूर्ण करता है। तीसरे नम्वर पर कार्वोहाईड्रेट आहार की आवश्यकता होती है। क्योंकि रोगी शारीरिक श्रम नही करता इसलिये इसका प्रयोग न्यून मात्रा मे ही करना चाहिये। घृतयुक्त मास रस अथवा घृत युक्त दूध के प्रयोग से क्षय रोगी को विशेष लाभ होता है। इन तत्त्वो के अतिरिक्त Vitamin "C" की जो कि क्षतो के रोहण करने मे सहायक होता है रोगी को आवश्यकता रहती है। इसके लिये फल-रस तथा ५० से १५० मिलिग्राम तक Ascorbic Acid प्रतिदिन देना चाहिये। शरीर के आवरणो (Epitheliums) पर होने वाले क्षतो की पूर्ति के लिये Vitamin

"A" सहायक होता है इसलिये Cod Liver Oil ½ औंस या Haliverol १-२ ड्राम प्रतिदिन देना चाहिये। इसके अतिरिक्त Multi-vitamin तथा कैल्सियम का प्रयोग करना चाहिये। इस प्रकार जहा खुली हवा, विश्राम और पौष्टिक भोजन अनायास रोगी को मिल सकते है ऐसे सेनिटोरियम का निवास इस रोग के लिये उत्तम चिकित्सा मानी जाती रही है। छ महीने या १२ महीने के नये उत्पन्न हुए Pneumonic Type के उर क्षय के लिये विश्राम चिकित्सा या सेनिटोरियम चिकित्सा से बडा लाभ होता है।

क्योंकि सेनिटोरियम चिकित्सा के दौरान मे रोगी का तापमान तथा नाडी गति प्रति चार-चार घण्टो के बाद देखी जाती है, प्रति १५ दिन के बाद भार लिया जाता है, प्रति एक मास के बाद थूक की परीक्षा तथा Blood Sedimentation Rate, Differential Count तथा Radiography की जाती है, इसलिये रोग मे कितना सुधार हो रहा है इसका भी ठीक-ठीक पता चलता रहता है। यह ठीक है कि जीवाणु नाशक नवीन औषधियो का प्रयोग जब से आरम्भ हुआ है विश्राम तथा सेनिटोरियम चिकित्सा का वह महत्त्व नही रहा जो पहले था तथापि जब तक रोग सक्रिय रूप मे हो तब तक अब भी १ महीने तक की पूर्ण विश्राम चिकित्सा आवश्यक समझी जाती है।

औषधि चिकित्सा

Streptomycin (Streptomyces griseus से उत्पन्न १९४४ मे S A Walksman के द्वारा) का Sulphate Salt श्वेतवर्ण घुलनशील होता है। एक-एक ग्राम की मात्रा मे छोटी-छोटी शीशियो के अन्दर बन्द मिलता है। इसकी १ ग्राम मात्रा मे १० लाख Units होते हैं। इसकी एक Microgram मात्रा को १ Unit कहते है। इसकी दैनिक मात्रा १ ग्राम होती है जिसे ४-५ मिलिलि० Double Distilled Water या Saline मे मिलाकर फिर इसे दो भागो मे विभक्त करके १२-१२ घण्टे बाद मास द्वारा अर्थात् Gluteus या Deltoid किसी मासपेशी मे दिया जाता है। अथवा दो बार देना कठिन हो तो एक बार ही दिया जा सकता है। देने के एक घण्टे के अन्दर-अन्दर यह औषधि सम्पूर्ण रक्त मे व्याप्त हो जाती है और ८ घटे तक Cerebrospinal द्रव मे पूर्ण मात्रा मे रहती है और व्याप्त होने के बाद मूत्र द्वारा निकलने भी लग जाती है और २४ घटे मे सब बाहर निकल जाती है। क्योकि यह बाहर निकलने लग जाती है, इसलिये १२-१२ घटो के बाद दी जाती है, ताकि रक्त मे यह बराबर बनी रहे। बालको मे उनके प्रति किलोग्राम भार के पीछे ३० मिलिग्राम दैनिक मात्रा मे मास द्वारा दी जाती है। रक्त के द्वारा यह औषधि "क्षय-क्षत" प्रदेश तक पहुचती है और वहा बढते हुए जीवाणुओ को नष्ट करके उनकी होने वाली वृद्धि को रोक देती है। इस प्रकार यह जीवाणु रोधक (Bacteriostatic) औषधि है। जीवाणु वृद्धि के बद हो जाने से ज्वर, शोथ, अन्नारोचक आदि लक्षण शान्त होने लगते है। परन्तु फुफ्फुस आदि के क्षत हुए प्रदेश का रोहण या पूरण तो शरीर की अपनी शक्ति के द्वारा ही होता है, जो विश्राम, खुली हवा, तथा पौष्टिक भोजन के द्वारा बढती है, अर्थात् यह औषधि विश्राम चिकित्सा या सेनिटोरियम चिकित्सा की सहायक होती है।

तीव्र तथा प्रारम्भिक रूप मे विद्यमान क्षय रोग (Acute या Sub-acute रूप मे विद्यमान Caseous या Tuberculous Pneumonia, Broncho Pneumonia) के लिये यह औषधि विशेष लाभदायक होती है। क्योकि इस रूप मे रुग्ण प्रदेश की रक्तवाहिनिया अभी अवरुद्ध (Thrombosed) नही होती जिससे यह औषधि जीवाणु ग्रस्त प्रदेश तक भली प्रकार पहुच जाती है। परन्तु जब फुफ्फुस का एक बडा प्रदेश मृत (Necrosed) हो जाय, उसमे Vascular Thrombosis हो गया हो अथवा वहा गुहाभाव (Cavitation) हो गया हो तो वहा रक्तवाहिनियो द्वारा जब यह औषधि पहुच ही नही पाती तो इससे लाभ की आशा नही की जा सकती। फुफ्फुस के अन्दर हुए मरण (Necrosis तथा Cavitation) को तो विश्राम चिकित्सा से ही आराम आ सकता है। इसी प्रकार Fibrosis तथा Emphysema से युक्त फुफ्फुस क्षय रोग मे भी इससे कोई स्थायी लाभ नही हो सकता तथापि तीव्र क्षय रोग (Acute Exudative Tuberculosis) के लिये यह एक उत्तम औषधि है अस्थियो, सन्धियो, मूत्रमार्ग, लसीका ग्रन्थियो, आत, कही पर भी क्षय रोग हो इससे लाभ होता है। इसके १ ग्राम की दैनिक मात्रा मे (बालक मे ½ ग्राम) मास द्वारा देने से ज्वर हलका ही हो तो वह तीन-चार दिन मे शान्त हो जाता है। ज्वर आदि लक्षण कुछ अधिक उग्र रूप मे हो तो इस औषधि के एक-दो सप्ताह के प्रयोग के बाद वे शान्त हो जाते है। फुफ्फुस मे उत्पन्न हुआ शोथ शीघ्र शान्त हो जाता है, तथा क्षत हुआ प्रदेश यदि छोटा ही हो तो वह भरने लगता है तो भी इस औषधि के कार्य करने की एक सीमा है। उससे आगे इसके द्वारा सफलता नही मिलती। इस प्रकार इस औषधि को दैनिक १ ग्राम की मात्रा मे २ मास तक देने के बाद फुफ्फुस का रुग्ण प्रदेश X-Ray द्वारा देखने पर पर्याप्त साफ हुआ पाया जाता है। रोग के लक्षणो के शान्त हो

जाने पर अथवा २ मास के बाद जब फुफ्फुस के क्षत प्रदेश का रोहण प्रारम्भ हो जाता है तब इसे सप्ताह मे ३ बार अर्थात् एक-एक दिन छोडकर देना चाहिये। एक बार ५-६ मास तक ही इसे जारी रखना चाहिये । यह औपधि मस्तिष्क की अष्टम नाडी (Eighth Nerve) के लिये कुछ विपैली है जिससे विशेपत उसकी Vestibular Branch पर विपैला प्रभाव होकर शिरोभ्रम (Vertigo) का उपद्रव विशेपत. खडे होने पर लगता है या सहसा किसी चेष्टा करने पर सिर चकरा जाता है । अत बाद मे इसे सप्ताह मे ३ बार ही देना चाहिये । इसके लेने के तुरन्त बाद मुख के आसपास के प्रदेश मे सुप्ति की प्रतीति होती है उसकी परवाह न करनी चाहिये । ४० वर्प से ऊपर के व्यक्तियो को रोग मृदु रूप मे हो तो इस औपधि का प्रयोग प्रारम्भ से ही सप्ताह मे तीन बार करना चाहिये। प्राय ३ महीने से अधिक समय के लिये इसे प्रयोग मे नही लाया जाता अन्यथा क्षय जीवाणुओ पर इसका प्रभाव पडना बन्द हो जाता है। इसे किसी दूसरी क्षय रोधक औपधि के साथ दे तो इसे १२ मास तक जारी रख सकते है। जब थूक मे क्षय जीवाणु मिलना बन्द हो जाए तो इस औषधि का प्रयोग भी बन्द कर देना चाहिये। इस औपधि से शिरोभ्रम हो तो Stemetil देना चाहिये । दूसरा कोई Allergy सम्बन्धी लक्षण हो तो Corticosteroid का प्रयोग करके भी देखना चाहिये ।

(२) Para Amino salicylic Acid or Sodium Amino Salicylate (P A S) पहले-पहल जर्मनी मे Lehman ने १९४६ मे इस औपधि को क्षय रोग के लिये उपयोगी बतलाया था। वस्तुत यह क्षय रोग विनाशक एक मृदु एव निरुपद्रव औपधि है। यह भी रक्त द्वारा क्षत प्रदेश मे पहुचकर जीवाणु वृद्धि को रोकने (Bacteriostasis) का कार्य करती है। इसके दो सप्ताह तक प्रयोग से क्षय रोगी के ज्वर, कास, बलगम तथा बढा हुआ Blood Sedimentation Rate सभी घट जाते हैं तथा एक मास बाद रोगी की अवस्था पर्याप्त सुधर जाती है ।

मुख द्वारा यह औपधि भोजन के बाद दी जाती हे तथा खाने के बाद आधे घण्टे मे ही यह सम्पूर्ण रक्त मे व्याप्त हो जाती है । तथा खाने के तीन घण्टे बाद मूत्र द्वारा बहुत कुछ शरीर से निकल जाती है। रक्त मे इसकी मात्रा हर समय बनी रहे और जीवाणु नष्ट होते रहे, इस उद्देश्य से प्रति चार घण्टे के बाद दिन मे चार-पाच बार इस औपधि के Sodium या Calcium के Salt का प्रयोग किया जाता है। प्राय Streptomycin के सहायक रूप मे ही उसके साथ-साथ इसका प्रयोग किया जाता है। Streptomycin का अकेले ही प्रयोग चार मास तक प्रतिदिन किया जाय तो क्षय जीवाणु इतने हठी वा धृष्ट हो जाते है कि उन पर फिर इस औपधि का प्रभाव ही नही होता। इस दोप के निवारण के लिये Streptomycin को १½, २ मास तक प्रति दिन देने के बाद फिर सप्ताह मे २-३ बार ही दिया जाता है तथा P A S (Pas Granules, Aminacyl calcium Pas Aminacyl Sodium pas tab ५ ग्राम, Parasilindon tab. Indopharma, Benzacyl. tab) नामक इस औपधि को पहले पाच छ ग्राम दैनिक मात्रा मे और फिर क्रमश उसे बढाते हुए १०-१५ या १६ ग्राम दैनिक मात्रा तक पहुचा दिया जाता है। दैनिक मात्रा को बार-बार, भागो मे विभक्त करके ४ ग्राम की मात्रा मे (Rice paper cachets मे) प्रात ६ से साय ६ बजे तक तीन-चार बार करके भोजन के बाद दिया जाता है। Streptomycin जब सप्ताह मे तीन बार कर दिया जाता है तब भी इस औपधि को प्रतिदिन जारी रखा जाता है। इसकी जो मात्रा अरुचिकारक हो वह अधिक समझनी चाहिये । केवल इसी औपधि का प्रयोग १½, २ मास के बाद भी जारी रखा जाय तो भी क्षय जीवाणु हठी हो जाते है। यद्यपि Streptom के समान यह Resistance स्थायी नही होती परन्तु दोनो औषधियो का साथ-साथ प्रयोग करने से क्षय जीवाणु शीघ्र हठी नही होते, प्रत्युत बहुत देर के बाद हठी होते हैं तथा रोगी की अवस्था मे सुधार भी अधिक शीघ्रता से होता है। बालक के प्रति किलो भार के पीछे आधा ग्राम इसकी दैनिक मात्रा होती है। Isoniazid के साथ इसे प्रतिदिन ५ ग्राम मात्रा मे दो बार देना ही पर्याप्त होता है। इसके बुरे स्वाद को छिपाने के लिये इसे Dragees, Cachets आदि रूपो मे दिया जाता है। इस औपधि का दुष्प्रभाव आमाशय पर पड सकता है जिससे अरुचि या वमन या Toxic hepatitis के दुर्लक्षण हो सकते है। ऐसा होने लगे तो इसकी मात्रा कुछ कम कर देनी चाहिये ।

(३) Isonicotinic Acid Hydrazide (Nydrazid Squibb, Isonex Pfezer, Pulmizide Anglo-french, Pelazid glaxo) Isokin-syrup (Warner) भी बच्चो के लिये मिलता है। १ चमचे मे ५० मिलि० औपध है। इस औपधि का प्रयोग पहले पहल १९५२ मे हुआ। यह औषधि भी क्षय जीवाणु के लिये घातक (Bactericidal) है। यह P A S से अधिक प्रबल तथा Streptomycin के तुल्य बल वाली औषधि मानी जाती है। खाने के आधे घण्टे के अन्दर यह रक्त मे,

Cerebrospinal Fluid तथा Pleural Exudation मे फैल जाती है। Macrophages मे भी जिनमे जीवाणु बन्द होते हैं यह औषधि पहुच जाती है। केवल इसके प्रयोग से भी लाभ होता है। परन्तु तीन मास बाद क्षय जीवाणु हठी (Resistant) हो सकते हैं। जब Streptomycin या P A S इसमे से किसी के साथ-साथ इसका प्रयोग जारी रखा जाता है तो इस सहयोग के (Synergistic) रूप मे १८ से २४ मास तक निश्चिन्त होकर इसका प्रयोग कर सकते हैं। क्योकि फिर यह दुष्परिणाम शीघ्र न होकर देर बाद होता है। रोगी के प्रति किलोग्राम भार के पीछे इस औषधि की १० मिलिग्राम दैनिक मात्रा दी जाती है। इस हिसाब से युवक के लिये लगभग २००-३०० मिलिग्राम की इसकी दैनिक मात्रा होती है। जिसे दो या तीन भागो मे विभक्त करके ८-८ घटो के अन्तर से देते हैं। दो-तीन सप्ताह देने मे ज्वर, अन्नारोचक, कास, बलगम, अशक्ति आदि लक्षण शान्त हो जाते है। एक से ४ मास मे थूक मे जीवाणु नहीं रहते। साथ ही १ ग्राम Streptomycin को दो बार करके प्रात साय प्रतिदिन मास द्वारा दिया जाता है। इस प्रकार Isoniazid एक उत्तम सहायक (Adjuvant) औषधि है। इसके साथ Streptomycin को लगभग तीन महीनो तक निश्चिन्त होकर दे सकते है। क्योकि इसके साथ देने से भी क्षय जीवाणु के हठी कीटाणु (Resistant Strains) शीघ्र उत्पन्न नही होते। जीर्ण क्षय रोग मे Isoniazid से विशेष लाभ नही दीखता। तीव्र क्षय रोग मे अर्थात् Miliary Tuberculosis मे विशेष लाभ होता है। इसलिये क्षय रोग जनित Meningitis मे विशेष उपयोगी है। प्रति किलोग्राम भार के पीछे इस अवस्था मे इसकी १० मिलि० दैनिक मात्रा हे। इस औषधि से कोई विशेष दुष्प्रभाव नही होता। बहुत कम अवस्थाओ मे इसका प्रभाव Peripheral Nerves पर कुछ बुरा हो सकता है, जबकि इसे २०० मिलि० दैनिक से अधिक मात्रा मे चिरकाल तक दिया जाता है। इसी प्रकार मानसिक विक्षोभ शीलता का दुर्लक्षण भी हो सकता है। क्योकि यह मस्तिष्क मे Pyridoxine को कम करती है अत तब Pyridoxine का प्रयोग करने से यह दुर्लक्षण शात हो जाता है जिसे २५ मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन दिया जा सकता हे।

(४) Cortisone Therapy —Prednisolone के शोथ शामक (Anti-inflammatory) होने से इसके १० मिलि० के दिन मे २ बार १, १½ मास तक उपर्युक्त औषधियो के साथ देने से तीव्र (Fulminating) रोगी को और भी शीघ्र लाभ होने लगता है तथा इनके दुर्लक्षण भी नही होते तथा Corticotrophin के ३० यूनिट मात्रा मे दो सप्ताह मे एक बार देने से भी इसी प्रकार लाभ होता है। ये रुग्ण अग मे शोथ को अर्थात् Collagen की वृद्धि को या Fibrosis को रोक कर उपकारी होते है ऐसा प्रतीत होता है। विशेषत रोग Pleura मे हो या Meninges मे हो तो उनमे हुए शोथ को ये शान्त कर देते है। परन्तु इनका लगातार प्रयोग हानि कारक हो सकता हे।

(५) Thiosemicarbazone या Thiacetazone, भी १०-२५ मिलि० दैनिक मात्रा मे इस जीवाणु की वृद्धि को रोकती है। इस औषधि को Isoniazid के साथ मिलाकर दिया जाता है। इस प्रकार Isozone (Iso 75, Theacet 37 5mg) unithiben Tab Delone Tab आदि रूप मे इसका प्रयोग कर सकते हे। Tibizone, Tebofen भी ऐसे ही योग है।

उर क्षय रोग की जीवाणु नाशक चिकित्सा (Chemotherapy for Pulmonary T B)

पहले उर क्षय रोगी को Streptomycin १ ग्राम मात्रा मे मास द्वारा, P A S ४-५ ग्राम मात्रा मे ४ बार तथा Isoniazid १०० मिलि० मात्रा मे २ बार मुख द्वारा प्रति दिन दे दिये जाते हे। इनके देने से पहले रोगी का थूक प्रयोगशाला मे इस जाच के लिए भेज दिया जाता है कि इनमे से कोई ऐसी औषधि तो नही जिसका उसकी थूक मे पाये जाने वाले क्षय जीवाणुओ पर प्रभाव ही न हो, (Drug Sensitivity की परीक्षा) उदाहरणत सम्भव है कि रोगी के जीवाणुओ मे इनमे से किसी जैसे Isoniazid के लिए प्रतिरोधक शक्ति हो ऐसी अवस्था मे यदि रोगी को P.A S नही दिया जाता है तो रोगी के जीवाणुओ में Streptomycin के लिए ३ मास बाद प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो सकती है। अत ३ महीने तक जब तक कि प्रयोगशाला का परिणाम मिलता है तीनो औषधियो का साथ-साथ प्रयोग जारी रखा जाता हे क्योकि यदि कोई रोगी इनमे से किसी एक औषधि का ही सेवन करता है तो कुछ काल बाद उसके जीवाणु इस औषधि के प्रति हठी हो जाते है और उन हठी जीवाणुओ से फिर जिन व्यक्तियो मे इस रोग का सक्रमण होता है उन पर भी उस औषधि का कोई प्रभाव नही रहता। इस प्रकार केवल एक औषधि का सेवन करना अपने लिए ही नही दूसरो के लिये भी खतरे का कारण हो जाता है। तीन मास बाद यदि यह पता लगता है कि रोगी के जीवाणुओ

पर तीनो औपधियो का प्रभाव हे तब आगे के लिए रोगी को Isoniazid १०० मिलि० दिन मे ३ बार, PAS ५ ग्राम दिन मे दो बार पर ही रखा जाता है। इतनी PAS की मात्रा से रोग जीवाणुओ मे Isoniazid के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न नही होती। केवल इन दो औपधियो को देते रहने से ही ६० प्र० श० रोगी ठीक हो सकते है। परन्तु यदि थूक की परीक्षा करने पर पता लगे कि उसमे क्षय जीवाणु अब भी हैं तथा X-Ray परीक्षा से पता लगे कि फुफ्फुस मे गुहा अब भी हे तो Streptomycin का १ ग्राम की मात्रा मे शेप दोनो औपधियो की उपर्युक्त मात्रा के साथ प्रयोग जारी रखना चाहिए। PAS की मात्रा कम की जा सकती हे, क्योकि Isoniazid के कारण जीवाणु Streptomycin के विपरीत हठी नही बन सकते। इस चिकित्सा के ६ मास बाकायदा जारी रखने से बहुधा थूक मे यह जीवाणु लुप्त हो जाता है तथा फुफ्फुस गुहा भी ठीक हो जाती है। ६ मास की चिकित्सा के बाद भी जीवाणु मिले तो उन्हे हठी (Resistant) समझना चाहिए। Streptomycin के अति प्रयोग से शिरोभ्रम (Vestibular Vertigo) का उपद्रव हो सकता है। P.A.S तथा Isoniazid का प्रयोग प्रतिदिन जैसे पहले कहा गया है वैसे ही वृद्धो मे भी किया जाता है। दूसरे रोगियो मे भी यदि Streptomycin का शिरोभ्रम का उपद्रव दृष्टि-गत हो तो इसका प्रयोग सप्ताह मे ३ दिन तक ही कर देना चाहिए। औपध चिकित्सा को तब तक जारी रखना चाहिए जब तक थूक मे जीवाणुओ का आना बन्द न हो जाए तथा फुफ्फुस गुहा ठीक न हो जाए। गुहा के रह जाने पर इस रोग के पुनराक्रमण का भय रहता है। प्राय ६ मास या १२ मास या १८ मास तक औपधि चिकित्सा को जारी रखने से थूक मे जीवाणु तथा फुफ्फुस मे गुहा भाव दोनो ठीक हो जाया करते हे। इतने समय के बाद कुछ गुहा भाव रहे तो इसी चिकित्सा को २ वर्ष या उससे कुछ अधिक काल के लिए भी जारी रखना चाहिए। औपधियो को नियम से देते जाना चाहिए। बीच-बीच मे बन्द कर देने और औषध लेने मे लापरवाही से इस रोग के जीवाणु इन औषधियो के लिए हठी हो जाते है।

यदि पहले Streptomycin और Isoniazid ४-५ मास दिये जाये तो फिर प्रथम औषधि के स्थान पर PAS को ८-१० ग्राम दैनिक मात्रा मे १२-१६ मास तक दिया जा सकता हे। Isoniazid को तो जारी रखा जाता है या इसके साथ Sm को सप्ताह मे २ बार दिया जाता है। सक्षेप मे इन औषधियो का प्रयोग करने वाले परीक्षको ने परिणाम निकाले है कि रोगी के फुफ्फुस के शिखर के समीप इस रोग की छाया (Shadow) हो तो इस चिकित्सा से १½ वर्ष तक वह ठीक हो जाती है तथा ऐसा रोगी चिकित्सा काल मे कुछ-कुछ चलता-फिरता भी रह सकता है। यदि फुफ्फुस का एक बडा भाग इस रोग के कारण ठोस हो गया हो (Tuberculous Pneumonia) हो अर्थात् रोग कुछ तीव्र रूप मे हो तो रोगी को २-३ मास पूर्ण विश्राम मे रखकर ये औपधिया देनी चाहिये। इससे न तो वहा गुहा भाव (Cavitation) न स्नायु भाव (Fibrosis) होने पाता है। २-३ महीनो के विश्राम के बाद भी ३ मास का अपूर्ण विश्राम जारी रखना चाहिए। जब रोगी के फुफ्फुस का एक बडा भाग ठोस हो और उसमे कुछ गुहा भाव (Cavitation) भी हो तो रोगी को ३-४ मास पूर्ण विश्राम कराते हुए इन औपधियो के देने से यह गुहा भर जाती है, रोगी की थूक मे जीवाणु लुप्त हो जाते हैं। इसके बाद ३-४ मास उसे अपूर्ण विश्राम मे और रहना चाहिए तथा इन औपधियो का प्रयोग २ वर्ष तक जारी रखना चाहिए। ६ मास की चिकित्सा के बाद भी गुहा भाव (Cavitation) कुछ रहे तो ३ मास का विश्राम और कराने से वह भी लुप्त हो जाता है। जब दोनो या एक फुफ्फुस के बहुत से भाग मे स्नायु भाव Fibrosis हो और बीच मे गुहा भाव हो तब विश्राम को ६ मास तक जारी रखने तथा इन औपधियो को ४ वर्ष तक जारी रखने से उनकी थूक मे से जीवाणु लुप्त हो जाते है तथा ऐसे व्यक्ति के फुफ्फुस इतने ठीक हो जाते हे कि वह हलके काम करने के योग्य हो जाता है, गुहा भाव भी बहुधा ठीक हो जाता है। गुहा रह भी जाय तो उनमे विद्यमान थूक मे रोग जीवाणु नही मिलते। इन औपधियो को उचित मात्रा मे तथा १½ वर्ष तक बाकायदा न दिया जाय, अनियमित रूप मे दिया जाय तो जीवाणुओ मे Resistance के उत्पन्न होने का भय रहता हे। अत रोगी २-३ मास मे अच्छा भी हो जाय तो भी इनका प्रयोग नियम से जारी रखना चाहिये। रोगी ५-६ मास मे बिलकुल ठीक हुआ लगे तो Streptomycin को बन्द कर मुख से लेनी वाली औपधियो को जारी रखना चाहिए अर्थात् Isoniazid ३०० मिलि० तथा PAS की १० ग्राम दैनिक मात्रा जारी रखना चाहिए। इन्हे १½ वर्ष जारी रखे। बीच मे इस चिकित्सा को कभी भी न तोडे।

जैसे ऊपर कहा गया है यदि रोगी के जीवाणु इन औपधियो मे से किसी एक के लिये हठी हो गए हो अर्थात् उनमे से एक औषधि इसके लिए निष्प्रभाव हो गई हो तो शेप दो का प्रयोग १½, २ वर्ष तक करना चाहिए। यदि

पता लगे कि किसी रोगी के जीवाणु इनमे से दो ग्रौषधियो के लिए हठी हो गए है ग्रर्थात् उस पर इनमे से दो-तीन ग्रौषधियो का कोई प्रभाव नही होता तव एक वची हुई ग्रौषधि के साथ Pyrazınamıde (Pyrazınoıc Acid Amıde PZA Aldenamıde (१९५१) को ७५-१ ग्राम मात्रा मे (४०-५० मिलि० प्रति किलो के पीछे दैनिक मात्रा) दिन मे २ वार मुख द्वारा देना चाहिए। यह Streptomycın तथा Isonıazıd से निर्वल ग्रौषधि है। इस ग्रौषधि को ग्रकेले या Isonıazıd के साथ १-३ मास तक ही दिया जा सकता है, ग्रधिक काल के लिए नही क्योकि इसका यकृत् पर दुष्प्रभाव पड सकता है। इसके प्रयोग काल मे यकृत् की परीक्षा (Lıver Function Test १५-२० दिन के ग्रन्तर से) करते रहना चाहिए। ग्रर्थात् इससे Hepatıtıs कामला Jaundıce होने की ग्राशका रहती है।

Ethıonamıde (१९५९) Trescatyl, M B भी इस जीवाणु को नष्ट करने वाली उत्तम ग्रौषधि है पर महगी है। इसे २५-५ ग्राम मात्रा मे दिन मे ३ वार मुख से उपर्युक्त ग्रौषधियो मे से किसी एक के साथ १ वर्ष तक दे सकते है। इससे ग्ररुचि (Nausea) का उपद्रव हो सकता है। यदि किसी रोग के जीवाणु उपर्युक्त तीनो प्रधान ग्रौषधियो के लिए हठी हो जाये तो उसे Pyrazınamıde (२५-५ ग्राम मात्रा दिन मे ३ वार) Ethıonamıde इन दोनो को Vıomycın (१९५०) के साथ जिसे मास द्वारा २ ग्राम मात्रा मे दिन मे १ वार, सप्ताह मे केवल २-३ दिन दिया जाता है तथा इसे १½ मास तक जारी रखा जा सकता है, देना चाहिए। यह ग्रधिक शक्तिशाली ग्रौषधि नही है। Streptomycın तथा Isonıazıd की ग्रपेक्षा निर्वल ग्रौषधि है तथा उनकी ग्रपेक्षा ग्रधिक विषैली भी है। ग्रष्टम मस्तिष्क नाडी पर इसका दुष्प्रभाव हो सकता है जिससे शिरोभ्रम तथा वाधिर्य के उपद्रव हो सकते हैं। वृक्को पर भी इसका दुष्प्रभाव हो सकता है जिससे ग्रलव्यूमिन मेह हो सकता है जिससे यह सर्वप्रिय नही हुई पर उपर्युक्त मात्रा मे देने पर यह ग्रौषधि निरुपद्रव ही रहती है।

Cycloserıne (Seromycın) —यदि किसी रोगी के क्षय जीवाणु उपर्युक्त तीनो प्रधान ग्रौषधियो के लिए हठी हो जायें तो Pyrazınamıde तथा Ethıonamıde के साथ Cycloserıne को पहले २५ ग्राम मात्रा मे दिन मे १ वार मुख से देते हुए क्रमश १५ दिन तक वढाते हुए इसे २५ ग्राम मात्रा दिन मे ३ वार १ वर्ष तक देते रहना चाहिए। इसका विषैला प्रभाव भी हो सकता है ग्रर्थात् एक तो रोगी के मन (Central N System) पर इसका दुष्प्रभाव होकर उसके व्यक्तित्व मे कुछ परिवर्तन हो जाने का डर रहता है, वह विक्षोभशील हो सकता है। ग्रत जव इसकी वडी मात्रा दे रहे हो तव Pyrıdoxıne को भी २५-५० मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन देते रहना चाहिए तथा Dıphenyl hydantoın (Dılantın) १०० मिलि० दैनिक मात्रा मे देना चाहिए। इसे Vıomycın ग्रौर Pyrazınamıde के साथ भी दे सकते है।

लाक्षणिक चिकित्सा

(१) शुष्क कास या खुश्क खासी वहुत तग करे तो Tr Camphor Co २० वूद मात्रा मे Syrup Prunı serotıne २० वूद मिलाकर देते रहे या Pholcodıne (Ethnıne-Glaxo या Valledrıne M.B) ४ मिलिलि० रात को दे दें या Codeıne Phosphate १-२ ग्रेन का किसी रूप मे प्रयोग किया जा सकता है।

(२) रक्तस्राव (Haemoptysıs) होने पर रोगी को लिटा दे, भाषण तक वन्द कर दें, विश्राम से उसे ग्राराम ग्रा जाता है केवल जल या दूध ही दे, जो शीतल हो पर वर्फ न दे या फल रस दें। रक्त के जमाव Clottıng को वढाने के लिए १० प्र० श० १० सी० सी० Calcıum Gluconate के सोल्यूशन को शिरा द्वारा दे देना चाहिए ग्रथवा Haemostat का इञ्जेक्शन मास द्वारा दें या विटामिन "के" (Synkavıt) को २५-५० मिलि० मात्रा मे मास या शिरा द्वारा देना चाहिए। इसी प्रकार विटामिन "सी" को ५०० मिलि० मात्रा मे शिरा या मास द्वारा दे देना भी ठीक है। Pıtuıtrın १ सी० सी० (१० ı u) को १०-२० सी० सी० नार्मल सेलाइन मे मिला कर धीरे-धीरे (१सी०मी० १ मि० मे) शिरा द्वारा दे देने से फुफ्फुसो की रक्तवाहिनियो मे रक्तभार गिर जाता है एव रक्तस्राव वन्द हो जाता है। रोगी की चिन्ता को कम करने के लिए Phenobarbıtone Sodıum १-२ ग्रेन मात्रा से त्वचा द्वारा दे देना चाहिए। खून की कमी के लिए Plasma Substıtute को १ पा० मात्रा मे शिरा द्वारा दे दे। रक्तभार गिर गया हो तो Levophed ४ सी० सी० उसमे मिला दें।

रात्रि स्वेद के कष्ट के लिए Ext Belladonna Sıcc ½ ग्रेन दें या Atropıne Sulphate $\frac{1}{१५०}$-$\frac{1}{१००}$

ग्रेन मात्रा मे रात को मुख द्वारा दे सकते है, यद्यपि इससे साधारण ही लाभ होता है।

अतिसार की शिकायत हो तो भी Calcium के सिरा द्वारा देने से लाभ हो जाता है।

फुफ्फुस वायु प्रवेश या Pneumothorax —Pleura के साथ विद्यमान क्षय व्रण के खुल जाने से क्रमश उसमे वायु का प्रवेश हो जाय तो छाती मे भारी दर्द तथा उठने-वैठने पर श्वास काठिन्य के लक्षण होते है देखने पर एक छाती कम हिलती दीखती, नाडी गति व श्वास गति तीव्र होती है। इनके होने पर रोगी को पूर्ण विश्राम मे लिटाए रखना चाहिए जब तक Pleura की सब हवा विलीन न हो जाए। बहुधा विश्राम मे आराम आ जाता है। पर यदि श्वास काठिन्य अधिक हो तो दूसरे या तीसरे Inter Space मे Mid Clavicular रेखा पर छोटी नोक वाली Needle को Pleura मे डालकर उसे Artificial Pneumothorax यन्त्र के साथ लगा कर हवा को तब तक निकालना चाहिए जब तक Pleura मे दबाव बाहर के वायु-मण्डल जितना न हो जाय जिसका पता Manometer को ५-१० मिनट तक देखने से लग जाता है। दर्द के लिए वेदना शामक Pethidine Hydrochloride ५०-१०० मि० दे देवें। खासी के लिए Codeine दें, १ ग्रेन ३-४ घंटे के बाद दे दें। श्वास काठिन्य का लक्षण हो तो Oxygen देवें।

वाल सुलभ क्षय रोग चिकित्सा

वालक को उसके प्रति किलो ग्राम भार के पीछे प्रतिदिन २०-४० मिलि० मात्रा मे Streptomycin १-२ मास तक और उसके बाद सप्ताह मे २-३ वार इतनी मात्रा मे ३-६ मास तक दिया जाता है। Isoniazid प्रति किलोग्राम भार के पीछे प्रतिदिन ५-१० मिलि० मात्रा मे भोजन के बाद १-१½ वर्ष तक दिया जाता है।

P A S वालक को उसके प्रति किलोग्राम भार के पीछे प्रतिदिन ३००-५०० मिलि० मात्रा मे १-१½ वर्ष तक दिया जा सकता है। इनके साथ Prednisone, Prednisolone, Dexamethasone किसी को १-५ मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन देने से उपर्युक्त औषधियो का बल बढता है। इनके अतिरिक्त विटामिन "ए" (२४ सौ-२५ हजार यूनिट) "डी" (२५०-२५०० यूनिट) प्रतिदिन देने या Holibut Liver Oil १-८ बूद (१५०० से १२ हजार यूनिट) को देने तथा विटामिन "सी" २०० मिलि० प्रति दिन देने से भी इस रोग से लाभ होता है। इनके अतिरिक्त विटामिन "बी" के प्रयोग से भी विशेप लाभ होता है। बालकों मे Tuberculin Test पाजिटिव हो तो उन्हे Isoniazid प्रति किलो भार के पीछे ४ मिलि० तथा PAS २०० मिलि० मात्रा मे ६ मास तक प्रतिदिन देना हितकर कहा जाता है।

Callapse Therapy शैथिल्य चिकित्सा

क्षय जनित फुफ्फुस शोथ (Tuberculous Exudation and Cellular Infitration) तो ऊपर कही गई जीवाणु प्रतिरोधक चिकित्सा (Cemo Therapy मे बहुत ठीक हो जाता है तथा और छोटी-छोटी गुहाओ (Cavities) के हो जाने का रोग भी विश्राम चिकित्सा मे ठीक हो जाता है। बडी-बडी गुहायें (Cavities) भी इन दोनो प्रकार की चिकित्साओ के ६-१२ मास तक जारी रखने मे ठीक हो जाती है। पर इन दोनों प्रकार की चिकित्साओ के १-१½ वर्ष तक चलाने के बाद भी यदि थूक मे क्षय जीवाणु मिलें तथा X-Ray द्वारा गुहाभाव के चिह्न मिले तो रोग ग्रस्त फुफ्फुस खण्ड को पूर्ण विश्राम देने के लिये Callapse therapy का प्रयोग किया जाता है।

इस रोग की शल्य चिकित्सा सम्बन्धी मृदु (Minor) विधिया तो (१) Artificial Pneumothorax, (२) Phrenic paralysis और (३) Pneumo peritoneum है तथा प्रबल (Major) विधिया (१) Thoracoplasty, (२) Extrapleural Pneumothorax तथा (३) Resection हैं जिनमे से मृदु विधियो का प्रयोग अब नही किया जाता यद्यपि बडी Apical Cavity के लिये P.P. तथा दूसरी बडी Cavities के लिये A P का प्रयोग कभी-कभी किया जाता है। Thoracoplasty तथा Resection का प्रयोग ही विशेप अवस्थाओ मे किया जाता है।

Thoracoplasty

Permanent Collapse therapy

Collapse therapy की मृदु विधियो से थोडा सा रुग्ण फुफ्फुस एक दो वर्ष Collapsed रहने के बाद फिर बहुत कुछ स्वस्थावस्था मे आ जाता है। परन्तु जीर्ण उर क्षय रोग मे जब कि फुफ्फुस मे या उसके एक अंश मे गुहा भाव (Cavitation) और स्नायु भाव (Fibrosis) इतना अधिक हो चुका हो कि जिससे वह कठोर श्वास एव प्रश्वास के लिये सर्वथा अयोग्य हो गया हो और वह Collapse therapy से भी कार्यकारी न बनाया जा सकता हो तो उसे स्थायी रूप से Collapsed कर दिया

जाता है जिससे वह नीरोग तो हो जाता हे पर दुवारा श्वास-प्रश्वास मे भाग लेने योग्य नही बनता ।

इस शल्य कर्म मे पीठ पर Spine के समानान्तर उससे २ इच की दूरी पर प्रथम Thoracic Spine से लेकर नीचे Scapula के Angle के नीचे आगे की ओर मुडता हुआ चीरा दे कर Trapezius, Rhomboids, Latissimus dorsi तथा Serratus Anterior को विभक्त कर दिया जाता है और Scapula को उठाकर ऊपर की पसलियो को नगा कर लिया जाता हे। फिर छाती की ऊपर की प्रथम, द्वितीय पसलियो तथा तृतीय पसली के कुछ अ श को Sub-Periostially निकाल दिया जाता है। फिर रोग ग्रस्त फुफ्फुस के शिखर को छाती की दीवार से छुडाकर पृथक् किया जाता है अर्थात् Vertebrae के Transverse Processes से, Intercostal Muscles से, Subclavian Vessels से, पृथक् करके उसे उसके Hilum की तरफ सकुचित होने दिया जाता है। ऊपर की तीन पसलियो के निकाल देने से वहा छाती की दीवार अन्दर धस जाती है तथा वह वहा मृदु भी हो जाती है। पर कुछ काल वाद धसे हुए स्थान पर पसलिया फिर वन जाती हैं। धसी हुई छाती मृदु न होकर फिर कठोर हो जाती है। इस प्रकार रुग्ण फुफ्फुस को स्थायी रूप से निष्क्रिय Collapsed या Relaxed कर दिया जाता है, जिससे उसके अन्दर विद्यमान गुहाभाव का विकार पूर्णतया ठीक हो जाता है। फुफ्फुस के उपरले पिछले भाग मे गुहा भाव के होने पर इस शल्य कर्म से विशेष लाभ होता है। फुफ्फुस के निम्न भाग मे गुहा हो या क्षयज Bronchiectasis हो या Tubercular Abscess हो तो एक Lobe या Segment को निकाल देने मे Lobectomy या Resection के शल्य कर्म से लाभ होता है। दोनो ओर के फुफ्फुसो मे गुहा भाव हो तो शल्यकर्म नही किया जाता, औषधियो पर ही निर्भर रहना पडता हे।

साध्यासाध्य—उर क्षय रोग के अधिक वढ जाने से पहले ही चिकित्सा आरम्भ कर दी जाय तो इस रोग को सर्वथा ठीक किया जा सकता है। चिकित्सा से रोगी वाद मे २ साल ठीक रहे तो फिर वहुत कम रोगियो मे (१० प्र० श० से कम मे) यह दुवारा होता है।

पार्श्व शूल की चिकित्सा ·

शुष्क पार्श्व शूल (Fibrinous Pleurisy) की चिकित्सा

वहुधा यह शूल उर.क्षय के कारण ही होता है। अत विश्राम चिकित्सा के दो-तीन सप्ताह तक करने से लाभ हो जाता है। पार्श्व पर Iodex, Kaolin पोल्टीस का लेप अथवा, पसलियो की गतिशीलता को कम करने के लिए आगे मध्य रेखा से पीछे की मध्य रेखा तक Adhesive Tape से Strapping भी किया जाता है। कष्ट दायक खासी के लिए Syrup Codeine १ ड्राम दिन मे दो-तीन वार दिया जाता है।

आर्द्र पार्श्व शूल (Serofibrinous Pleurisy with Effusion) की चिकित्सा

जव तक द्रव विलीन न हो जाय रोगी को पूर्ण शय्या विश्राम मे रहना चाहिए। प्राय १ या १½ मास के पूर्ण विश्राम से Pleura मे विद्यमान यह द्रव विलीन हो जाया करता है। यह अधिक भी हो तो ३ माह पूर्ण शय्या विश्राम से विलीन हो जाता है। इसके वाद भी रोगी को १-२ मास मे धीरे-धीरे विश्राम चिकित्सा को छोड़ना चाहिए। ज्वर, नाडी गति की तीव्रता B S R की अधिकता ये लक्षण प्राय दो या तीन सप्ताह मे शान्त होते हे तथा द्रव उसके कुछ काल वाद विलीन होता है। इस विश्राम काल मे रोगी को नमक न देते हुए तथा जल की मात्रा भी दिन मे २ प्वाइण्ट तक ही देते हुए प्रोटीन, फैट, फल, विटामिन, कैल्सियम प्रधान आहार देना चाहिए। ग्रस्त छाती पर Liquor Iodi mit प्रति दूसरे दिन लगाना चाहिए। यदि द्रव दो तीन सप्ताह तक स्वय विलीन न हो तो Prednisolone को पहले १० फिर ५ मिलि० मात्रा मे दिन मे २ वार १ महीना मुख द्वारा देना चाहिए। इससे यह विलीन हो जाता है। Chemotherapy अर्थात् Streptomycin तथा Isoniazid या Streptomycin और P A S या PAS १० ग्राम और Isoniazid २०० मिलि० का प्रयोग ३ मास तक करना चाहिए। इसके ठीक हो जाने पर भी क्षयनाशक उपर्युक्त चिकित्सा का प्रयोग १-१½ वर्ष तक करना चाहिए तथा ५ वर्ष तक रोगी की परीक्षा करते रहना चाहिए।

Thoracentesis—Paracentesis अथवा Aspiration

जब तक तापमान रहे अर्थात् जब तक Pleura सूजा हो उसे छेडना उचित नही। परन्तु विश्राम चिकित्सा तथा Chemotherapy द्वारा जव ज्वर शान्त हो जाय तव Aspiration के द्वारा Pleura मे विद्यमान द्रव को थोडा-थोडा करके निकाल लेना चाहिए। दो तीन सप्ताह के विश्राम के वाद भी ज्वर शान्त न हो तो द्रव का Aspiration कर ही देना चाहिए। द्रव के छाती मे रहने से हानि ही होती हे, लाभ नही। फुफ्फुस के शिखर मे

क्षय रोग के कारण इस द्रव की उत्पत्ति ऊपर के Pleura से होती है। परन्तु यह द्रव उत्पन्न होकर फुफ्फुस के निम्न भाग पर जमा होता है और उसे Collapsed कर देता है अर्थात् फुफ्फुस का स्वस्थ भाग तो Collapsed हो जाता है तथा ऊपर के रुग्ण भाग को अधिक कार्य करना पडता है। द्रव के कारण ऊपर का रुग्ण फुफ्फुस तो Collapsed होता नही प्रत्युत नीचे का स्वस्थ फुफ्फुस Collapsed हो जाता है। साथ ही इस द्रव के Fibrin के Pleura पर जम जाने से फुफ्फुस और छाती की दीवार परस्पर जुड जाती हैं जिससे रोगी के फुफ्फुस मे सदा के लिए एक स्थायी विकृति उत्पन्न हो जाती है। यह भी कहा जाता है कि फुफ्फुस मे द्रव सचित रहे तो उसके कारण विष सचार के बने रहने का भी भय रहता है। इसके अतिरिक्त द्रव के वहा रहने से फुफ्फुस का चित्र या Roentgenogram साफ-साफ नही आ सकता एव फुफ्फुस मे विद्यमान विकार का पता नही चल सकता। अत द्रवयुक्त पर्यावरण शूल मे द्रव को थोडा-थोडा करके निकाल ही देना चाहिए।

रोगी को बैठाकर या स्वस्थ पार्श्व पर आधा लिटाकर, रुग्ण पार्श्व की त्वचा को कृमि हीन करके Mid Axillary Line मे छठे या सातवे Inter Space के अन्दर Parietal Pleura तक के प्रदेश मे २ प्रतिशतक Procaine Fluid २-४ मिलिलि० डाल दिया जाता है। सुई को धीरे-धीरे धकेला जाता है ताकि Pleura का पृष्ठ जब तक सज्ञाहीन न हो जाय तब तक सुई Pleura मे न जाय। इसी Needle तथा Syringe मे यदि कुछ Negative Pressure रखा जाय तो Pleura का द्रव स्वय सीरिंज मे खिच जाता है और द्रव की गहराई का पता चल जाता है। इस Needle पर एक छ इच लम्बी रबड ट्यूब जिसके दोनो ओर Adapters लगे हो फिट कर दी जाती है और ट्यूब के साथ एक ५० सी० सी० सीरिंज लगाकर द्रव को खीच कर सीरिंज भर ली जाती है। सीरिंज के भर जाने पर ट्यूब को Spring Clip से Clamp करने के बाद ट्यूब से पृथक् करके खाली कर दिया जाता है तथा फिर पूर्ववत् ट्यूब से सम्बन्धित करके Clamp को हटाकर भर लिया जाता है। इस विधि से बार-बार सीरिंज लगाई तथा खाली की जाती है। इस प्रकार एक बार मे १०-१५ औंस ही द्रव निकालना चाहिए। अधिक निकालने मे रोगी को सास मे कठिनता होने लगती है। बचा हुआ द्रव बहुधा स्वय विलीन हो जाता है। फिर सुई को निकाल कर Collodion से सुराख को बन्द कर देना चाहिए। इससे पहले Streptomycin ३ ग्राम को १०-१२ सी० सी० शुद्ध जल मे मिलाकर त्वचा मे डाल दिया जाय तो यह रोग शीघ्र शान्त होने लगता है या एक दो दिन के अन्तर मे फिर एक बार द्रव निकाल कर इसी प्रकार Streptomycin वहा पर डाल दिया जाता है। इस बीच मे त्वचा द्वारा यह औषधि नही देनी चाहिए। Isoniazid अवश्य देते रहना चाहिए। बाद मे Streptomycin का प्रयोग मास द्वारा आरम्भ कर देना चाहिए। क्योंकि जल युक्त पार्श्व के दो तीन वर्ष के अन्दर-अन्दर उर क्षय हो जाने की आशका रहती है अत २ वर्ष तक ३-३ मास बाद X-Ray के द्वारा फुफ्फुस की अवस्था की जाच करते रहना चाहिए तथा इन क्षय नाशक औषधियो का प्रयोग ८-९ मास जारी रखना चाहिए।

कण्ठक्षय Tuberculous Laryngitis के लिए फुफ्फुस क्षय रोग की चिकित्सा १-१½ मास तक करनी चाहिए। साथ ही Creosote १-५ बून्द मात्रा में भी देना चाहिए। Linctus-codeine ३-४ मिलिलि० या Codeine Phosphate tablet आधाग्रेन गोली दिन मे ३ बार दें। कठ को आराम देने के लिये भाषण भी बहुत कम करना चाहिये। भोजन भी अर्ध द्रव देवें।

क्षयोदर Abdominal Tuberculosis की चिकित्सा

आर्द्र क्षयोदर, शुष्क क्षयोदर की अपेक्षा अधिक सुख साध्य है। रोगी को खुली हवा मे रखकर पौष्टिक भोजन तथा Vitamin A D तथा C देते हुए विश्राम चिकित्सा मे तीन मास तक रखना चाहिए तथा साथ ही Chemotherapy प्रारम्भ कर देनी चाहिए अर्थात् Isoniazid १५०, २०० मिलिग्राम प्रतिदिन देनी चाहिए तथा Streptomycin को भी प्रतिदिन देना चाहिए। ३ महीने के बाद फिर रोगी को केवल Isoniazid तथा P A S की १२ ग्राम की दैनिक मात्रा पर तीन महीने रखना चाहिए। इस प्रकार Chemotherapy तथा विश्राम चिकित्सा से Exudative Tuberculous Peritonitis मे ६ मास मे पर्याप्त लाभ हो जाता है। तो भी चिकित्सा को साल भर जारी रखे।

यदि Peritoneum मे द्रव अधिक हो, आते कोष्ठ की दीवार से जुडी हुई न हो तो Paracentesis द्वारा जल निकालने से भी लाभ होता है।

शुष्क क्षयोदर Chronic Fibroid या Plastic Tuberculous Paritonitis मे विश्राम चिकित्सा तथा Chemotherapy करनी चाहिए तथा यदि उर क्षय न हो तो Ultra Violet X-Ray के दो मिनट तक के Exposure से प्रारम्भ करके प्रतिदिन १ मिनट बढाते हुए नौवे दिन १० मिनट तक पेट को Exposure देने

और फिर इतने को वीस दिन तक जारी रखने से भी लाभ होता है। इससे Exudate विलीन हो जाता है। मलवन्ध (Intestinal Obstruction के लिए Liquid Paraffine प्रति दिन देना चाहिए या Enema glyecrin का दे, रेचक औषध न दे।

Ileitis—मे विश्राम चिकित्सा, प्रोटीन विटामिन प्रधान आहार, Streptomycin, Isoniazid, Cortisone चिकित्सा से वहुधा लाभ हो जाता है।

आन्त्र क्षय Ulcerative Enterocolitis की चिकित्सा

उर क्षय की उचित चिकित्सा की जाय तो आन्त्रक्षय नही होता।

पहले विश्राम चिकित्सा तथा Chemotherapy का प्रयोग १२ मास करना चाहिए। फिर आवश्यक हो तो केवल I N H तथा PAS का प्रयोग कुछ मास तक करना चाहिए। B-complex, Calcium Gluconate तथा Vitamin 'C' व 'D' का प्रयोग करने से भी व्रणो के रोहण मे सहायता मिलती है। भोजन पौष्टिक पर मृदु होना चाहिए जिसमे वीज छिलके आदि न हो तथा तले हुए आहार द्रव्य न हो। शूल के लिए Antispasmodic औपधिया दे।

गुदक्षय

गुद के पास हुई विद्रधि को खोल दे तथा क्षयरोग मे कही औपधियो का प्रयोग महीनो तक करे।

मस्तिष्क क्षय Tuberculous Meningitis की चिकित्सा

इसकी चिकित्सा शीघ्र होनी चाहिए। देर हो जाने या Fibrosis हो जाने पर मस्तिष्क सुपुम्ना द्रव के मार्ग मे अवरोध हो सकता है एव रोग असाध्य हो जाता है।

मस्तिष्क क्षय रोगी वालक को Streptomycin के ½ से १ ग्राम दैनिक मात्रा मे अर्थात् ३ वर्ष से नीचे के वालक मे ½ इससे वडी आयु के वालक मे १ ग्राम मात्रा २-४ भागो मे विभक्त करके (१ किलो० भार के पीछे ३०-४० मिलि० दैनिक) मास द्वारा देनी चाहिए। साथ ही ५०-१०० मिलिग्राम की मात्रा मे या १ किलो० भार के पीछे २ मिलि० मात्रा मे इसे Intrathecally या सुपुम्ना काण्ड के द्वारा भी प्रतिदिन दे देना चाहिए। या Isoniazid को १० मिलि० मात्रा मे २ मिलिलि० नार्मल सेलाइन मे इसी तरह दे। Streptomycin के इस मार्ग द्वारा देने से वधिरता का भय रहता है। अव उसे इस मार्ग द्वारा विशेष नही दिया जाता है। इससे दर्द तथा प्रलाप को शीघ्र लाभ होता है मास द्वारा तो इसे ३-६ मास तक तथा सुपुम्ना काण्ड द्वारा इसे एक मास तक अर्थात् दो सप्ताह तो प्रति दिन, २ सप्ताह १-१ दिन छोड कर देना चाहिए। वहुत से तो जव तक वालक मूर्छित रहता है तभी तक इस रास्ते से देते है। इस औपधि के साथ-साथ Isoniazid को ५० मिलिग्राम की मात्रा मे (प्रति किलो भार के पीछे ८-१० मिलि० दैनिक मात्रा) दिन मे दो वार मुख द्वारा १½ मास तक दिया जाता है या Injectable isoniazid को 100 mg मात्रा मे मास द्वारा दैनिक दे। साथ ही P A S को १-३ ग्राम की मात्रा मे ४ वार भोजन देने के वाद दे दिया जाता है। इस Chemotherapy से लगभग ३ सप्ताह मे लाभ प्रतीत होने लगता है तथा दो मास की चिकित्सा से रोग वहुत कुछ शान्त हो जाता है। इन औपधियो के साथ Decadron १ सी० सी० या Gel Solution of A C T H १२-५० यूनिट दिन मे २ वार १ सप्ताह तक त्वचा या मास द्वारा देने से रोग मे विशेष लाभ होता है या Prednisolone का प्रयोग करना चाहिए। उससे मूर्छा कम होती है। इससे सुपुम्ना द्वारा Streptomycin न भी दिया जाय तो भी रोगी की अवस्था सुधर जाती है। मस्तिष्क का Oedema कम होता है। Toxaemia घटता है, Prednisolone को पहले ७ दिन ३० मिलि० दैनिक मात्रा मे फिर १ मास तक क्रमश कम मात्रा मे दे। तीन मास वाद Streptomycin आधे ग्राम की मात्रा मे सप्ताह मे तीन चार वार देना आरम्भ कर ६ मास उसे जारी रखना चाहिए। मस्तिष्क क्षय का रोग युवक मे हो तो Streptomycin १ ग्राम की मात्रा मे प्रतिदिन मास द्वारा तथा १०० मिलिग्राम की मात्रा मे इसे Intrathecally या २५ मिलि० Isoniazid को ३ मिलि० नार्मल सेलाइन मे एक दो सप्ताह तक देना चाहिए। वालक मे सुपुम्ना द्वारा ६० मिलिग्राम मात्रा ठीक है। इसके साथ-साथ Isoniazid ३०० मिलिग्राम की मात्रा मे (वालक मे प्रति किलो भार के पीछे १० मिलि० २-४ वार वाट के) तथा P A S १२ ग्राम दैनिक मात्रा मे भी विभक्त करके दे देने चाहिए। वल की रक्षा के लिए विशेषत. C N System की क्षतिपूर्ति के लिए विटामिन 'सी' तथा विटामिन 'वी' कम्प्लेक्स का प्रयोग प्रतिदिन जारी रखना चाहिए। I N H के विपैले प्रभाव से वचाने के लिए विटामिन वी$_6$ का ३० मिलि० मात्रा मे भी प्रति दिन प्रयोग करते रहना चाहिए। आक्षेप के लक्षणो की शान्ति के लिए Phenobarbitone ½ ग्रेन दिन मे २ वार दे देना चाहिए। तीन मास तक इनका प्रयोग करने के

वाद १५ दिन तक इनका प्रयोग वन्द कर दिया जाता है और फिर तीन मास इसी प्रकार इन औषधियो का प्रयोग किया जाता है। इस चिकित्सा के दौरान मे प्रति सप्ताह Cerebrospinal Fluid की परीक्षा की जाय तो रोगी की अवस्था मे जो सुधार होता है उसका पता चलता रहता है। रोगी अच्छा होने लगे तो पहले ग्लूकोज की मात्रा इस द्रव मे नार्मल हो जाती है।

इस रोग मे रोगी के मूर्छित होने के कारण उसकी शुश्रूषा का भार अधिक होता है। अत उसकी चिकित्सा हस्पताल मे ही रखकर हो सकती है। रोगी वालक को दूध आदि द्रव भोजनो पर ही रखना चाहिए।

अस्थि क्षय Tuberculosis of the Bone की चिकित्सा

अस्थि क्षय का रोग Carpal, Tarsal, Metacarpal तथा Metatarsal Bones, Phalanges, Ribs, Strenum तथा Vertebrae मे हुआ करता है। वालको मे प्रतिरोधक शक्ति के पर्याप्त मात्रा मे होने से अस्थिक्षय शीघ्र ठीक हो जाता है। युवको मे यह रोग कुछ देर से ठीक होता है। परन्तु वृद्धो मे ठीक स्वाभाविक प्रतिरोधक शक्ति के न्यून होने से ठीक नही हो पाता।

इस रोग के निवारण के लिए एक तो खुली हवा, पौष्टिक भोजन, विटामिन आदि के द्वारा पोपक चिकित्सा की जाती है। दूसरा Chemotherapy का प्रयोग किया जाता है अर्थात् Streptomycin को १ ग्राम दैनिक मात्रा मे १० दिन तक देकर फिर सप्ताह मे केवल दो वार देते हुए, पाच, छ मास तक जारी रखा जाता है। इसके साथ P A S की १२ ग्राम की दैनिक मात्रा भी चार वार करके दे दी जाती है। अथवा Isoniazid को १५०-२०० मिलिग्राम की दैनिक मात्रा मे दो वार करके दे दिया जाता है। इस औषधि का प्रयोग करने पर Vitamin B Complex भी देना आवश्यक होता है। ५ वर्ष से छोटे वालक मे S M आधे ग्राम की मात्रा मे प्रति दिन देते हुए कुल ६० ग्राम तक, १० वर्ष से छोटे मे $\frac{3}{4}$ ग्राम मात्रा मे प्र० दि० देते हुए कुल ६० ग्राम तक देना चाहिये।

इस शारीरिक चिकित्सा के अतिरिक्त स्थानिक विश्राम चिकित्सा (Immobilization) अर्थात Plaster of paris की पट्टी के द्वारा रुग्ण अस्थि को ५-६ मास के लिए पूर्णतया निश्चल कर देने का उपाय भी किया जाता है। पाव मे रोग हो तो Ankle Joint को भी स्थिर कर दिया जाता है। Vertebrae मे अस्थि क्षय हो तो वालक को Plaster bed पर या Spinal Frame मे चित लिटाकर कम से कम ६ मास रखा जाता है। यह यत्न किया जाता है कि रुग्ण अस्थि पर न तो भार पड़े और ना ही उसमे किसी प्रकार की चेष्टा हो। पृष्ठ वशास्थि से सम्बन्धित विद्रधि मे से Aspiration द्वारा पूय निकाल दी जाती है। जव तक Blood Sedimentation Rate तापमान, भूख, भार तथा अस्थि का X-Ray चित्र नार्मल न हो जाय विश्राम चिकित्सा को जारी रखा जाता है। फिर प्लास्टर की पट्टी को हटाकर रुग्ण अस्थि को चमडे तथा लोहे से वनी Splints के द्वारा एक सहारा (Support) दे दिया जाता है जिसके द्वारा वह धक्को से वच सके। जव Vertebrae मे पूर्ण Ankylosis हो जाय तथा अस्थि मे उत्पन्न हुआ रोग शान्त हो जाय तभी विश्राम चिकित्सा समाप्त की जाती है। पाव की अस्थियो मे उत्पन्न क्षय रोग के अच्छे हो जाने पर भी Walking Calipers पर ही रोगी को चलने की छूट दी जाती है।

पृष्ठ वशास्थि (Vertebrae) मे अस्थि क्षय रोग के कारण वहुधा उरुस्तम्भ (Paraplegia) हो जाया करता है। उसके लिए भी Chemotherapy तथा पृष्ठ की Immobilization चिकित्सा करनी चाहिए। अर्थात् युवक को Streptomycin १ ग्राम, Isoniazid २५० मिलि० Para-aminosalicylic Acid १२ ग्राम रोज महीनो तक मिलना चाहिये। फिर इसके वाद Isoniazid P A S ये दो औषधिया ही १२-१८ महीनो तक जारी रखनी चाहिये। विश्राम तथा पौष्टिक भोजन चिकित्सा भी होनी चाहिए। परन्तु यदि इस चिकित्सा से उरुस्तम्भ अथवा Paravertebral Abscess को लाभ न हो तो Vertebral body मे विद्यमान Cold Abscess को साफ करने के लिए शल्य कर्म किया जाता है। पूय के तथा Necrosed अवयव के निकल जाने पर फिर औषधियो का प्रभाव शीघ्र हो जाता है। इस शल्य कर्म मे रोग-ग्रस्त Vertebra पर Incision देकर वहा की एक दो पसलियो के अन्दर-अन्दर के दो इच भाग को तथा साथ ही एक दो Vertebrae के Transverse Processes को काटकर अलग कर दिया जाता है। फिर Blunt Dissection करते हुए रोग ग्रस्त अस्थि के Body मे विद्यमान Cold Abscess को खोलकर उसके अन्दर सचित पूय को भली प्रकार साफ करके इस जख्म की ड्रेसिंग कर दी जाती है। इस शल्य कर्म को इसीलिए Costotransversectomy कहा जाता है। Antero Lateral Decompression of the Spine के शल्य

कर्म से शीघ्र ही तथा स्थायी रूप से इस रोग मे लाभ होता देखा जा रहा हे।

सन्धि क्षय Tuberculous Joints की चिकित्सा

वंक्षण, जानु, कूर्पर, आदि सवियो मे क्षय रोग विशेपत होता हुआ पाया जाता है। वक्षण सन्धि (Hip Joint) मे क्षय रोग हो तो Chemotherapy के अतिरिक्त पहले Immobilization With Traction की चिकित्सा की जाती हे अर्थात् रोगी की रुग्ण टाग को Robert Jone's Abduction Frame मे कुछ Abduction कुछ Flexion और साधारण Rotation की अवस्था मे रख कर तथा खीच (Traction) देकर लिटा दिया जाता है। इस खीच के द्वारा दोनो रुग्ण अस्थिया एक दूसरे से कुछ दूर हो जाती हैं। जिससे दर्द का लक्षण शान्त हो जाता है। इससे टाग के अन्दर विपमता (Deformity) भी नही होती। सन्धिगत रोग के शान्त हो जाने पर जब दर्द नही रहता तब खीच की आवश्यकता नही रहती परन्तु सन्धि को स्थिर एव निश्चल रखने के लिए वगल से लेकर सारी टाग तक Plaster Cast वाध दिया जाता है और इसे महीनो तक रखा जाता है। इस चिकित्सा से सन्धि की दोनो अस्थियो मे Fibrous Ankylosis हो जाता है, अर्थात् दोनो सन्धिगत अस्थिया Fibrous Tissue के द्वारा परस्पर जुड जाती है। परन्तु यह जोड इतना पक्का नही होता कि सव प्रकार का भार या धक्का सहार सके। अत फिर Plaster को हटाकर रोगी की टाग पर Walking Calipers Splint वाध दी जाती है जिस पर वह चल सकता है। इसे भी एक वर्प तक रखा जाता हे। इस चिकित्सा से वक्षण सधि का क्षय रोग प्राय शान्त हो जाता है।

पर इतने पर भी यदि यह रोग शान्त न हो या ठीक होकर फिर हो जाय तो Arthrodesis का शल्य कर्म किया जाता हे। इसे Ileofemoral Arthrodesis भी कह सकते हे जिसमे Acetabulum के ऊपर Ileum से Greater Trochanter के बीच Bone Graft रख दिया जाता है, जिससे इस सन्धि मे दृढ Ankylosis हो जाता हे। जानु सन्धि (Knee Joint) मे क्षय रोग हो तो रोगी को विस्तर पर लिटाकर रुग्ण टाग को Thomas की Splint मे खीच (Extension) देकर स्थिर कर देना चाहिये, साथ ही Chemotherapy जारी कर देनी चाहिए। कुछ महीनो मे Synovial Type के जानु सन्धि क्षय मे इससे लाभ हो जाता है अथवा Pelvis से पैर तक टाग को Plaster of Paris मे स्थिर करके १ वर्प तक इसी अवस्था मे रखना चाहिए और फिर रोगी को Walking Caliper Splint पर चलने की छूट दे देनी चाहिए। रोग अधिक हो सधिगत अस्थिया ग्रस्त हो तो Synovectomy का शल्य कर्म आवश्यक होता है।

कूर्पर सधि (Elbow Joint) की Synovial Membrane मे रोग होकर श्वेत वर्ण शोथ हो जाय तो भी क्षय रोग का सूचक होता है। कोहणी को ९० डिग्री से कुछ अधिक डिग्री पर रख कर तथा हथेली को कुछ ऊपर की तरफ फिरा कर Plaster of Paris की Splint मे स्थिर कर देना चाहिए। सात, आठ महीनो तक इस प्रकार कोहणी को निश्चल रखने तथा Chemotherapy का प्रयोग करते रहने से इस सन्धि का रोग शान्त हो जाता है।

चर्म क्षय Lupus Vulgaris की चिकित्सा

Isoniazid के पहले २०० और फिर ३०० मिलिग्राम की मात्रा मे प्रतिदिन देने और इसके ४-६ मास तक जारी रखने से इस रोग के Nodules, Scales, व्रण आदि पूर्णतया साफ हो जाते हे। इस औषधि के साथ-साथ Vitamin B Complex का प्रयोग करने से किसी उपद्रव होने का भय नही रहता है।

रोगी को पौष्टिक भोजन, दूध, घृत, फल, रस आदि देना चाहिये जिससे उसकी रोग प्रतिरोधक शक्ति वढे।

Primary Tuberculous Infection, Glandular Tuberculosis, Tuberculous Laryngitis .

इन सर्व रोगो के लिए विश्राम चिकित्सा, पौष्टिक भोजन, खुली हवा, Vitamin A D C तथा Chemotherapy विशेप लाभदायक होते है। बालक को सूची वेध न देकर P A S (प्रति किलो २०० मिलि०) तथा Isoniazid (प्रति किलो २० मिलि०) ही दिये जा सकते है। साधारणत २०० मिलि० Isoniazid तथा ६०० मिलि० P A S दैनिक दे देना चाहिये। P A S के स्थान पर Streptomycin प्रति किलो ४५ मिलि० के हिसाव से दिया जा सकता है।

ग्रन्थि क्षय (Lymphadenitis)

रोग को रोकने के लिए पहले ३-४ मास Cod Liver Oil, विटामिन 'डी' (Calciferol Ostelin) विटामिन 'वी' तथा 'सी' का प्रयोग करना चाहिए। फिर Prednisolone १०-१५ मिलि० दैनिक या Betnesol 5 mg—दिन मे ३ वार तथा Chemotherapy का प्रयोग २ मास तक करना चाहिये। फिर २ मास १-१ दिन छोडकर फिर ३-४ मास सप्ताह मे २ वार इसका प्रयोग जारी रखना चाहिये। फिर Strepto

का इन्जेक्शन बन्द करके I N H तथा Thiacetazone का प्रयोग ही एक वर्ष जारी रखना चाहिए। पकी हुई ग्रन्थि बाहर हो तो उसमे से Aspiration द्वारा पूय को निकाल कर आधा ग्राम Streptomycin २ सी० सी० शुद्ध जल मे मिला कर वहा प्रविष्ट कर देना चाहिए। यह पूय निकालने तथा द्रव डालने की प्रक्रिया सप्ताह मे २ बार करनी चाहिये या केवल खुली ग्रन्थि पर इसका पौडर छिडक कर पट्टी कर देनी चाहिए। मास द्वारा Streptomycin का प्रयोग तो सप्ताह मे ३ बार चालू रखना चाहिए। Ultra Violet Exposure से भी लाभ होता है। Scrofuloderma के लिए Anti T B औषधियो का प्रयोग करे।

मरणासन्न क्षय रोगी को जीवनीय या उत्तेजक औषधि न देकर उसके कष्ट को कम करने वाली कोई औषधि जैसे Morphine, Sequil या Barbiturate ४-४ घन्टे के अन्तर से देनी चाहिए ताकि अन्त शान्तिमय हो।

क्षय प्रतिरोधक चिकित्सा Preventive Treatment of Tuberculosis

(१) B C G Vaccination — जीवित क्षय जीवाणुओ के अत्यन्त स्वल्प मात्रा मे शरीर मे प्रवेश करने पर शरीर मे क्षय रोग भी उत्पन्न नही होता तथा इन जीवाणुओ के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति भी हो जाती है। इसीलिए Primary Infection के अति मृदु रूप मे होने पर सहस्रो व्यक्तियो मे इस रोग के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो जाया करती है। इसी आधार पर फ्रास के प्रोफेसर Charles Calmette तथा प्रोफेसर Guerin ने १९०६ मे Bovine Strain of Tubercle Bacilli की Glycerinated Oxbile के माध्यम पर खेती आरम्भ की। कुछ-कुछ दिनो बाद उन्होने इस जीवाणु को Transplant करके इनकी तीव्रता को कम और अधिक कम करने का यत्न किया। इस प्रकार चार वर्ष तक लगातार इन जीवाणुओ को निर्बल करते-करते उन्होने इतना निर्बल कर दिया कि गिनी पिग मे इनके प्रविष्ट कर देने पर भी उनमे क्षय रोग उत्पन्न होना बन्द हो गया। परन्तु खरगोश आदि छोटे प्राणियो मे फिर भी इनसे क्षय रोग उत्पन्न होते हुए उन्होने देखा। फिर १३ वर्ष तक इनके Sub culture करने के बाद उन्होने यह देखा कि छोटे प्राणियो मे भी उन जीवाणुओ के प्रविष्ट कर देने से अब क्षय रोग उत्पन्न नही होता। तब १९२७ मे पहले इन जीवाणुओ को मनुष्य मे प्रविष्ट करके देखा गया और उसके लिए भी इन जीवाणुओ को निरुपद्रव पाया गया। इसके बाद उनकी लेबोरेटरी अर्थात् Pasteur Institute of Paris से ससार के सब देशो ने इस निर्बल हुए जीवाणु को लेकर इससे B C G (Bile या Bacilli Calmette-Guerin) Vaccine बनाना आरम्भ किया।

हमारे देश मे यह Vaccine मद्रास मे बडी सावधानी के साथ तैयार किया जाता है। अर्थात् Oxbile के स्थान अब इसे एक कृत्रिम Sauton माध्यम पर Culture किया जाता है। १४ दिन उस पर इसकी वृद्धि कर के Sauton माध्यम मे इसका घोल बनाया जाता है जिसके १ सी० सी० मे १० मिलियन Bacilli होते है, दूसरे शब्दो मे २५ मिलि ग्राम Bacilli होते है। मद्रास की B C G मे एक सी० सी० मे ४ मिलियन Bacilli होते है। Sealed तथा Sterile किये हुए Ampules मे यह वहा २ से ४ सेन्टीग्रेड डिग्री पर रखी रहती है। वहा से निकलने के बाद १४ दिन के अन्दर अन्दर इसे प्रयुक्त करना होता है।

जिन बालको मे Primary Infection हो जाता है उनमे तो स्वभावत क्षय रोग के लिए प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो ही जाती है। उनमे B C G Vaccine देने की आवश्यकता नही होती। परन्तु जिन बालको या युवको मे अभी तक क्षय जीवाणु का Primary Infection नही हुआ इसलिए जिनमे Tuberculin Reaction Negative है उनके अन्दर कृत्रिम विधि से मपी हुई मात्रा मे क्षय जीवाणु का प्रवेश करके सीमित मात्रा मे इस रोग (Controlled Primary Infection) को उत्पन्न कर दिया जाता है। स्पष्ट है कि स्वभावत होने वाले Primary Infection से अर्थात् Uncontrolled Infection से यद्यपि प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न तो हो जाती है परन्तु उसमे रोग के बढने (Progressive Tuberculosis) की आशका भी रहती है। B C G के द्वारा व्यक्ति मे प्रतिरोधक शक्ति तो उत्पन्न हो जाती है पर जीवित जीवाणुओ को शरीर मे प्रविष्ट करके भी रोग के होने का भय नही होता। अत जहाँ क्षय रोग अधिक फैला हुआ हो तथा जिन घरो मे क्षय रोग है उनके बच्चो के लिए BCG का प्रयोग आवश्यक ही हो जाता है। जहा जनता मे यह रोग नही होता वहा इसके देने का प्रयोजन ही नहीं रहता। १०-११ वर्ष के जो बालक Non-reactor पाये जाय उन्हे BCG दे देना चाहिये।

इग्लैड की Medical Research Council ने B C G के सम्बन्ध मे जो बहुत बडा परीक्षण किया जिसकी एक रिपोर्ट उन्होने १९५६ मे और दूसरी १९५९ मे प्रकाशित की उसका सक्षिप्त सा उल्लेख करना यहा अप्रासगिक न होगा। उन्होने ऐसे बालको मे से जिन्हे Tuberculin Nagative पाया गया था, १४१०० बालको को

तो B.C G का टीका दे दिया) १३३०० को नही दिया। पहली रिपोर्ट मे उन्होने लिखा कि जिनको टीका नही दिया गया था उनमे प्रति सहस्र के पीछे प्रति वर्ष १ ६४ मे क्षय रोग होता हुआ मिला। जिनको B C G दिया गया था उनमे प्रति वर्ष १००० के पीछे ३७ मे ही यह रोग होता हुआ पाया गया। १६५६मे जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई उसमे उन्होने लिखा कि जिनको B C G नही दिया गया था उनमे १००० वालको के पीछे २ २६ मे क्षय होते हुए देखा गया और जिनको B C G दिया गया था उनमे १००० वालको के पीछे ·३८ मे ही इस रोग के लक्षण पाये गए। B C G के देने के ७½ वर्ष तक देखने पर भी उन्हे ऐसे ही परिणाम मिले जिससे यह पता चलता है कि इस टीके के द्वारा इस रोग को रोकने मे काफी सहायता मिलती है।

वाये कन्धे की त्वचा मे १ सी० सी० (१/४० मिलिग्राम Bacillary पदार्थ) B C G Vaccine का इ जेक्शन (Tuberculin Syringe) वहुत उथला (Intradermally) दिया जाता है। जिसके वाद वहा एक चक्कर सा प्रकट हो जाता है। पर वह शीघ्र लुप्त हो जाता है। १० दिन वाद वहा एक कोठ (Papule) उत्पन्न होकर ५-६ मिलिमीटर व्यास का हो जाता है, जो पहले हल्के से द्रव स्फोट (Vesicle) और फिर पूय स्फोट (Pustule) का रूप ले लेता है। यह व्रण भी तीन महीने तक पूर्णतया ठीक हो जाता है। इसके अतिरिक्त शरीर मे और कोई लक्षण नही होता। इस Vaccine के देने के २ मास वाद व्यक्ति Tuberculin Positive हो जाता है अर्थात् उसमे इस रोग के लिए प्रतिरोधक शक्ति प्रकट हो जाती है जो लगभग ५ वर्ष के लिए तो रहती ही है। इसके वाद दुवारा एक इ जेक्शन फिर दे देना चाहिये।

क्षय रोग से रुग्ण माता पिता की सन्तान को यदि शीघ्र ही B C G Vaccine का इ जेक्शन देकर दो महीनो के लिए माता पिता से दूर रख दिया जाय तो दो महीने वाद जव उसमे प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो जाती है तव उसके माता पिता के पास रहने पर भी उसमे इस रोग का सक्रमण नही होता।

इस सम्वन्ध मे Sheffield के Norber और Meneer (१६५६) के एक लेख का उल्लेख करना अप्रासगिक न होगा। उस लेख मे उन्होने लिखा कि २ वर्ष की आयु के ऐसे २६७ वच्चो का जो घर मे क्षय रोग के होने के कारण सदा क्षय रोग के वातावरण मे रहते थे और जिनको १६४६-१६५२ के वीच मे B C G का टीका लगाया जा चुका था, ५-७ वर्षो तक उन्होने निरीक्षण किया। इतने समय के वीत जाने पर भी उन्होने X-Ray द्वारा फुफ्फुस की परीक्षा करके देखा कि उनमे से केवल ३ वच्चो मे से २ मे अति स्वल्प सा, एक मे विशेष चकत्ता मिला। परन्तु ये चकत्ते भी स्वयमेव Calcification की प्रक्रिया के द्वारा ठीक हो गये थे। इससे विशेष तो नही, इतना तो पता चलता है कि क्षय रोग के सम्पर्क मे रहने वाले वच्चो को इस रोग से वचाने के लिए B C G का सहारा लिया जा सकता है।

(१) Mass Radiography— जनता से सपर्क मे आने वाले समस्त व्यक्तिओ की जिनमे इस रोग का सशय हो Radiography हो जाय तो इस रोग का पहले ही पता लगाकर उनसे भावी होने वाले सक्रमण को रोका जा सकता है। केवल Isoniazid की एक गोली को दिन मे २वार देने और ८-१० मास जारी रखने से रोग को ठीक कर सकते है।

(२) भीड-भाड के स्थानो जैसे सिनेमा घरो, कारखानो, होटलो, गाडियो आदि मे ताजी हवा के आने-जाने का पूरा प्रवन्ध कर देने से भी सक्रमण को रोका जा सकता हे।

(३) वालको को दूध, विटामिन्स आदि के देने तथा युवको मे व्यायाम को प्रोत्साहित करने से इस रोग को रोका जा सकता है।

आयुर्वेद मे क्षय रोग

आयुर्वेद मे क्षय रोग को शरीर का शोषक होने से शोष, शारीरिक, मानसिक क्रियाओ का क्षयकारक होने से क्षय और सर्व रोगो से प्रधान होने से राज-यक्ष्मा कहा है।

कारण

एक तो सामर्थ्य से अधिक शारीरिक या मानसिक श्रम करने से, दूसरे किसी रोग वश जैसे रोमान्तिका, ज्वर, काली खासी, मधुमेह से, शारीरिक शक्ति के क्षीण हो जाने से, तीसरा भोजन सम्वन्धी वैषम्य अर्थात् शरीर को पोषक आहार के यथावत् न पहुचने से, चौथा शरीर मे से मल-मूत्र स्वेद आदि द्वारा जो मल निकलते रहते हैं उनके यथावत् रूप से न निकलने एव अन्दर अधिक मात्रा मे सचित हो जाने से, शरीर की स्वाभाविक प्रतिरोधक शक्ति के कम हो जाने से होने वाला रोग कहा जाता है।

इस रोग को विशेषतः प्रतिरोधक शक्ति के हीन हो जाने से उत्पन्न होने वाला तथा त्रिदोषज कहा जाता है। वायु की वृद्धि अर्थात् प्राण तत्त्व की न्यूनता से, दूसरा कफ दोष की वृद्धि अर्थात् देहाग्नि की मन्दता से, तथा तीसरा संक्रमण जनित धातु-पाचकाग्नि की वृद्धि (Excessive Metabolism) से उत्पन्न होने वाला त्रिदोष जनित ज्वर कहा गया है। इनमे से वायु तथा पित्त की वृद्धि को विशेषत इस रोग का कारण समझा जाता है। इसीलिए इस रोग के लिए प्राणवर्धक तथा शीत स्निग्ध गुण चिकित्सा की जाती हे। वायु की वृद्धि न हो एतदर्थ रोगी को प्रोटीन भोजन विटामिन ए० डी० तथा सी, के भोजन जैसे मक्खन तथा फल विशेष मात्रा मे देने चाहियें। धातु पाचकाग्नि की वृद्धि न हो एतदर्थ विश्राम देना आवश्यक हे। (च०। चि०। ८)

क्षयरोगोपयोगी प्रयोग

(१) सुवर्ण वसन्तमालती (भै०र०) सुवर्ण १, मुक्ता २, हिंगुल ३, मरिच ४, खपरिया ८ भाग थोड़े मक्खन के साथ इनकी घुटाई करें। फिर निम्बु के रस से तव तक घोटें जव तक चिकनाई नष्ट हो जाये। २ रत्ती की गोली। पिप्पली चूर्ण तथा शहद के साथ दिन मे १ वार रोज दें।

(२) मृगाकरस (भै०र०) स्वर्ण १, रससिन्दूर २, मुक्ता ३, गंधक ४, स्वर्णमाक्षिक ५, रजत ४, प्रवाल ७, सुहागा २ भाग। विजौरे के रस से ३ दिन घुटाई करें। गोला वना सुखायें। इसे एक मूपा मे कपड-मिट्टी कर वन्द कर दें। फिर इसे नमक चूर्ण से भरी हण्डिया के बीच मे रख कर हण्डिया का मुख वन्द करके उसके सूखने पर उसे ८-१० घण्टे अग्नि पर रखें। फिर हण्डिया के स्वाग शीतल होने पर उसकी मूपा मे से औषध को निकाल २ रत्ती की मात्रा मे घृत और पिप्पली चूर्ण के साथ दें।

(३) *मुक्तापञ्चामृत (यो० र० जीर्ण ज्वरे) मुक्ता ८, प्रवाल४, शख तथा शुक्ति १-१ भाग। शतावरी घृतकुमारी विदारी रसो से मर्दन कर एक लघु पुट दें। इसे २ रत्ती की मात्रा मे पिप्पली चूर्ण के साथ दिन मे २ वार शहद से दें।

(४) सितोपलादि चूर्ण (शा०स०) मिश्री १६, वशलोचन ८, पिप्पली ४, इलायची छोटी २, दालचीनी १ भाग। चूर्ण करें। ३-४ माशा शहद से दें।

(५) द्राक्षारिष्ट (यो०र०) द्राक्षा ३ सेर १० तोला। जल ६४ सेर। शेप १६ सेर। गुड १२॥ सेर। धातकी पुष्प ४०। विडंग, फूलप्रियंगु, पिप्पली, चतुर्जातक, मरिच ५-५ तोला। आसव निर्माण करें। मात्रा तोला २-३ वार।

(६) लवगादि चूर्ण (भै०र०) लौंग, ककोल, खस, चन्दन श्वेत, तगर, नीलोफर, श्वेतजीरा, इलायची छोटी, दालचीनी, नागकेसर, सोठ, पिप्पली, जटामासी, मोथा, जातिफल, अनन्तमूल, वशलोचन १-१ भाग मिश्री सवसे आधी। मात्रा ३-४ माशा। जुकाम, खासी श्वास के लिये श्रेष्ठ है।

(७) क्षयजनित पार्श्वशूल मे पिप्पल्यादिक्वाथ (यो०र०) पिप्पली, धनिया, दशमूल, सोठ का क्वाथ पिलायें। इससे पार्श्व शूल, जुकाम, खासी, श्वास के कष्ट शान्त होते हैं।

(८) द्राक्षाद्यवलेह (हा० सं०) द्राक्षा-खजूर-आवला इनकी चटनी शहद मिलाकर दें।

(९) वासावलेह (यो०र०) वासा ६। सेर। जल आठ गुणा। शेष जल का चौथाई भाग। आवला कल्क ४ सेर। उसे घृत १ पाव मे भून लें। उसे तथा ६। सेर खाड को काढे मे डालकर पका लें। गाढ़ा हो जाने पर उसमे पिप्पली १०, चतुर्जातक प्रत्येक ५ तोला मिलायें। वाद मे शहद ४० तोला और मिलायें।

(१०) द्राक्षावलेह—द्राक्षा १ सेर साफ कर वीज निकालें। पीसकर गोघृत १ पाव मे भून लें। १ सेर खाण्ड की चासनी को ठीक पकाकर उसमे इसे मिला दें। वशलोचन, इलायची छोटी, मुलैठी, चन्दन श्वेत १-१ तोला मिला दें। १-१ तोला, २ वार दें।

(११) नवनीतावलेह (ग० नि०) मखन, खाण्ड, शहद वरावर-वरावर मिला दें। एक चम्मच दिन मे २ वार लें।

(१२) शतावर्यादिलेह (ग० नि०) शतावरी, अश्वगंधा, वला, अतिवला, नागवला, गोखरु, विदारी का समान, समान चूर्ण ३ माशा मात्रा मे मधु घृत से दें वल्य है।

(१३) दूर्वा स्वरस १ वडा चम्मच कई वार दें। रक्तवमन को रोकता है।

(१४) पेठे के स्वरस मे लाक्षारस चूर्ण को मिलाकर थोड़ा थोडा करके उसे कई वार दें (वृ० नि० र०) रक्त वमन के लिए श्रेष्ठ।

(१५) च्यवनप्राश (च० स०) दशमूल (वेल, अरणी, अरलु, खम्भारी, पाढल इनकी छाल, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, गोखरू, कटेली छोटी तथा बड़ी, मुद्ग-

पर्णी,माषपर्णी, काकडासिंगी, मुनक्का, भूम्यामलकी जीवन्ती, पुष्करमूल, अगर, हरड, गिलोय, ऋद्धि(या बला,जीवक (गिलोय) ऋषभक (वंशलोचन) कचूर, मोथा, पुनर्नवा, मेदा (या विदारी) सफेद चन्दन, कमल फूल, विदारी, वासा, काकोली (या शतावरी) काकनासा (या काकजघा) ५-५ तोला। आवले ६। सेर, जल १६ सेर मे पकायें। आवलो की पोटली भी डाल दें। ४ सेर शेष रहे तो छान लें। आवलो को कपडछान करें। आधे आवलो को ३० तोला घी मे, आधो को ३० तो० तिल तेल मे भून लें। फिर आवलो तथा ३५० या ४०० तोले मिश्री को उपर्युक्त क्वाथ मे पकाकर अवलेह बनायें। २० तोले वंशलोचन, १० तोला पिप्पली, पाच पांच तोला चतुर्जातक मिलायें। ३० तोला शुद्ध शहद मिलायें। मात्रा १-२ तोला।

संसर्गिक रोग
Venereal Diseases

फिरग रोग Syphilis

पहले किसी Syphilus नामक व्यक्ति को यह रोग हुआ, सभवत उसी के नाम पर इस रोग का नाम पड गया। रुग्ण स्त्री या पुरुप के साथ ससर्ग करने से गुप्ताग पर सक्रमण करने वाला एक रोग है जिसमे वहा कठोर सा कोठ उत्पन्न हो जाता है। वहा से फिर इस स्थान से हटकर जीवाणु Lymphatics द्वारा क्रमश शरीर के सब अगो मे यहाँ तक कि हड्डियो तक मे फैल जाता है।

आरम्भ

यह रोग पहले-पहल १५ वी शताब्दी के अन्त मे कोलम्बस के West Indies से वापिस आए सिपाहियो के द्वारा यूरोप मे प्रकट हुआ और धीरे-धीरे वहा से सर्वत्र फैला। सिफलिस (जिसका धात्वर्थ स्पष्ट नही है) का नाम इसे १५३० मे दिया गया।

कारण

प्राय ऐसे व्यक्ति के साथ कि जिसकी जननेन्द्रिय मे फिरग जनित क्षत हो, मैथुन करने से यह रोग सक्रमण करता है। क्योकि इस क्षत से निकलने वाले Serum मे इस रोग का जीवाणु बहुत अधिक सख्या मे रहता है। पहले इस जीवाणु को Spirochaete या Spirochaeta Pallida कहते थे, परन्तु अब इसे Treponema Pallidum कहते है। यह इस रोग के प्राथमिक स्फोट (Primary Schancre) मे ही नही, पर इस रोग के बाद मे रोग की द्वितीय अवस्था मे त्वचा, श्लेष्म कला आदि पर निकलने वाले कोठो या स्फोटो और उनके स्रावो मे भी बहुत अधिक मात्रा मे पाया जाता है। शरीर के किसी धातु या किसी अग मे पहुचकर यह रोग उत्पन्न कर सकता है। शरीर से बाहर यह जीवाणु जीवित नही रह सकता।

मैथुन से जननेन्द्रियो की श्लेष्म कला या त्वचा मे स्वल्प सा क्षत हो जाने से भी उस प्रदेश मे यह जीवाणु प्रवेश कर जाता है और २४ घटे के अन्दर - अन्दर वहा से यह जीवाणु लसीका वाहिनियो मे प्रवेश कर जाता है। वहा से वक्षण-लसीका-ग्रन्थियो (Inguinal Lymph Gland) मे पहुचता है। Kolle और Evers (१६२६) का कथन है कि ये आधे घटे के अन्दर-अन्दर समीपस्थ लसीका ग्रन्थि मे पहुच जाता है जहा से फिर यह लसीका सस्थान मे चला जाता है। वहा मे शिरा सस्थान (Veins) मे जाता है और उसके द्वारा फुफ्फुस मे प्रवेश करता है। वहा से यह धमनियो मे चला जाता है तथा उनके द्वारा यह शरीर के प्रत्येक अंग मे पहुच जाता है। इस प्रकार शरीर मे प्रवेश करने के दो चार दिनो मे ही यह देह के अगो मे व्याप्त हो जाता है। परन्तु आश्चर्य है, तो भी विष सचार (General (Spirochetaemia) का कोई विशेप लक्षण रोगी मे प्रतीत नही होता तथा जननेन्द्रिय पर प्रारम्भिक कोठ (Primary chancre) भी सक्रामक के लगभग १ मास वाद प्रकट होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वत्र फैल जाने पर भी यह कुछ स्थानो पर जैसे त्वचा, श्लेष्म कला, मस्तिष्कावरण, नेत्र आदि मे विशेप रूप मे अपने अड्डे (Foci) बनाकर बढने लगता है। इसीलिये इन स्थानो पर इसके विरुद्ध शारीरिक प्रतिक्रिया विशेप रूप मे होती है। जहाँ से यह प्रविष्ट होता है वहाँ पर भी इसका प्रधान अड्डा होने से विशेप प्रतिक्रिया होती है। प्रारम्भिक Sore होने से २ सप्ताह बाद Wassermann Reaction पाजिटिव हो जाता है। बहुत वर्ष बाद मस्तिष्क के सेलो मे इसके कारण क्षीणता होकर पक्षाघात हो जाता है तथा सुषुम्ना काण्ड (Cord) के स्रोतो (Tracts) मे इसके दुष्प्रभाव से Tabes Dorsalis का रोग हो जाता है।

अथवा इस जीवाणु के शरीर मे सर्वत्र फैल जाने से इसके विपरीत अगो मे (१) प्रतिरोधक शक्ति (Immunity) उत्पन्न हो जाती है, (२) कुछ एक अगो मे इसके प्रति अति असात्म्यता (Hyper sensitivity) उत्पन्न हो

जाती है। प्रथम शक्ति के कारण जीवाणु की उपस्थिति मे भी महीनो कोई लक्षण प्रकट नही होता। दूसरी के कारण जिस-जिस अग मे जब-जब Allergy उत्पन्न होती है रोग प्रकट हो जाता है।

यह जीवाणु ८-१० माईक्रोन दीर्घ, पतला, गतिशील कीटाकार कृमि है जिसमे १०-१२ मोड होते है जो आर्द्रता युक्त प्रदेश मे जीवित रहता है तथा जिसकी फिल्म को Giemsa के तरीके से रग कर Dark Field Micrcoscopy के द्वारा देखा जाता है। पहले-पहल जर्मनी के Richard Schaudinn तथा Hoffman (१६०५) ने इस जीवाणु का पता लगाया। फिर जर्मनी के जीवाणु विशेषज्ञ Von Wassermann (१६०६) ने इसका टेस्ट निकाला। उसके बाद Ehrlich जर्मनी के Paul (१६०६) ने इस रोग की प्रसिद्ध औषधि ६०६ का आविष्कार किया।

विकृति

रक्तवाहिनियो मे से निकल कर यह जीवाणु आसपास के लसीकामय प्रदेश (Perivascular Lymph Space) मे रोहण करने लगता है। इसके वहाँ रोहण करने पर रक्तवाहिनी मे से Mononuclear सेल जैसे Lymphocytes, Plasma cells तथा कुछ एक Giant Cells वहा बहुत अधिक मात्रा मे जमा हो जाते है जिससे वहा शोथ Perivascular Lymphangitis हो जाता है। इस शोथ के कारण धमनी के चारो ओर ही नही, धमनी मे भी शोथ हो जाता है अर्थात् धमनी बहि शोथ (Periar teritis) धमनी मध्यशोथ (Mesarteritis) तथा धमनी अन्त शोथ (Endarteritis) सभी हो जाते हैं। इस प्रकार धमनी शोथ (Arteritis या Vasculitis) इस रोग की प्रधान विकृति होती है। इसके बाद Fibroblasts इस शोथ युक्त अवयव को स्नायु तन्तु (Fibrous Tissue) मे परिवर्तित कर देते है जिससे वह स्थान स्पर्श मे कठोर हो जाता है। रक्तवाहिनी के अन्दर के स्रोत के न्यूनाधिक अवरुद्ध हो जाने से इस शोथयुक्त कठोर अवयव मे रक्त भली प्रकार नही पहुँच पाता (Ischaemia हो जाता है) जिससे त्वचा मे यह रोग हो तो उसका पोषण न होने से उसके ऊपर से परते भी झडने लगती है। यदि वहाँ रक्तावरोध अधिक हो तो वहा मृत्यु (Necrosis) होकर इस रोगयुक्त प्रदेश मे न्यूनाधिक व्रणभाव हो जाता है।

लक्षण

रोग सक्रमण के लगभग २१ दिन के बाद इस रोग की प्रथमावस्था या (Primary Syphilis) के लक्षण प्रकट होते है अर्थात् जीवाणु के प्रवेश स्थान पर जहाँ पर वह अत्यधिक मात्रा मे रोहण करता है सेलो मे प्रतिक्रिया, उनका Infiltration, बडी प्रबलता से होती है। सेलो के अति सचय से वहाँ एक छोटा सा, गोलाकृति, कठोर कोठ (Hard chancre) प्रकट हो जाता है। यह कोठ शिश्नमुण्ड के मुख या उभरे भाग के पास की खाई (Coronal Sulcus) मे या अग्र चर्म की श्लेष्म कला या त्वचा पर तथा स्त्री मे गर्भाशय मुख (Cervix) या योनिद्वार अर्थात् भगोष्ठ (Labia) के अन्दर या बाहर कही उत्पन्न होता है। Labium Majus और Minus की सन्धि पर विशेष होता है। इसमे मृत्यु (Necrosis) के होने से इसमे वेदना या किसी प्रकार का कष्ट नही होता और यदि सिरारोध (Endarteritis) के हो जाने से इसका पोषण अवरुद्ध हो जाय तो रगड लगाने से इसमे व्रण भाव हो जाता है जिसमे खडे, कठोर, किनारो वाला, प्याले के आकार का एक छोटा सा व्रण बन जाता है। वहा Lymphocytes के अत्यधिक मात्रा मे सचित होने से कठोरता होती है। शिश्नमुण्ड पर यह व्रण गहरे लाल कुछ काले रग के छोटे छोटे चकत्तो के रूप मे होता है। इस व्रण के साथ ही प्रादेशिक लसीका ग्रन्थियाँ (Horizontal inguinal glands) भी सूज जाती हैं। ये स्पर्श मे कठोर, वेदना रहित, समवर्ण, एक दूसरे से पृथक् होती है (Indolent bubo)। ये भी Lymphocytes के अति सचय के कारण कठोर होती है। इनमे पूय भाव नही होता। इनके ऊपर चढी त्वचा मे शोथ न होने से वह भी रक्त वर्ण नही होती। यह प्रथमावस्था १½, २ मास तक रहती है। रोग के आरम्भ के ८ दिन बाद Wassermann तथा Kahn's test पाजिटिव हो जाते है।

फिरग रोग की द्वितीयावस्था के लक्षण Secondary or Metastatic Lesions

जननेन्द्रिय पर स्थानिक कोठ के प्रकट होने के लगभग एक डेढ मास बाद अर्थात् रोग के सक्रमण के लगभग दो ढाई मास बाद जब प्रारम्भिक व्रण (Chancre) लुप्त हो जाता है, इस रोग की द्वितीयावस्था आरम्भ हो जाती है जो १-१½ वर्ष के समय तक रहती है। इस समय तक इस रोग के विष के सम्पूर्ण शरीर मे सचार कर जाने (Septicaemia से) गिरी हुई तबीयत (Malaise) पाण्डुता (Hb की न्यूनता) से क्षुधानाश, सिर दर्द (Meninges के ग्रस्त होने से) आदि के लक्षण भी होते हैं। पर एक तो मृदु रूप मे सम्पूर्ण शरीर मे लसीका ग्रन्थि शोथ (General Lymphadenitis) का लक्षण होता है। उदाहरणत ग्रीवा की लसीका

ग्रन्थिया फूल जाती है। कोहणी के अन्दर की तरफ Condyle से ऊपर की लसीका ग्रथिया (Epitrochlear Glands) स्पर्श करने मे फूली हुई होती हे, यद्यपि उनमे स्पर्शाक्षमता का लक्षण नही होता। रक्त परीक्षा मे Lymphocytosis पाया जाता है।

दूसरा इस अवस्था मे शरीर के किसी अवयव या Tissue मे इसके विपरीत प्रतिक्रिया हो सकती है त्वचा, तथा श्लेष्मकलाओ मे इस जीवाणु के विपरीत विशेष प्रतिक्रिया Hyperaemia के रूप मे होती है। इन जीवाणुओ के रोहण करने से वहा Mononuclear Cells पर्याप्त मात्रा मे सचित हो जाते हे, उनके सचित होने से वहा स्नायुभाव (Fibrosis) की प्रतिक्रिया भी हो जाती हे जिससे वहा कोठ (Papules) वन जाते है। पर ये सेल वाद मे स्नायु तन्तु मे परिवर्तित होने के स्थान पर निर्वलता वश ह्रास (Involution)की अवस्था को प्राप्त होने लगते हे, जिसमे इन सेलो के क्षीण हो जाने मे त्वचा पर जो दो - तीन मिलीमीटर व्यास के एक दूसरे से पृथक् वृत्ताकार या अर्धवृत्ताकार ताम्र वर्ण चकत्ते (Pinks या (Roseolar Macules) प्रकट होते हे, उनके केन्द्र का प्रदेश कुछ नीचा और मृदु हो जाता है, तथा चकत्ते का किनारा जहा सेल अत्यधिक मात्रा मे विद्यमान होते हे कुछ ऊचा या उठा हुआ होता है । इन चकत्तो की लालिमा का कारण रक्तवाहिनियो मे से मन्द-मन्द रक्तस्राव का होना प्रतीत होता है। ये Roseola Syphilitica नाम के छोटे गोल चकत्ते विशेषत छाती पर, पीठ पर, दोनो ओर धड पर तथा शाखाओ के भी अन्त पृष्ठ (Flexor) पर, तथा हाथ पैर के तलुओ पर, सघर्ष मे आने वाले प्रदेशो पर, दोनो ओर निकलते हैं तथा कुछ सहसा प्रकट होते है। पहले छाती या कोष्ठ पर ये देखने मे आते है। चेहरे पर प्राय नही होते ।

फिरग जनित चकत्तो (Syphilitic Macules) के कुछ सप्ताह रहने के वाद फिरग जनित नानाविध कोठ (Papules) भी त्वचा पर निकलते हे। ये फिरग जनित, मसूर के दाने की तरह के कोठ, छोटे-छोटे, पृथक्-पृथक्, स्पर्श मे कठोर, ताम्र वर्ण, गोलाकृति, कण्डू, वेदना आदि से रहित, शरीर के दोनो ओर एक समान और कुछ सहसा धड, शाखाओ और माथे पर होते है। शाखाओ पर जव होते हे तो वहि.पृष्ठ (Extensor) की अपेक्षा अधिकत अन्त पृष्ठ (Flexor) पर होते हे, धड पर कुछ अधिक घने होते हैं। शीघ्र ही फिर ये क्षीण होकर धब्बो (Spots या Stains) मे वदल जाते हैं। इनके ताम्र वर्ण होने तथा इनमे खुजली आदि कष्ट के न होने से ये फिरग जनित हैं, ऐसा समझ लेना चाहिए। फिरग जनित चकत्ते Macules, Papules, pustules होते है, पर Vesicles के रूप मे कभी नही होते। इनकी आकृति के अनुसार ये Papulosquamous, Papulopustular आदि कहाते है ।

हाथो की हथेलियो तथा पैरो के तलुओ पर छोटे-छोटे कुछ उठे हुए, चपटे से, धव्वे (Squamous Spots) निकलते है जिनके ऊपर की स्तर, परतो मे उतरती है। इस रोग के कारण नख भी भगुर तथा प्रभाविहीन होकर नष्ट हो सकते है। एक या अनेक नखो की धरती फूल जाती और फिर नख ताम्र वर्ण मोटे होकर फट मे जाते (Onychia) हे ।

फिरग जनित खालित्य (Syphilitic Alopecia) भी कभी-कभी देखा जाता हे जिसमे सिर, दाढी, भौहो आदि के वीच-वीच मे ऐसे खाये से हो जाते हे जैसे किसी कीडे ने इन्हे खा लिया हो। Alopecia Areata मे तो चकत्ते सर्वथा वालो से रहित होते है।

गीले प्रदेश मे होने वाले कोठ (Papules)

त्वचा के गीले प्रदेशो जैसे गुदा या भगोष्ठ के आस-पास त्वचा की Papillae उन के अन्दर Mononuclear Cells का सचय होकर कठोर और आकार मे वडी हो जाती है। इनके कारण त्वचा मे १ सेन्टीमीटर व्यास के चपटे से स्वल्प उठे हुए, कठोर कोठ हो जाते है, जिन्हे Condyloma कहते हैं। पास-पास की अनेकानेक Papillae के इस प्रकार मिल जाने से गुदा के समीप कोठो (Papules) का एक ढेर सा हो जाता है। इस द्वितीयावस्था मे कभी-कभी फिरग स्फोट (Pustules) भी निकलते हैं जो रोगी की निर्वलता के कारण Papules मे क्षीणता की प्रक्रिया के हो जाने से वनते हैं। ये मसूरिका स्फोटो से मिलते-जुलते होते हे ।

मुख तथा गले मे फिरग व्रण

त्वचा पर Papules निकलने के साथ-साथ जैसे त्वचा मे चकत्ते (Macules) निकलते हे वैसे ओठो, गालो और गले की श्लेष्मकला मे भी गोलाकृति लाल चकत्ते या धव्वे (Mucous Patches) हो जाते हैं। इनके गीले रहने के कारण इनकी श्लेष्म कला के वहि-स्तर के मृत (Necrosis) हो जाने से और इनके गल जाने से श्वेत से धव्वे दीखते है। नर्म तालु तथा काकलक पर भी ये श्वेत से धव्वे या उथले से व्रण हो जाते है। इनके चारो ओर श्लेष्मकला लाल होती है। मुख छिद्र के कोणो के समीप की श्लेष्मकला मे ये हो तो मुख के कोणो

मे इनके कारण विवाही (Fissure) सी पड जाती है। इनके होने से जिह्वा के किनारो पर भी विवाहिया हो जाती है। ये फिरग व्रण जिह्वा के किनारो या उसके नीचे के पृष्ठ पर होते है। जिह्वा पृष्ठ पर भी लाल रग के चकत्ते Spots देखे जा सकते है। गले और टान्सिल पर भी ये फिरग व्रण (Snail track Ulcers) हो जाते है। ये श्वेत से धब्बे नाक के बीच की अस्थि (Septum) और उसके फर्श मे भी हो जाते है। कण्ठ (Larynx) मे उसके छद (Epiglottis) पर भी ये फिरग व्रण (Mucous Patches) हो जाते है जिसमे स्वर भग का लक्षण हो जाता है। Iris की सूक्ष्म रक्तवाहिनियो के समीप के प्रदेश मे सेलो के अधिक मात्रा मे सचित होने से वहा भी पिन के नक्के जितने Nodules उत्पन्न हो जाते है। Cornea के चारो ओर लाली हो जाती है, जिससे Iris Lens के साथ चिपक सकता है, जिससे पुतली गोल नही रहती। रोगी को प्रकाश सहन नही होता, आख मे दर्द तथा पानी बहता है। इस प्रकार Syphilitic Iritis का रोग हो जाता है। Auditory Nerve पर दुष्प्रभाव से Nerve-deafness का रोग हो सकता है। त्वचा, श्लेष्मकला आदि मे होने वाले इन फिरग जनित कोठो आदि मे जीवाणु अत्यधिक मात्रा मे पाये जाते है। मुख मे रोग हो तो लाला मे बहुत अधिक मात्रा मे जीवाणु पाया जाता है। स्त्रियो मे Vulva की त्वचा पर Papules हो जाते है जिन पर छिलके छाये होते है या कुछ क्षत हुए Papules हो जाते है।

फिरग रोग की तृतीयावस्था Tertiary State of Syphilis

द्वितीय अवस्था मे जब इस रोग का जीवाणु रक्त के द्वारा शरीर मे व्याप्त हो रहा होता है, इस रोग के लक्षण शरीर के दोनो ओर एक समान रूप होते है। परन्तु कई वर्ष उपरान्त शरीर के किसी एक अग मे प्रसुप्त रूप से पडा हुआ यह जीवाणु जब शरीर की प्रतिरोधक शक्ति घट जाने से फिर बढने लगता है तो उसी एक प्रदेश मे यह रोग प्रकट होता है, तब यह रोग शरीर के दोनो ओर नही होता। इसके अतिरिक्त द्वितीयावस्था मे इस रोग से युक्त प्रदेश मे अति क्षीणता या मृत्यु की प्रक्रिया (Necrosis) नही होती। परन्तु तृतीयावस्था मे इस रोग से युक्त प्रदेश मे यह प्रक्रिया अधिक होती है। यह अवस्था रोग सक्रमण के ३ वर्ष बाद या द्वितीय अवस्था के भी लगभग ५ वर्ष बाद आरम्भ हो सकती है और आयु भर रहसकती है। जिस अवयव मे यह जीवाणु क्रियाशील होने लगता है उसकी छोटी धमनियो या लसीकावाहिनियो मे से इसके बाहर आने के कारण उनकी दीवार मे पहले फिरग जनित शोथ की प्रतिक्रिया होती है। अर्थात् पहले इनके अन्तस्तर के सेलो मे अति वृद्धि हो जाती है जिससे उनके मध्यस्तर (Tunica Media) मे भी Lymphocytes, Plasma Cells आदि Mononuclear सेलो का तथा Fibroblasts का सचय (Infiltration) विशेष रूप मे होता है जिससे धमनी का स्रोत तग (Thrombosed) हो जाता है। (अर्थात् Arteritis तथा Endarteritis या Vasculitis हो जाता है) परिणामत पास का अवयव एक तो विष से, दूसरे रक्त के न मिलने से मृत होकर पनीर का सा (Caesous) हो जाता है। बाद मे उसके चारो ओर Fibroblasts के आ जाने से धीरे-धीरे स्नायु तन्तु का एक घेरा बन जाता है। इस प्रकार इस छोटी सी स्नायु की बनी ग्रन्थि को Granuloma कह सकते है। इस प्रकार के अनेकानेक Granuloma मे मिलकर एक बडा अर्बुद बन जाता है। जैसे ऊपर कहा गया है इसके अन्दर की छोटी-छोटी धमनियो के स्रोत बन्द होते है जिससे इसके केन्द्र भाग को रक्त की मात्रा नही मिलती है एव वह कुछ नर्म सा हो जाता है अर्थात् उसमे पनीर भाव (Caseation) हो जाता है। यह नर्मसा अर्बुद क्योकि छूने मे गोद की एक डली जैसा प्रतीत होता है, इसे Gumma कह दिया जाता है (अन्दर Necrosis उसके बाहर Granulation उसके बाहर Fibrosis) क्योकि इसमे Endothelial सेल नही होते, Lymphocytes और Fibroblasts अधिक सख्या मे होते है, Tubercle से भेद सुगम हो जाता है। इसका पनीर सदृश पदार्थ कुछ पीला होता है जब कि क्षयाकुर का यह पदार्थ श्वेत रग का होता है। यह पदार्थ इस रोग मे बहुत काल तक द्रव रूप नही लेता क्षयाकुर मे यह पदार्थ शीघ्र द्रव रूप ले लेता है। अत Tubercle से Gamma का भेद करना कठिन नही है। त्वचा, श्लेष्मकला, अस्थि या Periosteum आदि पर जहा बाह्याघात लगता रहता है वहा इसके ऊपर की त्वचा या श्लेष्मकला के निर्जीव होकर झड जाने से इसमे सक्रमण (Secondary Infection) होकर इसमे पूय भाव भी हो जाता है अथवा इसके अन्दर की Necrosis की प्रक्रिया के बढते जाने से यह नर्म होकर खुल जाता है। इसका व्रण गोल, स्पष्ट किनारो का होता है। इस प्रकार इस रोग की तृतीय अवस्था मे नाना अगो मे Gumma उत्पन्न हो जाते हें। पर त्वचा, श्लेष्मकलाओ, अस्थि, सन्धि, यकृत्, अण्ड ग्रन्थि, Aorta तथा केन्द्रीय नाडी मण्डल (Central Nervous System) सुषुम्ना (Spinal Cord)

मे Gumma उत्पन्न होने की प्रक्रिया विशेषत होती है ।

त्वचा के फिरंग मंडल Custancous Nodules

त्वचा के किसी एक या अनेक ऐसे प्रदेशो पर जहा सघर्ष विशेष रहता है, छोटी-छोटी क्षुद्र सी फिरग ग्रन्थिया (Nodules) उत्पन्न हो जाती है जिनके परस्पर मिल जाने से मण्डलाकार या अर्ध मण्डलाकार, नख जितने आकार के या ½ से १ इच व्यास के छोटे-छोटे मण्डल वन जाते है। पुरानी ग्रन्थियो के नर्म हो जाने और किनारो पर नई-नई Nodules या Gummata के निकलने से ये मण्डल फैलकर वडे होते जाते है तथा उनके बीच का पृष्ठ कुछ हलका, ताम्र वर्ण और साधारण त्वचा जैसा हो जाता है, इन्हे Nodular Cutaneous Syphilides कहते है। यदि इन ताम्र वर्ण गोलाकृति फिरग मण्डलो पर से छिलके भी झडने लगें तो इन्हें Squamous Syphilitic Eruptions कहते है। वाद मे Nodules के स्थान पर स्नायु तन्तु (Cicatricial Tissue) आ जाता है। यदि इन Nodules मे क्षीणता प्रवल रूप मे हो तो छिलको के वनने के स्थान पर इनमे व्रण भाव हो जाता है जिससे वहा छिलको से ढके छोटे-छोटे व्रण हो जाते है (Tubero Serpiginous Syphilide)

त्वचा के नीचे फिरंग ग्रन्थिया

त्वचा के नीचे के मेदोमय स्तर (Sub cutaneous Tissue) मे भी फिरग ग्रन्थिया (Solitary Gumma Nodular Cutaneous Syphilide) निकल आती है। ये पिन के नक्के या मटर जितनी मोटी गोलाकृति, वेदना रहित, स्पर्श मे कठोर, रवर जैसी होती है। वहुत धीरे-धीरे वढती है और अपने ऊपर की त्वचा से जुड जाती है अर्थात् इनकी त्वचा जो अब तक समवर्ण थी अव वह भी कुछ रक्त वर्ण हो जाती है। वाद मे इस ग्रन्थि मे व्रण भाव हो जाता है जिससे कठोर दीवार वाला गोलाकृति व्रण वन जाता है। अगर यह Gumma अन्दर त्वचा मे गहरा हो या Periosteum मे हो तो वहा त्वचा पर एक Sinus वन जाती है जिसके व्रण मे पीली सी सफेद पूय जमी रहती है। अस्थि मे यह व्रण हो तो अस्थि का कुछ अश Necrosed होता है। ऐसे अनेक ग्रन्थियो के होने से अनेक व्रण पास-पास निकल सकते है। टागो, वाहुओ (पिछली ओर) भौहो, नाक आदि की त्वचा के नीचे ये ग्रन्थिया विशेषत निकराती है। इन्हें Sub Cutaneous Gumma कहते है ।

श्लेष्म कला मे फिरग ग्रन्थिया

मुख और गले की श्लेष्मकला के नीचे के अवयव (Submucous Tissue) मे फिरग ग्रन्थिया (Gumma निकल आती है। तालु, काकलक, गले, Tonsil, जिह्वा किसी मे ये दिखाई पड सकती है। इनके खुल जाने से इनमे उत्पन्न हुए व्रण अनेक होते, चिरस्थायी होते तथा वेदनारहित होते है, देखने मे विषम आकृति के होते है। इनके कारण लसीका गन्थिया सूजती नही है। मुख की छत या नासिका के फर्श की अस्थि मे Gumma हो तो उससे उत्पन्न व्रण के कारण Hard-palate की अस्थि मे आर पार छिद्र Perforation हो सकता है। जिह्वा मॉस के मध्य भाग मे Gumma होने के कारण पहले एक गोल सा उभार होता है। फिर उसके नर्म होकर खुल जाने से कठोर दीवार का छिद्राकार, वेदना रहित व्रण हो जाता है। परन्तु वहुधा जिह्वा की श्लेष्मकला की छोटी-छोटी रक्त-वाहिनियो के समीप के प्रदेश मे छोटे-छोटे Gumma समीप-समीप हो जाते है, जिनके ऊपर की स्तर के दातो के सघर्ष के कारण मृत हो जाने से श्वेत झिल्ली से छाये हुए विषमाकृति के उथले व्रण हो जाते है, जिन्हे Leucoplakia कहते है। इसी प्रकार के मृत हुई श्वेत झिल्ली से छाये हुए व्रण गालो की श्लेष्मकला पर विशेषत Angle of the Mouth मे भी हो जाते है। जिह्वा मे उत्पन्न हुई इन फिरग ग्रन्थियो मे जव स्नायु तन्तु वढ जाता (Fibrosis हो जाता है) तो जिह्वा पर गहरी विवाहिया (Fissures) पड जाती है अथवा यदि जिह्वा की फिरग ग्रन्थियो के ऊपर की श्लेष्मकला मरकर झड जाय, उसकी Papillae भी नष्ट हो जाये तो जिह्वा के किसी प्रदेश के नग्न हो जाने पर मिर्च, मसाले तथा उष्ण आहार लगने लगते, और वेदना जनक हो जाते है। तृतीयावस्था की ये फिरग ग्रन्थिया जिह्वा के ऊपर के पृष्ठ के मध्य भाग मे हुआ करती है, जवकि द्वितीयावस्था के फिरग व्रण (Snail Track) जिह्वा के निचले पृष्ठ या किनारो पर हुआ करते है।

कण्ठ मे फिरग ग्रन्थिया (Syphilitic Laryngitis)

इस रोग की द्वितीय या तृतीय अवस्था मे कण्ठ मे उसकी स्वर तन्त्रियो (Vocal Cords) की श्लेष्मकला के नीचे के अवयव मे भी फिरग ग्रन्थिया हो जाती है। वाद मे इसके ऊपर गहरे व्रण भी हो सकते है जिससे स्वर भग हो जाता है। इसमे वेदना का लक्षण नही होता।

अस्थियो मे फिरग रोग

शरीर की चपटी अस्थियो जैसे कपालास्थियो, नासास्थि, तात्वस्थि तथा जघास्थि (Tibia), उरोस्थि, पर्शुकास्थि, हसली की हड्डी (Clavicle) की Periosteum मे विशेषत तथा अन्य अस्थियो मे उनके Periosteum के नीचे Gumma बन जाते हैं जिससे इनमे काटने वाला या चुभने वाला दर्द रात को विशेष प्रतीत होता है। उथली ग्रन्थि मे Gumma हो तो उसके पृष्ठ पर एक विषमाकृति कठोर उभार हो जाता है। नासास्थि मे ये ग्रन्थिया (Snuffles) निकले तो चिरकाल तक प्रतिश्याय रहता है तथा नासा बन्द रहती है और बाद मे इसका निदान ठीक-ठीक न हो तो Septum के निर्बल हो जाने से नासास्थि बैठ जाती है। कईयो को इस रोग मे नाक पर रात को विशेष दर्द रहता है। तात्वस्थि (Palate Bone) मे gumma निकलने से मध्य रेखा पर गोल उभार निकलता है जो फटकर फिर व्रण हो जाय तो इसमे छिद्र (Perforation) होकर नासा और मुख मार्ग परस्पर मिल जाते है। कपालास्थियो मे ये Gumma हो तो ऊपर की त्वचा के क्षीण हो जाने से सक्रमण (Secondary Infection) होकर कपालास्थि मे अनेक व्रण हो जाते है। ऐसा लगता है जैसे अस्थि को कीडो ने खा लिया हो। इस प्रकार Osteitis, Osteomyelitis, Periostitis सब हो सकते है।

अन्तरस्थि फिरग ग्रन्थि Endosteal Gumma

शाखाओ की दीर्घास्थियो के मध्य भाग के अन्दर फिरग ग्रन्थि के हो जाने से वहा अस्थि मे उभार सा हो जाता है अर्थात् अस्थि के अन्दर फिरग जनित Osteomyelitis हो जाता है। इसके कारण वहा अस्थि मे शूल होता है जो इस ग्रन्थि के द्वारा नाडियो के दब जाने से होता है। आग के सेक से या रात को गर्म कपडो मे जब वहा रक्तवाहिनियो मे रक्त अधिक जमा हो जाता है तब नाडियो के दबाव के बढ जाने से दर्द और बढ जाता है। अत ऐसा रोगी गर्मी या गर्म कपडो मे टाग को नही रखना चाहता। वहा दबाने से भी दर्द होता है।

सन्धियो मे फिरग (Syphilitic Arthritis)

सन्धियो मे विशेषत जानु सन्धियो Synovial Membrane मे Gumma हो जाने से दोनो ओर Chronic Synovitis हो जाता है। अर्थात् सन्धि कोष द्रव भरने से फूल जाता है। पर जानुओ मे वेदना नही होती। यह शोथ कठोर, पर रबर की तरह लचकीला होता है। सहज फिरग रोग के कारण तो १०-१५ वर्ष की आयु मे यह रोग होता है। इस रोग मे मास पेशिया कृश नही होती जिससे क्षय रोग जनित सन्धि शोथ से इसका भेद हो जाता है। इस प्रकार Osteoarthritis फिरग से हो सकता है।

यकृत् फिरग

यकृत् मे अनेक गोल फिरग ग्रन्थिया हो जाती हैं जिनमे स्नायु तन्तु की वृद्धि विशेष होती है। बाद मे इनके केन्द्र भाग के मृदु हो जाने पर ये ग्रन्थिया कुछ नीचे दब जाती हैं। यकृत् के पृष्ठ पर स्पर्श करने से ये ग्रन्थिया अनुभव होती है इनमे स्पर्शक्षमता का लक्षण होता है तथा यकृत् का पृष्ठ विषम प्रतीत होता है। इन्हे देखकर यकृद्विद्रधि या कैंसर का सन्देह हो सकता है। परन्तु विद्रधि मे चिर प्रवाहिका का वृत्त होता है तथा कैन्सर रोग मे कामला, जलोदर, तथा कृशता के लक्षण विशेष होते है जो इसमे नही होते। फिरग जनित यकृत् वृद्धि का रोग ४५ वर्ष की आयु मे पहले होता तथा कैन्सर जनित यकृत् वृद्धि का रोग इस आयु के उपरान्त होता है।

अण्ड मे फिरग रोग

अण्ड ग्रन्थि (Testis के स्नायु तन्तु (Interstitial Tissue) मे व्यापक रूप से फिरग ग्रन्थिया Gumma बनने की प्रक्रिया होने से यह तन्तु आकार मे बढ जाता है जिससे अण्ड ग्रन्थि आकार मे बडी तथा स्पर्श मे कठोर हो जाती है, उसमे दर्द नही होता, दबाने से भी कोई दर्द नही होता। इसे Syphilitic Sclerosis of Testis कह सकते है। कभी-कभी अण्ड ग्रन्थि मे स्थानिक फिरग ग्रन्थि (Localised Gumma) भी होती है। एक ओर की अण्ड ग्रन्थि ही इस तरह इस रोग से ग्रस्त होती है।

हृदय तथा महाधमनी मे फिरग रोग—Cardiovascular Syphilis, Syphilitic Aortitis—

रोग के प्रारम्भ मे ही उत्तम चिकित्सा के मिल जाने से वर्तमान काल मे हृदय तथा महाधमनी के फिरग रोग मे बहुत कमी आ गई है तो भी कभी-कभी यह रोग हो जाता है। फिरग रोग के प्रारम्भ होने के १५-२० वर्ष बाद रोगी की ४५-५० वर्ष की आयु मे इस रोग के कृमि Treponema pallidum रक्त मे से छन कर, फेफडो के बीच के हृदय सम्बन्धी अवकाश अर्थात् Mediastinum मे विद्यमान Lymph glands मे पहुच जाते हैं वहा से

ये कृमि महाधमनी या Aorta के उपर चढते प्रथम भाग की वहिस्तर (Adventitia) के अन्दर विद्यमान सूक्ष्म धमनियो अर्थात् Vasavasorum के आस पास के Lymph Space मे पहुच जाते है। इस कृमि के कारण Vasavasorum मे वहि शोथ तथा अन्त शोथ अर्थात् Periarteritis तथा Endarteritis दोनो हो जाते हैं जिससे उनका अन्दर का स्रोत वन्द हो जाता है। इस Endarteritis obliterans के कारण Aorta के मासमय वीच के स्तर को रक्त न मिलने से उसका मास का अवयव तथा लचीला अवयव (Elastic tissue) सूख जाते हैं अर्थात् उसमें Necrosis की प्रक्रिया या Fibrosis हो जाता है। इसे महाधमनी का Mesarteritis कह सकते हैं। इस प्रकार महाधमनी के प्रथम भाग की दीवार पतली पड जाती और कमजोर हो जाती है। महाधमनी की अन्दर की स्तर (Intima) भी झुर्रीदार (Wrinkled) हो जाती तथा उसमे स्थान-स्थान पर Calcification की प्रक्रिया हो जाती है। अब जब रोगी मे कुछ रक्त भार या B P बढता है तब Aorta का यह कमजोर हुआ हुआ प्रथम भाग फैल कर चौडा हो जाता है। इसे Dilatation of Aorta कहते हैं। यदि कोई ऐसा कमजोर भाग थैली के आकार मे फैल जाय तो उसे महाधमनी का Saccular Aneurysm कहते हैं।

Aorta के प्रथम चौडे भाग Sinus of Valsalva के ऊपर के किनारे पर Coronory arteries के मुख होते है। Syphilitic Aortitis मे वे भी सुकड जाते है अर्थात् उनमे Ostial Stenosis हो जाता है जिससे हृदय को मिलने वाली रक्त की मात्रा घट जाती है। इसी कारण हृदय मे भी Ischaemic Fibrosis की प्रक्रिया होने लगती है। परन्तु इस रोग मे भारी हृदय शूल या Infarction का रोग नही होता।

Syphilitic Aortitis और कुछ नीचे की ओर फैल जाये तो Aortic Valve का गोलाकार मुख या Aortic ring भी कमजोर होकर चौडा हो जाता है इस कारण Aortic incompetence का रोग भी हो जाता है अर्थात् हृदय के विश्राम काल के प्रारम्भ मे कुछ रक्त की मात्रा महाधमनी मे वापिस Left Ventricle मे आ जाती है जिससे वह आकार मे वडा हो जाता है।

लक्षण

हृदय तथा महाधमनी का फिरग रोग मध्यमायु अर्थात् ४५-५० वर्ष की आयु मे पाया जाता है। मध्यमायु का होने पर भी रोगी वृद्ध प्रतीत होता है। इस रोग के आरम्भ मे जव तक Syphilitic Aortitis की विकृति होती है, Sternum के पीछे हलके-हलके दर्द के रहने की शिकायत ही रहती है। यदि Ascending aorta चौडा हो गया तो हृदय का द्वितीय शब्द कुछ ऊचा भी सुनाई पडता है।

इसके वाद यदि Aortic ring के फैल कर चौडा हो जाने से Left Ventricle तथा उसके पीछे फेफडो मे रक्त अधिक मात्रा मे सचित होने लगे तो रात को सोते हुए रोगी को श्वास काठिन्य की शिकायत होने लगती है। यदि सोते हुए सहसा श्वास काठिन्य का दौरा उठ जाये तो उसे Syphilitic Asthma या Paroxysmal Nocturnal Dyspnoea कहते है। हृदय के सकोच के समय Left Ventricle के वडे होने के कारण रक्त की अधिक मात्रा Aorta मे आती है परन्तु उसके Valve मे Incompetency होने के कारण रक्त की कुछ मात्रा वापिस Ventricle मे आ जाती है। इसी लिए नाडी प्रवलता से तो उठती है पर उठने के वाद वह सहसा ही गिर जाती है। इसे Water hammer pulse कहते है। अर्थात् नाडी के Systolic तथा Diastolic pressure मे पर्याप्त अन्तर होता है। हृदय के दूसरे शब्द के वाद Diastole के शुरु मे रक्त के फिर Ventricle मे वापिस आने के कारण एक murmur सुनाई पडती है जिसे Early Diastolic murmur कहते है। Aorta के प्रथम भाग के फैले हुए होने कि कारण Sternoclavicular सन्धि के पास Pulsation का अनुभव होता है। X Ray करने पर Ascending aorta मे श्वेत छाया Calcification की सूचक होती है।

Coronary ostial Stenosis — Aorta मे Fibrosis होने के कारण Coronary arteries के मुख तग हो जाते है जिससे हृदयपोषक धमनियो मे रक्त की मात्रा कुछ कम जा पाती है। इसी कारण परिश्रम करने पर हृदय मे हलका-हलका दर्द होने लगता है। यह दर्द वडी आयु मे Atherosclerosis के कारण होने वाले दर्द की तरह क्षणिक नही होता, देर तक रहता है और रात के आराम के समय भी होता है। Trinitrin के प्रयोग से जल्दी शान्त भी नही होता। Coronary arteries के मुख अधिक वन्द हो जाये तो Ischaemia of the heart के कारण सहसा मृत्यु भी हो सकती है।

Left heart failure — हृदय के विश्राम काल मे Aorta से कुछ रक्त के वापिस आते रहने से Left Ventricle आकार मे वडा हो जाता है (Hypertrophy) पर हृदय पोषक धमनियो के मुखो के तग हो

जाने मे उसे रक्त कम मिलता है, जिससे उसकी क्षेपक शक्ति कम हो जाती है। इसके परिणाम स्वरूप फेफडो मे रक्त सचय के वढने से श्वास काठिन्य का लक्षण रहता है। परीक्षक लोग वताते है कि Aortic Incompetence के आरम्भ होने के ३-४ साल तक हृदय के फेल होने के लक्षण होने लगते है।

Aneurysm of the Aorta or Sac formation in the Aorta —महाधमनी के प्रथम भाग मे Syphilis का दुष्प्रभाव होने से उसकी दीवार निर्वल हो जाती है फिर B P वढने पर उसमे एक थैली जैसा उभार हो जाये तो उसे Saccular Aneurysm कहते है। फिरग रोगी मे ४० वर्ष की आयु के वाद महाधमनी मे Dilatation होता है। फिर B P वढने मे यह रोग होता है। इसके कारण Aortic area पर हृदय का द्वितीय शब्द अधिक फैला हुआ सुनता है। Sternum की दाई सीमा पर या दाईं ओर की छाती मे न्यूनाधिक दर्द रहने की शिकायत भी रहती है। अत यदि ३५-४५ वर्ष की आयु मे Heart pain की शिकायत हो तो इस रोग का सन्देह करना चाहिए। Aneurysm के कारण Aortic incompetence भी अधिक वढता है।

नाडी सस्थान सम्वन्धी फिरग रोग Syphilis of the Nervous System, Neurosyphilis

फिरग रोग की आरम्भिक अवस्था मे जव अभी Primary Chancer निकलता है तभी Treponema Pallidum नाडी सस्थान और उसके आवरणो Meninges मे भी फैल चुका होता है अर्थात् तभी Neurosyphilis प्रारम्भ हो जाता है। पर वह वहुत काल तक प्रकट नही होता, Asymptomatic ही रहता है। यदि उस समय इस रोग की उचित चिकित्सा हो जाये तो फिर Neurosyphilis नही होता। पर यदि उस समय उचित चिकित्सा न मिले तो ऐसे व्यक्तियो के भी १०० मे से १० के लग भग व्यक्तियो मे कुछ वर्षों वाद यह रोग प्रकट रूप मे हो जाता है।

नाडी सस्थान सम्वन्धी फिरग रोग को दो भागो मे विभक्त किया जाता है अर्थात् जव यह रोग मस्तिष्कावरण और मस्तिष्कगत रक्तवाहिनियो मे विशेष रूप से होता है तव इसे मस्तिष्कावरण गत फिरग रोग या Meningo vascular Syphilis कहते है। इसके विपरीत जव यह रोग मस्तिष्क के असली भाग मे होता है तव इसे मस्तिष्क गत फिरग या Parenchymatous Syphilis कहते है।

मस्तिष्कावरणगत फिरग रोग को (१) Cerebral form of meningovascular Syphilis (२) Spinal form of meningovascular Syphilis इन दो भागो मे विभक्त किया जाता है। यहा पर पहले Cerebral form का वर्णन किया जाता है।

फिरग रोग से ग्रस्त हुए व्यक्तियो मे से लगभग ४% व्यक्तियो मे यह रोग होता है और रोग के पहले आरम्भ होने के २ से १० वर्ष वाद प्रकट होता है। मस्तिष्क मे पडा हुआ फिरग रोग जीवाणु सभवत रोगी की प्रतिरोधक शक्ति के कम हो जाने से यह मस्तिष्कावरण की धमनियो के आसपास के लसीकामय प्रदेश (Perivascular lymph Spaces) मे वढने लगता है। इनके दुष्प्रभाव से मस्तिष्क पर चढे हुए Pia तथा उसके वाहर के आवरण Arachnoid इन दोनो मे शोथ हो जाता है। दूसरे शब्दो मे इनमे Fibrosis की प्रक्रिया विशेष हो जाती है जिससे ये मोटे हो जाते है। इसे Chronic Syphilitic Leptomeningitis कहते है। ऐसी प्रक्रिया ऊर्ध्व मस्तिष्क के Base पर विशेष होती है। स्पष्ट है इन दो आवरणो के फूलकर मोटा हो जाने से मस्तिष्क द्रव Cerebrospinal fluid मे मार्गावरोध हो जाता है, जिससे मस्तिष्क मे उसकी मात्रा अधिक हो जाती है, एव कुछ-कुछ Hydrocephalus सा हो जाता है।

यह रोग धीरे-धीरे वढता है। इसका पता तव चलता है जव एक तरफ की किसी Cranial Nerve के Leptomeningitis के कारण दव जाने से उसमे घात या Palsy का उपद्रव हो जाता है। पहले Optic Nerve के दवने से उसमे घात होता है उसमे Optic Neuritis तथा Optic-atrophy होकर एक ओर की दृष्टि मन्द हो जाती है। परीक्षा करने से एक ओर पुतली मे Light reflex मन्द होता है। पुतली देखने मे छोटी होती है। कुछ विषमाकृति होती है। Retina के पीछे मस्तिष्क मे उसकी शिराओ के दव जाने से Disc मे Oedema दीखता है। छठी मस्तिष्क नाडी मे भी घात हो सकता है। सातवी मस्तिष्क नाडी (Facial) मे रोग होने से Facial palsy का उपद्रव हो सकता है। पाचवी नाडी (Trigeminal) भी कभी-कभी ग्रस्त होती है, उससे Trigeminal Neuritis का दर्द हो सकता है। आठवी मस्तिष्क नाडी के ग्रस्त होने से शिरोभ्रम, कर्णघोष, तथा वधिरता के लक्षण हो सकते है।

Cerebral Endarteritis—ऊर्ध्व मस्तिष्क के निम्न पृष्ठ पर विद्यमान Circle of willis से निकलने वाली धमनियो पर चढे Meninges मे leptomeningitis के हो जाने से उन धमनियो की वाहर की दीवार मोटी हो

जाती है वहा Lymphocytes और plasmocytes अधिक मात्रा मे जमा होते हैं जिसमे Peri arteritis की विकृति हो जाती है। इन धमनियो की अन्तस्तर भी Fibroblasts की क्रिया से तथा वहा Collagen अवयव के अधिक मात्रा मे एकत्रित हो जाने से अधिक मोटी हो जाती है। परिणामत इन धमनियो का अन्दर का गोत तग हो जाता है। अर्थात् इनमे Thrombosis या End-arteritis oblitarans का रोग हो जाता है। धमनी स्रोतोरोध के कारण मस्तिष्क के जिस अश को रक्त कम मिलता है एव जहा Ischaemia हो जाता है उसमे मृदुता या Softening की प्रक्रिया हो जाती है। इसे Infarction of the brain कहते हैं। इस प्रकार Meningo Vascular Syphilis के कारण अनेक नाडी मस्थान सवन्धी लक्षण हो सकते हैं। प्राय Middle cerebral-artery, Posterior cerebral artery तथा Basilar artery की Perforating branches मे यह रोग होता है। इसी से पक्षाघात Hemiplegia, Dysphasia या Hemianopsia के रोग हो सकते हैं। पहले एक हाथ मे कुछ-कुछ काल के लिए निर्वलता लगने लगती है। वाद मे घात भी हो जाता है। Basal ganglia मे धमनी स्रोतोरोध होने लगे तो Parkinson disease का रोग होने लगता है।

Chronic Syphilitic Cerebral Meningitis के सामान्य लक्षण, प्रधानत शिरदर्द, शारीरिक मन्दता Lethargy, तथा वुद्धि और स्मृति की मन्दता के होते है। फिरग जनित शिर दर्द सिर मे गहरा प्रतीत होता तथा रात्रि को ज्यादा होता है।

Spinal form of Maningovascular Syphilis-फिरग जनित सुपुम्नावरणशोथ ---

Spinal cord के Dorsal या पृष्ठगत भाग के दो तीन Segments या खण्डो मे प्राय यह रोग होता है अर्थात् वहाँ पर ही सुपुम्नावरण शोथ होता है। यदि आवरण भाग मे शोथ अधिक हो तो सुपुम्ना या Cord के Lateral Column के Myelin भाग पर कुछ दुष्प्रभाव पडता हे। हो सकता है कि Posterior Column पर कभी इसका दुष्प्रभाव पडे। यदि Maninges के स्थान पर Cord की धमनियो पर अधिक दुष्प्रभाव पडे अर्थात् धमनियो पर दवाव अधिक पड जाये तो Cord मे कुछ मृदुता या Softening की विकृति हो जाती है जिससे Anterior horn cells मे क्षीणता की प्रक्रिया हो जाती है अर्थात् उनके Chromophil (रगे जाने वाले) दाने नष्ट हो जाते है। Spinal Cord के इस रोग को Meningomyelitis कहते है। इस रोग मे Posterior Column पर कुछ दुष्प्रभाव पटा हो तो Posterior Nerve roots के रुग्ण होने के कारण छाती या कोष्ठ पर घेरे मे दर्द होती है। इस दर्द के कुछ काल वाद Cord पर इस रोग का दुष्प्रभाव होने से जघाओं मे कुछ-कुछ उरु स्तभ Paraplegia का लक्षण प्रतीत होने लगता है। इसके कुछ काल वाद मूत्राशय तथा मलाशय के निर्वलता सूचक लक्षण होने लगते हैं अर्थात् उनमे Retention का लक्षण होने लगता है।

Syphilitic Amyotrophy—फिरग जनित मास शोप—Anterior horn cells मे रक्त कम पहुचे तो पहले उधर के हाथ की छोटी मासपेशियो मे क्षीणता आ जाती है। इस रोग के कारण कधे की मास पेशियो मे भी क्षीणता हो सकती है।

Cerebral तथा Spinal meningovascular Syphilis मे Cerebrospinal fluid—

इस रोग मे सुपुम्ना द्रव का प्रेशर वटा हुआ होता है। उसमे Lymphocytes तथा Plasmocytes अर्थात् Cell की सख्या वढी हुई होती है। एक Cubic Millimeter मे ३०-१५० तक होती है (Pleocytosis) इस द्रव मे प्रोटीन की मात्रा भी वढी होती है, १०० मिलि० लिटर मे ५०-१५० मिलि० तक हो सकती है। इस द्रव मे इस रोग की विप का Reagin भी मिलता है। रोगी के रक्त की Serology भी पाजिटिव होती हे। अर्थात् उसमे भी Antibody मिलता हे। Wassermann reaction भी पाजिटिव होता हे।

इस रोग अर्थात् Maningovascular Syphilis की चिकित्सा शीघ्र आरम्भ कर दी जाये तो इस रोग को अच्छा किया जा सकता है परन्तु मस्तिष्क के असली भाग मे जो क्षति आ गई हे अर्थात् Parenchymatous क्षति को पूरा नही किया जा सकता। अत इसकी चिकित्सा शीघ्र होनी चाहिए।

मस्तिष्कान्तर्गत फिरग रोग Parenchymatous Neurosyphilis

General Paresis or Dementia Paralytica or General paralysis of the insane या **फिरग जनित मस्तिष्क शोथ** —

इस रोग को Chronic Syphilitic Encephalitis भी कह सकते है क्योकि Treponemapallidum के कारण इसमे हलका-हलका मस्तिष्क शोथ होता है। सौभाग्य से यह रोग अव वहुत कम हो गया है। समस्त फिरग रोगियो

के १०० मे से २-३ मे यह रोग होता है। Neuro Syphilis रोगियो मे ५-७ मे ही यह रोग होता लगता है। तथा रोग आरम्भ होने के १०-१२ साल बाद यह रोग प्रकट होता है। एव ४०-५० वर्ष की आयु मे होता हुआ मिलता है।

यह रोग धीरे-धीरे बढता है। इसमे मन और शरीर की शक्तियो मे क्रमश ह्रास होता जाता है और अन्त मे बुद्धि अति मन्द हो जाती, Dementia हो जाता, और शारीरिक शक्ति भी अतिहीन हो जाती अर्थात् Paralysis सा हो जाता है। इसी लिए इसे Dementia Paralytica कहा है।

रोगी के मस्तिष्क की मृत्यूत्तर परीक्षा की जाये तो उसमे Treponema pallidum मिलता है। उसका मस्तिष्क देखने मे सुकडा हुआ और कुछ कठोर हुआ प्रतीत होता है। मस्तिष्क पर चढा हुआ Pia arachnoid का आवरण भी काफी मोटा हुआ दीखता है। ये परिवर्तन विशेषत Frontal और Temporal lobes मे ज्यादा स्पष्ट दिखाई पडते है। मस्तिष्क धमनियो मे कोई विशेष विकृति देखने मे नही आती।

मस्तिष्क की माइक्रोस्कोपी करने पर पता चलता है कि मस्तिष्क के Cortex मे, Striatum (Cordate तथा Lentiform Nuclei) मे तथा Hypothalamus मे Neuroglial tissue बहुत बढ गया है, Meninges भी बहुत मोटे हो गये हैं परन्तु मस्तिष्क के असली सेल्स (Parenchymatous cells) सुकड गये है। मस्तिष्क के असली भाग के क्षीण हो जाने से मस्तिष्क सुकडा हुआ दीखता है।

लक्षण

यह रोग धीरे-धीरे विकसित होता है। यहाँ तक कि रोगी को अपने आप रोग का उतना पता नही होता जितना उसके पास रहने वालो को होता है। रोगी को इतना पता चलता है कि उसे कुछ सिर दर्द रहता है, उसकी नींद कम होती जा रही है, उसके शरीर मे कुछ बेचैनी सी रहती है और उसके कार्य करने और एक काम मे ध्यान देने की शक्ति कम हो रही है। देखने वालो को यह अनुभव होता है कि उसका आचरण, उसका व्यवहार और उसके चित्त की अवस्था या Mood पहले की अपेक्षा बदल गये हैं। उसके व्यवहार मे कुछ भद्दापन या Roughness आ गई है। उसका अपने भावो पर नियन्त्रण नही रहा, वह क्रोध शील हो गया है और क्रोध मे आपे मे बाहर हो जाता है। दूसरी ओर सिनेमा आदि मे देखने पर उसकी आखो मे आँसू भी बहुत जल्दी आ जाते है अर्थात् उसकी मानसिक अवस्था निर्बल-निर्बलतर होती जाती है। उसकी पहले वाली नैतिकता मे भी ह्रास हो गया है जिसके कारण वह दुर्व्यवहार भी कर बैठता है। समाज के साधारण Manners को भी वह भूल गया है। देखने वालो को उसका व्यक्तित्व ही बदला हुआ और नीचे की ओर जाता हुआ लगता है। उसके दुर्व्यवहार के कारण समाज के लोग अब उसका बहिष्कार करने लगते है। मानसिक ह्रास के साथ उसकी स्मृति भी नष्ट होने लगती है। उसे अभी की बीती बाते भूल जाती हैं। स्मृति नाश के साथ उसकी बुद्धि अर्थात् किसी बात को ठीक-ठीक समझने की तथा विवेक करने की शक्ति भी नष्ट हो जाती है। दया, करुणा आदि भावो का उदय होना भी बन्द होने लगता है अर्थात् उसमे सहानुभूति, परदुखकातरता, दूसरो के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने के भाव भी लुप्त होने लगते है अर्थात् उसमे मस्तिष्क के कार्य समझबूझ, उचित भावो का उदय आदि सब समाप्त हो जाते हे। इसी से इस रोग को Dementia बुद्धिमाद्य का नाम दिया है।

बुद्धि, विवेक एव Insight ऊहापोह की शक्ति के न रहने के कारण उसे मिथ्या भ्रम Delusions होने लगते है। उसमे यह भ्रम हो सकता है कि वह बहुत अच्छा स्वस्थ और खुश आदमी है और वह ऐसा ही व्यवहार करे तो इसे Euphoria type of Dementia हर्षोन्माद युक्त बुद्धिमाद्य कहते है। यदि उसे यह भ्रम हो जाये कि वह एक धनी और बडा व्यक्ति है तो इसे Expansive type of Dementia या भ्रमोन्माद युक्त बुद्धि माद्य कहते है। जब उसमे चेष्टाशीलता अधिक बढ जाती हे तो इसे Hypomanic type of Dementia या उन्माद युक्त बुद्धिमाद्य कहते हे। जब उसमे विषाद का भाव बढा हुआ हो तो उसे Depressive type of Dementia विषादयुक्त बुद्धिमाद्य कहते है। जब उसे ऐसा मिथ्याभ्रम हो जाये कि दूसरे लोग उसे हानि पहुचाने का यत्न कर रहे हे तो इसे Paranoid type of Dementia या भ्रमोन्माद युक्त बुद्धिमाद्य कहते हे।

इस रोग के किसी-किसी रोगी मे अपस्मार सदृश आक्षेप थोडी मूर्छा के साथ या बिना मूर्छा भी होने लगते हे। कभी-कभी किसी रोगी मे सन्यासमूर्छा Apoplexy के समान दौरे के होने का लक्षण होता हे जिसमे Hemiplegia या Monoplegia का लक्षण भी होता हे जो अस्थायी होता है। कुछ दिनो मे ठीक हो जाता हे। इनके प्रारम्भ मे हलकी सी मूर्छा भी हो सकती है। यदि ये बार-बार हो तो शरीर मे निर्बलता बढती जाती है।

अन्त मे रोगी की बुद्धि सर्वथा नष्ट हो जाती हे वह

चारो ओर से विरत या उदासीन-सा होकर हर समय विस्तर मे पडा रहता है। उसके हाथ पाव मृतवत् या Paralysed से हो जाते हैं। इसीलिए इस रोग को General Paralysis या व्यापक घात का रोग कहते है।

परीक्षा

रोगी के चेहरे पर भावहीनता होती है। उसके ओष्ठ जिह्वा तथा अगुलियो मे Tremor का लक्षण होता है। जिह्वा मे आगे पीछे की दिशा मे Rhythmic चेष्टा होती है। अगुलियों मे कम्प के कारण लिखने मे कठिनता होती है। लेख मे अक्षर छूट जाते हैं। या आगे पीछे हो जाते हैं। लेख तिरछा हो जाता तथा कपित हाथो से लिखा हुआ अर्थात् Tremulous होता है। भाषण मे भी वैषम्य आ जाता है। वह धीरे-धीरे किस्म का Hesitant होता तथा बाद मे तो वह Slurred अर्थात् शीघ्र शीघ्र हो जाता जिसमे शब्द परस्पर इकट्ठे हो जाते हैं। पुतलिया छोटी, विषमाकृति तथा दोनो एक सी नही होती। उनमे Light reflex नही होता। Accommodation reaction होता है (Argyll-Robertsonpupil) Optic atrophy का लक्षण भी होता है। इस रोग का प्रभाव Pyramidal System पर भी पडता है जिससे Tendon reflexes बढे हुए होते है। Plantar response Extensor होता है। Abdominal-reflex लुप्त होता है। Wassermann reaction पाजिटिव होता है। S C fluid मे भी फिरग रोग के लक्षण मिलते है।

भेदक लक्षण—

Maningovascular Syphilis से उसका भेद करे। वह रोग Syphilis के आरम्भ होने के बाद जल्दी ही आरभ हो जाता है। यह रोग बहुत वर्षों बाद आरभ होता है। उस रोग मे मानसिक लक्षण भी नही होते। वह जल्दी बढता है यह धीरे-धीरे बढता है। उसमे Tremor का लक्षण नही होता। Arteriosclerotic Dementia अर्थात् वृद्धावस्था सुलभ बुद्धिभ्रश रोग जिसे Senile Dementia भी कहते है जो ६५ वर्ष की आयु के बाद होता है जिसमे मस्तिष्क को ठीक-ठीक रक्त न मिलने से उसके सेलो मे Atrophy हो जाती है जो विशेषत Frontal, Temporal और Parietal lobes मे होती है जिसके कारण Cerebral Cortex कुछ पतला हो जाता है उससे इस रोग का भेद करना चाहिए। उस रोग मे भी स्मृतिभ्रश, बुद्धिमाद्य, भावावेशो पर नियन्त्रण के अभाव, शरीर तथा स्थान को स्वच्छ न रखने के दोष, धृतिनाश, शंकाशीलता, भ्रम परायणता (Delusion) विषाद शीलता (Melancholia) आदि मानसिक लक्षण तथा मासपेशियो मे स्तब्धता, जाघो का पोषण ठीक न होने से उनमे निर्बलता, कोष्ठागो मे रक्त की कमी से Flatulence या वायु के होने, क्षुधा की न्यूनता, अतिसार होने, हृदय मे रक्त की कमी से चलने पर या ऊपर चढने पर श्वास कृच्छता के या हृदय शूल होने, शिर मे रक्त की कमी से शिरोभ्रम होने, फुफ्फुसो मे रक्त की कमी से जीवाणु सक्रमण होकर खासी के हो जाने आदि आदि शारीरिक लक्षण होते ह। वह रोग वृद्धावस्था मे और यह रोग मध्यमायु मे होता है।

साध्यासाध्य

चिकित्सा से इस रोग की बढती को रोका जा सकता है पर मस्तिष्क के Parenchyma मे जो क्षति आ चुकी है उसे हटाना तो कठिन है।

Tabes Dorsalis (Tabes=क्षीणता, Dorsalis=Dorsal Column) or Locomotor Ataxy (Locomotor = गतिसम्बन्धी, Ataxy=Incoordination, विषमता या अस्थिरता) सभवत इसे कलायखञ्ज कह सकते हैं।

सुषुम्ना काण्ड के पश्चिम स्तम्भ (Post Column) मे क्षीणता के हो जाने से जब निम्न शाखाओ मे अस्थिरता सी आ जाती है तो उसे Locomotor ataxy कहते है।

यदि सिफलिस के रोगी ने रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे उसकी ठीक चिकित्सा न कराई हो तो १०-१२ वर्ष बाद अर्थात् ३५-५० वर्ष की आयु मे विशेषत पुरुषो मे यह रोग होता है। Neuro Syphilis के १०० व्यक्तियो मे से १५-२० मे ही यह रोग होता है। इस रोग के विष का प्रभाव Posterior Column पर ही क्यो होता है और सौ रोगियो मे से कुछ एक मे ही यह उपद्रव क्यो होता है इसका समाधान नही हो सका है। पेनिसिलिन के निकलने के बाद अब यह रोग पहले की अपेक्षा कम हो गया है।

विकृति

रोगी की मृत्यूत्तर परीक्षा करने से पता चलता है कि उसकी सुषुम्ना या Cord का पिछला भाग क्षीण हुआ हुआ है। Posterior Nerve roots भी जो सुषुम्ना मे प्रवेश करती है सुकडी हुई दीखती है जब कि Anterior Roots को देखे तो वे पर्याप्त मोटी होती है। सुषुम्ना के निम्नतम Lumbo-sacral भाग मे पहले यह क्षीणता

आरम्भ होती है अर्थात् पहले अस्थिरता या Ataxy का लक्षण टागो मे आता है। रोग के बढ जाने पर Cord के सारे पश्चिम भाग मे यह क्षीणता आ जाती है यह क्षीणता पहले Posterior roots मे आती हे अर्थात् Cord के पिछले Column की क्षीणता Secondary होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि Posterior roots के Ganglion और Cord के बीच के भाग मे Treponema pallidum का दुष्प्रभाव होता है अर्थात् उस भाग मे Meningo Vascular Syphilis होता हे। वहा Leptomeningitis होकर Posterior roots के Sensory fibres क्षीण हो जाते है। धीरे-धीरे यह क्षीणता ऊपर Nucleus gracilis तथा Nucleus cuneatus तक फैल जाती है। Spinothalamic (दर्द सर्दी गर्मी वाहक सूत्र) सज्ञा सूत्रो मे यह क्षीणता नही होती। Posterior Column के नाडी सूत्रो के Myelin Sheath मे Gliosis या Sclerosis या सौत्रिक तन्तु वृद्धि का विकार विशेप होता है तथा बीच के नाडी सूत्र क्षीण हो जाते हैं। स्थिति सज्ञा वाहक सूत्रो या Proprioceptive impulses के वाहक सूत्रो मे क्षीणता विशेप होती हैं। इसीलिए पहले Ataxy का लक्षण होता है। फिर यह विकृति सारे Dorsal Column मे फैल जाती हे। अब जैसी क्षीणता की विकृति Dorsal roots मे होती है वैसी ही Cranial Nerve roots मे भी हो सकती हे। Optic Nerves के सूत्रो मे क्षीणता के कारण Optic atrophy का उपद्रव भी इस रोग मे होता है। इसी प्रकार तृतीय मस्तिष्क नाडी (Oculomotor) के Nucleus मे Degeneration या क्षीणता के कारण नेत्र सम्बन्धी किसी मासपेशी मे घात या Ocular palsy का उपद्रव हो सकता हे। Corpora quadrigemina की Colliculo-ocular fibres (Midbrain मे) के इस रोग के कारण क्षीण हो जाने से Argyll-Robertson pupil का उपद्रव भी हो सकता है।

लक्षण

इस रोग के लक्षण बहुत धीरे धीरे प्रकट होते हे Posterior roots या Post column की विकृति से निम्नलिखित लक्षण होते है (१) तीव्रशूल Lightening pain का लक्षण पहले प्रकट होता है। एक ओर की टाग मे सहसा सुई या शूल चुभने की सी दर्द होती है। ऊपर नीचे की दिशा मे न होकर बाहर मे सीधे अन्दर की ओर Perpendicular दिशा मे किसी स्थान पर चुभने की दर्द होती है, विशेपत पिण्डली मे या एडी मे होती है। लगातार न होकर दौरो Paroxysms मे होती है और कुछ सैकण्ड ही रहती है। बहुत सभव है Posterior Nerve roots के सज्ञावाही सूत्रो पर Leptomeningeal विक्षोभ या उसके दबाव पडने पर प्रतिक्रिया के रूप मे होती है। छाती मे गोलाकार रूप मे भी यह दर्द हो सकता है। कुछ सैकण्ड के बाद ठहर-ठहर कर दर्द उठता है और कुछ काल होकर फिर पर्याप्त समय के लिए नही उठता। कभी तो यह दर्द त्वचा मे ही लगता है, कभी यह मासतक लगता, कभी यह अस्थितक गहरा लगता है। चलते समय यह दर्द उठे तो तुरन्त बैठना पड जाता है। यह क्षण भर के लिए बिजली की तरह उठता है।

(२) सज्ञा सबन्धी लक्षण—Impairment in Sensation —सज्ञा सम्बन्धी लक्षण Hyperalgesia अर्थात् स्पर्श या दर्द की अति प्रतीति भी हो सकती है तथा Hypalgesia सज्ञा प्रतीति की न्यूनता दोनो हो सकते है। धड के निचले भाग मे स्वल्प स्पर्श या गर्म वस्तु का स्पर्श असह्य हो सकता है। Hypalgesia या स्पर्श या दर्द की सज्ञा की न्यूनता का भी लक्षण हो सकता है विशेपत नाक के दोनो पार्श्वो पर अग्रबाहुओ के आभ्यन्तर पार्श्वो पर, छाती मे आगे की ओर, टागो के बाहर की ओर के किनारे पर, पावो के ऊपर नीचे के पृष्ठो पर Parinaeum पर यह लक्षण पहले आरभ होता है। ज्यो-ज्यो रोग बढता है, स्पर्श सज्ञा की यह हीनता फैलती जाती है। Deep Sensibility अर्थात् गहरी सज्ञा भी कम हो जाती है, Tendo Achellis पर दबाने मे जो दर्द होता हे लुप्त हो जाता है। कोहनी के पास Ulnar Nerve को दबाने से जो दर्द छोटी अ गुलि तक जाता है वह लुप्त हो जाता है।

Tendon reflexes नष्ट हो जाते है। Posterior Nerve Roots से जो सूत्र (Exogenous Fibres) Anterior Horns के सेलो तक आते है उनके क्षीण हो जाने मे Tendon Reflexes लुप्त हो जाते हैं। जब यह रोग पहले Sacral प्रदेश मे शुरू होता है तब सबसे पहले Anklejerks (S 1, 2) नष्ट होते है। इसके बहुत काल बाद रोग के बढने पर फिर Kneejerks लुप्त होते है।

Skin-reflexes जैसे कोष्ठ पर Skin Reflexes बढे हुए या तीव्र होते है, कारण त्वचा पर Hyper aesthesia होता है।

Hypotonia मास पेशियो की निर्बलता—मास पेशियो मे बल या Tone, Proprioceptive Impulses के ऊपर तथा Spinal Reflex-arcs के ठीक रहने पर निर्भर है। परन्तु जब स्थिति स्थापक सज्ञा सूत्र मृत हो जाते

है तब मास पेशियो की Tone भी जाती रहती है शरीर की मास पेशिया शिथिल और लचीली हो जाती है। इसका पता शाखाओ को जोडो पर मोडने से लग जाता है।

Ataxy अस्थिरता —यह इस रोग का प्रमुख लक्षण है। Posterior Roots द्वारा शरीर स्थिति सूचक सूत्र Proprioceptive Fibres ऊपर Thalamus द्वारा मस्तिष्क को पाव की स्थिति की सूचना देते है तथा ये सूत्र, लघु मस्तिष्क Cerebellum को भी ऐसी सूचना देते है जिससे आदमी को अपनी जघाओ की स्थिति का ठीक-ठीक पता चलता है। इस रोग मे रोग आरभ होने के कुछ काल बाद ये सूत्र भी क्षीण हो जाते है जिससे आदमी को अपनी जघाओ की स्थिति का पूरा पता नही चलता और वह अपने पैरो को ठीक-ठीक सचालित नही कर सकता और शरीर की Centre of Gravity को बदलती हुई स्थिति मे ठीक नही रख सकता। आखो की सहायता से वह इस कमी को कुछ-कुछ पूरा कर लेता है। इसलिये प्रकाश मे तो वह लडखडाता नही है पर अधेरे मे वह चलते हुए लडखडा जाता है। उसकी चाल बेढगी हो जाती है। उसे दोनो पैरो को जोड कर खडे होने को कहा जाये तो वह लडखडाने लगता है। आख बन्द कर देने के बाद तो वह बहुत अधिक लडखडाने लगता है (Romberg's Test) बाद मे तो वह लकडी के सहारे से ही चल सकता है।

पुतली सबन्धी लक्षण —पुतली पर लाइट डाले तो वह सुकडती है। अधेरे मे वह फैलती है इसे Light Reflex कहते है। यह तभी तक ठीक है जब तक Retina ठीक है। उसमे से निकली Optic Nerve और Optic Tract (Optic Chiasma से Thalamus के Lateral Geniculate Body तक का भाग) ठीक है। इनमे Visual Fibres दृष्टि सूत्रो के साथ-साथ Light Reflex Arc (Curved Line) के Afferent सूत्र तथा Visual सूत्र दोनो साथ-साथ पीछे जाते है। अब Visual सूत्र तो Lateral Geniculate Body मे समाप्त हो जाने पर Light Reflex सबधी सूत्र वहा समाप्त न होकर Superior Corpus Quadrigeminum मे जाते है। वहा उसके Colliculus (उभार) से Colliculo-Ocular Fibres निकलकर Aqueduct के पास Midbrain मे विद्यमान Oculomotor (तृतीय नाडी) के Nucleus के अगले सिरे मे समाप्त होते है। अब वहा से Light Reflex Arc के Efferent Fibres निकलकर पुतली मे समाप्त होते है और उसे सुकोडने का काम करते है। इस प्रकार तीसरी नाडी, पुतली की सकोचक हो जाती है। दूसरी ओर Cervical Sympathetic पुतली की प्रसारक नाडी है।

इस रोग मे Light Reflex का Afferent भाग ठीक ही रहता है क्योकि दृष्टिशक्ति ठीक होती है। इस Arc का Efferent भाग भी ठीक ही रहता है क्योकि नेत्रो के Convergence करने पर अर्थात् नजदीक की वस्तु को देखने पर Accomadation reflex अर्थात् पुतली का सुकडना कायम रहता है। अत ऐसा प्रतीत होता है कि Light Reflex Arc के Afferent और Efferent पक्षो को जोडने वाले Colliculo Nuclear Fibres पर जो Midbrain मे Aqueductus के पास है इस रोग का दुष्प्रभाव पडता है। इसके कारण Light Reflex लुप्त हो जाता है। देखने मे एक या दोनो पुतलिया छोटी होती है अर्थात् उनमे Miosis होता है। पुतलिया विषमाकृति Irregular भी होती है। Mydriatic औषधियो जैसे Homatropin आदि के डालने से भी पुतली ज्यादा फैलती नही। पुतलियो के छोटे होने का कारण Cervical Sympathetic नाडी का फिरगजनित घात (Paralysis) भी हो सकता है क्योकि वह पुतली की प्रसारक है। पुतली मे ये सब लक्षण हो तो उसे Argyll Robertson Pupil कहते है।

इस रोग मे हलका Ptosis अर्थात् ऊपर की पलक के नीचे की तरफ ढलक जाने का लक्षण भी हो सकता है। यह लक्षण भी Cervical sympathetic के अन्दर Paralysis के कारण होता है क्योकि उसके कारण ऊपर की पलक ऊपर रहती है। नेत्रो की तृतीय (Oculomotor) या षष्ठ (Abducent) नाडियो पर इस रोग का दुष्प्रभाव होकर Diplopia का लक्षण भी हो सकता है। ये उपद्रव Syphilitic basal meningitis के कारण होते है।

आशयो सम्बन्धी तीव्र कष्ट Visceral crises (Crisis-Singular) पेट के गड्ढे Epigastrium मे दर्द उठकर वमन का दौरा हो सकता है जो पर्याप्त समय और कई दिनो तक जारी रह सकता है। इसमे दर्द हलका भी हो सकता है, तीव्र भी हो सकता है। Lightening pain की तरह यह दर्द भी दौरो मे होता है। दौरे के बाद रोगी बिलकुल ठीक लगता है। इसे Gastric crisis कहते है। दूसरा दौरा महीनो बाद हो सकता है। इसी प्रकार मलाशय मे दर्द उठकर मरोडो के उठने का दौरा हो सकता है। वह भी पर्याप्त काल रहता है इसे Rectal crisis कहते है। इसी प्रकार Bladder मे

Spasm सा उठकर दर्द के साथ पिशाव के होने का दौरा हो सकता है (Dysuria) इसे Vesical crisis कहते है। कण्ठ मे Spasm उठ कर सहसा श्वासकाठिन्य Dyspnoea उच्चघोष Stridor होने लगे तो ऐसे दौरे को Laryngeal crisis कहते है। ऐसा प्रतीत होता है कि Posterior Nerve roots मे जो Visceral afferent सूत्र आते है उनमे क्षीणता के आरम्भ होने पर या उन सूत्रो पर Leptomeningeal विक्षोभ या दवाव के कारण आशयो मे Spasm के दौरे होते है।

Charcot's (फ्रान्सीसी Neurologist 1825-1893) disease of joints Trophic changes in joints या Neuropathic joints —

जाघो की किसी सन्धि जैसे गुल्फ, गोडे या वक्षण Hip मे आने वाली Trophic Nerves के क्षीण हो जाने से पहले तो सधि के अन्दर तथा आसपास उभार Swelling या Oedema हो जाता है। फिर सधि के अन्दर क्षीणता की प्रक्रिया शुरु हो जाती है। सधि के अन्दर की तरुणास्थि क्षीण हो जाती है। फिर सधि वनाने वाली अस्थियो के सिरे क्षीण होने लगते है। Ligaments भी क्षीण हो जाते है इस प्रकार सधि सर्वथा असमर्थ Disorganised हो जाती है। एक विशेष वात यह है कि सधि मे दर्द सर्वथा नही होता। Hip मे रोग हो तो हो सकता है कि थोडी चोट से Femur की Neck मे Fracture हो जाये। हाथ पाव की छोटी सधियो मे तथा कोहणी कन्धे और पृष्ठ वश की सधियो मे भी यह सधि शैथिल्य का रोग हो सकता है। अस्थियो के पोषण के कम हो जाने से इस रोग मे Fracture भी अनायास हो जाता है। त्वचा की Trophic Nerves मे इस रोग का दुष्प्रभाव होने से पाव के तलुए मे Chronic ulcer हो सकता है जो ठीक न होकर गहरा ही होता जाता है। इसमे दर्द नही होता।

मलमूत्र द्वार सम्वन्धी विकार, Sphincter troubles —मूत्राशय मे से Sensory Nerve fibres अर्थात् सज्ञावाही सूत्र Parasympathetic नाडियो के साथ Sacral Nerve roots (S2-3) मे से ऊपर जाते है। इनमे फिरग रोग जनित क्षीणता के होने से मूत्राशय मे मूत्र के उपस्थित हो जाने पर भी उसके दर्द की प्रतीति ऊपर नही जाती, क्योकि सज्ञा की प्रतीति न होने से Bladder के मास की Tone कम हो जाती है। मूत्राशय मे मूत्र का सचय होता रहता है, तथापि आदमी को उसकी प्रतीति नही होती। इससे पहले तो कोई असुविधा नही होती पर मूत्राशय मे Residual urine के हमेशा सचित रहने से Cystitis मूत्राशय शोथ हो जाता है। वाद मे मूत्र के भरे होने पर भी तथा मूत्र के लिये वैठ जाने पर भी मूत्र उतरता नही या वहुत देर मे उतरता है (Hesitancy)। वाद मे आदमी का मूत्र पर कन्ट्रोल जाता रहता है और रात को मूत्र के भर जाने पर स्वय विस्तर मे ही निकल जाता है (Nocturnal Incontinence)। यहा यह कथन अप्रासगिक न होगा कि Parasympathetic) सूत्र (S_2—S_3 Segments) Pelvic Nerves (Nervi Erigentes) के रूप मे मूत्राशय मास के सकोचक होते और मूत्राशय द्वार (Sphincter) के प्रसारक होते है। दूसरी ओर Sympathetic सूत्र (D_{12}—L_1—L_2) मूत्राशय के Inhibitor होते एव मूत्र को अन्दर रोकते या Retain करते है।

रोगविनिश्चय

Lightening pain तथा रोग के इतिवृत्त को सुनने से रोग का निश्चय हो जाता है।

साध्यासाध्य

जितना ही यह रोग प्रारभिक लक्षणो के वहुत वर्षो वाद होता है उतना ही यह मृदु रूप मे होता है, जितना जल्दी होता है उतना ही तीव्र रूप मे होता है। इस रोग की प्रारभिक अवस्था मे ही चिकित्सा हो जाने से इस उपद्रव के होने की आशका कम हो जाती है। Tabes के लक्षणो के आरभ होने पर भी चिकित्सा से इसकी गति को रोका जा सकता है।

फिरग रोग की चिकित्सा

प्रथम अवस्था मे Procaine Penicillin (Aqueous Suspension) को ६ लाख यूनिट मात्रा मे मास द्वारा सात दिन तक रोज दे।

इस रोग की द्वितीय अवस्था जो दो ढाई महीने वाद आरभ होती है उसमे Procaine Panicillin) Aqueous Solution) को १० लाख यूनिट, मात्रा मे रोज २० दिन तक मास द्वारा दे। अथवा Procaine Penicillin in oil with 2% Aluminium monostearate (PAM) ६ लाख (2ML) यूनिट्स को मास द्वारा प्रति दूसरे या प्रति तीसरे दिन देकर १० वार तक दे देना चाहिए।

इस रोग की तृतीय अवस्था अनेक वर्ष वाद आरभ होती है। इस अवस्था मे Penicillin देने से पहले Bismuth Oxychloride या Salicylate को २ ग्राम मात्रा (२ ML)

मे सप्ताह मे एक वार मास द्वारा दें तथा इस प्रकार ४ सप्ताह तक उसे दे। उसके वाद Procaine Penicillin (Aqueous Suspension) को १२ लाख यूनिट मात्रा मे २० दिन मास द्वारा दे या PAM को ६ लाख यूनिट (2ML) मात्रा मे १४ दिन दें। या पाचवे हफ्ते से Benzathine Penicillin (Penidure) १२ लाख यूनिट मात्रा मे सप्ताह मे एक वार ४ सप्ताह तक मास द्वारा दें। Cardio vascular Syphilis मे भी यही चिकित्सा उपयोगी है। या PAM को निरन्तर रोज न देकर सप्ताह मे पाँच दिन ही देवें और इस क्रम को ४ सप्ताह जारी रखे। Tabes मे Penicillin को इससे भी वडी मात्रा मे दे देना चाहिए।

Penicillin के लिए जो Sensitive है जिन्हें यह अनुकूल नही उन्हे Oxytetracycline (Terramycin) या Erythromycin देवे। प्रथम द्वितीय अवस्था मे उन्हे २५० मिलि० कैपसूल के रूप मे २४ घ० मे ४ वार दे तथा ४ दिन दें। Late Syphilis मे इन्हे २-२ कैपसूल की मात्रा मे दिन-रात मे चार वार दे तथा २० दिन तक दें।

Late Syphilis या Neurosyphilis मे Depression हो तो उसे Electro-convulsive चिकित्सा से लाभ हो सकता है। Tabes मे दर्द हो तो B_{12} को १००० माइक्रोग्राम मात्रा मे रोज १० दिन तक मास द्वारा दे और फिर सप्ताह मे १-२ वार इसे ३ महीना तक दे। मूत्राशय मे मूत्र का Retention रहता हो तो हाथो से मूत्राशय को दवाकर मूत्र को हर २-३ घ० वाद पूरा वाहर करने का यत्न करे। Gastric crisis हो तो Bland food दे, दौरे के समय Saline Glucose रक्त द्वारा दें तथा Sedative दे।

सक्रामक पूयमेह Gonorrhoea

कारण

जर्मनी के Ludwig siegmund Neisser के द्वारा प्रथम वार (१८७९) प्रदर्शित पूयमेह जीवाणु या Neissirian Gonococcus या Neisseria Gonorrhoeae नामक जीवाणु के मूत्र मार्ग मे प्रवेश कर जाने के ४-१० दिन के अन्दर-अन्दर उसके अग्रिम (Bulbous) भाग की श्लेष्मकला मे शोथ हो जाता हे जिससे वह लाल होकर सूज जाती है। कारण यह है कि यह जीवाणु विना क्षत हुए श्लैष्मिक स्तर (Epithelium) मे भी प्रवेश कर जाता है। फिर इसके अन्दर के Submucous स्तर मे भी इसी प्रकार शोथ हो जाता है। इसका प्रत्युपाय न किया जाय तो दो-तीन सप्ताह के वाद इस जीवाणु का सक्रमण मूत्र मार्ग के पिछले (Prostatic) भाग मे भी हो जाता है। अब भी इसका प्रत्युपाय न हो तो फिर इस जीवाणु का सक्रमण वहा की श्लेष्म ग्रन्थियो की प्रणालियो (Mucous Ducts) तथा अष्ठीला ग्रन्थि (Prostate) की प्रणालियो मे तथा श्लेष्मकला के गहरे स्तर मे भी हो जाता है। इस अवस्था मे फिर जीवाणु का निराकरण कुछ कठिन हो जाता है। इन प्रणालियो के पक जाने से व्रण वन जाते है। अष्ठीला मे वने व्रण से यह जीवाणु उपाण्ड (Epididymis) मे जा सकता है। इसके तथा शुक्राशय (Seminal Vesicles) के ग्रस्त होने से पु स्त्व नाश हो सकता है।

मूत्र मार्ग के जिस भाग मे यह शोथ या व्रण भाव चिरकाल तक रहता है वहा के आभ्यन्तर स्तर (Epithelium) के स्तम्भाकृति (Columnur) सेल क्रमश क्षीण होकर चपटे (Squamous) हो जाते है और फिर उन क्षीण हुए सेलो के स्थान पर स्नायु तन्तु (Scar Tissue) आ जाता है जिससे मूत्र मार्ग के उस स्थान मे (Stricture) उत्पन्न हो जाता है।

लक्षण

पूयमेह रोग के प्रारम्भ होने पर मूत्र नाली के मुख पर लालिमा और खुजली के लक्षण होते है तथा मूत्र लग कर या जलन के साथ आता है। मूत्र मार्ग से पहले तो पतला और फिर गाढा पीत वर्ण पूय निकलता है। मूत्र मार्ग के मुख को दवाने से भी पूय आता है। एक सप्ताह तक तीव्र मार्ग शोथ हो जाता है जिससे तवीयत गिर जाती तथा हलका तापमान भी हो सकता है। पर १०-१२ दिन मे यह तीव्रता शान्त हो जाती है, यद्यपि पूय जारी रहता है।

पूयमेह जीवाणु के मूत्र मार्ग मे सक्रमण कर जाने पर मूत्र के वार-वार आने, उसके जल्दी से लगने तथा उसमे कृच्छ्रता के वढ जाने के लक्षण होते हे। मूत्र के पहले भाग के निकल जाने पर उसके पिछले भाग को एक गिलास मे लेकर देखने पर वह धु धला दीखता है। आने वाले पूय मे इस रोग का जीवाणु (Neisseria Orgamism, Neisseria Gonorrhoeae) देखा जा सकता है। प्रोस्टेट ग्रन्थि मे शोथ हो जाए तो सीवन प्रदेश तथा मलाशय मे दर्द प्रतीत होने लगता है जो मल त्याग के समय वढ जाता हे।

जीर्ण पूय रोग (Gleet) मे

समय-समय पर मूत्र मार्ग से पूय आता रहता है।

डालता है। १५ मिलि० इसकी मात्रा मनुष्य के लिए घातक हो सकती है।

Krait भी Elapidae family का एक छोटा साप है जिसे Bungarus भी कहते है। यह मैदानो, खेतो तथा वस्तियो मे रहने वाला जहरीला साप है इसका मुह छोटा, दात भी छोटे होते हैं। काटने पर यह दष्ट व्यक्ति के अन्दर ५-१० मिलि० तक विप डालता है। २ मिलि० इसका विप मनुष्य के लिए घातक है।

Coral Snake नाम का एक चमकदार प्रवाल के से रग का साप है जो थोडा ही जहरीला होता है। यह दष्ट स्थान मे १५ मिलि० जहर डालता है। ८० मिलि० इसकी मात्रा घातक होती है।

Viperidae family के सांपो मे Russel's Viper नामक साप विशेष जहरीला होता है। यह एक मोटा, आकार मे वडा साप है जिसके शरीर पर विचित्र प्रकार के चिन्ह या मडल होते हे। यह मैदानो, खेतो, झाडियो और घासवाली जमीन मे रहता है। यह केवल रात को ही निकलता है। धीरे-धीरे चलता है जून-जुलाई के महीनो मे दिखाई पडता हे। इसके चलने से एक ऊची आवाज होती है। इसके Maxilla मे भी दोनो ओर एक-एक वडा दात होता है। इसके काटने पर २०० मिलि० के लगभग विप शरीर मे प्रविष्ट होता है। इसका विप ५०-६० मिलि० मात्रा मे आदमी के लिए घातक है। राजस्थान मे Viper snake bite ही अधिक होता है।

Echis नाम का इसी श्रेणी का एक साप जिसे 'फूर्सा' कहते है एक छोटे आकार का Viper साप है जो सर्वत्र मिलता है। यह खुश्क सूखे चट्टान वाले प्रदेशो मे रहता है तथा ये वहुत से इकट्ठे होकर रहते है यह ८-से १५ इञ्च का एक मोटे आकार का साप है जो विना छेडे भी काटता है। यह दष्ट प्रदेश मे १० मिलि० के लगभग विष डालता है तथा इसकी आदमी के लिये घातक मात्रा ५ मिलि० की है।

सर्पविष

हलके से पीले रग का ग्लिसरीन जैसा द्रव है। छोटे साप की जहर की मात्रा वडे साप की जहर की मात्रा से कम होती है। यह साप का Saliva हे जो अनेक Enzymes या प्रोटीन्स का मिश्रण हे। इसमे कुछ विष पदार्थ भी होते हैं जो Enzymes नही है। काटने पर साप कुछ वून्द से लेकर १ या १-५ मिलिलिटर जहर काटे हुए प्रदेश मे डाल देता है।

एक तो इस विष मे Hyaluronidases आदि Enzymes होते है जिनके कारण वह स्थान पोला हो जाता एव जहर शीघ्र फैलता है। इसमे Proteases या Proteinases होते हे जिनके कारण दष्ट स्थान मे शोथ तथा Necrosis या विनाश की प्रक्रिया होती है तथा रक्तवाहिनियो की Epithelium भी कुछ क्षत हो जाती है। इसके अन्दर विद्यमान Lecithinases और Phosphatidases के कारण रक्त कण अधिक टूटते है अर्थात् Haemolysis होता है। Elapid Venom मे Cholin esterases भी है जिसके कारण शरीर की मासपेशियो पर Acetylcholine का प्रभाव घट जाता है और वे शिथिल हो जाती है। सर्प विप के कारण शरीर के प्रोटीनमय अवयवो के टूटने पर हिस्टामीन का विष कुछ अवश्य उत्पन्न होता है।

सर्प विप के कारण रक्त का Prothrombin नष्ट हो जाता है जिससे रक्त मे जमने की प्रक्रिया निर्बल हो जाती हे एव रक्त स्राव होकर जारी रहता है।

सर्प विप मे कुछ विप द्रव्य भी होते है जो Enzymes नही हे। जैसे Viper साप के विष मे Crotoxin है तथा उसी के विप मे Crotamine एक दूसरा विप हे इसी प्रकार दूसरे भी कुछ विप द्रव्य है।

सर्प विप मे अनेक Antigens भी है जिनमे से कुछ अधिक तीव्र विप है, कुछ विप नही है। इनका निश्चय अभी तक ठीक ठीक हुआ नही है।

सर्पदश के लक्षण

सर्प विष का दुष्प्रभाव एक तो वात नाडियो पर होता है जिसे Neurotoxis कहते है। दूसरा दुष्प्रभाव रक्त पर होता है जिसे Haemotoxis कहते हे।

Elapid या Elapine श्रेणी के सापो के विप मे Neurotoxin होता है जिससे वह विप अधिकत Neurotoxic या Neurolytic होता है Centrol N System पर उसका दुष्प्रभाव विशेप होता है। कोब्राविष का दुष्प्रभाव विशेपत नाडी मण्डल पर तथा वहा भी Medulla के केन्द्रो पर विशेप होता हे। उसमे भी श्वास प्रश्वास केन्द्र Respiratory तथा Vasomotor Centres पर विशेप होता है। इसलिए अन्त मे श्वास मे कठिनता का लक्षण तथा उसके फेल हो जाने का उपद्रव हो जाता है। Medulla के नवम मस्तिष्क नाडी (Glossopharyngeal Nerve) के Nuclei पर विपैला प्रभाव होने से जीभ और गले की चेष्टा शक्ति मन्द हो जाती है जिससे भाषण करना तथा निगलना कठिन हो

जाता है। १०वी मस्तिष्क नाडी (Vagus) के Nucleus पर दुष्प्रभाव से हृदय, श्वास मासपेशियो तथा भोजन मार्ग की मासपेशियो पर चेष्टा नाश का लक्षण होता है। अरुचि और वमन के दुर्लक्षण भी होते है। ११वी मस्तिष्क नाडी (Spinal accessory Nerve) के Nucleus पर दुष्प्रभाव से ग्रीवा की Trapezius तथा Sternomastoid मे शिथिलता आ जाती है अर्थात् गर्दन ढीली हो जाती है। १२वी मस्तिष्क नाडी (Hypoglossal Nerve) के Nucleus पर दुष्प्रभाव से जिह्वा की मासपेशी मे शिथिलता आ जाती है।

सर्पदश के लक्षण

Cobra जाति के साप के काटने पर आधे घटे बाद दुर्लक्षण आरभ हो जाते है। दष्ट स्थान पर एक इच के अन्तर से दो दातो के चुभने के निशान होते है स्थानिक लक्षण विशेप नही होते। Krait साँप के दश का स्थान भी स्पष्ट नही होता। विष के शरीरव्यापी लक्षण एक घटे के अन्दर-अन्दर आरम्भ हो जाते है। अरुचि और वमन के लक्षण हो सकते है। फिर रोगी क्रमश मन्द, अति-मन्द, उदासीन, निद्रालु होने लगता है। ऊपर की पलक नीचे गिर सी जाती हे। Oculomotor पर दुष्प्रभाव से अधोहनु तथा जिह्वा शिथिल हो जाती है। सिर उठाना तथा टागो पर खडा होना कठिन हो जाता है। Proprioceptive नाडियो पर दुष्प्रभाव से रोगी लडखडाने लगता है। भाषण मे भग्नता आ जाती है। दशम नाडी के कारण निगलने मे कठिनता प्रतीत होती है। सज्ञावाही नाडियो पर दुष्प्रभाव से दर्शन, श्रवण आदि की सज्ञा नष्ट हो जाती है। ठीक उपचार न मिले तो लक्षणो के आरम्भ होने के १२ घ० तक पहले श्वास के कठिन हो जाने और फिर श्वास प्रश्वास के फेल हो जाने से मृत्यु होती है। यदि लक्षण जल्दी हो जाये, दृष्टि नष्ट हो जाए, मूर्छा, निद्रा हो जाए तो रोगी को असाध्य जानना चाहिए। यदि वह १५-२० घटे जीवित रह जाये तो समझे वह बच जायेगा। Krait bite मे कोष्ट के अन्दर Cramp की तरह का दर्द विशेप होता है।

Russels Viper के काटने या Viperine bite के लक्षण

इस साप के दष्ट स्थान पर रक्त स्राव, दर्द तथा दाह के लक्षण विशेप होते हे। दो दातो के हुए छिद्रो के बीच एक सेन्टिमीटर का अन्तर होता है। Echis जाति का साप हो तो अन्तर कुछ एक मिलिमीटर का ही होता हे। उस स्थान पर शोथ रक्त स्राव दोनो लक्षण काफी समय तक जारी रहते है। उस प्रदेश की त्वचा के नीचे के प्रदेश मे रक्त स्राव होता रहता है।

इस जाति के सापो का विष विशेषत Haemolysin के कारण Haemolytic या Cytotoxin के कारण Cytolytic होता है। रक्त के Clot करने की शक्ति घट जाती है। रक्त वाहिनियो मे रक्त कणो के अधिक टूटने से उनमे मुक्त हुआ Haemoglobin प्लाज्मा मे आ जाता है जो मूत्र द्वारा बाहर निकलता है (Haematuria) या दन्त मास से या वमन द्वारा मुह से Haematemesis के रूप मे या मल से Malaena के रूप मे या Epistaxis के रूप मे निकल सकता है। Cytotoxin के कारण रक्त वाहिनियो के Epithelium के क्षत हो जाने से त्वचा मे रक्त स्राव चकत्तो Eccymoses के रूप मे हो सकता है। रक्त के प्लाज्मा के रक्तवाहिनियो मे से परिस्रुत (Extravazation हो जाने से Shock या सर्वांग शैथिल्य के हो जाने का दुर्लक्षण हो सकता है जिससे रक्त भार बहुत गिर जाता हे। अरुचि तथा वमन के लक्षण इस सर्प की विष के कारण भी होते है। मस्तिष्क मे रक्तस्राव हो जाय या आत मे रक्त स्राव हो जाये तो मृत्यु हो जाती है। रक्त कणो के अधिक मात्रा मे टूटने से पाण्डुता तथा आक्सीजन की न्यूनता के हो जाने से Cyanosis या चेहरे पर नीलिमा के आजाने का लक्षण हो सकता है। इस सर्प के दश मे रक्त का Clotting time लम्बा हो जाता हे। वह दस मिनट से कम हो तो समझना चाहिए साप Viper श्रेणी का नही था। रक्त मे Haemoglobin की प्रतिशत मात्रा भी घट जाती है। मूत्र की परीक्षा करे तो उसमे रक्त कण मिलते हे। इस प्रकार Delaved Blood Clotting तथा मूत्र मे Red cells की उपस्थिति इस सर्प दश के सूचक होते है।

सर्प दप्ट व्यक्ति को कुछ काल देखना चाहिए। यदि कोई स्थानिक लक्षण जैसे शोथ स्राव, दर्द आदि लक्षण न हो, मूत्र मे सूक्ष्म वीक्षक द्वारा देखने से Haematuria न हो, Blood coagulation ठीक हो, कोई Neurological या रक्त स्राव सम्बन्धी लक्षण न हो तो सर्प को निर्विष समझना चाहिये।

सर्पो की पहचान

काटने वाला साप मारा गया हो तो उसे देखकर बताया जा सकता है कि वह किस किस्म का साप है। यदि उसके अगले पृष्ठ या पेट पर के छिलके Scales टेटी हुई या Transverse दिशा मे एकपार्श्व से दूसरे पार्श्व तक

के हो, तो समझना चाहिए कि ऐसा साप बहुवा विषैला नही होता ।

कोब्रा की पहचान

यदि साप का फण हो जिसपर ऐनक का सा निशान हो, जिसके सिर पर के छिलके चौडे चौडे, वडे-वडे हो तो उसे कोब्रा समझना चाहिए ।

क्रेट की पहचान

यदि साप का सिर, गर्दन, शरीर एक जितने चौडे हो तथा उसके सिर पर ढाल की तरह के चौडे-चौडे Scales या छिलके हो तथा पीठ पर भी चौडे चौडे Scales हो उसे Crate समझना चाहिए

Viper की पहचान

यदि साप का सिर तीर के अगले सिर जैसा अर्थात् आगे नोकीला, उसके पीछे कुछ चौडा और उसके पीछे एक तग सी गर्दन हो तथा सिर पर छोटे-छोटे से छिलके हो तो उसे Viper साप समझना चाहिए ।

Pit Viper की पहचान

हा यदि Viper के आख और नाक के बीच के प्रदेश मे एक गढा हो तो उसे Pit Viper कहते है ।

सर्प दश के स्थानिक लक्षण

अब यदि दो दातो का निशान गहरा हो, स्थानिक शोथ हो, रोगी को वहा दाह प्रतीत हो तो समझना चाहिए कि काटने वाला साप जहरीला था ।

सर्प दश की चिकित्सा

हमारे देश मे विषैले साप Cobra और Krait है । इनके अतिरिक्त बहुत से ऐसे साप है जो विशेष जहरीले नही होते । इसलिए पहले यह पता लगाना चाहिए कि साप जहरीला था या नही । साप जहरीला न हो तो Anti-Snake bite Syrum के लगाने से कोई लाभ नही होता, उलटा हानि हो सकती है ।

Tourniquet या Ligature

सर्प विष लसीका वाहिनियो द्वारा ऊपर प्रसरण करता है । अत १० मिनट तक जब तक कि विष ऊपर प्रसरण न किया हो तब तक ही स्थानिक बन्धन से लाभ हो सकता है । आधा इ च मोटी रबर की नाली या कपडे की बनाई रस्सी या यज्ञोपवीत के धागे से बनी रस्सी को एक लकडी या कलम की सहायता से इतना कस कर बाधना चाहिये कि उसके नीचे का स्थान रक्तहीन सा दीखने लगे। अगुलि मे काटा हो तो उसकी जड मे, पाव या जाघ मे काटा हो तो गोडे के ऊपर, Femur मे, हाथ मे काटा हो तो कोहणी के ऊपर Humerus पर बन्धन लगाना चाहिए। इसके बाधने से कष्ट हो तो प्रति १५ मिनट बाद १ मिनट के लिए बन्धन को ढीला कर दे और फिर कस दें। इस प्रकार विष को जल्दी फैलने से रोका जा सकता है। अच्छा तो यही है कि Antivenene के इन्जेक्शन के बाद ही बन्धन को खोला जाये ।

Incision

यदि Viper जाति के साप का दश हो और स्थान सूज गया हो तो दोनो दातो के स्थान पर एक-एक सेन्टीमीटर का Incision देदें । जो त्वचा मात्र मे हो, गहरा न हो और उस पर Breast pump लगाकर उस प्रदेश से कुछ रक्त निकाल दे । एक घटे के अन्दर-अन्दर इससे कुछ लाभ हो सकता है, बाद मे नही । Incision से पहले उस प्रदेश को Pot permanganate के जल से धो देना चाहिये वह न मिले तो साबुन और जल से धो देना चाहिए ताकि जो जहर ऊपर त्वचा पर पडा हो वह हटा दिया जाये । यदि खून को Pump करने का सामान न हो तो Incision नही देना चाहिये । Pump की प्रक्रिया को ठहर-ठहर कर घटो तक जारी रखा जाता है पर Cobra साप के दश मे इससे कोई लाभ नही । Cobra दश मे 5% Carbolic acid Solu को दश स्थान के आसपास २मिलि लि० मात्रा मे त्वचा मे डालने से भी विष की कुछ मात्रा को नष्ट किया जा सकता है । A V N के स्थानिक इ जेक्शन से भी लाभ हो सकता है ।

रोगी के जिस अग मे साप ने काटा हो जैसे टाग या पैर मे काटा हो तो जाघ को हिलाने से बचाना चाहिए । रोगी को ले जाना हो तो चलाकर नही लिटाकर और उसकी टाग के आस पास रेत की थैलियो को रखकर या उसपर Splint बाधकर जिससे वह न हिले उसे ले जाना चाहिए । टाग को हिलाने से जहर जल्दी ऊपर की तरफ फैलता है । इस प्रकार टाग या बाहु को कम से कम २४ घटे निश्चल करके रखना चाहिये ।

Cryotherapy शीत चिकित्सा

दष्ट स्थान और उससे कुछ दूर तक के प्रदेश पर बरफ जैसे शीतल जल की पट्टी बाँधनी चाहिये । दष्ट स्थान के १० - १५ सेन्टिग्रेड तक के टैम्परेचर पर रहने से विष का प्रसरण Lymphatics तथा Veins के द्वारा जल्दी नही होता । इस प्रकार दष्ट स्थान को १२ घ तक शीतल रखना चाहिए ।

रोगी को गर्म चाय काफी या Spirit Ammonia

aromatic आदि कोई उत्तेजक औषधी न दे। इनसे विष का प्रसरण अधिक होता है।

विष का Neutralization

विष को उदासीन या निर्विष करने की चिकित्सा प्रधान चिकित्सा है। Kasauli Antivenene एक Antitoxin है जो Cobra और Viper दोनो के विष के विपरीत कार्य करता है। Haffkine institute का बना Polyvalent Antivenene भी इसी प्रकार का है। इसकी १० मिलिलिटर के अम्प्यूल मिलते हैं। एक मिलिलिटर Antivenene से लगभग २मिलि Cobra विष उदासीन होता है तथा ४ मिलि Viper का विष नष्ट होता है। अत कम से कम पहले इस Antivenene के १ या २ अम्प्यूल्स को १० मिलिलि० Normal Saline मे मिलाकर बहुत धीरे-धीरे शिरा द्वारा दें। यह सीरम है इसलिए इसकी १ बून्द को त्वचा मे डालकर देख लेना चाहिए कि इसके लिये व्यक्ति मे Allergy तो नही अथवा पहले Hydrocortisone sodium succinate (Efcorlinsoluble) 50-100 मिलि० के या Decadron ४-८ मिलि० Normal Saline मे बने घोल को ४-६ घ० के अन्तर से शिरा द्वारा देदें। एक तो वह Antiallergic है दूसरे वह Capillary permeability अर्थात् सूक्ष्म रक्तवाहिनियो मे से रक्तद्रव के प्रस्रवण को रोकता है। तीसरे वह Hyaluronidase की क्रिया को रोकता है। इसलिए वह स्वय एक प्रकार का सर्प विष विरोधी द्रव्य है। Cobra जाति के सर्प के दंश के द्वारा १५० मिलि० विष अन्दर प्रवेश करता है। अत आधे या एक घंटे बाद फिर एक Antivenene के अम्प्यूल को बराबर Normal Saline मे मिलाकर शिरा द्वारा देदें। इस Antivenene को मास द्वारा भी दे सकते हैं। पर उस रास्ते से देने मे अधिक मात्रा देनी होती है। इस प्रकार Cobra विष को उदासीन करने के लिए इसके ३-४ अम्प्यूल देने पडते हैं। बच्चा हो या बूढा हो Antivenene की सबके लिए एक ही मात्रा है। केवल इसे ही देना हो और त्वचा मे इसकी एक बून्द डालने से Allergy का लक्षण हो तो Chlorpheniramine १० मिलि० के, १०मिलिलि० जल मे बने Ampoule को मास द्वारा देदें। बाद मे सीरम का प्रयोग करे। या हिस्टामीन विरोधी Antihistamine किसी दूसरे इंजेक्शन जैसे Benadryl का शिरा द्वारा प्रयोग करे। Prednisolone की १५ मिलि० की मात्रा का प्रयोग भी सर्प दष्ट व्यक्ति मे शुरू मे करना चाहिये और इसे ६-६ घण्टे बाद दुहराये। Hydrocortisone १०० मिलि० को सीरम से पहले न दिया हो तो उसे भी बाद मे शिरा द्वारा दे। उसे मास द्वारा भी दे सकते है। पहले २४ घ० मे इसे इस मात्रा मे ३-४ घ० के अन्तर से ३-४ बार दे सकते हैं। Antivenene के पहले इंजेक्शन के बाद रोगी की अवस्था अच्छी लगे तो बन्धन खोल देना चाहिए।

सर्प विष के कारण रक्त भार गिर गया हो Hypotension हो अर्थात् रक्त भार १०० से नीचे चला गया हो तो Mephentermine Sulphate(Mephine) १०-१५ मिलि० का इंजेक्शन मास द्वारा दे। या Methylamphetamine Hydrochloride १० मिलि० का इंजेक्शन ३-३ घ० पर दे। या Glucose drip मे Hydrocortisone Sodium Succinate १०० मिलि० मिलाकर उसे जारी रखे। इस औषधि के शिरा द्वारा तथा मुख द्वारा Prednisolone के ४-५ दिन देते रहने से ही सर्प दष्ट व्यक्ति को बिना Antivenene के भी लाभ हो सकता है।

श्वास प्रश्वास की कठिनता का लक्षण हो तो Oxygen देना चाहिये या Coramine २ मिलिलि० आधे-आधे घण्टे बाद मास द्वारा दे। श्वास फेल होता हो तो इसे शिरा द्वारा दे। रक्त स्राव का उपद्रव हो तो विटामिन के (Minadione) ५० मिलि० को शिरा द्वारा दे। सर्प दष्ट को Procaine Penicillin भी ४-५ दिन तक दे। साथ ही A T S १५०० यूनिट्स भी देदे।

बहुत से छोटे साप मन्दविष या लगभग निर्विष भी होते है। उनके दष्ट व्यक्ति को Antivenene सीरम के देने की कोई आवश्यकता नही, प्रत्युत इसके देने से हानि हो सकती है।

आयुर्वेदानुसार सर्प दंश

चरक तथा सुश्रुत ने सर्पो का प्रधानत दर्वीकर (फणियर), मण्डली (Daboia) तथा राजिमान् (Krait) इन तीनो जातियो का उल्लेख किया है। (च० चि०।२३ अ० ।१२३ श्लो०, सु० कल्प० अ०।४)। दर्वीकर के लिए कहा है कि वह कृष्ण वर्ण, फणी तथा शीघ्रगामी होता है। मण्डली को स्थूल चमकदार, मण्डलयुक्त कहा है। राजिमान् उन सर्पो को कहा है जो विविध वर्ण की रेखाओ वाले चित्रित होते तथा आकार मे बड़े नहीं होते।

दर्वीकर के विष को वाताधिक त्रिदोष प्रकोपक; मण्डली के विष को पित्ताधिक त्रिदोष प्रकोपक तथा राजिमान् को कफाधिक त्रिदोष प्रकोपक कहा गया है।

दर्वीकर दंश के लक्षणो के विष मे कहा है कि इसका दंश स्थान अस्पष्ट, रूक्ष, कुछ कृष्ण वर्ण तथा अस्रावी

होता है। इसकी विष के रक्त मे व्याप्त होने पर त्वचा नख, मुख आदि पर कृष्णता, शरीर मे शीतता, अशक्ति, निश्चेष्टता, गले, कण्ठ आदि मे अशक्ति; मुख मे फेनोद्गम लाला प्रसेक, सन्धियो मे विश्लेष, तन्द्रा, निद्रा, श्वासोपरोध, रक्त स्रोतोवरोध, स्वेद प्रवृत्ति आदि लक्षण होते है।

मण्डली दश के लक्षणो के विषय मे कहा है कि इसका दष्ट स्थान स्थूल, स्पष्ट, उष्ण, शोथ युक्त, रक्तस्रावी होता है। उसमे क्लेद, कोथ के लक्षण भी हो जाते हैं। इसके विष के व्याप्त होने पर दाह, मद, मूर्छा, पिपासा, शीतेच्छा, रक्तस्राव आदि लक्षण होते हैं।

राजिमान् दश के लक्षणो के विषय में कहा है कि इसका दष्टस्थान स्थिर, पिच्छिल, स्निग्ध, शोथयुक्त, पाण्डुवर्ण, शीत होता है। इसकी विष के व्याप्त होने पर अरुचि, वमन, हृल्लास, मुख स्राव, निद्रा, त्वगादि श्वेत वर्णता, अग गौरव, तम. प्रवेश, कृच्छ्रोच्छ्वास आदि लक्षण होते हैं।

सर्पदश चिकित्सा —

स्थानिक चिकित्सा

सर्प दश को अधिक देर न हुई हो तो शाखागत दश स्थान से चार अगुल ऊपर दृढतर अरिष्टा या वेणिका बन्धन कर देने का विधान किया है और कहा है कि दश स्थान को थोडा-सा पच्छ कर मुख मे वस्त्र या गुंधा हुआ आटा रख कर विष को ऊपर चूस लेना चाहिये या सिंगी आदि से उसे बाहर खीचना चाहिये। फिर समीपस्थ सिराओ मे किसी मे वेधन करके कुछ रक्त निकाल देना चाहिए ताकि जो विष ऊपर जा रहा हो वह बाहर निकल जाए। जो विष उस स्थान पर रह जाए उसके नष्ट करने के लिए श्वेत रत्ती, नीलाथोथा, सज्जी, गृहधूम की आक के दूध मे बनी १-१ रत्ती की गोलियो मे से एक गोली को आक के दूध मे घिसकर वहा लेप करने के लिए कहा है। वैद्य लोग केवल नीले थोथे को ही आक के दूध मे घिस कर या केवल आक के दूध को ही लगा देते हैं। ऊपर शरीर मे व्याप्त विष को निकालने के लिए रीठे के वल्कल के सूक्ष्म चूर्ण को ४-६ माशे की मात्रा मे १ पाव जल मे मिला पिलाकर वमन करा देते हैं। आधे घण्टे तक वमन न हो तो दूसरी मात्रा भी पिला देते है। कुछ लोग वन्ध्या कर्कोटकी मूल के १ तोला चूर्ण को ५-७ मिरचो के साथ १ पाव जल मे भली प्रकार घोटछानकर पिलाते हैं जिससे वमन हो जाती है। कुछ देर बाद भी वमन न हो तो दूसरी मात्रा भी पिला देते है। वमन हो जाने पर १ छटाक घृत पिलाते है। फिर प्याज के रस की १ तोला की मात्रा १-१ घटे पर हृदय की रक्षा के लिए देते रहते है। इसमे २-२ माशे टकण भी कोई-कोई मिला कर देते है। कहा जाता है कि केले के तने का रस १ पाव ५-७ काली मिर्चो के साथ पिलाने से शरीर मे गया सर्प-विष नष्ट होता है। पर इस विषय मे निश्चय से कुछ नही कहा जा सकता।

सर्पदशोपयोगी कुछ शास्त्रीय योग निम्नलिखित है.—

(१) शिरीषादियोग (यो र) सिरस के फूलो के रस मे श्वेत मरिचो को ७ दिन तक भिगोकर छाया शुष्क कर चूर्ण कर लें। सर्प दष्ट को यही चूर्ण पिलायें। इन्ही का नस्य दें। इसी का उन्हे अञ्जन करें।

(२) सजीवनी वटी (शा ध) विडग, सोठ, पिप्पली, त्रिफला, वचा, गिलोय, भलावा, वत्सनाभ समान भाग लें। गोमूत्र से ३ भावना दें। एक-एक रत्ती की गोली करें। इसकी तीन-तीन गोली ठहर ठहर कर दें।

(३) तण्डुलीयक मूल योग (यो.र.) चौलाई की जड को पीसकर रख लें। इसे तण्डुलोदक के साथ पिलायें।

(४) तगरादिचूर्ण (भै र) तगर, कुष्ठ मिलित चूर्ण ६ माशा घृत मधु १-१ तोला मिलाकर चटायें।

(५) गृहधूमादि चूर्ण (भै र, व से) गृहधूम, दोनो हल्दी, जड समेत चौलाई सबको पीस लें। इसे दही और घृत मे मिलाकर दें।

(६) गोरोचना चूर्ण (र र.) गोरोचना को नरमूत्र से पीसकर छाया शुष्क कर लें। इसे शहद मिलाकर चटाते रहे।

(७) तण्डुलीयकघृत (भै र.) चौलाई मूल १ तोला, गृह धूम ४ माशा को घी तथा दूध दोनो के मिश्रण से पिलायें। या गृह धूम युक्त तण्डुलीयक मूल के कल्क १ पाव से तथा २ सेर दूध से घृत १ सेर को साधित करके उसका पान करायें।

(८) नीलिनी अथवा लज्जालु मूल कल्क (ग नि.) नीलिनी (नील वृक्ष) या लज्जावती (लज्जालु) मूल को चावलो के पानी से पीसकर पिलायें (इसे मण्डली सर्प दश के लिये उपयोगी कहा है)

(९) लांगल्यादिनस्य (यो र.) कलिहारी के मूल को

पानी मे पीसकर उसका नस्य देने से सर्प विष उतरता है।

(१०) अर्कमूल योग (यो र.) आक की जड को जल मे पीसकर उसे पिलाने से सर्प विष नष्ट होता है।

(११) टंकण योग (यो र.) पानी के साथ सुहागे के पिलाने से सर्प विष उतरता है।

(१२) विषवज्रपाती रस (भै.र)हल्दी, सुहागे कर खील-जावित्री, थोथा, बराबर बराबर मिलाकर देवदाली रस की भावना दें। इसको १ माशा मात्रा मे नरमूत्र के साथ सर्प दष्ट को पिलायें (इसी प्रकार के रस को यो र मे काल वज्राशनि रस कहा है)

(१३) विषहरी वर्ति (भै र) दन्ती बीज गिरियो को निम्बुरस की २१ भावनायें दें। इसकी वतिया बना लें। मनुष्य की लाला मे इसे पीसकर उसका अजन करने से सर्प दष्ट व्यक्ति की मूर्छा जाती रहती है।

(१४) कुलिकादिवटी (भै र) कुलिक (कालियाकड़ा) मूल, सप्तपर्ण, कुष्ठ मिलित १ तोला। देवदास १ माशा अर्क पत्र स्वरस से मर्दन करके सरसो बराबर गोली बनायें। इन्हें दूध के साथ कुछ कुछ देर मे दें। कुलिक मूल को पीसकर उसके नस्य से भी सर्प विष उतरता है। (भै र)

(१५) काकादनीमूलयोग (भा.भै र.) रत्ती की जड को काञ्जी मे पीसकर पिलायें तथा उसका दष्ट स्थान पर लेप भी करें (मण्डली सर्प के लिये उपयोगी कहा है)

(१६) पञ्चशिरीष नामक अगद (च स) सिरस के फूल, पत्ते, छाल, फल मूलत्वक् को सुखा, कूटकर छानकर चूर्ण बनायें। इसे घृत मे डालकर पिलायें।

(१७) मरिचादिचूर्ण (व स) मरिचो को चागेरी स्वरस मे घोट लें। फिर मरिचो को घी के साथ पिलायें। दष्ट स्थान पर लगायें भी।

(१८) शिरीषारिष्ट (भै. र) सिरसकी छाल ४ सेर। जल १६ सेर। पकाकर ४ सेर कषाय शेष रखें। गुड १२॥ सेर। पिप्पली, प्रियंगु, कुष्ठ, सूक्ष्मैला, नीलीमूल, तण्डुलीयकमूल, हल्दी, तगर, दारुहल्दी, नागकेसर प्रत्येक ५-५ तोला कल्क डाल कर अरिष्ट बनायें। मात्रा २-४ तोला।

(१९) शिरीषलेप (यो र) सिरस के जड की छाल, पत्र, फूल, बीज के चूर्ण को गोमूत्र से पीसकर दश स्थान पर लेप करें।

श्वानदश या जल त्रास,(Hydrophobia) अथवा Rabies (Rabere = Rage = क्रोध)

श्वानदश-जलत्रास या Rabies का रोग जिसमे कुत्ते के काटने के न्यूनाधिक काल बाद आदमी मे जल को देखकर भी भय त्रास उत्पन्न हो जाता है उसके गले तथा कण्ठ मे स्तम्भ होकर उसका निगलना भी कठिन हो जाता है। उसे जल त्रास या Hydrophobia रोग कहा जाता है। पागल हुए गीदड या भेडिये के काटने से भी यह रोग हो सकता है और अधिक उग्र रूप मे होता है।

बहुत पुराने काल से चले आने वाला यह रोग है। क्राइस्ट से दो ढाई हजार साल पहले के ग्रन्थो मे भी इस रोग का उल्लेख मिलता है। चरक (चि २३) तथा सुश्रुत (कल्प ६) ने भी उस रोग का वर्णन किया है। परन्तु वैज्ञानिक रूप मे पहले-पहल इसका उल्लेख फ्रास के Louis Pasteur (१८२२ - १८९५) ने १८८१ मे किया। उन्होंने इस रोग के कारण भूत Virus का जो 60 - 140 मिलिमाइक्रोन लम्बा Porcelain फिल्टर मे से भी निकल जाने वाला है पता लगा लिया। यह रोग सभी दूध देने वाले प्राणियो मे हो सकता है।

कुत्ते की लाला मे यह Virus रहता है। काटने पर दष्ट व्यक्ति के बहिस्त्वक् नाडियो Nerves मे यह पहुच जाता है और उनके मध्य सूत्र Axis cylinders मे वृद्धि करता और उसके द्वारा ऊपर की ओर प्रसरण करता है। तथा लगभग 1-2 महीनो मे यह सुषुम्ना काण्ड Spinal cord तथा मस्तिष्क के Nerve cells तक पहुचकर उन्हे ग्रस्त कर देता है। वहा वृद्धि करके यह Efferent नाडियो द्वारा Salivary glands तक पहु च जाता है। कुत्ते आदि मे यह वहा तक पहुचता है। मनुष्य, गाय आदि मे यह Salivary ग्रन्थियो मे नही जाता। रोगी पशु के रक्त, Lymph, दूध, वीर्य आदि मे भी यह विष नही पाया जाता। कुत्ते के भी पागल होने से २-३ दिन पहले मे उसके पागल होने के ३-४ दिन बाद तक उसकी लाला मे यह विष रहता है।

इस रोग का परिपाक काल Incubation period काटने के बाद ३ सप्ताह से लेकर दो महीने तक का होता है। शरीर के ऊपर के हिस्से मे काटा हो तो यह काल कुछ छोटा होता है। टाग मे काटा हो तो यह काल कुछ लम्बा होता है। बालक मे भी यह काल कुछ छोटा होता है। इसी लिये दश के बाद शीघ्र ही Rabies Vaccine का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया जाता है ताकि विष का प्रभाव होने से पहले प्रतिरोधक शक्ति या Active immunity उत्पन्न हो जाये।

विकृति

इस रोग मे Cerebral cortex C के Pyramidal cells, Hippocampus के cells तथा cerebellum के cortex के Purkinje cells के cytoplasm के अन्दर गोलाकृति या अण्डाकृति निर्जीव से पिण्ड जिन्हे Inclusion bodies कहते है, मिलते है। इन्हे पहले-पहल १९०३ मे इटली के डाक्टर Negri (1876-1912) ने देखा था इसलिए इन्हे Negri bodies भी कहते हैं। ये Acidophil होते हैं अर्थात् Acid stain से रगे जाते है। ये पिण्ड शरीर मे कुत्ते के Virus की उपस्थिति के निश्चायक चिह्न है। रोग हो तो Cerebrospinal fluid भी मात्रा मे ज्यादा होता है। Pia तथा Arachnoid के आवरणो मे Petechae रक्त स्राव के चिह्न भी होते है।

लक्षण —कुत्ते मे

यह रोग सहसा आरम्भ होता है। एक दो दिन प्रारम्भिक लक्षण होते है अर्थात् कुत्ते का स्वभाव वदल जाता है। उसके भौकने की आवाज भी वदल जाती है। वह कुछ वेचैन सा दीखता है और आवाज करता रहता है। इसके वाद इस रोग की दूसरी अवस्था जिसे Exciting stage या विक्षोभावस्था कहते है वह स्पष्ट हो जाती है। वह अधिक वैचेन हो जाता है। इधर उधर पागल की तरह दौडने लगता है जो भी रास्ते मे पडता है उसी को काट लेता है अर्थात् वह कुछ आक्रामक हो जाता है। इस अवस्था मे उसके लिए निगलना मुश्किल और भौकना भी मुश्किल हो जाता है। उसका निचला जवडा लटक सा जाता है और उसके मुख से लार टपकती रहती है। एक दो दिन इस अवस्था मे रहने के वाद फिर Paralysis की अवस्था आरम्भ हो जाती है अर्थात् मास पेशियो मे Spasm के स्थान पर अव Paralysis आरम्भ हो जाता है, पिछली टागे पहले मरती हैं, वाद मे गले कण्ठ आदि सव मे Paralysis होने लगता है। इस प्रकार चौथे पाचवे दिन तक हृदय, श्वास मास पेशियो आदि मे Paralysis होकर मृत्यु हो जाती है। एक तो पागल कुत्ता विना छेडे काटता है, दूसरा वह ५-६ दिन के अन्दर मर जाता है। इस कारण कुत्ता पागल था कि नही इसका निश्चय हो जाता है। यदि वह एक हफ्ते तक भी जीवित है तो समझे कि वह पागल नही है और Vaccination की जरूरत नही है।

लक्षण मनुष्य मे

यदि पागल कुत्ते ने काटा हो और Rabies Vaccine न लगाया गया हो तो न्यूनाधिक समय वाद Rabies या जलत्रास का रोग आरम्भ हो जाता है। प्रारम्भिक Premonitory stage मे एक दिन दश स्थान मे रह-रह कर दर्द या चिमचिमाहट होने लगती है (Paraesthesia)। सारी टाग मे कुछ चुभने या सुप्ति की प्रतीति होती है। कुछ तापमान वढ जाता है। शिर दर्द होता है। नाडी तीव्र होती है। भूख मर जाती है। मुख पर भय और चिन्ता का भाव दीखता है। नीद नष्ट हो जाती है। मुख गले कण्ठ मे स्तम्भ का लक्षण होता है जिससे निगलना तथा वोलना भी कठिन हो जाता है।

इसके वाद दो दिन के अन्दर ही Exciting stage आरम्भ हो जाती है। शरीर और मन दोनो मे वेचैनी वढ जाती है। मस्तिष्क तथा सुषुम्ना काण्ड के Reflex areas मे इतनी असहनशीलता वढ जाती है कि थोडी सी वाह्यसंज्ञा से जैसे किसी प्रवल शब्द से, प्रवल प्रकाश से, प्रवल वायु के स्पर्श से या किसी विशेष गन्ध से भी शरीर की मास पेशियो मे प्रवल स्तम्भ उत्पन्न हो जाता है। मुख, गले कठ की मास पेशियो मे विशेषत स्तम्भ हो जाता है। उसे प्यास लगती है। पर पानी के गिलास के पास आते ही उसका सिर पीछे फिर जाता है। मुख तथा गले मे प्रवल स्तम्भ हो जाता है। पानी गले से उतरता नही (Dysphagia) जो मुँह मे जाता है वह भी वाहर फैंक दिया जाता है। वह पानी को देखते ही भयभीत हो जाता है। उसका मस्तिष्क इतना विक्षुब्ध होता है कि वह जल के शब्द से भी भयभीत हो जाता है। कण्ठ मे स्तम्भ होने से उसकी आवाज वैठ जाती है। उसकी गर्दन (Sternomastoid, Platysma) मे भी स्तम्भ होता है। छाती मे स्तम्भ होता है। पीठ मे स्तम्भ होकर Opisthotonos का विकार हो जाता है। मस्तिष्क पर इस विष का दुष्प्रभाव होने से स्तम्भ का लक्षण होता है।

उपर्युक्त अवस्था एक दो दिन ही रहती है। इसके वाद Paralysis की अवस्था आरम्भ होती है। इस अवस्था मे वेचैनी तथा स्तम्भ के लक्षण शान्त हो जाते है। मासपेशिया शिथिल हो जाती है। सर्वागशैथिल्य, उदासीनता (Depression) मूर्छा (Coma) के लक्षण होकर पाचवे दिन तक हृदय फेल होकर मृत्यु हो जाती है।

रोग परीक्षा

परीक्षा करने पर रोगी मे तापमान, नाडी की तीव्रता, मुख पर फीकेपन, मुख से लार निकलते रहने तथा मानस उन्माद के लक्षण मिलते हैं।

रोग विनिश्चय

जल के निगलने मे कठिनता होने लगे, मन और शरीर के विक्षुब्ध होने के लक्षण हो, पहले कभी कुत्ते काटे का इतिवृत्त भी हो तो Rabies का निश्चय करे । Tetanus स्तम्भ रोग से भ्रम हो सकता हे पर उसमे हनुस्तम्भ होता है जो इस रोग मे नही होता । उसमे गले मे स्तम्भ कभी नही होता इसमे सदा होता है । अत उस रोग से सन्देह निवृत्त हो जाता है ।

चिकित्सा

काटने वाले कुत्ते को 10 दिन तक देखना चाहिये यदि वह जीवित है तो Vaccine देने की जरुरत नही । यदि वह वास्तव मे पागल हे तो आधे घण्टे के अन्दर-अन्दर ही स्थानिक चिकित्सा हो जानी चाहिये। उस स्थान को Pot permanganate solution से धो देना चाहिये। दोनो दातो या दातो से हुए व्रण को किसी Strong mineral acid से cauterize करे । अथवा व्रण पर ५०-६०% Alcohol को लगा दे । या TrIodine को लगा दे । Strong acid लगाये तो उसे Saturated sodasolution से धो दे। ५ मिलिलि० के Tetanus toxoid भी दे ।

Rabies Vaccine-Antirabic Vaccine

यह Carbolised Saline मे ५ प्र०श० मात्रा मे Brain tissue का Emulsion होता है। परन्तु Duck embryo-killed virus vaccine उससे अधिक निरुपद्रव है । उसके ५ मिलिलि० अम्प्यूल मिलते है। एक-एक अम्प्युल रोज 14 दिन तक पेट की त्वचा के नीचे दिया जाता है। अधिक छोटे बालक को २ मिलिलि० मात्रा पर्याप्त है । इससे किसी को Allergy हो तो Prednisolone ५ मिलि० दिन मे ३ वार दें तथा कोई Antihistamine औषध दे । रोगी को यह इजेक्शन न मिला हो और Hydrophobia हो जाय तो उसकी कोई चिकित्सा नही है । कष्ट को कम करने के लिये Phenobarbitone Sodium ३ ग्रेन का इजेक्शन दे ।

उपद्रव

Post Vaccinal Encephalomyelitis **तथा** Post infectious Encephalomyelitis, **मस्तिष्क सुषुम्ना शोथ**

मस्तिष्क सुषुम्ना शोथ का रोग कभी-कभी Rabies-Vaccine तथा Smallpox Vaccine के वाद हो सकता है । इसे Post Vaccinal कहते हे । कभी-कभी यह रोग Smallpox, Influenza, measles आदि वाइरस से होने वाले रोगो के दौरान मे भी हो सकता है । तव इसे Post infectious कहते है । जव टीके के वाद होता तव १०-१२ दिन वाद होता है। रोग के दौरान मे होता है तो रोग शुरू होने के १०-२२ दिन वाद होता है । प्रतीत होता हे कि मस्तिष्क के Nerves के myelin sheath मे कोई Viral antigen (Antigen Component of myelin) उत्पन्न हो जाता है जिसके Allergic reaction (Immunologic reaction) के रूप मे यह रोग होता है । अर्थात् यह रोग भी एक Auto allergy से होने वाला है। यह शोथ Cerebrum के गोलार्धो के, Cerebellum के, Brian stem के और Spinal cord के श्वेत भाग मे ही होता है, काले भाग मे नही तथा myelin के sheath के Degeneration के रूप मे होता हे । इस प्रकार हो सकता है केवल Encephaltis ही हो या केवल Myelitis के रूप मे हो या दोनो मे ही हो या केवल Peripheral Nerves के spinal roots मे ही हो अर्थात् Anterior तथा Posterior roots के सन्धिस्थान (Junction) पर ही हो । उस अवस्था मे इसे Polyradiculitis कहते है । Mononeuritis के रूप मे भी यह रोग हो सकता है। इस रोग मे कुछ - कुछ Meningitis भी होता हे ।

जव यह रोग Post infectious रूप मे होता है तव इसमे Nerve cells के अन्दर भी क्षीणता की प्रक्रिया होती है तथा Brain मे Oedema भी होता है ।

सौभाग्य से मस्तिष्क सुषुम्ना शोथ का यह रोग वहुत कम पाया जाता है Smallpox Vaccination के एक हजार व्यक्तियो मे १ से भी कम मे यह रोग होता है। तव भी यह ५ से १५ वर्ष की आयु के वीच मे ही होता है। इस आयु से छोटे या वडे व्यक्तियो मे यह रोग नही होता अत Smallpox vaccination छोटे शिशुओ मे या १५ वर्ष की आयु के वाद ही लगाया जाता है। Rabies Vaccination के वाद भी यह ०२ से १३ प्र० श० व्यक्तियो मे इस रोग के होने की सभावना होती है। तव भी प्रथम Vaccination मे नही दूसरी वार लगाये गये Vaccination के वाद ही इसके होने का डर रहता है। आखिरी इजेक्शन के वाद 10-12 दिन के अन्दर अन्दर ही यह रोग हो सकता है इससे अधिक दिन निकल जाये तो फिर इसके होने की आशका नही रहती । तव भी यह २०-४० वर्ष की आयु के वीच के व्यक्तियो मे होता है, छोटो या वडो मे नही होता ।

लक्षण

यह रोग सहसा तेज बुखार, सिरदर्द, ग्रीवास्तम्भ (Stiffneck), आक्षेप (Convulsions), मासकप (Myoclonus, Twitchings) प्रलाप के लक्षणो के साथ या निद्रा तन्द्रा (Drowziness) के लक्षणो के साथ आरम्भ होता है। मस्तिष्क के इन लक्षणो के अतिरिक्त Monoparalysis या Paraplegia (उरुस्तम्भ) का लक्षण भी हो सकता है।

सुषुम्नाकाण्ड या Spinal cord मे रोग हो तो मूत्राघात (Retention of urine) मलवन्ध तथा दोनो टागो मे कमजोरी का लक्षण हो सकता है।

मस्तिष्कावरण Meninges मे रोग का प्रभाव हो तो भारी सिरदर्द, प्रकाश शब्द आदि के लिए असहिष्णुता, पुतली सकोच, प्रलाप, ग्रीवा के पीछे मुड जाने, आक्षेप और वेहोशी के रहने के लक्षण होते हैं।

Polyradiculitis हो तो टागो मे Flaccid paralysis का लक्षण होता है।

रोग विनिश्चय

Rabies vaccine या Smallpox vaccine के १०-१२ दिन वाद ज्वर तथा कोई Nervous रोग हो जाये या Smallpox आदि Virus से होने वाले रोग के १०-१२ दिन मे Neurologic disease हो तो इसी रोग का निश्चय करें।

साध्यासाध्य

यह रोग भयकर है यदि Convulsions हो, मूर्छा हो Hemiplegia के लक्षण हो तो ५-६ दिन के अन्दर ही मृत्यु हो जाती है। Smallpox और Rabies vaccine के कारण होने वाले रोग मे ५०% की मृत्यु हो जाती है। एक सप्ताह तक रोगी जीवित रहे तो वह कई सप्ताह रुग्ण रहता है, मृत्यु से तो वच जाता है पर वुद्धिमन्दता तथा विक्षोभशीलता और Paraplegia के उपद्रव रह जाते हैं।

चिकित्सा

इस भयकर उपद्रव से वचने के लिए आवश्यक है कि काटने वाले कुत्ते का पूरा निदान कर लेना चाहिये कि वह पागल था। यदि वह पागल नही था तो Rabies vaccine नही देना चाहिए। Brain tissue से तैयार किये Vaccine की अपेक्षा Duch embryo killed virus vaccine अधिक सुरक्षित है। उससे यह उपद्रव नही होता। अत इसी का प्रयोग होना चाहिए।

मस्तिष्कसुषुम्नाशोथ हो जाये तो तुरन्त Prednisolone को १५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३-४ वार दे। यह Antiinflammatory तथा Antiallergic है। अथवा Decadron (Dexamethosone) को इजेक्शन द्वारा दे। आक्षेप के लिए Hyoscine hydrobromide $\frac{1}{100}$ ग्रेन इजेक्शन से दें। १२ घ० पर फिर दुहराये। Glucose saline drip देवे।

आयुर्वेदानुसार

सुश्रुत ने (कल्प० अ० ६। श्लो० ४०) कहा है कि कुत्ते, शृगाल, भेडिये आदि मे पहले उसका कफ तत्व दूषित हो जाता है और उसके कारण फिर उसके संज्ञा स्थान मे स्थित वायु तत्व दूषित हो जाता है जिससे उसकी सज्ञा नष्ट हो जाती है और वह उन्मत्त-सा हो जाता है। अष्टाग सग्रहकार ने (उत्तर० अ० ४६) कहा है कि संज्ञा स्थान मे बढे हुए दोष सारे शरीर को विक्षुव्ध कर देते हैं और वह अधा व वहरा होकर दौड़ने लगता है। चरक ने इसकी विष को त्रिदोष प्रकोपक कहा है मासपेशियो मे घात या Paralysis हो जाने से ऐसे कुत्ते की पूंछ, अधोहनु, ग्रीवा, कन्धे नीचे की ओर झुक जाते हैं और वह सवको काटने लगता है। उससे दष्ट हुआ व्यक्ति उसका प्रत्युपाय न करे और उसे जल त्रास का रोग अर्थात् जल की आवाज सुनने से भी भय हो जाये तो वह ठीक नहीं होता। श्वान आदि से दष्ट व्यक्ति का जल त्रास रोग या तो प्रसुप्त (Paralysed) या उत्थित (Excited) दो प्रकार का होता है। ये दोनो ही घातक होते हैं।

इसलिए श्वान दश मे रक्त को निकाल देना चाहिए तथा उसे अधिक गर्म किये घी से जला देना चाहिए। अगद प्रभाव की अर्थात् विष को नष्ट करने वाली किसी औषधि का लेप लगाना चाहिए तथा रोगी को पुराण घृत का पान कराना चाहिए। श्वान दश के एक पक्ष वाद तथा २५वें दिन से पहले-पहले ही रोगी मे इस विष को प्रकुपित करना चाहिये क्योंकि जव यह विष स्वय प्रकुपित होती है तो यह अवश्य घातक हो जाती है। इसलिये उससे पहले ही इसे प्रकुपित कर दें (तस्मात्प्रकोपयेदाशु स्वय यावन्न कुप्यति—सु०)। रोगी को प्रात एक चम्मच भर के कोयले के चूर्ण को देकर आधे घटे वाद काले धतूरे का रस एक औस के लगभग मात्रा मे पिलाने के लिए विधान

किया है, वह उलटकर बाहर नहीं आना चाहिए। फिर रोगी को बांधकर धूप मे ४ घंटे रखा जाता है। इससे रोगी उन्मत्त-सा हो जाता है। इसके बाद उस पर कई घड़े शीत जल डालने को कहा है। यद्यपि वह पानी से डरता है। इसके बाद उसे हलका आहार देने के लिए कहा गया है। वर्तमान समय मे इस विषैली चिकित्सा का प्रयोग उतना आवश्यक नहीं रहा क्योंकि Vaccine से ही विष का प्रतिरोध हो जाता है।

श्वानविष के दुष्प्रभाव को रोकने के लिए शास्त्रोक्त कुछ उपाय :—

(१) श्वानविषहरलेप (यो चि म) गुड, तेल, आक का दूध परस्पर मिलाकर इसका लेप दष्ट स्थान पर करें।

(२) शिरीष बीज लेप (भै र) सिरस के बीज को सेहुण्ड दूध मे घिसकर उसका लेप करें। यह श्वान विष को नष्ट करता है।

(३) गोरोचन चूर्ण (र र) गोरोचन को नर मूत्र से पीसकर रखें। इसे शहद के साथ रोज चटायें।

(४) अंकोट मूल योग (व से) अकोट मूल की छाल के १० तोला का क्वाथ करें। उसमे ५ तोला घृत मिलाकर पिलाने से कुत्ते का जहर उतरता है।

(५) काकोदुम्बर योग (व से) काकोदुम्बर मूल तथा धत्तूरफल को समान मात्रा मे मिलाकर चूर्ण करें। इस चूर्ण को चावलो के पानी से पिलाते रहे। मात्रा नहीं दी गई। हो सकता है मात्रा एक फल की कही हो।

(६) मातुल फल योग (भा भै र.) धतूरे के एक फल को असन वृक्ष की जड की छाल के स्वरस से पीसें। इसके पिलाने से कुत्ते के विष का प्रभाव नहीं होता।

(७) कारस्कर फल योग (भै र) कुचले के चूर्ण को क्रमश बढती हुई मात्रा मे एक मास तक देते जावें। इससे श्वान विष का दुष्प्रभाव नष्ट हो जाता है।

(८) धत्तूर योग (भा भै र) धत्तूर स्वरस १०, दूध १०, घी १०, गुड १० तोला मिलाकर पिला दें। कुत्ते का विष आगे बढेगा नही।

(९) वत्सनाभादि चूर्ण (र स क) वत्सनाभ, भांगरा, मरिच, समान २ के चूर्ण को घृत से देते रहे।

(१०) भीमरुद्ररस (भै र) पारा, गधक, कज्जली करें। अभ्रक लोह १-१ भाग मिलायें। इन्द्रायण, बडी कटेली, ब्राह्मी, नीलोफर, अनार, अपामार्ग, कौंच इनके स्वरस से एक २ दिन भावना दें। १ रत्ती की गोली। गोली को शीतल जल से रोज दें।

(११) अलर्क विषहर गुटिका (र म क उत्तर-५) कायफल, सुगन्ध वाला बिजौरे निम्बू के जड की छाल, पिप्पली, हिंगुल, बोल, सुहागा १-१ भाग। गुड सर्वतुल्य। गोली ४ माशे की। काटने के ६वें दिन से शुरू करके देते रहें। गर्म जल से दें।

(१२) शतावरी रसपान (यो र) शतावरी स्वरस को गोदुग्ध के साथ पिलाते रहे।

वृश्चिक विष (Scorpion Stings)

बिच्छू की पूछ के अन्तिम खण्ड मे विषग्रन्थि होती है और उसी मे चुभोने वाली सुई होती है। इसकी विष तीव्र दाहजनक तथा वेदनाजनक होती है जो घण्टों रहती है। यह Neurotoxic विष है। काटने के तुरन्त बाद दश स्थान को Strong Solution of Ammonia मे धो दें या उसमे हलका चीरा देकर Potassium Permanganate के गाढे घोल मे उसको धो दें तो विष को नष्ट किया जा सकता है। अथवा Novocaine २% तथा Adrenaline १००० मे १ के ४ बूद के सूचीवेध के उस प्रदेश के आसपास देने से दर्द को शान्त कर दिया जा सकता है। अथवा ऊपर बधन लगाकर दंश स्थान पर बर्फ लगायें ताकि विष फैले नही। रोगी के हृदय पर विष का प्रभाव होने से Shock का लक्षण हो जाये, रोगी को ठडा पसीना आ जाये, B P गिर जाये, तो उसे Mephentermine Sulphate १०-१५ मिलि० का इजेक्शन मास द्वारा दे Soluble Betamethasone (Betnesol) को २-४ मिलि० मात्रा मे २५-५० सी सी ग्लूकोज सोल्यू० मे मिलाकर शिरा द्वारा देने से भी रोगी की अवस्था सुधर जाती है।

वृश्चिक विष चिकित्सा

वृश्चिक के दश से वेदना होती है जो ऊपर को फैलती जाती है।

सुश्रुत (कल्प० अ० ८।श्लो० ६५) ने इस पर कोल्हू के तेल या चक्र तेल के लेप या अवसेचन करने का विधान किया है। चरक ने (चि०।अ०।२३।श्लो०।१७२) घृत और सैन्धव लवण को गर्म-गर्म लगाने या अवसेचन करने का

विधान किया है। वाग्भट्ट (अष्टाग हृदय-उत्तर स्थान-अ० ३७। श्लो० ४३) ने सिरस के बीज को अर्क दुग्ध से तीन बार भावित कर समान पिप्पली चूर्ण मिलाकर गोली बना, दश स्थान मे कुछ घाव करके पानी के साथ घिसकर उसके लगाने का विधान किया है।

वृश्चिक विष निवारक कुछ शास्त्रोक्त प्रयोग —

(१) घृत सैन्धव योग (भै. र.) गर्म-घी मे सैन्धा नमक मिलाकर विद्धस्थान पर लगायें।
(२) जीरकादि लेप (व से.) जीरे और सेंधव को पीसकर घृत मधु मे मिलाकर लेप करें।
(३) जँपाल लेप (यो र) जमालघोटे की गिरि को पानी मे पीसकर उसका लेप करें।
(४) वत्सनाभ लेप (यो र) वत्सनाभ विष को पानी मे पीसकर लेप करें।
(५) नवसादरादि लेप (वृ. नि र) नवसादर, हरताल समान। पानी मे पीसकर लेप करें।
(६) पलाश बीज लेप (व से) पलाश बीज को आक के दूध मे पीसकर लेप करें।
(७) शिरीष बीज लेप (व से) सिरस के बीज, पिप्पली को पीसकर लेप करें। उन दोनो की वत्ती बना कर रख छोड़ें फिर जल या बकरी के दूध मे पीस कर लगायें।
(८) कार्पास पत्र लेप (यो त त ७८) कपास के पत्रो को पीसकर घी मे मिलाकर लेप करें।
(९) मन शिलादि गुटी (यो त त ७८) मनसिल, कुष्ठ करज बीज, सिरस छाल। पानी से पीसकर गोलिया बनालें। छाया मे सुखायें। मुखलाला से घिसकर लगायें।
(१०) मन शिलादि वर्ति (व से.) मनसिल सैन्धव, हीग, जावित्री, सोठ की गोली बनायें। गोबर के रस मे घिसकर विद्धस्थान पर लगायें।
(११) नवसादर चूर्ण योग (वृ नि र) कलि का ताजा चूना, नवसादर दोनो को मिलाकर रख लें। इसमे से थोडा सा लेकर उसपर २-३ बून्द पानी डालें। सु घायें।
(१२) मधु घृत योग (सु) मधु घृत मिलाकर पिलायें।
(१३) क्षीरपान (सु) शीतल दूध मे खाण्ड या गुड अधिक मिलाकर पिलायें।

मधुमक्षिका विष (Bee Sting)

मधुमक्खी जब डक मारती है उसका डक त्वचा मे ही घसा रह जाता है। उसके विष से, जो एक प्रोटीन पदार्थ है, स्थानिक शोथ हो जाता है। यदि बहुत सी मक्खिया एक साथ डक मारें और उनका कुछ विष रक्त मे प्रवेश कर जाये तो वह Antigen का काम करता है अर्थात् यदि व्यक्ति Allergy या Hypersensitivity का रोगी हो तो उसमे Anaphylaxis हो जाता है अर्थात् Shock होकर उसका रक्तभार बहुत गिर जाता है, हृदय निर्बल हो जाता है, रोगी को Syncope या बेहोशी हो सकती है। Acute bronchoconstriction जैसे श्वास रोग मे होता है, हो सकता है। अत एक तो खुडी सुई से मक्खियो के डक निकाल बाहर करें। फिर उस स्थान को साबुन के जल से धो दें। Soda bicarb का Strong Solution लगा दें। Adrenaline २५ मिलिलि० का इञ्जेक्शन दे दें। Prednisolone ३० मिलि० मुख से दे दें। आवश्यक हो तो Promethazine hydrochloride १० मिलि० मास द्वारा दे दें।

निस्स्रोतस ग्रंथियो के रोग

(Ductless Glands)

Hormone (that which excites)

Hormones या प्रेरक स्राव किसी ग्रन्थि या किसी अग से उत्पन्न होकर, सीधे रक्त मे प्रवेश कर जाते है और या तो शरीर के Metabolism को प्रेरणा प्रदान करते है या किसी अग विशेष मे जाकर उसे उत्तेजना प्रदान करते है या उसके अपने Secretion को उत्तेजित करते है। जैसे Anterior Pituitary का Growth hormone वृद्धि को, Metabolism hormone, metabolism को उत्तेजित करता है। Pancreas का Insulin शरीर के अगो मे शर्करा को अपने अन्दर खपा लेने के कार्य मे उत्तेजना प्रदान करता है। Secretin, Duodenum की श्लेष्मकला से उत्पन्न होता है और Pancreas के पाचक रसो को उत्तेजित करता है। इसी प्रकार १२ से 14 वर्ष की आयु के बीच मे Sex hormones जैसे Male hormone (Andrgen) तथा Female hormone (oestrogen) उत्पन्न होने लगते है। पुरुष मे Male hormone ज्यादा होता है। इसी कारण उसका शरीर पुरुषोचित होता है तथा उसका व्यवहार भी पुरुषोचित होता है। स्त्री मे Female hormone ज्यादा होता है और Androgen बहुत कम होता है। इसीलिए उसका शरीर और उसका व्यवहार स्त्रियोचित होता है। युवावस्था मे होने वाले

शारीरिक और मानसिक परिवर्तनो का कारण ये ही Hormones होते है। स्त्री पुरुषो की शारीरिक, मानसिक अभिवृद्धि, उनकी छाती, कन्धे, भुजायें, Pelvis, उनकी आवाज, शरीर पर बालो की स्थिति, उनका एक दूसरे के प्रति व्यवहार, सब इन्ही Hormones से निर्णीत होता है। ये नार्मल अवस्था मे हो तो पुरुषो और स्त्रियो का व्यवहार नार्मल होता है। यदि ये Abnormal हो तो उनका व्यवहार अवनार्मल हो जाता है। Androgen के कारण पुरुष मे शूरता और उग्रता के भाव तो आते ही है पर यदि यह Hormone अधिक हो तो युवक मे उद्दण्डता, उद्धतता, उपद्रवकारिता Aggressiveness भी आ जाती है। उसमे स्त्री के प्रति अनुचित Sexual aggressiveness आ सकती है। जैसे Boiler मे ज्यादा स्टीम भर जाये तो वह फट जाता है और उससे आसपास के लोगो को हानि पहुचती है। इसी प्रकार Androgen की तीव्रता से Juvenile crimes हो सकते है। एतदर्थ Oestrogen का प्रयोग करने से युवक को सुधारा जा सकता है। इन Hormones के ऊपर मस्तिष्क का नियन्त्रण रहता है। इसीलिए यदि बुद्धि या विवेक की भी वृद्धि हुई हो तो ये Hormones नियन्त्रण मे रहते है। स्त्री मे Male hormone कुछ अधिक हो तो वह भी पुरुषो की तरह कुछ Aggressive हो सकती है। अभिप्राय यह है कि स्त्री पुरुषो की शारीरिक रचना और उनका व्यवहार बहुत कुछ Sex hormones की अवस्था पर निर्भर है। Hormones के ठीक-ठीक Balance पर ही मनुष्य का स्वास्थ्य आश्रित है। कुछएक प्रधान Hormones का यहाँ उल्लेख किया जाता है।

गलाग्र ग्रन्थि (Thyroid) के Hormones

गल ग्रन्थि की रचना

कण्ठ Larynx के निचले भाग के दोनो ओर तथा कठ नाली के उपरले भाग के आगे पडी हुई यह २५ ग्राम की ग्रन्थि अपने दो खण्डो (Lateral Lobes) तथा नीचे की तरफ उनको मिलाने वाले सयोजक खण्ड (Isthmus) के मिलने से बनी हुई है। इसमे प्रत्येक खण्ड छोटी-छोटी खण्डिकाओ (Lobules) से—जिनमे से प्रत्येक मे २०-४० सूक्ष्म थैलियाँ (Vesicles, Alveoli, Follicles) चारो ओर से स्नायु ततु द्वारा बधी हुई है—बना हुआ है। दोनो पार्श्वीय खण्ड श्वास नाली (Trachea) के आजू बाजू रहते है, बीच का सयोजक खण्ड इस नाली के दूसरे तीसरे चौथे मनके (Rings) के आगे रहता है और उनके साथ जुडा रहता है। Cervical Fascia मे लिपटी हुई यह ग्रन्थि पीछे Larynx तथा Trachea के साथ बधी हुई है।

रक्त, ऊपर तो इसमे दोनो ओर Superior Thyroid Artery मे जो कि External Carotid की एक शाखा है आता है, नीचे दोनो ओर Inferior Thyroid Artery से जो कि Subclavion की शाखा है, आता है। इन्ही के साथ-साथ ऊपर दोनो ओर Superior Laryngeal Nerve तथा नीचे Recurrent Laryngeal Nerve इस ग्रन्थि के पीछे तथा भोजन प्रणाली (Oesophagus) के आगे से कण्ठ (Larynx) मे प्रवेश करती है।

जिन छोटी-छोटी थैलियो से यह ग्रन्थि बनी हुई है उनमे से एक की परीक्षा की जाये तो इसके अन्दर की झिल्ली या श्लैष्मिक स्तर (Epithelium) छोटे-छोटे चौकोर सेलो से बनी हुई मिलती है तथा इनके अन्दर एक लेसदार द्रव Colloid भरा हुआ रहता है जो एक प्रोटीन पदार्थ होता है जिसे Iodothyroglobulin कहते है, इसमे इस ग्रन्थि के सूक्ष्म रस (Hormones) रहते है। प्रत्येक थैली और उनसे बनी खण्डिकाओ के चारो ओर के स्नायु तन्तु मे सूक्ष्म रक्त वाहिनियो और लसीका वाहिनियो Capillaries और Lymphatics का एक जाल सा छाया रहता है। थैलियो की झिल्ली मे क्योकि Basement Membrane नही रहता इससे इन थैलियो के सेलो का सूक्ष्म रक्तवाहिनियो की दीवार (Endothelium) के साथ अति निकट का सम्बन्ध रहता है, यो कह सकते है कि मानो ये थैलियाँ रक्त के अन्दर डूबी हुई रहती है।

गल ग्रन्थि का कार्य

भोजन से विशेषत मछली, दूध, मक्खन, गाजर, हरी फलियो, मटर, पालक, अनाजो के छिलके आदि से दिन भर मे १००-१५० माइक्रोग्राम के लगभग आयोडीन शरीर मे प्रविष्ट होता है। यह Iodide के रूप मे रक्त मे विलीन होता है। Thyroid ग्रन्थि रक्त मे से इसे पूरी तरह से अपने मे सग्रह कर लेती है। सीरम के १०० मिलिलिटर मे ५ माइक्रोग्राम तो यह रहता ही है इससे अधिक मात्रा को यह ग्रन्थि अपने अन्दर जमा कर लेती है। इस प्रकार Thyroid Serum gradient साधारणत २० १ का होता है। जबकि Hyperthyroidism मे यह gradient १०० १ तक भी हो सकता है। इस ग्रन्थि के Acinar cells की Iodide को इतनी अधिक मात्रा

मे समा लेने की शक्ति को Trapping of Iodine की प्रक्रिया कहते है।

अब वहाँ Thyroid के सेलो मे पडे Peroxidase Enzyme (जो हमारे सभी सेलो मे है जिसके ही कारण शरीर के क्षतप्रदेश पर Hydrogen peroxide के डालने पर वहाँ वुलवुले उठने लगते है) के द्वारा यह Iodide, oxidize होता है। फिर यह Oxidized Iodide जिसके स्वरूप का निर्णय नही हुआ रक्त मे से आये Tyrosine (एक Amino acid जिसकी उत्पत्ति के लिए Ascorbic acid तथा Folic acid का होना जरूरी है) के साथ वध जाता है। Tyrosine और Iodine मिलने से एक तो Mono-iodotyrosine और दूसरा Di-iodotyrosine दो द्रव्य उत्पन्न हो जाते हैं। Di-iodotyrosine के दो Molecules के मिलने से Tetra-iodothyronine, जिसे Thyroxine (T_4) भी कहते है, वन जाता है। यह Thyroid ग्रन्थि का प्रमुख Hormone है। इसी प्रकार Mono-iodotyrosine के Molecule के Di-iodothyronine के Molecule के साथ मिलने से Tri-iodothyronine (T_3) वन जाता है। ये दोनो Hormones इस ग्रन्थि के सेलो मे एक गाढे Colloid जैसे पदार्थ, जिसे Thyroglobulin कहते हैं, उसके रूप मे जमा होते रहते है। इनमे से Thyroxine को तो पहले पहल १६१६ मे E C Kendell ने इस Colloid मे से पृथक् करके दिखा दिया था। फिर १६२६ मे Harington ने इसका फार्मूला भी निकाल लिया और वाद मे इसे उसने कृत्रिम विधि से भी वना लिया। इस ग्रन्थि के दूसरे Hormone, Tri-iodothyronine का पता पहले पहल इगलैड के Gross तथा Pitt-Rivers (१६५२) ने लगा लिया।

गल ग्रन्थि के सेलो मे विद्यमान Thyroglobulin का Molecular weight अधिक होता है इसलिये वह तो रक्त मे विलीन होता नही। इस पर एक Protease या Proteolytic enzyme की क्रिया होने से ये दोनो इस ग्रन्थि मे से मुक्त होकर रक्त मे प्रवेश करते हैं और उसमे Plasma protein के साथ वधे हुए सचार करते है। अर्थात् ये दोनो Globulin के साथ वधे हुए रहते हे और Protein Bound Iodine Test के द्वारा Total thyroid hormones का पता चलता है। इन Circulating hormones मे से ८० प्रतिशतक Thyroxine होता है, २० प्र श Tri-iodothyronine होता है।

इस ग्रन्थि के Hormones शरीर के सेलो मे जाकर वहाँ विद्यमान Oxidizing enzymes के कार्य मे Catalyst का काम करते है अर्थात् वहाँ रासायनिक प्रक्रिया को प्रवृत्त करते है पर स्वय उसमे खर्च नही होते। या हो सकता है कि ये वहाँ Co-enzyme का अर्थात् Enzyme activator का काम करते हे। शरीर के सेलो मे अन्त मे इनमे से आयोडीन मुक्त हो जाता है अर्थात् वहाँ इनमे Deiodination हो जाता है। आयोडीन मुक्त होकर Iodide के रूप मे रक्त मे प्रवेश कर जाता है। इसमे से कुछ गुर्दो द्वारा निकल जाता है, कुछ फिर गल ग्रन्थि मे Hormones वनाने के काम आता है।

शरीर के सर्व अवयवो अस्थि, मास, मस्तिष्क, आदि मे जो Oxidation या धात्वीय पचन हो रहा है उस सवमे गल ग्रन्थि के Hormones सहायक होते है। अवयवो मे ग्लूकोज का ज्वलन यकृत् मे Glycogen से ग्लूकोज का निर्माण, रक्त मे Cholesterol आदि फैट्स का पचन, शरीर मे प्रोटीन्स का पचन तथा उनके पचन से नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटासियम की निकासी, तथा हृदय आदि की चेष्टा इसी ग्रन्थि के Hormones पर निर्भर है। यदि यह ग्रन्थि जन्म से ही निर्वल हो तो इसके Hormones के अभाव मे या अतिन्यूनता मे खाद्य पदार्थ अवयवो मे खप नही पाते। जिससे शरीर के अग छोटे और अविकसित रह जाते हे जिसे Cretinism (वामनत्व) कहते है। यदि यह ग्रन्थि अधिक सक्रिय हो जाये, Hormones अधिक उत्पन्न हो तो शरीर के अवयवो मे ज्वलन Oxidation के वढ जाने से शरीर कृश होने लगता है, हृदय गति तीव्र हो जाती है, रक्त मे Cholesterol की मात्रा घट जाती है।

इस ग्रन्थि का कार्य

शरीर की समुचित वृद्धि के लिए यह ग्रन्थि आवश्यक है। शरीर के अस्थिपिंजर की वृद्धि या वनावट इस पर निर्भर है। यह ग्रन्थि Metabolism की सचालक है। इसके रुग्ण होने पर शरीर की वृद्धि रुक सकती है। शरीर की मानसिक वृद्धि तथा Sex सम्वन्धी वृद्धि भी इस ग्रन्थि पर निर्भर है।

Anterior Pituitary तथा गल ग्रन्थि

Anterior Pituitary ग्रन्थि के Basophilic Cells मे से एक सूक्ष्म रस निकलता है जो इस गल ग्रन्थि के अन्दर विद्यमान Iodothyroglobulin की मात्रा को वढाने तथा उसके अन्दर जमा हुए २ सूक्ष्म रसो को प्रवृत्त

करके अधिक मात्रा मे रक्त द्वारा शरीर मे भेजने का काम करता है। इसीलिए उसे Thyrotropic Hormone (Thyroid Stimulating Hormone) कहते हैं। उदाहरणत Sympathetic नाडी मण्डल के उत्तेजित होने पर Anterior Pituitary का यह सूक्ष्म रस अधिक प्रवृत्त होता है, परिणामत गल ग्रन्थि के सूक्ष्म रस भी रक्त मे अधिक जाने लगते हैं। इसके विपरीत जब तक रक्त मे गल ग्रन्थि के सूक्ष्म रसो की मात्रा बढती है तब उसके कारण यह Thyrotropic Hormone मन्द पड जाता है। उदाहरणत जब Iodine या Iodide दिया जाता है तब Colloid और गल ग्रन्थि के सूक्ष्म रसो की वृद्धि के परिणामरूप मे यह Thyrotropic Hormone कम हो जाता है। इससे गल ग्रन्थि के अन्दर से सूक्ष्म रसो की निकासी भी घट जाती है। ऐसा भी हो सकता है कि Iodine या Thyroid (Desiccated) का बहुत काल तक सेवन करने पर Thyrotropic Harmone शात ही हो जाये और तब अपने उत्तेजक सूक्ष्म रस के शान्त होने पर यह गल ग्रन्थि भी लघु (Atrophied) हो जाये और परिणामत Myxoedema के लक्षण होने लग जायें। यह भी होता है कि यदि गल ग्रन्थि के सूक्ष्म रस कम पड जाए जैसे कि बाहर से आयोडीन के न मिलने पर होता है तब Thyrotropic Hormone के प्रबल हो जाने पर गल ग्रन्थि मे अतिवृद्धि (Hyperplasia) होकर वह आकार मे बडी हो जाये अर्थात् Goitre का रोग हो जाये।

Anterior Pituitary के उपर्युक्त सूक्ष्म रस के अतिरिक्त रक्त मे एक और गल ग्रन्थि उत्तेजक (Thyroid Stimulating) तत्व Adams (१९५८) ने देखा है जो एक Gamma globulin है परन्तु वह कहाँ से उत्पन्न होकर रक्त मे आता है इसका अभी तक पता नही लगा। सभवत Lymphocyte श्रेणी मे से किसी से आता है।

गल ग्रन्थि अधिक सक्रिय हो जाये तो अधिगल ग्रन्थि (Thyrotoxicosis) का रोग हो जाता है। यदि वह अधिक निष्क्रिय हो जाए तो Myxoedema का रोग हो जाता है। इस ग्रन्थि की सक्रियता तथा निष्क्रियता की जाच के लिए जिन विधियो का प्रयोग करना चाहिये। उनका यहाँ उल्लेख किया जाता है।

(१) Basal Metabolic Rate, **मौलिक परिपचन का बल** (B M R)

शरीर मे होने वाली समस्त सघटन तथा विघटन की प्रक्रिया को Metabolism कहा जाता है। उसी के परिणाम-रूप ऊष्मा उत्पन्न होती है। शरीर और मन की शान्त अवस्था मे जिस मात्रा मे ऊष्मा उत्पन्न होती है उसे Basal metabolic rate कहते हैं। (१) शरीर के बाह्य पृष्ठ को देखते हुए उसके प्रत्येक Square Metre मे जो ऊष्मा उत्पन्न होती है उसकी मात्रा ४० कैलोरी प्रति घटा की होती है। शरीर का पृष्ठ १॥ वर्ग मीटर हो तो एक घ० मे ६० कैलोरीज के हिसाब से २४ घ० मे १४५० कै० के लगभग ऊष्मा निकलेगी। (२) शरीर के प्रत्येक किलो-ग्राम भार के पीछे १ घ० मे १ कैलोरी की ऊष्मा उत्पन्न होती है। अब यदि भार ६० किलो हो तो १४५० कै० के लगभग २४ घ० मे ऊष्मा नष्ट होती है। (३) २४ घटे की दृष्टि से शरीर मे १५०० से १८०० कैलोरी तक की ऊष्मा साधारणत उत्पन्न होती है। क्योंकि शरीर मे जितनी Oxygen खपती है उसी अनुपात मे ऊष्मा उत्पन्न होती है अत Oxygen की खपत एक समय मे कितनी हुई है इसका पता लगा कर ऊष्मा की उत्पत्ति की मात्रा का भी निर्णय किया जा सकता है। प्रत्येक आयु के स्त्री पुरुष मे स्टैण्डर्ड ऊष्मोत्पत्ति कितनी होती है इसकी सूची पुस्तको मे मिलती है। हमारे रोगी मे उससे कितनी कम या ज्यादा ऊष्मोत्पत्ति होती है इसे, स्टैण्डर्ड को ध्यान मे रखते हुए, Plus या Minus प्रतिशत मे जाहिर किया जाता है। अर्थात् नार्मल ४० कैलोरीज प्रति वर्ग मीटर प्रति घटे के स्थान पर ४५ ७ कैलो० हो तो नार्मल से ५ ७ कैलो० अधिक है अर्थात् १४ प्रतिशत नार्मल से अधिक है ऐसी अवस्था मे उस व्यक्ति का B M R +१४% कहा जाता है यदि नार्मल से इतना प्रतिशत कम हो तो उसका B M R —१४% कहा जाता है।

Robertson Reid के अनुसार नार्मल —१० से +१५ प्रतिशत के बीच-बीच मे रहता है। ऊष्मा उत्पादन इससे बढा हुआ हो तो इस ग्रन्थि के अधिक सक्रिय होने या Thyrotoxicosis का या Acromegaly, Diabetes, Heart failure, Pregnancy आदि का सन्देह करना चाहिए। (Pheochromocytoma का भी हो सकता है) इससे नीचे हो तो इस ग्रन्थि के अधिक निष्क्रिय होने या Myxoedema रोग का सन्देह हो जाना चाहिए। (B M R के मापने के लिए Benedict Apparatus उपयोगी यन्त्र है जो एक Cylindrical Spirometer है जिसे नाक और मुख मे फिट करने का प्रबन्ध होता है इसमे Soda-lime होता है। इसी मे से Oxygen अन्दर डाली जाती है अन्दर से आई CO_2 इसमे रह जाती है। इस पर लगी

सुई से पता लगता है कि कितनी आक्सिजन अन्दर गई है, एक मिनट मे अन्दर कितनी आक्सिजन खर्च हुई हे यह पता लग जाता है। साधारणत यदि कोई रातदिन विस्तर पर पडा रहे उसका गर्मी का दैनिक खर्च १७०० कै० होता है। जो ८ घ० सोये और १६ घ० साधारण कार्य करे उसका Metabolic rate २१०० के लगभग होता है। जो ८ घं० आराम के अलावा १४ घ० वैठा हुआ काम करे तथा २ घ० कुछ मेहनत भी करे उसका Metabolic rate २५०० कैलोरी के लगभग होता है। वाहर गर्मी हो तो यह Rate कम होता है, वाहर सर्दी हो तो यह Rate वढ जाता है।

(२) *The Percentage Uptake of Radio-Iodine*

Radio Active Isotope of Iodine जिसका Atomic Weight I^{131} (साधारण Iodine का १२७) होता है इसलिए जिसे I^{131} लिखा जाता है उसे ३०-५० Microcuries (Curie का १ लाखवा भाग=1 माइक्रोक्यूरी) की मात्रा मे खाली पेट आदमी को 100 मिलिलिटर जल मे मिलाकर देने के २४ घटे वाद Geiger या Scintillation Counter के द्वारा देखा जाता है कि इस गल ग्रन्थि मे उसकी कितनी प्रतिशतक मात्रा है। साधारणत यह ग्रन्थि २४ घटे मे उसकी ३०-४० प्रतिशतक मात्रा को अपने मे जमा कर लेती है, शेप Iodine २ दिन तक मूत्र द्वारा निकल जाता है। पर यदि उसमे इसकी ४०-६० प्रतिशत मात्रा मिले और मूत्र मे कम निकले तो समझा जाता हे कि यह ग्रन्थि अधिक सक्रिय हुई है अर्थात् उसमे Hyperthyroidism है। यदि यही ग्रन्थि उसे २०-१० प्रतिशतक मात्रा से कम जमा करे शेप मूत्र द्वारा निकल जाए तो इस ग्रन्थि को अधिक निष्क्रिय या Hypothyroidism से ग्रस्त हुआ-हुआ समझना चाहिए।

(३) Thyroid Inhibition Test

Greer तथा Smith (१९५४) ने देखा कि नार्मल ग्रन्थि के व्यक्तियो मे Desiccated Thyroid की ५४० मिलि० की दैनिक मात्रा १-२ सप्ताह तक देने के वाद $Iodine^{131}$ की १ मात्रा देने पर इस ग्रन्थि द्वारा उसकी पकड नार्मल पकड (Uptake) मे २० प्र० श० से नीचे आ जाती हे। परन्तु सक्रिय गल ग्रन्थि के रोगियो अर्थात् Hyperthyroidism के रोगियो मे इसी प्रकार पहले Desiccated Thyroid देने के वाद जव $Iodine^{131}$ की १ मात्रा दी गई तो २४ घटे के वाद देखने पर उनमे से किसी मे भी इसकी यह पकड नार्मल पकड (Uptake) से २० प्र० श० से नीचे नही आई। Perlmutter तथा Slater (१९५५) ने यही परीक्षण Triodotyronine के द्वारा किया और देखा कि इसके प्रयोग के बाद भी Iodine की १ मात्रा देने पर साधारण गल ग्रन्थि के अन्दर इसकी पकड जितनी कम हो जाती है (३२%) उतनी Hyperthyroidism के रोगियो मे नही होती।

(४) Protein Bound Iodine of the Serum (P B I) या Butanol Extractable Idoine

स्वस्थ व्यक्ति के सीरम मे Protein Bound Iodine को Precipitate किया जा सकता है वह ३ ५-७ ५ माइक्रोग्राम प्र० श० मिलिलि० हुआ करता हे। यदि गल ग्रन्थि अधिक सक्रिय हो तो इसकी मात्रा उसमे ८ से ३५ माइक्रोग्राम प्र० श० तक हो जाती है। ग्रन्थि मन्द हो तो मात्रा नार्मल से कम होती है। स्पष्ट हे प्रथम अवस्था मे मूत्र से इसकी निकासी कम तथा दूसरी अवस्था मे इसकी मूत्र से निकासी अधिक होती है। यह टेस्ट सुगम है एव अधिक उपयोगी हे।

(५) Blood Cholesterol की मात्रा

नार्मल गल ग्रन्थि के व्यक्ति के रक्त मे Cholesterol १४० मिलि० से २८० मिलि० प्र० श० के लगभग होता है। गल ग्रन्थि के सक्रिय हो जाने पर इसकी मात्रा घट जाती है। उसके निष्क्रिय हो जाने पर इसकी मात्रा वढ जाती है।

गल गण्ड, गिल्हड Simple Goitre, Endemic Goitre

इस रोग मे जो काश्मीर से लेकर नेफा और नागालैण्ड तक पश्चिमोत्तर भारत मे वहुत होता है, गल ग्रन्थि आकार मे वडी हो जाती है कठोर न होकर मृदु होती है पर उसके कार्य मे कोई न्यूनता या दोप उत्पन्न नही होता। हमारे देश मे हिमालय की वस्तियो मे रहने वाले व्यक्तियो मे वहुत अधिक लगभग एक करोड मे गल गण्ड का रोग पाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जहा जल मे Iodine कम होता है अथवा Calcium Carbonate या Fluoride अधिक मात्रा मे होता हे। दूसरे शब्दो मे जहा पानी Hard होता है वहा Iodine शरीर मे भली प्रकार नही पहुँचता। यह तो निश्चित हे कि यह गिल्हड का रोग जल तथा भोजन मे Iodine की न्यूनता या उसके आतो से भली प्रकार विलीन न होने के कारण होता है। इसलिए आत मे किसी जीवाणु (Micro organism) की उपस्थिति मे

भी इसका विलयन ठीक-ठीक नही होता। कुछ अवस्थाओ मे इसकी अधिक आवश्यकता होती है जैसे कि नवयुवावस्था मे, या गर्भावस्था मे, या शीत और वसन्त ऋतु मे, या किसी सक्रामक रोग के होने पर, इन अवस्थाओ मे Iodine के कम मिलने पर हमारी गल ग्रन्थि आकार मे बढ जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि Iodine के कम मिलने पर और इस ग्रन्थि के कुछ निष्क्रिय होने के कारण इसके Hormone के कम हो जाने पर Pituitary का Thyrotropic Hormone प्रबलता से उत्पन्न होता है जिससे गल ग्रन्थि मे व्यापक अतिवृद्धि (Epithelial Hyperplasia) की प्रक्रिया होकर यह ग्रन्थि आकार में बडी हो जाती है जिससे इसमे आवश्यक मात्रा मे सूक्ष्म रसो की उत्पत्ति होकर शरीर का काम चल जाता है। सेलो से बनी झिल्ली तथा आसपास के स्नायुतन्तु दोनो मे अतिवृद्धि होती है।

बहुधा ऐसा हो सकता है कि इस ग्रन्थि की थैलियो की झिल्ली मे Involution की प्रक्रिया होकर उनमे लेसदार पदार्थ या Colloid तो मात्रा मे अधिक भर जाता है और थैलियो की झिल्ली पतली पड जाती है। इसमे Colloid पदार्थ के अधिक होने पर भी उसमे Thyroxine कम होता है। इस एक समान फूले हुए गिल्हड को Colloid Goitre कहते है।

जब इस ग्रन्थि की थैलियो की झिल्ली कुछ मोटी (Columnar) होती है और इनके बीच भरा लेसदार द्रव्य (Colloid) नार्मल से कम होता है तब इस गिल्हड को Parenchymatous Goitre कहते हैं। इसमे आयोडीन की मात्रा नार्मल से कम होती है।

परीक्षा

इस रोग मे BMR, PBI, तथा Serum cholesterol नार्मल के लगभग ही होते है।

अर्बुद युक्त गल गण्ड (Nodular Goitre)

कभी-कभी इस गल ग्रन्थि के एक भाग मे अतिवृद्धि होकर वहा एक या अनेक Adenoma बन जाते है जो प्रारम्भ मे स्पर्श मे कठोर होते है। बाद मे मृदु (Cystic) भी हो सकते हैं।

यह गल गण्ड या गिल्हड का रोग प्राय निरुपद्रव होता है। यद्यपि जब तक इस देश को न छोड दिया जाये तब तक बना ही रहता है। गल गण्ड के पुराने हो जाने पर इसमे स्नायुभाव (Fibrosis) तथा कठोरता (Calcification) भी हो जाती है। अनेक Nodules या ग्रन्थिया इसमे हो विशेषत आयु ५० वर्ष से ऊपर हो तो इसके Toxic goitre होने की आशका करनी चाहिये।

चिकित्सा

Iodine वाले भोजन जैसे दूध, Cod Liver Oil, गाजर, फलिया, मटर, पत्र शाक विशेष मात्रा मे लेने चाहियें।

जिस प्रदेश मे यह रोग होता है वहा जल को उबाल कर लिया जाए तो यह रोग नही होता। अथवा १००-२०० माइक्रोग्राम Iodine प्रतिदिन लेते रहने पर अर्थात् दूसरे शब्दो मे ५-१० हजार भाग नमक मे १ भाग Potassium Iodide मिलाकर उस Iodized Salt का सेवन किया जाय तो यह रोग नही होता। या १ किलोगाम नमक मे २०० मिलि० Pot Iod मिलाकर इसी का सेवन करना चाहिए। ऐसा नमक रोज १० ग्राम भी लिया जाए तो उसमे Pot Iod २ मिलि० शरीर मे जाता है जिसके द्वारा १ ५ मिलि० आयोडीन प्रतिदिन अन्दर जाता है। अथवा शहर की टकी के ५० हजार गैलन पानी मे १ पौंड Sod Iod मिला देने से इसे रोका जा सकता है अथवा बालको को वर्ष भर मे २ बार १०-१० दिन तक २-३ ग्रेन Sod. Iod दिन मे एक बार दूध, जल आदि के साथ पिला दिया जाता रहे तो इस रोग से उन्हें बचाया जा सकता है। गर्भिणी स्त्री को प्रति सप्ताह १ मात्रा १० मिलि० Pot. Iod के दे देने पर शिशु मे इस ग्रन्थि के रोग होने का भय नही रहता। रोगी को Lugol's Solution (१५ बूद मे ⅚ ग्रेन Iodine) का या Pot Iod का पूर्ण घोल ३-५ बूद आधे गिलास जल के साथ तब तक देते रहना चाहिए जब तक गिल्हड ठीक न हो जाए या Syrup Ferri Iod ३० बूद जल के साथ दिन मे १ बार या Pod Iod १½-२ ग्रेन दिन मे १ बार दूध मे भोजन से आधा घटा पहले जब तक रोग रहे दे देना चाहिए या Hydrargeri Iod Rubrum की १ प्र० श० बनी मलहम गले पर लगाते रहना चाहिए। Thyroid १-२ ग्रेन के रोज देने से भी यह रोग हटता है।

अधिगल ग्रन्थि, सक्रिय गल ग्रन्थि, (Hyperthyroidism Toxic goitre, Graves' Disease)

डबलिन के Robert Graves (१८३५) ने पहले इस रोग का पता दिया। उसके नाम पर इस रोग का नाम है। Thyroxine कोई Toxine नही, तो भी इस रोग का नाम जो Thyrotoxicosis है वह प्रचलित होने के कारण चलता है।

ऐसे प्रदेशो मे जहा गिल्हड का रोग प्रादेशिक रूप मे नही होता कभी-कभी यह ग्रन्थि २०-४० वर्ष के व्यक्तियो मे विशेषत स्त्रियो मे, विशेषत गर्भावस्था मे आकार मे बढ ही नही जाती पर साथ ही अधिक सक्रिय भी हो जाती है अर्थात् इसमे से सूक्ष्म रस Hormones अधिक मात्रा मे रक्त मे सचार करने लग जाते है जिससे शरीर का धात्वीय परिपचन प्रवल हो जाता हे। इस ग्रन्थि के अधिक सक्रिय हो जाने की यह प्रवृत्ति कुछ एक परिवारो मे जन्म से आती है, और सभवत बाद मे किसी शारीरिक, या मानसिक आघात के लगने पर अर्थात् चिन्ता, दु ख व्याकुलता आदि के कारण के उपस्थित हो जाने से मस्तिष्कगत केन्द्रो के विक्षुव्ध हो जाने पर Sympathetic नाडी मण्डल विक्षुव्ध हो जाता है। उसके कारण Anterior Pituitary के भी विक्षुव्ध हो जाने से Thyrotropic या Thyroid Stimulating Hormone अधिक प्रवलता से उत्पन्न होता हे और उसके परिणाम रूप मे गल ग्रन्थि अधिक सक्रिय हो जाती हे। परन्तु Sympathetic नाडी मण्डल को विक्षुव्ध करने वाले कारणो के दूर हो जाने के वाद भी यह रोग क्यो कायम रहता है इसका पता नही चल सका। ऐसा लगता है कि Pituitary के Thyroid Stimulating hormone की वृद्धि से यह रोग नही होता परन्तु Thyroid Stimulating Harmone शरीर मे कही और भी उत्पन्न होता हे जिसके कारण यह रोग होता है।

गल ग्रन्थि की परीक्षा करने से वह आकार मे कुछ वढी हुई होती है, पर अधिक वढी हुई नही होती। रक्तवाहिनियो तथा स्नायु तन्तु मे वृद्धि के कारण स्पर्श करने मे यह न अधिक कठोर, न अधिक मृदु होती है। ग्रन्थि के किनारे भी कुछ मोटे और कुछ उठे हुए स्पष्ट अनुभव होते हे। सूक्ष्म परीक्षा करने पर पता चलता है कि इसकी छोटी-छोटी थैलियो की झिल्ली, अति वृद्धि (Hyperplasia) के कारण स्थूल हो गई है। थैलियो के अन्दर का अवकाश बहुत घट जाता है एव उनमे विद्यमान Colloid की मात्रा वहुत कम होती है अर्थात् इस ग्रन्थि के अन्दर सचित Iodine की मात्रा कम हो जाती है। थैलियो के चारो ओर स्नायु तन्तु, रक्तवाहिनियो, लसीकामय प्रदेश मे भी पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। रक्तवाहिनिया फैली हुई होती ह। कभी-कभी एक या अनेक Adenoma भी हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है ग्रन्थि मे आयोडीन की पकड वढ जाती है और सूक्ष्म रसो की उत्पत्ति तथा रक्त के द्वारा उनकी निकासी भी तीव्र हो जाती है, परन्तु ग्रन्थि के अन्दर Thyroglobulin के रूप मे इसकी उपस्थिति कम हो जाती है।

Toxic Nodular Goitre या Secondary Thyrotoxicosis

चिरकाल से वढे हुए गिल्हड मे वाद मे Adenoma या अर्वुद होकर उसके दुष्परिणाम रूप मे जव यह रोग होता है तव इसे Toxic Nodular Goitre कहते हे। यह रोग ३५ वर्ष की आयु के बाद होता है। रोगी को गिल्हड चिरकाल से होता है। वाद मे कभी धीरे-धीरे अज्ञात रूप मे इस रोग के लक्षण आरम्भ हो जाते है। परीक्षा करने पर गिल्हड मे एक अर्वुद दिखाई पडता हे। इस अर्वुद के अधिक सक्रिय होने के कारण या इसके Thyroid पर दवाव के कारण Thyroxine अधिक उत्पन्न होता है। इस अवस्था मे Exophthalmos का लक्षण नही होता।

लक्षण

यह दोप युक्त गल ग्रन्थि का रोग वहुधा सहसा कभी-कभी अज्ञात रूप मे प्रारम्भ होता है। रोगी देखता हे कि उसका गला फूल गया हे या उसकी आखे कुछ आगे को उभर गई है। (Exophthalmos, ऊपर की पलक की Levator palpibrum Superioris मे Spasm के होने के कारण वह पीछे की ओर खिच जाती है जिससे Sclera अधिक दीखने लगता है) आत मे स्रावो तथा चेष्टा के वढ जाने से उसकी क्षुधा और पिपासा वढ गई है। यद्यपि भूख जल्दी मिट जाती हे पर साथ ही वह यह भी देखता हे कि अधिक खाने पर भी शरीर कृश होता जाता है। कन्धे तथा Pelvis की मासपेशियो मे कृशता तथा निर्वलता विशेप है। उसकी कार्य करने की शक्ति घटती जाती है या थोडा सा श्रम करने पर भी वह थक जाता है या उसकी हृदयगति तीव्र हो जाती है अर्थात् उसे धडकन होने लगती है। श्रम करने पर उसका श्वास चढ जाता है। उसे पसीना अधिक आने लगता है। हाथ भी गर्म तथा स्वेद युक्त होते है। उसे प्रतीत होता हे कि श्रम से शीघ्र थकावट हो जाने पर भी उसकी क्रियाशीलता वढ गई है। यह रोग क्योकि सर्दी के अन्त मे, गर्मी के शुरू मे आरम्भ होता है रोगी को यह भी पता लगता है कि उसे गर्मी सहन नही होती, उसे खुजली की शिकायत होती है। उसे पता लगता है कि उसके मूत्र की मात्रा वढ गई है जिससे उसे रात को २—३ वार मूत्र त्याग करने के लिये उठना पडता है। स्वेद तथा मूत्र के अधिक आने से उसे प्यास भी अधिक लगने लगती है। आतो की विक्षोभशीलता से समय समय पर उसे अतिसार या Diarrhoea के वेग भी हो जाते हैं। Metabolism के तीव्र होने से रोगी मे हलका-सा मधुमेह भी हो सकता है जो इस रोग के ठीक होने

के साथ ही ठीक हो जाता है। स्त्री मे आर्तव कम हो जाता है।

हृदय

हृदय की परीक्षा करने पर अर्थात् १० मिनट आराम करने के बाद देखने से हृदय तथा नाडी गति ९०–१४० प्रति मिनट होती है (अर्थात्, उसे Sinus Tachycardia होता है) जो मानसिक उद्वेग से और बढ जाती है। कभी-कभी विषम भी होती है। ग्रीवा मे Carotid धमनी का धमन होता हुआ दिखाई पडता है। रोगी को छाती की धड-कन अनुभव होती है। मानसिक रोग मे निद्रा काल मे नाडी गति मन्द हो जाती है, पर इस रोग मे उस समय भी नाडी गति तीव्र रहती है। क्योकि शरीर के सेलो मे पचन प्रक्रिया (Metabolism) के तीव्रतर हो जाने से उसे रक्त या ऑक्सिजन अधिक चाहिये अत हृदय को तीव्र रहना पडता है। हृदय का सकोचकालिक (Systolic) रक्तभार बढा हुआ होता है। इसीलिये रोगी का नाडी भार (Pulse Pressure) बढा हुआ होता है (नार्मल ४० के लगभग होता है)। इस रोग मे कभी-कभी Angina का लक्षण भी होता है। रोग चिरकाल तक रहे तो हृदय शिथिल (Dilated) होकर आकार मे बडा हो जाता है, निर्बल हो जाता और अन्त मे उसके मास मे क्षीणता होकर Auricular Fibrillation (अति हृदय वैषम्य) का रोग हो जाता है।

पीछे के अवयव के फूल जाने से आखो के आगे की ओर उभर जाने या ऊपर की पलको के पीछे की तरफ सकुचित हो जाने से नेत्रोद्गम (Exophthalmos) का लक्षण इस रोग मे इतना स्पष्ट होता है कि इस रोग को Exophthalmic Goitre भी कहते है। आखो के पीछे के अवयव मे श्वयथु, Oedema या अति वृद्धि के हो जाने से ये आगे को उभर जाती है।

नाडी मण्डल सम्बन्धी लक्षण

इस रोग के कारण रोगी के मन तथा शरीर मे अस्थिरता, विक्षोभशीलता तथा चेष्टाशीलता (Nervousness) का लक्षण बढ जाता है। बिस्तरे पर पडा हुआ भी चेष्टाशील रहता है। उसमे अस्थिरता (Hyperkinesia) का लक्षण इतना बढा होता है कि वह एक स्थिति मे देर तक नही रह सकता। मानसिक विक्षोभशीलता इतनी होती है कि स्वल्प कारण से क्रुद्ध हो जाता एव आपे से बाहर हो जाता है। शीघ्र विचलित हो जाने के कारण अकारण रोदन का लक्षण भी हो सकता है, उसे निद्रा भी कम आती है। मानसिक अस्थिरता के बढने से चेष्टा प्रधान मानस रोग (Mania) भी हो सकता है। अस्थिरता की वृद्धि के कारण हाथो की अगुलियो मे कम्पन (Fine Tremors) होने का लक्षण भी होता है जो बाहु को आगे फैलाकर हाथ को फैलाने, लिखने या प्याले को उठाकर मुख तक लाने या क्रोध के समय स्पष्ट हो जाता है। जीभ को बाहर करने पर उसमे कप दीखता है।

त्वचा सम्बन्धी लक्षण

Vasomotor नाडियो के विक्षोभ के कारण रक्त-वाहिनिया फैली रहती है, Vasodilatation होता है, स्वेद अधिक आता है जिससे चेहरे, हाथ-पाव गर्म तथा कुछ गीले से रहते है। त्वचा के गर्म रहने से गर्मी सहन नही होती। बाल भी गिरने लग जाते है।

भेदक लक्षण

हृदय रोग, चिन्ता प्रधान मानस रोग तथा क्षय रोग से इस रोग का सन्देह हो सकता है। परन्तु यदि गल ग्रन्थि आकार मे बडी हो, या निगलने पर ऊपर उठती हो, रोगी की आयु मध्यमायु मे ऊपर की हो, ज्वर न हो, त्वचा ठडी न होकर (जैसे चिन्ता रोग मे होती है) गर्म हो निद्रा के समय भी नाडी गति कम न होती हो, ५ ग्रेन Pot Iod के २-३ सप्ताह तक दिन मे एक बार देने से रोगी को लाभ हो जाता हो तो इस रोग का निश्चय हो जाता है। उपर्युक्त परीक्षा विधियो से भी इस रोग का निश्चय हो जाता है अर्थात् Basic Metabolic Rate इस रोग मे +२० से +६० प्र० श० तक बढा हुआ होता है। Blood Cholesterol घटकर १४० मिलि० प्र० श० से नीचे आ जाता है। Protein Bound Iodine १०० मे ८ माइक्रोग्राम से अधिक होता तथा Radioiodine Uptake भी बढा हुआ होता है। Lymphocytosis का लक्षण भी मिलता है। Laglid Sign—(Graefe's Sign) आख नीचे की ओर मोडने पर पलक पीछे रह जाती है। रोगी बहुत देर-देर मे आख झपकता है (Still wag's sign) दोनो पलको के बीच का अन्तर बडा हो जाता है (Dalrymple's Sign)।

उपद्रव

उपर्युक्त हृदय सम्बन्धी लक्षणो तथा बढती हुई कृशता से मृत्यु होती है। इसमे ज्वर का होना भी एक दुर्लक्षण है। साध्यासाध्य —एक बार होकर यह रोग बढता ही जाता है। भली प्रकार चिकित्सा करने पर तथा उसे जारी रखने पर रोग को रोककर रखा जा सकता है। Auricular fibrillation अच्छा लक्षण नही है। आराम करने पर

नाडी की प्रति मिनट सख्या कम हो जाए तो यह शुभ लक्षण है।

चिकित्सा

सामान्य चिकित्सा

इस रोग मे क्योकि धात्वीय पचन प्रक्रिया बढी हुई होती है, रोगी को पडे हुए विश्राम की अवस्था मे ही रहना चाहिये। हलका भोजन अधिक मात्रा मे देना चाहिये, उसमे प्रोटीन्स Dextrose, तथा विटामिन्स अधिक होने चाहिये। जल अधिक मात्रा मे पिलाना चाहिये। ३ हजार कैलीरीज का भोजन देने से रोगी का Negative Nitrogen Balance नार्मल हो जाता है। विटामिन "बी" कॉम्प्लैक्स का प्रयोग भी होना चाहिये। Testosterone propionate २५-५० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा सप्ताह मे २–३ वार देने से भी Nitrogen balance पाजिटिव होता है।

रोगी मे शारीरिक एव मानसिक अस्थिरता या चेष्टा वृद्धि की शान्ति के लिये उसे Phenobarbitone ३० मिलि० की मात्रा मे प्रात साय २ बार या ३ वार २ मास तक मिलना चाहिये या Reserpine का २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार प्रयोग करना चाहिये। मृदु रोग इसी चिकित्सा से ठीक हो सकता है, साथ ही विटामिन बी[1] १० मिलि० तथा Vit B[6] भी उसे प्रतिदिन मिलना चाहिये। इनसे मास को शक्ति मिलती है।

गल ग्रन्थिविरोधी (Antithyroid) औषधियाँ

Thiouracil तथा उसके समस्त योगो (Compounds) मे से –

(१) Propyl Thiouracil का प्रयोग इस रोग मे विशेष रूप से किया जाता है। इसका प्रयोग करने पर इस ग्रन्थि के अन्दर Inorganic Iodine से Organic Iodine को तैयार करने की प्रक्रिया मन्द हो जाती है। इससे सूक्ष्म रसो (Hormones) के बनने की प्रक्रिया स्वभावत मन्द पड जाती है अर्थात् Peroxidase की क्रिया जो Iodine की उत्पत्ति के लिए आवश्यक होती है वह मन्द पड जाती है। रोग मृदु हो तो इसे १०० मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार, रोग तीव्र हो तो दिन मे ४ वार ६–६ घटे पर दिया जाता है। इससे २ सप्ताह मे रोगी के शीघ्र थक जाने Nervous रहने के लक्षण शान्त हो जाते हैं। १–१½ मास मे रोगी का B M R नार्मल हो जाता है। दूसरे शब्दो म उसकी नाडी गति तथा भार आदि नार्मल हो जाते हैं। इसके वाद इस औषधि को क्रमश कम करते हुए इस औषधि की चालू मात्रा १०–५० मिलि० की प्रतिदिन लगभग १ वर्ष तक जारी रखनी चाहिए। श्वेत कण परीक्षा या W B C की परीक्षा करते रहना चाहिए और जब वे ४५०० से कम होने लगे तब इस औषधि का प्रयोग वन्द कर देना चाहिए, क्योकि Agranulocytosis इस औषधि के विषैले प्रभाव का सूचक होता है। इस औषधि के प्रयोग से ५०–६० प्र०श० रोगी अच्छे हो जाते है अर्थात् स्वेद, उष्णता की प्रतीति, भार की न्यूनता, भूख की अधिकता के लक्षण शान्त हो जाते है और फिर उन्हे इस रोग का पुनराक्रमण नही होता। स्पष्ट है कि इस औषधि के दौरान मे Iodine नही देना चाहिए। Methyl thiouracil (B D H) इसी प्रकार की औषध है उसे भी १००–२०० मिलि० मात्रा मे २–४ वार दिन मे दिया जा सकता है।

(२) Carbimazole (Neomercazole, Schering) —यह भी ग्रन्थि मे वाहर से आये Iodide से Organic Iodine की उत्पत्ति को कम करती है। इस समय (१९७४) गलगण्ड विरोधी औषधियो मे यह सबसे अधिक प्रचलित औषधि है। Thiourea के समासो से कम विषैली है और उनसे अधिक कार्यकारी है। रोग मृदु हो तो ५ मिलि० मात्रा मे ३–४ वार दी जाती है। रोग कुछ प्रवल हो तो १० मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार दी जाती है। रोग अधिक प्रवल रूप मे हो तो १५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार दी जाती है अर्थात् इसकी दैनिक मात्रा ३० से ४५ मिलि० तक होती है। इसकी १ गोली ५ मिलि० की मिलती है। जब रोगी का B M R नार्मल हो जाए तब रोगी की अवस्था को देखते हुए इसकी ५ से १० मिलि० दैनिक मात्रा चालू कर देनी चाहिए और इसे धीरे-धीरे कम करते हुए एक या डेढ वर्ष तक का समय हो जाने पर वन्द कर देना चाहिए। वाद मे ६ मास तक समय-समय पर रोगी की जाच होनी रहनी चाहिए क्योंकि यदि इस रोग ने फिर होना होता है तो ६ मास तक यह फिर हो जाता है तब तक यह रोग न हो तो फिर वहुत कुछ निश्चिन्तता हो जाती है। Agranulocytosis कण्डू लाल चकत्ते, शीत पित्त आदि लक्षण होने लगे तो भी इसे वन्द कर देना चाहिए तथा Penicillin का तब तक प्रयोग

करना चाहिए जब तक श्वेत कण नार्मल न हो जाए। रोगी का विश्राम विशेष होना चाहिए। प्रोटीन भोजन भी विशेष देना चाहिए। कण घटे नहीं उसकी परीक्षा करते रहना चाहिए।

Potassium Perchlorate (Peroidin) यह एक निरुपद्रव औषधि है तथा बाहर से आए Iodide का गल ग्रन्थि मे संचित होना बन्द कर देती है। इसीलिए इसके प्रयोग के समय Iodide की औषधि का प्रयोग नहीं करना चाहिए। प्रारम्भ मे इसे १००–२०० मिलि० मात्रा मे दिन मे चार बार दिया जाता है। इससे डेढ़-दो मास मे रोगी का B M R नार्मल हो जाता है। जब भी यह ऐसा हो जाए तब इसे २००–२५० मिलि० मात्रा मे केवल २ बार देना आरम्भ करना चाहिए। फिर इसकी दैनिक मात्रा क्रमश २५० और २०० मिलि० दैनिक करते हुए इसे लगभग १ वर्ष तक जारी रखना चाहिए। बन्द करने के बाद ६ मास तक रोगी की जाच होनी रहनी चाहिए कि उसका B M R फिर बढता तो नही। यह औषधि बहुत कम विषैली है। तो भी इसके सेवन काल मे अरुचि, त्वचा पर चकत्ते (Maculo Papular Rash) होने लगे तो इसे बन्द कर देना चाहिए। इन औषधियो के २–३ मास प्रयोग करने के बाद रोगी के लक्षण शान्त होने लगते है। आधे के लगभग रोगियो मे इन औषधियो से आराम आ जाता है। इन्हें पहले उपर्युक्त मात्रा मे १॥ महीना देना चाहिए। फिर इनकी मात्रा को कम करके इनकी चालू मात्रा को १ या १॥ वर्ष जारी रखना चाहिये।

Radio Active Iodine Iodine १३१

जिन रोगियों को गल गण्ड विरोधी उपर्युक्त औषधियो के प्रयोग से भी लाभ नही होता तथा आयु के बडे होने या हृदय के रुग्ण होने के कारण जो शल्यकर्म के भी योग्य नही है, ऐसे ४५ वर्ष के ऊपर के व्यक्तियों के लिए यह चिकित्सा बडी उपयोगी है। केवल एक गलास जल जिसमे Isotope घुला होता है अर्थात् ऐसा Iodine जिसके Atom मे Neutrons को प्रविष्ट करके कृत्रिम तौर से उसका Atomic Weight बढाया हुआ होता है एक बार पीना पडता है। परन्तु क्योंकि पहले इसकी एक Tracer मात्रा ३०-५० Microcuries की मुख द्वारा देकर २४ घटे बाद यह ग्रथि उसे कितना पकड लेती है इस की जाच करके और बढी हुई गल ग्रथि का भार कितना है इसकी भी जाच करके इस औषधि की चिकित्सा सम्बन्धी मात्रा निकालनी पडती है, इसलिए यह चिकित्सा विशेष सुव्यवस्थित और इस चिकित्सा के विज्ञ चिकित्सकों से युक्त चिकित्सालयों मे ही हो सकती है। साधारणत इसकी चिकित्सा सम्बन्धी मात्रा ३-१० Millicuries दी जाती है (क्योंकि औसतन भार इस ग्रन्थि का ५० ग्राम होता है) यह एक मात्रा जल मे मिलाकर मुख द्वारा दी जाती है। क्योंकि इसे Radio Active आयोडीन दी गई है जिससे Radiation होता है या इसमें से Energy निकलती रहती है। इसलिए इसके बाद रोगी का विशेष ध्यान रखना पडता है। यह औषधि इस ग्रन्थि के अन्दर पहुँच कर उन सेलों को जो इस प्रकार अपने अन्दर जमा कर लेते है, नष्ट कर देती है। इस औषधि की इतनी मात्रा दी जाती है कि जिससे इस ग्रन्थि के अन्दर सेलो का नाश अधिक न हो जाए, उतना ही हो कि जिससे रोग शान्त हो जाए। १ मास के समय के बाद इसका प्रभाव आरम्भ हो जाता है और ३ मास तक यह ग्रन्थि आकार मे छोटी हो जाती तथा उसका कार्य भी नार्मल हो जाता है। इतना समय रोगी को प्रतीक्षा करनी चाहिए। लगभग ५० से ८० प्र०श० व्यक्तियों मे यह रोग शान्त हो जाता है और रोगी शारीरिक, मानसिक रूप से पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। अधिक सेलों के नष्ट हो जाने से Hypothyroidism के होने का भय अवश्य रहता है जो इस चिकित्सा का एक दुष्परिणाम है। १९५० से जब से यह चिकित्सा विधि आरम्भ हुई है अब तक १०–२५ प्र०श० मे यह उपद्रव होना देखा गया है।

Subtotal Thyroidectomy, Partial Thyroidectomy

यदि किसी गल गण्ड विरोधी (Antithyroid) औषधि से १ वर्ष तक देने पर भी फिर यह रोग हो जाता हो या इस औषधि के देने से गल ग्रथि आकार मे और बडी हो जाती हो या जब इन औषधियो का किसी पर विषैला प्रभाव शीघ्र हो जाता हो या बढी हुई ग्रथि Nodular हो या Toxic Nodular Goitre हो तब यह शल्यकर्म किया जाता है, जिसमे इस ग्रथि का एक भाग निकाल दिया जाता है। शल्यकर्म से पहले निम्नलिखित औषधि चिकित्सा करने से उसके अन्दर विद्यमान रक्त की मात्रा कम हो जाती है। ग्रथि आकार में छोटी हो जाती है, रोगी की हृदय तथा नाडी गति कम हो जाती है। उसकी शारीरिक, मानसिक विक्षोभशीलता घट जाती है। B.M R घट जाता है।

Iodine चिकित्सा

रोगी को Lugol's Solution (१० प्र०श० Pot Iod के घोल मे ५ प्र०श० Iodine होता है तथा इसकी १ बूद मे ६ मिलि० Iodine रोगी के अन्दर जाता है) ५-१०

बूद की मात्रा मे १ औस दूध या सन्तरे के रस मे मिलाकर (जिसमे इसका स्वाद व रग छिप जाते है) दिन मे ३ वार कभी-कभी १२–१४ दिन तक के लिए दे दिया जाता है। तव तक इसका प्रभाव अपनी पूर्णता पर पहुच जाता है और उसके वाद कम होने लगता है। Colloid या Collosol Iodine भी दिया जा सकता है।

उपद्रव चिकित्सा

Exophthalmos –नेत्रोद्गम के लक्षण का कारण निश्चित नही हो पाया है। समझा जाता है कि Periorbital (नेत्र गोलक के चारो ओर के) अवयवो मे शोथ के कारण यह लक्षण होता है तथा Prednisolone के २० मिलि० दैनिक मात्रा मे देने से या मूत्रल औषध के देने से यह शान्त होने लगता है। नेत्रो मे किसी स्नेह के डालते रहने तथा अधेरे चश्मे के लगाने से उभरे हुए नेत्रो की वाह्य द्रव्यो से रक्षा हो जाती है।

हृदय सम्वन्धी उपद्रवो के लिए विश्राम के साथ Digoxin तथा मूत्रल औषधियो का प्रयोग करना चाहिए। चेष्टा प्रधान मानस रोग हो तो Chlorpromazine २०-२५ मिलि० का प्रयोग करना चाहिए।

गलग्रन्थि का कैंसर–Malignant Tumours of Thyroid –

गलग्रन्थि मे जो Follicular Tumours अर्थात् छोटी थैलियो मे से वने अर्बुद हो तो उन्हे Benign adenoma या Colloid Adenoma कहते है। ये वढते नही, लगभग एक से ही रहते है।

यदि गलग्रन्थि के अन्दर एक गाठ ऐसी हो जो स्पर्श मे कठोर हो, अभी उत्पन्न हो गई हो, आसपास के अवयवो के साथ चिपकी हुई हो, उसके कारण ग्रीवा के Posterior Triangle की लसीका ग्रथिया कुछ स्पष्ट अनुभव होने लगी हो तो उसे कैन्सर जानना चाहिये। फिर Upper Mediastinal लसीका ग्रन्थिया भी कुछ फूल-सी जाती हैं। वालको, युवको मे यह हो तो यह वहुधा Papillary Adenocarcinoma होता है। यह स्त्रियो मे पुरुषो की अपेक्षा अधिक देखने मे आता है। इसे जल्दी निकलवा दे तो यह आगे नही फैलता।

Follicular Adenocarcinoma—पुराने चले आ रहे Goitre के अन्दर एक आकार मे वडी गाठ के रूप मे होता है जो स्पर्श मे कठोर होती है। यह कैन्सर मध्यमायु मे होता है।

Anaplastic Carcinoma (Undifferentiated Embryonic किस्म के सेलो से वना) वडी आयु मे गलग्रन्थि मे होनेवाली आकार मे एक वडी गाठ को जो जल्दी-जल्दी वढती है Anaplastic Carcinoma कहते है। यह वडा घातक कैन्सर है।

आयुर्वेद मे

सुश्रुत (नि० ११) ने Simple Goitre **को क्योंकि उसमें इस ग्रन्थि के अन्दर अति वृद्धि की प्रक्रिया होती है श्लैष्मिक गल गण्ड कहा है तथा सदोष गल गण्ड** (Hyperthyroidism) **को क्योंकि उसमें इस ग्रन्थि के अन्दर क्षीणता की प्रक्रिया होती है वातिक गलगण्ड कहा है। इसके कारण रोगी का शरीर क्षीण होने लग जाए तो सुश्रुत का कथन है कि वह असाध्य होता है। अर्बुद युक्त गल गण्ड** (Nodular Goitre) **को उसने मेदोमय गल गण्ड कहा है। इसकी चिकित्सा के विषय में (सु० चि० १८-४७) इतना ही उल्लेखनीय है कि सामुद्रादि पच लवणो को तेल के साथ पीने का विधान जो उसने श्लैष्मिक गल गण्ड में किया है वह वडा वैज्ञानिक प्रतीत होता है।**

Primary Myxoedema, Adult Hypothyroidism

पहले-पहल इग्लैण्ड के डाक्टर Sir William Whitley Gull (१८१६–१८९०) ने १८७४ मे इस रोग का जिसमे इस ग्रन्थि के Hormones मे कमी हो जाती है पता हमे दिया तथा इगलैण्ड के सर्जन Dr Ord (१८३४–१९०२) ने १८७८ मे इस रोग का नाम Myxoedema रखा क्योकि उनका कथन था कि धातु पाक की कमी के कारण Mucin त्वचा के नीचे जमा हो जाता है जिससे Oedema हो जाता है, यद्यपि इस श्वयथु मे दवाने मे गढा नही पडता। वाद मे यह पता चला कि Mucin नही पर Mucus की तरह का पदार्थ (Mucoid) त्वचा मे वैठता है तो भी ऑर्ड साहव का चलाया हुआ नाम ही अव तक चला जाता है। जिन प्रदेशो मे गिल्हड (Goitre) का रोग होता है उनमे विशेषत ३०–५० वर्ष की आयु की स्त्रियो मे आर्तव नाश काल या गर्भावस्था मे गल ग्रथि के अन्दर क्षीणता (Atrophy) के हो जाने का रोग हो जाता है। इसके कारण के विषय मे कुछ निश्चय नही हो पाया। परीक्षक लोग वताते है कि इस रोग मे रुग्ण व्यक्तियो मे से ८० प्रतिशत के प्लाज्मा मे उन्होने इस ग्रथि के Thyroglobulin आदि तत्त्वो के विपरीत Antibodies पाए

है। Doniac et al (१९५६) ने नार्मल गल ग्रथि के Extract को रोगी के सीरम मे मिलाकर Precipitate भी प्राप्त किया है।

४५ वर्ष से ऊपर की आयु की स्त्रियो मे पाए जाने वाले एक गिल्हड के रोग मे भी जिसमे यह ग्रथि आकार मे बडी पर रबड की तरह मुलायम होती है जिसमे चिरस्थायी शोथ के कारण इस ग्रथि के अपने अवयव तो लुप्त हो जाते, उनके स्थान पर Lymphoid Follicles (लसीकावाही सूक्ष्म ग्रथिया) भर जाते है जिससे इसे Lymphadenoid Goitre कहते हैं और क्योंकि पहले-पहल जापान के Hashimoto (१९१२) ने इसका पता लगाया इसलिए इसे Hashimoto's Disease भी कहते है, इसमे Antibodies पाये जाते है। स्पष्ट है कि प्लाज्मा मे पाए जाने वाले ये Antibodies गल ग्रथि के अन्दर विद्यमान किसी Antigen के विपरीत उत्पन्न होते है जिससे इसे Autoimmune Thyroiditis भी कहते है। अनुमान है कि रोगी के अन्दर विद्यमान यह Auto-immunity इस ग्रथि के नष्ट करने का कारण हो सकती है अर्थात् रोगी के रक्त के सीरम मे कोई ऐसा Cytotoxic पदार्थ है जो गल ग्रथि के सेलो के लिए भजक (Lysis के करने वाला) होता है अर्थात् वहा Antigen Antibody की प्रतिक्रिया के होने का कारण होता है। तथापि इस ग्रथि के इस प्रकार क्रमश नष्ट होते जाने की प्रक्रिया अभी तक कुछ स्पष्ट नही हुई है।

सम्भव है Iodine के जल तथा भोजन आदि द्वारा उचित मात्रा मे न मिलने से तथा गिल्हड (Goitre) के उपद्रव रूप मे या रक्त मे विद्यमान किसी विष या सक्रमण (Infection) के कारण Thyroiditis (गलग्रथि शोथ) के चिरकाल तक रहने से या Pituitary ग्रथि की मन्दता (Hypopituitarism) के कारण (Simmond's disease से) या गलग्रथि विरोधी किसी औषधि के चिरकाल तक सेवन करते रहने से यह रोग उत्पन्न होता है।

गल ग्रथि की परीक्षा करने पर वह आकार मे छोटी होती है। २५ ग्राम से घटकर ४–५ ग्राम की रह जाती है। इसकी स्रावी सेलो से बनी झिल्ली मे स्नायु भाव के हो जाने से यह कुछ कठोर हो जाती है। इस प्रकार गल ग्रथि के Acini के क्षीण हो जाने के साथ-साथ स्त्री-पुरुष ग्रथिया (Ovaries, Testes) भी क्षीण हो जाती है। गल ग्रथि के क्षीण हो जाने से शरीर की परिपचन प्रक्रिया (B M R) क्रमश मन्द, मन्दतर होती जाती है। (—३५ से —४५ प्र०श० तक हो जाती है) परिणामत रक्त के अन्दर Cholesterol की मात्रा बढ जाती है और १०० मिलिलि० मे ३००–४०० मि०लि० तक हो जाती है (नार्मल १४०–२८० मिलि०) प्रोटीन का परिपचन कम होने से वह शरीर मे नाना स्थानों मे जमा हो जाती है। रक्त के सीरम मे भी उसकी मात्रा बढ जाती है। कार्बोहाइड्रेट का परिपचन कम होने से इनमे से बहुत सो मे Carbohydrate Tolerance बढ जाती है अर्थात् ४ यूनिट Insulin के शिरा द्वारा देने के बाद नार्मल व्यक्ति के रक्त मे खाण्ड की जितनी मात्रा घट जाती है इस रोगी मे उतनी नही घटती। परिपचन प्रक्रिया की मन्दता के कारण शरीर का तापमान कम रहता है, हाथ-पाव ठडे रहते है, पिपासा कम लगती है अन्दरूनी गरमी की कमी से बाहर की सरदी असह्य हो जाती है। गरमी की मौसम अधिक अनकूल मालूम होती है।

परिपचन की न्यूनता के कारण एक प्रकार का Mucoid पदार्थ या प्रोटीन पदार्थ त्वचा के नीचे बैठता जाता है जिससे चेहरे, पलको, ग्रीवा, हसली की हड्डियो (Clavicles) के ऊपर के गढो, हाथो, पैरो आदि के ऊपर की त्वचा फूली हुई या उभरी हुई दीखती है। इसी तरह नासा पश्चिम प्रदेश, गले, मुख, ओष्ठ, जीभ, कण्ठ, भोजन प्रणाली आदि की आभ्यन्तर श्लेष्मकलाओ के नीचे भी यही प्रोटीन पदार्थ बैठता है। गले, कठ, जिह्वा आदि मे ऐसा होने से आवाज अस्पष्ट और बैठी हुई होती है। शारीरिक सैलो के बीच-बीच के (Extracellular Interstitial) प्रदेशो मे भी यह पदार्थ बैठता जाता है। वहा-वहा Osmotic भार के बढ जाने से वहा-वहा लवण तथा जल की मात्रा भी बढ जाती है जिससे स्पष्ट है शरीर भार बढ जाता है।

इन लक्षणो के अतिरिक्त धात्वीय पचन (Metabolism) की न्यूनता के कारण शरीर की कार्यकारिणी शक्ति (Energy) जो इसी पचन के परिणाम मे होती है, घट जाती है। अर्थात् रोगी की शारीरिक, मानसिक, वाचिक सभी चेष्टाये मन्द पड जाती हैं। इसीलिए रोगी देखने मे मन्द, निद्रालु, उदासीन, भावहीन-सा दीखता है। रोगी को शरीर मे यत्र-तत्र आमवातिक वेदनाओ (Aches) के होने का लक्षण भी हो सकता है।

त्वचा सम्बन्धी लक्षण

रोगी की त्वचा देखने मे खुश्क, खर, कठोर, शीतल और फीके रग की होती है। ओष्ठो, नेत्रो के नीचे अगुलियो की त्वचा स्पष्टत मोटी होती है। जिह्वा मोटी होती है। रोम मूलो और स्वेद ग्रन्थियो का पोषण न होने से सिर भौहो आदि के बाल गिरने लगते है, वे सख्या मे कम व पतले और कान्तिहीन हो जाते हैं, स्वेद कम आता है, नख भगुर हो जाते है। चेहरा, हाथ, पैर, होठ, पलके आदि भारी दीखती हैं। हलका श्वयथु लगता है पर दबाने से गढ़ा नही पडता।

हृदय सम्बन्धी लक्षण

हृदय गति, नाडी गति मन्द होती है। नाडी की Volume भी छोटी होती है अर्थात् प्रति मिनट मे आगे जानेवाली रक्त की मात्रा घट जाती है। दूसरे शब्दो मे रक्तसचार की गति कम होती है। निर्बलतावश हृदय कुछ फैल जाता या शिथिल हो जाता है (Dilated)। उसके शब्द भी कुछ मद्धम होते है। पोषक रक्तवाहिनियो मे कुछ अवरोध (Atheroma या Atherosclerosis) हो सकता है एव उस कारण हृदय शूल (Angina) का लक्षण भी हो सकता है। शरीर की रक्त-वाहिनियां भी मोटी हो जाती हैं। पर रक्तभार घटा हुआ नही होता, Atheroma या धमनी रोग के कारण कुछ बढा हो सकता है।

मस्तिष्क सम्बन्धी

गन्ध, स्वाद, श्रवण आदि सज्ञाओ की प्रतीति मन्द हो जाती है। चेष्टाये भी मन्द होती हैं। भाषण भी मन्द तथा भारी होता है। स्मृति, बुद्धि आदि मानस शक्तिया भी मन्द होती हैं। Thyrotoxicosis की उन्निद्रता और तीव्रता के विपरीत इसमे तन्द्रालुता और मानसिक मन्दता या मूर्छा का लक्षण होता है।

पाचन सम्बन्धी

आमाशय रस की उत्पत्ति कम होती है (Hypochlorhydria, ५० प्र० श० मे Achlorhydria) आमाशय गति तथा आन्त्र गति भी मन्द होती है। परिणामत भूख कम लगती है। भोजन की मात्रा घट जाती है। Thyroid के अधिक सक्रिय होने पर तो अतिसार का लक्षण होता है। उसके विपरीत इस ग्रन्थि के मन्द हो जाने पर मलबन्ध का लक्षण हो जाया करता है।

रक्त सम्बन्धी

रक्त कणो तथा रक्त रजक द्रव्य दोनो की उत्पत्ति कम होती है। अर्थात् पाण्डु Hypochromic तथा Macrocytic किस्म का होता है अर्थात् Achlorhydria और Pernicious Anaemia दोनो लक्षण इस रोग मे पाये जाते हैं। सम्भवत Thyroid तथा आमाशय दोनो Fore gut से उत्पन्न होने के कारण Iodide को पकडते है।

जननेन्द्रिय

इस रोग मे पुरुत्व शक्ति नष्ट हो जाती है तथा आर्तव भी कम हो जाता है (Hypomenorrhoea) Endometrium के मोटा हो जाने से Menorrhagia अतिरक्त स्राव भी हो सकता है।

शारीरिक परीक्षा

इसके करने पर चेहरे तथा पलको मे श्वयथु (Puffiness), जिह्वा मे स्थूलता, Pleura, Peritoneum, Pericardium मे जल की उपस्थिति होती, भौहो के बाहर के आधे भाग मे बाल उड हुए दीखते हे। रोगी मे Lipaemia होता तथा Serum alkaline Phosphatase की मात्रा बहुत घटी होती हे। उसका तापमान कम होता, श्वास गति भी कम होती हे। नाडी गति मन्द होती हे।

इन लक्षणो के अतिरिक्त Serum Protein Bound Iodine १०० मिलिलि० सीरम मे ४ माइक्रोग्राम से कम होता है। Radioactive Iodine (आयोडीन १३१) के देने पर २४ घटे बाद इस ग्रथि की पकड (Uptake) १० प्र०श० से कम मिलती हे। शोथयुक्त वि० स्था० वृक्क रोग (Subacute Nephritis) से दबने वाले Oedema तथा मूत्र मे अलब्यूमिन की उपस्थिति द्वारा तथा Hypo pituitarism से रक्त मे Cholesterol की अधिकता के द्वारा इस रोग का भेद करना चाहिए।

Myxoedema की चिकित्सा

Thyroideum (Dried Extract of Thyroid) का इस रोग मे प्रयोग होते हुए ६० वर्ष के लगभग हो चुके है। इसका प्रयोग अतिस्वल्प मात्रा मे आरम्भ करना चाहिए क्योकि इस औषधि के देने से शरीर मे होने वाली धात्वीय पचन की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है जिससे हृदय पर रक्त को आगे भेजने का कार्यभार आ पडता हे परन्तु यदि रोगी की आयु बडी हो, हृदय मे अतिवृद्धि या शिथिलता हो या उसकी पोषक धमनियो मे Atheroma के होने से हृदय मास का पोषण ही न हो रहा हो तो हृदय के ऊपर कार्यभार के बढ जाने पर उसके पोषण के कम होने से उस मे Myocardial Infarction का उपद्रव हो सकता हे। अत प्रारम्भ मे इस औषधि की मात्रा बहुत छोटी होनी चाहिये। ¼ ग्रेन या १५ मिलि० मात्रा मे इसे दिन मे १ बार देना चाहिये। १ सप्ताह बाद ¼ ग्रेन १५ मिलि० मात्रा की वृद्धि करनी चाहिए। जब तक या तो रोग सुधरने लग जाए या हृदय गति या नाडी गति बढ कर ७५ प्रति मिनट से ऊपर हो जाए या शरीर पर स्वेद आने लग जाए तब इस औषधि को २ सप्ताह के लिए बन्द करके फिर इस औषधि की वह उचित मात्रा शुरू कर दे जिससे नाडी ७५–८० से ऊपर न जाए। इस औषधि की परम दैनिक मात्रा डेढ-दो ग्रेन है। इससे अधिक देने की

आवश्यकता नही रहती। Steroids के प्रयोग से भी और अधिक लाभ होता है।

रोगी की आयु छोटी हो तो हृदय सम्बन्धी निर्बलता का लक्षण नही होता। तब इस औषधि को ⅛ ग्रेन दैनिक मात्रा मे शुरू कर सकते है, और प्रति सप्ताह इसमे ⅛ ग्रेन की वृद्धि कर सकते है। इस औषधि की चालू मात्रा प्राय १-२ ग्रेन दैनिक पर्याप्त होती है। दो तीन सप्ताह मे पर्याप्त लाभ प्रतीत होता है।

(२) Thyroxine से बनी L-Thyroxine Sodium (Eltroxin Glaxo Proloid) की गोलिया भी मिलती हैं। इस औषधि को १ मिलि० मात्रा १ ग्रेन Thyroid के समान बलवान् होती है। इसकी कीमत कुछ अधिक होती है परन्तु इस औषधि का बल उपर्युक्त औषधि की अपेक्षा अधिक निश्चित है।

L-Thyroxine Sodium या Sodium Levo-thyroxine की एक गोली ०५ मिलि० की प्रतिदिन एक बार १ सप्ताह तक देनी चाहिए। इसके बाद प्रति दो सप्ताह इसकी १ गो बढाते जाना चाहिए जब तक इसकी मात्रा ४-५ गोली दैनिक न हो जाए। फिर इसे तब तक कायम रखना चाहिए जब तक रोग शात न हो जाए या इसके विषैले लक्षण न होने लगे। तब जो उचित मात्रा हो उसमे आगे के लिए इसे सदा के लिये जारी रखना चाहिए। लाभ तो कुछ महीनो मे ही हो जाता है।

कहा जाता है कि Thyroid के सूक्ष्म रसो मे Thyroxine के अतिरिक्त १० प्र० श० Triiodothyronine भी होता है। Thyroxine के देने से यह शरीर मे नही जा पाता। इस उद्देश्य से Diotroxin एक कम्पौण्ड बना हुआ मिलता है जिसमे ९० प्र०श० Thyroxine १० प्र०श० Liothyronine Sodium (L Triiodothyronine Sodium, होते हैं परन्तु Thyroxine Sodium से भी इस रोग मे पूर्ण लाभ हो जाता है। Steroids का भी प्रयोग Hormone के साथ करना चाहिये।

पाण्डुता के लिए लोह तथा विटामिन बी^{12} का प्रयोग करना चाहिए।

वामनत्व Cretinism, Dwarfism, Idiocy या Imbecility

Peroxidase आदि Enzymes की न्यूनता या अभाव के कारण यदि जन्म से ही शिशु मे गल ग्रन्थि का विकास न हो पाया हो जिस से शरीर को इसके सूक्ष्म रस न मिले या बहुत कम मात्रा मे मिले तब शरीर का विकास नही हो पाता जिसे वामन रोग या Cretinism कहते है।

जिन प्रदेशो मे गिल्हड का रोग होता है अर्थात् जहा जल आदि से स्वभावत आयोडीन कम मिलता है वहा यदि माता या पिता मे से किसी को गिल्हड हो या यह ग्रन्थि अधिक निष्क्रिय हो तो गर्भस्थ शिशु को आयोडीन के न मिलने से उसमे इस ग्रन्थि का विकास नही होता। गर्भावस्था मे माता को Iodine मिलता रहे तो यह रोग नही होता।

रोगी की गल ग्रन्थि की परीक्षा करने से पता लगता है वह बहुत छोटी है। उसकी थैलियो की झिल्ली लघु तथा क्षीण (Atrophied) होती है। थैलिया छोटी तथा सख्या मे कम होती है। स्नायुतन्तु की मात्रा बढी हुई होती है।

लक्षण

ऐसा शिशु उत्पन्न होने के समय नार्मल ही प्रतीत होता है परन्तु किसी शिशु मे रोते समय उसके गले की आवाज बैठी हुई हो, श्वास प्रश्वास मे आवाज आती हो, त्वचा के नीचे प्रोटीन्स सदृश पदार्थ के बैठ जाने से वह मोटी-सी दीखे तो इस रोग का सन्देह करना चाहिए। और यदि फिर उसकी शारीरिक, मानसिक वृद्धि न हो, आलस्य और निद्रालुता बढी हुई हो, उसमे बैठ सकने, खडे हो सकने, बोलने, समझने, समय पर दन्तोद्गम होने आदि के लक्षण दिखाई न पडे, सिर, भौंहो के बाल ठीक-ठीक न उगें, रुक्ष से हो, कम हो, दूर-दूर हो, भगुर हो, नासिका चौडी हो, नथुने बडे-बडे हो, नाक का पिछला हिस्सा बैठा हुआ हो, होठ मोटे हो, जीभ मोटी हो, बाहर निकली हुई रहती हो, हाथ पैर छोटे चपटे से हो, अगुलियां आगे से चपटी-सी हो, ब्रह्म रध्र का छिद्र देर तक बना रहे, पेट आगे को उभरा हुआ हो, अस्थियो की वृद्धि यथावत् न हो, देर तक दतोद्गम न हो तो इस रोग का सन्देह कर लेना चाहिये तथा शीघ्र ही उसकी चिकित्सा आरम्भ कर देनी चाहिये। ऐसा बालक देखने मे ही बुद्धिहीन, भाषण-शक्ति से हीन और कभी-कभी श्रवण शक्ति से भी हीन होता है।

परीक्षा करने पर ऐसे शिशु की नाडी गति नार्मल से कम होती है। तापमान भी नार्मल से कम होता है। B M R. भी कम होता है। उसे शीत सहन नही होता तथा मलबन्ध भी रहता है।

जन्मजात वामनत्व के अतिरिक्त जन्म होने के बाद इस गल ग्रथि के लघु (Atrophic) हो जाने से भी हो सकता है। तब इसे बालसुलभ या युवासुलभ वामनत्व (Juvenile Hypothyroidism) कहते हैं।

चिकित्सा

रोगी की चिकित्सा शीघ्र आरम्भ न की जाए तो बालक

शरीर मे वामन (Dwarf), वुद्धिहीन, गूगा, वहरा रह जाता है। यदि चिकित्सा शीघ्र आरम्भ कर दी जाए तो रोग को रोका जा सकता है और वालक को वहुत कुछ स्वस्थ वनाया जा सकता है। इस ग्रन्थि की न्यूनता को पूर्ण करने के लिये Thyroideum (Desiccated Thyroid Extract को ४ महीने तक की आयु के शिशु को ८-१५ मिलि०, ८ महीने तक १५-३० मिलि०, ८ से १२ मास तक के वालक को ३०-६० मिलि०, १२-२४ महीने के शिशु को ३०—६० मिलि० तक दैनिक मात्रा मे दें। शिशु १ वर्ष से वडा हो जाए तो २-३ वर्ष की आयु तक उसे यह औषधि १ ग्रेन (६० मिलि०) मात्रा मे प्रतिदिन दे देनी चाहिए। इससे वडी आयु के वालक मे इसे डेढ ग्रेन (९० मिलि० दैनिक) मात्रा मे दिया जा सकता है। इस औषधि के देने के एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर इस औषधि के गुण मालूम होने लगते हैं। मूत्र आने लगना, स्वेद आने लगता, शरीर का वोझ घटने लगता, नये वाल आने लगते, हाथ, पाव तथा शरीर के अग ठीक-ठीक वढने लगते और रक्त मे Cholesterol की प्रतिशतक मात्रा कम होने लगती है। कुछ काल वाद उसकी मानसिक अवस्था मे भी सुधार के लक्षण दीखने लगते हैं।

Thyroideum के समान L-Thyroxine Sodium को ०२५ से— १ मिलि० मात्रा मे दिन मे एक वार देते रहने से भी इसी प्रकार लाभ होता है।

प्रतिरोधक चिकित्सा

जिन प्रदेशो मे गिल्हड रोग वहुत होता है वहा माता को वडा गिल्हड हो तो गर्भावस्था मे उसे Sodium Iodide १-२ ग्रेन दैनिक मात्रा मे मिलता रहना चाहिये। इससे गर्भस्थ शिशु को इस रोग से ग्रस्त होने से वचाया जा सकता है।

Adrenal ग्रन्थि के रोग

इतिहास

पहले-पहल Eustachi, Italian Anatomist (१५२०–१५७४) ने १५६३ मे Adrenal का एक ग्रन्थि के तौर पर वर्णन किया था, यद्यपि वह इसके कार्य से परिचित नही था। फिर Meckel Berlin Anatomist (१७८१–१८३३) ने सन् १८०६ मे कहा था कि यह ग्रन्थि यकृत्, प्लीहा आदि के समान शरीर मे धात्वीय परिपचन (Metabolism) का सचालन करती है तो भी सवसे पहले इगलैंड के डाक्टर Thomus Addison (१७९३–१८६०) ने १८८५ मे उस रोग का वर्णन किया जो इस ग्रन्थि के क्षीण या नष्ट हो जाने से होता है। इसीलिये इस ग्रन्थि के निष्क्रिय हो जाने से उत्पन्न होने वाले रोग को अभी तक Addison का रोग कहते है। फिर Brown Sequard, French Physiologist (१८१८-१८९४) ने १८५६ मे Adrenalectomy का परीक्षण करके यह पता लगाया कि यह जीवन के लिए आवश्यक ग्रन्थि है। फिर अग्रेज डाक्टर Oliver (१८३६-१९०८) और English Physiologist Schaefer (१८५०–१९३५) ने १८९५ मे पता लगाया कि इसके Medulla मे Vasopressor गुण है। इसके वाद धीरे-धीरे पता लगा कि यह ग्रन्थि Medulla और Cortex दो हिस्सो से वनी है। १९२० तक यह पता चल गया कि Cortex जीवन के लिए अर्थात् शरीर की वृद्धि के लिये जरूरी है। परन्तु इस ग्रन्थि के सूक्ष्म रसो Hormones का पता तो १९३० के लगभग पहले Hartman Mac Arthur आदि ने लगाया और फिर Kendall (१९३५), Reichstein आदि ने भली प्रकार पता ही नही लगा लिया, उन्हे कृत्रिम रूप से वना भी लिया। उन्होने Compound E इसमे से निकाल लिया जिसे पीछे Cortisone का नाम दिया गया। उन्होने इसके अनेक गुणो का भी पता लगा लिया।

रचना

पीले से रग की ४–५ ग्राम के लगभग भार की यह त्रिकोणाकृति ग्रन्थि दोनो और वृक्को के ऊपर के सिरे पर टोपी की तरह उस के अन्दर की तरफ तथा कुछ अगली ओर झुकी हुई पडी रहती है (माप ($1\frac{1}{2}\times\frac{1}{2}\times\frac{1}{4}$ इच दाहिनी, $\frac{3}{4}\times\frac{3}{4}\times\frac{1}{4}$ इच वाईं) । इसके वाहर-वाहर के पीले से कठोर खोल को Cortex तथा अन्दर के मृदु, गहरे रग वाले गूदे को Medulla कहते है। ये दोनो भाग हर तरह से एक दूसरे से सर्वथा विभिन्न अग है।

Cortex उसी प्रकार के झिल्ली के वनाने वाले सेलो से वना है जिनसे Gonads अर्थात् लिंगी ग्रन्थिया वनी है। इन सेलो मे वसा सदृश पदार्थ अर्थात् Lipoid विशेष होता है। ये सेल वाहर से अन्दर की ओर तीन क्षेत्रो मे विभक्त है जिन्हे क्रमश Zona Glomerulosa (सेलो के गोलाकृति होने से), Zona Fasciculata (सेलो के स्तम्भाकृति Columner होने से) तथा Zona Reticularis कहते है। इस ग्रन्थि मे रक्त वहुत अधिक मात्रा मे आता है।

(१) Superior Supra Renal Artery के द्वारा जो Inferior Phrenic Artery की शाखा है इसमे रक्त आता है।

(२) Middle Suprarenal Artery से जो Aorta

तथा कार्यक्षमता को बढाते है। सेलो की Resistance को बढाते है। किसी प्रकार के आघात (Stress or Strain) के शरीर पर पडने पर सिम्पेथेटिक केन्द्र जब उत्तेजित होता है तब उससे Pituitary के Ant lobe से ACTH की उत्पत्ति बढती है, एव उससे इनकी उत्पत्ति बढती है। इसलिए शरीर पर बाहर से आघात (Stress) पडने पर या Infection या सर्जिकल आपरेशन होने पर ये उत्तेजित हो जाते है। इस प्रकार ये प्रोटीन एव फैट के तथा कार्बोहाइड्रेट के परिपचन (Catabolism) को प्रबल एव नियमित करने का काम करते हैं, इन्हे Gluco corticoids या Carbohydrate Regulating Corticosteroids कहते हैं। इनकी अति मात्रा हो जाने पर रक्त मे शर्करा बढ जाती है (Anti-insulin) शरीर मे सोडियम बढ जाता है एव रक्तभार बढता है। इनकी कमी से किसी आघात के लगने या Infection के होने पर Hypoglycaemia, hypotension होकर रोगी मरणासन्न हो जाता है। मूत्र से Sodium की निकासी बढती, पोटासियम अन्दर रुकता है तथा Hypovolaemia होता है। शोथ शामक होने से इन्हें Anti-Inflammatory Steroids भी कहते हैं। इनसे Eosinophils तथा Lymphocytes घटते है। Allergy के लक्षण शान्त होते हे। इसलिये इन्हे Anti-allergic भी कहते हैं तथा Hypersensitivity के लिये उपयोगी हैं। जिस प्रकार Androgens अर्थात् पुल्लिंगी सूक्ष्म रस, तथा Oestrogens अर्थात स्त्रीलिंगी सूक्ष्म रस क्रमश अण्ड तथा डिम्ब ग्रन्थियो से उत्पन्न होते हैं वैसे कुछ अश मे इस Cortex के Zona-reticularis मे से भी उत्पन्न होकर ये दोनो रक्त मे जाते है। ये Androgens जो Anabolic प्रकृति के हैं Nitrogen को पकड कर उससे प्रोटीन्स को एव शारीरिक धातुओ को बनाने (Protein Anabolism) का कार्य करते है जिससे मासपेशियो मे वृद्धि होती है, शरीर पुरुपोचित होता है। ये Glucocorticoids के विरोधी होते हैं। स्त्री-पुरुप सूचक शरीर के बाह्य लक्षणो तथा Sperm और Ovum को भी उत्पन्न करने का काम ये Androgens तथा Oestrogens करते है। (यद्यपि Masculinization तथा Feminization के करने वाले ये हमे चिकित्सा के लिये मिलते नही।) पुरुप के मूत्र के द्वारा प्रतिदिन जितनी मात्रा Androgens की १७-Ketosteroids के रूप मे बाहर निकलती है उसका $\frac{2}{3}$ भाग इसी ग्रथि मे से आता हे और केवल $\frac{1}{3}$ भाग अण्ड ग्रन्थि मे से आता हे इसलिए इन्हे १७–Ketosteroid precursors भी कहते हे। स्त्री के मूत्र मे Androgens की प्रतिदिन जो मात्रा निकलती है वह सारी की सारी इसी ग्रथि मे से आती है। इस ग्रथि मे पाये जाने वाले Androgens मे प्रधान Androsterone (मूत्र मे पाये जाने वाला Testicular hormone) है। गौण रूप मे Dehydroepiandrosterone है (DHEA मूत्र मे पाये जाने वाला Androgenic पदार्थ) है। Aestrogenic पदार्थ, Aestradiol, Aestrone तथा Progesterone है। Adrenal Androgens के कारण प्रधानत स्त्री के शरीर पर बाल उगते है। Cortex मे Cholesterol से पहले Pregnanolone और Dehydroepiandrosterone बनते हैं। पिछले से Androstenedione भी उत्पन्न होता है। Pregnanolone फिर Progesterone मे बदलता है इससे फिर Cortisone बनता है। Progesterone से ही Aldosterone, corticosterone, desoxycorticosterone बनते हैं। Androstenedione से ही Oestrogen का निर्माण होता है।

इस Adrenal ग्रथि का Pituitory ग्रथि के साथ सम्बन्ध

शरीर पर बाहर से या अन्दर से अर्थात् वाह्य या मानसिक किसी प्रकार का आघात आ पडे तो नाडियो के द्वारा Thalamus और Hypothalamus विक्षुब्ध हो जाते है। उनके इस विक्षोभ से Anterior Pituitary ग्रथि विक्षुब्ध हो जाती है। Adrenaline के, रक्त के द्वारा उस पर प्रभाव होने से भी वह विक्षुब्ध होती है। उसके विक्षोभ से उसके Basophil cells मे से Adrenocorticotropic Hormone (ACTH) उत्पन्न होकर रक्त के द्वारा Cortex मे पहुच कर उसे उत्तेजित करता है जिससे उसमे से उपर्युक्त Adrenocorticosteroids (सभवत Aldosterone को छोडकर) अधिक मात्रा मे उत्पन्न होने लगते हे। वैसे तो इस ग्रन्थि के सूक्ष्म रस स्वल्प मात्रा मे उत्पन्न होते ही रहते है। इस ग्रन्थि से Hydrocortisone की उत्पत्ति दिन भर मे पुरुप मे १३ और स्त्री

मे ११ मिलि० के लगभग होती है। दिन मे इसकी उत्पत्ति कुछ अधिक, रात को बहुत कम होती है। परीक्षा करने से दिन के समय प्रति १०० सी० सी० रक्त मे यह ५-२५ माइक्रोग्राम मात्रा मे मिलता है। ACTH के द्वारा इसकी मात्रा बढ जाती है। दूसरी ओर जब रक्त मे Hydrocortisone की मात्रा बढती है तब उसके प्रभाव से Anterior Pituitary के मन्द हो जाने से ACTH की मात्रा कम उत्पन्न होती है। इसीलिए ACTH के देते रहने पर जब इस ग्रथि मे कुछ अति वृद्धि (Hyperplasia) हो जाती एव Hydrocortisone की उत्पत्ति उसमे से अधिक होने लगती है ऐसी अवस्था मे जब ACTH का देना सहसा बन्द कर दिया जाता है तब अन्दर Pituitary मे से भी इसकी स्वाभाविक उत्पत्ति बहुत कम हुई-हुई पाई जाती है। इसी प्रकार Hydrocortisone देर तक लिया जाए तो अन्दर ACTH की उत्पत्ति कम होने से Adrenal Cortex मे भी कुछ क्षीणता (Atrophy) हो जाती है और फिर Hydrocortisone के सहसा बन्द करने पर Adrenal Cortex की क्षीणता के कारण उसके सूक्ष्म रसो की उत्पत्ति दिनो और सप्ताहो तक कम ही होती है। इसीलिए इन औषधियो के प्रयोग को सहसा नही, पर क्रमश धीरे-धीरे समाप्त किया जाता है।

Aldosterone की उत्पत्ति २४ घ० मे १७०-१९० मा० ग्रा० होती है। रक्त मे ०५ मा० ग्रा० से १ मा० ग्रा० तक १०० मिलिलि० होता है। मूत्र मे २४ घटे मे २-१५ मा० ग्रा० के लगभग निकलता है। Venning तथा Lamson का कहना है कि चिन्ता और व्याकुलता से इसकी उत्पत्ति बढती है। शरीर मे सोडियम को रोकने के लिये यह Desoxycorticosterone से २५ गुणा प्रबल है। इनके द्वारा वृक्क-स्राविणियो मे से सोडियम का पुनर्विलयन होता है और रक्तभार बढता है तथा पोटासियम की निकासी मूत्र द्वारा होती है। Adrenal Cortex के Mineralocorticoids तथा Glucocorticoids का यकृत् मे परिपचन होने के बाद पहले ये १७-Ketosteroids और फिर Glucuronates तथा Sulphates के रूप मे मूत्र द्वारा निकल जाते है। पुरुष मे इनकी निकासी १५ मिलि० के लगभग दैनिक और स्त्री मे १० मिलि० के लगभग दैनिक है। Androgens मूत्र मे dehydroepiandrosterone तथा Androsterone के रूप मे निकल जाते है। इन्हे १७—Ketosteroids of the urine कहते हैं। इनकी निकासी १०—१५ मिलि० दैनिक है। Oestrogens, मूत्र मे Oestrone और Oestriol के रूप मे निकलते है। Cortisone तथा Hydrocortisone के कुछ योग (Derivatives) Hydrocortisone sodium Succinate ५० मिलि० माम द्वारा १०० मिलि० ५% Glucos Salinse मे शिरा द्वारा, ५मलहम आख मे या कण्डूयुक्त त्वचा पर लगाने के लिए Prednisone, Prednisolone (१—५ मिलि० गो० मात्रा ५-२० मिलि०) ६ Methyl Prednisolone (४ से १२ मिलि० ई० मात्रा) Triamcinolone (Kenacort ४ मिलि० मात्रा) Deaxmethasone Decadron (५ मिलि० मात्रा) Betamethasone (Betnelan Tab ५ मिलि०, Betnesol १ मिलि०, मे ४ मिलि लि० नेत्र कर्ण मे १% सोल्यू०) हैं जो Rheumatic, Allergic, Infectious रोगो, Nephrosis, त्वग्रोगो, Ulcerative colitis, Hodgkin's Disease, Lymphatic Leukaemia, आदि मे बडे लाभदायक पाए गए है। ये सब Inflammation, Allergy, Collagen disease, Nephrosis, Psoriasis, Exfoliative dermatitis, ulcerative colitis, Alopecia, Snake-bite आदि के लिये उपयोगी है पर इनका प्रभाव अस्थायी होता है।

इस ग्रथि सम्बन्धी परीक्षायें (Tests)

(१) जल निष्क्रमण सम्बन्धी परीक्षा :—Kepler's Water Excretion Test वृक्को के अन्दर विद्यमान रक्त मे इस ग्रन्थि के सूक्ष्म रस (Hydrocortisone आदि) न हो या कम हो तो Pituitary का Antidiuretic Hormone प्रबल हो जाता है। अत वृक्क जल को भली प्रकार बाहिर नही कर सकते। इसीलिए यदि इस रोग के रोगी को रात मे भोजन न देकर, प्रात उसे मूत्र कराकर उसके मूत्राशय को खाली करके हलका-सा गर्म जल रोगी के प्रति किलोग्राम के पीछे २० मिलिलिटर के हिसाब से (लगभग १ लिटर) उसे आधे घटे के अन्दर-अन्दर थोडा-थोडा करके पिला दे (इस बीच रोगी बिस्तरे पर पडा रहे) फिर एक-एक घटे पर चार घटे तक उसका मूत्र लेकर उसे माप लेना चाहिए कि वह कितना है, और यह हिसाब लगाना चाहिए कि वह पिये हुए जल का कितना भाग है। एक नार्मल व्यक्ति मे इस प्रकार पिलाये हुए जल का ५० प्र० श० भाग तो २ घटे मे मूत्र द्वारा निकल जाता है तथा ४ घटे मे पिये हुए जल का ८० प्र०श० भाग मूत्र द्वारा निकल जाता है। परन्तु यदि Cortex रुग्ण हो, असमर्थ हो तो पिया हुआ जल ४ घटे तक भी २० प्र० श० से कम मूत्र द्वारा निकलता है। इसलिए यदि ४ घटे तक मूत्र द्वारा निकलने वाला जल पिये हुए जल

के ५० प्र०श० से कम हो तो Adrenal ग्रन्थि की असमर्थता का अनुमान करना चाहिए।

अब यदि रात को भोजन का लघन कर लेने के बाद पहले रोगी को मुख द्वारा ५० मिलि० Cortisone Acetate (Corlin) दे दे, फिर २ घटे बाद मूत्राशय को खाली कराकर आधा घटे के अन्दर-अन्दर उसे उपर्युक्त मात्रा मे जल देकर फिर एक-एक घटे बाद ४ बार का मूत्र लेकर उसे माप लेना चाहिए और देखना चाहिए कि वह पिये हुए जल का कौन-सा भाग है। इससे यदि जल की निकासी नार्मल हो जाए तो निश्चय कर लेना चाहिए कि रोगी मे Adrenal ग्रथि की असमर्थता (Deficiency) विद्यमान है।

(२) 17-Ketosteroids की परीक्षा —(Test)

मूत्र मे जो Ketosteroids निकलते है उनके प्रारम्भिक Steroids Cortex तथा अड के सूक्ष्म रसो (Hormones) मे से ही आते हैं। अत यदि यह ग्रन्थि निष्क्रिय हो जाये तो स्त्री के मूत्र मे तो ये बहुत कम या सर्वथा नही मिलते और पुरुष के मूत्र मे इनकी दैनिक मात्रा ५ मिलि० से कम हो जाती है (नार्मल नर मे ८-१५ मिलि० मादा मे ५-१२ मिलि० दैनिक)।

ACTH को २५ मिलि० मात्रा मे Isotonic Saline मे धीरे-धीरे करके ६-७ घटे के समय मे शिरा द्वारा देकर उसके ४८ घटे बाद देखने से नार्मल व्यक्ति के मूत्र मे 17-Ketosteroid की मात्रा पहले से बढ जाती है। यदि इसके देने के बाद भी मूत्र परीक्षा करने पर Control urine की अपेक्षा इनमे कोई वृद्धि न हो तो Primary Suprarenal Deficiency का निश्चय कर लेना चाहिए। यदि Anterior Pituitary के रुग्ण होने के कारण इस Adrenal ग्रथि मे असमर्थता हुई-हुई हो तो भी उपर्युक्त इजेक्शन देने के ४८ घटे बाद मूत्र मे 17-Ketosteroids मे कुछ वृद्धि अवश्य होती है।

Thorn's Test

उपर्युक्त ACTH के मन्द गति से शिरा द्वारा इजेक्शन देने से पहले तथा इस इजेक्शन के ८ घटे तक देने के बाद फिर रक्त मे Eosinophils की गणना करनी चाहिए। नार्मल व्यक्ति मे इस इजेक्शन के बाद इनकी सख्या ९० प्र०श० कम हो जाती है। इस ग्रन्थि के रोग मे यह कमी बहुत कम होती है।

अथवा रात को रोगी को निराहार रखकर प्रात उसके रक्त मे Eosinophils की सख्या देखनी चाहिए। फिर ACTH २५ मिलि० मात्रा मे मास द्वारा देकर उसके बाद नाश्ता कराकर इजेक्शन से ४ घटे बाद फिर उसके रक्त को लेकर उसमे Eosinophils की गणना कर लेनी चाहिए। नार्मल व्यक्ति मे इस इजेक्शन के बाद 11–17 Oxysteroids के अधिक मात्रा मे उत्पन्न होने पर इन श्वेताणुओ मे पहली गणना की अपेक्षा ५० प्र०श० से अधिक कमी हो जाया करती है। यदि यह कमी ५० प्र०श० से कम हो तो इस ग्रथि के रुग्ण होने का निश्चय कर लेना चाहिए। इन दोनो विधियो मे से प्रथम विधि अधिक सही पता देने वाली है।

Fasting Test or Hypoglycaemic Test

२४ घटे के उपवास के पहले तथा बाद जिसमे रोगी को केवल जल पर ही रखा जाता है रोगी के रक्त मे शक्कर की परीक्षा की जाती है। थोडी कमी तो सभी मे होती है परन्तु जब यह ग्रथि निष्क्रिय होती है तब यह कमी २० मिलि० प्र०श० से अधिक होती है। तब Hypoglycaemia के लक्षण प्रकट होने लगते है।

तीव्र वृक्कोत्तरीय ग्रंथि नैर्बल्य :—Acute Suprarenal Deficiency, Acute Hypocorticalism, Acute Hypoadrenia

तीव्र रूप मे यह रोग तीव्र सक्रामक रोगो (Infections) के उपद्रव रूप मे होता है। उदाहरणत तीव्र तथा घातक (Subtertian) विषम ज्वर, मन्थर ज्वर, विषूचिका, ग्रीष्म अतिसार, Diphtheria, आदि मे इस ग्रथि के अन्दर शोथ हो जाने से इसके सहसा निष्क्रिय हो जाने के कारण सोडियम तथा जल के अति मात्रा मे निकल जाने तथा पोटासियम के शरीर मे बढ जाने से तथा रक्त मे खाण्ड के कम हो जाने से रक्त-सचार मन्द हो जाता तथा सर्वांग शैत्य (Shock) का लक्षण हो जाता है। शरीर पर अति मात्रा मे दाह (Burn) या तीव्र आघात के हो जाने पर भी यह ग्रथि निष्क्रिय हो सकती है। Dehydration, Hypovolaemia, Shock, जिह्वा की शुष्कता, नाडी नैर्बल्य, मूत्र की कमी, ठण्डा पसीना, हलकी-सी मूर्छा इसके लक्षण है। Addison's disease की चिकित्सा इसकी चिकित्सा है।

चिरस्थायी वृक्कोत्तरीय ग्रथि नैर्बल्य .—Addison's Disease, Chronic Hypocorticalism, Chronic Adrenal Insufficiency

अग्रेज डाक्टर एडिसन–Addison (१७९३–१८६०) जो Nephritis रोग के पता लगानेवाले Richard Bright का साथी था उसने १८५५ मे सबसे पहले इस रोग की ओर

कि जिसमे शरीर मे कृशता, कृष्णता, निर्बलता, अतिसार आदि लक्षण होते है हमारा ध्यान खीचा। यह रोग सुलभ नही है, १ लाख व्यक्तियो के पीछे १ मे यह रोग होता है। तो भी इसका परिज्ञान अत्यावश्यक है। इस रोग मे पहले इस ग्रथि का Zona Reticularis फिर Zona Fasciculata फिर Zona Glomerulosa धीरे-धीरे नष्ट होते है और अन्त मे Medulla भी नष्ट होने लगता है। ५० प्र०श० रोगियो मे इसके नष्ट होने का कारण क्षय रोग Tuberculosis होता है अर्थात् इस रोग के कारण इस ग्रन्थि मे पनीर भाव तथा स्नायु भाव (Caseation, Fibrosis) की प्रक्रिया हो जाती है। रोगी की आयु २०–४० के बीच की हो, रोगी की किसी ग्रथि (Gland) या अस्थि मे क्षय रोग होने का या परिवार मे क्षय रोग होने का इतिवृत्त हो तो इस रोग का सन्देह कर लेना चाहिए। क्योकि कभी-कभी फुफ्फुस आदि स्थानो मे यह रोग सर्वथा नही होता। दोनो अड्रीनल ग्रथियो मे ही होता है। कोष्ठ की Radiology से यह जाना जाता है। २० प्र०श० रोगियो मे इस ग्रथि मे हुई क्षीणता (Atrophy) इस रोग का कारण होती है अर्थात् इस अवस्था मे Cortex मे स्नायु तन्तु Fibrosis छा जाता है। कभी-कभी इसमे कैन्सर जो फुफ्फुस के कैन्सर के प्रसरण से होता है Amyloid रोग होकर यह निष्क्रिय होने लगती है। इसके Aldosterone के कम हो जाने से सोडियम ज्यादा निकल जाता है। शरीर मे Dehydration, hypovolaemia तथा Hypotension होते है।

लक्षण —यह रोग धीरे-धीरे अज्ञात रूप मे आरम्भ होता है। पहले पहल उसकी शिकायत यह होती है कि रोगी शरीर मे अशक्ति अनुभव करता है। स्वल्प श्रम से या थोडा बोलने से वह थक जाता है। उसका शरीर हारता जाता या सूखता जाता है तथा काला होता जाता है। शरीर मे से सोडियम तथा जल की अधिक निकासी तथा रक्त मे ग्लूकोज की कमी तथा मासपेशियो मे पोटासियम की अधिकता से ये लक्षण हो सकते है ऐसी शका हो जानी चाहिए। गर्मी की ऋतु मे त्वचा मे जल और नमक के अधिक निकल जाने से अशक्ति और बढ जाती है। (नार्मल सोडियम ३१०–३४५ मिलि०, नार्मल पोटासियम १४–२१ मिलि० १०० मी० सी० रक्त मे) इन लक्षणो के साथ रोगी को अन्नारुचि, वमन तथा पेट मे दर्द के लक्षण भी हो सकते हैं। ये लक्षण Vagotonia या Vagus की Irritability के कारण या Sodium के अधिक निकलने से होते प्रतीत होते है। धातुपाक अर्थात् Metabolism के मन्द हो जाने से रोगी को अपने हाथ-पाव ठडे लगते है। परन्तु इनके साथ एक बडा प्रमुख लक्षण शरीर की त्वचा पर श्यामता का आ जाना है जो पहले चेहरे पर से आरम्भ होकर ग्रीवा पर और हाथो के पृष्ठ प्रदेश पर दीखती है। गोडो, कोहणियो, अगुलियो, जननेन्द्रियो, कक्ष, चूचुक, नाभि तथा जहा-जहा त्वचा पर सघर्ष या दबाव पडता है वहा-वहा यह श्यामता विशेष दिखाई पडती है। मुख के अन्दर जीभ पर, मसूडो पर, गालो पर, तालु के पिछले भाग पर स्लेटी रग के चकत्ते दिखाई पडते हैं। इस ग्रथि के सूक्ष्म रसो (Hydrocortisone) के अभाव मे Pituitary ग्रथि के Adrenocorticotropic hormone तथा Melanocyte Stimulating Hormone के प्रबल हो जाने एव Tyrosine और Melanin की उत्पत्ति मे वृद्धि से ये श्याम वर्ण चकत्ते उत्पन्न होते है ऐसा समझा जाता है। पेट सम्बन्धी लक्षण अर्थात् अन्नारुचि विशेषत घी, तेल तथा नमक के लिए अरुचि, वमन, अतिसार या मलबन्ध, पेट मे विशेषत आमाशय प्रदेश (Epigastrium) मे दर्द होने के लक्षण अधिक स्पष्ट होते जाते है। पेट मे दर्द Muscle cramps या Spasm के कारण होता है।

हृदय तथा रक्त की परीक्षा करने पर, क्योकि Sodium और जल की निकासी मूत्र, स्वेद आदि शारीरिक स्रावो द्वारा अधिक हो जाती है Dehydration तथा रक्त की मात्रा के कम हो जाने से रक्तभार घट जाता है। १००/६० M M Hg या इससे भी कम हो जाता है। हृदय शब्द मन्द होते हैं। नाडी गति कुछ तीव्र हो जाती है। प्रत्येक नाडी का विस्तार (Volume) कम होता, पाण्डुता Microcytic Hypochromic किस्म की होती है। इन दोनो कारणो से खडा होने पर सिर मे चक्कर आ सकता है। रक्त मे Lymphocytes तथा Eosinophils की सख्या बढ जाती है। रक्त मे Sodium और Potassium का अनुपात १५० ५ अर्थात् ३० १ का होता है वह कम हो जाता है। धातुपाक की मन्दता से Basal Metabolic rate कम होता, तापमान भी गिर जाता है। रक्त की कमी तथा वृक्को को रक्त के कम मिलने से मूत्र कम बनता है। उसके द्वारा Urea, Non Protein Nitrogen की निकासी भी कम हो जाती है जिससे रक्त मे इनकी मात्रा नार्मल से अधिक हो जाती है (Azotaemia) मूत्र मे प्रतिदिन निकलने वाली 17-Ketosteroids की मात्रा कम हो जाती है।

जननेन्द्रिय निर्बलता सम्बन्धी लक्षण जैसे पुस्त्वनाश, आर्तवनाश के लक्षण भी होते हैं। जननेन्द्रिय सम्बन्धी बाल भी क्रमश कम हो जाते है।

शारीरिक निर्वलता के समान मानसिक निर्वलता के लक्षण जैसे मानसिक मन्दता, उदासीनता, तन्द्रालुता, स्मृतिनाश, एकाग्रता की न्यूनता, सहन-शक्ति की न्यूनता, भयशीलता, निराशावाद (Pessimism), प्रतिकूलता (Negativism) के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

Addisonian Crisis

जिस व्यक्ति मे ये ग्रथिया निष्क्रिय होती हैं यदि उसे कोई तीव्र ज्वर हो जाए या उसे कुछ काल उपवास करना पडे या उसे सहसा सर्दी लग जाए या भारी श्रम करना पडे या उस पर कोई चिन्ता आ पडे या वमन हो जाये या उसे दस्त लग जाएं या उसे बहुत पसीना आ जाये तो क्योकि उसमे इनको सहने की शक्ति नही होती उसे शीघ्र सर्वांग शैत्य (Collapse) का उपद्रव हो जाता है जिसे Addisonian Crisis कहते हैं। ऐसा व्यक्ति Morphine, Potassium, Insulin, Chloroform आदि को भी सहन नही करता। इस दौरे के प्रारम्भ होने पर पेट मे दर्द होने का लक्षण होता है। बाद मे तीव्र वमन होकर शरीर से जल के निकल जाने एव रक्तभार गिर जाने पर रोगी ठण्डा हो जाता है। इसकी चिकित्सा शीघ्र न हो तो यह घातक होता है। Hyper thyroidism तथा Diabetes के साथ यह रोग हो तो भी यह भयकर हो जाता है।

चिकित्सा

उपर्युक्त वर्णन मे स्पष्ट है कि इस रोग के रोगी को कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन भोजन पर्याप्त मात्रा मे मिलना चाहिये। दिन के ३ भोजनो के स्थान पर उसे दिन मे थोडी-थोडी मात्रा मे कई बार भोजन मिलना चाहिए। प्रोटीन्स को शरीर मे खपाने (Anabolise करने) के लिए Durabolin मास मे या Dianabol ५ मिलि० मुख से भी उसे मिलता रहे तो लाभ रहता है। रोगी को सक्रामक रोगो तथा आघातो से बचाना चाहिए। कोई ऐसा रोग हो जाए तो तुरन्त उसकी चिकित्सा होनी चाहिए। शरीर मे Hyponatremia के होने से नमक ४ ग्राम दैनिक Dehydration होने से पर्याप्त मात्रा मे जल भी देना चाहिए। ग्रन्थि मे क्षय रोग के कारण रोग हो तो क्षय रोग नाशक चिकित्सा भी होनी चाहिये।

Cortisone (Corlin या Cortone Tablet ५ मिलि०) इस रोग की प्रधान औषधि है। इसकी ५ मिलि० गोली २–२ करके ४ बार दे। इससे प्रोटीन्स कार्बोहाइड्रेट्स तथा फैट्स का परिपचन ठीक-ठीक होता है या Cortisone Acetate corlin की ५ मिलि० गोली दो-दो दिन मे ३-४ बार मुख द्वारा देनी चाहिए अथवा इनके स्थान पर Prednisolone ५ मिलि० २ या ३ बार दैनिक दे। Prednisolone तथा Prednisone जो Cortisone के योग हैं उसकी अपेक्षा ४–५ गुणा प्रवल है। Dexamethasone (Decadron, Deltaflurene) उपर्युक्त Prednisolone से ५ गुणा प्रवल है इसकी ५ मिलि० की गोलिया, ४ मिलि० सी० सी० के २ सी० सी० के इञ्जेक्शन मिलते हैं। इसका Acetate Dexacortisyl के नाम से ५ मिलि० गोलियो के रूप मे मिलता है। क्योकि शरीर मे सोडियम को रोकने तथा सोडियम, पोटासियम और जल को सतुलित रूप मे रखने मे ये औपधिया सहायक नही होती। अत इनकी इस कमी को पूरा करने के लिए Aldosterone के स्थान पर क्योकि वह बाजार मे मिलता नही Fludrocortisone Acetate (Florinef s-Cortef Aflorone) को १-२५ मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन या प्रति दूसरे दिन मुख द्वारा Cortisone के साथ देना चाहिए। अथवा इस औपधि के स्थान पर Desoxycorticosterone Acetate (D O.C A Percorten Ciba) की एक गोली को गाल और दात के बीच मे रखकर घुलने देना चाहिए, दिन मे १ गोली पर्याप्त रहती है। या इसके ७५–७५ मिलि० की ४ Pellet को रोगी की त्वचा के नीचे प्रति ६–९ महीने के अन्तर से रख देना (Implant) चाहिए, या Desoxycorticosterone Trimethyl acetate (DOCTMA) Suspension को २५–७५ मिलि० मात्रा मे महीने मे १ बार रोगी के मास मे डाल देना चाहिए। (इस औपधि के तेल मे बने घोल (५ मिलि० सी० सी०) के रूप मे १ मिलि० मात्रा मे रोज मास द्वारा देना या २५ मिलि० मात्रा मे महीने मे १ बार देना बराबर है) अथवा Desoxycorticosterone Trimethyl Acetate (DCTMA) को जिसका प्रभाव चिरकाल स्थायी है महीने मे एक बार ५० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा देना चाहिए।

यदि D O C A या Fludrocortisone न मिले तो Cortisone के प्रयोग के साथ-साथ Sodium Chloride को ५-२० मिलि० दैनिक मात्रा मे देते रहना चाहिए। इस रोग का रोगी इस चिकित्सा को जारी रखे। किसी Infection के होने पर मात्रा को बढा दे तो वह पूर्ण आयु जी सकता है।

वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि की न्यूनता विशेष हो Acute Adrenal Insufficiency या Adrenal Crisis हो तो इसे अनर्थकारी समझकर इसकी प्रवलता से चिकित्सा करनी चाहिए। Hydrocortisone Hemisuccinate

Sodium (Solu-Cortef, Efcortlin Soluble) १००–२०० मिलि० मात्रा मे २–१० मिलिलिटर जल मे मिलाकर शिरा द्वारा एक मिनट का समय लगाकर दे देना चाहिए। इसके बाद इसी Solu-Cortef को १०० मिलि. मात्रा मे १–२ लिटर नार्मल सेलाइन मे, जिसमे ५ प्र०श० ग्लूकोज का मिश्रण हो, मिलाकर २–४ घटे के समय मे बूद-बूद करके शिरा द्वारा देना चाहिए। इसे ८–८ घ पर दोहरायें। या Desoxycorticosterone acetate १० मिलि० को मास द्वारा दिन मे २–३ बार प्रथम दिन दे। अगले दिन इसे आधी मात्रा मे दे। Hydrocortisone के स्थान पर केवल इसके ५–१० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा देने से भी Adrenal crisis मे लाभ हो जाता है।

जब रोगी की अवस्था कुछ सुधरने लगे तब Cortisone Acetate (Corlin Glaxo या Cortone) को ५० मिलि० मात्रा मे ४–६ घटे के अन्तर से मास द्वारा आरम्भ करना चाहिए। फिर क्रमश मात्रा कम करते हुए अर्थात् २५ मिलि० मात्रा मे इसे ८–८ घटे बाद देना चाहिए। फिर रोगी ले सके तो मुख द्वारा १०० मिलि० दैनिक मात्रा मे इसे देना आरम्भ कर देना चाहिए। अच्छा हो जाने पर भी १२ ५ मिलि० मात्रा मे इसे दिन मे ४ बार देते रहे। फिर क्रमश इसकी मात्रा कम करते जाए। उपर्युक्त इजेक्शन के शिरा द्वारा देने के बाद रोगी को १००० मिलिलिटर नार्मल सेलाइन जिस मे १० प्र० श० ग्लूकोज हो बूद-बूद करके शिरा द्वारा देना चाहिए। दिन भर मे इस प्रकार कुल जल ३ लिटर मे ज्यादा नही देना चाहिए।

रोगी के सर्वांग शैत्य (Collapse) की निवृत्ति के लिए उसके सिर की ओर चारपाई के पावो को ऊचा कर देना चाहिए तथा रोगी को गर्म रखना चाहिए। रक्तभार अधिक गिरा हो तो Metaraminol Bitartrate (Aramine) २-१० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा दे देना चाहिए। या १५ मिलि० मात्रा मे इसे २५० सी० सी० ५ प्र० श० Dextrose सोल्यूशन मे मिलाकर शिरा द्वारा दे देना चाहिये। अथवा Methoxamine Hydrochloride (Vasoxyl, Vasoxine B W) को १५ मिलि० मात्रा मे या Veritole को मास द्वारा दे देना चाहिए। आक्सिजन का प्रयोग भी करना चाहिए। उपर्युक्त Cortisone के प्रयोग के साथ-साथ Desoxycorticosterone Acetate (DOCA) को ५–१० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा १२-१२ घटे पर देते रहना चाहिये। यदि वमन का लक्षण न हो, रोगी मुख से दवा ले सकता हो तो इस औषधि के स्थान पर Fludrocortisone को २ मिलि० मात्रा मे दिन मे १ बार देते रहना चाहिए। जिस रोग के सक्रमण से यह उपद्रव हुआ है उसके लिए जो Antibiotic औषधि आवश्यक हो उसका प्रयोग भी करना चाहिए।

वृक्कोत्तरीय ग्रथि प्राबल्य, सक्रिय वृक्कोत्तरीय ग्रथि :— Hypercorticalism, Hyperadrenia, Hyperadrenocorticism

यह वृक्कोत्तरीय ग्रथि (Adrenal Cortex) अधिक सक्रिय हो जाए तो इसमे मे निकलने वाले उपर्युक्त तीन प्रकार के सूक्ष्म रसो मे से किसी एक की प्रचुरता होती है, जिससे तज्जनित लक्षण अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। दूसरे सूक्ष्म रस भी कुछ बढ जाए तो उनके भी लक्षणो मे कुछ वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार प्रधानत इस ग्रथि की सक्रियता तीन प्रकार की होती है। इस रोग का प्रथम रूप वह है जिसमे इस ग्रथि के Zona Reticularis मे अति वृद्धि Hyperplasia या अर्बुद के हो जाने से उसमे से पुंलिंगी सूक्ष्म रस Androgen की उत्पत्ति बढ जाती है। Adrenal Cortex के इस सूक्ष्म रस के कारण पुरुष तथा स्त्री दोनो मे कक्ष प्रदेश तथा गुप्त प्रदेश मे बालो की उत्पत्ति होती है, शरीर मे नाईट्रोजन या प्रोटीन की खपत (Anabolism या Nitrogen Retention) बढती है। यह रोग स्त्री मे अधिक होता है। स्पष्ट है कि यदि स्त्री मे इस ग्रथि के अन्दर मे होने वाली Androgens की उत्पत्ति बढ जाए तो उसमे पुरुष-सूचक लक्षण उत्पन्न हो जाते है जिससे इसे 'वृक्कोत्तरीय जनित लिंग भेद' का रोग या Adrenogenital Syndrome कहते है।

कारण —इस रोग मे जन्म से ही इस ग्रन्थि मे से Cortisone की उत्पत्ति कम होती है। इसी कारण Ant pituit ग्रथि मे से ACTH की उत्पत्ति अधिक होती है। उसके कारण Bilateral adrenal hyperplasia हो जाता है। उसके कारण इस ग्रन्थि मे Androgens की उत्पत्ति अधिक होती है। इसकी अधिकता के कारण Ant Pituit ग्रन्थि मे से Gonadotrophic hormones की उत्पत्ति कम हो जाती है। इसकी उत्पत्ति मे कमी हो जाने से स्त्री मे Sexglands की वृद्धि नही होती। उनमे Hypoplasia और Hypofunction हो जाता है अर्थात् स्त्री मे स्त्री सूचक लक्षण बहुत कम हो जाते हैं।

वृक्कोत्तरीय जनित लिंग भेद —Adrenogenital Syndrome, Virilism, Adrenal Virilism, Congenital adrenal hyperplasia

इस रोग का वर्णन पहले-पहल फ्रास के एक डाक्टर

Apert (जन्म १८६८) ने सन् १९१० मे किया था। यदि जन्म मे ही किसी की दोनो वृक्कोत्तरीय ग्रथियो मे अति वृद्धि (Hyperplasia) के होने से या Andriogens या Androgenic Hormones या पुल्लिंगी सूक्ष्म रस की उत्पत्ति अधिक हो और उसमे Ovaries के होने के कारण वह मादा भी हो अर्थात् वह Chromatin Positive हो तो उसकी जननेन्द्रिय तथा उसके शरीर मे कुछ-कुछ पुरुप सूचक लक्षण होते है अर्थात् Virilization या Masculinization होना है। वह स्त्री न होकर 'पुमान् स्त्री' या Pseudo Hermaphrodite, Son of Hermes and Aphrodite who was man and woman combined होती है। इस रोग को 'पुमान् स्त्रीत्व' का रोग या Pseudohermaphroditism का रोग कहते है। ऐसी स्त्री के अन्दर Ovaries तो होती है पर उसकी जननेन्द्रिय मे स्त्रियोचित लक्षणो के साथ पुरुपसूचक लक्षण भी होते हैं अर्थात् उसमे Clitoris कुछ वडा सा होता है, स्त्री योग्य योनि द्वार नहीं होता, हा, Clitoris के नीचे मूत्र द्वार ही कुछ वडा सा होता है। कन्धे पुरुप के समान चौडे, जघन स्थान (Pelvis) पुरुप की तरह छोटा या तग होता है। वालकपन मे भी Androgen की वृद्धि जारी रहे तो अस्थियो मे पुरुप के समान वृद्धि होने लगती है। आवाज भी पुरुप की तरह हो जाती है। छाती पैदा नही होती। आर्तव भी नहीं होते।

जन्म के वाद ५–६ वर्ष की आयु मे किसी वृक्कोत्तरीय ग्रथि मे साधारण अर्बुद (Adenoma) के हो जाने या कैंसर (Carcinoma) के उस ग्रथि के Andorgenic Zone मे हो जाने से यह रोग हो सकता है। लडकी मे रोग हो तो उसमे पुरुप सूचक लक्षण होने लगते है। उसके चेहरे की त्वचा मोटी, भद्दी होती है, आवाज कठोर होती है, गुप्त स्थान तथा कक्ष मे वाल आ जाते हैं, Clitoris आकार मे वडा होता है, स्तन ग्रथियो मे वृद्धि नही होती, शरीर कुछ भारा-सा हो जाता है।

लडके मे यह रोग हो (जैसा वहुत कम होता है) तो यद्यपि वह नाटा होता है, पर मासपेशियो मे वृद्धि के हो जाने से देखने मे युवक-सा दीखता है। समय से पहले जननेन्द्रिय आकार मे वडी होती है, समय से पहले ही गुप्त स्थान तथा कक्ष मे वाल आ जाते है। अण्ड छोटे ही रह जाते है। उसके इस रोग को Macrogenitosomia Precox का रोग कहते हैं।

युवावस्था मे अर्थात् १५–२० वर्ष की अवस्था मे यह रोग स्त्री मे हो तो उसके चेहरे, धड, शाखाओ तथा कोष्ठ के निचले प्रदेश पर नाभि से नीचे गुप्त स्थान के वीच के प्रदेश मे वाल उत्पन्न हो जाते है। चेहरे पर युवानपिडिकाये निकलती है, स्तनो की वृद्धि नही होती, Clitoris आकार मे वडा होता है, कन्धे चौडे, जघन स्थान (Pelvis) चौडाई मे तग होता है। आर्तव या तो होता ही नही या अति स्वल्प मात्रा मे होता है। आर्तव समाप्ति काल के वाद स्त्री मे यह रोग हो तो ऐसी स्त्री के चेहरे पर वाल आ जाने (Hirsutism) का तथा सिर पर वालो के कम हो जाने का लक्षण होता है।

Feminisation of man अर्थात् 'स्त्री सदृश पुरुप' का रोग भी कभी-कभी देखा गया है। Adrenal ग्रथियो से Oestrogen स्राव के अधिक होने से यह रोग होता है।

रोग विनिश्चय —

Intravenous Pyelography के द्वारा वृक्कोत्तरीय ग्रथि पर हुए अर्वुद का पता लग सकता है। पुंल्लिंगी सूक्ष्म रस Testosterone जो पुरुप मे अण्डो (Testes) तथा Adrenal ग्रथियो से और स्त्री मे केवल Adrenal ग्रन्थियो से उत्पन्न होते है नण्ट होकर मूत्र द्वारा 17-Ketosteroids के रूप मे वाहर निकलते हैं। इस रोग मे इस (Male Sex Hormone) की उत्पत्ति के अधिक होने से मूत्र द्वारा 17-Ketosteroids की निकासी ४-२० गुणा तक हो जाती है। यदि अति वृद्धि Hyperplasia के कारण यह रोग हो तो शिरा द्वारा ५०-१०० मिलि० मात्रा मे Hydrocortisone के देने से 17-Ketosteroids की मात्रा मूत्र मे शीघ्र घट जाती है। यदि Cortex मे अर्वुद (Tumour) हो तो ऐसा नही होता। अति वृद्धि मे रोग की गति मन्द होती है अर्वुद होने पर रोग की गति तीव्र होती है। साधारण अर्वुद हो तो शल्य कर्म से वह ठीक हो जाता है। कैन्सर हो तो रोग प्राय असाध्य होता है।

अव यदि इस Adrenal Cortex या वृक्कोत्तरीय ग्रथि के सक्रिय हो जाने पर Glucocorticoids अर्थात् Hydrocortisone या Cortisone सदृश सूक्ष्म रस की उत्पत्ति अधिक हो तो उसके कारण जो रोग होता है उसे Cushing का रोग या Cushing's Syndrome कहते हैं।

Cushing का रोग —Cushing's Syndrome

पहले-पहल वोस्टन के सर्जन डाक्टर Harvey Cushing (जन्म १८६९) ने सन् १९३२ मे इस रोग की ओर हमारा ध्यान खीचा। Cushing's Syndrome उस रोग को कहते है जिसमे Adrenal cortex मे से Glucocorticoid Hormones अधिक मात्रा मे निकलने लगते

है, जिसके कारण प्रोटीन का Catabolism बढ जाता है। ग्लूकोज की उत्पत्ति अधिक होती है, रक्त मे वसा बढ जाती है जिससे Obesity, Diabetes और Hypertension के लक्षण उत्पन्न हो जाते है। यह एक धीरे-धीरे बढने वाला चिरस्थायी रोग है जो ३०–४० वर्ष की स्त्रियो मे होता हुआ कभी-कभी देखा जाता है। ८० प्र०श० मे दोनो ओर वृक्कोत्तरीय ग्रथियो मे विशेषत उनके Zona Fasciculata मे अति वृद्धि (Hyperplasia) के होने से, १५ प्र०श० मे १ ओर अर्बुद (Basophil Adenoma) या ५% मे एक ओर कैंसर के होने के कारण यह रोग होता है। Bronchial कैन्सर से भी यह हो सकता है। अति वृद्धि की अवस्था मे रोग के लक्षण शनै शनै प्रकट होते है। अतिवृद्धि अर्थात् Bilateral hyperplasia का कारण Anterior pituitary के Adrenocorticotrophic hormone की अधिक उत्पत्ति है। उसके अन्दर अति वृद्धि होती है, विशेषत उसके Basophil cells मे कैन्सर मे से ACTH की तरह का एक Hormone निकलता है जिससे यह रोग हो जाता है। Fludrocortisone या तत्सम्बन्धित Dexamethasone (Millicorten) के २ मिलि० मात्रा मे ६-६ घ० पर २ दिन देने से Hyperplasia के लक्षण शान्त हो जाते है। Adenoma या Cancer के होने पर लक्षण शान्त नही होते, अर्बुद के होने पर लक्षण सहसा उत्पन्न होते है। Glucocorticoids (Hydrocortisone, Cortisone) की अधिक उत्पत्ति के कारण प्रोटीन का परिपचन अधिक होता है, जिससे अर्थात् Gluconeogenesis की प्रक्रिया के बढ जाने मे यकृत् मे Glycogen की मात्रा बढ जाती है, रक्त मे खाण्ड की मात्रा बढ जाती है, उसमे फैट भी बढ जाता है। प्रोटीन्स के कम हो जाने या उसके परिपचन (Catabolism) के बढ जाने तथा पोटासियम के शरीर मे से निकल जाने से शरीर की मासपेशियो मे अशक्ति आ जाती है। शाखाये पतली पड जाती है। अस्थियो मे से प्रोटीन के खर्च हो जाने से उनमे भगुरता (Osteoporosis) का लक्षण हो जाता है जिससे पृष्ठवशास्थि मे भग हो सकता है। (X-Ray से कपाल, रीढ की हड्डी तथा पसलियो मे Osteoporosis का यह लक्षण मिलता है)। कटि कसेरुओ की भगुरता से पीछे को कुब्जता (Kyphosis) का लक्षण हो जाता है। त्वचा तथा रक्तवाहिनियो मे से प्रोटीन्स के कम हो जाने से कोष्ठ के निम्न भाग, जघाओ और कक्ष की पतली त्वचा पर नीलीनीली या बैंजनी रग की धारियां (Striae) या चकत्ते (Ecchymoses) पड जाते है। रक्तवाहिनियो की दीवारो के पतले हो जाने से यहा रक्त की झलक पडने लगती है। चेहरे की त्वचा के पतला पड जाने से वहा भी रक्त की लालिमा गालो पर झलकने लगती है।

रक्त मे खाण्ड की मात्रा बढ जाती है। रोगी की खाण्ड को खपाने की शक्ति (Glucose Tolerance) घट जाती है जिससे मधुमेह भी हो सकता है। फैट की वृद्धि चेहरे, गालो, ग्रीवा, ठोडी, कन्धो, धड और कोष्ठ पर विशेष रूप मे होती है, जिससे चेहरा गोल हो जाता है (Full moon face) चेहरा इतना भर जाता है कि मुख छिद्र तथा कान उसके उभार मे छिप से जाते है। फूले हुए चेहरे और धड के साथ पतली शाखाओ को देखकर इस रोग का निश्चय हो जाता है। शरीर मे नमक और जल के अधिक रुक जाने के कारण भी शरीर मे भारीपन आ जाता है।

रक्त मे खाण्ड की वृद्धि के साथ Sodium तथा रक्तभार की वृद्धि और Calcium की कमी हो सकती है (ECG से इसकी परीक्षा हो सकती है)। क्षारीयता (Alkalosis) का लक्षण भी हो सकता है। इसके साथ Potassium की अधिक निकासी से भी शरीर मे निर्बलता होती है। रक्त मे Eosinophils की अनुपस्थिति भी होती है। RBC, WBC बढे हुए होते है। Blood Corticoids की मात्रा बढी हुई होती है (१०० मे २० माइक्रोग्राम) मूत्र मे 11-Oxysteroids या Glucocorticoids की मात्रा अधिक बढी हुई होती है। हो सकता है कि Androgens की वृद्धि भी कुछ अश मे हो जिससे स्त्री के शरीर मे पुरुष सदृश लक्षण अर्थात् चेहरे पर बाल, आर्तवनाश, Clitoris वृद्धि (Virilism) के लक्षण भी हो। इस प्रकार इस रोग मे Adrenogenital Syndrome भी हो सकता है। इस रोग मे रक्तभार की वृद्धि होकर तथा Arteriosclerosis होकर हृदय के फेल होने, मस्तिष्क मे रक्तस्राव होने या हृदय शूल होने के उपद्रव हो सकते है। मधुमेह के Polyuria आदि उपद्रव हो सकते है।

रोग विनिश्चय –Dexamethasone Suppression Test –इस औषध को २ मिलि दैनिक मात्रा मे २ दिन दे, फिर ६ मिलि० दैनिक मात्रा मे ३ दिन दे। मूत्र मे आनेवाले 17-Ketosteroids की दैनिक मात्रा की जाच करे। नार्मल व्यक्ति मे २ मिलि० दैनिक मात्रा से ही Ketosteroids की दैनिक मात्रा कम हो जाती है। ग्रन्थि मे दोनो ओर Hyperplasia हुआ हो तो दो मिलि० से नही पर ६ मिलि० की मात्रा से इसकी मात्रा कम हो जाती है। अगर ग्रन्थि मे Adenoma हो या कैन्सर हो तो ६ मिलि० मात्रा

देने से भी इसकी मात्रा कम नही होती। साध्यासाध्य :—चिकित्सा न होने पर रोगी ५ वर्ष के अन्दर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

Primary Hyper Aldosteronism, Conn's Syndrome (१९५४)

बहुत कम अवस्थाओ मे विशेषत ३०–५० वर्ष की स्त्रियो मे यह भी हो सकता है कि वृक्कोत्तरीय ग्रंथि के सक्रिय होने पर विशेषत Mineralocorticoids या Aldosterone की उत्पत्ति तो अधिक हो और उपर्युक्त दोनों प्रकार के सूक्ष्म रसो की उत्पत्ति अधिक न हो। वृक्कोत्तरीय ग्रंथि (Adrenal Cortex) के Zona Glomerulosa मे विशेषत अर्बुद (Adenoma) के हो जाने से Aldosterone की उत्पत्ति अधिक बढती है। इसकी अधिक उत्पत्ति से Sodium शरीर मे अधिक रुकता है यद्यपि इसके कारण श्वयथु (Oedema) नही पाया जाता, Potassium की मूत्र द्वारा निकासी अधिक होने लगती है, इसकी निकासी से मासपेशियो, हृदय आदि मे अशक्ति उत्पन्न हो जाती है जो इस रोग का प्रधान लक्षण है तथा लवण के अधिक रुकने से शरीर मे रक्तभार बढ जाता है (कहा जाता है कि वृक्को के Juxtaglomerular bodies से उत्पन्न Angiotensin ही Adrenal ग्रन्थि के Zonaglomerulosa की अतिवृद्धि का कारण बनता है। रोगी मे प्यास भी बढ जाती है। Serum मे Potassium कम मिलता है। Aldactone के ३३ मिलि० मात्रा मे ३ बार ५-७ दिन देने मे यह मात्रा रक्त मे ठीक हो जाए तो इस रोग का सन्देह करे। हृदय के फैल जाने का पता ECG तथा X-Ray से लगता है। रक्तभार वृद्धि तथा मासपेशियो की अशक्ति इस रोग के प्रधान लक्षण है। छोटी आयु मे बढे हुए Hypertension को देखकर इस रोग का सन्देह हो जाता है। Serum मे Potassium कम और सोडियम बाईकार्बोनेट बढा हुआ मिलता है। मूत्र मे पोटासियम की दैनिक निकासी बहुत अधिक होती है। रक्तभार वृद्धि से हृदय आकार मे बढ जाता है। पोटासियम की कमी से मासपेशियो मे अशक्ति तथा Cramps होते है Tetany का लक्षण भी हो सकता है।

Secondary Aldosteronism —हृदयनैर्बल्य (Congestive cardiac failure) वृक्करोग (Nephrosis) तथा जलोदर (Hepatic Cirrhosis and Ascites) मे शरीर के द्रवो मे अर्थात् रक्त और मूत्र मे Aldosterone की वृद्धि पाई जाती है।

वृक्कोत्तरीय ग्रंथि प्राबल्य या सक्रिय वृक्कोत्तरीय ग्रंथि Hypercorticalism की चिकित्सा

जब वृक्कोत्तरीय ग्रंथि से Androgen की उत्पत्ति अधिक मात्रा मे हो रही होती है तब इसमे से Hydrocortisone सदृश सूक्ष्म रस (Hydroxylating Enzymes) की उत्पत्ति बहुत कम होती है। इसकी कमी से Pituitary ग्रंथि से ACTH सूक्ष्म रस की उत्पत्ति स्वभावत अधिक होने लगती है। इसी के कारण वृक्कोत्तरीय ग्रंथियो मे अतिवृद्धि (Hyperplasia) बनी रहती है। Androgens जो अधिक उत्पन्न होते है उनमे ACTH को कम करने की शक्ति नही होती। यदि रोगी को Cortisone या Hydrocortisone (Efcorlin) दिया जाए तो इसके द्वारा ACTH के कम हो जाने से वृक्कोत्तरीय ग्रंथियो की अतिवृद्धि व सक्रियता कम हो जाती है, साथ ही शरीर मे Cortisone की जो कमी है वह भी पूर्ण हो जाती है।

(१) अत Androgen की अधिकता जन्म से हो तो शिशु या छोटी आयु के बालक को २५ मिलि० मात्रा मे Cortisone Acetate (Corlin) प्रतिदिन मास द्वारा दे या २५ मिलि० दैनिक मात्रा मुख से दे या Prednisolone २५ मिलि दैनिक मुख से दे या ५ मिलि० Dexamethasone दैनिक मुख से दे। इससे कन्या मे बढते हुए पुरुषसूचक लक्षण शान्त होने लगते है। मूत्र मे 17-Ketosteroids की मात्रा भी घटती जाती है। जितनी मात्रा के देने से मूत्र मे इनकी मात्रा ८ मिलि० दैनिक रह जाए उसे फिर चालू रखना चाहिए। ८ वर्ष से बडे बालक मे यह रोग हो तो Cortisone Acetate को ५० मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन मास द्वारा देना चाहिए। प्रभाव हो जाने पर फिर इस औषधि को मुख द्वारा देना आरम्भ कर देना चाहिए।

युवावस्था मे या बडी आयु मे Androgen की अधिकता होकर यह रोग हो तब भी इस औषधि को मास द्वारा प्रतिदिन देना चाहिए जिससे मूत्र मे 17-Ketosteroids की मात्रा ८ मिलि० दैनिक हो जाए। Adenoma, Carcinoma के कारण यह रोग हो तो शल्यकर्म आवश्यक होता है। इस ग्रंथि मे अति वृद्धि बनी रहे तो Subtotal Adrenalectomy के शल्य कर्म से लाभ हो जाता है। कैन्सर न हो तो १ वर्ष इस चिकित्सा के जारी रखने से पुरुषसूचक लक्षण शान्त हो जाते है।

(२) कुशिङ्ग के रोग (Cushing's Syndrome) की चिकित्सा अर्बुद कारण हो तो शल्यकर्म द्वारा उसका निकालना आवश्यक होता है। अति वृद्धि (Hyperplasia) कारण हो तो Total या Subtotal Resection की चिकित्सा की जाती है अर्थात् एक को पूरा दूसरे को अंशत निकाल देते है। इस प्रकार इस रोग की प्रधान चिकित्सा शल्य कर्म है कोई ऐसी औषध नही जो Cortisone की उत्पत्ति को रोक सके एव इस रोग को ठीक कर सके। हा, Diabetes, Obesity, Hypertension का जो इलाज है उससे इन लक्षणो को शात किया जा सकता है। शरीर मे पोटासियम की कमी होती है, उसके लिए पोटासियम का प्रयोग करते रहना चाहिए ।

एक ओर की वृक्कोत्तरीय ग्रथि मे अर्बुद हो तो उसके निकालने से पहले २-३ दिन दैनिक ACTH का एक सूचीवेध तथा Cortisone Acetate या Solucortef १०० मिलि० के प्रात साय दिन मे २ सूचीवेध देने चाहिये । दूसरी वृक्कोत्तरीय ग्रथि जिसमे अर्बुद नही होता प्राय लघु (Atrophied) होती है। वह ACTH के सूचीवेध से उत्तेजित हो जाती है और कार्य करने लगती है।

शल्यकर्म के समय Hydrocortisone (Cortril) १०० मिलि० को ½ लिटर Isotonic Saline तथा ५ प्र०श० Dextrose सोल्यूशन मे मिलाकर शिरा द्वारा धीरे-धीरे देना चाहिए। शल्यकर्म के वाद १२ घटे मे भी इसी तरह का सूचीवेध शिरा द्वारा देना चाहिए । शल्यकर्म के अगले दिन Cortisone Acetate को ५० मिलि० मात्रा मे ६-६ घटे पर दिन मे ४ वार मास द्वारा देना चाहिए, उससे अगले २ दिन इसी औषधि को ८-८ घटे पर अर्थात् दिन मे ३ वार देना चाहिए तथा उससे अगले दो दिन इसी औषधि को ५० मिलि० मात्रा मे १२-१२ घटे पर मास द्वारा देना चाहिए। इससे अगले २ दिन इसे २५ मिलि० मात्रा मे ८-८ घटे पर मुख द्वारा देना चाहिए । इस औषधि के साथ-साथ Fludrocortisone (Florinef) को १ मिलि० मात्रा मे दिन मे १ वार एक-एक दिन छोडकर मुख से देते रहना चाहिए। दोनो ओर Adrenalectomy का शल्यकर्म हुआ हो तो १-२ सप्ताह मे Hydrocortisone या Cortisone की चालू मात्रा का पता लगाकर उसे आगे के लिए जारी रखना चाहिए। यदि Subtotal Adrenalectomy का शल्यकर्म हुआ हो तो क्रमश इस औषधि को कम करते-करते दो सप्ताह वाद इसे वन्द भी कर सकते है।

रोगी को प्रोटीन भोजन अधिक मात्रा मे देना चाहिए तथा शरीर मे उसे खपाने के लिए Testosterone Propionate in Oil २५-५० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा रोज दिया जा सकता है।

(३) Conn's Syndrome मे अर्बुद के निकालने की ही चिकित्सा करानी चाहिए । Hyperplasia हो तो Subtotal resection करना चाहिए। Secondary Aldosteronism मे जिस रोग के कारण इस सूक्ष्म रस का स्राव अधिक हो रहा है उसकी चिकित्सा करनी चाहिए।

Adrenal medulla —एड्रिनल ग्रन्थि (Ad=पास, Ren=गुर्दा तथा Medulla=अन्दर का भाग)

एड्रिनल ग्रन्थि का Cortex (वाहर का भाग) लिंगी ग्रन्थियो या Sexglands के समान Embryo के Mesoderm (Middle Skin) से उत्पन्न होता है। पर Medulla उससे उत्पन्न नही होता। वह Embryo के Ectoderm (Outer Skin) से, जहा से Sympathetic System उत्पन्न होता है, उत्पन्न होता है।

Medulla के वनाने वाले प्रारभिक सेलो को Sympathogonia कहते है। ये विकसित होकर एक तो Sympathoblasts या Neuroblasts या Ganglien cells कहाते है। दूसरे उन्ही से विकसित होकरत या कुछ वडे सेल होकर Chromaffin cells कहाते है। इनका यह नाम इसलिये है कि इन सेलो के अन्दर पडे वडे वडे दाने या Granules, Chromium Salts से रगे जाने पर भूरे रग के दिखाई पडते है। इन्ही Chromaffin सेलो के अन्दर इस ग्रन्थि के दो Hormones अर्थात Epi-nephrine और Nor-epinephrine, प्रोटीन तथा Adenosine triphosphate के साथ मिले हुए सचित रहते है।

इन दोनो मे से Epi-nephrine का पता तो १९०१ मे लग गया था पर Nor-epinephrine का पता Euler, Goldenberg आदि ने १९४९ मे दिया । Chromaffin सेलो के अन्दर के Cytoplasm तथा इन सेलो के दानो मे Tyrosine नामक Amino acid से इनका निर्माण आरम्भ होता है। यह अमीनो एसिड Hydroxyl (OH) ग्रुप के मिलने से Dihydroxyphenyl alanin (DOPA) वन जाता है। फिर Decarboxylase नामक

एन्जाइम के द्वारा Carboxyl ग्रुप (COOH) के निकल जाने से Dihydroxyphenyl ethylamine (DOPAMINE) बन जाता है। यही फिर Hydroxyl ग्रुप के मिल जाने से Nor-epinephrine बन जाता है। इस Epinephrine मे Methyl ग्रुप (CH^3) के आ जाने मे यही Epinephrine बन जाता है। इन पीछे के तीनो कम्पौण्ड्स को Catecholamines कहते हैं। परन्तु इनमे से प्रधान तत्त्व पिछले दो ही हैं। Catechol = dihydroxybenzene—एड्रिनल ग्रन्थि के प्रति ग्राम मे ये लगभग ६०० माइक्रोग्राम के होते हैं। इसमे Epinephrine ८० प्र०श० तथा Nor-epinephrine २० प्र०श० के लगभग होता है।

स्पाइनल कौर्ड के दोनो ओर विद्यमान Sympathetic chain के अन्दर विद्यमान Ganglia मे भी Chromaffin cells होते हैं। वहा से भी Epinephrine उत्पन्न होता है। इमी प्रकार Nor-epinephrine भी Medulla के इलावा Postganglionic Nerves के सिरो पर थोडा-थोडा उत्पन्न होता है। इन दोनो Hormones की दैनिक निकासी शरीर मे १०० माइक्रोग्राम से कम ही है।

ये दोनो Hormones और Hormones की तरह शरीर मे हर समय नही जाते रहते। केवल शारीरिक श्रम, मानसिक आवेश या किसी प्रकार के आडे वक्त या Stress के आ पडने पर ही शरीर मे जाते हैं। इसीलिए साधारण व्यक्ति के प्लाज्मा मे देखा जाय तो इनकी बहुत ही स्वल्प मात्रा मिलती है।

शरीर मे से इनकी निकासी कैसे होती है इसका पता भी Armstrong तथा McMillan आदि ने १९५७ मे लगा लिया। उन्होने बताया कि इनकी प्रधानत निकासी Hydroxy mandelic acid या Vanil mandelic acid (VMA) के रूप मे होती है। नार्मल व्यक्ति मे इसकी दैनिक निकासी २ से ६ ५ मिलिग्राम होती है। बहुत थोडी मात्रा मे (१ मिलि० मात्रा मे) ये Nor-metanephrine और Metanephrine रूप मे भी मूत्र द्वारा निकलते है।

Epinephrine का प्रभाव —

यह हृदय उत्तेजक है, हृदय गति बढाती है, उसके हर सकोच मे अधिक रक्त आगे जाता है, हृदय का सकोच-कालिक भार Systolic B P बढ जाता है। हृदय पोषक रक्तवाहिनिया तथा शरीर की ऐच्छिक मासपेशिया अधिक रक्त से भर जाती है अर्थात् वे Dilated हो जाती है। दूसरी ओर कोष्ठ सम्बन्धी मासपेशियो, सारी Mucous membranes तथा त्वचा की रक्तवाहिनियो मे Vosoconstriction हो जाता है। उन अगो को रक्त कम मिलता है जैसा कि Stress या शारीरिक श्रम के समय आवश्यक भी है। इसके कारण ऐच्छिक मासपेशियो मे सकोच Contraction तथा फुफ्फुस कोष्ठ आदि की अनैच्छिक (Smooth) मासपेशियो मे शैथिल्य Relaxation हो जाता है। Peristalsis मन्द हो जाता है। हा, कोष्ठगत Sphincters जैसे Pylorus, ileocaecal तथा Anal Sphincters मे Spasm हो जाता है। इनमे Vosoconstriction के कारण आमाशय, आत, ग्रहणी आदि के स्राव बन्द हो जाते है। यकृत् तथा मासपेशियो मे Glycogenolysis बढ जाता है जिससे रक्त मे शर्करा की मात्रा बढ जाती है। शरीर मे Basal metabolism का रेट बढ जाता है अर्थात् आक्सिजन की खपत बढ जाती है। शरीर का तापमान भी बढता है। इस प्रकार शारीरिक श्रम, मानसिक आवेश तथा Stress के लिये आवश्यक अवस्थाये उत्पन्न हो जाती है। यह भी स्मरणीय है कि ऐसी अवस्था मे फैट के डिपो से फैट भी रक्त मे अधिक आ जाता है अर्थात् रक्त मे Cholesterol तथा Free fatty acids की मात्रा बढ जाती है। इस प्रकार मानसिक आवेश के समय यदि यह फैट Fight या flight मे खर्च न हो तो यह धमनियो मे तथा यकृत् मे बैठने लगती है।

आवेश या कष्ट या Stress के आ पडने पर Hypothalamus उत्तेजित होता, उसके कारण Sympathetic Nervous System उत्तेजित हो जाता है। इस System की Preganglionic Nerves के सिरो पर Medulla मे तथा Ganglia मे Acetyl choline उत्पन्न हो जाता है। इसमे Ganglia मे कुछ Epinephrine उत्पन्न हो जाता है परन्तु Postganglionic Sympathetic Nerves के सिरो पर Acetyl choline के कारण वहा Catecholamines की विशेषत Nor-epinephrine की ८० प्र०श० उत्पत्ति हो जाती है। पर Medulla मे Acetyl choline के कारण Epinephrine तथा Nor-epenephrine दोनो की उत्पत्ति होती है। इसीलिये Stress या शरीर पर कार्य भार आ पडने पर शरीर अधिक श्रम के योग्य हो जाता है।

Nor-epinephrine एक तो Adrenal medulla मे दूसरे Postganglionic Sympathetic Nerves के सिरो पर उत्पन्न होता है। इसका प्रधान काम त्वचा-श्लेष्मकलाओ तथा मासपेशियो मे Vosocon-

striction का करना है। इसप्रकार इसके कारण Peripheral resistance बढ जाती है । Blood Pressure बढ जाता है। इसीलिये Shock की अवस्था मे अर्थात Vosomotor Collapse की अवस्था मे तथा Myocardial infarction मे इसे ग्लूकोज सोल्यूशन के साथ शिरा द्वारा दिया जाता है। यह एक उत्तम Pressor या रक्तभारवर्धक द्रव्य है।

ग्रंथि मध्य प्राबल्य —Medullary Hyperfunction, Phaeochromocytoma

वृक्कोत्तरीय ग्रंथि के मध्यम भाग (Medulla) की निर्बलता (Insufficiency) नही पाई जाती है, क्योकि इसके दोनो Hormones जैसे ऊपर कहा है Medulla के अतिरिक्त अन्यत्र भी उत्पन्न होते हैं। इसकी प्रबलता या इसके सूक्ष्म रसो की अधिकता (Medullary Hyperfunction) का रोग कभी-कभी अर्थात् Hypertension के रूप मे १ प्र०श० रोगियो मे देखने मे आता है, जो इसके Chromaffin cells मे एक छोटे से अर्बुद के जिसका पता पहले-पहल १९२२ मे लगा (Labbe के द्वारा) और जिसे Phaeochromocytoma कहते है, उत्पन्न हो जाने से होता है। यह अर्बुद एक ओर की ग्रंथि के मध्य भाग मे ही बहुधा दाहिनी ओर की ग्रंथि मे होता है। प्राय निरुपद्रव किस्म का होता, घातक कैन्सर के किस्म का नही होता तथा युवावस्था के स्त्री-पुरुषो मे होता है। कोष्ठ के Lumber प्रदेश मे वृक्क की तरह की एक गाठ हाथ को लगती भी है पर उसे दबाने से इसके दौरे मे होने वाले लक्षण होने लगते हैं। नेत्र परीक्षा करने पर III Grade की Retinopathy के लक्षण भी हो सकते हैं। Lumber प्रदेश पर मर्दन करने के बाद रक्तभार बढा हुआ पाया जाए तो भी इसकी शका करनी चाहिए।

इस अर्बुद के, जिसके कारण का कुछ पता नही चला, होने पर समय-समय पर अत्यधिक रक्तभार वृद्धि के वेग जिन्हे Adrenosympathetic Crises कहते है होने लगते हैं। इसमे Nor-epinephrine अधिक हो जैसा कि अधिकतर होता है तो रक्तभार वृद्धि हमेशा बनी रहती है Epinephrine अधिक हो तो यह वृद्धि वेगो मे होती है। वेग किसी मानसिक आवेश से या भारी शारीरिक श्रम होने पर या पेट पर मालिश से प्रारम्भ होता है। दौरा आरम्भ होकर पहले ५–१५ मिनट के लिए रहता तथा दीर्घ काल के अन्तरो के बाद होता है। बाद मे यह रक्तभार वृद्धि का वेग घटो तक रहने लगता और तीव्रतर होता जाता है। वेग के समय हृदय प्रबलता से कम्पन करने लगता है। प्रबल कम्पनो के कारण रोगी का शरीर तक हिलता है। हृदय की प्रबलता के कारण सकोचकालिक रक्तभार ३०० M M of Hg. तक तथा विश्रामकालिक रक्तभार १७५ M M of Hg तक हो जाता है। इसमे सिर के अन्दर रक्तभार के बढने से रह-रह कर सिर मे फटने के समान भारी दर्द होता है। शिरोभ्रम भी होता है। ग्रीवा की शिराए उभरी हुई दीखती है। त्वचा की रक्तवाहिनियो के सकुचित होने से चेहरा फीका पड जाता है, तथा स्वेदयुक्त होता है, हाथ भी रग मे फीके और स्वेदयुक्त होते हैं, हाथ पैर ठडे होते है। पुतलिया फैली होती हैं। अरुचि और वमन के लक्षण भी होते हैं। रोगी घबराया हुआ होता है। शरीर मे धातु पाक के तीव्र हो जाने से ज्वर भी होता है, Leucocytosis भी होता है। पुतलिया फैली हुई होती है। दौरा कुछ घटो से लेकर कुछ दिनो तक रहता है। दौरा समाप्त होने पर रोगी नार्मल हो जाता है। दूसरा दौरा कई दिनो या महीनो बाद होता है। कभी-कभी रोग दौरो के रूप मे नही होता प्रत्युत रक्तभार वृद्धि का लक्षण बराबर रहता ही है। रक्तभार वृद्धि के कारण तिमिर रोग अर्थात् दृष्टि नाश या मस्तिष्क, हृदय तथा वृक्क सम्बन्धी उपद्रव हो सकते है। मूत्र परीक्षा करने से साधारणत उसमे प्रतिदिन Catecholamines (Noradrenaline) ५० माइक्रोग्राम मात्रा मे आते हैं, इस रोग मे बढकर १०० माइक्रोग्राम या इससे भी अधिक हो जाते है। VMA की मात्रा बहुत बढी होती है। Piperoxan (Benodaine) या Phentolamine (Regitine) ५ मिलि० के शिरा या मास द्वारा देने से रक्तभार गिरे, रक्तभार वृद्धि के साथ अति स्वेद का लक्षण हो तो इस रोग का निश्चय हो जाता है। Pyelography से भी इसका निश्चय हो जाता है।

शल्य कर्म द्वारा इस अर्बुद के निकाल देने पर ही यह रोग ठीक हो सकता है। परन्तु शल्यकर्म के समय शरीर का रक्तभार अत्यधिक न बढे (Phentolamine के द्वारा) और बाद मे शरीर का रक्तभार अत्यधिक न गिरे (Noradrenaline drip के द्वारा) इसके लिए पहले से ही प्रत्युपाय करने आवश्यक होते है क्योकि रक्तभार के अधिक गिर जाने से गुर्दे फेल हो सकते है या हृदय मे घात (Infarction) का उपद्रव हो सकता है।

औषधियो मे से Inderal (I C I) की जो Adrenergic Blocking औषधि है १० मिलि० मात्रा मुख द्वारा या ५ मिलि० के शिरा द्वारा देने से इस रोग मे लाभ हो सकता है। यह औषधि इस रोग के अतिरिक्त Angina Pectoris, Arrhythmia तथा Cardiomyopathy मे भी लाभदायक सिद्ध हुई है।

पिट्यूटरी ग्रंथि के रोग
Diseases of the Pituitary Gland or Adenohypophisis

पिट्यूटरी ग्रन्थि देखने मे ५-१० ग्रेन की १ ३×१×५सेन्टीमीटर आकार की एक छोटी सी ग्रन्थि है जो कपाल की Sphenoid अस्थि के Sella Turcica नामक गढे मे पडी रहती है, उसके ठीक ऊपर Sub arachnoid प्रदेश मे Optic Chiasma रहता है। यह जीवन के लिये अत्यावश्यक निस्स्रोतस ग्रन्थि है। दूसरी निस्स्रोतस ग्रन्थियो की प्रेरक होने से भी इसकी आवश्यकता और बढ जाती है। इसे Leader of the endochrine orchestra कहते है। इसका अग्रिम खण्ड (Anterior Lobe) दो प्रकार के सेलो के स्तम्भो (Columns) से बना है। एक प्रकार के सेलो के Cytoplasm मे दाने होते हैं। दूसरे प्रकार के सेलो के Cytoplasm मे दाने नही होते। इसलिये पहले प्रकार के सेलो को Granular दूसरे प्रकार के सेलो को Agranular कहते हैं। पहले प्रकार के सेल रग को पकडते हैं, इसलिये उन्हे Chromophil कहते है। दूसरे प्रकार के सेल रग नही पकडते उन्हे Chromophobe कहते हैं। फिर पहले प्रकार के दानेदार सेल भी २ प्रकार के है। एक अम्लीय रग को पकडते है उन्हें Eosinophil (Acidophil Cells) कहते हैं। दूसरे क्षारीय रग पकडते है उन्हे Basophil (b Cells) कहते हैं। गैर दानेदार सेलो अर्थात् Chromophobe सेलो से परिणत होकर दानेदार सेल बनते प्रतीत होते हैं। इस ग्रन्थि के सूक्ष्म रस Peptide Hormones इन दानेदार सेलो मे से उत्पन्न होते है। Eosinophil सेलो मे से (१) वृद्धिजनक सूक्ष्म रस Growth Hormone या Somatotrophin या (Somatotrophic Hormone), (२) दुग्ध जनक सूक्ष्म रस (Lactogenic Hormone या Prolactin), (३) Luteinising Hormone (L H) या Interstitial Cell Stimulating Hormone जो नर मे अण्डो के Interstitial सेलो से Testosterone का, स्त्री मे Corpus Luteum का प्रवर्तक होता है, उत्पन्न होते हैं। दूसरे Basophil सेल समूह से (१) Adrenocorticotrophic Hormone या Corticotrophin या A C T H (२) Thyrotrophic Hormone गल ग्रन्थि प्रवर्तक सूक्ष्म रस या Thyroid Stimulating Hormone (TSH) Basophil cells मे उत्पन्न होता है। (३) Follicle Stimulating Hormone (FSH) जो नर मे अण्डो के Germinal epithelium एव Spermatozoa का प्रवर्तक होता, स्त्री मे Ovary के Graafian Follicles का प्रवर्तक होता है, उत्पन्न होते है।

(१) इस प्रकार पिट्यूटरी ग्रन्थि का प्रमुख सूक्ष्म रस वृद्धिकारक सूक्ष्म रस या Growth Hormone है जो एक Polypeptide है जिसमे १९० Amino acids है तथा जो ५ मिलि० मात्रा मे हर रोज उत्पन्न होता है, जिसके रक्त द्वारा शरीर मे जाते रहने से त्वचा, मास, अस्थियो, रक्त-वाही सस्थान, आशयो आदि मे सतुलित रूप मे वृद्धि होती रहती है। इस सूक्ष्म रस के द्वारा Nitrogen शरीर मे रुकता है एव नया Protein बनता है और शरीर के अगो की उसके द्वारा वृद्धि होती है। युवावस्था तक इसकी उत्पत्ति बडी मात्रा मे होती है, बाद मे कम हो जाती है। इस Hormone के द्वारा सेलो मे Hyperplasia (सख्या वृद्धि) और Hypertrophy (आकार वृद्धि) दोनो प्रक्रियाए होती है अर्थात् उनमे Mitosis बढता तथा अवयव का आकार और भार भी बढता है। सेलो मे Aminoacids के आने की रफ्तार बढती है उनमे विद्यमान Enzymes की क्रिया तीव्र होती है अर्थात् Protein Anabolism की गति तीव्र होती है। इसके द्वारा अवयवो मे प्रोटीन, जल, फास्फोरस, पोटासियम, और सोडियम अधिक सचित होते है पर Fat की वृद्धि नही होती। बच्चो के रक्त मे युवको की अपेक्षा इसकी मात्रा अधिक होती है। उपवास-व्यायाम मे रक्त मे इसकी मात्रा बढती है।

Human growth hormone जो बहुत दिन नही हुए बनाया गया है उनसे तथा Anabolic agents के प्रयोग से इस ग्रन्थि की न्यूनता को पूर्ण किया जा सकता है। १३-१४ वर्ष से छोटे, छोटे कद के लडके-लडकियो मे इसके इजेक्शन से उनका कद बढ सकता है। पर यह बहुत महगा पडता है।

(२) Adrenocorticotrophic Hormone या Corticotrophin (A C T H) जो कि ३९ Aminoacids का बना एक Polypeptide है का पता Sayers (१९४३) तथा John R Mote (१९४६) के द्वारा ठीक-ठीक लगा। इसे अब कृत्रिम तौर से भी बना लिया गया है। यो तो इस सूक्ष्म रस की उत्पत्ति होते रहने मे वृक्कोत्तरीय

ग्रन्थि सक्रिय रहती एव अपना कार्य करती रहती है पर जब शरीर या मन पर किसी प्रकार का आघात आ पडता है या उसमे भारी आवेश उठता है तब नाडियो के द्वारा तथा Adrenaline की अधिक उत्पत्ति के द्वारा Thalamus और Hypothalamus उत्तेजित हो उठते है, उनकी उत्तेजना से Pituitary ग्रन्थि और उत्तेजित हो जाती है, उसकी उत्तेजना से उसमे से A C T H की उत्पत्ति और अधिक होती है और उसके रक्त द्वारा वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि या Adrenal Cortex मे पहुचने से उसमे से Aldosterone के सिवाय उसके Cortisone, Corticosterone तथा Androgens सूक्ष्म रस और अधिक मात्रा मे उत्पन्न होने लगते है। उनके तीव्र धातु परिपाचक (Catalizers) होने से शरीर अपने ऊपर आये आघात का सामना कर लेता है। इस प्रकार इस ग्रन्थि के द्वारा वृक्कोत्तरीय ग्रन्थि उत्तेजित होती है तथा उसकी उत्तेजना से जब रक्त मे Hydrocortisone सदृश तत्व (17 = Hydroxycorticosterone) की मात्रा जो दिन मे साधारणत १०० सी० सी० रक्त मे ५ २५ माइक्रोग्राम के लगभग रहती है, बढ जाती है। तब पिट्यूटरी ग्रन्थि मे से A C T H की निकासी स्वयमेव घट जाती है। इस प्रकार इन दोनो ग्रन्थियो का एक दूसरे पर नियामक प्रभाव होता हे। इसीलिये बाह्य A C T H का प्रयोग बहुत दिन तक जारी रखने पर जब Adrenal Cortex से Hydrocortisone की उत्पत्ति अधिक होने लगती है तब पिट्यूटरी ग्रन्थि से A C T H की निकासी न्यून व न्यूनतर होती जाती है और फिर जब बाह्य ACTH का प्रयोग सहसा बन्द किया जाता है तब आभ्यन्तर ACTH के अभाव मे या उसकी न्यूनता के कारण कुछ एक दुर्लक्षण हो सकते हैं। यह पहले कहा जा चुका है कि Pituitary तथा Adrenal Cortex के उत्तेजित होने मे रक्त मे खाड की मात्रा बढ जाती है जैसा कि Acromegaly तथा Cushing के रोग मे होता है। इस प्रकार ये ग्रथिया Insulin के विपरीत कार्य करती है। जब ये ग्रन्थिया निष्क्रिय हो जाती हैं जैसे Addison तथा Simmond के रोग मे होता है तब रक्त मे खाड की मात्रा घट जाती है जिससे इन रोगियो को इसुलिन सहन नही होता हे।

(३) Gonadotrophic Hormones या Gonadotrophin पिट्यूटरी ग्रन्थि के अग्रिम खण्ड मे से प्रजनन ग्रन्थियो के पोषक सूक्ष्म रस भी उत्पन्न होते हैं। इनमे से एक को Prolan A या Follicle Stimulating Hormone कहते हैं जो एक glycoprotein है जिसके कारण स्त्री मे उसकी Ovaries के अन्दर विद्यमान ग्रन्थियो या Graafian Follicles की समुचित वृद्धि होती है जिससे Ova की उत्पत्ति होती हे तथा Ovaries से Oestrogen की ठीक-ठीक उत्पत्ति होती है। पुरुष मे इसके कारण उनके अण्डो मे Germinal Epicthelium की वृद्धि होती है जिससे वीर्य (Spermatozoa) की ठीक-ठीक उत्पत्ति होती हे। F S H को L H से पूरी तरह पृथक् करना कठिन है।

दूसरे को Prolan B या Luteinizing Hormone या Interstitial Cell-Stimulating Hormone कहते हैं जो उपर्युक्त सूक्ष्म रस का सहायक होता है। यह भी glycoprotein है। इसके कारण स्त्री की Ovaries मे Follicle से Ovum के निकल जाने के बाद वहा Corpus Luteum बन जाता है और वहा से एक नया सूक्ष्म रस Hormone जिसे Progesterone कहते है उत्पन्न होने लगता है। (मूत्र मे यह Pregnanediol के रूप मे निकलता है।) पुरुष मे पिट्यूटरी के इस सूक्ष्म रस के कारण अण्ड, कोष्ठ मे से नीचे अण्डकोषो मे उतरते हैं तथा अण्डो मे से उनके सूक्ष्म रस Testosterone को उत्पत्ति की प्रेरणा मिलती है। (Testosterone मूत्र मे Androsterone के रूप मे निकलता है।) इसीलिये Cryptoorchidism यदि बाल्यावस्था के बाद भी रहे तो Chorionic Gonadotrophic Hormone १००1 u मात्रा मे सप्ताह मे २ बार प्रारम्भ करके १०० Units प्रति सप्ताह बढाते हुए ५०० Units सप्ताह मे २ बार जब तक यह मात्रा हो जाय इसे देना चाहिये। इसमे लाभ न हो तो फिर शल्यकर्म ही करना चाहिए। इसी प्रकार वन्ध्या रोग (Sterility) के लिये स्त्री को आर्तव काल के ५वे दिन से १४वे दिन तक Gonadotrophin ५०० Units मात्रा मे और Human Chorionic Gonadotrophin १५वे से २४वे दिन तक इतनी ही मात्रा मे इन्जेक्शन द्वारा देना चाहिये, पर इसका प्रयोग २ बार से अधिक नही किया जा सकता।

स्त्री मे Oestrogens की उत्पत्ति Ovaries के

अतिरिक्त Placenta तथा Adrenal Cortex से भी मध्यमायु काल मे होती है तथा पिट्यूटरी के Gonadotrophic Hormone के नियत्रण मे रहती है। पुरुष मे Androgens की उत्पत्ति, जिनके कारण उनमे पुरुष सूचक लक्षण होते हे, अण्डो तथा Adrenal Cortex से होती है। बाजार मे सुलभ Gonadotrophic Hormones पिट्यूटरी ग्रन्थि मे से तैयार नही किये जाते परन्तु क्योकि गर्भिणी स्त्री मे Placenta के Chorionic Tissue से निकल कर उसके सीरम मे यह आता रहता है अत गर्भिणी घोडी के सीरम मे से इसे निकाला जाता है। यह पिट्यूटरी ग्रन्थि मे निकले Gonadotrophic Hormones के समान ही होता है। इस तरह से बनाया हुआ यह सूक्ष्म रस पिट्यूटरी के दोनो सूक्ष्म रसो के सदृश ही होता है। इसे 'Serum' Gonadotrophic Hormone कहते है। यह Gestyl १ मी० मी० मे ४०० i u Amp (Organon) Gonadyl (Roussel) Serogan (B D) Antostab (Boots) नामो से मिलता है। गर्भिणी स्त्री के मूत्र मे उसके Placenta के Chorionic Tissues मे से आया हुआ Chorionic Gonadotrophic Hormone मुख्यतया Luteinizing Hormone होता है, अर्थात् स्त्री मे यह Corpus Luteum तथा Progesterone की उत्पत्ति मे प्रेरक होता है अर्थात् गर्भपात को रोकने वाला होता है। पुरुष मे यह अण्डो के Interstitial सेलो को उत्तेजित करके उनसे Testosterone की उत्पत्ति मे प्रेरक होता है। यह Chorionic या 'Urine' Gonadotrophic Hormone बाजार मे Antuitrin S (P D) Pregnyl (Organon) ५०० i u Amps, Prolan (Bayer) १०० i u Physostab (Boots) Gonan (B D) Atregone (Abbot) नामो मे मिलता है।

(४) Thyrotrophic or Thyroid-stimulating Hormone **गल ग्रन्थि पोषक सूक्ष्म रस**—

पिट्यूटरी ग्रथि का यह सूक्ष्म रस जो एक Glycoprotein है गल ग्रन्थि (Thyroid) को उत्तेजित करके उसमे से उसके सूक्ष्म रसो को प्रवृत्त करने का कार्य करता है। Bovine thyrotrophin शुद्ध रूप मे मिलता हे। इसके देने से उस ग्रन्थि मे Radio Iodine को पकडने की शक्ति बढती है एव शरीर मे धातु परिपचन (Metabolism) की प्रक्रिया तीव्र होती है। सीरम मे मिलिलिटर मे ३ मिलिमाइक्रोग्राम से कम मात्रा मे होता है।

(५) Lactogenic Hormone **या** Prolactin—

पिट्यूटरी के इस सूक्ष्म रस के कारण जो कि एक Polypeptide है स्तन ग्रन्थियो मे Ducts तथा Alveoli की वृद्धि होनी एव दूध की उत्पत्ति मे सहायता मिलती है तथा Oestrogens भी इसमे सहायक होते है परन्तु Growth hormone के साथ मिले रहने से अभी तक चिकित्सा के लिये यह सूक्ष्म रस हमे सुलभ नही हुआ है। तथा दुग्ध प्रवृत्ति के लिए अभी तक तो Galactis १ गोली दिन मे ३ बार, तथा Milkogen गोलिया या Eticyclin भी इसी प्रकार दी जाती है।

पिट्यूटरी ग्रन्थि के पश्चिम खण्ड (Posterior Lobe या Neurohypophysis) से जो Neuroglial, Ependymal, Pyramidal, Granular सेलो से बना हुआ है Pituitrin नामक सूक्ष्म रस उत्पन्न होता है जिसमे २ सूक्ष्म रस होते है। एक को Pitressin या Vasopressin कहते है। इससे रक्तवाहिनियो मे रक्तभार (B P) बढता है। आतो की मासपेशियो तथा अन्य अनैच्छिक मासपेशियो मे भी सकोच बना रहता है तथा वृक्को से निकलने वाले मूत्र की मात्रा नियत्रित रहती है (जिससे इसे Antidiuretic Hormone भी कहते है)। दूसरे को Pitocin या Oxytocin कहते है जिसके कारण गर्भयुक्त गर्भाशय के मास मे सकोच उत्पन्न होता है। ये Hormones Hypothalamus मे बनते है, Hypothalamohypophyseal tract के द्वारा आकर ये इसी Neurohypophysis मे जमा होते और वहा से रक्त मे जाते हैं। इस पिट्यूटरी ग्रन्थि की विकृति से होने वाले रोग को Dispituitarism या पिट्यूटरी रोग कहते है जो दो प्रकार का होता है। एक तो इस ग्रन्थि के किसी भाग के अति सक्रिय हो जाने से होता है, दूसरा इसके किसी भाग के अति निष्क्रिय हो जाने से होता है।

अग्रिम पिट्यूटरी प्राबल्य, अग्रिम पिट्यूटरी की सक्रियता : (Hyperpituitarism, Eosinophilic Adenoma of the Anterior Pituitary)

इस ग्रन्थि के अग्रिम खण्ड के Eosinophil सेल समूह मे Hyperplasia होने से उसमे होने वाले

सूक्ष्म रसो की विशेषत Growth Hormone की अधिक उत्पत्ति होती है जिससे शरीर मे अति वृद्धि का लक्षण प्रकट हो जाता है। शरीर का निचला भाग उपरले भाग की अपेक्षा लम्बा होता है। मानसिक वृद्धि न होने से बुद्धि मे मन्दता रहती है। Gonadotrophin की अधिकता से Sex सबधी लक्षण जल्दी प्रकट हो जाते है। Skull X-Ray मे Sella बडा तथा Clinoids नष्ट हुए-हुए मिलते है। यह रोग बहुत कम कभी-कभी होता है। ५ से १५ हजार रोगियो के पीछे एक मे यह रोग होता है।

Gigantism या Giantism अतिदीर्घता

अस्थियो के वृद्धि काल के समाप्त होने से अर्थात् उनके Epiphyses के जुड जाने से पहले बाल्यावस्था मे ही इस ग्रन्थि मे यह सक्रियता हो जाए तो व्यक्ति की अस्थियो मे इतनी वृद्धि होती है कि ९–१० वर्ष का बालक छ फुट का हो जाता है। उसके शरीर मे स्थूलता नही होती। पुरुष या स्त्री सूचक लक्षणो की उत्पत्ति भी उसमे समय से पहले हो जाती है (Gonadotrophic Hormone की अधिकता वश)।

Acromegaly—(Acro = प्रान्त भाग, Megal = वृद्धि) करपादातिवृद्धि का रोग भी बहुत कम पाये जाने वाला है। यदि पिट्यूटरी ग्रन्थि मे Acidophil adenoma हो जाने से Growth Hormone की अधिकता २०–४० वर्ष की आयु मे पहुच कर हो जब कि अस्थियो की दीर्घता की प्रक्रिया समाप्त हो चुकती है तब कर, पाद, सिर आदि की अस्थिया दीर्घ न होकर आकार मे बडी व मोटी हो जाती है तथा उनके ऊपर के मृदु अवयव भी स्थूल हो जाते है जिससे हाथ, पाव, अधोहनु, नासा, गाल, अग्रकपाल आदि आकार मे बडे-बडे तथा इनकी त्वचा के नीचे का अवयव मोटा हो जाता है। पहले-पहल सिर, हाथ-पाव आकार मे बडे हो जाते है। जीभ, होठ, नाक, कान भी देखने मे मोटे दीखते हैं। कण्ठ नाली (Larynx) के बडे हो जाने से आवाज भारी हो जाती है। त्वचा भी देखने मे मोटी होती है। अगुलियो के सिरे मोटे होते है। इस रोग मे जवानी के लक्षण जल्दी आ जाते है। जननेन्द्रिय आकार मे बडी होती है। परन्तु कुछ काल बाद जब Basophil सेलो के दब जाने से उनका सूक्ष्मरस निकलना कम हो जाता है तब Adrenal Cortex से Androgens या Oestrogens की निकासी कम हो जाती है जिससे पुरुष मे पुस्त्वनाश तथा स्त्री मे आर्तव नाश का लक्षण हो जाता है। Pituitary के अर्बुद के कारण, दबाव के एक तो द्वितीय मस्तिष्क नाडी पर पडने तथा दूसरे कपाल के अन्दर बढने से रोगी को प्रतीत होने वाले लक्षणो मे से एक तो शिर दर्द तथा दूसरे दृष्टि-नैर्बल्य के लक्षण प्रधान होते हैं।

हृदय, यकृत्, आमाशय, फुफ्फुस, आत आदि आशय भी आकार मे बडे होते है जिससे रक्तभार बढा हुआ होता है, भूख अधिक लगती है तथा मलबन्ध अधिक रहता है। प्रारम्भ मे Thyroid ग्रन्थि मे वृद्धि हो जाने के कारण धात्वीय परिपचन प्रक्रिया (Metabolism) तीव्र होती है (BMR बढा हुआ होता) जिससे खाण्ड को सहने (Tolerance) की शक्ति घटी हुई होती है तथा हृदय गति तीव्र होती है। (Pituitary Hormone, Insulin का विरोधी होता है)। यदि रोगी के सीरम मे Inorganic Phosphorus की मात्रा बढी हुई हो (४½-६ मिलि० प्र०श०) तो इन उपर्युक्त दोनो रोगो का निश्चय हो जाता है। Bitemporal Hemianopsia भी इस रोग मे मिलता है। यह रोग एक बार होकर बढता ही जाता है। जल्दी ही इस ग्रन्थि मे Exhaustion Atrophy होने लगती है और Hypopituitarism के लक्षण होने लगते है। मृत्यु ३० वर्ष की आयु तक हृदय के फेल होने से, मधुमेह से, या मूत्र विष सचार से या किसी सक्रामक ज्वर से होती है। यह रोग कष्टसाध्य है।

चिकित्सा

यदि इस रोग के कारण Optic Chiasma पर अभी तक दबाव न पडा हो अर्थात् दृष्टि सम्बन्धी कोई उपद्रव न हो तो Pituitary Irradiation या Deep X-Ray चिकित्सा से लाभ हो सकता है। कहा जाता है कि Stilboestrol (Clinestrol, Glaxo) के ५ मिलि० मात्रा मे प्रतिदिन देने से पिट्यूटरी ग्रन्थि के Eosinophil भाग मे कमी आ जाती है अर्थात् उसका अर्बुद छोटा होने लगता है, इसलिये इस औषधि से लाभ हो सकता है। मधुमेह के उपद्रव के लिये भोजन सम्बन्धी पथ्य तथा Insulin से लाभ हो सकता है।

कुशिङ्ग का रोग (Cushing's Syndrome या Pituitary Basophilism)—

पिट्यूटरी के अग्रिम खण्ड के Basophil सेल समूह मे वृद्धि होने से या अर्बुद (Adenoma) होने पर Adrenal Cortex मे अति वृद्धि Hyperplasia होती है तथा उसमे से Glucocorticoids (Hydrocortisone) की अधिक उत्पत्ति होने के लक्षण प्रकट होते है, अर्थात् ऊपर कहे गये कुशिङ्ग के रोग (Cushing's Syndrome) के लक्षण होते हैं। यह रोग १५-३५ वर्ष की स्त्रियो मे होता तथा इसमे धड मे स्थूलता, रक्तभार वृद्धि, Hypergly-

caemia, Osteoporosis के लक्षण होते है । पिट्यूटरी के रोग के कारण कुशिङ्ग का रोग हो तो रोगी के मूत्र मे 17-Ketosteroids की मात्रा कम होती है जबकि Adrenal Cortex के कारण यह रोग हो तो मूत्र मे इनकी मात्रा अधिक होती है। यह रोग ४-५ वर्ष मे घातक हो सकता है।

सिर पर X-Ray चिकित्सा करने से या Radiotherapy से इसमे कई बार लाभ हो जाता है। अन्यथा Bilateral Adrenalectomy का शल्यकर्म करके बाद मे Addison के रोग की तरह उसकी चिकित्सा जारी रखनी चाहिये।

अग्रिम पिट्यूटरी दौर्बल्य, अग्रिम पिट्यूटरी ग्रन्थि की निष्क्रियता · Hypopituitarism, Simmond's Disease, Hypopituitary Cachexia —

इस रोग मे यह ग्रन्थि न्यूनाधिक नष्ट हो जाती है जिससे Trophic hormones के न निकलने से Sex-glands, Thyroid तथा Adrenocortex का कार्य मन्द हो जाता है।

यह रोग कभी-कभी देखने मे आता है। स्त्रियो मे २०-५० वर्ष की आयु मे होता है। स्त्री मे प्रसव के समय गर्भाशय मे से अति रक्तस्राव तथा Shock हो जाने पर अग्रिम पिट्यूटरी ग्रन्थि की शिराओ (Veins) मे Shock के कारण Thrombosis के हो जाने से जब उसका रक्तसचार कम हो जाता या बन्द हो जाता है तब उसमे रक्त के अभाव मे मृत्यु (Ischaemic Necrosis या Infarction) की प्रक्रिया हो सकती है अर्थात् इसमे स्नायुतन्तु (Scar Tissue) छा जाता है (Sheeham's Syndrome)। इसके Chromophobe सेल समूह मे अर्बुद (Adenoma या कैन्सर) के होने पर उसके दबाव से इसके दानेदार सेलो के निष्क्रिय हो जाने पर भी यह रोग होता है, पुरुषो मे यही कारण होता है। इस ग्रन्थि के क्षीण हो जाने से Gonads (प्रजनन ग्रन्थियो), गल ग्रन्थि (Thyroid) तथा वृक्कोत्तरीय ग्रन्थियो मे भी लघुता (Atrophy) उत्पन्न हो जाती है। शरीर के सर्व आशय आकार मे छोटे हो जाते है (Acromegaly के विपरीत) अतिलघन या तीव्र या चिरस्थायी पाण्डु रोग मे इस ग्रन्थि को रक्त न मिलने से Functional Hypopituitarism का रोग भी हो सकता है।

लक्षण

स्पष्ट है कि शरीर की वृद्धि या पोषण के कम हो जाने या बन्द हो जाने से इस रोग मे कृशता, शुष्कता, निर्बलता के लक्षण आते-जाते है। दूसरा स्त्री पुरुष सूचक लक्षण कम होते जाते हैं। तीसरा धात्वीय परिपचन (Metabolism) की प्रक्रिया मन्द एव मन्दतर होती जाती है। इस प्रकार इस रोग मे प्राय शरीर कृश होता जाता है। त्वचा, बाल, नख, दात आदि सब का पोषण घटता जाता है। शरीर मे अशक्ति बढती जाती है। क्षुधा नष्ट हो जाती है। जिससे Anorexia Nervosa से इसका सन्देह हो सकता है पर इस रोग मे चेहरे, कक्ष तथा गुप्त स्थान पर से बाल उडते जाते हैं। पुस्त्व शक्ति जाती रहती है। स्त्री मे बच्चा होने पर अतिरक्त स्राव और Shock (Sheeham's Syndrome) के बाद दूध नही उतरता (Prolactin के अभाव मे)। आर्तव नष्ट हो जाता है। त्वचा वृद्धो की तरह शुष्क तथा झुर्रीदार हो जाती है। वह फीके रग की होती है। Melanin नही बनता। इससे त्वचा और फीकी लगती है। Hypothyroidism के कारण तापमान नार्मल से नीचे होता है। हृदय गति मन्द होती है। B M R कम होता है जिससे सर्दी सहन नही होती। Adrenal insufficiency के कारण रक्तभार गिरा हुआ होता है। रक्त मे खाड की मात्रा कम होती है। जननेन्द्रिय छोटी पड जाती है। सबसे पहले इस रोग मे Sexglands मे दुर्बलता आती है। मूत्र मे 17-Ketosteroids तथा Corticoids की मात्रा घटी हुई होती है। मूत्र मे निकलने वाले Gonadotrophins अर्थात् Follicle Stimulating Hormone की मात्रा बहुत घटी हुई होती है।

कभी-कभी इस रोग मे त्वचा की शुष्कता, मलबद्ध, पलको पर भारीपन आदि Myxoedema के लक्षण होते है। परन्तु वे मूलत Thyroid की मन्दता से न होकर पहले Pituitary की मन्दता और फिर Thyroid की मन्दता से उत्पन्न होते हैं। इसीलिये इस रोग मे केवल Thyriod के प्रयोग से लाभ नही होता। Hypopituitarism मे Adrenal ग्रन्थि के स्रावो की कमी के होने के लक्षण भी हो सकते है तथापि इस रोग मे उसके Aldosterone की उत्पत्ति मे कभी कमी नही होती जिससे शरीर मे Pot Sod आदि की मात्रा की कोई विभिन्नता नही होती। त्वचा मे कालापन Pigmentation या Melanin की वृद्धि के सर्वथा न होने से इस रोग का उस रोग मे भेद हो जाता है। इस रोग की चिकित्सा न हो तो १-२ वर्ष मे रोगी के रक्त मे खाड की कमी हो जाने से होने वाली मूर्छा (Hypoglycaemic Coma) होकर मृत्यु हो सकती है।

वृद्धि नाश : Infantilism—Pituitary Infantilism

यदि अग्रिम पिट्यूटरी ग्रन्थि के Chromophobe सेल समूह मे अर्बुद (Adenoma) छोटी आयु मे हो जाए और उसके कारण Chromophil सेल समूह दब जाय तो बालक के वृद्धिकारक सूक्ष्म रस (Growth Hormone) के अभाव मे शारीरिक वृद्धि नही होती। हो सकता है कि Chromophobe सेलो मे से दानेदार सेलो (Granular Cells) की उत्पत्ति बडी मन्दता से हो रही हो, इससे भी बालक मे वृद्धि नही होती।

ऐसी अवस्था मे जब पिट्यूटरी मे लघुता (Atrophy) होती है तब शरीर की वृद्धि भी रुकी रहती है। अस्थिया दीर्घ नही होती। प्रजननेन्द्रियो मे भी वृद्धि नही होती। कन्या मे स्तन ग्रन्थियो तथा गर्भाशय मे वृद्धि नही होती। आर्तव प्रकट नही होता। बालक मे जननेन्द्रिय तथा अण्ड छोटे ही रह जाते है। उसकी जननेन्द्रिय मे हर्ष नही होता। वीर्य (Spermatozoa) की उत्पत्ति नही होती। गुप्त स्थान मे तथा कक्ष मे बाल नही आते। इस रोग मे आयु की अपेक्षा शरीर तथा जननेन्द्रिया अविकसित रहती है। यह रोग बहुधा बालको मे होता है, कन्याओ मे कम होता है। इस रोग मे यद्यपि शारीरिक वृद्धि नही होती पर मानसिक वृद्धि नार्मल होती है। शरीर पतला ही रहता है। पहले-पहल Loraine (१८७१) ने इस रोग की ओर हमारा ध्यान खीचा था। फिर Levi (१९०८) ने यह बताया कि यह रोग Pituitary ग्रन्थि की मन्दता से होता है, इसलिये इस रोग को Levi- Loraine Syndrome भी कहते है।

Dwarfism वामनत्व—Prepubertal Hypopituitarism

इस ग्रन्थि के Eosinophil cells और उनके Growth hormone की जन्म से ही कमी हो तो उसकी अस्थियो मे वृद्धि नही होती।

अति दीर्घता या Gigantism के विपरीत Hypopituitarism के कारण यदि बालकपन मे अस्थियो की वृद्धि न हो और कद नार्मल से बहुत कम रह जाए तो उसे Dwarfism का रोग कहते है। इसमे जननेन्द्रियो पर कोई दुष्प्रभाव नही पडता। वे शरीर और आयु के अनुरूप होती हैं। इस रोग मे केवल अस्थियो की वृद्धि नही होती। बाद मे Gonadotrophin मे भी कमी आ जाये तो जवानी नही आती और Sexual Infantilism भी हो जाता है। इस रोग का पता ५ वर्ष के बाद लगता है। इसमे ऊपर का शरीर नीचे Symphysis से पादतल की लम्बाई से अधिक होता है।

Frohlich's Type of Infantilism या Dystrophia Adiposogenitalis या Adiposogenitalis Syndrome स्थूलता युक्त वृद्धि नाश :

इस रोग मे Hypogonadism, स्थूलता, अस्थियो मे वृद्धि नाश के लक्षण होते है।

यह एक बहुत कम मिलने वाला रोग है। इसमे Infantilism के साथ स्थूलता का लक्षण रहता है। बालक मे युवावस्था से पहले ही पिट्यूटरी का अग्रिम खण्ड क्षीण हो जाए या वह अथवा Hypothalamus किसी ग्रन्थि (Supracellar, Craniopharyngioma या Glioma) के कारण दब जाए या इनमे Adenoma हो जाए तो शरीर की तथा जननेन्द्रियो की वृद्धि के रुकने (Hypogonadism) के साथ-साथ उसके जघन स्थान (Hips) ऊर्ध्व बाहुओ, कोष्ठ, कन्धो, ऊर्ध्व जघाओ, स्तन प्रदेशो पर अधिक वसा भी छा जाती है। अग्र बाहु, अधो जघायें पतली ही रहती है। मानसिक अवस्था नार्मल होती है यद्यपि कभी-कभी इसमे अतिनिद्रा (Somnolence) का लक्षण भी होता है। इस प्रकार इस रोग मे शरीर बालको का सा रहता तथा साथ ही पतला न रहकर स्थूलता युक्त होता है। स्थूलता, क्षुधा की तथा निद्रा की अधिकता के कारण होती है। इसे Frohlich's Type of Infantilism कहते हैं।

पिट्यूटरी दौर्बल्य या Hypopituitarism की चिकित्सा :

इस ग्रन्थि मे विशेषत Chromophobe सेलो मे विद्यमान अर्बुद के लिये Radiotherapy से लाभ हो सकता है। इसके अतिरिक्त पिट्यूटरी ग्रन्थि के कृत्रिम सूक्ष्म रसो का प्रयोग करने (Replacement Therapy) से यह रोग अच्छा हो जाता है। युवावस्था के आने पर Gonadotrophin therapy शुरू करनी चाहिये। एतदर्थ Human chorionic gonadotrophin को ५००—१००० I U मात्रा मे सप्ताह मे ३ बार मास द्वारा दे। इस चिकित्सा को ६-८ सप्ताह जारी रखे। इससे जवानी आ सकती है। इससे पूर्ण लाभ न हो तो Testosterone देवे।

इस रोग मे अभी तक तो यही किया जा सकता है कि बाजार मे सुलभ Adrenocortex, Thyroid तथा Gonads के सूक्ष्म रसो (Hormones) को मुख द्वारा बहुत दिनो जारी रखा जाए।

सबसे पहले Adrenal Cortex की न्यूनता को पूर्ण करना चाहिए। इसके लिये Cortisone Acetate १२ ५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ बार दे देना चाहिए।

इसके प्रयोग से शरीर तथा मन दोनो का पोषण बढ जाता है, मानसिक मन्दता जाती रहती है, पाण्डुता का लक्षण शान्त होने लगता है, रक्तभार बढता है, भूख बढती है तथा वोझ बढने लगता है। इससे श्वयथु (Oedema) के होने का डर हो तो Dexamethasone ५-२ मिलि० दैनिक मात्रा मे बाट कर दे। यदि Hypothyroidism या Myxoedema के लक्षण हो तो ऊपर की औषधि के १० दिन बाद l-Thyroxine Sodium को ·१ मिलि० मात्रा मे (या Thyroid को ½ ग्रेन दैनिक मात्रा मे) देना आरम्भ कर देना चाहिये, इसे बाद मे देना चाहिये। Cortisone मे पहले इसका प्रयोग करने से अर्थात् Adrenal Cortex की मन्दता मे इसका प्रयोग करने मे Addison के रोग के हो जाने का भय रहता है।

स्त्री पुरुष सूचक चिन्हो के लुप्त हो जाने सम्बन्धी लक्षणो की शान्ति के लिए पुरुष मे या वालक मे १०-२५ मिलि० मात्रा मे Methyl testosterone का प्रतिदिन प्रयोग करना चाहिए अथवा देर तक अपना प्रभाव रखने वाले Testosterone, Ester का जैसे उसके Phenylpropionate Perandren-inje या Oenanthate (testoviron depot) या Decanoate ५०-१०० मिलि० का मास मे १ बार मास द्वारा प्रयोग करते रहना चाहिए। या Anabolic Steroid जैसे Fluoxymesterone (Halotestin) का या Methandienone (Dianabol) को २-१० मिलि० दैनिक मात्रा मे पुरुष तथा स्त्री दोनो मे प्रयोग करना चाहिए। स्त्री मे Oestrogen की कमी को पूरा करने के लिए Ethinyloestradiole ०५ मिलि० दिन मे ३ बार दे या Dienoestrol (Neo Clinestrol Glaxo) को १-२ मिलि० मात्रा मे या Diethyl Stilboestrol (Stilbindon या Clinestrol) को ½-१ मिलि० मात्रा मे मास मे २१ दिन तक प्रतिदिन देना चाहिए। इस चिकित्सा को जीवनपर्यन्त कायम रखना पडता है। जब कोई रोग हो जाए या कोई शल्यकर्म करना आवश्यक हो जाए तब Cortisone Acetate की मात्रा बढा देनी चाहिए।

हस्ती मेह —Diabetes Insipidus

पिट्यूटरी ग्रन्थि के पश्चिम भाग (Posterior Lobe या Pars Nervosa जो Neuroglia से बना है) के Extract के देने से एक तो गर्भाशय सकोचक (Oxytocic) प्रभाव होता है जिसका कारणभूत सूक्ष्म रस (Hormone Oxytocin) Pitocin के रूप मे पृथक् बाजार मे मिलता है। इसके अतिरिक्त उसमे एक दूसरा सूक्ष्म रस Pitressin भी है जो रक्त के द्वारा वृक्को मे पहुचकर उनकी मूत्र स्राविणियो के पिछले भाग मे विद्यमान Loops of Henle की झिल्ली (Epithelium) पर प्रभाव करके मूत्र मे से बहुत से जल भाग को पुनर्विलीन कर लेने का कार्य करता है। एव इसके मूत्र विरोधी होने से इसे Antidiuretic Hormone भी कहा जाता है। Post Pituitary Hormone का यह अश रक्तभार वर्धक भी होता है जिससे इसे Vasopressin भी कहते हैं। यह रक्तनालियो तथा आन्त्रिक मासपेशियो की सहज शक्ति का वर्धक होता है।

कारण

Hypothalamus मे विद्यमान Supra optic nucleus इस पश्चिम खण्ड का नियामक होता है। उसमे या उसे इस खण्ड के साथ जोडने वाले सयोजक भाग अर्थात् Hypothalamo-Hypophysial मार्ग (Tract of Nerve fibres मे अर्बुद (Adenoma, Sarcoma, Secondary Cancer) हो जाए या वहा Inter Peduncular Fossa मे फिरग जनित या क्षय जनित Meningitis हो जाए या सिर पर भारी चोट लगने से (Base of the Skull मे Fracture से) यह भाग क्षत हो जाए तो मूत्र शोषक सूक्ष्म रस या Antidiuretic hormone के कम उत्पन्न होने से अतिमेह या हस्तिमेह का रोग हो जाता है।

सौभाग्य मे यह रोग बहुत कम पाया जाता है। जब होता है तब यह रोग युवक पुरुषो मे होता तथा धीरे-धीरे आरम्भ होता और चिरकाल तक रहता है। मूत्र की मात्रा अति अधिक बढ जाती है, ७-८ लिटर से भी ज्यादा हो जाती है। उसकी आपेक्षिक गुरुता १ ००६ के लगभग होती है। मूत्र के अधिक आने से पिपासा अधिक बढ जाती है, कृशता बढती जाती है, त्वचा शुष्क रहती है, स्वेद नष्ट हो जाता है, मलबन्ध रहता है। मधुमेह तथा जीर्ण वृक्क रोग से इसका भेद करना चाहिए जो सुगम है।

रोग मन्द रूप मे हो तो अधिक जल के पीते रहने से विशेष दुर्लक्षण नही होते। रोगी को चाहिए कि वह प्रोटीन भोजन कम ले। लवण का सेवन भी कम करे। Vasopressin Tannate (Pitressin Tannate) ½-१ मिलि० (In Oil) को मासद्वारा सायकाल प्रति तीसरे दिन सदा देते रहने से रोग दवा रहता है। अम्पूल को गर्म करे तथा हिलाकर उसे ले। Pituitrin देना हो तो उसे १ सी० सी० मास द्वारा प्रतिदिन दिन मे दो बार देना पडता है। Post Pituitary Snuff दिन मे ४-५ बार ले लिया जाए

तो इससे भी कम खर्च मे ही रोग दबा रहता है। इसका Synthetic Nasal Spray (५ मिलि लि०, ५० Pressor Units प्रति मि० लि०, Sandoz) भी मिलने लगा है जिसके रोज दो-चार बार लेने से इस रोग मे आराम रहता है।

मेदोवृद्धि Obesity (Obesus = having eaten)

शरीर मे फैट के सचित होने के स्थानो मे फैट अधिक सचित हो जाये तो उसे मेदोवृद्धि कहते है। Adipose tissue मे सेलो का आकार तथा उनकी सख्या दोनो बढे होते हैं।

यदि आयु और ऊचाई के अनुसार जितना भार होना चाहिए उससे १० प्रतिशत तक या उससे अधिक भार बढा हुआ हो तो उसे मेदोवृद्धि का रोग कहते है। यह समृद्ध देशो और शहरी समृद्ध लोगो मे पाया जाने वाला रोग है। यह रोग दो प्रकार का है। एक आभ्यन्तर (Endogenous) दूसरा बाह्य (Exogenous)। आभ्यन्तर कारणो जैसे Endocrine, Nervous या शरीर मे नमक और जल के Metabolism मे कोई विकृति हो तो उसे Endogenous कहते हैं। अतिपोषणजनित हो तो उसे Exogenous कहते हैं।

आभ्यन्तर मेदोवृद्धि—Hypothalamus मे एक Satiety केन्द्र दूसरा पास ही Feeding केन्द्र है। इन पर रक्त के ग्लूकोज तथा Fatty Acids का प्रभाव होकर व्यक्ति को क्षुधा की प्रतीति या निवृत्ति होती लगती है। यदि इनमे से Satiety केन्द्र पर Pituitary ग्रथि मे हुए Adenoma का दबाव पड जाए तो Feeding केन्द्र पर नियन्त्रण कम हो जाता है जिससे भूख बढ जाती है। इसी से उपर्युक्त Frohlich's Syndrome हो जाता है जिसमे बालक की बाहुए, जघाए, धड, जघन प्रदेश भारी हो जाते है।

इसी प्रकार यदि Adrenal Cortex अधिक सक्रिय हो जाए अर्थात् उसमे Cortical Hyperplasia हो जाए या Anterior Pituitary मे Basophil Adenoma होकर उसमे से उसका सूक्ष्म रस ACTH अधिक निकलने लगे तो भी Adrenal Cortex के उत्तेजित हो जाने से Cushing का रोग हो जाता है जिसमे चेहरे, ग्रीवा तथा धड पर बहुत अधिक वसा आ जाती है (शाखाए पतली रहती हैं) Hypothyroidism मे B M R तथा व्यायाम घट जाने से स्थूलता आ जाती है।

इसी प्रकार यदि Ovaries को निकाल दिया जाए या उनका एव अड-ग्रथियो का अन्त स्राव Hormone कम हो जाए अर्थात् Hypogonadism रोग हो जाए तो Antipituitary पर उनका नियत्रण कम हो जाने से भी शरीर मे चर्बी बढ जाती है। इसीलिए मध्यमायु के बाद जब Sex activity शरीर मे कम हो जाती है, दूसरे शब्दो मे लिंगी ग्रन्थियो के अन्त स्राव मन्द पड जाते हैं तब Menopause के काल मे स्त्री-पुरुषो की छाती, पेट, ऊर्ध्व, जघा और जघन प्रदेशो मे स्थूलता आ जाती है।

इनके अतिरिक्त कुछ एक मे जन्म से ही मेदोवृद्धि की प्रवृत्ति होती है। (Genetic or Idiopathic Obesity) माता-पिता मे से एक भारी हो तो बालक मे ५०% सभावना भारी होने की रहती है। दोनो भारी हो तो ७५% सभावना भारी होने की रहती है।

बाह्य मेदोवृद्धि—उपर्युक्त आभ्यन्तर कारणो से होने वाली मेदोवृद्धि कम पाई जाती है। अधिकत तो बाह्य कारणो से होने वाली या आगन्तु मेदोवृद्धि अधिक पाई जाती है। ऊपर कहा है Hypothalamus मे अन्दर की ओर Satiety केन्द्र अर्थात् तृप्ति केन्द्र है, बाहर की ओर feeding केन्द्र है। साधारणत इनमे सतुलन रहता है। इनमे जब सतुलन विकृत होता है शरीर तभी भारी हो सकता है। वह तभी भारी होता है जब शरीर के लिए जितनी कैलोरी लेनी आवश्यक हैं उससे अधिक ली जाएं। शरीर में भार को नियत्रित रखने की कोई मशीनरी है जिसके कारण मनुष्य को जितनी कैलोरीज की आवश्यकता होती है उसे उतनी ही भूख लगती है। उतनी कैलोरीज ले लेने के बाद उसका चित्त भर जाता या तृप्ति हो जाती है। इस मशीनरी मे कभी-कभी कोई विकृति आ जाती है जिससे मनुष्य अधिकाधिक कैलोरीज लेने लगता है जो शरीर मे वसा के रूप मे सचित हो जाती है। इस प्रकार जितने भोजन का शरीर मे खर्चा है उससे अधिक लिया जाए तो वह शरीर मे मेदोवृद्धि का कारण हो जाता है। प्राय लोग युवावस्था के ढलने के बाद अर्थात् ४०, ४५ वर्ष की आयु के बाद भारी होने लगते है। कारण यह है कि इस आयु के आने पर शारीरिक श्रम और B M R तो पहले से कम हो जाता है और भोजन जितना लेने की आदत पड जाती है उतना ही जारी रहता है अर्थात् आमद Intake से निकासी (Output of Calories) घट जाती है जिससे शरीर मे मेदा बढ जाती है। कसरत करने वाले पहलवान भी इसी कारण मध्यमायु के बाद बहुत भारी हो जाया करते है। अधिक मात्रा का आहार इस रोग का प्रधान कारण है। शारीरिक श्रम की कमी उसकी अपेक्षा गौण कारण है। शरीर के वसामय प्रदेशो मे जो वसा है, श्रम के समय ५०% शक्ति उसी मे से Free fatty acids के रूप मे आती है तथा इस वसा या Triglycerides का बहुत बडा भाग ग्लू-

कोज के मेटाबोलिज्म का परिणाम होता है। अत यदि ग्लूकोज या कार्बोज भोजन अधिक लिया जाये तो शरीर मे Lipogenesis अधिक होता एव व्यक्ति स्थूल हो जाता है। अब यदि कार्बोज भोजन कम लिया जाये तो Lipogenesis कम हो जाता और श्रम करने पर Free fatty acids के प्लाज्मा मे आने से Lipolysis ज्यादा होता एव शरीर पतला हो जाता है। स्थूल मे स्वभावत Lipolysis की प्रक्रिया निर्बल होती है।

एक स्वस्थ मनुष्य जो साधारण शारीरिक श्रम भी करता है दिन मे ४०० ग्राम कार्बोहाइड्रेट, ७५–१०० ग्राम के लगभग प्रोटीन और इतना ही फैट लेता है। इतने के लगभग भोजन मे ढाई-तीन हजार के लगभग कैलोरीज वह ले लेता है परतु यदि वही मनुष्य सदा सवारी मे चलने लगे, पैदल चले नही, दूसरा कोई शारीरिक श्रम भी न करे जैसे कि प्राय धनाढ्य व्यक्ति करते है तो इतना भोजन उसके लिए मेदोवर्धक हो जाता है। उदाहरणत यदि कोई मनुष्य १ औस फैट रोज ही जरूरत से ज्यादा लेता रहे तो एक वर्ष मे उसका भार २० पौंड बढ सकता है। मध्यमायु के बाद अधिकत लोग कार्बोहाइड्रेट और फैट को अधिक मात्रा मे लेते है और ये ही मेदा को अधिक बढाने वाले होते है। स्त्रिया पुरुषो की अपेक्षा अधिक आरामपसद और आसनशील होती हैं अत मेदोवृद्धि का रोग उनमे पुरुषो की अपेक्षा अधिक होता है। मीठा, मिठाई, घी, अन्न आदि पदार्थ अधिक कैलोरीज के होते हैं। इनके अधिक मात्रा मे सेवन करने से मेदोवृद्धि विशेष होती है। पुरुष मे मेदोवृद्धि धड मे होती है स्त्री मे मेदोवृद्धि विशेषत टागो तथा धड के निचले भाग मे होती है।

शरीर मे जब मेदा बढती है तो वह शरीर के कुछ अगो मे, जैसे पेट के Omentum तथा Mesentery मे और इनके अतिरिक्त अग्न्याशय (Pancreas) तथा यकृत् मे विशेषत जमा हो जाती है। इनके अतिरिक्त वह हृदय और रक्तवाहिनियो की दीवारो मे Cholesterol, Phospholipids, triglyceride के रूप मे भी जमा होती है। इससे जहा हृदय और यकृत् आकार मे बडे हो जाते है वहा रक्तवाहिनिया भी मोटी हो जाती हैं। दूसरे शब्दो मे उनमे Atherosclerosis का रोग हो जाता है तथा रक्तभार वृद्धि या Hypertension तथा Left Ventricular hypertrophy का रोग हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि स्थूल व्यक्ति मे Fatty infiltration होने के कारण हृदय के फेल होने का भय विशेष रहता है, जो ५०-६० वर्ष की आयु के बीच मे होता है। धमनियो के रोग के कारण उसमे हृदय शूल (Angina) के होने तथा इससे कुछ बडी आयु मे मस्तिष्क सम्बन्धी पक्षाघात (Hemiplegia) व सन्यास मूर्छा (Stroke) के होने की आशका भी अधिक रहती है। नार्मल व्यक्तियो मे हृदय तथा रक्तवाहिनियो के रोग के कारण जितनी मृत्यु होती है स्थूल व्यक्तियो मे उससे ६२% अधिक मृत्यु होती है। स्थूल व्यक्तियो मे ४० वर्ष की आयु के बाद मधुमेह (Diabetes) के होने की भी आशका पतले आदमी की अपेक्षा चार गुणा रहती है। परीक्षक लोग बताते है कि शरीर के एक औस फैट मे जो रक्तवाहिनिया होती है उनको एक सीध मे रखा जाए तो वे एक मील के लगभग लबी होती हैं। अब अनुमान किया जा सकता है कि यदि शरीर मे कई पौंड्स चर्बी अधिक है तो उसके कारण इतनी अधिक रक्तवाहिनिया उत्पन्न हो जाती है जो लम्बाई मे कई मील होती है। इससे स्पष्ट है कि इनके कारण हृदय पर कार्यभार कितना अधिक बढ जाता है और उसके फेल होने की आशका बढ जाती है। इसीलिए मेदोवृद्धि का रोग मनुष्य की आयु के कम करने का एक बडा कारण बन जाता है। कहा जाता है कि ४५ वर्ष की आयु मे यदि किसी का भार, आदर्श भार से २५ पौंड ज्यादा हो, तो वह ६० वर्ष की आयु तक कठिनता से जी सकता है जबकि अगर उसका वजन आदर्श भार के निकट होता तो वही ८० वर्ष तक भी जीता रह सकता था। जितना ही शरीर का भार आदर्श भार से ज्यादा हो और जितनी ही आयु ज्यादा हो उतनी ही मृत्यु की आशका ज्यादा रहती है। हिसाब लगाने वाले बताते है कि यदि भार आदर्श भार से १० पौंड ज्यादा हो तो औसतन मृत्यु से ८ प्र०श० अधिक मृत्यु का भय रहता है। यदि २० पौंड भार ज्यादा हो तो १८ प्र०श०, ३० पौंड ज्यादा हो तो २८ प्र०श० और ५० पौंड ज्यादा हो तो ५६ प्र०श० औसतन मृत्यु की अपेक्षा मृत्यु का भय बढ जाता है। साधारण नियम के रूप मे कहा जा सकता है कि यदि भार आदर्श भार से १ प्र०श० ज्यादा हो तो आयु मे भी नार्मल से १ प्र०श० की न्यूनता आ जाती है। अति स्थूल व्यक्ति मे मधुमेह तथा हृदय रोग होने की सभावना अधिक रहती है। साथ ही स्थूल व्यक्ति मे मधुमेह दूसरे मधुमेही की अपेक्षा २½ गुणा घातक होता है। इसी प्रकार स्थूल व्यक्ति मे हृदय रोग दूसरे हृदय रोगी की अपेक्षा ६०% से भी अधिक घातक सिद्ध हुआ है। स्थूल व्यक्ति मे थोडा श्रम करने से ही श्वास काठिन्य Dyspnoea हो जाता है एव Hypercapnoea-CO^2 के अन्दर बढ जाने का भय रहता है। स्थूल व्यक्ति मे Hypoxia होता एव Somnolence या निद्राधिक्य का लक्षण रहता है। हृदय और रक्तवाहिनियो के उपद्रवो के अतिरिक्त स्थूल व्यक्ति मे पित्ताशय मे पथरियो या Gall

Bladder Calculi cholelithiasis के होने का रोग भी सामान्य व्यक्तियो की अपेक्षा दो गुना होता हुआ पाया जाता है। स्थूल व्यक्तियो मे गोडे, वक्षण, कटि मे Osteo arthritis का रोग भी होता हुआ पाया जाता है। उसमे चिरस्थायी कास (C Bronchitis तथा Emphysema) रोग भी हो सकता है। इसी प्रकार उसमें Flat Foot तथा Varicose Veins होने का रोग भी हो सकता है। स्त्री स्थूल हो तो उसके गर्भाशय मे कैन्सर होने या उसे मधुमेह हाने, गुर्दे के रोग होने की सभावना अधिक रहती है। इस प्रकार मेदोवृद्धि का रोग जिसे साधारण रोग समझा जाता है अनेकानेक उपद्रवो का कारण हो जाता है।

चिकित्सा

इस रोग की प्रतिरोधक चिकित्सा ही आसान है। इस रोग के बढ जाने पर फिर इसकी चिकित्सा करना कठिन होता है। जब भी शरीर भारी होने लगे तभी उसका प्रत्युपाय करना चाहिए। शरीर मे ली जानेवाली कैलोरीज को कम कर देना चाहिए तथा नित्यप्रति कुछ न कुछ व्यायाम या शारीरिक श्रम करना आरभ कर देना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को प्रोटीन्स तथा सागी सब्जियो और फलो आदि प्राकृतिक आहारो पर ही प्रधानत रहना चाहिए। कार्बोहाइड्रेट्स तथा फैट्सकी मात्रा कम कर देनी चाहिए। अधिक कैलोरीज वाले भोजनो का जैसे खाड, मिठाई, घी, केक, चॉकलेट, पेस्ट्री, आलू, चावल आदि का परहेज रखना चाहिए। रक्त मे Cholesterol की मात्रा को २०० मिलि० प्र०-श० से नीचे रखना चाहिए। २५० मिलि० प्र०श० से ऊपर हो जाने से हार्ट अटैक की आशका रहती है। (दूध १ किलो मे कोलिस्टिरोल १०० मिलि० है। पनीर १०० ग्राम मे १०० मिलि० है। चावल १ बडे चम्मच मे ४० मिलि०, अण्डे के पीले भाग मे ३०० मिलि० है, श्वेत भाग मे यह नही होता।)

इस रोग के बढ जाने पर स्वल्पाहार चिकित्सा (Low Calorie Diet) ही इसकी प्रधान चिकित्सा है अर्थात् अपने आदर्श भार के लिए जितनी कैलोरीज चाहिए हो उससे कुछ कम कैलोरीज ली जाये तो शरीर हलका हो जाता है। इसमे कितना भार कम होता है इसका फार्मूला यह है कि आवश्यक कैलोरीज मे से जितनी कैलोरीज ली जा रही हो उसे घटाकर उसे ४००० से भाग दे दे, जो भागफल आए उतने पौंड दैनिक भार की कमी हो जाती है। उदाहरणत आदर्श भार के अनुसार २५सौ कैलोरीज आवश्यक हो और रोगी केवल १५सौ कैलोरीज रोज लेने लगे तो $\left(\frac{२५००-१५००}{४०००} = \frac{१}{४} \text{ पौंड}\right)$ प्रतिदिन उसका $\frac{१}{४}$ पौंड भार कम हो जाता है अर्थात् सप्ताह मे लगभग १-१$\frac{१}{२}$ पौंड भार कम होने लगता है। साधारणत प्रति किलो भार के पीछे ३५ कैलोरीज का भोजन दिया जाता है। यदि उसके स्थान पर २० कैलोरीज का आहार ही दिया जाने लगे तो रोगी की स्थूलता हटने लगती है। इस प्रकार यदि आदर्श भार ७० किलो रोगी का हो तो उसे २५ या ३० सौ कैलोरीज के स्थान पर प्रतिदिन १५सौ कैलोरीज के लगभग का आहार ही मिलना चाहिए जिसमे प्रोटीन आहार उसे अधिक भी दिया जा सकता है अर्थात् प्रति किलो के पीछे १-१$\frac{१}{२}$ ग्राम दिया जा सकता है। इस प्रकार यह उसे ७०-१०० ग्राम के लगभग रोज दिया जा सकता है। कार्बोहाइड्रेट्स भोजन उसे इसमे कुछ ज्यादा अर्थात् १२५-१५० ग्राम तक रोज दिया जा सकता है। फैट उसे प्रति किलो भार के पीछे आधे ग्राम के लगभग अर्थात् ३०-३५ ग्राम दैनिक दिया जा सकता है ताकि भोजन बेस्वाद न हो जाए। इस प्रकार देने से उसे दैनिक १२-१५ सौ कैलोरीज का आहार रोज दिया जा सकता है। इससे सप्ताह मे उसका १-१$\frac{१}{२}$ पौंड भार कम किया जा सकता है। यदि भोजन १० सौ कैलोरीज तक का ही दिया जाए तो भार मे और भी अधिक कमी की जा सकती है। इसके लिये शाकाहारी को चाहिये कि वह दिन भर मे आटा या चावल १०० ग्राम तक, दूध (Skimmed) आधा लिटर, सब्जी आधा किलो, दाल २५ ग्राम, घी १५ ग्राम, डबल रोटी ६० ग्राम, कोई फल दो दाने तक, निम्बू २ अदद, खाड २ चम्मच, चाय १-२ बार तक ले। मासाहारियो को चाहिये कि वे आटा ७५ ग्राम, दूध (Skimmed) चौथाई लिटर, अण्डे २, मास १२५ ग्राम, सब्जिया आधा किलो, डबल रोटी ३० ग्राम, फल १ अदद, निम्बू २ अदद, घी १० ग्राम की दैनिक मात्रा तक ले। १५ सौ तक की कैलोरीज प्रतिदिन देनी हो तो रोगी को दिन भर मे १ प्वाइट सपरेटा दूध, ४-५ गेहूँ के साधारण खुश्क फुलके, १० प्र०श० कार्बोहाइड्रेट वाली कोई सब्जी आध सेर तक, कोई मौसमी सतरा आदि फल १ पाव तक, तेल या घृत $\frac{१}{२}$ औंस तक दिये जा सकते हैं। चाय, काफी आदि भी दिये जा सकते हैं। नमक की मात्रा कम होनी चाहिये, २-३ ग्राम दैनिक ठीक है। सब्जियो मे अधिक कैलोरी वाली आलू, फलिया आदि नही देनी चाहिए। खाड के स्थान पर Saccharin का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार के भोजन से विटामिन ए, डी तथा विटामिन बी कॉम्प्लैक्स की कमी हो सकती है अत रोगी को इनका प्रयोग भी कराना चाहिए। दिन मे २ बार भोजन के स्थान पर उसे चाहिये कि दिन भर मे ५-६ बार स्वल्पाहार ले।

उपवास चिकित्सा—जो रोगी उपवास रख सकता हो उसे ४-१४ दिन का पूर्ण लघन करा लिया जाए तो रोगी का १॥, २ पौंड भार प्रतिदिन घट जाता है। केवल पहले दिन कुछ कष्ट होता है। बाद मे रोगी की भूख स्वय मर जाती है। उपवास के दौरान मे केवल जल या नीबू मिश्रित जल दिया जा सकता है। उपवास के बाद भी रोगी को उपर्युक्त स्वल्पाहार पर रहना चाहिए या सप्ताह मे एक दिन का पूर्ण लघन रखना चाहिए।

व्यायाम चिकित्सा—व्यायाम या भ्रमण से अधिक कैलोरीज खर्च होती है। उदाहरणत १ घटे के भ्रमण से १२०-१४० कैलोरीज (१ किलो भार के पीछे ३ कैलो के लगभग) खर्च होती हे परन्तु १।२ औंस फैट या एक छोटी रोटी से ये कैलोरीज पूर्ण हो जाती है, अत केवल व्यायाम से लाभ नही हो सकता। स्वल्पाहार चिकित्सा के साथ इससे लाभ हो सकता है। पर स्थूल रोगी एक तो विशेप किसी व्यायाम को कर नही सकता। यदि वह व्यायाम कुछ करता भी हे तो भूख के बढ जाने से उसके आहार के बढ जाने का भय रहता है।

औषधि चिकित्सा—क्षुधा शामक औपधियो (Anorexients) मे से किसी का प्रयोग भी किया जा सकता है परन्तु इनके साथ भी स्वल्पाहार या Low Caloric Diet का प्रयोग करना चाहिए। Amphetamine Sulphate (Benzedrine) को ५-१० मिलि० मात्रा मे या Dexamphetamine Sulphate (Dexedrine) को २ ५-५ मिलि० मात्रा मे या Phenmetrazine Hydrochloride (Preludin) को १२ ५-२५ मिलि० मात्रा मे या Phendimentrazine (Plegine) को १७ ५—३५ मिलि० मात्रा मे प्रातराश तथा मध्याह्न के खाने से आधा घटा पहले दिन मे २ बार दे देना चाहिए। परन्तु यदि रोगी मे हृदय रोग हो या विक्षोभशीलता या उन्निद्रता के लक्षण हो तो पहली दोनो औपधियो का प्रयोग नही करना चाहिए। मूत्रल औषधियो के प्रयोग से भी भार घटता है। १०-१० दिन के अन्तर से सुबह किसी Diuretic का प्रयोग होना चाहिए।

आयुर्वेद में मेदोरोग—चरक ने कहा हैं बीज स्वभाव से भी स्थौल्य रोग होता हैं। उसके अतिरिक्त, अति सन्तर्पण, गुरुशीत स्निग्ध गुण, मधुर रस आहारो के अत्युपयोग, अव्यायाम, अत्यासन से भी यह रोग होता है। तथा शरीर के स्थूल हो जाने से शरीर दुर्बल रहता है तथा आयु का ह्रास हो जाता है। कफ रोगो में इस रोग की गणना हुई हैं। मेदो वृद्धि के लिये निम्नलिखित योगो मे से किसी का प्रयोग किया जा सकता है। ये सब योग कफवात शामक हैं :—

(१) अमृतादि गुग्गुलु (भै. र.) गिलोय १, इलायची छोटी २, विडग ३, कुटजत्वक् ४, इन्द्र जौ ५, हरड ६, गुग्गुल ७ भाग का चूर्ण बनाकर इसे ३-४ माशा मात्रा मे मधुयुक्त जल से पिलायें।

(२) चन्द्रप्रभा वटी (व से.) का गिलोय त्रिफला चारो के क्वाथ के साथ प्रयोग करें।

(३) षडूषण गुग्गुलु (यो. र) पञ्चकोल तथा मरिच और गूगल प्रत्येक समान-समान के चूर्ण को २-३ माशा मात्रा मे मधुयुक्त जल से दे। गूगल को गोघृत से साधित करके डालें।

(४) महायोगराज गुग्गुलु (शा ध. स) की दो गोलिया मधूदक से दें।

(५) फल त्रिकादिचूर्ण (व से.) त्रिफला त्रिकटु सैन्धव सातो के समान-समान चूर्ण का जल से ६ मास सेवन करायें।

(६) त्रिफला क्वाथ (यो र) मे मधु डालकर ठण्डा हो जाने पर देवें।

(७) मधु योग (वै जी.) शीतल जल के एक प्याले मे ५ तोला मधु डालकर सुबह रोज पिलायें। या जल मे निम्बु रस तथा मधु डालकर पिलायें।

(८) बडवाग्नि रस (र सा.स.) पारा गधक १-१ भाग कज्जली ताम्रभस्म शुद्ध हरताल १-१ भाग मिला कर एक दिन अर्क पत्र रस मे घोटकर २ रत्ती की गोलिया बनायें, शहद से चाटकर ऊपर शहद का शर्बत पियें।

(९) त्र्यूषणादिलोह (यो र) त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, चीता, विड, सैन्धव, सौवर्चल, बावची, लोहभस्म समान-समान मिला कर चूर्ण करें। १-२ माशा मात्रा घृत मधु से चाटें।

लिंगी ग्रन्थियो (Sex Glands) के रोग

(१) पुल्लिगी ग्रन्थि नैर्बल्य, अण्ड ग्रन्थि नैर्बल्य : Male Hypogonadism

स्त्री-पुरुष लिंग विनिर्णय (Sex Determination)

अमुक व्यक्ति स्त्री है या पुरुष इसका निर्णय लिंगी ग्रथियो को देख कर किया जाता है क्योकि स्त्री का स्त्रीत्व

उसकी Ovaries पर तथा पुरुष का पुरुषत्व उसकी अण्ड ग्रथियो पर निर्भर है। सन् १९५९ मे सेलो की मीगियो (Cell Nuclei) की सूक्ष्म परीक्षा के द्वारा व्यक्ति के लिग का निर्णय किया जाने लगा है। एतदर्थ मुख के अन्दर की श्लेष्मकला के सेलो का लेना सुगम है। स्त्री से लिए सेलो के Nuclei के प्रान्त भाग मे एक गहरा रग पकडे हुए बिन्दु दिखाई पडता है जो पुरुष से लिए गए Cell Nuclei मे नही होता। इसे Sex Chromatin (Barr body) कहते है। यह Chromatin Nodule, desoxyrebonucleic acid का बना हुआ है। इसका व्यास १ माइक्रोन का होता है और यह स्त्री के ७५% सेलो मे मिलता है। इसी तरह, स्त्री के ६ प्र०श० Polymorph Leucocytes के Nuclei मे Drum Stick की तरह की एक रचना भी पाई जाती है जो पुरुष के Leucocytes मे नही पाई जाती। इसके अतिरिक्त स्त्री से लिए Cell Nuclei को Electron Microscope द्वारा देखने से उनमे से प्रत्येक मे ४४ Autosomes अर्थात् २२ जोडिया X X आकृति की होती है। और २ X (XX) से मिलते-जुलते Sex Chromosomes होते है। नर से लिए सेलो के Nuclei मे ४४ Autosomes अर्थात् २२ जोडिया X X आकृति की तथा एक X और एक Y के आकार से मिलता-जुलता Sex Chromosome होता है तथा इनमे Nuclear Sex Chromatin नही होता अर्थात् स्वस्थ स्त्री Chromatin Positive तथा स्वस्थ पुरुष Chromatin Negative होता है।

Male Hypogonadism (Chromatin Positive) मे जब अण्ड ग्रथिया बहुत छोटी होती है Aspermatism अर्थात् शुक्राभाव होता है तथा कभी-कभी Gynaecomastia भी होता है (Klinefelter's syndrome) तब उनमे स्त्री के समान Nuclear Sex Chromatin मिलता है तथा उनके Cell Nuclei मे एक X Sex Chromosome के स्थान दो X (XX) तथा एक Y Sex Chromosome पाया जाता है (अर्थात् XXY) Female Hypogonadism मे जब व्यक्ति देखने मे स्त्री समान होते तथा उनमे गर्भाशय और Ovaries बहुत क्षुद्र रूप मे होते हैं उनके Cell Nuclei मे Sex Chromatin नही मिलता तथा उनमे दो X (X X) Sex Chromosomes के स्थान पर एक X Chromosome ही मिलता है। इस प्रकार लिंग विनिर्णय के लिए Cell Nuclei मे Sex Chromosomes की परीक्षा एक बडी उपयोगी परीक्षा है।

व्यक्ति मे जो Sex जाहिर (Apparent) हो उसमे और Nuclear Sex मे मेल न हो तो Ambisexuality के रोग का अनुमान करना चाहिए तथा Pelvic Surgery के द्वारा Gonads को निकालकर उनकी Biopsy करनी चाहिए। एक स्त्री सदृश व्यक्ति मे अविकसित अण्ड या Testicle वस्ति प्रदेश मे प्राय मिलता है जिससे इसे Testicular Feminising Syndrome कहते हैं तथा व्यक्ति को Male Pseudohermaphrodite कहते हैं। बहुधा ये व्यक्ति Unilateral या Bilateral Inguinal Hernia की शिकायत लेकर डाक्टर के पास आते है। शल्यकर्म करने पर इनमे Gonads मिलते है। पर Gonads अस्थान मे हो तो उनमे Neoplasm या अर्बुद होने की आशका रहती है। अर्थात् इन रोगियो मे चाहे वे Female या Male Pseudohermaphrodite हो नवयुवावस्था के बाद, अर्बुद अर्थात् Seminoma या Dysgerminoma या Teratocarcinoma के होने का भय रहता है। अत शरीर की पूर्ण अभिवृद्धि होने के बाद इन्हे निकाल देना ही उचित प्रतीत होता है। इनकी कमी को पूर्ण करने के लिये अर्थात् स्त्रीत्व या पुरुषत्व के बाह्य लक्षणो को बनाये रखने के लिये बाद मे कृत्रिम Hormones का सेवन जारी रखा जाता है।

प्रत्येक Testis अनेक Lobules से बना है जिनमे से प्रत्येक मे २-३ Seminiferous tubules होती हैं जिनमे शुक्रकण उत्पन्न होते है जहा मे ये कण Epididymis और Ductus deferens मे जाते है। इन Tubules के बीच के Interstitial Cells से युवावस्था आने पर Androgen-testosterone hormone उत्पन्न होता है।

पुरुष की अण्ड ग्रन्थियो की वक्राकृति नालियो (Seminiferous या Convoluted Tubes) के अन्दर के Epithelium के सेलो (Spermatocytes) के विकसित होने से वीर्य कण (Spermatozoa) उत्पन्न होते हैं और Efferent ducts अथवा नालियो व Epididymis मे जमा होते रहते है। वीर्य द्रव एक अलब्यूमिन प्रकृति का द्रव है जो Seminal Vesicles तथा Prostate मे उत्पन्न होता है (testicle मे नही) जिसमे विद्यमान इस वीर्य कण के स्त्री की डिम्ब ग्रन्थि (Ovary) मे से निकले एक अण्ड या Ovum के साथ मिलने से सन्तान की उत्पत्ति होती है। इस वीर्य कण की उत्पत्ति अग्रिम पिट्यूटरी के Follicle Stimulating Hormone के अधीन है।

अण्ड ग्रन्थियो मे से इस वीर्य कण के अतिरिक्त उसके स्नायुतन्तु सम्वन्धी सेलो (Interstitial Cells या Leydig cells) मे से एक और आभ्यन्तर सूक्ष्म रस ५ मिलि० दैनिक मात्रा मे उत्पन्न होता है जो रक्त द्वारा सर्व शरीर मे फैल कर पुरुषोचित लक्षणो और गुणो का उत्पादक होता है। इसे जो एक श्वेत Crystalline तथा Cholesterol से उत्पन्न होने वाला Sterone प्रकृति का पदार्थ है Testosterone (Male Sex Hormone या Androgen) कहते हैं। इसकी उत्पत्ति पर पिट्यूटरी ग्रन्थि के Luteinising Hormone का नियंत्रण रहता हे अर्थात् उसकी प्रेरणा से यह उत्पन्न होता है। यकृत मे उसका पचन या Catabolism होकर यह Glucuronides के साथ १७-Ketosteroids के रूप मे मूत्र द्वारा निकलता है। मूत्र मे इसकी दैनिक मात्रा लगभग १५ मिलि० होती है क्योकि Testosterone की उत्पत्ति Adrenal cortex से भी होती है। ३५ वर्ष की आयु के वाद मूत्र मे इसकी मात्रा क्रमश घटती जाती है। युवा पुरुप के प्लाज्मा मे Testosterone की मात्रा ६५ माइक्रोग्राम प्रति मिलि० लि० होती है। जव Interstitial सेल जन्म से ठीक विकसित नही होते तव अडो की Tubes मे से Spermatozoa की उत्पत्ति भी ठीक नही हो पाती।

११ वर्ष की आयु से १४ वर्ष की आयु तक वालक के अन्दर इस अण्ड सम्वन्धी सूक्ष्म रस की उत्पत्ति होने लगती तथा इसी के कारण उसमे युवा सुलभ लक्षण प्रकट होने लगते है, अर्थात् उसमे जननेन्द्रिय, अण्ड, प्रोस्टेट आदि की वृद्धि होने लगती हे। गुप्त स्थान पर तथा मुख पर वाल आने लगते है। आवाज भारी होने लगती है। मासपेशियो मे नाइट्रोजन, पोटासियम, फॉस्फेट्स आदि द्रव्यो के अधिक-अधिक मात्रा मे सचित होने से आकार मे पुरुप सदृश वृद्धि होने लगती है (Protein Anabolism की प्रक्रिया होती है) तथा इसी सूक्ष्म रस से कोष्ठ मे से अण्डो की अण्डकोप मे उतरने की प्रवृत्ति होती है। Gonads के कारण अस्थियो मे भी वृद्धि होती है इजेक्शन के वाद इसका ३०–५० प्रतिशत भाग १७–Ketosteroids के रूप मे मूत्र मे निकल जाता है। युवासुलभ वृद्धि १२वे वर्ष से आरम्भ होकर १७-१८ वर्ष की आयु तक विशेप होती है, ऊचाई ५ इञ्च के लगभग तथा भार ३ पौड के लगभग प्र०व० वढता है।

Hypogonadism का कारण—(१) अग्रिम पिट्यूटरी ग्रन्थि की मन्दता (Hypopituitarism) मे यह रोग भी हो जाता हे (२) अथवा अण्डो मे ही आघात फिरग रोग Mumps, क्षय रोग या Castration का शल्यकर्म हो जाए तो यह रोग हो जाता है (३) अथवा सेलो के Nucleus मे जो Sex chromosomes होते है वे जन्म से विकृत रूप मे होते है (Abnormality of the Sex Chromosomes)

हो सकता है कि Androgen की आयु से पहले अधिक उत्पत्ति से कोई Oversexed लडका Sexcrime करने लगे तव Oestrogen के देने से वह ठीक हो जाता है।

नपुसकता.—Eunuchoidism :

(१) सहज (Primary) या Prepubertal Hypogonadism.

प्रारम्भ से ही अण्ड ग्रन्थियो की उचित वृद्धि न हो तो पुरुप मे पुरुपोचित लक्षणो की उत्पत्ति नही हो पाती। जननेन्द्रिय, अण्डकोप, प्रोस्टेट आदि की वृद्धि नही होती। अस्थियो की आयु (X-Ray द्वारा देखने से) वास्तविक आयु से कम होती है। शरीर की मासपेशियो मे भी उचित वृद्धि न होने से स्थूलता नही होती तथा पुरुपोचित शारीरिक शक्ति भी नही आती। गुप्त स्थान, कक्ष तथा मुख पर वाल नही आते। टागे ऊपर के धड की अपेक्षा लम्वी होती है पर शरीर स्त्रियो का सा दीखता है। आवाज पतली रहती है। मन मे कामुकता या मैथुनेच्छा या स्वाभाविक उग्रता, उत्साह तथा प्रसन्नता का भाव नही होता। मूत्र की परीक्षा करने से उसमे १७—Ketosteroids की मात्रा वहुत कम मिलती है। यदि अण्ड ग्रथिया नीचे न उतरी हो, Cryptorchism हो तो क्योकि उनमे Seminiferous Tubes नही वनती Sterility का लक्षण होता है। Interstitial सैलस क्योकि उनमे होते है इसलिये पुरुपोचित लक्षण तो शरीर में होते हैं।

Intersexuality या Hermaphroditism of non-Endocrine type—

ऐसा भी कभी-कभी होता हे कि एक व्यक्ति देखने मे स्त्री हो पर उसमे आर्तव वहुत कम कभी होता हो, Vagina

बहुत छोटा हो, गर्भाशय न हो, आवाज भारी हो, गुप्तस्थान पर बाल न हो और वक्षण (Inguinal) प्रदेश मे Infantile Testis हो अर्थात् Gonadal Dysplasia हो या इस प्रकार हो सकता है कि एक व्यक्ति मे जिसमे अविकसित स्त्री के चिह्न भी हो और दूसरी ओर Clitoris विशेप रूप मे बडा भी हो जो पुरुपत्व का सूचक होता है तो इसे Intersexuality का रोग कहते है।

(२) आगन्तु (Secondary या Post-pubertal)

युवावस्था के उपरान्त चोट लगने या रोग के कारण (जैसे Mumps मे) दोनो अण्डग्रन्थिया क्षीण हो जाए तो भी यह रोग मृदु रूप मे हो सकता है तब जननेन्द्रिय आकार मे छोटी हो जाती है, पुस्त्व शक्ति जाती रहती है, मन मे उत्साह एव उमग के भाव नही रहते, स्तन प्रदेश, जघन प्रदेश और ऊर्ध्व जघाओ मे चर्वी की मात्रा बढ जाती है। मासशूल, कटिशूल (Aches) के लक्षण भी होते हैं। Castration से यह रोग हुआ हो तो स्त्री सुलभ आर्तवनाश के समान पुरुप मे भी गरमी लगने (Flushes) और स्वेद आने के लक्षण होते है।

वीर्य नैर्बल्य . Male Infertility—Oligospermia—Impotence या Azoospermia

मैथुन के समय पुरुप की जननेन्द्रिय मे से ४॥ मिलि० लि० के लगभग वीर्य निकलता है। इसके प्रत्येक सी० सी० मे १०-४० करोड (१००-४०० मिलियन) के लगभग शुक्रकण होते हैं। इन शुक्र कणो मे से ८०-९० प्रतिशत तक Motile सक्रिय होते है तथा कमरे के तापमान मे ये १० घ० Motile रहते हैं। यदि ये ऐसे न हो तो भी सन्तान नही होती। यदि ये ६ करोड (६० मिलियन) से कम हो तो वीर्य की निर्वलता के कारण सन्तान नही होती। अण्ड ग्रथियो की Seminiferous Tubes मे जितनी ही क्षीणता (Atrophy) बढती जाती है उतनी ही सन्तान होने की सम्भावना कम होती है। इस अवस्था को Oligospermia या Sterility कहते हैं। इसमे मैथुन शक्ति होती पर सन्तान नही होती है। परन्तु इसे पुस्त्वहीनता (Impotence) तव कहते हैं जब मैथुन शक्ति ही नही होती। इसे अण्ड नैर्बल्य जनित पुस्त्वहीनता कहना अधिक ठीक होगा। क्योकि बहुधा अथवा ८० प्रतिशत रोगियो मे जो पुस्त्वहीनता का रोग मिलता है वह Hypogonadism के कारण नही पर मानसिक नैर्बल्य जनित होता है। उसे Sexual Neurosis कहा जाता है, तथा वह चिन्ता रोग या Anxiety Neurosis का एक लक्षण होता है। उनकी चिकित्सा भी मानस रोगो के समान की जाती है। इस रोग का रोगी पुस्त्व हीनता से चिन्तित रहता है Hypogonadism के कारण जो पुरुत्व हीन होता है वह इस रोग की कभी शिकायत नही करता। उसे मैथुन मे कोई दिलचस्पी ही नही होती। Oligospermia मे मैथुन शक्ति होती है पर सन्तानोत्पादक शक्ति नही होती। Oligospermia की कोई प्रभावकारी चिकित्सा नही तो भी वसन्त कुसुमाकर दो रत्ती दैनिक अथवा Speman २ गोलियो को दिन मे ३ वार तथा Tentex-१ गोली दिन मे २ वार, ३ मास तक देकर देखना चाहिए। इस चिकित्सा से Spermes की सख्या वढ सकती है। उनकी Motility भी वढ सकती है। ४० वर्ष की आयु तक ही लाभ हो सकता है बाद मे नही।

शुक्र समाप्ति जनित मानस रोग : The Male Climacteric

स्त्री मे पाये जाने वाले आर्तव समाप्ति जनित मानस रोग की तरह पुरुप मे बहुत कम यह रोग पाया जाता है। अर्थात् ५० वर्ष की आयु के लगभग जब शरीर मे Androgens की मात्रा कम हो जाती है तब पुरुप मे कभी-कभी घबराहट, मानस दौर्बल्य, विपाद, विक्षोभशीलता, धडकन, उन्निद्रता आदि के कुछ मानसिक नैर्बल्य सूचक लक्षण हो सकते है। एतदर्थ Methyltestcrosterone २० मिलि० दैनिक जिह्वा के नीचे रखे या Testosterone Propion २५ मिलि० रोज २ सप्ताह तक मास द्वारा दे।

अण्ड ग्रन्थि नैर्बल्य चिकित्सा

Hypogonadism की चिकित्सा

Testosterone के अर्थात् उसके Propionate के २५ मिलि० मात्रा मे सप्ताह मे ३ दिन या Testosterone phenyl propionate २५० मिलि० मात्रा मे ७ या १५ दिन मे एक वार मास द्वारा दे। मास द्वारा (मुख द्वारा देने से यह कार्यकारी नही होता) प्रयोग से अण्ड ग्रन्थि नैर्बल्य जनित उपर्युक्त रोगो मे लाभ हो जाता है अथवा Methyl testosterone Tablets जीभ के नीचे

दैनिक ५-१० मिलि० मात्रा मे रखे या १।।-२।। महीने बाद १०० मिलि० का इसका Implant रखते रहना चाहिये। इस चिकित्सा को चिरकाल तक जारी रखना पडता है (लगभग २-३ वर्ष) पर Sperm शुक्र की उत्पत्ति नही होती। नपुसकता (Eunachoidism) तथा शुक्र समाप्ति जनित मानस रोग (Male Climacteric) मे यह विशेष लाभदायक है। प्रथम रोग मे इसे बहुत दिन दे । पिछले रोग मे इसे ३ सप्ताह देना ही पर्याप्त है। यद्यपि वीर्य नर्वल्य (Sterility) प्रोस्टेट ग्रन्थि वृद्धि (Prostate Enlargement), पुरुप मे स्तन वृद्धि (Gynecomastia) मे भी इसका प्रयोग कभी-कभी लाभदायक पाया जाता है। एतदर्थ इसे २५ मिलि० मात्रा मे सप्ताह मे ३ दिन देकर देखना चाहिये। लाभ न हो तो ५० मिलि० मात्रा मे १ सप्ताह या पक्ष के अन्तर से ४-५ वार देकर देखना चाहिए। Breast Cancer मे भी २-३ मास इसका प्रयोग लाभदायक कहा जाता है। वृद्धावस्था की पामा कडू मे भी इसे उपयोगी कहते हैं।

इसके कुछ एक उपयोगी प्रयोग

(१) Testosterone Propionate (Perandren Ciba, Testaform B D H, Testosterindon Indoph, Unitestron, Testanon Testosenil २५-५० मिलि० १ सी०सी० तेल में) सप्ताह मे २ वार मास द्वारा दे।

(२) Testoviron depot (Testosterone as Oenanthate and Propionate Schering, Unitestron Depot Perandren Implant, Triolandren depot ५०-१००-२५० मिलि० १ सी० सी० तेल मे २ सप्ताह मे १ वार मास द्वारा।

(३) Testosterone Oenanthate (Delatestryl, Primoteston Depot) तेल १ सी० सी० मे १००, २००-४०० मिलि०। २००-४०० मिलि० मात्रा १ मास मे १ वार मास द्वारा देते है। उपर्युक्त औषध के समान बल है।

(४) Methyltestosterone tablets (Testaform oral B D H. Hormondrine, Andrest, Testanon, Neo Hombreol Organon Perandren Linguets Ciba, Testoviron tab) ५-१५ मिलि० दैनिक मात्रा मे मुख द्वारा प्रतिदिन दिया जाता है (यकृद्रोग तथा Thyrotoxicocis मे अपथ्य)

(५) Fluoxymesterone (Oratestryl, Ultandren Halotestin) उपर्युक्त औषध का एक योग है २-४ मिलि० दैनिक मात्रा मे मुख द्वारा दिया जाता है। (२ मिलि० गोलिया मिलती है)।

(६) Aqua Viron (Schering) २५ तथा ५० मिलि० तथा Aquaviron-B१२ ५०० mcg, प्रति सी०सी० इजेक्शन दे।

साधारण शीघ्रपतन Premature ejaculation या Want of Libido के लिए Yohimbine Hydrochlor ५ मिलि०, Methyl Testosterone ५ मिलि०, Strychnine Hydrochlor ५ मिलि० की गोली दिन मे ३-४ बार दी जा सकती है। या Spemen-forte २ गोली दिन मे ३ वार दे।

वीर्य नैर्वल्य (Infertility) के लिए भी पुरुप को चाहिए वह Methyl Testosterone को १० मिलि० मात्रा मे स्त्री के आर्तव चक्र के छठे दिन से लेकर १६वें दिन तक लेता रहे और इसी काल मे विशेपत १४वे दिन के आस-पास स्त्री सम्बन्ध करे। अथवा Testosterone को ७५ मिलि० मात्रा मे सप्ताह मे २ वार मास द्वारा ३-४ मास तक लेते रहने से यह निर्बलता एव शिकायत दूर हो सकती है पर बहुधा यह औपध निष्फल ही रहती है।

इस औपधि के कुछ ऐसे प्रयोग भी बनाए गए है जो अण्ड ग्रन्थि के उत्तेजक न होकर शरीर मे मासपेशियो को बढाने व उसे पुष्ट करने (Protein Anabolism) का कार्य विशेप रूप से करते हैं। अधिक पतले स्त्री-पुरुपो के लिए वे बडे उपयोगी है। उदाहरणत Norethandrolone (Nilevar) १० मिलि० गोलियो के मुख द्वारा दिन मे २-३ वार लेते रहने से या Methandrostenolone (Dianabol) के ५ मिलि० मात्रा में या Nandrollone Phenyl-Propionate (Durabolin) के २५ मिलि० मात्रा मे सप्ताह मे १ बार, ५० मिलि० मात्रा मे २ सप्ताह मे १ वार मास द्वारा लेते रहने से या Oxymetholone (Androyd, Anapolon) के २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे २-३ वार १ मास तक लेने से यह लाभ होता है।

आयुर्वेद मे पुस्त्व शक्ति के ह्रास की चिकित्सा—१८ वर्ष की आयु से पहले स्त्री सग करने, अतिस्त्री प्रसग

करने, अप्राकृतिक मैथुन करने, शरीर मे मेदा के अधिक बढ जाने, मानसिक रोग के होने, अतिअम्लक्षार लवण कटु तिक्त कषाय रसो के सेवन से, रोगो के कारण निर्वल हो जाने से पु स्त्व शक्ति क्षीण हो जाती है। पुस्त्व को या शुक्र को 'वाज' कहा जाता है। 'वाज' को वढाने वाली चिकित्सा को वाजीकरण चिकित्सा कहते है। कुछ एक वाजीकारक योगो का यहां उल्लेख किया जाता है :—

(१) शतावर्यादिचूर्ण (यो र) शतावरी, अश्वगधा, मुषली, क्रौञ्चवीज, गोखरु, तालमखाना समान-समान के चूर्ण को ४ माशा मात्रा मे दूध के साथ दें।

(२) अश्वगधादि अवलेह (ग नि) अश्वगधा, गोखरु, शतावरी, विदारी, बलावीज (वीजवन्द) तालमखाना, क्रौञ्चवीज, सीमल की मूसली, विधारा-वीज, मुलैठी, लौंग, जायफल, जावित्री, चतुर्जतिक, छोटी इलायची, केसर (या अकरकरा), सतगिलोय, समान-समान २-३ गुणा शहद मे मिला कर अवलेह बना लें। मात्रा ६ माशा।

(३) बादाम पाक (भा भै र) बादाम गिरी भिगोकर साफ की हुई आधा सेर। घृत आधा पाव। गिरियो को पीस कर भून लें। १ सेर खाण्ड की चाशनी मे मिलायें। उसमे इलायची छोटी, जातिफल, लौंग, दालचीनी, केसर १-१ तोला मिलायें, साथ ही पिस्ता और चिरौंजी ५-५ तोला कूट कर मिलायें।

(४) स्वल्पचन्द्रोदय मकरध्वज (भै र.) जातिफल, लौंग कपूर, मरिच १-१ तोला। सुवर्ण भस्म १ माशा। कस्तूरी १ माशा। रससिन्दूर ४ तोला। पान के रस से मर्दन। २ रत्ती की गोली।

(५) स्वयगुप्तादि चूर्ण (सु स) क्रौंच बीज, तालमखाना समान-समान, खाण्ड २ गुणा। ६ माशा मात्रा।

(६) लक्ष्मीविलास रस (भै र) २-३ रत्ती मात्रा

(७) शुक्रस्तम्भक चूर्ण (भा. भै र) पोस्तडोडे ५ तोला, मिश्री १० तोला। दालचीनी सोठ १।-१। तोला। मात्रा ४ माशे।

(८) आकारकरभादि वटी (यो र) अकरकरा, जातिफल, जावित्री, केसर, अफीम, इलायची छोटी, लौंग ४-४ माशे। कपूर १ माशा। पान के रस से गोली बाधें। २ रत्ती की गोली।

(९) मूसलीपाक (भा भै. र.) मूसली दोनो (काली सफेद) १ सेर के कपडछान चूर्ण को २॥ सेर खाण्ड की चासनी मे मिलायें। गोखरु, तालमखाना, क्रौंच-बीज, शतावरी, लौंग, बादाम गिरी, पिस्ता, चिरौंजी, जायफल, इलायची छोटी, तगर २॥ २॥ तोला मिलायें। १-२ तोला मात्रा।

(१०) अश्वगधादि तैल (भा.प्र.) अश्वगंधा, शतावरी, कुष्ठ, जटामासी, कटेली के फल ४-४ तोला। तिल तेल १ सेर। दूध २ सेर। तैल साधना करें। शिश्न क्षीण हो तो उस पर मलें।

(११) अरिष्टकादिलेप (भा. भै. र) रीठे का छिलका, अकरकरा दोनो को थोडी मद्य मे पीस कर उसका लेप शिश्न पर १५-२० दिन करें।

स्त्री सम्बन्धी प्रेरक रस या Ovarian Hormones

स्त्री के पेडू Pelvis मे गर्भाशय के दोनो ओर बादाम की आकृति का एक पिण्ड है जो ४ सेंटीमीटर लम्बा, २ सेन्टीमीटर चौडा और १½ सेन्टीमीटर मोटा है तथा Uterooyarian ligament के द्वारा गर्भाशयसे सम्वन्धित है। यह Broad ligament के साथ भी बधा हुआ है तथा Fallopian Tube के Fimbria ovarica के बिलकुल समीप मे है। इन्हे ovarics डिम्व ग्रन्थिया कहते है।

एक तो इसका प्रान्त भाग Cortex है दूसरा इस का मध्य भाग Medulla है। Cortex मे Primary Ocytes (ovum के प्रारम्भिक रूप) और वर्धमान Graffian Follicles रहते है। इसमे Corpus luteum भी रहते है। Medulla के स्नायु-तन्तु जाल मे रक्तवाहिनिया, लसीका वाहिनिया नाडिया तथा कुछ मास का अवयव रहता है। Ovarian artery से इनको रक्त आता है।

१२वे वर्ष की आयु के लगभग स्त्री मे ये डिम्ब ग्रन्थिया सक्रिय होने लगती है अर्थात् Cortex मे विद्यमान थैलियो से जिन्हे Follicles कहते है और पहले १६६२ मे Graaf ने जिनका पता लगाया था इसलिए जिन्हे Graafian follicles कहते है उनमे से एक सूक्ष्मरस Oestrogen उत्पन्न होने लगता है। इसके कारण क्योकि स्त्री मे पुरुष सग की गर्मी (Aestrus या Mad desire) उत्पन्न होती है इसलिए इसे Oestrogen का

नाम दिया गया। Ovaries के अतिरिक्त यह सूक्ष्मरस Hormone, adrenal Cortex तथा Placenta से भी उत्पन्न होता हे। इस Follicle पर Anterior Pituitary ग्रन्थि के Fallicle Stimulating Hormone की प्रेरणा से यह सूक्ष्मरस उत्पन्न होता है। Oestrogen पहले Aestradiol (Dihydrotheelin) के रूप मे उत्पन्न होता है। Liver मे इसका पचन होकर इनमे से Oestrone तथा Oestriol भी उत्पन्न हो जाते हैं जो तीनो मूत्र द्वारा वाहर निकलते हैं। इन तीनो को Natural Oestrogens कहते हैं। गर्भिणी घोडी के सीरम मे से Oestrogens को पृथक् करके उसको Premarin ६२५ मिलि० की गोलियो के रूप मे प्रस्तुत किया जाता है जिनका प्रयोग Menopause की दशा मे किया जाता है। इस Natural Oestrogen के Oestradiol Benzoate तथा Oestradiol dipropionate १ मिलि० (१० हजार यूनिट्स) के इन्जेक्शन्स भी मिलते हैं जिन्हे इस Hormone की न्यूनता मे सप्ताह मे २ वार मास द्वारा दिया जाता है।

Oestrogen hormone का प्रभाव —

इस Hormone के प्रभाव से स्त्री के शरीर मे स्त्री-सूचक लक्षण उत्पन्न होते हैं। अर्थात् गर्भाशयमास, गर्भाशय के अन्दर की झिल्ली Endometrium मोटी हो जाती है। योनि मार्ग Vagina के अन्दर की झिल्ली Cornification अर्थात् कठोर होने की प्रवृत्ति हो जाती है। योनिमार्ग का PH नीचा हो जाता है। स्तनो मे वृद्धि होने लगती हे। अस्थियो मे Calcium Phosphate वैठने लगता है अर्थात् वे विकसित होने लगती है। शरीर मे Protein Anabolism की वृद्धि होती है जिससे शरीर मे सुडौलपन आ जाता है। ऊर्ध्व जघाओ, जघन प्रदेश मे फैट की मात्रा वढने लगती हैं। भगोष्ठो तथा योनिमार्ग से ऊपर के उठे प्रदेश (Mons Veneris) तथा कक्ष मे वाल आने लगते हैं। स्तनो के आसपास गहरी श्यामता आने लगती हे। रक्त मे Cholesterol की मात्रा घटती है। स्त्री की त्वचा पर एक प्रभा दीखने लगती हे। स्त्री के अगो पर विशेष प्रकार के वाल उसके अगो की स्त्री सुलभ आकृति यह सव Oestrogen Hormone पर आश्रित है। १३-१४ वर्ष की आयु मे स्त्री मे 'आर्तव या Menarche का आना आरभ हो जाता है।

आर्तव चक्र Menstrual cycle—

स्त्री मे आर्तवचक्र १३-१४ वर्ष की आयु मे आरम्भ होकर ४५ वर्ष की आयु तक चलता है। प्रत्येक चक्र २८ दिन का होता है अर्थात् प्रथम आर्तव Menstruation के प्रथम दिन से लेकर दूसरे आर्तव के शुरू होने से पहले वीच का समय २८ दिन का होता है। इस चक्र के प्रथम ३-४ दिन गर्भाशय से रक्तयुक्त द्रव का परिस्रवण होता है जिसमे टूटे हुए रक्तकण तथा मर कर झडा हुआ Endometrium होता है। गर्भाशय के अन्दर के Stroma cells और Glands से आया हुआ द्रव होता है। साधारण रक्त की तरह यह रक्त जमता नही क्योकि इसमे Prothrombin सक्रिय नही होता। आर्तव के होने का कारण सभवत Ovaries मे Corpus-luteum के क्षीण हो जाने से रक्त मे Progesterone की न्यूनता है। साथ ही उस समय रक्त मे Oestrogen भी न्यून ही होता है।

आर्तवकाल के प्रथम पक्ष को Proliferative या Oestrogenic phase of menstruation कहते हैं .—

आर्तव के चार दिन वाद Ant Pituitary ग्रन्थि के एक Gonado (उत्पादक ग्रन्थि) Trophic (पोपक) hormone की प्रेरणा से जिसे Follicle stimulating hormone कहते है तथा जो एक Glycoprotein है एक ओर की डिम्व ग्रन्थि मे उसकी एक Graafian follicle आकार मे वडी होने लगती है। जितना जितना यह वढती है उतना उतना उसके सेलो से एक सूक्ष्मरस Hormone Oestrogen अधिक अधिक उत्पन्न होता है तथा उस थैली मे एक Ovum आकार मे वढना शुरू होता है। मूत्रमे भी इस सूक्ष्मरस की निकासी वढने लगती हे। प्रारभ मे मूत्र मे इसकी मात्रा दिन भर की १० मिलि० होती है। १४वे १५वे दिन तक इसकी मूत्रकी मात्रा ५० मिलि० तक दैनिक हो जाती है। रक्त के अन्दर इसके इस वृद्धि काल मे, गर्भाशय के अन्दर की झिल्ली Endometrium मोटी हो जाती है। यह झिल्ली २ स्तरो zones मे विभक्त होती है। वाहर की स्तर को जो २ ५ मि० मीटर मोटी है Functional zone और अन्दर की गहरी तह को Myometrium या गर्भाशय मास के साथ लगी होने से Basal layer कहते हे। इसके Stroma (आधारभूत) सेल्स वहुत नजदीक होते हैं। इस Zone मे वहुत सा Lymphoid tissue भी होता है। इस Zone की रक्त-

वाहिनिया सीधी-सीधी होती है जब कि Functional layer की रक्तवाहिनिया मुडी-तुडी होती हैं। आर्तव-चक्र के १४वे दिन तक ये दोनो Zones पूर्ण स्थूलता मे होते है। बाहर बाहर की स्तर अकेली ३ ५ मि० मीटर मोटी होती है। इसकी Coiled arteries मे रक्त अधिक मात्रा मे भरा होता है। इसीलिये आर्तव चक्र के प्रथम १४ दिन को Proliferative phase of menstruation कहते हैं।

आर्तवचक्र Menstruation cycle **का द्वितीय पक्ष** Secretory phase of the menstruation cycle —

आर्तव चक्र के आरम्भ होने के १२वें से १५वे दिन के अन्दर एक Graafian Follicle मे से एक Ovum के परिपक्व होकर निकल जाने के बाद वहा Anterior Pituitary ग्रन्थि के एक सूक्ष्म रस Luteinizing hormone की प्रेरणा से पीले-से रग के वसा से भरे हुए सेल (Lutein cells) वहा उत्पन्न होने लगते हैं जिनके मिलने से वहा २½ सेन्टीमीटर का एक पीतवर्ण पिण्ड उत्पन्न हो जाता है जिसे Corpus (पिण्ड) Luteum (Luteus =पीला) कहते है। इस पिण्ड मे से एक गर्भ स्थापक Hormone उत्पन्न होने लगता है जिसे गर्भ स्थापक होने से Progesterone कहते है । यह भी एक Steroid (Sterol सदृश स्निग्ध पदार्थ) है जिसका प्रधान कार्य रक्त मे जाकर गर्भाशय की Endometrium की स्रावकता को बढाना है उसे गर्भ का पोषक बनाना है तथा गर्भाशय मास मे होने वाले सकोच का रोकना है। इस Hormone की निकासी स्त्री मे स्वभावत मूत्र द्वारा २४ घटो मे २-४ मिलि० होती है। पर गर्भ स्थित हो जाने के बाद इस द्रव्य की मूत्र द्वारा दैनिक निकासी ५० मिलि० दैनिक तक हो जाती है आर्तव चक्र का द्वितीय पक्ष जिसे Secretory phase कहते है वह १५वे दिन से आरम्भ होकर अगले आर्तव के आरम्भ होने के समय तक जारी रहता है। इस अवस्था मे Endometrium का बाहर बाहर का Functional layer स्थूल हो जाता है। उसके अन्दर आने वाली धमनिया भी अधिक मुडी-तुडी दीखती हे। यह तह भी दो भागो मे विभक्त हुई प्रतीत होती है। बाहर की तह Compact या ठोस होती है। उसके अन्दर की तह Spongy या सच्छिद्र सी दीखती हे। इन दोनो तहो के अन्दर विद्यमान Basal layer के Lymphoid Tissue मे Lymphocytes बडी सख्या मे निकल कर Functional layer मे आते है। इस Functional layer मे भी अधिक मात्रा मे द्रव भर जाता है। इसीलिए आर्तव चक्र की इस अवस्था को आर्तव चक्र का Secretory phase कहते हैं। यदि Follicle से निकला हुआ Ovum, Fallopian Tube मे गर्भित हो गया हो तो वह इसी Functional layer पर आकर स्थिर हो जाता है और इसी की Spiral या Screw-like धमनियो मे से रक्त की नई नालिया निकल कर उस Ovum के बाहर के Trophoblasts नामक सेलो मे आकर Ovum का पोषण करने लगती हैं।

Ovulation — आर्तव चक्र के आरभ होने के १२वें दिन से लेकर १६वे दिन तक के बीच मे किसी दिन किसी ओर की एक Ovary के एक Graafian Follicle से Ovum का निष्क्रमण होता है। ऐसा Ovulation आर्तव के आरम्भ होने के १४वे दिन या अगले मासिक होने के १४ दिन पहले होता है। एक मास मे एक ओर की दूसरे मास मे दूसरी ovary के Follicle मे ऐसा होता है। यदि स्त्री आर्तव आरम्भ होने के बाद प्रतिदिन सवेरे उठने पर अपना तापमान देखे तो जिस दिन तापमान आधी डिग्री गिरा हुआ हो और जिस दिन के बाद वह आधी डिग्री बढा हुआ दीखे उस दिन Ovulation हुआ जानना चाहिये। इस प्रकार Ovulation किस दिन हुआ यह जाना जा सकता है। Ovary मे उत्पन्न Progesterone नामक hormone के तापजनक होने से यह तापमान बढता है। Ovum उत्पन्न होकर Tube की तरफ चला जाता है और उस के अन्दर पहुचने मे उसे १२ घ०का समय लगता है उसके गर्भित या Fertilized होने की प्रक्रिया भी Tube मे ही सम्पन्न होती है।

पुरुष सग के द्वारा Vagina मे आये Spermatozoa शुक्रकणो के Cervix और गर्भाशय मे से होकर tube तक जाने मे अर्थात् २० सेन्टीमीटर की दूरी पार करने मे एक घ ० का समय लग जाता है। यह भी देखा गया हे कि Ejaculation के बाद निकले हुए Spermatozoa केवल २४ घ ० तक ही जीवित रहते हैं। अत ऐसा माना जाता है कि Ovulation के १२ घ ० बाद जब Ovum ट्यूब मे पहुच जाये उसके कुछ घटो के अन्दर अन्दर ही पुरुष सग हो तभी Ovum के गर्भित होने की अधिक सभावना रहती है अन्यथा नही। अर्थात् आर्तव के १२वे १३वे दिन से

लेकर १६वे दिन के अन्दर अन्दर पुरुप सग करने से स्त्री मे गर्भ स्थिति होती हे। (इसीलिये इन दिनो मे पुरुप सग न करने को Rhythm method of birth control कहते है।)

पुरुप सग के समय गर्भाशय और ट्यूब मे एक सकोच क्रिया होती है जिससे Vagina मे प्रविष्ट शुक्र का कुछ अश गर्भाशय और ट्यूब मे चला जाता है। ट्यूब मे एक Spermatozoon का सिर Ovum मे प्रविष्ट हो जाता है और उसकी पूछ अलग हो जाती है। फिर गर्भित हुआ २ यह Ovum ट्यूब की Cilia की प्रेरणा के द्वारा ५-६ दिन तक गर्भाशय के Endometrium मे आकर स्थिर हो जाता है अर्थात् उसका Implantation या Nidation हो जाता है।

पर यदि Ovum गर्भित न हुआ हो और मर गया हो तो आर्तव चक्र के २२ वे दिन के वाद गर्भाशय की अन्दर की झिल्ली Endometrium मे क्षीणता Atrophy की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। अर्थात् उसकी Coiled या मुडी-तुडी धमनियो मे सकोच उत्पन्न हो जाता है अर्थात् उनमे रक्त की मात्रा वहुत कम हो जाती है जिससे Endometrium का वाहर २ का भाग मृत या Necrosed हो जाता है अर्थात् Compact भाग सारा और Spongy भाग का वाहर २ का भाग गर्भाशय मे झड जाता है। इस प्रकार Endometrium का पृष्ठ जख्मी हो जाता है और इसकी नगी तह मे से रक्त रिसने लगता है मानो Ovum की मृत्यु हो जाने पर गर्भाशय आर्तव के रूप मे आसू वहाता हो।

स्त्री सुलभ सूक्ष्मरस—Female Sex hormones **या** ovarian hormones—

स्त्री की डिम्व ग्रन्थियो मे से एक Oestrogen, दूसरा Progesterone ये दो Sterol प्रकृति के Hormones उत्पन्न होते हैं। ये Placenta से और स्वल्प मात्रा मे Suprarenal gland के Cortex से तथा Testes से भी उत्पन्न होते है। Oestrogens तीन हैं, एक Oestradiol—दूसरा Oestrone, तीसरा Oestriol। इनमे से पहला Follicle का प्राथमिक Hormone है, दूसरे दोनो गर्भिणी के रक्त मे तथा मूत्र मे मिलते है। स्वाभाविक रूप मे यह सूक्ष्मरस Premarin गोलियो तथा Oestradiol benzoate या Oestradiol dipropionate १ मिलि० या २ मिलि० ५ मिलि० अम्प्यूल के रूप मे Ovocyclin के नाम से मिलते है। मास द्वारा सप्ताह मे २ वार दिये जाते है। दूसरा Hormone, Progesterone स्वाभाविक या Natural रूप मे Lutocyclin या Progestin injection के नाम से ५-१०-२५ मिलि० मात्रा मे मिलता है जिसे ५-१० मिलि० मात्रा मे दैनिक मास द्वारा दिया जाता है।

परन्तु अधिकत Natural के स्थान कृत्रिम या Synthetic oestrogens का ही प्रयोग होता है। वे अधिक प्रभावकारी हे तथा सस्ते भी है। Oestrogen के Synthetic प्रयोग :—

(1) Ethinyl oestradiol (Eticyclin, Lynoral) ०१ मिलि० ०२- ०५- १ मिलि० की गोलिया Linguets मिलती है। यह औषध Stilboestrol से २० गुणा प्रवल है। Menopause से होने वाले रोग मे ०१ मिलि० मात्रा मे दिन मे पहले दो वार दें। फिर ०१ मिलि० मात्रा मे इसे सप्ताह मे १ दिन दे। Post menopausal osteoporosis मे भी इस औषध के छोटी मात्रा मे प्रयोग से लाभ होता है। Prostate या स्तन के कैन्सर मे इसे १ -२ मिलि० दैनिक मात्रा मे दें।

(२) Stilboestrol (Clinestrol, Diethylstilboestrol की गोलिया १—५ मिलि० की मिलती हैं। Menopause मे .१—५ मिलि० मात्रा मे दिन मे २ वार दे। Secondary Amenorrhoea due to ovarian deficiency हो तो इसे २५ से १ मिलि० मात्रा मे Proliferative phase मे ही दे। Breast कैन्सर हो तो इसे ५-१० मिलि० दैनिक मात्रा मे वाट कर २ मास तक दे। Post menopausal Osteoporosis मे जो रीढ की तथा कूल्हे की हड्डी मे विशेष होता है इसका प्रयोग लाभदायक है। Leucorrhoea, Senile Vaginitis और Vulva की कण्डू मे भी इसका सेवन लाभप्रद हे।

(३) Dienoestrol (Dehydostilboestrol) ५ से ५ मिलि० दैनिक मात्रा है। Breast कैन्सर

मे ५ से १५ मिलि० दैनिक मात्रा मे इसे विभक्त करके १½-२ मास तक दे ।

दूसरा Female Sexhormone जो Corpus-luteum से उत्पन्न होता है Progesterone है । यह Placenta और Adrenal cortex से भी उत्पन्न होता है। यह भी Sterol (फैट) सदृश पदार्थ है। Natural रूप मे यह Progesterone injection (Lutocyclin, Progestin injection) के रूप मे ५-१०-२५ मिलि० दैनिक मात्रा मे मिलता है। Abortion का खतरा हो या वह आदतन होता हो, तो इसका प्रयोग होता है। जिस महीने मे वह आदतन होता हो उससे १ महीना पहले ही इसे देना आरंभ कर देना चाहिये अर्थात् Hydroxy progesterone caproate in oil (Proliton depot, Shering) का इंजेक्शन मास द्वारा सप्ताह मे एक वार देना आरम्भ कर देना चाहिये। Abortion का खतरा हो, Bleeding और दर्द स्वल्प मात्रा मे हो तो Progestin या Lutocyclin इन्जेक्शन को ५-१० मिलि० दैनिक मात्रा मे मास द्वारा दे जब तक रक्तस्राव और दर्द वन्द न हो जाये । Synthetic प्रयोग ये हैं (१) Nor Ethisterone (Primolut N.V) ५ मिलि० की गोली, दैनिक मात्रा १०-३० मिलि० (२) Norethynodrel (Enavid) मात्रा ५-३० मि० (३) Norethisterone acetate (Anovlar)

प्रधान स्त्री रोग जिनमे Female Sexhormones उपयुक्त होते है ।

(१) Menopausal disorders—**आर्तवसमाप्ति जनित रोग** स्त्री मे १५ से ४० वर्ष की आयु तक सन्ततिकाल होता है। ४० से ४५ वर्ष की आयु के वीच मे कभी आर्तव चक्र समाप्त होने लगते हैं अर्थात् Ovaries मे Follicles की वृद्धि जो साल मे १३ वार होती है समाप्त होने लगती है। तव आर्तव मासिक न होकर १½-२ मास के अन्तर मे होने लगते तथा मात्रा मे भी थोडे होते है । इसके फलस्वरूप जननेन्द्रिय सम्वन्धी अगो मे अर्थात् गर्भाशय का मास शुष्क हो जाता, उसमे स्नायु-तन्तु वढ जाता, उसके अन्दर की झिल्ली Endometrium का Functional layer शुष्क हो जाता, उसके अन्दर के Glands मे कुछ cysts की सी आकृति आने लगती है। Vagina के अन्दर की झिल्ली पतली पड जाती, उसमे Infection जल्दी हो जाता है जिससे Infective Vaginitis का रोग सुगमता से हो जाता है। गर्भाशय और Vagina के वाधने वाले Ligaments निर्वल हो जाते हैं जिससे Prolapse की प्रवृत्ति वढ जाती है। स्तनो मे तथा जघाओं और जघन प्रदेश मे फैट की मात्रा वढने लगती है। मुह पर कुछ वाल आने लगते हैं। हृदयकप Angina और सधियो मे दर्द होने की शिकायत होने लगती है। B P वढने लगता है। Spine तथा Pelvis की अस्थियो मे Osteoporosis के कारण दर्द होने लगता है। मधुमेह भी हो सकता है । Vasomotor power की निर्वलता से चेहरे पर १-२ मिनट को गर्मी के दौरे दिन रात मे कई वार होते हैं जो Vasodilatation के कारण होते है । इसके वाद स्वेद आने के दौरे भी हो सकते है। पावो मे सूइयो के चुभने की सी प्रतीति अर्थात् Paraesthesia का लक्षण भी हो सकता है।

अनेक प्रकार के वातिक Nervous लक्षण जैसे हिस्टीरिया, चिन्ता, उन्निद्रता, स्मृतिमन्दता, एकाग्रता की हीनता आदि लक्षण हो सकते हैं । Fibrositis, Arthritis, Osteoarthritis आदि लक्षण भी हो सकते है ।

चिकित्सा —इस रोग के लिये वल्य, स्वास्थ्य वर्धक चिकित्सा होनी चाहिये। खुली हवा मे सुवह शाम भ्रमण, दूध, फल, सब्जी प्रधान आहार होना चाहिये। उत्तेजक आहार अपथ्य हैं। कोई सा एक Tranquiliser देना चाहिये । तथा Ethinyl oestradiol ०१ मिलि एक वार रोज एक मास तक उसे मिलना चाहिये। या Stilboestrol ५ मिलि एक वार रोज १ मास तक उसे दे। कुछ काल रुक कर इसे फिर भी दे सकते हैं।

मासार्वुद Myoma —

प्राय ४०-४५ वर्ष की आयु की स्त्रियो मे १५-२० प्रतिशत तक मे यह रोग पाया जाता है। पहले इसे Fibroid कहते थे, अव इसे Myoma कहते है। गर्भाशय का यह अर्वुद Smooth muscle तथा Connective Tissue दोनो के मिलने से वनता है। यह स्नायुतन्तु से वने एक कैप्सूल से युक्त होता तथा संख्या मे प्राय एक

मे अधिक होता है। इसके कैप्सूल मे रक्त की मात्रा अधिक रहती है। यह अधिकत गर्भाशय गुहा के अन्दर की ओर वढा होता है अर्थात् Submucous किस्म का होता है। जव यह गर्भाशय मास के अन्दर होता है तव इसे Intramural myoma कहते है। कभी कभी यह एक Pedicle या प्राव के द्वारा मास से जुडा होता और गर्भाशय गुहा की ओर लटका होता है तव इसे Myoma Polypus कहते है। जव यह वाहर Peritoneum की ओर वढा हो तो इसे Subperitonial कहते हैं। गर्भाशय माम Myometrium मे क्षीणता की प्रक्रिया के शुरु होने पर यह Myoma होता है। इसका प्रधान कारण क्या है इसका अभी तक पता नही चला।

इस रोग मे गर्भाशय मास स्थूल हो जाता है। उसका Endometrium भी स्थूल होता है। गर्भाशय आकार मे भी वडा होता है, उसकी Cavity भी आकार मे वडी होती है इसीलिये इस रोग मे रक्तस्राव या Menorrhagia का होना प्रधान लक्षण है अर्थात् मासिक स्राव ३-४ दिन के स्थान ८-१० दिन चलता है जिससे रुग्णा मे पाण्डुता दीखती है। Myoma वडा हो तो पेडू मे भारीपन भी लगता है। पेडू उभरा हुआ लगता है। गर्भाशय के भार से मूत्र कुछ जल्दी जल्दी लगता है। Vagina से श्वेत सा स्राव होता रहता है।

पेडू पर दवाने से एक चिकना सा पृष्ठ जो दवाने से कठोर लगता है अनुभव होता है जो दाये वाये या आगे पीछे तो हिलाया जा सकता है, ऊपर नीचे नही हिलता। यदि रक्त स्राव आर्तव काल के अतिरिक्त वीच मे भी होता हो तो कैन्सर का सन्देह करना चाहिए।

इसकी प्रधान चिकित्सा Hysterectomy है।

Cancer of the Cervix.—

स्त्री मे कैन्सर सवसे अधिक Breasts मे होता है। उससे उतर कर यह Cervix मे होता है तथा उसकी अन्दर की झिल्ली के अन्दर के Squamous cells की तह पर गोभी के फूल की तरह उभरता है और Vagina की ओर इसका कुछ हिस्सा वाहर भी निकल आता है।

इस रोग के होने पर सवसे पहले आर्तव कालो के वीच के काल में भी कपडे पर कुछ लाल सा दाग लगने लगता है। थोड़ा श्रम करने पर भी ऐसा स्राव हो जाता है इस रक्त स्राव के अतिरिक्त श्वेत-से दुर्गन्धित द्रव का स्राव भी योनिमार्ग से होता है। कैन्सर के मरे हुए भाग से यह द्रव आता है। जव कैन्सर कुछ वढता है तो पाण्डुता, कृशता, सिर दर्द और क्षुधा नाश के लक्षण भी होने लगते है, वाद मे इसमे शूल प्रतीत होने का लक्षण भी होने लगता है। छूने से कैन्सर का Cervix से निकला हुआ भाग कुछ कठोर प्रतीत होता है और छूने से उसमे से रक्त भी निकलने लगता है। इसका प्रसरण मूत्राशय की ओर हो तो जल्दी जल्दी मूत्र आने का लक्षण भी होता है। इस रोग के स्पष्ट हो जाने पर रोगी की आयु डेढ वर्ष की ही रह जाती है।

रक्तप्रदर Menorrhagia—Dysfunctional Uterine bleeding —

जव गर्भाशय मे अर्वुद भी न हो, न ही कैन्सर हो और दूसरी कोई रचनात्मक विकृति भी न हो पर आर्तव काल मे रक्तस्राव अतिमात्रा मे हो तो उसे 'प्रदर कहते है। एक वहुप्रसूता स्त्री मे हर प्रसव के वाद गर्भाशय मे Elastic Tissue के वढ जाने से वह कुछ कठोर सा हो जाता है। उसकी रक्तवाहिनिया भी अधिक मोटी हो जाती है। इस रोग को पहले जीर्ण गर्भाशय मास शोथ Ch Metritis कहते थे ऐसा गर्भाशय के प्रसव के वाद Subinvolution के कारण होता है ऐसा मानते थे। अव ऐसा नही माना जाता। अव रक्त मे Oestrogen की मात्रा के वढ जाने पर गर्भाशय मास Myometrium मे Hyperplasia और Hypertrophy के हो जाने से यह रक्तस्राव या Menorrhogia होता है ऐसा माना जाता है। इस अवस्था मे Curettage करने से भी यही सिद्ध हुआ है कि रक्त मे Oestrogen की अधिकता और Progesterone की न्यूनता से गर्भाशय के अन्दर की झिल्ली Endometrium मे उचित Secretory phase का परिवर्तन नही होता। अत. इस रोग को Corpus-lutium की निर्वलता के कारण होने वाला माना जाता है। यह रोग या तो ४०-४५ वर्ष की आयु की स्त्री मे होता है या छोटी आयु की स्त्री मे होता है।

इस रोग की चिकित्सा Progesterone के द्वारा की जाती है। विशेषत मुख से दिये जाने वाली गोलियो जैसे Norethynodrel (Enavid) या Norethysterone (Primolut N) को पहले १० मिलिग्राम दैनिक मात्रा मे देवे। इससे एक दो दिन मे रक्तस्राव वन्द हो जाता है। रक्तस्राव के वन्द हो

जाने पर इस औपधि को ५ मिलि० मात्रा मे २० दिन देकर वन्द कर दे। वन्द करने के २-४ दिन वाद स्वाभाविक आर्तव होगा। फिर उस आर्तवचक्र के ५वे दिन से २०वे दिन तक इसकी ५ मिलि० की एक गोली रोज दें, फिर वन्द कर दे। इस प्रकार २-३ मास तक इस औषध का प्रयोग करने से यह रक्तप्रदर ठीक हो जायेगा। इससे अरुचि का उपद्रव हो तो इसकी मात्रा कम कर दें या इसका रात को प्रयोग करे।

Leucorrhoea —श्वेतप्रदर—Nonpathogenic —

Vagina मे एक mucus के सदृश या Mucoid द्रव जो एक Glycoprotein है स्वभावत निकलता है। उसमे पूय या Leucocytes की उपस्थिति विलकुल नही होती। जब यह कुछ अधिक मात्रा मे निकलने लगता है तो इसे श्वेतप्रदर कहते है। इस द्रव का Carbohydrate का अश योनिमार्ग मे विद्यमान Doderlein's bacilli के द्वारा Lactic acid के रूप मे परिवर्तित हो जाता है इसलिये योनिमार्ग मे विद्यमान इस द्रव का PH ४ से ज्यादा नही होता। Cervix और Vagina के अन्दर की झिल्ली के सेलो का Karatinised होना तथा उनसे Mucus का रिसरिस कर निकलना (Transudation का होना) यह सब Oestrogen की प्रेरणा से होता है। इस प्रकार साधारण श्वेतप्रदर का होना कोई विशेष रोग नही है।

Infective Leucorrhoea —

हा, यदि योनिमार्ग से निकलने वाले द्रव मे पूय के सेल्स हो या उसमे कोई पूयजनक जीवाणु हो तो उसे Infective Leucorrhoea या Infective Vaginitis कहते हैं। ऐसा एक तो Trichomonas Vaginalis के कारण अधिक होता है। ३५-४० वर्ष की आयु की स्त्री मे Vagina के अन्दर का PH ऊचा हो जाय तो इस जीवाणु का सक्रमण हो सकता है। इससे उत्पन्न स्राव क्रीम के रग का हलके से हरे रग का पतला झागदार होता है। इसके विक्षोभक होने के कारण Vulva पर की त्वचा मे कुछ लाली और खाज के लक्षण हो जाते हे।

इस रोग की चिकित्सा मे रुग्णा को Flagyl गोली २०० मिलि० की दिन मे ३ वार ७ दिन तक देनी चाहिये।

Leucorrhoea due to candida Albicans अथवा Moniliasis —

Candida एक फुई या Fungus है जो Vagina मे जहा का स्राव Acid है और जहा Glycogen भी मौजूद है वहा इसका सक्रमण सुगमता मे हो जाता है इससे योनिस्राव मात्रा मे अधिक होने लगता है। Vulva पर लाली और खुजली के लक्षण होते है।

इस Fungus के लिये Nystatin १ लाख यूनिट्स की पेसरी दिन मे १–२ वार अन्दर रख दें। तथा Nystatin (Mycostatis) एक गोली दिन मे ३ वार मुख द्वारा दे और एक दो सप्ताह इसे जारी रखे।

Senile Vaginitis —

वृद्धा स्त्री मे रक्त के अन्दर Oestrogen की मात्रा के कम हो जाने मे Vagina के अन्दर की Epithelium क्षीण होकर पतली पड जाती है। उसमे Lactic acid के वनने की प्रक्रिया मन्द हो जाती है जिससे कुछ एक जीवाणुओ का Mixed infection हो जाता है। परिणामत Vagina के अन्दर शोथ होकर पूययुक्त श्वेत-सा स्राव होने लगता है। वाहर Vulva भी कुछ सूज जाता तथा कुछ २ Urethritis भी हो जाता है।

इस रोग की चिकित्सा के लिये Oethinyl aestradiol को ०१ मिलि० दैनिक मात्रा मे ३ सप्ताह देना चाहिय, साथ ही Stilboestrol या Dienoestrol किसी की Passary जिसमे १ मिलि० Oestrogen हो योनिमार्ग मे रखने के लिये देनी चाहिये। वाजार मे मिलने वाली इन Passaries मे वहुधा कोई Bacteriostatic औषधि भी पडी होती है। इनके प्रयोग से योनिमार्ग के सेलो मे Keratinisation की प्रक्रिया भी वढती है, उनसे रिसने वाले Mucus या श्लेष्म द्रव मे Glycogen की मात्रा भी वढती है। इस प्रकार वहा की Acidity वढ जाती है और जीवाणु सक्रमण वन्द हो जाता है।

वन्ध्या रोग Infertility तथा Sterility —

यदि सन्तान हो सकती हो, पर न हुई हो तो, उसे Infertility कहते है। यदि सन्तान हो ही न सकती हो तो उसे Sterility कहते है। एक वालक होने के वाद दूसरी सन्तति न हुई हो या एक वार गर्भपात हो जाने के वाद सन्तान न हुई हो तो प्राय इसका कारण Infection

जनित Endo-Salpingitis होता है अर्थात् Tube के अन्दर मार्ग के अवरुद्ध हो जाने से ऐसा होता है। इसे Septic Infertility कहते है। Vagina, गर्भाशय, ट्यूब मे Hypoplasia हो Cervix का मुख (os) सूक्ष्म हो, गर्भाशय मे Ante या retroflexion हो या Salpingitis हो या Ovaries के कार्य की निर्बलता से आर्तव ठीक न होता हो या Ovulation काल मे पुरुष सग न हुआ हो तो सन्तति नही होती। इन कारणो का निश्चय करके तभी इस रोग की चिकित्सा होनी चाहिये। स्त्री जननेन्द्रियो मे उचित विकास न होने से यह रोग हो तो Oestrogen के स्वल्प मात्रा मे कुछ काल प्रयोग से लाभ हो सकता है।

गर्भपात Abortion —

आशंकित गर्भपात Threatened abortion — गर्भिणी के प्रथम २-३ मास मे कठिन या किसी लम्बी सवारी करने से रक्त का दाग लग सकता है तथा पेडू मे कुछ दर्द होने का लक्षण भी हो सकता है, इसे आशकित गर्भपात कहते है। यदि रक्त-स्राव अधिक हो, दर्द भी अधिक हो तो उसे अवश्यम्भावी गर्भपात समझना चाहिये। यदि गर्भ को कोई हानि न पहुची हो, देखने से Cervix का मुख (os) वन्द हो तो Morphine १५ मिलि० का इञ्जेक्शन देवे। और मुख द्वारा Phenobarbitone ६० मिलि० दिन रात मे तीन वार दे। साथ ही ५ या १० मिलि० Progesterone (Lutocyclin) का दैनिक इजेक्शन मास द्वारा दे जव तक दर्द वन्द न हो जाये रुग्णा को पूर्ण विश्राम मे रखे।

यदि Abortion होने की प्रवृत्ति बनी रहे, रक्त-स्राव जारी रहे तो रुग्णा को ५ मिलि० Ergometrine इञ्जेक्शन मांस द्वारा दें और उसके वाद Ergometrine tablet ५ मिलि० दिन मे २ वार मुख से दे जव तक रक्तस्राव वन्द न हो जाये साथ ही किसी Antibiotic का भी प्रयोग कर।

Habitual Abortion **पुनःपुनर्गर्भपात** —

जव एक स्त्री को गर्भ रहने पर २-३ मास के अन्दर ही गर्भपात हो जाय तो उसे Habitual Abortion का रोग कहते है। यदि ऐसा मधुमेह Ch Nephritis, thyrotoxicosis के कारण न हो Ovarion Endocrine की कमी के कारण हो तो Hydroxy progesterone caproate २५० मिलि० moil (Primolut depot-Delalutin) सप्ताह मे एक वार मांस द्वारा दे तथा ५ मास तक इसे जारी रखे या Ethisterone Linguets (Lutocyclin linguets) १-२ मिलि० को सप्ताह मे २ वार दे और इस चिकित्सा को ८वे मास तक जारी रखे।

कष्टार्तव Dysmenorrhoea —

१८-२० वर्ष की छोटी आयु की कुछ एक स्त्रियो मे जो बैठी रहती तथा शारीरिक श्रम नही करती आर्तव कष्ट से आरभ होता है जिसमे पेडू या कमर मे रह रहकर दर्द या मरोड़-सा उठता है जो Spasmodic किस्म का होता है। यह शूल कुछ घण्टे ही रहता है और आर्तव आरंभ हो जाने के वाद शान्त हो जाता है। ऐसी स्त्री को कुछ शारीरिक श्रम करना चाहिए कार्वोहाइड्रेट युक्त भोजन की मात्रा कुछ कम कर देनी चाहिये मलवन्धशामक कुछ औषध लेनी चाहिए। आर्तव शूल आरभ होने पर स्तम्भशामक औषध जैसी Probanthine या Baralgan आदि मे से किसी की गोली दिन मे २-३ वार ले लेनी चाहिये। इस रोग का कारण Hormonal imbalance मालूम होता है अर्थात् Progestirone के कारण गर्भाशय मास मे Rhythmic contraction तीव्रता से होता है। इसके लिये आर्तव के पाचवे दिन से २४वे दिन तक Stilboestrol आधा मिलिग्राम दिन में २ या ३ वार देते रहे तो अगले आर्तव मे दर्द नहीं होता। या Enavid का ५ मिलि० मात्रा मे दैनिक प्रयोग करे इसमे Ethyl-oestradiol के साथ Norethynodiel मिला है जिससे Ovulation का होना रुक जाता है।

Retroverted uterus **पश्चिम विवर्तित गर्भाशय** —

सामान्य अवस्था मे गर्भाशय अग्रविवर्तित (Anteversion की स्थिति मे) और अग्रस्खलित (Anteflexed स्थिति मे) रहता है। अर्थात् उसका शरीर आगे की ओर मूत्राशय के ऊपर के पृष्ठ पर झुका हुआ रहता है इससे खाली मूत्राशय का ऊपर का सिरा कुछ नीचे की ओर दव जाता है। Peritoneum से Bladder का केवल ऊपर का पृष्ठ ही ढका हुआ है जव कि गर्भाशय सारा Peritoneum से ढका हुआ है। इससे इन दोनो के वीच एक थैली सी वन जाती है जिसे Uterovesical

Pouch कहते है । गर्भाशय के निचले सिरे (os) का मुख पश्चिम मुख और अधोमुख रहता है । इस प्रकार खडी हुई स्त्री का गर्भाशय लगभग Horizontal स्थिति मे रहता है जिसका सिर आगे और निचला सिरा पीछे की ओर रहता है १५-२० प्र श स्त्रियो मे गर्भाशय साधारणत. पश्चिम विर्वतित और पीछे की ओर झुका हुआ रहता है। कुछ एक मे युवावस्था आने पर जब गर्भाशय मास मे सहसा Hyperplasia की प्रवृत्ति (Oestrogen के कारण) होती है यह पीछे की ओर कुछ झुक जाता है। इसी प्रकार निर्बल शरीर की स्त्रियो अर्थात् Asthenic nature की युवतियो जिनके कोष्ठ के आशयो मे स्वभावत Visceroptosis या शैथिल्य के होने का लक्षण होता हे उनमे भी गर्भाशय पीछे की ओर विर्वतित तथा झुका हुआ रहता है। अधिकत यह अवस्था प्रथम प्रसव के बाद जब Pelvis का फर्श जो Pelvic muscles और Endopelvic fascia से बना हुआ है कुछ ढीला हो जाता है और जब गर्भाशय मे भी Subinvolution और Myohyperplasia के लक्षण होते है तब होती है।

लक्षण—यह रोग प्राय प्रथम प्रसव के बाद होता है जिस अवस्था मे गर्भाशय के अन्दर एक तो Involution अर्थात् लघुता नही आती दूसरे उसमे Myohyperplasia मामातिवृद्धि का लक्षण होता है अर्थात् उसमे रक्त का अतिसचय या Congestion रहता है इस कारण आर्तव काल मे Congestive Dysmenorrhoea का लक्षण होता हे अर्थात् आर्तव प्रवृत्ति से पहले पेड़ु मे कष्ट प्रतीत होता है। आर्तव के प्रवृत्त हो जाने पर कष्ट शान्त हो जाता है। कष्टार्तव के अतिरिक्त इस अवस्था मे आर्तव भी अधिक मात्रा मे होता है अर्थात् Menorrhagia का लक्षण भी होता है। Cervix मे तथा उसके अन्दर के Glands मे रक्त सचय की अधिकता से आर्तव कालो के बीच मे श्वेतप्रदर या Nonpathogenic Leucorrhoea की शिकायत भी रहती है। इन लक्षणो के अतिरिक्त Congestive state of the uterus के कारण कमर मे दर्द रहने का भी लक्षण रहता है। गर्भाशय के पश्चिम विर्वतित होने अथवा उसकी स्थिति के बदल जाने से उसके Cervix को अगुली से छुए तो रुग्णा को दर्द होता है इसी लिये इस स्थिति मे रुग्णा को कष्टमैथुन Dyspareunia की शिकायत भी रहती है। गर्भाशय की इस स्थिति अर्थात् Retroversion की अवस्था मे Cervix का मुख आगे की तरफ ऊचाई पर चला जाता है जिससे वह Posterior fornix of the Vagina मे जहा शुक्र का सचय होता है—दूर हो जाता है एव वन्ध्यात्व या Infertility का लक्षण भी हो सकता है।

Fixed Retroversion —

यदि गर्भाशय मे Salpingo-oophoritis हुआ हो अर्थात् Tube और Ovary के बाहर के Peritoneum मे शोथ हो गया हो जैसा कि प्रसव के बाद या Abortion के बाद नीचे मे आये Infection के वहा प्रसरण कर जाने से होता है तो सूजी हुई Tubes पीछे की ओर झुक जाती हैं। और Pouch of Douglas के पीछे के Peritoneum से चिपक सकती हैं इस प्रकार Retroversion fixed रूप मे हो सकता है। इस प्रकार गर्भाशय के सूजे हुए होने से एक तो कष्टमैथुन Dyspareunia का लक्षण होता है। Tubes के चारो ओर शोथ के होने से Infertility का लक्षण होता है और Tubes तथा Ovary मे शोथ होने से कमर दर्द Backache का लक्षण होता है।

इस प्रकार Mobile retroversion तो Hodge passary के रखने से ठीक हो सकता है। Fixed retroversion तो Operation से ही ठीक होता है।

गर्भाशयस्रंसन Prolapse —

Pelvis का फर्श Pelvic muscles और Endopelvic fascia के मिलने से बना हुआ है, इसमे दो छिद्र है अगले छिद्र को जिसमे से Urethra और Vagina नीचे उतरते है Hiatus Urogenitalis कहते है। पिछले को जिसमे से Rectum उतरता है Hiatus rectalis कहते है। पहला छिद्र सामान्यत छोटा ही होता है पर प्रसव के समय यह छिद्र चौडा तथा कुछ शिथिल हो जाता है। यदि यह प्रसव के समय कुछ फट जाये तो Vagina और Uterus इस छिद्र मे से कुछ नीचे खिसक आते है। इसीलिये इस रोग की चिकित्सा मे इस छिद्र को फिर छोटा और दृढ किया जाता है। सामान्यत प्रसव के बाद Pelvic floor कुछ शिथिल

1 D2 . दम S हत्वा भीमो रणोत्कट —°) Ko 1 : M2-3 गुरुभारस(Ko °म)ह स्कधे (D1 स्कंधं), ... D1 ... 'सह युद्धे, K4 B D2 Dn D4 ... गुरु

निपतितो भुवि, S भीम प्रहरता वर —) D1 आश्व- चक्रम्, Cc आसिचक्रम् (as in text) D3 [आ]- विद्ध', G2 [अ]विध्यन्; Cc [अ]विद्धं; Ca d [आ]विद्धं

हो ही जाता है परन्तु प्रसूता स्त्री जब कुछ चलने-फिरने लगती है जिससे Pelvis के फर्श की मासपेशियो तथा Perineum की मासपेशियो मे उत्पन्न हुई निर्बलता Atony दूर हो जाती है, पेट पर तथा बदन पर मालिश कराने से, कुछ बल्य औषधियो का सेवन करने से उसकी मासपेशियो के दृढ हो जाने पर फिर Prolapse की आशंका नही रहती। इस प्रकार एक तो स्त्री की मासपेशियो की निर्बलता से यह रोग होता है, दूसरा प्रसव काल मे जब तक cervix का मुख पूरा Dilate हो न जाय उससे पहले Forceps का प्रयोग करने मे भी फर्श के कुछ सूत्र फट जाते हैं। उस कारण से भी प्रसव के बाद Prolapse हो सकता है। तीसरा, बडी आयु मे स्वभावत यह Endopelvic fascia कुछ वैसे ही शिथिल होता है और यदि स्त्री के अनेक प्रसव हो चुके हो तो यह और अधिक शिथिल हो जाता है इसलिये यह रोग ४५-५० वर्ष की स्त्रियो मे अधिक होता है। इस अवस्था मे यदि खासी का रोग भी हो और खासने से या मलबन्ध हो तो मलत्याग के समय जोर लगाने से यह स्रसन और अधिक होता है।

लक्षण :—ऐसी अवस्था मे Vagina की अगली दीवार का या उसके साथ-साथ Bladder का स्रसन सबसे पहले होता है। इन दोनो का स्रसन जब Vagina के छिद्र के बाहर दीखता है तो उसे Cystocele कहते हैं।

ऐसी अवस्था मे रुग्णा को विशेषत सायकाल के समय खासने से vagina मे कुछ उतरता लगता है, लेट जाने पर यह प्रतीति नष्ट हो जाती है। यदि vagina की दीवार ढुलक कर Vulva मे आ जाये तो रुग्णा का काम करना कठिन हो जाता है। इस रोग के कारण मूत्र करने या Micturition पर रुग्णा का नियन्त्रण शिथिल हो जाता है। खासने, हसने, कुछ बल का काम करने से कुछ बूदे मूत्र की निकल जाती हैं। Urethra के Sphincter पर मूत्र का नियन्त्रण निर्भर है। Bladder के कुछ नीचे खिसक जाने से Sphincter शिथिल हो जाता है इसी से यह नियत्रण भी ढीला पड जाता है। Sphincter के समीप के सूत्रो मे शिथिलता आ जाने से ऐसा होता है। रुग्णा को मूत्र भी जल्दी जल्दी आता है। Bladder की दीवार पर न्यूनाधिक विक्षोभ के रहने से वह अधिक विक्षोभशील या Irritable हो जाता है।

गर्भिणी को प्रसव से पहले स्वस्थ रहने का यत्न करना चाहिये। उसकी पाण्डुता और Muscular atony को दूर करना चाहिये। प्रसव के बाद यदि Vagina की दीवार मे या Perineum मे कुछ क्षत या Tear हो जाय तो उसे सी देना चाहिये। प्रसूता को पर्याप्त आराम और निद्रा मे रखना चाहिये। कुछ दिन के विश्राम के बाद उसे खली हवा मे कुछ भ्रमण करना चाहिये। पेट की एक दो कसरत करनी चाहिये। शरीर पर मालिश करानी चाहिये। हर तरह से उसके बल को बढाना चाहिये।

आयुर्वेद मे स्त्री रोग :—

प्रदर रोग Dysfunctional menorrhagia

यदि गर्भाशय दो तीन गुणा मोटा हो गया हो अर्थात् उसमे Hypertrophy हो, वह कुछ पाण्डुवर्ण हो, आर्तवकाल में श्वेत पिच्छिल द्रव से युक्त रक्त अधिक मात्रा मे अधिक दिन तक चले तो उसे कफप्रदर कहते हैं उसकी उष्णगुण अग्निवर्धक प्रभाव की रक्तसग्राही चिकित्सा होनी चाहिये :—

यदि गर्भाशय में रक्तसंचय विशेष हो उससे आर्तवकाल मे उष्ण रक्तस्राव अधिक मात्रा मे हो तो उसे पित्तजप्रदर कहते हैं। उसकी शीतगुण रक्तसग्राही चिकित्सा होनी चाहिये।

यदि गर्भाशय मे कुछ रूक्षता, लघुता आदि क्षीणता के लक्षण हो आर्तवकाल में उससे अल्प अल्प रक्तस्राव कुछ दर्द के साथ हो तो उसे वातिकरक्त प्रदर कहते हैं। उसकी बलवर्धक रक्तसग्राही चिकित्सा होनी चाहिये।

यदि गर्भाशय मे अति वृद्धि भी हो उससे श्लेष्म द्रव मिश्रित रक्तस्राव होता हो, गर्भाशय मे रक्त सचय भी हो उसमे पाक का लक्षण भी हो, रुग्णा को हलका सा ज्वर भी होता हो, गर्भाशय मे क्षीणता के लक्षण भी हो, दर्द भी रुग्णा को होता हो, आर्तवकाल के अतिरिक्त काल मे भी रक्तस्राव होता रहता हो, रक्त में दुर्गन्ध भी हो, रुग्णा में निर्बलता और कृशता के लक्षण भी हो तो उसे त्रिदोषज रक्तप्रदर या गर्भाशय कैंसर कहते हैं।

रक्त प्रदरोपयोगी सामान्य प्रयोग :—

(१) अशोकत्वक् क्वाथ (वृ० नि० र०) अशोकछाल २ तोला को दो गुणा जल से, मिश्रित दूध में तब तक पकायें जबतक जलभाग उड जाये। फिर उसमें मिश्री डाल कर उसे पिलायें।

(२) लाक्षाचूर्ण (वृ० नि० र०) लाक्षाचूर्ण ३ माशा दूध के साथ दें।

(३) काष्ठोदुम्बर स्वरसयोग (यो० र०) गूलरफल के २ तोला स्वरस को मधु के साथ चटायें।

(४) वंशपत्रस्वरस (वृ० नि० र०) वास के पत्तो के स्वरस मे मधु डाल कर दें।

(५) दार्व्यादिक्वाथ (यो० र०) दारुहल्दी, वासा, मोथा का क्वाथ पिलायें।

(६) अशोकारिष्ट (भै० र०) अशोकछाल ६। सेर, जल ६४ सेर, पका कर जल आधा कर लें। गुड़ १२॥ सेर, धातकी १ सेर, दो जीरे, मोथा दारुहल्दी, नीलोफर, चन्दनश्वेत, त्रिफला, वासा, ५-५ तोला का कल्क आसव निर्माण करें।

(७) अशोक घृत (भै० र०) अशोक छाल १ सेर, जल ४ सेर। पका कर १ सेर रखें। जीरे का क्वाथ १ सेर, वकरी का दूध १ सेर, तण्डुलोदक १ सेर, भृंगराज रस १ सेर। जीवनीयगणकी औषधियां, चिरोंजी, रसौंत, मुलट्ठी, अशोकछाल, मुनक्का, शतावरी, चौलाई की जड २॥-२॥ तोला। घृत १ सेर। घृत साधन करें। खाड मिलाकर इसका सेवन करायें।

(८) शतावरी घृत (च० द०) शतावरी स्वरस १ सेर, घृत १ सेर, दूध २ सेर। जीवनीय द्रव्य, मुलैठी, चन्दनश्वेत, पद्माक, गोखरु, वला, दोनो पर्णी, दोनो सारिवा। घृत साधन करें। खाड मिला कर दें।

(९) प्रदरारि रस (यो० र०) रस, गधक, सीसक १-१. रसौंत ३, लोध्र ६ भाग, वासा स्वरस की भावना दें। मात्रा ४ रत्ती।

(१०) वोलपर्पटी (यो० र०) रस, गधक, १-१ भाग वोल का चूर्ण ४ भाग, रस गधक की पर्पटी वनाकर उसमे चूर्ण मिला दें। मात्रा ४ रत्ती।

(११) वटाकुरघृत (व० से०) वटाकुरो के क्वाथ, उन्हीं के कल्क से तय्यार किया घृत।

(१२) पुष्यानुग चूर्ण (च० स०) आम जामुन की गुठलिया, रसौंत, मोचरस, नीलोफर, मजीठ, अतीस, मोथा, लोध्र, इन्द्रजौ, धातकी, मुलैठी, अर्जुनछाल, अनन्तमूल, गैरिक, कायफल, लालचन्दन, सोठ, मरिच, पाठा का चूर्ण। मात्रा ३ माशा।

श्वेत प्रदर–Infective vaginitis–उपप्लुतायोनि :—

इस रोग मे योनिमार्ग के अन्दर कुछ तो कफजनित शोथ होता है तथा Ovaries और योनि मार्ग दोनो मे वातिक निर्वलता भी होती है जिससे उसमे जीवाणु सक्रमण सुगमता से हो जाता है। कफजनित शोथ के कारण श्वेतवर्ण पिच्छिल कण्डूजनक स्राव भी होता है जिसे श्वेत प्रदर कहते है और योनिमार्ग के पिच्छिल और आर्द्र होने के कारण उसे उपप्लुता योनि कहा जाता है।

इस प्रकार की योनिशोथ के लिये (१) उदुम्बरादि तैल (चरक) गूलर के सूखे फल कुटे हुए २ सेर, पञ्चवल्कल अर्थात् वड़गूलर, पीपल पिलखन वेंत की छाल, पटोल नीम, चमेली के पत्ते सब मिलाकर २ सेर, इस चार सेर सामान को ४ सेर जल मे रात भर भिगो दें। इस जल को छानकर उसमे १ सेर तेल तथा थोड़ी लाक्षा, सेंभल की गोंद और खैर की लकडी का कल्क मिलाकर तैल साधन करें। इस तैल से भरे पिचु को योनि मे रखायें। अथवा शल्लकी आदि तैल (भै. र) अर्थात् शल्लकी, जिङ्गिनी, जामुन, धव, वड, गूलर, पिलखन, पीपल इन सबकी छाल के क्वाथ से साधित तैल का पिचु रखायें। अथवा पिप्पल्यादि वर्ति (भा. प्र.) पिप्पली, उड़द, सौंफ, कुष्ठ सेंधा नमक इनकी बनी वर्ति योनि मार्ग मे रखें। त्रिफला के जल से या नीम, धव, जामुन, जिङ्गिनी आदि की छालो के क्वाथ मे थोड़ा सिरका मिला उसकी उत्तरवस्ति करायें।

कष्टार्तव Dysmenorrhoea

गर्भाशय या Ovaries की कोई अशक्ति या निर्बलता इस रोग का कारण है इसी से इसे वायु प्रकोपजनित कहा गया है, इसे उदावर्ता योनि कहा है अर्थात् स्तम्भ के कारण से होने वाला रोग कहा है। इसलिए इसकी शक्तिवर्धक तथा स्तम्भ नाशक चिकित्सा होनी चाहिये। शरीर की शक्ति वढाने के उपायो के अतिरिक्त रजःप्रवर्तिनी-वटी (भै र) एलुआ, कासीस, टकण, हींग बराबर-बराबर की घृतकुमारी रस से बनी गोली दिन मे ३ बार देनी चाहिये।

वन्ध्या रोग— Infertility

वन्ध्यारोग को गर्भाशय या Ovaries मे किसी प्रकार की असमर्थता या अशक्ति से उत्पन्न होनेवाला रोग होने से इसे वायु प्रकोप जनित रोग कहा गया है अत इस रोग की बल्य, प्राणप्रद चिकित्सा होनी चाहिये।

निपतितो भुवि; S भीम प्रहरतां वर —) S₁ शास्त्र
चक्रम्, Cc शास्त्रचक्रम् (as in text) D₂ [आ]
[illegible]

वन्ध्यारोगोपयोगी प्रयोग—

(१) अश्वगंधा घृत (ग. नि.) अश्वगंधा २ सेर, जल १६ सेर। कषाय एक चौथाई। घृत १ सेर। अश्वगधा कल्क २ छटांक। घृतसाधन। आर्तव के बाद १-२ तोला रोज दें।

(२) अश्वगधा योग (यो. र.) अश्वगधा २ तोला को दूध १ पाव, जल १ पाव में, जब तक जल उड़ जाये, पकायें। इसमें थोड़ा घृत, थोड़ी खाड डालकर आर्तव के बाद ८-१० दिन पिलायें।

(३) वटांकुर योग (ग. नि.) वट के अकुर, नीलोफर, घातकी समभाग चूर्ण ३-४ माशा दूध के साथ दें।

(४) बलाआदि चूर्ण (भा. प्र.) वलाबीज, मुलैठी, अतिबला, वटाकुर, मिश्री, नागकेसर, समभाग चूर्ण। ३ माशा मधु घृत के साथ रोज दें।

(५) वृद्धदारु घृत (वं. से.) विधारामूल १० तोला, दूध ४ सेर, घी १ सेर। घृत साधन करे। स्त्री-पुरुष दोनो के लिये।

(६) शीतकल्याणघृत (भै. र.) कुमुद के फूल, पद्माख खस, मुद्गपर्णी, क्षीरकाकोली (या शतावरी) गाम्भारी, मुलैठी, वला, अतिवला, नीलोफर, विदारी, सोया, शालपर्णी, जीरा, त्रिफला, खीरे के बीज, कच्चा केला, प्रत्येक २॥ तोला पीस कर लें। घृत १ सेर। दूध घृत से ४ गुणा। जल घृत से २ गुणा। घृत पाक करें।

(७) चतुर्मुख रस (भै. र.) पारा, गधक, लोह, अभ्रक ४-४, स्वर्ण १ भाग। घृतकुमारी स्वरस, त्रिफला क्वाथ, ब्राह्मी स्वरस, तुलसी स्वरस से भावना दें। इसे एरण्ड पत्रों में लपेट कर धान में ३ दिन रखें। फिर १ रत्ती मात्रा में त्रिफलाचूर्ण और मधु के साथ प्रतिदिन दें।

(८) सुवर्णरूप्यताम्रयोग (भै र) सुवर्ण ८, रूप्यक १६, ताम्र, ३० मिलिग्राम की एक मात्रा रोज घृत के साथ दें।

गर्भपात या Abortion —

बारबार गर्भपात होता हो तो—

(१) फल घृत (भै र) मजिष्ठा, मुलैठी, कुष्ठ, त्रिफला, बला, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, अश्वगधा, दोनो हल्दी, फूलप्रियंगु, अजवायन, कुटकी, नीलोफर, कुमुदपुष्प, द्राक्षा, दोनो चन्दन, १।-१। तोला। गोघृत १ सेर। शतावरी स्वरस २ सेर। गोक्षीर २ सेर। घृत साधन करे। १-२ तोला रोज देते रहें। साथ ही उत्पलादि घृत (नीलोफर, कमलनाल, नागकेसर, पद्माक) दूध में मिश्री डालकर उसी के साथ रोटी या चावल देते रहें। दूध भी गाय का ही होना चाहिये।

साधारणतया गर्भपात गर्भाशय में वायु और पित्त प्रकोप से होता है अर्थात् गर्भाशय में विक्षोभशीलता, चलता या निर्बलता से या उसमें रक्त सचय की अधिकता से होता है या Ovaries की निर्बलता से होता है। अत वात-पित्त-शामक चिकित्सा होनी चाहिये। फलघृत इसी प्रकार का एक प्रयोग है तथा पुत्रघ्नी योनिरोग के लिये उपयोगी है।

आशकित गर्भपात के लिये उपयोगी प्रयोग—

(१) कसेर्वादि क्षीर (वृ. मा.) कसेरु, सिंघाडा, जीवनीयगण (मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलैठी, तथा अष्टवर्ग) नीलोफर, शतावरी २-२ तोला। दूध आधा सेर। जल १॥ सेर। जब तक जल उड़ जाये पकायें। खाण्ड मिलाकर पिलायें।

(२) कसेर्वादि क्वाथ (यो र) कसेरु, सिंघाड़ा, नीलोफर, मुद्गपर्णी, मुलैठी का क्वाथ दूध में डाल कर पिलायें।

(३) उशीरादि क्वाथ (वृ. नि. र) उशीर, मोथा, मजीठ, नागकेसर, पद्माक, नीलोफर, लोध्र, गोखरू क्वाथ में मिश्री डाल कर दें। भोजन गौ का दूध दें।

(४) ह्रीवेरादि क्वाथ (वृ नि. र.) सुगधबाला, अतीस, मोथा, मोच रस, इन्द्र जौ, क्वाथ।

(५) उदुम्बरफल क्वाथ—गूलर के फलो का क्वाथ।

(६) दोनो चन्दन, मुनक्का, नीलोत्पल, नेत्रबाला, कसेरु, नागकेसर, पद्माक, पद्मनाल, उशीर, मोथा, लोध्र, आवला, स्वर्ण गैरिक, मुलैठी, शतावरी, आदि में से किन्हीं दो तीन औषधियो का क्वाथ

दूध के साथ मीठा करके पिलाना चाहिये।

योनि भ्रंस या योनिनिर्गम रोग Prolapse—

यह गर्भाशय में वायुप्रकोप से होनेवाला रोग है। इसके लिये मूषक वसाका या खण्डित मूषक मांस से पक्व तिल तेल का भीगा फोया योनिमार्ग में रखा जाता है। अथवा माजूफल और सौराष्ट्री मट्टी के क्वाथ में भीगा फोया रखें। या माजूफल चूर्ण और मधु का भीगा फोया रखें तथा त्रिफला जल की उत्तरवस्ति करें।

उपगल ग्रन्थियों Parathyroids के रोग

उपगल ग्रन्थि प्राबल्य Hyper-parathyroidism

यह रोग कभी-कभी देखने मे आता है तथा ३०-५० वर्ष की आयु के व्यक्तियों विशेषतः स्त्रियों में। अस्थियों तथा वृक्कों मे इसका दुष्प्रभाव विशेष होता है। इसके उपद्रव जनक होने से इसका वर्णन यहां किया जाता है।

गल ग्रन्थि (Thyroid) के दोनों पार्श्वीय खण्डों के पिछले पृष्ठ मे धसी हुई भूरे से लाल या पीले से रंग की, मटर के दाने जितनी उसी आकार की दोनों ओर एक ग्रन्थि ऊपर गले (Pharynx) और भोजन नाली (Oesophagus) के सन्धि स्थान पर होती है। इसी प्रकार एक-एक ग्रन्थि दोनों ओर इन्ही खण्डों के निचले सिरे पर होती है। इनमे रक्त अधिक मात्रा मे आता है तथा Inferior Thyroid Artery मे से आता है। इनके सेलों का सूक्ष्म रस (Hormone) Parathormone जो एक Polypeptide है इनमे से निकल कर रक्त मे व्याप्त होता है एवं शरीर मे कैल्सियम और फास्फोरस के एवं अस्थियों मे होने वाले परिपचन (Metabolism) को नियन्त्रित रखता है। सीरम मे प्रतिशत ९-१० मिलि० के लगभग कैल्सियम होता है। जब-जब शरीर के द्रवों मे यह मात्रा कम हो जाती है जैसे कि दूध आदि कैल्सियम के भोजन न मिले या विटामिन 'डी' कम मिले या वृक्कों के रुग्ण होने से जैसे चिरस्थायी वृक्क रोग मे मूत्र द्वारा कैल्सियम अधिक निकलता हो तो ऐसी अवस्था मे ग्रन्थियां आकार मे बडी हो जाती है है जिससे इनसे Parathyroid Hormone अधिक निकलता है और उसके कारण अस्थियों मे Osteoclasts की वृद्धि होकर वहां से कैल्सियम अधिक मुक्त होने लगता है और इसस रक्त आदि द्रवों में इसकी कमी पूरी हो जाती है। वृक्कों में से मूत्र द्वारा [illegible] Phosphates की निकासी पर इसका विशेष नियंत्रण [illegible] शरीर में ये दोनों पदार्थ सन्तुलित रूप में रहते हैं। क्योंकि जब इस सूक्ष्म रस को [illegible] किया जाता है या इसकी उत्पत्ति बढ़ती है तो मूत्र द्वारा Phosphates की निकासी बढ़ जाती है अर्थात् [illegible] नलिकाओं (Tubules) द्वारा इनका पुनर्विलयन कम हो जाता है। [illegible] इनका पुनर्विलयन अर्थात् Tubular Reabsorption of Phosphate (T R P) ८०-९० प्रतिशत से [illegible] जाता है। स्पष्ट है कि इस रोग में मूत्र द्वारा Phosphorus तथा Calcium की निकासी बढ़ जाती है (Sulkowitch test) तथा सीरम में मात्रा घट जाती है।

इसीलिये उन व्यक्तियों के [illegible] Hyperparathyroidism की अवस्था में [illegible] Adenoma के इनमें से किसी एक में हो जाने से (९० प्रतिशत में) या इन सबमें अतिवृद्धि (Hyperplasia) हो जाने से होता है। शरीर में से Phosphates की निकासी बढ़ जाती है। परिणामतः रक्त के सीरम में उनकी मात्रा घट जाती है (३-४ मिलि० प्रतिशत नार्मल)। जब-जब रक्त में Inorganic phosphates की मात्रा घटती है तब-तब उसमें कैल्सियम की मात्रा बढ़ती है (२० मिलि० %) और यदि यह अतिरिक्त कैल्सियम बाहर भोजन से, विशेषतः दूध से मिलता रहे तो रक्त में कैल्सियम ठीक रहता है और अस्थियों में से वह नहीं निकलता। न मिले तो जैसे ऊपर कहा गया है अस्थियों में विद्यमान कैल्सियम के भण्डार में से आने लगता है अर्थात् अस्थियों से विद्यमान Calcium Phosphate क्षरण करके या पचकर रक्त की ओर आने लगता है। इस कारण एक तो अस्थियों में विशेषतः पृष्ठवंशास्थि और शाखाओं की अस्थियों में दर्द (Boring pain) हो सकता है जो छेदक या Boring किस्म का होता है। दूसरे इस अस्थि क्षरण के अधिक बढ़ जाने से अर्थात् उनमें Osteoclasts नामक सेलों के अधिक बढ़ जाने से अस्थियों के Organic Calcium Compound में से Phosphate के Radical को पृथक् करने वाला पाचक रस Alkaline Phosphatase मात्रा में बढ़ जाता है और रक्त में अधिक आने लगता है। (सीरम में इसकी नार्मल मात्रा ३-१२ King Armstrong Units, १-४ Bodansky Unit, प्र०श० होती है)। इस प्रकार इस रोग के कारण व्यापक अस्थि क्षरण का रोग हो सकता है।

Osteitis Fibrosa, Fibrocystic Osteitis (Osteitis Fibrosa Cystica Generalisata) **व्यापक अस्थि क्षरण का रोग :—**

उपर्युक्त Hormone की वृद्धि से १५ प्र श रोगियो की अस्थियो मे Decalcification होकर वे नरम पड जाती हैं। साथ ही रक्त मे Calcium वढ जाता है, Phosphorus घट जाता है।

इस रोग का पहले-पहल पता १८९१ मे लगा तथा इस शताब्दी के आरम्भ मे इस रोग का सम्बन्ध Parathyroid मे Tumour से है इस बात का भी पता चला। इस रोग मे अस्थियो मे क्षरण (Destruction) के वढने से दीर्घास्थियो मे पोले प्रदेश (Cavities या Cysts) उत्पन्न हो जाते हैं जिनमे द्रव होता या स्नायु तन्तु होता या रक्तवाहिनियो का जाल होता या उनमे Osteoclasts से युक्त सेलो से अधिक वढ जाने से उत्पन्न अर्वुद (Osteoclastoma) हो जाते है। जिससे विशेषत हन्वस्थि (Jaw मे Epulis) मे हाथ पाव के Metatarsals तथा Metacarpals मे उभार से हो जाते है, जिन पर दवाने से दर्द होता है। Femur, humerus आदि दीर्घ अस्थियो के निर्वल हो जाने से वे खम खा जाती है, विषमाकृति हो जाती हैं या भग्न हो जाती हैं। रीढ की हड्डी के कसेरुओ के निर्वल होकर दव जाने से रोगी की ऊचाई घट जाती है या पृष्ठ-वशास्थि मुड जाती हैं या रोगी को रीढ की हड्डी मे या शाखास्थियो मे या जघनास्थियो मे दर्द रहता है। ऐसी अवस्था मे अस्थि पर वहा दवाने से दर्द भी होता है। इस प्रकार कटिशूल, Kyphosis कुब्जता, जघास्थिशूल, सधिशूल इस रोग के लक्षण हो सकते है।

Radiography करने पर हाथो की Metacarpals तथा अगुल्यस्थियो के वाहर की ओर के भाग मे, Pelvis की अस्थियो मे, Femur की ग्रीवा मे, Tibia तथा Fibula मे स्थान-स्थान पर अस्थि के खाये जाने या Decalcification के या Cysts वन जाने के चिन्ह पाए जाते है। दन्तास्थियो मे भी Laminadura खाया हुआ दीखता है।

रक्त की परीक्षा करने से उसमे कैल्सियम की मात्रा १० मिलि० प्रतिशत मे अधिक (Hypercalcaemia) फास्फोरस की मात्रा $2\frac{1}{2}$ मिलि० प्र०श० से कम तथा Alkaline Phosphatase की मात्रा नार्मल से वढी हुई पाई जाती है। मूत्र मे कैल्सियम अधिक पाया जाता है। हा, वृक्क रोग के कारण Hyper-parathyroidism हुआ हो तो गुर्दो से इसके न निकल सकने से Serum Phosphorus वढा हुआ होता है। मूत्र मे भी कैल्सियम कम हो जाता हैं।

उपगल ग्रन्थि प्रावल्य के इस रोग मे वृक्को मे से कैल्सियम की निकासी के नार्मल (५०-१७५ मिलि० दैनिक) से अधिक होने तथा Phosphates के भी अधिक निकलते रहने से इस रोग मे या तो वृक्को मे अर्थात् मूत्र मार्ग मे Calcium Oxalate या Calcium Phosphate की अश्मरिया भी वन जाती हैं (जिससे या तो पथरिया मूत्र मे निकलती है या वृक्क शूल वार-वार होता रहता है) या हो सकता है कि वृक्को मे से चिरकाल तक इनकी निकासी जारी रहे तो वृक्को की मूत्र स्राविणियो (Tubules) मे Calcium के निक्षिप्त हो जाने से काठिन्य का लक्षण होकर चिरस्थायी वृक्क रोग (Chronic Nephritis या Nephrosclerosis या Nephrocalcinosis) हो जाता है। यह रोग हो तो Polyuria तथा Polydipsia अर्थात् अतिपिपासा के लक्षण होते है जिससे फिर Uraemia भी हो सकता है। वृक्क रोग मे X-Ray परीक्षा करने पर वृक्को मे Calcifications के दाने मिलते हैं या Calculi दीखते हैं। Parathormone की अधिकता से सभव है आमाशय रस अधिक निकलता हो क्योकि वहुत से (२०%) रोगियो मे Gastric-ulcer का रोग भी होता हुआ पाया जाता है। इस रोग मे वृक्क रोग के कारण रक्त भार वृद्धि का लक्षण भी वहुधा पाया जाता है।

इस रोग मे रक्त मे कैल्सियम की वृद्धि के वने रहने पर भी पहले कुछ काल तो कोई लक्षण नही होता पर वाद मे Renal colic का लक्षण होता है और उसके वाद कैल्सियम वृद्धि (Hypercalcaemia) के अन्य लक्षण, जैसे अरुचि, वमन, मलवन्ध, तन्द्रालुता, हृदय की मन्द गति, विषाद, चिन्ता आदि मानस लक्षण, मासपेशियो की निर्वलता, अशक्ति (Hypotonicity) भार के घटते जाने के लक्षण होते हैं। मृदु अवयवो मे कैल्सियम अधिक वैठने लग जाता है। उदाहरणत हृदयमास मे कैल्सियम के वैठने से हृदयकम्प, फुफ्फुसो मे इसके वैठते जाने से श्वास काठिन्य, मासपेशियो मे इसके वैठने से वहा वहा मासशूल, नखो मे इसके वैठने से नखो के कठिन या कठोर होने के लक्षण भी होते है। इसी प्रकार यह

बडी रक्तवाहिनियाँ, निस्स्रोतस ग्रन्थियो मे भी बैठकर उपद्रव करता है। अविकत मूत्र स्राविणियो मे इसके द्वारा अश्मरी बनकर Renal colic का लक्षण होता है। Renal colic के रोगियो मे ५% मे Hyperparathyroidism पाया गया है। Hypercalcaemia के कारण Bonemarrow मे मन्दता आ जाती है जिससे Anaemia या पाण्डुरोग हो जाता है। Hyperparathyroidism Primary हो तो Cortisone ५० मिलि० ३ बार रोज १० दिन देने से Serum Calcium कम नही होता। अन्य कारणो से सीरम मे कैल्सियम वृद्धि हो तो वह इसके देने से कम हो जाती है, यद्यपि वह कमी अस्थायी ही होती है।

Osteoporosis (Bone-porosity, अस्थिगुहाभाव)

Hyperparathyroidism के १५-२०% रोगियो मे अस्थि क्षरण या Osteitis fibrosa का भी रोग हो जाता है, Osteoporosis रोग से उसका सन्देह हो सकता है क्योकि X-Ray परीक्षा मे दोनो रोगो मे अस्थियो मे खालीपन-काचभाव या Radiolucency का लक्षण एक सा मिलता है परन्तु जिस रोग का ऊपर वर्णन हुआ है वह ५० वर्ष से नीचे की आयु मे विशेषत स्त्रियो मे होता है और Parathyroid hormone की वृद्धि मे अस्थियो मे अति क्षरण या अतिपचन के कारण होता है जबकि Osteoporosis का रोग ५० वर्ष से ऊपर ७० वर्ष तक की स्त्रियो मे विशेपत और पुरुपो मे भी अस्थियो मे वृद्धावस्था सुलभ धातुक्षय के कारण होता है। ५० वर्ष से ऊपर यह रोग हो तो उसे Post-menopausal Osteoporosis कहते हैं। ६५ वर्ष से ऊपर की आयु मे हो तो उसे Senile osteoporosis कहते है। इस रोग मे अस्थि पचन का कर्म नही बढता प्रत्युत अस्थि-निर्माण कर्म ही वृद्धावस्था के कारण मन्द हो जाता है। ६० वर्ष से ऊपर की एक चौथाई स्त्रियो मे अस्थियो के पोले हो जाने का यह रोग होता है। वृद्ध पुरुपो मे से भी एक बडी सख्या मे यह Osteoporosis का रोग पाया जाता है। अस्थियो मे बुढापा जल्दी क्यो होता है इसके ठीक-ठीक कारण क्या हैं इस विषय मे अभी तक कोई निश्चय नही हो पाया। इसीलिए वृद्धावस्था मे हुए Osteoporosis की कोई निश्चित चिकित्सा अभी तक निर्धारित नही हुई। हा बडी आयु मे पहले ही यदि अस्थियो मे पोलापन आ जाये जिसका पता X-Ray से लगता है और वह भोजन मे प्रोटीन, कैल्सियम, विटामिन 'सी' की न्यूनता से हो या अल-कोहल के अति सेवन से हो या Malabsorption से हो तो उसे Nutritional Osteoporosis कहते है।

यह भी देखा गया है कि यदि बडी आयु का व्यक्ति शारीरिक श्रम न करे, सदा बैठा रहे तो उसकी अस्थिया घुलने लगती हैं। उनमे Reabsorption की क्रिया तीव्र हो जाती है अर्थात् उनमे से कैल्सियम घुलकर रक्त मे आने लगता है जिससे Hypercalcaemia भी कुछ होता है। यह मूत्र मे भी कुछ अधिक आता है अर्थात् Hypercalciuria भी होता है और यदि अधिक जल का प्रयोग न किया जाय तो वृक्को मे Stone या अश्मरी बनने की प्रक्रिया भी होने लगती है। इस अवस्था को Disuse Osteoporosis या Immobilisation से होनेवाला Osteoporosis कहते हैं। शारीरिक श्रम या व्यायाम से अस्थियो मे Osteoblasts को जो उत्तेजना मिलती है वह मन्दावस्था मे पडे रहने से उनको नही मिलती।

Hyperthyroidism का रोग हो तो अस्थियो मे Catabolism की प्रक्रिया के तीव्र होने से Bonematrix जो प्रोटीन का बना है उसमे Reabsorption की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। उसके घुलते रहने से अस्थियो मे पोलापन आ जाता है। साथ ही Plasma मे कैल्सियम की मात्रा बढ जाती है। फोस्फोरस की मात्रा भी प्लाज्मा मे ज्यादा होती है। Alkaline Phosphatase की मात्रा भी बढी होती है। उसे Endoctrine osteoporosis कहते हैं।

Cushing's disease या Cortisone drugs के अति प्रयोग से भी Bone matrix मे प्रोटीन नही बैठती क्योकि इस अवस्था मे Catabolism की प्रक्रिया एव Osteoclasts की क्रिया तीव्र होती है। इससे अस्थियो मे पोलापन बढ जाता है। रक्त मे कैल्सियम, फोस्फोरस, Alkaline Phosphatase नार्मल ही होते है। हा Hypernatremia (सोडियम वृद्धि) Hypokalaemia (पोटा की रक्त मे हीनता) Hypochloraemia (chloride की रक्त मे हीनता) के लक्षण होते हैं। इसी प्रकार मधुमेह रोग मे जब आहार के

प्रोटीन्स खाण्ड मे परिवर्तित होने लगते हैं। अस्थियो मे प्रोटीन की न्यूनता होकर उनमे पोलापन हो सकता है।

लक्षण—Osteoporosis का रोग शाखास्थियो की अपेक्षा पृष्ठवशास्थि तथा जघनास्थियो (Spine तथा Pelvis) मे विशेष होता है। शाखास्थियो मे भी होता है। पृष्ठवशास्थि मे भी पृष्ठ तथा कटि प्रदेश की अर्थात् Dorsal और Lumber vertebrae मे विशेष होता है। Vertebrae पोले हो जाने के कारण दब जाते या पिचक जाते हैं जिसे Compression Fracture कहते हैं। पोले हुए किसी Vertebra पर जब किसी भारी बोझ के उठाने या सहसा करवट बदलने से ही Compression fracture होता है तो रोगी को कमर मे भारी दर्द होता है। वहा की मासपेशियो मे Spasm या स्तम्भ हो जाता है। वहा पर स्पर्शाक्षमता का लक्षण भी होता है। आराम मे दर्द कम हो जाता है पर सोकर उठने पर दर्द प्रतीत होता है। ऐसा महीनो तक रहता है। जब Vertebra स्थान पर स्थिर हो जाता है तब दर्द तो कम हो जाता पर कमर कुछ पीछे की ओर मुड जाती है, छाती आगे को झुक जाती है अर्थात् कुछ Kyphosis हो जाता है। इस प्रकार Osteoporosis के कारण कटिशूल और कुब्जता Kyphosis के प्रधान लक्षण होते हैं। यह भी स्पष्ट है कि Vertebrae के पिचक जाने मे स्त्री या पुरुष की ऊचाई कुछ इच घट जाती है।

७५ वर्ष की आयु के बाद ८०-९० वर्ष की आयु मे इस रोग के कारण Femur के ऊपर के भाग मे तथा Humerus मे भग्नता Fracture का उप व भी हो सकता है। Femur के ऊपर के भाग मे हुआ Fracture १०-१५ प्र श व्यक्ति ो मे ३ मास के अन्दर ही घातक हो जाता है।

Osteoporosis का निश्चय X-Ray परीक्षा से हो जाता है। कुछ एक Vertibrae के पिण्ड दबे हुए मिलते हैं। टिकिया या Discs नार्मल के लगभग ही दीखती है। सीरम मे कैल्सियम, फोस्फोरस, Alkaline Phospatase नार्मल ही होते हैं।

Osteomalacia (Osteo = अस्थि, Malacia = मृदुता)

तरुण सुलभ अस्थि शोथ—

अस्थि Bone = cells (Osteocytes) तथा उनके बीच-बीच मे पडे हुए Inter-cellular Tissue (Osteosustissue) से—जो प्रोटीन का बना हुआ है जिसे Matrix भी कहते हे—बनी हुई है। इस Matrix मे कल्सियम के कार्बोनेट और फास्फेट समाये हुए रहते है। अस्थि का दो तिहाई भार इन्ही Minerals के कारण होता है। जब इस Matrix मे ये पार्थिव द्रव्य ठीक-ठीक नही बैठते अर्थात् उनका Calcification ठीक नही होता तब अस्थि कुछ मृदु हो जाती है तथा भार पडने से कुछ विषमाकृति हो जाती है तब यदि यह रोग बालक मे हो तो उसे Rickets कहते है और यदि यह रोग २०-३० वर्ष के तरुण व्यक्ति मे हो तो उसे Osteomalacia कहते हैं। इस प्रकार के मृदु Matrix को Ostoid कहते हैं। इस रोग मे अस्थियो मे यह Ostoid बढ जाता है।

इस रोग का उपर्युक्त Osteitis Fibrosa (अस्थि क्षरण रोग) के साथ सन्देह हो सकता है इसलिए उसका यहा वर्णन किया जाता है।

उपर्युक्त Osteoporosis का रोग आहार मे कैल्सियम की न्यूनता से होता है। यह भी सभव है कि आहार मे कल्सियम पर्याप्त हो पर Androgen तथा Oestrogen की मन्दता से उसकी खपत अस्थियो मे ठीक न होती हो या हो सकता है किसी किसी मे अस्थियो मे बुढापा जल्दी आरम्भ हो जाने से उनमे कल्सियम की खपत कम हो जाती हो। अभिप्राय यह है कि वह रोग प्रधानत कैल्सियम की न्यूनता के कारण होता है। Osteomalacia मे भी रक्त मे कैल्सियम और फोस्फोरस दोनो की मात्रा न्यून होती है; परन्तु यह रोग कैल्सियम की आहार मे या रक्त मे न्यूनता से उतना नही होता जितना विटामिन 'डी' की न्यूनता से होती है। क्योकि आहार मे कैल्सियम के कम होने पर भी केवल विटामिन 'डी' के प्रयोग से यह रोग अच्छा हो जाता है।

यह रोग चिर अतिसार या Malabsorption के कारण फैट्स के आतो मे से बाहर निकल जाने के कारण शरीर को ठीक-ठीक विटामिन 'डी' के न मिलने से होता है। या स्त्रियो मे शीघ्र शीघ्र गर्भ रहने से या देर तक दूध पिलाने की निर्बलता से भी उत्पन्न हो सकता हे। विटामिन 'डी' की कमी से एक तो आत मे से कैल्सियम का विलयन ठीक से नही होता दूसरे वृक्को मे से कैल्सियम की निकासी बढ जाती है। तीसरे Ostoid मे कैल्सियम तथा फोस-फोरस की ठीक-ठीक खपत नही होती।

लक्षण —आंत में Malabsorption अर्थात फैट के विलयन न होने के बहुत दिन बाद अस्थियो पर दुष्प्रभाव प्रतीत होने लगता है। अस्थियो मे से भी सबसे पहले विटामिन 'डी' की कमी का प्रभाव कमर की हड्डी अर्थात् Vertebrae पर होता है। कमर की हड्डी मे दर्द की प्रतीति होने लगती है।, मासपेशियो मे अशक्ति प्रतीत होती है। थकावट जल्दी हो जाती है। विटामिन 'डी' की कमी से भूख भी नष्ट हो जाती है। धीरे-धीरे अस्थियो मे विशेषत कमर की हड्डी तथा जघनास्थियो Pelvis मे विषमता या Deformity आने लगती है। Spine मे कुब्जता Kyphosis की विकृति हो जाती है। Sacrum के कुछ नीचे झुक जाने या उसके acetabula के दोनो ओर Famur के ऊपर के सिरे के द्वारा दब जाने से Pelvis मे ऐसी विषमता आ जाती है कि सन्तान का बाहर आना कठिन हो जाता है। Caesarian Section आवश्यक हो जाता है। विटामिन 'डी' की न्यूनता मे Tetany या हाथो मे रह रह कर Tonic Spasms होने का लक्षण होता है।

सीरम मे कैल्सियम नार्मल होता या उससे कुछ ही कम होता है। फोस्फोरस नार्मल से कम होता है। मूत्र मे कैल्सियम नार्मल से कम होता है। प्लाज्मा मे Alkaline Phosphatase की मात्रा बढी हुई होती है। X-Ray द्वारा अस्थियो मे Decalcification मिलता है।

इस रोग (Hyperparathyroidism या Fibrocystic Osteitis) का चिरस्थायी वृक्क रोग से सम्बन्ध —

चिरस्थायी वृक्क रोग मे Acid Sodium Phosphate के रूप मे फास्फोरस के मूत्र मे से ठीक-ठीक न निकलने से सीरम मे उसकी मात्रा बढ जाती है। परिणामत Cal Phosphate के कम विलेय होने से रक्त मे कैल्सियम की मात्रा कम हो जाती है जिसको पूरा करने के लिये अस्थियो मे से वह रक्त मे आने लगता है। लिहाजा अस्थियो मे से कैल्सियम फास्फेट के निकलने से उनमे Fibrocystic Osteitis का रोग हो सकता है। साथ ही रक्त मे कैल्सियम की कमी से Tetany का लक्षण भी हो सकता है। चिरस्थायी वृक्क रोग मे जब फॉस्फोरस की निकासी घट जाती है तब Parathyroids मे अभिवृद्धि (Secondary) होकर भी यह रोग हो सकता है। उस अवस्था मे Ch Nephritis का इतिवृत्त होता है। उसे जानकर उस रोग का भ्रम नही रहता।

उपगल ग्रन्थि प्राबल्य (Hyper Parathyroidism) की चिकित्सा —

स्थानिक शल्यकर्म से ही यह निश्चय हो सकता है कि उपगल ग्रथियो मे से किसी मे अर्बुद तो नही। यदि उसका पता लगे तो उसे निकालने से ही रोग शान्त होता है। उस शल्यकर्म से पहले जब रक्त मे कैल्सियम का आधिक्य होता है कैल्सियम प्रधान भोजन बन्द कर देने चाहिए अन्यथा वृक्को और हृदय मे काठिन्य के होने से उपद्रवो के होने का भय रहता है। रोगी को जल अधिक मात्रा मे पीना चाहिए ताकि वृक्को मे से कैल्सियम भली प्रकार निकलता रहे। शल्यकर्म के बाद भी वृक्को को जो क्षति पहुच चुकी है वह ठीक नही होती, Pyelonephritis बना रहता है B P भी बढा हुआ ही रहता है।

शल्यकर्म के बाद कैल्सियम की न्यूनता की पूर्ति के लिए दूध आदि कैल्सियम प्रधान आहार तथा Calcium Lactate को पहले १ ड्राम मात्रा मे और फिर २० ग्रेन मात्रा मे दिन मे ३ बार देते रहना चाहिए तथा साथ ही विटामिन "डी" को ५० हजार यूनिट्स की मात्रा मे (Calciferol) मांस द्वारा या मुख द्वारा प्रतिदिन देना चाहिए। अस्थिगत रोग (Fibrocystic Osteitis) फिर भी बहुत दिन तक रहता है। कई महीनो तक उपर्युक्त चिकित्सा के जारी रखने से वह भी ठीक हो जाता है।

अस्थि गुहा भाव (Osteoporosis) की चिकित्सा —

अस्थिगुहाभाव या Osteoporosis रोग के लिये कोई प्रभावकारी चिकित्सा नही है। उसके उपद्रवो को रोकने के लिये कुछ उपाय हो सकते है। रोगी को मुख द्वारा ३ ग्राम कैल्सियम रोज मिलना चाहिये। एतदर्थ Cal lactate, Cal Phosphate, Cal glycerophosphate (Compound Glycerophosphate syrup ४ मिलि लि० मात्रा मे) आदि किसी का प्रयोग किया जा सकता है। दूध सवा सेर मे डेढ़ ग्राम कैल्सियम होता है। इसलिये दूध का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा मे करना चाहिये। उसमे प्रोटीन

भी मिल जाता है। विटामिन 'सी' का प्रयोग भी होना चाहिये। विटामिन 'डी' भी दूध मे मिल जाता है। स्त्री मे यह रोग हो तो उसे Ethynyl oestradiol ०२–०५ मिलि० दैनिक मात्रा मे महीने में २१ दिन कुछ काल तक दें। या ५ मिलि० दैनिक मात्रा मे Diethylstilboestrol दैनिक मात्रा मे उसे मास मे २१ दिन मिलना चाहिये। रोगी पुरुष हो तो उसे Testosterone (Methyltestosterone) ५ मिलि० मात्रा मे रोज मिलना चाहिये। या इस रोग के लिये Dianabol ३० मिलि० उसे प्रतिदिन मिलना चाहिये अथवा Male Female दोनो Hormones भी इस रोग मे दिये जा सकते है। एतदर्थ Mixogen एक दो गोली रोज दे सकते है। Durabolin २५ मिलि० को सप्ताह मे एक बार मास द्वारा देने मे भी अस्थियो का पोषण बढता है और शायद Osteoporosis को लाभ होता है। उपर्युक्त Hormone को एक महीना देने के बाद बीच मे १०-१५ दिन का नागा करके देना चाहिये।

रोगी की व्यायाम चिकित्सा Physiotherapy भी होनी चाहिये। पीठ कूल्हे और जाघो की मासपेशियो को हिलानेवाली कसरत विशेष होनी चाहिये। वृद्ध व्यक्तियो को आलस्य मे न रहकर गतिशील रहना चाहिये। इससे अस्थियो का पोषण बढता है। बडी उमर मे इस रोग से बचने के लिये यह भी आवश्यक है कि वह भारी बोझ कभी न उठायें न ही किसी भारी बोझ को उठाकर कही ले जायें। जमीन मे कोई बोझ उठाना हो तो कूल्हे के जोड Hip-joint पर तथा गोडे के जोड पर ही झुकें, पीठ के जोडो पर न झुकें।

Osteomelacia की चिकित्सा

इस रोग के मूल कारण Malabsorption के लिये Folic acid १ मिलि० दैनिक का या विटामिन बी$_{12}$ के इजेक्शन का प्रयोग करना चाहिये तथा विटामिन 'डी' का अर्थात् Calciferol Solution का २०-२५ हजार, यूनिट्स का दैनिक प्रयोग करना चाहिये, साथ ही Calcium-lactate एक चम्मच दिन मे दो तीन बार दे दे। कैल्सियम प्रधान आहार जैसे दूध के दो तीन ग्लास दैनिक देने से भी इस रोग मे लाभ प्रतीत होता है। जब तक Malabsorption का रोग हो तब तक Calciferol आदि को मुख से न देकर मास द्वारा देना ठीक है।

उपगल ग्रंथि नैर्बल्य Hypoparathyroidism Parathyroid के Hormone की न्यूनता से होने वाला रोग १२ वर्ष तक की आयु मे या ४० वर्ष से ऊपर होने वाला यह रोग है।

उपगल ग्रंथियो की पैतृक निर्बलता (Idiopathic Hypoparathyroidism) या Autoimmunity के कारण सम्भवत: शिशुओ मे स्तम्भ (Spasm) का लक्षण होता है। परन्तु बहुधा तो गल ग्रन्थि पर Thyroidectomy का या Parathyroid tumour का शल्यकर्म होने के बाद Parathyroid अवयव के कम हो जाने पर एव उनके सूक्ष्म रस के कम उत्पन्न होने से मास स्तम्भ का रोग होता है। इनके सूक्ष्म रस (Parathormone) के कम हो जाने से एक तो अस्थियो से कैल्सियम का रक्त मे आना कम हो जाता है, दूसरे वृक्को मे मे मूत्र द्वारा Phosphates की निकासी घट जाती है अर्थात् वृक्को की मूत्र स्त्राविणियो से इनका पुर्नविलयन अधिक होने लगता है जिससे रक्त मे इनके बढ जाने से रक्त मे Cal phosphate बढ जाता है। यह कम घुलनशील है अत रक्त मे कैल्सियम की मात्रा घट जाती है, केवल ७% होती है। एव कैल्सियम हीनता (Hypocalcaemia के लक्षण होने लगते हैं। उसी कारण चेष्टावाही तथा ज्ञानवाही दोनो नाडिया (Nerves) एव अनैच्छिक (Autonomic) नाडी मण्डल भी विक्षुब्ध Excitable हो उठता है। उससे उत्पन्न मास स्तम्भ को खल्ली या Tetany कहा जाता है उससे उत्पन्न होने वाले Carpo-pedal Spasms, Laryngospasm म ख माम पेशियो मे स्तम्भ का उल्लेख नाडी रोगो मे हुआ है। उपगल ग्रथियो के सूक्ष्म रस की न्यूनता से होने वाला मास स्तम्भ तो विशेषत गल ग्रथि सम्बन्धी शल्य कर्म के कारण होता है। इन ग्रथियो के रोग के अतिरिक्त अन्य कारणो से जैसे बाल सुलभ अस्थि शोष रोग (Rickets) तरुण सुलभ अस्थि शोष रोग (Osteomalacia) या आतो मे से कैल्सियम के शरीर मे कम जाने अर्थात् ग्रहणी रोग या चिर अतिसार के कारण या विटामिन "डी" की विशेष कमी से या चिरस्थायी वृक्क रोग मे वृक्को मे से Phosphates के न निकलने एव उनके रक्त मे अधिक बढ जाने से भी जैसे ऊपर कहा है रक्त मे कैल्सियम की कमी हो सकती है। फिर उसके कारण मास स्तम्भ का रोग हो सकता है। इस अवस्था मे रक्त मे ही नही, मूत्र मे भी कैल्सियम की मात्रा नार्मल से कम हो जाती है।

मास स्तम्भ का यह लक्षण इन ग्रंथियो पर शल्यकर्म होने के बाद तुरन्त या कुछ देर बाद होने लगता है। साधारणत यह लक्षण ६ मास से २ वर्ष तक की आयु के ऐसे शिशुओ मे होता है जिन्हे अतिसार का रोग होता है। उनमे कर-पाद स्तम्भ (Carpopedal Spasm) या कण्ठ-स्तम्भ (Laryngospasm या Stridor) सारे शरीर मे आक्षेप (Convulsions) के रूप मे होता है। बडे व्यक्तियो मे होने वाले क्षणिक कम्प (Twitchings) और आक्षेप भी कैल्सियम की न्यूनता के कारण हो सकते है। सारे शरीर मे होने वाले आक्षेप, अपस्मार जनित होते है। उसका भेद इस रोग से करना चाहिए। इस रोग मे रक्त के अन्दर कैल्सियम की न्यूनता (६ मिलि० प्रतिशत से कम) होती है और फॉस्फोरस की (३ ५ मिलि० प्र०श ० से) अधिकता होती है। मूत्र मे भी कैल्सियम कम (Sulkowitch test Negative) होता है। Bleeding Time तथा Coagulation Time दोनो दीर्घ होते है।

उप-गल-ग्रंथि नैर्बल्य (Hypoparathyroid Tetany) की चिकित्सा —

रोग तीव्र रूप मे हो तो १० प्र० श० Calcium Gluconate को १०-२० सी० सी० मात्रा मे शिरा द्वारा दे देना चाहिये या Calcium Chloride के १० प्र०श० सोल्यूशन को ५-१० सी० सी० मात्रा मे धीरे-धीरे शिरा द्वारा देना चाहिए या १ लिटर ५% ग्लूकोज सोल्यूशन मे १०-५० सी० सी० इनमे से किसी को मिलाकर बूद-बूद करके दें। Parathyroid या Parathormone को २०-६० यूनिट्स की मात्रा मे मास द्वारा या त्वचा द्वारा भी दिया जाता है तथा दुहराया भी जाता है। परन्तु इनके बिना भी यह रोग केवल कैल्सियम चिकित्सा से भी ठीक हो जाता है। यदि रोग अधिक प्रबल रूप मे न हो तो Calcium Gluconate को ३० ग्रेन की मात्रा मे दिन मे ४ बार या Calcium Lactate या Chloride को एक-एक ड्राम की मात्रा मे दिन मे ४ बार मुख मे देना चाहिए। साथ ही Dihydrotachysterol (Hytakerol Capsule या A T 10 Bayer) को ४-१० मिलिग्रा० दैनिक मात्रा मे मुख द्वारा २-३ दिन दे। फिर १ मिलिग्रा० दैनिक मात्रा १-२ सप्ताह दे। यह महगी होने से न दे सके तो Liquor Calciferol (विटामिन "डी") को २५-५० हजार यूनिट्स की मात्रा मे दिन मे ३ बार दे देना चाहिए। इससे भी उपर्युक्त औषधि के समान लाभ होता है। सीरम के कैल्सियम की परीक्षा करते हुए इस औषधि की मात्रा को बढा-घटा सकते है। मूत्र मे कैल्सियम अधिक आने लगे तो इस औषधि को कम कर दे। मूत्र मे कैल्सियम कम आए तो इसकी मात्रा बढा देनी चाहिए। थोडे मूत्र मे उतना ही Sulkowitch Reagent मिलाने से यदि कोई निक्षेप न आए तो उसमे कैल्सियम को ५-६ मिलि० प्र० श० मात्रा मे ही समझना चाहिए। यदि निक्षेप भारी आये तो कैल्सियम की मात्रा अधिक है, ऐसा समझना चाहिए। ऐसी अवस्था मे Hypercalcinosis के दुर्लक्षण होने लगते है। Reagent डालने से मूत्र मे हलका सा-ही निक्षेप आना चाहिए।

भोजन मे २४ औंस दूध देने से रोगी को १ ग्राम के लगभग कैल्सियम मिल जाता है पर उसमे फॉस्फोरस की मात्रा भी होती है, इसीलिए विशेषत कैल्सियम के पहुचाने वाले फल, सब्जी आदि अधिक मात्रा मे देने चाहिए। रोगी को एक-एक दिन छोडकर १-२ पाइन्ट नार्मल सेलाइन के द्वारा बस्ती करनी चाहिए। इससे भी मास स्तम्भ शान्त होता है। Chloral Hydrate को स्तम्भ शमन के लिए ५-१० ग्रेन मात्रा मे दिन मे ३ बार २-३ दिन दे सकते हैं। बालक को इसकी मात्रा कम करके दे। रोगी के अच्छे हो जाने पर उसे Calcium-Lactate ५-१० ग्रेन प्रतिदिन लेते रहना चाहिए।

कटिशूल (Backache)—कमर की अनेकानेक मास पेशियो मे से किसी मे spasm होकर दर्द हो जाता है। उसे गर्म बोतल, या Infra red की सिकाई दे कर हलका Massage करने से तथा Iboprofen (Brufen) २०० मिलि० गोली के या Tanderil १०० मिलि० के या Butazolidin १०० मिलि० के ३-४ बार देने मे लाभ हो जाता है। इन मास पेशियो की निर्बलता को दूर करने के लिये कुछ व्यायाम लाभदायक हैं जिनका उल्लेख किया जाता है।

(१) दोनो हाथो पर माथा टेक कर, अधोमुख लेट कर, विना गोडे को मोडे पहले एक टाग को जितना ऊपर उठा सकते हो उठायें, फिर दूसरी को उठायें, फिर दोनो टांगो को इकट्ठा भी उठायें। ऐसा आठ दस वार करें।

(२) अधोमुख लेटकर, वाहो को पीछे पीठ पर रखकर, छाती को और सिर को जितना ऊचा उठा सकते हो उठायें (सर्पासन के समान)।

(३) इसी प्रकार लेट कर पहले ऊपरले धड को ऊपर उठायें, फिर निचले धड और टागो को जमीन से उठायें, फिर ऊपरले और निचले दोनो धडो को उठायें, पेट के भार ही रहें। इस व्यायाम को भी ८-१० वार दुहरायें।

(४) अव पीठ के भार लेट कर, सिर और नितम्ब प्रदेश के भार पर पीठ को धनुषाकार ऊपर उठायें। फिर उसे अपनी पूर्व स्थिति पर लायें। ऐसा पाच वार करें।

(५) दोनो हाथो पर सिर रख कर ऊर्ध्व मुख लेट कर, ऊपर के धड और सिर को ऊपर उठायें, कोहनिया साइड पर ही रहें, तथा टागें भी जमीन पर ही रहें।

(६) सीधा खडे होकर, दाईं टांग को काफी आगे जमीन पर रख कर उसके गोडे को ९० डिग्री के लगभग मोड़ें, वाईं टाग को पीछे ले जाकर उसके पंचे तथा दाईं टाग पर सीधे खडे हो, दाया हाथ कमर पर और वायां हाथ आगे वाईं Thigh पर हो, अव ऊपरले धड़ को इतना पीछे ले जाएं कि वाईं Thigh पर खींच पडे, इस प्रकार १०-२० वार ऊपरले धड़ को पीछे की तरफ ले जायें। फिर इसी प्रकार वाईं टाग को आगे रख कर और दाईं टाग की Thigh पर खींच डालें। इसे भी कई वार दुहरायें।

वाल रोग

Diseases of Children

गर्भिणी को जिन कुछ एक औषधियो के देने से गर्भस्थ वालक को हानि पहुच सकती है उनमे से निम्नलिखित औषधिया प्रमुख है। ऐसे Hormones जैसे Progesterones, Androgens, Corticosteroids। ऐसी Antibiotic औषधिया जैसे Sulphonamides, Streptomycin, Chloramphenicol, Tetracyclines, Furadantoin ऐसी Sedatives, Tranquillizers तथा Analgesics जैसे Salicylates, Morphine, Phenobarbitone, Meprobamate, Phenothiazines, Diphenylhydantoin। B P की औषध जैसे Reserpine। ऐसी मूत्रल औषधि जैसे Thiazides। ऐसे Vitamins जैसे Vitamins D K। ऐसी मधुमेहर औषधिया जैसे Restinon, Diabenes, Phenformin।

इसी प्रकार नवजात शिशु को भी ३ मास तक Sulpha drugs, Opium, Chloramphenicol औषधिया नही देनी चाहिये। Tetracyclines भी शिशु और वालक के लिये हानिकारक होते है।

वालक की स्वाभाविक वृद्धि :—

वालक की भ्रूणावस्था या foetus अवस्था मे वृद्धि वहुत होती है। एक Sperm और एक Ovum से वना एक Zygote नामक सेल आठ मास के अन्दर माता के पेट मे ७ पौड भार का हो जाता है। गर्भावस्था के भी पिछले ३ मास मे यह वृद्धि विशेष होती है। जन्म के समय शिशु का भार ७-७½ पौण्ड के लगभग होता है। उसके वाद पहले ५ दिन उसका भार १०% के लगभग घट जाता है। फिर १० दिन के वाद उसका घटा हुआ भार पूरा हो जाता है।

जन्म के वाद पहले दो वर्ष वालक की वृद्धि विशेष होती है। फिर तीसरे वर्ष से उसकी वृद्धि की गति मन्द पड जाती है। हा, फिर युवावस्था Puberty के आरम्भ होने पर अर्थात् १४ वर्ष से शारीरिक वृद्धि की गति तीव्र हो जाती है।

जन्म के वाद प्रथम वर्ष मे वालक का सिर विशेष वढता है। इसीलिये प्रथम वर्ष मे उसका शिर शरीर की अपेक्षा वडा दीखता है। जन्म के समय सिर का घेरा १३ ५ इ होता है। जन्म पर उसकी छाती सिर की अपेक्षा १ या ८ इच छोटी होती है। फिर १२ मास का हो जाने पर उसके सिर और छाती का घेरा एक से हो जाते है। जन्म के समय वालक का धड वडा तथा शाखाये छोटी दीखती है। अर्थात् शरीर का ऊपर का भाग शिर के सिरे से लेकर Symphysis-pubis तक के भाग और निम्न शाखाओ का रेशियो १ ७ १ का होता है। इसके वाद निम्न शाखाओ मे वृद्धि की गति तीव्र हो जाती है और १० वर्ष की आयु पर ऊपर के

धड और निम्न शाखाओं की लम्बाई का रेशियो १ : १ का हो जाता है। इसी प्रकार एक वर्ष की आयु हो जाने पर छाती का घेरा सिर के घेरे के बराबर हो जाता है और इसके बाद छाती का घेरा जल्दी जल्दी बढने लगता है। जन्म के समय छाती की आगे पीछे तथा एक बाजू से दूसरे बाजू तक की चौडाई एक सी होती है। फिर यह बाजू से बाजू अर्थात् Transverse चौडाई शीघ्र शीघ्र बढने लगती है। यह भी स्मरणीय है कि बाल्यकाल तथा युवावस्था मे ऊचाई शीघ्र शीघ्र बढती है। इसके बाद ऊचाई नही बढती, चौडाई अर्थात मास और चर्बी की विशेष वृद्धि होती है।

बालक के भार तथा ऊचाई में वृद्धि —

जैसे ऊपर कहा है जन्म के समय शिशु का भार ७ पौण्ड के लगभग होता है। फिर तीन मास तक उसका भार प्रति मास २ पौण्ड बढता है। फिर बढने की प्रक्रिया कुछ मन्द हो जाती है। चौथे से १२वे मास तक उसका भार प्रति मास १ पौंड बढता है। इस प्रकार एक वर्ष की आयु हो जाने पर उसका भार २०–२२ पौण्ड के लगभग हो जाता है।

जन्म के समय शिशु की ऊचाई १ फु॰ ७½ इ होती है। १ मास बाद १ फु ८½ इ, दो मास पर १ फु ९ इ, ३ मास पर १ फु १० इ, ४ मास पर १ फु ११ इच, ५ मास पर १ फु ११½ इ, ६ मास पर २ फु, ७ मास पर २ फु ½ इ, ८ मास पर २ फुट १ इ, ९ मास पर २ फुट १½ इ, १० मास पर २फु-२ इ, ११ मास पर २ फु २½ इ, १२ मास पर २ फु ३ इ हो जाती है।

बालक जब दो वर्ष का होता है तो उसका भार २६ पौंड होता है अर्थात् १½ वर्ष बाद बालक की वृद्धि मन्द हो जाती है, ३ वर्ष की आयु पर उसका भार ३१ पौंड होता है। ४ वर्ष की आयु से लेकर ११ वर्ष की आयु तक प्रति वर्ष ५ पौंड की वृद्धि होती है। फिर १२ वर्ष से १८ वर्ष की आयु तक अर्थात् युवावस्था आरम्भ होने पर जब वृद्धि की गति तीव्र होती है उसका भार प्रति वर्ष १० पौण्ड बढता है।

बालक की ऊचाई ३ वर्ष की आयु मे ३८ इञ्च होती है। ४ वर्ष की आयु पर ३ फुट ८ इ होती है। फिर १२ वर्ष की आयु तक प्रति वर्ष २ इञ्च ऊचाई बढती है। इसके बाद फिर १४-१५ वर्ष की आयु तक ऊचाई विशेष बढती है। १५ वर्ष की आयु के बाद ऊचाई के बढने की गति मन्द हो जाती है और १८ वर्ष की आयु के बाद तो लगभग बन्द हो जाती है। ऊचाई कितनी होनी चाहिये उसका फार्मूला यह है —

आयु वर्षो मे × २ + ३२ = ऊचाई इञ्चो मे

शिशु की मानसिक वृद्धि :—

एक मास की आयु हो जाने पर शिशु मे Neck reflex उत्पन्न हो जाता है अर्थात् उसकी ग्रीवा को एक ओर घुमाये तो उधर की शाखाओ मे Extension हो जाता और दूसरी ओर की शाखाओ मे Flexion हो जाता है। दूसरे महीने मे बालक मे Moro-reflex आ जाता है अर्थात् यदि उसके एक ओर आवाज करे या उसके एक ओर बिस्तरे पर टकोरे तो वह सिर और आखे उधर घुमा लेता है। तीसरे-चौथे महीने मे उसके अन्दर Grasp-reflex आ जाता है अर्थात् उसकी हथेली पर अपनी अगुली या पैन्सिल रखे तो वह उसे जोर से पकड लेता है। इन महीनो मे वह कुछ-कुछ सिर को तकिये से उठाने लायक हो जाता है तथा वह अपनी मा की आवाज को पहचानने लगता है।

छ मास का हो जाने पर शिशु बैठाने से थोडी देर बैठने लगता है। यदि उसे टागो पर खडा करे तो चलने का यत्न करता है। आठ मास का होने पर वह अपने आप करवट बदल सकता है। इस मास मे उसमे Conditioned reflexes उत्पन्न हो जाते है। अर्थात् विशेष किस्म की आवाज करने पर वह मलमूत्र त्यागने लगता है। दस मास का हो जाने पर शिशु सीधा बैठने लगता है, जमीन पर रिढने लगता है, सहारा लेकर टागो पर खडा होने लगता है तथा कोई शब्द भी बोलने लगता है। १२ महीने का हो जाने पर हाथ पकड कर कुछ एक कदम चल सकता है। १५ मास का होने पर वह अपने आप अपने पैरो कुछ कदम चल सकता है। टट्टी पेशाब ठीक स्थान पर करने लगता है। अठारह महीने या डेढ वर्ष का हो जाने पर वह बिना गिरे चलने लगता है तथा थाली मे से खाने की वस्तु को स्वय उठा कर खाने लगता है, तथा ८-१० के लगभग शब्द भी सीख लेता है।

शिशु का आहार:—बच्चे के पैदा होने पर उसे मा की छाती से लगाये तो वह दूध पीने लगता है। जन्म के तुरन्त बाद उसमे Sucking reflex रहता है जो स्वाभाविक या Instinctive है। दो एक दिन बाद यह स्वाभाविक Reflex लुप्त हो जाता है। उस समय मा की छाती मे दूध तो नही

होता एक प्रकार का द्रव होता हे जिसे Colostrum कहते हैं वह बच्चे के पेट मे जाता हे इसके पीने से बच्चे की आत मे जो एक चिपकीला काला सा मल रहता हे वह निकल जाता है।

स्तन्यपान Breastfeeding —नवजात शिशु के लिये सर्वोत्तम आहार स्तन्यपान है। इसके बहुत लाभ है यह सुगम हे, बहुत कम व्यय साध्य है, इसमे शिशु को अलर्जी की आशका नही रहती। वह आन्त्र सम्बन्धी सक्रमणो Infections से बच जाता है जो कि शिशुओ की मृत्यु का प्रधान कारण हैं। मा के दूध मे Immune bodies या Antibodies तथा Lysozyme रहते हैं जो आत मे जाकर शिशु को आन्त्र सम्बन्धी जीवाणुओ से विशेषत E Coli से तथा Viruses से बचाते है। मा के दूध मे किसी प्रकार के जीवाणुओं के प्रवेश की आशका नही रहती। मा के दूध मे प्रोटीन्स के दोतिहाई भाग Lact-albumin होता है जो अधिक घुलनशील हे तथा अनघुलनशील प्रोटीन Caseinogen एकतिहाई ही होता हे। इसलिए मा का दूध गाय के दूध से अधिक सुपच हे। गाय के दूध मे Lact-albumin एक चौथाई ही होता है जबकि Caseinogen तीन चौथाई होता हे। गाय के दूध की फुट्टिया कठोर एव दुष्पच होती है। गाय के दूध मे मा के दूध की अपेक्षा Phosphorus (Inorganic Phosphate) ज्यादा होता हे। शिशु, आहार मे दूध ही लेता हे, जल बहुत कम पीता हे इसलिये उसके रक्त मे फोरफोरस के बढने की सभावना रहती हे। ऐसी अवस्था मे रक्त मे कल्सियम की मात्रा के घटने की बहुत सभावना है, जिससे शिशु मे Convulsions के होने का भय रहता हे। मा के दूध मे फैट के दाने Globules छोटे-छोटे होते हैं, उसमे Volatile fatty acids भी थोडे होते हे। शिशु उनके ९०% भाग को हजम कर लेता है। गाय के दूध मे ये अधिक होते हे, इनके कारण उसे बदहजमी हो सकती हे। गाय भैंस के दूध का २५% भाग शिशु की आत मे विलीन नही होता। विलीन न हुआ हुआ यह भाग उसकी आत मे Free fatty acids और Glycerol मे बदल जाता हे। फिर ये Free fatty acids कैल्सियम को पकड कर Calcium soap बनकर बाहर निकल जाते हैं जिससे रक्त मे कैल्सियम की कमी हो जाती है। Lactose जो एक शक्ति देनेवाला द्रव्य हे मा के दूध मे ६% होता है जबकि गाय के दूध मे वह ४ ५% होता है। प्रोटीन जिसके कारण दूध कुछ गुरु और दुष्पच होता है मा के दूध मे १ ५% होता है और गाय के दूध मे वह ३ ५% होता हे। मा के दूध का Reaction alkaline होता हे जबकि गाय के दूध का वह Acidic होता हे। विटामिन 'सी' मा के दूध मे गाय के दूध से ५ गुणा होता हे। इस प्रकार मा का दूध बालक के लिये अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है। स्तन्यपान से मा के गर्भाशय मे Contraction और Involution की प्रक्रिया भी सुगमता से हो जाती है।

स्तन्यपान की विधिः—मा को चाहिये कि वह शिशु को अपना दूध दिन मे ही देवे, रात को न दे। रात को दूध बनने देना चाहिये, दिन मे उसको खर्च करना चाहिये। सुबह ६-७ बजे से शाम के दस बजे तक २½-३ घ के अन्तर से ५-६ बार शिशु को दूध पिलाना चाहिये। यह अन्तर २½ घटे से कम तथा ४ घ से अधिक नही होना चाहिये। सुबह पहले दाईं छाती का दूध १० मिनट और फिर बाईं छाती का दूध १० मिनट पिलाये। दूसरी बार पहले बाईं छाती का और फिर दाईं छाती का दूध १० मिनट तक पिलाये। दिन के अन्त मे दाईं छाती का दूध देकर दूध पिलाना खतम करें। दूध पिलाते समय मा को निश्चिन्त, शान्त और निश्चल रहना चाहिये। दूध पिलाने के दौरान मे उसे बिलकुल उठना नही चाहिये। छाती मे दूध कम हो गया हो तो स्तन्य-पान के बाद कृत्रिम दूध ४ औन्स और पिलाये। इसे बोतल का Complement-feeding कहते है। प्रत्येक Feed के बाद उबाल कर ठडा किया जल २-३ चम्मच शिशु को पिलाना जरूरी है। इससे गला, तालु आदि धुल जाते है, पिया हुआ दूध उलटता नही तथा शिशु को मल त्याग भी ठीक होता हे। इस प्रकार ४-५ मास तक शिशु को स्तन्यपान पर ही रखना चाहिये। मा का दूध शिशु के लिये पूर्ण आहार हे। अत इस दौरान मे शिशु को विटामिन आदि किसी वस्तु का देना अनावश्यक है। छाती मे सूजन हो जाये या व्रण भाव हो जाये तो उस छाती का दूध शिशु को नही देना चाहिये।

बोतल का दूध Bottle feeding —

यह दूध दो प्रकार का होता है—(१) पाउडर से बनाया दूध (२) गाय-भैंस का दूध। पाउडर का दूध एक तो Cow and Goat का Half-cream दूसरा Full cream है। इसके अतिरिक्त Ostermilk भी एक तो Half cream दूसरा Full cream हे। इनके अतिरिक्त

Glaxo का Golden Ostermilk full cream, National dried half cream Powder बाजार मे मिलते है। इनके डब्बो मे एक माप (Scoop) होता है उसे भरकर १ औन्स उबले जल मे मिलाये तो १ औन्स दूध बन जाता है। Half-cream Powder मे पहले ही खाड पड़ी होती है अत उसमे खाड मिलाने की आवश्यकता नही है। Full cream Powder से बने ४ औंस दूध मे एक छोटा चम्मच खाड मिलानी चाहिये। शिशु को पहले ३ महीने तक Half cream दूध के पाउडर से बना दूध दे। ३ मास बाद क्रमश शिशु को Full cream milk देना शुरु करे। ४ औंस दूध मे खाड १ चम्मच (छोटा) डाले। (½ Cream milk, Lactodex है)।

पाउडर के स्थान पर गाय भैंस का दूध देना हो तो उबला दूध, उबला पानी, दोनो बराबर मिलाकर बनायें। ४ औं दूध मे १ चम्मच खाण्ड मिलाकर उसे पिलाये। शिशु का भार १० पौण्ड हो तो प्रति पौण्ड भार के पीछे २½ औन्स दैनिक दूध मिलना चाहिये। अर्थात् २५ औंस दैनिक दूध मिलना चाहिये। ५ बार देना हो तो प्रत्येक बार ५-५ औन्स देवे। अथवा जितना शरीर का भार हो उसका आधा करके उतने औंस दूध शिशु को देना चाहिए। १० पौ भार हो तो ५ औं दूध एक बार मे दे। ५ Feeds हो तो दिन भर मे २५ औंस दूध खर्च होगा।

बोतल के दूधो की अपेक्षा स्तन्यपान ही श्रेष्ठ है। बहुत से चिकित्सको का मत है कि जो शिशु कृत्रिम दूध पर पाले जाते है उनमे Allergy, Obesity, Ulcerative colitis, Coronary artery disease, Atherosclerosis, Hypernatraemia (रक्त मे सोडियम की अधिकता) Neonatal tetany, Respiratory infections, Gastroenteritis आदि रोगो के होने की आशका अधिक रहती है।

बोतल का दूध देना ही पडे तो उसमे कुछ सावधानताये बरतनी चाहिये। निपल का छेद छोटा नही होना चाहिये। दूध की बोतल के ऊपर हवा न रहने दें अर्थात् शिशु दूध के साथ हवा का अश न पिये इसका ध्यान रखना चाहिये। बोतल का दूध जब खतम होने लगे तो उसमे कुछ दूध रहने देवें, ऐसा न हो कि शिशु अन्तिम घूटो के साथ कुछ हवा पी ले। शिशु के पेट मे दूध ही जाना चाहिये हवा नही। जो शिशु बोतल का दूध पीते है उन्हे Adexoline या Abdec मे से किसी का, Vitamin C का, तथा Syrup mina-dex का दिन मे एक बार देना आवश्यक हो जाता है। शिशु को दूध पिलाने के बाद उसे गर्म जल २-३ घूट दे देवें। तथा बोतल और Teat दोनो को पानी मे उबाल कर रखें।

Weaning —पाच मास तक शिशु को कोई ठोस पदार्थ खाने को नही देना चाहिये। शिशु मे Chewing reflex पाच मास की आयु के बाद आता है। इस आयु से पहले वह चबा नही सकता। Swallowing reflex अर्थात् निगलने का Reflex तीसरे महीने मे आता है। इसलिये चार मास से पहले खाने की कोई चीज शिशु को न दे। इस उमर के बाद दाल या सब्जी का सूप दिन मे २ बार सुबह ८ बजे तथा शाम को ६ बजे थोड़ा-थोड़ा देना शुरू करे। ८वे तथा ९वे महीने मे द्रवरूप अन्नाहार भी दिये जा सकते है। १२ मास के बाद १५ मास तक, घर मे बने साधारण आहार थोडी थोडी मात्रा मे सुबह ८ बजे और शाम को ४ बजे उसे दे सकते है। शेष समयो पर उसे दूध देवे, साथ ही Vit A D Vit C तथा syrup Minadex भी रोज एक बार देवे।

शिशु के प्रथम दो वर्ष मे उसकी वृद्धि विशेष होती है अत इस काल मे उसे प्रति किलो पीछे ३ ग्राम प्रोटीन दैनिक मिलना चाहिये अर्थात् दूध, दही आदि पर्याप्त मिलना चाहिये। दो वर्ष की आयु के बाद १½-२ ग्राम प्रोटीन प्रति किलो दैनिक ही पर्याप्त है। बड़ी आयु के बालक को प्रति किलो पीछे १ ग्राम प्रोटीन ही जरूरी होता है।

रोग प्रतिरोधक उपाय Immunization —

Smallpox के प्रतिरोध के लिये १½ मास के अन्दर अन्दर ही शिशु का Vaccination हो जाना चाहिये। फिर जब वह पाच वर्ष का हो जाय, दुबारा Vaccination होना चाहिये।

Triple Vaccine (D P T Vaccine) इसमे Pertussis के killed organisms बीस हजार मिलियन, Diphtheria toxoid के २५ L F Units, Tetanus के २ L F Units होते है। शिशु को तीसरे महीने मे मास द्वारा इसे दे दे तथा एक डेढ मास के अन्तर से इसे तीन बार दे दे।

Oral Poliomyelitis —शिशु को तीसरे मास मे मुख द्वारा इसकी एक मात्रा दे दे। इसकी दूसरी मात्रा उसे पाचवे मास मे दे। इसकी तीसरी मात्रा उसे छठे मास मे दे। इस मात्रा के देने के ६ घटे पहले तथा ६ घटे वाद वालक को मा का दूध न पिलायें। इस काल मे Glucose water या Powder milk ही दे।

B C G Vaccine —यह T B का Live Vaccine है। Neonate या नवजात शिशु को इसे दूसरे सप्ताह के अन्दर अन्दर दे देना चाहिये। अभी तक उसमे T B ने प्रवेश नही किया होता अत उसमे Mantoux test की कोई आवश्यकता नही होती। ५-७ वर्ष वाद फिर इसकी एक Booster मात्रा भी दे देनी चाहिये। यदि शिशु को B C G का टीका पहले महीने न मिला हो और वाद मे देना हो तो पहले Mantoux test करना आवश्यक होता है। वह Negative हो तभी B C G का टीका दिया जाता है। १० वर्ष की उमर मे जो वालक Nonreactor हो उन्हें यह टीका लगा देना चाहिये। युवावस्था मे ही T B. की विशेप आशका रहती है। Vaccinated लडको मे ८०% मे फिर T. B नही होता।

Antibiotics की वालोचित मात्रा :—

(१) Phenyl methyl penicillin (Penicillin V) वालकों के Streptococcal, Pneumococcal infections के लिय उत्तम है। चार लाख यूनिटम् की गोलिया मिलती है। ६-६ घ० पर ३-४ दिन दें।

(२) Ampicillin—Strepto, Pneumo, Meningococci, Proteus, E coli, Salmonella के लिये Bactericidal है। १०० मिलि० प्रति किलो दैनिक मात्रा।

(३) Nalidixic acid—मत्र मे Infections अर्थात E coli, Proteus, aerobacter, Klebsiella के लिये उपयोगी मात्रा ५० मिलि० प्रति किलो दैनिक।

(४) Cloxacillin, Oxicillin, Methicillin—Pneumo, Strepto, Staphylococci के लिये उपयोगी १०० मिलि, प्रति किलो, दैनिक मात्रा वाट कर दे।

(५) Neomycin, Bacitracin १०% मलहम वाह्य Sepsis के लिये उपयोगी।

वालको के लिए औपध मात्रा का निश्चय :—

जन्म के तुरन्त वाद भार ७ पौड हो तो Adult dose का $\frac{१}{८}$ उसकी औपध मात्रा है। २ मास की आयु, १० पौ भार हो तो वडो की मात्रा का ६$\frac{३}{३}$ भाग मात्रा दे। ४ मास का वालक हो भार १४ पौ हो तो $\frac{१}{५}$ भाग दें। ९ से १२ मास की आयु हो तो वडी मात्रा का एक चौथाई भाग दे। वालक ५ वर्ष का हो ४० पौ भार हो तो वडी मात्रा का $\frac{२}{५}$ भाग दे। ७ वर्ष का वालक हो भार ५० पौड हो तो वडी मात्रा का $\frac{१}{३}$ भाग दे। वालक १० वर्ष का हो और भार ६६ पौड हो तो वडी मात्रा का $\frac{३}{५}$ भाग दे। ११ वर्ष का वालक हो, भार ८० पौं हो तो वडी मात्रा का $\frac{७}{१०}$ भाग दें। १२ वर्ष का वालक हो भार ८८ पौ हो तो वडी मात्रा का $\frac{३}{४}$ भाग दे। वालक १४ वर्ष का हो, भार १०० पौड हो तो वडी मात्रा का $\frac{४}{५}$ भाग दे। वालक जव १६ वर्ष का हो जाय, भार १२० पौण्ड हो तो वडी मात्रा का $\frac{६}{१०}$ भाग दे। १६ वर्ष से ऊपर Adult dose देना शुरू करे। ५ वर्ष से छोटे वालक को औपध द्रव रूप मे देनी चाहियें।

Premature infant —सप्तमासिक शिशु

यदि गर्भिणी मे Taxaemia हो जाय, उसे गर्भाशय सम्वन्धी कोई रोग हो, मधुमेह हो, पुराना वृक्क रोग Renal disease हो, Heart disease हो, तो गर्भस्थ शिशु समय से पहले उत्पन्न हो जाता है। भार २$\frac{१}{२}$ किलो से कम हो तो ऐसे शिशु को Premature कहते है। उसमे एक तो Temperature को कण्ट्रोल मे रखने की मशीन का विकास नही हुआ होता जिससे उसे शीघ्र सरदी लग जाती है। दूसरे उसमे श्वास-प्रश्वास लेने की स्वाभाविक शक्ति निर्वल होती है जिससे उसमे आक्सीजन की कमी Hypoxia का विकार हो सकता है। Infections से वचने की स्वाभाविक शक्ति उसमे कम होती है उसका तापमान ९५ फा से कम होता है। उसे श्वास प्रश्वास मे कठिनता होती है। वह दूध भी नही चूषता। उसके रोने की आवाज मे फरक होता है। उसमे एक Shrill होती है। उसमे Convulsions भी हो सकते

है। ऐसे शिशु को तुरन्त अस्पताल में दाखिल कर देना चाहिये। वहां उसे गर्म कमरे में जिसमें ६५-७० फा (१८-२१ सेन्टि०) की गर्मी है रखा जाता है। Humidity भी रखी जाती है। उसके कम्बल के आसपास गर्म बोतलें रखी जाती हैं जो कपड़े में लिपटी होती हैं। इसके बाद एक डेढ़ दिन उसे बिना दूध के ही रखते हैं। फिर मिल्क पाउडर का उबले जल में बना हुआ ३ औंस बनाकर उसमें से २-२ ड्राम उसे ३-३ घंटे पर देते हैं। पिलाते समय तथा आधा घंटा बाद भी उसका सिर ऊंचा रखें ताकि पेट का दूध उसकी श्वास नाली में न चला जाय। उसकी दो ड्राम की दूध की मात्रा को धीरे-धीरे बढ़ाये। दूध पिलाने के सब बर्तन उबले जल से धोये ताकि Infection उसमें न जाये। बाहर के किसी व्यक्ति को उस कमरे में न आने दें ताकि Infection न आये। जो बालक को हाथ लगाये हाथ को Disinfect करके लगाये। कोई विटामिन A+D का योग देना चाहिये।

बाल सुलभ रोग —

(१) Physiologic Jaundice नव जात शिशु कामला, या Hyperbilirubinemia of the new born या Icterus-Neonatorum

रक्तकणों में विद्यमान Haemoglobin के degenerated हो जाने पर, Reticuloendothelial system के सेल उसके Haem में से Bilirubin बना देते हैं। एक ग्राम Haemoglobin के नष्ट होने पर उसमें से ३५ मिलि० Bilirubin की उत्पत्ति इन सेलों में होती है। रक्त के द्वारा जब यह Bilirubin यकृत में पहुंचता है तो उसके सेलों में विद्यमान Glucuronyl transferase नामक Enzyme के द्वारा यह एक पदार्थ Bilirubin glucuronide या जिसे Conjugated Bilirubin कहते हैं उसमें परिवर्तित हो जाता है जो अधिक घुलनशील है तथा वृक्कों आदि द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है।

किसी किसी शिशु के यकृत के सेलों में इस Enzyme का उचित विकास न हो या यह भी सम्भव है कि जन्म के तुरन्त बाद रक्त के रक्त कणों की टूटने की प्रक्रिया कुछ तीव्र हो, जिससे लगभग ५०% नवजात शिशुओं के रक्त में Bilirubin की मात्रा बढ़ जाती है जिनसे कामला या Jaundice हो जाता है। Premature शिशुओं में ८०% में यह पाया जाता है। यह भी सम्भव है कि [illegible] Bile canaliculi [illegible] अवस्था [illegible] जाता है।

यह रोग ३-५ दिन बाद प्रकट होता तथा [illegible] (Apathetic) [illegible] (Meconium) [illegible] इस रोग की चिकित्सा आवश्यक नहीं। यह स्वयमेव ठीक हो जाता है।

Infantile Cirrhosis बाल्ययकृत वृद्धि —

इस रोग का पहले भी वर्णन हुआ है। यहां संक्षेप में फिर उल्लेख किया जाता है। यह रोग तीन वर्ष से छोटे विशेषतः १० मास से १८ मास आयु के, आम तौर पर धनिकवर्गों के ऐसे Male शिशुओं में होता है जिन्हें मां के दूध के स्थान पर गाय, भैंस का दूध मिला होता है तथा जिन्हें शीघ्र ही अन्नाहार आरम्भ कर दिया जाता है। सम्भवतः कुछ गाय भैंसों के दूध में Aflatoxins (B^1 B^2 G, G^2) रहते हैं जिनके दुष्प्रभाव से यकृत के सेलों में Necrosis तथा Fibrosis की प्रक्रिया होकर यह रोग होता है।

लक्षण—प्रारम्भ में शिशु का पेट कुछ उभरा हुआ दीखता है। वह आहार कम लेता है या ज्यादा लेने लगता है। साथ ही उसे अतिसार होने लगते है। देखने में वह सुस्त-सा और चिडचिडा हो जाता, उसके हाथ-पैर के तलुओं, पेट, माथे पर हाथ रखने से वे कुछ गर्म मालूम होते हैं।

इन पूर्वरूपों के बाद होने वाली यकृत वृद्धि को तीन अवस्थाओं में बांट सकते है। प्रथम अवस्था में यकृत, Costal-arch से एक दो अंगुल नीचे हाथों को लगने लगता है, अभी वह मृदु होता है। इस अवस्था में चिकित्सा न हो तो इसके ३ से ६ महीने के अन्दर इसकी द्वितीय अवस्था शुरू होती है। यकृत आकार में कुछ बड़ा हो जाता है, स्पर्श में मृदु न रह कर कठोर हो जाता है। उसका किनारा भी तीखा लगता है। कोष्ठ पर शिरायें उभरी हुई दीखती है। प्लीहा भी कुछ बढ़ जाती है तथा स्पर्श में कठोर प्रतीत होती है। इस अवस्था को भी दो महीने हो जाये तो

तृतीय अवस्था शुरू होती है। इस अवस्था मे इस रोग के उपद्रव जाहिर हो जाते है। एक तो चेहरे और पावो मे Oedema श्वयथु प्रकट हो जाता है। दूसरे कामला और तीसरे जलोदर के उपद्रव जाहिर हो जाते है। कामला और जलोदर उत्तरोत्तर बढते जाते है। यकृत सारे कोष्ठ को घेर लेता है। उसके पृष्ठ पर Nodules भी हो सकते हैं। इन उपद्रवो के अतिरिक्त Epistaxis नासारक्तस्राव, या Haematemesis के दौरे अर्थात् Oesophageal Varices के दौरे हो सकते हैं जो Portal hypertension के कारण होते हैं। इस गम्भीर अवस्था मे श्वास प्रश्वास मे मीठी सी गंध आ जाती है जिसे Foetor hepaticus कहते हैं। अन्त मे मृत्यु Cholaemia (Ammonia intoxication) के कारण होती है।

Pathology —इस रोग की प्रथम अवस्था मे यकृत के सेल बैलून की तरह फूल-से जाते है। यकृत के Parenchyma (आवश्यक भाग) मे शोथ के सूचक Mononuclear सेल भी पाये जाते है। Portal tract मे Fibrosis की प्रक्रिया भी दीखने मे आती है। यकृत मे एक ओर तो Degeneration, दूसरी ओर Regeneration की प्रक्रिया दोनो चल रही होती हैं अर्थात् Pseudo-lobules की ग्रथिया भी बन रही होती है। इस प्रथम अवस्था मे Bile-ducts मे Stasis की विकृति नही होती जिसमे Bile ठीक चलता है। इसीलिये प्रथम अवस्था मे कामला नही होती।

रोग की द्वितीय अवस्था मे यकृत के अन्दर Degeneration की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है।

इस रोग की तृतीय अवस्था मे यकृत के सेल बहुत अधिक सख्या मे मृत या Necrosed हो जाते है। इस अवस्था मे Necrosis या Fibrosis की प्रक्रिया प्रबलता से होती है।

Kwashiorkor रोग मे जो ३ वर्ष की आयु के बाद होता है जैसे Fatty infiltration होता है वैसे इस रोग मे नही होता।

इस रोग की तृतीय अवस्था मे Serum-bilirubin ८५ मिलि० प्र० श० हो जाता है। Serum proteins मे अल्ब्यूमिन घट जाता और Globulin बढ जाता है।

चिकित्सा —चिकनाई रहित दूध बिना खाड के देवे। गोमूत्र थोडा रोज दे। गोमूत्र मण्डूर दे। शिशु को दिन मे ३ ग्राम ग्लूकोज दे देना चाहिये। Methionine १५ मिलि० दैनिक, Vit B 12, ५० माइक्रोग्राम दैनिक तथा Vit C ६ मिलि० दैनिक मिलना चाहिये। चिकित्सा को महीनो जारी रखे। जलोदर के लिये मूत्रल औषध दे। Cholaemia ज्यादा हो तो Exchange blood Transfusion के द्वारा बालक को बचाया जा सकता है।

अतिसार Gastroenteritis —

शिशुओं और बालको के अस्पताल मे एक चौथाई रोगी अतिसार के होते है। इनमे से भी १०–१५% बालक मृत्यु को प्राप्त हो जाते है। यह रोग सबसे अधिक बालक के प्रथम वर्ष मे होता है तथा इस आयु मे यह रोग बहुधा घातक हो जाता है।

नवजात Neonate शिशु को साधारणत प्रथम दिनो मे कुछ पीले से रग के मल्हम या Paste की तरह के, न चिपकने वाले, बिना किसी गध के ३ से ५ तक के मल के वेग होते है। ज्यो ज्यो शिशु बढता है उसके मलो की दैनिक सख्या घटती जाती है, वे कुछ गाढे Cylindrical, कुछ गध युक्त हो जाते है। पर जब उसके मलो का यह रूप बदल जाये तो अनुमान लगा लेना चाहिये कि उसे अतिसार होने वाला है।

कारण —मा के दूध के पीने वाले शिशुओं मे अतिसार रोग बहुत कम होता है। बोतल के दूध या गाय के दूध पीने वालो मे ही होता है। बोतल को तथा दूध को ठीक ठीक न उबालने से ही Infection उसमे प्रवेश करता है। अधिकत Escheritia (१५%) या कुछ Viruses (५%) इस रोग के कारण होते है। बडी आयु के बालको मे Giardiasis, Helminthiasis भी अतिसार के कारण होते है।

लक्षण:—यदि किसी दिन शिशु पहले की तरह चाव से दूध न ले तो समझे उसे अतिसार होने वाला है। इसके बाद उसे द्रव युक्त पतले अतिसार होने लगते है। वमन भी साथ हो तो रोग को गभीर जाने। एक दो दिन मे ही उसके रक्त का बहुत सा जल तथा Sodium-chloride बाहर निकल जाता है। इसे Isotonic type of

Dehydration कहते है। Infection से उसे इतनी हानि नही पहुचती जितनी (Dehydration) रक्त शुष्कता से पहुचती है।

रक्त के द्रव भाग के निकल जाने मे यदि शिशु का भार अपने नार्मल भार का ५% घट जाये, दिन रात मे १० की सख्या मे अतिसार हो रहे हो, शिशु की जीभ सूखी हुई दीखे, कपाल के रध्र Fontenellae अन्दर घसे हुए हो, त्वचा पतली पड गई हो, मूत्र की मात्रा घट गई हो नाडी तीव्र गति तथा निर्बल हो, आखो का Conjunctiva तथा Cornea खुश्क दीखें तथा कान्तिहीन हो जायें तो इसे Moderate type of Dehydration कहते हैं।

अब इस अवस्था के बाद भी दस्त कायम रहे, रोगी का रक्त सचार मन्द पड जाये, अर्थात् Circulatory collapse हो रहा हो या उसकी Shock की स्थिति हो, अर्थात् हाथपाव शीतल हो, चेहरा फीका हो गया हो, नाडी-गति प्रतिमिनट २०० हो, हृदय शब्द निर्बल हो, मत्रावरोध हो गया हो, Anuria हो, तीव्र अतिसार के कारण Acidosis के लक्षण हो अर्थात श्वास प्रश्वास गहरे गहरे हो गये हो तथा अति शीघ्र शीघ्र हो, बालक मे मूर्छा (Stupor) हो तो इसे Severe type of Dehydration कहते हैं। इस अवस्था मे शरीर मे पोटासियम की भी कमी हो जाती है जिससे मासपेशियो तथा हृदयमास की शक्ति क्षीण हो जाती है। यह अवस्था असाध्यता की सूचक होती है।

परीक्षा—स्पष्ट है इस रोग के बालक का भार प्रतिदिन लेना चाहिये। मूत्र की दैनिक मे मात्रा का भी माप होना चाहिए। रक्त Urea की मात्रा की परीक्षा होनी चाहिए।

चिकित्सा—स्पष्ट है जब शिशु को पतले दस्त आने लगे उसी समय २४ घ के लिये उसको दूध देना बन्द कर दे। ½ या ⅓ ताकत का नार्मल सेलाइन या Electral का जल दैनिक एक लिटर मात्रा मे दिन मे २-२ घ रात को ४-४ घ पर थोडा-थोडा करके दे देवे। इससे हो सकता है दस्तो को आराम मिले। साथ ही Neomycin ५० मिलि प्रति किलो दैनिक मात्रा मे चार-चार घटे बाद बाट कर जल मे मिलाकर देवे। या १ लिटर उबालकर ठडे किये जल मे ग्लूकोज ३३ ग्राम, नमक २ ग्राम, Pot-chloride १ ५ ग्राम मिलाकर थोडा-थोडा पिलावे। Polymyxin B १ लाख यूनिट प्रति किलो भार के पीछे दैनिक ४ बार बाट कर दे। या Strepto paraxin pediatric दे। आराम लगे तो २४ घ बाद फिर Half Cream humanized दूध आधा-आधा औस की मात्रा मे ४-४ घ पर दें। तथा प्रतिदिन प्रति आहार मे ४ ड्राम दूध बढा देवें। तथा बीच-बीच मे उपर्युक्त Saline जल भी थोडा-थोडा देते रहे। रोगी को आराम हो तो एक दो दिन बाद Saline बन्द कर दे। केवल जल ही दे।

परन्तु यदि शरीर मे द्रव की मात्रा ज्यादा घट गई हो, ५% भार घट गया हो तो ५% ग्लूकोज सेलाइन, या Ringer's Lactate Solution ५० मिलि लि प्रति किलो भार के पीछे दे। ५ किलो भार हो तो २५० मिलि लि. ग्लू सेलाइन शिरा द्वारा दे। भार की कमी ५% से कुछ अधिक हो तो ६०–७० आदि मिलि लि प्रति किलो पीछे दे। यदि १०% भार घटा हो तो १०० मिलि लि प्रति किलो पीछे दे। शुरू मे ६-८ घ के अन्दर इनके देने मे लाभ होता है। बालक एक साल से छोटा हो तो २५०-५०० मिलि लि सोल्यूशन दे। हाथ के पीठ की शिरा मे, Cubital vein मे या किसी Scalp vein मे सोल्यूशन प्रविष्ट करे, Subcutaneous विधि से देने से लाभ नही होता। Vein न मिले तो Saphenous Vein को खोल कर उसके द्वारा दे। पहले ५ मिलि Phenobarbitone देवे ताकि बालक को Convulsions और वमन न हो तो तथा द्रव को प्रविष्ट करने मे सुविधा रहे। बाद मे निर्बल हुए शिशु को Tonoferon-१० बूद दिन मे २ बार एक डेढ मास तक दे।

बालको के श्वास सम्बन्धी रोग —

रुग्ण बालको मे से ५०-६० प्र श रोगी श्वास सबधी होते हे। श्वास सम्बन्धी रोग दो प्रकार के है (१) Upper respiratory (२) Lower respiratory शिशुओ, छोटे बालको मे Infection Viruses के कारण होता हे। Common cold से ग्रस्त व्यक्तियो के उनके सम्पर्क मे आने से उनमे Viruses का सक्रमण होता है। अत शिशुओ के पास जुकाम के रोगी को न आने देना चाहिये। Upper respiratory (U R) diseases मे Nasopharyngitis, Laryngitis, Laryngo-Tracheo-Bronchitis हे शिशु मे ये सब Viruses के कारण होते हे। इनके अतिरिक्त उनमे Tonsillitis भी होता है। वह भी किसी Virus के कारण होता है। Sulpha-drugs और Antibiotics का उन पर कोई प्रभाव नही।

Upper respiratory infection कभी-कभी Bacteria से जैसे Diphtheria या Haemolytic Streptococcus से होता है। इस दूसरे Bacteria से होने वाले Sore throat के उपद्रव रूप मे कभी-कभी किसी वालक मे Rheumatic fever या कभी-कभी किसी वालक मे Acute glomerulonephritis हो सकता है। Haemophilus Influenzae के कारण भी Sore-throat या Laryngitis हो सकता है। कभी-कभी Pneumococcus भी Sore-throat का कारण होता है।

छोटी आयु के वालक या शिशु मे श्वास नालिया वहुत तग होती है जिससे उनमे शोथ हो जाने पर उनमे कभी-कभी अवरोध हो जाता हे जिससे Inspiration के समय तग स्थान मे से हवा के गुजरने से Stridor या Croup (Laryngeal Spasm) होकर एक Crowing inspiratory sound उत्पन्न होती है।

Wheeze सीटी की आवाज इस आवाज से भिन्न है। वह Lower श्वासनालियो मे होती है और वह Expiration के समय होती है। ऐसा Bronchiolitis, Pneumonia, Asthma मे होता है।

Acute Nasopharyngitis की चिकित्सा के लिये Aspirin, Paracitamol मे से कोई दवा दे। Inhalation गर्म भाफ दे। Nasal decongestant दे।

Acute Tonsilo-pharyngitis वहुधा Streptococcus के कारण होता है अत Penicillin दे या Phenoxymethyl penicillin मुख से १० दिन तक दे।

Laryngo tracheo bronchitis —U R Tract मे शिशुओ मे होने वाला यह एक व्यापक रोग है तथा यह भी Viruses के कारण ही होता है। पहले उसे Common cold होता है। साथ ही खासी, श्वास काठिन्य Dyspnoea, वेचैनी के लक्षण हो जाते हैं। Inspiration के समय पसलियो के नीचे Subcostol प्रदेश मे छाती के अन्दर धसने Inspiratory recession का लक्षण दीखने लगता हे। श्वास के साथ Grunt की सी आवाज आती है। तापमान १०० फा के लगभग होता है। आक्सिजन के अन्दर कम जाने से चेहरा फीका दीखता है। शिशु के जल और दूध कम लेने से उसमे Dehydration का लक्षण भी होता है। परीक्षा करने पर Crepitation की आवाज सुनाई पडती है। देखने मे वालक तन्द्रा मे पडा होता है।

शिशु एक-डेढ वर्ष से वडा हो तो उसमे Haemophilus influenzae, Streptococcus, Pneumococcus, Stapylococcus के कारण खासी भी हो सकती हे। उसमे ज्वर, Dyspnoea, श्वास प्रश्वास लम्वे तथा कुछ कठोर होते है। परीक्षा करने पर Rhonchi तथा Rales सुनाई पडते हैं।

चिकित्सा —शिशु की ऐसी खासी मे उसे Oxygen देवे। Steam vapors दे। इससे उसके Dyspnoea, cianosis, वेचैनी को लाभ हो जाता है। साथ ही Supportive वल्य चिकित्सा करे अर्थात् गर्म जल ग्लूकोज मिलाकर अधिक दे। कोई निद्राजनक औषध जैसे Methylpentinol Elixir (Oblivon) २-३ मिलि लि दे। या Valium दे। वालक एक-दो वर्ष से ऊपर का हो तो सभव है उसमे Bacterial infection भी हो। उसे Penicillin+Streptomycin दे या Ampicillin ५० मिलि० प्रति किलो दैनिक ४ वार वाट कर दे।

Bronchiolitis —६-१२ मास के शिशुओ मे होता है तथा Viruses के एक साथ अनेकानेक सेलो के प्रोटोप्लाज्म मे फैल जाने से होता है। वालको मे यह कम होता है। पहले शिशु की नाक से थोडा Mucus निकलता है, कुछ खासी होती है। साथ ही ज्वर हो जाता जो १०० फा के लगभग होता है। श्वासकाठिन्य, शीघ्र शीघ्र श्वास Tachypnoea के लक्षण भी होते है। वालक वेचैन होता है। छाती फूली हुई दीखती हे। Anoxia के कारण उसमे तन्द्रा या मूर्छा के लक्षण होते है। Oxygen की कमी से Acidosis भी होता है। परीक्षा करने से Wheezes, Rhonchi, Rales सुनाई पडते है। उसके अन्दर दूध, जल के कम जाने से Dehydration भी होता है।

चिकित्सा —रोगी शिशु को Steam तथा Oxygen दी जायें, मुह मे जमा होने वाली वलगम को निकाल दिया जाये, हलके गर्म जल मे ग्लूकोज डालकर पर्याप्त मात्रा मे दिया जाये तो शिशु को वचाया जा सकता है।

यदि आशका हो कि Pneumococcus, staphylococcus, Haemophilus influenzae मे से किसी

का Secondary infection भी है तो Penicillin+ Streptomycin त्वचा द्वारा दें। कोई Steroid २-४ मिलि मास द्वारा दैनिक दें। इनमे लाभ कितना होता है यह सन्देह का विषय है। बेचैनी हो तो Chloralhydrate १५ मिलि/किलो, दिन मे २-३ वार दे।

Pneumonia—शिशु मे Staphylococcus के कारण होता है। Pneumococcus के कारण नही। इसलिये इस पर Penicillin, Tetracycline आदि का प्रभाव नही। इसकी उचित चिकित्सा न हो तो Empyema (Pus in pleural cavity) तथा Septicaemia के उपद्रव हो सकते हे। शिशु फुफ्फुस मे Consolidation नही होता प्रत्युत Pleura के अन्दर की तरफ फुफ्फुस मे Microabscesses हो जाते हे जो वढ कर Pleura मे फट सकते है। ज्वर के अतिरिक्त खासी, Dyspnoea, Tachypnoea, श्वास मे कूजन या Grunt की आवाज सुनती हे। Empyema तथा Pyopneumothorax के उपद्रव हो सकते हैं।

चिकित्सा—इस रोग के लिये Oxygen देने से श्वास सम्वन्धी लक्षण तथा ग्लूकोज जल के देने से Dehydration के लक्षण शान्त होते ह। Toxicity को हटाने के लिये Ampicillin को ५० मिलि० प्रति किलो भार के पीछे, दैनिक ३-४ मात्राओं मे वाट कर मास द्वारा या मुख द्वारा जैसा उचित हो दे। लाभ कम हो तो Erythromycin ५० मिलि० प्रति किलो दैनिक २-३ मात्राओं मे दे। इस चिकित्सा को २-३ सप्ताह जारी रखें।

Pneumonia in children—वडे वालक मे यह रोग Staphylococci से नही, Pneumococci या H influenzae से होता है। उसमे Benzyl penicillin ५ लाख units मास द्वारा दिन मे दो वार दे। कुछ ठीक होने पर Phenoxymethyl penicillin २५० मिलि० ६-६ घटे पर दिन मे ३-४ वार दे।

Empyema (प्लूरा मे पूय) अव वडे वालक मे यह नही होता। निर्वल शिशुओं मे ही होता है। Staphylococcus aureus मे उत्पन्न Pneumonia के उपद्रव रूप मे होता है। H influenzae के infection मे भी हो सकता है। इस रोग मे पहले upper respiratory infection होता है। फिर तुरन्त ही ज्वर ऊचा हो जाना, श्वास गति तीव्र हो जाती चेहरे पर नीलापन आ जाता या पाण्डुता झलकती है।

चिकित्सा—Pleural cavity मे से कुछ एक Aspirations द्वारा पूय को निकालना चाहिये तथा वहा Antibiotic Solution, जैसे methicillin को १०० मिलि प्रति किलो भार पीछे दैनिक मास द्वारा दे तथा १०० मिलि० मात्रा मे इसे Pleural cavity मे डालें। मास द्वारा Methicillin के स्थान Coxacillin को ५० मिलि० प्र० कि० दैनिक मास या मुख द्वारा दे सकते है।

वालकों में वृक्क रोग—

Acute Glomerulonephritis—वृक्कशोथ दोनो गुर्दो मे Non Suppurative शोथ। ७-८ वर्ष के वालको मे होता हे जो गले मे Haemolytic Streptococcal infection के वाद वृक्को मे Antigen antibody reaction के परिणामरूप मे उत्पन्न होता हे। इस रोग मे वालक के मूत्र की दैनिक मात्रा घट जाती है। ३०० सी सी रह जाती है (Oliguria) चेहरे, पैरो पर भारीपन आ जाता है। मूत्र के कम हो जाने से रक्त मे यूरिया का सचय Uraemia हो जाता हे जिससे वालक मे सिरदर्द, वमन, तन्द्रालुता, बेचैनी के लक्षण होते हैं। Uraemia की परीक्षा से इस रोग का निश्चय होता है। उसके कारण ही Hypertension, सिर दर्द के लक्षण होते है। Hypertension के कारण Hypertensive Encephalopathy होकर उसके उपद्रव रूप मे Epileptiform Convulsions होते हैं। Hypertension का दुष्प्रभाव Heart पर पडे तो Dyspnoea, Tachypnoea के अर्थात् Cardiac Asthma के लक्षण हो सकते है। मूत्र की परीक्षा करे तो Haematuria, Proteinurea के लक्षण मिलते हैं। यह रोग २-३ सप्ताह रहता है।

चिकित्सा—आहार मे नमक कम करे। फल, अण्डे आदि मे पोटासियम विशेष होता है उन्हे भी वन्द करे। मूत्र जव तक पाव लिटर न आने लगे जल की मात्रा भी वहुत कम दे। जव तक Oedema रहे, जल आधे लिटर से अधिक अन्दर न जाने दे। इसी तरह जव तक मूत्र की

मात्रा कम हो, रक्त मे यूरिया की मात्रा अधिक हो, अर्थात् ४० मिलि % से ऊपर हो तव तक प्रोटीन भोजन भी न दे। केवल कार्वोहाइड्रेट ३-४ ग्राम, प्रति किलो, दैनिक दे। भार २० किलो हो तो कार्वोहाइड्रेट भोजन ६०-८० ग्राम दैनिक दे इससे धातुओ का प्रोटीन खर्च नही होता। जव मूत्र ठीक आने लगे तव धीरे-धीरे उपर्युक्त प्रतिवन्ध हटा दे। रोगी को गरम कमरे मे आराम से लिटा रखे। फिर भी मूत्र कुछ कम रहे तो Hydrochlorothiazide ४ मिलि प्रति किलो देवे। गले मे Tonsil या त्वचा पर किसी जगह पूय भाव हो जिसके कारण यह रोग हुआ है तो Oral penicillin ४ लाख यूनिट्स दिन मे २ वार दे। या मास द्वारा ३-४ लाख यूनिट मात्रा मे उसे त्वचा द्वारा दिन मे दो वार दे। एक सप्ताह इस चिकित्सा को जारी रखे। यदि Tonsillitis के कारण यह रोग वार-वार होता हे तो २½ लाख यूनिट्स पैनिसिल्लिन के मुख द्वारा दिन मे दो वार दो मास तक दे।

उपद्रव चिकित्सा —Hypertension — वालक मे Diastolic ९०, Systolic १४० m m Hg से कुछ ऊपर हो जाये तो ५ मिलि० प्रति किलो के पीछे Phenobarbitone वाट कर दिन रात मे ३ वार दे। यदि B P इससे भी ऊचा हो तो Reserpine ०७ मिलि प्रति किलो २४ घ या १२ घ के अन्तर मे मास द्वारा दे। साथ ही Hydralazine १- १५ mg प्रति किलो मुख द्वारा भी दे और इसे ६-६ घण्टे पर दुहराये।

Hypertensive Encephalopathy हो तो Sodium phenobarbitone ५ मिलि प्रति किलो मास द्वारा दे, Hypertensive cardiac Asthma हो तो Digoxin ०४-०६ मिलि प्रति किलो को तीन मात्राओ मे वाट कर मुख से दे। मुख से देने वाली एक मात्रा के दो तिहाई भाग को त्वचा द्वारा भी दे सकते है। उपर्युक्त दैनिक मात्रा की एक चौथाई मात्रा को आगे भी कुछ एक दिन जारी रख सकते हे। जव मूत्र जारी हो जाता हे फिर इसे वन्द कर दे। इस उपद्रव मे औक्सिजन से भी लाभ होता है।

Nephrosis or Idiopathic Nephrosis, Nephrotic Syndrome —यह रोग शिशुओ ओर छोटी आयु के वालको मे होता हे। ७-८ वर्ष की आयु के वाद नही होना। इस रोग मे मूत्र द्वारा प्रोटीन निकलता हे (Proteinuria) जिससे रक्त मे प्रोटीन कम हो जाता हे (Hypoproteinaemia) साथ ही इस रोग मे शरीर पर Oedema होता हे। Ascites भी होता हे। मूत्र मात्रा मे थोडा आता अर्थात् Oliguria होता है। उसमे रक्त कण Erythrocytes होते है (Erythrocyturia) परीक्षा करने से रक्त मे Urea आदि मिलते है (Azotaemia) रक्त मे Cholesterol, पोटासियम भी वढे होते हे।

चिकित्सा —नमक ५–२ ग्राम से अधिक दैनिक न दे। जल भी आधे लिटर तक ही दे। जव तक Proteinuria हे प्रोटीन भोजन अधिक दे। ३-४ ग्राम प्रति किलो दैनिक देवे।

इस रोग के लिये Steroid-therapy उपयोगी है। Prednisolone २ मिलि. प्रति किलो दैनिक के हिसाव से २८ दिन देवे। इसके वाद सप्ताह मे केवल ३ दिन लगातार १ ५ मिलि० प्रति किलो दैनिक के हिसाव से २८ दिन तक दे। इसके वाद एक महीना तक कभी-कभी किसी दिन इस औषध की छोटी मात्रा दे। अथवा वालक ३ वर्ष का हो तो उसे दिन मे ४० से ६० मिलि० तक को मात्रा ४ वार वाट कर दे। वालक इससे वडा हो तो ६०-८० मिलि० तक की दैनिक मात्रा को ४ वार वाट कर दे। इस चिकित्सा को ३-४ सप्ताह जारी रखना चाहिये। फिर इसकी मात्रा आधी कर दे। फिर ३-४ दिन मे १० मिलि० दैनिक कम करते हुए इसे वन्द कर दे।

Pyelonephritis, Urinary tract infection- पूययुक्त मेह —

छोटे शिशुओ मे मूत्र मार्ग मे Infection का प्रधान कारण Ischeretia Coli होता है। शिशु मे ज्वर, वमन, कृशता, पाण्डुता के लक्षण रहे तथा कोई और कारण न मिले तो इसी रोग का सन्देह करे। इसी प्रकार वडे वालक मे भी यदि मूत्र जल्दी जल्दी हो, कुछ ज्वर भी हो, मूत्र मे Pus मिले—Pyuria हो तो भी इसी रोग का सन्देह करे। इस रोग के लिये Sulphamethizole (Urolucosil) या Sulphasoxazole (Gantrisin) १०० मिलि० को एक भारी मात्रा देकर

फिर इन्हे ० ०५ मिलि प्रति किलो दैनिक मात्रा मे ३ बार करके दो-तीन सप्ताह दे । या Furadantin को ७ मिलि प्रति किलो दैनिक मात्रा मे २-३ सप्ताह दे । या Mandelamine को ७० मिलि प्रति किलो दैनिक मात्रा को ४ बार करके दे । १ मास इसे जारी रखे ।

बालको में क्षय रोग Pulmonary Tuberculosis—

बालको मे Primary Complex जैसे पहले कहा गया है पुफुस मे होता है । उसके कोई स्पष्ट लक्षण भी नही होते । Primary Complex के कारण Mediastinal glands मे शोथ हो जाता है। इन Glands मे से किसी के श्वास नाली Bronchus मे खुल जाने से यह रोग पुफुस मे प्रसरण करता है जिसके कारण पुफुस के एक भाग मे कही Consolidation हो जाता या कही Obstructive Emphysema (हवा से भरा हुआ पुफुस) हो जाता है । पुफुस मे विद्यमान इस रोग का पता Radiology द्वारा लगता है । फिल्म मे Hilar Adenitis होता है । रोग फैल चुका हो तो किसी Lobe के एक Segment मे Emphysema दीखता है या वह Collapsed हुआ दीखता है । पुफुस मे जहा Calcification के होने का निशान दीखे वहा इस रोग का अनुमान करे । इसके अतिरिक्त Cervical, Mediastinal और Mesenteric glands मे भी इस रोग का प्रसरण हो सकता है ।

इस रोग से ग्रस्त बालक का शरीर कृश होता है, आयु के अनुसार बढता नही । उसका खाना भी कम होता है। उसका भार भी कम होता है। इस रोग के प्रसरण को रोकना परमावश्यक है । Isoniazid २० मिलि० प्रति किलो दैनिक (जो ३०० मिलि० से ज्यादा न हो) २-३ मात्राओ मे दे । साथ ही PAS २०० मिलि प्रति किलो दैनिक मात्रा (जो ६ ग्राम मे ज्यादा न हो) को ३-४ बार बाट कर किसी शरबत या फल रस मे मीठा करके दे । इस चिकित्सा को डेढ साल जारी रखे ।

बालको में Convulsion **आक्षेप का रोग** —

बच्चो के अस्पताल के १०० रोगियो मे से लगभग ८ रोगी Convulsion के होते हैं जो प्राय Epilepsy अपस्मार के कारण होते हैं। अत उस रोग की कुछ प्रधान औषधियो का यहा उल्लेख किया जाता है ।

(१) Neonatal Epilepsy **नवजात शिशु-अपस्मार** —शिशु के प्रथम सप्ताह मे होने वाले आक्षेप को Neonatal Epilepsy कहते हैं । इसे Fragmentary grandmal भी कहते है । अधिकत यह आक्षेप रक्त मे कैल्सियम की कमी से होता है। रक्त के १०० भाग मे कैल्सियम ८ मिलिग्राम से कम हो जाये तो आक्षेप हो सकते हे। इस कमी के कारण आक्षेप हो तो १०% Calcium gluconate solution को ३ मिलि लि० मात्रा मे मास द्वारा दे । मस्तिष्क को क्षति पहुचने या Cerebral birth injury से भी Twitchings या आक्षेप हो सकते है, अत Phenobarbitone ५ मिलि० दिन मे ३ बार देने मे भी लाभ होता हे ।

(२) Infantile epilepsy **या** Idiopathic convulsions of infancy **बाल अपस्मार :—**

एक वर्ष की आयु से नीचे के शिशु मे अपस्मार, शायद प्रसव के समय मस्तिष्क को किसी क्षति पहुचने से होता है । उसके लिये Diazepam को १ किलो भार के पीछे १ मिलि० दैनिक मात्रा मे देवे ।

बाल अपस्मार मे जिन औषधियो का विशेष प्रयोग होता है उनकी उचित मात्रा का उल्लेख यहा किया जाता है ।

Phenobarbitone —यह Grandmal, Focal motor epilepsy तथा Psychomotor epilepsy के लिये उपयोगी औषध है । इसमे थोडा आलस्य का दोप है । १ वर्ष से ३ वर्ष की आयु तक इसकी मात्रा १५ मिलि० ३ बार है, ३ वर्ष से ६ वर्ष तक की आयु मे इसकी मात्रा ३० मिलि० ३ बार है । Phenytoin Sodium (Dilantin Sodium) १०० मिलि० कैपसूल मिलते है। Grandmal, Focal motor Epilepsy, psychomotor Epilepsy मे उपयोगी है तथा यह Nonhypnotic है । २ वर्ष से नीचे की आयु की मात्रा ३० मिलि० ३ बार दैनिक हे, ६ वर्ष तक ६० मिलि० ३ बार है। १० वर्ष तक की आयु के लिये १०० मिलि० ३ बार है ।

Primidone (Mysoline २५० मिलि० गोलिया मिलती है) —Grandmal तथा Psychomotor Epilepsy मे उपयोगी है। ३ वर्ष की आयु के बाद बालक मे होने वाले Psychomotor Epilepsy के लिये उपयोगी हैं। २५० मिलि० गोली दिन मे २ बार दे।

Troxidone(Tridione १५० मिलि गोली मिलती है) Petitmal के ७०-८०% रुग्ण बालको मे उपयोगी है। ३ साल की आयु तक २५ मिलि ३ बार दे। ६ वर्ष की आयु तक १०० मिलि० दिन मे ३ बार दे। १२ वर्ष की आयु तक २०० मिलि० दिन मे ३ बार।

Ethosuximide (Zarontin, २५० मिलि० कैंपसूल मिलते है) Petitmal के ६०-७० प्र श बालको मे लाभदायक औषध है। ६ वर्ष तक की आयु के बालक मे २५० मिलि० दिन मे २ बार दे। ६ वर्ष की आयु के ऊपर एक कैंप दिन मे ३ बार दे। चिकित्सा ३ वर्ष जारी रहनी चाहियें। बाद मे भी Relapse हो सकता है। Petitmal मे १२% मे, Psychomotor मे २५% मे, Jacksonian मे ५०% मे, Grandmal मे ८% मे Relapse हो सकता है।

बालक मे Status Epilepticus के लिये— Diazepam को १-१० मिलि मात्रा मे शिरा द्वारा, ३० सेकण्ड मे १ मिलि के वेग से दे।

Diazepam (Valium) हर प्रकार की Epilepsy मे लाभदायक है। बालक के प्रति किलो भार के पीछे इसकी दैनिक मात्रा लगभग १-२ मिलि है। उदाहरणत ५ वर्ष के बालक को ५, १० वर्ष के बालक को १० मिलि है।

बालको के प्रधान त्वग्रोग —

Seborrhoea —बालको के सिर तथा ग्रीवा पर होने वाले इस रोग को Neutral Soap से भली प्रकार धोकर Betamethasone (Betnovate) की मलहम या क्रीम लगाये। इस रोग मे छिलके ज्यादा जमा हो गये हो तो २% Sulphur, २% Salicylic acid की Soft paraffin मे बनी मलहम दिन मे २ बार लगाकर उन्हे हटा दे।

Eczema — पामा के चकत्तो पर १% Hydrocortisone cream को दिन मे २ बार लगाये। दूध मे खाड कम कर दे। खाज के हटाने के लिये Promethazine hydrochloride (Phenergan) ५ मिलि मात्रा मे दिन मे २ बार दे।

Acute Psoriasis —के चकत्तो पर Hydrocortisone acetate ointment को ६-७ गुणा Hydrous ointment मे मिलाकर हलका करके लगाये।

Chronic Psoriasis — के चकत्तो पर Zinc ointment मे १% tar मिलाकर दिन मे २ बार लगाये। Tar की मात्रा क्रमश बढा सकते हैं।

Alopecia — सिर के बालो से विहीन चकत्तो पर रात को Betnovate ointment लगाकर बाध दे।

Skinwarts — पर Salicylic acid collodion रात को लगाकर ऊपर Adhesive plaster लगा दे।

Tineacapitis — शिरोदद्रु के लिये Griseofulvin १२५ मिलि गोली भोजन के बाद ३-४ बार दे।

Enuresis — निद्रामेह—बालक मे २ वर्ष की आयु तक मूत्र पर पूर्ण नियत्रण हो जाता है तो भी किसी किसी मे ऐसा नही होता जिससे रात्रि को सोते समय उसका मूत्र बिस्तर पर ही निकल जाता है जिसका पता उसे बाद मे लगता है। ऐसे बालक का मानस सस्थान कुछ निर्बल होता है। उसका Nervous System निर्बल तथा विक्षोभशील होता है। बालक के पेट मे कृमि हो तो भी यह रोग हो सकता है। Pyelitis हो Bacteriuria हो या Urine acidic हो तो भी ऐसा हो सकता है। इस रोग के लिये Amitriptyline (Sarotina) १० मिलि० एक गोली रात को दे दे। या उस दवा के बने शरबत Tryptizal Syrup के २ चम्मच सुबह-शाम २ बार दे। या Tr Belladonna ·३ मिलि लि दिन मे ३ बार दे। या Propanthine bromide (Probanthine) १५ मिलि० रात को एक बार या दिन मे २ बार दे।

Masterbation — अनेक बालको मे अपनी जननेन्द्रिय को उत्तेजित करने की बुरी आदत पड जाती है। यह आदत उनमे किसी बडे बालक

या किसी गन्दे युवक की सोवत से आती है। इसीलिये वालको को युवको की कम्पनी से बचा कर रखना चाहिये। माता पिता को चाहिये कि वे अपने वालक को गन्दे वालको के साथ न खेलने दे। इस आदत का छुडाना कठिन हो जाता है। समझाने से तथा किसी Tranquilizer जैसे Atarax ५ मिलि० के दिन मे २ वार देने मे आराम आ सकता है।

Temper-Tantrum — २-५ वर्ष के कुछ वालक इतने तीव्र स्वभाव के होते हैं कि माता पिता के भी वश मे नही आते। अनियन्त्रित होकर क्रोध करते, हाथ पाव मारते, जिद्द करते, चीखते-चिल्लाते है। इन वालको के इस रोग को Temper-Tantrum कहते है। मानसिक दुर्बलता प्राणतत्त्व की हीनता का यह लक्षण सूचक है। इसके लिये Central Nervous System की अवसन्नता को हटाने के लिये Amphetamine Sulphate (Benzedrine) कुछ उपयोगी हो सकता है। उसे २ मिलि० मात्रा मे दिन मे २-३ वार दे सकते है।

Mental Deficiency in children वालको में मानसिक मन्दता —

जन्म के समय मस्तिष्क पर आघात लगने से (Birth Trauma) या वाद मे सिर पर आघात लगने से (Cerebral injury) या अपस्मार रोग से लगभग ४-५% वालक मन्दवुद्धि Imbecile होते है। Pyrithioxine (Encephabol) के देने मे इस रोग मे कुछ लाभ हो सकता है। ३ वर्ष तक इस की आधी गोली दिन मे २ वार दें। १० वर्ष तक इसकी एक गोली (१०० मिलि०) दिन मे २ वार दे। १० से ऊपर १५ वर्ष की आयु तक इसकी एक गो दिन मे ३ वार दे। डेढ मास इस चिकित्सा को जारी रखे। लाभ हो तो इसे ३ मास जारी रखे।

वालरोगोपयोगी आयुर्वेदिक प्रयोग —

वालातिसारोपयोगी प्रयोग —

(१) वालवालुर्भद्रिका (भै.र.) या कृष्णादिचूर्ण (शा स) पिप्पली, अतीस, मोथा, काकडासिंगी समान-समान चूर्ण। २ रत्ती शहद से ३-४ वार।

(२) लवगचतु समचूर्ण (भै र) लौंग, जायफल, जीरा श्वेत, सुहागा समान २ मिलाकर चूर्ण वनायें। अतिसार के आरभ मे दें। २-३ रत्ती मधु से।

(३) मुस्तकादि क्वाथ (भै र) मोथा, अतीस, सुगध वाला, इन्द्र जौ, सोठ समान का क्वाथ मीठा करके चम्मच चम्मच करके पिलाते रहें।

(४) लोध्रादियोग (यो र) लोध्र, इन्द्र जौ, धनिया, ह्रीवेर, आवला समान-समान का चूर्ण वनायें।

(५) ह्रीवेरादिचूर्ण (व से) सुगधवाला, खाण्ड समान समान का चूर्ण वना आधा माशा मात्रा में चावलो के पानी से पिलायें।

वडे वालको की प्रवाहिका के उपयोगी प्रयोग —

(१) वालकुटजावलेह (भै. र.) कुडे की छाल ५ तोला। कूटकर १ सेर जल मे पकावें। १ पाव रख कर उसे छान कर गाढा करें। गाढा होने पर उसमें अतीस, पाठा, जीरा, वेलगिरि, आमगिरि, सोया, धातकी, मोथा, जायफल सवका मिलित चूर्ण २॥ तोला मिला दें। इसमें से कुछ अश लेकर उसे जल में मिलाकर पिलायें।

(२) विल्वादिचूर्ण (व से) वेलगिरि, मोथा, धातकी, मोचरस, पाठा, सोठ समान-समान, चूर्ण करें। गुडमिश्रित तक्र में मिलाकर आधा माशा ३-४ वार दे।

(३) रक्तप्रवाहिकान्तकलेह (यो त) तिल, मिश्री वरावर वरावर मिला दें। १ माशा को शहद और थोडा तिल तेल मिलाकर चटायें।

आन्त्रशूलोपयोगी प्रयोग —

पिप्पली त्रिफला चूर्ण (यो र) चारो द्रव्यो से वने चूर्ण को मधु से आधा माशा मात्रा मे थोडी-थोडी देर मे चटायें।

वमनोपयोगी प्रयोग —

स्वर्णगैरिक योग (व से) स्वर्णगैरिक को थोडी-थोडी मात्रा में मधु से चटायें।

हरीतकी चूर्ण (यो र) इस चूर्ण को स्वल्पमात्रा में शहद से चटायें।

अतिविषाचूर्ण (यो र) अतिविषाचूर्ण को १ रत्ती की मात्रा में शहद से चटायें।

कुटकी चूर्ण (यो र) कुटकी के चूर्ण को मधु मिश्रित जल से दें।

मुस्ताचूर्ण (यो र) थोडा-थोडा मधु से चटायें।

मुख पाके, दार्व्यादि लेप (भै. र) दारुहल्दी, मुलैठी, हरड, चमेली पत्र के क्वाथ में मधु मिलाकर रुई से मुह में लगायें। या रसोत को मधु मे मिलाकर मुख में लगायें।

कास रोग में शृंग्यादिचूर्ण (शा स) काकडासिंगी, अतीस, पिप्पली, समान-समान का चूर्ण आधा माशा मधु से दें। या केवल अतिविषाचूर्ण एक दो रत्ती मधु से दें।

कास रोग में सितोपलादि आधा माशा मधु से या केवल वृगाचूर्ण (वृ नि र) मधु से दें।

श्वासरोग में पुष्करादि चूर्ण (भै र.) पुष्करमूल, अतिविषा, काकडासिंगी, पिप्पली, धमासा समान-समान का चूर्ण आधा माशा मधु से दें।

उर क्षय में च्यवनप्राश, सितोपलादि चूर्ण आदि दें। कुमार कल्याण रस (भै. र) रस सिन्दूर, मुक्ता, स्वर्ण, अभ्रक, लोह, स्वर्णमाक्षिक समान-समान घृतकुमारी रस से मर्दन करके मूग बराबर गोली बना लें। आधी गोली दूध के साथ दें।

कृशता में अश्वगधा घृत (भै र) असगध १ सेर, जल ८ सेर पकाकर २ सेर रख कर घृत १ सेर, असगध १ पाव, दूध ४ सेर मिलाकर घृत पाक करें। आधा चम्मच देवें।

मानसनैर्बल्य रोग में —

अष्टमगल घृत (भै र) वचा, कुष्ठ, ब्राह्मी, सारिवा, पिप्पली, सरसो सफेद, सैंधव समान समान कुल १ पाव, घृत १ सेर, दूध २ सेर मिलाकर घृत साधन करें। आधा-आधा चम्मच दें।

बादाम पाक —बादाम गिरी आधा सेर, धोकर साफ कर पीस लें। घृत १० तो में भूनें।

१ सेर चासनी मे इसे मिला कर उसमे सूक्ष्मैला, लौंग, जायफल, दालचीनी, १।-१। तो केसर ॥ तोला, पिस्ता, चिरौंजी ५-५ तोला, सुवर्ण तथा चान्दी वर्क ५०-५० वर्क अच्छी तरह मिला दें।

यकृद्रोगे आरग्वधादि क्वाथ (वृ नि र) अमलतास, कुटकी, गुडूची, अतीस, मोथा क्वाथ करके चम्मच चम्मच पिलायें। पिप्पली चूर्ण १ रत्ती शहद से दें। गोमूत्र भी उपयोगी है।

(२) वृद्ध रोग विज्ञान Geriatrics—

दस वर्ष तक बाल्यावस्था, बीस वर्ष तक युवावस्था (youth), ४० वर्ष तक पूर्ण युवावस्था (Adult) कहाती है। ४० से ५० वर्ष तक तरुणावस्था (Prime of maturity), ५० से ६० वर्ष तक प्रौढ अवस्था (Late-maturity), ६० से ७५ वर्ष तक प्रारभिक वृद्धावस्था Senescence तथा ७५ से ऊपर की अवस्था को वृद्धावस्था Senility कहते हैं। ४० वर्ष की आयु तक शरीर की सर्व शक्तिया विकसित होती है। ४० के बाद पहले मस्तिष्क की ग्रहण शक्ति 'मेधा' क्षीण होने लगती है। ५० के बाद त्वचा मे क्षीणता Degeneration आने लगती है। ६० के बाद नेत्रदृष्टि मे क्षीणता आने लगती है। ७० के बाद पुंस्त्व शक्ति का ह्रास होने लगता है। ८० वर्ष के बाद शरीर का पराक्रम क्षीण होने लगता है। ९० वर्ष के बाद बुद्धि क्षीण होने लगती है। १०० के बाद शरीर की कर्मेन्द्रिया क्षीण हो जाती हैं। ११० के बाद मानसिक चेतना भी जाने लगती है और १२० के बाद जीवन ही क्षीण होने लगता है। वृद्धावस्था सम्बन्धी विज्ञान को Geriatrics (वृद्ध रोग विज्ञान) या Gerontology (वृद्धावस्था सम्बन्धी विज्ञान) कहते है। गत ३० वर्षो से जब से *Antibiotics, Vitamins का ज्ञान हुआ* है तथा जबसे फैलने वाले रोगो के प्रति रोधक उपाय निकल आये हैं सभी देशो मे ६० से ऊपर की आयु वाले लोगो की सख्या बढ गई है। सभ्य देशो की जनसख्या मे १०-१५ प्र श आदमी वृद्धावस्था के पाये जाते है। हमारे देश मे १९२० मे लोगो की औसतन आयु २७ वर्ष की थी जो १९७० मे बढ कर ५० वर्ष की हो गई। इसीलिये देश मे वृद्ध व्यक्तियो की सख्या पर्याप्त बढी है। इसीलिए वृद्धरोग विज्ञान का भी महत्त्व बढ गया है।

वृद्धावस्था सुलभ परिवर्तन — प्रत्येक व्यक्ति मे बालपन से ही अगो मे वृद्धि और ह्रास (Growth तथा Atrophy) दोनो विरोधी प्रक्रियाये साथ-साथ चलती है। युवावस्था तक प्रथम प्रक्रिया प्रबल तथा दूसरी प्रक्रिया निर्बल होती है। ज्यो ज्यो उमर बडी होती है, प्रथम प्रक्रिया मन्द मन्दतर होती जाती है और दूसरी प्रक्रिया प्रबल प्रबलतर होती जाती है। शरीर के आशयो Viscera के सेलो की सख्या मे कमी होने लगती है। आशयो मे क्षीणता

Atrophy या लघुता की प्रक्रिया बढने लगती है। आशयो मे विद्यमान Enzymatic System पाचक रसो का मस्थान जो युवावस्था मे प्रबल रहता है बडी आयु मे मन्द-मन्दतर हो जाता है अर्थात् शरीर का Metabolism मन्द होता जाता है। उस का अतिमन्द हो जाना ही मृत्यु का कारण बनता है। शरीर की Vital energy (वायु तत्त्व) तथा Enzymes की निर्बलता (पित्तह्रास) मे ही मृत्यु होती है। शरीर मे Degenerative Atrophy का होना वृद्धावस्था का प्रधान लक्षण है इसी के कारण, धमनियो, अस्थियो, जोडो मे लचीलापन कम होकर Sclerosis या Fibrosis की प्रक्रिया बढती जाती हे। सिर के बाल कम हो जाते, कठोर हो जाते, श्वेत हो जाते, त्वचा के नीचे की चर्बी के कम हो जाने मे उसमे झुर्रिया पड जाती, हृदय मे इस प्रक्रिया के होने मे श्रम शक्ति घट जाती, पाचक अगो, आतो, वृक्को, मस्तिष्क, अडो आदि सभी मे Atrophy या लघुता आती जाती है। किसी व्यक्ति मे यह प्रक्रिया समय से पहले तथा प्रबलता मे होती है, किसी मे समय पर तथा मन्दगति से होती है। इस Degeneration की प्रक्रिया को कैसे मन्द किया जाये या बन्द किया जाये यह एक बहुत बडा प्रश्न है। अभी विज्ञान की ओर से इसका कोई उत्तर नही मिला। Degeneration की स्वाभाविक प्रक्रिया को मन्द तो किया जा सकता है, बन्द नही किया जा सकता।

यह जो समझा जाता है कि आयु के बढने के साथ Biological values मे अर्थात् शरीर के आवश्यक तत्त्वो मे कमी आ जाती है, गलत हे। वृद्ध व्यक्ति यदि रुग्ण न हो तो उसके रक्त मे Haemoglobin Erythrocytes (रक्त-कण), Non-protein Nitrogen, Uric acid Protein, Cholesterol, Calcium, Potassium, Protein bound iodine आदि उतनी ही मात्रा मे मिलते है जितने एक युवक मे। बडी उमर मे वृद्धि की प्रक्रिया बन्द हो जाती है यह भी गलत है। वह मन्द हो जाती है, बन्द नही होती। Mesenchymal (Mesoderm) Tissue मे तो यह बराबर जारी रहती हे।

वृद्धावस्था सुलभ रोग तथा उनके प्रतिरोधक उपाय —

(क) कैन्सर —वृद्धावस्था का सबमे भयकर रोग कैन्सर है। Mucous membrnanes, Serous membranes, तथा त्वचा की बाहर की तह Epidermis मे दूसरे शब्दो मे Epithelial Tissue मे वृद्धि और क्षीणता दोनो प्रक्रियाओ के बढने से यह रोग होता है। स्वस्थ Epithelial tissue मे यह रोग कभी नही होता, अस्वस्थ मे ही होता है। अर्थात् जहा लगातार विक्षोभ पडा रहा हो या Infection हो रहा हो वहा ही यह रोग होता है। दूसरे शब्दो मे कैन्सर को विकसित होने मे काफी समय लगता है अर्थात् उसकी Precancerous stage काफी लम्बी होती है। ६० वर्ष की आयु मे जो कैन्सर हुआ है वह ४०-५० वर्ष की आयु से शुरु हुआ जानना चाहिये। अगो की Epithelial lining मे किसी विक्षोभक विष के विपरीत आकार मे स्थूल हो जाने तथा साथ ही मृत Necrosed हो जाने की जो प्रक्रिया होती है वह लम्बी होती एव वर्षो तक जारी रहती है। अत यदि इस Precancerous अवस्था मे ही कैन्सर का पता लगा लिया जाये तो रोगी को मृत्यु से बचाया जा सकता है। कैन्सर का रोग इतना व्यापक है कि सारे रोगियो मे २% रोगी कैन्सर के होते है। इनमे से भी १% ऐसे हैं जिनमे कैन्सर Pre-cancerous stage मे होता है, इनको मृत्यु से बचाया जा सकता हे। उदाहरणत आमाशय कैन्सर को ले, सब कैन्सर्स मे यह कैन्सर मुख के कैन्सर को छोडकर सबसे अधिक होता है। Pre-cancerous Stage मे इसका पता लग सकता है। एक तो यह पैतृक परपरा से होता है। माता पिता मे से किसी को हो चुका हो, उसके पेट के Gastric juice की परीक्षा से उसमे Achlorhydria या Hypochlor hydria मिले, उसके मल की परीक्षा मे उसमे Occult blood मिले, उसके Haemoglobin की परीक्षा मे वह ११ ग्राम प्रति शतक से कम हो तो उसके पेट मे कैन्सर हो जाने की आशका कर लेनी चाहिये। समय रहते उसकी चिकित्सा हो सकती हे। यदि आमाशय मे Polyps बन चुके हो तो Subtotal Gastrectomy करके इस रोग को बढने से रोका जा सकता हे। यह कैन्सर १०० रोगियो मे १५ मे मिलता है और इसके बढने के पहले इसका पता लगाया जा सकता है।

इसी प्रकार मलाशय मे कैन्सर बहुत अधिक होता है। उसके मल की परीक्षा की जाये तो उसमे Occult blood मिलता है। Procto-segmoidoscopy से भी

परीक्षा की जाये तो गुदा के ८-१० इन्च के अन्दर इस कैन्सर को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। अत यदि मल सम्बन्धी कोई कष्ट वृद्ध व्यक्ति से हो तो तुरन्त इन परीक्षाओं से इस कैन्सर का पता समय पर लग सकता है तथा इसकी उचित चिकित्सा करके रोगी को मृत्यु से बचाया जा सकता है। इसी प्रकार छाती का Breast कैन्सर बडी उमर की स्त्री मे बहुत अधिक पाया जाता है। १०० कैन्सर रोगियो मे यह कैन्सर ८-१० व्यक्तियो मे होता है। एक छाती मे एक छोटी सी गाठ पहले होती है। वह बहुत धीरे-धीरे बढती है। इसका पता स्त्री को भी नही होता। अत Menopause के बाद स्त्री को चाहिये वह टोह कर देखती रहे कि किसी छाती मे कोई कठोर सी गाठ तो नही बन रही, पता लगते ही उसे निकाल देने पर रुग्णा इस रोग से बच सकती हैं। कहा जाता है जो स्त्रिया बच्चों को अपना दूध नही पिलाती उनमे यह रोग अधिक होता है।

प्रोस्टेट कैन्सर भी वृद्धावस्था का एक व्यापक रोग है। १०० कैन्सर रोगियो मे १२ के लगभग मे तथा ५० से ऊपर के सौ वृद्ध पुरुषो मे से १५ मे, ८० वर्ष से ९० वर्ष की आयु के वृद्ध पुरुषो मे से ५० प्र०श० मे, ९० वर्ष से ऊपर के वृद्ध पुरुषो मे से ८० प्र०श० मे यह कैन्सर होता है। इस कैन्सर का भी पता Pre-cancerous Stage मे लगाया जा सकता है। एक तो Proctologic palpation मलाशय द्वारा स्पर्शन-परीक्षा से आगे की ओर एक कठोर से Nodule की प्रतीति होती है। दूसरे रक्त मे Acid एव Alkaline Phosphatase की परीक्षा से इसका पता लग सकता है। इस रोग के शुरू मे रक्त मे Acid Phosphatase ५–३ King Armstrong-units प्र श मे अधिक होता है।

वृद्ध स्त्री के Cervix मे कैन्सर का रोग कैन्सर रोगियो मे १०% के लगभग व्यक्तियो मे होता है। इसका पता Vagina की प्रत्यक्ष परीक्षा या Direct Visualization से हो जाता है।

Bronchogenic Cancer अर्थात श्वासनाली कैन्सर इस समय बहुत अधिक फैला हुआ है। आज से ३० वर्ष पहले यह रोग देखने मे भी नही आता था। वर्तमान काल मे यह कैन्सर ४५ से ६० वर्ष की आयु मे पुरुषो मे बहुत अधिक पाया जाता है। बीडी सिगरेट पीने वाले पुरुषो मे दूसरे न पीने वालो की अपेक्षा ५० गुणा यह होता है। बीडी, सिगरेट का धुआ इस कैन्सर का प्रधान कारण है। इसका प्रधान पूर्व रूप सूखी खासी का रहना है। बाद मे खासी के साथ पतला-सा स्राव भी आने लगता है। तरुण या वृद्ध मे खासी बहुत दिन चले तो इस रोग की आशका हो जानी चाहिये तथा X-Ray द्वारा इसका निश्चय करना चाहिये।

मुख कैन्सर —Oral-cancer—हमारे देश मे कैन्सर्स मे सब से अधिक पाया जाता है। होठ, जीभ, गाल, मृदु-तालु आदि मुख की झिल्ली मे कही भी Leukoplakia के धब्बो के रूप मे यह शुरु होता है। सुपारी, तम्बाकू, आदि को मुह मे रखकर उसे चूसते रहने वाले व्यक्तियो मे होता है।

भोजन नाली Oesophagus के निचले भाग मे पुरुषो मे यह रोग बहुत होता है। कैन्सर रोगियो मे यह रोग बहुत होता है। कैन्सर रोगियो के १०% के लगभग रोगियो मे यह रोग होता है। इसके कारण किया हुआ भोजन, भोजन नाली मे अड जाता है। निगरण काठिन्य Dysphagia का लक्षण होता है। रोगी पहले तो उसे पानी से नीचे उतार लेता है पर दो तीन मास बाद भोजन का नीचे जाना बन्द हो जाता है। ६-७ मास मे यह मार्गविरोध पूर्ण हो जाता है, भोजन को बलपूर्वक निगलने पर गले मे दर्द भी होता है। मद्यपान तथा तम्बाकू आदि विक्षोभक द्रव्यो का सेवन इसका कारण होता है।

कण्ठ कैन्सर— Cancer of the larynx—कैन्सर रोगियो मे ५% मे यह कैन्सर पाया जाता है। ५० से ६५ वर्ष की आयु के पुरुषो मे यह होता है। तथा तम्माखू सुपारी, पान आदि को मुख मे रखकर उसे चूसते रहने वाले लोगो मे होता है। लगातार आवाज बैठने की शिकायत हो तो इसका सन्देह करना चाहिये।

इस कथन का अभिप्राय यह है कि कैन्सर से पहले Pre-cancerous Stage बहुत लम्बी होती है, उसी मे कारण का निवारण कर दिया जाये तो रोगी को कैन्सर जनित मृत्यु से बचाया जा सकता है।

(ख) हृदय धमनी रोग—Coronary heart disease—Coronary Atherosclerosis —

वृद्धावस्था का सबसे बडा घातक रोग हृदय धमनी रोग है। हृदय धमनी मे ४५ से ६५ वर्ष की आयु के अन्दर Arteriosclerosis का होना तो स्वाभाविक है परन्तु यह जो कहा जाता है कि उसमें Atherosclerosis का होना भी स्वाभाविक है यह बात गलत है। इसका होना

एक रोग है जिसे रोका जा सकता है। धमनियो की अन्दर की झिल्ली Intima मे Atherosclerosis तब होता है जब Plasma मे Lipids का पूर्ण परिपचन नही होता अर्थात् Lipoprotein-lipase की मन्दता या फैट पाचक अग्नि की मन्दता होती है।

प्लाज्मा मे ५ Lipids होते हैं (१) Triglycerides (२) Phospholids (३) Free Cholesterol (४) Cholesteropi esters (Organic acid + Alcohol) (५) Free fatty acids। इनमे से पहले चार क्योकि प्रोटीन या अलब्यूमिन से मिले होते हैं उन्हे Lipoproteins कहते है। फैट्स के अति सेवन से तो ये बढते ही है, खाड के अति सेवन से भी ये बढते हैं। मधुमेही के रक्त मे इनकी उत्पत्ति ज्यादा होती है। इन Lipoprotein के प्लाज्मा मे अति सचय के परिणाम रूप मे अर्थात् इनके Metabolism के मन्द हो जाने मे Hyperlipidaemia होकर Atherosclerosis रोग की उत्पत्ति होती है। जो लोग फैटस तथा खाड का सेवन अधिक करते है उनमे Hyperlipidaemia होता है। जापानी लोगो के भोजन मे फैट केवल १५% ही होती है जबकि अमरीकन लोगो के भोजन मे फैट का अश भोजन का ४० प्र०श० होता है। इसी कारण अमेरिकन्स मे हृदय रोग अधिक पाया जाता है। Lipids के Metabolism के मन्द पड जाने से Coronary arteries जैसी सूक्ष्म रक्तवाहिनियो की अन्दर की झिल्ली (Intima) मे Lipids, Mucopolysaccharides, Fibrinous tissue, Calcium आदि वहा बैठने लग जाते है जिससे Coronary artery मे न्यूनाधिक अवरोध होकर हृदय की दीवार का पोषण घट जाता है। इसलिये वृद्ध व्यक्ति को चाहिये वह अपने रक्त मे Triglycerides और Cholesterol की मात्रा को बढने न दे। उसे चाहिये वह Saturated fatty acids (वनस्पति घी—मक्खन, घी, मास आदि) का सेवन कम तथा Polyunsaturated fatty acids (वानस्पतिक तेलो) का सेवन करे। यह भी अब कहा जा रहा है कि Cholesterolaemia तथा उसके धमनियो मे जमने का एक बडा कारण vit 'C' की न्यूनता है। Cholesterol यकृत् मे Bile-acids मे परिवर्तित होता है या तो Vit 'C' के अभाव मे इस परिवर्तन के कारणभूत Enzymes की क्रिया कम हो जाती है या जिन क्षतो या Damages के कारण Cholesterol धमनियो मे बैठता है उनके विटामिन सी द्वारा ठीक हो जाने से Cholesterol का बैठना वहा बन्द हो जाता है। पर इतना तो सत्य है कि इस विटा के प्रयोग से Cholesterolaemia का बहुत लाभ होता है।

(२) Smoking या बीडी सिगरेट का अति सेवन हृदय रोग या हृदय धमनी रोग का बडा कारण है। जितना बीडी सिगरेट का सेवन अधिक किया जाता है उतना ही अधिक जल्दी हृदय रोग होता है। तम्बाकू एक तो Vasoconstrictor (धमनी सिरा-सकोचक) है। दूसरे यह रक्त के Platelets मे चिपचिपापन Adhesiveness या Stickiness उत्पन्न करता है जिससे उनका एक ढेर सा बन कर सूक्ष्म धमनी स्रोतो मे अवरोध उत्पन्न कर देता है। तीसरे तमाखू रक्त मे होने वाली Lipolysis या Lipids की पचने की प्रक्रिया को मन्द करता है चौथे तम्बाकू रक्त मे विद्यमान Heparin की Anticoagulent property को घटाता है। तमाखू को अधिक पीने से पीने वाले के हृदय को उतनी आक्सीजन नही मिलती, जितनी न पीने वाले के हृदय को मिलती है। पाँचवें तमाखू पीने से वसामय अवयव या Adipose tissue मे होने वाली Free fatty acids की निकासी तीव्र हो जाती है जिससे रक्त मे Cholesterol तथा Lipoproteins की मात्रा बढ जाती है।

(३) **अव्यायाम या आसन शीलता** Lack of Exercise and manual labour — सदा बैठे रहने वाले वृद्ध व्यक्ति मे व्यायामशील वृद्ध व्यक्ति की अपेक्षा Hyperlipaemia अधिक पाया जाता है। व्यायामशील वृद्ध व्यक्ति मे Blood thrombolysis अर्थात् रक्त मे बने thrombi को घोलने की प्रक्रिया तीव्र रहती है। यही कारण है कि श्रमियो की अपेक्षा दिमागी काम करने वाले लोगो मे Coronory Atheroma का रोग अधिक होता है। पढने लिखने वाले वृद्ध लोगो को चाहिये कि दिन मे सुबह शाम मिलाकर कम से कम दो घटे भ्रमण, हलकी व्यायाम या शारीरिक श्रम के लिये रखे। व्यायाम, आसन, शारीरिक श्रम करने वाले वृद्ध व्यक्ति के शरीर की स्थिति (Posture) ठीक बनी रहती है, अगो मे तिरछापन या झुकाव पैदा नही होता, सधियो की स्थिति ठीक बनी रहती है, मासपेशियो तथा कण्डराओ मे सकोच Contraction नही होता, चलने फिरने तथा दौडने तक की ताकत बनी रहती है, रक्त सचार तथा Metabolism की प्रक्रिया भी ठीक रहती है तथा शरीर के स्वस्थ रहने से

मानसिक प्रसन्नता भी बनी रहती है। कटि प्रदेश तथा वड का व्यायाम विशेष करना चाहिये क्योंकि अव्यायाम शील मे कटिशूल का रोग बहुत होता है। टागों की Hamstrings मासपेशियों की व्यायाम भी होनी चाहिये ताकि वृद्ध व्यक्ति मे उनमें सकोच न हो। Osteoarthritis, Osteoporosis वृद्धावस्था सुलभ ये रोग व्यायामशील मे नही होते। कैलोरीज जो भोजन मे ली जाती हैं उन्हें तथा जो खर्च होती है उन्हे लगभग बराबर रखना चाहिये। १ मील समतल भूमि पर चलने मे ५० कैलोरीज खर्च होती हैं। एक उठक बैठक मे एक कैलोरी खर्च होती है। इस प्रकार कम से कम दिन मे ४-५ मील का भ्रमण तो करना ही चाहिये।

(५) स्थूलता, Obesity—स्थूलता तथा Coronary heart disease का बहुत निकट का सम्बन्ध है। स्थूलता तथा रक्तभार वृद्धि का भी परस्पर बहुत सम्बन्ध है। स्थूल शरीर के वृद्ध व्यक्ति मे हृदय रोग होने का खतरा दूसरो की अपेक्षा डेढ गुणा है। यह भी परीक्षा से सिद्ध हो चुका है कि जितना जितना शरीर अधिक स्थूल होता जाता है उतनी उतनी व्यक्ति की आयु अधिक घट जाती है। अर्थात् १% भार नार्मल से ऊपर हो तो १% आयु घट जाती है। स्थूलता के प्रधान कारण फैट्स तथा खाण्ड का अधिक सेवन तथा व्यायाम का सर्वथा अभाव है। इन भोजनो पर तथा भोजन की कैलोरीज पर नियन्त्रण रखकर व्यायाम का नित्य सेवन किया जाये तो स्थूलता पर विजय पाई जा सकती है। वैज्ञानिको का कथन है कि २५-३० वर्ष की उमर मे जितना भार होता है उतने को ही आगे कायम रखना चाहिये। उसे आगे वढने नही देना चाहिये [हो सके तो उसे कुछ घटाना चाहिये]। जितना भार वढता है उसी अनुपात मे हृदय पर कार्य भार वढता है। वृद्धावस्था जितनी वढती है उतना हृदय पर कार्यभार घटाया जाना चाहिये।

यहा सक्षेप मे आदर्श भार की सूची दी जाती है। ऊचाई पुरुष की ५ फुट हो तो भार ११५ पौण्ड, ऊचाई ५ फु. १ इच हो तो भार १२९ पौ, ऊचाई ५ फुट २ इच हो तो भार १२५ पौण्ड, ऊचाई ५ फुट ३ इच हो तो भार १३० पौण्ड, ऊचाई ५ फुट ४ इच हो तो भार १३५ पौण्ड, ऊचाई ५ फुट ५ इच हो तो भार १४० पौण्ड ऊचाई ५ फुट ६ इच हो तो भार १४५ पौण्ड के लगभग होना चाहिये। ऊचाई स्त्री की ५ फुट हो तो भार ११२ पौण्ड, ऊचाई ५ फुट १ इच हो तो भार ११५ पौण्ड, ऊचाई ५ फुट २ इच हो तो भार ११७ पौण्ड, ऊचाई ५ फुट ३ इच हो तो भार १२० पौण्ड ऊचाई ५ फुट ४ इञ्च हो तो भार १२४ पौण्ड, ऊचाई ५ फुट ५ इच हो तो भार १२६ पौण्ड, ऊचाई ५ फुट ६ इच हो तो भार १३० पौण्ड के लगभग होना चाहिये।

(६) भावावेश–Psychogenic Stress या Tension—

यदि मनुष्य मे क्रोधशील, विग्रहशील विक्षोभशील अशान्त रहने का स्वभाव हो तो ऐसी अवस्था मे Adrenalin तथा Corticosteroids (कार्टिसोन, हाइड्रो कार्टिसोन) की रक्त मे वृद्धि हो जाने मे रक्त मे Free fatty acids की बहुत मात्रा जमा हो जाती है जिससे Platelets मे चिपचिपापन या Stickiness वढ जाती है। इसीलिये क्रोध आदि आवेगो से हृदय रोग के होने की आशका रहती है। इसलिये वृद्ध व्यक्ति को शान्त, सहनशील रहने का यत्न करना चाहिये। ऐसा करना कठिन हो तो Anatensol आदि किसी शामक औषधि की सहायता लेनी चाहिये।

(७) मधुमेह Diabetes—

मधुमेह रोग तथा हृदय रोग Ischaemic heart disease का बहुत निकट का सम्बन्ध है। मधुमेह रोगियो मे से ५०% व्यक्ति हृदय रोग (Infarction) से ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। इसका कारण उनमे Hyperlipaemia का होना है। विशेषत उनके रक्त मे Triglycerides या Plasma Cholesterol की वृद्धि होना है। रक्त मे Fatty acids की वृद्धि का एक कारण उनमे Carbohydrates के Metabolism का निर्बल हो जाना है, अर्थात् उनके रक्त मे ग्लूकोज का वढना है। अत मधुमेह रोगी को उचित है कि वह भोजन मे कैलोरीज की मात्रा को घटाये। कार्बोहाइड्रेट्स तथा फैट्स कम ले। फैट्स की अधिकता अर्थात Hyperlipaemia मे उनके रक्त मे Fibrinolysis की प्रक्रिया मन्द होती है उसके Platelets भी अधिक Sticky होते है, इसी से Coronory Atherosclerosis होने की आशका उनमे विशेष रहती है।

मधुमेह रोगियो मे ३०-४० प्र श मे रक्त भार विशेषत Diastolic ऊचा रहता है। रोगी जितना अधिक स्थूल होता है उतना ही रक्त भार ज्यादा होता है। उसमे ६० वर्ष की आयु के वाद रक्त भार उत्तरोत्तर वढता जाता है

इन दोनो कारणो से Coronary धमनी मे स्रोतोरोध या Insufficiency बढती है। Retina की धमनियो मे Microaneurysms बनते है, तथा गुर्दो की Capillaries मे Endarteritis obliterans या स्रोतोरोध की विकृति होकर उनका मूत्र निर्माण कर्म मन्द पड जाता है जिससे Uraemia के लक्षण होने लगते है। अत वृद्धावस्था मे मधुमेह का पूरा नियन्त्रण होना चाहिये। भोजन मे कैलोरीज की मात्रा १२०० से अधिक नही रहनी चाहिये।

(८) Hyperuricaemia रक्त में Uric acid की अधिकता या वातरक्त :--

रक्त मे यूरिकाम्ल अधिक हो जाये (नार्मल ३-५मिलि० %) तो भी हृदय रोग के होने की आशका रहती है Nucleoprotein से उत्पन्न High purine भोजन के अधिक लेने से यह रोग वृद्ध व्यक्तियो मे होता है। इसलिये बडी आयु मे अधिक Nucleo-protein वाले आहार मास मछली आदि भोजन का सेवन नही करना चाहिये।

(९) चाय तथा काफी--

इन दोनो मे से काफी के अति सेवन मे हृदय रोग हो सकता है। रक्त मे जो स्वाभाविक Fibrinolysis की प्रक्रिया है वह काफी के अधिक सेवन से घट जाती है। रक्त मे Fibrinogen की मात्रा बढ जाती है, जिससे रक्त के Clot करने की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। चाय तथा काफी के अधिक लेने से Caffine शरीर मे अधिक जाता है। इसकी अधिकता से Nervousness, Irritability, निद्रानाश,—Anxiety, Muscle twisting के रोग हो सकते है।

(१०) रक्तभार वृद्धि --Hypertension

बडी आयु के आने पर बडी छोटी धमनियो की दीवार मे Arterio sclerosis का हो जाना स्वाभाविक है। इस प्रकार धमनियो की दीवार मे कुछ कठोरता के आ जाने से Left heart या वाम हृदय के सामने प्रेशर बढ जाता है जिससे वाम हृदय या Left Ventricle आकार मे कुछ बडा हो जाता है तथा इससे Systolic रक्त भार कुछ बढ जाता है। इस प्रकार Systolic रक्त भार का बढना वृद्धावस्था का स्वाभाविक लक्षण है। यदि यह भार १५०—१५५ भी हो जाये तो उसे अधिक बढा हुआ नही समझा जाता। परन्तु यदि Diastolic रक्त भार जो हृदय के आराम के समय का रक्तभार है वह भी बढा हुआ हो और १०० m m Hg से ऊपर हो और Systolic रक्तभार १६० mmHg से ऊपर चला जाये तो उसे Hypertension या रक्त-भार वृद्धि का रोग कहते हैं। साधारणत ६५-७० की आयु मे १४५।८०, ७०-७५ मे १६५।९०, ७५-८० मे १६०-९०, ८५ से ९० मे १६५।८५ होना चाहिये। स्त्री मे ६५-७० मे १५५।८५, ७०-७५ मे १६५-९०, ७५-८०मे१६०। ९०, ८०-८५ मे १६५।८५ के लगभग होना है। रक्तभार वृद्धि का यह रोग Coronary heart disease का सबसे बडा कारण है। वृद्धावस्था मे यह बढता ही है। परन्तु यदि वृद्ध व्यक्ति का शरीर स्थूल हो तो उसकी चर्बी मे विद्यमान मीलो लम्बी धमनियो मे रक्त पहुचाने के लिये वाम हृदय Left ventricle पर और भी अधिक कार्य भार आ पडता है जिससे उसे आकार मे और बडा होना पडता है एव रक्त भार और बढता है। मानसिक आवेग मे भी यह बढता है। इसी प्रकार यदि स्थूल व्यक्ति नमक भी ज्यादा लेता हो तो अवयवो Tissues मे जल के अधिक बढने से वाम हृदय के सामने और प्रेशर बढता है जिससे रक्त भार और बढता है। वाम हृदय आकार मे बडा होता है पर क्रमश उसमे Degeneration या क्षीणता की प्रक्रिया भी बढती है। इस प्रकार यदि रक्त भार बढता जाये तो 'हार्ट अटैक' की आशका हो जनी चाहिये। रक्त भार यदि ५०% बढ जाये और साथ ही यदि Serum Cholesterol भी ५०% बढ जाये तो'हार्ट अटैक'का खतरा २-३ गुणा बढ जाता है। ऐसा व्यक्ति बीडी सिगरेट भी बहुत पीता हो तो उसमे हार्ट अटैक का खतरा बहुत अधिक होता है। अत स्थूल शरीर के वृद्ध व्यक्ति मे रक्तभार को बढने से रोकने का पूर्ण यत्न होना चाहिये। इसे नियन्त्रण मे रखा जाये तो उसे हृदय रोग मे बचाया जा सकता है। निद्रा-नाश, सिर दर्द, शिरोभ्रम, क्रोध की वृद्धि इसके लक्षण है। वृद्ध व्यक्ति मे रक्तभार अधिक बढा हुआ हो तो कुछ उपद्रव हो सकते है।

(१) Left Ventricular Failure, Cardiac Asthma या Nocturnal Dyspnoea = [हृदय रोग जनित श्वास, रात्रि श्वास]

इस रोग मे वृद्ध व्यक्ति को रात को सोते सोते एकदम उठना पडता है, उसे अपना दम घुटता लगता है, श्वास लेने को वह तडफता है। उसे एकदम उठकर बैठना पडता है। परीक्षा करने से उसके पुफुस मे Basal-rales सुनाई पडते है।

इस उपद्रव के लिये Pethidine २५ मिलि मास द्वारा देवे या Aminophylline २५ ग्राम १० मिलि लि ग्लूकोज सोल्यूशन मे मिलाकर शिरा द्वारा धीरे-धीरे दे। फुफुस मे जो Oedema या श्वयथु रहता है उसको हटाने के लिये Lasix २० मिलि मास द्वारा देवे। और अगले दिन से इसकी ४० मिलि की एक गोली कुछ दिन सुबह देवे। वेग के समय Oxygen देने मे भी लाभ होता है। Left-heart के फेल होने से यह रोग होता है। अत वेग के समय Digoxin २ गोली देने से भी वेग शान्त होता है। रक्त भार को गिराने के लिये Reserpine (Serpasil) का इजेक्शन १-२ मिलि० मात्रा मे मास द्वारा देवे। वेग के समाप्त हो जाने पर Methyldopa २५० मिलि० गोली दैनिक दे। Diastolic प्रेशर ११० mm Hg से ऊपर हो तो इसे ५०० मिलि० दैनिक मात्रा मे दे।

(२) रक्त भार वृद्धि का दूसरा उपद्रव Cerebrovascular accident अर्थात् मस्तिष्क रक्त-वाहिनी सम्बन्धी रोग है। ५०% यह उपद्रव Cerebral thrombosis के रूप मे होता है जो ५० से ६० वर्ष की आयु के वृद्ध व्यक्ति मे ज्यादा पाया जाता है, ६० से ७० वर्ष की आयु मे भी कुछ एक मे होता है। Coronary heart disease इनमे होता ही है। Cerebral thrombosis का रोग Carotid middle artery मे Atherosclerosis के होने से होता है। इसके होने के कारण ५०% रोगियो मे दाई ओर पक्षाघात होता है ३०-३५— रोगियो मे बाई ओर पक्षाघात होता है तथा ७७% रोगियो मे यह पक्षाघात क्रमश बहुत कुछ ठीक हो जाता है तो भी ऊपर की शाखाओ मे कुछ न कुछ निर्बलता रह ही जाती है।

Cerebrovascular accident का दूसरा रूप Cerebral Haemorrhage अर्थात् मस्तिष्क रक्तस्राव का होता है। यह उपद्रव २५% मे होता है तथा ६० से ७५ वर्ष की आयु के अधिक ऊचे ब्लड प्रेशर के रोगियो मे होता है तथा शत प्रतिशत घातक होता है।

Cerebral Vascular accident का एक तीसरा रूप भी है जिसे Hypertensive encephalopathy रक्तभार जनित मस्तिष्क रोग कहते हैं। यह १० प्र श रोगियो मे होता है। तथा ५० वर्ष की आयु से ७० वर्ष की आयु के वृद्ध व्यक्तियो मे होता है। इस रोग मे रोगी का Systolic भार २०० से ऊपर तथा Diastolic भार १२० से ऊपर हो जाता है। Hypertension की उपस्थिति से उत्पन्न Cerebral vascular spasm के कारण या Cerebral oedema के कारण यह रोग होता है। यह एक प्रकार का मूर्छा का दौरा है जिसमे वृद्ध व्यक्ति मे सहसा मूर्छा होकर Convulsions होने लगते है। ये Convulsions या आक्षेप सारे शरीर मे होते है। रोगी की ग्रीवा पीछे की ओर मुड जाती है और शरीर, गर्दन अकड जाते है सभवत Sub-arachnaid प्रदेश मे Exudate के भर जाने से ऐसा होता है Retina मे Oedema होने से उसकी दृष्टि नष्ट हो जाती है। यह दौरा कुछ घटे रहकर बिलकुल ठीक हो जाता है।

Cerebral vascular accident की **चिकित्सा :—**

Cerebral Thrombosis के लिये Dexamethasone (Decadron) २ मिलि मास द्वारा दे। तथा complamena ३०० मिलि Ampoule दिन मे २ बार मास द्वारा दे। तथा इसकी १५० मिलि की गोलिया भी दिन मे ३ बार दे।

Cerebral haemorrhage के लिये रक्त-भार को कम करने के लिये २५ मिलि Reserpine (Serposil) को दिन मे २ बार दे। परन्तु यह रोग प्राय घातक होता है। मुख से कुछ न देकर शिरा द्वारा ग्लूकोज सोल्यूशन देना चाहिये।

Hypertensive Encephalopathy — के लिये रक्त भार कम करे २५ मिलि Reserpine को या Hydralazine को २० मिलि मात्रा मे या Lasix को २० मिलि मात्रा मे मास द्वारा दे। Convulsions के लिये Gardenal Sodium को १०० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा दे।

रक्त भार का एक चौथा उपद्रव Hypertensive oliguria का हो सकता है अर्थात् रक्तभार के बहुत बढ जाने से वृक्को की Capillaries मे Vasoconstriction होकर मूत्र का बनना कम हो जाता है जिससे रक्त मे यूरिया बढ जाता है। इसके लिये भी रक्तभार को कम करने की चिकित्सा करे।

इस प्रकार हृदय धमनी रोग Coronary heart disease या हार्टअटैक के प्रधान कारण (१) वृद्धावस्था

(२) रक्त भार वृद्धि Hypertension (३) Hyperlipaemia रक्त मे Cholesterol या Triglycerides की अधिकता (४) धूम्रपान Smoking तथा (५) अति स्थूलता Obesity है। तथा सहायक कारण मधुमेह, Gout, Emotional Stress या आवेगशीलता, आसनशीलता है। इनमे से पहले कारण को छोड अन्य सब का प्रत्युपाय हो सकता है और वृद्ध व्यक्ति को 'हार्ट अटैक' से बचाया जा सकता है। उपर्युक्त लक्षणो के साथ आखो मे Corneal-arcus हो, सर के बाल उड गये हो, तो समझ लेना चाहिये कि Coronary Atherosclerosis बढ रहा है और उसे प्रबलता से रोकने के उपाय करे। व्यायाम भी उसका एक अच्छा उपाय है। दिन भर दिमागी काम करने वाले को सायकाल बैठकर अखबार पढने से उतना आराम नही मिलता जितना उस समय २-३ मील के भ्रमण से या हल्की व्यायाम से मिलता है।

(ग) Peripheral Vascular disease

हाथो और पावो की रक्तवाहिनियो मे Atherosclerosis या Spasm के या दोनो के हो जाने से उनको रक्त कम मिलता है जिससे विशेषत पैरो मे सो जाने या सूइयो के चुभने की सी प्रतीति या दाह की प्रतीति (Paraesthesia) होती है। बीडी, सिगरेट पीने वालो मे हाथ पाव की धमनियो मे Vasoconstriction विशेष होता है।

Popliteal-artery की शाखाओ मे Arterio Sclerosis होने से कुछ दूर चलने पर पिंडलियो मे दर्द होने लगता है जिसे Claudication कहते हैं। दूसरे इसके कारण रात को सोते समय Rest pain का लक्षण अर्थात् निचली टाग मे दर्द होने का लक्षण होता है सभवत रक्तभार के बढने तथा निचली टाग की उपर्युक्त Artery मे Spasm के कारण होता है। इस रोग के लिये सुबह शाम पैरो को गर्म जल से धोना चाहिये, रक्तभार को घटाना चाहिये। हो सकता है Nicotinic acid ५०-१०० मिलि के दिन मे २-३ बार देने से लाभ हो। वृद्धो मे होने वाले Cramps तथा पैरो मे होने वाली दर्द Aching के लिये Vitamin E का प्रयोग बहुत लाभदायक पाया गया है।

(घ) Osteo-arthritis of the knees घुटनो के दर्द के लिये जरूरी है कि भोजन की कैलोरीज कम करके शरीर के भार को कम किया जाये। हलका व्यायाम किया जाये।

(ङ) Fracture of the hip—वृद्ध व्यक्तियो मे बहुत अधिक होता है Hip-Nailing procedure ही एक मात्र अच्छी चिकित्सा है।

(च) शिरोभ्रम Dizziness—Cerebral Ischaemia या रक्तभार वृद्धि के कारण होता है, जल के अधिक मात्रा मे लेने से, व्यायाम से, भ्रमण से तथा Stemetil की गोली के दिन मे २-३ बार लेने मे आराम आ जाता है।

(छ) मलबन्ध भी बडी आयु का एक सुलभ रोग है। निर्बल या Atonic Peristalsis के कारण होता है। कोष्ठ की मासपेशियो की निर्बलता से मलबन्ध रहता है। विटामिन बी कम्प्लेक्स, फल, सब्जी आदि का सेवन कराये। जल ज्यादा पिलाये, व्यायाम कराये। I-So-gel का दिन मे १-२ बार प्रयोग करायें।

(ज) वृक्क रोग Nephropathy—वृद्धावस्था मे रक्त भार के बढने से वृक्को की सूक्ष्म सिराओ Capillaries मे Spasm होकर वृक्को को रक्त कम मिलता है जिससे Glomeruli तथा Tubules से Atrophy लघुता की क्षीणता होने लगती है। इससे वृक्को की मूत्र को घना करने अर्थात् ऐसा मूत्र बनाने की जिसमे ५ भाग ठोस पदार्थ और ९५ भाग जल हो शक्ति कम हो जाती है। उसके स्थान मे मूत्र मे ९७ भाग जल तथा ३ भाग के लगभग ठोस द्रव्य होते है। स्पष्ट है उसे मूत्र बनाने के लिये बहुत सा जल चाहिये इसलिये वृद्ध व्यक्ति की मूत्र की मात्रा बढ जाती है, जिससे रात को कई बार उठना पडता है। उसके समाने की समाई भी कम हो जाती है। रक्त भार के बढने से वृक्को की Preglomerular arteries मे Atherosclerosis होकर उनके Nephrons मे कुछ और क्षीणता बढती है जिससे उनका मूत्रनिर्माण कर्म ठीक नही होता। परिणाम रूप मे रक्त मे Urea तथा Creatinine की मात्रा बढ जाती है। अर्थात् वृद्ध व्यक्ति मे सिर दर्द, शिरोभ्रम,

रक्तभारवृद्धि, निद्रालुता के लक्षण होते हैं। अत वडी उमर मे प्रोटीन भोजन भी स्वल्प मात्रा मे ही लेना चाहिये तथा रक्तभार को नियन्त्रण मे रखना चाहिये। वृक्काश्मरी रोग हो तो निम्वू जल, या अगूरो के सेवन से लाभ होता है।

(झ) खासी Bronchitis—वडी आयु मे पुफुस की निर्वलता से उसमे Infection जल्दी हो जाता है। इसी कारण खासी जल्दी हो जाती है इसके लिये कभी-कभी किसी Antibiotic का सेवन करना चाहिये।

(घ) पौरुष ग्रन्थि की वृद्धि–Prostate Enlargement —पुरुषो मे ५० वर्ष की आयु के वाद ७० वर्ष की आयु के वीच प्रोस्टेट ग्रन्थि मे Benign Hypertrophy इतनी अधिक होती है कि उसे स्वाभाविक ही कह सकते है। पर इसके अधिक वढ जाने पर मूत्राशय मे मे Infection ऊपर गुर्दो मे जा सकता है, तथा जल और लवण के ठीक न निकलने मे शरीर मे श्वयथु oedema-का रोग हो जाता है। इसलिये इस रोग का प्रत्युपाय होना चाहिये। Spemen २ गोलियो के दिन मे ३ वार कुछ काल लेने से इसकी रोकथाम हो सकती है। Testosterone के इन्जेक्शन भी कुछ लाभदायक हो सकते हैं।

(त) Senile-tremor—कंपरोग—हाथो तथा सिर मे होता है। काम करते समय होता है, विश्राम मे नही। Cerebral Arteriosclerosis के कारण इन अगो की मासपेशियो पर नियत्रण शिथिल हो जाने मे होता है। Arteriosclerosis की कोई मानी हुई चिकित्सा नही।

वृद्ध व्यक्तियो के लिये कुछ आवश्यक Tests
६-६ मास वाद निम्नलिखित tests करा लेने चाहिए —

(१) Erythrocyte Sedimentation Rate (SRE) शरीर मे कही पर Inflammation Toxaemia, क्षय रोग, कैन्सर हो तो यह वढा हुआ होता है (नार्मल ६ ५ m m in one hour, wintrobe)।

(२) Differential white cell count— साधारणत Polymorpho nuclear ६५%, Lymphocytes Small and large, २६%, Eosinophils ३%, monocytes ५% होते हैं। Polymorphs, Pyogenic infections मे वढते हैं, Lymphocytes क्षयरोग मे वढते है, Eosenophils, allergy मे Amaebiasis मे वढते है।

(३) Blood urea test (नार्मल २०-४० मिलि प्र श) Blood creatinine (नार्मल १-१½ मिलि प्र श)।

(४) Urine general test—Sp gravity R B C, W B C (For Pyelonephritis), casts, Oxalates, Water concentration test १०१०-१०१२ रहे तो Renal-deficiency समझे।

(५) Stool-test-ova, Cysts, Occult blood (हो तो Gastric juice-Analysis)

(६) Fasting blood chemistry—Sugar, Cholesterol, Urea Nitrogen, Creatinine

(७) X-Ray-Lungs Heart, Lumber Spine (Lateral Side for Osteoporosis)

वृद्धावस्था सुलभ मानस रोग —

(१) Senile Dementia—**वार्धक्य सुलभ बुद्धिनाश। कारण** वृद्ध व्यक्ति का मस्तिष्क आकार मे कुछ छोटा हो जाता है। Frontal तथा Parietal lobe मे Atrophy विशेष होती है। मस्तिष्क के Nerve cells तथा Nerve fibres भी कम हो जाते हे। इन क्षीण हुए Neurones के स्थान Neuroglial tissue आ जाता है। ये परिवर्तन पोषण की न्यूनता से जैसे प्रोटीन्स की न्यूनता, विटामिन Bcomplex की न्यूनता मे, या शरीर के अन्दर किसी विष पदार्थ की उपस्थिति अर्थात् किसी प्रकार की Metabolic disturbance के कारण या Atherosclerosis कारण होने लगते हैं। जो पहले से ही वातिक प्रकृति या मनोनैर्वल्य Psycopathic प्रकृति के होते हे उनमे यह रोग होता है।

लक्षण—यह रोग अज्ञात रूप मे धीरे-धीरे आरम्भ होता हे (१) पहले स्मृतिमन्दता का लक्षण होता है अर्थात्

अभी अभी की हुई वात या किया हुआ निश्चय भूलने लगता है। नामो के भूल जाने की शिकायत सर्व प्रथम होती है। परिचित व्यक्तियो के नाम भूल जाते हे। (२) ऐसा व्यक्ति भूत काल की वातो को सोचता रहता हे, वर्तमान काल मे नही, भूतकाल मे निवास करने लगता है। (३) अपने आस-पास की अवस्थायो मे रुचि नही रखता, उनसे उदासीन सा हो जाता हे। (४) नई वातो को ग्रहण करने की शक्ति, एकाग्रता की शक्ति किसी वात के निर्णय लेने की शक्ति जाती रहती है। (५) निद्रा शक्ति घट जाती है। (६) प्रसन्न रहने की शक्ति जाती रहती, विपाद भाव की वृद्धि हो जाती है (७) उसे काल भ्रम, स्थान भ्रम, दिग्भ्रम आदि होने लगते है (७) उसे अपने खाने-पीने मे अपने शरीर वस्त्रो, स्थान को स्वच्छ रखने मे, अपने परिवार जनो मे भी कोई रुचि नही रहती।

चिकित्सा —वृद्ध व्यक्ति यदि किसी कार्य मे व्यस्त रहे, शारीरिक श्रम या व्यायाम करता रहे, भाग्य से उस पर कोई आपत्ति न आये अर्थात् उसकी पत्नी, पुत्र, सपत्ति आदि का वियोग न हो, उसे पोपक आहार, विटामिन्स आदि मिलते रहे तो वह Dementia से बचा रहता हे। यह रोग हो जाये तो Tranquilizers तथा Electric Shock से वह ठीक हो सकता है। मस्तिष्क सम्वन्धी निर्वलता से स्मृति नाश, शिरोभ्रम, कान मे आवाज हो तो वादाम के कुछ दाने छोटी इलायची के साथ लेवे।

(१) Senile depression—**वार्धक्य सुलभ विषाद रोग** :—

कुछ एक वृद्ध व्यक्तियो का चित्त सदा विपण्ण रहता हे। वे देखने मे विपण्णवदन, मन्दचेष्ट, उदासीन दिखाई पडते है। उनके चेहरे पर कभी हास्य का भाव नही दीखता। उनमे किसी के लिये सहानुभूति या सहृदयता का भाव नही प्रतीत होता। वे केवल अपने ही दु ख को देखते हे। उनकी नीद वहुत सुवह टूट जाती है और फिर वे दुखी व वेचैन रहते है। जिनको पहले भी विपाद रोग हो चुका हो उनमे ही यह ज्यादा होता है। इनको Amitriptyline (Sarotina) १० मिलि गोली दिन मे दो वार देवे। Electric Shock से भी लाभ हो सकता है।

Involutional paranaia (Paranoic-Dementia) **वृद्धसुलभ वुद्धि विभ्रम** —

जो व्यक्ति पहले भी सन्देहशील रहे हो उनमे इस अवस्था मे आकर वुद्धि विभ्रम का रोग हो सकता है। यदि उसे दीखता-सुनता कम हो तो उस मे सन्देहशीलता और भी ज्यादा हो जाती है। उसे आसपास के व्यक्ति चोर दिखाई पडते है या उन्हे उसके भोजन मे विप मिलाई जा जा रही है ऐसे ऐसे सन्देह होने लगते हैं। इस रोग को Eskazine २ मिलि गोली के दिन मे ३ वार देने से या Largactil २५ मिलि गोली के दिन मे ३ वार देने से लाभ हो सकता है।

वृद्धावस्था में होने वाले पैतृक रोग Genetic diseases of old age —

Sperm तथा ovum के Chromosomes मे विद्यमान Genes के द्वारा सन्तान मे सक्रमण करने वाले रोगो को Genetic रोग कहते हैं। मधुमेह रोग Diabetes इसी प्रकार का रोग है माता-पिता मे से किसी एक को यह रोग हो तो सन्तान मे १५-१६% मे यह रोग हो जाता हे। माता-पिता दोनो को यह रोग हो तो सन्तान मे अधिकतर को यह रोग हो जाता है। साधारण व्यक्तियो मे २०० आदमियो के पीछे एक मे यह रोग देखने मे आता है पर यदि भाई वहिनो मे से किसी को या चचेरे भाई वहिनो मे भी किसी को यह रोग हो तो ऐसे १०० व्यक्तियो मे से ६ मे यह रोग होता हे। मधुमेही की सन्तान मे रोग न भी हो तो सन्तान की सन्तान मे यह रोग हो सकता हे। अत ऐसी मधुमेह की प्रवृत्ति वाले पुरुप या स्त्री को चाहिये कि ४० वर्प की आयु के वाद वह अपने शरीर को भारी न होने दे तथा भोजन मे कैलोरीज की मात्रा को भी कम करे, कुछ व्यायाम करे, तथा Steroid औपधि का सेवन कभी न करे। स्थूल काय स्त्रियो मे यह रोग अधिक होता है अत उन्हे सावधान रहना चाहिये।

Gout गठिया का रोग भी पैतृक परम्परा से चलता है विशेपत लडको मे आता है लडकियो मे नही। अर्थात् Gouty पिता की सन्तान मे Uricase नामक Enzyme की कमी पैतृक परपरा से आती है। इस रोग के १०० रोगियो से प्रश्न किया जाये तो पता लगता हे कि उन मे से ६० के निकट सवधियो मे यह रोग है या उनके मूत्र मे Uric acid stones है। यह रोग प्रसुप्त रूप से वहुत सो मे रहता है उनमे से केवल १०% मे ही यह प्रकट (या Clinical) रूप मे होता है। अत जिन परिवारो मे यह रोग हो उन्हे ५० की ऊपर की आयु मे पहुचने पर High purine भोजन (जान्तव प्रोटीन्स) तथा मद्य का सेवन नही करना चाहिये। शरीर को स्थूल होने से वचाना चाहिये तथा कभी कभी Blood uric

acid का टैस्ट कराना चाहिये और उसे ६ मिलि प्र श से बढने न देना चाहिये ।

रक्तभार वृद्धि का रोग Hypertension—यह रोग पैतृक परपरा मे चलता है। अमरीका के Allan ने ४८५ 'रक्त भार वृद्धि वाले रोगियो' की जाच की तो उन्हे पता लगा कि उनमे से १३१ मे उनके माता-पिता दोनो मे ही यह रोग था तथा उनमे से ३४९ मे उनके माता-पिता मे मे किसी एक मे यह रोग था। केवल पाच रोगी ऐमे निकले जिनके माता पिता किसी मे यह रोग नही था। देखा गया है कि माता पिता दोनो मे यह रोग हो तो सन्तान मे से ८०% मे ४५ वर्ष की आयु के वाद यह रोग हो जाता है । यदि माता-पिता मे मे किसी एक मे यह रोग हो तो उनकी सन्तान मे ४५ वर्ष की आयु के वाद २५ से ५०% मे यह रोग हो जाता है। जिन परिवारो मे किसी को यह रोग होता है उनमे दूसरो की अपेक्षा ८ गुणा यह रोग अधिक होता है। इसीलिये Hypertension के रोग को भी Genetic माना जाता है। वृद्ध आदमी मे थोडे श्रम से भी यदि नाडी सख्या २० प्रति मिनट वढ जाये अथवा आराम से पडे हुए भी नाडी सख्या यदि ८०-८५ से ऊपर हो, या शरीर का जितना प्रामाणिक भार होना चाहिये उससे ८-१० किलो भार ज्यादा हो तो सन्देह कर लेना चाहिये कि रक्त भार बढा हुआ है। इसलिए जरूरी है कि ५० से ६० वर्ष की आयु मे रक्तभार की जाच कभी कभी होनी चाहिये । ऐसे व्यक्ति को शरीर की स्थूलता मे, भोजन मे अधिक कैलोरीज लेने से तथा आवेगशीलता Emotional Stress से वचना चाहिये ।

Coronary Atherosclerosis या Ischaemic heart disease —इस रोग के दो प्रधान कारण हैं एक Hypercholesterolaemia दूसरा Hypertension और दोनो विकार पैतृक परपरा मे चलते है। इसीलिये Coronary तथा Cerebral दोनो Thrombosis पैतृक परपरा से चलने वाले रोग होते है। इन रोगो के रोगियो से पता चलता है कि उनके परिवार मे ये रोग परम्परा से आ रहे हैं। ८० मे ९० वर्ष की आयु के व्यक्तियो के रक्त की परीक्षा करने वाले वताते है कि उनके रक्त मे Lipid या वसा की मात्रा ठीक ही मिलती है ।

आमाशय कैंसर—इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति की सन्तान मे ४५ वर्ष की आयु के वाद इस रोग के होने की प्रवृत्ति रहती है अर्थात् उसमे Achlorhydria या Hypochlorhydria रहता है तथा वह बहुधा Blood group 'A' का होता है। इसलिये ऐसे व्यक्ति को अपने Gastric juice का test कराते रहना चाहिए ।

Peptic ulcer **अम्लपित्त रोग**—परीक्षक लोग वताते है कि Gastric ulcer के सबंधियो मे से १२% के लगभग मे यह रोग पाया जाता है जवकि दूसरे लोगो में यह रोग ३% के लगभग मे ही होता है। अत जिस परिवार मे यह रोग हो उन व्यक्तियो को भोजन के सम्बन्ध मे सावधानता वरतनी चाहिये। उन्हे उष्ण, तीक्ष्ण गुण आहारो के सेवन से वचना चाहिये।

इसी प्रकार Pre-senile Dementia, Tremor (कप) Schizophrenia, Depressive psychosis, आदि रोग भी Genetic हैं। ऐसे परिवार मे उत्पन्न व्यक्ति को वडी उमर मे आने से पहले ही Tonic Treatment लेना शुरु कर देना चाहिये।

मधुमेह भी पैतृक परपरा से आता है। ऐसे व्यक्ति को मेदोवृद्धि मे वचना चाहिये एतदर्थ न्यूनाधिक व्यायाम नित्य करना चाहिये। भोजन मे १८०० कैलोरीज से अधिक नही लेनी चाहिये। निम्बू, चने, वेसन आदि का सेवन करना चाहिये ।

वृद्धावस्था में भोजन की मात्रा Geriatric Nutrition —

वृद्धावस्था मे आमाशय मे Hypoacidity हो जाती, Pancreatic Enzymes की उत्पत्ति भी कम हो जाती, आतो मे एक तो Atherosclerosis के कारण तथा हृदय की निर्वलता से पाचन के लिये रक्त कम आता है, आतो मे Atrophy या क्षीणता के होने से उनमे अन्न का विलयन Absorption कम हो जाता है। इस वात को देखते हुए यह पता लगता है कि वृद्ध व्यक्ति को भोजन की मात्रा कम कर देनी चाहिये।

अमरीका की National Research Council ने निर्णय दिया कि २५ वर्ष की आयु के वाद प्रति दस वर्ष मे मनुष्य के Metabolism की प्रक्रिया ५% मन्द पड जाती है। इगलैंड के रिसर्च करने वालो ने यह कहा कि ५ तो नही पर ३% Metabolism मन्द पड जाता है। कुछ भी हो पर यह तो निर्विवाद है कि शरीर की यह पचन प्रक्रिया (पित्ताग्नि) उत्तरोत्तर आयु के वढने के साथ मन्द, मन्दतर होती जाती है। तदनुसार २५ वर्ष की

होती हैं)। इस प्रकार वृद्ध व्यक्ति का दैनिक आहार २००० से २२५० कैलोरीज ही होना चाहिये।

आहार की दैनिक कैलोरीज मे से ५०% कार्बोहाइड्रेट भोजन मे २०–२५% फैट्स मे तथा शेष प्रोटीन्स मे आनी चाहिये।

कार्बोहाइड्रेट्स मे High Calories वाले भोजन जैसे, खाण्ड तथा अन्न का सेवन वृद्धावस्था मे कम करना चाहिये। उनसे शरीर की स्थूलता बढती है। Low calories वाले भोजन सब्जी, फल, मेवो का सेवन विशेष करना चाहिये। शरीर के प्रति किलो भार के पीछे ३ ५ ग्राम कार्बोज भोजन का लेना पर्याप्त समझना चाहिये।

फैट्स मे भी वानस्पतिक तेलो के प्रयोग मे रक्त मे Lipids या Cholesterol की मात्रा कम रहती है एव Hypercholesterolaemia से आदमी बचा रहता है। इसलिये वृद्धावस्था मे Saturated fatty acids वाले पदार्थो जैसे वनस्पति घी तथा मक्खन, घी आदि का सेवन कम करना चाहिये। वानस्पतिक तेलो को जब Hydrogenate किया जाता है तब उनके Fatty acids ही Saturate नही होते, उनके Essential Fatty acids भी नष्ट हो जाते हैं। अत वृद्धावस्था मे बनावटी घी का सेवन न करना ही उचित है। बडी आयु मे फैट्स को आत मे विलीन होने मे देर लगती है जिससे भोजन के बाद बहुत देर तक Lipaemia रहता है। इस अवस्था मे Blood viscosity या रक्त का चिपचिपापन बढा रहता है। उसमे coagulation या जम जाने की प्रवृत्ति बढ जाती है। अत बडी आयु मे ३०-३५ ग्राम दैनिक से ज्यादा फैट नही लेना चाहिये, प्रति किलो भार के पीछे ७५ ग्राम फैट पर्याप्त समझना चाहिये।

प्रोटीन Proteins—दिन भर की कैलोरीज मे से २०% कैलोरीज प्रोटीन की होनी चाहिये। शरीर के प्रति किलो के पीछे १ ग्राम प्रोटीन के लेने का नियम है। पर यदि Animal प्रोटीन हो तो उसकी आधा ग्राम मात्रा प्रति किलो भार के पीछे पर्याप्त है। उत्तम कोटि या High quality प्रोटीन्स दूध, पनीर, अण्डा आदि है। Low biologic किस्म के प्रोटीन्स अनाज, दाले, बादाम आदि मेवे हैं जिनमे Essential Amino acids जैसे Lysine, Tryptophan, Methionine, Cystine, Histidine आदि नही होते। तो भी जो शाकाहारी पर्याप्त मात्रा मे वानस्पतिक प्रोटीन्स तथा दूध लेते है उनके प्लाज्मा मे अल्व्यूमिन, ग्लोब्यूलीन उतने ही होते है जितने मासाहारियो मे। वृद्ध व्यक्ति के आहार मे प्रोटीन कम हो तो शरीर के भार मे कमी, थकावट, मानसिक विक्षोभशीलता, व्रण का जल्दी रोहण न होना, Infections के लिये प्रतिरोधक शक्ति की कमी के लक्षण होते है। वृद्धावस्था मे बलगम निकलती हो तो प्रोटीन का सेवन अधिक मात्रा मे करना चाहिये। हा वृक्क निर्बल हो तो प्रोटीन की मात्रा कम लेनी चाहिये।

विटामिन्स—वृद्धावस्था मे अधिक विटामिन्स की आवश्यकता है या उनके अधिक मात्रा मे देने से कोई विशेष लाभ होता है यह बात परीक्षणो से साबित नही हुई है। नौजवानो को जितनी इनकी मात्रा आवश्यक है उतनी ही वृद्ध व्यक्तियो को भी आवश्यक है। यहा पर उनको जितनी दैनिक मात्रा आवश्यक है उसकी सूची दी जाती है।

'ए' विटामिन ५००० U S P units, विटामिन 'सी' (Ascorbic acid) १०० मिलि, B_1 (Thiamine) ५ मिलि, B_2 (Riboflavin) ५ मिलि, B_6 (Pyridoxine Hcl) १ मिलि, Calcium Pantothenate ५ मिलि Folic-acid १ मिलि, Niacin ३० मिलि, Vit E (Tocopherol) ५ मिलि, B_{12} (Cyanocobalamine) ५ mcg, वृद्धावस्था मे धमनियो मे जो Atherosclerosis हो जाता है उसकी रोकथाम मे विटामिन सी, विटामिन B Complex तथा Vitamin E सहायक होते है ऐसा कुछ एक परीक्षको का मत हे। वे बताते है कि विटामिन 'सी' ४००-५०० मिलि दैनिक लेने तथा विटा 'ई' के लेने से वृद्धावस्था के कष्ट कम हो जाते है।

Minerals **पार्थिव तत्त्व** — अमरीका की National Reseaich Council ने पार्थिव द्रव्यो की जो दैनिक मात्रा निश्चित की हे, वह यहा दी जाती है। यह जवानो तथा बूढो दोनो के लिये हे। Calcium ८ ग्राम। Phosphorus १४ ग्राम, Sodium ३-६ ग्राम, Iron १२ मिलि., Copper १ मिलि।

शरीर मे से मलमूत्र द्वारा २०-२५ ग्राम Minerals दैनिक निकल जाते हैं। इनकी पूर्ति के लिये इन्हे उपर्युक्त मात्रा मे रोज लेना आवश्यक होता हे। Iron की पूर्ति पत्रशाको, गेहू, मुनक्के, Peaches Apricots

आदि मे हो जाती है, इनमे कुछ Copper और Cobalt भी होते हैं। वृद्ध लोगों मे Osteoporosis, Osteomalacia आदि रोग होते हैं उनके लिये Vit B तथा कैल्सियम आवश्यक होते हैं। Ossivite Cap रोज दे सकते हैं। कैल्सियम तथा विटामिन डी की दैनिक मात्रा दूध ३-४ पाव किलो मे भी पूरी हो जाती है। पत्रशाकों, अण्डे, पनीर मे भी यह कमी पूरी हो जाती है। बडी आयु मे जल भी कुछ अधिक मात्रा मे लेना चाहिये।

वृद्धावस्थोपयोगी कुछ एक आयुर्वेद के योग यहा दिये जाते हैं —

(१) चरक (सू ४-१७) ने गिलोय, हरड, आवला, मोती, श्वेता, जीवन्ती, अतिरसा (रास्ना) ब्राह्मी, शालिपर्णी, पुनर्नवा—इन दस द्रव्यों को वय.स्थापक कहा है। इनमे से आवले का नाम ही वयस्था है, वय स्थापन के लिये सबसे अधिक उसी का उपयोग होता है। आवले का बडा योग च्यवनप्राश है जिसके लिए चरक ने लिखा है "मेधा स्मृति कान्तिमनामयत्वमायु प्रकर्षं बलमिन्द्रियाणाम्" इसकी २-३ तोला मात्रा रोज ली जाती है।

(२) आमलकी रसायन (ग नि) आवले के चूर्ण को आवले के रस की २१ भावना देकर उसमें बराबर खाड मिला दें। इसे बन्द करके रखें। इसकी २-३ माशा मात्रा है।

(३) धात्र्यादियोग (वृ मा) आवले के स्वरस म शहद, घृत, मिश्री मिला कर उसे एक बार रोज देवें।

(४) धात्र्यादिचूर्ण (वृ मा) आवला, तिल, भागरे का पचाग बराबर मिला कर चूर्ण करें। ४ माशा घृत मधु से दें।

(५) धात्र्यादि प्रयोग (वाग्भट उत्तर ३८) आवला, विडग, असन सार, बराबर मिला कर चूर्ण करें। लोह इनमें से एक का चौथाई डालें। घृत मधु से ३-४ माशा दें।

(६) पथ्यादि चूर्ण (ग नि) हरड आवला, विडग समान, लोह प्रत्येक का चौथाई, खाड सर्वतुल्य। घृत के साथ लें।

(७) भृंगराजादिचूर्ण (यो चि म) भागरा १, त्रिफला मिलित १ भाग, मिश्री २ भाग। ३-४ माशा दूध से।

(८) अश्वगधा वृद्धदारु चूर्ण (शा म.) असगध, विधारा बराबर मिला कर दोनों के बराबर खाड। ४ माशा घृत मधु से दें।

(९) वृद्धदारु रसायन (च द.) विधारा चूर्ण को शतावरी स्वरस की ७ भावना दें। २-४ माशा को शहद से चटायें।

(१०) मधु हरीतकी (व. से.) हरड के चूर्ण को २ माशा मात्रा में मधु से लेवें। इससे वृद्धावस्था का वेग घटता है (यह अर्श-नेत्ररोग-श्वास-हिचकी-शिरोभ्रम-अम्लपित्त के लिये भी शामक है)।

(११) वचारसायन (वृ मा) वचा आधा माशा को दूध से या घृत से देवें।

(१२) मण्डूकपर्ण्यादि रसायन (च द) ब्राह्मी स्वरस मुलैठी चूर्ण, गुडूची स्वरस या कषाय, शखपुष्पी इनमें से प्रत्येक आयुर्वर्धक है।

(१३) ब्राह्मी रसायन, ब्राह्मी घृत—ये भी बडी आयु में मस्तिष्क के रक्षक होते है।

(१४) त्रिफला रसायन (यो र) त्रिफलाचूर्ण, खाण्ड या स्वल्प नमक के साथ लेने से आयुर्वर्धक होती है।

(१५) वसन्तकुसुमाकर १ रत्ती का सेवन भी रसायन कहलाता है।

उपसहार—वृद्धव्यक्ति को—

(१) हर प्रकार की अशान्ति से, वादविवाद से और अतिभाषण से बचना चाहिये।

(२) सुबह शाम एक घण्टे कोई हलका व्यायाम, आसन, अभ्यग या भ्रमण करना चाहिये। टागों और बाहुओं की व्यायाम से हृदय को अधिक सुगमता से रक्त पहुचता है एव वह अधिक स्वस्थ रहता है। व्यायाम से भार नहीं बढता, आयु बढती है।

(३) २०—२२ सौ कैलोरीज से अधिक का आहार नहीं लेना चाहिये। अधिक कैलोरीज वाले भोजनों जैसे घी, वनास्पति, खाण्ड, मिठाई आदि की मात्रा बहुत कम लेनी चाहिये। कम कैलोरीज वाले भोजनो का जैसे सब्जी, फल, बिना चिकनाई के मट्ठे का सेवन विशेष करना चाहिये। यदि ५-६

सन्तरो, या २ सेवो या ५-७ आवलो के मधुमिश्री आदि से मिश्रित रस का या निम्बू के रस का सेवन प्रतिदिन किया जाये तो Athero-sclerosis से बचा जा सकता हैं। विटामिन 'ए+ई' के सेवन से या विटामिन 'वी काम्प्लेक्स' के सेवन से भी वृद्ध व्यक्ति का स्वास्थ्य ठीक रहता है।

(४) च्यवनप्राश, ब्राह्मी रसायन, आमलकी रसायन, वृद्धदारु रसायन आदि औषधिया भी वृद्धावस्था में स्वास्थ्यरक्षक मानी जाती है।

(५) शुक्र की रक्षा करने से भी आयु दीर्घ होती हैं। चरक ने कहा हैं 'सत्य भाषण से, क्रोध न करने से, मद्य और मैथुन का परित्याग करने से, रसायन औषधियो का सा लाभ होता हैं (सत्यवादिन-मक्रोध निवृत्त मद्यमैथुनात् । विद्यान्नित्य-रसायनम्) अन्यत्र कहा है "शुक्रायत्त तु जीवितम्" अर्थात् जीवन शुक्र के आधीन हैं।

(६) भोजन मे आवले की चटनी या आचार, सन्तरे, नींबू, सेव, चने की दाल या वेसन तथा मक्खन निकले मट्ठे के लेने से Athrosclerosis में रुकावट होकर आयु बढती है।

(७) कमर को सीधा रखने से भी स्वास्थ्य मे वृद्धि होती है। दोनो हाथो के सहारे २-३ मिनट लटकने का व्यायाम इसमें सहायक होता है।

(३) नेत्र रोग (Ocular disorders) Conjunctivitis —**नेत्राभिष्यन्द,—नेत्रशोथ** —नेत्र की सबसे आगे की झिल्ली या Mucus membrane जो पलको के अन्दर की ओर छाई है और जो पलको से मुड कर नेत्रगोलक पर Cornea के प्रान्त भाग तक छाई हुई है उसे Conjuntiva कहते है। पलको के अन्दर के इसके भाग को Palpebral तथा नेत्र गोलक पर छाये हुए इसके भाग को Bulbar Conjunctiva कहते है। इन दोनो के जोडने वाले भाग को Fornix कहते हैं।

Acute या Catarrhal Conjunctivitis — इस झिल्ली मे शोथ दूसरे व्यक्ति से सक्रमण करके आता है। विशेषत Staphylococci के सक्रमण से यह रोग वालको मे ग्रीष्म ऋतु मे विशेष होता है। इस झिल्ली की रक्त वाहिनियो मे रक्त अधिक मात्रा मे भर जाता है जिससे Cornea के आसपास के कुछ प्रदेश को छोडकर श्लेष्मकला सारी रक्त वर्ण दिखाई पडती है। इसके साथ इस झिल्ली मे से चिपचिपा सा स्राव Mucus discharge भी होता है जिसके कारण सुवह के वक्त पलके परस्पर चिपक-सी जाती है।

चिकित्सा —नेत्र को गर्म Boric lotion से दिन मे २-३ वार धोना चाहिये। गर्म Saline से भी धो सकते है। Terramycin या Neomycin 5% Ointment लगाये। इससे लाभ प्रतीत न हो तो Silver Nit Solution २% पलको को उलटा कर इस सूजी हुई झिल्ली पर लगाये तथा फिर Boric-lotion मे धो दे।

Allergic Catarrhal Conjunctivitis —(**वातश्लेष्माभिष्यन्द**) —नासिका मे आये या गले मे से आये स्राव मे विद्यमान Staphylococcus के प्रोटीन के प्रति नेत्रो मे प्रतिकूलता या Allergy उत्पन्न हो जाती है जिससे नेत्रो मे समय समय पर वडी लाली आ जाती है। नेत्रो से गाढे स्राव के स्थान पर जल सदृश स्राव अधिक होता है। इस स्राव मे Eosinophil cells हो तो इसी रोग का निश्चय हो जाता है। इस रोग के कारण को हटाना चाहिये। वैसे शान्ति तो Adrenaline (१००० मे १) की या Antistine, Privine आदि किसी के १% या Decadron ५% सोल्यूशन की एक दो बूदो के डालने से आ जाती है।

Phlyctenular Conjunctivitis (Phlyctens-छाले या Blebs) **वाताभिष्यन्द** —

५ से १२ वर्ष तक की आयु के निर्वल प्रकृति के कृश तथा विशेषत क्षय प्रकृति के वालको मे Cornea के प्रान्त भाग या Limbus पर या उसके समीप १ मिलिमीटर व्याम का एक या दो श्वेत या पीत वर्ण के छाले Nodules निकल आते है जिसके या जिनके आसपास की आख लाल होती है। इसके कारण आख मे कुछ रगड और वेचैनी सी रहती है। आख मे से पानी भी आता है। ऐसे वालक की परीक्षा से पता लगता है कि उसे Tonsillitis, Adenoids या Lymphadenitis आदि मे से कोई निर्वलता जनित रोग भी है। सभवत किसी Bacteria के Protein के प्रति असात्म्यता के कारण ये छाले निकलते है। Yellow Oxide of Mercury की १% की मल्हम लगाने से यह रोग ठीक हो जाता है।

Hydrocortisone ५% मलहम के लगाने मे भी तुरन्त आराम लगता हे पर स्थायी नही होता। रोगी को विटामिन ए+डी के किसी योग Adexolin आदि के देने मे स्थायी लाभ होता है। औषधि को कुछ काल जारी रखे।

Spring Catarrh or Summer Conjunctivitis — वात प्रधान अभिष्यन्द —

किसी किसी मे हर बार गरमी की ऋतु आरम्भ होने पर आखे दुखने लगती हे। आखो मे जलन, खुजली, चौंध और पानी जाने के लक्षण होने लगते हे। हर बार गरमी के आने पर यह रोग हो जाता है। आख से आये पानी मे Eosinophil cells मिलते हे अत यह भी एक Allergic किस्म का नेत्र रोग है। गरमी मे अधेरे चश्मे का प्रयोग करना चाहिये । Hydrocortisone Ointment का प्रयोग करना चाहिये।

Trachoma –**पोथकी रोग**—यह एक ससार व्यापी नेत्र रोग है। ससार के एक चौथाई लोग इस रोग से ग्रस्त प्रतीत होते हे। जैसे प्रतिश्याय जुकाम का रोग व्यापक है वैसे ही यह भी व्यापक है। हमारे देश के ग्रामो मे ३३% व्यक्तियो मे यह रोग पाया जाता है। विशेषत बालको मे यह रोग पाया जाता है। जैसे उसका एक Virus कारण है वैसे इसका भी कारण Chlamydia Trachomatis है। अवापन जो भारत, एशिया और अफ्रीका मे बहुत है उसका ६०-७०% कारण यही रोग है। यह एक सक्रामक रोग है। रोगी की आखो मे मखियो के द्वारा इस रोग का Virus दूसरो मे, विशेषत बालको मे, ग्रीष्म काल मे फैलता है। यह Virus पलको के Conjunctiva के Epithelial सेलो मे अपनी कौलोनी बसाता है। यहा तक कि इसकी Elementary bodies मे सेल भर जाता है और भर कर फूट जाता है। फिर ये दूसरे सेलो मे जाकर वहा Elementary bodies बनाते हैं। इस विष के कारण वहा Lymphocytes का भारी मात्रा मे सचय होने लगता है। इनके सचय से विशेषत ऊपर की पलक की Conjunctiva मे लाल सर्षप की या साबूदाने की आकृति की रक्तवर्ण पिटिकाये—Follicles उत्पन्न हो जाते हैं जिन्हे Trachoma Follicles कहते हैं। पलक के रक्त वर्ण Conjunctiva मे इन रक्तवर्ण पिटिकाओ या पोथकियो को देखकर इस रोग का निश्चय हो जाता है। यह एक मन्द गति से होने वाला दीर्घ रोग है इसलिए इसमे स्पष्ट कोई लक्षण नही होता परन्तु आखो मे एक विक्षोभ या बेचैनी सी रोगी को रहती है।

Conjunctiva मे शोथ और पिटिकाओ के हो जाने से पहले उसमे अतिवृद्धि या Hypertrophy की प्रक्रिया होती है। फिर कुछ काल बाद उसमे Cicatrization या Scar-tissue बनने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है अर्थात् इस झिल्ली मे Fibrous-tissue इन पिटिकाओ के आसपास उत्पन्न हो जाता है जिससे Conjunctiva मे Atrophy की प्रक्रिया होने लगती है। परिणामत ऊपर की पलक अन्दर की ओर मुडने लगती है अर्थात् Entropion का रोग हो जाता है। इस कारण उसके बाल Cornea पर रगडने लगते है जिसे Trichiasis कहते हैं।

Trachoma रोग के चिरकाल रहने पर Cornea के ऊपर के भाग की बहिस्तर Epithelium मे रक्त वाहिनिया उत्पन्न हो जाती हैं जिससे उसका ऊपर का कुछ भाग धुधला सा हो जाता है। यह धुधलापन क्रमश Cornea मे नीचे की तरफ बढता है। इस रक्तवाहिनियो से युक्त जाल को Pannus कहते है।

इस प्रकार पलको के अन्दर Follicles को देख कर तथा रोग के पुराना हो जाने पर Correa के ऊपर के भाग मे Keratitis या Pannus को या Conjunctiva मे उत्पन्न हुए Scar Tissue को देख कर इस रोग का निश्चय हो जाता है।

चिकित्सा—Sodium Sulphacetamide के १०-२०% सोल्यूशन को दिन मे ५-६ दफा आख मे डालने से या Tetracycline १% मलहम के इसी प्रकार दिन मे कई वार लगाने से इस रोग को ठीक किया जा सकता है। पर यदि रोग पुराना हो तो पलको को उलटा कर Silver Nitrate Solution २% को रुई की फुरैरी से लगाना चाहिये और फिर उसे Boric-lotion से धो देना चाहिये। Sulphisoxazole (Gantrisin) पहले प्रति दिन २ ग्राम एक सप्ताह तक फिर १ ग्राम दैनिक २ सप्ताह तक मुख द्वारा दे या Orisul ५ ग्राम बालक को तथा १ ग्राम बडो को २-३ सप्ताह तक दे।

Pterygium **नेत्रजाल** —

Bulbar Conjunctiva के Epithelium के नीचे ढीला सा Connective-tissue होता है जिसमे Leucocytes होते हैं। इसके नीचे एक Fibrous-layer रहती है जो

Scleraमे वधी है। इस Sub-conjunctival अवयव मे क्षीणता की प्रक्रिया के हो जाने से इसमे रक्तवाहिनिया उत्पन्न हो जाती है जिससे कोने से Cornea के प्रान्त भाग तक फैला हुआ एक त्रिकोणाकृति मास पिण्ड (नेत्र जालक) बन जाता है। यह प्राय नाक की ओर से प्रारम्भ होकर Cornea की ओर फैलता है। इसके कारण कोई कष्ट या विशेष लक्षण नही होता। इसलिये इसे हटाने की कोई आवश्यकता नही अथवा Hyalase आधी सीसी +१ सीसी Xylocaine (२%) को सप्ताह मे १–२ बार Head of the Pterygium मे इजेक्शन से डाल दे और ६ सप्ताह तक ऐसा करे तो यह रोग ठीक हो सकता है।

Dacryocystitis (Inflammation of tear sac) अश्रुस्राव, श्लेष्मस्राव, पूयस्राव नेत्रनाडी

आख के अन्दर के कोने Canthus और नासिका के बीच के प्रदेश Lacrimal Fossa मे विद्यमान Lacrimal-sac अश्रु थैली मे शोथ हो जाय तो इसे Dacryocystitis कहते हैं।

Lacrimal सस्थान, Lacrimal-sac, Lacrimal canaliculi, और Nasal duct से बना हुआ है। इसके अतिरिक्त आसुओ का उत्पत्ति स्थान Lacrimal gland है जो नेत्रगोलक के बाहर की ओर तथा ऊपर की ओर Orbit के बनाने वाली एक अस्थि Lacrimal bone मे नेत्रगोलक के साथ लगा हुआ रहता है। वहा से अश्रु उत्पन्न होते है अर्थात् वह अश्रु का Secretory organ है और Lacrimal Sac आदि Conducting organs हैं। इनमे से Lacrimal Gland मे विशेष रोग कोई नही होता। पर Lacrimal-sac मे कभी कभी शोथ हो जाता है जो प्राय हलके और Chronic रूप मे होता है। नाक मे किसी रोग के होने से Sac के Nasal-oduct मे शोथ होकर उसमे अवरोध या Stricture हो जाता है। इसमे Sac मे भी Staphylo या Streptococci का सक्रमण होकर उसमे भी शोथ हो जाता है। यदि यह शोथ बढ जाय तो Lacrimal Abscess भी बन जाता है। Trachoma के रोग के कारण भी Sac मे शोथ हो सकता है। इसमे शोथ होने पर अश्रुमार्ग मे अवरोध हो जाने पर अश्रुनासिका मे न निकल कर आख मे ही नीचे स्रवित होने लगते है। इसलिये इसे अश्रुस्राव या श्लेष्म स्राव रोग कहा गया है। यदि Sac मे पूयभाव हो गया हो तो इसे पूयस्राव रोग कहते है। इस रोग का प्रधान लक्षण अति जल स्राव या Epiphora है। हवा लगने से यह स्राव बढ जाता है। Sac के स्थान पर एक गोल सा उभार (Mucocele) भी हो सकता है। इस प्रदेश पर पीछे ऊपर की ओर दबाने से Puncta मे से अर्थात् पलको के अन्दर के किनारे पर विद्यमान छिद्र से जल निकलने लगता है। इस जल मे Staphylo, Strepto आदि भी मिलते है। इसके लिये Antibiotic औषधियो का प्रयोग करना चाहिये तथा गर्म Boric-lotion से सेक देना चाहिये। इससे ठीक न हो तो Dacryocystectomy का शस्त्र कर्म कराना चाहिये।

Corneal ulcer व्रणशुक्र —

नेत्र गोलक के सबसे बाहर के कठोर आवरण के जो पीछे Optic Nerve से लेकर आगे तक फैला हुआ है जिसे Sclera कहते है—अगले काच सदृश, स्वच्छ पारदर्शक Curved या आगे की ओर उभरे भाग को Cornea कहते हैं। इसके सबसे अगले स्तर को जो Conjunctivaका ही एक भाग है Epithelium कहते है। इसकी आधारभूत एक सूक्ष्म तह है जिसे Bowman's membrane कहते है। इनके पीछे Cornea की असली तह है जिसे Substantia Propria कहते है। यह Sclera का ही अगला स्वच्छ पारदर्शक भाग है। इसके पीछे एक लचीली पतली तह है जिसे Decemet's membrane कहते हैं। यह नेत्र गोलक के कृष्ण पटल या कृष्ण आवरण जिसे Uveal tract कहते हैं उसका अगला स्वच्छ पारदर्शक भाग है। यह पीछे की ओर Endothelium से ढकी हुई है। यदि Uveal-tract मे रोग हो जैसे उसके अगले स्वतन्त्र भाग Iris मे शोथ हो तो Decemet's membrane मे भी शोथ हो जाता है। इसी प्रकार कई बार Conjunctiva मे तीव्र शोथ हो तो Cornea के अगले स्तर Epithelium मे भी शोथ और पाक हो जाता है। इस उथले शोथ और पाक को Corneal ulcer कहते है। Cornea मे Trigeminal Nerve की शाखाए आती है इसीलिये इसके व्रण मे दर्द बहुत प्रतीत होता है। प्राय Staphylococcus का सक्रमण होकर Cornea के Epithelium मे एक भाग की मृत्यु (Necrosis) हो जाती है। यह मृत भाग कुछ तो अलग हो जाता है, कुछ व्रण प्रदेश से चिपका रहता है। इस प्रकार Cornea के पृष्ठ पर एक प्याले के आकार का सूक्ष्म सा व्रण हो जाता है जिसे ठीक करने और भरने के लिये Cornea के आसपास उथली रक्तवाहिनिया बन जाती हैं जिनके कारण Antibodies

वहा पहुचते हैं और जीवाणुओ का निवारण होता है। व्रण के आस पास का प्रदेश श्वेत वर्ण (Grey zone) दिखाई पडता है क्यो कि वहा Leucocytes बहुत अधिक मात्रा मे जमा हो जाते हे। श्वेताणुओ के कारण व्रण का मलवा पतला होकर बह जाता है। यदि कुछ जीवाणुविष Cornea के अन्दर से पीछे Anterior Chamber मे भी पहुच जाती है तो Iris मे भी रक्तवाहिनिया रक्त से भर जाती हैं। उससे Hyperaemia हो जाता है। ऐसी अवस्था मे रोगी की आख से बहुत सा जल चूता है (Lacrimation) दूसरे, पलको मे स्तम्भ सा (Blepherospasm) रहता है जिससे पलको को खोलना या आख खोलना कठिन होता है। Cornea मे कोई कष्ट हो तो Trigeminal Nerve के Reflex के कारण पलको मे स्तम्भ हो जाता है। तीसरे Photophobia (Light-Fear) अर्थात् प्रकाशासहिष्णुता का लक्षण होता है, सभवत Iris मे शोथ के प्रसरण कर जाने से होता है। चौथे दर्द या वेदना का लक्षण होता है जो व्रण मे नाडी के सूत्रो के खुल जाने के कारण होता है।

व्रण के कारण Cornea के आसपास रक्तवाहिनियो के आ जाने से व्रण का रोहण आरभ हो जाता है। रोहण कर्म नये स्नायु सूत्रो Newfibres के उत्पन्न होने से होता है। ये नये सूत्र पुराने सूत्रो की तरह व्यवस्थित रूप मे एकत्रित नही होते, उलटे अव्यवस्थित (Irregular) रूप मे एकत्रित होते हैं। अत वहा जो Scar-tissue बनता है वह धुधला सा होता है। यदि तो व्रण Epithelium मे ही हुआ हो अर्थात् बहुत उथला हो तो व्रण का निशान नही बचता अर्थात् Opacity या शुक्र नही बनता। पर यदि Epithelium का Basal membrane अर्थात् Bowman's membrane भी नष्ट हो जाये तो क्योंकि वह दुबारा बनता नही इसलिये जो Opacity बनती है वह स्थायी होती है। यदि यह Corneal Scar या Opacity या शुक्र हलका सा ही हो तो उसे Nebula (Mist) कहते हैं, पर यदि कुछ अधिक घना हो तो उसे Macula (Spot) कह देते हैं। यदि और भी अधिक घना हो तो उसे Leucoma कहते हैं।

चिकित्सा —Cornea को स्वच्छ रखने के लिये आख को किसी Antiseptic lotion से दिन मे २ बार धोना चाहिये। गर्म लोशन के द्वारा सिकाई करने से व्रण को रोहण करने मे मदद मिलती है। Infection के दूर करने के लिये किसी Antibiotic मलहम या ड्राप का प्रयोग दिन मे २ बार करना चाहिये। इस रोग के कारण Ciliary-muscle मे स्तम्भ या Spasm रहता है जिससे रोगी को आख मे बेआरामी रहती है। उसकी शान्ति के लिये Atropine १% ड्राप या मल्हम दिन मे २-३ बार डालनी चाहिये। इसके डालने से Iris के Ciliary muscle पर Cholinergic Nerves का प्रभाव शान्त हो जाता है और उसमे Spasm के स्थान पर Relaxation हो जाता है इसे Cycloplegia (Cyclo = Ciliary Body, Plegia = Paralysis) कहते हैं। Atropine के डालने से Iritis को जो थोडा बहुत इस रोग मे होता है उसे भी आराम मिलता है। आख की गर्म लोशन मे भीगी रुई के द्वारा १० मिनट तक सिकाई करने से भी व्रण को पर्याप्त लाभ होता है। व्रण के शुरू मे दो एक दिन Hydrocortisone ointment भी लगानी चाहिये। वह शोथ शामक होती है। पर जब रोहण आरम्भ हो जाये उसका लगाना बन्द कर देना चाहिये। ड्रेसिंग्स के बीच के समय मे आख पर पट्टी बाधने से आख को आराम भी मिलता है और व्रण की रक्षा भी होती है।

यदि इस चिकित्सा से भी व्रण ठीक न हो रहा हो Infection शान्त न हो तो व्रण को Cauterize कर सकते हे। इसके लिये Fluorescein २ % के Solution को डालकर व्रण को रग ले ताकि उसकी सीमा का पता लग जाये। फिर Amethocaine १ % सोल्यूशन से आख को संज्ञाहीन कर ले। उसके बाद दिया-सलाई को घड कर उसकी नोक को Carbolic acid मे डुबो दे और इस नोक को थोडा झाडकर व्रण मे 'टच' कर दे। इससे व्रण श्वेत सा हो जायेगा। अब Antibiotic मलहम लगा कर पट्टी बाध दे। ऐसा एक बार करने से ही व्रण रोहण करने लगता है। Corneal व्रण के लिये रोगी को मुख द्वारा किसी Antibiotic औषध तथा Vitamin 'C' के देने से भी लाभ होता है

Uveal-tract की रचना

नेत्र गोलक के बाहर के आवरण Sclera से अन्दर की रक्तवाहिनियो से भरे हुए कृष्ण वर्ण आवरण को Uvea या Uveal-tract कहते है। इसके पिछले भाग को जो Optic Nerve से लेकर आगे Ora Serrata तक का हे तथा जो Retina और Vitreous, lens आदि सब को रक्त प्रदान करता है Choroid कहते है। इसकी रक्त वाहिनियो को जो Ophthalmic-artery की

शाखायें हैं Ciliary arteries कहते हैं। इससे अगले इसके भाग को जो पीछे Choroid से प्रारम्भ होकर Iris के पिछले भाग तक है Ciliary body कहते हैं। यह त्रिकोणाकृति है जिसका Base आगे की ओर है। यह एक Unstriped muscle है इसलिये इसे ciliary muscle भी कहते हैं। Trigeminal Nerve से इसमें संज्ञावाही सूत्र आते हैं। इसीलिये इसमें शोथ हो तो भारी दर्द होता है। इसीलिये इस रोग को पुराने काल में अधिमन्थ कहा गया। Oculomotor नाडी से इसमें चेष्टावाही सूत्र आते हैं तथा Sympathetic Nerves से भी इसमें चेष्टासूत्र आते हैं। Uvea के इसमें अगली कृष्ण वर्ण Contractile झिल्ली को जो Ciliary body के Base के मध्य में से आरम्भ होकर आगे Aqueous humour में आती है और उसे Anterior और Posterior दो Chambers में बाट देती है और आगे की ओर जिसके बीच में एक छेद है (जिसे पुतली कहते हैं) Iris कहते हैं। यह झिल्ली मांसमय है। इसमें २ मांस हैं। पुतली पर के एक मिलीमीटर चौडे वृत्ताकृति सूत्रों वाले मांस को Sphincter pupillae कहते हैं। दूसरे मांस सूत्र इन मांस सूत्रों से लेकर Iris के मूल तक जाते हैं उन्हें Dilator pupillae कहते हैं।

इन मांसपेशियों के सक्रिय होने के कारण प्रकाश पडने पर पुतलिया सुकड जाती हैं जिसे Myosis कहते हैं और अन्धेरे में जाने पर पुतलिया फैल जाती हैं जिसे Mydriasis कहते हैं। पुतली संकोचक Sphincter pupillae में Parasympathetic (अर्थात् Cholinergic या Acetylcholine के उत्पादक) नाडीसूत्र ऊपर Midbrain में विद्यमान Edinger-westphal Nucleus से जो तीसरी मस्तिष्क नाडी के Nucleus के पास ही है—निकल कर इस तीसरी नाडी के अन्दर ही Orbit तक आते हैं। वहा ये सूत्र इस नाडी से जुदा होकर Orbit के पिछले भाग में विद्यमान Ciliary ganglion में समाप्त होते हैं। वहा से नये सूत्र Short-ciliary Nerves के रूप में Short ciliary arteries के साथ नेत्रगोलक में प्रवेश करते हैं तथा Choroid और Ciliary body में से गुजर कर ये Tonic Constrictor सूत्र Sphincter Pupillae में समाप्त होते हैं। ऊपर मस्तिष्क में ये सूत्र Hypothalamus के Constrictor Centre से सम्बन्धित रहते हैं।

दूसरी ओर Dilator pupillae में आने वाले Cervical sympathetic Nerve के सूत्र भी ऊपर Hypothalamus में से आरम्भ होते हैं। वहा से Medulla Oblongata में से ये Cord के Lateral columns में नीचे उतरते हैं तथा नीचे उतर कर पहले तीन Thoracic Ventral roots में से white rami communicans के अन्दर अन्दर बाहर आकर Stellate ganglion में जाते हैं। वहा से Cervical Sympathetic Nerve के अन्दर ये ऊपर Superior cervical ganglion में समाप्त होते है। वहा से नये सूत्र निकल कर Skull में प्रवेश करके Semilunar ganglion (Gasserian ganglion) पर से उसकी प्रथम नाडी Ophthalmic शाखा के अन्दर जाते हैं। और फिर उसमें से Long ciliary Nerves के रूप में निकल कर Optic Nerve के साथ नेत्रगोलक में प्रवेश करके Longciliary arteries के साथ साथ Sclera और Choroid के बीच बीच में आगे Ciliary body में आ जाते हैं और वहा से Iris में प्रवेश करते हैं तथा पुतली को फैलाने का काम करते है। इन दोनो नाडियो में से Parasympathetic नाडी सूत्र कुछ प्रबल होते हैं इसीलिये पुतली साधारणत सकुचित अवस्था में रहती है। Parasympathetic Stimulating myotic औषध Pilocarpine है जिसके ५% सोल्यूशन के डालने से Sphincter पेशी उत्तेजित होती है। जो औषध Cholinesterase को शान्त करती है वह भी Myotic होती है जैसे Eserine (Physostigmine) है। उसके ५% सोल्यूशन का Miotic प्रयोग होता है।

दूसरी ओर Parasympathetic विरोधी (Parasympatholytic) औषधियो में से Atropine प्रमुख है। यह औषध Sphincter pupillae तथा Ciliary muscle दोनो को शान्त या Paralyse करती है। इसके १% सोल्यूशन से पुतली फैल जाती है। Homatropine १ % सोल्यूशन उसकी अपेक्षा अधिक शीघ्रकारी है तथा मृदु है।

Iritis या अधिमन्थ रोग—

Iris एक Connective tissue की बनी हुई स्पज सदृश झिल्ली है जो रक्त वाहिनियो और मासपेशियो को बाधे हुए है। जब पुतली सकुचित होती है तो Iris का पुतली को बनाने वाला भाग पीछे की ओर Lens के कैपसूल या खोल के साथ लगा हुआ रहता है। जब पुतली फैली हुई रहती है तब Iris लैन्स से हटा हुआ रहता है। Iris में शोथ हो तो इसकी सूक्ष्म रक्त वाहिनियो या Capillaries में रक्त अधिक भर जाता है

जिससे ये फैल जाती है। इनकी दीवारें निर्वल हो जाती हैं जिससे उनमे से परिस्राव Exudation अधिक होता है और Iris कुछ अधिक फूल सा जाता है। पुतली का आकार छोटा हो जाता है और Iris मे Exudation के अधिक भर जाने से वह धुधला या मैला दीखने लगता है। Iris और Ciliary body मे रक्त सचय बहुत हो गया हो तो Cornea के चारो ओर की Ciliary Vessels मे भी रक्त सचय ज्यादा होता है। Conjunctiva विशेष ग्रस्त नही होता अत इस रोग मे चिपचिपा स्राव नही होता जो थोडा स्राव होता है वह जल सदृश होता है, गाढा नही। क्योकि Iris मे पचम मस्तिष्क नाडी की शाखाये बहुत आती है। इसमे शोथ होने पर वेदना वडी तीव्र होती है जो रात को विशेष होती है आख मे ही नही इस नाडी की अन्य शाखाओं मे भी होती है जिससे मस्तक, कपाल और गाल पर भी यह वेदना होती है। Iris से निकले स्राव मे प्रोटीन होता है इसी से Aqueous humour कुछ धुधला सा दीखता है। Iris से निकला स्राव चिप-चिपा होता है, इसीलिये हो सकता है कि पुतली पीछे लैन्स के कैपसूल के साथ चिपक जाये। निचली पुतली पर इस स्राव के बैठ जाने से उसके पी की ओर लैन्स पर चिपक जाने का खतरा रहता है। वह चिपक जाये तो इसे Posterior Synechia कहते है। ऐसी पुतली Mydriatic औषधि डालने पर विषमाकृति की हुई दीखती है। इन लक्षणो के साथ Iritis मे Photophobia या प्रकाशासहिष्णुता का लक्षण भी बहुत होता है।

Cyclitis or Iridocyclitis —

Iris के साथ Ciliary body मे भी शोथ हो तो इससे शोथ युक्त प्रदेश से स्राव बहुत अधिक होता है। इस प्रोटीन युक्त Exudate या ciliary body से होने वाले स्राव के Cornea के पिछले पृष्ठ या Endothelium पर बैठ जाने से Cornea कुछ धुधला सा दीखने लगता है। इसे Keratic precipitate या Keratis-punctata (Puncta = धब्बे) कहते हैं। इससे दृष्टि कुछ धुधली हो जाती है। Exudate स्राव कुछ अधिक हो तो पुतली पीछे लैन्स से चिपक भी जाती है। ऐसे उपद्रव को रोकने के लिये ही Atropine का प्रयोग किया जाता है। Iridocyclitis कुछ देर विना चिकित्सा के रह जाये तो प्रधान लक्षण दृष्टिनाश या दृष्टिमन्दता का होता है। Ciliary vessels मे अर्थात् Cornea के चारो ओर की रक्तवाहिनियो मे रक्त सचय हो, आख को दवाने मे दर्द हो, Cornea की पिछली तह Endothelium पर कुछ धब्बे से दिखाई पडे या Anterior chamber के तलो पर कुछ श्वेत से धब्बो का ढेर दिखाई पडे तो Iridocyclitis का निश्चय हो जाता है।

भेदक लक्षण— लालिमा — Conjunctivitis मे फैली हुई तथा उथली होती है। जबकि Iritis और Glaucoma मे वह गहरी होती है अर्थात् Cornea के चारो ओर की Ciliary Vessels मे दिखाई पडती है स्राव — Conjunctivitis मे गाढा होता जबकि वह दूसरे दोनो रोगो मे जल सदृश होता है। पुतली का आकार —Iritis मे छोटा तथा Glaucoma मे वडा होता है। दर्द — Conjunctivitis मे हलका, Iritis मे कुछ अधिक और Glaucoma मे बहुत अधिक दर्द होता है। स्पर्शाक्षमता या दवाने से दर्द — Iritis तथा Glaucoma दोनो मे बहुत होता है। दृष्टि — Iritis मे कुछ मन्द Glaucoma मे अति मन्द होती है। Iritis का रोग धीरे धीरे आरम्भ होता है। Glaucoma का दर्द महसा आरम्भ होता है।

कारण—इस रोग के कारण के विषय मे कोई निश्चय नही हो पाया, ऐसा माना जाता है कि शरीर के किसी अग मे Streptococci होते है जिनके विपरीत Uveal tract मे Sensitivity या Allergy उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार इसे अधिकतर Allergic शोथ माना जाता है। जैसे दूसरे Connective Tissue मे Rheumatic शोथ हो जाता है वैसे Iris के Connective tissue मे Iritis हो जाता है। प्रारभिक Infection जो प्राय Chronic होता है किसी अग मे भी हो सकता है।

Iridocyclitis की चिकित्सा —

गर्म सेक दिन मे दो वार देने से शोथ और दर्द दोनो को आराम मिलता है। दूसरे Atropine Solution या मलहम के दिन मे ३-४ वार लगाने से Iris और Ciliary body को आराम मिलता है। उनका Hyperaemia-रक्त सचय-कम होता है यदि पुतली पीछे लैन्स से जुडने वाली हो तो वह छूट जाती है। जब पुतली फैल जाये तब इस का दिन मे १ वार प्रयोग ही पर्याप्त है। इनके अतिरिक्त किसी Steroid ointment के लगाने से Exudation कम हो जाता है अर्थात् Capillary permeability घटती है। इस प्रकार Hydrocortisone आदि के प्रयोग से शोथ

शान्त होता है। शोथ के शान्त होने पर फिर इसका प्रयोग जल्दी ही बन्द कर देना चाहिये इसका प्रयोग जारी न रखें। शोथ के शान्त हो जाने पर भी Atropine को आठ दस दिन और जारी रखना चाहिये। दर्द की शान्ति के लिये Aspirin आदि Anti-rheumatic औषधियो का प्रयोग करना चाहिये। इन चिकित्सा के अतिरिक्त रोगी को विश्राम करना चाहिये, किसी रेचन औषधि द्वारा पेट साफ रखना चाहिये तथा शरीर मे विद्यमान Infection को दूर करने के लिये किसी Sulpha या Antibiotic औषधि का अन्त प्रयोग भी करना चाहिये।

Glaucoma (Glaukos=हरा, oma=शोथ) अन्यतोवात रोग जिस रोग मे आख के अन्दर का दबाव Intra-ocular pressure बढ जाता है और उसका दबाव Uveal tract या कृष्णपटल या कृष्णावरण पर पडने से उसमे विद्यमान Trigeminol नाडी का सज्ञावाही शाखाओ पर दबाव पडने से वेदना होती है तथा Optic Nerve पर दबाव पड जाने और उसमे Atrophy (या क्षीणता) के हो जाने से दृष्टि मन्द हो जाती है उसे Glaucoma कहते हैं।

साधारणत शरीर मे सूक्ष्मसिराओ या Capillaries मे से प्रोटीन युक्त रस निकल कर आसपास के अवयवो मे आता है और अवयवो मे से Metabolites (अवयवो मे उत्पन्न पदार्थ) वापिस रक्त मे चले जाते हैं। पर नेत्रगोलक के अन्दर Uveal tract की सूक्ष्म सिराओ मे से जो द्रव बाहर आता है वह प्रोटीनयुक्त नही होता वह शुद्ध जल सदृश होता है उसमे थोडा लवण या कुछ विटामिन 'सी' का अश ही होता है। उसमे कोई Colloid पदार्थ नही होता। नेत्र के अन्दर भी Ciliary body तथा Iris मे विद्यमान सिराये अधिक चौडी होती हैं। उन्ही मे से रिस कर बाहर आने वाले द्रव से नेत्र के अन्दर विद्यमान द्रव का निर्माण होता है। नेत्र के अन्दर उत्पन्न होने वाले द्रव या Aqueous Fluid का नेत्र गोलक के बाहर की दीवार Sclera पर जो दबाव पडता है उसे ही नेत्रान्तर्भार या Intraocular प्रेशर कहते है। इसे Tonometer यन्त्रद्वारा Sclera पर रख कर मापा जाता है जो लगभग १५-२० मिलिमीटर Hg होता है। अब यदि Ciliary body तथा Iris मे से उत्पन्न होने वाले इस द्रव मे वृद्धि हो जाये तो रक्तान्तर्भार बढ सकता है। इसी लिए Iridocyclitis रोग मे जब Uveal सिराये फैल जाती है उनसे होनेवाला Aqueous fluid अधिक बढ जाता है तब Glaucoma रोग हो सकता है। Iridocyclitis रोग मे इनकी रक्तवाहिनियो से जो द्रव रिसता है उसमे प्रोटीन की कुछ मात्रा भी होती है। ऐसे द्रव को Plasmoid aqueous कहते हैं। ऐसे द्रव का Osmotic Pressure ज्यादा होता है। इस कारण भी रक्तान्तर्भार बढ सकता है। इसीलिए जब Iris और Ciliary body की सूक्ष्मसिराओ मे Hydrostatic प्रेशर बढता है उनमे Dilatation अधिक होता है तथा जब इनसे निकले द्रव मे प्रोटीन का भी कुछ अश आ जाता है जैसा कि Iridocyclytis के कारण होता है तब Glaucoma के होने का उपद्रव हो जाता है।

ऊपर कहा है कि नेत्रान्तर्द्रव Aqueous की उत्पत्ति Uveal tract के अगले भाग की सूक्ष्मसिराओ मे से होती है। वहा से उत्पन्न होकर यह Aqueous आख के पश्चिमकोष्ठ Posterior chamber मे आता है, वहा से पुतली के रास्ते के द्वारा यह अग्रिम कोष्ठ Anterior chamber मे आता है। इस द्रव के हर समय उचित मात्रा मे रहने मे ही नेत्रान्तर्भार Intra ocular प्रेशर सदा एक सा रहता है। (यह स्मरण रखना चाहिए कि general blood pressure का कोई प्रभाव Intraocular pressure पर नही पडता) यह द्रव हर समय बदलता रहता है। Anterior chamber के पिछले Angle मे जो Ciliary body के द्वारा आगे पीछे घिरा है उसकी अगली दीवार मे एक सूक्ष्म Canal है जिसे Canal of Schlemm कहते हैं। उसमे से यह द्रव Sclera की दीवार मे विद्यमान Aqueous vein मे आता है और वहा से यह Sclera के ऊपर की Anterior ciliary Veins मे आकर वापिस रक्त मे चला जाता है। इस प्रकार कहा जाता है कि एक मिनट मे २ क्यूबिक मिलि मीटर जितना Aqueous अग्रिम कोष्ठ मे से वापिस हो जाता है।

अब यदि पुतली मे किसी प्रकार का अवरोध हो या Canal of Schlemm (एक जर्मन आनोटोमिस्ट १७९५-१८५८) मे कोई रुकावट पड जाये जैसे कि लैन्स और Iris के उभर कर आगे आ जाने से हो सकता है तब भी Intraocular Pressure बढ जाता है। इसे Closed angle Glaucoma कहते हैं। जब यह Iritis के कारण होता है तब इसे Secondary Glaucoma कहते हैं। जब यह उस रोग के बिना ही होता है तब इसे Primary closed angle Glaucoma कहते है।

Primary Closed angle Glaucoma —

कभी कभी ५०-६० वर्ष के व्यक्तियो मे विशेषत Hypermetropia की स्त्रियो मे नेत्रो की रचना स्वभावत ऐसी होती है कि उनमे लैन्स और Iris आगे को उभरे होते है जिससे उनका Anterior chamber स्वभावत उथला होता है और उसका Angle बहुत तग होता है जो Lens और Iris के थोडे उभार से ही अवरुद्ध हो जाता है। ऐसे व्यक्ति का यदि Vasomotor system अस्थिर हो, वह चिन्ताशील एव आवेश के स्वभाव का अर्थात् वायु प्रकृति का हो तो उसके Ciliary body मे सिराओ के अन्दर अनायास Dilatation होकर उनमे से द्रव का स्राव अधिक होने लगता है पर Anterior angle के तग होने से उसकी निकासी नही होती जिससे रोगी को Glaucoma का हलका सा वेग हो जाता है। Intra-ocular प्रेशर के बढने से उसे आख मे और सिर मे हलका दर्द होता है। Cornea मे Oedema के होने से उसकी दृष्टि कुछ धुधली हो जाती है। जलते हुए दिये के आसपास उसे एक धुंधसी दिखाई पडती है जिसे Halo कहते हैं। नेत्र परीक्षा करने पर नेत्र मे लालिमा तो नही होती, पुतली कुछ फैली हुई होती है। ऐसा वेग तभी होता है जब किसी प्रकार का मानसिक आवेश हुआ हो या किसी प्रकार की थकावट हो गई हो। प्रारम्भ मे ऐसे वेग समय समय पर होते हैं और ठीक हो जाते है।

Acute attack of Glaucoma — इस रोग का वेग जब तीव्ररूप मे होता है तो वह सहसा आरभ होता है। Anterior chamber के पिछले Angle के सर्वथा बन्द हो जाने से जब नेत्र मे द्रव अधिक भर जाता है तब Sensory Nerves के दब जाने से आख मे ही नही, सिर के सारे Trigeminal area मे भी दर्द होता है (Hemicrania)। दर्द के समय रोगी बहुत बेचैन होता है। उसकी दृष्टि भी बहुत मन्द पड जाती है। रोग प्राय एक आख मे होता है, कभी-कभी दोनो मे भी हो सकता है। परीक्षा करने से पता लगता है कि उसकी पलको मे भी Oedema है। Conjunctiva मे भी Veins के अधिक भरे हुए होने के कारण उसका रग कुछ काला-सा, लाल होता है। Cornea के चारो ओर की Ciliary Vessels मे रक्त सचय विशेष होता है। Cornea धुधला सा दीखता है। उसकी चमक जाती रहती है। Anterior Chamber बहुत उथला दिखाई पडता है। पुतली फैली हुई तथा ऊपर नीचे की दिशा मे अण्डाकृति तथा कुछ विषमाकृति होती है। उसमे Light reflex नही होता। Iris कृष्णवर्ण न होकर कुछ भूरे से रग का दीखता है। Intra-ocular प्रेशर बहुत बढा हुआ होता है। इस तीव्र वेग के बाद रोगी की दृष्टि बहुत कुछ ठीक हो जाती है। और आख का प्रेशर भी घट जाता है। पर ऐसे वेग यदि ठहर-ठहर कर होते रहे तो अन्तर्भार की अधिकता मे Optic Nerve मे Atrophy होती जाती है जिसमे दृष्टि उत्तरोत्तर मन्द होती जाती है। दूसरी ओर Iris के मूल (Root) के आगे की तरफ उभरते जाने मे वह Cornea मे चिपकने लगती है जिसे Peripheral Anterior Synechia कहते है। यह उपद्रव धीरे-धीरे बढता है। यदि Iris के सारे घेरे मे से आधा भी आगे की ओर चिपक जाय तो Angle के अधिक Closed हो जाने से फिर Tension या Intraocular pressure स्थायी रूप मे ऊचा रहता है। इसे Chronic Glaucoma कहते हैं। इसकी भी चिकित्सा न हो तो Ant Chamber अधिक उथला हो जाता है। पुतली फैली हुई रहती है। Iris भी काला न रहकर बदरग हो जाता है। नेत्रगोलक दबाने मे पत्थर की तरह कठोर लगता है।

Simple Glaucoma or Chronic Glaucoma —

ऊपर जिस Glaucoma का वर्णन हुआ है वह उन व्यक्तियो या विशेषत स्त्रियो मे पाया जाता है जिनकी आखो का Anterior chamber उथला है तथा जिनमे उनका Angle भी तग है, जो आयु मे ५०-६० वर्ष के है तथा जो Sympathetico-tonic प्रकृति के हैं अर्थात् Sympathetic Nervous System की प्रबलता के कारण जिनका Vasomotor System अस्थिर है इसी से जिनमे Vasoconstriction तथा Vasodilatation सुगमता से हो जाता है। पर एक दूसरा भी Glaucoma है जो उसकी तरह प्रबल वेगो मे न होकर मन्द रूप मे, साथ ही चिरस्थायी रूप मे होता है तथा उसकी अपेक्षा कुछ बडी आयु के ऐसे स्त्री पुरुषो मे होता है जिनमे Arterio Sclerosis की विकृति विशेष रूप मे है। इन व्यक्तियो मे नेत्र धमनियो के अन्दर Sclerosis अधिक स्पष्ट होता है। ज्यो-ज्यो उनमे Sclerosis बढता है यह रोग बढता जाता है। Sclerosis के कारण Ciliary muscle को ठीक रक्त नही मिलता जिससे उसमे Atrophy हो जाती है। Atrophied muscle का Contraction निर्बल हो जाता है जिससे Accommodation power निर्बल हो जाती है और रोगी को पढने मे या समीप के काम

करने मे कठिनता होने लगती है। यहा प्रसगवश यह कथन आवश्यक है कि Ciliary body मे muscle के अतिरिक्त ७० के लगभग प्रवर्धन या Ciliary processes होते है जो Lens के Suspensory ligament को खीचे रखते हैं। इस प्रकार विश्राम के समय यह Ligament खिची रहती है पर पढते समय जब Ciliary body मे Contraction होता है तब ये Processes भी Lens की ओर खिसक जाते है जिससे Ligament ढीला पड जाता है और Lens का अगला पृष्ठ आगे की तरफ उभर जाता है अर्थात् उसका अगला Curvature बढ जाता है और पढने मे या नजदीक की वस्तु को देखने मे सुगमता हो जाती है। इसी को Accommodation power कहते है। जब Ciliary muscle मे Atrophy हो जाती है तब यह Power घट जाती है और व्यक्ति को पढने के बाद आख मे और सिर मे दर्द सा हो जाता है। दूसरे शब्दो मे व्यक्ति का पढने का नम्बर या Presbiopia का नम्बर जल्दी जल्दी बढने लगता है। सिर दर्द का कारण Ciliary body तथा उसकी Sensory Nerve पर दबाव पडना है। Sclerosis के कारण Optic Nerve का ठीक पोषण न होने से उसमे भी Atrophy हो जाती है जिससे दृष्टि मन्द पड जाती है। अधेरे मे अपना मार्ग देखने की शक्ति (Dark adaptation) भी मन्द पड जाती है। इसी प्रकार Aqueous के Canal of schlemm के द्वार पर जो परदे या Trabeculae है या वहा द्रव के बाहर निकलने के जो स्रोत या Efferent channels हैं उनमे Sclerosis हो जाने से द्रव की निकासी कम हो जाती है जिससे Intra ocular pressure बढ जाता है जिसका Sensory Nerves पर दबाव पडने से सिर दर्द का लक्षण रहता है तथा Optic Nerve पर दुष्प्रभाव पडने से उसमे Atrophy बढती है। रोगी की Ophthalmoscope द्वारा परीक्षा करने से Glaucomatous cupping of the Disc का चिन्ह मिलता है। आख की Tension बढी हुई होती है। रोगी की दृष्टि का क्षेत्र घटा हुआ मिलता है। पुतली फैली हुई होती है।

Closed angle Glaucoma की चिकित्सा —रोग के प्रारम्भ मे ही इसकी चिकित्सा होनी चाहिये। वेग के बढने के पहले ही Pilocarpine का ५ या १ % सोल्यूशन की बूद दिन मे कई बार डाले। इसके द्वारा myosis हो जाने पर दर्द शान्त हो जाता है। गर्म बोरिक लोशन मे आख की सिकाई भी होनी चाहिये।

यदि तीव्र वेग होते हो तो वेग के प्रारभ मे ही इस औषध की एक-एक बूद पाच-पाच मिनट बाद डाले और आधे घण्टे तक इस क्रम को जारी रखे। आधा घण्टा ठहर कर फिर ५-५ मि बाद इसका इसी तरह प्रयोग करे जब तक Myosis न हो जाये। इसके प्रयोग से Cornea साफ हो जाता है। Tension गिर जाती है। इसके प्रयोग के साथ आख की सिकाई भी करे। Diamox की एक दो गोली भी दे सकते हैं। उससे भी आख की Tension कम होती है। इस चिकित्सा से लाभ न हो तो Iridectomy का शल्यकर्म कराना चाहिये।

Simple glaucoma— के लिये Pilocarpine Solution को ही आख मे डालना चाहिये। Diamox की गोली भी एक दो दिन दे। आराम हो तो Pilocarpine का प्रयोग निरन्तर जारी रखना चाहिये। परन्तु Tension के अधिक बढने से पहले ही Iridectomy का Operation करा लेना ठीक है। Sclerosis के लिये किसी Vasodilator का जैसे Nicotinic acid वाली किसी गोली का कुछ काल तक प्रयोग कराना चाहिये।

दृष्टिमान्द्य Retinopathy या Retinitis —

नेत्रगोलक Globe के बाह्यावरण Sclera के अन्दर की ओर Choroid या Uvea का आवरण होता है उसके अन्दर की ओर दृष्टि पटल या Retina का तथा उसके अन्दर Vitrious humour होता है। दृष्टिपटल रूप को ग्रहण करके Optic Nerve के द्वारा उसकी प्रतीति मस्तिष्क को कराता है। इसमे विद्यमान Rods अधेरे मे भी देखने की शक्ति रखते हैं। इसमे विद्यमान Cones दिन के प्रकाश मे देखने का काम करते हैं। चमगादड आदि रात को देखने वाले प्राणियो मे Rods ही होते है Cones नही। कुछ ऐसे प्राणी है जो रात को देखते नही, केवल दिन मे ही देखते है। उनमे Rods होते नही केवल Cones होते है। आदमी मे दोनो ही होते है। इस दृष्टि पटल Retina (Rete = Net या जाल) मे रोग हो तो उसे Retinopathy या Retinitis कहते है। इसका प्रधान लक्षण दृष्टिमाद्य होता है इस रोग मे वेदना आदि कोई लक्षण नही होता। इसके अन्दर आने वाली Ophthalmic artery की शाखाओ मे रोग होने से यह पटल रुग्ण होता है। शरीर मे Arteriosclerosis हो, Chronic Hypertension हो, Chronic Nephritis हो या Chronic Diabetes हो तब

Retina की इन धमनियो मे रोग होता है। अत इन रोगो के उपद्रव रूप मे Retinopathy का रोग होता है।

Arteriosclerotic Retinopathy **धमनी रोग जनित दृष्टिमाद्य—**

६५ वर्ष की आयु के बाद दृष्टिपटल की सूक्ष्म-धमनियो की मासमय दीवार मोटी और कठोर हो जाती है उनकी अन्दर की Endothelium भी मोटी हो जाती है अर्थात् उनमे Fibrin जो एक प्रोटीन है वह बैठ जाता है एव उनमे Fibrosis की या Sclerosis (Hardening) की प्रक्रिया हो जाती है। स्वभावत इन धमनियो का अन्दर का स्रोत बहुत तग हो जाता है और छोटी-छोटी धमनियो का अन्दर का स्रोत बन्द ही हो जाता है जिसे Obliterative Endarteritis कहते हैं। इन धमनियो की दीवारो के क्षीण हो जाने से इनकी परि-स्रवणशीलता Permeability बढ जाती है जिससे इनमे से कही कही पर रक्त परिस्रवण Haemorrhages हो जाते हैं अर्थात् इनमे से रक्तकणो का परिस्रवण हो जाता है। इन क्षीण हुई धमनियो मे से द्रव का परिस्रवण भी होता है। यदि वह कही कही पर हो तो उस द्रव के अन्दर विद्यमान Fibrin तथा प्रोटीन्स के वहा वहा जम जाने से Retina मे श्वेत श्वेत सी बदलिया बन जाती है जिन्हे Masses of Exudates कहते हैं। यदि Retina की धमनियो मे Sclerosis के साथ रक्त भार B P भी बढा हुआ हो तो Retina मे Oedema या श्वयथु भी हो सकता है। अथवा Cerebral tumour के कारण आख की Central Vein पीछे दब गई हो तो भी Retina मे Oedema हो सकता है जिससे Retina मे फीके रग की बदलिया सी दीखती हैं जो धमनियो के आसपास के प्रदेश मे विशेष होती हैं। अधेरे कमरे मे नेत्र मे Mydriatic पुतली प्रसारक औषध डालकर Ocular Fundus की Ophthalmoscope द्वारा परीक्षा करने पर नेत्र के पिछले रक्तवर्ण परदे पर उसमे हुए रक्तस्राव या Flame-Shaped धब्बो को या Cotton wool patches या श्वेत वर्ण धब्बो-white Spots (Patches of Exudates) को या धमनियो के अन्दर हुए हुए छोटे Micro-aneurysms को या Fundus के व्यापक धुधलेपन (Oedema) को देखा जा सकता है।

Arteriosclerotic Retinopathy—**धमनीरोग जनित दृष्टि माद्य**—शरीर मे धमनी रोग व्यापक हो तो Retina की धमनिया भी तग (Narrow) हो जाती हैं जो Ophthalmoscope परीक्षा मे Copper-wire की आकृति की पतली हुई हुई दीखती हैं। उनमे से कही-कही हुए हुए, छोटे-छोटे रक्त स्राव के बिन्दु भी दिखाई पडते हैं। Fundus के पोषण के कम हो जाने से वह कुछ फीके रग का दीखता है। यदि B P रक्त भार अधिक न हो तो इस रोग के होने पर भी दृष्टि कोई मन्द नही होती। यदि Arteriosclerosis के साथ शरीर मे रक्त भार भी बढा हुआ हो तो रक्त-स्राव के धब्बे सख्या मे अधिक दीखते हैं, तो भी दृष्टि मे कोई विशेष ह्रास नही होता। हा, रक्त भार बहुत अधिक हो या Malignant किस्म का हो तो Retina की धमनियो मे Sclerosis की अधिकता से उसमे Oedema भी होता है Cottonwool Exudates भी होते हैं, रक्त स्राव के धब्बे भी अधिक होते हे। ऐसी अवस्था मे यदि रक्तभार का नियन्त्रण न किया जाये तो रोग भयकर रूप धारण कर लेता हे और दृष्टिनाशक हो जाता है।

Diabetic Retinopathy **मधुमेह जनित दृष्टि माद्य—**

५५ से ७० वर्ष की आयु के मधुमेही व्यक्तियो मे विशेषत स्त्रियो मे मधुमेह जनित दृष्टिमाद्य का रोग हो सकता है। Fundus की परीक्षा करने से उसकी धमनियो की दीवार मे क्षीणता की प्रक्रिया के होने से छोटे-छोटे रक्त स्राव के धब्बे हो सकते हैं परन्तु बहुधा धमनियो के अन्दर छोटे-छोटे Micro-aneurysms ही पाये जाते हैं जो उनकी दीवार की क्षीणता के सूचक होते है। Patches of Exudates भी बहुधा पाये जाते है। यदि B P या रक्त भार विशेष ऊचा न हो और मधुमेह की ठीक चिकित्सा जारी हो तो दृष्टि पर विशेष दुष्प्रभाव नही होता। पर यदि B P ऊचा हो, मधुमेह की भी ठीक चिकित्सा न हो तो यह रोग शीघ्र दृष्टिनाशक और रोगी के लिये घातक हो जाता हे।

Renal Retinopathy **वृक्क रोग जनित दृष्टि माद्य—**

चिरस्थायी वृक्क रोग के उपद्रव रूप मे विशेषत यदि रक्तभार भी ऊचा हो तो Renal Retinopathy का रोग हो जाता है। परीक्षा करने से Fundus पर की धमनियो की दीवार मे Arteriosclerosis की विकृति मिलती है। छोटेछोटे रक्त स्राव के चकत्ते भी बहुत देखने मे आते हैं। रूई की तरह के Patches of Exudates भी बहुत से मिलते हैं। इस रोग मे हलका सा Oedema या श्वयथु का लक्षण भी Retina मे मिलता है। यदि Oedema और Exudates विशेष हो अर्थात् वृक्क रोग बढ रहा हो तो यह रोग २-३ वर्ष के अन्दर घातक सिद्ध

होता है। इस प्रकार वृक्क रोग जनित तथा Malignant Blood Pressure के कारण हुए Retinopathy के रोग अति भयकर हैं।

प्रधान नेत्र रोगो की आयुर्वेदिक चिकित्सा :—

श्लेष्म प्रधान (Catarrhal) नेत्र रोगो के लिये रोगी को कम से कम ४ दिन का लंघन कराना चाहिये। अथवा उसे ५-६ दिन मधुर अम्ल लवण विहीन रूक्ष लघु उष्ण गुण आहार पर रखना चाहिये। अर्थात् फलरस, मूंग, मोठ, मसूर आदि के न्यून लवण वाले यूष, चाय आदि पर ही रखें। वात प्रधान नेत्र रोगों के लिये रोगी को हलके पर बलवर्धक उष्ण-स्निग्ध आहारो पर रखना चाहिये। फलों के रस तथा अकुरित किये अन्न उनके लिये लाभदायक हैं। पित्त प्रधान नेत्र रोगों के लिये रोगी को प्रतिरोधक शक्ति को बढाने वाले औषध, आहार आदि उपयोगी होते हैं। हलके गर्म लोशन्स से नेत्रों को धोना चाहिये।

सर्व नेत्र रोगों के लिये उपयोगी कुछ औषधियो का यहा उल्लेख किया जाता है —

(१) त्रिफलाचूर्ण, त्रिफला क्वाथ (भै. र.) कफाधिक नेत्र रोगों में इनको मधु के साथ, पित्त प्रधान नेत्ररोगों में घृत के साथ, वात प्रधान नेत्र रोगो में इन्हें बादाम रोगन के साथ दिया जाता है। मात्रा ४-६ माशा।

(२) त्रिफला मधुयष्ठी चूर्ण (भै र.) चारो समभाग का चूर्ण रात को दें।

(३) वासादिक्वाथ (भै र, च द) वासा, त्रिफला नागर मोथा, नीम की छाल, पटोलपत्र, समभाग का क्वाथ।

(४) बृहद्वासादिक्वाथ (भै र) वासा, मोथा, नीम की छाल, पटोल, कटुकी, गिलोय, कुटजत्वक्, चन्दन लाल, इन्द्र जौ, दारु हल्दी, चिरायता, त्रिफला, चित्रमूल, मोठ, जौ, समभाग को ८ गुणा जल में पका कर अष्टमांश शेष रखें। आधी छटाक मात्रा में दिन में २ वार दें।

(५) त्रिफला पाक—४० तोला त्रिफला का चूर्ण लेकर उसे थोडे जल के साथ पत्थर पर पीस लें। २० तो० घृत में इसे भून लें। १ सेर खाण्ड की चासनी में यह त्रिफला डालें तथा त्रिकटु, गोखरू, छोटी इलायची, चीतामूल १०-१० माशे, मोथा, दालचीनी, तेज पत्र, धनिया के चूर्ण २½-२½ तोला, शिलाजीत ७½ माशे, केसर स्वल्प डालें। बाद में शहद २० तो० मिला दें। मात्रा २½ तोला।

(६) महात्रिफलाघृत (भै. र) त्रिफला क्वाथ, भागरा क्वाथ, वासाक्वाथ, शतावरी क्वाथ, दूध बकरी का, गुडूचीस्वरस, आंवले का स्वरस, घृत, प्रत्येक १ सेर। कल्क—पिप्पली, मुनक्का, त्रिफला, नीलोफर, मुलैठी, गिलोय, क्षीरकाकोली (या अश्वगन्धा) कटेली समान २ मिलित २० तोला डालकर घृत साधन करें। ६ माशा दूध के साथ दें (अभिष्यन्द, आसन्न दृष्टिदोष, दूर दृष्टि दोष, मन्ददृष्टि, तिमिर, काचरोग, अधिमन्थ, पक्ष्मकोप, सर्ववात पित्तकफ रोगेषु)

(७) अमृतादि गुग्गुलु घृत (र र.) गिलोय, वासा, पटोल, लालचन्दन, नागरमोथा, कटुकी, कुटज छाल, इन्द्रजौ, त्रिफला, चिरायता, चीतामूल, त्रिवृत, जौ, गाभारी, सोठ प्रत्येक १ छटाक। घृत १ सेर। गुग्गुल ४० तोला। घृत साधन करें (तिमिर, नेत्रार्बुद, काच, शुक्र, नेत्रकण्डू, सर्व नेत्ररोगेषु) प्रात पिलायें।

(८) बलादिघृत (यो र) बला, शतावरी, काकोली (या असगध) बालछड, त्रिफला, मिश्री प्रत्येक २० तोला, जल १६ सेर। क्वाथ चतुर्थांश। कल्कार्थ प्रत्येक १० माशा। घृत १ सेर। घृत साधन करें। (तिमिर रोग में प्रात काल दें)

(९) दशमूलघृत (यो. र.) दशमूल क्वाथ ४ सेर, दूध ४सेर, त्रिफला कल्क १० तो० घृत १ सेर। घृत साधन करें।

१-२ तोला दूध से दें। वात प्रधान तिमिर रोग—(शतावरी, असगध, वाराही, विदारी मिलित १० तोला का कल्क मिलाकर भी इसे बना सकते है।

(१०) मधुरादिलोह (सप्तामृतलोह) (भै र)—मुलैठी, त्रिफला, लोह समान मधु घृत मिश्रित करके दें। औषध ५ रत्ती घृत ६ माशे मधु २ तो० (तिमिर चिराभिष्यन्द, नेत्रशूल, नेत्रदाह, काचरोगेषु)।

अभिष्यन्दरोगोपयोगी प्रयोग —

कफाभिष्यन्द (Caterrhal) पित्ताभिष्यन्द (Purulent) वाताभिष्यन्द (Chronic) ३ प्रकार अभिष्यन्द हैं। प्रथम में अपतर्पक, द्वितीय में प्रतिरोधक शक्ति उत्पादक, तृतीय में सन्तर्पक चिकित्सा होनी चाहिये।

(११) त्रिफलाकषाय (यो. र) से दुखती आखो का प्रक्षालन करें।

(१२) दार्वीसेक (ग. नि.) दारुहल्दी ५ तोला जल ८० तोला पकाकर १० तोला शेष रखें। छान कर इसमें शहद डाल दें। इसकी बूंद आख में डालें।

(१३) दार्व्याद्याश्च्योतन (ग नि) दारुहल्दी, त्रिफला, मोथा समान-समान क्वाथ बनाकर छानकर उसे गाढा करके उसमें शहद मिला दें। इसकी बूद आख में डालें। (सर्वाभिष्यन्देषु)

(१४) दार्वीरसक्रिया (व से) दारुहल्दी, पटोल, मुलैठी नीम की छाल या पत्र, नीलोफर, प्रपोडरीक, पद्माक समभाग। जल सब से ८ गुना। चतुर्थांश पकायें। इसे गाढा करें। इसमें चतुर्थांश शहद डालें। अष्टमाश मिश्री मिलायें, इसे आख में लगायें।

(१५) लाक्षादियोग (व से) लाख, मुलैठी, लोध्र, मजीठ, पुण्डरीक, तगर समभाग, पानी में पीस लें। इसे ४ गुणा जल से पकाकर चतुर्थांश रख कर छानकर आख में डालें।

(१६) लोध्रादिसेक (ग. नि) लोध्र, त्रिफला, मुलैठी मोथा, खाण्ड समभाग के कल्क को चार गुणा जल में पकाकर चतुर्थांश रखकर छानकर आख में डालें।

(१७) निम्ब पत्रादियोग (व. से) नीम के पत्ते लोध्र मिलित चूर्ण की पोटली को उवलते पानी में डाल दें। फिर उस जल को छानकर उससे आख धोयें (पैत्तिकनेत्राभिष्यन्दे हितम्)

(१८) धात्री फलादि सेचन (यो. र) आवला, नीमपत्र, मुलैठी, लोध्र, खदिरसार, तिल सम भाग को चार गुणा जल में पकाकर आधा रखकर छानकर उससे आख को धोयें (नेत्रव्रण में उपयोगी)।

(१९) यष्ट्याद्याश्च्योतन (यो. र) मुलैठी, दारुहल्दी, नीलोफर, कमल, लाख, पुण्डरीक, खस, सुगधबाला समभाग चारगुणा जल में पकाकर छानकर आख मे डालें (नेत्रव्रण में उपयोगी)।

नेत्रशुक्र (Opacity) के लिये विहित औषधें—

(१) चन्द्रोदयवर्ति (भा प्र., भै र.) हरड, वहेडे की गिरि, वचा, कुष्ठ, पिप्पली, मरिच, शखनाभि, मैनसिल, समभाग, बकरी के दूध से पीसकर वर्तिया वनायें। इसे घिसकर शहद मिलाकर अजन करें।

(२) शिरीषबीजाद्यञ्जन (ग नि) सिरसबीज, मरिच, पिप्पली, सैंधव समभाग का सूक्ष्मचूर्ण करके इसका अजन करें।

(३) शखाद्यजन (भै र) शखनाभि ४, मनसिल २, मरिच १, सैंधा नमक आधा भाग इनके बारीक चूर्ण को मधुयुक्त सलाई द्वारा लगायें।

नेत्र शूल हर प्रयोग :—(१) निशादिप्रयोग (यो र.) हरिद्रा, दारुहल्दी, त्रिफला, मोथा, मिश्री, प्रत्येक के सूक्ष्म चूर्ण को दूध में मिलाकर, उवालकर, छान कर थोडा शहद में मिलाकर आख में टपकायें।

(२) शिग्रु पत्र योग (ग नि.) सोहाजने के पत्ते के रस में शहद मिलाकर आख में टपकायें।

(३) अथवा एरण्ड मूल त्वक् १। तोला, दूध १ पाव, जल १ पाव, उवालकर जल उडा दें, छानकर दूध की बूंद टपकायें।

(४) श्रेष्ठा आदि क्वाथ (यो चि म) त्रिफला, नीमछाल, पटोल, हल्दी, त्रायमाण, नाग केसर, गिलोय मोथा समभाग। जल ६ गुणा। छठा भाग शेष। रात को पिलायें। इसके साथ कोई गुग्गुल देने से भी शूल शान्त होता है।

(४) कर्ण रोग Diseases of the ear, कर्ण की रचना —

कान के ३ भाग हैं (१) वहि कर्ण (External ear) (२) मध्यम कर्ण (Middle ear) (३) आभ्यन्तर कर्ण (The inner ear or Labyrinth)

वहि कर्ण (The external ear) के दो भाग है (क) Auricle या Pinna (ख) या External meatus। इनमे से Auricle या कान कार्टिलेज का वना हुआ एक पर्दा है जिसका अन्दर का पृष्ठ नतोदर Concave है। इस भाग की त्वचा कार्टिलेज के साथ चिपकी हुई है। कान के निचले सिरे को जो फैट और Fibrous tissue का वना हुआ है Lobule कहते है। कान के कर्ण छिद्र के आगे के उभार को Tragus कहते हैं। कान के किनारे-किनारे के वाहर के और अन्दर के उभारो के वीच के दवे हुए भाग को Helix और आगे के नतोदर भाग को Antihelix कहते हैं। कर्ण द्वार के आगे के गढे को Cavum Concha (कान) कहते है।

वहि कर्ण मार्ग (External auditory meatus) कान के तले Cavumconcha से शुरु होकर tympanic membrane तक जाने वाले एक इच लम्बे मार्ग को Ex auditory meatus कहते है। इसका वाहर का एक तिहाई भाग कार्टिलेज से तथा अन्दर का दो तिहाई भाग अस्थि से वना है। वाहर के भाग की

त्वचा मे Hairfollicles के पास Sebacious glands, sweat glands होते हैं तथा इनके साथ कुछ Seruminous glands (मोम की तरह के स्राव की ग्रन्थिया) भी होती है। इनमे से मोम की तरह का Ear-wax निकलता रहता है। अस्थियो से बने वहि कर्णमार्ग मे कोई Glands नही होते। उसकी आगे और नीचे की दीवार Tympanic plate तथा पिछली और ऊपर की दीवार Temporal bone के Squamous भाग से बनी है। कर्ण बहिर्मार्ग के उपर्युक्त बाहर के भाग का रुख पीछे ऊपर और अन्दर की ओर को रहता है। अस्थियो से बने अन्दर के भाग का रुख आगे नीचे और अन्दर की ओर को रहता है। बहि कर्णमार्ग का 'कार्टिलेज' वाला भाग लचीला होता है। यदि कान के बाहर के परदे को ऊपर बाहर की ओर और कुछ पीछे की ओर खीचे तो कर्ण मार्ग सीधा हो जाता है।

कान के अन्दर का परदा Tympanic membrane —उपर्युक्त वहि कर्ण मार्ग तथा मध्य कर्ण Middle ear के बीच मे एक तना हुआ पर्दा है जिसे Tympanic membrane कहते है। यह Radiating तथा Circular fibres से बना हुआ अर्थात् यह Fibrous tissue का बना हुआ है। इसके बाहर के पृष्ठ पर कर्ण बहिर्मार्ग का Epidermis छाया हुआ है तथा इसके Middle ear की ओर के पृष्ठ पर Mucous membrane छाई हुई है। इसका पिछला तथा ऊपर का भाग तो देखने वाले की ओर और इसका अगला निचला भाग देखने वाले से कुछ दूर लगता है। इसके Circular सूत्र अस्थि के बने Circular ridge से बधे हुए हैं। Tympanic ring के Tympanic Notch पर के इस परदे के अन्दर Fibrous layer नही होती केवल अन्दर और बाहर की दो तहें ही होती है। इसे Pars Flaccida या Sharpnell's membrane कहते है। Tympanic membrane का केन्द्र भाग अन्दर की ओर खिचा रहता है, इस भाग को Umbo कहते है। इस केन्द्र से ऊपर की ओर जो सफेद सा दीखता है वह अन्दर विद्यमान Malleus नामक अस्थि का Handle है जो इस परदे के Fibrous तह मे बसा हुआ रहता है।

मध्यकर्ण Middle ear —निम्नलिखित मे बना हुआ है (1) Tympanic cavity (Drum सबन्धी) या Tympanum (2) Eustachian tube (3) Aditus ad Antrum (Entrance to closed cavity) (4) Mastoi-dantrum (5) Mastoid air cells

Tympanic cavity या मध्य कर्ण Temporal अस्थि मे एक नेडा सा कोष्ठ या अवकाश है जिसकी ६ दीवारे है। यह कोष्ठ या बकस ऊपर से नीचे तथा आगे-पीछे दिशा मे आधे इन्च से कुछ अधिक (लगभग १५ मि मीटर) होता है, परन्तु एक साइड से दूसरी साइड की दिशा मे यह नेडा है अर्थात् एक Slit के रूप मे है तथा वहि कर्ण और आभ्यन्तर Inner कर्ण के बीच मे रहने से Middle ear कहलाता है। इस कोष्ठ का ऊपर का खाली भाग Epitympanic recess या Attic (Upper part) कहाता है। इसके ऊपर की छत जो Tegmen tympani कहलाती है बहुत पतली सी अस्थि है। इसके ऊपर मस्तिष्क का Temporal lobe रहता है। इस कोष्ठ का फर्श इसे Jugular Bulb तथा Carotid artery से पृथक् करता है। इसकी अगली दीवार मे २ छिद्र है। निचला छिद्र Eustachian tube के अन्दर खुलने का द्वार है। इसके ऊपर का छिद्र Tensor Tympani Tendon की Canal का छिद्र है। इस कोष्ठ की पिछली दीवार मे एक त्रिकोण छिद्र है इसे Aditus (द्वार) कहते है इसके द्वारा Epitympanic recess, Tympanic antrum से सबधित होता है। इस छिद्र के नीचे एक उठा हुआ Pyramid है जिसके छिद्र मे से Stapedius muscle आकर Stapes की ग्रीवा मे बधी है। यह सकुचित contract होकर Stapes के Footplate के अगले सिरे को बाहर की ओर झुकाती है। इस मास मे Facial Nerve की tympanic शाखा आती है।

Tympanic Cavity की अन्दर की अर्थात् Medial (Inner) bonywall आभ्यन्तर कर्ण या Internal ear की बाहर की दीवार है। इसमे २ छिद्र हैं। पीछे ऊपर की तरफ के छिद्र को Oval-window (Fenestra Vestibuli, Fenestra =एक membrane से बन्द हुआ २ छिद्र) कहते है। इस छिद्र के नीचे एक गढा (Niche) है जो Cochlea के Fenestra से सम्बन्धित है इसे Round window कहते है। ऊपर का छिद्र Vestibule मे ले जाता है और Stapes के Foot plate से बन्द रहता है। निचला छिद्र तो (Round window) Cochlea मे ले जाता है। यह छिद्र एक पतली Membrane से बन्द रहता है जिसे Secondary tympanic memberane कहते है। इन दो छिद्रो के बीच मे आगे की ओर इस दीवार मे एक उभार है जिसे Promontory कहते है। यह Cochlea के Coil की अस्थिमय दीवार है। इन छिद्रो द्वारा मध्यकर्ण मे से Infection आभ्यन्तर कर्ण मे जा सकता है।

Eustachian-tube (Pharyngo-tympanic tube) **गलमध्य कर्ण प्रणाली**—यह फनल के आकार की एक डेढ इञ्च लम्बी ट्यूब है जो Nasopharynx मे नासिका के Inferior Turbinal bone के पिछले सिरे के पास के एक छिद्र से आरभ होकर, ऊपर वाहर और पीछे की दिशा मे वढ कर इस Tympanic Cavity की अगली दीवार के निचले भाग मे प्रवेश करती है। इस ट्यूब के कारण मध्य कर्ण वाहर की हवा से सम्बन्धित रहता है एव कान के परदे के दोनो ओर प्रेशर-एक सा रहता है, अन्यथा वाहर के प्रेशर से परदा फट जाता। इस ट्यूब की दीवार का अगला दो तिहाई भाग Cartilage से तथा पिछला एक तिहाई भाग अस्थि से वना है जहा ये दोनो भाग मिलते हैं। उसे Isthmus (Narrow Passage) कहते है। साधारणत आराम के समय यह ट्यूब वन्द सी रहती है। पर खाना निगलते समय तथा जभाई लेते समय यह ट्यूब खुल जाती है। इस प्रकार देखने से ऐसे लगता है कि Frontal, Maxillary Sinuses आदि की तरह यह ट्यूब भी एक प्रकार का Sinus है।

Tympanic Ossicles **मध्यकर्ण की क्षुद्रास्थिया**—मध्य कर्ण मे एक क्षुद्रास्थि Malleus है जिसका एक Head और Neck है, Anterior तथा lateral processes है और एक Handle है। यह Handle, परदे या membrane के साथ दृढता से वधा हुआ है। दूसरी अस्थि Incus (Anvil के समान) है। जिसकी Body, Malleus के Head के साथ सधि करती है, उसका एक Process ऊपर Aditus (द्वार) के फर्श के साथ वधा हुआ है, उसका एक Long process, नीचे Tympanic Cavity मे उतर कर Stapes के Head के साथ सधि करता है। Stapes का Footplate एक Annular ligament के द्वारा Oval window के किनारो के साथ वधा हुआ है। इस प्रकार इन अस्थियो द्वारा Tympanic-membrane पर उत्पन्न Sound wave Stapes के द्वारा Oval window और वहा से Cochlea के Endolymph तक पहुच जाती है।

Aditus Ad Antrum (सस्कृत के आन्त्र शब्द से वना है)—यह एक छोटी सुरग या Channel है जो Epitympanic recess अर्थात् मध्य कर्ण के ऊपर के खाली अवकाश को Mastoid Antrum से जोडती है। Mastoidantrum आगे Mastoid air Cells के साथ सम्बन्धित है। इस प्रकार Tympanic cavity, Antrum mastoid cells सव की अन्दर की झिल्ली Mucous membrane एक ही है। Mastoid air cells स्वस्थ व्यक्तियो मे (८० प्र श लोगो मे) वडे वडे होते है। कभी कभी किसी किसी मे mastoid cells वहुत छोटे तथा सख्या मे कम होते हैं उसे Diploeic (Cancellated) mastaid कहते हैं।

आभ्यन्तर कर्ण Internal-ear, Labyrinth (Maze भूल भुलैया)—

आभ्यन्तरकर्ण या Labyrinth एक तो Bony Labyrinth और उसके अन्दर पडे Membranous Labyrinth से वना हुआ है। Bony Labyrinth एक कैंपस्यूल की तरह Membranous Labyrinth पर चढा हुआ है। इसके और अस्थिमय Labyrinth के वीच मे एक द्रव है जिसे Perilymph कहते है। दूसरा द्रव membranous Labyrinth मे रहता है जिसे Endolymph कहते है। इस Labyrinth के एक ओर तीन Semicircular canals है। दूसरी ओर घोघे या Snail-Shell की तरह का Cochlea है। दोनो के वीच मे Vestibule (प्रवेश गृह) है। यह Labyrinth, Petrous temporal bone मे धसा हुआ रहता हे। इसकी Semicircular canals अर्थात् १–Horizontal, २– Superior और तीसरी Posterior एक दूसरे के साथ Right angles वनाती है। Horizontal का Vestibule के Utricle की तरफ का सिरा Ampulla of the Horizontal Canal कहलाता, Superior canal का Vestibule की तरफ नाक का सिरा Ampulla of Superior canal कहलाता और Posterior canal का सिरा Ampull of the posterior canal कहलाता है। Vestibule के utricle (Little sac) मे Superior तथा Posterior Canals का एक साँझा छिद्र भी है जिसे Crus Commune कहते है। Horizontal canal का Vestibule के Utricle मे एक और छिद्र है। इस तरह Vestibule के Utricle के पिछले ऊपरले तथा निचले पृष्ठ मे ५ छिद्र है जिनमे Semicircular Canals खुलती है।

आभ्यन्तर कर्ण का Vestibule, Bony Labyrinth के केन्द्र मे स्थित है। इसकी वाहर की ओर की दीवार मे Oval-window है जो Footplate of the Stapes मे ढकी रहती है। Vestibule मे २ थैलिया हैं। पिछली थैली को Utricle (Little bag) कहते हैं। अगली ओर की थैली को Saccule (Little sac) कहते है। इनमे से निकली Ducts नालियो से Endolymphatic sac वनता है। अगली ओर का Saccule एक सूक्ष्म नाली Canalis reunines द्वारा

अपने आगे के Cochlea से सबंधित है। Vestibule की इन दोनो थैलियो तथा Semi circular canals की Ampullai मे शरीर मे होने वाली चेष्टाओ के Reflexes (Statokinetic reflexes) को ग्रहण करने वाले (Statokinetic receptors) है जिन्हें कुछ उठे होने के कारण Maculae कहते, Small ridge of Neuro-epithelium कहते या Crista (crest) भी कहते है। शरीर की स्थिति सज्ञा को ग्रहण करने वाले इन Epithelial सेलो को Haircells भी कहते हैं। इन पर शरीर की हर एक चेष्टा का प्रभाव पडता है। इन Maculae को ढकने वाली Membrane मे Lime Carbonate और Lime Phosphate के कण रहते हैं जिन्हे Otoliths कहते हैं। Sacculus utricle और Ampullae के Maculae या Cristae के सूत्र Fibres जो इन्हे Interal acoustic meatus मे विद्यमान Vestibular (या Scarpa's) Ganglion से जोडते हैं इस Ganglion के Peripheral सूत्र कहते है।

Cochlea—यह घोघे (Snail Shell) की तरह की एक अस्थि के वने Centralpillar(Modiolus) के चारो ओर ढाई मोड वाली एक ट्यूब है जिसमे एक Spiral organ of corti रहता है जो श्रवण सज्ञा को ग्रहण करता है। यह Neuro-epithelium का एक ढेर है। Central pillar या Modiolus मे एक Spiral ganglion है जिसके सेलो मे से सूत्र Peripheral fibres उत्पन्न होकर Organ of Corti के Haircells मे समाप्त होते है।

अष्टम नाडी-श्रवण नाड़ी Eighth Nerve-Acoustic Nerve

अष्टम नाडी दो भागो मे एक तो Cochlear, दूसरे Vestibular नाडी के मिलने से वनी है। स्पष्ट है शब्द तथा शरीर के सन्तुलन मे परस्पर अति निकट सम्बन्ध है।

Cochlear Nerve.—इस नाडी के सूत्र Spiral Organ of Corti के Haircells से प्रारम्भ होकर Spiral lamina की Canal मे से होकर Spiral ganglion और Modiolus की Central canal मे से होकर Internal acoustic meatus मे जाते हैं।

Vestibular Nerve —Semicircular canals की Cristae तथा Utricle के Neuro-epithelium से इस नाडी के सूत्र आरम्भ होते हैं। Posterior semi circular canal तथा Saccule के Cristae से निकले सूत्र भी इसी मे आ मिलते हैं। ये सूत्र Internal acoustic meatus मे विद्यमान Vestibular ganglion मे प्रवेश करते है। इस प्रकार इस नाडी के दोनो भागो की उत्पत्ति पृथक् २ है। पर फिर दोनो के सूत्र मिल कर Internal meatus से Pons की निचली सीमा तक जाते हैं। वहा जाकर फिर दोनो भागो के सूत्र पृथक् हो जाते हैं। वहा Inferior cerebellar peduncle (Restiform body) पर विद्यमान Cochlear nuclei मे Cochlear सूत्र समाप्त हो जाते हैं। इन Nuclei मे से नये सूत्र निकल कर मध्यरेखा को क्रास करके दूसरी ओर के Lateral Lemniscus (Bundle of Sensory fibres) मे ऊपर चढते हैं। कुछ सूत्र उसी ओर के Lateral lemniscus मे ऊपर चढते हैं। फिर ये Lateral-lemniscus के सूत्र Inferior Corpus quadrigeminum (A-reflex-centre) और Medial geniculate body मे समाप्त होते है। अब Medial geniculate body से नये सूत्र निकलकर Superior temporal Gyrus मे विद्यमान श्रवण के केन्द्र स्थान मे समाप्त होते हैं। इस प्रकार एक कान से ग्रहण किये शब्द की प्रतीति ऊपर Cortex के दोनो ओर होती है। प्रधानत दूसरी ओर होती है।

Vestibular Nerve —Vestibular नाडी के वहुत से सूत्र चौथे Ventricle के मूल मे विद्यमान Vestibular Nuclei मे समाप्त होते है। थोडे से सूत्र Inferior cerebellar peduncle मे से होकर cerebellum के Cortex मे समाप्त होते है। Vestibular Nuclei मे से नये सूत्र निकल कर भिन्न भिन्न दिशाओ मे जाते हैं। Lateral Vestibular Nucleus (Deiter's) मे से सूत्र Vestibulo-Spinal fasciculus के रूप मे नीचे उतर कर Cord के Motor सेलो मे समाप्त होते है, (स्पष्ट है इसी कारण Vestibular Apparatus रुग्ण हो तो शारीरिक चेष्टाओ मे विपमता आ जाती है) Cochlear Nuclei मे से ऊपर चढने वाले सूत्र Medial longitudinal bundle के रूप मे कुछ एक Cererbal Nerves के Nuclei मे समाप्त होते हैं। उदाहरणत कुछ सूत्र (क) Oculomotor, Trochlear Abducens Nuclei मे समाप्त होते हैं। (स्पष्ट है Vestibular Apparatus मे विक्षोभ हो या रोग हो तो Nystagmus (Involuntary Movement of the Eye-ball) हो सकता है। (ख) Vagus के Nuclei मे समाप्त होते है (स्पष्ट है Vestibular रोग मे या विक्षोभ मे वमन Dyspnoea, सिर मे चक्कर रक्त सचार सम्बन्धी उपद्रव हो सकते है) (ग) Accessory Nerve के Nucleus मे कुछ सूत्र समाप्त होते है। यह नाडी सिर की चेष्टाओ का कारण है।

Cerebellum के Cortex से सूत्र Nucleus Dentatus मे और वहा से Superior Cerebellar peduncle द्वारा सूत्र दूसरी ओर के Red Nucleus मे जाते है। वहा मे Rubrospinal Fasciculus उत्पन्न होकर मध्य रेखा को क्रास करके Cord के Motor Cells मे समाप्त होते हैं। इस प्रकार Cerebellum का प्रत्येक Hemisphere अपनी ओर की मासपेशियो के Motor Cells से सम्बन्धित रहता है।

कर्ण रोग Furunculosis-Boils

यदि शरीर मे पिडिकाये निकलती हो, या मधुमेह रोग भी हो तो External Meatus के बाहर के कार्टिलेज से बने भाग की त्वचा के Hair Follicles (Cavity) या Sebacious (Fatty Matter) Glands मे Staphlococci का सक्रमण होकर पिडिका Boil निकलता है। इस जीवाणु का सक्रमण अगुलि या किसी वस्तु से कान खुजाने से होता है।

लक्षण —इसके निकलने पर पहले कान मे खाज होती है। इसके कुछ बढने पर फिर दर्द होने लगती है। कान के हिलाने से भी दर्द होती है। Meatus की अगली दीवार मे हो तो मुह खोलने से भी दर्द होती है। इसके बढ जाने पर कर्ण मार्ग ही बन्द हो जाता है। परीक्षा करने पर कान मे एक छोटा लाल सा उभार दीखता है।

Otitis-media से इसका भेद करना चाहिये। Boil मे पूयस्राव स्वल्प तथा गाढा होता है। Otitis मे अधिक तथा Mucopurulent (पतला) होता है। Boil मे दर्द मन्द मन्द Throbbing किस्म का होता है, झुकने से बढता है, Boil के फट जाने पर शान्त हो जाता है। Otitis मे दर्द तीखा और जैसे कोई काटता हो ऐसा होता है। Boil मे श्रवण शक्ति बनी रहती है Otitis मे कम हो जाती है। Boil मे Tragus या कर्ण पश्चिम प्रदेश पर स्पर्शाक्षमता (Tenderness) रहती है। कान के पीछे का Groove दिखाई न पडे तो Boil का ही सन्देह करे।

चिकित्सा —Icthyol in Glycerin (१०%) की भरी गाज कान मे डाले। या Aluminium Acetate ८% in Water गाज पर लगाकर उसे कान मे भरे। सूखी सिकाई से भी इसमे लाभ होता है। दर्द शामक कोई औषध देवे तथा Penicillin के इन्जेक्शन देवे।

External otitis, Diffuse inflammation of the External Meatus **कर्णमार्गशोथ** —गन्दी उगली या किसी गन्दी चीज से कान को खुजलाने से कर्ण मार्ग मे Staphylo या Streptococci का प्रवेश होकर वहा शोथ हो जाता है। यह रोग जीर्ण या Chronic रूप मे हो तो Pseudomonas Pyocyanea Bacteriaceae Proteus, Escherichia Coli इस रोग के कारण होते हैं।

तीव्र रूप मे जब यह रोग हो तो पहले कान मे खाज होती है फिर तीव्र शूल होता है और पतला सा स्राव होने लगता है जो फिर पूययुक्त हो जाता है। यह पूय युक्त स्राव दुर्गन्धयुक्त होता है। Meatus की त्वचा सूजी हुई रक्त वर्ण की होती है तथा कर्ण मार्ग मे पूय होने से Drum भी नही दीखता। जीर्ण रोग मे खुजली की शिकायत रहती, पूय-स्राव मे दुर्गन्ध होती है।

चिकित्सा —Isotonic Saline से कर्णमार्ग को साफ करें तथा रुई से कान को पूछ दे। Aluminium-acetate ८% in water मे भीगी हुई गाज को कान मे भरे। उसे उपर्युक्त सोल्यूशन से गीला रखे। कुछ ठीक होने पर फिर Chloromphenicol drop कान मे डाले। साथ ही कोई Antibiotic मुख द्वारा देवे।

जीर्ण रोग मे कान मे पानी न जाने दे। २०% Icthyol in Water मे भीगी हुई गाज कान मे रखें। कान को रुई से साफ करें अथवा Neomycin Powder कान मे डाले।

Eczema of the External Meatus कर्ण मार्ग मे या कान और कर्ण मार्ग दोनो मे Eczema जनित Dermatitis हो सकता है। वहा की त्वचा शुष्क और छिलको वाली होती या उसमे Fissures हो जाती है जिनमे छिलके भरे होते है। कान मे इस रोग मे खुजली, लाली, और सूजन के लक्षण होते है। फिर वहा छिलके से बन जाते है।

इस रोग के लिये पहले पिचकारी करे, फिर कान को रुई से पछकर साफ करे। फिर Salicylic-acid, Precipitated Sulphur ६०० मिलि प्रत्येक Petroleumjelly ३० ग्राम मिलाकर बनाई मलहम गाज पर लगाकर कान मे भरे या Hydrocortisone acetate Ointment लगाये या Aluminium acetate ८% सोल्यूशन लगा सकते है।

Otomycosis (Fungus से उत्पन्न रोग = Mycosis) वर्षा ऋतु मे कान मे नमी रहने से Fungus (खास तौर से Aspergillus या Candida albicans) का सक्रमण हो जाता है। कान की परीक्षा करने से उसके अन्दर श्वेत स्याही चूस की तरह की या भूरी काली सी फुई छाई हुई दीखती है। इसे रुई से या पिचकारी से साफ करके Nistatin powder छिडके या

उसकी मलहम लगाये या Alcohol मे २% Salicylic acid डाल कर उसमे गीली गाज कान मे भर दे।

Impacted wax in the ear—Seruminous और Sebaceous glands के स्राव साधारणत छिलको के रूप मे होकर कान से बाहर झड जाते है। पर कभी कभी इनकी मात्रा अधिक होकर तथा जम कर एक ढेर सा बन जाता है और कर्ण मार्ग को रोक लेता है। कर्ण मार्ग पूर्णत रुक जाये तो बधिरता का लक्षण हो जाता है । इस Wax के कारण Tinnitus का लक्षण भी हो सकता है। परीक्षा करने से कर्ण मार्ग मे एक भूरे से रग का डाट दीखता है।

सोडियम बाइकार्बोनेट के Saturated Solu को कई बार कान मे डाले। (या Paraffin liquid की या बादाम रोगन की बूंदे डालकर Tragus को थोडी-थोडी देर मे टकोरे ताकि बूद Wax से मिल जाये। फिर पिचकारी करके Wax को निकाल दे। पिचकारी का जल हमारे रक्त जितना गर्म होना चाहिये, अधिक ठडा या अधिक गर्म नही होना चाहिये अन्यथा Vertigo होने का डर रहता है। पिचकारी का जल Saline या Boric-lotion (१–४०) हलका गर्म (३८ सेंटि) होना चाहिये। रोगी के कन्धे पर एक तौलिया रखकर, कान के नीचे ट्रे रख कर, रोगी का सिर उसी ओर को झुकाकर, कान को ऊपर और पीछे की ओर खीचकर पिचकारी का मुख कान की छत तथा पीछे की तरफ रखकर धीरे-धीरे पिचकारी करनी चाहिये ।

Foreign bodies in the ear—**कान मे बाह्य पदार्थ:**—

कान मे दो प्रकार के पदार्थ डल जाते है। एक फूल जाने वाले (Hygroscopic), दूसरे न फूलने वाले Non-hygroscopic। परीक्षा करके देखे कि किस किस्म का पदार्थ कान मे पडा है। यदि उसमे और कान की दीवार मे अन्तर हो तो उस बीच मे पिचकारी करके उसे निकाले। अच्छा तरीका यही है कि एक Hook से या मुडे हुए किसी बारीक Probe को उस वस्तु के पीछे ले जाकर उसे आगे खीच ले।

Maggots भी एक प्रकार के बाह्य पदार्थ कान मे हो जाते है। यदि कान मे पहले ही पूय रहती हो तो कृमि उस स्थान पर उत्पन्न हो जाते है। पर ये दीवार मे भली प्रकार धसे हुए रहते हैं। अत पिचकारी द्वारा ये निकलते नही। हा पहले इन्हे क्लोरोफार्म की वाष्प दे दी जाये और पिचकारी की जाये तो ये कृमि जो सख्या मे अनेकानेक होते है, निकल जाते है।

Rupture of the Tympanic Membrane—**कान के पर्दे का चोट से फट जाना**—

कान पर प्रबल आघात लगने से कान का पर्दा फट सकता है, ऐसा होने पर प्रबल कर्ण शूल होता है जो zygomatic प्रदेश से Temporal तथा Frontal प्रदेश तक जाता है। साथ ही Tinnitus का लक्षण भी होता है। बाद मे रोगी को पता लगता है, कि उसके सुनने मे भी कमी आ गई है। देखने से पर्दे के निचले भाग मे एक अण्डाकृति या गोल छिद्र दीखता है। इस अवस्था मे कान मे कोई दवाई न डाले, न पानी की बूद भी अन्दर जाने दे। एक Sterilized Cotton का Plug कान मे रख कर उसे बन्द रखे तथा किसी Antibiotic का मुख या त्वचा द्वारा प्रयोग करे। व्रण अपने आप ीक हो जाता है।

Otitis media allergic, Non-suppurative Otitis media, Otitis media with Serous effusion **अलर्जी जनित मध्यकर्ण शोथ**—

अलर्जीजनित नासा शोथ (Allergic Rhinitis) या ऊर्ध्वगल शोथ मे शोथ के Eustachian tube मे फैल जाने से जब उसका स्रोत पूर्णत बन्द हो जाता है या नासा और ऊर्ध्वगल मे किसी सक्रमण जनित शोथ के भी इस ट्यूब मे फैल जाने से मध्य कर्ण मे हवा के न जाने के कारण वहा Vacuum या रिक्तता हो जाती है तब वहा रिस रिस कर कुछ द्रव Exudation भर जाता है जो कुछ पतला, चपकीला सा होता है। (Seromucous Otitis-media) । मध्यकर्ण मे इस श्वयथु Oedema के कारण Tensor Tympani मासपेशी उत्तेजित हो जाती है एव परिणाम रूप मे Drum अन्दर की ओर खिच जाता है Stapedius मासपेशी के उत्तेजित होने से Labyrinth के Endolymph के Pressure मे कुछ परिवर्तन आ जाने से Tinnitus का लक्षण होता लगता है। परीक्षा करने से मध्य कर्ण मे भरे द्रव की ऊपर की सीमा देखी जा सकती है जो एक बाल की तरह दीखती है।

मध्य कर्ण मे द्रव के आने से सिर भारी भारी लगता है, सुनने मे भी कमी आ जाती है। Eustachian tube के खुलते ही रोगी को आराम लगने लगता है। नासिका

तथा गले मे शोथ को कम करने से इसमे आराम मालूम होता है। Ephedrine Hydrochloride १% in Normal Saline को नाक मे डाले। Menthol या Tinct Benzoin Co का भाफ देवे। साथ ही Phenergan आदि कोई अलर्जी शामक औषध मुख से दे। नासिका और Nasopharynx मे शोथ को न होने दिया जाये तो आगे को इस रोग से बचा हो सकता है। एतदर्थ कोई Corticosteroid कुछ दिन देना चाहिये।

Suppurative otitis media, Purullent otitis media मध्यकर्ण शोथ --

मध्यकर्ण की श्लेष्मकला (Mucous membrane) मे पूयजनक जीवाणुओ के सक्रमण से विशेषत Strepto, Staphyloaureus Pneumococcus के सक्रमण से यह रोग होता है। इनका सक्रमण Nasopharynx मे से Eustachian tube के द्वारा होता है। नाक मे पानी चले जाने पर नाक को जोर मे साफ करने का यत्न किया जाये तो उस कृमि दूषित जल का कुछ अश इस ट्यूब के द्वारा मध्य कर्ण मे चला जाता है। यह रोग अधिकत बालको मे होता है जिनका गला प्राय खराब रहता है उनमे यह रोग हो सकता है।

लक्षण --मध्य कर्ण मे तीव्र शोथ होने पर प्रधान लक्षण दर्द का होता है जो कान मे गहरा होता तथा रात को ज्यादा होता, आगे Temple तक पीछे Occiput तक जाता है। छीक से, जभाई से जब मध्यकर्ण मे प्रेशर बढता है तब यह बढता है। दर्द के साथ Throbbing तथा Tinnitus (आवाज होने) के लक्षण भी होते है। यदि कुछ पूय भी वहा सचित हो जाये तो वधिरता का लक्षण भी प्रतीत होने लगता है। पूय भाव बढता जाये तो परदे मे Perforation हो जाता है। ऐसा होते ही दर्द शान्त हो जाता है। मध्यकर्ण का Mastoid Antrum से सीधा सम्बन्ध है। अत इस रोग मे Mastoid पर टकोरने मे भी दर्द होता है। यह रोग सुख साध्य है यदि Perforation न हो। उसके होने पर भी चिकित्सा ठीक हो तो भी कान ठीक हो जाता है। पूय के स्राव हो जाने पर Mastoid पर की स्पर्शाक्षमता जाती रहती है और Otorrhoea भी एक सप्ताह या १० दिन तक शान्त हो जाता है और श्रवण शक्ति लौट आती है।

चिकित्सा--वेदना शामक Analgesic औषधि तथा Penicillin का प्रयोग करने से अर्थात् Compound Codein tablets का बडो मे और Paracetamol Elixir paediatric का बच्चो मे प्रयोग करने मे तथा गर्म बोतल या Short wave diathermy द्वारा सेंक देने से बडा आराम मिलता है। Eustachian tube मे हुए बध को ठीक करने के लिये Ephedrine Hydrochloride ५-१% Normal saline को नाक मे डाले। Menthol या Benzoin Steam भी दे। Penicillin को भी बडी मात्रा मे ६ दिन तक दे। इसमे लाभ न लगे तो Tetracycline २५० मिलि ६-६ घ० पर ५-६ दिन दे।

Chronic Suppurative Otitis Media --तीव्र रूप मे हुए इस रोग की लग कर ठीक चिकित्सा न हो तो यह रोग Chronic रूप मे रहता है। Nasopharynx मे Infection रहता रहे तो यह रोग जीर्ण रूप ले लेता है। इस रोग मे Membrane मे Perforation, पूय-स्राव, वधिरता के न्यूनाधिक लक्षण रहते है। दर्द का लक्षण नही होता। कर्ण-मार्ग की पूय को पिचकारी मे साफ करके Drum को देखे तो उसमे सूक्ष्म या बडा छिद्र दिखाई पडता है। सारी Membrane रक्त वर्ण और सूजी हुई दीखती है। Drum के अगले भाग मे छिद्र हो तो वह Eustachian-tube के सक्रमण का सूचक होता है अर्थात् नासिका गले तथा इस ट्यूब की चिकित्सा का सूचक होता है। Posterior inferior Quadrant पिछले निचले चौथाई भाग मे छिद्र हो तो वह भी विशेष चिन्ताजनक नही, वह इस Cavity के तले मे पूय भाव का सूचक होता है। इनमे Intracranial उपद्रवो की आशका नही होती पर यदि छिद्र ऊपर के भाग मे Posterior Superior quadrant मे या Sharpnel's membrane मे हो तो Tympanic antrum मे तथा ऊपर के खाली भाग Attic मे पूय भाव का सूचक होने से ये चिन्ताजनक होते हैं। पूयस्राव भी देखना चाहिये यदि वह Mucoid हो तो वह चिन्ताजनक नही, पर यदि वह Purulent गाढीपूय का हो या दुर्गन्धित हो तो वह अधिक चिन्ताजनक है। पूयजनक जीवाणु बहुधा Bacteriaceae Proteus, तथा Pseudomanas Pyocyaneus होते है।

चिकित्सा--हलके गर्म Normal Saline Solution या Boracic lotion से बहुत हलके हलके कान की पिचकारी करे और रुई से उसे बिलकुल सुखा ले। Chloramphenicol ear drop या Hydrocortisone (१ ५%) and Neomycin (५%) drops डालने चाहिये। इनका प्रयोग बहुत दिन न करे। अन्यथा Bacteria हठी हो जाते है। इसके प्रयोग के बाद Boric acid eardrop (Boric acid २५० मिलि, स्पिरिट

मे थिलेटड ४ मिलि लि , जल १५ मिलि लि) ४-५ बूद डाले। डालकर Tragus पर कुछ टकोर दे दे ताकि दवाई छिद्र मे मे Middle ear मे चली जाये। Perforation बडा हो तो कान को साफ करके Boric acid और Sulphathiazole का या Boric acid २% Iodine के साथ मिलाकर पाउडर छिडके। अधेरे कमरे मे Perforation को देखकर पाउडर डाले।

Otitis media का उपद्रव —Acute तथा Ch Otitis media का एक उपद्रव Mastoiditis है, मध्यकर्ण मे B haemolytic Streptococcus प्रवल रूप मे हो, रोगी की प्रतिरोधक शक्ति निर्वल हो, Drum मे से या Eustachian tube मे से पूयस्राव भली प्रकार न हो, Empyema सा हो गया हो, ठीक Antibiotics न दिये गये हो तो Aditus ad-antrum के द्वारा जीवाणु सक्रमण Mastoid मे प्रवेश कर जाता है जिससे इसके Base पर स्पर्शाक्षमता Tenderness तापमान के कुछ ऊचा हो जाने, नाडी के तेज हो जाने, जिह्वा के मैले हो जाने, कान के पीछे उभार के हो जाने Leucocytosis और Sedimentation rate के वढने से इस रोग का निश्चय हो जाता है।

Cerebral Abscess, abscess of the temporal lobe भी एक उपद्रव है जिसमे Infection सीधे या Veins के द्वारा मस्तिष्क मे प्रवेश करता है। विद्रधि वनने से पहले कान से पूय स्राव वन्द सा हो जाता है। फिर सिर के अन्दर प्रेशर के वढ जाने से शख प्रदेश पर भारी सिर दर्द होता है। कभी कभी Projectile वमन भी होती है, प्रेशर के कारण Papill oedema भी होता है, सरदी के साथ ज्वर चढता है, नाडी गति तीव्र होती है।

Serous Labyrinthitis—मध्यकर्ण के Oval Window से सक्रमण Labyrinth मे प्रवेश कर सकता है। ऐसा हो तो रोगी को कान की गहराई मे दर्द प्रतीत होती है, वहरापन तथा Tinnitus के लक्षण होते है। पर प्रधान लक्षण शिरोभ्रम-वमन तथा सन्तुलन (वैलेन्स) के नष्ट हो जाने के होते है। रोगी स्वस्थ कर्ण की तरफ लेटता है जिससे वह चक्कर आने से वच जाता है। उसे सब चीजे रुग्ण कर्ण की ओर से दूसरी ओर जा रही हैं ऐसा लगता है।

इन उपद्रवो के प्रारम्भ होने पर Antibiotics से लाभ हो सकता है।

Meniere's disease—Aural vertigo, Recurrent aural vertigo, Paroxysmal Labyrinthine Vertigo

शिरोभ्रम Vertigo के कुछ कुछ काल के अन्तर से ऐसे दौरे हो जिनमे चक्कर आने के साथ चेहरे के फीकेपन, वमन, कर्णघोष Tinnitus, वधिरता के लक्षण हो तो उसे Meniere का रोग कहते है।

Prosper Meniere नामक एक फ्रासीसी डाक्टर (१७९०–१८६२) ने १८६१ मे इस रोग का पहले पहल हमको पता दिया। उन्होने कहा यह एक विशेष रोग है जिसमे Vertigo के साथ न्यूनाधिक वधिरता और Tinnitus के लक्षण भी होते है। उन्होने यह भी कहा कि यह रोग मध्यमायु मे और पुरुषो मे विशेष होता है।

कारण.—Hallpike तथा Cairus (१९३८) मे यह वताया कि इस रोग मे Cochlea तथा Labyrinth के Membranous Sacs, उनमे Endolymph के अधिक भर जाने से फैल जाते हैं, उनमे Endolymph का प्रेशर वढ जाता है इसी कारण Vertigo का यह दौरा होता है। सभव है Sacs के फट जाने से दौरा शान्त हो जाता हो, सभव है Basilar artery की शाखा Internal auditary-artery जो अन्त कर्ण को रक्त प्रदान करती है उसमे Vasospasm होकर फिर Vasodilatation हो जाता हो और इस Vaso spasm के कारण Anoxia होकर और उसके परिणाम रूप मे Endolymphatic dilatation हो जाता हो तथा Migraine रोग की तरह इसका कारण भी Allergy या Histamine Sensitivity हो। इस प्रकार Endolymph के Tension को इस रोग का कारण कहा जाता है। अभी तक यह Vasomotor theory इस रोग की व्याख्या करती है।

लक्षण —पहले इस Vertigo के दौरे वहुत देर देर मे होते हैं पर धीरे-धीरे इनका अन्तर घटता जाता है। इसका दौरा जव होता है सहसा विना किसी 'वार्निङ्ग' के होता है। ऐसा चक्कर आता है कि रोगी किसी चीज को न पकडे तो गिर जाये। चक्कर के साथ उलटी भी होती है। साथ ही कर्णघोष Tinnitus का लक्षण भी होता है। रोगी का रग भी फीका पड जाता है, चेहरे पर पसीना होता है। दौरा प्रवल रूप मे हो तो Nystagmus (Movement of the eyeball) का लक्षण भी होता है। रोगी निश्चल होकर वैठ जाता या गिरकर पडा रहता है। उसे डर होता है कि हिलने से फिर दौरा आयेगा। दौरा कुछ मिनटो तक रहता या दीर्घ भी हो सकता है। Brain Stem मे Vestibular Nerve का Vagus पर प्रभाव पडने से इस दौरे मे उलटी होती तथा Vasomotor पर प्रभाव पडने से Pallor या चेहरे के फीके पड जाने

का लक्षण होता है। वहा के Reticular Net work पर उपर्युक्त नाडी का प्रभाव पडे तो रोगी की चेतना या Consciousness भी कुछ कम हो सकती है। दौरे के बाद ठीक होने के लिये रोगी को बहुत देर लगती है। नीद मे भी यह दौरा हो सकता है जो रोगी को जगा देता है। अथवा सबेरे उठ कर जब रोगी अपना सिर उठाता है तब भी उसे ऐसा चक्कर सा आ सकता है। जिस कान मे यह रोग है उस पर आदमी लेटा हुआ हो तो सिर उठाने पर इस रोग का चक्कर आता है। इस रोग के रोगी प्राय अच्छे हो जाते हैं। हा, थोडी सी बधिरता जरूर रह जाती है।

चिकित्सा —अलर्जी या Antihistamine औषध देने से इसमे लाभ हो जाता है, उदाहरणत Dimenhydrinate (Dramamine) ५० मिलि. गोली के चार चार घटा पर देने से दौरा शान्त हो जाता है। दौरे के बाद भी इसे दिन मे ४ बार देते रहे। यह औषध Labyrinth के लिये शामक Sedative है। इसी प्रकार Phenobarbitone ३० मिलि, Phenergan २५ मिलि Stemetil ५ मिलि भी शामक है। बाद मे Vasospasm को रोकने के लिये Nicotinic acid ५०-१०० मिलि गोली दिन मे २ या ३ बार दे तथा इसे कई महीनो तक जारी रखे।

आयुर्वेद में कर्ण रोग .—

कर्णस्रोत में कफ अथवा पित्त के साथ वायु का प्रकोप हो अर्थात् इनके कारण वातिक निर्बलता हो तो शूल और कर्ण नाद के लक्षण होते हैं। शब्दवहा नाडी में वातिक निर्बलता हो तो बाधिर्य का रोग होता है। पित्त प्रकोप अर्थात् रक्त सचय युक्त वायु की निर्बलता हो तो भ्रम का रोग होता है। चरक ने कहा है कि कान में वायुप्रकोप विशेष हो तो शूल, नाद, बधिरता के लक्षण होते हैं। पित्त प्रकोप विशेष हो तो तीव्र शोथ दुर्गन्धित स्राव कर्णपूय के लक्षण होते हैं, यदि कफ प्रकोप विशेष हो तो कर्णकण्डू, कान से श्वेत चिकना स्राव, मृदु शोथ, मृदु पीडा के लक्षण होते है। दोषानुसार ही कर्ण रोगो की चिकित्सा होनी चाहिये।

कर्णशूल शामक औषधिया —

(१) कर्णामयघ्न तेल—कुष्ठ, सोठ, वचा, हींग, सोया, सोहाजना पत्र, सैंधव मिलित १ पाव, तेल १ सेर मूत्र १ सेर (यह कर्णपूय) शामक भी है)

(२) लशुनादि स्वरस (व से) लशुन का या अदरक का या सोहाजना के पत्तो का या मूली का स्वरस गर्म करके उसमें कुछ लवण मिला कर कान में टपकायें।

बाधिर्यशामक औषधिया —

(१) दशमूलादि क्वाथ (ग नि) दशमूल, त्रिफला, कायफल, भारगी समभाग, क्वाथ करके उसके साथ त्रिकटु १ माशा, हींग १ रत्ती मिलाकर देवें। कुछ दिन जारी रखें।

(२) दशमूल तैल (च. द, या. र) दशमूल १ सेर, जल ८ सेर में पकाकर २ सेर शेष रखें। इसमे आधा सेर तेल मिलाकर तेल साधन करें। कान में डालें।

(३) बिल्व तैल (भै र, भा. प्र., च. द.) बेल गिरि १ पाव गोमूत्र से पीस लें। तेल १ सेर। बकरी का दूध ४ सेर। यह कल्क मिलाकर तैल साधन करें।

(४) माष तैल (भै. र) माष १ सेर, जल ८ सेर पकाकर २ सेर रखें। विदारी, शतावरी, वाराही कन्द, असगन्ध २½-२½ तोला, रास्ना कौंच बला, मुलैठी गोखरू, त्रिकटु, १½ ½ तो। तेल १ सेर दूध ४ सेर। तेल साधन। कान में डालें। (यह हस्तकप शिर-कप विश्वाची, अपबाहुक में भी मालिश के काम आता है)।

(५) नारायण तेल—डालें।

(६) बृहत्वात चिन्तामणि १ रत्ती रोज देवें।

(७) दशमूल जीवनीय तैल (व. से) दशमूल क्वाथ ४ सेर, तेल १ सेर, दूध १ सेर, जीवनीय औषधिया मिलित १ पाव। तेल साधन करें।

कर्णपूयोपयोगी प्रयोग —

(१) जात्यादि तेल (शा स, भा प्र) चमेली पत्र, नीमपत्र, हरड, मुलैठी, पटोल पत्र, कुष्ठ, करजपत्र, कटुकी, दोनो हरिद्रा, करजफल, मजीठ, लोध्र, नीलोफर, सारिवा, नीलाथोथा सम भाग मिलित १ भाग। तेल ४ भाग। जल तेल से ४ गुणा। तैल साधन करें। कान में डालें। कान धोने के लिये त्रिफला जल उपयोगी है।

कर्णनाद में उपयोगी औषध .—

(१) दशमूल तैल।

(२) दशमूल जीवनीय तैल।

(३) अपामार्ग क्षार तैल —अपामार्ग क्षार का जल ४ भाग तेल १ भाग। अपामार्ग का कल्क चौथाई भाग तैल बनायें।

(४) बृ. वातचिन्तामणि १ रत्ती कुछ दिन दें।

स्मररोग में उपयोगी औषध —

(१) शतावर्यादिक्षीर (यो र., च. द) शतावरी, बलामूल, द्राक्षा के मिलित भाग १ तोला से पकाया हुआ दूध मीठा करके दें। इसके साथ बलाबीजो का चूर्ण देना भी उपयोगी है ।

(२) दुरालभा कषाय (च. द., भा प्र., वै जी) । इस कषाय मे घृत डालकर रोज पिलायें ।

(५) गलरोग-Diseases of the Pharynx

गलप्रणाली Pharynx की रचना —भोजन प्रणाली Alimentary canal के प्रारम्भिक भाग को जो ऊपर Skull या कपाल के तले मे आरम्भ होकर Larynx के Cricoid cartilage तक है Pharynx कहते है। नीचे की ओर यह भोजन प्रणाली Oesophagus के साथ एक हुई है। इसकी लबाई ५ तथा इसकी चौडाई १½ इच के लगभग होती है। इसका सबसे ऊपर का भाग जो नासा पश्चिम छिद्र से सम्बन्धित है Nasopharynx कहाता है। इसके नीचे के भाग को जो मृदुतालु या Soft-palate की सीमा से नीचे तथा गलेकी Hyoid bone से ऊपर का है, तथा आगे की ओर मुखगुहा से सबधित है Oropharynx कहते हैं। यह भाग कण्ठ या Larynx के Epiglottis से ऊपर का भाग है। इसमे अर्थात् Hyoid से नीचे Cricoid cartilage तक के इसके भाग को Laryngo-pharynx कहते है।

Nasopharynx नासासबन्धी गला —इसमे इसकी छत तथा इसकी पिछली दीवार के सधिस्थान पर झिल्ली या Mucosa से ढका हुआ एक Lymphoid tissue का ढेर है जिसे Pharyngeal tonsil (Adenoids) कहते है। Nasopharynx की बाहर की दीवार मे नाक के पिछले द्वार मे विद्यमान Inferior turbinate के पिछले सिरे से १२ मि मीटर (आधा इच) पर एक छिद्र है जिसे Eustachian tube का छिद्र कहते है जिसके ऊपर और पीछे एक उभार है जो इस ट्यूब के कार्टिलेज के कारण है। इसे Tubal elevation कहते है। इस उभार के पीछे एक गढा या Recess है जिसे Fossa of Rosenmuller कहते हैं । Nasopharyngeal carcinoma इसी प्रदेश मे होता है।

Oropharynx, मुखसबधी गला —जीभ को दबा कर देखने मे केवल यही भाग देखने मे आता है। मुख गुहा के पिछली ओर जो तोरणाकार स्वतन्त्र सीमा है उसे Palatine arch कहते है। इसके केन्द्र मे जो मासमय भाग लटका है उसे Uvula कहते है। इसी मे से २ तोरणाकार मासो के निकलने से दो स्तम्भ बनते है, उन्हे Anterior तथा Posterior pillars कहते है। इनमे से अगला Palato-glossus मासपेशी से तथा पिछला Palatopharyngeal मासपेशी से बना है। इसीलिये इन्हे Palato-glossal तथा Palato-pharyngeal arch कहते हैं। Oropharynx की पिछली दीवार मे तीसरा Cervical Vertebra है।

Laryngopharynx—कठ सम्बन्धी गला—जिह्वा तल के तथा Larynx के पीछे के Pharynx को कहते है। Larynx के मुख के दोनो ओर इसमे जो अवकाश या Recesses हैं उन्हे Pyriform Fossae कहते है। इस Fossa के अन्दर की ओर Arytenoid cartilage तथा Ary-Epiglottic fold है। बाहर की ओर Thyroid cartilage तथा Thyrohyoid membrane है।

Pharynx की दीवार —इसकी सबसे बाहर की दीवार मास की है जिसमे Superior, Middle तथा Inferior ये तीन Constrictor (सकोचक) Muscles हैं। ये तीनो एक लाइन मे तथा एक दूसरे के ऊपर चढी हुई हैं और पीछे की ओर Median raphe (Ridge) से बधी हैं। इस मासमय दीवार के अन्दर की ओर तीन और मास हैं (१) Stylopharyngeus, (२) Salpingopharyngeus (३) Palatopharyngeus है। इनमे से पहली दोनो बाहर से आकर Superior तथा Middle constrictors के बीच मे से गुजर कर Muscular layer की अन्दर की तह बनाती है। सबसे अन्दर की दीवार Mucosa से तथा इसकी मासमय दीवार के बीच मे स्थित एक Fibrous layer से जिसे Pharyngeal aponeurosis कहते है, बनी है। यह ऊपर Skull के तले से बधा हुआ है। गले का यह Mucosa Oesophagus, Larynx, मुखगुहा नाक, Estachianu tube इन सब की Mucos membrane के साथ एक हुआ हुआ है । Nasopharynx का Mucosa, Ciliated columnar है। बाकी नीचे का Squamous टाइप का है।

Pharynx की धमनियाँ Blood supply —(१) Ascending Pharyngeal artery, Pharynx तथा Soft plate को रक्त देती है। (२) Facial artery, Palate तथा Tonsil को रक्त प्रदान करती है। (३)

Lingual artery जिह्वा, Tonsil को रक्त देती है। ये सब धमनिया External Carotid की शाखाये है।

Pharynx **की नाडिया** Nerves —Naso-pharynx की Sensory Nerves मस्तिष्क पचम नाडी से ऊपर जाती है। Pharynx की Sensory नाडिया मस्तिष्क नवम (Glossopharyngeal) तथा दशम (Vagus) नाडियो मे जाती हैं। Pharynx की मासपेशियो मे Motor fibres मस्तिष्क दशम नाडी से आती है। मस्तिष्क की ११वी नाडी Eccessory के Craneal भाग के चेष्टा सूत्र भी Vagus के द्वारा इन मासपेशियो मे आते है। केवल एक मासपेशी Stylopharyngeus (गल प्रसारक) को चेष्टासूत्र नवम मस्तिष्क नाडी से आते है। Soft Palate को भी चेष्टा सूत्र Vagus से आते है।

Pharynx का Lymphatic Tissue —Pharynx के Mucosa के नीचे Lymphatic tissue का एक चक्र सा छाया हुआ है। जैसे (१) Palatine Tonsils (२) Pharyngeal Tonsil (Adenoids) (३) Lingual Tonsils जिह्वामूल के Mucosa के नीचे Tonsils के निचले सिरो के सिलसिले मे है (४) Tubal Tonsils —Eustachian tube के प्रवेश द्वार के दोनो ओर Rosenmuller के Fossa मे हैं। (५) Lateral pharyngeal bands —पिछले Pillar के पीछे ऊपर से नीचे की दिशा मे Lymphoid Tissue की एक लाइन है जिसे Lateral pharyngeal band कहते है। (६) Discrete Nodules —Pharynx की पिछली दीवार के Mucosa के नीचे पृथक्-पृथक् अनेकानेक दाने है। ये भी Lymph bodies है। इस प्रकार Pharynx मे Lymphatic Tissue की एक Ring है जिसे वर्लिन के Anatomist Waldeyer (१८३६–१९२१) के नाम पर Waldeyer's ring कहते है। इनकी Lymph, ग्रीवा की ग्रन्थियो Deep cervical glands मे जाती है। Adenoids की Lymph, Mastoid process के किनारे के तथा Sterno mastoid muscle के नीचे के Glands मे आती है।

Tonsils —गले के तले पर दोनो ओर Anterior तथा Posterior pillars के वीच मे Mucosa के नीचे एक एक Lymphoid Tissue का ढेर है जो वादाम के आकार का होता है। इसका २/३ भाग Pharynx मे धसा हुआ है। अन्दर की ओर यह Mucous membrane मे ढका हुआ है। इसमे १२ से २० तक छोटे-छोटे गढे है जो Crypts (नालियो) के मुख है। ये नालिया इसमे नीचे तक गई हुई है। Tonsil का निम्न भाग एक दृढ Fibrous capsule से घिरा हुआ रहता है। इसके मूल तथा Superior Constrictor muscle के वीच मे ढीला सा Areolar tissue है जिसके कारण आपरेशन मे इसका जुदा करना सभव होता है। इस प्रकार इसके वाहर की ओर एक तो Fibrous capsule है, उसके वाहर Loose areolar tissue है, उसके वाद Paratonsilar vein है। उसके वाद Pharyngeal aponeurosis तथा Superior constrictor muscle है और उसके वाहर की ओर Mandible Bone है। Tonsil आगे की ओर Anterior pillar और पीछे की ओर Posterior pillar से ढका हुआ है। अन्दर की ओर यह स्वतन्त्र है। नवम मस्तिष्क नाडी (Glossopharyngeal जो Pharynx की Sensory Nerve है, Stylopharyngeus के लिये Motor है) तथा Facial artery (जो Pharynx को रक्त देती है) Superior Constrictor muscle के वाहर रहती है। External palatine vein भी Tonsil के चारो ओर के ढीले Areolar tissue मे रहती है उसका भी इसके आपरेशन मे वचाव करना पडता है। Internal carotid artery भी Tonsil के वाहर के पृष्ठ से एक इच की दूरी पर रहती है।

Tonsil की Blood Supply —Lingual artery, Facial artery Ascending pharyngeal artery की tonsillar शाखाओ से इसे रक्त आता है। ये सब Capsule मे से होकर इसके नीचे के भाग मे प्रवेश करती है। परन्तु Internal maxillary artery की Descending palatine branch इसके ऊपर के सिरे मे प्रवेश करती है। Anterior palatine arch के पीछे से यह इसमे आती है। आपरेशन मे इसका भी विशेष ध्यान रखना होता है। स्पष्ट है Tonsil मे रक्त वहुत अधिक मात्रा मे आता है। Tonsil के ऊपर के भाग की Sensation, नवममस्तिष्क नाडी तथा पचम मस्तिष्क नाडी से जाती है। Tonsil की Lymphatics, ग्रीवा के tonsilar gland मे, जो Angle of the jaw के पीछे है आती है।

Tonsil का कार्य—(१) इसमे Lymphocytes वनते है तथा यह जीवाणुओ को पकड लेता है तथा ऐसा लगता है कि इसके Crypts, Culture-tube का काम करते हैं अर्थात् इनमे उनकी Vaccine वनकर Lymphatics द्वारा सेलो मे जाती है और उसमे उनमे

उनके प्रति Antibodies बन जाते है और इस प्रकार बाल्यपन मे जब Tonsils सक्रिय होते है, शरीर मे जीवाणुओ के विपरीत Immunity उत्पन्न होती हे ।

(१) Simple या Catarrhal Pharyngitis — Common Sorethroat, गल शोथ, शीतकाल तथा वर्षा ऋतु मे यह रोग प्राय Streptococcus haemolyticus के सक्रमण के कारण होता है। कभी कभी Non-haemolytic Streptococcus, Pneumococcus या Haemophilus influenzae के कारण भी होता है।

लक्षण—यह गल शोथ का रोग हलके ज्वर मे आरभ होता है, कान मे, गले मे दर्द, तथा सिर मे शरीर मे भी हलका दर्द रहता है। निगलने मे भी कुछ दर्द होता है। हलकी खासी उठती है। गले मे शोथ Larynx कठ मे भी चला जाये तो आवाज भी कुछ बैठ जाती है। परीक्षा करने से गले की अन्दर की झिल्ली Mucous membrane लाल, फूली हुई दीखती है। Tonsils, तालु, Arches, पिछली दीवार सब मे रक्त सचय हुआ हुआ लगता है।

(२) Suppurative Pharyngitis — **पैत्तिक-गल शोथ**—यह रोग अधिक तीव्र है। Streptococcus haemolyticus के अतिरिक्त Staphylococcus aureus, Pneumococcus bacillus, coli communis के सक्रमण से होता है।

इस अवस्था मे गले मे तीव्र दर्द होता है। ज्वर तीव्र होता है और सरदी लगकर चढता है। निगलना कठिन हो जाता है । नाडी पहले तीव्र और भरी हुई होती है पर शीघ्र ही वह निर्बल और Thready हो जाती है। गले मे पूय भाव होने मे पसीना भी ज्यादा आता है। Suppuration Oropharynx मे होता है। परीक्षा करने पर गले मे रक्त की मात्रा अधिक होती है। शोथ Larynx मे फैल जाता है। तब Epiglottis फूला हुआ और रक्त वर्ण दीखता है। इसके कारण Septicaemia हो सकता है ।

Diphtheritic Pharyngitis — कभी कभी २ से ५ वर्ष की आयु के बालको मे गले मे दर्द और हलके तापमान के साथ Pharyngitis होता है। परीक्षा करने पर नाडी गति तीव्र हो। देखने मे बालक, Toxic तथा बिलकुल निढाल होता है। गले की परीक्षा करने पर Tonsils, Soft palate, तथा गले की पिछली दीवार पर एक भूरे से रग की झिल्ली Mucosa पर दृढता के साथ चिपकी हुई दीखती है, उखाडे तो वहा रक्त आ जाता है। इस रोग मे Cervical glands सूजे हुए तथा स्पर्शाक्षम होते है।

Moniliasis (Thrush) Fungous infection of the Pharynx—गले Fauces, Palate, मसूढो जिह्वा, गालो पर श्वेत सी फूई के धब्बे दिखाई पडे तो उसे Fungus infection समझना चाहिये। ऐसा निर्बल शरीर के बालको मे होता है।

Chronic Pharyngitis — यदि गलशोथ बार बार हो, बीडी सिगरेट का अति सेवन किया जाये, दातो मे पूय रहती हो, या जुकाम हमेशा रहता हो तो Pharyngitis पुराना हो जाता है। यह तीन प्रकार का हो सकता है (१) Catarrhal हो। (२) Hypertrophic हो (३) या Atrophic हो। Catarrhal Pharyngitis पुराना हो तो Palate, uvula, तथा पिछली दीवार मे रक्त का सचय अधिक रहता है। इस अवस्था मे रोगी गले से ऐसी आवाज करता रहता है जैसे वह गले को साफ कर रहा हो। Pases Hypertrophic Pharyngitis का रोग उनमे होता है जो Rheumatic diathesis के या कफ प्रकृति के होते है और जिन्हे बोलने का काम अधिक रहता है। ऐसी हालत मे गले मे खरखरी लगी रहती है। पिछली दीवार मे देखने पर, Lymphoid Tissue के Nodules दिखाई पडते है। इनके कारण इसे Granular Pharyngitis भी कहते है। इस अवस्था मे रोगी गले से आवाज करता रहता हे जैसे कि उसके गले मे कुछ पडा हो। बोलने मे उसकी आवाज जल्दी थक जाती है।

Atrophic Pharyngitis का रोग प्राय Atrophic Rhinitis के उपद्रव रूप मे होता है। इसमे रोगी को अपना गला सुश्क मालूम होता है, परीक्षा करने पर गले की पिछली दीवार चमकदार Glazed सी होती है और उसपर सूखा हुआ Secretion दिखाई पडता है।

Pharyngitis **की चिकित्सा** —

साधारण Catarrhal Pharyngitis के लिए गर्म पानी से स्नान करके ३ ग्राम Aspirin लेकर लेटे रहना चाहिए। तथा गर्म पानी के एक गिलास मे १ छोटा चमच सोडा बाई कार्ब डालकर उसके गरारे करने चाहिये Tr Benzoin Co ४ मिलि लि या १ चमच ५०० मिलि लि उबलते जल मे डालकर उसकी भाप लेनी चाहिये। Septic Pharyngitis मे रोगी को पूर्ण विश्राम मे रखकर Penicillin का इजेक्शन देना चाहिये। भोजन मे उसे दूध पर्याप्त मिलना चाहिये।

Diphtheritic Pharyngitis मे विश्राम के अतिरिक्त ८००० से १६००० यूनिट Antitoxin उसे मिलना चाहिये। इस रोग के पक्का हो जाने पर २० से ५०-६० हजार तक Antitoxin इजेक्शन द्वारा दे देना चाहिये। साथ ही Penicillin या Tetracycline का इजेक्शन भी देना चाहिये।

Thrus के कारण Pharyngitis हो तो दैनिक २०० मिलि मात्रा मे Nystatin tablets मुख द्वारा देनी चाहिये। या १% Gentian Violet Solution मुख मे लगाये।

Chronic Pharyngitis के लिये —आतो को साफ करने की औषध दे। या Mandle का पेन्ट—Iodine ३ ग्रेन, Pot Iodide १० ग्रेन, ol Menth Pip ५-बून्द, Glycerine १ औंस मिलाकर गले मे लगाये। या Acid Tannic १५ ग्रेन, Glycerine १ औ मिलाकर गले मे लगाये।

Granular Pharyngitis के लिए Borax ५ ग्रे, सोडि क्लोराइड, ५ ग्रेन, Acid Carbolic liquid ४ बूद, Glycerin ३० बूद गर्म जल १ औ मिला कर इसे गले मे छिडके (to spray) और फिर Mandle's paint लगाये। Granules ठीक न हो तो २% Silver Nitrate Solution Touch करे। Atrophic Pharyngitis के लिये सोडाबाईकार्ब सोल्यूशन के गरारे कराये तथा घी मे थोडा Boric acid या Borax मिलाकर गर्म करके लगाये।

Malignant tumour of the Pharynx, Squamous-cell Epithelioma of the Pharynx, Carcinoma of the Pharynx

Tonsillo lingual sulcus अर्थात् जीभ और Tonsil के बीच के गढे मे आरभ होकर यह ट्यूमर आगे की तरफ जीभ के किनारे तथा Alveolus के साथ मुखकी भूमि पर बढता है। यह ट्यूमर Palate, Uvula, Tonsil से भी शुरु हो सकता है। इस ट्यूमर के फैल जाने पर भी रोगी को पहले इसका पता नही लगता। फिर पहले रोगी को कुछ दर्द लगने लगता है यह निगलते वक्त पहले प्रतीत होता है। जीभ के जुड जाने या Fix हो जाने से बोलने मे कुछ फर्क हो जाता है। मुह से पानी या Salivation ज्यादा होने लगता है। रोगी को उस ओर कान मे भी दर्द लगता है। ग्रीवा ग्रन्थिया भी सूज जाती है। मुह के खोलने मे भी मुश्किल होने लगती है। अगुली से छूने पर इस ट्यूमर की कठोरता को देख कर इस रोग का निश्चय हो जाता है।

इसकी चिकित्सा Radiotherapy से हो सकती है, यदि रोग का पता प्रारम्भ मे ही लग जाये। अगर यह Lymph glands मे न फैला हो तो ३०% रोगी ५ साल तक जीवित रह सकते है। यदि एक ओर ग्लैण्ड्स मे फैल गया हो तो इस चिकित्सा से १०–१२% ५ साल तक जीवित रखे जा सकते है।

Tonsillitis — यह रोग १० वर्ष से ३० वर्ष की आयु के बीच मे होता है। जो लडके भीड-भाड मे तथा बन्द कमरो मे पढते है उनमे होता है तथा शीतकाल मे होता है। Exciting causes, Haemolytic Streptococci होते है। कभी कभी Non haemolytic Streptococcus, Staphylococcus-aureus, Bacillus friedlander, Pneumococcus, Micrococcus Catarrhalis भी इसके कारण होते हैं।

इस रोग के होने पर मुख खोलने तथा आहार के निगलने पर दर्द होता है। इसके कारण गले मे ही नही, कान मे भी दर्द होता है। १०० से १०२ तक ज्वर भी हो सकता है। हडफूटनी, क्षुधानाश, मलबन्ध, अगशैथिल्य, मूत्र के रग मे गहरेपन के लक्षण होते है। Catarrhal Tonsillitis हो तो Tonsil का सारा Mucous membrane लाल और सूजा होता है। Follicular (Lacunar) Tonsillitis हो तो शोथ, पूयभाव केवल Crypts मे होता है। Tonsil सम्बन्धी ग्रीवा ग्रन्थियो मे भी शोथ होता है।

Chronic Tonsillitis — यह दो प्रकार का है (१) Chronic Parenchymatous Tonsillitis इसमे शोथ सारे Tonsil मे होता है। (२) Chronic Follicular Tonsillitis—इसमे शोथ केवल Crypts मे होता है। इनमे से पहला Tonsillitis पहले तो २ वर्ष की उमर मे, फिर ५-६ वर्ष की उमर मे होता है। इस अटैक से बालक मे Immunity उत्पन्न हो जाती है। इसे Chronic नही Physiological acute attack कहते है। फिर ४ से १५ वर्ष की उमर मे जो Tonsillitis होता है वह Chronic कहाता है। तब यह रोग ठीक होकर दुबारा होने लगता है। तब उसे गले मे खारिश रहने के कारण खासी उठती रहती है। परीक्षा करने

से Tonsils अन्दर की ओर बढे हुए दीखते है। Anterior pillars भी रक्त वर्ण के होते हैं।

Chronic Follicular Tonsillitis — वारवार Tonsillitis होने से यह रोग युवको मे होता है। इसमे tonsil के Crypts के मुखो पर श्वेत पनीर का सा पदार्थ दिखाई पडता है। Anterior Pillar भी लाल होता है। Ant pillar को Tongue-depressor से दवाये तो Crypts से Pus वाहर आती है। रोगी को वार-वार Sore throat की शिकायत रहती है। रोगी का पेट भी खराव रहता है। हो सकता है कि उसे Fibrositis Rheumatism की शिकायत भी रहती हो।

चिकित्सा —Acute Tonsillitis प्रवल रूप मे न हो तो रोगी को लिटा कर रखे। Aspirin ३–६ ग्राम ३-३ घ पर देवे। ग्रीवा पर सिकाई करे। एक ग्लास गर्म पानी मे एक चमच सोडावाई कार्व डालकर उसके गरारे कराये। रोग तीव्र रूप मे हो तभी Antibiotic देने की आवश्यकता होती है।

Chronic Tonsillitis के लिये Mandl's paint लगायें या १ औं ग्लिसरीन मे ३ ग्राम Resorcin मिलाकर लगाये।

Peritonsillar Abscess Quinsy — इसमे tonsil के कैपसूल के वाहर आसपास के प्रदेश के अन्दर पूयभाव होता है। यह विद्रधि विशेपत Tonsil के ऊपर Palate के अन्दर होती है। ऐसी प्रक्रिया Tonsil के पीछे तथा वाहर की ओर भी हो सकती है। यह रोग १५ से ३५ वर्ष तक की आयु मे होता है। इससे पहले Ch Tonsillitis होता है जो पीछे कान तक तथा हनु अस्थि के Angle के पीछे तक प्रसरण करता है। इसके कारण निगरण काठिन्य Dysphagia का लक्षण भी होता है। उससे पानी का घूट निगलना भी कठिन होता है। मुख का खोलना भी कठिन हो जाता है। हडफूटन (Malaise) के अतिरिक्त सरदी लगकर ज्वर हो जाता है जो पर्याप्त ऊचा होता है। चवाने की मासपेशियो Masseters मे Reflex Spasm होता है जिससे मुख अकडा हुआ (Trismus) होता है। जिस तरफ विद्रधि होती है सिर उधर को झुका होता है तथा रोगी ने उसे हाथ से पकडा होता है। रोगी देखने मे वहुत बीमार तथा चिन्तित दीखता है। मुह के न खुलने से गले की परीक्षा कठिन होती है। गले मे प्रकाश डालकर देखने से मालूम होता है कि एक तरफ का Soft Palate रक्तवर्ण तथा वहुत फूला हुआ है। Uvula वहुत सूजा हुआ तथा दूसरी ओर को गया हुआ है। Tonsil विलकुल दवा हुआ होता है। उस ओर की ग्रीवा ग्रन्थिया आकार मे वडी तथा स्पर्शाक्षम प्रतीत होती हैं। यदि इलाज नही किया जाता तो यह विद्रधि ७-८ दिन तक स्वय फट जाती है।

इसका जल्दी पता लग जाये अर्थात् ४-५ दिन न हुए हो जवकि इसमे पूयभाव हो जाता है तो Penicillin देने से यह विद्रधि वैठ सकती है। इसमे पूयभाव हो जाये, ज्वर और दर्द अधिक हो, तो एक लम्वी तग ब्लेड की Bistoury से इसे खोल देना चाहिए। Blade का अगला आधा इच छोड कर वाकी पर Adhesive plaster लगा देना चाहिये। खोलने से पहले १०% Cocaine या १–२% Amethocaine Solution लगा देना चाहिये। इससे दर्द तो पूरी तरह नही हटती पर मुह तो कुछ अधिक खुल जाता है। Prick वहुत जल्दी से करे ताकि दर्द केवल क्षणिक हो। पूय निकलते ही रोगी को जो आराम मिलता है उसमे वह दर्द को भूल जाता है। विद्रधि को खोलने से पहले Uvula के मूल Base पर मुख मे एक काल्पनिक पडती Horizontal line खीच लेनी चाहिये। दूसरी Anterior pillar of the fauces पर एक काल्पनिक गिरती Vertical line खीचे जहा दोनो रेखाये काटती हो वहा से एक दो सेन्टिमीटर वाहर की ओर Puncture करना चाहिये। अथवा Uvula के Base से उस ओर की पिछली दाढ तक एक काल्पनिक रेखा खीच कर उसके मध्य मे Puncture करना चाहिये। इसके वाद गर्म Antiseptic लोशन के गरारे कराये। Incision से पहले जहा वह लगाना हो वहा Carbolic acid की फुरैरी से निशान कर लेना चाहिये।

Adenoids —Nasopharyngeal Tonsil मे अतिवृद्धि Hypertrophy हो जाये तो उसे Adenoids कहते है। यह Hypertrophy दो प्रकार की है (१) Simple (२) Inflammation के कारण।

Pharyngeal Tonsil मे, Tonsil के समान Crypts नही होते। इसका कोई कैपसूल भी नही जैसा कि Tonsil का होता है। इसमे Cilia रोगटे होते है जो Tonsil मे नही होते। Adenoids, Tonsil की तरह वालकपन मे ही होते है, जवानी मे सूख जाते है। ये वाह्य विषो मे शरीर की रक्षा करते है। ऐसा माना जाता है पर इनके कार्य के विषय मे अभी तक कोई निश्चय नही हो पाया।

Adenoids की Hypertrophy के लक्षण—सब से बडा लक्षण पश्चिम नासावरोध Nasal obstruction है। शिशु मे ऐसा हो तो वह दूध पीते-पीते बीच मे श्वास लेने के लिये रुकता है क्योकि उसे श्वास भी मुह से लेना होता है। बच्चा बडी उमर का हो तो वह मुह से श्वास लेता है। एव उसका मुख हमेशा खुला रहता है। साधारण बालक कभी भी मुह से श्वास नही लेते, न उनका मुख खुला रहता है। नासा द्वार के पीछे की ओर अवरुद्ध होने से तथा Chronic Rhinitis के रहने से नाक मे से Discharge होता रहता है। इस Hypertrophy के कारण Eustachian ट्यूब का Nasopharynx की तरफ का मुख अवरुद्ध हो जाता है जिसमे मध्य कर्ण मे हवा कम जाती है। परिणामत कुछ बधिरता का लक्षण हो जाता है। नाक के बन्द रहने से बालक की आवाज भी कुछ आनुनासिक (Nasal) तथा बलहीन हो जाती है।

Infection of the Adenoids—नासिका मे Infection हो तो Adenoids मे भी वह हो जाता है। Adenoids मे वह हो तो Rhinitis और Sinusitis भी हो जाता है। इस रोग मे नासा के आगे से या पीछे से कुछ Discharge होता रहता है। Eustachian ट्यूब से Infection के मध्य कर्ण मे फैलने से Otitis media का रोग हो सकता है। इस infection के फैलने से ग्रीवा के Posterior Triangle मे Glands सूज जाते है। इस रोग के कारण कुछ व्यापक लक्षण भी होते है। इनका क्या कारण है कह नही सकते (१) बुद्धिमन्दता—Mental dullness (२) रात्रि मेह Enuresis—Night terror सोते हुए भय से जागना। रोगी की परीक्षा करे तो उसका मुख खुला रहता है। नासा छिद्र तग होता है, नाक बहता रहता है, तालु ऊचा होता है, चेहरा कुछ भावहीन (Expressionless) होता है।

चिकित्सा—खुली हवा मे खेलने, नासिका द्वारा श्वास लेने का अभ्यास कराने, ५% Ephedrine Saline Solution के नाक मे डालने से लाभ हो सकता है।

Larynx कण्ठ

कण्ठ, बोलने का यन्त्र है, जो ग्रीवा मे Pharynx के निचले भाग के आगे स्थित है और ऊपर से उसके साथ सम्बन्धित है। यह ऊपर जिह्वामूल और Hyoid अस्थि के साथ दृढतापूर्वक बधा हुआ है नीचे की ओर यह Trachea के साथ एक हुआ हुआ है। कण्ठ के आगे तथा दोनो ओर का भाग केवल त्वचा से ढका हुआ है और स्पष्ट अनुभव होता है। यह ऊपर तीसरे Cervical Vertebra के सामने शुरु होकर नीचे छठे Cervical Vertebra के सामने तक रहता है।

Cartilages— इसकी तरुणास्थियो मे से तीन तो एक एक है जिनमे से (१) Thyroid cartilage है जिसके आगे की ओर बढे नोकदार सिरे Angle को Adam's apple कहते हैं। यह दो पखो—Alae—से बना है जिनके पिछले सिरो पर ऊपर नीचे दोनो ओर सीग Horns होते हैं जिन्हें Superior तथा Inferior Horns कहते है।

(२) इससे नीचे के Cartilage को Cricoid (Crico-Ring) Cartilage कहते हैं। इस मुद्राकृति तरुणास्थि का अगला भाग तेडा पिछला भाग चौडा होता है।

(३) Thyroid Cartilage से ऊपर, पेड के पत्ते के आकार का एक Cartilage है जिसे Epiglottis (Glottis=vocal cords के बीच का Space) कहते हैं। यह दोनो पखो के अगले सधि स्थान के पिछले पृष्ठ से एक Fibrous Tissue से जिसे Thyroepiglottic ligament कहते हैं बधा हुआ है। इसके Mucosa की तहे Pharynx की Mucosa के साथ एक हुई हुई है। Arytenoid प्रदेश तक पीछे की ओर गई इसकी तहो को Ary-Epiglottic folds कहते हैं जो कार्टिलेज जोडियो मे है उनमे से (१) Arytenoid (Ladleform) Cartilage तीन साइड वाली तरुणास्थि है जो Pyramid के आकार की है। Cricoid के पिछले भाग पर इसके टिकने वाले Base मे एक गढा है जिसे Cricoid facet कहते हैं। इसके पिछले अस्थि के सिरे को Muscular process कहते है। इस पर आगे की ओर Posterior crico-arytenoideus Muscle और पीछे की ओर Lateral crico-arytenoideus बधी है। इस Base के अगले सिरे को Vocal process कहते है। इसके अन्दर के पृष्ठ से Glottis की पिछली दीवार बनती है। इनके ऊपर के सिरे पर दोनो ओर Carniculate (Hornlike) Cartilages है। एक और Cuneiform Cartilage (Wedge shape) दोनो ओर, Ary-epiglottic fold मे है।

कठ Larynx की मासपेशिया—दो प्रकार की है (१) Extrinsic जो Larynx और आसपास की रचनाओ के बीच मे वधी हैं (२) Intrinsic वे हैं जो इसके Cartilages के अन्दर वधी हैं।

(१) Extrinsic muscles — (क) Sterno thyroid muscle यह Sternum से आरम्भ होकर Thyroid के वाजू पर वधी है। यह Thyroid Cartilage को Depress करती है। (ख) Thyrohyoid—यह नीचे Thyroid के वाजू से शुरु होकर ऊपर Hyoid bone से वधी है। यह Thyroid को ऊपर उठाती है, (ग) Inferior Constrictor of Pharynx—Cricoid तथा Thyroid के वाजुओ मे शुरु होकर Pharynx की पिछली दीवार मे वधी है। यह Pharynx को सकुचित करती है जैसे आहार को निगलने मे, (घ) Stylopharyngeus यह ऊपर Temporal bone के Styloid process मे आरम्भ होकर नीचे Thyroid cartilage तथा Pharynx के वाजू मे वधी है। यह Pharynx को उठाती तथा उसे चौडा करती है।

(२) Intrinsic muscles of the Larynx.— (क) Posterior crico-arytenoideus—Cricoid की पीठ से शुरु होकर Tendon के रूप मे यह Arytenoid के Muscular process की पीठ पर वधी है। जव यह Contract करती है तव Arytenoid के Muscular process तथा Vocal process वाहर की ओर खिसक जाते हैं जिससे Glottis खुल जाता या चौडा हो जाता है (अर्थात् ये मास दोनो ओर Opener या Abductor of Glottis हैं)।

(ख) Lateral Cricoarytenoideus —यह Cricoid के ऊपर के किनारे से निकल कर Arytenoid के Muscular process पर उपर्युक्त मासपेशी के पास ही वधी है। जव यह Contract करती है तव Arytenoid के Vocal processes जिन पर Vocal cords वधी है आसपास आ जाते है अर्थात् Glottis वन्द हो जाता है। अर्थात् ये मासपेशिया Glottis closers या Adductors है।

(ग) Oblique Arytenoid Muscle की तो जोडी है। Transverse arytenoid muscle अकेली या Unpaired है। इनमे मे Unpaired Arytenoid muscle दोनो Arytenoid cartilages की पीठ पर के गढो मे रहती है। इसके Contract करने पर इन दोनो Cartilages के बीच का Glattis तग हो जाता है। इस मासपेशी का Oblique भाग Arytenoid के पिछले पृष्ठ से शुरू होकर Ery-epiglottic fold मे वधता है जिसमे Ery-epiglottic muscle है। यह मासपेशी भी Glottis को वन्द करती है। दूसरे शब्दो मे इस मासपेशी के सूत्र Sphincter की तरह के है।

(घ) Cricothyroid muscle — यह मासपेशी Larynx के अगले निचले भाग पर रहती है। यह दोनो ओर Thyroid के निचले भाग से निकलकर Cricoid के अगले भाग पर वधी है। इसके Contraction से Cricoid और Thyroid cartilages पासपास आ जाती है जिससे Cricoid के पिछले सिरे जिस पर Arytenoid Cartilage है और Thyroid के Angle का अन्तर लम्बा हो जाता है जिससे इन दोनो के बीच मे वधा हुआ Vocal fold तन जाता या Stretched हो जाता है, इसे External tensor muscle भी कहते है।

(ङ) Thyro-arytenoideus — इस मासपेशी की जोडी Glottis के दोनो ओर रहती है। Vocal fold या Vocal cord इसी मासपेशी से वनी है। आरम्भ Thyroid मे होकर यह Arytenoid cartilage मे वधी है। यह Vocal cord को ढीला या Relax करती है। इस प्रकार भाषण की दो प्रधान मासपेशिया है। एक तो यही Thyro-arytenodeus, दूसरी इसकी विरोधी Crico-thyroid muscle। इसके Contraction मे आवाज मध्यम होती, Cricothyroid के Contraction से आवाज ऊची होती है।

Larynx की Ligaments — ये दो प्रकार की हैं (१) Extrinsic वे है जो Larynx को आसपास के अवयवो से जोडती है, (२) Intrinsic—जो Larynx की Cartilages को परस्पर जोडती हैं।

Thyrohyoid ligament जो Thyroid को Hyoid अस्थि से जोडती है। इसका बीच का भाग Membrane के रूप मे है। इसके दोनो ओर के प्रान्त भाग जो Thyroid के Horns को Hyoid से जोडते है Ligament के वने है। जहा पर ये दोनो भाग मिलते है वही पर Internal Laryngeal Nerve तथा Superior Larygeal artery इस membrane को छेदकर Larynx मे प्रवेश करती है। इसी स्थान पर इसके Anaesthesia के लिये इजेक्शन दिया जाता है।

Intrinsic ligaments — Cricothyroid Ligament—Cricoid तथा Thyroid को जोडती है। Thyroid के Inf horn पर यह Capsular ligament हो जाती है। इस Ligament के अगले पृष्ठ पर एक छोटा सा Lymph-gland है। Vocal Cords मे कैन्सर के होने पर यह Gland कठोर हो जाता है। इसी Ligament मे से हम अनायास Subglottis प्रदेश मे प्रवेश पा सकते हैं। (२) Crico-arytenoid-ligament —Cricoid के पिछले भाग और उस पर पडे Arytenoid Bone के Base मे के जोड पर एक कैपमूल सा बनता है इसी के कारण यह जोड चेष्टाशील Mobile हो गया है। (३) Thyro-epiglottic ligament—Epiglottis को Thyroid से जोडने वाली एक Median fibrous रेखा को Thyroepiglottic ligament कहते है। (४) Vestibular ligament Larynx के False Vocal cord (Vestibular fold) के Fibrous सूत्रो को Vestibular ligament कहते हैं (५) कण्ठ के Vocal Fold मे जो पीला, लचीला Connective tissue है उसे Vocal ligament कहते हैं। यह Cord की मासपेशी के साथ ही गति करती है। वस्तुत यह Vocal fold का Epimesium, गिलाफ या Sheath है।

Larynx की **रक्त वाहिनिया** — धमनियो की तीन जोडिया इसे रक्त प्रदान करती है। (१) Superior Laryngeal artery जो Superior thyroid artery (Ex Carotid की शाखा) Hyoid के Superior horn के सामने Thyrohyoid membrane को छेद कर Larynx मे प्रवेश करती है। इसके साथ-साथ Superior laryngeal Nerve भी प्रवेश करती है। (२) Cricothyroid artery जो Superior thyroid की शाखा है, दो शाखाओ मे विभक्त हो जाती है। एक शाखा Cricothyroid membrane मे से अन्दर चली जाती है। दूसरी शाखा अपने से दूसरी ओर की अपनी तरह की शाखा के साथ सयोग (Anastomose) करती है। (३) Inferior Laryngeal artery जो Superior thyroid की शाखा है Cricothyroid articulation के पीछे Larynx मे प्रवेश करती है और Vocal folds को रक्त प्रदान करती है। इसके साथ Recurrent Laryngeal Nerve भी प्रवेश करती है। Veins भी Superior, middle, Inferior Laryngeal नाम की इन्ही Arteries के साथ क्रमश Upper, Middle, Inferior Thyroid veins मे रक्त वापिस ले जाती है।

Larynx की Lymphatics — Glottis से ऊपर की Lymph, Superior Lymphatic artery के साथ साथ आने वाली Lymphatics के द्वारा Thyrohyoid membrane मे से गुजर कर Superior deep cervical glands मे आती है। जहा Common Carotid artery विभक्त होती है वहा Internal Jugular Vein के ऊपर ये Glands हैं।

Glottis से नीचे की Lymphatics, Cricotracheal membrane के पीछे की तरफ इकट्ठी होकर वहा, Recurrent Laryngeal Nerve के आसपास विद्यमान glands मे आती है। वहा से Lymph फिर Internal jugular vein पर विद्यमान Glands मे ही आ जाती है।

Vocal Cords मे Lymph vessels नही है इसीलिये Cords का कैन्सर जल्दी से फैलता नही। हा Crico-thyroid membrane पर जो एक छोटा Gland है वह इस कारण से सूज कर कठोर हो सकता है।

Larynx की Nerves **नाडिया** — Larynx की नाडिया (१) Superior laryngeal Nerve, (२) Recurrent laryngeal Nerve (Inferior Laryngeal Nerve) दोनो Vagus की शाखाये हैं, (३) Sympathetic from Thyroid plexus इनमे से Superior Laryngeal की २ शाखाये हो जाती है जिनमे से Internal शाखा Thyroid membrane को छेदकर अन्दर चली जाती और Larynx के Vocal Cords से उपरले भाग के Mucosa को सज्ञा प्रदान करती है। इसकी External शाखा इस Membrane के वाहर वाहर नीचे उतर कर Crico-thyroid muscle को चेष्टा प्रदान करती है अर्थात् वह Motor है। इस शाखा के कुछ Sensory सूत्र Crico-thyroid membrane को छेद कर अन्दर जाते और Cord से नीचे के प्रदेश की Mucosa को सज्ञा प्रदान करते हैं।

Recurrent Laryngeal Nerve — Right Vagus से निकली Recurrent Laryngeal Nerve, Common Carotid artery मे से निकली Subclavian-artery के नीचे से लूप बनाकर Oesophagus और Trachea के साथ साथ ऊपर चढती है और

Inferior Constrictor of the pharynx के नीचे से गुजरकर Crico-thyroid सन्धि स्थान के पीछे से Larynx मे प्रवेश करती है। जबकि बाईं ओर की Recurrent laryngeal Nerve, Aorta के नीचे, Left Vagus मे से निकलकर Vagus के नीचे से लूप बनाकर Oesophagus और Trachea के बीच-बीच मे ऊपर चढती है और Right recurrent laryngeal की तरह ही Larynx मे प्रवेश करती है। दोनों ओर की Recurrent Laryngeal नाडिया Larynx की सारी Intrinsic मासपेशियो को चेष्टा प्रदान करती हैं। हा Crico-thyroid मासपेशी को जैसे ऊपर कहा है Superior laryngeal चेष्टा प्रदान करती है। तथा Cords से नीचे के प्रदेश की Mucosa को प्रवानत यही सज्ञा प्रदान करती है अर्थात् यह Superior laryngeal Nerve के Sensory सूत्रो के साथ सम्बन्ध कायम करती है। इस प्रकार आगे Thyroid Gland है, उसके पीछे Trachea है, उसके पीछे Oesophagus है, इन दोनो के बीच मे दाई ओर दाई Recurrent laryngeal Nerve, बाईं ओर, बाई Recurrent laryngeal Nerve ऊपर चढ़ती हैं।

Larynx की Cavity या अन्दर का प्रदेश —(१) Larynx के ऊपर के भाग को Vestibule कहते हैं। इसकी अगली दीवार लम्बी है Epiglottis के पिछले पृष्ठ से बनी है। बाहर की ओर की दीवारे Aryepiglottic folds के अन्दर के पृष्ठ से बनी हैं। पिछली दीवार जो छोटी है वह Arytenoid Cartilages तथा उनके बीच के प्रदेश या Inter-arytenoid fold से बनी है। Vestibule की निचली सीमा False Cords हैं जो इसकी बाहर की ओर की दीवारो का निचला भाग है। (२) Ventricle —ऊपर False Cord और नीचे True Cord तक के प्रदेश को Ventricle of the Larynx कहते हैं। इसकी छत Vestibular fold (False Vocal Cords) से बनी है। इसका फर्श Vocal fold (Cord) के ऊपर की ओर की ढलान से बना है। True Cords के बीच के अन्तर को Glottis कहते हैं। इसके अगले दो तिहाई भाग के दोनो ओर Vocal folds हैं, पिछले एक तिहाई भाग के दोनो ओर Arytenoid के Vocal Processes तथा Arytenoid Cartilages के अन्दर की ओर के पृष्ठ हैं। बोलते समय यह Glottis बन्द हो जाता है, खाते समय भी बन्द हो जाता है। श्वास लेते समय या गहरे श्वास लेते समय खुल जाता है। Glottis की पिछली दीवार मे बहुत सी Sensory Nerves होती है इसीलिये Larynx मे थोडा विकार भी हो तो खासी अधिक उठती है। Vocal fold (Vocal Cord) आगे की ओर Thyroid Cartilage के Angle से ठीक Vestibular fold के नीचे और कुछ अन्दर की ओर बधी है और एक इंच पीछे चलकर यह Arytenoid Cartilage के Vocal process से बधी है। इसे Vocal fold इसलिये कहते है क्योकि यह Thyro-arytenoid ligament (Vocal ligament) Thyro-arytenoid muscle और ऊपर चढे Epithelium तीनो का एक Fold है।

Glottis के नीचे का Larynx — नीचे की ओर से इस प्रदेश को देखे तो यह एक उलटी रखी पीक या Funnel के समान है। इसका ऊपर का मुख Vocal folds के बीच के तग रास्ते Glottis से बना है, साइडे Cricothyroid ligament से बनी है, अगली दीवार ऊपर Thyroid Cartilage, फिर Cricothyroid membrane, फिर इसके तग भाग की अगली दीवार Cricoid Cartilage से बनी है।

Larynx का कार्य:— (१) फुफुस की रक्षा करना इसका प्रथम कार्य है। कोई बाह्य पदार्थ फुफुस मे नही जा सकता क्योकि एक तो Ary-epiglottic folds दोनो ओर के पासपास आकर रास्ता बन्द कर लेते है, दूसरे Epiglottis इन Folds के ऊपर आ जाता है, तीसरे Vestibular folds भी सकुचित होकर पास पास आ जाते है, चौथे Vocal folds भी Contract करके पासपास आ जाते है एव रास्ता बन्द कर लेते है, पाचवे Larynx मे Cough-reflex होता है जिससे कोई चीज इसमे से नीचे उतर नही सकती। आहार पेय आदि के लेते समय जब उसे निगला जाता है तब Inferior Constrictor of the Pharynx तथा Palato-pharyngeus के द्वारा Larynx ऊपर जीभ की तरफ उठ जाता है जिससे भोजन Oesophagus की ओर धकेल दिया जाता है।

जब भी कोई यत्न (Straining) का कार्य किया जाता है अर्थात् भार उठाया जाता है, किसी भारी वस्तु को धकेला जाता या बलपूर्वक मलत्याग किया जाता है Larynx के Vestibular folds को बन्द करके Lungs मे हवा भर जाने पर ही किया जा सकता है। इस प्रकार Larynx सब यत्नो मे सहायता करता है।

भाषण Phonation का कार्य भी Larynx के द्वारा सम्पन्न होता है। एतदर्थ एक तो धौंकनी के समान हवा का झोंका होना चाहिये जो कि फुफ्फुस मे से ऊपर आता है। दूसरे उस हवा मे कंपन या Vibrations होने चाहिये जो Vocal folds के द्वारा उत्पन्न होते है। इस प्रकार आवाज कंठ या Larnynx मे उत्पन्न होती है। उस आवाज मे स्पष्टता लाने, उसे Articulate Speech बनाने का कार्य ओष्ठ, जिह्वा तथा तालु करते है। आवाज को बदलने, ऊंचा नीचा करने के लिये Vocal folds की आकृति और तनाव Tension को बदलना होता है। यह कार्य इस fold को बनाने वाली Thyro-arytenoid muscle, अपने न्यूनाधिक Contraction के द्वारा सम्पन्न करती है। Vocal folds मे तनाव या Tension के बढने पर आवाज ऊंची होती है इसलिए उसमे इस तनाव को बढाने के लिये Cricothyroid muscle कठ मे रहती है। इस प्रकार भाषण, गायन आदि का कार्य कण्ठ की Thyro-arytenoid तथा Crico-thyroid इन दो मास-पेशियो के सतुलित सकोच या Balanced contraction पर निर्भर है (Thyro-aretynoid तो Vocal folds को Relax करती हे जबकि Crico-thyroid उन्हे तनाती या Tight करती है)। स्त्रियो तथा बच्चो मे एक तो Larynx छोटा होता, दूसरे उनके अन्दर Vocal folds छोटे तथा पतले होते है। इसलिये उनकी आवाज कुछ तीखी Higher pitched होती है।

Diseases of the Larynx—कण्ठ रोग

Laryngitis — प्राय प्रतिश्याय Catarrh या अतिभाषण या किसी विक्षोभक गैस के दुष्प्रभाव से कण्ठ मे शोथ होता है। प्रतिश्याय से हो तो शरीर मे शिथिलता (Malaise) और मन्द ज्वर के लक्षण होते हैं। कठशोथ हो तो आवाज कुछ बैठ जाती, निगलने मे भी कुछ कष्ट प्रतीत होता तथा सूखी खासी भी होती है।

दो वर्ष के बालक मे Laryngitis हो तो बहुत सभवत Glottis मे Spasm हो जाने से जो वास्तव मे Tetanic होता हे, श्वासरोध Dyspnoea का भयकर लक्षण हो जाता हे। इसे Stridulous Laryngitis कहते है। इसमे श्वास-प्रश्वास आवाज के साथ होते है, इसलिए इसे Laryngeal Stridor भी कहते है। परीक्षा करने पर Larynx मे Hyperaemia और Oedema के लक्षण होते है। इस रोग के होने पर रोगी का बोलना बन्द करना चाहिये। गर्म कपडा लेकर कुछ काल पूर्ण विश्राम लेना चाहिये। हलका रेचन उपयोगी होता है। Ampicillin 250 मिग्रि के कैपसूल लेना चाहिये। Manthol या Tr Benzoinco की भाप लेने से भी आराम मिलता है।

Chronic Laryngitis — नासारोग पुराना हो तो भी चिरस्थायी कण्ठशोथ हो सकता है। इस रोग मे आवाज बैठी होती है, कण्ठ मे खरखरी लगी रहती है, रोगी कण्ठ साफ करने की चेष्टा करता रहता है, शुष्क सी खासी उठती रहती है जिसमे कभी कभी बल्गम की टुकडी निकलती है। इस रोग के २-३ भेद पाये जाते हैं (१) Hyperaemic laryngitis—इसमे कण्ठ के अन्दर लालिमा बढी होती है। (२) Hypertrophic laryngitis—इसमे लालिमा के अतिरिक्त Vestibular तथा Vocal folds मे मोटापन भी दिखाई पडता है। (३) Atrophic Laryngitis— इसमे कण्ठ के अन्दर क्षीणता, शुष्कता के लक्षण विशेषत Vertibular folds मे दिखाई पडते हैं। इस रोग मे नासिका तथा Pharynx मे भी शुष्कता के लक्षण होते है। इस रोग के लिये बोलना कम करना चाहिये। धूल, धूप मे बचना चाहिये। Menthol Alcohol Solu, Tr Benzoin co आदि की भाप लेनी चाहिये। Tonsils नाक आदि मे कही Sepsis हो तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। Atrophic Laryngitis के लिये Creozote की भाप लाभदायक रहती है।

Tubercular Laryngitis क्षय जनित कठ शोथ — अब यह रोग बहुत कम होता है। २०-४० वर्ष की आयु मे होता है। कठ मे सक्रमण फुफ्फुस मे से आता है। कठ का पिछला भाग इसमे अधिक ग्रस्त होता हे अर्थात् Arytenoids पर इन दोनो के बीच के प्रदेश पर vocal cords, false cords तथा Epiglottis पर Nodules विशेष निकलते है। आवाज बैठ जाने, द्रवो के निगलने मे दर्द, खुश्क खासी उठने, विशेषत रात को, तथा कृशता इसके लक्षण होते है। बाद मे इन Tubercles मे व्रण भाव हो जाने पर उपर्युक्त लक्षण तीव्र हो जाते है। क्षय रोग की सामान्य चिकित्सा ही इसकी चिकित्सा है।

Larynx का कैन्सर Malignant Tumour of the Larynx — यह प्राय Squamous cell (Scaleslike cells) Carcinoma होता हे। यह अधिकतर Supra glottic होता है अर्थात् Epiglottis के पिछले पृष्ठ, Aryepiglottic folds, Arytenoids, Ventricular

folds पर होता है। Glottic कैन्सर Vocal cords पर होता है। Subglottic प्रदेश की दीवार पर होने वाले को Subglottic कैन्सर कहते हैं।

Malignant tumour का श्रेणीकरण Classification — Primary tumour को T लिखते है। ट्यूमर कंठ के एक ही स्थान मे सीमित हो तो उसे T लिखते हैं। यदि ट्यूमर कंठ के एक अवयव को पूरी तरह घेरे हो पर बाहर न गया हो तो उसे T_2 लिखते हैं। यदि ट्यूमर कंठ में फैला हो पर बाहर न गया हो तो उसे T_3 लिखते है। यदि ट्यूमर कंठ से बाहर भी फैल गया हो तो उसे T_4 लिखते है।

Lymph-nodes को 'N' मे लिखा जाता है। अब यदि कंठ मे से यह रोग बाहर किसी Gland मे न गया हो तो उसे N_0 कहकर लिखते है। यदि यह उसी ओर के Lymph gland मे फैल चुका हो तो और वह Gland mobile चेष्टाशील हो तो उसे N_1 लिखते हैं। यदि Lymph glands दोनो ओर फूल गये हो या Mobile हो तो उसे N_2 लिखते हैं। यदि एक ओर या दोनो ओर Glands स्थिर हो गये हो तो उसे N_3 लिखते है।

यदि कैन्सर का प्रसरण Metastasis हो चुका हो तो उसे M लिखते हैं। यदि यह न हुआ हो तो उसे M_0 लिखते हैं। यदि प्रसरण हो गया हो तो उसे M_1 लिखते हैं। इस प्रकार यदि $T_1 N_0$, M_0 हो तो इसे प्रथम अवस्था ($Stage_1$) का कैन्सर कहते है। यदि T_2 N_0 M_0 हो या T_3, N_0, M_0, हो तो इसे कंठ कैसर की द्वितीय अवस्था कहते है। यदि T_1, N_1 M_0 हो या T_1, N_1 M_0 हो या $T_3 N_1 M_0$ हो तो इसे कंठ कैन्सर की तीसरी अवस्था (Third stage) कहते हैं। यदि T_4, N_1, M_0, हो या T_1, N_2, M_0 हो, या T_2 N_2, M_0 हो या T_3, N_2, M_0 हो या T_3 N_2 M_0 हो या T_4, N_2, M_0 हो, उसे चतुर्थ अवस्था Fourth Stage कहते है।

Lymph Nodes के द्वारा प्रसरण Supraglottic कैन्सर मे बहुत अधिक होता है। Glottic कैन्सर मे Lymph Nodes द्वारा प्रसरण बहुत ही कम पाया जाता है। Subglottic ट्यूमर का Lymph Nodes द्वारा प्रसरण कम होता है। लगभग १५ प्र श रोगियो मे होता है।

लक्षण—Supra-glottic ट्यूमर हो तो बोलने मे कुछ कठिनता की प्रतीति होती है, आवाज भारी हो जाती है, सूखी, सूखी खासी उठती है तथा कभी कभी बलगम भी झडती है। Glottis मे कैन्सर हुआ हो तो आवाज बैठ जाती है। यह लक्षण १५ दिन से ज्यादा रहे तो कंठ की जाच होनी चाहिये। Subglottic ट्यूमर हो तो भी आवाज बदल जाती है। थोडे श्रम से श्वास चढ जाता है।

रोग के बढ जाने पर निगरण काठिन्य—Dysphagia, cervical glands का फूलना, श्वास दौर्गन्ध्य के लक्षण Supra-glottic ट्यूमर मे हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त थकावट, क्षुधानाश, कृशता के लक्षण भी हो जाते हैं।

भेदक लक्षण—क्षय जनित रोग मे प्रारभ मे ही कंठ मे वेदना होती है, कैन्सर मे पिछली अवस्था मे होती है। कृशता भी क्षय रोग मे प्रारभ मे ही होती है कैन्सर मे बाद मे होती है। क्षयजनित रोग मे आवाज शुरू मे ही निर्बल हो जाती है, कैन्सर मे बाद मे कमजोर होती है। Dysphagia निगरण काठिन्य का लक्षण क्षय रोग मे पहले ही हो जाता है विशेषत जल, दूध आदि के पीने मे होता है। कैन्सर मे बाद मे होता है और ठोस पदार्थों के लिये होता है। क्षय मे कुछ तापमान शुरू मे भी होता है। कैन्सर मे बाद मे होता है।

Oesophagus भोजननाली के रोग —

भोजन नाली Cricoid cartilage से शुरू करके अर्थात् छटी Cervical vertebra से लेकर नीचे ११वी Dorsal vertebra तक की १० इच लम्बी एक मासमय पतली नाली है। इसकी सबसे बाहर की तह मास की Muscular है। अन्दर की ओर तह Mucosa की है। इन दोनो के बीच Submucous तह है तथा यह नाली आसपास के अवयवो के साथ एक Fibrofatty Tissue के द्वारा बधी हुई है। यह ऊपर Farynx के साथ एक हुई हुई है। इसके ग्रीवा सबधी या Cervical भाग को रक्त Inferior Thyroid artery (Aorta की शाखा) से आता है। इसके Thoracic छाती के अन्दर के भाग को Descending aorta से, इसके Abdominal भाग को Left Gastric artery (Caeliac की शाखा) से रक्त मिलता है।

Oesophagus की नाडिया.— Vagus (Parasympathetic) तथा Cervical Sympathetic की शाखाये इसमे आती है। Oesophagus नाली के सकुचित भाग — Constrictions भोजन नाली अपने आरभिक भाग मे जो छटी Cervical vertebra के सामने है या ऊपर के Incisor दातो से ६ इञ्च नीचे की तरफ है, सकुचित होती है, (Cricoid-

line) इसके निचले सिरे पर जहा यह प्रणाली Diaphragm मे से गुजरती है और जहा यह ऊपर के Incisor दातो से १६ इञ्च के लगभग नीचे है और जहा यह १०वे Dorsal Vertebra के लैवल पर हे यह सकुचित होती हे। (Sternoxyphoid-line) इसके एक Vertebra के नीचे इसका निम्न छिद्र हे जिसे Cardiac Orifice कहते है और जो Stomach मे खुलता है।

Oesophagus के रोग — Dysphagia निगरण काठिन्य जब भोजन का ग्रास मुख मे से Pharynx मे पहुचता और वहा उसकी पिछली दीवार मे स्पर्श करता है तो उस स्पर्श से वहा एक Reflex प्रतिक्षिप्त, चेष्टा उत्पन्न होती है जिसमे सज्ञा या Sensation या ग्रास के आने की प्रतीति पाचवी, सातवी, नौवी, दसवी, ग्यारहवी मस्तिष्कनाडियो के सूत्रो द्वारा ऊपर Reflex center मे जाती है तथा वहा से Efferent Neurons द्वारा चेष्टा Pharynx Oesophagus के मास के Longitudinal तथा Circular सूत्रो मे आती है। यह Reflex चेष्टा Sympathetic Nerve fibres के द्वारा जिन्हे Auerbach's plexus कहते हे Oesophagus मे आती है। इस Reflex के द्वारा उसमे Peristaltic (Peri-around, Stalsis Contraction) क्रिया उत्पन्न हो जाती है अर्थात् ग्रास के आने से Oesophagus की प्रणाली फैलती है। इस प्रदेश का अगला भाग शिथिल Relaxed हो जाता है। इस ग्रास के पिछली ओर के भाग मे Contraction या सकोच उत्पन्न हो जाता है जिससे ग्रास आगे की ओर को खिसकता जाता हे। इस Peristalsis की क्रिया मे विकृति आ जाये अर्थात् या तो इस Reflex arc मे कोई विकृति आ जाये या ग्रास के मार्ग मे किसी प्रकार का अवरोधक कारण उत्पन्न हो जाये जैसे कोई रसौली उत्पन्न हो जाये तो निगरण काठिन्य-Dysphagia-का रोग उत्पन्न हो जाता हे। इनमे से पहली अवस्था मे ठोस तथा द्रव दोनो प्रकार के आहारो मे अवरोध होता है। दूसरी अवस्था मे केवल ठोस आहारो मे ही पहले अवरोध होता है।

भोजन का ग्रास मुख मे से जब Pharynx मे प्रवेश करता है तो वहा उसके स्पर्श से जो Reflex उत्पन्न होता है उसके द्वारा ऊपर के छिद्र मुख, नासिका, कण्ठ Larynx तीनो के द्वार वन्द हो जाते है तथा Pharynx और Oesophagus के वीच का द्वार (Pharyngo Oesophageal Sphincter) जो हमेशा वन्द रहता है खुल जाता है। (यह द्वार Inferior Constrictor muscle के निचले भाग Crico-pharyngeus द्वारा वन्द रहता है)। इन दो Stages के वाद तीसरी Stage, Peristalsis की क्रिया होकर आहार का ग्रास Oesophagus के निचले सिरे तक पहुच जाता है जहा इस प्रणाली का निम्न द्वार जो सदा वन्द रहता है अव वह खुल जाता है और ग्रास आमाशय मे पहुच जाता है। इस प्रकार इन चार Stages मे से गुजर कर आहार, पेय आदि पदार्थ आमाशय मे पहुचते है।

भोजन प्रणाली के ऊपर के भाग मे अवरोध हो तो उसे Pharyngo Oesophageal Dysphagia कहते है। यह रोग Plummer-Vinson Syndrome मे जो स्त्रियो मे होता है, होता है। यह रोग इस भाग मे Carcinoma के होने से भी जैसा कि स्त्रियो मे होता है। वडी आयु के पुरुषो मे यहा छोटा Pharyngeal pouch भी कई वार होता है उसके कारण भी होता है।

Oesophagus के मध्यम भाग मे यह रोग हमेशा कैन्सर के कारण होता है। इसके निम्न भाग मे Dysphagia का रोग युवको युवतियो मे Cardiospasm (Achalasia) के कारण तथा ५०–७० की आयु मे Chronic-peptic Oesophagitis and Oesophagial ulcer के कारण तथा मध्यम आयु की स्त्रियो मे Oesophageal Hiatus Hernia के कारण होता है, मध्यम आयु से ऊपर की आयु के पुरुषो मे Diffuse Oesophageal spasm के कारण तथा ३०% अवस्थाओ मे वडी आयु के पुरुषो मे कैन्सर भी इसी भाग मे होता है।

Oesophageal Hiatus Hernia—Diaphragmatic Hernia, Hiatus Hernia — आमाशय वृद्धि—

जब भोजन प्रणाली का Diaphragm मे से गुजरने का छिद्र ढीला हो जाता है जिससे आमाशय का ऊपर का भाग इस छिद्र मे से Thorax या छाती मे खिसक जाता है तब उसे Hiatus (छिद्र) Hernia कहते है। यदि कोष्ठ मे प्रेशर ज्यादा हो, कुछ वडी आयु के कारण भोजन नाली का निम्न छिद्र Sphincter निर्वल हो तो ऐसा हो सकता है। शरीर मे मेदोवृद्धि Obesity हो, गर्भ स्थिति वार वार हो, खासी रहती हो इनसे Intra abdominal प्रेशर वढता हे। यह रोग मध्यम आयु या वडी आयु की स्थूलकाय स्त्रियो मे विशेष होता है।

ऐसी अवस्था मे यदि पेट मे Acidity ज्यादा हो तो पेट का एसिड ऊपर भोजननाली मे भी आ जाता है जिसकी तीव्रता से उसके निचले भाग मे शोथ हो जाता है जिसके कारण छाती मे जलन, अम्लपित्त के लक्षण होते है इसे Oesophagitis due to reflex of gastric juice कहते हैं। यदि भोजन नाली के निचले भाग मे व्रण सा भी हो जाये तो उरोस्थि Sternum के पीछे दर्द होने का लक्षण भी होता है जो ऊपर गदन, हनु, या कन्धो की तरफ जाता लगता है। आगे की ओर झुक कर काम करने पर तथा कमर के भार लेटने पर यह जलन तथा शूल का लक्षण विशेष होता है। उठकर बैठ जाने या खडा हो जाने से या सोडा खा लेने से लक्षण शान्त हो जाते हैं। इस रोग का विशेष चिन्ह विशेष स्थिति मे दर्द और जलन का होना तथा स्थिति बदल देने से उनका हट जाना है। ऐसे रोगियो मे Gastric या Duodenal ulcer भी होता है। इस रोग मे होने वाले शूल का सन्देह Angia से हो सकता है पर उससे इसका भेद करना कठिन नही। इस रोग का कष्ट Aluminium hydroxide-gel ८ मिलि लिटर (२ चमच) के जल मे मिलाकर घूट घूट करके उसके पीने से ठीक हो जाता है। या इसी औषध की गोलियो के चूसने से ठीक हो जाता है। रुग्णा को चाहिये वह Intra abdominal pressure को कम करे, स्थूलता को घटाये, तथा चारपाई के सिर की तरफ के भाग को पर्याप्त ऊचा रखे ताकि पेट ऊपर की ओर न खिसके।

Chronic Peptic Oesophagitis तथा Oesophageal ulcer, **चिरस्थायी भोजन प्रणाली शोथ तथा भोजन प्रणाली व्रण** — जैसे आमाशय तथा ग्रहण्याशय मे व्रण होता है वैसे ही भोजन प्रणाली के निम्न भाग मे भी व्रण हो सकता है। यह व्रण ५०-७० वर्ष की आयु के पुरुषो मे विशेष होता है। भोजन प्रणाली के इस भाग मे Acid gastric juice भी पाया जाता है जो इस नाली के निचले Sphincter से ऊपर के प्रदेश मे सचित होता रहता है। इसके वहा रहने से वहा की Epithelium खाई जाती है। परिणामत वहा आमाशय व्रण की तरह ही भोजन नाली व्रण उत्पन्न हो जाता है। यह व्रण वहा Hiatus Hernia के साथ और उसके बिना भी हो सकता है अर्थात् Oesophagitis तथा पेट का Hernia दोनो साथ भी हो सकते हैं। प्रारम्भ मे इस नाली के निचले, २ इच भाग मे शोथ ही रहता है अर्थात् कुछ लाली और उभार के लक्षण ही वहा होते है। विक्षोभक आहारो और पेयो के लेने पर तीव्र उरोदाह और दर्द होने के लक्षण होते हैं। परन्तु बाद मे वहा Fibrosis की प्रक्रिया होने लगती है जिससे वहा Stricture भी हो सकता है। अर्थात् पहले तो आदमी को व्रण के दाह दर्द आदि लक्षण होते, बाद मे मार्गावरोध Stricture Dysphagia का लक्षण भी हो जाता है। वहा भोजन रुक कर तुरन्त बाहर आ जाता है अर्थात Regurgitation हो जाता है। Alkalis से दर्द शान्त होता है तथा द्रवाहार से Regurgitation बन्द हो जाता है। मल मे Occult Blood के निकलने से पाण्डुता का लक्षण होता है। प्रारम्भ मे इस रोग का प्रधान लक्षण दर्द या Pain का होता है। बाद मे इसके प्रधान लक्षण Dysphagia तथा Regurgitation के हो जाते है। इस रोग के लिये Aluminium hydroxide mixture की ४ मिलि लिटर मात्रा को २ औन्स जल मे मिला कर दिन मे थोडी-थोडी देर बाद थोडा-थोडा पिलाना चाहिये।

Diffuse Oesophageal Spasm—**भोजन प्रणाली सकोच** —

बडी आयु के पुरुषो मे कभी कभी उनकी भोजन प्रणाली के निम्न भाग मे Peristalsis क्रिया विकृत हो जाती है अर्थात् उसके भिन्न २ भागो मे होने वाला सकोच कर्म Contraction अनियमित रूप से होता है जिससे रोगी को Sternum से पीछे भोजन रुकता हुआ प्रतीत होता है इसे Oesophageal Spasm का रोग कहते है। आहार के रुकने से दर्द का लक्षण भी हो सकता है। ऐसा ठोस खाना खाने से होता है द्रव भोजन से नही। इस रोग से रोगी को खाने मे असुविधा तो रहती है पर अधिक कष्ट नही होता। भोजन से आध घटा पहले किसी Anti-cholinergic औषधि जैसे Probanthine १५ मिलि गोली के लेने से Dysphagia मे आराम रहता है।

Hypopharyngeal diverticulum, Pharynx के **निचले भाग में थैली** (Pouch) —

Pharynx के निचले सिरे तथा Oesophagus के प्रारम्भ मे Cricoid cartilage के लैवल पर विद्यमान Inferior constrictor of the Pharynx मासपेशी के जो लेटी हुई दिशा मे (Transverse) सूत्र है तथा जो Crico-pharyngeus muscle कहाते हैं वे Pharyngo Oesophageal Sphincter का काम देते है। इस माम पेशी के द्वारा Oesophagus का ऊपर का द्वार हमेशा बन्द रहता है। भोजन का ग्रास आने पर

Peristalsis की क्रिया होने पर यह खुल जाता है, तथा ग्रास नीचे चला जाता है। अब बड़ी उमर के व्यक्तियों में कभी-कभी Pharynx में Peristalsis क्रिया विकृत हो जाती है अर्थात् Sympathetic Nerves तथा मास में सहयोग या Co-ordination ठीक नहीं रहता। आहार के ग्रास के आने पर भी यह द्वार नहीं खुलता। तब इस द्वार के ऊपर की दीवार पर अर्थात् Pharynx के निचले सिरे की Mucous membrane तथा Submucous membrane से बनी दीवार पर बोझ पडता है और वह एक तरफ को खिसक जाती एवं बाहर की तरफ हो जाती है अर्थात् उसमें Evagination या Protrusion हो जाता है। क्योंकि इस स्थान पर Inferior Constrictor muscle के निचले Transverse सूत्रों और ऊपर के Oblique सूत्रों में थोडा सा अन्तर या Gap भी रहता है इसलिये यहा Pharynx में Evagination का होना सुगम भी है। इस प्रकार Pharynx की एक ओर की दीवार के एक तरफ ढुलक जाने से वहा एक छोटी सी थैली बन जाती है जिसमें कुछ आहार रुक जाता है तथा जिसके कारण Oesophagus का प्रारम्भिक भाग दब सा जाता है। परिणामत रोगी को क्रमश बढते हुए Dysphagia की शिकायत रहती है जो ठोस तथा द्रव दोनों प्रकार के भोजनों के लेते समय प्रतीत होती है। रोगी को ऊपर ऊपर गले के समीप ही लिया हुआ आहार रुकता प्रतीत होता है जिसे जल से नीचे धकेलना पडता है। इस थैली का दबाव सामने की ओर Trachea पर पडने से खासी भी उठने लगती है तथा Dyspnoea की शिकायत भी हो जाती है। थैली छोटी ही हो तो इस रोग की चिकित्सा की कोई आवश्यकता नहीं। थैली बडी हो तो केवल शल्यकर्म द्वारा ही लाभ होता है।

Cancer of the Oesophagus—**भोजन प्रणाली का कैन्सर** ससार के जो बडे-बडे ५ घातक कैन्सर हैं उनमें से एक भोजन प्रणाली का कैन्सर भी है। १०० कैन्सर रोगियों में १० में यह कैन्सर मिलता है। महास्रोतस, Gastro-intestinal Cancers में से ३५% में यह पाया जाता है। यह भोजन प्रणाली के Mucosa के सेलों से बना होता है अर्थात् Epithelioma होता है एवं Squamous Cells से बना होता है यद्यपि इन सेलों का कार्य मूल सेलों से विभिन्न होता है।

भोजन प्रणाली के ३ भाग किये जाये अर्थात् Aorta के Arch से ऊपर का एक भाग, दूसरा पुफुस Lungs के Roots से निचला भाग, तब इस प्रणाली के बिचले भाग में ५०% कैन्सर मिलते हैं। निचले तिहाई में ३०% तथा ऊपरले भाग में २०% के लगभग कैन्सर मिलते हैं। यह कैन्सर पुरुषों में ज्यादा होता है। पर ऊपर के भाग का कैन्सर अर्थात् Cricoid Cartilage के पीछे की ओर होने वाला स्त्रियों में ज्यादा होता है।

भोजन प्रणाली की अन्दर की झिल्ली में या तो यह Papilla के समूह के रूप में उत्पन्न होता है जिसके कारण इस प्रणाली का मार्ग तग हो जाता है, या यह एक Scirrhous tumour (कठोरगाठ) या Fibrous Tissue के एक ढेर के रूप में उत्पन्न होता है जिससे भी यह नाली तग हो जाती है या यह एक व्रण के रूप में उत्पन्न होता है जिसके चारों ओर का अवयव बडा कठोर होता है।

इस कैंसर का प्रसरण एक तो ऊपर नीचे की दिशा में (Longitudinal), दूसरा प्रणाली के अन्दर गोलाकार (Transverse) दिशा में होता है। दूसरा इसका प्रसरण Lymphatics के द्वारा होता है। प्रणाली के ऊपर के भाग में कैन्सर हो तो उसके सेलों का प्रसरण पहले Cervical lymph glands में होता है। Recurrent Laryngeal Nerve के आसपास उनका प्रसरण होता है। प्रणाली के मध्य भाग के कैन्सर के सेलों का प्रसरण Trachea के तथा Roots of the lungs के आसपास के Lymph-glands में होता है, प्रणाली के निम्न भाग में कैन्सर हो तो उसके सेलों का प्रसरण आमाशय के Lesser curvature के आसपास के Glands में तथा Caeliac axis के तथा यकृत के आसपास के Glands में होता है। रक्त के द्वारा इसके सेलों का प्रसरण पुफुस तथा यकृत में होता है।

लक्षण—निगरण काठिन्य या Dysphagia जो आरम्भ होकर धीरे-धीरे बढता जाता है इसका प्रधान लक्षण है। पहले ठोस भोजन कुछ अडकर नीचे उतरता है फिर शीघ्र ही उसके उतारने के लिये जल पीना पडता है कि फिर २ मास तक उसका नीचे उतरना मुश्किल हो जाता है। ६-७ मास तक ठोस भोजन का नीचे उतरना बन्द हो जाता है। रोगी को केवल द्रव आहार पर ही रहना पडता है और बाद में द्रव आहार का भी उतरना कठिन हो जाता है। इस प्रकार जल्दी २ बढने वाला Dysphagia इसका प्रधान लक्षण है।

Sternum के पीछे दर्द या वेदना का लक्षण Dysphagia आरभ होने के १-२ मास बाद शुरू होता है यह दर्द स्तम्भ या Spasmodic किस्म का होता है।

निगलते समय होता है, ग्रास के उतर जाने पर वन्द हो जाता है। वाद में दर्द कमर मे भी होने लगता है जो भोजन प्रणाली के पीछे की ओर इसके फैल जाने या Para-oesophageal infiltration के कारण होता है तव इस रोग की चिकित्सा से कोई लाभ नही हो सकता।

इस रोग का तीसरा लक्षण Regurgitation है जो Dysphagia के २ मास या ३ मास वाद आरम्भ हो जाता है। इसमे खाने के वाद खाया हुआ आहार उसी तरह वाहर आ जाता है। उसमे Saliva और होता है। हो सकता है वह कुछ रक्त मिश्रित भी हो।

इन लक्षणो के अतिरिक्त Sternum के पीछे रोगी को कुछ विचित्र सी प्रतीति होती रहती है जो इस प्रणाली मे Spasm के होने के कारण होती है। नाली मे द्रव के जमा होते रहने से श्वास दौर्गन्ध्य, दु स्वाद और पिपासा के लक्षण भी होते है, प्रणाली म मार्गावरोध के कारण खाने पर खासी के वेग भी होते हैं वाद मे Broncho pulmonary प्रदेश मे शोथ के होने से ज्वर भी होने लगता है। पाण्डुता का लक्षण भी हो जाता है। रक्त द्वारा यकृत् मे रोग हो जाये तो कामला हो जाती है। Phrenic Nerve तथा Diaphragm मे इसके सेलो का प्रसरण हो जाये तो हिचकी, जो अच्छी नही होती, हो जाती है। Trachea और Bronchi मे इस रोग का प्रसरण हो जाये तो खासी हो जाती है। Recurrent laryngeal Nerve पर दुष्प्रभाव हो जाये तो आवाज वैठ जाती है। ग्रीवा मे Clavicle के अन्दर के सिरे के ऊपर तथा Lower jaw के नीचे कठोर ग्रन्थिया हाथ को लगती है। कैन्सर निचले भाग मे हो तो Abdominal glands फूले हुए हाथ को लगते है। १ वर्ष के अन्त मे प्राय Broncho pneumonia से मृत्यु हो जाती है।

इस रोग का भेद एक तो Peptic oesophagitis मे उत्पन्न Benign Stricture मे करना चाहिये। Roentgenography मे यह भेद हो जाता है। दूसरे Cardiospasm (Achalasia) रोग से इसका भेद करे। यह रोग मध्यम आयु से पहले होता है। इसमे भोजन के ग्रास के आने पर भी Cardiac Sphincter खुलता नही, वन्द ही रहता है। इसमे Autonomic Neuromuscular क्रिया या Peristalsis कर्म विकृत होता है जिससे भोजन प्रणाली का निम्न छिद्र (Cardiac Sphincter) ढीला नही होता, वन्द ही रहता है। इसलिये इस रोग को Achalasia (Chalasia—Relaxation) भी कहते है। यह रोग दीर्घकाल स्थायी है इसलिए इसमे कैन्सर का भ्रम नही होना चाहिये।

आयुर्वेद में —

(क) मुखपाक रोग —मुख में स्फोट शूलयुक्त हो वात प्रधान, दाहरक्तवर्ण प्रधान हो तो पैत्तिक और सवर्ण एव कण्डूयुक्त हो तो वे कफ प्रधान होते हैं। इनकी सामान्य चिकित्सोपयोगी औषधिया दी जाती हैं :—

(१) जाति पत्रादि क्वाथ (यो. र., भा प्र, वै. जी) चमेली पत्र, त्रिफला, दारूहल्दी, गिलोय, धमासा समभाग क्वाथ में मधु मिलाकर कुल्ले करायें।

(२) पञ्चपल्लव क्वाथ (भा. प्र.) पटोल, नीमपत्र तथा जामुन, आम, चमेली तीनो के पत्ते मिला क्वाथ। कुल्ले करायें।

(३) दार्व्यादिगण्डूष (यो. र.) दारु हल्दी, मुलैठी, हरड, चमेलीपत्र समभाग को क्वाथ कर मधु मिलाकर कुल्ले करें। या केवल दारुहल्दी क्वाथ में मधु मिला (भा प्र.) कर कुल्ले करायें।

(४) पटोलादि क्वाथ, (यो र) पटोल, त्रिफला, सोठ, इन्द्रायण, त्रायमाण, कटुकी, दोनो हल्दी, गिलोय समभाग क्वाथ पिलायें। इसमें मधु मिला सकते हैं। या केवल त्रिफला चूर्ण दें।

(क) सप्तच्छदादिक्वाथ (भा. प्र) सप्तच्छद, खस, पटोल, हरड, मोथा, कटुकी, मुलैठी, चन्दन लाल, अमलतास समभाग क्वाथ पिलायें।

(ख) गलशोथ तथा टान्सिल शोथ (गलशुण्डी)—ये दोनो रोग कफ प्रकोपजनित या कफ पित्त प्रकोप जनित हो सकते हैं। सवर्ण शोथ कफजनित, पूयभाव भी कुछ हो तो वह कफपित्त प्रकोपजनित होता है। इनकी चिकित्सा के उपयोगी प्रयोग दिये जाते हैं।

(१) खदिरादिगुटी (यो र) खदिरसार ४, जातिफल, ककोल, कपूर, सुपारी, १-१ भाग। गोली वनायें। मुख मे रखें।

(२) खदिरादिगुटी वृहत् (यो र) खैर की लकडी, काकडासिगी, पुष्कर मूल, कायफल, भारगी, हरड, त्रिकटु, अतीस, लौंग, कालाजीरा, धमासा, गिलोय, कटैली, वहेडा २½-२½ तोला। कत्था सवके समान मिलाकर इसको अनार के छिलके, कीकर की छाल, खैर छाल, अदरक के रस, वासा के स्वरस की एक एक भावना दें। इसकी गोलियां वना कर मुख में रखें।

(३) तेजोवत्यादि गुटी —(वृ यो त) मालकगनी, दारुहल्दी, रसौंत, पिप्पली, यवक्षार, पाठा, समभाग, मधु से गोलिया वनायें। मुख में रखें।

(४) लवगादिचूर्ण (शा. ध. स) लौंग, ककोल, खस, चन्दन सफेद, तगर, नीलोफर, जीरा सफेद, इलायची छोटी, अगर, दालचीनी, नागकेसर, पिप्पली, सोठ, जटामासी, मोथा, अनन्तमूल, जायफल, वशलोचन, १-१ भाग। मिश्री ८ भाग। मधु से ६ माशा दें।

(५) दार्वीरस क्रिया (भा प्र.) दारुहरिद्रा क्वाथ में मधु मिलाकर गरारे करायें। तथा उपर्युक्त गण्डूप करायें।

(६) वचादिक्वाथ (वृ मा) वचा, अतिविषा, रास्ना, कुटकी, पाठा, समान भाग क्वाथ वनाकर पिलायें गल-शुण्डी में। अथवा केवल नीमपत्र क्वाथ वनाकर पिलायें।

(७) पिप्पल्यादिक्षार गुटी (ग नि) पिप्पली १½ तो, मरिच १½ तो, अनारदाना २½ तोला, गुड- १० तोला, यवक्षार ७½ माशा। गोली वना कर चूसने को दें।

(ग) कण्ठशोथ, स्वरभेद, स्वरभग Laryngitis — कण्ठ में सवर्ण मृदुशोथ हो, हलकी खासी हो तो उसे श्लैष्मिक कण्ठ शोथ कहते है। यह रोग प्रतिश्याय आदि नासा रोगो के उपद्रव में होता है तथा गले के वैठ जाने या स्वरभेद हो जाने का लक्षण होता है। इसके लिये उपयोगी योग —

(१) वचादिचूर्ण (वा. भ उत्तर) वचा, मुलैठी, हरड, सोठ, अजवायन, कुष्ठ, पिप्पली, जीरा, समभाग। चूर्णकर घृत से चटायें।

(२) पञ्चकोलादिगुटी (ग नि) पञ्चकोल, तालीस पत्र, तेजपत्र, इलायची, मरिच, दालचीनी, पलाशक्षार, मुष्कक्षार, यवक्षार, समभाग। गुड सवसे दो गुणा। गोलिया वनाकर चूसने के लिये दें।

(३) व्योषादिचूर्ण (च द, शा स) त्रिकटु, अम्लवेतस, चव्य, तालीसपत्र, वशलोचन, चित्रक, जीरा, तिन्तडीक, १½-१½ तोला, त्रिजातक प्रत्येक ४ माशा। गुड २५ तो०। चूर्ण वनायें। ६ माशा की मात्रा दे।

(४) कट्फलादि क्वाथ (भै. र) कट्फल, पुष्करमूल, कचूर, भारगी, गधतृण, वचा, हरड़, काकडासिगी, समभाग, क्वाथ मधु डालकर पिलायें।

(५) दशमूल हरीतकी (च. द.) दशमूल क्वाथ ८ सेर, हरीतकी दाने १००, इनका चूर्ण तथा गुड ६¼ सेर मिलाकर पकायें। अवलेह वनायें। फिर त्रिकटु, यवक्षार, चारो २०, २० तोला डालें। त्रिजातक १¼-१¼ तोला मिलायें। अन्त में ४० तोला शहद मिलायें। स्वरभग के अतिरिक्त यह अवलेह यकृत रोग, आमवात, अम्लपित्त, श्वास में भी हितकारी है। व्याघ्री हरीतकी अवलेह भी इसी प्रकार स्वरभग में उपयोगी है।

(६) गोरक्षवटी (यो.र) रससिन्दूर, ताम्र-भस्म, लोहभस्म सम भाग। हरीकटेली के स्वरस की २१ भावना दें। मूग वरावर गोली मुख में रखें।

(७) अजमोदादिचूर्ण (वृ यो. त) अजवायन, हरिद्रा, आवला, चीतामूल, यवक्षार समभाग। चूर्ण को मधु से लें।

(८) ब्राह्मयादिचूर्ण (वृ. नि. र) ब्राह्मी, वचा, गोरखमुण्डी, सोठ, पिप्पली के समभाग चूर्ण को शहद से चटायें।

(९) विभीतकी अवलेह—वहेडे का छिलका, पिप्पली, सेंधा नमक चूर्ण को थोडा-थोडा मुख में रखें।

(१०) दुग्धामलक योग (वृ नि र.) आवले के चूर्ण को ६ माशा मात्रा में दिन में ३ बार दूध से दें।

(६) नासारोग, Diseases of the Nose —

(नासा सम्बन्धी जिस विषय का उल्लेख पीछे नही हुआ उसका उल्लेख यहा किया जाता है)

नासिका की रचना — वहिर्नासिका —External Nose—इसका ऊपर का भाग दो Nasal bones के अन्दर की ओर परस्पर सधि करने, दोनो वाजू Maxilla के Frontal process के साथ सधि करने और ऊपर की ओर Frontal bone के साथ सधि करने से वना है। वीच का भाग Lateral या Upper Cartilages के ऊपर Nasal-bones के, तथा दोनो ओर Maxilla के Frontal process के साथ सधि करने से वना है। इन दोनो के वीच मे परदे या Septum के Cartilage का ऊपर का किनारा रहता है। नाक का नीचे का भाग या नथने (Nostrils) दोनो ओर Greater alar cartilages से वना है। इनमे से प्रत्येक का एक Lateral एक Medial भाग है। दोनो medial भागो के अन्दर की ओर परस्पर मिलने से Septum का

निचला भाग बनता है। Lateral भाग ऊपर Upper cartilage से बाहर की ओर एक Fibrous tissue के ढेर के द्वारा Maxilla से संधि करता है। इस Fibrous tissue में २-३ छोटे Cartilages होते हैं जिन्हें Small alar Cartilages कहते हैं। नाक के निचले सिरे Nostrils में Cartilage नहीं होता। वह Fatty tissue तथा Connective tissue से बना हुआ है।

नासागुहा :— Nasal Cavity —नासागुहा, मस्तिष्क गुहा के नीचे, मुख गुहा के ऊपर, दोनों नेत्र गुहाओं के बीच में है। यह गुहा Nasal Septum के द्वारा दो भागों में विभक्त है। पीछे की ओर यह गुहा Nasopharynx तथा Paranasal Sinuses के साथ सम्बन्धित है।

इस गुहा Cavity की छत Roof —पीछे की ओर Sphenoid body से, तथा बीच में Ethmoid bone की Cribriform (छलनी सदृश) Plate से बनी है। इस प्लेट के छिद्रों में से इसके ऊपर पड़े Olfactory bulb की Olfactory (गन्धग्राही) Nerves, Anterior Ethmoidal Nerve (Ophthalmic की Nasociliary शाखा जो Anterior Ethmoidal foramen में से नासागुहा में आती और Septum के तथा Lateral wall के अगले प्रदेशों को संज्ञा प्रदान करती है तथा नाक के सिरे की त्वचा को भी संज्ञा प्रदान करती है) Ethmoidal Vessels (Ethmoidal anterior तथा Posterior arteries, Internal carotid की Ophthalmic शाखा की प्रशाखा हैं जो उपर्युक्त Nerve के साथ नासागुहा में प्रविष्ट होकर उपर्युक्त प्रदेशों को रक्त प्रदान करती है) नासागुहा में प्रवेश करती है। पीछे से कुछ आगे की ओर की छत Frontal तथा Nasal bones से बनती है।

नासागुहा की बाहर की दीवार आगे की ओर Maxilla के Frontal process से बनी है। इसमें आगे पीछे की दिशा में उभरे हुए तीन Concha (Conchae) या Turbinates है। इनमें से प्रत्येक के नीचे आगे पीछे की दिशा में एक एक गढा है जिन्हें Meatus (मार्ग) कहते है। ऊपर का Superior, बीच का Middle Concha, Ethmoid bone के Lateral mass के उभार हैं। Inferior concha नाम की एक पृथक् अस्थि है जो प्रधानतः Maxilla के साथ संधि करती है। इसका आभ्यन्तर पृष्ठ उभरा हुआ है, बाहर का पृष्ठ दबा हुआ है। इसका Superior border आगे की ओर Maxilla से, बीच का Lacrimal bone से तथा पीछे का Palatine bone से संधि करता है। इस अस्थि के द्वारा Maxillary bone की अन्दर की ओर की दीवार बनती है। इस अस्थि का निचला Border स्वतन्त्र है। नासागुहा की बाहर की दीवार का पिछला भाग Palatine bone के Vertical part से तथा Medial Pterygoid lamina से बना है।

Superior Concha के द्वारा उसके ऊपर के ढके हुए तथा दबे हुए अवकाश को Spheno-ethmoid recess कहते है। उसमें Sphenoidal Sinus का छिद्र खुलता है। Superior meatus नासागुहा की बाहर की दीवार के पिछले तिहाई भाग में ही है तथा यह पीछे नीचे की ओर को जाता है। इसमें Posterior Ethmoidal cells के छिद्र खुलते है। Middle meatus नासिका के पिछले छिद्र से आरंभ होकर इस दीवार के दो तिहाई भाग तक आगे की ओर आता है। यह Middle concha से ढका रहता है। उसे हटाकर देखें तो इसमें एक उभरा हुआ पृष्ठ दीखता है जो Anterior Ethmoidal cells का उभार है जिसे Bulla Ethmoidalis कहते है। इसमें इन Cells के छिद्र खुलते है। इस Bulla से आगे नीचे की ओर एक उभरा हुआ ऊंचा किनारा है जिसे Ethmoid का Uncinate (Hooklike) Process कहते हैं। इन दोनों के बीच एक Semilunar groove अर्धचन्द्राकार गढा है जिसे Hiatus Semilunaris कहते है। इसको Semi-Infundibulum ethmoidale (फनल की आकृति का मार्ग) भी कहते है। इस Infundibulum के निम्न भाग में Maxillary Sinus का छिद्र खुलता है। तथा इस Semilunar groove में Anterior ethmoidal cell का छिद्र खुलता है, तथा Semilunar groove के आगे की ओर Middle meatus में Frontal Sinus का छिद्र खुलता है। कुछ एक में यह Groove कुछ ऊपर की तरफ चढती है जो Nasofrontal duct कहाती है। उसमें Frontal Sinus का छिद्र खुलता है। इसीलिए Frontal Sinus में Probe डालना कुछ कठिन हो जाता है। Inferior meatus के अगले सिरे पर Inferior Concha के जड में Nasolacrimal duct का छिद्र खुलता है।

Septum—परदा—नासिका के परदे का पिछला ऊपरला भाग Ethmoid bone के Perpendicular

plate ने, तथा पिछला निचला भाग Vomer bone से बना है। Perpendicular plate के साथ Sphenoid crest का ऊपरला भाग तथा Vomer के साथ इस Crest का निचला भाग परदे के बनाने मे सहायता करते है। Perpendicular plate तथा Vomer के आगे का कोणाकार भाग Septal Cartilage से बना है। इस Cartilage का अगला भाग Greater alar Cartilage के medial part द्वारा और भी दृढ हो जाता है। तथा इसका पिछला निचला किनारा एक Vomero-nasal cartilage के द्वारा दृढ हो जाता है।

Inferior Concha की श्लेष्मकला (Mucosa) म Connective tissue का एक ढेर रहता है जिसमे रक्त वाहिनिया तथा अनैच्छिक मास सूत्र (Unstriped fibres) रहते हैं। इसमे कुछ Erectile tissue भी रहता है जो इसके अगले तथा पिछले सिरो पर विशेष है। इस श्लेष्मकला की Epithelium, Columnar और ciliated किस्म की है। इस Epithelium की Basement membrane के नीचे mucous glands की तह है जिनकी Ducts बाहर की स्तर पर खुलती हैं। Middle Concha मे Erectile tissue नही होता।

मासपेशिया —बाह्यनासिका की प्रधान पेशिया Compressor Naris, Dilator Naris, तथा Depressor alae nasi और Elevator alae Nasi हैं जिनको Facial Nerve से शाखायें आ जाती हैं। जो बच्चे मुंह से श्वास लेते है उनकी Dilator तथा Elevator मासपेशिया उपयोग मे न आने से मृतवत् हो जाती है।

बहिर्नासिका को रक्त प्रधानत — External maxillary artery (Facial artery) की Lateral Nasal artery से मिलता है। दूसरी ओर Internal carotid artery की Ophthalmic शाखा की प्रशाखा Dorsal Nasal artery से भी मिलता है। नाक के पृष्ठ का रक्त वापिस Anterior Facial Vein से Common facial Vein मे और वहा से Internal jugular Vein मे चला जाता है। बहिर्नासिका की Lymph Submandibular तथा Pre-auricular lymph-glands मे जाती है।

Nerve Supply — Middle Concha के पिछले सिरे के ठीक ऊपर पीछे की ओर एक छिद्र है जिसे Spheno-palatine foramen कहते है। इसके पास के Pterygo-palatine fossa मे एक Ganglion है जिसे Sphenopalatine ganglion कहते हैं, उसमे Trigeminal Nerve का Maxillary division आता है। इस Ganglion की Posterior Superior Nasal branches नासागुहा के पिछले भाग मे प्रविष्ट होकर Superior तथा Middle concha, Posterior ethmoidal Sinuses की तथा Septum के पिछले भाग की श्लेष्मकला को सज्ञा प्रदान करती है। Ophthalmic की शाखा Nasociliary Nerve की Anterior ethmoidal Nerve नामक प्रशाखा एक Lateral दूसरी Medial internal Nasal branch मे विभक्त होकर पहली अग्रिम नासिका की बाहिर की दीवार की, दूसरी *Septum के अग्रिम भाग की श्लेष्मकला* को सज्ञा प्रदान करती है। अन्त मे इसी नाडी की एक External Nasal branch, Nasal bone और Lateral Nasal Cartilage के बीच मे से बाहर आकर नाक के Alar भाग तथा निचले सिरे तक की त्वचा को सज्ञा प्रदान करती है। दूसरी ओर Maxillary Nerve की अन्तिम शाखाओ मे से एक External Nasal branch नासिका की बाहर की त्वचा को सज्ञा प्रदान करती तथा उपर्युक्त Anterior ethmoidal Nerve की External Nasal branch के साथ मेल करती है।

Autonomic Nerve Supply—Sympathetic सूत्र Superior Cervical ganglion मे से शुरु होकर carotid plexus के द्वारा Deep petrosal Nerve मे जाते है और फिर वे Facial Nerve के Geniculate ganglion मे से निकली Greater Superficial Petrosal Nerve के साथ मिलकर Nerve of the Pterygoid canal (या Vidian Nerve) के रूप मे Spheno-palatine ganglion मे प्रवेश करते हैं। वहा से इसके चेष्टावाही सूत्र उपर्युक्त Posterior Superior nasal branches के रूप मे नासागुहा के पिछले भाग मे प्रवेश करते और नासिका की श्लेष्मकला की रक्तवाहिनियो मे प्रवेश करते है। ये सूत्र उनमे Vasoconstriction तथा नासा की श्लेष्मकला के स्राव को सुखाने का काम करते हैं।

Parasympathetic सूत्र Brain-stem मे शुरू होकर Greater Superficial petrosal Nerve तथा Vidian Nerve के द्वारा Sphenopalatine ganglion मे प्रवेश करते है। वहा से Postganglionic सूत्र निकल कर Posterior Superior Nasal branches के द्वारा

नासिका की श्लेष्मकला मे प्रसरण करते हैं। ये सूत्र Vasodilatation तथा नासिका मे Secretion को वढाने का काम करते है।

Olfactory Nerves गन्धनाडी.— Ethmoid के Cribriform-plate पर पडे Olfactory bulb से कोई २० के लगभग सूक्ष्म सूत्र नासागुहा मे प्रवेश करते है। Superior Concha के सारे पृष्ठ पर, Middle Concha के अगली ओर के अन्दर के पृष्ठ पर तथा Septum के ऊपर के एक तिहाई पृष्ठ पर इन सूत्रो का जाल विछा हुआ है। गन्धनाडी के इन सूत्रो के साथ मस्तिष्क गुहा से Piamater तथा Arachnoid के खोल भी आते है। इन्हे Perineural Sheaths of the Olfactory कहा जाता है। नासिका के अन्दर Sepsis मे यदि कुछ अश इनके द्वारा ऊपर चला जाये तो Purulent leptomeningitis हो सकता है अर्थात् Cerebral membranes मे पूय भाव हो सकता है। इसलिये सर्जन लोग नासिका के Olfactory area को Potential danger zone कहते है।

Paranasal Sinuses
नासा सम्बन्धी गुहाए

नासिका से सम्बन्धित गुहाओ को २ समूहो मे वाट सकते है। Maxilla मे विद्यमान Maxillary Sinus को, Ethmoid bone मे विद्यमान Anterior ethmoidal cells को तथा Frontal bone मे विद्यमान Frontal Sinus को गुहाओ का अग्रिम समूह कह सकते है। ये तीनों, नासागुहा के Middle meatus से सम्बन्धित हैं अर्थात् इनके छिद्र उसमे खुलते है। Posterior Ethmoidal cells को जो Ethmoid के पिछले भाग मे हैं तथा Sphenoid bone की body मे विद्यमान Sphenoidal Sinus को गुहाओ का पश्चिम समूह कह सकते हैं। इनमे से Posterior ethmoidal cells, Superior meatus मे खुलते हैं तथा Sphenoidal Sinus, Superior concha के ऊपर के Spheno ethmoidal recess (cavity) मे खुलती है।

Maxillary Sinus—इस Sinus की छत नेत्र-गोलक Orbit के फर्श से वनी है जिस पर Infra orbital canal है जिसमे पीछे Inferior orbital fissure मे से आई Maxillary Nerve गुजरती है और Infra orbital foramen मे से निकल कर चेहरे पर खुलती है। इस Sinus का फर्श इस अस्थि के Alveolar process से जिसमे दातो के Sockets छिद्र है, वना है। यह फर्श प्रथम Premolar से तीसरे molar tooth तक है। नाक के फर्श मे इसका फर्श आधा इन्च नीचे है। इन दातो की जडो Roots, तथा इस Cavity के वीच की अस्थि की तह पतली ही होती है।

इस Sinus की सामने और वाहर की ओर की या Facial दीवार वाहर की ओर Zygomatic process से, अन्दर की ओर Canine ridge से, जोकि इसकी Nasal wall की सूचक है, सीमित है। इन दोनो सीमाओ के वीच के प्रदेश को Canine-fossa कहते है। इसके ऊपर के भाग मे Infra orbital foramen है जिसका उल्लेख ऊपर हुआ है। इस Sinus के शल्य कर्म के समय सर्जन इसी Fossa मे Canine ridge से Zygomatic process की तरफ कुछ हटकर छिद्र करते है और फिर उसे Canine ridge की तरफ चौडा करते है ताकि ऐसा न हो कि छिद्र नासा गुहा मे हो जाये।

इस Sinus की अन्दर या नाक की ओर की दीवार नीचे की तरफ Inferior nasal concha नामक अस्थि मे वनी है, जिसका पिछला सिरा ऊपर Lacrimal bone मे सधि करता है। इसी से नाक की ओर Inferior meatus वनता है। यह अस्थि वहुत पतली है इसलिये नासागुहा की ओर से Trocar के द्वारा Sinus को खोलना हो तो Inferior concha के नीचे से उसे खोलना सुगम है। इसके ऊपर Middle meatus से यह दीवार वनी है अर्थात् Ethmoid के Lateral mass से वनी है। इसका अगला भाग अस्थिमय तथा पिछला भाग membrane से वना है। इसी दीवार मे Maxilla की छत के कुछ नीचे Middle meatus मे विद्यमान Semilunar groove के निचले भाग मे इस Sinus का Ostium-छिद्र-खुलता है। Middle meatus के पिछले Membranous भाग मे भी कभी कभी इस Sinus का कोई सहायक छिद्र Accessory opening भी खुल सकता है। इस दीवार का पिछला भाग आगे की ओर Palatine से तथा पीछे की ओर Medial Pterygoid lamina से वना है। इस Sinus की पिछली दीवार एक पतली अस्थि से वनी है जो इसे Pterygopalatine तथा Infra-temporal fossa से पृथक् करती है। इस Pterygopalatine fossa मे Maxillary artery

तथा Trigeminal Nerve का Maxillary division भी रहता है। Maxilla की पिछली दीवार मे से सर्जन Maxillary artery को Ligature कर सकता है। इस Sinus की समाई १५ मिलि लि के लगभग है।

Frontal Sinus —बीच के परदे से यह दाये वाये दो भागो मे विभक्त है। इसकी अगली दीवार Frontal bone की वाहर की स्तर है। इसकी पिछली दीवार का कुछ भाग लेटा हुआ, कुछ भाग खडा हुआ है, पतला है तथा Posterior Cerebral कहाता है। इसका फर्श पतली हड्डी का बना है तथा वह Orbital-roof (नेत्रगोलक की छत) का एक हिस्सा है । यह Sinus एक Nasofrontal duct द्वारा Middle meatus मे उसके Semilunar groove के अगली ओर खुलता है।

Ethmoidal Sinus (Labyrinth)

नासा गुहा की श्लेष्मकला Mucosa के Ethmoid bone मे Lateral mass मे चले जाने से, नासा-गुहा और नेत्रगुहा के मध्य मे कुछ एक Aircells बन गये है जिन्हे Ethmoidal cells कहते है। ये नेत्रगुहा Orbit के लैवल पर है तथा इनके और नेत्रगुहा के बीच मे एक पतली अस्थि की प्लेट ही रहती है। इन सेलो को Anterior cells तथा Posterior cells दो भागो मे विभक्त किया जाता है।

इनकी ऊपर की दीवार या छत Frontal bone की Orbital plate से बनी है। इनका फर्श आगे की ओर तो Maxilla के Orbital process मे पीछे की ओर Palatine bone के Orbital process से बना है। इनकी बाहर की दीवार या Orbital wall प्रधानत Ethmoid के Lamina (पतली हड्डी) Papyracea (कागजी चमडा) से बनी है। यह पतली अस्थि आगे Lacrimal bone से और पीछे की ओर Sphenoid bone मे सधि करती है। इन Cells की अन्दर की दीवार या Nasal दीवार Ethmoid के Superior तथा Middle concha से बनी है। इन Cells के आगे की दीवार Maxilla के Frontal process से बनी है। पीछे की ओर की दीवार Sphenoid के Spongy भाग से बनी है।

Anterior ethmoidal cells के छिद्र Middle concha की ओट मे Middle meatus मे खुलते हैं। Posterior ethmoidal cells के छिद्र Middle concha से ऊपर Superior meatus मे खुलते हैं।

Sphinoidal Sinus —Sphenoid body मे है और एक पतली प्लेट से २ भागो मे विभक्त हुई है। इनमे से प्रत्येक की समाई ७ मिलि लि द्रव की है। यह Sinus मस्तिष्क से तथा उसकी प्रमुख रचनाओ से सम्बन्धित है। अत इसमे Suppuration का होना अनेक उपद्रवो का कारण हो सकता है। उदाहरणत इसकी ऊपर की दीवार या छत पर आगे से पीछे की तरफ क्रमश Frontal lobe, Olfactory tract, Optic-chiasma, तथा Pituitary body पडे है। इसकी छत तथा इसकी बाहर की दीवार मे बने कोण मे Optic Nerve तथा Ophthalmic artery आगे की ओर —नेत्र गोलक की ओर—आ रही हैं। इसकी बाहर की दीवार मे Cavernous blood Sinus है जिसके बीच मे से Internal carotid artery गुजरती है। इस दीवार के अगले भाग मे जो इस Sinus को Superior orbital fissure से अलग करता है तीसरी, चौथी, छठी Cranial Nerves तथा Trigeminus का Ophthalmic division है। इसकी Body के निम्न भाग से निकले इसके Greater wing की जड मे एक छिद्र है जिसे Foramen rotundum कहते हैं। इसमे से Maxillary Nerve गुजरती है तथा इसी छिद्र के कुछ पीछे और बाहर की ओर एक और छिद्र है जिसे Foramen ovale कहते है। उसमे से Mandibular nerve गुजरती है। इस Air Sinus के फर्श के साथ ही इसमे से निकले Pterygoid (wing like) process की जड मे Pterygoid canal है जिसमे Vidian Nerve (Autonomic Nerve) गुजरती है। इसकी अगली दीवार का बाहर की ओर का भाग Ethmoid के Lateral mass के पिछले हिस्से के साथ सधि करता है तथा Ethmoidal cell labyrinth के पूर्ण करने मे भाग लेता है। इस Sinus का छिद्र इसकी अगली दीवार के ऊपरले भाग मे है। इसलिये इसमे पूय आदि हो जाने पर उसकी सफाई सुगमता से नही होती। यह छिद्र नासा गुहा के पिछले ऊपरले भाग मे विद्यमान Spheno-ethmoidal recess मे खुलता है।

इनमे से Upper Sinuses के कारण एक तो गध शक्ति Olfaction मे कुछ वृद्धि हो जाती है तथा वहा द्रव के Insulator का काम करने से नाक मे से गुजरने वाली उष्णशीत हवा का कोई दुष्प्रभाव मस्तिष्क पर नही होता।

नासिका कार्य — नासिका घ्राण-शक्ति प्रदान करने का काय करती है यद्यपि मनुष्य मे बहुत से पशुओ की

अपेक्षा यह शक्ति कम है। इसके अतिरिक्त वह बाहर से आने वाली हवा को फिल्टर करने, उसे स्वच्छ करने का काम भी करती है। उसके अन्दर विद्यमान रोगटे, श्लेष्म कला के Cilia तथा उसके द्रव मे विद्यमान Lysozyme बाहर से आये जीवाणु आदि को रोक लेने का काम करते हैं। नासिका बाहर से आने वाली हवा को गर्म करने, वह खुश्क हो तो उसको तर करने का काम भी करती है। Paranasal Sinuses के द्रवो तथा Lacrimal Gland के स्राव को बाहर करने का काम भी करती है। इसके अतिरिक्त Eustachian tube के द्वारा कान के परदे के पिछली ओर हवा देने का भी काम करती है।

Acute inflammation of the paranasal Sinuses —**नासा सम्बन्धी** Sinuses **मे तीव्र शोथ —कारण** Sinuses मे सक्रमण प्राय नासिका से ही जाता है अत इनमे शोथ तीव्र प्रतिश्याय—Acute Rhinitis—या Influenza के उपद्रव रूप मे होता है। Tonsillitis और Adenoiditis भी कारण हो सकते हैं। रोगी की प्रतिरोधक शक्ति Resistance की न्यूनता भी कारण है।

Viruses तथा Bacteria भी इनमे शोथ का कारण होते हैं। Pneumococci तथा Streptococci जीवाणुओ मे से प्रधानत कारण होते हैं।

Pathology — Sinusitis दो प्रकार का होता है। (१) Catarrhal, (२) Suppurative। यह भेद जीवाणु की प्रबलता या मृदुता तथा रोगी की प्रतिरोधक शक्ति पर निर्भर है। शोथ Catarrhal हो तो इनके Submucous tissue मे शोथ-Oedema होता है। उसमें Leucocytes का सचय बहुत कम होता है। इनकी ऊपर की स्तर या Epithelium मे कोई विशेष परिवर्तन नही आता। इनकी इस झिल्ली मे से Mucus का स्राव जो पारदर्शक होता है, होता है। हा जब यह शोथ पुराना या Chronic हो जाता है तो इनकी झिल्ली या Mucosa काफी मोटी हो जाती है, स्राव बहुत कम हो जाता या बन्द हो जाता है। यदि Sinusitis, Allergy के कारण हो तो इनकी झिल्ली मोटी अर्थात् Hyperplastic किस्म की हो जाती है और झिल्ली की ऊपर की तह मे Eosinophils का सचय हो जाता है। अब यदि Sinusitis पूयजनित या Suppurative किस्म का हो तो इनकी झिल्ली जगह जगह नष्ट हो जाती है। यद्यपि शोथ या Oedema का चिन्ह नही होता। इनमे से जो द्रव निकलता है वह भी पूयमय Purulent होता है।

लक्षण:— Sinusitis हलका हो तो इनमे से होने वाले स्राव का सोत अवरुद्ध न हुआ हो तो इसके लक्षण प्रतिश्याय के से होते हैं जिससे इनके अन्दर हुए सक्रमण का पता भी नही चलता। ऐसी अवस्था मे इनका शोथ प्रतिश्याय के साथ ही समाप्त हो जाता है। यदि शोथ चिरस्थायी हो जाये तो उस Sinus के प्रदेश पर कुछ भारीपन, तनाव, या हलका सा दर्द प्रतीत होता रहता है जो झुकने मे, खासने से अधिक स्पष्ट हो जाता है। तथा यदि शोथ Maxillary या Frontal Sinus मे हो तो इन पर टकोरने मे भी कुछ स्पर्शाक्षमता का लक्षण लगता है।

Sinusitis कुछ तीव्र रूप मे हो तो भारीपन और तनाव के स्थान पर दर्द का लक्षण होता है कुछ तापमान भी हो सकता है। ऐसी अवस्था यदि Maxillary Sinus मे हो और उसके स्राव का छिद्र भी बन्द हो अर्थात् नाक से कोई स्राव न होता हो तो इसके चेहरे के ओर की दीवार पर स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है। यदि ऐसा Sinusitis, Frontal Sinus मे हो तो आख के ऊपर के प्रदेश मे दर्द होता है जिसे Supra orbital pain कहते है। इसमे सिर मे तथा आख मे दर्द होता है जो प्रात प्रारम्भ हो कर एक बजे तक बढता है और फिर सूरज के ढलने के साथ कम होता जाता है। रात को बिलकुल नही होता। अगले दिन फिर प्रात काल के बाद शुरु हो जाता है। दर्द के समय स्पर्शाक्षमता का लक्षण भी होता है। जब दर्द नही होता यह लक्षण भी नही रहता। इसमे प्रकाशासहिष्णुता Photophobia का तथा आख दुखने का लक्षण हो सकता है। यदि इस Sinus मे से द्रव का निकलना Drainage भी बन्द हो गया हो तो इसके ऊपर त्वचा मे शोथ Oedema भी दीखता है।

Ethmoid तथा Sphenoid के Sinuses **में शोथ** — इनमे पृथक् रूप मे शोथ का रोग सुलभ नही है। Frontal तथा Maxillary Sinusitis के होने पर इनमे भी कुछ शोथ हो सकता है। इनमे शोथ होने पर Acute Rhinitis की तरह दर्द होता है तथा दर्द आखो की गहराई मे होता है।

Acute Sinusitis **की पहचान** — जिस तरफ Sinusitis होता है उधर Anterior Rhinoscopy

करने से ऊपर की नाक की झिल्ली लाल तथा Inferior concha फूला हुआ दीखता है। ऐसी अवस्था मे नासिका की परीक्षा सुगम नही। २% Anethaine Solution लगाने से Middle concha को देखा जा सकता है। वह भी इस रोग मे फूला हुआ दीखता है। Uncinate process भी इस रोग मे फूला हुआ दीखता है। Middle concha के बाजू मे Mucus का स्राव भी दिखाई पडता है।

चिकित्सा—नासागुहा मे से शोथ के Sinuses मे जाने से उनमे से स्राव को निकालने वाले छिद्र बन्द होते है। अत नासिका की श्लेष्मकला के शोथ को हटाने का उपाय करना चाहिये। अत रोगी को गर्म स्थान मे गर्म कपडो मे लिटा कर रखे। उसे कोई रेचन औषध देवें। उसे पसीना आवे ऐसा उपाय करे। दर्द के लिये A P C आदि कोई औषध दे। Menthol के Alcoholic Solution (10% in alcohol) के आधे चमच को ६०-६५ सेन्टिग्रेड डिग्री तक गर्म किये २ पाइन्ट जल मे डालकर उसकी वाष्प को १० मिनिट तक दिन मे २ बार १५ दिन सुबह शाम देवे। इससे भी नासाभ्यन्तर शोथ न उतरे तो Physiological Saline Solution मे ५% बनाये Ephedrine Solution को नाक मे लगाये या Spray करे। रोग तीव्र रूप मे हो तो Penicillin का या Sulpha औषधियो का उचित मात्रा मे ७-८ दिन आभ्यन्तर प्रयोग करे। इन रोगो मे Nasal douching करना ठीक नही।

Chronic Catarrh and Suppuration in the Paranasal Sinuses—

चिरस्थायी Sinusitis रोग मे यदि उसका स्राव स्वल्पमात्रा मे नासाद्वार से स्रवित होता रहे तो यह रोग यद्यपि रहता है पर इसके Latent या प्रसुप्त रूप मे रहने से रोगी को इसका कोई पता नही चलता। परन्तु इसके कारण जब रोगी मे कोई उपद्रव होता है तब उसके लिये रोगी चिकित्सक के पास आता है। अर्थात् Ch Sinusitis के कारण जब Rheumatic दर्दे होने लगे, या रोगी को उसके कारण अजीर्ण रहे, या उसे खासी रहे या उसे सिर मे कुछ दर्द रहे या उसे अपनी शारीरिक और मानसिक शक्ति कुछ क्षीण होती लगे या उसे नासिका के अग्रिम या पश्चिम द्वार मे स्राव के चिरकाल तक रहने का कष्ट हो तब वह चिकित्सक की सलाह लेता है। इस स्राव के पूययुक्त होने से रोगी को नाक मे दुर्गन्ध आने या समय समय पर मुह का स्वाद खराब होने की शिकायत भी हो सकती है। नाक मे आने वाला स्राव गाढा या Purulent हो सकता है या वह पतला पानी सा चपकीला पारदर्शक हो सकता है अर्थात् Mucus वाला होता है। जब यह स्राव Maxillary Sinus से आता है तो इसमे दुर्गन्ध होती है। रोगी को स्वय यह दुर्गन्ध आती है। Atrophic Rhinitis से जिसमे नाक के अन्दर स्राव की परतो के जम जाने और उनमे से दुर्गन्ध आने की जो शिकायत होती है उससे इस रोग का भेद करना चाहिये। उस रोग मे रोगी के निकट बैठने वालो को दुर्गन्ध आती है, रोगी को स्वय नही आती। इस रोग मे रोगी को भी दुर्गन्ध आती है। यह स्राव ठहर ठहर कर निकले, नीचे झुकने से विशेषत निकले तो इसे Maxillary Sinus से आया समझना चाहिये। यदि यह स्राव दिन मे ही अधिक हो रात को न निकले तो इसे Frontal तथा Ethmoidal Sinuses से आया समझे। इसी प्रकार यदि नासिका से होने वाला यह स्राव नासा पश्चिम द्वार से ही Nasopharynx तथा गले की ओर ही निकले तो इसे Posterior Ethmoidal या Sphenoidal Sinus से आया समझे।

उपर्युक्त लक्षणो के अतिरिक्त परीक्षा से Inferior Nasal Concha मे Oedema दिखाई पडे, नासिका के Erectile tissue के फूल जाने से नासावरोध का लक्षण बना रहे तो इसे Ch Sinusitis का लक्षण समझे। इसी प्रकार यदि सिर दर्द की शिकायत रहे, सवेरे से दोपहर तक सिर दर्द रहे, रातभर द्रव ऊपर जमा होकर सवेरे स्रवित होने लगे तो Frontal Sinusitis का सन्देह करे। जब Infection, Sphenoid Sinus मे होता है तब दर्द या सिर दर्द आख के पीछे गहराई मे होता है।

Chronic Sinusitis **की परीक्षा**—Maxilla, Anterior ethmoid, और Frontal Sinuses के छिद्र Middle meatus मे खुलते है। इनकी परीक्षा Anterior Rhinoscopy से हो सकती है। इनके रोग मे Inferior Concha फूला हुआ भरा हुआ सा दीखता है तथा उसके कारण नाक की परीक्षा कठिन होती है। अत Anethaine २-४% सोल्यूशन लगाकर या Ephedrine के Oily Solution को लगा कर, उसके सुकड जाने पर, Middle meatus की परीक्षा करे। अब यदि उसमे पूयस्राव दिखाई पडे तो उपर्युक्त Sinuses मे से किसी

मे Infection का निश्चय करे। पूय न भी हो पर Middle Concha का अगला सिरा फूला हुआ हो oedematous हो, Middle -meatus के नीचे uncinate process की श्लेष्मकला फूली हुई हो तो भी इस रोग का सन्देह करे।

Posterior Rhinoscopy से Inferior Concha के पिछले सिरे के ऊपर Middle meatus मे पूय का चिन्ह मिले या Eustachian tube के पास या Soft palate पर पूय का अश दिखाई पडे तो Anterior Sinusitis का निश्चय करे।

Posture test –Middle meatus को रूई से साफ करने के वाद रोगी से कहे वह सिर को नीचे करके चार पाच मिनट वैठे। इसके वाद Ant Rhinoscopy से यदि फिर भी Middle meatus मे पूय का अश दिखाई पडे तो समझे Maxillary Sinus मे Infection है। यह भी हो सकता हे कि सिर के झुकाने के वाद पूय Posterior Rhinoscopy मे मिले, Anterior मे न मिले।

Frontal Sinusitis **की परीक्षा** — Middle meatus को रुई से साफ करने के वाद रोगी को कहे कि वह सिर को सीधा ऊपर की ओर रखकर १० मिनट वैठा रहे। इसके वाद Middle concha के ऊपर और नाक के वाहर की दीवार के वीच कुछ नया स्राव आया दिखाई पडे तो समझे कि वह Frontal Sinus से आया है। इसे दोहरा भी सकते हैं।

Anterior ethmoidal cells **की परीक्षा**—इनसे आनेवाला पूय स्राव भी Middle meatus मे Anterior Rhinoscopy द्वारा देखा जा सकता है। इस अवस्था मे यदि यह स्राव लगातार रहे Frontal या Maxillary Sinus से न आता हो तो Ethmoid के Ante cells से ही आया समझे। इसके अतिरिक्त यदि रोगी की घ्राण शक्ति नष्ट हो, नासावरोध Nasal obstruction का लक्षण विशेष हो तो भी इसी Sinusitis का सन्देह करे।

Chronic Suppuration of the posterior ethmoidal and Sphenoidal Sinuses – इन Posterior Sinuses के छिद्र Superior meatus मे तथा Spheno ethmoidal recess मे खुलते है। ये दोनो प्राय सयुक्त रूप मे Infected होते हे। इनसे होने वाला स्राव नाक के पिछले हिस्से मे तथा गले मे होता है। इसलिये रोगी मे नाक के पिछली ओर आवाज करके गले को साफ करने की प्रवृत्ति रहती है। पश्चिम नासाद्वार की श्लेष्मकला Nasopharynx की छत और गले की पिछली दीवार पर इस स्राव के सूखने से छिलके जम जाते है, जिनसे एक दुर्गन्ध भी आती है यद्यपि रोगी को Anosmia के कारण स्वय यह प्रतीत नही होती।

परीक्षा करने पर नाक के वीच के परदे तथा Middle Sulcus के वीच के प्रदेश अर्थात् Olfactory Sulcus (Groove) मे पूय का कुछ अश दिखाई पडता है। Middle concha भी कुछ फूला हुआ दीखता है। Posterior Rhinoscopy मे Middle concha के पिछले भाग के उपरले पृष्ठ पर पूय दृष्टि गोचर होती है या नाक के पिछले छिद्र पर चिपकी हुई दीखती है। या Nasopharynx की छत पर लगी हुई दीखती है। Sphenoid Sinus का स्राव वहुत कम होता है अत वह सूख कर छिलको के रूप मे वहा जम जाता है। Nasopharynx की श्लेष्मकला रक्त वर्ण होती है।

Chronic paranasal Sinitis का रोग प्राय Surgical चिकित्सा से ही ठीक हो सकता है।

Sinusitis **के उपद्रव**—Posterior Sinuses मे यदि पूयभाव चिरकाल तक रहे तो उसका दुष्प्रभाव Optic Nerve, Oculomotor Nerve, Trigeminal के Maxillary division पर (उनके अति निकट होने के कारण) पड सकता है जिससे चिरस्थायी प्रतिश्याय या पीनस रोग के उपद्रव रूप मे दृष्टि सम्वन्धी लक्षण हो सकते है, नेत्र के पास Oedema या Neuralgia के उपद्रव हो सकते है। Sphenoidal Sinus के ठीक ऊपर मस्तिष्क का Frontal lobe है, Olfactory tract है, जिससे चिरस्थायी प्रतिश्याय के कारण वुद्धिमाद्य Mental depression, न्यूनाधिक स्मृति मान्द्य के उपद्रव हो सकते है। नाक के पिछली ओर Eustachian tube मे शोथ के जाने से वधिरता का लक्षण, नासापश्चिम द्वार से Infection के श्वासनालियो मे जाने से खासी का उपद्रव, पेट मे जाने से अग्निमान्द्य का उपद्रव हो सकते है। आयुर्वेद मे जो कहा हे "वाधिर्यं मान्ध्यमघ्रत्व घोराश्च नयनामयान्। शोफाग्निसादकासाश्च वृद्धा कुवन्ति पीनसा" वह यथार्थ ही है।

Polypus – Chronic Rhinitis के उपद्रव रूप मे Middle concha के पीछे Hiatus semilunaris

की श्लेष्मकला के एक Oedematous भाग के आकार मे वढ कर लटक जाने से एक मासाकुर वन जाता है जिसे Polypus (नासार्श) कहते है। इसके कारण नासावरोध, नासास्राव, गन्धनाश, शिर-दर्द आदि लक्षण होते है।

Maggots in the Nose — पूतिनासा Ozaena का रोग हो तो नासिका मे कृमि Maggots भी उत्पन्न हो सकते है। Chloroform water के डालने या Spray करने से ये निकल जाते हे।

आयुर्वेद में प्रतिश्याय —श्लैष्मिक प्रतिश्याय Acute Rhinitis — प्रतिश्याय रोग अनेक प्रकार के Viruses मे से किसी Virus के सक्रमण से होता हे। अव यदि इसका सक्रमण होने पर शरीर का वायु तत्त्व तो सम अवस्था मे हो, अग्नि कुछ मन्द हो तो नासिका Nasopharynx, Pharynx की श्लेष्मकला मे विद्यमान कफ प्रकुपित (Excite) हो जाता है जिससे वहा कफशोथ हो जाता, रक्तवाहिनियो मे रक्त अधिक भर जाता, श्लेष्मकला फूल जाती, वहा के Epithelial सेलो तथा श्लेष्म ग्रन्थियो (Mucous glands) से Mucus का स्राव अधिक होने लगता हे। वहा Monocytes का सचय अधिक हो जाता है। वहा से प्रभूत मात्रा मे स्रवित होने वाले स्राव मे Glycoproteins होते साथ ही Gamma globulins होते जिनके कारण सक्रमण करके आये Virus का विनाश हो जाता है। वहा कफ प्रकोप मानो नासिका, गले आदि की रक्षा के लिये हुआ हो। वहा की श्लेष्मकला फिर से पूर्ववत् स्वस्थ हो जाती है। इस अवस्था मे नासिका से पतला स्राव विशेष होता है। Epithelium मे किसी प्रकार का Ulceration या Necrosis नही होता।

चिरस्थायी प्रतिश्याय Chronic Rhinitis— Chronic hypertrophic-Rhinitis — अव यदि शरीर का वायु तत्त्व कुछ निर्वल हो अर्थात् शरीर की या नासिका की प्रतिरोधक शक्ति कुछ ही न हो तो श्लेष्म प्रकोप प्रवलता से नही होता, Virus का निराकरण ठीक न होने से प्रतिश्याय वार-वार होता है जिससे नाक की श्लेष्मकला विशेषत Inferior Concha की श्लेष्मकला फूलकर बहुत मोटी हो जाती है। इस प्रक्रिया के नाक मे ऊपर तर हो जाने से घ्राण शक्ति भी जाती रहती है। इस अवस्था मे नाक मे अवरोध रहता है, स्राव भी चिकना चिकना सा होता रहता है जो कभी कम, कभी अधिक होता है। इस अवस्था को आयुर्वेद मे पीनस रोग भी कहा है। वात तथा कफ दोनो के कारण होने से इसे वातकफजनित प्रतिश्याय भी कहा है।

पैत्तिक प्रतिश्याय Suppurative Rhinitis — अव यदि शरीर का वायु तत्त्व निर्वल हो, Virus के अतिरिक्त जीवाणओ का जैसे Streptococcus, Micrococcus catarrhalis, Bacillus Influenzae मे से किसी का सक्रमण भी हो तो वहा श्लेष्मकला मे Granulocytes का सचय विशेष होता है। वहा Oedema या स्राव विशेष नही होता किन्तु श्लेष्मकला की Epithelium मे पाक Ulceration या Necrosis स्थान स्थान पर होता है जिससे पूय स्राव होता है। इसे पित्त प्रकोप जनित प्रतिश्याय कहते है। ऐसा प्राय Paranasal Sinuses मे इस रोग के प्रसरण पर होता है। इस अवस्था मे रोगी को श्वास मे कुछ दुर्गन्ध भी अनुभव होती है।

वाताधिक चिरप्रतिश्याय-पूतिनासारोग— Chronic Atrophic Rhinitis, Ozaena — रोगी का वायुतत्त्व अति निर्वल हो जिससे शरीर आगन्तु Virus तथा जीवाणु का निराकरण न कर सके तो आगन्तु विषैले द्रव्य के कारण नाक की श्लेष्मकला, वहा की रक्त वाहिनियो, अस्थियो सवमे क्षीणता Atrophy की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। अर्थात् वहा की Ciliated Columnar-epithelium क्षीण होकर Stratified Squamous epithelium मे परिवर्तित हो जाती हे। वहा की रक्त वाहिनिया शुष्क सी हो जाती है। वहा रक्त की मात्रा कम हो जाती है। अस्थिया भी शुष्क हो जाती है जिससे नासा गुहा वहुत चौडी दीखने लगती है। इस रोग मे नाक के अन्दर से दुर्गन्ध आने लगती हे जो रोगी को नही, पास वैठो को अनुभव होती है। इस रोग मे न तो स्राव होता, नाही पित्त सुलभ Ulceration व्रणभाव श्लेष्म आदि होता है। केवल शोषण (Atrophy) का लक्षण होता है। इसीलिए इसे वाताधिक चिर प्रतिश्याय कहा हे।

वाताधिक तीव्र प्रतिश्याय —Allergic Rhinitis, Vasomotor Rhinorrhoea— वाहर की धूल मे वहुतसे द्रव्यो के अश होते हे। उनमे से यदि कोई द्रव्य किसी व्यक्ति के लिये नितान्त विरोधी या असात्म्य हो तो उस द्रव्य के नाक की श्लेष्मकला मे रुक जाने से उनके विपरीत एक प्रतिक्रिया होती हे जिसे Allergy कहते

है इसके कारण वहा की रक्तवाहिनिया निर्बल, शिथिल होकर फैल जाती हे। उनमे से बहुत सा द्रवांश बाहर निकलने लगता है अर्थात् एक तो नाक की झिल्ली बहुत फूल जाती है यद्यपि Infection न होने से वह लाल नही होती कुछ फीके रग की ही रहती है। नाक मे किसी वातिक निर्बलता के कारण रोग होता हे। इसलिए इसे वातिक तीव्र प्रतिश्याय कहा है। इसमे बहुत अधिक छीको के आने तथा अधिक स्राव होने के लक्षण होते हे। इसे क्षवथु रोग भी कहा है।

प्रतिश्याय चिकित्सा — कफ प्रतिश्याय में त्रिकटु चूर्ण को गुड में मिला कर दें (शा स) या व्योषादि चूर्ण (त्रिकटु, तालीसपत्र, चव्य, जीरा, तिन्तडीक, अम्लवेतस प्रत्येक ४, त्रिजातक प्रत्येक १, पुराना गुड सर्व-तुल्य) दें (च द) या अदरक के स्वरस को शहद के साथ चटायें। कालाजीरा सुघायें (यो र) या बनफ्शा और अदरक की चाय पिलायें। षडङ्गयूष (जौ का सत्तू, कुलथी, सोठ, पिप्पली, अनारदाना, आवला १-१ भाग) मूगदाल १२ भाग मिला कर १ भाग को ८ गुणा जल में पका कर एक चौथाई रख कर घी से छौंककर पिलायें। गर्म पेय दें तथा अन्य उष्ण स्वेदन आदि चिकित्सा करें।

चिरस्थायी या जीर्ण प्रतिश्याय (पीनस रोग) में चित्रक हरीतकी (भै. र) चित्रक मूल क्वाथ, दशमूल क्वाथ, गुडूची क्वाथ, आमलकी क्वाथ प्रत्येक ३ सेर, गुड ४ सेर, हरीतकी चूर्ण २ सेर मिलाकर पकायें। गाढ़ा होने पर त्रिकटु, त्रिजातक प्रत्येक ५ तोला मिलायें। यवक्षार $1\frac{1}{4}$ तोला तथा शहद १ पाव, उसके शीतल होने पर मिलायें। मात्रा १ तोला। या कट्फलादि चूर्ण दें। कलिङ्गादि तैल (भै. र) इन्द्र जौ, हींग, मरिच, लाक्षा, तुलसीबीज, कायफल, कुष्ठ, वचा सीहाजने के बीज, वायविडग समभाग मिलित १, कटु तैल ४, गोमूत्र १६ भाग मिला कर तैल साधन करें। नस्य दें। या षड्बिन्दु घृत (यो र) भागरा, लौंग, मुलैठी, कुष्ठ, सोठ मिलित १ भाग, घृत ४ भाग। घृत साधन करें। नस्य दें।

पैत्तिक प्रतिश्याय में — दूर्वादिघृत (यो त) दूब का स्वरस, गोघृत १-१ सेर, दूध ४ सेर, तण्डुलोदक ४ सेर, नीलोफर कमलकेसर, मञ्जिष्ठा, नेत्रबाला, लोध्र, खस, मोथा, चन्दन लाल, मुलैठी, पद्म काष्ठ, हरड, मुनक्का $1\frac{1}{4}$ $1\frac{1}{4}$ तोला का कल्क। पाक करके घृत साधन करें। १ तोला रोज दें। जात्यादिघृत नाक में डालें।

वाताधिक पूतिनासारोग—कलिङ्गादि तैल का नस्य दें या जात्यादि घृत का नस्य दें। वाताधिक प्रतिश्याय या क्षवथुरोग में कुष्ठादि घृत या तैल (शा स) कुष्ठ, बेल, पिप्पली, सोंठ, मुनक्का के कषाय से तथा इनके कल्क से साधित तेल या घृत का नस्य दें। गुग्गुलु, मोम तथा घृत को मिलाकर उसका धुआ दें।

नासा रक्तपित्त रोग मे दूर्वादिघृत का नस्य दें।

सकट कालिक चिकित्सा Medical Emergencies —

चिकित्सा मे सकट काल Emergency उसे कहते हे जब रोगी के जीवन और मृत्यु मे थोडा ही अन्तर रह जाये, उचित औषध मिलने पर वह बच सकता हो और उसके न मिलने पर उसकी मृत्यु हो सकती हो। जब अपना रोगी इस अवस्था को प्राप्त हो तब उसकी अधिक लम्बी चौडी परीक्षा तो नही हो सकती, पर फिर भी उसकी नाडी, तापमान, श्वास प्रश्वास की अवस्था, रक्तभार, पुतली का सकोच या विस्तार, तथा उसकी चेतना की अवस्था की तो परीक्षा करनी ही चाहिए और फिर तुरन्त औषध चिकित्सा होनी चाहिए। कुछ एक प्रमुख Emergencies का यहा उल्लेख किया जाता है।

Anaphylaxis **तीव्र अलर्जी**—तीव्रअलर्जी का रोग बहुधा पेनिसिलिन के सूची वेध के बाद होता है। अत पेनिसिलिन का जो घोल देना हो उसकी एक बूद को शुद्ध जल की १० बूद मे मिलाकर उसकी १-२ बूद अग्रबाहु के अग्रिम पृष्ठ की त्वचा मे डालकर आधा घण्टा तक देखे कि वहा Erythema कितना उठता हे यदि वह छोटा सा ही हो ५-६ मिलिमीटर से बडा न हो तो औषधि के देने मे कोई भय की आशका नही करनी चाहिये। वह लाल सा चकत्ता इससे बडा हो तो औषधि न दे। पेनिसिलिन का इजेक्शन देने पर यदि दुर्लक्षण प्रतीत हो, खासी उठने लगे, माथे पर पसीना दिखाई दे, नाडी निर्बल हो जाय तो तुरन्त Adrenaline (१००० मे १) ५ मिलि-लि० उसी स्थान पर जहा इजेक्शन दिया है डाल दे तथा उतना ही दूसरी ओर मास मे डाल दे। साथ ही Dexamethasone (Decadron) २ सी सी या Deltacortril जो Prednisolone acetate है २ सी सी मास द्वारा दे दे। Coramine की एक Ampoule भी मास द्वारा दे दे। बालक हो तो Betnesol (Beta methasole) की एक मिलिलि० मात्रा मे (४ मिलि मात्रा) मास द्वारा दे दे।

Anxiety acute **तीव्र चिन्ता रोग** — इस रोग मे रोगी बेचैन एव उत्तेजित हुआ हुआ होता है। Chlorpromazine (Largactil) ५० मिलि ० मात्रा मे मास द्वारा दें।

या Triflupromazine (Siquil) १० मिलि० मात्रा मे माम द्वारा दे। या Oxazepam (Serepax) १५ मिलि दिन मे तीन वार दे। रात को Calmpose २ गो (Diazepam) अर्थात् ४ मिलि दे या Phenobarbitone २०० मिलि की गोली दे।

Asthma acute-Status Asthmaticus, **तीव्र श्वास रोग**, Aminophylline २५ ग्राम १० c c Solution को १० c c Normal Saline मे मिलाकर धीरे-धीरे शिरा द्वारा दे। या Prednisolone acetate (Deltacortril) injection २० मिलि० २ मिलिलि० को या Betnesol injection जो Betamethasone है ४ मिलि० मात्रा मे माम द्वारा दे। वाद मे एक दिन Prednisolone २० मिलि० मात्रा मे, दूसरे दिन १५ मिलि० मात्रा मे, तीसरे दिन १० मिलि० मात्रा मे दे। फिर उसे ५ मिलि० मात्रा मे दिन मे २ वार कुछ दिन जारी रखकर धीरे धीरे वन्द करें।

Circulation-failure **रक्त सचार की मन्दता, रक्तभार की हीनता** —Mephentermine Sulphate (Mephentine) को १५ मिलि मात्रा मे मास द्वारा दे। Pholedrine Sulphate (Veritol) के २० मिलि० इजेक्शन को माम द्वारा दे। या ५०० मिलिलि० ५% Glucose in Normal Saline मे Mephentine को १५ मिलि० मात्रा मे मिलाकर बून्द बून्द करके (१ मिनट मे २५ बू द के हिसाव मे) शिरा द्वारा दें।

Convulsions—**आक्षेप**—वालको मे यह रोग वहुवा अपस्मार Epilepsy के कारण होता है। मूर्छा के समय रोगी की श्वास नालियों को वलगम से रुकने नही देना चाहिये। अत उसे तीन चौथाई अधोमुख लिटाकर रखना चाहिये ताकि मुह की वलगम वाहर जाये, कण्ठ को न रोके। मास के द्वारा उसे Paraldehyde का इजेक्शन दे। ६ मास से नीचे उसे ½ मिलिलिटर मात्रा मे, १२ मास तक की आयु मे १ मिलि लि० मात्रा मे, ३ वर्ष की आयु तक के वालक को २ मिलि लि० मात्रा मे, ६ वर्ष तक की आयु के वालक को ३ मिलि लि० मात्रा मे देवे। वडो मे ५ मिलि लि० मात्रा मे दे। Phenobarbitone Sodium के इजेक्शन के मास द्वारा देने मे भी आक्षेप रुक सकते है। वालक के एक किलोभार के पीछे उसे ५ मिलि० मात्रा मे दे। फिर ६-६ घटे पर जो मात्रा दी गई है, उससे आधी मात्रा मे इसे दुहरा सकते है। वडो मे इसे पहले २०० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा दे, फिर ६-६ घटे पर १०० मिलि० मात्रा मे दुहरा सकते है, ।

Depression —विपाद रोग तीव्र रूप मे हो, जैसे किसी वडी हानि से या निकटतम की मृत्यु पर होता है, तो शान्ति के लिए Oxazepam (Serepax) १५ मिलि० मात्रा मे दिन मे ३ वार दे। या Trimipramine (Surmontil) २५ मिलि० मात्रा मे दिन मे २ वार दे। नीद न हो तो रात को Amilobarbitone (Amytal) १०० मिलि मुख से दे या उसके Sodium Salt को १०० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा दे। Serenace २५ मिलि० गोली (जो Haloperidol है) दिन मे एक या २ वार लेने से भी आराम मिलता है। विशेषत चिन्ता का लक्षण भी हो तो यह उपयोगी है। अथवा चिन्ता के लिये Meprobamate (Equanil) भी दे।

Encephalopathy Hypertensive **वृद्ध सुलभ आक्षेप रोग** — वृद्ध व्यक्ति मे रक्तभार अत्यधिक हो जाने पर मस्तिष्क मे Oedema या Ischaemia हो जाता है और मूर्छा के साथ आक्षेप होने लगते है। इसमे आक्षेपो को रोकने के लिये Sodium Phenobarbitone १२० मिलि० का इजेक्शन मास द्वारा दें। रक्तभार कम करने के लिये Reserpine (Serpasil) १ मिलि० इजेक्शन मास द्वारा दे या Chlorpromazine ५० मिलि० (Largactil) मास द्वारा दे। ८-८ घ० पर इसे दुहरा सकते हैं। Cerebral thrombosis से इसका भेद करे। उसमे एक तरफ की शाखाओ मे अतिशिथिलता हो तो उनमे Reflex लुप्त होते हैं।

Epistaxis **नासारक्तस्राव** — इस रोग मे रोगी को विठाकर रखे ताकि रक्त पीछे की ओर न जाये। Head-mirror से प्रकाश डालकर देखें कि रक्त छत पर से Ethmoidal vessels से आता है या परदे के निचले अगले भाग मे अर्थात् Little's area से आ रहा है। नाक को अन्दर से पूरी तरह साफ करे। कोई Clot न रहने दे और फिर Sterilized Gauz को उवाल कर ठन्डी की वेजलीन से चिकना करके उसमे नासिका को पूरी तरह से Pack कर दे। ऐसा करने से रक्त स्वय वन्द हो जाता है। अथवा नाक को पूरी तरह से साफ करने के वाद नाक

कोअगुलियो मे ठीक २० मिनट तक भींच कर रखे। इससे भी स्राव वन्द हो जाता है।

Haemoptysis रक्तवमन — प्रारम्भिक आयु मे उर क्षयरोग बडी आयु मे, छाती मे कैन्सर के कारण खून की उलटी या थूक मे रक्त आता है। इसके लिये Codein sulphate ३० मिलि० के इजेक्शन के मास द्वारा देने या Morphine Sulphate इजेक्शन के १० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा देने मे Phenobarbitone Sodium के १२० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा देने से तथा Vitamin 'K' के १० मिलि मात्रा मे मास द्वारा देने मे लाभ होता है। Styptochrome या Chromostat (Life) जो Adrenochrome Monosemicarbazone है उसके १५ मिलि० २ सी सी जल मे वने इजेक्शन के मास द्वारा देने मे भी रक्त स्राव वन्द होता है।

Head injury शिर पर आघात, शिरोऽभिघात — मस्तिष्क के Duramater या Cortex पर आघात पहुचे तो मस्तिष्क मे Tension या दवाव वढ जाता है जिससे Cardiac तथा Respiratory centres कुछ Compressed हो जाते हैं अर्थात् दव जाते हैं। इससे नाडी गति तथा श्वास गति मन्द हो जाती है। यदि ये मन्द हो तो मस्तिष्क मे वढे हुए दवाव का अनुमान कर लेना चाहिये। अत. किसी मूत्रल औषधि Lasix आदि का तथा Decadron का मास द्वारा प्रयोग करें। रोगी वेहोश हो, Light Reflex लुप्त हो तो मूत्राशय मे Catheter लगाकर रखना चाहिये। शिरपर शीतल कपडा लपेट दे। रोगी को पूर्ण विश्राम मे रखे कोई Stim ulant न दे। शिरोभिघात के कारण आक्षेप होने लगे तो Dilantin Sodium का या Tegretol का इजेक्शन देवें। वालक मे ५० मिलि० मात्रा मे, वडो मे १०० मिलि० मात्रा मे इजेक्शन दें। रोगी वेहोश हो तो उसकी पुतली परीक्षा भी करे। एक ओर की पुतली फैली हो तो उधर की तीसरी मस्तिष्क नाडी दव गई है ऐसा समझ ले।

Heart attack–तीव्रहृदयशूल — जव Carotid-artery के अवरुद्ध होने या उसमे स्रोतोरोध thrombosis के कारण हृदय मास के एक भाग को रक्त नही मिलता तो सहसा हृदय मे तीव्र शूल उठता है। ऐसे समय मे Morphine १५ मिलि० का इजेक्शन मास द्वारा द। उसके वाद उसके कारण उलटी न हो Siquil भी १० मिलि० दे सकते है। अथवा इस दूसरे इजेक्शन के स्थान पर Phenergan २५ मिलि० एक गोली दे दे। Mephentine १५ मिलि० भी मास द्वारा दे। Decadron या Betnelan की गोली मुख मे दे या इनमे से किसी का इजेक्शन दे, इन्हें दुहरा सकते हैं। Shock का लक्षण तीव्र हो अर्थात् शरीर शीतल हो, नाडी अति निर्वल हो, मूत्र वहुत कम आता हो तो १ लिटर ५% ग्लूकोज सोल्यूशन मे Noradrenaline (Levophed) ४-८ मिलि० डालकर उसे वून्द वून्द करके शिरा द्वारा देवे। Carotid artery मे clot या Thrombosis अधिक हो तो Heparin १ हजार units को १ लिटर ५% Dextrose Solution मे डाल कर उसे एक मिनट मे १५ वून्द के हिसाव से शिरा द्वारा देवे, इसे दुहरा सकते हैं। मुखसे दी जाने वाली Anticoagulent औषधियो मे से किसी को उदाहरणत Warfarin Sodium १० मिलि० गोली को प्रथम दिन ३ गोली, फिर १-१ गोली रोज दे। फिर धीरे धीरे इसे वन्द करे। यह देखते रहे कि Clotting time २० मिनट से लम्वा न हो। Heparin को मास मे भी दिया जा सकता है। ५-१० हजार यूनिट्स मात्रा मे १० गुणा जल मे मिलाकर मास से दे। १२ घ० पर इसे दुहरा सकते है।

Heart failure-Left-heart failure, Pulmonary-oedema, **वामहृदयनैर्वल्य, हृदयरोगजनित-श्वास —**

Amynophylline २५ ग्राम १० मिलि लि० की अम्प्यूल को २० मिलि लि० २५% ग्लूकोज सोल्यूशन मे मिलाकर धीरे-धीरे शिरा द्वारा दे। या किसी मूत्रल औषधि जैसे Lasix के २० मिलि० के अम्प्यूल को मास द्वारा दे। तथा दो चार दिन इसी की एक गोली ४० मिलि० की प्रात जल से दे। रोगी का Diastolic pressure वढा होता है। अत Largactil ५० मिलि० को मास द्वारा दे। वाद मे रक्तभार को कम करने की औषधि कुछ दिन देवे। नमक कम कर दें। रक्त भार अधिक हो तो Serpasil भी ५ या १ मिलि० मात्रा मे मास द्वारा दे।

Heartfailure मे Congestive right heart failure हो अर्थात् Cardiac dropsy या हृदय रोग जनित श्वयथु तीव्र रूप मे हो तो Lasix ४० मिलि० गोली प्रतिदिन सुवह दे, साथ ही थोडा Potassium citrate रोज दे। या Esidrex ५० मिलि० सुवह के समय सप्ताह मे ३ दिन दे। साथ ही Aldectone

A (Searle) जो Spironolactone है उसकी २५ मिलि० की गोलिया दिन मे ३ बार दे। अथवा Digoxin ५ मिलि० का २ मिलि लि० मे बना Ampoule मिलता है उसे १० मिलि लिटर Sterile water मे मिलाकर शिरा द्वारा धीरे-धीरे दे।

Heat stroke — आतपज्वर मे रोगी मूर्छित हो तो उसका तापमान बहुत अधिक बढा होता है। शिर, ग्रीवा, छाती को शीतल करे। Largactil के ५०-१०० मिलि की मात्रा मे मास द्वारा देने मे रोगी का तापमान भी कम होता तथा उसमे विद्यमान Vasoconstriction भी कम होता है। शरीर मे Dehydration होता है। अत ५% ग्लूकोज सोल्यूशन ५०० मिलि लिटर मात्रा मे शिरा द्वारा दे दे। रक्त सचार निबल हो गया हो तो Mephentine १५ मिलि० या Veritol २० मिलि० का मास द्वारा इजेक्शन दे।

Hiccup—**हिक्कातीव्र** — Chlorpromazine Hydrochloride (Largactil) को ५० मिलि० मात्रा मे मास द्वारा दे। ८-८ घ पर दे सकते हैं। या मुह से दवाई जा सकती हो तो इस औषधि को या Promazine (Sparine) को २५ मिलि० गोली के रूप मे खिलाये। ४ घ पर दोहरा सकते है। या Promazine २५ मिलि० तथा Phenobarbitone ३० मिलि० को मिलाकर इन्हे दिन मे ३ बार दे। या २% Lignocaine Viscous (Xylocaine viscous) Solution का एक बडा चमच दिन मे २ बार दे।

Oliguria—**मूत्राघात** — ५०० मिलि लि० १०% Glucose Solution मे १० units Soluble insulin मिलाकर उसे बून्द-बून्द करके शिरा द्वारा दें। तथा मुह से भी २०% Lactose Solution बना कर, उसे १ औन्स मात्रा मे १–१ घ पर देवे। इन्हे तब तक जारी रखे जब तक मूत्र न आये। जब कुछ मूत्र आने लगे तब इसकी प्रति घण्टा मात्रा पहले दो औन्स, फिर ३ औंस कर दे।

Shock—**सर्वांग शैत्य** — इस अवस्था मे रोगी शीतल होता है। नाडी मन्द होती है, रक्त भार ज्यादा गिर जाता है। ५% Glucose in normal saline के ५०० मिलि लि० सोल्यूशन को बून्द-बून्द करके एक मिनट मे ३० बून्द के हिसाब से शिरा द्वारा दे। इसमे Mephentermine Sulphate (Mephentine) १५-३० मिलि० मात्रा मे मिला सकते है। अथवा उपर्युक्त सोल्यूशन मे Decadron जो Dexamethasone है उसे १-२ मिलि लि० (४-८ मिलि०) मात्रा मे मिला दे। या केवल Decadron इन्जेक्शन मास द्वारा दे। इसी प्रकार Mephentine को भी अकेले मास द्वारा दे सकते हैं। रोगी को गर्म रखे। उसके पायते को ऊंचा रखे।

Snakebite सर्पदंश—Poly valent antivenene १ अम्पूल का जो १० मिलि लि० का है १० मिलिलिटर Distilled Sterilised water मे मिला कर उसे शिरा द्वारा धीरे-धीरे दे। पहले उसकी एक दो बून्द त्वचा मे डालकर आधा घण्टा तक देख ले कि उसका वहा Reaction तो नही होता। इन्जेक्शन देने के आधा घण्टा बाद पूर्ण लाभ प्रतीत न हो तो दूसरा अम्प्यूल भी इसी प्रकार धीरे-धीरे दे। Hydrocortisone Sodium Succinate १०० मिलि० को ५०० सी सी, ५% ग्लूकोज सेलाइन सोल्यूशन मे मिलाकर बून्द-बून्द करके शिरा द्वारा दे, इससे रक्त सचार ठीक होने लगता है। अथवा केवल Mephentine १५ मिलि० को मास द्वारा दें।

Stroke (Coma, cerebral thrombosis) **मस्तिष्क स्रोतोरोध जनित मूर्छा तथा पक्षाघात** — Decadron इन्जेक्शन को (१ मिलि लि० मे ४ मिलि०) दो मिलिलि मात्रा मे ४-४ घटो पर ३-८ बार मास द्वारा दे। Thrombosis मे इससे लाभ होता है। मस्तिष्क के Oedema के हटाने के लिए Glucose Solution २५%, ५० मिलि लि० मात्रा मे शिरा द्वारा दे। इसे धीरे-धीरे दे तथा ६-८ घण्टो पर दुहराये। Cerebral Vasodilatation के लिये Duvadilan inj या Deriphyllin २ सी सी अम्प्यूल को मास द्वारा देवे (२४ घ मे १ बार)। Complamina जो Xanthinol Nicotinate है इसके एक अम्प्यूल (३०० मिलि) को १२-१२ घ पर मास द्वारा देने तथा रोगी होश मे हो तो इसकी एक गोली के दिन मे ३ बार देने से भी हृदय पर ऐसा प्रभाव पडता है कि मस्तिष्क की रक्त वाहिनियो मे अधिक रक्त पहुचता है। पहले १२ घ थोडी-थोडी देर बाद १०० मिलि लि गर्म जल मे ४ ग्राम ग्लूकोज मिलाकर देते रहे।

आयु बडी न हो B P अधिक न हो। Peptic ulcer न हो तो १ लिटर ५% Dextrose Solution मे ५००० यूनिट्स (१० मिलि) Heparin मिलाकर १

मिनट मे १५ बून्द के हिसाब से उसे शिरा द्वारा दे। Warfarin Sodium १० मिलि० एक गोली भी रोज दें। Heparin का सप्ताह मे एक दो दिन प्रयोग पर्याप्त है। इसे मास द्वारा भी दे सकते है। ५५ वर्ष से ऊपर इसका प्रयोग ठीक नही।

Apoplexy हो, मुह एक तरफ फिर गया हो, श्वास प्रश्वास के साथ गाल फूलते हो, चेहरा लाल हो तो शिर को शीतल रखे। रोगी को अधिक हिलाये नही।

Tetanus—स्तम्भ रोग —रोगी को एक अकेले शान्त अंधेरे मे कमरे मे लिटा कर रखें। पहले रोगी को एक Anti-Histamine औषध जैसे Chlorpheniramine (Piriton) १० मिलि० १ मिलि लिटर का अम्प्यूलस मास द्वारा दे दें। फिर पहले मास द्वारा २५००० Units की मात्रा में Anti-tetanic Serum दे दे। (पहले test कर लेवें अर्थात् Serum की बून्द को १० गुणा जल मे हलका करके उसकी एक दो बून्द त्वचा में डालें १५, २० मिनट मे वहा १ सेन्टी मीटर का Erythema हो जाय तो समझें, रोगी इसके लिए Sensitive है। उसे Serum undiluted रूप मे न दे)। यदि रोगी को यह असात्म्य न हो तो तभी इसका प्रयोग करें। मास मे देने के बाद ५० हजार Units की मात्रा मे इसे धीरे धीरे शिरा द्वारा दे। फिर जब तक स्तभ या Spasms रहे इसे ५००० Units की मात्रा मे दिन मे एक बार मास द्वारा देवें। Chlorpheniramine ८ मिलि० मात्रा मे ७ दिन तक देते रहे। इसके इजेक्शन पर कोई Reaction होने लगे तो तुरन्त Adrenaline Solution या Hydrocortisone Sodium Succinate १०० मिलि० मास द्वारा दे। Procain Penicillin ४ लाख Units प्रतिदिन एक बार दें।

Muscle Spasms स्तम्भ के बढने मे ही इस रोग मे मृत्यु होती है। उनके शान्त रखने के लिये Diazepam १० मिलि० दिन मे तीन बार दे या Amylobarbitone (Amytal Sodium) ९० मिलि० मात्रा मे या Chlorpromazine hydrochloride (Largactil) २५ मिलि० मात्रा मे मास द्वारा ८-८ घ० पर दे। इनसे Spasms मे शान्ति न हो तो Paraldehyde ५ मिलि लि० मात्रा मे मास द्वारा दे। ८-८ घटे पर दुहराये। Dexamethasone को भी १ मिलि लि० मात्रा मे ६-६ घटे पर देवें।

Urine Retention—मूत्राघात—का रोग अधिकत प्रोस्टेट वृद्धि के कारण होता है। पहले आसपास के बालो को उस्तरे से साफ कर सारे प्रदेश को साबुन और जल से धोयें। अग्रचर्म को पीछे हटाकर Glans penis को sterilised Boric lotion से साफ करे। एक Sterile तौलिया Penis के आस पास फैला दे। अपने दोनो हाथो को अच्छी तरह Sterilize कर ले। Xylocaine jelly की भरी हुई ट्यूब मिलती है, उसकी Nozzle को Sterilize करले। ट्यूब पर एक Sterile छोटा कपडा लपेट कर बाये हाथ की अगुलियो से मूत्रेन्द्रिय के मुख को चौडा करके उसमें ट्यूब की Nozzle प्रविष्ट करके ट्यूब को दबाकर उसके मुख मे jelly प्रविष्ट करे। मूत्रेन्द्रिय को दबादबाकर इस Gelly को अन्दर दूरतक पहुचा दें। इस प्रकार ५-६ ग्राम Gelly को अन्दर प्रविष्ट करदे अर्थात् ट्यूब को आधा या एक तिहाई खाली कर दे। यत्न करे कि Gelly, Posterior urethra तक पहुच जाये। इससे मूत्रेन्द्रिय की नाली सज्ञाहीन हो जायेगी। अब एक विशेष प्रकार का Catheter मिलता है जिसे Tiemann Catheter कहते है जिसकी दीवार कुछ दृढ होती है, जिसका अगला सिरा कुछ पतला और मुडा हुआ होता है जिससे यह Catheter मूत्रनाली के तग भाग मे से भी आगे मूत्राशय तक खिसकाया जा सकता है। अब Penis को बाये हाथ मे सीधा ऊपर खीचकर, दाये हाथ मे पकडे Artery forceps मे १८-F size catheter को उसके सिरे से २ इच ऊपर पकड कर तथा उसके पिछले सिरे को तीसरी चौथी अगुलियो के बीच मे थामकर, उसके अगले सिरे पर Xylocaine jelly लगाकर बाये हाथ से मूत्र नाली के मुख को चौडा करके उसमे Artery forceps के द्वारा Catheter के मुह को अन्दर प्रविष्ट करे, जब वह कुछ अन्दर चला जाये रोगी को मुह से गहरे-गहरे श्वास लेने को कहे। धीरे धीरे धकेलने पर Catheter मूत्राशय मे प्रविष्ट हो जाता है। अब Catheter को Fix कर उसके बाहर के सिरे को Draining tube से लगाकर उसे Drainage बोतल के Stopper मे Fix कर दे। बोतल मे Antiseptic Solution डाल दे।

Uterine bleeding— गर्भाशय रक्त स्राव —

Progesterone की न्यूनता मे हो सकता है। अत मासिक से पहले १० दिन मे Ethisterone (Lutocyclin linguet) ५ मिलि० की एक गोली प्रतिदिन देवे। स्त्री मे Abortion का भय हो तो Lutocyclin १० मिलि० के अम्प्यूल को मास द्वारा दे।

Vertigo—शिरोभ्रम—सिर मे चक्कर आकर गिरने का भय हो तो Stemetil की ५ मिलि० गोली या Dimenhydrinate (Diamamine) २५ मिलि० गोली दिन मे ३ बार दे। खाने मे नमक कम करे।

सवारी मे या चलने मे चक्कर आते हो अर्थात् Motion Sickness का रोग हो तो Promethazine (Avomine) २५ मिलि गोली या Cyclizine-hydrochloride (Marzine) ५० मिलि गोली यात्रा मे जाने से या चलने मे पहले आधी या एक ले ले। यात्रा या चलने के दौरान मे भी १ ले ले।

Vomiting—वमन:—

Chlorpromazine (Largactil) ५० मिलि के इन्जेक्शन को मास द्वारा दे। फिर ८ घ पर २५ मिलि० मात्रा मे दुहराये या इसकी गोली दे। अथवा Promazine Hydrochloride (Sparine) २५ मिलि मात्रा मे मुह मे दे। या Siquil १० मिलि का इन्जेक्शन मास द्वारा दे।

गर्भिणी मे वमन अधिक हो तो Avomine एक गोली २५ मिलि० की दे, या Cyclizine (Magazine) ५० मिलि गोली दिन मे २ बार दें। या Dramamine की या Avomine की २५ मिलि० गोली दिन मे २ बार दे। या Vitamin B_6 (Gladoxin) ४० मिलि० गोली दिन मे एक दे।

Poisoning—विषप्रवेश—विष खाया गया हो और चार घण्टे से अधिक समय न हुआ हो, रोगी होश मे हो तो वमन चिकित्सा करनी चाहिये। २ बडे चम्मच नमक को आधा गिलास नीम गर्म जल मे मिला कर पिलाये। या एक बडा चम्मच राई का चूर्ण एक गिलास नीम गर्म जल मे मिला कर पिलाये। इससे वमन हो जाती है। Stomach Pump हो तो उससे बहुत हल्का सा Pot Permanganate Solution १० औन्स मात्रा मे डाल कर पेट को धोये। Stomach pump न मिल सके तो एक रबर की नाली (Gauge ३०) को गले मे डालकर रोगी से कहे वह उसे निगले। धीरे-धीरे उसे गले से नीचे उतारे। २० इन्च के लगभग तक जाने पर वह पेट मे पहुच जाती है। नाली गले मे डालने से पहले रोगी को दाये बाजू पर लिटा दे। पायते को १-१½ फुट ऊचा कर दे। जल अभी नाली मे हो तो उसके ऊपरले पीक वाले सिरे को रोगी के सिर से नीचा कर दे। इस Siphon के तरीके मे पेट का सारा जल नाली द्वारा नीचे रखे प्याले मे ले ले। इसी तरह १० औन्स जल दो-तीन बार पेट मे डाल कर उसे Siphon के ढग से बाहर निकाल ले। जब तक जल साफ न आये इस विधि को दुहराये। सखिया, मट्टी का तेल या कोई विक्षोभक विष खाया गया हो तो इस Gastric Lavage के बाद पेट मे ८-१० औन्स दूध डाल दे। मट्टी के तेल की जहर मे कोई Stimulant injection भी दें। शीशे के छोटे-२ टुकडे खाये गये हो तो दो तीन केले या दो तीन उबले आलू पीस कर मिला कर फिर उपर्युक्त वमन चिकित्सा करें। Barbiturates बहुधा आत्मघात के लिये खाये जाते हैं। उसकी भी वमन चिकित्सा करें। उसके बाद Glucose के ५% सोल्यूशन को शिरा द्वारा देवे। इसकी उपर्युक्त चिकित्सा अस्पताल मे ही हो सकती है। इसमे Respiration के फेल होने से मृत्यु होती है। Arsenic खाया गया हो तो वमन के बाद २-३ औन्स Castor oil पिलाये। बालक को यह वमन देनी हो तो एक बार मे ५० मिलि लि जल पेट मे डाल कर उसे Siphon विधि से वापिस कर ले।

Burn—First degree burn—मे बहिस्चर्म के बाहर-बाहर ही लालिमा तथा रक्त सचय के लक्षण होते है। Second degree burn मे बहिस्चर्म के अन्दर तक दाह के लक्षण होते है एव छाले या फफोले निकल आते हैं। Third degree burn मे बहिस्चर्म तो ग्रस्त होता ही है अन्तश्चर्म Corium भी कुछ कुछ ग्रस्त होता है। इसमे वेदना विशेष होती है। Fourth degree burn मे बहि. तथा अन्तश्चर्म दोनो ग्रस्त होते है। यदि दाह विस्तृत हो, वहा से Infection हो या रोगी मे दाह जनित Shock हो, उसी से मृत्यु होती है अत इनसे रोगी को बचाये। Infection की रोकथाम के लिये दग्ध स्थान को Sterilized लोशन से साफ कर, उस पर Sterilized गाज के छोटे-छोटे टुकडो को Distilled Sterilized जल १०० मिलि लि मे १ ग्राम Acriflavin, १ ग्राम Brilliant green, २ ग्राम Gention Violet मिलाकर बनाये Solution मे भिगो निचोड कर रखे। ऊपर Sterilized Cotton रखकर हलकी पट्टी बाध दे। Penicillin ४ लाख units मास द्वारा दे दे। रोगी मे Nervous Shock के लक्षण हो तो Pethidine Hydrochloride १०० मिलि० २ सी सी मास द्वारा दे दे। दग्ध प्रदेश से Exudation अधिक हो रहा हो तो Normal Saline Solution शिरा द्वारा दे ताकि Shock के लक्षण न हो।

जब किसी व्यक्ति के कपडो मे आग लग जाये तो तुरन्त उसको लिटाकर उसके ऊपर कम्बल या कोई भारी कपडा डाल दे ताकि हवा न मिलने से आग बुझ जाये।

रोग परीक्षा विधि
(Clinical Method)

वाह्य रूप (General Appearance) द्वारा रोग की परीक्षा

कई बार रोगी को देखने मात्र से उसके रोग की पहचान हो जाती है। उदाहरणत चेहरे का रग मटियाला हो, गालो पर झाइया पडी हो, नेत्रो मे हलका-सा पीलापन हो तो विषम ज्वर (Malaria) का, चेहरे तथा आखो मे हरा सा पीला रग झलकता हो तो कामला का, नाक, कान, ओष्ठो पर नीलापन (Cyanosis) हो तो हृदय रोग (Congestive Heart Failure) का, रोगी बैठा हुआ गहरे श्वास प्रश्वास ले रहा हो तो फुफ्फुस रोग या हृदय रोग जनित श्वास का, बालक का चेहरा फूला हुआ श्वेत वर्ण हो तो वृक्क शोथ (Nephritis) का, बडो मे श्याम वर्ण, भारी-सा चेहरा हो तो जीर्ण वृक्क रोग (C Nephritis) का अनुमान कर लिया जाता है। इसी प्रकार बडी आयु मे गिट्टो पर भारीपन को देखकर हृदयदौर्बल्य का, बालक या युवक मे बढती हुई कृशता और छोटी खुश्क खासी को देखकर क्षय रोग का, मध्यम आयु मे बढती हुई कृशता और त्वचा की शुष्कता को देखकर मधुमेह का और बडी आयु मे बढती हुई कृशता को देखकर कैंसर का सन्देह कर लिया जाता है। इसी प्रकार यदि कोई बचपन मे बूढा-सा लगता हो तो जीर्ण आमवातिक हृद्रोग (C Rheumatic Endocarditis) का सन्देह हो जाता है। यदि बालक के Fontanelle दबे हुए हो तो Dehydration का अनुमान हो जाता है। Pleurisy, Pneumonia तथा Bronchiectasis प्राय उवर ही होते हैं जिस पार्श्व पर रोगी लेटा हुआ होता है।

रोगी का चेहरा उदास, चिन्ताशील हो तो चिन्ता रोग का, आधा चेहरा भावहीन और उवर की आख आधी खुली-सी हो तो अर्दित (Facial Palsy) का, युवक मे श्वासकृच्छ्रता हो तो श्वास रोग का, बडो मे श्वास कृच्छ्रता या Orthopnoea हो तो हृदयदौर्बल्य (Pulmonary Oedema) या Emphysema का अनुमान हो जाता है। ज्वर रोगी शीघ्र-शीघ्र सास लेता हो तो फुफ्फुस ज्वर (Pneumonia) का, ज्वर ग्रस्त बालक अपनी पीठ पर असहाय की तरह अंगो के बिना हिलाये पडा हो तो सन्धिक ज्वर (Rheumatic Fever) का, ज्वर ग्रस्त बालक सिर को पीछे की तरफ फेंककर, सिमट कर पडा हुआ हो तो मस्तिष्क ज्वर (Meningitis) का तथा ग्रीवा स्तम्भ, कटिस्तम्भ आदि को देख कर स्तम्भ (Tetanus) रोग का अनुमान हो जाता है। इसी प्रकार बडी आयु का व्यक्ति मूर्छा मे पडा हुआ घुर्राटे ले रहा हो तो सन्यास मूर्छा (Apoplexy) का, उसकी आखो मे लालिमा हो तो मस्तिष्क रक्तस्राव (Haemorrhage) का, युवक इसी प्रकार से मूर्छित होकर गिर पडा हो तो अपस्मार (Epilepsy) का या मूर्छा स्वल्प काल की हो तथा उसकी त्वचा फीकी और आर्द्रता से युक्त हो तो रक्त-सचार की निर्बलता (Peripheral Circulatory Failure) का अनुमान हो जाता है। Typhoid facies को देखकर रोग की तीव्रता का तथा Hippocratic facies को देखकर मृत्यु की सन्निकटता का अनुमान कर लिया जाता है।

अधोहनुअस्थि के कोण के पास ग्रथियो को फूला हुआ देखकर Tonsillitis का, Sternomastoid के किनारे-किनारे की ग्रथिमाला को देखकर क्षयरोग का, भौहो के बालो को उडा हुआ देखकर महाकुष्ठ (Leprosy) का, हाथो की अगुलियो के जोडो मे शोथ को तथा अगुलियो को अन्दर की ओर झुका हुआ (Ulnar Deviation) देखकर Rheumatoid Arthritis का, अगुलियो के अगले पोरो को मोटा देख कर जीर्ण फुफ्फुस रोग या पुरानी खासी (Bronchiectasis, Pulmonary Fibrosis तथा Carcinoma) का अनुमान हो जाता है। हाथो मे कप को देखकर नाडी मण्डल मे Disseminated Sclerosis का या Extra Pyramidal सूत्रो मे क्षीणता का अनुमान हो जाता है। इसी प्रकार श्वास लेने पर बालक मे पसलिया अन्दर को धस जाती हो तो छोटी सास की नालियो मे अवरोध होने (Bronchiolitis) का अनुमान हो जाता है। इसी प्रकार रोगी का शरीर पतला, छाती पतली, हाथ-पाव भी कुछ पतले हो तो उसे वायु प्रकृति (Asthenic Temperament) का, तथा शरीर मोटा, हाथ-पाव आदि मोटे हो तो उसे कफ प्रकृति (Sthenic Temperament) का जान लेते है।

सामान्य प्रश्न (Interrogation) —

(१) वर्तमान रोग सम्बन्धी —

(१) नाम, आयु, पेशा, स्थान आदि पूछने के बाद रोगी की मुख्य शिकायत क्या है यह पूछना चाहिये।

(२) यह शिकायत कब से है, तब यह क्रमश शुरू हुई या सहसा, क्या-क्या उसके कारण बन गए, शुरू होने से लेकर अब तक क्रमश क्या-क्या उपाय किए। क्या किसी प्रकार के पथ्य या किसी औषधि से उसे कुछ लाभ प्रतीत होता है।

(२) **पूर्व इतिवृत्त सम्बन्धी**

इस कष्ट के आरम्भ होने से पहले क्या उसे कभी आमवातिक ज्वर (Rheu Fever), फिरग रोग, रोमान्तिका (Measles), कास ज्वर (Broncho Pneumonia), प्रवाहिका (Dysentery), चिन्ता रोग (Neurasthenia) हुए। स्त्री हो तो आर्तव सम्बन्धी तथा प्रसव सम्बन्धी लक्षणो का इतिवृत्त पूछे।

(३) **वश का इतिवृत्त**

क्या माता-पिता, भाई-बहनो मे कभी आमवात (Rheumatism), चिन्ता रोग, श्वास रोग, हृदय रोग, अपस्मार रोग, मधुमेह, उर क्षय, रक्तभार वृद्धि, सन्यास मूर्छा, पक्षाघात, मानस रोग आदि हुआ ?

भोजन प्रणाली सम्बन्धी परीक्षा (Physical Examination of the Alimentary Canal)

प्रश्न

(१) **दर्द**

पेट मे दर्द है तो किस स्थान पर है। बेचैनी सी या भारीपन ही है या तेज दर्द है (आमाशय आत आदि की श्लेष्मकला मे शोथ होने से केवल भारीपन होता है) कितने दिनो से है। भोजन खाने से कितनी देर बाद होता है (Nervous Dyspepsia तथा कैन्सर मे तुरन्त बाद होता Acid Dyspepsia या Ulcer मे कुछ देर बाद होता है)। किस प्रकार के भोजन से बढता है। किस प्रकार के भोजन या औषध से लाभ प्रतीत होता है। दर्द के दौरे होते है तो कितने-कितने अन्तर से, मालिश या दबाने से बढता है या शान्त होता है। उसके साथ वमन होती है तो दर्द शान्त होता है या नही। दर्द या तीव्र शूल कोष्ठ प्रदेश मे हो तो उदर रोग (Peritonitis) अजीर्ण जनित आन्त्र शूल (Colic) पित्ताशय शूल, (B Colic) वृक्क शूल (R Colic) कैन्सर, Mesentery Thrombosis, Appendicitis मे से किसी का सन्देह करना चाहिये। Diaphragm मे Hernia हो तो दर्द लेटने पर Epigastrium मे होता है बैठने पर हट जाता है।

(२) **भूख**

भूख कम है, साधारण है, या अधिक लगती है। पित्ताजीर्ण मे तथा यकृद्रोग, Uraemia, हृदयनैर्बल्य, क्षयरोग, ज्वर, कैन्सर, विषाद, चिन्तारोग, विटामिन बी कम्प्लेक्स की न्यूनता मे कम लगती है। अम्लपित्त, मधुमेह आन्त्रकृमि Hyperthyroidism मे अधिक लगती है। गर्भावस्था मे मट्टी की भूख लगती है।

(३) पेट मे अफारा, पेट के कैन्सर, पित्ताशयरोग, Diaphragm मे Hernia के कारण होता है। आत मे अफारा Amaebic Dysentery, यकृत वृद्धि तथा Giardiasis के कारण होता है। यकृतरोग, हृदय नैर्बल्य मे Portal congestion हो अर्थात् आत की Veins मे रक्त रुक जाये तो भी अफारा रहता है।

(४) कभी छाती मे जलन (Heart burn) तो नही होती। तीव्र अग्नि जनित अन्न मार्ग शोथ या Hyperchlorhydric Oesophagitis के या आमाशय द्रव के ऊपर मुख मे आने से होता है उसे Pyrosis कहते है। पेट के Hernia मे भी जलन हो सकती है।

(५) उल्टी होती है तो वह किस किस्म की होती है। (मात्रा मे थोडी या अधिक होती, गन्ध कैसी होती, रक्तयुक्त तो नही, कफयुक्त या पित्त Bile युक्त होती है) मुख से पानी ही गिरता है तो वह खट्टा, मीठा, कडवा कैसा होता है। रात को मुख से अधिक थूक तो नही आती। वमन का लक्षण दर्द के साथ तो नही होता (पित्ताश्मरी, आमाशय व्रण, कैन्सर का भेद करना चाहिये। रक्त वमन बडी मात्रा मे हो तो Ulcer का सन्देह करे। कैन्सर मे रक्त स्वल्प मात्रा मे आता है। मूत्र विष सचार (Uraemia) का भी ध्यान रखना चाहिये) मुख या अन्न प्रणाली मे

या आमाशय मे किसी प्रकार का विक्षोभक कारण विद्यमान हो, अम्ल की अधिकता हो तो उसकी Reflex प्रतिक्रिया के कारण मुख तथा अन्न प्रणाली मे से बहुत-सा पानी (Saliva) निकलकर बाहर आ जाता है जिसे Ptyalism या Water Brash या अति निष्ठीवन कहते है।

(६) वमन का कारण Pylorus मे कैन्सर द्वारा अवरोध होता है। Ulcer के कारण भी वमन होता है।

(७) Dysphagia—भोजन नाली मे कैन्सर के या थैली Diverticulum के बन जाने से होता है या ulcer के उपद्रव रूप मे भी होता है।

(८) प्यास अधिक लगती है या कम। ज्वर, अतिसार, मधुमेह, आमाशय व्रण या Acid Dyspepsia मे अधिक लगती है।

(९) अतिसार होते हैं तो दिन भर मे किस समय होते हैं। कितने होते हैं। मल कुछ ढीला-सा ही होता है या अधिक पतला, मात्रा मे थोडे-थोडे होते हैं या बडे-बडे, उनका रग क्या होता है। उनके साथ ज्वर तो नही रहता। उनमे आव या खून तो नही होता। मरोड से होते या बिना मरोड के। (सग्रहणी, दोनो प्रवाहिका, बालको के ग्रीष्मातिसार, Bacterial Diarrhoea, Uraemia, या Ulcerative Colitis का भेद करना चाहिए। अतिसार अधिकत Amaebiasis तथा Giardiasis के कारण होता है। बडी आयु मे मल मे रक्त, गुदा मे कैन्सर का सूचक होता है। (मध्य आयु मे Ulcerative Colitis का) मलबन्ध हो तो देखें कि वह आतो की मासपेशियो की निर्बलता (वृद्धावस्था) से है या मानसिक विक्षोभशीलता (Spastic Constipation) से है या मल त्याग के समय के निश्चित न होने से है या भोजन के अन्दर किसी कमी (Roughage की कमी) से है या जल दोष (Hard water) मे है। यकृत रोग मे भी मलबन्ध होता है अम्लपित्त (Heart Burn) हो तो पेट मे अम्ल की अधिकता अर्थात् Hcl की अधिकता का अनुमान करना चाहिये।

परीक्षा :

दर्शन (Inspection) परीक्षा – मुख खोलकर देखे कि मसूडो मे शोथ या पाक तो नही (Pyorrhoea)। जिह्वा जो पेट की सूचक होती तथा स्वच्छ और गीली होती है, देखे कि मोटी या फूली हुई तो नही अर्थात् उसके किनारो पर दातो के निशान तो नही (Dyspepsia)। वह शुष्क (Dehydration, Toxaemia, Uraemia, Anxiety, Prostration) या अधिक गीली (Stomatitis तथा Hyperacidity) तो नही। उसका रग क्या है। वह मलयुक्त है या स्वच्छ है वह मलिन होती है Tonsillitis, मलबन्ध, अजीर्ण, निमोनिया, Fever Uraemia मे तथा बीच मे मैली, किनारो पर लाल होती typhoid मे उसके अकुर (Papillae) है या लुप्त हैं अर्थात् जीभ साफचट तो नही (Sprue, Riboflavin की कमी) जीभ पर या मुख के अन्दर लालिमा और शोथ तो नही। जीभ कापती तो नही (Paralysis agitans, अति नैर्बल्य)।

कोष्ठ को देखे कि वह अधिक उभरा हुआ (Ascietes) या पटका हुआ (Meningitis, Mal nutrition) तो नही। सामने का उभार हवा का, पार्श्वो का उभार जल का सूचक होता है। त्वचावर्ती सिराये अधिक स्पष्ट तो नही, हो तो यकृत् वृद्धि का सन्देह हो जाता है।

स्पर्शन (Palpation) परीक्षा

रोगी को ऊचे तकिये के सहारे लिटाकर उसके गोडे खडे कराकर अगुलियो के पोचे से पेट के विभिन्न प्रदेशो को दबाकर देखना चाहिए। Right Hypochondriac प्रदेश मे यकृत, पित्ताशय, Duodenum, बडी आत का दाया मोड, वृक्क का कुछ अश, Epigastric प्रदेश मे आमाशय निम्नभाग, यकृत, Duodenum हैं। Left Hypochondriac प्रदेश मे आमाशय, प्लीहा, बडी आत का बाया मोड, वृक्क होते है। R Lumber प्रदेश मे Ascending-colon, वृक्क, Duodenum होते हैं। Umbilical प्रदेश मे लेटी हुई बडी आत, छोटी आत है, L Lumber प्रदेश मे उतरती बडी आत, वृक्क, छोटी आत है। R Iliac प्रदेश मे Caecum, Appendix, Ileum, Ureter Ovary है। Hypogastric प्रदेश मे Ileum, मूत्राशय, Uterus है। L Iliac प्रदेश मे Sigmoid-colon, Ureter, Ovary हैं। पहले दाये Iliac, फिर दाए Lumber, Hypochondriac तथा Epigastric, बाए Hypochondriac बाए

(२) यह शिकायत कब से है, तब यह क्रमश शुरू हुई या सहसा, क्या-क्या उसके कारण बन गए, शुरू होने से लेकर अब तक क्रमश क्या-क्या उपाय किए। क्या किसी प्रकार के पथ्य या किसी औषधि से उसे कुछ लाभ प्रतीत होता है।

(२) **पूर्व इतिवृत्त सम्बन्धी**

इस कष्ट के आरम्भ होने से पहले क्या उसे कभी आमवातिक ज्वर (Rheu Fever), फिरग रोग, रोमान्तिका (Measles), कास ज्वर (Broncho Pneumonia), प्रवाहिका (Dysentery), चिन्ता रोग (Neurasthenia) हुए। स्त्री हो तो आर्तव सम्बन्धी तथा प्रसव सम्बन्धी लक्षणो का इतिवृत्त पूछे।

(३) **वंश का इतिवृत्त**

क्या माता-पिता, भाई-बहनों में कभी आमवात (Rheumatism), चिन्ता रोग, श्वास रोग, हृदय रोग, अपस्मार रोग, मधुमेह, उर क्षय, रक्तभार वृद्धि, सन्यास मूर्छा, पक्षाघात, मानस रोग आदि हुआ ?

भोजन प्रणाली सम्बन्धी परीक्षा (Physical Examination of the Alimentary Canal)

प्रश्न

(१) दर्द

पेट मे दर्द है तो किस स्थान पर है। बेचैनी सी या भारीपन ही है या तेज दर्द है (आमाशय आंत आदि की श्लेष्मकला मे शोथ होने से केवल भारीपन होता है) कितने दिनो से है। भोजन खाने से कितनी देर बाद होता है (Nervous Dyspepsia तथा कैन्सर मे तुरन्त बाद होता Acid Dyspepsia या Ulcer मे कुछ देर बाद होता है)। किस प्रकार के भोजन से बढता है। किस प्रकार के भोजन या औषध से लाभ प्रतीत होता है। दर्द के दौरे होते हैं तो कितने-कितने अन्तर से, मालिश या दबाने से बढ़ता है या शान्त होता है। उसके साथ वमन होती है तो दर्द शान्त होता है या नहीं। दर्द या तीव्र शूल कोष्ठ प्रदेश मे हो तो उदर रोग (Peritonitis) अजीर्ण जनित आन्त्र शूल (Colic) पित्ताशय शूल, (B Colic) वृक्क शूल (R Colic) कैन्सर, Mesentery Thrombosis, Appendicitis मे से किसी का सन्देह करना चाहिये। Diaphragm मे Hernia हो तो दर्द लेटने पर Epigastrium मे होता है बैठने पर हट जाता है।

(२) भूख

भूख कम है, साधारण है, या अधिक लगती है। पित्ताजीर्ण मे तथा यकृद्रोग, Uraemia, हृदयनैर्बल्य, क्षयरोग, ज्वर, कैन्सर, विषाद, चिन्तारोग, विटामिन बी कम्प्लेक्स की न्यूनता मे कम लगती है। अम्लपित्त, मधुमेह आन्त्रकृमि Hyperthyroidism मे अधिक लगती है। गर्भावस्था मे मट्टी की भूख लगती है।

(३) पेट मे अफारा, पेट के कैन्सर, पित्ताशयरोग, Diaphragm मे Hernia के कारण होता है। आंत मे अफारा Amaebic Dysentery, यकृत वृद्धि तथा Giardiasis के कारण होता है। यकृतरोग, हृदय नैर्बल्य से Portal congestion हो अर्थात् आंत की Veins मे रक्त रुक जाये तो भी अफारा रहता है।

(४) कभी छाती मे जलन (Heart burn) तो नहीं होती। तीव्र अग्नि जनित अन्न मार्ग शोथ या Hyperchlorhydric Oesophagitis के या आमाशय द्रव के ऊपर मुख मे आने से होता है उसे Pyrosis कहते है। पेट के Hernia मे भी जलन हो सकती है।

(५) उल्टी होती है तो वह किस किस्म की होती है। (मात्रा मे थोडी या अधिक होती, गन्ध कैसी होती, रक्तयुक्त तो नही, कफयुक्त या पित्त Bile युक्त होती है) मुख से पानी ही गिरता है तो वह खट्टा, मीठा, कडवा कैसा होता है। रात को मुख मे अधिक थूक तो नही आती। वमन का लक्षण दर्द के साथ तो नही होता (पित्ताश्मरी, आमाशय व्रण, कैन्सर का भेद करना चाहिये। रक्त वमन बडी मात्रा मे हो तो Ulcer का सन्देह करे। कैन्सर मे रक्त स्वल्प मात्रा मे आता है। मूत्र विष सचार (Uraemia) का भी ध्यान रखना चाहिये) मुख या अन्न प्रणाली मे

या आमाशय मे किसी प्रकार का विक्षोभक कारण विद्यमान हो, अम्ल की अधिकता हो तो उसकी Reflex प्रतिक्रिया के कारण मुख तथा अन्न प्रणाली मे से बहुत-सा पानी (Saliva) निकलकर बाहर आ जाता है जिसे Ptyalism या Water Brash या अति निष्ठीवन कहते हैं।

(६) वमन का कारण Pylorus मे कैन्सर द्वारा अवरोध होता है। Ulcer के कारण भी वमन होता है।

(७) Dysphagia—भोजन नाली मे कैन्सर के या थैली Diverticulum के बन जाने से होता है या ulcer के उपद्रव रूप मे भी होता है।

(८) प्यास अधिक लगती है या कम। ज्वर, अतिसार, मधुमेह, आमाशय व्रण या Acid Dyspepsia मे अधिक लगती है।

(९) अतिसार होते है तो दिन भर मे किस समय होते हैं। कितने होते है। मल कुछ ढीला-सा ही होता है या अधिक पतला, मात्रा मे थोडे-थोडे होते है या बडे-बडे, उनका रग क्या होता है। उनके साथ ज्वर तो नही रहता। उनमे आव या खून तो नही होता। मरोड से होते या बिना मरोड के। (सग्रहणी, दोनो प्रवाहिका, बालको के ग्रीष्मातिसार, Bacterial Diarrhoea, Uraemia, या Ulcerative Colitis का भेद करना चाहिए। अतिसार अधिकत Amaebiasis तथा Giardiasis के कारण होता है। बडी आयु मे मल मे रक्त, गुदा मे कैन्सर का सूचक होता है। (मध्य आयु मे Ulcerative Colitis का) मलबन्ध हो तो देखे कि वह आतो की मासपेशियो की निर्बलता (वृद्धावस्था) से है या मानसिक विक्षोभशीलता (Spastic Constipation) से है या मल त्याग के समय के निश्चित न होने से है या भोजन के अन्दर किसी कमी (Roughage की कमी) से है या जल दोष (Hard water) से है। यकृत रोग मे भी मलबन्ध होता है अम्लपित्त (Heart Burn) हो तो पेट मे अम्ल की अधिकता अर्थात् Hcl की अधिकता का अनुमान करना चाहिये।

परीक्षा

दर्शन (Inspection) परीक्षा – मुख खोलकर देखें कि मसूडो मे शोथ या पाक तो नही (Pyorrhoea)। जिह्वा जो पेट को सूचक होती तथा स्वच्छ और गीली होती है, देखे कि मोटी या फूली हुई तो नही अर्थात् उसके किनारो पर दातो के निशान तो नही (Dyspepsia)। वह शुष्क (Dehydration, Toxaemia, Uraemia, Anxiety, Prostration) या अधिक गीली (Stomatitis तथा Hyperacidity) तो नही। उसका रग क्या है। वह मलयुक्त है या स्वच्छ है वह मलिन होती है Tonsillitis, मलबन्ध, अजीर्ण, निमोनिया, Fever Uraemia मे तथा बीच मे मैली, किनारो पर लाल होती typhoid मे उसके अकुर (Papillae) हैं या लुप्त हैं अर्थात् जीभ साफचट तो नही (Sprue, Riboflavin की कमी) जीभ पर या मुख के अन्दर लालिमा और शोथ तो नही। जीभ कापती तो नही (Paralysis agitans, अति नैर्बल्य)।

कोष्ठ को देखे कि वह अधिक उभरा हुआ (Ascietes) या पटका हुआ (Meningitis, Mal nutrition) तो नही। सामने का उभार हवा का, पार्श्वो का उभार जल का सूचक होता है। त्वचावर्ती शिराये अधिक स्पष्ट तो नही, हो तो यकृत् वृद्धि का सन्देह हो जाता है।

स्पर्शन (Palpation) परीक्षा

रोगी को ऊचे तकिये के सहारे लिटाकर उसके गोडे खडे कराकर अगुलियो के पोरे से पेट के विभिन्न प्रदेशो को दबाकर देखना चाहिए। Right Hypochondriac प्रदेश मे यकृत, पित्ताशय, Duodenum, बडी आतका दाया मोड, वृक्क का कुछ अश, Epigastric प्रदेश मे आमाशय निम्नभाग, यकृत, Duodenum है। Left Hypochondriac प्रदेश मे आमाशय, प्लीहा, बडी आतका बायामोड, वृक्क होते है। R Lumber प्रदेश मे Ascending-colon, वृक्क, Duodenum होते हैं। Umbilical प्रदेश मे लेटी हुई बडी आत, छोटी आत हैं, L Lumber प्रदेश मे उतरती बडी आत, वृक्क, छोटी आत है। R Iliac प्रदेश मे Caecum, Appendix, Ileum, Ureter Ovary है। Hypogastric प्रदेश मे Ileum, मूत्राशय, Uterus है। L Iliac प्रदेश मे Sigmoid-colon, Ureter, Ovary है। पहले दाये Iliac, फिर दाए Lumber, Hypochondriac तथा Epigastric, बाए Hypochondriac बाए

Lumber बाए Iliac, Hypogastric और फिर नाभि प्रदेश की क्रमश परीक्षा करनी चाहिए और इन प्रदेशो मे विद्यमान अगो मे से किसी का अनुभव हो या किसी मे दुखन हो तो उसका पता लगाना चाहिये। जहा दुखन या शोथ होता है रोगी उस प्रदेश को अकडा लेता है। स्वस्थ अवस्था मे पेट के सारे प्रदेश मृदु होते हैं एव अधिक अनुभव नही होते और उनमे दबाने से कही वेदना नही होती। Mc Burney's point पर विशेषत दबाकर Appendix को देखना चाहिये। नाभि प्रदेश पर दबाने से आत की दर्द का पता चलता है।

पेट मे कोई ग्रन्थि हो तो उसका भी स्पर्शन से पता लगता है। वह दीवार मे हो तो दीवार के साथ हिलती है तथा त्वचा को पकड कर उठाने से ग्रन्थि नही उठती।

यकृत् के निचले किनारे को भी स्पर्शन मे देखा जा सकता है। Rectus के बाहर हाथ के किनारे या अगुलियो के सिरो को पसलियो के समानान्तर पेट मे धसा कर रखें और रोगी को गहरा श्वास लेने के लिये कहे तो उसका निचला किनारा हाथ को लगता है जो साधारणत मृदु होता है। Epigastrium मे पडे हुए यकृत को दबाकर उसमे विद्यमान शोथ का पता लगा सकते हैं। हृदयनैर्बल्य के कारण यकृत् बढा हुआ हो तो उसके कैप्स्यूल पर दबाव पडने से वह दुखता है परन्तु स्पर्श मे मृदु और सम होता है। Cirrhosis मे यकृत पृष्ठ कुछ कठोर होता है पर कैन्सर मे यह अति कठोर और विषम होता है। Hepatitis तथा यकृत् विद्रधि (Hepatic Abscess) मे यकृत् पृष्ठ दुखता है पर स्पर्शन मे मृदु ही होता है। परन्तु टकोर की मन्दता ऊपर के किनारे पर अनुभव होती है। यकृत वृद्धि Viral या Amaebic Hepatitis से Heart failure से Carcinoma से तीन प्रकार की होती है।

पित्ताशय (Gall Bladder) के स्पर्शन के लिए Rectus के ठीक बाहर नवमी पसली के अन्दर की तरफ अगुलियो को धसाकर रोगी को श्वास लेने के लिए कहें तो पित्ताशय का स्पर्शन होता है। और उसका सास रुक जाता है। (Murphy's Sign).

प्लीहा के स्पर्शन के लिए रोगी की दाईं ओर खडे होकर बाईं ओर पसलियों के नीचे दाए हाथ की अगुलियो को खुभोकर रोगी को गहरा श्वास लेने के लिए कहें। यह बढी हुई हो तो उसका निचला तीखा किनारा जिसमे Notch भी होती है। हाथ को लगता है। विषम ज्वर मे प्लीहा बढी हुई हो तो कठोर होती है। मन्थर ज्वर तथा Septicaemia मे बढी हुई हो तो मृदु होती है।

गुर्दा अन्तिम पसली के पीछे होता है। बाया, दाए से आधे इच ऊपर होता है। एक हाथ कमर पर, अन्तिम पसली के ऊपर तथा नीचे Costovertebral angle पर रखें। दूसरा आगे की तरफ पसलियो के नीचे रखें। पिछले हाथ को आगे की ओर, और अगले को पीछे और ऊपर की ओर दबाये तो दोनो के बीच मे गुर्दे को अनुभव किया जा सकता है। आमाशय पर स्पर्शाक्षमता हो तो Peptic ulcer जाने।

टकोर (Percussion) परीक्षा

यकृत् प्लीहा प्रदेशो को छोडकर शेष कोष्ठ पर टकोर की आवाज अधिक ऊची (Tympanitic) होती है। किन्तु जलोदर के हो जाने पर जल वाले प्रदेश पर टकोर की आवाज मन्द (Dull) हो जाती है। अर्थात् रोगी चित लेटा हुआ हो तो कोष्ठ के मध्य प्रदेश पर टकोर की आवाज ऊची और दोनो पार्श्वों पर जल के होने के कारण मन्द होती है। अब रोगी को एक पार्श्व पर लिटा दे तो ऊपर की आवाज ऊची हो जाती तथा मध्य प्रदेश और निम्न पार्श्व की आवाज मन्द हो जाती है। जलोदर मे Dullness, Shifting किस्म की होती है। जलोदर (१) Portal obstruction से होता है जैसे Cirrhosis मे (२) Peritoneum के रोग मे जैसे Tuberculous तथा Malignant मे होता है (३) हृदय तथा वृक्क रोगो मे भी हलका जलोदर होता है।

यकृत का ऊपर का किनारा टकोर परीक्षा मे जाना जाता है। दाईं ओर Mid Clavicular Line मे ऊपर से नीचे की तरफ टकोरते आयें तो छठी पसली पर या Right Nipple से २ सेंटीमीटर नीचे आवाज मन्द हो जाती है। Mid Axillary Line मे ऊपर से नीचे टकोरते आवे तो आठवी पसली पर, और, पीठ पर Scapular Line मे ऊपर से नीचे टकोरते आवें तो दसवी पसली पर टकोर की आवाज मन्द हो जाती है यकृत् का ऊपर का किनारा बाईं ओर पाचवें पर्शु का मध्य मे हृदय के Apex के पास तक आता है। इन बिन्दुओ को मिलाने से यकृत् की ऊपर की सीमा बन जाती है। यकृत् की निचली सीमा बाये पाचवे पर्शु का मध्य से आरम्भ हो Xiphoid के सिरे से ४ अगुल नीचे, Midclavicular रेखा मे पसलियो के साथ Midaxillary रेखा मे १० वे पर्शु का मध्य मे, Scapular रेखा मे ११ वे पर्शु का मध्य तक, पीछे जाती है, Left

lobe मध्यरेखा से ५ से मी बाईं ओर जाता है। स्वस्थ यकृत् के मृदु होने से यह सीमा हाथ को अनुभव नही होती। (यकृद् वृद्धि Cirrhosis, यकृच्छोथ Hepatitis, विद्रधि Abscess, कैन्सर, कामला का भेद करना चाहिए। इसके पृष्ठ की कठोरता, विषमता तथा अति वृद्धि कैन्सर का सूचक है। Cirrhosis मे पृष्ठ कुछ कठोर होता है। Hepatitis तथा Heart failure मे पृष्ठ मृदु होता, स्पर्शाक्षम होता है) Auscultation — Symphysis-pubis के उभार के ऊपर की तरफ मध्य-रेखा मे Stethoscope रखकर सुनने से Faetal heart Sound सुनी जा सकती है। गर्भावस्था मे गर्भ के दोनो ओर नीचे की तरफ चौथे महीने के बाद एक Soft murmur जो नाडी उठने के साथ होती है सुनाई पडती है, इसे Uterine Souffle कहते है।

वमन परीक्षा .

वमन मे अपक्व अन्न हो तो अजीर्ण का, विशेष पीला रग हो तो मलेरिया का और अम्लीयता विशेष हो तो Gastric Ulcer का सदेह करना चाहिये। आयु के अनुसार बच्चो मे प्राय अजीर्ण के कारण, युवको मे Gastric Ulcer के कारण, गर्भिणी मे Pregnancy Toxaemia के कारण, बडो मे Uraemia तथा आमाशय के कैन्सर के कारण उल्टी हुआ करती है।

मल परीक्षा .

साधारणत मल (Stercobilin के कारण) हल्के-से भूरे रग का और प्रोटीन के बृहदन्त्र मे होने वाले विदाह से उत्पन्न हल्की-सी गन्ध का, हल्का-सा क्षारीय (PH 7 5) दिन भर मे दो छटाक मात्रा मे एक बार या दो बार करके आता है। देखने मे बन्धा हुआ और मृदु होता है। यदि यह मात्रा मे अधिक हो जाय तो अजीर्ण तथा अतिसार Enteritis समझना चाहिए। बार-बार थोडा-थोडा आये या ढीला आये तो Colitis का सदेह करे। यह Bacillary हो तो मल क्षारीय होता है। रग मे श्वेत हो तो Bile की कमी या Fat की अधिकता या कामला Obstructive Jaundice का अनुमान करें। श्वेत तथा झागदार हो, मात्रा मे बडा हो तो ग्रहणी रोग का सन्देह करे। Bile की कमी से मल मे दुर्गन्ध या विदाह की वृद्धि होती है, मल मे खट्टी-सी बू आए तथा गैस हो तो Carbohydrate के अपचन का सूचक होती है, अर्थात् उसमे अम्ल वृद्धि को सूचित करती है। Amaebic Dysentery के कारण आत मे व्रणो के होने से भी मल मे मास की-सी गन्ध आती है तथा मल ढीला और अम्लीय होता है। मलाशय कैन्सर मे भी मल मे दुर्गन्ध बढ जाता है। गुदा से रक्त आये तो वह लाल रग का होता है, यदि वह ऊपर से आये जैसे कि Amaebic Dysentery मे आमाशय व्रण मे स्वल्प मात्रा मे आता है तो उसके कारण मल का रग काला-सा हो जाता है।

श्वास स्थान की परीक्षा (Examination of the Respiratory System)

प्रश्न

(१) क्या परिवार मे किसी को क्षय या श्वास का रोग हुआ था, शरीर क्रमश कृश तो नही होता, रात को सोते समय पसीना तो नही आता।

(२) श्वास मार्ग मे कही विक्षोभ हो तो ९ वी, १० वी मस्तिष्क नाडी से उसकी प्रतीति ऊपर जाती और उसकी प्रतिक्रिया मे Broncho Spasm होकर खासी उठती है, खासी गीली है या खुश्क। गीली फुफ्फुस के रोग, खुश्क, गले, कठ, प्लूरा मे रोग का सूचक होती है। क्षय रोग के प्रारभ मे भी खुश्क होती है। उसमे सीटी (Whoop) की आवाज तथा वमन तो नही होती, किस समय या किस ऋतु मे अधिक उठती है। खासने से छाती मे कही दर्द होता है तो किस स्थान पर होता है, (दर्द, Pleurisy या हृदयरोग Angina या Thrombosis के कारण या कैन्सर के कारण होता है) बलगम गिरता है तो वह किस किस्म का होता है। मात्रा मे थोडा होता है या अधिक होता है। उसमे रक्त तो नही होता। किसी करवट पर लेटने से खासी अधिक तो नही उठती तथा बलगम अधिक तो नही गिरती (उर क्षय तथा Bronchiectasis मे बलगम ढीली तथा मात्रा मे अधिक होती है, पिछले रोग मे कुछ दुर्गन्धयुक्त भी होती है। क्षयरोग मे बलगम रक्तरजित होता है। Lung Abscess मे बलगम अधिक मात्रा मे गिरता तथा रक्त मिश्रित होता है। फुफ्फुस कैन्सर मे बलगम मे हल्का-सा रग कुछ दुर्गन्ध और Prune juice Colour होता है)।

(३) श्वास कठिनता का लक्षण होता है तो क्या वह रात को श्रम के बाद विशेष होता है या विना श्रम के भी प्रतिदिन होता है। (रक्त भार बढा हुआ हो, दौरे मे पसीना अधिक आता हो, नाडी भरी हुई हो, आयु वडी हो, श्वासकाठिन्य के साथ ही खासी भी शुरू हो जाती हो, फुफ्फुस तलो मे Rales भी हो, दौरा रात के प्रथम या मध्यम भाग मे हो तो हृदय रोग जनित (Left heart failure से उत्पन्न) श्वास होता है तथा दिन मे भारी श्रम के बाद रात को यह दौरा होता है इसमे Pulmonary-oedema होता है) । साधारण श्वास रोग मे जो क्षुद्र-श्वास-नालियो मे शोथ के कारण होता है रक्तभार अधिक नही होता। स्वेद अधिक नही होता, श्वासकाठिन्य के समाप्त होने के बाद खासी होती है, बलगम वैसी पतली नही होती, तथा छोटे-छोटे चपकीले खण्डो मे निकलती है । फुफ्फुस मे Asthma, Emphysema कैन्सर के कारण श्वास काठिन्य होता है। बडी आयु मे चिरस्थायी वृक्क रोग तथा तज्जनित अम्ल वृद्धि (Acidaemia) के कारण भी श्वास-काठिन्य के दौरे होते हैं तब मूत्र मे अल-ब्यूमिन तथा Casts मिलते है। Orthopnoea या अतिश्वास काठिन्य-वामहृदय के फेल होने, Emphysema, और Ascites, के कारण होता है। उर शूल रोग मे गहरे श्वास के साथ छाती मे चुभन हो तो पार्श्वशूल का, उरोस्थि के पीछे शूल हो तो हृदयशूल का सन्देह करना चाहिये । वह किसी बाहु, ग्रीवा आदि की ओर जाता लगता है । श्रम या आवेश के कारण होता है। Diaphragm पर चढे फुफ्फुसावरण मे शूल हो तो वह उदर के कन्धे मे या उदर पेट मे प्रतीत होता है। इसके कारण हिक्का भी होती है।

दर्शन (Inspection) परीक्षा

रोगी के कपडे उतार कर उसकी छाती का निरीक्षण करना चाहिए । Sternal angle या sternum का उभार एक Landmark है यहा दूसरी पसली सधि करती है। इस लेवल पर Trachea दो भागो मे विभक्त होता है। यहा हृदय के Auricles का ऊपर का लैवल है। गर्दन के पीछे सातवे Spinal vertebra का Spine भी एक Landmark है जहा से Dorsal spines की गिनती की जा सकती है। पीठ पर नीचे १२ वी पसली स्पष्ट है उससे ऊपर की ओर या सातवी पसली जो Scapula के Inferior angle के लेवल पर है उससे ऊपर की ओर पसलिया गिनी जा सकती हैं। साधारणत देखने मे छाती का आगे पीछे का व्यास कुछ कम और दाए-बाए का व्यास कुछ अधिक होता है। उनका अनुपात लगभग ५-७ का होता है। स्तनो के लेवल पर छाती का माप लगभग ३५ इच का होता है और श्वास लेने पर यह माप १½ इच से २ इच तक बढ जाता है। अब यदि देखने मे छाती आगे पीछे की दिशा मे दबी हुई हो, हसली की हड्डी के ऊपर नीचे गढे हो, पसलियो के बीच के प्रदेश अन्दर धसे हुए हो अर्थात् पसलियो के बीच की मासपेशिया सूख गई हो तो उर क्षय रोग का सन्देह करना चाहिए। फुफ्फुस के जिस भाग मे स्नायु भाग (Fibrosis) होता है वह दबा हुआ दीखता है।

यदि छाती अधिक फूली हुई हो, आगे पीछे का व्यास भी बढा हुआ हो, परन्तु श्वास लेने के बाद जितना विस्तार और होना चाहिए उतना न हो ऐसी छाती को Barrel shaped Chest कहते हैं। इस अवस्था मे फेफडो मे हवा अधिक भरी रहने के लक्षण वाले Emphysema रोग का सन्देह करना चाहिये।

यदि बालक मे उरोस्थि (Sternum) आगे को उभरी हुई हो, उसके दोनो ओर ऊपर-नीचे खाई-सी हो तो इसे Pear shaped Chest और यदि खाई न हो तो उसे Pigeon shaped Chest कहते हैं और यह अस्थि शोष रोग (Rickets) का सूचक होती है।

सास लेने पर पसलियो के बीच के प्रदेश अन्दर धस जाते हो तो छोटी श्वास नालियो मे अवरोध (Bronchiolitis) का सन्देह करे। श्वास लेने पर छाती के ऊपर के सिरे अच्छी तरह न फूलते हो तो उनमे रोग (Fibrosis या Consolidation) का सन्देह करना चाहिए। फुफ्फुस का जो भाग क्षयरोग या श्वास ज्वर (Pneumonia) से ठोस हो जाता है वह भी श्वास लेने पर नही फूलता। फुफ्फुसावरण कोप मे जल हो तो वह प्रदेश भी श्वास से भली प्रकार नही फूलता । दोनो ओर छाती फूली हुई रहे, श्वास लेने पर और अधिक न फूले तो Emphysema का सन्देह करें।

श्वास गति

स्वस्थ व्यक्ति मे प्रति मिनट १८ होती है। नाडी गति

७२ होती है। इस प्रकार दोनो का अनुपात १ ४ का होता है। ज्वरो मे प्रति डिग्री तापमान के पीछे श्वास सख्या २-३ वढती है, नाडी सख्या १० वढती है । रक्त मे आक्सिजन की मात्रा के कम हो जाने पर श्वास सख्या वढती है। जव-जव रक्त को आक्सिजन की आवश्यकता होती है यह सख्या वढ जाती है जैसे हृदयनैर्वल्य, पाण्डुरोग, जीर्णवृक्क रोग मे ।

अन्त तथा वहि श्वास का अनुपात ५ ७ का होता है। श्वास मार्गो मे अवरोध होने से पहला लम्वा हो जाता है। इन अन्त तथा वहि श्वासो मे से वहि श्वास लम्वा दिखाई पडे तो फुफ्फुस जनित या हृदय जनित श्वास रोग या Emphysema का सन्देह करना चाहिए। फुफ्फुसो मे मृदुता के कम हो जाने से ऐसा होता है। निद्रावस्था मे Cheyne Stokes Breathing सुनाई पडे तो हृदयनैर्वल्य (Myocardial Infarct या Fibrosis) या जीर्ण वृक्क रोग (Renal Failure या Uraemia) का सन्देह होना चाहिए। Medulla मे विद्यमान श्वास केन्द्र को ठीक-ठीक रक्त के न मिलने का सूचक यह लक्षण होता है। वडी आयु मे कभी-कभी ऐसा होना स्वाभाविक भी है। वालक मे अन्त श्वास के साथ कूजन (Stridor) सुनाई पडे तो उसके कण्ठ मे स्तम्भ (Spasm) का सन्देह होना चाहिए (Laryngismus Stridulus)। कुरहाड की आवाज तालु की शिथिलता की सूचक है। श्वास प्रश्वास साधारणत Abdominothoracic होता है। वह Abdominal होता है Pneumonia मे। पेट मे कही सूजन या दुखन हो तो वह Thoracic होता है।

स्पर्शन परीक्षा (Palpation)

बोलते समय कण्ठ के हिलने से छाती की दीवार मे कम्पन (Vocal fremitus) उत्पन्न होता है जिसे हम अपनी हथेली रखकर अनुभव कर सकते हैं। रोगी को कहे कि वह एक-एक, एक, ऐसा शब्द वोलता जाये उसमे उसकी छाती की दीवार पर हथेली रखनी चाहिए, जव फुफ्फुस के एक प्रदेश मे ठोसपन (Consolidation) हो या छाती की दीवार के ठीक नीचे छोटी-सी गुफा (Cavity) हो तो कम्पन वढा हुआ प्रतीत होता है। जव फुफ्फुस और दीवार के वीच मे कही पर द्रव (Hydrothorax) हो या वायु (Pneumothorax) हो तो यह कम्पन लुप्त हो जाता है। Alveoli मे अधिक हवा भरी हुई हो (Emphysema हो) तो भी यह कम अनुभव होता है।

टकोर (Percussion) परीक्षा .

वाए हाथ की मध्यम अगुली को छाती पर सटती हुई टिकाकर उसके वीच की पोर के ऊपर दाए हाथ की ९० का कोण वनाती हुई मध्यम अगुली से जोर से टकोरा जाता है और टकोर देते ही ऊपर की अगुलि को उठा लिया जाता है ताकि आवाज साफ हो। हाथ को केवल कलाई पर ही मोडा जाता है या केवल Metacarpal सधि पर। पहले एक पसली से दूसरी पसली पर टकोर दी जाती है फिर पसलियो के वीच के प्रदेश पर टकोरा जाता है। इस प्रकार छाती के दोनो ओर आवाज की परस्पर तुलना की जाती है। ऊची टकोर वाले प्रदेश से मन्द टकोर वाले प्रदेश की ओर जाना चाहिये तथा निचली अगुली को मन्द टकोर वाले प्रदेश के समानान्तर रखना चाहिए। ऐसा न हो कि हमारी निचली अगुली का कुछ भाग तो ऊची टकोर वाले प्रदेश पर और कुछ भाग नीची टकोर वाले प्रदेश पर आ जाए।

स्वस्थ फेफडे पर टकोर की आवाज ऊची (Resonant) होती है। पहले अगली छाती की परीक्षा करनी चाहिए अर्थात् दोनो ओर हसली की हड्डियो (Clavicles) पर टकोर की तुलना करनी चाहिए। फिर ऊपर से नीचे की ओर पहले पसलियो और फिर पसलियो के वीच के प्रदेशो पर क्रमश टकोरना चाहिए।

अव दाई ओर Mammary लाइन अथवा स्तन की रेखा पर टकोरते आये तो छठी पसली पर आकर यकृत् के आरम्भ होने के कारण टकोर की आवाज मन्द हो जाती है। कक्ष मे फेफडा ८वी पसली पर होता है। पीठ पर दाये फेफडे का निचला सिरा १०वे पर्शुका मध्य तक होता है। वाई ओर छाती की हड्डी (Sternum) के ठीक वाहर अर्थात् Lateral Sternal Line पर ऊपर से नीचे टकोरते आए तो चौथी पसली के इस हड्डी के साथ सन्धि के स्थान पर हृदय आ जाने के कारण टकोर मन्द हो जाती है। फिर इसी वाई ओर हसली के मध्य से नीचे गिरती हुई रेखा (Mid Clavicular Line) पर नीचे को टकोरते आये तो छठे पर्शुका मध्य (Interspace) मे आमाशय के शुरू हो जाने से टकोर की आवाज अधिक ऊची (Tympanitic) हो जाती है। पीठ पर वाये फेफडे का निचला सिरा ११वे पर्शुका मध्य मे होता है।

अव रोगी को कहे कि वह अपने दोनो हाथ सिर पर रख ले। ऐसी अवस्था मे कक्ष प्रदेशो मे ऊपर से नीचे की ओर टकोर परीक्षा करनी चाहिये। दाई ओर कक्ष की मध्य रेखा मे टकोरते आये तो आठवी पसली पर यकृत्

के गुरु हो जाने से टकोर की आवाज मन्द हो जाती है। बाईं ओर कक्ष-मध्य रेखा मे नीचे को टकोरते आयें तो नौवी पसली पर प्लीहा के आरम्भ हो जाने से टकोर मन्द हो जाती है।

इसके बाद रोगी को कहे कि वह अपने हाथों को दूसरी ओर के कन्धों पर रखे तब पीठ पर रीढ की हड्डी और असफलक (Scapula) के बीच के प्रदेश मे ऊपर से नीचे और बाहर की ओर को टकोरते आये और दोनो ओर की आवाज की तुलना करे।

दाईं ओर Scapula के निचले कोण से गिरती हुई रेखा पर दसवी पसली पर यकृत् के आ जाने से टकोर मन्द हो जाती है। रीढ की हड्डी के पास दसवी Interspace पर टकोर की आवाज मन्द हो जाती है। इस प्रकार फेफडे, नीचे की ओर, ग्यारहवी पसली तक ही अनुभव होते हैं।

फेफडे छोटे-छोटे वायु कोष्ठको (Air Vesicles) के द्वारा बने होते हैं। इसलिए उनके ऊपर की हुई टकोरो की आवाज एक विशेष प्रकार की ऊची (Resonant) होती है। जहा कही भी फेफडा कुछ ठोस हो जाता है अर्थात् हवा के स्थान पर कुछ दूसरा अवयव आ जाता है वहा टकोर की आवाज मन्द हो जाती है। इसके विपरीत जब फेफडे मे रोग के कारण जैसे Emphysema मे हवा अधिक भरी रह जाती है तो टकोर की आवाज अधिक ऊची (Hyper resonant) हो जाती है और यदि इन छोटे-छोटे वायु कोष्ठको की दीवारे (Septa) नष्ट हो जाये अर्थात् वहा बडी गुफा (Cavity) बन जाए तो उसके ऊपर की हुई टकोर की आवाज अधिक ऊची (Tympanitic) हो जाती है। Pleura मे जल भरा हो तो उसके लेवल के ऊपर के फुफ्फुस मे हवा के भरने से Skodaic resonance या Subtympanitic आवाज सुनाई देती है।

अब यदि एक फेफडे के ऊपर के सिरे पर अर्थात् Clavicle के नीचे, और पिछली ओर Scapula के ऊपर की ओर टकोरने से आवाज मन्द Loss of resonance प्रतीत हो तो वहा के वायु कोष्ठको मे क्षय रोग के कारण द्रव के भर जाने या स्नायु भाव (Fibrosis) के हो जाने से वहा हवा का प्रवेश कम हो गया है, ऐसा समझना चाहिये।

Lobar Pneumonia मे जब फेफडे का नीचे का एक Lobe ठोस हो जाता है। (Pneumonic consolidation) तो उस पर की हुई टकोर की आवाज भी मन्द हो जाती है। इसी प्रकार हृदय के किसी कारण से निर्बल हो जाने के कारण जब दोनो फेफडो के तलो (Bases) पर द्रव भर जाता है तो उन पर भी टकोर की आवाज मन्द हो जाती है। Pleura के जिस प्रदेश मे द्रव भरा (Effusion) हो तो वहा पर भी टकोर की आवाज मन्द (Dull note) हो जाती है। बालको मे दोनो Scapulae के बीच प्रदेश मे टकोर की आवाज मन्द सुनाई पडे तो Mediastinal Glands के बढे हुये होने का सूचक होती है। छाती पर टकोर की आवाज ऊची हो जाती है जब फेफडो मे हवा अधिक भरी हुई हो अर्थात् Emphysema हो या दीवार के पास ही गुहा (Cavity) हो या फुफ्फुसावरण कोष मे वायु हो अर्थात् Pneumothorax हो। गुहा मे स्नायु भाव हो या द्रव भरा हो तो आवाज मन्द होती है।

श्रवण (Auscultation) परीक्षा ·

रोगी को बैठाकर और उसे मुख से गहरे श्वास लेने को कहकर उसकी Back की परीक्षा होनी चाहिए।

छाती के ऊपर के प्रदेश मे कण्ठ नाली (Trachea) पर अर्थात् Sternum के ऊपर के भाग तथा पीठ पर, नीचे के ३-४ Cervical और ऊपर के चार Dorsal Vertebrae पर सुनने से बडी-बडी श्वास नालियो मे उत्पन्न होने वाली हो-हो (Hau-Hau) की आवाज को Bronchial Breathing कहते हैं। इसमे पहले अन्त श्वास की आवाज सुनाई पडती है फिर हल्के-से व्यवधान के बाद उतनी ही लम्बी, उसकी अपेक्षा कुछ ऊची, बहि श्वास की आवाज सुनाई पडती है। यह फूत्कार सदृश होती, कठोर होती, इसमे बहि श्वास लम्बा होता है।

बडी श्वास नालियो से दूर फेफडो पर विशेषत कक्ष प्रदेश और Scapula के नीचे के प्रदेशो मे जहा पर श्वास नालिया बडी नही होती प्रत्युत वायु कोष्ठक (Vesicles) विशेष होते हैं तो उनके अन्दर वायु प्रवेश जनित कम्पन से उत्पन्न होने वाली आवाज को Vesicular Breathing या Vesicular Murmur कहते है। यह फुफ्फुस मे होने वाली कम्पन की आवाज (Murmur) लगातार बनी रहती है। अर्थात् इसमे व्यवधान नही होता। इसमे अन्त श्वास की आवाज सारी सुनाई पडती है, परन्तु बहि श्वास का प्रथम भाग ही थोडा-सा सुनाई पडता है, उसका पिछला भाग सुनाई नही पडता है इस लिए इसमे अन्त श्वास और बहि श्वास की लम्बाई का अनुपात ३ १ होता है। यद्यपि वस्तुत बहि श्वास और अन्त श्वास की लम्बाई का अनुपात ६ ५ का होता है बहि श्वास का कुछ भाग सुनाई नही पडता।

अब रोग के कारण जब फुफ्फुस का कोई भाग ठोस

हो जाता है पर श्वास नालियो के साथ सम्बन्धित रहता है, तब वहा पर सुनने से Bronchial Breathing अधिक स्पष्ट हो जाता है जैसे Lobar Pneumonia या Caseous Pneumonia of Tuberculosis मे ठोस भाग छोटी श्वास नालियो के साथ सम्बन्धित हो तो वहा पर सुनाई पडने वाले Bronchial Breathing को Tubular या High-pitched bronchial Breathing कहते हैं।

फुफ्फुस मे विद्यमान ऐसी गुहा पर जो कि किसी बडी श्वास नाली से सम्बन्धित हो जो एक टवल फूक (Hau Hau) की Low pitched आवाज सुनाई पडती है और जो खोखले प्रदेश मे फूक मारने के सदृश होती है तथा जिसमे दोनो फूको के बीच व्यवधान होता है उसे Cavernous Breathing कहते हैं।

जब Pleura मे हवा भरी हुई हो अर्थात् Pneumothorax हो और इसके साथ फेफडे की कोई श्वास नाली भी सम्बन्धित हो तो वहा पर खाली बोतल मे फूक मारने की-सा जो Highpitched आवाज सुनाई पडती है उसे Amphoric Breathing कहते है। फुफ्फुस मे बडी Cavity हो और वह श्वास नाली से सम्बन्धित हो तो उस पर भी यह आवाज सुनाई पडती है।

फेफडे पर भी Vesicular Breathing नार्मल हो अर्थात् न तो अधिक नीचा और न अधिक ऊचा हो तो फुफ्फुस को स्वस्थ समझना चाहिए।

जब दोनो फेफडो पर यह बढा हुआ Harsh या Exaggerated होता समझना चाहिए कि फेफडो की मृदुता कम हुई है, जैसे कि श्वास रोग मे हो जाती है। जब यह एक ओर के शिखर (Apex) पर बढा हुआ हो तो उधर क्षय रोग का सन्देह करना चाहिये। Emphysema मे Vesicles की मृदुता के कम हो जाने से फुफ्फुस मे नई हवा के कम प्रवेश करने से दोनो ओर यह घटा हुआ होता है पर Compensatory Emphysema मे जैसे फुफ्फुस के एक भाग के रोग के कारण ठोस हो जाने अर्थात् Consolidation के कारण Functionless हो जाने पर उसके शेष भागो मे Vesicular आवाज ऊची हो जाती है। फुफ्फुस मे Fibrosis हो तो भी Vesicular murmur घट जाता है। Pulmonary Oedema हो तो भी यह घट जाता है। Pleura मे जल Hydrothorax हो, या हवा हो Pneumothorax हो तो भी घट जाता है।

Broncho Vesicular Breathing—जब उपर्युक्त दोनो प्रकार की ध्वनिया एक स्थान पर सुनाई पडे तो उसे Broncho Vesicular Breathing कहते हैं। साधारणत Sternum के ऊपर के भाग पर तथा पीठ पर चौथे Dorsal Vertebra पर जहा Trachea विभक्त होता है वहा पर सास की नालियो, तथा वायु कोष्ठको, दोनो मे होने वाली आवाज सुनाई पडती है।

यदि फुफ्फुस का कोई भाग पूर्णतया ठोस (Consolidated) हो जाये तो वहा पर Bronchial आवाज सुनाई पडती है, Vesicular नही। परन्तु यदि कोई फुफ्फुस का भाग ठोस तो हो गया हो परन्तु उसके वायु कोष्ठको मे कुछ हवा प्रवेश भी करती हो अर्थात् Consolidation अपूर्ण हो वहा Broncho Vesicular आवाज सुनाई पडती है जिसमे वहि श्वास की आवाज नार्मल से कुछ दीर्घ होती, कुछ Bronchial या Tubular किस्म की होती तथा वहि और अन्त श्वास के बीच छोटा-सा व्यवधान भी होता है। इसीलिये यदि यह आवाज एक (Apex) पर सुनाई पडे तो क्षय रोग का और तल (Base) मे ऐसी आवाज सुनाई पडे तो Pneumonia या Broncho Pneumonia का सन्देह करे। यदि इसी मे वहि श्वास, अन्त श्वास के समान ही स्पष्ट तथा दीर्घ सुनाई पडे तो उसे कठोर या Harsh Vesicular Breathing कहते हैं, यह उर क्षय रोग का सूचक होता है। जब फुफ्फुस पर सुनने से वहि श्वास अन्त श्वास की अपेक्षा अधिक दीर्घ सुनाई पडे तो इसे दीर्घ वहि श्वास या Prolonged Expiration कहते है। श्वास रोग तथा Emphysema अर्थात् वायु पूर्ण फुफ्फुस रोग मे (फुफ्फुस मे मृदुता के कम हो जाने से) यह लक्षण होता है।

वाचिक ध्वनि (Vocal Resonance)

जब कोई व्यक्ति एक-एक-एक ऐसा शब्द मुख से बोल रहा हो तो फुफ्फुस पर सुनने से कण्ठ मे होने वाले शब्द का कम्पन श्वास वाहिनियो द्वारा हमे स्टेथस्कोप मे सुनाई पडता है यद्यपि स्पष्ट अक्षर नही सुनाई पडते छाती के ऊपर के भाग मे यह अधिक सुनाई पडती है। इसे वाचिक ध्वनि (Vocal Resonance) कहते है यह आवाज Bronchi पर अधिक स्पष्ट सुनाई पडती है। फेफडे पर शब्द के स्पष्ट न सुनने का कारण यह है कि फेफडे के वायु कोष्ठको मे विद्यमान वायु, शब्द का उत्तम वाहक नही है। परन्तु जब फुफ्फुस का कोई भाग ठोस या Infiltrated हो जाता है जैसे उर क्षय से या फुफ्फुस शोथ (Pneumonia) से तो श्वास नाली के द्वारा ऊपर से आई हुई आवाज हमे स्पष्ट सुनाई देती है इसे Bronchophony कहते हैं। जब बहुत धीरे-धीरे मुख के अन्दर बोला हुआ शब्द भी हमे Bronchi के अतिरिक्त फुफ्फुस पर साफ-साफ सुनाई पडे तो इसे Pectoriloquy

(Pectus=वक्षस्, Loqui=बोलना) कहते है। ऐसा तभी हो सकता है जब या तो फुफ्फुस का कोई भाग ठोस या Infiltrated हो गया हो और वह एक श्वास नाली के साथ सम्बन्धित हो या छाती की दीवार के नीचे ही एक गुहा (Cavity) हो जो किसी श्वास नाली से सम्बन्धित हो। पुरानी खासी (Bronchiectasis) मे जब श्वास नालिया चौडी-चौडी हो जाती हैं और पूय से भर जाती है तब भी वाचिक ध्वनि सुनाई पडती है। जब फुफ्फुस का कोई भाग Pleural effusion से दबकर ठोस हो जाता है वहा भी Atelectasis के होने से यह ध्वनि ऊची सुनाई देती है Compensatory Emphysema पर भी यह सुनाई पडती है।

वाचिक ध्वनि (Vocal Resonance) नही सुनाई पडती या बहुत कम सुनाई पडती है जब फुफ्फुस के कोष्ठको मे हवा अधिक भरी हो, क्योकि हवा वाचिक कम्पन का भली प्रकार वहन नही करती, इसलिये Emphysema या जब Pleura मे द्रव भरा हो यह नही सुनती है। यह द्रव तो शब्द का वाहक होता है, परन्तु द्रव के कारण फेफडा दीवार से दूर हो जाता है इसलिये वाचिक ध्वनि सुनाई नही पडती।

Adventitious Sounds — सीटिया (Rhonchi या कुरहुडे)—स्वस्थावस्था मे फेफडे पर सीटियो की आवाज नही सुनाई पडती, जब श्वास नालिया स्तम्भ (Spasm) के कारण जैसे श्वास रोग मे या (खासी मे) शोथ के कारण या Oedema के कारण जैसे Allergy मे तग हो जाती है तब उनमे सीटियो की सी ध्वनि उत्पन्न होने लगती है। यदि फेफडे की छोटी-छोटी श्वास नालियाँ विशेष तग हो तो अन्त श्वास के पिछले भाग मे ये सीटिया सुनाई पडती है (Sibilant or highpitched or Hissing Rhonchi) बडी-बडी अर्थात् चौडी श्वास नालियो मे स्तम्भ (Spasm) या शोथ हो तो अन्त-श्वास मे या उसके प्रारम्भिक भाग मे सीटिया सुनाई पडती हैं (Sonorous या Low pitched rhonchi) श्वास रोग मे या स्तम्भयुक्त कास मे ये सीटिया दोनो ओर के फेफडो मे व्यापक रूप मे सुनाई पडती हैं। श्वास रोग मे वहि श्वास भी कुछ दीर्घ हो जाता है।

बुद-बुद ध्वनि (Crepitations तथा Fine Rales) —वायु कोष्ठको मे चिपचिपे स्राव के उत्पन्न हो जाने के कारण जब उनमे हवा प्रवेश करती है तो अनेकानेक वायु कोष्ठको की चिपकी हुई दीवारो के खुलने से एक ऐसी आवाज उत्पन्न होती है जैसे कि कागजो को रगडने या बालो के एक गुच्छे को कान के पास रगडने से उत्पन्न होती है। स्पष्ट है कि अन्त श्वास के अन्त मे जब वायु कोष्ठक खुलते हैं तब यह आवाज होती है। इसे Fine Crepitations या Rales कहते है। ये Alveoli मे शोथ के सूचक होते है। यह आवाज विशेषत Pneumonia की प्रथमावस्था मे एक ओर के फेफडे के निम्न भाग मे सुनाई पडती है। यदि यह फेफडे के एक शिखर पर सुनाई पडे तो उर क्षय की प्रारम्भिक अवस्था का सूचक होती है। फुफ्फुस तले मे ये Pulmonary Oedema का सूचक है।

बडी-बडी श्वास नालियो मे उत्पन्न हुए कफ स्राव मे हवा के गुजरने के कारण जो बुलबुलो के फटने की-सी आवाज सुनाई पडती है उसे Rales कहते हैं। खासी मे जब रोगी को बलगम पड रही हो तब अन्त श्वास और वहि श्वास दोनो के साथ बुलबुलो के फटने की-सी आवाज सीटियो (Rhonchi) के साथ-साथ सुनाई पडती है। इन्हे Coarse-Rales कहते है। ये उर क्षय मे Cavity या Bronchiectasis की सूचक होती हैं।

जब छोटी-छोटी श्वास नालियो (Bronchioles) मे कफ का स्राव विशेष होता है जैसे Broncho Pneumonia मे तब अन्त श्वास के अन्त मे और वहि श्वास के आरम्भिक भाग मे जो Rales सुनाई पडते है इन्हे Medium Rales कहते हैं।

जब उर क्षय के कारण फेफडे के एक शिखर का एक भाग कुछ गल-सा रहा हो अर्थात् उसमे Caseous Softening हो रही हो तो वहा भी Fine Rales सुनाई पडते हैं।

सघर्ष ध्वनि (Friction Sound)—जब Pleura के आमने सामने के दोनो पृष्ठ उनकी सूजन के कारण से उत्पन्न चिपकीले स्राव के कारण कुछ खुरदरे-से हो गये हो तो अन्त श्वास के अन्त मे जब दोनो पृष्ठ आसपास मे रगड खाते है तो एक Friction Sound उत्पन्न होती है। क्योकि कक्षप्रदेश के निचले भाग मे Pleura के दोनो पृष्ठ अधिक सघर्ष मे आते हैं इसलिये वहा यह ध्वनि अधिक स्पष्ट सुनाई पडती है। वहा दर्द भी होता है इसी कारण से इस रोग को पार्श्वशूल भी कहते है। यह ध्वनि स्टेथेस्कोप के चैस्टपीस के ठीक नीचे ही उत्पन्न होती हुई प्रतीत होती है।

थूक (Sputum) परीक्षा

गाढी बलगम का गिरना श्वास मार्ग के रोग का सूचक होता है। रात भर की सचित हुई बलगम को देखकर इसकी परीक्षा करनी चाहिए। कास (Bronchial Catarrh) रोग मे पहले थूक पतला, चेपदार और मात्रा

मे थोडा जाता है। इसे Mucoid थूक कहते हैं। दो तीन दिन के बाद बलगम गाढी, झागदार, मात्रा मे अधिक और कुछ कुछ पूय से मिश्रित (Mucopurulent) भी हो जाती है जो दिन रात मे आधी छटाक के लगभग निकलती है। यह प्रवल Infection का सूचक होती हे।

पुरानी खासी तथा Bronchiectasis मे यह थूक गाढी और पूय मिश्रित होती है और वहुधा किसी एक पार्श्व पर लेटने से वहुत सी पूययुक्त गाढी थूक निकलने लगती है जो आधी एक छटाक से अधिक होती है, इसे Mucopurulent थूक कहते है। थूक दुर्गन्धयुक्त हो तो वह पुरानी खासी या कैंसर का सूचक होती है।

उर क्षय रोग मे जब फेफडे मे कोई गुहा वन जाती है तो वटन के आकार के एक पूय के ढेर के रूप मे (Nummular) गिरती है।

हृदयनैर्वल्य जनित फुफ्फुस शोथ (Pulmonary Oedema) मे सावुन के पानी के समान झागदार तथा मात्रा मे अधिक थूक आती है, इसे Serous थूक कहते हैं। Pneumonia मे रक्तमिश्रित-लाल रग की चिपकीली-सी थूक (Rusty) आती है उसे Fibrinous थूक कहते है। महसा कई छटाक तक दुर्गन्धित पूययुक्त थूक निकल पडे तो फुफ्फुस विद्रधि (Abscess) या Tuberculous cavity का सन्देह करना चाहिये, इसे Purulent थूक कहते है।

उर क्षय रोग मे जो युवावस्था मे होता है किंचित् रक्त से मिश्रित थूक आती रहती है। कभी-कभी तो कत्थे के पानी जैसी केवल रक्त की ही थूक आती है। थूक मे Elastic Fibres मिलें तो वे फुफ्फुस के अवयव के मृत हो जाने के अर्थात् उर क्षय रोग के सूचक होते हैं। थूक मे Eosinophil Cells मिले तथा थूक मे सागूदाने जैसे दाने भी दिखाई पडे तो श्वास रोग (Asthma) का निश्चय करना चाहिए।

श्वास नालियो मे कैन्सर की अवस्था मे जो वडी आयु मे होता है या वृद्धावस्था मे Broncho Pneumonia के कारण जो हल्के रग की थूक आती है उसे Prunejuice Coloured कहते हैं।

हृदय परीक्षा (Examination of the Heart)

प्रश्न

पहले कभी सन्धिक ज्वर (Rheumatic Fever) तो नही हुआ। वालक मे हृदय रोग हो तो पूछना चाहिए कि उसे पहले Tonsillitis तो नही हुआ।

श्वास कठिनता का लक्षण हो तो वह कव होता है, चलनें-फिरने से होता है या पडे-पडे भी होता है। (हृदय रोग या Left heart failure जनित श्वासकाठिन्य श्रम से होता है या ऊपर चढने से होता है, रोग अधिक हो तो Orthopnoea या सीधा वैठकर या आगे झुककर श्वास लेना होता है) रात को कभी इसका दौरा तो नही होता अर्थात् Cardiac Asthma तो नही होता जो रक्तभार जनित हृदय रोग या वाम हृदयातिवृद्धि मे होता है। सीधे पडे नीद आ जाती है या ऊचे तकिये लगाकर ही नीद आती है। सोते समय Cheyne Stockes Breathing तो नही होता (यह Arteriosclerosis तथा उसके कारण वाम हृदय की निर्वलता का सूचक है)।

छाती मे दर्द उठता है तो कहा पर और किधर तक जाता है। श्रम से होता है या पडे-पडे भी होता है। भोजन के वाद या आवेश के कारण या सर्दी के लगने से तो नही होता (Angina क्षणभर, Thrombosis का दर्द घण्टो तक रहता है। कैन्सर के कारण भी छाती मे दर्द होता है, जो लगातार रहता है।)

हृदयकम्प होता है तो किस वात से होता है और कितनी देर रहता है। वह Paroxismal Tachycardia, Auricular fibrillation के कारण होता है। Hypertension के कारण भी वहुधा होता है। हृदयकम्प जो वातिक-नैर्वल्य Cardiac Neurosis या Instable N System या शीघ्र घवराहट होने के कारण होता है, वह थोडी देर ही रहता है। हृदयशूल के रोग या श्वास काठिन्य रोग के लक्षणो मे गौण रूप मे भी हृत्कम्प का लक्षण होता है। Hyperthyroidism के कारण भी होता है

हृदय-निर्वलता मे, पीछे की ओर रक्त के रुक जाने से खासी तो नही उठती या पैर तो नही भारी हो जाते अथवा अग्नि तो मन्द नही हो जाती। (दक्षिण हृदय, निर्वल हो जाने से, रक्त को आगे फुफ्फुस मे भली प्रकार नही फेकता तो पहले सिराओ और फिर सूक्ष्म सिराओ—Capillaries—मे रक्त भार वढ जाता है तो उसमे से अधिक द्रव भाग वाहर निकलने लगता है। इसके अधिक निकलने पर पाद श्वयथु हो जाता है। फुफ्फुस की सूक्ष्म सिराओ मे से द्रव के Alveoli या वायु कोष्ठको मे अधिक भर जाने से फुफ्फुस श्वयथु (Pulmonary Oedema) होकर श्वास-काठिन्य तथा खासी होती है। वाम हृदयनैर्वल्य पहले हुआ हो तो उसके कारण यह पिछला लक्षण पहले प्रारम्भ होता है)।

दर्शन तथा स्पर्शन परीक्षा

हृदय रोगी विस्तर पर वैठा हुआ आगे झुककर कठिनता से श्वास ले रहा होता है। हृदय मे शूल हो तो रोगी के चेहरे पर भय का चिह्न होता है।

रोगी के दाईं ओर बैठकर अपने हाथ का पौंचा हृदय प्रदेश पर रखकर हृदय के स्पन्दन को अनुभव करना चाहिए। साधारणत हृदय स्पदन प्रदेश (Apex Beat) बाईं ओर पाचवें पर्शुका मध्य (Inter Space) मे मध्य रेखा से ३ या ३½ इच हटकर या Mid Clavicular Line से आधा इच अन्दर की ओर होता है। जब हृदय स्पदन प्रदेश पसली के पीछे होता है तो वह नजर नही आता।

यदि स्पदन प्रबलता से हो रहा हो और कुछ नीचे खिसका हुआ हो तो वाम कोष्ठक मे अतिवृद्धि का अनुमान करना चाहिए। शरीर मे रक्तभार के बढ जाने या Aortic Regurgitation से ऐसा होता है। गल ग्रन्थि प्राबल्य Hyperthyroidism मे भी यह कुछ प्रबल होता है। स्पन्दन अधिक निर्बल हो तो हृदय मे क्षीणता या शोथ (Myocardial Degeneration due to Coronary Arteriosclerosis या Myocarditis due to Toxaemia) का सन्देह करना चाहिए। इनमे से पहली अवस्था में दाए-बाए Ventricles में Dilatation के कारण हृदय कुछ बाहर की ओर खिसक जाता है। Epigastrium में स्पन्दन दिखाई पडे तो हृदय के दाए कोष्ठक मे अतिवृद्धि का अनुमान करना चाहिए। ग्रीवा मे दोनों ओर Ext Jugular Veins मे स्पन्दन दीखता हो तो हृदय-नैर्बल्य (Congestive C Failure) का अनुमान करना चाहिए। इस अवस्था मे Veins मे अधिक रक्त-भरा होता है। पैरो, टागो मे Oedema हो तो यह Hepatomegaly का लक्षण होता है।

टकोर (Percussion) परीक्षा

हृदय के किनारे फेफडो से ढके होते हैं। अत उसकी सीमा का पता प्रबल टकोर से लगाना चाहिए। बाईं सीमा का पता लगाने के लिए दूसरी-तीसरी-चौथी Inter Space मे बाहर से अन्दर की ओर टकोरते आए जहा टकोर मन्द हो जाए वहा हृदय की सीमा आरम्भ हुई समझनी चाहिए। तीसरी Inter Space मे यह सीमा Parasternal Line पर या मध्यरेखा से १½ इन्च पर होती है। इस बिन्दु को हृदय के निचले शिखर (Apex) से मिला दें तो बाईं सीमा बन जाती है जो Nipple line के कुछ अन्दर होती तथा वाम कोष्ठक से बनी हुई है। ऊपर की सीमा के जानने के लिये दूसरी Interspace मे Anterior Axillary Line से अन्दर की ओर टकोरते आए तो आवाज ऊची ही रहती है। फिर इसी प्रकार तीसरी Inter Space मे टकोरते आए तो जहा पर आवाज कम हो जाती है उसे ऊपर की सीमा समझना चाहिए। दाहिनी सीमा का पता लगाने के लिए यकृत् की सीमा से ऊपर के Inter Spaces मे निचली अगुली को छाती की हड्डी (Sternum) के समानान्तर या Right angle पर रखते हुए बाहर से अन्दर की ओर टकोरते आए। साधारणत चौथी पसली पर यह सीमा छाती की हड्डी (Sternum) के Lateral Border से कुछ ही बाहर होती है। तीसरी पसली पर इस सीमा का सबसे ऊपर का सिरा Parasternal Line (Lateral Sternal तथा Mid clavicular lines के मध्य की रेखा) पर होता है। बाईं और दाईं सीमाओं के ऊपर के सिरो को मिला देने से ऊपर की सीमा आ जाती है।

अब यदि हृदय बाईं ओर और नीचे की ओर कुछ बढा हुआ पाया जाए तो वाम हृदय मे अतिवृद्धि (Hypertrophy) का अनुमान करना चाहिए। यदि दाईं ओर बढा हो तो Right atrium को बढा समझे। बाईं ओर और नीचे की ओर और दाईं ओर तीनो ओर हृदय बढा हुआ हो तो सारे हृदय को बढा हुआ समझना चाहिए।

श्रवण (Auscultation) परीक्षा—

फ्रान्स के डा० Laennec ने पहले पहल हृदय की श्रवण परीक्षा शुरू की। हृदय के निचले शिखर (Apex) पर पाचवें पर्शुका मध्य मे Mid clavicular रेखा पर (Mitral Valve की आवाज सुनी जाती है। इसलिए इस प्रदेश को वाम कपाटी क्षेत्र (Mitral Area या Apical area) कहते है। जो पाचवें पर्शुका मध्य मे Mid-clavicular रेखा पर है। Aortic Valve की आवाज जो बडी आयु मे अधिक स्पष्ट होती है दूसरी दाहिनी पसली या दूसरे पर्शुका मध्य के अन्दर के सिरे पर सुनी जाती है। इसे Aortic Area महाधमनी कपाटी क्षेत्र कहते है। Pulmonary Valve की आवाज जो छोटी आयु मे अधिक स्पष्ट होती है दूसरे या तीसरे बाए Inter Space के अन्दर के सिरे पर सुनी जाती है। इसलिए उसे Pulmonary Area फुफ्फुस-धमनी-कपाटी-क्षेत्र कहते है। Tricuspid Valve की आवाज उरोस्थि के निचले सिरे पर सुनी जाती है। इस प्रदेश को Tricuspid Area या Low Sternal Area कहते हैं। हमे इसी क्रम से इन प्रदेशो पर हृदय की आवाज को सुनना चाहिए। प्रत्येक प्रदेश पर हृदय के दोनो शब्द Loop-Dup ध्वनि के सुनाई पडते है। प्रथम शब्द तो Mitral और Tricuspid Valves के सहसा बन्द होने और दोनो Ventricles (क्षेपक कोष्ठो) मे सकोच Systole के कारण होता है Cardiac cycle का ⅔ भाग इसमे

लगता है। यह शब्द Mitral तथा Tricuspid क्षेत्रो पर स्पष्ट सुनाई पडता है। हृदय का दूसरा शब्द जो प्रथम शब्द से कुछ छोटा और तेज होता है Aortic तथा Pulmonary Valves के बन्द होने से उत्पन्न होता है तथा शरीर और फेफडो की धमनियो के अन्दर विद्यमान दवाव (Pressure) के कारण होता है। Systole को समाप्ति तथा Diastole के शुरू मे होता है। (यह Diastole Cardiac cycle का ३/५ भाग होती है)। यह शब्द Aortic तथा Pulmonary क्षेत्रो पर विशेष स्पष्टता से सुनाई देता है। इसका Aortic भाग Apex पर भी सुनाई देता है। सुनते समय इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए कि प्रथम शब्द की ऊचाई और लम्बाई कैसी है। प्रथम शब्द १४ तथा दूसरा शब्द ११ सैकण्ड लम्बा होता है।

प्रथम शब्द की ऊचाई बढ जाती है जब Thyrotoxicosis हो या नाडियो और हृदय की निर्बलता के कारण कम्प हो अर्थात् Neuro Circulatory Asthenia के कारण Tachycardia हो अथवा Mitral Stenosis के कारण वाम हृदय मे अतिवृद्धि हो। इसी प्रकार रक्तभार के बढने से वाम हृदय बढा हुआ हो तो भी श्रम करने पर प्रथम शब्द लम्बा और ऊचा सुनाई पडता है। हृदय के विक्षोभशील होने पर भी प्रथम शब्द प्रबल हो जाता है।

प्रथम शब्द की ऊचाई और लम्बाई कम हो अर्थात् Ventricles का सकोच निर्बल हो तो हृदय के मास मे क्षीणता (Degeneration) का अनुमान करना चाहिए। किसी कारण से Carditis हो या Myocardial Toxaemia हो तो भी प्रथम शब्द निर्बल हो जाता है। Vasomotor Failure हो या Shock हो या रक्तभार गिर गया हो या Emphysema के कारण हृदय दब गया हो तो भी प्रथम शब्द निर्बल हो जाता है। हृदय मास मे Infarction हो तो भी यह शब्द मन्द होता है।

द्वितीय शब्द Aortic क्षेत्र पर ऊचा सुनाई पडे तो शरीर मे रक्तभार वृद्धि अर्थात् Arterio sclerosis अर्थात् Peripheral resistance का तथा चिरस्थायी वृक्क रोग का अनुमान करना चाहिए। बडी आयु मे यह ऊचा होता ही है। यदि द्वितीय शब्द Pulmonary क्षेत्र पर ऊचा हो तो फेफडो मे रक्तभार की अधिकता अर्थात् वाम हृदय की निर्बलता (Left Heart Failure) Mitral Stenosis, Mitral Regurgitation, Pneumonia, Emphysema, Fibroid Phthisis, Pulmonary Atheroma का सन्देह करना चाहिए।

द्वितीय शब्द Aortic क्षेत्र पर निर्बल होता है जब शरीर मे रक्तभार घटा हुआ होता है या जब Aortic Stenosis होता है या जब रक्तवाहिनियो की सहज सकोच शक्ति घट जाती (Peripheral Failure होता) है या Hypotension का रोग हो या Left Ventricle फेल हो रहा हो। Pulmonary क्षेत्र पर इस शब्द की मन्दता दक्षिण हृदय की निर्बलता की सूचक होती है।

फूत्कार (Murmur)

हृदय के प्रथम शब्द के आरभ से उसके द्वितीय शब्द के आरभ तक की हृदय की सकोच कालिक अवस्था को Systoly कहते है। इस अवस्था के दौरान होने वाले फूत्कार या Murmur को Systolic murmur कहते है। इस अवस्था के आरभ मे होने वाले को Early Systolic murmur, बीच मे होने वाले को Mid Systolic, अन्त मे होने वाले को Late Systolic murmur कहते है।

हृदय के द्वितीय शब्द के आरभ से लेकर हृदय के अगले प्रथम शब्द के आरभ तक की विश्राम कालिक अवस्था को Diastoly कहते है। इसके आरभ मे होने वाले फूत्कार को Early diastolic, बीच मे होने वाले को Mid diastolic और उसके अन्त मे होने वाले को Late diastolic (Presystolic) murmur कहते है।

(A) Systole के दौरान होने वाले Systolic ejection (आगे फैंकने वाले) murmurs —

(१) Aortic stenosis — Aortic Valve मे Rheumatic Valvulitis होकर उसमे Calcification हो जाने से जब यह Valve या इसका छिद्र Infundibulum तग (Stenosed) हो जाता है तब हृदय के प्रथम शब्द के ठीक बाद एक चढती उतरती (Crescendo decrescendo) ऊची कर्कश सघर्ष ध्वनि Aortic area पर स्पष्ट सुनाई पडती है जो ऊपर ग्रीवा की रक्त वाहिनियो की तरफ जाती प्रतीत होती है। यह फूत्कार तब होता है जब Left Ventricle मे सकोच कालिक दबाव बढ रहा होता है और उस दवाव के कारण Aortic Valve खुल रहा होता है तब यह Mid Systolic murmur अपने शिखर पर होता है और द्वितीय शब्द से पहले ही समाप्त हो जाता है। रक्त को आगे की ओर धकेलने वाले Ejection murmurs सदा दूसरे शब्द से पहले ही समाप्त हो जाते हैं। स्पष्ट है Aortic Valve के

Stenosis के परिणाम रूप Left Ventricle आकार मे बडा हो जाता है। इसीलिये पहले तो इसमे थोडे श्रम से सास चढने लगता और बाद मे Paroxysmal Nocturnal Dyspnoea होने लगता है।

(२) Mitral regurgitation —Rheumatic Valvulitis के कारण इस Valve मे Stenosis अधिक होता है तो भी कभी-कभी इसमे Regurgitation का रोग भी हो जाता है। ऐसी अवस्था मे उसकी Murmur, Systole मे शुरु से अन्त तक एक फूक के रूप मे होती तथा कक्ष की ओर जाती प्रतीत होती है। यह Apex पर अच्छी सुनाई देती है। इसमे Left-Ventricle मे Systole के समय कुछ रक्त वापिस Left Atrium मे चला जाता है जिससे उसका आकार कुछ बडा हो जाता है। यह एक Pan Systolic murmur है जिसमे प्रथम शब्द तो स्पष्ट सुनाई देता है पर दूसरा शब्द Apex पर murmur के अन्दर कुछ छिप सा जाता है।

(३) Tricuspid Regurgitation —Chronic Rheumatic Valvulitis के कारण यह रोग कभी मिलता है पर अधिक नही होता। Congestive heart failure रोग मे जिसमे Right Ventricle फैल जाता या Dilated हो जाता है उसमे Regurgitation हो सकता है। अर्थात् इस रोग मे Systole के दौरान रक्त का कुछ अश R Ventricle से R atrium मे वापिस चला जाता है जिससे ऊची फूक के रूप मे एक Murmur जो Pansystolic होता है Sterum के निचले सिरे पर या उसके Left inter Space की तरफ के प्रदेश मे सुनाई पडती है। दाये Atrium मे रक्त के सहसा जाने से ऊपर ग्रीवा की Veins मे Pulsation दिखाई पडने लगता है। नीचे Liver मे भी रक्त के लौटने से वहा भी Pulsation का लक्षण हो सकता है।

(B) Diastolic murmurs —

(१) Mitral Stenosis —हृदय के द्वितीय शब्द के कुछ बाद उसके प्रथम शब्द से पहले या उस तक हृदय के Diastole काल मे जब रक्त Left atrium से Left Ventricle मे भरा जा रहा होता है तब इस Valve के, Rheumatic Valvulitis के कारण, सकुचित हो जाने से, इस सकीर्ण मार्ग मे से रक्त के गुजरने से उत्पन्न Vibrations के परिणाम रूप एक Murmur उत्पन्न होती है जो Apex के अन्दर की ओर एक सीमित प्रदेश मे सुनाई पडती है जो श्रम के बाद तथा बाई करवट पर अधिक स्पष्ट सुनाई देती है। यह दो प्रकार की है एक तो Mid diastolic ऊची (Rumbling) आवाज की होती है, दूसरी Late diastolic या Presystolic murmur भी हो सकती है जो उत्तरोत्तर चढती (Crescendo) किस्म की होती है और कुछ ऊचे हुए हुए प्रथम शब्द मे समाप्त होती है। यह murmur लम्बी हो तो Stenosis अधिक है, यह छोटी हो तो Stenosis भी छोटा है ऐसा समझा जाता है। Mitral Valve मे अवरोध के होने से Left atrium मे रक्त का सचय अधिक होने लगता है जिस से वह आकार मे बडा हो जाता है। कुछ काल बाद Pulmonary Veins मे, Pulmonary Capillaries मे और Pulmonary Artery मे रक्त सचय बढ सकता है। इस प्रकार Pulmonary pressure बढने से Right Ventricle पर भी दुष्प्रभाव होकर Right heart failure का उपद्रव हो सकता है।

(२) Aortic Regurgitation — Aorta के Valve या उसके छिद्र (Ring) मे Rheumatism के उपद्रव रूप मे विस्तार या Dilatation की विकृति हो गई हो तो Diostole के शुरु मे अर्थात् द्वितीय शब्द के तुरन्त बाद एक ऊची आवाज से शुरू होकर नीची आवाज पर खतम होने वाली (Crescend decrescendo) एक मृदु फूत्कार —Early diastolic murmur सुनाई पडती है जो रोगी को बैठाकर आगे की ओर झुकाकर देखने से अधिक स्पष्ट सुनाई देती है। Sternum के बाई ओर तीसरे Left Inter Space मे अधिक स्पष्ट होती है।

इस रोग का Pulmonary diastolic murmur से भेद करना जरूर कठिन है पर Pulmonary regur-

gitation का वह रोग Pulmonary hypertension के उपद्रव रूप मे होता है अर्थात् उस रोग मे पहले खासी Emphysema, Asthma आदि रोगो का इति वृत्त होता है। Aortic regurgitation मे Left Ventricle आकार मे बडा होता है। इसी लिये यह Murmur शुरू मे ही ऊची या Crescendo किस्म की होती है। इस रोग मे नाडी Water hammer किस्म की (प्रवलता से उठकर सहमा वैठने वाली) होती है।

Pulmonary regurgitation — Pulmonary hypertension के कारण होता और उसमे उपर्युक्त किस्म की ही Early diastolic murmur होती है और Sternum के बाई ओर दूसरे तीसरे Left-interspace मे ही स्पष्ट सुनाई देती है।

वाम हृदयनैर्बल्य (Left Heart Failure) की परीक्षा

वाम Ventricle को Coronary atherosclerosis के कारण रक्त कम मिले अथवा शरीर मे रक्त भार के वढे हुए रहने के कारण वाम हृदय के सामने रुकावट बनी रहे तो पहले तो वह कुछ आकार मे बडा होकर रक्त सचार का काम कर लेता है पर बाद मे उसमे Dilatation या निर्वलता आ जाती है उसे Left heart failure कहते है। इसमे एक तो अगो को रक्त कम मिलता है, दूसरे इसके कारण Pulmonary Veins मे रक्त सचय अधिक अधिक होने लगता हैं जिससे Pulmonary Oedema हो जाता है। अर्थात् Pulmonary Vessels की दीवार मे तथा Alveoli मे द्रव का सचय अधिक हो जाता है। ऐसा होने पर दर्शन परीक्षा मे रोगी मे श्वास काठिन्य का लक्षण दीखता है, अर्थात् थोडा श्रम करने से भी रोगी को सास चढ जाता है। सास उथला तेज और श्रम-साध्य सा प्रतीत होता है। उसका सास गहरा नही होता। वामहृदय की निर्वलता और वढे तो लेटने पर श्वास काठिन्य का लक्षण प्रतीत होने लगता है। ऊचे तकिये के सहारे से रोगी सो सकता है। रोग और वढे तो रोगी लेटकर नही सो सकता, आराम कुर्सी पर वैठकर ही सो सकता है या आगे मेज पर माथा टेककर ही सो सकता है (Orthopnoea)।

Paroxysmal Cardiac Dyspnoea — रात्रि-श्वास रोग, बहुधा Orthopnoea से भी पहले हो जाता है। इस रोग मे एक डेढ घण्टा सोने के वाद एक बडी आयु का व्यक्ति सहसा घबराकर उठ वैठता है उसे अपना दम घुटता लगता है। वह हवा लेने के लिये तडपता है। इस एक आधे घण्टे के दौरे मे श्वास काठिन्य, खासी और पतली वलगम आने के लक्षण होते हैं। ऐसी अवस्था मे रक्त भार अधिक हो सकता है जिससे नाडी भरी हुई तीव्र गति की होती है। फुफ्फुस पर सुनने से Rhonchi तथा Moist rales सुनाई पडते है जो Base पर स्पष्ट सुनाई देते है। रक्त भार कम हो तो नाडी निर्वल और तीव्र गति की होती है। टकोर परीक्षा से हृदय आकार मे वडा होता है वाहर और नीचे की ओर बढा होता है। Pulmonary area पर द्वितीय शब्द अधिक ऊचा सुनाई देता है। Aortic area की अपेक्षा वह अधिक ऊचा होता है जैसा कि स्वस्थावस्था मे नही होता।

Cardiac Cough — वामहृदय की निर्वलता मे खासी और बलगम गिरने के लक्षण भी दिखाई पडते है।

दक्षिणहृदय नैर्वल्य (Right heart failure) की परीक्षा —

दक्षिण हृदय या Right Ventricle की निर्वलता या फेल होने का प्रधान कारण Pulmonary hypertension है। अर्थात् पुरानी खासी, श्वास, Emphysema के पुराने रोगो के कारण Right Ventricle फेल होता है। इसके निर्वल होने से कुछ कुछ Tricuspid regurgitation होने लगता है जिससे Superior तथा Inferior Venacava मे रक्त सचय अधिक होने लगता है। इसलिये पहले External Jugular Vein ग्रीवा मे अधिक भरी हुई दीखती है। Internal Jugular Vein मे Pulsation दिखाई पडता है। यकृत् मे रक्त के अधिक सचित होने से वह आकार मे वडा हो जाता है। उस पर दवाने से रोगी को दर्द प्रतीत होता है। भूख घटी होती है। इसके अतिरिक्त Oedema इस रोग का एक प्रधान चिह्न है जो चलने फिरने वाले मे गिट्टो पर या पैरो पर आता है। लेटे हुए रोगी मे कमर मे जननेन्द्रियो मे पहले आता है, रोग वढे तो Peritonium तथा Pleura मे भी जल भरने लगता है जिससे Ascites तथा Hydrothorax के लक्षण हो जाते है। वामहृदय की निर्वलता से वृक्को को कम रक्त मिले तो मूत्र कम वनता है जिससे Oliguria का लक्षण होता है। इस रोग मे Tricuspid regurgitation के कारण Sternum के निचले सिरे पर सुनने से Systolic murmur सुनाई देती है। रोगी की नाडी निर्वल, तीव्र होती है। रक्त भार घटा होता है।

वययाम क्षमता Exercise Tolerance —

हृदयगति साधारणत ७०-७५ प्रति मिनट के लगभग होती है। प्रबल व्यायाम करने पर भी वह प्रति मिनट १५० से ऊपर कभी नही जाती और व्यायाम के बाद थोडी देर आराम करने पर फिर वह नार्मल हो जाती है। हृदय जितना जितना अधिक रुग्ण हो उतना उतना थोडा श्रम करने पर भी, उसकी गति अधिक तीव्र हो जाती है तथा व्यायाम के बाद आराम करने पर भी देर से वह नार्मल होती है। इसी प्रकार यदि व्यायाम के बाद हृदय गति विषम हो जाये उसके Rhythm मे अन्तर आ जायें तो भी समझे कि Left Ventricle रुग्ण है।

श्रमशक्ति के टेस्ट करने का एक उपाय यह है कि यदि २०-२४ वर्ष के १३५ पौण्ड भर के व्यक्ति को २५ सीढी चढने को कहा जाय और उसकी हृदय गति इसमे प्रति मिनट १० से अधिक न बढे तो उसके हृदय को स्वस्थ जानना चाहिए। इसी प्रकार ४५ वर्ष की आयु के व्यक्ति को जिसका भार १५०-१५५ पौण्ड के लगभग हो उसके २१ सीढिया चढने पर उसकी हृदयगति १० प्रतिमिनट से अधिक न बढे, तो उसके हृदय को स्वस्थ जानना चाहिए। यदि उसी व्यक्ति का वजन १९० पौण्ड हो और उसके १९ सीढी चढने पर उसकी हृदयगति प्र० मि० १० से अधिक न बढे तो उसके हृदय को स्वस्थ जानना चाहिए। एक ४० वर्ष की स्त्री का भार १३० पौण्ड हो और २० सीढिया चढने पर उसकी हृदयगति १० प्र० मि० से अधिक न बढे तो उसके हृदय को स्वस्थ समझना चाहिए। यदि स्त्री ५३ साल के लगभग आयु की हो उसका भार १५५ पौण्ड के लगभग हो और १७ सीढियाँ चढने पर उसकी हृदयगति १० प्र मि से अधिक न हो तो उसके हृदय को भी स्वस्थ जानना चाहिए।

यदि व्यक्ति एक-एक टाग पर २० बार कूद लगा ले जो कुछ एक इच ऊची हो तो, उस व्यायाम के समाप्त करते ही श्वास परीक्षा करने पर उसमे कृच्छ्रता नही होनी चाहिए तथा उसकी नाडी परीक्षा करने पर उसमे १०-२० की वृद्धि ही होनी चाहिए और यह वृद्धि भी आराम करने पर २ मिनट मे जाती रहनी चाहिए। ऐसा न हो और वृद्धि चिर-काल जारी रहे तो हृदय को रुग्ण जानना चाहिए। इसी प्रकार खडे होकर जमीन पर पडे १०-२० पौण्ड के वजन को दो सैकण्ड मे हाथो से सिर के ऊपर तक ३०-५० बार उठाने पर श्वास न चढे तो हृदय को स्वस्थ समझना चाहिए।

नाडी परीक्षा

(क) नाडी देखने के लिये रोगी की Radial Artery पर अपने दाहिने हाथ की तीनों अगुलिया रखनी चाहिये। पहले तो नाडी गति (Rate) प्रति मिनट देखनी चाहिये। साधारणत १ वर्ष की आयु तक यह १२० होती है। ३ वर्ष की आयु तक १०० होती हैं। बाल्यावस्था मे ९० के लगभग, फिर ७२ के लगभग रहती है। ६० वर्ष की आयु के बाद कुछ बढ जाती है और ८० के लगभग होती है।

नाडी गति बढ जाती है (१) जब शरीर मे पचित कर्म या पित्त कर्म (Metabolism) बढा हुआ हो जैसे क्षय रोग मे, ज्वरो मे, Thyrotoxicosis मे। ज्वर भी प्राय तभी होता है जब शरीर मे कही पूय हो। इसी प्रकार ज्वरो मे जब तापमान एक डिग्री बढता है तो नाडी सख्या १० बढ जाती है। (२) ज्वर न हो और नाडी गति बढी हुई हो तो Toxaemia या Uraemia या कैन्सर का अर्थात् Toxic myocarditis का सन्देह करना चाहिए। नाडी जितनी तीव्र हो उतना ही Toxaemia अधिक जानना चाहिये। (३) हृदय मास रुग्ण हो या पाण्डुता हो, रक्तस्राव हुआ हो तो भी नाडी गति बढ जाती है। जितना ही प्रति स्पन्दन मे रक्त आगे कम जाता है उतनी ही गति बढ जाती है। (४) वायु रोगो अर्थात् Neuro-circulatory asthenia (Effort Syndrome) हिस्टीरिया, चिन्ता रोग (Neurasthenia) मे भी नाडी गति बढ जाती है। Sympathetic नाडी मण्डल की उत्तेजना से भी बढ जाती है (५) Exogenous Toxaemia या काफी, चाय, मद्य, तम्बाकू, बैलाडोना, Thyroid, Adrenaline आदि के प्रयोग से भी नाडी गति बढ जाती है।

नाडी गति घट जाती है (१) कुछ एक विषो के शरीर मे फैल जाने से जैसे कामला (Jaundice), जीर्ण वृक्क रोग (Uraemia) Myxoedema, मधुमेह (Diabetes Mellitus) की विषो से। (२) हृदय मे फैट के बढ जाने से या हृदय मास क्षीण हो जाने अर्थात् Senile Heart के कारण। (३) मूर्छा अर्थात् Vasovagal Attack से (४) शरीर मे

धातु पक्ति कर्म के कम हो जाने (Low Metabolism) से जैसे अधिक सर्दी लग जाने पर या अधिक निर्बल हो जाने पर या Hypothyroidism गल ग्रन्थि माद्य मे (५) Intracranial Pressure के बढ जाने से (Meningitis, मस्तिष्क रक्तस्राव अर्बुद) । (६) Melancholia

(ख) नाडी का प्रसार (Volume या Amplitude) देखना चाहिए। अर्थात् नाडी बडी है या छोटी है या उसकी लम्बाई चौडाई कैसी है यह देखना चाहिए। स्वस्थावस्था मे नाडी का प्रसार या आकार मध्यम दर्जे का होता है। न वह अधिक बडी होती है और न अधिक छोटी होती है। हृदय के प्रत्येक स्पन्दन मे जितना रक्त शरीर मे जाता है उतने प्रसार या आकार की नाडी होती है। प्रत्येक स्पन्दन मे रक्त शरीर मे अधिक जाए तो नाडी बडी होती है, कम जाए तो नाडी छोटी होती है। परिश्रम करते समय तथा ज्वर के समय जब शरीर को रक्त की ज्यादा जरूरत होती है तो प्रत्येक स्पन्दन मे रक्त अधिक जाता है जिससे नाडी का उठाव और उसका टिकाव दोनो ज्यादा होते हैं। (Bounding Pulse) जब धमनिया मृदु होती हैं जैसे प्रारभिक आयु मे और हृदय का स्पन्दन तीव्र होता है तो स्पष्ट है कि नाडी का Volume अधिक होता है। इसी प्रकार यदि वाम हृदय आकार मे बढा हुआ है तब भी नाडी का Volume बढा हुआ होता है, परन्तु ऐसा बडी आयु मे होता है और उस समय धमनिया मृदु न रहकर कठोर हो जाती हैं, इसलिए उस अवस्था मे नाडी का Volume तो बढा हुआ होता है किन्तु नाडी का स्पर्श कठोर होता है। (नाडी अधिक कठोर हो तो स्पष्ट है ऐसी अवस्था मे मस्तिष्क मे या नाक से उसके फट जाने से रक्तस्राव हो सकता है) Aortic Regurgitation मे भी वाम हृदय के बढे होने से Volume बढा होता है। Thyrotoxicosis तथा Cor-pulmonale मे भी ऐसा होता है। इसके विपरीत जब हृदय के प्रत्येक स्पन्दन मे आगे रक्त कम जाता है जैसे Mitral Stenosis मे या Shock मे या हृदयनैर्बल्य (C C Failure) मे होता है तब Volume कम हो जाती है।

(ग) नाडी परीक्षा मे तीसरी बात नाडी की मृदुता या कठोरता देखी जाती है अर्थात् हृदय के विश्राम काल मे या दो Beats के बीच के काल मे वह कैसी है। कठोर है या मृदु है अर्थात् उसका Tension कम है या अधिक। युवावस्था तक नाडी मृदु होती है और अनुभव भी नही होती परन्तु बडी आयु मे कुछ तो स्वभावत और कुछ मानसिक तनाव के अधिक रहने के कारण उसके कठोर हो जाने से वह सकोच तथा विश्राम दोनो समयो मे स्पष्ट अनुभव होती है। यदि धमनी-काठिन्य (Arteriosclerosis) हो तो नाडी बटी हुई रस्सी की तरह (Whip cord) अनुभव होती है। धमनियो के कठोर हो जाने से अर्थात् अपने सामने रुकावट के बढ जाने से Ventricles को अधिक कार्य करना पडता है जिससे वे बडे हो जाते है। नाडी की कठोरता को देखकर उसमे हर समय विद्यमान दबाव (Tension) का पता लगता है। इसे ही हम Diastolic Pressure कहते है। हृदय के प्रत्येक स्पन्दन से नाडी मे जो दबाव और बढ जाता है उसे हम सकोचकालिक नाडी भार कहते है। अब जितने दबाव से नाडी का धमन बन्द हो जाता है उसे हम नाडी बल या दबाव (Pulse pressure या Force) कहते है। बडी आयु मे ये दोनो (Tension या काठिन्य तथा Pulse Pressure या नाडी बल) बढ जाते है।

(घ) नाडी देखते समय नाडी की गति सम है या विषम है यह भी देखा जाता है अर्थात् Rhythm देखा जाता है। साधारणत. सब नाडियो का उठाव एक जितना होता है और उनके बीच के अन्तर भी एक जितने होते है। जब नाडियो के उठाव भी भिन्न-भिन्न आकार के हो और उनके अन्तर भी भिन्न-भिन्न विस्तार के हो तो Auricular Fibrillation का सन्देह करना चाहिए। जब कोई नाडी बीच मे लुप्त हुई हुई दिखाई पडे तो Heart Block का सन्देह करना चाहिये।

जब कोई-कोई Beat उचित समय से पहले ही होती प्रतीत हो तो Premature Systole का सन्देह करे। यदि नाड़ियाँ छोटी-छोटी और शीघ्र-गामी हों तो हृदयकम्प (Tachycardia) का सन्देह करे। जब कोई-कोई Beat लुप्त हो जाती हो तो उसे Intermittent pulse कहते हैं। ऐसा Partial heart block के कारण होता है।

Dicrotic Pulse सर्प गति नाडी —

साधारणतः वामक्षेपक के सकोच के कारण नाडी पहले उठती है (Tidal Wave) और फिर उसके शिथिल होने से गिरती है, परन्तु गिरने से ठीक पहले उसमे फिर एक छोटा-सा उठाव हुआ करता है जो Aortic Valves के बन्द होने से धमनियो मे, रक्त के अन्दर, पीछे की ओर एक लहर के उठने से उत्पन्न होता है। इसे Dicrotic Wave या Twice Beating नाडी कहते हैं। साधारणत तो यह छोटा उठाव हमारी अगुली को विशेष प्रतीत नही होता। परन्तु जब निर्बलता के कारण से मन्थर ज्वर आदि मे धमनिया अति मृदु हुई-हुई हो, उनमे हर समय रहने वाला दबाव (Tension) बहुत गिरा हुआ हो, दूसरे शब्दो मे Peripheral Resistance बहुत कम हो और दूसरी ओर ज्वर के कारण हृदय का स्पन्दन प्रबल हो तो रक्त के अन्दर पीछे की तरफ उठने वाली यह लहर (Dicrotic Wave) अधिक स्पष्ट हो जाती है। इससे लेकर अगली नाडी के आरम्भ होने तक के समय को Diastolic Period कहते है। जब हृदय से रक्त आगे कम जाता है जैसे उसकी निर्बलता मे, तब Tidal Wave छोटी होती है।

Water Hammer Pulse जब नाडी का उठाव तो अधिक हो परन्तु उसमे स्थिरता न हो वह सहसा ही गिर जाए तो इसे Water Hammer Pulse या Collapsing Pulse कहते है। यह Hyperthyroidism या Aortic Regurgitation का सूचक होती है (जब वामक्षेपक बडा होता है तो रक्त अधिक मात्रा मे आगे जाता है)। जब नाडी उठती भी मन्दता से है, गिरती भी मन्दता से है तब इसे Anacrotic Pulse कहते हैं। स्पष्ट है Mitral Stenosis मे ऐसी नाडी होती है। निर्बल नाडी (Thready Pulse) —नाडी गति तीव्र (Rapid) हो, उठाव (Amplitude) छोटा हो तो इसे Thready कहते है। हृदय मास के रोग मे तथा प्रान्तीय रक्तसंचार Peripheral Circulation के निर्बल होने पर (Syncope मे) शिथिल नाडी होती है।

रक्तभार (Blood Pressure) परीक्षा —Manometer को अपने सामने रखकर इसकी Armlet को रोगी की बाहु पर लपेट देना चाहिए। फिर पम्प के Valve को बन्द करके Armlet मे हवा भरी जाए जिससे मैनोमीटर का पारा लगभग दो सौ के अंक तक पहुंच जाए। फिर स्टेथस्कोप के चेस्ट पीस को कोहनी से कुछ ऊपर Brachial Artery पर रखकर Valve को थोडा खोल कर हवा को Armlet मे से निकलने दें। इससे पारा नीचे गिरना शुरू हो जायगा। जिस अंक पर टिक-टिक की ऐसी आवाज सुनाई पडने लगे उसे नोट कर ले। यह Systolic Pressure है। इसके बाद जब तक पारा गिरता जाए टिक-टिक की आवाज सुनते रहे जिस अंक पर यह आवाज बन्द हो जाए उसे भी नोट कर ले इसे Diastolic Pressure कहते है। प्रातः बिस्तरे से उठने पर जो रक्तभार होता है वह वास्तविक (Basal B P) होता है।

स्वस्थ बडे व्यक्ति मे Systolic Pressure १०० से १४० तक होता है जो श्रम या क्रोध से स्वल्प काल के लिये बढता है और Diastolic Pressure ६० से ९० तक M M of Mercury होता है। इन दोनों के बीच मे जो अन्तर है उसे ही नाडी का दबाव (Pulse Pressure) समझना चाहिए। साधारणत यह ४०-५० M M of Mercury के लगभग होता है। रक्त भार बालक मे ९०/६० होता है युवक मे १०५/६५ Hg होता है।

यदि Systolic Pressure १५० से ऊपर ही रहे और Diastolic ९० या १०० से ऊपर रहे तो इसे Hypertension कहते है और जीर्ण वृक्क रोग (C Nephritis, Pylonephritis) धमनीकाठिन्य तथा वामक्षेपक मे अति वृद्धि (Hypertrophy) का सन्देह करना चाहिये। Pregnancy Toxaemia मे तथा Thyrotaxicosis से भी ऐसा हो सकता है। Diabetes या मानसिक आवेश से भी रक्तभार बढ जाता है। भ्रमण और व्यायाम के न करने और अधिक आहार लेते रहने से भी ऐसा हो जाता है। Prostate वृद्धि के द्वारा मूत्र मार्ग मे अवरोध से भी रक्तभार बढता है। Vasoconstriction से यह बढता, Vasodilatation से यह घटता है। छोटी आयु मे रक्तभार वृद्धि का रोग वृक्कों मे जीवाणु सक्रमण (Infection) के कारण होता है। Diastolic भार १३० के लगभग या ऊपर हो जाए

तो चिन्ताजनक समझना चाहिये। Systolic ९० से नीचे Diastolic ६० से नीचे आ जाए तो वह भी चिन्ताजनक है। दूसरे शब्दों मे Diastolic भार की वृद्धि अधिक चिन्तनीय होती है क्योंकि यह हृदय के विश्राम काल मे भी उस पर कार्य भार की द्योतक है तथा यह Arteries पर Constant strain या भार की सूचक है। इसी प्रकार Systolic भार की अधिक न्यूनता हो जाए तो वह भी चिन्ताजनक होती है क्योंकि वह वाम Ventricle की निर्बलता का द्योतक है।

रक्तभार घटा हुआ हो तो कई व्यक्तियो मे यह स्वाभाविक होता है। किसी मार्ग मे अधिक रक्त निकल जाने, बहुत दस्तो के लग जाने और Peripheral Circulatory Failure अर्थात् Shock (धक्के) के लगने पर या धूप के लग जाने (Heat Exhaustion) या मूर्छा (Vasovagal Syncope या Common faint) मे भी रक्तभार गिर जाता है। Left Ventricle के मास के निर्बल हो जाने से जैसे Coronary Thrombosis से या तीव्र ज्वरो मे Toxic Myocarditis से भी रक्तभार गिर जाता है। शरीर के पोषण की कमी जैसे Senile Arteriosclerosis से भी रक्तभार कम रहता है। Pulmonary T. B, कैन्सर मे भी रक्तभार कम रहता है। Pulse Pressure बढ जाता है। Hypertension मे, Aortic regurgitation मे, Thyrotoxicosis मे, Shock, Paroxysmal Tachycoidia, Congestive heart failure मे Pulse Pressure घट जाता है।

मूत्र सम्बन्धी परीक्षा

प्रश्न

यदि वृक्क रोग (Nephritis) का सन्देह हो तो पूछें कि पहले Tonsillitis तो नही हुआ तथा प्रात. काल आखो पर भारीपन तो नही आ जाता। देखें कि चेहरे पर पाण्डुता तो नही, कटि प्रदेश (Lumber Region) पर दर्द तो नही होता या वहा से दर्द उठकर अण्डकोष की तरफ तो नही जाता।

रोगी बड़ी आयु का हो और जीर्ण वृक्क रोग का सन्देह हो तो पूछे कि सिर मे दर्द तो नही होता। कभी उल्टी तो नही आ जाती, या हिचकी तो नही आती या दृष्टि धुन्धली तो नही होती जाती। दिन मे पडते ही निद्रा तो नही आ जाती या रात्रि मे जल्दी-जल्दी निद्रा तो नही टूट जाती। रक्तभार देखना चाहिये। हृदय मे, विशेषत वाम हृदय मे, वृद्धि तो नही। मूत्र दिन-रात का मिलाकर अधिक तो नही आता। अधिक प्यास तो नही लगती। अधिक मूत्र आता हो तो रात मे या दिन मे कब अधिक आता है। (अधिक आता हो तो मधुमेह, जीर्ण वृक्क रोग, धमनी काठिन्य, रक्तभार वृद्धि रोग का भेद करना चाहिये)। कम आता हो तो तीव्र वृक्क-शोथ (Nephritis) तथा हृदयदौर्बल्य मे भेद करें। दर्द होता हो तो मूत्र आने से पहले होता है (मूत्र मार्ग Urethra मे रोग हो तो दर्द होता है। प्रोस्टेट वृद्धि मे मूत्र देर से आरम्भ होता है, वेग मन्द होता है। रात को बार-बार आता है) या मूत्र आते समय होता है (Prostatitis या Cystitis) या अन्त मे होता है (Bladder Stone)।

मुहुर्मुहुर्मूत्र (Frequency) तो नही आता (Pyelitis—मूत्र मे पूय भाव हो तो बार-बार आता है, Calculi के कारण भी आता है या बडी आयु मे Prostate वृद्धि हो तो रात को बार बार मूत्र आता है) या मूत्रस्वातन्त्र्य (Incontinence) तो नही अर्थात् अनिच्छा से तो मूत्र नही निकल जाता। मूत्र द्वार (Sphincter) पर नाडी नियन्त्रण की निर्बलता का सूचक यह लक्षण है अर्थात् Parasympathetic नाडी सूत्रो की उत्तेजना मे ऐसा होता है या Pyramidal सूत्रो के रुग्ण हो जाने के कारण मूत्राशय के केन्द्र (Bladder Centre) पर (जो सुषुम्ना काण्ड के S-3 प्रदेश मे विद्यमान है) हमारे मस्तिष्क नियन्त्रण के शिथिल हो जाने से यह शिकायत हो सकती है। साधारणत जब मूत्राशय मे मूत्र का दबाव बढता है तो Detrusor मास मे सकोच होकर तथा Internal Sphincter मे विस्तार होकर मूत्र निकल जाता है। दूसरे Sacral प्रदेश मे Cord मे मूत्राशय का नियामक केन्द्र है, उस पर मस्तिष्क का नियन्त्रण है, मूत्र की निकासी इस पर निर्भर है।

मूत्र

साधारणत दिन रात मे आदमी ५-६ बार मूत्र करता है तथा मूत्र १½ सेर या १५०० सी०सी० के लगभग आता है। इसका बडा भाग दिन (८ से १० बजे तक रात तक) मे आता है कुल का ⅐ भाग ही रात (१० से ८ बजे प्रात. तक) को आता है। उसका रग फीका, पीला-सा होता है। वह पारदर्शक और लगभग निर्गन्ध होता है। रग अधिक फीका हो तो मधुमेह का या बडी आयु हो तो जीर्ण वृक्क रोग का सन्देह करना चाहिये। Bile Pigment के कारण अधिक पीला हो तो कामला का, रग अधिक गहरा हो तो ज्वर का या हृदय की निर्बलता

(Failure) का सन्देह करना चाहिये। Haemolytic Anaemia और यकृत् की निर्बलता मे यह वढ जाता है। पीलापन Urobilinogen के कारण होता है। मूत्र की Specific Gravity १.०१५ से १.०२५ तक होती है। दिन के मूत्र की १.०१८, रात के मूत्र की १.०२६ होती है। उसका यह भार उसके अन्दर विद्यमान Urea और Chlorides के ऊपर निर्भर है। Specific Gravity इतनी हो तो समझना चाहिये कि वृक्क मलो को निकाल रहे हैं। अधिक भोजनपान करने से और शीतकाल मे भी मूत्र की मात्रा कुछ वढ जाती है। जीर्ण वृक्क रोग मे मूत्र की मात्रा वढ जाती है, मूत्र की Specific Gravity घट जाती है, तीव्र वृक्क रोग मे वह वढ जाती है। मूत्र मे विद्यमान Acid Sodium Phosphate के कारण वह अम्लीय या Acidic होता है। Protein भोजन अधिक किया जाए तो उनसे Sulphuric तथा Phosphoric Acid की उत्पत्ति के कारण उसकी Acidity वढती है। सब्जियो और फलो का अधिक सेवन किया जाए तो उनके क्षारीय होने से उसकी Acidity घटती है। मूत्र अधिक अम्लीय हो तो मधुमेह, रक्ताम्लता (Acidosis) या जीर्ण वृक्क रोग का सन्देह करना चाहिये। मूत्र वून्द-वून्द करके स्वय निकले तो प्रोस्टेट Obstruction का सन्देह करे।

जब गुर्दे अपना काम भली प्रकार नही करते, एव उनका वल घट जाता है तो जीर्ण वृक्क रोग मे, मूत्र रात को अधिक आने लगता है (Nocturia) जो फीके रग का होता है और उसकी Specific Gravity घटी हुई होती है। प्रोस्टेट वढा हो, रक्तभार वढा हो, खाड तथा नमक अधिक ले तो भी मूत्र ज्यादा आता है।

मधुमेह मे (भोजन के वाद ३ घटे का मूत्र लेना चाहिए) मूत्र की मात्रा अधिक होती है और उसकी Specific Gravity वढी हुई होती है। Acute Nephritis मे तथा हृदयनैर्वल्य (Heart Failure) मे मूत्र की मात्रा कम हो जाती है, क्योकि Urea, Chlorides आदि की निकासी कम हो जाती है।

मूत्र का रग गहरा हरा हो तो उसकी Acidity वढी हुई समझनी चाहिए, रग भूरा पीला है तो Bile (पित्त) की अधिकता समझनी चाहिए। उसका रग सगतरी हो जैसे ज्वरो मे होता है तो Urobilin का अर्थात् Urobilinogen के उसमे वदलने का, तथा मूत्र का रग काला (Smoky) हो तो उसमे रक्त Haemoglobin समझना चाहिए। मूत्र धु धला आये तो उसमे Phosphates जाने।

प्रतिदिन मूत्र में आने वाले पदार्थ

(१) लवण (Chlorides) दिन-रात मे १०-१२ ग्राम आता है। जीर्ण वृक्क रोग हो, शरीर मे कही शोथ (Oedema) हो, ज्वर हो, वमन, अतिसार का रोग हो तो इनकी मात्रा घट जाती है। सोडियम प्रतिदिन मूत्र से ४ ग्राम निकलता है।

(२) Sulphates मूत्र मे दैनिक १½, ३ ग्राम मात्रा मे आते है। शरीर मे प्रोटीन की टूट-फूट (Metabolism) के वढ जाने पर इनकी मात्रा वढ जाती है।

(३) Calcium की मात्रा दैनिक २०० मिलि० होती है। Tetany तथा C Nephritis मे घट जाती है। Hyperparathyroidism मे अधिक जाता है।

(४) Urea प्रतिदिन २०-३० ग्राम निकलता है। ज्वरो मे तथा जव शरीर मे टूट-फूट की क्रिया अधिक हो, इसकी मात्रा वढ जाती है। मधुमेह मे भी ऐसा होता है। इसकी मात्रा घट जाती है (अर्थात् रक्त मे इसकी मात्रा वढ जाती है) यकृद्रोग तथा जीर्ण वृक्क रोग (C Nephritis) तथा चि० हृदयनैर्वल्य (C C Failure) मे Melancholia मे भी मात्रा घट जाती है।

(५) Phosphates — Phosph Acid के कैल्शियम, मैगनीशियम, पोटाशियम, सोडियम के साथ वने साल्ट दिन-रात मे २ ग्राम के लगभग आते हैं। Nervous व मानस रोगो मे ये वढ जाते हैं, वृक्क रोगो मे घट जाते हैं।

(६) पोटाशियम मूत्र से प्रतिदिन २ ग्राम मात्रा मे निकलता है।

(७) Uric Acid ·७ ग्राम प्रतिदिन निकलता है (Free तथा Urea के रूप मे) Nucleins का पचन अधिक हो तो वढ जाता है। यकृद्रोगो व गठिया मे भी वढ जाता है। जीर्ण वृक्क रोग मे घट जाता है।

(८) Oxalates की दैनिक निकासी ०.१५ ग्राम है। खाण्ड के अजीर्ण मे तथा पालक, पत्ता गोभी, टमाटर से इसकी मात्रा वढ जाती है।

(९) Creatinine—मास, रक्त, मस्तिष्क मे विद्यमान Creatine Phosphate से उत्पन्न होता है। १-१½ ग्राम मात्रा मे निकलता

है। Catabolism के बढने पर जैसे ज्वरो, Tetanus, Hyperthyroidism मे बढता, वृक्क रोग तथा Hypothyroidism मे घटता है।

(१०) १७-Ketosteroids ५-२५ मिलि० निकलते है।

(११) Catecholamines १५० माइक्रो ग्राम तक।

(१२) Amylase—३-१० Wohlgemuth Units १०० मिलिलि०। Pancreatitis मे बढता है।

निक्षेप

मूत्र आने के बाद, ठडा होने पर, धुधला सा हो जाये और मूत्र अम्लीय हो तो उसमे Sodium, Potassium या Ammonium के Urates मिले हुए समझने चाहिए। ये मूत्र के रग को पकड लेते हैं। इसलिए इनके कारण मूत्र मे ईंट के चूरे जैसा निक्षेप आ जाता है। परन्तु मूत्र को गर्म करने से ये घुल जाते हैं। ये तीव्र ज्वर मे आ जाते हैं।

मूत्र के शीशी मे पडे रहने पर नीचे एक बदली-सी बैठ जाये तो उसे Mucus समझना चाहिए। इस बदली के ऊपर यदि एक हिलती हुई श्वेत-से निक्षेप की तह बैठ जाये और मूत्र अम्लीय हो तो इसे Calcium, Ammonium आदि का Oxalates का निक्षेप समझना चाहिए। मन्दाग्नि के कारण कार्बो-हाइड्रेट के भली प्रकार न पचने से Oxalic Acid की उत्पत्ति होती है। Calcium के साथ मिलने से यह Cal Oxalate हो जाता है। साधारणत इसकी स्वल्प-सी मात्रा ही बनती है। अजीर्ण मे मूत्र के अन्दर यह बढ जाता है (डम्बल (स्फटिक) ये Hcl मे घुल जाते हैं, Acetic Acid मे नही, मूत्र के नीचे गहरे भूरे रग की रेत की तरह के दाने-दाने बैठ जाए जिन्हे Cayenne Pepper Deposit कहते है तो इसे Uric Acid समझना चाहिए, इसमे मूत्र विशेष अम्लीय होता है। मूत्र मे अन्दर से ही मट्ठे या चूने जैसा निक्षेप आए तो उसे Phosphates समझना चाहिए। मूत्र मे १-५ ग्राम मात्रा मे इसका निकलना स्वाभाविक है, अधिक निकलने पर यह निक्षिप्त होता है। यह निक्षेप थोडा-सा १० प्रतिशतक Acetic Acid मिलने से घुल जाता है। अन्दर से मूत्र Neutral या Alkaline आता है। मूत्र मे मवाद (Pus) का निक्षेप हो तो वह गर्म करने से इसमे नही घुलता, वह मूत्र मार्ग से आया होता है। वृक्को से आए तो वह मूत्र मे घुला हुआ होता है तथा मूत्र अम्लीय होता है।

मूत्र मे Albumin की जो वृक्क रोग अर्थात् Renal Arteriosclerosis, Nephritis, Pyelitis, B P की वृद्धि, Congestive Cardiac failure या गर्भावस्था की विष के कारण वृक्को के रुग्ण होने पर आने लगता है जाच करने के लिए टेस्ट ट्यूब के ३/४ भाग को मूत्र से भर-कर उसके ऊपर के हिस्से को ज्वाला पर रख कर उबाले। यदि वह उबला हुआ मूत्र सफेद हो जाय और १० प्रतिशतक Acetic Acid से साफ न हो तो Albumin का निश्चय करना चाहिए। मूत्र मे निकलने मे यह रक्त मे घट जाए (२ मिलि० %) तो श्वयथु (Oedema) का लक्षण हो जाता है।

मूत्र मे खाण्ड की जाच करने के लिए एक टेस्ट ट्यूब मे Fehling's Solution A B दोनो बराबर-बराबर मिलाकर एक इच तक भर ले। दूसरी टेस्ट ट्यूब मे उतना ही मूत्र भर कर दोनो को पृथक्-पृथक् उबाल ले। फिर मूत्र को Solution मे डाल दे, अथवा ५ सी० सी० Benedict's Solution मे ८ बूद मूत्र मिलाकर दो मिनट उबाल ले और ठण्डा होने के लिए रख दे। अब यदि इसमे लाल पीला निक्षेप तुरत आ जाए तो दो या उससे कुछ ज्यादा प्रतिशत खाड का अनुमान करे। पीला सा निक्षेप आये तो एक से दो प्रतिशत तक का अनुमान करें। यदि हरा-सा निक्षेप आये तो १/२ से एक प्रतिशत तक का अनुमान करे। मूत्र केवल हरा-सा धुधला हो जाय तो १ से ५ प्रतिशत तक का अनुमान करें।

वृक्को की स्पर्शन (Palpation) परीक्षा— रीढ की हड्डी के दोनो ओर पीठ पर मध्य रेखा से ३ इच हटकर ११-१२ पसलियो से ढके हुए वृक्क होते है। ऊपर यकृत के होने के कारण दाया वृक्क बाए की अपेक्षा कुछ नीचे होता है। बाए वृक्क का ऊपर का किनारा ११वी पसली के ऊपर के किनारे के पीछे होता है। दाए वृक्क का ऊपर का किनारा ११वी पसली के निचले किनारे के पीछे होता है। बाए वृक्क का निचला किनारा नाभि के समतल खीची रेखा से १½ इच ऊपर होता है जबकि दाए का निचला किनारा इस रेखा से एक इच ऊपर होता है। रोगी को पीठ के भार लिटाकर उसकी कोष्ठ की मासपेशियो को शिथिल करके उसके दाए ओर खडे होकर बाए हाथ की पीठ पर पसलियो के नीचे-नीचे Quadratus Lumborum के ठीक बाहर की ओर रखकर दाए हाथ को ऊर्ध्व मुख आगे पसलियो के नीचे रखकर उससे पेट को रोगी के अन्त श्वास लेते समय दबाए तो वृक्क का निचला गोलाकार सिरा दोनो

हाथो के बीच मे आया अनुभव होता है । दाया वृक्क बाए की अपेक्षा अधिक स्पर्श होता है। वृक्क रुग्ण हो अर्थात् Acute Nephritis हो, Pyelitis हो, Perinephric Abscess हो तो इसे दबाने से रोगी को दर्द होता है ।

लसीका ग्रन्थियो Lymph glands की परीक्षा —

लसीका ग्रन्थिया शरीर मे ५०० के लगभग है इनका कार्य रक्त को छानना (Filter करना), Lymphocytes और Antibodies का बनाना है। बालक मे इनकी मात्रा अधिक रहती है। आयु के बढने के साथ इनकी सख्या कम होती जाती है। इनका काम Bacteria को पकड लेने और रक्त मे जाने से रोकने का होता है। इसलिये इनमे शोथ Adenitis हो तो Infection का सन्देह करना चाहिये । Anterior triangle मे Cervical adenitis हो तो मुख या गले मे Infection का सन्देह करना चाहिए। Occipital adenitis हो तो शिर पर, Axillary adenitis हो तो बाहु या छाती की दीवार मे, Epitrochlear adenitis (कोहणी के अन्दर के Condyle पर) हो तो अग्रबाहु के अन्दर की ओर, Inguinal adenitis हो तो टाग या Genitalia मे Infection का सन्देह करे। Supra-clavicular adenitis बाईं ओर हो तो आमाशय कैन्सर का तथा दाईं ओर हो तो छाती के अन्दर कैन्सर का सन्देह करे। ग्रीवा मे बढे हुए Deep Cervical glands स्वतन्त्र हो या त्वचा आदि के साथ चिपके हो तो Tuberculosis का और यदि वे आस-पास के अवयव के साथ चिपके हो, स्पर्श मे कठोर हो तो कैन्सर का सन्देह करे। जब कोई Gland Septic होता है तो दबाने मे उसमे दर्द होता है । शरीर मे स्थान स्थान पर Glands स्पर्श होते हो तो Endothelial Tuberculosis का सन्देह करे (ऐसा प्राय युवको मे होता है), यद्यपि इस रोग के कोई प्रकट लक्षण नही होते। ग्रीवा मे Sternomastoid के नीचे Supra clavicular glands क्रमश आकार मे बढते जाये, त्वचा से या आपस मे चिपके नही, पके नही तो Hodgkin's disease का सन्देह करे।

त्वग्रोगो की परीक्षा —

Macule —त्वचा पर हुए किसी रग विशेष के समतल चकत्ते को Macule कहते है जैसे Neural Leprosy मे होता है। त्वचा मे हुए रक्त स्राव के कारण उत्पन्न लाल रग के चकत्ते को Petechial Ecchimosis कहते है जो Purpura का सूचक होता है । Capillaries के फैल जाने से जो त्वचा पर लाली होती है उसे Erythema कहते हैं।

Papule —त्वचा पर हुए पिनके नक्के या बाजरे के दाने जितने, ठोस से समवर्ण या रगदार उभार को Papule कहते हैं। ये छोटे-छोटे, बहुपार्श्वीय Polygonal हलके नीले लाल से रग के पास-पास एक समूह के रूप मे हो तो इसे Lichen Planus कहते है। यदि Papule, मास के रग का ऊपर से गोल सा हो तो उसे Mole कहते हैं। यदि Papules चपटे से तथा खुर्दरे हो तो उन्हे Warts या Verruca कहते है।

Nodules तथा Plaques—Papules कुछ बडे हो जैसे फिरग रोग मे हो जाते है तो उन्हे Nodules कहते है। श्लेष्म कला पर उठे हुए से चपटे उभार हो तो उसे Plaques कहते हैं जैसे जिह्वा पर Leukoplakia होता है।

Comedo या Blackhead—चेहरे की त्वचा पर Sebum के बने हुए एक ढेर को Comedo कहते है। ये Acne Vulgaris मे होते हैं।

Vesicle—त्वचा पर एक छोटा-सा Serous द्रव से भरा उभार हो तो उसे Vesicle कहते है। Herpes, Scabies, Impetigo, Acute Eczema तथा Chicken pox मे यह होता है ।

Pustule —त्वचा पर हुए पूय से भरे छोटे से उभार को Pustule कहते हैं । Boils, Impetigo, Acne Vulgaris मे यह होता है। Bulla या Bleb-Vesicle जैसे उससे बडा द्रव से भरा उभार हो तो उसे Bulla कहते है। Pemphigus रोग मे ऐसा होता है ।

Red wheal–लाल रग का कुछ उठा हुआ चक्राकार चकत्ता हो तो उसे Red wheal कहते है । Urticaria, Angioneurotic Oedema मे ऐसा होता है।

Oozing (Weeping)—शोथयुक्त त्वचा पर से जो Serum का स्राव होता रहता है उसे Oozing कहते हैं। Eczema तथा Burn मे ऐसा होता है।

Crusting—जब यह Serum त्वचा पर सूख जाता है तब उसे crusting कहते हैं। ऐसा Eczema मे होता है।

Atrophy—Epidermis का ऊपर का भाग तो रहे, निम्न त्वचा मे क्षीणता हो जाये अर्थात् Sweat glands तथा रोम नष्ट हो जाये तो उसे Atrophy of the Skin कहते हैं। वृद्धावस्था मे ऐसा होता है।

Lichenification —त्वचा मोटी, कुछ कृष्णवर्ण हो

जाये उसकी लकीरें स्पष्ट हो जायें तो उसे Lichenification कहते हैं। पुराने कण्डू रोग Pruritus मे ऐसा होता है अर्थात् Eczema तथा Allergy के कारण यह विकार होता है। इनमें जो काला रंग हो जाता है उसे Pigmentation कहते है।

Dryness—त्वचा मे शुष्कता, रूक्षता बढ जाये तो उसे Dryness (Anhidrosis) कहते है। अतिसार अधिक हो जाये, या मधुमेह प्रबल रूप मे हो, वृद्धावस्था अधिक हो तो त्वचा में यह शुष्कता आ जाती है।

Moist skin–Hyperhidrosis—अतिस्वेद के कारण ऐसा होता है जिसका कारण बहुधा Hyperthyroidism Neuro-circulatory Asthenia (Neurological weakness) अर्थात् वातिक नैर्बल्य होता है। Septic fever तथा Tubercular fever मे भी पसीना अधिक आता है। शारीरिक निर्बलता General Debility के कारण पादतल तथा करतल मे अधिक पसीना आता है। Hyperthyroidism के कारण भी ऐसा हो सकता है। करपाद स्वेद का कारण अति चिन्ता भी है। (Sedation से अर्थात् Reserpine, Anticholinergic औषध जैसे Probanthine से तथा Phenobarbitone से इससे लाभ होता है)

Loss of hair—Anxiety चिन्ता तथा Emotional Stress मानसिक अशान्ति, Dandruff, Vitamin 'A' तथा 'C' की न्यूनता से बालो के गिरने की बिमारी हो सकती है ऐसा कहा जाता है।

मानसिक रोगो की परीक्षाः—

निम्नलिखित व्यक्तित्व के लोगो मे मानस रोग होने की सम्भावना है। (Personality disorders) —(१) Hypomanic Personality —जब किसी व्यक्ति मे हर्ष, प्रसन्नता और आशावादिता का भाव भरा हुआ हो वह अत्युत्साह प्रकृति का हो और उसकी प्रसन्नता का भाव दूसरों के कार्य मे विघ्न का कारण भी हो जाता हो तो ऐसी प्रकृति के व्यक्ति को Hypomanic प्रकृति का व्यक्ति कहते हैं। उसे Mania का रोग हो सकता है।

(२) Melancholic Nature या Personality — उपर्युक्त प्रकृति के विपरीत जब कोई व्यक्ति सदा विपण्ण और निराश रहता है। विषाद प्रकृति का है तो उसे Melancholic Personality का व्यक्ति कहते हैं। उसे Depression विषाद रोग हो सकता है।

(३) Obsessional Personality —जब किसी व्यक्ति पर कोई भाव या किसी प्रकार की चेष्टा सवार हो जाती या हावी हो जाती है तो ऐसे भावप्रधान व्यक्तित्व को Obsessional Personality कहते है। उदाहरणत ऐसे व्यक्तित्व का कोई आदमी हर समय स्वच्छता मे, कोई चीजो को व्यवस्थित रूप मे रखने मे लगा रहता है। ऐसे व्यक्तित्व के आदमी को Obsessive Compulsive Neurosis का रोग हो सकता है।

(४) Paranoid Personality—जब किसी व्यक्ति मे सन्देह-शीलता अधिक बढ जाती है वह तो यही समझता है कि दूसरे उसे हानि पहुचा रहे हैं या उसके साथ अन्याय कर रहे है तो ऐसे भ्रमप्रधान व्यक्ति को Paranoid Personality कहते है। ऐसे मनुष्य को Paranoid Psychosis का रोग हो सकता है।

(५) Hysterical Personality —शीघ्रभावावेश मे आ जाने, किसी प्रकार के विरोध या विघ्न को न सह सकने की जो मानसिक निर्बलता है ऐसे भावावेश युक्त व्यक्ति को Hysterical कहते है। ऐसे व्यक्ति पर जब कोई भारी विघ्न बाधा या Stress आ पडती है तो उसे Hysteria का रोग हो सकता है।

(६) Psychopathic Personality —जब कोई व्यक्ति अपने आवेशो और इच्छाओ के अधीन हुआ हुआ हो, उन पर जो मानसिक नियन्त्रण रहता है उसका उसमे अभाव हो अर्थात् किसी मे मानसिक नियन्त्रण की न्यूनता या अभाव हो तो ऐसे उच्छृ खल प्रकृति के व्यक्ति को Psychopathic personality कहते है। ये व्यक्ति सर्वथा असामाजिक तत्त्व के होते है यद्यपि ये बुद्धि मे तीव्र होते है।

(७) Aggressive Personality—जब कोई व्यक्ति मना करने या विरोध करने पर विरोध करने वाले के प्रति क्रोधपूर्ण या हिंसापूर्ण व्यवहार करे तो ऐसे आक्रामक प्रकृति के व्यक्ति को Aggressive personality कहते है।

(८) Passively aggressive Personality—जब कोई व्यक्ति समझाने पर समझाने वाले के प्रति क्रोधपूर्ण व्यवहार तो न करे पर ढीठ और हठीला बन कर अपने दुष्कर्म से बाज न आये तो ऐसे दुराग्रह प्रकृति के व्यक्ति को Passively aggressive personality का व्यक्ति कहते हैं।

Schizoid Personality —यदि कोई व्यक्ति मन्दचेष्ट, मन्दबुद्धि होकर, आसपास के लोगो से उपरत होकर अपने मे ही मग्न रहने लगे या किसी व्यर्थ से कार्य मे लगा रहे तो ऐसे मन्द प्रकृति व्यक्ति को Schizoid personality कहते है। तथा इस उपरति के रोग को Schizophrenia कहते है।

मानसरोग के चिह्न —

(क) व्यवहार सम्बन्धी चिह्न (Disorders of behaviour)—(१) अति चेष्टा या व्यर्थ चेष्टा शीलता Increased activity—रोगी अथक होकर दिन भर कुछ न कुछ करता, बोलता, या लिखता रहता है पर उसकी चेष्टा का नतीजा कुछ नही निकलता। Hypomania मे ऐसा होता है।

(२) मन्दचेष्टता, Decreased activity या Stupor—रोगी उदासीन, चुपचाप होकर बैठा रहता है या पडा रहता है। विषाद Depression रोग मे ऐसा होता है।

(३) निश्चेष्टता मन्दोन्माद, Catalepsy—रोगी एक ही स्थिति मे चिरकाल खडा रहता या पडा रहता है। Catatonic Schizophrenia मे ऐसा होता है।

(४) Stereotypy —रोगी किसी एक ही चेष्टा या शब्द को दोहराता रहता है। यह भी Schizophrenia का एक चिह्न है।

(५) Verbigeration —बिना प्रसग किसी शब्द या वाक्य को बार बार बोलना, अप्रसग भाषण या पुनरुक्ति उन्माद Echolalia, दूसरे के बोले शब्द को नकल कर के बार-बार बोलना, Echopraxia, दूसरे की की हुई चेष्टा को बार-बार नकल करना।

(६) Compulsions —जब कोई व्यक्ति किसी व्यर्थ की चेष्टा को बार-बार करता रहता है तो उसे Obsessive compulsive personality कहते है। इस रोग को Obsessive compulsive Neurosis कहते है।

(ख) सज्ञा सम्बन्धी चिह्न (Disorders of perception)

(१) Illusions —जब किसी एक वस्तु की अन्यथा प्रतीति हो अर्थात् अधेरे मे ठुण्डा आदमी प्रतीत हो, रस्सी साप प्रतीत हो तो उसे Illusion कहते है। मानस रोगी को ऐसी अन्यथा प्रतीति होती है।

(२) Hallucinations (मिथ्या प्रतीति)—जहा कुछ भी नही वहा कुछ दिखाई पडे (Visual Hallucination) या सुनाई पडे (Auditory hallucination) या कुछ स्पर्श हो (Tactile hallucination) इत्यादि कोई मिथ्या प्रतीति होने लगे तो उसे Hallucination कहते है। यह Schizophrenia का सूचक लक्षण है।

(ग) विचार सम्बन्धी चिह्न (Disorders of thinking)—(१) Delusions —विचार सबन्धी प्रधान चिह्न Delusion है जब किसी व्यक्ति मे युक्ति, तर्क या Reason की मानसिक शक्ति निर्बल हो जाती है और भाव प्रधान हो जाता है तो उसमे मिथ्या विश्वास उत्पन्न होने लगते है। वह किसी साधारण निरुपद्रवी रोग को कैन्सर या क्षय रोग मानने लगता है, या उसे यह मिथ्या विश्वास हो जाता है कि उसके सबधी या पडोसी उसे जहर दे रहे हैं, या उसके पीछे पुलिस लगी हुई है या किसी-किसी को यह विश्वास हो जाता है कि वह बहुत बडा आदमी है या वह बहुत धनी है जब कि वह एक साधारण व्यक्ति या निर्धन ही होता है।

(२) Hypochondriac ideas —जब किसी को अपने अन्दर अनेकानेक किस्म के रोग प्रतीत होने लगते हैं जबकि चिकित्सक को कोई रोग दिखाई नही पडता तो इसे Hypochondria कहते हैं। ऐसा प्राय Depression रोग, Anxiety मे होता है।

(३) Phobias —जब किसी व्यक्ति को कोई मिथ्या भय लग जाये जैसा अधेरे मे लगता हो, अकेले बैठने मे या एक बन्द कमरे मे रहने मे भय लगे या भीड मे जाने से भय लगे तो इसे Phobia कहते है। ऐसा Anxiety मे होता है।

(४) Obsessions —जब कोई विचार जो प्राय बुरा होता है हटाने पर भी बार-बार आदमी के चेतन जगत् मे आता है तो उसे Obsession कहते है। ऐसा Obsessive Compulsive Neurosis रोग मे होता है।

(घ) भाव सबधी लक्षण—Disorders of affect or mood, (१) Euphoria —अतिहर्ष का भाव बहुधा Hypomania का सूचक होता है (२) Elation—अति प्रफुल्लता जो वास्तविकता के साथ मेल न खाती हो बहुधा Hypomania या Mania का सूचक होती है।

(३) Exaltation —अति उच्चता या अति उत्तेजना का भाव भी Mania का सूचक होता है (४) Ecstasy—मन की मस्ती, ध्यानमग्नता या ध्यानोन्माद का भाव या अति धार्मिकता या उग्र प्रेम का भाव भी बहुधा Schizophrenia का सूचक होता है।

(५) Depression —निकटतम सबधी की मृत्यु से, धन हानि से उत्पन्न विषाद रोग हो अर्थात् वह Reactive हो या आभ्यन्तर कारण से हो अर्थात् Endogenous हो, किसी मे अति उदासीनता अतिनैराश्य का भाव हो तो यह मानसिक निर्बलता का सूचक लक्षण होता है। इसी के साथ Grief या अति दु ख का लक्षण भी इसी निर्बलता का सूचक है।

(६) Inadequate affect —जब किसी व्यक्ति मे करुणा, दया, सहानुभूति या हर्ष, प्रसाद आदि भावो का उदय ही न हो, इनका अभाव हो जाय अर्थात् Blunting of Affect का चिह्न हो तो समझना चाहिए उसमे Schizophrenia का रोग शुरू है।

(७) Inappropriate affect —यदि किसी में विपरीत भाव का उदय हो अर्थात् दूसरे के कष्ट और मृत्यु के समय किसी मे हसी का भाव हो तो इसे विपरीत भाव या Inappropriate भाव कहते हैं । Schizophrenia मे ऐसा होता है ।

(८) Anxiety—चिन्ता किसी आभ्यन्तर भय के कारण निरन्तर बनी रहती है। भय भी बहुधा निराधार होता है। Anxiety Neurosis मे चिन्ता का लक्षण प्रधान होता है । चिन्ता के कारण Autonomic System तथा Endocrines उत्तेजित रहते है जिससे नाना शारीरिक विकार प्रतीत होते हैं। मासपेशियो मे Tension तनाव के भी लक्षण होते हैं। चेष्टाशीलता Restlessness बनी रहती है । रोगी को Dyspepsia, Palpitation, Headache Tremor की शिकायत रहती है ।

(ड) चेतना सम्बन्धी लक्षण—Disorders of Consciousness —

आदमी की चेतनता उसके Diencephalon (Thalamus, Hypothalamus, Metathalamus) तथा उसके Ascending reticular formation के अर्थात् सज्ञास्थान या Sensorium के स्वस्थ clear होने पर निर्भर है। Cortex भी चेतना के कायम रखने मे भाग लेता है। यह चेतनता जब कुछ कम होती है तो सबसे पहले Confusion सज्ञादौर्बल्य या मृदु तम प्रवेश का लक्षण होता है जिसमे आसपास की प्रतीति अयथार्थ रूप मे होती है मस्तिष्क के उक्त स्थान पर किसी Toxin या Infection का दुष्प्रभाव होने या उसमे Organic परिवर्तन हो जाने से अयथार्थ प्रतीति या Confusion का लक्षण होता है ।

(२) Clouding of Consciousness—यदि आदमी का यह तम प्रवेश और अधिक गहरा हो तो उसे अपने आस-पास के वातावरण की प्रतीति अयथार्थ ही नही, विपरीत या गलत रूप म होने लगती है। इसे Clouding of Consciousness या मोह या व्यामोह अज्ञानपूर्ण प्रतीति कहते है। Cerebral Anoxia के कारण या किसी Metabolic toxin के कारण या हिस्टीरिया के कारण ऐसा हो सकता है।

(३) Delirium — जब किसी व्यक्ति मे Illusion, Hallucination, Disorientation के साथ साथ उत्तेजना Excitement का विकार भी हो तो उसमे प्रलाप का लक्षण होता है। यह भी Confusion, Clouding of mind का एक उग्र रूप है । मस्तिष्क के उपर्युक्त, भाग पर किसी Toxin का दुष्प्रभाव होने से यह लक्षण होता है। ज्वर मे ऐसी अवस्था होती है ।

(४) Twilight State—यह तम प्रवेश की वह अवस्था है जिसमे रोगी को Visual या Auditory Hallucination होते है और उसे अपने आसपास की अवस्था, समय, स्थान आदि की कोई सुध नही रहती । Epilepsy, Hysteria Dementia-precox मे ऐसी अवस्था होती है ।

(५) Stupor — जब बाहर के विषयो की प्रतीति बन्द हो जाती है उसे Stupor या निद्रा कहते है। निद्रा मे चेतनतापूर्वक विचार करने की क्रिया बन्द हो जाती है। चेतना स्थान मे Organic परिवर्तन हो जाये या उस पर Toxin का या किसी Infection का दुष्प्रभाव हो तो उसमे विचार की प्रक्रिया सर्वथा बन्द हो जाती है । पर मानस रोगो मे जैसे Catatonia (अर्धनिद्रित मानस रोगी), Epilepsy, Hysteria, Melancholia (Manic-depressive psychosis or depressive state of Mania) मे निद्रा पूर्ण नही होती उसे तन्द्रा Torpor या Apathy कह सकते है ।

(६) Disorientation — जब आदमी को, यद्यपि वह होश मे है, अपनी परिस्थिति का, काल का, दिशा का, आसपास विद्यमान आदमियो का यथार्थ ज्ञान नही रहता उसे Disorientation या दिशा ज्ञानलोप कहते हैं। मस्तिष्क-असमर्थता, Cerebral-insufficiency मे ऐसा होता है।

(७) Memory स्मृति — जिस शक्ति के द्वारा मनुष्य बाहर से प्राप्त विषय को मस्तिष्क मे सग्रह (Register) करता, उसे वहा बनाये रखता (Retain करता) तथा समय पडने पर फिर उसे अपने सम्मुख बुला सकता (Recall कर सकता) है उसे स्मृति शक्ति कहते है। यदि विषय का सग्रहण स्पष्ट रूप मे रुचि के साथ, तथा पूर्ण Consciousness के साथ किया गया हो तो वह मस्तिष्क मे बना रहता (Retain रहता) है। स्मृतिनाश को Amnesia कहते हैं। Organic-brain disease मे तथा Senile Psychosis मे स्मृति नाश का रोग होता है। बुढापे मे होने वाले Organic disease मे किसी नई बात को Register करना तथा मस्तिष्क मे Retain करना कठिन हो जाता है। हा पुरानी बातें याद रहती हैं। मस्तिष्क मे अधिक Degeneration हो जाये तो नई पुरानी सभी बाते भूल जाती हैं। चोट लगने के बाद हुई विस्मृति धीरे-धीरे ठीक हो जाती

है, पूर्णतया ठीक नही होती। Hysteria तथा Mania मे भी स्मृति नष्ट हो जाती है।

(८) Dementia — जब किसी विषय की आलोचना करने (Critically सोचने), अच्छे-बुरे मे भेद करने, तर्क वितर्क करने की मानसिक शक्ति कम हो जाती है तो उसे Dementia या बुद्धिनाश या मानसिक ह्रास कहते हैं। बाद मे किसी नई बात को सीखने, किसी विषय पर निर्णय ले सकने की शक्ति भी जाती रहती है। भाव या Emotions अस्थिर हो जाते है। भाषण अस्पष्ट, वेशभूषा मलिन हो जाती है। Higher Cortical Neurones मे Degeneration के कारण यह रोग होता है। Degeneration का कारण Chronic intoxication, Ch infection या Malnutrition होता है।

नाड़ी संस्थान (Nervous System) की परीक्षा

द्वितीय मस्तिष्क नाडी Optic Nerve संबन्धी परीक्षा

दृष्टि परीक्षा Acuity of Vision —

Snellen's test type **द्वारा परीक्षा** — रोगी को इस चार्ट से ६ मीटर (२० फुट) पर बिठाकर चार्ट पर लिखी लाइनो को पढाये। इसकी हर लाइन पर जो नम्बर लिखा होता हे उतने मीटर पर से उस लाइन को पढ लेना चाहिये। यदि रोगी ६ मीटर पर बैठकर ६ मीटर वाली लाइन को पढ ले तो उसका ऊपर का Numerator भी ६ तथा नीचे का Denominator भी ६ होता है अर्थात् उसकी दृष्टि दोनो आखो मे ६/६ है। पर यदि वह ६ मीटर पर बैठकर केवल उसी लाइन को पढ सके जिसे ६० मीटर पर बैठकर पढना चाहिये तो उसका नम्बर ६/६० होता है।

Error of refraction की परीक्षा के लिये, ठीक हो, अगर पहले रोगी की Ciliary muscle तथा Iris को Paralyse कर ले और फिर देखें कि 'प्लस' या 'माइनस' कौन सा ग्लास है जिमसे वह ६ मीटर या ° मीटर वाली लाइन को पढ सकता है वही उसका नम्बर होता है। लेन्स Convex हो तो उस नम्बर के पहले प्लस का निशान (+) लगाते हैं, लेन्स Concave हो तो उससे पहले माइनस (—) का निशान लगाते है। एक Dioptre के लैन्स का फोकस एक मीटर पर होता है २ Dioptre के लैन्स का फोकस १/२ मीटर पर तथा ३ Dioptre के लैन्स का फोकस १/३ मीटर पर होता है।

यह चार्ट तो दूर दृष्टि Distant Vision की जाच के लिये है, समीप दृष्टि Near Vision की जाच के लिये Jeager's testcard होता है। उसे रोगी की आख से १२ इच दूरी पर मेज पर रख कर उसे पढाये। उसके बारीक अक्षरो को भी रोगी पढ सके तो दृष्टि नार्मल समझे अन्यथा जिस ग्लास से वह उस बारीक लाइन को पढ ले वह उसका नम्बर होता है।

Retinoscopy — अधेरे कमरे मे जहा रोगी के कधे के पीछे लाइट हो रोगी के सामने बैठकर दायें हाथ मे पकडे Retinoscope को रोगी की दायी आख के बिलकुल पास ले जाकर दायी आख से उसके आख के Fundus को देखें। बाये हाथ मे पकडे Retinoscope से अपनी बाईं आख से उसकी बाईं आख के Fundus को देखे। इससे १५ मिनट पहले रोगी की आखो मे एक एक बून्द Homatropine Solution (१%) की डाल दे तो Fundus के देखने मे सुगमता रहती है। इस परीक्षा के दौरान मे रोगी से कहे वह अपने सामने की दीवार पर देखे। आख का Fundus सन्तरी रग का गोल सा वृत्त है जिसके मध्य मे एक गोलाकार छोटा सा गढा Optic disc दिखाई पडता है। उसका रग कुछ फीका गुलाबी होता है। इसमे से निकलकर Fundus मे फैली Arteries भी दिखाई पडती हैं जो पतली लाल, तथा सीधी रेखाओ के रूप मे दीखती हैं। इनके साथ Veins भी दीखती है जो कुछ फैली हुई होती तथा उतनी सीधी नही होती हैं। Disc से थोडी दूर बाहर की ओर Macula भी दीखता है जो कुछ गहरे रग का धब्बा सा होता है तथा जहा रक्तवाहिनिया नही होती हैं।

Papilloedema — Retina से मस्तिष्क मे जाने वाली Veins पर मस्तिष्क के अन्दर जब दबाव पड जाता है तो इस Disc मे कुछ Oedema सा होने लगता है जिससे Disc के किनारे जो स्वभावत स्पष्ट होते हैं अस्पष्ट हो जाते, तथा Disc कुछ अधिक लाल फूली हुई सी दीखती है। Arteries मद्धम तथा Veins अधिक स्पष्ट दीखती हैं, दृष्टि कुछ मद्धम हो जाती है। मस्तिष्क मे Tumour हो या रक्त भार अधिक बढा हुआ हो तब ऐसा होता है।

Errors of Refraction की परीक्षा — नेत्रो मे Homatropine १% सोल्यूशन डालकर रोगी से १ मीटर दूरी पर बैठकर Fundus को देखने पर एक सन्तरी रग का परदा दीखता है। Retinoscope के बीच के छिद्र मे से देखने पर Fundus की छाया

शीशे के दायें-बायें ऊपर नीचे की दिशा मे घुमाने पर शीशे के साथ चले तो रोगी Hypermetropic है ऐसा समझें। यदि Fundus की छाया हमारे शीशे के विपरीत चले तो रोगी Myopic है ऐसा समझे। अब क्रमश आख के सामने ग्लास लगा कर देखें Hypermetropia मे जिस +ग्लास मे यह छाया साथ चलनी बन्द हो जाये (Neutralize हो जाये) तो उसमे −१· ग्लास जोडकर जो नम्बर आये, वह उस आख का देखने का नम्बर होता है। छाया विपरीत दिशा मे जाये तो जिस ग्लास से छाया विपरीत जानी बन्द हो जाये उसमे −१ जोडकर जो नम्बर आये वह देखने का नम्बर होता है। Astigmatism मे ऊपर-नीचे, दायें-बायें दोनो दिशाओ के नम्बर का पृथक्-पृथक् निश्चय करें।

Myopia रोग मे बाह्य पदार्थो की तसवीर Retina से आगे बनती है उसे पीछे ले जाने के लिये Concave ग्लास लगाना होता है। Hypermetropia मे बाह्य पदार्थो की तस्वीर Retina के पीछे बनती है उसे आगे लाने के लिये Convex ग्लास लगाना होता है। Presbiopia मे Lens सख्त Rigid हो जाता है, पास की वस्तु की तसवीर Retina के पीछे बनती उसे आगे लाने को +ग्लास लगाना होता है।

Astigmatism मे Cornea के दोनो ओर ऊपर नीचे तथा दायें-बायें के Meridians एक चमचे की तरह एक से नही होते। अत दोनो का नम्बर पृथक् होता है। Simple Astigmatism मे एक ही Meridian मे रोग होता है अर्थात् या तो Myopia होता है, या Hypermetropia होता है। Compound Astigmatism मे दोनो ओर होता है पर एक ही किस्म का होता है। Mixed Astigmatism मे एक दिशा मे Myopia, दूसरे मे Hypermetropia होता है।

Pupillary Reaction, Light reaction —एक आख बन्द करके दूसरी मे टार्च आदि द्वारा लाइट डाली जाये तो पुतली सुकड जाती है। यह Reaction, Good, Sluggish, Absent तीन प्रकार का होता है। स्वस्थ व्यक्ति मे प्रथम किस्म का होता है।

Consensual light Reaction —एक आख मे लाइट डाली जाये तो दूसरी आख जो अन्धेरे मे है उसकी पुतली भी सुकडती है। इस Reflex का Arc या चक्र Optic Nerve, Oculomotor Nuclei, Third Nerve, तथा Ciliary ganglion से बना है। इस चक्र मे कही भी रोग हो यह Reaction लुप्त हो जाता है। अत एक ओर पुतली फैली हो तो (Iridoplegia हो तो) इस चक्र मे रोग का, Glaucoma का या Sympathetic Stimulation का सन्देह करें क्योकि Dilator Pupillae या Iris की Radial fibres मे cervical sympathetic आती है। इसी तरह Cerebrum मे जिधर Compression या Concussion होता है उधर की Third Nerve पर अगर दबाव पड जाये तो उससे उधर की पुतली फैल जाती है जैसे Cerebral haemorrhage तथा Thrombosis मे होता है।

सप्तम मस्तिष्क नाडी Facial Nerve की परीक्षा— इस नाडी के रोगियो मे Infranuclear भाग मे ही ७५% मे रोग होता है और उसमे भी इस नाडी के प्रान्त भाग मे अर्थात् Stytomastoid foramen से नीचे के भाग मे ही अधिकतर रोग होता है। अत इसके इस Facial Paralysis नामक रोग मे चेहरे के निम्न भाग मे Paralysis के चिह्न विशेष होते है। Orbicularis Oris के मृत होने से उधर का मुख कुछ खुला रहता है जिससे Saliva गिरता रहता है, पिया हुआ जल उधर से कुछ गिर जाता है। ओष्ठ से बोलने वाले अक्षरो का बोल कुछ अस्पष्ट हो जाता है। Orbicularis Oculi के मृत होने से उधर की आख भी कुछ खुली रहती है। उधर की भौहो को ऊपर उठाना कठिन होता है। उधर का चेहरा ही कुछ चेष्टाहीन, भावहीन-सा दीखता है।

इसके Fallopian canal के अन्दर के भाग मे रोग हो तो वहा से निकलने वाली इसकी Chorda Tympani Nerve के रोग ग्रस्त होने से जिह्वा मे स्वादनाश का लक्षण भी हो सकता है। Otitis media रोग के उपद्रव रूप मे इस नाडी का यह भाग ग्रस्त होता है। इस नाडी के इससे कुछ ऊपर के भाग मे जहा इसमे से Middle ear की Stapedius मासपेशी को सूत्र जाते है, रोग हो तो उपर्युक्त लक्षणो के अतिरिक्त Hyperacusis शब्दासहिष्णुता का भी लक्षण होता है।

अष्टम नाडी Auditory Nerve परीक्षा

बाधिर्य Deafness के कारण—(१) Obstructive Deafness के कारण —बहि कर्ण मे कोई अवरोध हो, Otitis media हो, Perforation of the drum हो, Eustachian Catarrh हो।

(२) Nerve deafness के कारण —Labyrinthitis हो, Cochlear Neuritis हो, Brain Stem मे

Arteriosclerosis हो, Nerve पर किसी विष का दुष्प्रभाव हो, Hysterical deafness भी कभी-कभी होता है।

Vertigo के कारण —Motion Sickness, Sea-Sickness, Labyrinth मे शोथ हो या उसे रक्त कम मिले, Hypertension हो, Cerebral Arteriosclerosis हो, Eustachian tube मे शोथ हो, Menicre's disease हो।

Tinnitus के कारण —Labyrinthitis, Eustachian tube catarrh, Wax in the ear, Hypertension, Otitis media, Cerebral arteriosclerosis

दशम नाडी Vagus Nerve **के रोग के लक्षण** —उधर के Soft palate, Pharynx, Larynx मे कुछ घात हो जाने से ठोस भोजन के निगलने मे कठिनता हो जाती है। Recurrent Laryngeal Nerve की असमर्थता से आवाज बहुत बैंठ जाती है।

Accessory Nerve के रोग का लक्षण —इस नाडी के रोग मे उधर की ओर की Trapezius तथा Sternomastoid पेशियो मे घात हो जाता है। सिर का उस ओर घुमाना कठिन होता है।

Hypoglossal Nerve के रोग का लक्षण —जिधर की ग्रोर यह रुग्ण है जिह्वा बाहर निकालने पर उधर की ग्रोर फिर जाती है। जिह्वा की Papillae मे Taste buds है जो थोड़ी सख्या मे तालु तथा गले मे भी है। इन पर भोजन के Molecules का प्रभाव होकर रसज्ञान वस्तुत मस्तिष्क को होता है। लवण रस ज्ञान जिह्वा के अग्र प्रान्त पर, अम्लज्ञान जिह्वा के किनारो से, मधुर ज्ञान जिह्वा के पृष्ठ से, तिक्त ज्ञान जिह्वा के पिछले पृष्ठ पर से होता है।

मासपेशियो की शक्ति परीक्षा Examination of Muscle-power — जिस किसी मास पेशी को देखना हो कि उसमे न्यूनाधिक Paralysis तो नही तो रोगी से कहे वह उस विशेष मासपेशी को सकुचित (Contract) करे ग्रौर परीक्षक उस सकोच को रोके। इस तरह उस पेशी मे कितनी शक्ति है इसका पता चलता है। यहा पर दोनो शाखाओ की प्रधान प्रधान मासपेशियो का क्या-क्या काम है इसका उल्लेख सक्षेप से किया जाता है। परीक्षक यह नोट करे कि अमुक मासपेशी की शक्ति साधारण (नार्मल) है या मन्द हुई हुई है या सर्वथा नष्ट हुई हुई है। यहा पर मासपेशियो के काम के साथ-साथ उसमे कौन सी Nerve आती है, वह Spinal cord के किस Cervical, Thoracic, Lumber या Sacral Segment से आती है इसका भी उल्लेख हुआ है, पहले ऊर्ध्व शाखा सबधी पेशियो का उल्लेख किया जाता है।

Sternocleidomastoideus–(Accessory या 11th Cranial N C-2, C-3) ग्रीवा के साइड की यह पेशी Sternum के ऊपर के खण्ड Manubrium के अग्रिम पृष्ठ से तथा Clavicle के अन्दर की ग्रोर के अग्रिम पृष्ठ से निकलती है। इन दो सिरो को क्रमश Sternal तथा Clavicular heads कहते है। यहा से निकलकर ऊपर बाहर और पीछे की ग्रोर चलकर यह ऊपर Mastoid process के पिछले पृष्ठ पर बधी है। यह सिर को उसी ग्रोर के कन्धे की ओर खीचती है तथा चेहरे को उधर के कन्धे से दूसरी ग्रोर मोडती या Rotate करती है।

Trapezius—(Accessory N C-2, C-4) यह ग्रीवा तथा कन्धे की पीछे की पेशी ऊपर Occipital bone, Ligamentum Nuchae, सातवी Cervical Spinous process तथा १२ Thoracic Vertebrae के Spinous processes से निकलकर आगे आकर Clavicle के बाहर की ग्रोर के भाग पर, Scapula के Spinus process पर बधी है। यह Scapula की abductor है, सिर को अपनी ओर तथा पीछे की ओर खीचती है।

Rhomboids Major and Minor —(Dorsal Scapular N C-5) पहली पेशी २-३-४ Thoracic Spinous processes से निकलकर Scapula के Vertebral border के निचले भाग मे बधी है। दूसरी छोटी पेशी ७वी Cervical Spinous process से तथा प्रथम Throcic Vertebra के इसी Process से निकलकर Scapula के Spine की जड मे बधी है। ये दोनो Scapula की Adductor है तथा उसको ऊपर उठाने वाली है।

Serratus anterior —(Long Thoracic N C-5, C-6-C7) छाती के बाजू के ऊपर के भाग मे उसकी ऊपर की ८ पसलियो ग्रौर Scapula के बीच मे स्थित यह पेशी पसलियो के अगले पृष्ठो से निकलकर छाती से लगी-लगी, पीछे Scapula के Vertebral border के अगले पृष्ठ पर बधी है। यह Scapula को सामने की ओर खीचती है जैसे कि जब आदमी आगे की ग्रोर बाहो को फैलाता है।

Supra Spinatus—(Suprascapular N C-5, C-6) Supraspinatus fossa मे स्थित यह पेशी इस गढे के अन्दर के वडे भाग से निकल कर Acromion के नीचे नीचे कन्धे के जोड मे मे होकर Humerus के Greater tubercle के ऊपर के भाग मे वधी है। यह वाहु की Abductor है।

Infraspinatus —(Suprascapular N C-५, c-६) Scapula के Infraspinatus fossa मे स्थित पेशी इस गढे के अन्दर की ओर के वडे भाग से निकलकर कन्धे के जोड के पिछली ओर मे Humerus के वडे Tubercle के पिछले पृष्ठ पर वधी है। इसलिए यह ऊर्ध्ववाहु को वाहर की ओर फेरती या Rotate करती है।

Pectoralis major—(Clavicular भाग Lateral-pectoral N C-5, C-6 Sternal part, Medial pectoral N C-6-7, T-1) छाती के ऊपर के अगले पृष्ठ पर की मोटी पेशी Clavicle के अन्दर की ओर के आधे पृष्ठ मे Sternum के अगले पृष्ठ से तथा पसलियो के अगले अगले भागो के अगले पृष्ठ से निकल कर Humerus के वाहर की ओर के पृष्ठ पर विद्यमान Greater tubercle से नीचे उतरते crest पर वधी है। यह वाहु की Abductor है। खभे पर ऊपर चढने मे यह पेशी धड को ऊपर की ओर खीचती है। वाहु को अन्दर की तरफ मोडती (Rotate करती) है।

Latissimus Dorsi—(Thoracodorsol N C-6, C-7) कटि प्रदेश तथा छाती के पिछले निचले पृष्ठ पर विद्यमान यह वडी पेशी, निचले ६ Thoracic Vertebrae के Spinous processes से, Lumbodorsal Fascia के द्वारा Lumber तथा Sacral Vertebrae के Spines मे, तथा Ilium के Crest के पिछले भाग से अर्थात् एक विस्तृत भाग से निकल कर ऊपर चढ कर Humerus के अन्दर की ओर से उसके ऊपर के भाग के अगले पृष्ठ पर दोनो Tubercles के बीच के Sulcus मे वधी है। यह वाहु की Abductor है, उसे अन्दर की ओर फेरती (Inward-rotator) है, खभे पर चढते समय धड को ऊपर की ओर खीचती है।

Deltoid—

कन्धे की ढकने वाली यह पेशी Clavicle के वाहर की ओर के ऊपरले पृष्ठ से, Acromion के ऊपर के पृष्ठ से, Scapula के Spine के पिछले Border से निकल कर Humerus की Body के मध्य मे उसके वाहर के पृष्ठ पर विद्यमान Tuberosity पर वधी है। यह वाहु को वाहर की ओर ऊपर उठा कर शरीर के साथ Right angle पर करती है। इसके अगली ओर के सूत्र वाहु को आगे को ओर, पिछले सूत्र वाहु को पीछे की ओर खीचते है।

Biceps—(Musculocutaneous N C-5, C-6)

वाहु के अगली ओर की यह पेशी ऊपर दो Heads से आरम्भ होती है। इसका एक Head, Scapula के Coracoid process के सिरे से निकलता है। दूसरा Glenoid Cavity के ऊपर के सिरे पर विद्यमान Supraglenoid Tuberosity से आरम्भ होकर कन्धे के जोड के बीच मे से होकर, नीचे दूसरे Head से मिलकर, नीचे उतर कर Radius के Head के नीचे विद्यमान Radial tuberosity के पिछले भाग मे वधी है। यह कोहणी की Flexor है तथा अग्रवाहु की Supinator (हथेली को उर्ध्वमुख करने वाली) है।

Triceps—(Radial N C-6, C-7, c-८)

वाहु के पृष्ठ की इस वडी पेशी का Long head, Scapula की Infraglenoid tuberosity से निकलता है। Lateral head, Humerus के पिछले पृष्ठ के ऊपरले एक तिहाई भाग से निकलता है, Medial head इसी पृष्ठ के निचले भाग से निकलता है। इनसे निकलकर यह पेशी Ulna के Olecranon के ऊपर के पृष्ठ पर वधी है। यह अग्रवाहु की Extensor है। इसका Long head, Humerus को पीछे की ओर खीचता तथा उसे Abduct करता है।

Brachioradialis —(Radial N C-5, C-6)

अग्रवाहु के अग्रिम पृष्ठ की उसके Radial-side की यह पेशी ऊपर Humerus के Lateral Epicondyle के ऊपर विद्यमान Supracondylar ridge से निकलकर, उतरकर, नीचे Radius के Styloid process की जड मे वधी है। यह कोहणी की Flexor है, यद्यपि इसमे Extensors मे जाने वाली Radial N आती है।

Extensor carpi radialis longus (Radial N C-6, C-7, C-8)

उपर्युक्त पेशी से ढकी, अग्रवाहु के पिछले पृष्ठ की यह पेशी, Humerus की Supra condylar ridge के

निचले भाग से निकलकर, Radius के बाहर के किनारे के साथ उतरकर, Dorsal carpal ligament के पीछे से नीचे आकर दूसरी Metacarpal bone की जड में उसके पिछले पृष्ठ के Radial Side पर बधी है । यह कलाई की Extensor है । Extensor carpi Radialis brevis भी उपर्युक्त पेशी के समान Humerus के Lateral epicondyle से निकलकर, नीचे उतर कर तीसरी Metacarpal bone की जड में उसके पृष्ठ पर बधी है । वह भी कलाई की Extensor है ।

Supinator — (Radial N C-5, C-6)

Humerus के Lateral Epicondyle से, इस जोड के Radial Collateral ligament से, Ulna के ऊपर के अग्रिम पृष्ठ के बाहर की ओर के भाग से निकलकर, Radius के ऊपर के भाग पर से घूमकर, उसके बाहर के पृष्ठ पर विद्यमान Radial Tuberosity पर बधी है। यह Radius को घुमाती है जिससे हथेली ऊर्ध्वमुख हो जाती है।

Extensor Digitorum Communis (Radial N C-7, C-8)

अग्रबाहु के पृष्ठ की यह पेशी Humerus के Lateral Epicondyle से निकलकर Dorsal Carpal Ligament के पीछे से नीचे पृष्ठ मे उतरकर ४ भागो मे विभक्त हो जाती है । ये ४ Tendons चार अगुलियो की दूसरी, तीसरी Phalanges मे बधी है। यह अगुलियो तथा कलाई की Extensor है।

Extensor Digiti quinti proprius—(Radial N C-7)

यह उपर्युक्त पेशी की ही एक छोटी सहायक पेशी है । उसी के साथ निकलकर, उसी के साथ नीचे उतर कर, छोटी अगुलि के प्रथम Phalanx पर आकर, उसी की Tendon के साथ एक हो जाती है। यह भी छोटी अगुलि की Extensor है ।

Extensor Carpi ulnaris-(Radial N, C-7, C-8)

अग्रबाहु के पीछे की Ulnar side की यह पेशी ऊपर Humerus के Lateral Epicondyle से निकलकर नीचे आकर Ulna के Styloid process तथा Head के बीच मे से नीचे ऊपर पाचवी Metacarpal bone की जड मे उसके Ulnar Side पर विद्यमान Tubercle पर बधी है । कलाई की Extensor है तथा हाथ को Ulna की ओर घुमाती है।

Abductor Pollicis Longus — (Radial N C-7, C-8)

अग्रबाहु के पिछले पृष्ठ की, Supinator के पीछे विद्यमान यह पेशी Ulna के पिछले पृष्ठ के Lateral भाग मे, तथा Radius के पिछले पृष्ठ के मध्यवर्ती भाग से निकलकर तिरछे नीचे की ओर बाहर की ओर को चलकर प्रथम Metacarpal-bone के मूल मे, उसके Radial Side पर बधी है । यह अगूठे की तथा हाथ की Abductor है ।

Extensor Pollicis Longus तथा Brevis (Radial N C-7, C-8)

अग्रबाहु के पीछे की ओर की यह पेशी, Ulna के पिछले पृष्ठ पर उपर्युक्त पेशी के निकलने के स्थान से नीचे की ओर से निकलकर, नीचे Dorsal Carpal Ligament के पीछे Radius के पिछले पृष्ठ पर से गुजर कर अगूठे की अतिम Phalanx की जड मे बधी है। यह अगूठे की अन्तिम Phalanx की Extensor है। Brevis भी इसी पेशी के साथ जुटी हुई है और वह भी Radius के पिछले पृष्ठ पर से उतर कर अगूठे की प्रथम Phalanx के पिछले पृष्ठ पर बधी है । यह इस Phalanx की Extensor है।

Pronator Teres — (Median N C-6, C-7) अग्रबाहु के अगले पृष्ठ की पेशी का Humeral head, Medial Epicondyle के ऊपर से निकलता है। इस पेशी का दूसरा Head, Ulnar head, Ulna के Coronoid Process के अन्दर की ओर के Side से निकलता है। दोनो मिलकर अग्रबाहु के अग्रिम पृष्ठ को क्रास करके Radius के मध्यभाग के बाहर के पृष्ठ पर बधी है । यह पेशी Radius को Ulna पर या अन्दर की ओर घुमाती है जिससे हथेली पीछे अर्थात् नीचे की ओर हो जाती है।

Flexor Carpi Radialis — (Median N C-6, C-7) अग्रबाहु के अग्रिम पृष्ठ की यह पेशी उपर्युक्त पेशी के अदर की ओर रहती, ऊपर Medial Epicondyle से निकलकर, शीघ्र Tendon रूप लेकर Transverse Carpal ligament के बाहर की ओर के भाग के पीछे से गुजरकर दूसरी Metacarpal bone की जड मे बधी है । यह कलाई की Flexor है ।

Felxor Digitorum Sublimis — (Median N C-7, T-1) अग्रवाहु के अग्रिम पृष्ठ की यह पेशी एक तो Humero-ulnar head से शुरू होती है जो Humerus के Medial epicondyle से निकलता है। साथ ही यही Ulna के Coronoid process के अंदर की ओर से निकलता है। इसका Radial head, Radius के अग्रिम पृष्ठ के ऊपरले भाग मे विद्यमान Oblique line से शुरू होता है। दोनो मे वनी पेशी दो तहो मे नीचे उतरती है। वाहर की तह अर्थात् Superficial plane नीचे आकर Ring finger तथा Middle finger की प्रथम Phalanges मे पहुच कर, नीचे की तह Deeper plane नीचे Index finger तथा Little finger की प्रथम Phalanges पर पहुचकर दो भागो मे विभक्त हो जाती है। इन दो Slips के वीच मे से Flexor digitorum profundus की Tendon आगे को निकल जाती है। फिर ये दोनो Slips आपस मे मिल जाती है तथा दो-दो भागो मे विभक्त होकर दूसरी Phalanges के Sides पर वध जाती है। यह पहले दूसरी, फिर तीसरी Phalanges को Flex करती है।

Flexor digitorum Profundus —(Radial भाग Median N C-8, T-I, Ulnar भाग Ulnar N C-7, C-8, T-1)

अग्रवाहु के अग्रिम पृष्ठ की Ulnar Side के ओर की यह गहरी पेशी Ulna के ऊपर के अग्रिम, आभ्यन्तर तथा पश्चिम पृष्ठो से निकलती है तथा अग्रिम पृष्ठ के निचले भाग मे आ कर चार Tendons मे विभक्त हो जाती है। जो Transverse carpal ligament के पीछे से हथेली मे आकर, अगुलियो के प्रथम Phalanges के आगे आकर, अपने आगे पडी Flexor Digitorum Sublimis के विभक्त होने से उत्पन्न अवकाश मे से आगे गुजरकर अगुलियो की अन्तिम Phalanges की जड मे वधी है। यह अन्तिम Phalanges की Flexor है। कलाई की भी Flexor है।

Flexor Pollicis longus—(Median N C-8, T-1)

उपर्युक्त पेशी के लेवल पर ही विद्यमान यह अग्रवाहु के अग्रिम पृष्ठ की, Radial side के ओर की पेशी, Radius के अग्रिम पृष्ठ के वडे भाग से निकलती है। Transverse carpal ligament के पीछे से नीचे उतरकर अगूठे की अन्तिम Phalanx के मूल मे वधी है। अगूठे के अन्तिम Phalanx की Flexor है।

Abductor pollicis longus (Radial N C-7)

अग्रवाहु के पिछली ओर Ulna के वाहर की ओर के पृष्ठ से आरम्भ होकर नीचे प्रथम Metacarpal अस्थि के मूल मे उसके Radial side पर वधी है। यह अगूठे एव हाथ की Abductor है।

Abductor pollicis brevis—(Median N C-81 T-1)

यह हथेली की उथली पेशी Carpal ligament से निकल कर अगूठे के प्रथम Phalanx की जड मे उसके Radial Side पर वधी है। उसकी Abductor है

Opponens Pollicis—(Median N C-8, T-1)

उपर्युक्त पेशी के नीचे पडी यह पेशी Transverse carpal ligament से निकल कर अगूठे के Metacarpal bone के सारे अगले तथा वाहर के भाग पर वधी है। अगूठे को हथेली पर झुकाती है।

Lumbricales (कीडे की तरह की हथेली की ये चार पेशिया Flexor digitorum profundus की Tendons से निकलती है, पहली, दूसरी, Index और Middle fingers को जाने वाली Tendons के Radial Sides से निकलकर इन अगुलियो के Radial Sides या Metacarpo-phalangeal सधि पर वधी है। तीसरी पेशी Middle तथा Ring fingers की उपर्युक्त Tendons से निकलकर तथा चौथी Ring और Little fingers की उपर्युक्त Tendons से निकलकर इन अगुलियो के Metacarpo-phalangeal सधियो के Radial Sides पर वधी है। ये चारो प्रथम Phalanx की Flexors तथा मध्यम और अन्तिम Phalanges की Extensors है। इस प्रकार ये कलम पकडने अर्थात् लिखने मे सहायक है (प्रथम द्वितीय Median N. C-6/C-7 तथा तीसरी चौथी Ulner N C-8)

Abductor digiti minimi—(Ulner N C-8/T 1)

हथेली के Ulnar सीमा पर पडी यह पेशी Pisiform bone से निकल कर छोटो अगुलि की प्रथम Phalanx के मूल मे उसके Ulnar Side पर वधी है। छोटी अगुलि के प्रथम Phalanx की Abductor है।

Opponens digiti minimi—(Ulnar N c-8)

यह हथेली की गहरी पेशी इसकी Hamate bone से निकल कर पाचवी Metacarpal bone के Ulnar किनारे पर बधी है। छोटी अगुली को अगूठे की ओर झुकाती है।

Interossei muscle — Metacarpals के बीच-बीच की मासपेशिया, हथेलो के पिछली ओर (Dorsal) प्रत्येक अन्तर मे दो दो है। इन्हे Interossei dorsales कहते हैं। इनमे से अगूठे की ओर से पहली Abductor indicis औरो से वडी है। आस पास की अस्थियो मे निकलकर Index finger के Radial Side पर प्रथम Phalanx की जड मे बधी है। दूसरी मध्यम अगुलि के Radial Side पर, तीसरी मध्यम अगुलि के Ulnar Side पर प्रथम Phalanx की जड मे बधी है। चौथी ऊपर दोनो अस्थियो से निकलकर Ring finger के Ulnar Side पर बधी है। ये अगुलियो को मध्यमागुली मे से गुजरती मध्यरेखा से Abduct करती है। Interossei Volares पेशिया जो Metacorpals के बीच अगली ओर रहती है तीन है। प्रथम, दूसरी Metacarpal के Ulnar Side से, दूसरी चौथी Metacarpal के Radial Side से निकलकर, तीसरी पाँचवी Metacarpal के Radial Side से निकलकर, उसी ओर प्रथम Phalanx की जड मे बधी है। ये अपनी अपनी अगुलि को मध्य रेखा की ओर Abduct करती हैं। इनमे Ulnar N C-8 आती है।

Abductor Pollicis—(Ulnar N C-8/T-1)। इस गहरी पेशी का Oblique भाग हथेली की Capitate और Lesser multangular bones से निकल कर अगूठे की प्रथम Phalanx की जड मे उसके ulnar Side पर बधी हे। इसका Transverse भाग तीसरी Metacarpal के सिरे के वडे भाग से निकल कर उपयु‍र्क्त भाग के साथ ही वधा है। यह पेशो अगूठे की Abductor हे।

अव निम्न शाखा सवन्धी पेशियो का उल्लेख किया जाता है —

Iliopsoas—Psoas major, Lumber Vertebral Column के वाजू मे रहती है। पाचो Lumber Vertebrae के Transverse processes से शुरू होकर Inguinal ligament के पीछे से उतरकर Tendon का रूप लेकर Femur के Lesser trochanter मे वधी है। Iliacus पेशी से Iliac fossa भरा हुआ है। नीचे यह Psoas major के साथ एक होकर Femur के Lesser Trochanter पर वधी है। यह Iliopsoas पेशी ऊर्ध्व जघा की Hip joint पर Flexor है। (Femoral N L-1 L-2/ L-3)

Sartorius—(Femoral N L-2/L-3) Femur के आगे की यह शरीर की दीर्घतम पेशी Anterior Iliac Spine मे निकल कर अन्दर की ओर मुडकर Medial condyle के पीछे मे नीचे उतर कर Tibia के अन्दर के पृष्ठ के ऊपरले भाग मे बधी है। यह अधो जघा को ऊर्ध्व जघा पर Flex तथा ऊर्ध्व जघा को Pelvis पर Flex करती है (Femoral N L-2/L-3)

2-Quadriceps Femoris—(Femoral N L-2/L-3/L-4)

Femur के अगले पृष्ठ तथा Sides की एक वडी पेशी ४ भागो मे विभक्त है। अगली पेशी Rectus Femoris ऊपर Anterior Inferior iliac Spine से निकलकर, गोडे के आगे Patella के मूल मे बधी है। Vastus Lateralis इस पेशी का सबसे वडा भाग है। ऊपर Greater trochanter के नीचे से आरम्भ हो नीचे Patella के Lateral border से बधी है। Vastus medialis इस अस्थि के Intertrochanteric line से आरभ होकर नीचे Patella के medial border मे वधी है। Vastus Intermedius, इस अस्थि के body के ऊपर के वडे भाग से निकलकर Patella के मूल मे वधी है। यह वडी पेशी अधोजघा की गोडे पर Extensor हे।

Gluteus maximus (Inferior gluteal N L-5/S-1/S-2)

Gluteal (स्फिक्) प्रदेश की यह वाहर की पेशी, शरीर की सबसे वडी पेशी है। Ileum की Posterior gluteal line से शुरु होकर Femur के पीछे की Gluteal tuberosity से बधी है। यह Thigh की Extensor तथा Lateral rotator है। झुकने के वाद यह Trunk को या Pelvis को ऊपर उठाती है।

Gluteus medius तथा Gluteus minimus—इनमे से पहली उपयु‍र्क्त पेशी से ढकी हुई है, Ileum के वाहर के पृष्ठ से निकलकर Greater Trochanter के

वाहर की ओर के पृष्ठ पर वधी है। Gluteus minimus इस मास पेशी के ठीक पीछे Ilium के Outer Surface से निकलकर Greater trochanter के वाहर के पृष्ठ के अगले भाग पर वधी है। ये दोनो Thigh की Abductors हैं तथा उसकी अन्दर की ओर की Rotators है। (Superior gluteal N L-4/L-5/S-1)

Abductor Longus, Abductor Magnus, Abductor Brevis— Abductor Longus, Os-pubis के अगले सिरे से निकलकर Femur के पिछले पृष्ठ पर वधी है। Abductor magnus, Ischium के Inferior ramus से निकलकर Femur के पिछले पृष्ठपर वधी है। यह एक वडी चौडी पेशी है। Abductor Brevis, Os-pubis की Inferior Ramus के वाहर की ओर के पृष्ठ मे निकलकर Femur के ऊपर के पृष्ठ प्रदेश पर वधी है। ये तीनो Thigh की Abductors है तथा वाहर की ओर Rotators भी हैं। Pectineus जो Ospubis के वाहर के पृष्ठ से निकलकर Femur के Lesser trochanter के नीचे के पिछले पृष्ठ पर वधी है। यह भी Thigh की Abductor है। (Obturator N L-2/L-3, Pectineus मे Femoral N)

Hamstrings — Biceps Femoris, Semitendinosus, Semimembranosus—Biceps Femoris, thigh के पीछे उसके वाहर के पृष्ठ पर की पेशी ऊपर Ischial tuberosity के पिछले भाग से निकलकर नीचे Fibula के Head के वाहर के भाग पर वधी है। Semitendinosus भी इसी के समान ऊपर Ischial tuberosity से निकलकर इस अस्थि के पृष्ठ प्रदेश के मध्य मे रहती हुई इस अस्थि के मध्य भाग से नीचे Tendon का रूप ले लेती है जो Popliteal Fossa के Medial Side से उतरकर Tibia के अन्दर के पृष्ठ के ऊपर के भाग मे Sartorius के साथ ही वधी है। Semi-membranosus, thigh के पृष्ठ पर उसके अन्दर की ओर रहती है, ऊपर Ischial tuberosity के ऊपर वाहर के भाग से निकलकर नीचे Tibia के Medial Condyle के पिछली ओर वधी है। Biceps Femoris अधोजघा को Thigh पर सकोडती है तथा Semiflexed leg को वाहिर की ओर मोडती है। शेष दोनो पेशिया अधोजघा की Flexor है तथा Semiflexed leg को अन्दर की ओर मोडती है। (Tibial N L-4/L-5/S-1/S-2)

Gastrocnemius — अधोजंघा के पीछे की ऊपर-ऊपर की पिण्डुली बनाने वाली पेशी ऊपर Femur के Medial तथा Lateral Condyles से दो सिरो से आरभ होती है तथा नीचे अपने से अन्दर की पेशी Solius के साथ मिलकर एक Tendon बनाती है जिसे Tendocalcaneus या Tendo Achillis कहते है। यह Tendon शरीर की दृढतम टैन्डन है तथा एडी की अस्थि Calcaneus के पिछले पृष्ठ पर वधी है। Soleus भी इसी पेशी के आगे की ओर एक चौडी पेशी है जो ऊपर Fibula के Head के पिछले प्रदेश तथा इसी अस्थि के एक चौथाई ऊपरले प्रदेश से निकलकर नीचे उपर्युक्त पेशी की Tendons के साथ एक हो जाती है। दोनो पेशिया पैर की Plantar flexors हैं या दूसरे शब्दो मे Ankle joint की Extensors है। एव खडे होने, चलने, नाचने-कूदने आदि मे काम आती है (Tibial N Sciatic L-4/L-5/Plantaris पेशी भी Femur के Lateral Condyle के कुछ ऊपर के भाग से शुरु होकर एक पतली Tendon के रूप मे Gastroenemius तथा Solius के वीच नीचे उतरकर Calcaneus के पिछले पृष्ठ पर वधी है। यह भी Ankle joint की Extensor है।

Long Flexors of Foot—Flexor digitorum Longus—अधोजघा के पीछे अन्दर की ओर की पेशी Tibia के ऊपर के अन्दर की ओर के पृष्ठ से शुरू होकर, नीचे Middle malliolus के पीछे मे पादतल मे प्रवेश कर चार भागो मे विभक्त होकर दूसरी, तीसरी चौथी, पाचवी, अगुलियो की अन्तिम Phalanges के मूल मे वधी है। यह पाव की अगुलियो की सकोचक है, विशेषत अन्तिम Interphalangeal सधि की सकोचक है। (Tibial N L-5/S-1)

Flexor Hallusis longus पेशी अधोजघा के पीछे Fibular-Side अर्थात् वाहर की ओर की पेशी है। Fibula के पिछले पृष्ठ के दो तिहाई निम्न भाग से निकलकर Tibia के निचले सिरे को तथा Talus के पिछले पृष्ठ को क्रास करके पादतल मे से गुजरकर अगूठे के अन्तिम Phalanx मे वधी है। यह अगूठे की Flexor है। (Tibial N L-5/S-1/S-2)

Tibialis posteior — ऊपर Tibia के पीछे के ऊपरले वाहर के पृष्ठ से तथा Fibula के ऊपर के भाग के अन्दरले पृष्ठ से निकलकर ऊपर की दोनो पेशियो के वीच मे नीचे उतरकर, Medial malliolus के पीछे से पाव मे प्रवेश कर, Navicular bone के Tubercle मे वधी है। पाव को अन्दर की ओर

मोड़ती (Invert करती) है। Ankle joint को Extend भी करती है (Sciatic N L-4/L-5)

Tibialis anterior — अधोजघा की वाहर की ओर यह अगली Tibialis ऊपर मोटी, नीचे से पतली पेशी, Tibia के Lateral Condyle, तथा इसी अस्थि की Body के ऊपर के वाहर की ओर के वडे भाग से शुरू होकर नीचे Transverse और Cruciate ligaments के Medial compartment मे से पैर मे आकर प्रथम Cuneiform के निचले पृष्ठ तथा प्रथम Metatarsal की जड मे वधी है। यह पाव को Dorsiflexor है तथा पाव को Invert करती अर्थात् अन्दर की ओर मोडती है। (Sciatic N L-4/L-5)

Extensor digitorum Longus — अधोजघा के अग्रपृष्ठ के वाहर के भाग की यह पेशी Tibia के Lateral Condyle और Fibula के अग्रपृष्ठ के ऊपर के वडे भाग से निकलकर Tendon मे वदल जाती है जो Transverse तथा Cruciate ligament मे से निकलकर पैर के पृष्ठ पर आकर ४ भागो मे विभक्त हो जाती है तथा चारो अगुलियो की दूसरी, तीसरी Phalanges पर वधी है। यह पैर को अगुलियो की Dorsiflexor है (Sciatic N L-5/S-1)।

Extensor Hallucis Longus — अधोजघा के अगले पृष्ठ की Tibialis anterior तथा Extensor digitorum Longus के वीच मे एक पतली पेशी Fibula के वीच के दो चौथाई भाग से निकलकर नीचे Cruciate ligament मे से अन्दर की ओर फिर कर अगूठे के अन्तिम Phalanx से वधी है। अगूठे की Extensor है (Sciatic N L-5/S-1)।

Extensor digitorum brevis —यह पतली पाद पृष्ठ की पेशी Calcaneus के अग्रभाग के ऊपरले पृष्ठ से शुरू होकर अन्दर की ओर तथा आगे की ओर वढकर चार भागो मे विभक्त हो जाती है। अन्दर की ओर का भाग Tendon वनकर अगूठे के प्रथम Phalanx के मूल मे वधता है। दूसरा, तीसरा, चौथा भाग दूसरी, तीसरी, चौथी अगुलियो के Extensor digitorum longus की Tendons की वाहर की ओर की Sides पर वधता है। यह अगुलियो, अगूठे की Extensor है। (Sciatic N S-1)

Peroneus Longus — अधोजघा के ऊपर के वाहर के भाग की यह पेशी Fibula के Head तथा उसके ऊपर के वाहर के दो तिहाई पृष्ठ मे निकलकर एक लम्वी Tendon के रूप मे Lateral malleolus के पीछे मे तथा Calcaneus के वाहर के साइड से पादतल मे प्रवेश कर, उसे काम कर प्रथम Metatarsal की जड मे उसके वाहर की साइड और प्रथम Cuneiform bone के वाहर की साइड पर वधी है। यह पैर को Evert करती या वाहर को मोडती या Outward turn करती है। (Sciatic N L-5/S-1)

Peroneus Brevis — उपर्युक्त पेशी के आगे की यह पेशी Fibula के वाहर के पृष्ठ के दो तिहाई भाग से निकलकर Tendon के रूप मे Lateral malleolus के पीछे से तथा Calcaneus के वाहर के साइड से आगे आकर पाचवी Metatarsal bone की जड मे उसके वाहर की ओर वधी है। उपर्युक्त पेशी के समान यह पैर का Eversion करती है। (Sciatic N L-5/S-1)

Flexor digitorum brevis — पादतल की यह पेशी पीछे Calcaneus की Tuberosity के अन्दर के भाग से तथा पाद तल के Plantar Aponeurosis से शुरू होकर आगे आकर चार भागो मे विभक्त हो जाती है तथा प्रत्येक अगुली की प्रथम Phalanx पर इसका प्रत्येक भाग फिर दो भागो मे विभक्त हो जाता है ताकि इनके वीच मे से अगुली की अपनी Flexor digitorum longus आगे निकल सके। फिर ये दो भाग दूसरी Phalanx के दोनो ओर वध जाते हे। यह दूसरी Phalanges को प्रथम Phalanges पर Flex करती है। (Medial Plantar N L-5/S-1)

Abductor Hallucis—पाव के अन्दर के साइड पर की यह पेशी पीछे Calcaneus की Tuberosity के अन्दर की ओर के भाग से निकलकर अगूठे की प्रथम Phalanx की जड मे उसके अन्दर की ओर वधी है। अगूठे को अन्दर की ओर करती है तथा उसकी Flexor भी है। (Medial plantar N L–5/S–१)

Abductor digiti-quinti —पाव के वाहर की साइड की यह पेशी Calcaneus की Tuberosity के वाहर की ओर के भाग से शुरू होकर छोटी अगुलि की प्रथम Phalanx की जड के वाहर के पृष्ठ पर वधी है। छोटी अगुलि को वाहर की ओर खीचती तथा उसकी Flexor भी है।

Lumbricales—पाद तल की छोटी चार पेशिया है जो अन्दर की ओर से गिनी जाती है। पहली Flexor

digitorum Longus की प्रथम Tendon के अन्दर की ओर के पृष्ठ मे निकलकर प्रथम अगुलि की प्रथम Phalanx के ऊपर की ओर के पृष्ठ पर बधी है। दूसरी, तीसरी, चौथी पेशिया उपर्युक्त बडी पेशी की दोनो ओर की Tendons से निकल अपनी अपनी अगुलियो के प्रथम Phalanx के ऊपर के पृष्ठ पर बधी है। ये प्रथम Phalanx की Flexor तथा दूसरी, तीसरी, Phalanges की Extensor हैं (Medial Plantar N L–5/S-1)

Interossei Dorsales—पाव की ये चार पेशिया Metatarsals के बीच बीच मे रहती हैं। आसपास की अस्थियो से निकल कर इनमें से पहली प्रथम अगुलि के प्रथम Phalanx के अन्दर की ओर बधी हैं। दूसरी, तीसरी, चौथी अगुलियो के प्रथम Phalanges के बाहर की ओर के पृष्ठ पर बधी है। Interossei-plantares सख्या मे तीन हैं। ये Metatarsals के बीच मे नही, नीचे की ओर रहती है। ये तीसरी, चौथी, पाचवी Metatarsal bones के अन्दर की ओर के साइड से निकलकर उसी अगुलि के प्रथम Phalanges के अन्दर की ओर के पृष्ठ पर बधी है। (Lateral-Plantar—N S-1/S-2) Dorsales पेशिया, दूसरी अगुलि की मध्यरेखा की ओर मे अगुलियो को Abduct करती हैं। Plantares तीसरी, चौथी, पाचवी अगुलियो को दूसरी अगुली मे से जाती मध्यरेखा की ओर Abduct करती हैं। उपर्युक्त मासपेशियो मे कोई अर्धमृत हो तो उसे Paresis, पूर्ण मृत हो तो उसे Paralysis कहते हैं। मस्तिष्क मे लेकर मास मे आने वाली Nerve के सिरे तक कही भी रोग हो तो Paralysis होता है। एक टाग या एक बाहु निर्बल हो जाये तो उसे Monoplegia, शरीर का एक पक्ष निर्बल हो जाये तो उसे Hemiplegia कहते हैं। Spinal cord मे कही रोग होने से दोनो टागो मे निर्बलता हो तो उसे Paraplegia कहते हैं।

Reflexes — Reflex-arc—त्वचा मे Sensory nerve के सिरे को जो Afferent impulse का कारण है Receptor कहते हैं। वहा से Sensation को जो सूत्र Spinal cord मे या Medulla मे ले जाता है उसे Sensory Neurone कहते है। यह Sensation, Posterior-horn cell मे Intercalated या Connector Neuron द्वारा Anterior horn cell मे आती, वहा से चेष्टा की Impulse चलकर मास पेशी मे विद्यमान चेष्टा वाहिनी या, Motor Nerve या Effector मे या किसी Gland मे आने वाली Motor Nerve के सिरे मे आती है। इस एक चक्र को Reflex-arc कहते हैं। मुख्यतया ये Reflexes तीन प्रकार के है (१) Superficial (२) Deep (३) Visceral

Superficial reflexes — -Abdominalreflexes तीन है। एक Epigastric T–6/T–9, दूसरा Midabdominal T–9/T–11, तीसरा Hypogastric T–11/L–1। यह Reflex-skin Muscle reflex है। इस Arc मे कुछ Connector Neurons ऐसे हैं जो इस Arc को ऊपर Cortex से भी जोडते हैं। अत केवल Lower-thoracic Segments के रोग मे नही पर ऊपर Pyramidal tract मे रोग हो तो भी ये लुप्त हो जाते हैं। इस Reflex के लिए रोगी को कमर के भार, उठे हुए गोडो के साथ लिटाकर, उसके कोष्ठ की ऊपर के भाग की त्वचा को एक पिन के द्वारा नीचे और बाहर की ओर को और नीचे के पेट की त्वचा को ऊपर और बाहर की ओर को हलके से खुजलाया जाता है। इससे पेट की दीवार सहसा अन्दर की ओर झुक जाती है अर्थात् पेट की उदर की मासपेशी जिस ओर खुजलाया गया है Contract कर जाती है। यदि यह Reflex लुप्त हो तो समझे कि Pyramidal tract अर्थात् Upper motor Neuron मे अर्थात् Thoracic प्रदेश मे रोग है।

Plantar Reflex — (L-5/S-1-2 Segments) एक पिन या पेन्सिल से लेटे हुए रोगी के पादतल-Sole of the foot मे एडी मे अगुलियो की ओर खुजलाये तो अगुलियो मे Plantar Flexion हो जाता है। इसमे Afferent तथा Efferent Neurons, Tibial Nerve मे होते है। यह नार्मल Reflex अधिक स्पष्ट होता है अगर पादतल के Medial side मे खुजलाये। यदि Pyramidal tract मे रोग हो तो यह Reflex, Extensor होता अर्थात् तब अगूठे मे Dorsiflexion होता है। तथा अगुलियो मे Fanning reflex होता है। यह Reflex अधिक स्पष्ट होता है अगर पादतल के Outer region मे खुजलाये। इस Extensor Plantar reflex को Babinski's sign भी कहते है। यह प्रबल हो तो Ankle joint मे भी Flexion हो जाता है। यह Extensor reflex, Extensor Hallucis-longus तथा Toe-dorsiflexor muscles मे Contraction के कारण होता है।

Deep reflexes — Knee jerk (Quadriceps reflex)। इसमे Afferent तथा Efferent दोनो Neurons, Femoral Nerve मे होते हैं तथा L-2, L-3, L-4 Segments के द्वारा यह Reflex होता है। रोगी को स्टूल या कुर्सी पर बिठाकर एक टाग को दूसरी टाग के गोडे पर लटकाकर, रोगी का ध्यान दूसरी ओर खीचकर Hammer से लटकती हुई टाग के Patella तथा उसके Insertion के स्थान के बीच मे इस Tendon को टकोरे तो टाग आगे को झटका खाती है जो कि Quadriceps Femoris के Contraction का सूचक होता है।

Ankle jerk — (Gastrocnemius and Soleus reflex) यह L-5, S-1, S-2 Segments द्वारा होता है। इसमे लेटे हुए रोगी की Thigh को Abduct कर तथा बाहिर की ओर Rotate करके गोडे को हलका Flex करके तथा पाव के पौचे को Dorsiflex करके Tendoachilles को तना दे। अब इस तनी हुई Tendon को Hammer से टकोरे तो Gastrocnemius तथा Soleus मे Contraction होकर पाव मे प्रवल Plantar flexion होता है।

ये Deep reflexes यदि अधिक वडे हुए हो तो समझे इन मासपेशियो पर जो ऊपर का Control है वह निर्वल हो गया है अर्थात् रोग Motor Cortex मे या Pyramidal Tract (Upper motor Neuron) मे है। Anxiety States या Tension मे भी ऐसा ही यह वढा हुआ होता है। यदि Deep reflexes अधिक घटे हो तो Reflex arc मे कही रोग है। Shock, coma, Uraemia मे भी ये घटे होते हैं। Polyneuritis मे जिसमे Peripheral Nerves रुग्ण होते हैं ये Reflex लुप्त होते है।

Visceral या Organic reflexes —

(१) Micturition

Abnormalities of micturition —

मूत्राशय की दीवार एक अनैच्छिक मास पेशी Detrusor से वनी है। इसका निम्न द्वार एक Internal दूसरे External Sphincters से वन्द रहता है। इनमे से पहला Internal Sphincter अनैच्छिक मास मे वना है। वाहर का द्वार अर्थात् External Sphincter ऐच्छिक मासपेशी मे वना है। इन मासपेशियों के ऊपर एक तो Parasympathetic Nerves का अनैच्छिक या Involuntary Control है। अर्थात् मूत्राशय मे एक Reflex, Involuntary Nerves का है। मूत्राशय मे जब मूत्र का दवाव २०–३० cm of water से ऊपर हो जाता है तो Detrusor मे Parasympathetic सूत्रों द्वारा Afferent impulse ऊपर मस्तिष्क मे जाता है वहा से Efferent impulse नीचे आती है जिसमे Detrusor मे Contraction होता है तथा Internal Sphincter, relax हो जाता है और मूत्र प्रवृत्त हो जाता है। मूत्राशय का एक Controlling centre तीसरे Sacral Segment मे है वहा से यह Involuntary reflex हो जाता है पर इस Centre के ऊपर भी ऊपर से मस्तिष्क का Control है। मूत्राशय के Vesical plexus मे Pre-ganglionic सूत्र दूसरे, तीसरे, चौथे Sacral Segments से आते हैं। फिर इस Plexus मे से Post ganglionic सूत्र निकल कर Detrusor तथा Internal Sphincter मे Pelvic Nerves (Nervi Erigentes) मे से होकर आते हैं।

मूत्राशय पर मस्तिष्क का प्रभाव भी है जिसे Cerebro-pudendal Control कह सकते हैं। मूत्राशय से Sensation, Posterior roots के द्वारा ऊपर मस्तिष्क मे जाती है और वहा से Ascending frontal Convolution से Upper motor Neurons शुरु होकर Spinal cord के Lateral columns द्वारा S–1, S-2, और S–3 Segments के Anterior horn cells मे समाप्त होते है। वहा से Lower motor neurons शुरू होकर Pudendal Nerve द्वारा External Sphincter मे समाप्त होते हैं। उसके खुलने से मूत्र की हाजत हो जाती है, तथा मूत्र को इच्छानुसार रोका भी जा सकता है।

अब यदि Spinal cord में कही रोग हो तो Detrusor पेशी मे Contraction नही होता, चाहे मूत्र एकत्रित भी हो जाये। साथ ही Internal Sphincter Contracted ही रहता हैं अर्थात् मूत्राघात Retention of urine की शिकायत हो जाती है। जब मूत्राशय के अन्दर का दवाव वढता है तो बून्द बून्द करके मूत्र आने लगता है उसे Dribbling Incontinence कहते हैं। External Sphincter पर से भी आदमी का Control उठ जाता है। Spinal cord रोग मन्द मन्द रूप मे शुरू हो तो मूत्र शुरू भी देर से होता तथा उसकी धार भी निर्वल होती जाती है।

अब यदि यह रोग Lumber प्रदेश या उसके ऊपर के भाग मे हो तो क्योंकि Vesical plexus और उसके post ganglionic automatic cells तो ठीक ही है तो यद्यपि मूत्राशय पर अपना Control तो नही रहता तो भी Automatic evacuation of urine तो होही जाता है अर्थात् जब मूत्र भरता है वह अपने आप ही निकल भी जाता है। हाँ यदि Sacral Segments रोग ग्रस्त हो तो Dribbling incontinence अर्थात् बून्द बून्द कर मूत्र आता रहता है। Cerebrum या Upper motor Neurons मे रोग हो जैसे Hemiplegia तथा Disseminated Sclerosis मे होता है तो मूत्राशय मास का Contraction इतना प्रबल होता है कि मूत्र Ex Sphincter मे रुकता नही, सहसा निकल जाता है जिसे Precipitate micturition कहते हैं।

आयुर्वेदिक रोग परीक्षा विधि

दोष, दूष्य, निदान, रोगी बल, रोग बल ज्ञान विधि

शरीर जिन छोटे-छोटे सेलों और सूत्रो से बना हुआ है आयुर्वेदानुसार वे पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश इन पाच तत्त्वो से बने हुए है। दूसरे शब्दो मे ये सेलस तथा सूत्र, पृथ्वी अप् तत्त्वों अर्थात् कफ धातु से, तेजस्तत्त्व अर्थात् पित्त धातु से, और वायु आकाश तत्त्वो अर्थात् वायु धातु से बने हुए हैं। इनमें से पृथ्वी अप् तत्त्वो या कफ धातु (प्रोटीन्स तथा पार्थिव द्रव्यो) के कारण शरीर में वृद्धिकर्म या जल कर्म होता है। तेजस्तत्त्व या पित्त धातु (Cumbustive Element) से शरीर में पक्ति कर्म या अग्नि कर्म होता है तथा वायु और आकाश तत्त्वो या वायु धातु (Dynamic Element) के कारण शरीर में गति कर्म या वायु कर्म होता है। वायु तत्त्व न केवल शरीर की गति का ही कारण है पर उसके शरीर का जीवनीय तत्त्व होने के कारण वह कफ के वृद्धि कर्म और पित्त के पक्ति कर्म में भी सहायक होता है। इस प्रकार आयुर्वेद में शरीर के प्रत्येक अवयव को त्रिधातु जनित कहा जाता है।

सम अवस्था या प्राकृतिक अवस्था में ये शरीर के प्रत्येक अवयव के स्वास्थ्य का कारण हैं। विषम या वैकृतिक अवस्था में ये उनके रोग का कारण हो जाते हैं। शरीर को दूषित करके रोगोत्पादक होने के कारण इन्हे दोष भी कहते है।

(१) रोग परीक्षा करते समय आयुर्वेदानुसार सबसे पहले यह देखा जाता है कि शरीर में कौन-सा दोष बढा हुआ है। जिस दोष के लक्षण शरीर में दिखाई देते है उसे बढा हुआ समझा जाता है।

जब शरीर में कफ का वृद्धि कर्म बढा हुआ हो, (अर्थात् पित्त का पक्ति कर्म मन्द हुआ हो) परिणामत शरीर में गुरुता, मन्दता, शिथिलता, मन्दोष्णता, आलस्य आदि के लक्षण हो तो शरीर में कफ दोष की वृद्धि का अनुमान कर लिया जाता है।

जब शरीर में पित्त का अग्नि कर्म या पक्ति कर्म बढा हुआ हो (एवं कफ का वृद्धि कर्म घटा हुआ हो) अर्थात् शरीर में उष्णता, दाह, पीताबभासता, निर्बलता के लक्षण हो तो शरीर में पित्त दोष की वृद्धि है, ऐसा अनुमान कर लिया जाता है।

जब शरीर का प्राण तत्त्व या गति तत्त्व या वायु तत्त्व कुछ घटा हुआ हो (एवं कफ का वृद्धि कर्म और पित्त का पक्ति कर्म मन्द हो) तब शरीर में चलता, विक्षोभशीलता, अतिप्रतीति (Hyperaesthesia) के लक्षण हो जाते है जिनको देखकर वायु दोष की वृद्धि का अनुमान किया जाता है।

जब शरीर का यही प्राणतत्त्व या वायु धातु और अधिक घट जाता है एवं प्राण शक्ति की न्यूनता से कफ का वृद्धि कर्म और पित्त का पक्ति कर्म भी मन्द हो जाते है तो शरीर में लघुता-रूक्षता, मन्दोष्णता, श्यामता आदि क्षीणता (Degeneration) सूचक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं जिनको देखकर शरीर में वातक्षय का अनुमान कर लिया जाता है।

इस प्रकार रोग विनिश्चय में सबसे पहले इस बात की जाच की जाती है कि शरीर में वायु, पित्त, कफ में से कौन से धातु की वृद्धि या क्षीणता हुई है।

(२) दूसरे यह जाच की जाती है कि इस वायु, पित्त या कफ की वृद्धि या क्षीणता ने किस अवयव या अग में स्थान सश्रय किया है और इससे विशेषतः कौन-सा अवयव दूषित हुआ है। दूसरे शब्दो में दूष्य कौन-सा है। इस प्रकार अन्न स्रोतस्, श्वास स्रोतस्, मूत्र स्रोतस्, रक्त स्रोतस्, ज्ञानवह स्रोतस्, चेष्टावह स्रोतस्, मस्तिष्क, त्वचा, श्लेष्मकला आदि में से कौन-सा अवयव विशेष दूषित हुआ है और उसमें किस प्रकार की विकृति (Pathological Change) हुई है इसका पता लगाना चाहिये।

अर्थात् इनमें से किसी अवयव में मन्दोष्मा, या हलकी लालिमा या कण्डू या श्वेत स्रावयुक्त शोथ

(Defensive Inflammation) हो तो उसे कफ दोष की वृद्धि और पित्तक्षय का दूष्य स्थान समझना चाहिये। किसी अवयव में राग, पाक, ज्वर, आदि से युक्त शोथ (Suppurative Inflammation) हो तो इसे पित्त दोष की वृद्धि और कफ क्षय का दूष्य स्थान समझना चाहिये। इनमें से किसी अवयव में चलता, विक्षोभशीलता, स्तम्भ, सकोच, तोद, भेद, शूल आदि (Asthenic) लक्षण बढे हुए हो तो वहा पर वायु दोष की वृद्धि तथा कफ और पित्त क्षय का दूष्य स्थान समझना चाहिये। तथा यदि इनमें से किसी स्थान पर लघुता (Atrophy) रूक्षता, खरता, कठोरता, शुष्कता, श्यावारुणवर्णता के लक्षण बढे हुए हो तो उसे वायुक्षय का दूष्य स्थान समझना चाहिये। इस प्रकार शरीर में जो विकृति हुई है उसकी परीक्षा को विकृति परीक्षा कह सकते है।

रोग परीक्षा विधि (आयुर्वेदिक)

चरक (विमान ८) ने कहा है "ज्ञानबुद्धिप्रदीपेन यो नाविशति तत्त्ववित्। आतुरस्यान्तरात्मान न स रोगान् चिकित्सति। अर्थात् आयुर्वेद विज्ञान के सम्यग्बोध रूपी दीपक को लेकर जो तत्त्ववेत्ता वैद्य रोगी की अन्तरात्मा मे प्रवेश नही करता, वह रोग की चिकित्सा नही कर सकता। इस वाक्य मे चरक ने रोग की परीक्षा का सपूर्ण रहस्य रख दिया है।

अन्यत्र आयुर्वेद मे रोग परीक्षा के विषय मे कहा है 'रोगाक्रान्तशरीरस्यस्थानान्यष्टौ निरीक्षयेत्, नाडी मूत्र मल जिह्वा शब्द स्पर्श दृगाकृती। अर्थात् रोगी की नाडी, मूत्र, मल, जिह्वा, शब्द, स्पर्श, नेत्र तथा आकृति —इनकी परीक्षा करनी चाहिए। इस अष्टविध परीक्षा का यहा सक्षेप से उल्लेख किया जाता है।

नाडी परीक्षा —दाये हाथ की प्रथम तीन अगुलियो को Radial artery पर ऐसे रखकर कि प्रथम अगुलि हृदय की ओर हो नाडी की परीक्षा की जाती है। नाडी मे जो 'बल' रहता है वह वायु का होता है। उसमे जो 'उष्णता तीक्ष्णता' के भाव है वे पित्ताग्नि के कारण है। उसमे जो गुरुता, स्थिरता मन्दता के भाव है वे कफ तत्त्व के कारण है। पहले तो नाडी की गति पर ध्यान दिया जाता है वह एक मिनट मे कितनी बार चलती है। साधारणत वह २ वर्ष की आयु तक लगभग १२०, चार वर्ष की आयु तक ११०, ९ वर्ष की आयु तक ९०, ग्यारह वर्ष की आयु तक ८५, सत्रह वर्ष की आयु तक ८० बार तथा इसके ऊपर की आयु मे ७२ बार प्रति मिनट चलती है। बडी आयु मे वह ८० बार चलती है। यदि शरीर मे कोई सक्रमण जनित विष हो जैसे ज्वरो मे तो उसकी गति तीव्र हो जाती है। यह पित्तजनित तीव्रता है। यदि रक्त मे कोई चिरस्थायी विष द्रव्य हो, शरीर और हृदय की निर्बलता से नाडी निर्बल एव तीव्र गति हो तो उसे वातनाडी कहते है। चिरस्थायी ज्वर मे, पाण्डुता मे, कैन्सर मे, Uraemia मे ऐसी नाडी होती है। शारीरिक, मानसिक, वातरोगो (Nervous diseases) मे भी नाडी तीव्र एव निर्बल होती है। दूसरा नाडी जिस बल से अगुलियो को धक्का देती है उसे उसका बल कहते हैं। धातु पाक प्रक्रिया तीव्र हो तो भी नाडी का बल बढा होता है। हृदय मास, कफवृद्धि के कारण कुछ स्थूल हो गया हो तो भी नाडी बल बढ जाता है। इसे कफ नाडी कहते है। नाडी का बल कम हो तो उसे वात नाडी कहते हैं।

तीसरा नाडी का उठाव (दीर्घता, Lift) देखा जाता है तथा उसकी स्थिरता (Duration) को देखा जाता है। नाडी मे भार या प्रेशर अधिक हो या हृदय मे स्थूलता हो, हृदय के एक स्पन्दन मे रक्त अधिक मात्रा मे आगे जाता हो, दूसरे शब्दो मे Pulse Pressure ज्यादा हो तो उसे कफ नाडी कहते हैं। उठाव तो पित्त के कारण होता है परन्तु नाडी का भार या गुरुता और स्थिरता कफ के कारण है।

चौथा नाडी का दबाव (Tension) देखा जाता है। जितने दबाव से नाडी बन्द हो जाती है उसे नाडी का दबाव कहते हैं। रक्त मे आम द्रव्य (Metabolic Malproducts) ज्यादा हो अर्थात् वसामय द्रव्य (Lipids) यूरिया आदि अधिक हो तो उससे रक्तभार बढता है। इसे भी कफ नाडी कहते है। इसे गुर्वी (Full या Tense Pulse) नाडी कहा है। पाचवाँ नाडी को दबा कर देखा जाता है वह मृदु है या कठोर है उसमे Arteriosclerosis कितना है। ऐसी नाडी को खरा, कठिना नाडी कहा है और ऐसी नाडी को भी वातनाडी कहते हैं जो बडी आयु मे विशेष होती है। सामान्यत वातनाडी द्रुता और ह्रस्वा होती है। इसलिए उसे सर्प गति या जलौका गति कहा है। यह नाडी हृदय मास तथा नाडी की दीवार मे होने वाले सकोच (Contraction) की निर्बलता को सूचित करती है। Vasoconstriction, Sympathetic System के आधीन है। इसीलिए उस System को उत्तेजक औषधियो (Adrenaline, Noradrenaline) का प्रयोग Vasomotor weakness के लिए किया जाता है। जब शरीर

या मन पर कोई भारी आघात आ पडता है या शरीर मे से रक्त या जल भाग बहुत सा निकल जाता है, या हृदय मे या वृक्क मे भारी शूल उठने लगता है, या शरीर सरदी से अतिशीत या गर्मी से अति ऊष्ण हो जाता है या कोई विषद्रव्य खाया जाता है तब शरीर मे वात प्रकोप होकर नाडी द्रुता, ह्रस्वा या लघ्वी (Thready or of low tension) हो जाती है। उस समय बलवर्धक उपायो से ही लाभ होता है।

अन्त मे यह भी देखा जाता है कि नाडी गति सम है या विषम है। विषमा नाडी हृदय मास मे उत्पन्न हुई किसी प्रकार की क्षीणता (Degeneration) का सूचक होती है। इसे भी वातनाडी कहा जाता है।

पित्त नाडी—शरीर मे किसी उष्ण-तीक्ष्णगुण विष द्रव्य के कारण धातु पाक तीव्रता मे हो रहा हो जैसे ज्वरो मे होता है या धातु पाक की सचालक ग्रीवा की Thyroid ग्रन्थि तीव्र हुई हुई हो तब हृदय मास पर इस प्रकार की विष का दुष्प्रभाव होकर नाडी का उठाव अधिक होता है। इस अवस्था मे नाडी द्रुता, दीर्घा, उष्णा हो जाती है जिसे ग्रन्थो मे काक प्लुति या मण्डूक प्लुति नाडी कहा है। इसमे Pulse pressure कुछ बढा हुआ होता है। यह नाडी शरीर मे बढे हुए अग्निकर्म का सूचक होती है।

कफनाडी—हृदय मास मे गुरुता, स्थूलता की विकृति हो, देह मे अग्नि की मन्दता हो, जिस कारण रक्त मे आम विष जैसे वसामय द्रव्य, यूरिया आदि अधिक मात्रा मे सचित हो जाये तो नाडी भरी हुई लगती है। नाड़ी का Systolic pressure कुछ ज्यादा होता है। नाडी का उठाव कुछ देर रहता लगता है ऐसी नाडी को गुर्वी स्थिरा, मन्दा (Full, Tense) नाडी कहा है तथा इसे कुक्कुट प्लुति, हस प्लुति, कपोत प्लुति कहा है।

वातकफनाडी—नाडी द्रुता भी हो, साथ ही गुर्वी भी हो, अर्थात् वह सर्पगति, हसगति या कुक्कुटगति भी हो तो उसे वातकफनाडी कहा है। यह शरीर एव हृदय की निर्बलता तथा देह मे अग्नि की मन्दता का सूचक है।

वातपित्तनाडी—नाडी निर्बल हो, साथ ही उसका उठाव अधिक भी हो तो उसे वातपित्तनाडी कहते है। निर्बलता वातवृद्धि का तथा उठाव पित्तवृद्धि का सूचक होते हैं।

कफपित्तनाडी—भी कभी हो सकती है अर्थात् वह ज्वर के कारण दीर्घा भी हो, और रक्त मे आम द्रव्यो की अधिकता के कारण वह गुर्वी, स्थिरा भी हो तो इसे कफपित्त नाडी कहा है। इसे हसमण्डूकगति नाडी भी कहा है।

त्रिदोषनाडी—नाडी अति मृद्वी, अति लघ्वी, अति वेगा, अति शीता या अति उष्णा या अति विषमा हो तो उसे त्रिदोष नाडी कहा है। यह कष्ट साध्यता या असाध्यता का सूचक होती है।

मूत्रपरीक्षा—मूत्र मे Urobilinogen के कारण या उसके आक्सिडेशन से उत्पन्न Urobilin के कारण उसका रग हलका सा पीला होता है। यह पदार्थ Bilirubin (पित्तरजकद्रव्य) से उत्पन्न होता है अत मूत्र ज्यादा पीला हो तो वह रक्त के या Bilirubin के अधिक मात्रा मे पचन का सूचक होता है एव वह पित्त वृद्धि का सूचक है। साधारणत मूत्र की मात्रा डेढ पौने दो सेर दैनिक के लगभग होती है, यदि वह अधिक हो अर्थात् मूत्र पतला हो तो वह वात प्रकोप का सूचक है अर्थात् यह वृक्को की निर्बलता का सूचक है। मधुमेह मे Chronic Nephritis मे ऐसा होता है। यदि यह कम हो, मूत्र गाढा हो तो यह कफ वृद्धि का सूचक है अर्थात् वृक्को मे कफ शोथ (Acute Nephritis) का सूचक है। साधारण मूत्र की Specific gravity 1015–1025 तक होती है। मूत्र के अन्दर विद्यमान ठोस द्रव्यो विशेषत Chlorides और Urea के कारण होता है यदि यह भार अधिक हो जैसा अल्ब्यूमिन के आने के कारण वह भारी हो तो वृक्को मे कफ शोथ Nephritis का सन्देह करें। हा यदि मूत्र की मात्रा अधिक हो वह जल की तरह हो यद्यपि उसकी Specific gravity ज्यादा भी हो तो उसे वातमूत्र कहते है। साधारण मूत्र मे गध विशेष नही होती। हाँ यदि वह Prostate ग्रन्थि के बढ जाने के कारण मूत्राशय मे न्यूनाधिक विदग्ध हो जाये तो उसमे अमोनिया की गध आ जाती है।

कफमूत्र उसे कहते है जब देहाग्नि की मन्दता के कारण मूत्र मे कुछ द्रव्य निकलने लगे। मूत्र कुछ धुधला हो, उसमे गुरुता हो, उसमे Oxalates, Urates, Phosphates, Mucus सिकता आदि आने लगे।

वातमूत्र प्रधानत उसे कहते है जब वृक्क उन द्रव्यो को जिन्हे निकालना है न निकाले और उन द्रव्यो को जिनको नही निकालना है निकालने लगे। मधुमेह, मज्जामेह आदि इसी प्रकार के रोग है। पित्त मूत्र उसे कहते है जब रक्त के अति पचन से उत्पन्न Urobilin या रक्त का कोई अश मूत्र से अधिक आने लगे।

मल परीक्षा—साधारण मल कुछ नरम पर बधा हुआ लम्बाई मे रूल की तरह होता है। मात्रा मे १ बार मे २-३ छटाक (५ औन्स के) लगभग होता है। मल पतला हो अर्थात् अतिसार हो तो छोटी आत मे श्लैष्मिक या पैत्तिक शोथ का सन्देह करें। यदि बडी आत मे उसके द्रव भाग का शोषण न होने से वह कुछ ढीला सा आता हो तो बडी आत मे चिरस्थायी शोथ (Amaebic Colitis) का सन्देह करे। इसमे बडी आत कुछ मोटी तथा क्षीण सी हो जाती है। इसलिए जो वातकफाधिक शोथ से युक्त प्रतीत होती है इसे चिरातिसार कहा गया प्रतीत होता है। मल कुछ पीला भूरा सा होता है। मल मे Bilirubin से उत्पन्न Stercobilin अधिक आने लगे, पीले रग के पतले अतिसार हों तो रक्त के अधिक टूटने का सन्देह करे। मलेरिया मे होने वाला अतिसार इसी किस्म का होता है। इसे पित्ताधिक मल कहते हैं।

साधारणत मल मे कोई गन्ध विशेष नही होती। अजीर्ण द्रव्य युक्त मल हो तभी मल मे दुर्गन्ध आती है। स्टार्च से युक्त अपक्व मल हो तो उसमे से खट्टी खट्टी गध आती है, मल मे गैस भी उत्पन्न होती है। फैट से युक्त अपक्व मल हो तो उसका रग कुछ श्वेत सा होता है। ऐसे अपक्व मल को कफाधिक मल कहते हैं। मल दृढ़ कृष्णवर्ण और शुष्क होकर टूट टूट कर आये तो यह आत की निर्बलता का सूचक होता है एव वाताधिक मल कहाता है। यदि मल मे चिरकाल तक उसमे मिले हुए आँव तथा रक्त आये, रोगी निर्बल एव कृश हो तथा कभी कभी ज्वर भी होता हो तो इसे त्रिदोषिक मल कहते हैं। मलाशय मे कैन्सर के कारण जब रक्त मिश्रित मल आये, रोगी बडी आयु का हो, निरन्तर कृश एव निर्बल होता जाता हो तो ऐसे मल को भी त्रिदोषिक मल कहते हैं।

जिह्वा परीक्षा—स्वस्थ व्यक्ति की जीभ साफ, कुछ गीली, हल्की रक्तवर्ण और रोगटो Papillae से युक्त दीखती है। उसके पिछले भाग पर हलकी सी सफेदी होती है। यदि यह सफेदी सारी जीभ पर हो जाये तथा कुछ गहरी हो तो इसे मलिन जिह्वा या Coated tongue कहते हैं। यदि शरीर मे Infection हो अर्थात् कोई हलका या तीव्र सक्रमण हो, Tonsils मे गले, मे, Sinuses मे दन्तमास मे शोथ हो या कोई ज्वर हो या आमाशय मे क्षुद्रान्त्र मे शोथ हो तो जिह्वा मलिन Furred दीखती है। यह कफ वृद्धि को सूचित करती है। यदि शरीर मे से जल, स्वेद, मूत्र आदि अधिक मात्रा मे निकल गये हो या किसी कारण शरीर अतिनिर्बल हो गया हो जैसे कैन्सर मे, क्षयरोग मे तब जीभ शुष्क हो जाती है। Saliva के बन्द हो जाने या सूख जाने से जीभ शुष्क होती है। निर्बल प्रकृति के बालकों की शुष्क जीभ पर जो Candida albicans की श्वेत सी फफूँद लग जाती है जिसमें हलका सा ज्वर भी होता तथा आमाशय आत मे शोथ भी होता है उसे भी वातिक जिह्वा कहते हैं। जिह्वा पर से Papillae उड जाये वह Smooth सी हो जाये उसमे बिवाइयां Fissures उत्पन्न हो जाये, जैसा कि सग्रहणी (Malabsorption) मे या रोगी की निर्बलता मे या विटामिन्स की कमी के कारण होता है उसे भी वातिक जिह्वा कहते हैं। यदि मन्दाग्नि हो, आमाशय मे शोथ हो तो जीभ भी आगे से मोटी हो जाती है, उसके किनारों पर दातों के निशान होते है। यह कफ वृद्धि का सूचक होता है। यदि आमाशय मे Hyper-chlorhydria हो, पित्ताजीर्ण हो तो जीभ का अगला सिरा रक्तवर्ण होता है।

मुखपरीक्षा— जिह्वा के समान ओष्ठ शुष्क हों तो शरीर मे विषसचार Toxaemia या जल की कमी का सन्देह करें। मधुमेह या Chronic Nephritis के कारण भी मुख सूखा रहता है। मुख से पानी ज्यादा गिरे तो अम्लपित्त का सन्देह करे। भारी भोजन करने या मीठा अधिक लेने के बाद भी मुह से पानी अधिक आ सकता है। इसे कफज मुख स्राव कहते हैं। अम्लपित्त के कारण लाला ग्रन्थियो पर Reflex प्रभाव होकर मुह मे एक साथ बहुत सा खारा सा पानी गिर सकता है जिसे Water brash कहते हैं। मुह से दुर्गन्ध आये तो Pyorrhoea, Caries, Tonsillitis, Chronic Rhinitis, Stomatitis या पुफ्फुस मे Bronchiectosis का सन्देह करें। श्वास मे मूत्र की सी गध आये तो वृक्क रोग का सन्देह करे। मुह से लिये भोजन के निगलने मे कष्ट हो तो Tonsillitis, Pharyngitis, या Laryngitis का सन्देह करें। मुख मे विरसता हो या कसैलापन हो तो शरीर मे वायु वृद्धि का, तीखा या कटु स्वाद हो तो पित्त की अधिकता का, मधुर स्वाद हो तो कफ की अधिकता का सन्देह करें।

शब्द परीक्षा— आवाज उत्पन्न तो कण्ठ (Larynx) मे होती है पर उसका आकार उसकी भिन्न-२ प्रकार की बनावट जिह्वा, गले, मुख, नासिका के दातो ओष्ठ आदि के द्वारा होती है। अतएव इनमे से किसी मे शोथ हो तो आवाज बदल जाती है। शब्द सुनते पता लग जाता है

गले मे, नाक मे कहा शोथ है या आदमी के दात है या नही हैं। कठ मे शोथ हो तो आवाज बिलकुल बैठ जाती है। आवाज अति निर्बल हो तो कठ मे वात वृद्धि, भारी हो तो गले आदि मे कफ शोथ और कही तीव्र शोथ के कारण ठीक न निकले तो पित्त वृद्धि का सन्देह करें।

नेत्रपरीक्षा — नेत्रो को हृदय या मस्तिष्क की खिडकी कहा जाता है। नेत्रो को देखकर दूसरे के हार्दिक भावो का अनुमान किया जा सकता है। दूसरे के दुख दर्द का भी पता लगता है। बूढे आदमियो मे नेत्रो के नीचे हल्का सा श्वयथु होता है जो उनके Chronic Nephritis का जो बहुधा Prostate enlargement के कारण होता है पता लगता है। दृष्टि मन्द हो, धुधली हो तो Lence मे वात वृद्धि या क्षीणता का सूचक होती है। दृष्टि प्रकाश को सहन न करती हो तो पुतली मे पित्त जनित शोथ का सूचक होती है। नेत्रो मे आर्द्रता हो, पानी गिरता हो या स्निग्धता हो तो नासिका नेत्र आदि मे कफ शोथ का सन्देह करना चाहिये। आखे कुछ हलकी सी उभरी हो तो Myopia का सन्देह करें। अधिक उभरी हो तो Thyroid ग्रन्थि की तीव्रता का सन्देह करे। आख कुछ अन्दर धसी हुई दीखे तो रोगी के अति निर्बल हो जाने या उसमे Dehydration के हो जाने का सन्देह करे। Cornea के किनारो पर गाढी श्वेत सी धारी उत्पन्न हो जायें तो इसे वृद्धावस्था का सूचक जाने।

स्पर्शपरीक्षा — त्वचा को स्पर्श करें, वह उष्ण हो तो शरीर मे पित्त वृद्धि का, वह शीत और रूक्ष हो तो वायु का अर्थात् स्वेद ग्रन्थियो के स्राव के सूख जाने का, (स्वेद स्रावक Sympathetic Nerves की निर्बलता का) वह स्निग्ध स्राव से या कुछ शोथ से युक्त हो तो मन्दाग्नि जनित कफ वृद्धि का अर्थात् Allergy का सन्देह करें। स्पर्शन द्वारा पसलियो से नीचे बढे हुए यकृत का, ग्रीवा, उदर आदि मे फूली हुई लसीका ग्रन्थियो का पता लगता है। यकृत्—बडी आत आदि मे शोथ हो तो स्पर्शन से रोगी के दर्द का पता चलता है।

आकृति परीक्षा Appearance — यदि कोई छोटी आयु का व्यक्ति बैठकर श्वास ले रहा हो, लेट न सकता हो तो वह श्वास रोग का रोगी है ऐसा समझ लिया जाता है। यदि कोई बडी आयु का व्यक्ति इसी प्रकार बैठकर श्वास लेता हो, लेट न सकता हो तो वह वाम-हृदय की निर्बलता का रोगी है ऐसा समझ लिया जाता है। यदि ४० वर्ष से ऊपर का व्यक्ति बैठकर सास ले रहा हो और उसकी ग्रीवा मे Jugular Vein मे होता हुआ धमन स्पष्ट दिखाई पडता हो तो समझ लिया जाता है उसका दाया हृदय फेल हो रहा है। यदि किसी बडी आयु के व्यक्ति का चेहरा भावहीन सा हो, शरीर मे स्तब्धता (Rigidity) हो तो उसे स्तब्धता युक्त पक्षाघात Paralysis agitans है ऐसा समझ लिया जाता है। यदि किसी छोटी आयु के व्यक्ति का शरीर कृश, चेहरा फीका, श्वास गति कुछ तीव्र दिखाई पडे तो वह क्षय रोगी है ऐसा समझ लिया जाता है। यदि बालक को आखो पर श्वयथु दिखाई दे तो उसे वृक्कशोथ Nephritis है ऐसा मान लिया जाता है। आखें कुछ आगे उभरी हुई हो तो Hyperthyroidism का सन्देह हो जाता है। रोगी के चेहरे पर चिन्ता का भाव हो, वह व्याकुल भी हो तो मान लिया जाता है उसे हृदय शूल या हार्ट अटैक है। बालक मुह खोलकर सास लेता हो उसे Adenoids है ऐसा सन्देह हो जाता है। छोटे बालक की कपाल की Fontenellae अन्दर की ओर दब गये हो तो समझे बालक मे Dehydration हुआ है। इनमे उभार हो तो बालक को Meningitis है ऐसा निश्चय हो जाना चाहिये।

(३) तीसरा रोगी वायु, पित्त या कफ किस प्रकृति का है उसकी आयु, उसका देश, उसका आहार, व्यवहार, मानसिक अवस्था क्या है इस ज्ञान से भी उसमें किस दोष की वृद्धि होकर रोग हुआ है यह जाना जा सकता है।

(क) अर्थात् यदि किसी की प्रकृति कफ की हो, उसके शरीर में स्वभावतः ही पक्ति कर्म की अपेक्षा वृद्धि कर्म प्रबल हो, शरीर में स्वभावतः गुरुता, स्निग्धता, शीतता, अग्नि मन्दता के लक्षण हो तो उसमें कफ दोष की वृद्धि से रोग हुआ है, ऐसी कल्पना करनी चाहिये।

यदि रोगी छोटी आयु का हो, शीत काल, पूर्वाह्न वसन्त काल, या रात्रि भोजन के तुरन्त बाद रोग बढता हो तो रोग को कफ दोष की वृद्धि से हुआ समझना चाहिये।

यदि रोग अधिक आहार लेने से या गुरु, स्निग्ध, शीत, गुण, मधुर, अम्ल, लवण, रस, आहार से और बैठे रहने या व्यायाम

न करने से बढा हो तो उसे भी कफ दोष की वृद्धि से हुआ समझना चाहिये ।

रोगी का देश, आनूप अर्थात् जल बहुल हो तो भी कफ दोष की वृद्धि से उसे रोग हुआ है, ऐसा समझना चाहिये ।

(ख) जो व्यक्ति जन्म से ही पित्त प्रकृति का हो अर्थात् जिसमें वृद्धि की अपेक्षा पक्ति कर्म प्रवल हो तो उसमें पित्त दोष की वृद्धि का ही अनुमान करना चाहिये ।

यदि रोगी मध्यमायु का हो, मध्याह्न, मध्य रात्रि या भोजन के हजम होते समय या ग्रीष्म काल या शरत् काल में अर्थात् पित्त प्रधान काल में रोग हो तो उसे पित्त दोष जनित समझना चाहिये ।

इसी प्रकार उष्ण गुण आहार पान करने वाले तथा कटु, अम्ल, लवण रस, आहार लेने वाले, अति श्रमशील व्यक्ति में रोग हो तो उसे पित्त दोष जनित समझना चाहिये । रोगी का देश रूखा, सूखा और गर्म हो तो भी उसमें पित्त दोष की अधिकता का अनुमान करना चाहिये ।

(ग) यदि रोगी जन्म से ही वायु प्रकृति का हो अर्थात् उसकी प्राण शक्ति या जीवनी शक्ति या प्रतिरोधक शक्ति, सहनशक्ति स्वभावत· ही कम हो, शरीर व मन में चलता (Excitability) का गुण विशेष हो, शीत आहार, विहार, अनुकूल न हो, अग्नि विषम हो तो उसमें रोग वायु दोष की अधिकता से हुआ है ऐसा समझना चाहिये ।

इसी प्रकार यदि आयु वडी हो, सायकाल या रात्रि के पिछले भाग में या भोजन के जीर्ण हो जाने के वाद या वर्षाकाल में अर्थात् वायु के काल में रोग हो तो उसे भी वायु दोष की वृद्धि से उत्पन्न हुआ समझना चाहिये ।

इसी प्रकार शीत रूक्ष गुण अपौष्टिक आहार, अति शारीरिक श्रम, अति क्रोध, चिन्ता, भय, शोक, (अर्थात् Mental Stress) आदि से वायु प्रकोपक आहार-विहार से रोग हो तो उसे भी वायु दोष जनित समझना चाहिये ।

इसी प्रकार आनूपदेश में रोग हो तो उसे कफ या वायु दोष की अधिकता से उत्पन्न हुआ समझना चाहिये ।

इसीलिये चरक ने जो यह कहा है कि रोगी में (१) दोष कौन-सा बढा है, (२) कौन-सा दूष्य है तथा (३) दोष के बढने और दूष्य की विकृति के कारण क्या-क्या हुए हैं, यह भली प्रकार पता लगाकर इनके विपरीत औषध आहार विहार का सेवन कराया जाए तो रोग अवश्य ही ठीक हो जाता है, ठीक ही है ।

(च० चि० ३०-२९३)

इसके अतिरिक्त चरक ने (विमान। अ० ८-९४) कहा है कि रोगी की प्रकृति, रोग से उत्पन्न विकृति और यह विकृति किन कारणो से हुई इस निदान ज्ञान के अतिरिक्त रोगी के वल की भी परीक्षा करनी चाहिये अर्थात् उसकी आहार शक्ति कितनी है, व्यायाम शक्ति कितनी है, सहन शक्ति या सत्व शक्ति कितनी है, स्वाभाविक शरीर सम्पत्ति कितनी है, इस प्रकार रोगी की वल परीक्षा भी करनी चाहिये तथा उसके रोग के वलावल की भी जाच करनी चाहिये ।

चिकित्सा सम्बन्धी कुछ आवश्यक सूचियां

रक्त–परीक्षा (Haematological Values Normal and abnormal)

रक्त कण–(Red cells) ५ मिलियन प्रतिक्यूविक मिलिमीटर मे । ये घट जाते हैं Nutritional Anaemia, Steatorrhoea (ग्रहणी रोग) Cirrhosis (यकृत वृद्धि) ।

Haemoglobin—१५ ग्राम १०० मिलि लिटर रक्त मे। घट जाता है Anaemia मे।

White blood cells (श्वेत कण W B C) ६ से ७५ हजार क्यूविक मिलिमीटर रक्त मे ये अधिक हो तो Leucocytosis कहते है। ५ हजार से कम हो तो Leucopenia कहते हैं। श्वेत कण वढ जाते है Bacterial infection मे। Cirrhosis of the liver (यकृत वृद्धि) कैन्सर, Heart infarction (हार्ट अटैक) Myeloid Leukaemia, Hodgkin's disease मे। ये घटते हैं Typhoid, Influenza, Malaria,

Virus infections, Aplasic Anaemia, Anaphylactic Shock, Traumatic Shock, Liver damage मे।

Differential Count — Polymorph Leucojutes ६०–६५ of white cells । उपर्युक्त Leucocytosis मे ये वढ जाते है। Leucopenia मे घट जाते है। इनका घटना रोग की तीव्रता का चिह्न है।

Lymphocytes २५%, वढते है Ch Tuberculosis, Ch Inflammation, Lymphatic Leukaemia घटते है Acute infections मे।

Eosinophils १–४% ५% से ऊपर हो तो Eosinophilia कहते है। Allergy मे, अर्थात् Asthma, Eosinophilic lungs, Urticaria, Angioneurotic Oedema, Eczema, Psoriasis, Prurigo (कण्डू) Exfoliative Dermatitis तथा Amaebiasis मे ये वढते हे।

Monocytes २–६% वढते है Malaria, T B मे।

Plalelets—२ से ४ लाख प्रति क्यूबिक मिलिमीटर रक्त मे । Aplastic Anaemia मे घटते है । वढते है Ch T B मे भारी चोट से।

Bleeding time १–३ मिनट, Purpura मे वढता है।

Coagulation Time २–४ मिनट। वढता है Haemophilia, Liver damage मे ।

Lipoids (वसासदृश पदार्थ) ४५० से ८५० मिलि १०० मिलि लि रक्त मे Fatty acids २००-४०० मिलि० । Phospholipids ६–१२ मिलि % Cholesterol १५०–२५० मिलि १०० मिलि लि रक्त मे । वढते है Diabetes, Obesity (मेदोवृद्धि) Arteriosclerosis, Ch Nephritis, Hypertension मे ।

Calcium–9-11 mg in 100 millilitre of blood। घटता है Osteomalacia, Ch Nephritis, Steatorrhoea (ग्रहणीरोग) ।

Glucose —८०–१२० मिलि in 100 Millilitre of blood। वढता है, मधुमेह, Hyperthyroidism मे।

Urea–२०–४० मिलि० प्र श । वढता है Nephritis, Nephrosclerosis मे।

Non-protein Nitrogen —१५–३५ मिलि० प्र श रक्त। उपर्युक्त रोगो मे वढता है Proteins ६–८ग्राम प्र श । इसमे Albumin ४५ ग्राम, Globulin १५ ग्राम, Fibrinogen–२ ग्राम, प्रोटीन्स । घटते है Nephritis, Nephrosis, Liver Cirrhosis अतिसार मे।

Acid Phosphatase —१–५ Units (King Armstrong) वढता है Prostate Cancer मे।

Alkaline Phosphatase ३–१३ Units । वढता है Osteomalacia मे ।

Ammonia-४०-७० मा ग्रा % । Amylase-८०–१८० Units% Ascorbic acid ४-१ ५mg%

Pyruvic acid 1-2 mg % SGOT ५–४० Units, SGPT ५–३५ Units Creatinine ७–१ ५ मिलि % Vit A–३०-१०० Units% ।

मूत्रपरीक्षा (Urine, Values, Normal and Abnormal) मात्रा–१२ सौ से १५ सौ मिलिलिटर। Reaction हलका Acidic। Specific-gravity १००५-१०२५ । Urea २०-३० ग्राम दैनिक । Chlorides १०–१५ ग्राम दैनिक । Uric acid–४– ७ ग्राम दैनिक। Creatinine १५ ग्राम । Oxalates अतिस्वल्पमात्रा मे। सोडियम ४, पोटा २ ग्राम। इनमे से Chlorides घटते है Ch Nephritis मे। Urea घटता है Ch Nephritis मे । Oxalates वढते हैं पत्र शाको के , दालो फलियो के अधिक लेने मे। Pyelonephritis रोग मे Puscells, Bacteria, White blood cells, Hyaline-casts, Albumnin मिलते है।

रक्तभार (Blood Pressure Normal) —

आयु	Systolic	Diastolic
४०	१२७	८६
४२	१२८	८७
४५	१३०	८८
४७	१३१	८९
५०	१३३	९०
५२	१३४	९०
५५	१३८	९०
६०	१४०	९१
६५	१४५	९२
७०	१६०	९२
७५	१६०	९२
८०	१६३	९०

आयु और ऊचाई के अनुसार वालको के शरीर का वजन।

आयु	ऊचाई	वजन
८ वर्ष	४ फुट	५४ पौण्ड
९ ,,	४ फु २ इ	५९ ,,

आयु	ऊचाई	वजन पौण्ड
१० वर्ष	— ४ फु ४ इ	— ६४ ,,
११ ,,	— ४ फु ६ इ	— ७०½ ,,
१२ ,,	— ४ फु ८ इ	— ७८ ,,
१३ ,,	— ४ फु १० इ	— ८८ ,,
१४ ,,	— ५ फु ½ इ	— ९९ ,,
१५ ,,	— ५ फु ३ इ	— १११ ,,

(ऊचाई और वजन की सूची-पौण्डोमें)

आयु	२१–२४	२५-२९	३०-३४	३५-३९	४०-४४	४५-४९
ऊ ५ फु २ इ हो तो	१२४	१२८	१३१	१३३	१३६	१३८
,, ५ फु ३ इ हो तो	१२७	१३१	१३४	१३६	१३९	१४१
,, ५ फु ४ इ हो तो	१३१	१३५	१३८	१४०	१४३	१४६
,, ५ फु ५ इ हो तो	१३४	१३८	१४१	१४३	१४६	१४७
,, ५ फु ६ इ हो तो	१३८	१४२	१४५	१४७	१५०	१५१

आयु और ऊचाई के अनुसार शिशुओं का वजन —

जन्म के समय	ऊचाई १९ इ	— भार ७½ पौण्ड
१ मास	२० इ	८½ ,,
२ ,,	२१ इ	१०½ ,,
३ ,,	२२ इ	१२ ,,
४ ,,	२३ इ	१३½
५ ,,	२३½ इ	१५ ,,
६ ,,	२४ इ	१६ ,,
७ ,,	२४½ इ	१७ ,,
८ ,,	२५ इ	१८½ ,,
९ ,,	२५½	२० ,,
१० ,,	२६ इ	२०½ ,,
११ ,,	२६½ इ	२१ ,,
१२ ,,	२७ इ	२२½ ,,

Thermometer–Equivalents —पहला Centigrade, दूसरा Fahrenheit है। ० = ३२/५ = ४१/ १० = ५० / १५ = ५९/२० = ६८/२५ = ७७/ ३० = ८६/ ३५ = ९५/९५ = ३७ = ९८ ६/३८ = १०० ४/३९ = १०२ २/४० = १०४/।

भोजन द्रव्यो मे Calories की सूची —(१ औन्स या आधी छटाक मे) सादी रोटी १००/ब्रेड ७२/आटा १०२ / चावल पका हुआ ७७ / दाल १०० / दूध २० / मक्खन २२४/घी २६४/तेल २००/बादाम १५८/मेवा २०/केला ४३ / अंगूर २०/ आम २५/सन्तरा १५/पपीता १२/ आलू २५/पापड़ ११५/बिसकुट मीठा-११२/बिसकुट नमकीन ८२/मूंगफली १५५/खजूर १००/अंजीर सूखी १००/अखरोट गिरी २००/ किशमिश १०८/१५/

भोजन द्रव्यो मे सोडियम (१०० ग्राम भोजन द्रव्य मे निम्नलिखित मिलिग्राम मात्रा मे सोडियम होता है)।

ब्रेड–६००/पत्रशाक १००/पालक ८५/ शलजम ४०/ मूली १५/दूध ५०/रक्तागोभी १५/गाजर १२/गोभी २०/प्याज १०/मुनक्का २५/टमाटर ३/बादाम ३/काजू ३५/ सेव केला, सन्तरा, खजूर १–१/अंगूर २।

भारकी सूची Weights and Measures —

(क) ६० ग्रेन = १ ड्राम — ४ ग्राम/८ ड्राम — १ औन्स (oz) = ३० ग्राम (g) लगभग/१६ औन्स — १ पौण्ड — ५०० ग्राम लगभग।

१००० माइक्रोग्राम = १ मिलिग्राम (Mg) १००० मिलिग्राम = १ ग्राम / १००० ग्राम = १ किलो ग्राम = २ पौण्ड ३ औंस = १ सेर ६ तो १००० किलोग्राम = १०० क्विन्टल

(ख) १५ ग्रेन — १ ग्राम/ १२ ग्रेन = ७५० मिलिग्राम १० ग्रेन = ६०० मिलिग्राम/ ८ ग्रेन — ५०० मिलिग्राम/ ५ ग्रेन — ३०० मिलि /४ ग्रेन = २५० मिलि /३ ग्रेन २०० मिलि / २ ग्रेन = १२० मिलि / १ ग्रे = ६० मिलि = ६० ग्राम/ १/२ ग्रेन = ३० मिलि = ०३ ग्राम / १/४ ग्रेन = १६ मिलि० = ०१६ ग्राम, १/८ ग्रेन-मिलि = ००८ ग्राम/ १/१६ ग्रेन = ४ मिलि = ००४ ग्राम १/२५ ग्रेन = २५ मिलिग्राम = ००२५ ग्राम / १/५० ग्रेन = १ २ मिलि = ००१३ ग्राम १/६० ग्रेन = १ मिलि = ०००१ ग्राम १/१०० ग्रेन = ६ मिलि = ०००६ ग्राम /१/२०० ग्रेन = ३ मिलि = ०००३ ग्राम

५ बून्द = ३ मि लि /१५ बून्द = १मि लि / ६० बून्द = ४मि लि /१२० बून्द = ८ मि लि /

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु खभाग्भवेत् ॥ इति ॥

INDEX—ENGLISH

R

S

T

U

V

W

अनुक्रमणिका—हिन्दी

आयुर्वेदिक योगौं का INDEX

क

ख

ग